ग्रन्थकारके प्रति

(प्रबन्ध-समितिकी ओरसे)

740

इस संसारमें समय-समयपर देशकालकी आवश्यकतानुसार उस कारुणीक परमात्माके आंशिक अवतार हुआ करते हैं। हमारे चरित-नायक महामना मालवीयजी हमारे ख़यालसे इसी प्रकारके ही आदर्श महापुरुषोंमेंसे एक हैं। ऐसे महामना महानुभावके आदर्श चरितका विकास जिन कठिन परिस्थितियोंमें हुआ है, उन सबको एक रोचक ढङ्गसे, सुन्दर, मनोहर शब्दोंमें सर्वसाधारणके सामने रखनेकी अत्यन्त आवश्यकता थी। प्रबन्ध-समितिको भाग्यवश एक पवित्र, वेदपाठी, महान् विद्यानुरागी, अग्निहोत्री-कुलोद्भव, विद्वान् लेखक श्री पण्डित सीताराम चतुर्वेदीजी मिल गए।

चतुर्वेदीजी, वेदपाठी विद्वान् तथा आदर्श कर्मकाण्डी श्री पण्डित भीमसेनजीके पुत्र हैं और स्वयं वेदाध्यायी, तीन विषयोंमें एम्० ए० तथा एल्० एल्० बी० और बी० टी० हैं। आपकी कार्य्य-कुशलता, परिश्रमशीलता, विद्वत्ता, सच्चरित्रता तथा मिलनसारी बरबस किसीके चित्तको अपनी ओर खींचती है।

चतुर्वेदीजीकी लेखनशैली निराली है। उनकी सुन्दर शब्दावलि तथा मनोहर वर्णनशैली रूखे विषयको भी रोचक बना देती है। इस जीवन-चरितमें तिथिक्रमसे जीवन-सम्बन्धी घटना-चक्रोंका विवरण नहीं दिया गया है बल्कि भारतके पिछले पचहत्तर वर्षोंकी धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा राजनीतिक परिस्थितियोंका वर्णन इस ढङ्गसे किया गया है कि पढ़नेमें पाठकोंको उपन्यासका आनन्द प्राप्त होगा। स्थान-स्थानपर सहृदय पाठक अपनेको, करुणा, वीर, तथा वात्सल्य रसमें सरावोर पावेंगे। उनके विशाल, स्वच्छ हृदयपर आदर्श चरित-नायकके अद्भुत चरित्रका चित्र खिंच जायगा।

चतुर्वेदीजीने एक पुण्य कार्य्य समझकर निःस्वार्थ भावसे अपनी अनुकरणीय और मनोहर लेखनशैलीद्वारा महामना मालवीयजीके महान् चरित्रको 'गागरमें सागर' की भाँति इस उद्देश्यसे लिखा है कि लोग जान लें कि विशेष परिस्थितियोंमें जन्म लेकर भी मनुष्य कितने ऊँचे उठ सकता है। हम आशा करते हैं कि महामनाजीके पवित्र चरित्रको मननकर भारतके लाल दुखिया भारतका मुख उज्वल करनेका प्रयत्न करके यशके भागी बनेंगे।

—ठाकुर शिवकुमार सिंह

ग्रन्थकार

पण्डित सीताराम चतुर्वेदी 'हृदय'

पूज्य मालवीयजीकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठके दिन

५ जनवरी सन् १९३७ ई० को काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयके श्री विश्वनाथ मन्दिरकी पवित्र भूमिपर जयन्ती-उत्सव मनानेके लिये विशाल पण्डाल सजाया गया था। वहाँ यज्ञ-मण्डपमेँ महामहोपाध्याय प्रिन्सिपल पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषणजीकी अध्यक्षतामेँ ३० दिसम्बरसे काशीके प्रसिद्ध पण्डितोँद्वारा विष्णुयाग आरम्भ किया गया था। इसके साथ-ही-साथ पूज्य मालवीयजी द्वारा सङ्कलित महादेव-माहात्म्य, शतचण्डी, गीता-पाठ, महामृत्युञ्जय-जप आदि भी किए गए। ५ जनवरीको प्रातःकाल पूज्य मालवीयजी फ़ैज़पुर कांग्रेससे लौटकर काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय आए। सुबहसे ही पूज्य मालवीयजीके बँगलेपर दर्शकोँकी भीड़ लगी हुई थी। प्रातःकाल ही बाहर आकर पूज्य मालवीयजीने सबको दर्शन दिए। यहाँसे दर्शनकर सब लोगोँने सभामण्डपकी ओर प्रस्थान किया।

निमन्त्रित व्यक्ति, अध्यापक, महिलाएँ, छात्र, छात्राएँ और छोटे-छोटे बच्चोँसे निश्चित स्थान भर गया था। नौ बजते-बजते सभा-मण्डप ठसाठस भर गया। पैदल, घोड़ा, गाड़ी, मोटर और इक्कोँका ताँता लगा हुआ था। सब वहीँ पहुँच रहे थे। ठीक दस बजे पूज्य मालवीयजी, काशी-नरेशके साथ यज्ञशालामेँ पधारे, जहाँ यज्ञ और वेदध्वनि हो रही थी। पूर्णाहुतिके समय ब्राह्मणोँने आपको आशीर्वाद दिया और फल-फूल समर्पण किए। सभा-मण्डपमेँ पधारनेपर स्कूलकी छात्राओँने आपका स्वागत किया। चारोँ ओरसे जय-ध्वनिके घोषसे सभा-मण्डप गूँज उठा। फिर बालचर-मण्डलीने स्वागत गान सुनाया, उसके बाद बालिकाओँने गाना गाया। बच्चोँ और श्रद्धालुओँने पूज्य मालवीयजी और काशी-नरेशको मालाएँ पहनाईं।

इसके बाद महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषणजीने आपके छिहत्तरवेँ जन्मदिवसकी शुभ कामना संस्कृतमेँ पढ़कर सुनाई। नैयायिक पण्डित बालकृष्णजी मिश्रने पूज्य मालवीयजीकी जन्मतिथि, पक्ष और महीनेकी विशेषताका चमत्कारिक अर्थ बतलाते हुए आपको बधाई दी। प्रोवाइस-चान्सलर राजा ज्वालाप्रसादजीने यह जीवन-चरित ग्रन्थ मालवीयजीको भेँट किया और इस ग्रन्थके लेखकका परिचय दिया और उनको धन्यवाद दिया। फिर पण्डित सीताराम चतुर्वेदीजीने इस ग्रन्थके प्रथम और अन्तिम अध्याय पढ़कर सुनाए जिसे सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध सी हो गई और बहुत समयतक करतल-ध्वनि करती रही। श्री मालवीय-जीवनचरित समितिके अध्यक्ष पण्डित रामनारायण मिश्रजीने ग्रन्थके सहायकोँको धन्यवाद दिया और एक स्थानीय सज्जन-द्वारा तैयार की हुई एक सुन्दर सुनहरी देशी घड़ी भेँट की जिसके साथ भारत-माताकी मूर्त्ति बनी हुई थी। आर्य्य-समाज, अछूतोद्धार सभा, सेवासमिति बालचर-समिति, महिला-विद्यालय, इत्यादि अनेक समितियाँ और संस्थाओँकी ओरसे बधाई तथा शुभ कामनाएँ प्रकट की गईं। इनमेँ बाबू गौरीशङ्कर प्रसाद वकील और राजपण्डिता श्रीमती यमुना देवीके भाषण उल्लेखनीय थे। अन्तमेँ पूज्य मालवीयजीने एक छोटासा सारगर्भित, विनम्र भाषण दिया—

पूज्य मालवीयजीका भाषण

विद्वज्जन, देवियो, सज्जनो और विद्यार्थियो!

'मैँ तो आज मूक हो रहा हूँ। जिस प्रेम और उत्साहसे आप लोगोँने यह उत्सव मनाया है उसके विषयमेँ मैँ क्या कहूँ। मैँ शब्दोँमेँ उस भावको प्रकट

Dilliraman-Kalyani Regmi Memorial Library
Bibliographical Data Entry Worksheet

Databas Name: ____________ Worksheet: ____________ Language (31): हिन्दी

Input Date (22): २०६८।११।१० Call No: (610): ^a Class No. ____________

^b Book No. ____________

Personal Author (300): चतुर्वेदी, सिताराम

Corporate Body (310): ____________

Title (200): महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय
(प्रथम, द्वितिय र तृतीय खण्ड)

Edition (260): ____________ place (400):^a ____________

Publisher: ^b ____________

Year of Publication (440): १९३८

Physical description (460): ^a २०८; ५१०; २९६ पृ. ^b सचित्र

Series Statement (480): ____________

Note (500): ____________

Broad Subject Heading (30): ____________

Keywords (620): ____________

Geographical Descriptor (630): ____________

Local Descriptor (640): ____________

ISBN (100): ____________ ISSN (101): ____________

Location (Holding Library): डि. के. आर. एम. पुस्तकालय

Country of Origin: भारत Language of Text: हिन्दी

Conference /Meeting (320): ____________

Thesis Descriptor (650): ____________

National Union Catalogue No (110): ____________

Copyright No.: ____________

Type of Material (060): पुस्तक

Accession No.(1): दर्ता नं. 6080

नहीं कर सकता। मैं भगवान विश्वनाथसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे और आयु दें। आप कहोगे कि तुम कितने निर्लज्ज हो कि अपने मुँहसे अपनी आयु चाहते हो, जब इतने भाई बहनोंने तुम्हारी आयुके लिये भगवानसे प्रार्थना की। फिर वे भगवान तो सबके हृदयमें, घट-घटमें रहनेवाले हैं, फिर उनसे क्या माँगें। लेकिन मैं क्या करूँ। देशकी दशा बड़ी बुरी हो गई है। हिन्दू धर्म भी असङ्घटित है। सारी जातिकी दशा बुरी हो गई है। इस दुःखके उमड़ते हुए समुद्रमें क्या मुझे मरनेकी फ़ुरसत है? मुझे सबसे बड़ी यही चिन्ता है कि देश और धर्मकी किसी तरह दशा सुधरे और मैं इसी लिये भगवानसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे इस कामको करनेके लिए आयु देनेका अनुग्रह करें। एक बात यह है कि मुझे यह सौभाग्य मिला है कि मेरे पितामह, पितामही, पिता और माता बड़े धर्मात्मा, पवित्र, सदाचारी और निःस्वार्थी ब्राह्मण थे, उन्हींके प्रसादसे मैं इतना काम कर सका हूँ। मैंने बहुत थोड़ी विद्या पढ़ी है। मैं बहुत कम अंग्रेज़ी और कम संस्कृत जानता हूँ। मुझमें शारीरिक बल भी कम है और धन तो सदासे ही कम रहा है। मेरे पिता एक ग़रीब ब्राह्मण थे और उन्होंने सदा ब्राह्मणका जीवन बिताया। यह उन्हींकी तपस्या थी जिसने मुझे धर्म, जाति और देशका सेवक बनाया। मैं चाहता हूँ कि भारतवर्षके सब लोगोंको ऐसे ही धर्मात्मा पिता और पितामह मिलें जिन्होंने पाँच रुपयेसे कमकी आमदनीमें भी कभी नौकरीका लालच न करके सन्तोषसे जीवन व्यतीत किया। मैं चाहता तो अपना व्यक्तिगत लाभ बहुत कर सकता था किन्तु दस-पाँच लाख रुपया मिलता भी तो क्या था। मैं सुखसे जीवन बिता सकता था पर वह इस सेवाके सामने कुछ भी नहीं था।

सौ वर्षकी उम्र कोई बड़ी बात नहीं है। मेरे ताऊ, पिताके बड़े भाई और स्वर्गीय दादाभाई नौरोजीने तिरानबे वर्षकी उमर पाई। मेरा दस वर्षका कार्य्यक्रम है, जिसको मैं इसी शरीरमें पूरा करके जाना चाहता हूँ। अभी यहाँ मन्दिर बनानेकी इच्छा है, किन्तु यह कोई बड़ी बात नहीं है। मन्दिर क्यों न बने? यह तो इस विश्वविद्यालयके हृदयके समान है। जब हृदय ही नहीं होगा तो शरीर किस कामका! हज़ारों वर्ष पहले योरोपके लोग जब नङ्गे फिरते थे, उस समय हमारे यहाँ सभ्यताका सूर्य्य उन्नति पर था और यहाँकी संस्कृति बड़ी प्रबल थी। इस संस्कृतिकी रक्षा करना हम लोगोंका परम उद्देश्य होना चाहिए। कौनसा ऐसा स्थान है, जहाँ हिन्दू संस्कृतिकी रक्षा और देशका अभिमान हो? अंग्रेज़ अपनी संस्कृतिका अभिमान करते हैं, ईसाई और मुसलमान अपनी संस्कृतिका। फिर आप ही लोग अपने धर्मका अभिमान क्यों नहीं करते? इस विश्वविद्यालयको एक ऐसा केन्द्र बनाओ, जहाँ सबके मनमें हिन्दू संस्कृतिका भाव हो और जहाँ इस संस्कृतिको समझने और रक्षा करनेका उपाय हो सके। ऐसे एक नहीं, सौ विश्वविद्यालय भी थोड़े हैं। पर कम-से-कम एक तो अवश्य हो और वह केन्द्र ऐसा प्रबल हो कि वहाँ सबका ठीक-ठीक प्रबन्ध हो। मैं आज ज्योंही यज्ञमण्डपमें आया, त्योंही मुझे वेदकी गम्भीर ध्वनि सुनाई दी और मेरा मन ऐसा प्रसन्न हो गया जैसे बादलकी गरज सुनकर मोर नाच उठे। वह स्वर, नियम और मर्य्यादाके साथ किया हुआ वेदघोष चित्तको कितना प्रसन्न करता था। एक तो वेदका सङ्गीत और एक सामान्य सङ्गीत—दोनों हमारी संस्कृतिके मूल हैं। सा, रे, ग, म, वेदोंमें ही बँधे हैं। मुझे आशा है, सब लोग श्रद्धा और सच्चे सङ्कल्पके साथ इनकी रक्षा करेंगे और बचावेंगे। मैं चाहता हूँ और आशा करता हूँ तथा मुझे विश्वास है कि यहाँ दस हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पावेंगे, अभी तो कुल साढ़े तीन हज़ार विद्यार्थी हैं। मैं चाहता हूँ कि एक हज़ार विद्यार्थी यहाँसे अन्न-वस्त्र पाकर पुराण-शास्त्रका अध्ययन करें। वे केवल इसी लिये यहाँ न आवें कि यहाँ अन्न-वस्त्र मिलता है, बल्कि सच्चे हृदयसे यहाँ अध्ययन करने आवें।

पचीस करोड़ हिन्दुओँके लिये एक हज़ार विद्यार्थियोँका पोषण करना कठिन नहीँ है। यहाँ पण्डित बालकृष्णजी और पण्डित प्रमथनाथजी जैसे विद्वान् भरे पड़े हैँ। अभी संस्कृत-विभागके लिये पचास लाख रुपये चाहिएँ। विद्यार्थियोँ और अध्यापकोँके रहनेकी जगह चाहिए।

इस मन्दिरके लिये मैँ क्या कहूँ। यह अबतक क्योँ नहीँ बना, इसके लिये मुझे बड़ा दुःख है। पचास मील पैदल चलकर एक तपस्वी महात्मा आए और इसकी नीँव रख गए, तबसे यह अभीतक नहीँ बन सका। पर इसका सब दोष मुझपर ही है। पर आप घबराएँ नहीँ। विदेशोँमेँ भी बड़े-बड़े मकानोँके बननेमेँ योँही देर होती है। कुकरमुत्ता तो योँही उग आता है, पर बड़े वृक्षके बढ़नेमेँ समय लगता है। मैँने इसके लिये काफ़ी समय नहीँ दिया, मुझे इसकी बड़ी शर्म है। हम सबको जतन करना चाहिए कि सामग्री इकट्ठी हो और काम हो। सब विद्यार्थी इस मन्दिरके लिये प्रयत्न करेँ और धन इकट्ठा करेँ तो समुचित प्रबन्ध हो। मेरा दस वर्षका कार्य्यक्रम है। आप विश्वास रक्खो, मैँ अभी नहीँ मरूँगा। शरीर छूटनेपर भी मैँ नहीँ मरूँगा, बल्कि हिन्दू विश्वविद्यालयमेँ या यहीँ कहीँ जन्म लेकर हिन्दू-जाति और देशकी सेवा करूँगा। यदि भगवानकी मर्ज़ी होगी तो वे मुझे और आयु देँगे। यदि उन्हेँ इस शरीरसे और सेवा करानी होगी तो वह मेरे स्वास्थ्यमेँ और बलमेँ वृद्धि करेँगे और यदि उनकी इच्छा नहीँ होगी तो उनकी मर्ज़ी। इस बातको भगवान समझते हैँ।

जिन लोगोँने मुझे आशीर्वाद दिया है, उनको मैँ हृदयसे धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि सब लोग हिन्दू संस्कृतिकी रक्षा करेँगे, जिससे हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाका उद्देश्य पूर्ण हो।

मैँ फिर आप सबको रोम-रोमसे धन्यवाद देता हूँ।”

इसके बाद मालवीयजीकी जयकारके साथ सभा विसर्जित हुई।

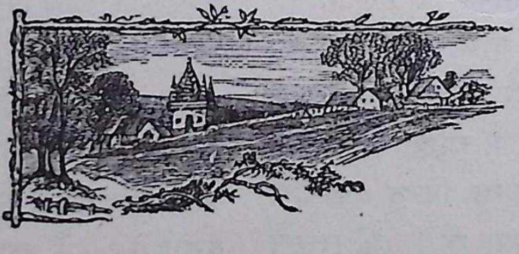

प्रथम खण्ड

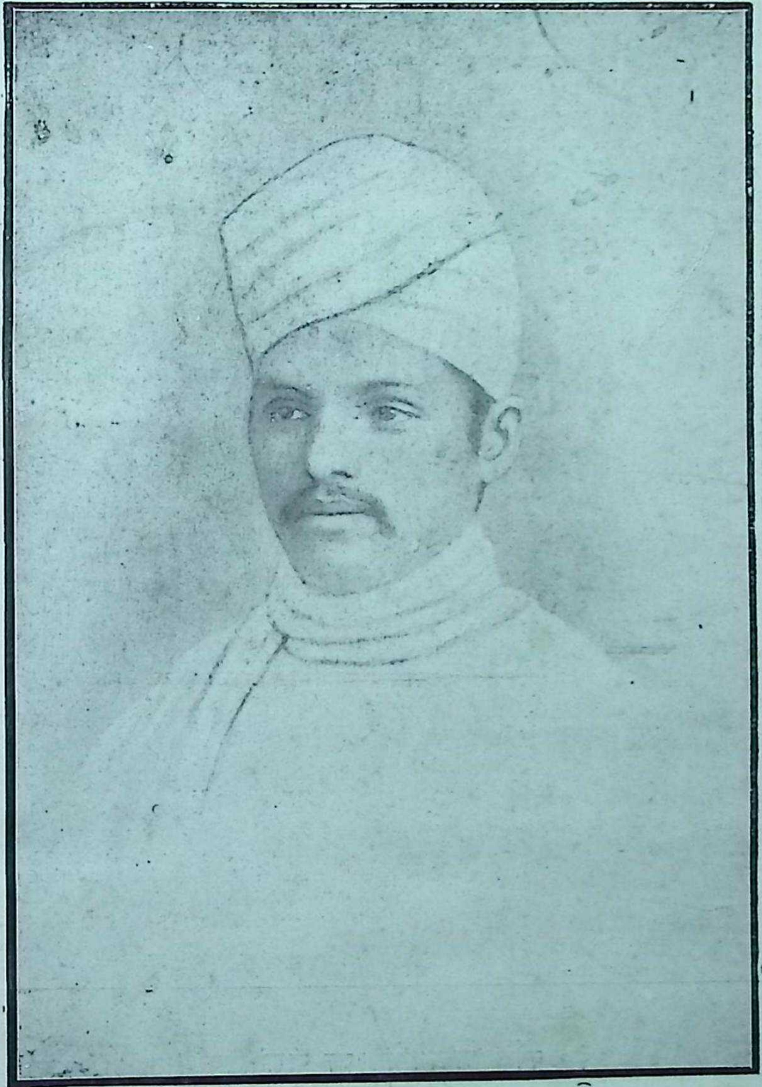

२५ वर्षकी अवस्थामें पूज्य मालवीयजी।

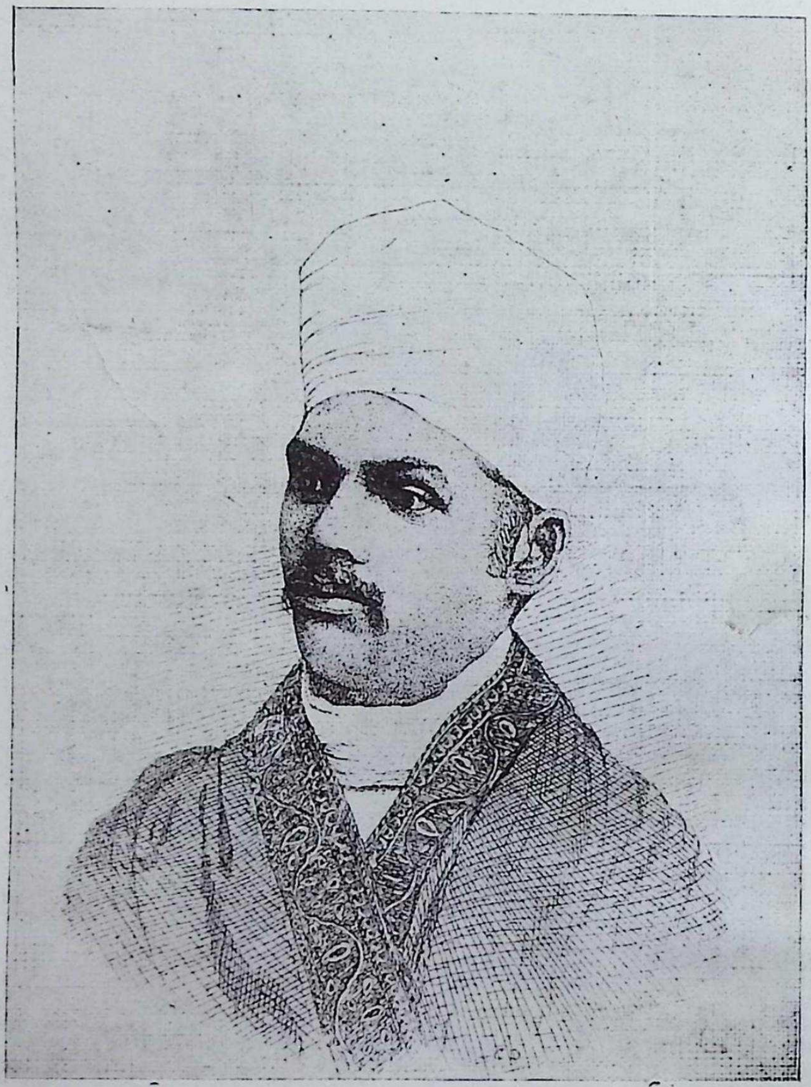

३० वर्षकी अवस्थामेँ पूज्य मालवीयजी।

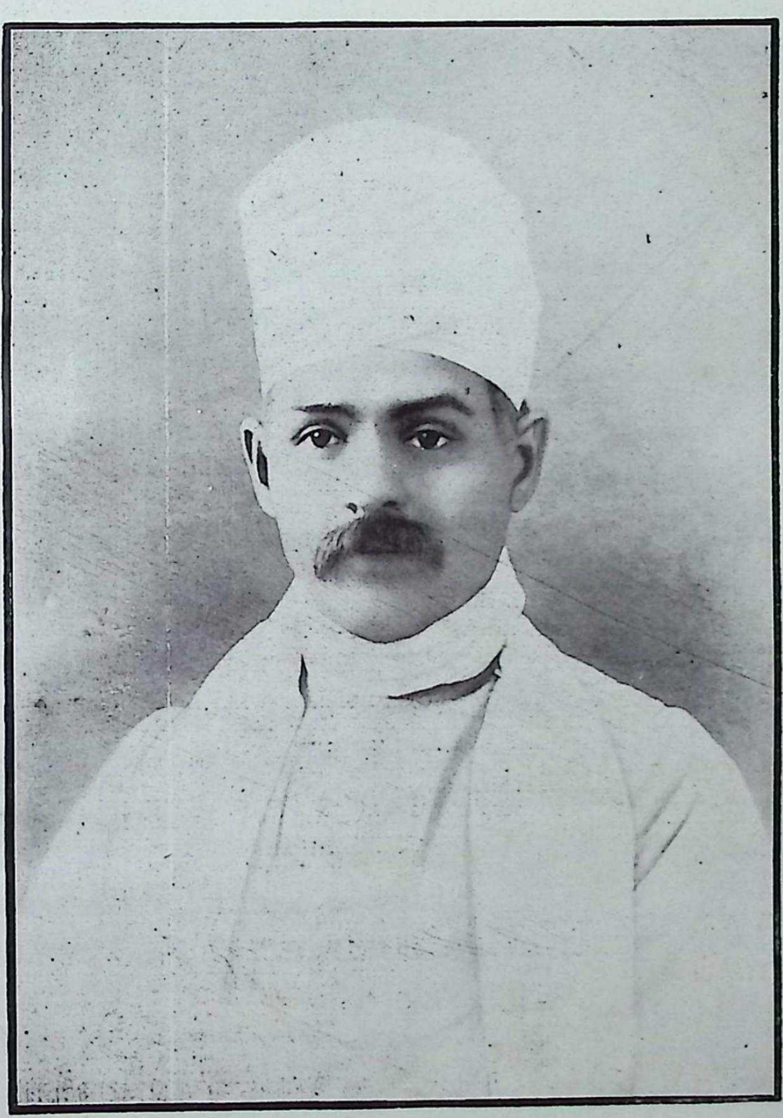

पूज्य मालवीयजी ४० वर्षकी अवस्थामें।

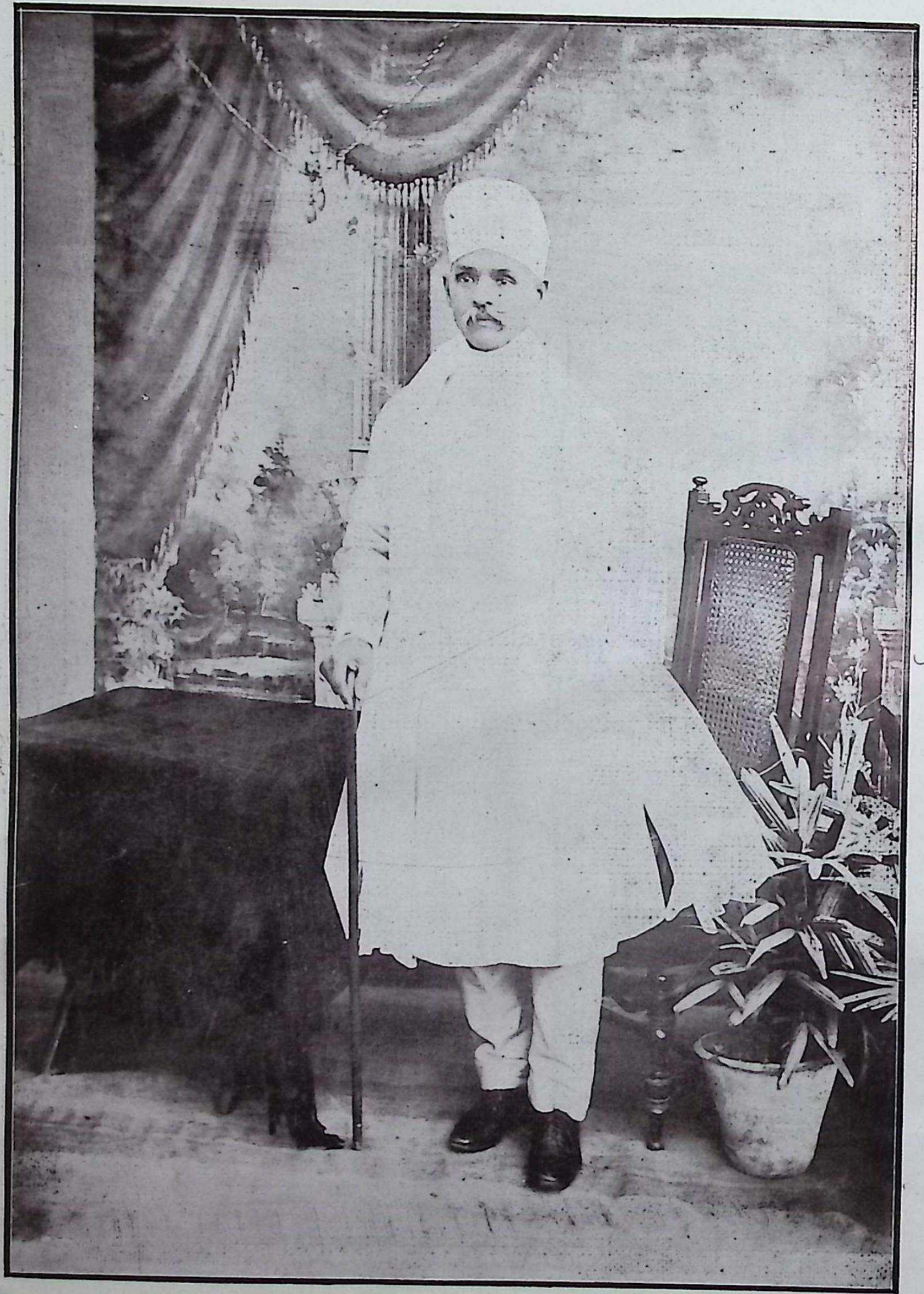

पूज्य मालवीयजी ५० वर्षकी अवस्थामें।

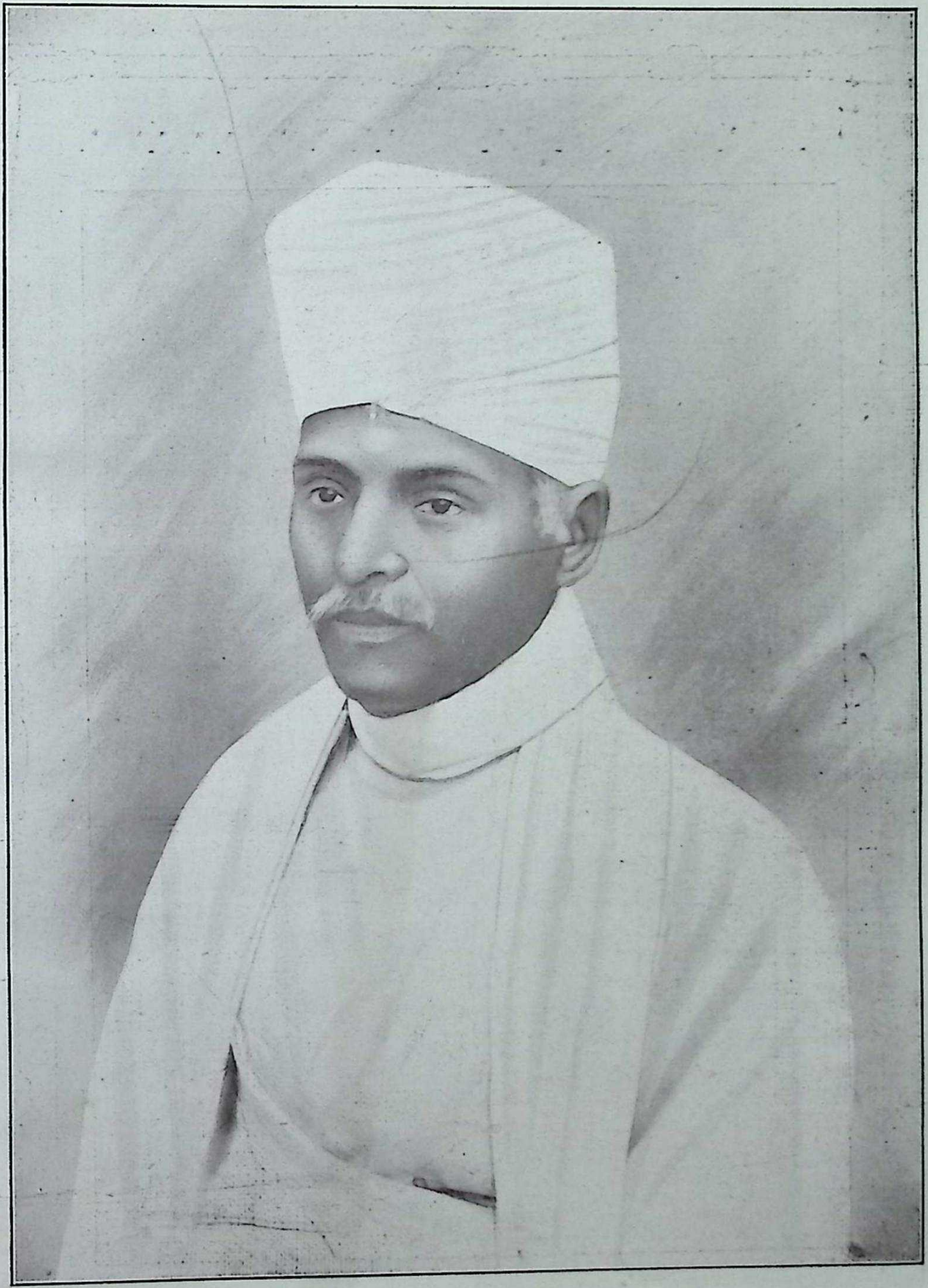

पूज्य मालवीयजी ६० वर्षकी अवस्थामेँ।

पूज्य मालवीयजी ७० वर्षकी अवस्थामें।

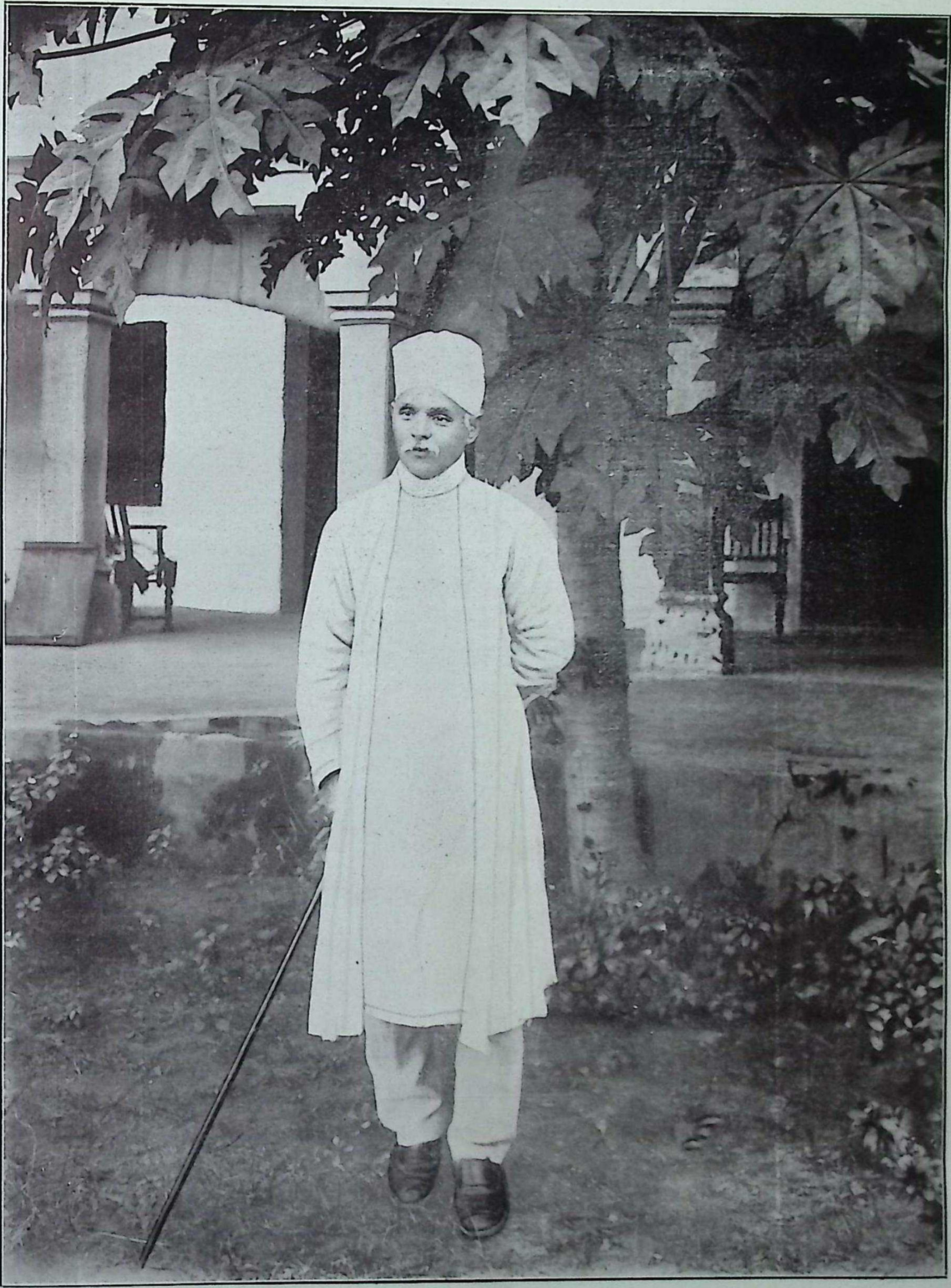

पूज्य मालवीयजी ७२ वर्षकी अवस्थामें।

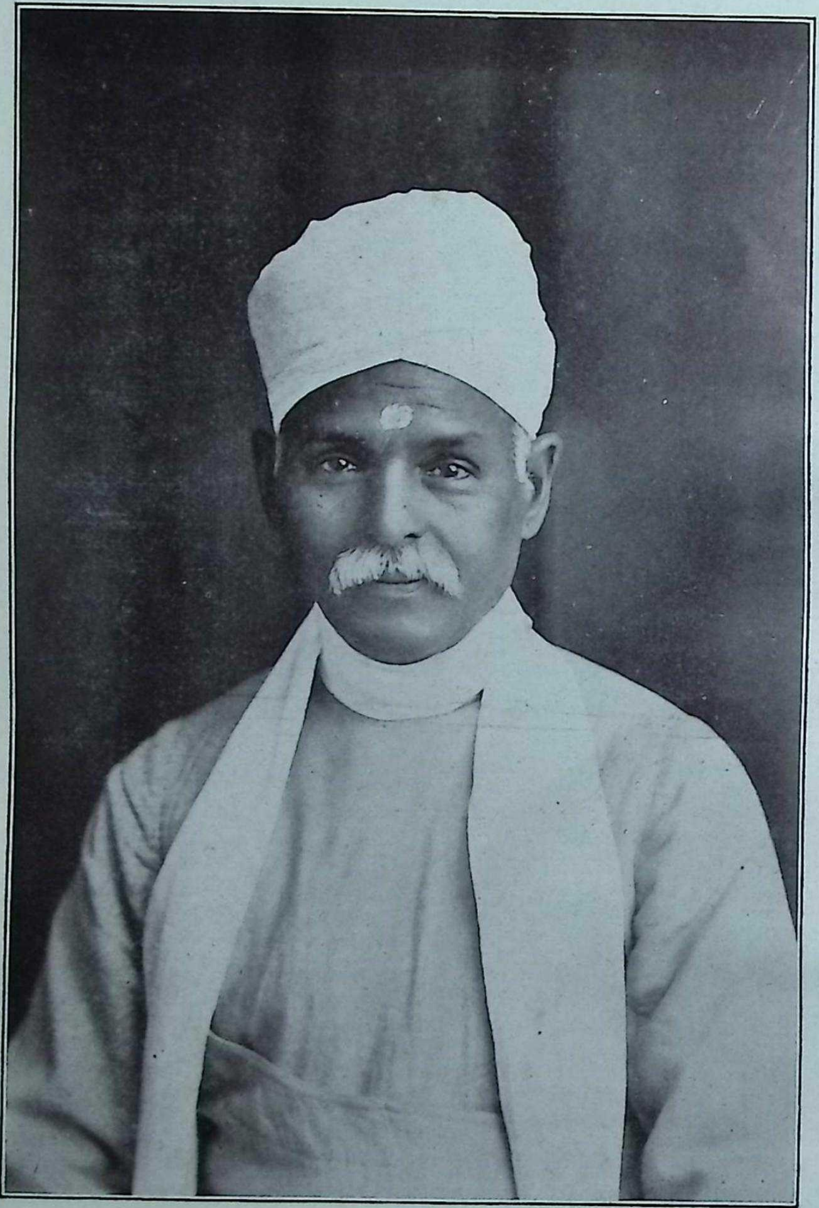

पूज्य मालवीयजी ७५ वर्षकी अवस्थामें।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

आदिदेवं नमस्कृत्य वन्दे देवान्महोजसाः ।
सर्वा देवप्रिया वन्दे वन्दे स्वपितरौ सदा ॥
रामं रामप्रियां वन्दे वन्दे रामानुजाँस्तथा ।
रामस्य पितरौ वन्दे वन्दे रामानुगं हरिम् ॥
मदनो मोहनो यस्तु मालवीयं नमामि तम् ।
सीतारामेण सङ्क्त्या यच्चरित्रं सुवर्णितम् ॥

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय

पचहत्तर बरस पहलेकी बात है

आजके प्रयागको देखकर किसीको गुमान भी न होगा कि पचहत्तर बरस पहले यह खपरैलके मकानोंका एक बड़ा देहात था। तब ये खुली, चौड़ी, चिकनी सड़कें नहीं थीं, ऊँची ऊँची अटारियाँ और कोठियाँ नहीं थीं, रङ्गबिरङ्गी फूलोंकी क्यारियाँ और हरियाले घने पेड़ोंकी झुरमुटमें ऊँचा सिर करके खड़े हुए बँगले भी नहीं थे। न तो आँखोंको चुँधियानेवाली बिजली थी, न दिल दहलानेवाले पुतलीघर। हाँ, इस देहातमें त्रिवेणीके भक्तोंने पुण्य करके कुछ मन्दिर और धर्मशालाएँ बनवा दी थीं जहाँसे साँझ-सबेरे भगवान्के भजन, शङ्खकी गूँज और घण्टे घड़ियालोंकी टन्टन् झन्झन् भक्तोंका मन लुभाती थी।

आज जहाँ घनी बस्ती और बड़ी-बड़ी दूकानें दिखाई पड़ रही हैं, वहाँ खुला जङ्गल था। जहाँ आजकल सरकारी अफ़सरों और नगरके धनी-मानियोंके बँगले चमकते हैं वहाँ जङ्गली जानवर पेड़ोंकी ठण्ढी छाँहमें लोट लगाते या माँदोंमें जाकर सोते थे। बस्तीमें छोटी-छोटी पुरानी चालकी सड़कें और सँकरी गलियाँ थीं जो मेलोंके दिनोंमें थोड़ेसे नरनारियोंसे ही ठसाठस भर जाती थीं। उस समय कोई प्रयागकी सैर करनेको नहीं जाता था। जो जाता था वह अपना आराम छोड़कर, झोलीमें सतुवा बाँधकर, त्रिवेणीमें एक डुबकी—बस एक डुबकी—लगाने, और उसका प्रयाग जाना सफल हो जाता था। अब ज़माना बदल गया है। अब सैर

करनेवाले लोग त्रिवेणीको नहीं पूछते, क्योंकि अब प्रयागमें मन लुभानेवाली बहुतसी चीज़ें हो गई हैं।

पर हाँ—एक बात है—गङ्गा और यमुना आज भी उसी तरह, उसी वेगसे, उसी उमङ्गसे, उसी शानसे प्रयागकी गोदमें एक दूसरेसे मिलनेके लिये पगली सी दौड़ी चली आती हैं—पिता हिमालयकी गोद छोड़ते ही उनका बिछोह हुआ—फिर यदि वे दोनों बहनें इतने हुलाससे मिलनेको दौड़ें तो अचरज क्या? और फिर वह दुर्ग—अकबरका बनाया हुआ वह क़िला भी तो ज्यों-का-त्यों खड़ा है। मुग़लोंके सुनहले दिनोंकी याद लिए हुए, लुटी हुई शानकी कसक लिए हुए यमुनाकी ठण्ढी कोमल लहरोंकी थपथपी पाकर चुपचाप खड़ा है, जैसे उसमें प्राण न हो, जीवन न हो, आत्मा न हो। सचमुच उसकी पिछली बातें याद करके रोना आता है। पर यह तो संसारका चक्कर है। कल भी यही था, कल भी यही रहेगा।

प्रयाग ही नहीं, उस दिनका हिन्दुस्थान भी जिसने देखा होगा वह आजके हिन्दुस्थानको नहीं पहचान सकता। एक आग लगी थी—बड़ी भयङ्कर, बड़ी दर्दनाक—पता नहीं कैसे लगी थी। कोई कहते हैं कि विदेशी जुएको कन्धेसे हटानेके लिये लगी थी, कोई कहते हैं कि कुछ देशी राजाओंने अपने खोए हुए राजको लौटा लेनेके लिये लगाई थी, कोई कहते हैं कि बेड़ियोंमें कसी हुई माँ का बन्धन खोलनेके लिये यह आग लगाई गई थी, कोई कहते हैं कि यह फ़ौजी सिपाहियोंकी धर्मान्धता थी और कुछ नहीं; जितने मुँह उतनी बातें। आग लगी थी, यह सच है। क्यों लगी थी? यह हरएक बुद्धिमान् समझ सकता है। पर सचमुच वह आग कितनी निठुर थी, कितनी विकराल थी। लाखों हिन्दुस्थानी और अंग्रेज़ उसकी लपटोंमें जल मरे। आख़िर वह बुझी। पर जिस लिये वह लगी थी वह मतलब पूरा हुआ या नहीं इसमें सन्देह है। हाँ, यह हुआ कि हमारी आपसकी फूटने औसर पाकर भारतके भाग्यकी कुञ्जी सदाके लिये न सही पर उस समय तो इङ्गलैण्डके हाथोंमें सौंप दी, जिसके प्रतिनिधि लौर्ड कैनिङ्ग बृटिश भारतके पहले शासक हुए। पर हम जिस दिनकी बात कह रहे हैं उस दिन आग बुझ चुकी थी, उसकी राख बहा दी गई थी और चारों ओर सन्नाटा छा गया था। तोप और बन्दूक़ोंकी गड़गड़ाहट बन्द हो गई थी। सड़कोंके किनारे, पेड़ोंपर टँगे हुए फाँसीके फन्दे उतार लिए गए थे और प्रयागमें ही १ नवम्बर, सन् १८५८ ई० को लौर्ड कैनिङ्गका शानदार दरबार हुआ और कई देशी राजाओंको पदवियाँ बाँटी गईं। अब हिन्दुस्तान फिर चुप होकर बैठ गया, और जैसी इसकी पुरानी आदत है, फिर अपने काम-धन्धेमें लग गया मानो कुछ हुआ ही नहीं।

पर विपत्ति अकेली कभी नहीं आती। सन् १८६०-६१ ई० में पश्चिमोत्तर देश (वर्त्तमान संयुक्त प्रान्त) पर भगवान् इन्द्र रूठ गए। न बादल उठे, न जल बरसा। त्राहि-त्राहि मच गई। यमुना और सतलजके बीचमें तो लोगोंका और भी बुरा हाल था। एक अन्नका दाना मुँहमें डालनेको नहीं मिला। नौ महीनों तक पैंतीस हज़ार अकाल-पीड़ितोंको सरकारी मदद और अस्सी हज़ारको ख़ैराती मदद मिली लेकिन फिर भी पाँच लाख जीते जागते प्राणी भूखसे तड़प-तड़पकर मर गए। कितना भयानक वह अकाल होगा। बस यही समझिए कि वे हिन्दुस्थानी थे, सभ्य आर्य्योंकी सन्तान थे, मौतके मुँहमें पड़कर भी उन्होंने धर्मको नहीं छोड़ा। वे मरते मर गए पर उन्होंने न तो लूटमार की और न हत्या की। पर हम पूछते हैं, क्या भगवान् इन्द्रके क्रोधके ही कारण यह अकाल पड़ा था? इस सवालका जवाब देना सहल नहीं है। वह क्यों पड़ा था, यह सुनकर जी काँप उठता है।

हिन्दू धर्मकी नाव उस समय आँधी और लहरोंमें पड़ी थी। कई मल्लाह थे, कई पतवार थामे हुए थे। सब अपने-अपने मनसे खे रहे थे। बूढ़ी नावपर बेचारा हिन्दू धर्म बैठा हुआ था। यदि कोई नावको सुधारनेकी

सलाह देता था तो वह अपराधी समझा जाता था और नावपरसे ढकेल दिया जाता था। उधर दूसरी नावेँ थीँ जो मज़बूत भले ही न हों, पर देखनेमेँ अच्छी चमकदार थीँ। बस हमारे नौजवान लगे धड़ाम-धड़ाम हिन्दू धर्मकी नावपरसे कूदने और लगे उन नई-नई लुभावनी नावोँपर चढ़ने। यह धर्म ऐसी चारदीवारीसे घिर गया था कि उसको फाँदना कठिन था और फाँदनेके बाद भीतर आना तो बिल्कुल ही असम्भव था। बड़ा कठोर दबदबा था। इसलिये अंग्रेज़ी पढ़े लिखे कुछ लोगोँने हिन्दू धर्मको तिलाञ्जलि दी और अंग्रेज़ी रङ्गमेँ ऐसे रँगे कि खाना, पीना, उठना, बैठना, बोलना, चालना सब अंग्रेज़ी हो गया। पछुवाँ हवाका ऐसा झोँका आया कि इन नये पौधोँको उड़ा ले गया। इतना ही नहीँ बल्कि वे अपने बाप-दादोँके धर्मको कोसने लगे, संस्कृत साहित्यमेँ दोष निकालने लगे, और आर्य्य संस्कृतिकी जड़ उखाड़नेके लिये कमर कसकर तैयार हो गए।

पाठशालाओँ और मकतबोँसे लोग उकता उठे थे। पाधाओँ और मौलवियोँके डण्डोँने पहले ही से लोगोँको डरा रक्खा था। अंग्रेज़ी स्कूल खुलते ही लोग उन्हींकी ओर दौड़ पड़े। उस समय एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करके लोग ज़मीनपर पैर न रखते थे। समझते थे कि वे किसी दूसरे लोकके रहनेवाले हैँ। सन् १८५८ ई० मेँ कलकत्ते, बम्बई और मद्रासमेँ विश्वविद्यालय स्थापित हो गए थे। अनेक कौलेज् भी खुल चुके थे। उस समय कलकत्तेमेँ एक हिन्दू कौलेज् था जिसमेँ नामी अध्यापक डिरोज़िया महोदयका बड़ा बोलबाला था। वे पश्चिमीय साहित्य और दर्शनके बड़े विद्वान् थे। उन्होँने कुछ ऐसी घूँटी पिलाई कि हिन्दू विद्यार्थी बड़े मनमाने हो गए, हिन्दू धर्ममेँ मीनमेख निकालने लगे, यहाँतक कि उन्होँने कौलेज़से 'पार्थिनन' नामका एक पत्र निकाला जिसमेँ हिन्दू धर्मकी निन्दा भरी रहती थी जिसे पीछे कौलेज़के अधिकारियोँने बन्द भी कर दिया। इतना ही नहीँ बल्कि वहाँके लड़कोँने अपना खान-पान भी बदल दिया और मांस-मदिराके भक्त बनगए। उनकी यह कुचाल देखकर लोग डर गए और अपने लड़कोँको अंग्रेज़ी पढ़ानेमेँ सकुचाने लगे। उधर जब सवाल उठा कि शिक्षा देशी भाषामेँ दी जाय या अंग्रेज़ीमेँ, तो बड़ी चख़चख़ मची। कोई इधर था, तो कोई उधर। लौर्ड मेकैालेने डङ्केकी चोट कह दिया कि 'योरोपके किसी भी अच्छे पुस्तकालयकी एक आलमारी हिन्दुस्थान और अरबके सारे साहित्यके बराबर है।' एक ही उदाहरणसे वह समय आँखके आगे आ जायगा। माइकेल मधुसूदनदत्त डिरोज़िया महोदयके रङ्गमेँ रँग गए और जनेऊ उतारकर ईसाको पूजने लगे। उन्होँने सन् १८६१ मेँ मेघनाद-वध काव्य लिखा जिसमेँ उन्होँने राक्षसोँ का गुन बखाना है और लक्ष्मणजीका चरित्र बहुत नीचे गिरा दिया है। बस इसीसे उस समयके जवानोँका मन आँक लीजिए।

उस समय तक राजा राममोहनरायका ब्रह्मसमाज फल-फूल चुका था। श्रीरामकृष्ण परमहंसने अपना वेदान्तरस बरसाना आरम्भ कर दिया था। स्वामी दयानन्द सरस्वती भी अपने गुरु स्वामी विरजानन्दजीको गुरुदक्षिणा देकर वैदिक धर्मका झण्डा लेकर निकल पड़े थे। हिन्दू धर्म बड़े सङ्कटमेँ था। पर बड़ी कठिनतासे, पुराने डाँड़को थामे हुए वह सभी आँधीके झोँके सहता हुआ भी खड़ा रहा।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीने हिन्दुस्तानी दस्तकारी और व्यापारके अँगूठे काट लिए। वह लुञ्ज हुआ पड़ा कराह रहा था। उसमेँ न तो अपने उठनेका दम रह गया, न कोई उसे सहारा देनेवाला ही था। जब जब उसने उठनेका जतन किया तब तब उसे डण्डा दिखाकर लिटा दिया गया। सन् १८६१ मेँ अमेरिकाको भी लड़ाईकी आग तापनेकी धुन हुई। वहाँके उत्तरी और दक्षिणी सूबोँमेँ घमासान लड़ाई हुई। लङ्काशायरके रूईके पुतलीघरोँपर इसका गहरा धक्का लगा, क्योँकि उनकी रूई वहीँसे आती थी। प्रेमचन्द रायचन्द और प्रसिद्ध पारसी जमशेदजी नसरवानजी ताताने इस औसरसे लाभ उठाया और यहाँसे रूई भेजकर

इक्यावन करोड़ रुपये कमाए। पर पाँच बरसमें ही वह लड़ाई बन्द हो गई और इन लोगोंको बड़ी हानि उठानी पड़ी। पहली जुलाई सन् १८६५ ई० बम्बईके इतिहासमें काला दिन समझा जाता है। हज़ारों धनी निर्धन हो गए और निर्धन भिखारी बन गए। किन्तु फिर ताताने रूईका रोज़गार चलाया और विलायतसे काम सीखकर यहाँ कारख़ाने खोल दिए।

यह थी भारतकी दशा सन् १८६१ में।

अब ज़रा फिर प्रयागमें आइए। वहाँ चौकके दक्खिनकी ओर एक मुहल्ला है जो अब भारतीभवन कहलाता है। उस समय इसका नाम सूर्य्यकुण्ड या लालडिग्गी था। इसी मुहल्लेमें एक नाला था और उसके पास कुछ ब्राह्मणोंके घर खड़े थे, जिनमें से कुछ तो वैसे ही थे, जैसे अब भी नए ढङ्गके पक्के मकानोंके बीचमें अपनी पुरानी याद लिए अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिनते हुए खड़े हैं। उसी मुहल्लेके दक्खिनकी ओर पीपल और बैरका जङ्गल था जहाँ पीलवान लोग अपने हाथियोंको पीपलके पत्तोंका भोज देनेके लिये लाया करते थे। अब भी उन पुराने पीपलके पेड़ोंमेंसे कुछ, नवीन सभ्यताके कुल्हाड़ेसे जान बचाकर अपने भावी विनाशके भयसे काँपते हुए पक्के मकानोंसे घिरे खड़े हैं।

प्रयागमें उस दिन कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा था। सञ्झा फूल चुकी थी। लोग दिया-बत्ती करके घरोंमें बैठे आग ताप रहे थे। उसी दिन इसी मुहल्लेमें पौष कृष्ण अष्टमी, बुधवार सम्वत् १९१८, अर्थात् २५ दिसम्बर सन् १८६१ ई० को—ठीक उसी दिन जब १८६१ वर्ष पहले बैथलहममें साधु महात्मा ईसा पैदा हुए थे—पण्डित ब्रजनाथ व्यासजीके घर पराधीन जन्मभूमिका दर्द लेकर, भूखे देशवासियोंकी पीड़ा लेकर, और धर्मका सच्चा प्रकाश लेकर सौभाग्यवती मूनादेवीजीकी गोदमें सन्ध्याको ६ बजकर ५४ मिनटपर एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रक्खा गया मदनमोहन।

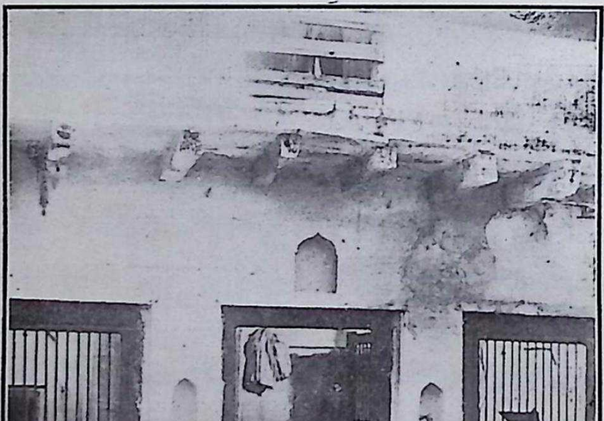

इसी कोठरीमें मदनमोहनका जन्म हुआ था। यह उसी रूपमें अबतक सुरक्षित है।

पण्डित मदनमोहन मालवीयजीकी जन्म-कुण्डली ।

श्री शुभ विक्रम सं० १९१८ शालिवाहनीय शक १७८३ पौष कृष्ण ८ बुधवार तदनुसार (ता० २५ दिसम्बर, सन् १८६१ ई०) सूर्य्योदयसे इष्टकाल ३०।१७ अर्थात् सायङ्काल ६ बजकर ५४ मिनटपर प्रयाग नगरके अक्षांश २५°।२२′ काशीसे देशान्तर घ. ० प. ११ वि. ४० पर हस्त नक्षत्रके ४ चरणमैं श्री पूज्यपाद पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका जन्म हुआ ।

प्राचीन मतसे जन्मकुण्डली

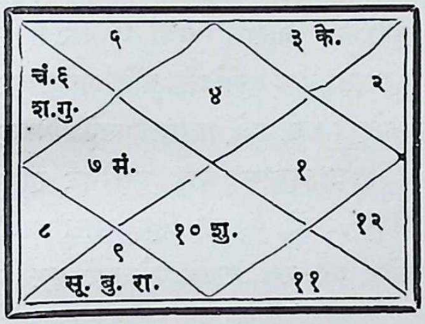

राशिकुण्डली

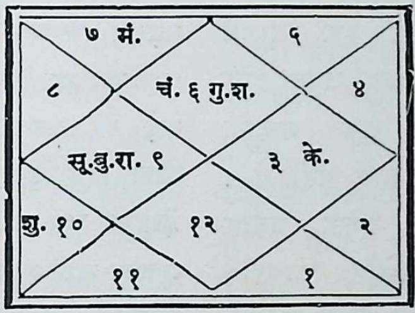

सूर्य्य-सिद्धान्तके अनुसार कुण्डली

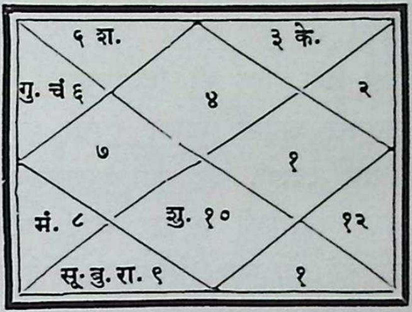

इस कुण्डलीमैं ज्यौतिष फलितके अनुसार गुरु चान्द्री योग अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि मनकारक चन्द्रमा, ज्ञानकारक गुरु दोनोंका योग पराक्रम स्थानमैं है । इसी कारण धर्ममैं दृढ़ता, पराक्रम-शीलता, दृढ़-सङ्कल्पता, आशा-मूलकता, परोपकारिता, पवित्रता तथा निर्भीकता आदि साहसमय कार्य्योंकी पराकाष्ठाका योग होता है, षष्ठमैं सूर्य्य राहुका योग प्रबल शत्रुहन्तायोग कारक है, किन्तु मनोऽभिलषित सिद्धिमैं बुधके कारण आर्थिक न्यूनता पड़ जाती है तथापि सूर्य्यके प्रबल होनेके कारण बाधाओंके बीचसे लक्ष्यतक पहुँच ही जाना होगा । एक बात विचित्र है जो प्राचीन रीतिके मतानुसार सिद्ध होती है, वह यह कि लोकमान्य तिलककी और इनकी कुण्डली दोनोंमैं लग्न गुरुचान्द्रीयोग, मङ्गल, और शत्रुहन्तायोग इनकी बिल्कुल समानता है । केवल लोकमान्य तिलकजीकी कुण्डलीमैं गुरु चान्द्रीयोगको न्यून करनेवाला तथा कारावासादि कष्ट विशेष देनेवाला राहुका योग है जो इसमैं नहीं है ।

इस कुण्डलीमैं उच्चगृहमैं गुरुचान्द्रीयोग है, इसी कारण जन्मसे ही—

लसल्लक्ष्मीलीलावसतिरनिशं वेदविहित-
स्फुरद्-धर्माचारः स्मितमुखपयोदः प्रतिदिनम् ।
अतीव प्रख्यातः स जयति गुणानांजननभू-
र्मदीयोऽयं देशो हरिरिव सदानन्दजनकः ॥

इस परम पवित्र मन्त्रका उच्चारण अहर्निश हुआ करता रहेगा ।

पण्डित रामव्यास शास्त्री,
ज्यौतिषाध्यापक,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ।

मल्लई ब्राह्मण

जब तक्षशिलाका ज्ञानदीपक ख़ैबरके दर्रेसे आनेवाली आँधियोँने बुझा दिया और बेचारा नालन्दा अपने ग्रन्थोँका अपूर्व भाण्डार लिए हुए आगमेँ जल मरा, तब भी हिन्दुस्थानने किस जतन और लगनसे अपनी पुरानी विद्या और अपने ज्ञानको बनाए रक्खा, यह कम अचरजकी बात नहीँ है। जब तलवारकी धारपर चोटी और जनेऊ चढ़ाए जा रहे थे, जब विदेशी भालोँकी नोकोँपर कायरोँने अपने प्यारे धर्मको सूली देनेमेँ भी लाज न की, तब भी हिन्दुस्थानमेँ ऐसे लोगोँकी कमी नहीँ थी जिन्होँने बड़ी साँसत सहकर, दुख भोगकर, मुसीबत झेलकर, राम और कृष्णके नामकी माला अपने कण्ठमेँ कसकर बाँधे रक्खी। काशी, काश्मीर और मालवामेँ हिन्दुओँका राज उठ जानेपर भी, उनके मन्दिरोँके कङ्गूरोँमेँसे मस्जिदकी मीनारेँ निकल आनेपर भी उन्होँने हिन्दूपनको कसकर पकड़ रक्खा। दाँतोँके बीचमेँ जीभकी तरह, सैकड़ोँ बवण्डरोँ और तूफ़ानोँको झेलकर भी वे सिरपर चुटिया रक्खे, गलेमेँ एक जनेऊ डाले पुराने प्रकाशकी बिखरी हुई किरणोँको अपने कण्ठमेँ लिए हुए कहीँ-कहीँ अब भी दिखाई पड़ जाते हैँ। पर बीसवीँ सदीकी बिजलीकी रोशनी उन्हेँ कबतक जीने देगी, यह सोचना पड़ेगा।

चार सौ बरस पहलेकी कथा है। कबीरदासने कहा है—'देस मालवा गहिर गँभीर, पग-पग रोटी डग-डग नीर'। सचमुच यही बात थी। मालवाके खेतोँमेँ सोना उगता था। सबके दाँत मालवापर गड़े हुए थे। भोज परमारने धारमेँ संस्कृत विद्याके पढ़नेके लिये एक सरस्वतीभवन नामका विद्यालय खोला था, जिसके खँडहर बड़ी करुणासे आजभी कमाल मौला मस्जिदकी मीनारोँमेँसे झाँक रहे हैँ। सब तरहसे मालवा सुखी था, फिर भला उसकी बढ़ती, मतवाले लुटेरोँकी आँखमेँ क्योँ न खटके! पर जबतक हिन्दू राजा एक दूसरेकी बाँह पकड़कर खड़े रहे तबतक बाहरी धक्के उन्हेँ न हिला सके, किन्तु जिस दिन उन्होँने हाथ छुड़ाकर एक दूसरेपर हाथ छोड़ना शुरू कर दिया उसी दिनसे हिन्दू साम्राज्यमेँ भूकम्प आने लगे और एक-एक राज्य पके हुए फलके समान टप-टप गिरने लगा। हिन्दुस्थानके इतिहासमेँ ये नई घटनाएँ नहीँ थीँ।

पर हम जिस दिनकी याद दिला रहे हैँ उस दिन मालवाका भाग्य हिदू राजाके हाथमेँ था। बैठे-बैठे एक दिन उन्हेँ यह सनक सवार हुई कि ब्राह्मणोँके दोनोँ दलोँको एक पङ्गतमेँ बैठाकर भोजन करावेँ। इनमेँ एक थे पञ्चगौड़, दूसरे थे पञ्चद्रविड़। थे दोनोँ ही ब्राह्मण, पर उनमेँ रोटी-बेटीका ब्योहार न था। वे एक दूसरेको बुरा और नीचा समझते थे, एक दूसरेकी छायासे डरते थे। पर सचमुच बात यह थी कि दोनोँके रहन-सहन, खान-पान, बोल-चालमेँ आकाश-पातालका अन्तर था। एक सिन्धु-गङ्गाके हरियाले मैदानमेँ पले थे, दूसरे दक्खिनके पठारमेँ। इतना ही नहीँ बल्कि पञ्चगौड़ोँके साथ भगवान्‌ने भी कुछ पक्षपात किया था। वे सुन्दर थे, सुडौल थे और आर्य्योँकी बपौती पाए हुए थे। फिर भला वे काले द्रविड़ोँके साथ बैठना-उठना और खान-पान कैसे सह सकते थे। निदान इसके विरोधी ब्राह्मण अपना टण्ट-घण्ट बाँधकर अपनी जन्मभूमिको नमस्कार करके जिधर देखा उधर चलते बने, क्योँकि पानीमेँ रहकर वे मगरसे बैर नहीँ करना चाहते थे। सचमुच

कैसे नेमके पक्के थे वे ब्राह्मण जिन्होंने अपनी आन और अपनी चाल बचाए रखनेके लिये अपनी जन्मभूमि, अपने बापदादोंकी धन-ज़मीनको लात मार दी। इस जुगके लोग ऐसी बातें सुनकर हँस देंगे और कहेंगे कि ऐसा क्या पागल कुत्तेने इन्हें काटा था कि ज़रासी बातके लिये अपना कारबार सब छोड़कर चल दिए, पर जो अपनी आन और अपने नेमका मोल आँक सकता होगा वह इन ब्राह्मणोंके त्यागकी बड़ाई किए बिना नहीं रहेगा।

इन्दौरके पास एक कोड़िया या कुरहरा नामका गाँव था। वहाँ श्रीगौड़ ब्राह्मणोंकी बड़ी भारी बस्ती थी। उन्हें भी न्यौता मिला था और उन्होंने भी राज छोड़नेका सङ्कल्प कर लिया। इनके दो-तीन कुटुम्बोंके आठ-दस ब्राह्मण पूरबकी ओर चल दिए। उन दिनों सड़कें नहीं थीं, जो थीं वे भले आदमियोंके लिये न थीं। उन सड़कोंपर चोर डाकुओंका ही राज्य था। उनके दोनों ओर जङ्गल पड़ते थे। जङ्गलोंमें गोंड और भील थे जो प्राण लेते समय किसीका सङ्कोच नहीं करते थे। धनुषपर तीर चढ़ानेके बाद बस वे यही देखते थे कि निशाना ठीक बैठता है या नहीं। पर निशाना कौन बन रहा है यह जाननेकी न तो उन्हें बुद्धि ही थी और न शिक्षा। ये बेचारे कुरहरेके ब्राह्मण भी इन्हीं भीलोंके हाथमें पड़ गए। पर कुछ भगवान्‌की कृपा ही समझनी चाहिए कि ये इन भीलोंके निर्दयी हाथोंसे छूट गए। पर इनका छुटकारा सेंतमें ही नहीं हुआ। उन्हें यह वचन हारना पड़ा कि उनके कुलमें सब मङ्गल कामोंमें भैरवजीकी पूजा होगी और तभीसे पूरबकी ओर आए हुए सभी श्रीगौड़ोंके घरमें सब शुभ कामोंमें कुल-देवताका मन्त्र "कारे गोरे कुरहरेके भैरो" अबतक प्रचलित है। अपने पुरुखोंके दिए हुए वचनोंका जो अबतक पालन हो रहा है, इसका श्रेय श्रीगौड़ोंकी गृह-लक्ष्मियोंको ही दिया जा सकता है। मध्यप्रान्त और मालवासे पूरबकी ओर रहनेवाले सभी श्रीगौड़ ब्राह्मणोंमें इस मन्त्रका प्रचार है।

हाँ, तो ये ब्राह्मण अपने कुरहरा या कोड़िया गाँवसे पूरबकी ओर चले और बढ़ते-बढ़ते पटनातक पहुँच गए। बहुत दिनोंतक मगधकी राजधानीमें डटे रहनेसे इनका कुटुम्ब बढ़ा, यश बढ़ा और उसके साथ-साथ फिर इनका फैलना भी आवश्यक हो गया। बड़ी बात तो यह थी कि ये लोग केवल पूजा-पाठ करनेवाले मामूली बाँभन नहीं थे। इन्होंने कड़ी तपस्या करके विद्याधन कमाया था और जब विद्याके साथ-साथ किसीमें विनय और सदाचार हो तब तो सोनेमें सुगन्ध समझनी चाहिए। बस ये विद्वान्, कर्मनिष्ठ, तपस्वी ब्राह्मण पुजने लगे। एक मिश्रजी, नाम तो पता न चला, इनमेंसे कुछको प्रयागकी ओर ले आए, जिनमेंसे कुछने मिर्ज़ापुरको आबाद किया और कुछ त्रिवेणीपर डेरा जमाकर बैठ गए। मिर्ज़ापुरमें अभीतक इन ब्राह्मणोंके डेढ़ सौ घर होंगे और प्रयागमें तो एक भारती-भवन मुहल्लेमें ही इकट्ठा इनके लगभग पचास घर हैं। नौकरी-चाकरीमें लग जानेके कारण अब तो ये और भी जगह फैल गए हैं। इनमेंसे कुछ चतुर्वेदी (चौबे), कुछ दूबे और कुछ व्यास कहलाते हैं।

मिर्ज़ापुरमें जो श्रीगौड़ ब्राह्मण पहुँचे उनमेंसे तीन घरानोंने अपनी बँभनई छोड़कर व्यापारपर ध्यान दिया। लक्ष्मी इनपर प्रसन्न हो गईं, और इन लोगोंके घरमें सोना बरसने लगा। पर प्रयागमें जो ब्राह्मण गए वे विद्वान् भक्त ब्राह्मण थे, कथा-वार्त्ता कहते थे, विद्यार्थियोंको पढ़ाते थे और भगवद्भजन करते थे। सन्तोष ही उनका धन था, व्यापारमें रुचि नहीं थी, विनयके पुतले थे और दूसरेके आगे हाथ फैलानेका पाठ सीखा न था, इसलिये लक्ष्मी तो इनके घर कभी न आई, हाँ सरस्वतीने इनके घरमें अपना मन्दिर बना लिया। ये मालवासे आए थे इसलिये ये लोग मल्लई या मलैया ब्राह्मण कहलाने लगे।

बड़ोंका प्रसाद

प्रयागके श्रीगौड़ ब्राह्मणोंमेँ भारद्वाज गोत्री चतुर्वेदी श्रीविष्णु प्रसादके पुत्र पण्डित प्रेमधरजी 'परमभागवत' हो गए हैँ। तड़के पौ फटनेसे पहले अन्धेरे मुहँ उठकर गङ्गास्नानको जाना और आना, दिन-रात राधाकृष्णकी पूजा-उपासना करना ही इनका व्यवसाय था। कहना-सुनना, बोल-चाल, लेन-देन उनका सब व्यौहार कन्हैयासे ही था। कभी कपूर जलाकर वे अपने कन्हैयाकी आरती करते तो कभी मस्त होकर भगवान्के सामने नाचने लगते थे—कभी माला लेकर राधाकृष्ण जपते तो कभी भावमेँ डूबकर स्तोत्रपाठ करते। राधाकृष्ण ही उनके सब कुछ थे। उनके कन्हैयाकी मूर्त्ति कोई मामूली नहीँ है। दो फ़ीट ऊँची, साँवले रङ्गकी ऐसी सुन्दर मूर्त्ति तो गोकुल-वृन्दावनमेँ भी न होगी। सचमुच कृष्णकी महिमा वही समझ सकता है जो उनके रङ्गमेँ रँग गया हो।

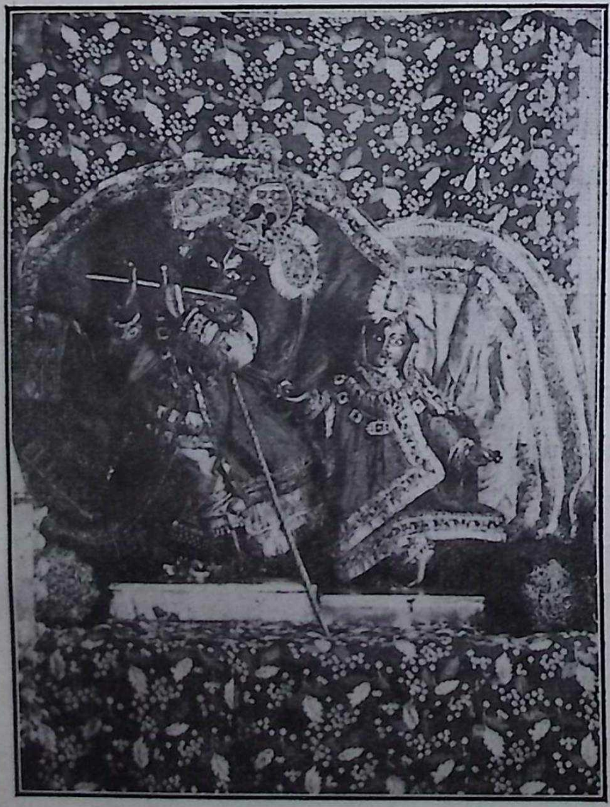

पण्डित प्रेमधरजीके श्री राधाकृष्णकी मूर्त्ति।

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्योँ-ज्योँ बूड़ै श्याम रँग, त्योँ-त्योँ उज्वल होइ॥

एक दिन किसी दुष्टने यह मूर्त्ति ले जाकर कूएँमेँ फेँक दी। पण्डित प्रेमधरजी लौटे तो देखा मूर्त्ति ग़ायब। पछाड़ खाकर गिर गए, बच्चोँकी तरह रोने लगे और खाना-पीना बन्दकर मनमारे बैठ गए, जैसे उनका सर्वस्व लुट गया हो। सचमुच कृष्ण उनके सर्वस्व थे भी तो। उसी मूर्त्तिके सहारे तो उनका जीवन था और उनकी जीवनचर्य्या थी। वही नहीँ रही तो फिर संसारमेँ उनका रहा ही क्या। जब तीन दिनतक निराहार बीत गए तो रातको भगवान्ने सपना दिया कि 'हम कूएँमेँ पड़े हैँ निकाल लो।' आख़िर कूएँमेँसे मूर्त्ति निकली तब कहीँ प्रेमधरजीने जलपान किया। ऐसे अनन्य भक्त थे वे राधाकृष्णके।

चारोँ ओर जङ्गल तो था ही, एक दिन एक शेरकी शामत आई। वह तड़के निकला और उनके मुहल्लेमेँ नालेके पासके एक मकानमेँ घुसकर बैठ गया। पण्डित प्रेमधरजी जब गङ्गास्नानसे लौटे तो देखा कि एक भीड़ जमा है। किसी की हिम्मत न होती थी कि मकानके भीतर पैर रक्खे।

लोगोंके लाख रोकने और मना करनेपर भी वे अपना कमण्डलु लिए हुए निडर होकर भीतर पहुँचे तो देखा कि एक बड़ासा सिंह बड़े रौबसे वहाँ चुपचाप बैठा हुआ है। इन्हें देखकर वह न तो गुर्राया और न झपटा। पण्डित प्रेमधरजीकी सौम्य सात्त्विक मूर्त्तिके आगे उसकी पशुता ठण्ढी पड़ गई। वह शेर सचमुच बिल्ली बन गया। प्रेमधरजी आगे बढ़े और उसके खुले मुँहमें गङ्गाजल डाल दिया मानो वह सिंह अपनी मुक्तिकी लालसासे ही वहाँ आया हो। उसे गङ्गाजल देकर प्रेमधरजी बाहर निकले। फिर क्या था। उन्हें जीता-जागता लौटते देख लोगोंके हौसले बढ़ गए और बात-की-बातमें बाहर इकट्ठे हुए लोगोंने लाठियोंसे उस सिंहका कचूमर निकाल दिया।

पण्डित प्रेमधरजी कितने बड़े भक्त थे यह तो एक इसी बातसे साफ़ हो जाती है कि उन्होंने १०८ दिनमें भागवतका १०८ बार पारायण किया था। पण्डित प्रेमधरजीने चौरासी बरसकी बड़ी उमर पाई। संसारसे बिदा लेनेके दिन उन्होंने अपने सब कुटुम्बियोंको आदेश दिया कि हमें गङ्गाके किनारे ले चलो। सारा परिवार प्रेमधरजीको लेकर गङ्गातटपर जा पहुँचा। वहाँ स्नान-ध्यान करके प्रेमधरजी पद्मासन लगाकर बैठ गए। थोड़ी ही देर बाद उस वृद्ध तपस्वी शरीरको चिताकी अग्निमें प्रज्वलित होनेके लिये छोड़कर उनकी दिव्य आत्मा सदाके लिये राधाकृष्णमें लीन हो गई।

पण्डित प्रेमधरजी पाँच भाई थे। पण्डित साधोधर अद्वितीय वैयाकरणी थे, पण्डित मुरलीधर साधु हो गए, पण्डित वंशीधर संस्कृत साहित्यके धुरन्धर पण्डित थे. पण्डित बालाधर अद्वितीय ज्योतिषी थे। पण्डित प्रेमधरधजीके चार सन्तान हुईं—लालजी, बच्चूलालजी, गदाधरजी और व्रजनाथजी।

पण्डित व्रजनाथ चतुर्वेदी अपने परम भागवत पिताके सुयोग्य पुत्र निकले। अपने पिताजीसे उन्होंने भव्य सुन्दर शरीर पाया, विमल बुद्धि पाई और राधाकृष्णकी अनन्य भक्ति पाई। और उनके पिताके पास था ही क्या। सदाचारी ब्राह्मण अपनी सन्तानको इससे अधिक और दे ही क्या सकता है? इस महानिधिके साथ-साथ पण्डित व्रजनाथजीने संस्कृत विद्याको बड़ी मेहनत और लगनसे अपनाया और संस्कृतके अच्छे पण्डित हो गए। सदाचार, भगवद्भक्ति और विद्या यही उनका धन था, और एक मकान था वह भी बहुत बड़ा नहीं कहा जा सकता, जिसमें वे अपने चार भाइयोंके परिवारके साथ कोठरियाँ बाँटकर रहते थे।

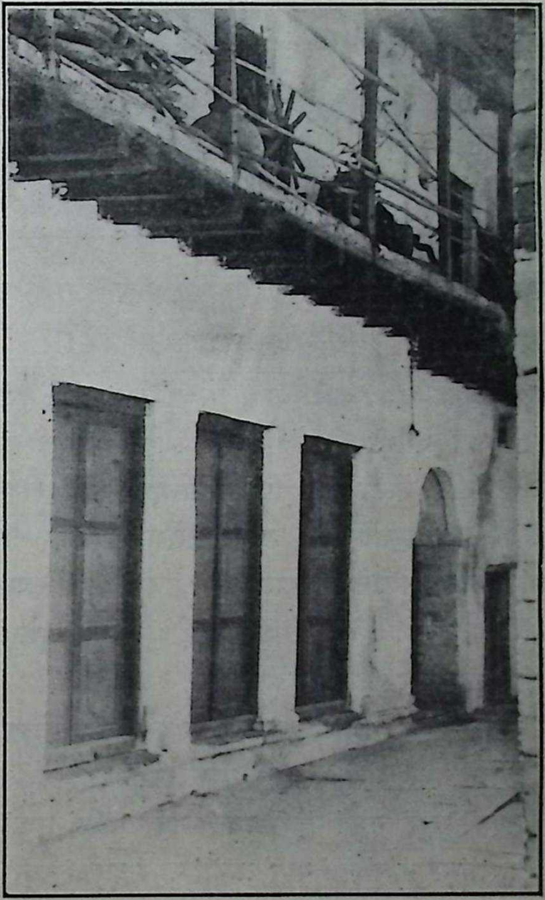

पण्डित व्रजनाथजीका मकान। इसीमें मदनमोहनने जन्म लिया था।

पण्डित व्रजनाथजीने अपना कुछ बचपन ननिहालमें ही बिताया और सच पूछिए तो संस्कृत विद्याका कुछ धन उन्होंने ननिहालसे भी पाया था। चौबीस-पच्चीस वर्षकी नई जवानीमें ही वे व्यास बन गए और भागवतकी कथा कहनी प्रारम्भ की। सुडौल

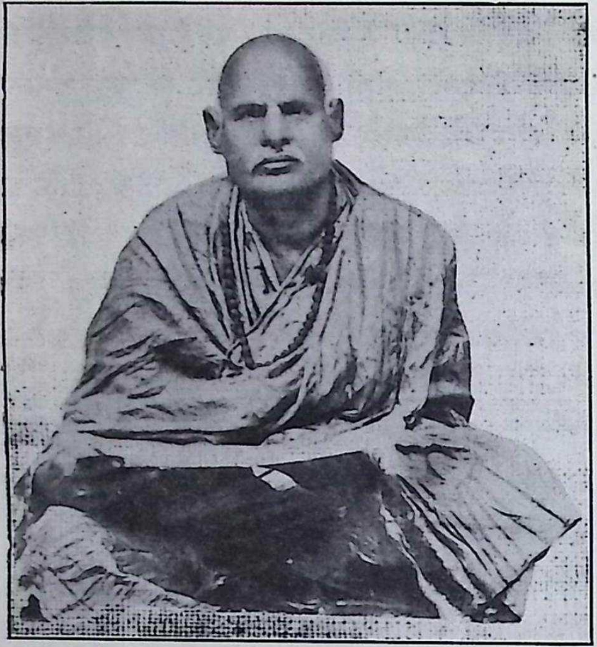

परम भागवत पण्डित प्रेमधर चतुर्वेदीके पुत्र पण्डित व्रजनाथ व्यासजी। मदनमोहन इन्हींके तीसरे पुत्र हैं।

सुन्दर देहके साथ-साथ उन्हें मधुर कण्ठ भी मिला था। जब बोलते थे तो मानो मिश्री घोलते थे। एक तो मीठी बोली और फिर व्रजभाषा—कोयल और वसन्त—बस सुननेवाले लट्टू हो जाते थे। रीवाँ, दरभङ्गा और काशीके महाराजाओंने उनका बड़ा सम्मान किया। कितने ही रजवाड़े इन्हें गुरु मान चुके थे। वे वंशी बजाकर जब गाते थे—

गावो मधुरा गोपा मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं कलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं॥
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं वचनं मधुरं चरितं मधुरं।
वलितं मधुरं चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं दलितं मधुरं॥
अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं वसनं मधुरं।
हसितं मधुरं कलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं॥

—तो मधुका ऐसा सोता बहता था कि श्रोतागण मन्त्र-मुग्ध होकर नाच उठते थे। उनकी कथा भावमय होती थी—कभी हँसते थे, कभी रोते थे—कभी आवेश था तो कभी शान्ति थी। जान पड़ता था कि नाट्य-शास्त्रके सारे रस पण्डित व्रजनाथ व्यासजीके रूपमें साकार होकर विराजमान हैं। नये-नये दृष्टान्तोंसे सजाकर शान्त, गम्भीर, तन्मय भावसे जब वे भगवान्‌की कथाका रस बाँटते थे उसका वर्णन भला कौन कर सकता है—गिरा अनयन, नयन बिनु बानी।

वे मीठा तो बोलते ही थे, पर सन्तोषी भी पूरे थे। उन्होंने कभी किसीके आगे हाथ नहीं फैलाया। जो कुछ कथापर चढ़ गया उसे तो स्वीकार कर लिया, पर किसीसे दान नहीं लिया। मृदुभाषिताने क्रोधको और सन्तोषने लोभको उनके पास फटकने न दिया और इसीलिये इतने बड़े परिवारको लेकर भी ये सुखी रहे। वे पण्डिताऊ ढङ्गका कलीदार अङ्गा पहनते और चौगोशिया टोपी या पगड़ी सिरपर रखते थे। गलेमें एक दुपट्टा पड़ा रहता, जिसपर जाड़ेके दिनोंमें एक दुशाला डाल लिया करते थे। बाहरसे आनेके बाद ये बाहरी कपड़े उतारकर एक ओर रख दिया करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि ये पाठ कर रहे थे। अचानक एक अंग्रेज़ उधरसे आ निकला और उसने इनसे प्रश्न किया। ये मौन भावसे पाठ करते रहे, उसका कुछ उत्तर न दिया। इसपर उसने इन्हें बेंतसे छू दिया। ये तत्काल घर वापस आए और गोबर मलकर सचैल स्नान करके फिर पञ्चगव्य, पञ्चामृत ग्रहण करके अपनी शुद्धि की। इतने नेमके पक्के थे पण्डित व्रजनाथजी।

सौभाग्यकी वर्षा जब होने लगती है तो वह भरपूर होती है। पण्डित व्रजनाथ व्यासजीका विवाह सहजादपुरमें हुआ। सौभाग्यसे इनकी धर्मपत्नी श्रीमती मूनाजी बड़ी सरल और कोमल हृदयवाली मिलीं। अड़ोस-पड़ोसकी जो सेवा बन पड़े कर देना और सबसे प्रेमसे बोलकर बड़ी शान्तिसे सारे घर-भरका काम देखना यही उनका काम था। वे किसीको दुखी न देख सकती थीं और इसीलिये उनकी उदारता निस्सङ्कोच भावसे हर घड़ी सेवाका अवसर ढूँढती रहती थी। उन्होंने किसीको निराश न किया। मुहल्ले भरके बच्चे उनके घरके बच्चे बन गए थे। सबको प्यारसे बुलाना, बैठाना, पुचकारना, कुछ खिला-पिला देना—बस बच्चे अपनी-अपनी माँ भूल गए थे।

पण्डित ब्रजनाथ व्यासजीकी धर्मपत्नी तथा मदन मोहनकी माता श्रीमती मूना देवीजी

सचमुच ऐसी माँ पानेके लिये बड़ा भाग होना चाहिए। पण्डित ब्रजनाथजी भी जो कुछ कथामेँ पाते थे सब उन्हेँ सौँप देते थे और सारी गृहस्थी वे ही सँभालती थीँ।

पण्डित ब्रजनाथजीको चौवन बरसकी अवस्थामेँ रोगने धर दबाया और ऐसा पकड़ा कि फिर वे बाहर न जा सके। यद्यपि पाँच महीनेमेँ ही इन्होँने रोगसे छुट्टी ले ली, किन्तु पुरानी शक्ति न वापस आ सकी। तबसे लेकर सतहत्तर वर्षकी अवस्थातक ये बराबर भागवत, रामायण आदि धर्मग्रन्थोँका अध्ययन और उनकी मनोहर व्याख्या करते रहे। उन्होँने एक भक्तिप्रतिपादक 'सिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रन्थ भी लिखा था, जो सन् १९०६ ई० मेँ अभ्युदय प्रेसद्वारा उनके तीसरे पुत्र मदनमोहनने प्रकाशित कराया। क़रीब साठ वर्षकी अवस्थामेँ आपकी आँख ख़राब हो गई। लखनऊके कर्नल एण्डरसनने उसका औपरेशन किया। कर्नलने कहा कि 'आजतक इतना अच्छा औपरेशन किसीका नहीँ हुआ। सावधानीसे रहना, हिलना-डोलना मत।' दो घण्टे बाद प्यास लगी। आप उठकर पानी पीना चाहते थे पर अपने पुत्र श्यामसुन्दरके रोकनेपर आपने पड़े-पड़े पानी पी लिया। पर उनकी धार्मिक भावना सन्ध्याको खटियापर पड़े हुए शौच करना न सह सकी, अतः वे उठकर गए और नित्य कर्म किया और थोड़ीसी नित्यके अनुसार भाँग भी ली। यह सब कुछ होते हुए भी उनकी आँख ठीक उतरी।

डाक्टरके मना करनेपर भी उन्होँने अपना पढ़ना-लिखना न छोड़ा। पिछले दिनोँमेँ उनकी धारणाशक्ति कम हो गई थी। उन्हेँ यह भी न याद रहता था कि भोजन किया है या नहीँ। सुख और दुःख दोनोँ उनके लिये समान हो गए। अपने बड़े पुत्रकी मृत्यु सुनकर वे 'हरिइच्छा' कहकर रह गए। उनके मुखपर किसी प्रकारका शोक या दुःख नहीँ दिखाई दिया। अन्तमेँ सन् १९१० ई० मेँ सतहत्तर वर्षकी अवस्थामेँ उन्होँने भी गोलोककी शरण ली।

भगवान्की भक्तिका प्रसाद यदि सचमुच किसीको प्रत्यक्ष देखना हो तो वह मालवीय परिवारको देखे। बड़ा भारी परिवार—पुत्र-पुत्रियाँ, नाती-पोते—घरमेँ दुधारू गौएँ—सभी प्रकारका सुख है। जिसे कहते हैँ—'दूधोँ नहाओ पूतोँ फलो' वह आशीर्वाद ब्रजनाथजीको साक्षात् रूपसे मिल गया था।

पण्डित ब्रजनाथजीके छः पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। क्रमसे उनके नाम हैँ:—लक्ष्मीनारायण, सुखदेई, जयकृष्ण, सुभद्रा, मदनमोहन, श्यामसुन्दर, मनोहर, और बिहारीलाल।

सबसे बड़े पुत्र लक्ष्मीनारायणजीने महाजनीकी शिक्षा पाई थी। कुछ दिन प्रयागके लाला मनोहरदासके यहाँ गुमास्ता रहे। थोड़े दिन बाद इसे छोड़कर अपना स्वतन्त्र आढ़तका काम करते थे और अन्ततक यही

करते रहे। एक्यावन वर्षकी अवस्थामें बद्रीनाथ-यात्राको गए। वहाँसे आनेपर 'पर्वत संग्रहणी' हो गई और उसीमें तीन-चार महीनेके बाद आपका शरीर-लाभ हो गया।

जयकृष्णजी थोड़ी संस्कृत और अंग्रेज़ी जानते थे। रेलवे डाक-विभागमें नौकर थे। इनको बचपनसे ही कसरतका शौक़ था। कुश्ती बहुत अच्छी लड़ते थे। सङ्गीतमें उनकी बड़ी रुचि थी। सितार बहुत अच्छा बजाते थे। कहते हैं कि सितारमें इनका हाथ इतना तैयार था कि किसीने कुछ जादू-टोना कर दिया था, जिससे आपको हाथमें इतना कष्ट हुआ था कि दिनरात नींद नहीं आया करती थी और चिल्लाया करते थे। क़रीब बीस दिनके बाद भिक्षा माँगते हुए एक फ़क़ीर आया और उसने पूजा आदि करके उसी दिन आपको अच्छा कर दिया था। क़रीब एक्यावन वर्षकी अवस्थामें आपका भी शरीरान्त हुआ।

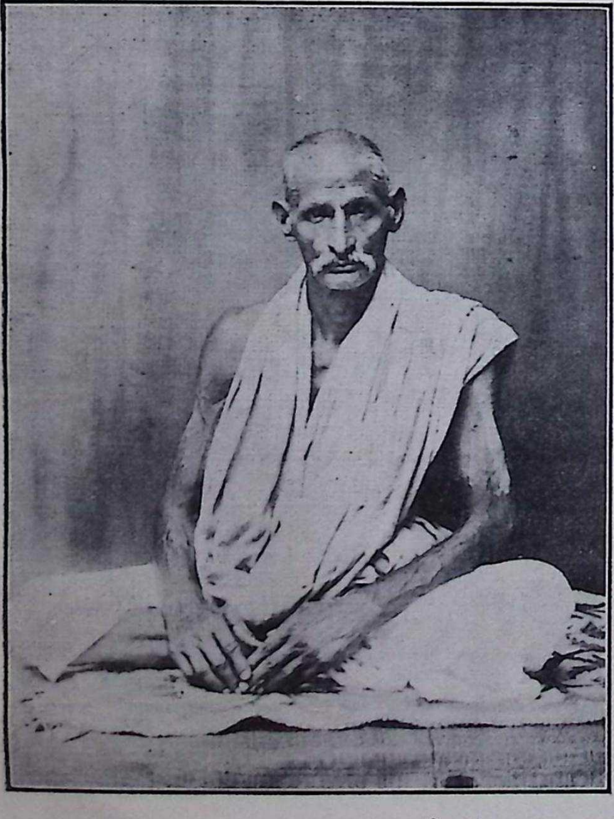

पण्डित मदनमोहन मालवीयके छोटे भाई श्रीश्यामसुन्दरजी
जो अब भी उसी पुराने मकानमें रहते हैं

श्यामसुन्दरजीने पहले धर्मज्ञानोपदेश पाठशालामें संस्कृत शिक्षा पाई। बादमें थोड़ी अंग्रेज़ी पढ़ी। पच्चीस वर्षकी अवस्थाके लगभग आपने बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यूके दफ़्तरमें नौकरी करना प्रारम्भ किया। सन् १९२१ ई० में पेन्शन ली, तबसे पूजा-पाठ करते और सात्त्विक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

मनोहरलालने भी थोड़ी संस्कृत और अंग्रेज़ीकी शिक्षा पाई थी। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और होनहार थे। विवाह होनेके थोड़े ही दिन बाद उन्होंने न जाने किस कारण अफ़ीम खा ली। डाक्टर आए। पिचकारी देकर विष निकाला गया। होशमें लानेके सब उपाय हुए। विष रक्तमें भिद चुका था। मनोहरलाल अपनी नव-विवाहिता वधूको अकेली छोड़कर दूसरे लोकको चले गए। पुलीस पहुँची। मृत्यु-परीक्षाके लिये लाश माँगी गई। उस समय सरकारी डाक्टर महेन्द्रनाथ ओहदेदारने कहा—'मिट्टी हमारे ही पास तो परीक्षाके लिये भेजोगे। मैंने परीक्षा कर ली है। मैं सार्टीफ़िकेट देता हूँ कि अफ़ीम खानेसे मृत्यु हुई है।' तब पुलीस हटी और दाह-संस्कार हुआ। इन भाइयोंमें यही एक जवान मौत हुई थी।

बिहारीलालने भी संस्कृत और अंग्रेज़ी पढ़ी थी, पर व्यापारकी ओर इनकी अधिक प्रवृत्ति थी। वे ठीकेदारी किया करते थे और रेलवेके प्रधान ठीकेदारोंमेंसे थे। संग्रहणी होनेके कारण सन् १९२१ ई० में आपका स्वर्गवास हो गया।

बड़ी बहनका विवाह मिर्ज़ापुरमें हुआ था। ४८ वर्षकी अवस्था (सन् १९०३) में आपका शरीरान्त हुआ। आपके अनेक सन्तानें हुईं, पर कोई जीवित न रहीं।

छोटी बहनको छोटी अवस्थासे ही वैधव्य-दुःख भोगना पड़ा।

मदनमोहनने धर्मात्मा परम भागवत दादा और पिताका अमर प्रसाद पाकर, उनकी धार्मिक छाया

लेकर, उनके सम्पूर्ण गुणोँकी बपौती पाकर जन्म लिया था। पितामह और पिताकी भगवद्भक्तिका मदनमोहनपर कुछ कम प्रभाव नहीँ पड़ा था और इसलिये आज सारा राष्ट्र पण्डित प्रेमधर और पण्डित व्रजनाथ व्यासके अमर पवित्र गुणोँके साक्षात् मूर्त्तिमान् स्वरूप मदनमोहनके चिरजीवनकी कामनासे हाथोँमेँ फूल-माला लिए भगवान्से मङ्गल कामना करता है और सारे देशवासी बड़ी आशा लगाए उस धवल मूर्त्तिकी ओर ताक रहे हैँ मानो उनका सारा भविष्य, उनका सारा सुख, उनकी सारी अभिलाषाएँ उसी एक धवल देहमेँ छिपी हुई हैँ। धन्य हैँ वे पुत्र जिन्हेँ पण्डित व्रजनाथजी जैसे पिता और श्रीमती मूनादेवीजी जैसी माता मिलेँ और धन्य हैँ वे माता-पिता जिन्हेँ मदनमोहन जैसा पुत्र मिले।

होनहार बिरवा—

मदनमोहनके जीवनमें एक बार झाँक लेनेके बाद कोई भी यह माननेमें न हिचकेगा कि 'मदनमोहन' नाम भी किसी दैवी प्रेरणाका फल है। परम भागवत वैष्णव परिवारमें भगवान् कृष्णके नामको छोड़कर भला और कोई नाम टिकने ही क्यों लगा, किन्तु मदनमोहन 'किसी' के भेजे हुए आए थे और इसी लिये इन्हें बड़ा मीठा और कोमल नाम मिला, वैसा ही कोमल जैसा मक्खन और वैसा ही मीठा जैसी मिश्री।

'मदनमोहन'—एक बार मुँहसे मदनमोहन तो कहिए, जान पड़ेगा कि आपकी रसना पवित्र हो गई है, जी हल्का हो गया है और मुँहकी कड़वाहट जाती रही है। एक उर्दू शायरने एक बार सच कहा था :—

है मदनमोहन मेरी मनका का मज़मूँ।
क्या अजब इस नाममें जादू भरा है॥

जान पड़ता है पण्डित व्रजनाथ व्यासजीकी 'कलितं मधुरम्' की धारामें यह नाम भी आ गया होगा, जिसको लेकर उन्होंने अपने पुत्रकी प्रतिष्ठा की।

माताकी गोदसे हँस-खेलकर बालक मदनमोहनने अपने पैरोंपर खड़ा होना शुरू किया और धीरे-धीरे बालक बड़ा होने लगा। इनके परिवारकी चाल है कि जब घरमें कोई ब्याह पड़ता है तो 'माय' बैठती हैं और सभी बालकोंका मुण्डन हो जाता है। इसी कारण कभी दो वर्षपर, कभी छः महीनेपर या कभी-कभी तीन महीनेमें ही बालक मुँड़ जाते हैं। बस, ऐसे ही किसी अवसरपर मदनमोहनका भी मुण्डन हो गया होगा।

पण्डित व्रजनाथजीने अपने पुत्रोंको शिक्षा देनेमें वह भूल नहीं की थी जो आजकल अधिकतर लोग किया करते हैं। पुराने पण्डितोंके समान उन्होंने अपने बच्चोंको पहले घरपर ही संस्कृत पढ़ाई और शिष्टाचारकी सीख दी और तब कहीं उन्हें घरसे बाहर पैर रखने दिया। उसका फल यह हुआ कि बाहरी हवा इनपर कुछ असर न कर सकी। आजकलके माँ-बाप अपने बच्चोंकी देखरेख बेगार समझते हैं और उनको, जितनी जल्दी होता है, आँख मूँदकर किसी अनाड़ी अध्यापक या किसी स्कूलके हवाले कर देते हैं, जहाँसे निकलकर वे परीक्षा भले ही पास कर

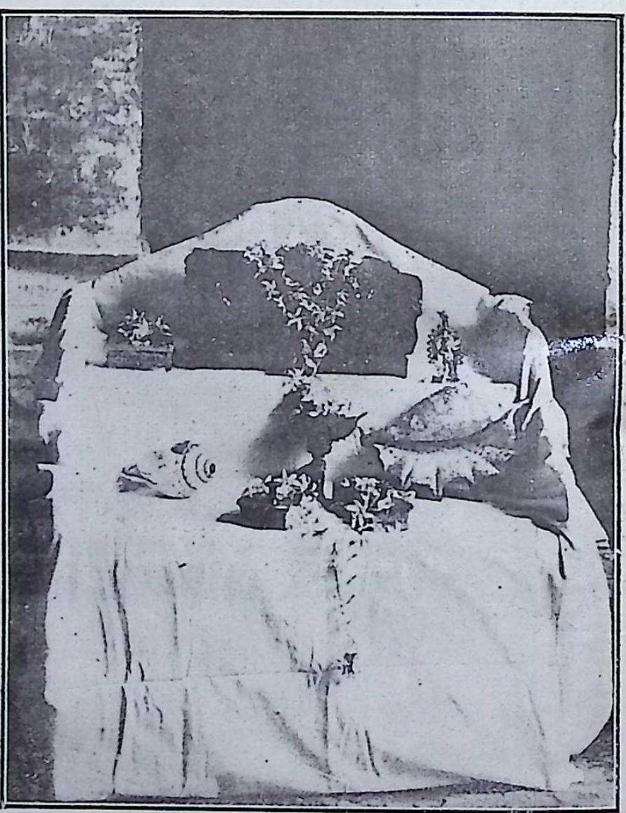

ऊपर पूज्य मालवीयजी महाराजके प्रथम विद्या-गुरु श्रीहरदेवजीकी श्रीमद्भागवतकी पुस्तक है और नीचे उनके ठाकुरजी, उनकी चरणपादुका, शङ्खादि हैं। यह सब सामग्री उनकी पाठशालामें ही रक्खी है, जहाँपर मदनमोहनने अध्ययन किया है।

लेवेँ, पर अपना सब कुछ गँवा आते हैँ। यह बात समझानेकी नहीँ है। सब इस बातको जानते हैँ, पर जान-बूझकर अपने बच्चोँको भट्टीमेँ झोँकनेमेँ सङ्कोच नहीँ करते। हमारे पुरखा लोग इस बातको भली भाँति समझते थे कि पाठशाला या स्कूलोँमेँ जाकर बहुत तरहकी सङ्गत मिलती है। उनमेँ सभी तो पारस होते नहीँ, इसलिये अपने बच्चोँको ऐसा पक्का बनाकर भेजते थे कि दूसरा रङ्ग चढ़ने ही न पावे। मदनमोहनने घरपर ही पढ़ना सीखा, नागरी अक्षर सीखे और फिर संस्कृत पढ़ना सीखा। अपने दादा और अपने पिताजीसे नित्य सुनते-सुनते बहुतसे श्लोक, भजन, स्तोत्र और गीत मदनमोहनको याद हो गए थे। अपने दादा और पिताकी असीस पाकर मदनमोहन पण्डित हरदेवजीकी धर्मज्ञानोपदेश पाठशालामेँ पढ़ने बैठाए गए। वह पाठशाला अब भी भारती-भवन मुहल्लेमेँ पूज्य मालवीयजीके मकानके दक्खिनकी ओर है और पण्डित हरदेवजीकी पाठशालाके नामसे ही प्रसिद्ध है।

इलाहाबाद ज़िला-स्कूल जिसमेँ अब म्युनिसिपल आफ़िस है।

कुछ दिन वहाँ पढ़नेके बाद वे विद्याधर्मप्रवर्द्धिनी सभाकी पाठशालामेँ भेजे गए। उसके सर्वेसर्वा थे पण्डित देवकीनन्दनजी। वे मदनमोहनको माघ मेलेपर ले जाया करते थे और एक मोढ़ेपर खड़ा करके व्याख्यान दिलाया करते थे। सात बरसका बालक सारे राष्ट्रकी नौका खेनेका पहला पाठ त्रिवेणी सङ्गमपर सीखने लगा, जहाँ विश्व भरकी तीनोँ पवित्र धाराएँ आकर मिल गई हैँ।

अब नीँव पक्की हो गई थी। नौ वर्षकी अवस्था हुई। पिताजीने बालकको बटु बना दिया। पिताजी ही प्रथम आचार्य्य बने, उन्होँने ही सावित्री मन्त्र दिया। कौपीन धारण करके हाथमेँ पलाश-दण्ड लेकर, कन्धेपर मृगछाला डालकर, हाथमेँ झोली लेकर, मदनमोहनने मातासे जाकर कहा— 'भवति भिक्षां मे देहि'। उस समय कौन जानता था कि कौपीन उतार देनेपर भी, मृगछाला और दण्ड फेँक देनेपर भी एक दिन यही बटु बहुत बड़ी झोली लेकर द्वार-द्वार, नगर-नगर सारे राष्ट्रके लिये भिक्षा माँगेगा और 'संसारका

सबसे बड़ा भिखारी’ कहलायगा। सचमुच किसे विश्वास होगा कि उस ‘भवति भिक्षां मे देहि’ के पीछे कितने निर्धन, दीन विद्यार्थियोंकी विवशतासे भरी हुई करुण पुकार छिपी हुई थी? अब मदनमोहन ब्राह्मण बन गए।

बहुतसे दब्बू बालक स्कूल या पाठशालाका नाम सुनकर रो देते हैं, किसीके सिरमें दर्द होने लगता है और कोई-कोई तो सचमुच बीमार हो जाते हैं। पर मदनमोहन ऐसा बालक नहीं था। रोज़ सुबह नौ और दस बजेके बीच, लड़के बग़लमें पोथी दबाए हँसते-कूदते स्कूल जाते थे, नई-नई बातें करते थे, इतिहास और भूगोल, गणित और चित्रकलाका ज़िक्र किया करते थे। मदनमोहनके मनमें भी लालसा हुई कि हम भी क्यों न अंग्रेज़ी पढ़ें? पर स्कूलमें फ़ीस लगती थी। जिस परिवारमें दस मुँहको खिलाना पड़ता हो और कमानेवाला एक हो और वह भी ऐसा हो जो किसीके सामने हाथ न फैलाता हो, जो कथापर चढ़ जाय उसीपर सन्तोष कर लेता हो और जिसे पाँच रुपए महीनेकी भी आमदनी न हो, वहाँ स्कूलकी फ़ीस और किताबोंके लिये दाम कहाँसे आवे?. पहले सरस्वतीजी दीनोंकी कुटियामें रूखी-सूखी खाकर ही प्रसन्न हो जाया करती थीं, पर आजकलकी सरस्वतीजी बिना पैसे बात नहीं करतीं। ग़रीबके घर आनेमें उन्हें अब सङ्कोच होता है। जान पड़ता है उनपर भी कुछ पच्छिमका असर हो चला है।

पर पण्डित व्रजनाथजीने अपने होनहार बच्चेका दिल छोटा न होने दिया और पेट काटकर भी उसे अंग्रेज़ी पढ़ने भेज दिया। जिसके दिन सीधेपर ही बीतते हों उस दीन ब्राह्मण परिवारपर कितना भार पड़ा होगा, इसे वे ही लोग समझ सकते हैं जो ये मुसीबतें झेल चुके हैं! मदनमोहन इलाहाबाद ज़िला स्कूलमें उस समयकी दसवीं कक्षा (आजकलकी तीसरी कक्षा) में भर्त्ती हो गए। स्कूलमें समयसे जाना पड़ता था, पर मदनमोहनको अक्सर देर हो जाया करती थी। इतने बड़े परिवारमें ठीक समयसे भोजन कैसे बन सकता था और फिर ठाकुरजीको भोग लगाए बिना कोई भोजन करे भी कैसे। बेचारे मदनमोहनको बासी रोटी मट्ठेके साथ खाकर स्कूल जाना पड़ता था। कितनी बड़ी तपस्या थी। प्रयागके चौकमें घण्टाघरके पीछे जिस भवनमें आजकल म्युनिसिपैलिटीका दफ़्तर है, उसीमें पहले ज़िला-स्कूल लगता था। एक अंग्रेज़ गार्डन साहब उसके हेडमास्टर थे। थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने स्कूलमें हिज्जे करने, अंग्रेज़ीका उच्चारण करने और सुन्दर लिखनेमें बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली और यह सुन्दर शुद्ध बोलने और सुन्दर लिखनेका अभ्यास उनका आजतक बना हुआ है।

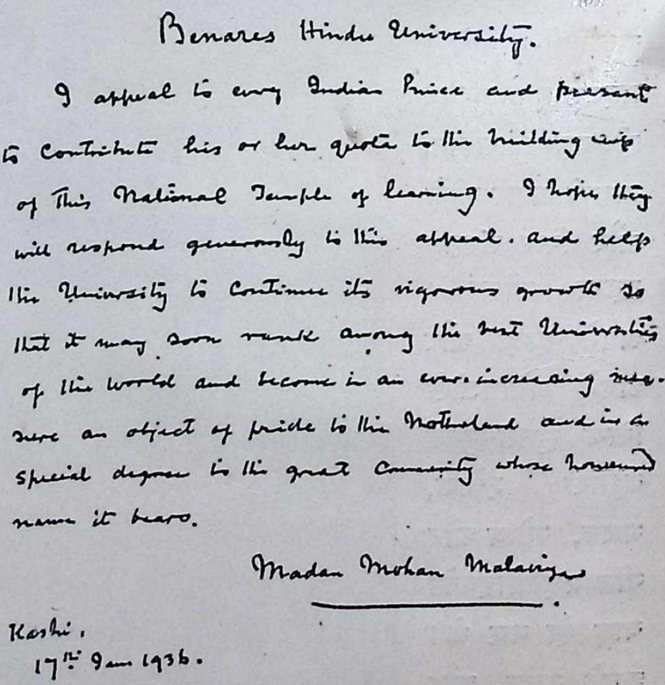

Benares Hindu University.

I appeal to every Indian Prince and peasant to contribute his or her quota to the building up of this National Temple of learning. I hope they will respond generously to this appeal and help the University to continue its vigorous growth so that it may soon rank among the best Universities of the world and become in an ever-increasing measure an object of pride to the Motherland and in a special degree to the great Community whose honoured name it bears.

Madan Mohan Malaviya

Kashi,
17th Jan 1936.

पूज्य मालवीयजीके अंग्रेजी अक्षर कितने साफ़ और समान हैं।

ये पढ़नेमें बहुत मन लगाते थे। गणितमें ये कमज़ोर थे और शायद संसारके सभी महापुरुष गणितमें कमज़ोर होते हैं, पर बादको परिश्रम करके इन्होंने अपनी कमी पूरी कर ली। इनका मकान दस बारह प्राणियोंके लिये छोटा ही था। घरपर पढ़नेकी सुविधा नहीं थी। बाल-बच्चोंके घरमें कोई

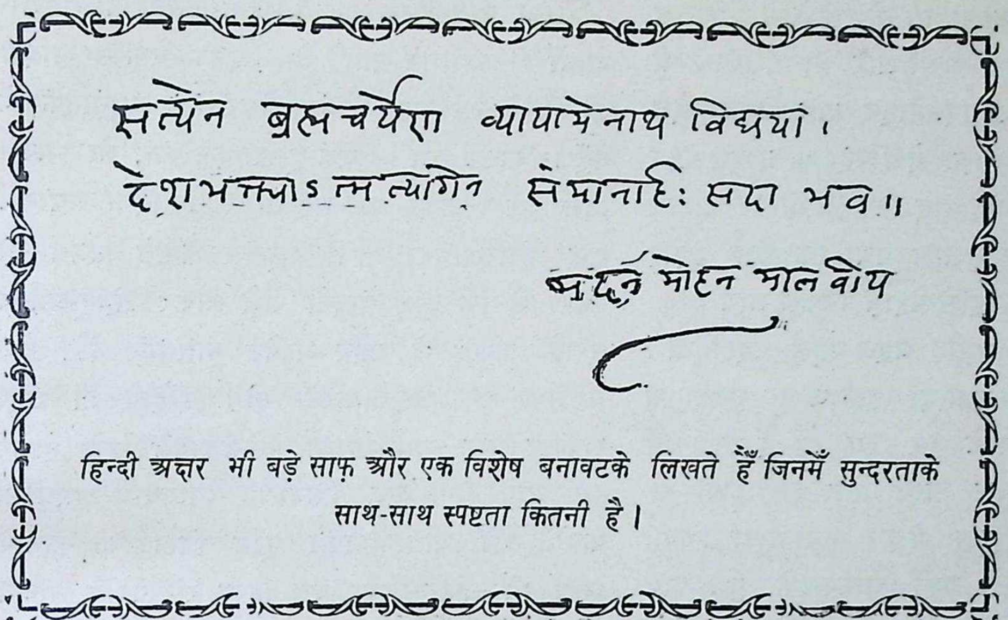

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्याऽऽत्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

मदनमोहन मालवीय

हिन्दी अक्षर भी बड़े साफ़ और एक विशेष बनावटके लिखते हैं जिनमें सुन्दरताके साथ-साथ स्पष्टता कितनी है।

चाहे कि बैठकर, मन लगाकर पढ़ ले, यह कैसे हो सकता है। कोई रो रहा है, कोई चिल्ला रहा है, कोई गा रहा है, कोई खेल रहा है—सब अपनी-अपनी मौजमें हैं। फिर भला वहाँ पढ़ाई कैसे हो? इनके मकानके पास ही थोड़ी दूरपर सोहनलालके बाग़में इनके एक साथी गङ्गाप्रसाद रहते थे। वहाँ तीन-चार बेरके पेड़ थे, एक कुआँ था और एक कच्ची अटारी थी। बस जहाँ सञ्झा हुई कि ये वहीं लालटेन और पोथी लेकर पहुँच जाते थे और वहीं पढ़ा करते थे। यह तो नहीं कहा जा सकता कि जितनी पढ़ाई होनी चाहिए थी उतनी हुई; पर हाँ, घरसे तो अधिक ही होती थी। क्योंकि जहाँ दो विद्यार्थी साथ पढ़ते हों वहाँ आधी गप होती है और आधी पढ़ाई होती है। यही बात वहाँ भी थी। मदनमोहन बात करनेमें तो एक ही थे। इन्हें कोई साथी मिलने भरकी देर थी, फिर तो कोई भी विषय प्रारम्भ होनेके बाद समाप्त थोड़े ही होता था। रातको वहीं पढ़ते थे और वहीं सोते थे। सुबह उठकर घर चले आया करते थे।

पर इससे यह न समझिए कि मदनमोहन बड़ा पढ़ाकू और पोथीका कीड़ा था। वह अव्वल दर्जेका शरारती, बड़ा खिलाड़ी और अत्यन्त चञ्चल था। स्कूलसे आते ही किताब कहीं फेंकी, जूते कहीं फेंके, कपड़े कहीं फेंके, वह गया, वह गया, मदनमोहन घरसे बाहर। कभी देखो तो गुल्ली-डण्डा खेल रहे हैं, तो किसी रोज़ कबड्डी हो रही है। कसरत ये खूब किया करते थे, रोज़ अखाड़ेमें मुद्गर घुमाते या डण्ड लगाते थे। अब भी इस पचहत्तर वर्षकी अवस्थामें भी इन्हें कसरत करते देखकर किसे आश्चर्य न होगा?

मदनमोहनका एक गुट्ट था और वे उसके अगुआ थे। स्कूलसे लौटते हुए अक्सर किसी दूसरे दलसे मुठभेड़ हो जाती थी। कभी-कभी तो ज़बानी युद्धतक ही बात रह जाती थी, कभी-कभी मामला बढ़ जाता था। हाथापाईकी भी नौबत आ जाती थी। पर ये पीछे नहीं हटते थे, डटकर लड़नेवाले थे। ऐसे ब्राह्मण नहीं थे जो मैदान छोड़कर भाग जायँ। होलीके दिनोंमें इनकी शरारत देखने लायक़ होती थी। कई दिन पहलेसे रङ्ग घोले जाते थे, पिचकारियोंमें गिट्टी बाँधी जाती, राहचलतोंपर किधरसे ठीक रङ्ग छोड़ा जा सकता है, यह सब बातें साध ली जाती थीं। मौक़े ठीक कर लिए जाते थे और लालडिग्गीमें होलीके तीन चार दिन पहलेसे ही पिचकारियाँ चलने लगती थीं। पिचकारी भरे सब ताकमें खड़े रहते थे। वह लो, सामनेसे पण्डितजी आ रहे हैं—पिच्च—पण्डितजी तर हो गए। बहुत बिगड़े। नहा-धोकर आए थे, सब भ्रष्ट कर दिया। इधर इन्होंने क़हक़हा लगाया। कुछ पूछिए मत। भले आदमियोंकी आफ़त थी।

जो उधरसे निकले उसकी शामत ही समझो। बहुतसे छैले, ढाकेका चुन्नटदार कुर्त्ता और चौगोशिया टोपी देकर निकले। इधर मदनमोहन और उनका दल निशाना साधे खड़ा मौक़ा देख रहा था। बस ऐसी पिचकारियाँ चलीं कि वाह वाह। रङ्गरेज़ भी क्या खाकर इतनी खूबीसे रँगेगा? मजाल क्या कि कोई सफ़ेद पोश बिना छींटा खाए वहाँसे बेदाग़ निकल जाय।

होलीकी साँझको बड़ी चहल-पहल रहती थी। मदनमोहनकी धजा निराली ही रहती थी। घुटनोंतक धोती चढ़ाए, पेड़ काटे हुए ला रहे हैं तो कहीं भटकटैया काट-काटकर आगे लिए चले आ रहे हैं। कहीं किसीका टूटा मोढ़ा पड़ा उठा लिया, किसीकी लकड़ी उठाई, कहीं चारपाईके टूटे पाए मिले उठा लिए। होली है भाई होली है। कुछ पूछिए मत, मदनमोहनने असली मदनमोहनके भी कान काट लिए थे। क्या धूमकी होली मचती थी।

जन्माष्टमीके उत्सवकी कुछ बात ही निराली थी। कन्हैयाके पालनेकी सजावट और ठाकुरजीकी सजावटका काम मदनमोहनके ज़िम्मे। कहीं मालाएँ लगाई जा रही हैं, कहीं छड़िएँ बन रही हैं, कहीं पालनेकी सजावट हो रही हैं तो कहीं झाड़ फ़ानूस झाड़े-पोंछे जा रहे हैं। कहीं गानेवालोंका प्रबन्ध हो रहा है तो कहीं कथाका। एक नया जीवन चारों ओर दिखाई पड़ता था। छठीके दिन तो और भी शोभा बढ़ जाती थी। चारों ओर मोमबत्तियाँ जगमगातीं, सारे आँगन और दालानोंमें ग़लीचे और सफ़ेद चादरें बिछ जाती थीं। रातभर गाना-बजाना, कथा-भजन होता, प्रसाद मिलता, पंजीरी बँटती, पञ्चामृत मिलता। वह समय ही कुछ अजीब था, हर बातमें अनोखापन था, हर काममें मस्ती थी। यही उमङ्ग तो बालकोंमें काम करनेका जोश, नया उत्साह और फुर्त्ती पैदा करती है और आगे जाकर ऐसे ही चञ्चल, कर्मण्य, फुर्त्तीले बालक बड़े कामके निकलते हैं।

यज्ञोपवीत होनेके बाद ये सन्ध्यावन्दन और पूजा-पाठमें भी बड़ा मन लगाते थे। इनका एक सन्ध्यादल भी था, जो सन्ध्याका सामान लेकर नित्य यमुना-किनारे पहुँचा करता था। एक दूसरा दल था, जो भाषण दिया करता था। बात यह थी कि उन दिनों प्रयागमें एक गिरिजाघर था। स्कूलसे लौटते समय ये देखते थे कि कुछ पादरी खड़े होकर हिन्दू-धर्मकी बुराई करते थे और भरपेट गालियाँ देते थे। ये भला कब सहन करने लगे। इन्होंने भी जहाँ अवसर मिला सभा-समाज, मेले-उत्सवमें खड़े होकर व्याख्यान देना शुरू किया। व्याख्यान-सामग्रीकी कमी नहीं थी। अपने पूज्य पिताजीकी कथाएँ सुनी थीं—फिर क्या था, हिन्दू संस्कारोंके बीचमें पले हुए ब्राह्मणकी आत्मा भला हिन्दू-धर्मकी निन्दा सुनकर चुप बैठ जाय, यह कैसे हो सकता था। उन्होंने व्याख्यान-दल बनाया, जिसमें कई सदस्य थे, जो इसी तरह व्याख्यान देते थे।

जहाँ कहीं सेवाका काम पड़ता था वहाँ वे सबसे आगे दिखाई पड़ते थे। मेले-तमाशेमें भीड़का प्रबन्ध करना इन्होंने उसी बालकपनमें सीख लिया। एक बार उनके पड़ोसमें व्यासजीके घरमें आग लग गई। देखते-देखते मदनमोहन पहुँचे और ऊपर चढ़ गए। पचास-साठ घड़े कूएँसे पानी खींच लाए। उस समय आग बुझानेकी कल नहीं थी और नलका इन्तज़ाम भी नहीं था। कुँआ और घड़ा यही साधन थे। मदनमोहनके प्रयत्नसे आग बुझ गई।

सन्ध्यावन्दनमें रुचि तो थी ही, एक बार इन्हें गायत्री मन्त्र जपनेकी धुन सवार हुई। ये चुपचाप घरसे भाग जाते थे और यमुना किनारे बरगद घाटपर एकासन लगाकर गायत्री मन्त्र जपते थे। इनकी माताजीको बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें यह भय हुआ कि कहीं यह लड़का साधू-फ़कीर न हो जाय। पर मदनमोहन जैसी तबीयतका बालक फ़कीरोंके जैसे अकर्मण्य, नीरस और व्यर्थ जीवनकी ओर

आँख उठाकर भी न देख सकता था। उनकी माताजीको यह विश्वास हो गया कि वास्तवमेँ उनका भय ठीक नहीँ था।

मदनमोहनको सङ्गीतसे बड़ा प्रेम था। यह विद्या तो इनकी ख़ान्दानी ही थी। पिताजीकी बाँसुरी सुनी ही थी। मधुर स्वर बपौतीमेँ ही मिला था। इनके परिवारमेँ शायद ही कोई ऐसा बालक हो जिसे सङ्गीतका शौक़ न हो। आपने सितार बजाना सीखा और बहुत ही अच्छा सितार बजाने लगे। विना सङ्गीतप्रेमी हुए मनुष्यकी उदात्त वृत्तियाँ विकसित भी तो नहीँ होतीँ। सच पूछिए तो सहानुभूति, समवेदना और दूसरेकी व्यथाका अनुभव उसे हो हो सकता है जिसने एक बार तन्त्रीको छूआ हो। इसी सङ्गीतप्रेमके साथ ये अपने पिताजीसे सूरके पद गाते सुनते थे, अतः कविताका भी शौक़ हुआ और इन्होँने सितारके साथ बजानेके लिये जो सूर, मीरा तथा अन्य कवियोँके चुने हुए पदोँका संग्रह किया था, वह नीचे दिया जाता है। महत्त्वपूर्ण होनेके कारण हम उसे ज्योँका त्योँ अपने पाठकोँको सौँप देते हैँ। शायद इसी बहाने कुछ लोग अपने भक्त कवियोँके रसका पान करलेँ।

"राग कल्याण"

बन्दौ चरन कमल हरिराई।
जाकी कृपा कटाच्छ आँधरे सबै कछू दरसाई ॥१॥
बहिरे सब्द मूक पुनि बोलै रङ्क चलै सिर छत्र ढुराई॥
सूरदास स्वामी करुणामय बार-बार बन्दौँ तिहि पाई ॥२॥

"रामकली"

गारी मति दीजो मो गरीबनीको जायो है।
जो-जो बिगारि कियो सोतो मोँसोँ आन कह्यौ,
मैँ तो काहू बातनसोँ नाहीँ तरसायो है ॥१॥
दधिकी मटुकी भरी धरी लाय आँगनमेँ,
तौलि-तौलि लेहु भटू जाको जेतो खायो है ॥२॥
सूरदास प्रभु प्यारे निमिष न होहु न्यारे,
कान्ह ऐसो पूत मैँ तो पूरे पुन्य पायो है ॥३॥

खेलतमैँ को काको गोसैँया।
हरि हारे जीते श्रीदामा बरबस ही किन करत हँसैया ॥१॥
जाति-पाँति हमते बड़ नाहीँ ना हम बसत तिहारी छैया।
अति अधिकार जनावत काहे याते अधिक तिहारी गैया ॥२॥
रूठि करै तासोँ को खेलै रहे बैठि जहँ-तहँ सब गोय्याँ।
सूरदास प्रभु खेलोइ चाहत दाँव दियो करि नन्द दोहैया ॥३॥

"षट्राग"

नाहिनै जगाय सकत सुन सुबात सजनी।
अपने जान अजहु कान्ह मानत है रजनी॥
जब-जब हौँ निकट जात लाग रहत लोभा।
तनकी सुधि बिसरि जाति निरखत मुख-सोभा ॥१॥

वचननको बहुत करत सोँचत जिय ठाढ़ी।
नैननि विचार परति देखत रुचि बाढ़ी ॥२॥
इहि विध वदनारविन्द जसुमति जिय भावै।
सूर स्याम सुखकी रास कापै कहि आवै ॥४॥

"विहाग"

कोऊ कहूँ देखे री इत जात।
रूप गरबीली प्यारी राधा॥
चम्पक वरन गात मनरञ्जन,
खञ्जन चकबकु रव मदगञ्जन।
अमल कमल मुख जोति विलोकत,
होत सरद ससि आधा ॥१॥
अहो मराल! मानसके वासी,
अहो मलिन्द! मकरन्द उपासी।
देउ बताय अब मोहिं दयाकर,
होत अपद अपराधा ॥२॥
अहो कदम्ब! अहो अम्ब, निम्ब, बट,
सोभित सुखद छाँह यमुना तट।
हरत तापकी बाधा ॥३॥
सन्तत देत गोप गोधन सुख,
कबहुँ न सहि न सकत मेरो दुख।
उपकारी वपुवेद बखानत,
अबहीं जो मौन क्यौं साधा ॥४॥
आरत वचन पुकारत लालन,
मन जो फँसी विरहीके हारन।

मदन-जाल सौं बाँधा ॥ ५ ॥
अतिसै दुखित देखि बनवारी,
प्रगट भई वृषभान दुलारी।
सूरदास प्रभुको लगाय उर,
पूरब सरसकी साधा ॥ ६ ॥

ऊधो अब नहिं स्याम हमारे।
मधुबन बसत बदलिसे लीन्हैं माधव मधुप तिहारे ॥१॥
एतनेहि दूर भए कछु औरै जोइ-जोइ मग हारे।
कपटी कुटिल काक कोयल ज्यौं अन्त भए उड़ि न्यारे ॥२॥
रस लै भँवर जाइ स्वारथ हित प्रीतम चेत बिसारे।
सूरदास तिनसो कहा कहिए जे तनहूँ मन कारे ॥३॥

“परज”

अँखियाँ स्याम मिलनकी प्यासी।
आप तो जाय द्वारिका छाए लोक करत मेरी हाँसी ॥१॥
मेरे तो मन अस आवति है करवट लौं चलि कासी।
मीराके प्रभु गिरिधर नागर चरन कमलकी दासी ॥२॥

आजु अभिषेकत पियको प्यारी।
धरि दृग ध्यान नवल आँसुनके भरि-भरि उमगे बारी ॥१॥
कज्जल मिलित चाह मृगमदसे बिरह परब लखि भारी।
बरखत गलित कुसुम बेना ते सोई फूल झर डारी ॥२॥
व्याकुल कल नहिं लहत तनिक मुख हाय मन्त्र उच्चारी।
हरीचन्द लखि दुखित सखी जन करि न सकत उपचारी ॥३॥

मेरो हठ राखो हठीले लाल।
तुम बिन मान कौन मेरो रखिहै समुझहु जिय गोपाल ॥१॥
हमको तो तुमरो बल प्यारे तुव अभिमान दयाल।
पै तुमहीं ऐसी जो करिहौ कहँ जैहैं व्रजबाल ॥२॥
एक बेर बृजको फिरि आओ लखि गौअन बेहाल।
हरीचन्द बरु फेर जाइयो मधुपुर कृष्ण कृपाल ॥३॥

राखिए अपुनेनको अभिमान।
तुव बल जो जग गिनत न काहू दीजै तेहि सनमान ॥१॥
तुमरे होय सहैं इतनो दुख यह तो अनय महान।
तुमहि कलङ्क हमैं लज्जा अति कहिहै कहा जहान ॥२॥
एक बेर फिर तू बृज आओ देहु जीवको दान।
हरीचन्द गिरि कर धारनकी करिकै सुरति सुजान ॥३॥

ऊधो अब वे दिन नहिं ऐहैं।
जिनमैं श्याम सङ्ग निसि-बासर छिन सम बिलस बितैहैं ॥१॥
वह हँसि दान माँगनो उनको अब हम लखन न पैहैं।
जमुना न्हात कदम चढ़ि छिपि अब हरि नहि चीरै चोरैहैं ॥२॥
वह निसि सरद दिवस बरखाके फिर बिधि नाहिं फिरैहैं।
वह रस-रास हँसन-बोलन हित हम छिन-छिन तरसैहैं ॥३॥
वह गलबाहीं दै पिय बतियाँ अब नहिं सरस सुनैहैं।
हरीचन्द तरसत हम मरिहैं तऊ न वे सुधि लैहैं ॥४॥

वे दिन सपन रहे कै साँचे।
जे हरि सँग बिहरत याही बृज बीति गए रँग राचे ॥१॥
कहाँ गईं वह सरद रैन सब जिन मँ हरि सँग नाचे।
कहँ वह बोलन हँसन-मिलन सुख मिले जौन बिनु जाँचे ॥२॥
हाय दई कैसी कीनी दुख सहत करे जे जाँचे।
हरीचन्द हरि बिनु सूनो बृज लखनहि हित हम बाँचे ॥३॥

हरि हो अब मुख बेगि दिखाओ।
सही न जात कृपानिधि माधो एहि सुनतहि उठ धाओ ॥१॥
लखि निज जन डूबत दुख सागर क्यौं न दया उर लाओ।
आरत वचन सुनत चुप ह्वै रहे निठुर बानि बिसराओ ॥२॥
करुनामय कृपाल केसव तुम क्यौं निज प्रनहिं डिगाओ।
लखि बिलखत हरिचन्द दुखी जन क्यौं नहिं धीर धराओ ॥३॥

“जैतश्री”

कहाँ लौं मानौं अपनी चूक।
बिना गोपाल सखी यह छतिया ह्वै न गई द्वै टूक ॥१॥
तन मन धन जोबन सब ऐसे भए भुवङ्गम फूंक।
हृदय जरत है दावानल ज्यौं कठिन बिरहकी हूक ॥२॥
जाकी मनि सिरते हरि लीन्हीं कहा कहति अति मूक।
सूरदास बृजवास बसी हम मनो दाहिने सूक ॥३॥

“मल्लार”

सखी इन नैननि ते घन हारे।
बिनही ऋतु बरसत निसि-बासर सदा मलिन दोउ तारे ॥१॥
ऊरध स्वास समीर तेज अति सुख अनेग द्रुम डारे।
दिसन दसन करि बसे वचन खग दुख पावसके मारे ॥२॥
ढुरि-ढुरि बूंद परत कञ्चुकिपर मिलि अञ्जनसौं कारे।
मानो परनकुटी सिव कीन्हीं विवि मूरति धरि न्यारे ॥३॥

सुमिरि-सुमिरि गरजत जल छाँड़त आँसु सलिलके धारे।
बूड़त बृजहि सूर को राखै बिनु गिरवरधर प्यारे ॥४॥

"सारङ्ग"

लोचन-चातक जीबो नहिं चाहत।
अवधि गए पावसकी आसा क्रम-क्रम करि निरबाहत ॥१॥
सरिता सिन्धु अनेक अवर सखि बिलसत सजन सनेह।
ये सब ही यदुनाथ जलद बिनु अधिक दहत हैं देह ॥२॥
जब लगि नहिं बरषत बृज ऊपर नौ घन स्याम सरीर।
त्यौं यह तृषा जाइ क्यौं सूरज आनि ओसके नीर ॥३॥

"सारङ्ग"

मनकी मन ही माहिं रही।
पठै देहु मेरो लाल लड़ैतो वारौं ऐसी हाँसी ॥२॥
भली करी कंसादिक मारे सब सुर काज किए।
अब इन गैयन कौन चरावै भरि-भरि लेत हिए ॥३॥
खान-पान परिधान राज सुख जो कोइ कोटि लड़ावै।
तदपि सूर मेरो वारो कन्हैया माखन ही सचुपावै ॥४॥

"मल्लार"

अब कछु औरहि चाल चली।
मदनगोपाल बिना या तनकी सबै बात बदली ॥१॥
गृह कन्दरा मसान सेज भई चाही सिंह थली।
सीतल चन्द सुतौ सखि कहियत तिनहू अधिक जली ॥२॥
मृग मद मलय कपूर कुमकुमा सींचति आनि अली।
एक न फुरत विरह जुरते कछु लागति नाहिं भली ॥३॥
वह रितु अमृत लता सुनि सूरज अब विष फलनि फली।
हारि विधु मुख नाहिनै फूलति मनसा कुसुद कली ॥४॥

"सारङ्ग"

अब यौंही दिन लागे जान।
सुमिरत प्रीति लाज लागत है उर भयो कुलिस समान ॥१॥
लोचन रहत वदन बिनु देखे वचन सुने बिनु कान।
हृदय रहत हरि पानि परस बिनु छेदित मनसिज बान ॥२॥
मानो सखी रहे नहिं मेरे वे पहले तन प्रान।
बिधि समेत रुचि चले नन्द-सुत बिरह बिथा दै आन ॥३॥
बिधि वह छरे और पुनि कीन्हें वैसेइ बेत बिषान।
सूरदास ऐसीयै कछु यह समुझत है अनुमान ॥४॥

——:०:——

"सूर-सागर"

"राग कल्यान"

जौ विधिको अपनो करि पाऊँ।
तौ सखि कह्यो होय कछु तेरो अपनी साध पुराऊँ ॥१॥
लोचन रोम-रोम प्रति माँगौं पुनि-पुनि त्रास दिखाऊँ।
एक टक रहैं पलक नहिं लागै पद्धति नई चलाऊँ ॥२॥
कहा करौं छविरासि श्यामघन लोचन द्वै नहिं ठाऊँ।
एतेपर ये निमिष सूर सुनि यह दुख काहि सुनाऊँ ॥३॥

"टोड़ी"

श्याम भए राधावस ऐसे।
चातिक स्वाति चकोर चन्द्र ज्यौं चक्रवाक रवि जैसे ॥१॥
नाद कुरङ्ग मीन जलकी गति ज्यौं तनके बस छाया।
एक टक मैन अङ्ग छवि जो है थकित भए पति जाया ॥२॥
उठे उठत बैठे तौ बैठत चले चलत सुधि नाहीं।
सूरदास बड़ भागिनि राधा समुझि मनहि मुसुकाहीं ॥३॥

"विहाग"

मनते ये अति ढीठ भए।
वो तौ आह बोलतौ कबहूँ ये जुगए सुगए ॥१॥
ज्यौं भुवङ्ग कैंचुरी बिसारत फिरि नहिं ताहि निहारत।
तैसेहि जाइ मिले एक टक ह्वै डरते लाज निवारत ॥२॥
इन्द्रिन-सहित मिल्यो मन तबहीं नैन रहे वहि सालत।
सूर श्याम सँग-ही-सँग डोलत औरनिके घर घालत ॥३॥

"विहाग"

मनै मन पछितायो रहि जैहैं।
सुन सुन्दरि यह समौ गए ते पुनि न सूल सहि जैहैं ॥१॥
मानहुँ मीन मजीठ प्रेम रँग तैसे ही गहि जैहैं।
काम हरष हरैं हर अम्मर देखत ही बहि जैहैं। २॥
इते भेदकी बात सखी री कत-कत कोउ कहि जैहैं।
बरत भवन खनि कूप सूर त्यौं मदन अगिनि दहि जैहैं ॥३॥

"बिलावल"

द्वै कर जोरि लेत जमुहाई ॥
सोभा कहति बनति नहिं मोपै आजु सखी पिय सँगहुते आई।
सोइ आभा पुनि फेरि फबत है विधि आपुन रुचि रचित बनाई ॥
मनहु कुमुदिनी कनक मेरु चढ़ि ससि सनमुख मृदु सहित सिधाई।

सोभित चिकुर लिलाट वदनपर कुञ्चित कुटिल अलक बिथुराई ॥
नागबधू मनु अमी कोसतैं लै मधुपान अमर ह्वै आई।
झुकि-झुकि परत प्रेम-मदमाती उमगि-उमगि तन देत दिखाई ॥
सूरदास प्रभु सखी सयानी चुटुकिनि देति तबहिं लखि पाई।

"कान्हरा"

नाहींनै री अति नीको।
मेरो कह्यो सुनहु वृज सुन्दरि मानि मनायो नागरि पीको ॥
सोइ अति रूप सुलच्छन नारी रीझै जाहि भावतो जीको।
प्यासे प्रान जाइ ज्यौं जल बिनु पुनि कहँ कीजै सिन्धु अमीको ॥
तौ जौं मान तजहुगी भामिनि रबिकिर सम काम-फल कीको।
कीजै कहा समै बिनु सुन्दरि भोजन पीछे अचवन घीको ॥
सूर सरूप गरब जोवन कै जानति है अपने सिर टीको।
जाके उदय अनेक प्रकासत ससिहिं कहा डर कमल कलीको ॥

"सारङ्ग"

चितए चपल नैनकी कोर।
मनमथ बान दुसह अनियारे निकसे फूटि हिए को फोर ॥१॥
अति व्याकुल धुंकि धरनि परे जिमि तरुन तमाल पवनके जोर।
कहुँ मुरली कहुँ लकुट मनोहर कहुँ पट कहूँ चन्द्रिका मोर ॥२॥
बन बूड़त बनहीं बन उछरत बिरह-सिन्धुके बड़े हिलोर।
प्रेम-सलिल भींज्यौ पीरो पट फट्यौ निचोरत आँचल कोर ॥३॥
फुरै न वचन नयन नहिं उघरत मानहु कमल भए बिनु मोर।
सूर सुअधर सुधारस सींचहु मेटहु मुरछा नन्द-किसोर ॥४॥

"मल्लार"

यह रितु रूसिवेकी नाहीं।
बरषत मेघ मेदिनीके हित प्रीतम हरखि मिलाहीं ॥१॥
जे तमाल ग्रीषम ऋतु डाही ते तरवर लपटाहीं।
जे जल बिन सरिता ते पूरन मिलन समुद्रहि जाहीं ॥२॥
"यौवन" धन है द्यौस चारिको ज्यौं बदरीकी छाहीं।
मैं दम्पति रस रीति कही है समुझि चतुर मन माहीं ॥३॥
यह चित धरहु सखी राधिका दै दूतीको बाहीं।
सूरदास हठ चलहु राधिका संग दूती पिय पाहीं ॥४॥

"बिलावल"

हतो श्रम नाहिंन तबहुँ भयो।
सुनि राधिके जितो श्रम मोंको तू यह मान दयौ।
धरनीधर विधि वेद उधार्‌यौ मधु सो सत्रु हयौ ॥१॥
द्विज नृप कियौ दुसह दुख मेट्यौ बलिको राज लयौ।
तोर्‌यौ धनुष स्वयम्बर कीन्हौं रावन अजित जयौ ॥२॥
अघ बक वच्छ अरिष्ट केसि मथि दावानल अँचयौ।
त्रिय वपु धर्‌यौ असुर सुर मोहे को जग जो न द्रयौ ॥३॥
जानौं नहीं कहा या रस मैं जेहि सिर सहज नयौ।
सूर सुबल अब तोहि मनावत मोहिं सब बिसरि गयौ ॥४॥

"सारङ्ग"

उलटि पग कैसे दीन्हें नन्द।
छाँड़े कहाँ उभय सुत मोहन धिग जीवन मतिमन्द ॥१॥
कै तुम धन जोवन मद-माते कै तुम छूटे बन्द।
सुफलक-सुत बैरी भयो हमकौ लै गयो आनँदकन्द ॥२॥
रामकृष्ण बिन कैसे जीजे कठिन प्रीतिके फन्द।
सूरदास प्रभु भई अभागिनि तुम बिन गोकुल चन्द ॥३॥

"रामकली"

कहियौ स्यामसौं समुझाइ।
यह नातो नहिं मानत मोहन मनो तुम्हारी धाइ ॥१॥
एक बार माखनके काजै मैं राखी अटकाइ।
याको बिलग मानो जिन मोहन लागत मोहिं बलाइ ॥२॥
बारहि बार इहै लौ लागी गहे पथिकके पाइ।
सूरदास या जननीको जिय राखौ बदन देखाइ ॥३॥

"सारङ्ग"

सँदेसो देवकीसौं कहियौ।
हौं तो धाय तुम्हारे सुतकी मया करति तुम रहियौ ॥१॥
यदपि टेव तुम जानत उनकी तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे कान्हको माखन रोटी भावै ॥२॥
तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देखि भजि जाते।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती क्रम-क्रम पकरि नहाते ॥३॥
सूर पथिक सुनि सोहि रैनि दिन बढ़्यौ रहत उर सोच।
मेरो अलप लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत सकोच ॥४॥

"सारङ्ग"

जौ परि राखत हौ पहिचानि।
तौ अबकै वह मोहन मूरति मोहि देखावहु आनि ॥१॥
तुम रानी वसुदेव गेहिनी हौं गँवारि बृजवासी।

“मल्लार”

सिखिन सिखर चढ़ि टेर सुनायो ।
बिरही सावधान ह्वै रहियो सजि पावस दल आयो ॥ १ ॥
नव बादल बानै तप बनता जो चढ़ि चुटकि दिखायो ।
चमकत बीजु सेलकर मण्डित गरजि निसान बजायो ॥ २ ॥
दादुर मोर चातक पिकके गन सब मिलि मारू गायो ।
मदन सुभट कर बान पञ्च लै बृज तन सनमुख धायो ॥ ३ ॥
जानि बिदेस नन्दको नन्दन अबलनि त्रास दिखायो ।
सूर स्याम पहले गुन सुनि रहि प्रान जात बिरमायो ॥ ४ ॥

“मल्लार”

सखी री चात्रिक मौंहि जियावत ।
जैसेहि रैनि रटति हैं पिय-पिय तैसेहि वह पुनि गावत ॥१॥
अतिसै कण्ठ दाहु प्रीतमको तारू जीभ न लावत ।
आपुन पिवत सुधारस सजनी बिरहिनि बोलि पियावत ॥२॥
जौ ये पंछि सहाइ न होतो प्रान बहुत दुख पावत ।
जीवन सुफल सूर ताहीको काज पराए आवत ॥३॥

“कान्हरा”

छूटि गई ससि सीतलताई ।
मनु मोहिं जारि भसम कियो चाहत सजत मनो कलङ्क तन काई ॥
याहिते स्याम अकाम देखिए मानो धूम रह्यो लपटाई ।
ता ऊपर दौ देति किरिनि उर उडगन कनै उबटइयत आई ॥२॥
राहु केतु दोउ जोरि एक करि कहि इहि समैं जरावहि आई ।
ग्रसे ते न पचि जात पापमय कहत सूर बिरहिनि दुखदाई ॥३॥

“मल्लार”

कोऊ बरजो री या चन्दहि ।
अति ही क्रोध करत हम ऊपर कुमुदिनि कुल आनन्दहि ॥१॥
कहा कहौं बरषा रबि तमचुर कवल वलाहक कारे ।
चलत न चपल रहत थिरकै रथ विरहिनिके तन जारे ॥२॥
नीन्दत सैल उदधि पन्नग कौं श्रीपति कमठ कठोरहि ।
देति असीस जरा देवी कौं राहु केतु किनि जोरहि ॥३॥
यौं जलहीन मीन तन तलफति ऐसी गति वृज बालहि ।
सूरदास प्रभु आनि मिलावहु मोहन मदन गोपालहि ॥४॥

“सारङ्ग”

मनकी मन ही माँहि रही ।
जब हरि रथ चढ़ि चले मधुपुरी सब अज्ञान भरी ॥१॥
मति बुधि हरी परी धरनीपर अति बेहाल खरी ।
अङ्कुस अलक कुटिल भए तासैंा ताते अवधि बरी ॥२॥
ज्यौं बिनु मनि अहि मूक फिरे यौं विधि विपरीत धरी ।
मन तौ रह्यौ पन्थि सूर प्रभु माटी रही करी ॥३॥

“मल्लार”

किधौं घन गरजत नाहिंन उन देसनि ।
किधौं हरि हरषि इन्द्र हठि बरजै कैधौं दादुर खाए सेसनि ॥१॥
किधौं वह देसनि गव निगम न छाड़े धरननि बूँद प्रवेसनि ।
चात्रिक मोर कोकिला उहि वन वधिकन बधे विसेसनि ॥२॥
किधौं उहि देस बाल नहिं झूलति गावत सखिन सुदेसनि ।
सूरदास प्रभु पथिक न चलहीं कासों कहौं सँदेसनि ॥३॥

“मल्लार”

इहाँ नाहिन नन्द-कुमार ।
इहै जानि अजान मघवा करी गोकुल आर ॥१॥
नैन जलद निमेष दामिनि आँसु बरषत धार ।
दरस रबि ससि दुरयौ धीरज पास पवन अकार ॥२॥
उरज गिरि मैं मरन भारी अगम काम अपार ।
गरजि विकल वियोगि बानी हरति अवधि अधार ॥३॥
पथिक मथुरा जाइ हरिसौं बात कहै विचार ।
सत्रुसेन सुधाम घेरयौ सूर लगहु गोहार ॥४॥

“मल्लार”

अब या तनहि कहो कहा कीजै ।
सुनि री सखी स्याम सुन्दर बिन बाँटि विषम विष पीजै ॥१॥
कै गिरिपै गिरि चढ़ि सुनि सजनी कै सीस सङ्करहि दीजै ।
कै दहिए दारुन दावानल कै जाइ जमुन धँसि लीजै ॥२॥
दुसह वियोग विरह माधौको दिनहीं-दिनहीं छीजै ।
सूर स्याम पीतम बिनु राधे सोचि-सोचि जिय जीजै ॥३॥

“बिलावल”

ऊधो इतनो कहियो जाइ ।
हम आवहिंगे दोऊ भैया मैया जिन अकुलाइ ॥१॥

याको विलग बहुत हम मान्यौ जब कहि पठयो धाइ।
वह गुन हमको कहा बिसरिहै बड़े किए पय प्याइ ॥२॥
और जो मिलौ नन्द बबासौं तब कहिए समुझाइ।
तौलौं दुखी होन नहिं पावैं धवरी धूमरि गाइ ॥३॥
जद्यपि इहाँ अनेक भाँति सुख तद्यपि रह्यौ न जाइ।
सूरदास देखैं बृजवासिन तबहीं हियो सिराइ ॥४॥

“मल्लार”

कोउ बृज बाँचत नाहिन पाती।
कत लिखि-लिखि पठवत नँद-नन्दन कठिन विरहकी काती ॥१॥
नैन सजल कागद अति कोमल कर अँगुरी अति ताती।
परसत जरै विलोकत भींजै दुहूँ भाँति दुख छाती ॥२॥
क्यौं ये वचन सुअङ्क सूर सुनि विरह मदन सर घाती।
मुख मृदु वचन बिना सींचे अब जिवहिं प्रेम-रस माती ॥३॥

“धनाश्री”

नैननि उहै रूप जो देखौं।
तौ ऊधो यह जीवन जगकौ साँच सुफल करि लेखौं ॥१॥
लोचन चपल चारु खञ्जन मन रञ्जन हृदय हमारे।
सारङ्ग कमलमै मीन मनोहर सेत अरुन अरु कारे ॥२॥
रतन जटित कुण्डल श्रवननि वर गण्ड कपोलनि झाँई।
मनु दिनकर प्रतिबिम्ब मुकुरमँह ढूँढ़त यह छबि पाई ॥३॥
मुरली अधर विकट भौंहैं करि ठाढ़े होत त्रिभङ्ग।
मुक्तमाल उर नील सिखर तैं धँसी धरनि जनु गङ्ग ॥४॥
और वेषको कहै बरनि सब अँग-अँग केसरि खौर।
देखे बनै कहत रसनासौं सूर विलोकत और ॥५॥

“कल्यान”

मधुकर कहा कियो अब चाहत।
ये सब भईं चित्रकी पुतरी सुने सरीरहि डाहत ॥१॥
हमसौं तोसौं वैर कहा अलि स्याम अजा भयो राहत।
झारि झूरि तौ मन तौ तू लै गयो बहुरि यारहि गारत ॥२॥
अब तो है मारुतको गहिबो का सस मूकी लैहौ।
सूर जु जौ उन हमहिं हतेतैं अपनो कीयो पैहौ ॥३॥

“सारङ्ग”

ऊधो भली करी गोपाल।
आपुन पै हरि आवत नाहीं बिरमि रहे एहि काल ॥१॥
चन्दन चन्दहुतैं तब सीतल कोकिल शब्द रसाल।
अब समीर पावक सम लागत सब बृज उलटी चाल ॥२॥
हार चीर कञ्चन कण्टक भए तरनि तिलक भए भाल।
सेज सिङ्घ ग्रह तिमिर कन्दरा सर्प सुमन भए माल ॥३॥
हमतो न्याय हतो दुख पावैं बृज बसि गोपी ग्वाल।
सूरदास स्वामी सुख सागर भोगो भँवर मृनाल ॥४॥

“मल्लार”

ऊधो जो हरि हितू तुम्हारे।
तौ तुम कहियौ जाइ कृपा करि ये दुख सबै हमारे ॥१॥
तन तरिवर उर स्वाँस पवनमैं बिरह दवा अति जारे।
नहिं सिरात नहिं जात हाट है सुलगि-सुलगि भई कारे ॥२॥
जद्यपि प्रेम उमगि जल सींचे बरषि-बरषि घन हारे।
जौं सींचै एहि भाँति जतन करि तौ येते प्रतिपारे ॥३॥
कीर कपोत कोकिला चात्रिक वधिक वियोग बिडारे।
क्यौं जीवै येहि भाँति सूर प्रभु बृजके लोग बिचारे ॥४॥

“केदारा”

नेह न होइ पुरानो रे अलि।
जल प्रवाह ज्यौं सोभा सागर,
निति नवतन बृजनाथ इहाँ बलि ॥१॥
जीवत है आनन्द रूप रस,
बिन प्रतीतिको मीन चढ़यौ थलि।
अमी अगाध सिन्धु सर बिहरत,
पीवत हू न अघात इते जलि ॥२॥
दिन-दिन बढ़ति नीर नलिनी ज्यौं,
स्याम रङ्गमैं नैन रहे पलि।
सूर गोपाल प्रीति जिय जाके,
छूटत नाहिंन नेह सनी सलि ॥३॥

“सारङ्ग”

मधुकर समुझि कहौ किन बात।
काहेको हियरा सुलुगावत उठि किन ह्याँ ते जात ॥१॥
जेहि उर बसत जसोदानन्दन निरगुन कहाँ समात।
कत डोलत भटकत कुसुमन सँग तुम कित पातन पात ॥२॥
जद्यपि सकल बेलि बन बिहरत जाइ बसत जलजात।
सूरदास बृज मिल बन आए दासीकी कुसलात ॥३॥

"धनाश्री"

ऐसो सुनियत द्वै वैसाख।
जानत हौ जीवन काहेको जतन करौ जौं लाख ॥१॥
मृग-मद मिलै कपूर कुम-कुमा केसरि मलया पाख।
जरत अग्निमैं घृत ज्यौं नायौ तन जरि ह्वैहैं राख ॥२॥
ता ऊपर लिखि जोग पठावत खाहु नींव तजि दाख।
सूरदास ऊधोकी बतियाँ उड़ि-उड़ि बैठी ताख ॥३॥

"मल्लार"

बिरचि मन बहुरि राँचो आइ।
टूटी जुरै बहुत जतननि करि तऊ दोष नहिं जाइ ॥१॥
कपट हेतकी प्रीति निरन्तर चौंथि नोथि चोखाइ।
दूध फाटि जैसे होइ काञ्जी कौन स्वाद करि खाइ ॥२॥
केरा पास ज्यौं बेरि निरन्तर हालत दुख दै जाइ।
स्वाति बूँद जस परै फनिक मुख परत विषै है जाइ ॥३॥
येती केती तुमरी उनकी कहत बनाइ-बनाइ।
सूर जु दास दिगम्बरपुरते रजक कहा ब्यौसाइ ॥४॥

"नट"

तेरो बुरो न कोई मानै।
रसकी बात मधुप नीरस सुनि रसिक होइ सो जानै ॥१॥
दादुर बसै निकट कमलिनिके जनम न रस पहिचानै।
अलि अनुराग उड़त मन बाँध्यौ कही सुनत नहिं कानै ॥२॥
सरिता चली मिलन सागरकौं कूल सबै द्रुम भानै।
कायर बकै लोभते भागै लरै सो सूर बखानै ॥३॥

"घनाश्री"

ऊधो मन मानेकी बात।
दाख छोहारा छाँड़ि अमृत फल विष कीरो विष खात ॥
जो चकोरको देइ कपूर कोउ तजि न अँगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठमैं बँधत कमलके पात ॥
ज्यौं पतङ्ग हित जानि आपनो दीपकसौं लपटात।
सूरदास जाको मन जासैं सोई ताहि सोहात ॥

"नट"

कहियो जसुमतिकी आसीस।
जहाँ रहौ तहँ नन्द लाड़िले जीवो कोटि बरीस ॥
मुरली दई दोहनी घृत भरि ऊधो धरि लई सीस।
इह घृत तौ उनही सुरभिनकौ जो प्यारी जगदीस ॥
ऊधो चलत सखा मिलि आए ग्वाल बाल दसबीस।
अबके इहाँ बृज फेरि बसायो सूरदासके ईस ॥

———

इस प्रकार शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियोँसे ओतप्रोत होकर यह बालक समाज तथा देशके विस्तृत अखाड़ेमेँ आ कूदा और ऐसे करतब दिखाए कि बड़े बड़े अखाड़िये मात हो गए और कितने ही पुराने सरदार इस नये जवानका लोहा मानने लगे। नई उमङ्गेँ, नया जोश और नई आशाओंकी उँगली थामकर मदनमोहन ऊपर चढ़ने लगे और इतने ऊपरतक चढ़ते चले गए कि उनतक पहुँचनेकी बात तो दूर रही, उतनी ऊँचाईको देखकर ही आँखेँ चुँधियाने लगती हैँ। मदनमोहनका कार्य्यक्षेत्र अब बढ़ने लगा।

एक पग आगे

विवाह

आज-कलकी सुधारक मण्डली यदि सुन पावे कि किसीका ब्याह छोटी अवस्थामें ही हो गया तो वह आपेसे बाहर हो जाय और उन्हें भारतकी दरिद्रता और पराधीनताके सब कारण उसी विवाहमें दिखाई पड़ने लगें। पर भगवान्ने जिसे कृपा करके थोड़ी भी बुद्धि दे दी है वह यह अवश्य समझ सकेगा कि पहले विवाह भले ही बालकपनमें हो जाते थे, पर संयम इतना कड़ा था कि उसका परिणाम बुरा नहीं होता था। आजकल हम लोग पच्चीस वर्षकी अवस्थामें विवाह करानेका उपदेश तो देते हैं, पर पच्चीस वर्षतक अपनेको तेजस्वी बनाए रखनेके साधन और उसकी शिक्षा नहीं देते। इसका कुफल यह हुआ है कि विवाह तो देरमें होने लगे हैं, पर विवाहके समय हमारे नौजवान मित्रोंके चेहरोंसे जवानी हवा हो जाती है। मनस्तत्त्वके विद्वानोंका कहना है कि यदि मनुष्यकी इच्छाकी पूर्त्तिमें बाधा होती है तो उसकी प्रतिक्रिया बड़ी भयङ्कर होती है और उसीके फलस्वरूप वह पागल होता या आत्महत्या कर बैठता है किन्तु यदि उस इच्छाको उचित धारामें मोड़ दिया जाय तो वह इच्छा उदात्त वृत्तिका स्वरूप धारण कर लेती है। इसी आधारपर सम्भवतः हमारे बड़े लोग बालकोंका विवाह बालपन और युवावस्थाके सन्धिकालमें कर देते थे कि जिससे उनकी स्नेहधारा एक ही मार्गपर चले, इधर उधर फैलकर नष्ट होनेसे बच जाय।

मदनमोहनके विवाहकी भी एक अजीब कहानी है। वे चौदह-पन्द्रह बरसके रहे होंगे—सुन्दर इकहरे बदनके—अभी मसें भी न भीगी थीं। काली-काली चमकदार आँखें थीं और खञ्जनके समान चपल अङ्गोंसे ऐसा प्रतीत होता था मानों बस अब उड़नेहीवाले हों। इनके चाचा पण्डित गदाधरप्रसादजी मिर्ज़ापुरके गवर्नमेण्ट हाइ स्कूलमें हेड पण्डित थे। वे साहित्यके धुरन्धर विद्वान्, मृदुभाषी और हँसमुख थे। मदनमोहन अकसर उनके पास आया-जाया करते थे। एक बार मिर्ज़ापुरमें पण्डितोंकी सभा हो रही थी। आसपासके बहुतसे पण्डित जमा हुए थे। किसी विषयपर शास्त्रार्थ हो रहा था। मदनमोहन भी उसी सभामें बैठे हुए थे। बहुत देरतक सुनते रहे फिर उनको भी कुछ बोलनेकी इच्छा हुई। जिसे जनताके बीचमें बोलनेका ढेठ खुल गया हो वह चुप भला कैसे रह सकता है। मदनमोहन खड़े होकर बोलने लगे। कैसी ज़बान थी, मानो फूल बरस रहे हैं। कितना साधुवाद हुआ। जिसने सुना उसीने बालक मदनमोहनकी पीठ ठोंकी। उसी सभामें मिर्ज़ापुरके पण्डित नन्दराम भी बैठे हुए थे। उन्होंने मदनमोहनको अपना जामाता बनानेका सङ्कल्प कर लिया। बातचीत तै हो गई। मदनमोहनके श्वसुर होनेका सौभाग्य उन्हींको मिला।

पण्डित नन्दरामजीकी तीन पुत्रियाँ थीं। दोका विवाह हो चुका था। सबसे छोटी कुन्दन (कुन्नन) देवी रह गई थीं। इस बातचीतके दो-तीन साल बाद

सन् १८८१ ई० मेँ मदनमोहनका विवाह हो गया। मदनमोहन उस समय कौलेज्मेँ पढ़ रहे थे।

स्कूल और कौलेज्

हमारा संयुक्तप्रान्त उस समय उत्तर-पश्चिमीप्रान्त तथा अवध कहलाता था। तबतक प्रयाग विश्वविद्यालयका सूत्रपात नहीँ हुआ था। इस प्रान्तकी एण्ट्रेन्स परीक्षाका सम्बन्ध कलकत्ता विश्वविद्यालयसे था। इलाहाबाद ज़िला स्कूल अपने स्थानसे उठकर मलाकापर चला गया और गवर्नमेण्ट हाई स्कूल हो गया। दूर होनेके कारण अब तो मदनमोहनको प्रायः रोज़ ही देर होने लगी। सन् १८७९ ई० मेँ अट्ठारह वर्षकी अवस्थामेँ मदनमोहनने एण्ट्रेन्स परीक्षा पास कर ली।

एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करनेके बाद मदनमोहनको कौलेज्मेँ पढ़नेका मन हुआ, पर दरिद्रता मुँह बाए सामने खड़ी थी। किन्तु ब्रजनाथजीने हिम्मत न हारी। मदनमोहनने म्योर सेण्ट्रल कौलेज्मेँ नाम लिखा लिया। उस समय म्योर सेण्ट्रल कौलेज् प्रयागकी पब्लिक लाइब्रेरीके उत्तरस्थित दर्भङ्गा कैसिलमेँ लगता था। वह सरकारी कौलेज् था और उसके प्रिन्सिपल बड़े नामी विद्वान् श्री हैरिसन् साहब थे।

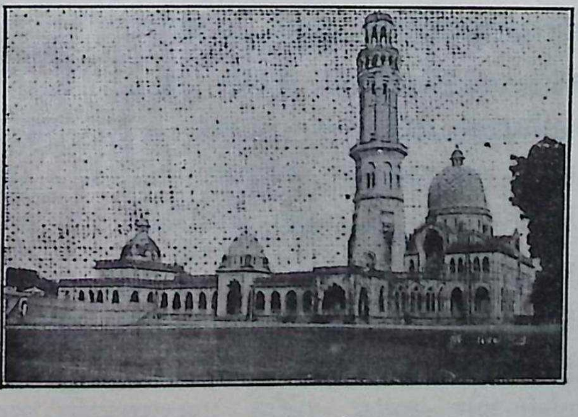
वर्त्तमान म्योर सेण्ट्रल कौलेज्, प्रयाग।

कौलेज्मेँ पहुँचनेपर मदनमोहनके गुणोँका तो विकास हुआ ही, साथ ही उनका कार्य्यक्षेत्र भी बढ़ चला। प्रिन्सिपल हैरिसन्पर इनके देशानुराग, पवित्र जीवन, धीरता और निर्भयताका बड़ा प्रभाव पड़ा और वे इन्हेँ बहुत मानने लगे।

अभिनेता

प्रयागमेँ उन दिनोँ एक आर्य्य-नाटक-मण्डली थी, जिसमेँ नगरके प्रायः सभी प्रमुख नागरिक सदस्य थे। स्वर्गीय सर सुन्दरलाल भी उन दिनोँ इसके सदस्य थे। एक बार उस मण्डलीने शकुन्तला नाटक खेला। बड़ी भीड़ हुई। संस्कृतके पण्डितोँमेँ एक कहावत प्रचलित है—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्यं शकुन्तलम् ।
तत्रापि च. चतुर्थाङ्कस्तत्रश्लोकश्चतुष्टयम् ॥

—कि काव्योँमेँ नाटक सबसे श्रेष्ठ है। नाटकोँमेँ महाकवि कालिदासका अभिज्ञान शाकुन्तल (शकुन्तला) नाटक सर्वश्रेष्ठ है—इत्यादि। नाट्य संसारके सर्वश्रेष्ठ नाटककी प्रधान नायिका महाकवि कालिदासकी सर्वश्रेष्ठ कृति शकुन्तलाका अभिनय करना कोई हँसी-दिल्लगी नहीँ है, पर आर्य्य-नाटक मण्डलीवालोँने वहाँके नाचघरमेँ शकुन्तला नाटक खेला। घण्टी बजी, परदा उठा। अनुसूया और प्रियम्वदाके साथ जलकी गगरी हाथमेँ लिए हुए शकुन्तला आई। वह हाव-भाव बस देखने ही लायक़ था। आदिसे अन्ततक शृङ्गार और करुणाकी उस महानदीमेँ तैरकर जब दर्शकगण बाहर निकले तो सबकी ज़बानपर एक ही बात थी—'शकुन्तलाका पार्ट ग़ज़बका हुआ है।' ऐसी ख़ूबीसे वह अभिनय किया गया था कि सबकी कल्पनामेँ कई दिनतक 'शकुन्तला' विराजमान रही। वह अभिनय किसने किया था—यह कोई पहेली नहीँ थी, कोई रहस्यकी बात नहीँ थी। सब लोग जानते थे—उन्हीँ ब्रजनाथजीके पुत्र मदनमोहनने। एक बार कौलेज्मेँ 'मर्चेण्ट औफ़ वेनिस' अंग्रेज़ी नाटक खेला गया। उसमेँ पोर्शियाका पार्ट मदनमोहनको मिला। उस नाटकके देखनेवाले अभी जीवित हैँ और उनका कहना है कि यदि कोई अंग्रेज़

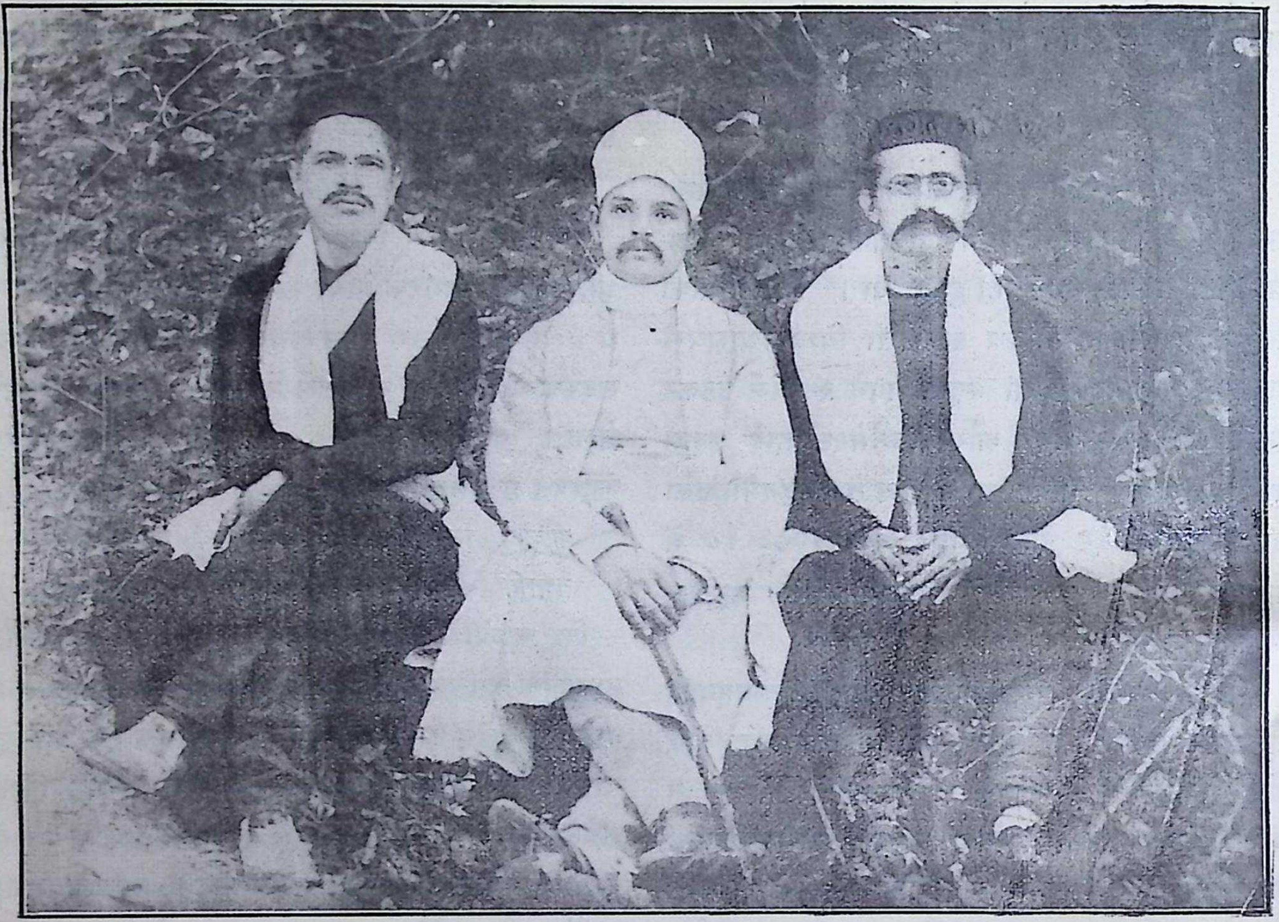

कौलेज्के तीन सहपाठी पण्डित हरिराम पाण्डे, पण्डित मदनमोहन मालवीय तथा पण्डित श्रीकृष्ण जोशी

महिला भी उस पार्टको करती तो शायद इतनी ख़ूबीके साथ न कर पाती। जिस समय 'उस' पोर्शियाने दयाके गुणोंका वर्णन करना शुरू किया तो जान पड़ा कि आकाशसे दयाके अमृतकी वर्षा हो रही है और सारा संसार उस अमृतकी एक-एक बूँद पानेके लिये तरस रहा है। मदनमोहन उस समय कौलेज्में पढ़ रहे थे।

मदनमोहनने कौलेज्में एक डिबेटिङ्ग सोसाइटी (वादविवाद-समाज) स्थापित किया, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विषयोंपर वाद-विवाद हुआ करते थे और इनके मित्रगण भाषण दिया करते थे। सभी लोगोंमें तो इनके समान लगन थी नहीं, पर ये ज़बर्दस्ती सबको पकड़-पकड़कर खींच-खींचकर ले जाया करते थे।

मदनमोहनका कौलेज्का वेश भी वही था जो आज है। वही साफ़ा, वही दुपट्टा, वही अचकन, और वही पाजामा। गरमीके दिनोंमें सन्दली दुपट्टेसे इन्हें बड़ा प्रेम था और ख़ासकर आपके लिये ही मँगवाया जाता था। हाथमें पहाड़ी डण्डा और पैरोंमें कभी वार्निशदार जोड़े कभी नागला। इनके साफ़ेकी कथा भी कुछ कम मनोरञ्जक नहीं है। पहले तो ये मामूली इलाहाबादी चौगोशिया टोपी लगाते और कलीदार अङ्गा पहनते थे। मिर्ज़ापुरके एक मल्लई पण्डित दुर्गाप्रसाद महाराजा बनारसके यहाँ नौकर थे। उनकी सफ़ेद पगड़ी इन्हें बड़ी जँची और तभीसे इन्होंने उस तरहकी पगड़ी बाँधनी आरम्भ कर दी और फिर आजतक उसी तरहकी पगड़ी बाँधते हैं। उनकी देखा-देखी पण्डित

भगवतीप्रसाद वाजपेयी बाँधने लगे और अब तो बहुत लोग उस मार्गके पथिक बन गए हैं।

गुरुसे भेंट

मदनमोहनकी सर्वतोमुखी शक्तिने उन्हें पाठ्य-पुस्तकों और कौलेज़की चारदीवारीमें ही बन्दी न रहने दिया। जिसका हृदय विशाल हो जाता है और जो अपना सङ्कुचित क्षेत्र छोड़कर सारे संसारसे नाता जोड़ लेता है, जिसके सुख-दुःख एक व्यक्तिके नहीं बल्कि सारे संसारके प्राणियोंके सुख-दुःखमें ओत-प्रोत हो जाते हैं, वह फिर कौलेज़की छोटीसी परिधिके भीतर कैसे समा सकता है। सौभाग्यसे उन दिनों म्योर सेन्ट्रल कौलेज़में संस्कृतके अध्यापक महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यजी थे। मदनमोहन संस्कृत तो पढ़े हुए थे ही, यहाँ आकर उन्हें पण्डित आदित्यरामजीसे पढ़नेका अवसर हुआ। पारसको छूते ही सोना बन गए। पण्डित आदित्यरामजी आदर्श गुरु थे। उन्होंने अपने शिष्य मदनमोहनको परख लिया। उन्होंने समझ लिया कि इस मदनमोहनके स्वरूपमें कोई महापुरुष छिपा बैठा है। उन्होंने मदनमोहनको उत्साहित करना आरम्भ कर दिया और थोड़े ही समयमें गुरु-शिष्यमें अत्यन्त स्नेह हो गया और यह स्नेह इतना प्रबल हुआ कि पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्य केवल कौलेज़के गुरु ही नहीं रह गए बल्कि वे इनके वास्तविक पथप्रदर्शक गुरु बन गए और सच बात तो यह है कि आजके महापुरुष महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयके बनानेमें पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यजीका बड़ा हाथ था।

हिन्दू समाज

उस समय प्रयागके महाजनी टोलेके पास ही मुन्शी काशीप्रसाद वकीलके भवनमें ही सन् १८८० ई० में हिन्दू समाजकी स्थापना हुई और वहीं उसकी बैठकें होने लगी। इस हिन्दू समाजकी स्थापनामें पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यजीका प्रबल हाथ था। मदनमोहन समाजके प्रधान कार्य्यकर्त्ताओंमें थे। जहाँ किसी बातमें कोई अड़चन पड़ी, झट मदनमोहन उसे अपने हाथमें ले लेते थे और इस ख़ूबीके साथ उसे सुलझाते थे कि बड़े-बड़े लोग दङ्ग रह जाते थे। मदनमोहनकी इस बातसे कुछ लोग चिढ़ भी गए थे कि यह कलका छोकरा बड़ों-बड़ोंके कान काटनेको तैयार है। इनकी बातोंको लोग 'छोटे मुँह बड़ी बात' समझते थे। पर ये भी अपनी आदतसे लाचार थे। क्या करते, किसी-न-किसी तरह काम तो करना ही था। निर्भय होकर ये अपने रास्तेपर चले जाते थे। किसीके कहने-सुननेपर कान नहीं देते थे। शायद इनकी सफलताका एक यह भी कारण है। इन्हीं दिनों मदनमोहनका पण्डित अयोध्यानाथजी तथा पण्डित विश्वम्भरनाथजी जैसे देश-हितैषी नेताओंसे सम्पर्क हुआ।

मध्य हिन्दू समाज

'हिन्दू समाज' में हिन्दुओंको ऊपर उठाने, अपने बलपर खड़ा होने और अपने मिटानेवालोंसे लोहा लेनेका पाठ व्याख्यानों और वादविवादों-द्वारा हो ही रहा था। इधर मदनमोहनने उसीके साथ सन् १८८४ ई० में 'मध्य हिन्दू समाज' के नामसे प्रयागमें एक सभा स्थापित की और दशहरेपर बड़ी धूमधामसे उसका उत्सव किया। दूर-दूरसे उत्तरीय भारतके बड़े-बड़े विद्वान् पधारे, हिन्दू-धर्म और समाजको सुसङ्गठित करनेके अनेक उपायोंपर गम्भीर विचार किया गया। यमुना किनारे महाराज बनारसकी आलीशान कोठीमें मदनमोहनके उद्योगसे दशहरेपर मध्य-हिन्दू-समाजका धूमधामसे उत्सव हुआ। तीन दिनतक उत्सव होता रहा और उसकी चहल-पहल किसी भी राजनीतिक महोत्सवसे कम न थी। उस उत्सवमें विलायतसे ताज़ा लौटे हुए कालाकाँकर-नरेश स्व० राजा रामपाल सिंह भी पधारे। इस अधिवेशनके अध्यक्ष बरावाधिपति वैष्णववर श्री महावीरप्रसादजी चुने गए थे। पण्डित लक्ष्मीनारायण व्यास वैद्यके प्रस्तावसे उन्होंने सभापतिका

आसन ग्रहण किया। राजा रामपाल सिंह बीच-बीचमेँ उठकर सभापतिके काममेँ इस प्रकार बाधा देते थे और अपना ही भाषण प्रारम्भ कर देते थे जो मदनमोहनको बड़ा कसकता था। वे ही नहीँ और भी बहुत लोग इससे असन्तुष्ट थे। पर राजा साहबका नाम बड़ा था और उन्हेँ रोकनेका प्रयत्न करना सचमुच बड़े साहसका काम था। पर मदनमोहन इसे देरतक न बरदाश्त कर सके। जब कभी राजा साहब ऐसा कहते, वे खड़े होकर कानमेँ कुछ कहते हुए कई बार देखे गए। वे राजा साहबको रोकते थे। पर राजा साहब मुस्कुरा देते थे।

जलसा समाप्त होनेपर राजा साहबने अपने 'हिन्दुस्तान' नामक पत्रमेँ मध्य-हिन्दू-समाजके इस अधिवेशनकी प्रशंसा तो की पर साथ ही यह भी लिखा कि—"उसमेँ दो एक लौंडे ऐसे ढीठ थे कि बड़े-बड़े राजा-रईसों और बावदूकों (वक्ताओँ) को व्याख्यान देते समय उनके कानमेँ सलाह देनेकी धृष्टता करते थे।"

मदनमोहनसे राजा साहब कितने चिढ़ गए थे यह छिपा नहीँ है, पर यह नाराज़गी बहुत दिन न टिक सकी क्योँकि राजा रामपाल सिंह बड़े गुणोँको परखते थे। इसलिये इसके थोड़े ही दिनोँ बाद राजा साहब मदनमोहनसे मिले और उन्हेँ अपने पत्र "हिन्दुस्तान" का सम्पादक बना दिया। इसकी चर्चा हम आगे करेँगे।

इस प्रकार सन् १८९१ ई० तक प्रतिवर्ष मध्यम हिन्दू-समाजके महोत्सव हुए जिनमेँ लोक-कल्याण और देशहितके अनेक विषयोँपर बहुत कुछ कहा-सुना और सोचा-विचारा गया।

लिटरेरी इन्स्टिटयूट

इसी हिन्दू समाजके साथ-साथ इन्होँने लिटरेरी इन्स्टिटयूटकी स्थापना की, जिसका उद्देश था साहित्यिक विषयोँकी चर्चा करना, काव्य और साहित्यके गुण-दोषोँपर बातचीत करना, अपना साहित्य-भण्डार भरनेका प्रयत्न करना और जैसे बने वैसे समाजमेँ साहित्यका प्रचार करना, जिससे लोगोँमेँ अपने राष्ट्रीय साहित्यका भी ज्ञान हो, साथ ही दूसरे साहित्योँका भी ज्ञान होता चले।

बोलनेका रोग

मदनमोहनको बोलनेका रोग था। यद्यपि उनकी ज़बान कैँचीकी तरह नहीँ चलती थी पर उसका प्रवाह पर्वतसे उतरती हुई गङ्गाकी धारासे कम न था जो पवित्र और शुद्ध तो था पर अत्यन्त तीव्र था, इतना तीव्र था कि मदनमोहनके बड़े भाई लक्ष्मीनारायणको छड़ी लेकर इनकी ज़बानका पहरा देना पड़ता था। प्रयागके वैद्य शिवरामजीने इसका अत्यन्त विशद वर्णन दिया है। उसे हम ज्योँ-का-त्योँ उद्धृत कर देते हैँ:—

"पण्डित सरयूप्रसाद मेरी चिकित्सामेँ थे और मालवीयजी उनके यहाँ आया जाया करते थे। मालवीयजी भी रक्त-पित्तकी बीमारीमेँ ग्रस्त थे। पण्डित सरयूप्रसादकी सलाहसे उन्होँने भी मेरी चिकित्सा आरम्भ कर दी। मुझे खूब स्मरण है कि इस बार मैँने बहुत दिनोँतक मालवीयजीकी दवा की थी मगर किसी प्रकार उनका रोग दूर ही न होता था। मगर मदनमोहनका विश्वास मेरे ऊपर अटल था। उनके घरवाले उनसे नाराज़ होते थे। कहते थे—'शिवरामकी दवा मत करो। वे तुम्हारा बहुतसा रुपया ख़र्च कराते हैँ और तुमको ठगते हैँ।' उनको मदनमोहका उत्तर विलक्षण था। वे लोगोँसे यही कहते थे कि मेरे ही कुपथ्यसे मेरा रोग नहीँ छूट रहा है। शिवरामजीकी चिकित्सामेँ और उनकी आदमियतमेँ कोई कमी नहीँ है।

मगर घरवाले चिन्तित थे। उनकी चिन्ता भी अकारण न थी। वे मुझसे भी मिलते थे और सचिन्त होकर पूछते थे कि क्या कारण है कि मदन-मोहन आपकी दवामेँ इतने दिनोँसे हैँ मगर अभीतक आरोग्य नहीँ हुए। अवस्थामेँ परिवर्त्तनका भी कोई चिह्न उनमेँ नहीँ मिल रहा है। मैँ भी परेशान था। मेरी दवामेँ रोग दूर करनेकी शक्ति ज़रूर थी

मगर पथ्य-हीनको पथ्यसे रहनेके लिये विवश करनेकी ताक़त उसमेँ न थी । मैँने मालवीयजीके घरवालोँसे कहा कि इनकी बोलनेकी आदत बहुत चढ़ी-बढ़ी है। जबतक यह आदत न छूटेगी तबतक मुँहसे ख़ूनका जाना बन्द न होगा। मगर मदनमोहनको बोलनेका नशा था। चेष्टा करनेपर भी वे बोलना नहीँ छोड़ सकते थे।

मदनमोहनके बड़े भाई पण्डित लक्ष्मीनारायणको मेरी सलाह जँच गई। फिर क्या था, वे छड़ी लेकर मदनमोहनके साथ रहने लगे। एक दिन ऐसा हुआ कि मालवीयजीसे एक बड़े सम्मानित व्यक्ति मिले। उस अवसरपर मैँ भी मदनमोहनके पास उपस्थित था। उस प्रतिष्ठित व्यक्तिसे और मालवीयजीसे बातेँ होने लगीँ। प्रहरी पण्डित लक्ष्मीनारायण भी छड़ी लिए मौजूद थे। जब उन्होँने देखा कि बातचीतका ताँता अब पथ्यसे रहनेकी सीमाका उल्लङ्घन कर रहा है तब उन्होँने इस तरफ़ मदनमोहनका ध्यान आकर्षित किया। मदनमोहन तो लीन थे। उन्हेँ पथ्यापथ्यकी कोई परवाह न थी। लाचार होकर लक्ष्मीनारायणजीको कहना पड़ा—'बस भाई!' उस समय मदनमोहनको बहुत बुरा लगा। वे झुँझला गए। वे यह कहते हुए वहाँसे चल दिए—"हमेँ ऐसी दवाकी ज़रूरत नहीँ।" मगर पण्डित लक्ष्मीनारायण-पर उनकी इस झुँझलाहटका कुछ भी असर न पड़ा। उन्होँने छड़ी लेकर मदनमोहनके साथ रहना न छोड़ा।"

बातके धनी

मदनमोहन अपनी हठके धनी हैँ। जो एक बार मनको जँच गई उसका चाहे जितना विरोध हो, कितनी गालियाँ मिलें, सारा संसार ही क्योँ न रूठ जाय, पर मदनमोहन टस-से-मस होनेवाले नहीँ। एक बार जिन दिनोँ ये कौलेज्मेँ पढ़ते थे उन दिनोँ लौर्ड रिपन प्रयागमेँ आए। लौर्ड रिपन भारतके बड़े हितैषियोँमेँ समझे जाते थे किन्तु अंग्रेज़ लोग उन्हेँ बड़ी बुरी निगाहसे देखते थे। जब मदनमोहनको मालूम हुआ कि लौर्ड रिपन आ रहे हैँ तो उन्होँने उनका धूमधामसे स्वागत करनेका आयोजन किया। प्रिन्सिपल हैरिसन् यद्यपि बड़े नेक और सज्जन अंग्रेज़ थे किन्तु रिपनके स्वागतकी बात वे नहीँ सह सके। उन्होँने आज्ञा दे दी कि यह स्वागत न होगा। पर मदनमोहन तो डरनेवाले नहीँ थे, इन्होँने प्रिन्सिपलको तो ख़बर न होने दी और रातोरात स्वागत करने और जलूस निकालनेकी पूरी तैयारी कर ली। अगले दिन लौर्ड रिपन आए, बड़े गाजे-बाजे और धूमधामके साथ लौर्ड रिपनका शानदार जलूस निकला, उनका स्वागत किया और मानपत्र दिए गए। इनके विरोधी बेचारे अवाक् होकर मुँह ताकते रह गए। करते क्या। यह सभी जान गए थे कि इस सारी धूमधामकी तहमेँ मदनमोहनका उद्योग छिपा बैठा था।

कौलेज्-जीवन

सन् १८८१ ई० मेँ आपने म्योर सेण्ट्रल कौलेज्से ही एफ़्० ए० पास किया। सन् १८८३ ई० मेँ आप बी० ए० की परीक्षा देने आगरा गए। कुछ ऐसा संयोग हुआ कि आप उस साल असफल रहे। बहुधन्धी आदमीके साथ यह भी तो एक मुसीबत होती है कि वह यदि दूसरोँकी भलाई सोचनेमेँ लग जाता है तो उसे फिर अपनी उन्नतिकी चिन्ता नहीँ रहती, उसे दूसरोँकी चिन्तासे ही फ़ुरसत नहीँ मिलती। पर अगले वर्ष सन् १८८४ ई० मेँ मदनमोहनने कलकत्तेसे बी० ए० पास कर लिया और बी० ए० पास करनेके साथ ही स्वतन्त्र मदनमोहनको नून, तेल, लकड़ीकी फ़िक्र करनेका आदेश मिला। मदनमोहनकी बड़ी इच्छा थी कि एम्० ए० करेँ। एक दिन योँ ही 'हिन्दू समाज' की बैठकमेँ पण्डित मधुमङ्गल मिश्रजीके पितासे भेँट हुई और बातचीतमेँ यही तै हुआ कि संस्कृतमेँ एम्०ए० दिया जाय और उसके लिये सिद्धान्त मुक्तावली पढ़ेँ। बस, मदनमोहन उनके पास सप्ताहमेँ तीन दिन पढ़नेको जाने लगे। उनके पास वे अपनी पोशाकमेँ नहीँ जाते थे बल्कि ठेठ विद्यार्थीके ढङ्गसे जाते थे—धोतीपर एक दुपट्टा ओढ़े। उस समय मदनमोहन

लम्बी शिखा रखते थे। आजकलके कौलेज्के नौजवानोँके समान उन्होँने हिन्दुत्त्वके चिह्नको बहा नहीँ दिया था बल्कि बड़े गौरवके साथ उसकी रक्षा और उसका निर्वाह किया।

गृहस्थीका भार

घरकी दशा ठीक नहीँ थी। अब अधिक दिनोँतक इन्हेँ ख़र्च नहीँ मिल सकता था और इसी लिये न चाहते हुए भी इन्हेँ अपने विद्या-मन्दिरसे बिदा लेनी पड़ी। जो व्यक्ति ऊपर चढ़ा चला जा रहा हो और शिखरके बिलकुल पास पहुँचकर उसे उतर आनेका आदेश मिले, उसे कितना दुःख होता होगा यह तो कहनेकी बात नहीँ है। पर लाचारी थी। पिताजी कहाँतक सहायता करते! उन्होँने इतना भी कर दिया, क्या कम था? फिर सारे परिवारकी आँख मदनमोहनपर लगी थीँ। पढ़-लिख गया है, कुछ कमायगा। ऐसे समयमेँ मदनमोहनने यही उचित समझा कि पढ़ना छोड़कर कुछ काम करेँ और इन्होँने दो-तीन महीने एम० ए० कक्षामेँ पढ़कर भी कौलेज् छोड़ देनेमेँ ही कल्याण समझा।

झक्कड़सिंह

कौलेज्के दिन सचमुच इनके मस्तीके दिन थे। न ऊधोका लेना न माधोका देना। जो मौजमेँ आया वह निश्चिन्त होकर किया, कभी किसीके आगे भयसे सिर नहीँ झुकाया। बड़ोँके आगे अदब और श्रद्धासे ज़रूर झुके, पर जो इनसे कड़ा पड़ा उसके आगे ताल ठोँककर खड़े भी हो गए। अपने कौलेज्के दिनोँमेँ इन्होँने 'जेण्टिलमैन' नामका एक प्रहसन लिखा था उसमेँ इन्होँने दो कविताएँ लिखी थीँ। एकमेँ तो इन्होँने झक्कड़सिंहके रूपमेँ अपना चित्रण किया है और दूसरेमेँ इन्होँने उस समयके पढ़े-लिखे जैण्टिलमैनोँका ख़ाका उड़ाया है। दोनोँ कविताएँ क्रमसे नीचे दी जाती हैँ।

अपने सम्बन्धमेँ

गरे जूहीके हैँ गजरे पड़ा रङ्गी दुपट्टा तन।
भला क्या पूछिए धोती तो ढाकेसे मँगाते हैँ॥
कभी हम वारनिश पहनेँ कभी पञ्जाबका जोड़ा।
हमेशा पास डण्डा है ये झक्कड़सिंह गाते हैँ॥
न ऊधोसे हमेँ लेना न माधोका हमेँ देना।
करेँ पैदा जो, खाते हैँ व दुखियोँको खिलाते हैँ॥
नहीं डिप्टी बना चाहेँ न चाहेँ हम तसिल्दारी।
पड़े अलमस्त रहते हैँ युँहीं दिनको बिताते हैँ॥
न देखेँ हम तरफ़ उनकी जो हमसे नेक मुँह फेरेँ।
जो दिलसे हमसे मिलते हैँ झुक उनको देख जाते हैँ॥
नहीं रहती फ़िकर हमको कि लावेँ तीर औ लकड़ी।
मिले तो हलवे छन जावेँ नहीं भूरी उड़ाते हैँ॥
सुनो यारो जो सुख चाहो तो पचड़ेसे गृहस्थीके।
छुटो फक्कड़पना ले लो यही हम तो सिखाते हैँ॥
हमेँ मत भूलना यारो बसे हम पास 'मनमोहन'।
हुई है देर जाते हैँ तुम्हारा शुभ मनाते हैँ॥

जेण्टिलमैनोँकी दशा

अहले यूरप पूरा जेण्टिलमैन कहलाता है हम।
डोण्ट से बाबू टु मी मिस्टर कहा जाता है हम॥
गङ्गा जाना पूजा जप-तप छोड़ो ये पाखण्ड सब।
घूरनेमेँ मुँहको गिरजाघरमेँ नित जाता है हम॥
भाँग गाँजा चरस चण्डू घरमेँ छिप-छिप पीते थे।
अब तो बेखटके हमेशा 'वाइन' ढरकाता है हम॥
हिन्दुओँका खाना-पीना हमको कुछ भाता नहीं।
बीफ चमचेसे कटे होटलमेँ जा खाता है हम॥
बाबू औ चाचाका कहना लाइक हम करता नहीं।
पापा कहना अपने बच्चोँको भी सिखलाता है हम॥
कोट और पतलून पहने हैट एक सिरपर धरे।
ईविनिङ्ग मेँ वाक करने पार्कको जाता है हम॥

इस प्रकार विद्या प्राप्त करके, बड़े-बड़े महापुरुषोँका आशीर्वाद पाकर, सब गुणोँसे अलङ्कृत होकर, यह स्नातक विद्यामन्दिरको नमस्कार करके सारे राष्ट्र, सम्पूर्ण जाति और विस्तृत समाजकी सेवा करनेकी दीक्षा लेकर मैदानमेँ आ कूदा।

मैदानमेँ

अध्यापक मालवीयजी

जब मदनमोहनके परिवारकी दरिद्रता उनकी पढ़ाईका द्वार छेँककर खड़ी हो गई तो उन्हेँ अपनी इच्छा और अपने गुरु पण्डित आदित्यरामजीके अनुरोधका बलिदान करके उसका लोहा मानना पड़ा और वे अपने पूज्य पिताजी और माताजीके बुढ़ापेकी लाठी बननेकी चिन्तामेँ लगे। मदनमोहनके गुण किसीसे छिपे नहीँ थे। छोटे-बड़े उन्हेँ जानते थे। इधर कौलेज् छूटा उधर गवर्नमेण्ट हाइ स्कूलमेँ एक अध्यापककी माँग हुई। मदनमोहन बी० ए० अपने पुराने स्कूलमेँ पचास रुपये महीनेपर अध्यापक हो गए। अब इनके परिवारके दिन फिरे। इन्होँने 'मल्लई' नामको संस्कृत करके उसे 'मालवीय' बना दिया और अब ये मालवीय कहलाने लगे। हम भी अब आगे इन्हेँ मालवीयजी कहकर पुकारेँगे। अब ये पण्डित मदनमोहन मालवीय बी०ए० हो गए। इनके मालवीय नामका प्रचार इतना हुआ कि इनके परिवार और कुटुम्बवालोँने तो इस नामको अपनाया ही, साथ ही अन्य श्रीगौड़ ब्राह्मण भी अपनेको मालवीय लिखने लगे। यह रोग फिर तो ऐसा बढ़ा कि मालवासे ज़रा सा भी सम्बन्ध रखनेवाले लोग अपने नामके पीछे मालवीय लिखने लगे। महापुरुषोँके नाममेँ भी तो जादू होता है।

गवर्नमेण्ट हाईस्कूल प्रयागमेँ अधयपक पण्डित मदनमोहन मालवीयजी

मालवीयजी स्कूलमेँ पढ़ाने लगे। लोगोँका ऐसा विश्वास है कि विद्यादान सब दानोँसे बढ़कर है और अध्यापकके समान कोई दूसरा भला काम नहीँ है, पर साथ ही यह आवश्यक है कि अध्यापकमेँ कुछ गुण भी होने चाहिएँ, वे हैँ सच्चरित्रता, मृदुभाषिता और अपने विषयका ज्ञान। जिस अध्यापकमेँ ये तीन गुण न होँ वह अध्यापक कैसा। अध्यापक स्वयं एक विद्यालय होता है। उसे देखकर ही विद्यार्थी यदि प्रभावित न होँ, और उसे अपना आदर्श न मान लेँ तो फिर

अध्यापक क्या ख़ाक हुआ। मालवीयजी इन तीनोँ बातोँमेँ धनी थे। थोड़े ही दिनोँमेँ विद्यार्थी इनसे हिलमिल गए। जिन्होँने इनके चरणोँमेँ बैठकर पढ़ा है उनका कहना है कि ऐसा योग्य अध्यापक तो देखनेमेँ नहीँ आया। अध्यापन-कुशलताकी एक घटना हमेँ याद है। एक बार वे घूमते-घामते काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेज्मेँ आए। वहाँपर कुछ शिक्षक-छात्र पढ़ा रहे थे। उन्हेँ पढ़ाते देखकर अचानक उन्हेँ प्रयागका गवर्नमेण्ट हाइस्कूल याद आ गया। उनके हृदयके भीतर बैठा हुआ अध्यापक पुरानी याद लेकर जाग उठा। उन्होँने तत्काल वहाँ काम करनेवाले अपढ़ मिस्त्रियोँ और मज़दूरोँको एकत्र किया और कहा कि देखो हम तुम्हेँ लिखना सिखाते हैँ। और उन्होँने थोड़ी ही देरमेँ इस ख़ूबीसे उन्हेँ समझा-समझाकर 'राम' लिखना बताया कि अक्षरोँका ज्ञान हुए बिना भी, अ आ इ ई और क ख ग बिना सीखे भी वे लोग बिना परिश्रमके 'राम' लिखने लगे। उनका यह पढ़ाना देखकर टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेज्के अध्यापक भी दङ्ग रह गए।

अपने वेशसे, अपनी वाणीसे और अपने व्यवहारसे वे आदर्श अध्यापक रहे हैँ और अब भी जब कभी वे विद्यार्थियोँको उपदेश देने बैठते हैँ, या कभी एकादशी-कथा कहनी प्रारम्भ करते हैँ उस समय उनके कण्ठसे केवल कथाकार व्यास ही नहीँ बोलता है बल्कि व्यासकी अन्तरात्मामेँ बैठा हुआ अध्यापक भी संयत भावसे बोलता सुना जाता है।

उसी गवर्नमेण्ट हाइस्कूलमेँ इनके चचेरे भाई पण्डित जयगोविन्द मालवीय भी संस्कृत पण्डित थे। वे कोरे नाम मात्रके पण्डित न थे, बल्कि व्याकरणके बड़े विद्वान् थे। मालवीयजीका और उनका बड़ा अच्छा साथ रहता। उस स्कूलमेँ एक बात मालवीयजीको सदा खटकती रहती थी और वह थी धर्म-शिक्षाका अभाव। जी दुखनेकी सबसे बड़ी बात तो यह थी कि इसाई और मुसलमानोँके लड़के तो अपने धर्मोँ, धर्म-गुरुओँ, धर्म-ग्रन्थोँ तथा धार्मिक आख्यानोँको बहुत कुछ जानते थे, पर हिन्दू विद्यार्थी अपने धर्मका क ख ग भी नहीँ जानते थे और न जाननेकी चेष्टा ही करते थे। वे ऐसे निकम्मे और निर्जीव थे कि मानोँ उनके न हृदय है न आत्मा। धर्म एक ढोँग मात्र समझा जाता था और जो धर्मकी बातेँ करता था वह ढोँगी समझा जाता था। हिन्दू बालकोँकी यह नास्तिकता और उदासीनता मालवीयजीको बहुत अखरी। उन्हेँ यह भी देखकर बड़ा दुःख हुआ करता था कि हिन्दू बालक अपने धर्मपर, अपने देवी-देवताओँपर, अपने आचार-विचारपर और अपने समाजपर दूसरोँके आक्षेप सुनकर भी अनसुना कर देते थे जैसे वह निस्सार हो, तत्त्वहीन हो। पर मालवीयजी कर क्या सकते थे। इस बातका उन्हेँ सदा ही खेद रहा।

मालवीयजीकी पगड़ी, दुपट्टे और अङ्गेकी पोशाकमेँ पूरे पैरके सफ़ेद मोजे अब और बढ़ गए। मालवीयजीके पढ़ानेके ढङ्ग और सबके प्रति इनके मधुर व्यवहारको देखकर दो वर्षमेँ ही इनका वेतन पचहत्तर रुपए हो गया। इनके विद्यार्थियोँमेँ प्रयागके प्रसिद्ध नागरिक डाक्टर सतीशचन्द्र बनर्जी भी रह चुके थे। स्कूलमेँ अध्यापन करते समयकी एक घटना कभी नहीँ भूल सकती। एक बार लड़कोँकी परीक्षा हो रही थी। एक मुसलमान विद्यार्थी एक दूसरे विद्यार्थीकी नक़ल कर रहा था। मालवीयजीने ताड़ लिया और झट उसे कमरेसे बाहर कर दिया। वह लड़का एक नम्बरका शैतान था। कहने लगा कि कभी समझ लेँगे। पर मालवीयजी इस गीदड़ भभकीसे डरनेवाले जीव नहीँ थे। सबने बार-बार मालवीयजीको समझाया कि इस बदमाशके मुँह न लगिए, न जाने क्या कर बैठे। आप पैदल न जाया करेँ, इक्केपर जायँ। पर मालवीयजीने जवाब दिया कि हमारे क्या हाथ नहीँ हैँ। हम पैदल ही जायँगे। ये बराबर पैदल ही जाते रहे। मालवीयजीको

छोड़नेकी तो उसे हिम्मत न हुई पर उस दूसरे लड़केको उसने पकड़ ही लिया और दिनभर बैठाए रक्खा। बेचारेको कुछ लोगोंकी मददसे छुटकारा मिला। पर मालवीयजीके व्यक्तित्वका उस दुष्ट लड़केपर इतना असर हुआ कि वह आकर इनके पैरोंमें गिरा और माफ़ी माँगी।

भारती-भवन

मालवीयजी कोरे अध्यापक नहीं थे। पढ़ानेके बाद जो कुछ समय मिलता उसे समाज-सेवा और जन-सेवामें लगाते थे। वह ज़माना भी कुछ दूसरा ही था। सरकारी नौकरी करते हुए भी वे कांग्रेसमें शामिल हुए। सन् १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी स्थापना हुई थी। मालवीयजी अपने निर्भीक गुरु पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यके साथ सन् १८८६ ई० में होनेवाली कलकत्तेकी दूसरी कांग्रेसकी बैठकमें पहुँचे। यहींसे मालवीयजीकी जीवन-धारा बदल गई। किस प्रकार इन्होंने स्कूल छोड़ा, सम्पादक बने और वकालत की, यह भी एक ऐतिहासिक घटना है। इसका ज़िक्र हम आगे करेंगे।

लालडिग्गी मुहल्लेमें लाला गयाप्रसादके पुत्र लाला ब्रजमोहनलाल रहते थे। वे हिन्दीके बड़े प्रेमी थे। बचपनमें उन्हें हिन्दी पुस्तकोंसे प्रेम हो गया था, यहाँतक कि कई सौ हिन्दी पुस्तकें जुटा ली थीं। स्वर्गवासी विद्वत्-शिरोमणि पण्डित जयगोविन्द मालवीय और रायबहादुर बाबू लालबिहारी बी० ए० की प्रेरणा और सहायतासे वही पुस्तकालय, जो पहले एक व्यक्तिका था, सर्वसाधारणके कामका हो गया और १५ दिसम्बर, सन् १८८९ ई० को भारती-भवन पुस्तकालयकी स्थापना हो गई। आरम्भमें पण्डित जयगोविन्दजीने अपनी बहुतसी अमूल्य हस्तलिखित पुस्तकें भारती-भवनको सौंप दीं। इसी तरह बहुतसे महाशयोंने भी अपनी-अपनी कुछ पुस्तकें दे दीं और वह एक छोटासा सार्वजनिक पुस्तकालय बन गया—फिर पण्डित जयगोविन्द मालवीय, रायबहादुर बाबू लालबिहारी, पण्डित बालकृष्ण भट्ट, माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय, पण्डित श्रीकृष्ण जोशी, डाक्टर जयकृष्ण व्यास, बाबू कालिकाप्रसाद, पण्डित रामनाथ मिश्र और पण्डित देवकीनन्दन तिवारीके उद्योगसे पुस्तकालय निरन्तर उन्नति करता गया। लाला बृजमोहनलालजीके कोई सन्तान न थी। उनकी इच्छा भारती-भवनको अच्छे रूपमें चलानेकी ही रही। उनकी यही इच्छा थी कि यह अजर-अमर हो जाय। अन्तिम बीमारीकी अवस्थामें भी उनको यही चिन्ता रहती थी कि इसके चिरस्थायी होनेका अच्छा प्रबन्ध हो जावे, इसी कारण बीमारीकी दशामें भी अपने परम मित्र बाबू लालबिहारीजीको भारती-भवनके लिये दान-पत्र लिखवाने तथा उसकी रजिस्टरी करा देनेके लिये उठते-बैठते टोका करते थे। अपनी आरोग्यतासे निराश होकर उन्होंने रायबहादुर लाला रामचरणदास, रईस प्रयागको बुलाकर स्वयं यह इच्छा प्रकट की कि वह भारती-भवनके लिये भवन बनवानेका भार ले लें। सुयोग्य रायबहादुर लाला रामचरणदासके इस भारको स्वीकार कर लेनेपर आपको इतना आनन्द हुआ था कि आपने आनन्दसे अश्रुपात किया। जब उन्होंने बाबू लालबिहारीसे सुन लिया कि भारती-भवनका दान-पत्र लिख गया और अब उसके चिरस्थायी होनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं है तब आपको बड़ी शान्ति हुई। लाला ब्रजमोहनलालजीके जीवनीके अन्तिम अङ्कमें यह भी बात सदा स्मरणीय रहेगी कि जबतक भारती-भवनके नए स्थानकी नींव नहीं पड़ी, वे बराबर इसके लिये व्यग्र थे, किन्तु जैसे ही उन्होंने यह सुना कि रायबहादुर लाला रामचरणदासजीने नींव डाल दी त्यों ही मानो इनके जीवनका उद्देश पूरा हो गया और वे तुरन्त ही बेसुध हो गए और दूसरे दिन एकादशीको शरीर छोड़ दिया।

लाला ब्रजमोहनलालजीने अपने अन्तिम समयमें जो दान-पत्र भारती-भवनके लिये लिखा उसके द्वारा भारती-भवनका कार्य्य जिन सज्जनोंको सौंपा गया उनमें

पण्डित मदनमोहन मालवीय, बी० ए०, एल्एल्० बी०, वकील हाइकोर्ट प्रयाग भी थे। इस पुस्तकालयको उन्नत करनेमें और इसे स्थापित करनेमें मालवीयजीका कुछ कम हाथ न था। अबतो उस पुस्तकालयके कारण वह मुहल्ला ही भारती-भवन कहलाने लगा है। भारती-भवनमें इस समय लगभग बारह हज़ार पुस्तकें हैं। मालवीयजीके उद्योगसे इसे तीन सौ पचहत्तर रुपये साल डिस्ट्रिक्ट बोर्डसे और पाँच सौ रुपये साल गवर्नमेण्टसे सहायता मिलती है। भारती-भवनका नाम मालवीयजीसे ऐसा जुड़ गया है कि सब लोगोंका विश्वास है कि भारती-भवन पुस्तकालय मालवीयजीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है।

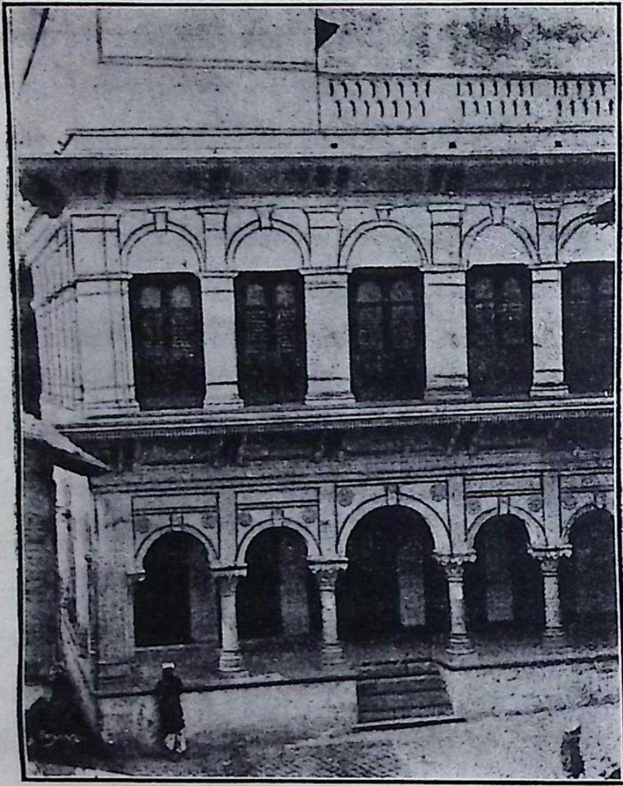

भारती-भवन पुस्तकालय, प्रयाग।

मैकडोनेल युनिवर्सिटी हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस

म्योर सेण्ट्रल कौलेज्ने तो विद्यार्थियोंको आकर्षित किया ही था, थोड़े दिनों बाद सन् १८८७ ई० में जब इलाहाबाद विश्वविद्यालयकी नींव पड़ी तब तो और भी विद्यार्थी प्रयाग आने लगे। यह युक्तप्रान्तका सबसे पहला विश्वविद्यालय था इसलिये चारों ओरसे विद्यार्थियोंके झुण्ड-के-झुण्ड आने लगे। पर छात्रालय काफ़ी नहीं थे, इसलिये विद्यार्थियोंको बड़ी असुविधा होने लगी। ख़र्च भी अधिक होता था और रहने, खाने-पीने और पढ़नेमें भी अड़चनें पड़ने लगीं। मुसलमान और ईसाई विद्यार्थियोंकी संख्या भी कम थी और उनके रहन-सहन हिन्दुओंसे भिन्न होनेके कारण उन्हें असुविधाएँ भी उतनी न होती थीं। हिन्दू विद्यार्थियोंका यह कष्ट मालवीयजीने भली प्रकार समझ लिया, क्योंकि वे कष्टका अनुभव करते थे और दूसरेकी व्यथाका अन्दाज़ा लगा सकते थे। उन्होंने झट यह तै कर लिया कि हिन्दू विद्यार्थियोंके रहनेके लिये एक आदर्श छात्रालय बनवाया जाय जिसमें प्रयागमें पढ़नेके लिये आनेवाले हिन्दू विद्यार्थियोंके रहनेका सुपास हो। कर्मण्य पुरुषको तो विचार करने भरकी देर होती है। गुप्त शक्तियाँ स्वयं उसका हाथ बटानेको व्याकुल रहा करती हैं। मालवीयजीके सङ्कल्पका सारे प्रान्तने जी खोलकर स्वागत किया। उस समय म्योर सेन्ट्रल कौलेज् ही प्रथम श्रेणीका विद्यालय था। सभी लोग अपने लड़कोंको वहीं भेजना चाहते थे और सभीके मनमें छात्रालयका अभाव खटकता था। फिर इस उत्साहके पीछे गवर्नर साहबकी प्रेरणाका इशारा पाकर बहुत लोगोंने अपनी थैलियाँ खोल दीं। जिसके मनमें दया, उदारता, करुणा, परोपकार आदि सद्भावोंका सर्वथा अभाव होता है वे भी अफ़सरोंके एक इशारेपर सर्वगुण-सम्पन्न मनुष्य बन जाते हैं। यह भाव इस जागृतिके युगमें भी अपना असर बनाए हुए है। युक्तप्रान्त भरमें घूम-घूमकर उन्होंने रुपया एकत्र किया। किस-किस तरह उन्हें रुपया मिला, उसकी एक ही घटना देना काफ़ी होगा। प्रयागमें जब हिन्दू छात्रावास बनना जारी था, उस समय मालवीयजी रायबहादुर लाला साँवलदासके

पास गए जब वे कार्य्यालय जा रहे थे और उनसे एक हज़ार रुपया देनेको कहा जिससे उनके नामसे एक कमरा बन जाय। मालवीयजीकी मधुर वाणीसे वे इतने प्रभावित हुए कि बिना सोचे विचारे उन्होंने एक हज़ारका चैक उन्हें दे दिया। पीछेसे उन्होंने सोचा कि इसपर कुछ विचार करना चाहिए था और शीघ्रता नहीं करनी चाहिए थी किन्तु पण्डितजीकी प्रभावशाली प्रार्थनासे वह उनके वशमें हो गए थे।

सन् १९०३ ई० में युक्तप्रान्तके उदारचेता गवर्नर सर एण्टनी मैकडोनल्के नामपर दो सौ पचास हिन्दू विद्यार्थियोंके रहनेके योग्य एक विशाल भवन बन गया जिसका नाम पड़ा 'मैकडोनल् युनिवर्सिटी हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस'। यह भवन प्रयागके दर्शनीय भवनोंमेंसे एक है। मैकडोनल् साहबका जो यश फैला वह तो था ही, बहुत दिनोंतक वह छात्रालय 'मालवीयजीका बोर्डिङ्ग हाउस' कहलाता रहा। कम-से-कम उस बोर्डिङ्ग हाउसके साथ-साथ जिसे मालवीयजीका परिश्रम और उनकी तत्परता स्मरण नहीं हो आती उसे यदि लोग कृतघ्न कहें तो कुछ बुरा नहीं।

मिण्टो पार्क

पहले अध्यायमें ही हम लौर्ड कैनिङ्गके शानदार दरबारका उल्लेख कर चुके हैं। उस दरबारको हुए पचास वसन्त बीत गए किन्तु महारानी विक्टोरियाकी उस उदार घोषणाको पुनर्जीवित करने और उसकी याद दिलानेके लिये भारतने कुछ भी न किया। सन् १९११ ई० में जब लौर्ड मिण्टो यहाँसे विदा लेनेवाले थे उस समय मालवीयजीको यह सूझा कि जिस स्थानपर लौर्ड कैनिङ्गका दरबार हुआ था उसी स्थानपर एक घोषणा-स्तम्भ (प्रोक्लेमेशन पिलर) स्थापित किया जाय और उसके चारों ओर एक सुघर वाटिका लगाई जाय जिसके साथ लौर्ड मिण्टोके नामका सम्बन्ध हो। घरमें सूत न कपास, मालवीयजीने झट वाइसरायको जमुना किनारे मिण्टो पार्कके शिलान्यासके लिये निमन्त्रित कर दिया। लौर्ड मिण्टोने स्वीकार करके एक दिन भी नियत कर दिया। गोखलेजीको यह बात मालूम हुई तो वे बड़े चिन्तित हुए। वे जानते थे कि अभी रुपया एकत्र नहीं हुआ है। उन दिनों सुप्रीम कौन्सिलकी बैठक हो रही थी और मालवीयजी भी वहीं थे। गोखलेजी उनके पास गए और बोले, "पण्डितजी! यह आपने क्या किया? आपके पल्ले एक पैसा तो है नहीं और आपने वाइसरायसे पार्कका शिलान्यास कराने की तिथि भी तै कर ली। बहुत थोड़ा समय रह गया है, कृपाकर कौन्सिलकी बैठक छोड़ दीजिए और

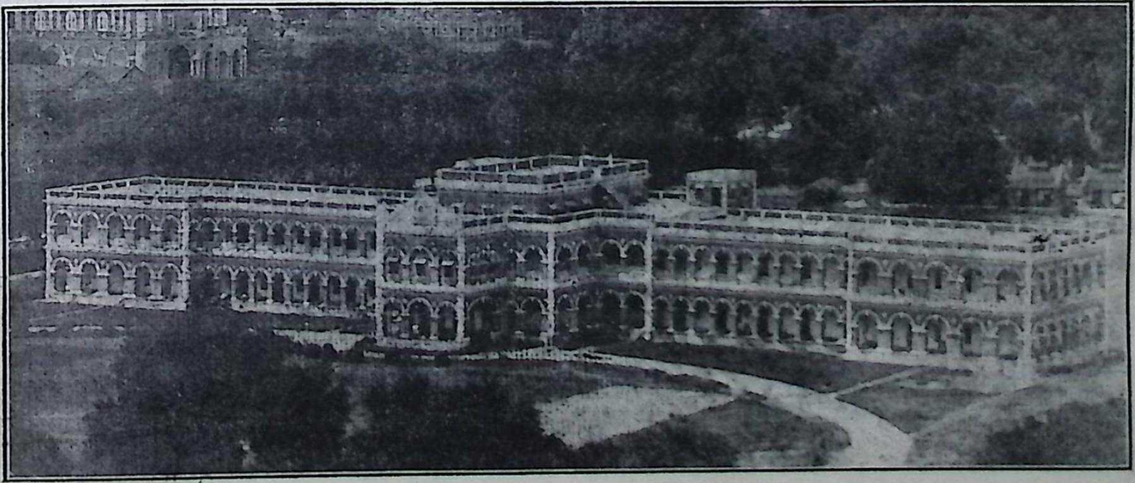

युनिवर्सिटी मैकडोनल् हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस

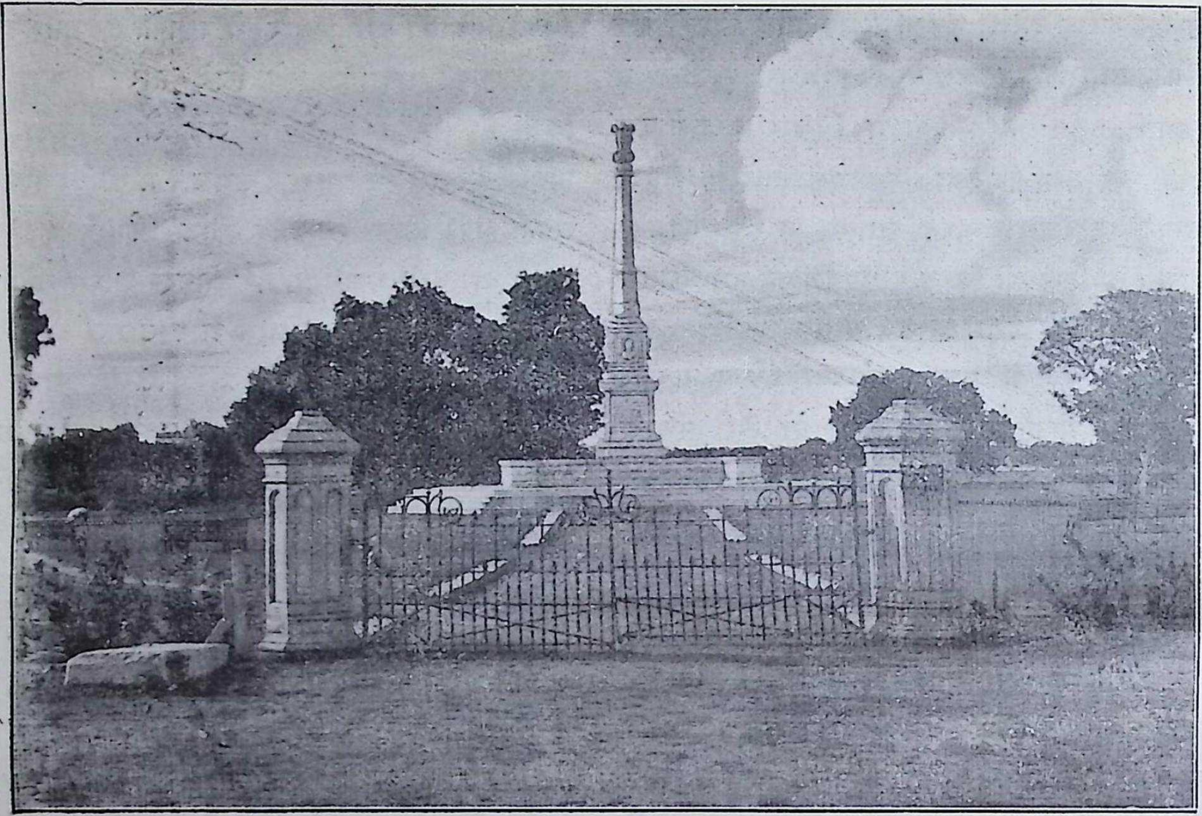

प्रयागमें ९ नवम्बर सन् १९१८ ई० को स्थापित मिण्टो पार्क

जाकर रुपया इकट्ठा कीजिए। यदि समयसे रुपया न मिला और आपकी बेइज़्ज़ती हुई तो हम लोगोंको भी बेइज़्ज़ती होगी।" सचमुच उन्होंने बड़ी उत्सुकतासे कहा था। पर मालवीयजी मुस्कराए। उनकी मुस्कराहट जिन्होंने देखी है वे तो उसकी भली प्रकार कल्पना कर सकते हैं। उन्होंने गोखलेजीसे कहा, "आपको इस चिन्ताके लिये धन्यवाद। घबराइए नहीं, सब रुपये आ जाते हैं। मुझे इसके लिये कहीं जाना नहीं होगा। मेरे पत्र ही रुपया ले आवेंगे।" मालवीयजी सचमुच कहीं नहीं गए। उनकी चिट्ठियाँ ही एक लाख बत्तीस हज़ार आठ सौ सत्तानबे रुपया ले आईं। गङ्गा-यमुनाके पवित्र सङ्गमपर ९ नवम्बर सन् १९१० ई० को बड़ा भारी महोत्सव हुआ। वह ज़माना ज़रा टेढ़ा था। वाइसराय लोग अपनी जान हथेलीपर लिए चलते थे। न जाने कब क्या हो जाय। इसी लिये लौर्ड मिण्टोके आनेके समयकी सूचना न दी गई और वे चुपचाप आए जैसे आषाढ़का पहला बादल आता है—अचानक। चारों ओर बड़ा पहरा था। मिण्टो पार्कके अहातेमें आने जानेकी बड़ी रोक-टोक थी पर मालवीयजीने सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और सबके लिए द्वार खोल दिया। प्रातःकाल ११ बजे सदलबल लौर्ड मिण्टो और लेडी मिण्टो पधारे। क़िलेकी सेनाने तोपोंकी सलामी दी। औल इण्डिया मिण्टो मेमोरियल कमिटीके संयुक्त मन्त्री पण्डित मोतीलाल नेहरूने स्वागतपत्र पढ़ा जिसका लौर्ड मिण्टोने उत्तर दिया और उक्त पार्कका शिलान्यास किया। एक ताँबेके पात्रमें अभ्युदय, लीडर, पायोनियर तथा अन्य पत्रोंकी प्रतियाँ तथा उक्त घोषणा-स्तम्भका विवरण-पत्र रखकर नींवमें रख दिया गया। इसके बाद वाइसराय अपने दलबल सहित प्रदर्शिनी और वेलकम क्लबको देखने गए। आकाश अबतक तो साफ़ था। धूप निकली हुई थी। पर अचानक घटा

घिर आई और बात-की-बातमेँ ज़ोरोँकी वर्षा होने लगी जो वाइसरायके बिदा होनेतक होती रही। पैँतालीस मिनट घूमनेके बाद ये लोग द्वारपर पहुँचे जहाँ मालवीयजीसे कुछ देरतक बात करके और हाथ मिलाकर लौर्ड मिण्टो बनारसके लिये रवाना हो गए। धूमधामसे उत्सव समाप्त हो गया। समयपर रुपये भी आ गए, मालवीयजीकी भी बेइज़्ज़ती न होने पाई और गोखलेजीकी इज़्ज़त भी बच गई। जिस जगह खड़े होकर बड़े-बड़े वीर आगेका मार्ग नहीँ खोज पाते उसी जगह खड़े होकर आशाकी एक बड़ी हल्की किरणके सहारे मालवीयजी आगे बढ़ते चले जाते हैँ। यही आशा उनके सफल-जीवनकी कुञ्जी है। पर जैसे बहुतसे ताले कुञ्जी मिल जानेपर भी नहीँ खुल पाते उसी प्रकार जान पड़ता है कि इस कुञ्जीके प्रयोग करनेका गुर उन्हीँको आता है। देखेँ यह गुर वे अपने किस चेलेको दे जाते हैँ।

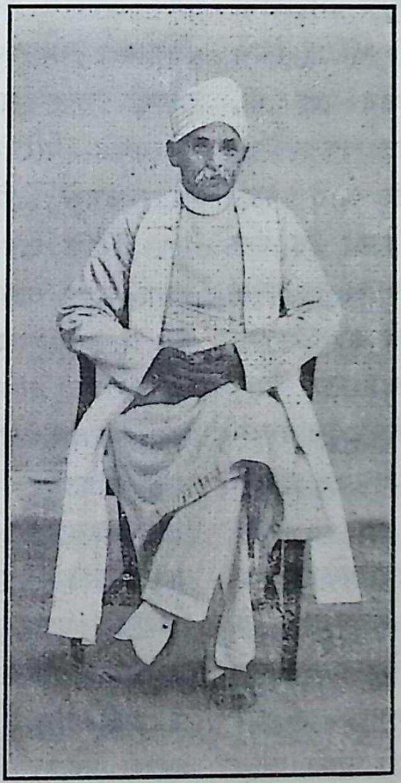

अख़बारी दुनियामें

सन् १८८६ ई० की राष्ट्रीय महासभाने मालवीयजीको सारे भारतवर्षसे परिचय करा दिया। राष्ट्रीय महासभाके मञ्चपर पहली बार खड़े होते ही उन्होंने सारे देशको अपनालिया। मालवीयजी कभी-कभी कहा भी करते हैं कि यही राष्ट्रीय महासभा मेरी सारी सफलताकी पहली सीढ़ी थी। किस मन्त्रसे इन्होंने सबके हृदयपर विजय पाई थी, सबके नेत्रोंको अपनी ओर आकर्षित किया था और सबके प्रेम-पात्र बने थे यह तो आगे कहा जायगा पर इतना ही कहना बहुत होगा कि उस राष्ट्रीय महासभामें उपस्थित सभी नेताओंने समझ लिया कि प्रयागका यह ब्राह्मण मामूली आदमी नहीं है। वहाँ बैठे हुए कई महापुरुषोंने प्रगट और मनमें यह भविष्यवाणी की थी कि निकट भविष्यमें सारा देश मिलकर अपनी रास इस जवानके हाथमें सौंप देगा।

कालाकाँकरके स्वर्गीय राजा रामपालसिंह उन्हीं दिनों विलायतसे योरोपियन महिलासे विवाह करके लौटे थे। उनके खानपान और उनके रहन-सहनके ढङ्गको देखकर तो कोई भी यह विश्वास नहीं कर सकता था कि उनके विलायती कोटके नीचे उदार हृदय, उनके अंग्रेज़ी टोपके नीचे विचारशील मस्तिष्क और उनकी शराबकी प्यालीमें देशभक्तिका नशा छिपा हुआ है। पर जब वे किसी सभाके सभापतिका आसन ग्रहण करनेके लिये बुलाए जाते तो वे अपना विलायती ठाठ बदल देते थे और चौगोशिया टोपी, चपकन और पाजामा पहनकर जाते थे। राष्ट्रीय महासभाके ज़ोरदार नेताओंमें वे भी एक थे और वहाँके मञ्चपर वे शेरकी तरह दहाड़ते थे। पूर्व और पश्चिम दोनों राजा साहबमें मिलकर रहते थे। राजा साहब मख़मली गद्दोंपर नींद लेनेवाले कोरे राजा साहब नहीं थे। उन्होंने विलायत तो देखा ही था पर हिन्दुस्थानको भी अच्छी तरह पहचाना था। टूटी हुई मड़ैयामें किसानके परिवारकी भूख और ग़रीब मज़दूरके आँसू उनसे छिपे न थे। साथ ही वे यह भी समझ गए थे कि अपनी बोलचालकी भाषा मातृभाषाको बिना ऊपर उठाए दीन भारत गूँगा रह जायगा, वह अपनी व्यथा कह न पावेगा। इसीलिये उन्होंने 'हिन्दुस्थान' नामका एक साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया। वे उसे दैनिक बनाना चाहते थे पर उन्हें किसी ऐसे आदमीकी तलाश थी जो 'हिन्दुस्थान' को सँभाल सके। कलकत्तेमें होनेवाली दूसरी राष्ट्रीय महासभाके मञ्चपर मीठे, पर प्रभावशाली शब्दोंकी अटूट धारा बहाता हुआ एक ब्राह्मण दिखाई दिया जिसके तेजस्वी मुखसे और धौले चिट्टे कपड़ोंसे सचाई, निडरपन, उत्साह और योग्यताका प्रकाश निरन्तर बरस रहा था। सन् १८८४ ई० के मध्य हिन्दू-समाजके जल्सेमें धृष्टता करनेवाले जिस लौंडेसे राजा रामपालसिंह बेतरह चिढ़ गए थे उसे आज उन्होंने परख लिया। जिसे वह काँचका टुकड़ा समझे हुए थे वह हीरा निकला। जौहरी भला हाथमें आया हीरा क्यों छोड़ने लगा। राजा साहबने मालवीयजीसे कहा कि अपनी साठ रुपयेकी

नौकरी छोड़कर 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन करो, देशकी सेवा करो और वकालत पढ़ो। मैं आपको दो सौ रुपया मासिक दिया करूँगा।

मालवीयजी दुविधामें पड़ गए। देशसेवा करनेकी तो उन्हें धुन थी सही पर उन्हें 'हिन्दुस्थान' का सम्पादकत्व ग्रहण करनेसे पहले बहुतसी बातें सोचनी पड़ीं। वे कट्टर ब्राह्मण थे, किसीका छुआ भोजन न करते थे। पूजा-पाठ, नेम-धरमके बड़े पक्के थे। उधर राजा साहबको खान-पानका कुछ विचार न था, सबके साथ वे सब कुछ खा पी सकते थे। मालवीयजीका पञ्चपात्र और राजा साहबका प्याला एक साथ भला कैसे रह सकते थे। मालवीयजी वकालत पेशेको भी सौतेली माँकी आँखोंसे देखते थे। बहुत कुछ सोच-विचार करनेके बाद मालवीयजीने यह शर्त्त लगाई कि 'मैं अंग्रेज़ी और हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन इस शर्त्तपर सकारता हूँ कि जिस समय आपने मद्य पी हो उस समय न मुझसे बोलें और न मुझे अपने पास बुलावें।' आज कितने ऐसे निडर और आत्म-प्रतिष्ठावाले लोग होंगे जो अपने सहायक और पालकसे इस शर्त्तपर सहायता लें। मालवीयजी दीन ब्राह्मणके पुत्र भले ही थे पर उन्होंने आत्माको बेचना नहीं सीखा था।

राजा साहबके लिये यह बड़ी कठोर तपस्या थी, पर वे मालवीयजीको बहुत मानते थे और उनकी यही इच्छा थी कि मालवीयजी जैसे योग्य पुरुषके लिये स्कूल एक निकम्मी जगह है। उन्होंने शर्त्त मान ली और सन् १८८७ ई० के जुलाई मासमें न चाहते हुए भी स्कूलसे पद-त्याग कर दिया और प्रयाग छोड़कर वहाँसे तीस मील दूर कालाकाँकरमें रहकर हिन्दीके सर्वप्रथम दैनिक 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन प्रारम्भ कर दिया। जो स्कूलमें तीस-बत्तीस विद्यार्थियोंकी कक्षा पढ़ाता था, अब वह बहुत बड़ी जनसंख्याकी कक्षाको पढ़ाने-सिखानेवाला सम्पादक बन गया।

मालवीयजीकी लेखनीसे मँजकर 'हिन्दुस्थान' चमक उठा। ग्राहकोंकी संख्या तूफ़ानी समुद्रकी लहरोंकी तरह बढ़ती चली गई। मालवीयजीका अधिक समय अब पत्र-सम्पादनमें ही लगता था। सप्ताहमें छः दिन ये कालाकाँकरमें रहते थे, एक दिन प्रयागमें। रविवारको पत्रका साप्ताहिक संस्करण राजा साहबके सम्पादकत्वमें निकलता रहा। इनके लेख बड़े मार्केके होते थे। सभी विषयोंपर इनके सम्पादकीय लेख निकलते थे, सबमें एक असर होता था, ज़ोर होता था और आकर्षण होता था। कभी-कभी सामाजिक, धार्मिक या राजनीतिक समस्यापर गहरी चोट भी कर जाते थे पर वह चोट ऐसी होती थी जिसे पढ़कर चोट खानेवाला भी एकबार फड़क उठता था और 'वाह-वाह' करने लगता था। ऐसे सूरमा बहुत कम दिखाई पड़ते हैं जिनके वार भी ख़ाली न जायँ और घायल एक बार तड़फ भी उठे, साथ ही उस सूरमाकी तीरन्दाज़ीकी प्रशंसा भी करे। मालवीयजी ऐसे ही तीरन्दाज़ थे। 'हिन्दुस्थान' पढ़नेके लिये लोग बेकल रहते थे। सबसे पहले हिन्दीमें 'तड़ित समाचार' इसी पत्रमें निकले थे। जनता और सरकार दोनोंने इस पत्रको अपनाया।

यहाँपर मालवीयजीकी एक विशेषताका उल्लेख करना असङ्गत न होगा। वे बड़े भयङ्कर 'प्रूफ़-रीडर' हैं। एक बार लिखकर उसको कई बार काट-छाँट, घटा-बढ़ाकर तो वे अपने लेखोंको छपने भेजते ही हैं पर यह जानकर कम अचरज न होगा कि मशीनपर छपते-छपते भी वे शुद्ध करते रहते हैं। मालवीयजीके लेखका नाम सुनकर ही अभ्यस्त प्रेसवाले एक बार काँप उठते हैं। पहली बार जब प्रूफ़ उठाकर उनके पास भेजा जाता है, उसे ऐसी तरह रँग देते हैं कि उसे शुद्ध करना भी एक मुसीबत हो जाती है। पर एक बात सभी एक स्वरसे स्वीकार करते हैं कि वे जो शुद्धियाँ करते हैं उससे लेख निखरता चला जाता है। उनसे सम्बन्ध रखनेवाले जितनी पत्र-पत्रिकाएँ हैं और रही हैं उनमें प्रायः वे प्रूफ़की

[illegible]

अशुद्धियोंको देखते और उनपर निशान लगा देते हैं। उनका सदासे यह आदेश रहा है कि अच्छे पत्रके लिये प्रूफ़की अशुद्धियाँ होना बड़े अपजसकी बात है।

अढ़ाई बरसतक मालवीयजीने बड़ी शानसे सम्पादकत्व किया और बड़ा नाम कमाया। मालवीयजीके साथ रहनेका यह असर हुआ कि राजा साहबकी बहुतसी बुरी आदतें उन्हें छोड़कर भाग गईं। उनका नशा-पानी भी बन्दसा हो गया। पर आख़िर वे आदमी ही तो थे। आदत कोई ऐसी चीज़ तो है नहीं कि बस कह दिया, छूट गई। राजा साहबने अढ़ाई बरसतक तो मालवीयजीकी शर्त्तको निबाहा, पर एक दिन एक ऐसी घटना हुई कि मालवीयजीने 'हिन्दुस्थान' के सम्पादकत्वसे और राजा साहबके सहवाससे हाथ खींच लिया। एक दिन राजा साहब प्याला चढ़ा चुके थे, उन्होंने किसी ज़रूरी बातकी सलाहके लिये मालवीयजीको बुलवा भेजा। बातचीत कर चुकनेके बाद उन्होंने राजा साहबसे कहा कि "आजसे मेरा अन्न-जल आपके पाससे उठ गया। आपने मुझसे जो शर्त्तकी थी, वह आज टूट गई। मैं आज ही रातको या कल सुबह चला जाऊँगा। आप अपने पत्रका इन्तज़ाम कर लीजिए। आपकी उदारता और स्नेहको मैं कभी नहीं भूलूँगा।" राजा साहब यह सुनकर सन्न हो गए। राजा साहबने बहुत समझाया पर हिमालय तो अपने स्थानसे टलता नहीं है। मालवीयजीके बड़े भाई भी समझाकर हार गए। अन्तमें राजा साहबने कहा—'अच्छा जाओ, वकालत पढ़ो, जितने दिन पढ़ोगे, सारा ख़र्च मैं दूँगा।' मालवीयजी सन् १८८९ ई० में 'हिन्दुस्थान' छोड़कर चले आए। इतने अच्छे पदका त्याग कोई मामूली त्याग नहीं था। त्यागके हवन-कुण्डमें मालवीयजीकी यह सबसे पहली महत्व-पूर्ण आहुति थी।

'हिन्दुस्थान' से विदा लेकर जब मालवीयजी घर लौटे तो युक्तप्रान्तके सिंह पण्डित अयोध्यानाथके अंग्रेज़ी पत्र 'इण्डियन ओपिनिअन' (भारतीय मत) ने उनका स्वागत किया और ये उसमें पण्डित अयोध्यानाथजीके सम्पादनमें हाथ बँटाते रहे। पण्डित अयोध्यानाथजी जैसे दबङ्ग, निडर और स्पष्टवक्ता थे वैसा ही उनका पत्र भी था। प्रयागके लब्धप्रतिष्ठ नागरिक पण्डित बलदेवराम दवे भी इनके साथ ही थे और इन दोनोंके सम्मिलित परिश्रमने पत्रको लोक-प्रिय बना दिया, पीछे यह पत्र लखनऊके 'एडवोकेट' से जा मिला। वह भी मालवीयजीके सहयोगसे वञ्चित न रहा।

'अभ्युदय'

सोए हुए लोगोंको कुम्भकर्णी नींदसे जगानेके लिये यदि सबसे अच्छा और सीधा कोई उपाय है तो वह 'पत्र' है। इलाहाबादके उर्दूके महाकवि अकबरने एक बार कहा था :—

खींचो न कमानोंको न तलवार निकालो।
जब तोप मुक़ाबिल हो तो अख़बार निकालो॥

चाहे यह शेर अख़बारोंकी बढ़ती हुई बाढ़पर फबती ही क्यों न हो पर इसकी सचाईमें तिलभरका भी सन्देह नहीं है। उस ज़मानेमें जब कि सारी आर्य्य जाति अपनी प्राचीन संस्कृतिको पुराने बेठनोंमें लपेटकर और अपनी प्राचीन वीरता और आत्म-सम्मानको म्यानमें डालकर गहरी नींद ले रही थी, उस समय पत्र निकालनेके सिवाय और कोई ऐसा साधन नहीं रह गया था जिससे सरकारकी क्रोधाग्निसे बचते हुए उनको जगा सकें। मालवीयजी यह बात अच्छी तरह समझ चुके थे। कौलेज़में पढ़नेके समय ही मालवीयजी उस दिनका सपना देखा करते थे जब गङ्गाजीके किनारे-किनारे प्रयागसे काशीतक ऐसे आश्रम बनें, जिनमें लोग संयम-पूर्वक रहकर अपना ज्ञान बढ़ावें और एक ऐसा विश्वविद्यालय बने जिसमें सब विद्याएँ, सारे शिल्प-शास्त्र विलायतकी तरह पढ़ाए जायँ और हिन्दुस्तानी विद्यार्थियोंको विलायत न जाना पड़े। मालवीयजीके

साथी उस समय उनकी हँसी उड़ाते थे कि 'मदनमोहन पागल हो गया है।' उन साथियोंमेंसे अब भी एक-दो जीवित हैं, जिन्हें पागल मदनके सपनेकी दुनियामें रहने और काम करनेका सौभाग्य मिला है। उस समयके मदनमोहनके विचारोंको सुननेवाले सज्जनोंको यह देखकर तो सचमुच अचरज होता है कि मालवीयजीके सपनेके सत्य हो जानेपर भी उसी विश्वविद्यालयमें विलायती डिग्रीकी ही अधिक पूछ होती है। यह दुनिया कैसे उलट गई, यह सचमुच अचम्भेकी बात है। हाँ, तो हिन्दू विश्वविद्यालयकी चर्चा मन और हृदयसे निकलकर बाहर आ चुकी थी और सन् १९०५ ई० की अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभाके अवसरपर काशीमें महाराज बनारसके सभापतित्वमें मिण्टो हाउसमें होनेवाली सभामें वह प्रत्यक्ष स्वरूप धारण करके खड़ी हो गई। उसको जीवित रखनेके लिये यही सोचा गया कि कोई ऐसा पत्र निकाला जाय जो हिन्दू-विश्वविद्यालयकी निरन्तर चर्चा छेड़ता रहे जिससे कि लोग अपनी पुरानी आदतके अनुसार एक कानसे सुनकर दूसरेसे निकालने न पावें।

अचानक सन् १९०७ ई० का वसन्त अपने साथ-साथ भारतका 'अभ्युदय' भी लाया। वसन्तपञ्चमीके शुभ दिनपर 'अभ्युदय' का जन्म हुआ। प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक पण्डित बालकृष्ण भट्टजीने ही उसका नामकरण किया। पैदा होते ही यह बालक 'अभ्युदय' मालवीयजीको सौंप दिया गया। उसके बचपनमें दो बरसतक मालवीयजीने उसे पाला, पोसा और बोलना सिखाया। दूधके दाँत गिरनेसे पहले ही इस बालकने धूम मचा दी। उस धूमका मतलब तो यही था कि गङ्गाके तटपर जो सरस्वती मन्दिर बनवानेकी वे कल्पना कर रहे थे वह कल्पना अदृष्ट जगत्से दृष्ट जगत्में आ जाय। पर वह समाचार-पत्र था, देश और समाज दोनोंकी नींद खोलनेका काम भी 'अभ्युदय' ने अपने सिर ले लिया। आख़िर 'अभ्युदय' ही तो ठहरा। पर यह बालक बड़ा ख़र्चीला निकला। थोड़े ही दिनोंमें इसने अपने पालकोंकी जेबें ख़ाली कर दीं। मालवीयजी दो बरस बाद प्रान्तीय कौन्सिलके सदस्य हो गए और 'अभ्युदय' का भार पुरुषोत्तमदास टण्डनजीके योग्य हाथोंमें सौंप दिया। उनके बाद पण्डित सत्यानन्द जोशीजीने इसे सँभाला और सन् १९१० ई० से सुप्रसिद्ध लेखक पण्डित कृष्णकान्त मालवीयजीने इसकी बागडोर अपने हाथमें ली। बीच-बीचमें पण्डित कृष्णकान्त मालवीयजीके स्थानपर स्वर्गीय श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी और प्रसिद्ध लेखक पण्डित वेङ्कटेशनारायण तिवारीका सहयोग भी इसे प्राप्त हुआ है। आजकल पण्डित कृष्णकान्त मालवीयके सुपुत्र पण्डित पद्मकान्त मालवीयके सम्पादकत्वमें यह पत्र निकल रहा है। शुरूमें तो 'अभ्युदय' सप्ताहमें एक बार ही दर्शन देता था, किन्तु फिर सन् १९१५ ई० में वह दैनिक हो गया और फिर कभी अर्द्ध साप्ताहिक कभी साप्ताहिक होकर बराबर निकलता आ रहा है।

'अभ्युदय' ने कभी किसीके आगे सिर नहीं झुकाया और निडर होकर सच बात कहनेमें कभी सङ्कोच नहीं किया। इसी कारण 'अभ्युदय' सरकारकी आँखोंमें बड़ा खटका और कई बार इसको ज़मानतें देनी पड़ीं, कई बार ज़मानतें ज़ब्त हो गईं और बेचारा महीनों घरमें बन्द होकर पड़ा रहा। इस पत्रकी नीति उसके नाममें ही छिपी हुई है। उसकी नीति है 'अभ्युदय'। जिस तरहसे हो अपने देश, समाज, जाति, साहित्य और लोकका अभ्युदय करे।

'लीडर'

लौर्ड कर्ज़न भारतवासियोंकी यादमें बहुत दिनोंतक बने रहेंगे। उन्होंने सन् १९०५ ई० में बङ्गालके दो टुकड़े कर दिए जिससे केवल बङ्गाल ही नहीं बल्कि सारा हिन्दुस्तान काँप उठा और उस कम्पनने एक बार अंग्रेज़ी राज्यको बड़े ज़ोरसे झकोर दिया। सोता हुआ सिंह जब जागकर गरज उठता है तो उससे एक बार सारा जङ्गल दहल उठता है। लौर्ड कर्ज़नने सारे

भारतको जगा दिया। उस ठोकरसे हिन्दुस्थानके हृदयमें चिर कालसे विश्राम करनेवाले आत्म-सम्मानको भी ठेस लगी और इसी लिये वह ज्वालामुखीके समान भड़क उठा। धूल भी ठोकर मारनेसे सिरपर चढ़ जाती है, तिसपर वे तो आदमी थे, समझ रखते थे।

ऐसी दशामें एक दैनिक अंग्रेज़ी पत्रकी ज़रूरत पड़ी। मालवीयजीके परम उद्योगसे २४ अक्तूबर सन् १९०९ ई० को विजया दशमीके दिन प्रयागसे सबको मार्ग दिखानेके लिये 'लीडर' निकला। उसका इतिहास स्वयं मालवीयजीने लीडरमें नई मशीन लगानेके समय जो वर्णन किया था उसे हम ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर देते हैं:—

"'लीडर' के स्थापित होनेके पूर्व एक दैनिक समाचार-पत्रकी इलाहाबादमें बड़ी आवश्यकता जान पड़ती थी। सन् १८७९ ई० में स्वर्गीय पण्डित अयोध्यानाथजीने 'इण्डियन हेरालड' निकाला था और उसपर बड़ा धन व्यय किया। वह पत्र तीन वर्षतक चला और अभाग्यवश उसके बाद बन्द हो गया। 'लीडर' के स्थापित होनेका एक यह कारण भी था। मैंने वकालत छोड़नेका निश्चय कर लिया था, और उस समय मेरा यह विचार था कि सार्वजनिक कार्य्योंसे भी अलग हो जाऊँ जिससे हिन्दू विश्वविद्यालयका कार्य्य ठीक तरहसे कर सकूँ। उस समय मेरे मनमें आया कि यदि मैं सार्वजनिक जीवनसे बिना एक पत्र स्थापित किए अलग होता हूँ, तब मैं अपने प्रान्तके प्रति अपने धर्मको नहीं निबाहता हूँ। मुझे उसकी आवश्यकता इतनी अधिक और अनिवार्य्य जान पड़ी कि मैंने विचार किया कि सार्वजनिक जीवनसे अलग होनेके पहले एक पत्र अवश्य यहाँ स्थापित हो जाना चाहिए। मैंने इसका कुछ मित्रोंसे ज़िक्र किया और उन्होंने प्रसन्नतासे उसके लिये धन दे दिया। आरम्भमें इसके लिये चौंतीस हज़ार रुपया जुटा। इतना रुपया एक दैनिक पत्र चलानेके लिये बहुत कम था। लेकिन मुझे अपने मित्रोंपर विश्वास था जिन्होंने सहायता करनेको कह दिया था और वह आशा सफल भी हुई। लीडरने निःस्वार्थ भावसे देशकी और प्रान्तकी बड़ी लगनसे सेवा की है। नीति और विचारोंमें सदा मतभेद रहा है और रहेगा, लेकिन उसके कारण कोई उसकी सेवामें सन्देह नहीं ला सकता। शायद ही ऐसा कोई पत्र हो जो अपने मित्रोंके विचारोंको सारे प्रश्नोंपर प्रकट कर सके। श्री चिन्तामणि और पण्डित कृष्णाराम मेहता दोनों 'लीडर' की जान हैं और दोनोंने बाँटकर उसे चलानेका सौभाग्य प्राप्त किया है। लीडरके बढ़ते हुए प्रभावको और उसकी सेवाओंको सारे प्रान्तने स्वीकार किया है। आपको याद होगा, जब असहयोग आन्दोलनका आरम्भ हुआ तब मेरे मित्र पण्डित मोतीलाल नेहरूने 'इण्डिपेण्डेण्ट' पत्र चलाया जिसमें वे अपने विचारोंको और 'लीडर' से मतभेद रखनेवाले विचारोंको फैला सकें। उसपर दो लाख पचास हज़ार रुपया ख़र्च किया गया। जिसमें एक लाख स्वयं पण्डित मोतीलालने दिया और पचास हज़ार श्री जयकरने दिया था। सरकारी अधिकारियोंने भी यह बात स्वीकार की है कि 'लीडर' सार्वजनिक प्रश्नोंका न्यायोचित दृष्टिसे विचार करता है।"

श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त और श्री सी० वाई० चिन्तामणि उसके सम्पादक-मण्डलमें नियुक्त हुए। एक धुर पूर्वके बङ्गाली थे तो दूसरे धुर दक्षिणके मद्रासी थे। जब 'लीडर' स्थापित हुआ था, तब कुछ लोगोंने भविष्यवाणी की कि यह बेवक़्तकी शहनाई है; कोई सुनेगा नहीं। पत्र शीघ्र ही बन्द हो जायगा। कुछ लोग कहते थे 'कि इसके सम्पादक और अधिकारी शीघ्र ही किसी बिपदामें फँसेंगे।' उस समयके प्रयागके कमिश्नर और 'पायोनियर' पत्रने आवाज़ें कसीं कि 'लीडर' इतना नेक और भला है कि अधिक दिनोंतक नहीं ठहरेगा। लेकिन इन पिछले वर्षोंने उन सारी भविष्यवाणियोंको झूठा साबित कर दिया। इसकी सारी सफलताका श्रेय इसके जन्मदाता और युवकोंमें उत्साहका सञ्चार करनेवाले पूज्य पण्डित

मदनमोहन मालवीयजीको है। लीडरके इतिहासकी एक लम्बी विपदाभरी कहानी है। उसके जन्मकालके डेढ़ वर्षके अन्दर ही उसकी पूँजी समाप्त होनेको आ गई। यहाँतक कि जब बैङ्कमेँ केवल पाँच हज़ार रुपया बक़ाया रह गया फिर भी डाइरेक्टरोँकी रायसे साहस करके लीडरका अङ्क निकाला जा रहा था। लेकिन ऐसी दशा कितने दिनोँतक चल सकती थी। निदान उसका कारबार समेटनेके लिये एक दिन भी तै कर दिया गया। किन्तु इस घोर निराशामेँ भी एक प्रकाशकी रेखा पण्डित मदनमोहन मालवीय थे जो इस समय अपने प्राणोँसे प्रिय महान् हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये देशमेँ घूम-घूमकर धन बटोर रहे थे। उनके मुखसे केवल ये आत्म-विश्वाससे भरे शब्द निकलते थे—"दि लीडर विल नौट डाइ" 'लीडर जीवित रहेगा'। उनकी उस आशाके प्रकाशने निराशाके अन्धकारमेँ उजाला कर दिया और तबसे 'लीडर' हमेशाके लिये बन्द होनेके बजाय दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता गया। सन् १९२६ ई० मेँ उसकी अपनी नई इमारतेँ बनीँ और सन् १९२९ ई० मेँ उसके लिये नई मशीनेँ और छापेकी कलेँ विदेशसे मँगाई गईँ और एक हिन्दीका साप्ताहिक 'भारत'—अब दैनिक 'भारत'—भी प्रकाशित होने लगा।

पण्डित मोतीलाल नेहरू 'न्यूज़ पेपर्स लिमिटेड' के अन्तर्गत 'लीडर' के प्रथम अध्यक्ष हुए। इसके बाद पूज्य मालवीयजी दस वर्षतक उसके चेयरमैन रहे। उनके बाद सर तेजबहादुर सप्रू, सच्चिदानन्द सिनहा, श्री ब्रजनारायण गुर्टू, और मुन्शी ईश्वरशरण क्रमसे इसके अध्यक्ष चुने गए और इसके सहायक तथा कार्य्यकर्त्ता रहे। अन्य उत्साही प्रारम्भिक कार्य्यकर्त्ता पण्डित बलदेवराम दवे और डाक्टर सतीशचन्द्र बनर्जी थे। बनर्जीकी असामयिक मृत्युसे देश और प्रयाग नगरको एक उदार और उत्साही कार्य्यकर्त्तासे वञ्चित होना पड़ा। इसके बाद सङ्कटकालमेँ लीडरके हाथ बँटानेवाले राजा मोतीचन्द और बाबू गोविन्द दास थे। रायकृष्णजी सर तेजके सरकारी लौ-मेम्बर नियुक्त होनेपर चेयरमैन चुने गए, तबसे वे निरन्तर लीडरके द्वारा देशकी सेवा कर रहे हैँ। आरम्भमेँ इसके सम्पादक श्री सी० वाई० चिन्तामणिको अट्ठारह-अट्ठारह घण्टे और कभी-कभी बीस-बीस घण्टोँतक काम करना पड़ता था। उस समय वे ही उसके कर्त्ता-धर्त्ता थे, वे ही सम्पादक, उप-सम्पादक, मन्त्री, मैनेजर, मुद्रक, प्रकाशक सभी कुछ एकमेँ जुटे हुए थे। अब लीडर उनके जीवनका एक अङ्ग हो गया है। मसल मशहूर है कि 'लीडर चिन्तामणि है, और चिन्तामणि लीडर है।' श्री चिन्तामणिका प्राण लीडर है और लीडरके प्राण श्री चिन्तामणि हैँ।

आरम्भिक जीवनसे इसके दो-तीन लेखोँपर सरकारकी कृपादृष्टि पड़ी। उनमेँ विद्रोहकी भावनाका लेश भी न था। इसलिये सरकारका वह वार ख़ाली गया। इसके डेढ़ वर्ष बाद फिर एक चेतावनी मिली। श्री गोखलेने इसमेँ आगे आकर सर विलियम वेडरबर्नको लिखा, जिन्होँने तत्कालीन भारत-सरकारके लौर्ड क्यू और श्री मौण्टेग्यूसे मिलकर सब प्रकारका आश्वासन प्राप्त किया।

लीडरकी नीति सदा एकसी नहीँ रही। इसने समय पड़नेपर शायद ही कोई ऐसा सार्वजनिक नेता छोड़ा हो, जिसकी कड़ी-से-कड़ी आलोचना न की हो। श्री पण्डित मदनमोहन मालवीयसे लगाकर पण्डित मोतीलाल नेहरू, श्री गोखले और यहाँतक कि महात्मा गान्धी भी इसकी आलोचनासे नहीँ बच पाए। बहुतसे लोग इसके सम्पादकसे इसलिये चिढ़ते हैँ कि वे ऐसी बातेँ क्योँ करते हैँ। किन्तु हम समझते हैँ कि सम्पादकको अपनी ज़िम्मेदारी समझकर किसीके बड़प्पनका लिहाज़ करके अपने विवेककी हत्या नहीँ करनी चाहिए। इस बातको कौन नहीँ स्वीकार करेगा कि लीडरके सम्पादक श्री चिन्तामणि उन इने-गिने लोगोँमेँ हैँ, जो समयकी गतिको बहुत ही अच्छी तरह समझते हैँ।

'मर्य्यादा'

लीडरकी स्थापनाके एक बरस बाद ही

मालवीयजीने 'मर्य्यादा' नामक पत्र निकलवानेका प्रबन्ध किया। अंग्रेज़ी पढ़ी-लिखी जनताके लिये तो 'लीडर' काफ़ी था, पर हिन्दी समझनेवाले लोगोंको भी तो बुद्धिका भोजन मिलना चाहिए। इसमें बहुत दिनोंतक राजनीतिक समस्याओंपर योग्यतापूर्ण निबन्ध लिखे गए।

'हिन्दुस्तान टाइम्स'

पहले कुछ सिक्ख सज्जनोंने दिल्लीसे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' नामक अंग्रेज़ीपत्र निकाला था, पर उसकी व्यवस्था ठीक नहीं थी और उसका प्रचार भी कम था। मालवीयजीने सन् १९२४ ई० में वह पत्र अपने हाथमें ले लिया और उसकी सुव्यवस्था कर दी। तबसे मालवीयजी ही उसके सर्वेसर्वा हैं और उसकी प्रबन्धक-समितिके अध्यक्ष हैं। श्री पोथान जोसेफ़ उसके सम्पादक हुए और उन्होंने बड़ी योग्यतासे अपना काम निबाहा। अब तो 'हिन्दुस्तान' नामक एक हिन्दीपत्र भी इसी प्रेससे निकलता है। यह दिल्लीका अंग्रेज़ी दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' भी मालवीयजीकी प्रेरणासे निकला और थोड़े ही दिनोंमें इस महापुरुषके आशीर्वादने उसे वह पद दिला दिया जिसपर आज उसे अभिमान है।

'सनातनधर्म'

२० जुलाई सन् १९३३ ई० को गुरुपूर्णिमाके अवसरपर साप्ताहिक 'सनातनधर्म' नामक पत्र मालवीयजीकी संरक्षतामें काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयसे पण्डित गणेशदत्त आचार्यजीके प्रबन्धमें निकला, जो उदार सनातनधर्मका निरन्तर प्रचार कर रहा है। इसमें धार्मिक विषयोंके अतिरिक्त विज्ञान, कलाकौशल, अर्थशास्त्र, समाज, साहित्य इत्यादि सभी विषयोंपर महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं। यह 'समाचार-पत्र' नहीं है बल्कि 'विचारपत्र' है। प्रारम्भमें छः महीनेतक इसका सम्पादन पण्डित भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधवने बड़ी योग्यताके साथ किया। उसके बादसे पण्डित सीताराम चतुर्वेदी ही उसका सम्पादन कर रहे हैं।

जब सन् १८९९ ई० में श्री सच्चिदानन्द सिनहाने 'हिन्दुस्तान रिव्यू' चलाया, उस समय मालवीयजीने उसकी सब प्रकारसे अमूल्य सहायता की और उसी प्रकार सन् १९०३ ई० में चलाए हुए उनके दूसरे पत्र 'इण्डियन पीपिल' की भी की।

इन सब बातोंसे प्रकट हो गया होगा कि मालवीयजी पत्रों-द्वारा जनतामें प्रचार करनेमें कितना विश्वास रखते आए हैं। मालवीयजी बड़े कुशल सम्पादक रहे हैं। प्रूफ़ संशोधनके विषयमें तो हम कह ही चुके हैं। एक बात और स्मरण रखनेकी है कि हिन्दी संसारमें 'मालवीयजीकी हिन्दी' का एक अलग ही स्थान है। वे ठेठ संस्कृतके शब्दोंके बहुत काममें लानेको अच्छा नहीं समझते हैं। अचरज, जतन, लगन, पैठना, प्रानी आदि बहुतसे बोलचालके शब्द उनके लेखोंमें मिलेंगे। ये बड़ी सरल, सबकी समझमें आनेवाली हिन्दी लिखते और बोलते हैं, ऐसी नहीं कि जिसे समझनेके लिये कोश टटोलना पड़े और घण्टों मग़ज़पच्ची करनी पड़े।

पत्रमें अश्लील विज्ञापन छापनेको भी मालवीयजी बड़ा बुरा समझते हैं। एक बार अभ्युदयमें पण्डित शिवराम वैद्यजीके औषधालयकी बनी 'कामवटी' का विज्ञापन छाप दिया गया। मालवीयजीने उसे काटकर आदेश दिया कि इसके स्थानपर 'ज्वरवटी' का विज्ञापन छापो। 'सनातनधर्म' में तो उन्होंने तीन वर्षतक भी किसी तरहका कोई विज्ञापन छपने ही नहीं दिया। महापुरुष केवल हृदयमें ही महान् नहीं होते बल्कि अपनेसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक वस्तुको वह महापुरुषके योग्य बना देते हैं। महापुरुषके साहित्यमें 'हाथीके दाँत' को कोई स्थान नहीं मिल सका है।

कचहरीके भीतर

'हिन्दुस्थान' का सम्पादक काफ़ी नाम कमा चुका था। उस समय भगवान्‌की दयासे राजनीतिके मैदानमेँ ऐसे लोग बहुत कम थे जो दूसरेकी बढ़ती देखकर ख़ाक हो जायँ और उसकी जड़ खोदनेकी तैयारी करने लगेँ। वह गुणी लोगोँका ज़माना था। कसौटीपर कसे हुए सोनेकी क़द्र की जाती थी। राष्ट्रीय महासभाके पिता श्री एलेन् औक्टेवियस ह्यूम मालवीयजीको बड़ा मानते थे। इधर पण्डित अयोध्यानाथ, श्री राजा रामपालसिंह और पण्डित सुन्दरलाल भी इन्हेँ देशसेवामेँ जुटाना चाहते थे। सबने मालवीयजीको वकालतकी परीक्षा देनेके लिये वाध्य किया। पर मालवीयजी वकालतको बहुत बुरा काम समझते थे। जिस ब्राह्मणने सन्तोष, परोपकार और सचाईके बीचमेँ अपना बचपन बिताया हो उसे कचहरी भला क्योँ सुहाने लगी। यद्यपि मालवीयजी पैसे खीँचनेमेँ उस्ताद हैँ, पर पैसा कभी उन्हेँ अपनी ओर न खीँच सका। एक ओर गुरु और मित्र, दूसरी ओर सङ्कोचमेँ लिपटा हुआ एक युवा पण्डित। जो चीँटीका भी दिल दुखानेसे पहले काँप उठता हो वह अपने गुरुओँ और मित्रोँके अनुरोधको कैसे टाल सकता था। 'हिन्दुस्थान' से पान सुपारी लेकर ये प्रयागमेँ आ ही चुके थे, पर राजा रामपालसिंह हर महीने मालवीयजीके बहुत मना करनेपर भी ढाई सौ रुपया वेतन भेजते ही रहे। वे अपने सम्पादनके कामसे समय बचाकर वकालत पढ़ने लगे। रायबहादुर पण्डित बलदेवराम दवे उन दिनोँ जौन्सनगञ्जमेँ रहते थे। उनके परिवारके साथ मालवीयजीका बड़ा गहरा सम्बन्ध रहा है। उन्हींके कोठेके बड़े कमरेमेँ नित्य जाकर मालवीयजीने वकालतकी परीक्षाकी तैयारी शुरू कर दी। इसी पढ़ाईके समयमेँ उन्होँने व्यवस्थाविधान (कौन्स्टिट्यूशनल लौ) पर एक टिप्पणी तैयार की जिसके कुछ अंश तो बड़े ही क्रान्तिकारी हैँ। उस टिप्पणीको पढ़नेसे मालूम हो जाता है कि इनकी राजनीतिक बुद्धि किस ओर चली जा रही थी। अपने कलकत्तेके अध्यक्षपदके भाषणमेँ उन्होँने इसके कुछ अंश कहे थे।

मालवीयजी पढ़ते तो बहुत कम थे क्योँकि उन्हेँ फ़ुरसत ही कहाँ मिलती थी, लेकिन उनकी बुद्धि बड़ी निर्मल थी और वे पढ़ते भी समझकर ही थे। ये लौ कौलेजमेँ पढ़ते थे, परीक्षा होनेवाली थी। अचानक इनके छोटे भाई मनोहरलालकी अफ़ीम खानेसे मृत्यु हो गई। इनको इसका इतना धक्का लगा कि इन्होँने परीक्षा न देनेका ही इरादा किया और बड़े मनमारेसे रहने लगे। सात दिन परीक्षाके रह गए, सब पढ़ना-लिखना बन्द। पण्डित अयोध्यानाथजीको जब यह हाल मिला तो उन्होँने मालवीयजीको बुलाकर समझाया और शान्त किया। मालवीयजी क़ानून पढ़नेमेँ फिर जी लगाकर जुट गए। विजयनगर हौलमेँ परीक्षा हुई और सन् १८९१ ई० मेँ इन्होँने एल्० एल्० बी० पास कर लिया। दो वर्ष बाद ही ये हाईकोर्टमेँ पहुँच गए। वकालत करते समय एक बार पण्डित अयोध्यानाथजीने ह्यूम महोदयसे शिकायत की थी कि वकालतके चक्करमेँ पड़कर पण्डित मदनमोहनने कांग्रेसके काममेँ ढिलाई कर दी है।

ह्यूम साहबने बड़े सन्तोष और स्नेहसे उत्तर दिया, “ठीक तो है। इन्हें क़ानूनकी ओर ही पूरा चित्त लगाना चाहिए।” फिर मालवीयजीकी ओर घूमकर बोले कि “देखो मदनमोहन! ईश्वरने तुम्हें बड़ी बुद्धि दी है। अगर मन लगाकर तुम दस बरस भी वकालत कर लोगे तो तुम निश्चय सबसे आगे बढ़ जाओगे। तब तुम अपनी प्रतिष्ठाके कारण अधिक जनसेवा कर सकोगे और तब तुम देशकी भी अधिक सेवा कर सकोगे।” पर मालवीयजीके हृदयमें यह उपदेश बहुत दिनोंतक न टिक सका।

कुछ दिनोंतक इन्होंने पण्डित बेनीरामजी कान्यकुब्जके पास काम सीखा और फिर स्वतन्त्र रूपसे वकालत शुरू कर दी। पहले पहल इन्होंने नौ रुपये कमाए।

इनकी वकालत थोड़े ही दिनोंमें चमक उठी। मवक्किलोंके ठट्ट-के-ठट्ट इन्हें घेरे रहते। पौ फटते-फटते उनका द्वार ख़ैराती शफ़ाख़ाना बन जाता था। उनके मित्रों और सम्बन्धियोंकी भी एक अच्छी ख़ासी संख्या थी। मालवीयजीको दम लेनेकी फ़ुरसत न थी। मवक्किलोंसे छुट्टी पाकर पूजा-पाठ करते और फिर कभी भोजन मिला, कभी विना भोजन ही पीताम्बर पहने ही कचहरी जानेके लिये गाड़ीमें बैठ जाते थे। उसीमें इनकी पूरी पोशाक रक्खी रहती थी। कचहरी पहुँचते-पहुँचते ये वस्त्र पहनकर तैयार हो जाते थे।

एक दिन ये सब काग़ज़-पत्र देख-सुनकर उठे थे कि एक अनजान आदमीने अपने काग़ज़ इनके हाथमें दिए। उसकी आँखोंकी कोरें भींगी हुई थीं। जान पड़ता था कि कोई विपत्ति उसका गला दबाए खड़ी है। डरते-डरते वह बोला, “मुन्शी कालिन्दीप्रसाद मेरे वकील हैं। फ़ीस ले चुके हैं। आज तारीख़ है। वे कहीं चले गए हैं। मेरे पास रुपए नहीं। कहाँ जाऊँ?” मालवीयजी भी बझे हुए थे, पर वे करुणाको अपने द्वारसे निराश नहीं भेजना चाहते थे। वे उतना ही काम लेते थे जितना कर सकते थे। पैसेके लोभी वकीलोंकी तरह स्वार्थी नहीं थे। जब काम अधिक होता तो अपने मित्रोंको दे देते थे। उन्होंने कहा, “देखो भाई! मुझे तो आज फ़ुरसत नहीं है। तुम इनके साथ मुन्शी गोकुलप्रसादके पास चले जाओ। तुम्हारा काम हो जायगा।” यह कहकर उन्होंने वह आदमी मधुमङ्गल मिश्रजीको सहेज दिया।

आजके सर तेजबहादुर सप्रू भी मालवीयजीके ही बनाए हुए हैं। एक बार मालवीयजी किसी कामसे मुरादाबाद गए हुए थे। वहाँ उन्होंने सप्रू साहबको देखा और होनहार लड़का समझकर उन्हें प्रयाग ले आए और उन्हें अपनी वकालतमेंसे मुक़दमे देने लगे। आज वही सप्रू व्यवस्था-विधान (कौन्स्टिट्यूशनल लौ) के आचार्य्य माने जाते हैं और भारतके सर्वश्रेष्ठ वकीलोंमें हैं।

हाइकोर्टके जजोंने भी समय-समयपर मालवीयजीकी बड़ी प्रशंसा की है। पहले तो इनकी सौम्य मूर्त्ति और इनका धवल वेश ही अपना पूरा प्रभाव डालता है, फिर इनकी मधुर वाणी किसको नहीं लुभाती। मालवीयजीमें दो अद्भुत शक्तियाँ काम कर रही थीं—सुन्दर, सरस, प्रभावशाली वाणी और समझानेका ढङ्ग। वे इतनी अच्छी तरहसे मुक़दमा समझाते थे कि उनकी बात माननेको विवश होना पड़ता था। शेरकोटकी रानीका मुक़दमा उनकी वकालतकी सर्वश्रेष्ठ कीर्त्ति समझी जाती है। और उसी मुक़दमेके कारण इन्हें इतना धन भी मिला कि इनका ऋण भी पट गया और इन्होंने जन्मस्थानसे सटे हुए मकानमें कई हज़ार रुपए लगाकर पक्का मकान बनवा लिया। इस बस्तीमें यही सबसे पहला पक्का मकान बना था।

अब तो मालवीयजीका यश दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। मालवीयजीकी आमदनी भी बढ़ी, पर साथ ही उनके काम भी बढ़ चले। इधर मवक्किल घेरे हुए थे, उधर प्रयाग भरकी सभाएँ और संस्थाएँ उनको तङ्ग किए रहती थीं। राष्ट्रीय महासभाका अलग काम था और फिर बहुत दिनोंसे विद्यार्थी जीवनसे ही विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी जो

भावना धीरे-धीरे सुलग रही थी वह अब चेतन हो उठी। भला वकालतको फिर कहाँ जगह मिल सकती थी। जिसके दिलमें दूसरोंके दर्दके कारण हूक उठा करती हो वह भला अपनी कहाँतक देख-भाल कर सकता है।

४ फ़रवरी, सन् १९२२ ई० को गोरखपुर ज़िलेमें चौरीचौरामें एक भयङ्कर दुर्घटना हो गई थी, जिसमें जनताने जोशमें आकर एक पुलीस थानेमें आग लगा दी थी, जिसमें इक्कीस पुलीसके थानेदार और सिपाही बुरी तरह जल मरे और दो स्वयंसेवक मारे गए। उसमें दो सौ पचीस आदमियोंपर मुक़दमा चला। सेशन जजने उनमेंसे एक सौ सत्तरको फाँसीका हुक्म दे दिया था। जब यह मामला चीफ़ जस्टिस और जस्टिस पिगोटके सामने प्रयाग हाइकोर्टमें पेश हुआ तो सबकी दृष्टि मालवीयजीपर पड़ी। मालवीयजी वकालत छोड़ चुके थे, पर निर्बलके बल तो थे ही। सात दिनतक मुक़दमेको समझा और अध्ययन किया और ऐसी ख़ूबीसे बहस की कि एक सौ इक्यावन अभियुक्त फाँसीके फन्देसे उतार लिए गए। उस समय कहा गया था कि—“इन अभियुक्तोंको चाहिए कि ये मालवीयजीको धन्यवाद दें, क्योंकि उन्हींके कारण आज इनकी जान बच पाई है।” इसमें कोई सन्देह नहीं है, यदि मालवीयजी वकालत करते रहते तो वे अपने साथियोंको तो पीछे छोड़ ही देते, साथ ही अपनेसे आगेवालोंसे भी आगे बढ़ जाते।

जबसे मालवीयजीने ‘हिन्दुस्थान’ को अपने हाथमें लिया था तबसे ही राजा साहब उनको दो सौ रुपया मासिक वेतन देते रहे। जब मालवीयजीकी वकालत जग उठी तब भी बार-बार मना करनेपर भी राजा साहब हर मास ढाई सौ रुपया मालवीयजीके पास भेज दिया करते थे। एक दिन मालवीयजीने राजा साहबसे कहा कि—“महाराज, अब तो मैं आपका कुछ काम नहीं करता। आपकी नौकरीमें भी नहीं हूँ।” इतना कहना था कि राजा साहब बिगड़ गए और बोले, “नौकरीमें? मालवीयजी! क्या आपने कभी मेरे मनमें या वर्त्तावमें अपने साथ या किसीके साथ नौकरका भाव पाया है। आपके पास विद्या है और आप गुणोंकी खान हैं। उसके द्वारा आप मेरी सहायता करते हैं और मैं भी थोड़े पैसोंसे आपकी सहायता करता हूँ। मुझे आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषके मुँहसे ऐसी बातें सुनकर बहुत दुःख हुआ है। ऐसी बातें आपको शोभा नहीं देतीं।” राजा साहब सचमुच पारखी थे। यही उनका सबसे बड़ा गुण था और उन्होंने मालवीयजीको ख़ूब परखा भी था।

प्रयागके वकीलोंमें इतने आगेतक बढ़कर भी मालवीयजी क्यों लौट आए? पीछेसे कोई उन्हें पुकार रहा था—बड़े दर्दसे कराह-कराह कर। मालवीयजी हाथमें आई अपनी सोनेकी दुनिया छोड़कर उस पुकारपर लौट पड़े। तपस्वी ब्राह्मण! कितना अद्भुत तेरा त्याग है? इस दुनियामें कितने लोग हैं जो आँखवाले होकर भी तुझे पहचान सकेंगे? ऐसे कितने लोग हैं जो सहृदय कहलाकर भी तेरी थाह पा सकेंगे? जिस शोरमें लोग रुपयेकी खनखनाहट और स्वार्थकी बातोंके सिवाय और कुछ नहीं सुन पाते वहीं तुमने बेचारी लुटी हुई, कसी हुई माँकी क्षीण पुकार सुन ली और पागलकी तरह सोनेकी ढेरपर लात मारकर उसी पुकारपर दौड़ पड़े—वैसे ही जैसे द्रौपदीकी पुकार पर कृष्ण दौड़े थे। प्रयागके एक प्रतिष्ठित जजने कहा था कि—‘मालवीयजीके पैरोंके पास गेंद पड़ी थी पर उन्होंने उसमें लात मारनेसे इनकार कर दिया।’ पर यदि हम इसी बातको इस तरह कहें तो कुछ अनुचित न होगा कि ‘लक्ष्मी द्वार खोलकर आरती और फूलमाला लिए इनका स्वागत करनेको खड़ी थी और द्वारपर पहुँचते-पहुँचते इन्होंने करुणाकी धीमी आवाज़ सुनी और वहाँसे लौट पड़े—भिखमङ्गेके वेशमें—झोली हाथमें लिए हुए।

गोखलेजीने एक बार सच कहा था—"त्याग किया है मालवीयजीने। ग़रीब घरमेँ पैदा होकर वकालत की। धन कमाने लगे। अमीरीका मज़ा चखा। चखकर उसे देशके लिये ठुकरा दिया। त्याग है उनका।"

पण्डित बिशननारायणजीने भी कहा था कि 'सचमुच मालवीयजीके जीवनको आत्म-त्यागके सिद्धान्तपर एक अनुपम भाष्य समझना चाहिए,' वह भाष्य भी ऐसा कि जिसे सब समझ सकेँ।

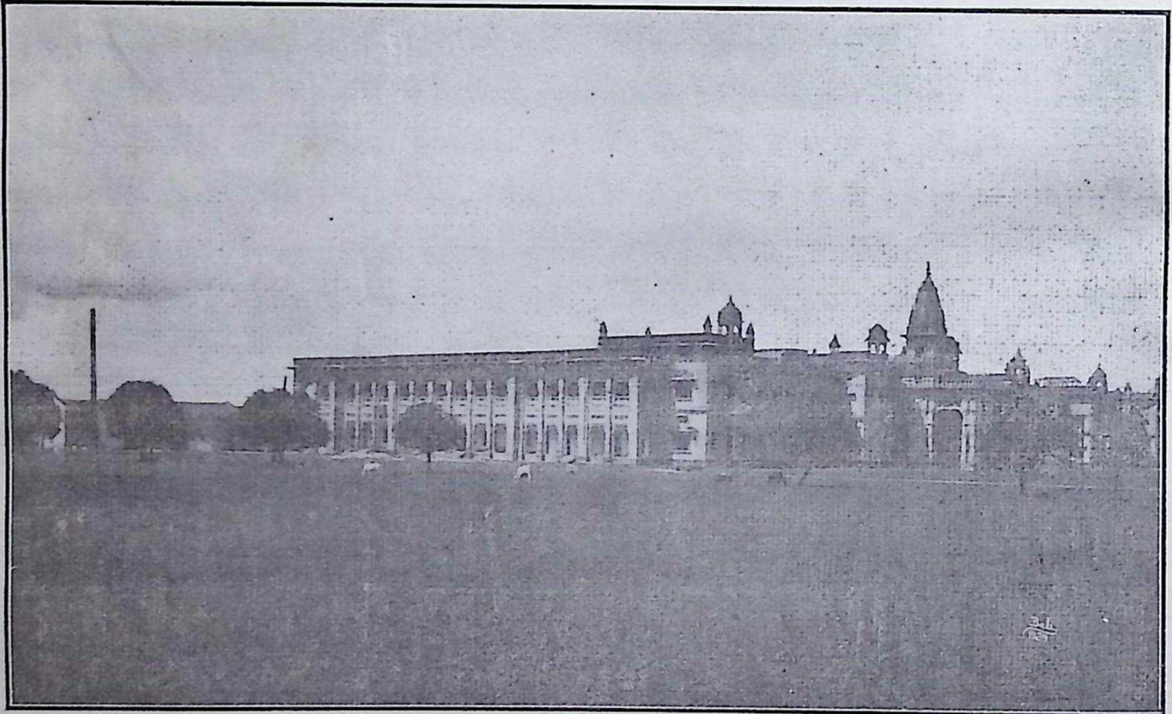

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयका एक भवन।

सिर जावे तो जाय प्रभु मेरो धर्म न जाय

कहा जाता है कि हिन्दुस्थानमेँ जितने प्रकारके अन्न पैदा होते हैँ उतने ही प्रकारके धर्म भी। यहाँकी उपजाऊ भूमिमेँ गङ्गा-यमुना और सिन्धुके जलसे सिँचकर जितने धर्म, मत, और सम्प्रदाय पनपे हैँ उतने दुनियाके किसी भागमेँ भी नहीँ सुने गए। यह तो आँखोँ देखी बात है, कानोँ सुनी नहीँ। इतना ही नहीँ बल्कि और देशोँमेँ भी जो धर्म बोए गए हैँ उनका बीज भी भारतसे ही गया और वे सब गङ्गाके जलसे ही सीँचे गए। हिन्दुस्तानके जलवायुमेँ कुछ ऐसी तासीर है कि यहाँके लोग किसी बातको जल्दी नहीँ मानते थे और जहाँतक होता था अपनी टेक रखनेकी ताकमेँ रहते थे। वे हठसे ऐसा नहीँ करते थे बल्कि उनका ज्ञान यहाँतक बढ़ा हुआ था कि वे हर बातको अपनी बुद्धिकी कसौटीपर कसते थे और फिर कह देते थे कि इसमेँ सोना कितना है, खोट कितनी है। "मुण्डे मुण्डेमतिर्भिन्ना" होते हुए भी यहाँवालोँने योरोपके समान धर्मके नामपर अपने हाथ ख़ूनसे नहीँ रँगे। धार्मिक मतोँपर जितना खण्डन-मण्डन और शास्त्रार्थ हिन्दुस्तानमेँ हुआ उतना किसी देशमेँ नहीँ हुआ पर यह हमारे ही देशकी ख़ूबी रही कि एक ही छत्रके नीचे आस्तिक और नास्तिक दोनोँ हिन्दू बनकर रहे।

पहले अध्यायमेँ हमने थोड़ेसे शब्दोँमेँ मालवीयजीके जन्मकालके समयकी धार्मिक दशाका परिचय मात्र दिया। उससे एक बात तो प्रकट हो गई होगी कि उस समय हिन्दू धर्म बड़े सङ्कटमेँ था। सन् १८५७ ई० के उपद्रवने देशको एक तरहसे सुन्न कर दिया था। सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन भी थोड़े दिनोँ तक चुप्पी साधे पड़े रहे। राजा राममोहनरायका ब्रह्मसमाज ज़ोर पकड़ रहा था और इधर इसाई पादरी भी हिन्दुओँको प्रभु यीशुके दरबारमेँ ले जानेके लिये जी-जानसे लगे हुए थे। हिन्दुस्तानकी भेड़ियाधसान तो मशहूर ही है। एक रास्ता खुलना चाहिए, उसपर चलनेवालोँकी कमी न होगी। हज़ारोँ-लाखोँ हिन्दुस्तानी, जिनके बाप-दादोँकी चोटी औरङ्गज़ेबकी ख़ूनी तलवार भी न काट सकी, दिखावटी मीठे बहकावेमेँ आकर मस्जिद और गिरजाघरमेँ चोटी चढ़ा आए। जिन्होँने गौकी रक्षाके लिये प्राणतक देनेमेँ आनाकानी न की उन्होँकी सन्तान गौके गलेपर छुरी फेरने लगी। उत्तरीय ध्रुवसे अचानक ये दक्षिणीय ध्रुव कैसे जा पहुँचे, यह हम बता चुके हैँ। अनेक मत और सम्प्रदाय तो बने ही, साथ ही हमारे संस्कार बिगड़ चुके थे। अपने धर्मका हमेँ ज्ञान न था। हम इतना भी तो नहीँ जानते थे कि वेद कितने हैँ फिर उनके नामका तो पूछना ही क्या। स्वामी दयानन्द हिन्दू जातिको जगानेके लिये सन् १८६३ मेँ ही निकल पड़े, और सन् १८७५ ई० मेँ आर्य्यसमाजकी स्थापना कर दी। उनको देखकर हिन्दू धर्मके शत्रु काँप गए। कारण यह था कि वे डण्डा लेकर जगा भी रहे थे और सोते हुए हिन्दुओँको उठा ले जानेवालोँको भगा भी रहे थे। इसलिये कुछ घरके लोग भी डण्डेकी चोट खा-खाकर स्वामीजीको बुरा-भला कहनेसे बाज़ न आए और फल यह हुआ कि घरमेँ ही दो दल हो गए और स्वामी दयानन्दके आर्य्य-समाजको एक दल उतना ही घृणा करने लगा जितना मुसलमान या इसाई मतको। स्वामी दयानन्दजीने जिस संयम और उद्देश्यको लेकर वैदिक झण्डा फहराया

था वह संयम उनके अनुयायियोंमें न रहा। वे ब्राह्मणोंको "पोप" कहने लगे, उनका पेट 'लेटरबक्स' कहलाया जाने लगा और देव-मूर्त्तियाँ 'गोल-गोल पत्थर' कहलाए जाने लगे। जिन श्रद्धालु हिन्दुओंने युग-युगान्तरसे अपना विश्वास और अपना सर्वस्व देवमन्दिरोंमें रख छोड़ा था और जिन ब्राह्मणोंने कठोर तपस्या करके पुस्तकालयोंके जला दिए जानेपर भी भारतका सारा साहित्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने कण्ठमें जतनसे रख छोड़ा था, उनका यह अपमान कोई सहृदय भला कैसे सह सकता था। कुछ लोग अवश्य ही ढोंगी और पाखण्डी थे पर जौके साथ घुन पीसना भी लोगोंको न जँचा। पर यह कम सन्तोषकी बात नहीं है कि जो लोग राम और कृष्णको छोड़कर पैग़म्बरी एकेश्वरवादके पीछे दौड़े चले जा रहे थे वे सँभल गए और वैदिक एकेश्वरवाद मानकर हिन्दू ही बने रहे। स्वामी दयानन्दके सिद्धान्तोंसे मतभेद रखनेवाले लोग भी उन्हें 'हिन्दू धर्मका रक्षक' माननेमें सङ्कोच नहीं करते।

सन् १८६३ ई० के लगभग ही पञ्जाबमें पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरीके व्याख्यानों और उनकी कथाओंकी बड़ी धूम मची हुई थी। जालन्धरके पादरी गोकुलनाथके व्याख्यानोंने कपूर्थला-नरेश महाराज रणधीरसिंहको इसाई मतकी ओर झुका दिया था। पण्डित श्रद्धारामजी तुरन्त सन् १८६३ ई० में कपूर्थले पहुँचे और उन्होंने महाराजको प्राचीन वर्णाश्रम धर्मके स्वरूपका ऐसा सुन्दर निरूपण किया कि उनकी जितनी शङ्काएँ थीं वे दूर हो गईं और पञ्जाबका एक राज्य इसाई बननेसे बच गया। समूचे पञ्जाबमें घूमकर पण्डित श्रद्धारामजी उपदेश और व्याख्यान देते और रामायण, महाभारत आदिकी कथाएँ सुनाते। इनकी कथाओंने दूर-दूरके लोगोंको अपनी ओर खींचा। इनकी अमृत-वाणीके प्यासोंकी बड़ी भीड़ लगा करती थी। इनकी वाणीमें अजीब रस था और इनकी भाषा बड़ी ज़ोरदार होती थी। ठावँ-ठावँपर इन्होंने धर्मसभाएँ स्थापित कीं और उपदेशकोंका एक मण्डल तैयार कर दिया। इन्होंने पञ्जाबी और उर्दूमें भी कुछ पोथियाँ लिखी हैं, पर अपनी मुख्य पुस्तकें हिन्दीमें ही लिखीं। उधर स्वामी दयानन्दजीका 'सत्यार्थ-प्रकाश' था, इधर इनका अपना सिद्धान्त-ग्रन्थ 'सत्यामृत-प्रवाह' बड़ी प्रौढ़ भाषामें लिखा हुआ था। ये बड़े ही स्वतन्त्र विचारके मनुष्य थे और वेदशास्त्रके असली अर्थको किसी भी मूल्यपर छिपाकर कहना अनुचित समझते थे। इसीसे स्वामी दयानन्दजीकी बहुतसी बातोंका ये बराबर विरोध करते रहे। इन्होंने बहुतसी ऐसी भी बातें कह और लिख डाली थीं जिन्हें कुछ लोग नहीं सह सकते थे, यहाँतक कि कुछ लोगोंने इन्हें 'नास्तिक' तक कहनेमें सङ्कोच न किया, पर जबतक वे जीते रहे तबतक सारा पञ्जाब उन्हें हिन्दू धर्मका स्तम्भ समझता रहा।

पण्डित श्रद्धारामजीने सन् १८६७ ई० में "आत्म-चिकित्सा" नामकी एक "अध्यात्म-सम्बन्धी" पुस्तक लिखी जिसे सम्वत् १८७१ में हिन्दीमें अनुवाद करके छपाई। इसके अतिरिक्त "तत्त्वदीपक" "धर्मरक्षा" "उपदेश संग्रह" (व्याख्यानोंका संग्रह) "शतोपदेश" (दोहे) इत्यादि धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें लिखीं जिनका बहुत प्रचार हुआ। जिस साल मालवीयजीने एफ़० ए० परीक्षा पास की उसी साल सन् १८८१ ई० में अपनी उज्ज्वल कीर्त्ति छोड़कर पण्डित श्रद्धारामजी संसारसे चल दिए।

मालवीयजी बचपन ही से अपने दादा और पिताजीकी कृष्ण-भक्तिकी गोदमें पले थे। बड़े होकर जब वे स्कूलमें अध्यापक हुए थे तभी उन्हें यह बात काँटेकी तरह खटकती रही कि हिन्दू बालक अपने धर्मसे बिलकुल अपरिचित हैं। सन् १८८५ ई० में झज्झर-निवासी व्याख्यान-वाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्म्माजीने मथुरासे 'मथुरा समाचार' नामक पत्र निकाला जिसमें सनातनधर्मके सिद्धान्तोंपर निरन्तर प्रकाश डाला जाता रहा। सन् १८८६ ई० में जो कलकत्तेमें

दूसरी राष्ट्रीय महासभा हुई उसमें मालवीयजी तो पहुँचे ही थे, पण्डित दीनदयालुजी भी मुन्शी हर सुखरायके लाहौरसे निकलनेवाले 'कोहेनूर' के सम्पादककी हैसियतसे सम्मिलित हुए थे। मालवीयजीका पण्डित दीनदयालुजीसे परिचय हुआ और दोनोंमें उसी राष्ट्रीय महासभाके पुण्य अवसरपर मित्रता की ऐसी गाँठ लगी जो अबतक उसी दृढ़ताके साथ बँधी हुई है। उस राष्ट्रीय महासभाको देखकर दोनों महानुभावोंके मनमें यही विचार उठा कि इसी प्रकार सनातनधर्मकी भी कोई सुसङ्गठित संस्था हो जिसमें सभी सनातनधर्मी बैठकर एक साथ अपने प्यारे धर्मके पुनरुद्धार और उसकी रक्षा करनेका उपाय सोचें।

संयोग अच्छा था। पहले तो हरिद्वारके पास कनखलमें एक 'श्री गोवर्णाश्रमधर्म सभा कनखल' नामक एक संस्था बनी, किन्तु इसका काम ढीला रहा और यह गङ्गाजीकी तीव्र धारामें विलीन हो गई। इसीके आधारपर कमाऊँके पण्डित विनायकदत्त पाण्डेजी तथा पण्डित दीनदयालुजी आदिके परिश्रम और सहयोगसे सन् १८८७ ई० में महारानी विक्टोरियाकी जुबिलीके अवसरपर गर्मियोंसे पहले हरिद्वारके पवित्र तीर्थपर सनातनधर्मियोंकी बड़ी भारी सभा हुई। दूर दूरसे बहुतसे धर्म-प्रेमी इकट्ठा हुए। कपूर्थलाके दीवान श्री रामजसराय सी० एस० आइ०, लाहौरके राजा हरिवंश सिंह, पण्डित नन्दकिशोरदेव शर्मा, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, पण्डित देवीसहायजी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदि कितनेही विद्वान् और विशिष्ट व्यक्ति उस सभामें आए। सन् १८८२ ई० में प्रसिद्ध थियोसोफ़िस्ट कर्नल औलकौटने अदयारमें थियसोफ़िकल सोसाइटीके लिये ज़मीन ले ली थी और उनका भी मत चल पड़ा था। वे भी उक्त सभामें शामिल हुए और व्याख्यान दिया। उन्होंने सनातनधर्मियोंको सावधान करते हुए कहा था कि "अपने धर्मकी बुझी हुई चिनगारी तलाश करो और उसे फिरसे उद्दीपन करो।' पता नहीं औलकौट साहबने यह कैसे अनुमान कर लिया था कि हिन्दू धर्मकी चिनगारी बुझ गई थी। उस सभामें किसीने उन्हें यह समझाया या नहीं कि हिन्दू धर्म वह दिव्य ज्योति है जो भयङ्कर-से-भयङ्कर तूफ़ानोंके आनेपर भी उसी तेजसे जलती रही है। हाँ, सभी आँखें उसे सभी समय नहीं देख पातीं। श्रद्धा और विश्वासका चश्मा चढ़ाए बिना वह जल्दी नहीं दिखाई पड़ती। उसी सभामें प्रसिद्ध "भारत-धर्म-महामण्डल' की स्थापना हो गई और चारों ओर धर्मका प्रचार होने लगा।

प्रयागके वकील पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको कचहरी न लुभा सकी। व्यासका पुत्र आख़िर कहाँतक अपने संस्कारोंको समेटकर रख सकता था। मालवीयजी भी व्यास बन गए पर अपने पिताजी के समान नहीं, बल्कि कुछ थोड़ेसे परिवर्त्तनके साथ। भारतधर्म-महामण्डलके महोपदेशकोंमें इनकी भी गिनती होने लगी। प्रयागकी हिन्दू-धर्म-प्रवर्द्धिनी सभासे लेकर सनातनधर्मके बड़े सम्मेलनोंमें शायद ही कोई ऐसा सम्मेलन छुटा हो जिसमें मालवीयजीने सनातनधर्मकी महिमा न सुनाई हो और कथाएँ न कही हों। पण्डित दीनदयालु शर्मा और पण्डित मदनमोहन मालवीय ये दोनों ही सनातनधर्मके आधार समझे जाने लगे। सन् १८८५ ई० में २४ से २७ मार्च तक माननीय राजा लक्ष्मणदास सेठ सी० आई० ई० के सभापतित्वमें श्री वृन्दावनमें महामण्डलका दूसरा अधिवेशन हुआ। उसमें अध्यापक मालवीयजी पधारे और सनातनधर्मकी इस अखिल भारतीय संस्थामें मालवीयजीकी मधुर वाणी पहली बार सुनी गई। जिस प्रकार राष्ट्रीय महासभाके द्वितीय अधिवेशनमें मालवीयजीके पहले भाषणने ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया था उसी तरह भारत-धर्म-महामण्डलके द्वितीय अधिवेशनमें मालवीयजीके पहले ही व्याख्यानने सनातनधर्मी जनताको यह सुझा दिया कि 'अब कोई डर नहीं है, रक्षक आ पहुँचा है।' और सचमुच जिन्होंने ऐसी कल्पना की थी, और आशा लगाई थी उनकी

कल्पना भी सच हो गई और उन्हें निराश भी न होना पड़ा। सन् १९०० ई० में ९ से १३ अगस्त तक दिल्लीमें भारतधर्म-महामण्डलका बड़ा शानदार जल्सा हुआ और उसके सभापति हुए श्रीमान् महाराजा बहादुर दरभङ्गानरेश। मण्डपका पण्डाल ऐसा भव्य और सुन्दर बना था कि आजतक वैसा पण्डाल किसी भी सम्मेलनमें देखनेमें नहीं आया। मालवीयजी तो उस मण्डपको ही देखकर उछल पड़े थे। वह अधिवेशन सचमुच इतना शानदार हुआ कि उसके बारेमें लोगोंने कह दिया था कि 'न भूतो न भविष्यति' अर्थात् 'ऐसा न हुआ है न आगे होगा'। कम-से-कम अबतक तो वह बात सच होती चली जा रही है। देखें इस युगके जवानोंके भाग्यमें वैसा अनोखा सम्मेलन देखना लिखा है कि नहीं।

इसीके बाद ही निगमागम मण्डलीके संस्थापक श्री स्वामी ज्ञानानन्दजीसे पण्डित दीनदयालुजीका परिचय हुआ तो स्वामीजीने अपनी मण्डलीको भारतधर्म-महामण्डलके मिलाकर काम करनेकी इच्छा प्रकट की। व्याख्यान-वाचस्पतिजीको तो कोई भार लेनेवाला चाहिए था, उन्होंने मण्डलका काम उनके सिर छोड़ दिया और अपने धर्म-प्रचारके लिये इन्दौर चले गए। वहाँसे लौटनेपर स्वामीजीके कार्य्योंसे उनका मतभेद होने लगा। इसलिये सन् १९०२ ई० में मथुरामें महामण्डलकी रजिष्ट्री कराकर नई समितिके हाथ प्रबन्धका भार सौंपकर पण्डितजीने महामण्डलसे हाथ खींच लिया। इन नये हाथोंमें आकर महामण्डलकी क्या गति हुई यह तो अब सभी जान गए हैं। काशीमें अब इसका प्रधान कार्य्यालय है और स्वामी ज्ञानानन्दजी ही इसके सब कुछ हैं। अब मालवीयजीकी कथा सुनिए। स्वामी ज्ञानानन्दजीकी कार्य्य-प्रणालीसे मालवीयजीको भी सन्तोष न हो सका और इन्होंने एक नई सभा स्थापित करनेका विचार कर लिया था। सन् १९०६ ई० में प्रयागके कुम्भके अवसरपर मालवीयजीने 'सनातनधर्म' का विराट् अधिवेशन कराया जिसमें उन्होंने 'सनातनधर्म संग्रह' नामका एक बृहत् ग्रन्थ तैयार कराकर महासभामें उपस्थित किया और उसी सम्मेलनमें हिन्दू जाति तथा सनातनधर्मकी रक्षाके लिये तथा देशकी अविद्या दूर करनेके लिये 'हिन्दू-विश्वविद्यालय' स्थापित करनेका प्रस्ताव महासभामें स्वीकृत हो गया। उस सम्मेलनमें ब्रह्मचर्य्याश्रम खोलनेका भी प्रस्ताव पास हुआ था।

कई बरस बादतक उस महासभाके कई बड़े-बड़े अधिवेशन मालवीयजीने कराए और दूर-दूरसे बड़े-बड़े विद्वान्, पण्डित, धनी-मानी, राजे-महाराजे उन सम्मेलनोंमें आते रहे। अगले कुम्भमें त्रिवेणीके सङ्गमपर व्याख्यान वाचस्पतिजीका 'सनातनधर्म महासम्मेलन' भी इस 'श्री सनातनधर्म महासभासे' ही आ मिला और सन् १९२१ ई० में जब एक ओर गान्धीकी आँधीमें सारा देश उड़ा जा रहा था, उस समय भी मालवीयजी बड़ी शान्तिसे सनातनधर्मकी वाटिकामें बाड़ लगा रहे थे। सनातनधर्म-सभा इन्हीं तूफ़ानी दिनोंमें बनी और काम करने लगी। तबसे मालवीयजीकी सनातनधर्म-सभा अलग काम करती रही है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसकी प्रधान शाखा पञ्जाब सनातनधर्म प्रतिनिधि सभाने जो पञ्जाबमें सनातनधर्मका शङ्ख फूँका है उसकी गूँज पञ्जाबके बाहर भी पहुँच गई है और लोग चौंक उठे हैं। इसका श्रेय अधिकतर गोस्वामी गणेशदत्तजीको है। श्री तीर्थराज प्रयागमें संवत् १९८४ के माघ कृष्ण ११ से माघ शुक्ल द्वितीया, तदनुसार सन् १९२८ जनवरीकी तारीख़ १८ से २४ तक अखिल-भारतवर्षीय-सनातनधर्म-महासभाका अधिवेशन मालवीयजीके सभापतित्त्वमें हुआ। इसमें भारतवर्षके अनेक प्रान्तोंके और अनेक हिन्दू राज्योंके प्रसिद्ध शास्त्र जाननेवाले पण्डित आए और प्रत्येक प्रस्तावपर अच्छी तरहसे विचार हुआ। २७ जनवरी सन् १९२८ ई० को वसन्तपञ्चमीके दिन काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें मालवीयजीने अखिल-भारतवर्षीय

सनातनधर्म-महासभाकी नींव डाली। मालवीयजी इसके अध्यक्ष-पदपर प्रतिष्ठित रहे। सनातनधर्म महासभाके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये काशीसे 'सनातनधर्म' नामका साप्ताहिक प्रकाशित होने लगा और लाहौरसे 'विश्वबन्धु' निकला।

हरिद्वारका ऋषिकुल ब्रह्मचर्य्याश्रम भी मालवीयजीके प्रसादसे वञ्चित न रहा। सबसे पहले मालवीयजीने ही अपने पाससे पचीस रुपए रायबहादुर दुर्गादत्त पन्तजीको दिए थे कि जाओ जाह्नवी तटपर ब्रह्मचर्य्याश्रम स्थापित करो। सन् १९०६ ई० में उसकी स्थापना हुई। तभीसे आप उसके संरक्षकों (ट्रस्टियों) में रहे हैं और लगातार दस वर्षतक उसकी शिक्षा-समितिके अध्यक्ष रह चुके हैं और बराबर उसके अधिवेशनोंमें सम्मिलित होकर उसके पाठ्य-क्रममें परामर्श देते रहे हैं।

सन् १९१९ ई० के जलयानवाला बाग़ हत्याकाण्डके अवसरपर मालवीयजीने जो पञ्जाबकी मरहमपट्टी की और उसके आँसू पोंछे उसने मालवीयजीको पञ्जाबका बन्धु बना दिया और उन्हें सारा प्रान्त अपना सगा सम्बन्धी समझने लगा और देवताकी भाँति उनकी पूजा करने लगा। सन् १९२४ ई० में वे रावलपिण्डीमें प्रान्तीय सनातनधर्म सम्मेलनके सभापति हुए। उस वर्ष तीन सौ से अधिक सभाएँ बनीं और सौ से अधिक महावीरदल स्थापित हुए। उस सभामें उन्होंने अछूतोंको सार्वजनिक कूओंसे जल भरने देने और सार्वजनिक स्कूलोंमें पढ़ने देनेका उपदेश दिया। सन् १९२५ ई० में अमृतसरके प्रसिद्ध दुर्गियाना मन्दिर और सरोवरकी धर्म-यज्ञ करवा कर स्थापना की।

सन् १९२८ ई० के मार्च महीनेमें उनकी पञ्जाब-यात्रा मार्केकी हुई। सनातनधर्म-सभा, आर्य्यसमाज, हिन्दू-सभा, कांग्रेस-कमेटी और म्युनिसिपल कमेटी सबने आपका जी खोलकर सम्मान किया। पञ्जाबने दिखला दिया कि अपने हृदय-सम्राट्की पूजा किस प्रकार की जाती है। जगह-जगह, स्टेशन-स्टेशनपर सब लोग इनकी पूजाके लिये उपहार लिए खड़े थे। सनातनधर्म ही नहीं बल्कि सारी आर्य्य-जाति इन्हें अपना समझकर इनकी अर्चना करनेमें तत्पर थी। एक बार

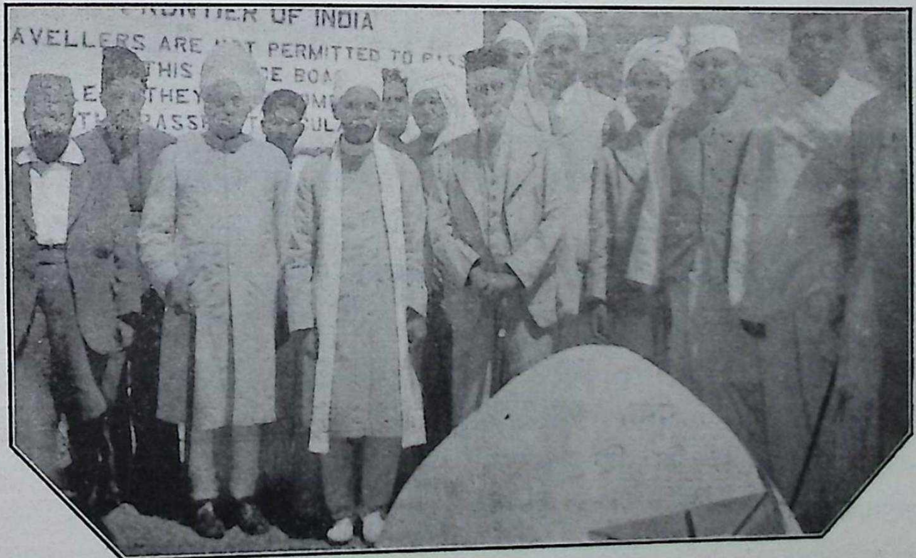
FRONTIER OF INDIA
AVELLERS ARE NOT PERMITTED TO PASS

पञ्जाबके सनातनधर्मके दौरेके अवसरपर पेशावरमें 'भारतके द्वार' पर मालवीयजी।

लाहौरके सनातनधर्म-महासम्मेलनमें कुछ-आर्य्यसमाजी मित्रोंने पुराणोंपर आक्षेप करते हुए कुछ पर्चे बाँटे थे। मालवीयजीके हृदयपर इससे बड़ा आघात पहुँचा। उस सभामें लाला हंसराजजी आदि कुछ आर्य्यसमाजके नेता भी मौजूद थे। मालवीयजीने अपने दुःखको प्रकट करते हुए कहा कि 'श्री स्वामी दयानन्दजी बड़े विद्वान् और तपस्वी थे किन्तु वे पुराणोंका मर्म नहीं समझ पाए थे। मैं पुराणोंकी सत्यतापर शास्त्रार्थ करनेको हर समय तैयार हूँ, जो चाहे सामने आवे'। पर मालवीयजीकी इस चुनौतीका कुछ भी उत्तर न मिला।

सन् १९२९ ई० में पञ्जाबमें सनातनधर्मके प्रचारके सम्बन्धमें दौरा किया और सिन्ध-बलोचिस्तान-सम्मेलनके सभापति हुए। इसके बाद २१ से २४ अप्रैल सन् १९३४ ई० में रावलपिण्डीमें सनातनधर्म-महासम्मेलन आपकी अध्यक्षतामें हुआ। वहाँ जो स्वागत हुआ और जलूस निकाला गया वह अपूर्व ही था। यह मालवीयजीके ही उद्योगका फल है कि प्रति वर्ष प्रति पर्वपर धार्मिक-महोत्सव-कथा इत्यादि होती रहती है, जिससे धार्मिक वातावरण बनता चला जाता है और लोग भी धर्मभीरु हो चले हैं।

कितनी सनातनधर्म सभाओंके ये सभापति हुए, कितनी संस्थाओंकी नींव रक्खी, कितने भवनोंका उद्घाटन किया, यह तो बड़ी लम्बी गाथा है। गणेश हों तो लिखें, व्यास हों तो वर्णन करें।

गङ्ग नहरका झगड़ा

सन् १९१४ ई० में सरकारी नहर-विभागने हरिद्वारमें गङ्गाजीके प्रवाहको कुछ रोककर नहर निकालनेका प्रयत्न किया। पर हिन्दुओंकी ओरसे आन्दोलन हुआ और आपसमें फ़ैसला हो गया, किन्तु वह फ़ैसला कुछ इस प्रकार बना कि हिन्दू सदस्य उसे भली प्रकार न समझ सके और सन् १९१६ ई० में फिर गङ्गाजीकी अविच्छिन्न धाराके लिये आन्दोलन मचा। हरिद्वारमें १८ तथा १९ दिसम्बर सन् १९१६ ई० को युक्तप्रान्तके माननीय लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर सर जेम्स स्कौर्जी मेस्टन के० सी० एस्० आई०, एल्० एल्० डी० के सभापतित्वमें एक सभा हुई जिसमें छः भारतीय नरेश, सात सरकारी अफ़सर और सोलह अन्य सज्जन और प्रतिनिधि थे जिनमें मालवीयजी भी थे। उन्होंने जो मत प्रकट किया था वह नीचे दिया जाता है। मालवीयजी बोले कि:—

"सन् १९१४ ई० वाले सम्मेलनमें जो लोग उपस्थित थे उन्होंने उस निर्णयको ठीक तरह नहीं समझा जो उन्हें मिलनेवाला था। उनके मनमें इस बातकी तनिक भी शङ्का नहीं थीकि सरकार अपने वचनका पालन नहीं कर रही है। बात केवल इतनी ही थी कि उन्होंने निर्णयको ठीक नहीं समझा। दो बातोंसे ही सन्देह पैदा हुआ था। पहला तो यह कि जो नई धारा खुलनेवाली थी उसका स्वरूप नहरके जैसा न हो। नहर तो एक हज़ार मीलतक चली गई है किन्तु उसपर कहीं घाट नहीं है। लोगोंको गङ्गाजीतक जानेमें बड़ा रुपया व्यय करना पड़ता है। सरकारने जो सूचना प्रकाशित की है उससे मैंने यह समझा कि बाँधमें एक और दरवाज़ा खुल जायगा किन्तु अब पता चला है कि यह दरवाज़ा उस फाटकमें रहेगा जो बराबर पानीके ऊपर रहेगा। हमें नहरसे कोई विरोध नहीं है, हमें नहरके लिये अधिक पानी ले लेनेमें भी कोई विरोध नहीं है, किन्तु हम चाहते हैं कि बाँधमें एक ऐसा मार्ग बना दिया जाय कि हमारी आवश्यकताके लिये उसमेंसे निरन्तर पर्य्याप्त मात्रामें जल आता रहे। इस विषयमें भारत भरमें जो गम्भीर क्षोभ फैला हुआ है वह मैं वर्णन नहीं कर सकता। लोग बीकानेर, जैसलमेर आदि दूर-दूर देशोंसे आते हैं और उनको यह विश्वास होता है कि गङ्गाजीकी धारा अविच्छिन्न और शुद्ध है। मेरा कथन यह है कि धारा बिल्कुल प्राकृतिक होनी चाहिए। उसमें किसी तरहका कृत्रिम बाँध आदि नहीं होना चाहिए। समाचार-पत्रोंमें जो इस विषयपर वादविवाद प्रकाशित हुए हैं उनसे स्पष्ट है कि लोगोंकी यह इच्छा है कि इतना जल आवे

कि वे आनन्दसे स्नान कर सकें। गङ्गाजीमें हज़ारों, लाखों मनुष्य स्नान करते हैं। इसलिये यह मार्ग इतना चौड़ा होना चाहिए कि नीचेके सभी स्थानोंपर शुद्ध जल मिल सके। फाटक लगा देनेसे सभी असन्तुष्ट जान पड़ते हैं। सम्भवतः सन् १९१४ ई० की सभामें उपस्थित लोगोंने और जनताने इस विषयको ठीकसे नहीं समझा था। गङ्गाजीकी पवित्रताका ध्यान रखकर यह असन्तोष अवश्य दूर करना चाहिए। यदि इसके लिये कुछ अधिक धन भी व्यय हो तो भी जनताको सन्तुष्ट करना ही चाहिए। कहा जाता है कि यदि नहरका पानी कम कर दिया गया तो किसानोंको बड़ा कष्ट होगा, किन्तु कोई भी हिन्दू अपने आत्मा और धर्मके आदेशोंसे अपने आर्थिक लाभको अधिक नहीं समझेगा। इस दृष्टिसे पाँच फ़ीटका द्वार काफ़ी नहीं है। पाँचसे दस लाख यात्री स्नान करनेके लिये तीर्थोंपर आते हैं, बड़ी-बड़ी दूरसे आते हैं और उन्हें बड़ी असुविधाका सामना करना पड़ता है। अपने विश्वासके लिये वे कोई भी कष्ट सहनेको तैयार हैं। जब लोगोंके विश्वासकी बात है तो उसके लिये एक या दो लाख रुपयेके व्ययपर विचार नहीं करना चाहिए। यह समझ लीजिए कि उनका विश्वास है कि गङ्गाजी लोगोंको शुद्ध करती और पापोंका नाश करती हैं। मुझे आशा है कि इसके लिये अवश्य कुछ उपाय किया जायगा।"

लाट साहबने फाटकके विषयमें प्रश्न किया तो मालवीयजीने उत्तर दिया कि "यदि यह फाटक उसी तरह खुला हो जैसे खम्भोंपर बना हुआ पुल होता है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। पर मैं फाटक या जलद्वार बनानेके विरुद्ध हूँ।"

इसका फल यह हुआ कि यह सिफ़ारिश मान ली गई और गङ्गाजीकी धारा अविच्छिन्न रखनेका प्रबन्ध हो गया।

११ अप्रैल सन् १९२३ ई० को फिर गङ्गा सभा और नहर-विभागके अफ़सरोंकी, हरकी पैड़ीपर पर्य्याप्त जल पहुँचानेके निमित्त, एक सभा हुई, जिसमें मालवीयजी भी मौजूद थे। गङ्गा सभाकी शिकायत यह थी कि नहर-विभागने सन् १९१६ ई० में दिए हुए वचनोंका पालन नहीं किया। चीफ़ इञ्जिनीयरने अपनी कठिनाइयाँ सामने रक्खीं और आगेसे जाड़ेके दिनोंमें अधिक जल वहानेका वचन दिया। इसी सभामें यह प्रस्ताव पेश किया गया कि धारा नं० १ में एक हज़ार घनवर्ग जल प्रति सेकिण्ड वहानेके वदले अब तीन हज़ार घनवर्ग जल प्रति सेकिण्ड वहाया जाय। चीफ़ इञ्जिनीयरने कहा कि यह सन् १९१६ ई०के फ़ैसलेके विरुद्ध वात है। इसपर मालवीयजीने ९ मई सन् १९२२ ई०के एक नहर-विभागके पत्रकी ओर ध्यान आकर्षित किया जिससे कि नहर-विभाग उक्त कार्य्य करनेके लिये वाध्य था। इसपर चीफ़ इञ्जिनीयरने फिरसे जाँच करनेका वचन दिया।

जो लोग गङ्गाजीको एक साधारण नदी समझते हैं उनके लिये यह आन्दोलन भले ही वाहियात जँचता हो, पर जो गङ्गाजीकी पवित्र धारामें अपनी जननी और पालन करनेवाली माताका स्वरूप देखता हो वह भला गङ्गाजीकी दुर्दशाको कैसे सहन कर सकता था।

प्रयागमें सत्याग्रह

वहुतसे लोगोंने वीच-वीचमें वहुत वार मालवीयजीको 'नरमदलवाले', 'सरकारसे दवनेवाले', 'जेलसे दूर भागनेवाले' और 'कुर्सीवाले राजनीतिक' तक कह डाला, पर ये लोग उन्हीं स्कूलके इन्सपेक्टरोंकी तरह हैं जो स्कूलका निरीक्षण करनेके समय वहाँके किसी कोनेमें मकड़ीका जाला देखकर स्कूलको एकदम गन्दा वता डालते हैं। पर जिन्होंने मालवीयजीको भीतर-वाहर परखा है वे ही उनका वड़प्पन देख पाते हैं। महापुरुषकी थाह लगानेके लिये चाहिए महापुरुष जैसा दिल। किसीको अच्छा या वुरा तो कोई भी कह सकता है। आख़िर किसीका मुँह तो कोई

पकड़ नहीं सकता पर उसके गुणोंको, उसके भीतरी भावोंको अच्छी तरह समझनेके लिये चाहिए समालोचककी बुद्धि जो न्याय और अन्याय, गुण और अवगुण, भलाई और बुराई सबको परख ले। मालवीयजीको अच्छी तरह जाननेवाले लोग कह सकते हैं कि मालवीयजीने मौक़ा पड़नेपर कभी पीछे पैर नहीं रक्खा। जो दूसरोंको *'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्'* का उपदेश देता हो—वह कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको देखकर कभी नहीं डर सकता। सन् १९२४ ई० में अर्धकुम्भी पड़ी। प्रयागमें गङ्गाजी सदा अपनी चाल बदलती रहती हैं। आज क़िलेके पास यमुनासे भेंट रही हैं तो कल झूँसीके किनारे उनकी मुलाक़ात हो रही है। हर बरसातके बाद गङ्गाजी कुछ नया रङ्ग दिखाती रहती हैं। उस साल गङ्गाजीकी धारा ऐसी हो गई थी कि अधिक संख्यामें लोगोंका त्रिवेणी-सङ्गममें स्नान करना अवश्य भयानक था। लाखों भक्त और यात्री जमा थे। वहाँके अधिकारियोंने प्रान्तीय-सरकारसे बात-चीत करके यह हुकुम निकाल दिया कि त्रिवेणी-सङ्गमपर कोई स्नान नहीं करने पावेगा। मालवीयजीको मालूम हुआ। उन्होंने प्रान्तीय सरकारसे बड़ी लिखा-पढ़ी की। स्थानीय अधिकारियोंसे भी त्रिवेणी-सङ्गमपर स्नान करनेकी आज्ञा माँगी, पर सब बेकार। यह मालवीयजीका अपना अपमान नहीं था, यह था सारी हिन्दू जातिका अपमान। मालवीयजी इसे सहन न कर सके और उन्होंने सत्याग्रह करनेकी ठान ली। सारा मेला मालवीयजीके साथ था। सभी त्रिवेणीमें ग़ोते लगाना चाहते थे। गङ्गा और यमुनामें ही स्नान करना होता तो लोग हरिद्वारसे प्रयागतक कहीं गङ्गाजी या जमुनाजीमें डुबकी लगा सकते थे। पर वे तो आए थे 'तिरवेनीजीके असनान' को। आगे-आगे मालवीयजी, पीछे-पीछे कोई दो सौ और लोग सङ्गमकी ओर चल पड़े। ठीक सङ्गमपर एक बल्लियोंका मज़बूत बन्द बना हुआ था कि जिससे लोग सङ्गममें न स्नान कर सकें। वहाँ पहुँचनेपर पुलीसने मालवीयजीको रोका और इनके पास जो सीढ़ी थी, वह भी इनसे ले ली गई। मालवीयजी और उनके सभी साथी वहीं बैठ गए। इन सत्याग्रही सिपाहियोंमें हमारे राष्ट्रके आजके कर्णधार पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी थे, जो मालवीयजीके सेनापतित्वमें त्रिवेणीके तटपर सत्याग्रहकी पहली कक्षामें भर्त्ती हुए थे। यह कौन जानता था कि सत्याग्रह-पाठशालाका यह छात्र एक दिन इतना नाम कमा लेगा। सूर्य्य सिरपर चढ़ता चला गया, पर ये सत्याग्रही वहाँसे न टले। ऊपर सूर्य्य तप रहा था, नीचे रेती और इन दोनोंके बीच इस पुण्य क्षेत्रमें एक पुण्य व्रत लेकर ये तपस्वी तप रहे थे। इनके दोनों ओर पैदल और घुड़सवार पुलीस खड़ी थी। पुलीस भी उकता गई थी और बैठे हुए लोग भी। जवाहरलालजीको क्या सूझा कि झट कूदकर उस बन्दपर चढ़ गए। फिर क्या था, बहुतसे लोग उनके पीछे हो लिए। जवाहरलालजीने उस बन्दपर राष्ट्रीय झण्डा भी टाँग दिया। घुड़सवार पुलीस आदमियोंको धक्का दे रही थी और डण्डे भी घुमा रही थी, पर किसीको चोट नहीं पहुँचाई। उधर यह सब हो रहा था, इधर मालवीयजी चुप्पी साधे बैठे थे, जैसे सिद्धि पा जानेपर साधकका हाल होता है। पर थोड़ी देरके बाद ही—जैसे बिजलीका बटन दबानेसे—वे अचानक घुड़सवारों और पैदल सिपाहियोंके बीचसे तीरकी तरह निकल गए। पण्डित जवाहरलालने अपने आत्मचरितमें इस घटनाका उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'मालवीयजीने जो उस समय करतब दिखाया, वह साधारण आदमीके लिये भी कठिन था, फिर बुढ़ापेकी कायामें लिपटकर ऐसी फुर्त्ती दिखाना तो बड़े भारी आश्चर्य्यकी बात थी।' फिर क्या था, सब उनके पीछे-पीछे धारामें कूद पड़े। इधर-उधर हाथ-पैर पीटकर पुलीस भी वहाँसे हट गई। सत्याग्रहकी जीत हो गई।

हरिद्वारमेँ फिर तैयारी

अप्रैल सन् १९२७ ई० मेँ हरिद्वारमेँ कुम्भ होनेवाला था। हिन्दुओँके विरोध करने और गङ्गा सभाके बहुत कहने-सुननेपर भी मेलेके अधिकारी न माने और ब्रह्मकुण्ड (हरकी पैड़ी) पर एक पुलिया बना ली, जिसपर अफ़सर लोग जूता पहनकर चढ़ते थे। सन् १९२२ ई० मेँ ही लोगोँके विरोध करनेपर वह पुल हटा दिया गया था और उसके पास ही दस-पन्द्रह फ़ीटकी दूरीपर द्वीप चबूतरा मौजूद था, फिर भी वहाँके अधिकारियोँने उसके लिये हठ की। कभी-कभी सरकारी अफ़सर सरकारसे भी बढ़कर हठी हो जाते हैँ। हठीली माँके बेटे भी हठीले होँ तो अचरज क्या? मालवीयजी वहाँ पहुँचे और अधिकारियोँसे बात-चीत की पर उसका कुछ फल न हुआ। मालवीयजीने कह दिया कि यदि पुल न तोड़ा जायगा तो सत्याग्रह होगा। जितने स्वयंसेवक वहाँ काम करनेके लिये आए थे वे सब सत्याग्रहियोँमेँ शामिल होनेको उत्सुक थे। मालवीयजीने तेरह सौ शब्दोँका एक बड़ा लम्बा चौड़ा तार संयुक्तप्रान्तके गवर्नरके नाम भेजा जो नीचे दिया जाता है।

हरिद्वार,
१० अप्रैल सन् १९२७ ई०।

सनातनधर्म महासम्मेलनके अध्यक्ष और हिन्दू महासभाके उपाध्यक्षकी हैसियतसे मैँ एक पुलके प्रयोगके सम्बन्धमेँ निम्नाङ्कित बातोँकी ओर श्रीमान्‌का ध्यान आकर्षित करता हूँ। हरिद्वारमेँ धार्मिक कुण्डके ऊपर अस्थायी रूपसे हिन्दुओँके विरोध करनेपर भी इस पुलका निर्माण हुआ है। जो अगणित हिन्दू तीर्थयात्रा करने आते हैँ उनके मनमेँ इस पुलके बननेसे बड़ी उत्तेजना फैली हुई है। जो द्वीप चबूतरा पवित्र कुण्डके सम्मुख स्थित है, क़रीब बारह वर्ष पहले बना था।

इस घाटके निर्माणके पूर्व, कुण्डमेँ स्नान करनेवाले यात्रियोँको सँभालनेके लिये कुण्डके ऊपर एक पुल बना दिया जाता था। जहाँपर पुल खड़ा किया जाता है उस जगहसे केवल दस या पन्द्रह फुटकी दूरीपर द्वीप चबूतरा बनाया गया है। अतएव पुल बनानेकी आवश्यकता पहलेसे अब और भी कम हो गई है, और हिन्दू लोग बहुत दिनोँसे इसका विरोध भी करते आ रहे हैँ। हिन्दू जनताकी सम्मति मानकर कुण्डके ऊपरवाला पुल सन् १९२२ ई० मेँ उखाड़ दिया गया था।

गत अक्तूबर मासमेँ श्रीगङ्गा सभाको पता चला कि ब्रह्मकुण्डमेँ पुलके बदले एक निरीक्षण मचान बनानेकी स्वीकृति म्युनिसिपल बोर्डने दी है। २० अक्तूबर सन् १९२६ ई० के एक पत्रमेँ सभाने इस प्रस्तावका विरोध किया। श्रीगङ्गा सभाके मन्त्रीने म्युनिसिपल बोर्डके पास इस आशयका एक पत्र भेजा।

“यह स्मरण होगा कि हिन्दुओँने इस पुलका विरोध कई आधारोँपर किया था। उनमेँ एक यह है कि इस प्रबन्धके कारण अत्यन्त धार्मिक स्थान ब्रह्मकुण्ड है, उसके भीतरतक भी हिन्दू पहुँच जाते हैँ और उसके ऊपर कई हिन्दू भी जूता पहनकर चले गए हैँ। प्रस्तावित निरीक्षण मचानके सम्बन्धमेँ वे विरोध उसी रूपसे सत्य हैँ। स्नानके प्रबन्धके लिये जो बोर्डने उत्साह दिखाया है उससे श्रीगङ्गा सभा अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट करती है, लेकिन वह समझती है कि द्वीप चबूतरेकी सीढ़ियोँके समीप, या उन्हीँके ऊपर, या ब्रह्मकुण्डके उत्तरवाले पुलके समीप, एक उसी प्रकारका मचान बनानेसे स्नानके प्रबन्धकी व्यवस्था हो सकती है। जिस हिन्दू जातिके धार्मिक कार्य्योँकी पूर्त्तिके निमित्त सारा प्रबन्ध बोर्ड एवं मेलेके अधिकारियोँ-द्वारा होता है, उसकी भावनाओँको बिना चोट पहुँचाए हुए भी उस उद्देश्यकी पूर्त्ति भली भाँति हो सकती है। वास्तवमेँ बोर्ड या कुम्भ मेलेके अधिकारियोँका लक्ष्य भी यही है। अतएव श्रीगङ्गा सभा, आदरसहित बोर्डसे ऊपर लिखी हुई बातोँको ध्यानमेँ रखकर अपने

निर्णयपर पुनः विचार करने एवं ऐसा करके हिन्दू जनताको अनुगृहीत होनेकी प्रार्थना करती है।"

२६ नवम्बर सन् १९२६ ई० की सभाके सभापति और चार अन्य सदस्योंने श्रीयुत क्रीस्टीसे भेंट की। उन्होंने पुल हटानेसे इनकार किया लेकिन इससे सहमत हुए कि कार्य्यपर नियुक्त अफ़सरोंको छोड़कर कोई भी पुलपर नहीं जा सकेगा और न कोई वहाँपर सिगरेट पी सकेगा या पुलपर थूक सकेगा और न कोई वहाँपर चमड़ेका जूता पहनकर जा सकेगा।

अफ़सरोंके प्रयोगके लिये बना चमड़ेका जूता देनेका जो प्रस्ताव सभाने किया उसको गत चार जनवरीके एक पत्र द्वारा श्रीयुत क्रीस्टीने स्वीकार कर लिया। श्री क्रीस्टीने श्रीगङ्गा सभाके मन्त्रीको सूचित किया कि क़रीब चालीस जोड़े जूतोंकी आवश्यकता पड़नेकी सम्भावना है। और जो काममें नहीं आवेंगे उन्हें लौटा दिया जायगा। जूतेकी तल्ली रबरकी होनी चाहिए। जितने जूतोंकी माँग थी, उनके नाप दिए गए और मन्त्रीसे कहा गया कि उनका ४ फ़रवरी सन् १९२७ ई० तक प्रबन्ध कर दे। जो कुछ भी हो, तीन दिन बाद श्री क्रीस्टीने मन्त्रीको सूचित किया कि जबतक मैं आपको न कहूँ, आप जूते मत ख़रीदिए। फिर कुछ दिन बाद श्री क्रीस्टीने गङ्गा सभाके अध्यक्षको मुँहज़बानी सूचित किया कि इन्सपेक्टर जनरल औफ़ पुलीस इस प्रस्तावसे सहमत नहीं है कि पुलीसके अफ़सर जब पुलपर अपने कामपर हों तो बिना चमड़ेके जूते पहने जायँ। जब हिन्दू जनताके प्रतिनिधियोंके पुलको काममें लाने तथा अफ़सरोंको जूतेसहित पुलपर जाने देनेके विषयमें ज्ञात हुआ तो उनका असन्तोष बढ़ने लगा। फलस्वरूप गत ३ मार्चको मेरठ डिवीज़नके कमिश्नर श्री ओकडन तथा श्री क्रीस्टीसे हरिद्वारमें मैं स्वयं मिला। उनसे मैंने अनुरोध किया कि हिन्दुओंमें पुलके प्रयोगके विरुद्ध जो भावनाएँ हैं उनका आदर करें।

स्नानकी व्यवस्थाको सँभालनेके निमित्त एक ख़ास चबूतरा या द्वीप-चबूतरेपर एक मचान बनानेकी सलाह श्रीगङ्गा सभाने अपने २० अक्तूबरवाले पत्रमें दी है। उस सलाहका मैं समर्थन करता हूँ। कुछ दिन बाद कमिश्नर साहबने मुझसे पूछा कि अगर पुल हटा दिया जाय तो अफ़सरोंके लिये द्वीप चबूतरेपर एक ख़ास चबूतरा बनानेका विरोध तो न करेंगे।

मैंने जवाब दिया कि कोई विरोध नहीं होगा। मैंने समझा कि पूछ-ताछका यह अभिप्राय है कि यदि मैं सरकारको उसकी इच्छाके अनुसार आश्वासन दे दूँ, तो वह पुल हटानेका निश्चय कर लेगी। मैंने सरकार, श्री ओकडन और श्री क्रीस्टीके प्रति उस उदारताके लिये कृतज्ञता प्रकाशित की जो उन्होंने हिन्दू जनताके मतके प्रति दिखलाई थी। पीछे मुझे यहाँ पहुँचनेपर यह सुनकर अत्यन्त खेद हुआ कि पुल हटाया नहीं गया है, बल्कि उनके अतिरिक्त मुख्य स्नानके दिनको, मिस्टर क्रीस्टी, पुलीसके सुपरिण्टेण्डेण्ट, सहायक पुलीस, सुपरिण्टेण्डेण्ट नहरके अफ़सर और एक जाति-बहिष्कृत वृद्ध पण्डे, कई सहायक अफ़सरोंने पुलपर खड़े होकर स्नानका निरीक्षण किया।

जनताके मतको जान-बूझकर निरादर करनेकी हद हो गई। श्री क्रीस्टी कभी यह नहीं कह सकते थे कि पुलीसको आदेश देनेके लिये इतने सब अफ़सरोंकी आवश्यकता थी। इससे स्वभावतः हिन्दुओंमें गहरी उत्तेजना फैल रही है कि जिस धार्म्मिक कुण्डमें पुरुष और स्त्रियाँ स्नान करते हैं, उसके ऊपर बने हुए पुलके विरुद्ध ज्यों-ज्यों यात्री अधिक संख्यामें बढ़ रहे हैं त्यों-त्यों गहरी उत्तेजना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

जब मैं कल बाहर घूमने जा रहा था तो मुझे सूचना मिली कि दूसरे दिन सन्ध्याको एक सार्वजनिक सभा हुई थी। धार्मिक कुण्डके ठीक बीचमें निर्मित लोहेके पुलके ऊपर जहाँपर अहिन्दू जूता पहनकर

बैठते हैं और जिनके नीचे महात्मा, साधु, यात्री, स्त्री और पुरुष स्नान करते हैं, उसके विरुद्ध उस प्रस्तावमें असन्तोष प्रगट किया गया। सभाने अधिकारियोंसे तत्काल पुलको हटा देनेकी प्रार्थना की। प्रस्तावकी एक नक़ल जैसा कि मुझे मालूम है, श्री क्रीस्टीके पास भेज दी गई। इसपर श्री क्रीस्टीने सभाके सभापति श्री विश्वनाथको बुलवाया। उन्होंने उनको पुलके विरुद्ध उत्तेजना फैलानेके लिये बहुत फटकारा और कहा कि मेरी अन्तिम आज्ञा है कि अफ़सर लोग उस पुलका प्रयोग करेंगे। स्वामी विश्वानन्द कल मुझसे मिले। उन्होंने मुझे सूचित किया कि श्री क्रीस्टीने उन्हें, मुझे और हिन्दू महासभाके मन्त्रीको इस असन्तोषके लिये बड़े अपमानपूर्ण शब्दोंमें ज़िम्मेदार ठहराया। जो परसों सभा हुई थी, उसके विषयमें जैसा मैंने कहा है, मुझे कलतक कुछ भी नहीं मालूम था। मैंने किसीसे सभा करनेके लिये नहीं कहा। गत छः माससे उचित ढङ्गसे जो विरोध किया गया है, उसकी निन्दनीय उपेक्षा कर अधिकारियोंने पुलको काममें लानेका जो निश्चय किया है उसके विरोधियोंके साथ सचमुच मेरी सहाभूति है। जब मैं यह पत्र लिखवा रहा हूँ मुझे सूचना मिली है कि पुलके विरुद्ध लोगोंमें बड़ी उत्तेजना फैल रही है और अन्तिम विरोध करनेके लिये कुछ लोगोंने सत्याग्रह करनेका निश्चय कर लिया है।

ऐसी परिस्थितिमें मुझे निश्चय है कि अगर पुलको काममें लानेका निर्णय क़ायम रहा तो इससे हिन्दू यात्रियों और अफ़सरोंमें बुरी मुठभेड़ हो जायगी। मैं श्रीमान् गवर्नर साहबसे प्रार्थना करता हूँ कि पुल हटा दिया जाय या उसको बन्द कर दिया जाय। ऐसी आज्ञा देकर श्रीमान् यह भयङ्कर स्थिति न उत्पन्न होने दें। श्री ओकडन पुलकी परिस्थितिसे पूर्ण परिचित हैं। अगर कोई भी सरकारी अफ़सर उस पुलको निष्पक्ष भावसे देखेगा तो उसको तत्काल यह बात समझमें आ जायगी कि जिस धारामें लाखों स्त्रियाँ सुबहसे लेकर शामतक स्नान करती हैं और जहाँपर वस्त्रसे पूर्ण आच्छादित रहनेपर भी जब स्नान करनेवाली स्त्रियोंका शरीर बहुत अंशोंमें नग्न ही रहता है उस धाराके ठीक तीन फ़ीट ऊपर बने हुए पुलपर योरोपियन या हिन्दुस्तानियोंका जूता पहने या न पहने भी खड़े होनेसे अवश्य हिन्दुओंकी भावनाकी गहरी ठेस पहुँचेगी। जिस बातका हिन्दुओंकी अन्तरतम भावनाओंसे सम्बन्ध है, उसके प्रति सज्जनताका भाव दिखलानेका आदेश अगर श्रीमान् उन अफ़सरोंको देते हैं तो इससे सरकारका मान घटेगा नहीं बल्कि बढ़ेगा ही। इस वर्ष मेलेका प्रबन्ध कई बातोंमें अत्युत्तम है। हिन्दू प्रजाकी दृष्टिमें हरकी पैड़ी संसारके धार्मिक स्थानोंमें एक पवित्र स्थान है, अतएव उनकी इच्छाके विरुद्ध पुलको काममें लानेके हठसे मेरी विनय है कि कहीं मेलेके उत्तम प्रबन्धका प्रभाव नष्ट न हो जाय।

भवदीय—
मदनमोहन मालवीय

इसका फल यह हुआ कि गवर्नरने मेलेके अधिकारियोंको पुलका प्रयोग न करनेका आदेश दे दिया और सब मामला शान्तिसे सुलझ गया। यह सत्याग्रहकी दूसरी विजय हुई।

धार्मिक विचार

मालवीयजीके धार्मिक विचार जिन्हें जानने हैं उनको चाहिए कि वे उनके धर्म-सम्बन्धी व्याख्यान और लेख पढ़ लें। मालवीयजी पुलीस सिपाहियोंकी तरह भीड़को धक्का देकर और कोड़ा मारकर आगे नहीं बढ़ाना चाहते। वे चाहते हैं कि समझा-बुझाकर, हाथ जोड़कर लोगोंसे कहा जाय तो वे स्वयं मान जायँगे। यही उनकी धार्मिक प्रगतिकी नीति रही है। किसीका जी दुखाकर, किसीके धार्मिक भावोंको ठेस पहुँचाकर वे अपना पक्ष नहीं रखना चाहते और अपने मतको स्थापित करनेके लिये उपदेशकोंके हथकण्डों, विचित्र और झूठी कथाओं तथा दूसरे सम्प्रदायों और मतोंको गाली देने आदि उपायोंके

प्रयोग करनेको वे बहुत बुरा समझते आए हैं। बुद्धि और हृदय यदि किसी बातको स्वीकार करे तो ठीक है, पर धार्मिक सिद्धान्तोंको समझानेके लिये झूठे जोशको उभाड़ना सबसे बुरी बात है।

प्रयागमें गत अर्धकुम्भके अवसरपर ता० २३ जनवरीसे २६ जनवरी १९३६ ई० तक अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्म-महासभाका विशेष अधिवेशन हुआ। २३, २४ और २६ जनवरीको पूज्य मालवीयजी तथा २५ जनवरीको माननीय महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह बहादुर महाराजा दरभङ्गाके महत्त्वपूर्ण सभापतित्वमें विद्वन्मण्डली और प्रतिनिधियोंद्वारा बड़े महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुए जिनमें ये मुख्य हैं :—

“(१) यह सनातनधर्म महासभा कार्य्यकारिणी समितिको आदेश करती है कि वह इस बातका प्रबन्ध करे कि आगामी शिवरात्रिके दिन जहाँ-जहाँ अदीक्षित हिन्दू सन्तान हैं वहाँ-वहाँ ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यज-पर्यन्त पुरुष और स्त्री समस्त सनातनधर्मावलम्बी सन्तानको, जिनको दीक्षा लेनेकी श्रद्धा हो, तत्तद्देशीय शास्त्रमर्य्यादाके अनुसार शैव पञ्चाक्षर मन्त्रकी दीक्षा दी जाय और समस्त हिन्दू सन्तानको आदेश करती है कि वे शिवरात्रिका व्रत रहें और शिवरात्रिको शिव मन्त्रसे परमात्माकी उपासना करें।

(२) यह महासभा इस बातको मानती है कि जो जातियाँ अस्पृश्य मानी गई हैं वे सनातनधर्मको माननेवाली हैं और इसलिये समस्त सनातनधर्मियोंका यह कर्त्तव्य है कि वे उन जातिके लोगोंको सनातनधर्मके अनुयायी होनेका पूरा लाभ प्राप्त करनेमें सहायता करें।

(३) महासभाकी सम्मतिमें यह बात निर्विवाद है कि जो जातियाँ अस्पृश्य मानी गई हैं वे भी सनाधर्मकी माननेवाली हैं और सनातनधर्मी होनेके कारण उनको देव-दर्शनका अधिकार है। इसी लिये भारतके अनेक सुप्रसिद्ध मन्दिरोंमें ये देव-दर्शन करते हैं और तीर्थराज प्रयागमें त्रिवेणीके सङ्गममें सबके साथ स्नान करते हैं।

(४) महासभाकी सम्मति है कि जहाँ इन जातियोंको अबतक देव-दर्शन प्राप्त नहीं है, वहाँ इनको गर्भ मन्दिरके बाहरसे सर्वसामान्य मर्य्यादाके अनुसार दर्शन पानेका अवसर देना चाहिए। इसलिये महासभा मन्दिरके प्रबन्धकर्त्ताओंसे निवेदन करती है कि वे अपने-अपने मन्दिरोंकी स्थितिके अनुसार इन जातियोंको देव-दर्शन प्राप्त करनेका प्रबन्ध कर दें।

(५) इस महासभाकी सम्मतिमें अस्पृश्य कही जानेवाली जातियोंको सर्वसाधारण कुएँ, तालाब, बावली, बाग, सड़क, सराय, स्मशान घाट तथा सर्वसाधारण स्कूल और सभाओंमें जानेके लिये कोई रोक नहीं होनी चाहिए।

(६) निश्चय हुआ कि महासभाके उद्देश्योंमें छठवें उद्देश्यके आगे नीचे लिखा उद्देश्य बढ़ा दिया जाय—महासभाके उद्देश्योंकी पूर्त्तिके लिये हिन्दू सन्तानमें शारीरिक और धार्मिक बल बढ़ानेके लिये प्रत्येक सनातनधर्म सभाके साथ-साथ महाबीर दलका स्थापन करना।”

इन प्रस्तावोंसे एक बात और भी स्पष्ट हो जायगी कि सनातनधर्मी लोगोंके भावोंमें इतने ही दिनोंमें कितना अन्तर आ गया।

मालवीयजीने अपने हिन्दूधर्मोपदेश नामक छोटीसी पुस्तिकामें अपने सम्पूर्ण धार्मिक विचार भर दिए हैं। उनपर ज़रासा विचार करनेसे ही उनके सनातनधर्मका स्वरूप स्पष्ट हो जायगा। वे कहते हैं :—

परमेश्वरको प्रणामकर सब प्राणियोंके उपकारके लिये, बुराई करनेवालोंको दबाने और दण्ड देनेके लिये, धर्मस्थापनके लिये, धर्मके अनुसार सङ्घटन-मिलापकर गाँव-गाँवमें सभा करनी चाहिए। गाँव-गाँवमें कथा बिठानी चाहिए। गाँव-गाँवमें पाठशाला और अखाड़ा खोलना चाहिए।

पर्व-पर्वपर मिलकर महोत्सव मनाना चाहिए।

सब भाइयोंको मिलकर अनाथोंकी, विधवाओंकी, मन्दिरोंकी और गौ माताकी रक्षा करनी चाहिए, और इन सब कामोंके लिये दान देना चाहिए।

स्त्रियोँका सम्मान करना चाहिए।

दुखियोँपर दया करनी चाहिए।

उन जीवोँको नहीँ मारना चाहिए जो किसी पर चोट नहीँ करते। मारना उनको चाहिए जो आततायी होँ, अर्थात् जो स्त्रियोँपर या किसी दूसरेके धन या प्राणपर वार करते होँ या जो किसीके घरमेँ आग लगाते होँ। यदि ऐसे लोगोँको मारे बिना अपना या दूसरोँका प्राण या धन न बच सके तो उनको मारना धर्म है।

स्त्रियोँको भी, पुरुषोँको भी, निडरपन, सचाई, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य्य, धीरज और क्षमाका अमृतके समान सदा सेवन करना चाहिए।

इस बातको कभी न भूलना चाहिए कि भले कर्मोँका फल भला और बुरे कर्मोँका फल बुरा होता है, और कर्मोँके अनुसार ही प्राणीको बार-बार जन्म लेना पड़ता है या मोक्ष मिलता है।

घट-घटमेँ बसनेवाले भगवान् विष्णुका, सर्वव्यापी ईश्वरका सुमिरन सदा करना चाहिए, जिनके समान दूसरा कोई नहीँ—जो कि एक ही अद्वितीय हैँ, और जो दुख और पापके हरनेवाले शिव-स्वरूप हैँ। जो सब पवित्र वस्तुओँसे अधिक पवित्र, जो सब मङ्गल कामोँके मङ्गल-स्वरूप हैँ, जो सब देवताओँके देवता हैँ और जो समस्त संसारके आदि सनातन अज अविनाशी पिता हैँ।

सनातनधर्मी, आर्य्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध आदि सब हिन्दुओँको चाहिए कि अपने-अपने विशेष धर्मका पालन करते हुए एक दूसरेके साथ प्रेम और आदरसे बर्त्तेँ।

अपने विश्वासमेँ दृढ़ता, दूसरेकी निन्दाका त्याग, मतभेदमेँ सहनशीलता (चाहे वह धर्म-सम्बन्धी हो वा लोक-सम्बन्धी) और प्राणीमात्रसे मित्रता रखनी चाहिए।

सुनो इस धर्मके सर्वस्वको और सुनकर इसके अनुसार आचरण करो। जो काम अपनेको बुरा या दुखदायी जान पड़े उसको दूसरेके साथ नहीँ करना। मनुष्यको चाहिए कि जिस कामको वह नहीँ चाहता है कि कोई दूसरा उसके साथ करे, उस कामको वह भी किसी दूसरेके प्रति न करे। क्योँकि वह जानता है कि यदि उसके साथ कोई ऐसी बात करता है जो उसको प्रिय नहीँ है, तो उसको कैसी पीड़ा पहुँचती है।

मनुष्यको चाहिए कि न कोई किसीसे डरे न किसीको डर पहुँचावे। श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोँकी वृत्तिमेँ दृढ़ रहते हुए ऐसा जीवन जीवे जैसा सज्जनको जीना चाहिए।

हर एकको उचित है कि यह चाहे कि सब लोग सुखी रहेँ, सब नीरोग रहेँ, सबका भला हो, कोई दुःख न पावे, प्राणियोँके दुखको दूर करनेमेँ तत्पर यह दया बलवानोँकी शोभा है। धर्मके अनुसार चलनेवालोँको अभी इसका त्याग नहीँ करना चाहिए।

देशकी उन्नतिके कामोँमेँ देशभक्त पारसी, मुसलमान, इसाई, यहूदियोँके साथ मिलकर भी काम करना चाहिए।

यह भारतवर्ष, जो हिन्दुस्तान नामसे प्रसिद्ध है—बड़ा पवित्र देश है। धन, धर्म और सुखका देनेवाला यह देश सब देशोँसे उत्तम है।

'कहते हैँ कि देवता लोग यह गीत गाते हैँ कि वे लोग धन्य हैँ जिनका जन्म इस भारत-भूमिमेँ होता है, जिसमेँ जन्म लेकर मनुष्य स्वर्गका सुख और मोक्ष दोनोँको पा सकता है।'

यह हमारी मातृ-भूमि है, यह हमारी पितृ-भूमि है। जो लोग सुजन्मा हैँ—जिनके जीवन बहुत अच्छे हुए हैँ, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि पुरुषोँके, महात्माओँके, आचार्य्योँके, ब्रह्मर्षियोँ और राजर्षियोँके, गुरुओँके, धर्मवीरोँके, शूरवीरोँके, दानवीरोँके, स्वतन्त्रताके प्रेमी देश-भक्तोँके उज्ज्वल कामोँकी यह कर्म-भूमि है। इस देशमेँ हमको परम भक्ति करनी चाहिए और धनसे भी इसकी सेवा करनी चाहिए।

जिस धर्ममेँ परमात्माने गुण और कर्मके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण उपजाए और

जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंके साधनमें सहायक मनुष्यका जीवन पवित्र बनानेवाले ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम स्थापित हैं, सब धर्मोंसे उत्तम इसी धर्मको हिन्दू धर्म कहते हैं। जो लोग सारे संसारका उपकार चाहते हैं उनको उचित है कि इस धर्मकी रक्षा और इसका प्रचार करें।"

मालवीयजी कट्टर सनातनधर्मी हैं। यह लोगोंका विश्वास है और यह विश्वास ठीक भी है। पर मालवीयजीका कट्टर 'सनातनधर्म' कोई सँकरी कोठरी नहीं है जहाँ अपने सिवा कोई समा ही न सके बल्कि वह तो एक बड़ा लम्बा चौड़ा बाड़ा है जिसमें आप भी रहें और बाहरवाले भी बड़े प्रेमसे आकर बैठें। उनका हृदय उस मन्दिरके समान है जहाँ ऐसे देवताकी मूर्त्ति है जिसे सब लोग पूजते हैं। न जाने कितनी बार सिक्खोंके बीचमें बैठकर मालवीयजीने उनके गुरुओंकी वीरताका वर्णन करके वीर सिक्खोंको रुला दिया। आर्य्य-समाजके जलसोंमें उन्होंने स्वामी दयानन्दजीकी हिन्दू सेवाका वर्णन करनेमें कभी सङ्कोच न किया। अभी हाल ही में लाहौरके डी० ए० वी० कौलेज्की जुबिलीके अवसरपर आर्य्य-समाजके नेताओंने मालवीयजीको सभापतित्वके लिये बुलाया। बीमार होनेपर भी मालवीयजी वहाँ पहुँचे और २४ अक्तूबर सन् १९३६ ई० को उनके पण्डालमें पहुँचकर सबसे पहले आपने महात्मा हंसराजको छातीसे लगाया और अपने भाषणमें आपने कहा कि—'स्वामी दयानन्दजीने ऐसे समय अपना काम शुरू किया जब सब तरफ़से अविद्याका अन्धकार फैला हुआ था। यह उनकी तपस्या और देशप्रेमका ही फल था कि उन्होंने जीते जी वैदिक सभ्यताके दर्शन किए क्योंकि वैदिक सभ्यता ही संसारकी सबसे ऊँची सभ्यता थी।"

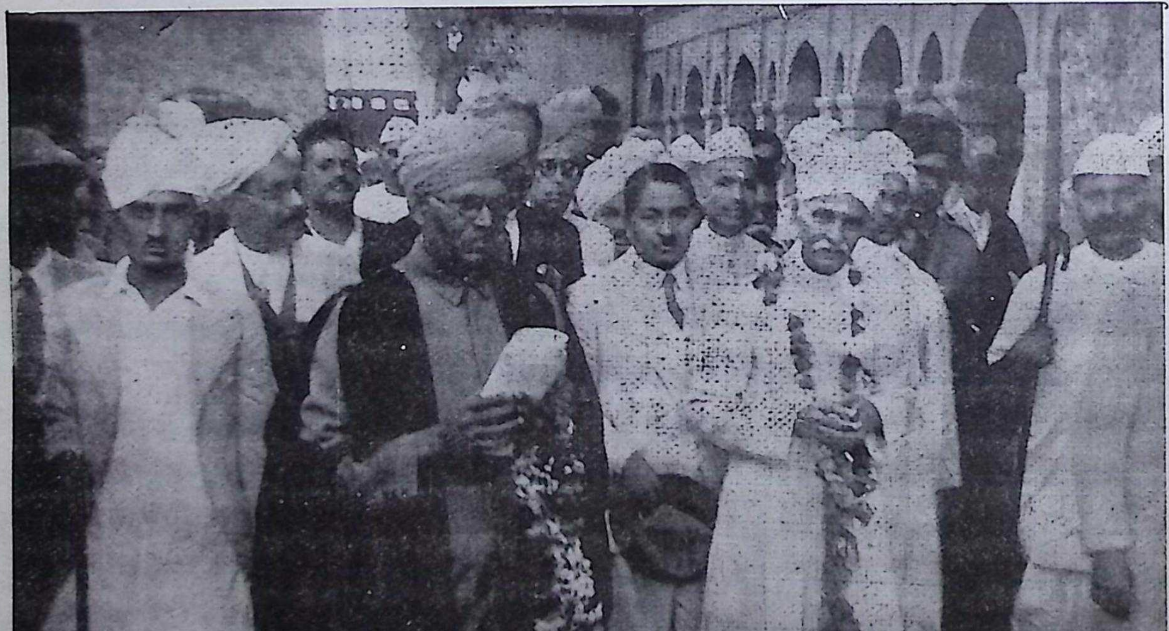

डी० ए० वी० कौलेज् लाहौरकी जुबिलीके अवसरपर मालवीयजीका स्वागत

आजकल बौद्धधर्मका भी काफ़ी आन्दोलन हो चला है और सौभाग्यसे सारनाथ ही उसका केन्द्र है। वहाँके नवीन मन्दिरके संस्थापक स्वर्गीय अनागरिक धर्मपाल भिक्खु मालवीयजीके बड़े मित्र थे। कई बार उनसे मिलने वहाँ जाया करते थे और उनकी मृत्युपर भी मालवीयजी उनके अन्तिम दर्शन करने वहाँ पहुँचे थे। बौद्धोंने भी मालवीयजीको अनेक बार सम्मानित किया है। बिड़लाजीने सारनाथमें बौद्ध यात्रियोंके लिये आर्य्य-धर्मशाला नामक जो विशाल भवन बनवाया है उसकी नींव भी मालवीयजीके हाथों ही पड़ी थी।

मालवीयजी सारनाथमें आर्य्य-धर्मशालाकी नींव रख रहे हैं।

मुसलमान और इसाइयोंकी सभामें भी मालवीयजीका बड़ा सम्मान हुआ है और उनके भाषण हुए हैं।

मालवीयजी अपने धर्मकी निन्दा तो सुन ही नहीं सकते, साथ ही दूसरे धर्मकी निन्दा भी नहीं सह सकते। एक बार काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें आर्य्य-समाजका जल्सा हो रहा था उसमें एक उपदेशक महोदयने इस्लाम तथा इसाई मतपर जो मनमें आया कहा। मालवीयजीको यह बात बुरी लगी और उन्होंने प्रबन्धकोंसे यह कहला भेजा कि हिन्दू-विश्वविद्यालयमें ऐसे लोगोंके व्याख्यान नहीं होने चाहिए जिनकी वाणी संयत न हो और जो दूसरे धर्मों और धर्मप्रवर्त्तकोंकी निन्दा करें।

हमारे देशमें धार्मिक शास्त्रार्थ बहुत होते रहे हैं और हो रहे हैं किन्तु शायद इन शास्त्रार्थोंमें श्री शङ्कराचार्य्य और श्री मण्डन मिश्रके शास्त्रार्थके जैसा निर्णय कभी नहीं मिला। अब तो शास्त्रार्थ होते हैं, लोग इकट्ठा होते हैं, जिधर शोर मचानेवाले अधिक होते हैं वही दल जीत जाता है और उसके बाद अख़बारोंसे पता चलता है कि दोनों दल जीत गए और दोनों दल हार गए। सब अपनी-अपनी ढपलीपर अपना-अपना राग गाते हैं। इस रिवाजका जितनी जल्दी मुँह काला हो उतना अच्छा। क्या अच्छा हो यदि सबका हृदय धार्मिक मामलोंमें मालवीयजीके जैसा हो कि अपना धर्म भी पालन करें और दूसरेके धर्मका आदर करना भी सीख जायँ। यदि इतनी धार्मिक सहनशीलता हम लोगोंमें आ जाय तो हमारी बहुतसी शक्तियाँ सङ्घटित हो जायँ और मौक़ा पड़नेपर हम दूसरोंको दिखा दें कि देखो हम क्या हैं?

कहा जाता है कि यदि किसीको धर्मके दर्शन करने हों, धर्मसे खुलकर बातें करनी हों और धर्मकी ज्योति लेनी हो तो उसे जाकर मालवीयजीसे मिल लेना चाहिए। बहुतसे लोगोंके हृदयमें धर्म आकर निवास करता है पर मालवीयजी तो सशरीर धर्म हैं जिनके आचार-विचार, वेशभूषा और बोलचालसे धर्मकी जोति छिटकती है। उनकी वाणी इसी लिये अकसर कह उठती है—"सिर जावे तो जाय प्रभु मेरो धर्म न जाय"

* * *

समाजकी नींव

‘सात कनौजिए नौ-नौ चूल्हे’ वाली कहावत तो सुनी ही जाती है पर ‘तीन हिन्दू तेरह मत’ वाली कहावत उससे भी पुरानी है। नन्दवंशकी चितापर चाणक्यने कूटनीतिके बलपर जो राजनीतिक एकताका महल बनाया था उसे महाराज अशोककी दयाका नद बहा ले गया और उसके खँडहरोंने घरमें तो झगड़ा डाल ही दिया साथ ही उसने बाहरवालोंको भी उसमें भाग लेनेका न्यौता दे दिया। इस राजनीतिक उथल-पुथलमें ‘जैसा राजा वैसी प्रजा’ के अनुसार मनु और बुद्ध दोनोंका राज्य रहता आया। झूलेकी पैंगोंकी तरह भारतके भोले-भाले नर-नारी मनु और बुद्धके बीचमें झूलने लगे। जो बड़े थे, जिनके हाथमें तलवार थी या जिनको भगवान्‌ने बुद्धि, विद्या या धन दिया था उन्हींका राज्य था।

ग़रीबी केवल पेटको ही भूखा नहीं रखती, वह बुद्धि और आत्मगौरवको भी भूखा रखती है, और इसी लिये ग़रीब लोग चुप मारकर अपनी पीठ उघाड़ देते हैं जिसपर चारों ओरसे कोड़े पड़ने लगते हैं। पहले कुछ दर्द ज़रूर होता है पर फिर आदत पड़ जाती है और कुछ दिनोंमें वह आदत ऐसी मज़बूत हो जाती है कि वे उसे अपना एक धर्म मान लेते हैं, जैसे बहुतसे स्कूलके लड़के मास्टरोंकी बेंतोंके इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि हया-शर्म क़ाफ़ूर हो जाती है, पिटनेमें उन्हें मज़ा आने लगता है। और फिर दूसरे लोग अपनी नालायक़ी न समझकर उन्हें नालायक़ समझ लेते हैं और उन्हें धकेल देते हैं पहाड़से नीचे। उन्हें सिसक-सिसककर जीनेके लिये ऊपरसे कभी-कभी दो रोटी डाल देते हैं। यही दशा हिन्दू समाजमें शूद्रोंकी हुई।

कहावत है कि ‘घरकी मुर्ग़ी दाल बराबर’। घरमें गुणोंकी क़द्र नहीं होती। कोई कितना भी पढ़-लिख गया हो, यश पा गया हो पर घरवाले तुलसीदासको ‘वही तुलसिया’ समझते हैं। शूद्रोंकी घरमें तो कोई पूछ हो न सकी पर बाहरसे जो अतिथि—सचमुच वे अ-तिथि ही आए थे—आए, उन्हें हिन्दुस्तानके हरे-भरे मैदानमें भरपेट भोजन मिलने लगा, मीठा पानी मिला और मिले रसीले मीठे फल, बस वे अपना पहाड़ी घर भूल गए और यहीं जम गए। पर उन्हें अपनी रक्षाके लिये बड़े दलकी ज़रूरत थी। उन्होंने साम, दाम, दण्ड और भेद, सभी तरहसे यहाँ वालोंको अपने दलमें मिलाना शुरू किया। ऊँची जातिवाले तो भला उनकी चमक-दमकके चक्करमें आने क्यों लगे पर जो भूखे थे, पीड़ित थे, अपमानित थे, उन्हें जहाँ पेटभर भोजन मिला वहींकी गाने लगे। खुले आम हमारे अतिथि लोग हमारे घरकी नींव खोद-खोदकर अपना-अपना मकान उठा रहे थे, पर हम सोते ही रहे। हमें यह समझ नहीं आई कि जिस दिन हमारी नींव ही नहीं रहेगी उस दिन हमारा यह भवन कहाँ रहेगा। गोस्वामी तुलसीदासजीने आकर बहुत समझाया, प्रताप, शिवाजी और छत्रसाल भी अपने ढङ्गसे इस लूटको रोक गए और उखड़ी हुई नींव बहुत कुछ जमा गए, पर फिर वही हाल हुआ। सिक्खोंके वन्दनीय गुरुओंने भी बड़ी सँभाल तो की पर न जाने कब और कैसे हमारे सिक्ख भाई हिन्दू समाजके विशाल भवनकी एक कोठरी लेकर अलग हो गए और उसीकी

रक्षामें लग गए मानों उनका पूरे भवनसे कुछ भी नाता नहीं है—अब उन्हें कौन समझावे कि यदि इस विशाल भवनपर कुछ भी आँच आई तो उनकी कोठरी भी आँच खाए बिना न रहेगी।

आर्य्य-समाजने केवल उपदेश मात्र नहीं दिए बल्कि वह काममें भी जुट गया। जो ईंटें बाहरवाले लोग उठा ले गए उन्हें उनके मकानमेंसे खोद लाया और जो उठाकर ले जा रहे थे उन्हें बीचसे ही छीन लिया। पर इसमें दोष यही था कि यह काम तो ठीक करता जाता था पर घरवालोंको भी आलसी, अन्धविश्वासी और ढोंगी कहता जाता था; इसीलिये घरके बहुतसे लोगोंने इसका साथ न दिया। हम समझते हैं कि यदि यह आपसमें बुरा-भला कहना बन्द हो जाता तो हम लोग शायद अपने मकानकी रक्षा और भी अच्छी तरह कर सकते। पहेली छोड़कर अब हम सीधी-सीधी बात कहना आरम्भ करते हैं। आर्य्य-समाजने शुद्धिका काम शुरू कर दिया। उसका बड़ा विरोध हुआ पर वह डटा रहा। सनातनधर्म गिरे हुएको उठानेमें लजाता था, इसलिये वह चुपचाप एक ओर खड़ा यह सब देखता रहा।

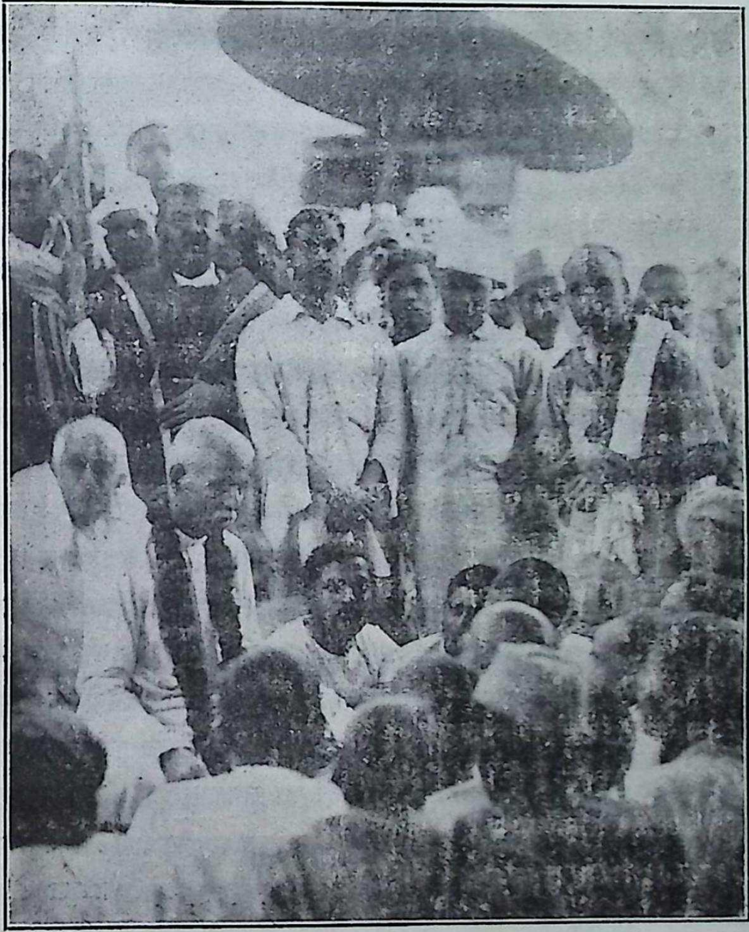

शिवरात्रिके दिन सन् १९२७ ई० को काशीमें दशाश्वमेध घाटपर मालवीयजी मन्त्र-दीक्षा दे रहे हैं।

कट्टर सनातनधर्मियोंमें मालवीयजी एक ऐसे महापुरुष निकले जिन्होंने बेचारे दीनों और पतितोंकी पुकार सुनी और उनकी सहायताको दौड़ पड़े। उन्होंने सबसे पहले सन् १९०९ ई० में नीचे वर्गोंकी शिक्षाके लिये एक कौन्सिलमें भाषण दिया। सन् १९२१ ई० के मोपला विद्रोहने मालवीयजीको चौकन्ना कर दिया और उन्होंने हिन्दू महासभा सङ्गठित करके हिन्दुओंको एक डोरीमें बाँध रखनेका उद्योग किया। साथ ही उन्होंने देखा कि हमारे अछूत भाई हमारे हाथसे निकले चले जा रहे हैं, उन्हें कोरे ज़बानी जमाख़र्चसे सन्तोष नहीं देना चाहिए बल्कि उन्होंने यह विचार किया कि कोई ऐसा उपाय हो कि इनका उद्धार भी हो और साथ ही उनके मनमें यह भाव भी हो कि हमारा समाजमें कोई स्थान है और मुसीबतमें हमारी मदद करनेवाला भी कोई है। इसलिये मालवीयजीने शुद्धिका बीड़ा तो उठाया ही साथ ही उन्होंने अपनी सनातनधर्म सभामें अस्पृश्योंको मन्त्रदीक्षा देनेका भी प्रस्ताव स्वीकृत करा दिया। यह कोरा प्रस्ताव ही न रह गया बल्कि एक दिन सन् १९२७ ई० में काशीमें महाशिवरात्रिके दिन दशाश्वमेध घाटपर उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभीको ॐ नमः शिवाय,

ॐ नमो नारायणाय, ॐ रामाय नमः, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय आदि मन्त्रोंकी दीक्षा दी। दीक्षा लेनेवालोंमें ब्राह्मण भी थे और चाण्डाल भी थे।

वह दृश्य भूला नहीं जा सकता। जिस समय मालवीयजी रेशमी दुपट्टा ओढ़कर एक-एकको मन्त्र और उपदेश देते थे और फिर उनसे वचन लेकर आशीर्वाद देते थे तो जान पड़ता था मानो समुद्रकी भीषण लहरोंमें पड़े हुए सैकड़ों हज़ारों प्राणियोंको बचानेके लिये कोई दिव्य ज्योति हज़ारों हाथ बढ़ाकर उन्हें ऊपर उठा रही है। वह उनका तेज देखने ही योग्य था।

३० दिसम्बर सन् १९२८ ई० को कलकत्ता कांग्रेस हो रही थी, उधर मालवीयजीने हावड़ा पुलके पास लोहाघाटपर सबको मन्त्रदीक्षा देनेकी घोषणा कर दी। बड़ा शोर हुआ। मालवीयजीकी यह बात बहुतसे सनातनधर्मियोंको अच्छी न लगी। वे सब वहाँ टूट पड़े मानों मालवीयजी कोई बड़ा भारी पाप करने जा रहे हों। एक व्यक्तिने उसका यह आँखोंदेखा वर्णन किया है :—

“ता० ३० दिसम्बर सन् १९२८ ई० को प्रातःकाल कलकत्तेमें गङ्गातटपर लोहाघाट नामक स्थानपर पण्डित मालवीयजी द्वारा सब हिन्दुओंको ॐकारके साथ दीक्षा देनेकी तैयारी की गई थी। एक शामियानेके नीचे होम और दीक्षाकी तैयारी की गई। क़रीब आठ बजे सुबह मालवीयजी दीक्षा-स्थानपर पधारे। दीक्षा लेनेवाले लोग इकट्ठा हो ही रहे थे कि कुछ मारवाड़ी सज्जन और कुछ प्राचीन विचारके शास्त्री बहुतसे लोगोंको साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने खड़ा किया हुआ शामियाना गिरा दिया और होम और दीक्षाकी सामग्री भी नष्ट-भ्रष्ट कर दी। यह सब देखकर मालवीयजी गङ्गाजीके किनारे गए और वहाँ दीक्षा-कार्य्य करने लगे। परन्तु उपद्रवियोंने वहाँ भी उनका पीछा किया और उनके कार्य्यमें बाधा डालने लगे। मालवीयजीने उनसे कहा कि यदि कोई इस बारेमें शास्त्रीय विरोध हो तो मैं आपके किसी भी पण्डितसे शास्त्रार्थ करनेको तैयार हूँ। इतनेमें उन्होंने मालवीयजीको घेर लिया और उनपर कीचड़ मट्टी फेंकने लगे। परन्तु मालवीयजी अत्यन्त शान्तिसे और हँसते हुए उसे सहन करते रहे।

कुछ देरके बाद शान्ति हुई और एक पण्डित अपना विरोध स्थापित करनेके लिये आगे बढ़े। विरोधी पक्षके सब शास्त्री-मण्डलकी आज्ञासे एक पण्डितने क़रीब तीन घण्टेतक व्याख्यान देकर अपना मत स्थापित किया। इसके बाद उनका उत्तर देनेके लिये पण्डितजी खड़े हुए। पण्डितजीके खड़े होते ही चारों ओरसे जयजयकारकी ध्वनि गूँज उठी। मालवीयजीने विवादके निर्णयके लिये विरोधी पण्डितोंको कौनसे ग्रन्थ मान्य हैं—यह पहले पूछ लिया और बाद क्रमशः एक-एक प्रश्नका उन्हीं ग्रन्थोंके उद्धरणोंके प्रमाण रूपमें रखते हुए उत्तर दिया। पण्डितजीकी विचार-सरणी लोगोंको अत्यन्त अच्छी लगी। दर्शकोंने प्रचण्ड जयजयकारके द्वारा पण्डितजीका गौरव किया। क़रीब दो बजे दिनको विरोधी पक्षके लोग अपजस लेकर लौट गए।”

उसके बाद मालवीयजीने फिर स्नान किया और क़रीब साढ़े तीन बजेतक दीक्षा-कार्य्य चलता रहा। समयके अभावसे सिर्फ़ चार सौ आदमियोंको दीक्षा दी जा सकी।

हिन्दू महासभाके अध्यक्ष डा० मुञ्जे, श्रीमत्स्वामी सत्यानन्दजी, श्री पद्मराज जैन आदि प्रमुख नेता व अन्य बहुतसे स्वयंसेवक पण्डितजीके साथ प्रातःकालसे दीक्षा समारम्भ समाप्त होनेतक बराबर खड़े रहे। महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण, बङ्गाल हिन्दू महासभाके अध्यक्ष भी समारम्भमें उपस्थित थे।

दीक्षार्थी स्नान करके आते थे। उनको पञ्चगव्य भक्षण कराया जाता था। अनन्तर उनको ‘ॐ नमः शिवाय’, ‘ॐ नमो भगवते वासुदेवाय’ अथवा ‘ॐ नमो नारायणाय’ इस मन्त्रकी विधिपूर्वक दीक्षा दी जाती थी। दीक्षा देनेके बाद जिस मन्त्रकी दीक्षा

दी गई हो वह मन्त्र छपा हुआ तथा एक वस्त्र उस मनुष्यको ओढ़नेके लिये दिया जाता था। बाद चने और बतासे देकर कार्य्य समाप्त किया जाता था।

फिर मन्त्र-दीक्षा

कुछ दिनोँके बाद कलकत्तेमेँ फिर एक दीक्षा-समारम्भ हुआ। यह दूसरा दीक्षा समारम्भ तारीख़ ६ जनवरी सन् १९२८ को हुआ था। अबकी बार दीक्षा-स्थानके चारोँ ओर पुलीस और स्वयंसेवकोँका पूरा प्रबन्ध था। यह सब होते हुए भी जब पण्डितजी नदीमेँ स्नानको उतरे तब एक शिखा सूत्रधारी गुण्डा छुरा लेकर उनपर टूट पड़ा। परन्तु सौभाग्यवश पण्डितजी बाल-बाल बच गए और गुण्डा पकड़ लिया गया। बादमेँ पण्डितजीने बहुतसे अछूतोँ तथा अन्य हिन्दुओँको दीक्षा दी। अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। कुछ अंग्रेज़ सज्जन भी आए थे। दीक्षा-कार्य्य प्रातःकाल नौ बजे प्रारम्भ होकर दिनके बारह बजे धूमधाम-सहित निर्विघ्न समाप्त हुआ।

इसके बाद भी प्रयागमेँ, काशीमेँ गतवष कितनी बार मालवीयजीने मन्त्र-दीक्षा दी। गतवर्ष १२ मार्च, सन् १९३६ ई० को मालवीयजी नासिक गए। वहाँ गोदावरी किनारे राजेबहादुर घाटपर आपने लगभग डेढ़ सौ हरिजनोँको 'नमः शिवाय' मन्त्रकी दीक्षा दी। यहाँ भी मालवीयजीका जो सम्मान हुआ और नगरकी विभिन्न संस्थाओँने जो उन्हेँ मानपत्र दिए उसका क्या वर्णन किया जाय। मन्त्रदीक्षाके बारेमेँ कितने लोगोँने उनका विरोध किया पर मालवीयजीने उस वैद्यके समान आचरण किया जो रोगीके लाभके लिये उसकी गालियोँकी चिन्ता नहीँ करता।

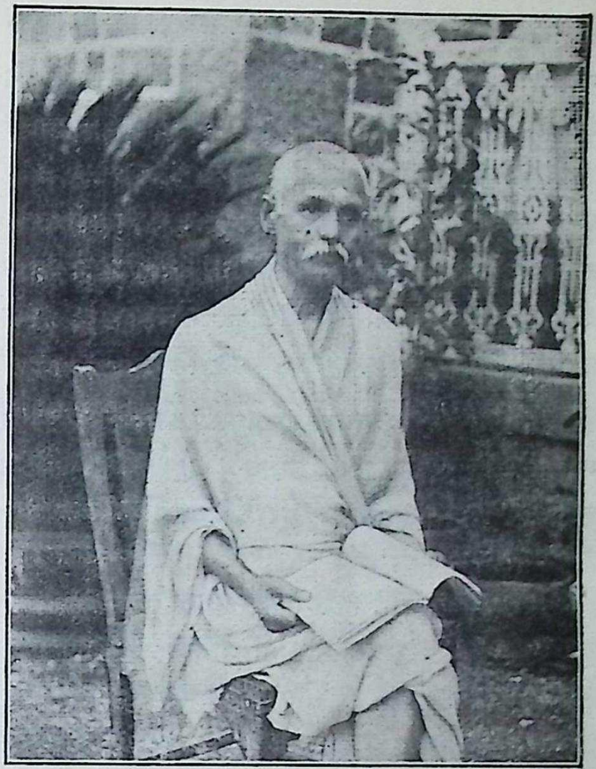

नासिकमेँ मालवीयजी

इसीके बाद १ अगस्त सन् १९३३ ई० को महात्मा गान्धीने हरिजन आन्दोलन आरम्भ किया, जिसका मुख्य उद्देश्य था—हरिजनोँके लिये सार्वजनिक स्थानोँका प्रयोग कराना और मन्दिरोँमेँ उनका प्रवेश कराना। इसके लिये महात्मा गान्धी चाहते थे कि एक विधान बन जाय कि हरिजन लोगोँके लिये मन्दिर खुल जायँ। महात्मा गान्धीने इस कार्य्यके लिये सारे भारतका दौरा किया। उन्हेँ स्थान-स्थानपर हरिजन आन्दोलनके लिये धन भी मिला और उसका सबसे बड़ा परिणाम यह निकला कि कितने ही सार्वजनिक मन्दिर हरिजनोँके लिये खुल गए, कितने कुओँसे उन्हेँ पानी निकालनेकी सुविधा हो गई, हरिजन पाठशालाएँ खुल गईं और सार्वजनिक स्कूलोँमेँ उनके पढ़नेकी व्यवस्था हो गई। गान्धीजीकी सब बातेँ तो मालवीयजी मानते थे पर वे यह नहीँ चाहते थे कि शूद्रोँको मन्दिरोँमेँ प्रवेश करनेका अधिकार सरकारी क़ानून-द्वारा मिले। गान्धीजीसे जिन्हेँ थोड़ासा भी परिचय होगा उन्हेँ यह जानकर सचमुच अचरज होगा कि सरकारमेँ ज़रासा भी विश्वास न रखनेवाले गान्धीजी, हरिजनोँके मन्दिर-प्रवेशके लिये सरकारकी शरण

लेना चाहते थे। पर उनका यह दौरा १ अगस्त सन् १९३४ ई० को काशीमें आकर समाप्त हो गया। उस अवसरपर काशी सेण्ट्रल हिन्दू स्कूलके मैदानमें बड़ी भीड़ हुई। वहाँ मालवीयजीने अपनी इस नीतिको बड़े सुन्दर शब्दोंमें प्रकट किया। उसी अवसरपर पहली अगस्त सन् १९३४ ई० को लोकमान्य तिलककी पुण्यतिथिके दिन काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें भी गान्धीजीका भाषण हुआ और उसमें भी उन्होंने अपना मत प्रकट किया।

नीचेके महात्मा गान्धीके भाषणमें ही आप महात्मा गान्धीके हरिजनोद्धारके उपाय और मालवीयजीके हरिज़नोद्धारके उपायोंका पूरा विवरण पा सकेंगे। गान्धीजीने कहाः—

“पूज्य मालवीयजी! भाइयो और बहनो!

मुझे ईश्वरने दुबारा काशीमें आनेका मौक़ा दिया है, मुझे इसका बड़ा हर्ष है, और मुझे खुशी होती है कि इस पवित्र धाममें ही मेरा हरिजन दौरा समाप्त हो रहा है। मैं जो कुछ पैग़ाम देना चाहता हूँ वह यहाँ ही दे सकता हूँ। मुझे दुःख है कि वर्णाश्रम स्वराज्य सङ्घकी तरफ़से जो पण्डितजी आ रहे थे और जिनके लिये प्रबन्ध भी हो गया है वे कारणवशात् यहाँ अभीतक न आ सके। मुझे यह प्रिय लगता है कि जिनका इस बारेमें हार्दिक विरोध है वे भी उसी प्लेटफ़ार्मपर आकर बोलें जिसपर मैं बोलता हूँ। मेरा यह कार्य्य धार्मिक ही है। इसमें दुराग्रहको स्थान नहीं है। इसके लिये कोई भी प्रयत्न किया जाय वह अपूर्ण ही होगा। मुझसे ग़लतियाँ हो सकती हैं और हुई हैं। इसमें भी मैं ग़लती नहीं कर सकता, ऐसा मैं दावा नहीं कर सकता और न मैंने किया। जो मैं आज मानता हूँ वह नई बात नहीं है। बचपन ही से यह मेरे जीवनके साथ गुँथी रही है। यह मुझे किसीने बतलाया नहीं है। जिस समय मेरे ऐसे विचार हुए उस समय मैं स्वेच्छाचारी स्वच्छन्द बालक था। मुझे रामनामका मन्त्र सिखाया गया था जिससे मैं भयमुक्त और सुरक्षित रहा। और जो पुरुष भी उसका पालन करनेकी चेष्टा करे वह भी भयमुक्त हो सकता है, तो यह बात मेरे जीवनमें कोई नई पैदा नहीं हुई है। इस वृद्धावस्थामें भी पचास या सौ वर्षसे अधिकसे जो मूर्खता चली आई है उसे हटानेमें मुझे तनिक भी सङ्कोच न होगा।

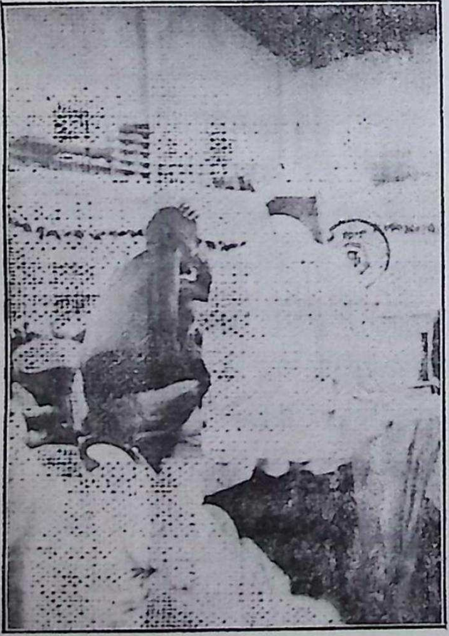

१ अगस्त सन् १९३४ ई० को हिन्दू विश्वविद्यालयके शिवाजी भवनमें देशके दो महापुरुष महात्मा गान्धी और मालवीयजी।

मुझे कहना न होगा कि जितना प्रयत्न शास्त्रियों और पण्डितोंसे विचार करनेका हो सकता है, मैंने किया। जिन शास्त्रियोंका अभिप्राय है कि अस्पृश्यता शास्त्रसम्मत है, मैं ऐसे शास्त्रियोंसे मिला। कुछ निमन्त्रणसे आए और कुछ स्वेच्छासे। वे मानते थे कि आधुनिक अस्पृश्यता शास्त्रसिद्ध है। मैंने उनकी बात भी सुनी किन्तु उनकी बातोंने मेरे दिलपर कोई असर नहीं डाला। मुझे जब कभी अपने अज्ञानका पता चला है तो मैंने बिना किसीकी प्रेरणाके ही अपनी भूल स्वीकार कर ली है। शास्त्रियोंकी बातें समझते हुए भी मेरे दिलपर असर डालनेवाला कोई अस्पृश्यताका प्रमाण नहीं मिला। कोई अस्पृश्य

भाइयोंकी संख्या सात करोड़के क़रीब बताते हैं किन्तु इसमें अतिशयोक्ति है। वास्तवमें वे पाँच करोड़ है। इसके प्रमाणके लिये हम जिस स्मृतिको मानते हैं वह नई स्मृति हम सेन्ससके नामसे पुकारते हैं। इस सेन्ससके अनुसार ही हम कहते हैं कि इतने अस्पृश्य है। उसमें प्रति दस वर्षमें परिवर्त्तन होता जाता है। चन्द जातियाँ जो दस वर्षमें अस्पृश्य मानी जाती हैं वे अगले दस वर्षमें स्पृश्य हो जाती हैं। और जो आज स्पृश्य हैं वे दस वर्ष बाद अस्पृश्य हो जाती हैं। इसके लिये शास्त्रमें कोई प्रमाण नहीं है। इन लोगोंसे जैसा बर्त्ताव चल रहा है तो शायद ही ऐसा ही कोई नास्तिक हो जो कहेगा कि इसके लिये शास्त्रमें प्रमाण है। यदि एक भङ्गीका बालक कुएँपर जाता है तो पता चलनेपर लोग उसे पानी नहीं भरने देते। उसे छू जानेपर कुआँ अस्पृश्य माना जाता है और वह हरिजन बालक पीटा जाता है, इस अन्यायके लिये हिन्दू जाति ही ज़िम्मेदार है।

एक हरिजन बालकको न्यूमोनिया हुआ, फेफड़े बिगड़ गए, खाँसी और सर्दी भी हुई, १०४ डिगरी बुख़ार हो गया। उसके लिये डाक्टर चाहिए, डाक्टरके लिये फ़ीस चाहिए, डाक्टर हिन्दू होता हुआ भी उसकी नाड़ी परीक्षाके लिये मुसलमान डाक्टर भेजता है। तब डाक्टर महोदय उसको बाहर बुलाते हैं और ऊपरसे देखकर ही पुड़िया देनेका वचन देकर चले जाते हैं। जब डाक्टर मुझे देखता है तो अपने यन्त्रको कभी यहाँ लगाता है, कभी वहाँ लगाता है और अच्छी प्रकारसे परीक्षा करता है, किन्तु हरिजनको केवल देखकर ही वह रोग पहचान लेता है। यदि ऐसा एक ही मौक़ा होता तो मैं इसे व्यक्तिगत स्वभावका दोष बतलाकर ही छोड़ देता और किसीके सिर ज़िम्मेदारी न डालता परन्तु ऐसे सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। सेन्ससके दफ़्तरमें जो अछूत लिखे गए हैं वे जन्मसे हैं ऐसा मेरी बुद्धि और मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता। इसका उत्तर शास्त्री लोग भी मुझे न दे सके। अभी-अभी देवनायकाचार्य्यजी आए हैं, जिस ध्यानसे आपने मेरे शब्द सुने हैं उसी प्रकार पण्डितजीका भाषण भी सुनें और जैसा असर पड़े, जो आप उचित समझें वैसा निश्चय कर सकते हैं। मैं सिर्फ़ एक बात और कहूँगा। काशीके पण्डितोंकी ओरसे जो मुझे स्वागतपत्र मिला है उसके लिये मैं आभारी हूँ। उसे मैं आप लोगोंका आशीर्वाद मानता हूँ। जो द्रव्य मुझे मिला है उसके लिये मैं धन्यवाद देता हूँ। यद्यपि वह बहुत थोड़ा है परन्तु मुझे विश्वास दिलाया जा रहा है कि अभी और संग्रह करनेकी चेष्टा की जायगी।”

इसके बाद वर्णाश्रम स्वराज्य सङ्घके श्री देवनायकाचार्य्यजीने अपना मन्तव्य प्रकट किया और इसके पश्चात् पूज्य मालवीयजीने भाषण दियाः—

“देवियो और सज्जनो!

अभी आप लोगोंके सामने श्री देवनायकाचार्य्यजीने बड़ी शिष्टता और सभ्यताके साथ अपना मत प्रकट किया है। इससे पहले कई बार शास्त्रका विचार करनेका प्रयत्न किया और उसका परिणाम छापकर विद्वानोंके विचारके लिये भेज भी दिया गया था। मैं बहुत समयसे इस प्रयत्नमें हूँ कि निष्पक्ष होकर विद्वान् लोग यह निर्णय करें कि शास्त्र क्या कहता है। मुझे खेद है कि अबतक ऐसा न हो सका। किन्तु मुझे आशा है कि यह निर्णय शीघ्र ही होगा और विद्वन्मण्डली रागद्वेष छोड़कर जो बतावे और निर्णय करे उसे सबको मान लेना चाहिए। तभी सबका भ्रम भी मिट जायगा। मुझे गान्धीजीके सन्देशके विषयमें कहनेसे पूर्व कुछ याद आया। वही मैं कहना चाहता हूँ। अस्पृश्यता और मन्दिर-प्रवेश बिलके सम्बन्धमें मेरा अपने भाई (गान्धीजी) से कुछ मतभेद है। मैं उनकी बहुतसी बातें मान लेता हूँ और वे भी मेरी बातें मानते हैं और मुझे आशा है कि मैं धीरे-धीरे उन्हें मना भी लूँगा। मेरी रायमें ऐसा बिल एसेम्बली-द्वारा नहीं पास होना चाहिए। गान्धीजीकी राय है कि वह बिल हिन्दुओंकी

बहुसंख्याकी रायसे पास हो, दूसरी जातिके लोगोंकी रायसे न बने। इस बारेमें मैं कल अपने भाई (गान्धीजी) से विचार करूँगा।

मन्दिरके विषयमें तो आप जानते हो कि हमारे यहाँ कोई विष्णुका मन्दिर है, कोई शिवका और कोई कालीका। फिर किसके मतसे मन्दिर-प्रवेशका निर्णय हो। इसके लिये तो शास्त्रके अनुसार ही निर्णय होना चाहिए। गान्धीजीकी भी राय है कि सनातनियोंको चोट न पहुँचे। जबसे उन्होंने यह प्रयत्न प्रारम्भ किया है तबसे बहुत उन्नति हुई है। अस्पृश्यता भी बहुत मिटी है। लोगोंके विचारोंमें भी बहुत परिवर्त्तन हुआ है। मतभेद तो भाई-भाईमें होता है। मेरा और इनका (गान्धीजी) का सम्बन्ध बड़ा घना है। मतभेद प्रकाशनसे परस्पर बैर नहीं होता। अपना-अपना मत रखना तो स्वभाव है। जो न्यायकी बात हो, धर्मकी बात हो और देश-जातिके मङ्गलके लिये हो, वही करनी चाहिए। आप लोग स्मरण रखिए कि महात्मा गान्धीका हृदय सनातनधर्मके भीतर बैठा है और वे इसे बहुत चाहते हैं। अछूत लोगोंको हिन्दू जातिसे बाहर निकालनेका ईसाइयोंने प्रयत्न किया, मुसलमानोंने प्रयत्न किया और कितने ही अछूत भाइयोंको मुसलमान और ईसाई बना भी लिया। जो गौके रक्षक थे, गौको माता मानते थे, मुहसे राम-राम जपते थे, चुटिया रखते थे, वे आज ईसाई और मुसलमान हो गए। वे अब धर्मरक्षक न रह गए। इसी बातपर महात्मा गान्धीने यह आवाज़ उठाई। चुटिया जिनके सिरपर, मुँहमें राम-राम, घरपर सत्यनारायणकी कथा होती हो ऐसे सनातनधर्मके माननेवाले चमार, भङ्गीको ईसाइयोंने अपने दलमें बुलाया और मुसलमानोंने अपने, किन्तु इन्होंने अनेकों कष्ट सहकर भी गङ्गा और गऊको, राम और कृष्णको न छोड़ा। मेरा सिर उनके सामने झुक जाता है। उन्हींको लाभ पहुँचानेके लिये ही गान्धीजीने सिर उठाया। मैं सनातनधर्मके नाते चाहता हूँ कि जो लाभ मुसलमान और ईसाइयोंको मिलता हो वही लाभ डोम और भङ्गीको भी मिले। हमारे सनातनधर्मकी महिमा है कि मनुष्य चाहे किसी भी जातिमें रहे किन्तु यदि धर्मसे चले तो उसका उद्धार हो जाता है। मैं धर्मग्रन्थोंके अध्ययनके अनुसार कहता हूँ कि इनको भी देवदर्शनका लाभ मिलना चाहिए। यही अभिलाषा गान्धीजीको भी होगी। स्कन्दपुराणमें भी इसका प्रमाण है कि यदि चाण्डाल सदाचारी हो तो वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके समान आदर पानेके योग्य हो जाता है। यदि ऐसा हो सकता हो तो फिर हम अपने अछूत भाइयोंको सदाचारी क्यों न बनावें। हम उसका सदाचार बनाकर दिखा दें कि जो भाई छोटे-से-छोटा हो उसे भी हिन्दू धर्म ऊँचा उठा सकता है।

एक ब्राह्मणको अपने ज्ञानका बड़ा अभिमान था। जब वह एक स्त्रीके पास गया तो उसने बतलाया कि मिथिलामें धर्मव्याधके पास जाकर शिक्षा लो। मिथिला जानेपर उसने देखा कि धर्मव्याध दूकानपर बैठा मांस बेच रहा था। किन्तु उसके संस्कार बड़े अच्छे थे, उसको धर्मका ज्ञान था। ब्राह्मणने उससे धर्मका उपदेश सुना। इस कथाका अर्थ यह है कि चाण्डाल जातिमें होनेपर भी उसके पूर्व जन्मके संस्कार इतने उत्तम थे कि ब्राह्मणने उससे धर्म सुना। जहाँ नीमका जङ्गल होता है वहाँके सब पेड़ कड़वे हो जाते हैं, किन्तु जहाँ चन्दन होता है वहाँ सब वृक्षोंमें सुगन्ध आ जाती है। सत्सङ्ग और सदाचारकी यह महिमा है।

सदाचार ऐसी वस्तु है कि इससे नीच कुलमें उत्पन्न होकर भी मनुष्य ऊँचा सम्मान पा सकता है। इस प्रकारका उपदेश महात्मा गान्धी आपको देते हैं। वह चाहते हैं कि इन लोगोंकी तकलीफ़ दूर हो। यदि कुएँपर एक हमारा अछूत भाई रामदास जाय, जिसके सिरपर चुटिया है, जो एकादशी व्रत रखता है, सत्यनारायणकी कथा सुनता है, गङ्गास्नान करता है, यदि वह प्यासा रह गया तो समझ लो कि हमारे पूर्व पितर सब प्यासे रह गए। चाण्डाल भी हमारे

अङ्ग हैँ। हमारा धर्म है कि स्मृतिमेँ जो उनके लिये धर्मका मार्ग दिखाया है उसका उपदेश देँ। क्या आप लोगोँमेँसे कोई चाहते हैँ कि उन्हेँ पीनेको पानी न मिले? (श्रोता—नहीँ-नहीँ)। क्या आप चाहते हो कि जिन सड़कोँपर सब लोग चलतेहैँ उनपर उन्हेँ चलनेको न मिले? (कभी नहीँ); क्या आप चाहते हो कि जिन स्कूलोँमेँ ईसाई-मुसलमानोँके लड़के पढ़ते हैँ उनमेँ वे न पढ़ने दिए जायँ? (कभी नहीँ)। हाँ यह हो सकता है कि जिन पाठशालाओँ और विद्यालयोँमेँ केवल द्विजातियोँके पढ़नेकी व्यवस्था हो वहाँ वे न पढ़ेँ किन्तु सर्वसाधारण स्कूलोँमेँ तो उनको पढ़ने ही देना चाहिए। मेरी यही इच्छा है कि ऐसी जगहोँमेँ जहाँ रोक हो वह मिटे।

आज चार या पाँच करोड़ हिन्दू अछूत कहलाते हैँ। इनमेँ वास्तवमेँ अछूत वे ही हैँ जो मैले काम करनेवाले हैँ। वे मानव जातिकी वह सेवा करते हैँ जो कोई कर नहीँ सकता। यदि वे एक दिन भी अपना काम बन्द कर देँ तो हमारी क्या दशा होगी, विचार कर लो। भगवान्ने कहा है:—"स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः" अपने-अपने काममेँ लगे हुए लोग मेरा पद पा सकते हैँ। ये भङ्गी-चमार भाई सब अपना काम करेँ। फिर स्नान करके यदि सूर्य्यनारायणको अर्घ्य देँ, मन्त्र जपेँ तो बोलो इनका मङ्गल होगा कि नहीँ? (अवश्य-अवश्य) देह धोकर यदि हमारा भाई चाण्डाल और हमारी बहन चाण्डालिनी यदि मन्त्र जपे, रामका नाम ले, कथा सुने, व्रत करे, तो धर्मकी उन्नति हुई कि नहीँ? (हुई)

मैँ गान्धीजीकी कई बातेँ नहीँ मानता हूँ। किन्तु मुझे विश्वास है कि इनके मतभेदको मैँ मिटा दूँगा।

मैँ चाहता हूँ कि इन ग़रीब बहनोँको ऐसा अवसर प्राप्त हो कि साढ़े चार बजे घरसे निकलकर मल साफ़ करके नहाएँ और अच्छे कपड़े पहनकर राम-नाम जपेँ, बताओ तब उन्नति होगी कि नहीँ? जबसे मौण्टेगू चेम्सफ़र्ड स्कीम आई तबसे ईसाई कहते हैँ कि इनमेँसे आधे हमेँ दो। मुसलमानोँने अलग हाथ पैर फैलाए, लालच दिए, किन्तु धन्य हैँ ये भाई, सब तकलीफ़ उठाकर भी ये हिन्दू-धर्ममेँ ही रहे। मैँ इनके आगे अपना माथा टेकता हूँ।

नृसिंह पुराणमेँ लिखा है—

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा अन्त्यज—सबके लिये भगवान्के दर्शनका अधिकार है। जहाँ मन्दिरके अधिकारी प्रसन्नतासे जानेका अवसर देँ वहाँ गर्भद्वारके बाहरसे ही दर्शन करा देँ। जहाँ न आज्ञा देँ वहाँ न जायँ। मेरा विचार है कि हर एक बस्तीमेँ ऐसे मन्दिर बनवा दिए जायँ, जिनमेँ सब जातियाँ जा सकेँ और भजन-कीर्त्तन, कथा-उपदेश सुन सकेँ।

हमेँ इन अछूतोँको जल देना है, रहनेको स्थान देना है, और इन्हेँ शिक्षा देनी है। मैँ तो चाहता हूँ कि उनके चार करोड़ घरोँमेँ मूर्त्तियाँ रक्खी होँ और भगवान्का भजन हो, तभी तो मङ्गल होगा। महात्माजीने जो बारह महीनेसे कार्य्य उठाया था वह परसोँतक इस विश्वनाथजीकी नगरीमेँ समाप्त हो जायगा। भगवान् इन्हेँ दीर्घायु करेँ और सदा मङ्गल करेँ जिससे ये सबका दुःख दूर करेँ। आपकी तपस्या और परिश्रमके लिये धन्यवाद है। भगवान् विश्वनाथ आपको दीर्घजीवी करेँ।"

इसके बाद तो बहुत बड़े-बड़े विद्वानोँने भी मन्त्र-दीक्षा देनी शुरू की, जिनमेँ महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण और पण्डित यज्ञनारायण उपाध्यायजीका नाम उल्लेखनीय है। गत वर्ष सन् १९३६ ई० की शिवरात्रिका महोत्सव तो सबसे अधिक भव्य निकला। काशीमेँ हाथियोँपर वेद भगवान् और छहोँ दर्शनोँके स्वरूप छः विद्वानोँका जलूस था। बड़े-बड़े पण्डित शिव-महिम्न-स्तोत्रका पाठ कर रहे थे उनके पीछे अपार जनसंख्या, हरिजनोँके अखाड़े, गाने-बजानेवालोँकी गाड़ियाँ—एक अपूर्व समारोह था—वर्णन नहीँ किया जा सकता। दशाश्वमेध

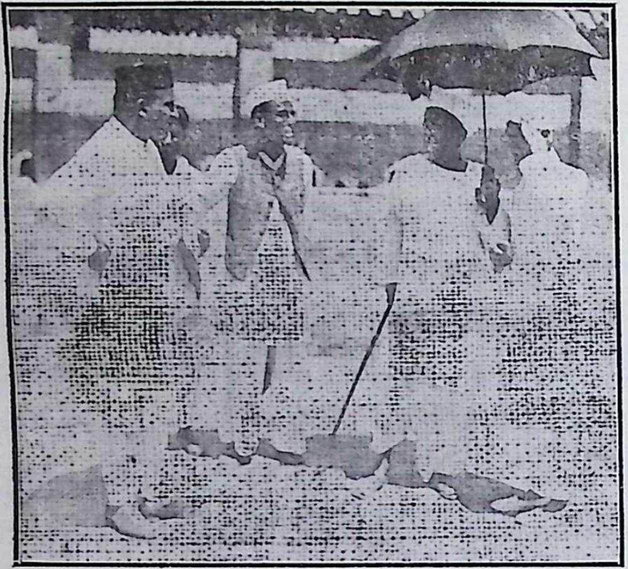

प्रयागमेँ हरिजनोँकी बस्तीका निरीक्षण करते हुए मालवीयजी।

घाटपर जलूस पहुँचा, वहाँ सभा हुई। बीमार होनेपर भी मालवीयजी वहाँ आए और उपदेश दिया। फिर अगले दिन उन्होँने मन्त्र-दीक्षा दी।

इस मन्त्र-दीक्षाका सबसे बड़ा प्रभाव तो यह हुआ कि काशीके सारे हरिजन यह समझने लगे कि हम हिन्दू हैँ, हमेँ भी रामनाम जपनेका अधिकार है।

हरिजनोँके उद्धारके लिये मालवीयजीने इतना ही नहीँ किया बलिक कई बार हरिजनोँके मुहल्ले देखनेके लिये गए, उन्हेँ सफ़ाईका उपदेश दिया और उनके मकान बनानेके लिये उद्योग किया।

मालवीयजीके इस कामने काशीके कुछ पण्डितोँको नाराज़ भी कर दिया और इतना नाराज़ कर दिया कि कुछ लोग तो मालवीयजीको गालियाँ देने लगे। पर हम पूछते हैँ सच्चे हृदयसे कि क्या वे लोग मालवीयजीके विशाल हृदयको ज़रा भी पहचान पाए हैँ? इस बातको हम दावेके साथ कह सकते हैँ कि जैसा सादा और परम पवित्र जीवन मालवीयजीका है उतना पवित्र जीवन शायद ही काशीके किसी कोनेमेँ मिल सके। पर हम समझते हैँ कि वे विद्वान् पण्डितगण भी यदि सूक्ष्म दृष्टिसे एकान्तमेँ बैठकर विचारेँगे तो उन्हेँ ज्ञात हो जायगा कि मर्य्यादा-पुरुषोत्तम रामने जब निषादको गलेसे लगाया उस समय राम, राम ही बने रहे, पर निषाद अपनी स्थितिसे ऊँचे उठ गया। पारस कभी लोहा नहीँ बनता है, वह लोहेको सोना बना देता है। हमारे विद्वान् पण्डितगण यह बात जानते हैँ और वे जल्दी ही यह समझ जायँगे कि गङ्गाजीकी पवित्र धारामेँ सारा संसार आकर डुबकी लगा लेता है और सारा मल भी उसमेँ डाल देता है, पर गङ्गाजी वही जगत्रय-पावनी बनी रहती हैँ, और भगवान् विश्वनाथजी नित्य उन्हीँके जलसे स्नान करनेको उत्सुक रहते हैँ।

गूँगी माता

जब हमेँ कभी दर्द होने लगता है तो हम छटपटाते हैँ, रोते और चिल्लाते हैँ और बता देते हैँ कि दर्द कहाँ हुआ है। पर यदि वही दर्द किसी गूँगेको हो, जिसके हाथ पैर न हो, तब वह अपनी पीड़ा कैसे बतावे? ऐसे कितने लोग हैँ जो आँखके आँसू देखकर किसीकी बिथा पहचान लेते हैँ। जो कथा अब हम कहने जा रहे हैँ वह बड़ी दुखभरी है। सुनते हैँ हमारे देशमेँ दूधकी नदियाँ बहती थीँ। हमारे उपदेशक लोग बड़े अभिमानसे चिल्ला-चिल्लाकर सभाओँमेँ यह बात कहा करते हैँ। यह बात वैसी ही है जैसे दिल्लीके कुछ ताँगेवाले सम्राट अकबरके ख़ानदानसे अपना रिश्ता जोड़ा करते हैँ। पर ख़ैर उनके सामने दिल्लीका क़िला और आगरेका ताज उनके पुराने वैभवकी उन्हेँ याद तो दिलाते हैँ। यहाँ दूरतक चले जाइए, खेतोँमेँ मरभुखे बैल और गोधनोँमेँ सूखी हुई गैयाँ मिलेँगी जिनका एक-एक हाड़ गिन लीजिए, और ऐसी भी इतनी कम हैँ जो उँगलीपर गिनी जा सकती हैँ। पर इसका एक और भी रूप है। जबसे अंग्रेज़ हिन्दुस्थानमेँ आए तबसे हिन्दुस्थानियोँको भी गर्मी अधिक लगने लगी है। उन पहाड़ी प्रान्तोँमेँ, जहाँ संसारकी मोहमाया त्याग कर लोग अपना जीवन एकान्तमेँ बिताया करते थे, उन्हीँ हिमालयकी पर्वत-मालाओँमेँ मोहमायाको साथ लेकर लोग पहुँच गए हैँ। पर्वतकी पवित्रता और एकान्तता तो मिट ही गई, साथ ही उसका स्वरूप भी बदल दिया। जहाँ लोग ब्रह्मसे मिलने जाया करते थे वहाँ विलासने डेरा जमा लिया। योगियोँका स्थान भोगियोँने छीन लिया। इन्हीँमेँसे एक मन्सूरी पहाड़ भी है। देहरादूनकी घाटीसे यह पहाड़ सामने दिखाई पड़ता है जहाँ नित्य सन्ध्याको मनोहर दिवाली मनाई जाती है। गर्मीके दिनोँमेँ तो वहाँ नन्दनवन ऊपरसे उतर आता है और नीचेके देवता लोग ऊपर चढ़ जाते हैँ। यहीँका एक दृश्य है। कुछ लोगोँने आँखोँसे देखा होगा, सुना तो बहुतोँने होगा। यहाँ तीसरे-चौथे दिन गायोँका एक झुण्ड आया करता है, जिनके पीछे-पीछे लाठी लिए हुए क़साई बड़ी बेरहमीसे हाँकते हुए लाते हैँ। ये गौएँ कितनी सुन्दर, स्वस्थ और बलिष्ठ होती हैँ कि बस देखते ही बन पड़ता है। जान पड़ता है कि इन्हीँ गौओँको देखकर रसखानने कहा था—'आठहुँ सिद्धि नवौ निधिको सुख नन्दकी गाय चराय बिसारौँ' पर ये सुन्दर गायेँ स्मशानमेँ ले जाई जाती हैँ। वहाँ कई-कई गायेँ एक साथ छुरेके नीचे पहुँचाई जाती हैँ। कुछ गायेँ हठ करती हैँ, आगे नहीँ बढ़तीँ, उनकी पूँछ ऐसी बुरी तरह मरोड़ी जाती है कि वह टूट जाती है। बेचारी पीड़ासे उछलकर आगे बढ़ती हैँ और फिर समाप्त। हिन्दुओँकी ये माताएँ उसी पवित्र हिमालयकी गोदमेँ, जहाँसे गङ्गा निकलती हैँ और उन्हीँ हिन्दुओँके सामने, जो उन्हेँ माता कहते हैँ, राक्षसोँके सामने तश्तरियोँमेँ परोस दी जाती हैँ। जहाँ एक ओर आँखमेँ आँसू भरकर पचीस करोड़ पुत्रोँके होते हुए भी वह माता बेबस होकर प्राण देती है, वहीँ दूसरी ओर हम लोग सिनेमा देखते हैँ, दूर देशोँके

समाचार पढ़ते हैं और अपनी गर्मी शान्त करते हैं। उस हल्लेमें हमें अपनी गूँगी माँका विलाप नहीं सुन पड़ता, हम नहीं समझ पाते कि हमारे बच्चोंके मुँहसे ज़बरदस्ती दूध छीना जा रहा है। हम लोग चुप बैठे रहते हैं, साम्यवाद और समाजवादका ढकोसला करते हैं और हमारी आर्थिक समस्याका जो इतना महत्त्वपूर्ण पहलू है उसकी ओर ध्यान नहीं देते।

कौटिल्यके अर्थशास्त्रको पढ़नेसे जान पड़ेगा कि उस समय दुधारू पशुओंकी रक्षाके लिये राज्यकी ओरसे कैसे-कैसे उपाय किए जाते थे। जो ग्वाले गर्मीके दिनोंमें बछड़ोंके लिये काफ़ी दूध नहीं छोड़ते थे उनके अँगूठे काट लिए जाते थे। किसी बछड़े, साँड़ या गौको मारनेकी आज्ञा नहीं थी। यह प्रथा बनी चली आई और गौ केवल हिन्दुओंकी माता नहीं बल्कि तीनों लोकोंकी माता कहलाई जाने लगी।

'गावस्त्रैलोक्यमातरः'

हिन्दुओंकी बात तो जाने दीजिए, मुसलमानी शासनकालमें भी गोरक्षापर बड़ा ध्यान रक्खा गया। बाबरने अपने मरनेके समय अपने पुत्र हुमायूँको उपदेश देते हुए यह भी कहा था कि यदि तुम भारतके लोगोंके हृदयपर शासन करना चाहते हो तो गौकी हत्या न होने देना।

मुस्लिम राज्यकी स्थापनासे लेकर फ़ीरोज़ शाह तुग़लकके समयतक गौकी बिक्रीपर ज़ज़्री नामका एक कर लगाया जाता था जिसका उद्देश्य यही था कि गौकी रक्षा हो सके। अकबर और जहाँगीर दोनोंने गौकी रक्षाका प्रयत्न किया। 'इस्लामी गोरक्षण' के अनुसार बादके मुग़ल राजाओंमें मुहम्मद शाह और शाह आलमने भी गोवधकी मनाही कर दी थी।

मुग़लोंके अन्तिम दिनोंमें प्रातःस्मरणीय छत्रपति शिवाजीने तो केवल गौ और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये ही तलवार सँभाली थी। जब वे बारह वर्षके थे, एक दिन उन्हें ज़बरदस्ती बीजापुरके सुल्तानके दरबारमें जानेके लिये कहा गया। उन्होंने साफ़ कह दिया, "हम हिन्दू हैं, वे यवन हैं। वे बड़े नीच हैं क्योंकि वे गौकी हत्या करते हैं। सरेआम गौएँ मारी जाती हैं। मेरा बस चले तो मैं इन हत्यारोंकी गर्दन मार दूँ।"

वर्त्तमान समयमें काश्मीर और नैपालने गोरक्षामें प्रशंसनीय काम किया है। जोधपुर रियासत तो इससे भी आगे बढ़ी हुई है। वहाँसे गौ, भेड़ और बकरीका बाहर भेजनातक मना है। सन् १९२६ ई० में बेलारी ज़िलेके अन्तर्गत सोण्डर राज्यके शासकने गोवध रोकनेकी तो घोषणा कर ही दी है साथ ही बूढ़ी और सूखी गौओंको भी क़साइयोंके हाथसे लेनेका प्रबन्ध राज्यकी ओरसे किया है।

यह जानकर किसे आश्चर्य्य और हर्ष न होगा कि वर्त्तमान कालमें सबसे पहले गोरक्षाका काम सीतापुरके प्रसिद्ध मुसलमान वकील श्री सैयद नाज़िर अहमद साहबने प्रारम्भ किया था और उन्होंने सीतापुरमें ही 'इस्लामी गोरक्षण सभा' स्थापित की। वे गौके और गोपाल कृष्णके अनन्य भक्त थे। उन्होंने सदा यह प्रचार किया कि इस्लाम धर्मने कहीं भी गोवधकी आज्ञा नहीं दी है। उन्होंने गोरक्षाके लिये बहुतसे पर्चे और पुस्तकें बाँटी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके शब्दोंमें हम कह सकते हैं:—

'इन मुसलमान हरिजननपर कोटिन हिन्दू वारिए।'

सन् १८७७ ई० में मद्रासमें 'सोसाइटी फ़ौर दि प्रिवेन्शन औफ़ क्रुएल्टी टु ऐनिमल्स' (जीवोंको निर्दयतासे बचानेवाली समिति) नामक संस्था शुरू हुई। यह तबसे काम करती आ रही है और इसके इन्सपेक्टरोंको पुलीसके सिपाहियोंके अधिकार मिले हुए हैं कि वे किसी भी जीव-हिंसकको गिरफ़्तार कर सकते हैं।

कलकत्तेका 'काउ-प्रिज़र्वेशन लीग' (गोरक्षा-सङ्घ) सन् १९२८ ई० में स्थापित हुआ और इसके अध्यक्ष

हुए सर आशुतोष मुकर्जी। फिर तो अनेक पिञ्जरापोल, गोशालाएँ और गोरक्षक मण्डलियाँ बनीं।

मालवीयजीका गोरक्षा-आन्दोलनसे बड़ा सम्बन्ध रहा है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के जन्मके बाद ही उसीके साथ प्रतिवर्ष गोरक्षा-सम्मेलन भी होने लगा और मालवीयजी उसमें बड़ा भाग लेने लगे। इधर हरिद्वारके पास गोवर्णाश्रम धर्म-सभा कनखलने और फिर भारतधर्म महामण्डलने और सनातनधर्म सभाओंने गोरक्षाके लिये आन्दोलन किया और मालवीयजी इनमेंसे अनेक गोरक्षा-सम्मेलनोंके सभापति रह चुके हैं। मालवीयजीने केवल प्रचार मात्र ही नहीं किया बल्कि स्थान-स्थानपर गोशालाओं और पिञ्जरापोलोंके लिये रुपया भी इकट्ठा किया। राजाओं, महाराजाओं, ज़मीन्दारों और तालुक़ेदारोंसे मिलकर गोचर-भूमिके लिये जगह छुड़वाई। मथुराके हासानन्दका नाम गोरक्षाके इतिहासमें अमर रहेगा। वे सदा अपना मुँह काला किए रहते थे और उनका कहना था कि जबतक हम पूरे तौरसे गोवध बन्द नहीं करते तबतक हम लोगोंको अपना मुँह काला ही रखना चाहिए। पूज्य मालवीयजीने हासानन्दजीकी बड़ी सहायता की और मथुराके हासानन्द-गोचर-भूमि-ट्रस्टके स्थापित करनेमें पूरी मदद दी।

ऊपर हमने कहा है कि राष्ट्रीय महासभाके साथ-साथ गोरक्षा सम्मेलन हुआ करते थे। अखिल भारतीय गोरक्षा समिति, साबरमतीके अधीन महात्मा गान्धीकी संरक्षतामें एक केन्द्रीय गोरक्षा समिति बनी जो बराबर गोरक्षाका काम करती है।

सन् १९२८ ई० में मालवीयजीकी अध्यक्षतामें प्रयागमें जो सनातनधर्म महासम्मेलन हुआ उसमें गोरक्षाके सम्बन्धमें बड़े महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव हुए। ये केवल प्रस्तावमात्र नहीं हैं बल्कि गोरक्षाकी पूरी कार्य्य-प्रणाली ही है।

गोरक्षा

(१) (क) इस महासभाको यह देखकर बहुत सन्ताप होता है कि इस देशमें गोवंशका बड़ा भयङ्कर संहार हो रहा है। अतएव महासभा हिन्दू भाइयोंसे सानुरोध प्रार्थना करती है कि वे गौओंको वधिकोंके हाथ पड़नेसे बचावें और वन्ध्या और बूढ़ी गौओंको ऐसे स्थानोंमें, जङ्गलोंमें और रियासतोंमें रखनेका प्रबन्ध करें जहाँ क़ानूनसे गोहत्या निषिद्ध हो।

(ख) यह महासभा ज़मीन्दारोंसे निवेदन करती है कि वे गाँवोंमें गोचारणके लिये काफ़ी भूमि छोड़नेका नियम करें और जहाँ गोचारण भूमिको खेतीमें मिला लिया गया हो उसे छोड़ दें तथा गवर्नमेण्टसे अनुरोध करती है कि ऐसी ज़मीनपर मालगुज़ारी न ले।

(ग) जहाँ-जहाँ उचित जान पड़े एक-एक आदर्श गोशाला खोली जाय।

(घ) प्रत्येक हिन्दू, जिसको सामर्थ्य हो, एक गौ पाले।

(ङ) यह महासभा गोदान करनेवालोंको आदेश करती है कि वे योग्य पात्र ही को गोदान दें और गोदानके योग्य ही गौवोंका दान करें तथा गोदान लेनेवालोंसे प्रार्थना करती है कि उन्हें गौके रखनेकी सामर्थ्य न हो तो उसका दान न लें।

(च) यह सनातनधर्म महासभा सब सनातन-धर्मानुयायी सज्जनोंसे निवेदन करती है कि वृषोत्सर्गमें वे साँड़ केवल उत्तम जातिके छोड़ें और वहीं छोड़ें जहाँ उनकी आवश्यकता हो। और छोड़नेके पहले म्युनिसिपल या डिस्ट्रिक्ट बोर्डसे या रियासतोंकी सरकारके साथ इस बातका पक्का प्रबन्ध कर लें कि उनके छोड़े हुए साँड़का ठीक-ठीक पालन-पोषण और रक्षा होगी। बिना ऐसा प्रबन्ध किए साँड़को छोड़ना इस कलियुगमें पापका मूल हो गया है और उससे प्रत्येक धर्मशील प्राणीको बचना चाहिए।

(छ) यह महासभा हिन्दूमात्रके प्रति आदेश करती है कि वे क़साइयोंके साथ किसी तरहके लेन-देनका व्यवहार न करें, और जो इसके विरुद्ध लेन-देन करे या गौको वधिकोंके हाथ बेचे, उसे उचित सामाजिक दण्ड दें।

(ज) यह महासभा प्रत्येक हिन्दूसे अनुरोध करती है कि वह जहाँतक हो सके चमड़ेका व्यवहार कम करे।

(२) इस महासभाका यह निश्चय है कि गोवध केवल मांसके कारण ही नहीं बल्कि चमड़ा, चरबी इत्यादि वस्तुओंके कारण भी होता है, और वध की हुई गायका चमड़ा काममें लानेसे गो-हत्याको उत्तेजना मिलती है। इसलिये यह महासभा हिन्दूमात्रसे अनुरोध करती है कि वे स्वाभाविक मौतसे मरे हुए पशुओंके ही चमड़ेसे बने हुए जूते आदिको काममें लावें, और हिन्दू धनिकोंसे प्रार्थना करती है कि स्वाभाविक मौतसे मरे हुए पशुओंके चमड़ेके जूते वगैरह बनवा करके सब हिन्दुओंके लिये उनका प्राप्त करना सुलभ कर दें, और हिन्दू मिलवालोंसे अनुरोध करती है कि वे कपड़ेकी माँड़ी इत्यादिमें चरबीके स्थानपर अन्य निर्दोष वस्तुओंका प्रयोग करें।

(३) इस महासभाकी रायमें आजकल बड़े शहरोंमें दूध बेचनेवाले लोग गौओंसे बहुत बुरा बर्त्ताव कर रहे हैं, जिससे वह पूर्ण युवावस्थामें ही प्रायः वन्ध्या होकर मार डाली जाती हैं और उनके बच्चोंको भी मार डालते हैं। इसलिये यह महासभा सब गोशालाओं और पिञ्जरापोलोंके व्यवस्थापकोंसे अनुरोध करती है कि वे उनको दुग्धालयके रूपमें परिणत कर दें। वृद्ध, अशक्त और दूध न देनेवाली गौओंको, जहाँ उनके पालनका ख़र्च कम हो, ऐसे स्थानपर भेज दें, और अपने साँड़ोंके ज़रिएसे गौवोंकी नसल इस तरह सुधार दें और उनका दूध बढ़ा दें कि किसीके लिये भी उनका वध करना आर्थिक दृष्टिसे असम्भव हो जाय।

(४) सनातनधर्म महासभाको यह देखकर अत्यन्त दुःख होता है कि बड़े-बड़े नगरोंमें दूध देनेवाली गौएँ ले जाई जाकर दूध बन्द होनेपर क़साइयोंके हाथ बेच दी जाती हैं और उनसे बच्चे नहीं लिए जाते। इस भयङ्कर पाप और हानिको रोकनेके लिये सन् १९१३ ई० में जो बोर्ड औफ़ एग्रिकल्चरने कोयम्बटूरमें क़ानूनकी आवश्यकताको बतलाया था, उसकी ओर महासभा सरकार और कौन्सिलोंके मेम्बरोंका ध्यान दिलाती है।

गोरक्षा-कोष

(१) यह सनातनधर्म महासभा निश्चित करती है कि हिन्दू जातिके परम कल्याणके साधन गोधन और गोरक्षाकी वृद्धिके लिये एक "अखिल भारतवर्षीय गोरक्षा-कोष" की स्थापना की जावे जिससे गोचर-भूमिकी वृद्धि और गोरक्षाके और-और साधन प्रस्तुत किए जावें।

(२) यह सनातनधर्म महासभा आदेश करती है कि सनातनधर्मकी सभाएँ इस विषयमें अन्य भाइयोंसे मिलकर काम करें।

(३) यह सनातनधर्म महासभा अपनी कार्य्यकारिणी समितिको आदेश करती है कि वह स्थान-स्थानपर गोचर-भूमिके छुड़ाने और गोरक्षाके अन्य आवश्यक उपायोंको करनेके लिये, विशेषकर सरकारी जङ्गलोंमें गोचर-भूमि छोड़े जानेके लिये, प्रान्तीय कौन्सिलों तथा व्यवस्थापिका सभा तथा देशी राज्योंके द्वारा क़ानून बनानेका प्रयत्न करे।

(४) यह सनातनधर्म महासभा निश्चय करती है कि कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदासे कार्त्तिक शुक्ल अष्टमी अर्थात् गोवर्द्धन-पूजाके दिनसे गोपाष्टमीतक प्रतिवर्ष सारे भारतवर्षमें गो-सप्ताह मनाया जावे, जिसमें गोरक्षा-सम्बन्धी उत्सव, गोपूजा, गोकथा गोमाहात्म्य, व्याख्यान, तथा गोपरिपालनके साहित्यका प्रचार किया जावे, और प्रतिपद्के दिन सारे हिन्दू जगत्में गोरक्षाके लिये दान माँगा जाय। और यह सब द्रव्य अखिल भारतवर्षीय गोरक्षा-कोष, काशीमें, भेजा जाय, और बैङ्कमें महासभाके हिसाबमें "गोरक्षा-कोष" इस नामसे जमा हो, और सब हिसाबसे अलग रक्खा जाय और गोरक्षाके काममें ही व्यय किया जाय।

(५) सनातनधर्मकी यह महासभा ज़मीन्दारोंसे निवेदन करती है कि उनकी ज़मीन्दारीके भीतर, जहाँ गौ-बैलके बाज़ार लगते हों, उनमें वे ऐसा प्रबन्ध करें

कि वहाँ धोखेमें पड़कर कोई हिन्दू किसी गौको क़साईके हाथ न बँचे और धोखा देकर कोई कसाई गौको न ख़रीद सके।”

इसी सम्बन्धमें एक बात और कहनी आवश्य जान पड़ती है कि प्रारम्भमें मुज़फ़्फ़रनगरके माननीय लाला सुखबीर सिंहने कौन्सिलके द्वारा गोरक्षा-विधान बनवानेका प्रयत्न किया और उसके बाद फिर कुछ और लोगोंने भी गोरक्षा क़ानून बनवानेका प्रयत्न किया, पर दोनों ही बार सफलता न मिल सकी। जान पड़ता है कि अभी हमारे माननीय सदस्य लोग हिन्दुस्थानकी और भी अधिक दुर्दशा देखना चाहते हैं।

मालवीयजीकी गोभक्ति उनके घर दिखाई देती है। उनके बँगलेके भीतर कई गैया और बछवे बँधे मिलेंगे और कभी-कभी जब बछवे कूदते हैं, उछलते हैं तो मालवीयजीके नेत्र एकदम खिल जाते हैं। जान पड़ता है कि बस ये भी उन्हींके साथ छलाँगें मारनेको तैयार हैं। कृष्णभक्तोंके घरमें तो वैसे भी गौकी पूजा होती है, पर मालवीयजी तो गौमें उस प्रकारकी श्रद्धा रखते हैं, जो कहते हैं—

गावो मेऽग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

एक दफ़ेकी बात है। पञ्जाब और आसामका दौरा समाप्त करनेके उपरान्त मालवीयजी जूनके अन्तिम दिनोंमें गोरखपुर पहुँचे। चौरीचौरा काण्डने गोरखपुरकी बड़ी शोचनीय दशा बना दी थी। बेचारे निरीहों और भयार्त्तोंको इनके पहुँचनेसे बड़ा अभय-दान मिला। आपको दफ़ा एक सौ चवालीस ज़ाब्ता फ़ौजदारीद्वारा चौरीचौरामें भाषण देनेकी मनाही कर दी गई थी, परन्तु आपने दफ़ा एक सौ चवालीसको तोड़नेका भी सङ्कल्प कर लिया था। “स्वदेश” सम्पादक पण्डित दशरथप्रसाद द्विवेदी तथा मौलवी अब्दुल अहद साहबके साथ मोटरमें आप पड़रौनासे गोरखपुर आ रहे थे। रात ज़्यादा हो गई थी। आप लोगोंको निद्रा आ गई। नींदने ड्राइवरको भी आ घेरा। फलतः घनघोर अँधियारीमें मोटर टकरा गई—टूट-फूट गई। मालवीयजीको भी चोट आ गई। परन्तु इसकी कुछ चिन्ता न कर आप जल्दी-जल्दी आगे बढ़े। कारण यह था कि अँधेरी रातमें एक बैलगाड़ी आगे बढ़ रही थी। आपने सोचा कि कदाचित् बैलोंको चोट आ गई हो। जब आपने देख लिया कि बैलोंको कुछ भी चोट नहीं लगी है तब आपने अपनी चोटकी ख़बर ली। साथियोंके हृदयपर इस घटनाका गहरा प्रभाव पड़ा। मोटर तो बेकार हो ही गई थी, मरहमपट्टी कर एक एक्का जो संयोगसे मिल गया, उसीसे मीलोंका सफ़र ते कर आप गोरखपुर पहुँचे।

मालवीयजीने गौके बारेमें कहा है कि ‘गौ मानव जातिकी माताके समान उपकार करनेवाली, दीर्घायु, बल और निरोगता देनेवाली और मनुष्य जातिकी आर्थिक उन्नति बढ़ानेवाली देवी है। जो यह तृण-जल खाकर मनुष्यको माताके दूधके समान दूध पिलाती, अनेक प्रकारसे मनुष्यकी सेवा करती और उसको सुख पहुँचाती है। इसके उपकारसे मनुष्य कभी उऋण नहीं हो सकता। हमको यह स्मरण रखना चाहिए कि गौ समान रीतिसे मनुष्य मात्रकी सेवा करती है, और इसलिये सब जाति, धर्म और सम्प्रदायके मनुष्योंको गोवंशकी रक्षा करने, उसके साथ न्याय और दयाका वर्त्ताव बढ़ानेमें प्रेमके साथ शामिल होना चाहिए। गोरक्षा सप्ताहमें, गोरक्षाके सम्बन्धमें व्याख्यानोंके द्वारा तथा अन्य रीतियोंसे सर्वत्र गौओंके उपकारका स्मरण करना और कराना, हर बस्तीमें गौओंके चरनेके लिये गोचर-भूमियोंका स्थापित करना और गोवंशको बलवान् तथा दीर्घायु बनाना चाहिए जिसमें शुद्ध और सस्ता गौका दूध ग़रीब-से-ग़रीब भाइयोंको भी मिल सके। ऐसा प्रबन्ध करना मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य है। इस काममें सब जाति और धर्मके अनुयायी लोग गौके प्रति प्रेम और दयाका भाव बढ़ानेमें सहायक हों।’

आज करोड़ों भारतके लाल ख़ाली कटोरा लिए

हुए 'दूध, दूध' चिल्लाते हुए अपना जीवन दे डालते हैं और उनकी इतनी भारी मृत्युका कारण बताया जाता है 'पर्देकी प्रथा, बालविवाह और गन्दगी'। पर हम पूछते हैं कि आजसे सौ बरस पहले भी तो ये सामाजिक कुरीतियाँ मौजूद थीं, फिर क्यों सौ-सौ बरसतक लोग ज़िन्दा रहे। सारी दुनिया मानती है कि दूध मनुष्यका सर्वश्रेष्ठ भोजन है। वे यह भी मानते हैं कि माताके दूधके बाद सर्वश्रेष्ठ दूध गौका ही होता है। वे यह भी मानते हैं कि गौओंकी संख्या कम होती जा रही है और हर साल गौओंकी खालें अधिक-से-अधिक संख्यामें विलायत भेजी जा रही हैं, पर न जाने वे क्यों नहीं मानते कि हमारे बच्चोंकी रक्षाके लिये गोवध भी बन्द होना आवश्यक है। हम यह मानते हैं कि घड़ीमें चमड़ेका फ़ीता बाँधनेवाले, चमकीले चमड़ेका जूता पहननेवाले और चमड़ेके सामानका व्यवहार करनेवाले लोग गोवधके लिये बहुत ज़िम्मेदार हैं। जो लोग भारतकी बेकारी दूर करनेके लिये विलायती हल जोतनेकी राय देते हैं उन्हें जानना चाहिए कि पहले गौ पालकर लोग घी, दूधका बड़ा भारी व्यापार करते थे, उनका पेट भी भर जाता था, उनके बच्चे भी हँसते-खेलते थे और दुर्दिनके लिये वे कुछ बचा भी रखते थे पर अब उन्हें खेत जोत-बोकर हाथपर हाथ धरे बैठे रहना पड़ता है।

गोभक्त मालवीयजी स्वयं चमड़ेका जूता नहीं पहनते। वे सैकड़ों, हज़ारों गूँगी माताओंके आशीर्वादसे ही आयु पाते चले जा रहे हैं। वही पवित्र दूध मालवीयजीके शरीरमें उत्साह, बल, कान्ति और मेधा दे रहा है और बेचारी गाएँ बड़ी आशासे उनकी ओर उस दिनकी बाट जोहती हुई निहार रही हैं, जब भारतमें गोवध बन्द हो जायगा और वे स्वतन्त्रतापूर्वक फिर पहलेकी तरह विचरेंगी।

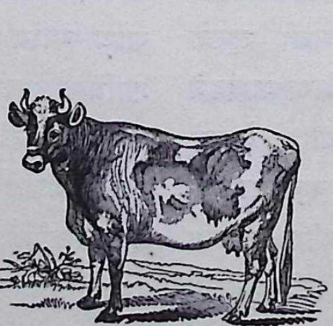

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नतिको मूल

भारतमें मुग़लोंके क़िलोंपर विदेशियोंकी पताका फ़हरानेपर भी मुसलमानी छाप 'हिन्दुस्थान' पर बनी रही। मुसलमानोंकी बात तो जाने दीजिए, हमारे ब्राह्मण और क्षत्रियोंके बच्चोंका विद्यारम्भ 'अलिफ़, बे, पे' से होता रहा क्योंकि हमारी बोलचालकी भाषाको लोग 'भाखा' कहकर दुरदुराया करते थे और आजकी 'नागरी' उस समय 'गँवारी' समझी जाती थी, फ़ारसी उसका गला दबाए बैठी थी। ब्रजका घाघरा पहने हुए जब वह कचहरीमें घुसने लगी तो मुग़लोंकी मुँहचढ़ी फ़ारसीने उसे वहाँ घुसने न दिया। भला शहरी लोग गाँववालोंका आदर ही क्यों करने लगे। आख़िर लाख सिर पटकनेपर भी बेचारी नागरीकी कुछ सुनवाई न हुई। वह उल्टे पैरों लौट आई। फ़ारसी राजाकी मुँहचढ़ी थी, किसके दो सिर हुए कि उसके विरुद्ध मुँह खोले।

पर नागरीका यह अपमान कुछ लोग न सह सके। राजा शिवप्रसादने 'बनारसी अख़बार' में बेचारी नागरीकी ओरसे बड़ी वकालत की। पर राजा साहबने देखा कि हवाका रुख़ ठीक नहीं है, वे पाल समेटकर तो नहीं बैठ रहे पर उन्होंने कुछ तो हवाका सहारा लिया और कुछ पतवार का। देशी घाघरेके साथ-साथ फ़ारसकी चोली अच्छी तो न लगी पर और कोई उपाय न था। उर्दू भाषा मुसलमानी संस्कार लिए हुए भी नागरी वस्त्र पहनकर आई। राजा साहबकी हिन्दी ऐसी ही चलती रही। यह भी क्या कम था?

मालवीयजीके जन्मके साथ-साथ आगरेसे राजा लक्ष्मणसिंहका 'प्रजा-हितैषी' भी पैदा हुआ और पहले पहल उनके प्रसिद्ध 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का हिन्दी अनुवाद निकला। लोगोंने दिल खोलकर इस 'शकुन्तला' का स्वागत किया। इन हिन्दी वस्त्रोंमें वह सचमुच कितनी भली भी तो लगती थी। इधर युक्तप्रान्तमें तो ये लोग हिन्दी और नागरीके राज्याभिषेककी तैयारी कर रहे थे, उधर पञ्जाबमें सन् १८६३ और १८८० ई० के बीच बाबू नवीनचन्द्र रायने भी उसकी प्रतिष्ठाकी पूरी तैयारी कर ली थी। स्वामी दयानन्दजीके आर्य्य-समाजने और पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरीके धार्मिक आन्दोलनोंने आर्य्य-भाषा हिन्दीको ख़ूब अपनाया और उसका पढ़ना सबके लिये आवश्यक कर दिया। श्रद्धाराम फुलौरीजी हिन्दी गद्यके बहुत अच्छे लेखक थे और सन् १८८१ ई० में अपनी मृत्युके समय उन्होंने कहा भी था कि "भारतमें भाषाके लेखक दो हैं—एक काशीमें दूसरा पञ्जाबमें—परन्तु आज एक ही रह जायगा।" यह काशीके लेखक सिवाय भारतेन्दु 'बबुआ' हरिश्चन्द्रके और कौन हो सकते थे।

बबुआ हरिश्चन्द्र वर्त्तमान हिन्दी गद्यके पिता कहलाते हैं। उन्होंने अनेक मौलिक पुस्तकें लिखीं, अनेकोंका अनुवाद किया। सच पूछिए तो बेचारी हिन्दीको सिंहासनपर हाथ पकड़कर बैठानेका श्रेय बबुआको ही था। मुन्शी सदासुखलालने उसे पुराने पण्डिताऊ ढङ्गके कपड़े पहनाए, लल्लूलालजीने ब्रजका

८१

घाघरा पहनाया और सदल मिश्रने पूर्बी धोती। पर ये सब वस्त्र उसे न जँचे। राजा शिवप्रसादके मुसलमानी कपड़ोंमें भी वह अच्छी न लगी। इसी लिये भारतेन्दु बाबूने उसे बिलकुल देसी—खद्दरकी तो नहीं—हाँ रेशमी साड़ी पहना दी। अब तो हिन्दीका रङ्ग निखर उठा। बबुआ भारतेन्दुजीने हिन्दीके गद्य और पद्य दोनों रूपोंको माँज दिया, उसपर रङ्ग चढ़ाकर ऐसा चमका दिया कि सबकी आँखें उसी ओर जा लगीं। न जाने कितने लेखक और कवि 'बबुआ' के दरबारमें आकर जुटने लगे। सन् १८७३ ई० में बबुआने 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' निकाली जो आठ अङ्कोंके बाद 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कहलाने लगी। इस हिन्दीके बारेमें स्वयं उन्होंने अपनी 'कालचक्र' नामक पुस्तकमें नोट किया है कि "हिन्दी नई चालमें ढली सन् १८७३ ई० में।" अब तो हिन्दीका बड़ा बोल-बाला हो गया, सैकड़ों हज़ारों लेखक और कवि बन गए और पत्र-पत्रिकाएँ चल निकलीं। बबुआ उन दिनोंके नौजवानोंके ध्रुव थे। सब लोग अपनी कविता और लेख उन्हींके दरबारमें भेजा करते थे और भारतेन्दुजी भी राजाओंकी तरह उनकी क़द्र तो करते ही थे साथ ही उन्हें इनाम भी देते थे।

हरएक व्यक्तिके जीवनमें एक ऐसा अवसर आया करता है जब उसकी कल्पना आकाशमें उड़ा करती है और वह अपने नए भावोंकी नई दुनिया बनाया करता है। यह उसकी कविताका युग होता है। बबुआके दरबारमें लोग अपनी कविताएँ तो पढ़ते ही थे साथ ही समस्यापूर्त्ति भी करके भेजा करते थे। इन कवियोंमें प्रयागके एक नौजवान रसिक कवि 'मकरन्द' भी थे। समस्या थी 'राधिका रानी'। 'मकरन्द' ने कुछ सवैये भेजे। कल्पना तो देखिए—गोरी रानी राधिका काला कम्बल ओढ़नेवाले काले कलूटे गाय चरानेवाले पर कैसे रीझ गईं, इस समस्यापूर्त्तिमें कवि 'मकरन्द' ने एक नई समस्या खड़ी कर दी। ज़रा सुनिए—

इन्दु सुधा बरस्यौ नलिनीन पै वे न बिना रविके हरखानी।
त्यौं रवितेज दिखायो तऊ बिनु इन्दु कुमोदिनि ना बिकसानी॥
न्यारी कछू यह प्रीतिकी रीति नहीं 'मकरन्द जू' जात बखानी।
साँवरे कामरीवारे गुपाल पै रीझि लटू भई राधिका रानी॥

श्रीकृष्णको सभी गोपियाँ चाहती थीं परन्तु वे किसीके बसमें क्यों आने लगे ?। वे तो थे नटनागर। गीताके अनुसार वे तो *'भ्रामयन् सकलान् जीवान् यन्त्रारूढ़ानि मायया'* रहे। श्रीकृष्ण सामने हैं पर मानिनी राधा आँख उठाकर देखती भी नहीं। उनकी एक सखी समझा रही है :—

वे कबके उत ठाढ़े अहैं इत बैठि अहौ तुम नारि चुपानी।
थाकी तुम्हैं समुझावत सामतैं ऐसी मैं रावरी बानि न जानी॥
मोहि कहा पै यहै 'मकरन्दहुँ' जो कहूँ खीझि कै रूसन ठानी।
आजु मनाये न मानती हौ कल्ह आपु मनाइहौ राधिका रानी॥

रानी तो मशहूर हैं, पर कृष्णके लिये राधिकाजी कञ्जूसी कर रही हैं। इसपर कृष्णके मुखसे हमारे 'मकरन्द' जी कहला रहे हैं। इसमें रसिकताकी हद ही समझिए।

माँगत मोतिन माल नहीं नहिं माँगत तोसौं मैं भोजन पानी।
सारी न माँगत हौं 'मकरन्द' न थारी अनेक सुगन्धन सानी॥
माँगत हौं अधरा-रस रञ्चक सोउ न दीजतु हौ सनमानी।
सूमता एती तुम्हैं नहीं चाहिए बाजति हौ चहूँ राधिका रानी॥

ब्रजके फागका सरस वर्णन भी इसी समस्याकी पूर्त्तिमें देखिए। आँखोंके सम्मुख बहारदार दृश्य नाचने लगता है :—

धूम मची ब्रज फागु री आजु बजैं डफ झाँझ अबीर उड़ानी।
ताकि चलैं पिचुका दुहुँ ओर गलीनमें रङ्गकी धार बहानी॥
भीजैं भिगोवैं ठढ़े 'मकरन्द' दुहूँ लखि सोभा न जात बखानी।
ग्वालन साथ इतै नन्दलाल उतै सङ्ग ग्वालिन राधिका रानी॥

'कदम्बकी डारन' देख-देख गोपियाँ कृष्णके विरहमें कातर हो रही हैं। श्रीकृष्णका दही, दूध और माखनके लिये हाथ पसारना, ब्रजकी कुञ्जोंमें लीलाएँ करना, चीर हरकर कदम्बकी डालपरसे उपदेश देना उनको स्मरण हो रहा है। कातर होकर गोपियाँ कह रही हैं :—

भूलिहैं सो हँसि माँगिबो दानको रञ्च दही हित पानि पसारन।
भूलिहैं फागुके रागु सबै वह ताकहि ताकिकै कुङ्कुम मारन॥

सो तो भयो सबही 'मकरन्दजू' दाखहि चाखिकै बैर बिसारन।
जापर चीर चुराय चढ़े वह भूलिहैं कैसे कदम्बकी डारन॥

ढूँढ़्यो चहूँ झझरीन झरोखन ढूँढ़्यो किते भर दाव पहारन।
मञ्जुल कुञ्जन ढूँढ़ि फिर्यो पर हाय मिल्यौ न कहूँ गिरिधारन॥
लावत नाहिं तऊ परतीति सह्यौ इतनो दुख प्रीतिके कारन।
जानत स्याम अजौं उतही चित चौंकत देखि कदम्बकी डारन॥

इधर प्रतापनारायण मिश्र हिन्दीके सिंहासनकी सजावट कर रहे थे, उधर सन् १८७६ ई० में बालकृष्ण भट्ट अपना 'हिन्दी-प्रदीप' लेकर उसकी आरतीका थाल सजा रहे थे। साथ ही उपाध्याय पण्डित बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन—क़लमकी कारीगरी समझनेवाले—अपनी लच्छेदार डोरियोंका हार गूँथ रहे थे। बड़ी चहल-पहल थी। संसारके किसी महाराजा या महारानीके राज्याभिषेकके लिये भी इतनी लगन और उत्साहके साथ तैयारी न हुई होगी, जितनी हिन्दीके राज्याभिषेकके लिये हुई। इन्हीं दिनों ही कवि 'मकरन्द' के सवैये अपने निर्माताकी पूरी रसिकता लेकर हमारे सामने आए। हम क्या कहें, आपको 'मकरन्द' कविका पता देंगे तो आप चौंक उठेंगे, पर पता देना भी तो ज़रूरी है। भारती-भवन मुहल्लेमें उनका मकान है, हिन्दू युनिवर्सिटी उनका पता है और पचास वर्षोंसे भारतवासियोंके हृदयमें वे रहते आ रहे हैं। उनका इतना ही पता देना काफ़ी होगा।

सचमुच मालवीयजी बड़े रसिक थे और हैं भी। कहनेकी बात तो नहीं है पर उन्होंने स्वयं अपने मुँहसे कई बार कही है, इसलिये हम भी उसे क्यों छिपा रक्खें। मालवीयजीको कविता करनेका और कविता सुननेका प्रेम तो था ही, इन्होंने सैकड़ों सूरके पद और बिहारीके दोहे याद कर रक्खे थे। आजकल बहुतसे लोग बेचारे बिहारीके पीछे हाथ धोकर पड़े हुए हैं और उसे देशनिकाला दिलानेका उद्योग कर रहे हैं। हम मानते हैं कि बिहारीको स्कूलोंमें स्थान देना मूर्खता है, पर बिहारी बड़ी आसानीसे विवाहित युवकों और युवतियोंके हाथमें दिए जा सकते हैं। शृङ्गार रस मनुष्य-जीवनका आधार है। इसी रसके कारण स्त्री पतिव्रता बनती है, पुत्र माता-पिताका भक्त है, सेवक स्वामीकी सेवा करता है और संसारमें शान्ति रहती है। भवभूतिका करुण रस मसान घाटपर या मुहर्रमके दिनोंके लिये है। प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, अनुरक्ति, सेवा, सबका आधार शृङ्गार रस है। शृङ्गार रसपर नाक-भौं सिकोड़नेवाले वे ही नीरस लोग होते हैं जिन्हें या तो जीवन और सुखका ज्ञान नहीं होता या जो ढोंगी होते हैं।

हाँ, तो जब मालवीयजीका विवाह हुआ, वह उनकी कविता और कल्पनाका युग था। वे बिहारीके सुन्दर-सुन्दर दोहे और सूरके पद याद कर-करके अपने धर्मपत्नी (बहुआ) को सुनाया करते थे। चौदह वर्षकी उम्रमें ही शृङ्गार रसके बारेमें आपने एक दोहा कहा था—

यह रस ऐसो है बुरो, मनको देत बिगारि।
याते पास न जाइए, जब लौं होय अनारि॥

अर्थात् शृङ्गार रस ऐसा है कि इससे मनकी भावनाएँ कुछ बिगड़ जाती हैं, इसलिये अनारि (अनाड़ी) तथा अनारि (अविवाहित) व्यक्तिको इसके पास नहीं फटकना चाहिए। हम समझते हैं कि बिहारी-विरोधी आन्दोलन चलानेवालोंको इस दोहेसे काफ़ी सन्तोष मिलेगा।

एक बार एक सज्जनसे ग्राम्य कविताएँ सुनकर मालवीयजीने अपना सोरठा कहा था—

गुणी जननको साथ, रसमय कविता माँहि रुचि।
सदा दीजियो नाथ, जब-जब इहाँ पठाइयो॥

इधर हिन्दी-प्रचारकी धूमने और इनके साहित्य-प्रेमने उनके मनमें मातृ-भाषाकी सेवाका भाव भर दिया, जो प्रयागके लिटरेरी इन्स्टिट्यूट (साहित्य-समाज) के रूपमें प्रकट हुआ।

सन् १८८४ ई० में 'हिन्दी-उद्धारिणी-प्रतिनिधि-मध्य-सभा प्रयागमें खुली, जिसका उद्देश्य नागरीको उसका अधिकार दिलाना था। मालवीयजीने इसमें जी खोलकर काम किया। व्याख्यान दिए, लेख लिखे

और अपने मित्रोंको भी इस काममें भाग लेनेको उकसाया । आरम्भमें पण्डित बालकृष्ण भट्टजीके 'हिन्दी-प्रदीप' में ये बहुत कुछ लिखते रहे । फिर तो इन्होंने 'हिन्दुस्थान' के सम्पादक और 'अभ्युदय' के सम्पादनद्वारा जो मातृ-भाषाकी सेवा की उसका उल्लेख हम पीछे कर आए हैं ।

इतनी सब कुछ तैयारी होनेपर भी अदालतसे उर्दू न निकाली जा सकी । इस उर्दू लिपिसे भारतके लोगोंको कितनी परेशानी होती थी, कितना कष्ट होता था अब क्या कहें । जो आवेदन-पत्र देनेवाले होते थे उन्हें यही नहीं मालूम होता था कि उस आवेदन-पत्रमें लिखा क्या है । लिखा जाता था कुछ, पढ़ा जाता था कुछ । फिर उर्दू यहाँके लोगोंकी व्यवहारकी लिपि भी नहीं थी । पुराने उर्दूदाँ अहलकारोंने नई भाषा सीखनेकी दिक्कत बचानेके लिये बड़ा हाय-तौबा मचाया और उर्दूका दामन कसकर पकड़ रक्खा । अदालतकी लिपि और भाषा उर्दू ही थी और सभी लोग उर्दू ही पढ़ते थे । नागरी अक्षरोंमें पुस्तकें ही नहीं थीं । कैसे क्या हो कुछ समझमें नहीं आता था । सन् १८९३ ई० में बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह के उद्योगसे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाकी स्थापना हुई । इस सभाके दो उद्देश्य हुए—नागरी अक्षरोंका प्रचार और हिन्दी साहित्यकी समृद्धि । बबुआ हरिश्चन्द्रके मूल मन्त्र—

निज भाषा-उन्नति अहै, सब उन्नतिको मूल ।
बिनु निज भाषा ज्ञानके, मिटत न हियको सूल ॥

और पण्डित प्रतापनारायण मिश्रके 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्द' का राग ज़ोरोंसे गाया जाने लगा । उधर मेरठमें पण्डित गौरीदत्तजीने भी देवनागरी प्रचारका बीड़ा उठाया और अपना सर्वस्व इसी कार्य्यमें लगाकर वे तन, मन, धनसे इस काममें जुट गए । 'जै रामजीकी' और 'प्रणाम, नमस्कार' की जगह उन्होंने 'जैनागरीकी' कहना शुरू किया । उन्होंने सन् १८९४ ई० में दफ़्तरोंमें नागरी लिपि जारी करनेके लिये एक अभ्यर्थना-पत्र भेजा, किन्तु उसको रद्दीकी टोकरीमें चिर विश्राम दे दिया गया ।

युक्तप्रान्तके कुछ दिन अच्छे थे और हिन्दीका भी भाग था कि सन् १८९५ ई० में इस प्रान्तके छोटे लाट सर एण्टोनी मैकडोनल काशी पधारे । नागरी-प्रचारिणी सभाने उनको एक आवेदन-पत्र देकर यह दिखलाया कि नागरीकी अवहेलना करनेसे जनताको बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं और शिक्षाका प्रचार भी रुक जाता है । लाट साहबने इसपर विचार करनेका वचन दिया ।

मालवीयजी नागरी-प्रचार आन्दोलनके मुखिया बने । नागरीके सबसे बड़े शत्रु सर सैयद अहमद समाधिमें गहरी नींद ले रहे थे, पर मुसलमानोंके मुखिया मोहसुनुल मुल्कने नागरीके विरुद्ध घनघोर आन्दोलन शुरू कर दिया । जान पड़ा कि बेचारी नागरी यों ही पड़ी रह जायगी । लौर्ड कर्ज़नकी सरकार भी उनकी ओर झुकी जा रही थी पर मालवीयजीसे लोहा लेना भी ज़रा टेढ़ी खीर थी । दिन-रात एक करके अपनी वकालतके सुनहले दिनोंमें धुनके साथ मालवीयजीने गहरी छानबीनके साथ नागरीके पक्षमें प्रमाण और आँकड़े इकट्ठे किए । सैकड़ों जगह डेपुटेशन भेजे गए और हिन्दी भाषा और नागरी लिपिकी सुन्दरता और उपयोगिता दिखलाई गई । मालवीयजीने वकालत करते हुए भी अपने मित्र पण्डित श्रीकृष्ण जोशीके साथ मिलकर घोर परिश्रम किया । अपने पाससे रुपया खर्च करके कोर्ट लिपिका इतिहास, प्राचीन अधिकारियोंकी सम्मतियाँ एकत्र करके एक बड़ा सुन्दर लेख लिखा जो 'कोर्ट कैरेक्टर ऐण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नौर्थ वेस्टर्न प्रौविन्सेज़' कहलाता है । यह अभ्यर्थना-लेख लेकर २ मार्च सन् १८९८ ई० को अयोध्यानरेश महाराजा प्रतापनारायण सिंह, माँडाके राजा रामप्रसाद सिंह, आवागढ़के राजा बलवन्त सिंह, डाक्टर सुन्दरलाल और मालवीयजी आदिका एक दल दिनके बारह बजे

गवर्नमेण्ट हाउस प्रयागमें छोटे लाट सर एण्टोनी मैकडोनलसे मिला । मालवीयजीकी मेहनत सफल हो गई । उनकी सब बातें मान ली गईं । इस आन्दोलनके समय मुसलमानोंमें बड़ी खलबली मची, बहुतसी सभाएँ हुईं । मालवीयजी इन दिनों उनके वक्तव्योंको देखनेके लिये नित्य सन्ध्याको 'पायोनियर' टटोलते रहते पर जैसी कि 'पायोनियर' की नीति है उसने इस विषयमें चुप्पी साध ली। मालवीयजी कभी-कभी खीझकर कह देते थे "पायोनियरकी चुप्पी देखकर जी खीझ आता है।"

सारे प्रान्तने मिलकर अपने विजयकी माला धन्यवादके रूपमें एण्टोनी मैकडोनलके गलेमें डाल दी। बबुआका चलाया हुआ आन्दोलन मालवीयजीने सफल बना दिया । हिन्दीका राज्य-तिलक मालवीयजीके हाथों ही बदा था ।

एक दिन छोटे लाटके प्राइवेट सेक्रेटरीका पत्र मिला कि छोटे लाट साहब प्रयाग आ रहे हैं और भेंट किया चाहते हैं । समय स्वीकार कर लिया गया । पर तीन-चार दिन पहले ज्वर आ गया और नित्य आने लगा। पण्डित शिवराम पाण्डेय वैद्यसे कड़ी ज्वर-रोधक-औषधि लेकर तथा सागूदाना और दूध खाकर भेंटको गए। दो घण्टेतक बात-चीत हुई। बड़े प्रसन्न थे। लाट साहबको मुसलमानोंके अड़ङ्गे लगानेकी चिन्ता न थी। उन्हें निश्चय था कि जो आज्ञा दी गई है वह ठीक और सोच-समझकर दी गई है। मुसलमान मनभर आन्दोलन मचा लें, सुनाई सम्भव नहीं है। उनका आन्दोलन धीरे-धीरे ठण्डा पड़ गया। पर इस आज्ञाको चरितार्थ करनेमें बहुत बाधाएँ हुईं। वे सरकारी नौकर, जिन्होंने जन्मसे ही उर्दूका दूध पिया था, हिन्दीको सौतेली माँ समझने लगे क्योंकि उन्हें आज्ञा हुई कि वे जल्दी ही हिन्दीमें पर्याप्त योग्यता पैदा कर लें। लाट साहबके बदल जानेपर उनकी जानमें जान आई। कितने नागरी हितैषियोंने अपना पैसा लगाकर हिन्दीमें बिना कुछ लिए ही प्रार्थना-पत्र लिख देनेवाले मुन्शी कचहरियोंमें भेजे, पर बाबुओंकी डाँट-फटकारने उन्हें व्याकुल कर दिया । इतनेपर भी हठपूर्वक दिए गए पत्र उन्हें लेने ही पड़े। पर अपनी करनीमें वे कसर न छोड़ते थे। अब इतने समय पश्चात् प्रार्थना-पत्र और अभियोग हिन्दीमें लिए जाते हैं और माँगनेसे आज्ञा-पत्र भी हिन्दीमें मिल जाते हैं।

इस नई विजयने नागरी-प्रचारिणी सभाको उत्साहित कर दिया । १ मई सन् १९१० ई० की बैठकमें सभाने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन करनेका निश्चय किया जहाँ सब लोग मिलकर अपने साहित्यकी उन्नतिके उपाय सोचें । इस कार्य्यके लिये एक समिति बनाई गई और शीघ्र ही सम्मेलनका शोर हो गया । समय और सभापतिके लिये सम्मतियाँ माँगी गईं । हिन्दी संसारके सामने हिन्दीके परम सेवक एक ही महापुरुष थे—वही सफ़ेद पगड़ीवाले, सफ़ेद साफ़ेवाले । वही सभापति चुने गए।

निदान सोमवार, १० अक्तूबर, सन् १९१० ई० को दिनके साढ़े ग्यारह बजे नागरी-प्रचारिणी सभा, काशीके हातेमें एक बड़े मण्डपके नीचे सम्मेलन प्रारम्भ हुआ । हिन्दी संसारने अपने कर्णधार मालवीयजीका उस अवसरपर जो सम्मान किया वह मनुष्यकी लेखनीके सामर्थ्यसे बाहर है। उनके सभापति पदके प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए पण्डित श्यामबिहारी मिश्रने जो कुछ कहा था वह कह देना आवश्यक समझते हैं। मालवीयजीने हिन्दीके लिये क्या किया उसका एक थोड़ासा दिग्दर्शन भी हो जायगा—

"..........जिस समय मालवीयजीने हिन्दीकी उन्नतिका यत्न करना आरम्भ किया था उन दिनों हिन्दीके जाननेवाले बहुत थोड़े थे। उन दिनों हिन्दीकी उन्नतिका यत्न करनेमें हिन्दी सेवियोंको अगणित असुविधाओंका सामना करना पड़ता था । मालवीयजी उन दिनों हिन्दीकी उन्नतिके सम्बन्धमें हिन्दीमें बहुतेरी वक्तृताएं दिया करते थे। मुझे याद

है कि जब मैं बहुत छोटा था तब एक दिन मैंने मालवीयजीकी वक्तृता सुनी थी, उससे पहले कभी वैसी वक्तृता मैंने नहीं सुनी थी, वह घड़ी मुझे आजतक याद है। मालवीयजीने हिन्दीको कभी नहीं बिसारा, इसकी उन्नतिका जैसा उद्योग आप पहले करते थे वैसा ही अब भी कर रहे हैं। हिन्दीकी जो उन्नति दिखाई देती है उसमें मालवीयजीका उद्योग मुख्य कहना चाहिए। आपहीके यत्नसे हिन्दीको अदालतोंमें जगह मिली है। यह बात सब लोगोंको मालूम रह सकती है कि तरह-तरहके कामोंमें फँसे रहकर भी मालवीयजी हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं—”

इस सम्मेलनके बाद फिर तो लगातार प्रतिवर्ष कहीं-न-कहीं सम्मेलन होता रहा। साहित्य सम्मेलनके आठवें अधिवेशनमें सभापति महात्मा गान्धी हुए, उसके अगले वर्ष फिर मालवीयजीकी पुकार हुई। वह अपने ‘छोटे भाई’ गान्धीजीका अनुरोध कैसे टाल सकते थे। १९,२०,२१ अप्रैल सन् १९१९ ई० को साहित्य सम्मेलनका महोत्सव फिर मालवीयजीके सभापतित्वमें दोपहरको ठीक एक बजे बम्बईके भव्य नाटक-भवन एम्पायर थियेटर हौलमें हुआ। लक्ष्मीपुरी बम्बईने अपने सभापतिका कैसा सम्मान किया होगा यह तो हर कोई समझ सकता है।

पिछले वर्ष इन्दौर साहित्य सम्मेलनके लिये भी उनका निर्वाचन हुआ पर कुछ तो उनकी बीमारीने और कुछ उनके बहुधन्धी जीवनने उन्हें छुट्टी न दी।

मालवीयजीका हिन्दी प्रेम वे ही लोग जानते हैं जो उनके साथ रहते हैं या जिन्हें उनकी हिन्दी सुननेका अवसर मिला है। मालवीयजी कितनी मीठी सरस और सुबोध हिन्दी बोलते हैं यह तो सभी जानते हैं पर उन्हें हिन्दी साहित्यसे कितना प्रेम है इसका हम कुछ तो आभास दे ही चुके हैं पर यदि और अधिक जानना हो तो कभी तुलसी जयन्तीपर या कृष्णाष्टमीपर आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें तो पधारें। तब सुनिए जी भरकर असली ठेठ हिन्दी जिसे आप भी समझ लें और आपके बच्चे भी।

मालवीयजीके जीवनका एक-एक अध्याय एक-एक महाभारत है। सत्यकी विजयके लिये उन्होंने जो-जो लड़ाइयाँ लड़ी हैं और स्वार्थत्याग, सेवा और सचाईके साथ काम किए हैं वह किसीसे छिपे नहीं हैं। ‘अदालतकी लिपि और प्रारम्भिक शिक्षा’ पर जो उनका लेख है वह मानों हिन्दी बनाम उर्दूके मुक़दमेका सदाके लिये फैसला है। उसके विषयमें कहा जाता है कि जो इसको पढ़ ले वह केवल हिन्दीका पक्षपाती ही नहीं बल्कि उसका प्रचारक भी बन जायगा।

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें एम्० ए० तक हिन्दी साहित्यका अध्यापन होता है और अब इण्टरमिजिएट कक्षाओंमें सभी विषय हिन्दीमें पढ़ाए जाते हैं। यह जानकर किसे सुख न होगा कि हिन्दीके परमसेवी बाबू श्यामसुन्दरदास, अद्वितीय विद्वान् पण्डित रामचन्द्र शुक्ल तथा कविसम्राट् पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्यायजी, प्रसिद्ध टीकाकार स्वर्गीय लाला भगवान दीनजी आदि हिन्दीके आचार्य सब काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागद्वारा मालवीयजीकी संरक्षतामें हिन्दीकी सेवा कर चुके और कर रहे हैं। लोगोंकी शिकायत यह सदासे रही है कि हिन्दीके इतने पक्षपाती और प्रेमी होते हुए भी मालवीयजीने हिन्दीके विद्वानों और महाकवियोंको विश्वविद्यालयद्वारा सम्मानित नहीं किया। मालवीयजी इस ओरसे उदासीन नहीं हैं। सम्भव है निकट भविष्यमें हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ और अद्वितीय विद्वान् पण्डित रामचन्द्र शुक्ल और वर्त्तमान काव्यके आचार्य और सर्वश्रेष्ठ कवि उन्हींके हाथों ‘आचार्य’ बन जायँ। आशा हो चली है कि हिन्दीका उद्धार निकट है। जिसने इसे न्यायालयमें हाथ पकड़कर बैठा दिया है वही इसे भारतके विद्यालयोंमें पहुँचा देगा।

पर अभीतक उर्दू कचहरियोंमें घुसी बैठी है और बेचारे कितने ही अपढ़ गाँववालोंकी गर्दन उतारती जाती है। पर हमारा विश्वास है कि जो सेनानायक अपनी जवानीमें हिन्दीको उसके सिंहासनपर बैठा गया

वह उसकी ओरसे उदासीन नहीं है, उसे अकण्टक राज्य दिलाए बिना वह चैनसे थोड़े ही बैठेगा। अब तो देश भरमें हिन्दी फैल रही है, लोग बड़े चावसे हिन्दी सीख रहे हैं। राष्ट्रीय महासभाने भी जबसे हिन्दीको अपनाया और जबसे देशके नेता 'मिस्टर प्रेसिडेण्ट, लेडीज़ ऐण्ड जैण्टिलमैन' की जगह 'सभापति महोदय, देवियो और सज्जनो' से अपना व्याख्यान शुरू करने लगे और हिन्दी सचमुच राष्ट्र-भाषा हो गई तबसे तो हिन्दीका बड़ा ही प्रचार हुआ है और होता चला जा रहा है। इस हिन्दी प्रचारके जोशकी एक कथा हमें याद है। सन् १९२८ ई० में पण्डित मोतीलाल नेहरू राष्ट्रीय महासभाके सभापति थे। वे अपना भाषण पढ़ने खड़े हुए। उन्होंने जहाँ शुरू किया 'लेडीज़ ऐण्ड जैण्टिलमैन' कि चारों ओरसे शोर हुआ 'हिन्दीमें, हिन्दीमें, हिन्दीमें', पण्डित मोतीलालजीने अपने पदकी दुहाई दी, बहुत कहा-सुना, पर उनकी एक न सुनी गई। वे हिन्दीमें बोलनेके लिये लाचार किए गए। मद्रास और बङ्गाल, सिन्ध और पञ्जाब सब जगह हिन्दीकी तूती बोल रही है। पर एक बात बड़ी खटकती है, और हरएक देशप्रेमीको खटकनी भी चाहिए कि हमारे अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भाई अंग्रेज़ी बोलनेमें अपनी शान समझते हैं और जो हिन्दी बोलते हैं वह भी अंग्रेज़ीके बोझसे दबी हुई निकलती है। एक बार बाबू शिवप्रसाद गुप्तजीने कहा था कि आजकलके लोग शानके मारे अपनी स्त्रीको अंग्रेज़ीमें पत्र लिखते हैं चाहे वह बेचारी ए. बी. सी. भी न जानती हो। हरएक आन्दोलनकी सफलता पढ़ी-लिखी जनताके सहयोगसे ही मिल सकती है। देखें शेक्सपियर और मिल्टनके इन हिन्दुस्थानी चेलोंके कानोंतक हमारी भी पुकार पहुँचती है या नहीं।

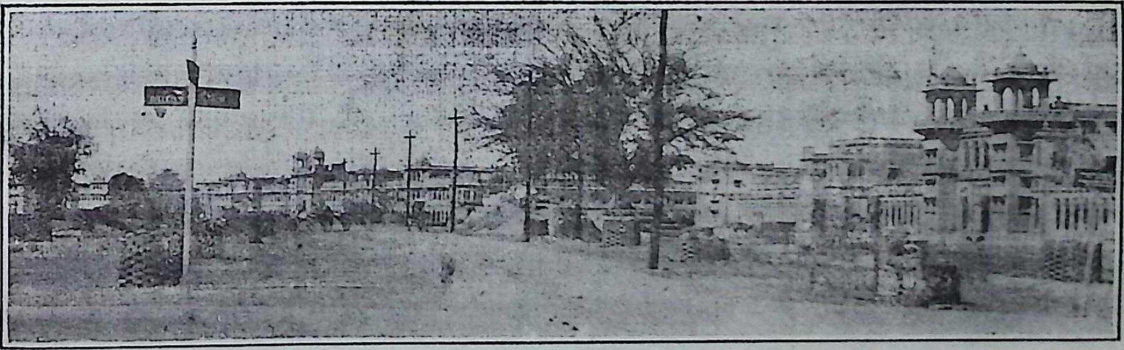

महापुरुषकी विभूतिका एक और दृश्य—काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके बिड़ला और मोचा छात्रावास।

बेचारा हिन्दू

'मनु' के कड़े नेममें पला हुआ, गाण्डीवकी डोरीकी गूँजसे शत्रुओंको कँपा देनेवाला, भिखारीको चुपचाप कुण्डल और कवच उतारकर दे देनेवाला और अपनी जान देकर भी दीनोंकी पीर हरनेवाला हिन्दू कब, कैसे और कहाँ ग़ायब हो गया, यह एक बड़ी उलझी हुई पहेली है। ताड़के सूखे हुए पत्तोंमें उसके सुहागकी कथा लिखी हुई है, समुद्रकी तरङ्गें और हिमालयकी ऊँची चोटी उसके आखों-देखे गवाह हैं, पर किस रास्तेसे वह हिन्दू अपना देश छोड़कर भाग गया, यह कौन बतायगा? मोहनजो दड़ो और हरप्पाकी खुदाईने यह साबित कर दिया कि वह यहीं मारकर गाड़ दिया गया और उसकी समाधिपर मङ्गोल, फ़ारस, अरब, यूनान और योरोपके लोगोंने आकर अपना-अपना फाग खेला। जिसका रङ्ग पड़ा उसी रङ्गमें वह समाधिमें पड़ा हुआ मुर्दा हिन्दू रँगता गया।

कहा जाता है कि श्रीकृष्णने महाभारत कराकर उसका अँगूठा काट लिया और एकलव्यकी तरह उसने सदाके लिये अपने धनुषका चिल्ला उतारकर रख दिया। कोई कहते हैं कि भगवान् बुद्ध और महावीरकी दयाके नदमें वीर हिन्दू डूब मरा। किसी-किसीका मत है कि कन्नौजके राजा जयचन्दके विश्वासघातने और पृथ्वीराजकी क्षमाने मिलकर उस वीर हिन्दूका गला घोंट दिया। कभी सुनते हैं कि अकबरके मीना बाज़ारमें ही वह लूटा गया और औरङ्गज़ेबकी वधशालामें दो टुकड़े कर दिया गया। फिर सुना कि योरोपमें जाकर वह भूखे मरते हुए भी चोटी कटाकर, टाई बाँधकर और विलायती ढङ्गके कपड़े पहनकर ईसाई बन गया। किसको सच मानें, किसको झूठ। सच पूछिए तो केवल एक ही कारण नहीं है, सभी कारणोंने जोंकोंकी तरह इसका रक्त बारी-बारीसे चूसा है।

हिन्दू जातिने अतिथि-सत्कारका पाठ बचपनमें ही सीखा और वह संस्कार उसके साथ ऐसा लगा कि अतिथि-सत्कारमें उसने अपना सब कुछ लुटा दिया। इधर इसीके घरमें पैदा होनेवाले बच्चोंने भी इसकी सेवा करना तो दूर रहा, अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग पकानी शुरू कर दी। बौद्धोंने अपना अलग घर बनाया, जैनियोंने अलग, पर इसके बाद जो बहुतसे आस्तिक और नास्तिक मत सम्प्रदाय बने वे सब न जाने कैसे हिन्दू बने रहे।

इस हिन्दू धर्मपर कितने बड़े-बड़े वीरोंने सिर कटा दिए, कितनी स्त्रियोंने अपना कुन्दनसा शरीर आगमें झोंक दिया। यह तो बहुत लम्बी कथा है पर इस सिसकते हुए हिन्दू धर्ममें गुरु गोविन्दसिंहके वीर सपूत जुझावर सिंह और जोरावर सिंह दीवारमें चुने हुए अब भी खड़े हैं। और उस वीर बालक हक़ीक़तकी कथा सुनकर किसे अभिमान न होगा जिसके हिन्दूपनको न तो तलवार डरा सकी न मुल्लाओंकी लाल आँखें। यह सचमुच हमारी कृतघ्नता है कि उस वीर बालकका उतना सन्मान न कर सके जितना करना चाहिए। जहाँ प्रातःस्मरणीय छत्रपति शिवाजी और महाराणा प्रतापकी पूजा होती है, जयन्ती मनाई जाती है, चित्र टाँगे जाते हैं, वहाँ हक़ीक़त और गुरु गोविन्दसिंहके

वीर लड़के हिन्दू या सिक्ख उपदेशकोंकी कथाओंतक ही कैसे रह गए, कुछ समझमें नहीं आता।

तो यह आर्य्यावर्त्तकी बलवान जाति आपसमें ही बँट गई। रस्सीकी ऐंठन खुल गई, रेशे बिखर गए। जिसके गुरुओंने हिन्दू धर्मके लिये अपने सीस दे दिए, और अपने शरीरपर गरम तेल छुड़वाया, वही बलवान् सिक्ख जाति, अपनेको हिन्दू कहलानेमें सङ्कोच करने लगी, अपना मकान अलग बनाकर बैठ गई। हिन्दू जातिका मानो एक हाथ ही कट गया।

बङ्गालमें जो ब्रह्म समाज और देव समाज आदि चले वे भी हिन्दू न रह गए। अपनी थोड़ीसी पूँजी लेकर वे भी अलग हो गए। पर स्वामी दयानन्दजीका आर्य्यसमाज हिन्दू ही बना रहा। मथुरामें जो दयानन्द शताब्दी मनाई गई उस समय किसीने यह प्रस्ताव किया था कि आर्य्यसमाजको हिन्दुओंसे अलग कर दिया जाय, किन्तु स्वामी श्रद्धानन्द और प्रत्येक समझदार आर्य्यसमाजीने इसका विरोध किया। जिसकी जान बचानेके लिये आप कोशिश कर रहे हों उसीसे बोलचाल बन्द, यह भला कैसे हो सकता था। पर हिन्दू जाति छिन्न-भिन्न अवश्य हो गई थी।

एक बहुत पुरानी कथा है। उस समय बौद्धधर्मका बड़ा बोलबाला था, ज्ञानका भण्डार वेद कूड़ेख़ानेमें फेंका जाने लगा और वेदके रक्षक ब्राह्मणोंकी निन्दा होने लगी, चम्पानगरीके राजा सुधन्वा भी बुद्धके 'अरिय सच्च' और 'अट्ठाङ्ग मग्ग' के चक्करमें पड़े हुए थे, पर उनकी रानी अभीतक वेदका पल्ला थामे हुए थी। एक दिन वह अपने राजभवनकी खिड़कीमें बैठी चिन्ता कर रही थी—

“किं करोमि क गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति”—'क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन वेदोंका उद्धार करेगा।' कुमारिल भट्ट उसी राहसे जा रहे थे। उन्होंने यह दीनता भरी पुकार सुनी और खड़े हो गए। वहीं उन्होंने पूरे स्वरसे कहा—

'मा विषीद वरारोहे भट्टाचार्य्योस्मि भूतले'

“हे रानी! चिन्ता न करो, मैं भट्टाचार्य्य अभी पृथ्वीपर मौजूद हूँ।” और कुमारिलभट्टने बौद्ध गुरुओंसे बौद्धधर्म सीखा और सुधन्वाके दरबारमें ही शास्त्रार्थ हुआ। कुमारिलभट्ट जीत गए और फिर एक बार वेदकी दुन्दुभि बज उठी। उन्होंने बौद्ध गुरुओंसे ज्ञान लेकर उन्हींकी निन्दा और उनका विरोध किया। इसके प्रायश्चित्तमें प्रयागमें त्रिवेणीतटपर भूसीकी अग्निमें जलकर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया। वह वेदके उद्धारकी बात थी दो हज़ार बरस पहले।

उसके दो हज़ार बरस बाद उसी त्रिवेणीके तटपर एक ब्राह्मणके घरमें एक बालक पैदा हुआ मानो जातिको यही आश्वासन देता हुआ जन्मा—

“मा विषीद वरारोहे मालवीयोऽस्मि भूतले।”

स्वामी दयानन्दजीका आर्य्यसमाज वेदका उद्धार तो कर ही रहा था साथ ही वह हिन्दू समाजको सुधार भी रहा था। यह सब होते हुए भी एक ऐसी संस्थाकी ज़रूरत थी जहाँ हिन्दुस्थानका प्रत्येक हिन्दू कहलानेवाला एक झण्डेके नीचे खड़ा होकर अभिमान कर सके कि 'अब हमें कोई भय नहीं है, हम पचास करोड़ हैं'। हितोपदेशमें एक कथा है कि तीन साँड़ एक जङ्गलमें रहते थे। जबतक वे एक साथ रहते रहे तबतक सिंह उनका बाल भी बाँका न कर सका पर जिस दिन वे अलग-अलग हुए कि सिंह उन्हें मारकर खा गया। यही दशा हिन्दू जातिकी हुई। चारों ओरसे शेर, बाघ, भेड़िये जुटे थे जो इसको मार खानेकी ताकमें थे।

यद्यपि आर्य्यसमाजने हिन्दुओंमें प्रचलित बहुतसी बातोंका विरोध किया पर मूर्त्ति-पूजाका स्वतः विरोध करते हुए भी कई बार मन्दिरों और मूर्त्तियोंकी रक्षाके लिये आर्य्यसमाजियोंने लड़ाई लड़ी। अछूतोद्धार, शुद्धि, विधवा-संरक्षण, बाल-विवाह-निषेध आदि बातें लेकर ही आर्य्य-समाजका प्रचार शुरू हुआ। इनमेंसे कईको बादमें सनातनधर्म सभाने भी अपना लिया।

सन् १८८० ई० में प्रयागमें जो हिन्दू समाज और सन् १८८४ ई० में जो मध्य हिन्दू समाज स्थापित हुआ था उसकी कथा हम कह आए हैं। सन् १८९१ ई० तक मध्य हिन्दू समाजके वार्षिक महोत्सव होते रहे। हिन्दू समाजके बड़े-बड़े नेता वहाँ आकर हिन्दू धर्मकी चर्चा करते और उसमें सुधार करनेके लिये बहुतसी बातें होती रहतीं। इन्हीं दिनों युक्तप्रान्तमें उर्दूकी जगह हिन्दी होनेके लिये घोर आन्दोलन हुआ और मध्य हिन्दू समाजके प्रायः सभी नेता और उसके सर्वेसर्वा मालवीयजी भी उसी आन्दोलनमें पड़ गए जैसा कि हम पीछे कह चुके हैं। नागरी प्रचार आन्दोलनके सफल होनेके बाद मालवीयजी फिर हिन्दुओंके उद्धारमें जुट गए और उन्होंने हिन्दू युवकोंकी आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नतिके लिये एक विश्वविद्यालय खोलनेकी बात चलाई। सन् १९०४ ई० में उनकी यह हिन्दू समाजके सुधारकी सार्थक और सारयुक्त योजना प्रकट हो गई। सन् १९०५ ई० में कांग्रेसके अवसरपर ३१ दिसम्बरको टाउन हौलमें यह हिन्दू विश्वविद्यालयका प्रस्ताव भी विचारके लिये एक सभामें पेश किया गया।

सन् १९०५ ई० का बङ्गभङ्ग वर्त्तमान हिन्दू सङ्घटनका प्रारम्भ समझना चाहिए। लौर्ड कर्ज़नने जो लात लगाई थी उससे बङ्गालके तो दो टुकड़े हुए ही, साथ ही हिन्दुओंकी भी सारी आशा टुकड़े-टुकड़े हो गई। सन् १९०५ ई० में राष्ट्रीय महासभाके साथ-साथ सर गणेशनारायण चन्दावरकरके सभापतित्वमें सोशल कौन्फ़रेन्स हुई, और वरारके श्रीयुत वी० एन० महाजनीके सभापतित्वमें टाउन हौलमें हिन्दुओंकी बड़ी भारी सभा हुई। हिन्दू सभाकी नीति वही थी जो लोकमान्य तिलकने कहा था कि 'सामाजिक सुधार किसी भी समाजमें उसके भीतरसे ही विकसित होने चाहिएँ, न कि बाहरसे थोपे जायँ। यदि ऐसा न हो तो समाजमें एकता नहीं हो सकती।'

बङ्गालके दो टुकड़े तो हुए पर हिन्दू एक होने लगे। उन्होंने अब अनुभव किया कि हमें यदि जीना है तो एक मिलकर रहना होगा। सन् १९०७ ई० में फिर हिन्दू सभाकी बैठक हुई। बहुतसे प्रस्ताव पास हुए, पर वे दिन भारतके लिये दुर्दिन थे। पञ्जाबकेशरी लाला लाजपतरायको देश निकाला हो गया, श्री अरविन्द-घोष और उनके साथी पकड़ लिए गए और बेताजके सम्राट् लोकमान्य तिलकको छः वर्ष कारागारका दण्ड मिल गया। लहरोंके बीचमें पड़ी हुई नौकाको जब अपने बचनेकी चिन्ता रहती है और तो फिर वह कर ही क्या सकती है। लौर्ड मिण्टो अपने साथ सचमुच भूकम्प लाए थे। पञ्जाबमें काँगड़ाके भूकम्पने इन्हींके श्री चरणोंकी अगवानी की थी। लौर्ड मिण्टोने अपना कुदर्शन दमन-चक्र चलाकर पृथक् निर्वाचन प्रणाली शुरू कर दी। सन् १९०९ ई० में फिर हिन्दुओंकी महासभा हुई और लौर्ड मिण्टोके साम्प्रदायिक विशेषाधिकारके विरोधमें पत्र और प्रतिनिधि मण्डल भेजे गए। इस विरोध और प्रतिनिधि मण्डलके कर्त्ता-धर्त्ता मालवीयजी ही थे या यों कहिए कि यह उपज भी मालवीयजी की ही थी। बड़ी दौड़-धूप करके एक प्रतिनिधि मण्डल लौर्ड मिण्टोसे मिला, पर उसका कुछ फल न निकला।

इसके बाद फिर हिन्दू सभा नींद लेती रही, किन्तु सन् १९१३ ई० के कानपुरके दङ्गेने इसकी नींद खोल दी। अप्रैल सन् १९१४ ई० में फिर अखिल भारतीय हिन्दू सभाकी बैठक हुई। उपद्रवियोंको गाली, सङ्घटनका शोर, सुधारके प्रस्ताव—बस इतना ही समझिए। स्वर्गीय पण्डित देवरत्न शर्मा किसी तरह उस हिन्दू-सभा-आन्दोलनको आगे ढकेलते रहे।

सन् १९२० ई० में भारतका 'तिलक' उठ गया, इधर असहयोगकी आँधी आई, उधर ख़िलाफ़तका तूफ़ान आया, इस अँधेरी धर-पकड़में ही ननकानामें निहत्थे वीर सिक्ख सरकारी गोलियोंसे भून दिए गए। सन् १९२१ ई० में मालाबारके मोपलाओंने जो हिन्दुओंकी दुर्गति की उनका धन लूटा, आग लगाई, स्त्रियोंकी बेइज़्ज़ती की, उसके कोड़ेने हिन्दुओंकी

पीठ छील दी। मालवीयजी बीमार थे। उनको बड़ा दुःख हुआ। वे वहाँ जाना चाहते थे पर लाचार थे। उन्होंने गान्धीजीको काशीमें बुलाया और फिर पीड़ित हिन्दुओंकी सहायताके लिये उन्होंने जो रुपये, अन्न, वस्त्र भिजवाए और उनकी खोज-खबर ली, यह तो अकथ कहानी है।

अभी यह घाव भरने भी नहीं पाया था कि मुलतानमें दङ्गा हो गया। असङ्घटित हिन्दू ताक़त रखते हुए भी बुरी तरह पिट गए। मालवीयजी, बाबू राजेन्द्रप्रसाद और हकीम अजमलखाँ वहाँ गए। वहाँकी दशा देखकर बाबू राजेन्द्र प्रसाद, हकीम अजमल खाँ और मालवीयजी बच्चोंकी तरह रो पड़े। बस इतनेसे ही उसका अनुमान लगा सकते हैं। मनुष्य क्या इतना पशु हो सकता है,हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। इससे अधिक लज्जाकी और बात ही क्या हो सकती है कि इतने मर्दोंके रहते हुए भी वहाँकी स्त्रियोंको अपनी इज़्ज़त बचानेके लिये तालाबमें डूबकर मरना पड़ा। पर उसी मुलतानके दङ्गेका एक और भी पहलू है। जहाँ कुछ गुण्डे मुसलमान थे, वहाँ एक भली मुसलमान बहनने अपनी जान हथेलीपर रखकर चालीस हिन्दू मर्दों, स्त्री और बच्चोंको आश्रय दिया, अपने बच्चोंको भूखा रखकर इन आश्रित हिन्दुओंको घरमें रक्खा, उसके पास जो पावभर आटा था दिया और उनके बच्चोंको दूध पिलाया। इस बहनका नाम अल्लाह बसाई था। कौन हिन्दू होगा जो इस मुसलमान बहनके आगे सिर न झुका देगा।

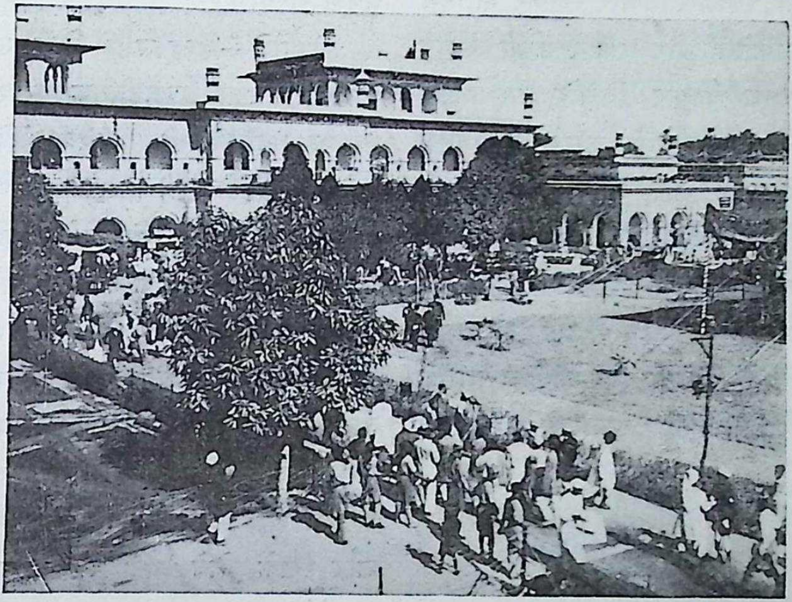

यही वह भवन है जिसमें पहले जगद्विख्यात डा० एनी बेसेण्टका स्थापित सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज् था और जहाँसे हिन्दू विश्वविद्यालय और अखिल भारतीय हिन्दू महासभाका जन्म हुआ और जहाँ सन् १९३१ ई० में अखिल एशियाई शिक्षा सम्मेलन हुआ था और सन् १९३४ ई० में जहाँ महात्माजीने अपने हरिजन दौरेको अन्तिम व्याख्यान देकर समाप्त किया था। अब इस भवनमें सेन्ट्रल हिन्दू कौलेज् और रणवीर संस्कृत पाठशाला है।

इसीके बाद सहारनपुरमें भी ऐसा ही दङ्गा हुआ और वहाँ भी हिन्दू पिटे। हम जानते हैं कि वहाँ बहुतसे हिन्दुओंने घरमें घुसकर किवाड़के पीछेसे अपनी माताओं, बहनों और बेटियोंकी निर्दय हत्या होते देखी है और कायरताके साथ अपने प्राण बचाए हैं।

इन घटनाओंने हिन्दुओंको जो चाबुक लगाया उससे ये तड़पकर उठ बैठे और मालवीयजी, लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्दने हिन्दुओंको एक सूत्रमें बाँधनेका बीड़ा उठाया। स्वामी श्रद्धानन्दजी और लाला लाजपतरायके उद्योगसे सन् १९०७ ई० वाली हिन्दू सभा और सन् १९१४ ई० वाली अखिल भारतीय हिन्दू सभाने सन् १९२३ ई० में एक नया भव्य और व्यवस्थित रूप धारण कर लिया और उसका नाम पड़ा अखिल भारतीय हिन्दू

महासभा। १९ और २० अगस्त सन् १९२३ ई० को काशीमेँ सेण्ट्रल हिन्दू स्कूलके काशीनरेश हालमेँ मालवीयजीके सभापतित्त्वमेँ बड़ी धूम-धामसे महासभा हुई। सनातनधर्मी, आर्य्यसमाजी, बौद्ध, सिक्ख, जैनी, पारसी सभी सम्प्रदायवाले लोग वहाँ इकट्ठा हुए और भारतके इतिहासमेँ पहली वार यह जान पड़ने लगा कि भारतमेँ पैदा होकर, विभिन्न विचार रखकर भी, हम एक ही मञ्चसे बोल सकते हैँ और एक ऐसा भी स्थान है जहाँ हम एक साथ बैठकर विचार कर सकते हैँ। यह अधिवेशन कई बातोँके कारण महत्त्वपूर्ण रहा। इस सभामेँ एक ओर कट्टर सनातनधर्मी, दूसरी ओर कट्टर आर्य्यसमाजी और इन दो हिम-शिलाओँके बीच मालवीयजी नाव खे रहे थे और जिस सफ़ाईके साथ उन्होँने कार्य्य किया वह क्या वर्णन किया जा सकता है। इस विरोधी जनसमूहके द्वारा ही मालवीयजीने हिन्दू समाजको सङ्गठित कर दिया।

इस हिन्दू महासभाके उद्देश्य बड़े व्यापक बने।

हिन्दू सभाके उद्देश्य

(१) हिन्दू समाजके सर्वपन्थियोँमेँ तथा सर्व-वर्गियोँमेँ पारस्परिक प्रेमकी वृद्धि करके, एकीकरण द्वारा इस अपने महान् समाजको सुसङ्गठित, प्रबल व उत्कर्षोन्मुख बनाना और उसकी सर्वाङ्गीण प्रगति करना यही हिन्दू सभाका उद्देश है।

(२) सङ्गठित हिन्दू जाति व भारतमेँकी अन्य पर धर्मीय जातियोँके साथ परस्पर सद्भाव उत्पन्न करके भारतको स्वयं-शासित स्वराज्ययुक्त एक महान् राष्ट्र बनानेका प्रयत्न करनेके लिये उनसे मित्रता बढ़ाना।

(३) हिन्दू जातिके निम्न वर्गोँके साथ सर्व-वर्गोँकी उन्नति करके उनको ऊँचे उठाना।

(४) हिन्दुओँके हितकी जहाँ आवश्यकता हो वहाँ रक्षा करना।

(५) हिन्दुओँका संख्याबल क़ायम रखना व उसे बढ़ाना।

(६) हिन्दू स्त्रियोँकी स्थिति सुधारना।

(७) गोरक्षण व गोसंवर्द्धन करना।

(८) हिन्दू जातिके धर्म, सदाचार, शिक्षण और सामाजिक, राजकीय तथा आर्थिक उन्नतिके लिये प्रयत्न करना।

टिप्पणी—हिन्दू सभा हिन्दू जातिमेँके किसी भी विशेष पन्थका, राजनीतिक पक्षका, पक्षपात अथवा विरोध नहीँ करेगी, अथवा किसी पन्थके मतमेँ रद्दोबदल नहीँ करेगी।

इसी सभामेँ बालविवाहके विरुद्ध एक प्रस्ताव था कि चौदह वर्षके पूर्व कन्याका विवाह न किया जाय। बहुतसे लोगोँने इसका विरोध किया और नरकमेँ पड़नेका भय और आशङ्का प्रकट की। मालवीयजीने बड़ी गम्भीरतासे उसका फ़ैसला देते हुए कहा—'आठ-दस बरसकी अवस्थामेँ कन्याओँका विवाह करनेसे तो रजोदर्शनके बाद भी विवाह करना श्रेष्ठ है और इसके लिये यदि हमेँ नरकमेँ भी जाना पड़े तो नरकमेँ जाना अच्छा है पर बालविवाह करना अच्छा नहीँ।' चाहे इस फ़ैसलेसे किसीको सन्तोष भले ही न हुआ हो पर इस फ़ैसलेके आगे सबने सिर झुका दिया।

इसी अधिवेशनमेँ, जब अस्पृश्यता-निवारणका सवाल उठा तो लोगोँने कहा कि मालवीयजी खुद तो छूतछात इतनी मानते हैँ और ऊपरसे उपदेश देते हैँ, पर थोड़ी ही देर बाद उनकी शङ्का दूर हो गई क्योँकि मालवीयजीने थोड़ी ही देर बाद देहरादूनके एक हरिजन (चमार) सज्जनका हाथ पकड़कर खड़ा किया और कहा कि अब मेरे भाई बिहारीलाल कुछ कहेँगे। न जाने कितने नेत्रोँने इन प्रेमभरे शब्दोँपर मोती बरसा दिए थे।

इसके बाद तो हरद्वार, दिल्ली, कानपुर, जबलपुर, कलकत्ता, बेलगाँव, अकोला, अजमेर आदि बहुतसे स्थानोँमेँ हिन्दू-महासभाके वार्षिक अधिवेशन हुए।

कलकत्तेके अधिवेशनकी बात है। कलकत्ता नगर हैलीडे पार्कमें पञ्जाब-केसरी लाला लाजपतरायकी अध्यक्षतामें हिन्दू महासभाका अधिवेशन हो रहा था। महासभाके खुले अधिवेशनमें लाहौरके उर्दू-दैनिक 'वन्दे-मातरम्' के सम्पादक लाला रामप्रसादजी, एम० ए० ने अछूतों और शूद्रोंको वेद-पाठका अधिकार देनेका प्रस्ताव उठाया। स्वामी सत्यदेव परिव्राजकने समर्थन करते हुए कहा—"ईश्वरकी दी हुई रोशनी, हवा और वर्षासे जब शूद्र वञ्चित नहीं हैं तब ईश्वरकी वाणी (वेद) से क्यों वञ्चित रहें?" पण्डालमें बड़ी हलचल मच गई। बहुतोंको यह बात अच्छी न लगी। उनको सँभालनेके लिये किसी नेताने आगे बढ़नेका साहस न दिखाया। नाव मँझधारमें आ पड़ी। पण्डालमें बड़ा शोर मचा।

वहाँ मालवीयजी तो थे ही। व्याख्यान-वाचस्पतिजीने तथा अनेक प्रमुख सज्जनोंने और स्वयं लालाजीने भी उन्हें बोलनेका कहा। तालियोंकी गड़गड़ाहटके बीच मालवीयजी उठे, और अपनी अमृतमयी वाणीकी धारामें कहना प्रारम्भ किया—"ईश्वरके दिए हुए प्रसाद प्राणिमात्रके लिये सुलभ हैं। पर वेदोंका अध्ययन करनेके लिये कठोर तपस्याकी आवश्यकता है, जो सबके लिये साध्य नहीं। इसी लिये स्वयं भगवान्ने वेदशास्त्रोपनिषदोंका सार 'श्रीमद्भगवद्गीता' के रूपमें प्रकट कर दिया। वह भी साक्षात् ईश्वर ही की वाणी है। गीता भूमण्डलका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। उसका अध्ययन और मनन सबके लिये सुलभ है। शूद्र और अन्त्यज भी उसका पाठ करके सफल-मनोरथ हो सकते हैं। वेद-पाठका अधिकार-मात्र लेनेसे कोई लाभ नहीं। उसके लिये कठिन साधनाकी आवश्यकता होगी। प्रस्ताव वही पास करना चाहिए जो कार्य्य-रूपमें परिणत हो सके। भगवान्ने यही समझकर गीताका

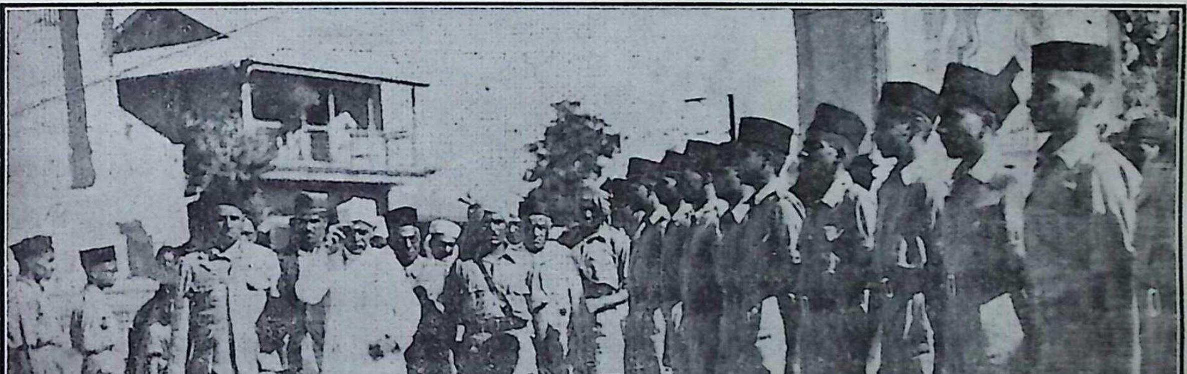

पूना सेवासमितिद्वारा सभापति मालवीयजीको अभिवादन-सम्मान।

उपदेश दिया है कि कलियुगमेँ वेदपाठ सब श्रेणीके मनुष्योंके लिये साध्य न होगा। गीता प्रत्यक्ष भगवद्वाणी है। वह वेद ही के समान पूज्य और फलप्रद है। मानवजातिके कल्याणके लिये उसमेँ सब कुछ है। आप लोग प्रयत्न करेँ कि घर-घरमेँ गीताका प्रचार हो। प्रत्येक हिन्दूके पास गीताकी पोथी रहे। शूद्र और अस्पृश्य भी उसका पाठ करेँ और अल्प प्रयाससे ही वेदोंका मुख्य तत्त्व प्राप्त करेँ। इसाई लोग एक-एक आनेमेँ बाइबिल बेचकर स्वधर्मका प्रचार करते हैँ। हिन्दू धर्मका हृदय गीतामेँ है। आप लोग उसके सस्ते संस्करण निकालकर प्रत्येक हिन्दूके हाथमेँ वेदोंका सार रख देँ। उसे पाकर फिर किसी ग्रन्थकी चाह न रहेगी।”

क्षुब्ध समुद्रपर तेल पड़ गया। बिड़लाजीने गीताके सस्ते संस्करणकी एक लाख प्रतियाँ बाँटनेकी घोषणा की। देखते-देखते आँधी थम गई।

२७ तथा २८ दिसम्बर सन् १९२९ ई० को बेलगाँवकी हिन्दू महासभा हुई और मालवीयजी ही सभापति बनाए गए। यह सभा बेलगाँव कांग्रेसके साथ ही हुई थी और इसमेँ गान्धीजी, लाला लाजपतराय, देशबन्धु चित्तरञ्जनदास, पण्डित मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द, श्री केलकर, श्री सत्यमूर्त्ति, मौलाना मुहम्मद अली और शौक़त अली, डाक्टर मुञ्जे आदि सभी भारतीय नेता उपस्थित थे।

इसके बाद २९ दिसम्बर सन् १९३५ ई० को पूनाके तिलक स्मारक हॉलमेँ पूज्य मालवीयजीके सभापतित्त्वमेँ हिन्दू महासभाका सत्रहवाँ अधिवेशन बड़े धूम-धामसे हुआ। हिन्दू सेवासमिति पूनाने उन्हेँ अभिवादन-सम्मान दिया।

इस अधिवेशनको सुन्दरतम बनानेमेँ महाराष्ट्रके हिन्दुओंने कुछ उठा न रक्खा। इस अवसरपर मालवीयजीने जो सभापतित्त्व पदसे भाषण

पूज्य मालवीयजी अखिल भारतीय हिन्दू महासभा पूनामेँ २९ दिसम्बर सन् १९३५ ई० को सभापति पदसे भाषण दे रहे हैँ।

दिया वह कम महत्त्वका नहीँ है। इसीमेँ मन्त्रदीक्षाका महत्त्व, शारीरिक तथा सैनिक शिक्षाकी आवश्यकता, अछूतोद्धार, मन्त्रदीक्षा और सार्वजनिक शिक्षा आदिपर उन्होँने महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

बहुतसे लोग समझते हैँ कि मालवीयजी मुसलमानोँसे द्वेष रखते हैँ पर हम उनका ध्यान मालवीयजीके उस वक्तव्यकी ओर आकर्षित करना चाहते हैँ जो उन्होँने २८ जून सन् १९३३ ई० को लाहोरमेँ अपने भाषणमेँ कहा था :—

"हिन्दू बलवान होकर मुसलमानोँको तकलीफ़ देँ, ऐसी मेरी स्वप्नमेँ भी कल्पना नहीँ है। मेरे मनमेँ ऐसा विचार आया कि मैँ धर्मच्युत हुआ समझिए। मेरी सदा ऐसी इच्छा है कि हिन्दू और मुसलमान शक्तिमान होँ और जगत्के अन्य समाजोँके साथ खड़े होनेके लायक़ बनेँ। हिन्दू और मुसलमान एकत्र होँ और उनके अखाड़े भी एक ही होँ, ऐसी मेरी प्रबल इच्छा है। गामा और गुलामने परदेशी पहलवानोँको चित किया, इसका आनन्द हिन्दुओँको नहीँ हुआ, ऐसा तो कोई नहीँ कह सकता। हिन्दुओँकी अपेक्षा मुसलमानोँको उस जीतका सुख अधिक हुआ, यह बात भी नहीँ कही जा सकती।

"समाजमेँ ऐक्य स्थापन करना यह स्वराज्य सोपान चढ़नेकी पहली सीढ़ी है। दोनोँ समाजोँका सम्बन्ध इतना दृढ़ होना चाहिए कि उसे कोई भी तोड़ न सके। इस भारतवर्षका नागरिक होना एक बड़े सौभाग्यकी बात है। हिन्दू और मुसलमान दोनोँको ऐसा निश्चय करना चाहिए कि कैसा भी प्रसङ्ग आवे, हम आपसमेँ धर्म अथवा मतके लिये कभी न झगड़ेँगे। भगिनी, माता व कन्या इनकी ओर सन्मानभरी दृष्टिसे देखना चाहिए। आज जो अपनी दुर्दशा हो रही है वह न हो, इस विषयमेँ अधिक दक्ष रहना चाहिए। दूसरेका अनिष्ट चिन्तन नहीँ करेँगे व दूसरेका अकल्याण नहीँ करेँगे, ऐसा निश्चय किया कि ऐक्य स्थापन हुआ ही समझिए।

"मेरा अपने धर्मपर दृढ़ विश्वास है, परन्तु परधर्मका अपमान करनेकी कल्पना मेरे मनको छूतक नहीँ गई। किसी गिरजाघर अथवा मसजिदके पाससे जब मैँ जाता हूँ तब मेरा मस्तक अपने-आप झुक जाता है। जब कि परमेश्वर एक ही है तो लड़नेका कारण क्या? भूमि एक, देश एक, वायु एक, ऐसी परिस्थिति रहते हुए भी आपसमेँ दङ्गे टण्टोँका होना, इससे बढ़कर और आश्चर्यकी बात क्या हो सकती है। हमारा रक्षण विदेशी सैन्य करेँ यह बड़ी लज्जाकी बात है। पाठशालाओँमेँ सैनिक शिक्षण देना चाहिए और गाँव-गाँव तथा मुहल्ले-मुहल्लेमेँ नगर-रक्षणका बन्दोबस्त होना चाहिए।"

१४ अप्रैल, सन् १९२६ ई० को लखनऊमेँ अयोध्या हिन्दू परिषद्का अधिवेशन भाई परमानन्दजीकी अध्यक्षतामेँ हुआ। उसमेँ भी मालवीयजीने भाग लिया और उस अवसरपर पं० मालवीयजीने इस आशयका व्याख्यान दिया था :—

बहनो और भाइयो !

"यह विषम परिस्थिति सरकारने उत्पन्न की है। कांग्रेसमेँ बहुतसे लोग ऐसे हैँ जो अपनेको हिन्दू कहनेमेँ शरमाते हैँ। कांग्रेस केवल मुट्ठीभर लोगोँकी संस्था नहीँ है। आजकल उसमेँ स्वराज्य पक्षका प्राबल्य है। उसका मत समझदार मनुष्योँके पालने योग्य नहीँ है। कांग्रेस पक्षके लोग सरकारका विरोध करनेके लिये कौन्सिलमेँ गए। परन्तु वे अपने ध्येयका संरक्षण नहीँ कर सके। श्री पटेलने अध्यक्ष-पद स्वीकार किया व पण्डित नेहरूजीने स्कीम-कमेटीमेँ जगह ली। इस प्रकार विरोधकी बात समूल नष्ट हो गई। पं० नेहरूने एक बार कमेटीमेँ स्थान स्वीकार करके फिर उसे बीच ही मेँ छोड़ दिया, यह अत्यन्त अदूरदर्शिता की। असेम्बलीमेँके स्वराज्य पक्षका लक्ष्य निरर्थक ही सिद्ध हुआ। अतः अब जो प्रतिनिधि कौन्सिलमेँ हिन्दू हितका रक्षण करेँगे उन्हीँको चुनिए"।

मार्च सन् १९३१ ई०मेँ कानपुरमेँ हिन्दू मुसलमानोँमेँ

बड़ा दङ्गा हुआ। उसके बाद तुरन्त ही ११ अप्रैल सन् १९३१ ई० को कानपुरमें हिन्दू-मुसलमानोंकी एक भारी खुली सभा हुई। उसमें भाषण करते हुए पण्डितजीने कहा :—

“मैं मनुष्यताका पूजक हूँ। मनुष्यत्वके आगे मैं जातपाँत नहीं मानता। कानपुरमें जो दङ्गा हुआ उसके लिये हिन्दू या मुसलमान इनमेंसे एक ही जाति जवाबदेह नहीं है। जवाबदेही दोनों जातियोंपर समान है। मेरा आपसमें आग्रहपूर्वक ऐसा कहना है कि ऐसी प्रतिज्ञा कीजिए कि अब भविष्यमें अपने भाइयोंसे ऐसा युद्ध नहीं करेंगे। वृद्ध, बालक व स्त्रियों पर हाथ नहीं छोड़ेंगे। मन्दिर अथवा मसजिद नष्ट करनेसे धर्मकी श्रेष्ठता नहीं बढ़ती। ऐसे दुष्कर्मोंसे परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता। आज आप लोगोंने आपसमें लड़कर जो अत्याचार किए हैं उसका जवाब आपको ईश्वरके सामने देना होगा। हिन्दू और मुसलमान इन दोनोंमें जबतक प्रेमभाव नहीं उत्पन्न होगा तबतक किसीका भी कल्याण नहीं होगा। एक दूसरेके अपराध भूल जाइए और एक दूसरेको क्षमा कीजिए। एक दूसरेके प्रति सद्भाव और विश्वास बढ़ाइए। ग़रीबोंकी सेवा कीजिए, उनका प्रेमसे आलिङ्गन कीजिए और अपने कृत्योंका पश्चात्ताप कीजिए।”

शुद्धि

शुद्धिपर मालवीयजीने कहा है :—

“इस देशमें आज सात करोड़ मुसलमान दिखाई दे रहे हैं। उनमेंसे बहुत थोड़ेसे विदेशसे आए हुए हैं। अरब और अफ़गानिस्थानसे अधिक-से-अधिक पचास लाख मुसलमान यहाँ आए होंगे। बाक़ी सब यहींके बनाए हुए मुसलमान हैं। कोई मुसलमान यदि ईसाई हो जाय तो फिर क़लमा पढ़कर वह मुसलमान हो जा सकता है। परन्तु हिन्दू ऐसा नहीं कर सकते। यह बड़े दुःखकी बात है।

इस प्रकार क्रमशः घटते-घटते आज हम लोगोंमेंसे साढ़े छः करोड़ हिन्दू परधर्ममें चले गए। हिन्दुओंको मुसलमान बनानेके लिये नाना प्रकारके उपायोंसे काम लिया जाता है। मलकाना राजपूत, साष्टी, गोआ प्रान्तमेंके हिन्दू, इन सबको ऐसे ही हम लोग खो बैठे। ज़रा परधर्मियोंका संसर्ग हुआ कि हम मनुष्यको भ्रष्ट कह देते हैं। वह समाजसे निकाल दिया जाता है। जो लोग ज़ुलुम-जबर्दस्तीसे परधर्ममें गए हैं उनको शुद्ध करना ही चाहिए। इनमेंसे बहुतसे ऐसे भी हैं जिनको हिन्दुओंने छोड़ दिया है तिसपर भी वे अपने प्राचीन आचारपर अटल हैं। ऐसे लोगोंको अवश्य शुद्ध करना चाहिए। एक हिन्दू बालकने ग़लतीसे एक मुसलमानके डब्बेका पान खा लिया। उसने मुझे सब हक़ीक़त लिखी। मैंने उसे बुला लिया। वह सनातनधर्माभिमानी और बड़ा कुलीन लड़का था। मैंने उसे कहा—“*जात पाँत पूछै नहिं कोई, हरिको भजै सो हरिका होई।*” परमेश्वरका नाम स्मरण करो। गङ्गाजल प्राशन करो। तुम्हारे सब पाप दूर हो जावेंगे।” अगर ऐसा न किया होता तो वह मुसलमान हो जाता। एक ओर मुसलमान व ईसाई और दूसरी ओर हिन्दू बनानेमें प्रतिबन्धक अभेद्य धर्मकी दीवार, इसी वजहसे लाखों हिन्दू परधर्ममें चले गए। अगर परिस्थिति ऐसी ही रही तो कुछ दिनोंमें हिन्दू धर्मका नाम निशानतक न रहेगा। प्राचीन कालमें ऋषियोंने अनार्य्योंको आर्य्य और सभ्य बना लिया था। अतः जो लोग आज भी स्वेच्छासे हिन्दू धर्म स्वीकार करना चाहें उन्हें ऐसा करनेका अधिकार है। ईश्वरका नाम लेकर चारों ओर यह घोषणा कीजिए। इससे हिन्दू धर्मका अँधेरा दूर होकर धर्म सूर्य्यका उदय होगा और हिन्दू समाज विशाल और बलवान बनेगा।”

सङ्गठन क्यों चाहिए?

सङ्गठनके सम्बन्धमें मालवीयजीका मत थोड़ेमें इस प्रकार है :—

"भारतवर्षके गौरव, उसकी संस्कृति व उसके साहित्यकी रक्षाके लिये सङ्गठन करना आवश्यक है, इनकी रक्षा करना हिन्दूका परम कर्त्तव्य है। भारतवर्षको स्वराज्य दिलाए बिना उसकी संस्कृति, साहित्य तथा गौरवकी रक्षा नहीं हो सकती है। अतः हिन्दुस्थानको स्वराज्य प्राप्त करा देना यह प्रत्येक हिन्दूका परम धर्म है। परन्तु इस स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेका मुख्य साधन हिन्दू सङ्गठन है। अतः हमारा प्रथम कर्त्तव्य यही है।"

मालवीयजी मन, कर्म और वचनसे हिन्दू हैं। पहले गौ और ब्राह्मण प्रतिपालकको ही हिन्दू-रक्षक कहा जाता था और वास्तवमें बात भी यही थी। गौकी रक्षामें हमारे देशकी सम्पत्तिकी रक्षा थी और ब्राह्मणोंकी रक्षामें हमारे ज्ञानकी रक्षा थी। यदि ये दोनों नष्ट हो जाते तो हमारी सम्पत्ति और हमारा ज्ञान दोनोंका नाश हो जाता। मालवीयजीकी गोरक्षापर तो हम कह ही चुके हैं पर हिन्दुओंके ज्ञानकी रक्षाके लिये जो उन्होंने सफल भगीरथ प्रयास किया है वही उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है और हिन्दू जाति उसके लिये उनकी सदा ऋणी रहेगी।

राष्ट्रीय महासभाके कुछ नेतागण हिन्दू महासभाको अविश्वासकी दृष्टिसे देखते हैं। उनकी समझमें हिन्दू महासभा एक ऐसी संस्था है जो राजनीतिक प्रगतिमें बाधा डालती है पर हम उनका तर्क नहीं समझ पा रहे हैं। जब हमपर विपत्ति आती है, हमारा घर जला दिया जाता है, हम लूट लिए जाते हैं, हमारी बहू-बेटियोंपर सङ्कट आता है तब कोई मदद नहीं करता और यदि हम उनकी रक्षाका प्रबन्ध अपने आप कर लेते हैं तो लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं, आँखें तरेरते हैं और उसमें मीन-मेख निकालते हैं। आप हमें मारते जाइए, ठोंकते जाइए तब कुछ नहीं, हमारे घरका सामान उठाकर दूसरोंको देते जाइए तब कुछ नहीं, यदि हम

हिन्दू महासभाका पूना अधिवेशन, ३१ दिसम्बर सन् १९३५ ई०। सभापति मालवीयजी बीचमें बैठे हैं।

कुछ बोल दें, अन्यायके विरुद्ध आवाज़ उठावेँ तब हम बुरा करते हैं। यह बात कुछ समझमेँ न आई। यदि राष्ट्रीय महासभा थोड़ासा पक्षपात कम कर देती तो शायद हिन्दू महासभाको राष्ट्रीय महासभाके विरुद्ध सन् १९२६ और सन् १९३४ ई० मेँ कौन्सिलोँकी लड़ाई न लड़नी पड़ती। सहनशीलताकी भी एक सीमा होती है।

मालवीयजीसे भी कुछ लोग इसलिये भी नाराज़ हैँ कि वे हृदयसे हिन्दू हैँ। और यदि मालवीयजी हृदयसे देश और जाति दोनोँके परम सेवक न होते तो शायद वर्त्तमान नेता उन्हेँ भी दूधकी मक्खी बना देते, किन्तु उनका अग्नि विस्फोट मालवीयजीके स्वभाव-रूपी शीतल विस्तृत अथाह महासागरमेँ उठकर स्वयं विलीन हो जाता है। हिन्दू जाति मालवीयजीकी कितनी ऋणी है और रहेगी, इसका उत्तर भविष्य देगा। पर सङ्क्षेपमेँ हम पूछते हैँ कि हिन्दुओँको किस विपत्तिमेँ मालवीयजीका सहारा नहीँ मिला, उनकी किस संस्थाको मालवीयजीका पुनीत आशीर्वाद नहीँ मिला और उनके किस आन्दोलनको मालवीय-जीका नेतृत्व नहीँ मिला? बस इसका उत्तर ही हमारा वक्तव्य है।

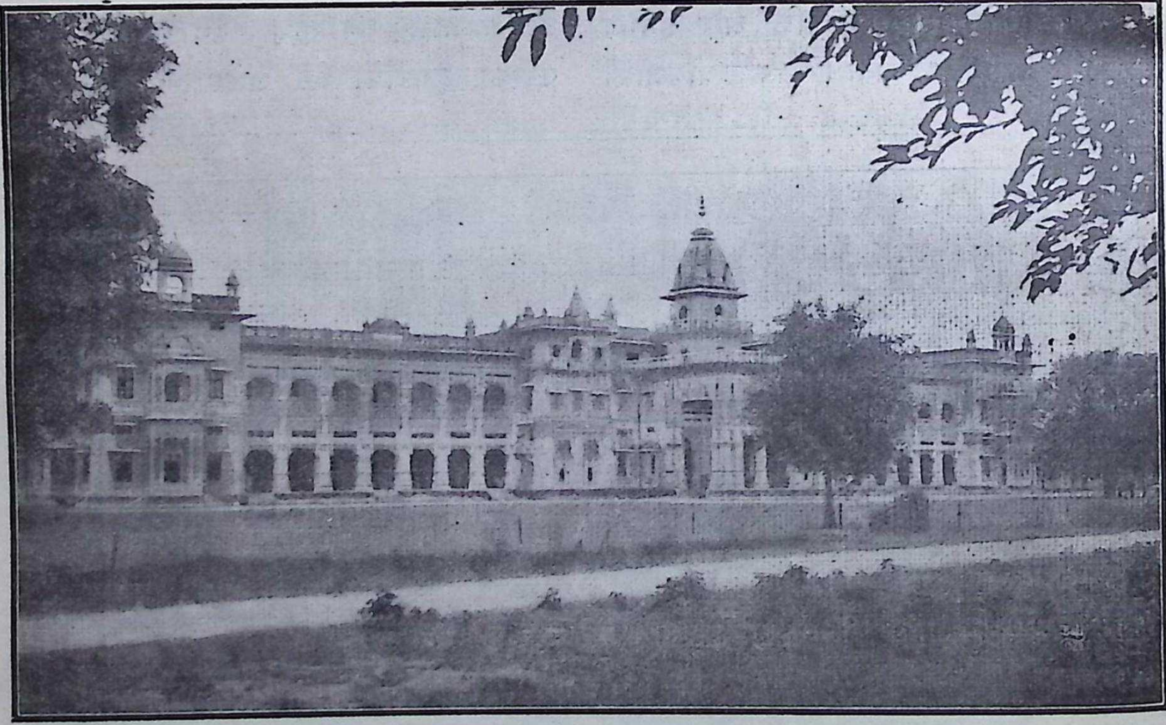

मालवीयजीकी हिन्दू-जाति-सेवाका मूर्त्तिमान् स्वरूप—काशी विश्वविद्यालयका एक भवन।

हमारे देशका अभिमान हिन्दू-विश्वविद्यालय

सपना

इतिहासके जन्मसे बहुत पहलेकी बात है जब सारे संसारके मनुष्य पेड़ोंके खोखलों और माँदोंमें रात काटते थे, जङ्गली फल और जङ्गली जानवरोंका भोजन करते थे और इशारोंमें बातें किया करते थे, उस समय हिमालयके पवित्र जलसे सिंचे हुए आर्य्यावर्त्तमें पञ्चनद और गङ्गा-यमुनाके दोआबेमें सामवेदका गान होता था, गौओंका पालन होता था, खेती होती थी, अनेक धान्य पैदा किए जाते थे और इतना ही नहीं बल्कि यहाँके लोग सृष्टि रचनेवाले परमेश्वरकी भी खोजमें लगे हुए थे और उसे पा भी चुके थे। हमने संसारकी सभी जातियोंकी-सभ्यताका प्रभात देखा पर हमारी सभ्यताका प्रभात किसने देखा? ऋग्वेद हमारी सभ्यताका सबसे पुराना गवाह है पर जिस सभ्यताका उसमें वर्णन किया गया है वह एक-दो सदीकी पैदावार नहीं है बल्कि लगातार कई सदियोंके निरन्तर प्रकाशने उसे पक्का बनाया था। पके हुए आमको बाज़ारमें देखकर हमें समझ लेना चाहिए कि यह कई महीने पहले रसालकी डालमें भौरोंसे घिरा हुआ एक फूल रहा होगा। इसी तरह वैदिक सभ्यता भी—जिसमें अध्यात्मका पूरा विकास हो चुका था—कई हज़ार वर्षोंकी कमाई रही होगी।

इस सभ्यताके प्रकाशकी ओर सभी देश खिंचे चले आए, जिन्हें हमने ही धोती पहनना, बात करना और हिलमिलकर रहना सिखाया। भारत कला और विद्याओंका खान था। कुछ नहीं तो चौंसठ कलाएँ और चौदह विद्याओंका तो पूरा पता मिलता ही है। भारत संसारका गुरु बन गया। वह विद्याका ऐसा फुहारा बन गया जहाँ सारे संसारके प्यासे लोग आ-आकर अपनी प्यास बुझाने लगे। पर भारतके सभी शिष्योंने अपने गुरुकी ही ख़बर लेनी शुरू कर दी। जिस हँड़ियामें पानी पिया उसीमें छेद कर दिया। भलमनसाहत क्या इसीका नाम था? जो इसकी महिमा समझते थे उन्होंने इसका भण्डार समेटा और अपने घर उठा ले गए, जिन्होंने इसके विद्याधनकी कद्र नहीं की वे इसके पुस्तकालयोंमें आग लगा गए। पर धन्य है भारतवासियोंकी वर्णाश्रमधर्म-प्रणालीको। समाजके एक वर्ग ब्राह्मणोंने यह काम अपने ज़िम्मे ले लिया और धनकी लिप्साको लात मारकर, सन्तोषका बाना पहनकर सारा ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी आजतक बचाए रक्खा। इन्हें लोगोंने 'पाखण्डी' कहा, 'पोप' कहा, 'उन्नतिके विरोधी' कहा और क्या-क्या नहीं कहा पर ये लोग गालियाँ सहकर भी चुपचाप अपना काम करते आए, और आज जो हमें इतने ग्रन्थ मिल सके हैं उनका एकमात्र श्रेय इन्हीं ब्राह्मणोंको है जिनकी सम्पत्ति केवल एक जनेऊ और एक धोती है।

इनके जनेऊ और इनकी चोटीकी रक्षा करनेवाले क्षत्रिय अपनी तलवारें तोड़ चुके थे। जिनकी मूँछ सिंहकी तरह ऊँची रहती थी उन्होंने अपनी

बेटियाँ अनार्य्योंको सौंप दी। जिनके सहारेपर ब्राह्मण, भारतकी सभ्यता इकट्ठी करते आए थे, उनकी जब यह दशा हो गई तो ब्राह्मणकी चोटी और उसके जनेऊ भी कटने लगे। ये ज्ञानके दीप, जिन्होंने भयानक आँधियोंमें भी हिन्दुस्थानमें दीवाली मनाई थी, एक-एक करके बुझने लगे और जिसके चरणोंपर न जाने कितने देशी राजा और विद्यार्थी अपना सिर झुका गए थे, उस गुरुकी पगड़ी उसीके चेलोंने उछाल दी, उसका आसन छीन लिया और इतना ही नहीं, उसे ऐसा नशा पिला दिया कि वह अपना ज्ञान भूल बैठा और फिर द्वार-द्वार ज्ञानकी भिक्षाके लिये हाथ पसारने लगा। क्या यह हमारे लिये डूब मरनेकी बात नहीं है कि भारतके विद्यार्थी हिंन्दी, संस्कृत, पाली, अर्थशास्त्र आदि विषयोंके आचार्य्य (डाक्टर) बननेके लिये लन्दन, बर्लिन और पैरिस विश्वविद्यालयोंकी शरण लें और इससे भी अधिक क्या यह कम आश्चर्य्य और शर्मकी बात है कि हमारे देशके विश्वविद्यालय अपने विश्वविद्यालयोंके पढ़े हुए छात्रोंको स्थान न देकर विलायती बिल्ला लगे हुए लोगोंको अध्यापक नियुक्त करें। हम समझते हैं कि इस कलङ्कसे कोई भी भारतीय विश्वविद्यालय नहीं बच सका।

नालन्दा, विक्रमशिला, तक्षशिला, नदिया, धार, सभी विद्यालय और विश्वविद्यालय समयकी चक्कीमें पिस गए, छुट-पुट एकाध पण्डित पुरानी चटाईपर बैठकर पाणिनि और मनु, भास्कराचार्य्य और पतञ्जलिकी उद्धरणी करते रहे। उसका उद्देश्य भी विद्या-प्रचारका उतना नहीं था जितना अपना और अपने कुटुम्बका पेट पालना था। पर फिर भी कुछ स्थान ऐसे बने रहे जो दिल्लीके लोहेकी किल्लीकी तरह अचल खड़े रहे और जिनमें घनघोर वर्षा होनेपर भी मुर्चा न लग सका। काशी एक ऐसा ही स्थान था।

सन् १८५८ ई० में अंग्रेज़ी राज्यकी नींव ही नहीं पड़ी बल्कि यों कहिए कि उसका पूरा क़िला तैयार हो गया और महारानी विक्टोरियाके घोषणापत्रने उसका उद्घाटन किया। उस समय हिन्दुस्थानियोंने इतनी जय-जयकार की कि उनके गले बैठ गए, बहुत दिनोंतक कुछ भी न बोल सके।

सन् १८८० और ८४ के बीचकी बात है। म्योर सेण्ट्रल कौलेज् प्रयागमें एक छात्रके मनमें यह बात पीड़ा दे रही थी कि हमारे देशके विद्यार्थियोंको विदेश क्यों जाना पड़े, फिर विद्यार्थियोंका नैतिक पतन देखकर उसके मनमें यह भावना हुई कि क्यों न पुराने आश्रमके आधारपर नये आश्रम खुलें। उसने बहुतोंसे यह बात कही। किसीने सुना और हँस दिया। किसीने कहा 'पागल हुए हो'। जिसके घरमें दोनों जूनका भोजन न नसीब हो वह अगर ऐसी बात कहे तो वह पागल नहीं तो और है क्या। पर उस 'पागल' को धुन थी।

वह अपने अकेले समयमें कभी उस अढ़ाई हज़ार वरस पहलेके नालन्दा विश्वविद्यालयका स्वप्न देखा करता था जिसमें अध्यापकोंके सौ आसन लगे हुए हैं। वहीं खेती हो रही है। गुरु और शिष्य सभी मिलकर काम कर रहे हैं। कहीं विज्ञान पढ़ाया जा रहा है, कहीं तर्कशास्त्र, कहीं साहित्य कहीं आयुर्वेद, कहीं दर्शन तो कहीं ज्योतिष। कहा जाता है कि—

काजरकी कोठरीमें कैसो हू सयानो जाय,
एक रेख काजरकी लागि है पै लागि है।

पर यह तो सोनेकी खान थी जहाँ जो पहुँच गया वह कुन्दन बनकर निकल आया। कभी उस नौजवानके आगे तक्षशिलाका विद्यालय दिखाई देने लगता था—विद्यार्थी और अध्यापक एक ही आश्रममें रहते हैं। कुछ शुल्क देते हैं, कुछ मुफ़्तमें पढ़ते हैं। दिनको काम करते और रातको पढ़ते हैं। एक-एक कला या विद्यामें विशेषज्ञ होते हैं। कभी उसके मस्तिष्कमें सातवीं सदीका बिहारका विक्रमशिलाका विश्वविद्यालय घूमता था।

यों तो हरएक कोई अपनी मनके महल बनाता है पर इनमें कितने ऐसे निकलेंगे जिन्होंने अपने हवाई

इनमेँ कितने ऐसे निकलेँगे जिन्होँने अपने हवाई महलोँको आँखोँसे देखा है?

आज हम जिसकी कथा कह रहे हैँ वह सचमुच ऐसा ही था। पहले कल्पना की। धीरे-धीरे उस कल्पनामेँ बनी हुई मूर्त्तिमेँ जान पड़ने लगी। फिर उसका स्वरूप बनना शुरू हुआ और देखते-देखते काशीमेँ गङ्गाजीके किनारे खेतोँ और अमराइयोँके बीचसे गेरुआ वस्त्र पहन-पहनकर वह कल्पना विशाल रूप धारण करके निकल आई। नालन्दा, तक्षशिला और विक्रमशिलाकी याद लेकर। सभीने आँखेँ मलकर देखा क्या सपना है, नहीँ सपना कैसे हो सकता है। यही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है। कल तो नहीँ था—सचमुच नहीँ था—रात-रातमेँ बन गया है? हाँ, रात-रातमेँ बन गया। जब सारा संसार अँधेरी रातमेँ चादर तानकर सो रहा था उस समय रातको अपनी नीँद हराम कर अपने पसीनेके गारेसे एक आदमीने अपने कुछ मित्रोँसे ईंट-चूना माँगकर इसको बनाया है। संसारमेँ बहुतसी आश्चर्य्य-जनक चीज़ेँ हैँ पर यह सबसे बड़ा आश्चर्य्य है। बहुतसे वनस्पति-विशारदोँका दावा है कि वे एक दिनमेँ एक पौदेको एक फ़ीट बड़ा कर सकते हैँ—शायद यन्त्रसे या बिजलीसे। पर जिसके पास यन्त्र भी नहीँ हो और पैसा भी पास न हो वह यदि गेहूँ और चनेके खेतोँमेँसे या हरी-भरी अमराइयोँमेँसे इतने थोड़े समयमेँ एक इतना बड़ा विश्वविद्यालय पैदा कर दे—भला कौन वैज्ञानिक है जो इस बातका दावा करेगा।

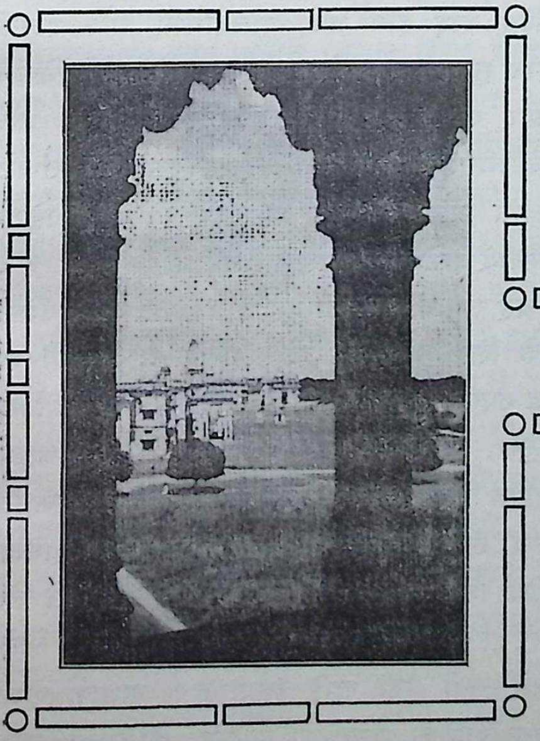

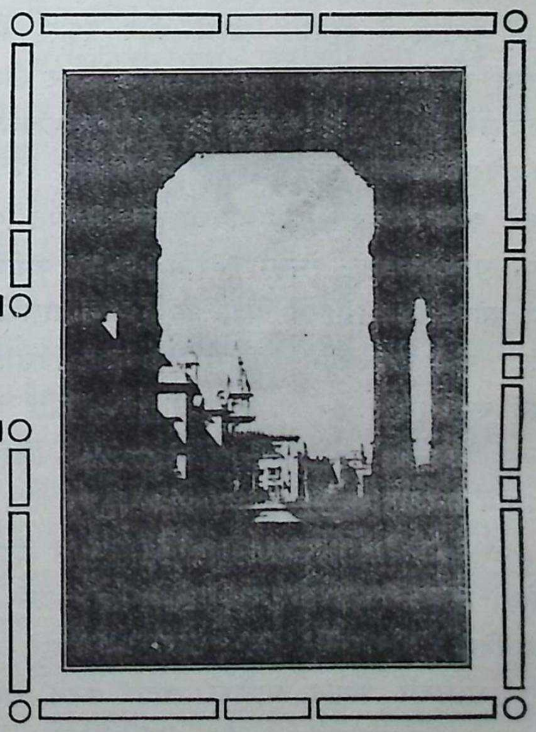

फ़क़ीर क़ौमके आए हैं झोलियाँ भर दो

ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज हिन्दुस्थानमेँ पैसा पैदा करनेके लिये स्थापित हुआ था, कुछ राज करने या यहाँका इन्तज़ाम करनेके लिये नहीँ। भारतका भाग्य उस समय भँवरमेँ पड़ चुका था। उसने विदेशियोँसे गाँठ जोड़नेमेँ ही शायद भलाई समझी। धीरे-धीरे ईस्ट इण्डिया कम्पनीका जब सिक्का चलने लगा तब उसने समझा कि यहाँके लोगोँको बिना खुश किए अधिक दिन जी न सकेँगे। सन् १७८२ ई० मेँ कलकत्तेमेँ मुसलमानोँका कलकत्ता मदरसा खुला और अरबी पढ़ाई जाने लगी। उसीके पीछे सन् १७९१ ई० मेँ काशीमेँ संस्कृत कौलेज्की नीँव पड़ी। पर इससे उनका उद्देश्य सफल होता नज़र न आया। उन्होँने अंग्रेज़ी पढ़नेपर ज़ोर दिया। सन् १८३५ ई० मेँ मेकौले महोदयने अंग्रेज़ी शिक्षाके पक्षमेँ फ़ैसला दे दिया। चारोँ ओर स्कूल और कौलेज् खुलने लगे। सन् १८५४ ई० मेँ सर चार्ल्स वुडने ख़रीत जारी किया, जिसके अनुसार कलकत्ता विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। सन् १८५८ ई० मेँ बम्बई और मद्रासमेँ विश्वविद्यालय स्थापित कर दिया गया। सन् १८८८ ई० मेँ शिक्षा कमीशन बैठा और लौर्ड रिपनने देखा कि विश्वविद्यालयोँकी संख्या कम है, उन्होँने लाहौरमेँ एक विश्वविद्यालय स्वयं सन् १८८२ ई० मेँ स्थापित किया और सन् १८८७ ई० मेँ उनके उत्तराधिकारी लौर्ड लिटनने प्रयागमेँ विश्वविद्यालय स्थापित कर दिया।

इन विद्यालयोँमेँ, जहाँ एक ओर सिरसे पैरतक अंग्रेज़ी रङ्गमेँ रँगे लोग निकलते थे, वहाँ ऐसे भी लोग निकले, जो राजनीतिक दाव-पेँच समझने लगे और शासनमेँ स्थान पानेका जतन करने लगे। सरकारका माथा ठनका। चिरजीवी लौर्ड कर्ज़नने अपने शासनमेँ इण्डियन युनिवर्सिटीज़ कमीशन (भारतीय विश्वविद्यालय जाँच समिति) लाए और सब विश्वविद्यालयोँको सरकारने हथिया लिए। पर सन् १९१७ ई० मेँ कलकत्ता युनिवर्सिटी कमीशनका शुभागमन हुआ और ढाकामेँ शिक्षा विश्वविद्यालय स्थापित हो गया। शेष विश्वविद्यालय परीक्षा ही लेते रहे।

हाँ, तो मालवीयजीके मनमेँ प्रयागसे काशीतक गङ्गाजीके किनारे-किनारे एक ऐसा आश्रम बनानेकी धुन थी जहाँ भारतीय युवक अपने चरित्रका सुधार करेँ और विद्या सीखेँ। इनके मित्र बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा और सुन्दरलाल इनके सलाहकार थे। पण्डित सुन्दरलालके कहनेसे वह विचार बदल गया। प्रयागके पुराने निवासियोँमेँसे बहुतोँको वे दिन याद होँगे जब मालवीयजी और स्वर्गीय पण्डित सुन्दरलाल घोड़े-गाड़ीपर शामको घूमने निकलते थे और कभी-कभी बड़ी देरतक घूमते रहते थे। भावी विश्वविद्यालयका बहुतसा नक़शा इसी सैर सपाटेमेँ बना था और देश तथा नगरकी न जाने कितनी समस्याएँ उसी समय सुलझाई गईं थीँ।

वह राष्ट्रीय शिक्षाका युग था। एक राष्ट्रीय शिक्षालयके लिये बनारसके रईस मुन्शी माधोलालने तीन लाख रुपया दान दिया था। दक्षिणमेँ सर्व श्री तिलक देशमुख, वैद्य तथा बीजापुरकरने 'समर्थ विद्यालय' स्थापित किया था। बहुतसे लोग राष्ट्रीय शिक्षाके लिये अपनी सेवाएँ दे रहे थे। बनारसमेँ स्थापित होनेवाले राष्ट्रीय शिक्षालयमेँ सेवा करनेके लिये बहुतसे लोग तैयार हो चुके थे पर कौन जानता था कि उस छोटेसे बीजमेँ इतनी बड़ी सृष्टि छिपी है। नाभाके राजाने सिक्ख जातिको अमृतसर ख़ालसा कौलेज्का सुधार

करनेके लिये आमन्त्रित किया । बङ्गालमेँ राँचीके नए कौलेज्के लिये अच्छी रक़मेँ दान की गईं । अलीगढ़ कौलेज्के संरक्षक अपने कौलेज्को गुरुकुल प्रणालीका विश्वविद्यालयमेँ परिणत करनेकी सोचने लगे । नवाबरामपुरकी सहायतासे वरेली कौलेज्की भी उन्नति हुई । महाराजा बलरामपुरने एक गुरुकुलकी तरहके नये शिक्षालयके स्थानके लिये तीन लाख़ रुपया दिया । सबसे अन्तमेँ उल्लेखनीय तातावैज्ञानिक अन्वेषण संस्था भी धीरे-धीरे अस्तित्वमेँ ही थी । केवल लौर्ड कर्ज़नके विधानके अनुसार सरकारी सहयोगसे विश्वविद्यालयोँ अथवा कौलेजोँमेँ उच्च शिक्षाके कार्य्यको प्रोत्साहन करना व लाभ पहुँचाना कादापि सम्भव न था ।

सन् १९०४ ई० मेँ पहले-पहल काशी नरेश हिज़ हाइनेस महाराजा सर प्रभुनारायण सिंहके सभा पतित्त्वमेँ मिण्ट हाउस काशीमेँ एक सभा हुई और पहले उसमेँ मालवीयजीने हिन्दू विश्वविद्यालयका ब्यौरेवार प्रस्ताव रक्खा । उस सभामेँ वहुतसे ऐसे लोग थे जो उस प्रस्तावमेँ सफल होनेमेँ सन्देह करते थे, इनमेँ उभाके सभापति काशी नरेश स्वयं थे । इस बातको एक बार स्वयं उन्होँने सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज्मेँ भाषण देते हुए कहा भी था—"कि जब हमारे माननीय मित्र पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने—जिन्होँने इस पवित्र कार्य्यका सूत्रपात किया है, मुझसे पहले-पहल हिन्दू विश्वविद्यालयके स्थापित करनेके विचारको कहा, मुझे इस कार्य्यकी सफलतामेँ सन्देह था ।" मनमेँ सन्देह करते हुए भी सभीने उस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया । अब तो मालवीयजीको बड़ा उत्साह हुआ । नवम्बर, सन् १९०५ ई० मेँ मालवीयजीने हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये फ़क़ीरी ले ली । संसारके कल्याणके लिये बुद्ध अपना राज्य और घर छोड़कर निकल पड़े उसी साल श्रीमान् गोपालकृष्ण गोखलेकी अध्यक्षतामेँ दिसम्बरमेँ राष्ट्रीय महासभा होनेवाली थी । उससे पहले ही अक्तूबरमेँ 'प्रस्तावित विश्वविद्यालय' का विवरण छपवाकर भारतवर्षके राजा, महाराजा पण्डित, विद्वान् और नेताओँको भेजा गया । दिसम्बरमेँ काशीमेँ राष्ट्रीय महासभा हुई और उसी अवसरपर ३१ दिसम्बर सन् १९०५ ई० को बरारके श्री वी० एन्० महाजनी एम्० ए० के सभापतित्त्वमेँ काशीके टाउनहौलमेँ एक बड़ी भारी सभा हुई । सब धर्म्मोँके प्रतिनिधि, देश भरके प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमियोँके सामने यह योजना रक्खी गई । यहाँ भी हिन्दू विश्वविद्यालयकी योजनाका सबने स्वागत किया । पहली जनवरी सन् १९०६ ई० को वहीँ कांग्रेसके पण्डालमेँ हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी घोषणा हुई ।

अगले ही वर्ष सन् १९२६ ई० मेँ २० से २९ जनवरी तक प्रयागमेँ परमहंस परिव्राजकाचार्य्य जगद्गुरु श्री स्वामी शङ्कराचार्य्यजीके सभापतित्त्वमेँ सुप्रसिद्ध साधुओँ तथा विद्वानोँकी सनातनधर्म महासभामेँ यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया कि—

"१—भारतीय विश्वविद्यालयके नामसे काशीमेँ एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना की जाय, जिसके निम्नाङ्कित उद्देश होँ—

(अ) श्रुतियोँ तथा स्मृतियोँ-द्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्मके पोषक सनातनधर्मके सिद्धान्तोँका प्रचार करनेके लिये धर्मके शिक्षक तैयार करना ।

(आ) संस्कृत भाषा और साहित्यके अध्ययनकी अभिवृद्धि ।

(इ) भारतीय भाषाओँ तथा संस्कृतके द्वारा वैज्ञानिक तथा शिल्पकला-सम्बन्धी शिक्षाके प्रचारमेँ योग देना ।

२—विश्वविद्यालयमेँ निम्नाङ्कित संस्थाएँ होँगी—

(अ) वैदिक विद्यालय—जहाँ वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, दर्शन, इतिहास तथा पुराणोँकी शिक्षा दी जायगी । ज्यौतिष-विभागमेँ एक ज्यौतिष-सम्बन्धी तथा अन्तरिक्ष विद्या-सम्बन्धी वेधशाला भी निर्मित की जाय ।

(अ) आयुर्वेदिक विद्यालय—जिसमेँ एक प्रयोगशाला हो तथा वनस्पति-शास्त्रके अध्ययनके लिये

एक उद्यान भी हो। एक सर्वोत्कृष्ट चिकित्सालय तथा पशु-चिकित्सालयकी स्थापना की जाय।

(इ) स्थापत्यवेद व अर्थशास्त्र—जिसमें तीन विभाग होंगे (१) भौतिक शास्त्र-विभाग (२) प्रयोगों तथा अन्वेषणके लिये एक प्रयोगशाला और (३) मशीन तथा बिजलीका काम सीखनेवाले इञ्जिनियरोंकी शिक्षाके लिये यन्त्रालयकी स्थापना की जाय।

(इ) रसायन विभाग—जिसमें प्रयोगों और अन्वेषणोंके लिये प्रयोगशालाएँ तथा रासायनिक द्रव्योंके बनानेकी शिक्षाके लिये यन्त्रालय स्थापित किया जाय।

(उ) शिल्पकला विभाग—जिसमें मशीनद्वारा व्यवहारमें आनेवाली नित्यप्रतिकी वस्तुएँ तैयार की जाँय। इस विभागमें भूगर्भशास्त्र खनिज तथा धातुशास्त्रकी शिक्षा भी सम्मिलित रहेगी।

(ऊ) कृषि विद्यालय—जहाँ प्रयोगात्मक तथा सैद्धान्तिक दोनों प्रकारकी शिक्षाएँ कृषिशास्त्रके नवीन अनुभवोंके अनुसार दी जाय।

(ए) गन्धर्ववेद तथा अन्य ललित कलाओंका विद्यालय।

(ऐ) भाषा विद्यालय—जहाँ अंग्रेज़ी, जर्मन तथा अन्य विदेशी भाषाएँ इस उद्देश्यसे पढ़ाई जायँ कि उनकी सहायतासे भारतीय भाषाओंका साहित्य-भाण्डार नये रत्नोंसे परिपूर्ण हो तथा विज्ञानकलाके नवीन शोधों-द्वारा उनके विकासमें अभिवृद्धि हो।

३—(अ) इस विश्वविद्यालयका धर्म-सम्बन्धी कार्य्य तथा वैदिक कौलेजका कार्य्य उन हिन्दुओंके अधिकारमें होगा जो श्रुति, स्मृति तथा पुराणों-द्वारा प्रतिपादित सनातनधर्मके सिद्धान्तोंके माननेवाले होंगे।

(आ) इस विश्वविद्यालयमें वर्णाश्रमधर्मके नियमानुसार ही प्रवेश होगा।

(इ) इस विद्यालयके अतिरिक्त अन्य सब विद्यालयोंमें सब धर्मावलम्बियों तथा सब जातियोंका प्रवेश हो सकेगा तथा संस्कृत भाषाके अन्य शाखाओंकी शिक्षा बिना जाति-पाँतिका भेदभाव किए सबको दी जायगी।

४—(अ) निम्नाङ्कित सज्जनोंकी एक समिति बनाई जाय जिन्हें अपने सदस्योंकी संख्या बढ़ानेका अधिकार हो, जो इस विश्वविद्यालयकी आयोजनाको कार्य्यरूपमें परिणत करनेके लिये आवश्यक उपाय काममें लावें, जिसके मन्त्री माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय हों।

(आ) बनारस टाउन हौलकी सभामें जो समिति नियुक्ति हुई थी उसके सदस्योंसे प्रार्थना की जाय कि वे समितिके भी सदस्य हो जायँ।

५—(अ) विश्वविद्यालयके लिये एकत्र किया हुआ समस्त धन काशीके माननीय मुन्शी माधोलालके पास भेजा जाय जो उसे "बैङ्क औफ़ बङ्गाल, बनारस" में जमा कर दें, जबतक कि उपर्युक्त समिति इस सम्बन्धमें कोई और आज्ञा न दे।

(आ) इस विश्वविद्यालयके लिये आए हुए रूपयोंमेंसे तबतक कुछ भी धन व्यय न किया जाय जबतक कि विश्वविद्यालय समिति एक सङ्गठित संस्थाकी तरह रजिस्टर्ड न हो जाय और जबतक इसके नियम निश्चित न हो जाँय तबतक इसका व्यय सनातनधर्म महासभाके लिये आए हुए धनमेंसे होना चाहिए।"

यह सोचा गया है विश्वविद्यालयका शिलारोपण तीस लाख रुपया एकत्र हो जानेपर अथवा एक लाख रुपया वार्षिक सहायताका वचन मिल जानेपर हो जायगा।

इन प्रस्तावोंको पढ़कर यह तो पता चल ही सकता है कि यह केवल बी० ए०, एम्० ए० की पढ़ाईके लिये विश्वविद्यालयकी योजना नहीं हुई थी बल्कि उसका उद्देश्य यह था—जहाँ एक विद्यार्थी शिल्पकला और यन्त्रकला सीखता हो वहाँ वह मशीनको ही सर्वशक्तिमान् न समझ बैठे बल्कि मनुष्योंके भाग्यका शासन करनेवाले उस परमात्माका भी स्मरण करे। और मन, वचन तथा कर्मसे आदर्श हिन्दू बन जाय। पर उन्होंने व्यावहारिक और विशेषतया औद्योगिक तथा वैज्ञानिक शिक्षापर तो और महत्त्वपूर्ण स्थान दिया

था। पण्डितजीके शब्दोंमें यह बात और स्पष्ट हो जाती है "रसायन तथा भौतिक शास्त्रमें योरोप तथा अमेरिकाने पिछले पचत्तर वर्षोंसे जो उन्नतिकी है तथा उनकी (विज्ञानकी) सहायतासे धनोपार्जन करनेके साधनोंमें जो उन्नति हुई है विशेषतया जो भाप तथा विद्युत्की सहायतासे औद्योगिक वस्तु तैयार करने तथा एञ्जिन चलानेके कारण हुई है उसे देखते हुए भारतवर्ष उन देशोंसे बहुत पीछे रह गया है, जहाँ प्रयोगों द्वारा विज्ञानका अध्ययन सामाजिक हित और सेवाके लिये होता है।"

यह प्रस्ताव पास हो गया पर अचानक सन् १९०५ ई० में ही भारतमें एक भूकम्प आया—उसने काँगड़ाको ही नहीं हिलाया बल्कि देशकी आन्तरिक शान्ति भङ्ग कर दी। भारतमाताके बाएँ हाथके दो टुकड़े कर दिए। बेचारी भूखी, दुर्बल, अनाथ और पराधीन माता एक बार तड़प उठी। दीनकी आहसे भगवान्की योगनिद्रा भी खुल जाती है। बस वही हुआ। एक बार देशमें ऐसी लहर उठी जैसे साँपके काटनेपर उठा करती है। सन् १९०७ ई० का मनहूस साल आया और अपने साथ बहुतसा तूफ़ान ले आया। उसका ज़िक्र आगे होगा। बस इतना ही कहना बहुत होगा कि हिन्दू विश्वविद्यालयके कई पक्षपाती हिन्दुस्थानसे बाहर कर दिए गए या जेलमें ठूँस दिए गए। राजनीतिक बवण्डरमें हिन्दू विश्वविद्यालयका नाम भुला दिया गया।

इधर श्रीमती एनी बेसेण्टके सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज्का बड़ा नाम हो रहा था। बड़े-बड़े त्यागी विद्वान् सेवा-भावसे वहाँ आकर पढ़ा रहे थे। श्रीमती एनी बेसेण्ट हिन्दूधर्म और संस्कृतिकी बड़ी पक्षपातिनी थीं और उन्होंने धर्मपर बहुतसी पुस्तकें भी लिखीं। धीरे-धीरे उन्होंने उस हिन्दू कौलेज्को 'युनिवर्सिटी' बनानेका विचार किया, जिसके अन्तर्गत देशके बहुतसे कौलेज् रहें और सब जगह यहाँकी परीक्षाका केन्द्र रहे। सन् १९०७ ई० में उन्होंने 'युनिवर्सिटी औफ़ इण्डिया' स्थापित करनेके लिये एक प्रार्थनापत्र कई प्रभावशाली भारतवासियोंके हस्ताक्षर कराकर भारत-सरकारके पास 'रौयल चार्टर' के लिये भेज दिया। इधर सनातनधर्म महामण्डलने भी दरभङ्गा-नरेश स्वर्गीय माननीय महाराजा सर रामेश्वरसिंह बहादुर के० सी० आई० ई० के नेतृत्वमें एक विश्वविद्यालय स्थापित करनेका प्रस्ताव किया। ये तीनों धाराएँ अलग-अलग बहती रहीं पर तीनों भगवान् विश्वनाथजीकी जटाओंमें ही रहना चाहती थीं।

सन् १९११ ई०के अक्तूबर महीनेमें माननीय महाराजा रामेश्वरसिंह बहादुर दरभङ्गानरेशने अपने विश्वविद्यालयकी योजनाको भी हिन्दू विश्वविद्यालयसे मिला दिया और ये दोनों महानुभाव इस सम्बन्धमें लौर्ड हार्डिञ्जसे मिले। उन्होंने उसे बहुत पसन्द किया और भारत-सरकारसे पूरी सहायताका वचन दिलाया।

बहुत दिनोंतक मालवीयजी और एनी बेसेण्टके पत्र व्यवहार होते रहे, पर अप्रैल सन् १९११ ई० में श्रीमती एनी बेसेण्ट प्रयागमें मालवीयजीसे मिलीं और ये तीनों धाराएँ एक हो गईं।

हिन्दू कौलेज्के ट्रस्टियोंमें इन्हीं दिनों 'कृष्ण-मूर्त्ति' का बखेड़ा खड़ा हो गया था। हिन्दू विश्वविद्यालयकी चर्चा उठकर फिर बैठ चुकी थी। इसी बीच सन् १९०९ ई० में अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी बननेकी बात पक्कीसी हो गई—

'हम इधर बैठे रहे अग़यार बाज़ी ले गए'।

हिन्दू विश्वविद्यालयकी भनक फिर कानोंमें पड़नी शुरू हुई। मालवीयजी उसका नया स्वरूप लेकर फिर प्रकट हुए। उन्होंने पण्डित सुन्दरलालजीको मन्त्री बनानेकी बड़ी कोशिश की पर सब बेकार हुई, क्योंकि पण्डित सुन्दरलाल नक्षत्रकी गति देखकर चलना चाहते थे। सौर मण्डलसे अलग होकर धूम्रकेतु बनकर चलनेका साहस होते हुए भी वे अपनी कक्षा नहीं छोड़ना चाहते थे। तब मालवीयजीने अपने पैरोंका

सहारा लिया और लक्ष्मीपतियोंके विशाल नगर कलकत्तेमें जा पहुँचे ।

प्रयागके इस धवल ब्राह्मणकी एक हाँकपर कलकत्तेकी लक्ष्मी दोनो हाथोंमें सोनेका कलश लेकर आई और जिस झोलीमें यह ब्राह्मण अपने देशकी करुण कथा सुनाकर आँसू बरसा रहा था उसमें उसने सोना उड़ेलना शुरू किया । इन्हीं दिनों उस समयके बड़े लाटके शिक्षामन्त्री श्री हारकोर्ट बटलर मालवीयजीसे मिले और बातचीतके सिलसिलेमें साफ़ कह दिया कि "यदि इस संस्थामें मातृभाषा-द्वारा पढ़ानेकी व्यवस्था रही तो उसमें सरकारसे आप कोई आशा न रखिएगा ।" उन्होंने यह भी जतला दिया कि "जिस समयतक आप अंग्रेज़ीमें लिखते, बोलते, पढ़ते, पढ़ाते हैं तबतक तो हमें शान्ति रहती है, क्योंकि उस समयतक हम आपकी सब बातों और चालोंको भली भाँति समझ सकते हैं और उसे सँभाल सकते हैं, पर जिस समय आप अपनी भाषामें काम करना आरम्भ कर देते हैं तब उसका समझना हमारे लिये कठिन हो जाता है । इसलिये मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेकी अनुमति सरकारसे किसी हालतमें नहीं मिल सकती ।" मालवीयजी बटलर साहबका इशारा ताड़ गए और मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेकी बात उस समय पी गए ।

इन्हीं दिनों श्रीमती एनी बेसेण्टके भी तीन व्याख्यान भारतीय विश्वविद्यालयके सम्बन्धमें कलकत्तेमें हुए । इसीके बाद एक सार्वजनिक सभामें हिन्दू विश्वविद्यालयकी घोषणा की गई । कलकत्तेमें जो आर्थिक सहायताका वचन मिला था वह प्रकट किया गया और प्रायः पाँच लाखका वचन मिला और बहुतसा रुपया नक़द भी मिला । मालवीयजीके साथ उनके लँगोटिया यार स्वर्गवासी बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा, स्वर्गवासी पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र, मुन्शी ईश्वरशरण और बाबू शिवप्रसाद गुप्त भी हो लिए । हिन्दू विश्वविद्यालयकी मथानी लेकर इन लोगोंने देशको मथना शुरू कर दिया । इस यात्रामें बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुईं ।

मुजफ्फ़रपुरमें एक भिक्षा माँगनेवाली भङ्गिनने अपने दिन भरकी कमाई, इस यज्ञ-वेदीपर समर्पण कर दी । इसी तरह एक व्यक्तिने बदनपरकी एक फटी कमीज़, उतारकर प्रदान कर दी । इन चीज़ोंको नीलाम करनेपर सैकड़ों रुपये मिले थे और ये वस्तुएँ भी विश्वविद्यालयको वापस कर दी गई थीं कि ये उसके संग्रहालयमें विवरणके साथ सुरक्षित रक्खी जावें । यहीं मुजफ्फ़रपुरमें एक बङ्गाली महोदयने शायद पाँच हज़ार रुपया दान किया था और फिर उनके घरपर जानेपर उनकी पत्नीने अपना बहुमूल्य सोनेका कङ्गन मालवीयजीको भेंट दिया जिसे उनके पतिने उसके दूनेसे अधिक मूल्य देकर ले लिया और पत्नीको फिर वापस दे दिया और जिसे उनकी पत्नीने संग्रहालयमें रखनेके लिये पुनः मालवीयजीको दे दिया । यहीं मुजफ्फ़रपुरकी एक घटना और उल्लेखनीय है । रात्रि हो चली थी, सभामें धन एकत्र हो चुका था, एक ओर उनकी गिनती हो रही थी, दूसरी ओर छोटी-छोटी चीज़ें नीलाम हो रही थीं, रोशनी ज़रा धीमी थी कि एक उचक्का हज़ार-हज़ारकी दो थैलियाँ उठाकर चल दिया । पीछे दौड़ हुई पर यह जा वह जा नाले और झाड़ियोंमें होकर वह ग़ायब ही हो गया ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि विश्वविद्यालयकी दुन्दुभी बजाते हुए मालवीयजी और उनके साथी कलकत्तेसे लाहौर पहुँच गए थे । बीस, पचीस लाखका वचन मिल चुका था । हिन्दू विश्वविद्यालयका आन्दोलन ब्रह्मपुत्रकी बाढ़के समान समुद्रकी ओर वेगसे बह रहा था । उसके आगेका पथ रोकना असम्भव हो चुका था । शिमलेसे मालवीयजीके लिये बुलावा आया, मालवीयजी शिमला पहुँचे । परलोकवासी राजा हरनाम सिंहजीकी कोठीमें वे ठहराए गए । मालवीयजी उस समयके वाइसराय लौर्ड हार्डिञ्जसे मिलने गए और वहाँसे बड़े प्रसन्न लौटे और बाबू

शिवप्रसाद गुप्तको बुलाकर कहा कि वाइसरायने विश्वविद्यालयको अपनानेका वचन दे दिया है। गुप्तजी सन्न रह गये और उनके मुँहसे हठात् निकल पड़ा कि 'दिस इज़ दि डेथ्-नैल् औफ़ दि हिन्दू युनिवर्सिटी' अर्थात् यह तो हिन्दू विश्वविद्यालयकी मृत्यु-घोषणा है। ये लोग ऊपरसे उतरकर फिर लाहौर वापस आए। लाहौरकी विशाल सभामेँ पञ्जाबकेशरी परलोकवासी लाला लाजपतरायने कहा कि, "चार्टर और नो चार्टर, हिन्दू युनिवर्सिटी मस्ट ऐग्ज़िस्ट" चार्टर मिले या न मिले हिन्दू युनिवर्सिटी अवश्य रहेगी।" जिसके उत्तरमेँ मालवीयजीने कहा कि, "चार्टर ऐण्ड चार्टर, हिन्दू युनिवर्सिटी मस्ट एग्ज़िस्ट" चार्टर मिलेगा, फिर मिलेगा और हिन्दू-युनिवर्सिटी बनेगी।" लाहौरसे यह दल मेरठ पहुँचा वहाँ बड़े समारोहसे सभा हुई। वारह घण्टेतकका लम्बा जलूस निकला, परलोकवासी महाराजा दरभङ्गा भी उसीमेँ शामिल हुए और सभापति बनना स्वीकार किया और पाँच लाखका दान भी दिया। इसीके पहले पण्डित सुन्दरलालजीने भी श्री हारकोर्ट बटलरके कहनेपर मन्त्रित्व स्वीकार कर लिया था।

मालवीयजी त्रिवेणी बन गए, हिन्दू विश्वविद्यालय पर्व बन गया और सारे देशने जी खोलकर इस पर्वपर सोना लुटाया। जहाँ-जहाँ डेपुटेशन जाता था वहाँ-वहाँ कई स्टेशन पहलेसे ही स्वागत प्रारम्भ हो जाता था, रेलवे पटरियोँपर पटाखे रख दिए जाते। गाड़ी पहुँचते-पहुँचते आवाज़ेँ दगने लगतीँ। लोग चिल्ला उठते—हिन्दू धर्मकी जय, मालवीयजीकी जय। हाथियोँपर सवारियाँ निकलती, बड़े-बड़े विशाल जलूस निकलते—वही-वही मालवीयजी हैँ, सफ़ेद साफ़ेवाले, वही जो मुस्कुराकर हाथ जोड़े खड़े हैँ। वह देखो महाराज दरभङ्गा हैँ। पीछे वह देखो व्याख्यान वाचस्पतिजी पगड़ी बाँधे खड़े हैँ, आगेवाले पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र हैँ। ये देशी साड़ी पहने अंग्रेज़ औरत—अरे यही एनी बेसेण्ट हैँ। लोग इन महापुरुषोँको कितनी उत्सुकतासे देखते थे। पेड़ोँपर चढ़कर, मकानोँकी छतोँसे, खिड़कियोँके सीँखचोँसे लटककर केवल इनके दर्शनके लिये लोग अपने प्राण सङ्कटमेँ डालकर भीड़के धक्के खाते हुए भी उमड़े पड़ते थे। फ़ैज़ावाद, जौनपुर, वाँकीपुर, गोरखपुर, कानपुर, छपरा, लखनऊ, कलकत्ता, फ़रीदपुर, मालदा, रावलपिण्डी, लाहौर, अमृतसर, मुजफ्फ़रनगर, मेरठ, वरेली, सहारनपुर, मुरादाबाद, उन्नाव, सीतापुर, इटावा, वहराइँच, वनारस, आगरा, अजमेर, उदयपुर, नैनीताल, अलमोड़ा, काश्मीर, अम्बाला, शिमला, रायवरेली, इन्दौर, कोटा, अलवर, बीकानेर, गया, वम्वई—भारत भरमेँ यह दल घूमा। महाराज बीकानेर सर गङ्गासिंहजी वहादुर जी० सी० एस्० आई० भी वहुत जगह साथ रहे। उस समय देशभरमेँ एक ही आन्दोलन था, एक ही शोर था—बस हिन्दू विश्वविद्यालय। ३ सितम्बर सन् १९११ ई० की वात है, यह दल लखनऊ पहुँचा। बड़ा भारी जल्सा हुआ। मालवीयजीका व्याख्यान होनेसे पहले चकवस्त साहबने एक क़ौमी मुसद्दस सुनाया। लोग फड़क उठे। सिली हुई थैलियाँ भी अपने आप खुल गईं और वरस पड़ीँ। क्या जादू था उस कवितामेँ। हिन्दू विश्वविद्यालयका इतिहास इसके बिना अधूरा ही समझिए।

सुनिए—

क़ौमी मुसद्दस (जातीय षट्पदी)

(हिन्दू विश्वविद्यालय)

इलाही कौन फ़रिश्ते[1] हैँ ये गदाए वतन[2]।
सफ़ाए क़ल्व[3]से जिनके ये बज़्म[4] है रौशन॥
झुकी हुई है सबोँकी लिहाज़से गर्दन।
हर इक ज़बाँ पै है ताज़ीम[5] औ अदब कै सखुन[6]।
सफ़ेँ[7] खड़ी हैँ ज़वानोँकी और पीरोँ[8]की।
खुदाकी शान यह फेरी है किन फ़क़ीरोँकी॥

---

१ देवता। २ स्वदेशके फ़क़ीर। ३ हृदयकी उज्ज्वलता। ४ सभा। ५ प्रतिष्ठा। ६ वाक्य। ७ पंक्तियाँ। ८ वृद्ध।

फ़क़ीर इल्मके हैँ इनकी दास्ताँ[१] सुन लो।
पयाम क़ौम[२]का दुख-दर्दका बयाँ सुन लो।
यह दिन वो दिन है जो है यादगार हाँ सुन लो।
है आज ग़ैरते क़ौमी[३]का इम्तहाँ सुन लो॥
यही है वक्त़ अमीरोँकी पेशवाई[४]का।
फ़क़ीर आए हैँ कासा[५] लिए गदाई[६] का।
जो अपने वास्ते माँगेँ ये वो फ़क़ीर नहीँ।
तमअ[७] मेँ दौलते दुनियाकी ये असीर[८] नहीँ॥
अमीर दिलके हैँ ज़ाहिरके ये अमीर नहीँ।
वह आदमी नहीँ जो इनका दस्तगीर[९] नहीँ।
तमाम दौलते ज़ाती[१०] लुटाके बैठे हैँ।
तुम्हारे वास्ते धूनी रमाके बैठे हैँ॥
सवाल इनका है तालीमका बने मन्दिर।
कलश हो जिसका हिमालासे औज[११]मेँ बरतर[१२]।
इसी उमीद पै ये घूमते हैँ शामोसहर[१३]।
सदा[१४] लगाते हैँ राहे खुदामेँ यह कहकर॥
"वह खुदग़रज़ हैँ जो दौलत पै जान देते हैँ।
वही हैँ मर्द जो विद्याका दान देते हैँ॥"
सवाल रद न हो इनका ये शर्त्त है तदबीर।
इसीसे पायँगे ईमान आबरू तौक़ीर[१५]॥
यह है तरक्क़िए[१६] क़ौमीके वास्ते अक्सीर।
बहेँ उलूम[१७]की गङ्गा पिएँ ग़रीब-अमीर॥
बक़ारे क़ौम[१८] बढ़े दूर बेज़री[१९] हो जाय।
उजड़ गई है जो खेती वह फिर हरी हो जाय॥
जो हो रहा है ज़मानेमेँ है तुम्हेँ मालूम।
कि हो गए हैँ गराँ[२०] किस क़दर फ़िनून उलूम[२१]॥
तुम्हारी क़ौमसे दौलत हुई है योँ मादूम[२२]।
कि अब तरसते हैँ पढ़नेको सैकड़ोँ मासूम[२३]॥
वह खुद तरसते हैँ, माँ-बाप उनके रोते हैँ।
तुम्हारी क़ौमके बच्चे तबाह होते हैँ॥
ये बेगुनाह उसी क़ौमके हैँ लख़्ते-जिगर[२४]।
कि जिसने तुमको भी पाला है सूरते मादर[२५]॥
जिगर पै क़ौमके इफ़लास[२६]का चले ख़ञ्जर।
ग़ज़ब खुदाका तुम्हारे दिलोँ पै हो न असर॥
उसीसे बेख़बरी जिसके दमसे जीते हो।
उसे रुलाते हो जिस माँका दूध पीते हो॥
यह क़हत[२७] क्या है, यह ताऊन क्या है, क्या है वबा[२८]।
तुम्हारी क़ौम पै नाज़िल[२९] हुआ है क़हरे खुदा[३०]॥
जो राहेरास्त[३१]से होती है कोई क़ौम जुदा।
इसी तरह उसे मिलती है एक रोज़ सज़ा॥
इसी तरहसे हवा क़ौमकी बिगड़ती है।
इसी तरहसे ग़रीबोँकी आह पड़ती है॥
गुनाह क़ौमके धुल जायँ अब वह काम करो।
मिटे कलङ्कका टीका वह फ़ैज़ आम[३२] करो॥
किफ़ा[३३] को जहल[३४]को बस दूरसे सलाम करो।
कुछ अपनी क़ौमके बच्चोँका इन्तज़ाम करो॥
यह काम होके रहे चाहे जाँ रहे न रहे।
ज़मीँ रहे न रहे आसमाँ रहे न रहे॥
ये कारे ख़ैर[३५]मेँ कोशिश यह क़ौमका दरबार।
लगा दो आज तो चाँदीके हर तरफ़ अम्बार[३६]॥
ये सब कहेँ कि है ज़िन्दा ये क़ौम ग़ैरतदार[३७]।
है इसके दिलमेँ बुज़ुर्गोँकी आबरूका बक़ार[३८]॥
सरोँमेँ हुब्बे वतन[३९]का जुनून[४०] बाक़ी है।
रगोँमेँ भीषमो अर्जुनका ख़ून बाक़ी है॥
मिसेज़ बिसेण्टके अहसानकी तुम्हेँ है ख़बर।
किया निसार[४१] बुढ़ापा तुम्हारे बच्चोँपर॥
शरीक़ वो भी हैँ इस कार ख़ैरके अन्दर।
न आँख उनकी हो नीची रहे ये मद्दे नज़र॥
मिटे न बात कहीँ तुमपै मिटनेवालोँकी।
तुम्हारे हाथ है शर्म उन सफ़ेद बालोँकी॥

---

१ कहानी। २ सन्देश। ३ जातीय लाज। ४ स्वागत। ५ प्याला। ६ फ़क़ीरी। ७ लालच। ८ क़ैद। ९ सहायक। १० निजी सम्पत्ति। ११ उँचाई। १२ बढ़कर। १३ सुबह। १४ आवाज़। १५ इज्जत। १६ जातीय उन्नति। १७ विद्या। १८ जातीय प्रतिष्ठा। १९ निर्धनता। २० महँगे। २१ कला-कौशल। २२ मिट गई। २३ बालक। २४ कलेजेके टुकड़े। २५ माताकी तरह। २६ ग़रीबी। २७ दुर्भिक्ष। २८ आफ़त। २९ गिराँ। ३० ईश्वरीय कोप। ३१ सच्ची राह। ३२ व्यापक दान। ३३ द्वेष। ३४ मूर्खता। ३५ नेक काम। ३६ ढेर। ३७ लज्जावान। ३८ प्रतिष्ठा। ३९ स्वदेश-प्रेम। ४० उन्माद। ४१ निछावर।

तुम्हारे वास्ते लाज़िम है मालवीका भी पास[1]।
कि जिसकी ज़ातसे अटकी हुई है क़ौमकी आस ॥
लिया ग़रीबने घर बार छोड़कर बनवास।
जो यह नहीं है तो कहते हैं फिर किसे संन्यास ॥
तमाम उम्र कटी एक ही क़रीने[2]पर।
गिराया अपना लहू क़ौमके पसीनेपर ॥
इसीके हाथमें है क़ौमका सँवर जाना।
तुम्हारी डूबती क़श्ती[3]का फिर उभर जाना ॥
जो तुमने अब भी न दुनियामें काम कर जाना।
तो यह समझ लो कि बेहतर है इससे मर जाना ॥
ग़ज़ब हुआ जो दिल इसका भी तुमसे ऊब गया।
गिरा इस आँखसे आँसू तो नाम डूब गया ॥
घटाएँ जहल[4]की छाई हुई हैं तीर-ओ तार[5]।
यह आरज़ू है कि तालीमसे हो बेड़ा पार ॥
मगर जो ख़्वाबसे अब भी न तुम हुए बेदार[6]।
तो जान लो कि है इस क़ौमकी चिता तैयार ॥
मिटेगा दीन भी और आबरू भी जाएगी।
तुम्हारे नामसे दुनियाको शर्म आएगी ॥
जो इस तरह हुआ दुनियामें आबरूका ज़वाल[7]।
तो काम आयगा उक़्बा[8]में क्या यह दौलतोमाल।
करो ख़ुदाके लिये कुछ मरे हुएका ख़याल।
न हों तुम्हारे बुजुर्गोंकी हड्डियाँ पामाल[9] ॥
यह आबरू तो हज़ारों बरसमें पाई है।
न यों लुटाओ कि ऋषियोंकी यह कमाई है ॥
लुटाओ नामपै दौलत अगर हो ग़ैरतदार[10]।
पुकार उठे ये ज़माना कि है यह परउपकार ॥
है ज़ोर हिम्मते मर्दाना[11] क़ौमको दरकार।
वरक़ उलट दो ज़मानेका मिलके सब इक बार ॥
अगर हो मर्द न यों उम्र रायगाँ[12] काटो।
ग़रीब क़ौमके पैरोंकी बेड़ियाँ काटो ॥
यह कारे ख़ैर वो हो नाम चारसू[13] रह जाय।
तुम्हारी बात ज़मानेके रूबरू रह जाय ॥
जो ग़ैर हैं उन्हें हँसनेकी आरज़ू[14] रह जाय।
ग़रीब क़ौमकी दुनियामें आबरू रह जाय।
ज़रा हमैयतो ग़ैरत[15] का हक़ अदा कर लो।
फ़क़ीर क़ौमके आए हैं झोलियाँ भर दो ॥
यहाँसे जायँ तो जाएँ यह झोलियाँ भरकर।
लुटाएँ इल्मकी दौलत तुम्हारे बच्चोंपर ॥
इधर हो नाज़ यह तुमको कि ख़ुश गए ये बशर[16]।
जो हो सका वह किया नज़्र इनके टेकके सर ॥
यही हो फ़ख़्र[17] जवानोंका और पीरों[18]का।
सवाल रद न किया क़ौमके फ़क़ीरोंका ॥

मालवीयजीकी जीभ सरस्वती बनी हुई थी। उनकी वाणीपर कितनी स्त्रियोंने अपने आभूषण न्यौछावर किए, कितने लोगोंने अपनी दिन भरकी कमाई लुटा दी। हिन्दू और मुसलमान सभी इस यज्ञमें भाग ले रहे थे। मुरादाबादमें मालवीयजीके व्याख्यानके बाद एक मुसलमान सज्जन आँखोंमें आँसू और हाथमें पाँच रुपये लिए हुए खड़े हुए, और ले जाकर मालवीयजीके चरणोंपर रख दिए और कहा, "मैं बहुत ग़रीब आदमी हूँ, तब भी इस नेक काममें मैं पाँच रुपए देता हूँ।" इस सच्चे मुसलमानके इस दानसे सबकी आँखें डबडबा आईं। मालवीयजीने किस धुनसे रुपया इकट्ठा किया वह भी एक कहानी है। एक बार मालवीयजी देहरादून गए हुए थे और लाला उग्रसेनके घर ठहरे। वहाँके मुसलमान तहसीलदार मालवीयजीसे मिलने आए। मालवीयजीने उनसे भी हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये सवाल किया और उनसे चन्दा लेकर ही उनको छुट्टी दी।

मालवीयजी और पण्डित सुन्दरलाल दोनों एक दूसरेकी कमी पूरी करते थे। मालवीयजी ब्राह्मणकी भाँति झोली पसारते थे पर सुन्दरलालजी ज़मीन्दारकी तरह वसूल करते थे। वचन दिए हुए रुपएको इकट्ठा करनेमें उन्होंने कमालका काम किया। सर सुन्दरलालने एक लाख रुपया स्वयं विश्वविद्यालयको दिया और पहले वाइस चान्सलर भी बने। उनके

---

[1] खयाल। [2] ढङ्ग। [3] नाव। [4] नादानी। [5] अन्धेरी। [6] जागृत। [7] अवनति। [8] परलोक। [9] बरबाद। [10] लज्जावान। [11] मानुषिक-साहस। [12] व्यर्थ। [13] चारोंओर। [14] कामना। [15] शिष्टता और लज्जा। [16] आदमी। [17] गर्व। [18] शकुन।

भाई पण्डित बलदेवराम दवे भी मालवीयजीके साथ-साथ काम करते रहे।

इस भिखारीकी झोलीमें सारे भारतने एक करोड़ रुपयेकी भीख डाल दी और इसे 'भिखारी-सम्राट्' की उपाधि भी दे दी। यह कला इनसे गान्धीजीने भी सीखी और उन्होंने कहा भी है कि भीख माँगना मैंने अपने बड़े भाई मालवीयजीसे सीखा है। मालवीयजीके इस आत्मत्याग और परिश्रमको देखकर ही श्रीमती एनी बेसेण्टने ३१ जनवरी सन् १९१२ ई० को काशीमें व्याख्यान देते समय कहा था कि "आपने अपना सांसारिक जीवन, अपनी सब शक्ति, अपनी विलक्षण वाणी, क्या कहा जाय—अपना समस्त जीवन और स्वास्थ्यतक इस महत् कार्य्य (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) में लगा दिया है।

महाराजा मैसूर, महाराजा कश्मीर, महाराजा ग्वालियर, महाराजा इन्दौर, हिन्दूपति महाराणा उदयपुर, हिज़ हाइनेस महाराजा सर गङ्गा सिंहजी बहादुर, जी० सी० एस० आई० बीकानेर नरेश, महाराजा कोटा, महाराजा सर प्रताप सिंह बहादुर, जोधपुर, दरबार, महाराजा अलवर, महाराजा नाभा, महाराजा क़ासिम बाज़ार, महाराजा बनारस, महाराजा बलरामपुर इत्यादि हिन्दू राजाओं ने हिन्दू विश्वविद्यालयके कार्य्यसे सहानुभूति प्रकट की और उसके लिये अपना समय और धन दिया। बङ्गालके नेताओंमें बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, बाबू अम्बिकाचरण मजुमदार, बाबू भूपेन्द्रनाथ बसु, डाक्टर सर राशबिहारी घोष, स्वर्गीय सर गुरुदास बैनर्जी, डाक्टर सर्वाधिकारी, पञ्जाबमें लाला लाजपतराय, लाला हंसराज, पण्डित दीनदयालु, लाला हरिकिशन लाल, राय रामशरणदास, रामगोपालदास भण्डारी बहादुर, बम्बईमें सर भालचन्द्र कृष्ण, सर नारायन चन्दावरकर, हिज़ हाइनेस आग़ाखाँ, सर विट्ठलदास थैकरसी, नरोत्तमदास मूरजी गोकुलदास; बिहारमें माननीय कृष्णासहाय, माननीय सच्चिदानन्द सिंह, माननीय हसन इमाम, मध्यप्रदेशमें राजा वल्लभदास और संयुक्तप्रान्तमें डाक्टर सर सुन्दरलाल, डाक्टर तेजबहादुर सप्रू, पण्डित मोतीलाल, राजा मोतीचन्द, राना शिवराना सिंह खजूरगाँव, राजा सूर्य्यबख्श सिंहजी कसमण्डा नरेश, राजा रामपाल सिंहजी, राजा प्रतापबहादुर सिंहजी, राजा माँडा, इत्यादि सब हिन्दू जातिके हितैषियोंने हिन्दू विश्वविद्यालयको अपना समय और धन देकर हिन्दू जातिके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा किया।

एक करोड़ रुपया एकत्र हो गया। सन् १९११ ई० में हिन्दू युनिवर्सिटी सोसाइटीकी रजिष्ट्री हो ही चुकी थी, इसके एक वर्ष बाद ही भारत-मन्त्रीने लौर्ड हार्डिञ्जकी सलाहसे 'गुरुकुल प्रणाली विश्वविद्यालय' स्थापित करनेकी मञ्जूरी दे दी। पहली अक्तूबर सन् १९१५ ई० को 'हिन्दू विश्वविद्यालय बिल' पेश हुआ और स्वीकृत हो गया। श्रीमती एनी बेसेण्टने और सेण्ट्रल हिन्दू कौलेजके ट्रस्टियोंने बड़ी उदारताके साथ सेण्ट्रल हिन्दू कौलेजको हिन्दू विश्वविद्यालयके हाथों सौंप दिया। यह हिन्दू विश्वविद्यालयका बीज समझिए।

"हिन्दू विश्वविद्यालयका शिलारोपण महोत्सव"

निदान ४ फ़रवरी सन् १९१६ ई० को १२ बजे वसन्त पञ्चमीके दिन काशीमें, विशेष समारोह हुआ। सम्राट्के प्रतिनिधि श्रीमान् लौर्ड हार्डिञ्ज, बङ्गालके गवर्नर, तथा बिहार-उड़ीसा, युक्तप्रान्त और पञ्जाबके लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर पधारे। काश्मीर, जम्बू, जोधपुर, बीकानेर, अलवर, झालावाड़, डूँगरपुर, ईदर, कोटा, किशनगढ़, काशी और सुहावल इत्यादिके महाराजागण तथा बलरामपुर, डुमराँव, बस्ती इत्यादिके राजाओंने भी पधारकर पण्डालकी शोभा बढ़ाई थी। सर गुरुदास बैनर्जी, डाक्टर रासबिहारी घोष, सर प्रभाशङ्कर पट्टनी, बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, दीवान-बहादुर गोविन्दराघव ऐयर, सरदार दलजीतसिंह इत्यादि प्रभावशाली महानुभाव तथा कितने ही अन्य भारत-रत्न, महामहोपाध्याय, धर्म-धुरीण आचार्य्य—

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई—देश-सेवक स्कूलों और कौलेजोंके चुने हुए छात्रगण भी इस महोत्सवमें सम्मिलित हुए थे। रङ्गबिरङ्गे वस्त्राभूषणोंसे सजकर ये सब लोग वहाँ एक ही उद्देश्य लेकर जमा हुए थे। शायद सन् १९११ ई० के दरबारको छोड़कर बृटिश भारतमें ऐसा दृश्य कभी न दिखाई दिया होगा।

मि० लैम्बर्ट कलेक्टर तथा राय छोटेलाल साहब इञ्जिनियरने मालवीयजीकी इच्छाके अनुसार मण्डप बनाया था। जिन आँखोंने देखा उन्होंने ज़बानको गूँगा बना दिया, वर्णन क्या ख़ाक करें। पतित-पावनी गङ्गाजीके बाएँ किनारे, श्रीमान् काशी-नरेशके रामनगरके क़िलेके ठीक सामने गोल मण्डप बनाया गया था। चबूतरे धनुषाकार थे। चारों ओर रङ्ग-बिरङ्गी मालाओं, फूलपत्तियों, झण्डियों और परदों इत्यादिसे वह सजाया गया था। श्रीमान् वाइसरायके आसनके नीचे खण्डोंमें बहुमूल्य क़ालीन और गद्दे बिछे हुए थे। उनके ऊपर सोने-चाँदीकी कुर्सियाँ रक्खी थीं। मण्डपकी शोभा स्थानकी सुरम्यतासे और भी बढ़ गई थी। मण्डपके भीतर दक्षिणी भागके बीचमें, श्रीमान् वायसरायका आसन उत्तर मुँह बैठनेके लिये बनाया गया था। आसनके दाहिनी ओर तीन खण्ड थे। उनमें तीन सौ मनुष्योंके बैठनेका स्थान था। बाईं ओरके चार खण्डोंमें चार सौ आदमियोंके बैठनेका स्थान था। श्रीमान् वायसरायके आसनके ठीक सामने मण्डपके बीचों-बीच एक ऊँची वेदीपर नींव रखनेका पत्थर एक दृढ़ जंज़ीरसे लटक रहा था।

उसके आगे, उत्तर ओर, तीन खण्डोंमें बैठनेके सात सौ चौवालीस स्थान थे। उनके ऊपर पाँच और खण्ड थे। उनमें बैठनेके चार हज़ार एक सौ छिहत्तर स्थान थे। प्रथमके ग्यारह खण्डोंतक तो कुर्सियोंका प्रबन्ध था और शेष पाँच खण्डोंमें चापाकार बेञ्च बनाए गए थे। मण्डपके बाहर चारों ओर, स्थान-स्थानपर, विशाल तम्बू खड़े थे। उनमें, भिन्न-भिन्न खण्डोंमें बैठनेवाले महानुभावोंके सुभीते और आरामकी ओर ध्यान रखकर, सब प्रकारके ज़रूरी सामान रक्खे हुए थे। पानी पिलानेका भी उत्तम प्रबन्ध था, पास ही एक अस्पताल भी था। महोत्सव मण्डपके पूर्व, गङ्गाजीकी ओर, महारुद्र-यज्ञके लिये एक विशाल यज्ञशाला बनाई गई थी। उसके पास ही एक सुन्दर मण्डप था। उसमें सिक्ख भाइयोंके ग्रन्थ साहबके पढ़नेका विधान था। दूसरे मण्डपमें जैन भाइयोंकी ओरसे पूजाकी व्यवस्था की गई थी। पूजाके सभी स्थान महोत्सव-मण्डपकी तरह भले प्रकार सजाए गए थे। एक जगहसे दूसरी जगह जानेके लिये सुन्दर मार्ग बनाए गए थे। घोड़ा-गाड़ियों और मोटरोंके लिये अलग-अलग स्थान नियत थे।

टिकट

महोत्सव-मण्डपमें जानेके लिये पाँच प्रकारके टिकट थे—सुफ़ेद, नीले, पीले, लाल और हरे। किस टिकटवाले कहाँ बैठें, यह निश्चित कर दिया गया था। परदानशीन महिलाओंके लिये लाल टिकटोंकी योजना थी।

मार्ग

महोत्सव-मण्डपमें जानेके लिये श्री दुर्गाजीके मन्दिरकी दक्षिण-पूर्ववाली पक्की सड़कमेंसे तीन नए सुन्दर मार्ग बनाए गए थे। किस मार्गसे कौन प्रवेश करे, इसका प्रबन्ध कर दिया गया था।

मार्ग-सूचक पट्टियाँ स्थान-स्थानपर बड़े-बड़े खम्भोंमें लगी हुई थीं। तो भी पुलीसका प्रबन्ध था ही। मार्ग भूलनेवालोंको लाल पगड़ीवाले टिकट देखकर मार्ग बतला देते थे। पुलीसका पहरा केवल राजमार्गोंपर ही नहीं था बल्कि प्रत्येक गली और सड़क तथा उनके पासके घरोंकी छतों और बाग़के वृक्षोंपर भी था।

महोत्सव-मण्डपमें पहुँचनेका समय

महिलाओंको साढ़े दसतक, हरे टिकटवाले निमन्त्रित सज्जनों और छात्रोंको ग्यारह बजेतक और अन्य महानुभावोंको साढ़े ग्यारह बजेतक मण्डपमें अपनी-अपनी जगहपर बैठनेकी सूचना दे दी गई थी। सोनपुर, भदैनी और अस्सीके राजमार्गोंसे बिना टिकट कोई मनुष्य रामनगर अथवा नगवाकी तरफ़ आठ बजेके बाद नहीं जाने पाया। टिकटवाले लोगोंके लिये भी कोई-कोई मार्ग साढ़े नौ और दस बजे बन्द कर दिए गए थे।

साढ़े ग्यारह बजेके पश्चात् पाँचवीं हैम्पशायर और सातवीं राजपूत पल्टनके सिपाही क्रमशः आकर मध्यवेदीके दाहिने-बाएँ खड़े हो गए। उनके यथास्थान खड़े हो जानेपर हिन्दू कौलेजकी केडेट् कोर, मध्यवेदीके तीन ओर घेरकर खड़ी हो गई। यदि उस समय महोत्सव-मण्डपको एक विचित्र रङ्ग-बिरङ्गा पौदा कहें तो हिन्दू कौलेजके केडेट् कोरको उस पौदेका मनोमोहक फूल कहे बिना नहीं रह सकते। उनके सामने सचमुच हीरे-जवाहिरों, मोतियों तथा बहुमूल्य सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंकी चमक-दमक और जगमगाहट छिप गई। वे तेजस्वी बालक सूर्य्य भगवान्की तरफ़ मुँह करके जो खड़े हो गए तो अन्ततक अपनी जगहसे नहीं हिले। सूर्य्य भगवान् भी मण्डपके ऊपर रथ रोककर मानो विचित्र शोभा देखनेके लिये आ जमे थे।

श्रीमान् वायसराय ठीक बारह बजे सभा-मण्डपमें पधारे। गार्ड औफ़ औनरने सलामी उतारी। बैण्डवालोंने समयोचित वाद्य बजाया। सर्वसाधारणने खड़े होकर करतल-ध्वनिसे श्रीमान्का स्वागत किया। श्रीमान्के आसनपर विराजते ही दाहिनी ओर रक्षित देशोंके नरेश और बाईं ओर बङ्गाल, बिहार, युक्तप्रान्त, पञ्जाबके लाट, बलरामपुर, डुमराँव इत्यादिके महाराज तथा मिस्टर नायर, महाराज दरभङ्गा, श्रीमान् मालवीयजी, पण्डित सुन्दरलाल, डाक्टर सर्वाधिकारी, सर गुरुदास बैनर्जी, सर पट्टनी, सरदार दलजीतसिंह इत्यादि सज्जन अपने-अपने आसनपर बैठ गए।

निश्चित समयसे बहुत पहले ही सभा-भवन दर्शकोंसे भरने लगा और साढ़े ग्यारह बजते-बजते सब अपने स्थानपर बैठ गए। पाँचवीं हैम्पशायर तथा सातवीं राजपूत पल्टनसे आए सिपाही वायसराय महोदयके स्थानके चारों ओर सम्मान प्रदर्शनके लिये खड़े थे। हिन्दू कौलेजके स्वंयसेवक उस शिला-मञ्चको चारों ओरसे घेरे खड़े थे। हिन्दू कौलेजके छात्रोंने इस अवसरपर जो अदम्य उत्साह दो घण्टे निरन्तर खड़े रहकर (जब कि पाँचवीं हैम्पशायर पल्टनके आठ व्यक्ति तथा सातवीं राजपूत पल्टनके चार व्यक्ति मूर्छित होकर गिर पड़े थे) दिखलाया था उनकी शिक्षाका भली भाँति परिचय दे रहा था।

ठीक बारह बजे वायसराय महोदय पधारे तथा राष्ट्रीय गानके साथ उन्होंने अपना स्थान ग्रहण किया।

राष्ट्रीय गानके समाप्त होनेपर सेण्ट्रल हिन्दू कन्या-पाठशालाकी बारह बालिकाओंने जो वायसराय महोदयके स्थानसे दर्शकोंके स्थानतक खड़ी हुई थीं पहले गणपतिकी तथा फिर सरस्वती देवीकी स्तुति की। संस्कृत श्लोकोंमें जो इस अवसरके लिये सर्वथा उपयुक्त थे। महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमारजी शास्त्रीने तब इस कार्य्यकी सफलताके लिये स्वस्ति-वाचन श्लोक कहे। उसके बाद हिन्दू विश्वविद्यालय सोसाइटीके प्रधान महाराजा दरभङ्गाने अपना भाषण पढ़ा और फिर लौर्ड हार्डिञ्जसे शिलान्यास करनेकी प्रार्थना की।

सर गुरुदास बैनर्जीने वायसराय महोदयको शिवालयके आकारके सुन्दर रजत डिब्बेमें बन्द मान-पत्र भेंट किया। इसके बाद वायसराय महोदयने भाषण दिया

तत्पश्चात् श्रीमान् वायसराय मध्यस्थ मञ्चकी ओर गए। नन्हीं-नन्हीं बालिकाओंकी पुष्प-वर्षाके मध्यमें उन्होंने शिलान्यास संस्कार किया जिसपर खुदा हुआ था—

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका शिलान्यास-महोत्सव

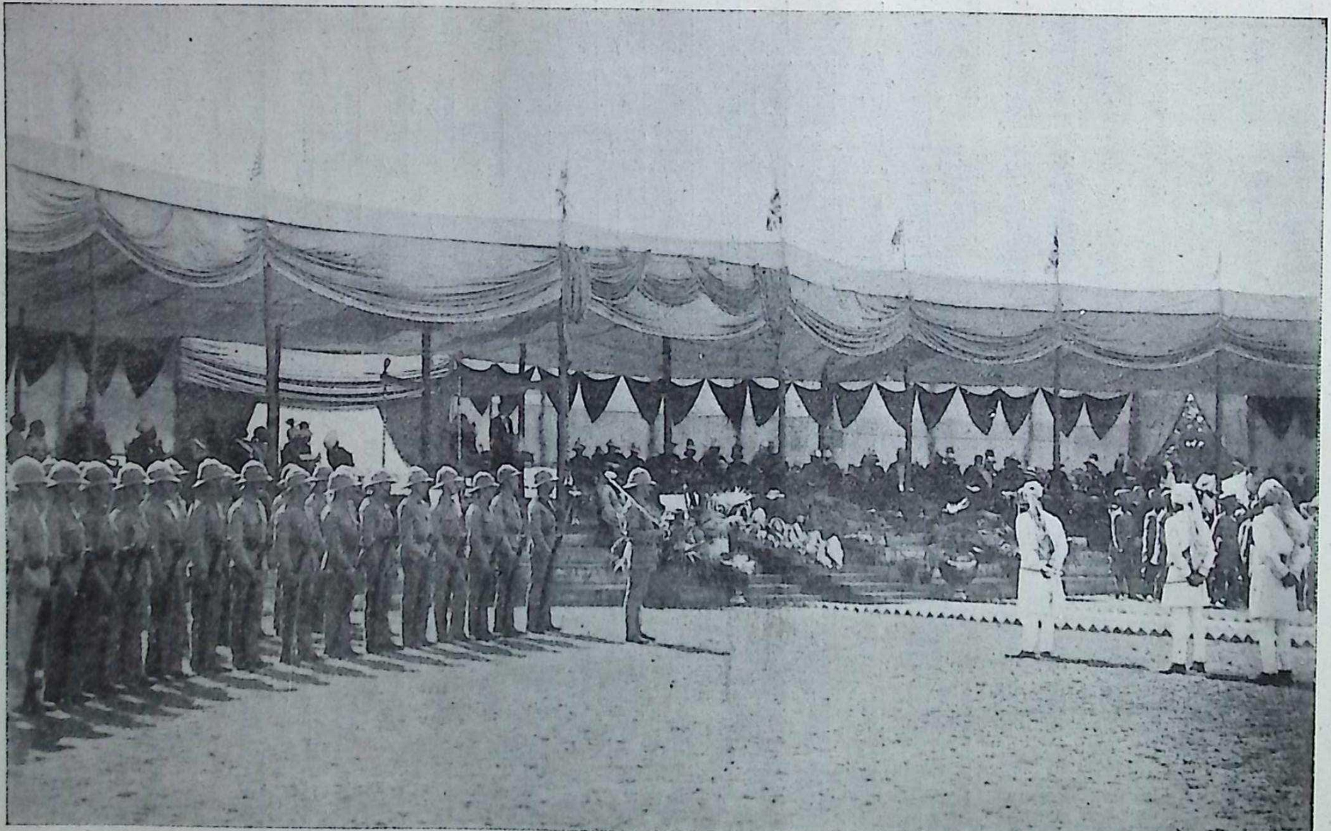

वसन्त पञ्चमी ४ फरवरी सन् १९१६ ई० को काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके शिलान्यासके अवसरपर तत्कालीन वायसराय लौर्ड हार्डिञ्ज अपना भाषण पढ़ रहे हैं।

ॐ

काशीविश्वविद्यालयः ।

माघे शुक्ले प्रतिपदि तिथौ शुक्रवारे शिलाया
न्यासं काश्यां ह्यगनव महीसम्मिते विक्रमाब्दे ।
प्राञ्चं धर्मं परिफलयुतं विश्वविद्यालयस्या-
कार्षीत् सम्राट् प्रतिनिधिवरो लौर्डहार्डिङ् सुकीर्त्तिः ॥

काशी विश्वविद्यालय

यह शिलान्यास श्रीमान् हिज़ एक्सेलैन्सी पेन्शर्स्टके माननीय चार्ल्स बेरन हार्डिञ्ज, पी. सी., जी. सी. बी., जी. एम्. एस्. आई., जी. सी. एम्. जी., जी. एम्. आई. ई., जी. सी. वी. ओ., आई. एस्. ओ., भारतवर्षके गवर्नर-जनरल तथा वायसराय-द्वारा ४ फ़रवरी सन् १९१६ ई० को किया गया ।

उस सङ्गमरमरके नीचे रिक्त स्थानमेँ एक ताँबेका डब्बा है जिसमेँ भारत-सरकार तथा बहुतसी देशी रियासतोँके प्रचलित सिक्के, हिन्दू विश्वविद्यालय सोसाइटीकी रिपोर्ट, उस दिनके लीडर तथा पायोनियरकी एक-एक प्रतियाँ तथा एक ताम्रपत्र रक्खे हैँ । ताम्रपत्रपर यह अङ्कित है:—

धर्मं सनातनं वीक्ष्य कालवेगेन पीड़ितम् ।
भूतले दुर्व्यवस्थं च व्याकुलं मानवं कुलम् ॥
कलेः पञ्चसहस्राब्दे गते भारतभूमिषु ।
आरोपयितु मुद्धारबीजस्य पुनर्नवम् ॥
काशीक्षेत्रे पवित्रेऽत्र गङ्गातीरे महोदया ।
शुभेच्छा पुण्यसम्पन्ना सञ्जाता जगदात्मनः ॥
सङ्गमय्याथ पाश्चात्याः प्राच्याश्चापि प्रजा निजाः ।
तच्छ्रेष्ठानां विधायैकमत्यं सुमति लक्षणम् ॥
विश्वनाथपुरे विश्व जनीनो विश्वभावनः ।
विश्वात्माऽऽकारयद्विश्व विद्यापीठ व्यवस्थितिम् ॥
निमित्तमात्रमत्राभूत् समीहायाः परेशितुः ।
मालवीयो देशभक्तो विप्रो मदनमोहनः ॥
निधाय वाङ्मयं तेजस्तस्मिन्नुद्बोध्य भारतम् ।
प्रह्वीकृत्वापि तच्छास्तानस्मिन्नर्थे व्यधात्प्रभुः ॥
अन्ये चापि निमित्तानि प्राभवन्नन्तरात्मनः ।
बीकानेर नृपो वीरो गङ्गासिंहो महामना ॥
श्रीरामेश्वरसिंहश्च दरभङ्गा - महीपतिः ।
प्रधानः कार्य्यकारिण्याः सभाया मानवर्धनः ॥
सुधीः सुन्दरलालश्च मन्त्री कोषाभिरक्षकः ।
गुरुदासादित्यरामौ वासन्ती वाग्मिनी तथा ॥
तथा रासविहारी च वृद्धा ये देशवत्सलाः ।
दासाश्चान्ये भगवतो यथाशक्यं सिषेविरे ॥
विक्टोरियामहाराज्ञः पौत्र एड्वर्डदेहजे ।
सम्राजि पञ्चमे ज्यार्जे भारतं परिशासति ॥
मेवारकाशिकाश्मीर मयसूराल्वराधिपान् ।
कोटा जयपुरेन्दौर जोधपुरादिभूमिपान् ॥
तथा कर्पूर्थलानाभाग्वालेरादि नरेश्वरान् ।
ईरयित्वा सहायार्थं सज्जनानपरांस्तथा ॥
गर्भस्य सर्वधर्माणां रक्षायै प्रचयाय च ।
प्रसाराय स्वलीलानां स एवैकः परः प्रभुः ॥
लार्डहार्डिङ् सुविख्यातं सम्राट्प्रतिनिधिं वरम् ।
धीरं वीरं प्रजाबन्धुं जनानां हृदयङ्गमम् ॥
विश्वविद्यालयस्यास्य शिलान्यासे न्ययोजयत् ॥
संप्राप्ते नेत्रभूभृद् ग्रहधरणिमिते वैक्रमेऽब्दे च मासे ।
माघे पक्षे च शुक्ले प्रतिपदि च तिथौ वह्नि शुक्रे क्षणेऽच्छे ॥
श्रीकाश्यां श्रीलसम्राट्प्रतिनिधिकरतो यच्छिलान्यास आसीद् ।
यावच्चन्द्रार्कतारं विलसतु स महा विश्वविद्यालयोऽयम् ॥

सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ।
ततः स्नुता ज्ञानसुधा निपीयताम् ॥
सदा मतिः शुभचरिते विधीयताम् ।
रतिः परा परमगुरौ प्रचीयताम् ॥

(सनातन-धर्मको कालके वेगसे पीड़ित तथा सम्पूर्ण भूमण्डलके प्राणियोँको दुरवस्थ और व्याकुल देखकर कलियुगके पाँच हज़ार वर्ष बीतनेपर भारत-भूमिमेँ काशी-क्षेत्रमेँ जाह्नवीके पवित्र तटपर इस सनातन-धर्मके बीजका पुनः नवीन रूपसे आरोपण करनेके लिये जगदीश्वरकी शुभ पुण्य इच्छा उत्पन्न हुई। अपनी प्राच्य और पाश्चात्य पूजाको एक सूत्र-बद्ध करके और विशिष्ट विद्वानोँका ऐक्यमत कर विश्व-भावन, विश्वस्वरूप, विश्व-स्रष्टाने विश्वनाथकी नगरीमेँ विश्वविद्यालयके संस्थापनकी व्यवस्था की। देशभक्त

विप्र मदनमोहन मालवीय परमेश्वरकी इस इच्छाके पूर्ण करनेके निमित्त-मात्र बने। भारतको जगाकर और उसमेँ वाङ्मय तेजका विधान कर भारतके शासकोँको नम्र बनाकर इस कार्य्यको सफल करनेमेँ उन्हेँ प्रवृत्त किया। भगवान्‌की इस इच्छाकी पूर्त्तिमेँ और भी कई महापुरुष निमित्त बने। बीकानेर नरेश-वीर महामना महाराज श्री गङ्गासिंह बहादुर, कार्य्य-कारिणी सभाके सम्मान-वर्द्धक सभापति दरभङ्गा नरेश श्री रामेश्वरसिंहजी, मन्त्री एवं कोषाध्यक्ष डाक्टर श्री सुन्दरलालजी, सर श्रीगुरुदास बैनर्जी, श्री आदित्य-राम भट्टाचार्य्य-जी, विदुषी श्रीमती एनी बेसेण्ट, डाक्टर रासबिहारी घोष तथा अन्य विद्या-वयोवृद्ध देशप्रेमी भगवत्-दासोँने यथाशक्ति इसकी सेवा की। महारानी विक्टोरियाके पौत्र महाराज एडवर्ड के पुत्र सम्राट् पञ्चम जार्ज के शासन-कालमेँ मेवाड़, काशी, काश्मीर, मैसूर, अलवर, कोटा, जयपुर, इन्दौर, जोधपुर, कपूर्थला, नाभा, ग्वालियर आदि राज्योँके नृपतियोँको तथा अन्य धनी-मानी सज्जनोँको इसकी सहायताके लिये प्रेरणा कर सब धर्मोँके जन्मदाता सनातन-धर्मकी रक्षा एवं उन्नतिके लिये तथा अपनी लीलाके विस्तारके निमित्त उन्हीँ परात्पर प्रभुने सम्राट्‌के प्रतिनिधि (वायसराय) धीर-वीर प्रजाबन्धु श्री लौर्ड हार्डिञ्जके द्वारा इस विश्वविद्यालयका शिलान्यास कराया।

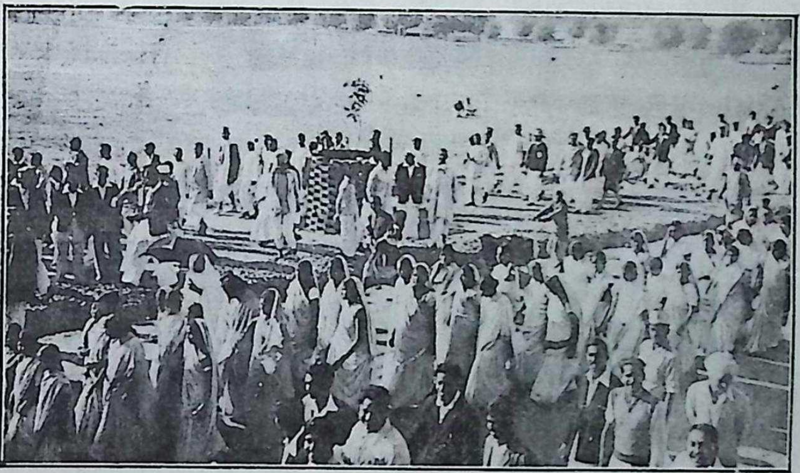

वसन्त पञ्चमीके दिन काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका परिवार अपनी मातृसंस्थाका जन्मोत्सव मनानेके लिये निकल पड़ता है।

श्री विक्रम सम्वत् १९७३ मेँ माघ शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवारके दिन शुभ मुहूर्त्तमेँ श्री काशी नगरीमेँ सम्राट्‌के प्रतिनिधि (वायसराय) के द्वारा जिस विश्वविद्यालयका शिलान्यास किया गया वह सूर्य्य-चन्द्र स्थिति तक सुशोभित रहे।

इसे सङ्क्षेपमेँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका इतिहास कहना चाहिए। अब भी वसन्त पञ्चमीके दिन वसन्ती रङ्गमेँ रङ्गकर इसका जन्मदिन बड़े धूमधामसे मनाया जाता है। अध्यापक, विद्यार्थी, स्त्रियाँ और बच्चे सब जुलूस निकालते हैँ, भजन गाते हैँ और अपनी मातृ-संस्थाका जन्मोत्सव मनाते हैँ :—

हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना हो गई और सन् १९१८ ई० मेँ हिन्दू विश्वविद्यालयकी पहली परीक्षा हुई।

इसीके बादकी घटना है। देशमेँ असहयोग आन्दोलनकी धूम थी। चारोँ तरफ़ धर-पकड़ जारी थी। इन्हीँ दिनोँ प्रिन्स औफ़ वेल्स (पूर्व सम्राट् एडवर्ड अष्टम और अब डयूक औफ़ विण्डसर) उस समय भारतवर्षमेँ सैर कर रहे थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके अधिकारियोँने उन्हेँ 'आचार्य्य' (डाक्टर) बनानेकी ठानी। आख़िर मालवीयजीकी बात तो ठहरी। चारोँ ओर लोगोँने मालवीयजीकी निन्दा की, बुरा-भला कहा, व्यङ्ग चित्र बनाए, पर मालवीयजी अटल रहे। १३ दिसम्बर सन् १९२१ ई० को दिनको ठीक ग्यारह बजे राजकुमार पधारे। बड़ी सजधज थी, बहुतसे लोग आए हुए थे। महाराजा

मैसूर चान्सलरने उनका स्वागत किया, जिसका राजकुमारने बड़े सुन्दर शब्दोंमें उत्तर दिया। राजकुमारने जब सुनहरी धारीका लाल चोग़ा पहना और रेशमी पगड़ी बाँधी तो बड़ी देरतक करतल-ध्वनि हुई। मालवीयजीके हाथों राजकुमार भी स्नातक बन गए।

इसी अवसरपर हिन्दू युनिवर्सिटी अपने मूल स्थान कमच्छासे उठकर नगवाके नए भवनोंमें चली आई। यह स्थान पहले महाराजा बनारसका था जिन्होंने अपने ज़मीन्दारीका हक़ युनिवर्सिटीको सौंप दिया और जिसका काश्तकारीका हक़ छः लाख रुपयेमें ख़रीदा गया। अर्द्ध गोलेमें युनिवर्सिटीका निर्माण हुआ और धनुषाकार समानान्तर सड़कोंके किनारे बड़े क्रमसे विद्यालय, छात्रावास और अध्यापकवास स्थानोंके भवन बने हैं। आज यह विश्वविद्यालय बीस बरसका हो गया है। इसका परिवार बढ़ता चला जा रहा है। यहाँ क़रीब साढ़े तीन हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं और अढ़ाई सौ अध्यापक पढ़ा रहे हैं। एक नया ही नगर है। अपनी बिजली, अपना पानी, अपना नगर-प्रबन्ध—जिन्हें रोम, पैरिस, लन्दन और बर्लिनका वैभव चकित न कर सका होगा उन्हें यह नया नगर अवश्य अच्छा लगेगा।

अनेकों कर्मवीरोंके हृदयकी भावनाका फल।
हमारे मालवीका प्राण हिन्दू विश्वविद्यालय॥

हिन्दू विश्वविद्यालयकी कथा कहनेके लिये एक युग चाहिए और पढ़नेके लिये अमित सन्तोष। न हमारे पास इतना समय और शक्ति है और न आपको इतना धैर्य्य। पर यही समझ लीजिए कि यह एक दीन ब्राह्मणकी निरन्तर कल्पनाकी सजीव सृष्टि है। कल जो स्वप्न था, वह आज आखोंके आगे है।

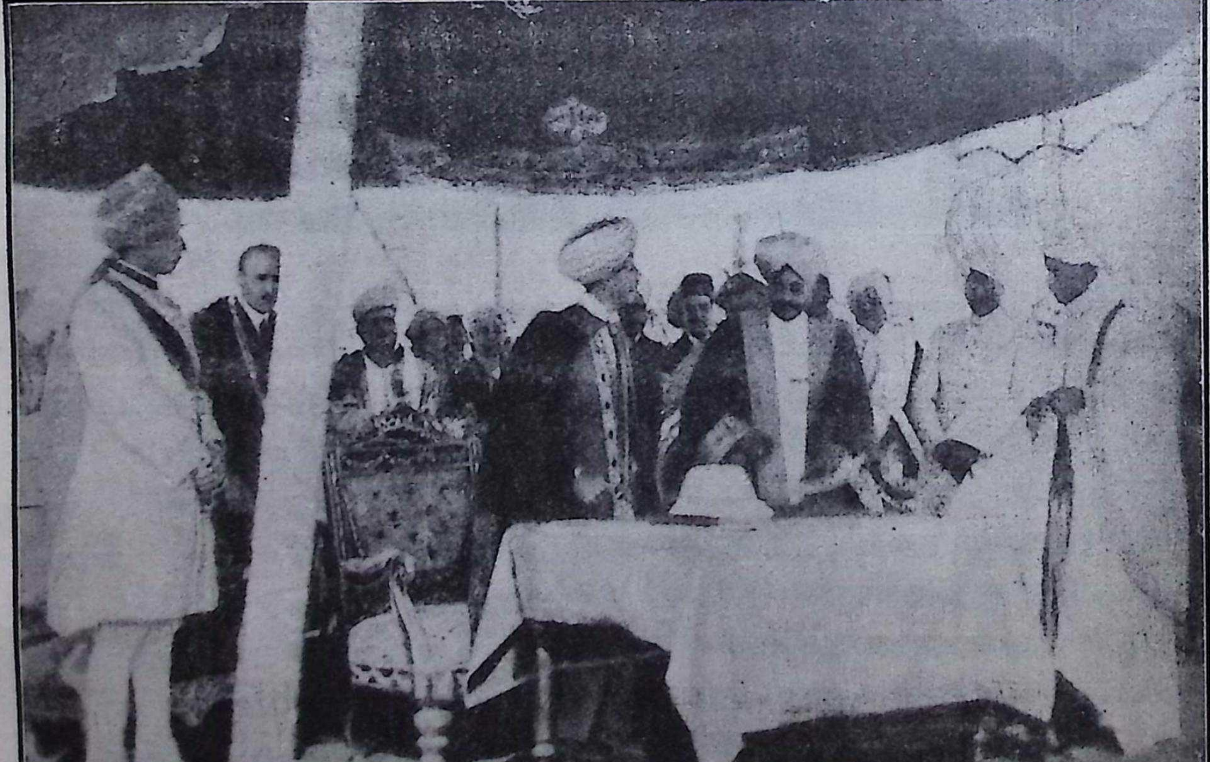

प्रिन्स ऑफ़ वेल्सको उपाधि दी जा रही है।

हिन्दू विश्वविद्यालयके भीतर

आप कहेँगे कि इतना गुन बखान गए, ज़मीन आसमानके कुलाबे मिला दिए, पर यह न बतलाया कि आख़िर काशी विश्वविद्यालय है क्या चीज़। आप समझते होँगे कि एक भवन बना होगा। दस बजे घण्टी बजती होगी, लड़के और प्रोफ़ेसर आते होँगे, पढ़ते होँगे, यही न? मैँ कहने लगूँगा तो आप मानेँगे नहीँ। आइए मेरे साथ चले चलिए, पर साथ-ही-साथ जेबमेँ रुपयोँकी थैली भी लेते चलिएगा, नहीँ तो आपको वहाँ जाकर पछताना पड़ेगा कि अपनी थैली क्योँ भूल आए। उस तीर्थका माहात्म्य ही यह है कि न पण्डा है न पुजारी, पर जो दर्शनके लिये आता है वह अपने आप अपनी जेब ख़ाली कर जाता है। डरिए मत, वहाँ जेब-कतरे नहीँ रहते।

हाँ, तो आप काशीमेँ गङ्गास्नान करके भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन कर चुके न? अब मेरे साथ गोदौलियासे इसी इक्केपर बैठ लीजिए। अब काशी बहुत बदल गई है, पर ये इक्के अभी नहीँ बदले। जो तपस्या न भी करना चाहता हो उसे भी तपस्या करा देते हैँ। अब सड़क भी अच्छी हो गई है। चले चलिए, अभी तो हरिश्चन्द्र घाट पीछे छूटा है। यह देखिए! अस्सी घाट, यहाँपर तुलसी घाट है और उनका मन्दिर है। लौटती बार अवश्य देखिएगा। जिस हिन्दूने काशीमेँ आकर गोस्वामी तुलसीदासजीका यह स्थान नहीँ देखा, उनकी चरणपादुकाके दर्शन न किए, उसका चोटी रखना व्यर्थ है। हैँ! आप चौँक क्योँ पड़े? हाँ, ठीक है, यह पुल अभी बना है। आप जब पहले आए थे तब नहीँ था। इसके खम्भोँपर देख रहे हैँ। अंग्रेज़ीमेँ लिखा है—'बी० एच० यू०' जिसका अर्थ है बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी। वहाँके वर्त्तमान प्रोवाइसचान्सलरके उत्साह और प्रेरणासे ही बना है। इस पुलके बननेसे बड़ा चक्कर बच गया है। यह लीजिए, आप आ गए। सामने यह देखते हैँ फाटक। यहाँसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रारम्भ होता है।

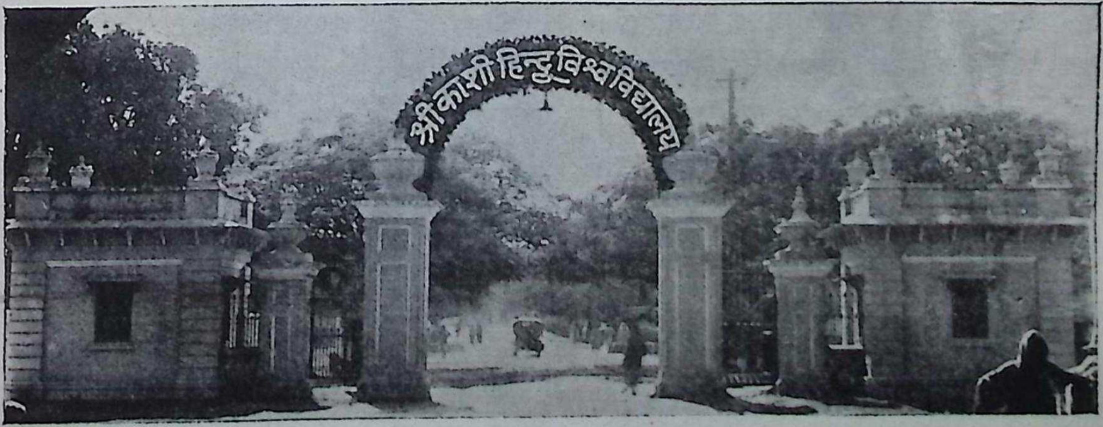

इक्केपरसे मत उतरिए। तेरह सौ एकड़ ज़मीन और बीस मीलकी सड़कोंपर कहाँतक पैदल चलिएगा? यह देखिए बाईं ओर दीवार दिखाई दे रही है। इसके पीछे जो भवन है इसीमें महिला विद्यालय और महिला छात्रावास है। इस बीसवीं सदीमें महिला विद्यालयके चारों ओर दीवार देखकर आपको कम अचरज तो न होता होगा पर क्या किया जाय, अभीतक हम लोगोंने अपनी बहनोंके शील और उनकी मर्य्यादाका आदर करना नहीं सीखा है। जबतक हमारे नौजवान लक्ष्मण नहीं बन जाते तबतक ईंटोंकी दीवार ही उनके शीलकी रक्षा करेगी। आजकलकी शिक्षा ही ऐसी है, वातावरण ही ऐसा है। फ़िल्म कम्पनीके राम और सीताके सामने वाल्मीकि और तुलसीके राम और सीताको पूछता ही कौन है? बाहरसे देख रहे हैं, सामने फुव्वारा है, दोनों ओर बाग़ीचा है, ठण्ढी अमराई है, पीछे खेलनेके मैदान हैं। आप बाहर ही रहिए, भीतर जाना ठीक नहीं है, लड़कियाँ इधर-उधर बैठी पढ़ रही होंगी। अपनी धर्मपत्नीजीको भेज दीजिए, भीतरसे देख आयँगी।

क्यों देखा न आपने? महिला छात्रावासके भीतर कितना मनोरम उद्यान है, उसमें नीचे छात्रावास है, ऊपर विद्यालय है। आप सितार सुन रहे हैं न? यहाँ लड़कियोंको सङ्गीत भी सिखाया जाता है। भीतर ही एक बड़ा कमरा है जिसमें वे अपनी सभाएँ करती हैं, उत्सव करती हैं और नाटक करती हैं। केवल स्त्रियाँ ही उसमें जा सकती हैं। आजकल क़रीब सौ लड़कियाँ होंगी जो एम्० ए० तक पढ़ती है। एम्० ए० पढ़नेवाली और विज्ञान पढ़नेवाली लड़कियोंको अभीतक सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज़में जाना पड़ता है। रुपया मिले तो उनकी पढ़ाईका भी प्रबन्ध यहीं हो जाय। यह भवन दानवीर श्रीमाखनजी खटाऊने बनवाया है।

इधर दाईं ओर जँगलके भीतर आयुर्वैदिक कौलेज़ और सर सुन्दरलाल चिकित्सालय है। इसमें आयुर्वेदके साथ-साथ पाश्चात्य शल्य शास्त्र भी पढ़ाया जाता है। इसमें छः वर्षका पाठ्यक्रम है। आयुर्वेद और अंग्रेज़ी दोनों तरहकी चिकित्साका प्रबन्ध है। पीछेकी ओर चलिए। यही आतुरालय है। देखिए कितनी सफ़ाईसे रोगियोंकी सेवा की जा रही है। इसमें सौ रोगियोंके रखनेकी व्यवस्था है। इधर आँख, नाक, कान और गलेकी विशेष चिकित्साका भी प्रबन्ध है। ऊपर चलिए, यह देखिए, यहाँ कीटाणुओंकी परीक्षा हो रही है।

उतर चलिए। यह देखिए, सामने कैसी सुन्दर आयुर्वैदिक वाटिका है। इसके भीतर चलिए, कोई हर्ज नहीं है। यहाँ अनेक प्रकारकी आयुर्वैदिक जड़ी-बूटियाँ, पेड़-पौदे, लताएँ उगाई गई हैं। वाटिकाके पूरब-दक्खिनके कोनेमें एक भवन देख रहे हैं न? यहाँ मुर्दे रक्खे और चीरे जाते हैं और विद्यार्थियोंको शरीर-शास्त्रका प्रयोगात्मक ज्ञान कराया जाता है। सड़कके उस पार वनस्पति वाटिका है। इसमें अनेक प्रकारके वनस्पति प्रयोगोंके लिये पेड़-पौधे उगाए जाते हैं। देखिए, है न कितना सुन्दर? बहुत देर मत लगाइए। अभी बहुत दूर चलना है।

देखिए, यही सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज है। कितना विशाल भवन है। इसीमें सुबह संस्कृत कौलेज़ और वकालतका कौलेज़ और दिनमें सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज़ लगता है। इसीमें प्रो-वाइसचान्सलर और युनिवर्सिटीका दफ़्तर है। ऊपर चले चलिए। यह

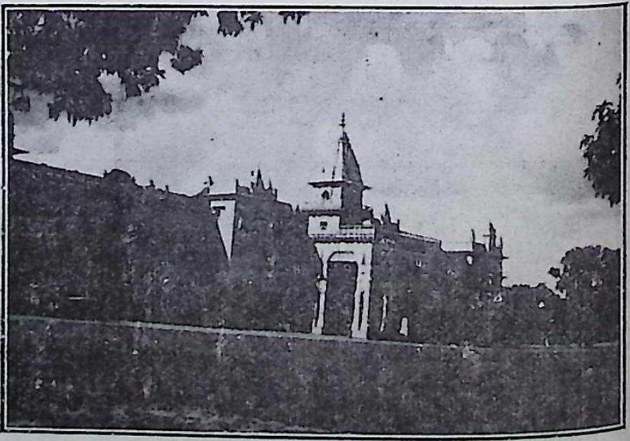

देखिए, कितना बड़ा भव्य-भवन है। इसमेँ दो हज़ार विद्यार्थी समा सकते हैँ। नाटक भी यहीँ होते हैँ, रविवारको गीताप्रवचन और एकादशीकी कथा भी यहीँ होती है। हाँ, इसे ही आर्ट्‌स्‌ कौलेज्‌ हौल कहते हैँ। इक्केवाला इसीको 'आठ कालिज' कहता था।

और ऊपर चढ़ चलिए। यहाँसे पूरा विश्वविद्यालय दिखाई देगा। ऊपर जो आप मन्दिर देखते हैँ वह केवल हिन्दूपनका चिह्न है। उसमेँ मूर्त्ति नहीँ है।

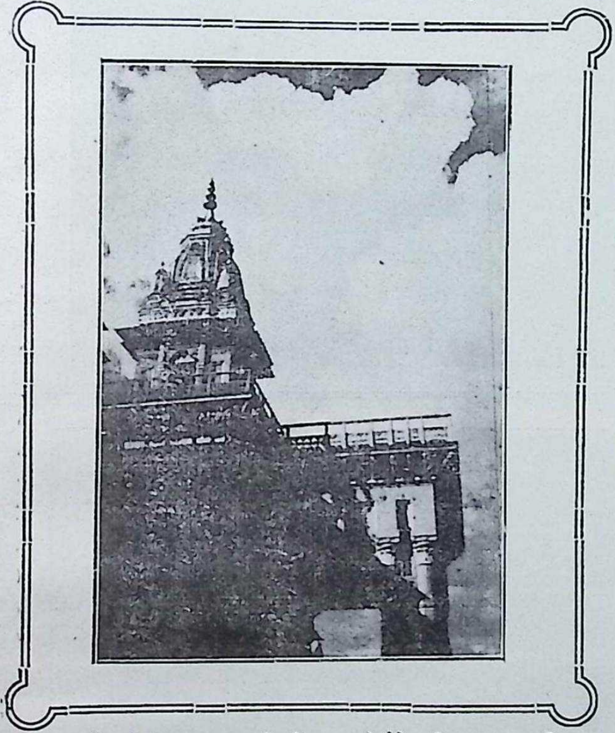

सामने देखिए, सभी विद्यालयोँके शिरपर मन्दिर, कलश और हिन्दुस्थानी कङ्गूरे दिखाई पड़ रहे हैँ।

इधरसे धूप पड़ रही है और पीछे बादल उठे हैँ उस समय ये भवन बड़े मनोहर लगते हैँ।

इसके बराबर यह विज्ञानका विद्यालय है। पहले यह विद्यालय भी सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज्‌के अन्तर्गत ही था, पर इस वर्षसे अलग हो गया है।

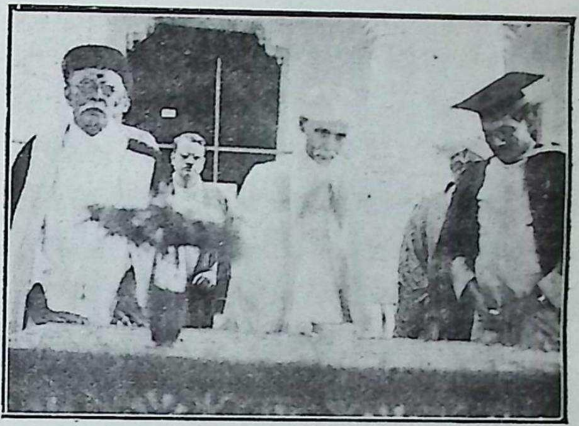

विज्ञान कौलेज्‌के उद्घाटनके समय। बाईं ओरसे—आचार्य्य ध्रुव, डा० वर्मा, पूज्य मालवीयजी और विज्ञान विद्यालयके स्वर्गवासी प्रिन्सिपल श्री कृष्णाकुमार माथुर।

यह भौतिक विज्ञान-विभागका भवन है, इसे फ़िज़िकल लैबोरेटरी कहते हैँ। ऊपर चलिए, आपके मनकी चीज़ दिखाते हैँ। यह देखिए, यह जीव-शास्त्र-विभाग है। इसमेँ अनेक प्रकारके जीवोँके ढाँचे, मृत शरीर या लकड़ी और मट्टीके नमूने दिखाई देँगे। यह 'जन्तु-प्रदर्शनी' है। देखिए, कहाँ-कहाँके जानवर यहाँ इकट्ठे किए गए हैँ।

ऊपरसे ही दूसरी ओर चलिए। इधर वनस्पति-शास्त्रकी प्रयोगशाला है। अनेक पेड़-पौधे, फल, जड़, काई, घास आदिके विषयमेँ खोज की जाती है। इधर वनस्पतियोँ की प्रदर्शनी है। आप यह पौधे देखते हैँ। यह मक्खियोँको मारकर खा जाता है। भगवान्‌की माया तो देखिए। कहिए, अब तो आपने देखा।

उधर अब दूसरे भवनमेँ चलिए। इसे रसायन विज्ञान-प्रयोगशाला (कैमिकल लैबोरेटरी) कहते हैँ। यह नीचे देखिए, धातु और खनिज-विभाग है।

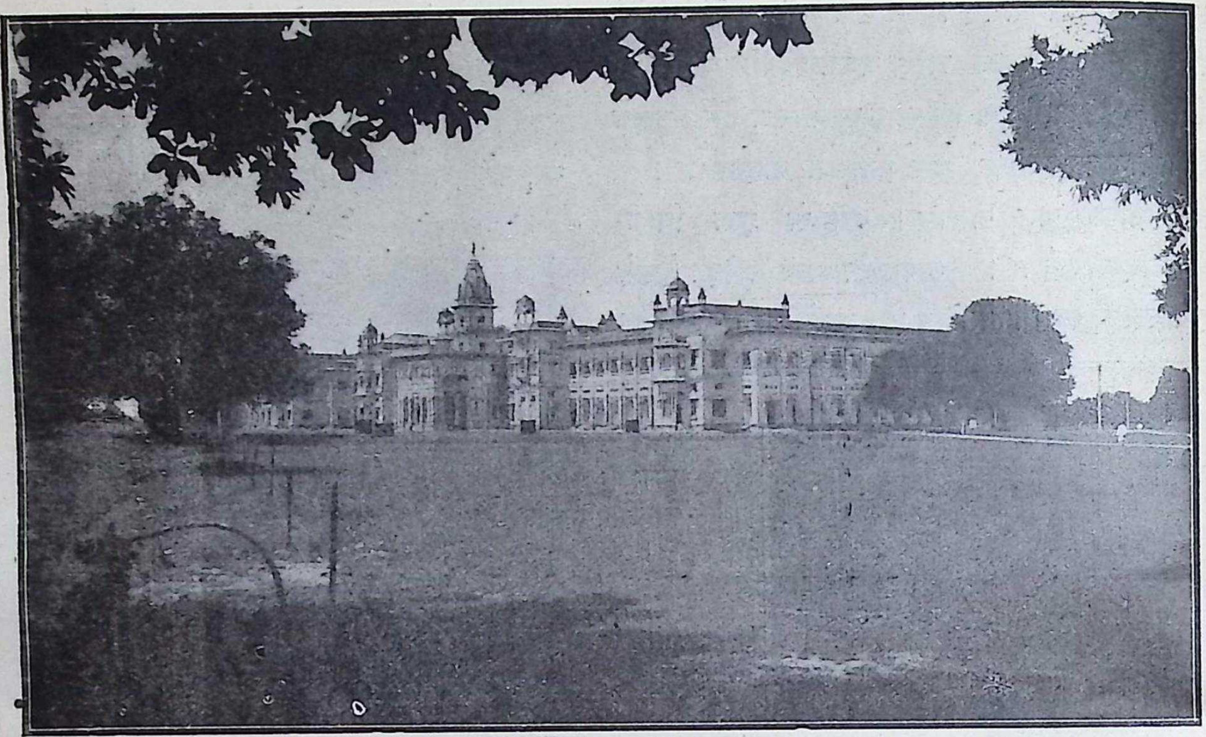

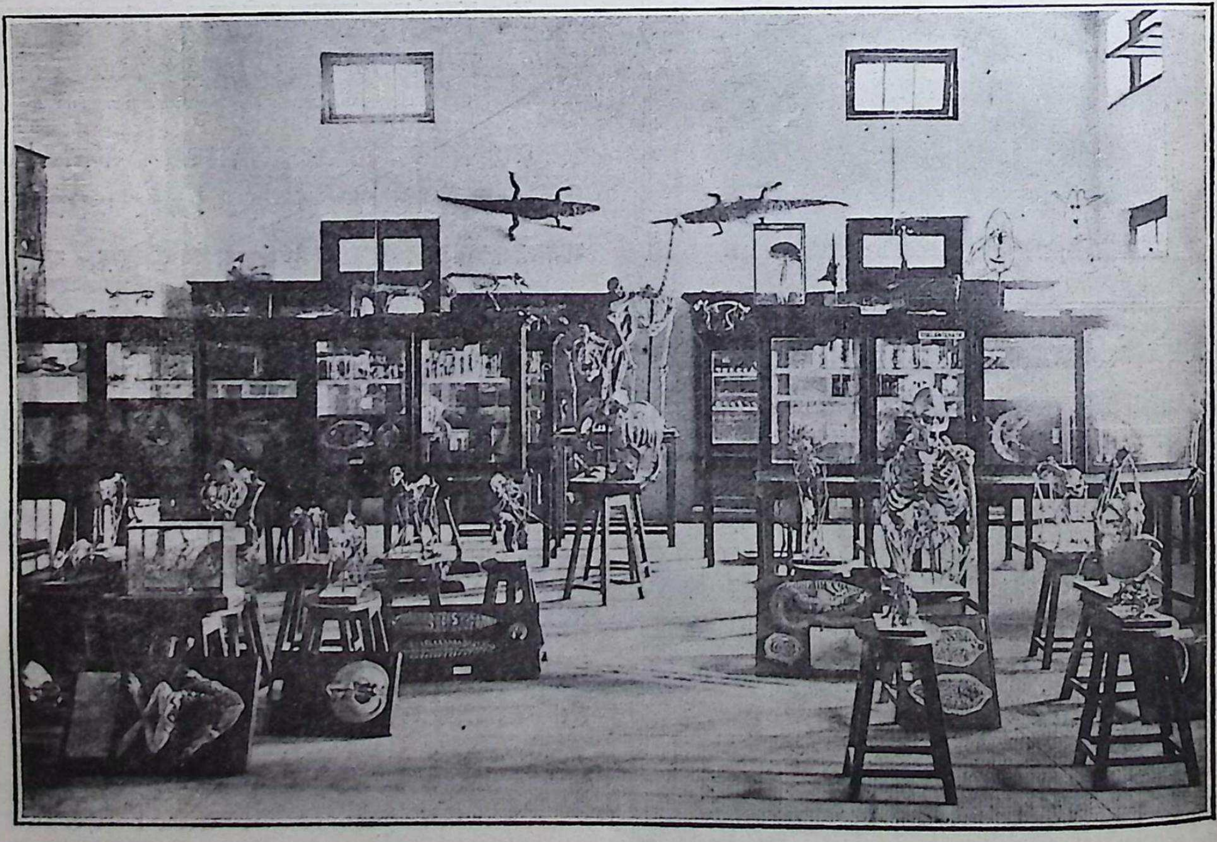

जन्तु-प्रदर्शिनी।

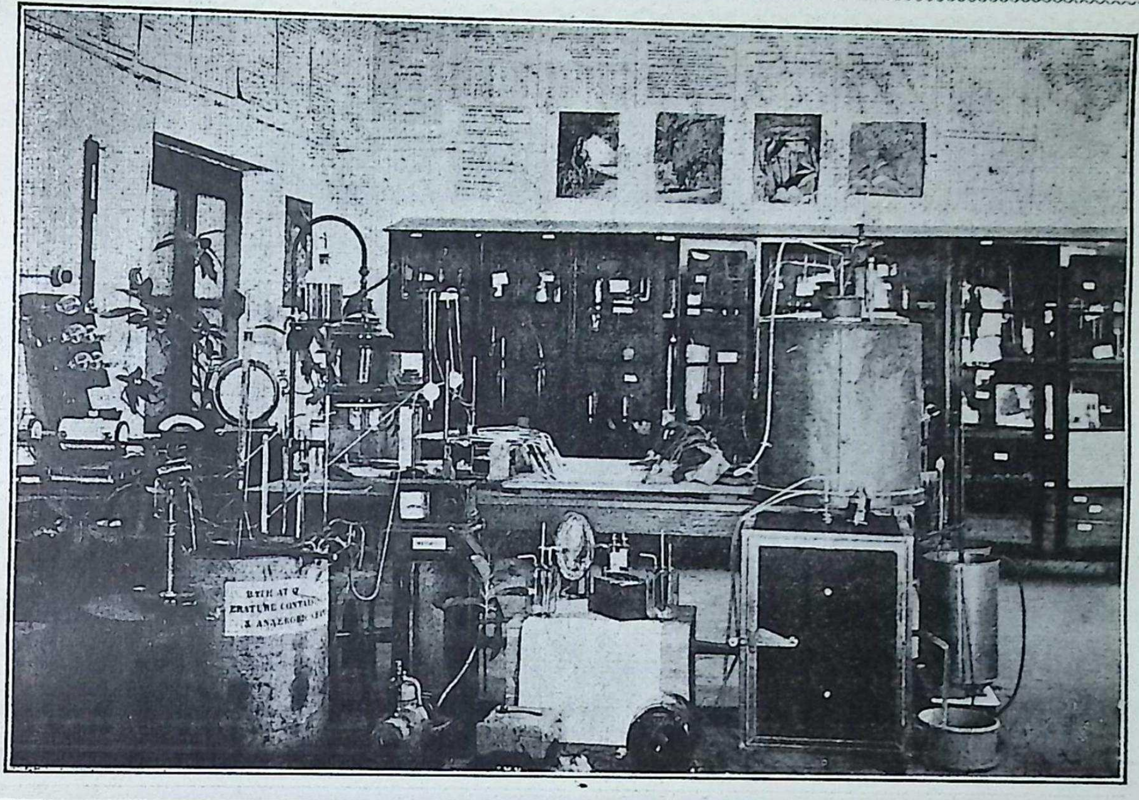
BATH AT C
TEMPERATURE CONSTANT
& ANAEROBIC

वनस्पति प्रयोगशाला

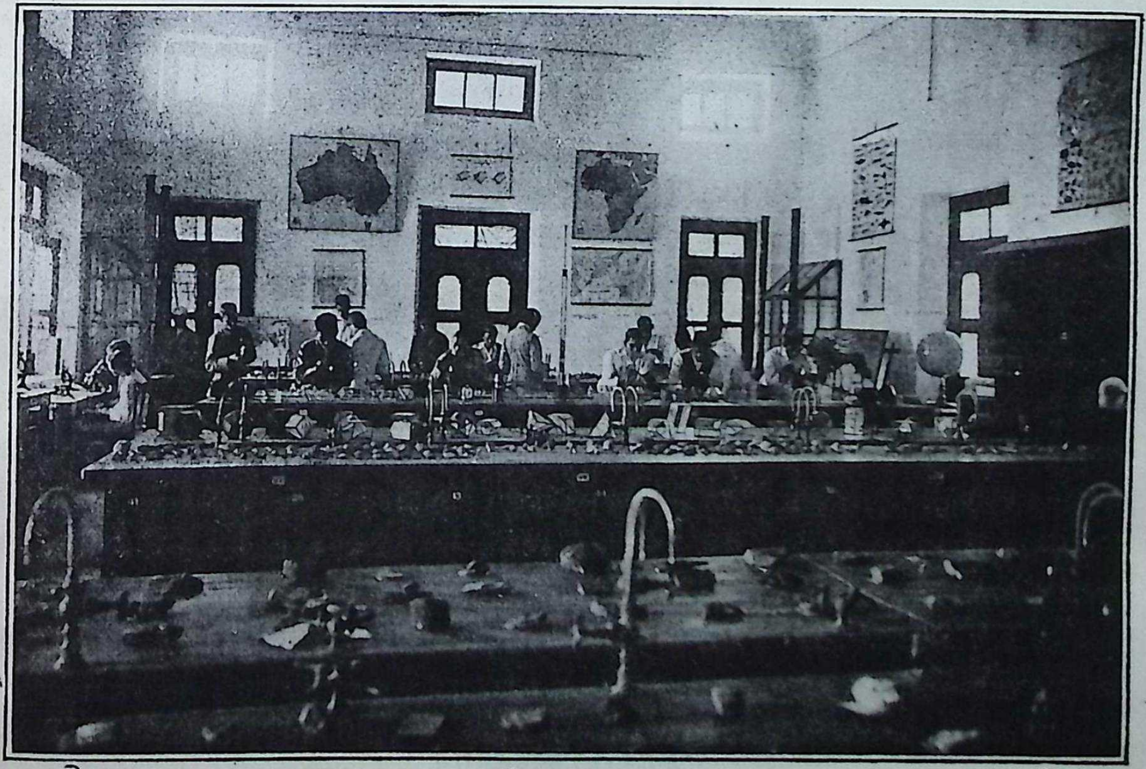

भूगर्भ प्रयोगशाला

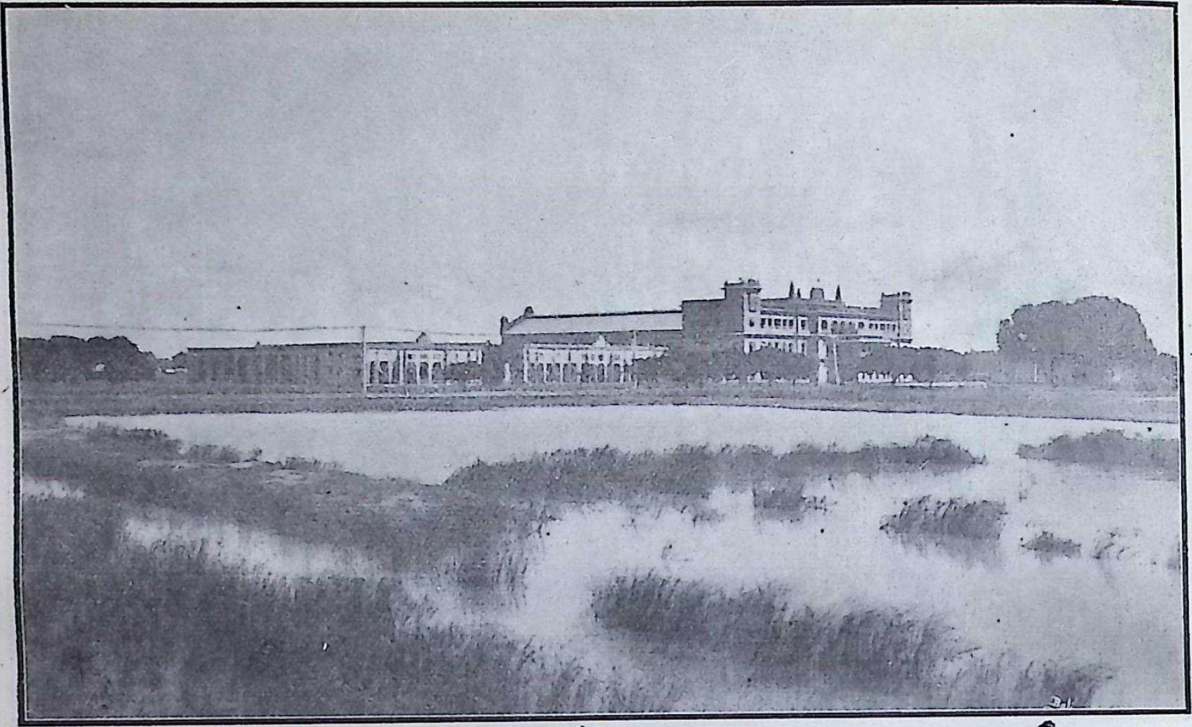

इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज्।

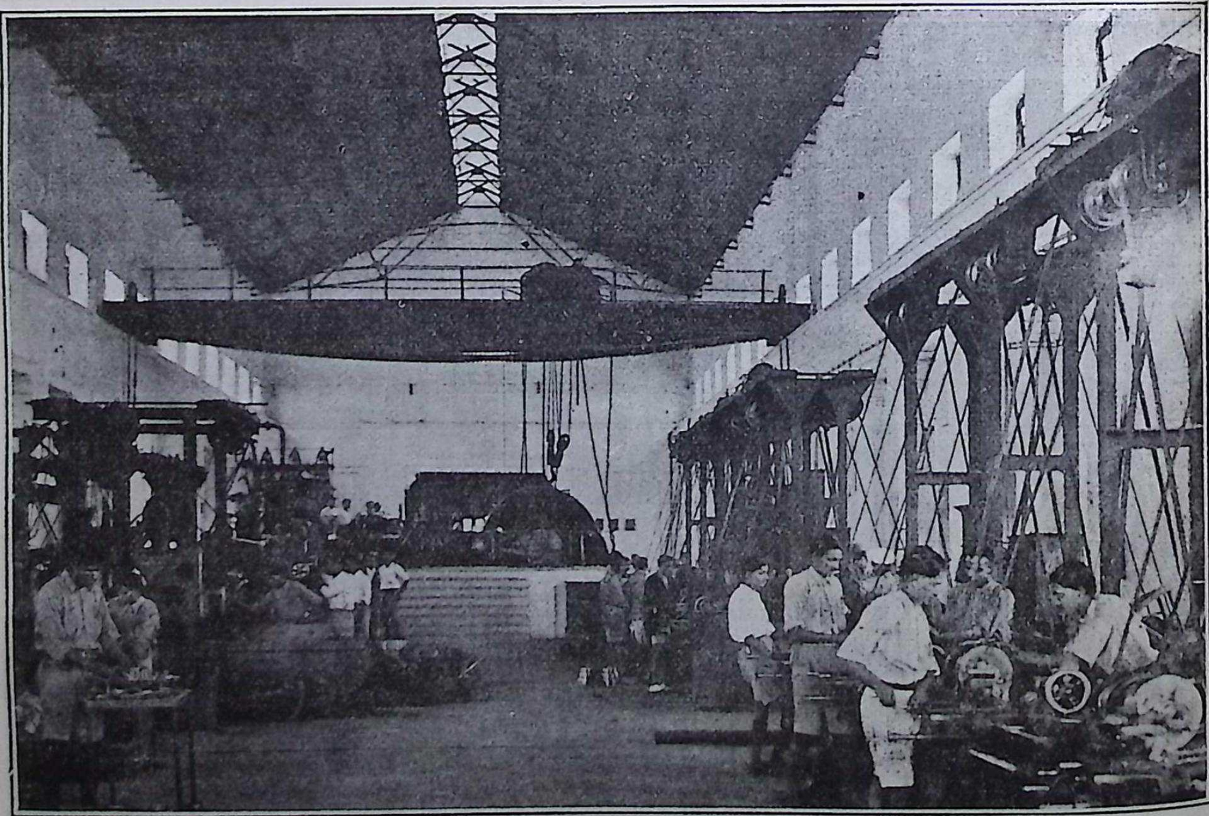

इञ्जिनीयरिङ्ग प्रयोगशाला।

धातु और खनिज-विभाग

इसमेँ धातु और खनिजशास्त्र पढ़ाया जाता है। ये सब जो आप चर्ख़ियाँ और मशीनेँ देख रहे हैँ ये तो खानोँमेँ किस प्रकार काम होता है उसे दिखलानेके नमूने हैँ। तेज़ीसे चलिए, नाक फटी जाती होगी। यहाँ लड़के अनेक रसायनोँकी परीक्षा कर रहे हैँ। सचमुच बड़ी बदबू है। यह लीजिए, यह हमारे यहाँका औद्योगिक रसायन-विभाग है। यहाँ तेल, साबुन, इत्र, रोशनाई, पैालिश, क्रीम आदि नित्य व्यवहारकी चीज़ोँको बनाना सिखाया भी जाता है और उन्हेँ तैयार भी किया जाता है। आप स्वयं देख लीजिए, साबुन किस तरह बनता है। आपको जो चीज़ पसन्द आवे ले लीजिए। आगे चलिए। ये देखिए, कैसे सुन्दर खिलौने हैँ। हाँ, दाम ज़रूर ज़्यादा हैँ। बहुत बार समझाया कि दाम कम कर दो तो खूब बिक्री हो पर ये लोग मानते नहीँ हैँ। हम मानते हैँ कि इन्हेँ सचमुच यदि प्रचार करना हो तो क़ीमत कम कर देनी चाहिए। मैँ फिर इस बारेमेँ इन लोगोँसे कहूँगा। ऊपर आपको भूगर्भ प्रयोगशाला मिलेगी। न जाने कहाँ-कहाँसे कङ्कड़, पत्थर, कौड़ी, घोँघा बटोर लाए हैँ और उनकी परीक्षा किया करते हैँ।

क्या थक गए? अभी तो तिहाई भी नहीँ पहुँचे हैँ।

धनुषाकार सड़कोँके किनारे कितने मनोहर भवन दिखाई पड़ रहे हैँ।

यह बग़लमेँ गायकवाड़ पुस्तकालय है, कितना विशाल भवन है। आपने इतना बड़ा पुस्तकालय किसी विश्वविद्यालयमेँ नहीँ देखा होगा। इसकी चित्रशाला देखिए। कितने अनोखे, सुन्दर और पुराने चित्र इकट्ठा किए हैँ। एक-से-एक नए हैँ।

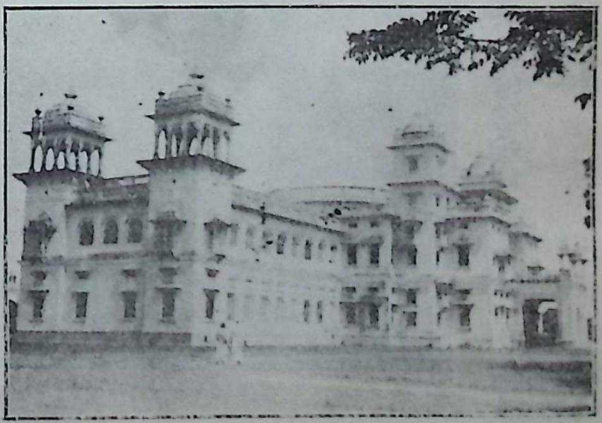

गायकवाड़ पुस्तकालय।

कितने क़ायदेसे पुस्तकें लगी हैं, आलमारियाँ रक्खी हैं। कुछ ठिकाना है पुस्तकोंका। फिर भी अभी पुस्तकें कम हैं। अभी और पुस्तकोंकी ज़रूरत है। सब भगवान् देगा ही।

यह सामने कृषि अनुसन्धान विद्यालय है। इसमें कृषिपर खोज होती है। देखिए कितनी बड़ी ईख उगाई है। और यह टमाटर देखिए, कितना बड़ा है। हमारे देशमें अभी ऐसे लोगोंकी बड़ी ज़रूरत है जो किसानोंको जाकर ऐसी सलाह दें कि जिससे उनके खेतमें भी भारी फ़सल हो।

आप जो घरड़-घरड़ आवाज़ सुन रहे हैं वह सामनेके भवनसे आ रही है। वही भारतका अद्वितीय विद्यालय है। यही यहाँका प्रसिद्ध इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज् है।

यहाँ मशीनोंका और बिजलीका काम सिखाया जाता है, साथ ही लकड़ी और लोहेका काम भी सिखाया जाता है। ये सब लड़के, जिन्हें आप हथौड़ा चलाते, रन्दा करते और मशीन चलाते देखते हैं, सब भारत भरके भले घरोंके लड़के हैं जो यहाँ इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज्में शिक्षा पा रहे हैं।

वह सामने जो ऊँचेपर अञ्जन चल रहा है उसीसे सारे विश्वविद्यालयमें बिजलीकी रोशनी पहुँचती है। उसके पीछे जो बड़े-बड़े काले हाथी से पड़े दिखाई देते हैं ये डायनमो मैसूरसे लाए गए थे कि सारे काशी शहरको बिजली पहुँचावें जिससे विश्वविद्यालयको कुछ पैसा भी हाथ लगे। पर सुनते हैं कि सरकारको यह दूकानदारी पसन्द न आई। ये डायनमो हर साल वेसलीन चाटते हैं और पड़े रहते हैं। देखें कब इनका भाग चेतता है। इधर देखिए, सब बिजलीके पङ्खे और कल-पुर्ज़े यहींके बने हुए हैं और ये लोहेकी जालियाँ भी यहींकी ढली हैं। यह विद्यालय यहाँकी नाक समझिए।

उधर सामने आप देखते हैं, वहाँ काँचका काम शुरू होनेवाला है। शायद अगले सालसे गिलास, क़लमदान, फूलदान, इत्रदान, तश्तरियाँ और चूड़ियाँ आपको मिलने लगें। और आगे जो भवन आप

इञ्जिनीयरिङ्ग छात्रावास

देखते हैं वह हिन्दू युनिवर्सिटीका छापाख़ाना है। इधर पीछे गोशाला फ़ार्म है। इसमें बड़े पैमानेपर खेती होती है। यहाँकी गाजरें, टमाटर, सँगरे और गन्ने अपनी मोटाई और लम्बाईमें कई नुमायशोंमें इनाम पा चुके हैं।

अब वापस चलिए। देर हो चली है, पीछेकी सड़कसे चलिए। यह छात्रावासोंकी सड़क है। यह सफ़ेद-सफ़ेद जो दो भवन दिखाई पड़ते हैं ये राजपूताना और लिमडी छात्रालय हैं। इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेजके छात्र इसीमें रहते हैं, इसके आगे छात्रालय है।

इधर बाईं ओर तो ये छात्रालय आप देख रहे हैं उधर दाईं ओर प्रसिद्ध विश्वनाथजीका मन्दिर बन रहा है। इसके चारों ओर बीस फुट चौड़ी नहर रहेगी। बन जाने दीजिए फिर इसकी रौनक़ देखिएगा। यह सचमुच दुःखकी बात है कि हिन्दुओंने अभी मन्दिरकी उपयोगिता नहीं समझी। जब मन्दिरका प्रस्ताव हुआ तो बहुत लोगोंने फ़बतियाँ कसीं कि 'मालवीयजी ताजमहल बनवा रहे हैं'। बहुतसे लोगोंका कहना है कि इतना रुपया मालवीयजी इसमें क्यों लगा रहे हैं, पर बात यह है कि प्रत्येक वस्तुका एक महत्त्व होता है, वह महत्त्व ही हमारे भावोंको भी ऊपर उठा देता है। लोगोंने बहुतसे गुरुद्वारे देखे होंगे पर जो भाव अमृतसरके 'स्वर्ण मन्दिर' में आता है या उस तालाबके अठसट्टि घाटपर पैदा होता है, वह और कहीं नहीं होता। यह तो विश्वविद्यालयका हृदय है। शरीरके अनुरूप ही उसका हृदय भी विशाल होना चाहिए। इसी लिये विश्वविद्यालयके बीच ही में इसकी स्थापना भी हो रही है। यह मन्दिर भारतकी हिन्दू जातिका केन्द्रस्थान होगा। उसे उतना ही बड़ा, उतना ही विशाल होना

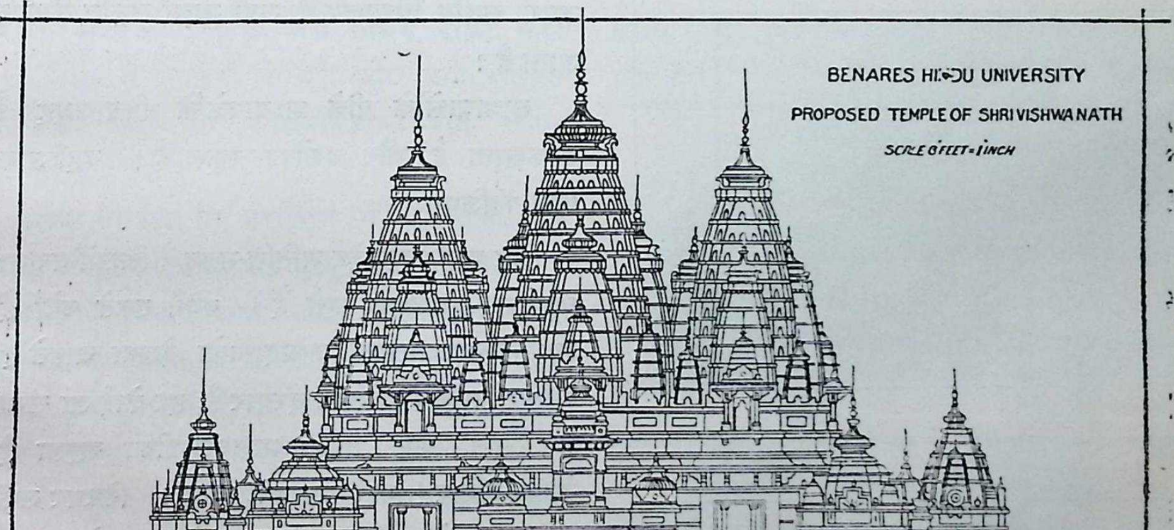
BENARES HINDU UNIVERSITY
PROPOSED TEMPLE OF SHRIVISHWANATH
SCALE 8 FEET = 1 INCH
FRONT ELEVATION

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयके प्रस्तावित मन्दिरका मान-चित्र।

चाहिए जितनी बड़ी हिन्दू जाति है। जब यहाँके विशाल घण्टे प्रातः-सायं यहाँकी भूमिमेँ गूँजेंगे तभी तो विद्यार्थियोंमेँ धर्मकी भावना जागरित होगी और हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाका उद्देश्य पूर्ण होगा। अभी मन्दिरके लिये पूरा रुपया नहीँ मिला है, पर हमारा विश्वास है कि धार्मिक हिन्दू जाति इस धर्मके दानमेँ कञ्जूसी नहीँ करेगी।

चलिए, सञ्झा हो चली है। ये आगे ब्रोचा और बिड़ला छात्रावास हैँ। बिड़ला परिवारने विश्वविद्यालयको अबतक सबसे अधिक ग्यारह लाख रुपया दिया है। इधर बाईं ओर जो एक भवन दिखाई पड़ रहा है, शिवाजी भवन कहलाता है और इसमेँ व्यायाम विद्यालय है, प्रातः-सायं विद्यार्थी कसरत करते हैँ।

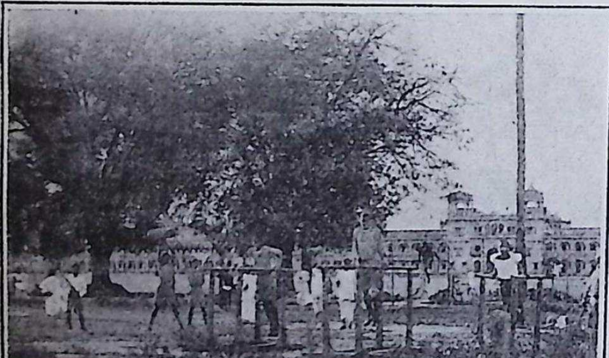

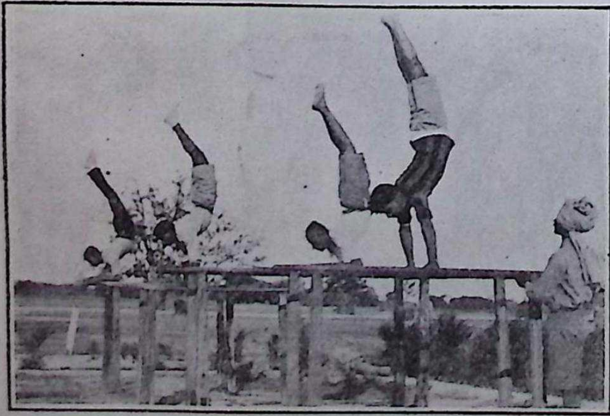

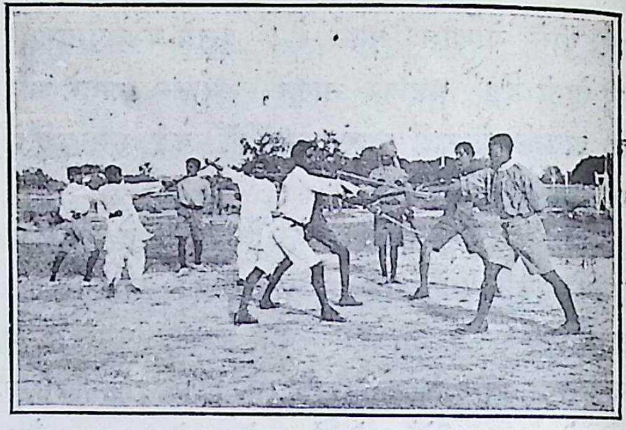

इधर आगे क्रिकेट, हाकी और फुटबाल खेलनेके मैदान हैँ। उसके आगे जालीसे घिरे हुए टेनिस खेलनेके मैदान बने हैँ।

आगे बाईं ओर जो छात्रावास है इसमेँ आयुर्वैदिक और संस्कृत विद्यालयके छात्र रहते हैँ। इसी भवनमेँ ऊपर सङ्गीत विद्यालय है जहाँ मुफ़्तमेँ सङ्गीत सिखाया जाता है।

छात्रावासोँके पीछे अध्यापकोँके निवासगृह हैँ, डाकख़ाना है और बच्चोँका स्कूल है। वहाँ जाकर क्या कीजिएगा?

यह आगे दाईं ओर अतिथि-भवन है जिसमेँ वर्त्तमान प्रो-वाइस-चान्सलर रहते हैँ। क्योँ, रुकते क्योँ हैँ? इस विश्वविद्यालयके जन्मदाताको देखना चाहते हैँ? चलिए, उनके यहाँ खुला दरबार है, हर कोई जा सकता है। बस रुकिए। यही मालवीयजीका बङ्गला है। देखिए-देखिए! वही मालवीयजी हैँ। सिरपर सफ़ेद साफ़ा, गलेमेँ डुपट्टा, चन्दनका टीका माथेपर—यही मालवीयजी हैँ। यह क्या—ये रुपये कैसे? अच्छा विश्वविद्यालयके लिये दे रहे हैँ। तो मुझे क्योँ देते हैँ, मालवीयजीको ही दे दीजिए न? देखिए मुस्कुरा रहे हैँ। जजमानको बड़ी जल्दी ताड़ जाते हैँ। कहाँ जानेको तैयार खड़े हैँ। चलिए, जल्दी मिल लीजिए।

मिल चुके न? देखिए, कैसी मधुर बातेँ करते हैँ मालवीयजी? बस यही तो बात है कि मालवीयजी

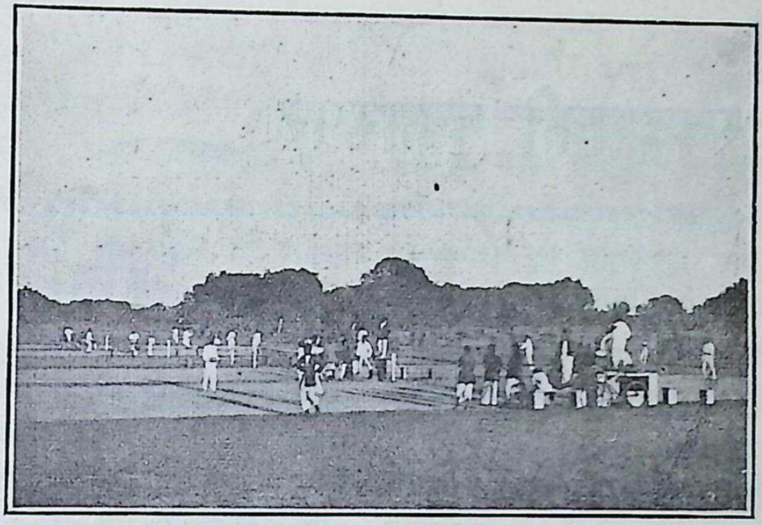

टेनिसका मैदान

जब बात करने लगते हैं तो बस तन्मय होकर करते हैं। देखिए मोटर खड़ी रह गई और सभा इन्तज़ार कर रही होगी पर मालवीयजीकी बात समाप्त नहीं हुई ।

अच्छा तो अब तो प्रदक्षिणा भी हो चुकी और दक्षिणा भी दी जा चुकी, अब मुझे छुट्टी दो, प्रणाम ।

न जाने कितने यात्री काशी आते हैं और काशी हिन्दू विश्वविद्यालयको देखकर उसके निर्मातासे जब उसकी तुलना करते हैं तो सहम जाते हैं। इसी शरीरने इतना बड़ा विश्वविद्यालय बनाया होगा ? पर क्या आप समझते हो कि विश्वविद्यालय पूरा हो गया, अभी बहुत काम शेष है। शायद आधा ही काम हुआ होगा । अभी रुपएकी बहुत कमी है, देशके राजनीतिक आन्दोलनोंने हिन्दू विश्वविद्यालयको बड़ा झटका दिया पर हमारा विश्वास है कि ब्रह्माने मालवीयजीके भाग्यमें स्वतन्त्र भारतमें पूर्ण काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका दर्शन करना लिखकर भेजा है ।

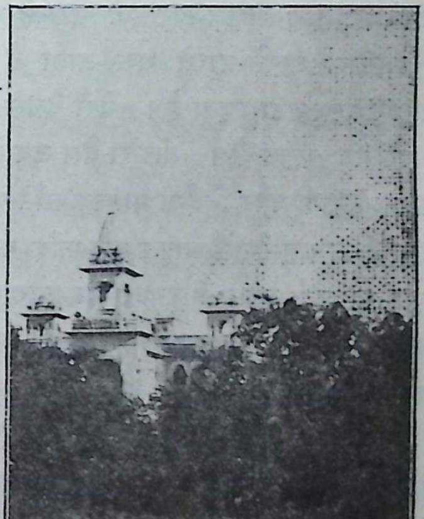

स्वदेशकी पुकारपर

भिक्षायुग

बोझीली गाड़ीमेँ बँधे हुए बैल तीन तरहके होते हैँ। एक तो साँटेकी फटकार सहते जाते हैँ, देह लहूलुहान हुई रहती है पर उन्हेँ यही सन्तोष होता है कि शामको सानी-भूसा मिल जायगा। ऐसे बैलसे मालिक खुश रहता है—बड़ा सीधा बैल है। दूसरा बैल गाड़ी खीँचता है पर रोता है, ठहर जाता है, उसपर कोड़े पड़ते हैँ, पर एक क़दम आगे नहीँ बढ़ाता, बैठ जाता है। पैनी मारनेपर, पूँछ मरोड़नेपर भी टस-से-मस नहीँ होता। मालिक मारते-मारते थक जाता है पर वह बैल अपनी टेकपर डटा रहता है। ऐसे बैलसे मालिक ज़्यादा परेशान रहता है। तीसरा बैल जब देखता है कि बोझ बढ़ रहा है और निर्दयी मालिक साँटे-पर-साँटा बरसा रहा है तो वह तैशमेँ आकर कूद-फाँद करता है, रस्सा तुड़ाता है, जुआ गिराकर एक ओर फुफकार कर खड़ा हो जाता है और अवसर पानेपर मालिकको सिँगियानेमेँ भी नहीँ चूकता चाहे वह मार ही क्योँ न डाला जाय। क्रमसे एक वेदान्ती है, दूसरा बौद्ध है, तीसरा कर्मयोगी है। एकका सिद्धान्त है कि संसारमेँ भोजन करना और लात खाना—ये ही दो काम हैँ। दूसरा कहता है कि अगर कोई एक चपत लगावे तो दूसरा गाल भी उसकी ओर फेर देना कि कृपा करके इधर भी एक लगा दीजिए। तीसरा कहता है कि अगर कोई एक चाँटा लगावे तो तड़ातड़ उसको चार चाँटे लगा दो, तब उससे पूछो कि उसने क्योँ मारा। पराधीन देशके राजनीतिक वायुमण्डलमेँ भी सदा इन्हीँ तीन प्रकारके जीव रहा करते हैँ। इनमेँसे कौन अच्छा और कौन बुरा है—यह हम क्या बतावेँ। यह तो आगेकी पीढ़ी ही बता सकेगी। इतिहासकारको पक्षपातसे दूर ही रहना चाहिए और फिर एक अरबी भाषामेँ कहावत भी है कि अपनी ज़बानको लगाम दो कहीँ यह तुम्हारा सिर न उतरवा ले। हमारी भूमिकाका अर्थ स्पष्ट ही है।

अब हमारी कथा आरम्भ होती है। किस प्रकार आर्य्योँके सुखी देशके द्वार उत्तर-पश्चिमकी आँधियोँने खोल दिए और किस प्रकार हमारे देशके सुनहले खेतोँने एकके बाद दूसरे लुटेरोँको लालच देकर बुलाया और किस प्रकार सुन्द-उपसुन्दकी तरह हम लोगोँने इस देशकी लक्ष्मीके लिये एक दूसरेकी हत्या की, यह कथा उन पन्नोँमेँ लिखी हुई है जो सड़ गए हैँ, पुराने पड़ गए हैँ, बस होलीकी देर है। मैजिक लालटेनकी तस्वीरोँकी तरह प्राचीन इतिहासने मनु और याज्ञवल्क्यके दृश्य दिखाए, बुद्ध और महावीरके संघारामोँका प्रदर्शन किया, चाणक्यके गुप्तचरोँके कारनामे पेश किए, अशोकके स्तूप और स्तम्भ सामने खड़े किए, गुप्त साम्राज्यका स्वर्ण-सिंहासन और उनके नवरत्नोँका परिचय कराया, हर्षके बल और विक्रमको प्रकट किया, महमूद ग़ज़नी और मुहम्मद ग़ोरीको हिन्दू मन्दिरोँ और राज्योँकी नीँव खोदते दिखलाया,

फिर पद्मिनीकी भयङ्कर चिता, लँगड़े तैमूरकी लूटमार, पानीपतके मैदानमें बाबरका युद्ध, अकबरका विशाल साम्राज्य, महाराणा प्रतापका प्रताप, जहाँगीरकी ऐयाशी, शाहजहाँका ताज-महल, औरङ्गज़ेबकी ख़ूनी तलवार, छत्रपति शिवाजीकी वीरता, मुग़ल साम्राज्यका पतन, एक-एक करके सब दृश्य आँखोंके आगे ला रक्खे। फिर देखा कि पछुवाँ हवामें पाल उड़ाते हुए जहाज़ चले आ रहे हैं और मुग़लोंका विशाल वृक्ष जहाँसे उखड़ा था वहाँ एक विलायती पौधा लगा दिया गया जो हिन्दुस्थानी कारीगरोंके ख़ूनसे हम लोगोंकी कायरता और द्वेषके द्वारा सींचा जा रहा है।

पेड़ लहलहाने लगा। पर पेड़को ख़ूराक चाहिए थी। हिन्दुस्थानियोंमें ख़ून रह नहीं गया था। बेचारी अवधकी बेग़मोंने अपने सतीत्वसे उसे बेबस होकर सींचा। कहना तो बहुत था पर इतना ही समझ लीजिए कि घड़ा भर चुका था। बस फूटनेकी देर थी। चरबीसे चढ़नेवाले कारतूसोंने घड़ेमें जो ठेस लगाई तो १० मई सन् १८५७ ई० को उसमेंसे ज्वालामुखी फूट पड़ा। हिन्दुस्थान जबड़े खोले खड़ा था, जो आया वह पिस गया। जैसे जौके साथ घुन भी पिस जाते हैं, वैसे ही पुरुषोंके साथ निरपराध स्त्रियाँ और बच्चे भी तलवार और बन्दूकोंके घाट उतार दिए गए। हिन्दुस्थान उस समय इङ्गलैण्डके लहूके लिये जीभ लपलपा रहा था। सब स्वाहा हो गया, चारों ओर लावा, कालिख और राख फैलाकर ज्वालामुखी शान्त हुआ और उसके शिखरपर रक्खा गया महारानी विक्टोरियाका सिंहासन।

क्या वह ग़दर था? तो हिन्दुस्थानी हिन्दुस्थानीको ही क्यों नहीं लूटता-मारता था। तो क्या यह धर्मकी रक्षाके लिये युद्ध था? तब कारतूस ही क्यों न नष्ट कर दिए गए। फिर क्या था? आप चाहें तो इसे स्वतन्त्रताका युद्ध कह सकते हैं या विदेशी जुएको कन्धेपरसे डालनेकी चेष्टा कह सकते हैं। इस ज्वालामुखीकी राख वैसे तो बहा दी गई और चारों ओर फिर शान्ति छा गई, पर अभी गर्मी बाक़ी थी। लोग स्वतन्त्र भारतका स्वप्न अभी देख रहे थे। बङ्गाल बेचारेपर सबसे अधिक मुसीबत आई और वह इतनी आई कि सीमा पार कर चुकी। शायद इसी लिये बङ्गालवाले पिस्तौलकी शरण लेनेमें नहीं हिचके। वहाँ बङ्किमचन्द्र चटर्जीके 'आनन्दमठ' ने बङ्गालको 'वन्दे मातरम्' सिखाना शुरू कर दिया था। उनकी भारत-माता बिल्कुल उनकी अधिष्ठातृ देवी कालीके जैसी ही थीं—'द्विसप्त कोटि भुजैर्धृत खर करवाले'। लोग सरकारसे चिढ़ चुके थे। कवि और लेखक सबका एक राग था, एक स्वर था। सभी तन्मय होकर स्वर मिला रहे थे 'वन्दे मातरम्'। सभी भारत-माताके शरीरके घावोंमेंसे पुकार-पुकारकर उसके बच्चोंको उसके अपमानोंकी याद दिला रहे थे। हृदय, वाणी और लेखनी तीनों भड़के हुए थे पर हाथ बँधे थे, तलवारें छिन चुकी थीं। जब शत्रु बलवान् होता है तो दो ही काम होते हैं—या तो उसे भरपेट गाली दो या उसकी प्रशंसा करके उसके आगे गिड़गिड़ाकर, अपने आत्म-सम्मानका ख़ून करके माफ़ी माँगो और अपना छुटकारा करा लो। पोरस और सिकन्दरका समय गया, जब बहादुर एक दूसरेकी क़द्र करना जानते थे। जवानोंमें जोश स्वाभाविक ही होता है। बङ्गालके विद्यार्थियोंने गुपचुप समितियाँ बनाईं, चोरी छिपे अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे करने शुरू किए। इनमेंसे कुछमें तो यहाँतक कड़ा नियम था कि वे अपने छातीसे ख़ून निकालकर प्रतिज्ञा करते थे। उनका उद्देश्य था 'स्वराज्य', बस।

इधर जवान लोग अपनी तरहसे युद्धकी तैयारी कर रहे थे, उधर कुछ बड़े लोग सभा-समाज खोलकर उसमें राजनीतिक मामलोंपर वाद-विवाद कर रहे थे। सन् १८७६ ई० में बङ्गालमें 'इण्डियन एसोसियेशन' बना जिसका उद्देश्य था "समान राजनीतिक स्वत्वों और आकाङ्क्षाओंके आधारपर भारतीय जनताको सङ्गठित करना"। कलकत्ता इसका केन्द्र रहा। इसी

प्रकार सन् १८८१ ई० में मद्रासमें 'मद्रास महाजन सभा' स्थापित हुई और वहाँका प्रान्तीय अधिवेशन हुआ। पश्चिमी भारतमें ३१ जनवरी सन् १८८५ ई० को महता, तैलङ्ग और तैयबजीकी मण्डलीने 'बौम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसिएशन' बनाया। सभी प्रान्त एक राजनीतिक मञ्चकी तलाशमें थे। श्री एलेन औक्टेवियन ह्यूमने सिविल सर्विससे छुट्टी पाकर 'इण्डियन यूनियन' नामक संस्था बनाई। २३ मार्च सन् १८८५ ई० को उन्होंने यह सूचना दी कि इण्डियन नेशनल यूनियनका पहला अधिवेशन पूनामें आगामी २५ से ३१ दिसम्बरको होगा। ह्यूम साहबका विचार था कि उक्त सभा जहाँ हुआ करे उसके सभापति उस प्रान्तके गवर्नर हों। उन्होंने तत्कालीन वायसराय लौर्ड डफ़रिनसे सलाह ली। उन्हें राजनीतिक सभाका आयोजन तो बहुत पसन्द आया, पर उन्होंने यह सलाह दी कि ऐसी सभाका सभापति गवर्नर नहीं होना चाहिए क्योंकि शायद उसके सामने लोग अपने विचार प्रकट करनेमें सङ्कोच करें।

ह्यूम साहबको यह बात ठीक जँची और सब प्रान्तोंके राजनीतिज्ञोंने भी यह सलाह मान ली। इस परिषद्के दो प्रत्यक्ष उद्देश्य थे। (१) राष्ट्रकी प्रगतिके कार्य्यमें जी-जानसे लगे हुए लोगोंका एक दूसरेसे परिचित होना। (२) आगामी वर्षके लिये राजनीतिक कार्य्योंका निर्णय करना।

पर पूनाके भाग्यमें स्वतन्त्रताका प्रथम समरक्षेत्र बनना नहीं लिखा था। वहाँ हैज़ा फैल गया और वह परिषद्, जिसे कांग्रेस कहते हैं, बम्बईमें करनेकी सलाह हुई। उसके अनुसार २८ दिसम्बर सन् १८८५ ई० को बम्बईमें दिनके बारह बजे गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कौलेज़के भवनमें कांग्रेसका पहला अधिवेशन हुआ। ह्यूम साहबके गम्भीर स्वरसे कांग्रेसका श्रीगणेश हुआ। उन्होंने श्रीयुत उमेशचन्द्र बैनर्जीको सभापति पदके लिये प्रस्ताव किया। माननीय सुब्रह्मण्य ऐयर और माननीय काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्गने उसका समर्थन और अनुमोदन किया। ह्यूम साहब 'कांग्रेसके पिता' कहलाने लगे।

इसमें सन्देह नहीं कि सन् १८५७ ई० के ज्वालामुखीने भारतकी पृथ्वी उपजाऊ बना दी। दो, चार, पाँच बरसके अन्तरसे बड़े-बड़े महापुरुष पैदा हुए। लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक, श्री गोपालकृष्ण गोखले, पण्डित मोतीलाल नेहरू, पण्डित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गान्धी, देशबन्धु चित्तरञ्जनदास, श्री अरविन्द घोष आदि सब सन् १८५७ ई० की राखसे पैदा हुए—हृदयमें देशप्रेमकी पवित्र ज्वाला लिये हुए। अलग-अलग प्रान्तोंमें पलकर भी वे कांग्रेसके मञ्चपर जा मिले।

२८ दिसम्बर सन् १८८६ ई० को कलकत्तेमें स्वर्गीय श्री दादाभाई नौरोजीके सभापतित्वमें कांग्रेसका दूसरा अधिवेशन हुआ। सब प्रान्तोंके चार सौ चालीस प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। 'व्यवस्थापक सभाओंके सुधार' पर कई सज्जन बोल चुके। लोगोंने देखा कि इन व्याख्यानोंके बीच एक गोरा-सा चौबीस-पचीस बरसका युवक पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यजीसे कानाफूसी कर रहा है। देखते-देखते वह सभापतिसे आज्ञा माँगकर बोलने खड़ा हुआ। ज़रा वह युवक क़दका छोटा था। ह्यूम साहबने हाथोंसे उठाकर उसे कुर्सीपर खड़ा कर दिया। सफ़ेद अङ्गा बदनपर, सफ़ेद साफ़ा सिरपर, सफ़ेद दुपट्टा गलेमें और सफ़ेद चन्दनका टीका माथेपर लगाए, बाएँ हाथमें बाईं ओरका दुपट्टा लेकर उसे कमरके पीछे करके उसने धीरे-धीरे मीठी, शुद्ध, स्पष्ट, ललित अंग्रेज़ीमें बोलना शुरू किया। फिर वेग बढ़ा, स्वर बढ़ा, पर मिठास बनी रही। एक-एक शब्द कानको छूता था और हृदयमें बैठ जाता था। शरदके शुभ्र चन्द्रके समान वह राजनीतिक संसारपर सुधा बरसाता हुआ आया। उस वक्तृतामें शेरकी दहाड़का प्रभाव तो पूरा था पर उसकी भयङ्करता और कठोरता नहीं थी।

स्रौन थके नहिं बैन सुनेते, नैन थके नहिं रूप निहारे।

बाइस बार तालियाँ गड़गड़ाईं। सारे राष्ट्रने एक स्वरसे उसी दिन उसे अपना लिया। इसके विषयमें ह्यूम साहबने कलकत्ता कांग्रेसकी रिपोर्टमें लिखा है कि—'जिस वक्तृताके लिये कांग्रेस-मण्डपमें कई बार तालियाँ बजीं और जिस वक्तृताको जनताने बड़े उत्साहसे सुना वह उच्च कुलीन ब्राह्मण पण्डित मदनमोहन मालवीयजीकी वक्तृता थी, जिनके गौर वर्ण, मनोहर आकृतिने प्रत्येक व्यक्तिको अपनी ओर आकर्षित कर लिया और अचानक सभापतिके बराबरवाली कुर्सीपर कूदकर ऐसा सुन्दर, ज़ोरदार और धाराप्रवाह व्याख्यान दिया कि सब दङ्ग रह गए।' उस व्याख्यानका एक वाक्य तो अमर हो गया 'प्रतिनिधित्व नहीं तो कर भी नहीं। अंग्रेज़ोंकी राजनीतिक बाइबिलका यह प्रथम आदेश है।'

यहीं मालवीयजीका राजा रामपालसिंह और पण्डित दीनदयालु शर्मा व्याख्यान वाचस्पतिसे परिचय हुआ। मालवीयजी स्वयं कहते हैं कि यह कांग्रेस उनकी सारी सफलताकी पहली सीढ़ी रही है और वे यह भी कहा करते हैं कि मैं उस कांग्रेसमें जैसा बोला वैसा फिर कभी न बोल सका।

सन् १८८८ ई० में मद्रासमें कांग्रेस हुई। मालवीयजी फिर उसी विषयपर उसी उत्साह और जोशसे बोले और उनकी इस वक्तृतापर राजा सर टी० माधवराव, दीवान बहादुर आर० रघुनाथराव और श्री अर्डले नौर्टन जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियोंने उनकी प्रशंसा की। ह्यूम साहबने उस सालकी कांग्रेसकी रिपोर्टकी प्रस्तावनामें लिखा है कि—"तब पण्डित मदनमोहन मालवीय खड़े हुए जो इस विषयके सबसे युवा और उत्साही कार्य्यकर्त्ता थे और उनके व्याख्यानमेंसे ही हम बहुत अधिक उल्लेख करनेको बाध्य हुए हैं, क्योंकि यद्यपि अन्तमें आकर वह अधिक जोशीला हो गया था पर उसमें ऐसी सच्ची बातें हैं जिनपर सावधानीसे विचार करना ही चाहिए।" कांग्रेसके प्रभातमें अरुण बनकर मालवीयजी आए और धीरे-धीरे वहाँके प्रतापी सूर्य्य बन गए। यह समय कांग्रेसका भिक्षा-युग था। दबी ज़बानसे महारानी विक्टोरियाकी घोषणाकी दुहाई दे-देकर ये लोग अपने जन्मसिद्ध अधिकारोंके लिये पल्ला फैलाते थे और जो कुछ रूखा-सूखा खिड़कीमेंसे फेंक दिया जाता था उसीमें मस्त रहते थे। उस समय कुछ लोग तो सच्चे दिलसे भारतकी भलाईके लिये वहाँ आते थे, कुछ अपनी विद्वत्ता झाड़ने आते थे और कुछ शौक़िया तमाशा देखने जाते थे। पहले कांग्रेसमें मालवीयजी एक दर्शक प्रतिनिधि बनकर गए थे, पर पहली ही कांग्रेमें इन्होंने अपना लक्ष्य ढूँढ़ लिया, स्कूलके बाहर एक बहुत बड़े संसारके लिये ये निकल पड़े। अध्यापक मालवीयजी अब राजनीतिज्ञ मालवीयजी बन गए। पर एक बात थी कि उस समयके लोग कांग्रेसमें बड़ी तैयारी करके बोलते थे। यह नहीं कि जो मुँहमें आया कह दिया। बहुत सोच-विचारकर, बड़ी गम्भीरतासे, बड़े ढङ्गसे बातें कहीं जाती थीं। उन सब व्याख्यानोंके नीचे एक ही सिद्धान्त काम कर रहा था—'साँप मरे पर लाठी न टूटे।' वैसे व्याख्यान अब सुननेमें ही नहीं आते।

मालवीयजीकी भी जवानी थी, उत्साह छलका पड़ता था, देशमें ऐसे किसी आदमीकी बड़ी ज़रूरत थी जो कांग्रेसको अपनी समझे और मन लगाकर इसके लिये काम करे। मालवीयजी नौकरी तो छोड़ ही चुके थे। कांग्रेसपर इन्होंने अपना जीवन न्यौछावर कर दिया और इसीलिये आजतक उससे नाता जोड़े हुए हैं। सन् १८८७ ई० की मद्रास कांग्रेसमें सब प्रान्तोंसे प्रतिनिधि आनेकी तो आशा थी, पर युक्तप्रान्तसे कोई आशा नहीं थी। मालवीयजीको जब यह गन्ध मिली तो वे तत्काल काममें जुट गए। यद्यपि उस समय उनकी जेबें ख़ाली ही थीं, पर सब सङ्कट सहकर भी वे प्रान्त भरमें घूमे। भला कौन इतनी दूर काले कोस जाने लगा। पर मालवीयजी डटे रहे और उन्हींका प्रयत्न था कि उस साल मद्रास जैसी दूर जगह भी पैंतालीस प्रतिनिधि पहुँच ही गए। ह्यूम साहब इनसे इतने प्रसन्न हुए कि इन्हें उत्तर-पश्चिमी

प्रान्त (युक्तप्रान्त) एसोसिएशनका तथा स्थायी कांग्रेस कमिटीका मन्त्री बना दिया। इस पदपर ये कई बरसतक बने रहे।

मद्रासके बाद प्रयागकी बारी आई। असलमें ह्यूम साहब ही कांग्रेसको अगले वर्ष प्रयागमें ले जानेको उत्सुक थे और उन्होंने मालवीयजीको सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति समझा, जो कांग्रेसको प्रयागमें निमन्त्रित करे और अधिवेशन सफल बनावे। स्वागतकारिणी-समिति बनी। कांग्रेस सरकारकी आँखोंमें खटकती थी। कांग्रेसके लिये जगह मिलनेमें भी दिक़्क़त हुई। स्वागत-समितिके मन्त्री मालवीयजी थे और रायबहादुर लाला रामचरणदास और बाबू चारुचन्द मित्र भी हाथ बँटा रहे थे। पण्डित विश्वम्भरनाथजी और पण्डित अयोध्यानाथजी शामिल हो गए। पण्डित अयोध्यानाथजीका आना था कि सब काम ज़ोरोंसे होने लगा और २६ दिसम्बर सन् १८८८ ई० को श्री जौर्ज यूलके सभापतित्त्वमें ऐसा शानदार अधिवेशन हुआ कि सब लोग आजतक याद करते हैं। उसका एक कारण यह है कि मालवीयजीका कोई काम छोटा या भोंड़ा नहीं होता। उनका जो काम होता है वह विशाल और शानदार होता है।

कांग्रेसके जन्मदाताओंके साथ मालवीयजी

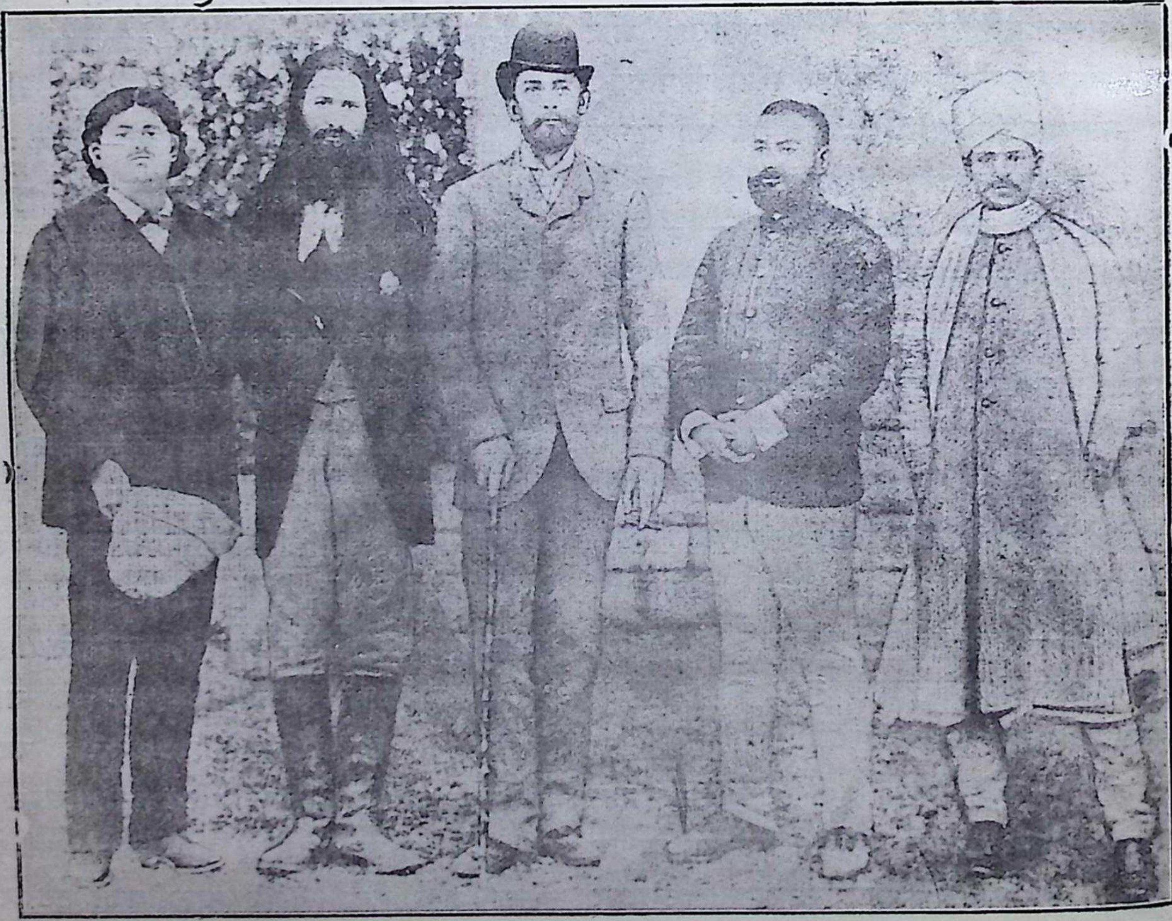

बाईं ओरसे श्री राजा रामपालसिंह, श्री कप्तान बेनन, श्री ए० ओ० ह्यूम, श्री चारुचन्द्र मित्र और श्री पण्डित मदनमोहन मालवीयजी। सन् १८८८ ई० में आजसे पचास बरस पहले।

कांग्रेसकी इस सम्मिलित शक्तिको देखकर सरकारके हाथ-पाँव फूलने लगे। युक्तप्रान्तके गवर्नर और ह्यूम साहबके बीच बड़ी लिखा-पढ़ी हुई। लौर्ड डफ़रिन यद्यपि बाहरसे कांग्रेसकी बुराई करते थे, पर उन्होँने नवम्बर सन् १८८८ ई० मेँ जाते समय एक गुप्त आदेश रख छोड़ा कि कांग्रेसकी माँगोँपर ध्यान देना चाहिए अर्थात् व्यवस्थापिका सभाओँका फिरसे निर्माण हो। लौर्ड क्रौसके इण्डिया कौन्सिल्स ऐक्टने कुछ सुधार दिए। बस नेता लोग राजनीतिक सङ्घटन छोड़कर नई कौन्सिलोँमेँ स्थान पानेमेँ जुट गए। बेचारी देशभक्ति वोटरोँके धक्कोँमेँ पिस गई। फल यह हुआ कि सरकारके मनमेँ जो हौआ बैठा हुआ था, वह दूर हो गया और कांग्रेसमेँ हर साल कोरे प्रस्ताव पास होते रहे।

कांग्रेसका कोई भी अधिवेशन ऐसा नहीँ हुआ जिसमेँ मालवीयजीकी मधुर वाणी न सुनाई दी हो। कोई भी ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव नहीँ हुआ जिसपर मालवीयजीने अपने विचार न प्रकट किए होँ और यह खूबी रही है कि ज़नमतके विरोधमेँ बोलनेपर भी लोग उन्हेँ चुप होकर सुनते थे मानो कोई देवदूत कोई दैवी सन्देश लेकर आ पहुँचा हो। यह उनकी अलौकिक वाणी और उनकी आकर्षक मूर्त्तिका ही प्रभाव था, और यह प्रभाव उनका बुढ़ापा भी न छीन सका। प्रयागके सन् १८८८ ई० के अधिवेशनके बाद बम्बई, कलकत्ता और नागपुरमेँ कांग्रेसके अधिवेशन हुए। फिर सन् १८९२ ई० मेँ प्रयागमेँ ही कांग्रेस करना तै हुआ। पर उन्हीँ दिनोँ पं० अयोध्यानाथजीकी दुःखद मृत्युने सबको निराश कर दिया, यहाँतक कि कुछ लोगोँने प्रस्ताव किया कि संयुक्त प्रधान मन्त्री श्री उमेशचन्द्र बैनर्जीको सूचना दे दी जाय कि कांग्रेस प्रयागमेँ न हो सकेगी। किन्तु मालवीयजी प्रयागकी यह बदनामी कैसे सह सकते थे। वे फिर अपनी सारी शक्तियाँ लेकर जुट गए और फिर सन् १८९२ ई० मेँ श्री उमेशचन्द्र बैनर्जीके सभापतित्वमेँ ही कांग्रेसकी आठवीँ बैठक भी सकुशल हो गई।

इसके बाद लाहौर, मदरास, पूना, कलकत्ता, अमरावती, लखनऊ, अहमदाबाद और बम्बईमेँ कांग्रेसकी बैठकेँ हुईँ। प्रस्ताव पास होते रहे पर उनकी वही गति हुई जो रद्दी काग़ज़की होती है। सरकार कानमेँ तेल डाले पड़ी रही। नेताओँके ज़ोरदार गर्जन, मेज़ोँपर पटके हुए हाथोँकी धमक और सुन्दर व्याख्यानोँपर बजी हुई तालियोँकी गड़गड़ाहट कुछ भी सरकारको न सुनाई दी। लोग ऊब उठे। यह सोचा गया कि अपने पैरोँपर खड़ा हुआ जाय। यह तो सभी जानते हैँ कि जब अंग्रेज़की जेब कटती है तब उसे होश आता है। यह राय दी गई कि बृटिश मालका बहिष्कार किया जाय। कांग्रेसके पुराने अखाड़िए इस शस्त्रका प्रयोग करनेमेँ ज़रा सकुचाते थे। पर लौर्ड कर्ज़नने भारतमेँ पधारकर बङ्गालपर तलवार चलाकर दो टुकड़े कर डाले। माननीय गोपालकृष्ण गोखलेके सभापतित्वमेँ काशीमेँ कांग्रेस बैठी और बङ्गभङ्गके विरोधमेँ बृटिश मालका बहिष्कार करना स्वीकृत हो गया, यद्यपि कांग्रेसने उसे अपने विस्तृत कार्य्यक्रममेँ लेना स्वीकार नहीँ किया। इसी कांग्रेसकी एक घटना है। उसके साथ ही सोशल कानफ्रेन्सका भी अधिवेशन हुआ था। कानफ्रेन्सके लिये सब प्रबन्ध हो गया था। बम्बई हाईकोर्टके जज सर नारायण चन्दावरकर सोशल कानफ्रेन्सके प्रधान मन्त्री थे। उनके ठहरानेका भार स्वर्गवासी राजा माधवलालने अपने ऊपर लिया था। जिस दिन प्रातःकाल सवेरे चार बजे उनको काशी पहुँचना था उसके एक दिन पहले शामको तारद्वारा मालूम हुआ कि श्री चन्दावरकर बड़े सवेरे पहुँचेंगे। कांग्रेस राजघाटके क़िलेपर हुई थी। वहाँ राजा माधवलालका खेमा था। पण्डित रामनारायण मिश्र रातको उनके यहाँ पहुँचे। उनसे भेट नहीँ हुई। उस घबराहटमेँ ये राजा माधवलालके लोहराबीरवाले बगीचेमेँ गए। वहाँ भी वे नहीँ मिले। वहाँ कांग्रेसके मनोनीत सभापति श्री गोखलेजी ठहरे हुए थे। वे उनसे मिले

और प्रार्थना की कि वे सर नारायणको अपने यहाँ ठहरा लें। उन्होंने कहा कि सर नारायणके लिये पूरा मकान चाहिए। वे 'रानडे महोदय' की तरह नहीं हैं कि किसीके साथ थोड़ी जगहमें भी निर्वाह कर लें। बिना कुछ प्रबन्ध किए ही ईश्वरपर भरोसा कर वे सबेरे तीन बजे काशी स्टेशनपर पहुँचे। वे अत्यन्त व्याकुल थे। रेल आ गई, पर संयोगसे सर नारायण न आए क्योंकि वे मोग़लसरायमें रह गए थे और उन्होंने अपने नौकरोंसे कहला भेजा था कि वे दूसरी रेलसे, जो तीन-चार घण्टे बाद आनेवाली थी, आवेंगे। मिश्रजी पाँच बजे फिर माधवलालजीके ख़ेमेंमें गए। दिसम्बरके जाड़ेका सबेरा था। मालूम हुआ कि वे अभी सो रहे हैं। पीछेकी तरफ एक ख़ेमेंमें मालवीयजी दिखलाई दिए। वे शौचादिसे उसी समय निवृत्त हुए थे। उन्हें देखते पूछ बैठे कि "इतने सबेरे कहाँ आए ?" उन्होंने सारी कथा कह दी। सुनकर मालवीयजी हँसकर बोले "सर नारायणको इसी ख़ेमेंमें ले आओ।" यह कहते ही वह खड़े हो गए और उन्होंने नौकरसे कहा कि असबाब सब सामने पेड़के नीचे ले चलो। मिश्रजीने उनसे प्रार्थना की कि वे ऐसा न करें; कहीं-न-कहीं बन्दोवस्त हो ही जायगा। परन्तु उन्होंने न माना। स्वयं भी असबाब बाहर उठाकर रखना शुरू कर दिया और उनसे कहा, जाओ स्टेशनसे उनको ले आओ। रेलका समय निकट था। सर नारायण थोड़े ही देरमें आ गए। वे उसी ख़ेमेंमें ठहर गए। दूरके दो पेड़ोंके नीचे पर्दा लगाकर श्री मालवीयजीने अपना प्रबन्ध कर लिया। दिन चढ़नेपर बहुतसे लोगोंने श्री मालवीयजीको उस पेड़के नीचे देखा। मालवीयजीकी ऐसी ही बातोंने उन्हें राष्ट्रकी पताका लेकर आगे चलनेका यश दिया है।

अगले वर्ष कलकत्तेमें कांग्रेस होनेवाली थी। क्षुब्ध बङ्गालने लोकमान्य तिलकका नाम सभापतिके लिये पेश किया। 'टाइम्स औफ़ इण्डिया' पत्रने सबसे पहले बावैला मचाया और हिन्दुस्थानी नेताओंको दो भागोंमें बाँट दिया—'गरम दल और नरम दल'। तिलकजी गरम दलवालोंमें थे। सरकारके पिट्ठू लोगोंके कान खड़े हुए और उन्होंने कुछ गोलमाल करके श्री दादाभाई नौरोजीको राज़ी कर लिया। ज्यों-त्यों करके श्री दादाभाई नौरोजी सभापति तो हुए पर उन्होंने गरम दलवालोंके उठाए हुए राष्ट्रीय झण्डेको झुकाना ठीक नहीं समझा और उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि कांग्रेसका ध्येय ऐसा स्वतन्त्र शासन है जैसा उपनिवेशों तथा ग्रेट बृटेन और आयरलैण्डमें है—अर्थात् एक शब्दमें 'स्वराज।'

अगले वर्ष डा० रासबिहारी घोषके सभापतित्वमें सूरतमें कांग्रेस हुई और गरम तथा नरम दलवालोंका द्वेष, जो धीरे-धीरे सुलग रहा था, भड़क उठा। गाली-गलौज, हल्ला-गुल्ला हुआ। किसीने सर फ़ीरोजशाह मेहतापर जूता चला दिया जो सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीको छूता हुआ निकल गया और जिसे उन्होंने 'मेरी देशसेवाका इनाम' कहकर अपने घर टाँग रक्खा है। कुर्सियाँ उठाकर मारी गईं। पुलीस आई और उसने मण्डप ख़ाली करनेकी घोषणा की। बड़ी भगदड़ मची। पाँच मिनटमें सारा मण्डप ख़ाली हो गया। केवल एक गौर, धवल वस्त्रधारी व्यक्ति एक खम्भेसे लगकर खड़ा हुआ चुपचाप रो रहा था। उसकी आँखोंसे आसुओंकी धारा बह रही थी। वह मालवीयजी ही थे। दो एक युवक हाथ पकड़कर किसी तरह उन्हें बाहर लाए। मालवीयजीको इस दुर्घटनासे बड़ी पीड़ा हुई, बड़ा क्लेश हुआ और वे कहा करते हैं कि सूरत कांग्रेसने मेरी तन्दुरुस्ती ले ली। मालवीयजीको ऐसा गहरा आन्तरिक दुःख हुआ कि उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। शायद देश भरमें इस घटनाका इतना अधिक दुःख किसीको न हुआ होगा।

कांग्रेसका रूप बदल गया, भिक्षा-युगसे कांग्रेसने विद्रोह-युगमें पदार्पण कर दिया।

विद्रोह युग

यों तो लॉर्ड कर्ज़नने जिस दिन बङ्गालके दो टुकड़े किए थे उसी दिनसे हिन्दुस्थानका राजनीतिक आकाश काला पड़ने लगा था। घटाएँ उठने लगी थीं। विजली कड़कने लगी थी। लॉर्ड कर्ज़नके अपराधके कारण न जाने कितने अंग्रेज़ नर-नारियोंपर अचानक बिजलियाँ गिरीं। सूरत कांग्रेसमें नरम और गरम दलवालोंमें जो झगड़ा हुआ उससे कांग्रेसकी हवा बदल गई। सारा देश ही दो दलोंमें बँट गया। पर शीघ्र ही कांग्रेसके बड़े बूढ़े लोगोंने मिलकर कांग्रेसकी नियमावलि बनाई और 'डमीनियम स्टेटस' (उपनिवेश स्वातन्त्र्य) को अपना ध्येय बना लिया और यह भी निश्चय हुआ कि यह ध्येय वैध प्रयत्नोंसे ही प्राप्त किया जायगा। मालवीयजी गरम दलमें तो न मिल सके पर नरमदलमें भी न रह सके। कूट राजनीतिज्ञकी भाँति वे विषकी जगह गुड़ खिलाकर ही अपना काम निकालना चाहते थे। एक बात और भी हुई कि इस बारके प्रस्ताव कोरे प्रस्ताव न रह गए। बङ्गालके प्रसिद्ध नेता बिपिनचन्द्रपाल घूम-घूमकर राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय-शिक्षाका प्रचार कर रहे थे। सब जगह राष्ट्रीय विद्यालय जन्म ले रहे थे। साथ ही स्वदेशी और वहिष्कारका आन्दोलन भी ज़ोरोंपर था। जान पड़ता था देशमें जोश है, जान है। पचास बरसके बाद देश फिर आँखें मलकर, अँगड़ाई लेकर उठ बैठा। हाथके कपड़ेका उद्योग फिर शुरू हुआ। जुलाहोंके करघे फिर चेतने लगे। इधर मालवीयजीका स्वदेशी प्रचारकी पताका लिये पुरानी दस्तकारीको जगाते हुए, उसकी पीठ ठोंकते घूम रहे थे। उस समय मालवीयजी एक अद्भुत शक्ति लिए हुए थे। सरकारी भवनोंमेंसे एक ओर उनकी गूँज सरकारको चेतावनी दे रही थी, दूसरी ओर कांग्रेसके मञ्चसे सारे देशको कर्त्तव्य-मार्ग सुझा रही थी। दोनों हाथ अपना काम कर रहे थे पूरी शक्तिके साथ।

पर इधर जैसे-जैसे लोग उभड़ रहे थे, सिर उठा रहे थे, त्यों-त्यों सरकार उनको दवानेका प्रयत्न कर रही थी। ये सव आन्दोलन सरकारकी आँखोंमें खटकते थे। स्वदेशी आन्दोलनने बृटिश व्यापारको भी तो ठोकर लगाई थी। इन्हीं दिनों बङ्गालमें नौ नेताओंको देश-निकाला हो गया। इधर पञ्जाबमें 'चिनाव नहरमें कर वृद्धि' किए जानेपर झगड़ा उठा। अप्रैलमें लाला लाजपतराय और सरदार अजित सिंहको देशनिकाला हो गया। सरकारने खुद ही पलीतेमें आग लगाई। ३० अप्रैल सन् १९०८ ई० को मुज़फ्फ़रपुरमें दो अंग्रेज़ स्त्रियाँ बमसे मारी गईं। अठारह वर्षका युवक खुदीराम बोस बम फेंकनेके अपराधमें पकड़ा गया। उसे फाँसी हुई। स्वामी विवेकानन्दके भाई श्री भूपेन्द्रनाथ दत्त 'युगान्तर' में खुल्लमखुल्ला हिंसावादका प्रचार कर रहे थे। १३ जुलाई सन् १९०८ ई० को लोकमान्य तिलक भी पकड़ लिए गए और पाँच दिनोंकी सुनवाईमें उन्हें छः सालके देश-निकालेकी सज़ा हो गई। आन्ध्रके श्री हरि सर्वोत्तमराव भी नौ महीनेके लिये लद गए।

भारतमें तो इक्के-दुक्के खून हो ही रहे थे उधर सन् १९०७ में लन्दनकी एक सभामें मदनलाल धिंगड़ाने सर कर्ज़न वाइलीको गोली मार दी। एक ओर हिन्दुस्थान हथेलीपर जान रखकर 'कण्टकेनैव कण्टकम्' का पाठ पढ़ रहा था, दूसरी ओर देशके पुराने अनुभवी नेता वैध विधिसे 'डमीनियन स्टेटसके' लिये कमर कसे तैयार खड़े थे। दोनोंका लक्ष्य एक ही था। पर एक तो जङ्गलके बीचसे होकर शेर, भेड़िए

और बाघको मारकर अपनी जान जोखिममें डालकर छोटे रास्तेसे जङ्गल पार करना चाहते थे, दूसरे लोग साफ़ रास्तेसे चक्कर लगाकर वहाँ पहुँचना चाहते थे। पर चक्रव्यूहमें सहसा घुसकर चाहे अभिमन्यु मारा भले ही गया हो पर इससे धर्मराजकी आँखें खुल गईं। इन नौजवानोंके रक्तसे भारतका राष्ट्रीय आन्दोलन चमक उठा। सन् १९०८ ई० में लखनऊके प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलनके मालवीयजी अध्यक्ष बनाए गए। २८ दिसम्बर सन् १९०८ ई० को मद्रासमें कांग्रेसकी एक बैठक होनेके बाद २७ दिसम्बर सन् १९०९ ई० को लाहौरमें कांग्रेसका चौबीसवाँ अधिवेशन हुआ। चुने गए थे सर फ़ीरोज़शाह मेहता पर कांग्रेस होनेके छः दिन पहले ही उन्होंने इनकार कर दिया। अचानक सबकी दृष्टि प्रयागपर पड़ी और मालवीयजी ही राष्ट्रपति बनाए गए। मालवीयजीने अध्यक्षपदसे जो भाषण दिया वह लिखा हुआ नहीं था बिलकुल जबानी था। बड़ा जोशीला व्याख्यान हुआ। मालवीयजी परम वैष्णव ब्राह्मणका संस्कार लेकर हत्याका समर्थन नहीं कर सकते थे। उनके हृदयमें हिंसाका अभाव था। वे योद्धा तो थे पर ऐसे योद्धा थे जो तलवार न चलावे बल्कि उलटे हेमलिनके बाँसुरी बजानेवालेके समान सब लोग—उसके शत्रु भी—उसके पीछे पीछे चलने लगें। इसी लिये तिलकजीके इतने मित्र होते हुए भी वे पूरी तरहसे तिलकजीका साथ न दे सके। उन्होंने शुरूसे ही भारतकी ठीक नब्ज़ पहचानी थी। वे समझ गए थे कि ऐसे दुर्बल रोगीको तेज़ दवा अवश्य हानि पहुँचावेगी। हम समझते हैं कि जब-जब भारतको तेज़ दवा दिए जानेका प्रस्ताव हुआ तब-तब मालवीयजीने वैद्योंको रोका, जल्दीसे अच्छा होनेकी इच्छा करनेवाला रोगी भी मालवीयजीपर बड़ा झुँझलाया पर उसमें तेज़ गोली पचानेकी शक्ति नहीं थी। सबको आख़िर मालवीयजीके नुस्ख़ेकी शरण लेनी पड़ी :—

धीरे धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आए फल होय॥

उन्होंने अपने भाषणमें महारानी विक्टोरियाकी घोषणाकी दुहाई भी दी पर साथ ही सरकारकी नीतिका भी ज़ोरदार खण्डन किया। यह व्याख्यान मालवीयजीके स्वभावका प्रतिबिम्ब ही समझना चाहिए। वह शत्रुसे लोहा लेते समय, नाभिसे नीचे चोट लगानेकी नीयत तो रखते ही नहीं साथ ही बन्दूककी नलीमें गोलीकी जगह फूल रखकर मारते हैं, जिससे शरीरमें तो घाव नहीं होता पर हृदयमें हो जाता है। अगर भारतका शासन एक ही व्यक्तिके हाथमें होता तो शायद मालवीयजी कभीका उसे जीत चुकते। पर जहाँ हृदय ही न हो वहाँ निशाना लगाया ही कहाँ जाय। अपने अंग्रेज़ीके भाषणको उन्होंने गीता, भागवत, महाभारत और मनुस्मृति आदिके श्लोकोंसे अलंकृत किया था, जिनको अख़बारोंमें पढ़कर उनके परम गुरु महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य बहुत प्रसन्न होते थे और कहते थे—'क्यों न हो—क्यों न हो, मालवीय व्यासका बेटा है न! वह शास्त्रीय असर कहाँ जा सकता है।' सरकार अपनी वङ्गभङ्गकी नीतिकी निःसारता समझ चुकी थी पर वह एकदम उसे रद्द करके अपनी नाक नहीं कटाना चाहती थी। लौर्ड मिण्टोके जानेपर लौर्ड हार्डिञ्ज आए और लौर्ड मिडिल्टनकी जगह लौर्ड क्रू भारत-मन्त्री बने। सम्राट् पञ्चम जार्जके राज्याभिषेकके अवसरपर बङ्गाल फिर जोड़ दिया गया और फिर हिन्दुस्थान राजभक्त बन गया जैसी इसकी सदियों पुरानी आदत है। पर इसी बीच एक दुर्घटना हो गई। सन् १९१२ में लौर्ड हार्डिञ्ज जब जलूसके साथ हाथीपर जा रहे थे, उनपर किसीने बम फेंक दिया। बाँकीपुर कांग्रेसमें इसपर बड़ा रोष प्रकट किया गया पर इसीके बाद सरकारने हिन्दुस्थानको नागपाशमें बाँधना शुरू कर दिया। सन् १९१० ई०में ही प्रेस-ऐक्ट क़ानून बन गया। सन् १९१३ ई०में उसके ख़िलाफ़ बड़े ज़ोरोंसे कोलाहल मचा और कांग्रेसके मञ्चसे न जाने कितनी बार उसका विरोध किया गया।

सन् १९१४ ई०में गद्देपर आरामसे लेटे हुए योरोपको जर्मनीकी सङ्गीनोंने चौंकाकर उठा दिया। जर्मनीके गर्जनसे एक वार सारा संसार दहल उठा। हिन्दुस्थानवाले अपना रोना-धोना भूलकर वृटिश-साम्राज्यके क़िलेकी रक्षामें जी-जानसे जुट गए। भारतके असंख्य अनमोल लालोंने अपनी स्त्रियोंका सिन्दूर उतारकर अँग्रेज़ और फ़ान्सीसी स्त्रियोंका सुहाग सँवारा। अंग्रेज भले ही हमें कायर कहें, असभ्य कहें और अयोग्य कहें पर योरोपके समरक्षेत्रमें जब विजयश्री दौड़ी हुई क़ैसर विलियमकी ओर चली जा रही थी उस समय भारतीयोंनेही अपने वीर शरीरोंकी पालकीपर उसे सम्मानके साथ लन्दन पहुँचाया था। वीर हिन्दुस्थानियोंकी उस अमर सहायताका वदला कोई क्या देगा।

इन्हीं दिनों सन् १९१४ ई०में ही मद्रास कांग्रेस हुई और उसमें यह प्रस्ताव हुआ कि जिन देशोंसे हिन्दुस्थानी लोग निकाले जाते हों उनका माल यहाँ न मँगाया जाय। श्रीमती एनी बेसेण्टने इन्हीं दिनों लैार्ड पेण्टलैण्डके साथ होमरूल आन्दोलन शुरू किया। उन्होंने मदनपल्लीकी सारी थियोसोफ़िकल शिक्षण-संस्थाओंका सम्बन्ध सरकारसे तोड़ दिया। श्री बी. पी. वाडिया और श्री सी. पी. रामस्वामी ऐयरने होमरूल लीगका ज़ोरोंसे सङ्गठन किया। 'न्यू इण्डिया' पत्र इस होमरूल आन्दोलनका 'लाउड स्पीकर' वना। सरकारने फिर अपना डण्डा उठाया और १६ जून सन् १९१७ ई०को श्रीमती एनी बेसेण्ट, अरण्डेल और वाडिया महोदय उटकमण्डमें नज़रबन्द कर लिए गए। मालवीयजीने भी होमरूल आन्दोलनको लेकर दैारे किए और व्याख्यान दिए। उस समय मालवीयजीके होमरूलके व्याख्यानोंको सुनकर एक शायर साहवने फ़रमाया था—

कहते हैं मालवीजी हम होमरूल लेंगे।
दीवाने हो गए हैं गूलरसे फूल लेंगे॥

उसीका मुँहतोड़ जवाव कविवर मैथिलीशरण गुप्तजीने दिया—

जब होमरूल होगा बरवैङ्क जन्म लेंगे।
हाँ-हाँ जनाव तब तो गूलर भी फूल देंगे॥

श्रीमती एनी बेसेण्टके क़ैद हो जानेपर भी मालवीयजीके होमरूल आन्दोलनपर सरकारकी नज़र न गई। मालवीयजीको देश अपना समझता था और सरकार अपना हितैषी समझती थी।

श्रीमती बेसेण्ट जब नज़रबन्द हुईं तो उनके आन्दोलनने और ज़ोर पकड़ा। श्री मुहम्मद अली जिन्ना भी उसमें शामिल हो गए। सरकारी हुक्म और खुफ़िया पुलीसकी आँखोंमें धूल झोंककर भी वे अपने 'न्यू इण्डिया' और 'कौमन वील' नामक पत्रोंमें बराबर लेख लिखती रहीं। जितने दिन ये नज़रबन्द रहीं उतने दिन आन्दोलन और भी ज़ोरोंसे चला जा रहा था, पर सरकार उनको छोड़नेसे पहले अपनी नाक टटोलती जा रही थी। श्री मौण्टेग्यूने अपनी डायरीमें एक कहानी लिखकर उसका एक परिणाम निकाला था। उन्होंने लिखा था :—"शिवने पार्वतीजीके बावन टुकड़े किए, किन्तु फिर देखा तो मालूम हुआ कि एक नहीं बावन पार्वतियाँ मौजूद हो गई हैं। ठीक यही दशा भारत-सरकारकी हुई, जब उसने श्रीमती बेसेण्टको नज़रबन्द किया।"

इधर भारतमें होमरूलका तूफ़ान मचा हुआ था, उधर लन्दनमें एक शाही युद्धपरिषद्की बैठक हुई जिसमें भारतकी ओरसे महाराज बीकानेर और सर सत्येन्द्रप्रसाद सिंह शामिल हुए और इनकी बड़ी प्रशंसा हुई। इधर अप्रैल सन् १९१७ ई० को कांग्रेसकी महासमितिकी बैठक हुई कि एक शिष्ट समिति विलायत भेजी जाय और वहीं कांग्रेसका अधिवेशन हो। इस शिष्ट मण्डलमें मालवीयजीका नाम भी पेश हुआ।

इसीके पहले माननीय अम्बिकाचरण मजूमदारकी अध्यक्षतामें लखनऊमें कांग्रेस हुई। यह कांग्रेस भारतमें राजनीतिक दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी समझी जाती है। २२, २३, २४ अप्रैल सन् १९१६ ई० को प्रयागमें पण्डित मोतीलाल नेहरूके निवास-स्थानपर

कांग्रेस और मुस्लिम लीगके सदस्योंकी सम्मिलित बैठक की गई। बड़ी गर्मागर्मी बहसें हुईं पर हिन्दू-मुस्लिम एकता-सम्बन्धी फ़ैसला हो गया। लखनऊकी कांग्रेसको देखकर यह जान पड़ने लगा था कि भारतके दिन फिर गए। देखा गया कि सन् १९०७ ई० के बाद कांग्रेसके मञ्चपर लोकमान्य तिलक और श्री खापर्डे, रासबिहारी घोष और सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी एक ही साथ बैठे हुए हैं। फिर मेल हो गया। इस कांग्रेसमें सर जेम्स मेस्टन् भी अधिकारी वर्ग और अपनी धर्मपत्नीके साथ शामिल हुए थे।

इधर कुछ प्रान्त सत्याग्रहपर तुले हुए थे पर डा० एनी बेसेण्ट उसके लिये तैयार नहीं थीं, क्योंकि मौण्टेग्यू साहबके भारत-मन्त्री बननेकी आशा हो रही थी और वे भारत-मन्त्री बन भी गए। अब तो बड़ी आशा हुई और उन्होंने २० अगस्त सन् १९१७ ई० को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-भार देनेकी घोषणा कर दी। १६ सितम्बरको डा० एनी बेसेण्ट भी रिहा हो गई थीं। और २६ दिसम्बर सन् १९१७ ई० को उन्हींकी अध्यक्षतामें कलकत्तेमें कांग्रेसकी बैठक हुई। इसके बाद बम्बईमें विशेष अधिवेशन हुआ और उसके बाद फिर दिल्लीमें मालवीयजीकी अध्यक्षतामें कांग्रेस हुई। उनकी वक्तृता बड़ी ज़ोरदार हुई। उसका विषय वही था—'मौण्टेग्यू चेम्सफ़ोर्ड योजना।' मालवीयजीने मौण्टेग्यू चेम्सफ़ोर्ड सुधारोंपर एक सुघड़, गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण लेख भी लिखा था और उसके गुणों तथा अवगुणोंपर भी काफ़ी प्रकाश डाला था।

यद्यपि बहुत दिनोंसे लोग 'किसान-किसान' चिल्ला रहे थे और उन्हींका भला करनेका दावा भी करते थे पर कांग्रेसके पण्डालमें उनके लिये कोई जगह न थी। कांग्रेसमें रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े नज़र आते थे, बड़े-बड़े लोगोंकी मजलिस थी, फटे-पुराने कपड़ेवाले बेचारे ग़रीब गँवार कहलानेवाले किसानका वहाँ प्रवेश नहीं था। कांग्रेसमें टिकट भी बड़ा गहरा लगता था। जिसे दोनों जून भरपेट भोजन न मिलता हो वह टिकटके लिये पैसे कहाँसे लावे। मालवीयजीने पहली बार कांग्रेसका द्वार इन बेचारे दरिद्र किसानोंके लिये खोल दिया और दो सौ किसान बिना टिकट कांग्रेसके पण्डालमें प्रवेश किए गए। पहली ही बार मालूम हुआ कि कांग्रेसमें किसानोंका भी स्थान है।

दिल्ली कांग्रेससे भारतको कुछ शान्ति नहीं मिली थी क्योंकि उसके बाद ही ६ फ़रवरी सन् १९१९ को विलियम विन्सेण्टने रौलट बिलका दर्शन कराया। मालवीयजीने इस अवसरपर जो बड़ी व्यवस्थापिका सभामें इस बिलपर भाषण दिया था वह उनके व्याख्यानोंमें प्रमुख समझा जाता है। निरन्तर साढ़े चार घण्टे तक उन्होंने व्याख्यान दिया, बहुत कहा सुना, सब पहलू समझाए पर पहला बिल मार्चके तीसरे सप्ताहमें पास हो गया और दूसरा वापस ले लिया गया। उधर गाँधीजीने घोषणा की कि यदि रौलट कमीशनकी बातें मानी गईं तो सत्याग्रह शुरू हो जायगा। गान्धीजीका दौरा हुआ। लोगोंने जी खोलकर उनका स्वागत किया। गांधीजी मैदानमें उतर पड़े। ३० मार्च सन् १९१९ का दिन हड़तालके लिये रक्खा गया पर बदल कर ६ अप्रैल कर दिया गया। पर दिल्लीमें ३० मार्चको ही जलूस निकला और गोली भी चली। ६ अप्रैलको हिन्दुस्तानभरमें प्रदर्शन हुआ। हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर इस आन्दोलनमें लगे हुए थे।

इसी बार पञ्जाबमें जो दुर्घटनाएँ हुईं उन्होंने मानो फूसमें आग लगा दी। लौर्ड कर्ज़न भी जो काम नहीं कर सके थे वह पञ्जाबके निरङ्कुश शासक माइकेल ओडायरने पूरी कर दी। यहींसे कांग्रेसका युद्ध युग प्रारम्भ हो जाता है। यद्यपि कांग्रेसने सरकारका जो सामना किया है उसे युद्ध नहीं कहना चाहिए किन्तु वह संसारके इतिहासमें एक नई तरहका युद्ध था जिसमें योद्धालोग बिना हथियार लिए जाते हैं और बन्दूकोंकी गोलियोंका फाग खेलकर या तो खेत रहते हैं या वीरोंकी तरह घायल होकर आते हैं और मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकालते।

युद्ध-युग

कल्पना तो कीजिए कि एक स्थानपर हज़ारों आदमी इकट्ठे हैं, जिनमें छः महीनेके गोदीके बालकोंसे लेकर अस्सी बरस तकके बुड्ढे हैं, फिर उनको एक बाड़ेमें बन्द करके उनपर गोली चलाई जाय और बम बरसाए जायँ, वे लोग जब अपने प्राण बचा-बचाकर इधर-उधर दौड़ रहे हैं उस समय उन्हें ताक-ताककर गोली मार दी जाय, और थोड़ी ही देरमें जिस जगह चलते, फिरते, हँसते, बोलते ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठ सृष्टि—मनुष्यके समूह—मुर्दोंके ढेर बन जायँ तो भला आप बताइए इसे आप किस नामसे पुकारेंगे। और फिर सोचिए कि नगरके बड़े धनी-मानी पुरुषोंको चींटीकी तरह रेंगकर अपने मकानमें जानेको मिले, खुले आम सड़कोंपर नङ्गा करके उन्हें बेतें लगाई जायँ, छोटे-छोटे बच्चोंको धूपमें मीलों दौड़ाया जाय तो बताइए आप इसे क्या समझेंगे? आपने रावण और कंसकी कथाएँ पुराणोंमें पढ़ी होंगी। व्यासोंके मुखसे ऐसी-ऐसी बातें सुनकर आपके हृदय न जाने कितनी बार काँप उठे होंगे। सचमुच मनुष्यका हृदय तो ऐसी बातोंकी कल्पना भी नहीं कर सकता। पर बात सच है। जिनपर वे मुसीबतें आ चुकी हैं, जिन्होंने आँखोंसे इन घटनाओंको देखा है वे अभी जीवित हैं। कभी आप अमृतसर चले जायँ तो कितने ही बूढ़े आँखोंमें आँसू भरकर उन दिनोंकी कहानी सुनावेंगे। यह भी नहीं तो आप चुपचाप जलियानवाले बाग़में पहुँच जाइए। दीवारोंपर जो गोलियोंके छेद बने हुए हैं वे दिन-रात मुँह खोले हुए अपना इतिहास सुनाया करते हैं।

११ नवम्बर सन् १९१८ ई० को जर्मनीने सफ़ेद झण्डा फहराया। महायुद्ध रुक गया। सन्धि हो गई। उसीके बाद ही मालवीयजीकी अध्यक्षतामें दिल्ली कांग्रेस हुई थी। दमनकारी क़ानूनोंको उठाने और राजनीतिज्ञ क़ैदियोंको छोड़नेके प्रस्ताव भी पास किए गए थे। हिन्दुस्थान बड़ी आशा लगाए बैठा था। वह क्या जानता था कि अदृष्ट उसकी ओर हँसकर कह रहा था—

वे न इहाँ नागर बढ़ी जिन आदर तव आव।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गँवई गाँव गुलाब॥

पर हिन्दुस्थानका क्या दोष था। उस समयके प्रधान मन्त्री लौयड जौर्जने बड़ी तारीफ़ की थी और 'हिन्दुस्थानका ख़याल रखने' का वचन दिया था। गुलामका काम है ख़ून देकर अपने मालिककी सेवा करना। मालिकके खुश होनेका अर्थ यह है कि गुलाम गुलामी करनेके लिये अत्यन्त योग्य है। गुलाम अगर मालिकसे अपनी सेवाओंका इनाम चाहे तो उसकी मूर्खता है, सिड़ीपन है। मालिक उसे ज़िन्दा रहने देता है यही क्या कुछ कम इनाम है? बेचारा भोला-भाला हिन्दुस्थान!

उसे इनाम मिल गया। ६ फ़रवरी सन् १९१९ ई० को विलियम विएसेएटने बड़ी कौन्सिलमें रौलेट बिलोंको पेश किया। ये दो बिल थे। एकके अनुसार क्रान्तिकारियोंके मुक़दमें तीन जजोंकी अदालतमें पेश होकर जल्दी फ़ैसला हो जायँ, जिसकी अपील ही न हो सके। राज्यके विरुद्ध काम करनेका जिनपर सन्देह हो उन्हें पकड़ लिया जाय, रोक रक्खा जाय, ज़मानत ली जाय, इत्यादि। इसके लिये कहा जाता है कि यह ऐसा क़ानून था कि जिसमें "न अपील, न वकील, न दलील।" दूसरे क़ानूनके द्वारा किसी राजद्रोही सामग्रीका प्रकाशन या वितरण करना ऐसा अपराध क़रार दिया जाता था जिसमें सज़ा हो जाती, इत्यादि। पहले कह चुके हैं कि मालवीयजीने इन

बिलोंपर साढ़े चार घण्टे लगातार व्याख्यान दिया पर बिलका पहला भाग पास हो गया। दूसरा भाग सरकारने वापस ले लिया।

बिल पास होते ही सत्याग्रहकी घोषणा हो गई। ६ अप्रैलको देश भरमें हड़ताल मनाई गई। पञ्जाबके गवर्नर सर माइकेल ओडायर अपने सैनिक बलपर कांग्रेसको पञ्जाबमें नहीं घुसने देने चाहते थे। इतिहासके पन्ने चिल्ला-चिल्लाकर कहते थे कि तलवारके बलपर सत्यको नहीं जीता जा सकता था, पर माइकेल ओडायरका कोई दोष नहीं था। राजमद किसको पागल नहीं बनाता। १० अप्रैल सन् १९१९ ई० को प्रातःकाल ही अमृतसरके ज़िला-मजिस्ट्रेटने कांग्रेसके नेता डाक्टर किचलू और डाक्टर सत्यपालको बँगलेपर बुलाकर उन्हें गिरफ़्तार करके वहाँसे चुपचाप कहीं भेज दिया। यह समाचार सारे शहर भरमें फैल गया, लोग ठट्ट-के-ठट्ट मजिस्ट्रेटके बँगलेकी ओर चले पर फ़ौजी सिपाहियोंने उन्हें रोक लिया, गोली चली, दो एक आदमी मरे और बहुतसे घायल हो गए। चोट खाकर शेर और भी भयङ्कर हो जाता है। यही दशा उस भीड़की भी हुई। भीड़ने रास्तेमें पाँच अंग्रेज़को मारा, कई सरकारी इमारतोंको जला दिया। १२ अप्रैलको कसूरमें, १४ को गुजरानवालामें, तथा लाहौर और कलकत्तेमें भी उपद्रव हो गए। इधर इन मामलोंको सुनकर गान्धीजी सरकारकी आज्ञा तोड़कर पञ्जाब आ रहे थे। वे गिरफ़्तार कर बम्बई भेज दिए गए। उनकी गिरफ़्तारीसे अहमदाबादमें भी कई उपद्रव हुए, और वीरमगाँव और नडियादमें भी उपद्रव हो गया। गान्धीजीने अपनी भूल स्वीकार कर ली। जो हिन्दुस्थानी अभी थोड़े दिन पहले अग्निवर्षाके सामने खड़े होकर बन्दूकें दाग रहे थे उन्हें यह प्रेमके युद्धकी बात कुछ समझमें ही नहीं आई। अशिक्षित सेना लेकर युद्ध करनेकी भूल गान्धीजीने जल्दी ही समझ ली और अपनी सेना लौटा ली।

पर पञ्जाबके अधिकारियोंकी आँखोंसे ख़ून बरस रहा था, वे बदला लेनेपर उतारू थे। उन्होंने फ़ौजी क़ानून जारी कर दिया। यद्यपि सरकारने फ़ौजी क़ानून १० अप्रैलसे ही शुरू कर दिया था किन्तु उसकी घोषणा की १३ अप्रैलको। उस दिन हिन्दुओंका सम्वत्सर दिन था। जलियाँवाले बाग़में सभा हुई। इस बाग़के चारों ओर मकान हैं, एक ओर सँकरा दरवाज़ा है—इतना सँकरा कि एक गाड़ी भी उसमें होकर नहीं जा सकती। बाग़में बीस हज़ार पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे इकट्ठे थे। अचानक जनरल डायरने पचास गोरे और सौ हिन्दुस्थानी सिपाहियोंके साथ प्रवेश किया। उसने तितर-बितर होनेकी आज्ञा दी पर बाहर निकलनेका मार्ग नहीं था। जनरल डायरने गोली चलानेकी आज्ञा दे दी। सोलह सौ गोलियाँ चलाई गईं। फूलसे कोमल बालक, बेचारी अबला नारियाँ और निःशस्त्र पुरुष मुर्दा बनकर गिरते चले जा रहे थे। उनकी चिल्लाहट, उनकी पुकार, बन्दूकोंने शान्त कर दी। जलियाँबाग़ मसान बन गया, जहाँ सरकारी बयानके अनुसार चार सौ मरे तथा एक ओर दो हज़ारके बीच घायल हुए। और ये घायल प्राणी रात भर खुले बाग़में तड़पते रहे, क्योंकि कोई उन्हें पानी पिलानेवाला नहीं रह गया था। नलोंका पानी बन्द कर दिया गया, बिजलीका तार काट दिया गया। लोगोंको पेटके बल रेंगाया गया, खुलेआम बेंत लगवाए गए। अन्धाधुन्ध सज़ाएँ दी गईं।

सितम्बर सन् १९१९ ई० में वायसरायने इन काण्डोंकी जाँचके लिये हण्टर कमिटी नियुक्त की, साथ ही उस काण्डमें जिन अफ़सरोंने अत्याचार किए थे उन्हें क्षमा दिलानेके लिये १८ सितम्बरको इण्डेम्निटी बिल आया। मालवीयजीने इसका बड़ा विरोध किया। पाँच घण्टे लगातार बोले। उसे टलवानेकी बड़ी कोशिश की पर सब व्यर्थ हुआ। वह मालवीयजीका व्याख्यान बड़ा भव्य हुआ और भारतीय व्यवस्थापिका सभाके इतिहासमें बड़ा महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। जिस निर्भयता और साहसके साथ मालवीयजीने उस बिलका विरोध किया

है और जैसे-जैसे अकाट्य प्रमाण दिए उसका सरकारने कुछ जवाब भी न दिया। परन्तु वे शब्द, वे सब तर्क सभा-भवनमें गूँजते रहे और भारतके आकाश-मण्डलमें गूँजते रहे पर सरकारने उनका मोल न समझा। क़ानून पास हो गया।

मालवीयजी और पण्डित मोतीलाल नेहरूजी एकदम पञ्जाब दौड़े गए और वहाँ जाँच करनी शुरू की। महात्मा गान्धी स्वामी श्रद्धानन्द आदि भी शामिल थे। मालवीयजीके आनेसे लोगोंको बड़ा ढाढ़स हुआ। मालवीयजीने सेवा-समितिके द्वारा सभी पीड़ितोंको मदद दी। जिनके सम्बन्धी मर गए थे उनके पालन-पोषणका भी प्रबन्ध किया। बड़ी खोजके साथ जाँच की गई।

मालवीयजीने प्रधानमन्त्री, भारत-मन्त्री और लौर्ड सिंहको तार दिया कि फ़ौजी क़ानूनके अनुसार जो सज़ाएँ दी गई हैं वे जाँच समाप्त होने तक स्थगित रक्खी जायँ। ये लोग जब जाँच कर रहे थे उसके बाद ही सरकारी जाँचकमेटी भी बैठी। दोनों कमेटियाँ एक साथ काम करने लगीं, पर थोड़े ही दिनोंमें दोनों अलग-अलग हो गईं।

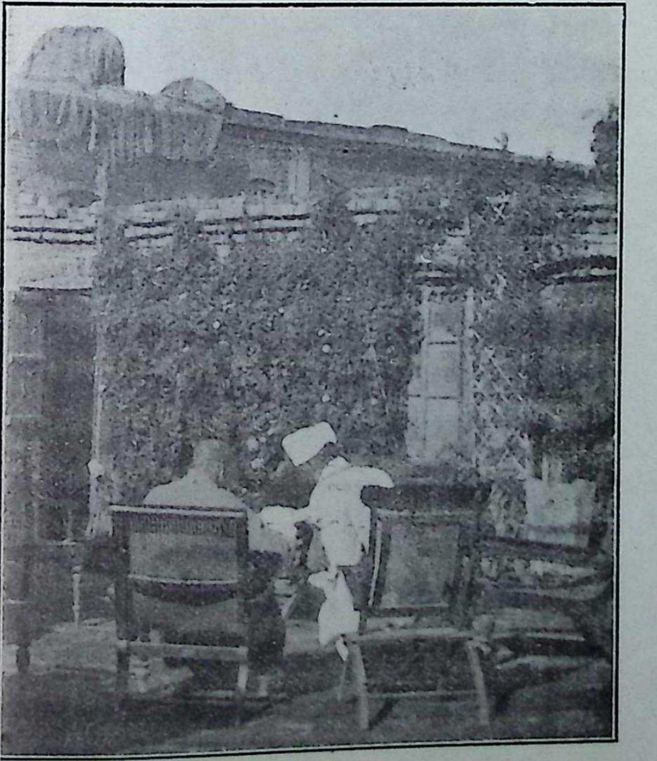

मालवीयजी और स्वामी श्रद्धानन्दजी
पञ्जाब हत्याकाण्डकी जाँचमें।

इधर दोनों कमेटियाँ जाँच कर ही रही थीं कि पण्डित मोतीलाल नेहरूके सभापतित्वमें अमृतसरमें कांग्रेस हुई। उससे दो-तीन दिन पहले ही २४ दिसम्बर सन् १९१९ ई० को शाही फ़रमान निकला, सुधार क़ानूनको सम्राट्की सम्मति मिली और पञ्जाब-काण्डके सम्बन्धमें जिनको सज़ाएँ मिली थीं वे छोड़ दिए गए। कांग्रेस पण्डालमें उन लोगोंके आनेसे लोग उछल पड़े। इधर सुधारोंमें कुछ तत्व नहीं था, जनरल डायरने जो हण्टर कमेटीके सामने बयान दिए थे उनसे भी लोग भड़के हुए थे। फिर भी मालवीयजी और गान्धीजीने कहा कि सरकारने जो कुछ दिया है उसे कांग्रेसको स्वीकार कर लेना चाहिए चाहे वह कितना भी कम क्यों न हो। इसी बीच प्रधान मन्त्रीने मुसलमानोंको तुर्की तथा अन्य धार्मिक स्थानोंकी रक्षाके बारेमें जो वचन दिए थे उनमें पोल दिखाई पड़ी। ख़िलाफ़तका झण्डा खड़ा हो गया। गान्धीजी अब मैदानमें आ कूदे और उन्होंने समझ लिया कि ये गरजनेवाले बादल बरसेंगे नहीं।

अचानक ३१ जुलाईकी भयङ्कर रात आई—बड़ी डरावनी, बड़ी विकराल—और भारतके राजमुकुटके सबसे अधिक प्रकाशमान हीरे—लोकमान्य तिलकको निगल गई। लोकमान्य तिलककी मृत्यु प्रत्येक भारतीयने अपने सगेकी मृत्यु समझी। सारे देशमें ऐसा जान पड़ा मानो प्राण ही न रहे हैं, जैसे किसी अनाथका सहारा न रहा हो या किसीके बुढ़ापेकी लकड़ी छिन गई हो। सारे राष्ट्रने अपने आँसुओंसे उस महापुरुषका श्राद्ध किया। यों तो बहुतसे महापुरुष संसारसे विदा हो गए पर लोकमान्य तिलककी मृत्युसे जैसा शोक देशमें फैला वैसा शायद कभी देखनेमें नहीं आया। उनकी चिताकी अग्नि बुझने भी न पाई थी कि महात्मा

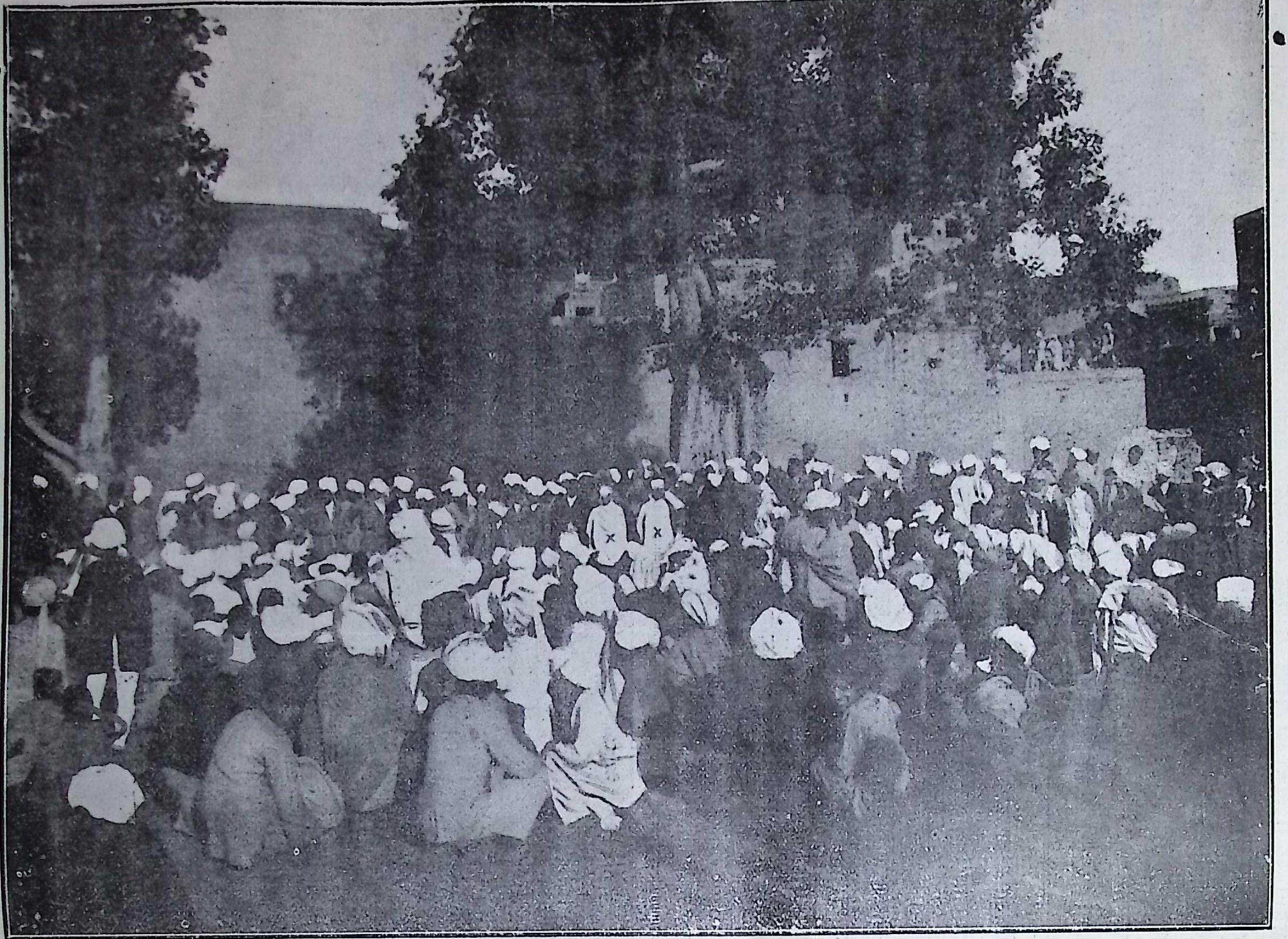

मालवीयजी और महात्मा गान्धी पञ्जाब हत्याकाण्डकी जाँचके समय। बीचमेँ उनपर × चिन्ह लगा है।

मालवीयजी पञ्जाबकी जाँचके अवसरपर अमृतसरम ।

गान्धीने अगले दिन ही पहली अगस्त सन् १९२७ ई० को सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेकी घोषणा कर दी। असहयोग शुरू हो गया। पर गान्धीजीको शायद यह ध्यान न था कि फ़्रान्सके युद्धक्षेत्रसे लौटे हुए जर्मनीकी अग्निवर्षामें पराक्रम दिखानेवाले वीर भला डण्डोंसे कैसे पिट सकेंगे। गान्धीजीका शान्तियुद्ध एक नई बात थी। लोगोंने कभी ऐसा युद्ध देखा भी नहीं था जिसमें लोग हाथ जोड़कर शत्रुके सामने खड़े हो जायँ, वे डण्डे बरसावें और ये उनका हाथ मलें कि उन्हें कष्ट तो नहीं होता, वे गोलियाँ चलावें और ये देह लहू-लुहान होनेपर भी उसे फागकी पिचकारियाँ समझें। महायुद्धसे भी बड़ा वह युद्ध था। सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेकी घोषणा हुई और युद्ध प्रारम्भ हो गया। एक ओर एक लङ्गोटा पहने, झण्डा लिये हुए एक मुट्ठी भर हड्डियोंवाला महात्मा था, उधर दूसरी ओर बृटिश साम्राज्य अपनी सेना, पुलीस और अस्त्र-शस्त्र लिये खड़ी थी। फिर एक बार वशिष्ठ और विश्वामित्रका युद्ध देखनेमें आया। देखते-देखते सरकार दमन करने लगी। गोलियाँ चलीं, लाठियाँ चलीं, डण्डे चले। जेल भरने लगे। लोगोंकी जायदादें ज़ब्त हुईं। स्त्रियाँ, पुरुष और बालक 'महात्मा गान्धीकी जय' पर प्राण न्यौछावर करनेको निकल पड़े। गान्धीजी देवता बन गए। लड़कोंने स्कूल छोड़े, वकीलोंने वकालत छोड़ी, कितने लोगोंने सरकारी नौकरीको लात मारी। अजीब दिन थे वे भी। उस समय सभी यह सोच रहे थे कि स्वराज्य बस आ ही रहा है।

असहयोग आन्दोलनको नियमित और उचित समझते हुए भी मालवीयजी उसे समयोचित नहीं मानते थे। वे तबतक भी यही समझते रहे कि रोगी कमज़ोर है, इतनी तेज़ दवा वह हज़म न कर सकेगा। इलाहाबादमें देशकी तत्कालीन दशापर भाषण देते हुए मालवीयजीने कहा था:—

"सरकारी स्कूल और कौलेजोंका बहिष्कार करना ठीक नहीं है, यह बड़ा ग़लत रास्ता है कि हम स्कूलोंसे अपने बच्चोंको उठा लें। स्कूलमें बच्चोंको भेजनेसे सरकारको कोई मदद नहीं मिलती। उससे तो लोगोंका ही लाभ होता है। बच्चे शिक्षाके लिये तड़प रहे हैं। जब देशी या राष्ट्रीय संस्थाएँ स्थापित हो जायँ तभी उनको वहाँसे उठाना चाहिए। स्कूलोंके बहिष्कारसे उच्च कर्मचारियोंपर भी कोई असर नहीं पड़ेगा क्योंकि वे बच्चोंकी शिक्षाकी कब कोई परवाह करते हैं।"

इसी समय किसीने उनसे पूछा कि आप क्यों नहीं गान्धीजीका साथ देते? इसके उत्तरमें उन्होंने जवाब दिया कि गान्धीजी मनुष्य ही तो हैं। वह भी भूल कर ही सकते हैं। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि अभी गान्धीजी देशको ग़लत रास्ता बतला रहे हैं। मैं गान्धीजीकी आज्ञा माननेकी बजाय अपनी आत्माके कहनेका पालन करूँगा।

राष्ट्रीय महासभाकी २७ जुलाई सन् १९२१ ई० की बैठकमें, जो बम्बईमें हुई थी, उसमें सत्याग्रह और बायकाटपर वाद-विवाद हुआ। इसमें एक प्रस्ताव पास हो गया कि प्रिन्स औफ़ वेल्सका बायकाट किया जाय। मालवीयजीने उसका विरोध करते समय कहा कि प्रिन्स औफ़ वेल्सका भारत-आगमन केवल एक पुरानी प्रथाका पालन मात्र है। उनका स्वागत करके हम सरकारका साथ नहीं देना चाहते। फिर हम यह सोचते हैं कि प्रिन्सके आगमनसे भारतका बहुत कुछ हित होनेकी आशा है।

एक ओर जब सारा देश क्षुब्ध था तब राजकुमार प्रिन्स औफ़ वेल्सने भारतमें पैर रक्खे। जनता आपेसे बाहर हो गई थी, जहाँ-जहाँ राजकुमार गए वहाँ-वहाँ काले झण्डोंने उनका स्वागत किया। वास्तवमें राजकुमारसे तो किसीकी शत्रुता न थी पर वे बृटिश सरकारके सम्राट्के पुत्र थे। लोगोंको भड़कानेके लिये क्या इतना कम था? पर मालवीयजीने यह समझा कि चाहे शत्रु ही क्यों न हो, यदि वह अतिथि होकर

आवे तो उसको आसन-पानी देना ही चाहिए। जिस समय पण्डित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धुदास और मौलाना आज़ाद पिञ्जड़ोंमें बन्द थे उस समय मालवीयजी हिन्दू विश्वविद्यालयमें राजकुमारका स्वागत कर रहे थे और उन्हें उपाधि दे रहे थे। मालवीयजीके इस व्यवहारसे लोग बड़े नाराज़ हुए, बड़ी गालियाँ दीं, पर मालवीयजीके कानोंतक पहुँचकर वे वापस लौट गईं, हृदय तक न पहुँच सकीं। जिस हृदयमें भारतकी ममता चुप मारकर बैठी थी उसी हृदयमें उन्होंने प्रिन्स औफ़ वेल्सके मानको भी ले जाकर बैठा दिया। यही महापुरुषकी महत्ता थी।

इन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय भी डोल उठा। विद्यार्थियोंने युनिवर्सिटी छोड़ दी। गान्धीजी और मालवीयजीका साथ-साथ व्याख्यान हुआ। राजा-महाराजा लोग गान्धीजीका व्याख्यान सुनकर उठ खड़े हुए। पर मालवीयजी अचल समाधि लगाए बैठे थे। दूसरा होता तो पागल हो उठता। उस समय जान पड़ता था कि हिन्दू युनिवर्सिटी अब गई, अब गई। पर मालवीयजीने अपने अनुपम धीरज और कुशलतासे उसे बचा रक्खा। उन दिनों एक तस्वीर बाज़ारमें बिकती थी जिसमें हिन्दू विश्वविद्यालयको एक शिवमूर्त्ति बनाया था जिसे मालवीयजी मज़बूतीसे सँभाले हुए हैं और श्रीमती बेसेण्ट उनके ऊपर फूल छोड़ रही हैं। बस इसीसे समझ लीजिए कि अपने सिद्धान्तकी रक्षा करके लोगोंकी दृष्टिमें मालवीयजी कहाँ पहुँच चुके थे। जब श्रीमती बेसेण्टने रौलट बिलका समर्थन किया था तो लोगोंने उनकी सारी सेवाओं और उनके त्यागके बदलेमें उन्हें "पूतना" की उपाधि दे दी थी, पर मालवीयजीको लोग न जाने क्यों कोई ऐसी उपाधि न दे पाए। दुनिया उसीका आदर करती है जो उसके मनके अनुसार चले। लोग समझने लगे कि 'मालवीयजी सरकारके पिट्ठू हैं, जेलसे डरते हैं, कट्टर ब्राह्मण हैं, जेलमें रहेंगे कैसे ?'

लौर्ड रीडिङ्ग मालवीयजीको बहुत मानते थे। मालवीयजीने उनको सलाह दी कि गान्धीजीसे मिलकर सब मामला तै कर लें नहीं तो व्यर्थमें बखेड़ा मचेगा। देशबन्धु दाससे जेलमें गान्धीजीकी बातचीत हुई। मालवीयजीने इधर गान्धीजीको तैयार किया उधर लौर्ड रीडिङ्गको। दिसम्बर सन् १९२१ ई० में गान्धीजीकी लौर्ड रीडिङ्गसे बातचीत हुई और बहुतसी बातें तै हो गई थीं। पर सरकारकी नीति नहीं बदली। गान्धीजीने वायसरायको लिखा कि यदि सरकारकी नीति एक सप्ताहमें न बदली तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू होगा। इसी बीच ४ फ़रवरी सन् १९२२ ई० को गोरखपुर ज़िलेमें चौरीचौरामें एक भीड़ने पुलीस थानेमें आग लगा दी जिसमें पुलीसके सिपाही जलकर भस्म हो गए। मालवीयजी बम्बई जा रहे थे। ट्रेनमें यह समाचार पढ़ा और काँप गए। जान पड़ा कि जैसे उन्हें बिजलीका तार छू गया हो। बारदौलीमें कांग्रेसकी कार्य्यसमितिकी बैठक हुई। मालवीयजीने बड़े करुण शब्दोंमें चौरीचौराकी घटनाका ज़िक्र करके गान्धीजीको समझाया। बारदौलीका युद्ध समाप्त कर दिया गया और असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन वहीं बारदौलीमें खोदकर गाड़ दिया। लोगोंका यही ख़याल बना रहा कि 'बड़े भाई' के कहनेमें आकर ही गान्धीजीने असहयोगको स्थगित किया। सारे देशने गान्धीजीपर कीचड़ उछाली। मालवीयजी भी उससे न बच सके। जब फ़ौज लड़ रही हो और विजय पानेके मौक़ेपर उन्हें रोक दिया जाय, उस समय जो क्रोध और असन्तोष फ़ौजी सिपाहियोंमें होता है वही हुआ। लोगोंने कहा कि महात्माजीने आन्दोलन स्थगित करके बड़ी भारी ग़लती की है पर गान्धीजी यह बात समझ गए थे कि अशिक्षित और अनियमित सेना लेकर लड़ना बुद्धिमानी नहीं है। मालवीयजीका अनुमान ठीक था—देश अहिंसाके युद्धके लिये अभी तैयार नहीं था।

इसीके बाद गान्धीजी पकड़े गए और उन्हें पाँच वर्षकी सज़ा मिली। बिना सेनानायकके जो दशा

फ़ौजकी होती है वही दशा महात्मा गान्धी और अन्य नेताओंके पकड़े जानेपर देशकी हुई। मालवीयजी यद्यपि असहयोग आन्दोलनको असमयकी बात समझते थे किन्तु वे सरकारकी दमननीतिको सहन कर सके, उस समय देशने फिर मालवीयजीकी ओर देखा। सब काम छोड़कर मालवीयजी व्याकुल फ़ौजको ढाढ़स बँधानेके लिये निकल पड़े। सरकार इस बातपर तुली हुई थी कि हिन्दुस्थानकी इस जीती-जागती संस्थाको ऐसा कुचल दिया जाय कि वह फिर सिर ही न उठा सके। पर मालवीयजी उन लोगोंमें नहीं हैं जो अपने मतका विरोध होनेपर राष्ट्रकी हत्या होते देख सकें। रात-दिन एक करके साठ बरसकी अवस्था और दुर्बल शरीर लेकर वे हिम्मत हारी हुई जनताको चुमकारते, पुचकारते, हिम्मत बँधाते, पेशावरसे डिब्रूगढ़ (आसाम) तक घूमे। स्वराज्य और स्वदेशीका उपदेश दिया और हिन्दू-मुस्लिम एकताका मर्म समझाया। उनकी इस यात्रामें सरकारने कई बार उनपर दफ़ा एक सौ चौवालीस लगाई लेकिन मालवीयजीने एक बार भी उसका पालन नहीं किया। सरकारने भी न जाने क्यों उन्हें बन्दी न किया। चाहे ऊपरसे सरकार भले ही कहती हो कि उनके व्याख्यानसे उपद्रव होगा, अशान्ति होगी, लेकिन मनमें वह सदा यही समझती रही थी कि मालवीयजीके व्याख्यानसे कभी अशान्ति नहीं हो सकती। न जाने कितनी बार मालवीयजीके उँगली उठाने मात्रपर सभाओंमें सन्नाटा छा गया, उनके खड़े होते ही झगड़ा समाप्त हो गया और उनकी मनोहर वाणीके सुनते ही कितने ही टूटे हुए दिल मिल गए, फिर भला उनसे यह आशङ्का ही क्यों की गई? गोरखपुरमें चौरी-चौरामें जब आप मद्यपान-विरोधके विषयमें व्याख्यान दे रहे थे उसी समय उन्हें सरकारी आज्ञा मिली कि वे वहाँ भाषण न दें। पर उन्होंने न माना और वहाँ मद्यपानसे दूर रहने और विदेशी वस्त्र न ख़रीदनेका उपदेश देकर आप भटपूर गए। वहाँ भी आपका व्याख्यान हुआ। आपके गोरखपुर लौटते ही आपको फिर आज्ञाएँ मिली, जिनमें आपको पूरे गोरखपुर ज़िलेमें व्याख्यान देनेके लिये मनाही की गई। किन्तु फिर भी आपने बरहज, देवरिया, रामपुर, कासिया, पड़रौना, गोरखपुर और ख़लीलाबाद—इतने स्थानोंमें व्याख्यान दिए ही। जिन सज्जनोंको मालवीयजीसे जाति-वैमनस्य फैलानेकी आशङ्का हुई थी वे यदि इनमेंसे एक भी व्याख्यान सुन पाते तो उन्हें अपनी मूर्खताके लिये पछताना ही पड़ता। गोरखपुर पहुँचकर, वहाँ लोगोंको रक्षा-दलोंकी स्थापना करनेका उपदेश देते हुए चौरीचौरा गए। वहाँ आप लोगोंकी करुण कथाएँ सुन ही रहे थे इतनेमें आपको नोटिस दी गई। किन्तु वे फिर भी घटनास्थल मन्देरा बजार पहुँच ही गए। इसी प्रकार गौहाटीमें और पञ्जाबके कई स्थानोंमें आपपर दफ़ा एक सौ चौवालीस लगाई गई, पर आपने निडर होकर उन आज्ञाओंका उल्लङ्घन किया और अपना काम करते रहे।

सन् १९२२ ई० की फ़रवरीमें जब गान्धीजी पकड़ लिए गए तब स्वराज्य पार्टी बन चुकी थी और सन् १९२३ ई० में कांग्रेसने चुनावकी लड़ाई लड़नी शुरू कर दी। अगले वर्ष सन् १९२४ ई० में गान्धीजी छूट गए। कोहाटमें हिन्दू-मुस्लिम दङ्गा हुआ। एक साथ रहनेवाले, एक वायु, एक जल, और एक अन्नसे पलनेवाले हिन्दू-मुसलमान किसके इशारेपर एक दूसरेकी जानके गाहक बन गए, इसे कौन समझावे। पर हुआ यही। मालवीयजी अपनी सहायता लेकर वहाँ पहुँचे और मुसलमानोंके बीचमें बैठकर उन्होंने जो निडर होकर उन्हें ऊँच-नीच समझाया उसे वहाँके लोग अबतक याद करते हैं। इसीपर गान्धीजीका इक्कीस दिनका उपवास हुआ। बेचारे हिन्दू-मुसलमानोंको क्या? कठपुतलियोंकी तरह दूसरेकी डोरीपर वे नाच रहे थे। इसी समय बङ्गालका भयङ्कर काला क़ानून चल निकला।

अगले वर्ष भारतके दो महापुरुष—बङ्गालके दो प्रतापी सिंह श्री चित्तरञ्जनदास और सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी चल बसे। गोखले और लोकमान्य तिलककी

यादगार फिर हरी हो गई। हिन्दुस्थान बेचारा फिर जी भरकर रोया।

सन् १९२६ ई० में कलकत्तेमें दङ्गा हुआ। मालवीयजीको वहाँ जानेकी आज्ञा न मिली पर मालवीयजीने पहलेकी तरह इसकी परवाह नहीं की। हिन्दू युनिवर्सिटीसे जब आप जा रहे थे तो बहुतसे लोग उनसे मिलने गए और कुछ लोगोंने उनके स्वास्थ्य और उनके बुढ़ापेका ध्यान करके कहा कि 'महाराज यदि न जाते तो अच्छा था, सरकार आपको बीचमें ही पकड़ लेगी।' उस समय मालवीयजीने सिर उठाकर बड़े तेजके साथ कहा 'देखें सरकार कैसे रोकती है? और फिर पकड़े तो डर क्या है'। यह कहकर उन्होंने एक श्लोक कहा—

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यु
र्भयमिति युक्तमितः प्रयातु दूरं
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिह मुधा मलिनं यशः कुरुध्वम्

अड़सठ वर्षके वृद्धके मुँहपर एक युवक सैनिकका जोश था। वे कलकत्ते गए, वहाँ व्याख्यान दिया और सरकार चुप मारकर बैठ रही। क्या मालवीयजी सरकारसे डरते हैं?

सन् १९२६ ई० में स्वराज्य पार्टीवालोंका मन कौन्सिलोंसे भर गया। सरकारने उनकी एक न सुनी। सरकारकी इस मनमानीको रोकनेका कोई उपाय भी तो न था। ये लोग व्यवस्थापिका सभासे बाहर निकल आए। इसीके बाद साइमन कमीशनका आगमन हुआ जिसमें एक भी भारतीय नहीं रक्खा गया था। इससे बड़ा हिन्दुस्थानका और क्या अपमान हो सकता था? देश भरने हड़ताल मनाई, जहाँ-जहाँ कमीशन घूमा वहाँ-वहाँ काले झण्डे दिखाए गए। ३१ अक्टूबर सन् १९२८ ई० की बात है। यह कमीशन लाहौर पहुँचा। मालवीयजी और लाला लाजपतराय स्टेशनपर बड़ी भीड़के साथ पहुँचे। सात बरस पहले जिसने प्रिन्स औफ़ वेल्सका अपनी बदनामी सहकर स्वागत किया था वह साइमन कमीशनके बहिष्कारके लिये जी-जानसे जुट गया। कितना भारी परिवर्त्तन हुआ होगा? वहाँ पुलीस और गोरे सिपाही मौजूद थे। डण्डे चले। लाला लाजपतरायको भी कई डण्डे लगे और वही चोट १७ नवम्बरको उनके प्राण ले गई। जवानोंका जोश मत पूछिए। लाला लाजपतरायकी मृत्युसे पञ्जाब गरज उठा और उस क्रुद्ध सिंहके पहले शिकार लाहौरके पुलीस सुपरिण्टेण्डेण्ट सैण्डर्स साहब हुए।

इसी साल दिल्लीमें सर्वदल सम्मेलन हुआ। मईमें फिर बम्बईमें सम्मेलनकी बैठक हुई और पण्डित मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें एक कमिटी बैठी। लखनऊमें जब सर्वदल सम्मेलनकी बैठक हुई तो कुछ हेरफेरके साथ पण्डित मोतीलालजीकी डमीनियन स्टेटसकी सिफ़ारिश स्वीकार कर ली गई। कलकत्तेमें सन् १९२८ ई० में जब कांग्रेस हुई तो पूर्ण स्वतन्त्रता और डमीनियन स्टेटसके झगड़ेको लेकर बड़ा वाद-विवाद चला पर नेहरू-रिपोर्ट ही मञ्जूर हो गई और यह घोषणा कर दी कि यदि सरकार इसे नहीं मानेगी तो सत्याग्रह शुरू हो जायगा।

सन् १९२९ ई० की २४ अप्रैलको भरी असेम्बलीमें बम्ब गिरा। भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त पकड़ लिए गए। एक बार सारे देशने इन दोनों वीरोंके साहसकी प्रशंसा की, घर-घर उनके चित्र टँग गए और इन दोनोंका नाम अमर हो गया। इधर मालवीयजीने लौर्ड इर्विनसे मिलकर एक गोलमेज़ परिषद् करानेकी बातचीत छेड़ी। लौर्ड इर्विनको भी यह बात जँची और लिखा-पढ़ी शुरू हो गई। ३१ अक्तूबरको लौर्ड इर्विनने गोलमेज़ परिषद्की घोषणा की। इस गोलमेज़ परिषद् करानेका श्रेय एकमात्र मालवीयजीको ही है। सन् १९२९ ई० को पण्डित जवाहरलाल नेहरूके सभापतित्वमें कांग्रेस हुई और रही-सही कसर भी पूरी हो गई। पूर्ण स्वतन्त्रता ही भारतका ध्येय घोषित किया गया। कांग्रेसके सदस्योंने व्यवस्थापिका सभाओंसे इस्तीफ़ा दे दिया और २६ जनवरीको

स्वतन्त्रता दिवस मनानेकी घोषणा की गई। १२ मार्चको गान्धीजीका सत्याग्रह प्रारम्भ हो गया। फिर सरकारका दमन, फिर वही चक्र, जेल, ज़ब्ती, डण्डे और गोलियाँ। सरकारकी इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स पौलिसी (शाही पक्षपात नीति) के कारण २ अप्रैलको मालवीयजी और सात अन्य राष्ट्रीय नेता भी व्यवस्थापिका सभाको नमस्कार करके चले आए। पेशावरमें गोलियाँ चलीं, बाइस आदमी मारे गए। मालवीयजी व्याकुल होकर पञ्जाबकी ओर दौड़ पड़े। उनका यह पञ्जाबका दौरा अलौकिक ही था। लोग मालवीयजीको देखनेके लिये पागल थे। स्टेशन-स्टेशनपर उनकी गाड़ी रोकी जाती थी। लोग विना उनके दर्शन किए, उनका व्याख्यान सुने, उन्हें आगे नहीं बढ़ने देने चाहते थे। एक स्थानपर तो लोग रेलके अञ्जनके सामने लेट गए, बैठ गए और मालवीयजीको बिना व्याख्यान दिए आगे नहीं बढ़ने दिया। वह भी क्या दृश्य था?

लोग अञ्जनके सामने पटरीपर बैठ गए हैं।

मालवीयजीके सबसे छोटे पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीय एम्० ए०, एल्० एल्० वी० इन दिनों उनके साथ थे। पञ्जाबने सचमुच जिस उत्साह, भक्ति, श्रद्धा और तन्मयतासे अपने पुराने रक्षक और नेताका स्वागत किया था, वह पञ्जाबके ही योग्य था।

मालवीयजीको आज्ञा मिली कि पेशावरमें नहीं प्रवेश कर सकते, किन्तु वे न माने। सरकारने उनको पकड़ा तो नहीं पर रास्तेमें ही उनको दूसरी गाड़ीमें बैठाकर वापस कर दिया। २५ अप्रैलको श्री विट्ठलभाई पटेल भी अपनी कुर्सी ख़ाली करके चले आए। काले क़ानून जारी हो गए। गान्धीजी नमक क़ानून ६ अप्रैलको तोड़ चुके थे। सारा देश नमक बनानेमें लगा हुआ था। २ मईको गान्धीजी पकड़े गए, १५ मईको शोलापुरमें और १६ अगस्तको पेशावरमें मार्शल लौ जारी हुआ। युवकोंका जोश फिर उमड़ा। पिस्तौलें दगने लगीं। बेचारे कई अंग्रेज़ उनके निशाने बन गए।

पहली अगस्त सन् १९३० ई० की बात है। लोकमान्य तिलककी पुण्यतिथि मनाई जानेवाली थी। धोबी तालाबतक जलूस पहुँचा ही था कि झड़ी लग गई, पर जलूसका एक आदमी भी इधर-उधर न हुआ। ज्यों-ज्यों जलूस आगे बढ़ता था, त्यों-त्यों लोग बढ़ते चले जा रहे थे। लोग छाते रखते हुए भी उन्हें नहीं लगा रहे थे। आगे-आगे महिलाएँ थीं और श्रीमती हंसा मेहता जलूसकी नेता थीं। हौर्नबी रोडकी चौमुहानीपर क्रुकशैङ्क रोडपर पुलीसके हथियारबन्द दस्तेने जलूस रोक दिया। बहुत देर बैठे हो गई। पुलीसने सरकारकी आज्ञा सुनाई, पर मालवीयजी बोले कि हम ऐसी अन्यायपूर्ण आज्ञा नहीं मानेंगे और उन्होंने लोगोंसे कहा कि बैठ जाओ। लोग बैठ गए। थोड़े डण्डे चले, पर लोग टस-से-मस न हुए। इसी समय मालवीयजीकी पुलीस सुपरिण्टेण्डेण्टसे एक झड़प हो पड़ी।

पुलीस सु०—जलूस आगे नहीं जा सकता।

मालवीयजी—अच्छा, हम यहीं खड़े रहेंगे।

सन् १९३० ई० में मालवीयजीकी पञ्जाब-यात्राके कुछ दृश्य।

LOADED CARTS AR
ALLOWED TO PASS
THE RAI

पुलीस सु०—कबतक?

मालवीयजी—अपने जीवनके अन्तिम दिनतक। तुम्हींको अपने देश वापिस जाना होगा।

पुलीस सु०—जब मैं पचासका होऊँगा तब यहाँसे जाऊँगा।

मालवीयजी—पीछे शत्रु बनकर जानेकी अपेक्षा इस समय मित्र होकर जाना ज़्यादा अच्छा है।

पुलीस सु०—आप लोग स्त्रियोंको जुलूसके आगे रखकर कोई बहादुरी नहीं दिखलाते।

मालवीयजी—कायरता तो तुम्हारी है, जो यदि यह ग़ैर-क़ानूनी जुलूस हो तो क्यों नहीं गिरफ़्तार करते। और क्या वे दिन भूल गए जब इङ्गलैण्डमें महिला आन्दोलन चला था, और तुम पुरुषोंने स्त्रियोंपर अत्याचार किए और फिर अन्तमें स्त्रियोंने तुम लोगोंकी बुरी गत बनाई थी।

पुलीस सु०—(झेंपकर) मैं तो भारत-सरकारकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ।

मालवीयजी, सरदार पटेल, श्रीजयरामदास

दौलतराम, डा० हर्डीकर, श्री शेरवानी इत्यादि कार्य्यकारिणीके सदस्य और बम्बई कांग्रेस कमिटीके सदस्य कुल मिलाकर चालीस आदमी पकड़ लिए गए। ये लोग लौरीमेँ भरकर बाइकला जेल पहुँचाए गए। फिर भीड़पर पुलीसने बेतरह डण्डे चलाए। पण्डित गोविन्द मालवीय अब भी कभी-कभी उस डण्डेकी चोटकी याद करके अपना सिर टटोल लिया करते हैं। शनिवार २ अगस्तको दोपहर साढ़े ग्यारह बजे चीफ़ प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेटके यहाँ मुक़दमा हुआ। मालवीयजीपर एक सौ रुपया जुर्माना हुआ, जुर्माना न देनेपर पन्द्रह दिनकी सादी क़ैद।

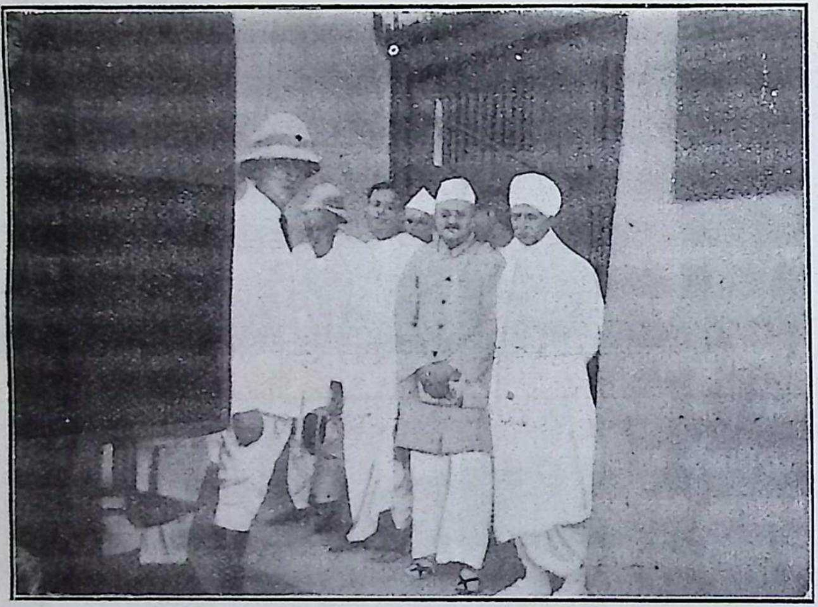

बाइकला जेलके फाटकपर सब नेताओंके साथ मालवीयजी पहुँचाए गए।

इधर मालवीयजीकी गिरफ़्तारीकी ख़बर देश भरमेँ पहुँच चुकी थी। हिन्दू युनिवर्सिटीमेँ जब यह समाचार आया तो विद्यार्थी एकदम आपेसे बाहर हो गए और एक सौ बीस विद्यार्थियोँका एक दल बम्बईमेँ सत्याग्रह करनेके लिये निकल पड़ा। ये लोग जिस दिन बम्बई पहुँचे उसी दिन शामको मालवीयजी छोड़ दिए गए। मालूम हुआ कि किसीने उनका जुर्माना दे दिया। मालवीयजीकी गिरफ़्तारीपर काशीकी सार्वजनिक सभाने मालवीयजीको बड़ी बधाई दी थी और बाबू भगवानदासने कहा भी था कि "मालवीयजीका पकड़ा जाना राष्ट्रीय यज्ञकी पूर्णाहुति समझनी चाहिए।"

मालवीयजीको इस बातका दुःख बना ही रहा कि किसीने उनका जुर्माना दे दिया। इसीके बाद २७ अगस्त सन् १९३० ई० को दिल्लीमेँ कांग्रेस कार्य्यसमितिकी बैठक डाक्टर अन्सारीके घर हुई। सब कार्रवाई करके लोग बैठे बातचीत कर रहे थे। अचानक पुलीस आई। कांग्रेस कार्य्य-समिति ग़ैर क़ानूनी तो घोषित कर ही दी गई थी। ये लोग पकड़ लिए गए और सबको छः-छः महीनेकी सज़ा हो गई। ये लोग दिल्ली जेलमेँ पहुँचाए गए।

मालवीयजीके लिये जेलमेँ जाना कोई मामूली त्याग नहीँ था। जिसका खाना-पीना और रहना-सहना उसकी आदत बन गई हो, जिनका छोड़ना उनके लिये प्राणत्यागके समान महत्त्व रखता हो, उसका बन्दी हो जाना कोई साधारण त्याग नहीँ समझना चाहिए। मालवीयजीने जो आजतक तपस्या की थी वह तपस्या इस महा क्लेशसे और भी अधिक प्रदीप्त हो उठी। इतने दिन बाद लोगोँने वास्तवमेँ मालवीयजीको पहचाना। उन्हेँ ऐसे बन्दी जीवनकी आदत नहीँ थी। कोयल जब खुली रहती है और गाती रहती है तो उसे कुछ अनोखा ही सुख मिलता है, पिँजड़ेमेँ दाना-पानी मिलनेपर भी उसकी वह मस्ती नहीँ रहती। मालवीयजीका बोलना बन्द हो गया। यह उनके लिये बड़ा हानिकारक सिद्ध हुआ। लवाका मुँह तो बन्द कीजिए फिर देखिए उसकी क्या हालत होती है। जो मालवीयजी दस बरस पहले वाइसरायकी स्पेशल ट्रेनपर चढ़कर प्रयागसे दिल्ली आए थे वही मालवीयजी सरकारके बन्दी बनकर स्पेशल ट्रेनमेँ दिल्लीसे नैनी जेल पहुँचाए गए। दिनोँका फेर था। यहाँ उन्हेँ बहुतसे साथी भी मिल गए। यहाँ

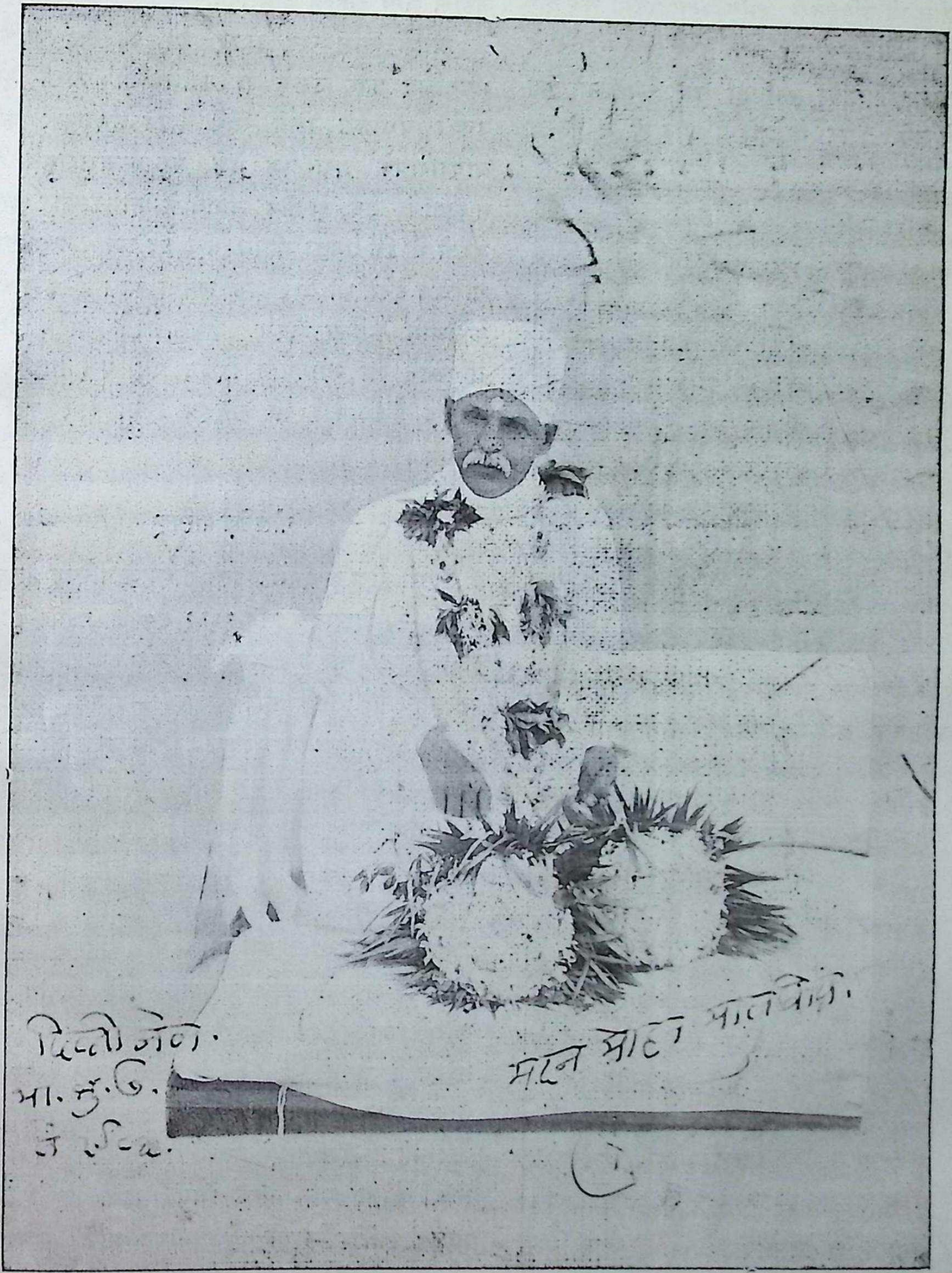
दिल्ली जेल.
भा. शु. ७.
मदन मोहन मालवीय.

दिल्ली जेलमें मालवीयजी।

पण्डित जवाहरलाल और आर० एस्० पण्डित भी थे। मालवीयजीने श्री पण्डितसे जर्मन भाषा पढ़नी शुरू कर दी। यहाँ उनके मनकी एक बात उन्हें मिल गई कि वे शामको सब क़ैदियोंको भागवत और महाभारतका उपदेश देने लगे। पर थोड़े दिनों बाद ही वे बीमार पड़ गए। वहाँसे सरकारी अस्पतालमें भेजे गए जहाँसे आप सहसा छोड़ दिए गए।

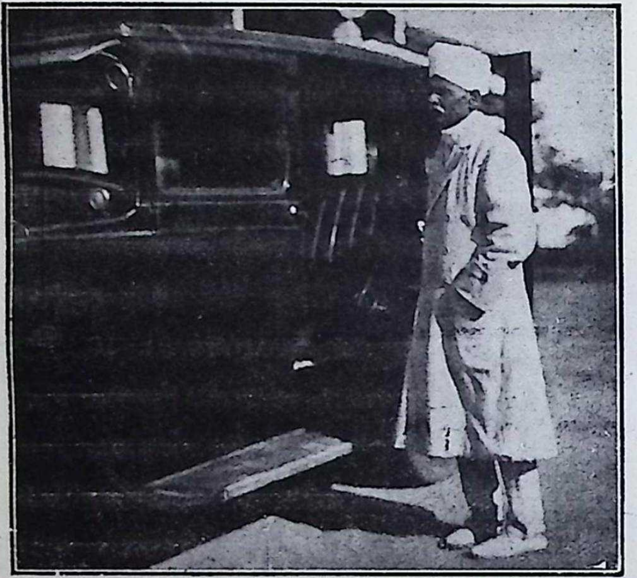

बुधवारके प्रातःकाल मालवीयजी योरोपियन सिविल अस्पताल इलाहाबादसे छूटकर मोटरमें सवार हो रहे हैं। कितने दुर्बल हो गए हैं।

जेलसे छूटनेके बाद इलाहाबादसे बनारस जाते समय इतने दुर्बल थे कि ज़रा भी पैदल नहीं चल सकते थे।

अगले साल सन् १९३१ ई० की २३ मार्चको भगतसिंह और उसके दो साथियोंको फाँसी हुई। उनको बचानेके लिये सारे देशने हस्ताक्षर करके वायसरायके पास पत्र भेजे, पर वायसरायने एक न सुनी। उन दो-तीन जवानोंसे ही सरकार इतना डरती थी कि उनका जीवन बचाकर अपनी उदारताका परिचय देनेमें भी उसे भय लगता था। २९ मार्चको कराँचीमें कांग्रेस हुई। भगतसिंहके बारेमें मालवीयजीने जो व्याख्यान दिया, वह बस पढ़ने ही लायक़ है। कोई भी सहृदय बिना रोए नहीं रह सकता।

गोलमेज़ परिषद्

इसी बीच लन्दनमें पहली गोलमेज़ परिषद् हो चुकी थी। २५ दिसम्बर सन् १९३१ ई० को कांग्रेसके बड़े नेता छूट गए। सप्रू-जयकरके उद्योगसे और मालवीयजीके सहयोगसे गान्धी—इर्विन समझौता हुआ। लोग बड़े निराश हुए। पर कराँची कांग्रेसमें उसका समर्थन हो गया और कांग्रेसने गान्धीजीको ही गोलमेज़के लिये अपना प्रतिनिधि चुना। मालवीयजीको भी गोलमेज़का निमन्त्रण मिला था और वे तैयार हो गए। उनका तैयार होना एक ऐतिहासिक घटना ही समझनी चाहिए। एक ओर जन्म-जन्मान्तरके संस्कार उन्हें अपनी ओर खींचते जा रहे थे, दूसरी ओर खड़ी हुई थी पैंतीस करोड़ भारतवासियोंकी माँ, जिसके तनपर वस्त्र नहीं थे, शरीरपर मांस नहीं था, और जो चुपचाप आँसू बहा रही थी। इस द्वन्द्वने मालवीयजीको कितना परेशान किया होगा यह वे ही लोग समझ सकते हैं जो मालवीयजीको जानते हैं। पर माँके आँसुओंमें पुरानी रूढ़ियाँ बह गईं। 'राजपूताना' जहाज़की सीटी बजी और मालवीयजी अपने उसी ब्राह्मण-वेशमें सवार हो गए। मालवीयजी समझ रहे थे कि शेर घास खाने

लगेगा, साँप डसना छोड़ देगा, लोमड़ी अपनी चालाकी छोड़ देगी। सतयुगकी बात भला कलियुगमेँ कैसे हो सकती थी। जिसने जीवन भर समुद्रयात्राको पाप समझा हो और जिसका धार्मिक हृदय समुद्रयात्राकी कल्पना ही न कर सकता हो उसने अपने देशके लिये यह यात्रा स्वीकार करके अपनी सबसे प्यारी वस्तु धर्मको भी देशके लिये अर्पण कर दी। यह उनका सबसे बड़ा त्याग था। मालवीयजीके लिये विलायत जाना दधीचि और शिविके त्यागसे कम महत्त्व न रखता था। ७० वर्षकी अवस्था और दुर्बल देह लेकर बड़ी आशासे मालवीयजी गान्धीजीको साथ लेकर रेतीसे तेल निकालनेके लिये लन्दन जानेको तैयार हो गए।

२९ अगस्त सन् १९३१ ई० को महात्मा गान्धीके साथ मालवीयजी विलायतके लिये रवाना हो गए।

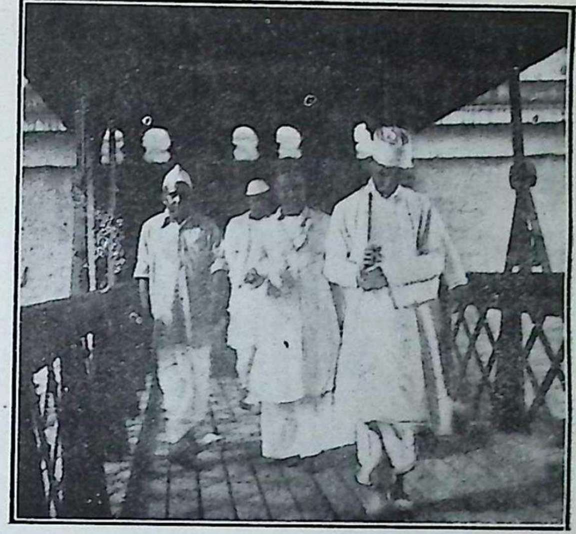

इङ्गलैण्ड जाते समय इलाहाबाद स्टेशनके पुलपर मालवीयजी चलते-चलते भी एक लेख ठीक कर रहे हैँ।

महात्माजी और मालवीयजी १२ सितम्बर सन् १९३१ ई० को लन्दन पहुँचे। तत्काल ये लोग वहाँ यूस्टन रोडपरके 'फ्रेण्ड्स मीटिङ्ग हाउस' मेँ पहुँचाए गए जहाँ इनका शानदार स्वागत हुआ। यहाँ अंग्रेज़ और भारतीय सब मौजूद थे।

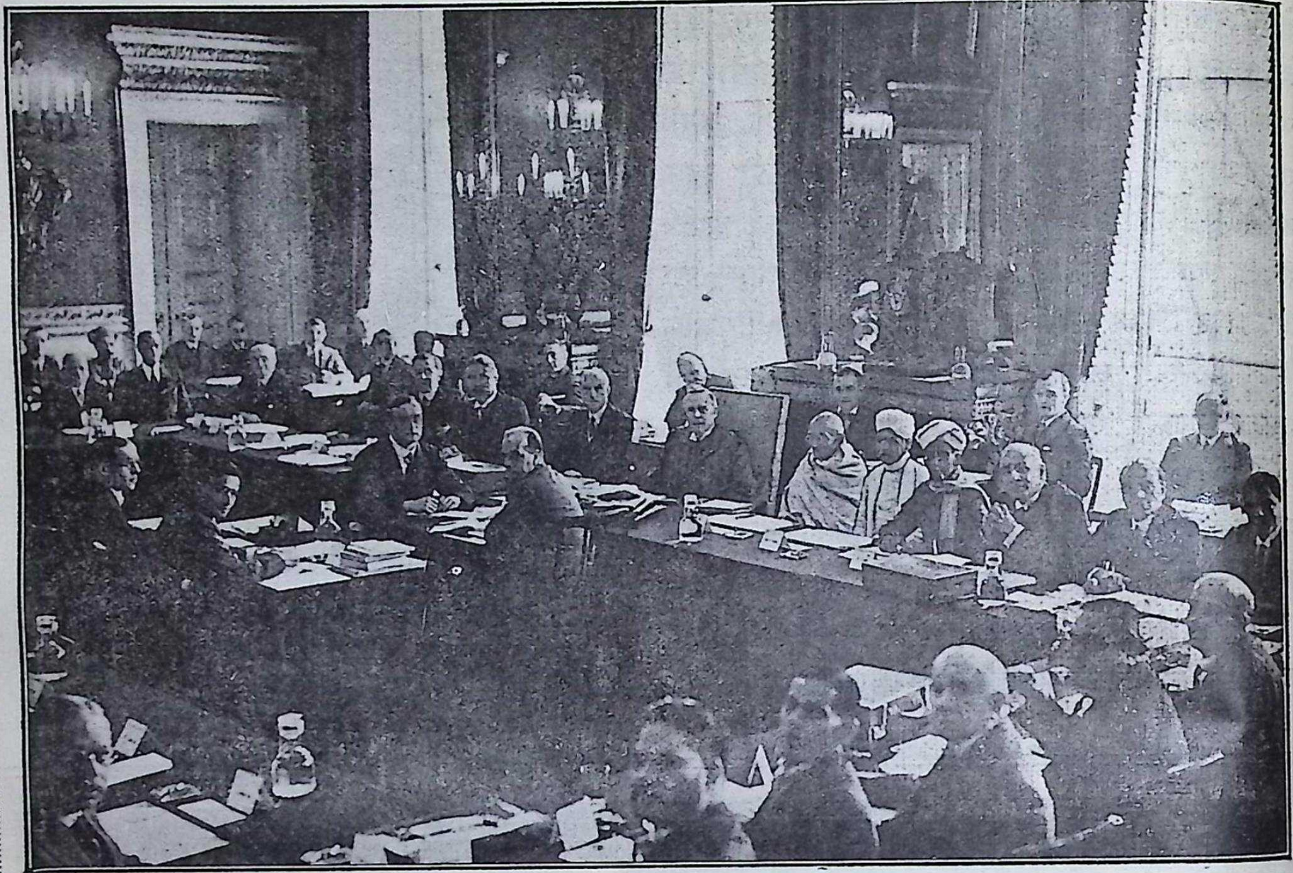

सेण्ट जेम्स पैलेस लन्दनमें १४ सितम्बर सन् १९३१ ई० की भारतीय गोलमेज़ परिषद्की सङ्घ-निर्माण-समितिमें। बीचमें लौर्ड सैङ्के, उनके बाँई ओर महात्माजी और मालवीयजी बैठे हैं।

मालवीयजी अपने रसोइया, अपनी सामग्री और अपने पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीयको साथ लेकर गए थे।

इङ्गलैण्डमें इण्डियन एसोसिएशनने इन लोगोंका बड़ा स्वागत किया। लन्दन पहुँचकर इन्होंने हर बातमें गान्धीजीका साथ दिया। वहाँ सेनाकी व्यवस्था और संरक्षणके विषयमें जो आपने व्याख्यान दिए थे वे बड़े महत्त्वके हैं। पर जो आशा लेकर वे गए थे वह पूरी हुई इसमें सन्देह है।

गोलमेज़ परिषद्के अतिरिक्त उन्होंने लन्दनके वैज्ञानिकोंको बुलाकर एक सभामें हिन्दू धर्मकी महत्ता और ईश्वरके अस्तित्वपर व्याख्यान दिया, जिसपर सभी वैज्ञानिकोंने कहा कि यदि वास्तवमें हिन्दू धर्म यही है तो वह वास्तवमें भव्य है। मालवीयजी इस यात्रामें योरोपमें भी घूमे, बहुतसे विश्वविद्यालय देखे और फ़्रान्समें पाली और संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सिल्वन लेवीसे भी मिले।

१४ जनवरी सन् १९३२ ई० को मालवीयजी लौट आए। उस समय भारतमें पुलीसका राज्य था। सब नेता बन्द किए जा चुके थे। सरकारका दावा था कि कांग्रेस कुचली जा चुकी है।

मालवीयजीने सरकारकी नीतिकी कड़ी आलोचना की और एक तारद्वारा यहाँके अत्याचारोंका विवरण देकर विलायत भी भेजा, पर सरकारकी कृपासे वह तार भारतकी सीमा न पार कर सका। इसीके

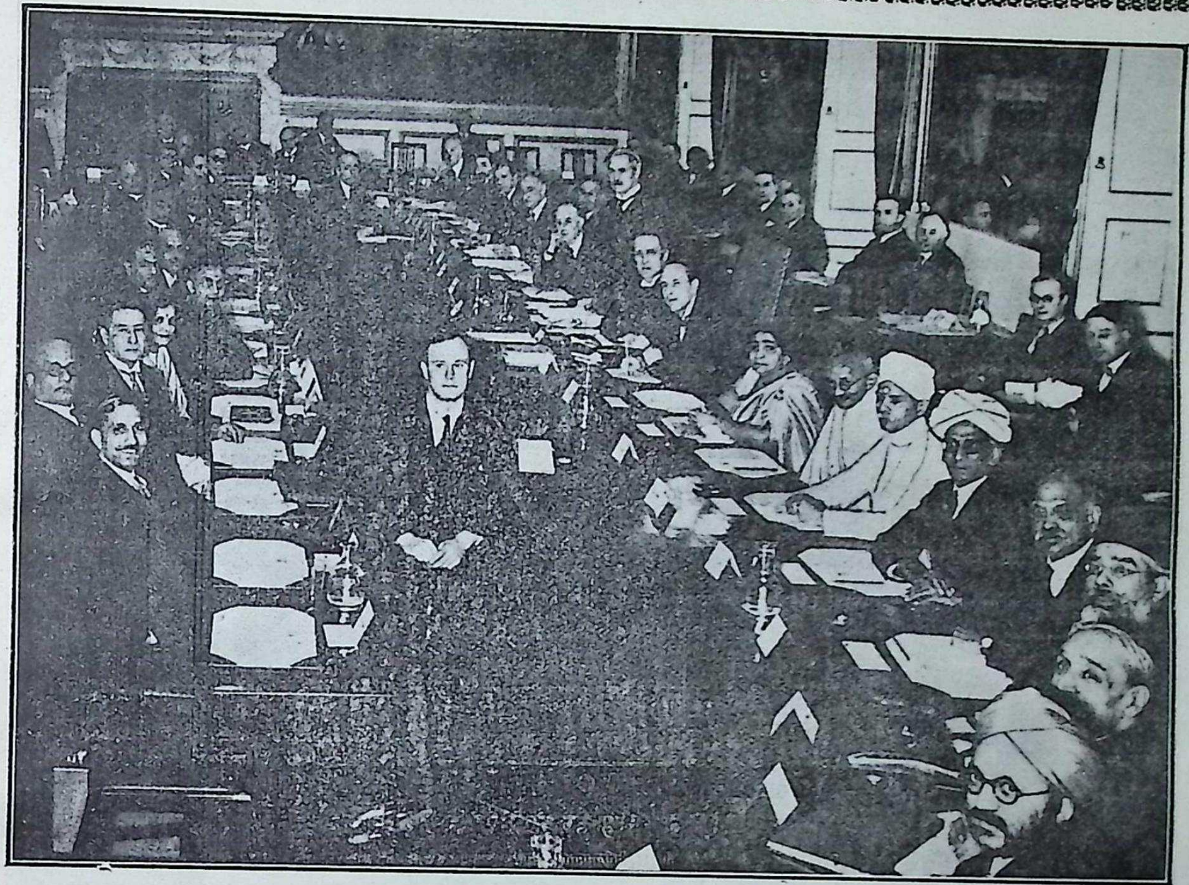

३० नवम्बर, सन् १९३१ ई० को सेण्ट जेम्स पैलेस लन्दनमें प्लीनरी सेशनके प्रारम्भ होनेके समय मालवीयजी और गान्धीजी।

बाद दिल्लीमें कांग्रेस होनेवाली थी। सरकारने कांग्रेसकी मनाही कर दी थी। मालवीयजी अध्यक्ष चुने गए। काशीमें उन्हें निषेधाज्ञा मिली, पर उन्होंने इन गीदड़-भभकियोंकी चिन्ता न की और निडर होकर चल दिए। दनकौर स्टेशनपर ही उतरकर ये मोटरसे दिल्लीकी ओर चले, पर यमुना पुलपर पकड़ लिए गए। फिर भी सेठ अमृतलाल रणछोड़लालकी अध्यक्षतामें पुलीस थानेके पास घण्टाघरपर दिल्लीमें कांग्रेस हुई। सरकार मुँहकी खाकर रह गई। मालवीयजी तीन-चार दिन बाद गाड़ीमें बैठाकर इलाहाबाद पहुँचा दिए गए।

इसीके अगले साल फिर कलकत्तेमें कांग्रेस हुई। फिर मालवीयजी अध्यक्ष चुने गए। इस बार फिर

स्व० डा० सिल्वन लेवी और मालवीयजी एक पुस्तक देख रहे हैं। पेरिसमें।

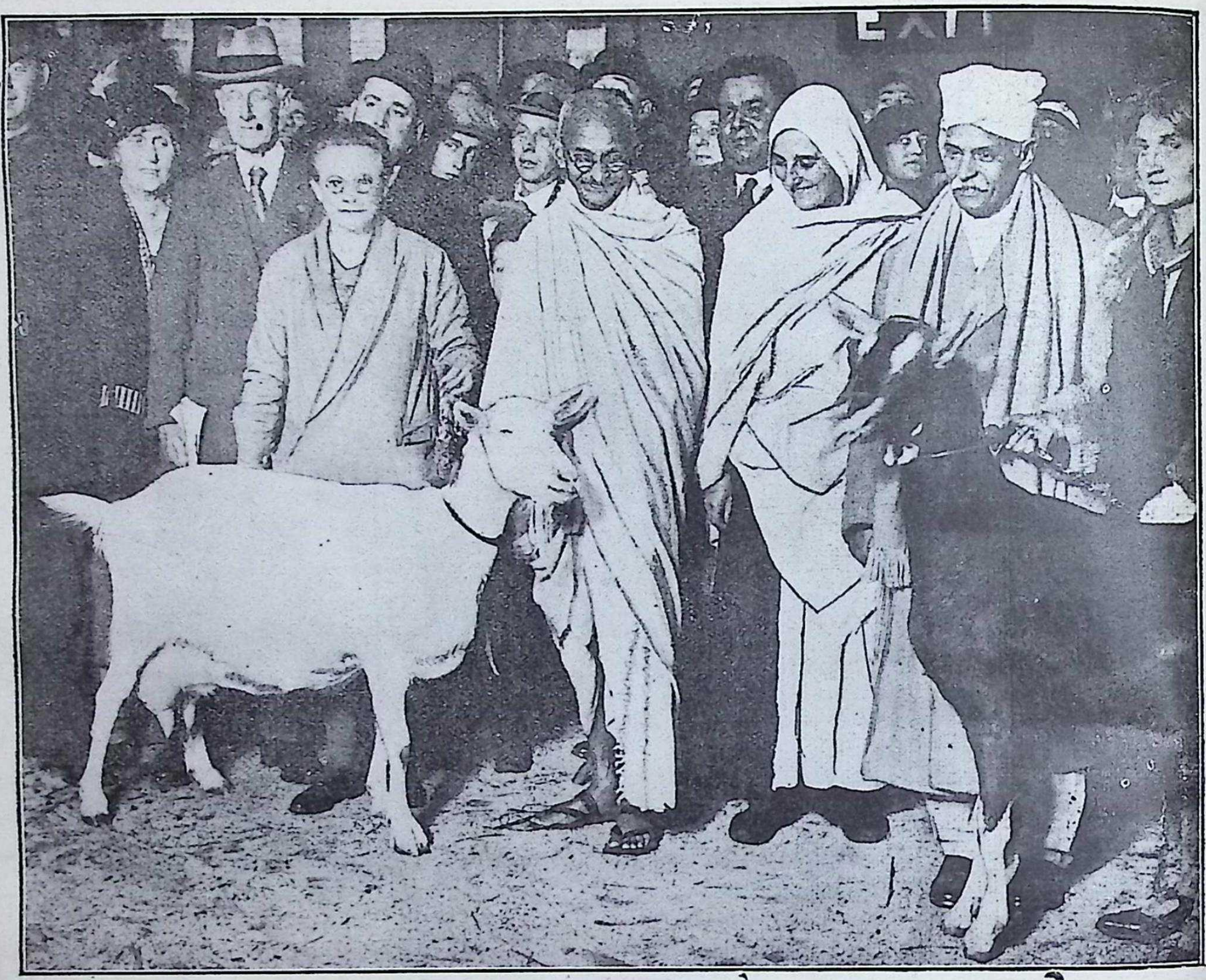

मालवीयजी और गान्धीजीने इस लिङ्गटनकी दुग्धशालाका निरीक्षण किया और संसारकी सर्वश्रेष्ठ बकरियोंको देखा। गान्धीजी और मालवीयजीके बीचमें मिसस्लेड (मीरा बहन) दिखाई दे रही है।

वन्दी तपस्वी मालवीयजी सन्ध्या कर रहे हैं।

वे आसनसोल स्टेशनपर पकड़े गए और सात-आठ दिनतक वहाँ रक्खे जानेके बाद फिर छोड़ दिए गए।

साम्प्रदायिक निर्णयके फ़ैसलेपर गान्धीजीको यह देखकर बड़ा असन्तोष हुआ कि सरकारने दलित वर्गको हिन्दुओंसे अलग कर दिया है। उन्होंने सितम्बर सन् १९३२ ई० में यरवदा जेलमें आमरण अनशन करनेका प्रण किया। मालवीयजीने फिर दौड़-धूप शुरू की। पता नहीं कहाँसे वे इतनी शक्ति बटोरकर लाए। पूनामें सभा हुई, सब नेतागण इकट्ठा हुए और फ़ैसला हो गया। इस फ़ैसलेका सारा श्रेय मालवीयजीको ही है।

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय

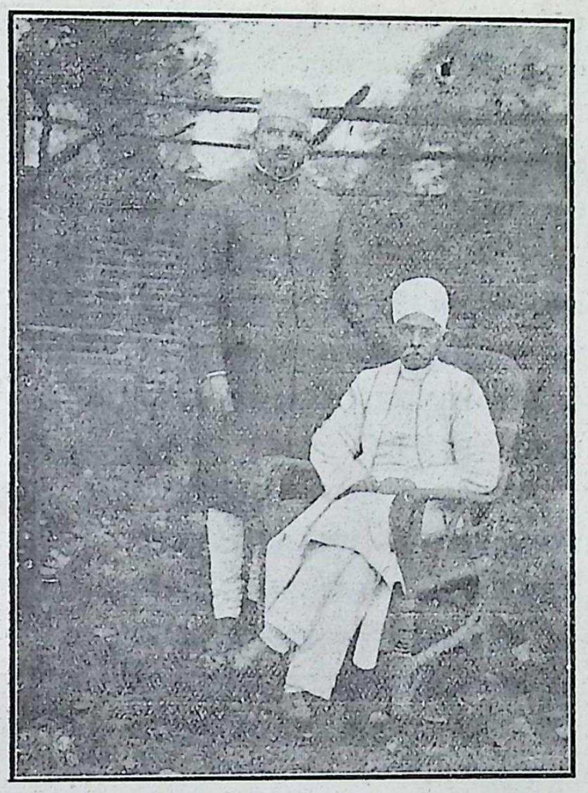

लन्दनमें मालवीयजी और उनके पुत्र गोविन्दजी।

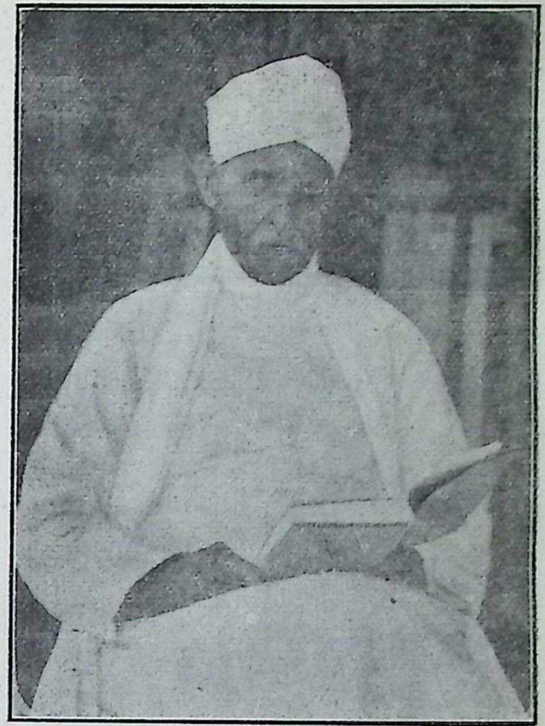

'राजपूताना' जहाज़पर मालवीयजी पढ़ रहे हैं।

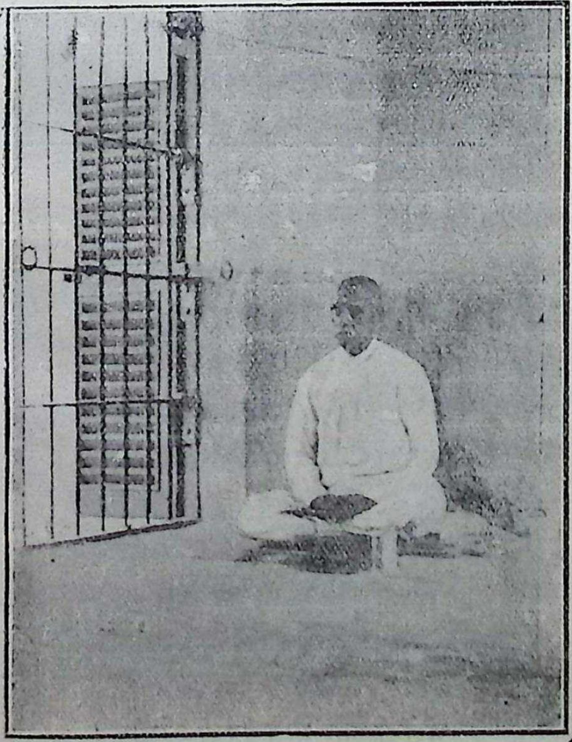

जेलमें मालवीयजी सन्ध्या कर रहे हैं।

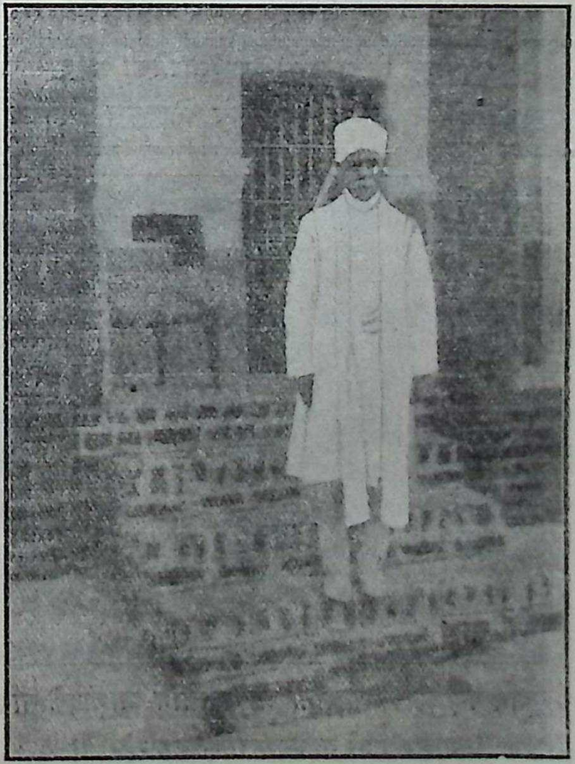

जेलमें अपनी बैरकके सामने।

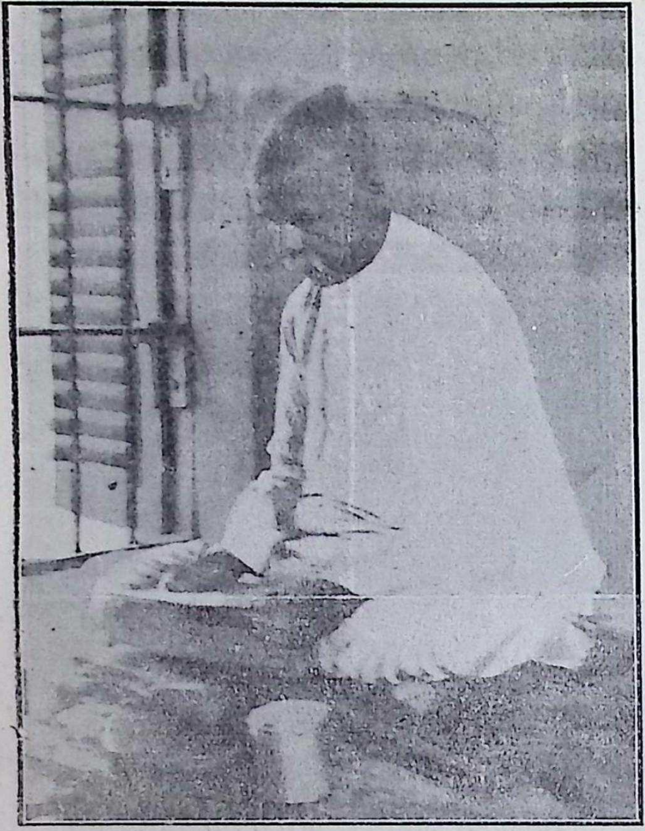

जेलमें मालवीयजी अपना स्वाध्याय कर रहेहैं।

पूनामें बहुत बहस हुई। गान्धीजीका उपवास चल रह था। समय खोनेके लिये बिलकुल नहीं था।

पूनामें पर्णकुटीपर मौलाना अबुलकलाम आज़ादके साथ मालवीयजी गहरा परामर्श कर रहे हैं।

अब एकसे बातचीत, फिर दूसरेसे। मालवीयजी थक गए थे, पर उनकी हिम्मत बनी रही।

इसमें ही वे बहुत दुर्बल हो गए थे किन्तु उधर हिन्दू मुस्लिम एकताका प्रश्न आ पहुँचा। फ़ौरन् पञ्जाब दौड़े गए। वहाँसे बङ्गाल और फिर युक्तप्रान्त। इलाहाबादमें एकता सम्मेलन हुआ। सोलह-सोलह, बीस-बीस घण्टे परिश्रम किया और उससे छुट्टी मिलते ही केरलमें हरिजनोंकी समस्या सुलझाई। जान पड़ा कि जैसे सर्वशक्तिमान् परमेश्वरने अपनी सम्पूर्ण शक्ति ही उन्हें दे दी है।

इसी बीच १५ जनवरी सन् १९३४ ई० को बिहारमें भूकम्प हुआ। सब कुछ भूलकर मालवीयजी बिहारके आँसू पोंछनेमें लग गए। स्वयं भी वहाँ

नेशनलिस्ट पार्टीकी सभा काशीमें।

अणेजी और मालवीयजी काशीमें।

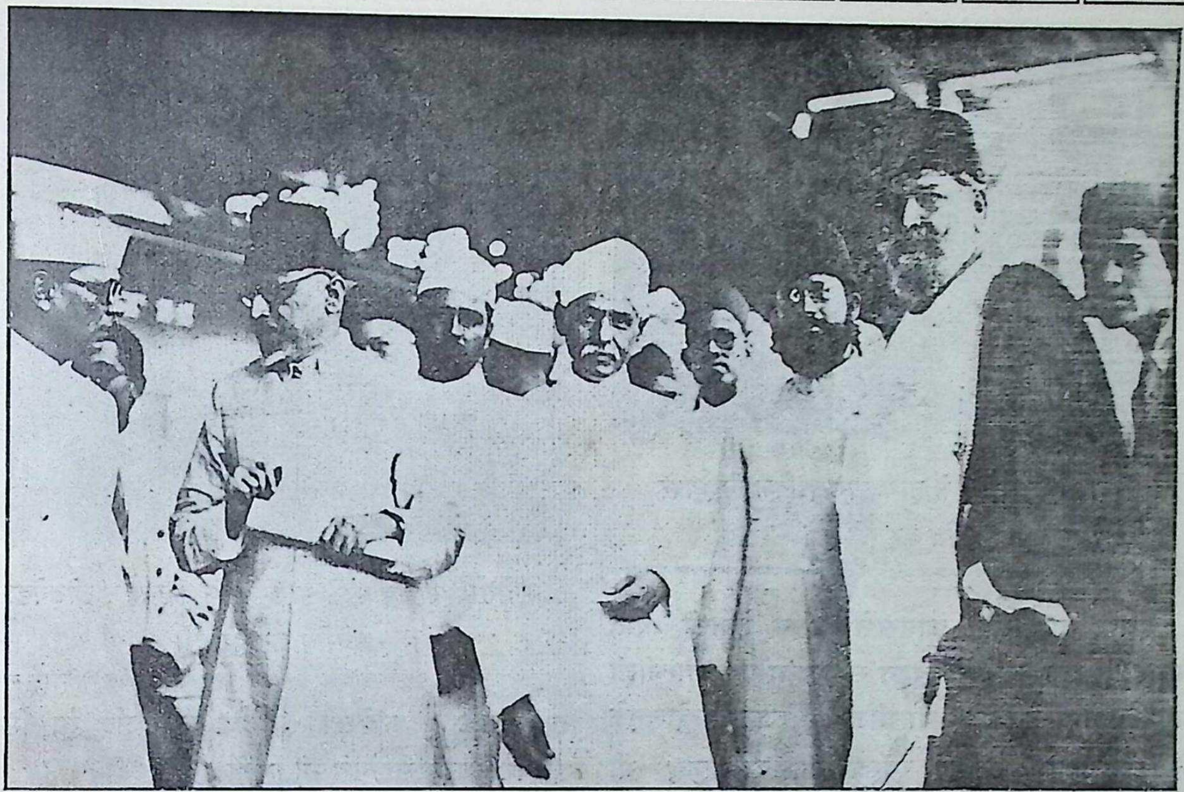

सर्वश्री आसफ़ अली, अबुल कलाम आज़ाद, पण्डित मदनमोहन मालवीयजी, मौलाना शौक़त अली आदि नेताओंका पूना जाते हुए बम्बई स्टेशनपर स्वागत।

गए और लोंगोंसे बहुतसा रुपया भी एकत्र करके भेजा।

१८, १९ मई सन् १९३४ ई० को पटनामें कांग्रेसकी महा समिति बैठी। मालवीयजी तथा डाक्टर अन्सारीको पार्लमेण्टरी बोर्ड बनानेका भार दिया गया। पर साम्प्रदायिक बँटवारेके विषयमें कांग्रेसकी उदासीन नीतिके कारण मालवीयजी और अणे अलग हो गए और १८ तथा १९ अगस्त सन् १९३४ ई० को कलकत्तेमें मालवीयजीकी अध्यक्षतामें कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी बनी। कांग्रेसमें रहकर भी मालवीयजी कांग्रेससे सहमत न हो सके और उन्हें लाचार होकर चुनावमें कांग्रेससे लड़ना पड़ा। यद्यपि कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टीको चुनावमें सफलता न मिली पर मालवीयजी अपनी बातपर डटे रहे।

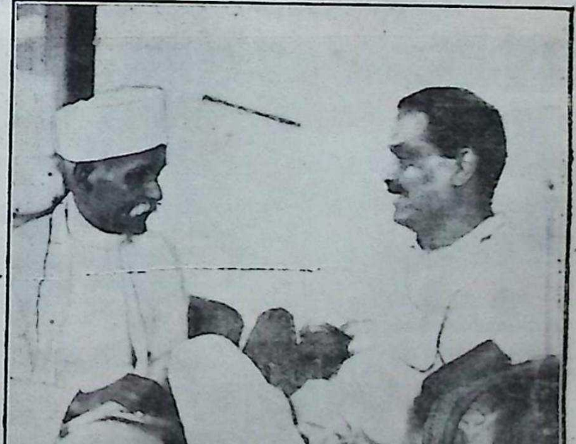

श्री विधानचन्द्ररायसे बम्बईमें मालवीयजी गम्भीर बातें कर रहे हैं।

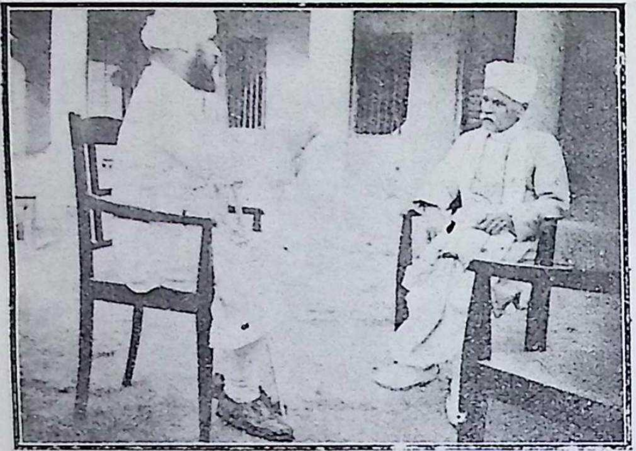

सरदार शार्दूलसिंहके साथ साम्प्रदायिक निर्णयपर बातचीत कर रहे हैँ।

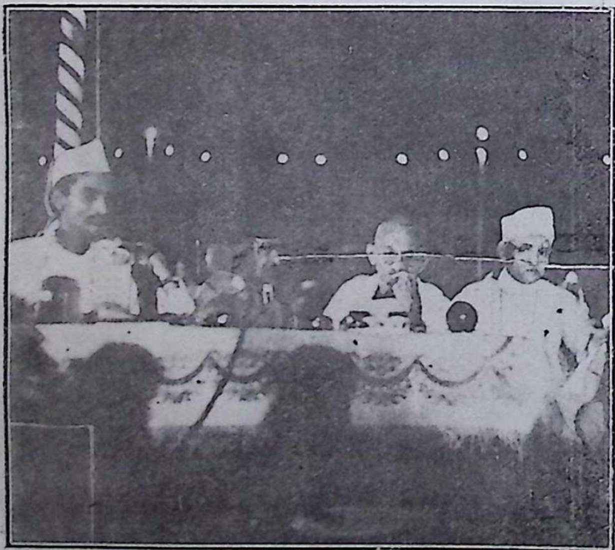

बम्बई कांग्रेसके मञ्चपर बा० राजेन्द्रप्रसाद, डा० अन्सारी, गान्धीजी और मालवीयजी।

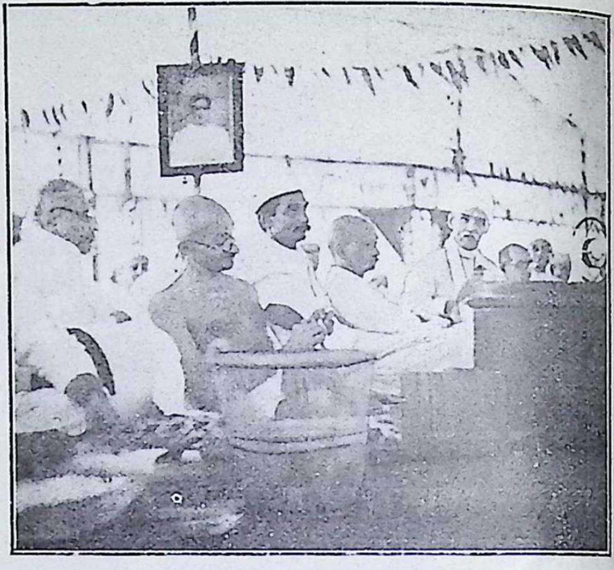

कांग्रेसमेँ मालवीयजी गान्धीजीको कांग्रेस न छोड़नेका अनुरोध कर रहे हैँ।

इधर गान्धीजीने कांग्रेससे अलग होनेकी बात चलाई। सब लोगोँने बहुत समझाया पर गान्धीजी अपनी बातपर डटे रहे। गान्धीजीने हरिजन-आन्दोलनके लिये अपनेको अगल रक्खा था, पर कुछ भी क्योँ न हो गान्धीजीका अलग होना राष्ट्रको अच्छा न लगा, पर गान्धीजी अलग हो ही गए। किन्तु लोग उनको जितना अलग समझते थे वे उतने अलग न हो सके। कांग्रेसको उनको आशीर्वाद तो मिला ही पर उनका सहयोग भी मिला।

२८ दिसम्बर सन् १९३५ ई० को बम्बईमेँ कांग्रेसने अपने पचासवेँ वर्षमेँ पदार्पण किया। और जिस स्थानपर पचास वर्ष पहले कांग्रेस हुई थी वहाँ उसके स्मारकमेँ उसकी स्मृति-शिला रक्खी गई जिसका उद्घाटन राष्ट्रके सबसे प्राचीन सेवक महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके हाथोँ ही हुआ।

इसके बाद फिर देश चुप मारकर बैठ गया। नेता लोग व्यवस्थापिका सभाओँके चक्करमेँ पड़ गए। २८ दिसम्बर सन् १९३६ ई० को फ़ैजपुरमेँ—बिलकुल देहातमेँ—कांग्रेस हुई और वे मालवीयजी जो पचास बरस पहले कांग्रेसके जन्मदाताओँके साथ दिखाई दिए थे वे फिर कांग्रेसके पुत्रोँके साथ दिखाई दिए। वेष और तेजमेँ बिलकुल वैसे ही। केवल बुढ़ापा उनके सफ़ेद बालोँमेँसे झाँक रहा था। फ़ैजपुर कांग्रेसमेँ जो उनका जोशीला व्याख्यान हुआ वह वैसा ही था जैसा पचास बरस पहले, पर उसका भाव बहुत कुछ बदला हुआ था। मालूम पड़ता था कि जो कांग्रेस पचास बरस पहले अपने

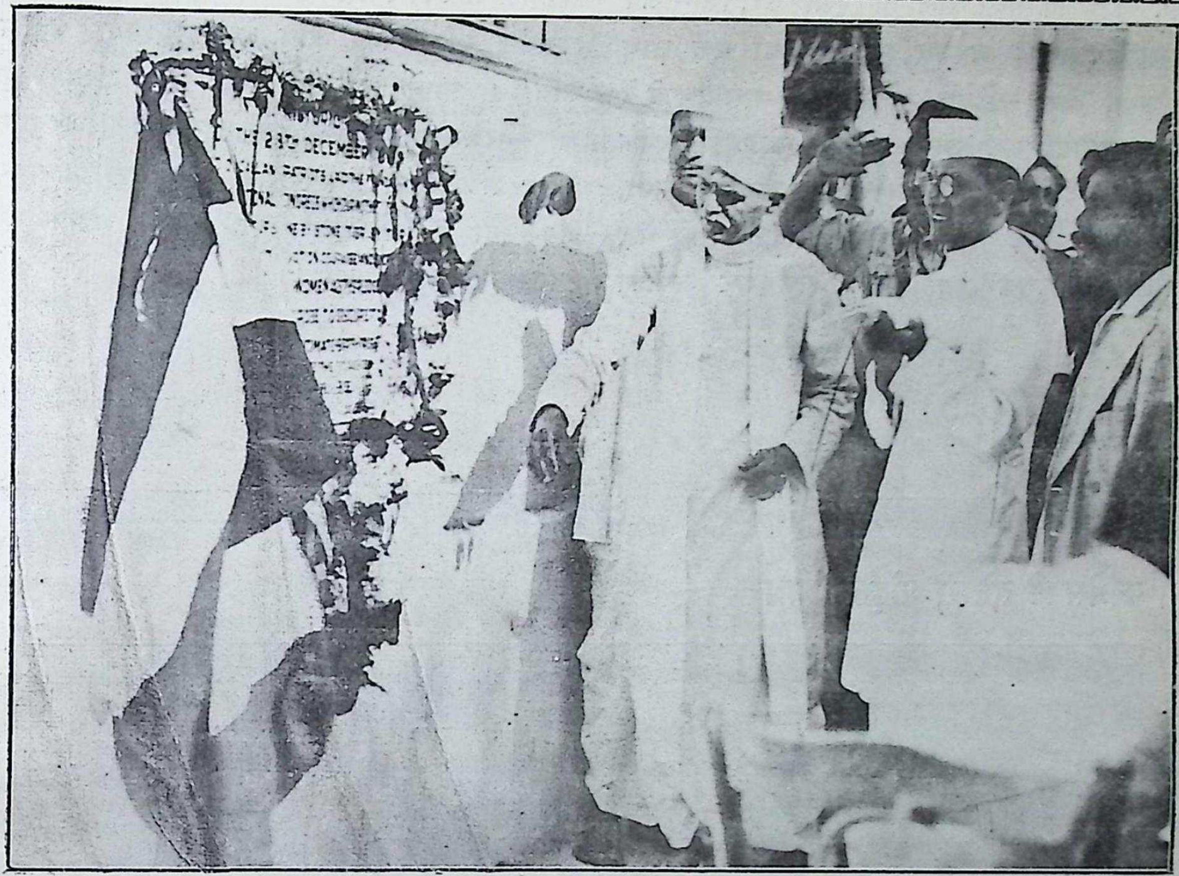

बम्बईके तेजपाल संस्कृत विद्यालयमेँ २८ दिसम्बर सन् १९३५ ई० को कांग्रेस स्वर्ण जयन्तीके अवसरपर उसकी स्मृति शिलाका उद्घाटन मालवीयजी कर रहे हैँ।

बचपनमेँ दूसरोँसे माँगकर पानी पीना चाहती थी वह अपने हाथसे अपने पैरोँपर खड़ी होकर अपने घड़ेसे उँड़ेलकर पानी पीनेको तैयार है। बेबसी दूर हो गई है। बाहरसे स्वतन्त्रता भले ही न हो पर भीतरसे मन बिलकुल स्वतन्त्र हो गया है। अब भट्टीमेँ कूदनेसे डर नहीँ लगता।

पचास बरस—पूरे पचास बरस हो गए। जिस वीर योद्धाने अपनी जवानीमेँ देशकी रक्षाके लिये पेटी कसी थी, वह आज भी उसी तरहसे बल्कि उससे भी दुगुने जोशसे खड़ा है, ख़म ठोँककर खड़ा है, मुँहपर ज़रा भी तो कमज़ोरी नहीँ दिखाई पड़ती। न जाने कितने पुराने साथी खेत रहे, कितने मैदान छोड़कर भाग गए, कितनोँको बुढ़ापेने बेबस कर दिया। अगर कोई एक बहादुर ऐसा है, जो शुरूसे आख़ीरतक पितृ-भक्त पुत्रके समान सारे राष्ट्रकी प्रसन्नता और अप्रसन्नतामेँ अपना सुख और अपना घर त्यागकर निरन्तर मन, वचन और कर्मसे राष्ट्रकी सेवा कर रहा हो, जिसके प्रत्येक कार्य्यमेँ भारतका कल्याण छिपा हो, जो प्रत्येक प्रार्थना भारतकी हित-कामनाके लिये करता हो, जिसके उपदेशोँमेँ देश-सेवाका राग भरा हो—वह मालवीयजी हैँ। लोगोँको महापुरुषोँकी तुलना करनेमेँ आनन्द आता है। पर वे अतुलनीय होते हैँ। ग्रहोँके समान अपनी-अपनी महत्ता लिए हुए वे ज्योतिष्पिण्ड अपनी कक्षामेँ घूमते रहते हैँ। वही उनका महत्त्व होता है। योँ अलग-

अलग कोई किसीकी भले ही पूजा करे, किन्तु जब अवसर पड़ता है तो नव ग्रहोँकी पूजा एक साथ की जाती है। महात्मा गान्धी और मालवीयजी ये दोनोँ विभूतियाँ एक साथ भारतके कल्याण करनेके लिये आईं। दोनोँकी शक्तियोँने मिलकर जो काम किया, उसको इतने थोड़े पन्नोँमेँ कोई कहाँतक वर्णन कर सकेगा। भारतके इन पिछले पचहत्तर वर्षोँका इतिहास और फिर मालवीयजीके राजनीतिक जीवनका इतिहास यदि लिखा जाय तो कई हज़ार पन्ने भर जायँगे। हमने तो झाँकी भर दी है। सूर्य्यकी धूप और गरमीसे ही उसके प्रचण्ड तेजका अनुमान किया जा सकता है। उसको पूरा देखनेका प्रयत्न कीजिएगा तो आँखेँ चुँधिया जायँगी, आप पूरी तरहसे देख भी न पावेँगे।

कांग्रेसकी तीसरी पीढ़ीके साथ

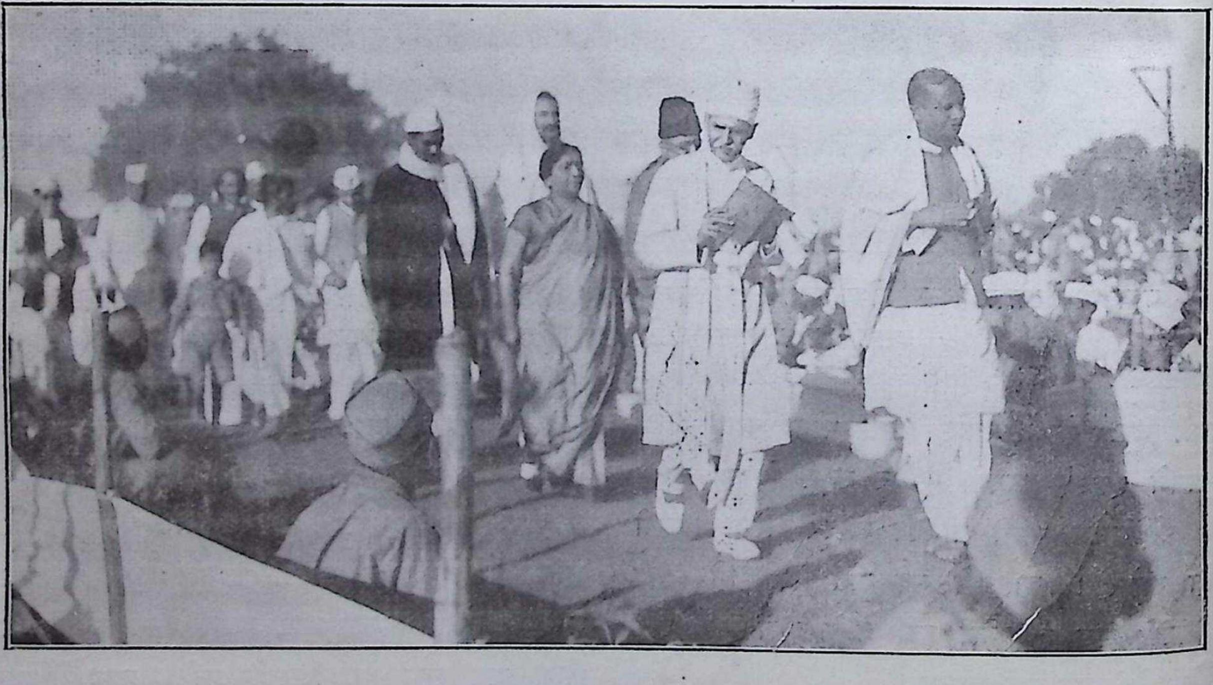

२८ दिसम्बर सन् १९३६ ई० को फ़ैज़पुर कांग्रेसमेँ मालवीयजी—पहले चित्रसे तुलना तो कीजिए।

सरकारी दुर्गमेँ

जब आमके पेड़मेँ बौर आता है तब उसकी महक बग़ीचेके सब कोनोँमेँ तो फैलती है पर उसका परिमल हवाके साथ बग़ीचेके बाहर भी फैलता है। सारा वायुमण्डल एक अजीब मतवाली गन्धसे महक उठता है। यही बात मनुष्यके साथ भी होती है। गुणी मनुष्य चाहे अपनेको कितना भी एकान्तमेँ रक्खे, छिपाकर रहे, पर उसके गुण उसके लिये गाहक पैदा करने ही लगते हैँ। चित्रको देखकर चित्रकारके दर्शन करनेकी लालसा होती है, कविता पढ़कर कविसे मिलने और उसके दर्शन करनेको जी छटपटाता है, किसीका मधुर गीत सुनकर उसको एक बार देखनेको मन ललचाता है। संसारमेँ सभी गुणोँके पारखी नहीँ होते पर जो होते हैँ वे गुणीको सात पर्दोँमेँसे खोज निकालते हैँ और फिर उसको उसके योग्य सम्मान देनेमेँ अपना गौरव समझते हैँ।

'हिन्दुस्थान' के सम्पादकने बड़ा नाम कमाया था। इससे पहले लोग कांग्रेस मञ्चपर उसके व्याख्यानोँपर तालियाँ गड़गड़ा चुके थे। न जाने कितने नौजवान मालवीय बननेकी आकाङ्क्षा कर चुके थे। जब बाहरवाले क़द्र करना शुरू करते हैँ तभी घरवाले भी क़द्र करते हैँ। मालवीयजीके मित्रोँने और उनके हितचिन्तकोँने उन्हेँ म्युनिसिपैलिटीके सदस्य बनकर नगरकी सेवा करनेकी सलाह दी। मालवीयजी खड़े तो हो गए, पर चुनावके हथकण्डोँसे वे परिचित न थे। वे समझते थे कि जिसने वचन दिया है वह अवश्य वोट देगा, पर बात ऐसी नहीँ थी। चुनावमेँ लोग कहते कुछ हैँ, करते कुछ। चुनावके समय लोग चाणक्य बन जाते हैँ। म्युनिसिपैलिटीका चुनाव हुआ, पर मालवीयजी न जीत सके। उस समय लोग उनका मूल्य नहीँ समझ सके थे, फिर चुनावमेँ योग्यताका तो प्रश्न होता ही नहीँ—यह हिन्दुस्थानमेँ ही नहीँ, दुनिया भरमेँ यही बात है—वहाँ तो दलका ध्यान रक्खा जाता है, दोस्ती निबाही जाती है, अहसान चुकाया जाता है। जो दलसे दूर हो और जिसके आत्म-सम्मानने किसीसे अहसान लेनेकी हिम्मत ही न की हो वह क्या करे? मालवीयजी हार गए। पर उनकी सेवाओँने लोगोँके हृदय बदल दिए, धारणाएँ बदल दीँ। फिर दूसरी बार वे प्रयाग म्युनिसिपल बोर्डमेँ चुने गए। वे लद्धड़ सदस्योँमेँसे नहीँ थे जो वोट माँगते समय बड़े लम्बे-चौड़े वादे करते हैँ और चुन जानेपर आरामसे लेटते हैँ, उधर आँख उठाकर भी नहीँ देखते। मालवीयजीने शहरकी सफ़ाई और उसका सौन्दर्य बढ़ानेके लिये जो प्रयत्न किया उससे लोग बड़े प्रसन्न हुए और फिर वे सर्वसम्मतिसे सीनियर वाइस चेयरमैन भी बना दिए गए। उनके ज़मानेमेँ पुराने प्रयागकी कायापलट हो गई। खँडहरोँ, पुराने गन्दे महल्लोँ और बीहड़ स्थानोँमेँसे भव्य भवन, चौड़ी खुली सड़केँ और दूकानेँ निकल आईं, सुन्दर मुहल्ले बसने लगे। इलाहाबादका लूकरगञ्ज नामका मुहल्ला मालवीयजीके ही प्रयत्नका फल है।

इसीके बाद प्रयागमेँ बड़े ज़ोरोँसे ताऊन फैला। लोग घर छोड़कर अपनी-अपनी जान लेकर भागने लगे। पड़ोसी पड़ोसीको भूल गया। बड़े लोगोँने

बँगलोंकी शरण ली। छोटे लोग शहरसे बाहर चले गए। बूढ़े-बूढ़े लोग, जिन्हें भगवानसे मिलनेकी जल्दी थी या जिन्हें घरवालोंने फ़ालतू समझ रक्खा था, वे बेचारे रह गए थे। ऐसे समयमें अपनी प्राणोंकी ममता छोड़कर मालवीयजी प्रयागकी गलियोंमें घर-घर घूमकर बीमारोंका पता लगाते, उनकी दवा दारू करते, ढाढ़स बँधाते, मकानको दवासे धुलवाते, बीमारको अस्पताल भिजवाते और जो अपने घरको अपनी जानसे बढ़कर प्यार करते थे उन्हें शहरके बाहर रहनेकी सलाह देते थे। सरकारी अफ़सर रौबसे काम लेते थे। लोग इस महामारीसे इतने घबरा गए थे कि सरकारी अफ़सर और डाक्टर लोग उन्हें कालके समान जान पड़ते थे। मालवीयजीने शहरके बाहर म्युनिसिपैलिटीकी ओरसे हेल्थ-कैम्प लगवा दिया था कि शहर छोड़कर लोग वहाँ रहें। ऐसा जान पड़ा मानों भगवान स्वयं उस विपत्तिसे उनकी रक्षा करने आ रहे हैं। उनका दिव्य स्वरूप, उनकी दिव्य वाणी और उनका दिव्य त्याग—सबने मिलकर मालवीयजीको देवता बना दिया।

सरकारको भी इस सुमनकी गन्ध पहुँची। उन दिनों संयुक्तप्रान्तीय व्यवस्थापक सभामें बारह सदस्य होते थे जिन्हें सरकार चुनती थी। ये सब सदस्य सरकारकी आँख देखकर चलते थे। 'अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक' की भाँति अपने अन्नदाताके इशारेपर दिनको तारे दिखानेमें भी सङ्कोच न करते थे। प्रजा जाय चूल्हेमें, हज़ूर ख़ुश रहने चाहिएँ। उस समयतक राजनीतिक आत्म-सम्मान पूरी तरहसे उदय नहीं हुआ था। जो भिक्षा दे उसीको आशीर्वाद मिलता था। कौन्सिलकी नियुक्तिके दिन थे। काशीके प्रसिद्ध नेता श्री रामकाली चौधरीने मालवीयजीसे कहा—"कौन्सिलमें तुम ही जाओ, तुम ही रास्ता दिखाओ।" पर उस समय पण्डित विश्वम्भरनाथजी युक्तप्रान्तके बहुत बड़े नेताओंमें थे। मालवीयजी भी उनको बहुत मानते थे। जबतक वे जीवित रहे तबतक मालवीयजीने व्यवस्थापक सभामें पैर रखनेका नाम भी न लिया। सन् १९०३ ई० में पण्डित विश्वम्भरनाथजीकी मृत्युसे कौन्सिलमें जो स्थान ख़ाली हुआ, उसमें मालवीयजीको ही सरकारने नियुक्त किया।

मालवीयजीने सरकारको 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' कहनेवाली प्रथा ही उलट दी। उन्होंने कभी जनताके हितकी हत्या करके सरकारका पक्ष नहीं किया। सरकार जिसे बकरी समझे हुए थी वह बाघ निकला। सरकारको मालवीयजीकी नियुक्तिपर अफ़सोस तो ज़रूर हुआ होगा।

सन् १९०३ ई० में सरकारने 'बुन्देलखण्डमें ज़मीनकी बेदख़ली' के क़ानूनका मसौदा पेश किया। मालवीयजीने कहा कि यह प्रस्ताव राजनीतिक और सामाजिक सिद्धान्तोंके विरुद्ध है और १९ जनवरी सन् १९०३ ई० को इस क़ानूनका घोर विरोध किया। पर क़ानून पास हो गया। अकेला चना भाड़को भला कैसे फोड़ सकता था! इस क़ानूनसे बुन्देलखण्डको जो हानि हुई है उसे बुन्देलखण्डवाले भली भाँति जानते हैं।

इसके अतिरिक्त सन् १९०४, १९०६ और १९०७ ई० में मालवीयजीने सालाना कच्चे चिट्ठेके अवसरपर बड़े मार्केके व्याख्यान दिए और शिक्षापर अधिक रुपया व्यय करने, पुलीसका सुप्रबन्ध करने, सरकारी नौकरीमें भारतवासियोंको उच्च स्थान मिलने, कलक्टरीकी परीक्षा भारतमें होने, प्रजाके स्वास्थ्य-सम्बन्धी सुधार करने आदि विषयोंपर बड़ा ज़ोर दिया और इनमेंसे बहुतसी बातें सरकारने मानी भी। उस समयके सदस्योंमें केवल मालवीयजी ही ऐसे थे जो शत्रुके दुर्गमें उससे मोर्चा ले रहे थे, वे ही एक ऐसे महापुरुष थे जो वहाँ प्रजाहितकी साधना कर रहे थे।

सन् १९०८ ई० में संयुक्तप्रान्तकी सरकारने पुलीसका ख़र्च बढ़ा दिया। मालवीयजीने बड़े कड़े शब्दोंमें इसका विरोध किया और चेतावनी दी कि ऐसा करनेसे लोग सरकारकी नीयतमें सन्देह करने लगेंगे।

सन् १६०६ ई० मेँ भारतवर्षकी व्यवस्थापक सभामेँ सुधार हुआ। प्रान्तीय व्यवस्थापक सभासे दो प्रतिनिधि चुनकर भारतीय व्यवस्थापक सभामेँ भेजनेका नियम बना। पहली ही बार इन दो सदस्योँमेँसे एक मालवीयजी चुने गए, और फिर बराबर वे उक्त सभाके सदस्य रहे। इस सभामेँ मालवीयजीका सबसे पहला गम्भीर और ज़ोरदार व्याख्यान 'प्रेस ऐक्ट' पर हुआ था। मालवीयजी और माननीय श्री बसु ही ऐसे दो व्यक्ति थे जिन्होँने उसका विरोध किया। मालवीयजीने कहा था कि "यदि प्रान्तीय सरकारकी इच्छापर ही प्रेस छोड़ दिए जायँगे तो उन्होँने आजतक जिस स्वतन्त्रतासे सरकारकी नीतिकी आलोचना की है वह न हो सकेगी।" पर यह क़ानून भी पास हो गया, और प्रान्तीय सरकारोँने इस विषयमेँ जिस स्वेच्छाचारितासे काम किया है उससे मालवीयजीकी भविष्यवाणी सत्य ही होगई।

सन् १६१० ई० मेँ माननीय जेन्किन्स महोदयने जब विद्रोह-सभा-क़ानून पेश किया उस समय मालवीयजीने और गोखलेजीने बड़ी स्वतन्त्रता और निर्भयतासे उस क़ानूनका विरोध किया और मालवीयजीने यह भी कहा कि 'इस क़ानूनके प्रयोगमेँ जो ज़्यादतियाँ की जायँगी उनसे सम्भव है कि लोग और भी भड़क उठेँ और जिस रोगकी यह दवा होने जा रही है वह रोग दुगुना बढ़ जाय।'

इसीके बाद गोखले महोदयने अपना प्रारम्भिक शिक्षा-विधान पेश किया। मालवीयजी तो प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी थे ही। शिक्षाके प्रसार और प्रचारके लिये तो उन्होँने अबतक काम ही किया था। मालवीयजीने बड़े ज़ोरदार शब्दोँमेँ इसका समर्थन किया और देशकी अशिक्षाका विस्तारसे वर्णन करके शिक्षा-प्रचारके लाभ बताए।

पर शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उनका व्याख्यान हुआ था शर्त्तबन्द कुली-प्रथापर। सन् १६१० ई० मेँ गोखलेजीने इस विषयपर विफल प्रयास किया था। पर लौर्ड हार्डिञ्जके समयमेँ मालवीयजीने इसपर आवाज़ उठाई। श्री सी० एफ़० एण्ड्रूज़ प्रवासी भारतीयोँकी दुर्दशा देखकर लौटे थे। मालवीयजीने ऐसे करुण शब्दोँमेँ बेचारे प्रवासियोँकी दुर्दशाका वर्णन किया कि सरकारका कड़ा हृदय भी पिघल उठा और लौर्ड हार्डिञ्जने यह घोषणा की कि उन्होँने और भारत-सचिवने इस प्रथाको सदाके लिये बन्द कर देनेका निश्चय कर लिया है। इसके बाद हिन्दू-युनिवर्सिटी-बिल आया और उनके लिये उन्होँने जो अपील की वह अद्वितीय थी।

सन् १६१६ ई० मेँ जहाँगीराबाद एमेण्डमेण्ट बिलपर जो उन्होँने व्यवस्थापक सभाके भीतर और बाहर व्याख्यान दिए थे, वे भी बेजोड़ थे।

लड़ाईके बाद सरकारकी नीयत ख़राब हो गई। सन् १६१८ ई० मेँ विन्सेण्ट महोदयने रौलेट् बिल ला रक्खा। इसपर सारा देश व्याकुल हो उठा। मालवीयजीने इसपर जो व्याख्यान दिया वह व्यवस्थापक सभामेँ अद्वितीय समझा जाता है। साढ़े चार घण्टेतक पैरोँपर खड़े होकर बिना पानी पिए लगातार अपनी ओजपूर्ण वाणीद्वारा उन्होँने रौलेट् क़ानूनके दोष दिखलाए और उसकी निःसारता प्रकट की। मालवीयजीकी तर्कशक्ति, उनका विस्तृत क़ानूनका ज्ञान, उनकी विशाल बुद्धि और सबसे बढ़कर उनकी नीतिज्ञताका पूर्ण परिचय उस व्याख्यानसे मिलता है। यह विधान भी पास हो गया। मालवीयजी लौर्ड चेम्सफोर्डके प्राइवेट सेक्रेटरीसे मिले और कहा कि छः महीनेतक इसे काममेँ न लावेँ। इसपर श्री शङ्करन नायरने कहा कि इसे तो उन्होँने पहले ही मार डाला है। मालवीयजीने इसके विरोधमेँ इस्तीफ़ा दे दिया पर फिर ये चुने गए। पञ्जाबका हत्याकाण्ड हुआ और सरकारने 'क्षमा विधान' पेश किया कि जिन अफ़सरोँने शान्तिकी रक्षाके लिये पञ्जाबमेँ कुछ अनुचित काम किए हैँ वे क्षमा कर दिए जायँ। इसका भी मालवीयजीने विरोध

किया और इस बार पाँच घण्टेतक लगातार बोलते रहे। ये दोनों व्याख्यान उनके पढ़ने ही योग्य हैं।

उसके बाद लेजिस्लेटिव असेम्बलीमें नमक कर, विनिमय अनुपात, सोनेकी दर, रूई कर आदिपर आपके व्याख्यान हुए। वे सन् १९३० ई० तक वहाँ रहे और इस बीच सभी विधानोंपर आपने छोटे-बड़े व्याख्यान दिए। सन् १९२६ ई० में जब कांग्रेसने स्वराज्य पार्टी बनाई थी, उस समय मालवीयजी और लाला लाजपतरायने मिलकर नेशनलिस्ट पार्टी बनाई और कांग्रेसके साथ चुनाव-युद्ध लड़ा। एक ओर पण्डित मोतीलालजीका दौरा हो रहा था, दूसरी ओर मालवीयजीका। प्रयागके दोनों नेता अपना-अपना मत लेकर दौरा कर रहे थे। मेरठमें जब मालवीयजी पहुँचे तो उन्हें एक अभिनन्दन पत्र-दिया गया और एक कविता पढ़ी गई थी, जिसमें मालवीयजीका सम्मान किया गया था और पण्डित मोतीलाल नेहरूको देश-द्रोही कहा गया था। पर मालवीयजीको उनकी यह हरकत अच्छी न लगी और उन्होंने कह दिया कि 'मोतीलालजी मेरे बड़े भाई हैं। मैं उनकी शानके विरुद्ध कोई बात नहीं सुन सकता।' पञ्जाबसे इस दलको सफलता मिली, पर वास्तवमें सभी कामोंमें इनके राष्ट्रीय दलने कांग्रेसका साथ दिया। अन्तमें सरकारकी शाही पक्षपातपूर्ण नीतिके कारण सन् १९३० ई० में उससे इस्तीफ़ा दे दिया। सरकारने वस्त्र-उद्योग-रक्षण क़ानून पास करके इङ्गलैण्डके बने कपड़ेपर पन्द्रह फ़ी सदी और विदेशी कपड़ेपर बीस फ़ी सदी कर लगाया। मालवीयजीने सरकारको ख़ूब आड़े हाथों लिया और उनकी इस पक्षपातपूर्ण नीतिको आर्थिक परिषद्के निर्णयके खिलाफ़ बताया और सरकारी दुर्गमें उन्हें यह समझाकर कि हम दूध पीते बच्चे नहीं हैं, काँचकी गोलियाँ नहीं खेलते हैं, अपना भला समझते हैं, वे वहाँसे निकल आए। सरकारने मालवीयजीकी मित्रता खोकर कम भूल नहीं की। सन् १९३३ ई० के चुनावमें आप फिर खड़े हुए थे पर वोटरोंमें आपका नाम ही न था। न जाने किसकी भूलसे आप असेम्बलीमें न जा सके।

इस बुढ़ापेमें भी आपकी भाषणशक्ति कम नहीं हुई। वे पुराने दाँत नहीं रह गए, फिर भी दहाड़ बनी है। यह एक आश्चर्य्यजनक बात है कि सरकारका इतना विरोध करनेपर भी सरकार मालवीयजीका इतना मान करती रही और उनके व्यक्तित्त्वका और उनकी सम्मतिका आदर करती रही। पर इन सबके पीछे उनका आकर्षक स्वरूप, उनका मधुर स्वभाव, कोमल व्यवहार और मृदुल वाणी ही थी जो शत्रुको भी मित्र बना देती थी। सरकारी व्यवस्थापक सभाओंमें रहकर उन्होंने जितनी भारतीय जनताकी सेवा की है, उतनी किसी भी भारतीयने नहीं की। आज जो हिन्दुस्तानी कलक्टर, कमिश्नर और सुपरिण्टेण्डेण्ट बने हुए हैं और जो बड़े-बड़े सरकारी पदोंपर पहुँचकर कभी-कभी राजभक्तिके जोशमें आकर निहत्थे दीन भारतीयोंपर डण्डा और गोली चलानेमें अपना गौरव समझते हैं, उन्हें याद रखना चाहिए कि उनका पद और उनका मान मालवीयजीकी प्रेरणा, उत्साह और परिश्रमका प्रसाद है।

सेवा

भारतके मेले और पर्व दूसरे देशोंके मेलोंसे भिन्न होते हैं। यहाँके लोग बढ़िया-बढ़िया वस्त्र पहनकर आनन्द लूटने, तमाशा देखने नहीं जाते, ये जाते हैं पुण्य कमाने। हमारे मेले भी धर्मके रसमें पगे होते हैं। एक ओर तो पुण्य लूटनेका लोभ और दूसरी ओर शिक्षाका बिलकुल अभाव। 'आँखके अन्धे और गाँठके पूरे' की जो दुर्गति होती है वही दशा बेचारे भोले-भाले हिन्दुस्थानियोंकी मेलों या पर्वोंपर होती है। स्त्रियोंका रूप और उनके गहने चोरों और लम्पटोंको आकर्षित करनेके लिये क़ाफ़ी होते ही हैं। न जाने कितने बेचारे गृहस्थ अपनी लक्ष्मी और गृहलक्ष्मी तथा अपने सुकुमार बच्चोंको इन मेलोंकी भेंटकर आते हैं और फिर अपनी बदनामी बचानेके लिये वे घर लौटकर यह कहकर चुप हो रहते हैं कि उनकी स्त्री या बच्चेका देहान्त हो गया। यह कोई कानों सुनी बात नहीं है। हर साल मेलेमें यही होता है और बेचारी हिन्दू स्त्री! बेचारी अबला!! उसकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है, भक्षक न जाने कितने हैं। चारों ओरसे भयानक जानवरोंसे घिरी रहकर वह अपना सतीत्व किस तरह बचाए रखती है, यह देखकर उसके सामने श्रद्धासे सिर झुक जाता है। इन्हीं देवियोंके बलपर ही भारत जी रहा है नहीं तो अबतक कबका मिट गया होता।

जब मेले-तमाशे होते हैं तो बहुतसे लोग कुछ प्रबन्ध कर लेते हैं। पहले तो लोग अपने पास तलवार रखते थे। वे अपनी और अपने कुटुम्बकी रक्षा करना जानते थे। पर जबसे तलवार छीन ली गई तबसे हिन्दू कायर बन गए, उनकी मूछें उड़ गईं और वे बेचारे दूसरेका मुँह ताकने लगे।

पहले कुछ लोग अपने-अपने नगरोंमें छुटपुट दल बनाकर मुख्य अवसरोंपर सेवा किया करते थे। पर तब कोई सङ्गठन नहीं था, कोई नियम नहीं था। कुम्भ हुआ करते थे, बड़ी भीड़ होती थी। पुलीस कहाँतक प्रबन्ध कर सकती थी। फिर पुलीसको डण्डेका बल था, उसको किसीके साथ सहानुभूति तो थी नहीं। जैसे भेड़ोंको बाड़ेमें भरते हैं, इसी प्रकार लोग भरे जाते थे और फिर उनकी क्या दशा होती है वह आप कभी प्रयाग या हरिद्वारमें कुम्भपर स्टेशनोंपर जाकर स्वयं देख सकते हैं। सचमुच पराधीन भारतके मनुष्योंकी क्या दुर्दशा होती है, क्या कहें। जिन्हें भोजन नहीं मिलता, वस्त्र नहीं मिलता, जिनके पास कौड़ी भी नहीं हैं, वे गूँगी भेड़ोंकी तरह जिधर हाँक दिया चल दिए। और उनका सन्तोष तो देखिए कि गङ्गाजी या त्रिवेणीजीमें एक डुबकी लगाकर वह तर जाते हैं। समुद्रगुप्तको भी अपनी दिग्विजयपर इतनी प्रसन्नता न हुई होगी जितनी इन्हें उस समय होती है।

सन् १९०८ ई० की बात है। 'अर्द्धोदय' यात्राके अवसरपर बङ्गाली युवकोंने बड़ी लगन और तत्परताके साथ सेवा की, लोगोंको मार्ग बताया, ठहरनेका प्रबन्ध किया, लुटेरों और जेब-कतरोंसे लोगोंकी रक्षा की और यात्रियोंकी हर तरहसे सहायता की। सन् १९११ ई० में सूर्य्य-ग्रहणपर बनारसमें बहुतसे युवकोंने मिलकर सेवाका काम किया और यात्रियोंको सुविधाएँ दीं।

प्रयागमेँ भी नागरिकोँके कुछ दल यह सब काम करते थे पर बड़े ही अव्यवस्थित रूपसे । सन् १९१२ ई० मेँ अर्द्धकुम्भी मकर संक्रान्तिका मेला हुआ । लाखोँ पुरुष, बूढ़े, बच्चे, स्त्रियाँ आईं । प्रयागमेँ एक स्वयंसेवकोँका दल बना । मालवीयजीके बड़े पुत्र पण्डित रमाकान्त मालवीय उसके मुखिया थे । इन लोगोँने सरकारी पुलीसके साथ सहयोग देकर बड़ा काम किया और सरकारकी ओरसे भी इन्हेँ सब तरहकी सुविधा मिली ।

दो वर्ष बाद माघ-मेलेके अवसरपर वह समिति कुछ व्यवस्थित हो गई और उसका नाम दीनरक्षक समिति पड़ गया । उस समितिने प्रशंसनीय काम किया । इनमेँ अधिकतर म्योर सेण्ट्रल कौलेज़के छात्र ही थे । यही समिति पीछे प्रयाग सेवासमिति बन गई । मालवीयजी इसके सभापति और पण्डित हृदयनाथ कुञ्जरू इसके मन्त्री बने ।

सन् १९१३ ई० मेँ शाहजहाँपुर ज़िलेमेँ कुछ महानुभावोँने मेलोँ और विशेष अवसरोँपर सेवा करनेके उद्देशसे एक समिति स्थापित की, जिसका नाम सेवासमिति रक्खा गया और जिसके कार्य्य-सञ्चालनका भार पण्डित श्रीराम वाजपेईको दिया गया, जो उस समय रेलवेके दफ़्तरमेँ काम करते थे । उनके सञ्चालनमेँ उक्त समितिने ज़िलेके बाहर भी जाकर इस सुन्दरतासे सेवा और प्रबन्ध-कार्य्य किया कि उसका नाम दूर-दूरतक फैल गया ।

इधर वाजपेईजीने एक बाल-व्यायामशाला खोली, जहाँ उनकी देखरेखमेँ प्रतिदिन सायङ्कालको दो घण्टेके लगभग बालक कसरत किया करते थे । इसी बीच एक ऐसी घटना हुई, जिसने इस बाल-व्यायामशालाको ऐसा रूप दिया, जिसकी उपयोगिता उस समय लोगोँने कम समझी थी । वाजपेईजीने पन्सारीके यहाँसे कुछ सामान लाकर अपनी माँको दिया । अचानक उनकी तीव्र दृष्टि सामानमेँ लपेटे हुए एक कागज़पर पड़ी, जसमेँ स्काउटिङ्गकी कुछ पुस्तकोँका ब्यौरा दिया हुआ था और नीचे 'थैकर स्पिन्क ऐण्ड कम्पनी' का पता दिया हुआ था । उन्होँने बड़ी उत्सुकतासे कुछ किताबेँ मँगवाईं और उनका अध्ययन कर सेवा-समितिकी 'बालचर-मण्डल' शाखा खोल दी, जिसमेँ सोलह वर्षसे कम अवस्थाके बालक प्राथमिक चिकित्सा, झण्डीसे बात करना और अन्य उपयोगी बातोँको उनसे सीखने लगे । थोड़े ही दिनोँमेँ सेवासमिति और उसके बालचर-मण्डलकी ख्याति ख़ूब फैल गई ।

इसी बीच इलाहाबादमेँ सन् १९१८ ई० मेँ कुम्भका मेला हुआ, जिसके प्रबन्धमेँ प्रयाग-सेवासमितिका (इस समय अखिल भारतीय सेवासमिति) बड़ा भारी हाथ था । मालवीयजी समितिके सभापति थे और पण्डित हृदयनाथ कुँज़रू उसके मन्त्री थे । दोनोँने बड़े परिश्रमसे कुम्भके प्रबन्धका आयोजन किया । उन्होँने सब सेवासमितियोँको स्वयंसेवक भेजनेको लिखा । शाहजहाँपुरसे श्री वाजपेईजीकी अध्यक्षतामेँ सौ स्वयंसेवक और आठ बालचर प्रयाग पहुँचे और इस दक्षतासे सेवाकार्य किया कि मालवीयजी और पण्डित हृदयनाथ कुँज़रू दोनोँ, स्वयंसेवकोँ और विशेष रूपसे बालचरोँकी सेवा-प्रणाली और कार्य-कुशलतासे बहुत ही प्रभावित हुए । दोनो सज्जनोँने वाजपेईजीसे कहा कि इस प्रकारकी बालचर-शिक्षा-प्रणालीकी देशमेँ बड़ी आवश्यकता है और उसको फैलानेमेँ देर नहीँ करनी चाहिए । उन्होँने वाजपेईजीसे आग्रह किया कि वे इलाहाबाद आकर इस कार्य्यको यथाशक्ति बढ़ावेँ । इसके फलस्वरूप 'अखिल भारतीय सेवासमिति बौय स्काउट एसोसिएशन' की सन् १९१८ ई० मेँ स्थापना हुई । वाजपेईजीको कार्य्य-सञ्चालनका भार दिया गया और श्री मालवीयजी 'चीफ़ स्काउट' बने और पण्डित हृदयनाथ कुँज़रूजीने 'प्रधान कमिश्नर' होना स्वीकार किया । अब इस संस्थाका विस्तार दिनोँ-दिन बढ़ने लगा ।

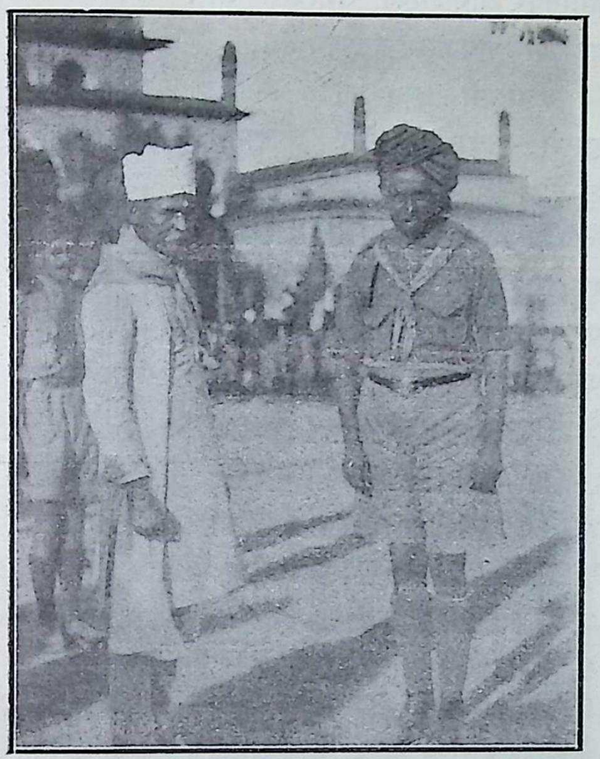

सेवासमिति बौय स्काउट एसोसिएशनके चीफ़ स्काउट मालवीयजी गलेमेँ स्काउट स्कार्फ़ डाले हुए रैली देख रहे हैँ। पास ही श्रीमान् वाजपेयी खड़े हैँ।

इसके कुछ पूर्व भारतवर्षमेँ स्काउटिङ्गके कुछ दल बड़े-बड़े शहरोँमेँ खोले गए थे पर उनमेँ भारतीय बालकोँको स्थान नहीँ प्राप्त था। ये दल केवल अंग्रेज़ोँ और ऐङ्गलो इण्डियनोँके लिये ही थे। श्रीमती एनी बेसेण्टने सन् १९१७ ई० में भारतीय बालकोँके लिये 'इण्डियन बौय स्काउट एसोसिएशन' खोला पर उसका काम दक्षिणमेँ ही रहा। उत्तर भारतमेँ सेवासमिति बालचर मण्डल बड़ी तीव्र गतिसे उन्नति कर रहा था। इसी बीच स्काउटिङ्गके जन्मदाता लौर्ड बेडेन् पौवेलूके भारत आनेका समाचार पत्रोँमेँ प्रकाशित हुआ जिसके कारण भारतीय स्काउटिङ्गके केन्द्रोँमेँ कुछ खलबली मची, असन्तोष फैला, क्योँकि उन्होँने भारतीयोँको स्काउटिङ्गके अयोग्य समझा था और इस प्रकारके भाव वे प्रकाशित भी कर चुके थे। श्रीमालवीयजीने और श्रीमती एनी बेसेण्टने इस कलङ्ककी असत्यता उन्हींके सम्मुख प्रमाणित करना चाहा और सन् १९२१ ई० मेँ इलाहाबादमेँ अखिल भारतीय सेवासमिति बौय स्काउट एसोसिएशन और इण्डियन बौय स्काउट एसोसिएशनका संयुक्त बृहत सम्मेलन हुआ, जिसमेँ लौर्ड बेडेन् पौवेलूने भारतीय स्काउटोँके कार्य्यकी बहुत प्रशंसा की और अपने पहलेके विचारोँपर खेद प्रकाशित किया। उन्होँने यह भी कहा कि भारतीय बालकोँको उनकी राष्ट्रीय संस्थामेँ समानताका पद प्राप्त रहेगा। मालवीयजीने बेडेन् पौवेल् महोदयसे मिलकर तीन बातोँपर बातचीत की कि गवर्नर या वाइसराय चीफ़ स्काउट न होँ, बल्कि जनतामेँसे कोई चुना जाय। दूसरी बात यह थी कि स्काउटकी प्रतिज्ञामेँ देशके प्रति भक्तिकी भी प्रतिज्ञा होनी चाहिए। तीसरी बात यह है कि स्काउटोँके गीतोँमेँ 'वन्दे मातरम्' का भी समावेश होना चाहिए। ये बातेँ बेडेन् पौवेलू महोदय मान भी लीँ। तदुपरान्त जो मेलके लिये सभाएँ हुईं उनमेँ यद्यपि यह कहा गया कि स्काउट संस्थाको ग़ैर-सरकारी और देशके अनुकूल बनाना चाहिए किन्तु कार्य्यरूपमेँ ऐसा न होते देखकर श्रीमालवीयजीने इस सेवासमिति बौय स्काउट एसोसिएशनको अलग ही रखना ठीक समझा और आज वह उनकी संरक्षतामेँ भारतमेँ जो कार्य्य करती है वह किसीसे छिपा नहीँ है।

इस सेवासमितिने हरिद्वार और प्रयागके कुम्भ मेलोँके अतिरिक्त जब-जब और जहाँ कहीँ कोई विपत्ति आई है—बाढ़मेँ, भूकम्पमेँ, अकालमेँ—जाकर सहायता की है। जब जनरल डायरने पञ्जाबका ख़ून किया था तब उसकी मरहम-पट्टी करने और उसकी सेवा करनेके लिये यही सेवासमिति अपने चीफ़ स्काउटके पीछे-पीछे अमृतसर, लाहौर आदि सब जगह दौड़ी गई थी।

इस सेवासमितिके कई विभाग हैँ:—शिक्षा, स्वास्थ्य, रेलवे सेवा, नायक-सुधार आदि। सारे

देश भरमेँ इसकी शाखाएँ खुल गई हैँ और हर एक मेले और उत्सवमेँ सेवासमितिके बालचरोँने प्रशंसनीय काम किया है। इसके सराहनीय कामसे प्रसन्न होकर सरकार भी इसे दो हज़ार रुपया साल देती है।

इसके अतिरिक्त हिन्दू स्त्रियोँ, मन्दिरोँ और अनाथोँकी रक्षाके लिये एक दूसरा दल मालवीयजीकी सनातनधर्म सभाद्वारा चल पड़ा जिसे महावीर दल कहते हैँ। यह एक प्रकारका धार्मिक स्वयंसेवक दल है पर ये लोग भी सब पर्वोँ, मेलोँ, उत्सवोँ आदिमेँ सेवा करते हैँ। कुरुक्षेत्र मेलेपर जो उनका प्रबन्ध हुआ है उसकी प्रशंसा सरकारने भी की है। महावीर दलका विशेष सङ्गटन पञ्जाबमेँ हुआ है और सचमुच वहाँके स्वयंसेवकोँको देखकर यही मालूम होता है कि ये 'हर-हर महादेव' का जयकारा बोलनेवाले सचमुच महावीर हनुमानजीकी सेनाके योग्य हैँ।

मालवीयजीको अपने चीफ़ स्काउटके पदका गर्व है और उन्हेँ बाहर जाकर यह कहलानेमेँ अभिमान होता है कि वे चीफ़ स्काउट हैँ। वे कोरे चीफ़ स्काउट ही नहीँ हैँ बल्कि उनका जीवन ही सेवामय है। एक बार प्रयागके कुम्भके अवसरपर सेवासमितिका कैम्प त्रिवेणी तटपर बनाया गया था। स्वयंसेवक बालूपर बिस्तरे बिछाकर लोट रहे थे। मालवीयजीने भी कैम्पमेँ ही अपना डेरा डाला। लोग दौड़े गए और उनके लिये चारपाई उठा लाए। पर मालवीयजीने उसको वापस कर दिया और कहा कि यह कैसे हो सकता है कि स्वयंसेवक तो सोएँ ज़मीनपर और उनका सभापति सोए चारपाईपर।" यही मालवीयजीका बड़प्पन है।

सेवा-धर्म बड़ा कठिन है पर जिसका शरीर शुरूसे सेवाकी कठोर तपस्यामेँ बीता है उसे अभ्यास हो जाता है और फिर वह दूसरोँके लिये आदर्श बन जाता है। ईश्वर करे हमारे चीफ़ स्काउट शतायु होँ और जिस प्रकार हम लोग उनकी पचहत्तरवीँ वर्षगाँठ मना रहे हैँ इसी प्रकार फिर अपने वृद्ध चीफ़ स्काउटको बीचमेँ बैठाकर उसकी सौवीँ वर्षगाँठ मनावेँ।

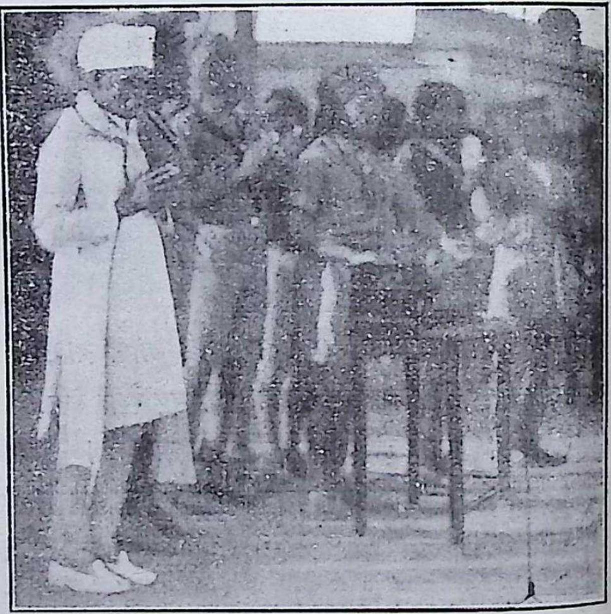

अपनी सत्तरवीं वर्षगाँठके अवसरपर स्काउट मास्टरोँके साथ चीफ़ स्काउट मालवीयजी खड़े होकर वन्देमातरम् गा रहे हैँ।

सोनेकी चिड़िया

वह भी एक समय था। दूर-दूरके यात्री, विद्वान, व्यापारी भारतमेँ आते थे और भारतके लहलहाते हुए खेतोँ, हीरे-मोतियोँसे लदे हुए स्त्री-पुरुषोँ, और ऊँचे-ऊँचे विशाल राज-भवनोँ देखकर सहम जाते थे। उनके लिये भारत भी एक अचरजकी जगह थी। जहाँ कुदाली मारो सोना निकलता है, आकाशसे अमृत बरसता है, घी-दूधकी नदियाँ बहती हैँ, खेतोँमेँ सोनेके बाल लगते हैँ। "सोनेकी चिड़िया" दूर-दूरतक मशहूर हो गई। सबके दाँत इसपर गड़ गए। अपना-अपना फन्दा लेकर सब इसकी ओर दौड़ पड़े। अब भी पुराने खण्डहरोँमेँ उस 'सोनेकी चिड़िया' के कुछ टूटे हुए पङ्ख मिलते हैँ। ह्वीनत्साङ्ग और फ़ाह्यानके लिखे हुए ताड़के पत्ते उसकी कथा सुनाया करते हैँ। ताजमहलके सङ्गमरमरकी शिलाएँ भी उसकी याद दिलाती हैँ। महमूद ग़ज़नी, ग़ोरी, तैमूर और अहमदशाह अबदाली अपना-अपना कम्पा लेकर आए और उस चिड़ियाके पङ्ख नोचकर ले गए, तब भी कुछ नहीँ बिगड़ा। नुचे हुए पङ्खोँकी जगह नए निकल आए। पर न जाने कहाँसे कौन ऐसा बहेलिया आया जिसने पङ्ख तो नोच ही लिये पर साथ ही चिड़ियाका चुग्घा भी चुरा लिया और बेचारी चिड़िया न तो उड़ सकी, न चहचहा सकी। उसकी यह दशा हो गई कि अब गई—अब मरी।

भारतके खेत सचमुच सोना पैदा करते थे। इतना अन्न पैदा होता था कि न अपने भूखे रहते थे न अतिथि भूखा रहता था। इतना अन्न बचा रहता था कि दूसरे देश भी हमारे ही टुकड़ोँसे पलते थे। वस्त्रके व्यापारने तो हिन्दुस्थानकी कीर्त्ति समुद्रके पार पहुँचा दी। दूसरे देशोँकी सुन्दरियोँका भारतीय वस्त्रोँके बिना शृङ्गार ही नहीँ हो सकता था। किसी भी मशीनने आजतक इतनी सफ़ाई नहीँ दिखाई जैसी ढाकाके कारीगरोँने। वहाँका मलमल प्रत्येक रईस और नवाबके शरीरपर चमकता था। इसीके बीच ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज्य आया। हिन्दुस्थानको मूर्खता सवार हुई। विलायती सामान और कपड़ोँसे इसके बाज़ार भर गए। कारीगरोँके अँगूठे काट लिए गए। उनके मुँहका कौर छीनकर विलायती कारीगरोँका पेट भरा जाने लगा। देशी मालपर टैक्स लगने लगा, कर बढ़ा दिया गया, उधर विलायतमेँ भारतीय कपड़ेपर कर अधिक लग गया, हिन्दुस्थानी कपड़ा पहननेवालोँपर जुर्माने होने लगे। भारतीय व्यापार सिर थामकर बैठ गया, टाट उलट दिया और दीवाला निकाल दिया। मरते हुए पेसली और मान्चेष्टरकी जान भारतका ख़ून देकर बचाई गई।

विलायतसे रङ्गीन कपड़े आने लगे—बड़े आकर्षक और बड़े चमकदार। हिन्दुस्थानमेँ विलायती चीज़ोँका अम्बार लग गया। व्याह-शादियोँमेँ खिलौने विलायती, साड़ियाँ विलायती, और सजावटका सामान विलायती। बाजा भी बजे तो अंग्रेज़ी, दूल्हेकी फ़रमायश भी विलायती साइकिल और मोटर की ही होने लगी। हमारी बहनोँको भी जबतक गौकी चर्बीसे चमकाया

हुआ विलायती कपड़ा न मिले तबतक उनका शौक़ नहीं पूरा होता। विलायती चूड़ियोंसे उनका सुहाग हरा होने लगा। हमारे मूँछ मुँड़ाए हुए नौजवान—उनकी हालतपर सचमुच रोना आता है—सिरसे पैरतक विलायती रङ्गमें रँग गए। सिरपर हैट लगाकर, गलेमें नकटाई बाँधे हुए और सूट पहने हुए किसी हिन्दुस्थानीकी शकल तो देखिए—नारद-मोहमें नारदजीकी जो शकल बनी थी वही समझिए। न जाने अपने देशके कितने बच्चोंके मुँहकी रोटी छीनकर इन युवकोंने अपना यह बनाव सिङ्गार शुरू किया है। कोई अपढ़ ऐसा काम करता तो बुरा न लगता। अफ़सोस यही है कि ये लोग अपनेको सभ्य और सुशिक्षित कहते हैं। अर्थशास्त्रके विद्वान् प्रोफ़ेसरको इस बहुमूल्य बेढङ्गे वेशमें देखकर किसे हँसी न आयगी। कहावत है कि—जिसका चलन बिगड़ा उसका विश्वास क्या। देखें अभी इन सभ्य सुशिक्षित सज्जनोंके हाथ कितने बेचारे ग़रीबोंकी हत्या होनेको है। यह हम ही नहीं कहते हैं बल्कि न्यूयौर्कके सुप्रसिद्ध वकील मिस्टर मायनर फेलपस्का कहना है कि—"भारतवासियोंको यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि स्वदेशीके बदलेमें विदेशी वस्तु व्यवहार करनेमें वे लोग अपने देशवासियोंके मुँहकी रोटियाँ ही नहीं छीन रहे हैं बल्कि उनकी हत्या भी कर रहे हैं।"

आजसे सत्तावन बरस पहले प्रयागके एक युवकके मनमें बात आई कि विदेशी वस्तुओंने हमें बिलकुल बेबस कर दिया है। अगर विलायतवाले चाकू न भेजें तो हमारी तरकारी न कटे। गुलामीकी हद हो गई। युवकको तो आप समझ ही गए होंगे। हम मालवीयजीकी ही बात कह रहे हैं। सन् १८८१ ई० में उनके उद्योगसे व्यवहारकी देशी वस्तुएँ तैयार करनेके लिये प्रयागमें एक देशी तिजारत कम्पनी खुली कि जिससे देशी कारीगरोंको प्रोत्साहन मिले। मालवीयजीके मित्र बाबू राधाकृष्ण और बाबू हरदेवप्रसाद इसके मैनेजिङ्ग अध्यक्ष बने। यह देशी तिजारत कम्पनी छः वर्ष बड़ी अच्छी तरह चली। उसमें देशी वस्त्र, बटन, साबुन, चाक़, ताले आदि बहुतसी चीज़ें बनने लगीं और ख़ूब प्रचार हुआ पर उसके कार्य्यकर्त्ताओंको लोभने आ घेरा और और देशी तिजारत कम्पनी बन्द हो गई। इन दिनोंकी एक कथा पण्डित शिवराम वैद्यने कही है। वे लिखते हैं कि—

"मदनमोहनका स्वदेशी प्रेम बहुत पुराना है। बाबू राधाकृष्णजी खत्री और बाबू हरदेव प्रसादजी वग़ैरहके द्वारा प्रयागमें बड़े धूम-धामसे देशी तिजारत कम्पनी खुलवा चुकनेके उपरान्त एक दिन मदनमोहन मेरे पास आए और स्वदेशी वस्तुओंके विषयमें बातचीत होने लगी। मालूम हुआ कि मदनमोहनके हिंसा-विरोधी हृदयको एक नवीन व्याघात पहुँचा है। मदनमोहनने कहा कि जूतोंके कारण लाखों दीन और बेगुनाह पशुओंकी जान मारी जाती है। चमड़ोंके लिये असंख्य पशुओंको मारे जानेका तरीक़ा डाक्टर जयकृष्ण व्यासने मुझे बताया है। उनकी बातें सुनकर मुझे बहुत दुःख हो रहा है और मेरे मनमें यही चिन्ता हो रही है कि किस प्रकार इन ग़रीब पशुओंके जीवनकी रक्षा की जाय।

बाबू राधाकृष्ण गुस्से कहा—बाबूजी! मैंने तो चमड़ेका जूता पहनना छोड़ दिया, देखिए कपड़ेका जूता बनवाया है। काग़ज़का बोट भी ऐसा मज़बूत बनाया जा सकता है कि उससे गाड़ीका पहिया बन सकता है—ऐसा मैंने सुना है।"

तभीसे मालवीयजीने स्वदेशीका व्रत ले लिया और कष्ट तथा असुविधा सहकर भी तबसे विदेशीकी अपेक्षा देशीका ही प्रयोग करने लगे। केवल प्रयोग ही नहीं बल्कि उसका प्रचार भी करने लगे। सन् १८८५ ई० में मालवीयजीने मध्य हिन्दू-समाजकी दूसरी बैठकमें 'स्वदेशी' पर एक बड़ा मर्मस्पर्शी व्याख्यान दिया, जिसमें आपने देशकी दरिद्रता, देशके उद्योग-धन्धोंका नाश और विलायती व्यापारियोंकी अन्धाधुन्ध लूटका

ऐसा विशुद्ध वर्णन किया कि बहुतसे लोग रो पड़े और स्वदेशीके पुजारी बन गए।

अपने नगरमेँ तो मालवीयजी स्वदेशीका प्रचार कर ही रहे थे। अचानक सन् १९०५ ई० का साल आया—वही बङ्ग-भङ्गवाला। हिन्दुस्थानको पिटकर बुद्धि आई और उसने समझा कि हाँ, स्वदेशीका प्रचार करना बड़ा ज़रूरी है। हिन्दुस्तानकी कारीगरी फिर अँगड़ाई लेकर आँखेँ मलकर उठ बैठी। सारे देशमेँ विदेशी कपड़ोँकी होलियाँ जलीँ और हिन्दुस्थानी अपने कपड़े पहनकर फिर भले लगने लगे।

इसी साल मालवीयजीके प्रयत्नसे सन् १९०५ ई० मेँ भारतीय व्यावसायिक सम्मेलन हुआ और सन् १९०७ ई० मेँ युक्तप्रान्त व्यावसायिक सम्मेलन हुआ और युक्तप्रान्त औद्योगिक समितिकी प्रयागमेँ स्थापना हुई। इन अवसरोँपर मालवीयजीने जो व्याख्यान दिए वह अत्यन्त भव्य थे। एक बार उन्होँने भारतीय शिल्प और उद्योगकी एक लहर पैदा कर दी। सारा देश इस लहरमेँ बह चला।

दिसम्बर सन् १९०७ ई० मेँ सूरत-कांग्रेसके साथ-साथ स्वदेशी कौन्फ़रेन्स हुई। उसमेँ भी मालवीयजीने बड़ा प्रमुख भाग लिया था। उस समय जो उन्होँने व्याख्यान दिया उससे भारतकी दुर्दशाका पूरा-पूरा पता लग जाता है।

इससे पहले कांग्रेसके मञ्चपर भारतकी ग़रीबीपर आँसू बहाते हुए कई बार मालवीयजीने स्वदेशीके व्यवहारके लिये अपील की थी और केवल राजनीतिक अधिकार माँगनेवाली कांग्रेसने इस आर्थिक पहलूकी महत्ता समझ ली थी। यह मालवीयजीका ही बूता था कि कई बार स्वदेशीके प्रचारके लिये कांग्रेसने अपनी आवाज़ उठाई और जनताको उसके लिये उत्तेजित किया और अपने देशकी बनी चीज़ेँ हमारे बाज़ारोँमेँ और घरोँमेँ दिखाई देने लगीँ।

पर यह स्वदेशी आन्दोलन दिल्ली-दरबारके बाद ठण्डा पड़ गया। हिन्दुस्थानकी जलवायु ही कुछ ऐसी है कि जितनी जल्दी जोश आता है उतनी ही जल्दी ठण्डा भी हो जाता है। इसके बाद सन् १९१४ ई० की लड़ाई आई और सारा देश अपना धन और जन लेकर उस महायुद्धकी पूजाके लिये तैयार हो गया और सारे देशने मिलकर अंग्रेज़ी राज्यकी हिलती नीँवको सँभालनेके लिये सभ्यताके नामपर, न्यायके नामपर, शान्तिके नामपर, तीन सौ करोड़ रुपया न्यौछावर कर दिया। जिस देशमेँ सत्तर फ़ी सदी लोगोँको सालके छः महीने भोजन न जुड़ सकता हो उन्होँने इतना धन देकर कितनी साँसत सही होगी, यह कल्पना कर लीजिए।

उधर लड़ाई हो रही थी, इधर १९ मई सन् १९१६ ई० को भारतके उद्योग और व्यवसायकी जाँचके लिये सरकारने एक कमीशन नियुक्त किया, जिसके सभापति सर टौमस हौलैण्ड हुए। भारतीय ग़ैर सरकारी जनताकी ओरसे मालवीयजी नियुक्त हुए। जनताको इससे पूर्ण सन्तोष हुआ। दो वर्ष यह कमीशन जाँच करता रहा। सन् १९१८ ई० के अन्तमेँ कमीशनने रिपोर्ट दी। मालवीयजी उस कमीशनकी बहुतसी सिफ़ारिशोँसे सहमत न हुए। उन्होँने बड़ा परिश्रम करके एक अत्यन्त गम्भीर और विस्तृत टिप्पणी लिखी। वह टिप्पणी क्या है भारतका आर्थिक इतिहास ही समझिए। उन्होँने सिफ़ारिशेँ की हैँ कि किस प्रकार हमारे देशका उद्योग और व्यापार उन्नति कर सकता है। उसमेँ जो उन्होँने सिफ़ारिशेँ की हैँ और प्रस्ताव किए हैँ उनसे भारतकी बहुतसी आर्थिक समस्याएँ सुलझ सकती हैँ। भारतकी दशाका वास्तविक अध्ययन करनेवालेको और प्रत्येक सच्चे भारतीयको वह टिप्पणी अवश्य पढ़नी चाहिए।

इससे पहले भी मालवीयजी सन् १९०७ ई० मेँ स्थित डीसेण्ट्रलाइज़ेशन कमीशन (अकेन्द्रीकरण जाँच) के सामने १३ फ़रवरी सन् १९०२ ई० को लखनऊमेँ साक्षी देकर यह सिद्ध किया था कि केन्द्रीय सरकारको चाहिए कि विभिन्न प्रान्तोँको स्वतन्त्रता देकर अपना बोझ भी कम कर दे और प्रान्तीय सरकारोँको भी

अपना काम सहूलियतसे करने दे। इसीके बाद सन् १९१२ ई० में पब्लिक सर्विस कमीशनके सामने ३१ मार्च सन् १९१३ ई० को मालवीयजीने गवाही देकर यह प्रमाणित कर दिया कि भारतीयोंमें भी अपना शासन करनेकी योग्यता है। इन्हीं दोनों कमीशनोंके सामने गवाही देनेके कारण ही औद्योगिक कमीशनपर मालवीयजी नियुक्त हुए। इसके बाद सन् १९२६ ई० में कृषि-कमीशन बैठा और उसमें भी मालवीयजीने बड़ी महत्त्वपूर्ण गवाही दी और भारतीय कृषिकी उन्नतिके उपाय और कृषकोंकी दशा सुधारनेकी रीतियाँ बताईं।

सन् १९२० ई० में असहयोग आन्दोलनके साथ-साथ विदेशी वस्त्रका बहिष्कार, चरखे और खद्दरका प्रचार तथा स्वदेशी आन्दोलन शुरू हो गया। सन् १९२१ ई० में नेता लोगोंकी जेल-यात्रा और सरकारकी दमन नीतिसे हिन्दुस्थान फिर जागा और उसकी आँखें खुलीं। जगह-जगह विलायती कपड़ोंकी होली होने लगी, चर्खे घूमने लगे, करघे चलने लगे। सैकड़ों, हज़ारों ख़ाली बैठे स्त्री-पुरुषोंको भोजन-वस्त्र मिलने लगा। इस आन्दोलनको मालवीयजीके कारण बड़ा प्रोत्साहन मिला। सन् १९२१ ई० में और उसके बाद भी मालवीयजीने देशभरमें दौरा करके स्वदेशीका प्रचार किया। जिन-जिन लोगोंने मालवीयजीके उन दौरोंका विवरण पढ़ा होगा उनको याद होगा कि किस प्रकार मालवीयजीकी अपीलपर विदेशी कपड़ोंका ढेर लग जाता था और किस प्रकार उनके व्याख्यानोंमें स्त्रियाँ और पुरुष बेचारे दीन भारतकी दुर्दशापर जी खोलकर रोते थे। आज जो चारों ओर खद्दर दिखाई दे रहा है इसमें मालवीयजीका कम हाथ नहीं है। अखिल भारतीय स्वदेशी सङ्घकी स्थापना करके मालवीयजीने स्वदेशी-प्रचारकी जड़ जमा दी। उस संस्थाके द्वारा देशका कितना काम हुआ यह सभी जानते हैं।

सन् १९३४ ई० में कालपीमें स्वदेशी प्रदर्शिनी खोलनेके लिये उन्हें निमन्त्रण दिया गया था। आप अस्वस्थताके कारण न जा सके किन्तु आपने जो सन्देश भेजा था वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आपने लिख भेजा था कि—

“जिस प्रकार अँधियारेमें लालटेन सहायक होती है, उसी प्रकार देशके वर्त्तमान दुःख और दारिद्र्यकी दशामें स्वदेशीका व्रत हमारा सहायक है। यह ऐसा पवित्र काम है कि इसमें अपना भी भला होता है और अपने देशके बहुतसे भाई और बहनोंका भी। मैं छप्पन वर्षसे स्वदेशी व्रतका पालन करता हूँ। जैसे ईश्वरकी पूजा करना धर्म है, उसी प्रकार देशकी सेवा करना धर्म है और उस सेवाका सबसे अच्छा साधन स्वदेशी वस्तुओंका बनाना, स्वदेशी वस्तुओंका ख़रीदना, स्वदेशी वस्तुओंका बेचना तथा उनका व्यवहार बढ़ाना है। देशके हितके लिये यह मेरी प्रार्थना है कि गाँव-गाँव और घर-घरमें हमारी माताएँ, बहनें और बेटियाँ सूत कातें और हमारे भाई फ़ुरसतके समय कपड़ा बुनें और गाँव-गाँवमें घर-घरमें खद्दर और स्वदेशी, पुरुष और स्त्रियोंके तनकी पवित्रता और शोभाको बढ़ावें। गाँव-गाँवमें बाज़ार-बाज़ारमें स्वदेशी वस्तु और स्वदेशी वस्त्र दिखाई दें। हर ज़िलेमें समय-समयपर स्वदेशी मेला या प्रदर्शिनी हो, जिसमें ज़िलेकी बनी हुई चीज़ें दिखाई और बेची जायँ।

“मेरा निवेदन है कि हमारे भाई तहसीलोंमें और बड़े-बड़े गावोंमें स्वदेशी वस्तुओंकी आढ़त क़ायम करें और घर-घरमें स्वदेशीका प्रयत्न करें। इसमें देशका मङ्गल होगा, देशकी दरिद्रता कम होगी, देशकी सम्पत्ति बढ़ेगी और प्रजामें धन-बलके साथ धर्म-बल बढ़ेगा।

“मैं परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि वह आप सबके हृदयमें अपनी भक्तिके साथ-साथ देशकी भक्तिको दृढ़ करे और उसके द्वारा हमारा प्यारा देश स्वतन्त्रता, सुख और सम्पत्तिसे फिर हरा-भरा, बलवान और प्रतापवान हो।”

एक और स्थानपर उन्होंने कहा है कि—

"जिन लोगोंके बीच मनुष्य रहता हो उनको सुखी देखकर सुखी और दुखी देखकर दुखी होना परम धर्म है। इसके पोषणमें आपने च्यवन मुनिका वर्णन किया, जिन्होंने नदीमें तपस्या करनेके समय मछलियोंका सहवास हो जानेके कारण उनके प्राण बचानेके लिये स्वयं प्राण दे देना स्वीकार किया था। तब क्यों न उन्हींकी सन्तान आज दिन अपने बन्धु-जनोंको देखकर उनके दुःख मिटानेका यत्न करें? इस समय भारतवर्षमें करोड़ों मनुष्य व्यापार न होनेके कारण भूखों मर रहे हैं। लाखों जुलाहे और कारीगर, जो अपनी कारीगरीके द्वारा अपने कुल-कुटुम्बका पोषण करते थे, आज विलायती चीज़ोंके कारण दाने-दानेको तरस रहे हैं। यदि सब विचारशील लोग एकमत होकर सङ्कल्प कर लें कि वे देशी वस्तुओंके आगे विलायती वस्तुओंको नहीं ख़रीदेंगे तो आज लाखों दुखियोंको रोज़गार मिल जाय और उनके पेटकी आग बुझानेका उपाय निकल आवे। इङ्गलैण्ड, औस्ट्रेलिया, अमेरिका आदिके लोग इस बातको अपना धर्म समझते हैं कि वे अपने देश-बान्धवोंको रोज़गार देनेके लिये उन्हींकी बनाई चीज़ें काममें लावें चाहे उसमें उसका दाम भी अधिक लगे, वस्तु भी उतनी सफ़ाईसे बनी न मिले जितनी और-और देशोंकी बनी मिलती हैं। पर यहाँ प्रायः लोग यह समझते हैं कि देशी वस्तुओंके प्रचारका सङ्कल्प करना केवल मूर्खता है किन्तु यह उनका अधर्म है।·······यदि देशका दुःख कम करना है तो देशमें रोज़गार व्यापार बढ़ाना पहला काम है और इसके पूरा करनेके लिये सबको कटिबद्ध होना उचित है।"

भारत बड़ा दरिद्र है। यह बात तो बहुत लोग जानते हैं कि थोड़े-थोड़े दिनों बाद हमारे देशमें दुर्भिक्षका दौरा हुआ करता है पर यह बात कितने लोग जानते होंगे कि भारतमें नित्य ही दुर्भिक्ष रहता है। देशमें जो इतनी अधिक मृत्युएँ हो रही है क्या उसका कारण बीमारी है? सच पूछिए तो उसका कारण यह है कि बच्चेको पढ़ानेके लिये, घरको साफ़ रखनेके लिये, घर बनवानेके लिये, शरीरको गर्मी, सर्दी और बरसातसे बचानेके लिये उनके पास पैसे नहीं हैं। सिवाय मौतके और इन्हें कहाँ आराम मिलेगा और इस मौतके लिये वे स्त्रियाँ ज़िम्मेदार हैं जो लन्दन, फ्रांस, इटली और जर्मनीकी साड़ियाँ मँगा कर पहनती हैं, विलायती साबुन, तेल, इत्र, पिन और पाउडर प्रयोग करती हैं; इसके लिये वे पुरुष ज़िम्मेदार हैं जो अपने देशवासियोंको भूखा मारकर विलायती क़ीमती कपड़े पहनते हैं, सिनेमामें और नये-नये शौक़ोंमें पैसा ख़र्च करते हैं। उन्हें सावधान होना चाहिए और समझ लेना चाहिए कि उनके पापसे करोड़ों भारतवासी भूखे मर रहे हैं और यदि यही दशा रही तो इन भूखी आत्माओंके शापसे ये शौक़ीन लोग भी हाथ पसारते दिखाई देंगे और ये जिन विदेशियोंकी भूख बुझा रहे हैं, पेट भर रहे हैं, वे ही इनकी मूर्खतापर हँसेंगे और घृणाके साथ ठोकर मारेंगे। अब भी चेत सकते हैं, कुछ बिगड़ा नहीं है। हमारा विश्वास है कि मालवीयजीके स्वदेशी प्रेमको देखकर, उनका स्वदेशीके लिये त्याग देखकर हमारी भारतीय बहनें और भाई अपना शृङ्गार भारतीय वस्तुओंसे करेंगे और यदि भारतीय वस्तु न मिले तो उतना शृङ्गार त्याग देंगे। ग़रीब लोग अपने आँसुओंसे तुम्हारे पैर धोएँगे और उनके बच्चे सूखी रोटी खाकर भी तुम्हें आशीर्वाद देंगे। हमारे बड़े बूढ़े लोग सच ही विदेश-यात्राका विरोध करते थे। जबसे भारतकी लक्ष्मीने जहाज़पर चढ़ना शुरू किया तभीसे भारतके बुरे दिन शुरू हो गए। पिँजड़ेमें पड़ी हुई सोनेकी चिड़िया घुल-घुलकर मरने लगी। पर अभी उसमें प्राण बाक़ी हैं। उसे भारतीय कपड़ा उढ़ा दीजिए, हिन्दुस्तानका दूध पिलाइए, वह चङ्गी हो जायगी।

* * *

प्रजापति

एक बारकी बात है, श्री विजयराघवाचारी काशी आए हुए थे, उन्होंने मालवीयजीसे पूछा कि आपके कुटुम्बमें कितने बच्चे हैं? मालवीयजी मुसकुराए और बोले 'ठहरिए मुझे सोचना पड़ेगा। क्या बताऊँ मैं और मेरी स्त्री ही इसके लिये ज़िम्मेदार हैं।'

मालवीयजी महाराजके समान ही उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कुन्दन देवी भी ईश्वर और धर्ममें अगाध श्रद्धा रखती हैं। उनकी शिक्षा सामान्य रूपसे घरमें हुई है। हिन्दीके साथ-साथ संस्कृतका भी आपको अच्छा ज्ञान है। रामायण, गीता आदिका पाठ बड़ी अच्छी तरहसे कर सकती हैं। माता भागीरथीमें आपकी अगाध श्रद्धा है। आज भी सत्तर वर्षकी अवस्थामें जब बायाँ हाथ पूरे तौरसे काम लायक नहीं है, ज़बान भी साफ़ नहीं है, दिमाग़ भी कुछ कमज़ोर हो गया है, प्रातःकाल तीन बजेसे ही गङ्गा-स्नानकी तैयारीमें लगी हुई आप दिखलाई पड़ती हैं। जब आप स्वस्थ थीं तब तो आपका यह नित्यकर्म था कि तीन बजे उठकर मुहल्लेकी और स्त्रियोंके साथ प्रयागके क़िलेतक पैदल जाना और वहाँसे नावपर चढ़कर स्नान करने सङ्गमतक जाना। गत ६ नवम्बर सन् १९३४ ई० (भातृ द्वितीया) के दिन आप स्नान करके लौट रहीं थीं। साथमें उनके सबसे छोटे पुत्र गोविन्द मालवीयजीके छोटे-छोटे बच्चे भी थे। उनके लिये खिलौना ख़रीदते समय एक दौड़ते हुए इक्केके पावँदानसे आपको गहरी चोट लगी। आप मूर्छित हो गई और उनकी अवस्था दिन-प्रति-दिन ख़राब होती गई, परन्तु काशी विश्वनाथको अभीष्ट था अपनी पुरीमें रखकर उनको गङ्गा-स्नान कराना। हुआ भी ऐसा ही। उक्त दुर्घटनाके बाद जबसे आपका स्वास्थ्य सुधरा, आप काशी ही में रहती हैं और यथासाध्य प्रतिदिन गङ्गाजीका स्नान और बाबा विश्वनाथका दर्शन करती हैं। प्रातः आठ बजे लौटकर दस बजेतक पूजन आदिसे निवृत्त होकर आप रसोई आदिकी व्यवस्था तथा छोटे-मोटे घरेलू कार्य्योंकी देख-रेख करती हैं। यह भी कम आश्चर्य्यकी बात नहीं है कि उन्होंने अपने आदर्श जीवनमें कभी भी किसी दूसरेके हाथकी बनी रसोई नहीं खाई। इधर जबसे गोविन्द पहली बार पकड़े गए थे तबसे आप एक ही बार भोजन करती हैं।

आपको पाँच कन्या और पाँच पुत्र हुए—जिनमें चार पुत्र श्री रमाकान्तजी, श्री राधाकान्तजी, मुकुन्दकान्तजी तथा श्री गोविन्द मालवीय, और पुत्री रामा तथा मालती वर्त्तमान हैं।

धर्म और राजनीतिमें सदासे भेद रहता आया है। कट्टर धर्मात्मा सात्त्विक गुणोंका उपासक राजनीतिका भी पण्डित हो यह विलक्षण बात है। राजनीतिमें दावँ-पेँच है तो धर्ममें सत्य और शुद्धि। फिर भी मालवीय परिवारने अपने आचरण-द्वारा यह विभेद दूर कर दिया है। उन्होंने दिखला दिया है कि गौ और सिंह एक ही स्थानपर बिना किसी विघ्नके रह सकते हैं। यदि पूज्य मालवीयजी महाराजके चरितमें हम इसकी सार्थकता पाते हैं तो श्रीमती मालवीयजीमें भी इसकी झलक स्पष्टतया मौजूद हैं। आपने भारतके स्वतन्त्र

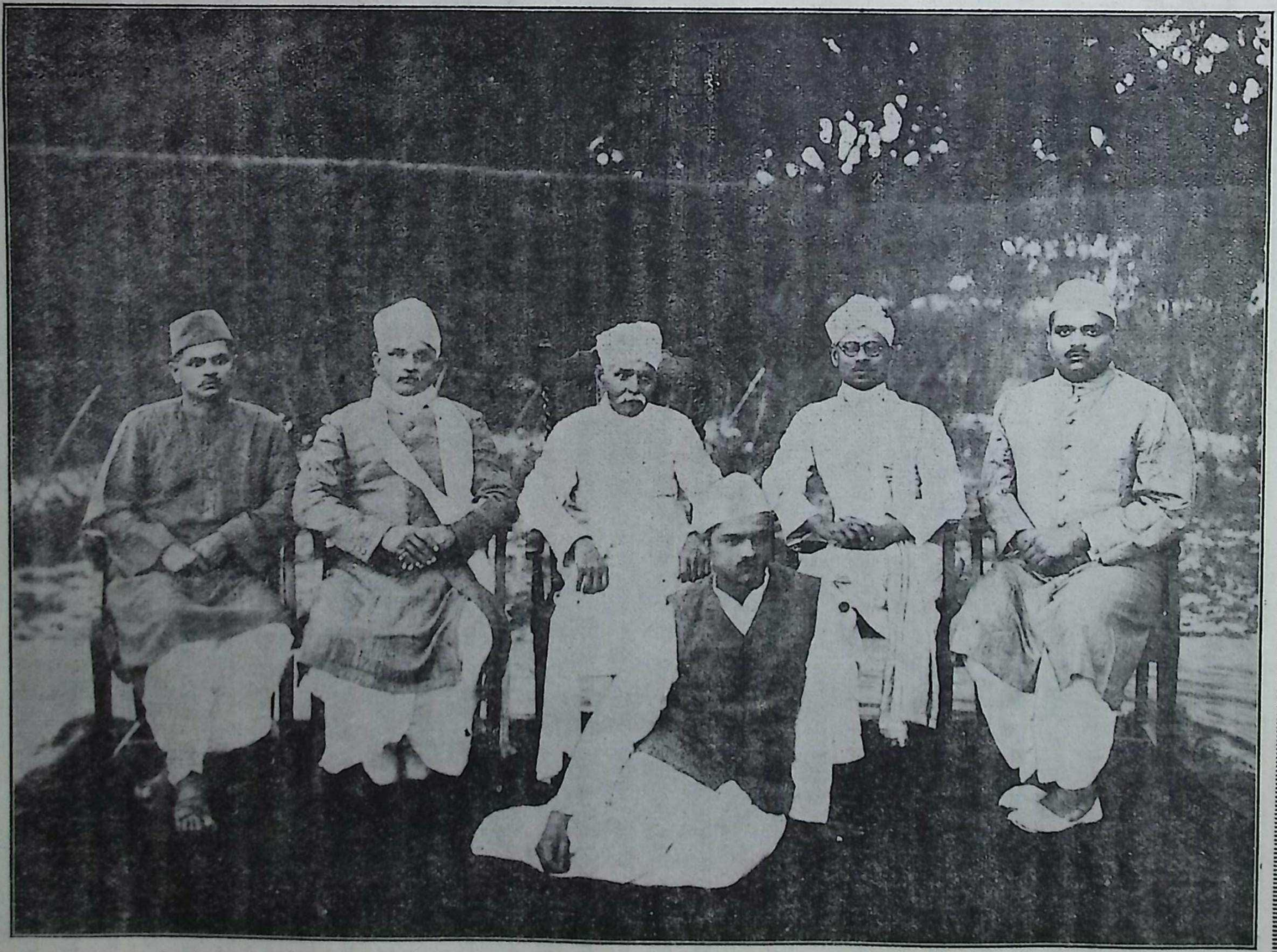

पूज्य मालवीयजी अपने पुत्रोंके साथ—बाईं ओरसे मुकुन्द (तीसरे पुत्र), रमाकान्त (ज्येष्ठ पुत्र), पूज्य मालवीयजी, राधाकान्त (द्वितीय), गोविन्द (चतुर्थ) और नीचे श्रीधर (रमाकान्तजीका पुत्र)

संग्राममेँ भी भाग लिया है। आपको जो काम जब दिया गया, उसको ख़ूब उत्साह और यथाविधि पूरा कर दिखाया। आन्दोलनके समयमेँ पुरुषोत्तम पार्कमेँ महिलाओँकी सभामेँ आपने सभानेतृका आसन भी ग्रहण किया था, और समय-समयपर महिला-मण्डलको प्रोत्साहन आदि भी दिया करती थीँ। इस प्रकार धर्मके साथ-साथ देशके उद्धारमेँ भी आपने हाथ बटाया। आप शान्तिपूर्वक किसी भी कामको करना श्रेयस्कर समझती हैँ। व्यर्थके वितण्डावाद और नामकी लोलुपता आपमेँ ज़रा भी नहीँ है। यही कारण है कि आप देश-सेवाके पुरस्कार—जेलयात्रासे वञ्चित रहीँ। आपने पुत्र गोविन्द मालवीयकी जेलयात्रापर जो आपने उन्हेँ आशीष दी थी, वह वीर माताके ही योग्य थी।

पण्डित रमाकान्त मालवीयने प्रयाग विश्वविद्यालयसे बी० ए०, एल्-एल्० बी० करके सन् १९०७ ई० मेँ वकालत प्रारम्भ कर दी। इनका घरका नाम बङ्गाली भैया है। थोड़े ही समयमेँ आपने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली और प्रयाग हाइकोर्टके सम्मानित वकीलोँमेँ आप एक हो गए। क़ानूनमेँ अत्यन्त निपुण होनेके ही कारण सन् १९२० ई० मेँ आप उदयपुर राज्यमेँ जजके पदपर नियुक्त कर दिए गए। वर्ष भरके बाद आप सिरोही स्टेटमेँ दीवान बनाए गए, और सन् १९३३ से ३६ ई० तक आप श्रीनाथ-द्वारामेँ प्रधान प्रबन्धककी हैसियतसे कार्य्य करते रहे। अब आप युक्तप्रान्तीय रईसी कौन्सिलके कांग्रेसी सदस्य होकर खड़े हुए हैँ। आपने सत्याग्रह आन्दोलनमेँ काफ़ी भाग लिया है। सन् १९१९ ई० मेँ प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मन्त्री भी रह चुके हैँ। आपके सम्बन्धमेँ एक अत्यावश्यक बात यह है कि आपने अपने पूज्य पिताजीके रूपकी छाया पाई है उनका पहनावा, रहन-सहन और बोली तकको ऐसा अपनाया है कि पूज्य मालवीयजी महाराजमेँ और आपमेँ बहुत कम भेद जान पड़ता है। एक बार एक सभामेँ आप व्याख्यान दे रहे थे। सभाके सभापति रायबहादुर बाबू विश्वम्भरनाथजीने जनताको यद्यपि आपका परिचय दे दिया था फिर भी जनताको यह भ्रम बना ही रहा कि आप मालवीयजी ही हैँ। प्रयागके प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्य्यकर्त्ता श्री विश्वम्भरनाथजीकी मृत्युके अवसरपर जब पूज्य मालवीयजी श्री रमाकान्तजीकी दुपलिया टोपी पहनकर श्री मोतीलालजी नेहरूके यहाँ गए तो नेहरूजीको भी भ्रम हुआ और उन्होँने 'रमा' कहकर पुकारा। पूज्य मालवीयजीके 'नहीँ' कहनेपर भी मोतीलालजीने कहा—नहीँ, रमा ही तो है। ऐसी घटनाएँ अनेक बार हो चुकी हैँ। आप प्रयाग विश्वविद्यालयके कोर्टके सदस्य भी हैँ।

पूज्य मालवीयजीके द्वितीय पुत्र श्री राधाकान्तजी भी एक वकील हैँ। ये घरमेँ लेड़ुआ भैया कहलाते हैँ। बीचमेँ आपकी रुचि व्यवसायकी ओर झुकी थी। आप सूखा बर्फ़ बनानेकी जानकारी पानेके लिये विदेश भी गए थे। विदेशमेँ आपने कट्टर सनातनधर्मीका जीवन बिताया। वहाँ अपने ही हाथोँ भोजन बनाते और शुद्धाचारसे रहते थे। लौटनेपर आर्थिक कठिनाइयोँके कारण आप अपने कार्य्योँमेँ सफल न हो सके। आप हिन्दू महासभा, सनातनधर्म महासभा, हिन्दी सम्मेलन, लीडर आदि संस्थाओँके प्रधान मन्त्री रह चुके हैँ। सार्वजनिक कार्य्योँ—विशेषकर हिन्दू जाति और धर्म-सम्बन्धी बातोँमेँ आप बड़ी दिलचस्पी लेते हैँ।

श्री मुकुन्दकान्तजी बी० ए० तक पढ़े और आपने प्रयागमेँ ही व्यवसाय करना प्रारम्भ किया। काम बढ़नेपर आप कानपुर गए और वहाँसे बम्बई चले गए। आपका व्यापार ख़ूब ज़ोरोँपर था कि सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ा और आपने पत्नीसहित उसमेँ भाग लिया। बम्बई ऐसे सुदूर प्रान्तमेँ भी आपके अपूर्व त्याग और विनयशीलताने आपको लोकप्रिय बना दिया। आप वहाँके कुशल कार्यकर्त्ताओँमेँ गिने जाते थे। इसी सिलसिलेमेँ आपको कई बार जेल जाना पड़ा जिससे आपके व्यापारको बहुत ही धक्का पहुँचा।

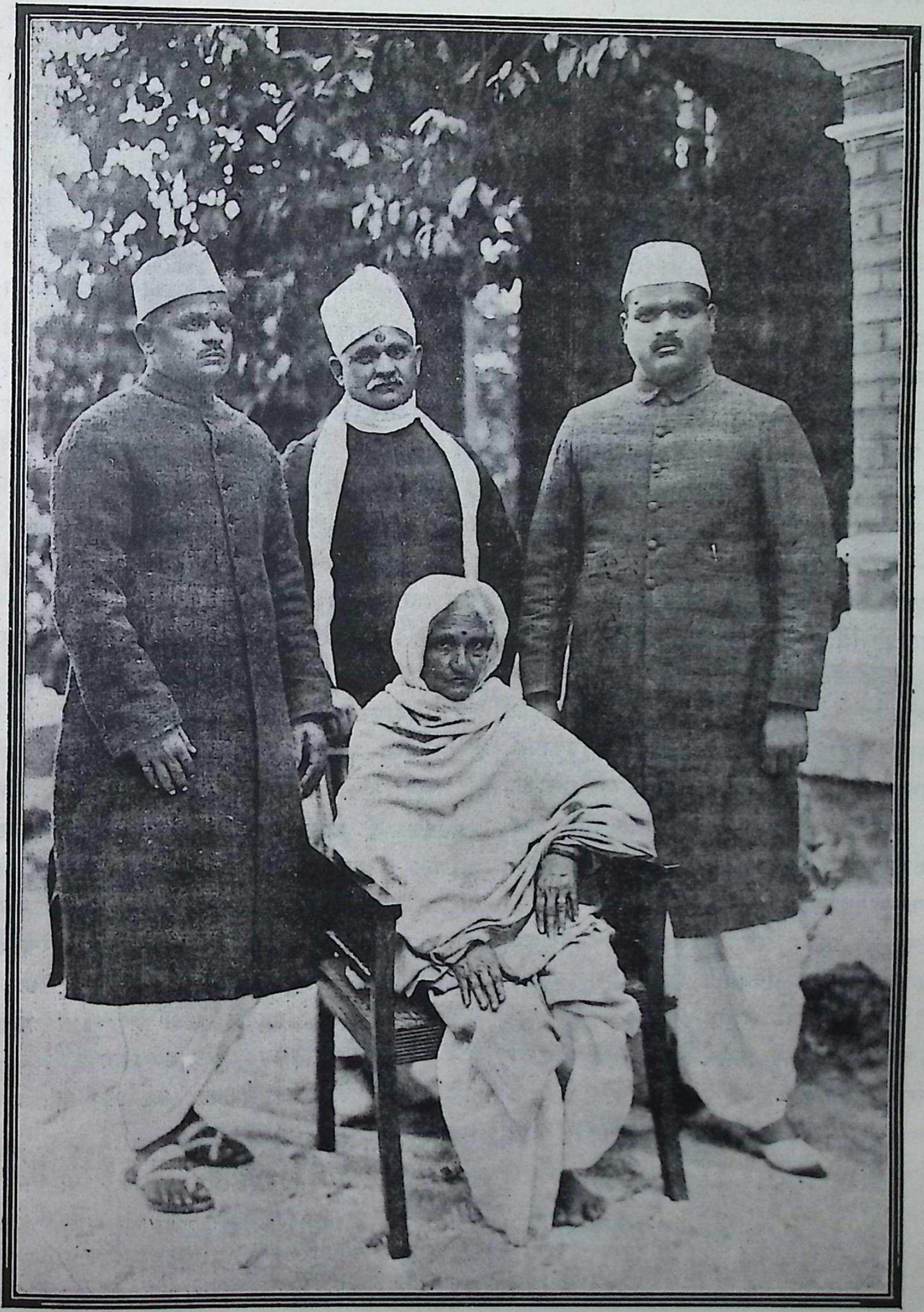

पूज्य मालवीयजीकी धर्मपत्नी श्रीमती कुन्दन देवी बीचमें कुर्सीपर बैठी हैं। पीछे उनके तीन पुत्र (बाईं ओरसे) मुकुन्द, रमाकान्त और गोविन्द खड़े हैं। राधाकान्त इसमें नहीं हैं।

आन्दोलन बन्द होनेपर आप अपनी जन्मभूमि प्रयागमें वापस चले आए और तबसे वहीं रह रहे हैं।

पूज्य मालवीयजीके चतुर्थ पुत्र श्री गोविन्द मालवीय हैं। आपकी शिक्षा काशी विश्वविद्यालमें हुई है। जब देशमें चारों ओर प्रिन्स औफ़ वेल्सके बहिष्कारकी धूम मची हुई थी और पूज्य मालवीयजी उनके स्वागतका आयोजन कर रहे थे उस समय गोविन्दजी बी० ए० कक्षामें पढ़ रहे थे। आपने अपने पिताजीके विचारोंका विरोध किया, विद्यार्थियोंका साथ दिया और कौलेज् छोड़कर भाग गए। बादमें आपने कौलेज्की उच्च शिक्षा एम० ए०, एल्-एल्० बी० तक प्राप्त की। सन् १९२८ ई० में आपका एक ज़ोरदार भाषण प्रयागमें हुआ था जिसके फलस्वरूप आपको कठोर जेलयातना सहनी पड़ी। उस समय सरकारकी निगाहोंमें युक्तप्रान्तके दो नवयुवक—दोनों अपने पिताके सच्चे सपूत—एक तो हमारे राष्ट्रपति तथा दूसरे श्री गोविन्दजी खटक रहे थे। सरकारकी आँखोंमें इनसे अधिक ज़ालिम आदमी और सरकारी अमनचैनको नष्ट करनेवाला दूसरा व्यक्ति कोई नहीं था। फलतः दोनोंको कारागारका दण्ड मिला। देश उस समय इन्हीं नवयुवकोंपर आँख लगाए था। आज हमारे राष्ट्रपतिने उसीको चरितार्थ कर दिया है, पर परिस्थितियोंमें बँधे होनेके कारण पूज्य पिताजीमें अतुल श्रद्धा और उनके नाना प्रकारके कार्य्योंमें लगे रहनेके कारण उनके स्वास्थ्यपर जो असर पड़ रहा था उसको देखकर श्री गोविन्दजीको बहुत दिनोंतक पूज्य मालवीयजीके सहकारी मन्त्रीके रूपमें रहना पड़ा। इधर कुछ दिनोंसे वे जीवनबीमाके कार्य्यमें संलग्न हैं और न्यू इन्श्योरेन्स लिमिटेडके मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर हैं।

मालवीयजीने जो श्री विजयराघवाचारीसे बात कही थी, वह सचमुच ठीक ही है। शायद ही उनके घर-भरमें कोई ऐसा हो जो मालवीयजीके परिवारके सभी बच्चोंका नाम जानता हो। हमने बड़ी कठिनतासे मालवीयजीके शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले परिवारकी तालिका तैयार की है उसीसे समझ जाइए कि परिवार भरका नाम गिनानेके लिये कितनी भारी स्मरण-शक्ति चाहिए।

मालवीयजीको अपने घरके देखभालकी फ़ुरसत ही नहीं रहती। एकबार जब उनकी धर्मपत्नीजीको चोट लगी तो आप पटनेमें दौरा कर रहे थे। वहाँ उन्हें इसकी ख़बर मिली। लोगोंने उन्हें कहा कि आप प्रयाग चले जाइए पर उन्होंने कहा कि नहीं इस समय मैं कई स्थानोंपर पहुँचनेका वचन दे चुका हूँ। पहले वहाँ जाकर तब मैं प्रयाग जाऊँगा। किन्तु जब वे घरपर रहते हैं तो अपनी पुत्रियों और नाती-पोतोंसे ख़ूब बातें करते और खेला करते हैं। बच्चोंमें बैठकर वे बच्चे बन जाते हैं। दूसरोंके बच्चोंको भी वे कम प्यार नहीं करते हैं।

मालवीयजी जब अपने परिवारके बीचमें बैठते हैं तो हँसी मज़ाक़ भी ख़ूब करते हैं और चुटकियाँ भी लेते हैं। मालवीयजी एक सुखी परिवारके प्रजापति हैं और उनकी छायामें रहकर वह परिवार निरन्तर उन्नत ही हो रहा है। उनके परिवारमें छोटेसे-बड़े तक—क्या लड़की क्या लड़के, और क्या बहुएँ—सभी देश-सेवाके रङ्गमें रँगे हैं जिनमेंसे उनके दो पुत्र, दो बहुएँ और एक पौत्रको सरकारका अतिथि बनकर जेलमें भी रहना पड़ा है। ईश्वर करे यह परिवार और भी उन्नति करे और इनके द्वारा देशका कल्याण हो और यश बढ़े।

मालवीयजीका परिवार

पण्डित मदनमोहन मालवीय—(धर्मपत्नी श्रीमती कुन्दन देवीजी)

प्रथम पुत्र

श्री पण्डित रमाकान्तजी (धर्मपत्नी—श्रीमती सरस्वती देवी)—

सन्तान
- श्रीमती पद्मावती मालवीय
- श्रीमती शारदा देवी मालवीय
- श्रीमती लक्ष्मी मालवीय
- कुमारी हेम मालवीय
- कुमारी लज्जा मालवीय
- कुमारी दया मालवीय
- कुमारी विजया मालवीय
- श्रीधर मालवीय बी० ए०
- शशिधर मालवीय
- प्रेमधर मालवीय

द्वितीय पुत्र

श्री पण्डित राधाकान्त मालवीय (धर्मपत्नी—श्रीमती श्यामा मालवीय)—

सन्तान
- कुमारी शान्ती मालवीय
- कुमारी कुन्द मालवीय
- कुमारी दया मालवीय
- कुमारी चिन्ता मालवीय
- यशोधर मालवीय
- चक्रधर मालवीय
- चन्द्रधर मालवीय
- सुधाधर मालवीय

तृतीय पुत्र

श्री पण्डित मुकुन्द मालवीय (धर्मपत्नी—श्रीमती विद्यावती मालवीय)—

सन्तान
- श्रीमती अनुसूया मालवीय
- कुमारी कला मालवीय बी० ए०
- गिरिधर मालवीय

चतुर्थ पुत्र

श्री पण्डित गोविन्द मालवीय (धर्मपत्नी—श्रीमती ऊषा मालवीय)—

सन्तान
- कुमारी शीला मालवीय
- कुमारी सुधा मालवीय
- कुमारी विभा मालवीय
- कुमारी शोभा मालवीय
- कुमारी सत्या मालवीय
- नवजात शिशु

प्रथम पुत्री

श्रीमती रामेश्वरी मालवीय (पति—पण्डित मदनगोपाल मालवीय, कानपुर)—

सन्तान
- सच्चिदानन्द मालवीय
- ध्रुव मालवीय
- कुमारी गार्गी देवी मालवीय
- अजित मालवीय
- कुमारी शान्ति मालवीय

द्वितीय पुत्री

स्व० श्रीमती रुक्मिणी मालवीय (पति—पण्डित देवकीनन्दन भट्ट, काशी)—

सन्तान
- श्रीमती लीलावती मालवीय
- रविशङ्कर मालवीय
- श्रीमती कमला मालवीय

तृतीय पुत्री

श्रीमती मालती मालवीय (पति—पण्डित रामशङ्करजी भट्ट, काशी)—

सन्तान
- कुमारी विमल मालवीय
- कुमारी सावित्री मालवीय
- शिवकुमार मालवीय

शतदल कमल

रातके पिछले पहरमेँ जब अचानक मन्द वायु कुछ चपल होकर सोई हुई कलियोँको जगाता फिरता है और चटक-चटककर छोटी-बड़ी कलियाँ अलसाती, मदमाती-सी जग उठती हैँ, और आकाश इन नन्हे-नन्हे बच्चोँके कोमल अङ्गोँको सजा देता है और फिर जब ये हवाके हलके झूलेमेँ झूलते हुए मोती बरसाते हैँ उस समय भला कौन ऐसा प्राणी होगा जो अपनेको भूल न जाय। पर इससे भी सुन्दर एक और दृश्य है। तालावके निर्मल जलपर हरे-हरे चौड़े-चौड़े पत्ते विछे हुए हैँ। रातका पिछला पहर समझकर उन्हीँ पत्तोँके बीचसे आँख मूँदकर एक तपस्वी झाँकता है और धीरे-धीरे ऊपर उठता है। एक पैर पर खड़ा होकर अपने इष्टदेवके आनेकी बाट जोहता है। पौ फटने लगती है। पूरबका आकाश रङ्ग बदलता चलता है—हलका नीला, फिर सफ़ेद, उसके बाद पीला, फिर नारङ्गिया, फिर लाल—इन इन्द्रधनुषके रङ्गोँकी साड़ी पहनकर ऊषा आती है, अरुण आता है और उसके पीछे-पीछे चला आता है सूर्य्य—प्रकाश देता हुआ, अन्धकार भगाता हुआ, अज्ञानको मिटाता हुआ। इधर इस तपस्वीके हृदयमेँ अपने इष्टदेवके आनेका पता चलता है। हुलासके मारे वह खिल उठता है—वैसे ही जैसे परीक्षामेँ उत्तीर्ण होकर विद्यार्थी, और फिर जैसे ही वह इष्टदेव सामने आता है, तबतक तो वह शतदल कमल अपने निर्मल पत्रोँमेँ सुनहरे परागका थाल लेकर अपने इष्टदेवकी पूजा करनेको खड़ा हो जाता है। न जाने कितने कवि कमलके इस सुन्दर स्वरूपपर मुग्ध हो गए और इसी नशेमेँ उन्होँने संसारके सम्पूर्ण सौन्दर्य्यको तराज़ूके पलड़ेमेँ रखकर एक कमलसे तौल दिया। फिर भी कमल भारी ठहरा। भगवान्‌के नेत्र, मुख, कर, चरण—सभी कमल बन गए और जिसके भी सौन्दर्य्यने हमारे हृदयको वन्दी बनाया उसके रूपको भी हमने कमलकी कसौटीपर कसकर जाँचा। कवियोँने कमलको सर्वश्रेष्ठ सुमन कहा, सबसे पवित्र पुष्प माना और उसे फूलोँका राजा ठहराया। पर एक ही बात उनकी हम नहीँ मानते। वे कहते हैँ कि सूर्य्य जब अपने करोँसे उसे छूता है तभी वह खिलता है। पर बात ऐसी नहीँ है। रातको जब सारे जीव अपने-अपने आवासोँमेँ शीतसे बचकर आराम करते हैँ, उस समय ध्यान लगाकर, आँख मूँदकर ठण्डे जलमेँ शीत सहता हुआ भी तपस्वी कमल एक पाँवपर खड़ा रहता है। उसीकी तपस्या सूर्य्यको आकर्षित करती है, उसीकी तपस्या प्रकाश लाती है, ज्ञान लाती है और जागृति लाती है। वह न होता तो सारा संसार अज्ञान और अँधेरेमेँ पड़ा सोता रहता। कमलकी तपस्याका महत्त्व देवताओँतकने जाना है। ब्रह्माजीसे वेदका ज्ञान उत्पन्न हुआ पर ब्रह्माजी कहाँसे उत्पन्न हुए ? उन्हेँ कमलने पैदा किया। सरस्वतीजी भी श्वेत पद्मासना हैँ और लक्ष्मीजीको कमल ही सुहाता है, और उस शतदल कमलकी सब पङ्खड़ियाँ एकसी सुन्दर, एकसी कोमल एकसी मनोहर और एकसी गन्धवाली हैँ। सौन्दर्य्य, पवित्रता, कोमलता, स्वच्छता और तपस्विताके साक्षात् मूर्त्तिमान्

स्वरूप कमलके आगे अपने-आप सिर झुक जाता है। जी करता है कि इसे हृदयमें रख लें। जङ्गलमें घूमते हुए कहीं उसका परिमल ही वायुके साथ हमारी नासिकातक पहुँच जाय तभी हृदय प्रफुल्लित हो उठता है; पर यदि कहीं वह दिखाई पड़ जाय तो उतने क्षण तो संसारकी याद भूल जाती है, आदमी अपनेको खो देता है। कोई दुष्ट बालक उसपर कीचड़ भी फेंके, उसकी पङ्खड़ी भी नोंचे, फिर भी वह कमल ही रहता है, लोग उस बालककी मूर्खताको ही दोष देते हैं।

प्रत्येक महापुरुष ऐसे ही शतदल कमल होते हैं। अज्ञान, कायरता, द्वेष और अहङ्कारके अँधेरेमें पड़े हुए लोगोंके लिये ज्ञानके सूर्य्यको बुलानेके लिये ये लोग तपस्या करते हैं और जब अन्धकार मिट जाता है तब अपना पूर्ण स्वरूप दिखाकर अपनी मधुर याद छोड़कर विदा लेते हैं।

चाहे कोई कुछ कहे पर यह मानना पड़ेगा कि भगवान् कृष्णने गीतामें अर्जुनसे जो प्रतिज्ञा की थी कि जब-जब धर्मकी हानि होगी, प्रजापर क्लेश होगा, तब-तब मैं आऊँगा वह उन्होंने सदा सच किया। बुद्ध, महावीर, स्वामी शङ्कराचार्य्य, रामानुजाचार्य्य, वल्लभाचार्य्य, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास, तुलसीदास, गुरु गोविन्दसिंह, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द आदि धर्मप्रचारक और सन्त, महाराणा प्रताप, शिवाजी, दुर्गादास, महाराजा रणजीतसिंह आदि वीर योद्धा तथा लोकमान्य तिलक, मालवीयजी और गान्धीजी जैसे महापुरुषोंको देखकर कौन कहेगा कि भगवान् श्रीकृष्णने अपनी बात नहीं रक्खी।

पिछले साल जावा द्वीपके प्रसिद्ध नेता श्री रैदन सोइतोमो महोदय भारतका भ्रमण करने आए और यहाँ आकर यहाँके बड़े-बड़े नेताओंसे मिले। उन्होंने हिन्दू मिशनके सभापति स्वामी सत्यानन्दजीको एक पत्र लिखा था कि—

“मालवीयजीके साथ थोड़ी देर बात करनेपर मेरे मनमें सबसे बड़ा भाव यह आया कि मैंने वास्तवमें एक महापुरुषके दर्शन किए हैं। पण्डितजीके कमरेसे बाहर निकलते ही सहसा ये शब्द मेरे मुँहसे निकल पड़े थे। मैं मालवीयजीके चिरस्मरणीय कार्य्य काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालसे बड़ा प्रभावित हुआ था।”

मालवीयजी जिन परिस्थितियोंमें पैदा हुए थे, जिस वातावरणमें जन्म लिया था, उसका वर्णन हम कर ही चुके हैं। शतदल कमलके समान उन्होंने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा लेकर, कठोर तपस्या करके, देशके अज्ञानको दूर करके, दरिद्रता, कायरता और द्वेष आदिको दूर करनेका प्रयत्न किया वह भी आप पढ़ ही चुके होंगे। कमलकी तपस्याने सूर्य्यको बुलाकर जो जगत्की सेवा की है वह तो आप जान ही चुके, अब ज़रा कमलका स्वरूप भी तो देख लीजिए।

भगवान् श्रीकृष्णने गीताके सोलहवें अध्यायमें दैवी सम्पत्तिका ज़िक्र करके महापुरुषको जाँचनेकी कसौटी बता दी है। उन्होंने लिखा है—

अभयं सत्त्व संशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

अर्थात् निडरपन, शुद्ध सात्विक वृत्ति, ज्ञानयोगमें व्यवस्था, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध (सदा हँसमुख रहना), त्याग, शान्ति, उदारता, सब प्राणियोंमें दया, तृष्णा न रखना, कोमलता, अनुचित कामकी लज्जा, गम्भीरता (अचपलता अर्थात् सोच-विचारकर काम करना) तेज, क्षमा, धैर्य्य, शुद्धता, द्रोह न करना और अहङ्कारका अभाव ये दैवी सम्पत्तिवाले पुरुषमें गुण होते हैं। इसी आधारपर ज़रा मालवीयजी महाराजका स्वरूप तो देखें।

निडरपन

पिछले पृष्ठोंमें कई बार आप पढ़ चुके होंगे कि मालवीयजी कितने निर्भय हैं। न जाने कितनी बार

सरकारने बन्दरघुड़कियाँ दीं, लाल-लाल आँखें दिखलाईं पर मालवीयजीके वीर हृदयपर उनका कुछ असर न हुआ। सिंह जब अपनी शानसे चला जाता है उस समय अन्य जानवरोंके भौंकने-चिल्लानेसे वह अपनी गति नहीं बदलता, न विचलित होता। पिंजड़ेमें बन्द होकर भी शेर, शेर ही रहता है। यह निर्भयताका गुण उनमें शुरूसे ही रहा। जो बात उन्होंने ठीक समझी उसके कहने और करनेमें कभी आगा-पीछा न किया। संसारके विरोधके बीचसे निर्भय होकर बच निकलना कोई साधारण बात नहीं है।

एक दफ़ेकी बात है, मालवीयजीके बड़े लड़के रमाकान्त मुहल्लेमें खेल रहे थे। किसी दूसरे लड़केने उनकी गेंद छीन ली। वह रोते हुए मालवीयजीके पास आए और शिकायत की—"बाबू! हमार गेंद एक लड़का ले लिहा है सो दिवाय दो।" मालवीयजी बड़े बिगड़े और कहा कि 'जाओ उससे गेंद लेकर आओ। रोते हुए क्या आए हो! हम होते तो बिना गेंद लिए थोड़े ही आते।' मालवीयजी ख़म ठोंककर लड़नेवाले हैं, धर्मयुद्धमें पीठ दिखाकर भागनेवाले नहीं हैं और न दूसरोंको भागनेका उपदेश देते हैं।

पिछली बार जब कलकत्तेमें मुसलमानोंका दङ्गा हुआ तो मालवीयजी निषेधाज्ञा होनेपर भी वहाँ गए। वे मोटरपर बैठे चले जा रहे थे, अचानक एक मुसलमानका लड़का उनकी मोटरके नीचे आ गया। मुसलमानोंका मुहल्ला था। उन 'अल्ला हो अकबर' के दिनोंमें वैसे ही जान आफ़तमें रहती थी, फिर यह घटना तो आफ़तसे बढ़कर ही समझो। चारों तरफ़से मुसलमान जुट गए। मालवीयजीके साथ डाक्टर मङ्गलसिंह थे। उन्होंने राय दी कि मोटर तेज़ीसे भगा ले चलिए, न जाने क्या हो जाय। पर मालवीयजीने कहा—नहीं, उस लड़केको अस्पताल ले चलना होगा। वे मोटरसे उतर गए। उस लड़केको उठाकर मोटरमें बैठाया और अस्पताल पहुँचा दिया। इतना ही नहीं बल्कि जबतक यह अच्छा नहीं हो गया तबतक थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसकी पूछताछ करते रहे। इतनी उत्तेजित भीड़मेंसे किसीकी मजाल नहीं हुई कि मालवीयजीके शरीरको छू भी सके।

इसी प्रकार मुल्तानके दङ्गेके समय मुसलमानोंकी सभामें जाकर उन्होंने जो खोटी-खरी सुनाई और ऊँच-नीच सुझाया उसे सुनकर दाँतोंतले उँगली दाबनी पड़ती है। आठ दिन पहले जो हिन्दूका ख़ून पीनेको तैय्यार थे वे उस दिन बकरी बने हुए उस हिन्दू नेताकी झिड़कियाँ चुपचाप कान दबाकर सुन रहे थे। भला कितने हिन्दू नेताओंको इतना साहस होगा?

मन और हृदयकी शुद्धि

मालवीयजी जैसे बाहरसे धवल दिखाई देते हैं उससे भी धवल वे भीतरसे हैं। कहा जाता है कि आचारसे ही विचार बनते हैं। मनुष्य जैसा भोजन करता है, जैसे लोगोंकी सङ्गत करता है, जैसी पुस्तकें पढ़ता होगा वैसे ही उसके विचार हो जायँगे। मालवीयजीका जन्म शुद्ध वैष्णव परिवारमें हुआ था। किसीके हाथका छुआ नहीं खाना और अपने हाथसे भोजन बनाना यह इनके परिवारका नियम था और इनका यह नियम व्यवस्थापक सभाओंमें, कांग्रेसकी बैठकोंमें, जेलमें और विलायतकी गोलमेज़ परिषद्में भी चलता रहा। शुरूमें इनके पास नौकर नहीं थे। उस समय ये अपने हाथसे भोजन बनाते थे। इनका चूल्हा-बर्त्तन सब साथ चलता था। जब ये कांग्रेसकी स्थायी समितिके सदस्य थे तब काशीमें युक्तप्रान्तके सदस्योंके चुनावकी सभा हुआ करती थी। ये आकर श्री रामकाली चौधरीके यहाँ ठहरते थे पर भोजन अपने हाथसे बनाते थे। खान-पानके विषयमें मालवीयजी बड़े पक्के हैं। उनको जहाँ अपवित्रताकी गन्ध आई कि वे उससे दूर भागे। वायसरायकी पार्टियोंमें तथा और भी बहुतसी दावतोंमें वे शरीक तो होते रहे पर कभी इन्होंने वहाँका जल तक न पिया। एसेम्बलीमें पाँच-पाँच घण्टे व्याख्यान देनेपर भी इन्होंने एक बूँद पानीको

ग़लेसे नीचे नहीँ उतारा। उनका आचार ही पानीके न मिलनेपर भी उनके कण्ठको बल दे रहा था।

एक वारकी घटना है, पञ्जावका दौरा करते हुए मालवीयजी पेशावरमेँ पहुँचे। योँ तो आप नित्य तेलकी मालिश करते ही हैँ, लेकिन रात-दिन दौड़-धूपसे जब आपका शरीर थक जाता है उस समय आप इतना तेल मलवाते हैँ कि इसे तैल-स्नान कहेँ तो अनुचित न होगा। इसी लिये तेलभरी वोतल आपके साथ यात्रामेँ भी चला करती है।

तेलकी वोतल ख़ाली हो चली थी। पेशावरसे रावलपिण्डीको आना था। मालवीयजीके रसोइया और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी एक वोतल चमेलीका तेल वाज़ारसे ले आए। वोतल नई देखकर आपको जब यह वतलाया गया कि वोतल वाज़ारसे ली गई है तो इस शङ्कासे कि कभी उसमेँ शराव न रही हो, आपने तेल-समेत वोतलको फिँकवा दिया। देखनेमेँ शायद बात छोटी मालूम पड़ती होगी, पर मालवीयजीकी असीम पवित्रताका इससे पूरा अन्दाज़ा लग सकता है।

एक वार तेज़पूरसे मालवीयजी वावू राजेन्द्र प्रसादके सङ्ग डिब्रूगढ़के लिये रवाना हुए। वहाँसे आपको अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमिटीकी बैठकमेँ लखनऊ पहुँचना था। गोहाटीमेँ ब्रह्मपुत्रके इस पार अमीनगाँव तथा उस पार पाण्डु स्टेशन है। डिब्रूगढ़से रेलसे पाण्डु पहुँचकर, वहाँसे अमीनगाँव स्टेशनपर गाड़ी पकड़नेके लिये स्टीमरपर सवार होनेके लिये मुश्किलसे तीस मिनटका समय वचता था। डिब्रूगढ़से लखनऊका सफ़र, वीचमेँ केवल कुछ घण्टोँके लिये कलकत्तेमेँ विश्राम, और मालवीयजीकी कठोर जीवन-चर्य्या! इस लिये आपने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी श्री चन्द्रवली पाण्डेयको तेज़पूरसे गोहाटीको इस आदेशके साथ वापस किया कि पाण्डु स्टेशनपर कच्ची रसोई तैयार रक्खेँ। आसामके सर्वप्रधान नेता श्री तरुनराम फूकनके यहाँ पण्डितजीके ठहरनेका प्रबन्ध आसाम प्रान्तीय कांग्रेस कमिटीने किया था। उस समय फूकन महोदय भी जेल ही मेँ और यद्यपि वे जातिके ब्राह्मण हैँ, परन्तु मालवीयजीने यह आदेश दिया कि भोजन तैयार करनेके लिये फूकन महाशयके यहाँसे पात्र न लिए जायँ, कौन जाने उनके भोजन-पात्रोँमेँ मत्स्य-मांसका संसर्ग रह चुका हो। मिट्टीके वर्त्तन ही मेँ चावल, दाल तथा भाजी वनाई जाय, सो भी ऊपरसे छोड़ दी जाय। मालवीयजी किस कड़े आचारमेँ रहकर दुनिया भरका काम करते हैँ, यह कम अचरजकी बात नहीँ है। उनका खानपान उनके आचारकी तपस्या एक प्रधान अङ्ग है। वे जितना काम करते हैँ, उसकी तुलनामेँ उनका भोजन पासङ्ग भी नहीँ है,—दिनमेँ दो चार फुलके, थोड़ासा भात और एक दो तरकारी, वस इतना ही। आचार, चटनीका विल्कुल शौक़ नहीँ है। फल खानेका भी शौक़ कभी नहीँ था। इधर वीमार होनेसे वैद्योँ और डाक्टरोँकी रायसे ही वे नियमसे फल खाने लगे। खजूर, शन्तरा, अङ्गूर ये उनके प्रिय फलोँमेँ हैँ। पर दूध वे नियमसे पीते हैँ। प्रातःकाल और सायंकाल सन्ध्या करनेके वाद वे आध-आध सेर दूध अवश्य पीते हैँ। उनकी यात्रामेँ भी एक गोल चूड़ीदार लोटेमेँ दूध सदा उनके साथ रहता है। व्याख्यान देने या कहीँ जानेके पहले भी आप प्रायः आध पाव, पाव भर गायका दूध पी लेते हैँ। मालवीयजीकी थालीमेँ चाय, काफ़ी आदिको कभी कोई स्थान नहीँ मिलता। वीमारीसे उठनेपर कहने-सुननेसे कभी-कभी थोड़ा शहद भी ले लेते हैँ। रेलके सफ़रमेँ दूधमेँ सने हुए आटेकी पूरियाँ साथ चलती हैँ पर कभी-कभी गाड़ी आ जानेपर वे रोटी बनाकर नमकके साथ खाकर चल देते हैँ जैसा माउण्ट आबू रोड स्टेशनपर सन् १९१८ ई०मेँ किया था। इसी आचारके कठोर नियमके कारण ही वे अंग्रेज़ी दवा भी नहीँ लेते हैँ। इसी आचारकी शुद्धिने उनका हृदय अत्यन्त शुद्ध बना दिया और उसमेँ भर दिया इतना नैतिक साहस।

एक वारकी बात है। मालवीयजी किसी अफ़सरसे बातेँ कर रहे थे, पण्डित रामनारायण मिश्र

भी वहाँ बैठे थे। उसी बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने मिश्रजीसे कुछ ऐसी बात कह दी जो उस अफ़सरके सामने नहीं कहनी चाहिए थी। मिश्रजीने मालवीयजीको पत्र लिखा कि आपने उक्त अवसरपर ऐसी बात कह दी थी। मालवीयजीने तत्काल तार देकर उनसे क्षमा माँग ली। यह हृदयकी शुद्धि बहुत कम लोगोंमें पाई जाती है।

मालवीयके पवित्र हृदय मन्दिरमें कपटका प्रवेश नहीं हो पाता। जो बात उनका हृदय स्वीकार करता है उसे निष्कपट रूपसे कह देनेमें सङ्कोच नहीं करते—पर हाँ, कहते हैं इस मीठे ढङ्गसे कि सुननेवाला भी उनकी प्रशंसा किए विना नहीं रह सकता।

ज्ञानयोगमें व्यवस्था

ऐसे बहुत कम लोग हैं जो संसारके काम भी करते रहें और अपनी बुद्धिके विकासके लिये निरन्तर ज्ञान भी प्राप्त करते चलें।

मालवीयजी केवल बी० ए०, एल्० एल्० बी० ही नहीं पास हैं। स्कूल और कौलेजूके पाठ्यक्रमके अतिरिक्त उन्हौंने जो धर्मशास्त्रोँ और विभिन्न साहित्योंका अध्ययन किया है, वह उनकी कौलेजूकी पढ़ाईसे कहीं अधिक महत्त्व रखता है। मालवीयजी जब कभी धार्मिक व्याख्यान देते हैं या कथा कहते हैं, उस समय मालूम होता है कि शास्त्र और पुराणोंका उन्होंने कितना गम्भीर मनन किया है। फिर अपने लिये तो बहुत लोग ज्ञान एकत्र करते हैं, पर जिसने दूसरोंके लिये ज्ञानका स्रोत खोल दिया हो, उसकी ज्ञानयोगमें व्यवस्था कितनी होगी, अनुमान कर लीजिए।

सात्त्विक दान

सैकड़ों धर्मशालाएँ, पाठशालाएँ, स्कूल, मदरसे, अनाथालय, मन्दिर और मस्जिद नित्य खुलते जाते हैं। दानी, उदार महानुभाव नित्य अपनी थैली खोलते चले जाते हैं पर उसके पीछे उनकी प्रसिद्ध होनेकी भावना बनी ही रहती है। वास्तवमें दान वह है जो विना किसी बदलेके दिया जाय। मालवीयजीके दानकी एक घटनाका उल्लेख पण्डित रामनरायण मिश्रजीने किया है। वे लिखते हैं :—

"मैं विद्यार्थी था, पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका नाम सुना करता था। जब वे बाबू रामकाली चैाधरीके यहाँ ठहरा करते थे, दो एक बार उनके दर्शन भी हुए थे।

मेरे स्वर्गवासी मामा डाक्टर छन्नूलालने जो काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभाके उन दिनों सभापति थे, स्वास्थ्य-रक्षापर एक लेख, सभाके एक अधिवेशनमें शायद सन् १८९५ ई० में पढ़ा था। सभाकी वह बैठक कारमाइकल लाइब्रेरीके कमरेके बाहर पच्छिमकी तरफ़ चबूतरेपर हुई थी। उनमें श्री मालवीयजी भी आए थे। डाक्टर साहबने स्वास्थ्य-रक्षाकी दृष्टिसे भारतीयोंके रहन-सहनकी कड़ी आलोचना की थी। श्री मालवीयजीने उस समय एक छोटासा मधुर व्याख्यान देकर कहा था कि डाक्टर साहबने बातें सब ठीक कहीं है पर "सत्यं ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात्" सिद्धान्तका अनुसरण नहीं किया है। जहाँतक मुझे याद है, मैंने उनका यह पहला ही व्याख्यान सुना था। उस व्याख्यानको सुननेके बाद मैं उनके पास गोस्वामी भवानीपुरीके यहाँ, जहाँ वे ठहरते थे, पहुँचा। उन दिनों पण्डित मथुराप्रसाद मिश्रजी अपने समयके वड़े प्रसिद्ध हेडमास्टर माने जाते थे। वे पेन्शन लेकर दशाश्वमेध घाटपर एकान्तवास करते थे। वे अपने अंग्रेज़ी उच्चारणके लिये प्रसिद्ध थे। मुझपर उनकी बड़ी कृपा थी। एक दिन मैं श्री मालवीयजीको उनके पास ले गया। दोनों एक दूसरेसे बहुत प्रेम और श्रद्धासे मिले।

उन्हीं दिनों नागरी-प्रचारिणी-सभाके लिये मैंने जापानका इतिहास लिखा था। श्री मालवीयजीने पूछा कि ओकाक्यूराकी नई पुस्तक "जापान बाई दी जापानीज़" पढ़ी है या नहीं। मैंने कहा, वह पुस्तक

मँहगी है इसलिये मैँ उसे पा नहीँ सका। इसी प्रकार बातचीत करता मैँ उनके साथ काशी स्टेशनतक गया। वे प्रयाग जानेके लिये रेलमेँ बैठ गए और कुछ लोगोँसे बातचीत करने लगे। रेल छूटने ही वाली थी कि उनके क्लार्कने धीरेसे मेरे हाथमेँ कुछ रुपये देने चाहे और कहा कि श्री मालवीयजीकी आज्ञासे मैँ जापान-सम्बन्धी पुस्तक ख़रीदनेके लिये दे रहा हूँ। मैँने रुपया लेनेसे इनकार किया। क्लार्कने आग्रह किया—इतनेमेँ रेल चल दी।”

आज भी मालवीयजीके द्वारसे कोई विमुख नहीँ जाता। यह तो सभी जानते हैँ कि मालवीयजी संसारके सबसे बड़े भिखारी हैँ। जो दूसरोँके आगे हाथ फैलाता हो उसके आगे दूसरे भी हाथ फैलाते होँ, यह तो देखनेमेँ बिलकुल अटपटी बात जान पड़ती है, पर बात सच है। न जाने कितने याचक वहाँ करुणाके साथ आते हैँ और मुसकानके साथ जाते हैँ। न जाने कितने दीन विद्यार्थी मालवीयजीकी कृपासे विद्या पढ़ रहे हैँ। उसका कारण यही है कि बहुतसे धनी-मानी मालवीयजीके हाथोँसे ही धनका सदुपयोग कराना चाहते हैँ। कभी आप चले जाइए मालवीयजीके बँगलेपर। एक भीड़ जमा रहती है—फ़ीस चाहिए, पुस्तक चाहिए, वस्त्र चाहिए, मानो कुबेरका ख़जाना खुला हुआ है। पर आप यह भी देखेँगे कि उस ‘संसारके सबसे बड़े भिखारी’ के द्वारसे वहाँसे निराश कोई नहीँ लौटता।

दम

मालवीयजीका पवित्र उदात्त और निष्कलङ्क चरित्र ही उनके दम (इन्द्रिय निग्रह) का सबसे बड़ा और पूर्ण प्रमाण है।

यज्ञ

जैसे-जैसे हम लोग सभ्य होते जाते हैँ वैसे-ही-वैसे हम अपने बड़ोँका सम्मान करना भूलते जा रहे हैँ। कुछ ऐसी मादकता छाई हुई है कि हम अपनेको सब कुछ समझ बैठे हैँ। हम यह नहीँ समझते कि हमारा शरीर हमारे बड़ोँका आशीर्वाद है, हमारा ज्ञान हमारे बड़े बूढ़ोँकी तपस्याकी देन है और हमारी शक्ति हमारे बुज़ुर्गोँका प्रसाद है। शास्त्रोँमेँ कहा गया है कि जहाँ बड़ोँका सम्मान है वहाँ आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैँ। शायद वृद्धोँकी सेवा न करनेका ही यह परिणाम हो कि हमारी आयु कम हो गई, अविद्याका साम्राज्य हो रहा है, यश देश छोड़कर भाग गया है और बल रह गया है—आत्महत्या करनेमेँ। बड़ोँका सम्मान स्वतः एक बड़ा भारी यज्ञ है। जो यह यज्ञ करते हैँ उन्हेँ सारा संसार अपना मानता है और वे अपने बड़े लोगोँके आशीर्वादसे फलते-फूलते हैँ। मालवीयजी अपने माता-पिताके अनन्य भक्त हैँ। अब भी इनके कमरेमेँ और इनके साथ इनके माता-पिताका चित्र निरन्तर रहता है। घरके बाहर भी सभी बड़े, बूढ़ोँका ये बड़ा आदर और उनकी बड़ी सेवा करते हैँ।

एक बार पण्डित बालकृष्ण भट्टजी बड़े बीमार पड़े। ये उन्हेँ बड़ा मानते थे। बस ये उनकी सेवामेँ लग गए। उस समय इन्होँने जो उनकी सेवा की वह कोई क्या करेगा। स्वयं हाँड़ी लेकर पेशाब कराते थे और फेँकते थे।

काशीकी रणवीर संस्कृत पाठशालाके अध्यक्ष स्व० पण्डित अनन्तराम शास्त्री इनसे अवस्थामेँ बड़े थे। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयके कुलपति होते हुए भी मालवीयजी उनका पैर छूया करते थे।

गत १९३३ ई० के जनवरीकी बात है। विद्वान् पण्डित चन्द्रशेखर मिश्र (गूलराविस्फारक) जी अपनी पुरी-यात्रामेँ कलकत्तेमेँ ठहरे थे। उन्ही दिनोँ मालवीयजी भी कलकत्ते पधारे थे। मिश्रजीको जब मालवीयजीके आनेका पता चला तो मिलनेके लिये उनके निवासस्थान—बिड़ला-हाउस पहुँचे। मोटरसे उतरकर जैसे ही वे सीढ़ियोँपर चढ़ने जा रहे थे कि उधरसे मालवीयजी कहीँ बाहर जानेके लिये आते हुए

दीख पड़े। बाहर ही सम्मिलन हो गया। मिश्रजी पण्डितजीका सम्मान करनेके लिये झुकना ही चाहते थे कि उन्होंने बीचमें ही रोककर स्वयं झुककर उनके पैर स्पर्श किए। मिश्रजी कहने लगे—आपने देश-पूज्य नेता होकर ऐसा अनुचित कार्य्य क्यों किया? मालवीयजी मुस्कुराते हुए बोले—अनुचित, मैंने किया या आप स्वयं करने जा रहे थे। मुझसे वयोवृद्ध होकर आप मेरे पैर छूने जा रहे थे, क्या यह उचित था? आप मुझसे अवस्थामें बड़े हैं, आपका पद स्पर्श मुझे करना चाहिए।

मालवीयजीने बड़े बूढ़ोंका सत्सङ्ग भी बहुत किया है। प्रयागमें मालवीयजीके मुहल्लेमें ही एक व्यासजी वैद्य रहा करते थे। वे भी मालवीय ब्राह्मण ही थे। मालवीयजी रातको नौ-दस बजेसे लेकर बारह-बारह बजे राततक वेदान्त और परमार्थ-सम्बन्धी बातचीत उनसे करते रहते थे या वैद्यकके नुस्ख़े लिखते रहते थे।

मालवीयजीके पुराने प्राइवेट सेक्रेटरी पण्डित चन्द्रबली पाण्डेयने लिखा है कि आप अम्बालेसे पञ्जाब राजनीतिक सम्मेलन, बटालामें सम्मिलित होनेके लिये जा रहे थे। अम्बाला जङ्क्शनपर और सामानोंके सिवाय इस बक्सको भी लेकर कुली लोग एक प्लेटफ़ार्मसे दूसरे प्लेटफ़ार्मको चले। मेरी अनुभवशून्यता तथा असावधानीसे कुली कुल सामान लेकर नौ-दो-ग्यारह हो गए। बड़ी छानबीन हुई। बहुत दिनोंतक रेलवे पुलीसने भी पता लगानेका प्रयत्न किया, परन्तु सब निष्फल। पूज्य माता-पिताके जिन चित्रोंको आप नित्य श्रद्धा-भक्तिसे देख लिया करते थे अब वह आपसे सदाके लिये विलग हो गए। इन चित्रोंके खो जानेसे मालवीयजीको बहुत कष्ट हुआ। उन्हीं सब सत्सङ्गों और वृद्धोंकी सेवाओंने मालवीयजीको मालवीयजी बनाया है।

मालवीयजीका घर मुसाफिरख़ाना, अतिथिशाला, जो कहिए वही है। कोई न कोई अतिथि उनके घर सदा रहता ही है। पर वे भी अतिथियोंकी बड़ी ख़ातिर करते हैं। पर यह तो एक साधारण व्यवहारकी बात है। सभी ऐसा करते हैं। पर नीचे लिखी घटनासे आपको उनकी शुद्ध 'मालवीयता'का परिचय मिलेगा :—

दोपहर ढल चुकी थी। मालवीयजी भोजन करके ही निकले थे कि एक साधु आए। मालवीयजीने पैर छूए और पूछा कहिए महाराज क्या सेवा करूँ। साधु बोले—"मैं भोजन चाहता हूँ।" मालवीयजी बोले—"अच्छा आप ज़रा सा बैठिए, मैं अभी प्रबन्ध करता हूँ। मेरे घरमें चौका उठ चुका है। मैं पड़ोसके मित्रके घरसे लाता हूँ।" और सचमुच साधुके मना करनेपर भी आपने भोजन लाकर दिया।

मालवीयजीके पास जो जाता है, जो उनसे मिलता है उसे मालवीयजीसे एक वस्तु तो तत्काल मिल जाती है—उनकी मन्द मुसकान। केवल मीठी मन्द मुसकान और कुशल मङ्गलमें अभ्यागतका हृदय हरनेवाले, उसकी थकावट दूर करनेवाले और उसको सन्तुष्ट करदेने वाले भला कितने लोग होंगे?

मालवीयजीकी मुसकान

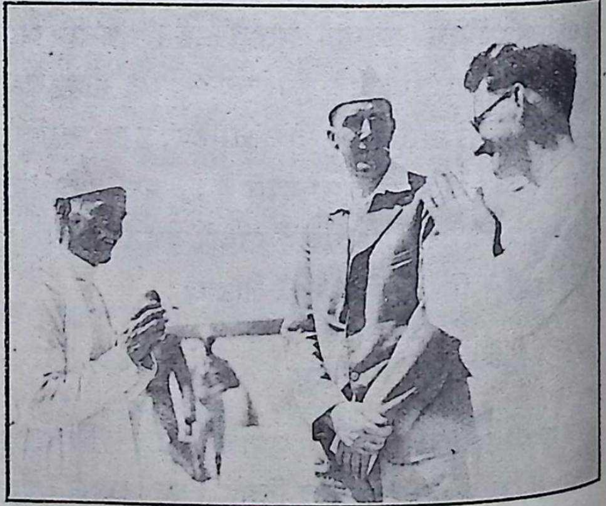

बम्बई कांग्रेसमें आए हुए अमेरिकिन सज्जनसे कुशल-मङ्गल पूछ रहे हैं।

स्वाध्याय

हिन्दुओंकी पुरानी चाल यह रही है कि वे प्रातःकाल सन्ध्याके साथ कुछ भगवान्‌का भजन और गीता

भागवत आदि धर्मग्रन्थोंका पाठ कर लिया करते हैं।

मालवीयजी नित्य श्रीमद्भागवत अथवा महाभारतका स्वाध्याय करते हैं। महत्त्वका शायद ही कोई वाक्य इन ग्रन्थ-रत्नोंमें हो जिसे आपने रेखाङ्कित न कर रक्खा हो।

मालवीयजीके स्वाध्यायका फल उनकी डायरी है। उनकी डायरीमें नित्यकी घटनाएँ नहीं लिखी हुई हैं वल्कि उसे हम एक नीतिका ग्रन्थ कह सकते हैं। अनेक कवियों और नीतिकारों और धर्मग्रन्थोंके सुन्दर नीतिपूर्ण दोहे, श्लोक आदि आपने उसमें लिख रक्खे हैं।

तप

गर्मीके दिनोंमें भरी दोपहरीमें चारों ओर अग्नि जलाकर तपते हुए साधुओंको आपने देखा होगा। जाड़ेके दिनोंमें गलेतक जलमें खड़े होकर मन्त्र जपते हुए महात्माओंको भी आपने देखा होगा। एक पाँवपर खड़े होकर तपस्या करते हुए भी लोग आपकी दृष्टिमें आए होंगे। वे वास्तवमें तपस्वी हैं, उनको हम सादर प्रणाम करते हैं। पर ये लोग इस तपस्याके द्वारा अपनी आत्माकी शान्तिका मार्ग ढूँढ़ते हैं, अपने लिये स्वर्गमें सुखका स्थान सुरक्षित करनेमें लगे हुए हैं। पर जो आदमी अपने सब सुखोंको लात मारकर, पैंतीस करोड़ देशवासियोंके सुख-दुःखमें, भूख-प्यास सहकर, शारीरिक कष्ट सहकर, हाथ बँटाता फिरता हो और निरन्तर उनके कल्याणकी बात सोचता हो उसे आप तपस्वी नहीं कहेंगे तो फिर क्या कहेंगे? मालवीयजीकी इस तपस्याने उन्हें अद्भुत शक्ति भी दी है।

पण्डित शिवराम वैद्यने मालवीयजीकी तपस्विताकी कुछ घटनाएँ दी हैं। वे लिखते हैं कि—

"मदनमोहन ब्राह्मण बालक तो हैं ही साथ ही तपास्विता भी इनमें कम नहीं है। इन्फ़्लुएञ्ज़ाके अवसरपर मेरे भतीजे चि० काशीप्रसादको निमोनिया-सम्बन्धी बुख़ार था और एकदम बेहोशीका दौरा हो गया। गोदान वग़ैरह भी करा दिया गया। उस समय मेरी अवस्था पागलोंकी सी थी। मैंने आदमी भेजकर मदनमोहनको बुलवाया, कह दिया कि जहाँ मिलें उनको फ़ौरन् ले आओ। इसके बाद मैं चिकित्सकोंके पास दौड़ा। डा० सुरेशको लेकर आया। मदनमोहन आ गए थे। उन्होंने मुझे सान्त्वना देते हुए कहा—घबड़ानेकी बात नहीं है। काशी अच्छा है। मैंने जब आकर देखा तो विश्वनाथ ब्रह्मचारीने डा० अनन्तप्रसादकी बताई हुई मुँहके भीतर वफ़ारा देनेकी दवा शुरू कर दी थी। डा० सुरेशने भी उस वफ़ारेको, जिसमें कुछ दवाका भी योग था, पसन्द किया और कहा कि इस दवासे काशी अच्छे हो जायँगे। इस अवसरपर मुझे यही विश्वास हो रहा था कि दवा वग़ैरह एक तरफ़ अगर मदनमोहन मेरे यहाँ आ जायँ तो काशी सुखी हो जाय। मदनमोहन कोई वैद्य-डाक्टर न थे। मगर मेरे मनमें जो बातें उठी थीं वे पूरी उतरीं।

"इसी प्रकारकी एक दूसरी घटना पहले घट चुकी थी। उस समय मालवीयजीके मझले भाई पण्डित जयकृष्णचन्द्रजीकी हालत संग्रहणीके रोगसे बहुत बिगड़ी थी। बड़े-बड़े वैद्य डाक्टरोंने जवाब दे दिया था। उस समय मदनमोहन मेरे पास दौड़े आए और बड़े ज़ोरसे मुझसे कहा—मैंने सुना है कि भैयाको आपने भी जवाब दे दिया है। बड़ी भूलकी बात है। उठो, चलो हमारे साथ और उनकी दवा आरम्भ करो। ये बिलकुल अच्छे हो जायँगे। मुझे ऐसा मालूम पड़ा मानो भगवान कृष्ण अर्जुनसे कह रहे हैं—उत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृतनिश्चयः।" अब किस हिम्मतसे कह देता कि उनके बचनेकी कोई उम्मीद नहीं। इसलिये सीधे चुपचाप मदनमोहनके साथ हो लिया। मेरा भी साहस और आत्मबल बढ़ गया था और हिम्मत पड़ी कि दवा दे दूँ। मैंने दवा करना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे मदनमोहनके आत्मबलने सहायता की और पण्डित जयकृष्णजी आरोग्योन्मुख होने लगे। धीरे-धीरे जहाँ उनको छटाँक-आध पाव

दूध हज़म होना कठिन था वहाँ उनको १२-१४ सेर तक दूध हज़म होने लगा। इस बीचमें उन्हें ऐसा बल हुआ कि वे अखाड़ेमें गए और एक पहलवानको पछाड़ा। इस घटनाकी ख़बर दो दिनतक न दी गई क्योंकि उनकी कमरमें हूक हो गई थी।"

एकबार आप पटनामें थे। आपके पैरमें एक फुड़िया निकल आई थी। आपने वैद्यजीसे मञ्जूरी ली और एक दिनमें दो सौ मीलसे अधिक दूरीकी यात्रा कर नौ भाषण दिए। आप फिर पटना आ गए। उसी समय प्रयागमें उनकी धर्मपत्नीजी यमद्वितीयाके दिन एक इक्केसे चोट खा गईं। इस घटनाका तार पूज्य मालवीयजीको मिल गया पर आप इलाहाबाद नहीं लौटे। पैरका दर्द बढ़नेपर भी आपने नौ स्थानोंमें भाषण दिए और दिन भर घूमते रहे। इसी तपस्याने मालवीयजीको सबके हृदयमें बैठा दिया।

सरलता।

महापुरुषोंमें एक बड़ा भारी गुण होता है सरलता। इसी गुणके कारण वे दूसरोंकी बातें एकदम सुन लेते हैं और मान बैठते हैं यहाँतक कि कभी-कभी तो वे बातें उनके हृदयपर ऐसी छाप लगा लेती हैं कि लाख प्रयत्न करनेपर भी नहीं हटाई जा सकतीं। मालवीयजीका हृदय तो इतना सरल है कि वे सारे संसारको अपने समान ही पवित्र, शुद्ध सत्यवादी समझते हैं इसी लिये कुछ भले आदमी (?) उनकी इस सरलतासे लाभ उठाकर उनके मनमें बहुतसी झूठी और भ्रमपूर्ण बातें भर देते हैं जिसका परिणाम दूसरोंके लिये कभी-कभी अच्छा नहीं होता। पर साथ ही मालवीयजी व्यवहार-कुशल भी हैं। इसलिये वे अधिकतर तो ताड़ लेते हैं पर महापुरुषका सरल हृदय आख़िर कहाँतक दूसरेके वाणीपर सन्देह कर सकता है?

अहिंसा

मालवीयजीका अहिंसा-प्रेम तो एतिहासिक हो गया है। जो अपनी तुलना छोटे-छोटे जानवरोंसे करनेपर गर्व करता हो, मच्छर जैसे दुष्ट प्राणीको भी प्रेमकी दृष्टिसे देखता हो उसके अहिंसा भावका भला वर्णन ही क्या हो सकता है? मालवीयजीके हृदयमें मनुष्यकी हिंसाका तो कहना ही क्या साधारण जीवोंको भी वह प्यारकी दृष्टिसे देखते है। वे मन वाणी और शरीरसे किसीको भी कष्ट नहीं दे सकते।

सत्य

पूज्य मालवीयजी जब सत्यपर आघात होते देखते हैं तो उसका विरोध करने और सत्य कहनेमें नहीं चूकते। एक वार मालवीयजीसे वातचीतके सिलसिलेमें काशीके प्रसिद्ध विद्वान् स्व० नकछेदजीने श्राद्धका विषय आनेपर स्वामी दयानन्दके लिये बड़े कड़े शब्दोंका प्रयोग किया और यहाँ तक कह डाला कि "वह संस्कृतका विद्वान् नहीं था"। मालवीयजीसे न रहा गया और उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि मैं स्वामी दयानन्दको तपस्वी और विद्वान् समझता हूँ। मालवीयजीकी यह सम्मति सुनकर उन्होंने भी स्वामीजीपर आक्षेप करना छोड़ दिया।

उनके निष्कपट सत्यका एक और बहुत बड़ा उदाहरण है। जब गान्धीजीके पुत्र देवदासका श्री राजगोपालाचारीकी कन्यासे विवाह हुआ तो उस समय उन्होंने मालवीयजीका आशीर्वाद माँगा। मालवीयजीने आशीर्वादात्मक तार देते हुए लिखा कि "यद्यपि मैं इस प्रकारके विवाहको ठीक नहीं समझता किन्तु मेरा आशीर्वाद है कि वर-कन्या दीर्घायु हों।

अक्रोध

मालवीयजीको क्रोध तो कभी आता ही नहीं। मुँहसे अपशब्द भी कभी नहीं निकलते। बहुत नाराज़ होंगे तो केवल यही कहेंगे, "आप भी बड़े अक़िलमन्द हैं, बड़े बुद्धिमान हैं।" और फिर धीरेसे मुस्करा देते हैं। बेचारा क्रोध अपना-सा मुँह लेकर भाग जाता है।

त्याग

मालवीयजीके त्यागका कोई एक उदाहरण हो तो लिखें। उनका सारा जीवन उनके त्यागकी ही तो रामकहानी है।

शान्ति

शान्त मनुष्यका लक्षण यह है कि उसे देखकर कोलाहल बन्द हो जाय, टूटे हुए दिल मिल जायँ, पीड़ा दूर हो जाय और उबला हुआ हृदय चुप होकर बैठ जाय। न जाने कितनी बार मालवीयजीकी उपस्थिति मात्रने, उनकी वाणीके पहले शब्दने, उनकी उठी हुई उँगलीने कितनी उठी हुई तलवारोंको म्यानमें डाल दिया, कितनी बड़ी-बड़ी लहरोंको नीचे सुला दिया।

एक बार काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके कुछ छात्रों और काशीके श्रीहरिहर बाबाकीसाधु-मण्डलीसे कुछ खटपट हो गई जिससे हरिहर बाबा अपने परिजनोंके सहित अस्सीघाट चले गए। जब मालवीयजी काशी आए और यह घटना उन्हें मालूम हुई तो वे तत्काल हरिहर बाबाजीके पास गए और कहा कि आप उसी स्थानपर चलें, मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा। आप बालकोंका अपराध क्षमा करें। हरिहर बाबाने हज़ारों गालियाँ दीं, पर मालवीयजी हाथ जोड़े हुए खड़े रहे और अपनी पगड़ी उनके पैरोंपर रख दी। दूसरे दिन मालवीयजी फिर पधारे। उस दिन हरिहर बाबा मालवीयजीका गुणगान कर रहे थे।

उनकी शान्तिने न जाने कितने मुँह बन्द कर दिए और जिनसे अङ्गारे निकलते थे उनसे फूल बरसने लगे।

उदारता

जैसे उनका द्वार सबके लिये खुला रहता है वैसे ही उनका हृदय भी। संसारके सभी प्राणी उसमें समा सकते हैं। सबके लिये उनके मनमें प्रेम है, प्रशंसा है। न तो उनका मन ही किसीकी निन्दाकी कल्पना कर सकता है और न उनकी वाणी। सारा संसार उनकी उदारतामें स्वच्छन्द घूम सकता है।

दया

राहमें पड़े हुए बीमारको देखकर हमें दया होती है, लुटे हुए मुसाफ़िरकी कथा सुनकर करुणा उमड़ पड़ती है, ग़रीबकी व्यथा सुनकर जी पसीज जाता है, पर हम क्षण भरके बाद उसे भूल जाते हैं। फिर वह दया क्या रही? दया तो तब असली कही जाती है जब हम दुखी प्राणीके दुःखको अपना दुःख समझें, उसकी चोटको अपनी चोट समझें और फिर केवल देखकर ही न रह जायँ बल्कि उसका कष्ट दूर करनेका प्रयत्न करें। कोरे तमाशबीनकी दयाका कोई मूल्य नहीं है। मालवीयजीका वर्णन करते हुए लीडरके प्रतिष्ठित सम्पादक श्री सी० वाइ० चिन्तामणिजीने कहा है कि 'वे सिरसे पैरतक हृदय-ही-हृदय हैं।' इस एक वाक्यमें मालवीयजीका पूरा चित्र आ गया है। मालवीयजीकी दया हृदयसे निकलती है और हृदयमें ही पहुँचती है। बुद्धि और तर्कके द्वारा वे उस दयाको मैला नहीं करना जानते। पण्डित मधुमङ्गल मिश्रजीने मालवीयजीकी दयालुताकी एक घटना लिखी है—

"एक दिन मैं प्रयागमें घण्टाघरके सामने जा रहा था कि मालवीयजी मिले। कुशल-प्रश्नके अनन्तर मैं थोड़ी दूरतक ही साथ चला होऊँगा कि एक अनाथ भिखारिनने उनका ध्यान आकृष्ट किया। उसके आर्तनादसे खिन्न हो वे पूछने लगे—पीड़ा कहाँ है? वह मैली घावसे भरे शरीरसे निरन्तर ताकती सी रही। उसके पास सड़कपर ही बैठकर पूछने लगे—कभी दवा कराई थी? उन्हें यों बैठे देख कई राहगीर एकत्र हो गए और उसके टिनमें पैसे पड़ने लगे। उससे कुछ उत्तर न पाकर मालवीयजीने कहा—मधु! एक एक्का बुलाओ और तुरन्त उठकर खड़े हो एक ख़ाली एक्का देखकर बुला लिया। उसे एक्केपर बैठनेको कहा। पर उसके हाथ-पैर भी न चलते थे। एक स्वच्छ वस्त्रधारी युवकने पूछा—'क्या मैं उसे बैठा दूँ?' आज्ञा पा उसने उसे हाथ पकड़ उठाना चाहा। जब न बन पड़ा तब हाथ-पैर समेत उठाकर एक्केपर टिका

दिया। मालवीयजी अस्पतालकी ओर आगे बढ़े और एक्केवालेसे कहा—मेरे साथ आओ। मेरा साथ उस समय वे भूलसे गए।"

"अभी दो ढाई वर्षकी बात है कि विश्वविद्यालयके बी० एस्-सी० का एक विद्यार्थी जुलाईसे पढ़ते हुए जनवरीतक फ़्रीशिप न पा सका। प्रिन्सिपलने सहायता देना अस्वीकार किया। प्रार्थनापत्र लेकर वह तीन दिनतक मालवीयजीसे मिलनेका अवसर ढूँढता रहा पर मौक़ा न मिला। चौथे दिन भी सब कार्य निबाहकर वे भीतर चले गए, और फिर हठात् बाहर आए। उसे सूनेमें खड़ा देखकर पूछा—कहो क्या है? उसने प्रार्थनापत्र दे दिया। उसपर किसी पण्डितने लिख दिया था कि सहायताके अभावमें इसका अबतक पढ़ना व्यर्थ जावेगा। उन्होंने तुरन्त उसपर लिख दिया—प्रिंसपल साहिब, बन पड़े तो इसे सहायता दीजिए। प्रिन्सिपल महाशयने इतना लिखा पाकर उसकी फ़ीस क्षमा कर दी।"

इसी प्रकार पण्डित शिवराम वैद्यने भी एक घटना लिखी है—

एक बार मदनमोहन बिजलीकी तरह मेरे घर आ धमके। वे बहुत जल्दीमें थे। बोले—एक कुत्तेके कानके पास कान ही से मिला हुआ एक बड़ा घाव है। घावमें कीड़े पड़ गए हैं। वह उस तरफ़का शिरोभाग और कान लटकाए हुए भागता रहता है। उसकी दवा बताइए। मैंने एक अंग्रेज़ी दवा तजवीज़ की और इस सम्बन्धमें सलाहके निमित्त डाक्टर अविनाशके यहाँ गया। उनसे सारा हाल कहा। अविनाश हँस पड़े। बोले—आपकी तजवीज़ की हुई दवा ठीक है। मदनमोहन मेरे यहाँसे दौड़े हुए वापस कुत्तेके पास गए। उनके साथमें बहुतसे स्कूली लड़के भी थे। कुत्ता मक्खियोंके डरसे टट्टरकी आड़में दुखी होकर बैठा था। मदनमोहनने एक बाँसमें कपड़ा लपेटकर उसे दवासे तर किया और दूरसे कुत्तेके घावमें दवा लगानी शुरू की। कुत्ता भयङ्कर स्वरसे गुर्राता और भौंकता था। वह दवा लगानेवालेको डराकर भगा देना चाहता था। पर मदनमोहन भी अपने धुनके पक्के थे। वे चुपचाप दवा लगाते जाते थे। दवा लगानेके बाद कुत्तेको आराम मिला और चिल्लाता हुआ कुत्ता थोड़ी देरमें आरामसे सोने लगा। ऐसा दुखी कुत्ता पागलकी अवस्थामें रहता है। उस समय मदनमोहनके धुनमें भी पागलपनका ही पुट था। अविनाशकी हँसीका यह एक माक़ूल कारण था। अविनाश डाक्टर थे, इसलिये ऐसी कार्रवाईपर हँस सकते थे, पर उस दुखी कुत्तेके दुःखको अनुभव करने और उस दुःखको दूर करनेकी व्याकुलतासे तड़पनेके लिये एक ऐसे हृदयकी ज़रूरत है जो मदनमोहन जैसे कुछ थोड़ेसे कोमल-हृदय महानुभावोंको ही प्राप्त होता है।

पण्डित रामनारायण मिश्रजीने एक घटना लिखी है जिससे यह मालूम हो जायगा कि वे कोरे कुर्सी-तोड़ नेता नहीं हैं, बल्कि उनके मनमें सचमुच पीड़ितके प्रति दया है और पीड़ितकी सेवा करनेको हरदम तैयार रहते हैं।

"एक दिन रातके एक बजे श्री मालवीयजी हिन्दू स्कूलके बोर्डिङ्ग हाउसमें जिसमें मैं रहता हूँ पधारे और तीन-चार बड़ी उम्रके लड़कोंको अपने साथ मोटरपर ले गए और एक घण्टेके अन्दर उनको स्वयं लाकर पहुँचा गए। पता लगा कि जब वे बनारस स्टेशनपर उतरे थे, उन्होंने देखा कि दो बदमाश एक बच्चेवाली स्त्रीके पीछे लगे हैं और वह उनसे बचनेका प्रयत्न कर रही है। वे उस स्त्रीके साथ हो लिए और जब वह इक्केपर बैठ गई तब उन्होंने उसका पता जान लिया। बोर्डिङ्ग हाउसके लड़कोंको अपने साथ ले जाकर उनको खोजवाँमें उस स्त्रीका पता लगानेके लिये छोड़ दिया। लड़कोंने पता लगा लिया। पहले तो उस स्त्रीने डरकर दर्वाज़ा बन्द कर लिया और समझा कि वेही बदमाश उसके पीछे पड़े हैं, परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि श्री मालवीयजीने ही उसकी रक्षा की है और वे यह जाननेके लिये बाहर खड़े हैं कि वह घर पहुँच गई अथवा नहीं, तब वह

प्रसन्न हो गई और उसने तुरन्त दरवाज़ा खोल दिया।

तृष्णाका त्याग

जिसने अपनी जाति और देशके लिये धूनी रमा ली, घूमता फिरा, आफ़तेँ सहीँ, कष्ट सहे उसे फिर चाहिए ही क्या? संसारके सब पदार्थ उसके त्यागमेँ समा जाते हैँ। केवल सेवा ही एक अकेली रह जाती है। महापुरुषकी यही तृष्णा रहती है—

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम् ॥

देशके लिये मालवीयजीने वकालत छोड़ी और अपना सुख भी छोड़ दिया, और यह सब छोड़कर उन्होँने केवल दण्ड-कमण्डल लेकर संन्यास नहीँ लिया और न अलख जगाते फिरे। सरकार और जनताके बीच साँकल बने हुए आपने अनमोल सेवाएँ कीँ। जिस समय कांग्रेसमेँ उनके व्याख्यानोँकी धूम थी और प्रयागमेँ वे अपनी सेवाओँके कारण बड़े प्रसिद्ध हो रहे थे उन दिनोँ एक यह शोहरत उड़ी कि सरकारकी यह इच्छा है कि मालवीयजीको एक हज़ार रुपया महीनेपर जज बनाकर वह उन्हेँ ख़रीद ले। सरकारके लिये कोई यह नई बात नहीँ थी। महाकवि अकबरने कहा भी था—

जज बनाकर अच्छे-अच्छोँका लुभा लेते हैँ दिल ।
क्या अजब है ख़ुशनुमा दो जीम उनके हाथमेँ ॥

किसीने बातोँ-बातोँमेँ मालवीयजीसे भी इसका ज़िक्र किया। एकदम मालवीयजी बोले—"मैँ जजी या सरकारी नौकरी किसी भी वेतनपर स्वीकार न करूँगा। मैँ इस लालचमेँ नहीँ फँस सकता। मैँ ख़रीदा नहीँ जा सकता (आइ कैन नौट वी बौट ऑफ़)। सचमुच मालवीयजीको कोई क्या ख़रीद सकता है?

कोमलता

मालवीयजीका स्वभाव कितना कोमल है इसे वे ही लोग जानते हैँ जो उनके पास रहते हैँ। दूसरोँकी पीड़ाकी हलकी-सी आँच लगते ही उनका हृदय पिघल जाता है और फिर वह कोमल हृदय, मीठी बोली और निर्मल आँसुओँके रूपमेँ प्रकट हो जाता है। एक सज्जनने कहा है कि "मैँ दावेके साथ कह सकता हूँ कि शायद वर्त्तमान महापुरुषोँमेँ कोई भी व्यक्ति इतना कोमल न होगा जितने मालवीयजी, जो किसीको निराश नहीँ करते और जिनसे कभी किसीको हानि तो पहुँच नहीँ सकती।"

अनुचित कामकी लज्जा

महापुरुष पहले तो कोई ऐसा काम ही नहीँ करते जिससे लोक और शास्त्रकी मर्यादा भङ्ग हो। यदि कभी भूलसे हो भी जाय तो वे उसे स्वीकार कर लेते हैँ और प्रायश्चित्त करते हैँ। मालवीयजीकी हठ यद्यपि प्रसिद्ध है पर साथ ही यह भी बात है कि अपनी भूल जान लेनेपर उन्हेँ कम पछतावा और ग्लानि नहीँ होती।

गम्भीरता

मालवीयजीका कोई काम जल्दीमेँ या जोशमेँ नहीँ होता। वह अच्छी प्रकार उसको बुद्धिकी कसौटीपर कसते हैँ और तब प्रकट होता है। यही कारण है कि कभी-कभी उन्हेँ सारे संसारके विरुद्ध खड़ा होना पड़ा और अपजस भी सहना पड़ा पर उनकी गम्भीरता सदा विजयी होकर ही लौटी।

तेज

तेज मनुष्यकी वह शक्ति है कि केवल उसकी सूरत देखकर ही शत्रु हथियार डालकर, हाथ जोड़कर, घुटने टेककर, उसके आगे झुक जाय। मालवीयजी पचहत्तर वर्षके हो गए। इस अवस्थामेँ साधारणतः झुर्रियाँ मुखको ढक लेती हैँ, तेज ग़ायब हो जाता है, फुर्त्ती भाग जाती है। पर मालवीयजीका मुख देखिए। ऐसा चमकता है मानो अभी जवानी शुरू होनेकी तैयारी हो रही हो। एक बार किसीने उनसे कहा कि अब तो आपका संन्यास लेनेका समय आ गया। मालवीयजी बोले—'लोग तो पचहत्तर बरसपर

संन्यास लेते हैं पर मैं तो फिरसे बालक बनने जा रहा हूँ।' एक बार मालवीयजीके चेहरेकी ओर तो देखिए जान पड़ेगा कि उन्होंने बावन तोले पाव रत्तीकी बात कही है। अब भी उनका तेज ज्योंका त्यों बना हुआ है।

यह उनके तेजका ही प्रताप है कि स्वर्गीय महाराणा उदयपुर उन्हें अपने बराबर कुर्सी देते थे और महाराजा ग्वालियर उनको मोटरमें बैठाकर अपने आप मोटर हाँकते थे।

एक बार एक सज्जन बड़े लाल-पीले होकर मालवीयजीसे लड़ने आए। भीतर मालवीयजीसे मिले। बाहर आकर कहने लगे—'भाई, मालवीयजीके तेज और उनकी शान्तिके सामने मेरी तो हवा ही गुम हो गई।' यह है उनके तेजका तेज।

क्षमा

क्षमाका गुण उसीमें हो सकता है जिसका हृदय विशाल हो, बुद्धि निर्मल हो और मन पवित्र हो। एक ओर जहाँ मालवीयजी 'आततायीको मारो' का उपदेश देते हैं वहाँ शत्रुके झुक जानेपर और मुसीबतमें पड़ जानेपर क्षमा भी कर देते हैं। सन् १९२१ ई० की बात है। मालाबारमें मोपला लोगोंने हिन्दुओंको बुरी तरह लूटा और उनपर अत्याचार किए। सरकारने उन लोगोंका बड़ा दमन किया। सत्तर मोपले क़ैदी गाड़ीमें घुटकर मर गए और अनेकोंको सज़ाएँ हुईं। गान्धीजीने मालवीयजीको लिखा कि जहाँ हिन्दुओंकी सहायता हो रही है वहाँ इन पीड़ित मोपलोंके परिवारोंकी भी रक्षा की जाय। मालवीयजीने उत्तर दिया कि "आपने जो कुछ कहा है, ठीक ही है। यदि कोई उपकारके बदले उपकार ही करे तो उसका महत्त्व ही क्या। बात तो तब है कि जो बुराई करे उसके साथ भलाई की जाय। हिन्दू धर्मका महत्त्व इसीमें है।"

यह तो मालवीयजीकी क्षमाका केवल एक उदाहरण है।

धैर्य

धर्मका पहला लक्षण है धैर्य। धैर्यके लिये बड़े शुद्ध मनकी और शान्त बुद्धिकी आवश्यकता होती है। कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं कि बड़े-बड़े लोग मनकी शान्ति खो बैठते हैं, धीरज छोड़ देते और घबरा जाते हैं। पर मालवीयजीको ईश्वरने अपूर्व धैर्य दिया है। पण्डित चन्द्रमौलि सुकुलजीने एक घटना लिखी है—

"सन् १९१९ ई० और १९२२ ई० के बीचके किसी समयकी बात है। श्रीमान् मालवीयजी बहुत रुग्ण थे। उग्र ज्वरके साथ कठिन निर्बलता थी। उस समयतक विश्वविद्यालयमें वाइस-चान्सलरका बँगला नहीं तैयार हुआ था, क्योंकि पूज्य मालवीयजी जबतक सबके लिये निवास-स्थान न हो अपने लिये ईंट भी नहीं रखने देना चाहते थे। अस्तु, उस समय आप बाबू शिवप्रसाद गुप्तकी नगवावाली कोठी,—'सेवा-उपवन' में रहते थे। डाक्टरोंने कह दिया कि श्रद्धेय मालवीयजी किसीसे बात न करने पावें, क्योंकि रुग्णावस्थामें, विशेषतः निर्बल अवस्थामें, बातचीत करनेसे बची-खुची शक्ति भी क्षीण हो जाती है। परन्तु मालवीयजीको यह बन्धन कैसे पसन्द हो? वे उस दशामें भी लोगोंसे घिरे रहते थे और डाक्टरोंकी बातपर ध्यान न देते थे। अन्ततोगत्वा बाबू शिवप्रसाद गुप्तने ऐसा प्रबन्ध किया कि बाहरका कोई आदमी वहाँ जाने ही न पाए; दर्शनार्थी लोग बाहर ही से विदा कर दिए जाने लगे। शायद इस प्रतिषेधकी सूचना भी पूज्य मालवीयजीको न दी गई हो। फलतः आपको कोई आदमी बात करनेके लिये न मिलने लगा। तब आपने एक उपाय निकाला, आदेश करने लगे कि अमुक व्यक्तिको बुलाओ, अमुक अध्यापकको बुलाओ। इन आज्ञाओंकी अवहेलना आपके परम हितैषी भी नहीं कर सकते थे।

मैं भी एक दिन पहुँच गया। वहाँ देखा

कि एक वृद्ध पञ्जाबी सज्जन बड़ी गम्भीर मुद्रासे बैठे हुए हैँ। कभी-कभी कोई बात कह उठते हैँ। चलनेका समय हुआ तो प्रेमावेशमेँ उबलसे पड़े। वह श्री मालवीयजीके कोई चिरपरिचित मित्र और सम्भवतः उनके साथ काम करनेवाले थे। साश्रुलोचन, गद्गद कण्ठसे, कुछ सङ्कोचके साथ बोले, "महाराज! आपकी यह बीमारी सिर्फ़ उस मिहनत और परेशानीका नतीजा है जो आपने इस भारी कामके लिये अपने सरपर उठाई है। आपकी हालत देखकर निहायत अफ़सोस हो रहा है। इतनी कमज़ोरी है कि देखा नहीँ जाता। अब ज़ईफ़ीका आलम आ रहा है, इतनी मिहनत करना मुनासिब नहीँ। हिन्दुओँकी बहबूदीको मद्देनज़र रखनेवाला आपके बराबर कोई है नहीँ। आप किसीका..........कहना ....मानते नहीँ। ज़रा सोचिए तो कि आप ही तकका सहारा है। मैँ क्या कहूँ? आपकी हालत यह हो रही है! परमात्मा आपको तन्दुरुस्त कर देँ"।

यह बातेँ उन वृद्ध महाशयने बड़े करुण स्वरसे, रुक-रुक कर, क्षोभके साथ कहीँ। इनका गूढ़ अभिप्राय समझनेमेँ श्री मालवीयजीको देर न लगी। उस शारीरिक कष्टमेँ भी आपने मुस्कराकर, परन्तु फिर भी बड़ी दृढ़ताके साथ उत्तर दिया—"भाई, आपकी बड़ी कृपा है कि मेरे लिये ऐसे उच्च भाव आप रखते हो। आप यह बुज़दिली छोड़ दो। आप तो खुद जानते हैँ कि मुझे अभी बहुत काम करना है, इसलिये मैँ आपको इतमीनान दिलाता हूँ कि मुझे अभी मरनेकी फुरसत नहीँ।"

एक बारकी घटना है। मालवीयजी देहरादून गए थे। वहाँ टपकेश्वर नामक एक बड़ा सुन्दर स्थान है। लाला उग्रसेन रईसके साथ मालवीयजी टपकेश्वरके पास घङ्घोड़ नामक स्थानको जा रहे थे। रास्तेमेँ मोटर बिगड़ गई। मालवीयजी उतरकर एक पत्थरपर बैठ गए मानोँ अपने घरपर ही बैठे होँ। और इसी तरह घण्टे भरतक बैठे रहे। उनके चेहरेसे एक क्षणको भी यह नहीँ मालूम हुआ कि उन्हेँ कहीँ जाना है या नहीँ। ग़जबका धैर्य्य है उनका।

इसी तरह असहयोगके दिनोँमेँ जब हिन्दू विश्वविद्यालयके टूटनेकी नौबत आ रही थी। राजे-महाराजे सभासे उठकर चले गए। जान पड़ा कि बस, अब टूटी युनिवर्सिटी। पर मालवीयजी ज़रा भी न घबराए। दौड़धूप करके सबसे मिले और मिलकर फिर सभा की। बाढ़ निकल गई। और कोई होता तो घबरा जाता और आज हिन्दू युनिवर्सिटीका इतिहास किसी दूसरी तरह लिखा जाता।

उनके धैर्य्यकी एक और कथा पण्डित चन्द्रमौलि सुकुलजीने कही है:—

"भागीरथीके वाम तटपर विशाल हिन्दू विश्वविद्यालयका कुछ भाग निर्मित हो चुका था। कई छात्रालय भी बन चुके थे। पहले जो छात्रालय बना उसमेँ एक-एक विद्यार्थीके लिये एक-एक छोटा कमरा देनेकी योजना की गई। उसमेँ अंग्रेज़ी कक्षाओँके विद्यार्थी भर गए। प्राच्यविद्या (संस्कृत) के विद्यार्थियोँका निवास-स्थान बनाना आवश्यक तथा असमयासहिष्णु था; इसलिये एक-एक बड़े कमरेमेँ कई विद्यार्थी रहनेके योग्य जो छात्रालय बना था उसमेँ इन विद्यार्थियोँके रहनेकी स्वीकृति दी गई। विद्यार्थी प्रविष्ट भी हो गए। परन्तु कुछ कालके अनन्तर उन्होँने यह आपत्ति की कि अंग्रेज़ीके एक-एक विद्यार्थीको पूरा-पूरा कमरा दिया गया है तो हम लोगोँको भी वैसे ही कमरे क्योँ न दिए जायँ। अध्यापकोँने उन्हेँ बहुत कुछ समझाया-बुझाया, परन्तु वे क्योँ मानने लगे। छात्रावास छोड़नेपर या ऊधम मचानेपर उद्यत हुए। अन्तमेँ निश्चय यह हुआ कि जबतक वाइस-चान्सलर महोदय (श्री मालवीयजी) न आ जायँ, सब कार्रवाई स्थगित रहे।

"श्री मालवीयजी काशी पधारे। विद्यार्थियोँने उन्हेँ घेर लिया। थोड़ा समझाने-बुझानेपर जब उन्होँने देखा कि यह साधारण कार्य्य नहीँ है तो

छात्रालय देखकर निर्णय करनेका वचन दिया। इन पंक्तियोँके लेखकको भी अपने कौलेजूके सम्बन्धमेँ कुछ आवश्यक निवेदन करना था, अतः वह भी प्रातःकाल दर्शनार्थ पहुँचा। मालूम हुआ कि आप प्राच्य विद्या-विभागका छात्रालय देखने गए हैँ। लेखक भी वहीँ पहुँचा। देखा कि एक कमरेके बाहर चार-छः विद्यार्थी खड़े भीतरी कोई घटना देख रहे हैँ; भीतरसे शब्द भी आ रहा है। वहाँ पहुँचनेपर श्रद्धेय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको कमरेके भीतर विद्यार्थियोँसे घिरा हुआ पाया। बातचीत हो रही थी—बातचीत क्या, ख़ासा शास्त्रार्थ हो रहा था। एक ओर तो सौम्य रससाने शब्दोँका प्रयोग, प्रेमका प्रदर्शन, मन्द मुसकानकी मृदुल महिमा, वात्सल्य विधायक बाहुओँसे विद्यार्थियोँका पृष्ठ-स्पर्श, शास्त्रीय शब्दोँका समावेश, आगामी उन्नतिकी आशाओँका अपूर्व स्पष्टीकरण, तथा दूसरी ओर बाल-सुलभ चापल्यका धाराप्रवाह, समतामेँ विषमताका दर्शन, कई-कईका युगपत् प्रलाप, कभी विद्यालय छोड़ देनेकी धमकी, कभी हड़तालकी विभीषिका, कभी अधिकारियोँपर अंग्रेज़ी विद्यार्थियोँके प्रति अनुचित पक्षपातका आरोपण, कभी उनके वचनोँपर अप्रतीति प्रदर्शन, कभी ऐसे महापुरुषके समक्ष कहनेके सर्वथा अयोग्य शब्दोँका प्रयोग था।

"धैर्यमूर्त्ति मालवीयजीने बहुत कुछ समझाया, पुराने कुलपतियोँकी शिक्षा-प्रणालीका वर्णन किया, खुली हवामेँ बैठकर अध्ययन करनेका फल बताया, उन विद्यार्थियोँसे छात्रालयका कोई शुल्क न लेनेकी बात चलाई, उन्हेँ छात्रवृत्ति देनेका भी ज़िक्र किया, उनके रहन-सहनके प्रति अपनी विशेष सहानुभूति दर्शाई, अधिकारी-कृत-निर्णय-पालनका महत्त्व सामने रक्खा, यह भी सम्भावना दिखाई कि आगे चलकर उनके निवासके लिये और भी सुन्दर प्रबन्ध सोचा जायगा, परन्तु इस सबका कोई विशेष फल न दिखाई दिया। ऐसा प्रतीत होता था कि ज्योँ-ज्योँ समस्याके सुलझानेका प्रयत्न हो रहा है त्योँ-त्योँ वह और भी उलझती जाती है।

"मैँ चुप होकर सब देख रहा था। मुझ जैसे एक साधारण व्यक्तिका धैर्य्य काँप उठा, बार-बार मनमेँ आता था कि यह व्यर्थका झञ्झट कबतक रहेगा, अच्छा तो यही हो कि श्रीमान् जी कह देँ कि अच्छा, अब यदि कहना नहीँ मानते हो तो तुम्हेँ जो कुछ अच्छा लगे करो, अन्यथा यहीँ रहना होगा। कभी-कभी तो ख़ून उबलनेसा लगता था, धारणा उठती थी कि ऐसे हठीले व्यक्तियोँके साथ ऐसा बर्त्ताव नहीँ होना चाहिए जैसा श्री मालवीयजी कर रहे हैँ। इसी प्रकारकी अनेक भावनाएँ उमड़ रही थीँ। कभी इच्छा होती थी कि चुपकेसे घरका रास्ता लिया जाय। परन्तु यह भी सम्भव नहीँ था, क्योँकि श्री मालवीयजी पहले ही कह चुके थे कि इन बालकोँका झगड़ा तै करके चलता हूँ।

"कमरेके भीतर गर्मी भी पर्य्याप्त मात्रामेँ थी; हवाका झोँका भी नहीँ पहुँचता था, ढेर-के-ढेर विद्यार्थी उसीके भीतर साँस ले रहे थे। द्वारका मार्ग तक विद्यार्थियोँसे भरा था। लोग पसीनेसे तर हो रहे थे। बाहर निकलना सरल नहीँ था।

"भाग्यवशात् श्री मालवीयजीके मनमेँ यह विचार उठा कि कमरेसे बाहर निकलकर क्षणमात्र खुली हवामेँ खड़े हो जायँ। वे निकले, पीछे-पीछे मैँ भी निकला। बरामदेके खम्भेके पास खड़े होकर आप माथेका पसीना पोँछने लगे, और लेखकको सामने देखकर (और उसे अपना विश्वासपात्र समझकर) भ्रूभङ्गीसे तद्दशा-जनित घृणा सी दिखाते हुए, धीमे स्वरमेँ कहने लगे "बड़े सङ्कटकी अवस्था है"। इसी बीच चार-छः वीर वहाँ भी पहुँच गए और श्रीमालवीयजीको फिर उसी विवादमेँ जुटना पड़ा।

अब भी श्रीमान्‌का धैर्य्य अक्षुण्ण बना था। वही प्रसन्न वदन, वही मीठी बोली, वही प्रेम। अबकी बार आपने उस जादूका प्रयोग किया जिसका परिचय आपसे मिलनेवाले सभीको है और जिसके द्वारा आप अपने विरोधियोँको भी मुग्ध कर लेते हैँ। इस

बार आपको पूर्ण विजय मिली। विद्यार्थी लोग 'जो आज्ञा' के अतिरिक्त अन्य कुछ न कह सके। धन्य है ऐसे अपूर्व धैर्य्यको! उच्चतम अधिकारी होकर यदि आप चाहते तो एक वाक्यके द्वारा अपनी आज्ञाका पालन हठात् करा लेते, परन्तु वह आपकी विजय न कही जाती। जो आपने किया उससे इस लेखकके हृदयमें यह धारणा पक्की हो गई कि आपकी 'महामना' और 'श्रद्धेय' आदि पदवियाँ वास्तविक महत्ताकी द्योतक हैं।"

सन् १९१३ की बात है मालवीयजी ऋषिकुल हरिद्वारके वार्षिकोत्सवके सभापति रूपमें आश्रममें उपस्थित थे। जेठका महीना था। आप व्याख्यान देनेके लिये खड़े हुए। अकस्मात् भयानक आँधी आ गई। कोई आशा न थी कि पण्डाल खड़ा रहेगा। आप स्वयं खड़े हो गए और बल्लीको हाथसे पकड़कर बोले--"आप लोग ज़ोरसे बल्ली पकड़ लें पण्डाल हिलने न पावे।" कुछ देरतक हाथपर हाथ न सूझता था, पर शीघ्र ही अंधेरा दूर हुआ। देखा पण्डाल जहाँका तहाँ खड़ा था। ऐसी-ऐसी न जाने कितनी आँधियोंमें मालवीयजी बल्ली थामे खड़े रहे हैं।

शुद्धि

मालवीयजीकी शुद्धि तो उनके स्वरूपसे ही प्रकट हो जाती है और उन्होंने यह शुद्धि बड़ी हिफ़ाजतसे रख छोड़ी है।

मालवीयजीकी पोशाक शुरूसे ही एकसी और सदैव सफ़ेद रहती है। रङ्गीन कपड़ोंमें कालारङ्ग तो उन्हें बिलकुल ही पसन्द नहीं है। काला कपड़ा पहननेवालोंको वे सदा टोकते रहते हैं और कहा करते हैं कि यह अशुभ शनिश्चरी रङ्ग है। अंग्रेजोंने ही इस रङ्गके कपड़ेका प्रचार किया है। वे एक साफ़ा सिरपर बाँधते हैं और एक दुपट्टा गलेमें डालते हैं, जो पहले मलमलके रहते थे पर आजकल महीन खद्दरके हैं। जब वे बड़े नाज़से साफ़ा तह करते हैं और आइना सामने रखकर बाँधते हैं तो देखने लायक दृश्य होता है। अपने हाँथसे सँभाल-सँभालकर बड़े क़ायदेके साथ उसे लपेटते और फिर उसको ठीक करते हैं। वे शरीरमें सफ़ेद गञ्जी पहनते हैं, उसके ऊपर कभी तनीदार बग़लबन्दी पहनते हैं, परन्तु जानेके समय कमीज़ पहनते हैं, जिसमें सादे कफ़ लगे रहते हैं, जो अधिक नीची नहीं रहती, उसके ऊपर एक अङ्गरखा पहनते हैं, उसीमें घड़ी भी लगी रहती है, जाड़ेकी मौसिममें कमीज़ तथा कुछ पीली फ़लालैनका अँगरखा पहनते हैं। जाड़ेमें फ़लालैनका पायजामा भी पहनते हैं। धोती केवल घरपर कभी-कभी पहनते हैं। सोते समय भी पायजामा पहनकर सोते हैं, जो न तो चूड़ीदार ही कहा जा सकता है न ढीला, केवल इतना रहता है कि पैरपर चढ़ सके। जूते पहले पूरे पहनते थे, पर अब फुल स्लिपर कपड़ेका सफ़ेद 'शू' पहनते हैं जो बिना हाथ लगाए चढ़ सके। सफ़ेद मोज़ा कभी पहनते हैं कभी नहीं।

उनके इस शुद्ध सात्विक स्वरूप और वेशके साथ उनसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी वस्तुएँ स्वच्छ और शुद्ध रहती हैं।

उनका कमरा बिलकुल साफ़-सुथरा रहता है, उनकी चीज़ें—उनकी पुस्तकें बड़े करीनेसे रक्खी रहतीं हैं। वे अपने कमरेकी सफ़ाईके लिये किसी नौकरकी बाट नहीं देखते। समयपर अपने हाथसे बिस्तर लगा लेते हैं, कभी झाड़ू भी दे लेते हैं और अपने कपड़े भी ठीक तरह सरिया लेते हैं। वे कपड़ा ठीकसे पहननेके बारेमें बड़े सावधान रहते हैं और दूसरोंको भी समझाते रहते हैं। उनका मत है कि मनुष्यके वस्त्र उसकी शोभा और उसका तेज बढ़ाते हैं। इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको ऐसे वस्त्र पहनने चाहिएँ जिससे वह अच्छा लगे। एक बार उनका पौत्र श्रीधर नंगे सिर केवल कुर्त्ता पहने विश्वविद्यालयके प्रो-वाइस-चान्सलर साहबके घर गया। वहाँसे लौटा तो मालवीयजीने उसे वस्त्रका महत्व समझाया और उदाहरण दिया कि देखो यह वेशका ही प्रभाव था कि

समुद्रमन्थनके समय विष्णुजीको लक्ष्मी मिलीँ और बेचारे शिवजीको ज़हर। इससे मालवीयजीकी विनोद-प्रियता और उनके सिद्धान्त दोनोँ स्पष्ट हो जाते हैँ। उनकी मनकी शुद्धिने इस बाहरी शुद्धिसे मिलकर मालवीयजीको शुद्धता और पवित्रताका एक आदर्श बना दिया है।

अद्रोह

मालवीयजीकी बातोँका और उनके मतका कितने लोगोँने विरोध किया पर उन्होँने किसीके प्रति ज़रा भी द्रोह या वैरकी भावना नहीँ दिखाई। श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकरने लिखा है कि प्रयाग प्रान्तीय कान्फ़रेन्सके अवसरपर मुझसे राजनीतिक बातोँमेँ पूरा विरोध होनेपर भी आपने मेरे साथ पूर्ण रूपसे शिष्टताका व्यवहार किया है और अपने सौजन्यका परिचय दिया। कानपुर कांग्रेसमेँ मालवीयजी भाषण कर रहे थे—"देश तबाह हो रहा है, सङ्कट बढ़ रहे हैँ। ……।" इतने हीमेँ मञ्चके पास ही एक सदस्यने उठकर कहा "इसके लिये आप ही ज़िम्मेदार हैँ"। मालवीयजी बोले "मैँ?" वह बोला "हाँ आप"। मालवीयजी मुस्कराए और बोले "ईश्वर आपको सुबुद्धि दे।"

द्रोह तो उनके मनमेँ रहने ही नहीँ पाता।

निरभिमानता

अभिमान तो मालवीयजीको छू भी नहीँ गया। पद पाकर, यश पाकर लोग हवासे बात करते हैँ, ज़मीनपर पैर नहीँ धरते, उनका संसार ही निराला हो जाता है पर मालवीयजी इस दोषसे बचे रह गए। इतना सब कुछ करनेपर भी जब कोई उनकी प्रशंसा करता है या उनके सुकार्य्योँका वर्णन करता है तो वे कह देते हैँ कि "इसमेँ मैँने क्या किया है। सब भगवान् विश्वनाथजीकी कृपा है और आप लोगोँका आशीर्वाद है।"

ऐसी बात नहीँ है कि मालवीयजी बड़े लोगोँकी तरह बिना मोटरके घरसे बाहर ही न निकलेँ। अब भी कई बार उन्हेँ लोगोँने इक्केपर या ताँगेपर बैठे देखा है।

व्याख्याता

चाहे भाषामेँ हो चाहे अंग्रेज़ीमेँ, मालवीयजी धाराप्रवाह भाषण देते हैँ। अपने तो व्याख्याता हैँ ही, उनके ज्येष्ठ पुत्र 'बङ्गाली' जब बोल भी नहीँ सकते थे तभीसे 'हाँ, व्याख्यान तो दो' कहते ही किसी चबूतरे वा स्टूलपर चढ़, हाथ हिला, आ-आकर, व्याख्यानका आडम्बर रचते थे। भारतीभवनके किसी वार्षिकोत्सवके अवसर-पर पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यकी अध्यक्षतामेँ भाषण देते समय सहपाठी मित्र डाक्टर गट्टमलका उन्हेँ स्मरण हो आया। उनका गुणगान सुनाते-सुनाते गद्गद कण्ठ हो उठे। आँखोँसे आँसू बह चले। रोते-रोते रूमालसे आँसू पोँछते व्याख्यान देते रहे। स्वयं रोए और श्रोतागणके हृदयोँको समवेदनाके भावसे भर दिया। एक बार देशकी हीन दशा बतलाते हुए आप कह रहे थेः—"अपनी नौकाकी रक्षाके लिये दीन मल्लाह रातमेँ अकेला डोँगीमेँ सोता है। खुले मैदानमेँ नदीके पेटपर जाड़ेके दिनोँमेँ उसके पास केवल एक पतलासा डुपट्टा रहता है, बिछानेको कुछ नहीँ। जब रातमेँ ओससे डुपट्टा गीला हो जाता है तब वह उसे निचोड़कर फिर उसी गीले डुपट्टेको ओढ़ लेता है। योँ तीन-चार बार करते रात बिता देता है। उसके ठण्ढके अनुभव और क्लेशको समझने और दो आँसू बहानेवाला कौन है?" और चाहे कोई आँसू भले ही न बहावे पर मालवीयजी तो बहा ही रहे थे।

चौरीचौरा केसके अभियुक्तोँकी अपीलकी बहस समाप्त करते हुए पण्डित मालवीयजीने न्यायाधीशोँसे दयापूर्वक न्यायका फैसला देनेकी प्रार्थना की। और न्यायधीशोँको उनके सन्तोषपूर्वक पूर्ण सौजन्यसे बहस सुननेके लिये धन्यवाद दिया। यह उनकी वाणीका ही प्रभाव था कि—प्रधान न्यायाधीशने

उत्तर देते हुए कहा था कि, "जिस ख़ूबी और उदारतासे आपने अभियुक्तोंके मुक़दमेकी पैरवी की उसके लिये ये अभियुक्त और उनके कुटुम्बी आपके ऋणी रहेंगे। और मैं अपनी ओरसे और मुझे विश्वास है श्री पिगोट न्यायाधीशकी ओरसे भी अपनी बड़ी सदिच्छा प्रकट करता हूँ कि जिस प्रकार आपने बड़ी ख़ूबीके साथ इस मामलेमें बहस की है शायद अन्य कोई भी इतनी अधिक सुन्दरतासे इसपर प्रकाश नहीं डाल सकता था।"

मालवीयजीका संस्कृतका ज्ञान शायद पण्डितोंको छोड़कर और लोगोंको नहीं पता है। काशीमें पण्डितोंकी सभामें कई बार मालवीयजीने ऐसी ललित संस्कृतमें धाराप्रवाह व्याख्यान दिए हैं कि बड़े-बड़े पण्डित उनका लोहा मान गए। संस्कृत पढ़ने-पढ़ाने और बोलने-चालनेका अब रिवाज नहीं रहा है किन्तु अब भी जब विश्वविद्यालयमें संस्कृतमें शास्त्रार्थ होता है और मालवीयजी वहाँ रहते हैं तो उस समय मालवीयजीकी ललित संस्कृत सुनते ही बनती है।

पण्डित शिवराम वैद्यने मालवीयजीके संस्कृत-ज्ञान और भाषण-शक्तिके विषयमें लिखा है कि—

"बहुत दिन हुए, एक बार प्रयागमें जर्मनी-निवासी संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान्, वेदान्तशास्त्र, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदोंके धुरन्धर ज्ञाता एवं शाङ्कर वेदान्तके माननेवाले प्रोफ़ेसर ड्युसेन (डयूसन) उर्फ़ देवसेन बहुत उत्तम भाषण करते थे। उनसे मिलनेके लिये पण्डित लक्ष्मीनारायणजी व्यास, पण्डित श्रीकृष्ण जोशी, पण्डित सरयूप्रसादजी तथा मैं और भी अन्यान्य लोगोंके साथ उनके निवास-स्थानपर गए थे और घण्टों बातचीतके उपरान्त यह तय हुआ कि कायस्थ पाठशालेके मैदानमें वेद-वेदान्तके ऊपर प्रोफ़ेसर ड्युसेनका भाषण हो। नोटिस बाँटी गई और प्रोफ़ेसर साहबका भाषण संस्कृतमें बड़ी धूम-धामसे हुआ। योरोपियन होते हुए भी वे पण्डितोंकी तरह बैठकर भाषण करते थे। व्याख्यान समाप्त होनेपर आर्य्य-समाजियोंने शङ्करके वेदान्तका खण्डन और स्वामी दयानन्द सरस्वतीके वेदान्तका मण्डन करनेके निमित्त पण्डित भीमसेनजीको खड़ा किया। पण्डित भीमसेनने अपने भाषणमें यथाशक्ति ख़ूब खण्डन-मण्डन भी किया। मदनमोहनको यह कार्रवाई अच्छी न मालूम हुई। उनको यह बात खटकने लगी कि यहाँ विदेशसे एक शख़्स ऐसा आकर उपस्थित है जो हमारे गुणको परखता है और उसे ग्रहण करना चाहता है और हम खण्डन-मण्डनके फेरमें पड़कर उसके सामने बहुत ख़राब उदाहरण पेश कर रहे हैं। भीमसेनका प्रतिवाद करनेके लिये मदनमोहनने बैठे-बैठे एक काग़ज़पर संस्कृतमें कुछ लिखा और मुझे सुनाने लगे। पण्डित सुन्दरलालजी पास ही बैठे थे। यह लेख सुनकर वह मुस्कुराते जाते थे। यह दृश्य मेरे हृदयपर एक चित्रकी तरह अङ्कित है। मैं अपने सामने बैठे हुए पण्डित सुन्दरलालजीका वह मुस्कुराना स्पष्ट देख रहा हूँ।

"पण्डित भीमसेनके व्याख्यानके उपरान्त मदनमोहनका व्याख्यान हुआ। उनका व्याख्यान बहुत ही सुन्दर और मार्केका था। उन्होंने अपने भाषणमें इस बातपर अफ़सोस ज़ाहिर किया कि "कहाँ जर्मन देश और कहाँ भारतवर्ष। इतने दूरसे एक प्रसिद्ध विद्वान् यहाँ आकर हमारे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण वेदान्त-शास्त्रपर व्याख्यान दे और हम लोग उसका खण्डन करनेके लिये खड़े हों। कितने दुःख और लज्जाकी बात है। मुझे इस कार्रवाईके ऊपर परम दुःख है।

"मदनमोहन जिस प्रकार अंग्रेज़ीके विद्वान् हैं उसी प्रकार संस्कृत साहित्यके भी धुरन्धर पण्डित हैं कारण यह है कि वे वेद, गीता, रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवतका बहुत दिनोंसे अबतक पाठ करते जाते हैं।"

कुछ और बातें

मालवीयजीके बारेमें यह सबकी शिकायत है कि वे कोई काम नियत समयपर नहीं करते। कुछ

सभाओंमें ठीक समयपर न पहुँचनेसे और स्टेशनपर देरसे पहुँचनेसे ही देशभरमें यह बात फैल गई है। पर बात ऐसी नहीं है। वे ठीक समयसे उठते हैं ठीक समयसे स्नान, सन्ध्या, स्वाध्याय करते हैं। कहीं-कहीं देरसे पहुँचनेका कारण यही है कि जिस समय वे तैयार होकर चलनेको उद्यत होते हैं उसी समय कोई-न-कोई अपना रोना लेकर आ खड़ा होता है। मालवीयजी उसको रोक नहीं सकते। उसका काम पहले होना चाहिए, मीटिङ्गमें बलासे देर हो। यही बात उनके साथ सदा लगी रहती है। किसी-न-किसीका भला करने, किसीकी सहायता करने या किसीका मन रखनेके लिये वे अपनी सार्वजनिक बदनामीकी चिन्ता नहीं करते।

उनकी कुछ घटनाएँ बड़ी रोचक हैं। मुन्शी ईश्वरशरण लिखते हैं:—

"एक बारकी बात है कि वे गोरखपुर गए थे और वहाँसे हम लोगोंको एक ट्रेन पकड़नी थी। हम लोग निकटतर स्टेशनको रवाना हुए। मालवीयजीके एक ग़रीब सम्बन्धीका मकान रास्तेमें ही पड़ता था। मेरे बहुत मना करनेपर भी वे उनके घर गए, वहाँ भोजन किया और जल्दी-जल्दी स्टेशनपर पहुँचे। गाड़ी चल चुकी थी, वह झट उसमें कूद गए। अपने डिब्बेसे उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा—"आख़ीर मेरी बात ठीक हुई, मैंने भोजन भी कर लिया और ट्रेन भी पकड़ ली।"

उनकी गाड़ीमें अक्सर ही देर हो जाती है, पर उनके लिये प्रायः गाड़ी भी देरसे ही पहुँचा करती है। एक दफ़ा वायसरायकी कौन्सिलमें उनको किसी प्रस्तावको पेश करना था परन्तु आख़री गाड़ी भी छूट गई। वायसराय लौर्ड रीडिङ्ग साहबकी ख़ास ट्रेन संयोगसे जा रही थी। आपने लाट साहबसे अनुपस्थितिका खेद प्रकट किया। उन्होंने फ़ौरन् एक डिब्बा ख़ाली कराया और मालवीयजीको अपने साथ ले लिया।

एक घटना इससे भी विचित्र है। एक बार की बात है कि मालवीयजी और स्व० सर सुन्दरलाल साथ ठहरे हुए थे। कहीं जाना ज़रूरी था, पर ट्रेनका स्टेशनपर आनेका जो समय था उससे एक घण्टा अधिक हो गया था। मालवीयजी स्टेशनको रवाना हुए। सुन्दरलालजीने बहुत मना किया, लेकिन उन्होंने न माना। बोले—पण्डितजी, आप चिन्ता न करें; कभी-कभी गाड़ियाँ लेट भी होती हैं। यह गाड़ी भी "लेट" हो सकती है। वे गए और उन्होंने वही ट्रेन पकड़ी। यह गाड़ी उस दिन ढाई घण्टे देरसे आई थी।

रेलगाड़ियोंके सम्बन्धमें तो मालवीयजीके जीवनके साथ अनेक घटनाएँ जुड़ गई हैं। बहुत ही कम बार ऐसा होता है कि वह समयपर स्टेशन पहुँचते हों। न जाने कितनी बार उनके लिये गाड़ियोंको दो-चार मिनट ज़्यादा रुकना पड़ता है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभामें कोशोत्सवके अवसरपर भारत-कला-भवनके शिलान्यासकी नींव पूज्य मालवीयजीके हाथोंसे रक्खी जानेवाली थी। निश्चित समय बीत गया। सब लोग पूज्य मालवीयजीकी बाट जोह रहे थे। दो घण्टे निकल गए, मालवीयजीका पता नहीं। हताश होकर श्रद्धेय बाबू श्यामसुन्दरदासजीने श्री गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझाजीसे नींव रखनेको कहा। वे पैर धो ही रहे थे कि मालवीयजीकी मोटर दौड़ती हुई आ पहुँची। रेशमी धोती पहने ऊनी शाल ओढ़े नङ्गे पाँव, ललाटपर रोली और दधि-अक्षतका तिलक लगाए मोटरसे मुस्कराते हुए मालवीयजी उतरे। मालूम हुआ कि राजा मोतीचन्दके यहाँ किसी लड़केका उपनयन-संस्कार था। उस अवसरपर आशीर्वाद देनेके लिये गए थे। वहींके कृत्य सम्पन्न करनेमें विलम्ब हो गया। मोटर ही से मोग़लसराय जाने वाले थे। दिल्लीमें कांग्रेस कार्य्य-कारिणीकी बैठक थी। मोटरके आगे-पीछे बिस्तर आदिके बण्डल बँधे हुए थे। भारत-कला-भवनकी नींव उन्हींके हाथों पड़ी।

आनके पक्के

मालवीयजी अपनी आनके बड़े धनी हैं। एक बात जो उनके मनमें बैठ गई, वह पत्थरकी लकीर ही समझिए। यह बात अवश्य है कि वे बहुत सोच विचार कर निश्चय करते हैं किन्तु मनुष्य फिर भी मनुष्य है, कभी ग़लती भी हो ही जाती है। एक ओर जहाँ इस गुणसे बड़े-बड़े काम बन जाते हैं वहीं कभी-कभी उससे हानि भी हो जाती है पर हानि कम ही होती है। मालवीयजीकी धुनने जहाँ एक ओर बहुतसे मित्रोंको नाराज़ किया वहाँ बहुतसे नए बना भी लिए पर बहुत लोगोंका कहना है कि मालवीयजीकी यह धुन कभी-कभी स्वेच्छाचारिता और हठकी सीमातक पहुँच जाती है और कहा जाता है कि इसी कारण बहुतसे प्रसिद्ध विद्वान् हिन्दू विश्वविद्यालय छोड़कर चले गए। पर आख़िर संसारमें हमें किसीको तो अपना पथ-प्रदर्शक बनाना ही पड़ेगा। संसारमें सभी तो नेता नहीं हो सकते। हमें नेता बननेसे पहले सिपाही बननेका अभ्यास करना चाहिए। 'अकबर' इलाहाबादीके शब्दोंमें,

'सब तो लीडर हैं यहाँ आख़िर सिपाही कौन है।'

हो सकता है कि मालवीयजी अपनी ही बात रखते हों, पर यह भी याद रखनेकी बात है कि यदि फ़ौजके सभी सिपाही अपने सेनानायककी आज्ञाओंपर तर्क करना शुरू कर दें तब तो आफ़त ही हो जाय। हिन्दुस्थानमें अभी सिपाहियोंकी सचमुच कमी है। मालवीयजीके धुनकी एक कथा शिवरामजी वैद्य लिखते हैं—

"सर सुन्दरलाल धुरन्धर विद्वान् और विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न होते हुए भी बहुत ही सीधे सादे व्यक्ति थे। उनकी प्रतिष्ठा और यशमें स्वतः वृद्धि हुई। स्वयं उन्होंने कभी अपने गौरवकी वृद्धिके लिये प्रयत्न किया हो, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा। परन्तु मदनमोहनमें आदमी पहिचानने और उससे उपयुक्त काम लेनेकी विलक्षण शक्ति थी। मदनमोहन सर सुन्दरलालकी योग्यताके क़ायल थे। उनके मनमें आया कि अगर ऐसा योग्य व्यक्ति कहीं कौन्सिलमें पहुँच जाय तो देशकी महती सेवा हो सके। मदनमोहनको धुन सवार हो गई और उन्होंने चारुचन्द्र मित्रके विरुद्ध सुन्दरलालको कौन्सिलका उम्मेदवार खड़ा कर दिया। मदनमोहन चारुचन्द्र मित्रको अपना बुज़ुर्ग और बड़ा समझते थे। पर एक धुन सवार हो गई तब प्रश्न सामने केवल यही था कि पण्डित सुन्दरलाल कौन्सिलमें पहुँच जायँ।

मदनमोहनके अनेक बुज़ुर्ग और इष्टमित्र मुंशी कुञ्जबिहारीलाल वग़ैरह उनकी इस कार्रवाईपर बेहद नाराज़ थे, कौन्सिलमें पण्डित सुन्दरलालका पहुँचना गवारा न कर सकते थे। उन दिनों राजनीतिक और सामाजिक गोष्ठीका नेतृत्व 'हिन्दी-प्रदीप' के प्रसिद्ध सम्पादक पण्डित बालकृष्णजीके हाथ था। भट्टजीके पास सब लोग एकत्र होकर पण्डित सुन्दरलालकी उम्मेदवारीके विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाते थे और इस सम्बन्धमें मदनमोहनको गालियाँ भी देते थे।

मदनमोहनके ऊपर भट्टजीका प्रेम विशेष था। इसलिये उनको स्वतन्त्र झिड़कियाँ और गालियाँ देनेका भी अबाध अधिकार था। वे झल्लाकर कहते—"क्यों रे मदनमोहन! तुझे यह क्या सूझा है? पण्डित सुन्दरलालने प्रजा-हितका कौनसा काम किया है। प्रजाहित-साधनमें ये कभी भाग नहीं लेते, तब तैं क्यों उनकी तरफ़दारी करता है और उनको कौन्सिलमें भेजनेके लिये प्रयत्न करता है। तैं चारूका विरोध करता है जिसने अपनी सारी ज़िन्दगी लोक-सेवामें बिता दी और जो तेरे बड़े ख़ैरख्वाह भी थे। तैं चारूके विरुद्ध कोशिश करता है?"

मदनमोहन पण्डित सुन्दरलालकी योग्यता और कर्त्तव्य-परायणताके विषयमें भट्टजीको बड़ी नम्रतासे समझाते पर भट्टजी धुरन्धर विद्वान् ही नहीं बल्कि अपने मतको दृढ़तासे पकड़नेवाले भी थे। वे नाराज़ होकर कहते—"तू जो चाहे सो कर, पर इसको कौन्सिलमें जानेका कोई हक़ नहीं है। तू इनके पीछे

काहे पड़ता है, तू अपने लिये क्यों नहीं प्रयत्न करता।"

मदनमोहन मुस्कराकर कहते—भट्टजी, अभी मेरा कौन्सिल जानेका समय नहीं आया।

कुछ दिनोंतक कौन्सिलके उम्मेदवारोंके सम्बन्धमें इस तरहकी टीका-टिप्पणी गोष्ठीमें होती रही। बादको इनके तरफ़दारोंने अख़बारोंमें यह चर्चा छेड़ दी और दोनों तरफ़से भद्दे और कुरुचि-पूर्ण लेख प्रकाशित होने लगे। मगर यह सब पण्डित सुन्दरलाल और चारू बाबूके तरफ़दारोंकी ओरसे हो रहा था। पण्डित सुन्दरलाल तो स्वयं कौन्सिलमें जाना पसन्द न करते थे, केवल मदनमोहनका अनुरोध उन्हें घसीटे लिए जा रहा था। जब थुक्का-फ़ज़ीहतके इस आन्दोलनने अख़बारोंमें ज़ोर पकड़ा तब एक दिन पण्डित सुन्दरलाल बाबू चारुचन्द्र मित्रसे मिले और विनीत भावसे कहा—बाबू साहब! यह जो अख़बारोंमें भद्दे लेख छप रहे हैं उनमें मेरा कुछ भी हाथ नहीं है। मेरी कौन्सिलमें जानेकी तनिक भी इच्छा नहीं है। यह मालवीयजी वग़ैरहका हठ है जो मुझको भेजनेका प्रयत्न कर रहे हैं और उन्होंके हठके कारण मैं कौन्सिलके लिये खड़ा हूँ। चारुचन्द्र मित्र भी पण्डितजीके शील-स्वभावसे विज्ञ थे। उन्होंने जवाब दिया—पण्डितजी! क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि आप इस तरहकी कार्रवाइयाँ कब पसन्द कर सकते हैं। मगर कौन्सिलके चुनावमें ऐसे भद्दे आन्दोलन होते ही रहते हैं।

अन्तमें मदनमोहनका प्रयत्न सफल हुआ और पण्डित सुन्दरलाल कौन्सिलके मेम्बर हो गए। कौन्सिलका मेम्बर हो जाना एक साधारण घटना थी, मगर पण्डित सुन्दरलालजीपर इसका स्थायी असर पड़ा। इस घटनाके बाद पण्डित सुन्दरलाल देशके कामोंमें हाथ डालने लगे और उनके द्वारा ऐसे अनेक उपयोगी काम हुए हैं जो सदा सर सुन्दरलालकी कीर्त्तिको अमर बनाए रहेंगे।"

'कोई चिन्ता नहीं'

एक बार कुछ इङ्गलैण्डके शिक्षा-प्रेमी काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयमें आए। मालवीयजी उन्हें भवन दिखानेके लिये ले गए। उन्होंने प्रोफ़ेसर शेषाद्रिसे कहा कि मुझे मीटिङ्गमें जाना है आप इन्हें इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज् दिखा लाइए। प्रोफ़ेसर शेषाद्रि बोले कि शायद कौलेज् बन्द हो गया होगा। मालवीयजी बोले—'कोई चिन्ता नहीं, वहाँ कोई चपरासी होगा'। प्रोफ़ेसर शेषाद्रि फिर बोले कि शायद कोई चपरासी भी इस समय न हो। इसपर मालवीयजीने कहा—"कोई चिन्ता नहीं। काँचके दरवाज़ोंमेंसे झाँककर देख लेंगे।" यह सुनकर उन अंग्रेज़ोंमेंसे एक बोल उठा—"मैं समझा, मैं अब समझा कि विश्वविद्यालयका निर्माण कैसे हुआ है। इसी 'कोई चिन्ता नहीं' की भावनाने ही इस विश्वविद्यालयको जन्म दिया है।"

महान् आशावादी

मालवीयजीकी आशा भारतीय इतिहासमें अशोकका स्तम्भ बन गई है। जब लोग चारों ओरसे निराशाके धुएँमें घिरे हुए बग़लें झाँकते हैं उस अवसरपर भी मालवीयजी अपनी आशाका दीपक लिए हुए अपना मार्ग ढूँढ़ लेते हैं। उनकी इसी आशावादिताने उनके आगेके बड़े-बड़े समुद्र सुखा दिए, बड़े-बड़े बीहड़ वन साफ़ कर दिए और काँटोंसे भरे हुए मार्गोंमें फूल बिछा दिए। उनके लिये उनका यही आशावादी हृदय निरन्तर नई योजनाएँ निकाला करता है और विश्वास दिलाता रहता है कि ईश्वर प्रत्येक योजनाके लिये उनको आयु और साधन भी देता रहता है। हिन्दू विश्वविद्यालय वास्तवमें उनकी आशाका ही पुत्र है।

"सन् १९३१ ई० के आरम्भमें जब कांग्रेस एवं सरकारके बीच समझौता हुआ और महात्माजी गोलमेज़ कौन्फ़रेन्समें जानेके पहले वायसरायसे मिले तब भी मालवीयजीकी आशावादिताका ज़बर्दस्त प्रमाण मिला था। विलायत जाते समय जब वे सब तैयारी कर चुके थे और बम्बई पहुँच गए थे तब महात्माजी एवं सरकारके बीच कुछ बातें तै न पानेके कारण ऐसा मालूम होने

लगा था कि कांग्रेस गोलमेज़ सम्मेलनमेँ भाग न ले सकेगी। बात-चीत अब टूटी, अब टूटी—यह हो रहा था पर मालवीयजीको सफलतामेँ इतना विश्वास था कि गान्धीजीके रुक जानेसे जब वे बम्बईसे उत्तरकी ओर आए तो सारा समान बँधवाकर बम्बईमेँ ही यह कहकर छोड़ आए कि अभी तो यहाँ लौटकर आना ही है। वही हुआ। जो असम्भव दिखता था वह सम्भव हो गया और मालवीयजी महात्माजीके साथ समयपर जहाज़पर रवाना हो सके।"

खुला दरबार

मालवीयजीका बँगला एक सराय है। हर तरहके लोग वहाँ आपको देखनेमेँ मिलेँगे। उनका दरबार सबके लिये हर समय खुला रहता है। इससे होता यह है कि हरएक ऐरा-ग़ैरा नत्थू-ख़ैरा वहाँ पहुँच जाता है और उनका समय व्यर्थ नष्ट करता है। वे सङ्कोचमेँ आकर किसीसे जानेको नहीँ कहते और लोग भी इतने विद्वान् होते हैँ कि उस समय बुद्धिसे ज़रा भी सम्बन्ध रखनेका प्रयत्न नहीँ करते कि काम हो जाय तो चल देँ, वहाँ डटे रहते हैँ। अच्छी हालतमेँ तो ख़ैर कुछ नहीँ पर मालवीयजी जब बीमार पड़ते हैँ तब तो उनकी दशा देखकर बड़ी दया आती है। न मालूम कहाँ-कहाँसे लोग अपना पचड़ा लेकर आते हैँ और मालवीयजी बिस्तरपर पड़े-पड़े उनकी गाथा सुनते जाते हैँ। पिछले साल जब वे बीमार पड़े तो डाक्टरोँने बहुत देरतक उपदेश दिया और सलाह दी कि आपको किसीसे मिलना नहीँ चाहिए, लोगोँका आना-जाना बन्द कर देना चाहिए, कम बोलना चाहिए इत्यादि। सब कुछ सुनकर मालवीयजी बोले—"कह चुके न? देखो एक शायरने कहा है—

नासेहा मत दे नसीहत जी मेरा घबराय है।
मैँ उसे समझूँ हूँ दुश्मन जो मुझे समझाय है॥

पचहत्तर वर्षोँकी पुरानी आदत भला मुझे अब छोड़नेको कहते हो।" बस इस एक शेरमेँ मालवीयजीके सारे जीवनकी कहानी भरी हुई है। उन्हेँ इसीसे परख लीजिए। सचमुच पुरानी आदतेँ अब भला कहाँ छुटती हैँ।

एक बार इसी तरह उनके छोटे पुत्र गोविन्दजीने भी उनसे कहा था कि आपको लोग बहुत परेशान करते हैँ, मैँ सब लोगोँका आना रोक देता हूँ। इसपर मालवीयजी बोले कि "जबतक मैँ इस घरमेँ हूँ तबतक यह नहीँ हो सकता"। इस खुले दरबारके कारण न जाने कितने ख़ुफ़िया पुलिसवाले भी उनके बङ्गलेके चारोँ ओर मँडराया करते हैँ पर काँचकी गचपर चील चोँच मारेगी तो अपना ही मुँह तोड़ेगी।

गान्धीजीने लिखा है कि—

"पण्डित मालवीयजीने मुझे अपने ही कमरेमेँ शरण दी। उनके जीवनकी सादगीकी एक झाँकी मुझे हिन्दू-विश्व-विद्यालयके शिलान्यासके अवसरपर मिली, किन्तु इस अवसरपर उनके साथ एक ही कमरेमेँ होनेके कारण मैँने अत्यन्त निकटसे उनकी नित्यकी जीवन-चर्य्या देखी थी और उसे देखकर मैँ मन्त्रमुग्ध हो गया। उनका स्थान सभी दरिद्रोँके लिये एक धर्मशालाकी भाँति था। वह इतना ठसाठस भरा था कि एक कोनेसे दूसरे कोनेतक जाना आपके लिये बहुत कठिन था। उसमेँ सब समयके लिये किसी भी अभ्यागतके लिये, जो अपनेको अपनी इच्छानुसार उनके समय लेनेका अधिकारी समझता था, आनेकी कोई मनाही न थी। इस धर्मशालाके एक कोनेमेँ बड़े सम्मानसे मेरी खटिया बिछी थी। इस भाँति मुझे मालवीयजीसे नित्य वार्त्तालाप करनेका सुयोग मिला। वह मुझे भिन्न दल और भिन्न विचारोँके होते हुए भी बड़े भाईकी भाँति प्यारसे समझाते थे।"

उपसंहार

इस पवित्र शतदल कमलको देखकर यही जान पड़ता है कि वह कोई दैवी शक्ति लेकर, किसी दैवी प्रेरणासे कुछ निश्चित उद्देश्य लेकर आया है और जबतक वह उद्देश्य पूर्ण नहीँ होगा तबतक वह योँ ही खिला रहेगा और अपनी सुगन्धसे सारे संसारको पवित्र और सुवासित करता रहेगा।

आज

पूज्य मालवीयजी आज हिन्दुस्थानके पिछले पचहत्तर बरसोँका इतिहास लिए हुए खड़े हैँ—ठीक उसी प्रकार—जैसे उत्तरमेँ हिमालयका गौरीशङ्कर शिखर—सभ्यता और ज्ञानकी पहली किरन थामे—ऊचा सिर किए हुए खड़ा है, जिसके उजियाले माथेपर हर सबेरे सूर्य्य अपने करोँसे तिलक लगा जाते हैँ। उसकी वह छबि देखनेके लिये कितने लोग उसकी तराईमेँ जा डटते हैँ, और वह किस तरह अपने आप गलकर सिन्धु और गङ्गाको अमृतके समान जल देकर आर्यावर्त्तको सदा सीँचता रहता है। पूज्य मालवीयजी भी उसी तरह धौली पगड़ी, धौला चन्दनका टीका, धौला अँगरखा, धौला दुपट्टा, धौला पाजामा (या धोती), धौले मोजे और धौला ही जूता धारण किए धौलागिरिके समान खड़े हैँ; और सैकड़ोँ नदियाँ—कहाँतक गिनावेँ—उनका स्वदेश-प्रेम, स्वधर्म-भक्ति, जातिसेवा, ज्ञानविस्तार आदिका जल लेकर सारे भारतको सीँच रही हैँ। आज भी किस प्रकार काशीके दक्खिन ओर हिन्दुस्थान और हिन्दुस्थानके बाहरसे कितने ज्ञानके प्यासे दौड़े चले आते हैँ और कितने भक्त आँख फाड़कर एकटक उन मन्दिरोँको देखकर सहम जाते हैँ, जिनके पीछे एक तपस्वीका त्याग और उसकी धुन छिपी हुई है, जिसके दर्शनके लिये—बस एक झाँकी पानेके लिये कितने नरनारी—जैसे पट खुलनेके समय भक्त बेचैन रहते हैँ—उस बँगलेसे बाहर निकलनेकी बाट जोहते हुए कभी-कभी घण्टोँ खड़े रहते हैँ और फिर वह मुस्कराहट, वह मीठी मन्द मुस्कराहट पाकर वे तर जाते हैँ। कैसा मनोहर उनका रूप है! बुढ़ापेने बहुत हाथ पैर मारे पर उनके मुखकी जोत और मनका हुलास वह न ले जा सका; उलटा, उनके धौले स्वरूपमेँ जो कमी थी उसे भी पूरी कर गया—काले बाल भी धौले हो गए।

पूज्य मालवीयजीने किसको सहारा दिया, किसके आँसू पोँछे, किसकी जान बचाई, किसे राह दिखाई; बड़ी लम्बी कहानी है, सुनकर दातोँ तले उँगली दाबनी पड़ती है। इसी इकहरे बदन वाले मनुष्यने इतना काम किया? इतना? बुद्धि काम नहीँ करती मन हार मानकर बैठ जाता है। पर बात तो सच्ची है, हाथ कङ्गनको आरसी क्या। यहाँ, वहाँ—कहाँ नहीँ—सभी जगह एक ही मूरत तो दिखाई पड़ती है जो सच्ची लगनके साथ, दूसरोँके दुखकी आगसे पिघले हुए अपने हृदयको अपनी आँखोँकी कोरमेँ लिए हुए बड़ी आशा और बड़े उत्साहके साथ सबके दुख सुखमेँ हाथ बँटा रहा है। इसीलिये तो करोड़ोँ प्राणी आज बड़े आदरके साथ उसके आगे सिर झुका लेते हैँ।

आज बहुतसे लोग इस वृद्ध युवकको समझनेमेँ भूल करने लगे हैँ। कोई नई कहानी नहीँ है, यह तो हमारी पुरानी आदत है कि हम अपने महापुरुषोँका जस बढ़ाना दूर रहा उल्टे उसकी बुराई करते हैँ और उसके कामोँपर टीका-टिप्पणी करते हैँ। पर हम यह नहीँ समझते कि भगीरथने गङ्गाजीको पृथ्वीपर लाकर कितना बड़ा काम किया है। यह हमारा काम है कि उसमेँसे नहरेँ निकालकर सिँचाई करेँ। भगीरथजी कहाँ-कहाँतक सबकी प्यास बुझाते फिरेँगे। इसपर हमेँ कबीरका वह पद याद आता है:—

ऐसे लोगन सौँ का कहिए,
हरिजस सुनहिं न हरिगुन गावहिं,
बातन ही असमान गिरावहिं।
आप न देहिं चुरू भरि पानी,
तिहिं निन्दहिं जिहि गङ्गा आनी॥

पर उनकी चर्चा छोड़िए। अब भी भारत अपने पुरुखाओँको नहीँ भूला है। अब भी हममेँ ऐसे हैँ जो अपने महापुरुषोँकी पूजा करना जानते हैँ और हम सच्चे दिलसे यह समझते हैँ कि अगर हिन्दुस्थान फिर अपनी पुरानी सभ्यताके बलपर संसारका गुरु बनना चाहता है तो उसे अपने महापुरुषोँकी पूजा करना आरम्भ कर देना चाहिए।

महापुरुषोँका जीवन-चरित ऐसा दीपक है जिसके उजियालेसे दुनियाका सारा अँधेरा मिट जाता है, जिसके सहारे अँधेरीसे-अँधेरी कोठरीमेँ चाँदना हो जाता है, डर भाग जाता है, चिन्ता मिट जाती है, पाप भस्म हो जाते हैँ, और मनुष्य ऊँचे उठने लगता है—इतने ऊँचे—कि कभी कभी उसकी बढ़ती देखकर अचरज होता है। अपनी माँ जीजाबाईके मुँहसे महापुरुषोँकी कथा सुनकर ही शिवाजी, शिवाजी बने। यह जादू होता है महापुरुषोँका जीवन-चरित पढ़ने और सुननेमेँ। इसलिये जो मन लगाकर महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका जीवन-चरित पढ़ेँगे या सुनेँगे, उनकी धर्ममेँ रुचि होगी, विद्या, यश और धनमेँ वृद्धि होगी और वे सब प्रकारसे सुखी होकर सौ वर्षकी आयु पावेँगे। वे कभी उदास’ निराश और हतोत्साह नहीँ होँगे और उनके सब अच्छे मनोरथ सफल होँगे।

भगवान् करे सारा संसार सुखी हो, सब देश स्वाधीन हो जायँ और स्वतन्त्र भारत एक स्वरसे 'वन्दे मातरम्' की रट लगाता हुआ सुखसे फले फूले और एक दिन फिर ऐसे ही अवसर पर सारा भारत मिलकर अपने सबसे पुराने सिपाहीको 'स्वतन्त्र भारत' की बधाई देता हुआ बड़े आदर और सम्मानके साथ उसे विजयमाला पहनाकर खुशीसे मस्तकर नाच उठे और काश्मीरसे कन्याकुमारी तक, हिन्दुकुशसे ब्रह्मा तक सारा देश एक स्वरसे 'वन्दे मातरम्' चिल्ला उठे।

अभी भारतमाताकी बहुतसी कड़ियाँ नहीँ खुली हैँ, अभी सनातनधर्म दृढ़ पायेपर नहीँ खड़ा हो पाया है, हिन्दू जाति अभी पूरी तरहसे नहीँ सङ्गठित हुई है और हिन्दू विश्वविद्यालय अभी अपने घुटनोँपर ही चल रहा है। इन्हीँको पूरी तरहसे दृढ़ करनेके लिये तो ईश्वरने इन्हेँ अपनी सर्वश्रेष्ठ विभूति देकर भेजा है। उन्हीँ परम शक्तिमान् भगवान् विश्वनाथसे प्रार्थना है कि वे पूज्य मालवीयजीको स्वास्थ्य देँ और दीर्घायु करेँ जिससे उनके सारे मनोरथ सफल होँ और उन्हेँ ऐसी दिव्य शक्ति देँ कि वे निरन्तर धर्म, देश, और जातिका कल्याण करेँ और सबको राह दिखाते चलेँ।

सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठके उपलक्ष्यमें कवियोंके उद्गार

कुसुमदलमाला

अमल-धवलतुङ्गं दिव्यमेतत् किरीटम्
सुरुचिररचनायाः कौशलेनातिरम्यम्।
धवलगिरिशिरोवन्मालवीयस्य मूर्ध्नि
शतशतशतलोकेष्वद्वितीयं विभाति ॥ १ ॥
अतिमधुरमहो किं वर्त्तते तस्य निम्ने
विमलविशदभाले ? चन्दनं, नैव मन्ये।
प्रियजनगुणसंमुग्धाशुतोषप्रसादात्
शिवपदविनतेऽस्मिन् पूर्णचन्द्रो विभाति ॥२॥
कमलनयनयुग्मं प्रोज्ज्वलं सुप्रभाते
रविरिव सुललाटात् स्निग्धतां प्राप्तमिन्दोः।
पुनरपि करुणार्द्रं लोकदुःखेन नित्यम्
तदिह च करुणत्वं मालवीयप्रसूतम् ॥ ३ ॥
स्मितमधुरवचोभिर्मोहने स्निग्धरम्ये
विमलमुखसिताब्जे नर्त्तकीं दिव्यवाणीम्।
सुरवरहरिजाया माऽऽगता द्रष्टुकामा
करकमलनिबद्धा विश्वविद्यालयार्थे ॥ ४ ॥
द्विभुजमिव गलेस्मिन् वेष्टितं शुभ्रपट्टम्
विनयनतधरित्रीपृष्ठलग्नं विभाति।
मुखकमलगुरुत्वान्नालयुग्मं वरेण्यं
रसहयमितवर्षे दिव्यवक्त्राम्बुजस्य ॥ ५ ॥
परिमृजितसुशुभ्रा पादुका शुभ्रवस्त्रं
तनुरपि तव शुभ्रा शुभ्रवर्णा च वाणी।
सुचरितमतिशुभ्रं सर्वशुभ्रेण युक्तो
जयति कुलपतिः श्रीमालवीयो महर्षिः ॥ ६ ॥
इदं ते माहात्म्यं विबुधगणशक्तिं विजयते
तथाप्येतन्मे हि प्रयतनमिदं व्यर्थमथवा।
भवद्वात्सल्यं यन्निजसुतमिवोत्साहयति माम्
ततस्तुभ्यं श्रीमन् कुसुमदलमाला विरचिता ॥

काशी-सेण्ट्रल-हिन्दू-स्कूल-
विद्यालय,
पौषकृष्णाष्टम्याम्,
सं० १९९३।

विधेयेन
श्री कालीप्रसन्नचक्रवर्त्तिना।

मदनाष्टकम्

सित-चन्दन-चर्चित-भालतटम्।
रुचिराम्बर-वेष्टित-गौरतनुम् ॥
प्रिय-देश-हितेरत-मान्य-वरम्।
प्रणमामि शुभं विमलं मदनम् ॥ १ ॥
विधुहास्य-सुधासम-हास्ययुतम्।
करुणामय-कोमल-चित्त-धरम् ॥
शुभदञ्च सुकोमल-वाक्यपटुम्।
प्रणमामि शुभं विमलं मदनम् ॥ २ ॥
कुसुमादपि-कोमल-चित्त-धरम्।
कुलिशादपि-भीषण-तेजयुतम् ॥
निजदेश-विशेष-विधान-करम्।
प्रणमामि शुभं कुशलं मदनम् ॥ ३ ॥
शुभकर्म्म-सुभक्ति-सुज्ञानधरम्।
नियमादि-यमान्वित-चित्त-तनुम् ॥
जनवाञ्छित-बान्धव-पाप हरम्।
प्रणमामि शुभं अमलं मदनम् ॥ ४ ॥

जनसेवक-नायक-नागरिकम् ।
सम-बाल-युवाजन-प्रीतिकरम् ॥
गत-गौरव-वारिज-षट्पदकम् ।
प्रणमामि शुभं कुशलं मदनम् ॥ ५ ॥

स्मृति-वेद-पुराण सुज्ञान-धरम् ।
बिबुधाधिप-सेवक-रञ्जनकम् ॥
कृत-विश्व-मनोहर-पीठमिदम् ।
प्रणमामि शुभं अमलं मदनम् ॥ ६ ॥

बहु-शिल्पकला-निधि-आदरकम् ।
निज-पूर्व-परा-प्रति-प्रीतियुतम् ॥
भयनाशक-चालक-धैर्य्य-धरम् ।
प्रणमामि शुभं कुशलं मदनम् ॥ ७ ॥

नव-भारत-भास्कर-मोह-हरम् ।
द्विजदेव-समादृत-मान्यवरम् ॥
हृदि-कानन-पुष्पज-माल्यमिदम् ।
मदनाय ददामि च भक्तियुतम् ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीभुवन मोहन विरचितं मदनाष्टकं समाप्तम् ॥

श्रद्धाञ्जलि

पूजित पदपङ्कज पूजूँगा ।
पावन रजके मिले मत्त मधुकर समान गूंजूँगा ॥
उससे रच नयनोंका अञ्जन विपुल विमुग्ध बनूंगा ।
सकल लोकमेँ कलित कीर्त्तिका कान्त वितान तनूंगा ॥
गौरव गान विपञ्ची-रवमेँ भूरि विभूति भरूँगा ।
भारत-भूतलके जन-जनको भाव विभोर करूँगा ॥
बना भारती वरद पुत्र जिसकी विभुतासे गूंगा ।
ऐसे महा महिमको कैसे महामना न कहूँगा ॥
जिसका है शुचि जीवन जो है भवहित मुखरित सूगा ।
जो वह नहीं महर्षि तो किसे फिर महर्षि समझूंगा ॥
जिसकी पावनताका पग छू मैं पुनीततम हूँगा ।
उसकी विरदावली कथन करते क्यों कभी थकूंगा ॥
आशा है जगदीश कृपासे परम लाभ यह लूंगा ॥
बरस गाँठकी गाँठ-गाँठमेँ सहस गाँठ गूंधूंगा ॥

कविवर हरिऔध

महामना मालवीयजी

तुम्हेँ स्नेहकी मूर्त्ति कहूँ, या नवजीवनकी स्फूर्त्ति कहूँ ? ।
या अपने निर्धन भारतकी, निधिकी अनुपम पूर्त्ति कहूँ ? ॥
तुम्हेँ दया-अवतार कहूँ, या दुखियोँकी पतवार कहूँ ? ।
नई सृष्टि रचनेवाले, या तुम्हेँ नया करतार कहूँ ? ॥१॥

कहूँ तुम्हेँ सच्चा अनुरागी, या कि कहूँ सच्चा त्यागी ? ।
सर्व-विभव-सम्पन्न कहूँ, या कहूँ तपनिरत वैरागी ॥
कहूँ तुम्हेँ मैँ वयोवृद्ध, या बाँका तरुण जवान कहूँ ।
तुम इतने महान, जी होता मैँ तुमको अनजान कहूँ ! ॥२॥

कह सकता हूँ तो कहने दो, मैँ तुमको श्रद्धेय कहूँ ।
निर्बलका बल कहूँ, अनाथोँका तुमको आश्रेय कहूँ ॥
श्रेय कहूँ, या प्रेय कहूँ, या मैँ तुमको ध्रुव ध्येय कहूँ ।
तुम इतने महान, जी होता मैँ तुमको अज्ञेय कहूँ ॥३॥

वीरोँका अभिमान कहूँ, या शूरोँका सम्मान कहूँ ।
मृदु मुरलीकी तान कहूँ, या रणभेरीका गान कहूँ ॥
शरणागतका त्राण कहूँ, मानव-जीवन कल्याण कहूँ ।
जी होता सब कुछ कह तुमको, भक्तोँका भगवान कहूँ ॥४॥

जी होता है मातृभूमिका तुम्हेँ अचल अनुराग कहूँ ।
जी होता है परम तपस्वीका मैँ तुमको त्याग कहूँ ॥
जी होता है प्राण फूँकनेवाली तुमको आग कहूँ ।
इस अभागिनी भारत-जननीका तुमको सौभाग कहूँ ॥५॥

विमल विश्वविद्यालय विस्तृत, क्या गाऊँ मैँ गौरव गान ।
ईंट-ईंटके उरसे पूँछो, किसका है कितना बलिदान ?
हैँ कौलेज अनेकोँ निर्मित, फिर भी नित नूतन निर्माण ।
कौन गिन सकेगा कितने हैँ दिलमेँ भरे हुए अरमान ॥६॥

तुहैं आजकल और नहीं धुन, केवल आज़ादीकी चाह।
रह-रह कसक-कसक उट्ठा करती है उरमैं आह कराह ॥
गला दिया तुमने तनको रो-रो आँसूके पानीमैं।
मातृ-भूमिकी व्यथा हाय हम सहते भरी जवानीमैं ॥७॥
मिले तुम्हारी शक्ति देशको, यह जननी जयगान करे।
मिले तुम्हारी शक्ति देशको, यह नित नव उत्थान करे ॥
मिले तुम्हारी आग देशको, आज़ादी आह्वान करे।
मिले तुम्हारा त्याग देशको, तन-मन-धन बलिदान करे ॥८॥
जियो देशके दलित अभागोंके ही नाते तुम सौ वर्ष।
जियो वृद्ध माताके मनको धैर्य्य बँधाते तुम सौ वर्ष ॥
जियो पिता-पुत्रोँको अपना प्यार लुटाते तुम सौ वर्ष।
जियो राष्ट्रकी स्वतन्त्रताके आते-आते तुम सौ वर्ष ॥६॥

श्रद्धाञ्जलि (बिल्वपत्र)

(१)

मालवीय महिमा महान महा मेदिनीमैं,
सुर औ सुराङ्गना सुराग गाय नाचैं छम।
किन्नर औ किन्नरी परीहू अप्सरी हू सबै,
ढोलक मृदङ्ग झाँझ झनकारैं झमझम ॥
इन्द्र इन्द्रासन पै झूमे जायँ झुकिझुकि,
ब्रह्मा विष्णु झूमैं, औ महेश बोलैं बमबम।
गिरिजा गिरीस पास आयके मनाय कहैं,
"चलौ, मालवीयजी कौ नैकु देखि आवैं हम" ॥

(२)

हिन्दूपति मालवीय हिन्दूपति दीन्ह्यो बढ़ा,
हिन्दू विश्वविद्यालय मापहू अमाप है।
सुरलोक शिवलोक, विष्णुलोक, ब्रह्मलोक,
सप्तलोक लोकनमैं गयो यश व्याप है ॥
कीर्तिके पताकेसे कँगूरे ऐसे ऊँचे उठे,
अटक्यो अचानक विमान आय आप है।
चकित सुरेश पूछँ, थकित दिनेश पूछँ
'जनम्यो है शिवा कै फेरि जनम्यो प्रताप है ॥'

—**सोहनलाल द्विवेदी।**

देवता है मालवी

जल रहा है आज घर-घर में चिराग़े मालवी

सब पै रोशन हो गया रौशन दिमाग़े मालवी।
जल रहा है आज घर-घरमैं चिराग़े मालवी ॥
गुल नहीं होनेका फिर भी लाख गर आँधी चले।
बुझ नहीं सकता बुझाएसे चिराग़े मालवी ॥
एक-एक पौधेको सींचा इसने अपनें ख़ूनसे।
बाग़े आलममें वो है सरसब्ज़ बाग़े मालवी ॥
उम्र भरके वास्ते अब दूर हो जाएगी प्यास।
पीने वालो, आओ, पी जाओ, अयाग़े मालवी ॥
अब अँधेरा वह कहीं देखो नज़र आता नहीं।
महफ़िले आलममें है रौशन चिराग़े मालवी ॥
आस्माँसे जल्द ये आता है तारे तोड़कर।
किस क़दर रौशन है, ऊँचा है दिमाग़े मालवी ॥
माँगते हैं हज़रते 'बिसमिल' ये दुनियासे दुआ।
हश्रतक जलता रहे यूँ ही चिराग़े मालवी ॥

आदमीकी शक्लमें एक देवता है मालवी !

चलनेवाले जानते हैँ यह कि क्या है मालवी।
मञ्ज़िले उल्फ़तका सच्चा रहनुमा है मालवी ॥
मौजे ग़ममैँ डूब सकती ही नहीं कश्तीए क़ौम।
क्या ख़ुदाकी शान है अब तो ख़ुदा है मालवी ॥
आप क्या जानैँ इसे क्या आपको मालूम है ?
बामुहब्बत, बामुरव्वत, बावफ़ा है मालवी ॥
अब तो मंज़िलपर पहुँच जाना कोई मुश्किल नहीं।
अब हमारा रहनुमा है, पेशवा है मालवी ॥
उम्र अपनी ख़तम कर दी हक़परस्तीके लिए।
हक़ तो यह है किस क़दर एक आश्ना है मालवी ॥
पाक सूरत, पाक सीरत, पाक ख़स्मत, पाक ख़ूं।
कोई देखे एक मर्दे पारसा है मालवी ॥
हज़रते 'बिसमिल' ने भी क्या बात ये सच्ची कही।
आदमीकी शक्लमें एक देवता है मालवी ॥

द्वितीय खण्ड

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय

वाणीका मधुनर्त्तन

मालवीयजीके सर्वश्रेष्ठ व्याख्यान केवल आकाशने सुने हैं। उनमेंसे प्रायः सभी केवल वायुमण्डलमें ही गूँजते रहे, लेखनी उन्हें वन्दी न कर सकी। पर फिर भी मनुष्यकी लेखनी उन्हें जहाँ तक पकड़ पाई है वह आपके सामने है। पचपन वर्षोंसे मालवीयजी बोलते ही तो रहे हैं। कहा जाता है कि जितने भाषण मालवीयजीने दिए हैं उतने किसी भारतीय नेताने नहीं दिए। उन सब भाषणोंमेंसे अपनी बुद्धिकी कसौटीपर परखकर कुछ हमने ला रक्खे हैं। आशा है जौहरी लोग इस संग्रहको ज़रूर पसन्द करेंगे।

—सम्पादक।

पूज्य मालवीयजीके भाषण

द्वितीय खण्डकी विषय-सूची

विषय पृष्ठ

धर्म—

१—गीता प्रवचन .... १—७
२—परमात्माकी स्तुति और विद्यार्थियोँके कर्त्तव्य .... ८—१०
३—उपदेश पञ्चामृत .... ११—१३
४—विद्यार्थियोँसे .... १४—१५

राष्ट्रभाषा—

५—प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन १६—२९
६—नवम „ „ „ .... ३०—३८

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय—

७—दीक्षान्त भाषण .... ३९—४५
८— „ „ .... ४६—७१

हिन्दू-जाति—

९—मुल्तानका हिन्दू-मुस्लिम दङ्गा ७२—८३
१०—गयामेँ हिन्दू-महासभाके विशेष अधिवेशनमेँ पूज्य मालवीयजीका भाषण .... ८४—८५
११—लाहौकी एक विराट् सभामेँ पूज्य मालवीयजीका व्याख्यान ८६—९०
१२—हिन्दू-महासभाके सातवेँ अधिवेशनमेँ पूज्य मालवीयजीका भाषण .... ९१—११०
१३—प्रयागमेँ मालवीयजीका भाषण १११
१४—पञ्जाब-हिन्दू-सम्मेलन लाहौर ११२—१२१
१५—हिन्दू-महासभाका विशेष अधिवेशन .... १२२—१२४
१६—हिन्दू-महासभा .... १२५—१२७
१७—नासिकमेँ गोमाताके सम्बन्धमेँ १२८—१२९
१८—सर्वश्रेष्ठ धर्म .... १३०—१३१

विषय पृष्ठ

स्वराज्य—

१९—भारतीय माँग ... . १३२—१४४
२०—वर्त्तमान स्थिति .... १४५—१४६
२१—स्वराज्य-आन्दोलन .... १४७—१५०
२२—स्वराज्य प्राप्तिके लिये तीन आवश्यकताएँ .... १५१—१५३

भारतीय-राष्ट्रीय-महासभा (कांग्रेस)—

२३—व्यवस्थापिका सभाएँ .... १५४—१५८
२४—व्यवस्थापिका सभाओँका विस्तार .... १५९—१६२
२५—आयकर तथा कर लगानेके योग्य कम-से-कम आय .... १६३—१६५
२६—साधारण सभा (हाउस ऑफ़ कौमन्स) और भारतीयोँके कष्ट १६६—१६९
२७—व्यवस्थापिका सभाओँमेँ सुधार .... १७०—१७३
२८—भारतवासियोँके कष्ट और उनके दूर करनेका उपाय ... १७४—१७८
२९—सरकारी नौकरियोँपर भारत-वासियोँकी नियुक्ति .... १७९—१८२
३०—भारतवासियोँके महान् कष्ट १८३—१८६
३१—व्यय-सम्बन्धी कमीशन .... १८७—१९१
३२—प्रान्तीय ठेके .... १९२—१९७
३३—निर्धनता और दुर्भिक्ष .... १९८—२०३
३४—भारतीय व्ययपर राजकीय कमीशन .... २०४—२११
३५—दुर्भिक्ष-निवारण-सम्बन्धी सुधार .... २१२—२१६
३६—विश्वविद्यालय-बिल .... २१७—२२४
३७—पार्लियामेण्टमेँ भारतीयोँका प्रतिनिधित्त्व .... २२५—२२९

विषय पृष्ठ

३८—बङ्गालमेँ दमननीति .... २३०—२३३

३९—लाहौर कांग्रेसके अध्यक्ष पदसे भाषण .... २३४—२५३

४०—दिल्ली कांग्रेसके अध्यक्ष पदसे भाषण .... २५४—२७३

४१—कराँची कांग्रेसमेँ .... २७४—२७७

४२—कलकत्तेके अध्यक्ष पदसे भाषण .... २७८—२८५

४३—राष्ट्रीय सरकार और चुनाव २८६—२८७

प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन—

४४—भारतमेँ असन्तोष और सुधार-प्रस्ताव .... २८८—३१८

स्वदेशी—

४५—स्वदेशी आन्दोलन .... ३१९—३२१

प्रान्तीय-कौन्सिल—

४६—अर्थ-सम्बन्धी वक्तव्य .... ३२२—३४५

विषय पृष्ठ

राजकीय व्यवस्थापक परिषद्--

४७—विद्रोह सभा-विधान .... ३४६—३५२

४८—प्रेस-विधान .... ३५३—३६१

४९—श्रीगोखलेका शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्ताव .... ३६२—३६९

५०—प्रतिज्ञाबद्ध कुली-प्रथाका अन्त ३७०—३८२

५१—भारतीय कौन्सिलेँ .... ३८३—३८५

५२—सङ्कटकालीन विशेषाधिकार बिल .... ३८६—४२०

५३—क्षमा विधान (इण्डेम्निटी बिल) पर .... ४२१—४६२

५४—क्षमाविधान (उत्तरार्द्ध) .... ४६३—४८५

५५—परिशिष्ट—जाँच कमीशनकी नियुक्ति तथा रौयल कमीशनकी आवश्यकता .... ४८६—४९३

भारतीय गोलमेज़ सम्मेलन--

५६—महात्मा गान्धीके वक्तव्यका समर्थन .... ४९४—५००

५७—राष्ट्ररक्षा .... ५०१—५१०

◆

पूज्य मालवीयजीके गुरुवर

स्व० महामहोपाध्याय परिडत आदित्यराम भट्टाचार्य्यजी

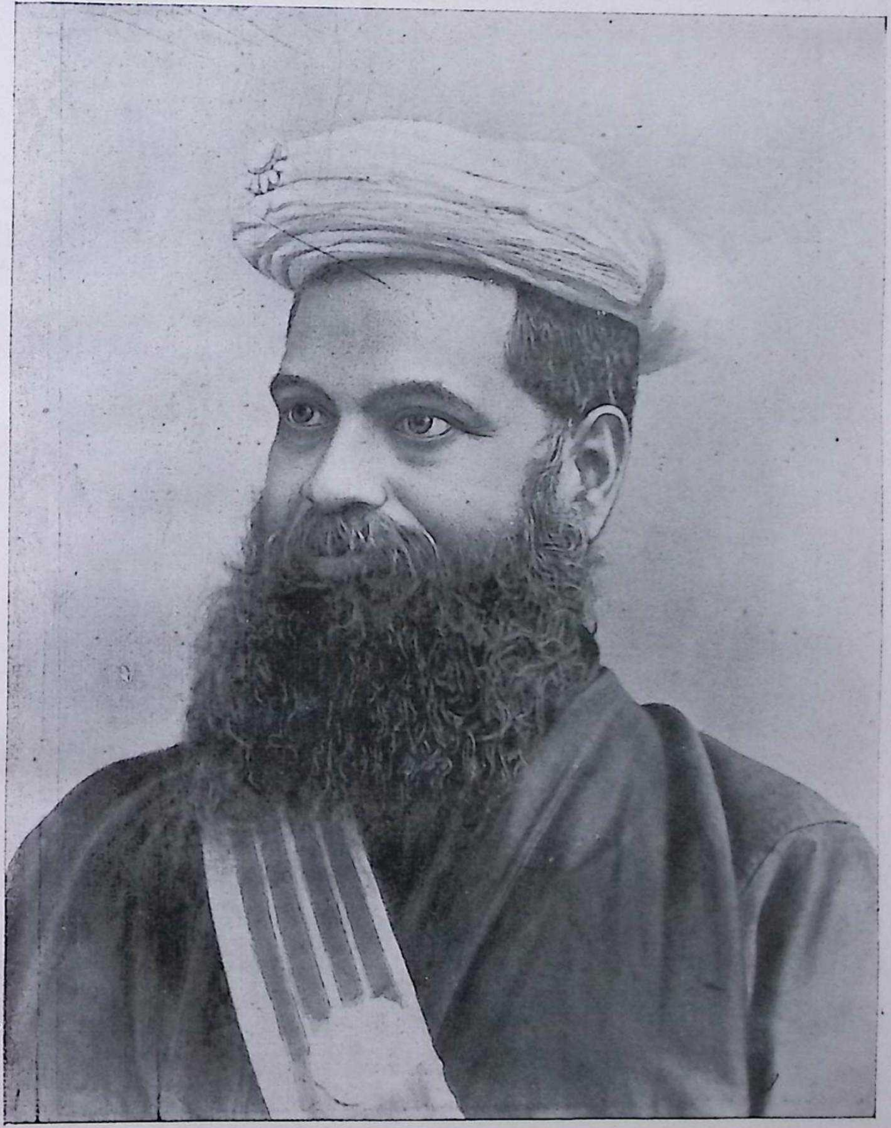

यदि संसारमें मुझे किसीका अभिमान है तो वह अपने शिष्य मदनमोहन मालवीयका।

—परिडत आदित्यराम भट्टाचार्य्य।

पूज्य मालवीयजीके राजनीतिक गुरु स्वर्गीय पण्डित अयोध्यानाथजी

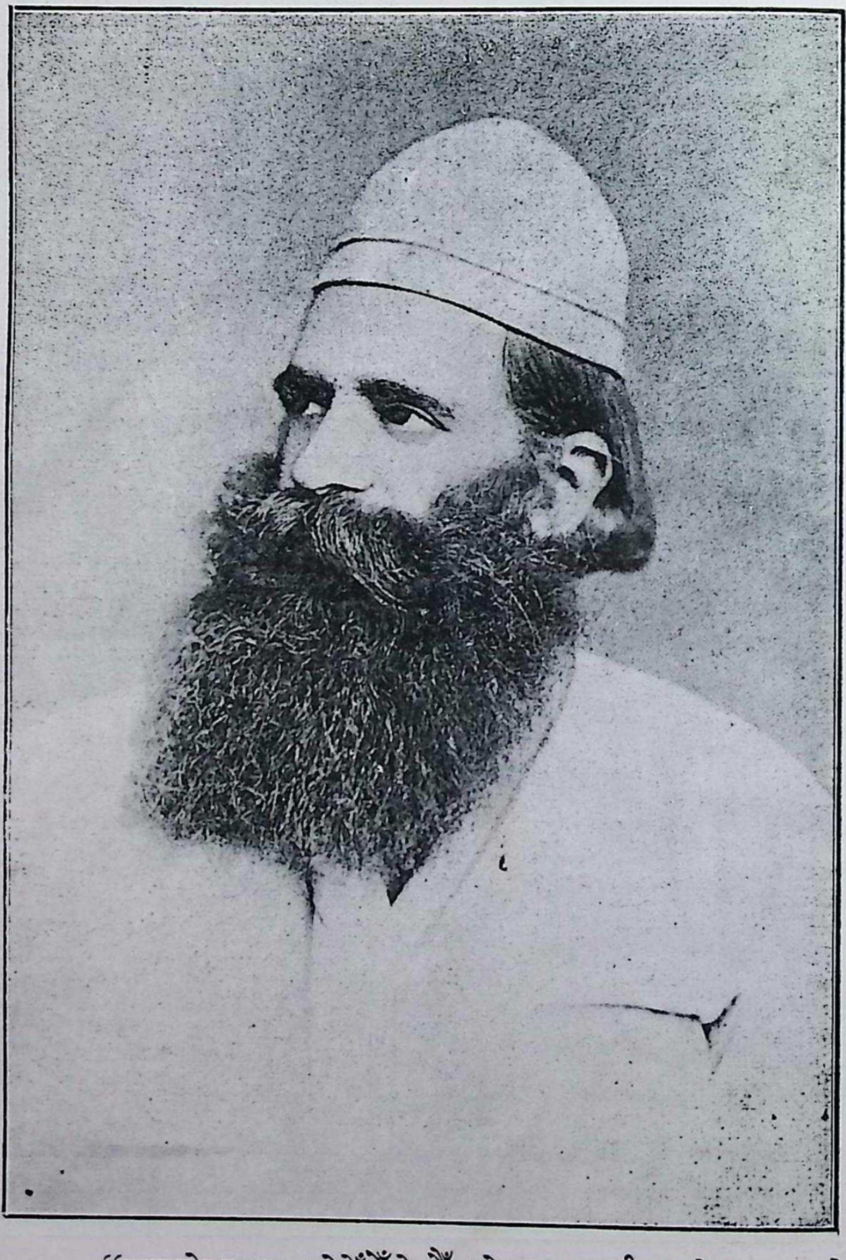

"मदनमोहन उन लोगोँमेँसे हैँ जो अपना मार्ग अपने आप बनाते हैँ। …………मदनमोहनको एक दिन संसारका महापुरुष बनना ही है।"

—पं० अयोध्यानाथ।

पूज्य मालवीयजीके मित्र स्वर्गीय पण्डित सर सुन्दरलाल

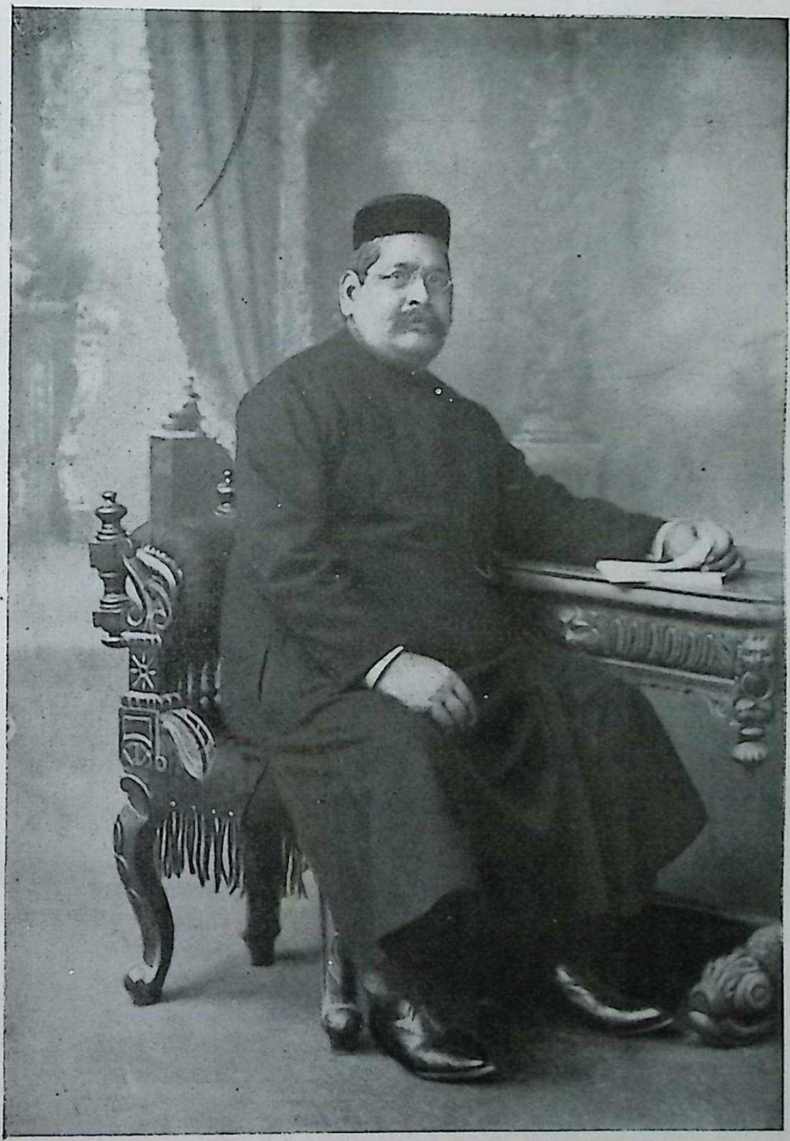

"माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका नाम काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयके साथ ऐसी दृढ़ताके साथ जुड़ गया है कि आगेकी कृतज्ञ पीढ़ियोंकी स्मृतिमें चिरस्थायी रहेगा।"

—पण्डित सुन्दरलाल।

पूज्य मालवीयजीके मित्र स्वर्गीय काशी नरेश
महाराज सर प्रभुनारायण सिंह बहादुर

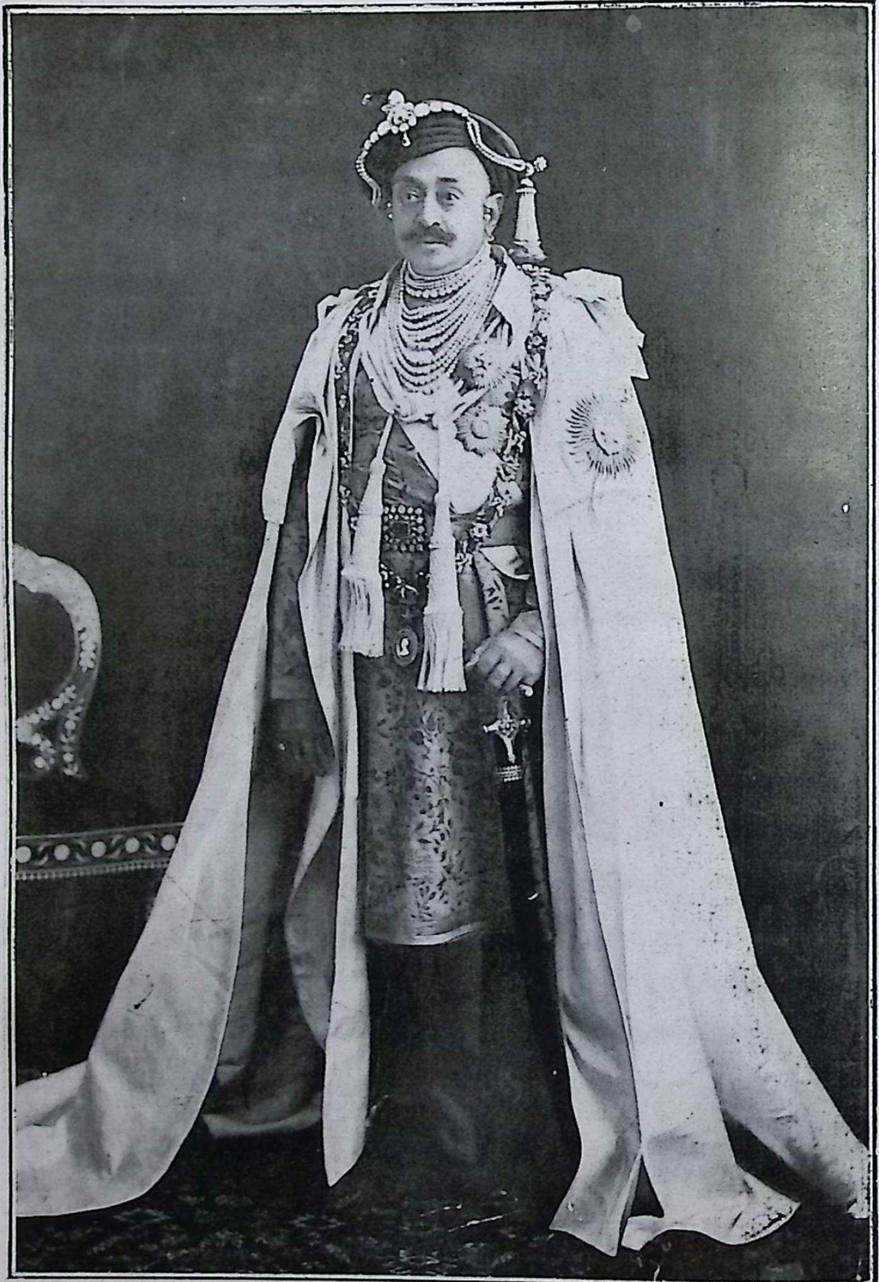

"जब हमारे माननीय मित्र परिडत मदनमोहनजी मालवीयने, जिनसे इस पवित्र कार्य्यका सूत्रपात हुआ है, मुझसे पहले-पहल हिन्दू विश्वविद्यालयके स्थापित करनेके विचारको कहा, मुझे इस कार्य्यकी सफलतामेँ सन्देह था, किन्तु उनकी लगन और उनके परिश्रमसे आज वह प्रत्यक्ष रूपमेँ दिखाई दे रहा है।"

—महाराज सर प्रभुनारायण सिंह बहादुर।

पूज्य मालवीयजीके मित्र बीकानेर—नरेश महाराज सर गङ्गासिंह बहादुर

"वहुत कम ऐसे व्यक्ति हैँ जो अपने देशवासियोँके लिये महान् और उच्च बातँ सोचते हैँ, उससे भी कम ऐसे लोग हैँ जो अपने परिश्रमसे अपने उच्च विचारोँको पूर्ण करनेका सौभाग्य प्राप्त करते हैँ। इस विश्वविद्यालयके पूजनीय जन्मदाता पण्डित मदनमोहन मालवीयके विषयमैँ यह सत्य ही कहा जा सकता है कि उन्होँने काशीकी प्राचीन और पुण्य नगरीमैँ सरस्वतीका मन्दिर निर्माण करनेकी केवल कल्पना ही नहीं की, बल्कि उसे प्रत्यक्ष रूप देनेका सफल प्रयास भी किया और अपने ही जीवनकालमैँ उसे वर्त्तमान रूपमैँ विद्याका महान् केन्द्र बनते भी देख लिया।"

—**महाराजा गङ्गासिंह बहादुर,**
बीकानेर।

पूज्य मालवीयजीके भक्त, वर्त्तमान काशी नरेश
महाराज आदित्यनारायण सिंह बहादुर

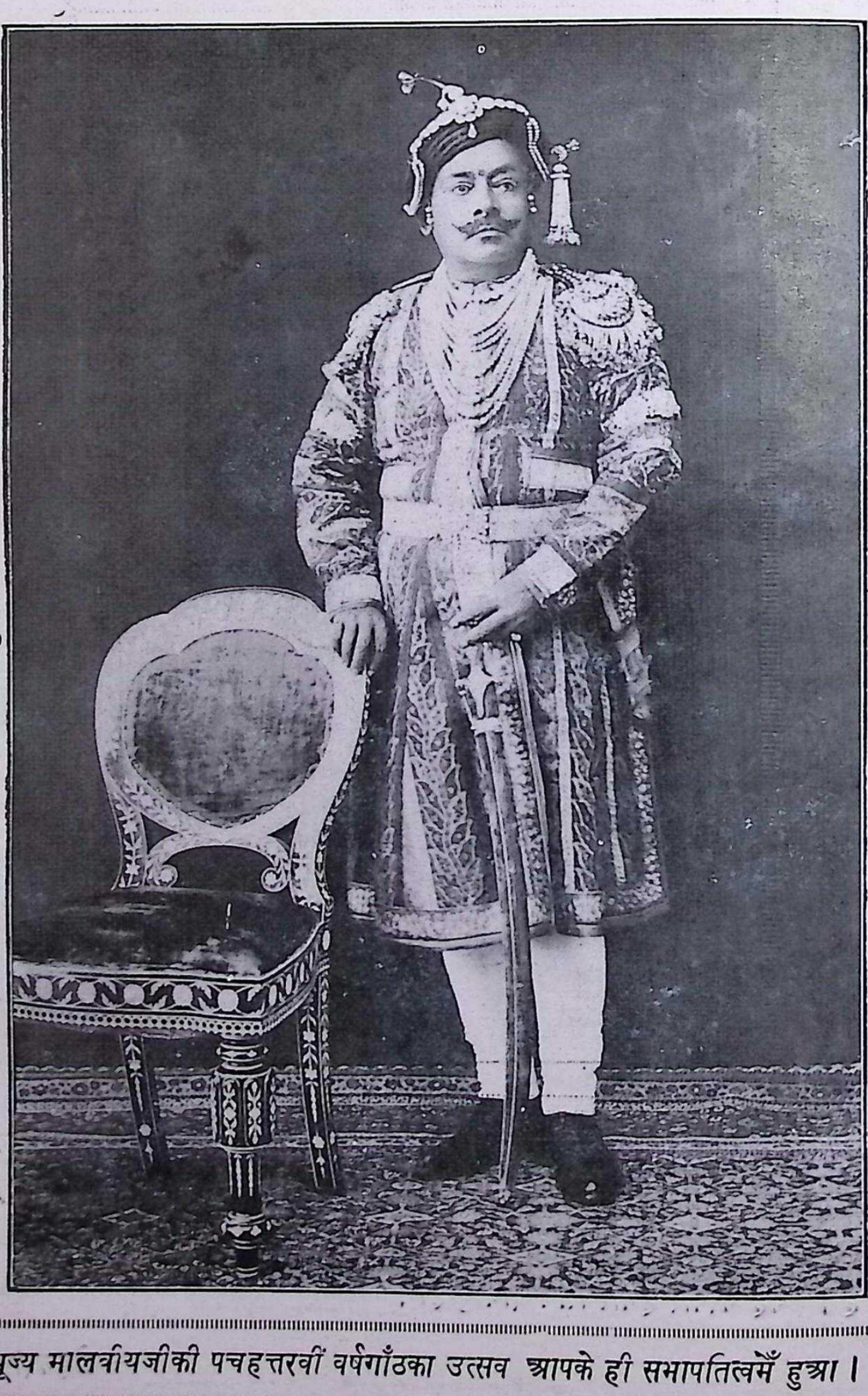

पूज्य मालवीयजीकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठका उत्सव आपके ही सभापतित्वमें हुआ।

पूज्य मालवीयजीकी मधुर वाणीसे

धर्म

धर्म्म-सम्बन्धी पूज्य मालवीयजीके विचार उनके लेखोंमें आ गए हैं अतः उनकी पुनरावृत्ति न करके हम केवल उनके अन्य धर्म-सम्बन्धी व्याख्यान दे रहे हैं।

—सम्पादक।

गीता प्रवचन

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः॥
अर्हन्नित्यथ जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं नो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेत कृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं
सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥

काशी विश्वविद्यालयके इस मासमें खुलनेके उपरान्त आप लोगोंसे मिलनेका यह पहला अवसर मिला है। इसके लिये परमात्माको धन्यवाद है। मेरा विश्वास है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके कार्य्यक्रममें साप्ताहिक गीताप्रवचनका प्रबन्ध अन्य विषयोंके पठन-पाठनसे कम गौरवका नहीं है, बल्कि सबसे अधिक गौरवका है। यह हमारे कल्याणका साधन है। जो विद्यार्थी और अध्यापक काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध हों उनके लिये यह आवश्यक है कि वे इसमें सम्मिलित होकर इसका पुण्यफल पावें।

इस विश्वविद्यालयकी यही विशेषता है कि यहाँ दूसरे विश्वविद्यालयोंकी अपेक्षा धर्मका विचार अधिक किया जाता है। दूसरे विश्वविद्यालयोंमें जो विषय पढ़ाए जाते हैं उनका भी पठन-पाठन यहाँ होता है। किन्तु धर्मकी ओर उनका ध्यान नहीं। यह विशेषता सिर्फ़ इस विश्वविद्यालयमें है।

हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियोंने अमूल्य निधि हमें सौंप दी है उसके द्वारा अपना जीवन हम

रविवार ता० २२ जुलाई सन् १९३५ को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भाषण। —सम्पादक।

उज्ज्वल बना सकते हैँ। उनकी सम्पत्तिसे हम इस लोकमैँ आनन्द प्राप्त कर सकते हैँ।

दूसरे कौलेजोँके छात्रोँको ऐसा उपदेश नहीँ मिलता कि संसारमैँ हम कैसा व्यवहार करैँ, कैसा आचरण बनावैँ। यह शिक्षा क्लास-लेक्चरोँको छोड़कर दी जाती है। यह आदर्श कार्य्य हिन्दू विश्वविद्यालयमैँ है। आप लोग सांसारिक काम करते हो। नित्य करो, किन्तु प्रत्येक सप्ताहमैँ डेढ़ घण्टा धर्मके लिये छोड़ दो। मैँ यही गुरु-दक्षिणा माँगता हूँ। इसके बदलेमैँ मुझसे सर्वस्व ले लो। जैसे कोई वैश्वदेवको बलि देता है, प्यासेको पानी देता है, उसी तरह मुझे डेढ़ घण्टा दे दो। किसी तरह डेढ़ घण्टा निकाल दो और उस श्रद्धापूर्ण अवसरका अनन्त लाभ उठा लो। मैँ नहीँ चाहता कि हाज़िरीके डरसे गीताप्रवचनमैँ आओ या किसीके दबावसे आओ। किन्तु प्रेमसे इस शुभ अवसरपर लाभ उठाओ जिससे आजीवन आनन्द प्राप्त करते रहो। डेढ़ घण्टा बहुत कम है। इसे कई व्यक्ति व्यर्थकी बातैँ करनेमैँ बिता देते हैँ। उस समयमैँ मैँ अमूल्य निधि दे देता हूँ।

हम नियमसे नित्य भोजन करते हैँ, दो-तीन बार भोजनका ध्यान रखते हैँ। इसी तरह हमैँ उचित है कि धर्मका ध्यान रक्खैँ। हिन्दू विश्वविद्यालयका विधान है कि यहाँ धार्मिक शिक्षासे छात्र लाभ उठावैँ। वे भयसे नहीँ बल्कि प्रेमसे धर्मकार्य्य करैँ। हिन्दू विश्वविद्यालय माता है। इस माताको डेढ़ घण्टा भैँट कर दो और इस संस्थाके धार्मिक उत्सवोँसे और गीताप्रवचनसे शिक्षा लो और देख लो कि इससे जीवनमैँ कितना परिवर्त्तन हो गया। केवल इस विश्वविद्यालयमैँ विद्या ही पढ़ना नहीँ है। इसीके साथ-साथ चरित्र बनाना है। ज्ञान और चरित्र दोनोँका मेल कर देनेसे संसारमैँ मान होगा तथा गौरव प्राप्त होगा।

प्रह्लादने अपने साथी बालकोँको बचपनमैँ धर्मपालनकी शिक्षा दी थी। इसका पालन जवानीमैँ नहीँ बल्कि वृद्ध होनेपर पालन कर लैँगे ऐसा विचार त्याग कर कौमार अवस्थामैँ ही धार्मिक शिक्षाकी नीँवपर जीवनकी भित्ति खड़ी कर दो। 'कौमारे आचरेत् धर्मम्', धर्मभावना आजीवनकी बना लैँ। मनुष्यजीवन अन्य जीवोँके जीवनसे विशेषता रखता है। दूसरे प्राणी, पशु पक्षी, हाथी, घोड़ा, कुत्ते आदि इन्द्रियोँका सुख पाते हैँ। उनमैँ और मनुष्यमैँ सब गुण समान होते हैँ। वे हम लोगोँकी तरह भोजनप्रेमी हैँ, वे सोते हैँ, आराम करते हैँ किन्तु उनमैँ विवेक बुद्धि नहीँ है। मछली मछलीको खाती है। एक पशु दूसरे पशुका शिकार करता है। उन प्राणियोँमैँ विचार नहीँ है।

देखा जाता है कि अब भी चोरी कम होती है, पाप कम होता है, हज़ारोँ मकान खुले रहते हैँ। हज़ारोँ झोँपड़ियाँ हैँ जहाँ धर्मके काम, न्याय, सत्य, दयाभाव और शान्तिकी मात्रा पा जाती है, बुराई कम और भलाई अधिक होती है, पाप थोड़ा और पुण्य अधिक पाया जाता है। दुर्गुणोँकी अपेक्षा शुभ गुणोँकी गणना संसारमैँ अधिक मिलती है। संसारभरके मानवसमुदायमैँ देखा जाय तो न्याय, शान्ति, भरोसा तथा विश्वास अधिक मात्रामैँ मिलैँगे।

किसानका कितना बड़ा खेत लगा रहता है, उसमैँसे बहुत कम चोरी होती है, बहुत कम धान्यकी ख़राबी होती है और अधिक अन्नकी प्राप्तिसे कितने मनुष्योँका पालन होता है। गाँवका मेहतर यदि सत्य बोलता है तो उसका आदर होता है और यदि कोई पण्डित है पर झूठ बोलता है तो उसकी निन्दा होती है। घरोँमैँ स्त्रियाँ अकेली रहती हैँ, उनके साथ सब न्याय करते हैँ।

थोड़े ही घर ऐसे होँगे जहाँ कोई दुष्ट अन्याय करता हो। मनुष्यमेँ आहार, निद्रा आदि विषय सब प्राणियोँकी तरह होते हैँ। किन्तु धर्मकी विशेषता मनुष्यमेँ अधिक है। मनुष्यमेँ विवेक है जो उसे उच्च बना देता है।

थोड़े ही व्यक्ति ऐसे हैँ जिन्हेँ देखा जाता है कि अधर्मसे सांसारिक सुख पा रहे हैँ, परन्तु उनका परिणाम अच्छा नहीँ होता। उन्हेँ अधर्मसे शान्ति नहीँ मिलती। उनका आत्मा टूट जाता है। वे पापका बुरा फल अवश्य पाते हैँ।

हिन्दू विश्वविद्यालयमेँ शरीरशिक्षा और धर्मशिक्षा दोनोँ अनिवार्य्य हैँ। इन दोनोँका मेल गङ्गा-जमुनाकी तरह होना ज़रूरी है। ब्रह्मचर्य्यका पालन कर शरीर दृढ़ बनाओ, चरित्ररक्षा करो और परस्त्रीपर कभी कुदृष्टि न डालो।

परनारी पैनी छुरी ताहि न दीजै दीठ

मातृवत् परदारेषु

दूसरी स्त्रीपर माताका भाव रखना चाहिए। जो स्त्री अवस्थामेँ बड़ी हो वह मातावत् है, जो बराबरीकी है वह बहन-तुल्य है और जो छोटी है उसे पुत्रीवत् मानो। शारीरिक बलकी शक्ति ब्रह्मचर्य्य व्रत पालनसे प्राप्त होती है। गन्धर्वने अर्जुनसे हार जानेपर कहा था कि तुम ब्रह्मचारी हो, इसलिये मैँ तुम्हेँ जीत न सका। गाड़ीमेँ दो बैलोँके आगे ब्रह्मचारी बटवा रहता है जो चढ़ावपर अपनी शक्तिसे गाड़ीको खीँच ले जाता है।

जो छात्र विवाहित हैँ वे यहाँ ब्रह्मचारी बनेँ। उनका रहन-सहन आचार-विचार लक्ष्मणकी तरह हो। लक्ष्मणने चौदह वर्ष ब्रह्मचर्य्य व्रतका पालन किया, उसीसे वे मेघनादका बध कर सके। उसी तरह विवाहित छात्र अपनी धर्मपत्नीको छोड़कर अन्य स्त्रियोँको मातावत् देखे। इसी ब्रह्मचर्य्य व्रत पालनसे मनुष्य ऊपर उठता है, ऐसा न करे कि अपना जीवन नीचे गिरे।

वेदव्यासजीका अवतार चौबीस अवतारोँमेँसे एक है। अवतारका तात्पर्य्य है परमात्माका विशेष तेज जिस व्यक्तिमेँ अधिक हो। वेदव्यासजीने गीताकी रचना की है। उन्होँने इसका विस्तारसे वर्णन कर दिया है। आपने महाभारका सारांश गीतामेँ रखकर दिया है। इस गीता मेँ अमृत भर दिया है। उन्हीँ व्यासजीने गीताके आरम्भमेँ धर्मक्षेत्र और धर्मका बखान किया है।

संसारमेँ सब पदार्थ बदलते रहते हैँ, सुख-दुःख होते रहते हैँ, किन्तु धर्म नित्य है, वह कभी नहीँ बदलता। यदि प्राण भी जाता हो तो धर्म न त्यागो।

धर्मकी महिमा हमारे प्राचीन ग्रन्थोँमेँ भरी हुई है। पुराणोँमेँ भी अनेक धर्म-कथाएँ हैँ।

वाल्मीकिरामायण और महाभारतमेँ धर्मका स्वरूप खीँच दिया है। इन दो ग्रन्थोँको जिसने पढ़ा है उसने जीवनका लाभ उठा लिया है। संसारमेँ इन दो ग्रन्थोँसे बढ़कर कोई ग्रन्थ नहीँ है। व्यासजीने महाभारतमेँ अमृत भर दिया है। उन्होँने यह अमृत मनुष्यमात्रके लिये ऐसे सौँप दिया है जैसे माता बच्चोँको दूध दे देती है।

महाभारतकी क्या महिमा, है इसका वर्णन करना कठिन है। इसे पञ्चम वेद कहा गया है। जो महाभारतका पाठ करता है वह वेद-पाठका लाभ उठाता है। यदि एक श्लोक भी पढ़ ले तो भी उसे कुछ-न-कुछ आनन्द अवश्य मिलता है। मनुष्यका धर्म है कि गङ्गास्नान, हर या हरिकी पूजा और महाभारतका पाठ अवश्य करे। इन तीन कामोँको जो करता है वह अपने जीवनको सफल करता है। पूरा ज्ञान या मोक्षज्ञान महाभारतमेँ भर दिया है। अध्यात्मशक्तिके साथ-साथ सांसारिक व्यवहार महाभारतसे मिलता है। शान्तिपर्व, वनपर्व आदिमेँ सांसारिक व्यवहार देखो।

भीष्मपितामह शरशय्यापर पड़े हैँ, उन्होँने ब्रह्मचर्य्य और पितृभक्तिके कारण मृत्यु जीत ली थी। आपके पास भगवान् कृष्णने युधिष्ठिरको

भेजा कि धर्म सीख आओ। यदि भीष्मसे शिक्षा न ली तो फिर संसारमें कोई व्यक्ति नहीं जो धर्मशिक्षा दे सके।

युधिष्ठिर भीष्मपितामहके सम्मुख जानेमें सङ्कोच करते थे; किन्तु भगवान्ने ले जाकर भीष्मपितामहसे कहा कि आप युधिष्ठिरको कुछ शिक्षा दें। इसपर उन्होंने कहा कि मुझमें अब शक्ति नहीं, मृत्युशय्यापर पड़ा हूँ। आपके रहते मैं क्या शिक्षा दूँ।

तब श्रीकृष्ण भगवान्की कृपासे भीष्म शक्तिशाली बन गए। उनका चित्त प्रसन्न हो गया और भगवान्ने कहा कि मुझे अब उपदेश देनेकी ज़रूरत नहीं है। मुझे यश नहीं चाहिए। मैं तो सबमें व्याप्त हूँ। तुम्हारा यश विश्वव्यापी हो तथा संसार तुम्हारा अनुकरण करे। तुम्हारे वचन वेदवत् माने जायँ। भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे भीष्मपितामहने राजधर्मका पहला उपदेश दिया। राजधर्मपर सब धर्म अवलम्बित हैं।

महाभारतमें गान्धारीकी वीरता, कुन्तीकी धीरता, विदुरकी नीति, वासुदेवका माहात्म्य, पाण्डवोंकी सत्यता आदि अनेक उपदेश भरे हैं। पतिव्रता गान्धारीने पतिके अन्धे होनेसे अपनी आँखोंपर आजन्म पट्टी बाँधी। एक बार अपने पुत्र दुर्योधनसे उन्होंने कहा कि मेरे सामने बच्चेकी तरह खड़ा हो जाओ तो मेरी दृष्टि जिस-जिस अङ्गपर पड़ेगी उस-उस अङ्गपर शस्त्रका भय न रहेगा। किन्तु दुर्योधन लङ्गोटी लगाकर माताके सामने आया, इसीसे भीमने गदा कमरमें मारी और दुर्योधनकी मृत्यु हुई। हरएक छात्र महाभारतके अध्यायोंको पढ़े और उनसे अमूल्य उपदेशोंका लाभ उठावें। वे अधिक न पढ़ सकें तो उस महाभारतका सारांश गीताका पाठ करें। गीतामें उन्हीं कृष्ण भगवान्ने उपदेश दिया जिन्होंने सत्यका तथा धर्मका पक्ष लिया। सब जानते हैं कि राज्यके कारण कौरव और पाण्डवोंका झगड़ा हुआ। यद्यपि अन्धे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको राज्य करनेका अधिकार न था तथापि उन्होंने अन्याय किया और पाण्डवोंको राज्यसे निकाल दिया। कृष्ण भगवान्ने पाँच गाँव माँगे पर दुर्योधनने सुईकी नोक बराबर भी जगह न दी।

ऐसी स्थितिमें कृष्ण भगवान्ने कुन्तीसे पूछा कि तुम्हारे पुत्र क्या करें?

माता कुन्तीने कृष्ण भगवान्से कहा कि मेरे पुत्रोंको वही उपदेश दो जो विदुलाने अपने पुत्रको दिया था। विदुलाका पुत्र उत्तर अधिक शत्रुसेना देख युद्धक्षेत्रसे भाग आया था। माताने कहा कि तैंने मेरी कोखमें दाग़ लगाया, कुलको कलङ्कित किया। तू मर जाता तो अच्छा था। अन्तमें उत्तर युद्धमें गया और माताके उपदेशसे विजयी हुआ। जिस व्यक्तिने दान, तपस्या, सत्य, विद्या तथा अर्थका लाभ न किया तो उसका जन्म व्यर्थ है। माता कुन्तीका उपदेश पाकर पाण्डवोंने विजय पाई और अर्जुनके कारण गीताका उपदेश आज भी सहस्रों मनुष्योंको शान्ति-सुख दे रहा है।

महाभारतमें अठारह अक्षौहिणी सेनाका संहार हुआ। सात अक्षौहिणी सेना पाण्डवोंकी थी और ग्यारह अक्षौहिणी सेना कौरवोंकी थी। एक-एक दिनमें दस-दस हज़ार वीर मारे जाते थे। यदि शक्तिशाली शत्रु अधर्मके पक्षमें हो तो भी थोड़ेसे धर्मपक्षवाले विजय पाते हैं। पाण्डवोंमें चार गुण थे, सत्य, दया, धर्म और उद्यम। ये गुण प्रत्येक व्यक्ति हृदयमें धारण करे। इनके बलसे विजय होती है। केवल धर्मको लिए हुए न बैठा रहे, उद्यम भी करे। केवल उद्यमसे भी काम नहीं सधता उद्यम और धर्मको साथ-साथ हाथमें लेवे। उद्यम और धर्मको लेकर अहङ्कार छोड़ दे। शारीरिक और मानसिक बलके मेलसे जय होती है। जो कृष्ण भगवान् पाँच गाँव माँग रहे थे, उन्होंने पाण्डवोंको युद्ध करनेके लिये बाध्य किया। अन्याय देखकर शान्त बैठना ठीक नहीं। धर्म और उद्यम दोनोंको लेकर अधर्म तथा अन्यायका नाश करना ज़रूरी है। हिम्मत न छोड़ो।

भगवान्‌का वचन है कि दुष्टोंका दमन करे और धर्मकी स्थापना करे। भगवान्‌ने छुटपनमें अनेक राक्षस मारे। सोलह वर्षकी अवस्थामें कंसको मारा। उन्होंने जरासन्धका संहार कराया। जरासन्धके पास तीन स्नातक गए। उसने स्नातकोंका आदर किया। विद्या-व्रत स्नातकका आदर सब करते हैं। उसने युद्ध-दान देते हुए कहा कि अर्जुन छोटा है, कृष्ण भगोड़ हैं, किन्तु भीम बराबरीका है। इसलिये भीमसे युद्ध किया। भगवान्‌ने भीमद्वारा उस दुष्टका नाश किया। उन्हीं कृष्णने सौ क़सूर माफ़ कर शिशुपालका वध किया। उन्हीं कृष्णने गीता गाई है।

गीता संसारका एक अनमोल रत्न है और उसके एक-एक अध्यायमें कितने रत्न भरे पड़े हैं। इसके पद-पद और अक्षर-अक्षरसे अमृतकी धारा बहती है। गीता पढ़नेका बड़ा माहात्म्य कहा गया है।

गीता शास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्ज्जितः॥
गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च॥
मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने।
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम्॥
गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥
भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम्।
गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्ज्जन्म न विद्यते॥

जो मनुष्य इस पवित्र गीताशास्त्रको शुद्ध और पवित्र होकर पढ़ता है, वह भय और शोकरहित होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

गीताध्ययन करनेवाले तथा प्राणायाम करनेवालेको पूर्व जन्ममें किए हुए पापोंका फल नहीं लगता है। प्रतिदिन जलस्नान करनेवाले मनुष्यका बाहरी मल धुल जाता है; किन्तु गीतारूपी जलमें एक बारके ही स्नानमात्रसे संसाररूपी मल नष्ट हो जाता है।

सब शास्त्रोंको छोड़कर गीताका ही भली भाँति गायन करना चाहिए जो कि स्वयं भगवान्‌के मुँहसे निकली हुई है।

महाभारतरूपी अमृतका सार विष्णु भगवान्‌के मुँहसे निकला है। यह गीतारूपी अमृत पीनेसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता है।

गीताके लिये कहा है—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीताऽमृतं महत्॥

अर्थात् सब उपनिषद् तो गौ हैं, उनको दुहनेवाले गोपालनन्दन कृष्ण हैं, अर्जुन बछड़े हैं, बुद्धिमान् लोग दूध पीनेवाले हैं और गीता ही अमृतमय दुग्ध है। इसके अध्ययन और पठनका भी बड़ा महत्त्व बताया है।

योऽष्टादश जपेन्नित्यं नरो निश्चलमानसः।
ज्ञानसिद्धिं स लभते ततो याति परं पदम्॥
पाठेऽसमर्थः सम्पूर्णो ततोऽर्द्धं पाठमाचरेत्।
तदा गोदानजं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥
एकाध्यायं तु यो नित्यं पठते भक्तिसंयुतः।
रुद्रलोकमवाप्नोति गणो भूत्वा वसेच्चिरम्॥
अध्यायं श्लोकपादं वा नित्यं यः पठते नरः।
स याति नरतां यावन्मन्वन्तर वसुन्धरे॥
गीतायाः श्लोकदशकं सप्त पञ्च चतुष्टयम्।
द्वौ त्रीनेकं तदर्द्धं वा श्लोकानां यः पठेन्नरः॥
चन्द्रलोकमवाप्नोति वर्षाणामयुतं ध्रुवम्।
गीतापाठसमायुक्तो मृतो मानुषतां व्रजेत्॥

अर्थात् जो मनुष्य एकचित्त होकर अठारह अध्याय नित्य जपता है वह ज्ञानसिद्धि प्राप्त करता है और उसे परम पद मिल जाता है।

जो पूरा पाठ न कर सके वह आधा ही पाठ करे, उसको निःसन्देह गोदानका पुण्य प्राप्त होता है। जो नित्य भक्तिके साथ एक अध्याय भी पढ़ता है वह चिरकालतक गण होकर रुद्रलोकमें वास करता है।

जो मनुष्य एक अध्याय या गीताके श्लोकके एक टुकड़ेको भी पढ़ता है वह पृथिवीपर मन्वन्तर-पर्य्यन्त मनुष्यशरीर धारण करता है। गीताके दस, सात, पाँच, चार, दो, तीन, एक अथवा आधा श्लोक भी जो

पढ़ता है वह निश्चय दश हज़ार वर्षतक चन्द्रलोकमें निवास करता है।

कहनेका तात्पर्य्य यह है कि जितना भी बन सके उतना गीताका पाठ करना चाहिए। प्रातःस्नान करके गीताका पाठ कर चुकनेपर यह विचार करो कि हमें क्या करना चाहिए। जैसे अँधेरेमें लालटेन हमें प्रकाश देती है और हमें ठीक मार्ग बताती है ठीक उसी प्रकार गीता भी हमें कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यका ज्ञान कराती है। यह हमें आध्यात्मिक और सांसारिक दोनोंका ऊँचे-से-ऊँचा उपदेश देती है।

संसारमें जितने नगर और गाँव हैं वहाँ प्रति सप्ताह सब लोगोंको मिलकर गीतापाठ करना चाहिए। मैं समझता हूँ कि आप लोग इसमें अवश्य सहयोग देंगे। क्योंकि इस गीता-प्रचारकी भावनाका मूल हिन्दू विश्वविद्यालय है। यहाँ अनेक साधु, महात्मा और विद्वान् रहते हैं। यहाँ देशभरके विद्यार्थी पढ़नेके लिये आते हैं। इनका कर्त्तव्य है कि ये लोग गीताका अध्ययन करके देशभरमें उसका प्रचार करें। उसका एक सरल उपाय यही है कि प्रति रविवारको जो समय निश्चित है उस समय यहाँ आकर अध्ययन करें या सुनें।

मैं आपको बताता हूँ कि गीता सुनानेका कारण क्या हुआ और यह कहाँ कही गई। यह उस रणक्षेत्रमें कही गई जहाँ एक ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना खड़ी थी और दूसरी ओर सात अक्षौहिणी। उस युद्धके पहले स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण दूत बनकर दुर्योधनके पास पाँचों पाण्डवोंके लिये पाँच गाँव माँगने गए। किन्तु दुर्योधनने साफ़ कह दिया कि बिना युद्धके सुईकी नोकके बराबर भी जमीन नहीं दूँगा। यह सन्देश कृष्णजीने अपनी बुआ कुन्तीको जाकर सुनाया। उसने उत्तर दिया कि जाकर पाण्डवोंको कह दो कि जिस दिनके लिये क्षत्राणीने जन्म दिया था वह समय आ गया। और साथ-साथ कुन्तीने विदुलाकी कथा सुना दी। यह उपदेश लेकर कृष्ण पाण्डवोंके पास गए और युद्धकी तैयारी हो गई। जब दोनों फ़ौज सजकर खड़ी हो गई तो दोनों ओरसे गम्भीर शङ्खनाद हुआ। उस समय दोनों सेनाके बीचमें खड़ा हुआ अर्जुन अपने विपक्षमें अपने सम्बन्धियोंको देखकर अत्यन्त दुखी हुआ। उस दशामें कृष्णने अर्जुनको उपदेश दिया। अर्जुनकी दुर्बलता देखकर भगवान् कृष्ण डाँटकर बोले—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन ॥
क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥

अर्थात् यह कैसे बेमौक़े तेरे मनमें दुर्बलता आ गई है। यह तो अनार्य्योंके योग्य, नरकमें ले जानेवाला तथा अपयश करनेवाला कार्य्य है। हे अर्जुन! यह नपुंसकता मत दिखाओ और यह तुच्छ हृदयकी दुर्बलताको छोड़कर युद्धके लिये तैयार हो जाओ। ये वचन मृदङ्गकी थापके समान कृष्णके मुँहसे निकले। अर्जुनकी जब सब शङ्काएँ निवृत्त हो गईं तब वह बोलेः—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

आप लोगोंको स्मरण रखना चाहिए कि उस गीताको सुननेवाला अर्जुन था, जिसके समान कृष्णको छोड़कर और दूसरा संसारमें कोई वीर न था। जिसके विषयमें चित्ररथ गन्धर्वने कहा था—

ब्रह्मचर्य्यस्थितो धर्मः स चापि नियतस्त्वयि।
तेनाहं निर्जितः पार्थ रणोऽस्मिन्निहतस्त्वया ॥

अर्थात् हे अर्जुन! ब्रह्मचर्य्यके कारण ही तुमने मुझे हराया। ऐसे अर्जुनको भगवान्ने गीता सुनाई। संसारमें श्रीकृष्णके समान कोई भी पुरुष नहीं है। उनके वर्णनके लिये भी बहुत विद्या और बुद्धि चाहिए। उनके लिये कहा है कि उनके समान सुन्दर और वीर त्रिलोकमें कोई नहीं है। वे बड़े सत्यप्रतिज्ञ थे। जिस समय द्रौपदीने कृष्णको दूतरूपमें जाते हुए देखा तो उसने कहा भैया! याद रखना, एक स्त्री थी, बहुतसे दुष्ट उसके बाल खींचकर

सभामें लाए थे। तुम उन्हींसे सन्धि करने जा रहे हो। मेरे बालोंको न भूलना। तब कृष्ण बोले—

चलेद्धि हिमवान् शैलो मेदिनी शतधा भवेत्।
द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा न मेऽमोघो वचो भवेद्॥
सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णे वाष्पो निगृह्यताम्।
हतामित्रान् श्रियायुक्तानचिराद्द्रक्ष्यसे पतीन्॥

हे द्रौपदी! चाहे हिमालय पर्वत चलने लगे, पृथिवी सौ टुकड़े हो जाय, आकाश भी नक्षत्रोंसहित गिर पड़े, किन्तु मेरा वचन असत्य नहीं हो सकता है।

हे द्रौपदी! मैं तुझसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे पतिके सब शत्रु मारे जायँगे और तेरे पति श्रीयुक्त हो जायँगे। तू अपने आसुओंको रोक।

इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण भगवान्ने अपने विषयमें कहा है—

नाहं कामान्न संरम्भान्नद्वेषान्नार्थकारणात्।
न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथञ्चन॥

अर्थात् मैं धर्मको क्रोध, इच्छा, द्वेष, धन, लोभ और तर्कवादसे भी कभी नहीं छोड़ना चाहता हूँ।

समय बहुत हो गया है। मैं यही चाहता हूँ कि प्रति सप्ताह रविवारके दिन छुट्टीका दिन न समझो बल्कि गीता-दिवस समझो और नियमसे गीताका पाठ करो। मुझे आशा है कि सब स्त्री, पुरुष, विद्यार्थी इससे सहमत होंगे। ईश्वर आपको सुबुद्धि दें, यश दें और बल दें जिससे आप भारतवर्षकी और अपने धर्मकी रक्षा करके हिन्दू विश्वविद्यालयका गौरव बढ़ावें।

* * *

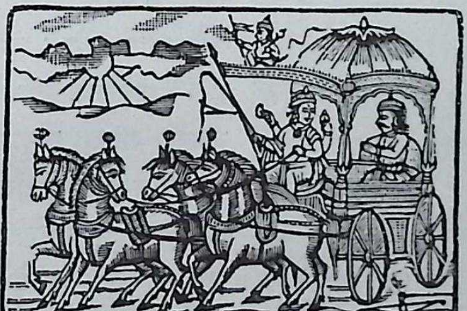

एक ओर अधर्म था और दूसरी ओर धर्म था। धर्मकी ओर केवल सात अक्षौहिणी सेना थी, उधर अधर्म अपनी विशाल ११ अक्षौहिणी सेना लेकर डटा हुआ था। पर एक बात थी कि धर्मका रथ स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण चला रहे थे। उन्हींके उपदेशसे अर्जुनका विषाद और मोह उड़ गया और वह गाण्डीव हाथमें लेकर अधर्मके विनाशमें जुट गए। जिधर धर्म है उधर ही भगवान् रहते हैं और वे ही स्वयं धर्मरथको चलाकर विजय-श्री तक पहुँचा देते हैं और वे ही विषम स्थितिमें धर्म और अधर्मके बीच रथ खड़ाकर गीता सुनाते हैं जिसे सुनने और समझ लेनेपर ज्ञानके नेत्र खुल जाते हैं।

यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः
तत्र श्रीविंजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम।

परमात्माकी स्तुति और विद्यार्थियोंके कर्त्तव्य

मङ्गलवार ता० ४ सितम्बर सन् १९३५ को सायङ्काल शिवाजी हौलमें विश्वविद्यालयके अध्यापकों और छात्रोंके सम्मुख ईश्वर-वन्दना करनेके अनन्तर पूज्य मालवीयजीने यह भाषण दिया था।

—सम्पादक।

आप लोग जानते हो मैंने स्तुतिमें क्या कहा है? सबसे पहला कर्त्तव्य हमारा यह है कि हम परमात्माकी स्तुति करें, उनके गुणगान करें जो विश्वम्भर हैं, सृष्टिरचना करनेवाले हैं। हमारा ज्ञान इसीलिये है कि हम परमात्माको समझें। हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थ, वेद, उपनिषद् उसी परम शक्तिका गुणगान करते हैं। हमारे ज्यौतिष-शास्त्रमें उसकी विराट् रचनाका वर्णन है। आकाशमें अनेक तारागण उसीकी विभूति हैं। उसीकी ज्योतिसे यह सब रचना हो रही है। केवल आकाशकी विभूतियाँ नहीं, वरन् पृथ्वीमण्डलपर भिन्न-भिन्न प्रकारके मनुष्य, जीव, जन्तु सब उसीके भिन्न-भिन्न आकार हैं। ये सब रूप उसीके बनाए हैं। पृथ्वीमण्डलके किसी भी भागपर चले जाइए, एक ढाँचेके मनुष्य मिलेंगे। सबकी शरीर-रचना एकसी है। सबकी रचना जो गर्भमें होती है ईश्वर ही करता है। गौ, सिंह, मयूर आदिका कैसा-कैसा विचित्र रूप-रङ्ग बनाया है जो समझमें नहीं आता कि कैसे किया। वह छिपा हुआ सब कुछ करता रहता है। भिन्न-भिन्न प्रकारके पेड़-पौधे, फूल-फल आदि उसीकी रचनाका चमत्कार है। इनकी बनावट मनुष्य नहीं कर सकता।

उस परमात्माने मानव-जातिको कैसा मन दिया है जो क्या-क्या सोचा करता है। मन कल्पना-जगत्में अनेक दृश्य देखा करता है। मनकी भिन्न-भिन्न भावनाएँ क्या-क्या नहीं दिखातीं। कब छुटपनमें पढ़ा था, कब सुना था, पर अभी तक याद है। शरीरमें धीरे-धीरे परिवर्त्तन होता रहता है और मन भीतर सब कुछ करता रहता है। उसकी रचना देख मन प्रसन्न हो जाता है। वह चैतन्य शक्ति हृदयमें विराजमान है और भीतर-ही-भीतर वह अपना प्रभाव दिखाती हुई सांसारिक कामोंके लिये प्रेरित करती रहती है। उसकी आज्ञा होती है और हम कार्य्यमें लग जाते हैं। वह सच्चिदानन्द सर्वव्यापक होते हुए एक-एक जीवमें विराजमान है। एक-एक जीवका चमत्कार दिखा रहा है। उसकी लीला समझमें नहीं आती।

आप लोग जानते हैं कि हिन्दू यूनिवर्सिटीके एञ्जिनियरिङ्ग कौलेजमें जो पावर-हाउस है और इस पवित्र नगरीके एक तरफ़ बना हुआ है उसका सम्बन्ध सब विशाल भवनों, कौलेजों, छात्रावासों और बँगलोंसे है। इससे सब कमरोंमें प्रकाश जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकारके बल्ब लगे हैं, पंखे चलते हैं, कुओंसे पानी खिंचता है और साएन्स विभागमें अनेक कार्य्य होते रहते हैं। इन सबका करानेवाला वही एक पावर-हाउस है। उसी तरह इस विचित्र सृष्टिका वैभव एक परमात्मा दिखा रहा है। वह सब करता हुआ द्रष्टा है, खुद ही सब देखता है। हिमालयकी सबसे ऊँची चोटी कैलाशपर और समुद्रके गम्भीर तलमें उसकी लीलाका नृत्य होता रहता है।

वह गर्भमें बच्चेकी रक्षा करता हुआ पालन करता है। वह उसकी रचना करता है। शरीरके भिन्न-भिन्न अङ्ग बनाता और उनको सुन्दर रचकर दिव्य रूपमें प्रगट कर देता है। कैसा सुन्दर बालक पैदा होता है कि उसकी बनावट देख आश्चर्य्य होने लगता है। उसके कैसे छोटे-छोटे अङ्ग-प्रत्यङ्ग बने रहते हैं। उस कारीगरकी रचना अनोखी है। वह अन्तर्जगत्में जैसा कार्य्य करता रहता है वैसा ही बाह्य जगत्के करनेमें लगा रहता है। कभी प्रातःकालकी शोभा, कभी सन्ध्याकालकी लालिमा, कभी इन्द्रधनुष और मेघाच्छन्न आकाश, कभी शरद् पूर्णिमाकी शान्ति। उसकी ज्योति सूर्य्यकी किरणोंके रूपमें, चन्द्रकी चाँदनीमें, फूलकी सुगन्धमें और भिन्न-भिन्न पदार्थोंके स्वरूपमें दृष्टिगोचर होती रहती है।

जब कोई भारी सहायता कर देता है तो हम उसके आभारको मानते, उसके कृतज्ञ होते और धन्यवाद देते हैं। तब जिस प्रभुने हमारे जीवनके लिये सब कुछ दिया है, सुन्दर शरीर, दिव्य रूप दिया, उसका उपकार मानना चाहिए या नहीं? उसका कृतज्ञ होना चाहिए या नहीं? जो हमारा जन्मदाता, पालन करनेवाला और हमारी रक्षा करनेवाला है, उसके नियमोंका पालन करना चाहिए या नहीं? जब उस परमात्माके भिन्न-भिन्न रूप हैं, भिन्न-भिन्न आकार और चमत्कार हैं तब हम क्यों उसे जाननेका प्रयत्न नहीं करते? जो व्यक्ति नाट्यशालामें भिन्न-भिन्न रूप बनाकर आता है और अपनी लीलाएँ दिखाता है, उसको भूलकर, उसके एक रूपपर मुग्ध होना और दूसरेपर घृणा करना कहाँतक अच्छा है। इसी तरह हम अपनी दृष्टि किसी बहनपर ख़राब विचारसे डालते हैं तो हम अपने-आपको कलुषित करने लगते हैं, और पूज्य भावसे देखते हैं तो हमारे हृदयमें शान्ति, पवित्रता और वासनारहित स्नेहभावना पैदा हो जाती है। मनको हम अपनेआप अपना शत्रु या मित्र बना लेते हैं। हम विचार नहीं करते कि यह बहन हमारी है। यह परमात्माकी एक विभूति है। इसलिये जैसा चाहते हो वैसा ही बर्ताव करो। यदि पवित्र विचार और शुभ भावनासे दृष्टि डालेंगे तो हमारा परम लाभ है। हम दूसरोंसे जैसा चाहते हैं पहले उनके प्रति तद्वत् बर्ताव करें तब फल स्वयं दीखने लगता है।

मानव-शरीर अनेक जन्मके पुण्योंसे प्राप्त होता है। जो शरीर देवोंको दुर्लभ है उसे व्यर्थ नष्ट कर देनेमें हमारी ही भूल है। हम अपने कर्त्तव्यको भुला दें, उसका स्मरण न करें, उसके बनाए नियमोंका पालन न करें, तब हम दुखी न हों तो कौन होगा? पञ्चतत्त्वका यह सुन्दर शरीर है। उसकी प्रभासे देदीप्यमान हो रहा है। उसके सम्बन्धसे सबसे सम्बन्धित है। उसके कारण ही एक-एक छोटे-छोटे शरीररूपी ब्रह्माण्डका चमत्कार होता रहता है। भीतर-ही-भीतर पावरहाउस काम करता रहता है और सब काम होते रहते हैं। वहीं स्टोर है, जिसमें पदार्थोंका रस एकत्र होता रहता है (ईश्वर अंश जीव अविनाशी)। उसकी कृपाको सब चाहते हैं। जब ज्योति निकल जाती है तो शरीर शीघ्र नष्ट कर दिया जाता है, उसे फेंक देते हैं। कोई देखना भी नहीं चाहता। क्या विचित्र परिवर्त्तन हो जाता है। माता, स्त्री सब उस शरीरसे मोह त्याग देते हैं।

दुनियाभरमें भिन्न-भिन्न धर्म और सम्प्रदाय हैं। सबके उच्च और शुभ नियम मानवमात्रको मान्य हैं, चाहे वे हमारे देशके हों या अन्य देशके, चाहे वे काले हों या न हों। वे सब उस शक्तिकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकते, उन्हें मानना ही पड़ता है। इसाई, मुसलमान, बौद्ध, जैन सब उसके नियमोंके अनुकूल चलते हैं। वह अनादि, सनातन, पुराण-पुरुष सब सृष्टिको चलाता रहता है।

उसी विश्वम्भर विश्वनाथकी कृपासे हम लोग इस भूमिमें उसका गुणगान कर रहे हैं। उसकी कृपासे विश्वविद्यालयका प्रादुर्भाव हुआ है। वही

अपना स्वरूप बढ़ा रहा है। सन् १९०४ में इसके बनाने का विचार हुआ। देशभरमें अपील की गई। जनता और राजा महाराजाओंने सहयता दी। सन् १९१५ में पन्द्रह लाख एकत्र हुए। सेन्ट्रल हिन्दू कौलेज् कामाक्षामें बना। अठारह वर्षकी अवधिमें विश्वविद्यालय नगरीकी रचना हो गई और होती जाती है। डेढ़ करोड़ रुपये मिल चुके। उसी परमात्मासे प्रार्थना है कि इसकी पूर्ण रचना कर दें। विश्वनाथ प्रार्थना सुनेंगे और मनोरथ पूर्ण होगा।

हम सब मिलकर इस पुण्य कार्य्यमें विद्यादायिनी माताकी सेवामें लग जावें। माताकी कीर्त्ति उज्ज्वल कर दें। विश्वको दिखा दें कि यह हमारी जननी है, यही सरस्वतीकी अमरावती है। हमारे कार्य्यमें विघ्न पड़ेंगे, रुकावटें होंगी, पर हम धैर्य्यपूर्वक अपने कर्त्तव्यमें लगे रहें, परमात्मा अवश्य सफल करेंगे। इस विश्वविद्यालयका उद्देश्य सबको विदित है। जो अध्यापक होते हैं उन्हें प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि प्राचीन धर्मशिक्षा मानेंगे, हिन्दू शास्त्रोंका पालन करेंगे, शिक्षा-प्रचार करेंगे, समाजका कल्याण करेंगे, सदाचारी रहेंगे, देशसेवाके साथ-साथ धार्मिक जीवन व्यतीत करेंगे। इन अध्यापकोंकी तरह हमारे छात्र और छात्रियाँ जीवन उज्ज्वल करनेकी प्रतिज्ञा करें। इस माताके ऋणको चुकावें और माताकी निर्मल कीर्त्ति संसारमें फैलावें। यह भारतवर्ष संसारभरमें सर्वश्रेष्ठ है और भारतवर्षमें काशी नगरी और काशी नगरीमें हिन्दू विश्वविद्यालय सर्वश्रेष्ठ है। यह संसारकी राजधानी है। संसारको धर्मज्योति देनेवाली नगरी है।

प्राचीन कालमें भारतके एक-एक गुरुकुलमें दस-दस हज़ार विद्यार्थी रहते थे। आधुनिक युगका यह प्रधान भारतीय गुरुकुल है। पहले कुलपति अपने मण्डलका पालन करते थे। हम भी तद्वत् प्रबन्ध करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। छात्रोंको स्थान, फ़ीस और शिक्षाकी सुविधा कर रहे हैं। विश्वनाथजीसे प्रार्थना है कि इस नवीन गुरुकुलमें प्राचीन आदर्शकी स्थापना कर दें। पहले कुलपति शारीरिक पोषणके साथ-साथ मानसिक पोषण करते थे, सदाचार और शिक्षा देकर जीवन उज्ज्वल करते थे। ऐसे विद्यालय अमेरिका, और इङ्गलैण्डमें बन रहे हैं। हम भी धनी सज्जनोंकी सहायतासे अपने ध्येयको पूर्ण करें।

विश्वविद्यालयमें निवास करनेका पहला कर्त्तव्य यह है कि व्यायाम करके शरीर दृढ़ बनावें। पहले स्वास्थ्य सुधारें, फिर विद्या पढ़ें। स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मन करें तो जीवनका लाभ उठा सकते हैं। नित्य सबेरे-शाम नियमसे व्यायाम करें। शामको खेलें, मैदानमें विचरें। जल्दी भोजन करें और नियमसे नित्य अध्ययन करें। धार्मिक उत्सवों, एकादशी कथा, गीताप्रवचन आदिमें उपस्थित रहें और विद्वानोंका उपदेश लें, उनका अनुभव ग्रहण करें और आशीर्वाद लें। अपनी रक्षा आप करें। समयकी पाबन्दी रक्खें। व्यर्थ समय नष्ट न करें।

यहाँसे आदर्श मनुष्य बनकर संसारको दिखा दें कि हम विश्वविद्यालयके छात्र हैं, हमारी माता चाहे दीन हो या कैसी ही हो, पर वह हमारी ही माता है। यह माता पूज्य है, हम मातासे ऐसी शिक्षा लेवें, ऐसे उपदेश सुनें जिससे सुपुत्र होनेका फल दिखा दें। कृष्ण और सुदामा साथ-साथ एक गुरुकुलमें पढ़े थे। धनी और ग़रीब दोनों साथ-साथ रहते थे, वैसे ही हम रहें। माता भेदभाव नहीं जानती। उसके लिये उच्च-नीच दोनों बराबर हैं। उसके दोनों पुत्र समान हैं। बड़े पुत्रका कर्त्तव्य है कि छोटेको योग्य बना ले। भूले भटकोंको सहारा दे। उसे सदाचारी तथा धार्मिक बनाकर योग्य भाई कर ले। उसे परमपुरुषका अनन्य भक्त और जननीका सच्चा लाल बना लें जिससे स्वच्छन्द पवित्र जीवन बनाकर लोककल्याण कर सकें।

उपदेश पञ्चामृत

अपनी पचहत्तरवीं वर्षगाँठके अवसरपर पूज्य मालवीयजीने व्याख्यान दिया था।

—सम्पादक।

हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने भाव और विचार मातृभाषामेँ प्रगट करेँ। पहले हमारा जन्म होता है और माताकी शिक्षा मिलती है। माताकी बोलीका हम अनुकरण करते हैँ। अतः मातृभाषाका गौरव रखना पहला कर्त्तव्य है, फिर अंग्रेज़ी भाषामेँ देश, काल तथा पात्रके अनुसार बोलनेका अभ्यास करेँ।

आज मैँ आप लोगोँको पञ्चामृत पान कराना चाहता हूँ। पञ्चामृतमेँ दूध, दही, घी, मधु (मिठास) और मिश्री रहती है। मैँने माताका दूध पिया, फिर गोमाताका दूध पिया, जिससे मेरा शरीर बना। माताने ही शक्ति दी जिससे मैँ बोल रहा हूँ। माताने ही आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक बल दिया है। माताकी कृपासे ही शरीरबल बढ़ा, तब बुद्धिबल पा सका। शुद्ध पवित्र भोजन, शुद्ध वस्तु सेवनसे शरीर, धन, सम्पत्ति, विद्या, पाण्डित्य और यश प्राप्त हुआ। पवित्र व्यवहार और सदाचार ही शरीर की परीक्षा है। इनके द्वारा मनुष्य पचहत्तर वर्षसे ऊपर सौ वर्षतक ही नहीँ, वरन् इससे अधिक जीनेकी शक्ति रखता है। उसे मृत्युका भय नहीँ रहता, उसमेँ तेज दिखाई पड़ता है।

हम नित्य प्रातःकाल, मध्यकाल और सन्ध्याकालकी सन्ध्यामेँ सूर्य्य भगवान्से स्तुति करते हैँ कि सौ वर्षतक सुनेँ, बोलेँ और दीन न होँ। हममेँ शक्ति हो, सुख हो, परमात्मा स्मरण रहे। इसाई धर्मवाले ईश्वरसे माँगते हैँ कि हमेँ नित्य भोजन मिले। उन्हेँ रोटी ही बहुत है। उनका आदर्श सिर्फ़ लोकसुख, व्यक्तिगत, शारीरिक सुखतक सीमित है। परन्तु हम परमात्मासे इस लोकके सुखके साथ परमानन्दकी प्रार्थना करते हैँ। हम इस जीवनसे अच्छा दिव्य जीवन चाहते हैँ। जबतक हमारा यह भौतिक शरीर है तबतक दीन न होँ, तगड़े रहेँ, इसका तात्पर्य्य यह है कि हममेँ शक्ति रहे, हमारा जीवन उज्ज्वल हो।

हम नारायणका स्मरण करते रहेँ। जिन माता पिताने जन्म दिया है, उनका स्मरण करते रहेँ तथा उनकी सेवा करते रहेँ। गुरुने ज्ञान दिया है, उस गुरुको न भूलेँ। क्योँकि गुरुने ऐसी बुद्धिका विकास किया है जो बारहसे सोलह वर्षकी अवस्थामेँ ही तेजस्वी दिखने लगते हैँ और कोई-कोई तेरह, चौदह, पन्द्रह, या सोलह वर्ष की आयुमेँ।

पञ्चामृतमेँ केवल पाँच चीज़ेँ ही नहीँ ली गईँ, किन्तु छः चीज़ेँ भी ली गई हैँ, जैसे 'ॐ नमः शिवाय' पञ्चाक्षर मन्त्र कहलाता है। यद्यपि इसमेँ छः अक्षर लिए गए हैँ। प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है कि वह परमात्माकी स्तुति करे। जिस प्रभुने जन्म दिया है उसका स्मरण करे। एक परमात्माके द्वारा शरीर मिला है, उसीसे ज्ञान प्राप्त होता है। इसी कारण सन्ध्यामेँ गायत्री मन्त्रका जप करते हैँ। गायत्री सब वेदोँकी माता है। गायत्री मन्त्रमेँ सवितारूपी परमात्माका ध्यान करते हैँ जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

जो सविता तीनोँ लोकोँको प्रकाश देता है उसे नमस्कार है। चौदह लोँकोँमेँसे प्रधान तीन लोक भूर्भुवः स्वः हैँ। जनलोकमेँ अनेक जीव-जन्तु रहते हैँ। गौरीशङ्कर पर्वत-शिखर की ऊँचाईके बराबर गहरे महासागरोँमेँ सुन्दर मछलियाँ रहती हैँ। इङ्गलैण्डके अजायबघरमेँ चार-पाँच मील नीचेकी सुन्दर मछलियाँ हैँ, उनके मस्तकपर वैसी ही सुनहली पट्टी है जैसी हमारे देशकी स्त्रियाँ बिन्दियाँ बाँधती हैँ। इतने गहरे समुद्रमेँ ऐसी सुन्दर मछलियाँ किसने बनाईं। एक परमात्मा ही सबका बनानेवाला है। इसी तरह पृथ्वीपर अनेक जीव-जन्तु हैँ। कितने सुन्दर नर-नारी हैँ, कितने फूल-पत्ते हैँ। एक ही स्थानपर गेँदा और गुलाब दोनोँ पैदा होते हैँ, पर दोनोँ अपने-अपने रूप तथा गुण रखते हैँ, अपनी-अपनी सुगन्ध रखते हैँ। बिल्ली, कुत्ते, बछड़े कैसे उछलते कूदते हैँ। उनमेँ क्या शक्ति भरी है। उनको देखकर हमारा मन उछलने लगता है। कैसे-कैसे पक्षी हैँ। मोरकी कैसी सुन्दर पूँछ है, कोयलकी कैसी सुन्दर बोली है, सुग्गेका कैसा सुन्दर कण्ठ है और उसकी चोँच कितनी सुन्दर है। इन सबका बनानेवाला कोई-न-कोई अवश्य है। इसी तरह आकाशमेँ कैसे-कैसे ग्रह चलते रहते हैँ और समय-समयपर अपना प्रकाश देते हैँ। नक्षत्र अपना भ्रमण करते रहते हैँ। सूर्य्य हज़ारोँ मील दूर है, पर उदय होते ही आठ मिनटमेँ हमारे पास उसकी किरणेँ आ जाती हैँ। ये सब ग्रह अपनी-अपनी कक्षामेँ हैँ। यदि एक भी टूटे तो संसारमेँ प्रलय हो जाय, पर वही परमात्मा सबको चला रहा है। वह सबमेँ विचरनेवाला सब कुछ देखने तथा करनेवाला है। जैसे माता अपनी सन्तानकी देखरेख करती है वैसे ही परमात्मा भक्तकी रक्षा करता है। उस भगवान्‌की सत्ता बुद्धने भी मानी है और उसे पानेके लिये नियम बताए हैँ, सदाचार, यम, नियमद्वारा हृदय शुद्ध करनेका आदेश दिया है। सच बोले, हृदय पवित्र करे, तब ज्ञानचक्षुसे परमात्माका दर्शन हो।

परमात्मा इस शरीरके अन्दर बैठा है जैसे कोई मोटरमेँ सवार हो। शरीर कपड़ेकी तरह है, जिसे हम जीर्ण होनेपर बदल लेते हैँ। आत्मा सब जीवोँमेँ एकसा है। मच्छड़मेँ वही आत्मा है। मच्छड़ कानमेँ कहता है मैँ भी वही हूँ। मक्खी उड़ती रहती है, उसे भी दुःख या सुख होता है। उस आत्माका दर्शन पवित्र हृदयवालेको हर जगह होता है। शीशेकी तरह उज्ज्वल मन करे, बुद्धिको शीशेके समान निर्मल कर ले, तब ध्यान आता है। आत्मा सूतकी तरह है जो मणियोँको गूँथे रहती है। वह कीट-पतङ्गमेँ रहती है। पहली शिक्षा इन बातोँसे मिलती है कि परमात्मा है, उसकी सत्ता नित्य है। दूसरी शिक्षा यह मिलती है कि जब परमात्मा सबमेँ है तो कौन किसे मारे, किसे कष्ट दे। कोई अपनेको कष्ट नहीँ देता। वैसे ही एक परमात्माका सब वैभव है। वही हममेँ और तुममेँ है—अब हौँ कासौँ बैर करौँ।

प्रत्येक मनुष्यको ऐसा कोई काम न करना चाहिए जो वह मातासे न कह सके। ऐसा नियम मैँने किया था। इस नियमसे मैँ कई पापोँसे बचा, मुझे शक्ति मिली और मेरा जीवन उत्साह और दिव्य ज्योतिसे उज्ज्वल होता गया।

जो काम करे वह परमात्मा कृष्ण भगवान्‌को अर्पण कर दे। ईश्वरको पवित्र भाव, पवित्र विचार अर्पण किए जाते हैँ। झूठे व्यवहार परमात्माको अच्छे नहीँ लगते। ईश्वर सत्यका प्रेमी है। पाँचवीँ शिक्षा मुझे यह मिली कि ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन करे। सब धर्मोँसे हिन्दू धर्ममेँ एक विशेषता यह है कि वह ब्रह्मचर्य्यका महत्त्व बताता है। ब्रह्मचर्य्य जीवन है। ब्रह्मचर्य्य-व्रत पालनकर पचीस वर्षतक विद्या प्राप्त करे। सन्ध्या, नित्यकर्म और ईश्वरप्रार्थना कर शरीर और आत्माको पुष्ट करे। पचीससे पचास तक गृहस्थ बने, कुल-मर्य्यादाका पालन करे, माता-पिताकी सेवा करे, अपनी पत्नीके सिवाय अन्य स्त्रीपर मातृभाव रक्खे। सन्तान पैदा करे, सामाजिक जीवन बितावे, अतिथिसत्कार, श्राद्ध, तर्पण, कुटुम्बपालन

करे, पचाससे पचहत्तर तक वानप्रस्थ रहे। गृहस्थीका भार सन्तानको दे और उनको शिक्षा देकर उज्ज्वल जीवन करे। परमात्माकी ओर लक्ष्य बढ़ावे। पचहत्तर वर्षके उपरान्त संन्यासी हो। लोकसुखसे विमुख हो। परमात्माका चिन्तन और ध्यान करे।

ब्रह्मचर्य्यका आजीवन पालन करे। केवल सन्तान-प्राप्तिके लिये विवाह कहा गया है, विषय भोगके लिये नहीँ। सब जीव भोग-विलासमेँ लिप्त रहते हैँ, केवल मनुष्य विवेकसे अपना जीवन उज्ज्वल करता है, प्राणायाम कर मन और इन्द्रियोँको रोकता है। मनुष्य परोपकार कर अपना और दूसरेका हित करता है। एक बार मेरे बच्चोँको एक अंग्रेज़ने आपत्तिसे बचाया, मैँ उसके उपकारको नहीँ भूल सकता।

यदि पाप किया है तो प्रायश्चित्त कर ले। आगे फिर पाप न करे। सवेरे और शामको सन्ध्याकर ईश्वरसे प्रार्थना कर ले। जैसे स्नानसे शरीर शुद्ध होता है वैसे ही भजनसे हृदय। सबसे पहले धर्मभार और परमात्माका स्मरण, दूसरा काम माता-पिता और गुरुकी सेवा, तीसरा काम प्राणिमात्रका लाभ, चौथा देशसेवा और तब जगत्‌की सेवाका भार ले।

सत्येन ब्रह्मचर्य्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

सत्य बोले, ब्रह्मचर्य्य व्रत प्रालन करे, व्यायाम करे, विद्या पढ़े, देशसेवा करे और लोकमेँ सम्मान प्राप्त करे। यह अन्तिम उपदेश हरएक छात्रको हमेशा स्मरण रखना चाहिए और इसके अनुसार आजीवन आचरण करना प्रत्येक व्यक्तिका धर्म है।

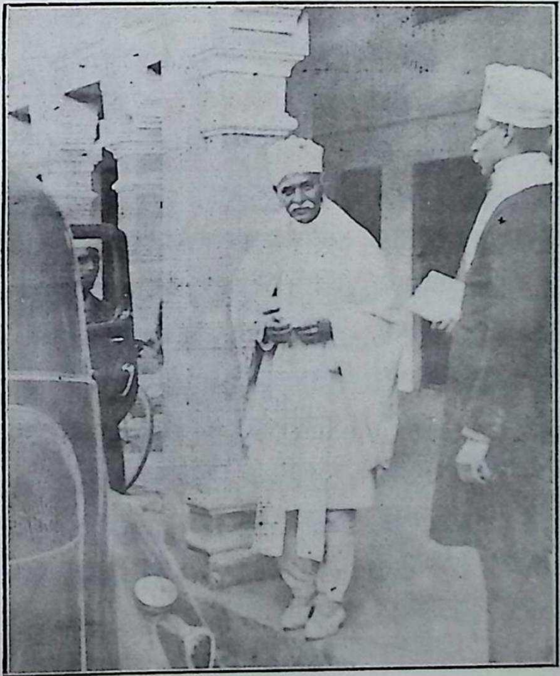

पूज्य मालवीयजी अपनी पचहत्तरवीं वर्षगाँठके उत्सवमेँ जानेके लिये अपने बङ्गलेके बाहर निकले हैँ।

विद्यार्थियोंसे

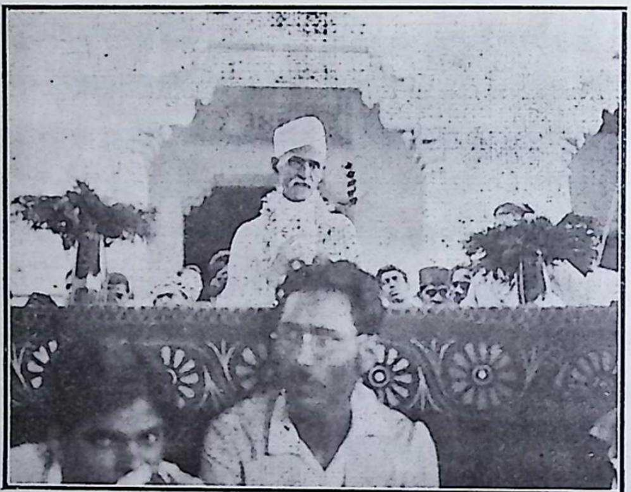

हिन्दू विश्वविद्यालयमेँ १० सितम्बर, १९३५ को विद्यार्थियोँ और अध्यापकोँकी विशाल सभामेँ भाषण।

—सम्पादक।

यह शरीर परमात्माका मन्दिर है। इसमेँ ईश्वरका निवास है। सदैव उसको अपने भीतर अनुभव करो और इस मन्दिरको कभी अपवित्र न होने दो। इस मन्दिरको अपवित्र बना देनेवाली कुछ बातेँ हैँ जिनसे सदा बचो। भूलकर भी, स्वप्नमेँ भी असत्य मुँहसे न निकले, इसकी कोशिश बराबर करो। यदि कहीँ भूलसे झूठ निकल जाय तो उस असत्यके लिये प्रार्थना करो, क्षमा माँगो, सच्चे और पवित्र हृदयसे उसके चरणोँमेँ गिरो और पुनः असत्य न बोलनेका व्रत लो। उसे अपना प्राण देकर भी पालो।

इस पवित्र मन्दिरका रक्षक ब्रह्मचर्य्य है। ब्रह्मचर्य्य ही हमेँ वह आत्मबल देता है जिसके द्वारा हम संसारको जीत सकते हैँ। ब्रह्मचर्य्यकी ही यह महत्ता है कि मेघनादको परास्त करनेके लिये लक्ष्मण जैसा ब्रह्मचारी चुना गया। अर्जुनने भी ब्रह्मचर्य्यके बल जयद्रथको हराया था। महावीर, भीष्म, अर्जुन, लक्ष्मण, शङ्कर ब्रह्मचर्य्यकी मूर्त्ति हैँ। हम ब्रह्मचर्य्यके द्वारा अपने भीतर वह विद्युत् शक्ति भर सकते हैँ, जिसे प्राप्त कर हम विश्वविजयी बन सकते हैँ। लक्ष्मण और अर्जुनको सदा ध्यानमेँ रक्खो। ब्रह्मचर्य्यके पालन करनेमेँ उनका स्मरण बड़ी सहायता देगा। भारतवर्षका मस्तक इन्हीं ब्रह्मचारियोँने ऊँचा रक्खा है और आज इसकी रक्षाका भार तुम्हारे सिरपर है। महापुरुषोँके चित्र अपने कमरेमेँ लगा लो और उन्हीँके उपदेश और आचरणपर अपने मनको जमाओ। हृदयको कभी कलुषित न होने दो। मनको सदा प्रफुल्ल और उल्लसित रक्खो। तुम लोग धर्मके सैनिक हो, धर्मकी रक्षाके लिये सरस्वतीके सैनिक हो।

सैनिकका आदर्श अपने सामने रखो। प्रातःकाल पाँच बजेके पूर्व अवश्य बिस्तर छोड़ दो और नित्यकर्मादिसे निवृत्त होकर एकान्तमेँ भगवानसे प्रार्थना करो।

आह्निक (डायरी) लिखनेसे मनुष्यको उन्नतिमेँ बहुत सहायता मिलती है। संसारके अनेक महापुरुषोँके चरित्रमेँ यह पाओगे कि वे अपनी दुर्बलताको डायरीमेँ नोट करते जाते थे और उसे दूर करनेके लिये भी अथक प्रयत्न करते जाते थे। डायरीमेँ अपना हृदय खोलकर रख दो। वहाँ अपने सम्मुख भगवान्‌को समझकर अपनी बुराइयोँ, दोषोँ और अपराधोँके लिये पाश्चात्ताप करो और परमात्मासे क्षमा माँगो। तुम्हारे जीवनको पवित्र, सुखी, नियमयुक्त बनानेके लिये गीताका यह श्लोक बहुत लाभदायक सिद्ध होगाः—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

सभी बातोँमेँ संयम सीखो। वाणीमेँ संयम, भोजनमेँ संयम रक्खो और अपने सभी कार्य्योँमेँ शीलवान् बनो। शील ही से मनुष्य मनुष्य बनता है। शीलं परम् भूषणम्। शील ही पुरुषका सबसे उत्तम भूषण है।

कठोर काममेँ अनवरत लगे रहनेका अभ्यास डालो। पढ़ते समय सारी दुनियाको एक ओर रख दो और पुस्तकोँमेँ, लेखककी विचारधारामेँ डूब जाओ। यही तुम्हारी समाधि है, यही तुम्हारी उपासना है और यही तुम्हारी पूजा है। कठिन परिश्रम करना सीखो। ख़ूब गड़कर, जमकर मेहनत करो और अपने उच्च और पवित्र आदर्शको कभी मत भूलो। शास्त्र और शस्त्र, बुद्धिबल और बाहुबल, दोनोँका उपार्जन करो। सादा जीवन और उच्च विचारका आदर्श न भूलो। हिन्दू विश्वविद्यालयकी संस्थापना तुम्हारे भीतर शारीरिक बलके साथ धर्मकी ज्योति और ज्ञानका बल भरनेके लिये हुई है, इसे सदैव स्मरण रखो। स्त्रीजातिका सदा आदर करो। जो बड़ी हैँ उन्हेँ माताके समान देखो। जो बराबर हैँ उन्हेँ बहनके समान और जो छोटी हैँ उन्हेँ पुत्रीके समान देखो। उनके प्रति कभी कोई रूखापन या अपराध न करो।

हिन्दू विश्वविद्यालयकी यह फैली हुई भूमि, हरी मखमली दूबसे भरे सुहावने बड़े-बड़े खेलके मैदान, स्वच्छन्द उन्मुक्त वायु, माँ पतितपावनी गङ्गाका पुनीत पावन तट, संसारमेँ कहीँ भी ऐसा दूसरा स्थान तुम्हारे लिये नहीँ। प्रकृतिके साथ जीवनको मेलमेँ लानेवाला, इतना विशाल क्षेत्र संसारमेँ अन्यत्र है तो मुझे मालूम नहीँ। यहाँके पवित्र वातावरणसे हृदयको पवित्र बना लो, मनको विमल बना लो, आत्माको शुद्ध कर लो, संसारमेँ जहाँ जाओगे वहाँ मानके अधिकारी होओगे।

हिन्दू विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोँके लिये दिए गए ये उपदेश समस्त विद्यार्थी-जगत्‌के लिये लाभप्रद हैँ। आशा है विद्यार्थी-समाज इससे लाभ उठावेगा।

* * *

राष्ट्रभाषा

१० अक्तूबर सन् १९१० को प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन काशीमेँ माननीय पण्डित मदन मोहन मालवीयजीने सभापतिके आसनपर सुशोभित होकर निम्नलिखित वक्तृता दी।

—सम्पादक।

प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

भाइयो! मुझको बहुत लोग जानते हैँ कि मैँ वाचाल हूँ, लेकिन मुझको जब काम पड़ता है तो मैँ देखता हूँ कि मेरी वाणी रुक जाती है। यही दशा इस समय मेरी हो रही है। प्रथम तो जो अनुग्रह और आदर आप लोगोँने मेरा किया है उसके भारसे ही मैँ दब रहा हूँ, इसके उपरान्त मेरे प्रिय मित्रोँ और पूज्य विद्वानोँने जिन शब्दोँमेँ मेरे सभापतित्वका प्रस्ताव किया है उसने मेरे थोड़ेसे सामर्थ्यको और भी कम कर दिया है। सज्जनो! मैँ अपनेको बहुत बड़भागी समझता यदि मैँ उन प्रशंसा वाक्योँके सौवेँ हिस्सेका भी अपनेको पात्र समझता जो इस समय इन सज्जनोँने मेरे विषयमेँ कहे हैँ। हाँ, एक अंशमेँ मैँ बड़भागी अवश्य हूँ। गुण न रहनेपर भी मैँ आपकी मण्डलीमेँ गुणीके समान सम्मान पाता हूँ। इसीके साथ मुझको खेद होता है कि इतने योग्य विद्वानोँके रहते हुए भी मैँ इस पदके लिये चुना गया। फिर भी मैँ आपके इस सम्मानका धन्यवाद करता हूँ जो आपने मेरा किया है। मेरा चित्त कहता है कि इस स्थानमेँ उपस्थित होनेके लिये हमारे हिन्दी संसारमेँ अनेक विद्वान् थे और हैँ जिनमेँ कुछ यहाँ भी उपस्थित हैँ और जिनको यदि आप इस कार्य्यमेँ संयुक्त करते तो अच्छा होता और कार्य्यमेँ सफलता और शोभा होती। अस्तु, बड़ोँसे एक उपदेश मैँने सीखा है। वह यह है कि अपनी बुद्धिमेँ जो आवे उसे निवेदन कर देना। मित्रोँकी आज्ञा, मित्र-मण्डलीकी आज्ञा पालन करना मैँ अपना परम धर्म समझता हूँ। अनुरोध होनेपर अन्तमेँ मैँने अपने प्यारे मित्रोँसे प्रेमपूर्वक निवेदन किया है कि साहित्य-सम्मेलन सभापति होनेका सौभाग्य मुझे प्रदान किया गया है, उसके कर्त्तव्यका पालन मेरा परम धर्म है। मैँ आपसे दूर रहता हूँ। तो भी मैँ कदाचित् निर्भय कह सकता हूँ कि हिन्दी साहित्यका रसपान करनेमेँ मुझको अन्य मित्रोँकी अपेक्षा कम स्वाद नहीँ मिलता। उसके स्वाद लेनेमेँ मैँ अपने किसी मित्रसे पीछे नहीँ हूँ। किन्तु अनेक कामोँमेँ रुका रहनेके कारण मैँ आपके बाहरी कामोँका करनेवाला सेवक हूँ। इस कामके लिये मैँ अपनेको कदापि योग्य नहीँ समझता हूँ और इस अवसरपर जिसमेँ आपको पूर्व उन्नतिके दृश्योँको देखना चाहिए था, किसी और ही मनुष्यको इस स्थानपर बैठना चाहिए था। इसके योग्य मैँ किसी प्रकार नहीँ।

अब यदि मैं इस स्थानमें आकर आपकी आज्ञा पालन करनेका यत्न न करूँ तो उससे अपराध होता है। केवल इसी कारण मैं इस सम्मानका धन्यवाद देता हूँ और इस समय इस स्थानमें आप लोगोंकी सेवा करनेको तैयार हुआ हूँ।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके विषयमें जो मतभेद हो रहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं, उसे स्वीकार करना चाहिए। हठधर्मी अच्छी नहीं। अनेक विद्वानोंके मतसे यह समय सम्मेलनके लिये उपयुक्त नहीं। नवरात्र दुर्गादेवीके पूजनका समय है, नवरात्रमें सरस्वती शयन करती हैं। प्राचीन रीतिके अनुसार तीन दिन सरस्वती-शयनके दिन हैं। यह नियम आर्य्य जातिने इसलिये रक्खा है कि तीन सौ सत्तावन दिन संसारके व्यवहार करो, अपने मस्तिष्कको पीड़ा दे लो, किन्तु जातिकी रक्षाके लिये इन तीन दिनोंमें लेखनी मत उठाओ, पत्रा मत पढ़ो, इन दिनों सरस्वती शयन करती हैं। ऐसे समयमें मेरे मित्रोंने आप महाशयोंको इधर उधरसे-खींचकर बुलाया है और इसके लिये मेरी बुद्धिमें आता है कि मुझको आपके सामने उनकी ओरसे उत्तर देना चाहिए। इसमें मैं इतना ही कहूँगा कि जितना मतभेद हो उसे आपको स्वीकार करना चाहिए और जिन लोगोंका मत नहीं मिलता उनके मतका आदर करके उनसे यही कहना चाहिए कि अबसे यह समय उन्नतिका होगा। इस विचारसे मेरी बुद्धिमें यह आता है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके लिये यह समय बहुत ही उपयुक्त है। हिन्दीकी दशा इस समय शोचनीय हो रही है। हिन्दी-साहित्यके इस शयनकी अवस्थामें सरस्वती-शयन कैसा? इस ध्यानसे हमारे हिन्दी-प्रेमियोंमें बहुतसे लोगोंका यदि यह विचार है कि सरस्वती शयन कर रही हैं तो इससे क्या होता है? हम लोग इस सम्मेलनमें उपयुक्त यत्न कर सरस्वतीको जगाएँ। बात भी ऐसी ही है। जहाँ रात होती है वहीं सूर्य्यनारायणकी लालिमा दिखाई देती है। रातके अन्धकारके पश्चात् प्रातःकाल होता है तो उसको देखना अच्छा लगता है। ऐसी अवस्थामें इस सरस्वती-शयनका समय मुझको आशा देता है कि हिन्दी-भाषाके शयनके समयमें जब साहित्य-सम्मेलन होता है तब इस सरस्वती-शयनके उपरान्त जैसे विजयादशमीका दिन आता है, वैसे ही मुझको विश्वास है कि वही हिन्दी-भाषा और साहित्यके जागनेका समय निकट है। प्राचीन समयसे लोग दुर्गा अष्टमीमें विद्याकी वृद्धिके लिये देवीकी उपासना करते आते हैं। जिस तरह पहले उसी तरह आज भी हिन्दुस्तानमें हिमालयके ऊँचे शिखरसे लङ्काके छोरतक सहस्रों, करोड़ों हमारे भाई इस नवरात्रमें दुर्गाजीकी स्तुति करते हैं। एक ही विद्या है, एक ही भाव है, केवल भाषा इसे पृथक् करती है तो इससे क्या हो सकता है? जब हम अपनी भाषाके साहित्यकी उन्नतिके दुःखमें पड़े हुए हैं तब हमें क्या उचित नहीं कि इसकी उन्नतिके लिये सब तरहसे यत्न करें और उनके फल उपलब्धकर उनका प्रकाश करें? (हर्षनाद) मुझे आशा और विश्वास है कि आपके चित्तमें मेरी बातें आ गई होंगी। और बातोंमें यह बात भी मुझे निवेदन करनी है कि इसके उपरान्त विजयादशमीका दिन आता है। यह विजयादशमी वही विजयादशमी है जिसमें भगवान् रामचन्द्रजीने राक्षसोंका नाश करके देशमें फिरसे सुख-शान्तिकी मन्दाकिनी बहाई थी। यह वही विजयादशमी है जिसकी गूँज आज भी हिन्दुस्तानके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक सुनाई पड़ती है, जिसकी प्रतिमाका अनुकरण आज भी हिन्दुस्तानके नगर-नगरमें लीलाओंद्वारा किया जाता है। देशी राज्योंमें उसका अनुकरण किया जाता है। जो कुछ पहले होता था, वही आज भी हो रहा है। पुराने समयमें भगवान् रामचन्द्रजीने जो किया, अब वह देशी राज्योंमें होता है। वही मारू बाजा बजता है, वही आर्य्योंके राजा और महाराजाओंके विजयका डङ्का बजता है। अब

विजय नहीँ है, उनका शब्द है, उसे तो सुन लीजिए। आज भी केसरिया जामा पहन राजे और महाराजे अपने अपने गढ़ोँसे निकलते हैँ। शक्तिके बढ़ानेमेँ आज भी इस समयकी प्रतिभा आपको दिखाई देती है। शक्तिने ही ये बातेँ कीँ और मेरे दुर्बल शरीर और चित्तमेँ बलका सञ्चार किया। मैँ आशा करता हूँ कि मेरे और भाइयोँके चित्तमेँ भी इसी तरह बलका सञ्चार हुआ होगा। ऐसी दशामेँ हम लोग मिले हैँ और मैँ आशा करता हूँ कि जो विरोध इस समयके ठन जानेका हुआ है उसको अब इसी वक्तृताके साथ समाप्त कर दीजिए। हम सब यही आशा करते हैँ कि सङ्कटके समयमेँ बड़े कार्य्य हो जाते हैँ और इस दृष्टिसे जो कुछ भूलचूक हुई हो उसको भुलाकर एक स्वरसे, एक उद्देश्यसे, हिन्दीकी उन्नतिके विचारसे सम्मेलन होना चाहिए।

सम्मेलन हुआ है सम्मेलनके लिये। इसमेँ विजयादशमीके उत्सव मनानेका कुछ प्रयोजन नहीँ। इन दिनोँ जितनी लीलाएँ होती हैँ उनका उद्देश्य यही है कि एक दिन भारतवर्षमेँ ऐसा था कि विजयका डङ्का बजता था। इस दशहरेमेँ इस सम्मेलनका भी यही उद्देश्य है और बहुत कुछ सम्भावना इस बातकी होती है कि कोई रोग इस देशमेँ आ गया हो तो सब एकत्र होकर उसे मिटानेका प्रयत्न करेँ। गाँव-गाँव और ज़िले-ज़िलेके लोग एक स्थानमेँ बैठकर परामर्श करेँ कि किस प्रकार ऐसी बला टल सकती है। दूसरा सम्मेलन इस श्रेणीका होता है कि काम चल रहा है लेकिन अच्छी तरह नहीँ चल रहा है। इसलिये यद्यपि कुछ सन्तोषका विषय है तथापि विशेष रूपसे एकत्र होकर इस बातका विचार किया जाता है कि कार्य्य कैसे चले। मेरी बुद्धिमेँ तो हिन्दीका ऐसा सौभाग्य नहीँ है। हम लोग वर्त्तमान समयमेँ जो मिले हैँ वह इस दूसरी श्रेणीका सम्मेलन है। कुछ लोगोँके मतमेँ हमारी उन्नति कुछ भी सन्तोषजनक नहीँ है। अन्य लोगोँके विचार ऐसे हैँ कि यह कहना ठीक नहीँ है। फिर भी प्रत्येक दशामेँ यह सम्मेलन आवश्यक हो गया है। अब इस सम्मेलनमेँ यदि हम मिले हैँ तो दूसरी या तीसरी कक्षा जिसको ले लीजिए, उसीके अनुसार पहले यह विचार कीजिए कि हमारी अवस्था क्या है। जब कोई वैद्य बुलाया जाता है तब निर्दिष्ट स्थानमेँ पहुँचकर पहले वह यह जानना चाहता है कि रोगीकी दशा क्या है, रोग कहाँतक बढ़ा है, कितनी आशा है, कितना घटा है, रोगीमेँ कितना बल आया है। यह आवश्यक है कि हम पहले हिन्दीकी दशाका विचार करेँ। किन्तु इससे पहले कि हम इस बातका विचार करेँ, हमारे एक मित्रने प्रश्न किया है कि पहले यह तो बतलाइए कि हिन्दी है क्या? यह बड़ा टेढ़ा प्रश्न उठा है कि हिन्दी क्या है। ऐसी दशामेँ पहले मैँ इसीको लेता हूँ। मुझको दुःख है कि मैँ न संस्कृतका ऐसा विद्वान् हूँ कि इस विषयमेँ प्रमाणके साथ कह सकूँ, न भाषाका ऐसा विद्वान् हूँ कि इस विषयकी चर्चा चलाऊँ। किन्तु मैँ आपके सम्मुख निवेदन करता हूँ कि जब प्रमाणकी रीतिसे कोई कुछ न कह सके तो उसका धर्म है कि वह अपने विचारोँको उपस्थित करके जो प्रमाण दे सकता है उन्हींको दे। हिन्दीके विषयमेँ बहुतसा विवाद है। हिन्दीके सम्बन्धमेँ हमारे देशके लिखनेवालोँमेँ जो हुए तो हुए ही हैँ, हमारे यूरोपियन लिखनेवालोँमेँ विलायतके डाक्टर ग्रियर्सन एक बड़े शिरोमणि हैँ। (हर्षध्वनि) आपने हिन्दीकी बड़ी सेवा की है और हिन्दीकी उन्नतिमेँ बड़ा यत्न किया है। आपने एक स्थानमेँ लिखा है कि हिन्दी सन् १८०३ ई० के लगभग लल्लूलालजीसे लिखवाई गई। और भी लोगोँने इसी प्रकारकी बात कही है। जो विदेशी हिन्दीके विद्वान् हैँ वे तो यही कहते आए हैँ कि हिन्दी कोई भाषा नहीँ है। इस भाषाका नाम उर्दू है। इसीका नाम हिन्दुस्थानी है। ये लोग यह सब कहेँगे, किन्तु यह न कहेँगे कि यह भाषा हिन्दी है (लज्जा)।

लज्जा तो कुछ नहीँ है, विचारकी वात है। सज्जनो, ऊँचे पदपर प्रतिष्ठित कितने ही अंग्रेज़ अफ़सरोँने मुझसे पूछा था कि हिन्दी क्या है? इस प्रान्तकी भाषा तो हिन्दुस्थानी है। मैँ यह प्रश्न सुनकर दङ्ग रह गया। समझानेसे जब उन्होँने स्वीकार नहीँ किया तब मैँने कहा कि जिस भाषाको आप हिन्दुस्थानी कहते हैँ वही हिन्दी है। अब आप कहेँगे कि इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ यह है कि न हमारी कही आप मानेँ, न उनकी कही हम। इसमेँ न्यायपूर्वक विचार कीजिए। डाक्टर ग्रियर्सनका क्या कहना है? मैँ उनका सम्मान करता हूँ किन्तु उनकी वातपर न जाकर हमेँ यह देखना चाहिए कि यथार्थ तत्त्व क्या है। यहाँ इस मण्डलीमेँ बड़े-बड़े विद्वान् और विचारवान् पुरुष हैँ, वे इसे अच्छी रीतिसे कह सकेँगे। इसके विचारनेमेँ हमेँ अपने विचारोँका दिग्दर्शन करना चाहिए। इसमेँ बहुत कुछ अन्तर हो सकता है। किन्तु मूलमेँ कोई अन्तर हो नहीँ सकता। हिन्दी भाषाके सम्बन्धमेँ विचार करते हुए सबसे पहले संस्कृतकी आकृति एक बार ध्यानमेँ लाइए, हिन्दी भाषाकी आकृतिको ध्यानमेँ लाइए। इसके पीछे आप विचारिए कि हिन्दी कौन भाषा है और उसकी उत्पत्ति कहाँसे है? संस्कृतकी जितनी बेटियाँ हैँ, उनमेँ कौनसी बड़ी बेटी है। संस्कृतकी बेटियोँमेँ हिन्दीका कौनसा पद है? इसका संस्कृतसे क्या सम्बन्ध है? संस्कृत, जैसा कि शब्द कहता है, नियमोँसे बाँध दी गई है। जो व्यर्थ बातेँ थीँ वे निकाली गईं, अच्छी-अच्छी बातेँ रक्खी गईं, नियमोँ और सूत्रोँसे बँधे शब्द रक्खे गए, जो शब्द नियम-विरुद्ध थे उनके लिये कह दिया गया कि ये नियमसे बाहर हैँ। नियमबद्ध शब्दोँका व्याकरणमेँ उल्लेख किया गया। आप जानते हैँ कि संस्कृतसे प्राकृत हुई। जो लोग यह कहते हैँ कि संस्कृत कभी बोली नहीँ जाती थी, वे संस्कृतको नहीँ जानते। वे थोड़ी प्राकृत पढ़ेँ तो उनको मालूम हो जायगा कि प्राकृत तो बोली नहीँ जा सकती। संस्कृतके बोले जानेमेँ कोई सन्देह नहीँ। संस्कृतसे प्राकृत हुई। उसके पीछे शौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री। कदाचित् आपके ध्यानमेँ होगा कि दण्डी आठवीँ शताब्दिमेँ थे। अपने समयमेँ उन्होँने यह लिखा था कि भारतमेँ चार भाषाएँ हैँ—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और भाषा। ये ही चार भाषाएँ चली आई हैँ।

अब आपको मालूम हो गया होगा कि जो महाराष्ट्री भाषा थी तथा मागधी भाषा थी, इनके वीचमेँ बहुत भेद था। मेरे शब्दोँपर ध्यान दीजिए। इन भाषाओँमेँ संस्कृत भाषाके शब्दोँके रूपका अनुरूप आपको मिलता है। यह जितना हिन्दी भाषामेँ मिलता है, उतना किसी दूसरी भाषामेँ नहीँ मिलता। संस्कृतके शब्दोँको ले लीजिए, अब देखिए कि हिन्दीमेँ यह बात कहाँसे आई, संस्कृतसे इन भाषाओँका क्या सम्बन्ध था। शकुन्तलामेँ "तुक मणि दवे बलीयममणाणि" कहाँसे आया होगा। एक शब्दको आप लीजिए। उसको देखिये कि प्राकृतमेँ उसका क्या रूप है और भाषामेँ क्या हुआ। इस प्राकृतको देखनेसे आपको मालूम होगा कि संस्कृत शब्दोँका प्राकृत रूप क्या था और क्या हो गया। भाषाके कितने ही रूप आपको मिल सकते हैँ। परन्तु यह बात मेरे कहनेसे न मानिए। मेरे सामने इस समय चन्द कविके रासोमेँ बहुतसे रूप ऐसे हैँ जिनको इस मण्डलीमेँ पण्डित सुधाकरजी और दो-तीनको छोड़कर बहुत कम लोग जानते हैँ। मैँ तो उसका चौथाई भी नहीँ समझ सकता। मैँ जो देखता हूँ वह आपके सामने उपस्थित करता हूँ। आप ही देखकर यह कहेँ कि कौन ठीक है। संस्कृतसे पाली, पालीसे प्राकृत और प्राकृतसे तीसरा रूप हिन्दी दिखाई दिया। अब आप थोड़ेसे शब्दोँपर विचार करेँ। अग्गका आग और यग्गका याग हो गया। चन्दके काव्यमेँ तुलसीदासकी एक चौपाई यदि मैँ बीचमेँ

रख दूँ तो बहुत सज्जनोँको यह मालूम होगा कि दोनोँके बीचमेँ कितना अन्तर है। संवत् ११२५ मेँ चन्द कविने इसको लिखा। उनकी भाषामेँ हम जितने रूप देखते हैँ वे रूप इस भारतवर्षके किसी दूसरी भाषाके रूपसे नहीँ मिलते। हिन्दीसे उतने ही मिलते हैँ जितनी आजकी अंग्रेज़ी चौसरकी अंग्रेज़ीसे मिलती है। ऐसी दशामेँ हिन्दी भाषा क्या है, इसका उत्तर यह है कि हिन्दी भाषा वह है जिसमेँ चन्द कविसे लेकर आजतक हिन्दीके ग्रन्थ लिखे गए। यह सही है कि पहले इसका नाम भाषा था, हिन्दी भाषा या सूरसेनी।

क्या आप भाषा की उत्पत्ति पूछते हैँ? कितने ही लोगोँको अपनी माँका नाम मालूम नहीँ। बहुतसी औरतेँ ऐसी हैँ जिनको अपने लड़कोँका नाम मालूम नहीँ। प्रयाग और बनारसके कितने ही बालकोँका नाम सिर्फ़ बचा है। पिता और दादाके नामका पता लगाना और भी कठिन है। नाम रखते हैँ किन्तु उसको याद नहीँ रखते। अस्तु, देखना चाहिए कि चन्दके समयसे जो भाषा लिखी जाती है वह एक है, उसीको हम हिन्दी भाषा कहते हैँ। कभी-कभी लोग उसका नाम बदल देते हैँ। भीष्मको लीजिए। देवदत्त उनका नाम था। जब उन्होँने पिताकी प्रसन्नताके लिये राज्य त्याग किया, तो ब्रह्मचर्य्य अङ्गीकार कर कहा कि हम विवाह न करेँगे, केवल इसलिये कि पिता प्रसन्न होँगे। उस दिनसे उनका नाम भीष्म हुआ, छठीके समय नहीँ हुआ था। इसी तरह भाषाका भी नाम बदलता है। पहले कुछ था, अब कुछ है। भाषाका नाम पहले और था पर अब तो हिन्दी कहकर इसे पूजते हैँ, प्रेम करते हैँ। इस हिन्दी भाषाका दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होगा कि हिन्दी भाषाकी और भाषाओँके साथ तुलना करनेसे क्या पता लगता है। इसमेँ भी मैँ इतना कहूँगा कि हिन्दी सब बहनोँमेँ माँकी बड़ी और सुघर बेटी है। संस्कृतके वंशकी बेटियोँके बाईस करोड़ बोलनेवाले हैँ, उनमेँ पाँच या छः करोड़ मन्द्राजमेँ तामील और तेलगू बोलते हैँ। उनकी भाषामेँ संस्कृतका भाण्डार भरा हुआ है, उनके वाक्योँमेँ संस्कृतकी लड़ी-की-लड़ी आती है। फलतः संस्कृतकी ही महिमा इस देशमेँ गाज रही है और बहुत दिनोँतक गाजेगी। अब रहा कि इन बहनोँमेँ कौन छोटी और कौन बड़ी है? यह पक्षपात है कि हमारी भाषा हिन्दी है और हम हिन्दू हैँ, हिन्दीका पक्ष करेँ या हमारा विचार है कि (छोटे मुँह बड़ी बात होती है, मगर चित्तमेँ जो कुछ है कह देँगे) दण्डी कविने भी उसमेँ पक्षपात किया है। परन्तु हिन्दी भाषाको यदि मैँ आपके सामने यह कहूँ कि यही सब बहनोँमेँ माँकी अच्छी पहली पुत्री है, अपने पिता और माताकी होनहार मूर्त्ति है तो अत्युक्ति न होगी। शौरसेनीमेँ शब्द बँधे हुए हैँ, महाराष्ट्रीमेँ उखड़ते-पुखड़ते, नाचते-कूदते जाते हैँ। आपको हिन्दी भाषामेँ अनेक शब्द मिलते हैँ जिनके सात-सात रूप हैँ। भारतीय सभी भाषाओँमेँ हिन्दी शब्दोँकी झोली-की-झोली भरी पड़ी है। हाँ, यह मानना पड़ेगा कि इनके रूपमेँ बड़ा परिवर्त्तन है। जैसे कि बनारसके नीचे बङ्गालमेँ चलिए तो आगे चलकर विहारमेँ बिहारी मिलेँगे, बङ्गालमेँ जाइए तो लकारोँका सङ्गीत गाया जाता है। हरद्वारसे जब गङ्गा चलीँ और उनके सङ्गमेँ जो पत्थरके टुकड़े बहते चले वे हरद्वारसे काशीतक आते-आते रगड़ते-झगड़ते कोमल और चिकने हो गए। इसी प्रकार यह विहारमेँ गाज़ीपुर व बनारससे नीचे रगड़कर प्रिय कोमल स्वरोँके हो गए। जब आप बङ्गालेमेँ पहुँचे तब आपको कोमलताका घर मिला। वहाँ आपकी भाषा भी कोमल दिखाई दी। यहाँकी भाषाका रूप देखकर हमारे योरोपियन विद्वान् और देशी विद्वान् भी भ्रममेँ पड़ गए हैँ कि क्या हिन्दी, महाराष्ट्री, शौरसेनी, पञ्जाबी और बङ्गला सब वस्तुतः एक हैँ? हमेँ भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि इनके बीच बड़ा अन्तर हो गया।

संस्कृत शब्दोंका हिन्दीमें ही कितना परिवर्त्तन हो गया है। जो कर्ण था वह कान, नासिका थी वह नाक है, जो हस्त था वह हाथ है, पानीयका पानी है। यह परिवर्त्तन सभी जगह दिखाई देता है। लक्ष्मीको भाषावालोंने लिखा है लच्छमी या लख्खी। लच्छमी कहनेमें जो प्रेम आया वह लक्ष्मी कहनेमें नहीं। जैसे-जैसे बङ्गालकी ओर बढ़ी वैसे-ही-वैसे कहा गया कि इसमें जितना कर्कशपन है वह काट दो। अब बेटियोंमें बड़ा रूपान्तर हुआ। यहाँतक तो मैंने भाषाकी उत्पत्तिके विषयमें कहा है। इसके सिवाय मैं यह निवेदन करता हूँ कि जितने और प्रमाण हैं जिनसे भाषाकी अवस्थाको जान सकते हैं, अब उसको जाँचना चाहिए। भाषाके रूपकी शब्दमाला क्या है? इन दोनोंके विचारोंसे हिन्दी भाषा ही प्राचीन है। डाक्टर ग्रियर्सनने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि हिन्दी संस्कृतकी बेटियोंमें सबसे अच्छी और शिरोमणि है। आप कहेंगे कि इसमें कौन फूहड़ मालूम होती है। यह मेरा कहना आवश्यक भी नहीं है। यह समझा जा सकता है कि मैं हिन्दू हूँ और पक्षपातसे कहता हूँ।

आज मैं अपने बङ्गाली, हिन्दुस्थानी, और गुजराती भाइयोंसे पुकारकर कहता हूँ कि भाषा एक चली आई और संस्कृत भी एक है। जब प्राकृत हुई तब अङ्ककी प्राकृत हो गई किन्तु मूलमें एक ही रही। जितनी भाषाएँ हैं हमारी हैं। बङ्गाली हमारी भाषा, पञ्जाबी हमारी भाषा और गुजराती हमारी भाषा है। अब इसके विचारसे कौन किसको कहे कि कौन बुरी है।

हिन्दी अपनी बहनोंमें सबसे प्राचीनतम और बड़ी बहन है और माताकी रूप तथा आकृति इससे बहुत मिलती जुलती है। यह सब जो बड़ी छोटी बातें मैं आपके सामने निवेदन करता हूँ इसका दूसरा प्रमाण मिलना चाहिए। शब्दमाला, और शब्दोंकी रचना, यह तो हो गया। दूसरा प्रमाण है। अधिक हिन्दी भाषाओंकी ग्रन्थमालाका। शिवसिंहजीने, जैसा कि मालूम होगा, इन बातोंको दिखाया है। प्रथम हिन्दी भाषाका काव्य ७७० ई० में हुआ। भाषाके ग्रन्थोंमें राजा मानकी सहायता और आदेशसे दूसरा जो हमें मिलता है, वह पुष्य कवि ८०२ ई० में हुआ और तीसरा ग्रन्थ जो मिलता है, वह राव ख़ुमानसिंहने हिन्दीमें लिखा था। ९०० ई० में खुमानरासो प्रसिद्ध हुआ। चौथा ग्रन्थ, जैसा कि मैं आपसे निवेदन कर चुका हूँ, चन्दकविकृत रासो है। जो भाषाके विद्वान् हैं और जो भाषाकी रूपरचना जानते हैं, वे बिना शङ्काके यही कह देंगे कि जिस भाषामें चन्द कविने ग्रन्थ लिखा है वह भाषा बहुत पहलेसे हुई है। यह नहीं हो सकता कि जिसकी भाषा प्रिय होने लगी उसीमें ग्रन्थ लिख डाला। चन्द कविसे पहले अनेक कवि हो चुके थे। हिन्दुओंमें ब्राह्मण और कायस्थ उर्दू अधिक पढ़नेवाले थे, पर हमारे क्षत्रिय भाइयोंने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उनमें पढ़नेका प्रचार कम हुआ। वह इसके बदले ज़मीन्दारी और खेतीबारीमें रहे, उसीसे प्रेम रहा और विद्याको कम पढ़ा। वैश्य जो हमारे भाई हैं उन्होंने कहा कि जिसको नौकरी करना हो वह पढ़ने जाय। उन्हें इतनी फ़ुर्सत कहाँ। वह दूसरी ओर उन्नति करते रहे। आपको उर्दूके ज्ञाता मिलेंगे—ब्राह्मण और कायस्थ। ब्राह्मणोंमें काश्मीरी ब्राह्मण बुद्धिमें प्रखर, और भाषाके विशेष योग्य थे। इनका प्रेम उर्दूकी ओर बढ़ गया और वे इसी तरफ़ झुके। कायस्थ भाइयोंका भी यही हाल हुआ कि सरकारी दफ़्तरोंमें उर्दू गाज रही थी, हिन्दी सभ्य भाषा भी नहीं समझी जाती थी। हमारे पण्डित मथुराप्रसाद, और राजा शिवप्रसाद कह गए हैं कि हिन्दी भाषाको यह कहना कि हिन्दी कोई भाषा ही नहीं, अनुचित है। यह दशा थी। इसी कारणसे हिन्दीकी उन्नति न हुई। अब क्या होता है। इस बीचमें और-और प्रान्तोंमें उन्नति हुई। बङ्गालमें,

जैसा कि मैं आपसे निवेदन कर चुका हूँ, भाषाका बड़ा सुधार हुआ। एक अंशमें सर माइकेल मधुसूदनको लीजिए। हेमचन्द्र, बङ्किमचन्द्र इत्यादि बड़े-बड़े बङ्गाली कवि हुए हैं। उन्होंने उपन्यास, इतिहास और काव्यसे अपनी भाषाको बनाया और सजाया। इधर भी कबीरदास हुए, १५४० में मलिकमुहम्मद जायसी हुए। गोस्वामी तुलसीदासजी, श्रीकेशवदासजी, दादूदयालजी, गुरु गोविन्दसिंहजी और विहारीलालको ही देखिए। हरएक भाषामें हिन्दीके पुष्ट रूप दिखलाई पड़ रहे हैं। यह सिद्ध है कि भाषाओंमें, मराठी भाषामें जो सबसे पुष्ट है, नामदेव तेरहवीं शताब्दीमें हुए। बङ्गला भाषामें, जिसे आज देखकर आनन्दित होते हैं और यदि सच कहूँ तो ईर्ष्या भी होती है, चण्डीदासजी चौदहवीं शताब्दीमें हुए। चन्दके समयतक न मराठीमें, न बङ्गलामें, न गुजरातीमें, तीनोंमें इतना बड़ा काव्य नहीं था जितना बड़ा काव्य चन्द कविका हिन्दीमें मिलता है। इस प्रकार हिन्दी भाषा आरम्भ हुई। यदि यह जानना चाहते हैं कि किसका भाण्डार, किसका रूप और कौन अधिक थी तो इसके देखनेके लिये मैं आपके सम्मुख कुछ बातें उपस्थित करता हूँ। यह जो सन् १८५७ ईस्वीमें विप्लव हुआ उस समयसे भाषाओंकी और भी उन्नति हुई। १८३५ ई० में बङ्गालमें तथा पञ्जाबमें दफ़्तरोंमें फ़ारसी भाषा थी। अंग्रेज़ी गवर्नमेण्टने इसको मिटाकर मराठी, गुजराती, बङ्गाली और उर्दूको इनके स्थानमें किया। वहींसे देशी भाषाओंकी उन्नतिकी रेखा बँधी। अब इस बातका विचार कीजिए कि सन् १८३५ के पूर्व और सन् १८५७ के पश्चात् इन सब भाषाओंका कैसा भाण्डार था, इनमें ग्रन्थमाला कैसी थी? ७७० ई० से लेकर आप केवल बड़े-बड़े कवियोंको लीजिए। उनके ग्रन्थ आजतक हिन्दी भाषाका भाण्डार भर रहे हैं। चन्द कविके रासोको ले लीजिए। लल्लूजी, कबीरदास, गुरु नानकजी, मलिक मुहम्मद जायसी, तुलसीदास, सूरदास, अष्टछाप, केशवदास, दादूदयाल, गुरुगोविन्द सिंह, बिहारीलाल, किसके-किसके नाम गिनाऊँ। मुझे सब गिनाना भी नहीं। बिहारीलालको ले लीजिए। इन्होंने १६५० ई० के लगभग ग्रन्थ लिखा है। बहुत वृक्ष वाटिकाओंमें उगते हैं, कितने ही आप-से-आप उगते हैं। उनका झाड़ भी बड़ा फैला हुआ होता है। जैसे-जैसे वे ऊपर उठते हैं, वैसे-वैसे उनकी छाया अधिक होती जाती है। कुछ ऐसे होते हैं जिनको आप काटकर, मट्टीको बनाकर किसी स्थानमें लगाते हैं और अपनी वाटिकाओंमें उगाते हैं। इसी तरह भाषामें जो बहुत शब्द हैं, जैसे कर्णसे कान, हस्तसे हाथ संस्कृतसे उत्पन्न हुए हैं, वे प्राकृतमें अपने-आप उपजे। जो शब्द संस्कृतसे उठाकर रख दिए गए हैं वे वैसे ही हैं जैसे कि गुच्छा; कितने ही वृक्ष थोड़े समयमें सूख जायँगे, फिर उनमें शक्ति नहीं कि वह दूसरे फल उत्पन्न करें। जहाँ ये मुर्झाए, फिर उन्हें हटाना ही पड़ेगा। इसी प्रकारसे हिन्दीभाषाके तद्भव शब्द जो हैं वे निजकी सम्पत्ति हैं, उनके निजके अवयव पुष्ट हैं, वे फूलेंगे और अपने-आप बढ़ते चले जायँगे। ये सब प्रबल और पुष्ट होते हैं। किन्तु जिन शब्दोंमें किसीका पैवन्द लगा दिया जाता है वे बननेको बन जाते हैं किन्तु पुष्ट नहीं होते। जो लिए हुए शब्द हैं उनमें भाषाकी शक्ति नहीं। बच्चा माताके दूधसे जितना पुष्ट होता है, ऊपरी दूधसे उतना पुष्ट नहीं होता। जो बच्चा धीरे-धीरे माताका दूध पीता है वह पुष्ट होता है और संसारमें काम करने योग्य होता है। फिर भी हरएक भाषामें हरएक तरहके शब्द मिलेंगे ही जैसे भोजनमें दाल, भात और रोटी इत्यादि। और संस्कृतकी जितनी बेटियाँ हैं वे सब भी माँके गहनोंको पहनेंगी, चाहे वह अच्छा हो चाहे बुरा, वह सब माँका गहना है। उनमें एक गहना,

दो गहना, चार गहना सब माँका है । माँके गहनेसे बड़ा प्रेम होता है । उस समय उनको धारण करनेमें विशेष आनन्द होता है, किन्तु जो सब गहने माँके ही हों तो सब कहेंगे कि यह माँकी ही सम्पत्ति है । इसलिये यह हिन्दी भाषाका सौभाग्य है कि उसके जो शब्द हैं वे सब माताके ही प्रसाद हैं। किन्तु माताने कहा—बेटी! ये तेरे हैं, तू इनका व्यवहार करना । विहारमें तथा बङ्गालमें विद्यापतिजीने हिन्दी भाण्डारसे फूलपत्ते ले जाकर अपने काव्यग्रन्थको भरा है । इसी प्रकार आप देखेंगे कि दक्षिणमें मराठीमें भी जो शब्दोंका मेल है उसमें जो कुछ तद्भव शब्द यहाँ व्यवहारमें लाए जाते हैं वे यहींके हैं । हम, आप "मुझ, तुझ" कहते हैं । मराठीमें "माझा, तुझा" कहते हैं। हाँ, यह मानना पड़ेगा कि इन शब्दोंका उच्चारण बङ्गालमें और है महाराष्ट्रमें और । हमें इस बातकी ईर्ष्या नहीं है । अगर वह सबकी माँ नहीं तो मौसी है! हम तो सबके बालक हैं। सबके पैरोंपर लोटेंगे। माँने भोजन दे दिया तो ले लेंगे, मौसीने भोजन दे दिया तो ले लेंगे। वह हमारी, हम उनके हैं। हम देखेंगे कि हिन्दी-भाषामें शब्दोंका अधिक भाण्डार है, यह बड़ा प्रबल है और हिन्दीकी बड़ी सम्पत्ति है। इस प्रकारसे आपकी ग्रन्थमालाकी शब्दावलीका भाण्डार भरा हुआ है। सन् १८३५ से १८५८ तक महाभारतका प्रथम अनुवाद हुआ। इसके उपरान्त एक विशेष दशा आई। आप जानते हैं कि रीति जो पड़ जाती है वह छोड़े नहीं छूटती। जब-जब जिस-जिस स्थानमें आप देखेंगे लता वृक्षके सहारे फैलते देखेंगे। सबसे बड़ा सहारा प्रत्येक भाषाका राजा ही होता है। विहारीने जयपुरनरेशके यहाँ जाकर अपनी कवित्व-शक्तिका चमत्कार दिखाया। शिवाजी महाराजके आश्रयमें भूषण कविने अपनी कविता-शक्तिका परिचय दिया। एक ओर युद्धमें तलवार नाचती, दूसरी ओर उनकी कविता नाचती थी। राजाका आश्रय दो प्रकारका होता है। एक तो प्रत्यक्ष, दूसरा गुप्त। इन दोनोंकी आवश्यकता है, किन्तु इस समय मैं प्रत्यक्षको ही लूँगा। जब अंग्रेज़ी गवर्नमेण्ट इस देशमें आई, तब उसने बड़ी ही सुव्यवस्था की, जिसके लिये उसे सच्चे हृदयसे धन्यवाद देना चाहिए। उसने इस देशमें ऐसा नियम स्थापित किया जिससे आज इतना बड़ा समारोह हो रहा है। याद रहे कि कोई व्यक्ति चाहे वह ऊँचे घरका बालक ही क्यों न हो, जब गिरता है तब बुरा गिरता है। यह पवित्र आर्य्य जाति जो अपनी प्राचीन महिमासे गिरी तो ऐसी गिरी कि फिरसे उसका पुनरुद्धार न हुआ। इस आर्य्य जातिके पतनके कारण इससे महाराष्ट्रों और सिक्खोंका अलगाव हुआ। जबसे अंग्रेज़ी गवर्नमेण्ट आई तबसे आप देखते हैं कि विद्याकी चर्चा बढ़ गई। यन्त्रालय आया। साथ-ही-साथ बड़ी भारी शिक्षा आई। आपने देखा होगा कि अंग्रेज़ लोग अपनी भाषाकी कैसी उन्नति करते हैं। अंग्रेज़ी गवर्नमेण्टने यहाँ आकर अंग्रेज़ी विद्याके प्रचारका उपाय किया, साथ-साथ आपकी संस्कृत भाषाकी उन्नतिका भी पथ प्रशस्त किया। इस काशीपुरीमें सबसे पहले क्वीन्स कौलेज़् और संस्कृत कौलेज़् स्थापित हुए, जिससे हिन्दुओंकी भाषाकी रक्षा हुई। गवर्नमेण्टके उत्तम कार्य्योंका धन्यवाद हम हिन्दू किसी प्रकार नहीं कर सकते और आज जो आपके भारतवर्षमें कुछ जनोंमें संस्कृतका प्रचार देख पड़ता है, इस काशीमें ही धुरन्धर पण्डित मिलते हैं जिनका सम्मान बड़े-बड़े लोग करते हैं, उसका अन्यतम कारण अंग्रेज़ सरकारका संस्कृत प्रचार है, इस नीतिका फल है। मैंने आपसे इसको सुनकर नहीं कहा है। डाक्टर बालेण्टाइन जब प्रिन्सिपल थे तब उन्होंने लेख लिखा था कि हमको केवल संस्कृतके ग्रन्थोंका अनुवाद करके हिन्दी भाषामें प्रचार करना चाहिए;

उन्होँने अपने समयमेँ जो आवश्यक था वह कर डाला। किन्तु खेदकी बात है कि इतना अवसर पानेपर भी हम जगाए जानेसे भी आपसे आप नहीँ जागे। इस प्रान्तमेँ भाषाकी उन्नतिका बीज सबसे पहिले बोया गया था; किन्तु आज उसी प्रान्तकी हिन्दी भाषा अपनी और बहनोँके सामने मुँह मोड़े खड़ी है। अब १८३५ के लगभग आ जाइए। उस समय गवर्नमेण्टके सरकारी दफ़्तरोँमेँ फ़ारसीमेँ काम होता था। गवर्नमेण्टने १८३५ मेँ यह आज्ञा दी कि हिन्दुस्थानकी भाषाएँ भी काममेँ लायी जायँ। इस आज्ञाके फलसे इस प्रान्तमेँ उर्दू जारी हो गई, हिन्दी जारी नहीँ हुई। इसका फल यह हुआ कि हिन्दीकी बड़ी अवनति हुई। यह सत्य है कि सन् १८४४ ई० मेँ जब टौम्सन साहब लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर थे, सरकारने हिन्दी भाषाका पढ़ना-पढ़ाना आरम्भ किया। यदि यह न हुआ होता तो आज आपको हिन्दीके जाननेवाले इतने भी न मिलते जिनसे लोगोँको पढ़ानेका अवसर मिलता। फिर भी अदालतोँमेँ हिन्दीके प्रवेश न करनेसे हिन्दीकी उतनी उन्नति नहीँ हुई। उर्दू सरकारी दफ़्तरोँमेँ जारी थी, उसीका प्रचार था। फिर भी उर्दूका वैसा प्रचार नहीँ हुआ जैसा होना चाहिए था। उर्दू पुस्तकोँकी उतनी उन्नति नहीँ हुई जितनी बङ्गाली, महाराष्ट्री और गुजरातीकी। मैँ जानता हूँ कि मुसलमान अब जागे हैँ, किन्तु पचास-साठ वर्षतक उन्होँने उर्दूकी वैसी उन्नति नहीँ की जैसी करनी चाहिए थी। उर्दूकी उन्नतिमेँ बाधा पड़नेका एक कारण यह है कि उर्दू, विशेष करके वह उर्दू जिसे अधिकतर उर्दूके प्रेमी लिखते हैँ, अरबी और फ़ारसीके शब्दोँसे भरी होती है, जिसके जाननेवाले लोग कम हैँ और जिसके लिखनेवाले लोग भी कम हैँ। सन् १८५८ मेँ जब गवर्नमेण्टने विद्याके विभागके नियम बनाए, उन्हीँ दिनोँ स्कूलके लिये हिन्दी पुस्तकेँ छपवाइँ और बहुतेरे विद्वानोँकी सम्मति ली। भारत-सरकारने सन् १८७३ के लगभग दो सौ इकतीस पुस्तकोँका सञ्चय किया। गवर्नमेण्टकी सहायतासे आदित्यरामजीने एक-दो अनुवाद अंग्रेज़ी पुस्तकोँके किए। राजा शिवप्रसादजीसे सम्मति ली गई। लोगोँको इसपर ध्यान देना चाहिए कि हिन्दू-मुसलमान दोनोँकी तरफ़से, जहाँतक मुझको मालूम हुआ है, इन पुस्तकोँके पढ़नेवाले अधिक नहीँ थे, इसीलिये दोनोँकी उन्नति नहीँ हुई। और प्रान्तवालोँने, जिन्होँने अंग्रेज़ी पढ़ी, उनकी दूसरी भाषा मातृभाषा थी। बङ्गालियोँने अंग्रेज़ी पढ़ी, उनकी दूसरी भाषा बङ्गाली थी। बङ्गालियोँको ले लीजिए, चार विद्वानोँने बङ्गाली भाषाको जन्म दिया। पचास वर्षमेँ बँगलाने ऐसी उन्नति की कि उसको देखकर न केवल सन्तोष ही होता है, बल्कि ईर्ष्या भी होती है। मराठीमेँ ऐसा ही हुआ कि जिन्होँने अंग्रेज़ी पढ़ी उन्होँने साथ-साथ अपनी भाषा भी पढ़ी। गुजरातमेँ वर्नाक्यूलर सोसाइटी बनी। संस्कृतसे अनुवाद करना आरम्भ किया गया, उनकी भाषाकी पुस्तकेँ जितनी बिकने लगीँ वह सभीको मालूम है। अनुवादका अन्त नहीँ। आज ऐसा होता है कि अंग्रेज़ी भाषामेँ जो अच्छी पुस्तकेँ छपती हैँ, उनका अनुवाद हो जाता है। इधर हिन्दू, मुसलमान, काश्मीरी, क़ायस्थ, हमारे सब भाइयोँने सिर्फ़ उर्दू लिखना आरम्भ किया। "गुलज़ारे नसीम" पण्डित दयाशङ्कर नसीमने लिखी। हिन्दुओँको यह शौक़ तो हुआ कि वह लिखेँ, लेकिन हिन्दीमेँ लिखनेका शौक़ नहीँ हुआ। पण्डित रत्ननाथ सरशारने "फ़िसानये आज़ाद" लिखकर उर्दू भाषाको अनमोल हार पहना दिया। पर हिन्दी जाननेवालोँको उस हारका पता नहीँ कि वह कैसा है—मूँजका हार है या किसका। यह सत्य है कि मुसलमान कवियोँने हिन्दी भाषाकी भी सेवा की है। मलिक मुहम्मद जायसीने पद्मावत लिखा है। जबतक

हिन्दी भाषा रहेगी, उनका नाम रहेगा । किन्तु मैं आपको यह दशा दिखलाता हूँ कि काश्मीरी भाइयोंने जो लिखा वह उर्दूमें । हमारे हिन्दू भाइयोंमें कायस्थ भाइयोंने बहुत समयसे बहुत कुछ लिखा किन्तु वह भी उर्दूमें ! उन्होंने विज्ञान काव्यकी कितनी ही पुस्तकें लिखीं । हिन्दू और मुसलमानोंद्वारा उर्दूकी उन्नतिका यत्न किया गया सही, किन्तु हमें तो बँगलाकी उन्नति और वृद्धिसे सन्तोष होता है । मराठी गुजरातीसे भी ऐसा ही होता है । वहाँ विद्या सरस्वती आप-ही-आप चली आई । इधर हिन्दीके लिये काम करनेवाले नहीं । यह दशा आपकी है । सन् १८३५ और ५८से पहले आपकी हिन्दी भाषा अपनी माँकी सुन्दर छविको लिए हुए अपने भाण्डारको भरे, आनन्दके साथ बैठी हुई आपको देखती है । सन् १८३५ और ५८ के बाद इसकी और बहनें आगे बढ़ गईं, यह जहाँ-की-तहाँ रह गई । कहते हुए दुःख होता है कि जिस हिन्दीके लिखनेवालोंमें चन्द कवि, तुलसीदास, सूरदास, बिहारीलाल हो गए हैं, बबुआ हरिश्चन्द्र हो गए हैं, वह हिन्दी आज अपनी बहनोंके सामने आँखें नीची किए खड़ी है । हिन्दीके प्रेमियो ! तुम्हारे और हमारे लिये यह बड़ी ही लज्जाकी बात है । यह सच है कि अंग्रेज़ी कार्य्यालयोंमें हिन्दीका प्रचार अधिक नहीं । १८५८ में जब राजा शिवप्रसाद विद्यमान थे उस समय अनेक सज्जनोंने इस बातको कहा था कि सरकारी दफ़्तरोंमें हिन्दी भाषाका प्रवेश हो, किन्तु उस समय यह बात बातों ही में रह गई ।

अन्तमें सर 'एण्टोनी मेकडोनलका भला हो, उन्होंने यह आज्ञा दी कि कचहरियोंमें जो दरख़्वास्तें दी जावें हिन्दी-उर्दू दोनोंमें लिखी जावें । उस समयसे हम लोग हिन्दी भाषाकी विशेष उन्नति करने लगे हैं । जब रोगी दुर्बल हो तो सन्निपातकी दशाको पहुँच जाता है, तब पहले उसका ज्वर छुड़ाया जाता है, फिर उसका आहार आदि ठीक किया जाता है । अन्तमें यह पहाड़ हट गया । किन्तु बड़े धिक्कार और बड़ी लज्जाकी बात है कि यद्यपि यह पहाड़ हमारे मार्गसे काटकर हटा दिया गया तो भी हम लोगोंने आजतक इससे पूरा लाभ न उठाया । हम वकील, हम मुख़्तार, हम व्यवहार करनेवाले महाजन और वह लोग जो कचहरीमें वकालत करते हैं और अपने हिन्दू भाइयोंके मुक़द्दमोंमें उनका धन व्यय कराते हैं, वे लोग भी हिन्दी भाषाकी ओरसे उदासीन हैं । कितने लोग हैं जो जातिका उपकार करते हैं । कहते हैं कि जाति बिना भाषा जीवित नहीं रह सकती, जैसे कि नालके बिना बालक नहीं जीवित रह सकता । किन्तु क्या यह बात सत्य है ? ज़रा बङ्गाली, मराठी आदि को देखिए । हिन्दी भाषाके कितने लोग हैं जिनको इस बातसे दुःख और लज्जा होती है कि इस आर्य्यावर्त्त देशमें लाखों लोग ऐसे हैं जो अपनी माँकी बोलीसे परिचय नहीं रखते । सब उन्नतिकी आशा छोड़ दीजिए । उन्नति करनेवालोंके सामने खड़ा होना छोड़ दीजिए । जबतक आप इस लज्जाको न मिटावें, अपनी माँकी बोली न सीखें तबतक आप मुँह न दिखावें । मातृभाषाके सीखनेमें कौन लज्जा करता है ? अब आप लोग अपने हृदयमें आजसे इस बातका प्रण कर लें कि जबतक आप मातृभाषाको सीख न लेंगे तबतक आप मस्तक ऊँचा न करेंगे । कोई अंग्रेज़ जो अंग्रेज़ी भाषासे परिचित न हो या किसी और देशका पुरुष जो अपने देश की भाषा न जानता हो, क्या कभी गौरवान्वित हो सकता है ? जब हमारी यह दशा है तब क्यों न इस भाषाकी दुर्दशा होगी और क्यों न हमको औरोंके सामने दुर्बलता स्वीकार करनी पड़ेगी ? यह सत्य है कि कुछ लोग अपनी मातृभाषाका काम करते हैं ; किन्तु ऐसे लोग कितने हैं ? मेरा यह प्रस्ताव नहीं है । मेरा यह निवेदन है कि जो हुआ वह हुआ, अब क्या करना चाहिए ? आपको यह आवश्यक है कि सरकारी दफ़्तरोंसे जो

नक़लेँ ली जाती हैँ, उनको आप हिन्दीमेँ लेँ; जो डिगरियाँ, तजवीज़ेँ आदि मिलती हैँ, उनको आप हिन्दीमेँ लेँ। यह सब आपके लिये आवश्यक है। गवर्नमेण्टने आपको जो अवसर दिया है, उसे आप काममेँ नहीँ लाते। इसके उपरान्त यह भी सत्य है कि आजतक इस कारणसे आपके अंग्रेज़ी पढ़नेवालोँमेँ केवल उर्दू का अधिक प्रचार है। अब मैँ यह आशा करता हूँ और सोचता हूँ कि जबतक यह प्रचार रहेगा तबतक हिन्दी भाषाकी उन्नतिमेँ बड़ी रुकावट रहेगी। उर्दू भाषा रहे। कोई बुद्धिमान् पुरुष यह नहीँ कह सकता कि उर्दू मिट जाय। यह अवश्य रहे और इसके मिटानेका विचार वैसा ही होगा जैसा हिन्दी भाषाके मिटानेका। दोनोँ भाषाएँ अभीष्ट हैँ। दोनोँ रहेँगी। उर्दू भाषाके प्रेमी करोड़ोँ हैँ और इस पचास वर्षमेँ उन्होँने बहुत कुछ उन्नति की है। मौलवी ज़काउल्ला साहब, मुहम्मदहुसेन आज़ाद और देहलीके नज़ीर अहमदको लीजिए। उस शब्दकोषको लीजिए जो हैदराबाद दक्खिनमेँ छपकर तैयार हुआ है। हैदराबादमेँ मुसलमान भाई पच्चीस वर्षसे उर्दूकी उन्नतिका बड़ा यत्न कर रहे हैँ। हमको सन्तोष और सुख होता है कि मौलवी शिवलीके कामसे उसकी उन्नतिमेँ अधिकता हुई है और उसकी उन्नति हमारे देशकी उन्नति है। हम इसकी भलाई चाहते हैँ, किन्तु इसीके साथ-साथ हमेँ यह भी कहना चाहिए कि हिन्दी जाननेवाले इस प्रान्तमेँ बहुत हैँ। पिछली मनुष्यगणनासे जान पड़ा है कि एक उर्दू जाननेवाला है तो चार हिन्दी जाननेवाले। हमारे मुसलमान भाई, जिनको इसका प्रेम है और जो देशभक्त हैँ, जिनसे हमारे देशकी सब तरहसे उन्नति है, वे उर्दूकी उन्नति का यत्न करेँ और हिन्दी जाननेवाले हिन्दीकी उन्नतिका। इस देशमेँ हिन्दीभाषा जाननेवालोँकी कमी नहीँ, कोई दस-बारह करोड़ हैँ। इनकी हिन्दी भाषाकी उन्नति करनेके लिये हमेँ क्या उपाय करना चाहिए? जितना अब विचार हो चुका है, उससे आपने यह देख लिया कि भाषाओँकी अवस्थामेँ कितना उलटफेर हुआ और हिन्दी ज्योँ-की-त्योँ रही। यह दशा जो हमारी है, उसमेँ क्या करनेकी आवश्यकता है। इस बातके विचारनेमेँ मैँने आपसे कहा कि राजाके सहारेसे बड़ा सहारा होता है। यदि आपको, जैसा कि नागरी-प्रचारिणी-सभाके लिये गवर्नमेण्ट सहारा देती चली आई है, राज-साहाय्य मिले तो काम बहुत कुछ बन जा सकता है। किन्तु बड़े दुःखकी बात यह है कि अंग्रेज़ी गवर्नमेण्टने इसका जितना प्रचार करना चाहा था, हमारी उपेक्षासे उसका उतना प्रचार नहीँ हुआ। हम लोगोँको जितना करना चाहिए था, उसका सिर्फ़ कुछ अंश हमने किया। अब यह सम्मेलन ही विचार करे कि इसकी उन्नतिका क्या उपाय होना चाहिए।

हिन्दी भाषाकी उन्नतिकी साधनाके लिये अ क्या करना चाहिए? हिन्दी भाषाकी ऐसी स्थितिमेँ इसकी उन्नतिका अब हमारा कर्त्तव्य क्या है, इसके विषयमेँ राजाका सहारा है। यदि उसके लिये यत्न करेँगे तो वह भी मिलेगा। जो माँगा गया, वह मिला। हमने कहा था कि कचहरियोँकी भाषा हिन्दी भी कर दी जावे, राजाने हमारे प्रदेशोँमेँ कचहरियोँकी भाषा हिन्दी भी कर दी। इन दिनोँ इस देशमेँ कचहरियोँकी जो भाषा है, वह हिन्दी है। यत्न और चेष्टाका प्रयोजन है, आदमी जिस बातके लिये यत्न और चेष्टा करता है वह हो जाती है। आदमीके लिये क्या असम्भव है? जो स्कूल, कौलेज़ स्थापित किए गए हैँ उनमेँ लड़के हिन्दी पढ़ेँ। योरोपीय इतिहास, काव्य, कलाकौशल आदिकी पुस्तकेँ हिन्दीमेँ अनुवादित होँ। हिन्दीमेँ उपयोगी पुस्तकोँकी संख्या बढ़ाई जाय। सरकारने स्कूलोँमेँ हिन्दी जारी कर दी है। अब हमेँ चाहिए कि हम हिन्दीकी उत्तमोत्तम पाठ्य पुस्तकेँ तैयार करेँ। इस प्रदेशमेँ अंग्रेज़ी जाननेवालोँकी कमी नहीँ। बहुतेरे लोगोँने शेक्सपियरके काव्य समझकर देख डाले हैँ, कितने ही लोग हैँ जिन्होँने अंग्रेज़ी कविता

रचनाको सीखा है । कितने ही लोग अंग्रेज़ीमें इतिहास लिखते हैं । परमेश्वरके अनुग्रहसे इस देशके लोगोंको अंग्रेज़ीमें बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है। मैं चाहता हूँ कि वह ज्ञान अपने ही तक न रक्खा जाय, उसे हमें अपने भाइयोंको भी देना चाहिए। उन भाइयोंको भी देना चाहिए जिनका अंग्रेज़ीसे परिचय नहीं है।

आप यह कह सकते हैं कि ऐसी पुस्तकोंके पढ़नेवाले बहुत कम हैं । हिन्दी-पाठकोंमें ऐसी पुस्तकें पढ़नेके नये अनुरागका सञ्चार करना होगा। इसमें सन्देह नहीं कि इस कामके लिये यत्न करना होगा। पाठकोंके सामनेका एक तरहका भोजन हटाकर दूसरी तरहका भोजन परोसना होगा। क्षुधा उत्पन्न हो चुकी है, बिना भोजनके काम न चलेगा। ईश्वरके परमानुग्रहसे पढ़नेका प्रेम बढ़ रहा है, हिन्दीका प्रेम बढ़ रहा है, हिन्दी-पाठकोंकी संख्या अधिक हो रही है और पढ़नेका व्यसन बढ़ रहा है। लोगोंको उचित है कि वे अब पढ़ानेके लिये पुस्तक बनाएँ। जो लोग सहायक और सामर्थ्य रहते भी यह काम नहीं करते, वे अपने कर्त्तव्यकी उपेक्षा करते हैं।

पुस्तकोंके लिखनेमें हमें भाषाकी ओर ध्यान देना होगा । हमें उचित है कि भाषामें जो दोष आ गए हैं उन्हें हम मिटाएँ । सरकारकी ओरसे जिन बातोंके करनेका अवसर हमें नहीं मिला है उन्हें हम सामनेसे हटा दें ; किन्तु जिन बातोंके करनेका अवसर मिला है उन्हें क्यों न करें। हमें ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे इस प्रान्तके लोग समझ सकें । बङ्गालमें बङ्गाली, उड़ीसामें उड़िया, मन्द्राजमें मन्द्राजी चलती है, बम्बईमें मराठी और गुजराती चलती है। जिस भाषामें यहाँ अन्धकार है यहाँ वही भाषा चलानी चाहिए। कहते दुःख होता है कि सरकारी विज्ञापनोंकी जो नक़लें छपती हैं वे हिन्दी भाषामें नहीं होतीं । हम्हीं लिखनेवाले हैं, हम जैसी भाषा लिखते हैं, वैसी ही भाषा चलती है। आपका कोई मुँह नहीं कि इसके सम्बन्धमें सरकारसे कुछ कहें। आपकी यह दशा है और आपकी भाषाकी यह अवस्था । ऐसी कोई वात नहीं जो हिन्दीमें कही न जा सकती हो । ऐसी दशामें हमारी भाषा हिन्दी होनी चाहिए । हिन्दीमें लिखे जिस वाक्यको देखिए वह हिन्दीमें दिखाई दे । यहाँ बहुत बड़ा दोष यह है कि लिखनेकी भाषा और है और बोलनेकी और । यह बहुत बड़ा दोष है । जैसी वातें कहिए वैसी ही लिखिए।

कुछ लोगोंका सिद्धान्त है कि उर्दू कोई भाषा नहीं । उर्दूमें 'परमेश्वर' न आएगा 'ख़ुदा' हो जायगा। हिन्दीमें 'ख़ुदा' की जगह 'परमेश्वर' आएगा। उर्दू भाषा हिन्दीकी एक शाखा है और उर्दूकी एक शाखा तैयार होनेपर भी हिन्दीका प्रवाह ज्यों-का-त्यों है । हिन्दी भाषाकी शक्तिका प्रवाह बदला नहीं जा सकता । मौलवी मुहम्मदहुसेन आज़ाद कह गए हैं कि उर्दू जो है वह हिन्दीसे बनी है। मौलवी साहब ख़ूब समझकर कह गए हैं कि उर्दू दूसरे देशकी भाषा नहीं, हमारे ही देशकी चीज़ है । हमें इस वातको समझ लेना चाहिए। बहुतेरे शब्द ऐसे हैं, जो उर्दूमें, हिन्दीमें, और बहुतेरी भाषाओंमें एक हैं । उसे हम भी कान कहेंगे, वह भी कान। किन्तु कितने ही शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी भाषामें काममें लाए नहीं जाते। जैसे "बच्चा हमको दान दे पुण्य होगा" इसके बदले "बाबा हमको दान दे सवाब होगा" कहना उचित नहीं। शब्दोंको छोड़ बने बनाए शब्दोंको बिगाड़ना उचित नहीं । हिन्दीमें फ़ारसी-अरबीके बड़े-बड़े शब्दोंका व्यवहार जैसा बुरा है, हिन्दीको अकारण ही संस्कृत शब्दोंसे गूँथ देना भी वैसा ही बुरा है । जहाँतक हो हिन्दीमें हिन्दी ही रक्खी जाय। अनावश्यक शब्दोंको हिन्दीसे अलग कीजिए । उर्दू और हिन्दी इन दोनों भाषाओंके रूप गँठ-बन गए हैं। अब इन दोनोंको यथासम्भव एक स्थानमें लाइए।

इस बातके लिये यत्न करना जैसा हिन्दुओँके लिये आवश्यक है वैसा ही मुसलमानोँके लिये भी आवश्यक है। दोनोँ ओरसे यत्न होनेसे हम भाषाके क्रमको बहुत कुछ एक कर सकते हैँ।

सत्य कटु है, किन्तु सत्य ग्रहण करना चाहिए। हिन्दी भाषाकी योग्यता रखनेवाले बहुत थोड़े हैँ। उर्दूकी दशा बुरी है, किन्तु हिन्दीकी और भी बुरी। कहीँ-कहीँ समासोँके लच्छे-के-लच्छे लाए जाते हैँ। कहीँ-कहीँ ऐसे शब्द भरे जाते हैँ कि पढ़नेमेँ तो भले होँ, किन्तु पढ़नेवालोँको बेगाने जान पड़ेँ। कहीँ-कहीँ ऐसे शब्द रक्खे जाते हैँ, जो बहुत ही कठिन होते हैँ, पढ़नेवालोँकी समझ ही मेँ नहीँ आते। यूनानी बहुत अच्छी किन्तु यूनानी मैँ क्या समझूँ और जब समझूँगा ही नहीँ तब उससे मुझे क्या लाभ? मालकौँसके समय मालकौँस गाया जाता है। वर्षाकी रिमझिम बूँदोँमेँ मालकोस अच्छा नहीँ लगता, उसका आनन्द कम हो जाता है। जो शब्द भाषामेँ चलते हैँ और जिन्हेँ हम जानते हैँ, उन्हीँको हमेँ पुस्तकोँ और समाचारपत्रोँमेँ लाना चाहिए।

इसलिये भाषाकी उन्नति करनेमेँ हमारा सर्वप्रधान कर्त्तव्य यह है कि हम स्वच्छ भाषामेँ हिन्दी लिखेँ। पुस्तकेँ भी ऐसी ही भाषामेँ लिखी जायँ। ऐसा यत्न हो जिससे जो कुछ लिखा जाय, वह ऐसी ही भाषामेँ लिखा जाय। जब हम कोई काव्यमाला लिखेँ तो आलङ्कारिक भाषासे काम लेँ। विज्ञानादि लिखनेमेँ पहले भाषाके शब्द लीजिए। जब भाषामेँ शब्द न मिलेँ तब संस्कृतसे लीजिए या बनाइए। भाषाका सुधार बड़ा ही प्रयोजनीय है। समाचारपत्रोँ और स्कूलकी पुस्तकोँमेँ ऐसी भाषा चल जानेपर उसके प्रसारकी राह खुलेगी। एक दिन यह भाषा राष्ट्रभाषा हो सकेगी।

मन्द्राज, बङ्गाल और बम्बई आदिके अनेक विद्वान् देशमेँ एक ही भाषा चलाना चाहते हैँ। देशके बहुतेरे लोगोँकी जब ऐसी रुचि है, तब आपका भी एक कर्त्तव्य है। आप भी ऐसा यत्न करेँ, जिससे आपकी भाषा राष्ट्रभाषा होनेका गौरव पाए। झगड़ोँमेँ फँसनेके बदले उन्हेँ मिटाना चाहिए। उर्दूके प्रेमी कहते हैँ कि हिन्दी भाषा, उर्दू भाषा है। यही सही। यदि आप झगड़ा मिटाना चाहते हैँ तो कह देँ कि अच्छा यही सही। वह उसे एक नामसे यदि पुकारना चाहते हैँ तो पुकारने दीजिए, उसीमेँ उन्हेँ सन्तोष करने दीजिए। और यह कीजिए कि हिन्दीमेँ जो उर्दू-फ़ारसीके शब्द आ गए हैँ उनका व्यवहार कर उर्दूवालोँको और भी सन्तुष्ट कीजिए। आपकी हिन्दीमेँ कितने ही शब्द ऐसे हैँ जो देशकी बहुतेरी भाषाओँमेँ ज्योँ-के-त्योँ या कुछ बदले हुए रूपमेँ काममेँ लाए जाते हैँ। आप उन शब्दोँके व्यवहारमेँ सङ्कोच न कीजिए। हमेँ यह देखना चाहिए कि हमारी भाषाके शब्द ऐसे होँ, जिनसे सब प्रदेशके लोग लाभ उठाएँ।

देशी राज्यके निज़ाम चालीस हज़ार रुपएकी लागतसे एक उर्दूकोष तैयार करा रहे हैँ। यह कोष शीघ्र ही तैयार हो जानेसे लोगोँका उत्साह बढ़ेगा और साहित्य बढ़ेगा। यह बड़े ही हर्षका विषय है कि काशीकी नागरीप्रचारिणी सभाने भी बहुत बड़ा एक कोष तैयार करानेका प्रशंसनीय कार्य्य आरम्भ किया है। हमारा कर्त्तव्य है कि इस काममेँ सभाको सहारा देँ, सभाकी विशेष उन्नति करेँ। सभाके सम्बन्धमेँ लोगोँमेँ जो मतभेद फैल रहा है उसे मिटाएँ, सत्यका अवलम्बन कर सभाको और भी हितैषिणी बनाएँ। बिना अधिक लोगोँके एकत्र हुए बड़े-बड़े कार्य्य नहीँ होते। ऐसी अवस्थामेँ हमेँ उचित है कि सभाके सहायकोँकी संख्या बढ़ाएँ, सभाकी शक्तियोँको बढ़ाएँ। सभाने जिस कोषके सम्पादनका कार्य्य आरम्भ किया है वह विशेष रूपसे विचार करने योग्य है। यह सब काम शीघ्रतासे नहीँ होते इसलिये इसमेँ शीघ्रताका प्रयोजन नहीँ। कितने ही लोग बड़े परिश्रमके साथ इसका काम कर रहे हैँ और इसके

लिये उन्हें धन्यवाद है। हमें सिर्फ़ शब्दकोषकी त्रुटि ही निकालना न चाहिए, उसके बनानेमें सहारा भी देना चाहिए। यह काम कोषके सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास या नागरी-प्रचारिणी-सभाका ही नहीं, यह काम समस्त हिन्दी-प्रेमियोंका है। हम सबको इस काममें हृदयसे लगकर इसे सम्पूर्ण करना चाहिए। यह काम बड़ा है। सभी बड़ा है। बड़े-बड़े काम बड़े श्रमसे होते हैं। वेदव्यासका मन्त्र यही है। भगवान्‌के उद्देश्योंको समझ हमें उन्हींके अनुसार कार्य्य करना चाहिए। हम सबके मिल-जुलकर यत्न करनेसे ही हिन्दीके सब अङ्ग पुष्ट होंगे। इसीसे सब बातोंकी उन्नति होगी।

सभी भाषाओंमें अनुवादसे कार्य्य आरम्भ हुआ है। अंग्रेज़ी भाषा आज दिन बहुत ही उन्नत दिखाई देती है। इसके साहित्यके सभी अङ्ग पूर्ण हैं। इसी अंग्रेज़ी भाषाकी पुष्टि पहले जर्मन आदि भाषाओंके अनुवादसे हुई है। हमें जगह-जगहसे और विभिन्न भाषाओंसे अच्छे-अच्छे विचारोंको चुनना चाहिए। हमें इस बातमें अंग्रेज़ोंको अपना गुरु बनाना चाहिए और उनसे सहारा भी लेना चाहिए। देखिए, अंग्रेज़ोंने आपके प्रायः कुल प्राचीन ग्रन्थोंके अनुवाद कर डाले हैं। अंग्रेज़ी भाषाका साहित्य अनुवादोंसे भरा हुआ है। आप अंग्रेज़ी भाषा और देशी भाषा दोनों भाषाओंके ग्रन्थोंसे सहारा ले सकते हैं। यह दिन बड़ा ही शुभ दिन है, परमेश्वरसे प्रार्थना कीजिए कि अबसे हिन्दी साहित्य पुष्ट हो, जिससे केवल हिन्दी भाषा ही जाननेवाले हिन्दी भाषामें विविध विषयके ग्रन्थ पढ़ें और उन्हें पढ़कर लाभ उठाएँ।"

नवम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

बम्बईमेँ ता० १९ अप्रैल सन् १९१९ को नवम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापतिकी हैसियतसे भाषण ।

—सम्पादक ।

बहनो और भाइयो !

मैँ नहीँ जानता कि किन-किन शब्दोँमेँ मैँ आपको धन्यवाद दूँ । जिस प्रेमके साथ आप लोगोँने मुझे इस सम्मेलनका सभापति बनाया है उसके लिये मैँ आपका अत्यन्त उपकृत हूँ । यह नवम सम्मेलन है । इसके पहले काशीके प्रथम सम्मेलनमेँ आप लोगोँने मुझे सभापति बनाया है । वही एक बारका सभापति होना बहुत था, तथापि आप लोगोँने फिर दुबारा भी मुझे यह गौरव दिया, इसके लिये मैँ आपको बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ ।

आजके सम्मेलनका गौरव मैँ शब्दोँमेँ वर्णन नहीँ कर सकता । यह समय बहुत ही विकराल है । मन विचलित हो रहा है । हमारे सब भाई-बहनोँको इस समय सच्चा सन्ताप है, सब शोक करते हैँ । एक भाईने दूसरे भाईके जान-मालपर हाथ चलाया है । हम आशा करते हैँ कि अब आगे ऐसी घटनाएँ न होँगी । मर्य्यादाका पालन करते हुए हमको कार्य्य करना चाहिए । ऐसे विकराल समयमेँ हमारी इच्छा थी कि इस सम्मेलनका समय कुछ टाल दिया जाता, पर कई कारणोँसे ऐसा नहीँ हो सका । जो हो, अत्याचारियोँको उचित दण्ड मिलेगा । हम चाहते हैँ कि देशकी मर्य्यादाके अनुसार देशोन्नति हो, प्रजा और अधिकारियोँमेँ मेल-मिलाप होना चाहिए ।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अर्थ सभी लोग समझ सकते हैँ । जो लोग पहलेसे इस सम्मेलनको देखने आए हैँ, वे इसके उद्देशोँसे भली भाँति परिचित हैँ । तथापि आज बम्बईमेँ इसका अधिवेशन हो रहा है, अतएव इसके उद्देशोँके विषयमेँ यहाँ कुछ बतलाना उचित प्रतीत होता है । इसके उद्देश ये हैँ (सम्मेलनके उद्देश पढ़ सुनाए)।

इन सब उद्देशोँका तत्त्व यह है कि हिन्दीकी उन्नति करनी चाहिए । देवनागरी लिपिमेँ लिखी हुई देश भाषाको राष्ट्रभाषा बनाना है। यह इसका निचोड़ है। जहाँ हिन्दी अधिक बोली जाती है वहाँ उसकी उन्नति करना है और अन्य देशोँमेँ, अन्य प्रान्तोँमेँ, जहाँके लोग उसे थोड़ा बहुत समझते और बोलते हैँ, वहाँ उसे राष्ट्रभाषा बनाना है। इस बारका सम्मेलन बम्बईके समान शोभावती और विभावती नगरीमेँ हो रहा है। यह इसके लिये बड़ी सौभाग्यकी बात है।

हमेँ दो बातोँकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। एक तो हिन्दी भाषाकी उन्नति की जाय और दूसरे इसी भाषाके द्वारा उच्च शिक्षाका प्रचार किया जाय। सभी प्रान्तीय भाषाओँकी उन्नति हो रही

है। सभी प्रान्तोंके निवासी अपनी-अपनी भाषामें उच्च शिक्षा देने-दिलानेका प्रबन्ध कर रहे हैं; और ऐसा ही करना उचित है। इनके साथ हमारी सहानुभूति होनी चाहिए। कुछ लोगोंका विचार यह है कि देशी भाषा उच्च शिक्षाके लिये उपयुक्त नहीं है। वे कहते हैं कि देशी भाषा, घर, बाज़ार, पत्रव्यवहार और समाचारपत्रोंके लिये तो ठीक है, पर राजदरबार, कौन्सिल तथा कौलेज़के लिये अनुपयुक्त है। यह बात शोचनीय है। प्रत्येक देशमें देशी भाषाके द्वारा विद्याका प्रचार होता है। राजकाज, व्यापार इत्यादि सब उन्नतिके कार्य्य देशी भाषा ही के द्वारा उत्तम रीतिसे हो सकते हैं। विदेशी शासन होनेके कारण यह भेद उपस्थित हुआ। जब हम अपने देशके प्राचीन कालकी ओर दृष्टि डालते हैं, तब भी मालूम होता है कि उस समय भी यहाँपर संस्कृत और प्राकृत भाषामें शिक्षा-प्रचार तथा देशोन्नतिके सब काम होते थे। अनेक राज्यक्रान्तियोंके कारण शुद्ध संस्कृत वाणी घिसती तथा बदलती हुई पहले प्राकृत, फिर गाथा और फिर अपभ्रंशके रूपमें बदलती गई। जिस कालमें जो भाषा प्रचलित हुई उसीमें सब कार्य्य होते रहे। बौद्ध कालमें, अशोकके ज़मानेमें, पाली भाषाके द्वारा सब काम सम्पन्न होते थे। मुसलमानोंके ज़मानेमें भी देशी भाषाके ही द्वारा सब कार्य्य होते थे। उसी समयके लगभग प्राकृतसे रूपान्तर होकर हिन्दी बनी। किम्बहुना, दसवीं शताब्दीसे हिन्दीका प्रादुर्भाव समझना चाहिए। तेरहवीं सदीमें 'पृथ्वीराजरासो' हिन्दीका पहला भारी काव्यग्रन्थ लिखा गया।

उस समयकी हिन्दीका नमूना लीजिए :—

जीति भई पृथिराजकी, पकरि साह लै सङ्ग।
दिल्ली दिसि मारगि लगे, उतरि घाट मिरिगङ्ग॥
बर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरतान।
निकट नगर दिल्ली गए, पृथीराज चहुआन॥

यही भाषा अब भी है। इस भाषामें बड़े-बड़े काव्य-ग्रन्थ मौजूद हैं; जिनमें बड़े ऊँचे-ऊँचे विचार हैं। यह भाषा मुसल्मानोंके राजत्त्व कालके पहले भी प्रचलित थी और उनके ज़मानेमें भी प्रचलित रही। कुछ कार्य्य फ़ारसीमें अवश्य होता रहा, पर विषशेता हिन्दीकी ही रही।

जबसे अंग्रेज़ी राज्य जारी हुआ तबसे ऊँची शिक्षा अंग्रेज़ीमें होने लगी। अनेक कार्य्य देशी भाषामें भी होते हैं; पर जितने ऊँचे-ऊँचे काम हैं सब परदेशी भाषामें होते हैं। इसका परिणाम देशके लिये अच्छा नहीं हुआ है। अंग्रेज़ीके अधिक प्रभावके कारण देशी भाषाकी उन्नति नहीं हो पाई। हाँ, अंग्रेज़ीकी उन्नति अवश्य हो गई है। देशी भाषा दब गई है। अंग्रेज़ी भाषाकी मैं शिकायत नहीं करता। उसके जो गुण हैं उन्हें मानना ही चाहिए। वर्त्तमान समयमें जो जातीयताका आविर्भाव हुआ है, जो प्रान्तीय मेल वर्त्तमान समयमें देखा जाता है, उसका बहुत कुछ श्रेय अंग्रेज़ीको देना पड़ेगा। परन्तु इससे एक बड़ी भारी जातीय हानि हुई है; और वह यही है कि हम अपनी भाषाका महत्त्व भूल गए हैं। हमने अपने देशकी भाषाओंकी उन्नति बिलकुल नहीं की। हाँ, कुछ वर्षोंसे मराठी, गुजराती, बङ्गला इत्यादिके विद्वान् लेखकोंने अपनी-अपनी भाषाओंमें उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी रचना शुरू कर दी है। किन्तु हिन्दीके विद्वानोंका ध्यान अभी इस ओर कम है। इस विषयमें हमें अंग्रेज़ लेखकोंसे बहुत कुछ शिक्षा लेनी चाहिए। देखिए, वे लोग अपनी भाषामें संसारकी सब उन्नत भाषाओंके उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका अनुवाद किस भाँति कर रहे हैं। संस्कृतके ऊँचे-ऊँचे काव्य-नाटकोंका, चारों वेदोंका वाल्मीकीय और तुलसीदासकी रामायणका और आल्हा-ऊदलतकका अनुवाद उन्होंने कर डाला है। इस भाँति दुनियाकी सब भाषाओंका अनुवाद करके उन्होंने अपने साहित्यके भाण्डारको बहुत ही

बढ़ा लिया है। हमने ऐसा बिलकुल नहीं किया ; इसीसे हमारी आज यह शोचनीय दशा हो रही है। और हमारे लिये यह प्रश्न उठाया जा रहा है कि हमारी भाषामें शिक्षा दी जा सकती है या नहीं ? यह बड़ी लज्जाकी बात है।

भाइयो और बहनो, हमारी ये सब देशी भाषाएँ उस संस्कृतकी बेटियाँ हैं जो सब भाषाओंकी भूषण है, जिसमें ऋग्वेद लिखा गया है। उसी भाषाकी बेटीके द्वारा शिक्षा न दी जाय, यह बड़ी लज्जाकी बात है।

ऋग्वेदका पहला मन्त्र है—

अग्निमीळे पुरोहितम्” इत्यादि। इसमें अग्नि इत्यादि शब्द आए हैं, इन्हींसे 'आग' शब्द निकला है। यह कितनी पुरानी भाषा है। हिन्दीका मूल रूप ऋग्वेदसे ही है, इसी भाँति अन्य सब देशी भाषाओंका हाल है।

संवत् ७०० से हिन्दी भाषाका पता चलता है। पुष्य कवि बहुत पुराना हो गया है। खुमानरासो भी पुराना ग्रन्थ है। चन्द कविका रासो देखिए। उसमें पुरानी हिन्दीका नमूना मिलता है। कबीरदास पन्द्रहवीं सदीमें हुए। उन्होंने अपने दोहरोंमें वेदान्तके कैसे ऊँचे भावोंको प्रवाहित किया है। उनके विचारोंका प्रवाह गङ्गाकी धाराकी भाँति पवित्र और शीतल है, जो सारे देशको पुनीत बना रहा है। कैसा सुबोध और सरस उपदेश उनके दोहरोंमें पाया जाता है। समयके अभावके कारण मैं उनका दृष्टान्त नहीं दे सकता। सब बहनों और भाइयोंको उनका उपदेश अवसर पाकर ग्रहण करना चाहिए। गुरु नानकदेव भी हिन्दीके बड़े भारी लेखक और कवि हुए हैं। ग्रन्थसाहबमें हरिभक्ति और वेदान्तके सुन्दर भाव कैसी प्रौढ़ भाषामें वर्णन किए गए हैं, जो देखते ही बनते हैं। गुरु नानकदेवजी कहते हैं—

जागी रे जिन जागना, अब जागनकी बार।
फेरि कि जागो नानका, जब सोए पायँ पसार॥

भाइयो! अभी चैतन्य हो जाओ, अभी जागनेका समय है। सूरदास, तुलसीदास इत्यादि सभी हिन्दीके ग्रन्थकार और हिन्दीके कवि इसी भाँति हो गए हैं, जिनके ग्रन्थोंके सामने दुनियाके अन्य अनेक ग्रन्थ बिलकुल फीके हैं। कबीर, गुरु नानक, तुलसी और सूर, इन चार महात्माओंके ग्रन्थोंमें जो भाव भरे हैं, उनके समान पवित्र और जातीय साहित्यिक भाव बहुत कम भाषाओंमें मिलेंगे। समय थोड़ा है, अन्यथा मैं आप लोगोंको इन भावपूर्ण काव्योंकी थोड़ी-थोड़ी चासनी चखाता। तेरहवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दीमें विदेशोंमें ही कितनी भाषाओंमें ऐसे ग्रन्थ बने? मुझे निश्चय है, उस ज़मानेमें किसी भाषामें भी ऐसे ग्रन्थोंकी रचना नहीं हुई। अंग्रेज़ी भाषाके ग्रन्थोंका गौरव हिन्दीसे पुराना नहीं है, पीछेका है।

निस्सन्देह, वर्त्तमान कालमें उसकी बड़ी उन्नति हुई है। तथापि हिन्दीका प्राचीन गौरव बहुत अधिक है। इस दृष्टिसे हिन्दी तो अंग्रेज़ीकी बड़ी बहन है। फ़्रान्सकी भाषा सुललित है; परन्तु उसका भी प्राचीन काव्य-साहित्य हिन्दीके टक्करका नहीं है। जर्मनीका काव्य-कलाप हिन्दीके सामने अभी कलका मालूम होता है। इनके सिवाय रूसी इत्यादि भाषाएं तो अभी बहुत ही आधुनिक कालकी हैं। हिन्दीकी अवस्था और उसका प्राचीन साहित्य हमारे लिये अभिमानका विषय है, यह वस्तुवाद है। मैं यह सब निष्पक्ष भावसे कहता हूँ। इससे मालूम हो जायगा कि हमारी भाषा कोई अनादर करने योग्य वस्तु नहीं है।

हाँ, वर्त्तमान कालमें विज्ञान या साएन्स इत्यादिकी वैसी बड़ी-बड़ी पुस्तकें हिन्दीमें नहीं तैयार हुई हैं जैसी पश्चिमी भाषाओंमें हैं। इसका कारण यही है कि हम लोगोंको वह सुविधा प्राप्त नहीं है। आधुनिक विज्ञानकी उन्नति वास्तवमें उन्नीसवीं सदीमें हुई है। इसके पहले किसी भाषामें भी इसका वैसा प्रकाश नहीं था। हाँ, हमारी संस्कृत

भाषामेँ गणित, ज्यौतिष, आयुर्वेद इत्यादिके भाव दो-तीन हज़ार वर्ष पहले भी प्रकाशित हो चुके थे। वर्त्तमान साएन्स उन्नीसवीँ सदीमेँ हुई है। पहले इस साएन्सकी भाषा भी नहीँ थी। अवसर आया तव हुई। चर्चा और आवश्यकता होनेपर इसका आविर्भाव हुआ। भाषा कहते हैँ बोलीको, जो हम भाषते हैँ। माताकी जो वोली है उसीमेँ भाव प्रकाशित किए जाते हैँ, और फिर उसमेँ जैसी आवश्यकता होती है शब्द गढ़ते जाते हैँ। नवीन-नवीन शब्द वनते जाते हैँ। इसी प्रकार भाषाकी उन्नति होती जाती है। अंग्रेज़ी, फ़्रेञ्च इत्यादि सभी बढ़ी हुई भाषाओँकी उन्नति इसी प्रकार हुई है। अब हमारे यहाँ भी नवीन-नवीन शब्द तैयार होते जाते हैँ। आवश्यकतानुसार विद्वान् लोग नवीन-नवीन शब्दोँकी सृष्टि करते जाते हैँ। इसके लिये हमारे यहाँ पर्य्याप्त सामग्री मौजूद है। संस्कृतके शब्दोँका भाण्डार वहुत भारी और गहरा है। इसकी जड़ेँ बहुत दूरतक और गहरी फैली हुई हैँ। फिर कैसे कहा जा सकता है कि हमारी भाषा अयोग्य है। यह कहना विलकुल विपरीत है। वास्तवमेँ हमारे यहाँकी भाषा भी वैसी ही योग्य वन सकती है जैसी कि अन्य भाषाएँ हैँ।

जिस देशकी जो भाषा है, उसी भाषामेँ वास्तवमेँ उस देशके न्याय, क़ानून, राजकाज, कौन्सिल इत्यादिका कार्य्य होना चाहिए। हमारे देशमेँ अभी ऐसा नहीँ हो रहा है। हमारे यहाँकी परिस्थिति विलकुल इससे विपरीत है। जिस भाषाका हमारे भाइयोँको कुछ भी परिचय नहीँ है, उस भाषामेँ हमारे यहाँके सब राजकाज होते हैँ। हमारे देशके भाइयोँके मरने-जीनेका न्याय हो; पर हो वह दूसरी भाषामेँ, यह कैसे आश्चर्य्यकी वात है? वास्तवमेँ न्याय उस भाषामेँ होना चाहिए जिसका एक-एक शब्द उसकी समझमेँ आता हो, जिसका कि न्याय हो रहा है। इसके लिये हमेँ प्रयत्न करना चाहिए। विश्वास है कि सफलता होगी। क़ानून और न्यायके नियम सब देश-भाषा ही मेँ वनने चाहिएँ। अभी जिस भाषामेँ इनकी सृष्टि होती है, उसे वहुत ही थोड़े लोग समझते हैँ। यह अप्राकृतिक है। इङ्गलैण्डमेँ पार्लियामेण्टका सब काम उसी भाषामेँ होता है जिसे गाड़ीवान और भङ्गीतक सब समझ सकते हैँ। हमारे यहाँ उसे मुट्ठीभर लोग समझते हैँ। सम्पादक और विद्वान् लोग विदेशी भाषामेँ वने हुए उन नियमोँको जो वह भाषा विलकुल नहीँ जानते उन्हेँ कहाँतक समझावेँ? स्वराज्यमेँ यह सब सुभीता है। इसके विरुद्ध अस्वाभाविकतामेँ ऐसी ही अड़चनेँ आती हैँ। वास्तवमेँ प्रजा-मण्डलकी ओरसे जब अधिक प्रतिनिधि राजसभामेँ होँ तब कुछ कार्य्य चल सकता है। इस विषयका सुधार प्रान्तीय सभाओँमेँ तो होनेवाला है। वड़ी सभामेँ भी होगा। अस्तु, इस कथनमेँ कुछ भी तथ्यांश नहीँ है कि देशी भाषामेँ कार्य्य चल नहीँ सकता, अथवा शिक्षा नहीँ हो सकती। इस वातको छोड़ दीजिए।

अब उच्चारणको लीजिए। हम अपनी भाषाका उच्चारण जितनी शुद्ध और सरल रीतिसे कर सकते हैँ, किसी विदेशी भाषाका नहीँ कर सकते। अपनी भाषाकी गुरु पहले माता ही है। इसके वाद भाई, वहन, पिता, हाट-बाट, बाज़ार, मुहल्लेवाले, सब उस भाषाके सिखलानेवाले प्रायः एक प्रकारके गुरु ही हैँ। जहाँ आप जाइए सब उस भाषाको समझते हैँ। किन्तु विदेशी भाषा न हमारे भाई ही जानते हैँ और न वहनेँ ही जानती हैँ। वहनेँ अब कहीँ थोड़ी-थोड़ी पढ़ने लगी हैँ। किन्तु सफ़रमेँ, मेलोँमेँ, तीर्थयात्रामेँ, सब जगह देशी भाषासे ही काम पड़ता है। विदेशी भाषा सीखनेके लिये विदेशसे गुरु बुलाओ, उनको वहुतसा वेतन दो, फिर भी अभीष्ट-सिद्धि नहीँ होती। ख़र्च अधिक लगता है, फल अच्छा नहीँ होता। उसी भाँति दूसरी

भाषाके अनावश्यक व्यवहारका भी फल अच्छा नहीँ होता। यह हमारा स्वयं अनुभव है। अंग्रेज़ीके समान विदेशी भाषा सीखनेमेँ चाहे कितना भी परिश्रम किया जाय, पर एक भारतीय उसे यथोचित रीतिसे शुद्ध उच्चारण नहीँ कर सकता। जैसा कोई अंग्रेज़ अपनी भाषाको बोलता है, वैसा हिन्दुस्तानी नहीँ बोल सकता। अंग्रेज़ भाई उदारतासे कहते हैँ कि तुम अच्छी अंग्रेज़ी बोलते हो, किन्तु बात वैसी नहीँ है। पूज्यवर दादाभाई नौरोजीका भी ऐसा ही अभिप्राय है। सारांश यह है कि विदेशी भाषामेँ बहुतसा परिश्रम करनेपर भी परिणाम कुछ भी नहीँ होता।

साहित्य और देशकी उन्नति अपने देशकी भाषा ही द्वारा हो सकती है। हाँ, यह सच है कि अंग्रेज़ीका भाण्डार बहुत बड़ा है। उसमेँ राजनीतिक भाव बहुत अच्छे हैँ। आधुनिक विज्ञानका परिचय भी हमको उसी भाषाके द्वारा हुआ है। अब यह लाभ देशव्यापी करना है। यह कार्य्य देशी भाषाके द्वारा हो सकता है। बिजलीकी रोशनीसे रात्रिका अन्धकार दूर हो सकता है, किन्तु सूर्य्यका काम बिजली नहीँ कर सकती। इसी भाँति विदेशी भाषाके द्वारा सूर्य्यका प्रकाश नहीँ कर सकते। इसलिये देशी भाषाके साहित्यकी उन्नति करनी चाहिए। अंग्रेज़ीके द्वारा जो बात जानी गई है, उसे अब देशी भाषाके द्वारा सारे देशमेँ फैलाना चाहिए। सार्वजनिक रूपसे यह कार्य्य हिन्दी ही के द्वारा हो सकता है। इसलिये उसकी उन्नति आवश्यक है। हम यह नहीँ कहते कि देशभरमेँ एक ही भाषा रहे, अन्य प्रान्तीय भाषाएँ न रहेँ। नहीँ, सब प्रान्तोँमेँ अपने-अपने प्रान्तकी भाषाकी उन्नति हो। सभी भाषाएँ शोभाके साथ प्रौढ़ और दृढ़ बनेँ। बङ्गला बङ्गदेशमेँ अच्छी उन्नति करे। गुजरातीकी गुजरातमेँ, मराठीकी महाराष्ट्रमेँ उन्नति होनी चाहिए। ये सब प्रान्तीय भाषाएँ हैँ। इन सबके रहते हुए हिन्दी भाषा राष्ट्रीय भाषाके तौरपर उपयुक्त की जा सकती है। अभीतक जो कार्य्य अंग्रेज़ीके द्वारा होता आया है, वह अब हिन्दीके द्वारा होना चाहिए। कांग्रेसके समान राष्ट्रीय सभाओँमेँ विदेशी भाषाओँका उपयोग होनेसे सर्वसाधारण जनता अपने नेताओँके भाव नहीँ समझ सकती। 'क्रौनिकल' पत्र अंग्रेज़ीमेँ निकलता है। श्रीमती एनीबेसेण्टका 'न्यू इण्डिया' भी अंग्रेज़ीमेँ छपता है। इन पत्रोँका उपयोग बहुत थोड़े लोगोँको होता है। देशके मुट्ठीभर प्राणी ही अंग्रेज़ी जानते हैँ। समस्त जातिके लिये फिर कौनसा साधन है? वह साधन सिवाय एक राष्ट्रीय भाषाके और कोई नहीँ हो सकता। हमारा राष्ट्र योरोपके बराबर है। योरोपमेँ भिन्न देशोँके रहते हुए भी सारे महाद्वीपमेँ अंग्रेज़ीका उपयोग किया जाता है। इसी भाँति भारतवर्षमेँ हिन्दीका राष्ट्रीय भाषाके तौरपर प्रयोग होना चाहिए। भारतमेँ युधिष्ठिरके ज़मानेसे लेकर अशोकके समयतक एकच्छत्र राज्य था। आजसे बाईस सौ वर्ष पहले यहाँ एक साम्राज्य था। उस समय भी यहाँ राष्ट्रीय भाषा थी। हिन्दी भाषाका भी प्रयोग सारे देशमेँ बहुत प्राचीन कालसे होता आता है। वह कौनसी भाषा है जो बृन्दावन, बदरीनारायण, द्वारका, जगन्नाथपुरी इत्यादि चारोँ धामोँतक, एक समान धार्मिक यात्रियोँको सहायता देती है? वह एक हिन्दी भाषा है। यह 'लिंग्वा फ़्रेङ्का'—लिंग्वा फ़्रेङ्का ही क्योँ 'लिंग्वा इण्डिका' है। गुरु नानकजी लङ्का, तिब्बत, मक्का, मदीना, चीन इत्यादि सब देशोँमेँ गए। वहाँ उन्होँने किस भाषामेँ उपदेश दिया था? यही हिन्दी भाषा थी। इससे जान पड़ता है कि उस समय भी हिन्दी भाषा राष्ट्र-भाषा थी, और इसका सार्वजनिक प्रचार था। शिवाजी महाराजके समयमेँ भी, जब कि छत्रपतिके विभवका समय था, भूषण कवि राष्ट्रीय भाषाके प्रचारक थे। भूषणकी कवितामेँ जो प्राण, जो ओज और जो बल पाया जाता है वह दूसरे कविकी कवितामेँ बहुत कम पाया जाता है। इनकी कविता

बम्बईमेँ ही नहीँ बल्कि पूना, किम्बहुना सम्पूर्ण महाराष्ट्र साम्राज्यमेँ पढ़ी जाती थी। छत्रपति शिवाजीने राष्ट्रीय भाषा हिन्दीका महत्त्व बहुत अच्छी तरह समझा था। सारांश यह कि उस समय देशमेँ एक भाषा थी, जिसमेँ सब राष्ट्रीय व्यवहार चलता था। एक भाषात्त्वका भाव थोड़े दिनसे कम हो गया है और अंग्रेज़ी भाषामेँ सब व्यवहार चलनेके कारण हिन्दीका प्रचार बन्द हो गया, परन्तु अब इस प्रकार कार्य्य नहीँ चल सकता। अब वह समय आ गया है जब कि प्रत्येक प्रान्तके सब भाई और बहन अपनी-अपनी भाषाकी उन्नति करते हुए राष्ट्रीय भाषाके प्रचारमेँ भी प्रयत्न करेँ। तीन सम्बन्धोँसे राष्ट्रीय भाषाका प्रचार आवश्यक है।

(१) धर्म-सम्बन्धसे,
(२) व्यापार-सम्बन्धसे, और
(३) राजनीति-सम्बन्धसे।

आपका भारत धर्मप्रधान देश है। इसके चारोँ कोनोँपर चार धाम हैँ। अब आप ही सोचिए कि धार्मिक सम्बन्धसे सारे भारतवर्षमेँ कौनसी भाषासे कार्य्य चल सकता है। मेरी समझमेँ इसके लिये हिन्दी भाषाका ज्ञान बहुत आवश्यक है। धर्मके अनेक ग्रन्थ हिन्दी भाषामेँ हैँ, जिनको सब प्रान्तोँके भाई बड़े चावसे पढ़ते हैँ। हमारे भाटिया इत्यादि वैष्णव भाई सूर और तुलसीके भजनोँको इसी भाषामेँ बड़े प्रेमसे गाते हैँ? कबीरदासके दोहरे और भजन भी सब प्रान्तोँमेँ बड़ी भक्ति और श्रद्धासे गाए जाते हैँ। इस प्रकार धर्म-सम्बन्धसे हिन्दी भाषाका राष्ट्रीय भाषाके तौरपर स्वीकार करना आवश्यक है।

इसी प्रकार व्यापार-सम्बन्धसे भी प्रत्येक प्रान्तमेँ जाना होता है और परस्पर वार्त्तालापकी कोई एक सरल भाषा यदि नहीँ होती तो कार्य्यमेँ बड़ी असुविधा होती है। भारतवर्षमेँ एक हिन्दी ही भाषा ऐसी है जो उसके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक सब छोटे-बड़े नगरोँके हाटोँ और बाज़ारोँमेँ समझी तथा बोली जाती है। इसलिये इस दृष्टिसे भी हिन्दीके ही द्वारा राष्ट्र-भाषाका कार्य्य चलाया जा सकता है।

राजनीतिके सम्बन्धसे तो एक भाषाका होना बहुत ही आवश्यक है। सम्पूर्ण देशके शासनका केन्द्र एक है। आगे चलकर बड़े लाटकी सभा अंग्रेज़ी पार्लियामेण्टकी प्रतिनिधि होगी। यह नहीँ कहा जा सकता कि बहुत जल्दी उस सभामेँ देशी भाषा या किसी एक राष्ट्रीय भाषाके द्वारा कार्य्य होगा, क्योँकि जाति और देशके दिन लम्बे-लम्बे होते हैँ; तथापि दस, पन्द्रह तथा बीस वर्षमेँ कौँसिलमेँ देशी भाषाके द्वारा भाषण करनेका मौक़ा हमको प्राप्त होगा। जब प्रजाके अधीन राज्य होगा तब हमको ऐसी ही भाषाके द्वारा राजकाज करना होगा, जिसको कि बहुजनसमाज समझता हो। मुट्ठीभर आदमी जिस भाषाको बोलते और समझते हैँ, उसके द्वारा सारी प्रजाका कार्य्य नहीँ किया जा सकता। प्रत्येक नगर और गाँव-गाँवके भाई-बन्द अपने-अपने प्रतिनिधि नियत कर देँगे। वे किस भाषामेँ अपनी राय प्रगट करेँगे? सवाल पेश है कि नमकपर कर बढ़ाना चाहिए या नहीँ? नमक सबके व्यवहारकी चीज़ है। किस भाषामेँ ऐसे प्रश्नोँका निर्णय होना चाहिए? प्रजाकी सम्मति उसी भाषामेँ प्रगट होनी चाहिए जिसको वह भली भाँति समझती हो। उसका शासन उसी भाषामेँ होना चाहिए जिसको वह बोलती हो। ऐसी कौनसी भाषा है? क्या अंग्रेज़ीके द्वारा यह कार्य्य हो सकता है? नहीँ। हिन्दीको ही इसके लिये सर्वथा उपयुक्त मानना पड़ेगा।

इङ्गलैण्ड जर्मनीके समान प्रबल शत्रुको जीत सका। इसका कारण क्या है? क्या धनबल और बाहुबलके कारण वह ऐसा कर सका है? कदापि नहीँ। इसका एकमात्र कारण यही है कि उनमेँ जातीयता और देशभक्तिके भाव प्रबल थे, जिनके कारण वह अपने प्रबल शत्रुको जीत सका। उस देशकी

एक-एक वहन और माँने अपने-अपने पतियोँ और बालकोँके अन्दर देशभक्तिके भाव भर दिए थे। वहाँके लोगोँकी नस-नसमेँ स्वदेशाभिमानका भाव भरा हुआ है। इसका कारण यही है कि उनका साहित्य बहुत ऊँचा है। वहाँके लोगोँने अपने साहित्यमेँ एक प्रकारकी जानसी डाल दी है। वहाँकी पार्लियामेण्टमेँ देशकी भाषामेँ ही सब राजकाज होते हैँ; सब ऊँचे-ऊँचे राजनीतिक विचार प्रगट किए जाते हैँ, जिससे वहाँकी जनता उत्तेजित होकर देशके लिये प्राणपनसे काम करनेके लिये तैयार हो जाती है। यदि अंग्रेज़ी भाषामेँ पार्लियामेण्टकी कार्रवाई न हो तो पार्लियामेण्टका इतना भारी प्रभाव न हो। देखिए, वहाँ आयरिश, स्कौच इत्यादि सब भिन्न-भिन्न देशीय विद्वान् रहते हैँ, पर सब अपनी-अपनी देशभाषाका अभिमान छोड़कर अंग्रेज़ी राष्ट्रभाषाको ही ग्रहण करते हैँ। बर्क, शेक्सपियर, मिल्टन इत्यादिने अंग्रेज़ीमेँ ही अपने-अपने अमूल्य ग्रन्थ रचे हैँ। सब विद्वान् और राजनीतिज्ञोँने एक भाषा अंग्रेज़ीको ही स्वीकार किया है। वहाँके यदि सब कार्य्य भिन्न-भिन्न भाषाओँमेँ होते तो क्या कदापि उनको यह बल प्राप्त होता? निस्सन्देह स्कौच और आयरिश लोग अपनी-अपनी भाषाको प्यार करते हैँ, पर जहाँ राष्ट्रीय प्रश्न उपस्थित होता है, वहाँ अपनी मातृभाषाका अभिमान छोड़कर राष्ट्रभाषाको ही स्वीकार करते हैँ। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामेँ भी अंग्रेज़ीके द्वारा ही सब योरोपीय देशोँके लोग कार्य्य करते हैँ। न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया इत्यादि के निवासियोँको भी वपौतीकी तरह अंग्रेज़ीका ऊँचा साहित्य प्राप्त हो गया है। ये सब लोग यदि अपनी-अपनी भाषाके अभिमानमेँ वने रहते तो आज इनको यह लाभ और ऐसी राजनीतिक सुविधाएँ न मिलतीँ। इसी भाँति हमको भी सब राष्ट्रीय कामोँके लिये एक भाषाको पकड़ना चाहिए। ऐसा यदि हम नहीँ करेँगे तो सम्पूर्ण देशकी प्रजामेँ सरलताके साथ राजनीतिक विचार नहीँ फैला सकेँगे। कौन्सिलमेँ यदि हिन्दी भाषामेँ भाषण हुआ करेँ तो सारे देशमेँ दूसरे ही दिन उनके भावोँका प्रचार हो जाया करे। अभी अंग्रेज़ीमेँ होनेके कारण देशके कोने-कोनेमेँ राजनीतिक सन्देश अच्छी तरह नहीँ पहुँच पाते।

यह धर्म, व्यापार और राजनीतिकी दृष्टिसे राष्ट्रीय भाषाका महत्त्व मैँने बतलाया। अब हिन्दुस्तानके बाहर भी यदि हिन्दी भाषापर दृष्टि डाली जावे तो वहाँ भी यह भाषा उपकारी है। अंग्रेज़ी उपनिवेशोँमेँ जहाँ-जहाँ हिन्दुस्तानी बसते हैँ, हिन्दी भाषाका ही प्रयोग किया जा सकता है। अफ़ग़ानिस्तानमेँ भी किसी दूसरे रूपमेँ इसी भाषाका प्रचार है। मेरा मतलब उस भाषासे है जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनोँ बोलते हैँ। आबख़ोरा मालूम, आग, इत्यादिके शब्द जिस भाषामेँ सुनाई देते हैँ, उसे चाहे आप उर्दू कहेँ, हिन्दी कहेँ अथवा हिन्दुस्तानी कहेँ, वह है एक ही भाषा। उसके नामभर तीन हैँ। व्याकरण भी एक ही है। अर्थात् तीनोँकी जड़ एक ही है। जिसमेँ संस्कृतके शब्द अधिकतासे प्रयोग किए जाते हैँ, उसे लोग हिन्दीके नामसे पुकारते हैँ; और जिसमेँ अरबी तथा फ़ारसीके शब्द विशेष रहते हैँ, उसे उर्दू कहते हैँ। वैज्ञानिक विचारोँके लिये यह अपनी-अपनी खीँचातानी चलेगी, यह भेद रहेगा। हिन्दी अपनी माँ (संस्कृत) से अपने शब्द पूछती है। वह माँकी बोलीके सामने दूसरे शब्द नहीँ लेगी। इसी तरह मुसलमान भाई ऊँची अवस्था और ऊँची शिक्षामेँ अरबी-फ़ारसीके शब्द ग्रहण करेँगे। किन्तु सामान्य बोलचालकी भाषा एक ही रहेगी। गङ्गा और यमुनाकी धाराएँ देखनेमेँ दो हैँ, किन्तु दोनोँ ही विष्णुके चरणोँसे निकली हैँ। दोनोँ ही पर्वतसे गिरकर, फिर प्रयागमेँ एक होकर गङ्गासागरको जाती हैँ। हिन्दी-भाषी लोग अपनी भाषाको संस्कृतके अच्छे अच्छे शब्दोँ और वाणभट्ट तथा कालिदासकी युक्तियोँसे भले ही सुशोभित करेँ; किन्तु देशके

व्यवहारकी भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे सब भाई और बहन सहज ही मेँ समझ सकेँ।

वह कौनसी भाषा है? वह हिन्दी भाषा है। इसी भाषाको बत्तीस करोड़ भारतवासियोँमेँसे साढ़े तेरह करोड़ लोग बोलते हैँ। यह भारतके अधिकांश प्रान्तोँमेँ किसी-न-किसी रूपमेँ प्रचलित है। अन्य प्रान्तीय भाषाओँकी अपेक्षा इसके बोलनेवालोँकी संख्या किस प्रकार अधिक है, यह सन् १९११ की मनुष्य-गणनाके विवरणसे मैँ आप लोगोँको बतलाता हूँ।

हिन्दी	१३५० लाख
बङ्गला	४८४ „
मराठी	२०० „
गुजराती	१०७ „
तैलगू तामिल	४१६ „
शेष बीस भाषाएँ	५८७ „
अंग्रेज़ी	३ „

यदि रायचूरतक हिन्दी भाषा समझी जाती है तो तैलगू और तामिल भाषावाले भी थोड़ी-थोड़ी हिन्दी समझते हैँ, और अन्य देश तथा प्रान्त भी इसे समझते हैँ। ऐसी दशामेँ यह राष्ट्र-भाषा पहलेसे ही बनी-बनाई हुई है। आप सब बहन और भाई इस बातको मानेँगे। संस्कृतसे प्राकृत, मागधी, पैशाची, शौरसेनी, इत्यादि भाषाएँ निकलीँ; फिर इन्हीँमेँसे गुजराती, मराठी, बङ्गाली, इत्यादिके रूपान्तर होते गए हैँ। हिन्दी इन सबकी बड़ी बहन है। यह पहलेके विवेचनसे आपको मालूम ही हो चुका है। इन सब भाषाओँसे हिन्दीका बहुत मेल है। प्राचीन गुजराती एक प्रकारकी हिन्दी ही है। नरसी मेहताके पदोँमेँ हमारे इस कथनकी प्रतीति आप लोगोँको भली भाँति हो सकती है। इसी भाँति विद्यापति ठाकुरकी पदावली मिथिला भाषामेँ होते हुए भी हिन्दी है। देखिए:—

माधव कत तोर करब बड़ाई।
उपमा तोहर हम ककरा कहब कहितहुँ अधिक लजाई॥
जो श्रीखण्ड सौरभ अति दुर्लभ तौँ पुनि काठ कठोर।
जौँ जगदीश निसाकर तौँ पुनि एकहि पक्ष इजोर॥
मनि समान अउरो नसि दूसर तनिकहुँ पाथर नामे।
कनक कदलि छोट लज्जित मैँ रहु की कहु ठामहिँ ठामे॥
तोहर सरिस एक तोह माधव मन ही इछ अनुमाने।
सज्जन जनसोँ नेह कठिन थिक कवि विद्यापति भाने॥

इस भाँति जब हिन्दीका सब बहनोँसे सम्बन्ध है, और ऐसी जब यह बड़ी बहन है, तब इसको मानकर यदि प्रान्त-प्रान्तकी भाषाओँका सेवन किया जाय तो बहुत ही उपकार होगा।

हाँ, एक बात और है। हमारे मुसल्मान भाई कहेँगे कि हम इसको कैसे मानेँगे? एक राष्ट्रीय भाषा वह होनी चाहिए कि जिसको हिन्दू, मुसल्मान, ईसाई सब मानेँ। मैँ निवेदन करूँगा कि मुसल्मान भाइयोँका हिन्दीको मानना कोई नवीन बात नहीँ है। प्राचीन कालसे ही मुसल्मान कवि हिन्दीमेँ कविता करते आए हैँ। सम्राट् अकबरतकने हिन्दीसे प्रेम दिखलाया है। वे स्वयं हिन्दीमेँ बहुत अच्छी कविता करते थे। देखिए, उनका दोहरा कैसा अच्छा है:—

जाको जस है जगतमेँ, जगत सराहै जाहि।
ताको जीवन सफल है, कहत अकब्बर साहि॥

इसी भाँति रहीम कविने क्या ही अच्छी उपदेशप्रद कविता की है। उनका एक ही दोहा मैँ आप लोगोँको सुनाता हूँ:—

जे गरीबसोँ हित करैँ, धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग॥

मुबारक कवि भी बड़े प्रसिद्ध हो गए हैँ। मलिक मुहम्मद जायसीने 'पद्मावत' लिखा है। इस भाँति अनेक मुसल्मान सज्जनोँने हिन्दीको अपनी माँकी बोली समझकर उसकी सेवा की है। रसखानकी कविता कैसी प्रेम-भरी है, यह प्रत्येक

सहृदय जान सकता है। देखिए, कृष्णके प्रेममें रँगकर उन्होंने कैसा कहा है—

मानस होउँ वहै रसखानि,
बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन ।
जौ पसु होउँ कहा बस मेरौ,
चरौं नित नन्दकी धेनु मझारन ॥
पाहन होउँ वहै गिरिको,
जो धरयौ करछत्र पुरन्दर धारन ।
जौ खग होउँ बसेरौ करौं,
उन कालिन्दि कूल कदम्बकी डारन ॥

यह कोई धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली बात नहीं है, यह राष्ट्रीयताका सवाल है, देशभाषाका सवाल है। अकबर, रहीम, रसखान, मलिक मुहम्मद जायसी आदि मुसल्मान भाइयोंकी भाँति इसाई मिशनरियोंने भी हिन्दी भाषाका बड़ा मान करके उसकी सेवा की है। इसी भाँति सैकड़ों हिन्दुओंने उर्दूमें भी ग्रन्थ और काव्य लिखे हैं। ब्रजनारायण चकबस्तके समान अनेक प्रसिद्ध हिन्दू कवि और लेखक अब भी उर्दूकी सेवा कर रहे हैं। फिर क्या कारण है कि मुसल्मान भाई हिन्दीको न अपनावें? अवश्य अपनावेंगे। मतलब यह है कि हिन्दी भाषा एक ऐसी सार्वजनिक भाषा है जिसे सब भेदभाव छोड़कर प्रत्येक भारतीय ग्रहण कर सकता है।

एक और बात है। वर्त्तमान कालमें भी प्रत्येक प्रान्तके विचारशील सज्जनोंने हिन्दीको राष्ट्रीय भाषाके नाते स्वीकार किया है। महाराज गायकवाड़ने, चिरकाल हुआ, हिन्दीकी आवश्यकताको समझ लिया था। सर आशुतोष मुकर्जी, जस्टिस शारदाचरण मित्र, इत्यादिने भी हिन्दीके प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। श्रीयुत कृष्णस्वामीने सन् १९०८की कांग्रेसमें कहा था कि हिन्दीका प्रचार वे अपने प्रान्तमें कर रहे हैं। इसी भाँति गुजराती और माहाराष्ट्र सज्जन भी हिन्दीके पक्षमें अपनी सम्मति प्रगट कर चुके हैं। निज़ाम सरकार उर्दूकी उन्नतिकी ओर विशेष ध्यान दे रही है। वे बी० ए० तककी शिक्षाके लिये उर्दूमें उत्तम ग्रन्थ-माला तैयार करवा रहे हैं। हिन्दीको भी इससे लाभ होगा। हिन्दीमें भी उच्च शिक्षाके लिये ऐसा ही प्रयत्न होना चाहिए।

अन्तमें हम यही प्रार्थना करेंगे कि आप सब भाई-बहन राष्ट्रभाषाके गौरवको मानकर अपनी-अपनी भाषाके साथ प्रत्येक बालकको हिन्दीका ज्ञान अवश्य करावें। कोई दिन आवेगा कि जिस भाँति अंग्रेज़ी जगत्-भाषा हो रही है, उसी भाँति हिन्दीका भी सार्वत्रिक प्रचार होगा। इसी बातका ध्यान दिलानेके लिये आज यह बम्बईका सम्मेलन हुआ है। हमें विश्वास है कि सब भाई-बहनोंकी परस्पर सहायतासे यह विटप बढ़कर फूले-फलेगा और देशको लाभ पहुँचावेगा।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सोमवार २६ जनवरी सन् १९२० ई० को सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज्के काशीनरेश हौलमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके द्वितीय उपाधि-वितरणोत्सवके अवसरपर पूज्य मालवीयजीने निम्नाङ्कित दीक्षान्त भाषण दिया था। —सम्पादक।

दीक्षान्त भाषण

हिन्दू विश्वविद्यालयका यह द्वितीय उपाधि-वितरणोत्सव है। इस अवसरपर मेरे हृदयमें जो प्रमुख भावना है—और मेरा विचार है कि विश्वविद्यालयसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें भी वैसी ही भावना होगी—वह परमपिता परमात्माको अनेकानेक धन्यवाद देनेकी है, जिसकी कृपाके परिणामस्वरूप आज हम इस वार्षिकोत्सवके अवसरपर यहाँ एकत्र हुए हैं। सन् १९०४ में महाराजाधिराज बनारसकी अध्यक्षतामें की गई सभामें इस विश्वद्यालयके आन्दोलनका सर्वप्रथम सूत्रपात हुआ था। सन् १९०५ ई० में यह विचार एक योजनाके रूपमें रक्खा गया था और इकतीस दिसम्बर सन् १९०५ को, जिस वर्ष राष्ट्रीय महासभाका अधिवेशन काशीमें हुआ था, देशके गण्यमान्य व्यक्तियोंकी टाउन हौलमें सभा हुई थी, जिसमें इस योजनापर विचार किया गया था और उसका समर्थन सब सदस्योंने किया था। कुछ समय तक यह आन्दोलन चला किन्तु फिर कुछ कारणवश आन्दोलनकी गति सन् १९१० तक रुकी ही रही। योजनाको ठीक रूपसे कार्य्यरूपमें परिणत करनेसे पहले बहुतसा प्रारम्भिक कार्य्य करना आवश्यक था। सन् १९११ में जब राजराजेश्वर भारत-सम्राट्ने भारतका दौरा किया तो विश्वविद्यालयकी आवश्यकता तथा इसके उद्देश्य फिरसे प्रकाशित किए गए। पहली योजनाने इसकी आवश्यकता भली भाँति बतलाई थी, किन्तु फिर भी कुछ परिवर्त्तन आवश्यकीय थे। जब यह योजना सन् १९११ में फिरसे रक्खी गई तो जनताने इसका हृदयसे समर्थन किया। बहुतसे राजाओं तथा धनिकोंने सहायता देनेका वचन दिया। पच्चीस लाख रुपयोंका वचन मिल जानेपर भारत सरकारसे प्रार्थना की गई और लार्ड हार्डिञ्ज तथा सर हारकोर्ट बटलरकी सहायतासे सरकारने हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करनेका समर्थन किया। दाताओंकी संख्या भी क्रमशः बढ़ने लगी। पहली अक्तूबर सन् १९१५ तक, जिस समय कि हिन्दू विश्वविद्यालय विधान स्वीकृत हुआ, पचास लाख रुपये इकट्ठे किए जा चुके थे। सन् १९१७ में भारतसरकारने हमें इस स्थानपर विश्वविद्यालयका कार्य्य चलानेकी आज्ञा दी।

इसी समय दो मील लम्बा तथा एक मील चौड़ा सुन्दर स्थान नगवापर लगभग छः लाख रुपयेमें ख़रीद लिया गया। इसी स्थानपर अब सुन्दर भवन बन रहे हैं। लगभग छः सप्ताहोंमें आर्ट्स कौलेज्, भौतिक तथा रासायनिक प्रयोगशालाएँ

तैयार हो जायँगी। छः सौ विद्यार्थी रखनेके योग्य दो छात्रावास भी तुरन्त ही तैयार हो जायँगे। बहुतसे यन्त्रालय भी बन गए हैं और प्रिन्सिपल किङ्गकी अध्यक्षतामें इञ्जिनियरिङ्ग कौलेज़का कार्य्य सुचारु रूपसे चल रहा है। हमें आशा है कि जुलाई मासमें अथवा अधिक-से-अधिक सन् १९२१ के जनवरी मासमें हम अपना कार्य्य नये स्थानपर प्रारम्भ कर देंगे। हमें आशा है कि हम प्रिन्स औफ़ वेल्सका स्वागत करनेका सौभाग्य तथा प्रसन्नता भी प्राप्त करगे। विश्वविद्यालयकी कौन्सिलने युवराजको एक सादर निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया है। इसी बीचमें हमें बहुत कुछ कार्य्य करना है तथा बहुत अधिक रुपयोंकी भी भारी आवश्यकता है।

कुछ सज्जनोंका कथन है कि अपनी योजनाको कार्य्यरूपमें परिणत करनेके लिये हमें अपना ध्यान भवन-निर्माणकी ओर न देकर भिन्न-भिन्न विषयोंमें विद्वान् नियुक्त करनेकी ओर देना चाहिए। आप लोगोंको यह जानकर सन्तोष होगा कि विश्वविद्यालयके कार्य्यकर्त्ताओंने इस बातको भुला नहीं दिया। हमने केवल उन्हीं भवनोंको बनानेका निश्चय किया है जिससे हम जल्दी ही नये स्थानपर अपना कार्य्य आरम्भ कर दें। इस अवसरपर हमें अधिकाधिक रुपयोंकी आवश्यकता है और मेरा विश्वास है कि प्रत्येक विश्वविद्यालयप्रेमी हमारे उद्देश्यको पूर्ण करनेके लिये हमें अधिकाधिक आर्थिक सहायता देगा।

इस अवसरपर इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि हम देश तथा विश्वविद्यालयके एक प्रसिद्ध युगमें हैं। हमें कलाकौशल-सम्बन्धी शिक्षा, विज्ञान, प्राच्य विद्या तथा धार्मिक शिक्षाके विभागोंकी ही उन्नतिमें सहयोग नहीं देना है अपितु हमें अपने कार्य्यक्रमके अनुसार कृषि-विभाग, शिल्प-विभाग, वाणिज्य-विभाग, आयुर्वेद-विभाग तथा सङ्गीतविद्या व ललितकला-विभागको भी जन्म देना है। हमें एक संग्रहालयकी आवश्यकता है जहाँ विद्यार्थी भिन्न-भिन्न विषयोंका ज्ञान प्राप्त कर सकें। एक पुस्तकालयके लिये भी रुपयोंकी बड़ी भारी आवश्यकता है। एक मन्दिरका बन जाना भी आवश्यक है। देशके भिन्न-भिन्न भागोंसे आए हुए विद्यार्थियोंके लिये एक छात्रावासकी भी आवश्यकता है। इन सब कार्य्योंके लिये बहुत अधिक रुपये चाहिएँ। विश्वविद्यालयकी सन्तोषजनक प्रगतिके लिये अभी हमारे सम्मुख सबसे बड़ी आवश्यकता अधिकाधिक रुपये एकत्र करनेकी है।

अपने देशके इतिहासमें हम एक महत्त्वपूर्ण युगमें प्रवेश कर रहे हैं। श्रीमान् भारत-सम्राट्की घोषणा भी हम सबको विदित है। नया शासन-विधान जो देशके लिये स्वीकृत हुआ है उसे भी आप लोग जानते हैं। शासन-विधान तो महत्त्वपूर्ण है ही किन्तु उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण सम्राट्की घोषणा है। भारत-सम्राट्ने भारत छोड़नेके समय हमें आश्वासनपूर्ण सन्देश भेजा था। वह आश्वासन अब आंशिक रूपमें कार्य्यान्वित किया है और भविष्यमें समय आनेपर हमें पूर्ण उत्तरदायित्व शासन देनेका वचन दिया है। उस घोषणामें भारत-सम्राट्की वास्तविक अभिलाषा भली भाँति प्रगट होती है कि भारतवासियोंको संसारके देशोंमें उचित स्थान मिलना चाहिए। इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये उस घोषणामें भारतवासियोंसे नवीन शासन-विधानको सफल बनानेके लिये प्रार्थना की गई है।

आजकी सभाके सम्मुख सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न शिक्षाका है। आप जानते हैं कि शिक्षा-प्रबन्ध व्यवस्थापिका सभाद्वारा तथा निर्वाचित मन्त्रियोंद्वारा होगा। केवल प्रारम्भिक तथा द्वितीय श्रेणीकी शिक्षा ही नहीं, अपितु विश्वविद्यालयोंकी शिक्षा भी मन्त्रियोंद्वारा सञ्चालित होगी। शिक्षाकी उन्नतिमें इस अवसरका सदुपयोग कितना लाभदायी होगा, इसकी कल्पना हम सब कर सकते हैं। हमारा बहुत दिनोंसे कहना था कि शिक्षाके लिये हमें पर्य्याप्त धन नहीं मिलता। बहुत दिनोंसे हमने इसकी आवश्यकता

बतलाई है कि शिक्षाके लिये सरकारको अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए । सरकारी नौकरोंद्वारा जो कार्य्य अबतक किया जाता था उस कार्य्यका उत्तरदायित्त्व अब हमारे कन्धोंपर आ पड़ा है। हमें अब परिस्थितिको देखना है, और देखना है कि विश्वविद्यालय किस प्रकार शिक्षा-कार्य्यमें सहयोग दे सकता है।

एक और दूसरी घटना भी परिस्थितिपर प्रभाव डाल रही है। नवीन शासन-विधानके अनुसार जनताद्वारा निर्वाचित मन्त्रियोंके हाथमें शिक्षाका प्रबन्ध रहेगा। वे अपने कार्य्योंके लिये व्यवस्थापिका सभाओंके सम्मुख उत्तरदायी होंगे। कलकत्ता विश्वविद्यालय-कमीशनने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है। बहुतसे वर्षोंके गहरे अध्ययनके परिणामस्वरूप यह रिपोर्ट जनताके सम्मुख आई है और इसकी सिफ़ारिशोंके ऊपर बहुतसी प्रान्तीय सरकारें भी विचार कर रही हैं। समस्त सिफ़ारिशोंके ऊपर प्रकाश डालना मेरे लिये असम्भव है किन्तु आपका ध्यान दो अथवा तीन धाराओंकी ओर आकर्षित करूँगा जो हमारे वर्त्तमान कार्य्यसे सम्बन्ध रखती हैं। कमीशनकी प्रमुख सिफ़ारिशोंमें एक यह भी है कि इण्टरमीजिएट आर्ट्स तथा साएन्स कक्षाओं तकके अलग कौलेज़ बनने चाहिएँ तथा बी० ए० औनर्स तथा उत्तीर्ण होनेका पाठ्य-क्रम तीन सालका हो जाना चाहिए। जो विद्यार्थी औनर्स लेकर बी० ए० पास करेंगे वे विशेष परिस्थितियोंमें एक साल ही में एम्० ए० की परीक्षामें सम्मिलित हो सकेंगे। इन दो प्रस्तावोंसे कौलेजों तथा विश्वविद्यालयोंकी स्थितिमें महान् परिवर्त्तन हो जायगा। दोनों मार्गोंमेंसे कौन श्रेयस्कर है, इसके ऊपर विद्वानोंमें मतभेद है। अधिकांश लोगोंकी धारणा है कि विश्वविद्यालयोंसे इण्टरमीजिएट कक्षाएँ अलग हो जानी चाहिएँ। किन्तु इस बातपर अभी मतभेद है कि इण्टरमीजिएट कक्षाओंके अलग कौलेज़ बनने चाहिएँ अथवा ये कक्षाएँ हाइस्कूलोंमें सम्मिलित कर दी जायँ।

सज्जनो! मेरे लिये इस विषयपर, जिसपर सर माइकेल सैडलर तथा आशुतोष मुकर्जी जैसे विद्वान् विचार कर चुके हैं, किसी प्रकारकी सम्मति प्रगट करना निस्सन्देह साहसका कार्य्य होगा। इस प्रश्नपर विचार करनेवाले सज्जनोंमेंसे डा० ज़ियाउद्दीन अहमद तथा महाशय हारवैल जैसे सुयोग्य व्यक्ति भी थे। किन्तु मेरी सम्मतिमें यह विषय इतना महत्त्वपूर्ण है तथा इसका प्रभाव समस्त विद्यालयोंपर इतना अधिक पड़ेगा कि इसको सुलझानेका सर्वोत्तम मार्ग हमें यही दिखलाई पड़ता है कि देशके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध शिक्षाप्रेमियोंकी एक सभा बुलाई जाय, जो अपने व्यक्तिगत अनुभव तथा योग्यताके आधारपर सर्वोत्तम मार्ग निश्चित कर सकें। मैंने इस प्रश्नपर अपने बहुतसे साथियोंके साथ विचार किया है और मेरे विचारसे बहुतसे ऐसे व्यक्ति हैं जो इण्टरमीजिएट कक्षाओंके एक अलग कौलेज़ बना देनेके प्रस्तावके विरोधी हैं।

कुछ सज्जनोंकी यह सम्मति है कि हमें शिक्षाके समस्त अङ्गोंपर विचार करना चाहिए, उसके भिन्न-भिन्न अङ्गोंपर अलग-अलग नहीं। यदि हम इस समस्याका निर्णय इस रूपमें करेंगे तो सर्वप्रथम हमें इस बातका निर्णय करना पड़ेगा जैसा कि कमीशनने भी कहा था, कि शिक्षाका माध्यम क्या हो? मुझे इस बातको जानकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि कमीशनने स्कूलोंमें मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेकी बातका समर्थन किया है। इण्टरमीजिएट कौलेजों तथा विश्वविद्यालयोंमें कमीशनकी सम्मतिके अनुसार अंग्रेज़ीके माध्यमद्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए। मेरे विचारसे कमीशनकी इन सिफ़ारिशोंमें थोड़ासा परिवर्त्तन होना चाहिए। मेरे विचारसे अब वह समय आ गया है जब हमें केवल स्कूलोंमें ही नहीं बल्कि विश्वविद्यालयों तथा उच्च श्रेणियोंमें भी देशी भाषाओंके माध्यम-द्वारा शिक्षाकी व्यवस्था करनी चाहिए। मैं यह जानता हूँ कि हमारी देशी भाषाओंमें अभी समस्त

विषयोंमें शिक्षा देने योग्य साहित्य नहीं है। किन्तु यह कमी उसी समय पूरी हो सकती है जब हम उसके लिये अभीसे कार्य्य करना आरम्भ कर दें और जब हमें अपने ध्येयका भली प्रकार ज्ञान हो जाय तथा वह नीति हमें भली भाँति विदित हो जाय, जिसे हम काममें लाना चाहते हैं। संसारमें कोई ऐसा सभ्य देश नहीं है जहाँ प्रारम्भिक तथा उच्च श्रेणियोंकी शिक्षाके लिये मातृभाषाका प्रयोग न किया जाता हो। तब हम भी उस मार्गको क्यों न अपनाएँ? आपको इस समस्यापर ऊपरसे विचार करना पड़ेगा। हमारे स्कूलोंमें अंग्रेज़ी ही शिक्षाका माध्यम है। हमारे शिक्षाप्रेमियोंको अपने समयका अधिकांश इसी बातके सोचनेमें लगाना पड़ता है कि अंग्रेज़ी शिक्षाका प्रारम्भ किस श्रेणीसे करना चाहिए? मामला यहीं रुका रह जाता है। यदि प्रारम्भ ही से सरकार तथा जनताका यह मत हो जाय कि जहाँ सम्भव हो सकेगा देशवासियोंको शिक्षा देनेके लिये देशी भाषाओंका प्रयोग किया जायगा, तथा पाठ्य पुस्तकोंको तैयार करनेका अभीसे यथासाध्य प्रयत्न किया जायगा तब मेरे विचारसे प्रारम्भिक शिक्षाकी समस्या तथा मिडिल स्कूलोंमें अंग्रेज़ीका उपयुक्त स्थान निर्धारित करनेकी समस्या भी बहुत जल्दी सुलझ जायगी। मेरा यह विचार कदापि नहीं है कि हम अंग्रेज़ी भाषाको सर्वथा त्याग दें। अंग्रेज़ी भाषाके माध्यमसे देशवासियोंको पिछले वर्षोंसे जो लाभ हुए हैं वे सबको भली भाँति विदित हैं तथा देशवासी इसके लिये सदा उपकृत रहेंगे। उसी शिक्षाके परिणामस्वरूप हमारी राष्ट्रीय भावनाओंको उत्तेजन मिला है और हमारा दृष्टिकोण भी पहलेकी अपेक्षा अधिक विस्तीर्ण हो गया है। वर्त्तमान शिक्षाप्रणालीके लिये हम निस्सन्देह बहुत अधिक कृतज्ञ हैं। किन्तु उसी समय हमें अपने भविष्य तथा वर्त्तमानके प्रति कर्त्तव्यपालन करनेमें किसी प्रकारका आलस्य नहीं दिखाना चाहिए। उस शिक्षाप्रणालीसे हमा देशको बहुतसी हानियाँ भी हुई हैं। किन्तु सरकारकी अपेक्षा हम अधिक दोषी हैं। मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि हमने दूसरी भाषाओंसे देशी भाषाओंमें उत्तम-उत्तम ग्रन्थोंका अनुवाद नहीं किया और इस प्रकार हमने सैकड़ों अंग्रेज़ी न जाननेवाले भाइयोंको उसके उत्तम-उत्तम गुण जाननेसे वञ्चित रक्खा है। मैं भली प्रकार जानता हूँ कि कुछ प्रान्तीय साहित्योंमें विशेषतया बङ्गालमें इस सम्बन्धमें पर्य्याप्त कार्य्य किया गया है। कुछ प्रान्तोंमें हिन्दी-उर्दूके साहित्योंमें भी आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। किन्तु यह सब कार्य शेषकार्य्यकी अपेक्षा बहुत ही कम है और अभी हमें इसके लिये बहुत बड़ा कार्य्य करना होगा।

दूसरा प्रश्न हमारे सम्मुख यह है कि हमारे देशमें जो प्रारम्भिक तथा द्वितीय श्रेणीकी शिक्षा दी जाय वह किस प्रकारकी हो? मेरे विचारसे हमें वही करना चाहिए जो जर्मनीने कई सा पहले किया था, जो जापानने पिछले वर्षोंमें किया है, जिसे अमेरिका तथा फ्रान्स पिछले व से करते आ रहे हैं और जिसे इङ्गलैण्डने पिछले थोड़े वर्षोंसे धीरे-धीरे करना प्रारम्भ किया है। इङ्गलैण्डने बहुत समयतक सुव्यवस्थि शिक्षाप्रणालीके आधारपर शिक्षा-व्यवस्थाका आयोजन नहीं किया था, किन्तु अब हमारे अंग्रेज़ मित्रों व्यवस्थित द्वितीय श्रेणीकी शिक्षाके महत्त्वको स्वीकार कर लिया है। सन् १९१८ का शिक्षा-विधान इसका भली भाँति परिचय देता है। हमारे देशमें भी चौदह वर्षतक की प्रारम्भिक तथा द्वितीय श्रेणीकी शिक्षाकी प्रणालीपर फिरसे विचार होना चाहिए। प्रारम्भिक अवस्थामें हमें केवल विद्यार्थियोंको पढ़ लिखने तथा जोड़नेकी शिक्षा देकर ही चुप न र जाना चाहिए। संसारकी प्रगतिको देखते हुए शिक्षा व्यवस्थाका यह क्रम सर्वथा अनुपयुक्त है।

देशमेँ प्रारम्भिक अवस्थामेँ हमेँ प्रारम्भिक विज्ञान तथा साधारणतया रोचक शिक्षाकी ओर ध्यान देना चाहिए।

द्वितीय श्रेणीकी शिक्षा कितनी अवस्थातक के विद्यार्थियोँको दी जाय, इस बातपर भी हमेँ विचार करना है। मेरे विचारसे चौदह वर्षसे लेकर सत्रह या अठारह वर्ष तकके विद्यार्थियोँको यह शिक्षा दी जानी चाहिए। द्वितीय श्रेणीकी शिक्षावाले स्कूल भी फ़्रान्स, जापान तथा इङ्गलैण्डके स्कूलोँकी नाईं सङ्घटित होने चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करनेवाले विद्यार्थी द्वितीय श्रेणीकी शिक्षामेँ भली प्रकार प्रवेश कर सकेँ, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। हाइस्कूल-शिक्षामेँ पिछली श्रेणीकी शिक्षासे अधिक तो योग्यता होनी ही चाहिए, इसके अतिरिक्त विद्यार्थीको इस योग्य भी बना देना चाहिए कि किसी-न-किसी उपायसे वह अपनी जीविकाके उपार्जन करनेमेँ सफल हो सके। तभी हाइस्कूलोँकी शिक्षा अन्य सभ्य देशोँकी नाईं हमारे देशके युवकोँके लिये लाभदायक हो सकेगी। इस व्यवस्थाके अनुसार कौलेजूकी शिक्षा प्राप्त करनेवालोँकी संख्या घटनेके बदले बढ़ेगी ही और उच्च शिक्षापर व्यय किए गए धनका परिणाम भी इसी अवस्थामेँ अच्छा निकलेगा। कलकत्ता विश्वविद्यालय-कमीशनकी सिफ़ारशोँके अनुसार प्रत्येक ज़िलेमेँ एक इण्टरमीजियट कौलेज् स्थापित होना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि अनेक विद्या-प्रेमी युवक जो अपनेको किसी उद्योग-धन्धेके योग्य बनाना चाहते हैँ, अपने ज़िलेमेँ ही रहकर सोलह अथवा अठारह वर्षकी अवस्थामेँ दूर स्थानोँमेँ न जाकर उस प्रकारकी शिक्षा प्राप्त कर सकेँगे। अधिकांश विद्यार्थियोँको शिक्षित बननेमेँ इस प्रकार सुभीता होगा और सुयोग्य विद्वान् भी इसीके परिणामस्वरूप निकल सकेँगे।

इस प्रस्तावपर विचार करना आवश्यक है। प्रश्न यह है कि इसका निर्णय किस प्रकार होना चाहिए? क्या प्रत्येक विश्वविद्यालय अपनी इच्छाके अनुसार इसका निर्णय कर सकता है? क्या इस उपायसे यथेच्छ उन्नति हो सकती है? मेरे विचारसे यह मार्ग ठीक नहीँ है। इस प्रश्नका सम्बन्ध समस्त विश्वविद्यालयोँसे है और मेरे विचारसे इससे सम्बन्ध रखनेवाले सब व्यक्तियोँकी एक सभा होनी चाहिए। अधिक विचार करनेसे सम्भवतः मेरा यह विचार माननीय न हो, परन्तु मुझे इसकी सम्भावना नहीँ है कि मेरा यह विचार अस्वीकृत हो जायगा। केवल कला-सम्बन्धी शिक्षा देनेसे ही किसी देशका हित नहीँ हो सकता, अपितु विज्ञानकी पिछली शताब्दियोँकी उन्नतिको देखते हुए तथा विज्ञानके प्रयोगात्मक क्षेत्रमेँ जो असाधारण उन्नति हुई है उसको देखते हुए हममेँसे कोई विचारशील व्यक्ति यह कहनेका साहस न करेगा कि प्रारम्भिक स्कूलोँमेँ जो शिक्षा-व्यवस्था की जाय उसमेँ विज्ञानकी शिक्षाका कार्य्यक्रम न हो तथा हाइस्कूलोँमेँ किसी प्रकारकी उद्योग-धन्धा-सम्बन्धी शिक्षाका उचित प्रबन्ध न हो।

अब समय आ गया है जब हमेँ देशी भाषाओँके माध्यमद्वारा देशके युवकोँको शिक्षा देनी चाहिए और हमेँ जल्दी-से-जल्दी इसके लिये प्रस्तुत हो जाना चाहिए। हम यह भली भाँति जानते हैँ कि अंग्रेज़ी भाषा संसारके समस्त विषयोँके ज्ञानके लिये किस प्रकार लाभदायक है। हमारा यह विचार नहीँ है कि अंग्रेज़ी भाषाकी शिक्षा न देनी चाहिए। सुव्यवस्थित शिक्षाप्रणालीमेँ अंग्रेज़ीको उचित स्थान मिलना चाहिए। हमारे युवकोँको विदेशी भाषाएँ सीखनेकी आवश्यकता है और कोई विदेशी भाषा हमारे लिये उतनी लाभदायक नहीँ हो सकती जितनी अंग्रेज़ी। लगभग साठ वर्षोँसे देशके समस्त भागोँमेँ अंग्रेज़ी पढ़ाई जा रही है और अधिकांश जनता इस भाषाको भली भाँति समझ सकती है। अच्छे-से-अच्छे विषयोँका ज्ञान भी अंग्रेज़ीद्वारा हो सकता है। किन्तु अंग्रेज़ी दूसरी भाषाकी नाईं पढ़ाई जानी

विषयोंमें शिक्षा देने योग्य साहित्य नहीं है। किन्तु यह कमी उसी समय पूरी हो सकती है जब हम उसके लिये अभीसे कार्य्य करना आरम्भ कर दें और जब हमें अपने ध्येयका भली प्रकार ज्ञान हो जाय तथा वह नीति हमें भली भाँति विदित हो जाय, जिसे हम काममें लाना चाहते हैं। संसारमें कोई ऐसा सभ्य देश नहीं है जहाँ प्रारम्भिक तथा उच्च श्रेणियोंकी शिक्षाके लिये मातृभाषाका प्रयोग न किया जाता हो। तब हम भी उस मार्गको क्यों न अपनाएँ? आपको इस समस्यापर ऊपरसे विचार करना पड़ेगा। हमारे स्कूलोंमें अंग्रेज़ी ही शिक्षाका माध्यम है। हमारे शिक्षाप्रेमियोंको अपने समयका अधिकांश इसी बातके सोचनेमें लगाना पड़ता है कि अंग्रेज़ी शिक्षाका प्रारम्भ किस श्रेणीसे करना चाहिए? मामला यहीं रुका रह जाता है। यदि प्रारम्भ ही से सरकार तथा जनताका यह मत हो जाय कि जहाँ सम्भव हो सकेगा देशवासियोंको शिक्षा देनेके लिये देशी भाषाओंका प्रयोग किया जायगा, तथा पाठ्य पुस्तकोंको तैयार करनेका अभीसे यथासाध्य प्रयत्न किया जायगा तब मेरे विचारसे प्रारम्भिक शिक्षाकी समस्या तथा मिडिल स्कूलोंमें अंग्रेज़ीका उपयुक्त स्थान निर्धारित करनेकी समस्या भी बहुत जल्दी सुलझ जायगी। मेरा यह विचार कदापि नहीं है कि हम अंग्रेज़ी भाषाको सर्वथा त्याग दें। अंग्रेज़ी भाषाके माध्यमसे देशवासियोंको पिछले वर्षोंसे जो लाभ हुए हैं वे सबको भली भाँति विदित हैं तथा देशवासी इसके लिये सदा उपकृत रहेंगे। उसी शिक्षाके परिणामस्वरूप हमारी राष्ट्रीय भावनाओंको उत्तेजन मिला है और हमारा दृष्टिकोण भी पहलेकी अपेक्षा अधिक विस्तीर्ण हो गया है। वर्त्तमान शिक्षाप्रणालीके लिये हम निस्सन्देह बहुत अधिक कृतज्ञ हैं। किन्तु उसी समय हमें अपने भविष्य तथा वर्त्तमानके प्रति कर्त्तव्यपालन करनेमें किसी प्रकारका आलस्य नहीं दिखाना चाहिए। उस शिक्षाप्रणालीसे हमारे देशको बहुतसी हानियाँ भी हुई हैं। किन्तु सरकारकी अपेक्षा हम अधिक दोषी हैं। मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि हमने दूसरी भाषाओंसे देशी भाषाओंमें उत्तम-उत्तम ग्रन्थोंका अनुवाद नहीं किया और इस प्रकार हमने सैकड़ों अंग्रेज़ी न जाननेवाले भाइयोंको उसके उत्तम-उत्तम गुण जाननेसे वञ्चित रक्खा है। मैं भली प्रकार जानता हूँ कि कुछ प्रान्तीय साहित्योंमें विशेषतया बङ्गालमें इस सम्बन्धमें पर्य्याप्त कार्य्य किया गया है। कुछ प्रान्तोंमें हिन्दी-उर्दूके साहित्योंमें भी आश्चर्य्यजनक उन्नति हुई है। किन्तु यह सब कार्य्य शेषकार्य्यकी अपेक्षा बहुत ही कम है और अभी हमें इसके लिये बहुत बड़ा कार्य्य करना होगा।

दूसरा प्रश्न हमारे सम्मुख यह है कि हमारे देशमें जो प्रारम्भिक तथा द्वितीय श्रेणीकी शिक्षा दी जाय वह किस प्रकारकी हो? मेरे विचारसे हमें वही करना चाहिए जो जर्मनीने कई साल पहले किया था, जो जापानने पिछले वर्षोंमें किया है, जिसे अमेरिका तथा फ़्रान्स पिछले कई वर्षोंसे करते आ रहे हैं और जिसे इङ्गलैण्डने पिछले थोड़े वर्षोंसे धीरे-धीरे करना प्रारम्भ किया है। इङ्गलैण्डने बहुत समयतक सुव्यवस्थित शिक्षाप्रणालीके आधारपर शिक्षा-व्यवस्थाका आयोजन नहीं किया था, किन्तु अब हमारे अंग्रेज़ मित्रोंने व्यवस्थित द्वितीय श्रेणीकी शिक्षाके महत्त्वको स्वीकार कर लिया है। सन् १९१८ का शिक्षा-विधान इसका भली भाँति परिचय देता है। हमारे देशमें भी चौदह वर्षतक की प्रारम्भिक तथा द्वितीय श्रेणीकी शिक्षाकी प्रणालीपर फिरसे विचार होना चाहिए। प्रारम्भिक अवस्थामें हमें केवल विद्यार्थियोंको पढ़ने लिखने तथा जोड़नेकी शिक्षा देकर ही चुप न रह जाना चाहिए। संसारकी प्रगतिको देखते हुए शिक्षा-व्यवस्थाका यह क्रम सर्वथा अनुपयुक्त है। अप

देशमेँ प्रारम्भिक अवस्थामेँ हमेँ प्रारम्भिक विज्ञान तथा साधारणतया रोचक शिक्षाकी ओर ध्यान देना चाहिए।

द्वितीय श्रेणीकी शिक्षा कितनी अवस्थातक के विद्यार्थियोँको दी जाय, इस बातपर भी हमेँ विचार करना है। मेरे विचारसे चौदह वर्षसे लेकर सत्रह या अठारह वर्ष तकके विद्यार्थियोँको यह शिक्षा दी जानी चाहिए। द्वितीय श्रेणीकी शिक्षावाले स्कूल भी फ़्रान्स, जापान तथा इङ्गलैण्डके स्कूलोँकी नाईं सङ्गठित होने चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करनेवाले विद्यार्थी द्वितीय श्रेणीकी शिक्षामेँ भली प्रकार प्रवेश कर सकेँ, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। हाइस्कूल-शिक्षामेँ पिछली श्रेणीकी शिक्षासे अधिक तो योग्यता होनी ही चाहिए, इसके अतिरिक्त विद्यार्थीको इस योग्य भी बना देना चाहिए कि किसी-न-किसी उपायसे वह अपनी जीविकाके उपार्जन करनेमेँ सफल हो सके। तभी हाइस्कूलोँकी शिक्षा अन्य सभ्य देशोँकी नाईं हमारे देशके युवकोँके लिये लाभदायक हो सकेगी। इस व्यवस्थाके अनुसार कौलेज़की शिक्षा प्राप्त करनेवालोँकी संख्या घटनेके बदले बढ़ेगी ही और उच्च शिक्षापर व्यय किए गए धनका परिणाम भी इसी अवस्थामेँ अच्छा निकलेगा। कलकत्ता विश्वविद्यालय-कमीशनकी सिफ़ारशोँके अनुसार प्रत्येक ज़िलेमेँ एक इण्टरमीजियट कौलेज़ स्थापित होना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि अनेक विद्या-प्रेमी युवक जो अपनेको किसी उद्योग-धन्धेके योग्य बनाना चाहते हैँ, अपने ज़िलेमेँ ही रहकर सोलह अथवा अठारह वर्षकी अवस्थामेँ दूर स्थानोँमेँ न जाकर उस प्रकारकी शिक्षा प्राप्त कर सकेँगे। अधिकांश विद्यार्थियोँको शिक्षित बननेमेँ इस प्रकार सुभीता होगा और सुयोग्य विद्वान् भी इसीके परिणामस्वरूप निकल सकेँगे।

इस प्रस्तावपर विचार करना आवश्यक है। प्रश्न यह है कि इसका निर्णय किस प्रकार होना चाहिए? क्या प्रत्येक विश्वविद्यालय अपनी इच्छाके अनुसार इसका निर्णय कर सकता है? क्या इस उपायसे यथेच्छ उन्नति हो सकती है? मेरे विचारसे यह मार्ग ठीक नहीँ है। इस प्रश्नका सम्बन्ध समस्त विश्वविद्यालयोँसे है और मेरे विचारसे इससे सम्बन्ध रखनेवाले सब व्यक्तियोँकी एक सभा होनी चाहिए। अधिक विचार करनेसे सम्भवतः मेरा यह विचार माननीय न हो, परन्तु मुझे इसकी सम्भावना नहीँ है कि मेरा यह विचार अस्वीकृत हो जायगा। केवल कला-सम्बन्धी शिक्षा देनेसे ही किसी देशका हित नहीँ हो सकता, अपितु विज्ञानकी पिछली शताब्दियोँकी उन्नतिको देखते हुए तथा विज्ञानके प्रयोगात्मक क्षेत्रमेँ जो असाधारण उन्नति हुई है उसको देखते हुए हममेँसे कोई विचारशील व्यक्ति यह कहनेका साहस न करेगा कि प्रारम्भिक स्कूलोँमेँ जो शिक्षा-व्यवस्था की जाय उसमेँ विज्ञानकी शिक्षाका कार्य्यक्रम न हो तथा हाइस्कूलोँमेँ किसी प्रकारकी उद्योग-धन्धा-सम्बन्धी शिक्षाका उचित प्रबन्ध न हो।

अब समय आ गया है जब हमेँ देशी भाषाओँके माध्यमद्वारा देशके युवकोँको शिक्षा देनी चाहिए और हमेँ जल्दी-से-जल्दी इसके लिये प्रस्तुत हो जाना चाहिए। हम यह भली भाँति जानते हैँ कि अंग्रेज़ी भाषा संसारके समस्त विषयोँके ज्ञानके लिये किस प्रकार लाभदायक है। हमारा यह विचार नहीँ है कि अंग्रेज़ी भाषाकी शिक्षा न देनी चाहिए। सुव्यवस्थित शिक्षाप्रणालीमेँ अंग्रेज़ीको उचित स्थान मिलना चाहिए। हमारे युवकोँको विदेशी भाषाएँ सीखनेकी आवश्यकता है और कोई विदेशी भाषा हमारे लिये उतनी लाभदायक नहीँ हो सकती जितनी अंग्रेज़ी। लगभग साठ वर्षोँसे देशके समस्त भागोँमेँ अंग्रेज़ी पढ़ाई जा रही है और अधिकांश जनता इस भाषाको भली भाँति समझ सकती है। अच्छे-से-अच्छे विषयोँका ज्ञान भी अंग्रेज़ीद्वारा हो सकता है। किन्तु अंग्रेज़ी दूसरी भाषाकी नाईं पढ़ाई जानी

चाहिए और उसके द्वारा युवकोंको शिक्षा देनेकी व्यवस्था बदल देनी चाहिए। क्योंकि इसके ज्ञानके लिये उन्हें अपने जीवनके अमूल्य वर्ष खोने पड़ते हैं।

मेरा विचार है कि या तो सरकार अथवा कोई भी विश्वविद्यालय इन विषयोंके निपटारेके लिये सभा निमन्त्रित करेगा, जहाँ इन सब विषयोंपर विचार हो और वह निर्णय सब देशको मान्य हो। किसी और प्रकारसे समस्याका निर्णय नहीं हो सकता। इस सम्बन्धमें हमें उन सज्जनोंका परामर्श लेना चाहिए जिन्होंने अपने जीवनभर स्कूलों और कौलेजोंमें अंग्रेज़ी और देशी भाषाओंकी शिक्षा दी है। मेरा विश्वास है कि यदि ऐसी सभा हो सकेगी तो देशका बड़ा कल्याण होगा। जब एक राष्ट्रीय नीति निर्धारित हो जायगी तब विश्वविद्यालयोंका कार्य्य भी अधिक सुगम और लाभदायक हो जायगा।

मैं इस बातको यहाँ प्रगट कर देना उचित समझता हूँ कि कमीशनने जो-जो सिफ़ारिशें शासन-सम्बन्धी तथा शिक्षा-सम्बन्धी विषयोंपर की हैं वे सब पहले ही हमारे विश्वविद्यालयद्वारा सोची जा चुकी थीं। कमीशनने जिस शासन-विधानकी योजना रक्खी है उसीके अनुसार हिन्दू विश्वविद्यालय पहले ही कार्य्य कर रहा है।

हमारे सम्मुख अब इस बातका प्रश्न है कि अपने ध्येयको कार्य्यरूपमें परिणत करनेके लिये हमें किन उपायोंको काममें लाना चाहिए? वे उपाय हैं आर्थिक सहायता तथा व्यक्तिगत सहयोग। हमें विश्वविद्यालयद्वारा प्रदत्त अवसरोंको तथा अपने उत्तरदायित्वको भली भाँति समझ लेना चाहिए। हमारा ध्येय संसारके सम्मुख एक विशेष आदर्श रखना है। वर्त्तमान समयमें शिक्षाके क्षेत्रमें बहुत अधिक हलचल मची हुई है। योरोप अपने वर्त्तमान पथको सशङ्कित दृष्टिसे देखता है; क्योंकि जिस मार्गका वह स्वयं अनुसरण कर रहा है वह उस भयानक युद्धको न रोक सका जिसके परिणाम-स्वरूप स्वयं सभ्यताके ही अस्तित्वपर भारी आघात पहुँचा था। हमारी प्राचीन शिक्षा-पद्धति, जो सांसारिक तथा आध्यात्मिक शिक्षाका मधुर समन्वय है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों ध्येयोंकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करती है। बोलिए हम इससे लाभ उठावें या इसे त्याग दें? इन प्रश्नोंपर हमें विचार करना चाहिए।

हमारा एक दूसरा भी कर्त्तव्य है। जब हम ऑक्सफ़ोर्ड तथा कैम्ब्रिज जैसे विश्वविद्यालयोंका विचार करते हैं और जब हम वहाँसे निकले हुए विद्यार्थियोंको प्रसन्नता तथा श्रद्धाके साथ अपने विश्वविद्यालयोंके वातावरणका स्मरण करते हुए देखते हैं तो हमारे हृदयमें भी यह भावना होती है कि हमें देशमें क्या करना चाहिए? जब हम फ़्रान्सीसियों तथा जर्मनोंको अपने राष्ट्रीय विश्वविद्यालयोंपर गर्व करते हुए देखते हैं तथा जापानियोंको अपने देश तथा राष्ट्रके प्रति उत्कट देशप्रेम रखते हुए देखते हैं तो हम अवश्य ही इन सब विचारोंसे प्रभावित होते हैं। हम उन्हींकी सन्तान हैं जिन्होंने नालन्द, तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयोंको जन्म दिया था। इस विद्याके प्राचीन केन्द्रपर हमारा गर्व करना स्वाभाविक ही है। काशीका इतिहास बहुत प्राचीन समयसे प्रारम्भ होता है। यह संसारके सबसे प्राचीन नगरोंमेंसे एक है। यह पवित्रात्माओंका स्मृति-चिह्न है। यही वह पुण्यभूमि है जहाँ राजा हरिश्चन्द्र अपने सत्यप्रेमके कारण अपना नाम युगयुगान्तरके लिये अमर कर गए। भगवान् बुद्धने अपने मानवप्रेमका सुन्दर उपदेश यहींसे आरम्भ किया था। प्राचीन धर्मको फिरसे संस्थापित करनेवाले भगवान् शङ्कर भी इसी स्थानपर पधारे थे। हमारे प्राचीन पवित्र धार्मिक ग्रन्थोंके सुरक्षक तथा टीकाकार भगवान् व्यासकी भी यही जन्म-भूमि है और यहीं कबीर तथा तुलसीदासजी भी रहे थे। ऐसी राष्ट्रीय संस्थाएँ अब कहाँ हैं जो इन महात्माओंकी कृतियोंको स्थायी रूपसे रख सकें?

ऐसा राष्ट्रीय संग्रहालय कहाँ है जहाँ अपने-अपने राष्ट्रीय रत्नों तथा कलाकौशलोंको यत्नपूर्वक सुरक्षित रक्खा हो? आपकी राष्ट्रीय चित्रशालाएँ तथा राष्ट्रीय भवन कहाँ हैं? मैं इस आक्षेपको भली भाँति सुन रहा हूँ कि हम भवननिर्माणमें अधिक रुपया व्यय कर रहे हैं। मैं केवल आपका ध्यान संसारके बड़े-बड़े विश्वविद्यालयोंके ऐसे कार्य्योंकी ओर आकर्षित करूँगा और यह भी बतलाऊँगा कि उनसे हमें क्या शिक्षा मिलती है? मेरा विचार है कि आप सब लोग काशीमें आधुनिक नालन्द तथा तक्षशिला बनानेमें मेरे साथ सहयोग दें। हमें इस स्थानको हिन्दुओंकी विद्याका केन्द्र बना देना चाहिए। हमारे पास दो मील लम्बा, एक मील चौड़ा रमणीक स्थान है। सरकार भी हमें सहायता दे रही है और देशके राजे, महाराजे तथा धनी-मानी व्यक्ति धनसे हमारी सहायता करनेको तैयार हैं। शिक्षित वर्ग विश्वविद्यालयकी योजनासे पूर्णतया सहमत है। हमें एक दूसरेसे मिलकर इस उद्देश्यको पूर्ण करनेका प्रयत्न करना चाहिए। निस्सन्देह थोड़े समयमें हम वह कर दिखाएँगे जिसके लिये अभिमानसे हमारी छाती फूल जायगी। मेरा विश्वास है कि इस स्थानपर एकत्रित सभी बहन और भाई मेरी इस प्रार्थनासे सहमत होंगे तथा अन्य सज्जन भी इस कार्य्यमें पूर्णतया हाथ बटाएँगे। मुझे प्रसन्नता है कि श्रीमती बेसेण्ट भी यहाँ हैं। उन्होंने कौलेज् तथा विश्वविद्यालयके लिये अगाध परिश्रम किया है। हमें उनके इस कार्य्यके लिये उनका कृतज्ञ होना चाहिए। क्या अच्छा होता यदि मेरी तरह आप लोगोंमें भी यह भावना हो जाती कि अपने धर्मकी पवित्र तथा प्रिय वस्तुओंकी रक्षा करनेमें हमने अपने कर्त्तव्यका पूर्ण रूपसे पालन नहीं किया। किन्तु जो कुछ हो गया सो हो गया। हमें वर्त्तमानकी ओर ध्यान देना चाहिए और काशीको सर्वोच्च सभ्यताकी पवित्र भूमि बना देनी चाहिए, जिसके लिये वह प्राचीन समयमें इतनी प्रसिद्ध थी। इस विश्वविद्यालयको हमें इस प्रकार बनाना चाहिए कि इसकी पग-पग भूमिसे प्राचीन गौरव तथा सभ्यताका आभास मिले। आप लोग निराश न हों। सदैव इस आशापर कार्य्य करते जाइए कि प्राचीन समयमें जो किया गया था वही वर्त्तमान समयमें अवश्य पूर्ण होगा, कि हमारे पूर्वजोंने जो प्रशंसनीय कार्य्य किए वही हम भविष्यमें अवश्य पूर्ण कर लेंगे तथा फिरसे देश वही गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा।

जिन युवकोंको आज उपाधियाँ मिली हैं उनसे मेरा केवल यही अनुरोध है कि वे इस बातको अपना पवित्र कर्त्तव्य समझें कि अपने विश्वविद्यालयकी उन्नतिके लिये जो कुछ कार्य्य वे कर सकें, अवश्य करें। उन्हें अपना यह कर्त्तव्य समझना चाहिए कि उनके लिये राष्ट्र-शिक्षाके इस मन्दिरके निर्माणमें अपनी शक्तिके अनुसार सहायता करना आवश्यक है। हमें एक ऐसा स्थान बनाना है जिसकी प्रत्येक व्यक्ति तन, मन, वचन अथवा धनसे सेवा कर सके। मुझे विश्वास है कि भगवान् विश्वनाथके अनुग्रहसे हम अपने इस कार्य्यको पूर्ण कर सकेंगे, तथा उनकी प्रेरणासे जो योजना बनी थी, अवश्य पूर्ण होगी।

दीक्षान्त भाषण

१४ दिसम्बर सन् १९२९ को काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके बारहवेँ उपाधि-वितरण-महोत्सवके अवसरपर पूज्य मालवीयजीनें निम्नाङ्कित दीक्षान्त भाषण दिया था।

—सम्पादक।

महिलाओ तथा सज्जनो !

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयका यह बारहवाँ उपाधि-वितरण-महोत्सव है। अक्तूबर सन् १९१७ मेँ विश्वविद्यालयने अपना कार्य्य प्रारम्भ किया। गत बारह वर्षोँमेँ इसने अनेक सफलताजनक कार्य्य किए। इस विश्वविद्यालयका आदर्श एक ऐसे शिक्षा-केन्द्रके निर्माणसे था जहाँ भारतवर्षके प्राचीन गुरुकुल तक्षशिला तथा नालन्दके उन विश्वविद्यालयोँकी उच्चतम प्रणालीका पुनरुत्थान किया जा सके, जिनमेँ हिन्दू महात्माओँने दस हज़ार विद्यार्थियोँको एक ही साथ पढ़ाया तथा भोजन दिया था, और जहाँ वर्त्तमान पश्चिमीय विश्वविद्यालयोँकी श्रेष्ठतम संस्कृति तथा प्रणालीके अनुकरणके साथ-साथ कला, विज्ञान और शिल्पादि कला-सम्बन्धी उच्चत्तम शिक्षाका भी सुन्दर संयोग हो।

इस प्रकार विश्वविद्यालयके निम्नाङ्कित ध्येयोँकी रचना हुई।

(१) हिन्दू-शास्त्र तथा संस्कृत भाषाके अध्ययनकी वृद्धि, जिसके द्वारा भारतवर्षकी प्रचीन सभ्यतामेँ जो कुछ भी श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण था उसका तथा हिन्दुओँकी प्राचीन संस्कृति तथा भावनाओँकी रक्षा और मुख्यतः हिन्दुओँमेँ और सार्वजनिक रूपसे सर्वसाधारणमेँ प्रचार हो सके।

(२) कला और विज्ञानकी सर्वतोन्मुखी शिक्षा तथा अन्वेषणकी वृद्धि।

(३) आवश्यक प्रयोगात्मक ज्ञानके साथ-साथ विज्ञान, शिल्पादि कला-कौशल तथा व्यवसाय-सम्बन्धी ऐसे ज्ञानकी वृद्धि, जिससे देशीय व्यवसाय तथा धन्धोँकी उन्नति हो।

(४) धर्म और नीतिको शिक्षाका आवश्यक अङ्ग मानकर या अखण्ड भाग बनाकर युवकोँमेँ सदाचारका सङ्गटन या चरित्र-निर्माणका विकास करना।

संस्कृत पढ़नेकी महत्ता

महिलाओ तथा सज्जनो !

मुझे यह कहनेकी विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि उपरोक्त नियमावलीमेँ संस्कृतको क्योँ प्रथम स्थान दिया गया। हमेँ अपनी उज्ज्वल वंश-परम्परा तथा प्राचीन पैतृक मर्य्यादाका अभिमान है। हमारी पैतृक सम्पत्तियोँमेँसे सबसे बहुमूल्य रत्न हमारी संस्कृत भाषा है। इसीमेँ हमारा पवित्र साहित्य,

धार्मिक तत्त्व-ज्ञान और सभी प्रकारकी प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृतिके सुन्दर अङ्ग-प्रत्यङ्ग पूर्णतया सुरक्षित हैं। प्रत्येक मनुष्य अपना व्यक्तिगत, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा चरित्र-सम्बन्धी उन्नति किस प्रकार कर सकता है तथा फिर कैसे अपनेको एक शक्तिशाली समाजमें सङ्गठित कर सकता है, इसका पूर्ण विवेचन हमें इसी भाषामें मिलता है। भाषाकी उत्तमताके विचारसे भाषा-मर्मज्ञोंने संसारकी सभी भाषाओंमें संस्कृतको ही प्रथम स्थान दिया है। मनुष्यके चिन्तित तथा उत्कृष्ट विचारोंको सुमधुर ललित शैलीमें व्यक्त करनेकी यह सदैव ही सुन्दर माध्यम रही है। इस भाषामें माधुर्य्य और लालित्यका सम्मिश्रण इस बारीकीके साथ हुआ है कि ज्ञान प्राप्त करने, उसे व्यक्त करने तथा स्मरण रखनेकी इससे सहल दूसरी कोई भाषा नहीं है। अंग्रेज़ विद्वान् सर मोनियर विलियमका कथन है कि—"संस्कृत भाषाके अध्ययनसे एक प्रकारकी अतुलनीय मानसिक शिक्षा प्राप्त होती है।"

अतएव हम लोगोंने अपना परम कर्त्तव्य समझा कि इस नवीन राष्ट्रीय विद्यामन्दिरमें इस ललित भाषा और साहित्यको पढ़नेके लिये समुचित सन्तोषजनक उपाय किया जाय। क्योंकि इस प्रकार शताब्दियोंसे चली आती हुई हमारी अटूट आध्यात्मिक भावोंकी रक्षा होगी, प्राचीन और वर्त्तमानका सुन्दर संयोग होगा, जिससे परस्पर भ्रातृभावका विकास होगा तथा मुख्यतः भारतीय जनताके साथ-साथ सर्वसाधारण भी अपनी भलाईके लिये इस परम्परा-सञ्चित राष्ट्रीय निधिका सुन्दर-से-सुन्दर उपभोग कर सकेंगे और यही पद्धति भविष्यकी पीढ़ियोंमें भी प्रचलित रह सकेगी। इन्हीं कारणोंसे हम लोगोंने अपनी नियमावलीमें संस्कृत और हिन्दू-तत्त्व-शास्त्र (ब्रह्मविद्या) को शिक्षाका प्रथम स्थान दिया है, और यही कारण है कि वार्षिक उपाधि-वितरण-महोत्सवके सुअवसरपर उन विद्यार्थियोंको सर्वोच्च स्थान दिया जाता है जिन्होंने मुख्यतः उपरोक्त भाषा और शास्त्रका अध्ययन किया है।

यह बड़े हर्षकी बात है कि हम लोगोंने इस कार्य्यमें भारतवर्षके लब्ध-प्रतिष्ठ पण्डितोंका सहयोग पाया है। ये प्राचीन विद्याके श्रद्धेय महारथी हमें इस भाषाके पाठयक्रमकी नियुक्ति तथा विद्यार्थियोंकी परीक्षा लेनेमें हर प्रकारसे सहायता करते हैं। इनमेंसे बहुतेरे तो हमारे ब्रह्म-ज्ञान तथा दर्शन, साहित्य, गणित, ज्यौतिष और आयुर्वेदमें प्रतिदिन उपदेश देते हैं। विद्यार्थी बहुत संख्यामें आ रहे हैं। प्राचीन राष्ट्रीय पद्धतिको जीवित रखनेके लिये हम लोगोंने संस्कृत विद्यार्थियोंको निःशुल्क शिक्षा, स्थान तथा भोजनकी व्यवस्था की है, ताकि प्राचीन गुरुकुलोंके ढङ्गपर विद्यार्थी सफलतापूर्वक अपना अध्ययन जारी रख सकें।

हम लोग संस्कृतके विद्यार्थियोंको साथ-ही-साथ अंग्रेज़ी भाषा भी पढ़नेके लिये उत्साहित करते हैं और इसी विचारसे एफ़० ए०, बी० ए०, तथा एम्० ए० की परीक्षामें उनके लिये अंग्रेज़ी ही एकमात्र विषय रक्खा गया है। हम लोग यह भी सोच रहे हैं कि प्राच्यविद्याके अभिलाषियोंके पढ़ने तथा अन्वेषणके लिये और भी समुचित प्रबन्ध किया जाय।

शिक्षाका माध्यम

हिन्दू विश्वविद्यालयके स्थापनकालके प्रारम्भ ही से इसके सञ्चालकोंका यह प्रधान ध्येय रहा है कि शिक्षाका माध्यम उच्च कक्षाओंमें भी मातृ-भाषा ही रहे। परन्तु हमारे एङ्गलो-वर्नाक्यूलर, मिडिल और हाइस्कूलोंमें अंग्रेज़ीका प्रयोग व्यापक रूपसे हुआ है और हमारी राष्ट्रीय भाषाएँ एकदम भुला दी गई हैं, अतएव हिन्दी अथवा अन्य किसी भी हमारी राष्ट्रभाषाको अंग्रेज़ीका स्थान ग्रहण करनेमें कुछ समय अवश्य लगेगा। यह कार्य्य प्रथम स्कूलोंमें आरम्भ करना चाहिए। हिन्दू विश्वविद्यालयने कुछ साल हुए इस आवश्यक सुधारकी ओर ध्यान दिया और

इसी विचारसे उन स्कूलोंमें, जो विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध हैं, उनमें केवल अंग्रेज़ी भाषाको छोड़कर और विषयोंकी शिक्षाका माध्यम हिन्दी रक्खी गई है। विश्वविद्यालयकी प्रवेशिका परीक्षामें जो स्कूलकी अन्तिम परीक्षा मानी जाती है उसमें परीक्षार्थियोंको यह सुविधा दी गई है कि वे प्रश्नोत्तर हिन्दी भाषामें दे सकते हैं। हर्षका विषय है कि युक्तप्रान्तकी हाइस्कूल और इण्टरमीजिएट-शिक्षा-कमेटीने भी इस उपयोगी सुधारको अपने यहाँ भी स्वीकृत किया है। मुझे पूर्ण आशा है कि निकट भविष्यमें ही ऐसा ही सुधार अन्य विश्वविद्यालयोंमें भी हो जायगा।

विद्वानोंका एक समूह इस उद्योगमें व्यस्त है कि वे कला, विज्ञान तथा आयुर्वेद विषयकी पाठ्य पुस्तकोंकी रचना हिन्दीमें करें, जिनका प्रयोग विश्वविद्यालयकी एफ़० ए० कक्षाओंके लिये हो। यह आशा की जाती है कि उनमेंसे अधिकांश आगामी वर्षतक तैयार हो जायँगी। इसके उपरान्त हमारे विद्वान् बी० ए० कक्षाओंकी भी पाठ्य पुस्तकोंके निर्माणमें अपना हाथ बटायँगे।

बहुत साल पहले ही हिन्दीको एम्० ए० की उपाधिपरीक्षाके लिये भी एक स्वतन्त्र विषय मान लिया गया है। और यह विषय विद्यार्थियोंमें अधिक सर्वप्रिय हो रहा है। मेरा विश्वास है कि कुछ ही समयमें हमारे विद्यार्थी एम्० ए० की उपाधिके लिये भी हिन्दी ही में प्रश्नोत्तर तथा गम्भीर विषयोंपर लिखित प्रबन्ध दे सकनेके अधिकारी हो जायँगे। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि इस दिशामें हमारी उन्नति यद्यपि धीरे-धीरे हो रही है परन्तु इसका भविष्य आशाजनक है।

कला और विज्ञानमें सार्वजनिक शिक्षा।

दूसरा ध्येय जिसे विश्वविद्यालयने अपने सामने रक्खा वह यह था कि कला और विज्ञानमें सार्वजनिक शिक्षा तथा अन्वेषणकी वृद्धि हो। इस ध्येयकी पूर्त्तिके लिये, सेन्ट्रल हिन्दू कौलेज़को केन्द्रस्थान मानकर हम लोगोंने एम्० ए० और एम्० एस्-सी० कक्षाओंतक प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति, साधारण इतिहास तथा समाजशास्त्र, तत्त्वज्ञान तथा मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र तथा राजनीति, अंग्रेज़ी, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, हिन्दी, उर्दू, मराठी, बङ्गाली, गणित तथा ज्यौतिष, भौतिक तथा रसायन-विज्ञान, वनस्पति-शास्त्र, जीवविज्ञान तथा भूगर्भशास्त्र आदि विषयोंकी शिक्षाका समुचित प्रबन्ध कर दिया है। हमारे सार्वजनिक तथा विभाजित पुस्तकालय और यन्त्रालय, प्रयोग तथा अन्वेषण कार्य्यके लिये सभी प्रकार परिपूर्ण हैं। हम लोगोंने एक टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेज़, लौ कौलेज़ तथा एक आयुर्वेद कालेजकी भी स्थापना की है। इसीसे लगा हुआ एक अस्पताल भी है, जहाँ एक सौ रोगियोंके ठहरानेका प्रबन्ध है और जहाँ भारतीय आयुर्वेदमें उच्च कोटिके शिक्षाके साथ वर्त्तमान प्रचलित ढङ्गपर शरीर-विच्छेद-शास्त्र, शरीर-शास्त्र और चीर-फाड़में भी शिक्षा दी जाती है। एक बहुत बड़ा चीर-फाड़का कमरा बनाकर तैयार किया जा रहा है।

हम लोगोंने एक महिला विद्यालय भी स्थापित किया है जिसका छात्रावास, बिल्कुल अलग है। जिसमें एक सौ विद्यार्थिनी रह सकती हैं, छात्रावासका प्रबन्ध एक महिला-प्रबन्धकके हाथमें है। एफ़० ए० कक्षाओंकी विद्यार्थिनी इसी विद्यालयमें महिला शिक्षिकाओंसे पढ़ती हैं। ऐसी शिक्षिकाएँकी संख्या आजकल चार है। बी० ए० और एम्० ए० की महिला परीक्षार्थियोंको पुरुष विद्यार्थियोंके साथ पढ़ना पड़ता है, जहाँ सर्वविषयक शिक्षा दी जाती है।

कलाकौशल तथा व्यवसायिक शिक्षा।

विश्वविद्यालयका तीसरा ध्येय यह है कि प्रयोगात्मक ज्ञानके साथ, विज्ञान, कला-कौशल तथा

व्यवसाय-सम्बन्धी ऐसी शिक्षा विद्यार्थियोंको दी जाय जिससे देशी व्यवसाय तथा घरेलू धन्धोंकी उन्नति हो । इस ध्येयकी पूर्त्तिके लिये विश्वविद्यालयने इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज्की स्थापना की है जहाँ यन्त्र, बिजली और धातु-सम्बन्धी विज्ञानोंकी शिक्षा बी० ए० तथा एम्० ए० उपाधियोंतक दी जाती है । हम लोगोंने एक उद्योग तथा व्यावसायिक रसायन-विज्ञान विभाग भी स्थापित किया है। यहाँ भी एम्० एस्-सी० तक उच्च कोटिकी शिक्षा दी जाती है। भारतवर्षमें कोई भी ऐसा विद्यालय नहीं है जहाँ इस प्रकारकी सर्वतोमुखी उच्च कोटिकी शिक्षा व्यावहारिक विज्ञानमें दी जाती हो। देशमें एक ऐसे विद्या-मन्दिरकी नितान्त आवश्यकता थी और काशी हिन्दूविश्वविद्यालयको इस बातका गौरव है कि इसने इस कमीको पूरा कर दिया। इस विद्यालयमें पढ़नेके लिये भारतवर्षके सभी प्रान्तों तथा देशी रियासतोंसे विद्यार्थी आते हैं जो नाम लिखानेके लिये बड़े उत्सुक रहते हैं। केवल उन्हीं विद्यार्थियोंका इसमें नाम लिखा जाता है जो भौतिक विज्ञान, रसायन तथा गणितसे एफ़्० ए० की परीक्षामें प्रथम या द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए हों । परन्तु हम लोग केवल चुने हुए विद्यार्थियोंका ही नाम लिखते हैं और प्रथम वर्षकी परीक्षामें अनुत्तीर्ण विद्यार्थियोंको निकाल देते हैं, इसलिये हर्षकी बात है कि फलतः इञ्जिनीयरिङ्ग विभागका परीक्षाफल प्रायः बानबे प्रति सैकड़ेसे चौरानबे प्रति सैकड़े तक पहुँच जाता है।

हम लोगोंका सर्वदा यही ध्यान रहता है कि व्यावहारिक विज्ञानमें हमारे यहाँ जो शिक्षा दी जाती है सभी प्रकारसे पूर्ण और प्रयोगमें लाने योग्य हो। हमारे यहाँके विद्यार्थी प्रतिवर्षके नियमानुसार, निश्चित समयपर रेलवे, कारख़ानों तथा खानोंमें काम देखने व सीखनेके लिये जाते हैं। मुझे धन्यवादके साथ कहना पड़ता है कि वे उन कारख़ानोंके प्रबन्धकोंसे हर प्रकारकी सहायता तथा सुविधा पाते हैं और वे सन्तोषजनक प्रयोगात्मक शिक्षा पाकर वहाँसे लौटते हैं। ऐसी शिक्षा निर्धारित पाठ्य विषयकी एक आवश्यक अङ्ग मानी जाती है। जबतक कोई विद्यार्थी पूरा प्रयोगात्मक कार्य्य नहीं कर लेता तबतक वह विश्वविद्यालयके नियमके अनुसार बिजली तथा यन्त्र-सम्बन्धी शास्त्रोंमें बी० एस्-सी० की अन्तिम उपाधि नहीं प्राप्त कर सकता। यही खनिज पदार्थ तथा धातु-सम्बन्धी विज्ञानोंकी उपाधियोंके बारेमें भी है। भूगर्भ-शास्त्रमें बी० एस्-सी० तथा एम्० एस्-सी० परीक्षार्थियोंसे भी बाह्य क्षेत्र-सम्बन्धी उसी प्रकारका प्रयोग वाञ्छनीय है। उद्योग तथा व्यवसाय-सम्बन्धी विज्ञानकी उपाधिके लिये भी हम लोग स्वभावतः अधिकांशमें व्यावहारिक अभ्यासके ओर ही ज़्यादा ध्यान देते हैं। हमारे यहाँके व्यावहारिक विज्ञानके अन्तर्गत सभी प्रकारकी उपाधियाँ इसीलिये महँगी हैं, क्योंकि हमारे यहाँ उच्च कोटिकी सैद्धान्तिक शिक्षाके साथ-ही-साथ व्यावहारिक अभ्यासकी ओर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है। हमें हर्षके साथ कहना पड़ता है कि इस विश्वविद्यालयके इञ्जिनीयरिङ्ग विभागके उपाधिप्राप्त युवकोंकी नियुक्तिमें अधिक कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ता। यह विश्वास किया जाता है कि हमारे यहाँके इस विभागसे उत्तीर्ण नवयुवकोंमेंसे पचानबे प्रति सैकड़े विद्यार्थियोंको कहीं-न-कहीं अच्छी नौकरियाँ मिल गई हैं। और यह आशा की जाती है कि भावी नवयुवकोंको भी उसी प्रकार काम मिल जायगा। यह बात बड़ी सन्तोषप्रद तथा साधुवादके योग्य है। समयके परिवर्त्तनके साथ यह आशा की जाती है कि प्रयोगकुशल इञ्जिनीयरोंकी माँग बढ़ेगी। बिजली-सम्बन्धी व्यवसाय बहुत परिमाणमें खुल रहे हैं। सहस्रों मील रेलवे लाइनें बन चुकीं और भविष्यमें इनका विस्तार बढ़ता ही जायगा। बिजली-घरोंके निर्माण तथा प्रचारके लिये, रेलवेमें बिजलीके प्रयोगके लिये तथा रेलवे-विभागकी अन्य नौकरियोंके लिये,

यन्त्र तथा बिजली-सम्बन्धी विषयोँके जानकार नवयुवक उपयुक्त समझे जायँगे।

शिक्षाकी दूसरी शाखा, जिसका क्षेत्र भी बहुत विस्तृत जान पड़ता है, औद्योगिक तथा व्यावसायिक रसायनविज्ञानकी है। इस विषयका हमारे यहाँका यन्त्रालय उन विद्यार्थियोँके प्रयोगके लिये परिपूर्ण है जिसमेँ वे बर्तन बनाने, तेल बनाने अथवा साबुन बनानेका काम सीखते हैँ। तीन प्रान्तोँकी सरकारोँने यहाँके कार्य्योँकी प्रशंसा की है और अपने प्रान्तोँसे विद्यार्थियोँको काम सीखनेके लिये यहाँ भेजकर हमारा सहयोग किया है और हम आशा करते हैँ कि भविष्यमेँ इस विभागकी शिक्षाके लिये बहुत संख्यामेँ विद्यार्थी आकर्षित होँगे क्योँकि इस शिक्षासे एक लाभ यह है कि बिना सरकारी अथवा किसी ख़ास व्यक्तिकी नौकरी किए भी नवयुवक अपने परिश्रमसे स्वतन्त्र जीविका कमा सकेँगे।

हम लोग इस विचारमेँ हैँ कि इस विभागकी और भी वृद्धि की जाय और यह तभी साध्य है जब व्यावहारिक विज्ञानकी और भी शाखाएँ खोली जाँय। निर्धनता और बेकारीका प्रश्न हम लोगोँके सामने बड़ा जटिल होता जा रहा है। इसका हल करना नितान्त आवश्यक है।

मेरी समझमेँ यदि हमारे नवयुवकोँको व्यावसायिक तथा व्यावहारिक विज्ञानकी शिक्षा अनेक रूपसे दी जाय तो यह समस्या बहुत अंशोँमेँ हल हो जायगी जिससे वे बड़ी तनख़्वाहवाली सरकारी नौकरियोँकी मृगतृष्णा अथवा पहले ही से ठसाठस भरे हुए पेशोँकी ओर न झुकेँ। इस प्रकार हम धीरे-धीरे विदेशी वस्तुओँकी आयातको कुछ अंशमेँ कम कर सकेँगे जो प्रतिवर्ष हमारे देशमेँ अधिक संख्यामेँ आती है, तथा देशसे बाहर जानेवाले अपने कच्चे मालको भी रोक सकेँगे। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमेँ उपयुक्त शिक्षाके द्वारा, तथा सरकारसे राष्ट्रीय व्यवसायकी वृद्धिके लिये थोड़ी भी सहायता प्राप्त करके दस हज़ार भारतीयोँको रोज़गार दिया जा सकता है। यदि सरकार और विश्वविद्यालयोँका इस विषयमेँ सहयोग हो जाय तो इस देशसे बेकारीके हटानेका एक बहुत ही सहज उपाय निकल सकता है। क़ानूनका विद्यालय तथा टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेज क्रमशः नवयुवकोँको वकालत तथा शिक्षकके पेशेके लिये तैयार करते हैँ और आयुर्वेद विद्यालय ओषधि तथा चीरफाड़के व्यवसायके लिये शिक्षा देते हैँ।

चरित्र-निर्माण

विश्वविद्यालयका चौथा ध्येय, धर्म और नीतिको शिक्षाका आवश्यक अङ्ग मानकर, विद्यार्थियोँके चरित्र-निर्माणका विकास है। इसके लिये भी हम लोगोँने विशेष उद्योग किया है। हिन्दू विद्यार्थियोँको धार्मिक विषयोँपर नियमानुकूल व्याख्यान दिए जाते हैँ। प्रत्येक एकादशीके दिन धर्म-सम्बन्धी कथाओँका पाठ होता है, जिससे विद्यार्थियोँमेँ उत्कृष्ट धार्मिक तथा आध्यात्मिक भावोँका सञ्चार हो। उस दिन सभी अध्यापक तथा विद्यार्थियोँको कथाके समय उपस्थित रहना पड़ता है। अन्य सुअवसरोँपर भी धार्मिक सम्भाषण दिए जाते हैँ और यह प्रयत्न किया जाता है कि विद्यार्थियोँके हृदयपर धर्म और नीतिके मूल तत्त्वोँकी छाप पड़े। हम धर्मको चरित्र-निर्माणका सीधा मार्ग और सांसारिक सुखका सच्चा द्वार समझते हैँ। हम देशभक्तिको सर्वोत्तम शक्ति मानते हैँ जो मनुष्यको उच्च कोटिकी निःस्वार्थ सेवा करनेकी ओर प्रवृत्त करती है। अतएव हम लोग स्थिरचित्त होकर विद्यार्थियोँको दोनोँ ही प्रकारकी शिक्षासे प्रभावित करते हैँ।

शारीरिक व्यायाम—सङ्घटित जीवन

नवयुवकोँमेँ चरित्र-निर्माणके लिये हम केवल धार्मिक शिक्षा ही देकर सन्तोष नहीँ करते। विश्वविद्यालयमेँ जीवनको आनन्दमय बनानेवाली सभी सामग्रियोँका इस प्रकार संयोग हुआ है कि अपनी योग्यताके अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी विशेष उन्नति प्राप्त कर सकता है। शारीरिक व्यायामका

प्रबन्ध विशेष रूपसे हुआ है। प्रत्येक विद्यार्थीके लिये इसमें शामिल होना प्रायः आवश्यक रक्खा गया है। छब्बीस सौ विद्यार्थियोंमेंसे सोलह सौ विद्यार्थी विश्वविद्यालयके अन्तर्गत बने हुए छात्रावासोंमें रहते हैं। ये शिक्षकोंकी देखरेखमें रहते हैं, क्योंकि ऐसे शिक्षकोंके निवासस्थान भी छात्रावास ही में हैं। सम्पूर्ण व्यवस्था इस प्रकारसे की गई है कि शिक्षक और विद्यार्थी तथा एक विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थीके परस्पर सम्पर्कमें रहें। विद्यार्थियोंने स्वयं अपनी सामाजिक तथा साहित्यिक सभाएँ, नाटक-मण्डलियाँ तथा खेल-समितियाँ और एक विश्वविद्यालयकी राज्य-परिषद् (पार्लियामेण्ट) की स्थापना की है। इस परिषद्में उन्हें सभी प्रकारके राजनीतिक, सामाजिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी विषयोंपर बहस करनेका पूर्ण अधिकार है। वे अनेक प्रकारके खेलोंका आयोजन करते हैं, अपने कप्तानोंको चुनते हैं और अपना हिसाब-किताब स्वयं रखते हैं। इनमेंसे कुछ विद्यार्थी विश्वविद्यालयकी सैनिक शिक्षा-दलके सदस्य हैं जहाँ उन्हें उत्तम रीतिकी सैनिक शिक्षा दी जाती है, जिसके लिये वे बहुत लालायित रहते हैं। यहाँ सामान्य जीवनका क्रमशः विकास पाया जाता है, जिसके फलस्वरूप बहुतोंके सहयोगसे एकताका सञ्चार होता है। यहाँका वातावरण शुद्ध और समृद्धिकारी है। गुरुओंसे शिक्षा प्राप्त करनेके अतिरिक्त प्रत्येक विद्यार्थी स्वयं अपना गुरु है तथा अपने सहपाठियोंको भी शिक्षा देता है। आत्मगौरवका भाव इस प्रकार विद्यार्थियोंमें बढ़ रहा है जो भविष्यके लिये अच्छा शकुन है।

कृत कार्य्यका सारांश

गत बारह वर्षोंमें, जबसे विश्वविद्यालयने अपना कार्य्य प्रारम्भ किया है, तबसे इसने बत्तीस शिक्षालयोंका निर्माण किया है, और डेढ़ सौ शिक्षकोंकी नियुक्ति की है जो प्रायः विश्वविद्यालयकी भूमिपर बने हुए निवासस्थानोंमें ही रहते हैं। विद्यार्थियोंकी संख्या कुल छब्बीस सौ है जिनमेंसे सोलह सौ विश्वविद्यालयके ही छात्रावासोंमें निवास करते हैं। इसमें एक सौ तिहत्तर मकान बने हुए हैं जो दो मीलके क्षेत्रफलमें बड़े ही सुन्दर, विस्तृत तथा स्वस्थ स्थानोंमें खड़े हैं। यहाँके पुस्तकालयमें साठ हज़ार पुस्तकोंका संग्रह है। एक दर्जन यन्त्रालयों तथा कारख़ानोंकी कुल लागत पचीस लाख रुपये पड़े हैं। यहाँ प्रायः तीन सौ अस्सी छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं तथा चार सौ होनहार परन्तु ग़रीब विद्यार्थियोंको निःशुल्क शिक्षा देनेकी व्यवस्था रक्खी है। इसमें क्रिकेट, फ़ुटबाल, हौकी, टेनिस आदि खेलोंके लिये बड़े-बड़े विस्तृत मैदान हैं। इसके अलावा एक बहुत ही सुन्दर रंगशाला तथा एक भव्य शस्त्रागार है जिसमें सेना-विभागकी तीन सौ बन्दूक़ें रक्खी जाती हैं। एक अस्पताल है जिसमें एक सौ रोगियोंके रखने की पूर्ण व्यवस्था है। एक वनस्पति-वाटिका तथा एक औषधालय है जिसमें आयुर्वेद-विभागकी दवाइयाँ तैयार की जाती हैं। एक बहुत बड़ा भवन शारीरिक-व्यायाम-शिक्षाके लिये बनकर तैयार हो रहा है।

अपने इस अल्प जीवन-कालमें विश्वविद्यालयने दो हज़ार नौ सौ चौवन विद्यार्थियोंको बी० ए० की उपाधि प्रदानकी है, जिनमेंसे चार विज्ञानाचार्य्य (डौक्टर औफ़ साएन्स), एक सौ नवासी धर्मशास्त्र तथा प्राच्य-विद्या-विशारद, एक हज़ार सात सौ तिरसठ कला-विशारद, सात सौ चालीस विज्ञान-विशारद तथा दो सौ बासठ क़ानून-विशारद हैं। फिर इनमेंसे तीन सौ चौरासी शिक्षा-विशारद, दो सौ मशीन तथा बिजलीके विज्ञानके विशारद और चौदह खनिज और धातु-विज्ञानके विशारद हैं।

यह विश्वविद्यालय सारे भारतवर्षकी संस्था है।

विश्वविद्यालयकी स्थापना इसे एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय मानकर हुई थी, और इसने सभी प्रकारसे अक्षरशः इस ध्येयका पालन किया है।

इसके कोषमेँ भारतवर्षकी सभी रियासतोँ तथा सभी प्रान्तोँकी जनतासे दान मिला है। अपने शिक्षकवर्गमेँ इसने सभी प्रमुख प्रान्तोँके व्यक्तियोँकी नियुक्ति की है। यहाँके विद्यार्थी भी भारतवर्षके सभी प्रान्तोँसे आते हैँ। यहाँपर यह बता देना आवश्यक है कि प्रत्येक प्रान्तसे आनेवाले विद्यार्थियोँकी संख्या क्या है। आसामसे बीस, बिहार व उड़ीसासे एक सौ छिहत्तर, बङ्गालसे दो सौ तैँतालीस, बम्बईसे एक सौ पाँच, ब्रह्मासे पाँच, मध्यप्रान्तसे (इन्दौर तथा ग्वालियरको लेकर) उन्तालीस, मध्यप्रान्तसे दो सौ इकतीस, बरारसे दस, मद्राससे एक सौ सैँतीस, पश्चिमोत्तर प्रान्तसे अट्ठाइस, पञ्जाबसे एक सौ तैँतालीस, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, अलवर, कोटा तथा राजपूताना और पटियाला आदि रियासतोँसे एक सौ पाँच, हैदराबाद (दक्खिन) से छः, नैपालसे छः, काश्मीरसे पन्द्रह, मैसूरसे दो, संयुक्तप्रान्तसे एक हज़ार एक सौ तेरह, ट्रावङ्कोरसे सत्रह, बलोचिस्तानसे दो, दक्षिणी कनाडासे एक, कोचीनसे पाँच, आन्ध्रसे इकतीस और देहलीसे तीन। एक विद्यार्थी मौरिशस टापूसे भी आया है। ये विद्यार्थी सब मिलकर भारतवर्षके दो सौ बाईस ज़िलोँसे आए हैँ।

कोष और उसमेँ वृद्धिकी आवश्यकता।

भाइयो तथा बहनो! आप लोगोँमेँ से बहुतोँने सुना होगा कि प्रारम्भमेँ विश्वविद्यालयका सञ्चालन करनेके लिये एक करोड़ रुपयोँकी प्रार्थना की गई थी। मुझे आप लोगोँको यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि वास्वतमेँ आजतक एक करोड़ पच्चीस लाखकी पूँजी एकत्र की गई है। इसमेँसे एक करोड़ सोलह लाख तो भारतवर्षके राजकुमारोँ तथा जनतासे प्राप्त हुए हैँ और नौ लाख भारत-सरकारसे। भारत-सरकार हमेँ तीन लाखका वार्षिक दान भी देती है और इसी प्रकारका अस्सी हज़ारका वार्षिक दान हमेँ रियासतोँसे मिलता है। शेष प्रति-वर्षीय व्ययका काम फ़ीस तथा जनतासे प्राप्त दानोँसे चलता है। हमारी कुल आमदनी दस लाख है और कुल ख़र्च बारह लाख है। हम लोगोँने यह अनुभव किया है कि आजतक जो कोष हम लोगोँने एकत्र किया है तथा जो आमदनी हमेँ प्रतिवर्ष मिलती है वह एक प्रथम श्रेणीके विश्व-विद्यालयके निर्माण तथा परिचालनके लिये बहुत ही अपर्य्याप्त है। इस कार्य्यके लिये चार करोड़के दूसरे कोषकी आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु अभी हम लोगोँने दूसरे करोड़की माँगके लिये प्रार्थना की है जिससे वार्षिक व्ययकी पूर्त्तिके लिये हमेँ कम-से-कम तीन लाखकी अधिक आमदनी हो सके। यह आमदनी वर्त्तमान प्राच्य विद्या तथा धर्म-शास्त्रविभाग, प्रयोग तथा व्यावहारिक कला और विज्ञान-विभाग, आयुर्वेद-विभाग तथा शिल्पकला, कृषि, अर्थशास्त्र, तथा सङ्गीत आदि विभागोँके पुष्ट करनेमेँ ख़र्च की जायगी। जिन कार्य्योँके लिये और पूँजीकी आवश्यकता है उनका विशेष विवरण उस अभ्यर्थनापत्रमेँ दे दिया गया है जिसका काफ़ी प्रचार हो चुका है। अतएव मैँ आप लोगोँको वे बातेँ दुहराकर सुनानेके लिये नहीँ रोकता। आप लोगोँसे मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि मेरी प्रार्थना विशेष रूपसे स्वीकार की जा रही है, और मैँ आशा करता हूँ कि हमारी दूसरे करोड़की माँग भी बहुत शीघ्र ही पूर्ण हो जायगी।

महिलाओ तथा सज्जनो! मैँने आप लोगोँको विश्वविद्यालयकी उस उन्नतिके विशेष विवरणको सुनानेके लिये बहुत देरतक रोका जो इसने गत बारह वर्षोँमेँ प्राप्त की है। ऐसा इसलिये किया है कि मैँने सोचा कि विश्वविद्यालयका यह धर्म है कि वह अपने संरक्षकोँ, शिक्षा-प्रेमियोँ तथा सहायकोँको यह बतला दे कि इस बारह वर्षोँके जीवनकालमेँ इसने क्या-क्या कार्य्य किए। मैँ आशा करता हूँ कि जो कुछ मैँने कहा है उससे

आप लोग तथा इसके सहायकवृन्द यह देखेंगे कि विश्वविद्यालयने अपने कार्य्योंका एक सुन्दर प्रदर्शन किया है और इसलिये यह धनिकों तथा विद्या-प्रेमियोंकी अविरल सहायताका पात्र है। इतने थोड़े कालमें इतनी बड़ी उन्नति बहुत कम संस्थाओंमें देखी गई है। मुझे विश्वास है कि आप लोग इस बातसे सहमत होंगे कि परमात्माने हमारे परिश्रममें सहायता की है और हमारे साथ मिलकर प्रार्थना करेंगे तथा कृतज्ञताके साथ उसे धन्यवाद देंगे।

भारतवर्षमें विश्वविद्यालयकी शिक्षाकी उन्नति।

यह देखकर परम प्रसन्नता होती है कि हिन्दू विश्वविद्यालयके इस विकास-कालमें प्रायः भारतवर्षके अन्य विश्वविद्यालयोंकी शिक्षामें भी अपूर्व व्यापक उन्नति हुई है। इसी बीचमें बारह नये विश्वविद्यालयोंका निर्माण हुआ और प्राचीन विश्वविद्यालय, शिक्षक वर्गकी वृद्धि, उच्च शिक्षा तथा अन्वेषणकी सुविधाके लिये समुचित सामग्रियोंके योगसे पूर्ण बनाए गए। यह उन व्यक्तियोंके लिये बड़े ही सन्तोषकी बात है जिन्हें भारतीयोंको उच्च शिक्षा प्राप्त करानेसे प्रेम है और जो भारतमाताको दिनोदिन उन्नतिशील तथा समृद्धिशाली देखना चाहते हैं। हमारे यहाँ एक प्रतिभाशाली भारतीय विद्यार्थियोंकी मण्डली है, जो सब प्रकारसे परिपूर्ण बारह रसायन-प्रयोगशालाओंमें काम करते हैं, नित्य भिन्न-भिन्न प्रश्नोंको हल करते हैं, नये-नये वैज्ञानिक तत्त्वोंके अन्वेषणोंमें लगे रहते हैं और इस प्रकार अपने ज्ञानके भाण्डारको विस्तृत करते हैं। भारतीय-विज्ञान-परिषद् तथा भारतके इतर विज्ञान तथा तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी सम्मेलनोंके समय भारतीयोंद्वारा पठित लेखोंसे यह ज्ञात हो जायगा कि ये विद्यार्थी इस क्षेत्रमें कितना अच्छा कार्य्य कर रहे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप लोग मेरे साथ उन व्यक्तियोंको हार्दिक धन्यवाद देनेमें सहयोग करेंगे जिन्होंने इन नये विश्वविद्यालयोंके स्थापित करने तथा प्राचीन विश्वविद्यालयोंको शक्तिशाली बनानेमें प्राण-पणसे परिश्रम किया है। मैं यह भी आशा करता हूँ कि आप सब लोग मिलकर भगवान्से यह प्रार्थना करेंगे कि ये विद्या-मन्दिर अधिक संख्यामें विशेष करके भारतीय जनतामें नव-ज्योति और नवजीवन-सञ्चारके साधन बनें तथा संसारके अन्य राष्ट्रोंके सामने भारतके लुप्त गौरवका पुनरुत्थान करें।

विशेष सन्तोषकी बात यह है इन विश्वविद्यालयोंमेंसे दोकी स्थापना भारतीय रियासतों—मैसूर तथा हैदराबादमें—हुई है। मुझे यह देखकर हर्ष होता है कि और रियासतें अपने यहाँके नवयुवकोंको उच्च शिक्षा दिलानेके लिये हिन्दू विश्वविद्यालयको ही मुख्य मानते हैं और अपने विद्यार्थियोंको अधिक संख्यामें यहाँ भेजते हैं। मेरी समझमें मैं कह सकता हूँ कि यह एक न्याय-सङ्गत भी है, क्योंकि हमें यह हर्षके साथ स्वीकार करना पड़ेगा कि विश्वविद्यालयके लिये आजतक जो एकत्रित कोष है उसका आधा हमें रियासतोंसे ही प्राप्त हुआ है और रियासतोंसे आए हुए विद्यार्थियोंको यह सुविधा प्राप्त होती है कि विश्वविद्यालयमें पाठित बहुसंख्यक विषयोंमेंसे अपनी रुचिके अनुसार विषयोंको चुन सकते हैं।

भारतीय विद्वत्ताकी प्रशंसा

महिलाओ तथा सज्जनो! यह सारे राष्ट्रके लिये आनन्दका विषय है कि इसी कालमें, जिसका विवेचन हम लोग कर रहे हैं, हमारे कुछ भारतीय भाइयोंने विद्या तथा अन्वेषणमें विश्व-विस्तृत प्रसिद्धि प्राप्त की है और अपने इन कार्य्योंसे भारत-माताका मुख उज्ज्वल किया है। यह सभी जानते हैं कि डाक्टर जगदीशचन्द्र बोसने अपने विज्ञानविषयक आविष्कारोंसे किस प्रकार पश्चिमीय विज्ञान-वेत्ताओंकी बुद्धिको प्रभावित किया है तथा उनकी प्रशंसा प्राप्त की है। हम लोगोंने डाक्टर सर सी० वी० रमनका भी नाम सुना है जिन्होंने भौतिक-

विज्ञान-क्षेत्रमेँ एक विशेष प्रकारके अन्वेषणके कारण, जो मुख्यतः 'रमन इफ़ैक्ट्स' के नामसे प्रसिद्ध है, बहुत ही उत्कृष्ट सम्मान प्राप्त किया है। आज अपने मध्यमेँ एक दूसरे प्रमुख विद्वान् अपने परम मित्र डाक्टर साहाको देखकर मुझे असीम प्रसन्नता होती है। यह तीसरे भारतीय हैँ, जो ग्रेट बृटेनकी रौयल सोसाइटीके फ़ेलो निर्वाचित हुए हैँ। इन्होँने इतनी बड़ी प्रतिष्ठा बहुत ही कम उम्रमेँ पाई है, और हमेँ विश्वास है कि अपने वैज्ञानिक अध्यवसाय तथा अन्वेषणके क्षेत्रमेँ और भी नये सम्मानसे सुशोभित किए जायँगे जिसमेँ ये असीम धैर्य्य तथा गम्भीर उत्साहके साथ कार्य्य कर रहे हैँ।

सज्जनो! समयका अभाव मुझे उन विद्वानोँके बृहत् कार्य्योँको बतानेके लिये रोकता है जिन्होँने ज्ञानकी परिधिको विस्तृत किया है। जो कुछ मैँने कहा है उसीसे ज्ञात हो जायगा कि भारतीय विद्वानोँने विज्ञान-संसारमेँ बड़ा नाम प्राप्त किया है और भविष्यमेँ और भी प्राप्त करेँगे।

भारतीय विश्वविद्यालयोँकी समालोचना।

मैने पहले ही कहा है कि कुछ वर्षोँके अन्दर अधिक संख्यामेँ विश्वविद्यालयोँकी स्थापना हो जाना राष्ट्रके लिये एक बड़े गौरवकी बात है। परन्तु मुझे यह देखकर अत्यन्त दुःख होता है कि कुछ लोग भारतवर्षमेँ विश्वविद्यालयोँकी उन्नतिको बुरी दृष्टिसे देखते हैँ, और कुछ ऐसे हैँ जो यह सोचते हैँ कि विश्वविद्यालयकी शिक्षाके लिये आवश्यकतासे अधिक ख़र्च किया जाता है। उनका यह विचार भ्रमपूर्ण है। मेरा कहना है कि इन महाशयोँका भ्रम शीघ्र ही दूर हो जायगा यदि ये ग्रेट बृटेन, जर्मनी, फ्रान्स, इटली, अमेरिका आदि देशोँके अनगिनत विश्वविद्यालयोँका दृष्टान्त लेँ और तब सोचेँ कि भारतवर्ष जैसे बड़े देशके लिये अट्ठारह विश्वविद्यालय कोई अधिक नहीँ हैँ जिसका क्षेत्रफल, रूसको छोड़कर, सारे येरोपके बराबर है। और मैँ यह कहनेका साहस करता हूँ कि इस विषयको राजनीतिक दृष्टिसे देखनेवाले प्रत्येक विद्वान्का इस प्रश्नपर यही मत है। प्रत्येक सभ्य देशमेँ विश्वविद्यालयकी शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षाका प्रधान अङ्ग मानी जाती है और यदि पाश्चात्य देशोँके विश्वविद्यालयोँकी शिक्षाके व्ययकी तुलना हमारे देशके विश्वविद्यालयोँके शिक्षा-व्ययसे की जाय तो ज्ञात हो जायगा कि इस विषयमेँ अन्य सभ्य देशोँकी अपेक्षा हम कितने पीछे हैँ और हमेँ इस कमीकी पूर्त्तिके लिये कितने उत्साहकी आवश्यकता है। हमारे जितने भी विश्वविद्यालय हैँ वे मानो दरिद्रता तथा आपत्तियोँसे आक्रान्त भारतभूमिके अज्ञान रूपी अन्धकारके विनाशनार्थ उतने ही बिजलीघर हैँ। ये विश्वविद्यालय जितनी ही अधिक संख्यामेँ उच्च शिक्षा-प्राप्त नवयुवकोँको देशसेवाके लिये भेजेँगे उतनी ही अधिक अविद्या रूपी शत्रुसे संग्राम करनेवाली राष्ट्रीय सेनाकी शक्ति बढ़ेगी और उतना ही देशमेँ ज्ञानरूपी बाल-रविका प्रकाश फैलेगा। अतएव प्रत्येक भारतप्रेमीको देशमेँ विश्वविद्यालयकी शिक्षाकी वृद्धि देखकर प्रसन्न होना चाहिए।

परन्तु यह कहा जाता है कि जितनी रक़म हम लोग विश्वविद्यालयोँके लिये ख़र्च करते हैँ उसका हमेँ उचित प्रतिफल नहीँ मिलता, उनमेँ व्ययके अनुकूल उपयुक्त कार्य्य नहीँ होता, उत्तमतामेँ ये पश्चिमीय विश्वविद्यालयोँकी श्रेणीसे बहुत नीचे हैँ, भर्त्ती करनेकी योग्यता नीची श्रेणी की है, तथा उत्तमताकी क्षति होती है और इस प्रकार शिक्षा-शक्तिका बहुत ही ह्रास होता है।

मैँ इस आलोचनाको अंशतः सत्य मानता हूँ। मैँ निश्चित रूपसे इस बातका समर्थन करता हूँ कि देशकी इस वर्त्तमान शोचनीय अवस्थामेँ भारतीय बुद्धि अपनी शक्तिके अनुकूल फल नहीँ दे सकती। फिर भी यह बड़ी ही सन्तोषजनक बात है और वास्तवमेँ हमारे भारतीय स्नातक धन्यवाद तथा यशके भागी हैँ कि हर प्रकारकी विपरीत

परिस्थितियोँके होते हुए भी, जिनमेँ उनको अपना जीवन-निर्वाह तथा काम करना पड़ता है, वे भारत तथा इङ्गलैण्डमेँ होनेवाली सभी प्रतियोगिता-परीक्षाओँमेँ अपनी-अपनी योग्यताका सुन्दर परिचय देते हैँ। विश्वविद्यालयोँमेँ व्यय की हुई पूँजी तथा परिश्रमका यदि हम लोग समुचित फल प्राप्त करना चाहेँ तो हमेँ चाहिए कि सम्पूर्ण शिक्षा-पद्धतिकी पुनरालोचना की जाय और हम इसके सभी दोषोँ, अभावोँ तथा विश्वविद्यालयकी शिक्षाके मार्गमेँ आनेवाली सभी बाधाओँकी सूची तैयार करेँ।

इङ्गलैण्डसे अन्य देशोँकी शिक्षाकी तुलना।

यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है कि विश्वविद्यालयकी शिक्षाकी उत्तमताकी श्रेणी द्वितीय श्रेणीकी शिक्षाकी उत्तमतापर निर्भर है। यदि आप पहलेकी उन्नति चाहते हैँ तो दूसरेकी उन्नति करना अवश्यम्भावी है। परन्तु आप ऐसा तभी कर सकते हैँ जब आप प्रारम्भिक शिक्षाकी व्यवस्था किसी विस्तृत तथा प्रौढ़ आधारपर करेँ। इसी बातको ध्यानमेँ रखकर हमेँ पुनः स्मरण रखना चाहिए कि भारतमेँ शिक्षाकी क्या दशा है और इसकी तुलना अन्य देशोँकी शिक्षा-पद्धतिसे करनी चाहिए। प्रथम इङ्गलैण्डका ही उदाहरण ले लीजिए। साठ वर्षोँतक इङ्गलैण्डने स्थिरचित्त होकर अपनी जनतामेँ सार्वजनिक शिक्षाका प्रचार किया है। सन् १८७० ई० मेँ प्रारम्भिक-शिक्षा-ऐक्ट (एलिमेण्टरी एजुकेशन ऐक्ट) के अनुसार देशभरके लिये प्रारम्भिक शिक्षा आवश्यक होगई, तथा सन् १८९१ ई० के विधानमेँ इसे निःशुल्क बना दिया। उसी समयसे चौदह वर्ष तककी अवस्थावाले बालक और बालिकाओँके लिये निःशुल्क विद्या प्राप्त करना आवश्यक हो गया। अनिवार्य्य शिक्षा तीन विभागोँमेँ विभाजित है। (१) किशोर श्रेणी, (इन्फैण्ट ग्रेड), पाँच वर्षसे आठ वर्षतक (२) प्रारम्भिक श्रेणी (एलिमेण्टरी ग्रेड) आठ वर्षसे ग्यारह वर्षतक और (३) उच्च प्रारम्भिक श्रेणी (हायर प्राइमरी ग्रेड) जिसे कभी-कभी मध्यम शिक्षा (सेकिण्डरी एजुकेशन) भी कहते हैँ, ग्यारह वर्षसे लेकर चौदह वर्षतक। ये द्वितीय श्रेणीके स्कूल (सेकण्डरी स्कूल) विद्यार्थियोँको युनिवर्सिटी मैट्रिकुलेशन परीक्षाके लिये तैयार करते हैँ और एक मुख्य प्रकारकी सहायता देकर उन्हेँ अपने मुख्य विषयकी पढ़ाईको जारी रखनेके लिये उत्साहित करते हैँ। वहाँपर साठ जनताके स्कूल ऐसे हैँ जिनकी गणना प्रथम श्रेणीके स्कूलोँमेँ है और जो विद्यार्थियोँके चरित्र-निर्माण तथा उनको उच्च पदोँके योग्य बनानेके लिये प्रख्यात हैँ। द्वितीय श्रेणीकी पाठशालाओँकी संख्या वहाँ एक हज़ारसे भी अधिक है। महायुद्धके पश्चात् नये स्कूलोँकी स्थापना हुई है जो सेन्ट्रल स्कूल कहलाते हैँ। वे ग्यारह वर्षीय बालक और बालिकाओँको एक प्रतियोगिता परीक्षाके फलके आधारपर भर्त्ती करते हैँ तथा उनको स्वतन्त्र शिक्षा देते हैँ। ये दैनिक स्कूल हैँ। इन स्कूलोँने अपने पाठ्य विषयोँको व्यापारिक-विभाग, कला-सम्बन्धी-विभाग तथा व्यवसाय-विभाग आदिमेँ विभाजित किया है। इङ्गलैण्डमेँ शिक्षाके विषयमेँ वर्त्तमान प्रवृत्ति यह हो रही है कि साधारण शिक्षामेँ व्यावसायिक कलाओँकी गणना एक आवश्यक विषयके रूपमेँ हो रही है, और इस प्रकार प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा व्यावसायिक स्कूलोँकी पारस्परिक विभिन्नताको हटाया जा रहा है। परन्तु अब भी अल्प-कालिक, पूर्ण-कालिक, सन्ध्या तथा व्यवसाय-शिक्षा-सम्बन्धी स्कूलोँका एक जालसा बिछा हुआ है। कला-सम्बन्धी उच्च कोटिके ज्ञानके लिये अधिक संख्यामेँ कौलेजोँकी भी स्थापना की गई है। इन स्कूलोँमेँ कला तथा व्यवसाय-सम्बन्धी इतने अधिक विषय हैँ कि प्रत्येक विद्यार्थी अपनी रुचिके अनुसार कोई भी विषय ले सकता है। इसके अतिरिक्त वहाँ बहुतसे ऐसे विद्वान् हैँ जो छोटी श्रेणीके विद्यार्थियोँ तथा मज़दूरोँको कल-कारख़ानोँ तथा

व्यापारके लिये विशेष कलाकी शिक्षा देते हैं, वे सभी स्थानीय व्यवसायोंकी शिक्षा देते हैं। वहाँपर व्यवसाय-सम्बन्धी शिक्षाओंके लिये और भी विद्यालय हैं जो किसी मुख्य कलामें विशेषता पानेकी शिक्षा देते हैं। इस प्रकारकी सहायक संस्थाएँ विश्वविद्यालयकी उपाधियोंके योग्य साधारण कला तथा विज्ञानकी भी शिक्षा प्रदान करती हैं। इन सब विद्यालयों तथा संस्थाओंके ऊपर सोलह विश्वविद्यालय हैं। द्वितीय श्रेणीके स्कूलोंमें बहुत बड़ी संख्यामें छात्र-वृत्तियाँ इसलिये दी जाती हैं कि होनहार विद्यार्थी विश्वविद्यालयमें भर्त्ती होनेके लिये प्रोत्साहित हों। अतएव यह प्रत्यक्ष है कि इङ्गलैण्डमें इस बातपर कितना ध्यान दिया जाता है कि प्रत्येक बालक वैसी ही शिक्षा प्राप्त कर सके, जिसके योग्य परमात्माने उसे बनाया है। पश्चिमके सभी प्रमुख देशोंमें इसी मार्गका अनुसरण होता है और प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा-पद्धतिका पुनर्निर्माण करके उसे श्रेष्ठ तथा प्रौढ़ बनाया गया है।

व्यावसायिक निर्देश

मैं आप लोगोंको सङ्क्षेपमें यह बता देना चाहता हूँ कि इन देशोंमें नवयुवकोंकी शिक्षाके लिये गत दस वर्षोंमें कौन-कौन सुधार हुए हैं। अपने प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा व्यावसायिक शिक्षाके क्षेत्रको क्रमशः पूर्ण विकसित कर देनेके पश्चात् उन्होंने एक व्यावसायिक-सम्बन्धी निर्देशन-पद्धतिको स्थान दिया है। जिसका उद्देश्य यह है, "किसी व्यापार या व्यवसायको चुनने, उसकी तैयारी, प्राप्ति, तथा उसमें उन्नति करनेके लिये समुचित सूचना, अनुभव तथा आदेश देना"। उन्होंने उन बालक और बालिकाओंको, जीविका प्राप्त करने योग्य कार्योंकी सम्मति देनेके लिये पाठशालाके अध्यापकोंकी एक समिति तथा उन तरुणोंको कार्य्य दिलानेवाली संस्थाओंकी स्थापना की है, जो स्कूलकी शिक्षा समाप्त कर चुकते हैं। वे समझते हैं कि केवल विद्यार्थियोंको स्कूलमें पढ़ाकर उत्तीर्ण करा देनेके बाद ही बालकोंके प्रति वे अपने कर्त्तव्यकी छुट्टी नहीं पा गए। इन सभी देशोंमें शिक्षकोंका बालकोंके प्रति यह कर्त्तव्य हो गया है कि वे उन्हें व्यावसायिक जीवनके लिये तैयार करें और उन्हें अच्छी नौकरियाँ प्राप्त करानेमें पूर्ण सहायता दें। इस प्रकार औस्ट्रियामें सन् १९२२ ई० में, राष्ट्र-शिक्षा-कार्य्यालयकी एक आज्ञामें कहा गया था कि "स्कूलोंका यह धर्म है कि उनमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको केवल उपयुक्त शिक्षा देना ही अपना कर्त्तव्य न समझें बल्कि उनको यह भी चाहिए कि वे उनके माता-पिताओंको इस बातकी सम्मति दें कि उन बच्चोंकी भविष्य जीविका-वृत्ति क्या होनी चाहिए। सन् १९२१ ई० में एफ़० बुइसन नामक फ़्रान्सीसी विद्वान्‌ने प्रोफ़ेसर शील्ड्सकी रची हुई पुस्तक 'इवोल्यूशन औफ़ इण्डस्ट्रियल ओर्गेनाइज़ेशन' में उद्धृत पङ्क्तियोंको इस प्रकार लिखा है कि, "स्कूल केवल स्कूल ही के लिये नहीं बना है बल्कि जीवनके लिये। इसे भविष्य समाजको जीविका उपार्जन करने योग्य व्यक्तियोंसे भरना चाहिए। यह एक प्रकारकी हास्यास्पद निर्दयता है कि वह तेरह वर्षीय बालकोंको अचानक छोड़ दे, जब वे जीवन-संग्राममें निराधार फेंक दिए जाते हैं। यह एक प्रकारकी मूर्खतापूर्ण बरबादी है। यह कितनी मूर्खता है कि जिस विद्यार्थीके लिये इतना किया जाय उसको काम दिलानेके लिये कुछ भी न हो। इन्हीं भावोंसे यह विचार हो रहा है और इसका प्रचार भी बहुत शीघ्र हो रहा है कि स्कूलोंके सामाजिक उत्सव अत्यन्त विस्तृत हों। स्कूलको और भी बहुतसे कार्य्य करने चाहिएँ। इनमेंसे प्रथम तो यह है कि पाठशालाके कमरेसे कारख़ानोंतक विद्यार्थियोंको पहुँचानेका प्रबन्ध करें।" इङ्गलैण्ड और वेल्समें व्यवसाय-सम्बन्धी आदेश सन् १९१० ई० से ही प्रचलित है जब वहाँ उसी सन् में सत्रह वर्षसे कम (अब १९१८ ई० के 'एजुकेशन ऐक्ट' के अनुसार अठारह वर्षसे कम) उम्रवाले विद्यार्थियोंको जीविका उपार्जनके लिये आदेश

तथा सम्मति देनेके लिये शिक्षा-विधान (वृत्तिका चुनाव) पास हुआ था। इसी प्रकार आयरिश फ़्री स्टेट, फ़्रान्स, बेल्जियम, जर्मनी और ग्रेटबृटेनमेँ भी है जहाँ सन् १९०८ मेँ व्यवसाय-सम्बन्धी आदेश-प्रणालीका नियमानुकूल प्रचार हुआ था।

इन बातोँसे आप लोगोँके ध्यानमेँ यह बात बैठ जायगी कि इङ्गलैण्ड आदि अन्य सभ्य राष्ट्रोँमेँ बालकोँकी उपयुक्त शिक्षापर कितना ध्यान रक्खा जाता है। प्रत्येक सभ्य राज्य अपना यह कर्त्तव्य समझता है कि बालकको अच्छी जीविका उपार्जन करने योग्य शिक्षा दे। महायुद्धके पश्चात् दस वर्षोँके अन्दर सभी सभ्य देशोँने शिक्षाको व्यावहारिक बनानेका पूर्ण उद्योग किया है। छः वर्षमेँ ही औस्ट्रिया-वियेनाने सन् १९२७ मेँ अपनी शिक्षा-प्रणालीको पूर्ण व्यवस्थित कर लिया। चिलीमेँ सन् १९२८ तक साढ़े चार लाख आबादीमेँसे तीस प्रति सैकड़ेसे भी कम लोग अशिक्षित रह गए थे और सम्भवतः जनसंख्याका एक सातवाँ भाग किसी-न-किसी प्रकारके शिक्षालयमेँ था। व्यावसायिक शिक्षा द्वितीय श्रेणीके स्कूलोँके तृतीय वर्षसे प्रारम्भ होती है। साथ ही प्रयोगात्मक स्कूल तथा पाठ्य विषय निर्धारित किए गए। चिलीके योग्य स्कूलका निर्णय करनेके लिये आदर्श स्कूल-प्रणालीका समावेश किया गया है। हैम्बर्गके स्कूल, जातीय केन्द्र, माता-पिताओँके सहयोग तथा स्वायत्तशासनात्मक संस्थाओँके रूपमेँ परिवर्त्तित हो रहे हैँ। स्वीडेन देशकी वर्त्तमान शिक्षा-प्रणालीका प्रधान ध्येय यह है कि नवयुवकोँको योग्य नागरिक बनावे तथा जनताकी बुद्धिका विकास करे। सन् १९१८ मेँ नवयुवकोँको प्रयोगात्मक शिक्षा देनेके लिये एक नई प्रणालीका निर्माण हुआ और वह अच्छी प्रकारसे काम कर रही है। तुर्कीमेँ महायुद्धके बाद प्राचीन धार्मिक शिक्षा-प्रणालीका पूर्णतया निषेध कर दिया गया, और अब देशकी नई परिस्थितिके उपयुक्त प्रजातान्त्रिक, व्यावहारिक, नूतन तथा राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली व्यवहारमेँ लाई जा रही है। स्कूलोँकी संख्या बढ़ गई है। प्रायः सभी प्रकारकी शिक्षा निःशुल्क कर दी गई है। स्वप्रबन्धके लिये सभी सुअवसर प्रदान किए गए हैँ, और प्रारम्भिक स्कूलोँके प्रथम तीन वर्षोँमेँ ही गतिशील बनानेकी नीतिका अवलम्बन किया जाता है। फ़्रान्स, जर्मनी, अमेरिका व जापानकी शिक्षा-प्रणालीके विषयमेँ आप लोगोँसे कुछ विशेष कहना अनावश्यक प्रतीत होता है। उनकी वर्त्तमान व्यापार तथा कला-कौशलकी उन्नति, उनकी समृद्धि, शक्ति तथा उनके आनन्दका अधिकांश श्रेय वहाँकी शिक्षाको है, जिसे उन्होँने गत पचास वर्षोँमेँ अपनी सन्तानोँको दी है।

भारतवर्षमेँ शिक्षा।

हमेँ अब अपने देशकी ओर ध्यान देना चाहिए। यहाँकी दशा क्या है? एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान्का कथन है कि कोई भी ऐसा देश नहीँ है जहाँ भारतवर्षके समान विद्याका प्रेम पुरातन हो अथवा उसका इतना शक्तिशाली प्रभाव पड़ा हो? फिर भी भारतवर्ष बृटिश साम्राज्यके एक सौ सत्तर वर्षके शासनकालके बाद भी अशिक्षा और अज्ञानके गर्त्तमेँ पड़ा है। सरकारी रिपोर्टके अनुसार सन् १९२१ मेँ पढ़े-लिखे नर-नारियोँकी संख्या केवल ७·२ प्रति सैकड़ा थी। सन् १९२७ मेँ शिक्षित पुरुषोँकी ६·९१ प्रतिशत तथा स्त्रियोँकी केवल १·४६ प्रतिशत संख्या स्कूलोँमेँ थी। भारतके सभी स्कूलोँ तथा कौलेजोँमेँ सन् १९२१-२२ मेँ विद्यार्थियोँकी कुल उपस्थिति पचहत्तर लाख थी। इनमेँसे पचास लाख (बालिकाओँकी संख्याको लेकर) प्रारम्भिक स्कूलोँकी प्रथम कक्षाओँमेँ तथा शेष तिहाई विश्वविद्यालयोँ और कौलेजोँ आदि सभी शिक्षा-संस्थाओँमेँ थे। ये बालक बहुत संख्यामेँ तो प्रथम कक्षाके बाद ही पढ़ाई छोड़ देते हैँ, और इनमेँसे केवल उन्नीस प्रति सैकड़े चौथी कक्षातक पहुँचते हैँ। पहली कक्षाके विद्यार्थी लिख-पढ़ नहीँ सकते और जो कुछ थोड़ासा वे सीखते हैँ वह शीघ्र ही भूल जाते हैँ। नवीन सरकारी रिपोर्टोँमेँ

इस बातपर बड़ा खेद प्रगट किया गया है कि इन अङ्कोंसे बड़ी ही भयावह क्षति और शिथिलताका परिचय मिलता है।

जिस देशमें प्रारम्भिक शिक्षाकी व्यवस्था इतनी शोचनीय है वहाँ किसी अन्य प्रकारकी रात्रि पाठशाला आदि संस्थाओंके निर्माणकी आशा करना केवल मूर्खता है।

द्वितीय श्रेणीके स्कूलोंकी संख्या भी बहुत कम है और उनमें दी हुई शिक्षाका ढङ्ग भी अपर्य्याप्त है। इनमें दी जानेवाली सार्वजनिक शिक्षाकी उत्तमता भी अन्य देशोंकी शिक्षासे निम्न कोटिकी है और इससे व्यावहारिक लाभका तो लेश भी नहीं है। ये इस बातमें भी नीचे हैं कि इनमें केवल साधारण ज्ञानकी शिक्षा दी जाती है और शिल्प व कला-सम्बन्धी शिक्षापर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। यहाँपर कृषि-सम्बन्धी, व्यापारिक, कला व शिल्प-सम्बन्धी तथा व्यवसाय-सम्बन्धी स्कूल बहुत कम हैं। हम लोग इङ्गलैण्डके सेण्ट्रल स्कूलमें एक साथ ही दी जानेवाली क्रमिक कृषि, व्यापार तथा शिल्प-सम्बन्धी कक्षाओंकी शिक्षा-प्रणालीका भारतवर्षके लिये व्यर्थ ही स्वप्न देखते हैं। सरकारी विज्ञप्तिमें दूसरी श्रेणीके स्कूलोंके विषयमें लिखा है कि "मैट्रिकुलेशन तथा विश्वविद्यालयोंकी परीक्षाओंमें बहुसंख्यक असफलता परिश्रमकी निरर्थकता सिद्ध करती है। व्यवसाय तथा शिल्प-सम्बन्धी शिक्षा देनेकी ओर जो कुछ भी उद्योग किए गए हैं उनका शिक्षा-प्रणालीसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, इसलिये वे अधिकतर निष्फल रहे हैं।

विश्वविद्यालयोंकी तुलना हम उन वृक्षोंसे कर सकते हैं जिनकी जड़ें प्रारम्भिक पाठशालाओंकी गहराई तक पहुँचती हैं और जो अपना रस तथा शक्ति द्वितीय श्रेणीके स्कूलोंसे प्राप्त करते हैं। जहाँ ये दोनों ही न्यून तथा दोष-युक्त हों, जहाँ विद्यार्थियोंके लिये शिल्प आदि कलाओंकी शिक्षाका कोई प्रबन्ध न हो और उधर उनका झुकाव ही न हो, वहाँ प्रत्येक विद्यार्थीको बाध्य होकर एक ही प्रकारके ऐसे विषय लेने पड़ते हैं जो उन्हें तुच्छ क्लर्कोंके पदोंके अतिरिक्त अन्य कार्य्योंके लिये अनुपयुक्त बना देते हैं। विश्वविद्यालयोंके कार्य्यमें बाधा पड़नेका एकमात्र कारण यही है कि वे ऐसे विद्यार्थियोंको भर्त्ती करते हैं, जो स्वभावसे ही विश्वविद्यालयकी शिक्षाके लिये अयोग्य हैं तथा उनमेंसे बहुतसे अन्य व्यवसायोंमें अच्छी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इस वर्त्तमान परिस्थितिमें विश्वविद्यालयोंसे यथेच्छ उच्च प्रकारकी श्रेष्ठताकी आशा नहीं की जा सकती। किन्तु यही आश्चर्य्य है कि अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंको झेलते हुए भी इतना अच्छा परीक्षा-फल वे कैसे दिखला सके। अतएव विश्वविद्यालयोंमें भर्त्ती, उनकी शिक्षा तथा परीक्षाओंमें अत्यन्त आवश्यक उच्च कोटिकी श्रेष्ठताके निर्वाहके लिये, राष्ट्रीय-प्रणालीके आधारपर प्रारम्भिक तथा माध्यमिक स्कूलोंमें सर्वसाधारणके लिये निःशुल्क शिक्षा अनिवार्य्य कर दी जाय और साथ-ही-साथ उनमें उत्तम शिल्पादि कलाओंकी शिक्षाका भी प्रबन्ध रक्खा जाय। वर्त्तमान असन्तोष-जनक परिस्थितिको सुधारनेका एकमात्र यही उपाय है। इसके अतिरिक्त योग्यताहीन विद्यार्थियोंको विश्वविद्यालयकी शिक्षा देना व्यर्थ है।

पढ़े लिखोंकी बेकारी।

महिलाओ तथा सज्जनो! दूसरा दोष जो हमारे कौलेजों और विश्वविद्यालयोंके विरुद्ध आरोपित किया जाता है वह यह है कि वे इतनी अधिक संख्यामें ग्रेजुएट निकालती हैं कि उन्हें काम नहीं मिलता। इसका प्रत्यक्ष यही कारण है कि हमारे विश्वविद्यालयोंमें अधिक संख्यामें भिन्न-भिन्न विषयोंकी शिक्षा नहीं दी जाती जिससे वे अपनी योग्यताके अनुसार जीविका-उपार्जनके मार्ग खोज सकें। कला अथवा साधारण विज्ञानमें उपाधि प्राप्त करनेवाले विद्यार्थी केवल एक शिक्षक या राज्यकर्मचारीके पदके योग्य

रहते हैं, परन्तु स्कूल तथा कौलेज् और नौकरियोंमें प्रति वर्ष निकले हुए ग्रेजुएटोंकी एक अल्प संख्याकी ही नियुक्ति हो सकती है। देशके राज्यप्रबन्धमें चिकित्सा-सम्बन्धी सहायताका क्षेत्र अभी सङ्कुचित है। अतएव वर्त्तमान अवस्थामें इस विभागकी सेवामें कुछ लोगोंका निर्वाह हो सकता है। व्यावसायिक अथवा शिल्प-सम्बन्धी शिक्षाके अभावसे बहुतसे विद्यार्थियोंको बाध्य होकर वकालतकी ओर झुकना पड़ता है, जिसका फल यह होता है कि आवश्यकतासे अधिक भीड़ होनेके कारण इस विभागमें उन्हें जीविकोपार्जनके लिये अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है और अन्तमें हतोत्साह होना पड़ता है। इसका एकमात्र उपाय यही है कि व्यापार, कृषि, शिल्पादि कला, इञ्जिनीयरिङ्ग तथा प्रयोगात्मक-रसायनमें शुद्ध ढङ्गपर भरपूर शिक्षाका विकास हो। यह कोई बात नहीं है कि कृषि तथा व्यापारमें तत्काल बहुत मनुष्योंकी सेवाकी आवश्यकता नहीं है। शिक्षाको ऐसा क्रियात्मक रूप देनेकी आवश्यकता है जिसकी माँग सदैव बनी रहे और इस माँगकी उन्नति स्थिरचित्त होकर की जाय। सरकार तथा विश्वविद्यालयोंको इस बातमें सहयोग करना चाहिए कि वे नवयुवकोंको उपयुक्त शुद्ध ढङ्गकी शिक्षा दें और उनके लिये जीवन-निर्वाहकी वृत्तियोंका प्रबन्ध करें। शिक्षित मनुष्योंकी अगणित संख्याका निर्वाह राष्ट्रसेवाके किसी एक ही अङ्गमें कभी भी नहीं हो सकता। परन्तु बहुतसी शाखाओंमें थोड़ा-थोड़ा करके अधिक संख्यामें मनुष्योंका जीवननिर्वाह हो सकता है।

हमारे विद्यार्थियोंपर यह दोषारोपण किया जाता है कि उनमेंसे अधिकतर क़ानून पढ़ते हैं, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि इसमें उनका दोष नहीं है बल्कि उनका यह अभाग्य है कि उन्हें ऐसा करना पड़ता है, अन्यथा उनके लिये दूसरा कौनसा मार्ग खुला है?

एक समय जापानमें अत्यन्त अधिक संख्यामें विद्यार्थी क़ानून पढ़ने लगे। फल यह हुआ कि क़ानून-विभाग ठसाठस भर गया। अन्तमें एक व्यापारकी संस्था खोली गई, व्यापारको प्रोत्साहन दिया गया। बैङ्कोंका निर्माण हुआ और बहुतसे नए वकील क़ानून-विभागको त्यागकर व्यापारिक-धन्धोंमें लग गए और इस प्रकार अपनी तथा देशकी सेवा की।

इस वर्त्तमान शिक्षा-प्रणालीका सबसे बड़ा दोष यह है कि बीस वर्षकी स्कूल तथा विश्वविद्यालयकी निरन्तर शिक्षाके पश्चात् एक भारतीय नवयुवकको अपने, अपनी स्त्री, बच्चों तथा निर्धन-माता पिताओंके निर्वाहके लिये उपयुक्त जीविकोपार्जनका कोई मार्ग नहीं दिखलाई देता। यह प्रणाली जड़से ही दोषमय है और इसमें अधिक सुधारकी आवश्यकता है। सम्पूर्ण वातावरणको ही परिवर्त्तित कर देना चाहिए। बालकोंकी शिक्षा तभीसे प्रारम्भ कर देनी चाहिए जब वह अपनी माताके गर्भमें प्रवेश करते हैं। अर्थात् पिता माता होनेके पहले ही इन नवयुवक तथा युवतियोंको शिक्षित हो जाना चाहिए। इङ्गलैण्डकी ओर एक बार फिर ध्यान दीजिए। वहाँपर माता शिक्षित है, पिता शिक्षित है तथा सारा पड़ोस ही शिक्षित है। प्रायः सभी लोग स्कूलकी शिक्षाका लाभ उठा चुके हैं। वहाँकी शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ तथा उनकी कार्य्यवाही प्रत्येक मनुष्यको प्रत्येक ओरसे आकर्षित करती है। समाचार-पत्र और पुस्तक प्रत्येक मनुष्यके हाथमें देखे जाते हैं। हर एक प्रकारसे पढ़ने, लिखने तथा ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छाकी वृद्धि की गई है। जनताके मस्तिष्कमें इस बातका बीजारोपण हो गया है। शिक्षा जीवनकी आवश्यकताओंका एक अङ्ग हो गया है। ऐसा उद्योग किया गया है और इसमें अधिकांश सफलता भी प्राप्त हुई है कि जन्मसे मृत्युपर्य्यन्त शिक्षा प्राप्त करनेका समुचित प्रबन्ध हो। ऐसे ही वातावरणमें एक अंग्रेज़ बालकका जन्म होता है और उसका पालनपोषण होता है।

उसपर धातृ-स्कूल, प्राइमरी-स्कूल, सेकिण्डरी (मध्यम) स्कूल तथा शिल्प-विद्यालयमेँ उसपर ध्यान रक्खा जाता है। जब वह अन्तमेँ स्कूलको छोड़ता है तब वह हर प्रकारसे योग्य होता है और उसकी वृत्तिमेँ सहायता दी जाती है। यदि वह विश्व-विद्यालयमेँ प्रवेश करता है, तो वह आशा तथा उत्साहसे परिपूर्ण, उच्चकोटिकी विद्याके सीखनेके लिये हर प्रकारसे तैयार पाया जाता है। भारतीय विद्यार्थियोँको भी वैसी ही परिस्थितिमेँ रखिए, उन्हेँ सुन्दर सुअवसर दीजिए, वह किसी भी संसारके अन्य देशके विद्यार्थियोँसे किसी बातमेँ भी पराजित नहीँ हो सकते।

शिक्षाका माध्यम।

भारतीय विद्यार्थियोँके मार्गमेँ आनेवाली वर्त्तमान कठिनाइयोँका कोई अन्त नहीँ है। सबसे बड़ी कठिनता यह है कि शिक्षाका माध्यम हमारी मातृभाषा न होकर एक अत्यन्त दुरूह विदेशी भाषा है। सभ्य संसारके किसी भी अन्य भागमेँ जनसमुदायकी शिक्षाका माध्यम विदेशी भाषा नहीँ है। हमारे ऐङ्गलो-वर्नैकुलर तथा हाइस्कूलोँमेँ शिक्षाका माध्यम प्रायः अंग्रेज़ी ही है। यद्यपि कुछ प्रान्तोँमेँ भाषा-सम्बन्धी विषयोँके अतिरिक्त परीक्षाओँके लिये शिक्षाका माध्यम मातृ-भाषा ही रक्खी गई है, तोभी अंग्रेज़ीका प्रयोग विशेष रूपसे किया जाता है। एक बालक सात वर्षकी अवस्थासे ही अंग्रेज़ी पढ़ने लगता है, और उसी समयसे उसकी मातृ-भाषाका अध्ययन छूट जाता है और वह गौण हो जाती है, इसका मूल्य घट जाता है, अतएव इसपर विशेष ध्यान नहीँ दिया जाता। फल यह होता है कि उस समयसे लेकर स्कूल छोड़नेतक, उसके बहुमूल्य समयका अधिकांश एकमात्र शिक्षाकी माध्यम कठिन अंग्रेज़ी भाषासे परिचय प्राप्त करनेमेँ ही लग जाता है। अंग्रेज़ीकी कठिनताके बारेमेँ एक बार ग्लैडस्टनने कहा था कि "यह एक ऐसी भाषा है जिसकी वर्ण-रचना किसी भी विदेशीको पागल बना देगी।" इस बातका हिसाब लगाना बहुत कठिन है कि भारतीय जनताको इसके लिये वाध्य होकर किस परिमाणमेँ अपने अमूल्य समय, परिश्रम तथा धनकी तिलाञ्जलि देनी पड़ती है। कौलेजोँमें भी इसी मार्गका अवलम्बन किया जाता है। फिर भी क्या कोई भी शिक्षाका आचार्य्य यह दावा कर सकता है कि हमारे नवयुवकोँमेँ थोड़े भी अंग्रेज़ी भाषामेँ अपने भावोँको शुद्ध रूपसे व्यक्त कर सकते हैँ। अगर मैँ अपना व्यक्तिगत अनुभव बताऊँ तो मैँ यह कह सकता हूँ कि मैँने सात वर्षकी ही अवस्थासे अंग्रेज़ी पढ़ना प्रारम्भ किया और मुझे इस भाषाको सीखते और बहुत प्रयोग करते एकसठ वर्ष हो गए परन्तु मैँ यह स्पष्ट स्वीकार करता हूँ कि मैँ जितनी सरलतासे अपनी मातृ-भाषाका प्रयोग कर सकता हूँ उसकी आधी भी मैँ अंग्रेज़ी भाषामेँ नहीँ कर सकता। मुझे प्रायः गत अर्द्ध-शताब्दीमेँ होनेवाले प्रमुख भारतीय विद्वानोँ तथा समाज-नेताओँसे व्यक्तिगत परिचयका सुअवसर प्राप्त हुआ है। इनमेँसे बहुतोँने अंग्रेज़ोँ के हाथसे प्रशंसा और सम्मान इसलिये पाया कि वे उन्हीँ के समान अंग्रेज़ी बोल और लिख सकते थे। परन्तु वे बुरा न मानेँ उनमेँसे बहुत कम ही ऐसे होँगे जो एक साधारण शिक्षित अंग्रेज़के समान वैसा ही प्रयोग करनेका दावा रखते होँ जिस शुद्धता तथा आसानीसे वह अपनी मातृ-भाषाका प्रयोग करता है। तब हमारे स्कूलोँ, सार्वजनिक दफ़्तरोँ तथा मनुष्योँमें इस विस्तृत अंग्रेज़ी भाषाके प्रयोगसे क्या लाभ? इसका मतलब यही है कि हमारे देश-वासियोँके अमूल्य समय तथा शक्तिका कितना बड़ा ह्रास होता है। सबसे शोचनीय बात यह है कि इसके लिये इतना व्यय होते हुए भी अंग्रेज़ीका जो ज्ञान एक साधारण भारतीय युवक प्राप्त करता है वह बहुत निकृष्ट तथा उसके व्यवहारके लिये बिल्कुल अपर्याप्त होता है। वह इतना हीन हो जाता है कि अंग्रेज़ी भाषाके माध्यमद्वारा पठित

विषयोँका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेमेँ उसे बाधा पड़ती है और उस प्राप्त ज्ञानको अंग्रेज़ीमेँ व्यक्त करना उसे और भी कठिन प्रतीत होता है। हमारे विद्यार्थियोँको किसी भी विषयमेँ उतना अच्छा ज्ञान नहीँ हो सकता जितना उसी विषयका अपनी मातृ-भाषाके द्वारा अध्ययन करके एक अंग्रेज़ बालक ज्ञान प्राप्त करता है। भारतीय नवयुवकको सोचने तथा अपनेको व्यक्त करनेकी दोनोँ शक्तियोँका ह्रास हुआ है। उसकी दशा बड़ी ही शोचनीय है। अतएव राष्ट्रीय-शिक्षा अपनी उत्तमताके उच्च शिखरपर तबतक नहीँ पहुँच सकती जबतक जनताकी मातृ-भाषा अपने उचित स्थानपर, शिक्षाके माध्यम तथा सर्वसाधारणके व्यवहारके रूपमेँ न स्थापित की जाय।

अंग्रेज़ीसे लाभ।

मैँ अंग्रेज़ी भाषाके मूल्यको किसी प्रकार कम नहीँ आँकता। मैँ स्पष्ट कहता हूँ कि यह भाषा हमारे लिये बहुत लाभकारी सिद्ध हुई है। इससे भारतवर्षके प्रत्येक विभागमेँ राज्यप्रबन्धको एकरूपता देनेमेँ सहायता मिली है। यह राष्ट्रीय भावको भी परिपुष्ट करनेमेँ सहायक हुई है। मैँ यह मानता हूँ कि यह संसारकी भाषा है अथवा होनेवाली है। मैँ विश्वविद्यालयमेँ प्रवेश करनेवाले प्रत्येक शिक्षित भारतीयको अथवा किसी अन्य उच्च शिक्षाके लिये विदेश जानेवालोँको उपदेश देता हूँ कि वे इस भाषाका पूर्ण ज्ञान कर लेँ और हो सके तो जर्मन तथा फ़्रान्सीसी भी सीख लेँ। परन्तु हमेँ अंग्रेज़ी भाषाकी शिक्षाको गौण भाषा मानकर इसे पढ़नेके लिये उत्साहित होना चाहिए, क्योँकि इसकी गणना मनुष्यसमाजमेँ व्यापारिक भाषाके रूपमेँ है और व्यावहारिक व्यापारमेँ इसका पढ़ना श्रेयस्कर है। हमेँ इसे ऐसा मुख्य स्थान कभी नहीँ देना चाहिए जैसा कि यह आज हमारी शिक्षाप्रणाली, हमारे सार्वजनिक राज्यप्रबन्ध और व्यापारिक संसारमेँ जमाए बैठी है। राष्ट्रीय भाषाओँके न अपनानेसे हमारी कितनी क्षति तथा हमारा कितना नैतिक अधःपतन हुआ है, वह वर्णन नहीँ हो सकता है। हमेँ इसको रोकनेका शीघ्र उपाय करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति ऐसा सोचता हो कि हमारी राष्ट्रीय भाषाका प्रयोग शिक्षाके माध्यम अथवा सार्वजनिक व्यवहारके रूपमेँ इसलिये न किया जाय कि यह अंग्रेज़ी भाषाकी तरह उतनी सम्पन्न नहीँ है तो मैँ उन्हेँ यही स्मरण कराऊँगा कि यही अंग्रेज़ी भाषा, जिसके साहित्यकी सम्पन्नताका प्रत्येक अंग्रेज़को अभिमान है, कुछ ही शताब्दी पहले, इन्हीँ अंग्रेज़ोँसे इङ्गलैण्डमेँ ही तिरस्कृत तथा परित्यक्त थी। चौदहवीँ शताब्दीके मध्यतक इङ्गलैण्डमेँ अंग्रेज़ी भाषाकी जगह फ़्रान्सीसी भाषा पढ़ाई जाती थी। केवल चौदहवीँ शताब्दीके अन्तमेँ ही इङ्गलैण्डकी जनताने अपने स्कूलोँ, कचहरियोँ तथा दफ़्तरोँमेँ अंग्रेज़ी भाषाका प्रयोग करना प्रारम्भ किया। ग्रीनने अपनी पुस्तक "शौर्ट हिस्ट्री औफ़् इङ्गलिश पीपिल" मेँ लिखा है कि:—

"चौदहवीँ शताब्दीके मध्यमेँ स्वतन्त्रता तथा सङ्गठनके लिये जो सङ्घर्ष नौर्मन वंशके अन्तिम राजाओँके शासन कालसे प्रारम्भ हुआ था वह अपनी पराकाष्ठापर पहुँच गया, और फलतः विजित तथा विजेताके परस्पर घनिष्ट सम्पर्कका यह प्रभाव पड़ा है कि उच्च कुलोँमेँ भी फ़्रान्सीसी भाषाका प्रयोग होना बन्द हो गया। व्याकरण-पाठशालाके उद्योग तथा नई भाषाके सीखनेके फ़ैशनके होते हुए भी, अंग्रेज़ी भाषा तृतीय एडवर्डके राज्यकालसे लेकर उसके नातीके राज्यकालतक अपनी उन्नति करती ही रही।" एक पुराने लेखकका कथन है कि "संसारके सभी देशोँके रीति रिवाजके विरुद्ध, स्कूलमेँ बालकोँके अपनी प्रचलित भाषा त्याग करने और अपने पाठोँको फ़्रान्सीसी भाषामेँ याद करनेके लिये बाध्य किया जाता था, और जबसे नौर्मन लोग इङ्गलैण्डमेँ आए उसी समयसे उन्हेँ ऐसा करना पड़ा। प्रतिष्ठित आदमियोँकी सन्तानोँको तो फ़्रान्सीसी बोलना उनके

बचपन ही से सिखलाया जाने लगा, यहाँ तक कि उन्हें अपने खिलौनोंके साथ बोलना और खेलना सिखलाया जाने लगा। देहाती जनता अपने मालिकोंका ठीक-ठीक अनुकरण करने लगी और फ्रान्सीसी बोली बोलनेमें बहुत दिलचस्पी लेने लगी।” रिचर्डके समयका एक अनुवादक कहता है कि “इस प्रणालीका प्रयोग सन् १३४९ ई० की महामारीके कालतक अधिक रहा, और तबसे कुछ परिवर्त्तित हो गया है, क्योंकि जैान कौर्नवेली नामक एक व्याकरणाचार्यने व्याकरण-पाठशालाकी इस प्रथाको बदलकर फ्रान्सीसीसे अंग्रेज़ीमें भाषान्तर करना प्रारम्भ कराया। रिचर्ड पेङ्क्रीक इसी प्रथाका अनुगामी बना। सन् १३८५ में रिचर्ड द्वितीयके नव विजयके बादसे इङ्गलैण्डकी सभी व्याकरण पाठशालाओंमें लड़के फ्रान्सीसीका परित्याग करते हैं और उसका भाषान्तर अंग्रेज़ीमें करते और सीखते हैं।” सन् १३६२ के विधानमें भी एक इसी प्रकारका लिखित सङ्केत पाया जाता है जिसमें आज्ञा है कि सभी अदालती कार्रवाइयाँ अंग्रेज़ी भाषामें ही की जायँ, क्योंकि “फ्रान्सीसी भाषा अधिक अपरिचित है।”

महिलाओ तथा सज्जनो! इस साधारण प्राकृतिक परिवर्त्तनका यह फल हुआ कि दो ही शताब्दियोंमें शेक्सपीयर, मिल्टन तथा कवियों और लेखकोंके समुदायने एक आदर्श साहित्यका निर्माण कर दिया, जिसका प्रसिद्ध स्मारक बाइबिलका अंग्रेज़ी अनुवाद है, जो अंग्रेज़ी भाषाका सर्वश्रेष्ठ कोष है। ध्यान दीजिए कि अंग्रेज़ी-भाषा-भाषी संसारकी कितनी क्षति हुई होती, यदि अंग्रेज़ी भाषा उसी प्रकार तिरस्कृत रहती जैसी कि वह सन् १३८२ में थी। उसी प्रकार यह कौन बता सकता है कि हिन्दी तथा अन्य राष्ट्रीय भाषाओंकी ओर आवश्यक ध्यान न देने तथा उनको राष्ट्रीय शिक्षा और पारस्परिक व्यवहारका माध्यम न बनानेके कारण हमारे साहित्यके समुचित विकासमें कितनी क्षति हुई है? अंग्रेज़ी भारतवर्षकी राष्ट्रीय भाषा कभी भी नहीं हो सकती। पचहत्तर वर्षकी शिक्षाके पश्चात् भी यहाँकी जनसंख्याका केवल ०·८९ प्रति सैकड़ा अंग्रेज़ी जानता है। अतएव उसे इस प्रतिष्ठित पदपर, भारतवर्षकी मुख्य मातृ-भाषा—हिन्दी अथवा हिन्स्दुतानी—हिन्दुस्तानकी भाषाको अवश्य स्थापित करना पड़ेगा। जबतक अंग्रेज़ी भाषा भारतवर्षकी कचहरियों, दफ़्तरों, संस्थाओं तथा स्कूल-कौलेजों और विश्वविद्यालयोंमें अपना वर्त्तमान प्रमुख स्थान धारण किए रहेगी, तबतक हिन्दुस्तानी भाषा राष्ट्रीय जीवनमें उचित स्थान नहीं प्राप्त कर सकती, और एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणालीका विकास कभी भी नहीं हो सकता।

राष्ट्रीय स्वराज्य राष्ट्रीय शिक्षाका आवश्यक अङ्ग है।

महिलाओ तथा सज्जनो! मैं ने आपको यह अंशतः बतला दिया कि किस कठिन परिस्थितिमें भारतवर्षमें विश्वविद्यालयोंकी शिक्षाका प्रचार हो रहा है। मैंने इसके दोषोंको, इसकी कमीको तथा इसके मार्गमें पड़नेवाली बाधाओंको भी बता दिया। अब मैं इन कठिनाइयोंको दूर करनेवाले उपायोंकी ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। भारतवर्ष और इङ्गलैण्डकी शिक्षामें इस महान् अन्तरका मुख्य कारण क्या हो सकता है? दोनों ही देश एक ही सम्राट्के अधीन हैं, दोनोंका राज्य-प्रबन्ध एक ही राज्य-परिषद् (पार्लियामेण्टके) हाथमें है। सम्भवतः एक सौ पचास वर्ष व्यतीत हुए ग्रेट बृटेन तथा आयर्लैण्डकी पार्लियामेण्टने भारतके भाग्यका सम्पूर्ण भार अपने ऊपर लिया। इस बीचमें इसने दृढ़ताके साथ अनेक बार यह कहा है कि भारतवासियोंके धर्माचरण तथा आर्थिक समृद्धिकी उन्नतिका भार हमारे ऊपर है। इङ्गलैण्ड-वासियोंकी भी कुशलताका उत्तरदायित्व इसीपर है। इसने इङ्गलैण्ड-वासियोंके लिये राष्ट्रीय शिक्षाकी श्रेष्ठतम प्रणालीका प्रचार करके अपनी संरक्षताका कैसा सुन्दर परिचय दिया है। साठ वर्ष व्यतीत हो गए, इसने ग्रेट-बृटेन और आयर्लैण्डमें प्रारम्भिक शिक्षाको अनिवार्य कर दिया और सन् १८९१ में उसे निःशुल्क कर

दिया। इस गत अर्द्धशताब्दीमें इसने देशकी भिन्न-भिन्न आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिये सार्वजनिक तथा शिल्प-सम्बन्धी शिक्षा-प्रणालीमें समुचित परिवर्त्तन किया है। इसका फल यह हुआ है कि बृटिश जाति प्रतियोगिताके विभिन्न क्षेत्रोंमें वर्त्तमान उन्नतिशील राष्ट्रोंसे किसी प्रकार कम नहीं है। संसारमें इङ्गलैण्डकी वर्त्तमान समृद्धि तथा शक्तिका अधिकांश श्रेय वहाँकी श्रेष्ठ शिक्षा-प्रणालीको है।

अब भारतवर्षकी ओर ध्यान दीजिए। भारतवासियोंकी कुशलताकी उन्नतिका बार-बार वचन देकर भी बृटिश पार्लियामेण्टने आजतक उनके बच्चोंकी प्रारम्भिक शिक्षाके लिये भी कुछ नहीं किया यद्यपि ऐसी शिक्षाकी अवस्थाकी ओर अनेक बार ध्यान दिलाया गया और वह स्वीकृत भी हो गया। इङ्गलैण्डमें सन् १८७० ई० के ऐक्टके अनुसार एक शिक्षा-सम्बन्धी कमीशन नियुक्त हुआ। इसने सन् १८८३ ई० में यह प्रस्ताव किया कि देशमें प्रारम्भिक शिक्षाका व्यापक रूपसे विस्तार किया जाय। तबसे अनेकों कमीशनों और समितियोंने इसी प्रकारके प्रस्ताव पास किए। उनमेंसे अन्तिम रौयल कमीशन औन एग्रिकल्चर था, जिसने एक वर्ष पहले ऐसा ही प्रस्ताव पास किया है। इसके अतिरिक्त, हम भारतवासी आज पैंतालीस वर्षोंसे यह माँगते आए हैं कि देशमें प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य्य कर दी जाय और एक नई कला, कृषि, शिल्प तथा व्यापार-सम्बन्धी शिक्षा-प्रणालीका प्रचार हो। परन्तु इनमेंसे किसीकी भी सुनवाई नहीं हुई। सन् १९१० में श्री गोखले महोदयने एक प्रस्ताव इसलिये पेश किया कि देशमें अनिवार्य्य शिक्षा-प्रणाली प्रारम्भ हो परन्तु सरकारने उसका विरोध किया। सन् १९२० से सुधार होना प्रारम्भ हुआ और जनताके प्रतिनिधियोंने कुछ प्रान्तोंमें अनिवार्य्य शिक्षा अंशतः प्रारम्भ कराई है। परन्तु सरकारकी ओरसे, जो सरकार बृटिश पार्लियामेण्टके हाथमें डेढ़ सौ वर्षोंसे है, उसके शासनकालमें भारतवर्षकी प्रारम्भिक शिक्षाके विषयमें सम्पूर्ण उन्नतिका पता इस वातसे चलता है कि सन् १९२७ में स्कूलोंमें पुरुष आवादीका केवल ६·९१ प्रतिशत और स्त्री आवादीका १·४६ प्रतिशत पढ़ता था। यह दृश्य वास्तवमें वड़ा शोकजनक है। हम शिक्षाप्रेमी इस परिणामपर पहुँचते हैं कि इस विभिन्नताका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि इङ्गलैण्डमें पार्लियामेण्ट जनताकी संरक्षिका है, परन्तु भारतसरकार भारतीय जनताके विषयमें अपने इस उत्तरदायित्त्वको नहीं मानती। और यह सच है कि कोई भी विजेता विदेशीय सरकार विजित देशकी जनताकी उतनी चिन्ता नहीं कर सकती जितना कि स्वदेशी सरकार कर सकती है।

राष्ट्रीय शिक्षा सबसे बड़ी समस्या है।

किसी देशके शासनमें राष्ट्रीय शिक्षाका प्रश्न देशकी सबसे बड़ी समस्या है। इसका विभिन्न विभागोंमें श्रेष्ठ तथा सुचारु रूपसे केवल राष्ट्रीय सरकारद्वारा ही विस्तार हो सकता है। जब एक राष्ट्रीय सरकारका निर्माण हो जाय, जैसा कि मैं आशा करता हूँ कि आगामी वर्षमें हो जायगी, तो प्रथम कार्य्य इसे यही करना पड़ेगा कि वह देशके प्रमुख शिक्षाके आचार्य्योंकी एक सभा करे, और उसमें इसी प्रश्नपर विचार हो कि भारतमें राष्ट्रीय शिक्षाकी नीतिका किस प्रकार अवलम्बन किया जाय? इस सभाको चाहिए कि जनताकी शिक्षाके विषयमें अन्य राष्ट्रोंके अनुभवसे लाभ उठावे और एक ऐसे बुद्धि-सङ्गत कार्य्य-क्रमको स्वीकृत करे जो देशकी विभिन्न श्रेणियोंकी जनताकी आवश्यकताके अनुकूल हो। जब देशकी भावी सरकारके द्वारा इसी प्रकारकी नीति तथा ऐसे कार्य्य-क्रमका अवलम्बन किया जाय और उसको काममें लाया जाय तभी भारतके विश्वविद्यालय इस योग्य हो सकेंगे कि भारतीय मस्तिष्ककी योग्यताके अनुसार श्रेष्ठतम परीक्षा-फल दिखला सकें।

वर्त्तमान प्रणाली—एक निकृष्ट नक़ल है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीँ है कि भारतवर्षमेँ प्रचलित वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली हमारी राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओँके लिये पूर्णतः अनुपयुक्त है। हम लोग अन्धविश्वासकी तरह एक ऐसी प्रणालीका अनुसरण करते चले जा रहे हैँ जिसका निर्माण अन्य जातियोँके लिये हुआ था और जिसका उन लोगोँने बहुत दिन हुए परित्याग कर दिया था। हमारे यहाँकी स्त्रियोँकी शिक्षा-प्रणाली इसका ज्वलन्त उदाहरण है। हम लोग अपनी बालिकाओँको, बिना यह सोचे हुए कि उनकी शिक्षासे हमेँ किस प्रकारके फलकी आवश्यकता है, वही विषय पढ़नेके लिये बाध्य करते हैँ जो नवयुवकोँके लिये निर्धारित किए गए हैँ। पुरुषोँकी शिक्षासे स्त्रियोँकी शिक्षाका प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योँकि वे ही भारतकी भावी सन्तानोँकी माता हैँ। वे हमारे भावी राजनीतिज्ञोँ, विद्वानोँ, तत्त्वज्ञानियोँ, व्यापार तथा कला-कौशलके नेताओँ आदिकी प्रथम शिक्षिका हैँ। उनकी शिक्षाका प्रभाव भारतके भावी नागरिकोँकी शिक्षापर विशेष रूपसे पड़ेगा। महाभारतमेँ कहा गया है कि, "माताके समान कोई शिक्षक नहीँ है", । अतएव हमेँ चाहिए कि सर्वप्रथम हम उनकी शिक्षाका उद्देश्य निर्णय कर लेँ और इस विषयमेँ सर्वसम्मति लेकर यह निश्चय करेँ कि किस प्रकारकी शिक्षा उनके योग्य होगी, किस प्रकार हम अपने प्राचीन साहित्य तथा संस्कृतिके उत्तम ज्ञानके साथ-साथ वर्त्तमान साहित्य तथा विज्ञानकी शिक्षाको उनतक पहुँचा सकते हैँ, किस प्रकार हम उन्हेँ जीव-विज्ञान, चित्रकला, सङ्गीतादिकी शिक्षा दे सकते हैँ और देशकी स्त्री-जातिमेँ किस प्रकार शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान ला सकते हैँ ? क्या आप चाहते हैँ कि हमारे देशमेँ सावित्री, अरुन्धती, मैत्रेयी तथा लीलावती और सुलभा आदि प्राचीन समयकी स्त्रियोँके समान अथवा सुराज्य प्रबन्ध करनेवाली अहल्याबाई अथवा झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाईके समान निर्भीक सैनिका पुनः पैदा करेँ ? क्या आप ऐसी स्त्रियोँको जन्म देना चाहते हैँ जिनमेँ प्राचीन तथा नवीन सभ्यताके सभी सद्गुणोँका सुन्दर संयोग हो और जो अपनी शिक्षाके द्वारा भावी भारतके पुनर्निर्माणमेँ आपसे पूर्ण रूपसे सहयोग कर सकेँ ? जबतक हमारे देशकी स्त्रियोँकी शिक्षाके लिये एक राष्ट्रीय कार्य्यक्रमका निर्माण नहीँ हो जाता तबतक इसी प्रकारके अन्य प्रश्नोँपर विचार प्रगट करनेकी आवश्यकता पड़ेगी। राजनीतिज्ञोँ तथा विद्वानोँको ऐसी योजनाओँपर सम्मति तथा स्वीकृति देनेके लिये एक ही साथ बैठकर विचार करना पड़ेगा।

स्वराज्य मिलनेमेँ बाधा—अध्यापकोँका कर्त्तव्य।

यह कहा जा चुका है कि भारतकी स्वराज्य-प्राप्तिके मार्गमेँ शिक्षाका अभाव भी एक बहुत बड़ा रोड़ा है। परन्तु फिर हम यह भी देखते हैँ कि बिना स्वराज्य-प्राप्तिके शिक्षा-सम्बन्धी यह अभाव दूर भी नहीँ हो सकता। यह भी कहा गया है कि अधिकांश जनताके अशिक्षित होनेके कारण वे समझकर वोट देनेमेँ असमर्थ हैँ। परन्तु यहाँ भूल यह होती है कि यद्यपि उनमेँ अधिकांश अशिक्षित हैँ, पर उनकी बुद्धिमत्तामेँ कोई कमी नहीँ है और वे कुछ ही समयमेँ शिक्षित बनाए जा सकते हैँ। यह भी कहा जाता है कि इस देशमेँ धार्मिक उन्मत्तता तथा साम्प्रदायिक भाव इतना अधिक है कि वह भारतीयोँको स्वराज्य लानेवाले संयुक्त राष्ट्र बननेमेँ बाधा डालता है। हमारे साथी शिक्षा-प्रेमियोँके साथ मेरे हाथमेँ आप लोग पर्य्याप्त धन देकर देशके शिक्षाका भार दे दीजिए और मैँ यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि कुछ ही वर्षोँमेँ मैँ इस भूमिसे अशिक्षाको हटा दूँगा और अपने नवयुवकोँमेँ नागरिकताकी शिक्षा तथा प्रेमभावका ऐसा विस्तार कर दूँगा कि राष्ट्रीयता रूपी सूर्य्यके सामने साम्प्रदायिकताका कोहासा कभी टिक नहीँ सकता और अपने देशवासियोँके हृदयमेँ इसी भावका

जमाना हम लोगोंका लक्ष्य तथा अभिमानका विषय होगा।

अध्यापक राष्ट्रका सर्वश्रेष्ठ सेवक है।

किसीको इस बातका दुःख नहीं होना चाहिए कि मैं अध्यापकोंके लिये बहुत माँग रहा हूँ। प्रायः सभी सभ्य देशोंमें, देशके राष्ट्रीय उत्थानमें अध्यापकका स्थान बहुत उच्च माना जाता है। यह निर्विवाद है कि वह राज्यका सर्वश्रेष्ठ सेवक है। बालकोंके मस्तिष्कका झुकाव अध्यापक जिधर चाहें कर सकते हैं। अगर वह देशभक्त है, राष्ट्रीयतासे उसे प्रेम है और यदि वह अपने उत्तरदायित्वको समझता है तो वह देशभक्त पुरुष और स्त्रियोंकी एक जाति पैदा कर सकता है जो स्वभावतः देशको ऐसी श्रेणीपर पहुँचा देंगे जहाँ राष्ट्रीय हितके सामने जातीय स्वार्थ और द्वेषका लेश भी नहीं रहेगा। जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका और जापान तथा अन्य सभ्य देशोंने अपने स्कूलोंमें देशभक्तिकी शिक्षा देकर अपनी राष्ट्रीय शक्ति तथा दृढ़ताका निर्माण किया है। इङ्गलैण्ड भी मुख्यतः महायुद्धके बाद ऐसा ही करता आया है। परन्तु इस विषयमें जापानका उदाहरण आदर्श है। महाक्रान्ति सन् १८६८ में हुई थी, जिससे आधुनिक जापानकी नींव पड़ी। जापानकी राष्ट्रीय सरकारने जापानमें शीघ्र ही एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणालीको जन्म दिया, जिसमें देश-भक्तिकी शिक्षा आवश्यक थी। सन् १८९० में शिक्षाके विषयमें एक राजकीय राजाज्ञा निकली, जिसमें जापानके सम्राट् मिकाडोने अपनी प्रजाको राजभक्ति, पितृ-भक्ति, देशभक्ति तथा विद्या-प्रेमकी शिक्षा दी थी और बतलाया था कि मानव-धर्म तथा सद्व्यवहारका यही सुमार्ग है। यह राजाज्ञा जापानकी प्रत्येक पाठशालामें टँगी हुई है और प्रत्येक विद्यार्थी तथा शिक्षकद्वारा यह आदरकी दृष्टिसे देखी जाती है। इस शिक्षाका फल बहुत ही सुन्दर हुआ है। देशभक्ति जापानका धर्म हो गया है। इसने जापानियोंको सिखलाया है कि देशके लिये प्राण न्योछावर कर दो। साठ वर्ष पहले जापान विभाजित तथा निर्बल था। जापान प्रारम्भिक और माध्यमिक हाइस्कूल, विश्व-विद्यालय, शिल्प-सम्बन्धी तथा विशेष स्कूल आदिका निर्माण करके छः वर्षसे चौदह वर्षकी उम्रवाले बालक व बालिकाओंकी प्रारम्भिक स्कूलोंमें उपस्थिति आवश्यक बनाकर कुछ ही वर्षोंमें सम्पूर्ण राष्ट्रको शिक्षित बना दिया। जापानके इस आकस्मिक उत्थानका मुख्य कारण, यही शिक्षा तथा उसीके साथ प्रचलित आवश्यक सार्वजनिक सैनिक शिक्षा है। शिक्षा तथा देशभक्ति इन दो गुणोंसे युक्त जापानियोंने चीनको सन् १८९५ में और रूसको सन् १९०५ में परास्त किया। जापानको संसारकी प्रमुख पाँच शक्तियोंमें पदासीन हुए बहुत दिन हो गए। यह सब प्रभाव शिक्षाका है, राष्ट्रीय देशभक्तिकी शिक्षाका है। भारतवर्षको भी इसी प्रकारकी राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणालीका आश्रय लेने दो, और हमें विश्वास और आशा है कि इसी प्रकारके सन्तोषजनक फल प्राप्त होंगे।

स्नातकोंको उपदेश

महिलाओ तथा सज्जनो! मैंने आपको अधिक कालतक रोका, परन्तु मैं आशा करता हूँ कि आप थोड़े समयतक मेरे साथ और रुकेंगे, जबतक मैं उन स्नातकोंसे कुछ कह सकूँ जिन्होंने आज अपनी उपाधि प्राप्त की है और जो जीवनमें प्रवेश करनेके लिये बाहर जा रहे हैं। मैं जहाँतक हो सकेगा सङ्क्षेपमें कहूँगा।

मैं नवयुवक तथा नवयुवतियोंसे यह कहता हूँ कि आप अपनी प्रतिज्ञाओंको स्मरण करें जिन्हें आपने उपाधि प्राप्त करनेके पहले मुझसे तथा मेरे ही द्वारा अपनी मातृ-संस्थासे किया है। उन प्रतिज्ञाओंको याद कर लीजिए। उन उपदेशोंको भी आप याद कर लें जिन्हें हमारे योग्य प्रो-वाइस-चांसलरने आपको हमारे पूज्य ऋषियोंकी

वाणीमेँ सुनाया है। सत्य बोलो, शुद्धतासे रहो तथा सत्य ही सोचो। जीवनपर्य्यन्त विद्याभ्यास करते रहो, सदाचरण करो तथा किसीसे भी न डरो। केवल उन्हीँ कार्य्योँसे डरो जो निकृष्ट और त्याज्य हैँ। सत्य तथा न्यायके लिये सदैव प्रस्तुत रहो। अपने भाइयोँकी सेवासे प्रेम करो। मातृ-भूमिसे प्रेम करो। जनताकी सुख-वृद्धि करो। जहाँ कहीँ भी तुम्हेँ सुअवसर मिले भलाई करो। जो कुछ तुमसे हो सके वह दान करो।

जिस दिव्य सत्यकी शिक्षा आपको इस विश्वविद्यालयमेँ बारबार दी गई है उसे स्मरण रक्खो। इस बातका ध्यान रक्खो कि यह सम्पूर्ण सृष्टि एक ही है, और इसका नियन्ता तथा व्यवस्थापक एक अविनाशी, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, शक्ति अथवा परमात्मा है, जिसके बिना कुछ भी जीवित नहीँ रह सकता। यह याद रक्खो कि यह विश्व उसी अद्वितीय शक्तिका साक्षात्कार है। जैसा कि उपनिषदोँने बताया है कि दृश्य अथवा अदृश्य सब कर्त्ता तथा भर्त्ता वही परमात्मा है। इस बातका ध्यान रक्खो कि वह शक्ति—उसे ब्रह्म कहो अथवा ईश्वर कहो—समीप और दूर तथा सदा वर्त्तमान है। जीवित सृष्टिका वही जीवन है। जब कभी आपको इस शक्तिके अस्तित्वमेँ सन्देह पैदा हो तो आप अपनी दृष्टि उस आकाशकी ओर फेरिए, जो उन ताराओँ और ग्रहोँसे विचित्र प्रकारसे सुशोभित है, जो असंख्य युगोँसे मनोहारी ढङ्गसे भ्रमण करते आए हैँ। उस प्रकाशकी ओर ध्यान दो जो अत्यन्त दूरस्थ सूर्य्यसे पृथ्वीपरके जीवोँकी रक्षाके लिये आश्चर्यकारी वेगसे यात्रा करके आता है। अपनी दृष्टि तथा अपने मस्तिष्कको अपनी शरीररूपी अद्भुत मशीनकी ओर झुकाओ, जिसे परमात्माने आपको दिया है, और इस कलकी अद्भुत बनावट और शक्तिपर गम्भीरतापूर्वक विचार करो। अपने चारोँ ओर निगाह फेरो और सुन्दर पशु-पक्षियोँको, मनोहर वृक्षोँको, कमनीय पुष्पोँ तथा स्वादिष्ट फलोँको देखो। इस बातको स्मरण रक्खो कि वह परमात्मा, जिसे हम ब्रह्म अथवा ईश्वर कहते हैँ, इस सम्पूर्ण जीवधारी सृष्टिमेँ उसी प्रकार वर्त्तमान है जैसे मुझमेँ या आपमेँ। यही सब धार्मिक उपदेशका तत्त्व है—

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातु चित्।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥

ईश्वरको सदैव स्मरण रखना चाहिए। उसे कभी न भुलाओ। सभी धार्मिक आदेशोँ तथा निषेधोँका इन्हीँ दो वाक्योँसे पालन हो जाता है। यदि आप यह याद रक्खेँगे कि परमात्मा विद्यमान है और वही सभी जीवधारियोँमेँ विद्यमान है तो उस ईश्वर तथा अपने अन्य जीवधारी भाइयोँसे आपका सच्चा सम्बन्ध सदा बना रहेगा। इसी विश्वाससे कि परमात्मा सभी प्राणधारियोँमेँ विद्यमान है, मूल-उपदेशोँका निर्माण हुआ है जिनमेँ सभी प्रकारके मानव-धर्मके आदेशोँ तथा धर्मोँका समावेश हो जाता है। जैसे :—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्

अर्थात्, दूसरोँके प्रति कोई भी ऐसा आचरण न करो जिसे तुम अपने प्रति किए जानेपर अप्रिय समझते हो, तथा :—

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्

अर्थात्, जो कुछ तुम अपने प्रति चाहते हो, वैसा ही तुम्हेँ दूसरोँके प्रति भी करना आवश्यक है, ऐसा समझना चाहिए।

ये दो प्राचीन आदेश मनुष्यमात्रके लिये पूर्ण आचरणीय हैँ।

यदि कोई मनुष्य आपकी घड़ी अथवा आपकी कोई अन्य वस्तु चुरावे तो आपको दुःख होता है। इसी प्रकार दूसरोँकी घड़ी आदि चुराकर आप उसे दुःख न पहुँचाइए। जब आप बीमार या प्यासे रहते हैँ उस समय आप चाहते हैँ कि कोई आपको औषधि देता और आपकी प्यास बुझा देता। इसलिये यदि आपका कोई भाई या आपकी बहन उसी

प्रकारकी सेवाकी आवश्यकतामेँ हो तो आपका यह धर्म है कि उसकी सेवा करेँ। इन दो अकरणीय तथा करणीय आदेशोँको आप याद रक्खेँ, क्योँकि धर्मके ये ही दो स्वर्ण-नियम हैँ, जिनकी प्रशंसा संसारके सभी धर्मोँमेँ की गई है। धर्म तथा नीतिके ये ही आत्मा हैँ। इसाई धर्म तो इसे अपना मुख्य धर्म मानता है। परन्तु वास्तवमेँ यह एक बहुत ही पुरातन उपदेश है, जो ईसाके जन्मसे हज़ारोँ वर्ष पहले महाभारतमेँ प्रशंसा पा चुका था। मैँ किसी सङ्कुचित विचारसे ऐसा नहीँ कहता। मेरा अभिप्राय यह है कि आपके हृदयमेँ यह बात दृढ़ हो जाय कि ये प्राचीन उपदेश हमारे यहाँ परम्परासे चले आते हैँ और हमारी अमूल्य बपौती हैँ। ये केवल हिन्दुओँ ही के लिये नहीँ हैँ बल्कि सारी मनुष्य-जातिकी अमूल्य निधि हैँ। आप इन्हेँ अपने हृदयमेँ सञ्चित कर लीजिए, और मुझे पूर्ण विश्वास है कि ईश्वर तथा मनुष्य दोनोँके साथ आपका सम्बन्ध सत्य तथा प्रिय रहेगा।

आपको यह भी ध्यानमेँ रखना चाहिए कि यह देश आपका जन्मस्थान है। यह एक सुन्दर देश है। सभी बातोँके विचारसे इसके समान संसारमेँ कोई दूसरा देश नहीँ है। आपको इस बातके लिये कृतज्ञ तथा गौरवान्वित होना चाहिए कि उस कृपालु परमेश्वरने आपको इस देशमेँ पैदा किया। आपका इसके प्रति एक मुख्य कर्त्तव्य है। आपने इसी माताकी गोदमेँ जन्म लिया है, इसने आपको भोजन दिया, वस्त्र दिया तथा आपका पालन-पोषण करके आपको बड़ा बनाया है। यही आपको सब प्रकारकी सुविधा, सुख, लाभ तथा यश देती है। यही आपकी क्रीड़ा-भूमि रही है और यही आपके जीवन का कार्य्यक्षेत्र बनेगी तथा आपकी सभी आशाओँ तथा उमङ्गोँका केन्द्र रहेगी। यही आपके पूर्वजोँ तथा जातिके बड़े-से-बड़े अथवा छोटे-से-छोटे मनुष्योँका कार्यक्षेत्र रही है। अतएव पृथ्वीके धरातलपर यही भूमि आपके लिये सबसे बढ़कर प्रिय और आदरणीय होनी चाहिए।

इसलिये जब कभी आपका देश आपसे किसी प्रकारकी सहायता माँगे, उस समय आपको अपने कर्त्तव्यकी पूर्त्तिके लिये सदैव प्रस्तुत रहना चाहिए। अपने देशवासियोँसे प्रेम करो तथा उनमेँ एकताका विकास करो। आपमेँ सहनशीलता, क्षमा तथा निःस्वार्थ-सेवाके महान् भावके विकासकी आवश्यकता है। हम लोग आपसे यह आशा करते हैँ कि आप अपने छोटे भाइयोँके उत्थानके लिये, अधिक-से-अधिक अपना समय तथा शक्ति लगावेँ। हम लोग आपसे आशा करते हैँ कि आप उन्हीँके साथ मिलकर काम करेँ, उनके शोक तथा आनन्दमेँ उनका हाथ बटावेँ, और उनके जीवनको दिनोदिन सुखमय बनानेका प्रयत्न करेँ। मुझे आपको एक और उपदेश देना है। हम सब लोगोँको इस बातका दुःख है कि हमारे देशमेँ अत्यधिक अज्ञान है। हमेँ इसको दूर करनेके लिये स्वराज्य-प्राप्तिकी प्रतीक्षा नहीँ करनी चाहिए। आप लोगोँमेँसे प्रत्येक नवयुवक और नवयुवतीसे मेरा यह आदेश है कि आप इस बातका प्रण कर लेँ कि आप निरक्षरताको हटानेके लिये सत्याग्रह करेँगे और करोड़ोँ भारतीयोँमेँ ज्ञान तथा प्रकाशके प्रचारके लिये संग्राम करेँगे (हर्ष ध्वनि)। अपनी शक्तिका सङ्गठन कीजिए। अपने अवकाश तथा छुट्टियोँमेँ आप एक नियम बना लीजिए कि आप गावोँमेँ जाकर गाँववालोँके साथ काम करेँ। इस बातपर दृढ़ हो जाइए कि इस अविद्यारूपी अन्धकारको हटा देँगे जो हमारी अधिकांश जनताको आच्छादित किए हुए है। पाठशालाएँ खोलिए और जनताको पढ़ने, लिखने तथा गणितकी शिक्षा दीजिए। इसमेँ धर्मको भी जोड़ लीजिए। धर्म वही हो जिसका उपदेश मैँने अभी दिया है, अर्थात् सहनशीलता, क्षमा तथा प्रेमयुक्त सेवाका धर्म। इन चार बातोँकी शिक्षा प्रत्येक बालक तथा बालिका, प्रत्येक स्त्री तथा पुरुष और प्रत्येक युवा और वृद्धको दीजिए। धर्मका त्याग मत कीजिए। सुचारु रूपसे पढ़ने और पढ़ानेसे मनुष्यमात्रमेँ सुख तथा एकताका सञ्चार होगा।

शिक्षाका प्रचार अत्यन्त व्यापक ढङ्गसे कीजिए। अपनी शिक्षाद्वारा अपने भाइयोंकी स्वच्छता, स्वास्थ्य तथा व्यायामकी उन्नतिमें सहायता कीजिए और उनसे कहिए कि वे यह कार्य्य स्वयं अपने सहयोगी सङ्घटनद्वारा करें। मैं आप सबको, जो आज विश्वविद्यालयसे बाहर जा रहे हैं, तथा उनको जो कुछ दिनोंतक यहाँ रहेंगे, यह आदेश करता हूँ कि आप लोक-शिक्षा-समिति स्थापित करें, और शीघ्र ही निरक्षरता तथा अज्ञानके विरुद्ध संग्राम छेड़ दें, जिसका इतने दिनोंतक रह जाना भी हम लोगोंके लिये लज्जाकी बात है। देशके सभी शिक्षित नवयुवकोंको इस महान् कार्य्यमें हाथ बँटानेके लिये निमन्त्रित कीजिए। हमें केवल मिलकर कार्य्य प्रारम्भ कर देना है। हमारे उद्योगमें सफलता अवश्य होगी।

अपने जीवनपर्य्यन्त ईश्वर तथा देशके प्रति अपने कर्त्तव्य-पालनकी ओर ध्यान रखिए। यह आपकी कठिन परिस्थितियोंमें आपकी रक्षा करेगा और आपके मार्गमें पड़नेवाली रुकावटोंका निवारण करेगा। ईश्वरके प्रति अपने कर्त्तव्यका एकमात्र स्मरण ही केवल मनुष्यमात्र ही के प्रति नहीं, बल्कि परमात्माके बनाए सभी निरीह जन्तुओंके प्रति आपमें भ्रातृ-भाव, दया तथा सहानुभूतिका सञ्चार करेगा। यह आत्मरक्षा तथा देशरक्षाके अवसरोंके अतिरिक्त आपको दूसरोंको हानि पहुँचानेसे बचाएगा। स्वदेशके प्रति अपने कर्त्तव्यका ध्यान आपको उसके हित तथा सम्मानकी रक्षाके लिये सब कुछ न्योछावर एवं बलिदान करनेको सदैव प्रस्तुत रहनेमें सहायक होगा। आप स्वतन्त्रता चाहते हैं, तथा अपने देशमें स्वराज्यकी इच्छा करते हैं। तब आपको इसके आवश्यकतानुसार सब कुछ बलिदान करनेके लिये सदैव प्रस्तुत रहना ही पड़ेगा। आपने अपने अध्ययनकालमें स्वदेश अथवा विदेशमें स्वतन्त्रता-प्राप्ति अथवा स्वतन्त्रता-रक्षाके लिये होनेवाले प्राचीन तथा वर्त्तमान आन्दोलनोंका जोशीला इतिहास पढ़ा होगा। आपने शूरता तथा आत्मबलिदानके भावोंसे व्याप्त संस्कृत तथा आधुनिक भारतीय साहित्योंका भी अध्ययन किया होगा। आपने बार-बार इङ्गलैण्डके प्रभावशाली साहित्यमें अनेक ऐसे अवतरणोंको पढ़ा होगा जिनमें उस देशकी स्वतन्त्रता, शूरता तथा आत्मत्यागकी प्रशंसाका गान बड़े गर्वसे किया गया है। आपने यह पढ़ा होगा कि किस प्रकार गत महासमरमें इङ्गलैण्ड और फ़्रांसके नवयुवकोंने अपनी अथवा अपने देशकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिये स्वयं अपनेको मृत्युके मुँहमें डाल दिया, तथा किस साहस, शूरता तथा दृढ़तासे फ़्रांस तथा इङ्गलैण्डके सुकुमार बालकोंने अपने उद्योगमें विजय प्राप्त करनेतक युद्धको जारी रक्खा और इस प्रकार अपनी मातृभूमिके लिये अमिट गौरव प्राप्त किया। मैं आपको मातृ-भूमिके गौरवके लिये उसी प्रकारके स्वातन्त्र्यसे प्रेम, तथा उसी प्रकारके आत्मत्यागकी भावनाका अपनेमें सञ्चय करनेका उपदेश देता हूँ। (हर्ष-ध्वनि) केवल इसी तरहसे हम लोग पुनः एक शक्तिशाली राष्ट्र बना सकते हैं।

यदि इस शिक्षाके द्वारा आपके हृदयमें देशको स्वतन्त्र तथा स्व-शासित देख लेनेकी इच्छाका सञ्चार न हो सका तो आपकी शिक्षा व्यर्थ ही हो जायगी। मैं यह चाहता हूँ कि आप इस इच्छाको लेकर और इसकी शीघ्र सफलताके लिये जो कुछ भी कष्ट आपको उठाने पड़ें उनको सहनेके लिये तैयार हो जायँ। आप जानते हैं कि नागरिकका सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य यह है कि वह मातृभूमिके सम्मानकी रक्षाके लिये अपने जीवनका बलिदान कर दे। (हर्ष-ध्वनि) इसके साथ-साथ मैं आपको यह भी बता देना चाहता हूँ कि वही कर्त्तव्य आपको यह भी सिखलाता है कि इसी सेवाके लिये जीवनको सुरक्षित रक्खा जाय और मूर्खतावश जोशमें आकर शीघ्र ही समाप्त न कर दिया जाय। अतएव मैं आपसे यही चाहता हूँ कि आप अपने उत्तरदायित्वको समझते हुए शुद्ध भावसे उपयुक्त संरक्षतामें रहकर देशकी स्वतन्त्रताके

लिये अपना कार्य्य करें। मैं शुद्ध हृदयसे यह आशा करता हूँ कि आप वैसा ही करेंगे।

औपनिवेशिक स्वराज्य आ रहा है।

इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है कि भारतको बहुत शीघ्र ही स्वराज्य प्राप्त होगा। (हर्ष-ध्वनि) दो वर्ष हुए मैंने यह भविष्यवाणी करनेका साहस किया था कि सन् १९३० में भारतमें औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित हो जायगा। उस समय बहुत कम लोगोंने यह सोचा था कि मेरी भविष्यवाणीमें कुछ सार है। परन्तु उस लक्ष्यकी ओर हमारी आशासे भी अधिक उन्नति हो रही है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि औपनिवेशिक स्वराज्य आ रहा है। कोई भी शक्ति इसकी गतिको रोक नहीं सकती। (हर्ष-ध्वनि) परन्तु यदि हमें इसके आगमनमें विश्वास हो तो हममेंसे प्रत्येक नवयुवक तथा वृद्धको अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्वके भावसे कार्य्य करना प्रारम्भ कर देना चाहिए, जिसकी आवश्यकता हमें इस स्वराज्यके प्रबन्ध-भारके वहन करनेमें पड़ेगी। इस विषयमें मैं आपका ध्यान लौर्ड रेक्टर लौर्ड इरविनके कुछ विचारोंकी ओर दिलाना चाहता हूँ। कुछ सप्ताह व्यतीत हुए, अन्तर्विश्वविद्यालय-सम्मेलनमें व्याख्यान देते हुए लौर्ड इरविन महोदयने सत्य ही कहा था कि विश्वविद्यालयोंसे बढ़कर इन दिनों बहुत थोड़ी ही आवश्यक वस्तुएँ हैं, और उन्होंने बताया था कि विश्वविद्यालयका सबसे मुख्य कार्य्य यह है कि वह परमावधिका निर्वाह तथा निर्माण करे जैसे, विद्या तथा अन्वेषणकी, न्यायकी तथा आचरणकी परमावधि। मेरी अभिलाषा है कि आप न्याय तथा आचरणकी परमावधिको धारण करें तथा उसका पालन करें। भारतके भविष्यके बनाने तथा बिगाड़नेका उत्तरदायित्व अधिकतर आप ही लोगोंके हाथमें है।

स्नातको! आप लोग यहाँसे बाहर जीवनमें प्रवेश करनेके लिये देशके इतिहासके सङ्कटमय समयमें जा रहे हो। देशके एक पुराने सेवकके नाते तथा आपके प्रति अपने कर्त्तव्य-पालनके विचारसे मुझे आपको एक और उपदेश देना है। मुझे विश्वास है कि देशकी स्वतन्त्रताकी प्रगाढ़ इच्छा मेरे हृदयमें भी उतनी ही है जितनी कि आप नवयुवकोंमें। बहुत कम लोग यह जानते हैं कि मैं इस बातके लिये कितना चिन्तित हूँ कि स्वराज्य हम लोगोंको शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त हो। परन्तु हम लोग ऐसा तभी कर सकते हैं जब हम सच्चे मार्गका अवलम्बन करें। देशकी वर्त्तमान परिस्थिति तथा संसारकी परिस्थितिको देखते हुए हमें चाहिए कि एकता तथा दृढ़तासे समझौतेके साथ काम करें। मैं समझता हूँ कि इस मार्गकी सफलताके लिये परिस्थितियाँ दिनोदिन अनुकूल हो रही हैं। परन्तु परिस्थितियोंके प्रतिकूल होनेपर भी इस मार्गका त्याग नहीं करना चाहिए। इस विषयमें पृथ्वीपर जन्म लिए हुए महापुरुषोंके उपदेशों तथा कार्य्योंको स्मरण कीजिए। महाभारतके प्रारम्भमें रक्त-प्रवाहको बचानेके लिये श्रीकृष्णने क्या किया? उन्होंने ही पाण्डवोंको यह उपदेश दिया था कि वे तबतक प्रतीक्षा करें जबतक शान्तिपूर्ण समझौतेके सभी मार्ग बन्द न हो जायँ। वे स्वयं राजदूत बनकर दुर्य्योधनके पास पाण्डवोंके सत्य अधिकारको समझाकर विरोधको हटानेके लिये गए। विदुरने कहा कि आप व्यर्थ समय खो रहे हैं, परन्तु श्री कृष्णने कहा कि मुझे यह सन्तोष हो जाना चाहिए कि अपनी शक्तिके अनुसार मैंने संग्रामकी भयङ्करताको बचानेका उचित उद्योग किया। कृष्ण गए और अपने कार्य्यमें असफल रहे। पर जबतक वह शान्ति-स्थापनमें असफल नहीं हो चुके तबतक उन्होंने पाण्डवोंको लड़ाई करनेकी राय नहीं दी। मैं चाहता हूँ कि आप इसको याद रक्खें कि औपनिवेशिक स्वराज्य अब हमारा लक्ष्य है। मैं सोचता हूँ कि यह शान्तिमय पत्र-व्यवहारोंद्वारा ही अगले सालतक प्राप्त हो जायगा। मैं यह चाहता हूँ कि आप ऐसा ही सोचें और अनुभव करें मानो औपनिवेशिक स्वराज्य आपको प्राप्त हो गया है।

आगामी बारह महीनोंमें अथवा इससे कुछ अधिक समयमें आपको औपनिवेशिक सरकार चलानेके लिये जाना पड़ेगा। इस भारको सहनेके लिये तैयार हो जाइए। जिस वस्तुका भार आपपर दिया जा रहा है उसे आसान मत समझिए। उसको लेनेके पहले ठहरिए, सोचिए, जाँचिए तथा तौलिए। जब आपके विचारमें यह बात बैठ जाय कि जो वस्तु आप ले रहे हैं वह देशके लिये कल्याणकर है तब उसे स्वीकार कीजिए। अगर वह ऐसी नहीं है तो उसका परित्याग कीजिए। और जिस बातको आप यह समझें कि राष्ट्रके स्वार्थके लिये हितकर नहीं है उसका विरोध दृढ़ता तथा निर्भीकतासे कीजिए। निडर बनो, सच्चा बनो।

मुझे यह सोचकर अपार आनन्द होता है कि आपके हृदयमें देशको अति शीघ्र स्वतन्त्र देखनेकी एक आग धधक रही है। परन्तु उसकी सफलताकी प्राप्तिके लिये यह आवश्यक है कि आप अपने विचारको गम्भीर रक्खें तथा मनोविकारोंके फेरमें पड़कर यह सोचना न भूल जायँ कि वर्त्तमान हालतमें देशके लिये सर्वोत्तम मार्ग कौनसा है। प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य इस बातसे सहमत होगा कि स्वराज्यकी स्थापनाके लिये सबसे अधिक आवश्यकता राष्ट्रीय एकताकी है। अर्थात् बृटिश भारत तथा भारतीय भारतकी एकता, हिन्दुओं तथा मुसलमानोंमें एकता और भारतीय जनताके सभी वर्गोंमें एकता होनी चाहिए। यदि आप इस विषयमें सहमत होते हैं तो भारत-माताके नामपर आपसे मैं यही माँगता हूँ कि आप कोई भी ऐसा कार्य्य न करें अथवा किसी भी ऐसे मतको स्वीकार न करें जो इस प्रकारकी एकताके स्थापनमें बाधा डालता हो। मेरी अभिलाषा है कि आप उन व्यक्तियों तथा दलोंमें पारस्परिक विश्वास, एकता तथा सद्भाव पैदा करानेमें पूर्ण उद्योग करें जिनका समझौता भारतवर्षमें स्वराज्य स्थापित करनेके लिये परम आवश्यक है। राष्ट्रकी सब जातियों तथा वर्गोंको समान करनेके सिद्धान्तोंमें विश्वास न करो और उसमें किसी प्रकारकी सहायता न करो, क्योंकि वह हमारे देशके लिये अनुपयुक्त है। देशकी मुख्य जातियों तथा वर्गोंमें इसके कारण पहले ही से अविश्वास तथा सन्देह उत्पन्न हो गया है। अगर यह प्रचार इसी प्रकार जारी रहा तो इससे फूट पैदा होगी और देशको अपनी वर्त्तमान सङ्कटापन्न दशामें और भी बुरे दिन देखने पड़ेंगे। इसलिये हमें चाहिए कि सबसे सच्चे बने रहें और किसीसे न डरें। अगर आप ऐसा करेंगे तो आप मातृभूमिका सबसे अधिक हित करोगे।

मैं इस लम्बे व्याख्यानको एक सुन्दर प्रार्थनासे समाप्त करता हूँ जो सम्राट् पञ्चम जौर्ज तथा महारानी मेरीने हज़ारों आदमियोंकी भीड़के साथ वेस्ट मिन्स्टर एबेमें गत सातवीं जुलाईको गाई थी। मैं पण्डित रामनारायण मिश्रका इसके लिये कृतज्ञ हूँ कि वे उस समय वहाँ मौजूद थे और उन्होंने इसकी ओर मेरा ध्यान दिलाया। मेरी अभिलाषा है कि आप सब इसको कण्ठाग्र कर लें तथा 'वन्दे मातरम्' गानेके वाद इसका गान करें।

मेरे प्यारे मेरे देश,
सकल विश्वके वैभवसे भी बढ़कर प्यारे देश।
मेरा पूर्ण अमल सुस्नेह,
निश्छल, निश्चल, निश्चय स्नेह,
बलि होनेको उद्यत स्नेह।
तेरी बलिवेदीपर अर्पित,
निज सर्वस्व प्राण औ देह।
मेरे प्यारे मेरे देश,
सकल विश्वके वैभवसे भी बढ़कर प्यारे देश।
मेरे प्यारे मेरे देश*

(तुमुल करतल-ध्वनि)

वन्दे मातरम्।

---

* मूल पद्य—

"आइ वाउ टु दी, माइ कण्ट्री, औल अर्थ्ली थिङ्ग्स एबव,
ऐण्टायर ऐण्ड होल एण्ड पर्फ़ेक्ट, दि सर्विस औफ़ माइ लव;
दि लव दैट आस्क्स नो क्वैश्चन, दि लव दैट स्टैण्ड्स दि टेस्ट,
दैट लेज अपौन दि आल्टर, दि डीयरेस्ट ऐण्ड दि बेस्ट,
दि लव दैट नैवर फ़ौल्टर्स, दि लव दैट पेज दि प्राइस,
दि लव दैट मेक्स अनडौण्टेड् दि फ़ाइनल सैक्रिफ़ाइस,
दि लव दैट आस्क्स नो क्वैश्चन, दि लव दैट स्टैण्ड्स दि टेस्ट,
दैट लेज अपौन दि आल्टर, दि डीयरेस्ट ऐण्ड दि बेस्ट,
आइ वाउ टु दी, माइ कण्ट्री, औल अर्थ्ली थिङ्ग्स एबव,
ऐण्टायर ऐण्ड होल ऐण्ड पर्फ़ेक्ट, दि सर्विस औफ़ माइ लव"

हिन्दू-जाति

पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने २६ सितम्बर, सन् १६२२ ई० को लाहौरमेँ श्री मौलाना अब्दुलक़ादिरके सभापतित्वमेँ एक विराट् सभामेँ यह भाषण दिया था। इस व्याख्यानमेँ 'सियासंत' पत्रके मुसल्मान सम्पादक महाशय भी उपस्थित थे। उन्होँने अपने ३० सितम्बर, सन् १६२२ ई० के पत्रमेँ दूसरे पृष्ठके दूसरे स्तम्भमेँ इस व्याख्यानके सम्बन्धमेँ इस प्रकार लिखा है—

"हम इस जलसेमेँ ख़द मौजूद थे। हमने पण्डित साहबकी तक़रीर शुरूसे आख़ीरतक सुनी है। उसमेँ पण्डित साहबने ऐसी कोई वात बयान नहीं की जिसपर कोई ऐतराज़ वारद हो सके। पण्डित साहबने जो कुछ फ़रमाया है उससे ज़्यादहकी, मौजूदा हालतमेँ, उनसे तवक़ो (आशा) न हो सकती थी। उन्होँने अगर एक जगह बलवाइयोँको मवरदे-इल्ज़ाम (दोषी) क़रार दिया है, तो दूसरी जगह उन नेकदिल और पाकतीनत मुस्लिम मर्द औरतोँकी इन्तहाई तारीफ़ कर दी है, जिन्होँने अपने आपको ख़तरातमेँ डालकर हिन्दू औरतोँ और मर्दोँकी बरवक्त इमदाद की। बाक़ी मुल्तानमेँ जो वाक़यात और हालात रूनुमा हुए, उनपर अफ़सोस करनेमेँ बिल्कुल हक़ बजानब हैँ और इस मामलेमेँ हिन्दोस्तानके तमाम मुन्सिफ़-मज़ाज उनके हमख़याल और हमनवा हैँ।"

—सम्पादक।

मुल्तानका हिन्दू-मुस्लिम दंगा

बहनो और भाइयो!

आज हम एक विशेष घटनाके कारण यहाँ इकट्ठे हुए हैँ। कुछ दिन हुए लाहौरके कुछ हिन्दू-मुसल्मानोँमेँ एक छोटीसी वातपर झगड़ा हो गया, जिसने हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेका रूप धारण कर लिया। इस अग्निके दूरतक फैल जानेका भय था। सम्भवतः इसका मुख्य कारण यह था कि इससे पहले मुल्तानमेँ अत्यन्त शोक और लज्जाजनक घटनाएँ हो चुकी थीँ। उनके लिये हिन्दू और मुसलमान भद्र पुरुषोँके दिलमेँ दुःख, शोक और लज्जाके भाव उपस्थित थे। आज भी हम यहाँ शोक और लज्जाके प्रकाशके लिये इकट्ठे हुए हैँ, ताकि उनका असर लाहौर और अन्य नगरोँपर तबाही न लावे। आजकी विराट् सभाका होना ही यह आशा दिलाता है कि यहाँपर कोई और झगड़ा नहीँ हो सकेगा।

अभी इस सभाके सभापति मौलाना अब्दुलक़ादिरने अत्यन्त उदारतासे पञ्जावके सम्बन्धमें मेरी सेवाओंकी प्रशंसा की है, परन्तु उससे मुझे दुःख हुआ है। मुझे पञ्जावसे बाहरका मत समझो। भारतवर्ष हमारी जन्मभूमि है, हम हिन्दुस्तानी हैं। यहाँका ज़र्रा-ज़र्रा और कोना-कोना पवित्र है। हरएक हिन्दुस्तानीकी ख़िदमत करना और उसकी आह व पुकार सुनना हमारा कर्त्तव्य है। सव हिन्दुस्तानी हमारे भाई हैं। यदि यह देशका प्रेम हमारे दिलोंमें आ जाय तो लाहौर या मुल्तानके जैसी दुर्घटनाएँ हमारे सुननेमें न आवें।

इस समय देशमें दो दृश्य दिखाई देते हैं। एक ओर हमारे अकाली भाई गुरुके बाग़से लकड़ियाँ काटनेके अपने अधिकारकी रक्षाके लिये, और अपने धर्मपर दृढ़ रहकर विना उफ़ तक किए सव प्रकारकी कठिनाइयाँ और अत्याचार सहन कर रहे हैं, और पतित सरकारी नौकर अपने हाथोंसे उनकी डाढ़ियाँ और केश खींचकर उनका अपमान कर रहे हैं। जिस पुलिसका कर्त्तव्य दुष्टोंको मारना और नेकोंकी रक्षा करना है; वही पुलिस उनको सता रही है, और वे लोग अपने किसी स्वार्थके लिये नहीं वल्कि केवल धर्म और जातिका मान रखनेके लिये यह सव कष्ट चुपचाप सह रहे हैं। दूसरी तरफ़ हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेपर वार कर रहे हैं, वह भी किसी उच्च उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये नहीं, धर्मकी रक्षाके लिये नहीं, ईश्वरकी उपासनाके लिये नहीं, बल्कि ईश्वरको नाराज़ करनेके लिये, धर्मका अपमान करनेके लिये और जाति तथा धर्मके गौरवको घटानेके लिये।

अकालियोंकी संसारभर प्रशंसा कर रहा है, परन्तु आपके झगड़े लज्जा और शोक उत्पन्न करनेवाले हैं। मेरे दिलमें शक्ति नहीं कि मैं अपने दुःखका पूर्ण रूपसे प्रकाश कर सकूँ जो मुझे यह जानकर हुआ है कि लाहौरमें एक छोटीसी बातपर आपसमें लड़ाईकी सूरत पैदा हो गई। लोग प्रतिदिन सौदा ख़रीदते हैं। एक आदमी किसी तरकारी या सब्ज़ी वेचनेवालेकी दूकानपर जाता है। दूकानदार कोई कड़वा शब्द कह देता है, कभी मूल्यपर झगड़ा हो जाता है। ऐसी सैकड़ों वातें प्रतिदिन होती ही रहती हैं, परन्तु उन्हें एक हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेका रूप दे देना कैसे शोक और लज्जाकी वात है। आप मुल्तानकी दुर्घटनाको लें। मुझे मालूम है कि हिन्दू भाइयोंके दिलोंमें उससे वहुत चोट पहुँची है। आप मुझे आज्ञा दें कि मैं यह कहनेका साहस कर सकूँ कि हरएक शरीफ़ मुसलमान भाई इन दुर्घटनाओंपर शोक और लज्जा अनुभव करता है, और जिन लोगोंने दीन इस्लामके नामपर ये अत्याचार किए हैं उनको वुरी दृष्टिसे देखता है। मेरी दृष्टिमें ऐसे सव अत्याचारी धर्म-हीन और नास्तिक हैं। वैठे विठाए दशहरे या ताज़ियेके धर्मोत्सवोंपर अकारण किसी फ़सादका हो जाना लज्जास्पद है। एक वह समय था जब ९ अप्रैल सन् १९१९ ई०को अमृतसरमें रामनवमीके अवसरपर हिन्दू-मुसलमानोंके मेलका दरिया उमड़ा हुआ था, जिसे देखकर उस समयके लाटकी छातीपर साँप लोट रहा था। उसी साल लाहौरके दसहरेमें जो प्रेम दिखाई दिया उसे देखकर आखें खिल उठती थीं, दिलको शान्ति होती थी, कान सुनकर ख़ुश होते थे। यह परस्पर एकताका सम्वन्ध कैसे ऊँचे शिखरपर पहुँचा। जब तुर्कीपर मुसीबत आई तो हिन्दुओंने खिलाफ़तके प्रश्नको अपना जातीय प्रश्न वना लिया और उसके लिये सब प्रकारका त्याग स्वीकार किया, यहाँतक कि आज जब कमालपाशाको विजय प्राप्त हुई है, तो वे हिन्दुओंकी दी हुई सहायताको नहीं भूले। वे सारे भारतको मुवारकवादीके तार दे रहे हैं, और लिखते हैं कि आपकी एकताके कारण और आपकी सहायतासे हमने इस युद्धमें विजय पाई है। एक तरफ़ तो यह दृश्य है कि बाहरके मुसलमान हमें साधुवाद दे रहे हैं और दूसरी तरफ़ यह हालत है कि यहाँ और ही गुल खिला हुआ है।

मुल्तानकी घटना

मैँ आज खुले तौरपर इस बातको स्वीकार करता हूँ कि मुल्तानकी दुर्घटनाएँ अत्यन्त शोकजनक, लज्जास्पद और दुःखदायी हैँ। हकीम अजमल ख़ाँ साहब और कांग्रेसकी कार्य्यकारिणी समितिके कई सदस्योँने वे तमाम दृश्य अपनी आखोँसे देखे हैँ। कितनी दूकानोँ और मकानोँको अकारण लूट लिया गया और जला दिया गया, कितने पवित्र मन्दिरोँ और धर्मशालाओँका अपमान किया गया और उन्हेँ जला दिया गया, पवित्र मूर्त्तियाँ तोड़ी गईं, चौदह गुरु ग्रन्थ साहब और श्रीमद्भगवद्गीताकी पुस्तकेँ जलाईं गईं। हकीम अजमल ख़ाँ, बाबू राजेन्द्रप्रसाद और मैँने गुप्त रीतिसे तहक़ीक़ात की। दुःखित स्त्रियोँने अपने ऊपर होनेवाले घोर अत्याचारोँ के अत्यन्त दुःखप्रद वृत्तान्त सुनाए। मुझमेँ शक्ति नहीँ कि मैँ उनका वर्णन कर सकूँ। इतना ही कहना यथेष्ट है कि हमारे भाई बाबू राजेन्द्रप्रसाद उन वृत्तान्तोँको सुननेकी ताब न ला सके, वह अपने को सँभाल न सके और उन्होँने ज़ारज़ार रोना आरम्भ कर दिया। मैँ और हकीम साहब भी उनके साथ रोने लगे। क्योँकि वे वृत्तान्त ऐसे ही अत्यन्त दुःखजनक और हृदयपर आघात पहुँचानेवाले थे।

कोई कारण न था कि जिससे मुल्तानका दङ्गा हो जाता।

किसी हिन्दूने वहाँ ताज़ियेपर ईंट नहीं फैंकी।

ताज़ियेका मान करना हर एक हिन्दूको उचित है। मैँ जब कभी किसी मस्जिदके पास से गुज़रता हूँ तो हिन्दू धर्मका अनुयायी होनेपर भी मैँ श्रद्धासे अपना सिर झुकाता हूँ। इसी प्रकार मैँ गिरजेका भी मान करता हूँ। जिस स्थानमेँ मेरे हज़ारोँ भाई अपने पूज्य देवकी उपासना करते हैँ, मैँ उसे बुरी आँखोँ से क्योँ देखूँ? यदि कोई हिन्दू ताज़ियेका अपमान करता है, तो मैँ उसे ज़रूर बुरा कहूँगा। मैँ आपको यह बात स्मरण कराना चाहता हूँ कि मुल्तानकी दुर्घटनाओँकी जाँचमेँ न मैँ वहाँ एक हिन्दू होनेकी हैसियतसे गया था, और न हकीम साहब मुसलमान होनेकी हैसियतसे गए थे। ऐसे अवसरपर यदि कोई मुसलमान, मुसलमानका पक्ष करे अथवा कोई हिन्दू, हिन्दूका पक्ष ले तो यह उसकी नालायक़ी है। वहाँपर हकीम साहब और मैँने पूरी जाँचके बाद यह निश्चय किया कि किसी हिन्दूने वहाँपर ताज़ियेका अपमान नहीँ किया था। ताज़ियेपर ईंट फैँकनेकी बात बिल्कुल झूठ थी, परन्तु फिर भी बहुतसे मुसलमान भाइयोँके दिलमेँ यह बात जमी हुई है कि ऐसा हुआ था। मैँ अपने ईमानसे और अपने धर्मसे कह सकता हूँ कि वहाँ ताज़ियेपर किसी हिन्दूने ईंटेँ नहीँ फैँकी थी। कुछ स्वार्थी लोगोँको अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये दङ्गा कराना मञ्ज़ूर था और इसलिये उन्होँने दङ्गा करा दिया। एक मिनटके लिये इस बातको फ़र्ज़ कर लो कि किसी नालायक़ ग़ैर-मुस्लिमने ताज़ियेपर पत्थर फैँक भी दिया तो, जैसा कि एक मुसलमान भाईने मुल्तानमेँ हिन्दू-मुसलमानोँकी एक सम्मिलित सभामेँ कहा था, हम उस अपराधीको पकड़ सकते थे, उसको नगरसे, मुहल्लेसे तथा बिरादरीसे बाहर निकाल सकते थे अथवा कोई और उचित दण्ड दे सकते थे। परन्तु किसी एक आदमीके पत्थर फैँकनेपर या पत्थर फैँकनेका शक होनेपर निरपराध लोगोँको लूटना, मन्दिरोँ और दूकानोँको जलाना, विधवाओँ या दूसरी स्त्रियोँका अपमान करना घोर अनर्थ और अत्याचार है। और उसे कोई भी नेक आदमी अच्छा नहीँ कह सकता।

बुराईका परिणाम बुरा होता है और यहाँ भी इस घोर अत्याचारका फल बहुत शोचनीय हुआ। एक ओर पाँच हिन्दुओँकी जानेँ गईं और बहुतसे धन और सम्पत्तिका नाश हुआ और दूसरी ओर दो मुसलमानोँकी भी जानेँ नष्ट हुईं। मैँ पूरी जाँच नहीँ कर सका परन्तु एक-दो घटनाएँ पेश करता हूँ। एक सज्जन फ़ैज़ मुहम्मद साहब एक भद्र मुसलमान थे।

वह अपने बच्चोंको ढूँढ़नेके लिये घरसे बाहर निकले, परन्तु बलवाइयोंने उनको मार डाला। क्या कोई हिन्दू है, जो ऐसी शोचनीय घटनाको पसन्द करेगा और बलवाइयोंकी हरकतपर लज्जित न होगा? यह घटना बहुत शोचनीय है।

भगत लुड़ीन्दचन्द्र बीस वर्षसे संसारसे विरक्त हो अपने दिन प्रभुकी भक्तिमें व्यतीत करते थे। उन्होंने अलग एक बावली बनवाई थी, वह वहाँ ही रहा करते थे। मुसलमान बलवाई बावलीमें घुस गए। भगतजी उन्हें देखकर मकानके अन्दर छिप गए। बलवाई उनके पीछे दौड़े और उनके दयाकी प्रार्थना करने और क्षमा चाहनेपर भी उन्हें मार डाला। क्या कोई ऐसा मुसलमान है जिसे ऐसी घटनाके लिये लज्जा न आती हो? क्या ऐसे लोग अपने-आपको मुसलमान कहनेके अधिकारी हैं?

मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि कोई शरीफ़ हिन्दू या मुसलमान ऐसा नहीं कि जिसको बेक़सूर हिन्दू और मुसलमानोंके क़त्लका हाल सुनकर सख़्त शर्म न आती हो। हमारे लिये बड़े शर्मकी बात है कि बिला वजह या थोड़ी वजहसे इन्सानियतको छोड़कर दूसरे इन्सानोंके, ख़ुदाके बन्दोंके साथ ऐसा ज़ुल्म करें। और जो ऐसा करे उसका कोई धर्म नहीं है। बड़े शोककी बात है कि हिन्दुओंकी दूकानें निहायत बेरहमीसे लूटी और जलाई गईं। मुझे हार्दिक दुःखके साथ इस बातको मानना पड़ता है कि हिन्दुओंकी बहुत सख़्त बेइज़्ज़ती हुई, उनकी लाखों रुपयोंकी बहियाँ, हुण्डी, रुपये और स्टाम्प जलाए गए। ग़रीब बेवाओंके मुँहसे मैंने और हकीम साहबने सुना कि उनकी नाक और कानसे ज़ेवरात नोच लिए गए। वह ख़ुद उतारकर देनेको तैयार थीं, लेकिन उतारने तकका इन्तज़ार न किया गया, बल्कि उनके कान काट लिए गए और गलेसे खींचकर ज़ेवरात उतारे गए। उनके घरका तमाम असबाब बाहर इकट्ठा किया गया, और उसमें आग लगा दी गई। इस प्रज्वलित आगसे झुलसे हुए और जले हुए वृक्ष हमने अपनी आँखोंसे देखे। मन्दिरोंमें जहाँ-जहाँ मूर्त्तियाँ दिखाई दीं, बलवाइयोंने उन्हें तोड़ डाला और चारों तरफ़ अन्धाधुन्ध अत्याचार किया और लूटमार की।

'पुलिसकी अक्षम्य उदासीनता'

आपको यह सुनकर अत्यन्त आश्चर्य्य और शोक होगा कि यह सब अत्याचार पुलिसकी चौकियोंके पास हुआ। यह पुलिसका थाना है तो उसके बीस क़दमके फ़ासलेपर आग लगाई जा रही है, लूटमार की जा रही है और कोई सहायताके लिये नहीं पहुँचा। मुझे और हकीम साहिबको दो औरतोंने कहा कि पुलिसवाले भी लूटमें शामिल थे, अगर पुलिस चाहती तो मिनटभरमें बलवेको रोक देती। यह अत्यन्त दुःख और शोककी बात है कि पुलिस और फ़ौजके होते हुए, शहरके कुछ गुण्डों और बदमाशोंको ऐसे अपराध और अत्याचार करनेका साहस हुआ। पुलिसने उनको रोकनेके बजाय उन्हें प्रेरणा की और बाज़ हालतोंमें उनके साथ शामिल भी हो गई। तमाम मुसल्मानोंको विशेष करके इसका सख़्त रञ्ज और अफ़सोस होना चाहिए कि पुलिसकी ऐसी लापरवाहीसे यह बदनामी उनके सिरपर आई।

अन्धकारमें प्रकाशकी झलक

परन्तु इन सब दुर्घटनाओंके होनेपर भी हमें याद रखना चाहिए कि यह हिन्दू-मुसल्मानोंका झगड़ा हर्गिज़ नहीं कहा जा सकता। मुल्तानके सब शरीफ़ हिन्दू और मुसल्मान इन दुर्घटनाओंपर शोक प्रगट करते थे। इस जगह मैं आपको चन्द बातें बताना चाहता हूँ कि इस अन्धकारमें भी कुछ प्रकाशकी किरणें मौजूद थीं, जो सबके लिये सन्तोषजनक हैं—

(१) जब मुसलमान बलवाइयोंने लूटमार शुरू कर दी और जानोमालपर हमला शुरू कर दिया, जब कि शरारतका बाज़ार गर्म था, तब एक मुसल्मान जुलाही बहनने चालीस हिन्दू मर्दों, औरतों और

बच्चोंको अपने घरमें आश्रय दिया। उसके घरके चारों तरफ़ दस फुट ऊँची दीवार थी। एक शख़्स दीवानचन्द इस दीवारसे कूदा, और इस बहनसे यह दरख़्वास्त की कि माँ! इस वक्त अपनी बहनों और बेटियोंकी इज़्ज़तको बचाओ। हमारी इज़्ज़त ख़तरेमें है। वह पर्दानशीन थी। उसने कहा—अपनी औरतोंको ले आओ। अल्लाह बसाईके (अल्लाह तआलह उसपर रहमत फ़रमाए) घर एक-एक करके तमाम औरतोंने दस-दस फुट ऊँची दीवारोंसे छलाँग लगाई। बच्चोंको गिरा दिया और वहाँ सब छिप गए। इसके बाद उन आदमियोंने भी दरख़्वास्त की कि माँ! अब हमें भी बचाओ। इस तरहसे छोटेसे कमरेमें इन हिन्दू स्त्रियों, पुरुषों और बच्चोंको उस देवीने आश्रय दिया। बच्चोंके रोनेकी आवाज़को रोकनेके लिये उनके मुँहमें कपड़ा दे दिया गया। जब बच्चे भूखसे व्याकुल हुए तो उस जुलाही बहनने पावभर आटेको, जो उस वक्त उसके घरमें मौजूद था, अपने बच्चोंको भूखा रखकर उनको दे दिया। मैं उम्मीद करता हूँ कि इन नालायक़ कमबख़्त बलवाइयोंकी शर्मनाक मिसालको भूलकर तमाम हिन्दू भाई इस ख़ुदापरस्त और हक़परस्त नेक बहनके आचरणोंकी यादको क़ायम करेंगे और उसे सदैव अपने दिलोंमें ताज़ा रक्खेंगे।

इसी तरह एक और मुसलमान जुलाहीने एक और हिन्दू लड़कीकी जान बचाई, जिसके बच्चेको बलवाइयोंने जलती आगमें फेंक दिया था। ईश्वरकी कृपासे वह बच्चा भी बच गया था। हकीम साहब और मैंने इन देवियोंकी प्रशंसा की।

इसी तरह और भी मुसलमान भाइयोंने अपने पड़ोसी हिन्दू भाइयोंको आश्रय दिया और ख़ुद तकलीफ़ उठाना मंज़ूर किया। एक सज्जन ख़ुदाबख़्शने हिन्दुओंको अपने घरमें जगह दी। बलवाइयोंको इसकी ख़बर मिली, वे आए और कहने लगे कि जो क़ाफ़िरको आश्रय देता है वह क़ाफ़िर है। उसको बहुत पीटा गया और उससे हिन्दुओंको हवाले कर देनेके लिये ज़ोर दिया गया। लेकिन शाबाश है उसको कि उसने मार खा-खाकर बेहोश होना क़बूल किया, लेकिन अपने हिन्दू भाइयोंसे पूरी वफ़ादारी की। बलवाई उसे बेहोशीकी हालतमें छोड़ गए, जिसको पीछेसे आश्रित हिन्दुओंने अस्पतालमें पहुँचाया।

मेरे भाइयो! इन घटनाओंसे मालूम होगा कि चन्द नङ्गे, भूखे, रज़ील, लुच्चे, गुण्डे, नास्तिक, बदमाश और कमीने लोगोंकी वजहसे यह हङ्गामा आरम्भ हुआ और आग सुलगी। एक तरफ़ अगर ज़्यादा गुनाह हुआ, तो दूसरी तरफ़से भी गुनाह हुआ। मैं आपसे अर्ज़ करता हूँ कि ऐसे बुरे आचरणपर मुझे सख़्त शर्म और अफ़सोस हुआ है।

हिन्दुओंकी ज़्यादती

केवल चन्द मुसलमान भाइयोंकी तरफ़से ही बुराइयाँ नहीं हुईं, बल्कि चन्द हिन्दू भाइयोंने भी बुराइयाँ कीं। अपने पड़ोसियोंको बिला वजह तकलीफ़ें दीं। हमें मुसलमानोंकी बुराईपर रञ्ज, अफ़सोस और लज्जा आती है। मैं पूर्णतः पक्षपातरहित होकर और किसी मुसलमानके दिलपर रञ्ज पहुँचानेकी आकाङ्क्षा किए बिना हर एक शरीफ़ मुसलमानकी तरह उन मुसलमानोंके अत्याचारपर मलामत करता हूँ। लेकिन हमारे हिन्दू नामके लिये, हिन्दू सभ्यताके लिये भी यह एक बदनामी है। इसलिये मैं उन हिन्दुओंपर लानत भेजता हूँ जिन्होंने बेक़सूर मुसलमानोंपर हमला किया, चोटें लगाई, कुछ लूटमार की और मकानोंको जलाया।

एक प्रशंसनीय बात

यद्यपि हिन्दू मन्दिरोंका अपमान किया गया, गुरु ग्रन्थ साहब जलाए गए, पवित्र गीता और श्रीमद्भागवतके पूजनीय ग्रन्थ जलाए गए, परन्तु परमात्माकी दयासे हिन्दुओंने किसी मस्जिदपर

हाथ नहीं उठाया और न किसी मुसलमान वहनकी इज़्ज़तपर वार किया। इस क़दर अत्याचार और अपने धर्मस्थानोंपर वार होनेपर भी हिन्दुओंने किसी मस्जिदका अपमान नहीं किया, यह एक प्रशंसनीय वात है। मैं उम्मेद करता हूँ कि आप सव भाई इस वातको स्वीकार करेंगे कि यदि यही घटना तीन वर्ष पहले होती तो शायद असम्भव न था कि हिन्दुओंकी तरफ़से दो-चार मस्जिदोंपर वार होता और मुसलमान वहू-वेटियोंकी इज़्ज़तपर हमला किया जाता। लेकिन क्या यह सिर ऊँचा करने लायक़ वात होती? अगर आज शर्मके मारे हम अपना सिर झुका रहे हैं तो उस वक़्त हमारी इससे भी वुरी हालत होती। मैं परमात्माको हज़ार वार धन्यवाद करता हूँ कि हमारे हिन्दू और सिक्ख भाइयोंने अत्यन्त धैर्य्यका सवूत दिया।

कुरानशरीफ़के जलाए जानेकी घटना

यह कहा गया था कि तीन कुरानशरीफ़ जलाए गए हैं। तहक़ीक़ातसे मुझको और हकीम साहिवको यह मालूम हुआ कि एक वनियेकी दूकानपर एक मौलवी अपना कुछ असवाव और कुरानशरीफ़की भी तीन जिल्दें छोड़ गए थे। मुसलमान वलवाइयोंने उसकी दूकानमें आग लगा दी और उसकी वहियोंके साथ वे कुरानशरीफ़ भी जल गए। वनियेको यह मालूम न था कि मौलवी साहिवके असवावमें क्या-क्या चीज़ें हैं।

यह भी कहा गया था कि हिन्दुओंके मुहल्लेमें एक कुएँमें किसी हिन्दूने कुरानशरीफ़ फेंक दिया था, जिससे वह भींगा हुआ वाहर निकाला गया। मैं, हकीम साहिव और मलिकलाल खाँ वहुत तहक़ीक़ातके वाद भी यह फ़ैसला नहीं कर सके कि अया किसी हिन्दूने कुरानशरीफ़को कुएँमें फेंका था या किसी मुसलमानने। हम तहक़ीक़ात नहीं कर सके। सिवाय इस घटनाके, जहाँ इस गुनाहमें शोक है, मुझको वड़ा सन्तोष है कि मस्जिद या कुरानशरीफ़की वेअदवी किसी हिन्दू या सिक्खकी तरफ़से नहीं की गई। इसके लिये आप सवको धन्यवाद देता हूँ।

एक वछड़ेका सिर और धड़ हिन्दुओंकी गलीमें

जिस दिन मैं और हकीम साहिव काँग्रेसके अन्य सदस्योंके साथ मुलतानमें गए, उस दिन हिन्दुओंकी वस्तीमें किसी कमवख़्त, वदमाश फ़सादीने एक वछड़ेका सिर और धड़ फेंक दिया था। हिन्दुओंके लिये यह वड़े रञ्जकी वात थी। इससे वढ़कर उन्हें भड़कानेकी और क्या घटना हो सकती थी? जिस दिन किसी हिन्दुओंकी वस्तीमें ऐसी घटना हो जाय, तो हिन्दुओंके लिये पानी पीना हराम हो जाता है। लेकिन यह प्रशंसनीय वात है कि किसी हिन्दूने जोशमें आकर कोई अनुचित काम नहीं किया। सवने समझ लिया कि यह किसी दुश्मनका काम है या किसी ग़र्ज़मन्दने तमाशा देखनेके लिये यह चाल चली है। गोकि उनको दिली रञ्ज हुआ, लेकिन उन्होंने असली हालको समझकर सव कुछ सव्रके साथ सहन किया। तीन वर्ष पहले हिन्दुओंसे कैसा वड़ा अपराध हुआ था उसका ख़याल करो, और साथ ही आजके वाक़यातकी तुलना करो कि हिन्दुओंकी वस्तीमें कोई दुष्ट वछड़ेको मारकर फेंक जाता है, लेकिन ऐसा होनेपर भी दिली रञ्जके सिवाय हिन्दू कुछ नहीं करते। यह आपके जातीय एकताका ज़वर्दस्त सवूत है। यह शोकप्रद और अफ़सोसनाक वाक़या हिन्दू-मुस्लिम-एकताकी कसौटी है। जव ऐसी घटनाओंके होनेपर भी हम अपनी तवीयतपर क़ावू पा सके हैं, यही एकताकी असली जाँच है।

परमात्मा ही जानता है कि मुलतानके वाक़यातसे मेरा दिल कितना दुखी और निर्वल हुआ है। लेकिन मुझे विश्वास है कि तमाम शरीफ़ हिन्दू-मुसलमान इसे घृणाकी निगाहसे देखते हैं। आज मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि यद्यपि आपको मुलतानके वाक़यातसे सख़्त रञ्ज है, परन्तु मुझको भी शायद

आपसे अधिक रञ्ज है। आप लोगोंमेंसे चन्द लोगोंने उन मकानात और मन्दिरोंको देखा है। आपमसे शायद किसीने उन बहू-बेटियों और अनाथ अबला बेवाओंकी बेइज़्ज़तीकी कहानी न सुनी होगी, जो कि मैंने सुनी है; पर ऐसी घटना होनेपर भी इसको हिन्दू-मुस्लिम दो जातियोंका झगड़ा क़रार देना बड़ा गुनाह होगा और बिल्कुल बेजा होगा। चन्द मुसलमानोंने, जिनको धर्मका कुछ पता नहीं, जिनपर मज़हबका कुछ असर नहीं या जो मजहबको ग़लत तौरपर समझे हुए थे, यह बुरा काम किया। उनको सज़ा दिलाना हरएक शान्ति चाहनेवाले और न्यायप्रिय हिन्दू-मुसलमानका कर्त्तव्य है। इसके बग़ैर बिल्कुल चैन नहीं लेनी चाहिए। ईश्वर न करे, अगर कोई ऐसा झगड़ा आ पड़े, जिसमें कुल-के-कुल हिन्दू मुसलमान आपसमें लड़ पड़ें और दोनों तरफ़से बेवावें, औरतों और देवियोंकी बेइज़्ज़ती हो तो इसपर किसको ख़ुशी होगी? इस प्रकारके आदमी सर्वदा धिक्कार करनेके योग्य हैं। क्योंकि बहन बहन है, बेटी बेटी है, माँ माँ है, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान या सिक्ख। अगर किसी औरतपर, जो दुर्गाकी मूर्त्ति है, किसी नामर्दने हाथ उठाया, तो सचमुच वह हमला करनेवाला विधर्मी है। उसके कामकी कौन निन्दा न करेगा। लेकिन दिलमें रञ्जका अनुभव करते हुए भी हमको यह ख़याल करना चाहिए कि बहुत थोड़े और कमीने लोग थे जिन्होंने ऐसी दुष्क्रियाएँ क

भविष्यको सोचो।

अब भविष्यके लिये ऐसा काम करना चाहिए कि वास्तवमें जिन्होंने ऐसे अपराध किए हैं उन्हें अवश्य सज़ा दिलवाई जाय। इसके साथ ही हरएक भलेमानस और ईश्वरभक्त हिन्दू-मुसलमानका यह धर्म है कि वह ऐसी कोशिश करे कि जिससे ऐसी निन्दनीय दुर्घटना फिर न हो।

अपराध-स्वीकार

जिससे जितना क़सूर हुआ है, उसे इन्साफ़से तसलीम करो। उसे छिपानेकी कोशिश भी न करो और अत्युक्ति भी न करो। क्योंकि यह दोनों गुनाह हैं। छिपानेमें तरफ़दारीका दोष लगता है। लेकिन यदि कोई अज्ञानवश असत्य बयान कर दे तो वह दाख़िले-क़सूर नहीं। इसी तरह एकको दो या डेढ़ करके बताना जुर्म है। मैं तो चाहता हूँ कि इन बातोंका ज़िक्र इस जल्सेमें ख़त्म हो जाय। ऐसी निन्दनीय घटनाओंकी जगह-जगह चर्चा करना देशके गौरवके विरुद्ध है। अब इन्हें भूल जाइए। ये शर्मके वाक़यात थे। अब भविष्यमें सर्वदाके लिये ऐसा इन्तज़ाम कीजिए कि ऐसी घटनाका होना असम्भव हो जाय। वह इलाज क्या है?

हिन्दुओ, आप समझ लो! मुसलमानो, आप भी समझ लो! दुनियामें ख़ुदा, परमात्मा, अकाल पुरुष एक है। किसी मौलवी, पण्डित, ज्ञानी, ग्रन्थीने ख़ुदा दो नहीं बताए। मुसलमानोंका ख़ुदा भी वही है जो हिन्दुओंका है। हम तमाम उस एक भगवानकी सृष्टिसे हैं। मुसलमान कहते हैं, "ला इलाह इल्लिल्लाह," हिन्दू कहते हैं, "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" यानी कि परमात्मा एक है, ला शरीक है? हिन्दू, सिक्ख, पारसी, इसाई, मुसलमान, सब उस परमात्माके बन्दे हैं, उस बापके बच्चे हैं। जब यह बात सच है, तो जो ईश्वर या ख़ुदाकी पूजा करता है, उसे वह ईश्वर कहे, परमात्मा कहे, ख़ुदा कहे, अल्लाह तआलह कहे, गौड कहे, अकाल पुरुष कहे, वाह गुरु कहे, उसकी मर्ज़ी है। अगर पूजा करनेकी विधिमें भेद होनेके कारण हम आपसमें लड़ें तो हम ईश्वरको क्या मुँह दिखा सकते हैं? उसकी नज़रोंमें तो पच्छिमकी तरफ़ मुँह करके निमाज़ पढ़नेवाला, और पूर्वकी तरफ़ मुँह करके विष्णुसहस्रनामका पाठ करनेवाला एक है। वह तमाम हिन्दुस्तानियोंका नहीं, तमाम दुनियाके इन्सानों ही का नहीं, बल्कि तमाम प्राणीमात्रका

रक्षक है। हम सब एक पिताके औलाद हैं। एक ख़ालिककी ख़लकत और एक जगत्-पिता, अकाल पुरुषकी सन्तान हैं। हमारा यह रिश्ता पुराना है। मिटाए मिट नहीं सकता। हिन्दू मुसलमानपर वार करें, मुसलमान हिन्दूपर वार करें, लेकिन यह रिश्ता टूट नहीं सकता। हमको चलते, फिरते, जागते, सोते, हर वक़् यह याद रखना चाहिए कि मन्दिर, गुरुद्वारे, मस्जिद, गिर्जे, सब सन्मानके क़ाबिल हैं।

सज्जनताका रिश्ता

हमारा दूसरा रिश्ता इन्सानियतका है। हमें किसी हालतमें भी इन्सानी फ़र्ज़को भूल नहीं जाना चाहिए, और ज़रासे मामलेपर विला वजह इसे बिगाड़ना नहीं चाहिए। कोई इन्सान अगर किसीके साथ सात क़दम चले, तो उससे दोस्ती मान ली जाती है। हमको तो सात सौ सालसे ऊपर, एक हज़ार सालके क़रीब इकट्ठे रहते हो गए। क्या इतने दिनोंके बाद भी एकता नहीं हो सकती ? इन्सानियतका तक़ाज़ा है कि हज़रत अली या हसनहुसैनके मातमके मौक़ेपर अपने मुसलमान भाइयोंके साथ हमदर्दी करो। ऐ ख़ुदाके बन्दो! अपने ख़ुदाके बन्दोंसे इज्ज़तके साथ बर्त्ताव करो। लड़ाई करके ईश्वरके सम्मुख जानेके लिये अपने-आपको नालायक़ साबित मत करो। ऐसे मज़हबी मौक़े लड़ाईके नहीं हुआ करते।

हिन्दू-मुसलमानोंका तीसरा रिश्ता

हमारा तीसरा रिश्ता एक ही देशके वासी होनेका है। हिन्दुस्तानके बाहरके मुसलमानोंका वतन अरब, फ़ारस, तुर्किस्तान, ईरान या तुर्की है। लेकिन हिन्दुस्तानके मुसलमानोंका वतन हिन्दुस्तान ही है। ये छः-सात करोड़ मुसलमान अरब या फ़ारससे नहीं आए थे। सिर्फ़ बहुत थोड़े मुसलमान बाहरसे आए हैं। बाक़ी इसी हिन्दुस्तानके बाशिन्दे थे, और हैं; और अगर मान लो तमाम अरबसे भी आए हों, तो भी अब तो उनका निवासस्थान हिन्दुस्तान है। हमें सात सौ सालसे अधिक इकट्ठे रहते हो गए हैं। एक ही देशमें रहनेका मतलब यह है कि हम आपसमें एकता क़ायम करें। मेरी अर्ज़ है कि एकताको बिगाड़नेवाले वे ही लोग हैं जिनको मज़हबकी फ़िक्र नहीं है। एकताके बाँधको तोड़नेवाले वे ही लोग हैं जो जातिच्युत हो गए हैं। उन्हें मज़हबकी असलियतसे कोई मतलब नहीं हुआ करता। हरएक हिन्दू-मुसलमानका फ़र्ज़ है कि वह ऐसी तरकीब सोचे कि जिससे कटारपुर या मुलतानकी आहो-तबाहीके वाक़यात न दिखाई दें। इसकी तरकीब यही है कि जहाँ-जहाँ ऐसी घटनाएँ हों, हिन्दू-मुसलमान पक्षपातरहित सच हालातकी तहक़ीक़ात करके अपराधीको दण्ड दें। उसके हममज़हब लोग उसकी निन्दा करें। मुसलमान फ़तवा प्रकाशित करें कि अपराधी मनुष्य हमेशाके लिये नहीं तो ख़ास अर्सेके लिये मस्जिदसे ख़ारिज किया जाता है। इसी प्रकार जिन हिन्दुओंने भी इन्सानियतके विरुद्ध काम किया हो उन्हें सज़ा दें। हमारे मौलाना और पण्डित इस बातकी घोषणा कर दें। ऐसे मनुष्योंकी दुष्टता परमात्माकी निगाहमें अब प्रशंसनीय नहीं है, वे बुरा करते हैं। मौलाना, पण्डित, शास्त्री, ज्ञानी, ग्रन्थियोंको परमात्माने लोगोंका नेतृत्व करनेके लिये बहुत सम्मानके योग्य पद प्रदान किया है। वह अपने प्रभावसे बहुत कुछ कर सकते हैं।

अख़बारनवीसोंसे प्रार्थना

अख़बारनवीस भी नई रोशनीके पण्डित और मौलाना हैं। वे ईश्वर, मुल्क तथा क़ौमके लिये लोगोंको नेकीका रास्ता बतलानेवाले हैं। अख़बारोंमें एक ग़लत ख़बरके मज़मूनसे कितना बुरा असर होता है। अख़बारनवीस साहबानसे मेरी यह प्रार्थना है कि कोई ऐसी बात तहरीरमें न लाएँ जिससे लोगोंके दिलोंमें किसी प्रकारका बुरा भाव पैदा हो, किसी तरहकी अत्युक्ति न हो। जो कुछ लिखें सचाईसे,

तहक़ीक़ात करके लिखेँ और वह ऐसे शिक्षाप्रद शब्दोँमेँ लिखेँ जिनका असर देशकी एकतामेँ मददगार हो। अख़बारके लिखनेवालो मेरे भाइयो! आप सुयोग्य हैँ। हिन्दुस्तानके लिये हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख धर्मकी इज़्ज़तके लिये तथा स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये एक शक्तिकी ज़रूरत है, और वह देशकी एकतापर निर्भर है। सबके दिल एक हो जावेँ तो स्वराज्य प्राप्त करनेमेँ कुछ भी कठिनाई न पड़े और मूर्ख धर्मान्ध लोगोँके बिगाड़नेसे आपकी एकतामेँ विघ्न न पड़ सके। ऐसा होनेपर यक़ीनन हालत बेहतर हो जायगी। कोशिश करो कि एकता बढ़े। आपसका रञ्ज घटे। मैँ किसी ख़ास भाईकी तहरीरकी तरफ़ इशारा नहीँ कर रहा हूँ। मेरी ही ग़लती कहो, लेकिन मैँ अफ़सोससे इस बातको स्वीकार करता हूँ कि मुझे महीनेमेँ एक, दो या तीन अख़बार पढ़नेके मौक़े मिलते हैँ। मुझे पूरी उम्मेद है कि आप गड़े हुए पुराने वाक़यातको गाड़ देँगे और नई बातोँको ऐसी सूरतमेँ पेश करेँगे जिससे रञ्ज घटे।

स्वराज्य मिलनेसे हिन्दू-मुसलमानोँकी एकताका गहरा सम्बन्ध

हम स्वराज्य चाहते हैँ। कुछ भाई ख़याल करते हैँ कि स्वराज्य दूरका क़िस्सा है। लेकिन हर हालतमेँ इसके लिये आपसकी एकताकी आवश्यकता है। अगर नज़दीक मानते हो तो भी मेल रक्खो। यह आपसका मेल स्वराज्यका एक बड़ा भारी हिस्सा है। आप इस बातका दृढ़ निश्चय कर लो कि अबसे भारतवर्षमेँ एक दूसरेपर ऐसा अत्याचार नहीँ किया जायगा—आप एक बात याद रक्खेँ कि नङ्गे, लुच्चे, गुण्डे, आवारा लोग ही हमेशा लूटमार किया करते हैँ। वे वहीँ जाते हैँ, जहाँ उनको डण्डा लगनेका डर न हो। मुल्तानमेँ एक गुरुद्वारेके दरवाज़ेपर चार अकाली खड़े हो गए थे। बलवाइयोँके हमलावर होनेपर उन्होँने कृपाणेँ निकाल लीँ और उनको चुनौती दी। इसपर बलवाई फ़ौरन भाग गए। एक और मोहल्लेमेँ चन्द खत्री नौजवानोँने जत्थाबन्दी कर ली। उन्होँने मुज़ाहमत की, हमलावरोँको डण्डे दिखलाए, जिससे वे डरके मारे भाग गए। बदमाश लोगोँको वहीँ निर्भय लूट करनेकी आदत होती है जहाँ उनको किसी प्रकारका ख़तरा न हो। भलेमानस लोग ऐसे मौक़ोँपर दरवाज़े बन्द करके घरमेँ घुस जाते हैँ। मैँ इसे सख़्त गुनाह समझता हूँ। अगर हमारी माताएँ या बहनेँ ऐसा करेँ तो ऐसा करनेके लिये उन्हेँ कुछ हक़ है, लेकिन अगर मर्द ऐसा करेँ तो मैँ उन्हेँ मर्द नहीँ कह सकता। वे नामर्द हैँ। इन मूर्खोँका सामना करनेको अगर हमारी बहनेँ तैयार होँ तो वह अपनी पुरानी कहावतोँको ताज़ा कर सकती हैँ। वे बादशाहोँके मुक़ाबलेमेँ कामयाब रहीँ। जिनके अन्दर मुक़ाबिलेकी ताक़त न थी, उन्होँने अपने-आपको दुश्मनके हाथमेँ पड़नेसे बचानेके लिये अपने सुन्दर कोमल शरीरको "जौहर" करके अग्निमेँ स्वाहा कर दिया। स्पेनमेँ भी बहादुर देवियाँ थीँ। वीर-जननी, वीर-माता, वीर-वधू, वीर-भगिनी अभीतक हमारे घरोँमेँ ये शब्द इस्तैमाल किए जाते हैँ। अभीतक देवियोँमेँ ऐसी हिम्मत है कि अगर उन्हेँ किसी हमलेका पता लग जाय तो यह सम्भव है कि दस-पाँच बहनेँ मैदानमेँ कूद पड़ेँ। लेकिन मर्द भाइयो! क्या आपमेँ ऐसी हिम्मत नहीँ है कि आप अपनी बहन-बेटियोँकी इज़्ज़तको बचा सको? अगर इस क़ाबिल नहीँ तो मूँछेँ मुँड़वा डालो, और ऐसे कपड़े पहिन लो कि न तो मर्द ही मालूम पड़ो न औरत ही। मुझे अफ़सोस है कि जब लुटेरे आए तो हमारे कुछ भाइयोँने दूकानेँ बन्द कर लीँ, और घरोँमेँ ताले लगाकर कायरोँ-नामर्दोँकी तरह अन्दर घुस गए। ऐसी घटनाओँपर आपका फ़र्ज़ है कि आप डण्डा लेकर खड़े हो जायँ। क़ानून आपको पूरी इजाज़त देता है कि आप किसी चोर या डाकूको चोरी न करने दो, किसी औरतकी बेइज़्ज़ती करनेवालेके हाथ

डण्डेसे तोड़ दो। यदि आप ज़िन्दा रहनेके ख़यालसे भाग गए तो आप ज़िन्दा ही मुर्दा हो गए। दुनियामें मुँह दिखानेके योग्य न रहे।

अहिंसा, धर्म और अपनी रक्षाका हक़

इसमें कुछ शक नहीं कि 'अहिंसा परमो धर्मः', अहिंसा हमारा मुख्य धर्म है। लेकिन मनुस्मृतिमें यह भी लिखा है कि किसी आततायीको बिना विचारे मार दो! आततायी उसे कहते हैं जो चोरी-डाका मारने, लूटमार करने, आग लगाने या बेक़सूरोंके सतानेके इरादेसे हमला करे। अंग्रेज़ी क़ानूनमें भी यह बात आती है। मुसलमानी तहज़ीबमें भी इसकी इजाज़त है। हमारे यहाँ गौ-गोहार और त्रिया-गोहार बहुत मशहूर है कि जब कभी गौ या किसी देवीपर मुसीबत आई, उसने पुकार की कि फ़ौरन् तमाम गाँव इकट्ठा हो गया, और पाज़ी दुष्टोंको भगा दिया। भाइयो! अब हम अपने पुराने आचारको छोड़ बैठे हैं, नयेको भी ग्रहण नहीं किया। सन् १८६० ई० में ज़ाब्ता फ़ौजदारी बनाया गया था। उसकी रूसे भी आत्मरक्षा करनेका हक़ हरएकको हासिल है। ताज़ीरातेहिन्दमें भी ऐसी धाराएँ हैं, जो इस बातकी इजाज़त देती हैं कि अपनी जायदाद वो जिस्मनीज़ दूसरोंके बदन वो जायदादकी रक्षाका हरएकको पूरा हक़ हासिल है। अपनी या किसी और की ज़ात व जायदादे मनक़ूला, व ग़ैर मनक़ूलाको, चोरी-डकैती, नुक़सान, मुदाख़लते बेजाके फ़ेलसे बचाने या उसकी कोशिशकी रोक-थामके लिये ज़ोरका इस्तैमाल करनेकी क़ानून इजाज़त देता है। मेरी रायमें एक पुस्तिका हरएक भाषामें छपवाकर हरएक मनुष्यके जाननेके लिये वितरण करना चाहिए। ज़ाब्ता फ़ौजदारीके बनानेवालोंमेंसे लौर्ड मेकौले एक थे। उन्होंने आत्मरक्षाके हक़की बाबत कुछ भूमिका लिखी है। उसका सारांश यह है कि हिन्दुस्तानमें लोग ज़ुल्मको सब्रके साथ बर्दाश्त कर लेते हैं। उनमें मर्दानगीकी तबीयत पैदा करनेके लिये अपनी रक्षाके हक़का अधिकार हरएकको दिया जाता है। बेन्थम साहबने भी लिखा है कि "हरएक मनुष्यको अपनी रक्षा करना आवश्यक है।" हम बहुत कम इस हक़को इस्तैमाल करते हैं। मर्दोंकी निस्बत तो नहीं कहता, परन्तु अगर मैं ज़िन्दा रहा तो कम-से-कम बहू-बेटियोंको तो पिस्तौल और बन्दूक़ चलाना सिखा दूँगा। वे कालीकी मूर्त्ति अपनी रक्षा ख़ुद कर सकेंगी। लेकिन मर्दो! तुम इनको क्या मुँह दिखाओगे? अगर मर्द हो तो तुमको अपनी हिफ़ाज़तके हक़की आगाही होनी चाहिए।

नागरिक सेना

"सङ्ग सबैको दीजै डार, एक हाथ दूजी तलवार"

यह गुरु गोविन्दसिंह महाराजका उपदेश है कि हमारे हाथ मज़बूत होने चाहिएँ और हमें तलवारका इस्तैमाल सीखना चाहिए। अगर यह दोनों हों तो शेरोंको भी भगा सकते हैं। बदक़िस्मतीसे पञ्जाबमें हथियार रखनेकी इजाज़त नहीं है। लेकिन और कुछ नहीं तो अपने हाथोंको मज़बूत बनाओ। हर शहर, मुहल्ले और गाँवमें एक नागरिक सेना क़ायम करनी चाहिए। बेन्थम साहिबने ठीक कहा है कि सरकारकी पुलीस और फ़ौज हर जगह फ़सादको नहीं रोक सकती। अगर सरकारके अफ़सर फ़सादमें मौजूद न हों, तो आप अपनी रक्षा ख़ुद कर सकते हैं। हमारा मतलब पुलीसको हटाने या कमज़ोर करनेका नहीं, बल्कि उनकी मसरूफ़ियतको घटाने और उनकी मदद करनेका है। मोहल्ले-मोहल्लेमें नागरिक सेना बनाओ, जिसम मोहल्लेके रहनेवाले अठारह वर्षसे साठ वर्षकी उम्रके तमाम आदमी मेम्बर बनें। यह लाज़िमी शर्त्त है कि वे नेकचलन हों, चोर और अत्याचारी न हों; और इस नागरिक सेनामें सरकारी नौकर या ग़ैर-सरकारी नौकर, सहयोगी या असहयोगी कांग्रेसी और ग़ैर-कांग्रेसी, ख़िलाफ़तके हों या

आर्य्य-समाजके, सब समाजोंके लोग मेम्बर बननेके हक़दार हैं। अभी रजिस्टर खोलिए, जल्द फ़ैसला कीजिए । हरएक मेम्बरसे निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ लीजिए ।

(१) परमात्माको याद रखते हुए, हम ईश्वरकी पैदा की हुई वस्तुओंसे दुश्मनी न रक्खेंगे। अपनी किसी हरकतसे किसी पड़ोसीके दिलमें अपनी निस्बत शक भी पैदा नहीं करेंगे। कल अमृतसरमें मौलवी सनाउल्लाने ख़ूब कहा था कि जो मुसलमान अपने बर्त्तावसे लोगोंके दिलोंमें ख़ौफ़ पैदा करता है, वह ख़ुदाको मुँह दिखानेके योग्य नहीं । अलबत्ता बदमाशोंको ज़रूरतके मुताबिक़ ज़रूर दबाना चाहिए ।

(२) दूसरी प्रतिज्ञा यह होनी चाहिए कि हम हिन्दुस्तानकी इज्ज़तका ख़याल रक्खेंगे। योरोपके लोग हँसते हैं कि ये लोग एक दूसरेकी बहू-बेटियोंपर हमले करते हैं, लाठियाँ चलाते हैं । ग़ैर मुल्कके लोग हमें घृणाकी निगाहसे देखते हैं। अफ़सोस कि हिन्दू-मुसलमान लड़ें और अंग्रेज़ मजिस्ट्रेट बनें। अपने देशकी इज्ज़त और लाज क़ायम रखना हमारा फ़र्ज़ है।

(३) किसी भी मज़हबकी माँ, बहन और बेटियाँ हों, वे सब इज़्जतके लायक़ हैं । अपनी औरतके सिवा तमाम औरतोंको अपनी बहनके बराबर जानना चाहिए ।

(४) हरएक मेम्बरको अपनेसे ऊपरवालोंके हुक्मकी तामील तथा प्रबन्ध और नियमकी पाबन्दी करनी चाहिए । जिस वक़्त उसकी सेवा माँगी जाय—पानी बरसता हो या आग लगी हो, बिगुलके बजनेपर उसे फ़ौरन् खड़ा हो जाना चाहिए ।

इस नागरिक दलमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, सबको शामिल होना चाहिए। मुझे यक़ीन है कि हरएक मेम्बर एक दूसरेके धर्मकी इज्ज़त करते हुए, तमाम बहन और भाइयोंकी इज्ज़तको क़ायम रक्खेंगे। ऐसा करनेसे झगड़ा होना ग़ैरमुमकिन हो जायगा।

सज्जनो ! जबतक तुम बदमाश गुण्डोंसे डरते हो, तबतक वे तुमपर आक्रमण करते हैं। ये डण्डोंसे डरते हैं। इसलिये इनसे मत डरो। सब बहन, भाई, बूढ़े और बच्चे अपनी रक्षामें शामिल हो जाओ । एक आवाज़ आनेपर फ़ौरन् सौ-दो-सौ बाहर निकल आओ । चोर और बदमाश मोहल्लेमें खड़े नहीं हो सकेंगे। हर मोहल्लोंमें दो-चार बन्दूकें और पिस्तौल रखने ज़रूरी होंगे । औरतोंमें भी पिस्तौल चलाना जाननेवाली औरतें आगे बढ़ें । लेकिन औरतोंसे पहले हमारे मर्दोंको, जिनकी उम्र कम-से-कम पचास सालसे कम हो, आगे बढ़ना चाहिए ।

बहनो ! बेटियो ! तुम घरमें जाकर कल अपने भाइयोंसे पूछो कि नागरिक सेना आपकी रक्षाके लिये बनाई गई या नहीं ? भाइयो ! बिला देरी किए इसे शुरू कर दो। परमात्माको घट-घट-व्यापी जानकर, दुश्मनीके भावको छोड़कर तमाम अत्याचारोंके रोक-थामके लिये यह नागरिक सेना बनेगी। सरकार इसके विरुद्ध न होगी। तमाम समझदार अफ़सर भी खुश होंगे कि लोगोंके अन्दर एक मुल्तानकी घटनासे अपनी रक्षाका भाव जाग पड़ा है। पुलिसके अफ़सरोंको भी चैन मिलेगा। आपको भी विश्वास होगा कि हमारी पुलीस भी मौजूद है। खुदा राज़ी, दुनिया राज़ी, हर तरहकी तरक़्क़ी होगी। थोड़े समयमें आपके मोहल्लेमें कोई बदचलन बेरोज़गार मुश्किलसे नज़र आएगा।

स्वराज्यका पहला खम्भा

स्वराज्यका पहला खम्भा यह है कि दुनियापर यह ज़ाहिर कर दो कि क़ानून और इन्तज़ामका काम आपने अपने हाथमें ले लिया। अगर आप इसमें कामयाब हो गए तो आप ज़रूर स्वराज्यके हक़दार होंगे । अगर यह न कर सके तो किस मुँहसे स्वराज्य माँगोगे ?

अगर पुलिसपर ही भरोसा रक्खोगे तो याद रक्खो कि स्वराज्य कभी नहीं मिलेगा।

अमृतसरमें भी इसी मंशासे तीन प्रस्ताव पास किए गए हैं। आप भी तमाम हिन्दू-मुसलमान भाई शहरमें नागरिक सेना क़ायम करो और आगेके लिये मुल्तानकी घटनाको ग़ैरमुमकिन बना दो। पिछली बातोंको भूल जाओ। याद रक्खो, कोई शेरकी कुर्बानी नहीं देता, कुर्बानीके लिये भी बकरेको ही चुना जाता है। मेरे मुसलमान भाइयो! कुर्बानी आप ही नहीं देते, हिन्दू भी देते हैं। मुझे मुआफ़ करना, मैं दोनोंको बेजा समझता हूँ। खुदाके किसी जीवकी जान लेनेका हमें कोई हक़ नहीं है। कमज़ोर होना ही मुसीबतका घर है।

वीर पुरुषोंकी तरह काम करो। जो अपने भूले-भटके गँवार भाई शरारत करें, उन्हें डण्डेसे दुरुस्त करो, यह ठीक क़ानूनके मुताबिक है। आक्रमण करनेवाले दुष्ट दुश्मनको भी मारकर हटा दो। अपने ऊपर वार मत होने दो, अपने अन्दर जोश पैदा करो। आपके अकाली भाई क्या खाते हैं? मोटे-मोटे रोटड़े। दूध-घी तो मिलता ही नहीं। क्या हम वह शक्ति पैदा नहीं कर सकते? सबको मज़बूत बनाना चाहिए। किसी दूसरेको हमसे डर न हो और न हमें किसीसे डर हो। गुरु गोविन्द सिंह महाराजने कहा है—"भय काहूको देत ना, ना भय मानत आप।"

एक योरोपियन किरानी पचास-साठ रुपये तनख़्वाह लेनेवाला इतना निडर होता है कि सबपर अपना सिक्का जमा लेता है। लेकिन हमारा एक लखपती रईस, जिसके इर्द-गिर्द तीन-चार नौकर हों, डरकर घरके अन्दर घुस जाता है, बुज़दिली दिखाता है। हर जगह उसकी बेइज़्ज़ती होती है। यह कायरता रोग है, विष है, इसका ज़िक्र करना गुनाह है। मैं आपके दिलोंको दुखाना नहीं चाहता, सिर्फ़ यह कहना चाहता हूँ कि मर्द कहलाते हुए हमें नामर्द नहीं होना चाहिए। परन्तु मर्द कहलाते हुए हम नामर्द हो रहे हैं।

एक बात और। फ़ौरन् जत्थेबन्दी शुरू कर दो। अगर कोई ख़ास हिन्दू शरारत करे तो मत समझो कि कुल हिन्दुओंका क़सूर है। इसी तरह अगर किसी मुसलमानकी तरफ़से शरारत हो तो तमाम मुसलमानोंपर दोषारोपण मत करो, वर्ना फ़साद बढ़ेगा। जो शरारती हैं, उनको फटकार दो, सब मिलकर उसको मुनासिब सज़ा दो! अगर गुरुके बाग़में पहुँचनेके लिये हमारे अकाली भाई अपने दुश्मनकी दी हुई निर्दोषी सज़ा और मारको शान्तिसे बर्दाश्त करते हैं, तो आप अपने भाईसे पहुँची हुई चोटको स्वराज्यके बड़े उद्देश्यको प्राप्त करनेके लिये बर्दाश्त करो। यही ईमान है, यही धर्म है। आप ताक़तवर बनो और दुश्मनोंसे अपनी रक्षा करो। ऐसा करनेसे आपका आत्मा और परमात्मा प्रसन्न होगा।

* * *

गयामें हिन्दू-महासभाके विशेष अधिवेशनमें पूज्य मालवीयजीका भाषण

गयामेँ ३१ दिसम्बर, सन् १९२२ ई० को भारतोय राष्ट्रीय महासभाके पण्डालमेँ हिन्दू-महासभाका एक विशेष अधिवेशन हुआ था। उसके सभापति पूज्य मालवीयजीके भाषणका सारांश नीचे दिया जाता है।

—सम्पादक

भाइयो और बहनो !

भारतवर्षमेँ रहनेवाली सर्व-प्रधान हिन्दू जातिका ह्रास प्रतिदिन बड़े वेगसे होता जा रहा है। उसकी उत्पत्तिकी संख्या बहुत घट गई है, मृत्युकी संख्या बहुत बढ़ गई है, आयु छोटी हो गई है और वीरताका स्थान कायरताने ले लिया है। हमारी इस अधोगतिका मुख्य कारण यह है कि हिन्दू जाति अपने धर्मसे विमुख हो रही है। अल्पायुमेँ बालकोँ और बालिकाओँका विवाह करनेसे हमारा बल घट रहा है। हिन्दू-समाजमेँ अनेक बुराइयोँने अपना घर कर लिया है। हिन्दू-धर्मकी शिक्षा क्या है—यह धर्म हमेँ औरोँके मतोँका मान करना सिखाता है; सहनशील होना बताता है; और किसीपर आक्रमण करनेकी शिक्षा नहीँ देता। साथ ही यह भी आदेश देता है कि यदि तुम्हारे धर्मपर कोई आक्रमण करे तो अपनी रक्षाके लिये प्राणतक निछावर करनेमेँ कभी सङ्कोच न करो। इस धर्मको शुद्ध हृदयसे और अक्षरशः पालन करनेसे ही हिन्दू-मुसलमामोँमेँ एकता स्थापित हो सकती है। जबतक हिन्दू-मुसलमान दोनोँ ही इतने बलवान और सङ्घटित नहीँ हो जाते कि वे दूसरी जातिके गुण्डोँ और बदमाशोँसे अपनी रक्षा कर सकेँ, तबतक उनमेँ एकता स्थापित नहीँ हो सकती।

यह मैँ इसलिये नहीँ कहता कि हिन्दू किसीपर आक्रमण करनेके लिये तैयार हो जाँय; बल्कि इसलिये कहता हूँ कि उनकी दुर्बलता ही इस समय सब फ़सादोँका कारण हो रही है। अबतक जहाँ कहीँ भी फ़साद हुए हैँ, सब हिन्दुओँकी दुर्बलताके कारण ही हुए हैँ। मुसलमानोँमेँ जो फ़सादी हैँ, उनमेँ यह विश्वास फैल गया है कि हिन्दू कायर और बुज़दिल हैँ। इसी लिये वे चट उनपर धावा बोल देते हैँ। हिन्दू भी अपने घरोँसे निकलकर उनका सामना नहीँ करते, बल्कि आततायियोँको पीछे हटानेका प्रयत्न न कर स्वयं कायरताके साथ भाग जाते हैँ, अथवा घरोँको बन्द कर भीतर दुबक रहते हैँ। इसके विपरीत जब कभी गुण्डोँको पता लगा कि फ़साद करनेपर उनकी अच्छी तरह ख़बर ली जायगी, वे ठीक हो जायँगे; उनका साहस नहीँ होगा कि वे दूसरोँपर आक्रमण करेँ। इसी एक रीतिसे जैसे हिन्दुओँकी रक्षा हो सकती है, वैसे ही मुसलमानोँकी भी रक्षा सम्भव है। मैँ अपने अनुभवसे कहता हूँ कि हिन्दू-मुस्लिम-एकताका एकमात्र साधन यही है कि इनमेँसे प्रत्येक इस बातको अच्छी तरह जान ले कि दूसरा उसके आक्रमणका जवाब देनेके लिये पूर्णतया

तैयार है। केवल इसी विश्वासके होनेपर परस्पर मैत्रीकी स्थापना हो सकती है। मेरी परम इच्छा है कि प्रत्येक भारतवासी, पुरुष या स्त्री अपनी रक्षा करनेके धर्मको अच्छी तरह समझ लें—मैं चाहता हूँ कि हमारे देशको सब स्त्रियाँ अंग्रेज़ महिलाओंकी भाँति पिस्तौल और बन्दूक़ रक्खें और चलाना सीखें, और किसी भी आक्रमणकारीसे अपने स्त्रीत्वकी रक्षा आसानीसे कर सकें। आप लोगोंसे मेरा निवेदन है कि आप सच्चे, दृढ़ और अपने धर्ममें पक्के हिन्दू हों—परन्तु साथ ही इस बातका ध्यान रक्खें कि आप पहले भारतवासी हैं और फिर हिन्दू। आप गाँव-गाँवमें हिन्दू सभाएँ स्थापित करें और महीनेमें कम-से-कम एक बार गाँवकी सब जातियोंको एकत्र कर सभा कर लें, जिससे आपसमें एकता बढ़े और परस्परके सब मामलोंका फ़ैसला समझौतेसे हो जाय। इस प्रकार मासमें एक बार एकत्र हो सामाजिक तथा धार्मिक प्रश्नोंपर विचार करें और अपनी गिरी दशाको सुधारने तथा उन्नत करनेका उपाय सोचें। क्योंकि हिन्दू जाति एक अति प्राचीन धर्म और बड़ी पुरानी सभ्यताकी नामलेवा है। अन्तमें मैं आप लोगोंसे अपील करता हूँ कि आप लोग अछूतोंसे प्रेमका व्यवहार करें। उन्हें भी अपना भाई समझ छुआ-छूतको दूर करें। उनकी अवस्थाको सुधारें और उनकी उन्नतिका मार्ग सोचें। मैं आप लोगोंसे उनके साथ भोजन करने अथवा विवाह करनेको नहीं कहता, किन्तु इतना अवश्य चाहता हूँ कि आप उन्हें अपना अङ्ग समझें और प्रेमकी दृष्टिसे देखें, जिससे वे अपने धर्मसे च्युत न हो सकें और अन्य मतोंके लोगोंका शिकार न बनें।

लाहौरकी एक विराट् सभामें पूज्य मालवीयजीका व्याख्यान

२८ जून, सन् १९२३ ई० की शामको ८ बजे पूज्य मालवीयजीका यह व्याख्यान लाहौरमें मोती दरवाज़ेके बाहर हुआ। पण्डित के० सन्तानम् सभापति थे। —सम्पादक।

भाइयो और बहनो !

आज कितने दिनोंके वाद मुझे आपकी सेवामें उपस्थित होनेका अवसर मिला है। शोक है कि इस बीचमें बड़ी भारी तबदीली हो गई। कल जहाँपर खुशी थी, आज वहाँ दिलोंमें रञ्ज भरे हुए हैं। पिछले दिनों जो अवस्था थी, अब उसमें बहुत परिवर्त्तन हो गया है। ऐसी दशामें केवल दो ही मार्ग ग्रहण किए जा सकते हैं। एक तो यह कि रोग बढ़ता जाय और उसका कोई उपाय न किया जाय, किन्तु निराशा और दुःखमें समय विता दिया जाय। दूसरा यह कि रोगकी विधिपूर्वक चिकित्सा की जाय और उसे दूर करनेका यत्न किया जाय। हमारी पहली इच्छा यह होनी चाहिए कि अनमेल और बेसमझी पैदा न हो, और यदि दुर्भाग्यसे पैदा हो जाय तो उसे जल्दी-से-जल्दी दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिए।

पहली वार जब मैंने लाहौर और अमृतसरमें व्याख्यान दिया तो लोगोंने समझ लिया कि हिन्दू-मुसलमानोंमें मैंने ही अनमेल पैदा कर दिया है। मैं सबसे क्षमा माँगता हूँ। मैंने क्या कहा था, परन्तु आपने कुछ और ही समझ लिया। जिन लोगोंने ऐसा समझनेमें ग़लती की है, मैं उनको दोष न दूँगा, परन्तु साथ ही उनसे यह भी पूछूँगा कि किन वातोंसे आपके आपसके सम्बन्ध इस अवस्था तक पहुँच गए हैं। मैं यह समझता हूँ कि जो विचार हमारे दिलोंमें पैदा हो रहे हैं, वे मिट जायँगे। जब हमारे दिल साफ़ हों तो कोई कारण नहीं कि हमारे दिलोंमें दुःख रह जाय। कहा जाता है और मैं देखता भी हूँ कि पञ्जाबमें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें अनमेल बहुत बढ़ गया है। उसका इस सीमातक पहुँच जाना हमारे लिये दुःख और शोकका हेतु है। परन्तु आप लोग यह न समझें कि उसका कोई उपाय नहीं हो सकता। जहाँतक हो सके इस अनमेलको कम करनेका यत्न किया जाय। जब हम अपने सामने एक आदर्श रख लें और विचार कर लें कि हमारी वर्त्तमान अवस्था क्या है और हम अपने आदर्शतक पहुँचनेके लिये क्या करना चाहते हैं तो कोई कारण नहीं कि हम उस आदर्शतक न पहुँच जायँ। यदि हमारे विचार अपवित्र न हों और हम एक दूसरेपर दोषारोपण न करें तो अवश्यमेव यह अनमेल दूर हो सकता है। हम सब लोगोंको इसी देशमें रहना है। क्या हम चाहते हैं कि हमारी अवस्था इसी तरह बुरी बनी रहे और हम सब दूसरोंके सदैव दास ही बने रहें? क्या हम यह चाहते हैं कि दूसरोंकी नाईं स्वतन्त्रताका जीवन व्यतीत करें? यदि हम चाहते हैं कि दूसरे हाकिम बने रहें और हम सदा उनके अधीन रहें; हम परिश्रम करें और वे मज़े उड़ावें और खायँ, वे आरामसे सोवें

और हम कष्ट उठावें, तो आप विश्वास रखिए कि हमारे आपसके अनमेलके कारण जो दशा हमारी आज है, यही बनी रहेगी।

मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि इस देशमें कितने धर्म, सम्प्रदाय और मत हैं। यदि वे सब आपसमें लड़ते-झगड़ते रहें तो क्या देशमें शान्ति और सुख स्थापित हो सकता है? हरएक आदमी समझ सकता है कि जब सब सम्प्रदायोंके लोग एक दूसरेके सङ्ग नेकनीयती और अमनसे पेश आयँगे तो वे सुख और चैनसे रहेंगे। स्वराज्यकी बात तो एक तरफ़ रहने दें, अगर हिन्दू-मुसलमानोंसे, यहूदी ईसाइयोंसे और पारसी सिक्खोंसे लड़ना शुरू कर दें तो सम्भव नहीं कि देशके भीतर सुखका जीवन, जो हम व्यतीत करना चाहते हैं, वह भी हमें प्राप्त हो सके। हमें चाहिए कि हम अपने दिलोंके सामने यह चित्र स्थापित कर लें कि हम क्या चाहते हैं और उसके लिये हमें क्या करना है। जब दूसरे देशोंके निवासी सुख और चैनसे रहते हैं तब हमें भी सुख और चैनसे रहना चाहिए। हमारे लिये यह कदापि उचित नहीं है कि हिन्दू-मुसलमान आपसमें साधारण बातोंपर एक दूसरेसे लड़ते रहें। चाहे खरबूज़ा छुरीपर गिरे, चाहे छुरी खरबूज़ेपर गिरे, हर हालतमें हमारी ही हानि है। हमारे लिये आवश्यक है कि हम आपसमें मेल रक्खें।

अब प्रश्न यह है कि ये झगड़े क्यों पैदा होते हैं? जहाँतक मेरा विचार है, उनका कारण हमारी मूर्खता है। हम सैकड़ों वर्षोंसे उस्ताद, शागिर्द, वकील, मुअक्किल, इञ्जीनियर और मकान बनानेवाले मालिक और किसानके नातेसे आपसमें रहते-सहते और काम करते चले आते हैं, तो अब इन झगड़ोंका कारण क्या हो सकता है? परमात्माकी दयासे कई वर्षोंसे ऐसे झगड़े नहीं हुए थे और आपसके सम्बन्ध अच्छी तरहसे चले आए थे। परन्तु आजकल बड़े शहरोंमें जहाँ दो-तीन लाख हिन्दू-मुसलमानोंकी आबादी होती है, वहाँ इन दोनों जातियोंमें मूर्खताके कारण मुठभेड़ हो जाती है। इसमें कितने ही लोगोंको चोट आती है, कितनोंको ज़ख़्म हो जाते हैं और कितनोंकी प्राणहानि भी हो जाती है। यह क्यों? केवल हम लोगोंकी नासमझी और मूर्खतासे हम लोग अपने कर्त्तव्यको नहीं समझते। हमें अपने धर्मका पालन करते हुए दूसरोंके धर्मका मान करना सीखना चाहिए। हमारे धर्म सिखाते हैं कि हम देशानुरागको अपने धर्मका अङ्ग बना लें। जबतक हम यह निश्चय नहीं कर लेंगे कि हमारे सब सम्बन्ध देशप्रेमकी नींवपर स्थापित हों, तबतक हम अपने उद्देश्यमें सफल न हो सकेंगे। अगर कोई हिन्दू किसी मुसलमानको मुसलमान होनेके कारण हानि पहुँचावे, और कोई मुसलमान किसी हिन्दूको हिन्दू होनेके कारण दुःख दे, तो हमारी गणना संसारकी सभ्य जातियोंमें कभी नहीं हो सकती। इस समय हिन्दुस्तानमें बहुतसी जातियाँ मौजूद हैं। यदि कोई जाति चाहे कि दूसरी जाति यहाँसे चली जाय तो यह उसकी भूल है। हिन्दू भी यहीं रहेंगे और मुसलमान भी यहीं। हमें एक दूसरेको भाई समझना चाहिए। हिन्दू मन्दिरमें जायँ, मुसलमान मस्जिदमें और ईसाई गिरजामें। लेकिन देशके हितमें हम सबको एकत्र हो जाना चाहिए।

इतिहासके देखनेसे हमें ज्ञात होता है कि जहाँ कहीं भी किसी मामलेपर फ़साद हुए हैं, बुद्धिमान और शान्तिप्रिय लोगोंने उसे घृणाकी ही दृष्टिसे देखा है। हमें आपसमें ऐसे सम्बन्ध स्थापित करने चाहिएँ जिनसे फ़साद पैदा न हों। वे जातियाँ, जिनकी सभ्यता, समृद्धि और विद्वत्ता हिन्दुओं और मुसलमानोंसे कई दर्जे कम थी, उन्नतिके मार्गमें आगे बढ़ गई हैं। परन्तु हमारी दशा इतनी गिरी हुई है कि किसी देशके रहनेवालोंकी अवस्था इतनी गिरी-हुई न होगी। इसका कारण यह है कि हम आपसमें लड़ते और झगड़ते रहते हैं। हमें ऐसे काम कभी नहीं करने चाहिए कि जिनसे दूसरोंका दिल दुखे। अब हमें यह सोचना चाहिए कि हिन्दुओं और

मुसलमानोँमेँ अनमेलका क्या कारण है ? मेरी समझमेँ देशानुरागका भाव जितना गहरा हममेँ होना चाहिए उतना अभीतक हममेँ पैदा नहीँ हुआ। अगर लाहौरका रहनेवाला एक हिन्दू किसी विदेशमेँ लाहौरके एक मुसलमानसे मिले तो वह बड़े प्रेम और उत्साहसे मिलेगा। दोनोँके दिलोँमेँ किसी प्रकारका द्वेष या दुःख नहीँ होगा। परन्तु जब वे ही दोनोँ जन अपने देशमेँ आपसमेँ मिलते हैँ, तब उतना प्रेम प्रदर्शित नहीँ करते। इसका कारण यह है कि हमने अभीतक देशप्रेमको ठीक-ठीक नहीँ समझा और इसी लिये हमारा पारस्परिक प्रेम गहरा नहीँ है।

इङ्गलिस्तानके दो धर्म-सम्प्रदाय अर्थात् रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्टोँमेँ जो वैरभाव और वैमनस्य था और उसके कारण उन्होँने एक दूसरेपर जो अत्याचार किए थे, वे हमारी आपसकी दुश्मनियोँ और बुराइयोँसे कम न थे। परन्तु उन लोगोँमेँ एक बात हमसे अधिक थी अर्थात् देश-प्रेम। और इसी एक बातने उन्हेँ हमसे आगे बढ़ा दिया।

थोड़े समयकी बात है कि जापानमेँ अमेरिका-निवासियोँका आगमन हुआ। पहले एक अमेरिका-वासी कई जापानियोँको नीचा दिखा देता था। उसका कारण यह था कि जापानियोँमेँ एका न था। परन्तु उन्होँने देशानुरागके महत्त्वका शीघ्र अनुभव किया और आपसमेँ एका करके एक राज्य स्थापित कर दिया और चीन तथा रूस जैसे विशाल देशोँपर विजय प्राप्त की।

यदि हम चाहते हैँ कि स्वतन्त्र होकर रहेँ तो हमेँ देशानुरागके बढ़ानेकी साधना करनी चाहिए। उसके लिये आवश्यक होगा कि हम नगर-नगर, मोहल्ले-मोहल्ले, नागरिक धर्म (शहरदारी) का प्रचार करेँ और बच्चोँ, जवानोँ तथा बूढ़ोँको उनके कर्त्तव्यकी शिक्षा देँ। जापान और अन्य पराधीन जातियोँने भी इसी तरहसे देशानुराग उत्पन्न किया। बस यही उपाय स्थायी रूपसे एकता स्थापित करनेका है।

जब जापानियोँने अपने नागरिकोँमेँ देश-प्रेमका भाव उत्पन्न करना चाहा, तब उन्होँने नागरिक शिक्षाके द्वारा देशानुरागको उनका धर्म बतलाया। यद्यपि उनमेँ कई धार्मिक मतभेद हैँ तथापि सबके-सब देशानुरागको अपने धर्मका आवश्यक अङ्ग समझते हैँ। आप भी नागरिक सभाएँ स्थापित करेँ। यह बहुत ही आवश्यक है कि हरएक मोहल्लेमेँ उसकी शाखा हो और भिन्न-भिन्न जातियोँके प्रतिनिधि आठवेँ दिन एक स्थानमेँ एकत्र होकर आवश्यक विषयोँपर विचार करेँ।

दुःखके साथ कहना पड़ता है कि कहीँ हिन्दुओँने मुसलमानोँको और कहीँ मुसलमानोँने हिन्दुओँको पीटा है। इससे हमारे भारतवर्षके इतिहासपर एक कलङ्क लग गया है। हमारे लिये यह लज्जाकी बात है कि हम सब एकही देशके रहनेवाले धर्मके नामपर एक दूसरेका सिर फोड़ देँ। क्या यह कलङ्ककी बात नहीँ कि हिन्दू-मुसलमान आपसमेँ लड़ेँ और दूसरे लोग खुशी मनावेँ और हमारे देशके माथेपर कलङ्कका टीका लगे ?

क्या यह लज्जाकी बात नहीँ कि एक भाई, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, दूसरे भाईके घरमेँ जाकर बच्चोँको पीटे और स्त्रियोँका सत् भङ्ग करनेका भय दे ? परमात्माने हमेँ वह देश प्रदान किया है कि जिसमेँ हम सब हर्षपूर्वक रह सकते हैँ और हरएक काममेँ एक दूसरेके सहायक हो सकते हैँ। परन्तु क्या ऐसे आसुरी काम करके हम यह आशा कर सकते हैँ कि इसे इन्सानियत समझी जाय ? यह अवस्था तो पशुओँसे भी गिरी हुई है। यदि आप गुलाबका फूल हासिल करना चाहते हो तो गुलाबका पौदा लगाकर उसे पानीसे सीँचो। पाशविक कर्मोँसे प्रेमका पौदा नहीँ उग सकता।

हमारे देशके स्कूलोँ और कौलेजोँकी शिक्षाने साबित कर दिया है कि पढ़े-लिखे लोगोँमेँ जो झगड़े होते हैँ वे अनपढ़ लोगोँमेँ नहीँ होते। जहाँ

बड़े-बड़े शहरोंमें वकील, बैरिस्टर और डाक्टर ज़्यादा हुआ करते हैं, वहाँ ही ज़्यादा झगड़े और लड़ाइयाँ हुआ करती हैं। अनपढ़ लोग इन झगड़ोंके लिये इतने ज़िम्मेदार नहीं हैं जितने कि पढ़े-लिखे। अगर धर्म यह बतलाता है कि हमें देशानुराग उत्पन्न करना चाहिए, तो हमारा अनिवार्य्य कर्त्तव्य है कि हम बच्चों, जवानों और बूढ़ोंके लिये देशानुरागकी शिक्षा देनेका प्रबन्ध करें। अगर आप यह समझते हों कि आपसमें लड़ते रहनेमें ही हमारी उन्नति है तो आपकी इच्छा। कुछ लोग हैं जो विष खाना ही पसन्द करते हैं, कुछ लोग हैं जो कोकीन खाकर तबाह हो रहे हैं, लेकिन फिर भी उसे खाए ही जाते हैं। यदि आप तबाह होना ही चाहते हैं तो शौक़से कोकीन रूपी अनमेलका सेवन करते जायँ।

परन्तु, यदि आप जीवित रहना चाहते हैं तो मेल बढ़ानेका उपाय कीजिए और उसके निमित्त प्रत्येक नगर और प्रत्येक प्रान्तमें नागरिक सभाएँ स्थापित कीजिए। इन सभाओंका यह कर्त्तव्य होगा कि अगर किसी सम्प्रदायके लोग आपसमें लड़ पड़ें, या कोई निन्दित कर्म करें तो उसे रोकें। ऐसा न हो कि कुछ लोगोंकी अनुचित क्रियाओंके कारण सारी जाति ही बदनाम हो जाय। नागरिक सभाको चाहिए कि तमाम झगड़े अदालतमें जानेके पहले उसके सामने आजायँ, ताकि मोहल्लेके बड़े-बड़े हिन्दू-मुसलमानोंको मालूम हो जाय कि दोष किसका है। यदि झगड़ा करनेवाले लोग क्षमा करनेके योग्य हों तो उन्हें क्षमा कर दिया जाय। यदि दूधसे मक्खी निकाल देनेसे दूध साफ़ हो सकता है तो उस मक्खीको सब भाई निकाल दें।

मैंने पिछले साल कहा था कि हरएक नगरमें नागरिक दलका प्रबन्ध किया जाय, जिसमें सब नगरवासी लोग सम्मिलित हों। इस दलका कर्त्तव्य होना चाहिए कि नगरके जिस मोहल्लेमें झगड़ा होते देखें, तुरन्त वहाँ इकट्ठे हो जायँ और जो लोग झगड़ा डालना चाहें, उन्हें मोहल्लेदारोंकी सहायतासे रोक दिया जाय। उसका फल यह होगा कि न तो निर्दोष लोग मारे जायँगे और न दूकानें लूटी जायँगी। मैंने तो लोगोंको ऐसा ही समझाया था, परन्तु अमृतसरमें मेरे भाइयोंने उल्टा ही काम कर दिखाया, जिसका फल यह हुआ कि आज वहाँ सरकारी पुलीस बैठी हुई है और पचास-साठ हज़ार रुपया सालाना निरर्थक ख़र्चा पड़ रहा है।

मैंने कभी स्वप्नमें भी यह नहीं चाहा कि हिन्दू बलवान होकर मुसलमानोंको नुक़सान पहुँचावें। मैं अपने धर्म और ईमानसे गिर जाऊँ, यदि मेरे दिलमें कभी ऐसा विचार भी आया हो। मैं यह चाहता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान दोनों बलवान हों और दुनियाकी अन्य जातियोंमें खड़े होनेके लायक़ हों। मैं यह कहता हूँ कि हिन्दू-मुसलमानोंके सम्मिलित अखाड़े हों, जुदा-जुदा न हों। क्या कोई ऐसा हिन्दू है, जिसे 'गुलाम' पहलवानके इङ्गलिस्तानमें मल्लयुद्धमें विजय प्राप्त करनेपर हर्ष प्राप्त न हुआ हो? क्या मुसलमानोंको जुदा खुशी हुई थी।

स्वराज्यकी सीढ़ीके लिये हमारा सबसे पहला काम एकताको स्थापित करना है। हमारे परस्परके सम्बन्ध इतने घनिष्ट होने चाहिएँ कि जिनके टूटनेकी सम्भावना ही न रहे। बड़ी लज्जाकी बात है कि बड़े-बड़े सेठ बैठे रहें और मोहल्लेके पड़ोसीपर हमला हो, और वे कुछ भी न करें। उनका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि हमला करनेवालेको रोकें।

भारतवर्षका नागरिक होना बड़े गौरवकी बात है। उसके लिये आवश्यक है कि हम सोच-समझकर एक शपथ बना लें जिसे सब हिन्दू-मुसलमान ग्रहण करें कि हम धर्म और मतके कारण किसी भाईके साथ ज़्यादती नहीं करेंगे, और तमाम बहनों, बेटियों और माताओंको सम्मानकी दृष्टिसे देखेंगे; और हमारा यह प्रण होना चाहिए कि हमारी जो यह दुर्दशा हो रही है, ऐसी कभी न होगी।

वह अमृतसर जहाँ सन् १९१९ में रामनवमीके उत्सवके अवसरपर हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेको भाई-भाई समझते थे, वहाँ आज परस्परके अनमेलके कारण रोज़गारकी वह तङ्गी हो रही है कि जिसका अनुमान नहीं हो सकता। आज स्वराज्यकी कथा कहनेका दिन नहीं, किन्तु हम लाचार हैं कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिये रोएँ। एकताकी वह भीत, जो हमने कठिनाईसे खड़ी की थी, रेतकी निकली और ज़रासा पानी पड़नेसे बह गई।

अगर हम सङ्कल्प कर लें कि हम किसीका बुरा नहीं चाहेंगे और न किसीको हानि ही पहुँचावेंगे, तो हम एकताकी स्थापनामें सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे सामने जो कार्य्य उपस्थित हैं, वह नागरिक सभाएँ और नगर-रक्षक दलोंकी स्थापना है, जिससे हम सुख और शान्तिका जीवन व्यतीत कर सकें।

जिन भाइयोंने मुझपर यह दोष लगाया है कि इन फ़सादोंका कारण मैं हूँ, वह ग़लतीपर हैं और मैं उनको दयाकी दृष्टिसे देखता हूँ। मुझे इस बातका दुःख नहीं कि मेरे विरुद्ध लिखा गया, परन्तु जव मैं देखता हूँ कि मेरे सम्मानित हकीम अजमल ख़ाँ को गालियाँ दी गईं, तव मुझे वहुत दुःख होता है। मैं अपने पत्र-सम्पादक भाइयोंसे भी प्रार्थना करूँगा कि वे सदैव ऐसे विषयोंमें विचारसे काम लें।

मैं सदैव अपने धर्मका दृढ़-विश्वासी और पावन्द रहा हूँ, परन्तु किसीके धर्मका अपमान करनेका ख़यालतक मेरे दिलमें कभी नहीं आया। जव मैं किसी गिरजे या मस्जिदके पाससे गुजरता हूँ तव मेरा सिर सम्मानसे झुक जाता है। जव हमारा परमात्मा एक है तव क्या कारण है कि हम आपसमें लड़ें। भूमि एक, देश एक, जल एक, वायु एक और फिर आपसमें फ़साद! यह आश्चर्य और दुःखकी वात है। हमारे लिये यह कितनी लज्जाकी वात है कि हमारी रक्षा विदेशी फ़ौजें करें। हमें पाठशालाओं और कलाशालाओंमें सैनिक शिक्षा देनी चाहिए और मोहल्ले-मोहल्ले और नगर-नगरमें रक्षाका प्रबन्ध होना चाहिए।

[व्याख्यान समाप्त होनेपर चिराग़दीन नामी एक मुसलमानने पण्डितजीके व्याख्यानके कुछ भागोंका ज़िक्र करके कहा कि हिन्दू-मुसलमानोंकी एकताकी चादरको 'शुद्धि' की कैंचीने कतर दिया है। पण्डित साहबको चाहिए कि वह स्वामी श्रद्धानन्द और उनके दूसरे साथियोंको शुद्धि करनेसे रोक दें। इस समय दुनियाके अन्दर अगर कोई खुला और विश्वव्यापी धर्म है तो वह केवल 'इस्लाम' ही है और केवल इस्लामको ही 'तबलीग़' का हक़ हासिल है।' पण्डितजीने उत्तरमें कहा—]

यदि आप अपने धर्मका प्रचार करते हैं तो आपको यह अधिकार नहीं है कि आप दूसरे भाइयोंको अपने धर्मके प्रचारसे रोकें। मैं यह नहीं चाहता कि किसी एक हिन्दू या मुसलमानकी संख्या कम हो जाय। आप पुस्तकें बाँट दें। यदि कोई पुरुष इस्लामकी तरफ़ आवे तो कुछ भय नहीं। हम तो जितने हैं उससे बढ़ते ही जायँगे।

आप अपने धर्मका प्रचार करें। मुझे शिकायत नहीं। कोई दिन नहीं जाता था, जब आपका प्रचारका कार्य्य नहीं होता था। यदि कुछ दिनोंसे हिन्दू भाइयोंने उसी प्रकारका कार्य्य आरम्भ कर दिया है तो आपको शिकायत नहीं करनी चाहिए। मैं लाचार हूँ, क्योंकि मैं किसी भी धर्मवालेको अपने धर्मका प्रचार करनेसे रोक नहीं सकता। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि उन्हें ऐसी रीतिसे काम करना चाहिए कि जिससे किसीको क्लेश न पहुँचे। एक दूसरेको कटु वचन कहनेसे रोकना चाहिए और ऐसे उपाय सोचने चाहिए जिनसे प्रीति और मित्रता बढ़े।

हिन्दू-महासभाके सातवें अधिवेशनमें पूज्य मालवीयजीका भाषण

पूज्य मालवीयजी महाराजने १६ अगस्त सन् १६२३ ई० को काशीमेँ—

‘यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो। बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैय्यायिकाः॥
अर्हन्नित्यथजैनशासनरताः कर्म्मेति मीमांसकाः। सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥
ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमंज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥’

इत्यादि स्तोत्रोँसे आरम्भ करके दो घराटे पैँतीस मिनटतक व्याख्यान दिया।

—सम्पादक।

देवियो और सज्जनो!

मैँ नहीँ जानता कि किन शब्दोँमेँ आपका धन्यवाद करूँ। आपने अगाध प्रेमसे इस समागममेँ, इस सभामेँ मुझे समादर दिया। जिन शब्दोँमेँ मेरे भाइयोँने प्रस्ताव उपस्थित किया उन्हेँ सुनकर मुझे लज्जा आती थी, क्योँकि मैँ इस योग्य नहीँ कि इतना कहा जाय। परन्तु यही ध्यान था कि प्रेमके उद्गारमेँ, जैसा एक भाईने कहा था, आपने यह सब कह डाला है। अपना बालक सबको प्यारा होता है। शायद अपना बालक समझकर ही आप इतना प्रेम कर रहे हैँ। मेरे जितने भाई मुझसे प्रेम करते हैँ, वे सब मेरे दोषोँपर दृष्टि नहीँ डालते, गुणोँको ही बड़ा मानते हैँ। मैँ उनका ऋणी हूँ। उन्होँने मेरी प्रशंसा की है। मैँ परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि उसका सौवाँ हिस्सा भी मुझमेँ आवे।

हिन्दू-जातिकी प्राचीनता

आजकी यह महती सभा भारतके आधुनिक इतिहासमेँ एक विशेष सभा है। इसे देखकर आज हिन्दू जातिके प्रत्येक व्यक्तिका हृदय गद्गद् होता होगा। देशके सभी प्रान्तोँसे बड़े-बड़े विद्वान् और विदुषी इसलिये यहाँ आए हैँ कि हिन्दू जातिके हित, भलाई तथा उसके भविष्यका विचार मिलकर करेँ। यह हिन्दू जाति क्या है? किसलिये यह समारोह एकत्रित हुआ है? कौनसी वस्तु है जिसके बचानेके लिये इतने लोग एकत्रित हुए हैँ? वह कौनसी निधि है जिसकी रक्षाकी चिन्तासे इतने भाई दूर-दूरसे आए हैँ? सृष्टिमेँ जितनी जातियोँका इतिहास मिला है, उनमेँ यह हिन्दू जाति या आर्य्य जाति सबसे प्राचीन है, इसको प्रायः सभी निष्पक्ष विद्वान् मानेँगे। यदि प्राचीनतासे ही प्रेम है तो यह प्राचीन अवश्य है। यह प्रेमके योग्य है और इस बातपर इसका आदर हो सकता है। किन्तु केवल इसीसे इसका आदर नहीँ हो सकता और न किसी अन्यका ही हो सकता है। कोई केवल प्राचीनताके लिये आदर नहीँ पा सकता। हाँ, इतना अवश्य है कि यह प्राचीन जाति बहुत दिनोँसे ऐसी ही ज़िन्दा चली आई है। जबतक कोई विशेषता न हो, जबतक कोई आन्तरिक बल अथवा प्रबल शक्ति न हो, तबतक कोई मानव-जाति

इतनी पुरानी होकर इस तरह जीवित नहीँ रह सकती। यह जाति जीवित है, तो क्या उसका कोई कारण नहीँ? इतना ही नहीँ, यदि इसका महत्त्व देखा जाय तो वह और भी आश्चर्य्यजनक है। हमारे स्वर्गवासी मित्र पण्डित बालगङ्गाधर तिलकने लिखा है कि कम-से-कम आठ हज़ार वर्षसे यह जाति जीवित है। इस जातिकी प्राचीन सभ्यताके निष्पक्ष अंग्रेज़ और येरोपके अन्य विद्वान् भी क़ायल हैँ। यह पुरानी सभ्यता क्या है? सृष्टिकी कथा समझने और पढ़नेसे इसका प्रमाण मिलता है। आप देखते हैँ कि ऋग्वेदके समयसे आजतक यह जाति एक जीवित जातिके रूपमेँ चली आती है। इसने क्या-क्या किया, कहाँ-कहाँ रही, आदि बातोँकी कथा बहुत लम्बी है। यह अपनी पूर्व दशामेँ जीवित है, यही हमारे लिये पर्य्याप्त है।

वेदोँका महत्त्व

चार वेद इस जातिके धर्मकी निधि हैँ। इन्हीँसे सब धर्मोँके स्रोत बहे हैँ। हमारी इन श्रुतियोँसे वह स्रोत बहा है जिसने अन्य धर्मोँको प्लावित कर दिया है। यदि केवल ये वेद ही यहाँ होते, तो भी आपको अपना माथा ऊँचा करनेका अवसर था; किन्तु श्रुतिके साथ ही स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदिका बहुत बड़ा पुञ्ज है। ऋग्वेदकी प्रथम रचनासे लेकर आजतकके कुल लेख बड़े पवित्र और उच्च भावोँसे भरे हैँ। ऐसे विकट रास्तेमेँ धँसकर चलते-चलते वे ऐसे सच्चे और स्वच्छ मार्गमेँ पहुँचे हैं, जहाँ दूसरा नहीँ पहुँचा। आपके वेदोँमेँ ऋषियोँने वह ऊँचा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया है जिससे ऊँचे कोई नहीँ पहुँचा (धन्य-धन्यकी ध्वनि)। ऐसी वेदकी विद्याएँ हैँ। ऐसा धर्मशास्त्र, पुराण और स्मृतियोँका समूह है। पृथ्वी-मण्डलपर ऐसा कौन धर्म है, जिसमेँ वेदके समान ऐसा प्राचीन और पवित्र धर्म-ग्रन्थ हैँ, जो ऐसे पवित्र धर्मका उपदेश करे? मैँ किसीका निरादर नहीँ करता। यह मेरे लिये सम्भव नहीँ कि मैँ किसी धर्मका निरादर करूँ। मेरा उद्देश्य केवल वेदके महत्त्व और धर्मके सिद्धान्तोँकी ओर ध्यान दिलानेका है। वे सिद्धान्त, लोक और वेदके सहारे जैसे बराबर चले आए हैँ, उसका विस्तारसे वर्णन करना यहाँ सम्भव नहीँ। इस अवसरपर इतना ही कहना पर्य्याप्त होगा कि वैदिक कालसे आता हुआ यह धर्म स्मृतियोँ तथा पुराणोँके समय तथा आजतक बराबर स्थिर धर्म रहा है। इसके मूल सिद्धान्तोँमेँ कोई भेद नहीँ पड़ा। इतना ही नहीँ, मेरा तो विचार है कि कल्पके अन्ततक यह धर्म बराबर ऐसा ही बना रहेगा, और कल्पके आगे भी "यथा पूर्वमकल्पयत्" के अनुसार इसी रूपमेँ फिर हमको मिलेगा। यहाँ एक बात विचारणीय है।

वैदिक और बौद्ध धर्म

कुछ लोगोँकी धारणा है कि बुद्ध भगवान्ने एक नये धर्मका प्रचार किया था, किन्तु यह भ्रममात्र है। बुद्ध तो हमारे दस अवतारोँमेँ हैँ। जहाँ हमारे राम-कृष्णका नाम है, वहाँ उनकी भी गणना है। हिमालयसे कन्याकुमारीतक जलकी किसी धारासे लेकर समुद्रके किनारेतक जहाँ कहीँ हम ब्रह्मकर्मोँका सङ्कल्प करेँगे, वहाँ 'बुद्धावतारे' अवश्य आयगा। बहुत कुछ मतभेद होते हुए भी आर्य्य-सन्तानने उनके बड़प्पनको कभी नहीँ भुलाया। बड़ा मानकर ही शङ्कराचार्य्यने बुद्धको "यतीनाञ्चक्रवर्त्ती" कहा। बेशक बौद्ध धर्मका महत्त्व भारतवर्षमेँ पहलेसा नहीँ रहा, परन्तु तो भी उनकी प्रतिष्ठा बनी रही। वे हमारे थे, हमीँमेँ उनका अवतार हुआ था, यह बात आर्य्य-सन्तान कभी भी भूल न सकी। बराबर यही कहा गया है कि यहाँ किसी दूसरे धर्मका प्रचार नहीँ हुआ। जो सनातनधर्म वेदोँसे प्रमाणित यहाँ चला आया, जो सिद्धान्त वेदोँसे प्रणीत होते रहे, उन्हीँ धर्मोँ और सिद्धान्तोँमेँसे कुछको लेकर भगवान्ने उपदेश किया। इसके लिये अधिक क्या प्रमाण

दूँ। आज मैं जब सभामें आने लगा तो डाक खोलकर देखा कि महाबोधि सोसाइटीकी ओरसे एक पत्र आया है, जिसमें बुद्ध भगवान्‌के दस आदेश लिखे थे, जिनमें भगवान् बुद्धने, तीन शरीरके पापोंकी—हत्या, चोरी, व्यभिचार ; चार वाणीके—असत्य, कठोर वचन आदि और तीन मनके पापोंका निषेध किया है।

जिस समय मैंने इसे देखा, मुझे भगवान् मनुका वचन याद आ गया।

त्रिविधं च शरीरेण वाचा चैव चतुर्विधम्।
मनसा त्रिविधं कर्म दश धर्मपथाँस्त्यजेत्॥ १॥
अदात्तानामुपादानं हिंसाचैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥ २॥
पारुष्यमनृतञ्चैव पैशुन्यञ्चापि सर्वशः।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥ ३॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्॥ ४॥

अर्थात्—

१—शरीरसे होनेवाले तीन प्रकारके पापोंको, वाणीसे होनेवाले चार प्रकारके पापोंको और मनसे होनेवाले तीन प्रकारके पापोंको, इन दश पापोंके मार्गोंको छोड़ दो।

२—बिना दिए हुए द्रव्यका लेना, शास्त्रसे निषिद्ध हिंसाका करना और दूसरेकी स्त्रीसे सम्बन्ध करना, यह तीन शरीरसे किए गए पाप कहाते हैं।

३—अप्रिय बातका कहना, झूठ बोलना, चुग़ली करना और सत्य भी बात हो, किन्तु जो जहाँ कहनेके योग्य नहीं हो, वहाँ उसका कहना, ये चार प्रकारके जिह्वाके पाप कहलाते हैं।

४—दूसरेके धनको अन्यायसे लेनेकी चिन्ता करना, मनसे निषिद्ध कामको सोचना (जैसे ब्रह्मवध और परदार-गमन इत्यादि), झूठी बातमें आग्रह करना (जैसे ईश्वर नहीं है, परलोक नहीं है इत्यादि अज्ञात बातोंपर हठ करना), ये तीन मनके पाप कहलाते हैं।

इस सम्बन्धमें भला इससे अधिक क्या कहा जा सकता है कि उन्हें हमारे बौद्ध भाइयोंने दस उपदेश मानकर तथा छपाकर वितरित किया है। उन्हें ही भीष्मपितामह भी पालनेके योग्य बताते हैं। आपको मनु और महाभारतसे जो पवित्रतम उपदेश मिलते हैं उन्हीं वैदिक धर्मके उपदेशोंको भगवान् बुद्धने अपने मुँहसे कहा है। यदि अवसर होता तो मैं और भी प्रमाण देकर दिखलाता कि बुद्धदेवने और भी अन्य उत्तम-से-उत्तम हमारे सिद्धान्तों तथा आध्यात्मिक बातोंपर ज़ोर दिया है। उन्होंने कर्मकाण्डमें हिंसा आदि की निन्दा की है और बतलाया है कि अपने मानसिक पापोंको मारकर ही स्वर्ग मिल सकता है, जीवकी हत्यासे स्वर्ग नहीं मिल सकता। इस प्रकार यज्ञादिमें जो हिंसाका क्रम बढ़ गया था, उसी की उन्होंने निन्दा की है, और बाक़ी बातें प्रायः वे ही हैं जो मनुजी बहुत पहले लिख गए हैं। इसलिये बौद्ध धर्म हमारे प्राचीन वैदिक धर्मका एक अङ्ग है। आप लोग शायद यही कहें कि मैं अंग्रेज़ी तरीक़ेपर यह एक नई बात कह रहा हूँ; नहीं, नहीं, अनागरिक धर्मपालजी मेरी इस बातका अनुमोदन करेंगे। आपका एक बड़ा पुराना श्लोक है—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैय्यायिकाः॥
अर्हन्नित्यथजैनशासनरताः कर्म्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

कवि प्रार्थना करता है कि जिसको शैव लोग शिव कहकर पूजते हैं, वेदान्ती लोग ब्रह्म कहकर, बौद्ध लोग बुद्ध, नैय्यायिक कर्त्ता, जैनधर्मके अनुयायी अर्हंत और मीमांसक कर्म कहकर पूजते हैं; वह तीनों लोकोंका एक स्वामी आपका मङ्गल करे। उस समय अंग्रेज़ी नहीं थी, उस समय दूसरे धर्म नहीं आए थे। उस समय सब धर्म हिन्दू धर्मके अङ्ग थे। ऐसा न होता तो कवि इस तरह कदापि न लिखता। सब एक ही धर्मकी शाखा मानकर बर्त्तते थे जैसे एक महावृक्षकी शाखाएँ होती हैं। अशोकके

समयमेँ और उसके सैकड़ोँ वर्ष बादतक वेद और ब्राह्मणोँका आदर होता रहा। परस्पर ऐसा प्रेम रहा कि गोष्ठीमेँ एक ओर ब्राह्मण बैठते थे तो दूसरी ओर बौद्ध। बौद्ध राजा दोनोँका आदर करते थे। विप्र-मण्डलीका भी आदर होता था और बौद्धोँका भी। जैन-धर्मका भी यही हाल है। वह भी हिन्दू धर्मका एक अङ्ग रहा है। सिक्ख धर्म भी हमारे धर्मका एक अङ्ग है। गुरुग्रन्थमेँ भक्तिभावके जो भजन हैँ, वे श्रीमद्भागवतके श्लोकोँके अक्षरशः अनुवाद हैँ। पद-के-पद पढ़िए, वे ही भाव अनुवादके रूपमेँ मिलेँगे। उनके दसोँ गुरु हमारे धर्मके गुरु थे, वे परम पवित्र थे, यह कौन नहीँ मानता? "अरे क्योँ नहीँ जपता हरिनाम" इस भजनको पढ़िए। क्या भाव पैदा होता है? रामानन्द, कबीर और तुलसी आदिने वही; नाम जपकर फल पाया और उसी हिन्दू धर्मकी घोषणा की। उसी अमृतरूपी रसका पान कराया। सभी हमारे धर्म हैँ, इन्हेँ हिन्दू धर्म कहिए, आर्य्य धर्म कहिए, वैदिक धर्म कहिए, कुछ भी कहिए। इनके नामसे मेरे सामने एक भारतवर्षीय पवित्र आचरणका चित्र खिंच जाता है, और मैँ चाहता हूँ कि सभीको प्रणाम करूँ।

हिन्दू धर्मकी विशेषता

यह धर्म इतना प्राचीन है कि इसकी विशेषता कोई क्या पूछेगा और कोई क्या कहेगा? मैँ इस विषयमेँ केवल दो बातेँ कहूँगा। पहली बात यह है कि कीट-पतङ्गमेँ, हाथीसे चीँटीतक सबमेँ एक ब्रह्मका अंश है। एक ही अन्तर्य्यामी घट-घटमेँ व्याप्त है। पृथ्वीमण्डलपर यही एक प्राचीन धर्म है, जो कहता है कि, "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"। यह विशेषता है तभी तो हममेँ कलहका भाव नहीँ उठता, तभी तो हिन्दू किसीको चोट नहीँ पहुँचाते और इतने सहनशील होते हैँ। दूसरी बात और जो ख़ास बात है वह उस सिद्धान्तकी है कि धर्मके पीछे किसीसे मत लड़ो। इसके फलस्वरूप आप देखेँगे कि यद्यपि बौद्ध-समयमेँ कुछ विद्रोह हुए, तथापि थोड़े समयके बाद ही वैदिक-धर्म और बौद्ध-धर्मके अनुयायी हिल-मिलकर रहने लगे। काश्मीर, दिल्ली, बिहार, पञ्जाब और बनारस आदि स्थानोँमेँ बौद्ध, ब्राह्मण और जैन आदि साथ-साथ, आदरभाव और प्रेमसे रहते थे, भाईसा आदर करते थे। जब मुसलमान भाई यहाँ आए, तब भी हमारा यह भाव बना रहा। एक धर्मका दूसरेसे प्रेम जारी रहा। मुझे ठीक स्मरण नहीँ, शायद ख़िलजी बादशाहोँके समयमेँ एक कविने यह कहा था कि ये अपना धर्म करेँ, वे अपना धर्म करेँ। "किसीसे धर्मके लिये मत लड़ो" यह भाव हिन्दू धर्म सिखाता है। धर्मके कारण अपने भाइयोँको नीची निगाहसे मत देखो। यदि मुसलमान अपने धर्मका अनुयायी है तो भेदके कारण अन्यको बैरकी दृष्टिसे तथा द्रोहकी दृष्टिसे देख सकता है। यदि यहूदी धर्म या हिन्दू धर्मका अनुयायी है और अपने धर्मके तत्त्वको समझता है तो वह धर्मके लिये विरोध नहीँ करेगा। वह अपने धर्मका पालन करना चाहेगा। कदाचित् वह यह भी इच्छा करे कि दूसरे धर्मके अनुयायियोँको अपने धर्ममेँ मिला ले, पर बैर करना विपरीत समझेगा। धर्मके महत्त्व, जातिकी रक्षा और समस्त संसारके उपकारके लिये हम चाहते हैँ कि हम अपने धर्मकी वृद्धि करेँ। क्या आप इस धर्मकी रक्षा, अपने और संसारके लिये उपकारक और आवश्यक नहीँ समझते हैँ? (ज़रूर-ज़रूरकी ध्वनि) यदि आप समझते हैँ कि मैँने सत्य कहा है, ग़लत नहीँ कहा है, तो आप साफ़ हृदयसे पूछेँ कि ऐसा उदार धर्म हमारा धर्म है या नहीँ? यह तो है धर्मकी कथा। यदि धर्म हो तो उसकी रक्षा भी हो सकती है। धर्म ही हमारी निधि है। हिन्दू सभ्यताकी और विशेषताएँ आगे कहूँगा, यहाँ इतना ही कह देना काफ़ी है कि यह धर्म और यह सभ्यता अभ्युदय और निःश्रेयसके साधन हैँ। इस लोक और परलोक दोनोँके सुखके साधन हैँ। हमारे धर्म-शास्त्रोँमेँ सांसारिक अभ्युदय, बल-बुद्धि, धनकोषकी प्राप्ति, अर्थनीति, राजनीति, समाजनीति आदिके विषयमेँ क्या-क्या है, इसे कैसे

बतलाऊँ। वह बात जो संसारमें अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी, क्या है? वर्ण और आश्रमकी शिक्षा। यह और कहीं पृथ्वी-मण्डलपर नहीं मिलेगी। यह वर्णाश्रम-धर्म क्या है? वर्णमें दोष भी हैं, गुण भी हैं। आश्रममें भी ऐसा ही है, परन्तु इनमें गुण बहुत हैं, दोष कम। पहले वर्णके सम्बन्धमें कुछ कहूँगा। वर्णाश्रम-धर्ममें चार वर्ण और इसी तरह चार आश्रम भी हैं। कहा गया है कि हममें कुछ लोग ऐसे हों जो विद्याका अध्ययन तथा अध्यापन किया और कराया करें। सांसारिक सुखसे विमुख रहकर अमृतके समान विद्याका दान दिया करें, ज्ञान-वितरण किया करें। आप जानते हैं कि अन्नदानसे विद्यादान बहुत बड़ा है। अन्न-भोजन करा देनेसे तृप्ति तो होती है परन्तु फिर भूख लग जाती है, पर विद्यासे जीवनभर आनन्द रहता है। इस प्रकार ब्राह्मणोंका कर्त्तव्य था कि तपस्यासे और सच्चरित्रतासे रहकर "सर्वभूतहिते रतम्" का पालन करें। परन्तु केवल इन्हींसे काम नहीं चलता। इसलिये क्षत्रियोंकी आवश्यकता पड़ी। भीष्मने युधिष्ठिरसे कहा था कि "जो साधु तपस्वी और सर्वभूतके हितमें लगे हैं उनको बचाओ" इस प्रकार क्षत्रिय हुए। इनके बिना काम नहीं चल सकता। धन, जन, गो, ब्राह्मण आदिकी रक्षा बाहुबलके बिना कैसे होगी? जिसकी लाठी उसकी भैंस, जिसका लोहा उसका देश। जबतक बाहुबल न होगा तबतक रक्षा न होगी। लेकिन क्षत्रिय ऐसे न हों कि दूसरोंको कुचल डालें—'भय काहूको देत ना, ना भय माने आप' वह क्षत्रिय जो चोट न पहुँचावे अपितु चोटसे बचावे। वैश्य इसलिये बनाए गए कि बहुतसे अतिथि आवेंगे। इसी सभाको लीजिए। इसमें कोई सभाका प्रबन्ध करता है और कोई अतिथियोंके भोजनका प्रबन्ध करता है। चार भाई हैं। चारों काम बाँट लेते हैं। एकको कह दिया, भाई! जाओ, पूजापाठ करो, वेद-वेदाङ्गका अध्ययन-अध्यापन करो। कोई लड़ने जायगा। कोई घरका प्रबन्ध करेगा। जो घरका प्रबन्ध करते हैं, उनके भी संस्कार हों; वे भी वेदका अध्ययन करें; न्यायके साथ शुद्ध कौड़ी पैदा करें और कृषि करके अन्न और पशुकी वृद्धि करें। शूद्रको कहा कि भैया, तुम हमारे छोटे भाई हो, प्रेमके साथ हमारी सेवा करो। विद्या होगी तो तुम्हें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मान लेंगे। जबतक नहीं है, तबतक जो पढ़ने-पढ़ाने, रक्षा-शिक्षा या व्यापारकी वृद्धिमें लगे हैं, उनकी सेवा-सुश्रूषा करो। इस प्रकार चार भेद करके समाजको सङ्गठित किया। इसको जाने दीजिए। अब आश्रमको लीजिए। पृथ्वीपर ऐसी व्यवस्था कहाँ है? 'शतायुर्वै पुरुषः' सौ वर्षकी आयु पुरुषकी है। आज तो यह दुर्लभ है। इसके चार भाग किए गए। पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्य्यके साथ विद्याध्ययन, पूर्ण योग्यता सम्पादन करके पच्चीस वर्षके बाद गृहस्थ, इसके बाद धन सम्पादन करके पचास वर्ष तपश्चर्या, देश-सेवा और ईश्वर-भजनमें लगा लो। अंग्रेज़ी सरकार पचपन वर्षमें पेन्शन देती है, किन्तु मुई बछियाके दानसे धर्म नहीं होता। पचास वर्षकी अवस्थातक घर-गृहस्थीमें रहकर शक्ति रहते हुए घरसे बाहर निकलें और निकलें तो देशकी सेवा करें। जङ्गलमें जाकर बैठनेसे कोई लाभ नहीं। वानप्रस्थ लेकर बन पड़े तो स्त्रीको भी साथ लो, चाहे अकेले देशका कार्य्य करो। खानेका भार दूसरोंपर मत डालो। पेन्शन लेकर आरामसे बैठनेसे कुछ लाभ नहीं। इसके बाद पच्चीस वर्ष सेवा करके पचहत्तर वर्षमें बूढ़े बाबा बनकर आप सेवा कराओ, दूसरोंका काम देखो। उन्हें अपने अनुभवसे उपदेश दो। नवयुवक तुम्हारी सेवा करें। इस विभागमें जबतक जीवन था तबतक ऐसे साधु, धर्मवीर, शूर और विद्वान् हुए जिनकी बातें पुराणकी कथाओंसे मालूम होती हैं। इसीमें राम, कृष्ण, बलराम, भीष्म, द्रोण, अर्जुन, कपिल, गौतम, कणाद, ऋषिमुनि, दर्शन, पुराण, ज्योतिषके आचार्य्य, अर्थशास्त्रके आचार्य्य, धर्मके आचार्य्य और कलाकौशलके आचार्य्य पैदा हुए। उनकी पराकाष्ठाका पूरा वर्णन पढ़ना चाहते हैं तो

वाल्मीकि रामायण पढ़िए, महाभारत पढ़िए। तब पता लगेगा कि कहाँ सभ्यताका सूर्य्य था। यह ऐसी सभ्यता है कि इसने जगत्का उपकार किया, किसीका अपकार नहीँ। इसका प्रमाण यह है कि जब शहाबुद्दीनने आक्रमण किया तब पृथ्वीराजने उसे हराकर बाँध तो लिया, पर पाँच दिनके बाद ही उसे मुक्त कर दिया और कहा कि फिर कभी हिन्दुओँपर अत्याचार करने मत आना। यही वह सभ्यता है, जो बतलाती है कि दूसरोँपर वार न करो, चोट न करो, अत्याचार न करो, केवल अपनी रक्षा करो। दूसरे चाहे प्रेम न करेँ, परन्तु तुम सदैव उनपर प्रेम और दयाका भाव रक्खो।

हमारा साहित्य

बहनो और भाइयो! बताओ तो पृथ्वी-मण्डलपर इतनी उदार, धर्मयुक्त, न्याययुक्त सभ्यता और कौनसी है? सज्जनो! जो निधि अपने पूर्वजोँसे हमेँ मिली है, वह क्या है? सब वेद, शास्त्र और पुराण आपकी निधि हैँ—संस्कृतमेँ, प्राकृतमेँ, पालीमेँ, हिन्दीमेँ, बँगलामेँ, मराठीमेँ, गुजरातीमेँ, तामिल और तेलगूमेँ जितने ग्रन्थ आपके साधु-सन्तोँकी वाणी हैँ, वे सब आपकी निधि हैँ। यह बड़े गर्वकी बात है कि इस निधिकी रक्षामेँ हम तथा आप कभी पीछे नहीँ रह सकते। इस निधिकी रक्षामेँ हमारी रक्षा और उसके नाशमेँ हमारा नाश है। दुःख है कि हमेँ अपना इतिहास मालूम नहीँ। आज भारत-सन्तान "वार औफ़ रोज़ेज़" पढ़ते ह, अपने गौरव तथा इतिहासकी चिन्ता नहीँ करते। जो कुछ थोड़ा-बहुत इतिहास मिलता है, वह विदेशियोँका लिखा हुआ है। इसीसे हमारी नाना प्रकारकी दुर्दशा होती चली आती है। हमको क्या-क्या पढ़ाया जाता है? ग्रीसका इतिहास तथा रोमका इतिहास। हमारे विद्यार्थी भी उन्ह खूब जानते हैँ, परन्तु अपने प्राचीन तथा आधुनिक इतिहाससे अनभिज्ञ हैँ। दूसरे धर्मवालोँका इतिहास जाननेमेँ बड़े निपुण हैँ। परन्तु अपने घरका पता नहीँ। हिन्दू-सन्तान अपने गौरवको सुनेँ और समझेँ। इसके लिये जो विशेष आवश्यकता पड़ेगी उसका वर्णन मैँ पीछे करूँगा, परन्तु यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि मुसलमानोँके समयसे हमारी गति कैसी रही है। शैव-शाक्त भाइयोँकी तरह मुसलमान भाई भी हमारे थे।

विदेशी आक्रमण

मुसलमानोँके आनेके पहले यहाँ हिन्दू राजा राज्य करते थे। आपसमेँ कुछ मनमुटाव हुआ, विप्लव आरम्भ हुआ, विदेशी आए, कुछ लूट-पाट मची, आपसका कलह बढ़ा और इस तरह हम लोगोँने अपनेको दूसरोँके हाथमेँ दे दिया। (शोककी ध्वनि) हम इस देशमेँ पतित हो गए। हमारा धर्म सन् ११०० से १७५० ई० तक, पूरे छः सौ पचास वर्षतक अवनत होता रहा। इस बीचमेँ हमारी सभ्यताकी जो दुर्गति हुई, उसे वे लोग अच्छी तरह जानते हैँ, जो इस विषयके जानकार हैँ। परन्तु पीपलके वृक्षकी तरह इसकी जड़ बहुत गहरी है और बहुत दूरतक फैली है। ऋषियोँके तपोबल तथा वायु और जलके आहारपर की गई उनकी तपस्याने इसकी रक्षा की और इसलिये यह कल्प-लता आज भी हरी है। तपस्वियोँने अपने प्राणसे इसे सीँचा है, इसलिये बाईस करोड़ हिन्दू आज भी जीवित हैँ। अनगिनत जातियाँ यहाँ आईं, हज़ारोँ हमले हुए, परन्तु परमात्माकी कृपासे यह हिन्दू धर्म आज भी जीता है। ऋषियोँ और तपस्वियोँने राज्यके विप्लवको उतना महत्त्व न दिया, राज्यके जानेका कम शोक किया, परन्तु धर्मकी रक्षा की। इस समयसे हिन्दू धर्मके ऊपर जो-जो आघात हुए, उसका वर्णन मैँ नहीँ कर सकता। हम कौन थे और क्या हो गए हैँ, इसका वर्णन मैँ नहीँ कर सकता। इसके बाद अंग्रेज़ोँका ज़माना आया। अंग्रेज़ोँके यहाँ आनेसे मैँ खुश नहीँ हूँ। यदि इस देशमेँ इस देशके ही लोग रहते तो बहुत

अच्छा था, परन्तु अंग्रेज़ोँके आनेसे पहले हिन्दू-मुसलमान दोनोँ गिर गए थे। एक दूसरेसे वैर करते थे, एक दूसरेके भाई न थे। मैँ तो मुसलमानोँके आनेसे भी खुश नहीँ हूँ, मगर वे आ गए हैँ तो उन्हेँ प्रेमके साथ रहना चाहिए, जैसे एक माताके वालक रहते हैँ। दैवकी प्रेरणासे अंग्रेज़ आए और मेरी समझसे हमारे हितके लिये ही आए। अपने स्वार्थसेँ, अपने हितके लिये उन्होँने शासन प्रारम्भ किया, एक भाषा पढ़ाई और एक क़ानूनका प्रचार किया। भिन्न-भिन्न प्रान्तोँके भाइयोँका एक दूसरेसे मिलना-जुलना प्रारम्भ हुआ। वाहर रेल-जहाज़से आने-जानेकी सुविधा हुई। इस तरह यह समझनेका अवसर हुआ कि आपसमेँ सव जगह प्रेमकी आवश्यकता है। हमने यह भी समझ लिया कि केवल अपने मतका ही पक्षपात नहीँ करना चाहिए। यदि हम पक्षपात करेँगे तो अवश्य नीचे गिरेँगे। यह क्रम सन् १८८५ ई० तक चला।

हिन्दू और मुसलमान

सन् १८८५ ई० मेँ कांग्रेसका जन्म हुआ। क़रीव १९१५ ई० तक हिन्दू-जातिके नेता उसमेँ इस भावसे काम करते थे कि हिन्दुस्तानको लाभ हो। उनके सामने आदर्श थाः—'हिन्दू नहीँ वल्कि भारतीय (इण्डियन्स नौट हिन्दूज़)।' आपको कांग्रेसकी रिपोर्टमेँ उस समयतक कोई प्रस्ताव नहीँ मिलेगा, जिसमेँ हिन्दू या मुसलमानके लिये कोई अलग वात माँगी गई हो। सव कुछ हिन्दुस्तानके लिये माँगा गया है। सन् १९१४ मेँ महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। इससे पहले मुसलमान भाई कांग्रेससे अलग रहते थे। इस वीचमेँ वे यह भी समझ गए कि कांग्रेससे अलग रहनेमेँ उनका भला नहीँ। सन् १९०७ ई० तक मुसलमान अपनेको हिन्दुस्तानका द्वाररक्षक समझते थे। कुछ भी हो, उनको कांग्रेसकी परवाह नहीँ थी। लखनऊकी कांग्रेसमेँ समझौता हुआ, उससे मुझे सन्तोष नहीँ हुआ। मेरी वुद्धिमेँ वह अधूरा और थोड़ा हुआ। परन्तु इतना अवश्य हुआ कि इसके वाद हिन्दू और मुसलमान मिलकर स्वराज्यके लिये काम करते रहे। उनमेँ भी वर्त्तमान शासनको वदलकर स्वराज्य स्थापित करनेका भाव उत्पन्न हुआ। मैँ आपको यह सव कुछ इसलिये याद दिलाता हूँ कि यदि आपको हिन्दू-सभ्यतासे ममता है, तो आपको अपना कर्त्तव्य समझ लेना चाहिए। उदाहरणके लिये वर्त्तमान दशा देखिए। सरकारने अवतक प्रजाकी वात सुनी ही नहीँ। उन्होँने हिन्दुस्तानको वह अधिकार नहीँ दिया, जो हिन्दुस्तानी चाहते हैँ। जो कुछ दिया है, वह विल्कुल अपर्य्याप्त है। हिन्दू-मुसलमानोँके समयमेँ जो देशकी दशा थी, इस समय उससे भी वुरी है (शर्म-शर्म)। इस समय हमारे देशके मुकुटमणि महात्मा गांधी जेलमेँ हैँ। मैँ अपनी जानकारी और घने परिचयसे कहता हूँ कि वे तपस्यामेँ वड़े-से-वड़े पुरुषोँका मुक़ावला करते हैँ, तीस वर्षसे पूरे व्रह्मचर्य्यका पालन करते हैँ, किसीको हानि नहीँ पहुँचाते, स्वतन्त्रताका प्रचार करते हैँ और पूजनीय महात्मा हैँ। सरकारने उनको क़ैद कर रक्खा है। सारे हिन्दू और मुसलमान मिलकर भी उन्हेँ नहीँ छुड़ा सकते। इतना आन्दोलन होते हुए भी सरकारके कानोँपर जूँ तक नहीँ रेँगती। हिन्दुओँका कोई गौरव नहीँ है, मुसलमानोँका कोई गौरव नहीँ है। इस अत्याचारसे हमारा हृदय सन्तप्त है, हम जल रहे हैँ। सरकार विना विचार किए अत्याचार कर रही है, करपर कर लगाती जा रही है। इन दो-तीन वर्षोँमेँ साठ करोड़से ऊपर कर लगा चुकी है। व्यापारका नाश हो गया है। अवस्था यह है कि हमारे सहस्रोँ देशवासियोँको भरपेट भोजन पाना कठिन हो रहा है। वहुतोँको रोटी नहीँ मिलती, हमारी सामर्थ्य नहीँ कि हम इस दशाको सुधार सकेँ। महात्मा गान्धीके सत्याग्रहकी घोषणाके पहले सरकार कुछ सुनती थी, कुछ दवाव मानती थी, कुछ गौरव मानती थी। परन्तु जवसे उन्होँने कहा कि अत्याचार सह लो, अहिंसा-व्रतका पालन करो, हाथ न उठाओ और पूरे अहिंसावादी वन जाओ, जवसे इस

अहिंसा घोषकी पुकार हुई, तबसे सरकारका दिमाग़ बदल गया, अंग्रेज़ी अफ़सरोंका दिल बदल गया, उनके भाव बदल गए और उन्होंने ख़ूब अत्याचार किए। उनपर कोई दबाव नहीं रहा। उनको कोई भय नहीं रहा। हमारी राजनीतिक अवस्था कैसी शोचनीय हो गई है? हमारे मुसलमान भाइयोंकी क्या दशा है? हम बाईस करोड़ हिन्दुओंकी क्या स्थिति है? ये सब विचारणीय विषय हैं। आपको अपनी स्थितिका ठीक ज्ञान प्राप्त करके अपनी रक्षाके उपाय सोचने चाहिएँ। सच मानो, जबतक सङ्कोचके साथ आप हिचकोगे तबतक काम नहीं चलेगा, कायरताका त्याग करना होगा। अत्याचारको सहते रहनेसे काम नहीं होगा।

गीता और ग्रन्थ साहब

सन् १९०६ ई० में, जब पूर्वीय बङ्गालमें बङ्ग-भङ्ग हुआ तो कुछ अंग्रेज़ हिन्दू-मुसलमानोंको लड़ाना चाहते थे। कहीं-कहीं मुसलमान हिन्दुओंसे इन स्थानोंमें अधिक हैं। कुछ हमारे विद्रोही मुसलमान उसमें शरीक हो गए। भले आदमियोंने नहीं बल्कि नङ्गे और लुच्चोंने बहकावेमें आकर हिन्दुओंपर चोट की। हमारी कितनी ही बहू-बेटियोंको अपनी लाजकी रक्षाके लिये तालाबोंमें डूबकर अपना सतीत्व बचाना पड़ा (शर्म-शर्म)। हम लोगोंने यह भी सह लिया। हम लहूका घूँट पीकर रह गए। इसके उपरान्त सन् १९१४ ई० में जब लड़ाई छिड़ी तो सीमाप्रान्तमें कुछ गुण्डोंने—मैं भले मुसलमानोंको नहीं कहता,—कुछ लुच्चोंने एक-एक हिन्दूके घरपर निशान लगाकर उनके घरोंको लूटा। जहाँ यह सब हुआ, मुक़दमे हुए, सजाएँ भी हुईं, वहाँ देशभक्त हिन्दू नेताओंने फिर विचारकर कहा कि मुसलमानोंसे वैर न करो, सह जाओ, बर्दाश्त कर जाओ, नहीं तो बड़ा अनर्थ होगा, बड़ी हानि होगी, देशको धक्का पहुँचेगा। इसके बाद महात्मा गान्धीके उपदेशसे ख़िलाफ़तके मामलेमें हिन्दू नेताओंने कह दिया कि उनके धर्मपर आपत्ति आई है, इसलिये मुसलमानोंका साथ देना चाहिए। हम लोग दासताके शत्रु हैं। न्याययुक्त प्रबन्धके पक्षपाती हैं। हमने समझा कि तुर्कीमें मुसलमानोंका राज्य होना चाहिए। जब एक भाईपर आपत्ति हो, तो दूसरा खड़ा रहे, यह नहीं होना चाहिए। एक देशमें विप्लव होनेके समय एक स्वतन्त्र जाति या देशमें दूसरा आवे तो यह सह्य नहीं हो सकता। किसी विशेष अवसरपर ही ऐसा हो सकता है। रोगमें ही कड़वी ओषधि खाई जाती है। साधारणतया नियम यही है कि अपने घरमें अपना राज। तुर्कीमें फ़्रान्सीसी, अंग्रेज़ या अमेरिकावालोंका राज्य नहीं होना चाहिए। हमारी जातिकी नस-नसमें वेदान्तके भाव भरे हैं।

“प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाऽप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति ॥”

को हमारा बच्चा-बच्चा जानता है। यही समझकर हिन्दुओंने मुसलमानोंकी सहायता की और उन्होंने ठान लिया कि उनके होते हुए तुर्कीकी स्वतन्त्रतापर अत्याचार नहीं हो सकता। तुर्की नष्टप्राय नहीं हो सकती। जो समझदार मुसलमान हैं, वे हिन्दुओंकी इस सहायताको मानते हैं, और इसलिये वे हिन्दुओंसे लड़ाई नहीं करना चाहते; परन्तु कुछ लोग ऐसे छोटे भावके हैं, क्षुद्र हैं तथा गिरे हुए आचरणके हैं कि उन्हें लड़ना ही अच्छा लगता है। थोड़े ही ऐसे हैं, सब ऐसे नहीं हैं (हँसी)। सन् १९२० ई० में मुसलमानोंने जो हिन्दुओंपर अत्याचार किए, उसके कारण समझदार मुसलमानोंको और हिन्दुओंको बड़ी वेदना हुई। हम ऐसे कमज़ोर हो गए हैं कि जहाँ मुसलमान चाहते हैं वहीं दबा बैठते हैं। पञ्जाबके मुज़फ़्फ़रगढ़में तो संख्या कम थी, पर वहाँ भी मुसलमानोंने पीटा, इसके कारण देशमें बड़ा दुःख हुआ। वे समझानेसे मान गए। परन्तु यह ठीक नहीं है कि हमारे मन्दिर तोड़ दिए जायँ, बहू-बेटियोंपर अत्याचार हो और हमारी सहन-शीलता बनी ही रहे। मगर हिन्दू इसको भी कड़वे काढ़ेकी

तरह पी गए। यही सोचा कि सहसा क्षणिक उपद्रवको देखकर वैर नहीँ करना चाहिए। कुछ अपराधियोँने क्षणिक उपद्रव किया है, इसके लिये परस्पर सद्भाव नहीँ तोड़ना चाहिए। यही ख़याल था कि किसी तरह हिन्दू-मुस्लिम एकतामेँ भेद न पड़े। मगर शोक! फिर उपद्रव हुआ। अमृसरकी कथा तो ताज़ी है, पर ख़ैर छोटी है। मुल्तानमेँ जो उपद्रव हुआ, वह बहुत बुरा था। कितनी स्त्रियोँके आभूषण ज़बरदस्ती खीँचे गए और मन्दिर तोड़े गए। हकीम अजमल ख़ाँ और बाबू राजेन्द्रप्रसाद भी वह देखने गए थे। उन्होँने देखा कि मन्दिर तोड़े गए हैँ, जली पुस्तकेँ पड़ी हैँ, गुरुग्रन्थ साहब और गीताकी धर्म-पुस्तकेँ जला दी गई हैँ। इस तरहका अत्याचार वहाँपर हुआ।

स्त्रियोँकी लाज रक्खो।

हमारे मुसलमान नेताओँने अपील की है कि हिन्दू-मुसलमान मिलकर ईद मनावेँ और इसमेँ शक नहीँ कि उसका असर हुआ, लेकिन दुःखकी बात है कि फिर भी उपद्रव हुआ। इस समय चारोँ ओर अनर्थ हो रहा है, हिन्दू-मुसलमानोँके परस्पर सम्बन्ध प्रीतिके नहीँ हैँ। जो उपद्रव दस वर्ष पूर्व तुर्कीकी सन्धिसे पहले सुननेमेँ नहीँ आते थे, वे अब रोज़-रोज़ देखनेमेँ आ रहे हैँ। अवस्था यह है कि पाँच वर्ष पहले हम जिस निर्भयतासे रहते थे, आज वह नहीँ है। स्त्रियाँ जिस निर्भयतासे निकलती थीँ, आज वह स्वतन्त्रता नहीँ दिखाई देती। अमृतसरमेँ आज स्त्रियोँको यह कहा जाता है कि होशियार होकर निकलो, कोई उपद्रव न हो जाय। मेलोँमेँ, उत्सवोँमेँ, त्यौहारोँपर उनका बाहर निकलना मुश्किल हो रहा है, यह दुरवस्था है! (शर्म-शर्म)। अभी पानीपतसे दो पुरुष आए हैँ। वहाँ भी उपद्रव हो गया है। जगन्नाथजीका मन्दिर तोड़ दिया गया है। अजमेरका हाल आपने सुना ही है। वहाँ एक मन्दिरमेँ आग लगा दी गई। अब ऐसी दशामेँ हम लोगोँका, जो उनसे प्रेम करते हैँ, जो हिन्दू हैँ अथवा आर्य्य हैँ, उनके प्रति हमारा कुछ सामुदायिक कर्त्तव्य है या नहीँ? हमको ऐसी सङ्घशक्ति बढ़ानी चाहिए कि सरकारपर भी असर पड़े और मुसलमानोँपर भी। आपके सामने यह प्रश्न है कि हिन्दू-सन्तान, आर्य्य-सन्तान ऐसे सङ्गठित हो जायँ कि फिर ऐसे बखेड़े ही न होँ, और ऐसी बेइज़्ज़ती न सहनी पड़े। जिस जातिमेँ राम, कृष्ण, पाण्डव, अशोक जैसे शूरवीर हुए, जिसमेँ इतने बड़े-बड़े राजे-महाराजे हुए, उस जातिकी यह अवस्था हो गई है। जिस देशमेँ क्षत्रिय जातिकी सजी हुई सेना रहती थी, जहाँ धर्मके उपदेष्टा ज्ञानी ब्राह्मण थे, उस जातिका ऐसा पतन हो, वह ऐसी गिर जाय कि मुट्ठीभर आदमी विदेशसे आकर उसपर शासन करेँ और उनका अनादर करेँ (शर्म-शर्म) और मुसलमानोँमेँसे किसीकी हिम्मत हो कि अबलाओँ और मन्दिरोँपर हमला करे? यह डूब मरनेकी बात है। या तो आप मर जायँ या ऐसा कर देँ कि फिर ऐसा न होने पावे। अबला या पुरुषकी रक्षा बिना शक्तिके नहीँ होती। शक्ति पैदा करो। एक अंग्रेज़ लड़कीको, शायद उसका नाम 'एलिस' था, अफ़गान उठा ले गए, तो अंग्रेज़ोमेँ, सारे बृटिश साम्राज्यमेँ एक क्रान्ति मच गई। "लड़कीको दुष्टोँके हाथसे छुड़ाना है" यह ध्वनि हरएक अंग्रेज़के मुँहसे निकलने लगी। "अंग्रेज़ लड़कीके मुख-मण्डलपर जो एक ज्योतिका मण्डल है, वह अंग्रेज़ जातिकी शक्तिका सूचक है"—किसीकी क्या ताक़त कि बिना सिर काटे जानेके डरके, कोई एक अंग्रेज़ लड़कीकी ओर देख तो ले। यही शक्ति मुसलमानोँकी रक्षा करती थी, और यही शक्ति हमारी रक्षा करती थी। जबतक फिर वही शक्ति क़ायम न हो, जबतक आप फिर वैसी ही अवस्था न कर देँ, तबतक अपनी इज्ज़त नहीँ बचेगी।

आप गली-गली हिन्दू मन्दिरोँकी रखवाली नहीँ कर सकते। आपको हिन्दू जातिकी शक्तिको जगाना

है कि जिससे कोई आपपर हाथ न उठावे, उस शक्तिको जगाना है कि जिससे आप पृथ्वीपर ऊँचा माथा करके इज्ज़तके साथ चल सकेँ। इसलिये हिन्दू-सङ्घटनकी आवश्यकता है। जो माईके लाल हैँ, जो सोच सकते हैँ, जिनका दिमाग़ विद्यासे भरा है, जिनका दिमाग़ अच्छा है, वे इकट्ठा होँ; जैसे प्रेमसे वे कांग्रेसमेँ जाते हैँ, उसी प्रेमसे हिन्दू-महासभामेँ एकत्र होकर विचार करेँ कि हिन्दू जातिका गौरव, हिन्दू जातिकी प्रतिष्ठा, किस प्रकार स्थापित कर सकेँगे। इस समय यही काम आपके सामने है।

इस दशामेँ प्रश्न यह उठेगा कि वे कौनसे उपाय हैँ जिनके अवलम्बनसे हमारा कल्याण हो सकता है? इस समय उनपर विचार होना चाहिए। मेरे विचारसे पहली बात यह है कि रोगकी अवस्थामेँ सबका विचार रोगके दूर करनेका होना चाहिए, परन्तु ओषधि भोजन नहीँ है। रोगकी अवस्थामेँ उसको दूर करनेके लिये पहले उसकी अवस्थाको समझ लेँ, फिर उसके अनुकूल ओषधि दे देँ, जिससे उस रोगका नाश हो जाय। स्थायी सुधार, शाश्वत, सर्वकालीन है, सामयिक नहीँ। इसका कारण क्या है? हमेँ समझना चाहिए कि जो बात हमारे सर्वोत्तम हितके विरुद्ध है, उसे हमेँ नहीँ करना चाहिए। इसमेँ यह पहले याद रखना चाहिए कि हिन्दुस्तान हमारा देश है, हिन्दू जातिका दूसरा कोई देश नहीँ। दूसरे लोग दूसरे देशमेँ भी हैँ, किन्तु हिन्दू जातिका यही एक देश है। उनका सर्वस्व यही है। यही उनकी मूर्त्ति और मन्दिरोँका स्थान है। इसी देशमेँ शान्ति, सुख और बलका स्थापित करना उनका कर्त्तव्य है। परन्तु बल और प्रभाव भी तभी होगा जब देशमेँ पारस्परिक मेल होगा। हिन्दू और मुसलमानोँमेँ लड़ाई खड़ी न हो, किन्तु सदा सुख, प्रीति और शान्ति बनी रहे। कोई ऐसा काम हम न करेँ जो अपने जातीय उद्देश्यके विरुद्ध पड़े। मुसलमानोँके अतिरिक्त इस देशमेँ पारसी यहूदी, ईसाई या दूसरे भाई भी हैँ। कोई काम किसीको ऐसा नहीँ करना चाहिए जिससे राष्ट्रीय आन्दोलनम विरोध आ पड़े। हिन्दू और मुसलमान अपना स्वार्थ करना चाहेँ तो सुख और शान्ति नहीँ हो सकती। हमको पहले मनका मैल साफ़ कर लेना चाहिए। बीती बातोँको मनमेँ भी मत लाओ। स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिये इसके विपरीत प्रीति करनी चाहिए।

एकके बदले दो

लेकिन यहाँ हमको यह भी सोचना है कि आख़िर मेल क्योँ नहीँ है? यह तो हर आदमी जानता है कि प्रीति बराबरवालोँमेँ होती है। कमज़ोर या शहज़ोरमेँ प्रीति नहीँ होती और यह कहते हमारे हृदयको दुःख होता है, वेदना होती है कि इस समय हमारे हिन्दू भाई समाजकी रक्षा करनेके लिये कमज़ोर हो गए हैँ। मान, प्रतिष्ठा और गौरवकी रक्षाके लिये प्राण अर्पण करना अच्छा मालूम होता है। हमारे अपमानके कारण मुसलमान नहीँ हैँ। हमारी दुर्बलता ही इसका कारण है। हमको अपनी दुर्बलता दूर करनी चाहिए। जिस दिन मुसलमानोँको—सबको नहीँ कहता, हज़ारोँ शरीफ़, अच्छे और भलेमानुस हैँ—ख़राब तबीयतके मुसलमानोँको यह मालूम होगा कि उनको एक प्रहारके बदले हिन्दू दो देँगे, उस दिन मेल पक्का होगा (हँसी)। लेकिन यह आप देशके लिये, धर्मके लिये और राष्ट्रीय कर्त्तव्यके लिये करेँ। मैँ धर्मसे, शपथपूर्वक, गङ्गाके किनारे, विश्वनाथपुरीमेँ इस सभाके सामने कहता हूँ कि मेरे हृदयमेँ चावलभर भाव नहीँ कि चोट पहुँचाऊँ। हम प्रभुत्व भी नहीँ चाहते, न हम किसीके ऊपर अधिकार ही चाहते हैँ। चाहते होँ तो हमेँ परमात्मा दण्ड दे। परन्तु यह मैँ चाहता हूँ कि मैँ मर जाऊँ, मेरे भाई-बन्धु मर जायँ, यदि हम इज़्ज़त, मान और धर्मकी रक्षा नहीँ कर सकते। (करतल-ध्वनि)। यह अपना कर्त्तव्य है। यहाँ पारसी, यहूदी, ईसाई सब हैँ तो आप सबसे मिलकर प्रेम

रखते हुए ऐसा काम करें जिससे दुर्बलता मिट जाय। इसके लिये मुसलमान ज़िम्मेदार नहीं हैं, हम और आप हैं। इसका कारण यह है कि हम लोग अपने कर्त्तव्य धर्मको भुला देते हैं। जातीय धर्मको सामने रखकर हिन्दू और मुसलमान भाई जिन कामोंमें मिलकर काम कर सकते हैं, करें। शहर नगरकी रक्षामें नागरिक दलोंमें जायँ, सब मिलकर एक साथ काम करें। वहाँ भेद-भाव नहीं आना चाहिए। सबको मिलकर काम करना चाहिए। मुसलमानोंके साथ यावज्जीवन मिलकर काम करें, शर्म न खाएँ। सर्वहित-साधनके लिये मिलकर नेताओंसे कहें, सलाह करें और मिलकर उपाय सोचें। ऐसा न करेंगे तो देशका हितसाधन नहीं कर सकते। जहाँतक हो सके देशका काम साथ-साथ करें। जब कहीं हिन्दुओंद्वारा अत्याचार होते मैंने देखा है तो मुझे उसका दुःख हुआ है। ऐसा करना ठीक नहीं है। बिहारमें जो कुछ हुआ था, उससे मुझे बड़ा सन्ताप हुआ। कटारपुरमें जो अत्याचार हुआ, उससे बड़ा दुःख है। वह ठीक नहीं था। मेरे रोम-रोमको दुःख हुआ। मैंने उसे घृणित समझा, उसकी निन्दा की। आप ऐसा करते हो तो कायरपन करते हो। यदि कोई आदमी निर्दोष है और कोई हिन्दू उसपर अत्याचार करता है और आप मना नहीं करते तो आप बुरे हो। यदि मुसलमानको अत्याचार करनेसे नहीं रोकते तो यह कायरपन है। सब भाई मिलकर जहाँ कहीं फ़साद हो उसे रोकनेका यत्न करो। किन्तु यह संयोग असम्भव है। ज्वरके रोकनेका उपाय सामयिक औषधि है, किन्तु शरीरमें बल न रहेगा तो रोग रोज़-रोज़ लगता रहेगा। इसी लिये पहले बल सञ्चार करनेकी आवश्यकता है। आप यह सब करें, परन्तु उस विचारसे जैसा पहले कहा गया है कि हमारे धर्मकी रीति निराली है—धर्मके आधारपर ही यह सब करें। मैं जातिके ब्राह्मण-क्षत्रियोंके पक्षपातसे नहीं कहता, किन्तु हिन्दू-जाति, आर्य्य-जातिको कहता हूँ। मैं जातिके भावसे ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालतकको भाई समझता हूँ। मैं सबको प्रणाम करता हूँ। यदि चाण्डालका बच्चा सामने हो और मेरे हृदयमें उसके लिये दयाका भाव न हो तो परमात्मा उसके लिये मुझे क्षमा करें। जातिके पक्षसे तथा जातिकी ममतासे हमें सब प्यारे हैं। यहाँ वर्णधर्मकी चर्चा कर देता हूँ कि इस वर्णधर्मकी पुरानी इमारतको कितने काममें ला सकते हैं। यदि इसको शास्त्रसे नहीं समझ लेते तो उन दरवाज़ों, खिड़कियों और फाटकोंके खोलनेका यत्न साहसमात्र है, और परिश्रम व्यर्थ है। आपसमें कलह बढ़ेगा, रागद्वेषकी वृद्धि होगी। हमारे चार वर्ण हुए हैं। पहले विशेषकर आश्रमपर ध्यान दिलाता हूँ। यदि आप इसको समझ लें और प्रत्येक स्त्री-पुरुष यह समझ ले कि इनका पालन करना हमारा कर्त्तव्य है तो हिन्दू जातिमें एक नवजीवनका बीज उत्पन्न हो जाय, बड़ा कल्याण हो। इसके बिगड़नेसे आज क्या होता है, आप देखते हैं। छओं शास्त्र पढ़ लिए तो क्या हुआ, एम्० एस्-सी० और डी० एस्-सी० की डिग्री ले ली तो क्या हुआ? बड़ी-बड़ी विद्याएँ पढ़ लेनेसे क्या हुआ? शरीरमें बल नहीं, क्या सन्तान पैदा करेंगे, क्या वृद्धि होगी, कैसे वंश चलेगा? "एकोऽहं बहुस्याम" का मन्त्र कैसे सधेगा? शरीरकी रक्षा परम धर्म है, इसलिये ऋषियोंने क्या सोचा है? उन्होंने कहा है कि जितने हैं उन सबके लिये दस धर्म हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

क्या अच्छा धर्म है। धी, विद्या, अक्रोध, सत्य, शौच, इन्द्रियनिग्रह, दम और क्षमा इनपर सब चलें। विद्या पढ़ो, सबको पढ़ाओ। राजा भोजके राज्यमें धीवर भी संस्कृत जानते थे और पण्डितोंकी ग़लती शोधते थे। सबको विद्या पढ़ाना हमारा धर्म है। ऋषियोंने पाँच वर्षमें अक्षरारम्भका क्रम दिया है, परन्तु यहाँ तो और ही दशा है। सरकार सुनती नहीं। प्रारम्भिक शिक्षाके लिये कहते-कहते मैं भी

बैठ गया। कितनी बार कौन्सिलोंमें भी कहा। हमारा प्यारा भाई गोपाल कृष्ण गोखले कहते-कहते चला गया, पर 'प्राइमरी एजुकेशन बिल' का आजतक कुछ भी नहीं हुआ। सत्रह वर्षमें स्वतन्त्र होकर रूसने शिक्षाका समुद्र बहा दिया, परन्तु यहाँ कुछ नहीं। परन्तु यह तो इस तरह हो सकता है कि घर-घरमें विद्याका प्रचार करें। "न च मातृसमो गुरुः" पितासे दसगुना दर्जा माताका है। इतना उन्हें पढ़ा दो कि बच्चोंको वह अपनी मातृभाषामें गुणा-भाग सिखा सकें। सौ श्लोक अथवा दोहोंके रत्नोंकी माला पहनाकर स्कूलमें भेजें कि गुरु कह दें कि यह किस बड़भागिनीकी कोखका बच्चा है? लेकिन वे कहेंगे कि हमारे ऊपर यह भार क्यों डालते हो? हम कहाँसे शास्त्रकी शिक्षा दें? रुपया है नहीं, कर वढ़ता चला जा रहा है, इसलिये रुपया कहाँसे आवे। लेकिन जहाँ यह गङ्गाका प्रवाह वहा चला जा रहा है, वहाँ कुएँ खोदनेके लिये रुपया क्या होगा? चौबीस करोड़ भारतीयोंमेंसे वारह करोड़ स्त्रियाँ हैं। हिन्दी पढ़ना तो तीन दिनसे आठ महीनेमें आता है। यदि एक करोड़ भी पढ़ लें तो विद्याका प्रचार हो सकता है। दूसरी वात यह है कि दूसरे भाई मुहल्ले-मुहल्लेमें पाठशालाएँ खोल दें। वम्बईके एक चीफ़ जस्टिसने लिखा था कि तीन महीनेमें सारी हिन्दू महिलाएँ पढ़ जायँगी। मुहल्ले-मुहल्लेमें पाठशालाएँ खोल दो। जितने पढ़े लिखे हैं, वे यह व्रत ले लें। जो लोग एण्ट्रेन्सतक पढ़े हुए हैं, वी० ए० तक पढ़े हुए हैं वे 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' का व्रत ले लें। एक तो यह काम है, दूसरा ब्रह्मचर्य्य और व्यायाम। पाँच वर्षमें संस्कारोंका उद्धार करें। संस्कार क्या हैं, यह भी आज आर्य्य-सन्तान नहीं जानती। जातकर्म संस्कार दूसरी जातियोंमें नहीं हैं। हममें यह है कि स्त्री-पुरुष समागममें उच्च सन्तानकी आकाङ्क्षा करें। प्राचीन महापुरुष राम और कृष्ण, आधुनिक समयमें दादा भाई नौरोजी, गोखले और तिलकके समान सन्तान हों। यह संस्कार मनुष्योंको पशुओंसे अलग करता है। सात वर्षमें यज्ञोपवीत करके विश्वविद्यालय भेज दें। अनेक विश्वविद्यालय बनवा दें। अभी सौ हिन्दू विश्वविद्यालयोंकी आवश्यकता है। अभीतक तो एक ही हिन्दू विश्वविद्यालय है। ज़िले-ज़िलेमें विश्वविद्यालय खोलना है।

ब्रह्मचर्य्य और व्यायाम

हमारे देशमें यह रीति चली आई है कि ब्रह्मचर्य्यकी दशामें केश नहीं कटवाते। ऋषिमुनि जटा और दाढ़ी दोनों रखते थे, इसमें शक्ति होती है। अब तो कर्ज़न फ़ैशन चल गया है। रोज़ छीलो (हँसी)। गुरु गोविन्दसिंहने पाँच ककार रखनेका उपदेश दिया है। आप जानते हैं कि गुरु गोविन्दने महाभारत सुनकर शक्तिकी यह प्रार्थना की है कि "देहु शिवा वर मो यहै निज धर्मनसे कबहुँ न टरौं…………।" जैसे अर्जुनको भगवान्‌ने कहा, वैसे गुरु गोविन्दसिंह शक्ति-स्तोत्र पढ़कर लड़ने गए। उन्होंने कहा है कि केश मत काटो, केश काटनेसे ही आज हम दुबले हो गए हैं, शक्तिहीन हो गए हैं। ग्रीसमें 'सैम्सन हेब्रू' अपना केश नहीं काटता था, उसमें बड़ी शक्ति थी। उसके बलका पता नहीं लगता था। वह किसी लड़ाईमें नहीं हारता था। मन्त्रियोंसे कहा गया कि उसके बलका पता लगाओ। एक वेश्या थी, उसने इस कामका बीड़ा उठाया। कुछ दिनोंतक उसकी विश्वासपात्र बनी रही और एक दिन सोते समय उसके केश काटकर चली आई। उसी दिनसे उसकी शक्ति घट गई। हमारे सिक्ख भाई उसको मानते हैं और इसीसे शक्तिमान् होते हैं। वालके बढ़ानेसे पवित्रता बढ़ती है, बुद्धि वढ़ती है और वालके बढ़नेसे शक्ति वढ़ती है, ऐसा कहा भी है। पण्डितका काम है कि भूलसे ब्रह्मचर्य्य टूटे तो प्रायश्चित्त करे। ब्रह्मचारियोंमें पूज्य शिरोमणि हुए हैं—

भीष्म और हनूमान्।

भीष्मकी मूर्त्ति भूल गई है। जो उनका स्मरण करते हैं, उनकी रोज़ शक्ति बढ़ती है।

मैं रोज़ प्रातःकाल तर्पण करता हूँ और उनका स्मरण करता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि देशमें दस-पाँच अब भी हैं, जो याद करते हैं कि भीष्मका शरीर उसी दिन छूटा, जिस दिन उन्होंने चाहा था। वे तर्पणमें अब भी याद किए जाते हैं। दूसरे ब्रह्मचारी महावीर हैं, जो मनके समान वेगवाले और शक्तिशाली हैं। मनुके ऐसे वाक्य हैं कि वे वीर हैं, विद्यावालोंमें बलिष्ठ हैं, मूर्ख नहीं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आज ऐसे लोगोंका दर्शन गली-गली हो। महल्ले-महल्लेमें हनूमानकी मूर्त्ति स्थापित करके लोगोंको दिखलाई जाय। जगह-जगह अखाड़े हों जहाँ ये मूर्त्तियाँ हों। ब्रह्मचारी विद्वान् हों, मूर्ख नहीं। गृहस्थका अधिकार उसीको है जो साधु ब्रह्मचारी है "ब्रह्मचर्य्यः परो धर्मः"—सब होते हुए अर्जुनने चित्रगुप्तको इसी ब्रह्मचर्य्यके प्रभावसे पछाड़ा। भगवान्ने कहा है, अर्जुन! "ब्रह्मचर्य्यः परो धर्मो ब्रह्मचर्य्यः परो बलं।" जब मेघनादको मारनेके लिये रामचन्द्रको चिन्ता हुई कि कौन मारेगा तो उस लक्ष्मणने मारा जिनकी सीताजीके चरणपर दृष्टि पड़ी थी, परन्तु मुखकी तरफ़ जिन लक्ष्मणने नहीं देखा था। ब्रह्मचर्य्य और आर्य्य जातिकी लाज आपके हाथ है। अखाड़े खोल दो, कसरत करो, ब्रह्मचर्य्यका पालन करो, कुश्ती लड़ो। जो बालक कसरत न कर सके, किसी कारणसे डाक्टर कहे तो माफ़ कर दो, मगर इसका पालन सब करो। ब्रह्मचर्य्य और व्यायामसे पहले आश्रमको सुधारो। हमारी गोमाताकी सन्तानें दो होती हैं। एक तो वह होती है, जिसे हमारे किसान भाई स्वार्थके लिये कूँचकर जोतते हैं। दूसरा माईका लाल, जो मुझे प्यारा है (हंसी) ये बधिया और साँड़ हैं। जो साँड है, उसको छेड़ते डरते हैं कि कहीं मार न दे। बधिया है उसकी ज्योति मन्द पड़ गई, साधुता आ गई, जीवनहीन हो गया, अब दम बाक़ी नहीं, बुढ़ापा है। उससे डरते ही नहीं। पर सङ्कटके समयमें वही (साँड़) ज़ोर करता है, उसीको याद करते हैं। गाड़ीमें एक नटवा लगा लेते हैं, जहाँ गाड़ी अड़ी, और उसने बैठकर खींचा, वहीं पार है (हँसी)। यही प्रजा उत्पन्न करता है, इसीसे वृद्धि होती है। यह है ब्रह्मचर्य्यकी महिमा और यह है ब्रह्मचर्य्यका बल। सबसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि हिन्दू धर्मकी रक्षाके लिये सबसे ब्रह्मचर्य्यका पालन कराओ, यही मेरी भिक्षा है।

पहले धार्मिक शिक्षा

इसमें विद्याका अभ्यास मुख्य है।

अन्त्यजा अपि मां प्राप्य मोदन्ते ग्रहराक्षसैः।
सा विद्या केन मीयेत यस्याः कोऽपि समो न हि॥

चाण्डाल भी हो पर पढ़ जाय। इसी विद्याके बलसे अंग्रेज़ आपपर राज करते हैं। देश आपका, सम्पत्ति उनकी। रेलकी कम्पनियोंसे, तारकी कम्पनियोंसे, और ऊँची नौकरियोंसे लाभ उनका। जिसका लोहा उसका देश। वे ग्रह और नक्षत्रोंसे टक्कर लगाते हैं, तो भी वे आपसे ब्रह्मविद्या पढ़ते हैं। "सूरदासकी कारी कमरिया चढ़ै न दूजो रङ्ग" अभी सम्मान बाक़ी है, सर्वशिरोमणि ज्ञान शेष है। मगर नहीं, सब तरहकी विद्या पढ़ो और विदेशकी विद्या भी पढ़ो। चार वर्ष हुए, जापानके बाईस सौ विद्यार्थी दूसरे देशोंमें पढ़ते थे—लेकिन होता क्या है कि धर्मकी रक्षाके साथ। हमारे विद्यार्थी भी जाने तो लगे हैं, परन्तु धर्मकी रक्षाके साधन नहीं हैं। कितने जाते भी हैं और उनको धर्ममें श्रद्धा भी है, परन्तु सामाजिक कठिनाइयाँ हैं। हमारे लड़के रेलमें सन्ध्या कर लें। महाभारतमें संग्राममें भी लोगोंने सन्ध्याका उल्लङ्घन नहीं किया। चले रेलमें सही, परन्तु आचारकी रक्षाके साथ। मैं तो रेलमें चलता हूँ और सन्ध्याका समय आनेपर सन्ध्या कर लेता हूँ, पासमें कोई बैठा होता है तो भी समयका उल्लङ्घन नहीं होने देता। विदेश जायँ, परन्तु आचारकी रक्षा करें; इसीलिये मैं विद्याके लिये प्रार्थना करता हूँ। दूसरी बात यह है कि संस्कार करके, जनेऊ करके, बालकको

पाठशालामेँ भेज देँ। यहाँ एक बात और है, संस्कारमेँ बहुत अधिक धन व्यय न करेँ। भाई-बिरादरीमेँ बहुत रुपया न लगावेँ। जैसे हो सके, चन्देसे पैसा इकट्ठा करके, मदद लेकर समयसे बालकको पाठशालामेँ भेज देँ तो पहले तो इसका सुधार है। जब पच्चीस वर्षतकका इस प्रकार अभ्यास करके तगड़ा और उत्कट ब्रह्मचारी निकलेगा तो मातापिता उसके मुखकी छवि देखकर मुग्ध होँगे। कल पण्डित-मण्डलीने कहा कि पच्चीस वर्षतक ब्रह्मचर्य्य उत्तम है। उसकी सन्तान कृष्णकी सन्तानकी तरह होगी। कृष्णने अपने अनुरूप अनेक सन्तानेँ उत्पन्न कीँ। छोटी अवस्थामेँ विवाह किया जायगा, बारह-तेरह वर्षमेँ विवाह कर दिया जाय, यह बहुत बुरा हुआ है। सन्तान इससे दुर्बल हो गई और स्त्री-पुरुष निर्जीव और निस्तेज हो गए। आज पच्चीस वर्ष और सोलह वर्षके माँ-बापकी सन्तानेँ देखनेमेँ कहाँ आती हैँ, सब निर्बल हो रहे हैँ। सब कोई यह नियम कर दो कि पच्चीस वर्षमेँ विवाह हो।

लड़कियोँका विवाह

लड़कीके विषयमेँ तो यह क़ानून है कि सात वर्षसे पहले तो ब्याह हो ही नहीँ। ऋतुदर्शनके पहले ब्याह कर देना चाहिए, ऐसा मत है। गुणवान् तथा अनुरूप वर न मिलनेसे पन्द्रह वर्षकी अवस्थातकका कोई दोष नहीँ होता, पन्द्रह वर्षतक रोक सकते हैँ। इस रीतिपर पन्द्रह वर्षतक विवाह न करनेकी पद्धति है। नियम कर दो कि ऐसा विवाह न हो। एक और बात, ख़र्चा बहुत होता है। कल सभामेँ यह कहा गया कि ख़र्चा कम करेँ। लेकिन सज्जनो! इसके लिये समाजकी आवश्यकता है। शक्तिदल बना लो, जो ऐसे प्रस्तावोँको पास कराके सङ्कल्प ले और लोगोँसे उसपर आचरण करावे। कलसे आपके देशकी दशा बदल जायगी। अब दो बातोँपर आपका ध्यान दिलाऊँगा। यदि गृहस्थ आश्रम सुधार लिया अर्थात् गृहस्थमेँ भी ब्रह्मचारी बने रहे—ऋतुकालमेँ स्त्रीगामी बने रहे, "प्रजायै गृहमेधिनाम्" ऐसा सिद्धान्त है; विषयमेँ अपनेको खोना वैदिक धर्मके विरुद्ध है—ऐसा करेँगे तो बलवान् होँगे तथा आयु हाथ लगेगी।

दहेज की प्रथा

इसके साथ दो-तीन बातोँका निर्णय करना ज़रूरी है। हिन्दू जातिके लिये ब्याहमेँ जो चार हज़ार, छः हज़ार, दस हज़ारके क़रारकी रीति है, वह बहुत बुरी है। इसको निकाल दो और वेशभूषा, शान-शौक़तमेँ जो ख़र्च करते हो, वह भोजनमेँ लगाओ—भोजनमेँ अधिक ख़र्च करो, खूब खाओ, फ़ैशनमेँ कम ख़र्च करो। मोटा कपड़ा, खद्दर अथवा देशका कपड़ा पहनो। बिना त्यागके बल नहीँ और बिना त्यागके सुख नहीँ। यदि आपने इतना कर लिया तो मुझे विश्वास है कि समाजकी अवस्था बदल जायगी, किन्तु दो या तीन बातेँ और हैँ।

बेचारे रामदाससे घृणा

एक अछूत जातिका विषय है। हमारी इस हिन्दू-महासभाका अर्थ क्या है? हिन्दूमात्रकी महासभा, ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल-श्वपचतककी सभा। यदि हिन्दू-महासभाका यही अर्थ है तो हिन्दूमात्रकी ममता किसपर है? यदि कोई जाकर कह दे कि एक चाण्डालकी चोटियाँ ज़बरदस्ती या भुलावेसे किसी विधर्मीने काट ली तो कोई है यहाँ ऐसा, जिसे दुःख न हो? कोई हो तो बोल दे (कोई नहीँकी ध्वनि)। तो दुःख क्योँ होता है? क्या ममता है? आपसे कोई स्पर्श नहीँ, साथ नहीँ और बात नहीँ। परन्तु नहीँ, एक सम्बन्ध है कि वह चोटी रखता है, सबेरे उठकर रामनाम लेता है, गङ्गामेँ स्नान करता है, मल सफ़ा करके आता है, स्नान करके भोजन करता है, रामनामसे इतना प्रेम करता है, कृष्णका नाम लेता है, बलराम और यशोदाको स्मरण करता है, एकादशी आई तो कहता है, "भैया, आज कुछ फल-फूल मिलि जाइत त खाइ लेइत"। सत्यनारायणकी कथा चार पैसा जोड़कर

सुन लेता है, कभी शिवजीका मन्दिर बनवा देता है, परन्तु पूजा नहीँ करता न कर ही सकता है, ऐसी सामाजिक अवस्था है। मैँने सुना है कि हरिश्चन्द्र घाटपर एक अछूत (डोम) ने एक मन्दिर बनवाया है और रामनगरके एक सुप्रतिष्ठित पण्डितसे स्थापना कराई है। उसके लिये इतनी गाढ़ी पसीनेकी कमाई कितने दिनोँमेँ उसने जोड़ी होगी। अब आप बतलाइए, क्योँ न मैँ इस पगड़ीसे उसके पैर पोँछूँ (गद्गद स्वरसे)—"श्वपचाम् वरिष्ठः"। (साधु-साधुकी ध्वनि)। ऐसा यह हमारा चमार भाई है। मैँ नहीँ जानता, उसे मैँ और क्या समझूँ। ऐसे चमार भाईका, जिससे प्रेम करना चाहिए, अपमान हो रहा है! "सबसे कठिन जाति अपमाना"। हमारी आपकी सबसे कठिन सेवा ये ही हमारे बहन, बेटी, भाई, चमार और चमारिन करते हैँ। दो-चार दफ़ा घर स्वच्छ करते हैँ। यदि न करेँ तो मुसीबत हो जाय। ऐसी सेवा करके घर जाते हैँ तो नहाते हैँ, राम-राम कहते हैँ। पुरुष चोटी रखते हैँ, पर्वके दिन दान करते हैँ, स्नान करते हैँ। स्नानके पश्चात् भोजन करते हैँ। मुसलमानोँका धर्म हम लोगोँसे भिन्न है। अंग्रेज़ तो इतने भिन्न हैँ कि उनके शौचका और हमारे शौचका कुछ ज़िक्र ही नहीँ। उनमेँ हाथ धोनेका अभ्यास थोड़ोँको ही है। खाकर रूमाल निकाला और पोँछ डाला (घृणा-घृणाकी ध्वनि)। बाज़-बाज़ मुसलमान भाई भी रूमालसे पोँछकर रह जाते हैँ जो छः महीनेतक स्नान न करेँ तो भी चिन्ता नहीँ। मैँ निन्दा नहीँ करता, एक आचारकी बात करता हूँ। हमारा वह अछूत भाई भोजनके पहले स्नान करता है, परन्तु उसको हम छू नहीँ सकते। वही भाई जब हमारे किसी ऐसे भाईके साथ दरबारमेँ आता है तो कुर्सीपर बैठता है, हाथ मिलाता है। हेडमास्टर होकर आता है तो हमारे लड़के उससे सबक़ सीखते हैँ। रेलपर उसे टिकट दिखाना पड़ता है। जण्ट साहब या सुपरिण्टेण्डेण्टके दफ़्तरमेँ वह मज़ेसे कुर्सीपर बैठता है। रामदास सादी धोती पहनकर आता है और जब हम राम-राम कहते हैँ तो वह भी राम-राम कहता है। कहिए, उससे मैँ क्योँ न मिलूँगा (हाँ, हाँ)। मैँ अभी प्रातःकाल ध्यान करके आया हूँ, मुझे मालूम है कि मैँ ध्यान कर रहा हूँ और मेरी बहन, जो तीन सौ साठ दिन काम करती है, कूड़ा टारती है, मैला धोती है, वह जब झाँकी खुलती है, तब प्रेमके साथ आकर कहती है "तनि झाँकी मोके मिलै" तब कैसे कह दूँ कि "नहीँ"। हाँ, सभ्य सज्जनो! महाजनो! क्या मैँ ऐसा पापी हूँ कि उसे कड़ुआ शब्द कहूँ? वह तो इतना ही पाप करती है न कि हाथसे मैला उठाती है। हाथ तो मिट्टी और पानीसे साफ़ हो जाता है। मैँ झूठ बोलता हूँ फिर भी यदि भगवान्के सामने जानेका साहस करता हूँ तो मैँ उसे क्योँ रोकूँ (न, न)। मेरी सामर्थ्य नहीँ कि उसे रोकूँ। मैँ नहीँ कहता कि वह मन्दिरके भीतर जाकर पूजा करे। परन्तु उसे दर्शन मिलना चाहिए। भक्तके लिये भगवान् उठ आते हैँ। आज प्रातःकाल मैँ विश्वनाथका दर्शन करने गया। मैँ जब कोई सङ्कटका समय होता है तब भगवान्का दर्शन करने जाता हूँ। मैँ मूर्त्तिके सामने अपने भावको पवित्र करने जाता हूँ। जब मैँ उस विशाल मूर्त्तिके ध्यानमेँ लगा तो देखता हूँ कि चारोँ ओर पाठ हो रहा है। कोई महिम्न स्तोत्रका पाठ कर रहा है, कोई दूसरा स्तोत्र पढ़ रहा है। मैँ देखता हूँ कि गाँवके आदमी गङ्गाजल लेकर आते हैँ और बाहरसे भगवान्को अर्पण करते हैँ। मैँ सङ्कटमेँ हूँ। समझमेँ नहीँ आता, क्या करूँ। वृद्ध लोगोँसे क्या कहूँगा? नवयुवक पूँछेँगे, क्या कहूँगा? मैँने देखा कि चारोँ ओर पत्थर लगे हुए हैँ। एक ओर पाठ, दूसरी ओर मैँ; एक ओर गाँवका आदमी, दूसरी ओर अक्षत तथा फूल-माला उठानेवाले; और एक ओर अन्य लोग।

यह नहीँ कि सब लोग फूल, माला, अक्षत और जल चढ़ावेँ। नियम स्थापित करो, जिसकी श्रद्धा हो

करे। परन्तु दर्शन तो सबको मिलना चाहिए (साधु-साधु)। एक बात और। मैं दुर्गाजीके स्थानमें गया। नित्यकी स्तुतिका प्रसाद दो फल और बिल्वपत्र मिले। एक स्तोत्र पढ़ रहा था, जब मुझे दो फल मिले, मैंने सोचा कि इसका फल क्या? निरर्थक तो मिले नहीं होंगे। मुझे भगवान् कृष्णका स्तोत्र याद आया। जब भगवान्ने शिवजीके सामने यह स्तोत्र पढ़ा था, तब प्रसन्न होकर शिवजीने कहा था कि सब लोग तो आपकी वन्दना करते हैं, फिर आप क्यों ऐसा करते हैं? अच्छा कहिए, क्या आज्ञा है, क्या सेवा करूँ? भगवान्ने कहा "धर्मे दृढ़त्वं युधि शत्रुघातं…… इत्यादि" तो पहला फल धर्मे दृढ़त्वं मिला। "गुरु तेग़बहादुर बोलियाँ धड़ पैये धर्म न दीजिए।" जो हिन्दू इन दसों गुरुओंको गुरु नहीं मानता, वह गिर जायगा। वे हमारे उपदेशक गुरु थे। गुरु गोविन्दके पुत्र दीवारोंमें चुने गए, वे यही कहते मरे "गुरु तेग़बहादुर बोलियाँ धड़ पैये धर्म न दीजिए।" मेवाड़-केसरी राणाप्रतापका यही उद्घोष है, "जो हठ राखै धर्मको तेहि राखै करतार।" हाँ, धर्ममें दृढ़ता। यह नहीं कि धर्म किया और फिर चुप बैठ गए। नहीं, कृष्णके भक्तको लज्जा आनी चाहिए, यदि सचमुच उसमें भक्ति नहीं है। उनका तो मार्ग ही यही है कि सब प्राणियोंसे मित्रता और दुष्टोंका दमन। ये दो फल "धर्मे दृढ़त्वं युधि शत्रुघातं।" युधि शत्रुघातं। युद्धमें शत्रुओंको मारना। कृष्णके भक्तो! दुष्टोंका दमन करो। अन्यायीको दण्ड दो। किन्तु यह नहीं कि दूसरोंको दबाओ या उनसे द्वेष करो। नहीं, हमको चाहिए कि भगवान्को सबमें मानें, उसे घट-घटमें व्याप्त देखें और उससे यह प्रार्थना करें कि यश मिले, पुरुषार्थ भी हो, बल भी बढ़े और इसके साथ ही योगमें श्रद्धा भी हो। आपमें दृढ़ भक्ति हो और हमारी सन्तान अरबों-खरबों की संख्यामें कोटिशः फूले-फले। सज्जनो! यह हमारा आपको उपदेश है कि आप विद्वानोंसे सम्मति लेकर मन्दिरोंमें अछूतोंके दर्शन करनेका प्रबन्ध कर दें। अब कुएँके झगड़ेको लीजिए। वहाँ भी हमारे ये भाई जाने नहीं पाते। पर वहाँ इसाई-पादरी पहुँचते हैं। वेश बदल लेते हैं। संन्यासीके भेषमें जाते हैं। उनकी स्त्री भी योगिन बनकर साथ जाती है। ये उन अछूतोंको समझाते हैं कि तुमको हिन्दू पानी नहीं भरने देते, तो इसाई बन जाओ, अभी भरने देंगे। मुसलमान भी यही कहते हैं। बड़े ढङ्गसे समझाते और कहते हैं कि देखो, तुम्हारी यह गति है। तुम्हारे ऊपर ये लोग अत्याचार करते हैं, तुमको मारते हैं, तुम मुसलमान हो जाओ, फिर देखो ये क्या करते हैं। मेरठकी बात है—पादरियोंके प्रलोभनसे कई चमार इसाई हो गए, क्योंकि ज़मीन्दार ज़्यादती करते थे। जब उनसे झगड़ा हुआ तब पादरीने ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेटको लिख दिया कि ये चमार इसाई हो गए हैं, इसलिये ज़मीन्दार उनपर ज़्यादती करते हैं। उल्टे ज़मीन्दार ही सज़ा भोगते हैं। यही झगड़ा कितनी आसानीसे मिट जाता है, इसे भी देख लें। पानीपतमें इसी तरह कुएँसे अछूतोंको पानी नहीं भरने देते थे। मुसलमानोंने अछूतोंको बहकाया। ज़मीन्दारको मालूम हो गया। उसने कह दिया कि लो पानी भरो, कुआँ हमारा भी है, तुम्हारा भी। फल यह हुआ कि झगड़ा मिट गया। चमारोंने मुसलमान होनेसे इनकार कर दिया। मुसलमान नाराज़ हुए। उन्होंने जगन्नाथजीके मन्दिरपर हमला किया। सबसे पहले इन्हीं चमारोंने लाठी उठाई और अपना प्राण अर्पण करके मन्दिरकी रक्षा की। अब आप ही बताएँ, इस हिन्दू धर्मकी रक्षा करनेवाले अपने भाईको हम पानी कैसे न दें?

राजा रन्तिदेवकी कथा आप लोगोंको याद होगी—कैसे महापुरुष थे। जिनकी कीर्त्ति "इह चामुत्र गीयते" जिनका यश सब जगह गाते हैं। मैं चाहता हूँ, राजा रन्तिदेवकी कथा सुनाऊँ। राजा रन्तिदेव बड़े दानी थे। बड़ा अतिथि-सत्कार करते थे। एक बार अड़तालिस दिनके बाद इनको भोजन मिला। भूखसे सूख रहे थे। प्याससे शरीर काँप रहा था। भोजन करने चले कि एक ब्राह्मण आ गया। राजाने बड़ी

श्रद्धासे उसे भोजन करा दिया और आप वड़े प्रसन्न हुए। इतनेमें एक शूद्र आया और कहा कि मैं भूखा हूँ। राजाने कहा, लो भाई खा लो। शूद्र गया तो एक और अतिथि, जो चाण्डाल था, अपने गणोंके साथ आ गया यानी कुत्ते भी उसके साथ थे। राजाने आदरके साथ उस चाण्डालको और उसके कुत्तोंको भोजन दिया और चाण्डाल तथा उसके कुत्तोंको भी प्रणाम किया। अब पानीमात्र रह गया। जब उससे अपनी प्यास बुझाने चले तो एक दूसरा चाण्डाल आ पहुँचा और बोला कि मैं अभागा हूँ, प्यासा हूँ। इस लटी और श्रमकी बोलीको सुनकर राजाको दया आई। उसने कहा, "मैं ईश्वरसे गति नहीं चाहता, मुक्ति नहीं चाहता, ऋद्धि-सिद्धि नहीं चाहता। चाहता यह हूँ कि प्राणिमात्रके अन्तस्थमें बैठकर उनका दुःख दूर करूँ।" मेरी भूख मिट गई, मेरी प्यास और थकावट सब दूर हो गई। प्यासके मारे राजा मरने लगा, पर चाण्डालको पानी बड़े आदरसे दिया। भाइयो! अब मैं आपसे पूछता हूँ कि यह तो रन्तिदेवने किया—ब्राह्मण, शूद्र, चाण्डाल और कुत्तेको पानी दिया। उनका ऐसा प्रेम था, उन्होंने ऐसा किया। परन्तु आप ऐसा नहीं करते। देखिए, हमारा एक भाई है, गाँवमें बसता है, वहाँका कूड़ा उठाता है, सफ़ाई करता है और बीमारीको दूर करनेका यत्न करता है। बच्चा था तभीसे वह यह कर्म करता चला आता है। प्यासा होनेपर वही परिश्रम करके पानी निकालकर अपनी प्यास बुझाना चाहता है। अपनी आत्माको तृप्त करना चाहता है। पर आप उसे कुएँसे पानी भरनेसे मना करते हैं। हृदयमें विचारो, ज़रा सोचो तो कि जब वह आपके घरसे मैला उठाने आता है, आङ्गनमें झाड़ू लगाता है, तब आप उसे नहीं वर्जते; ठाकुरद्वारेका आङ्गन साफ़ करने आता है तब नहीं वर्जते। आपही कहो कि अब वही थका, माँदा, प्यासा, हिन्दू धर्मपर प्राण देनेवाला, रामका नाम लेनेवाला, प्यारा भाई आया तो कैसे मना कर दूँ और कैसे कह दूँ कि तुम्हें पानी नहीं दूँगा, तुम कुएँसे पानी मत भरो? कुएँपर चार घाट होते हैं। एक घाटसे उसे भी भर लेने दो। अन्य जातिके लोगोंको आप मना नहीं करते। मुसलमानोंको आप मना नहीं कर सकते, ऐसा नियम है। हाँ, यह बात दूसरी है कि आप एक ऐसी सृष्टि बना लो जहाँ आप-ही-आप हों तो यह सम्भव है। परन्तु जिनको संसारमें रहना पड़ता है, सब जातियोंसे जिनका काम पड़ता है, उनसे ऐसा नहीं हो सकता। मैं नहीं समझता कि यह कहाँका न्याय है कि दूसरे धर्मवाले तो हमारे कुओंसे पानी ले लें, परन्तु रामका भक्त, गङ्गा मैयाका उपासक और अपना भाई पानी न पावे। एक बात और है। नीमके वृक्षके पास जो होता है, वह नीम ही रह जाता है। परन्तु यदि चन्दनके वृक्षके पास नीमका वृक्ष भी आ जाय तो वह चन्दन हो जाता है। आप उनको अपना धर्म बता दो, अपने उपदेशसे उनको ऊँचा कर दो, उनको पवित्र बना दो। इस बातसे मत डरो कि वे तुम्हारी पवित्रता नष्ट कर देंगे। स्कूलोंमें चमार और भङ्गीके लड़के जाते हैं, कोई नहीं रोकता। सब पढ़ रहे हैं, ऐसा नियम है। इसलिये समझ-बूझकर कोई ऐसा नियम बना दो जिससे यह सब झगड़ा मिट जाय।

सज्जनो! अभी शुद्धिका विषय बाक़ी है। यह बड़ा ही कठिन और दुरूह विषय है। विचार तथा निर्णय करना विद्वानोंका काम है। विद्वानोंकी कमी नहीं है। हमारे देशमें तथा हमारे समाजमें बड़े-बड़े विद्वान् हैं। उन्हें इस विषयपर मिलकर विचार करना चाहिए। मैं आपको केवल यह जताना चाहता हूँ कि हिन्दू जातिपर क्या-क्या अनर्थ और अत्याचार हो रहे हैं, आप इसको भली भाँति समझ लें। रोगीकी दशा मालूम हो तो निदान हो सकता है। इस देशमें सात करोड़ मुसलमान हैं जिनमें बहुत थोड़े बाहरसे आए हैं, शायद पचास लाख ऐसे होंगे जो अरब, तुर्किस्तान आदि देशोंसे यहाँ आए हों। बाक़ी यहाँके

हिन्दू हैँ जो मुसलमान बना लिए गए हैँ। ये लोग दूसरे धर्मवालोँको अपने धर्ममेँ मिलाना चाहते हैँ। इसमेँ उनसे हमारा विरोध नहीँ है। कुछ इसाई भी इसी सिद्धान्तके हैँ। उनकी संख्या बढ़ती जाती है और आपकी संख्या प्रति दिन घटती जाती है। इसाई मुसलमानोँको कम इसाई बनाते हैँ। कारण यह है कि पैसा ख़र्चा इसाई बनाया और उन्होँने चट वहाँ जा फिर कलमा पढ़ लिया। इसाइयत ग़ायब हो गई और वे फिर ख़ास मुसलमान बन गए। किन्तु हिन्दुओँको तो एक बार किसी तरह इसाई बना लिया, फिर मामला साफ़! वह फिर कभी हिन्दू हो नहीँ सकता। सगा भाई भी कहता है, दूर रहो, गाँव छोड़कर अलग हो जाओ।

इस तरह जाओ-जाओ करके साढ़े छः करोड़ भाइयोँको हमने खो दिया। वे उस दलमेँ जा गिरे! (शोक-शोक) फल यह हुआ कि बलात्कारसे तथा छलसे हिन्दू मुसलमान बनाए गए और बनाए जा रहे हैँ। आपको हाल मालूम है, अभी मुल्लाओँका एक मजमा हुआ है जो कहता है कि हिन्दुओँको मुसलमान बनानेकी कोशिश करो। ये बड़े ज़ोर-शोरसे काम कर रहे हैँ। आज हमारे एक मित्र गुजरातसे आए हैँ। वे कहते हैँ कि छलसे हिन्दू ठगे जाते हैँ। एक 'निष्कलङ्की अवतार' मुसलमानोँमेँ हुआ है। हिज़ हाइनेस सर आग़ा खाँ निष्कलङ्क हैँ!! (हास्य) यह देखिए। ये भजनकी पुस्तकेँ लिखी गई हैँ। उनको आप सुनेँ। यह ओ३म्की सूरत बनाई गई है। इसाई लोग गेरुआ धारणकर, संन्यासी बनकर, सन्यासीका रूप धरकर और भुलावा देकर हमारे भोले भाइयोँको इसाई बनाते हैँ। परन्तु इस पन्थके मुसलमान भाई 'ओ३म्' को 'या अली' लिखते हैँ और इस तरह हमेँ ठगते हैँ। यह इनकी भजनोँका संग्रह है:—ज़रा इन्हेँ सुनिए:—हम एक पक्षकी याद दिलाते हैँ "घटा घिरि आवे रूसे क्योँ रखते हो....." इत्यादि। ये गुजराती भाषामेँ भजनेँ छपाकर घूमते हैँ और इनमेँ इस प्रकारसे, छलसे और धोखेपनसे हिन्दूसे मुसलमान बनानेका प्रयत्न हो रहा है। ये कहते हैँ "हमतो एक रबकी याद दिलाते हैँ"। पूछिए कि 'रसूलिल्ला' क्योँ नाम लिखा गया तो कहेँगे, यह तो बात दूसरी है। इस प्रकारसे धोखा देकर हिन्दू जातिको दूसरे मतमेँ मिलाया जाता है और आप उसे रोक नहीँ सकते। हमको इसमेँ कोई एतराज़ नहीँ होता, अगर ये बेईमानी न करते। अगर निष्कलङ्क अवतार न लिखेँ तो क्या एतराज़ है, वे ख़ूब कोशिश करेँ। परन्तु शर्म तो यह है कि धर्ममेँ धोखा है। अन्धेर यह है कि इसमेँ धोखा और फुसलाना मिला हुआ है। हम निन्दा नहीँ करते; भलमन्साहतसे वे अपना काम करते हौँ तो करेँ। फ़रेब क्योँ करते हैँ? अब आप सोचिए, आपका कर्त्तव्य क्या है? तीन वर्षसे ऐसा हो रहा है। एक लाख हिन्दू मुसलमान बना लिए गए हैँ। भोले-भाले हिन्दू ठगे जा रहे हैँ और इधर हम लोगोँने एक बार जो पतित हुआ, उसको पतित मान लिया। ज़रा खाना खाया, एक बार हुक्का पी लिया बस, गया, सदाके लिये हमसे अलग हो गया। इस प्रकार हम ज़रा-ज़रासी बातोँपर अपने भाइयोँको बाहर निकालते हैँ। यदि ऐसे मुसलमानोँको अपने धर्ममेँ मिलानेका प्रयत्न करेँ तो बस, हम भी गए। ऐसा नहीँ होना चाहिए। हमारे यहाँ तो प्रायश्चित्त है। यह प्रायश्चित्त सबका होता है। मलकानोँकी कथा तो कहनी ही क्या है? वह तो तीन सौ वर्षसे ज़बर्दस्ती मुसलमान किए गए हैँ। वे तो राजपूत हैँ, इसमेँ कोई सन्देह नहीँ। इतिहास और गज़ेटियरसे मालूम हुआ है कि नाममात्रको मौक़ा देखकर मुसलमान हो गए थे। उन्होँने मुसलमानोँके साथ भोजन नहीँ किया, अपने रस्मरिवाज नहीँ बदले। बराबर तीन सौ वर्षोँसे वैसे ही चले आते हैँ। जिनको ज़बर्दस्ती मुसलमान बना लिया गया है, उनको फिर अपनेमेँ मिला लो। वे हिन्दू हैँ, उनको अपना लो। वे प्रायश्चित्त करके आना चाहते हैँ। कौन ऐसा है जो उनको मना

करेगा? तीन सौ वर्षसे अलग रहते हुए भी जिन्होंने अपना विश्वास नहीं छोड़ा, हिन्दू धर्मसे प्रेम रक्खा, भला कौन ऐसा प्राणी है जो ईश्वर और उनके बीचमें खड़ा होकर कह देगा कि भजन मत करो? जिनका तीन सौ वर्षोंसे अपने धर्मपर अटल विश्वास है, जिन्होंने अपने रस्मरिवाज नहीं बदले, बताओ उनको क्या कहते हो? (हिन्दू-हिन्दूकी ध्वनि)। वे हिन्दू होना चाहते हैं। किसकी ताक़त है जो उनके लिये दर्वाज़ा रोकेगा? मैं उनके लिये नहीं कहता जो ज़बर्दस्ती, बलात्कार या धोखेसे बना लिए गए हैं। उनके विषयमें क्या करना चाहिए, यह कोई नई बात नहीं है। मलकानोंका मामला छोड़ो। महाराजा रणवीरसिंह मलकानोंके यहाँ हुए हैं। यह काश्मीरके राजा थे। इन्होंने विद्वानोंको इकट्ठा करके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था लिखवाई। जम्बूमें एक सभा की। पण्डित शिवदत्त शास्त्रीने लिखा था, 'म्लेच्छीभूत नामकी शुद्धिकी व्यवस्था'—उसमें लिखा है कि जो समझते हुए हो गए हैं उनको भी लो। यह पुस्तक कल छप जायगी। मैंने उसे छपनेके लिये दे दिया है। कल वह यहाँ बाँट दी जायगी। उसे आप देख लीजिए तब आपको इस विषयमें शास्त्र-मत मालूम हो जायगा। तब समझकर निर्णय करो कि क्या करना चाहिए। प्रायश्चित्त कराके उन सबको वापस ले लो। अपने-अपने बिरादरीवाले यह देखें कि वे हिन्दू भाई हैं या नहीं। धर्मके अनुकूल हैं या प्रतिकूल, यह उनपर छोड़ दो। रहीम ख़ानख़ानाकी कथा समझकर देखो। नज़ीरकी भक्ति देखकर तथा रहीमकी भक्ति देखकर लोगोंने उनको मन्दिरमें दर्शनका अधिकार दे दिया था। ऐसे ही यदि कोई चाहता है कि पूजा-पाठ किया करे, गङ्गास्नान करके भोजन करे और आपके धर्मको पवित्र मानकर उसीकी ज्योतिसे मुक्ति पाए तो हम उससे कैसे कह दें कि तुम्हें हिन्दू होनेका अधिकार नहीं? आप जानते हैं कि इसी काशीमें एक भट्टका बालक कितने कालतक मुसलमान रहकर फिर ब्राह्मण हुआ। एक नीतिका आपने अवलम्बन किया जिससे आपकी उन्नति हो सके। ऐसी ही अवस्थाके सम्बन्धमें एक बात और कहना चाहता हूँ। एक बालकने एक दफ़ा धोखेसे एक मुसलमानकी डिब्बीका पान खा लिया। उसी ब्राह्मणके बालकने मुझे पत्र लिखा कि बड़े शर्मके साथ लिख रहा हूँ कि मैंने धोखेसे मुसलमानका पान खा लिया। मैं कैसे आपके पास आऊँ? मैंने उसे बुलाया। वह एक बड़ा कुलीन सनातनधर्मी बालक था। मैंने उससे कहा, "जात-पाँत पूछे नहिं कोई, हरिका भजै सो हरिका होई" हरिका नाम ले प्रायश्चित्त कर ले। जा, गङ्गाजल पी ले, पाप नहीं लगेगा। ऐसा न करते तो आज वह मुसलमान होता। आवश्यकता पड़े तो पञ्चायत कर लो। परन्तु ऐसे जनोंको पुनः हिन्दू बनाओ। एक तरफ़ तो मुसलमान और इसाई दूसरोंको अपने धर्ममें लेनेके लिये कटिबद्ध हैं, दूसरी ओर आप उन्हें भी हिन्दू नहीं बनाते, जो बननेके लिये लालायित हैं। कितने लाख इसाई हो गए। इसाई जानते हैं कि इसाई हिन्दू नहीं हो सकता। देखते-देखते कितने अछूत इसाई हो गए। कितना अत्याचार हो रहा है। हिन्दुओंकी संख्या बराबर घट रही है। यदि हिन्दू न रहे तो कौन चोटी-जनेऊकी रक्षा करेगा, कौन धर्मकी रक्षा करेगा, कौन वेद, पुराण और स्मृतिकी रक्षा करेगा? कौन गो-ब्राह्मणकी सेवा करेगा? प्राचीन कालके ऋषि समझदार थे। उन्होंने इसी लिये असभ्योंको सभ्य किया था। यदि आज भी यह साधुमण्डली, पण्डित-मण्डली, विद्वन्मण्डली यह आज्ञा दे दे कि जो छल या बलसे मुसलमान बनाए गए हैं उन्हें वापस ले लो, तथा जो और लोग भी आना चाहते हों उन्हें भी ले लो तो आज ही यह विजयकी घोषणा हो जाय। विश्वनाथका नाम लो और यह व्यवस्था कर दो कि जो चाहे हिन्दू हो सकता है। विजय घोष करो (जय, जय, जय)। सूर्य्यके प्रकाशसे जैसे बादलकी घटाका नाश होता है, रात्रिका भयङ्कर अन्धकार

मिट जाता है, उसी प्रकार इस शुद्धिके विधानसे हिन्दू जातिका ऐसा भयङ्कर राक्षसरूपी अन्धकार मिट जायगा और धर्मका सूर्य्य प्रज्वलित होकर हमेँ प्रचण्ड और बलवान बनावेगा । सज्जनो ! मैँ समझता हूँ, मैँने आप लोगोँका बहुतसा समय ले लिया है। फिर भी मुझे जो कुछ कहना था, सब नहीँ कह सका । फिर कहूँगा। अभी आपके आगे और विषय आवेँगे। जितने विषयोँमेँ मुझे जो कुछ कहना है, सब कहूँगा। यदि आप मेरी प्रार्थनाओँको स्वीकार करेँगे तो गोमाताकी रक्षा होगी और हमारा उद्देश्य भी सिद्ध होगा। एक भाईने लिखा था कि मैँने इस विषयपर कुछ नहीँ कहा, इसलिये यहाँ इसकी चर्चा किए देता हूँ। आप जब उच्च कर्म करेँगे तभी आपका उद्देश्य सिद्ध होगा। सबसे न्यायसे वर्त्तेँ। "सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः"—पर ध्यान रक्खेँ, यहाँ जो कुछ मैँने कहा है वह मेरी निजी राय है, इस सभाकी नहीँ। सभा इसपर कल विचार करेगी। मैँने जो कुछ कहा है वह अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे। यदि आप इन उद्देश्योँको समझकर तत्परतासे काम करेँगे तो कल्याण होगा।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

सज्जनो !

यह कभी मत भूलो कि हमारा देश भारतवर्ष है। इसमेँ भिन्न-भिन्न धर्मके लोग बसते हैँ। इस देशका भला इसीमेँ है कि हम सबमेँ परस्पर मेल रहे। यदि यह याद रहा तो ठीक है, नहीँ तो हिन्दू-सभा निष्फल हो जायगी। यह यदि याद रहा तो इससे स्वराज्य पानेमेँ भारी मदद मिलेगी। याद रक्खो कि यदि गिरजे या मस्जिदकी तरफ़ हमारी नज़र उठे तो आदरकी नज़र उठे। यदि किसी मुसलमान या इसाईके प्रति कोई शब्द निकले तो आदरका शब्द निकले। बेइज़्ज़ती हो तो सह लेना, पर दूसरोँका दिल दुखानेवाला शब्द कभी न बोलना। याद रक्खो, बलवान ज़्यादा सहन किया करता है। कमज़ोरको जल्दी गुस्सा आया करता है। यदि इस समय आप बलका ध्यान कर रहे होँ तो इसका असर होना चाहिए। यदि कुछ भाई मन्दिरोँपर भी हाथ उठाएँ तो आप उनपर उतना ही हाथ उठाओ जितना उनकी दुष्टताको दबा सके। उनसे बराबर प्रेम रक्खो। एक अपनी विवाहिता स्त्रीके सिवा अन्य सबको, चाहे वे मुसलमान होँ, चाहे इसाई, उन्हेँ अपनी माताके समान समझो। कहीँ ऐसा न हो कि किसीको यह कहनेका मौक़ा मिल जाय कि हिन्दू-सन्तान अपने धर्मको खो बैठी है। अपना आचरण ऐसा बनाओ कि किसी मुसलमान या किसी इसाईकी बेजा शिकायत न हो। अपना लक्ष्य यही है कि—

"सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्।"

ऐसा लक्ष्य रक्खो कि उससे अपनी भी उन्नति हो और दूसरोँका भी भला हो, कहीँ किसीका अमङ्गल न हो।

प्रयागमें मालवीयजीका भाषण

माघ कृष्ण ३० संवत् १९८० को हिन्दू महासभाके विशेष अधिवेशनमें पूज्य मालवीयजीने जो व्याख्यान दिया था उसका सारांश यहाँ दिया गया है ।

—सम्पादक ।

बहनो और भाइयो !

हिन्दुओंके लिये यह बड़ी विपत्तिका समय है। मुसलमान भाई अपने धर्मके प्रचारमें बड़ा प्रयत्न करते हैं और इसाई भी अपने धर्म-प्रचारमें बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। यही कारण है कि उनके धर्मके अनुयायियोंकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। हिन्दू लोग अपने धर्ममें विश्वास तो रखते हैं लेकिन उनकी ओरसे अपने धर्ममें अटल रखनेका कोई प्रयत्न नहीं होता। फल यह होता है कि हमारे धर्मके लोग दूसरे मज़हबोंमें मिलाए जाते हैं। ऐसी उदासीनता ठीक नहीं।

बाल-विवाहके कुपरिणामोंपर ध्यान दो और बारह वर्षसे कम उम्रमें लड़कियोंकी और अठारह वर्षसे कम उम्रमें लड़कोंकी शादी मत करो। ऐसा करना पाप समझो।

सज्जनो ! हिन्दू-सङ्गठनका अर्थ यह है कि हम सब लोग मिलकर अपनी रक्षा करें। हमें चाहिए कि हिन्दू-हितके लिये गाँव-गाँवमें हिन्दू सभाएँ स्थापित करें और ईश्वरके नाम लेनेवाले अछूत भाई भी उनमें सम्मिलित हों। पन्द्रहवें दिन सब हिन्दू भाई एक साथ एकत्र होकर उस सभामें धर्मकी चर्चा करें। ब्रह्मचर्य्य और व्यायामका पालन करें, क्योंकि शारीरिक बलके बिना ईश्वरकी भी प्राप्ति नहीं हो सकती।

आप लोग अछूतोंके साथ अच्छा बर्त्ताव करें। उन्हें मुसलमान और इसाई अपने धर्ममें मिलाते जा रहे हैं। मुझे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ है कि एक ज़िम्मेदार मुसलमान मित्रने कहा है कि इन अछूतोंको मुसलमानों और हिन्दुओंमें आधा-आधा बाँट देना चाहिए। इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि सब बिरादरीके लोगोंको इस बातसे सचेत कर दिया जाय कि उनकी बिरादरीका कोई भी मनुष्य छल या बलसे दूसरे धर्ममें दाख़िल न किया जा सके। धर्म-शास्त्र कहते हैं कि जब मिलकर चलना आवश्यक हो, गाँवमें प्लेग जैसा कोई दूषण आ गया हो, नगरमें आग लगी हो, विवाह हो, उत्सव हो, तीर्थयात्रा या देशयात्रा हो, विप्लव हो, नावमें बैठे हों या पहाड़पर हों तब अछूतसे छू जानेका कोई विचार नहीं किया जाता। जो कुआँ प्राणिमात्रके लिये बनाया जाता है, उसमें अछूतोंको पानी भरनेकी आज्ञा शास्त्रोंमें है। जहाँ ज़रूरत पड़े और बचाव भी न हो सके वहाँ स्पर्श-दोष नहीं माना जाता। हमें भूलना न होगा कि जब ये नियम बनाए गए थे तब हमारे देशमें हिन्दू ही बसते थे। किन्तु अब परिस्थिति बिल्कुल भिन्न है। हमें वर्त्तमान स्थितिपर विचारकर इन नियमोंको बहुत ढीला कर देना चाहिए। अछूतोंके साथ विशेष रूपसे उदारताका व्यवहार करना चाहिए। हमारा अनुरोध है कि साधारण कुओंपर उन्हें पानी भरने दिया जाय और आवश्यकतानुसार उनके लिये नये कुएँ भी बनवा दिए जायँ। मन्दिरोंमें अगर पाससे नहीं तो दूरसे ही उन्हें दर्शन करनेका सुभीता कर दिया जाय और उन्हें सर्वसाधारण स्कूलोंमें पढ़नेकी अनुमति मिल जाय।

पञ्जाब-हिन्दू-सम्मेलन-लाहौर

२३ फ़रवरी सन् १९२४ ई० को महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने सभापतिपदसे लाहौरमेँ पञ्जाब-हिन्दू-सम्मेलनके अवसरपर प्रभावशाली व्याख्यान दिया था।

—सम्पादक।

बहनो और भाइयो !

इससे पहिले कि मैँ और किसी कामकी ओर आपका ध्यान दिलाऊँ, मैँ आपका हृदयसे धन्यवाद करता हूँ कि आपने मुझे इस ऊँचे आसनपर बिठाया है। मैँ आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैँ तो केवल आपकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ और यदि आपने मुझे मान लिया है तो यह केवल आपका ही मान है।

इसके पहिले कि मैँ आपको और कुछ सुनाऊँ, मैँ चाहता हूँ कि हम लोग अपने उन भाइयोँको स्मरण करेँ जो जैतोमेँ गोली चलाए जानेसे मर गए हैँ—जैतोमेँ ऐसा अन्धेर क्योँ हुआ और उसमेँ दोष किसका है, उसके विषयमेँ कोई निश्चित राय क़ायम करनेके लिये अभी हमारे पास पूरा मसाला नहीँ है। तो भी हरएक हिन्दू, मुसलमान और इसाईका दिल यह सुनकर दुखी होगा कि हमारे बहुतसे भाई, जो निहत्थे थे, जैतोमेँ गोली खाकर मर गए और कितने घायल हुए।

दो मिनटके लिये प्रार्थना

मैँ चाहता हूँ कि आप इस दुःखमेँ दो मिनटके लिये परमात्मासे प्रार्थना करेँ कि उन भाइयोँकी आत्माओँको सुख मिले और उनके सम्बन्धियोँको धैर्य्य और सुख तथा शान्ति प्राप्त हो। (इसपर सब उपस्थित लोगोँने दो मिनटके लिये उक्त आशयकी प्रार्थना की।)

एक बड़ा कार्य्य

आज आप एक बड़े कार्य्यके लिये यहाँपर एकत्र हुए हैँ। यह पञ्जाबकी हिन्दू सभाओँका प्रान्तीय सम्मेलन है। मैँ देखता हूँ कि आप लोगोँमेँ इस बातकी चिन्ता उठ रही है कि अपनी जातिकी कमज़ोरियोँको दूर करके आप उसकी उन्नति करेँ, ताकि हिन्दू भी देशके दूसरे भाइयोँके साथ बराबर उन्नति कर सकेँ। मैँ देखता हूँ कि आपको बहुतसी बातोँकी चिन्ता और दुःख है, ऐसी अवस्थामेँ यह आपकी बड़ी कृपा है कि आप लोगोँने मुझे सभापतिके आसनपर बिठाया है। मेरा कार्य्य बहुत कठिन और बहुत बड़ी ज़िम्मेदारीका है। समस्या बहुत जटिल है, परन्तु मैँ परमात्माको स्मरण करके और आपकी सेवाके भावको मनमेँ रखकर उसे स्वीकार करता हूँ।

मैँ इसके पहले इसी शुभ स्थानमेँ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके सम्बन्धमेँ कई व्याख्यान दे चुका हूँ। यहीँ पर सन् १९०९ मेँ जो कांग्रेस हुई थी, मैँ उसका भी सभापति था, परन्तु आज मैँ केवल अपने हिन्दू भाइयोँसे कुछ कहनेके लिये यहाँ आया हूँ। मेरी वर्त्तमान हैसियतमेँ फ़र्क़ ज़रूर है, परन्तु विरोध नहीँ है। हिन्दुस्तान एक भारी देश है और उसमेँ सब मतोँके लोग रहते हैँ। हम सबका कर्त्तव्य है कि हम भारतमाताकी सेवा करेँ। परन्तु साथ ही इस कर्त्तव्यका विरोध किए बिना हमारा यह भी धर्म है कि हम

अपने उस विभागकी भी सेवा करेँ जिससे हमारा विशेष धर्मगत सम्बन्ध है। यह सेवा हमारे जातीय कर्मके विरुद्ध नहीँ है, प्रत्युत् उसकी सहायक और उसकी ही एक अङ्ग है।

हाथकी पाँचोँ उँगलियाँ

हम जातीय और अन्तर्जातीय दोनोँ काम करना चाहते हैँ, लेकिन कोई ऐसा अन्तर्जातीय काम नहीँ करना चाहते जो हमारे जातीय लाभके विरुद्ध हो। हम हाथकी पाँचोँ उँगलियोँको मज़बूत देखना चाहते हैँ। हमारे हाथको आज़ादी तभी मिलेगी जब वह मज़बूत होगा और मिलकर देशके काममेँ लग जायगा। भारतवर्षकी आज़ादी तभी स्थायी और स्थिर रहेगी जब सब भाई बलवान होकर आपसमेँ मिलकर काम करेँगे। यह हाथका दृष्टान्त बहुत अच्छा दृष्टान्त है। हमारे एक ही बाहुके ऊपर इस हाथकी पाँचोँ उँगलियाँ हैँ। इन पाँचोँ उँगलियोँकी मज़बूतीसे हाथकी मज़बूती है। इनमेँसे जब किसी भी उँगलीको दर्द होता है तो हाथ अच्छी तरह काम नहीँ कर सकता। हम धर्मके विचारसे बेशक अलग-अलग होँ, परन्तु हम हैँ एक ही पिताके पुत्र और एक ही भारतमाताकी सन्तान। हम यदि सबके-सब बलवान होँ और मिलकर काम करेँ तभी हम भारतके सच्चे सपूत कहलाए जा सकते हैँ।

आज हम अपने तीन सम्बन्धोँपर विचार करना चाहते हैँ अर्थात् (१) हमारा देश और देशमेँ रहनेवाली सब जातियोँसे सम्बन्ध, (२) हमारा अपनी हिन्दू जातिके अन्तर्गत जातियोँके साथ परस्पर सम्बन्ध, और (३) हमारा वर्त्तमान राज्य-शासनके साथ सम्बन्ध।

महा-युद्धसे पहले

सबसे पहले इस तीसरे सम्बन्धपर कुछ कहना चाहता हूँ। मैँ देखता हूँ कि गत महायुद्धके पहले सरकारका इस देशकी सब जातियोँके प्रति एक भाव था, फिर युद्धके छिड़ जानेपर उन्हेँ हमारी सहायताकी आवश्यकता अनुभव हुई, तब वे हमारे साथ बहुत हमदर्दी प्रदर्शित करने लगे। उन दिनोँ अंग्रेज़ हमारे साथ बोलते भी बहुत नम्रतासे और हमदर्दीसे थे, यहाँतक कि वह हमारी खुशामद भी करने लगे थे, ताकि युद्धमेँ हमसे वह मदद हासिल कर सकेँ। युद्धमेँ जितनी सहायता पञ्जाबने की उतनी और किसीने नहीँ की। आप सबको वह समय याद होगा जब इस प्रान्तके लाट साहबने बड़ी कौन्सिलमेँ अभिमानके साथ यह कहा था कि जितनी सहायता इस युद्धमेँ पञ्जाबने की है, उतनी और किसीने नहीँ की और पञ्जाबियोँमेँसे भी जितनी सहायता सिक्खोँने की उतनी और किसीने नहीँ की। परन्तु शोक! लड़ाईके बाद जो समय आया, उसमेँ सरकारकी नज़र बदल गई। अब पञ्जाबमेँ प्रजा और सरकारका वह पहलासा सम्बन्ध नहीँ रहा। इस प्रान्तमेँ युद्धके बाद ही सन् १९१९ ई० मेँ जो अत्याचार 'मार्शल लौ' के दिनोँमेँ किए गए, वह किसे स्मरण नहीँ है। फिर जिन सिक्ख भाइयोँने सबसे बढ़कर और सबसे अधिक प्रशंसाके योग्य सरकारकी सेवा की थी, उन्हीँ सिक्खोँके सम्बन्धमेँ युद्धके बाद सरकारकी दृष्टि कुछ ऐसी बदल गई है कि वह ठीक होनेमेँ नहीँ आती। पहले दरबार साहबकी चाबियोँका मामला हुआ, फिर गुरुबाग़का अत्याचार देखनेमेँ आया। उस अत्याचारके पश्चात् जब दुर्भाग्यसे अमृतसरमेँ हिन्दू-मुसलमानके बीचमेँ कुछ झगड़ा हो गया, तब उस समय नगरमेँ रक्षा और शान्तिकी स्थापनाके लिये सिक्ख भाइयोँने सरकारकी जो सहायता की उसपर प्रसन्नताका प्रकाश करते हुए सरकारने बहुतसे सिक्ख क़ैदी छोड़ दिए, तब आशा हुई थी कि सरकार और सिक्खोँका परस्पर सम्बन्ध अब ठीक हो जायगा। परन्तु उसके थोड़े ही समयके बाद महाराजा नाभाको गद्दीसे उतार दिया गया, जिसपर स्वभावतः सिक्खोँमेँ असन्तोष फैल गया, और उन्होँने शान्तिमय रीतिसे सरकारसे

इस कार्य्यका विरोध किया और जैतोके गुरुद्वारेमें गुरु ग्रन्थसाहबका अखण्ड पाठ रक्खा। परन्तु उनके इस कार्य्यका विरोध किया गया। मैं सुनता हूँ कि वहाँपर चार हज़ारके लगभग सिक्ख अबतक गिरफ़्तार होकर सज़ा पा चुके हैं। अब २१ फ़रवरीको जो जत्था वहाँ गया, उसके साथ जो सलूक हुआ, उसका दुःखजनक हाल आप पढ़ चुके हैं।

पचास जायज़ तो पाँच सौ क्यों नहीं?

कहा जाता है कि नाभाके हाकिमोंने पचास अकालियोंको गुरुद्वारेमें जानेकी इज़ाज़त दे दी थी। मैं पूछता हूँ कि अगर पचासका जाना वहाँ जायज़ था तो एक्यावनका जाना क्यों जायज़ नहीं था और एक्यावनका जाना यदि जायज़ था तो बावनका जाना क्यों जायज़ नहीं था और पाँच सौका जाना क्यों जायज़ नहीं था? अगर वहाँ किसी भी शख़्सके जानेका पूर्णतया विरोधकर दिया गया होता तो समझमें आ सकता था, परन्तु जब अखण्ड पाठका अधिकार मान लिया गया तो फिर किसको यह भेद करनेका हक़ हासिल है कि वह अमुक पचास जनोंको वहाँ जानेके लिये चुन ले और शेषको वहाँ जानेका अधिकारी न समझे? हाँ, संख्या उस अवस्थामें नियत की जा सकती थी, जब कोई फ़सादका भय होता। परन्तु वह लोग तो केवल अपनी धर्म-पुस्तकका अपने गुरुद्वारेमें पाठ करना चाहते थे, फिर ऐसा करनेसे रोकनेका किसे अधिकार था? यह भी हो सकता था कि अगर कोई गुरुद्वारेके भीतर जाकर फ़साद करता तो उसे उचित दण्ड दिया जाता, परन्तु भीतर जानेसे ही रोकना कैसे ठीक हो सकता है? हमें यह भी बतलाया गया है कि नाभाके हाकिमोंने यह भी शर्त्त लगाई थी कि जो सिक्ख गुरुद्वारेमें जाएँ वे अखण्ड पाठ करते ही वापस चले आएँ। मुझे कोई क़ानून ऐसा मालूम नहीं, जिसके द्वारा सरकार अखण्ड पाठके लिये कोई समय नियत कर सके। सिक्खोंने भी इस शर्त्तको माननेसे इनकार कर दिया और कहा कि हम जबतक चाहेंगे अखण्ड पाठ जारी रक्खेंगे। यदि उन्होंने ऐसा कहा तो क्या ग़ज़ब हो गया? किस नियमके द्वारा उन्हें अपने धर्मका शासन करनेसे रोका जा सकता है? क्या अन्धेर है कि उनके इस साधारण अधिकारको सरकारी कर्मचारियोंने स्वीकार नहीं किया। क्यों उनकी बुद्धि ऐसी मैली हो गई कि उन्होंने इन निहत्थे सिक्ख भाइयोंपर गोली चलानेका हुक्म दे दिया?

लाहौरके ऐङ्ग्लो इण्डियन अखबारका ग़लत बयान

लाहौरके एक अंग्रेज़ोंके अख़बारने लिखा है कि एक सिक्खने पहले पिस्तौल चलाई। मुझसे एक शख़्सने, जो उस मौक़ेपर मौजूद था, सौगन्ध खाकर बयान किया है कि जत्थेके किसी आदमीने पहले गोली नहीं चलाई और न उसमें किसीके पास बन्दूक़ ही मौजूद थी। यह जत्था नौ फ़रवरीको अमृतसरसे रवाना हुआ था, और हमेशा उसके आगे-आगे बाजा बजता था और आतिशबाज़ीके पटाख़े छोड़े जाते थे जैसा कि ख़ुशीके मौक़ोंपर अक्सर चलाए जाते हैं। परन्तु जत्थेके किसी आदमीके हाथमें कोई बन्दूक़ या पिस्तौल नहीं थी। मैं दावेसे कह सकता हूँ कि उपरोक्त इल्ज़ाम बिल्कुल झूठ है। परन्तु अगर उसे सही भी मान लिया जाय तो शायद किसीको वह गोली लगती तो सही। क्या कोई फ़ौजका आदमी या पुलिसका सिपाही या सरकारी कर्मचारी मरा या घायल हुआ भी? फिर यह देखना भी तो हाकिमोंका कर्त्तव्य था कि किसके हाथमें बन्दूक़ थी? अगर केवल गोली चलानेका बहाना ढूँढ़ते हो तो बेशक ढूँढ़ो, परन्तु परमात्माके सामने क्या उत्तर दोगे? लेकिन यदि बहाना नहीं ढूँढ़ते हो तो बताओ कि कौनसे अकालीने यह गोली चलाई थी?

सरकारके लिये शर्मकी बात

अकालियोंने शान्तिमय रहकर यह दिखा दिया है कि वह सदैव अपनी प्रतिज्ञापर क़ायम रहे हैं। जो

अकाली 'गुरुका बाग़' मेँ सख़्त-से-सख़्त कष्ट सहन कर सके और इसपर भी उन्होँने अपना हाथ नहीँ उठाया, ऐसे अकालियोँपर गोली चला देना किसी भी राज्यके लिये बड़ी लज्जा और पापकी बात है, और मुझे पूर्ण विश्वास है कि हर मज़हब और मिल्लतके लोगोँको यह दुःखजनक घटना सुनकर सख़्त रञ्ज हुआ होगा।

जिस सरकारके पास इतना बन्दूक़ और गोलीका सामान हो, उसके एक अफ़सरका पाँच सौ शख़्सोँके जत्थेपर गोली चला देनेका हुक्म देनेसे बढ़कर निन्दा और पापकी बात और क्या हो सकती है? जिसके पास जितनी ही अधिक ताक़त हो उतनी ही अधिक उसकी ज़िम्मेदारी होती है। सरकारकी भी इस समय बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी थी। मुझे आशा है कि सरकार इस घटनाकी तहक़ीक़ातके लिये जल्द एक कमीशन मुक़र्रर करेगी कि जो उन अफ़सरोँके विषयमेँ, उचित रिपोर्ट करे जिन्होँने यह पाप किया है, जिससे इस प्रकारके हत्याकाण्ड सदैवके लिये बन्द हो जायँ और आगेके लिये किसीको यह साहस न हो कि वह शान्तिमय लोगोँपर गोली चला सके।

जैतोकी इस ताज़ी घटनासे मालूम हो सकता है कि सरकारकी सिक्खोँकी तरफ़ क्या नीति है। क्या कोई उपाय नहीँ कि जिससे सरकारको यह समझमेँ आ जाय कि यह नीति बहुत बुरी है और वह उसे अनुभव करके सिक्खोँको उनके उचित अधिकार देकर उनके साथ न्यायका बर्ताव करे?

सिक्खोँका गुनाह क्या है?

क्या महाराजा साहब नाभाको गद्दीसे उतार देनेको बुरा कहना पाप है? जब ख़िलाफ़तपर मुसीबत आई तो मुसलमानोँने उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई, क्या उनका ऐसा करना पाप था? हिन्दुओँने ख़िलाफ़तके मामलेमेँ मुसलमानोँका साथ दिया, क्या उनका ऐसा करना पाप था? अगर फुलकियाँकी रियासतोँके एक बड़े सिक्ख राजाके गद्दीसे उतारे जानेपर सिक्खोँके दलमेँ रञ्ज हो तो किसी इन्सानी अथवा ईश्वरीय नियमसे सिक्खोँका ऐसा अनुभव करना निन्दनीय नहीँ कहा जा सकता है? महाराजा साहबको गद्दीपर रहना चाहिए या नहीँ, यह एक जुदी बात है, परन्तु क्या सिक्खोँका यह भी हक़ न था कि वह अपने पन्थके एक राजाके गद्दीसे उतारे जानेपर वावैला करते? क्या यह सरकारके अफ़सरोँके लिये प्रशंसाकी बात है कि वह अबतक इतना भी नहीँ सोच सके कि सिक्खोँकी जो उचित माँग है, वह कैसे पूरी की जा सकती है और उनके साथ किस प्रकार न्यायपूर्ण व्यवहार किया जा सकता है?

इस हालतकी वजह क्या है?

इसका कारण एकमात्र यही है कि जो राजकीय शासन-प्रणाली इस समय वर्त्तमान है, वह सर्वथा ग़लत है। यह प्रणाली आधी तीतर है और आधी बटेर। यह वह प्रणाली है जिसे 'डायर्की' का नाम दिया जाता है और जिसके अनुसार राज्यके दो भाग कर दिए गए हैँ। उनमेँसे सरकारने जो भाग अपने अधीन रक्खा है वह शान्ति-स्थापन और न्यायके विभाग हैँ। इस विभागको किस प्रकार चलाया जाता है, उसकी पहली परख सन् १९१९ ई० मेँ हो गई थी, जब कि 'मार्शल लौ' के दिनोँमेँ निरपराधोँको अन्धाधुन्ध सज़ाएँ दी गईं और फिर उसी समयके सज़ा पाए हुए एक सज्जनको पीछेसे सरकारने अपना वज़ीर बना लिया। इसी प्रकार और भी बहुतसे दृष्टान्त आए दिन होते रहते हैँ, जिनसे भली भाँति यह मालूम हो जाता है कि इस डायर्कीके अन्दर न्याय और अमन-आमानकी कैसी मिट्टी पलीद की जाती है। सरकारको यह ख़याल हो गया है कि वह हिन्दुस्तानियोँको ताक़तसे दबा लेगी, परन्तु ताक़तसे एक तुम्बा भी नहीँ दबता। अगर इन्सानको इन्सान ज़ोरसे दबाना चाहे तो यह उसकी नासमझीको प्रगट करता है। तुम सत्य, न्याय और ठीक युक्तिसे किसीको दबा सकते हो, परन्तु ताक़तसे

नहीँ दबा सकते। इतिहास इस बातका साक्षी है कि अन्याय और ज़ुल्मसे दबानेवाले आप ख़त्म हो गए, परन्तु सत्य और न्यायका कभी ख़ातमा नहीँ हुआ। ऐसा ही अब भी होगा। सिक्खोँके साथ अबतक सरकारकी जितनी मुठभेड़ेँ हुई हैँ, उनमेँ उसे अन्तमेँ अपनी भूल माननी पड़ी है और निश्चय उसे अब भी ऐसा ही करना पड़ेगा। हमारा काम केवल इतना है कि ईश्वरसे प्रार्थना करेँ कि हे परमात्मा! सरकारके अफ़सरोँको बुद्धि और समझ प्रदान कर। परन्तु आप विश्वास कीजिए कि यह सब ख़राबी वर्त्तमान शासन-प्रणालीके दोषसे उत्पन्न हो रही है, और जबतक आप उसे दूर नहीँ कर देते, तबतक आप शान्तिके साथ अपना जीवन व्यतीत नहीँ कर सकते।

हमारा दूसरा सम्बन्ध

हमारा दूसरा सम्बन्ध इस देशमेँ रहनेवाली दूसरी जातियोँसे है। इस देशमेँ दूसरी सबसे बड़ी जाति मुसलमानोँकी है। जबतक हिन्दू-मुसलमानोँका ठीक सम्बन्ध स्थापित नहीँ होता, तबतक यहाँ स्वराज्य स्थापन नहीँ हो सकता और न हमेँ उसकी इच्छा ही करनी चाहिए। हमारा आपसमेँ सम्बन्ध ऐसे नियमोँपर स्थापित होना चाहिए कि वह किसी तूफ़ानके आनेपर भी न टूटे। भारतवर्ष यहाँकी रहनेवाली सब जातियोँकी जन्मभूमि है। जैसे वह हिन्दुओँकी जन्मभूमि है, प्रायः वैसे ही वह मुसलमानोँकी भी है। बहुत थोड़ेसे मुसलमान ऐसे होँगे जो हिन्दुस्तानसे बाहरके होँ, बाक़ी सबका वतन सिवा हिन्दुस्तानके दूसरा कहीँ नहीँ। हमेँ यह भली प्रकार सोच लेना चाहिए कि हमेँ अपनी मातृभूमिमेँ रहना है और यहीँ हमेँ मरना है, इसीमेँ हमारा पालन हुआ है और यहीँकी मिट्टीमेँ हमारी भस्म अथवा मिट्टी मिलेगी। हम सब एक ही परमात्माकी सन्तान हैँ और एक ही मातृभूमिमेँ हमारा जन्म हुआ है। अगर हम इस बातको सम्मुख रखकर और बातोँपर ध्यान करेँगे, तो सब झगड़ोँको दूर करनेमेँ हम बहुत जल्द कामयाब हो जायँगे। यह बड़े अफ़सोसकी बात है कि पञ्जाबके हिन्दू और मुसलमानोँका परस्पर सम्बन्ध बहुत कुछ बिगड़ चुका है। अगर हम इन तमाम विषयोँके लिये, जो आपसमेँ बैरभाव पैदा करते हैँ, एक असूल क़ायम कर लेँ तो बहुत जल्द सब झगड़े मिट सकते हैँ।

हमारे दर्मियान एक झगड़ा नियाबत अर्थात् कौन्सिलोँमेँ प्रतिनिधि भेजनेके सम्बन्धमेँ है, जो लखनऊके समझौतेसे निपट गया था। अब म्युनिसिपल कमेटियोँ, ज़िला बोर्डोँ, पञ्चायतोँ और स्कूलोँकी सहायताके विषयमेँ झगड़े खड़े हो गए हैँ। इन्हीँसे अधिकतर आपसका रञ्ज बढ़ा है। मैँ इन सब झगड़ोँको सुन और समझकर परेशान होता हूँ। यदि आप चाहते हो कि भारतवर्षपर भारतवर्षके लोग राज्य करेँ तो हिन्दू और मुसलमानोँको एक दूसरेके साथ न्यायका बर्त्ताव करना चाहिए। ऐसा यत्न होना चाहिए, जिससे आपसकी फूट कम हो। अपसमेँ ऐसे सन्देह नहीँ होने चाहिए कि यदि एक जाति अधिक वोट लाभ कर लेगी तो वह दूसरेका गला घोँट देगी। मैँ आपसे पूछता हूँ कि वर्त्तमान राज्यविधानमेँ कौनसे ऐसे विषय हैँ जिनमेँ हिन्दू और मुसलमानोँके अधिकारोँमेँ भेद है? कर सबपर एक समान लगाया गया है। टैक्स-कर दोनोँके लिये एक समान है। सरकारने जो क़ानून बनाए हैँ उनमेँ हिन्दू-मुसलमानका कोई भेद नहीँ रक्खा गया। यह विचार ही ठीक नहीँ कि हिन्दू ज़्यादा वोट लेकर मुसलमानोँके सम्बन्धमेँ और मुसलमान ज़्यादा वोट लेकर हिन्दुओँके सम्बन्धमेँ कोई हानिकारक क़ानून बना लेँगे। हमारी दशा ठीक वैसी है, जैसे कि दो भाई लड़ने लगेँ और हमारा पुत्र बीचमेँ बैठा हो। यदि एक भाई तलवार चलायगा तो भी उस बालकपर पहले वार होगा और यदि दूसरा हाथ उठाएगा तो भी पहले उसी बालककी गर्दन कटेगी।

इसी प्रकार हिन्दू-मुसलमानोंके आपसके झगड़ेसे देशकी हानि हो रही है।

एक बातमें फ़र्क़

केवल एक बात है जिसमें हिन्दू-मुसलमानोंका अन्तर है और वह उनकी पूजाकी विधि है। इस विषयको छोड़कर बताइए और कौनसी बात है जिसमें वे एक दूसरेसे अलग हैं? देश हमारा एक है, उसीमें हम पैदा होते, पलते और मरते हैं। भाषा हमारी एक है तथा पूजा भी हम उसी एक परमात्माकी करते हैं। चाहे एक विधिसे करें, चाहे दूसरी विधिसे। फिर झगड़ा किस बातका है? यदि हम एक असूल क़ायम कर लें तो सब झगड़ोंका निपटारा हो सकता है। आख़िर इन झगड़ोंकी तहमें है क्या? बस यही एक रोटीकी लड़ाई है। हमारे मुसलमान भाइयोंने एक समयतक अंग्रेज़ी नहीं पढ़ी। हिन्दुओंने पहलेसे ही इस ओर ध्यान दिया। भला हो आर्य्यसमाज तथा स्वामी दयानन्दजीका जिनकी कृपासे पञ्जाबमें कई स्कूल और कौलेज़ खड़े हो गए। अब सनातनधर्म-सभा, सिक्ख और अन्य हिन्दू भाइयोंके यत्नसे और भी कई कौलेज़ स्कूल इस प्रान्तमें खुल गए हैं, जिनसे बहुत लोगोंको विद्यालाभका अवसर मिल गया। हमें स्कूलोंकी सहायताके सम्बन्धमें झगड़ा नहीं करना चाहिए। हाथकी पाँचों उँगलियोंकी एक बराबर चिन्ता करनी चाहिए। हम तो कहते हैं कि सब भाई रोटी खायँ। हमारी इच्छा है कि ब्राह्मण और सैयदसे लेकर भङ्गी और चाण्डालतक सब पाठशालाओंमें पढ़ें और विद्यारूपी अमृतका पान करें। मेरी यह अभिलाषा है, और मैं विश्वास करता हूँ कि मैं उसे पूर्ण होता देखकर मरूँगा कि भारतवर्षके छः से चौदह वर्षकी आयुके तमाम बच्चोंको, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान या किसी जातिके हों, सरकारी ख़र्चसे विद्या पढ़ाई जावे; और जो निर्धन हों, परन्तु अधिक शिक्षा लाभ करनेकी योग्यता और इच्छा रखते हों तो उन्हें भी सरकारकी सहायतासे शिक्षा दी जावे। यही विधि आज अमेरिकामें जारी है। हमारी यह इच्छा नहीं होनी चाहिए कि एक भाईकी थालीसे भोजन निकालकर अपनी थालीमें रख लें। हमें जितने स्कूल नए-नए खुलते जायँ, उन सबकी सहायता करनी चाहिए। अस्तु, जिन्हें पहले सहायता मिल रही है, उनकी सहायता बन्द नहीं करनी चाहिए।

इस समय दूसरा प्रश्न हमारे सामने नौकरियोंका है।

नौकरियोंके विषयमें यह असूल क़ायम हो नहीं सकता कि जिस क़ौमकी जितनी संख्या हो, उसे उतनी नौकरियाँ दी जावें। इस पहलूमें केवल एक ही नियम काम आ सकता है और वह यह कि जिसकी योग्यता निर्दिष्ट परिमाणकी हो उसे वह नौकरी दी जावे। जो योग्य हो वही नौकरीका अधिकारी हो सकता है। योग्य बननेका उपाय और अवसर सबके लिये बराबर दिया जाना चाहिए। हकीम अजमल ख़ाँ साहबकी योग्यताके कारण उनसे सब हिन्दू-मुसलमान इलाज कराते हैं। यहाँपर डाक्टर बेलीराम और डाक्टर हीरालालजीके पास उनकी योग्यताके कारण सब हिन्दू-मुसलमान अपने इलाजके लिये जाया करते हैं। इस असूलके अनुसार जब काम किया जायगा तो सब जातियोंसे योग्य जन निकलेंगे। यह विचार पूर्णतया मिथ्या है कि हिन्दुओंमें अधिक योग्य जन निकलेंगे और मुसलमानोंमें कम। योग्यता किसी जातिका विशेष अधिकार नहीं है। मुसलमानोंमें भी बड़े-बड़े विद्वान् और योग्य जन पाए जाते हैं जैसे हिन्दुओंमें हैं। यदि यह असूल मान लिया जायगा तो आपका रोटीका प्रश्न भी हल हो जायगा। जबतक यह अवस्था उत्पन्न नहीं होती, तबतक धैर्य्य और सन्तोषके सिवा और कोई उपाय नहीं। क्योंकि न्याय प्राप्त करनेका यत्न करते हुए हमें किसीके साथ अन्याय नहीं करना चाहिए।

इस सम्बन्धमें अब मैं दो असूल आपके सामने पेश करना चाहता हूँ। महाभारतमें हमें यह उपदेश

किया गया है कि जो बात आपको अपने लिये बुरी मालूम होती है, वह किसी औरके लिये भी मत चाहो। जो न्याय अपने लिये चाहते हो, वही दूसरे भाइयोंके लिये भी चाहो। इसके सिवा एक और असूल यह है कि न्यायपर डटे रहो और कभी भय मत खाओ। जो न्यायकी बात हो उसे आप मान लो और जो सत्य हो उसे वे मान लें। इन दोनों असूलोंको लेकर सब मामलोंको देखना चाहिए। तब सारे कार्य्य सिद्ध हो जायँगे।

हिन्दू-सङ्गठन और शुद्धि

सबसे पहले हिन्दू-सङ्गठनके प्रश्नको लीजिए। हमारे मुसलमान भाइयोंको यह भ्रम हो गया है कि यह सङ्गठन उनपर आधिपत्य लाभ करनेके लिये किया गया है। मुझे एक भी ऐसे हिन्दूका पता नहीं जिसका यह ख़याल हो। परन्तु यदि कोई एक भी जन ऐसा हो, जो ऐसा विचार रखता हो तो मैं निःशङ्क होकर कहता हूँ कि वह भ्रममें है और सबसे पहले मैं उसका विरोध करूँगा। अब मुसलमानोंने मुस्लिम लीग क़ायम की तो हिन्दुओंने उसपर कोई ऐतराज़ नहीं किया। यदि हिन्दू अपना सङ्गठन करने लगे हैं तो उन्हें भी ऐसा मानना चाहिए कि हिन्दुओंको भी वैसा ही हक़ हासिल है जैसा कि मुसलमानों को।

दूसरा प्रश्न शुद्धिका है। मुझे खेद है कि इससे आपसमें रञ्ज और भेद बढ़ गया है। परन्तु यदि उपरोक्त दोनों असूलोंको सम्मुख रखकर देखा जाय तो हमारे मुसलमान भाइयोंको उसे बुरा नहीं मानना चाहिए। मेरे मुसलमान भाई भी तो ग़ैरोंको मुसलमान बनाते हैं। अगर उनमें तवलीग़ जायज़ है तो हिन्दुओंसे शुद्धिके विषयमें क्यों ऐतराज़ किया जाता है? अलबत्ता अगर यह काम मुक़ाबलेसे किया जायगा तो धर्मके नामसे कितने ही अधर्मके काम होंगे। इसी लिये यह धर्मप्रचारका काम बहुत शान्ति और धैर्य्यके साथ होना चाहिए। जो कोई अपने धर्मसे भ्रष्ट होता हो, उसे अवश्य बचानेकी कोशिश करो। परन्तु जो यत्न करो उसमें सदैव इस बातका ध्यान रक्खो कि परमात्मा हमारी सब बातोंको देखता और सुनता है। अस्तु, इस बातका भी बहुत ध्यान रखना चाहिए कि तबलीग़ और शुद्धिका ज़्यादा शोर मचाना या समाचार-पत्रोंमें उसका आन्दोलन करते रहना परस्पर मेलमें विघ्न डालना है।

हिन्दू कौन हैं?

हिन्दू-महासभाने यह फ़ैसला कर दिया है कि जिस किसी जनको भी हिन्दू-धर्मके सिद्धान्तोंपर विश्वास हो, उसे हिन्दू मान लिया जाय। यह निर्णय आर्य्यसमाजके अग्रगामी पण्डितोंने नहीं किया, बल्कि सनातनधर्मके अग्रणी पण्डितोंने किया है। यह निर्णय ऐसी सभाने किया है, जिसमें दो जगद्गुरु शङ्कराचार्य्य उपस्थित थे। वहाँपर यह भी प्रश्न उठा था कि ऐसे लोगोंको हिन्दुओंकी किस जातिमें शामिल किया जायगा। उसका उत्तर यह दिया गया कि हिन्दुओंमें जातियाँ तो आए दिन बढ़ती ही रहती हैं। इसलिये ऐसे लोगोंकी भी एक दूसरी जाति बना दी जाय, जो दूसरी जातिके होकर भी हिन्दू सिद्धान्तोंपर विश्वास रखते हों। यह जाति एक हिन्दू जाति होगी। हिन्दू पहले दूसरोंको अपने अन्दर प्रवेश नहीं होने देते थे। परन्तु अब उन्हें यह मालूम हो गया है कि उन्हें किसीको रोकनेका कोई अधिकार नहीं है और जिस किसीको जो धर्मोपदेश ग्राह्य हो, उसे उसके ग्रहण करनेसे रोकना पाप है। मेरी प्रार्थना केवल यह है कि अनुचित जोश न तो इस तरफ़ होना चाहिए, न उस तरफ़।

सच्चे हिन्दू और सच्चे मुसलमान

मैं हर एक हिन्दूसे कहता हूँ कि पहले हमें अपने ही हिन्दू भाइयोंको शुद्ध हिन्दू बनानेकी चिन्ता करनी चाहिए। अछूत कहलानेवाले भाइयोंको तो हमें उठाना ही है, परन्तु हमारे करोड़ों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य

भाई भी नहीँ जानते कि हिन्दू धर्म क्या है। पहले इन भाइयोँको पक्का हिन्दू बनाओ। इसी प्रकार मैँ अपने मुसलमान भाइयोँसे भी यह कहूँगा कि पहले अपने मुसलमान भाइयोँको पक्का मुसलमान बनाओ। दोनोँ ही जातियोँको अपने-अपने दायरेके अन्दर बहुतसा काम करनेको मौजूद है। हमारा सबसे बढ़कर उत्साह इसमेँ होना चाहिए कि मुसलमान सच्चे ईश्वर-भक्त होँ और हिन्दू अपने धर्मके सिद्धान्तोँको अच्छी तरहसे समझ लेँ। यदि दोनोँका ध्यान धर्मजीवनकी प्राप्तिकी तरफ़ होगा तो उससे एकता भी बढ़ेगी और उन्नति भी होगी।

हमारा तीसरा सम्बन्ध

हमारा तीसरा सम्बन्ध अपने हिन्दू दायरेके अन्दर है। हमारे वेद पुकार-पुकारकर कहते हैँ कि हमारी हिन्दू जातिके अन्दरकी सब जातियाँ अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब एक ही शरीरके अङ्ग हैँ। इसलिये हमको छोटी या बड़ी सब जातियोँसे प्रेम करना चाहिए। हममेँ परस्पर एकता बहुत कम है। इस एकताको पैदा करनेका पहला उपाय यह है कि सब बिरादरियोँ और जातियोँके लोग महीनेमेँ कम-से-कम एक बार एक जगह मिलकर बैठेँ। पूर्णमासीका दिन इस कामके लिये अत्यन्त उपयुक्त है। उस दिन दो घण्टेके लिये सब काम बन्द करके नारायणकी पवित्र कथा सुनो। मैँ धर्मके नातेसे आपसे आज यही भिक्षा माँगता हूँ। हिन्दू जातिकी पूर्णमासीके चाँदसे बहुत अच्छी उपमा दी जाती है, क्योँकि सब जातियोँके मिलनेसे ही यह जातीय चन्द्र पूर्ण होता है। जो लोग मैला काम करते हैँ, उनके लिये भी इस समागममेँ स्थान होना चाहिए, नहीँ तो उनके बिना समझो कि चन्द्रमाको ग्रहण लग गया है।

ये भङ्गी और छोटी जातियोँके लोग कौन हैँ ?

आपका जो काम कोई और न करे, वह यह करते हैँ। हमपर थोड़ीसी मिट्टी गिर जाय तो हम बावेला मचा देते हैँ। सारे शरीरमेँ सिर सबसे अधिक श्रेष्ठ है, परन्तु ये बेचारे गाँवभरका मैला अपने सिरपर उठाते हैँ और एक दिन या एक सप्ताहके लिये नहीँ, किन्तु इन लोगोँको यह काम करते हुए कई युग बीत गए। जिन लोगोँने युगयुगान्तरसे हिन्दू जातिकी ऐसी कठिन सेवा की हो, क्या आपका दिल ऐसा कठोर है कि आप उनके हितकी चिन्ता न करोगे? मैँ आपसे यह नहीँ कहता कि आप उन्हेँ पैसे या कपड़े दो। मैँ आपको उन्हेँ वह चीज़ देनेको कहता हूँ, जो आपको सबसे ज़्यादा प्यारी है, अर्थात् भगवानकी विमल भक्ति। आप इस समुद्रमेँसे जितना उन्हेँ दोगे, उतना ही यह दूसरी ओरसे भरता जायगा। आप उन्ह सनातन-धर्मके अमृतका पान कराओ। याद रक्खो, वे अपने पेटके लिये नहीँ, किन्तु हमारे उपकारके लिये हमारी यह सेवा करते हैँ। रोज़गार और भी बहुतसे हैँ और कई प्रकारसे रोज़ी कमा सकते हैँ। परन्तु उनकी सेवाके बिना हमारा क्या हाल होगा, यह विचार किया जा सकता है। ये सब भाई हमारे साथ धर्मका सम्बन्ध रखते हैँ। मुझे एक भी ऐसा भङ्गी नहीँ मिला, जो स्नान किए बिना भोजन करता हो। प्रयागमेँ मुझसे एक मेहतरानीने मेरे पूछनेपर यह बताया कि वे प्रातःकाल उठकर रामनाम जपते हैँ, स्नान करके और वस्त्र बदलकर भोजन करते हैँ, पीतल और काँसे आदिके बरतनोँमेँ भोजन बनाते और खाते हैँ। भोजन और शयनके समय और यथा अवसर और समयोँमेँ परमात्माको स्मरण करते हैँ, व्रत रखते हैँ और गङ्गा, यमुना आदिमेँ स्नानके लिये जाते हैँ। अब बताइए हमारा उनके साथ कोई सम्बन्ध है या नहीँ ?

प्रयागमेँ मेहतरोँका सत्कार

प्रयागमेँ मैँने पन्द्रह सौ मेहतरोँको इकट्ठा किया, और मेरे एक मित्रने इन सबको नये कपड़े दिए। इन लोगोँने श्रीगङ्गाजीमेँ स्नानकर जब नये कपड़े पहने और सभामेँ आए तो मैँ आपको क्या बताऊँ

कि उनका हृदय कितना प्रसन्न था ! ऐसा प्रतीत होता था कि मानो किसीने उन्हेँ हाथ देकर ऊपर उठा दिया है। फिर मैँने उन्हेँ हिन्दू सभाके मण्डपमेँ प्रह्लादकी कथा सुनाई जिसे सुनकर ये लोग और भी प्रसन्न हो गए। आप यह न समझिए कि यह कथा अब मैँने उन्हेँ हिन्दू सङ्गटनकी वजहसे सुनाई। ऐसी ही एक कथा छः वर्ष पहले भी मैँने उन्हेँ सुनाई थी। मेरे पिताजी भी कथा बाँचा करते थे।

भङ्गियोँको, जहाँ कहीँ वह नौकरी करते होँ, यह शर्त्त कर लेनी चाहिए कि जहाँ कहीँ वह काम करेँगे, वहाँसे वह पन्द्रह रुपये सालाना पोशाकके लिये लेगेँ। जैसे पुलीसके सिपाहियोँको वस्त्र मिलते हैँ, डाकख़ानेके चिट्ठीरसाओँको वस्त्र मिलते हैँ, वैसे ही कोई वजह नहीँ कि क्योँ न सरकारका काम करनेवाले मेहतरोँको वस्त्र दिए जायँ ? यदि उन्हेँ साफ़ वस्त्रोँके लिये रुपया नहीँ मिलेगा तो यदि मेरे वशमेँ होगा तो मैँ उन्हेँ काम नहीँ करने दूँगा। महात्मा गान्धीजीने जो चार ज़रूरी साधन स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये बतलाए हैँ, उनमेँसे एक अछूतोद्धार भी है। महात्मा गान्धीजी कोई साधारण आदमी नहीँ हैँ। जातिको सैकड़ोँ वर्षोँमेँ कोई ऐसा आदमी मिलता है। हमेँ उनके आदेशानुसार अछूतोद्धारके कामको अपने हाथोँमेँ लेकर मुसलमानोँसे कह देना चाहिए कि अब तुम इनकी चिन्ता मत करो। हम बारह महीनोँके अन्दर-अन्दर अछूतोँका प्रश्न हल कर देँगे। अछूतोँको कुएँपर चढ़ने दो। हिन्दुओँसे मेरी यह प्रार्थना है कि यदि वह भाई मन्दिरोँमेँ देवदर्शनके लिये आना चाहेँ, तो उन्हेँ देवताओँका दर्शन करने दो। यदि वह सभाओँमेँ आएँ तो उन्ह स्थान दो और सर्वसाधारण कुएँसे उन्हेँ जल भरने दो। ऐसा उपदेश करनेमेँ मैँ आपको कोई नया धर्म बतानेके लिये नहीँ आया। मैँ शास्त्रकी रस्सीको थामकर चलता हूँ और मैँ जो कुछ कहता हूँ वह शास्त्रके आधारपर कहता हूँ। शास्त्रमेँ लिखा है, कुएँके स्थानपर छूआछूत नहीँ है। इसलिये अछूतोँको कुएँसे पानी भरने दो। हाँ, इतना मैँ ज़रूर कहूँगा कि जो कुआँ निजका हो, उसपर मालिककी अनुमति लेकर चढ़ना चाहिए। परन्तु जो कुआँ सर्वसाधारणके लिये धर्मार्थ बनाया गया है, वह सबके लिये है। कुएँकी प्रतिष्ठाका अनुष्ठान करते समय यह कहा जाता है कि मैँ सब प्राणियोँके हितके लिये यह कुआँ बनवाता हूँ। जब इसमेँ सब प्राणी आ गए तो किसीको ऐसे कुएँपर चढ़नेसे रोकनेका अधिकार किसको है ? परन्तु मैँ इतना निवेदन ज़रूर करूँगा कि आपसमेँ बैरभाव कहीँ नहीँ होना चाहिए। तेज़ी और जल्दबाज़ीसे काम नहीँ बिगाड़ लेना चाहिए। हमेँ स्मरण रखना चाहिए कि जब कोई रोग पुराना हो जाता है तो उसके लिये धीमा इलाज अच्छा होता है। तीक्ष्ण ओषधि अच्छी नहीँ होती। इसलिये अगर इस विषयमेँ भी पुराने ख़यालके लोगोँका साथ लेकर काम किया जायगा तो कार्य्यमेँ अधिक सफलता प्राप्त होगी।

मन्दिरोँमेँ मूर्त्तियोँके दर्शनोँके सम्बन्धमेँ मेरा यह कहना है कि यदि मुझे ठाकुरजीके दर्शनसे नहीँ रोका जाता तो मेरे अछूत भाई और बहनको भी मत रोको, जिसका दिल सम्भवतः कहीँ मुझसे भी ज़्यादा पवित्र है। मैलका सम्बन्ध वस्त्र और शरीरसे है, जो धोने तथा नहानेसे साफ़ हो सकता है। आत्माके साथ उसका सम्बन्ध नहीँ है। तुम उनकी आत्माको देखो।

ब्रह्मचर्य्य और व्यायाम

एक और बात जिसकी ओर मैँ आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ वह छोटी उम्रका विवाह है। लड़कीका बारह और लड़केका अठारह वर्षसे पहले विवाह कभी मत करो और यदि कन्याका सोलह और बालकोँका बीस या पच्चीस वर्षकी अवस्थामेँ विवाह कर सको तो और भी उत्तम है। ब्रह्मचर्य्यका प्राचीन नियम चलाओ, तभी हमारे पूर्वजोँके समान उच्च श्रेणीके पुरुष पैदा हो सकेँगे। मैँ पच्चीस वर्षके विवाहको सबसे उत्तम समझता हूँ। उससे उतरकर

बीस वर्षकी उम्रके विवाहको समझता हूँ और अठारह वर्षसे पहले तो किसी भी बालकका विवाह न होना चाहिए।

ब्रह्मचर्य्यके साथ ही व्यायाम भी करना चाहिए जिससे हमारे शरीर पुष्ट होँ। शोक है कि हिन्दू अब ऐसे दुर्वल हो गए हैँ कि उनमेँ किसी मारनेवालेके हाथको रोकनेकी भी हिम्मत न रही। जो पुरुष अपनी माता, वहन या पत्नीकी रक्षा नहीँ कर सकता, उसके जीवित रहनेकी कोई आवश्यकता नहीँ, और यदि वह अपनी आँखोँके सामने अपनी माता, वहन या पत्नीपर आक्रमण देखकर जीता रहता है, तो उसके जीनेसे उसका मर जाना बेहतर है। प्रत्येक पुरुषका धर्म है कि वह व्यायाम करे। मैँ चाहता हूँ कि भारतकी सव जातियोँके लोग वलवान होँ, सव शेरमर्द होँ। जिससे आपसके युद्धकी सम्भावना मिट जावे। क्योँकि किसी वनमेँ शेरोँका शेरोँसे युद्ध नहीँ होता। शेर केवल गीदड़ आदि निर्वल पशुओँपर आक्रमण करते हैँ। मेरी हृदयगत इच्छा है कि मेरे देशका प्रत्येक व्यक्ति वलवान हो। मैँ जैसे हिन्दुओँका शुभ चाहता हूँ, वैसे ही मुसलमानोँका भी। कदाचित् मुझमेँ शक्ति होती कि मैँ अपना दिल व जिगर खोलकर अपने हिन्दू और मुसलमान भाइयोँको दिखला सकता कि मैँ इन दोनोँका किस प्रकार एक समान हिताकाङ्क्षी हूँ। मेरी परमात्मासे एकमात्र प्रार्थना है कि हम सव अङ्गोँमेँ वलवान होँ और आपसमेँ एक दूसरेके साथ प्रेमके सूत्रमेँ वँधकर स्वराज्य प्राप्त करेँ, जिससे हमारा यह लोक और परलोक दोनोँ सुधर जायँ। प्रभु मेरी ऐसी प्रार्थनाको पूर्ण करेँ।

हिन्दू-जाति-मुकुट

पूज्य मालवीयजी

हिन्दू-महासभाका विशेष अधिवेशन

हिन्दू-महासभाका विशेष अधिवेशन बेलगाँवमें २७ और २८ दिसम्बरको कांग्रेस-पण्डालमें पूज्य मालवीयजीके सभापतित्वमें हुआ। उपस्थिति बहुत अधिक थी। पण्डाल प्रतिनिधियों और दर्शकोंसे खचाखच भरा था। सभामें महात्मा गान्धी, लाला लाजपतराय, देशबन्धु चितरञ्जनदास, पं० मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द, श्री केलकर, श्री सत्यमूर्त्ति, मौलाना मोहम्मद अली, मौलाना शौक़त अली, मौलाना अब्दुल क़लाम 'आज़ाद', श्री टी० प्रकाशम्, डा० मुञ्जे, डा० महमूद आदि सज्जन उपस्थित थे। पूज्य मालवीयजीने सभापति-पदसे जो भाषण दिया था उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

—सम्पादक।

बहनो और भाइयो !

आप जानते ही हैं कि हिन्दू-महासभा देशमें कई वर्षोंसे स्थापित है। ऐसी संस्थाकी आवश्यकता क्यों हुई और इसके उद्देश क्या हैं, इसके ऊपर सङ्क्षेपमें प्रकाश डालना है। भारतवर्षकी अधिकांश जनता हिन्दू है। कितने बड़े दुःखके साथ कहना पड़ता है कि जब अन्यान्य जातियाँ भली भाँति सङ्घटित थीं, हिन्दू जातिका इससे पहले कोई सङ्घटन ही न था। साथ ही हमें यह देखकर हार्दिक दुःख होता था कि हिन्दू जातिकी इस कमज़ोरीसे लाभ उठाकर भारतवर्षकी अन्यान्य जातियाँ हिन्दू धर्मावलम्बियोंको अपने-अपने धर्मोंमें बदलनेका प्रयत्न कर रही थीं। इन सब बातोंको देखकर हमने हिन्दू समाजके सर्वपन्थियों तथा सर्ववर्गियोंमें पारस्परिक प्रेमकी अभिवृद्धिके लिये, इस समाजको सङ्घटित करनेके लिये, हिन्दुओंके हितोंकी जहाँ आवश्यकता हो वहाँ रक्षा करनेके लिये, हिन्दू स्त्रियोंकी दशा सुधारनेके लिये, हिन्दू जातिके धर्म, सदाचार, शिक्षण तथा राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उन्नतिके लिये हिन्दू-महासभाकी स्थापना की थी। कुछ लोग इसकी संस्थापनाको हानिकर समझते हैं। उनका ख़याल है कि यह साम्प्रदायिक संस्था है और इसी कारण वह राष्ट्रीय महासभाका विरोध करती है। किन्तु यदि महासभा कांग्रेसका वास्तवमें विरोध करती है तो यह उसके लिये निःसन्देह शर्मकी बात होगी।

महासभावालोंका उद्देश कांग्रेसको शक्तिशाली बनाना है। हिन्दू-महासभाकी स्थापनाकी आवश्यकता इसी लिये हुई कि राजनीतिक संस्था होनेके कारण कांग्रेस विभिन्न जातियोंके सामाजिक तथा जीवनके अन्य क्षेत्रोंमें कार्य्य नहीं कर सकती थी। इस देशमें अनेक सभ्यताएँ हैं। मुसलमान अपनी सभ्यताकी निरन्तर पुष्टि किया करते हैं। हिन्दुओंका भी कर्त्तव्य है कि वे अपनी सभ्यताकी पुष्टि करें, उसकी रक्षा करें और उसका प्रचार करें। राजनीतिक संस्थाएँ अस्थायी हुआ करती हैं। वे आती हैं और चली जाती हैं। ठीक इसी तरहसे बड़े-बड़े साम्राज्य बनते हैं और बिगड़ते हैं। लेकिन सभ्यता, सामाजिक संस्थाएँ, साहित्य और कला किसी जातिके लिये स्थायी महत्त्व रखनेवाली हैं और इनकी हर प्रकारसे रक्षा की जानी चाहिए।

मैं हृदयसे चाहता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेके साहित्यका अध्ययन करें, जिससे वे एक दूसरेकी विशेषताओंको समझ सकें। हिन्दू, सिक्ख, बौद्ध सबके एकीकरणका हिन्दू-महासभासे बढ़कर और कौनसा स्थान हो सकता है?

हालके हिन्दू-मुस्लिम दङ्गोंके विषयमें भी मैंने विचार किया है। मेरे विचारसे कई दङ्गे तो हिन्दुओंकी कायरता और निर्बलताके ही कारण हुए हैं। इन दङ्गोंके कारण राष्ट्रीय दृष्टिसे हानिकारक स्थिति उत्पन्न हो गई है। अतः यह राष्ट्रीय आवश्यकता है कि हिन्दुओंकी जिस दुर्बलताके कारण अनेक दङ्गे हुए, वह दूर कर दी जाय। हिन्दुओंकी इस दुर्बलताके कारण क्या हैं? प्रथम कारण हिन्दुओंका अपने धर्मके आदेशोंको भूल जाना है, अतः इनका ज्ञान फैलाना आवश्यक है। दूसरा कारण उनकी शारीरिक निर्बलता है। यह मुख्यतः विवाह-प्रथाके भ्रष्ट होनेका परिणाम है। इसीके कारण आज हमारे यहाँ अबोध बालिकाएँ विधवा हैं। इस स्थितिको दूर करना होगा, क्योंकि इसके कारण हमारी जातिमें शारीरिक निर्बलता आ गई है। इन सामाजिक दोषोंको दूर करनेके लिये हिन्दू-महासभासे बढ़कर उपयुक्त कौनसी संस्था है?

हिन्दुओंके सामने बुद्धगयाके मन्दिरके अधिकारका भी झगड़ा है। सीलोन (लङ्का) से एक बौद्ध मित्र हमारी सभामें सम्मिलित होनेके लिये आए हैं। हिन्दुओं और बौद्धोंके बीच उक्त मन्दिरके प्रबन्धाधिकारके प्रश्नका फैसला होना है। ऐसे प्रश्नोंका मित्रभावसे निपटारा करनेके लिये हिन्दू-महासभासे अच्छी संस्था और कौन है?

इसी प्रकार ब्राह्मण-अब्राह्मण और अस्पृश्यताके प्रश्न हैं। दुर्भाग्यवश मौण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड सुधारोंके प्रचलित होनेके बादसे ऐसे-ऐसे दल और समुदाय निकल आए हैं जिनके अस्तित्त्वकी किसीको आशा न थी। ब्राह्मण, अब्राह्मण दोनों ही हिन्दू-सभ्यताके अन्तर्गत हैं। दोनोंको भाई-भाईकी तरह रहना चाहिए। ब्राह्मणोंको चाहिए कि गुण तथा योग्यता जहाँ कहीं भी मिले, उनका आदर करें। ब्राह्मणोंकी राम, कृष्ण और बुद्धकी, जो ब्राह्मण न थे, भक्ति करना इस बातका प्रमाण है कि गुण कहीं भी मिले, उन्हें उसका आदर करनेमें सङ्कोच नहीं होता था। दुःखकी बात है कि दस-बीस सरकारी नौकरियों तथा दो-एक मन्त्रीपदोंके लालचसे, जो हिन्दूमात्रकी एकताके सामने तुच्छ वस्तु हैं, हम आपसमें झगड़ने लगे हैं। हमें एक दूसरेका सुख और शक्ति देखकर प्रसन्न होना चाहिए। जबतक हमारी बुद्धिमें विकार न आ जाय, हमारे लड़नेका कोई कारण नहीं। क्या महात्मा गान्धी अब्राह्मण नहीं हैं, और क्या यह सत्य नहीं कि आज देशमें जितनी उनकी प्रतिष्ठा है उतनी और किसीकी नहीं? मैं अपने ब्राह्मण तथा अब्राह्मण भाइयोंसे आपसका भ्रम दूर करनेका अनुरोध करता हूँ।

अस्पृश्यता निवारण करनेके लिये महात्मा गान्धीने जो महान् कार्य्य किया है, उसके लिये वे धन्यवादके पात्र हैं। राजनीतिक दृष्टिसे मनुष्य-गणनामें अपनी संख्या अधिक दिखानेके विचारको अलग रख देनेपर भी अपने अछूत भाइयोंके प्रति, जो हमारी ही तरह हिन्दू-सभ्यता तथा संस्कृतिके उत्तराधिकारी हैं और जो हिन्दू-समाजके अङ्ग हैं, हमारा कुछ कर्त्तव्य है। महासभाने उनके सार्वजनिक स्कूलोंमें भर्त्ती किए जाने, सार्वजनिक कूओंसे पानी भर सकने और मन्दिरमें देव-दर्शन कर सकनेके पक्षमें अपना मत दिया है। पर महासभाका अहिंसामें विश्वास है और वह दुराग्रह और द्वेषके बल नहीं, किन्तु प्रेमसे पराजित करनेके सिद्धान्तको मानती है, इसलिये उसने यह भी कह दिया है कि जहाँ तत्काल ऐसा होना सम्भव न हो, वहाँ अछूत भाइयोंके लिये नई संस्थाएँ, कुएँ और मन्दिर खोले तथा बनवाए जायँ।

सदियोंसे मुसलमान लोग हिन्दुओंको मुसलमान बनाते रहे हैं और भारतके मुसलमानोंमें अधिक संख्या ऐसे हिन्दुओं तथा उनकी सन्तानों की है

जो हिन्दुओंसे मुसलमान बनाए गए हैं। कितने ही इसाई मिशन भी हिन्दुओंको अपने धर्ममें ले जानेका प्रयत्न कर रहे हैं। हिन्दू शास्त्रों ने हमें अपना ज्ञान दूसरोंमें फैलानेकी आज्ञा दे दी है, पर अबतक हम इस कर्त्तव्यकी उपेक्षा करते रहे हैं। केवल आर्य्यसमाजी भाइयोंने थोड़ा-बहुत कार्य्य इस ओर किया है। अतः इस्लामी और इसाई मिशनोंकी कार्रवाईके कारण विधर्मियोंको स्वधर्ममें लानेके लिये एक हिन्दू मिशनका सङ्घटन वहुत ही आवश्यक हो गया है।

जातिवादके प्रश्नका एक और भी पहलू है, वह भी अब महत्त्वपूर्ण हो रहा है। मुस्लिम लीग सभी प्रतिनिधि संस्थाओं तथा नौकरियोंमें मुसलमानोंके लिये पृथक् प्रतिनिधित्त्वका दावा कर रही है। राष्ट्रहितकी दृष्टिसे मैं जातिगत प्रतिनिधित्त्वका घोर विरोधी हूँ। पर जबतक मुसलमान स्वेच्छासे इसका दावा त्याग देनेको तैयार नहीं होते, तबतक हम भी इसे नहीं छोड़ सकते। इस प्रकारके प्रतिनिधित्त्वके कारण जातिगत वैमनस्यको बढ़ते देखकर मुझे दुःख होता है। मैं तो यह कहता हूँ कि राष्ट्रीय सरकार और जातिगत शासन दोनों एक साथ चल ही नहीं सकते। आज इस देशमें जातिवादका सर्वसाधारणपर जितना असर पड़ा है, यदि उतना ही वह बना रहे तो यहाँ पूर्ण राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना लाभजनक न होगी। राष्ट्रवाद और जातिवाद एक साथ नहीं ठहर सकते। एकके आनेके पूर्व दूसरेका जाना अनिवार्य्य है। इस समय जब मुस्लिम लीग जातिगत प्रतिनिधित्त्वका प्रश्न उठा रही है, तव इस प्रश्नपर हिन्दुओंका मत निश्चित रूपसे मालूम करके हिन्दू-सभाको हिन्दुओंकी राय जाननी चाहिए और उसे प्रकाशित करना चाहिए।

अन्तमें मेरी हिन्दुओं और मुसलमान दोनोंसे यही प्रार्थना है कि वे एक होकर रहें। सङ्घटनमें ही वल है, सङ्घटन में ही शक्ति तथा सङ्घटनमें ही किसी राष्ट्रको उठानेका मूल मन्त्र है। देश दोनोंका है। हिन्दू भी यहीं रहेंगे और मुसलमान भी यहीं। भलाई इसीमें है कि दोनों साथ-साथ रहें और प्रेमसे रहें और सोलहों आने राष्ट्रवादी वननेका प्रयत्न करें। जिससे देश अपने पुराने वैभवयुक्त स्थानको प्राप्त कर सके और भारत, भारतवासियोंका ही हो जाय।

* * *

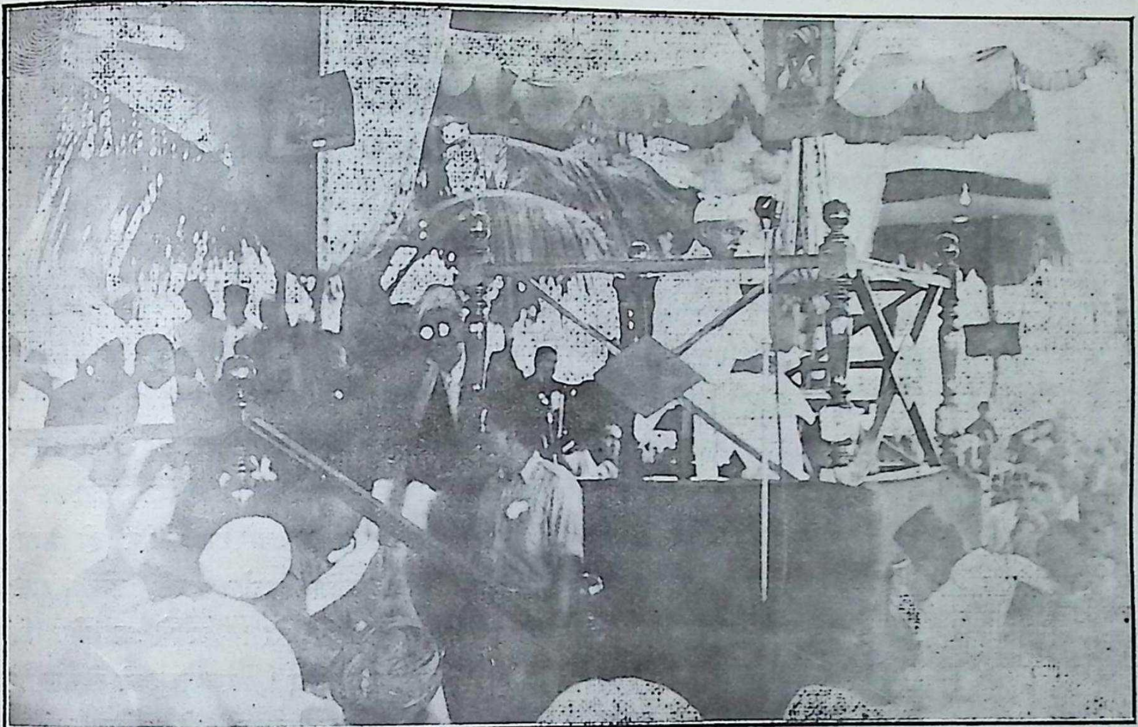

अखिल भारतीय हिन्दू-महासभाका सत्रहवाँ अधिवेशन।
पूज्य मालवीयजी बीचमेँ मञ्चपर सभापति-भाषण दे रहे हैं।

हिन्दू-महासभा

पूनाके तिलक-स्मारक हौलमेँ हिन्दू-महासभाका सत्रहवाँ अधिवेशन २९ दिसम्बर, सन् १९३५ ई० को हुआ था। उसके सभापति पूज्य मालवीयजी थे। सभापतिपदसे उन्हौंने जो व्याख्यान दिया उसका सारांश यहाँ दिया जाता है।

—सम्पादक।

बहनो और भाइयो !

हिन्दुओँके लिये अत्यन्त विकट समय आ गया है। एक ओर तो सरकार हमारी बातोँपर ध्यान नहीँ देती और दूसरी ओर हम भी अपनी वास्तविक परिस्थितिपर ध्यान नहीँ देते। सरकारकी ओरसे जो नये विधान हमारे सामने आ रहे हैँ वे चिन्ताजनक और भयानक हैँ। उनकी निन्दा करना हमारा

कर्त्तव्य है। आप जानते हो कि प्रयागमेँ मैँ मुसलमानोँको केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभामेँ बत्तीस प्रतिशत स्थान देनेके लिये तैयार था; किन्तु सरकारकी चालोँसे सफल-मनोरथ न हो सका। मुसलमान मेरे पक्षमेँ आनेवाले थे ही कि सर सेमुएल होरने उन्हेँ ३३⅓ प्रति शत स्थान देनेका वचन दे दिया। नतीजा यह निकला कि हिन्दू-मुस्लिम-एकताकी बातचीत व्यर्थ गई और एक दूसरेसे और भी ज़्यादा अलग हो गए। हिन्दू-मुसलमानोँके इस प्रकारके जातीय बखेड़ोँको बढ़ते देखकर मुझे दुःख होता है। हमेँ किसी प्रकार मिलकर इसे कम करना होगा। दुःखकी बात है कि सरकारने सीमाप्रान्तसे हिन्दी और गुरुमुखीको निकाल दिया। सरकारकी इस हिन्दी-गुरुमुखी-विरोधी सरकारी आज्ञाका अदब करना अनुचित है। इसने हिन्दी-उर्दू वैमनस्यको बढ़ा दिया है। जहाँतक सम्भव हो सीमाप्रान्तमेँ हिन्दी और गुरुमुखीकी प्रतिष्ठा क़ायम रखनेका प्रयत्न करना चाहिए और इस एकाङ्गी नीतिका विरोध करना चाहिए। जन-सामान्यकी भाषापर इस प्रकारका प्रहार अन्यायपूर्ण और कठोर है। सरकारको अपनी इस आज्ञापर फिरसे विचार करना चाहिए और उस न्यायका परिचय देना चाहिए जिसकी उससे आशा की जाती है और जिसका परिचय उसने अन्य प्रान्तोँके सम्बन्धमेँ दिया था। उन्नतिके लिये भाषाका सवाल पेचीदा है। मगर इस तरहसे उसे हल करना ठीक नहीँ कहा जा सकता।

सज्जनो!

राजनीतिकी वर्त्तमान परिस्थितिको देखकर हताश होनेकी कोई आवश्यकता नहीँ। क्या हम बिना स्वतन्त्र हुए चुप-चाप बैठ सकते हैँ? (नहीँ, नहीँ)। आप लोगोँने ठीक कहा। जबतक हमारे शरीरमेँ प्राण और नसोँमेँ ख़ून है तबतक हमेँ निराश होनेका कोई कारण नहीँ। हम तबतक चुप नहीँ रह सकते जबतक स्वराज्य प्राप्त न कर लेँ। हमेँ साहस और धैर्य्यके साथ आगे बढ़ना चाहिए। कर्मनिष्ठोँके लिये निराशाका अस्तित्त्व नहीँ। उसे कायर पसन्द करते हैँ। प्रत्येक भारतीयको सङ्कल्प, दृढ़ सङ्कल्प कर लेना चाहिए कि प्राणोँकी बाज़ी लगाकर हम स्वराज्य लेँगे और तबतक प्राणपणसे इसके लिये प्रयत्नशील रहेँगे जबतक हमारे दम-मेँ-दम है। स्वराज्यकी ज्योति प्रत्येक भारतीयके हृदयमेँ जगमगा रही है। उसे ढको मत। उसको देखो और उसके अलौकिक प्रकाशमेँ सारी विभिन्नताओँको धो डालो और परस्पर दृढ़ एकता स्थापित करो। आप एक हो और एक ही के रूपमेँ सामने आओ, फिर देखो स्वराज्य लेना कितना आसान है।

स्वराज्य तथा स्वशासनके लिये शारीरिक तथा सैनिक शिक्षा अनिवार्य्य है। बिना बलके मर्य्यादा नहीँ रहती। बलरहित अपना शरीर ही भार हो जाता है। बल सञ्चित करो, बली बनो। सर्वत्र सैनिक शिक्षाका प्रचार करो। अपने आपको किसी सेनानीसे कम मत समझो। स्वराज्यकी सेना तैयार करो। साथ ही इस बातका भी ध्यान रक्खो कि क्षात्रधर्मके साथ-ही-साथ कृषि-वाणिज्यकी भी उन्नति हो। व्यावसायिक शिक्षा तथा घरेलू कारबारसे विमुख न हो। काम-काज तथा व्यापारिक धन्धोँपर ध्यान दो जिससे शीघ्र ही स्वावलम्बी बन सको।

अछूतोँको मत भूलो। अछूत आपके मुख्य अङ्ग हैँ। डाक्टर अम्बेडकर भ्रममेँ हैँ। कौन नहीँ जानता कि हिन्दू धर्म संसारके सब धर्मोँसे उदार धर्म है? इतनी उदारता और किस धर्ममेँ है? किस धर्ममेँ भूतमात्रकी चिन्ताका विधान है? हरिजनोँके लिये भी हमारे वे ही शास्त्र हैँ जो अन्य हिन्दुओँके लिये। दोनोँके हृदयमेँ हिन्दू धर्मके लिये वही प्रेम-भाव है। दोनोँ ही एक ही विराट् रूपसे उत्पन्न हुए हैँ। जो लोग हिन्दू धर्मके मर्मसे अपरिचित हैँ और हमारी संस्कृतिको नहीँ जानते, उन्हेँ बकने दो। परन्तु आप इस बातको बराबर याद रक्खो कि अछूत आपके और आप अछूतोँके हैँ। क्या कोई ऐसा भी अछूत है जो अपनेको हिन्दू नहीँ कहता?

क्या अछूत कहे जानेवालोंमें जाति-भेद नहीं है? क्या अछूतोंमें रोटी-बेटीका प्रश्न उसी प्रकार नहीं बना है जिस प्रकार अन्य जातियोंमें? फिर यह अछूतोंको अलग करनेकी धमकी क्या? क्यों उन्हें लोग अहिन्दू बनानेपर तुले हैं? मुसलमान और इसाई तो उनके पीछे बहुत दिनोंसे पड़े थे और वे उनको उचित उत्तर भी दे देते थे, पर उधर राजनीतिकी लपेटोंसे उनमें जो ख़लल पैदा किया जा रहा है वह गर्हित और निकम्मा है। आपको सावधान हो जाना चाहिए और शीघ्र ही सार्वजनिक स्थानोंसे वर्ण-भेदका प्रश्न हटा देना चाहिए। आपको अपने मार्गपर बिछे हुए काटोंको हटाना है न कि उनको और भी बढ़ा देना। सच बात तो यह है कि हमें हरिजनोंसे हिल-मिलकर काम करना चाहिए और उनके उत्थानका उपाय सोचना चाहिए। मैं आगामी वर्षमें बहुतसा चन्दा एकत्र करना चाहता हूँ। मेरा विचार उन्हें मन्त्र-दीक्षा देनेका है। आप शीघ्र देख लेंगे कि खानपान और विवाहके सम्बन्धको छोड़कर शेष सब कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं। हरिजन बाहरी चकमोंमें आकर अपना धर्म न छोड़ें। हम उनकी चरण-रज लेनेको तैयार हैं। हिन्दुओ! अपने धर्मकी रक्षा करो। आपद्कालपर विचार करो और समयकी प्रगतिपर ध्यान दो। यदि उचित समयपर सचेत न हुए तो फिर पछताना व्यर्थ होगा।

सज्जनो!

मेरा विचार है कि अपने कामको सुचारु रूपसे चलानेके लिये जगह-जगह, छोटे-बड़े सभी स्थानोंपर पञ्चायत क़ायम की जाय, जिसमें सभी वर्णोंके सज्जन शामिल रहें। जब कभी किसी प्रकारकी घटना वर्ण-भेदके कारण सामने आए अथवा किसी अन्य प्रकारका हिन्दू-हितका प्रश्न उठे, तब चटपट स्थानीय पञ्चायत इस प्रश्नको हल कर दे और सब मामला साफ़ हो जाय। किसी प्रकारका आपसमें मनमुटाव न बढ़े और हम प्राचीन ऋषियोंके आदेशानुसार साथ-साथ चलना और बढ़ना सीखें। मैं चाहता हूँ कि एक व्यापक भारतीय लोक-शिक्षा-समिति स्थापित हो, जो सारे देशमें विद्याका प्रचार करे, जिससे सारा देश साक्षर हो जाय। इस कार्य्यके लिये एक करोड़ रुपयोंकी ज़रूरत होगी। मुझे पूरा विश्वास है कि दानी-मानी सज्जनोंकी कृपासे यह शीघ्र इकट्ठा हो जायगा। परमात्मा हमें साहस और बल दे कि हम अपने लक्ष्यतक पहुँच सकें और हिन्दू जाति तथा संसारका कल्याण करें।

नासिकमें गोमाताके सम्बन्धमें

श्री नासिक पञ्चवटी पिञ्जरापोलके मैदानमें पूज्य मालवीयजीने १५ मार्च, सन् १९३६ ई० को गो-रक्षाके सम्बन्धमें जो व्याख्यान दिया था उसका सारांश यहाँ दिया गया है । —सम्पादक ।

सज्जनो !

आप जानते हो कि हिन्दुस्तानके कल्याणके लिये गो-रक्षा अनिवार्य्य है । संसारका जो उपकार गो-माताने किया है उसके महत्त्वको जानते हुए भी लोग उपेक्षा करते हैं और गो-रक्षाके प्रश्नपर ध्यान नहीं देते । यह उनका भ्रम और अन्याय है । जो लोग गो-वध करते अथवा गो-वध करना अपना धर्म समझते हैं उनके अज्ञानका ठिकाना नहीं । गौ जैसे उपकारी प्राणीका वध करना कभी भी धर्मसङ्गत नहीं कहा जा सकता । दुःखकी बात है कि जो लोग गो-माताको पूज्य दृष्टिसे देखते हैं और उनकी पूजा कर वैतरणी पार जाना चाहते हैं वे भी गो-सेवासे विमुख दिखाई देते हैं । ऐसी परिस्थितिमें श्री सेठजी प्रागजी भाईने जो यह संस्था स्थापित की है वह उनके त्याग और धर्मवीरताका जीता-जागता उदाहरण है । गो-भक्त अपने प्रेम और परिश्रमसे इस प्रकारकी व्यवस्थित संस्था चला सकते हैं, इसको देखकर किसका मन प्रसन्न न होगा ? भारतके लिये वह दिन परम सौभाग्यका होगा जिस दिन देशके कोने-कोनेमें इस प्रकारकी संस्थाएँ स्थापित होंगी, जिनका मुख्य काम होगा जन-सामान्यके पासतक शुद्ध और सस्ता दूध पहुँचा देना । आज तो देशमें दूधकी चारों ओर कमी है । उसमें भी गायका दूध तो और भी कठिनाईसे प्राप्त होता है । यह तो आप जानते ही हो कि गायके दूधमें जो गुण हैं वह किसी अन्य पशुके दूधमें नहीं । चाहे आप किसी वैद्यसे पूछो चाहे किसी हकीमसे, चाहे आप डाक्टरसे पूछो चाहे किसी अनुभवी व्यक्तिसे, सभी एक स्वरमें, एक साथ कहेंगे कि गायका दूध पीना जितना लाभकर है उतना संसारमें कोई भी पदार्थ नहीं । एक समय था जब देशमें घी और दूधकी नदियाँ बहती थीं और लोग ख़ूब छक-छककर गोरस पान करते थे । उस समय भारतकी प्रजामें जो बल था, जो पराक्रम तथा पुरुषार्थ था, उसकी कथा आज आश्चर्य्यके साथ सुनी जाती है। उसी भारतकी उसी प्रजामें आज इतनी भी शक्ति नहीं है कि वह अपने पैरोंपर खड़ी रहे । याद रक्खो, जबतक आप फिर इस देशको दूध-दहीसे नहीं भर देते, तबतक आप किसीके सामने मैदानमें उसी पुरुषार्थके साथ डट नहीं सकते । आपको चाहिए कि आप नगर-नगरमें जाकर इसी प्रकारकी संस्थाओंका प्रचार करो और देशकी जनताको समझा दो कि इस प्रकारकी गो-रक्षासे लोक तथा परलोक दोनों ही सिद्ध होते हैं ।

विदेशोंमें इस प्रकारकी अनेक गोशालाएँ हैं, जिनसे बड़े-बड़े नगरोंमें बराबर दूध भेजा जाता है । स्वयं आपके देशमें न जाने कितने प्रकारके पदार्थ, जो दूधके बने होते हैं, आते हैं और आप शौक़से उन्हें खाते हो । आपको चाहिए कि आप उसी प्रकार अपने यहाँ भी काम जारी कर दो और शीघ्र अपनी गो-संस्थाओंको उनसे आगे बढ़ा ले जाओ । जिस

प्रकार लन्दन आदि बड़े-बड़े नगरोंके पासके गाँवोंमें गोशालाएँ स्थापित हैं, जहाँसे शुद्ध और पवित्र दूध नगरोंमें भेजा जाता है, उसी प्रकार बम्बई और कलकत्ते आदि विशाल नगरोंके बाहर पासके गाँवोंमें गोशालाएँ स्थापित हों, जिनसे उक्त नगरोंमें शुद्ध और पवित्र दूध भेजा जा सके। नगरोंमें गोशाला रखनेसे होता यह है कि जब कोमल जानवर दूध देना बन्द कर देते हैं तब लोग बड़ी बेरहमीसे उन्हें क़साईके हाथ बेंच देते हैं और उस उपकारी पशुकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती है। दूधके लोभसे कभी-कभी छोटे-छोटे बछवोंको भी लोग मार डालते हैं अथवा दूधकी कमीसे वे अपने-आप ही मर जाते हैं। शहरसे दूर गाँवमें गोशाला स्थापित करनेसे इस प्रकारकी क्रूरता कम होगी। उसकी सम्भावना गाँवोंमें नहींके बराबर है। यदि गाँवोंमें गोचर-भूमिका प्रबन्ध कर इस प्रकारकी गोशालाएँ स्थापित की जायँ तो इसकी आशङ्का नहीं रह जाती और गोरस भी शुद्ध प्राप्त होगा। मैंने अभी एक महाराजा साहबसे दस हज़ार एकड़ भूमिकी याचना की है। यदि इतनी गोचर-भूमि मिल गई तो मैं इस प्रकारकी एक गोशाला स्थापित करनेका विचार कर रहा हूँ। शीघ्र ही मैं उसकी स्थापनामें प्रयत्नशील हूँगा। जबतक हम इस प्रकारकी कोई संस्था स्थापित नहीं कर लेते, तबतक हमें परमात्मासे प्रार्थना करनी चाहिए कि देशमें नासिककी पिञ्जरापोल जैसी अनेक संस्थाएँ स्थापित हों, जो गो-माताकी सेवाके साथ-ही-साथ देशका भी कल्याण करें। परमात्मा करे कि हम शीघ्र ही इस प्रकारकी अनेक संस्थाएँ स्थापित कर लें और गो-माताकी पूरी-पूरी रक्षा कर सकें। अन्तमें मैं आपकी इस संस्थाके अध्यक्ष तथा अन्य दानवीरोंका कृतज्ञ होकर अन्य सज्जनोंसे अनुरोध करता हूँ कि गो-रक्षाके प्रश्नपर विशेष ध्यान दें और प्राणपणसे इस बातकी चेष्टा करें कि भारतमें फिर वही दिन आ जाय जब गौ सचमुचमें माता समझी जाय और उसकी रक्षाके लिये हम अपने प्राणोंका मोह न करें। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि आप ऐसा सङ्कल्प कर लोगे और गो-रक्षाके अनुष्ठानमें तन-मन-धनसे लग जाओगे तो वे दिन दूर नहीं हैं, जब फिर देशमें दूधकी नदियाँ बहें और प्रत्येक भारतीय गो-माताको पूज्य दृष्टिसे देखे। याद रहे कि इसलाम या कुरान शरीफ़में गोवधका विधान नहीं है जो हमें उसके रोकनेमें मज़हबकी अड़चन पड़े। गो-माताकी सभी सन्तान हैं। हिन्दू, मुसलमान या इसाईका सवाल गो-माताके यहाँ नहीं है। उदार अकबरको इस बातका ज्ञान था। उसने गो-वध बन्द करा दिया था। सँभलो और औरोंको समझाओ कि दिव्य जीवनके लिये गो-सेवा कितने महत्त्वकी चीज़ है। विश्वास रक्खो कि यदि आप गो-पालनके लिये तैयार हो गए तो परमात्मा अवश्य आपकी मदद करेगा और आप ज़रूर अपने काममें सफल होंगे।

सर्वश्रेष्ठ धर्म

१ जनवरी, सन् १९३६ ई० को पूज्य मालवीयजी पूनेकी प्रभात चित्रपट-प्रयोगशाला देखने गए थे। वहाँ उन्हेंाने निम्नलिखित सन्देश दिया था।

—सम्पादक।

पृथ्वी-मण्डलपर जो वस्तु मुझको सबसे अधिक प्यारी है वह धर्म है; और वह धर्म सनातनधर्म है। अभी संसार सनातनधर्मके महत्त्वको नहीँ समझता। मुझे आशा और दृढ़ विश्वास है कि थोड़े समयमेँ समस्त संसारको यह विदित हो जायगा कि यह धर्म कैसा और किस प्रकार धर्मके मूलपर स्थित है।

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यञ्च त्यागः स्वाध्याय आर्जवं॥
सन्तोषः समदृक्सेवा ग्राम्येहो परमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनं॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृपु पाण्डव॥
श्रवणं कीर्त्तनं चास्य स्मरणं महतां गतिः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणं॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान्राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥

यह नारदजीका वचन है जो भागवतमेँ युधिष्ठिरके प्रश्नके उत्तरमेँ कहा गया है। इससे विदित होता है कि सनातनधर्म कैसा उदार धर्म है। सनातनधर्म केवल मनुष्यमात्रमेँ ही भाईपनका भाव नहीँ समझता, बल्कि यह मानता है कि सृष्टिमेँ जितने जीव-जन्तु आदि प्राणी हैँ सबमेँ एक परमात्माकी ज्योति प्रकाश कर रही है। जैसी वह ज्योति ब्राह्मणके हृदयमेँ है, वैसी ही वही ज्योति चाण्डालके हृदयमेँ भी है। छोटा और बड़ा, यह भेद मनुष्यमेँ नहीँ। सनातनधर्म प्राणिमात्रमेँ समताका भाव सिखाता है। इस भावको भगवान् कृष्णने अपने श्रीमुखसे भगवद्गीतामेँ स्पष्ट कह दिया है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

विद्या तथा विनयसे युक्त ब्राह्मणमेँ, गौमेँ, हाथीमेँ, कुत्तेमेँ और चाण्डालमेँ पण्डित लोग समदर्शिताका भाव रखते हैँ। भगवान्का दूसरा वचन है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

हे अर्जुन! जो पुरुष अपनी उपमा करके सुख और दुःखको सब प्राणियोँमेँ समझता है, यह समझता है कि जिस तरहसे मुझको दुःखकी बातोँसे दुःख और सुखकी बातोँसे सुख होता है उसी प्रकार अन्य प्राणियोँको भी सुख-दुःख होता है। अतएव हमेँ चाहिए कि दूसरोँके प्रति हम उन बातोँको न करेँ जिनसे हमेँ दुःख होता है, बल्कि उन बातोँको करेँ जिनसे हमेँ सुख होता है। यही हमारा परम योग है। यह सनातनधर्म ही है, जो कहता है कि भूलसे भी यदि जीवहिंसा हो जाय तो उसके लिये प्रायश्चित करो। पञ्चमहायज्ञ इसीसे हरएक गृहस्थके लिये विहित

है। ऐसे सनातनधर्मका मूल, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ—सत्य, दया और न्याय है।

समय थोड़ा है, इसलिये मैं इन बातोंका विस्तार नहीं करता हूँ। किन्तु इन श्लोकोंका अर्थ समझकर जो पुरुष चलेंगे उनको मालूम होगा कि यह धर्म सत्य, दया और न्यायके ऊपर अवलम्बित है। इस धर्मका ऐसा आदेश है कि प्राणिमात्रमें जैसी जिसकी योग्यता हो, उसके अनुसार उसको देखना और उसके प्रति वैसा व्यवहार करना चाहिए। इसीसे कहते हैं कि :—

अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव !॥

हे पाण्डव! अन्न आदिका सब प्राणियोंमें उनकी योग्यता तथा उनकी अवस्थाके अनुसार विभाग करना और यह समझना कि परमात्माका जो अंश मुझमें है, परमात्माका वही अंश उन सब दूसरे प्राणियोंमें भी है। इस प्रकारका भाव करके यदि मनुष्य देखेंगे और विचार करेंगे तो उनको मालूम होगा कि इस धर्मके बराबर पृथ्वीमण्डलपर दूसरा कोई धर्म नहीं है।

प्रभात चित्रपट-प्रयोगशालामें श्री नरसिह चिन्तामणि केलकरके साथ पूज्य मालवीयजी।

स्वराज्य

भारतीय माँग

३१ जनवरी, सन् १९१७ को मद्रासमेँ माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने यह ओजपूर्ण वक्तृता दी।

—सम्पादक।

सज्जनो !

वर्त्तमान समयमेँ आप देशकी स्थितिसे अनभिज्ञ हैँ। जिस साम्राज्यके अन्तर्गत हम लोग रहते हैँ, वह इस समयतक वर्त्तमान ऐतिहासिक तथा संहारकारी महायुद्धमेँ सम्मिलित है। स्वाधीनता और सत्यताके लिये वह अपना भीषण पराक्रम प्रकट कर रहा है। मेरा विश्वास है कि इस युद्धको सफल बनानेके लिये आप अपनी शक्तिभर सहायता करो। यह अत्यन्त हर्षकी बात है कि भारत-निवासी इस समय अपने उचित कर्त्तव्यसे डिगे नहीँ हैँ। जबसे युद्धकी घोषणाका समाचार इस देशमेँ पहुँचा है, तभीसे हमारे राजा-महाराजाओँ तथा देश-निवासियोँने साम्राज्यकी श्रद्धासहित सहायता करनेमेँ निरन्तर उत्साह दिखलाया है। मेरा विश्वास है कि मैँ यह बात सारे देशकी ओरसे कह रहा हूँ कि जबतक इस युद्धकी समाप्ति नहीँ होती तबतक भारत-निवासी इङ्गलैण्डकी इस कठिन परीक्षाके कठिन अवसरपर श्रद्धासहित अपने कर्त्तव्यपर दृढ़ रहेँगे और मुझे आशा है कि हम सबको यह कहते आनन्द होगा कि छोटे-छोटे राष्ट्रोँकी स्वाधीनता और न्यायकी रक्षाके लिये सफलताके साथ लड़ चुकनेपर इङ्गलैण्ड और अधिक गौरव प्राप्त करके इस सङ्कटसे उबरेगा।

मेरा ऐसा विश्वास है कि आप लोग इससे सहमत होँगे। परन्तु एक और बात है। अब बृटिश साम्राज्य भरके लोगोँके विचारोँमेँ परिवर्त्तन हो गया है। लोगोँका ऐसा ख़याल है कि वर्त्तमान परिस्थितिसे छोटे-छोटे देशोँके लिये एक मार्मिक प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। यह उनके अस्तित्त्व और नाशकी एक धमकी है। बड़े-से-बड़े देशोँके लिये भी यह कठिन समस्या है कि जबतक वे अपना फिरसे सविस्तर और सुचारु ढङ्गसे सङ्घटन नहीँ कर लेते तबतक उनका भविष्य सुनिश्चित नहीँ है। बृटिश साम्राज्य और इङ्गलैण्डके बड़े-से-बड़े राजनीतिज्ञके दिमाग़मेँ साम्राज्यके नव सङ्घटनका प्रश्न चक्कर खा रहा है। लेकिन हम भारतीयोँको अभी और कुछ दिन चुप रहनेकी सलाह दी जाती है। हमारे हितैषी और अनेक छिद्रान्वेषक युद्धके समय और उसके बाद भी कोई प्रश्न न उठानेका

ही सदुपदेश देते जा रहे हैं। यदि इस युद्धमें हमारे भारतीय भाई अपने कर्त्तव्यका पालन न करते होते तो शायद ऐसी बातोंका कुछ प्रभाव भी पड़ता, किन्तु जब हम लोग समयकी प्रगतिके अनुसार ही काम कर रहे हैं तब मैं नहीं जानता कि हमारा विरोध क्यों किया जा रहा है? हम भी ऊँचा-नीचा देखते हुए और इधर-उधर देखते हुए इन बातोंपर ध्यान दे रहे हैं, जिससे हमारे भविष्यपर किसी प्रकारका धक्का न लगने पावे। हमें तो चुप्पी साधनेकी सलाह दी जा रही है, परन्तु इङ्गलैण्ड-निवासी स्वयं इस नेक सलाहपर चलते दिखाई नहीं देते। जब युद्ध-सम्बन्धी अन्तरङ्ग सभाएँ युद्धको ज़ोर-शोरसे चलानेके उपाय सोच रही हैं तब भी इङ्गलैण्डके निवासी अपने स्वत्त्वोंका पूरा ख़याल रक्खे हुए हैं और साम्राज्यको अधिक सविस्तर और दृढ़ बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। आप लोग जानते ही हैं कि अभी एक सरकारी युद्ध-सम्मेलन हुआ था। भारतवर्ष, इङ्गलैण्ड और सारे साम्राज्यके व्यापारके प्रश्नपर भी विचार किया गया था। शासन-सम्बन्धी बातोंमें उपनिवेशोंको बहुत पहलेसे ही यह बुलावा मिल चुका है कि साम्राज्य-शासनमें वे हाथ बटावें। उपनिवेशोंके मन्त्री निमन्त्रित किए गए हैं, और इङ्गलैण्ड-स्थित मन्त्रियोंसे उनकी लिखापढ़ी जारी है। केवल इतना ही नहीं, बल्कि हम लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकी जा रही है। हमसे यहाँतक छिपाया जा रहा है कि लौर्ड हार्डिङ्गने युद्धके पश्चात् भारतके सुधारोंका जो ख़रीता भारत-मन्त्रीके पास भेजा है, उसमें क्या है? समाचार-पत्रोंमें यह बात प्रकट भी की गई है कि वर्त्तमान वाइसराय (लौर्ड चेम्सफ़ोर्ड) ने भी सुधारोंका ख़रीता भेजा है। हमें यह भी विदित है कि इस देशसे सम्बन्ध न रखनेवाले भी कुछ लोग बहुत दिनोंसे इस बातके उद्योगमें लगे हुए हैं कि साम्राज्यका सङ्गठन किस प्रकार किया जाय। आप जानते ही हैं कि गोलमेज़ क्या है? (धिक्कार-धिकारकी गूँज) उन्हें धिक्कारिए मत। वे अपनी सूझ-बूझके अनुसार अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं। हमें भी अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए।

ये सज्जन इस रायपर पहुँचे हैं और बहुतसे अफ़सर भी इस बातसे सहमत हैं कि जबतक उपनिवेश और भारत मिलकर साम्राज्यकी सहायता न करेंगे तबतक वह भविष्यमें अपने पैरों खड़ा नहीं रह सकता और उसे सङ्कटोंका सामना करना पड़ेगा। यही उनका पक्का निश्चय है और इसी लिये वे एक मन्सौदा भी तैयार कर रहे हैं, जिसके अनुसार न केवल औपनिवेशिक सेनाएँ युद्धके अवसरोंपर भारतकी रक्षा ही किया करेंगी, बल्कि साधारणतया उपनिवेश-वालोंका भारतके शासनमें भी हाथ होगा। आप यह भली भाँति जानते होंगे कि अगर भारत अलग हो जाय तो 'बृटिश साम्राज्य' साम्राज्य नहीं पुकारा जा सकता। यद्यपि भारत पराधीन है, परन्तु तो भी वह बृटिश मुकुटका सबसे अधिक जाज्वल्यमान मणि है, (करतलध्वनि) और यही कारण है कि उन्हें भारतकी ओर मजबूरन ध्यान देना पड़ता है। ये भलेमानुस 'गोलमेज़' का दल तैयार कर रहे हैं। और यह दुर्भाग्यकी बात है कि कुछ अन्य सरकारी अफ़सर लोग भी उनसे मिले हुए हैं। (लज्जा-लज्जाकी ध्वनि)। 'गोलमेज़' वाले अपना काम करते ही आए हैं और हमारे देशकी परिस्थितिका ज्ञान एकत्र करके अंग्रेज़ी और बृटिश साम्राज्यवालोंमें एक विश्वास पैदा करनेमें लगे हुए हैं, जिससे हमारी स्थितिपर मार्मिक प्रभाव पड़ेगा। वे विश्वसनीय समझे जाते हैं। और बिना हमसे कुछ पूछताछ किए हुए उन्होंने यह निश्चित कर लिया है कि भारतीय स्वराज्यके योग्य नहीं हैं। अब वे केवल इस बातको किसी तरह सिद्ध कर दिखाने मात्रके उद्योगमें हैं, क्योंकि साम्राज्यके समस्त अवयवोंकी योजना, साम्राज्य-सङ्गठनके लिये परम आवश्यक समझी गई है। भारतमें स्वायत्त शासन नहीं है, इसलिये वह साम्राज्य-सङ्गठनमें उपनिवेशोंकी बराबरी नहीं कर सकता। परन्तु, इसके बिना साम्राज्य-सङ्गठन कैसे हो सकता है? मैं इसके

सम्बन्धमें अधिक न कहकर केवल इतना कह देना पर्य्याप्त समझता हूँ कि इङ्गलैण्ड और भारतके इस मामलेमें सहमत होनेके लिये कैसी-कैसी कारगुज़ारियाँ की गई हैं और आज भी की जा रही हैं, जिनका प्रभाव भारत और इङ्गलैण्डपर बिना पड़े नहीं रह सकता । मैं अपने योरोपियन मित्रों, सरकारी और ग़ैर-सरकारी सदस्यों तथा विशेषतया उन सरकारी आदमियोंसे यह प्रश्न पूछता हूँ, जो यह समझते हैं कि युद्धके पश्चात् ये मामले साम्राज्यकी दृष्टिसे सरकारके ध्यान देनेके योग्य हैं, और जिनपर पहिले भी कई बार सरकारी अफ़सरोंने वाद-विवाद किया है, कि यदि बात ऐसी ही है तो फिर आप लोगोंको यह क़सीदा काढ़नेकी ज़रूरत क्यों पड़ी ? भारतवासी भी अब ऐसा सोचने लगे हैं कि इस प्रश्नको भूल जाना और समय बढ़ानेका दिलासा देना बिल्कुल बेइन्साफ़ी है ।

हमारे विरोधी हमसे चुपचाप रहनेकी बात कहते हैं। लौर्ड सीडनहमने उन्नीसवीं सदीमें दो लेख छपवाए हैं। उन्होंने व्यवस्थापक सभाके चुने हुए उन्नीस सदस्योंके सुधार प्रस्तावोंको छिन्न-भिन्न करनेकी कोशिश की है। (लज्जाकी ध्वनि) प्यारे मित्रो ! मैं आपसे विनयपूर्वक कहता हूँ कि आप उन्हें मत धिक्कारिए। वास्तवमें लज्जाकी बात हमारे लिये होगी यदि हम लोग उन्हें तथा उनके अन्य साथियोंको अपनी कारगुज़ारियोंमें सफल हो जाने दें। (हर्षध्वनि) लौर्ड सीडनहम अपने नम्र शब्दोंमें कहते हैं कि वे भारतके हितैषी हैं, भारतके हितकी बहुत चिन्ता करते हैं। उनका निश्चय है कि अगर ये सुधारके विधान रद्द न कर दिए जायँगे तो ख़तरा है। इतना ही नहीं, यदि ऐसा न हुआ तो बड़े भारी उपद्रवके उठ खड़े होनेकी सम्भावना है। अब इस परिस्थितिमें हम भारतीयोंको क्या करना चाहिए। लौर्ड सीडनहमने भारतके एक शासककी हैसियतसे इङ्गलैण्ड-निवासियोंपर और सभ्य जगत्पर हमारा उद्देश प्रकट कर दिया है और शक्तिभर हमारे कार्य्योंका विरोध किया है। जाननेकी बात यह है कि उन्होंने हमारे मन्तव्यको कहाँतक व्यक्त किया है। स्वराज्यके लिये भारतीयोंको अयोग्य सिद्ध करते हुए उन्होंने कहा है कि 'कठिनतासे ही कोई सप्ताह ऐसा बीतता है जिसमें डिस्ट्रिक्ट अफ़सरको अपने प्रान्तमें एक-न-एक उपद्रव शान्त न करना पड़ता हो।' सज्जनो, यह उनकी सत्यताकी परख है, जो बम्बई जैसी प्रेसीडेन्सीके एक गवर्नरकी बातोंसे प्रकट होती हैं। बड़ी व्यवस्थापिका सभाके उन्नीस सदस्योंके सम्बन्धमें आगे चलकर उन्होंने लिखा है कि 'ये उन्नीस सदस्य स्वार्थी व्यक्ति हैं, जो जनताकी तरफ़से वकालत करते हैं। इन लोगोंने जो सुधार माँगे हैं, वे अपने अधिकार बढ़ानेकी दृष्टिसे माँगे हैं। इनके द्वारा वे जतनाकी हित-साधनामें बाधा डालेंगे।', मैं यह कहूँगा कि उनका यह कथन उलझनसे भरा हुआ है और उनका सुलझाना भी ज़रूरी है। लौर्ड महोदयका यह भी कहना है कि हम सुधारोंके लिये सरकारको धमकी दे रहे हैं और उत्तेजना देकर दबाव डाल रहे हैं। कहनेकी ज़रूरत नहीं कि यह कितनी झूठी और गढ़न्त बात है। परन्तु स्थिति ऐसी विकट है कि हमें यह स्पष्ट कर देनेकी आवश्यकता जान पड़ती है कि हम क्या चाहते हैं और क्या नहीं चाहते। साथ ही हम यह भी बता देना चाहते हैं कि हम स्वराज्य किस तरह प्राप्त करना चाहते हैं। इसके सम्बन्धमें मुख्य बात तो यह है कि हम लौर्ड सीडनहम तथा उनके हिमायतियोंसे कह दें कि जो कुछ वे कहते हैं, हम उसे मानते भी हैं और नहीं भी मानते। उनका यह कहना हमें मान्य है कि जर्मनलोग पूर्वीय राज्योंकी प्राप्तिके लिये पूरे प्रयत्नशील हैं और भारतका सारा भविष्य दाँवपर लगा हुआ है। कुछ कुटिल राजनीतिज्ञोंने यह अच्छा अवसर ताका है जो राज्यपरिषद्के सदस्योंके अधिकारोंको बढ़ा देना चाहते हैं; पर लौर्ड महोदयके 'भारत-सरकारके अधिकारोंको छीन लेने' के प्रस्तावपर विचार कीजिए। इससे बढ़कर झूठी बात कभी नहीं कही गई थी। हमने भारत-

सरकारसे उसके अधिकार छीननेका कभी ध्यान भी नहीँ किया। हमने प्रयत्न इस बातका किया है कि साम्राज्य-सङ्घटनमेँ हमारी भी आवाज़ रहे। (साधु-साधु)। बड़ी कौन्सिलके उन्नीस ग़ैर-सरकारी सदस्योँने जिस मन्सौदेको तैयार किया है और जो सुधार उसमेँ माँगे गए हैँ, वे ही सुधार कांग्रेस और मुस्लिम लीगकी ओरसे भी पेश किए गए हैँ। सुधारोँकी योजना पूर्ण रूपसे जनताके सामने उपस्थित है। अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी तथा मुस्लिम लीग-कमेटीकी सम्मिलित योजनामेँ वे सुधार रक्खे गए हैँ और लखनऊवाले अधिवेशनमेँ स्वीकृत भी हो चुके हैँ। आप सब लोग सुधारोँकी प्रस्तावनामेँ देखोगे कि परम्परागत प्राचीन सभ्यताको अपना अधिकार समझनेवाले भारतीयोँने साम्राज्य और शासनके सम्बन्धमेँ कितनी योग्यता प्रकट की है। साथ ही, बृटिश शासनके गत सौ वर्षोँमेँ शिक्षाकी तथा सार्वजनिक उन्नति कितनी हुई है। परन्तु वर्त्तमान शासन-विधानद्वारा हम लोगोँकी उच्च अभिलाषाएँ उचित ढङ्गसे पूरी नहीँ होने पातीँ, और वर्त्तमान शासन-प्रणाली, हमारी परिस्थिति और हमारी आवश्यकताओँके अनुकूल भी नहीँ पड़ती है। इन बातोँपर ध्यान रखते हुए कांग्रेसके इस दावेमेँ कोई रुकावट नहीँ हो सकती कि अब वह समय आ गया है जब सम्राट् महोदय बृटिश नीतिके अनुकूल यह घोषणा कर देँ कि भारत स्वराज्य पानेके योग्य है। (हर्ष-ध्वनि) इसके अतिरिक्त भारत-सरकारसे अधिकार छीननेके विषयमेँ हमने कब और क्या कहा है? कांग्रेस फिर यही कहती है कि स्वराज्यकी ओर अग्रसर करनेवाले सुधारोँकी स्वीकृतिके लिये भी उचित और मुख्य-मुख्य उपायोँका आश्रय लेना आवश्यक और ज़रूरी है। कांग्रेस और लीगकी सम्मिलित योजनाका सारांश है कि स्वायत्त शासन-प्राप्तिके लिये उपाय किए जायँ। उपनिवेशोँके आधारपर वह नहीँ है। इस योजनामेँ हम लोगोँने स्पष्ट कर दिया है कि हम लोग यह नहीँ चाहते कि भारतका पूरा-पूरा शासन हमीँ करेँ, बल्कि हम चाहते हैँ कि उसके लिये उपाय किए जायँ।

प्रान्तीय और वाइसरायकी कार्य्यकारिणी परिषदोँमेँ आधे भारतीय सदस्य होँ। वाइसराय सभापति होँ। वे इच्छानुसार चाहे अंग्रेज़ सदस्योँकी ओर राय देँ चाहे भारतीय सदस्योँकी ओर। अगर कोई प्रस्ताव उठे, वे चाहेँ तो उसे अस्वीकृत भी कर देँ। आप जानते होँगे कि सरकारने भारतीयोँकी योग्यता मान ली है और कार्य्यकारिणी परिषदोँमेँ उन्हेँ स्थान भी दिया है। प्रान्तीय और वाइसरायकी कार्य्यकारिणी परिषदोँमेँ कम-से-कम एक सदस्य अवश्य रहता है। हमारा भी कुछ यही कहना है। हमारे मित्रोँका अनुभव है कि परिषद्मेँ केवल एक सदस्यकी कुछ चल नहीँ सकती। वह भारतीय स्थितिको इच्छानुसार प्रभावजनक रूपमेँ रख नहीँ सकता। उसके विरोधियोँकी संख्या सहयोगियोँसे कहीँ अधिक होती है। इसलिये मेरा कहना है कि यदि इन परिषदोँमेँ आधे भारतीय सदस्य रहेँ तो कम-से-कम स्वीकृतिके लिये अपनी दशाको अच्छी तरह कह तो सकेँगे। साम्राज्य-संङ्घटनमेँ हम कोई परिवर्त्तन नहीँ चाहते। किसी भी प्रस्तुत शासन-प्रणालीको हम छिन्न नहीँ करना चाहते, और न उसकी जगह किसी दूसरी नई प्रथाको चलाना ही चाहते हैँ। जो कुछ हमारी इच्छा है वह यह है कि कार्य्यकारिणी परिषद्के लिये सिविल सर्विसके कुछ आदमी तो चुन लिए जायँ और संख्यामेँ उनके बराबर ही अनुभव-प्राप्त भारतीय सदस्य भी लिए जायँ, क्योँकि कार्य्यकारिणी परिषद् ही हमारी रक्षा आदि सभी बातोँकी पूरी व्यवस्था करती है। क्या कोई भी विचारशील व्यक्ति यह कह सकता है कि यह भारत-सरकारसे उसके अधिकारोँको छीन लेना है? (नहीँ-नहीँ, की ध्वनि) दूसरी बड़ी बातपर विचार करनेके पहले यह कह देना आवश्यक है कि किसी भी मनीषीके लिये इसके विरुद्ध प्रचार करना अन्याय है। चाहे

कोई इसे माने या न माने, पर सुधार अवश्य होगा, चाहे उसमें विलम्ब ही क्यों न हो। हमारी आशा है और हम चाहते हैं कि वह शीघ्र हो। यदि यह देरसे भी हो तो भी यह कोई ऐसी बात नहीं कि इङ्गलैण्ड और भारतसे सम्बन्ध रखनेवाले महानुभावोंके दिल इस प्रस्तावसे दहल जायँ। सिविल सर्विसमें आज कुछ ऐसे सज्जन भी हैं जो अपनेको सबसे उत्तम कहनेमें ही अपनी शान समझते हैं। उनमेंसे बहुतोंने कार्य्यकारिणी परिषदोंमें जाकर भी अच्छाईका परिचय नहीं दिया। हमारा दावा है कि हममें इतने योग्य और अनुभवी व्यक्ति हैं जो देशके सम्बन्धमें उनसे कहीं अधिक अच्छी बातें सुझा सकते हैं।

हमारे सुधारोंकी योजनामें मुख्य बात यह है कि व्यवस्थापिका सभाके प्रस्ताव कार्य्यकारिणी परिषद्के अधीन हैं, यदि वाइसराय उन्हें अस्वीकृत न कर दें, या यह कि, यदि प्रस्ताव पास न हो सके तो कम-से-कम उसपर एक वर्षतक कोई कार्रवाई न की जायगी। इस प्रकारके प्रस्तावोंका यह कारण है कि परिषद्के कई वर्षोंके अनुभवसे इस प्रकारके प्रस्तावोंकी आवश्यकता स्पष्ट हो गई है। बड़ी कौन्सिलमें हम लोगोंने बहुतसे प्रस्ताव पेश किए, किन्तु जबतक वे स्वीकृत नहीं किए गए तबतक सरकारने उन्हें आवश्यक नहीं समझा। शेष सब अस्वीकृत हो गए। हम अच्छी तरह जानते हैं कि यह बात अब असह्य हो गई है। हमारा विश्वास है कि कौन्सिलोंके विदेशी सदस्योंसे हम लोग देश तथा देश-निवासियोंके हितके लिये कम चिन्तित नहीं हैं, परन्तु व्यवस्थापिका सभाके प्रस्तावोंको मंजूर करने और न करनेका फ़ैसला वे ही करते हैं। कार्य्यकारिणी परिषद्के सदस्योंके पास वे पहुँचने ही नहीं पाते। मन्त्रियों तथा उक्त विलायती सदस्योंके द्वारा जो कुछ निर्णय कर दिया वही शेष सदस्योंको भी मानना पड़ता है। ऐसी दशामें परिणाम यह होता है कि सुधार-सम्बन्धी प्रस्तावोंमें भी हम लोगोंको प्रायः असफलता ही नसीब होती है। हमारी धारणा है कि अब वह दिन आ गया कि देशकी दशा और उसकी उन्नतिके विषयमें सरकारी अफ़सरोंकी अपेक्षा हमारी बातोंकी अधिक प्रतिष्ठा हो। हमारा विश्वास है कि इस प्रकार हमें पहलेसे कहीं अधिक सफलता प्राप्त होगी। क्यों हमें इतनी स्पष्ट बात कहनेकी आवश्यकता पड़ती है? बात यह है कि हमारी बातोंपर कोई ध्यान नहीं देता। एक बार हमारे मित्र स्व० गोखलेने एक बिल पेश किया था कि हमारे देशके लिये शिक्षा आवश्यक और अनिवार्य्य कर दी जाय। खेद है कि वह बिल पास न हो सका। सरकारने बहुत कुछ भरोसा दिया था, किन्तु आजतक आरम्भिक शिक्षामें कुछ विशेष उन्नति नहीं हुई। हमारा दृढ़ विश्वास है कि आरम्भिक शिक्षामें तबतक उन्नति नहीं हो सकती जबतक हम स्वयं इसकी नीतिका सञ्चालन न करें और सरकारके सामने इसको अच्छी तरह सिद्ध न कर दें। यहाँ इसका उल्लेखभर कर दिया गया है, न जाने ऐसी कितनी घटनाएँ घटी हैं। गत तीस वर्षोंमें कांग्रेसमें जो प्रस्ताव उपस्थित किए गए हैं उनसे हमारे कथनकी पुष्टि अच्छी तरह हो जाती है। उदाहरणके लिये शर्त्तबन्द कुलियोंका ही प्रश्न लीजिए। हम लोग बहुत दिनोंसे मुक्तकण्ठसे चिल्ला रहे हैं कि शर्त्तबन्द कुलियोंकी प्रथाका अन्त कीजिए। पर हमारी सुनता कौन है। वह आज भी जीवित है। सरकार इसे मान भी सकती है कि यह प्रथा अवश्य बन्द हो जानी चाहिए, किन्तु अभीतक उसका काम तमाम नहीं हुआ। हम नहीं जानते कि यह प्रथा कबतक जारी रहेगी। साम्राज्य-विधानमें यदि प्रजाके प्रतिनिधियोंकी कुछ भी चलती होती तो अबतक कुलीगीरीका नाम भी न होता। अब दीवानी और माली अधिकारोंकी भिन्नतापर ध्यान दीजिए। पूरे इकतीस वर्ष बीत गए, पर उनमें कोई परिवर्त्तन न हुआ। इसीसे कहना पड़ता है कि शायद ही तबतक हमारी कोई कामना पूरी हो सके जबतक यह शासन-विधान है। सरकारको दोषी ठहराने और यह

कहनेमेँ मुझे आनन्द नहीँ मिलता कि सरकारके कारनामोँमेँ सर्वसाधारणकी इच्छाके विरुद्ध प्रजा-प्रतिनिधियोँकी उपेक्षा कर सभाके मनमाना काम करनेके उदाहरणोँपर उदाहरण मौजूद हैँ। ऐसे एक-आध नहीँ, बल्कि अनेक उदाहरण मौजूद हैँ। अतएव हम कहते हैँ कि यदि प्रतिनिधियोँद्वारा कोई सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव व्यवस्थापिका सभामेँ उपस्थित हो तो पहिले वह कार्य्यकारिणी सभाके सामने रक्खा जाय और फिर चाहे तो उठा लिया जाय।

इस प्रकार हम भारत-सरकारके अधिकार नहीँ छीनते। हमने उसे यह शर्त्त दे दी है कि यदि वाइसराय किसी प्रस्तावको पास करना उचित नहीँ समझते, तो उसे हटा सकते हैँ। किन्तु हितकी दृष्टिसे हटा सकते हैँ, किसी अन्य अभिप्रायसे नहीँ। हम इतना और कह देना उचित समझते हैँ कि यदि कोई प्रस्ताव सालभरके बाद फिर पास हो गया तो उसके अनुसार कार्रवाई होनी चाहिए। इसके कहनेका कारण यह है कि सरकारके पक्षपाती यह नहीँ चाहते कि सरकारपर दोषारोपण किया जाय। मैँ भी यही चाहता हूँ। सरकारके इन सदस्योँ और पक्षपातियोँको चाहिए कि हमारे सिर भी कोई दोष न मढ़ेँ। जब कभी कार्य्यकारिणी सभाको ऐसे प्रस्तावोँको समुचित रीतिसे स्वीकार करना नहीँ होता तभी उनकी ओरसे ऐसी बातेँ पिण्ड छुड़ानेके लिये उठाई जाती हैँ। हम सदस्योँके लिये एक वर्षकी अवधि बढ़ानेको कहते हैँ; किन्तु इसके साथ ही यह भी चाहते हैँ कि यदि सरकारकी ओरसे अनुचित समझकर कोई प्रस्ताव रद्द कर दिया गया, और व्यवस्थापिका सभाके सदस्योँने लोक-हित समझकर उसे फिरसे उठा दिया तो सरकारको भी उचित है कि योग्यता और न्यायके साथ उनकी इच्छा पूरी करे। हमारी समझमेँ इस प्रस्तावसे जनता और सरकार, दोनोँका लाभ होगा। इससे एक तो उतावली न होगी, और दूसरे उन अच्छे भावी उपायोँकी ठीक-ठीक रक्षा भी होसकेगी, जिनको सरकार सर्वथा अथवा कुछ समयके लिये हटा देती है। क्या इससे किसी प्रकार यह व्यक्त होता है कि हम सरकारसे उसके अधिकार छीनना चाहते हैँ?

ऊपर दो मुख्य बातोँकी चर्चा हो चुकी। तीसरी बात भी कुछ कम महत्त्व नहीँ रखती। तीसरी बात आर्थिक बलकी है। अभीतक हाल यह है कि थोड़ेसे भी धन-सम्बन्धी प्रस्ताव सरकारी अफ़सरोँकी इच्छाके बिना पास नहीँ हो पाते। मुझे इसका व्यक्तिगत अनुभव है। यह केवल परीक्षाकी बात थी कि हम लोगोँके लिये सरकारकी इच्छाके बिना किसी प्रस्तावका पास करा लेना सम्भव है अथवा नहीँ; यद्यपि यह विदित था कि उचित होनेके कारण सरकार इसे विवश होकर स्वीकार करेगी। एक वर्ष हुआ मैँने यह प्रस्ताव रक्खा था कि एक मदसे बारह हज़ार रुपये निकालकर देशी व्यापारकी उन्नतिके खातेमेँ डाल दिए जाँय। आपको कदाचित् विश्वास न होगा, किन्तु सत्य यही है कि सरकारने यह बात नहीँ मानी। मैँने इसके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया, मैँने पीछा नहीँ छोड़ा। पर सरकारी दलके लोगोँने इसका घोर विरोध किया, और वह प्रस्ताव रद्द हो गया। बारह हज़ार रुपये एक खातेसे निकालकर सरकारने दूसरे खातेमेँ नहीँ रक्खे। यह इसी लिये कि सरकारी सदस्योँकी रायमेँ यह उचित नहीँ ठहरा। वह भी ये रुपये देशी व्यापारकी उन्नतिके लिये माँगे गए थे, किसी भयानक और हानिकारक व्यापारके लिये नहीँ। न जाने कितने प्रस्तावोँकी यही गति हुई। गत तीस वर्षोँसे मैँ देख रहा हूँ कि अपनी वास्तविक उन्नतिके लिये कार्य्यकारिणी सभापर हमारा कोई अधिकार नहीँ है। अब हमने अच्छी तरह देख लिया क हमारी उन्नतिकी गति कितनी मन्द और धीमी है।

हमारी आँखोँके सामने ही यह मिसाल उपस्थित है कि जतने समयमेँ हमने इतनी थोड़ी उन्नति की उतने ही समयमेँ हमारा ही पड़ोसी जापानने कितनी अधिक और व्यापक उन्नति कर ली है। सन् १८६८ ई० की अपेक्षा उसकी दशा इतनी सुधर गई है कि प्रत्येक

अभिमानी देश उसे अपना मित्र कह सकनेमेँ अपना गौरव समझते हैँ। अन्य राष्ट्रोँके सामने उसने ऐसा उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है कि उसकी मित्रता बड़ी सारवान् और स्थायी मानी जाती है। उसे यह प्रतिष्ठा किस प्रकार प्राप्त हुई? उसे यह गौरव प्राप्त हुआ है जीवनके प्रत्येक पहलूपर विचार करने तथा परितः उन्नतिका ध्यान रखनेसे। यह उन कुशल जापानी राजनीतिज्ञोँके कर्मोँका फल है, जिन्हेँ साम्राज्यकी ओरसे लोक-हितका काम सौँप दिया गया था। सज्जनो! हम जो कुछ सरकारसे चाहते हैँ वह इसलिये कि हम लोग बादशाहको अपना सम्राट् मानते हैँ। जब भारतका शासन कम्पनीके हाथसे निकलकर सरकारके हाथोँमेँ आया तब हमने स्व० विक्टोरियाको महारानी माना था। सम्राट्को भी हमने बार-बार अपनी अद्वितीय राजभक्ति तथा सहानुभूतिका परिचय दिया है। हमारा विचार है कि इङ्गलैण्डके बादशाहकी उज्ज्वल छत्रच्छायामेँ रहनेवाली भारतीय जनताको भी उतनी ही उन्नति करनी चाहिए जितनी कि जापानियोँने अपने देशमेँ की है। यह हमारा अधिकार है कि हम उन हाकिमोँसे, जो किसी भी रूपमेँ हमारी सरकारके प्रतिनिधि हैँ, स्पष्ट कह देँ कि हम लोग भी कौन्सिलोँमेँ लिए जायँ और इसके सहारे उन्नतिके प्रत्येक पथपर इतनी शीघ्र उन्नति करेँ जितनी जापानने गत तीस या चालीस वर्षोँमेँ कर ली है। हमारा विश्वास है कि इस प्रकार हमारी उन्नति अवश्य हो जायगी। यदि हमारे उद्योगोँ, कार्य्योँ और हमारी एकताका आदर किया गया और हमारी गिरी दशापर विशेष ध्यान दिया गया तो हम शीघ्र उन्नत हो जायँगे। साथ ही आपसे यह भी कहते हैँ कि थोड़ी देरके लिये आप यह समझ लो कि हम आप लोगोँसे नहीँ, अंग्रेज़ श्रोताओँसे कह रहे हैँ। भारतकी शिक्षित जनताके विचारोँको उन अंग्रेज़ोँको भी अच्छी तरह समझना चाहिए। हम चाहते हैँ कि वे यह अच्छी तरह समझ लेँ कि हम एक प्राचीन सभ्यताकी सन्तान हैँ, अतीत कालकी दिव्य सभ्यता हमारी बपौती है, और भूतकी भाँति भविष्यमेँ भी हम इसका गौरव चाहते हैँ। साथ-ही-साथ उन्हेँ यह भी विदित हो जाना चाहिए कि अंग्रेज़ी सभ्यता तथा अंग्रेज़ोँके साथ रहकर, उनके साहित्य तथा उनके विश्व-प्रशंसित राजनीतिक साहित्यको पढ़कर, उनके लेखकोँकी जातीयताके प्रेमका अध्ययनकर, हमने उनके गुणोँको प्राप्त कर लिया है। वे इसमेँ अनभिज्ञ हैँ, परन्तु सचमुच हम उन्हेँ इससे अनभिज्ञ कर देना चाहते हैँ। विदेशी जातियोँके विषयमेँ हमारी दृढ़ धारणा है कि संसारमेँ अंग्रेज़ जातिको छोड़कर कोई भी अन्य जाति ऐसी नहीँ है जिसके सम्बन्धको हम स्वीकार करेँ। हमारा विश्वास है कि अनेक दुर्गुणोँके होते हुए भी अंग्रेज़ जातिमेँ ऐसे गुण और विशेषताएँ हैँ, जिनके लिये वह गर्व कर सकती है। इसी जातिसे आजकलकी सभ्य जातियोँने प्रजातन्त्रशासन-प्रबन्ध सीखा है। इङ्गलैण्डको ही इसका समस्त श्रेय है कि आजकल भी मनुष्यमात्रकी रक्षाका दायित्व उसने अपने ऊपर ले लिया है। इसलिये हमेँ कोई ऐसी आवश्यकता दिखाई नहीँ देती कि हम उससे अपना सम्बन्ध तोड़ देँ। हमारी तो इच्छा है कि उसके साथ हमारा सम्बन्ध दिन-प्रतिदिन दृढ़ और सन्तोषजनक होता रहे। उत्तम राज्यके सर्वश्रेष्ठ सम्राट्की प्रजा होनेमेँ हमेँ गर्व है, और हम इस गर्वका लाभ भी उठाना चाहते हैँ। हम अपने अंग्रेज़ भाइयोँके इस उत्साहपूर्ण कार्य्यमेँ सहायता पहुँचाना चाहते हैँ कि वे हमारे देशकी उन्नति करेँ और भारतीय जनताका ध्यान रक्खेँ। इङ्गलैण्डके साथ अपना सम्बन्ध अधिक आदरणीय बनाए रखनेकी इच्छा करते हुए भी हम उन असुविधाओँको सह नहीँ सकते जो हमेँ भोगनी पड़ती है। आप यह कहोगे कि अपनी दुर्बलताके कारण ही यह सब सहना पड़ता है। यहाँ हमारा अभिप्राय मानसिक दुर्बलतासे है, न कि जङ्गलीपन और पाशविक बलसे। क्योँकि इस विध्वंसकारी संग्रामके कारण जङ्गलीपन

और शारीरिक बल तुच्छ समझा जाने लगा है। हम मानसिक बल तथा विचार-बलके सम्बन्धमें कह रहे हैं और साथ ही दावा करते हैं कि भारतका शिक्षित समाज उन असुविधाओंको किसी भी हालतमें सह नहीं सकता है, जो उसे आज सहनी पड़ती हैं। इसलिये हमारा यह निश्चित कर्त्तव्य है कि अपनी शक्तिके अनुसार हम प्रत्येक बातपर विचार करें और नियमानुसार सरकारको तथा इङ्गलैण्डके निवासियोंको उन बातोंसे सूचित करें। सुधारके लिये लड़ें और देखें कि वे कहाँतक मान्य होते हैं।

जिसमें सुधारोंका सारांश है, जिसे कांग्रेस और मुस्लिम-लीगने पेश किया है, वह क्या है? अधिक न कहकर हम संक्षेपमें कहगे कि कहा जाता है कि, "यदि भारत-वासियोंको स्वराज्य मिल गया तो सरकारके पास रह ही क्या जाता है?" आप प्रधान होंगे और सब स्थानोंपर आपका अधिकार रहेगा, परन्तु इसकी तो अभी हमें तैयारी करनी है। हम स्वराज्य अभी नहीं माँगते। अभी तो हम उसकी प्राप्तिके लिये उचित उपायमात्र चाहते हैं। अतएव इस महा उद्योगमें कौन्सिलको कोई अधिकार नहीं रहेगा कि वह सरकारकी फ़ौजोंपर, राष्ट्र-सम्बन्धी तथा देशी मामलों तथा दूसरे देशोंसे युद्ध छेड़ने या मेल करनेके कामोंमें बाधा डाल सके। स्वशासन या स्वराज्य केवल उन शक्तियोंका प्रयोगमात्र होगा, जिसे हम बिना किसी दूसरे देशसे युद्ध या सन्धि किए ही कर सकते हैं। हमने जान-बूझकर इन बातोंको अलग रक्खा है। क्या इससे सरकारसे अधिकार छीननेकी इच्छा प्रकट होती है? सेनाका प्रबन्ध हम सरकारपर ही छोड़ देते हैं। हम देशी और विदेशी मामलोंमें भी हस्तक्षेप न करेंगे। यदि हमारे प्रस्ताव स्वीकृत किए गए तो देशके भीतरी मामलोंपर ऐसा प्रभाव पड़ेगा जिसका सार्वजनिक उन्नतिसे सम्बन्ध रहेगा। इसके कारण सरकारके अधिकारोंको भी ठेस न पहुँचेगी, क्योंकि वाइसरायके हाथमें और भी शक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वे किसी भी प्रस्तावको रद्द कर सकते हैं। हम केवल इतना ही चाहते हैं कि स्वराज्य प्राप्तिके लिये उपाय किए जायँ। हम अभी स्वराज्य नहीं माँगते। हमारी इच्छा है कि हम स्वराज्यके योग्य बनें, पर खेदकी बात है कि अभी, इसी समय, हम उसके लिये तैयार नहीं हैं। हम उसे इसी क्षण नहीं माँगते। हमारे तर्क निराधार नहीं हैं, बल्कि उनका अभिप्राय हमारी बातोंको ठीक-ठीक रूपमें प्रकट करनेका है।

अर्थ-सम्बन्धी प्रस्तावोंके बारेमें हमारा कहना है कि आपके सब द्वार तथा व्ययकी सब रक़में कच्चे-चिट्ठेके रूपमें व्यवस्थापिका सभामें पास होनेके लिये पेश की जाया करें। हमने अपनी शर्त्तें दिखला दी हैं। फ़ौजी और दूसरे मामलोंसे सम्बन्ध रखनेवाले ख़र्चसे हमारा कुछ सरोकार नहीं। भारतीय सिविल सर्विसमें ऐसे आदरणीय और उदार तबियतके भी व्यक्ति हैं जो इस दशामें रहकर भारतसे अनुचित लाभ उठा रहे हैं। भारतीय शासन-सम्बन्धी मामलोंमें उनकी ही चलती है और अपनी शक्तिभर वेतन बढ़ानेके लिये उन्होंने अनुचित उपाय किए हैं। मेरा अभिप्राय बदलेकी पूर्त्तिके लिये भत्ता लेनेकी बातसे है, जिसे कोई भी आदमी कभी निर्दोष न बतलाएगा, और जो भारतीय सिविल सर्विसके सम्बन्धमें सदा अनुचित कही जायगी। वर्त्तमान प्रथाके अनुसार सरकार बिना कुछ ब्यौरेवार वर्णन किए, बिना उचित निरीक्षण करवाए भिन्न-भिन्न खातोंमें स्वेच्छानुसार व्यय बढ़ा सकती है, हम ऐसी ही बातोंको उठा देना चाहते हैं।

पब्लिक सर्विस कमीशनके अधिकारोंके कारण भी भयकी आशङ्का है, जिसके लिये धमकी भी दी गई है। आपको मालूम है कि कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है। मेरी भाँति बहुतोंको आशङ्का थी कि रिपोर्ट इतनी ख़राब है कि सरकार उसे प्रकाशित नहीं करना चाहती और अन्तमें वह बात ज्यों-की-त्यों निकली भी। इसके सम्बन्धमें नम्र शब्दोंमें कुछ कहना मेरी शक्तिके बाहर है।

मैं समझता हूँ कि कमीशनने इङ्गलैण्ड और भारतके हितके साथ अन्याय किया है, उसने न्यायकी हत्याकी है। (हर्षध्वनि) उसने भारतीय युवकोंके हितपर केवल खरी छुरी नहीं फेरी है वरन् उसने इङ्गलैण्डके युवकोंको भी यह बतलाकर तुच्छ कहा कि ये चलते-पुर्ज़े अंग्रेज़ युवक भारतके निकम्मे और कच्ची-पक्की योग्यता रखनेवाले अंग्रेज़ी पढ़े युवकोंका सामना नहीं कर सकते। इस अभागी सिफ़ारिशके लिये यह भी कारण है कि भारत और इङ्गलैण्डमें एक साथ सिविल सर्विसकी परीक्षाएँ न होनी चाहिएँ। सन् १८६० ई० में एक कमेटीने भारत मन्त्रीसे न्यायानुसार इसके लिये उचित प्रार्थना की। सन् १८३३ ई० के ऐक्टके अनुसार यह प्रकट किया गया था कि भारतवासी भी अपनी योग्यता और शिक्षाके अनुसार सब नौकरियोंपर नियुक्त किए जाया करेंगे। सन् १८५५ ई० के घोषणा-पत्रमें यह बात दुहराई गई और महारानी विक्टोरियाके भारत-शासन ले लेनेके पश्चात् नियुक्तकी हुई अंग्रेज़ोंकी एक कमेटीने भी यह स्वीकार कर लिया कि सिविल सर्विसकी जो परीक्षाएँ भारतमें और इङ्गलैण्डमें एक साथ ही होंगी उनमें भारत-निवासियोंके साथ उचित न्याय होगा तथा अंग्रेज़ युवकोंकी भाँति भारतीय युवकोंको भी समान अवसर दिया जाया करेगा। यह कभी बिल्कुल बराबर न रहेगा, क्योंकि अंग्रेज़ युवक तो अपनी मातृभाषा अंग्रेज़ी भाषाके माध्यमसे पढ़ा करेंगे और भारतीय युवक कठिन और दुस्तर विदेशी भाषाके माध्यमसे। परन्तु यह तो उनके मनकी बात थी और इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं कि उनके न्यायका यही सबसे अच्छा उदाहरण था। बृटिश राज्यकी साठ वर्षोंकी उन्नति और युनिवर्सिटियाँ स्थापित होनेके पश्चात् तीन वर्षोंमें जब स्कूल और कौलेज् नहीं थे, मिल्टन, शेक्सपियर, स्पेन्सर और मिलकी रचनाओंका इतना अध्ययन नहीं हुआ जितना इन पिछले साठ वर्षोंमें हुआ। उस समय सहस्रों छात्र स्कूलों और कौलेजोंमें शिक्षा प्राप्त करनेके लिये नहीं दौड़ते थे और न आजकलकी भाँति इतना व्यय ही करते थे। सरकारकी शिक्षा-प्रचारकी इस नीतिके साठ वर्षोंके बाद भी कमीशनके अंग्रेज़ों तथा सदस्योंने फ़रमाया कि अब भी इङ्गलैण्ड और भारतमें समकालीन परीक्षाओंके होनेका समय नहीं है। साथ ही उन्होंने यह भी सिफ़ारिश की है कि भारत-निवासियोंकी परीक्षा सिविल सर्विसके कुछ पदोंकी पूर्त्तिके लिये ही होनी ज़रूरी है। इस मामलेमें हम किसी प्रकारकी दयाकी भिक्षा नहीं माँगते, हम बिना किसी बन्धनके स्पष्ट प्रतियोगिता चाहते हैं। हमारी आकाङ्क्षा है कि चाहे हम कम ही क्यों न हों, पर जो सूची बनाई जाय वह सम्मिलित सूची हो। उनकी इस सिफ़ारिशके बारेमें हम इसके अतिरिक्त और कह ही क्या सकते हैं कि वे चाहते हैं कि इसी बहाने अंग्रेज़ युवक अधिक सुविधा उठाएँ और भारतीय युवक हानि। मैं इस बातपर अधिक ज़ोर नहीं डालूँगा, क्योंकि बहुतसे समाचार-पत्र इस विषयपर अच्छा प्रकाश डाल चुके हैं। उन्होंने बड़े प्रभावशाली ढङ्गसे इस विषयपर बहस की है। जिस बातके कारण हम रो रहे हैं, वह यह है कि भारतीय सिविल सर्विसमें वेतन और पेन्शन इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि वैसी अन्य किसी देशमें नहीं। अतः यह ज़रूरी है कि तनख़्वाहें कम करने और देशका ख़र्च घटानेके लिये देशी ढङ्गसे कार्रवाईकी जाय। पर दूसरी तरफ़ कमीशन समाप्त होनेके पूर्व ही ऐसे प्रस्ताव पास होते रहे हैं कि ये तनख़्वाहें बढ़ाई जाँय और पेन्शनमें भी इससे ज़्यादा वृद्धि की जाय। इसी कारण हम कहते हैं कि आय-व्ययके खाते, बिलके रूपमें सम्मिलित करके रक्खे जाया करें। मैं इन सिफ़ारिशोंके बारेमें अब अधिक कहना नहीं चाहता। मेरा सिर्फ़ यह कहना है कि यदि ऐसी शर्त्तें काममें लाई जायँगी तो भारत-सरकारके हाथोंसे जनताके हाथोंमें शासनका अधिकार चला जायगा। प्रान्तीय कौन्सिलोंके प्रस्तावोंके बारेमें मैं कुछ नहीं कहना चाहता। प्रान्तीय कौन्सिलोंके

विषयमेँ लार्ड सीडेनहम स्वीकार करते हैँ कि भारतीय सरकारके सन् १९१५ ई० वाले ख़रीतेके अनुसार भारतको प्रान्तीय स्वायत्त शासन दे दिया जाय। लार्ड सीडेनहम जैसे उच्च अधिकारीकी स्वीकृति और भारतकी भलाईके लिये मित्रभाव दिखलानेके कारण हम इस प्रश्नको यहीँ छोड़ते हैँ। दो वातेँ और अधिक महत्त्वकी हैँ, जिनपर वे ज़ोर देते रहे हैँ। मैँ आपसे उन्हीँके वारेमेँ कुछ और निवेदन करना चाहता हूँ।

इनमेँसे मुख्य वात यह है, जिसका सम्वन्ध है सरकारकी सेना-सम्वन्धी नीतिसे। मुझे विश्वास है कि सरकारकी इस नीतिके कारण हमारी राजभक्तिपर कलङ्क लगा हुआ है और वह हमारी वीरतापर भारी आघात पहुँचा रही है। हम वहुत वर्षोँसे इस वातपर ज़ोर देते आए हैँ कि अन्य प्रजाओँकी भाँति भारतीयोँको भी सेनामेँ स्थान दिया जाय। हम कहते हैँ कि योरोपियनोँकी भाँति भारतीयोँको भी स्वयं-सेना तैयार करने दी जाय, हथियार-क़ानून ढीला कर दिया जाय, साथ ही हमारा अव यह कहना है कि वह विल्कुल रद्द कर दिया जाय। आप जानते हैँ कि इस संहारकारी महायुद्धने पहलेकी सव वातोँमेँ परिवर्त्तन कर दिया है, और हमेँ प्रत्येक वातपर ग़ौर करनेके लिये मजवूर कर दिया है। श्री लौयड जार्जने युद्ध और उसके परिणामपर जो वातेँ कही हैँ उसका ध्यान करके अव यही अवस्था वनी रहनी अत्यन्त हानिकर है। अव हम देखते हैँ कि हमारे सिरपर वे आपत्तियाँ आ टकरानेवाली हैँ कि यदि सरकारने अपनी सेना-सम्वन्धी नीतिमेँ परिवर्त्तन न किया तो भारतको ही नहीँ वरन् सारे साम्राज्यको वहुत वड़ी हानि सहनी पड़ेगी। सर नौर्मन लौकियरने कहा है कि यह भी शिक्षाका एक अङ्ग है कि हरएक नवयुवकको सैनिक शिक्षा दी जाय। पश्चिमके वहुतसे देशोँमेँ और ख़ासकरके उन देशोँमेँ, जहाँ इसका ठीक प्रयोग नहीँ हुआ है, वहाँ आजकल सेनामेँ वलात् भर्त्ती करनेका नियम चल पड़ा है। सैनिक शिक्षा तथा क़वायद करना अनिवार्य्य रक्खा गया है। यह धीरे-धीरे किन्तु खेदके साथ स्वीकार किया जा रहा है कि विना वलपूर्वक भर्त्ती किए काम नहीँ चल सकता और इस वातकी भी चर्चा उठी है कि भारतमेँ रहनेवाले योरोपियनोँकी भी वलात् भर्त्ती कर ली जाय। मामला वड़ा नाज़ुक दिखलाई पड़ता है। हम इसकी वहुत दिनोँसे शिकायत करते आए हैँ कि हथियार-क़ानूनके ज़ोरसे निरस्त्र रखने और सेनाके ऊँचे पदोँपर भारतीयोँकी नियुक्ति न करनेकी नीति कठोर ही नहीँ वल्कि अन्यायपूर्ण है। क्या इस महासंग्रामके भीषण परिणामके कारण यह अन्याय किया जा रहा है? हमेँ ऐसा विश्वास नहीँ पड़ता कि वात यही है। हम चाहते हैँ कि सरकार इस वातको भली भाँति जान ले कि भारतीय इस वन्धन और अपमानको केवल अपनी ही हानिका कारण नहीँ समझते वल्कि वे इससे साम्राज्यकी भी भीषण क्षति समझते हैँ। क्या आप जानते हैँ कि हिन्दुस्तानने अपना कर्त्तव्य किस भाँति निवाहा है? साम्राज्यके लिये हमारे कितने लाख भाइयोँने अपना रक्त वहाया है; कितने लाख भारतीय भाइयोँने सम्राट्की छत्रच्छायामेँ फ्रान्स और अन्य देशोँके रणक्षेत्रोँमेँ अंग्रेज़ भाइयोँके साथ मिलकर तन, मन तथा प्राण एक करके युद्ध किया है? उन्होँने अपना रक्त वहाकर यह प्रमाणित कर दिया है कि हम संसारकी अन्य किसी जातिकी अपेक्षा कम राजभक्त नहीँ हैँ (हर्षध्वनि)। अव प्रश्न यह है कि क्या ऐसी राजभक्तिके हम भारतीय उपासक, कलङ्क, अपकीर्त्ति तथा दासताकी शृङ्खलामेँ सदा ही वँधे रहेँ। क्या इसके उत्तरमेँ हम यही उत्तर पानेके अधिकारी हैँ कि साम्राज्यके प्रति यथेष्ट और अपूर्व राजभक्तिका परिचय देनेके उपलक्ष्यमेँ हमेँ किसी भी उपहारकी आशा करना व्यर्थ है? मुझे तो ऐसी आशा नहीँ है। यह जानकर हर्ष होता है कि भारतीयोँने परीक्षाके इस मार्मिक अवसरपर साम्राज्यकी धन और जनसे आवश्यक सहायता दी है। यदि हथियार-क़ानून न होता और यदि भारतीयोँपर काफ़ी विश्वास किया

जाता तो इस मार्मिक अवसरपर साम्राज्य और बृटिश छत्रकी रक्षाके लिये भारतीयोंकी असाधारण सेना तैयार हो जाती और हम समझते हैं कि अब भविष्यमें उनको सैनिक शिक्षा देकर तथा अभ्यास कराके तैयार रखना चहिए, जिससे स्वदेश और साम्राज्यकी रक्षाके लिये वे हरदम तैयार रहें। यह अत्यन्त निकृष्ट और भुलावेमें डालनेवाली अकल्याणकर अदूरदर्शिता है कि भारतीय जनता सैनिक शिक्षासे वञ्चित रखकर अयोग्य बना दी जाय। मैं अपने भारतीय भाइयोंसे ही नहीं बल्कि किसी भी छोटे-से-छोटे आदमीको यह कहकर कष्ट नहीं देना चाहता। किसी भी वैज्ञानिकमें इतनी शक्ति नहीं कि संसारके किसी भी जीवको वह पैदाकर सके और न यही उचित है कि कोई जीव मारा जाय। मनुष्यमात्रको इससे वचना चाहिए। प्रत्येक युद्ध इस दृष्टिसे अनुचित और हेय है। हमें आशा है कि एक समय ऐसा आवेगा जब युद्ध होना विल्कुल वन्द हो जायगा। परन्तु जवतक वह समय दूर है, जवतक पाशविक शक्तियोंके द्वारा ग़रीबों और निर्बलोंपर अत्याचार किया जाता है, कमज़ोर दबाए और स्वाधीनताके स्वत्त्वोंसे वञ्चित रक्खे जा सकते हैं, स्वाभाविक स्वतन्त्रता और ईश्वरदत्त सुविधाएँ अपहृत की जा सकती हैं, तवतक यह परम आवश्यक है कि ऐसे मार्मिक अवसरका सामना करनेके लिये हरएक जातिके लोग शिक्षित और तैयार किए जायँ। जिस अवसरपर न्यायके ऊपर शक्तिकी जीत होती है, या होती हुई जान पड़े, उस समय प्रत्येक जातिके वीर पुरुषका यह कर्त्तव्य है कि वह श्रीकृष्ण और पाण्डवोंकी भाँति सत्यका पक्ष सँभालनेके निमित्त लड़े। इस प्रकारका युद्ध करना धर्म-सङ्गत है। हम चाहते हैं कि ऐसे अवसरके लिये हम भी तैयार रहें। इसी लिये हम ज़ोर देते हैं, प्रार्थना करते हैं कि सरकार हथियार-क़ानूनको ढीला कर दे अथवा रद्द कर दे और इङ्गलैंडकी भाँति यहाँ भी वहाँकासा नियम जारी कर दे, जिससे प्रत्येक सभ्य पुरुष लाइसेन्स देनेपर हथियार रख सके।

हमारी यह भी प्रार्थना है कि स्वयं-सेना (वौलण्टियर कोर) तैयार की जाय। आप लोगोंने सुना होगा कि देशमें डकैत इधर-उधर घूमा ही करते हैं और निर्बलोंको सताते हैं। इन डाकुओंको यह बहुत बड़ी सुविधा है कि सर्वसाधारणके पास हथियार नहीं रहते, पर वे उन्हें निःसङ्कोच इस्तेमाल करते हैं। परन्तु तो भी शान्तिप्रिय भारतीय लाइसेन्स देकर भी हथियार नहीं रख पाते। इस वातसे न तो सरकारको ही कुछ लाभ है और न सर्वसाधारणको ही। हम यह भी चाहते हैं कि फ़ौजमें भी भारतीयोंकी उचित संख्यामें भर्त्ती की जाय।

हरएक समझदार मनुष्य यह माननेको तैयार होगा कि विदेशी शासन अनुचित है। इसका यही उद्देश होना चाहिए कि जिसके लिये यह है उसीकी भलाईको सदा ध्यान रक्खे। हमारी सरकार और अंग्रेज़ प्रतिनिधि इस वातको स्वीकार करते हैं। अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ आरम्भसे ही इस लक्ष्यपर हैं। लौर्ड सीडेनहम भी भारतपर विश्वास रखनेके लिये कह रहे हैं और श्री कार्टिस भी हमारे समान पराधीन जातिको स्वराज्यकी शिक्षा देना अपना मुख्य कर्त्तव्य बतलाने लगे हैं। हमारा कहना यह है कि यदि विदेशी शासन रहना चाहे तो उसे अपना अस्तित्त्व सिद्ध करना पड़ेगा। उसे लोगोंकी भलाईका अधिक ध्यान रखना पड़ेगा। हम लोगोंने प्रसन्नताके साथ सन् १८५८ ई० से विदेशी शासन स्वीकार किया है, जब कि महारानी विक्टोरियाका घोषणा-पत्र सुनाया गया था। उस घोषणापत्रकी सुन्दर और हितकारी बातोंमें आकर लोग यह भूल गए कि वे विदेशी महारानीकी बातें थीं। उन्होंने उन्हें अपनी महारानी माना। उसी राजभक्तिके उत्साहमें भारतवासी अपनी महारानीके उत्तराधिकारियोंको सदा अपना समझते रहे। इसलिये हम यह विशेष रूपसे समझते हैं कि सरकारको देशकी सन्तानके हितके लिये यथासाध्य

सव कुछ करना चाहिए, और इसीके समर्थनमें हम लार्ड सीडेनहमके कुछ शब्द दुहरा देना चाहते हैं। वे कहते हैं कि 'भारतवर्षमें अंग्रेज़ी शासन तभी निर्दोष प्रमाणित हो सकता है जब भेद करनेवाले मार्गोंको वन्द करके वह देशनिवासियोंकी उन्नति करे'। मेरे और लार्ड सीडेनहमके विचारोंमें इस विषयपर एक मत है। हम कहते हैं कि इस कार्य्यकी सिद्धिके लिये स्वराज्यके वारेमें प्रत्येक आवश्यक उपाय करना चाहिए। यह प्रसन्नताकी वात है कि लार्ड सीडेनहम भी सेनामें भारतीयोंकी नियुक्ति चाहते हैं, परन्तु खेदकी वात तो यह है कि वे उन्हें कुछ शर्त्तोंके वन्धनोंमें डालकर निकम्मा रखना चाहते हैं। वे भारतीयोंकी वहुत थोड़ी संख्या सेनामें भर्त्ती करना चाहते हैं और हम चाहते हैं कि सम्राट्की प्रत्येक प्रजाको समान शर्त्तोंके साथ सेनामें भर्त्ती हो सकनेका अधिकार मिले।

दूसरी वात है सरकारकी सैनिक नीति, जिसे ढीली करानेकी हमारी इच्छा है। ये सिफ़ारिशें सेना-सम्वन्धी और अन्य मामलोंसे सम्वन्ध रखती हैं, जिनके अनुसार साम्राज्यकी समुद्री नौकरियोंमें भारतीयोंके लिये द्वार खुले हैं, उनके चुनाव, शिक्षण तथा अभ्यासके लिये भारतमें ही उचित उपाय कर दिए जाँय। भारतीयोंको स्वयं-सैनिक वननेकी आज्ञा मिल जानी चाहिए। यद्यपि हमने विस्तार-पूर्वक इस विषयमें विचार नहीं रक्खे हैं, परन्तु तो भी सुधारके और भी कई उपाय हैं। हमने अभी सिविल सर्विसका विषय नहीं उठाया है, क्योंकि हमारी इच्छा है कि सम्राट्की गोरी और भारतीय प्रजाके वीचका भेद दूर कर दिया जाय। यदि उचित समझा जाय तो योरोपियनोंकी भाँति हम लोगोंकी परीक्षा भी ली जा सकती है। सैनिक शक्ति और उनकी योग्यता प्राप्त कर लेनेकी किसी जातिविशेषकी वपौती नहीं है। हम चाहते हैं कि हमारे देश-वासी संसारके किसी भी मनुष्यकी भाँति जीवनके प्रत्येक भागमें उन्नति कर सकें। ऐसा हो सकनेके लिये परिवर्त्तन करनेकी आवश्यकता है। हम शिक्षित भारतवासी शक्ति और अधिकारोंको अपने लिये नहीं चाहते। ऐसा सोचनेवाले विरोधियोंकी यह भूल है। भारतके शिक्षित समाजमें अधिकतर ऊँचे और मध्यम कक्षाके लोग हैं। स्वर्गीय सर टी० मधुस्वामी ऐयर अनाथ होते हुए भी मद्रासके चीफ़ जस्टिस वनाए गए थे। उसके वाद उनका देहान्त हुआ था। कहा यह जाता है कि भारतीय शिक्षित समाज सर्वसाधारण प्रजाका प्रतिनिधि नहीं है। वड़े आश्चर्य्यकी वात मालूम पड़ती है कि सिर्फ़ पाँच-पाँच वर्षतक भारतमें रहनेवाले योरोपियन अफ़सर तो भारतकी दशा जान सकनेका दावा करें, परन्तु शिक्षित भारतवासी ऐसा समझे जानेके योग्य भी नहीं। हम अपने विरोधियोंको इस वातका ज्ञान करा देना चाहते हैं कि हम स्वार्थी नहीं हैं। यदि वे हमें ऐसा समझते हैं तो वे भी इस पापसे मुक्त नहीं।

ऐसी ही वहुतसी अन्य वातें हैं, जिनसे प्रत्येक देशके निवासी लाभ उठानेकी आशा रखते हैं। ज़माना वदल गया है और पुरानी वातें भी जाती रही हैं, परन्तु हमारी प्राचीन सभ्यताकी झलक अभी तक जीती-जागती मौजूद है। यह हमारी न्यायोचित अभिलाषा है कि हमें उच्च तथा सम्मानित पद मिलें। यह शिक्षाका फल है, यह समयकी शक्ति है, जिसके कारण हमें भी चारों ओरकी स्थितिका ज्ञान हुआ है। यह वही शक्ति है जिससे यह विदित होता है कि फ़्रान्सने सर्वस्व वलिदान कर दिया, इङ्गलैण्डने स्वतन्त्रता और धर्मके लिये कोई वात उठा न रक्खी। जव हम अंग्रेज़ोंकी उत्साह और साहससे पूर्ण कथा-कहानियोंको पढ़ते हैं, जिनमें उन्होंने अपने देशनिवासियोंको छोटे-छोटे राष्ट्रोंकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये अपना सव कुछ अर्पित कर देनेका आदेश दिया है, तव क्या कारण है कि भारतीयोंको साम्राज्य-शासनमें आगे वढ़ते और अपनी आवाज़ उठाते देखकर वे विरोध करते हैं? सम्भव है कि जिन सुधारोंको हम चाहते हैं वे वास्तवमें आवश्यक न हों। मैं यह भी नहीं कहता

कि हम लोगोंने जो योजना पेशकी है, वह पूर्णाङ्ग है। सम्भव है कि हमारे विरोधी अभी यह ख़याल करते हों कि अभी देशमें सुधार करनेका समय नहीं आया है। मैं चाहता हूँ कि वे इस प्रश्नपर भाई और मित्रकी भाँति हमारे साथ विचार करें। यदि हम भूलपर हैं तो वे हमें सुझावें, हम अपने विचारोंको शोध लेंगे। यदि वे किसी रूपमें ऐसा करनेकी बात ज़रूरी नहीं समझते तो उन्हें ध्यानसे हमारी बात सुननी चाहिए। इस बातपर विचार करना चाहिए कि हमारी माँगें क्या हैं; तब समझ-बूझकर उन्हें हमारा विरोध करना चाहिए। यदि हम बिना किसी उत्तरके ही दोष निकालें तो हम इङ्गलैण्ड और भारत दोनोंकी भलाईके बाधक हों। इसलिये मैं उपस्थित समुदायसे निवेदन करता हूँ कि अब तो सारपूर्ण सुधार किए जाँय तभी भलाई है। हमको एक दूसरेके कथनोंका तात्पर्य्य समझ लेना चाहिए और यह भी जान लेना आवश्यक है कि ऐसी अवस्थामें चाहिए क्या? लार्ड सीडेनहमका कहना है कि, "मेरी इच्छा है कि अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे समुदायको प्रतिनिधित्वकी पूरी शक्ति दी जाय (जो मुझे विश्वास है कि उन्हें प्राप्त हैं)"। मैं इन शब्दोंको छोड़कर शेषांशसे सहमत हूँ और सर्वसाधारणके हितके कार्य्यमें हर तरहकी सहायता पहुँचाई जाय। जिस किसी पदके लिये भारतवासी योग्यता दिखलावें वह पद उन्हें दिया जाय। बस यही हमारी भी माँग है। हम यही चाहते हैं कि सर्वसाधारणके हितकी जो कुछ बातें सरकार सोचे उसमें हमें भी सम्मिलित कर ले। हमारी समझमें यह सब तभी होगा जब ये 'सुधार' कर दिए जायँगे। हम इस विषयपर भी ज़ोर दे चुके हैं कि भारतीय जिन-जिन पदोंके योग्य सिद्ध हों, उन्हें वे पद दिए जायँ।

यदि हमारे इन उपस्थित किए गए सुधारोंकी ओर अंग्रेज़ोंने ध्यान दिया तो मुझे आशा है कि हम लोग एक होकर सप्रेम उक्त सुधारोंको कार्य्य रूपमें प्रकट कर दिखायँगे, जिससे हमारी उन्नति होगी तथा भारतमें सुख और शान्ति बढ़ेगी। भारतवासी अन्य राष्ट्रोंकी प्रतिद्वन्द्वितामें अपनी उन्नति स्वयं कर सकेंगे और ऐसे सम्राट् महोदयकी छत्रच्छायामें बने रहकर अपनेको कृतकृत्य मानेंगे, जिसके अधीन रहकर साम्राज्यमें हमें प्रत्येक जातिके समान स्वत्त्व और आदर प्राप्त हुआ है और साथ ही इङ्गलैण्डकी प्रशंसा करेंगे कि उसने इतनी दूर रहते हुए भी भारतके हितके लिये कोशिश की। (करतल-ध्वनि)

वर्त्तमान स्थिति

१० जुलाई, सन् १९१७ ई० को सर्वेण्ट्स औफ़ इण्डिया सोसाइटी (भारत-सेवक-समिति) बम्बईमें माननीय मालवीयजीने निम्नलिखित वक्तृता तत्कालीन राजनीतिक स्थितिपर विचार प्रकट करते हुए दी थी ।

—सम्पादक ।

बहनो तथा भाइयो !

पूर्व कालसे चली आनेवाली राजनीतिक स्थिति अब एकदम बदल गई है और यह हर्षकी बात है कि सब लोग अपनी दशाको ऊपर उठानेके लिये स्वतन्त्र दिखलाई पड़ते हैं । उन्होंने अपनी दशाको ऊपर उठानेके लिये गत वर्षसे तत्परतासे कार्य्य आरम्भ कर दिया गया है । कांग्रेस और मुस्लिम लीगने अपनी सम्मिलित योजना प्रस्तुत करके अपनी पहली माँग सामने रक्खी है । होमरूल लीग भी कांग्रेसके उद्देशकी सफलताके लिये कार्य्य करनेमें लगी हुई है । हमारे विरोधी भी कम नहीं हैं, हमें उनकी ओरसे सावधान रहना चाहिए । हम अब चुपचाप नहीं रह सकते । इसमें हमारा अकल्याण है । हमें अपने आन्दोलनमें बड़ी-बड़ी बाधाएँ पड़ सकती हैं, पर हमें विचलित नहीं होना चाहिए । श्रीमती बेसेण्टने कोई ऐसा अपराध नहीं किया था कि उन्हें नज़रबन्द कर लिया जाय ; और यदि उसे मान भी लिया जाय तो साधारण क़ानूनद्वारा उनका विचार किया जा सकता है । भारत-रक्षा क़ानूनका, जो विशेष-विशेष अवसरोंपर किसी विशेष अपराधके लिये काममें आनेवाला क़ानून है, इस प्रकार और विशेषतः इस विषयमें प्रयोग किया जाना न्यायसङ्गत नहीं हुआ है ।

इस समय भारतवर्ष एक विशेष स्थितिमें पड़ा हुआ है । यह हमारा मार्मिक समय है । जातिके कन्धोंपर एक विशेष महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है । जातिका यह उत्तरदायित्व इस बातपर अवलम्बित है कि हम अधिकारी वर्ग तथा बृटिश जनताको इस बातका विश्वास दिला दें कि हमारी कांग्रेस लीगकी योजना उचित है । इस कार्य्यके लिये हमें अभी बहुत कुछ प्रयत्न करना है । ज़िले-ज़िलेमें काँग्रेस कमेटियाँ स्थापित करना, गाँव-गाँवमें स्वराज्यका ज्ञान पहुँचाना और घर-घर तथा झोंपड़े-झोंपड़ेमें इसका सन्देश फैलाना हमारा कर्त्तव्य है । यह उचित ही नहीं वरन् परमावश्यक है कि देशके कोने-कोनेसे, घर-घरसे और प्रत्येक मनुष्यके मुँहसे अपने स्वत्त्वके लिये आवाज़ उठे । हमें अपने पढ़े और अपढ़ भाइयोंको सम्मिलित करके सङ्घटित स्वराज्य आन्दोलन करना चाहिए । हमें इस अवसरपर समस्त घरेलू झगड़ोंको छोड़कर अपने ध्येयकी सिद्धिके लिये एक हो जाना चाहिए । व्यक्तिगत भेदको त्याग देना चाहिए । यह विचार इस समय बिल्कुल न आने देना चाहिए कि कौन गरम दलका है और कौन नरम दलका । बड़े भाग्यसे यह समय प्राप्त हुआ है । इसके भीतर हमें अपनी पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए, अन्यथा इसके बीत जाने और हाथसे निकल जानेपर हम पीछे पड़े रह जायँगे । यदि इस समय हमने काम किया और हम अपनी आवाज़ बदलकर इङ्गलैण्ड-निवासियोंके कानोंमें अपनी माँग भरते

गए, उन्हें सुझाते गए तो दो वर्षके भीतर ही हमारी कांग्रेस लीगकी योजना अर्थात् स्वतन्त्रता हमें प्राप्त हो जायगी। पर अब बातोंका समय नहीं है, केवल बातें बनानेसे काम नहीं चलेगा।

प्रस्ताव पास करके छोड़ रखनेके दिन अब गए। अब दृढ़तापूर्वक काम करनेमें ही अपनी कार्य्य-सिद्धि है। समयकी पुकार यह है कि हम नियमबद्ध होकर दृढ़ आन्दोलन करें और अपनी माँग ऊँची करें। हमें आवश्यकता है सार्थक आन्दोलन और दृढ़ उद्योग करनेकी। इसके बिना कामोंकी सिद्धि नहीं हो सकती। वर्त्तमान युगकी यही आवश्यकता है। ध्यान रखना चाहिए कि यदि इस समय हम अवसर चूक गए तो प्राचीन भारतकी तुलनामें हम ही अपनी सन्तानके पतनके कारण होंगे। साथ ही हमारे नवयुवक समुदायको भी यह ध्यानमें रखना चाहिए कि बड़ोंकी आज्ञा न टालें, बल्कि वृद्धोंके अनुभव तथा उनकी योग्यतासे लाभ उठावें। साथ ही हमारा वृद्धोंसे भी कहना है कि वे नवयुवकोंको बच्चा समझकर त्याग न दें, उनके उत्साहको फीका न करें, वरन् उनकी शक्तियोंको मार्ग दें तथा मार्ग दिखावें। मैं सदा इस बातके विरुद्ध रहा हूँ कि विद्यार्थीगण राजनीतिमें भाग लें, पर तो भी मैं इसे नितान्त हानिकारक तथा आगेके लिये भयानक समझता हूँ कि वे राजनीतिसे अनभिज्ञ रक्खे जायँ तथा जातिके आदर्श और बड़े पुरुषोंके विचारों और कार्य्योंसे अनजान बने रहें। यह स्थिति उस दशामें और भी घृणित प्रतीत होती है जब सरकारकी ओरसे ऐसी रुकावटें डाली जाती हैं।

हमारी अन्तिम विनय यह है कि देशके इस मार्मिक अवसरपर हमें एक ही काम करना चाहिए। ध्येयकी पूर्त्तिके लिये इस अवसरपर विरोध और व्यक्तिगत विचारोंको त्याग देना ही उचित है। हमें देशके कल्याणके नामपर शीघ्र ही घरेलू मामलोंको छोड़कर स्वराज्यके आन्दोलनमें एक होकर हाथ बँटाना चाहिए।

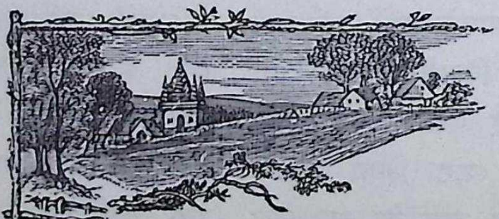

स्वराज्य-आन्दोलन

८ अगस्त सन् १९१७ को प्रयाग की एक महती सार्वजनिक सभामेँ माननीय मालवीयजीने यह वक्तृता दी थी।

—सम्पादक।

बहनो तथा भाइयो !

देशकी वर्त्तमान राजनीतिक परिस्थिति जाननेके लिये यह आवश्यक है कि भूतपूर्व घटनाओँपर भी दृष्टिपात करेँ, जिनके आधारपर इसका जन्म हुआ है। इसका विचार करते समय हमेँ स्मरण रखना चाहिए कि देशकी दोनोँ महान् जातियाँ, हिन्दू और मुसलमान, प्राचीन सभ्यताकी उत्तराधिकारिणी हैँ। हिन्दुओँने हज़ारोँ वर्षोँतक राज्य किया, अपनी सभ्यताको उच्च-से-उच्च श्रेणीतक पहुँचाया। मुसलमान जाति उस विशेष सभ्यताको साथ लाई, जिसकी छाप योरोपपर भी पड़ चुकी थी। उसके शासकोँने शासनकलामेँ भली भाँति सफलता प्राप्त की। इस प्रकार डेढ़ सौ वर्ष पूर्वसे भारतीय अपने देशका शासन भली भाँति चलाते रहे हैँ। इसके बाद प्रत्येक महती जातिकी भाँति भारतका भी पतन हुआ। योरोपियन जातियोँने भारतमेँ राज्य करनेकी कोशिश की। अंग्रेज़ लोग इसमेँ सफल हुए। वे प्रजाद्वारा प्रजाका शासन करनेमेँ प्रसिद्ध रहे हैँ। भारतवासी भी इस उदार प्रणालीके कारण अंग्रेज़ी शासनमेँ रहने लगे। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके हाथमेँ जबतक शासन रहा तबतक उसे क्रमशः बीस वर्षके लिये विलायतमेँ सनदेँ प्राप्त होती थीँ। जब सनदकी बदली होती थी तब बृटिश पार्लियामेण्ट शासन-सम्बन्धी जाँच कराती थी, जिसका अभिप्राय प्रजाके सुख तथा समृद्धिसे रहता था। सन् १८३३ ई० मेँ ऐसे ही अवसरपर पार्लियामेण्टने यह क़ानून पास किया कि भारतीय अपने देशके उच्च-से-उच्च पदपर आरूढ़ हो सकेँ। ग़दरके पश्चात् सन् १८५८ ई० मेँ महारानी विक्टोरियाने भारतीयोँको समान प्रजा-स्वत्त्व देनेकी बात कही। गवर्नमेण्ट ऑफ़ इण्डिया बिलमेँ प्रजा-प्रतिनिधियोँकी नियुक्तिपर ज़ोर दिया गया। पर उस समय इस सम्बन्धमेँ बहुत कम काम हो सका। किन्तु यह प्रकट हो गया था कि प्रतिनिधियोँद्वारा शासन करनेके सिद्धान्तकी ओर भारतीयोँको बढ़ाया जाय।

सन् १८६१ ई० के इण्डियन कौन्सिल ऐक्टके मुताबिक़ व्यवस्थापिका सभाओँमेँ कुछ भारतीय नियुक्त किए गए। पर उनकी अल्प संख्याके कारण कोई वास्तविक काम न हुआ। शिक्षाके फैलनेपर यह अनुभव होने लगा कि शासन तबतक ठीक-ठीक नहीँ हो सकता जबतक हमेँ पर्य्याप्त शासन-शक्ति न प्राप्त हो जाय। सन् १८८५ ई० मेँ पहले कांग्रेसने इसपर ज़ोर दिया। श्रीमान् दादाभाई नौरोजीने कहा कि हम अंग्रेज़ोँसे इसकी शिक्षा प्राप्त कर चुके हैँ कि बिना जन-प्रतिनिधियोँके शासन अच्छा नहीँ हो सकता। इसके बिना हम लोग दासोँ और ग़ुलामोँकी भाँति हैँ। दूसरी कांग्रेसमेँ व्यवस्थापक परिषद्मेँ संख्या-वृद्धिपर ज़ोर डाला गया है। यह तीस वर्ष पहलेकी बात है, जब चुने हुए आधे सदस्य माँगे गए थे। पर अब तो चौथाईसे अधिक सरकारी सदस्य कदापि न होने चाहिएँ। क़ानून-सम्बन्धी और बजट-सम्बन्धी प्रस्ताव तथा प्रश्न भी सभाओँके सामने पेश होने

चाहिएँ। सभाकी ही रायपर साधारण रूपसे काम किया जाय और केवल किसी ख़ास अवस्थामेँ, यदि प्रजाके हितको धक्का पहुँचता हो, तो सरकारको सभाका निर्णय न माननेका भी अधिकार होना चाहिए। पर सरकारको एक वर्षके भीतर ही अपनी अस्वीकृतिके कारण उपस्थित कर देने चाहिएँ। प्रान्तीय सरकारेँ भारत-सरकारके पास और भारत-मन्त्रीके पास अपने कारण भेजा करेँ, और यदि सभाके सदस्य, विरोधी कारणोँसे सम्मत न होँ तो पार्लियामेण्टद्वारा समिति नियुक्त करके मामला तय किया जाया करे। यह बात गत वर्षकी कांग्रेस-लीग-योजनाकीसी ही है। कांग्रेसके इस प्रस्तावपर श्री ब्रेडलौने कौन्सिलोँके सुधारका एक बिल पार्लिपामेण्टमेँ पेश किया। तब सरकारने स्वयं सन् १८९२ ई० मेँ एक कौन्सिल-सुधार-बिल पास किया, जिसके अनुसार सभाओँमेँ सदस्योँकी कुछ संख्या बढ़ी। पर इस वृद्धिसे हमारी सन्तुष्टि नहीँ हो सकी। सन् १९०५ ई० मेँ श्री गोखलेने बनारसकी कांग्रेसमेँ फिर इसपर ज़ोर दिया। उन्होँने कहा कि हिन्दुस्तानका शासन हिन्दुस्तानियोँके हितके लिये किया जाय। सन् १९०६ ई० मेँ स्व० दादाभाई नौरोजीने कलकत्तेकी कांग्रेसमेँ स्वराज्य-स्थापनाकी बात कही। सन् १९०९ ई० मेँ मिण्टो-मौर्लेके कौन्सिल-सुधार जारी हुए। उस सयम हम उन सुधारोँसे कुछ चुप हो गए, पर अनुभवके पश्चात् विदित हुआ कि उक्त सुधारोँसे भी हम सभाओँमेँ कुछ कर-धर नहीँ सकते। इसलिये फिर इस बातपर ज़ोर दिया गया कि हमारे स्वत्त्व और हमारी संख्या बढ़ाई जाय। सन् १९१५ ई० मेँ सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंहने बम्बईमेँ 'प्रजाकी सरकार' का प्रस्ताव किया।

इससे स्पष्ट है कि स्वराज्यकी पुकार कुछ नई बात नहीँ है, बल्कि कांग्रेसके जन्मसे ही हम उसे चाहते हैँ। कुछ विरोधियोँका कहना है कि स्वराज्यकी माँग पहले-पहल मिसेज़ बेसेण्टने ही उठाई है, पर बात ऐसी नहीँ है। कांग्रेसने यह कोई नई बात नहीँ उठाई है।

तीस वर्षसे भारतकी यह शिकायत है कि सरकार फ़ौजी मामलेमेँ भारतीयोँ और योरोपियनोँ एवं यूरेशियनोँके बीच विभेदका बर्त्ताव करती है। वह इसे दूर करे। वर्षोँसे अस्त्र-क़ानूनका विरोध किया जा रहा है। इसके कारण भारतीय निकम्मे होते जा रहे हैँ। फ़ौजोँमेँ कमीशन देने तथा सैनिक शिक्षाके विस्तारपर भी ज़ोर डाला गया है। स्वयं-सेना बनानेके लिये भी भारतीयोँने समय-समयपर आवाज़ ऊँची की है। सम्राट् महोदयने युद्ध छिड़नेपर प्रकट किया था कि छोटे-बड़े राज्योँकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये ही यह न्याय-युद्ध छेड़ा गया है। हमने तथा देशी राज्योँने उनकी सहायता करनी स्वीकार की। हमारे भारतीय भाइयोँने वीरताके साथ बृटिश साम्राज्यके लिये ख़ून बहाया। इस दशामेँ यह उचित था कि गोरे-कालेका भेद दूर करके समताका बर्त्ताव किया जाता, पर शोककी बात है अभीतक उक्त भेद मौजूद है। उचित तो यह है कि अब भारतवासियोँकी यह शिकायत शीघ्र दूर कर दी जाय। चूँकि युद्धका अन्त अभी दिखाई नहीँ देता, अतः फ़ौजी मामलेकी रुकावटेँ भारतीयोँके लिये तुरन्त दूर कर देनेमेँ ही बृटिश साम्राज्यका हित है। भारत-रक्षा सेनाके लिये किए गए सुधार भी मञ्ज़ूर कर लिए जायँ। सैनिक शिक्षाकी समान व्यवस्था कर दी जाय।

कांग्रेस-लीगकी योजना प्रकाशित हो चुकी है। खेदकी बाद है कि इस तुच्छ माँगमेँ भी अड़ङ्गे लगाए जाते हैँ। कुछ लोग इसे 'छोटे मुँह बड़ी बात' तक कहनेसे नहीँ हिचकते। यहाँतक कि वाइसरायने स्वयं एक मन्सौदा तैयार किया है। कई प्रान्तोँके हाकिमोँके कथनोँसे प्रकट होता है कि सरकारी मन्सौदा अत्यन्त लचर और हेच है। यद्यपि ये सरकारी सुधार अभीतक प्रकाशित नहीँ हुए हैँ, पर उनकी वास्तविकता प्रकट है और उससे हम किसी भी दशामेँ सन्तुष्ट नहीँ हो सकते। भारत-मन्त्रीपर भी ज़ोर डाला गया है कि ये सरकारी सुधार ही मञ्ज़ूर किए जायँ। इस दशामेँ हमेँ चुपचाप न बैठे

रहना चाहिए। देशभरमें शिक्षा-संयुक्त आन्दोलन फैला देनेकी पूर्ण आवश्यकता है।

हमने जो योजना प्रस्तुत की है यदि वह मान ली जाय तो सरकारके स्वरूपमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता। वह योजना कोई उलट-फेर करनेवाली नहीं है। इससे किसी तरहकी हानि होनी सम्भव नहीं। हमारे मन्तव्योंमें कोई ऐसी वात नहीं कि किसी योरोपियन सहयोगी वर्गको क्रोध या डर पैदा हो सके। वड़ी हँसी तो मुझे उस दिन आई जव एक योरोपियन सज्जनने यह वात कही कि, 'हमें कोई विरोध नहीं यदि भारतीय जनता स्वराज्य चाहे, पर विरोध यह है कि हम उसके शासनमें रहें।' यह तो एक ही रही। यदि वे एक स्वतन्त्र सहयोगी प्रजाकी भाँति इस देशमें रहना नहीं चाहते तो वे खुशीसे चले जा सकते हैं। हम इङ्गलैण्डसे अलग होनेका विचार नहीं करते। हम भारतमें स्वराज्य स्थापित करके दोनोंके हितकी रक्षा करना चाहते हैं। पर दुर्भाग्यकी वात तो यह है कि कुछ लोगोंमें यह विश्वास जम गया है कि कांग्रेस-लीगके मन्तव्य असङ्गत हैं। वे सदा हमारे आन्दोलनका विरोध करते हैं। यहाँतक कि भारत-सरकारने भी एक ऐसा सर्कुलर जारी करके प्रान्तीय सरकारोंको ऐसे आन्दोलनोंको हानिकर वताया। इन प्रान्तीय सरकारोंने भी दमन-नीतिसे अच्छी तरह काम लिया है। मेरा विश्वास है कि श्रीमती बेसेण्टकी नज़रबन्दी इसके फल-स्वरूप थी। यह मान भी लिया जाय कि इन्होंने कुछ अनुचित लिख या कह डाला तो क्या साधारण क़ानूनोंसे काम नहीं चल सकता था? इसकी आवश्यकता क्यों पड़ी कि भारत-रक्षा क़ानूनका दुरुपयोग किया गया? हमेशा हमसे यही कहा जाता है कि अभी युद्धका समय है, अभी अपना आन्दोलन बन्द रक्खो। पर बृटिश सरकार ही कब अपना काम रोके हुए है। न जाने कितने राजनीतिक सुधार बिल पास हो चुके हैं? आयर्लैण्डकी समस्यापर ही विचार किया जा रहा है, तब फिर हमीं क्यों चुप रहें? मैं सच कहता हूँ कि युद्ध-सम्वन्धी कार्य्योंमें इने-गिने ही लोग लगे हुए हैं। अव विचारनेकी वात है कि युद्धके समयमें हमारे वाइसराय तकको अपनी सुधारकी योजना प्रस्तुत करनेका समय मिल गया। दूसरे, युद्धके कारण वहुतसे विभागोंमें कामकी कमी हो गई है। इससे भी अफ़सरोंको अधिक सुभीता हो गया है कि हमारी वातपर वे विचार करें। हम लोग युद्धमें तन, मन तथा धनसे सहायता देते रहे हैं और देते रहेंगे। सिर्फ़ फ़ौजमें सम्मिलित होनेवाले भारतीयोंको ही नहीं वरन् वाहरी भारतीयोंको भी युद्ध-सम्वन्धी सहायताकी ज़िम्मेदारियोंका सम्मान प्राप्त है। यदि इस समय भी यह विषय न छेड़ा जाय तो फिर हम समझेंगे कि हम अपना उचित कर्त्तव्य-पालन नहीं कर रहे हैं। इन सव वातोंके सोचनेपर ही यह प्रश्न उठता है कि फिर हमारा कर्त्तव्य क्या है? हमारे लिये यह जानना परमावश्यक है कि हम चाहते क्या हैं और यह कि उसकी प्राप्तिके लिये हमें करना क्या चाहिए। पहली वातके वारेमें हम सव समझते हैं कि स्वराज्य क्या है। परन्तु साथ ही देशमें ऐसी भी एक वड़ी संख्या है जिसे इसका अभिप्राय पूर्ण रूपसे समझाना पड़ेगा। उनमें इसकी प्राप्तिके लिये उत्कण्ठा उत्पन्न करनी पड़ेगी। पर हमें यह भी जान लेना चाहिए कि सहयोगी अंग्रेज़ प्रजाको इसके लिये सहमत कर लेना सहज काम नहीं है। सरकारको भी इस वातका विश्वास दिलाना पड़ेगा कि देशकी अधिकांश प्रजा स्वराज्य चाहती है। यहाँपर श्रीमान् दादाभाईके कथनानुसार 'हमें सङ्घटित करके ही ये सव वातें सफल करनी चाहिएँ। आन्दोलन करो, आन्दोलन करो, देशके कोने-कोनेमें आन्दोलन करो, यदि आप वास्तवमें अंग्रेज़ोंसे अपने लिये न्याय कराना चाहते हो। त्याग और दृढ़ उत्साहके साथ काम करना ही हमारा कर्त्तव्य है। मुझे विश्वास है कि बृटिश विवेककी जय होगी और बृटिश जनता वर्त्तमान राजनीतिज्ञोंके इस पक्षको पुष्ट करेगी और वहुत

शीघ्र भारतको स्वराज्य मिल जायगा।' हमारे लिये खेदकी बात होगी अगर हम अपने पूज्य नेताकी बातका अनुसरण न करें। हमें कलङ्क लगेगा यदि हम उनकी बात कार्य्यरूपमें परिणत न करें।

सन् १९०९ ई० के सुधारोंने हमें मोहित कर लिया था। हम फूल उठे थे कि हमें पर्य्याप्त सुधार प्राप्त हो गए, पर वास्तवमें हमें कोई वास्तविक अधिकार नहीं मिले। अब हमें अनुभवके पश्चात् सारयुक्त सुधारोंकी महती आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। इसके बिना हम कुछ भी नहीं कर-धर सकते। इस समय, जब कि हमारी शक्तियाँ स्वराज्य-प्राप्तिके लिये कुछ-कुछ एकत्र हो चली हैं, हमें कुछ काम कर दिखाना चाहिए। पार्लियामेण्टके सामने पेश करनेके लिये एक पत्र बाँटा जानेवाला है जो अधिक-से-अधिक हस्ताक्षर कराके पेश किया जायगा। हमें यह भी उचित है कि जगह-जगह अपनी पुष्टिके लिये कांग्रेस-कमेटियाँ स्थापित करें। ज़िला सम्मेलन किए जायँ। यदि हमने उचित ढङ्गसे काम किया तो हमारी पहली सारयुक्त माँग युद्धके बाद अठारह महीनोंमें ही मिल जायगी। सत्य और न्याय हमारे साथ है, समयकी वेगवती शक्ति भी हमारे हाथोंमें है। अंग्रेज़ राजनीतिज्ञोंने यह भी स्वीकार कर लिया है कि भारतने साम्राज्य-रक्षाके लिये यथाशक्ति अपना सब कुछ दिया है, अतः उसकी दशा अब वैसी ही नहीं बनी रह सकती। यदि इस परिस्थितिमें भी हम स्वराज्य नहीं पा सकते तो समस्त दोष हमारा है। अपनी सफलताको निश्चय करनेके लिये यह परमावश्यक है कि हम अपने आन्दोलनको देशव्यापी बनावें और बड़े ज़ोर-शोरसे उसे चारों तरफ़ गुँजा दें। साथ ही यह भी आवश्यक है कि हम लोग क़ानूनके भीतर ही रहें। स्वराज्यकी माँगके पक्षमें अब यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अंग्रेज़ी शासनने अमुक-अमुक ग़लतियाँ की और यह कि स्वराज्य ही एक स्वाभाविक शासन है। कोई भी विदेशी सरकार यदि अच्छी-से-अच्छी हो तो उससे ग़लतियोंका होना स्वाभाविक है। मेकैालेने ठीक ही कहा है कि, "किसी देशका शासन तबतक अच्छा नहीं हो सकता जबतक वह स्वयं अपना शासन न करे।" केम्बेलू बेनरमैनका कहना है कि 'सुराज्य स्वराज्यके बराबर नहीं है।' श्री दादाभाई नौरोजीने कहा है, "हम बृटिश प्रजाके जन्म-स्वत्त्वकी भाँति स्वराज्यपर दावा रखते हैं और अगर बृटिश शासन हमारे लिये बहुत कुछ निर्दोष भी हो जाय तो भी हम अपने दावेसे हट नहीं सकते।' ऐसा क्यों कहा जाता है? इसके उदाहरणके लिये यह देखिए कि स्वतन्त्र जापानने तीस वर्षोंमें शिक्षामें जो उन्नति कर ली है वह हमने एक सौ पचास वर्षके बृटिश राज्यमें नहीं कर पाई। सन् १७७८ ई० में जापानके अट्ठाईस फ़ी सदी लड़के स्कूलोंमें जाते थे, पर सन् १९०३ ई० में नब्बे फ़ी सदी जाने लगे। पर हिन्दुस्तानमें अब भी बीस फ़ी सदीसे कम लड़के पढ़ने जाते हैं। इसी लिये हम लोग अब इस परिणामपर पहुँचे हैं कि बिना शासनमें पर्य्याप्त शक्ति और आवाज़ रक्खे हुए अपनी उन्नति ठीक-ठीक नहीं कर सकते। यही हाल सिविल सर्विसके विषयमें है। देशका वाणिज्य-व्यापार भी योरोपियनोंके ही हाथोंमें है। हमारे उद्योग-धन्धोंकी भी उन्नति उचित रूपसे नहीं होती। इसके सिवाय अन्य अनेक कष्टोंका कौन ज़िम्मेदार है? ज़िम्मेदार देशकी वर्त्तमान शासन-प्रणाली है। इसी लिये हमारी आशा स्वराज्यपर अटकी हुई है। अतः इसीके लिये हमें आन्दोलन, निरन्तर सार्थक आन्दोलन करना चाहिए। यदि इस कार्य्यमें नियमबद्ध रहते हुए कोई भी विपत्ति सामने आवे तो उसका हमें हर्षके साथ सामना करना चाहिए। यदि हम भ्रमके भूतसे न डरें, जो कायरताके फन्देमें फाँसकर गुलाम बनाए रखता है, तो सफलता दूर नहीं है। हमारा कर्त्तव्य-मार्ग स्पष्ट है। हमें पुरुषोंकी भाँति पग बढ़ाना चाहिए।

स्वराज्य-प्राप्तिके लिये तीन आवश्यकताएँ

८ अक्तूबर, सन् १९१७ ई० को प्रयागमें होमरूल लीगकी तरफ़से की गई एक सभामें पूज्य मालवीयजीने निम्नलिखित वक्तृता दी थी।

—सम्पादक।

सज्जनो !

मेरी बहुत बड़ी इच्छा थी कि अंग्रेज़ी न जाननेवाले भाइयोंके लिये लोकमान्य तिलककी कलवाली और आजकी वक्तृताओंका सार हिन्दीमें उपस्थित करता, परन्तु गम्भीर होनेके कारण उन वक्तृताओंकी कठिनता बहुत बढ़ी हुई है और मेरा स्वास्थ्य भी इस समय ऐसा नहीं है कि मैं स्वराज्य या होमरूलके सब प्रश्नोंपर देरतक बोल सकूँ, इसलिये मैं वैसा करनेमें असमर्थ हूँ। स्वराज्यके प्रश्नकी महत्ता यथेष्ट रूपसे इसीसे जानी जा सकती है कि देशके इतने अधिक अत्यन्त योग्य व्यक्ति इतने उत्साहके साथ इस ध्येयके लिये काम कर रहे हैं। यह जान लेना परमावश्यक है कि स्वराज्य हमारी उन्नतिके लिये क्यों आवश्यक है। इङ्गलैण्डने हमारे लिये जो कुछ किया है उसके लिये हम उसके कृतज्ञ हैं, परन्तु विचारवान् भारतीयोंका विश्वास है कि अपनी ग़रीबी तथा अन्य अनेक बुराइयोंको दूर करनेके लिये यह आवश्यक हो गया है कि अपने देशके शासनमें भारतवासियोंकी बुद्धि तथा शक्तिका अधिक भाग रहे। जबसे अंग्रेज़ोंके हाथोंमें भारतीय शासनकी बागडोर गई है तबसे कुछ ऐसा हो गया है कि अधिक महत्त्वके पद प्रायः उन्हें ही मिलते हैं, और भारतीय उनसे वञ्चित रहते हैं। लोकमान्य तिलकके कथनानुसार हमें शासन-कार्य्यके अयोग्य प्रमाणित करनेके लिये काममें लाई जानेवाली नीति हमारी क्षतिके साथ-साथ अपमानजनक भी है। हज़ारों वर्षोंतक हिन्दू योग्यताके साथ शासन करते रहे हैं और इसी प्रकार मुसलमान भी सैकड़ों वर्षोंतक राज्य कर चुके हैं।

इस समय भी एक तिहाई देशी रजवाड़ोंमें भारतीयोंका ही राज्य है। यह बात सच है कि एक विदेशी जाति हमपर शासन करनेके लिये आई है। परन्तु यह भी भली भाँति स्मरण कर लेना चाहिए कि प्रत्येक जातिके लिये कोई-न-कोई उत्थानका और कोई-न-कोई पतनका समय आता है और बहुधा प्रत्येक जातिको कभी-न-कभी किसी-न-किसी विदेशी जातिके शासनमें रहना ही पड़ता है। कोई भी जाति इसका गर्व नहीं कर सकती कि मेरी कक्षा सदा ऊँची रही है, और सदा ऐसी ही रहेगी। पर यह किसी जातिके लिये शोभाकी बात नहीं कि वह अपने पूर्ण वैभवके दिनोंमें दूसरी जातिके मार्गमें काँटे बिछाए, और वह भी केवल इस कारण कि दुर्भाग्यवश दूसरी जातिके दिन बुरे आ गए हैं। यह एकदम अस्वाभाविक बात है कि एक देश दूसरे देशपर सदा शासन ही करता रहे। वस्तुतः स्वाभाविक बात यह है कि प्रत्येक जाति अपने भाग्यका निर्णय करनेके लिये स्वतन्त्र रहे। इसीके प्रमाणमें कहा जा सकता है कि अपरिमित धन-जनकी सहायताके साथ इङ्गलैण्ड बेल्जियमकी रक्षाके लिये खड़ा हुआ है। इस शुभ सिद्धान्तके लिये इङ्गलैण्डके खड़े होनेके कारण भारतीय जनता उसकी हृदयसे प्रशंसा करती है। यह भी पूर्णतया स्वाभाविक है कि इस देशमें

उक्त शुभ सिद्धान्तकी व्यावहारिक पूर्त्तिके लिये जनता उत्कण्ठित हो। किसी देशका शासन उसके निवासियोंद्वारा ही हो, यह बात इतनी स्वाभाविक है कि कुछ स्वार्थ रखनेवालोंके अतिरिक्त और कोई इसे अस्वीकार नहीं कर सकता। भारतीय जनता इङ्गलैण्डसे सम्बन्ध-विच्छेद करना नहीं चाहती, पर वह यह भी नहीं चाहती कि सहवासी प्रजा अंग्रेज़ोंके शासनमें रहे। वह अंग्रेज़ोंके साथ समान स्थितिमें रहना चाहती है। बृटिश सरकार-द्वारा भारतपर बृटिश शासनका अन्तिम लक्ष्य स्पष्ट रूपसे स्वराज्य-स्थापन स्वीकार किया जा चुका है। इस प्रकार क़ानूनी शब्द-विधानके अनुसार हमें अपने पक्षमें डिगरी मिल चुकी है। अब केवल उसका कार्य्यरूपमें परिणत होना मात्र शेष रह गया है। कुछ स्थानोंमें, जो यह भावना फैली हुई है कि भारतीय जनता इङ्गलैण्डसे अपना सम्बन्ध तोड़ना चाहती है, सरासर निराधार है। क्या हमारी सब पुकारें सम्राट्, बृटिश पार्लियामेण्ट अथवा बृटिश लोक-सत्ताके नामपर नहीं उठाई गई हैं? मि॰ मौण्टेगूके आगमनके विचारसे भारतीयोंको अपने इस ध्येयकी पुष्टिके लिये विशेष रूपसे उद्योग करना चाहिए। यह प्रत्येक भारतीयका परम कर्त्तव्य है कि वह स्वराज्य अथवा होमरूलके लिये शिक्षा-संयुक्त आन्दोलन उठावे, जिससे इस देशके गाँव-गाँव और घर-घरसे उसकी माँग उठ खड़ी हो।

हिन्दू-मुसलमानोंको अपने धार्मिक मतभेदोंको दूर कर देना चाहिए। हिन्दुओंको चाहिए कि वे देखें कि यदि मुसलमान कुछ भूल कर रहे हैं तो अत्यन्त मित्रतापूर्ण बर्त्तावके साथ तुर्कोंद्वारा उन्हें जीतनेका प्रयत्न करना चाहिए। पर यदि प्रयत्न व्यर्थ हो जायँ, तब भी उन्हें क्रोध करके मामलेको उसकाना और भीषण रूप धारण करने न देना चाहिए। मैं हिन्दू भाइयोंसे प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें मुसलमान भाइयोंके धार्मिक विश्वासोंका आदर करना चाहिए। साथ ही मुसलमान भाइयोंसे भी मेरी यह विनति है कि उन्हें भी अपने धार्मिक विचारोंके लिहाज़से हिन्दुओंके हृदयोंको आघात पहुँचानेसे रोकना चाहिए। हिन्दू और मुसलमान, दोनोंको ईश्वरके प्रसन्न रखनेके लिये उनकी सन्तानके साथ प्रेमका बर्त्ताव करना चाहिए। हरएक भारतीय कभी-कभी उठ खड़े होनेवाले इन जातीय झगड़ोंको निन्द्य समझता है, और इन झगड़ोंसे अपना स्वार्थ-साधन करनेवालोंके लिये, मुझे यह कहना है कि उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि इस देश तथा अन्य देशोंमें भी ऐसे धार्मिक झगड़ोंका उठ खड़ा होना कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है। योरोपियन व्यापारी समाजसे भी मेरा यह कहना है कि भारतके स्वराज्य पा लेनेके बीचमें फ़साद खड़ा करनेका कोई कारण नहीं है, क्योंकि भारतीयोंने अपने-अपने देशमें आनेवाले सभी लोगोंका हाथ फैलाकर स्वागत किया है।

निष्क्रिय प्रतिरोधके सम्बन्धमें मेरा कहना है कि सर्वसाधारणके कष्टोंकी तरफ़ ध्यान आकर्षित करनेके लिये निश्चय ही वैध आन्दोलन एक मार्ग है, परन्तु जैसा कि लोकमान्य तिलकने कहा है, वैध आन्दोलनकी यह चरम सीमा है, इसे बहुत सोच-समझकर उठाना चाहिए। जब कभी इसे काममें लानेकी आवश्यकता मालूम पड़े तो इसे अपने नेताओंको फ़ैसलेके लिये सौंप देना चाहिए। इसके काममें लाए जानेकी आवश्यकता उस समय समझी गई थी जब श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके साथियोंके छुटकारेके लिये आन्दोलन हो रहा था, और जिस समय यह भी दिखलाई पड़ने लगा था कि नज़रबन्दीके विरुद्ध सभा करने और बोलनेके अधिकारोंमें भी बाधा उपस्थित होनेवाली है। लेकिन श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके साथी ख़ुशी-ख़ुशी छोड़ दिए जा चुके हैं, और हालमें बैठी हुई समस्त भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी और मुस्लिम लीग कमेटीकी सम्मिलित बैठकके फ़ैसलेसे हम यह जान चुके हैं कि स्थितिके हेर-फेरकी दृष्टिसे उसने निष्क्रिय प्रतिरोधके प्रश्नका विचार त्याग दिया है।

भारत-मन्त्री तथा वाइसरायकी घोषणाके पश्चात् सुधारोँकी माँगके लिये किए जानेवाले किसी वैध आन्दोलनमेँ हस्तक्षेप न किया जाना चाहिए और न इस मामलेमेँ सरकार तथा जनता ही मेँ कोई मतभेद होना चाहिए । इस समय लोकमान्य तिलकके कथनानुसार वैध आन्दोलन करके स्वराज्य प्राप्त कर लेना ही हमारा परम कर्त्तव्य है। यही हमारा एकमात्र पवित्र कार्य्य है। स्वराज्य प्राप्तिके लिये, अपने देशकी दशा उत्तम बनानेके लिये हमेँ अपने सहस्रोँ योग्य आदमियोँकी आवश्यकता पड़ेगी।

हिन्दू-मुसलमानोँको अपने धार्मिक मतभेदको दूर कर देना चाहिए और परस्पर एक दूसरेके धार्मिक विश्वासका आदर करना चाहिए।

—पण्डित मदनमोहन मालवीय।

भारतीय-राष्ट्रीय-महासभा (कांग्रेस) में—

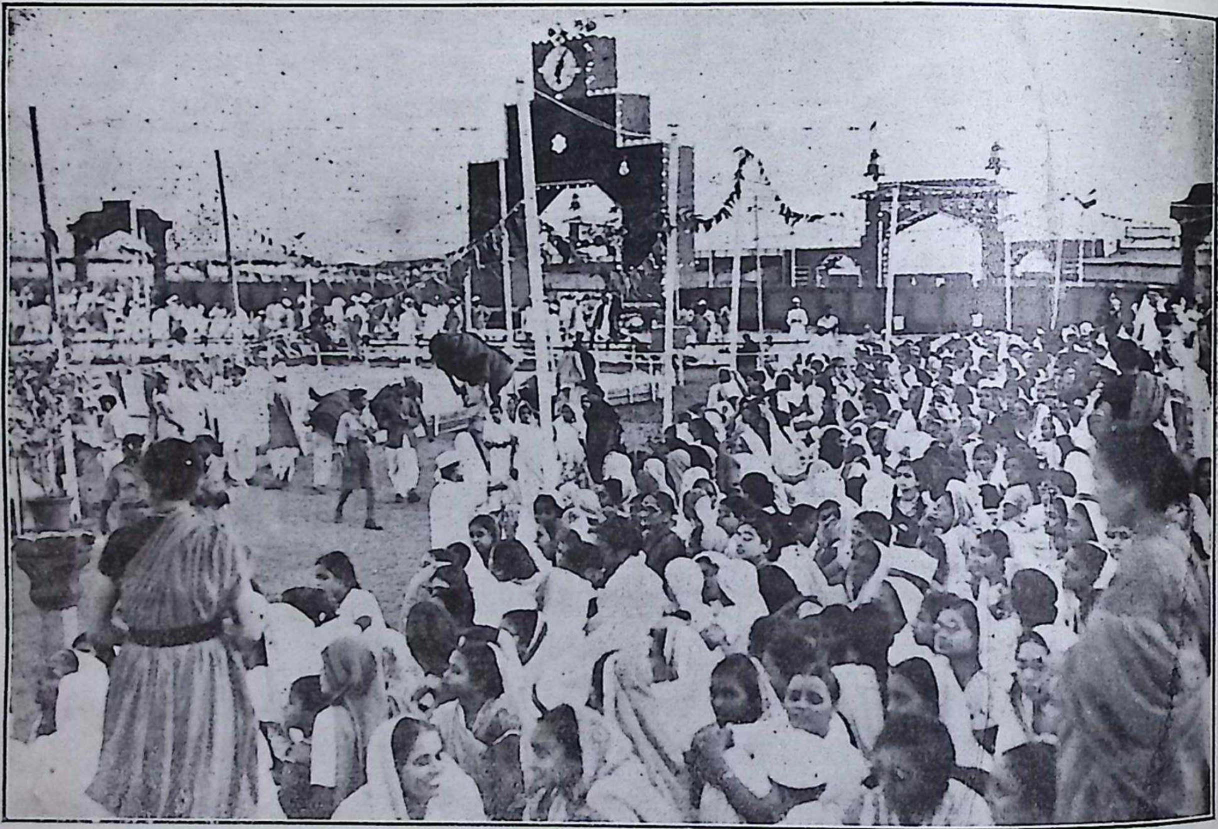

२६ से २८ अक्तूबर सन् १९३४ में बम्बईमें होनेवाली अड़तालीसवीं कांग्रेस-समारोहका एक दृश्य ।

व्यवस्थापिका सभाएँ

कलकत्तेमें श्री दादाभाई नौरोजीके सभापतित्वमें २८ दिसम्बर सन् १८८६ ई० से होनेवाली द्वितीय भारतीय महासभा (कांग्रेस) के निम्नाङ्कित प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने निम्नाङ्कित व्याख्यान दिया । कांग्रेसमें पूज्य मालवीयजीका यह सर्वप्रथम व्याख्यान था । अन्य वक्ताओंके व्याख्यानोंसे उत्साहित होकर आपने भी उसमें व्याख्यान देनेकी आज्ञा माँगी और अपने गुरु पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यजीके प्रोत्साहन देनेपर आपने कुर्सीपर खड़े होकर व्याख्यान दिया । श्री ह्यूमने इस व्याख्यानकी बड़ी प्रशंसा की है, जिसका विवरण जीवनचरितमें पीछे दिया जा चुका है । —सम्पादक ।

प्रस्ताव

"इस कांग्रेसकी सम्मतिमें इस आवश्यक सुधारको कार्य्यरूपमें लानेके लिये निम्नाङ्कित प्रयोगार्थ प्रस्तावोंमें निहित सिद्धान्तोंपर ध्यान देना उचित है। (ये ऐसे सिद्धान्त हैं जिनमें पुनः ऐसे सुधार हो सकते हैं जो अच्छी तरह परीक्षित होनेपर सरकारको बहुत ही अच्छे जँच सकते हैं)।

(१) प्रान्तीय तथा गवर्नर जनरलकी व्यवस्थापिका सभामें होनेवाले सदस्य बढ़ा दिये जायँ। इनमें निर्वाचित सदस्योंकी संख्या आधेसे कम न हो। इन व्यवस्थापिका सभाओंमें पदानुसार सरकारी अफ़सर सदस्य चौथाईसे अधिक न हों और एक चौथाईसे अधिक सदस्य सरकारद्वारा नियुक्त न हों चाहे वे पदाधिकारी हों या न हों।

(२) उन्हीं वर्गों और जातियोंके सदस्योंको प्रान्तीय कौन्सिलोंके सदस्य निर्वाचित करनेका अधिकार दिया जाय जो इस अधिकारका प्रयोग बड़ी बुद्धिमत्ता और स्वतन्त्रतासे करें। बङ्गाल और बम्बईमें म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, व्यापार-मण्डल और विश्वविद्यालयके सदस्योंद्वारा सदस्य निर्वाचित किए जायँ या एक निर्वाचक दल स्थापित किया जाय जिसमें सुशिक्षित और आर्थिक योग्यतावाले व्यक्ति सम्मिलित हों। मद्रासमें या तो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड, व्यापार-मण्डल और विश्वविद्यालयोंद्वारा सदस्य निर्वाचित किए जायँ या ऐसे निर्वाचक कौलेजोंद्वारा चुने जायँ जिनमें कुछ तो इन कौलेजोंद्वारा निर्वाचित हों और कुछ सरकारद्वारा नियुक्त हों। उत्तर-पश्चिमी प्रान्त और अवध (वर्त्तमान संयुक्त प्रदेश) तथा पञ्जाबमें ऐसे निर्वाचक कौलेजोंद्वारा सदस्य चुने जायँ जिनमें म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड-द्वारा निर्वाचित सदस्य हों और जिनमें कुल संख्याके छठे भागसे अधिक सरकारद्वारा नियुक्त सदस्य न हों। इस दशामें यह समझा जायगा कि इस समय जो म्युनिसिपल बोर्डके चुनावमें निर्वाचन-पद्धति काममें लाई जाती है वही डिस्ट्रिक्ट बोर्डमें भी लाई जायगी और इन डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंको कृषक-वर्गमेंसे भी सदस्य निर्वाचित करनेका अधिकार होगा। लेकिन जो भी पद्धति काममें लाई जाय (हरएक प्रान्तकी अन्य विस्तृत बातें अलग निर्णय होनी चाहिएँ) इस बातका पूर्ण ध्यान रहे कि जातियोंके सब वर्ग और अन्य सब बड़ी संस्थाओंका भली प्रकार प्रतिनिधित्त्व हो।

(३) गवर्नर जनरलकी कौन्सिलके विधान-निर्माता निर्वाचित सदस्य विभिन्न प्रान्तीय कौन्सिलोंके निर्वाचित सदस्योंद्वारा निर्वाचित हों।

(४) इस सदस्यताके लिये किसी कौन्सिलका निर्वाचित या नियुक्त सदस्य कोई वेतन या किसी प्रकारका पारिश्रमिक न पा सकेगा; लेकिन पहलेसे वेतन या भत्ता पानेवाला सदस्य सदस्यताके समय भी वेतन या भत्ता पाता रहेगा; और सभी सदस्योंको अपनी सदस्यताके सम्बन्धमें आने-जानेका व्यय लेनेका अधिकार होगा।

(५) भारतके सभी निवासी धर्म, जाति या वर्णका भेद छोड़कर निर्वाचित या नियुक्त सदस्योंकी हैसियतसे स्थान पानेके अधिकारी हैं।

(६) सभी व्यवस्थात्मक विधान और आय-व्ययके चिट्ठे-समेत सभी आर्थिक प्रश्न इन्हीं कौन्सिलोंमें रक्खे जायँगे और इन्हींके द्वारा तै होंगे चाहे उनमें नया या अधिक आयकर ही क्यों न सम्मिलित हो। किसी भी सदस्यको पद-प्राप्त सरकारी सदस्योंसे समुचित सूचना देनेके बाद शासनके अन्य विभागोंके सम्बन्धमें कोई भी उचित प्रश्न पूछनेका अधिकार होगा (या किसी ऐसे पदाधिकारीसे पूछ सकता है जो किसी मुख्य विभागका अधिकारी हो) और उसको अधिकार होगा (आगे दिए हुए विधानको छोड़कर) कि वह उस पदाधिकारीसे अपने प्रश्नका उत्तर किसी आवश्यक लेखकी प्रतिलिपियोंके साथ माँगे, जिससे कि उस विषयका पूर्ण ज्ञान हो जाय और इस उत्तरपर कौन्सिल उस प्रश्नपर विचार और वाद-विवाद करनेके लिये स्वतन्त्र है और उसपर ऐसे प्रस्ताव पास कर सकती है जो अधिक सम्मतिसे उचित जँचे। यदि विचारणीय विषयमें विदेश-सम्बन्धी नीति, सैन्य-सञ्चालन या भेद-नीति सम्मिलित हों या उसका स्वरूप कुछ ऐसा हो कि कार्य्य-कारिणी समितिकी रायमें इससे जनताके हितोंकी क्षति होगी तो कार्य्यकारिणी समितिको उचित है कि वह

पदाधिकारी सदस्योँ या उनमेँसे किसी एकको उसी नीतिके अनुसार उत्तर देनेका या पूछे हुए प्रश्नका उत्तर देनेसे इनकार करनेका आदेश दे।

(७) कार्य्यकारिणी सरकारको कौन्सिलके बहुसंख्यक सदस्योँद्वारा पास किए हुए उन सभी नियमोँको रद्द करनेका अधिकार होगा, जिनसे जनताके हितोँकी क्षति होनेकी सम्भावना हो। लेकिन जब कभी भी इस अधिकारका प्रयोग किया जाय, तब रद्द करनेके कारणोँका स्पष्ट ब्यौरा होना चाहिए और इस ब्यौरेको एक महीनेके भीतर प्रकाशित कर देना चाहिए। प्रान्तीय सरकारेँ ऐसी परिस्थितियोँ तथा प्रबन्धोँका ब्यौरा भारत-सरकारको देँगी। भारत-सरकार इस विषयको भारत-सचिवको समझायगी तथा इसकी सूचना देगी और ऐसी परिस्थितिमेँ यदि विधान पास करनेवाले बहुसंख्यक कौन्सिल-सदस्य विधानको रद्द किए हुए विधानपर भारत-सरकार या भारत-सचिवके द्वारा प्रतिनिधि-पत्र भेजेँ तो 'हाउस ऑफ़ कौमन्स' की विचारक समिति (जिसकी गत वर्षकी कांग्रेसमेँ सिफ़ारिश की गई थी, और जो वर्त्तमान कांग्रेसद्वारा फिर स्वीकृत हो गई है) उसपर विचार करेगी और वह किसी विशेष या सभी काग़ज़-पत्र या विवरण मँगा सकती है और ऐसी बहुसंख्यक कौन्सिलकी ओरसे या बाहरसे किन्हीं व्यक्तियोँके बयान ले और इसके बाद उचित समझे तो 'पूरी सभा' (हाउस ऑफ़ कौमन्स) को भी इसकी सूचना दे दे।”

माननीय सभापति और सज्जनो !

बहुत ही योग्य और मधुर वक्तृताएँ सुननेके बाद चौथे प्रस्तावमेँ दिए हुए सुधारकी आवश्यकता और औचित्यके विषयमेँ कुछ कहना मानो अतिशयोक्ति होगी। फिर भी यह स्पष्ट करना उचित जान पड़ता है कि केवल देशके सीमित प्रान्तोँके ही मनुष्य प्रतिनिधिमूलक शासनके सिद्धान्तोँको नहीँ समझते और स्वीकार करते बल्कि इस बड़े महाद्वीपके सभी प्रान्तोँके लोग इसको उसी तरह समझते तथा स्वीकार करते हैँ, और चाहते हैँ कि प्रतिनिधिमूलक शासनका देशमेँ प्रचार हो। बम्बई, पटना, कलकत्ता, फ़ैज़ाबाद, डेरा इस्माइल ख़ाँ और मद्रासके लोग इस तथ्यको पहले ही से समझे हुए हैँ। आप लोग इलाहाबादके मुझ तुच्छ नागरिकको भी उनके विचारका अनुमोदन करनेकी आज्ञा देँ (करतल-ध्वनि)। महान् बृटिश सरकारको इस महत्त्वपूर्ण सुधारके लाभ इसकी आवश्यकता और इसका औचित्य एवं महत्ता बतलानेकी आवश्यकता नहीँ (करतल-ध्वनि)। इस वरदानके लिये अपने प्रार्थना-पत्रका प्रदर्शन करना तभी आवश्यक होता जब हम लोग किसी निरङ्कुश, कर्त्तव्य-च्युत, प्रजाके अधिकारोँसे अनभिज्ञ और उदासीन शासकद्वारा शासित होते, किन्तु ऐसी बातोँके लिये बृटिश सरकार या बृटिश जातिको कुछ भी समझना अनावश्यक है, क्योँकि वे उन वीर और महापुरुषोँके वंशज हैँ, जिन्होँने स्वयं उन अधिकारोँको प्राप्त करनेके लिये युद्ध किया और प्राण दिया और जिनकी सदा यही इच्छा रही कि ये अधिकार उनकी सन्तानोँके लिये सुरक्षित रहेँ। हम लोग भी उसी नाते वही अधिकार माँगते हैँ। उन लोगोँने अपने इस प्रिय और आवश्यक सिद्धान्तको स्थिर रखने और विकसित करनेमेँ अपना सम्पूर्ण जीवन बिता दिया और इसको अपने हृदयके रक्तसे सीँचा। (ज़ोरसे देरतक करतल-ध्वनि) बिना प्रतिनिधि-सत्तात्मक संस्थाओँके 'अंग्रेज़' क्या रह जाते हैँ? बिल्कुल ही अंग्रेज़ नहीँ रह जाते। (करतल-ध्वनि) केवल एक ढकोसला, (करतल-ध्वनि) अंग्रेज़की तुच्छ नक़ल रह जाती है। और जब मैँ उन नाममात्र अंग्रेज़ कहलानेवाले लोगोँपर दृष्टिपात करता हूँ तो मुझे आश्चर्य्य होता है कि किस मुँहसे अपनेको अंग्रेज़ कहते हुए भी हमको प्रतिनिधित्त्व देना अस्वीकार करते हैँ और स्वेच्छाचारी शासन स्थिर रखनेका प्रयत्न करते हैँ। (ज़ोरसे करतल-ध्वनि)

प्रतिनिधिमूलक संस्थाएँ एक सच्चे 'बृटन' के लिये उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैँ जितनी उसकी भाषा या उसका साहित्य। क्या कोई कह सकता है कि 'ग्रेट बृटन' हम स्वतन्त्र-जन्मा भारतीयोँको प्रति-

निधित्वके अधिकार देनेमें सङ्कोच करेगी जब उसने अपनी भाषा और अपने साहित्यके द्वारा हमें इसका महत्त्व समझनेके योग्य बना दिया है और उसको प्राप्त करनेके लिये उत्तेजित कर दिया है? (करतल-ध्वनि)

“प्रतिनिधित्व नहीं तो कर भी नहीं” अंग्रेज़ोंकी राजनीतिक बाइबिलमें यह पहला आदेश है कि ‘प्रतिनिधित्व नहीं तो कर भी नहीं’ तो वे किस प्रकार अपने आत्माको धोखा देकर, हमें गूँगी भेड़-बकरीके समान हम भारतीयोंपर कर लगायँगे जो उसकी स्वतन्त्र और शिक्षित सह-प्रजा हैं। किन्तु अब हम गूँगे भेड़-बकरी या पशु नहीं रहे। भारतने आख़िर कांग्रेसके द्वारा यह शक्ति प्राप्त कर ली है और इसी कांग्रेसमें इसीके द्वारा हम इङ्गलैण्डसे अनुरोध करते हैं कि वह अपने पुराने सिद्धान्तपर दृढ़ रहे, वह अपना दिल साफ़ रक्खे और स्वयं अपनेको निष्कलङ्क रखकर हम लोगोंको स्वतन्त्र बृटन जातिके समान हमारा अधिकार दे दे। (देरतक करतल-ध्वनि) संसारके कोने-कोनेमें असभ्यावस्था पार करनेके बाद ही प्रतिनिधित्वकी आवश्यकता होने लगती है। इसकी आवश्यकता तो वहाँ भी होती है जहाँ शासक और शासित एक जातिके होते हैं और जहाँ दोनोंकी भाषा, धर्म, साहित्य और अन्य व्यवहारकी बातें भी एक हैं, तब इस देशमें इसकी और भी अधिक आवश्यकता है। हम जानते हैं कि उदारचेता अंग्रेज़ जातिने बहुतसे अच्छे काम किए हैं, उनके लिये हम उनके ऋणी हैं। (करतल-ध्वनि) इन उपकारोंको हम सधन्यवाद स्वीकार करते हैं। हम अंग्रेज़ जातिकी कृपालुताके बड़े भारी ऋणी हैं और हम लोग इन कृपाओंको कभी नहीं भूल सकते। (ज़ोरसे करतल-ध्वनि) लेकिन यद्यपि हम इन उपकारोंके लिये उनके बड़े कृतज्ञ हैं तथापि बहुतसी बातें ऐसी हैं जिनमें हम लोगोंकी स्थिति सुधारी जा सकती है और सुधारी जानी चाहिए। हम सर्वप्रथम यही देखते हैं कि वर्त्तमान शासन-पद्धति स्वेच्छाचारी है, (ज़ोरसे करतल-ध्वनि) जिसमें उस प्रतिनिधित्वका समावेश नहीं है, जो वास्तवमें स्वतन्त्र शासनकी एक मूल विशेषता होती है। (करतल-ध्वनि) प्रत्येक सच्चा अंग्रेज़ यह सुनकर चौंक पड़ेगा कि भारत-सरकार हिन्दुस्तानियोंको दासोंकी भाँति समझती है। फिर भी सच्ची बात तो यह है उसे लाचार होकर स्वीकार करना पड़ेगा कि वह हमको देशके शासनमें भाग न देकर हमारे साथ केवल गुलामोंकी तरह व्यवहार करती है। प्रतिनिधित्वका अधिकार प्रत्येक शिक्षित बृटिश प्रजाका स्वाभाविक अधिकार है। (ज़ोरसे करतल-ध्वनि) सज्जनो! हम सभी सन् १८५८ ई० की घोषणाको अपनी स्वाधीनताकी घोषणा (मैग्ना कार्टा) समझते हैं। उस घोषणामें सम्राज्ञीने प्रसन्न होकर शपथपूर्वक कहा था कि वह अपनी सारी प्रजाको धर्म, वर्ण और जातिका भेद भुलाकर समदृष्टिसे देखेगी और सभीकी भलाईके लिये समदृष्टिसे विचार करेगी। अतएव उन सम्राज्ञीकी प्रजा, उनके प्रत्येक उपनिवेश और उनके साम्राज्यके प्रत्येक भागमें, एक ही दृष्टिसे देखी जाती थी। इसलिये उनकी भारतीय प्रजा भी उसी दृष्टिसे देखी जाती थी जिससे उनके उपनिवेशों या उनके साम्राज्यके किसी भागकी प्रजा देखी जाती थी। लेकिन शासनमें जबतक हमारा ज़रा भी हाथ नहीं है, जबतक प्रतिवर्ष वे नये-नये विधान हमारी सम्मतिके बिना ही बनते चले जा रहे हैं, जिनके भारसे हम झुके जा रहे हैं और जिससे हमको असह्य वेदना हो रही है, तबतक हम कैसे कहें कि हमारे साथ उसी प्रकारका व्यवहार किया जाता है। (करतल-ध्वनि) मैं आप लोगोंसे पूछता हूँ कि क्या यही समदृष्टिसे देखना कहलाता है? क्या यही सम्राज्ञीके अन्य उपनिवेश-वासी अंग्रेज़ोंके समान व्यवहार है? (करतल-ध्वनि)

मुझे दुःख है कि इस गम्भीर विषयपर पूर्णतया और स्वतन्त्रतासे कहनेके लिये समय नहीं है। आजकल अपनी माँगका औचित्य सिद्ध करनेका प्रयत्न करना केवल समय नष्ट करना है। प्रत्येक

शिक्षित मनुष्य इसे कोरी कल्पनाकी बात समझता है, किन्तु हम लोग अपनी काल्पनिक कठिनाइयों और अयोग्यताओं ही पर तो विचार करते हैं। लेकिन जब आप देखते हैं कि जहाँ भारतीयोंका प्रवेश हो जाता है वहाँ भारतीय जीवनके प्रत्येक भागमें कम नहीं प्रमाणित होते और बहुधा भारतीय ही उन प्रतियोगिताओंमें विजयी होते हैं, (ज़ोरसे करतल-ध्वनि) तो यह कहना सर्वथा अनुचित है कि वे अपने देशवासियोंके लिये नियम-विधान बनानेमें सहायक होनेके लिये बिल्कुल अयोग्य हैं और शासनके उस महान् कार्य्यमें योग देनेके लिये बुद्धि एवं शक्तिसे रहित हैं जिसका मुख्य उद्देश्य उनकी मातृ-भूमिकी उन्नति करना ही है। (करतल-ध्वनि) मैं प्रत्येक उदार अंग्रेज़से पूछता हूँ कि क्या हमको इस अधिकारसे वञ्चित होनेके विरुद्ध शिकायत करनेका दृढ़ कारण नहीं है और क्या यह अधिकारच्युत होना अंग्रेज़ोंके अयोग्य अन्याय नहीं है? निश्चय ही प्रत्येक स्वतन्त्रता-प्रेमी उदार अंग्रेज़की यही इच्छा है कि जिस स्वतन्त्रताका वह स्वयं उपभोग करता है वही स्वतन्त्रता सबको मिले। क्योंकि एक अंग्रेज़ कविके कथनानुसार :—

स्वतन्त्रताकी दिव्य ज्योतिका जिसने पाया अमल विलास,
वही पुरुष है, वही धर्म है, वही परम पुरुषार्थ प्रयास,
तुच्छ परिधिमें नहीं बँधा है उसके वैभवका उल्लास,
सकल विश्वमें स्थापित करता वह स्वतन्त्रता सबके पास।*

लेकिन हमारे सभापति महोदय सङ्केत करते हैं कि मैं निर्धारित समयसे अधिक बोल रहा हूँ। अतएव अन्तमें मैं यही कहता हूँ कि :—

ईश्वर करे भारत और इङ्गलैण्डका प्रत्येक अंग्रेज़ भारतकी स्वतन्त्रता और उसके अधिकारपर हृदयसे विचार करे और प्रत्येक बृटन उन्हीं अधिकारों, लाभों और स्वतन्त्रताको हमें भी अपने समान ही देनेमें सहायक हो, जिनके कारण वे और उनका देश इस उन्नत दशाको पहुँचा है। (करतल-ध्वनि)

---

* फ़ौर ही दैट वैल्यूज़ लिबर्टी कन्फाइन्स
हिज़ ज़ील फ़ौर हर प्रिडौमिनैन्स विदिन
नो नैरो बाउण्ड्स; हर कौज़ एङ्गेजेज़् हिम
ह्वेअर एवर प्लीडेड्, 'टिस दि कौज़ औफ़ मैन"

व्यवस्थापिका सभाओंका विस्तार

मद्रासमेँ श्री बदरुद्दीन तैयबजीके सभापतित्त्वमेँ २८ दिसम्बर सन् १८८७ ई० से होनेवाली तीसरी भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) मेँ निम्नाङ्कित प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए परिडत मदनमोहन मालवीयजीका व्याख्यान। —सम्पादक।

प्रस्ताव

"कि यह कांग्रेस पुनः अनुमोदन करती है कि क़ानून बनानेवाली गवर्नरजनरलके परिषद्मेँ सुधार और उसका विस्तार होना चाहिए और सन् १८८५ और १८८६ ई० के तीसरे प्रस्तावके अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओँमेँ भी ऐसा ही होना चाहिए और इस बातकी पूर्ण आशा करती है कि सरकार इस आवश्यक सुधारमेँ देर न करेगी।"

मान्यवर सभापति तथा सज्जनो!

इस गम्भीर विषयपर कुछ कहनेके लिये खड़ा होनेके समय मेरा हृदय धड़क रहा है। आप लोगोँने सर टी० माधवरावके सारगर्भित शब्दोँ तथा बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, श्री अर्डले नैर्टन तथा अन्य सज्जनोँके मधुर और प्रभावशील भाषण सुने हैँ। ऐसे सुवक्ताओँके बाद मैँ इसी आशासे कुछ भी कहनेका साहस करता हूँ कि आप लोग इधर भी थोड़ा ध्यान देनेकी उदारता दिखावेँगे। सज्जनो, जो कुछ कहा गया है उसके बाद इस महत्त्वपूर्ण सुधारकी आवश्यकताके पक्षमेँ और अधिक तर्क लाना बहुत कठिन है। किन्तु इतना कहनेकी आज्ञा दीजिए कि जबतक हम लोग एक विदेशी सरकारद्वारा शासित हैँ तबतक हमेँ व्यवस्थापिका सभाओँमेँ स्वयं अपने प्रतिनिधियोँकी आवश्यकता है चाहे वह सरकार कितनी ही दयालु क्योँ न हो। सज्जनो, रूसके सिवाय सारे योरोपने यह घोषित कर दिया है कि संसारकी सबसे अधिक सभ्य और उन्नत सरकार वही है जो कुछ थोड़ेसे लोगोँके हाथमेँ शासनकी बागडोर देकर अपनेमेँसे अधिकांशके द्वारा स्वतः शासित हो और वह सरकार ऐसी हो जिसमेँ देशके प्रतिनिधियोँका महत्त्वपूर्ण अधिकार हो। यदि यह सिद्धान्त योरोपीय देशोँके लिये लागू है, जहाँ शासक और शासित एक ही जाति तथा धर्मके हैँ, तो भारतके लिये तो यह और भी अधिक आवश्यक है, क्योँकि यहाँ शासक और शासित दोनोँ धर्म, आचरण, भाषा और जातिमेँ एकदम भिन्न हैँ। यदि हम कहते हैँ कि प्रत्येक व्यवस्थापिका सभामेँ भारतके प्रतिनिधि होने चाहिएँ तो हम लोग वही वस्तु चाहते हैँ जो केवल योरोपीय ही नहीँ बल्कि अमेरिका और औस्ट्रेलियावासी भी एक स्वरसे माँगते हैँ और कहते हैँ कि यही एक ऐसी वस्तु है जो किसी भी राज्यके लिये परम आवश्यक है। जहाँके देशवासी वहाँके शासनमेँ भाग लेने पाते हैँ वहाँ उनकी आवश्यकताएँ, शिकायतेँ, इच्छाएँ और कामनाएँ उचित रीतिसे प्रकट की जा सकती हैँ, अच्छी तरह समझी जा सकती हैँ और उनके अनुसार उचित रीतिसे व्यवस्था की जा सकती है। सज्जनो, यह इतनी आवश्यक वस्तु है, अतएव सरकारसे हमारी प्रार्थना है कि वह हमपर शीघ्रातिशीघ्र कृपा करे और यह अधिकार हमेँ दे। यह तीसरी

वार है जब हम लोग वर्ष-वर्ष अवधिके बाद मिलते हैं। हम साम्राज्यके बहुत दूर-दूर प्रान्तों और ज़िलोंसे आए हैं और बहुत लोग तो अपने व्यवसायको लात मारकर आए हैं। हम लोगोंको न तो कुछ वैयक्तिक लाभ हैं और न कोई स्वार्थ है। अपने देशवासियोंद्वारा चुने हुए हम लोग मुख्यतः सरकारसे अनुरोध करनेके लिये आए हैं कि देशके सुधारकी बड़ी आवश्यकता है, और हमारा राष्ट्र इसके लिये प्रार्थना करता है, लेकिन अभाग्यवश सरकारने हमारे देशवासियोंकी प्रार्थनापर अभी कान नहीं दिए।

हम लोग हर वर्ष क्या देखते हैं? भारतके सभी प्रान्तोंके लोगोंका एकत्र होना—पञ्जाब, सिन्ध, आसाम, बङ्गाल, बम्बई, उत्तर-पश्चिमी प्रान्त (वर्त्तमान संयुक्त प्रान्त), अवध, मध्यप्रान्त, सभी प्रान्तोंसे, सभी नगरोंसे लोग आते हैं—इसलिये कि वे अपने जन्मसिद्ध अधिकारोंको सरकारसे प्रार्थनापूर्वक माँगें (ज़ोरसे करतल-ध्वनि)। ये लोग किसी स्वार्थ या महत्त्वाकाङ्क्षाके लिये इतने कष्ट सहन करके यहाँ नहीं आते, बल्कि उनकी एकमात्र भावना यही है कि भारतमें, उनके देशमें, इस मूल सुधारकी बड़ी आवश्यकता है, और वे आशा करते हैं और ईश्वर करे उनकी आशाएँ व्यर्थ न हों, कि उनकी निःस्वार्थ लगन उनके देशके लिये इसमें सफलता प्राप्त करे! मुझे आशा है कि कोई भी भारतीय इस प्रश्नपर विचार करनेके बाद इस सुधारके लिये भरसक प्रयत्न किए विना चैन न लेगा। (करतल-ध्वनि) मुझे यह विश्वास नहीं हो सकता कि ऐसा कोई भी भला आदमी इसकी ओरसे उदासीन नहीं रह सकता जो अपनी जाति, अपने सगे सम्बन्धी, अपने बच्चों और स्वयं अपने हितके लिये इस सुधारका महत्त्व समझता है। सज्जनो, हम सब शिक्षित भारतवासी इसकी ओरसे उदासीन नहीं हैं और यद्यपि हमारे प्रयत्न अबतक सफल नहीं हुए हैं, किन्तु हमको बार-बार सरकारका द्वार खटखटाना चाहिए और अपनी माँगोंपर उनसे जल्दी-से-जल्दी विचार करनेके लिये तथा आवश्यक सुधार करनेके लिये बार-बार विनति करनी चाहिए। सज्जनो, हम लोग कोई बहुत बड़ी वस्तु नहीं माँग रहे हैं। बृटिश सरकारने पहलेसे ही बहुतेरे देशोंपर ऐसी कृपा की है। बहुतेरे बृटिश उपनिवेश इस अधिकारका आनन्द भोग रहे हैं। कैनाडा, केप, औस्ट्रेलियाके उपनिवेश, अन्य छोटे-छोटे स्थान, यहाँतक कि नाममात्रके सम्राट्के उपनिवेश—शायद फ़िजी द्वीपसमूहको छोड़कर और कुछ सैनिक स्थानोंके अतिरिक्त—सभी प्रतिनिधिसत्तात्मक शासनके कुछ विधानोंका और बहुतेरे तो पूर्ण विधानोंका आनन्द ले रहे हैं। बृटेनने इन सभी प्रदेशोंके लिये इस शासन-विधानकी स्वीकृति दे दी है, (करतल-ध्वनि) तो फिर भारतीयोंके लिये ही वह क्यों इसे अस्वीकार करती है? (साधु, साधु) क्या वह सोचती है कि हम अन्य प्रदेशोंसे कम राजभक्त हैं? (साधु, साधु और करतल-ध्वनि) यदि वह औस्ट्रेलियाको बृटिश-सामानपर कर न लगाने दे तो औस्ट्रेलिया कल ही उससे अलग हो जाय और हम तो बड़े सन्तोषके साथ एक अनिष्टकारी आय-कर स्वीकार कर चुके हैं जो हमपर बड़ी क्षुद्रताके साथ लगाया गया है, जिससे हमारे देशके शासनमें सहायता नहीं मिलती है, बल्कि जो ब्रह्माको बृटिश शासनमें मिला लेने और रूसको नाश करनेके लिये लगाया जाता है। (बहुत देरतक करतल-ध्वनि) क्या वह सोचती है कि हम इस अधिकारके योग्य नहीं हैं? यह कांग्रेस ही हमारी उन्नति, राष्ट्रका काम सँभालनेकी योग्यता, हमारी बुद्धिमत्ता और हमारे ज्ञानके विकासका उज्ज्वल प्रमाण है। (करतल-ध्वनि) सज्जनो, सभापति महोदयका आदेश सुनकर मुझे आपका अमूल्य समय लेनेका साहस नहीं होता, लेकिन यदि आप आज्ञा दें तो थोड़ी देर कुछ और कहूँ। (कहते चलिए, कहते चलिएकी ध्वनि) सज्जनो, आपके इस अनुग्रहके लिये धन्यवाद। व्यावसायिक सभाओंके विषयमें बहुत कुछ कहनेकी गुञ्जायश नहीं है। कुछ दिन

पहले आय-व्ययका चिट्ठा पेश करते समय पार्लियामेण्टकी वक्तृताओंमें कुछ कहा गया था, लेकिन हम तबतक वहाँ प्रभावकारी आलोचनाओंकी आशा नहीं कर सकते हैं, जबतक कि हम यहाँ आय-व्ययका चिट्ठा पेश करनेके समय आलोचनाओंद्वारा उन्हें पर्य्याप्त सामग्री न दें? लेकिन हम बाहरी लोग उस विवरणकी छानबीन कैसे कर सकते हैं जो हम लोगोंसे बड़ी कुशलतासे छीन लिया गया है? जब शासनमें हमारे दूरदर्शी प्रतिनिधियोंका हाथ रहता तो हम लोग आर्थिक कुप्रबन्धोंको वशमें करने और उनके विरुद्ध कहनेके योग्य हो जाते। कौन्सिल-ऐक्ट उस समय पास हुआ था जब कम्पनीके हाथसे सम्राट्के हाथमें शासन गया। उस विधानके अनुसार सपरिषद् भारत-सचिवको इस देशके व्ययको रोकने और व्यवस्थित करनेका अधिकार दिया गया है। लेकिन इसका क्या फल हुआ है? हम देखते हैं कि 'आय-व्ययके चिट्ठेको पार्लियामेण्टमें पेश करनेका उद्देश यही था कि कुछ नियन्त्रण हो, लेकिन हम यह भी जानते हैं कि स्वर्गीय प्रोफ़ेसर फ़ौसेटने सन् १८७२ ई० में ब्राइटनमें भाषण देते हुए इस बातको स्वीकार किया था कि पार्लियामेण्टमें एक तस्वीरके ख़रीदनेपर लड़ाई होने या एक उपवनके बीचसे सड़क निकालने आदि छोटी-छोटी बातोंपर जितना ध्यान देते थे उतना अठारह करोड़ भारतीयोंकी भलाईपर नहीं देते।' (बड़ी ज़ोरसे करतल-ध्वनि) अब भी दशा बदली नहीं है। केवल फ़ौसेट महोदयने ही इस घोर अन्यायके विरुद्ध नहीं कहा, बल्कि प्रत्येक वर्ष कोई-न-कोई सच्चा राजनीतिज्ञ उस दशाके विरुद्ध आवाज़ उठाता ही है, जिससे यदि हमारी हीनता प्रदर्शित हो तो इङ्गलैण्डके लिये भी लज्जाकी बात है। इस वर्ष ब्रैडलौ महोदयने भारतीय आय-व्ययका चिट्ठा देरसे पेश करनेके अभ्यासपर बड़ा विरोध करते हुए कहा था कि 'गत वर्ष इस आय-व्ययके चिट्ठेपर २१ जूनको और उससे पहले साल ६ अगस्तको विचार किया गया था। यह सरासर अनुचित था कि हमारे बीस करोड़ शासित जन-समुदायकी इच्छाओं और शिकायतोंपर विचार करना पार्लियामेण्टके अन्तिम अवसरके लिये छोड़ दिया था। जब समाप्त होते हुए वर्षके एक अन्तिम दिन 'भारतीय आय-व्ययके चिट्ठोंको विचारणीय विषयोंमें आठवाँ स्थान दिया गया तो यह असम्भव था कि शासनको पार्लियामेण्टके नियन्त्रणमें रक्खा जाय।' (करतल-ध्वनि) उनके पीछे ही रीड महोदयने कहा कि "पार्लियामेण्ट किस प्रकार कुछ कर सकती थी, जब कि ये मामले उन्हीं अन्तिम दिनोंमेंसे एक दिन पेश किए गए, जब केवल पन्द्रह या सोलह सदस्य साहस करके वहाँ रह गए थे। उस समय वाद-विवाद केवल मज़ाक था। वाद-विवाद सवा छः बजे प्रारम्भ हुआ और चार या पाँच घण्टेमें उन्होंने बीस करोड़ मनुष्योंकी समस्याएँ हल कर दीं और सात या आठ करोड़ रुपयोंके व्ययको भी पास कर दिया। (निश्चय ही इन कर्त्तव्योंको इस तरहकी मज़ाकसे करनेसे अच्छा तो यह था कि वह किसी समितिको सौंप दिए जाते) यह सम्भव नहीं था कि भारतकी कार्रवाईका विचार करनेके लिये एक ऐसी समिति बना दी जाती जिससे भारतवासी यह समझते कि शाही पार्लियामेण्ट उनके स्वत्त्वोंकी समुचित रक्षा करती है।" (ज़ोरसे करतल-ध्वनि)

फिर सर जौन गौर्स्टने इस विषयमें कहा था, "कि माननीय सदस्यने अवधिके अन्तमें भारतीय मामलोंके पेश करनेके विषयमें खेद प्रकट किया था, उसमें सरकारने भी विपक्षी दलके साथ भाग लिया था। मुझे विश्वास है कि यदि भारतकी कार्रवाई उस समय सभाके सम्मुख रख दी जाय, जब और भी अधिक सदस्य उपस्थित थे, तो इस विषयमें और भी अधिक रुचि दिखलाई पड़ती और सब लोग प्रसन्न होते। यद्यपि भारतके आर्थिक आय-व्ययको और भी पहले पेश करनेके लिये बहुत बार वचन दिए गए हैं, किन्तु किसी भी सरकारने उन वचनोंको पूरा नहीं किया और जबसे मैं इस

सभाका सदस्य हुआ तबसे 'भारतीय आय-व्ययका विषय अवधि बीतनेके ठीक पहले पेश किया गया है" (करतल-ध्वनि)।

सज्जनो, अब आप देखते हैँ कि पार्लियामेण्ट हमारे 'आय-व्यय' पर तथा देशसे निचोड़े हुए आठ करोड़ रुपयेके व्ययपर न तो ध्यान देगी और न दे सकती है, और इस बातको आपसे अच्छी तरह कौन जान सकता है कि हमको उनसे साधारण न्याय-बुद्धिकी आशा करनेका तो अधिकार है और यदि 'आय-व्यय' के विषयमेँ यह दशा है तो हमारे अन्य मामलोँकी सुनवाईकी तो भला क्या दशा होगी? इसलिये हम पार्लियामेण्टसे अनुरोध करते हैँ कि वह हमको अपना प्रबन्ध स्वयं करनेकी आज्ञा दे। हम तो यही कहते हैँ कि अगर पार्लियामेण्ट स्वयं हमारे प्रति अपना कर्त्तव्य नहीँ करती या नहीँ करेगी तो कम-से-कम हमको तो अपने कर्त्तव्यका कुछ अंश स्वयं पालन करने दे। हम शुद्ध हृदयसे चाहते हैँ कि हमेँ अपने आय-व्ययपर विचार करनेका थोड़ासा अधिकार मिलना चाहिए कि जब यह कौन्सिलमेँ पेश हो तब हम इस विषयमेँ अपने प्रतिनिधियोँद्वारा कुछ कह सकेँ, और यहीँ अपने घरेलू कार्य्योँके प्रबन्धमेँ थोड़ासा अधिकार मिल जाता तो बहुत अच्छा होता, लेकिन जान पड़ता है कि हमारी प्रार्थनाएँ व्यर्थ हैँ। वह अपना कर्त्तव्य देशके प्रति न तो स्वयं पालन करेगी और न हमको ही यह करनेकी आज्ञा देगी। (करतल-ध्वनि)

स्वतन्त्रता-प्रिय और न्याय-प्रिय होनेकी डीँग हाँकनेवाली 'अंग्रेज़ जाति' के लिये इससे बढ़कर निर्दयता और न्याय-हीनताकी बात और क्या हो सकती है? वह किस विरतेपर व्यवस्थात्मक और स्वतन्त्र शासन स्थापित करनेका गर्व करती है? सज्जनो, यदि ऐसी कृपा हमपर न हुई तो इङ्गलैण्डसे न्याय या स्वतन्त्रताके विषयमेँ कुछ कहना बिल्कुल निरर्थक होगा। सज्जनो, मुझे दुःख है कि मुझे और विस्तारसे यथेच्छ कहनेके लिये समय नहीँ है, यद्यपि मैँ जानता हूँ कि इतनी वक्तृताओँके सुननेके बाद इस विषयकी अधिक व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीँ है। अन्तमेँ मुझे यह कहनेकी आज्ञा दीजिए कि हम लोग इस अधिकारके लिये सरकारपर सदा ज़ोर डालते रहेँगे और यदि हर तरहसे असफल हो जायँगे तो इतना ही कहेँगे कि वे अपने उन इसाई-सिद्धान्तोँका अनुगमन करेँ जो उन्हेँ बतलाते हैँ कि 'दूसरोँके प्रति वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम अपने प्रति दूसरोँसे चाहते हो।' (करतल-ध्वनि) क्या अंग्रेज़ जाति अपने शासनमेँ उस प्रकारके अनौचित्यको क्षणभर भी सहन कर सकती है? क्या वे हमारे साथ भी ऐसा ही व्यवहार करेँगे? क्या वे नहीँ जानते कि इस धरातलपर हम सबसे अधिक सहनशील और राजभक्त प्रजा हैँ? जब कि पच्चीस करोड़ आत्माओँकी भलाईपर विचार करना होता है और जब कि सात या आठ करोड़ रुपयोँका हिसाब होता है, उस समय लगभग छः सौ पचहत्तर सदस्योँमेँसे केवल उनतीस ही उपस्थित होते हैँ। (करतल-ध्वनि) यदि उनके मामलोँमेँ भी ऐसा ही व्यवहार किया जाय तो उनको कैसा लगे? मैँ फिर कहता हूँ—क्या वे एक सप्ताह भी इसको सहन करेँगे? क्या वे केवल पचास लाख आयलैँडवासियोँके साथ ही ऐसा व्यवहार करनेका साहस कर सकते हैँ? सज्जनो, मैँ इसका उत्तर उन्हीँपर छोड़ता हूँ और इसका सच्चा उत्तर उनकी निन्दा ही है। नहीँ, सज्जनो, उन्हेँ उचित है कि वे हमेँ धीरे-धीरे स्वतन्त्रता देँ और अपने घरका प्रबन्ध स्वयं करनेका अवसर देँ और देखेँ कि हम लोग उनकी लापरवाहीसे किए हुए क्षणिक अन्यायको भूल जायँगे और सदा उनकी सभी भलाइयोँका ध्यान रक्खेँगे और उनके लिये उनके कृतज्ञ होँगे। उस कृपाके लिये भी हम कम कृतज्ञ नहीँ होँगे जिसके लिये हम आज अनुरोध कर रहे हैँ। (करतल-ध्वनि)

आयकर तथा कर लगानेके योग्य कम-से-कम आय

राष्ट्रीय महासभाके २६ दिसम्बर, सन् १८८८ ई० में प्रयाग में हुए चतुर्थ अधिवेशनमें निम्नाङ्कित प्रस्तावको पेश करते हुए पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने कहा :—

—सम्पादक।

प्रस्ताव

"क्योंकि आयकर-प्रबन्ध और विशेषतः एक हज़ार रुपयेसे कमपर कर-प्रबन्ध पूर्णतया असन्तोषजनक सिद्ध हुआ है। अतएव कांग्रेसकी सम्मतिमें यह आवश्यक है कि एक हज़ार रुपयेसे कम आमदनीपर आयकर न लगे।"

सज्जनो !

मैं समझता हूँ कि मुझे इस प्रस्तावपर आपकी स्वीकृति लेनेके लिये बहुत कुछ नहीं कहना है। आप जानते हैं कि यह प्रस्ताव अधिकतर भलेमानुस ग़रीब आदमियोंसे मतलव रखता है। हम जो दूसरे बड़े सुधार करना चाहते हैं वे ग़रीब अमीर सवकी दशा सुधारनेमें बराबर मदद देंगे। लेकिन यदि सरकार इसे मञ्ज़ूर कर ले तो यह प्रस्ताव बहुत भलेमानुस ग़रीबको अन्याय और अत्याचारसे वचायगा। मुझे आशा है कि इस प्रस्तावके स्वीकार करनेसे किसीको कांग्रेसके प्रति भ्रम न होगा। आयकरका विरोध हम नहीं करते। हम यह चाहते हैं कि इतनी कम आयपर कर नहीं लगना चाहिए जितनीपर अब है। जब लौर्ड डफ़रिनने सेण्ट एण्ड्रूज़के भोजके अवसरपर अपने प्रसिद्ध वक्तव्यमें इस बातका हमें ताना देते हुए कहा था कि कांग्रेस देशकी प्रतिनिधि सभा नहीं है, क्योंकि उसने वाइसराय महोदयसे आयकर लगानेके लिये नहीं कहा पर इस बातको भूल गए कि पहली बम्बई कांग्रेसने स्पष्ट बतलाया था कि यदि उस समयका बढ़ता हुआ ख़र्च, मदोंमें कमी करनेसे नहीं पूरा हो सकता था तो आवश्यक ऊपरी व्यय उन लोगोंपर अधिक लैसन्स-कर बढ़ाकर प्राप्त किया जा सकता है जिनपर कर नहीं लगे थे। या हम यों कह सकते हैं, यह कांग्रेस ही थी जिसने सबसे पहले आयकरको फिरसे लगानेकी वात कही थी। (हर्ष-ध्वनि) स्वयं वाइसराय महोदयने कांग्रेसको बुद्धिमान् तथा देशभक्त पुरुषोंकी संस्था कहा था जब अपनी आयकर-सम्बन्धी योजनामें उसे कांग्रेसकी मदद मिली थी। लेकिन हमने अमीरों तथा आसानीसे देनेवालोंपर आयकर लगानेका समर्थन किया था। तब हम यह नहीं समझते थे कि यह ग़रीबोंको सतानेकी मशीन वन जायगी; और अगर लौर्ड डफ़रिन हमारी अपेक्षा आधा भी जानते कि इस प्रथासे ग़रीब रिआयाके साथ कितना अन्याय और अत्याचार हो रहा है और इसकी वजहसे देशमें कितना असन्तोष फैला हुआ है तो मेरा विश्वास है कि हमपर टैक्स बढ़ानेका प्रस्ताव न करनेके कारण हँसनेकी जगह वे हमारी राय मानकर कम-से-कम कर लगनेके योग्य आय एक हज़ार रुपया अवश्य कर देते। (हर्ष-ध्वनि)

लोग भली भाँति जानते हैं कि आजकल पाँच सौ रुपये (३४ पौण्ड) पर आयकर लगता है अर्थात् इङ्गलैण्डमें जो कुछ है (१५० पौण्ड) उसका एक चौथाई। किन्तु इसके विरोधका पर्य्याप्त कारण

न समझकर, उन मनुष्योंपर भी प्रायः काफ़ी कर लगाया गया जिनकी मासिक आय पन्द्रह रुपयेसे अथवा एक सौ अस्सी रुपये (१२ पौण्ड) वार्षिकसे अधिक नहीं है। मानो उनकी आय कम-से-कम पाँच सौ रुपये ही है। शायद सरकारी कर्मचारी इसे झूठ बात समझते हों। किन्तु, सज्जनो ! मेरा विश्वास है कि यदि निष्पक्ष और स्वतन्त्र रूपसे इस मामलेकी जाँच की जाय और ग़ैर-सरकारी आदमियोंके बयान लिए जायँ तो मेरी बातकी सचाई मालूम हो जायगी। यह हम कभी नहीं कहते कि भारत-सरकार ग़रीबोंपर कर लगाकर उनपर ज़ुल्म करना या कर लगाने योग्य कम-से-कम आयको क़ानूनद्वारा निश्चित आयसे कम करना चाहती है बल्कि सच पूछो तो अपराध उन सरकारी कर्मचारियोंका है जो कर लगाने तथा उसे वसूल करनेके काममें लगे हैं। किन्तु, सज्जनो ! जिस बुरी तरहसे कर लगाने और वसूल करनेवाले कर्मचारी लोगोंकी कठिनाई सुनते तथा उन्हें रद्द कर देते हैं उससे जनताका यह विश्वास और भी दृढ़ होता जाता है कि यह अन्याय तथा असह्य अत्याचार भारत-सरकारकी रायसे ही हो रहा है। इस सिलसिलेमें मैं केवल एक ही उदाहरण देता हूँ जिससे यह भली भाँति विदित हो जायगा कि यह कर किस बेदर्दीसे वसूल किया जाता है और कुछ सरकारी कर्मचारी अपनी नासमझीसे भारत-सरकारको किस तरह बदनाम करते हैं। हर कोई जानता है कि भड़भूजे कितने निर्धन होते हैं! अपना पेट पालनेके लिये वे किस तरह गर्मीके दिनोंमें भी भयङ्कर आगके सामने बैठे रहते हैं। हर कोई यह समझता है कि कर वसूल करनेवाले ऐसे ग़रीबके पाससे चुपचाप निकल जायँगे, किन्तु दुःखके साथ कहना पड़ता है कि ऐसा मामला नहीं है। मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि (और मैं यह प्रमाणोंके साथ कह रहा हूँ) कई जगह भड़भूजे जैसे ग़रीब आदमीपर भी यह कर लगाया गया है और इससे भी अधिक दुःखदायी बात तो यह है कि कर लगानेवाले कर्मचारियोंने उस ग़रीबको करसे छुटकारा देनेके बदले मातहत कर्मचारियोंद्वारा लगाए हुए करको ज्यों-का-त्यों लगा दिया। इस मामलेमें कर लगानेवाले कर्मचारीने भड़भूजेसे कहा कि तुम अपना बहीखाता पेश करो और साबित करो कि तुम्हारी आमदनी उतनी नहीं है जितनी कर लगानेवाले कर्मचारियोंने बतलाई थी। कहाँ भड़भूजा और कहाँ बहीखाता ! ज़रा इस बातको सोचिए तो ! लन्दनकी गलियोंमें चिमनी बेचनेवाले भिखारीसे भी बहीखाता रखनेकी बात कहिए तो भला ! (तुमुल हर्ष-ध्वनि) किन्तु उस कर्मचारीने तो बहीखाता पेश करनेपर ही हठ किया और बहीखाता न होनेपर वह ग़रीब उतना टिकस देनेके लिये मजबूर किया गया। सज्जनो ! आप ही बतलाइए सरकारको बदनाम करनेके लिये इससे बढ़कर और कौनसी घटनाएँ हो सकती हैं ? और इसी कारण हम सरकारसे यह प्रार्थना करते हैं कि वह कर लगने योग्य कम-से-कम आय एक हज़ार रुपये कर दे, जिससे साधारणतः वे व्यक्ति, जिनकी आय पाँच सौ रुपयेसे कम है, सरकारी कर्मचारियोंके अत्याचारसे एकदम छूट जाँय। सज्जनो ! हम यह प्रार्थना पहले तो ग़रीब प्रजाको दुःखोंसे बचानेके लिये कर रहे हैं, किन्तु साथ ही सरकारके सुयशका भी हमें ध्यान है ! (हर्ष-ध्वनि) इस प्रस्तावपर और अधिक कहना व्यर्थ है। निस्सन्देह इस प्रस्तावका आप तुरन्त समर्थन करेंगे और मैं आशा करता हूँ कि सरकार भी इसपर कृपापूर्वक ध्यान देगी। (हर्ष-ध्वनि)

सज्जनो ! अपना भाषण समाप्त करनेसे पूर्व मैं आपका ध्यान एक और विषयकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ, यद्यपि उसका इस विषयसे कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी वह काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। मेरा तात्पर्य्य सन् १८५८ ई० की घोषणासे है। यह कोई आश्चर्य्य नहीं है। सभापति महोदयसे लेकर एकके बाद दूसरे सब वक्ताओंने अपने अधिकारोंके लिये उसी आज्ञापत्रकी दुहाई दी है। हमारे सारे अधिकारोंकी कुञ्जी वही आज्ञापत्र है। उसी आज्ञा-

पत्रमें हमारी दयालु सम्राज्ञी तथा इङ्गलैण्डकी परम उदार महारानीने उन अधिकारोंको हमें देनेकी प्रतिज्ञा की है जिनके पूर्ण करनेकी हम प्रार्थना करते हैं। उसी रानीके उदार शासनमें हम प्रतिवर्ष अपनी आवश्यकताओंपर विचार करने तथा दुःखोंका निराकरण करनेके लिये एकत्र होते हैं। उसी महारानीके सुन्दर चित्र हमारे चारों ओर लटके हुए हैं मानो वे हमारे इन विचारोंपर अपना दयालु, माताके तुल्य प्रभाव डालकर हमें उत्साहित कर रहे हैं। (तुमुल हर्ष-ध्वनि) मैं उस आज्ञापत्रकी चर्चा उस उच्च सरकारी अफ़सरके कथनका विरोध करनेके लिये कर रहा हूँ जिसने कहा था कि यह घोषणा सच्चे हृदय और ईमानदारीसे नहीं की गई बल्कि कूटनीतिके कारण की गई थी। मेरे हाथमें भारत-सम्राज्ञीके बैबेल्सबर्गमें लिखे हुए १५ अगस्त, सन् १८५८ ई० के पत्रकी प्रति है जिसमें उन्होंने लार्ड डर्बीको उस घोषणाके लिखनेका आदेश दिया था। मैं आपकी आज्ञासे वह पत्र आपके सामने पढ़ता हूँः— (तुमुल हर्ष-ध्वनि)

“महारानीको अत्यन्त प्रसन्नता होगी यदि लार्ड डर्बी उस घोषणाको स्वयं अपनी सुन्दर भाषामें लिख दें। उन्हें इस बातका ध्यान रखना होगा कि यह एक स्त्री सम्राज्ञीके वचन हैं जो वह दस करोड़से अधिक पूर्वीय जनताका शासनभार भयङ्कर रक्तपातपूर्ण गृहयुद्धके पश्चात् लेते समय उन्हें सुना रही है। इसमें उन प्रतिज्ञाओं तथा शासन-सिद्धान्तोंको भी प्रकट कर देना आवश्यक है जिनका पालन वह अपने शासनकालमें करेगी। ऐसे पत्रमें उदारता, धार्मिक सहिष्णुता, प्रजाहितकी भावनाएँ अवश्य विद्यमान होनी चाहिएँ तथा इस बातकी ओर भी सङ्केत होना चाहिए कि भारतवासी बृटिश शासनमें समानाधिकार प्राप्त करेंगे जिसके परिणाम-स्वरूप सभ्यताकी इस नवीन लहरके साथ-साथ उनका वैभव भी बढ़े।” (तुमुल तथा देरतक हर्ष-ध्वनि)

सज्जनो! क्या कोई भी समझदार आदमी इस कथनको पढ़कर इसकी सच्चाई, विश्वास, और प्रजाहितकी प्रेमयुक्त भावनाओंको अस्वीकार कर सकता है? (देरतक हर्ष-ध्वनि) किन्तु तब भी हमें ऐसे उच्च पदाधिकारी मिलते हैं जो मूर्खतावश महारानीकी इस घोषणाकी सचाईमें भी सन्देह करते हैं! सज्जनो! ऐसे विश्वासघाती मनुष्योंकी बातको झूठी सिद्ध करनेके लिये ही भारत-सम्राज्ञीने अपनी प्रतिज्ञाको अपनी जुबिलीके सुप्रसिद्ध अवसरपर दुहराया। (हर्ष-ध्वनि) बम्बई-जयन्ती-अभिनन्दनका उत्तर देते हुए भारत-सम्राज्ञीने कहा था कि “सदैवसे मेरी हार्दिक अभिलाषा यही रही है तथा रहेगी कि घोषणा-पत्रमें जिन सिद्धान्तोंका उल्लेख किया गया है उनका अवश्य पालन किया जाय।” (हर्ष-ध्वनि) सज्जनो! जिस समय हम अपने कामोंका प्रबन्ध करनेमें अधिक-से-अधिक भाग लेनेकी माँग पेश करते हैं— चाहे वह व्यवस्थापिका सभाओंके लिये हो चाहे सरकारी फ़ौजी अथवा साधारण नौकरियोंके सम्बन्धमें, तब हम भी तो यही चाहते हैं कि उन उदार प्रतिज्ञाओंका पालन भी उदारतापूर्वक होना चाहिए। हमें आशा और विश्वास है कि उन प्रतिज्ञाओंका अवश्य पालन होगा। (हर्ष-ध्वनि)

इस बातका थोड़ासा ज़िक्र करनेके बाद, जिसके लिये मुझे क्षमायाचनाकी कोई आवश्यकता नहीं दीखती, क्योंकि यह विषय तो सब कालमें और सब दशाओंमें महत्त्व रखता है, मैं आपका ध्यान उस प्रस्तावको स्वीकृत करनेके लिये आकर्षित करता हूँ जो आज मैंने आपके सामने रक्खा है। (हर्ष ध्वनि)

साधारण सभा (हाउस औफ़ कौमन्स) और भारतीयोंके कष्ट

२६ दिसम्बर सन् १८८९ ई० से आरम्भ होनेवाली राष्ट्रीय महासभाके बम्बईवाले पाँचवे अधिवेशनमें निम्नाङ्कित प्रस्तावको समर्थन करते हुए पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण।

—सम्पादक।

प्रस्ताव

“कि यह कांग्रेस सम्मानसहित हार्दिक आशा प्रकट करती है कि भारतीयोंके हितके लिये हाउस औफ़ कौमन्स, अपने भारतीय बजटको समितिके सामने पेश करनेके लिये प्रमुख महोदय (स्पीकर) के उठनेसे पूर्व, सदस्योंके उस भारतवासियोंके किसी कष्टको पार्लियामेण्टके सामने पेश करनेके पहले अधिकारको शीघ्र ही लौटा देगी, और पूर्ण विश्वास करती है कि भविष्यमें हाउस औफ़ कौमन्स, भारतीय वार्षिक बजटके वक्तव्यको ऐसे दिन बहसके लिये उपस्थित करेगी जिससे उसपर पूरी तरहसे बहस हो सके, और साथ ही कांग्रेसके सभापति सर विलियम वेडरबर्नको अधिकार देती है कि इस प्रस्तावके अनुसार वह कांग्रेसकी ओरसे एक अभ्यर्थना-पत्रपर हस्ताक्षर कर हाउस औफ़ कौमन्समें विचारार्थ पेश करें।”

सभापति महोदय, देवियो और सज्जनो!

इस प्रस्तावका समर्थन करते मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है और मुझे आशा है कि आप लोग धीरजके साथ मेरी आलोचनाको सुनेंगे जो मैं इस महत्त्वपूर्ण विषयपर आपको कहना चाहता हूँ। आपको याद होगा कि आजसे दो वर्ष पहले जब हम मद्रासमें मिले थे तब हमने इस विषयमें बड़ा खेद प्रकट किया था कि अंग्रेज़ी पार्लियामेण्ट हमारे मामलोंपर उतना ध्यान नहीं देती जितनी हम उससे आशा करते हैं। किन्तु यह देखकर हम बहुत अधिक खेद प्रकट करते हैं कि पिछले दिनोंमें स्थिति और भी ज़्यादा ख़राब हो गई है। पिछले दिनोंतक जब हाउस औफ़ कौमन्सके सामने भारतीय बजट पेश किया जाता था तो भारतीय मामलोंमें दिलचस्पी रखनेवाले सदस्योंको हम लोगोंकी तरफ़से कुछ कहनेका अवसर दिया जाता था। हमारी यह शिकायत थी कि इस कामके लिये जो समय दिया जाता था वह इस विशाल देशसे सम्बन्धित प्रश्नोंपर उचित विचार करनेके लिये बहुत थोड़ा था। अतः उन प्रश्नोंपर विचार करनेके लिये अधिक समय देनेकी हम लोगोंने प्रार्थना की थी। *(हर्ष-ध्वनि)* किन्तु सज्जनो! उस उचित प्रार्थनाको मञ्ज़ूर करनेके बजाय, हम देखते हैं कि अभीतक भारतीय मामलोंकी बहसके लिये जो थोड़ासा समय दिया जाता था, वह भी अब बहुत कम कर दिया गया है। साधारण सभाके नये नियमोंके अनुसार भारतमें बसनेवाले पच्चीस करोड़ सम्राट्की भारतीय प्रजाके हितमें बोलनेका कोई अवसर नहीं दिया गया है। *(धिक्कार, धिक्कार)* उससे जो खेद और निराशा हमको हुई है, उसे मैं वर्णन नहीं कर सकता। श्रीयुत बनर्जीने बड़ी योग्याके साथ बतलाया है कि साधारण सभाका यह नया नियम हमारे लिये कितना हानिकर है। बृटिश पार्लियामेण्ट ही जो

बृटिश जनताकी प्रतिनिधि संस्था है, एकमात्र शक्ति है जिसपर अपने कष्ट निवारणके लिये हम आश्रित हैं। इस देशके बुरे या भले शासनके लिये वे ही ज़िम्मेदार हैं। *(हर्ष-ध्वनि)* और यदि वे हमारे मामलोंकी उपेक्षा करते हैं या उचित ध्यान नहीं देते तो उसका नतीजा हमारे देशवासियोंके लिये बहुत हानिकर होता है। (हर्ष-ध्वनि) भारतीय शासनके लिये और विशेषकर आर्थिक मामलोंमें पालियामेण्टके नियन्त्रणका महत्त्व और उसकी आवश्यकता हमेशा मञ्ज़ूर की जा चुकी है। किन्तु पहलेकी अपेक्षा अब इसके नियन्त्रणकी आवश्यकता अधिक हो चली है। क्योंकि प्रतिदिन हमारी आर्थिक दशा बुरी होती जा रही है। इस शोचनीय परिस्थितिमें पार्लियामेण्टने अपना बचाखुचा ध्यान भी हमारे प्रश्नोंपरसे हटा लिया है। इस उदासीनताका परिणाम स्पष्ट ही है। अभीतक जब कभी भारतमें व्यय अधिक होनेकी शिकायत की जाती थी तब-तब इस विभागके अधिकारी महोदयोंने बहुत कुढ़कर यह स्वीकार कर लिया है कि इस व्ययमें कमी करनेकी गुञ्जायश है। सन् १८८३ ई० में साधारण सभाने यह प्रस्ताव स्वीकृत किया कि इस सभाकी रायमें भारतीय व्ययको कम करनेके लिये शीघ्र उद्योग होना चाहिए। उस समयके भारत-सचिव श्री लौर्ड किम्बर्लेने अपने ८ जून, सन् १८८३ ई० को भेजे हुए खरीतेमें भारत-सरकारसे व्ययमें कमी करनेके प्रश्नपर शीघ्रातिशीघ्र विचार करनेके लिये अनुरोध किया था। दूसरे भारत-सचिव लौर्ड रैण्डोल्फ़ चर्चिलने इसके बाद कहा था कि—"वास्तवमें भारतकी आर्थिक दशा बहुत ही ख़राब है। इसके लिये सावधानीसे विचार करनेकी आवश्यकता है। उनकी राय है, दिवालियेपनको रोकनेके लिये ख़र्चमें बहुत कमी करनेकी आवश्यकता है।" किन्तु मालूम होता है, पार्लियामेण्टके नियन्त्रणके उठ जानेसे वर्त्तमान सहकारी भारत-सचिव बिल्कुल भिन्न रूपसे ही काम करने लगे हैं। साधारण सभामें भारतीय बजटपर विचार होते समय भारतके व्ययमें निरन्तर वृद्धि होनेकी शिकायत की गई तो सर जौन गौर्स्टने यह जवाब दिया था कि "व्ययमें वृद्धि हुई है, वृद्धि होनी ही चाहिए और इसमें कमी नहीं होनी चाहिए।" (धिक्कार, धिक्कार) और उन्होंने उसका औचित्य यह कहकर सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था कि देशके कोषमें निरन्तर वृद्धि हो रही है। सज्जनो! यदि देशके धन और समृद्धिमें वृद्धि होती तो हमसे बढ़कर अधिक प्रसन्नता और किसे होती? (हर्ष ध्वनि) किन्तु दुःख तो यह है कि हम सत्य बातें देखते हुए कोरी सुकल्पनाओंसे मन नहीं भर सकते। हम चारों ओर बड़ी उत्सुकतासे देखते हैं कि एकदम देहातमें हमारे भाई झोपड़ियोंमें और खपड़ैलके मकानोंमें रहते हैं तो सर गौर्स्टकी बात बिल्कुल झूठ पाते हैं। कहीं भी धन और समृद्धि नहीं दिखाई पड़ती। ये ग्रामवासी बिल्कुल निर्धन हैं, यहाँतक कि अपना पेट पालनेमें असमर्थ हैं। हम उनके बच्चे और स्त्रियोंकी हालत पहलेसे भी बुरी पाते हैं। (साधुवाद, हर्ष-ध्वनि) अतः सज्जनो! हम कहते हैं कि वर्त्तमान स्थितिमें ख़र्च बढ़ाना केवल अनुचित ही नहीं बल्कि बड़ा भारी पाप है। (देरतक करतल-ध्वनि) निस्सन्देह हम सार्वजनिक ख़र्चका तब स्वागत करते जब उस व्ययसे जनताके धन और उसकी समृद्धिमें वृद्धि होती। गत पच्चीस वर्षोंमें इङ्गलैण्डके राज्यकोषमें वृद्धि हो रही है, किन्तु साथ ही इङ्गलैण्डके धन और व्यवसायमें भी अत्यधिक समुन्नति हुई है; अतएव कोई भी इसकी अधिक शिकायत नहीं करता। किन्तु भारतमें सार्वजनिक व्यय तो बढ़ रहा है, पर देशवासियोंकी दशा दिन प्रति-दिन गिरती जा रही है। (साधुवाद) इस बातका एक अकाट्य प्रमाण यह है कि सरकारी आयमें जो हालमें वृद्धि हुई है वह भारतीयोंकी प्रारम्भिक आवश्यकताओंको कसकर निकाली गई है। अभी हालका दृष्टान्त लीजिए। मनुष्य और पशु दोनोंके लिये समान आवश्यक नमक जैसी वस्तुपर कर बढ़ाकर, ग़रीबोंका तेल कहलानेवाले मट्टीके तेलपर कर लगाकर, उत्तर-

पश्चिम प्रान्त और अवधकी भूखी प्रजापर दूना कर लगाकर तथा दुर्भिक्ष-सहायता-कोषका दुरुपयोग करके यह बढ़ा हुआ ख़र्च पूरा किया गया है। (धिक्कार, धिक्कार) यह दुर्भिक्ष-सहायक कोष परिस्थिति विशेषके लिये स्थापित किया गया था और तीन वाइसरायोंने इसको धर्म भावसे दुर्भिक्ष और अकालके समय जनताकी सहायताके लिये पृथक् सुरक्षित रक्खे जानेकी प्रतिज्ञा की थी। (धिक्कार, धिक्कार)

सज्जनो! ख़र्चकी यह निरन्तर वृद्धि भारी ख़तरेकी घण्टी है। पार्लियामेण्टको इसपर उचित विचार करना चाहिए (हर्षध्वनि)। सेनाके ख़र्चको ही लीजिए। सन् १८५७ ई० में सेनामें दो लाख चौवन हज़ार आदमी थे और वार्षिक सैनिक व्यय साढ़े ग्यारह करोड़ था। किन्तु आजकी सेना, जिसमें पहलेकी अपेक्षा लगभग चालीस हज़ार जवान कम हो गए हैं वार्षिक व्यय इकतीस करोड़ पचास लाख रुपये है। आपको मालूम है कि इसकी पूर्त्ति किस प्रकार की जाती है? जैसा कि मैं आपको बता चुका हूँ इसकी पूर्त्ति जनताके लिये पेट्रोल और नमकको अधिक महँगा करके और दुर्भिक्ष तथा अकालके समय लोगोंको भूखों मारकर की जाती है। (धिक्कारकी तुमुल-ध्वनि)

सज्जनो! मैं आपका अधिक समय नहीं लेना चाहता। किन्तु एक क्षण और दीजिए कि मैं बता सकूँ कि भारतकी आर्थिक दशा कितनी भयङ्कर हो गई है और सेनाके इस अत्यन्त बढ़े हुए व्ययमें क्यों कमी होना आवश्यक है। भारतमें प्रजापर इतना अधिक कर लग गया है कि उसकी हद हो गई है। सङ्कटके समय कर लगानेकी सरकारको गुञ्जायश ही नहीं रह गई है। हमारे भूतपूर्व अर्थ-सचिव सर ई० बेअरिङ्गने गत जुलाईमें शाही कमीशनके सामने कहा था कि "जब मैं भारतमें अर्थ-मन्त्री था तो भारतकी गिरी हुई आर्थिक दशासे मुझे बड़ा दुःख हुआ था। उसका कारण यह था कि वहाँ आर्थिक स्थायी कोष नहीं था"। उन्होंने यह भी कहा था कि सन् १८८२ ई० का बजट पेश करते हुए उन्होंने साफ़ तौरसे बताया था कि आर्थिक स्थायी कोष स्थापित करनेकी नीयतसे उन्होंने कुछ वर्षोंमें नमक-करको घटाकर एक रुपया प्रति मन करनेका विचार किया था जिससे कि एक दृढ़ स्थायी कोषकी स्थापना हो सके। किन्तु नमक-करको कम करनेकी युक्तिसङ्गत योजनाके विपरीत, जिसको आप जानते भी हैं, वह फिर बढ़ाकर अढ़ाई रुपये मन कर दिया गया, फिर भी आर्थिक दशा न सुधरी, बल्कि पहलेसे अधिक गिर गई है। ईश्वर न करे, यदि कल युद्ध आरम्भ हो जाय तो सरकारको सङ्कट-कोषके लिये ऋणके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं बच जाता है। ('आपत्ति!') मैं नहीं समझता कि पीछेसे 'आपत्ति' कहनेवाले सज्जनका क्या अभिप्राय है? यदि उनको मेरे वक्तव्यकी सचाईमें सन्देह है तो मैं अपने कथनके प्रमाणमें सरकारी अधिकारियोंकी उक्तियाँ भी उद्धृत कर सकता हूँ। किन्तु मैं आपको और अधिक रोकना नहीं चाहता। मेरे कथनका तात्पर्य यह है कि भारतीय व्ययपर पार्लियामेण्टके निरन्तर नियन्त्रण और अनावश्यक तथा व्यर्थ व्ययको कम करनेकी और भारतकी आर्थिक दशाको उस शोचनीय सङ्कटसे छुड़ानेकी बड़ी आवश्यकता है जिसके दल-दलमें वह फँसी हुई है। (हर्ष ध्वनि)

सज्जनो, यह दुःख और आश्चर्य की बात है कि साधारण सभाके जिन नियमोंकी शिकायत करते हैं उनका प्रयोग मार्किस औफ़ सैलिस्बरीके प्रधान मन्त्रित्वके समयमें हुआ था। प्रधान मन्त्री जब भारत-सचिवके पदपर थे तब उन्होंने भारतीय आर्थिक प्रश्नके सम्बन्धमें पार्लियामेण्टरी समितिके सामने अपनी गवाहीमें बड़े ज़ोरोंसे कहा था कि भारतकी आर्थिक दशा सुधारनेके लिये साधारण सभाको चाहिए कि भारतीय विषयोंपर सतर्क दृष्टि रक्खे। प्रधान मन्त्रीने कहा था कि भारतको कष्टसे बचानेके लिये साधारण सभाको उचित है कि वह भारतीय

प्रश्नोंपर पर्य्याप्त और सचेष्ट ध्यान दे। किन्तु उन्हींके समयमें बहुत नियमोंकी रचना हुई जिसके द्वारा साधारण सभा अबसे पहले जो भारतीय प्रश्नोंपर थोड़ा-बहुत ध्यान रखती थी, वह भी न रख सकेगी। किन्तु सज्जनो, मैं आपके सामने निवेदन कर ही चुका हूँ कि यह नियमोंका अपूर्व कल्पित परिणाम है। मुझे विश्वास और आशा है कि नियमोंमें संशोधन हो जायँगे और हमारे पहले अधिकार फिर स्थापित हो जायँगे किन्तु शिष्ट सभा एक बजटपर विचार करनेके लिये ऐसा दिन निश्चित करेगी जिससे उन प्रश्नोंपर न्यायपूर्ण और उचित विचार हो सके जिनका भारतकी पचास करोड़ प्रजाके कल्याणसे सम्बन्ध है और जिनका भाग्य ईश्वरने उनके हाथोंमें सौंप दिया है। (हर्ष-ध्वनि और 'सब सम्मति दो' की तुमुल-ध्वनि)

व्यवस्थापिका सभाओंमें सुधार

२६ दिसम्बर, सन् १८९० ई० से होनेवाली कलकत्तेकी राष्ट्रीय महासभाके छठे अधिवेशनमेँ निम्नलिखित प्रस्तावका समर्थन करते हुए पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने कहा— —सम्पादक।

प्रस्ताव

“कि यह कांग्रेस, मिस्टर चार्ल्स ब्रैडलौ महोदयद्वारा हाल ही मेँ पार्लियामेण्टमेँ पेश किए हुए बिलके मज़मूनपर, जो “सन् १८६१ ई० के भारतीय परिषद्-विधानमेँ सुधार करनेवाला विधान” नामसे है, विचार करके उसे स्वीकार करती है कि भारतके शासन-प्रबन्धका यह एक सुधारका भाग है जिसके लिये वह इतना आन्दोलन कर रही थी, तथा ग्रेट बृटेन और आयर्लैण्डकी संयुक्त-पार्लियामेण्टकी दोनोँ सभाओँसे नम्र प्रार्थना करती है कि उसे पासकर क़ानून बना दे; तथा इसके सभापति फ़ीरोज़शाह मेहता महोदयको यह अधिकार देती है कि इस सभाकी ओरसे उपर्युक्त विषयपर एक अभ्यर्थना-पत्र लिख और हस्ताक्षर करके, ठीक समयपर हाउस ऑफ़ कौमन्समेँ पेश करनेके लिये चार्ल्स ब्रैडलौ महोदयके पास भेज देँ।”

सभापति महोदय और सज्जनो!

मुझे यह जानकर प्रसन्नता होती है कि आज हम लोग व्यवस्थापिका सभाओँमेँ सुधार तथा परिवर्द्धन-सम्बन्धी योजनाके प्रधान अङ्गोँपर बहस कर रहे हैँ। आप जानते हैँ कि जब हम लोग पिछली बार मिले थे तबसे इस विषयमेँ हम लोगोँकी दशा कुछ सुधरी है, और सरकार तथा हम लोगोँमेँ अब उतना फ़ासला नहीँ है जितना एक साल पहले था। कौन्सिलोँके सुधारके लिये चार प्रधान प्रश्न ये हैँ जिनके लिये कांग्रेस सरकारपर ज़ोर डाल रही थी, पहला, यह कि कौन्सिलके सदस्योँकी संख्या बढ़ाई जाय; दूसरा, कम-से-कम आधे सदस्योँको चुननेका अधिकार जनताको हो; तीसरा, बजटको हर साल कौन्सिलमेँ पेश किया जाय; चौथा, जनता-सम्बन्धी बातोँपर सरकारी कर्मचारियोँसे प्रश्न करनेका अधिकार हो। सज्जनो! इनमेँ से तीनके विषयमेँ वाइसराय महोदयने अपनी परिषद्मेँ बजटपर बहस होनेके अवसरपर अपने व्याख्यानमेँ आश्वासन दिया कि सम्राट्की सरकारने तीनकी स्वीकृति दे दी है; अर्थात् कौन्सिलको बढ़ाना, प्रतिवर्ष बजटका उसके सामने पेश करना, कि कोई नया कर लगाया जाय या नहीँ, और शासन-सम्बन्धी किसी विभागपर सरकारसे प्रश्न करना। यद्यपि इस आख़िरी अधिकारको कुछ हदतक सीमित रक्खा गया है, परन्तु वाइसराय महोदयके कथनसे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वह अधिकार मिल जायगा।

अब हमारे और सरकारके बीच केवल इस बातमेँ मतभेद है कि कौन्सिलके सदस्योँकी नियुक्ति किस तरीक़ेसे करनी चाहिए। सरकार सभी सदस्योँको नामज़द करना चाहती है और हम चाहते हैँ कि उनमेँसे आधेको जनताद्वारा चुननेका अधिकार दिया जाय। यह साफ़ है कि हम लोगोँकी प्रार्थना कितनी सादी और न्याययुक्त है तथा सरकारका इसको न मानना कितना बेजा है। (हर्ष-ध्वनि) सज्जनो! आप जानते हैँ कि सुधारकी

हुई कौन्सिलमेँ भी सरकार वैसी ही बनी रहेगी जैसी अब है अर्थात् कौन्सिलमेँ पेश किए जानेवाले मामलोँमेँ वही (सरकार) अन्तिम निर्णायक होगी। किसी प्रस्तावका सदस्योँने अपने बहुमतसे विरोध भी किया तो भी सरकार निर्णयको विशेषाधिकार-द्वारा उलट सकती है और बिल्कुल अपनी इच्छाके अनुसार काम चला सकती है। अर्थात् वह न्यायाधीशके पदपर बैठकर हमारी सम्पत्ति, हमारे कार्य्य अर्थात् हमारे सम्पूर्ण हित-सम्बन्धी प्रश्नोँका निर्णय किया करेगी। एकमात्र अधिकार, जिसके लिये हम प्रार्थना करते हैँ, यह है कि हम अपनी माँग तथा हालतको पूर्णतया उसके सामने पेश करनेके लिये अपने सलाहकारोँको स्वयं चुनेँ। और सरकार उसको भी देनेमेँ आना-कानी कर रही है (*धिक्कार*)। हमारे पक्षका समर्थन करनेके लिये वह अपनी इच्छाके सलाहकारोँको नियुक्त करेगी। सज्जनो! सरकारकी अब इस कृपा-दृष्टिके लिये हम उसे धन्यवाद देते हैँ (*हँसी*)। किन्तु हम समझते हैँ तथा ऐसा समझनेके हमारे पास उपयुक्त कारण हैँ कि यदि वे हमेँ हमारे सलाहकारोँको चुननेका अधिकार दे देँ, तो हमारा बड़ा भारी हित होगा, क्योँकि वे ही लोग हमारे पक्षका समर्थन करेँगे तथा हमारे अधिकार और स्वहितोँकी रक्षा करेँगे। (*हर्ष-ध्वनि*) व्यवस्थापिका-सभा बड़ा भारी न्यायालय है, जिसके सामने हमारे ही नहीँ बल्कि हमारे पीढ़ियोँतकके जीवनको प्रभावित करनेवाले प्रश्नोँका निर्णय हुआ करता है, और न्याय यह कहता है कि सभाके अन्तिम निर्णयके पहले हम भी उसमेँ अपने चुने हुए और विश्वस्त प्रतिनिधियोँद्वारा अपनी बातको पेश कर सकेँ। सज्जनो! हम यह अनुभव करते हैँ और ज़ोरके साथ, कि हमेँ इस साधारण तथा न्यायपूर्ण अधिकारके उपयोगमेँ लानेके लिये तनिक भी देर न रोका जाना चाहिए। बृटिश राज्यमेँ एक अत्यन्त भ्रष्ट अपराधीको भी अपने स्वतन्त्र सलाहकारको चुननेमेँ कोई मनाही नहीँ है, तब सम्राज्ञीकी राजभक्त तथा बुद्धिमान् प्रजाको इस अधिकारसे क्योँ वञ्चित किया जाता है? जब किसी जूरीकी नियुक्ति होती है तब उस अभियुक्तसे यह पूछ लिया जाता है कि उस जूरीके विरुद्ध उसे कुछ कहना है या नहीँ और यदि वह उनमेँसे किसी व्यक्तिकी नियुक्तिका विरोध करता है तो जूरीसे वह व्यक्ति हटा दिया जाता है। परन्तु यदि प्रकाशित समाचार-पत्रोँकी रिपोर्ट सच्ची है तो भारत-सरकार तथा हमारे भारत-सचिव भारतीय प्रजाकी पुकारको अनसुनी करके एक सम्पूर्ण राष्ट्र और उसकी भावी पीढ़ियोँकी समस्याओँके विचार करनेके लिये जनताके एक प्रतिनिधिको भी सम्मिलित नहीँ करते। क्या इससे बढ़कर भी कहीँ न्याय तथा बुद्धिकी हत्या हो सकती है?

सज्जनो! यदि सरकार जनताके हितकी रक्षा करनेके लिये स्वयं ही ग़ैर-सरकारी सदस्योँका चुनाव कर लेती तो हम अपने प्रतिनिधि स्वयं चुननेकी ज़िम्मेदारी अपने सिर लेनेके लिये इतने उत्सुक न होते। परन्तु दुर्भाग्यवश इसमेँ अधिकतर ऐसे व्यक्ति चुने गए हैँ जिन्हेँ जनताके हितके लिये लड़नेका साहस और योग्यता नहीँ है, बल्कि जिन्होँने कभी-कभी तो ऐसे निकम्मे व्यक्ति नियुक्त किए हैँ जिनके कौन्सिलमेँ होनेके कारण जनताके कष्ट और भी बढ़ गए हैँ। बल्कि कौन्सिलोँमेँ जनतासे कुछ भी सम्पर्क न रखनेवाले व्यक्तियोँको चुननेकी अपेक्षा तो यह अच्छा है कि एक भी ग़ैर-सरकारी सदस्य न नियुक्त किया जाय (साधु, साधु)। क्योँकि ऐसे सदस्य जनताकी वास्तविक अवस्था तथा आवश्यकताओँसे अनभिज्ञ होनेके कारण वहाँ जनताका अहित करते हैँ और उनका कष्ट तथा असन्तोष बढ़ानेवाली बातोँका समर्थन करते हैँ।

मैँ अपने कथनकी सत्यता सिद्ध करनेके लिये केवल दो उदाहरण देना चाहता हूँ। दो वर्ष हुए, आपको याद होगा कि सरकार अपने अधिक तथा हमारे विचारसे व्यर्थ सैन्य-व्ययके कारण कुछ नये कर लगानेपर तुल गई और उसने यह निश्चय किया

कि यह धन ऐसे निर्धनोंसे वसूल किया जाय जो चूँ तक न कर सकें (धिक्कार)। यह प्रश्न व्यवस्थापिका सभाके सम्मुख उपस्थित हुआ और तथा-कथित जनताके प्रतिनिधि प्रतिष्ठित ग़ैर-सरकारी सदस्योंने विरोध करना तो दूर रहा, उल्टा निर्विरोध समर्थन किया। उनमेंसे कुछ महाशयोंने तो यहाँतक कह डाला कि नमकपर कर बढ़ानेसे ग़रीब प्रजाको कुछ कष्ट नहीं होगा (धिक्कार)। महाशयो! व्यक्तिगत आमदनीके साथ-साथ बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें उड़ानेवाले इन महामाननीय सज्जनोंको शायद इस बातपर विश्वास भी नहीं होगा कि कुछ आने प्रतिवर्ष बढ़ जानेसे उन निर्धनोंको बड़ा कष्ट होगा। परन्तु वे व्यक्ति, जिन्हें हमारे ग़रीब भाइयोंकी भयङ्कर विपत्तियों और असह्य दरिद्रताका ज्ञान है, इस बातको अच्छी तरह समझ सकते हैं कि थोड़ासा भी आर्थिक भार उनको कितना कष्टकर हो जायगा। परन्तु इन प्रतिष्ठित सदस्योंने यह कह डालनेकी कृपा की कि "जनताको यह कर-वृद्धि मालूम भी न होगी।" (धिक्कार)

मैं आपको केवल एक और दृष्टान्त दूँगा। याद होगा कि कुछ मास पूर्व सरकारको फिर धनकी बड़ी आवश्यकता थी। क्योंकि जो अपनी आमदनीके अनुसार व्यय करनेकी अपेक्षा व्ययके अनुसार आमदनी करनेकी नीयत रखते हैं उनकी ऐसी कुदशा हो ही जाती है। राज्यकोष तो बढ़ाना ही था, इसलिये अकाल-निश्चित-कोषका दुरुपयोग करके और प्रान्तीय सरकारोंपर दबाव डालकर (जिससे शिक्षा तथा अन्य विभागोंकी उन्नति रुक गई) भी सरकारको सन्तोष न हुआ और सरकारने ग़रीबोंसे और भी अधिक चूसनेकी नीयत कर ली। उसने यह तै किया कि अवध तथा पश्चिमोत्तर (वर्त्तमान संयुक्त प्रान्त) में जनतापर पटवारी-कर लगाया जाय। अब आप जान सकते हैं कि हमारे कृपालु लौर्ड रिपनकी सरकारने (हर्ष-ध्वनि) युद्ध तथा तत्सम्बन्धी कार्य्योंको रोककर (साधु-साधु) जनताके व्ययमें कुछ बचत दिखलाई और यह इच्छा प्रकट की कि उसका वितरण निर्धन जनताकी सहायतामें कर दिया जाय, और इसी ध्येयकी पूर्त्तिके लिये जाँचके पश्चात् अवध तथा पश्चिमोत्तर प्रान्तों (युक्तप्रान्त) में मुख्यतः पटवारी-करमें २० लाख छूट दे दी। किन्तु लौर्ड लैन्सडाउनकी सरकारने इस साल फिर वह कर जनतापर लाद दिया है। महाशयो! देखिए, यह कर लगाकर कितना बड़ा अन्याय किया गया है! पटवारी-कर की छूट सात वर्ष पहले ही हुई थी, किन्तु निर्धन जनतासे बराबर वह लिया जाता रहा। (धिक्कार) यह कहा गया था कि यह कर अन्य करोंके साथ मिला दिया गया था जो अब अलग कर दिया जा सकता है। यदि यह धन सरकारके कोषसे ही जाता होता तो इस प्रकारकी बातें सुनी ही न जातीं (साधु-साधु)। किन्तु इसका सम्बन्ध ग़रीब जनताके साथ था, अतएव यह निर्विवाद मान लिया गया, और लौर्ड रिपनकी सरकारने प्रजाके हितके लिये जो उपाय किया था उसके लाभका ताल्लुक़ेदार तथा ज़मीन्दार उसका पूर्ण उपभोग करने लगे और इसी बातके आधारपर करकी छूटसे प्रजाका कुछ लाभ नहीं हुआ और नया पटवारी-कर ज़मीन्दारीपर नहीं बल्कि रैयतपर लगाया गया है, तथा वह बेचारे इसी कारण दूना-दूना कर देते हैं कि वे असहाय और निर्धन हैं। (ज़ोरसे हर्ष-ध्वनि तथा धिक्कार-धिक्कारकी आवाज़)।

वाइसरायकी परिषद्में सर औकलैण्ड कौल्विनकी सरकारके प्रतिनिधि माननीय क्रिएटन महोदयने अपने भाषणमें कहा कि अवधके ताल्लुक़ेदारोंका इस विषयमें परामर्श ले लिया गया है। महाशयो! ज़मीन्दारोंके कहनेसे प्रजापर आर्थिक भार लादना कहाँतक न्याय-युक्त होगा, इसपर विचार कीजिए। परन्तु यह बात यहीं नहीं समाप्त हो जाती। परिषद्में और भी कई प्रतिष्ठित सदस्य ऐसे थे जिन्होंने यह कहा कि इस करके लगानेसे जनताके कर-भारमें केवल बारह आने सालाना बढ़ता है, किन्तु यह इतना कम है कि जनता इसका अनुभव ही नहीं कर सकती। सज्जनो!

आप जानते ही होंगे कि किसीका बुरा चेतना बड़ा पाप है। परन्तु अब मैं इन सदस्योंके मुँहसे यह कहते हुए सुनता हूँ कि "उन भूखे और नङ्गे ग़रीबोंपर नमक अथवा पटवारी-कर के रूपमें कुछ आनोंका भार लादनेसे उनकी आपत्ति तथा उनके दुःखमें तनिक भी वृद्धि नहीं होती," तो मुझे बूढ़े लियर (किङ्ग-लियर) की पङ्क्तियाँ याद आ जाती हैं :—

हे वैभवमें मतवालो !, कुछ अपनी ओषधि ले लो,
तुम तब दुखको समझोगे, जब अपने सिरपर झेलो,
अपने वैभवके कुछ कण, उन दीनोंमें बिखराकर,
*दिखला दो न्यायी प्रभुकी महिमा जगमें निखराकर ।**

यदि इन महाशयोंको एक दिन भी वह बेस्वाद रूखा भोजन खाना पड़े, जिससे हमारे भूखसे व्याकुल ग़रीब पेट भरते हैं, और जब उन्हें अपने गर्म तथा नर्म ऊनी वस्त्रोंके बिना उत्तरीय भारतके भयङ्कर जाड़ेका सामना करना पड़े, तो उन्हें ज्ञात हो जायगा कि पटवारी-कर-के फिरसे लगाने और नमक-कर बढ़ानेसे उनका कष्ट बढ़ता है। (देरतक हर्ष-ध्वनि) पश्चिमोत्तर तथा अवध प्रान्तोंमें करोड़ों ऐसे प्राणी हैं जो अपने आवश्यकतानुसार उत्तरीय भारतके कड़ाकेकी जाड़ेकी रातोंमें अपने तथा अपने स्त्री और बच्चोंका तन ढाँपनेके लिये कपड़े भी नहीं ख़रीद सकते। और दक्षिण भारतके सज्जनो ! आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि आप लोगोंकी अपेक्षा हमारे यहाँके लोग अधिक कष्टमें हैं। (साधु साधु) ये कष्टके मारे हुए लोग अपना और अपनी स्त्री तथा बच्चोंको भयङ्कर जाड़ेकी रात्रिमें घासोंसे ढकते हैं और जब अधिक जाड़ेके कारण नींद नहीं आती तो वे उसी घासको थोड़ा जलाकर रात काटते हैं। प्रायः सरकारी कर्मचारियोंके जाड़ेके दौरेके समय उनके चौपायोंके चारेके लिये वह भी छीन लिया जाता है (धिक्कार)। ऐसी अवस्थामें वाइसरायकी परिषद्के सदस्योंने यह कहा है कि बारह आने प्रतिवर्षका अधिक भार उनके कष्टोंमें तनिक भी वृद्धि नहीं करेगा। सज्जनो ! क्या आप सोच सकते हैं कि प्रजाका तनिक भी वश हो तो इस प्रकारके सदस्य नियुक्त हो सकगे ? (नहीं, नहीं, कभी नहीं) और यदि भ्रमसे उनकी एक बार नियुक्ति हो भी गई तो क्या दूसरे चुनावके समय वे दूर नहीं कर दिए जायँगे ? (हाँ, हाँ)। परन्तु वर्त्तमान अवस्थामें जनताकी अनिच्छा होनेपर भी दबाव डालकर उन्हें नियुक्त किया जाता है और जनताको बाध्य होकर उनकी व्यवस्था माननी पड़ती है। (देरतक हर्ष-ध्वनि)

महाशयो ! मुझे डर है कि मैंने आप लोगोंका अधिक समय लिया। अब मैं आपको अधिक नहीं रोक सकता। मैं आशा करता हूँ कि मैंने यहाँ स्पष्ट कर दिया कि हम कौन्सिलमें क्यों जनताके हितैषी तथा विश्वस्त श्रद्धापात्र प्रतिनिधियोंकी नियुक्ति चाहते हैं, और मैं हृदयसे चाहता हूँ कि सरकार हमारी इस न्यायपूर्ण साधारण माँगको स्वीकार करनेमें अधिक विलम्ब न करेगी, जिससे जनताके सुखकी वृद्धिके साथ-साथ भारतमें बृटिश शासनका गौरव भी बढ़ेगा। सज्जनो ! मैं हृदयसे इस प्रस्तावका समर्थन करता हूँ (हर्षध्वनि)।

---

*"टेक फ़िज़िक पौम्प,
ऐक्सपोज दाइसेल्फ़ टु फ़ील व्हौट रैचेज फ़ील,
दैट् दाउ मे'स्ट शेक दि सुपरफ़्लक्स टु दैम्,
ऐण्ड शो हैवेन्स मोर जस्ट."

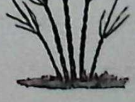

भारतवासियोंके कष्ट और उनके दूर करनेके उपाय

ता० २८ दिसम्बर, सन् १८९१ ई० को श्री पी० आनन्द चार्लूके सभापतित्त्वमें नागपुरमें होनेवाली राष्ट्रीय महासभाके सातवें अधिवेशनमें निम्नाङ्कित प्रस्तावके समर्थनमें पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण। —सम्पादक।

प्रस्ताव

"देशकी कुल आबादीमेंसे पूरे पाँच करोड़ लोग, जिनकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है, अत्यन्त कष्टका जीवन बिताकर भूखे मर रहे हैं और हर वर्ष साठ-सत्तर लाख अन्न न मिलनेसे भूखसे अकालमें मर जाते हैं।

यह बुरी दशा मुख्यतः इन कारणोंसे है :—

(अ) शासन-प्रबन्धमें भारतीयोंको उचित भाग लेनेसे अलग रखना और अपने देशके आर्थिक मामलोंमें कोई अधिकार न देना। इनका उपाय प्रस्ताव नं० २ में दिया गया है।

(आ) वर्त्तमान शासन-व्यवस्था और सेनापर अपव्यय करना जिसका भार देश सहन नहीं कर सकता, इसमें भी फ़ौजी ख़र्च बहुत अधिक होना।

(इ) ज़मीनके लगान-बन्दोबस्तमें अदूरदर्शी प्रणालीको रखना जिससे देशकी खेती-उपजकी उन्नति ही नहीं असम्भव कर दी गई है बल्कि उसका धीरे-धीरे विनाश भी निश्चय कर दिया गया है, जिसपर देशकी ९९ फ़ी सदी आबादी अपना गुज़र करती है।

अतएव यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि शासन-व्ययमें बहुत कमी की जाय। सैनिक-विभागमें वर्त्तमान सेनाकी संख्यामें यथेष्ट कमी करके व्यय घटाया जाय, वर्त्तमान राजकीय सैनिक-दलको हटाकर, जिसके लिये इङ्गलैण्डमें गोरे रङ्गरूटोंकी भर्तीसे, आनेजानेके ख़र्चसे और जलवायु अनुकूल न होनेके कारण बहुतसी मृत्युएँ होनेसे बहुत अधिक ख़र्च पड़ता है, इसके बजाय सम्मानित ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी तरहकी दीर्घकालिक यहींकी योरोपियन सैनिक टुकड़ीको स्थान दिया जाय, सीमा-प्रान्तकी रक्षामें अबतक जो कई सालसे अपार धन-राशि नष्ट की जाती है उसको बन्द करके और कमसरियट, फ़ौजखाना और रसदके विभागमें ख़र्चकी पूरी कमी करके और मुल्की विभागमें अधिक वेतनभोगी गोरोंके स्थानपर कम वेतनके देशी कर्मचारियोंकी नियुक्ति की जाय, और आजसे तीस वर्ष पहले की गई बृटिश सरकारकी प्रतिज्ञाके अनुसार ज़मीनके लगानका स्थायी व निश्चित बन्दोबस्त तुरन्त किया जाय और इस भाँति पूँजी और मज़दूरी दोनोंकी सहायतासे देशकी कृषि-उपजकी उन्नति की जाय, जो कि वर्त्तमान बन्दोबस्तकी अस्थायी दशामें पिछले वर्षों बहुत जल्दी-जल्दी कभी दस या बारह वर्ष बाद ही बदल देनेसे असम्भव हो गई है और इसके लिये कृषी-सम्बन्धी बैङ्कोंकी स्थापना की जाय।

और यह कांग्रेस अत्यन्त नम्रतापूर्वक ग्रेट बृटेन और आयरलैण्डकी जनतासे अनुरोध करती है कि वह वर्त्तमान असन्तोषजनक शासन-व्यवस्थाके कारण होनेवाले विनाशको रोके। निस्सन्देह वह हित-दृष्टिसे है, किन्तु फिर भी वह असन्तोषप्रद है और इन सुधारोंपर शीघ्र ही अधिक ज़ोर दे।"

सभापति महोदय, देवियो तथा सज्जनो !

मेरे मित्र श्री वाचाने इतनी योग्यतासे जिस प्रस्तावको पेश किया है उसके पूरे अथवा थोड़े भागको समर्थन करना मेरा कर्त्तव्य है। उसकी उन्होंने जो विशद व्याख्या की है उससे मेरा कार्य्य सरल हो गया है। तथापि थोड़ेसे समयके लिये आपसे पूछकर बोलूँगा, ताकि इस विषयसे सम्बद्ध कुछ विचारोंको आपके सामने यह दिखलानेको उपस्थित कर सकूँ कि जिन सुधारोंकी हम वकालत कर रहे हैं उनकी शीघ्र कितनी अधिक आवश्यकता है।

बहुधा लोग यह कहा करते हैं कि हम लोग कांग्रेसमें वही पुरानी बातें हर साल दुहराया करते हैं। परन्तु सज्जनो! इस शोचनीय दशाके लिये दोष किसका है? क्या कही हुई बातोंको दुहरानेके लिये हम दोषी हैं या सरकार, कि जो हमारी इतनी न्यायपूर्ण प्रार्थना की कई बार दुहरानेपर भी सुनवाई नहीं करती। कितने ही सरकारी अफ़सर कह चुके हैं कि इस देशमें निस्सन्देह बहुत ज़्यादा निर्धनता है और वह दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है। सर विलियम हण्टर, सर चार्ल्स ईलियट, सर औकलैण्ड कौल्विन और कितने ही अन्य महानुभाव वाइसरायकी कौन्सिलके सदस्यकी हैसियतसे कई बार इस बातको दुःखसे प्रकट कर चुके हैं कि भारतवर्ष ग़रीब है और दिन-पर-दिन अधिक ग़रीब होता जाता है। परन्तु हो क्या रहा है? क्या सरकारने देशमें कोई ऐसे सुधार किए या कोई ऐसे राज्यनियम बनाए कि जिससे भारतवासियोंकी दशा सुधरे, निर्धनता दूर हो और देश समृद्धिशाली बन सके? नहीं, मुझे यह कहते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि सरकारके लिये बड़े शर्मकी बात है कि अभीतक इस विषयमें तनिक क्या लेशमात्र भी कुछ नहीं किया गया। दस-पन्द्रह वर्ष हुए, जब सर विलियम हण्टरने कहा था कि चार करोड़ भारतवासी अथवा भारतवर्षकी जनसंख्यांके लगभग $\frac{१}{५}$ भागको जीवनभर कभी भी भरपेट भोजन नहीं मिलता। सर चार्ल्स ईलियटने, जब वे आसामके कमिश्नर थे, यह कहा था कि "मुझे यह कहते हुए कोई सङ्कोच नहीं है कि हमारे किसानोंमेंसे आधे किसान ऐसे हैं जिन्हें तीन-सौ-पैंसठ दिनमेंसे एक दिन भी भरपेट भोजन करनेका सुख नहीं मिलता।" वाइसरायकी परिषद्के अर्थ-सचिव सर एडवर्ड वेयरिङ्गने कहा था कि "प्रत्येक भारतवासीकी औसत आमदनी सत्ताईस रुपये साल है।" परन्तु श्रीयुत दादाभाई नौरोजीने यह सिद्ध किया है कि प्रत्येक भारतवासीकी औसत आमदनी इक्कीस रुपये सालसे भी कुछ कम है। डिग्बी महोदय भी इसी मतके पक्षपाती हैं। परन्तु इन बातोंको सुनकर, जिन्हें सब मानते हैं और जिन्हें कोई असत्य नहीं सिद्ध कर सका है, सरकारने देशकी ग़रीबी मिटानेके लिये क्या सुधार किया? दिखलानेके लिये भले ही सरकारने इधर-उधर कोई काम ऐसे किए हों जिनसे यह जान पड़े कि सरकारकी इच्छा देशकी ग़रीबी दूर करनेकी है। हाँ, कभी-कभी सरकार देशमें सैर करने और रिपोर्ट लिखनेके लिये कमीशन भी नियुक्त कर दिया करती है। परन्तु इन कमीशनोंके बतलाए हुए उपायोंके अनुसार कौनसा सुधार किया जाता है? इनकी लम्बी रिपोर्टें कौनसे काम आती हैं? सेनाके सम्बन्धमें जाँच करनेके लिये 'शिमला आरमीज़' कमीशन बैठा, सरकारी नौकरियोंमें भारतवासियोंकी दशा जाँच करनेवाला 'पबलिक सरविस कमीशन' बैठा, सरकारी आय और व्ययकी जाँच करनेके लिये 'फ़ाइनेन्स' कमेटी बैठी। कहिए, उनके श्रमका फल क्या हुआ? हाँ योग्यताके साथ अच्छी लिखी हुई और उत्तम छपी और जिल्द बँधी हुई रिपोर्टें अवश्य हमें मिल गईं। इससे अधिक और कुछ नहीं हुआ, इसलिये यह हमारा दोष नहीं है। हमें प्रतिवर्ष वही पुराना रोना रोनेमें कोई सुख नहीं होता। परन्तु, जब देशकी शोचनीय दशा हृदयमें वेदना उत्पन्न कर देती है तब कहे बिना रहा नहीं जाता। हमारे कहे शब्द बार-बार हमारे मुँहसे इसी लिये नहीं निकलते हैं कि हमें वे अच्छे लगते हैं।

बस बार-बार हम उन्हीँ बातोँको इसलिये दुहरा रहे हैँ कि हमेँ आशा है कि शायद अबकी बार कहनेसे सरकारका हृदय पिघल जाय, शायद अबकी ही बार उसे भारतकी ग़रीबी हालतपर कुछ दया आजावे, और शायद अब वह ख़र्च कम करके भारतवासियोँको आपत्तियोँ और कष्टोँसे बचानेकी सच्ची चेष्टा करे।

हम जानते हैँ कि इस ग़रीबीके कई कारण हैँ। यहाँपर हम इन छोटे-छोटे व्याख्यानोँमेँ उन सब कारणोँकी ब्यौरेवार व्याख्या नहीँ कर सकते। इस प्रस्तावमेँ हम केवल उन्हीँ कारणोँका दिग्दर्शन करावेँगे जिनके लिये सरकार उत्तरदायी है और हम यहाँपर केवल उन्हीँ उपायोँ और सुधारोँकी व्याख्या करेँगे जिन्हेँ सरकार यदि चाहे तो उपयोगमेँ ला सकती है। यही नहीँ, हम यहाँ उन्हीँ उपायोँ और सुधारोँका वर्णन करेँगे जिन्हेँ यदि सरकार अपनेको सभ्य सरकार कहती है तो उसे उपयोग करना चाहिए। वे कर्त्तव्य और उपाय क्या हैँ? पहले तीन (खण्डोँ) उपनियमोँमेँ आपने बतलाया है कि देशके शासन-प्रबन्धमेँ भारतीयोँको उचित भाग नहीँ मिलता है। मेरे पूर्व वक्ताने उस विषयपर काफ़ी कहा है; इसलिये उस विषयको मैँ अब यहाँ न लूँगा। मेरे बाद जो बोलनेके लिये यहाँपर आवेँगे वे सरकारी आयके विषयमेँ कहेँगे। मेरे मित्र श्रीयुत वाचाने सैनिक ख़र्चके विषयमेँ काफ़ी कहा है। इस विषयकी याद मेरे दिलमेँ चुभती है। आपको याद है कि महारानी विक्टोरियाने अपनी प्रसिद्ध घोषणामेँ यह कहा था कि भारतवासी उन्हेँ उतने ही प्यारे हैँ जितने उनके स्वजातीय इङ्गलैण्ड और आयरलैण्डवासी। महारानीने अपनी घोषणामेँ यह भी कहा था कि कोई भी भारतवासी रङ्ग, रूप, जाति या धर्मभेदके कारण किसी प्रकारके सरकारी पद पानेसे वञ्चित न रक्खा जावेगा। इतनेपर भी हमेँ आज क्या देख पड़ रहा है? सेनाकी नौकरीका ज़रा ध्यान कीजिए। हमारे देशवासी सरकारके लिये राजभक्ति, वीरता और उत्साहके साथ लड़ते रहे और लड़ते रहेँगे। देशके बाहर भी जहाँ कहीँ महारानीने आज्ञा दी वे बड़ी ख़ुशीसे गए और बृटिश सरकारके लिये अपना ख़ून पानी कर बहाया। इस कारगुज़ारीके लिये उन्हेँ क्या मिला? सूबेदारी और रिसालदारीकी छोटी अधीन जगहोँपर वे रक्खे जाते हैँ, ऊँचे ओहदे उन्हेँ नहीँ दिए जाते हैँ। पच्चीस-पच्चीस वर्षकी वीरताकी नौकरीके बाद भी उन्हेँ कलके भरती किए हुए गोरे छोटे लफ़्टण्टोँकी मातहतीमेँ रहना पड़ता है। क्या महारानी विक्टोरियाकी घोषणाका पूरा करना यही है? भारतीय सिपाहियोँको फ़ौजमेँ कप्तान, कमाण्डर, लफ़्टण्ट न बनानेमेँ कौनसा न्याय हुआ है। क्या वे युद्धोँमेँ महारानीके सिंहासनको अचल बनानेके लिये अपना ख़ून नहीँ बहाते रहे हैँ? क्या हमारे विरोधी एक भी कोई ऐसा उदाहरण दे सकते हैँ कि जिसमेँ हमारे भारतीय सिपाहियोँने महारानीकी आज्ञा माननेमेँ ज़रा भी कोताही की हो? मुसलमान सिपाहियोँको अफ़गानोँसे लड़ने भेज दो, वे महारानीके लिये अपने भाइयोँको भूल जावेँगे, अपने सहधर्मियोँको भूल जावेँगे और बहादुरीसे उनसे लड़ेँगे। हिन्दू सिपाहियोँको देशके बाहर जानेकी आज्ञा दो कभी नाहीँ नहीँ करेँगे। वे सुखसे महारानीकी आज्ञा मानकर जहाँ आज्ञा होगी वहाँ जाकर बहादुरीसे लड़ेँगे। फिर क्योँ हमारे इन भारतीय सिपाहियोँको फ़ौजके ऊँचे ओहदे नहीँ दिए जाते हैँ? इसका फल क्या होता है? यही कि पेन्शन और तनख़्वाहोँमेँ हमारे देशका अमूल्य धन प्रतिवर्ष बाहर जा रहा है। जो फ़ौजी विभागमेँ हमारी दशा है वही दशा मुल्की विभागमेँ है। कहाँ महारानीकी वह पवित्र घोषणा और कहाँ उनके नौकरोँ और प्रतिनिधियोँका यह काम? क्या घोषणाके अनुसार काम होना इसीको कहते हैँ? यह बहाना बनाकर कि कलक्टरी (सिविल सर्विस) की परीक्षा विलायत ही मेँ होगी, तुम भारतवासियोँको देशमेँ कलेक्टर और कमिश्नर बनने तथा देशके शासनमेँ

ऊँचे अोहदे पानेसे रोकते हो। तुम उन जगहोंपर भी भारतीयोंको नहीं रहने देते हो जिन्हें भारत-सचिवने भारतीयों ही के लिये अलग नियत किया है। मेरा तात्पर्य (अनकवीनेण्टेड् सर्विस) कलेक्टरके नीचेकी नौकरियोंसे है। तुम्हीं मजिस्ट्रेट और कलेक्टरों (कवीनेन्टेड् सर्विस) की भर्त्ती करनेवाले हो। जहाँ सौ की ज़रूरत होती है वहाँ तुम एक सौ पचास नौकर कर लेते हो। इसका फल यह होता है कि देशपर ऐसे आदमियोंकी तनख़्वाहका भार पड़ जाता है कि जिनकी नौकरीकी देशको ज़रूरत नहीं है। दूसरा फल यह होता है कि उन नौकरियोंपर, जो भारतवासियोंके लिये अलग की गई थीं वे ही नियुक्त कर दिए जाया करते हैं। उदाहरणके लिये चाहे जिस विभागको लीजिए—जङ्गल-विभाग, रेल-विभाग, जन-हित-विभाग (पी० डब्ल्यू० डी०) किसीमें भी यह चेष्टा नहीं की जाती कि भारतवासी लिए जायँ, न कोई इस बातकी ओर ही ध्यान देता है कि योग्य मनुष्य चाहे वह काला हो या गोरा, नौकर रक्खा जावे। उल्टे प्रयत्न यह किया जाता है—मुझे कहते हुए दुःख है—कि भारतवर्षमें अंग्रेज़ोंके लिये नई जगहें निकाली जायँ कि जिसमें वे स्वदेशसे भी अधिक ऊँची-ऊँची तनख़्वाहें यहाँ उड़ावें और बचत व पेन्शनें इङ्गलैण्ड ले जावें (हर्ष-ध्वनि)। कोई यह ख़याल न करे कि इन बातोंके कहनेमें मेरे हृदयमें किसी प्रकारके भी अंग्रेज़ोंकी प्रति अमित्रताके भाव हैं। मेरे हृदयमें अंग्रेज़ोंके लिये वैसा ही प्रेम व आदर और वैसी ही सहानुभूति है जैसी भारत-वासियोंके लिये। जो कुछ मैं कहता हूँ वह यही है कि तुम्हारे घरमें तो तुम्हारे भाई भूखकी महाकठिन व्यथाओंसे पीड़ित हों, और तुम दूरसे विदेशियोंको बुला उनके सुख-भोगकी सामग्री इकट्ठा करो। तुम कहते हो कि देश ग़रीब है। देश ग़रीब न हो तो हो क्या? मार्किस औफ़ सेलिस्बरीने स्वयं एक बार कहा था कि भारतवर्षकी अधिकांश आय, बदलेमें बिना कुछ लिये योंही विदेशको भेज दी जाती है। अन्य कई सज्जनोंने कहा है कि भारतवर्षकी बची हुई आय, अंग्रेज़ोंकी बचत और पेन्शनोंके रूपमें विलायत पहुँच जाती है। सिविल सर्विस (मजिस्ट्रेट, कलेक्टर, कमिश्नर, छोटे लाट इत्यादि) का सालाना ख़र्च एक सौ चालीस लाख रुपए हैं। इस रक़ममेंसे लगभग ३/४ अंग्रेज़ोंके हाथमें पहुँच जाती है और केवल १/४ भारतवासियोंके हाथ लगती है। फ़ौजमें जितनी अच्छी-अच्छी नौकरियाँ हैं, जो ऊँची तनख़्वाहोंके ओहदे हैं, वे सब अंग्रेज़ोंको सौंपे जाते हैं। ऐसा क्यों किया जाता है? इसलिये नहीं कि अंग्रेज़ भारतीयोंकी अपेक्षा अधिक बलवान अथवा योग्य होते हैं, इसलिये भी नहीं कि वे भारतीयोंकी अपेक्षा अधिक बहादुर होते हैं, वरन् इसलिये कि भारत-वासियोंकी अपेक्षा उनका रङ्ग अधिक गोरा होता है (धिक्कार)। फ़ौजी और मुल्की नौकरियोंमें मिलाकर लगभग डेढ़ करोड़ रुपया तनख़्वाह, पेन्शन, विलायतके ख़र्च (होम चार्जेज़) इत्यादिमें प्रतिवर्ष भारतवर्षसे विलायत चला जाता है और इस पूँजीके बदलेमें यहाँ आता कुछ भी नहीं। इसका परिणाम कई लोगोंने बड़ी योग्यताके साथ दिखलाया है। सन् १८८४ ई० के "फ़ोर्ट-नाइटली रिव्यू" में जे० विल्सन महोदयने इस विषयमें लिखा था कि "किसी-न-किसी भाँतिसे हम उस ग़रीब देशसे पैंतालीस करोड़ रुपया हरसाल ले लिया करते हैं। उस देशमें प्रत्येक मनुष्यकी औसत आमदनी पचास रुपया सालाना है" (वास्तवमें हम जानते हैं कि वह पचास रुपये भी नहीं है, केवल बीस या एक्कीस रुपये ही है)। इस प्रकार भारतवर्षसे हमें जो ख़िराजकी रक़म मिलती है वह लगभग हमारे दस करोड़ आदमियोंकी कुल कमाईके बराबर है। इसका अर्थ है कि भारतवर्षके भोजनका १/४ भाग हरसाल हम लोग ले लेते हैं।" मैं अब अधिक समय न लूँगा। जो कुछ मुझे कहना था मैं कह चुका। मेरे बाद आपके सामने जो सज्जन इस मञ्चपर खड़े होंगे वे इस विषयपर अधिक कहकर और भी अच्छी तरह समझा देंगे कि सरकार हमारे

देशवासियोंको सरकारी उच्च पदोंसे वञ्चित रखकर अन्याय ही नहीं कर रही है बल्कि भविष्यके लिये महानाशकारी नीतिका अवलम्बन कर रही है। सज्जनो! बिना प्रजाके किसी राज्यका अस्तित्त्व भी सम्भव नहीं है। प्रजाकी दिन-ब-दिन ग़रीबी बढ़ने दीजिए, राज्य ही मिट जायगा, या कम-से-कम उस राज्यको फिर राज्य तो कोई नहीं कह सकता। अबतक हमारी प्रार्थना बेकार ही हुई है। हम आशा करते हैं कि हमारी इस समयकी प्रार्थना बिल्कुल व्यर्थ न जायगी। यह सच है कि इसमें हमारा हित लगा है और इसीलिये हमने कटु और खरी बातें कही हैं। स्वार्थवालेके सिवाय और कौन ऐसी बातें कहेगा। जिसको चोट लगती है वही तो चिल्लाता है, न कि पास खड़े होनेवाले। हम अपने अंग्रेज़ भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि इस देशमें वे अपनेको अधिक युक्ति-सङ्गत, न्याय और बुद्धि-सङ्गत बनावें। वे उच्च और प्रतिष्ठित सिद्धान्तोंसे राज्य करें जिसका उन्हें सदैव गर्व रहा है और जिसके कारण वह आजकी गौरवपूर्ण दशाको पहुँचे हैं। केवल तभी भारतमें अंग्रेज़ी राज्य इङ्गलैण्डकी कीर्तिके अनुकूल होगा। इस विषयमें ब्राइट महोदयके शब्दोंको मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ। "आपको यह याद रखना होगा कि इस कुल विशाल जनताका अपने देशके प्रबन्धमें कोई हाथ नहीं है। जिस शक्तिने उसको अपने अधीन कर रक्खा है उसके सामने यह गूँगेके समान है। राज्यके किसी भी काममें उससे सलाह नहीं ली जाती। जिसका राज्य है उसीके वह आधीन है। संसारके किसी भी सभ्य इसाई देशमें ऐसा राज्य नहीं है।" अब अंग्रेज़ लोगोंको अपने इस कलङ्कको मिटानेमें तुरन्त ही प्रयत्नशील होना चाहिए। यह कलङ्क उस व्यक्तिका लगाया हुआ है जिसकी वे बहुत प्रतिष्ठा करते हैं, और तब हम अपने परस्पर सहयोग और परस्पर हितके लिये सदैव प्रसन्न होंगे।

(हर्ष-ध्वनि)

सरकारी नौकरियोंपर भारतवासियोंकी नियुक्ति

२८ दिसम्बर, सन् १८९२ ई० को प्रयागमें श्री उमेशचन्द्र बनर्जीके सभापतित्वमें हुई राष्ट्रीय महासभाके आठवें अधिवेशनके अवसरपर निम्नाङ्कित प्रस्तावका समर्थन करते हुए पूज्य मालवीयजीका भाषण। —सम्पादक।

प्रस्ताव

"पब्लिक सर्विस कमीशनकी रिपोर्टपर भारत-सरकारने जो प्रस्ताव किया है उसके प्रति यह कांग्रेस हार्दिक खेद प्रकट करती है, क्योंकि—

(अ) यदि पब्लिक सर्विस कमीशनकी सिफ़ारिशोंका हृदयसे पालन किया जाता, तो सन् १८६१ ई० के विधानकी तालिकामें दिए हुए स्थानोंके अलग होनेसे उनका एक सङ्घटित-विभाग बन जाता जो भारतवासियोंके लिये सुरक्षित रहता। भारत सरकारका प्रस्ताव उन सब स्थानोंको अलग रखता है जिनपर केवल सन् १८७० ई० के विधानके अनुसार ही नियुक्ति हो सकती है।

(आ) पब्लिक सर्विस कमीशनद्वारा प्रान्तीय सरकारोंमें १०८ स्थानोंकी सिफ़ारिश की गई थी, पर केवल ९३ स्थानों पर ही व्यक्ति नियुक्त किए गए हैं। (आसामके लिये स्थानोंकी संख्या अभी प्रकाशित नहीं हुई है।)

(इ) राजकरके बोर्डकी सदस्यता तथा डिवीज़नमें कमिश्नरकी नियुक्ति बङ्गाल तथा और प्रान्तोंके लिये स्वीकृत की गई थी, पर सरकारने उस प्रस्तावपर कोई ध्यान नहीं दिया।

(द) प्रान्तीय सिविल सर्विसके तिहाई सदस्योंको जज बनानेकी सिफ़ारिश की गई थी, जिसमेंसे अबतक केवल १/५ सदस्य ही जज बनाए जा सके हैं।"

सभापति महोदय तथा उपस्थित सज्जनो!

आवश्यकता तो नहीं है पर शिष्टता दिखाने तथा इस प्रस्तावका समर्थन करनेके लिये मैं प्रस्तुत हुआ हूँ क्योंकि पहलेकी कांग्रेसोंमें इस विषयपर काफ़ी कहा जा चुका है। फिर मेरे मित्र श्रीयुत गोखलेके स्पष्ट भाषणने इस प्रस्तावकी सारता भलीभाँति सिद्ध कर दी है जिससे मेरा भाषण सर्वथा अनावश्यक ही हो गया है। यदि आप पहली कांग्रेसोंमें किए गए वादविवादपर ध्यान दें तो आपको ज्ञात होगा कि पब्लिक सर्विस कमीशनके निर्णयके प्रति जो आपके हृदयमें भय था वह पूर्ण रूपसे आपके सामने आ गया है और हमारे लाभके लिये की हुई सिफ़ारिशोंमेंसे बहुत कम ही स्वीकृत की गई हैं (शर्म-शर्म)। ऐसा होना निस्सन्देह बड़ा खेदजनक है! हम भारतवासियोंको यह जानकर हार्दिक दुःख होता है कि पिछले तीस वर्षोंसे साधारण नौकरियोंमें उचित स्थान प्राप्त करनेके लिये आन्दोलन करनेपर भी हमें उन स्थानोंपर नियुक्त होनेका अब भी उचित तथा स्वतन्त्र क्षेत्र नहीं है, यद्यपि उन स्थानोंपर नियुक्त होनेका हमारा अधिकार भारतसम्राज्ञी तथा बृटिश पार्लियामेण्टने सच्चे हृदयसे स्वीकृत किया है। (हर्ष-ध्वनि) पार्लियामेण्टके विधानमें तथा महारानीकी घोषणामें भी यही बात कही गई है कि भारतवासियोंको स्वतन्त्र रूपसे उन स्थानोंपर नियुक्त किया जायगा जिनपर नियुक्त होनेके लिये वे अपनी ईमानदारी तथा योग्यतासे उपयुक्त समझे जायँगे। किन्तु व्यावहारिक रूपमें उनके अधिकार आखों देखते निर्लज्जताके साथ भुलाए जाते हैं और प्रत्येक ऊँचे पदपर योरोपवासी ही नियुक्त किए जाते हैं जिनके

लिये भारतवासी अपने चरित्र तथा योग्यताके कारण सर्वथा उपयुक्त हैं। (शर्म-शर्मकी आवाज़ और तुमुल हर्ष-ध्वनि) सज्जनो ! यह प्रश्न गम्भीर रूपसे विचारणीय है। यह ऐसा प्रश्न है जिसमें जनताके मुख्य हितोंपर आघात हो रहा है। साधारण स्थानोंपर अपने अधिक देशवासियोंकी नियुक्ति हम इसी लिये ही नहीं चाहते कि हम उन्हें वहाँ देखनेके इच्छुक हैं। यदि विदेशियोंको इन स्थानोंपर नियुक्त करके प्रतिवर्ष इतना धन न चला जाता (साधु-साधु) तो हम इस समस्यापर इस गम्भीरता तथा दुःखसे विचार न करते जैसा हम आज कर रहे हैं। (तुमुल हर्ष-ध्वनि) किन्तु यह निरन्तर धन-शोषण भारतवर्षको प्रतिवर्ष अधिकाधिक निर्धन बनाता जा रहा है और देशके प्रत्येक शुभ-चिन्तकका कर्त्तव्य है कि या तो वह चुप हो जाय या अपनी शक्तिके अनुसार विरोध करे। (हर्ष-ध्वनि)

मैं यह बताना आवश्यक नहीं समझता कि विदेशी योरोपियनके व्ययका भार भारतवासियोंपर कितना पड़ता है। किन्तु आपकी आज्ञासे मैं आपको इस रक्त-शोषणकी असलियत दिखलानेके लिये सन् १८८९-९० ई० में भारतवर्षमें नियुक्त कर्मचारियोंके वेतनका विवरण पार्लियामेण्टके कथनके आधारपर आपके सम्मुख रख रहा हूँ। ३१ मार्च, सन् १८९२ ई० में प्रकाशित पत्रसे मैं इसे यहाँ रख रहा हूँ। इस पत्रसे प्रकट होता है कि पाँच हज़ार रुपयेसे लेकर दस हज़ारतक वार्षिक वेतन पानेवालोंमें बारह सौ सात योरोपवासी, छानवे यूरेशियन तथा चार सौ इक्कीस भारतवासी थे और उनका वेतन कुल मिलाकर क्रमशः अट्ठासी लाख, छः लाख तथा उन्तीस लाख रुपये था। (मैंने भिन्नोंको सम्मिलित नहीं किया है) दस हज़ार रुपयेसे लेकर बीस हज़ारतक वार्षिक वेतन पानेवालोंमें सात सौ ग्यारह योरोपियन, आठ यूरेशियन, तथा पैंतालीस भारतीय थे और उनका वेतन कुल मिलाकर क्रमशः सत्तानवे लाख, एक लाख, तथा पाँच लाख था। बीस हज़ार रुपयेसे लेकर तीस हज़ार रुपयेतक वार्षिक वेतन पानेवालोंमें तीन सौ योरोपियन, दो यूरेशियन तथा चार भारतीय थे। उनका वेतन कुल मिलाकर क्रमशः बहत्तर लाख, छियालिस हज़ार रुपये तथा पञ्चानबे हज़ार रुपये था। यह संख्या शासन-विभागकी है। सेना तथा अन्य विभागोंका विवरण आपको देकर मैं आपको कष्ट देना नहीं चाहता यद्यपि वे भी मेरे पास हैं। वेतन रूपमें योरोपवासियों तथा भारतवासियोंको कुल मिलाकर सन् १८८९ ई० में कितना रुपया दिया गया, इसका विवरण मैं आपके सम्मुख रख रहा हूँ। एक हज़ार अथवा उससे ऊपर वेतनवाले पदोंपर ध्यान देनेसे हमें पता चलेगा कि योरोपवासियोंकी संख्या तेरह हज़ार एक सौ अठत्तर, यूरेशियनोंकी संख्या तीन हज़ार तीन सौ नौ, तथा भारतवासियोंकी संख्या ग्यारह हज़ार पाँच सौ चौवन थी। किन्तु उन सबका वेतन कुल मिलाकर क्रमशः आठ करोड़ सतहत्तर लाख चौदह हज़ार चार सौ एकतीस रुपये, बहत्तर लाख छानबे हज़ार छब्बीस रुपये तथा दो करोड़ पचपन लाख चौवन हज़ार तीन सौ तेरह रुपये था। अर्थात् योरोपवासियोंको लगभग नौ करोड़ रुपये मिले जब कि भारतवासियोंको केवल अढ़ाई करोड़ ही मिल सके। (साधु-साधु)

मेरा विचार है कि और अधिक आँकड़े आपके सम्मुख रखकर आपको कष्ट न दूँ, क्योंकि जो कुछ आपके सम्मुख रक्खा गया है उसीसे यह आप स्पष्ट रूपसे समझ गए होंगे। उनसे विदित होता है कि योरोपवासियोंको देशमें बहुत अधिक स्थान देकर भारतवर्षका अधिकांश धन लुटाया जा रहा है। यदि आप इन संख्याओंका विश्लेषण करेंगे और भिन्न-भिन्न विभागोंकी तालिकाओंपर ध्यान देंगे तथा सरकारी व्ययको सेना व्ययसे अलग करेंगे तो आप चकित रह जायँगे। उच्च वेतनवाले अधिकांश स्थान योरोपवासियोंके लिये सुरक्षित हैं जब कि देशवासियोंको अल्प वेतनवाले थोड़े ही स्थानोंपर नियुक्त किया जाता है। (शर्म-शर्मकी आवाज़)

देशकी बढ़ती हुई दरिद्रताके मूल कारणोंमेंसे यह एक है। देशकी दरिद्रताके विषयमें किसीको ज़रा भी सन्देह नहीं हो सकता। लार्ड डफ़रिनकी सरकारने भारतवासियोंकी दरिद्रताके सम्बन्धमें दिए गए विवरणोंपर सन्देह किया था और उन्होंने इसकी जाँच करनेके लिये एक समिति नियुक्त की थी जिसका विवरण अक्तूबर, सन् १८८८ ई० के प्रसिद्ध प्रस्तावमें सम्मिलित किया गया था। उस प्रस्तावमें कहा गया है कि 'देश घोर दरिद्र है' और उस कथनके सिद्ध होनेपर तथा यह ज्ञात होनेपर कि भारतवासियोंकी औसत आय प्रतिवर्ष दो पौण्ड है जब कि इङ्गलैण्डके प्रति मनुष्यकी औसत आय उन्तालीस पौण्ड है—मेरा विचार है कि कोई भी व्यक्ति एक क्षणके लिये यह सन्देह नहीं कर सकता कि भारतमें उच्च वेतनवाले स्थानोंमें योरोपवासियोंकी नियुक्ति देशके आर्थिक वैभवको एकदम चौपट कर देगी। (तुमुल हर्ष-ध्वनि)

मैं आपका अधिक समय नहीं लूँगा। मुझे आशा है कि वर्त्तमान नाशकारी अवस्था अधिक समयतक जीवित न रक्खी जायगी। (हर्ष-ध्वनि) किन्तु यदि ऐसी ही बात है तो मैं नहीं जानता कि इसके परिणाम क्या होंगे? योरोपवासी सरकारी कर्मचारी केवल थोड़े ही समयके लिये—बीस अथवा पच्चीस वर्षके लिये ही यहाँ आते हैं। अतएव उन्हें देशके शासनमें क्षणिक तथा परिमित रुचि होती है, किन्तु देशवासियोंको अच्छे या बुरे शासनके लिये दुःख उठाना पड़ता है। अतएव हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे देशपर मितव्ययितासे तथा अच्छे ढङ्गसे शासन करें और उसी ध्येयके लिये यह उपाय हम बतला रहे हैं कि वे शासनमें बाहरसे अधिक वेतनवाले कर्मचारीके बुलानेके बदले कम वेतनवाले स्वदेशी योग्य कार्य्य-कर्त्ताओंको अवसर दें। (हर्ष-ध्वनि) और मुझे पूर्ण आशा है कि वे इस सत्य तथा न्यायपूर्ण कथनको जल्दी-से-जल्दी स्वीकार करेंगे। (हर्ष-ध्वनि)

श्रीदादाभाई नौरोजीका ध्यान सन् १८५५ ई० से ही नौकरियोंके इस प्रश्नकी ओर आकर्षित होता रहा है, और वे इस बातके लिये चिन्तित हैं कि इस कांग्रेसको यह प्रस्ताव फिरसे स्वीकृत कर देना चाहिए कि जबतक भारतमें इङ्गलैण्डकी नाईं सिविल सर्विसकी परीक्षा नहीं होती तबतक भारतवासियोंके साथ पूरा न्याय नहीं होगा। हमारे इस सम्बन्धमें किए गए निर्णयके लिये वे बहुत अधिक उत्सुक हैं, क्योंकि उनका विचार इस प्रश्नको पार्लियामेण्टके सम्मुख लानेका है। आप जानते हैं कि श्रीदादाभाई नौरोजी इस प्रश्नको लेकर कई बार लड़े हैं। उनके परिश्रमसे ही सन् १८७० ई० का विधान स्वीकृत हुआ था। उस विधानसे उन्हें आशा तो बहुत थी किन्तु उस विधानकी उत्तमता अधिकारी नियुक्त करनेके ढङ्गने नष्ट कर दी। हमने भी क़ानूनद्वारा निरूपित नौकरियोंकी शिकायत की थी। इसलिये नहीं कि वह क़ानूनसे निरूपित थीं, अपितु इसलिये कि सरकारने इस सम्बन्धमें अपने विवेकका दुरुपयोग किया था। हमारा कहना था कि समकालिक परीक्षाएँ भारत तथा इङ्गलैण्ड दोनों देशोंमें होनी चाहिएँ, परन्तु हमें यह आशा न थी कि वह सुविधा तो होगी ही नहीं, साथ ही क़ानूनसे निरूपित नौकरियोंका भी एक प्रकारसे अन्त ही कर दिया जायगा। किन्तु जब हमने इससे भी अच्छी बातोंके लिये प्रार्थना की तो जो कुछ हमारे हाथमें था वह भी छीन लिया गया। यह न्याय है हमारे शासकोंका। (शर्म! शर्म! की आवाज़ें)। यह बात स्पष्ट रूपसे सिद्ध हो जाती है कि जबतक हमारे देशमें तथा इङ्गलैण्डमें समकालिक परीक्षाएँ प्रारम्भ नहीं होतीं तबतक इस बातकी कल्पना करना, कि हमारे देशी भाई उन स्थानोंपर अधिकाधिक संख्यामें नियुक्त किए जायँगे, कोरा भ्रम है। हमारी प्रार्थना तो केवल यही है कि समकालिक परीक्षाएँ इङ्गलैण्ड तथा भारतवर्ष दोनों स्थानोंमें होनी चाहिएँ यद्यपि जैसा श्रीदादाभाई नौरोजीने पहली कांग्रेसके अवसरपर कहा था कि

ठीक बात तो यह होगी कि सिविल सर्विसकी परीक्षा केवल भारत ही मेँ होनी चाहिए। (हर्ष-ध्वनि) क्योँकि जो व्यक्ति भारतीय सिविल सर्विसमेँ भर्त्ती होना चाहते हैँ उन्हेँ भारतमेँ आकर इस प्रतियोगितामेँ भाग लेना चाहिए। (हर्ष-ध्वनि) यह बात एकदम अन्यायपूर्ण है कि इस देशके युवक अपने देशमेँ नौकरी करनेके लिये परीक्षा पास करने दस हज़ार मील देशसे बाहर भेजे जायँ। (तुमुल हर्ष-ध्वनि) किसी अन्य देशकी प्रजाको ऐसी भयङ्कर हानि सहन नहीँ करनी पड़ती। क्या हमेँ इस स्थितिमेँ इसी लिये रहना चाहिए कि हम अंग्रेज़ जैसी बलवान जातिकी प्रजा हैँ? (तुमुल हर्षध्वनि) इङ्गलैण्डके पास अपार बल है, किन्तु उस शक्तिका प्रयोग उसे ऐसी जातिके विरुद्ध न करना चाहिए जो ईश्वरद्वारा उनकी संरक्षतामेँ रक्खी गई है किन्तु अपनी शिष्टतासे हमेँ उत्साहित करना चाहिए और देखना चाहिए कि हमपर सिद्धान्तोँका ही राज्य न हो, अपितु व्यावहारिक रूपसे हमपर शासन हो तथा वह शासन अच्छी शासन-पद्धति तथा न्यायके उन शिष्ट सिद्धान्तोँके आधारपर हो जो वहाँके प्रतिष्ठित राजाओँ तथा राजनीतिक नेताओँद्वारा इसी उद्देशके लिये निर्धारित किए गए हैँ और जिनकी संरक्षतामेँ वह अपना शासन-प्रबन्ध भी करता है। (हर्ष-ध्वनि) हम न्याय चाहते हैँ, पक्षपात नहीँ चाहते।

(तुमुल तथा देरतक हर्ष-ध्वनि)

भारतवासियोंके महान् कष्ट

२७ दिसम्बर, सन् १८९३ ई० मेँ लाहौरमेँ हुई श्री दादाभाई नौरोजीके सभापतित्त्वमेँ भारतीय राष्ट्रीय महासभाके ९ वेँ अधिवेशनमेँ निम्न प्रस्ताव उपस्थित करते समय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण :—

—सम्पादक।

प्रस्ताव

"यह राष्ट्रीय महासभा अपने पहले अधिवेशनोंके निश्चयको मानते हुए निश्चयपूर्वक कहती है कि पूरे पाँच करोड़ देशवासी, जिनकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है, भूखे रहकर अत्यन्त कष्टमय जीवन बिता रहे हैँ और प्रति दशकमेँ आधे करोड़से ज़्यादा भोजन न मिलनेसे भूखे रहकर मर जाते हैँ, और यह कांग्रेस नम्रतापूर्वक एक बार फिर ज़ोर देकर अनुरोध करती है कि इस दुःखपूर्ण दशाको सुधारनेका तुरन्त उपचार किया जाय।"

सभापति महोदय और प्रतिनिधि भाइयो!

आह भरे हुए हृदयसे मैँ इस प्रस्तावको पेश करनेके लिये उठा हूँ। यह अत्यन्त खेदकी बात है कि इस प्रकारका प्रस्ताव हमेँ हर साल पास करना होता है, किन्तु हमेँ यह दिलासा कभी नहीँ मिलता जिससे हम कह सकेँ कि सरकारने उसपर हृदयसे ध्यान दिया है। यह बड़े दुःखकी बात है, क्योँकि सब प्रकारकी मुसीबतेँ, जिनसे हमारे देशवासी दबे हुए हैँ, जो सब प्रकारके कष्ट उन्हेँ सहने पड़ते हैँ, उनमेँ ग़रीबीका सवाल सबसे कष्टकर है। इस कारण यह आशा की जाती है कि सरकार उन कष्टोँको दूर करनेका उपाय करेगी जिनकी ओर इस देशके श्रेष्ठ विचारक हर साल सरकारका ध्यान खीँचते हैँ। सज्जनो! जैसा कि मैँ कह चुका हूँ, यह कितना खेदका विषय है कि इस प्रस्तावको फिर एक बार और हमेँ पेश करना पड़ रहा है। सन् १८८५ ई० मेँ राष्ट्रीय महासभाके प्रथम अधिवेशन बम्बईमेँ ही इस विषयकी ओर सरकारका ध्यान आकृष्ट किया गया था। फिर एक बार सन् १८८६ ई० मेँ, जब हम प्रथम बार कलकत्तेमेँ मिले, इस विषयपर अधिक गम्भीरताके साथ विचार हुआ था और हमने सरकारसे इसपर जाँच कमेटी नियुक्त करनेका अनुरोध किया, और बढ़ती हुई ग़रीबीको रोकनेके उपायोँपर ज़ोर दिया।

यद्यपि नौ साल बीत चुके, फिर भी सरकारने उसको सुधारनेका कोई उपाय अभीतक नहीँ किया है। सरकारने इस विषयकी सन् १८८८ ई० मेँ एक गुप्त जाँच कमेटी बना दी जिसका उद्देश लोगोँके कष्ट दूर करनेका नहीँ था बल्कि जिससे उनका शिकायत करना बन्द हो जाय और यह भी कहनेको हो जाय कि ग़रीबीकी जो शिकायत की गई है वह यथार्थ नहीँ है, केवल कल्पना है। सरकारने जो रिपोर्ट प्रकाशित कराई उसका स्पष्ट अर्थ सन् १८८८ ई० के २४ वीँ अक्टूबरके प्रस्तावकी शिकायतको दबा देना था। किन्तु यदि सरकार गुप्त रूपसे जाँच कराए, किसीका बयान न माँगे और न ले, और

रिपोर्टोँ तथा प्रस्तावोँको जनताकी आँखोँमेँ धूल डालनेके लिये उनके सरपर फेँके तब यदि जनता उसका विश्वास न करे और सरकारकी निर्दयतापूर्ण उपेक्षाकी शिकायत करे तो इसमेँ किसका दोष है? यदि हमको बार-बार अंग्रेजोँसे प्रार्थना करनी पड़े, जो देशका शासन करने यहाँ आए हैँ, जिन्होँने इङ्गलैण्डमेँ हमारे देशका उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले रक्खा है तो इसमेँ दोष किसका है? यदि इस देशमेँ न्याय पानेके लिये हमको बार-बार प्रार्थना करनी पड़े तो इसका दोषभागी कौन है? हालमेँ इङ्गलैण्डकी साधारण सभामेँ यह प्रस्ताव पेश किया गया कि इस शिकायतकी जाँचके लिये शाही कमीशनकी नियुक्ति होनी चाहिए। जो जाँच करानेके विरुद्ध थे उन लोगोँने यह कहा कि माननीय सज्जनने, जो इस परिषद्के सभापति हैँ, ग़रीबीके पर्य्याप्त प्रमाण नहीँ दिए। इसका उचित उत्तर सभापतिने यह दिया कि अगर वे देखनेको राज़ी नहीँ हैँ तब हम उनको कैसे दिखा सकते हैँ? गत वर्ष और इस वर्ष भी आँकड़े उपस्थित किए गए हैँ। इसलिये अब इसमेँ सन्देहके लिये कोई स्थान नहीँ रहा कि ग़रीबी बढ़ रही है, बढ़ती जा रही है और अधिक बढ़ती जायगी जबतक इसको रोकनेका कोई उपाय नहीँ किया जायगा। जो कुछ उनसे कहा गया है यदि वे उसकी उपेक्षा करेँ तो वे यह कहनेके अधिकारी नहीँ हैँ कि हमने उन्हेँ प्रमाण नहीँ दिए। वे कहते हैँ कि उन्होँने पवित्र उत्तरदायित्वके भावसे प्रेरित होकर इस देशके करोड़ोँकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया है। जब आपको यह मालूम होता है कि वे भारतीय प्रश्नोँपर कितना कम ध्यान देते हैँ, और सबसे गम्भीर प्रश्नोँतकको किस उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैँ तब आपको सन्देह होने लगता है कि मनुष्य और ईश्वरके प्रति अपने उत्तरदायित्वका वे अनुभव नहीँ करते क्योँकि अन्याय, दुःख और दर्द इनके शासनमेँ बढ़ रहा है। इन्होँने हमसे ग़रीबीका प्रमाण माँगा है। इसे देखनेके लिये क्या वे हमारे साथ चलनेका कष्ट करेँगे। यदि उनको ईश्वरमेँ विश्वास है कि इस देशके दायित्वका हिसाब उन्हेँ ईश्वरके सामने देना होगा, तो उनको जीवनमेँ एक बार इस देशमेँ अवश्य आना चाहिए, और गाँव-गाँवमेँ जाकर, नगर-नगरमेँ घूमकर, उन्हेँ यह देखना चाहिए कि लोग कैसा कष्टमय जीवन बिता रहे हैँ। उन्हेँ यहाँ आकर जनतासे पूछना चाहिए कि ग़दरसे पहले यह देश कैसा था? अब वे जुलाहे कहाँ हैँ? वे कारीगर कहाँ हैँ जो अनेक प्रकारके व्यवसाय और उद्योग-धन्धेसे अपनी गुज़र करते थे? वे देशी बनी वस्तुएँ कहाँ हैँ जो हर साल अधिकाधिक परिमाणमेँ इङ्गलैण्ड तथा विदेशोँको जाती थीँ? वह सब अतीतकी बात हो गई है। यहाँ बैठे हुए सभी लोग विलायती वस्त्र पहने हैँ। और जहाँ कहीँ आप जाइए आपको विलायतकी बनी चीज़ेँ और विलायती सामान आपकी ओर घूरते नज़र पड़ेँगे। अब जो कुछ बचा खुचा है अकेला खेती करना यहाँ वालोँके लिये रह गया है जिसके सहारे बहुत थोड़ेमेँ गुज़र करके कष्टमय जीवन बिता रहे हैँ। नौकरियोँ तथा अन्य पेशोँमेँ हमारे देशके लोग पचास वर्ष पहले जो लाभ उठाते थे उसका एक सौवाँ भाग भी अब उनको नहीँ मिलता। तब देश किस तरह सुखी रह सकता है? यह कैसे आश्चर्य्यकी बात है कि देश जितना बताया जाता है उतनी ग़रीबीकी हालतमेँ नहीँ है? अपने विरोधियोँको देनेके लिये दो ही प्रकारके प्रमाण हो सकते हैँ। एक तो प्रत्यक्ष आँखोँसे देखनेका जिसे देखने और प्रमाण लेनेके लिये हम उन्हेँ बुलाते हैँ, दूसरा अप्रत्यक्ष प्रमाण है जो उन लोगोँका दिया हुआ है जो इस देशमेँ निवास कर चुके हैँ और लोगोँके रहन-सहनको जानते हैँ। इस प्रकारका कोई भी प्रमाण मैँ आपको देनेको तैयार हूँ, और उन मनुष्योँके बयान देता हूँ जिनकी सत्यतामेँ सन्देह करनेका कोई साहस नहीँ कर सकता। प्रथम मैँ इधर ध्यान खीँचता हूँ जो सन् १८५३ ई० मेँ जौन ब्राइट महोदयने भारतके सम्बन्धमेँ ज़िक्र करते हुए विलायतकी

साधारण सभामेँ कहा था, कि "भारत-वासियोँकी शिकायतेँ मेरी समझमेँ यह हैँ कि सारे प्रान्तोँमेँ और विशेषकर उन प्रान्तोँमेँ जहाँ अँग्रेज़ी राज बहुत समयसे है देशके किसान जो बहुत अधिक संख्यामेँ हैँ, बड़ी ग़रीबी दशामेँ हैँ।" बादको सन् १८६४ ई० मेँ लार्ड लैरेन्सने कहा था, "सभी दृष्टिसे भारतवर्ष एक अत्यन्त ग़रीब देश है। अधिक जनता बहुत थोड़ेसे ही गुज़र करती है।" सन् १८७३ ई० मेँ उन्होँने फिर कहा था, "अधिकांश लोग इतनी बुरी ग़रीबीमेँ हैँ कि उनका सिर्फ़ गुज़ारा भी कठिनतासे होता है।" सन् १८६८-६९ ई० मेँ मद्रासमेँ तत्कालीन कृषि-विभागके प्रधान डब्ल्यू० आर० रौबर्टसन महोदयने कहा, "भारतवर्षके किसान मज़दूरोँकी दशा किसी भी सभ्य कहलानेवाले देशके लिये लज्जाजनक है" सर औकलैण्ड कौलविनने सन् १८८५ ई० मेँ लाइसेन्स टैक्स संशोधन बिलपर भाषण करते हुए कहा था, "अधिकांश भारतीय ऐसे लोग हैँ जिनकी गाढ़ी कमाई शायद ही जीवन-रक्षाके लिये पूरी होती हो, यद्यपि बहुत थोड़ेमेँ ही वे अपना गुज़ारा कर लेते हैँ।" सन् १८८२ ई० मेँ इस देशके अर्थ-सचिवकी हैसियतसे सर ईवलियन बैरिङ्गने कहा था, कि "आँकड़ोँसे मालूम हुआ है कि भारतीयोँकी सालाना औसत आय सत्ताइस रुपयेसे अधिक नहीँ; और यद्यपि इस अङ्ककी सत्यताके लिये मैँ वचन-बद्ध होना नहीँ चाहता किन्तु निर्णयके लिये काफ़ी प्रमाण हैँ कि टैक्स देनेवाली जनता अत्यन्त निर्धन है। इतनी ग़रीब प्रजासे बहुत अधिक बढ़ाकर मालगुज़ारी वसूल करना स्पष्टतया असम्भव है और यदि सम्भव भी हो तो यह घोर अन्याय है।" फिर बजट विवादके सिलसिलेमेँ उन्होँने कहा,—"किन्तु मेरी समझसे भारतीयोँकी घोर दरिद्रता दिखलाना ही पर्य्याप्त है। इङ्गलैण्डमेँ लोगोँकी औसत आमदनी चार सौ पञ्चानबे रुपये (तेँतीस पौण्ड) और अब इकतालीस पौण्ड है, फ़्रान्समेँ तीन सौ पैँतालीस रुपये (तेइस पौण्ड है)। सारे योरोपमेँ सबसे निर्धन देश टर्कीकी औसत आय प्रति मनुष्य साठ रुपया (चार पौण्ड) है। माननीय सदस्योँसे मैँ पूछना चाहता हूँ कि सत्ताईस रुपये सालानाकी आय एक व्यक्तिके निर्वाहके लिये क्या चीज़ है? और फिर इतनी निर्धन जनताके लिये कुछ आने क्या कोई चीज़ नहीँ है?" आगे चलकर सन् १८८८ ई० मेँ आप जानते हैँ कि भारत-सरकारने अप्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार करते हुए कहा कि "यह सिद्ध करनेके लिये अनेक प्रमाण हैँ कि भारतके सब भागोँमेँ बहुतसे ऐसे हैँ जो बड़े कष्टसे अपना पेट भरते हैँ और सदा ऋणी रहते हैँ। इनकी बचत भी कुछ नहीँ है। बीमारी तथा जाड़े-पालेके लिये कुछ भी नहीँ बचा पाते"। और प्रमाण देना अनावश्यक है। जो व्यक्ति असली प्रमाण जानना चाहेँ वे हमारे आदरणीय अध्यक्षके उस महत्त्वपूर्ण निबन्धको पढ़ेँ जो पूना सार्वजनिक सभाने प्रकाशित किया है और जिसमेँ देशकी दशाका स्पष्ट और वास्तविक रूप वर्णित है। यह बहाना करना व्यर्थ है कि हमारे प्रसिद्ध अध्यक्षने प्रमाण नहीँ उपस्थित किए हैँ क्योँकि सरकारी काग़ज़ातसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि देशमेँ अत्यन्त दरिद्रता है और सरकार उसके लिये तनिक भी उद्योग नहीँ कर रही है, अथवा निर्धनताके दूर करने और उसको रोकनेके लिये तनिक भी प्रयत्न नहीँ करती। इस प्रस्तावद्वारा मैँ आपसे यह कहलाना चाहता हूँ कि पूरे पाँच करोड़ भारतीय कष्टमय जीवन बिता रहे हैँ जिनकी भूखोँ मरनेकी नौबत आ गई है। यह बड़ी गम्भीर बात है लेकिन मैँ इसपर आपको स्वीकृति देने की प्रार्थना करनेका साहस करता हूँ, क्योँकि इससे देशके दारिद्र्यका पूर्णतः अनुमान नहीँ होता क्योँकि इसमेँ संख्या कम ही बताई गई है। आप मेरे इस कथनके लिये प्रमाण माँगेँगे। आप स्वयं अपने अनुभवसे ही पूछ सकते हैँ, किन्तु यदि आप सीधा प्रमाण चाहते होँ तो सर चार्ल्स ईलियट् और सर विलियम हण्टरके प्रमाण उपस्थित हैँ। सर विलियम हण्टरका कथन

है कि "प्रजाका शेष पञ्चम भाग अर्थात् चार करोड़ व्यक्ति जीवनपर्यन्त आधा पेट रहते हैं।" और सर चार्ल्स ईलियट् कहते हैं कि "मुझे यह कहनेमें सङ्कोच नहीं होता कि हमारे किसानोंमें आधे ऐसे हैं जिनको वर्षों सालके आदिसे अन्ततक किसी दिन भी यह नहीं पता होता कि भूख बुझाना किसे कहते हैं?" शासकगण इन शब्दोंपर विचार करें और अपने हृदयसे पूछें कि वे ईश्वरके सामने कौन मुँह लेकर जायँगे? सरकारके इन कर्मचारियोंके सब वक्तव्योंको मैं स्वीकार करता हूँ और मैं पूछता हूँ कि सरकार इस बुराईको दूर करनेके लिये कोई प्रबन्ध क्यों नहीं करती? हम कहते हैं कि करोड़ों व्यक्ति भूखकी ज्वालासे मरते जा रहे हैं। अनेक आँकड़े उद्धृत करके आपको थकाना मैं अनुचित समझता हूँ किन्तु इस बातको प्रमाणित करनेके लिये ये आँकड़े देता हूँ। सन् १७९३ से १८८० ई० तक समस्त संसारमें युद्धके कारण जो प्राण-हानियाँ हुईं वे पैंतालीस लाख थीं। गत वर्षोंमें केवल ज्वरसे भारतमें तैंतालीस लाख उञ्चास हजार नौ सौ बाईस मृत्यु हुईं। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि हमारे करोड़ों देशवासी भूखकी ज्वालासे कालकवलित होते हैं और क्या आपने शासकोंसे इसपर उचित विचार करनेके लिये प्रार्थना करनेमें हम कोई अनुचित बात कर रहे हैं कि इस विपत्तिके उग्र और गम्भीर रूप धारण करनेसे पूर्व ही वे कोई उपाय कर लें?

(तुमुल हर्षध्वनि)

व्यय-सम्बन्धी कमीशन

२७ दिसम्बर, सन् १८९५ ई०को स्वर्गीय श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जीकी अध्यक्षतामें पूनामें होनेवाली राष्ट्रीय महासभाके ग्यारहवें अधिवेशनमें निम्नाङ्कित प्रस्तावका समर्थन करते हुए पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण :—

—सम्पादक।

प्रस्तावः—

"इस कांग्रेसकी सम्मतिमें 'व्यय-सम्बन्धी कमीशन' की जाँच न तो इस देशके निवासियोंके लिये ही सन्तोषजनक होगी और न तो यह सरकारके ही प्रयोगके लिये लाभकारी होगी, जबतक कि इस जाँचकी नीतिको न परखा जाय और जबतक सुविधाएँ न दी जायँ और जबतक सरकारी और एँग्लो इण्डियनों के बयान लेनेके अतिरिक्त अन्य लोगोंके बयान लेनेका प्रबन्ध नहीं होता ; और यह कांग्रेस इसका भी अनुभव करती है कि यदि जाँचकी कार्रवाई बन्द कमरेकी अपेक्षा खुली तौरसे हो तो सम्भवतः जाँचका परिणाम अधिक सुन्दर हो।"

अध्यक्ष महोदय, और प्रतिनिधि बन्धुओ !

इस प्रस्तावके समर्थनका अप्रिय कार्य्य करनेका भार मुझे सौंपा गया है जिसके प्रस्तावक श्रीबैकुण्ठनाथने और अनुमोदकने अभी भाषण समाप्तकर स्थान ग्रहण किया है और जिन्होंने बड़ी उत्तमतासे अपना कार्य्य कियाहै। सज्जनो ! जब महारानी विक्टोरियाने इस देशके शासनका प्रत्यक्ष भार अपने ऊपर लिया था (हर्ष-ध्वनि) तब इस अवसरपर हमने हर्ष प्रकट किया था। हमने इस कारणसे हर्ष प्रकट किया था कि हमारा शासन उस देशके शासकके हाथमें रक्खा गया है, जिसे स्वतन्त्र कहलानेका गर्व प्राप्त है और जिसकी बराबरी करनेका कोई अन्य देश दावा नहीं कर सकता। हम इसलिये प्रसन्न हुए कि हमने समझा था कि बृटिश शासनका प्रारम्भिक स्वरूप चाहे जो कुछ रहा हो किन्तु महारानीकी प्रजा बननेपर सभी पुरानी अप्रिय स्मृतियाँ विलीन हो गईं और हम ग्रेट बृटेन और आयर्लैण्डकी प्रजाकी बरावरीका दावा कर सके। (हर्ष-ध्वनि) हमने इसलिये भी प्रसन्नता प्रकट की थी कि हमें अनुभव और विश्वास हुआ था कि जिस अंग्रेज़ जातिने शताब्दियोंतक अपने विधानात्मक युद्धमें संलग्न होकर 'प्रजासत्तात्मक' सरकारकी स्थापना की है वह अपने देशमें अपना अस्तित्त्व सुदृढ़ बनाकर, इस देशमें भी उसी पद्धतिपर शासन-व्यवस्था स्थापित करनेमें सङ्कोच न करेगा जिससे प्रजाकी आर्थिक दशा सुधरे। अस्तु, सज्जनो ! यह सोचकर मैं दुखी हूँ कि भारत और इङ्गलैण्डमें हमपर शासन करनेवाली नौकरशाहीने हमें समय-समयपर यह सन्देह करनेके लिये बाध्य किया है कि ऐसे अवसरपर हमारा हर्ष प्रकट करना उचित था या नहीं और क्यों ? क्योंकि महारानी विक्टोरियाके शासनसूत्र ग्रहण करनेके पूर्व भारतीय प्रश्नोंपर अबकी अपेक्षा बहुत ही ध्यान दिया जाता था और उनकी यह प्रबल इच्छा रहती थी कि जहाँतक हो सके कोई अन्याय न होने पावे, और भारतीय जनताके हितकी भली भाँति रक्षा और उनकी उन्नति

होती रहे। सन् १७७३ ई० मेँ, जब ईस्ट इण्डिया कम्पनीने अपने अधिकार-पत्रके जीर्णोद्धारकी प्रार्थना की तब पार्लियामेण्टकी ओरसे एक कमेटी कम्पनीके शासनकी जाँचके लिये नियुक्त की गई थी। इस जाँचके बाद सन् १७९३ ई० मेँ दूसरी जाँच कमेटी नियुक्त की गई और इसके पश्चात् हर बीसवेँ वर्ष एक जाँच कमेटीकी नियुक्ति होने लगी। यह कार्रवाई तबतक जारी रही जबतक भारतका शासनसूत्र कम्पनीके हाथसे सरकारके हाथोँमेँ नहीँ आया। इन सब जाँचोँके फलस्वरूप आवश्यक सुधार जारी किए गए, क्योँकि इस जाँचसे गत बीस वर्षतक शासनमेँ जो दोष रहे उसका उद्घाटन हो गया। जबसे महारानीने इस देशका शासनसूत्र अपने हाथमेँ लिया तबसे ऐसी कोई भी जाँच कमेटी नहीँ नियुक्त हुई। (धिक्कार, शर्म)

हम बहुत दिनोँसे इसके लिये चिल्ला रहे हैँ, अपने सामर्थ्यभर चिल्ला रहे हैँ, उत्सुकतापूर्वक चिल्ला रहे हैँ, किन्तु मुझे यह कहते दुःख होता है कि अभीतक महारानी विक्टोरियाकी सरकारके शासनकी पूर्ण जाँचके लिये अवसर नहीँ दिया गया, जिससे शासनमेँ आए हुए दुर्गुणोँका मार्जन हो जाता और यह मार्जन या संशोधन सरकार तथा प्रजा दोनोँके हितकी दृष्टिसे आवश्यक है। ऐसी जाँचकी आवश्यकताका बहुत पहलेसे अनुभव किया गया था। कांग्रेसके प्रथम अधिवेशनमेँ जब हम बम्बईमेँ एकत्र हुए थे उसमेँ पहला ही प्रस्ताव यह था कि देशकी शासन-व्यवस्थाकी जाँच करानेके लिये शाही कमीशनकी नियुक्ति की जाय। सन् १८८६ ई० मेँ हमेँ यह जानकर सन्तोष हुआ कि शाही कमीशनकी नियुक्तिका वचन दिया गया। मैँ समझता हूँ कि उस समय शासक पदपर लार्ड रेण्डौल्फ़ चर्चिल थे। राज्यसिंहासनसे जो घोषणा हुई थी उसमेँ हमेँ आशा हुई थी कि कमीशनकी नियुक्ति होगी। किन्तु वर्षके बाद वर्ष बीतते चले गए, पर किसी कमीशनकी नियुक्ति नहीँ हुई। पार्लियामेण्टमेँ हमारे मित्रोँने जब-जब अवसर पाया तब-तब उक्त कमीशनकी नियुक्तिके लिये ज़ोर दिया और सभी सम्भव उपाय किए किन्तु अभाग्यवश वे भी सफल न हो सके। और वे क्योँ नहीँ सफल हुए? क्योँकि मुझे मालूम होता है, सज्जनो! और यह एक सबल कारण है कि अंग्रेज़ जातिको हमारे हितोँका वैसा ध्यान नहीँ जैसा वह अपने हितोँमेँ रखती है (हर्ष-ध्वनि)। यह एक ध्रुव सत्य है कि वे अपने हितमेँ बहुत अधिक तल्लीन हैँ, इतने तल्लीन हैँ कि ये इस देशकी बातोँपर उचित विचार करनेके अयोग्य हो गए हैँ। किन्तु क्या इस कारण हमारे अंग्रेज़ भाई इस सम्बन्धमेँ दोषके भागी नहीँ हैँ? हमने उनसे निवेदन किया है कि वे हमको अपने मामलोँपर विचार करनेकी सुविधा प्रदान करेँ। हमने इनसे व्यवस्थापिका सभामेँ स्थान पानेकी प्रार्थना की थी, हमने घरेलू सभी प्रश्नोँपर विचार करनेका अधिकार माँगा था, जो सरकारके हितके लिये भी आवश्यक है कि उनपर जनताके प्रतिनिधि विचार करेँ, किन्तु सरकारने हमको सुधार प्रदान करना अस्वीकार कर दिया है। इन कौन्सिलोँके सम्बन्धमेँ इन्होँने नाममात्रके सुधार प्रदान किए हैँ। किन्तु देशके व्ययके सम्बन्धमेँ तो कौन्सिलेँ पहलेकी ही तरह असहाय अवस्थामेँ पड़ी हैँ। (हर्ष-ध्वनि) हमारी कौन्सिलेँ आज भी वैसी ही हैँ जैसी ये अपने जन्मकालके समय थीँ। इन कौन्सिलोँसे जनता तो यह समझती और विश्वास करती है कि इन्हेँ अपने देशके शासनमेँ अधिकार प्राप्त हैँ, किन्तु सच पूछो तो उनकी वहाँ कोई भी सुनवाई नहीँ है। (हर्ष-ध्वनि) सज्जनो! शेक्सपियरने कहा है कि दैत्यका बल होना अच्छा है किन्तु दैत्यके समान उसका प्रयोग करना अन्याय है। हमारी प्रार्थनाको अस्वीकृत कर देनेका इङ्गलैण्डको पूर्ण अधिकार है, किन्तु उसको अपनी शक्तिका दुरुपयोग नहीँ करना चाहिए। उनसे हमारा यही कहना है कि यदि हमारी प्रार्थना न्यायसङ्गत हो तो स्वीकार कीजिए, यदि नहीँ तो कृपया बता दीजिए कि

वह क्यों न्यायसङ्गत नहीं है ? (हर्ष-ध्वनि) यदि आप हमको अपने शासनके अयोग्य समझते हैं; यदि आप यह समझते हैं कि हम अपने आर्थिक प्रश्नको समझनेमें असमर्थ हैं कि अपने साधनोंका विचार करते हुए हम कितना व्यय कर सकते हैं और कितना नहीं कर सकते; यदि यह समझनेके हम अयोग्य हैं, यदि आप अपनेको ही इस विषयमें सर्वोच्च निर्णायक मानते हैं तो मेरी प्रार्थना है कि इन विषयोंपर कुछ समझ और ध्यान लगाकर विचार कीजिए। यदि ऐसा करनेके लिये आपके पास समय नहीं है तो हमारी प्रार्थना है कि हमको ही इस विषयपर विचार करनेकी अनुमति दीजिए। आप यदि हमारे प्रश्नपर ध्यान दे सकनेमें असमर्थ हैं तो आप हमें क्यों कष्ट भुगतनेके लिये बाध्य करते हैं। यही नहीं बल्कि हमें उन विषयोंपर भी ध्यान नहीं देने देते और हमें वे कार्य्य नहीं करने देते जिसे करनेके लिये हम अत्यन्त उत्सुक हैं। हमें ऐसा अवसर देकर आप केवल हमारा ही लाभ न करेंगे बल्कि इससे सरकारको भी लाभ होगा। (हर्ष-ध्वनि)

सज्जनो ! मैं मानता हूँ कि मैंने बड़े कड़े शब्द कह डाले हैं, किन्तु मेरे हृदयमें इसकी बड़ी पीड़ा है। हम विश्वास करते हैं कि वर्त्तमान शासन-व्यवस्था हमारे देशवासियोंके लिये बड़ी महँगी है। ये इस वहुव्ययसाध्य शासन-व्यवस्थाके कारण अधिकतर निर्धन होते जा रहे हैं। हम यह चाहते हैं कि व्ययमें कमी की जाय। हमारी प्रार्थना थी कि इस विषयकी जाँचके लिये एक कमीशन नियुक्त हो किन्तु हमारी प्रार्थना अनसुनी कर दी गई। अस्तु ! जब सरकारपर बहुत दबाव डाला गया तो उन्होंने एक व्यय-निरीक्षण-समिति नियुक्त की और जनताकी दशा जाननेके लिये गुप्त जाँच आरम्भ कर दी। यह सब कृत्य लार्ड डफ़रिनके शासन-कालमें हुआ। किन्तु इतनेपर भी सरकारने समस्त शासन-व्यवस्थाकी जाँचके लिये व्यापक और विस्तृत जाँचका प्रबन्ध नहीं किया, जिसके लिये हमने प्रार्थना की थी और जो हमारी दशाके सुधारके लिये आवश्यक थी। अव अन्तमें सरकारने कमीशनकी नियुक्ति की भी तो उसके अधिकार अति सङ्कुचित वनाकर उन्होंने इसकी उपादेयता ही नष्ट कर दी। हम कमीशनसे क्यों असन्तुष्ट हैं ? पहला कारण तो यह है कि ये कमीशन, भारतके लिये जो व्यय हुआ है उसके औचित्यमात्रकी जाँच करेगा, किन्तु यह व्यय क्यों हुआ है, इसपर कुछ विचार न होगा। दूसरे, कमीशन वयान लेनेके लिये यहाँ नहीं आ रहा है। ज़रा विचार तो कीजिए कि जव अफ़ीमपर कर लगनेकी बात थी तो उसकी जाँचके लिये शाही कमीशन नियुक्त हुआ था, तव भी कमीशन यहाँ आया था और उसने वयान लिया था। कमीशनके सदस्यगण भारतके एक भागसे दूसरे भागतक घूमे थे और भारत-सरकारके हिसाबमें इसीका ही एक बड़ा खाता था। किन्तु व्ययकी जाँच करनेवाला यह कमीशन, जिसको भारतीय राज्यके आयकी समस्त व्यवस्थाकी जाँच करनी है, वह केवल लन्दनमें ही अपना दफ़्तर रक्खेगा। किसी भी प्रकारके वयानके लिये उक्त कमीशन भारतमें नहीं आयगा। इस स्थितिमें मैं समझता हूँ कि उचित और सन्तोषजनक जाँच असम्भव नहीं है। मैं नहीं समझता कि यह किसके दिमाग़की सूझ हो सकती है ? क्या आप यह आशा करते हैं कि अधिक संख्यक भारतवासी कमीशनके सामने वयान देनेके लिये इङ्गलैण्डकी यात्रा करेंगे और क्या यदि थोड़ेसे लोगोंका वयान देनेके लिये इङ्गलैण्ड जाना अधिक लाभजनक हो सकता है, जव कमीशनके सामने अवसरप्राप्त वहुसंख्यक ऐङ्गलो इण्डियन कर्मचारियोंके वयानोंका वहुमत उपस्थित होगा। किन्तु थोड़ेसे भारतीयोंके वयानोंका क्या परिणाम होगा चाहे उनकी कितनी भी प्रचुर जानकारी क्यों न हो। इन इङ्गलैण्डमें रहनेवाले अफ़सरोंको छोड़कर, भारत-सरकारके प्रचलित सिद्धान्त और व्यवहारका

औचित्य सिद्ध करनेका अवश्य ही प्रयत्न करेंगे। सज्जनो, जबतक कमीशन भारतमें नहीं आता तबतक मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसका परिश्रम भारतके हितमें अधिक घातक सिद्ध होगा। (हर्ष-ध्वनि)

सज्जनो! मैं सोचता हूँ कि आप लोगोंने श्रीफ़ौसेट्की पार्लियामेण्टरी कमेटीके बारेमें सुना होगा अथवा पढ़ा होगा जो सन् १८७१ ई० से १८७४ तक भारतकी आर्थिक दशापर विचार करनेके लिये बैठी थी। उक्त समितिने अति सारवान् प्रमाण एकत्र किए थे, उसके सामने बयान देनेवाले दो भारतीयोंमेंसे एक तो श्रीदादाभाई नौरोजी थे (दीर्घ हर्ष-ध्वनि) दूसरे और सज्जन श्रीनोरोजी फ़रदूनजी थे। समितिके सामने अन्य गवाहोंमें कुछ भारतके परम प्रसिद्ध और योग्य शासक रहे जिनमेंसे भूतपूर्व लौर्ड लौरेन्स भी थे। इन्होंने जो गवाही दी वह बहुत लम्बी थी। उन्होंने जो आँकड़े, घटनाएँ और तर्क उपस्थित किए हैं उससे यह निश्चित रूपसे स्पष्ट हो गया है कि भारतीय व्ययको कम करना अत्यन्त आवश्यक है। और यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपनेको भारतकी प्राकृतिक सीमाके भीतर ही आबद्ध रक्खें। यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि बढ़े हुए व्ययकी पूर्त्तिके लिये उस समय भी अधिक प्रतीत होनेवाले करमें वृद्धि न की जाय, किन्तु जनताके सन्तोषके लिये सब विभागोंमें कम ख़र्ची करनी चाहिए। वे सब बयान लिखे हुए रक्खे हैं, और मुझे सन्देह है कि यह व्यय-निरीक्षण कमीशन उससे अधिक या उसके समान इन मामलोंपर इङ्गलैण्डमें बयान एकत्र कर सकेगा। इस कमीशनको उचित तो यह था कि वह भारतके प्रत्येक प्रान्त और नगरमें आकर बयान एकत्र करता और उन व्यक्तियोंसे इस सम्बन्धमें पूछताछ करता जिन्हें यहाँकी दशाका साक्षात् और व्यक्तिगत ज्ञान है जो यहाँकी वास्तविक स्थिति वर्त्तमान समयमें शासन-व्यवस्थाकी गति-विधि और देशकी बहुसंख्यक जनताके जीवन और सुखपर इसके प्रभावको भली भाँति जानते हैं। यह नहीं होता तो जो प्रमाण इङ्गलैण्डमें एकत्र किए जायँगे वे अधिकतर श्रीफ़ौसेट्की समितिद्वारा एकत्र बयानोंके समान होंगे जो यहाँके सुधारक दलके मतके अनुकूल है, और उसका प्रयोग हम लोगोंकी ज़बानपर ताला लगानेके लिये होगा। किन्तु उससे किसी परिणामपर पहुँचनेके योग्य सामग्री नहीं एकत्र होगी। अस्तु, यदि वे केवल यही सिद्ध करनेके प्रमाण एकत्र करनेमें व्यस्त रहेंगे कि जो व्यय हुआ है वह अधिक नहीं है और भारतीयोंके उस व्ययके सहन करनेके सामर्थ्य और असमर्थताका कुछ भी विचार न करेंगे, तो मैं अवश्य कहूँगा कि उक्त उद्देशकी पूर्त्तिके लिये इस प्रकारके कमीशनकी नियुक्ति करनेवालोंकी बुद्धिमें कुछ दोष है। क्या कभी आपने इससे बढ़कर उल्टी बात सुनी है कि किसी व्यक्ति या जातिकी कर देनेकी शक्ति जाने बिना, उसकी आयके साधनोंकी परीक्षा किए बिना आप अपने तौरपर जाँच करके यह निश्चय कर दें कि अमुक व्यक्ति या अमुक वर्गके लिये अमुक व्यय युक्त या अयुक्त है? आप ऐसा नहीं कर सकते। कमीशनको किसी कामका सिद्ध होना है और अपनी सिफ़ारिशोंको बुद्धिमानोंद्वारा स्वीकृत करानेके योग्य बनाना है तो उसको चाहिए कि वह वर्त्तमान सार्वजनिक व्ययको वहन करनेकी भारतीयोंकी क्षमताकी परीक्षा करे कि क्या भारतीयोंमें इतना सामर्थ्य है कि वे मुल्की और फ़ौजी कर्मचारियोंके वेतनके भारी बोझको सह सकें? कमीशनको इस बातकी जाँच अवश्य करनी होगी कि क्या उक्त पदोंके लिये थोड़े वेतनपर योग्य व्यक्ति मिल सकते हैं या नहीं? क्या भारतीयोंको अधिक नौकरियाँ दिलाकर भारतमें कर देनेवाली प्रजाको अधिक सुखी किया जा सकता है? जबतक यह सब नहीं होता तबतक किसीको यह आशा नहीं करनी चाहिए कि कमीशन देशके लिये कोई उपयुक्त कार्य्यक्रम उपस्थित करेगा (हर्ष-ध्वनि)। (इसी समय अध्यक्षने घण्टी बजाई)

मुझे भय है कि मैंने आपका अधिक समय ले लिया। (नहीं नहींकी आवाज़) अतएव मैं अति सङ्क्षेपमें उपसंहार करूँगा (कहिए, कहिएकी तुमुल-ध्वनि) मैं अध्यक्षकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता, यद्यपि मैं आपकी कृपाका आभारी हूँ। अब मैं केवल इतना ही कहूँगा कि मेरी जिज्ञासा अंग्रेज़ सज्जनोंसे है। मैं इङ्गलैण्डवासियोंसे गम्भीरतापूर्वक विचार करनेके लिये कहता हूँ कि वे वर्त्तमान भारतकी दशाका विचार करें। वह दशा साधारणतः यह है। शिक्षित भारतीय देशकी शासन-व्यवस्थापूर्ण और निष्पक्ष जाँचके लिये गत चालीस वर्षोंसे निवेदन कर रहे हैं। हमने बहुत सोच-विचारकर इस शासन-व्यवस्थापर अभियोग लगाया है। भारतीय सिविल सर्विसके नामसे हमारे ऊपर अनावश्यक व्ययका भार लादनेवाली इङ्गलैण्डकी सरकारपर हमारा अभियोग है कि उसने हमारे ऊपर कष्टदायक भारी सैनिक व्यय हठात् लाद रक्खा है। हमारा अभियोग है कि उसने भारतकी सीमाके बाहर भारतका अधिक धन लुटाया है। हमारा अभियोग है कि उसने गृह-व्ययके नामपर भारतके धनका अनौचित्यपूर्ण उपयोग किया है। इतना ही नहीं बल्कि हमारा सबसे बड़ा अभियोग भारत-सरकार तथा इङ्गलैण्डकी सरकारके ऊपर यह है कि उन्होंने भारतीय प्रश्नोंके सम्बन्धमें अपने उचित कर्त्तव्यके पालनमें असावधानी की है और दुर्भिक्षके कारण प्रति दसवें वर्ष, जो करोड़ों भारतीय कालकवलित होते हैं, उसका प्रधान कारण अधिक कर और अनियमित शासन-व्यवस्था ही है। (हर्ष-ध्वनि) हम इङ्गलैण्डवासियोंपर यह अभियोग लगाते हैं। क्योंकि किसीने कहा है कि—

"ऐ सभासदो! सुनो उसे, उस अमल सत्यपर ध्यान करो।
अन्याय सहन जो करता है, वह महापापका भागी है"॥

(तुमुल हर्ष-ध्वनि)।

यदि इङ्गलैण्डकी पार्लियामेण्ट, यदि इङ्गलैण्डके निवासी, जिन्होंने देवता-भावसे भारतके शासनका भार अपने ऊपर लिया है, उस कर्त्तव्यको उचित रूपसे पालन करनेकी असावधानी करते हैं, और भारतमें कितनी ही हत्याएँ होने देते हैं जिन्हें वे रोक सकते थे, तो उन हत्याओंके लिये निश्चय ही वे ईश्वर और जनताके प्रति उत्तरदायी हैं। इस प्रकारका अभियोग होते हुए क्या महान् अंग्रेज़ जाति और उनकी बड़ी पार्लियामेण्टको यह शोभा देता है कि वे हमें एक लँगड़ा कमीशन दें जो वर्त्तमान शासनकी केवल एक शाखाके प्रबन्धकी जाँच करे। इसके स्थानपर क्या उनके लिये यह उचित नहीं है कि वे एक ईमानदार अँग्रेज़की तरह सामने आवें और कहें कि "हम इन सभी अभियोगोंका विरोध करते और इन्हें असत्य मानते हैं। अथवा हम स्वीकार करते हैं कि ये अभियोग सत्य हैं और उनके सुधारके लिये प्रयत्न करेंगे"। यह अभियोग साधारण नहीं है, और न तो ये साधारण रीतिसे उपस्थित ही किए गए हैं और यदि अँग्रेज़ जाति अपने साम्राज्यके हितकी दृष्टिसे इस सम्बन्धमें जाँच नहीं कराती; यदि ये दुखी मानवताके हितके नाते ऐसा नहीं करते; यदि ये कर्त्तव्य-भावनासे भी कुछ नहीं करते तो वे इङ्गलैण्डके लिये ही ऐसा करें जो मुझे आशा और विश्वास है कि वह प्रत्येक अँग्रेज़को प्राणोंसे भी प्यारा है। (तुमुल तथा देरतक हर्ष-ध्वनि)

"हीयर हिम, यी सीनेटर्स, हीयर दिस ट्रुथ सब्लाइम
ही हू एलाउज्ञ औप्रेशन शेयर्स दि क्राइम".

प्रान्तीय ठेके

२८ दिसम्बर, सन् १८९६ ई० को माननीय मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानीकी अध्यक्षतामें कलकत्तेमें हुई राष्ट्रीय महासभाके बारहवें अधिवेशनपर पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने निम्नाङ्कित प्रस्तावका समर्थन करते हुए कहा :—

—सम्पादक।

प्रस्ताव

"इस बातपर विचार करते हुए कि प्रान्तीय सरकारके शासनमें सैनिक व्यय, भारत तथा इङ्गलैण्डमें उच्चाधिकारियोंके शासन-प्रबन्ध तथा ऋणके ऊपर ब्याजके भुगतानके अतिरिक्त सब बातें आ जाती हैं, इस काँग्रेसकी सम्मतिमें प्रान्तीय सरकारोंको केन्द्रीय सरकारसे जो धन नियत किया गया है वह एकदम अपर्य्याप्त है तथा पाँच वर्षके प्रान्तीय ठेकोंकी जाँच करनेपर (जो सन् १८९७ ई० से काममें लाया जायगा) अब समय आ गया है जब आर्थिक अकेन्द्रीकरणके लिये और उपाय काममें लाए जायँ। इस प्रबन्धके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रान्तोंका आर्थिक शासन स्थानीय सरकारोंके अधिकारमें समझा जाना चाहिए। केन्द्रीय सरकारको तो प्रत्येक स्थानीय सरकारसे किसी निश्चत तथा लाभदायक सिद्धान्तके आधारपर कुछ निश्चित धन मिलना चाहिए जिसमें ठेकेके समयमें किसी प्रकारका हेरफेर न हो, जिससे स्थानीय सरकारोंको वह आर्थिक सुविधा हो जाय और राजकरमें नैतीक अभिवृद्धिके परिणामस्वरूप वह लाभ हो जाय जो प्रत्येक प्रान्तकी आर्थिक उन्नतिके लिये तथा सन्तोषजनक प्रान्तीय शासनके लिये आवश्यक है।"

सभापति महोदय तथा उपस्थित सज्जनो !

प्रान्तीय अकेन्द्रीकरण-योजनाका इतिहास मेरे माननीय मित्र श्रीतिलकजीने अपने स्पष्ट भाषणमें आपके सम्मुख रख दिया है। इसे दुहरानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस समय श्रीलैङ्गने अपने सन् १८६२-६३ ई० के आर्थिक वक्तव्यके समय यह विचार प्रकट किया था कि इसका प्रधान उद्देश यही था कि सरकारका आर्थिक प्रबन्ध व्यवस्थित कर दिया जाय, तथा प्रान्तीय सरकारोंको अपने प्रान्तीय कार्य्योंका प्रबन्ध करनेका अधिकार तथा उत्तरदायित्व मिलना चाहिए। हमें देखना चाहिए कि ये उद्देश कहाँतक सफल हुए हैं। इस प्रथाके परिणामस्वरूप निस्सन्देह भारत-सरकारको आर्थिक प्रबन्धमें सुभीता हुआ है। क्योंकि प्रान्तीय ठेका देनेके पश्चात् भारत-सरकार उस ठेकेके समयमें इसलिये पूर्णतया सुरक्षित है कि कोई प्रान्तीय सरकार उन ठेकोंके अतिरिक्त और कोई आर्थिक माँग पेश नहीं कर सकती। किन्तु वह आर्थिक सुभीता स्थानीय सरकारोंके आर्थिक प्रबन्धको देखते हुए एकदम नष्ट हो जायगा। भारत-सरकार प्रान्तीय सरकारोंको तो ठेकेकी शर्त्तें पालन करनेके लिये

बाध्य करती है, किन्तु वह अपनेको किसी बन्धनमें बँधा हुआ नहीं समझती। सबके ऊपर होनेके कारण वह समझती है कि वह प्रान्तीय सरकारोंपर मनमाना बोझ लाद सकती है और इसने ठेकेके समयमें कई बार ऐसा किया भी है। निर्दिष्ट धनके अतिरिक्त उसने कई बार प्रान्तीय सरकारोंपर यह भार लादा है तथा प्रान्तीय सरकारोंको ठेकेके समाप्त होनेपर अथवा किसी भी समय इस प्रथाके जन्मदाताओंका अथवा इसके प्रचारकोंका यह उद्देश दिखलाई नहीं पड़ता जब कि भारत-सरकारको यह निश्चय हो जाय कि उनकी फ़ज़ूलख़र्चीके कारण केन्द्रीय सरकारसे नए रुपयोंकी माँग होगी। उनका विचार यह था कि नितान्त आवश्यकताओंके अवसरोंको छोड़, स्थानीय सरकारें भी भारत-सरकारद्वारा अधिक रुपयोंकी माँगसे बची रहेंगी। ठेकेकी शर्त्तोंका पालन तो करना ही होगा, साथ-ही-साथ प्रान्तीय सरकार अपने ख़र्चके लिये उस ठेकेके समय बचाए गए रुपयेका सदुपयोग कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त ठेकेके फिरसे जारी होनेपर भिन्न-भिन्न प्रान्त अपने बढ़े हुए राजकरका उचित भाग भी पानेके अधिकारी होंगे। अब दूसरे उद्देशपर विचार करना चाहिए। लोगोंकी यह बड़ी शिकायत है कि भारत-सरकारने प्रान्तीय सरकारोंको शासनके समस्त आवश्यकीय आन्तरिक सुधारोंके लिये तो उत्तरदायी ठहराया है, किन्तु रुपये-पैसेका पर्य्याप्त अधिकार उनके हाथमें नहीं रक्खा जिससे वे अपने कर्त्तव्योंका समुचित रूपसे पालन कर सकें। हमने बङ्गालके लैफ़्टिनैण्ट गवर्नर जैसे उच्च अधिकारीको यह शिकायत करते सुना है कि प्रान्तीय भेड़ प्रत्येक ठेकेके फिरसे जारी किए जानेपर पूरी तरहसे मूँड़ ली जाती है और जबतक ऊन बढ़ती है तबतक जाड़ेमें ठिठुरनेके लिये छोड़ दी जाती है। इस दशामें अवश्य सुधार होना चाहिए। इस प्रथाके परिणामस्वरूप देशमें घोर असन्तोष उत्पन्न होते हैं तथा कई उच्च सरकारी अधिकारियोंने भी इस प्रथाकी भरपेट निन्दा की है। यह नितान्त आवश्यक है कि समस्त प्रश्नपर फिरसे विचार होना चाहिए और इस प्रथाकी सन्तोषजनक तथा समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। इस समस्याका निपटारा मेरी सम्मतिमें इस बातपर निर्भर है कि प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारके कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्त्वको उचित रूपसे समझा जाय और उनका विस्तार तथा महत्त्व अच्छी तरह जान लिया जाय। सङ्क्षेपमें यह कहा जा सकता है कि जब कि केन्द्रीय सरकार देशमें शान्ति रखनेके लिये तथा देशको बाहरी आक्रमणोंसे सुरक्षित रखनेके लिये उत्तरदायी है, प्रान्तीय सरकारें सब प्रान्तीय सुधारों तथा उन्नतिके लिये उत्तरदायी हैं, क्योंकि उनके ऊपर प्रजाकी आर्थिक तथा सांस्कृतिक उन्नति निर्भर है और वे ही शासन-सुधारकी सफलता अथवा विफलताकी सच्ची कसौटी हैं। इन कर्त्तव्योंका समुचित रूपसे पालन करनेके लिये उनके पास पर्य्याप्त आर्थिक साधन होने चाहिएँ। मेरा उनसे कोई झगड़ा नहीं है जो कहते हैं कि केन्द्रीय सरकारद्वारा जो धन व्यय किया जाता है उसमें प्रान्तीय सरकार भी केन्द्रीय सरकारकी नाईं रुचि रखती हैं, और न मेरा इससे ही कोई झगड़ा है कि केन्द्रीय सरकारको समस्त देशसे वसूल किए गए धनके लिये उत्तरदायी समझना चाहिए और प्रान्तीय कामोंके लिये इसे रुपया नियत कर देना चाहिए, यह नहीं कि उल्टी केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारोंसे केन्द्रीय सुधारोंके लिये रुपया लेनेवाली संस्था समझी जाय। मैं अपने मित्र श्रीतिलककी इस घरेलू उपमाको माननेके लिये प्रस्तुत हूँ कि प्रान्तीय सरकारोंको गृहस्वामीका स्थान मिल जाय तथा केन्द्रीय सरकारको गृहस्वामिनीका। किन्तु क्या अपने ही हाथोंमें समस्त अधिकार सुरक्षित रखनेकी इच्छुक भारत-सरकार उस उत्तरदायित्त्वका भी ध्यान रक्खेगी जो गृहस्वामिनीके लिये आवश्यक है? (साधु-साधु) क्या वह उस बातको सोचेगी कि भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी उन्नति तथा हितके लिये भी वह उत्तरदायी है? क्या वह गृहस्वामिनीकी

सहायता उचित आर्थिक साधन देकर करेगी जिससे वह अपने बच्चोँकी रक्षा भली भाँति कर सके तथा उनके जीवनकी आवश्यकताओँकी पूर्त्ति भली प्रकार करके शिक्षाकी ज्योतिसे उनके मस्तिष्कको प्रकाशित कर, उनके वातावरणको स्वस्थ तथा शुद्ध बनाकर सभ्य जीवनके सम्पूर्ण आनन्द तथा सुविधाएँ उनके लिये सुलभ बनाकर उन्हेँ अधिक सभ्य बना सके? (साधु-साधु) अथवा यह उस गृहस्वामिनीको केवल थोड़ासा निर्वाहके लिये धन देकर जो उसके बच्चोँके जीवनके लिये एकदम अपर्य्याप्त है अपने कर्त्तव्यसे उऋण हो जायगी? जिसके परिणामस्वरूप वे बच्चे अशिक्षित ही रह जायँगे और साथ ही दुखी और अपराधी बनेँगे, अत्याचारके सुलभ शिकार बनेँगे तथा अपने संरक्षक (सरकार) के लिये अमिट कलङ्क बने रहेँगे। सज्जनो! यह कहते हुए तो दुःख होता है परन्तु है यह एकदम ठीक कि भारत-सरकार भिन्न-भिन्न प्रान्तोँकी प्रजाके साथ इसी प्रकारका व्यवहार करती है। इसका व्यवहार अधिकाधिक लगान बढ़ानेवाले ज़मीन्दारका सा है जो अपने आसामियोँके पास उसके परिवार तथा उसीके निर्वाह भरके लिये छोड़ देता है और उसकी इच्छा प्रत्येक समय यही रहती है कि वह रात दिन अधिकाधिक लगान देनेके लिये परिश्रम करे; भारत सरकार प्रजाके उस संरक्षककी तरह नहीँ है जो उनकी प्रसन्नता तथा आर्थिक वृद्धिके लिये प्रत्येक समय इच्छुक हो! (हर्ष-ध्वनि) एक अवसरपर बङ्गालके लेफ़्टिनैण्ट गवर्नरने विवश होकर यह कहा था कि मुझे कई अवसरोँपर यह प्रतीत हुआ है कि भारत-सरकारने इस बातका अनुभव नहीँ किया कि प्रान्तीय शासनके लिये भी उसका वही उत्तरदायित्त्व है जो केन्द्रीय सरकारके लिये। मैँने देखा है अथवा यह प्रतीत हुआ है कि भारत-सरकारने आर्थिक उत्तरदायित्त्वसे तो अपना एकदम हाथ खीँच लिया है। प्रान्तीय ठेकोँकी जाँचके अवसरपर एलैग्ज़ैण्डर मैकैंज़ीने अर्थ-सदस्यको इस प्रकार उत्साहित करनेका अपना कर्त्तव्य समझा। "उसे जाँच करते समय इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिए कि प्रान्तीय शासनकी उन्नति तथा अभिवृद्धिमेँ भारत-सरकारकी भी रुचि वैसी ही है जैसी प्रान्तीय सरकारोँकी और उस उन्नतिपर किसी प्रकारका भी नियन्त्रण रखनेका अर्थ होगा—समस्त भारतीय शासनके यन्त्रपर भी उसी प्रकारका नियन्त्रण।" मैँ साहसके साथ कहता हूँ कि इस विरोध तथा उपदेशको फिरसे दुहरानेकी किसीको आवश्यकता न होगी तथा भारत-सरकार भी इस मामलेका उसी प्रकार निर्णय करेगी जिससे शिकायतके सब कारण दूर हो जायँ (हर्ष-ध्वनि)

सज्जनो! अब मैँ आपको यह दिखलानेका प्रयत्न करूँगा कि प्रान्तीय कोष नियत करनेमेँ प्रान्तोँके साथ किस निर्दयताका व्यवहार किया गया है। इस प्रथाके बहुतसे दोषोँमेँ भिन्न-भिन्न प्रान्तोँमेँ असमान रूपसे धन-विभाजन कम आपत्तिजनक नहीँ है। इस विभाजनमेँ किसी नियम तथा सिद्धान्तसे काम नहीँ लिया गया। प्रारम्भिक अवस्थामेँ प्रत्येक प्रान्तमेँ ख़र्च हुए धनके हिसाबसे यह धन नियत किया गया था। बङ्गाल, बम्बई तथा मद्रासके प्रान्त बृटिश शासनमेँ औरोँकी अपेक्षा पहले आनेके कारण अधिक उन्नतिशील थे तथा भिन्न-भिन्न लाभदायक कार्य्योँमेँ अन्य प्रान्तोँकी अपेक्षा अधिक रुपया ख़र्च कर रहे थे और इसी लिये उन्हेँ अन्य प्रान्तोँकी अपेक्षा अधिक धन भी मिला। क्योँकि प्रत्येक प्रान्तके अनुमानतः औसत व्ययको ध्यानमेँ रखकर एकके बाद दूसरेसे ठेका किया गया था। अतः यह असमानता ज्योँ-की-त्योँ आजकल चली आ रही है। यह अन्याय अब अधिक स्पष्ट हो गया है। थोड़ासा आँकड़ा देनेसे मेरा अर्थ स्पष्ट हो जायगा। ये संख्याएँ मैँने सन् १८९६-९७ ई० के आर्थिक विवरणके परिशिष्ट 'बी' से ली हैँ। प्रत्येक प्रान्तीय-सरकारके राज्य-आय तथा व्ययका जोड़ इस प्रकार दिया गया है।

प्रान्तका नाम	राज्य-आय का जोड़	व्ययका जोड़	बची हुई राज्य-आय	राज्यके ऊपर प्रतिशत व्यय
	रुपये	रुपये	रुपये	
मध्यप्रदेश	१४,६४,१७२	१०,१२,४१०	४,५१,७६२	६९%
ब्रह्मा	४५,७६,८३८	३१,८४,७५७	१३,९२,०८१	६९%
आसाम	११,७१,६८५	७,८४,१२२	३,८७,५६३	६६%
बङ्गाल	९५,५४,३७०	५०,७६,०७०	४४,७८,३००	५३%
पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध	९५,६७,५१२	४०,१३,३४१	५५,५४,१७१	४१%
पञ्जाब	४५,८९,८०९	२७,७५,९८६	१८,१३,८२३	६०%
मद्रास	९५,९६,७३९	४६,७५,०८४	४९,२२,६५५	४८%
बम्बई	७९,७७,५४९	५२,६५,२६२	२७,१२,२८७	६६%

इस तालिकाको देखनेसे आपको विदित हो गया होगा कि मद्रासके अतिरिक्त (जहाँ राज्य-आय कुछ अधिक है) धनी बङ्गाल तथा विस्तृत बम्बईसे भी अधिक राज्यकर पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध देता है। इतनेपर भी हमेँ आन्तरिक उन्नति तथा शासन-सम्बन्धी सुधारके लिये जो धन नियत किया गया है वह भारतके अन्य प्रान्तोँकी अपेक्षा बहुत कम है। यह राज्य-आयका केवल एकतालीस प्रतिशत है जब कि मद्रासको अड़तालीस प्रतिशत, बङ्गालको तिरपन प्रतिशत, बम्बईको छाछठ प्रतिशत, पञ्जाबको साठ प्रतिशत तथा मध्यप्रदेशको उनहत्तर प्रतिशत उनके राजकरोँ मेँसे दिया गया है। आपको विदित होगा कि माननीय श्रीभुसकटेने भिन्न-भिन्न प्रान्तोँ मेँ प्रत्येक मनुष्यपर लगाए गए करकी एक तालिका बनाई थी। जिन्होँने पिछले वर्ष बड़ी व्यवस्थापिका सभामेँ वर्त्तमान प्रान्तीय ठेकोँकी प्रथाका घोर विरोध किया था। उस तालिकासे आपको विदित होगा कि पश्चिमोत्तर प्रान्त तथा अवधके प्रत्येक व्यक्तिको दो रुपये सात पाई कर देना पड़ता है जब कि प्रत्येक बङ्गालीको केवल एक रुपया पाँच आना पाँच पाई। यदि हमारा रुपया देनेकी सामर्थ्य इतना नहीँ है कि हमेँ अधिक रुपया मिल सके तो हमारी आवश्यकताएँ तो अधिक रुपया चाहती हैँ। (साधु-साधु) भारतका कोई ऐसा प्रान्त नहीँ है जिसे इतना कम रुपया मिलनेपर इतना अधिक कष्ट हुआ हो और जिसे अधिक उदार सहायताकी आवश्यकता हो जितना पश्चिमोत्तर प्रान्त तथा अवध को। जो कुछ रुपया हमेँ मिला है वह हमारे निर्वाहके लिये तो काफ़ी है किन्तु वह धन न तो हमारी शिक्षा और सुयोग्य पुलीसके प्रबन्धके लिये पर्य्याप्त हुआ है और न सभ्यताके अन्यान्य साधन एकत्र करनेके लिये ही। वास्तवमेँ हमेँ दुहरी हानि सहनी पड़ी है। सुधारके लिये हमेँ पर्य्याप्त अवसर भी नहीँ मिलते हैँ। हमारी अवनतिके लिये भी हमपर लताड़ेँ पड़ती हैँ। हिन्दू तथा मुस्लिम दोनोँ शासनोँ मेँ पश्चिमोत्तर प्रान्त तथा अवध भारतका सबसे अधिक सभ्य भाग रहा है। यहीँ विद्वत्ता तथा संस्कृतिका क्षेत्र था। किन्तु बृटिश शासनमेँ जब सर्वसाधारणकी शिक्षाका एक अलग ही विभाग है, मेरा प्रान्त शिक्षाकी दौड़मेँ अन्य प्रान्तोँसे पीछे पिछड़ गया है। हमारे प्रान्तको समस्त भारतमेँ सबसे अवनत प्रान्त होनेके लिये अपमान सहना पड़ता है। मध्य प्रदेशसे भी अधिक अवनत हमारा प्रान्त समझा जाता है। पाठशाला जानेवाले कुल विद्यार्थियोँ मेँ पश्चिमोत्तर प्रान्त तथा अवधमेँ प्रतिशत चार, मध्यप्रदेशमेँ प्रतिशत छः, पञ्जाबमेँ प्रतिशत आठ, मद्रासमेँ प्रतिशत एक सौ उन्तीस, बङ्गालमेँ प्रतिशत चौदह तथा बम्बईमेँ प्रतिशत पन्द्रह हैँ। यह संख्या पिछली वर्षीय रिपोर्टसे ली गई हैँ। उन त्रुटियोँके अतिरिक्त जिनका उल्लेख इस स्थानपर होनेके लिये न तो समय ही है और न अवसर, मेरे विचारसे हमारी अधोगतिका कारण यह भी हो सकता है कि जब

बङ्गाल, बम्बई तथा मद्रासमेँ शिक्षाके ऊपर कुल व्यय सन् १८९४-९५ ई० मेँ क्रमशः अट्ठानबे, छाछठ तथा छाछठ लाख था तब पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधमेँ यह व्यय कुल मिलाकर केवल छत्तीस लाख था। इस व्ययमेँ प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारोँद्वारा दिया हुआ रुपया केवल बीस लाख था जब मद्रासमेँ वही रुपया अट्ठाईस लाख, बम्बईमेँ तीस लाख तथा बङ्गालमेँ तैँतीस लाख था (मैँने भिन्नोँको छोड़ दिया है)। मेरा विचार है कि आप उदारतापूर्वक यह स्वीकार करेँगे कि यदि सरकारने हमारी शिक्षाके लिये अधिक रुपया व्यय किया होता तो उसका परिणाम और भी अच्छा होता (हाँ हाँ और करतल-ध्वनि)। मेरा यह विचार नहीँ है कि आप यह समझ जायँ कि इस सम्बन्धमेँ केवल सरकारका ही दोष है। पश्चिमोत्तर प्रान्तकी सरकार भी शिक्षाको बहुत समय तक उचित महत्त्व न देनेके कारण दोषी ठहराए जाने योग्य है। किन्तु जो कुछ बीत गया सो बीत गया। युक्तप्रान्तकी वर्त्तमान सरकार सर एण्टोनी मैक्डोनल (हर्ष-ध्वनि) जैसे सुयोग्य तथा उदार राजनीतिज्ञकी अध्यक्षतामेँ शिक्षाके मामलेमेँ अपने कर्त्तव्यसे पूर्णतया परिचित है और मेरा विश्वास है कि इस दशामेँ सरकार अपना यथासाध्य प्रयत्न करेगी। (हर्ष-ध्वनि) पश्चिमोत्तर प्रान्त तथा अवधमेँ जनसाधारणकी शिक्षाकी रिपोर्टपर अपना मत देते हुए सर एण्टोनी मैक्डोनलने शिक्षाकी अवनत दशापर अपना खेद प्रकट करते हुए कहा था "शिक्षाके अधिकार सारगर्भित हैँ और भुलाए नहीँ जा सकते।" यह बात उस समयकी थी जब प्रान्तीय आर्थिक अवस्था एकदम नैराश्यपूर्ण थी। सर एण्टोनी मैक्डोनल प्रारम्भिक शिक्षाकी अभिवृद्धिके लिये और भी रुपया स्वीकृत करना चाहते थे किन्तु जैसा उनके आर्थिक सदस्यने बतलाया, कि उस समय प्रान्तकी आर्थिक दशा सन्तोषजनक न थी, अतएव वह सहायता घटाकर केवल पचहत्तर हज़ार रुपये कर दी गई थी। इसी प्रकारसे पुलीस-विभागके लिये और रुपयोँकी आवश्यकता है। देशके कोने-कोनेसे पुलीसके विरुद्ध बड़ी-बड़ी शिकायतेँ आ रही हैँ। किन्तु यह विभाग किसी अन्य प्रान्तमेँ इतना बुरा नहीँ है जितना पश्चिमोत्तर प्रदेशमेँ। सर्वसाधारणकी शान्तिके संरक्षक अपराध रोकनेवाले तथा अपराधियोँको दण्ड दिलानेवाले पुलीस कर्मचारी बहुतसे स्थानोँपर अपराधियोँकी अपेक्षा शान्त नागरिकोँके लिये अत्याचार तथा भयके सदैवके लिये कारण बन गए हैँ। अपनी असावधानी तथा दुष्कृत्योँसे वे शासन-प्रबन्धकी अधिकाधिक मान-हानिका कारण बन रहे हैँ। इस विषयपर बोलते हुए लैफ़्टिनैण्ट गवर्नर महोदयने बतलाया था—"पुलीस-विभागके लिये व्ययका ध्यान करते हुए मैँ अपने व्यक्तिगत अनुभवसे कह सकता हूँ कि सर्वसाधारणकी सेवाके लिये कोई और विभाग ऐसा नहीँ है जिसके ऊपर जनताका अधिक रुपया व्यय किया जाय जितना कि पुलीस-विभाग। पुलीस थानोँपर सुव्यवस्थित तथा उचित नियन्त्रण रखनेके लिये यही आवश्यक नहीँ है कि ऐसे स्थानोँपर सुयोग्य कर्मचारी ही नियुक्त किए जायँ बल्कि उन्हेँ वेतन भी इतना मिलना चाहिए कि वे प्रलोभनोँसे भी दूर रहेँ।" उन्होँने यह भी आशा प्रकट की थी कि नवीन प्रान्तीय ठेकोँकी अवस्थामेँ उन्हेँ पर्य्याप्त धन अपने पूर्वाधिकारियोँके पंथका अनुसरण करनेके लिये दिया जायगा। पिछले बजटपर विचार होनेके अवसरपर लैफ़्टिनैण्ट गवर्नर महोदयने हमारे समस्त तर्कोँका भली प्रकार समर्थन किया था। उस भाषणके अन्तिम भागको यहाँ उद्धृत करनेसे मेरा कथन भली भाँति स्पष्ट हो जायगा। सर एण्टोनी मैक्डोनल्डने कहा था—"सङ्क्षेपमेँ, हमारे आर्थिक अनुभवसे यही निष्कर्ष निकलता है कि हम इस प्रान्तका शासन-कार्य्य केवल तीन सौ बीस लाख रुपयोँमेँ नहीँ चला सकते। पिछले अवसरपर जो प्रबन्ध हुआ था वह निस्सन्देह उन परिस्थितियोँको देखते हुए न्यायोचित तथा अच्छा था, किन्तु तबसे प्रान्तने बहुत अधिक उन्नति की है। प्रान्तको अच्छे न्याय-विभागकी

आवश्यकता है। शिक्षा कार्य्यक्रमके लिये अधिक व्ययकी आवश्यकता होगी तथा स्थानीय शासनके लिये भी अधिक सुगम उपाय काममेँ लानेकी भी आवश्यकता है। हमारी सरकारका कोई विभाग ऐसा नहीँ है जो रुपयोँकी कमीसे पिछड़ा हुआ न हो तथा आर्थिक दशामेँ अधिक सहायता मिलनेके कारण जिसमेँ अधिक उन्नति हो सके। केन्द्रीय सरकारकी बिना सहायता लिये हमने अपनी कठिनाइयोँका सामना किया है और अपनी सहायताके लिये हमने अधिक परिश्रम किया है। इस अवस्थामेँ मेरा विश्वास है कि आगामी मार्चमेँ जब प्रान्तीय ठेकोँकी जाँच-पड़ताल माननीय अर्थसदस्यद्वारा होगी तो यह बात विदित हो जायगी कि अपनी शक्तिके अनुसार कार्य्य किया है और जबतक अन्य साधन हमेँ प्राप्त नहीँ होते प्रान्तका भविष्य सुरक्षित नहीँ रहेगा।” अपने प्रान्तके ऐसे उत्तरदायी शासककी इस घोषणाको देखते हुए हमेँ आशा है कि प्रान्तीय ठेकोँकी नई जाँच-पड़तालके अवसरपर युक्तप्रान्तको अपनी भिन्न-भिन्न आवश्यकताओँकी पूर्त्तिके लिये यथेष्ट धन मिलेगा जिससे वह अधिक उन्नति कर सकेँ और अन्य प्रान्तोँकी नाईँ उन्नति तथा ज्ञानके क्षेत्रमेँ अधिकाधिक अग्रसर हो सके। (तुमुल हर्ष-ध्वनि)

निर्धनता और दुर्भिक्ष

सन् १८९६ ई० की कलकत्ते की भारतीय राष्ट्रीय महासभाके बारहवेँ अधिवेशनमेँ निम्नाङ्कित प्रस्तावके समर्थनमेँ पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण ।

—सम्पादक ।

प्रस्ताव

यह कांग्रेस “सारे भारतमेँ थोड़ी-बहुत मात्रामेँ दुर्भिक्ष पड़नेपर शोक प्रकट करती है और यह स्वीकार करती है कि यह दुर्भिक्ष तथा पिछले कुछ वर्षोंके भीतर होनेवाले अन्य दुर्भिक्षोंका कारण जनताकी ग़रीबी है। यह दरिद्रता लगातार कई वर्षोंतक देशका धन बाहर जानेसे हुई है और यह दरिद्रता सरकारके सैन्य-विभाग और दीवानी विभागकी फ़ज़ूलख़र्चीके कारण अधिक कर लगानेसे और भी बढ़ गई है जिससे जनता इतनी दरिद्र हो गई है कि दुर्भिक्षके स्पर्शमात्रसे ही ये असहाय हो जाते हैँ, और यदि सरकार अथवा उदार जनता इन्हेँ भोजन न देँ तो ये अवश्य नष्ट हो जायँ। इस कांग्रेसकी रायमेँ दुर्भिक्षके पुनः न होने देनेका ठीक उपाय यह है कि सरकार फ़ज़ूलख़र्ची कम करे, राज्यके साधनोंको व्यवस्थित कर व्यवहारतः नष्टप्राय स्थानीय और घरेलू उद्योग-धन्धोंकी उन्नति और आधुनिक कला और उद्योग धन्धोंके प्रचारमेँ सहायता करे।

“साथ ही कांग्रेस सरकारको उसके पवित्र कर्त्तव्यकी याद दिलाती है कि वह प्रजाके प्राणोंकी रक्षा और उनकी मुसीबत कम करे। (वर्त्तमान दुर्भिक्ष-सम्बन्धी विधानकी शर्तेँ कांग्रेसकी सम्मतिमेँ मज़दूरी और भोजन-सामग्रीके सम्बन्धमेँ अपर्य्याप्त हैँ, और काम-काजके सम्बन्धमेँ कठोर हैँ) और कांग्रेस सरकारसे उसकी प्रतिज्ञाओंपर पुनर्विचार करने और दुर्भिक्ष-बीमा-कोषको पुरानी रीतिपर (इसका हिसाब-किताब अलग रखकर) स्थापित करनेकी और इसका अधिकतर प्रयोग उसे पुराने उद्देशके लिये अर्थात् दुर्भिक्ष पीड़ितोंकी तात्कालिक सहायता प्रदान करनेके लिये प्रार्थना करती है।

“इस विषयको दृष्टिमेँ रखते हुए कि देशकी इस भयावनी दशामेँ इङ्गलैण्डवाले उदारतासे व्यक्तिगत दान देनेके लिये तैयार हैँ, और यह विचार करते हुए कि व्यक्तिगत दानसे ही अधिकांश पीड़ितवर्गका भला हो सकता है, यह कांग्रेस सरकारकी उस नीतिका विरोध कर रही है जो वर्त्तमान कालमेँ इसके मार्गमेँ रोड़े अटका रही है और यह कांग्रेस नम्रतापूर्वक यह आशा करती है कि इस विषयमेँ लार्ड लिटनकी सरकारद्वारा की हुई भयानक भूल दुहराई नहीँ जायगी।”

सभापति महोदय तथा प्रतिनिधि बन्धुओ !

इस प्रस्तावपर अनेक सज्जनोंने अपने विचार प्रकट किए हैँ और उन लोगोंके द्वारा प्रस्तावके विभिन्न अङ्गोंपर योग्यतापूर्ण विवेचन भी हो चुका है। मैँ आप लोगोंका ध्यान इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातोंकी ओर आकृष्ट करूँगा, पर मेरे मतसे आगे भी विचार होना चाहिए।

सज्जनो, हम अत्यन्त दयालु महारानी विक्टोरियाके कृपालु शासनमेँ अधिक कालसे बसते हैँ, और

इससे भी अधिक कालसे इङ्गलैण्डके शासनमें हैं। सभी निष्पक्ष आलोचकोंने स्वीकार किया है कि हम संसारमें सर्वश्रेष्ठ शासनोंद्वारा शासित होते हैं। अन्य बातोंके साथ-साथ आपको यह भी स्मरण होगा कि प्राकृतिक साधनोंमें हमारा देश दरिद्र नहीं है। सभी पर्य्याप्त साधनोंके होते हुए, इतने योग्य शासकोंके होते हुए, इस पृथ्वीके अन्य लोगोंकी अपेक्षा हम ही इस बार-बार होनेवाले दुर्भिक्षोंसे इतने भयानक प्रकारसे कष्ट पावें। मैं पूछता हूँ कि क्या सरकारकी वर्त्तमान शासन-पद्धतिमें तो कोई भयङ्कर दोष नहीं है? मेरे मित्र श्रीसुरेन्द्रनाथ बनर्जीने बहुत ठीक कहा है कि यदि हमें वे सुधार मिल गए होते, जिसके लिये राष्ट्रीय महासभा इतने दिनोंसे और इतना ज़ोर देकर कह रही है, और जिसका समर्थन सरकार भी कर चुकी है, तो यह भयानक दुर्भिक्ष पुरानी बात हो गई होती। (साधु-साधु) मैं प्रस्तावके प्रथम भागकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करूँगा, जिसके द्वारा हम यह बताना चाहते हैं, और हमारी यह दृढ़ धारणा है कि "दुर्भिक्षोंका प्रथम प्रकोप वर्त्तमान समयमें समस्त भारतमें थोड़ी बहुत कठोरताके साथ फैला हुआ है और अभी कुछ वर्षोंमें हुए अन्य दुर्भिक्षोंका कारण जनताकी महान् दरिद्रता है, जो सैनिक और दीवानी विभागोंकी फ़ज़ूल ख़र्चीको पूरा करनेके लिये कर बढ़ानेसे बुलाई गई है; और इस शासन पद्धतिने जनताको इतना निर्धन बना दिया है कि दुर्भिक्षके प्रथम स्पर्शसे ही ये असहाय हो जाते हैं, और यदि इन्हें सरकार या उदार व्यक्तियोंकी ओरसे भोजन दिलानेका प्रबन्ध न हो तो इनका विनाश निश्चय हो जाता है।" सज्जनो! कवि कालिदासने कहा है—कर तो वाष्प-कणिकाके समान है जो सूर्य्यकी किरणें उसे इसलिये सोख लेती हैं कि उस सोखे हुए स्थानपर उसकी उपज बढ़ानेके लिये हज़ार गुना अधिक बरसा दे। किन्तु हम लोगोंके अभाग्यसे इस वाष्पकणिकाका अधिकतर भाग जो इस प्रकार शोषित होता है वह यहाँ तो वर्षाके रूपमें आता ही नहीं, बल्कि उल्टा उन समृद्धिशाली देशोंमें हज़ारगुना अधिक मात्रामें प्रबल और नूतन स्फूर्त्तिदायिनी वृष्टिके रूपमें बरसता है जिन्हें इसकी आवश्यकता ही नहीं है। उदाहरणार्थ इस देशमें सिविल सर्विसमें काम करनेवाले विदेशी योरोपियनोंको प्रतिवर्ष छः करोड़ रुपया वेतन रूपमें दिया जाता है। सेना-विभागपर प्रति वर्ष चौबीस करोड़ व्यय किया जाता है। इसमेंसे दो तिहाई वेतनके रूपमें योरोपियनोंको मिलता है और शेष एक तिहाई इस देशके निवासियोंको। इस रक़ममें उस बड़ी रक़मको भी शामिल कर लीजिए जो हम प्रतिवर्ष गृह-व्ययके रूपमें इङ्गलैण्ड भेजते हैं। जब इस देशसे प्रतिवर्ष इतनी विशाल धन-राशि निकला करती है तो क्या आप इसमें आश्चर्य्य कर सकते हैं कि इस देशके निवासी दिन-प्रति-दिन निर्धन होते जायँ और यहाँके निवासी जीवन धारण करनेमें भी असमर्थ होते जायँ, और इससे भी अधिक असमर्थ उस दुर्भिक्षके आक्रमणको सहनेमें होते जायँ जो समय-समयपर इन्हें अपना शिकार बनाया करता है? अस्तु, केवल यही बात नहीं है, बल्कि अपनी कला और अपने उद्योग-धन्धोंपर तो एक दृष्टि डालिए। एक समय वह था जब इङ्गलैण्डवाले इस देशसे वस्त्र माँगते थे। इतना अधिक वस्त्र यहाँसे जाता था कि डैनियल डीफ़ोने एक अंग्रेज़ी पत्रिकामें लिखते हुए इस बातकी शिकायत की थी कि इसके कारण अंग्रेज़ जुलाहे बिलकुल बेकार कर दिए गए हैं। उनका राष्ट्र जुलाहोंके प्रति अपनी कर्त्तव्य-भावनासे जागरित हुआ है। पार्लियामेण्ट उनकी सहायताके लिये आगे बढ़ी और इङ्गलैण्डमें भारतीय करघोंके बने वस्त्रका व्यवहार बन्द करनेके लिये विधान बनाए गए। समयने पल्टा खाया। आज हम भारतमें चारों ओरसे इङ्गलैण्ड और अन्य विदेशोंकी बनी वस्तुओंसे घिरे हुए हैं। हम अपने प्रयोगकी छोटी-से-छोटी आलपीनतक इङ्गलैण्डसे ख़रीदते हैं। विदेशी शिल्पके इस आगमनने हमारे घरेलू उद्योग-धन्धों और कलाको विनष्ट कर दिया और हमारे करोड़ों देशवासियोंकी

रोटी छीन ली। मज़दूरीके रूपमें ये जो कुछ उपार्जन करते हैं वह सब भी विदेशियोंको समृद्धिशाली बनानेमें सहायता करता है और भारतको अधिक निर्धन बनाता है। इतना होनेपर भी यहाँ इस शोचनीय परिस्थितिके सुधारनेके लिये बहुत ही थोड़ा प्रयत्न किया जा रहा है।

सज्जनो! मैं पूछता हूँ कि क्या आज इङ्गलैण्डने संसारमें यह स्थान प्राप्त किया होता यदि वहाँकी सरकारने अपने यहाँके उद्योग-धन्धे और कलाकी रक्षाके लिये प्रयत्न न किया होता? फिर भारतके उद्योग-धन्धोंका भी उसी प्रकार पालन-पोषण क्यों न किया जाय जिस प्रकार इङ्गलैण्ड तथा अन्य पाश्चात्य देशोंके उद्योग-धन्धोंका किया जाता है। यदि भारत-सरकारने इस देशमें शिल्पकला-सम्बन्धी शिक्षाको प्रोत्साहन दिया होता, कला और उद्योगकी उन्नतिके लिये जैसा उसको प्रयत्न करना चाहिए था किया होता, यदि सरकारने विदेशी बुद्धि और योग्यताकी अपेक्षा देशी बुद्धि और देशी उद्योग-धन्धोंको अधिक उत्साहित किया होता और उसे अपनाया होता, तथा उसका उपयोग किया होता; तो देश इस समय जितना दरिद्र है उतना दरिद्र न हुआ होता और यदि दुर्भिक्ष पड़ता भी तो जनता इसकी कठोरताको बिना सरकार तथा विदेशी राष्ट्रोंकी सहायताके ही इसे सह लेती। (हर्ष-ध्वनि) किन्तु देशी कला और उद्योग-धन्धोंके विनष्ट होनेसे और भारतीयोंको अनेक सार्वजनिक नौकरियोंसे वञ्चित किए जाने आदिसे देश इस अधम निर्धनतामें पड़ा हुआ है। सम्पूर्ण जनसंख्याके प्रति एक व्यक्तिकी आनुपातिक वार्षिक आय अनुमानतः दो पौण्ड है। योरोपमें सबसे कुशासित देश टर्की माना जाता है, वहाँ भी प्रति व्यक्तिकी औसत वार्षिक आय भारतकी दूनी है। इस थोड़ीसी आयसे हम उस अधिक व्ययसाध्य शासनके व्ययको वहन करनेके लिये बाध्य किए जाते हैं जो सभ्य संसारमें निराला ही है और जिसमें उच्च पदकी नियुक्तियाँ विदेशियोंद्वारा होती हैं। इस प्रकार हम जो कुछ कररूपमें देते हैं उसका अधिकतर भाग इस देशसे बाहर चला जाता है, जो कभी वापस नहीं आता। अतः यह निश्चय था कि ऐसी परिस्थिति अधिक कालतक बनी रहे और जनताको इस दयनीय दशातक पहुँचावे कि यदि समयसे राज्यकी ओरसे उन्हें सहायता न दी जाय तो इनमेंसे चार करोड़ सदा आधे पेट भर रहे हैं, और एक फ़सलके मारे जानेसे लाखोंको प्राण देने पड़े। ये विचार केवल हम भारतीयोंके ही नहीं हैं बल्कि अनेक प्रसिद्ध अँग्रेज़ राजनीतिज्ञोंके भी हैं। मैं आपके समक्ष ऐसे केवल दो सज्जनोंके वाक्य उद्धृत करूँगा जो पर्याप्त प्रमाण होंगे। जौन ब्राइटने (हर्ष-ध्वनि) सन् १८७७ ई० में भाषण करते हुए कहा था कि—"मेरा कथन है कि सरकारने पच्चीस करोड़ जनतापर इतना अधिक कर लगा दिया है कि उसके आगे वह अब लगा ही नहीं सकती। वह जितना कर लगाती है सब व्यय कर डालती है। जितना कर लगा सकी वह तो लगाया ही, अब उसके अतिरिक्त दस करोड़का ऋण भी कर लिया है। मेरा कथन है कि इस प्रकारकी शासन-प्रणालीमें कोई घातक दोष है, जिसके कारण बहुत शीघ्र सरकारके ऊपर आपत्ति आएगी और इसको नीचा देखना होगा। केवल सरकारको ही नहीं बल्कि उन लोगोंको भी यह आपत्ति और अपमान सहना होगा जिनकी प्रतिनिधि बनकर यह शासन करती है।" दूसरे प्रसिद्ध अंग्रेज़ सज्जन सर जार्ज विनगेटका कथन है कि—"जिस देशसे कर वसूल किया जाय उसका व्यय भी उसी देशमें हो तो इसका जो प्रभाव उसके देशवासियोंपर होगा उसके ठीक विपरीत प्रभाव उस देशके निवासियोंपर पड़ेगा जहाँ यह प्रथा है कि कर तो कोई अन्य देश दे और उसका व्यय किसी अन्य देशमें हो। इनमेंसे पहली दशामें जो जनतासे कर वसूल होता है वह उस देशके उद्योग-व्यवसायोंको लौटा दिया जाता है। किन्तु उस देशकी दशा पूर्णतः विपरीत होती है जहाँ कर तो लिया जाता है एक देशसे किन्तु उसका व्यय किया जाता है किसी

पार्लियामेण्टमें भारतीयोंका प्रतिनिधित्व

२६ जनवरी, सन् १९०४ ई० मैँ सर हेनरी काटनके सभापतित्त्वमैँ बम्बईकी बीसवीँ भारतीय राष्ट्रीय महासभामैँ निम्न प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने यह भाषण दिया था।

—सम्पादक।

प्रस्ताव

"यह राष्ट्रीय महासभा समझती है कि अब वह समय आ गया है जब कि भारतवासियौँको देशके शासन तथा प्रबन्धमैँ और अधिक अधिकार मिलने चाहिएँ।

(अ) हर एक प्रान्तको बृटिश साधारण सभामैँ कम-से-कम दो प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार मिलना चाहिए।

(आ) प्रधान राजकीय तथा प्रान्तीय दोनौँ व्यवस्थापिका सभाओँमैँ ग़ैर-सरकारी सदस्यौँकी संख्या बढ़ाकर और उनको सभी आर्थिक मामलौँमैँ, जो वहाँ पेश हौँ, कौन्सिलमैँ वोट देनेका अधिकार देकर कौन्सिलौँका विस्तार करना चाहिए, और सरकारके प्रधानको उसे रद्द करनेका अधिकार होना चाहिए।

(इ) लन्दनकी भारतीय कौन्सिल तथा भारत-सरकार, बम्बई और मद्रासकी सरकारौँकी कार्य्यकारिणी सभाओँमैँ भारतीय प्रतिनिधियौँकी नियुक्ति की जानी चाहिए, जो व्यवस्थापिका सभाओँके निर्वाचित सदस्यौँद्वारा चुने जाया करैँगे।"

सभापति महोदय, प्रतिनिधि भाई-बहनो!

श्रीयुत कृष्णस्वामी ऐयरकी पाण्डित्यपूर्ण वक्तृताके बाद मुझे अधिक नहीँ कहना है। सज्जनो, इस प्रस्तावके तीन भाग हैँ, और ये तीनौँ भाग बड़ी योग्यतासे आपको पूरी तरह समझाए जा चुके हैँ। (साधु, साधु) जैसा कि मेरे दोस्त कृष्णस्वामी ऐयर महोदयने बतलाया है कि हम लोगौँकी यह इच्छा शायद कुछ लोगौँ को आश्चर्य्यजनक प्रतीत हो कि हमारे थोड़ेसे प्रतिनिधि बड़ी साधारण सभामैँ होने चाहिएँ। सज्जनो, यदि हम इसपर ग़ौरसे विचार करैँ तो यह इच्छा हममैँ इतनी असङ्गत न मालूम होगी (करतल-ध्वनि)। पार्लियामेण्टके एक विधानद्वारा यह व्यवस्था दी गई है कि भारतीय बजट (आय-व्यय) पर उस समय वाद-विवाद हो जब सभाके सब सदस्य मौजूद रहैँ, लेकिन हम यह भली भाँति जानते हैँ कि प्रतिवर्ष जब 'साधारण-सभा' मैँ भारतीय बजट पेश होता है तब सभाके प्रायः सारे सदस्य उठकर चले जाते हैँ (धिक्कार-धिक्कार)। अंग्रेज़ौँकी कर्त्तव्य-प्रियता और कर्त्तव्य-भावनासे जो आशा हमैँ थी उसके विरुद्ध वे लोग उस अवसरपर पूरी संख्यामैँ उपस्थित नहीँ होते, जब कि इतनी बड़ी जन-संख्यावाले देशके 'आय-व्यय' के प्रश्नपर उनको अपनी बड़ी साधारण सभामैँ विचार करना होता है। अच्छा, भाइयो! हम इसकी शिकायत नहीँ करैँगे, क्यौँकि उनको भी तो एक विस्तृत साम्राज्यकी देख-भाल करनी होती है, उन्ह स्वयं अपने ही देशकी बहुतसी महत्त्वपूर्ण बातौँपर विचार करना रहता है और उनके सिर ऐसे ही बहुतसे कार्य्य लगे हुए हैँ और इसलिये शायद उन्हैँ समय नहीँ मिलता। अतः हम अपनी नम्र सेवाएँ अर्पित करते हैँ, (साधु, साधु) और उनसे प्रार्थना करते हैँ

कि वे "हमेँ भी उस महान् और यशस्वी महासभामेँ स्थान देँ कि जिससे हम अपने देश-वासियोँकी उन शिकायतोँको स्वयं अपने मुँहसे कह सकेँ (साधु, साधु) जिनके कि हम संरक्षक हैँ। यदि यह प्रार्थना स्वीकार हो तो हम आपको धन्यवाद देँगे और इस देशके शासनको ज़्यादा अच्छी तरह चलानेमेँ सहायता देँगे, जिससे सरकारके शासनका अधिक आदर और यश होगा।" (साधु, साधु) पर आजकलकी दशा तो यह है कि साधारण सभाके वहुत थोड़ेसे ही सदस्य भारतीय प्रश्नोँमेँ रुचि रखते हैँ। यह कहनेसे हम अपने उन मित्रोँके परिश्रमकी उपेक्षा नहीँ करते जो समय-समयपर भारतके लिये कुछ-न-कुछ कार्य्य करते ही रहते हैँ (साधु-साधु) और जो पार्लियामेण्टमेँ और उसके वाहर भी हमारे लिये सोचते रहते हैँ। (साधु-साधु) लेकिन इस वड़े साम्राज्यके गोरख-धन्धेमेँ इतने दरिद्र और इतने दूरवर्त्ती देश भारतकी दशापर सुनवाई होना वास्तवमेँ वड़ा ही कठिन है। सज्जनो! तिसपर भी यदि इङ्गलैण्डमेँ हमारे मित्र भारतीय प्रश्नोँपर कुछ ध्यान देते भी हैँ तो उसका कारण यही है कि सत्य और न्याय हमारे पक्षमेँ है। (साधु-साधु) अंग्रेज़ हमारी प्रार्थनाको स्वीकार करेँगे या नहीँ इसका निर्णय उन्हीँपर छोड़ देना चाहिए। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपनी शिकायतेँ उनसे कहेँ और यह उनका कर्त्तव्य है कि उसपर विचार करके उन्हेँ स्वीकार करेँ या न करेँ। हमारी माँग यही है कि—"हमारी व्यवस्थापिका सभाओँके सदस्योँकी संख्या वढ़ा दो और हमारे इसी देशमेँ हमेँ कुछ वास्तविक अधिकार दे दो और हम अपनी सम्मति देकर सरकारकी सहायता करेँगे और तव तुम्हेँ सात समुद्र पार इङ्गलैण्डसे हमारे देशपर शासन करना दिन-प्रति-दिन सरल होता जायगा। (साधु-साधु) वर्त्तमान स्थितिमेँ सरकारने व्यवस्थापिका सभाओँमेँ और अधिक सदस्य निर्वाचन-द्वारा वढ़ानेके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है और यह सिद्धान्त वड़ी छानवीनके वाद स्वीकृत किया गया है (साधु-साधु) और सम्पूर्ण विषय सावधानीसे जाँचा गया था।" (करतल-ध्वनि) स्वर्गीय व्रैडलौ महोदयने इस विषयको पार्लियामेण्टमेँ पेश किया और साधारण सभामेँ दोनोँ ओरके वड़े-वड़े विशेषज्ञोँद्वारा इसके प्रत्येक पहलूपर विचार किया गया। स्वर्गीय लौर्ड सैलिस्वरीने डरते हुए थोड़े ही अंशोँमेँ इस सिद्धान्तको स्वीकार किया। उन्होँने राजकीय परिषद्मेँ वीस सदस्योँको स्वीकार किया है, दूसरी कौन्सिलमेँ सोलह और अन्यमेँ पन्द्रह इत्यादि। यह सुधारका एक वहुत ही लघु रूप था। लेकिन हम लोगोँने इसकी शिकायत नहीँ की, वल्कि इसे वड़ी आशासे अपनाया और इसके लिये पार्लियामेण्टको वहुत धन्यवाद दिया। (साधु साधु) जैसा कि मेरे मित्र कृष्णस्वामी ऐयरने कहा था कि यह सुधार वहुत सफल हुआ है। उन्होँने इसका ज़िक्र किया था कि अनेक प्रान्तोँके गवर्नर और गवर्नर-जनरल सभी भिन्न-भिन्न कौन्सिलोँके सदस्योँकी योग्यतापर वड़े प्रसन्न थे। (साधु, साधु) इस सम्वन्धमेँ किसीके वारेमेँ कोई शिकायत नहीँ हुई। जो सदस्य निर्वाचित होकर गए हैँ वे उस समयके सदस्योँसे किसी प्रकार कम योग्य न थे, जव नामज़द करनेकी प्रथा थी। (साधु-साधु)। अच्छा, सज्जनो! अव हमारा सरकारसे निवेदन है कि—"आप लोगोँने देख लिया कि भिन्न-भिन्न कौन्सिलोँमेँ चुनकर भेजे हुए सदस्योँका कार्य्य कितना अच्छा हुआ है। आपने हमारे कार्य्यकी सफलता देखी। हम लोगोँने कठिन परिश्रम करके आपको सन्तुष्ट कर दिया कि हम लोग निर्दिष्ट कार्य्य करनेके सर्वथा योग्य हैँ। हम लोगोँने प्रमाणित कर दिया है कि हममेँ अपना कार्य्य सुचारु रूपसे करनेकी विशेष क्षमता है। (साधु-साधु) हम अव आप लोगोँसे कौन्सिलोँको वड़ा करनेकी प्रार्थना करते हैँ कि चार सौ चालीस लाख जनसंख्याके पीछे कुल पन्द्रह सदस्य-सात सरकारी और आठ ग़ैर-सरकारी होनेके वजाय हमेँ ऐसी कौन्सिल मिले जिसमेँ दस लाख लोगोँके

पीछे कम-से-कम एक प्रतिनिधि हो। (साधु-साधु) यह बात इस प्रस्तावमें नहीं है, लेकिन यह उदाहरण इसलिये दिया है जिससे यह स्पष्ट हो जाय कि कौन्सिलोंका विस्तार किस प्रकार सम्पादन होना चाहिए।"

हमारे मित्र कहते हैं कि—"भाई तुम्हारी माँगें कितनी न्याययुक्त हैं? मुझे आपका उसमें विश्वास करानेकी आवश्यकता नहीं है। आप स्वीकार करते हैं कि कौन्सिलोंमें हमारे सदस्योंकी संख्या बहुत ही कम है। इसी लिये हम यह कहते हैं कि "उनकी संख्या बढ़ा दो" हम यह भी कहते हैं कि "हमें कुछ वास्तविक अधिकार दो और हमपर आप अधिक विश्वास करो।" आख़िर इससे हमें कोई ताक़त नहीं मिल जायगी, क्योंकि रद्दोबदल करनेका अधिकार तो प्रधान सरकारी शासकके हाथमें ही रहेगा। इसका अर्थ तो केवल हममें विश्वासकी मात्रा बढ़ाना और हमारा अधिक विश्वास करनेकी बात है (साधु-साधु)—हमारे ऊपर उसी भावनासे विश्वास कीजिए जैसा कि हमारी स्वर्गीय दयालु सम्राज्ञीने संरक्षित लोगोंके साथ व्यवहार करनेकी अभिलाषा तुमसे प्रकट की थी। (साधु-साधु) यदि आप ऐसा करो तो बहुतसी शिकायतें और बहुतसे झगड़ोंका अन्त हो जाय। (साधु-साधु) आजकल दशा यह है कि आय-व्ययका चिट्ठा विचारके लिये कौन्सिलमें पेश होता है, हम चाहे कितने ही दिनोंतक इसपर बहस करते रहें, किन्तु उसपर राय नहीं ली जा सकती। मत लेनेके लिये हम कौन्सिलको विभाजित नहीं कर सकते। इसी लिये हम कहते हैं कि आप हमें हरएक बातमें ऐसा ही अधिकार क्यों नहीं देते? सरकार भारतीयोंकी कुशलता, योग्यता और कर्त्तव्य-परायणतासे बड़ी प्रसन्न है, तब फिर आप कौन्सिलमें अधिक सदस्य क्यों नहीं नियुक्त करते और उन्हें अधिक विश्वास-पात्र बनाते? उनके साथ अन्य योरोपियनों या अपने देश-वासियोंके समान ही क्यों नहीं विश्वासका व्यवहार करते? यदि सरकार मत-प्रदर्शनमें अधिकार नहीं देती तो वह वाद-विवाद एक तरहसे निरर्थक ही होता है। (साधु-साधु) उसपर चाहे कितने भी प्रभावशाली व्याख्यान दिए जायँ, किन्तु बेचारे ग़ैर-सरकारी सदस्योंके हाथमें तो कुछ नहीं रहता। यदि ग़ैर-सरकारी सदस्योंको मत लेनेके लिये कौन्सिलको विभाजित करनेका अवसर मिले, तो वे कौन्सिलमें आजसे कहीं बढ़कर काम कर सकेंगे। (साधु-साधु) मैं यह नहीं कहता कि कौन्सिल केवल एक प्रहसन है। वे बहुत कुछ काम करती हैं, किन्तु मैं पूछता हूँ कि जिन भारत-वासियोंपर बृटिश जाति एक शताब्दीसे शासन कर रही है क्या वे थोड़े और अधिक विश्वासके पात्र नहीं हैं? और भारतीयोंकी उन्नतिमें बाधक होनेवाली बृटिश जातिकी अविश्वासकी नीति क्या नहीं बदल जानी चाहिए? और क्या वह अविश्वासकी भावना पूर्ण विश्वासके रूपमें परिवर्त्तित नहीं होनी चाहिए? सज्जनो अपने माननीय मित्र सर फ़ीरोज़शाह मेहता और गोखले जैसे योग्य और लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियोंको भारतमें देखकर आप लोग क्या धारणा करते हैं? (ज़ोरसे हर्ष-ध्वनि) कोई यह कहनेकी धृष्टता नहीं कर सकता कि ये सज्जन उन लोगोंसे किसी भी प्रकार कम योग्यता रखते हैं जैसे कि व्यवस्थात्मक-विधानवाले देशोंमें पाए जाते हैं (साधु, साधु) सज्जनो, सरकारने हमें यह अधिकार न देकर केवल हमारी ही हानि नहीं की है, वल्कि स्वयं अपनी भी हानि की है। (करतल-ध्वनि) क्योंकि दुनियामें यह बात फैलती है कि ऐसे योग्य और विशेषज्ञ भारतीयोंको—जिनका हमने ज़िक्र किया है ऐसे ही और भी बहुतसे इस देशमें अपने देशके शासन-प्रबन्धमें भारतकी ओरसे बोलनेका अधिकार न दिए जानेका कोई कारण नहीं हो सकता? मैं तो सोचता हूँ कि इस ओर जितनी ही जल्दी सरकार ध्यान दे और इस दोषको दूर करनेका प्रयत्न करे उतना ही उसके लिये और हमारे लिये अच्छा होगा।

(साधु-साधु) क्योंकि जबतक यह कलङ्क दूर न होगा तबतक उसकी बराबर निन्दा होती रहेगी। यह क्यों नहीं दूर किया जाता? इसका कारण केवल वही परमात्मा जाने; हम लोग नहीं बतला सकते। हम तो सरकारसे यही माँगते हैं कि इस देशमें वे सभी अच्छे सिद्धान्त प्रचलित होने चाहिएँ जिनको व्यवहारमें लानेके लिये सुयोग्य अंग्रेज़ समय-समयपर सिफ़ारिश करते रहे हैं। (साधु-साधु) हम लोग बृटिश-सरकारसे केवल उन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार चलनेकी आशा रखते हैं। (करतल-ध्वनि) हम लोगोंको चाहिए कि जिस उदार घोषणाका बहुत बार ज़िक्र किया गया है उसकी बार-बार याद दिलाकर उन्हें थका दें। इस देशके शासन-प्रबन्धके लिये घोषणामें दिए हुए सिद्धान्त सर्वोत्कृष्ट हैं, और उनसे किसी भी राष्ट्रका गौरव बढ़ सकता है। मैं समझता हूँ कि दूसरी जातिद्वारा शासित देशके लिये उससे ऊँचे आदर्शकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। हम लोग गवर्नमेण्टसे कोई क्रान्तिकारी परिवर्त्तन करनेके लिये नहीं कहते, हम तो केवल यही चाहते हैं कि वह घोषणामें दिए हुए सिद्धान्तोंके अनुसार कार्य्य करे। और जिन सिद्धान्तोंकी हमें शिक्षा दी गई है उनको भली भाँति व्यवहारमें लावे। (साधु-साधु) हमारे मस्तिष्कमें अंग्रेज़ी साहित्य भरा हुआ है और हमारे मस्तिष्क स्वतन्त्रताके आदर्शोंसे प्रज्ज्वलित और प्रकाशित हो गए हैं। हम लोगोंने अंग्रेज़ी साहित्यके द्वारा स्वतन्त्रताकी भावनाओंको अपनेमें जमाया है। (साधु-साधु) हम लोगोंने इङ्गलैण्डके स्वतन्त्रता और न्याय-प्रिय जीवनसे प्रेम करना सीखा है। हमने पढ़ा है और हम भली भाँति जानते हैं कि इङ्गलैण्डने उन सिद्धान्तोंको बहुतसे स्वाधीन उपनिवेशोंमें प्रचलित कर रक्खा है। इङ्गलैण्ड अब इस देशके उन निवासियोंके सम्पर्कमें आ गया है जो अभाग्यवश इस समय गिरी दशामें हैं, किन्तु अपने प्राचीन गौरवपर गर्व कर सकते हैं। (साधु, साधु) और हम लोगोंने वह सिद्ध भी कर दिया है कि इङ्गलैण्डकी दी हुई शिक्षाओंसे हमने बहुत लाभ उठाया है। (साधु-साधु) हम लोगोंने उन शिक्षाओंसे भरसक लाभ उठाया है, और हम जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें इङ्गलैण्ड-वासियोंके साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलनेमें पीछे नहीं हैं। (साधु-साधु) हम देखते हैं कि भारतीयोंमेंसे बहुतसे हाईकोर्टके बड़े योग्य न्यायाधीश हो गए हैं जिन्होंने बड़ी योग्यता और कुशलतासे अन्य देशके न्यायाधीशोंके समान अपना कर्त्तव्य पालन किया है। (साधु-साधु) बहुतेरे भारतीय सज्जन हाइकोर्टके उच्च पदोंपर नियुक्त हैं (साधु-साधु) और वे बड़ी सच्चाई और सम्मानके साथ अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं। इतना सब होते हुए भी हम क्या देखते हैं? अपने ही देशमें हम यह जाननेके लिये उत्सुक हैं कि हम उस बड़े बृटिश साम्राज्यके अङ्ग हैं जिनका हम उसकी स्वतन्त्र-प्रियताके लिये आदर करते हैं। यदि आप इस प्रस्तावको अधिक ध्यानसे जाँच करें तो आपको ज्ञात हो जायगा कि हम यही चाहते हैं कि निर्णीत सिद्धान्तोंका पालन हो, जैसा कि हमारी स्वर्गीय सम्राज्ञीने अभिलाषा प्रकट की थी, ताकि हम भारतीय यह न समझें कि हमें विदेशियोंके साथ रहना पड़ रहा है। (साधु-साधु) हम देखते हैं कि सरकार उन सिद्धान्तोंके अनुसार कार्य्य न करके, हमारी योग्यता और कार्य्यकी कोई क़ीमत न कर, एक दलित जातिकी भाँति हमारे साथ व्यवहार करके और जाति-भेदको हमारी योग्यताके मार्गमें बाधक बनाकर, वह उन सिद्धान्तोंके बिल्कुल विपरीत कार्य्य करके हमारी भावनाओं और आशाओंको कुचलती जा रही है। ऐसी परिस्थितिको देखकर सरकारकी ओरसे हमारे हृदयको बड़ा आघात पहुँचा है। इङ्गलैण्डका हरएक स्वाधीन उपनिवेश जितना हम चाहते हैं उससे कहीं बहुत अधिक अधिकार पाए हुए है। इङ्गलैण्ड या और किसी भी बृटिश उपनिवेशमें लोगोंको शासन-प्रबन्धमें पूरा भाग लेनेके अधिकार मिल गए हैं। हमें ज्ञात है कि अन्य योरोपीय जातियोंने इङ्गलैण्डकी स्वतन्त्र संस्थाओंसे बहुत लाभ उठाया है।

स्वतन्त्रता, न्याय-प्रियता और स्वाधीनताके विचार अधिकतर इङ्गलैण्डसे ही बाहर गए हैं और उनकी वजहसे वे लोग बड़ा सुखमय जीवन बिता रहे हैं। (साधु-साधु) अस्तु, हम देखते हैं कि सभ्यताकी यह भीषण लहर प्रत्येक देशमें पहुँची है और वहाँके मनुष्योंको इसीने उन्नत किया है। वे पचास वर्ष पहलेकी अपेक्षा आज राजनीतिक, सामाजिक तथा मानसिक दृष्टिसे एक उच्चतर और सुखमय स्थितिमें हैं। जब हम अपने एक ओर सभी देशोंको थोड़ी बहुत उन्नति करते देखते हैं और जब वे दिन-दिन सभ्यतामें एक दूसरेसे अधिक बढ़ते-चढ़ते चले जाते हैं और दूसरी ओर हम देखते हैं कि अपनी प्राचीन सभ्यता, ज्ञान और वैभवके होते हुए भी और बृटिश-शासनकी छत्रच्छायामें हम जिस दशामें हैं उसमें हम लोग उन अधिकारों और स्वत्त्वोंसे वञ्चित रक्खे गए हैं, तो मैं आपसे, एवं प्रत्येक न्याय-प्रिय अंग्रेज़से और अपने प्रत्येक भाईसे पूछता हूँ कि क्या हम लोगोंको इस दशामें रखना सरकारके लिये उचित है? क्या हम लोग यह विचार अपने मन ही में न लावें कि हम भी उसी राष्ट्रके अङ्ग हैं और इसका ख़याल ही न करें कि हमारे साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है कि मानो हम पतित और हीन दास जातिके हैं? सज्जनो! यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है, जिसपर कि हमारे सारे मामलेका दारोमदार है। यद्यपि भारतवासी सैनिक नौकरीसे वञ्चित रक्खे जाते हैं, किन्तु व्यवस्थापक-विधानके अनुसार उन्हें अधिक स्वत्त्व और अधिकार देनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। (साधु-साधु) सज्जनो! हम चाहते हैं कि जिन अंग्रेज़ोंके हाथमें ईश्वरने हमारा भाग्य सौंप दिया है, वे उन सिद्धान्तोंके अनुसार ही चलें तो मुझे विश्वास है कि बहुतसी शिकायतें दूर हो जायँगी, और जो उन सिद्धान्तोंसे स्वाभाविक प्रेम रखनेवाले लोग हैं, वे उनकी क़दर करेंगे। (साधु-साधु) यदि इङ्गलैण्ड अपने प्रति सच्चा बनना चाहे और यदि अपनी सन्तानको घोषणामें बतलाए हुए सिद्धान्तोंके अनुसार हमारे देशका शासन-प्रबन्ध करनेका आदेश करे और यदि इङ्गलैण्ड केवल इस बातका बराबर ध्यान रक्खे कि वहाँके अंग्रेज़ लोग उसकी भारतीय प्रजाके साथ उन सिद्धान्तोंके अनुसार ही व्यवहार करते हैं, उसी समय हमारी सब शिकायतें दूर हो जायँगी और वे सुधार बहुत शीघ्र ही हमको दे दिए जायँगे, जिनके लिये हम प्रार्थना कर रहे हैं।

(करतल-ध्वनि)।

बंगालमें दमन-नीति

काशीमेँ माननीय गोपालकृष्ण गोखलेके सभापतित्वमेँ २७ दिसम्बर, सन् १९०५ ई० की इक्कीसवीं भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी बैठकमेँ निम्न प्रस्तावको उपस्थित करते हुए पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण । —सम्पादक

सभापति महोदय तथा सज्जनो !

जिस प्रस्तावका भार महासभाने मुझे सुपुर्द किया है, वह इस भाँति है—

प्रस्ताव

“कि यह महासभा बङ्गाल-सरकारकी दमन-नीतिका हृदयसे घोर विरोध करती है, क्योँकि भारत-सरकारने सारी जनताकी प्रार्थनाओँ तथा प्रतिवादोँको ठुकराकर अपने बङ्ग-भङ्गके निश्चयको बराबर क़ायम रक्खा है। अतएव बङ्गालकी जनताने इस अन्यायकी ओर इङ्गलैण्डकी जनताका ध्यान दिलानेके लिये अन्तमेँ हारकर अपने एकमात्र वैध साधनका अवलम्बन कर विदेशी वस्तुओँका बहिष्कार कर दिया है।”

सज्जनो !

मेरे परम मित्र बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके ओजपूर्ण व्याख्यानको आपने सुन लिया, जिसमेँ उन्होँने इस प्रस्तावको पास करनेके औचित्य तथा आवश्यकतापर उचित प्रकाश डाला है। बङ्गाल-सरकारकी दमन नीतिकी बात आप कहते हो, किन्तु इस नीतिको क्योँ काममेँ लाया गया है, इसे बतलानेकी यहाँपर कोई आवश्यकता नहीँ है। भारत-सरकार अथवा लौर्ड कर्ज़न इस “बङ्ग-भङ्ग” पर तुले हुए हैँ। संयोगसे जनताको इसका पहले ही पता चल गया, और उन्होँने इस प्रस्तावके विरुद्ध अपना नम्रता-पूर्ण विरोध भेजा । प्रार्थना-पत्रपर प्रार्थना-पत्र भेजे गए, निवेदन-पत्र पेश किए गए, विरोधमेँ सभाएँ की गईं, और जनताने सभी प्रकारका वैध आन्दोलन किया कि बङ्गालके दो टुकड़े करके उसको दो विभिन्न शासनमेँ रखनेका कोई स्पष्ट कारण नहीँ बतलाया जाता है, पर कोई सुनवाई नहीँ हुई । जनता सङ्कटित हुई, और ऊपरके बड़े अफ़सरोँ तथा भारत-सचिवके पास अपनी प्रार्थना भेजी । अभाग्यसे उसकी भी कोई सुनवाई न हुई । अन्तमेँ हारकर इङ्गलैण्डकी बड़ी सभातक जानेका निश्चय कर लिया, और अधिक संख्यामेँ जनताके हस्ताक्षर कराके एक निवेदन-पत्र वहाँ भी भेजा और उसे पेश करनेके लिये एक अंग्रेज़ सभासदको राज़ी भी कर लिया । इसपर वादविवाद भी हुआ, परन्तु नतीजा कुछ न निकला । सज्जनो ! यह सब बहुत समयतक होता रहा । हम लोग वैध-सरकारके राज्यमेँ हैँ । जिन उपायोँको वैध बतलाया जाता है उन्हीँ उपायोँको बङ्गालकी जनताने ग्रहण किया । उसमेँ कोई बात ऐसी न थी जिसके विषयमेँ किसीको कोई एतराज़ होता । (साधु, साधु) वे अपने इस प्रयत्नमेँ विना उत्तेजनाके, शान्ति और स्थिरताके साथ अग्रसर हुए, और अपने विचारोँको नम्रतापूर्ण शब्दोँमेँ व्यक्त करते रहे । (साधु, साधु) सज्जनो ! उस समयके अधिकारियोँपर कोई भूत सवार हो गया

था। उन्होंने सारी प्रार्थनाओंको ठुकरा दिया और "बङ्ग-विच्छेद" करनेपर कमर कस ली। इसके इतिहासको बतानेकी मुझे आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अन्य वक्ताओंने इसके सम्बन्धमें स्पष्ट और सुन्दर वर्णन कर दिया है। फल यह हुआ कि जनता प्रतीक्षा करती रही। अभीतक जनताने ज़रा भी उत्तेजना प्रदर्शित नहीं की। यद्यपि जनता अत्यन्त ही विचलित हो गई थी, तो भी सरकारने तनिक भी सुनवाई नहीं की। सज्जनो! यदि अन्य कहींकी जनता इतनी हताश दशामें होती तो शायद बङ्गालसे अधिक भयङ्कर काम कर डालती। हमारे बङ्गाली भाइयोंको और बङ्गालके नवयुवकोंको इसका सारा श्रेय है (हर्ष-ध्वनि) कि ऐसे अवसरपर, जब कि उनके विचार अत्यन्त उत्तेजित हो उठे थे, जब कि ग़दरके बाद भारतका कोई भी प्रान्त इतना अधिक उद्विग्न नहीं हुआ जितना कि इस समय बङ्गालका सारा प्रान्त है, इतने उसकानेपर भी अपने कष्टोंसे छुटकारा पानेके लिये उन्होंने कोई अनुचित या अवैध उपायका अवलम्बन नहीं किया।

सज्जनो! कोई भी नीति-कुशल तथा न्यायपूर्ण सरकार इस दृश्यको देखकर प्रसन्न हुई होती तथा जनताकी इस नम्रता और सहनशीलताको देखकर पिघल जाती और माँगोंको पूरा कर देती। यह भारत-सरकारका दुर्भाग्य कहना चाहिए कि उसने कोई सुनवाई नहीं की। फलतः जनता अत्यन्त निराश और हताश हो गई। वे क्या करते? उन्हें जान पड़ा कि उनकी आवाज़में शक्ति नहीं रही। यहाँतक कि मेरे मित्र बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जीकी शक्तिपूर्ण आवाज़ भी कोई प्रभाव नहीं डाल सकी। प्रान्तके सभी महान् व्यक्ति, जातिके सर्वश्रेष्ठ आदरणीय पुरुष, महाराजा सर ज्योतीन्द्र मोहन ठाकुर तथा सर गुरुदास बनर्जी जैसे मनुष्य भी, जिन्हें राजनीतिक आन्दोलनोंसे विरक्ति थी, अपने सिद्धान्तोंका त्याग करके, जनताकी प्रार्थनाओंपर सरकारका ध्यान दिलानेके लिये निकल पड़े। फिर भी कोई सुनवाई नहीं। तब जनताने कहा'—हम क्या करें? हमारे साथ यह अन्याय किया गया है। अच्छी बात है हम ऐसा चीत्कार करें कि जो शायद सात समुद्र पार पहुँचकर इङ्गलैण्डमें तहलक़ा मचा दे, वह यह कि विदेशी मालका बहिष्कार करना चाहिए। मैं मानता हूँ कि यह अन्तिम उपाय है। कोई भी समझदार व्यक्ति, जो अपने देशका भला चाहता हो, ऐसी राय कभी नहीं देगा कि कोई ऐसा काम किया जाय कि जिससे हमारे इङ्गलैण्डके भाई और यहाँके लोगोंमें कोई मन-मुटाव पैदा हो। प्रत्येक व्यक्ति, जो देशकी आवश्यकताओं तथा वर्त्तमान परिस्थितिको समझता है, हमारे इङ्गलैण्डके भाइयों तथा यहाँके लोगोंमें परस्पर मेल तथा सद्भाव रखना ही पसन्द करेगा। अतएव यह कोई सन्तोष की बात नहीं है, और न किसी भी देश-भक्तकी इच्छा है कि वह इस बहिष्कारको चलाए या उत्तेजित करे। जनताने स्वयं बाध्य होकर इस अन्तिम साधन बहिष्कारका उपयोग किया है। इसको ग्रहण करनेसे उनका मतलब यह था कि ऐसा करनेसे शायद इङ्गलैण्डकी जनतापर कुछ प्रभाव पड़े और परिणामतः सङ्कटित बङ्गालकी प्रार्थनाओंपर ध्यान चला जाय। सज्जनो! इससे बड़ी हलचल पैदा हुई। परन्तु यह याद रहे कि यह हलचल शान्तिप्रिय तथा व्यवस्था-प्रिय प्रजाकी थी जो यह जानते थे कि ऐसी परिस्थितिमें उन्हें क्या करना होगा। बहिष्कार चलता रहा। जब इसको ग्रहण कर लिया गया, तथा यह विचार फैल गया और जनता उसे करने लगी तब अभाग्यसे दमन किया गया। जिन्होंने भूल की थी उसे लोगोंके आन्दोलनसे सीखनेकी बजाय, वे अपनी जिद ठाने रहे और जनताकी न्यायोचित माँगोंपर तनिक भी विचार करनेकी बजाय उनको ठुकरा दिया गया। वे अत्याचार करने लगे। जो कुछ जनताके विरुद्ध किया गया है उसे सुनकर आप अत्याचार ही कह सकते हैं। जब कि जनताकी ओरसे किसी प्रकारकी उत्तेजना

अधिकारियोंके प्रति नहीं थी, उस समय प्रतिष्ठित व्यक्तियोंको स्पेशल कोन्स्टेबुल नियुक्त करना, जातिके विद्वान् और प्रमुख व्यक्तियोंसे इस तिरस्कृत कामको कराना, जब ऐसा करनेके लिये कोई अवसर नहीं। जिनके दरवाज़ेपर वन्दे-मातरम्का साइनबोर्ड हो उसको ले जाना या नष्ट कर देना, जनताको यह सलाह देना कि नगरोंको छोड़कर बाहर निकल जायँ जैसा कि कुछ सरकारी-पत्रोंमें इस 'सलाह' शब्दका प्रयोग हुआ है (हँसी), जनताद्वारा की जानेवाली सभाओंमें खुफ़िया पुलीसको ख़बर मँगानेके लिये भेजना कि जनता सरकारके दमनके विरोधमें क्या करना चाहती है। मैं पूछता हूँ कि इन सब कामोंके करनेकी क्या आवश्यकता थी? क्या इसका कोई भी चिह्न था कि कोई व्यक्ति सरकारके विरुद्ध विद्रोह करना चाहता है? इस लम्बे अर्सेमें प्रारम्भसे अन्ततक, कहीं भी शान्ति-भङ्ग नहीं हुई। इसका सबसे अच्छा प्रमाण यही है कि ऐसा कोई भी दृष्टान्त नहीं मिलता जो बता सके कि इस कारणसे सरकारको यह अन्यायपूर्ण दमन करना पड़ा। जनताको डराने और कुचलनेके लिये तुच्छ तथा कृत्रिम साधनोंका सहारा लिया गया, किन्तु वास्तवमें कोई भी ऐसा कार्य्य नहीं किया गया जिससे ऐसे न्याय-विरुद्ध दमनको न्यायोचित सिद्ध किया जा सकता। सज्जनो! अब मुझे आपसे यह कहना है कि जब ऐसी परिस्थिति उपस्थित हो जाती है तब वह केवल प्रान्तीय प्रश्न नहीं रह जाता। आप लोगोंमेंसे बहुतसे भाई यह नहीं समझे कि कांग्रेसने इस विषयको अपने हाथमें क्यों लेना चाहा है, जो इतने बड़े सारे बङ्गाल प्रान्तका प्रश्न है। क्या वह प्रश्न कांग्रेसद्वारा विचारने योग्य नहीं है? यदि सारे बृटिश साम्राज्यके अन्तर्गत किसी भी एक व्यक्तिके साथ अन्याय किया जाता है और हम समझते हैं कि उसका निराकरण अथवा विरोध वाञ्छनीय है तो ऐसा करना आप लोगोंका प्रथम कर्त्तव्य है। (हर्ष-ध्वनि) यदि आप बङ्गालमें होनेवाले इस अन्यायपूर्ण व्यवहारका विरोध नहीं करते तो अपने धर्मसे च्युत हो जाते हैं। (हर्ष-ध्वनि) यह बङ्गालका दुर्भाग्य है कि वहाँ ऐसा प्रश्न उठा। सज्जनो! आपको यह नहीं समझते रहना चाहिए कि ऐसा सङ्कट कल किसी अन्य प्रान्तपर नहीं आ सकता। आपको भारत तथा इङ्गलैण्डके सम्राट्के साम्राज्यमें होनेवाले ऐसे अन्यायका ज़ोरसे विरोध करना चाहिए। यह सब रूसमें उत्पन्न हो सकता है, उससे मुझसे और आपसे कोई सम्बन्ध नहीं। बृटिश साम्राज्यमें तो ऐसा दमन कभी हुआ ही नहीं। हम नहीं चाहते कि भविष्यमें ऐसी बातें हों, क्योंकि विरोध न करनेसे ऐसा होना अवश्यम्भावी है। सज्जनो! इसी कारण आपके सामने यह प्रस्ताव रक्खा गया है। यह बात नहीं है कि कांग्रेस सारे देशको इस बहिष्कारके लिये आवाहन करती है। (साधु, साधु) आपको यह याद रखना चाहिए कि कोई भी देश-भक्त देशके हितमें इङ्गलैण्ड और भारतकी जनतामें परस्पर वैमनस्य पैदा कराना नहीं चाहता। यदि सरकार हृदयसे चाहती है कि इस बहिष्कार आन्दोलनने जो भावना उत्पन्न कर दी है वह शान्त हो जाय तो उसका इलाज उसके हाथमें है। यदि वे इस अनावश्यक बङ्ग-भङ्गके कुत्सित निर्णयको रद्द कर दें तो बहिष्कारका कल ही अन्त हो जाय। (हर्ष-ध्वनि) सज्जनो! याद रखिए कि हमें स्वदेशीको बहिष्कारके साथ नहीं मिलाना चाहिए। (साधु, साधु) दोनोंको मिलानेसे बड़ी गड़बड़ होगी। बङ्ग-भङ्ग तो अभी थोड़े ही समयसे हुआ है। परन्तु मेरा स्वयं अनुभव है, स्वदेशी आन्दोलनको तीस वर्ष हो गए। जब मैं स्कूलमें था, तभी इसकी शिक्षा मुझे दी गई थी, और मुझे यह कहते प्रसन्नता और गर्व है कि इससे मुझे बहुत लाभ हुआ है और इसको मैं कौलेज ही से ग्रहण किए हुए हूँ। उसी समयसे आजतक मैं इस प्रान्तके भी अनेक अपने मित्रोंसहित, जहाँतक हो सका है, स्वदेशी वस्तुओंको ही उपयोगमें लाता रहा हूँ। उस आन्दोलनका आधार बिल्कुल भिन्न है और देशके

गई है ? सीमा प्रान्तीय नीतिके लिये तथा अन्य विषयोंपर जो धन व्यय हुआ है उसके विचारसे शिक्षाके लिये जो धन व्यय किया गया है वह बहुत कम है। कौन कहेगा कि भारत-सरकारको इसपर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए और पिछले वर्षोंकी अपेक्षा इसके लिये अधिक धन न व्यय कराना चाहिए ? हमारा कहना है कि सार्वजनिक नौकरियोंके ऊँचे-ऊँचे पदोंपर योरोपियनोंकी जगह भारतीयोंकी नियुक्ति करनेसे शासन अधिक अच्छा होगा और व्ययमें भारी कमी सम्भव हो सकेगी । सज्जनो ! मैं नहीं समझता कि इस विषयपर और देरतक मुझे कहनेकी कोई आवश्यकता है, किन्तु विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातें और हैं जिनपर विचार करनेके लिये मैं आपसे समय चाहता हूँ। हम इतने दिनोंसे बृटिश शासनके अन्दर बसते हैं। कोई भी ईमानदार और समझदार भारतीय मुक्त कण्ठसे इस बातको स्वीकार करेगा कि बृटिश शासनमें हमने अनेक सुखोंका उपभोग किया है और कर रहे हैं (हर्ष-ध्वनि)। किन्तु साथ ही अंग्रेज़ोंने हमें जो शिक्षा प्रदान की है और जिसके लिये हम उन्हें धन्यवाद देते हैं—और जिसके लिये उन्हें दुखी होनेकी आवश्यकता नहीं है—उसी शिक्षाने हमको बहुतसी बातें समझनेकी योग्यता भी प्रदान की है । सरकारने हमको एक सीमातक ऊपर उठाया है, किन्तु कुछ लोग हमको त्रिशङ्कुकी भाँति अधरमें ही लटकाए रखना चाहते हैं। अतः हम सरकारसे निवेदन करते हैं कि हमको ऊँचे उठने दो। कुछ ऐङ्गलो इण्डियनोंकी इच्छा है कि हम नीचे ही पड़े रहें। किन्तु व्यवस्थात्मक सरकारकी अंग्रेज़ी नीति उस पद्धतिको नहीं पालन करेगी। हमारा कहना है कि—"हमको ज़रासा उठा दो तो हम अधिक राजभक्त और अधिक कृतज्ञ बनेंगे।" अब हम क्या देखते हैं ? इन नौकरियोंके सम्बन्धमें आप देखते हैं कि इन अनेक वर्षोंमें यदि कोई व्यक्ति किसी ओर अपनी दृष्टि डाले तो उसको राज्यनिष्ठा और गम्भीर राज्यनिष्ठाके अनेक प्रमाण प्राप्त रहेंगे। यह राजभक्ति देशी नरेशों और भारतीय जनता दोनोंमें समान रूपसे पाई जायगी। (हर्ष-ध्वनि) सरकार इस बातसे पूर्णतः सन्तुष्ट है कि देशी सेना राजभक्त है। अस्तु ! हम इसीसे प्रारम्भ करें। सरकारके पास वीर सिक्ख तथा अन्य सैनिकोंकी राजभक्तिका ज्वलन्त उदाहरण प्राप्त है जिन्होंने सीमापर युद्ध किया है। सरकार तथा अंग्रेज़ी भाषा-भाषी समस्त संसार तथा सभ्य संसार, जिसने शेरगाँवमें युद्ध करते-करते सत्ताईस सिक्खोंके वीर गति प्राप्त करनेके वीरोचित कर्त्तव्यका वृत्तान्त पढ़ा है, (हर्ष-ध्वनि) उन सबने उदारता-पूर्वक और उचित मात्रामें उन सिक्खों तथा अन्य सैनिकोंके वीरोचित कार्य्यकी भरपूर प्रशंसा की है जिन्होंने बृटिश राजमुकुटकी मर्य्यादाकी रक्षाके लिये युद्ध किया तथा रणक्षेत्रमें प्राण त्याग किए। सज्जनो ! अब यह जानकर हमें प्रसन्नता होती है कि ऐङ्गलो इण्डियनों और भारतीयोंमें भी यह व्यापक भाव जागरित हो रहा है कि इस वीरोचित कार्य्यका उचित रूपसे स्थायी स्मारक स्थापित होना चाहिए । मैं नहीं समझता कि इस कार्य्यके सम्पादनके लिये इससे अधिक उत्तम कोई अन्य मार्ग हो सकता है कि आज ही से योग्य भारतीयोंके लिये सेनामें उच्च पद प्राप्त करनेमें जो प्रतिवन्ध था मिटा दिया जायगा। स्मरण रखिए कि शेरगाँवमें इन सत्ताईस सिक्खोंने अपने रक्तसे उस नीतिके विनाशपर मुहर लगा दी है जो आजतक भारतीयोंको अपने राजा और अपने देशकी उचित राज्यनिष्ठा और वीरताके साथ सेवा करने और सेना-विभागकी नौकरियोंमें उन ऊँचे पदोंपर पहुँचनेमें बाधक होती रही है जिनपर योरोपियन सदस्य पहुँच सकते थे। (हर्ष-ध्वनि) मुझे निश्चय है कि उस योग्यताका कोई आदर और पारितोषिक तबतक व्यर्थ है जबतक उपर्युक्त कार्य्य नहीं होता। इन शब्दोंके प्रयोगके लिये मुझे क्षमा कीजिएगा। सज्जनो, देशी सेनाके विषयमें इतना ही कहना पर्य्याप्त है। मैं अब सङ्क्षेपमें कहूँगा,

क्योंकि मैंने आपका बहुत समय लेनेका अपराध किया है।

सज्जनो! अब तनिक मुल्की नौकरियोंपर विचार कीजिए। देशकी इन नौकरियोंके पदका अधिकांश कार्य्य और सबसे आवश्यक कार्य्यका सम्पादन भारतीय कर्मचारियोंद्वारा होता है। सरकार इन सब कार्य्योंके लिये हमारा विश्वास करती है। केवल ज़िलेके प्रधान पद, कार्य्यकारी-विभागके प्रधान पदोंपर ही अधिकतर योरोपियनोंको नियुक्त करनेका सरकार हठ करती है। हमारा कथन है कि "क्या शताब्दियोंका अंग्रेज़ी शासन, जिस अवधिमें आपने अपने गुप्त-से-गुप्त कार्य्यका विश्वास किया, जिस अवधिमें हमने देशके शासनमें अपने हित और आपकी कीर्त्तिका ध्यान रखते हुए आपकी सहायता की थी, वह उन देशवासियोंकी विश्वस्तता और राजभक्तिके लिये पर्य्याप्त है जिन्हें आपने शिक्षा दी है, और जिन्हें आपने इन पदोंपर नियुक्त किया है?" यदि ऐसी बात नहीं है तो मेरा कथन है कि यह भारतमें अंग्रेज़ी शासनकी बहुत ही खेदजनक आलोचना है। मेरा दावा है और सत्य दावा है। यह सिद्ध किया गया है और इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं है कि भारतीय चाहे जिस पदपर नियुक्त हुए हों, चाहे वह पद हाइकोर्टके विचारपतिका हो अथवा कमिश्नर या जिलाधीशका या अन्य किसी दायित्वपूर्ण पदका, पर भारतीय अपने राजाके नमकहलाल राजभक्त सेवक रहे हैं। इन्होंने उनपर उसी योग्यता, तथा मर्य्यादाके साथ काम किया है जो एक योरोपियन कर सकता है। फिर इसमें क्या न्याय है कि उक्त पदोंके लिये आवश्यक योग्यता और ज्ञान रखते हुए भी भारतीयोंको इन नौकरियोंमें सम्मिलित होनेकी अनुमति नहीं दी जाती और इन्हें उच्च पद प्राप्त करनेका अवसर नहीं दिया जाता? इसका प्रयोग अधिकतर भारतके हित और हमारे महान् यशके लिये होगा। देशके शासनमें बहुत बड़ी बचत भी हो जायगी। सर विलियम हण्टरके समान सुविख्यात लेखकने कहा है कि "शासनके हितकी दृष्टिसे योरोपियनोंकी जगह भारतीयोंकी नियुक्ति आवश्यक है।" रुपया मिलनेकी भी कोई आशा नहीं है। आपने हमारे देशके साधनोंको समाप्त कर दिया है और यदि आप अब भी योरोपियनोंको बड़े ऊँचे वेतन देनेका कार्य्य जारी रक्खेंगे जैसा कि आजतक करते रहे हैं, और यदि उनकी संख्या दुगुनी चालसे बढ़ती जायगी तो इस प्रकार विनिमयकी हानिकी पूर्त्ति भी कई गुना बढ़ती चलेगी। इस प्रकार आप देखेंगे कि यदि आप इस नीतिको नहीं छोड़ते तो एक दिन आपको दिवालिया होना पड़ेगा। अतएव लोगोंने बड़ी बुद्धिमानीपूर्वक प्रस्ताव किया है कि साम्राज्यकी शासन-व्यवस्थामें योरोपियनोंकी जगहें अधिकांश भारतीयोंको दी जायँ। शासनके अन्य विभागोंपर विचार करनेकी मैं आवश्यकता नहीं समझता। किन्तु क्या इतनी बड़ी सभ्यतावाले बृटेनके लिये यही उपयुक्त है? क्या यही बुद्धिमान् सरकारके उपयुक्त है कि उसे महान् मुग़ल साम्राज्यके इतिहाससे सिखाया जाय कि वे इन बातोंका महत्त्व समझें? क्या हम लोगोंके लिये यह आवश्यक है कि हम उन्हें बता दें कि अकबर और टोडरमलके शासनकालमें एक अर्थसचिवकी नियुक्ति हुई थी और बीरबल लाट बनाए गए? यदि अकबरके शासनकालमें ऐसी बातें हो सकती थीं तो उन घटनाओंकी आवृत्ति अकबरसे भी बड़ी साम्राज्ञी, भारतकी महारानी विक्टोरियाके शासनकालमें क्यों न हो? सज्जनो! अब मैं अपना भाषण समाप्त करूँगा।

प्रस्तावके तीसरे भागका तात्पर्य्य व्ययका बँटवारा ठीक करनेसे है। उस सम्बन्धमें मुझे अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पार्लियामेण्टके अनेक सदस्य और इङ्गलैण्डके अन्य प्रभावशाली व्यक्तियोंने पहले ही यह विचार प्रकट कर दिया है कि सैनिक तथा अन्य व्ययका कुछ अंश इङ्गलैण्ड और कुछ अंश भारतको देना चाहिए। मैं पूछता हूँ कि इन सुधारोंको कार्य्यरूपमें परिणत होनेमें बाधा क्या है? वह है

अविश्वासका भूत। मैँ कहता हूँ कि तत्काल इसका वध कीजिए। हम अपने शासक वर्गसे ऐसा करनेका निवेदन करते हैँ? आप देखेँगे कि इङ्गलैण्डकी दयालु महारानी और उनकी सरकारद्वारा इस उपायका नर्मीसे प्रयोग हुआ। इसका प्रयोग आजसे चालीस वर्ष पूर्व हुआ था जब महारानीने अपनी घोषणा लिखी थी, जिसके आधारपर हमारा अस्तित्व है। यह उपाय यद्यपि अति कोमल है किन्तु वह अवश्य ही उस अविश्वासके भूतको विनाश करेगा, यदि केवल आप इङ्गलैण्डकी महारानीकी नीतिके अनुकूल आचरण करेँगे जिसका आरम्भ सन् १८५८ ई० मेँ हुआ था, और यदि आप उन प्रतिज्ञाओँपर काम करेँ जो महारानी विक्टोरियाने सिपाही विद्रोहके बाद हम लोगोँसे की थी, “तो मुझे विश्वास है कि इन सभी अविश्वासोँका अन्त हो जायगा और आप देखेँगे कि शासकवर्ग प्रजामेँ अधिक विश्वास करने लगेँगे। विश्वाससे विश्वासकी उत्पत्ति होगी। इससे परस्पर प्रेमकी वृद्धि होगी और फलतः समस्त राष्ट्रके निवासियोँमेँ साधारण रूपसे आनन्द और उन्नतिकी वृद्धि होगी और इससे इङ्गलैण्डका यश बढ़ेगा। इङ्गलैण्डने जनताके साथ विश्वास करना आरम्भ कर दिया है, हमेँ शिक्षित बनानेके साथ ही इसने हमपर विश्वास करना भी आरम्भ कर दिया, और अब इतने दिनोँतक विश्वास कर चुकने पर, हमारे हाथोँ शासन-व्यवस्थाका तीन चौथाई भाग सौँपकर, हमेँ सेनामेँ अधिक संख्यामेँ प्रविष्ट कर चुकनेपर, उस विश्वासपर कार्य्य करते हुए जिसका आजतक कभी विश्वासघात नहीँ हुआ और जिसके लिये कभी विश्वासघात नहीँ किया जा सकता तो क्या अब इङ्गलैण्डको इस बातपर विचार करना और यह कहना उपयुक्त प्रतीत होता है कि नौकरियोँके ऊँचे-ऊँचे पदोँपर भारतीयोँको नियुक्त करना उचित नहीँ है।” अविश्वास दूर कीजिए। उस सिद्धान्तपर कार्य्य कीजिए जिसका निर्माण महारानी विक्टोरियाने किया है और आपको मालूम होगा कि इन सिद्धान्तोँसे जनताकी बड़ी उन्नति होगी। व्ययमेँ कमी, उच्च पदोँपर भारतीयोँकी नियुक्ति, जनतामेँ परस्पर सद्भावका श्रोत-प्रवाह, शासक और शासितके बीच सद्भावका प्रवाह, यह दोनोँके महान् सुखका कारण होगा, और अविश्वासकी सभी भावनाओँका तथा क्षणिक नैराश्यका भी उन्मूलन हो जायगा जिसने अभी-अभी सरकारके हाथ और उसने भी अधिक शिक्षित भारतीयोँके हाथको कुण्ठित कर दिया है।

(देरतक हर्ष-ध्वनि)

दुर्भिक्ष-निवारण-सम्बन्धी सुधार

२७ दिसम्बर, सन् १९०० ई० मैं भारतीय राष्ट्रीय महासभाके लाहौरवाले सोलहवैं अधिवेशनमैं निम्न प्रस्तावके समर्थनमैं पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण :—

—सम्पादक।

प्रस्ताव

"यह कांग्रेस हालके दुर्भिक्षमैं कष्ट-निवारण और मानव-जीवनकी रक्षाके लिये जो प्रयत्न भारतीय और प्रान्तीय सरकारोंने किए उनको कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हुए यह ज़ोर डालती है कि अकाल रोकनेका सच्चा उपाय किया जाय, जिसमैं किसानोंकी दशाका सुधार हो। यह कांग्रेस शासन-व्ययमैं कमी करने, स्थानीय और देशी उद्योग-धन्धोंकी वृद्धि करने और ज़मीनकी लगानमैं कुछ कमी करने आदिकी सिफ़ारिश करती है।"

सभापति महोदय, देवियो तथा सज्जनो !

इस प्रस्तावको मैं प्रसन्नतासे समर्थन करता हूँ। मैं समझता हूँ कि इसके समर्थनमैं मुझे अधिक कहनेकी ज़रूरत नहीं। सज्जनो ! यह ऐसा प्रश्न है कि जो कांग्रेसके सामने पहली ही बार पेश नहीं हुआ। इससे मिलते-जुलते रूपमैं ही यह प्रस्ताव कांग्रेसके गत अधिवेशनोंमैं भी रक्खा जा चुका है और कांग्रेस बहुत ज़ोरदार शब्दोंमैं दुर्भिक्ष-निवारणके सच्चे उपाय बतला चुकी है। सज्जनो, दुःख इस बातका है कि कांग्रेसके इस लिखित मतके प्रकट करनेपर भी और अंग्रेज़ जैसे कुशल राजनीतिज्ञोंके कहनेपर भी जिन्होंने इस देशपर शासन किया है और राज्यके अनेक कर्मचारियोंके आँकड़े देकर प्रमाणित करनेपर भी वे उपचार अभीतक काममैं नहीं लाए गए। जिन उपचारोंको अस्वीकार भी नहीं किया गया, जिसका किसीने विशेष खण्डन नहीं किया बल्कि जिसको सभीने एक स्वरसे अनुमोदन किया है। यहाँतक कि इस प्रश्नपर गम्भीरतासे कोई विचार नहीं किया गया जैसा कि करना चाहिए था। सज्जनो ! प्रस्तावके प्रथम भागमैं उस उद्योगकी आपने ठीक सराहना की है जो प्रान्तीय शासनोंद्वारा अपने सामर्थ्यके अनुकूल विपत्तिमैं कष्टको कम करनेके लिये दुर्भिक्षके अवसरोंपर जो सहायता दी गई है। निस्सन्देह कितना करुण वह दृश्य होता है जब देशपर घोर विपत्तिके समय सरकार अपने जङ्गी साधनोंको कष्ट-निवारणके लिये उपयोगमैं लाती है, जहाँतक मानवी शक्तिकी पहुँच हो सकती है। मैं समझता हूँ कि शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जिसने सरकारद्वारा दुर्भिक्ष-पीड़ितोंकी सहायताके महान् कार्य्यको देख या सुनकर इस कार्य्यके लिये सरकारकी सराहना करनेसे रह जाय। किन्तु जब ऐसे दृश्य अभाग्यवश बार-बार आते हैं अर्थात् जब तीन या चार वर्षके भीतर ही बार-बार अकाल पड़ते आप देखते हैं तब आपत्तिके समय जो उसके निवारणके लिये उत्पन्न दयाके भाव दूर होने लगते हैं, और आप क्षण भरके लिये उन कष्ट सहन करनेवालोंके प्रति थोड़ेसे यह सोचकर कठोर-हृदय हो ज़ाते हैं कि आगे इसी प्रकारकी विपत्तियोंसे अनेक लोग पीड़ित रहा ही करेंगे।

आप पूछेँगे कि इसका उपचार क्या है ? इसका निश्चय क्या है ? कौन विश्वास है, कौनसी आशा है कि यह असहनीय विपत्ति लाखोँको आगामी वर्षमेँ नष्ट नहीँ करेगी। (साधु-साधु) सज्जनो ! मुझे यह कहते खेद होता है कि इस प्रश्नके सम्बन्धमेँ कोई आशाजनक उद्योग होनेका लक्षण कम-से-कम वर्त्तमान समयमेँ तो मुझे नहीँ दिखाई देता। यह बहुत पहलेसे विदित होता आ रहा है कि दुर्भिक्ष अन्य सभ्य देशोँकी अपेक्षा भारतमेँ बहुत जल्दी पड़ते हैँ। जब मैँ अधिक सभ्य देश 'शब्द' कहता हूँ तब आप मुझे यह कहने दीजिए कि एक दृष्टिसे भारतकी अपेक्षा अन्य कोई देश सभ्य नहीँ है (हर्ष-ध्वनि) अर्थात् वह श्रेष्ठ सिविल कर्मचारियोँका प्रबन्ध है। इस दृष्टिसे हम भाग्यमान हैँ और अति भाग्यवान हैँ। इसकी प्रशंसा अनेक योग्य व्यक्तियोँने की है, और उस दिन हमारे सभापतिने भी यही कहा था। (हर्ष-ध्वनि) सज्जनो ! देशके इतने योग्य कर्णधारोँके होते हुए भी जो अत्यन्त सभ्य तथा शिष्ट हैँ, जो दयाके भावोँसे पूर्ण हैँ, वे लोग जो अपनी योग्यतानुसार यथाशक्ति देशकी सेवाके भावसे प्रेरित होकर यहाँ आते हैँ और यहाँ ऐसे देशमेँ आते हैँ जहाँ प्राकृतिक साधनोँकी किसी प्रकार भी कमी नहीँ है, तब वह कौनसा कारण है कि जिससे भारतमेँ इतनी शीघ्रतासे बार-बार अकाल पड़ते हैँ ? यह क्या बात है कि जो इस देशकी सरकारको जहाँतक हो सके भारतसे दुर्भिक्ष दूर करनेमेँ बाधा होती है जब कि उन अन्य देशोँसे इसको व्यवहारतः दूर किया जा चुका है, जिन्हेँ भारतके समान अद्वितीय सिविल सर्विसका सौभाग्य प्राप्त नहीँ है। सज्जनो ! अवश्य ही इसका कुछ कारण है। सिविल सर्विसका इसमेँ दोष नहीँ है, किन्तु यह पद्धति ही निन्द्य है। (साधु, साधु) खेद, बड़ा खेद, अत्यन्त दुःख इस बातका है कि इतनी बार इस प्रश्नको सरकारके सम्मुख लानेपर भी नेक उपचार कभी भी गम्भीरतापूर्वक सोचकर काममेँ नहीँ लाया गया। सज्जनो ! आज जो प्रश्न आपके सामने उपस्थित है वह बार-बार दुर्भिक्ष पड़नेके सम्बन्धमेँ है, और इस प्रस्तावद्वारा आप उसका जो सङ्क्षिप्त उपचार बता रहे हैँ वह यह है कि किसानोँकी दशामेँ सुधार होना चाहिए। सज्जनो ! स्मरण रखिए, मुझे बार-बार यह कहनेकी ज़रूरत नहीँ है कि उस देशकी कुल आबादीमेँसे चार भाग लोग खेतीसे अपनी गुज़र करते हैँ। कृषिकी दशामेँ तबतक कोई उन्नति सम्भव नहीँ है जबतक सरकार अच्छी प्रकारसे इस बातपर विचार नहीँ करती कि उसकी उन्नतिके लिये क्या आवश्यक है। इस प्रश्नके दो पहलू हैँ—पहला सरकारी लगान और दूसरा किसानोँके अधिकारकी अवधिका निश्चय। पहलेके सम्बन्धमेँ, सज्जनो ! हमने अपनी धारणाको बार-बार दुहराया है कि स्थायी बन्दोबस्त भारतवर्षके उन सब भागोँमेँ होना चाहिए जहाँपर ऐसा प्रबन्ध नहीँ है। (हर्ष-ध्वनि) दूसरे पहलूके सम्बन्धमेँ भी हम अपनी निश्चित धारणा बतला चुके कि किसानोँके लिये ज़मीनपर अधिकारकी अवधि निश्चित होनी चाहिए, जिससे वे आपत्तिकालमेँ दुर्भिक्षके कष्टको सहन कर सकेँ। पहलेके सम्बन्धमेँ मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ सरकारी कर्मचारी ऐसा सोचते हैँ—कि यह योजना असाध्य है, कि उन दिनोँको बीते बहुत काल हो गया, जब गवर्नर या कुशल राजनीतिज्ञ और भारतीय सरकारी कर्मचारी स्थायी प्रबन्धके प्रश्नपर विचार करेँ, कि हमेँ यह आशा भी करनी चाहिए कि इसका कभी भी विस्तार होगा, कि वह भयङ्कर भूल तो बङ्गालमेँ की गई, जहाँ सरकारी लगानका अधिक भाग बङ्गालके ज़मीन्दारोँको दे दिया गया, जो बाक़ी देशको हानिकारक सिद्ध हुआ।

इन कुशल राजनीतिज्ञोँमेँसे कुछका यह कहना है कि सरकार फिर ऐसी भयङ्कर भूल नहीँ करना चाहती। सज्जनो ! यदि ऐसा होता कि केवल बङ्गालके ज़मीन्दार या भारतके किसी अन्य प्रान्तके ज़मीन्दारोँका ही विचार करना होता तो मैँ आपका समय न लेता और प्रश्नके उक्त पहलुओँपर विचार

करनेके लिये व्यर्थ अपनी शक्ति न खोता। देशमेँ ज़मीन्दारोँकी संख्या किसानोँकी आबादीकी उस महान जनसंख्याकी अपेक्षा बहुत थोड़ी है, जिनके बीच वे बसते हैँ। इनकी अल्प संख्या ही है और मुझे विश्वास है कि कोई भी इस बातसे सहमत नहीँ होगा कि इस सुधारसे इतने सारे किसानोँका लाभ होनेके साथ ही चूँकि थोड़ेसे ज़मीन्दारोँका भी लाभ इसमेँ शामिल है, अतएव उन सुधारोँको ग्रहण नहीँ करना चाहिए। (हर्ष-ध्वनि)। सज्जनो! यह आत्म-विश्वास पहलेसे प्रकट किया जाता रहा है कि स्थायी बन्दोबस्तकी बहुत आवश्यकता है, और मैँ इस विचारकी पुष्टिमेँ कुछ उच्च सरकारी विशेषज्ञोँके विचार उद्धृत करूँगा। इसमेँ सन्देह नहीँ कि सन् १७९३ ई० मेँ बङ्गालमेँ स्थायी बन्दोबस्त सबसे पहले चालू हुआ। इस समय सरकारको इतनी जानकारी प्राप्त नहीँ थी जितनी कि आज एक शताब्दीके बाद उसे प्राप्त है। अभी कुछ वर्ष पहले अंग्रेज़ राजनीतिज्ञोँने स्थायी बन्दोबस्तको देशके अन्य भागोँमेँ भी विस्तार करनेके विचारको त्यागा नहीँ था। सन् १८६२ ई० मेँ भारत-सचिवने अपने एक ख़रीतेमेँ यह कहा था कि जहाँ कहीँ थोड़ी भी धरती खेतीके काममेँ लाई जाती हो, वहाँ स्थायी बन्दोबस्त कर देना चाहिए। सन् १८६५ ई० मेँ फिर यही बात कही गई। सज्जनो! ख़रीतेके शब्द इतने महत्त्वपूर्ण हैँ कि उनमेँके कुछ अंश पढ़नेके लिये मैँ आपकी अनुमति चाहता हूँ। सन् १८६२ ई० के ख़रीतेमेँ विस्काउण्ट हैलिफेक्सने लिखा कि :—

"इन विचारोँकी अत्यन्त सावधानीपूर्वक आलोचना करनेके पश्चात्, महारानी विक्टोरियाकी सरकार की यह राय है कि स्थायी बन्दोबस्तसे जो लाभ होने की आशा है वह केवल ज़मीन्दारोँके लिये ही नहीँ बल्कि सारे किसानोँ और देशका उसमेँ इतना अधिक लाभ है कि उसके करनेसे यदि लगानमेँ थोड़ीसी कमी होनेकी आशङ्का हो परवाह भी न करनी चाहिए। और जिन-जिन ज़िलोँ मेँ इसकी ज़रूरत है या आगे ज़रूरत पड़े उनमेँ स्थायी बन्दोबस्त करना ही नीतिसे बुद्धिमानीका काम है। इससे देशकी उन्नति बड़ी शीघ्रतासे होगी और साथ ही इससे महारानी विक्टोरियाकी सारी प्रजामेँ सुख और सन्तोषकी सबसे अधिक वृद्धि होगी।" सज्जनो! ऐसी सम्मतिको इतने देरसे जैसा कि सन् १८६२ ई० मेँ भारत-सरकारके सामने उपस्थित किए जानेपर तथा बहुसंख्यक ऐसे शिक्षित भारतीयोँके आत्म-विश्वाससे जो भारतकी जनताके बसनेके कारण अस्थायी बन्दोबस्तके दोषोँको ज़्यादा अच्छी तरह जानते हैँ, तब भारत-सरकारको कम-से-कम इसकी गम्भीर जाँच करनी ही चाहिए कि क्या उन सब बुराइयोँका इलाज स्थायी बन्दोबस्त ही नहीँ है जिनके लिये सरकारके साथ हम भी दुखी रहते हैँ। इसके सिवाय, सज्जनो! इसके साथ ही खेतोँपर किसानोँका अधिकार एक निश्चित समयतक होनेका प्रश्न आता है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता होती है और मुझे विश्वास है कि इसे जानकर हम सब कृतज्ञ होँगे। एक ही प्रान्तमेँ नहीँ बल्कि अनेक प्रान्तोँमेँ किसानोँका ज़मीनपर स्थायी अधिकार हो, इसके प्रबन्ध करनेके लिये सरकार चिन्तित है। इन प्रान्तोँमेँ आपको मालूम है कि इस दिशामेँ उद्योग हुआ है और अन्य प्रान्तोँमेँ भी उद्योग हुए हैँ। सज्जनो! आपको एक बात स्मरण रखनी चाहिए इस सम्बन्धमेँ समय-समयपर विशेषकर ज़मीन्दारोँद्वारा विरोध किया गया है। उनका कहना है कि सरकारी प्रस्तावोँमेँ केवल किसानोँके लाभकी ही बात सोची गई है। यहाँ मैँ ज़मीन्दारोँकी ओरसे नहीँ बोल रहा हूँ बल्कि किसानोँकी हितकी दृष्टिसे कहता हूँ कि सरकारको ऐसे नियम बनाने चाहिएँ और ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे भविष्यमेँ ज़मीन्दारोँमेँ फैलते हुए असन्तोषको रोकने अथवा उन्हेँ शान्त करनेके कारण उन नियमोँको बदलना पड़े। और इसमेँ सफलता होनेके लिये एक ज़रूरी शर्त्त यह होनी चाहिए कि अगर सरकार किसानोँको ज़मीनका मालिक (पट्टेदार) हमेशाके लिये या अधिक कालके लिये

बनाना चाहती है, तो सरकारको हाथ रोककर काम करना चाहिए और बार-बार बारह या बीस या तैंतीस वर्षोंके बाद ही ज़मीन्दारोंसे बढ़ा-बढ़ाकर लगान न तलब करना चाहिए।

(हर्ष-ध्वनि)

इन प्रान्तोंमें ज़मीन-सम्बन्धी लगान-विधानने जो असाधारण उत्तेजना उत्पन्न कर दी है उस सम्बन्धमें मुझे अनेक ज़मीन्दारोंसे मिलने तथा इस प्रश्नपर विचार करनेका अवसर प्राप्त हुआ है, और सज्जनो! एक नहीं अनेक ज़मीन्दारोंसे मुझे मालूम हुआ है। वे कहते हैं कि—"हम बहुत प्रसन्न होंगे और हम इस बातसे राज़ी हैं कि सरकारको किसानोंकी इच्छाके अनुसार पट्टेकी मीयाद बढ़ा देनी चाहिए, साथ ही सरकार हम लोगोंके लिये भी स्थायी बन्दोबस्त कर दे जिससे लगानकी निरख बँध जाय।" (हर्ष-ध्वनि)

सज्जनो! इसलिये उस हदतक, मैं कहता हूँ कि स्थायी बन्दोबस्तका सवाल ऐसा है जिसका सम्बन्ध किसानोंसे भी है। पहले लगानकी निरख बाँध दीजिए और उसीके अनुसार जो लगान किसानोंसे ज़मीन्दार वसूल करते हैं उतनी ही उसमें कमी कर देनी चाहिए ताकि किसान अनुचित लगानकी वृद्धिसे, और ज़मीन्दारोंकी मनमानी बेदख़लीसे सुरक्षित रह सकें और तभी भारतके लोगोंकी सबसे अधिक संख्या (किसान) सुख और शान्तिसे अपना जीवननिर्वाह कर सकें। (हर्ष-ध्वनि)

सज्जनो! दो और बातें हैं जिनपर मैं कुछ कहना चाहता हूँ। मुझे खेद है कि मैंने आपका बहुत समय ले लिया। अन्य दो बातोंका मैं सङ्क्षेपमें ज़िक्र करता हूँ। हमने जो सिफ़ारिशें की हैं उनमेंसे एक हमारा कहना यह है कि सरकारको देशी उद्योग-धन्धोंको प्रोत्साहन देना चाहिए। एक समय था जब इसी लखनऊ शहरमें अनगिनती आदमी देशी कारीगरीके सामान बनानेमें लगे रहते थे और उसके द्वारा बहुत ही अच्छी ख़ासी रक़म पैदा करते थे। अभाग्यसे आज यदि आप लखनऊके निवासियोंके पास जाकर पूछें तो आपको मालूम होगा कि इङ्गलैण्ड और अन्य विदेशी कारख़ानोंके सस्ते मालने भारतीय उद्योग-धन्धोंको समूल नष्ट कर दिया है। सज्जनो! इसके लिये हम सरकारको दोषी नहीं बनाते। इस विषयमें सरकारसे हमारी कोई शिकायत नहीं है। हमारी प्रार्थना यह है कि सरकार लोगोंके उद्योग-धन्धे और कला-सम्बन्धी शिक्षाका प्रबन्ध करे ताकि उन्हें उन वस्तुओंके उत्पादनके साधन ज्ञात हों जिन वस्तुओंकी भारतमें उन्हें स्वयं आवश्यकता पड़ती है, और जो वस्तुएँ वे देशमें यहाँपर पैदा करें उनके लिये विदेशोंको करोड़ोंकी संख्यामें रुपये न भेजने पड़ें। (हर्ष-ध्वनि) ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हमारी सभी प्रार्थनाएँ भारतीयोंको सार्वजनिक नौकरियोंमें ऊँचे पद दिलानेके लिये स्वीकृति हो जाँय तो भी उससे बहुत थोड़ोंको ही लाभ पहुँचेगा और इसकी अपेक्षा यदि देशी उद्योग-धन्धे और कारीगरीका पुनरुत्थान हो और प्रोत्साहन मिले तो बहुत अधिक लोगोंका हित होगा (साधु-साधु) सज्जनो! इसी लिये हम सरकारसे प्रार्थना करते हैं कि वह इस देशके लोगोंके लिये अबतक जो कुछ करती रही है उससे बढ़कर कल-कारख़ानोंकी अच्छी शिक्षा देनेका प्रबन्ध करे। भारतकी अपेक्षा इङ्गलैण्डमें स्वयं इस ओर बहुत अधिक किया जाता है; तथा अन्य देशोंमें जैसे जर्मनी और एशियाई देशोंमें जापान जैसे छोटेसे देशमें भी आवश्यक कल-कारख़ानोंकी शिक्षाकी ओर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है, जिससे वहाँके निवासी अपने प्रतिदिनकी इस्तेमाली चीज़ोंको सरलतासे तैयार कर सकें।

अतएव हम कहते हैं कि हमारे विचारमें सरकारके लिये यह उचित है कि अबतक जो कुछ उसने किया है उसकी अपेक्षा बहुत अधिक रुपया ख़र्च करके कल-कारख़ानोंकी शिक्षा देनेके लिये नए कौलेज़ स्थापित करे और उनको चलावे। सज्जनो! यदि इन प्रार्थनाओंपर निष्कपट भावसे विचार हो और उनकी उचित सुनवाई हो तथा बतलाई हुई

योजनाके साधन ढूँढ़ निकालनेके लिये कड़ी जाँच कराई जाय, तो मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही जनताकी दशा बहुत अधिक सुधर जायगी और यदि फिर भी दुर्भिक्षका हमारे देशमें दौर-दौरा हो तो वे लोग विपत्तिसे अपनी रक्षा करनेमें अधिक समर्थ होंगे और उस दशामें सरकारको भी लोगोंकी मदद करनेके लिये इतनी परेशानी न उठानी पड़ेगी जितनी आज उठानी पड़ती है। (हर्ष-ध्वनि)।

विश्वविद्यालय-बिल

सन् १९०३ ई० में माननीय लालमोहन घोषके सभापतित्त्वमें मद्रासकी राष्ट्रीय महासभाके उन्नीसवें अधिवेशनके निम्न प्रस्तावका समर्थन करते हुए पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने कहा :—

—सम्पादक।

प्रस्ताव

"यह कांग्रेस सरकारकी शिक्षा-नीतिमें किसी उचित सुधारयोजनाका स्वागत करती हुई राय क़ायम करती है कि विश्वविद्यालय-बिल यदि पास होकर क़ानून बन जायगा तो विश्वविद्यालय कमीशनकी अपनी रिपोर्टमें की हुई सिफ़ारिशके अनुसार वह शिक्षा-क्षेत्रको कम कर देगा तथा विश्वविद्यालयोंकी स्वतन्त्रताको बिल्कुल नष्ट कर देगा जिसपर उनकी योग्यता तथा उपयोगिता निर्भर करती है और उनको वास्तविक सरकारी विभाग बना देगा।

"इस कांग्रेसकी सम्मतिमें इस बिलकी शर्त्तें उच्च शिक्षाकी वर्त्तमान प्रणालीकी त्रुटियोंको दूर नहीं करेंगी, किन्तु उच्च शिक्षाकी भलाईके लिये आर्थिक सुधारों तथा पढ़ानेकी योग्यता सुधारनेके लिये उत्तम शिक्षकोंके रखनेकी नितान्त आवश्यकता है।

"यह कांग्रेस इन परिवर्त्तनोंके लिये प्रार्थना करती है :—

(अ) कि प्रत्येक विश्वविद्यालयके लिये अलग विधान हो।

(आ) कि पुराने विश्वविद्यालयोंके लिये साधारण सदस्योंकी संख्या दो सौसे कम न होनी चाहिए, जिनमें कम-से-कम अस्सी रजिस्टर्ड स्नातकोंद्वारा निर्वाचित हों और बीस पाठन-विभागके सदस्योंद्वारा निर्वाचित हों और इलाहाबाद व पञ्जाब विश्वविद्यालयोंके लिये इसी तरहकी व्यवस्था होनी चाहिए।

(इ) कि साधारण सदस्य, वर्त्तमानकी नाईं, आजीवन-सदस्य होने चाहिएँ, किन्तु निश्चित समयतक उपस्थित न होनेपर हटाए जा सकते हैं।

(उ) सिण्डीकेटमें कौलेजोंके प्रधानोंकी एक निश्चित संख्या होनेका नियम हटा देना चाहिए।

(ऊ) किसी विद्या-विभागमें दस साल पुराने स्नातकोंको वोट देनेका अधिकार मिलना चाहिए।

(क) कि जो कौलेज् विश्वविद्यालयमें मिलाए जानेके लिये प्रार्थना-पत्र भेजते हैं, या जो मिलाए जा चुके हैं, उनको विद्यार्थियों और अध्यापकोंके रहनेके स्थान बनानेका ख़र्च, कौलेजोंके स्थायी ख़र्चको बरदाश्त करनेके अनिवार्य्य नियमको हटा देना चाहिए।

(ख) कि मिलाने तथा विच्छेद करनेका निर्णय सीधे सरकारके हाथमें न रहकर (जैसा कि इस बिलमें है) बल्कि वर्त्तमानकी नाईं यह विश्वविद्यालयका काम रहना चाहिए, जिसके लिये सरकारसे स्वीकृति ले ली जाय।

(ग) कि कौलेजोंका निरीक्षण सिण्डिकेटके विशेष नियुक्त किए गए व्यक्तियोंद्वारा होना चाहिए, जिनका सरकारी शिक्षा-विभाग अथवा किसी सहायता पानेवाले या न पानेवाले कौलेज्से कोई सम्बन्ध न हो।

(घ) कि उपनियम तथा धाराएँ बनानेका अधिकार वर्त्तमानकी नाईं सीनेटके हाथमें होना चाहिए, जिसके लिये सरकारी स्वीकृति ले ली जाय।"

सभापति महोदय तथा सज्जनो !

मैं उस प्रस्तावका समर्थन करनेके लिये खड़ा हुआ हूँ जिसका अनुमोदन इतनी योग्यतासे अन्य वक्ताओं-द्वारा हो चुका है। प्रस्ताव निस्सन्देह महान् तथा स्थायी महत्त्वका है; और यदि हम यहाँ इसपर वादविवाद विस्तारसे करें तो भी कोई दोष न होगा। सज्जनो! विश्वविद्यालय-सुधार-सम्बन्धी किसी प्रस्ताव-पर विचार करनेसे पूर्व हमें यह सोचना होगा कि यह जाँच क्यों बैठाई गई थी? ऐसी क्या बातें थीं जिनमें दोष पाया गया? ऐसी क्या दशा थी जिसमें सुधार होना आवश्यक प्रतीत हुआ? तत्पश्चात् हमें विचार करना होगा कि सुधारके लिये किन किन उपचारोंको ठीक बतलाया गया है तथा सरकारके प्रस्ताव उस बारेमें क्या हैं? सज्जनो! हम सबको आपसमें तथा सरकारसे यह प्रश्न पूछना चाहिए कि वर्त्तमान विश्वविद्यालयोंकी सीनेट और सिण्डिकेटमें कौनसे दोष थे जिनसे सरकारको विश्वविद्यालय-शिक्षाकी जाँच करनेके लिये कमीशन नियुक्त करना पड़ा। विश्वविद्यालयोंके पिछले इतिहासको देखनेसे आपको पता चलेगा कि पिछले बहुत सालोंसे सिण्डिकेट अथवा सीनेटके विधानमें कुछ महत्त्वहीन परिस्थितियों तथा अवसरोंको छोड़ कोई गम्भीर त्रुटि न तो पाई गई है और न कोई इस सम्बन्धमें शिकायत ही हुई है। साधारणतया, सिण्डिकेट तथा सीनेटने अपना कार्य्य बहुत सन्तोषजनक किया है। (साधु, साधु) सज्जनो! अब, जब कि लार्ड कर्ज़नकी सरकारने एक कमीशन नियुक्त किया तो निस्सन्देह उनकी ओरसे यह शिकायत थी कि विश्वविद्यालय-शिक्षाके परिणाम पूर्वतया सन्तोषजनक नहीं हैं जैसे होने चाहिएँ। सज्जनो! प्रत्येक वक्ताने विश्वविद्यालय-शिक्षाके इस असन्तोष-जनक परिणामपर बोलते हुए यह स्वीकार किया है कि विश्वविद्यालयोंने प्रसिद्ध विद्वान् व्यक्तियोंको जन्म दिया है, ऐसे पुरुषोंको उत्पन्न किया है जिन्होंने जीवनके भिन्न भिन्न क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त की है, जिन्होंने देशके मान तथा मानसिक विकासकी रक्षा की है तथा जिन्होंने सम्मान तथा योग्यताके साथ सरकारकी सेवा की है। यदि कुछ अभागे युवक कम नम्बर मिलनेसे परीक्षाओंमें उत्तीर्ण न हो सके तो उनको अयोग्य तथा सम्मानहीन ठहराकर तथा नैतिक-भ्रष्टोंकी तरह उनका अनादर करना कभी ठीक नहीं कहा जा सकता। बी० ए० पास करनेवाले या फ़ेल होनेवाले विद्यार्थीके बीच बहुत ही थोड़ा अन्तर है। अवश्य ही उसके साथ हमें अधिक दया दिखानी चाहिए और उसको अयोग्य तथा अवाञ्छनीय कहकर व्यवस्थापक सभाओंमें उसके विरुद्ध नया क़ानून बनाकर उसका जीना दुस्तर नहीं कर देना चाहिए।

इसके बाद दूसरी शिकायत यह थी कि इस देशके विश्वविद्यालयोंमें इतनी ऊँची शिक्षा नहीं दी जाती जितनी देनी चाहिए। इस विषयमें अंग्रेज़ कर्मचारी, योरोपके विद्वान् तथा देशके लोग सभी सहमत थे। मेरी समझसे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसने यह कहा हो कि हमारे विश्वविद्यालयोंमें दी गई शिक्षा इतनी ऊँची है जितनी होनी चाहिए। इसके विपरीत बेचारे भारतवासी गला फाड़कर यही प्रार्थना कर रहे हैं कि शिक्षाके भिन्न २ विभागोंकी उच्च शिक्षा देशमें दी जानी चाहिए और उसका प्रबन्ध विश्वविद्यालयमें होना चाहिए। इस शिकायतके सम्बन्धमें मैं फिर पीछे कहूँगा।

किन्तु मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि इस बिलमें इन दोनों प्रश्नोंपर विचार किया गया है। सीनेट तथा सिण्डिकेटके विधानपर इसमें विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। इसमें सिण्डिकेटको भिन्न-भिन्न प्रकारके अधिकार दिए गए हैं। सरकारी नियन्त्रणका भी इसमें क्षेत्र बढ़ जाता है तथा विश्वविद्यालयोंको अपने प्रोफ़ेसर तथा अध्यापक नियुक्त करनेका भी थोड़ासा अधिकार दिया गया है। सज्जनो! आप सब यह जानते हो कि बिलमें सिण्डिकेट तथा सीनेटके विधान-सम्बन्धी प्रश्नोंपर ही मुख्यतया तथा उनपर विचार किया गया है जो सिण्डिकेटको

वहुतसे अधिकार मिले हैं। हमें इन धाराओंपर सङ्क्षेपमें विचार करना चाहिए और देखना चाहिए कि जिस वातका विरोध भारतवासी एकमत होकर कर रहे हैं वह कहाँतक ठीक है। सज्जनो! मेरी इच्छा है कि इस प्रश्नपर विना पक्षपातके विचार होना चाहिए, जैसी वाइसराय महोदयकी इच्छा है। सीनेटके विधान-सम्वन्धी धाराको लीजिए। हमारे युक्तप्रान्तमें विश्वविद्यालय-विधान है। प्रयाग-विश्वविद्यालय-विधान कभी दोषपूर्ण विधान नहीं समझा गया। इसकी धाराएँ वर्त्तमान विलकी धाराओंकी अपेक्षा अधिक उदार हैं। इसके सम्वन्धमें कोई शिकायत नहीं हुई और न कोई शिकायत वम्वईके वारेमें ही हुई है जैसा कि हमने अनेक वक्ताओंसे सुना है। अव, एक विल पेश हो रहा है जिसके अनुसार ये सव विधान रद्द कर दिए जायँगे, जिन्होंने सुचारु रूपसे कार्य्य किया है और जिनके विषयमें कोई शिकायत ही नहीं हुई है। देशके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंपर एक ही विधान क्यों लागू हो? प्रयाग-विश्वविद्यालयमें सीनेट-विधान-सम्वन्धी धारा इस प्रकार है—कुछ सदस्य तो अकर्मचारियोंकी तरहसे नियुक्त किए जाते हैं; शेषमेंसे आधे तो सरकारद्वारा तथा आधे सीनेट-द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। सज्जनो! अव यदि सरकारने सन् १८८७ ई० में यह उचित समझा कि सीनेटके आधे सदस्य सीनेटद्वारा ही निर्वाचित होंगे तो अव कौनसा कारण दिखलाई पड़ा या दिखलाया गया जिससे उनको सीनेटके सदस्योंको निर्वाचित करनेका अधिकार छीना जाता है। सज्जनो! मनोनीत करनेकी प्रथा तो वहुत पहलेसे ही दोषपूर्ण पाई गई है और इङ्गलैण्डमें दफ़ना दी गई है। पिछले पन्द्रह वर्षोंमें सरकारने भी यह दिखला दिया है कि मनोनीत करनेकी प्रथामें उनका पूरा विश्वास नहीं है। म्यूनिसिपल वोर्डमें निर्वाचन-प्रणाली प्रचलित है; ज़िला वोर्डमें वही प्रणाली काम कर रही है। व्यवस्थापक सभाओंमें पिछले थोड़े ही वर्षोंसे सरकारको चुनावका सिद्धान्त प्रचलित करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। अव सीनेट, जिनमें निर्वाचन-प्रणाली इस देशमें सवसे पहले प्रचलित की गई तथा काममें लाई गई, अपने इस अधिकारसे वीसवीं सदीके शुरूमें वञ्चित की जा रही है। सज्जनो! आप यह अनुभव किए विना नहीं रह सकते कि उन्नतिको वलपूर्वक रोका गया है। सीनेटके सम्वन्धमें तो यह व्यवस्था हुई है।

सीनेटमें क्या परिवर्त्तन किए जायँगे? सीनेटके अधिकांश सदस्य सरकारद्वारा मनोनीत किए जायँगे। सज्जनो! व्यक्तिगत रूपसे सव सरकारी अफ़सरोंके लिये मेरे हृदयमें सवसे अधिक सम्मान है। किन्तु जव आप उनको सरकारी विभागोंके प्रतिनिधिके रूपमें विचार करेंगे तव आप उनके विषयमें उसी विश्वास तथा सम्मानके साथ विचार नहीं कर सकते। यह इसलिये नहीं है कि सर्वोत्तम रीतिसे काम करनेकी उनकी इच्छा नहीं है। अपितु, इसलिये कि वे उन अधिक लोगोंके सम्पर्कमें नहीं लाए जाते जिनमेंसे उन्हें चुनना चाहिए। जिनकी योग्यता तथा सहयोग देनेकी इच्छा हो ऐसे लोगोंके विषयमें इस कार्य्यकी सफलताके लिये उन्हें व्यक्ति-गत अनुभव प्राप्त करना चाहिए। अतएव मुझे भय है कि इनकी नियुक्ति करनेमें सरकार अधिकांशमें शिक्षा-सञ्चालक (डी. पी. आई.) तथा तत्कालीन शिक्षा-मन्त्रीकी सिफ़ारिशोंका सहारा लेगी। इनमेंसे किसी भी उपायसे सीनेटमें आधे भी ऐसे सुयोग्य तथा उपयुक्त व्यक्ति नहीं मिल सकते जैसे सरकार तथा सर्वसाधारणको शिक्षा-सम्वन्धी परामर्श देनेके लिये चाहिएँ, जैसा निर्वाचनद्वारा प्राप्त हो सकेगा। इस अवनति-सूचक वातको कैसे न्याय-सङ्गत कहा जा सकता है? क्या यह प्रमाणित हो चुका है जैसा कहा जाता है कि मद्रास, कलकत्ता, वम्वई अथवा प्रयागमें नियुक्त हुए सदस्य नियुक्त किए जा चुके हैं? क्या यह प्रमाणित हो चुका है कि वे ठीक उसी प्रकारके मनुष्य नहीं थे जो अधिकांशमें यदि ठीक चुनाव किया जाता तो वे ही चुने जाते

तथा जिन्हें जनता तथा प्रान्तकी आवश्यकताओंका भी पूरा ज्ञान है, तब इस धाराको क्यों रक्खा जाता है जो उस सिद्धान्तके विपरीत है जिसपर सरकारद्वारा स्थापित सब सँस्थाएँ चलती हैं ?

सज्जनो ! यह तो निर्वाचनकी बात हुई। अब हमें सीनेटकी स्थितिपर विचार करना चाहिए। यहाँपर जब मैं इस प्रश्नके इस अङ्गपर विचार कर रहा हूँ, मैं बता देना चाहता हूँ कि यह कहा गया है कि सदस्य निर्वाचन करनेके अधिकारको अब क़ानूनी रूप दे दिया जायगा। इस कृपाके लिये बहुत धन्यवाद; किन्तु हमारी इच्छा तो यह थी कि इस अधिकारको क़ानूनी रूप न दिया जाय। इङ्गलैण्डमें ऐसे बहुतसे बिना लिखे नियम हैं, जिन्होंने जनताको समृद्ध बनानेमें बड़ा लाभ पहुँचाया है। क़ानूनी धाराओंके इतने हम प्रेमी नहीं हैं। हमें तो सार चाहिए न कि नाम। यदि बिना किसी लिखित विधानके उस अधिकारको मानलें जिसका औचित्य सरकारने मान लिया है कि सीनेटके सदस्य तथा स्नातक सदस्य निर्वाचित करनेके लिये उचित ढङ्ग काममें लाए हैं तो सरकारको भविष्यमें भी वही अधिकार काममें लाने देना चाहिए। सज्जनो ! अब स्नातकोंद्वारा निर्वाचन करनेका प्रश्न आता है। सात सदस्य उन्हें युक्तप्रान्तमें निर्वाचित करते हैं और सात ही पञ्जाबमें। इस समय आधे सदस्य सीनेटद्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। स्नातकोंको इस अधिकारको उपयोगमें लानेके लिये ऐसे सदस्य निर्वाचित करनेका अवसर क्यों न दिया जाय जिन्हें वे विश्वविद्यालयके प्रबन्धके लिये योग्य तथा उपयुक्त समझते हैं? कौन्सिलोंमें सदस्य भेजनेका अधिकार म्युनिसिपैलटियों तथा ज़िला बोर्डोंको दिया गया है जिनके सदस्य अशिक्षित तथा थोड़ी आयवाले व्यक्तियोंद्वारा चुने गए हैं और अपने विश्वविद्यालयके उन स्नातकोंको, जिनका आपको गर्व होना चाहिए, आप विश्वविद्यालयके कुछ सदस्य निर्वाचित करनेका अधिकार क्या न बढ़ायँगे जिसमें कोई राजनीतिक कारण नहीं हैं और या कम-से-कम कोई राजनीतिक कारण होना न चाहिए।

अब सिण्डीकेटकी दशापर हमें विचार करना चाहिए। सिण्डिकेट नियुक्त करनेके पश्चात् सीनेट, एक प्रकारसे महत्त्वहीन हो जाती है। व्यावहारिक रूपसे उसमें जीवन केवल तब आता है जब उसे सिण्डिकेट नियुक्त करनी होती है। अब, सज्जनो! मैं इस बातकी तो शेख़ी नहीं मारता कि मैं बहुतसे विश्वविद्यालयोंकी सीनेटके विधानोंसे परिचित हूँ, किन्तु मैंने कुछ विश्वविद्यालयोंके विधानोंको पढ़ा है और मुझे यह कहते असङ्गत प्रतीत होता है कि सिण्डिकेट, जो एक बड़ी सीनेट सभाकी कार्य्यकारिणी (अधीन) सभा है, सदा सीनेटके सरपर सवार रहे और विधान बनाकर सरकारके पास भेजे बिना सीनेटकी आज्ञा लेकर बहुतसी मुख्य बातोंका निर्णय किया करे। सज्जनो! यदि आप फिरसे सीनेट स्थापित कर रहे हैं तब इस प्रकारका अविश्वास क्यों? विश्वाससे विश्वास उत्पन्न होता है और इसके विरुद्ध अविश्वाससे अविश्वास। आप यह शिकायत करते हैं कि हम आपकी कड़ी आलोचना करते हैं तथा आपकी नीयतपर आक्षेप करते हैं। अच्छा, यदि ऐसा ही हो तो हमें खेद है। किन्तु बात असली यही है। इन थोड़ेसे अधिकारोंको देनेसे आप हमपर विश्वास नहीं करेंगे। योरोपियन अध्यापकों और सरकारी अफ़सरोंके साथ ही हम उस अधिकारको उपयोगमें लाकर ऐसे व्यक्तियोंको निर्वाचित करें जिनको हम सिण्डिकेटमें करनेके लिये सबसे योग्य समझते हैं। शिक्षा देनेवाले विभागके लिये प्रतिनिधि नियुक्त करनेकी क़ानूनी धाराका क्या अर्थ हो सकता है? देशके शिक्षकोंके लिये मेरे हृदयमें सबसे अधिक प्रतिष्ठा है। मैंने अपने अध्यापकोंकी आज्ञा कभी उल्लङ्घन नहीं की (हँसी); और मैं आपको कह सकता हूँ कि विद्वानोंके चरणोंमें बैठकर उनसे कुछ सीखकर ग्रहण करना, यह मैं बड़े भाग्यकी बात समझता हूँ। मेरे विचारसे सीनेटमें जितने सदस्य हैं,

सब सच्चे हृदयवाले व्यक्ति हैं; शिक्षा-विभागसे सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति, जो सिण्डिकेटमें होने चाहिएँ, विशेष परिस्थितियों (सरकारी हस्तक्षेप) के कारण उन मनुष्योंके सिरपर चुने जायँगे जो वहाँपर हैं। मेरे प्रान्तमें, सीनेटने भूतमें अपने इस कर्त्तव्य पालनमें कभी चूक नहीं की है, वैसे ही वम्बईमें, जहाँ केन्द्र विधानका कुछ हदतक मैंने अध्ययन किया है, तथा बङ्गालमें भी जैसा मेरे मित्रने कहा है, फिर क्यों अब सीनेटके हाथ बाँधे जाते हैं कि वह उसी आदमीको अवश्य निर्वाचित करे जिसको वह चाहे योग्य समझे या न समझे? मेरे प्रान्तमें ही एक कौलेज्के प्रिन्सिपल—उनका नाम आपको वतलानेकी आवश्यकता नहीं—सिण्डिकेटके सदस्य होनेके लिये वड़े चिन्तित थे। उसमें और भी वहुतसे विद्वान् थे जो हृदयसे यह नहीं चाहते थे कि वे सिण्डिकेटके सदस्य हो जायँ। वे चुनावमें कई वार हारे। आप ज़रा सोच सकते हैं कि आप यदि सीनेटको कुछ संख्यामें लोगोंको चुननेके लिये अनिवार्य्य कर देंगे तो भय इस बातका है कि जो योग्य व्यक्ति नहीं हैं वे सिण्डिकेटमें आ जायँगे और इससे समस्त विश्वविद्यालयके प्रवन्धमें कुछ-न-कुछ हानि अवश्य पहुँचेगी। इसी कारण हम सरकारसे प्रार्थना करते हैं कि वह उस धाराको अलग कर दे, जो अध्यापकोंको विधानके अन्तर्गत प्रतिनिधित्त्व दिलाता है, तथा सीनेटके सदस्योंकी हितेच्छामें विश्वास करके केवल आधे ही नहीं, अपितु पर्य्याप्त संख्यामें सिण्डिकेटके सदस्य निर्वाचित करनेका अधिकार दे दे जो विश्वविद्यालयके प्रवन्धके लिये उत्तरदायी होंगे।

सज्जनो! यहाँतक सिण्डिकेट तथा सीनेटके विधानके विषयमें हुआ। हमें यह देखना चाहिए कि इस विलके अनुसार सिण्डिकेटको और कौनसे अधिकार दिए जा रहे हैं। सिण्डिकेटका काम सम्बद्ध करने या विच्छिन्न करनेके प्रधान प्रश्नपर विचार करना है। सज्जनो! मेरे प्रान्तमें वहाँ यह अधिकार सिण्डिकेटको दिया गया है, वहाँ कौलेजोंको सम्बद्ध होनेमें किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, इस वातको देखते हुए इस धाराका मैं पूर्ण रूपसे विरोध करता हूँ। सज्जनो! इसमें और भी शर्त्तें रक्खी गई हैं। कौलेजोंमें विद्यार्थियोंके छात्रावासकी भी इसमें शर्त्त है। अव मैं आपको वतलाऊँ कि मैं छात्रावास-प्रणालीका हृदयसे स्वागत करता हूँ। अपने नम्र निजी रूपसे मैं इलाहावाद म्योर कौलेज्के सम्बन्धमें अन्य सदस्योंके साथ उस कमेटीके मन्त्रीकी हैसियतसे काम कर रहा हूँ जिसने एक छात्रावास बनानेके लिये एक लाख साठ हज़ार रुपये जमा कर लिये हैं। हम तीन लाख रुपया जमा करनेका प्रयत्न कर रहे हैं जिससे दो सौ विद्यार्थियोंके रहने योग्य एक छात्रावास बन जाय। सज्जनो! इस प्रथाके प्रचलन करनेके इतने पक्षमें होते हुए भी, मैं समझता हूँ कि कौलेजोंको सम्बद्ध करनेके कारण उनपर छात्रावास बनानेके अनिवार्य्य नियमका लगाना दोषपूर्ण है। इसका कारण मैं आपसे कहता हूँ। कुछ प्रमुख सज्जनोंकी इच्छा होनेके कारण म्योर कौलेज्की प्रयागमें स्थापना हुई थी। इसके लिये कई देशी सरदारोंने रुपया दिया था तथा महाराजा विजयानगरम्ने एक लाख रुपया दिया। सरकारने कहा कि इस दो लाख एकत्रित हुए रुपयोंमेंसे अधिक धन छात्रावासके लिये सुरक्षित रक्खा जायगा। यह वात लौर्ड नौर्थब्रुकके समय, सन् १८७१ ई० की है। कौलेज्का इतिहास देखनेसे आपको पता चलेगा कि सर एण्टोनी मैक्डोनलके समयतक विद्यार्थियोंके रहनेको छात्रावास बनानेका कोई प्रयत्न नहीं किया गया। क़रीब बीस सालतक सरकारने विद्यार्थियोंके रहनेको छात्रावास बनानेकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया जब कि सरकारने म्योर कौलेज्की इमारतोंपर नौ लाख व्यय कर डाला। पश्चिमोत्तर प्रान्तकी सरकारको मैं इसके लिये दोषी नहीं ठहराता! मेरे पास इसके कारण हैं, कोई पक्षपातकी बात नहीं है। युक्त-प्रान्तकी सरकारको ठेकों तथा प्रान्तीय सहायताके रूपमें इतना कम रुपया दिया जाता है कि वह अपना

रुपया इस काममें नहीं लगा सकती थी। केवल यही नहीं बल्कि इससे भी बढ़कर भारत-सरकारने युक्त-प्रान्तीय सरकारको बहुत सालोंमें डाँट-फटकार बतलाई कि वह उच्च शिक्षामें इतना अधिक रुपया ख़र्च करती है और दूसरी प्रकारकी शिक्षाओंमें कम। सरकारके पास इतने शक्तिशाली साधन होते हुए भी यदि बीस वर्ष बाद उसको छात्रावासके लाभोंका ज्ञान हुआ है तो क्या सारी संस्थाओंसे जो सम्बन्ध होना चाहती हैं सम्बन्ध होनेके पहले विद्यार्थियोंके लिये सुन्दर-सुन्दर छात्रावास वनानेको अनिवार्य्य कर देना क्या अत्यन्त अनुचित नहीं है? हमें बहुत धीरे-धीरे बढ़ना चाहिए, धीरज रखना चाहिए। यदि युक्तप्रान्तकी सरकार उस प्रथाके अनुसार कार्य्य करनेमें सफल नहीं हुई तो इसमें आश्चर्य्यकी ही कौन बात है; क्योंकि अन्य-अन्य प्रान्तोंकी सरकारें भी तो इस कार्य्यमें असफल रही हैं। यदि सरकारी कौलेजोंमें विद्यार्थियोंके रहनेके लिये स्थान नहीं हैं तो उनको थोड़ी देर ठहरना चाहिए जिससे लोकमत वन जाय और जनता इसके प्रबन्धके लिये भली भाँति तैयार हो जाय।

सज्जनो! छात्रावास-सम्बन्धी इस धाराके लिये मैं आपका अधिक समय नहीं लेना चाहता। इस प्रस्तावके अन्य अङ्गोंपर विचार करनेके लिये मैं आपका थोड़ासा समय लूँगा। मेरा मतलब विश्वविद्यालयके शिक्षण-कार्य्यसे है। विश्वविद्यालय-बिलमें शिक्षण-सम्बन्धी एक धारा है। जिस समय वाइसराय महोदयने यह शिकायत की कि विश्वविद्यालयोंने इतने योग्य मनुष्य उत्पन्न नहीं किए जितने उन्हें करने चाहिए तब वे यह भूल गए थे कि यहाँके विश्वविद्यालयोंका उसमें तनिक भी दोष न था। इस देशमें दी जानेवाली उच्च शिक्षाके लाभोंको प्राप्त करनेमें भारतके युवकोंने पर्य्याप्त रुचि दिखाई है। इसके लिये भारतसे वाहर देशोंको भी वे गए हैं, यह काफ़ी प्रमाण है। यद्यपि भारत-सरकार इस बातको जानती है कि यह प्रणाली प्रचलित होनी चाहिए, तो भी उसने इस ओर अभीतक कोई निश्चय नहीं किया। उच्च शिक्षाके सम्बन्धमें ज़िक्र करते हुए सन् १८५४ ई० के सरकारी-पत्रमें कहा गया था कि—"विश्वविद्यालयोंमें उच्च शिक्षाके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न विषयोंपर व्याख्यान करानेके लिये प्रोफ़ेसर नियुक्त होने चाहिएँ, जिसके लिये भारतवर्षकी किन्हीं अन्य संस्थाओंमें कोई सुविधा नहीं है।" शिक्षा कमीशनोंने भी इसकी आवश्यकता इस प्रकार सिद्ध की थी कि "भिन्न-भिन्न प्रकारकी मानसिक तथा शारीरिक शिक्षाको प्रोत्साहन देनेके लिये सब कौलेजोंमें जो सरकारके मातहत हैं, एकसे अधिक विषयोंकी शिक्षा देनेकी व्यवस्था होनी चाहिए।" यदि आप पञ्जाब-विश्वविद्यालय-विधानकी ओर ध्यान दें तो आपको ज्ञात होगा कि शिक्षाके सम्बन्धमें वहाँ एक धारा है। सन् १८८७ ई० में स्वीकृत प्रयाग-विद्यालय-विधानमें अधिक स्पष्ट तथा उदार रूपमें उच्च शिक्षा देनेके लिये एक धारा है, जिससे विश्वविद्यालय अपने यहाँ उच्च शिक्षा देनेके लिये अध्यापकों तथा विशेषज्ञोंको नियुक्त कर सकता है। इसका नतीजा क्या हुआ है? यदि यह विधान काममें नहीं लाया जाता तो इसके लिये कौन दोषी है? अनुचित रूपसे आक्षेप करनेके भावसे नहीं बल्कि सच्ची वात बतलानेके लिये मैं कहता हूँ कि इसके लिये सरकार ही दोषी है। यदि सरकारने धन दिया होता, अथवा उच्च शिक्षा देनेके कर्त्तव्यको समझा होता, तो ये विश्वविद्यालय बहुत समय पहले ही से इङ्गलैण्ड तथा जर्मनीसे बुलाए हुए विद्वानोंके भाषणोंसे गूँज उठते। किन्तु दुर्भाग्यवश सरकार अपने इस कर्त्तव्यका पालन न कर सकी और अब देशके लोग और विश्वविद्यालयोंके स्नातक तथा अनुत्तीर्ण युवकोंको सरकारकी उपेक्षा तथा अपराधोंके लिये दोषी ठहराए जाकर दण्ड दिया जा रहा है। हमारी ज्ञानकी उन्नति तथा अन्वेषण-कार्य्यके लिये इस विधानमें शिक्षा-सम्बन्धी कौनसी धारा रक्खी गई है? रेले महोदयने बतलाया था कि कुछ योजनाएँ, जो सरकारके सामने

पेश की गई हैं, ऐसी हैं, जिन्हें चालू करनेके लिये सरकारके पास रुपया नहीं है। उन्होंने बतलाया कि पाँच लाख रुपये पाँच वर्षके लिये विश्वविद्यालयों तथा कौलेजोंमें उच्च-शिक्षाके उन सुधारोंके लिये, जो हमने सोच रक्खे हैं, अलग रख दिए जायँगे। आप समझ सकते हैं कि थोड़ासा धन भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयोंमें कितनी थोड़ी मात्रामें बाँटा जायगा। इस प्रकारकी सहायतासे आप उच्च शिक्षाकी आशा कदापि नहीं कर सकते। आपको स्मरण होगा कि सर नौर्मन लौकियरने लगभग साठ लाखका अनुमान लगाया था। क्या हम भारत-सरकारसे यह प्रार्थना नहीं कर सकते कि वह विश्वविद्यालयोंमें उच्च शिक्षा देनेके लिये उस संख्याका चौथाई अथवा पन्द्रह लाख रुपये वार्षिक दिया करे? सिविल सर्विसके अच्छे-से-अच्छे पदाधिकारियोंको देशमें रखना उपयुक्त समझा जाता है। अच्छे-से-अच्छे सैनिकोंको जो बृटिश सरकारको मिल सकते हैं, देशके लिये उपयुक्त समझा जाता है। क्या देशके युवक अच्छे-से-अच्छे विदेशी विद्वानोंके भाषणोंसे लाभ उठानेके योग्य नहीं हैं? हमारे देशवासियोंको उस रुपयेके व्यय करनेमें निश्चय ही कोई अधिकार नहीं दिया जाता जो उन्हींसे वसूल किया जाता है! किन्तु यदि लौर्ड कर्ज़नकी सरकार इस प्रश्नपर नैतिक दृष्टिसे विचार करेगी तथा सारे देशके शिक्षित भारतवासियोंकी भावनाओंपर ध्यान देगी तो उनको भारतवासियोंके न्यायपूर्ण अधिकारों तथा प्रार्थनाके अनुसार अपने निश्चयसे बहुत अधिक रुपया उच्च शिक्षाके लिये देना चाहिए।

अभी मैं अपना भाषण समाप्त कर दूँगा। मैं समझता हूँ कि जिसका हम लाभ उठाना चाहते हैं उस उच्च शिक्षाके मिलनेके लिये हम दोषी नहीं हैं। लार्ड कर्ज़न विश्वविद्यालयकी शिक्षा पाए हुए हैं। वे निश्चय ही उच्च शिक्षाके लाभोंको समझते हैं। मेरा उनसे यही कहना है कि हमें ऐसे विश्वविद्यालय दो जहाँ उच्च-से-उच्च शिक्षा देनेके साधन हों। बुद्धिके विकासके लिये, साहित्यके गम्भीर अध्ययनके लिये तथा व्यावसायिक आदर्शको उच्च बनानेके लिये जहाँ प्रत्येक प्रकारका साधन उपस्थित हो तथा जहाँपर विद्वान् सुस्थिर शान्तिमय वातावरणमें रह सकें जैसा कि सच्चे विद्या-केन्द्रोंमें ही मिलता है। एक बड़े अमेरिकन लेखकने विश्वविद्यालयोंके सम्बन्धमें (कितना उपयुक्त है उसे यहाँ उद्धृत करनेके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ) कहा है कि "एक बहु अनुभवी देश-सेवीने कहा है कि एक बड़ा विश्वविद्यालय शिक्षाका सर्वोत्तम स्थान, अनुसन्धानकी सबसे बड़ी कल और विद्याके गम्भीर अध्ययनके लिये सबसे सुन्दर रुचिपूर्ण निर्जन स्थान होना चाहिए।" निस्सन्देह यह सत्य है किन्तु केवल यह अधूरा सत्य है। जिन विश्वविद्यालयोंमें अधिक संख्यामें अनुसन्धान-कर्त्ताओं, पण्डितों, विचारकों और दार्शनिकोंके लिये सब तरहके प्रचुर साधन प्रस्तुत हैं तथा जिसकी बुद्धि और विद्वत्ताकी अपने युगमें ख्याति हो, वे देशकी शान्ति और सुस्थिरताकी रक्षाके साधन होंगे; केवल उन्हींके लिये नहीं जो उस विद्यापीठमें पलते हैं, बल्कि सभीके लिये जो उसके प्रभावमें आते हैं। किसी देशके सर्वोत्तम मनस्वी व्यक्तियोंका समाज जो शिक्षाके आदान-प्रदानमें व्यस्त, प्रकृति-विज्ञानके अध्ययन, साहित्यकी सर्वश्रेष्ठ रचना, गणितके आश्चर्य्यकारी सिद्धान्तोंके परिणाम, ऐतिहासिक सत्यकी खोज, मानवी सभ्यताके विकास और धार्मिक विश्वासके आधार आदिके गम्भीर अध्ययनमें संलग्न हैं, वे देशमें एकदम शान्त वातावरण पैदा करनेवाले होंगे, और जीवनके तत्त्वका प्रसार करेंगे जिसकी ज़रूरत हमारे देशवासियोंके लिये इतनी अधिक है। ऐसे समय जब एक ओर निराशावादका करुण क्रन्दन, और दूसरी ओर आशावादका आनन्ददायक किन्तु प्रपञ्ची सुख-स्वप्न उनको मध्यस्थ मार्गसे विचलित कर देते हैं और जिस विवेकसे सत्यका निश्चय कर आशा

और उत्साहके साथ वे कल्याण मार्गकी ओर बढ़नेमेँ सफल होँगे"।

सज्जनो ! लौर्ड कर्ज़न हम लोगोँके साथ पाँच वर्षसे हैँ। लौर्ड महोदयकी उच्च तथा उदार बातोँको सुनकर हमारे हृदयमेँ बड़ी-बड़ी आशाएँ उत्पन्न हुईँ थीँ। उनका शासनकाल अब समाप्त होनेवाला है। इस समय क्या मैँ उनसे नम्र निवेदन करूँ कि वे एक ऐसी संस्था बना जायँ जो उनके जानेके बाद विक्टोरिया-स्मारक-भवनसे भी अधिक उनके नामको अमर कर दे। सज्जनो ! यदि लौर्ड कर्ज़न वास्तविक अच्छे विश्वविद्यालय स्थापित नहीँ करना चाहते तो यह बहुत अच्छा है। मैँ तो चाहता हूँ कि वे अपने पूर्वाधिकारियोँकी तरह इस विषयको उठाते ही नहीँ, जिन्होँने न तो उसको अपने हाथमेँ लिया, न यही समझा कि उसकी क्या ज़रूरतेँ थीँ। ऐसा न करनेके लिये वह क्षम्य हैँ। किन्तु लौर्ड कर्ज़न जैसे व्यक्तिके लिये यह बड़े खेदकी बात होगी कि सच्ची स्थितिको स्वीकार करनेपर भी उसके अनुसार काम न करेँ। हम अब भी आशा करते हैँ कि लौर्ड कर्ज़न हमारे सच्चे अधिकारोँपर ध्यान देँगे तथा सच्ची उच्च शिक्षाके लिये उदार तथा प्रचुर साधनोँकी सुविधा कर देँगे, जिससे हमारे नौजवान उस शिक्षाको कम-से-कम प्राप्त कर सकेँ जो दूसरे देशोँके मध्यम श्रेणीके विश्वविद्यालयोँ मेँ दी जाती है।

अन्य देशमें। इसका तात्पर्य्य उस देशकी हानि करनी है जिसपर टिकस लिया गया है। भारतसे अभीतक जो कर वसूल होता रहा है उसका ठीक इसी प्रकार व्यवहार किया जाता रहा है। इससे भारतसे कर लेनेके अन्याय और क्रूरताकी कुछ झलक मिल जाती है। भारतके करको न्यायके पलड़ेपर या अपने हितकी दृष्टिसे तोलिए तो मालूम होगा कि यह अमानुषिक तथा न्यायविरुद्ध है, और अर्थ-विज्ञानके सिद्धान्तसे भी भिन्न प्रतीत होगा।" (साधु-साधु) इस विषयको और आगे बढ़ा देना मेरे लिये अनावश्यक है। मैं समझता हूँ कि अपनी बातका औचित्य सिद्ध करनेके लिये मैंने काफ़ी कहा है कि जबतक सरकार अपनी वर्त्तमान फ़ज़ूलख़र्ची कम नहीं करती और करके बोझको कम नहीं करती, जबतक सरकार भारतीय विद्वानोंका उपयोग नहीं करती, देशी कला और उद्योग-धन्धेको उत्साहित नहीं करती, और देशकी धनराशिको विदेश भेजनेके मार्गको नहीं रोकती, तबतक हम लोग ऐसे भयानक दुर्भिक्षसे बचनेकी आशा नहीं कर सकते। और जैसा कि सर जौर्ज चेसनीका अनुभव है कि "जबतक दुर्भिक्षके पूर्णतः रोकनेका प्रबन्ध नहीं होता, तबतक अंग्रेज़ लोग राजद्रोहके स्थानपर शान्तिकी स्थापना भले ही कर दें, समान न्यायका प्रबन्ध भले ही कर ले, अज्ञान भले ही हटा दें, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सरकारने देशकी जनताके प्रति अपने पूर्ण कर्त्तव्यका पालन किया है।" (हर्ष-ध्वनि)

सज्जनो! प्रस्तावके प्रथम अंशके सम्बन्धमें इन कुछ विचारोंको उपस्थित कर चुकनेके बाद मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप मुझे कुछ मिनट और दें जिससे मैं उत्तरपश्चिम प्रान्त और अवधके सम्बन्धमें कुछ निवेदन कर सकूँ। गत तीन वर्षोंसे उत्तरपश्चिम प्रान्तोंमें हमारी दशा बहुत ही निकृष्ट रही है। हमको एकके बाद दूसरी विपत्तिका सामना करना पड़ा है, और जनतामें इस वर्त्तमान सङ्कटको सहन करनेका बहुत कम सामर्थ्य रह गया है। जो कष्ट फैला हुआ है उसकी करालता बढ़ती ही जा रही है। किन्तु हमारे भाग्यसे हमारे प्रान्तके प्रधान शासक बड़े विशाल हृदय और दयालु हैं। (हर्ष-ध्वनि) वे स्पष्ट दूरदर्शी और भूखसे मृत्यु होनेको रोकनेके लिये सरकारद्वारा सभी सम्भव उद्योग करनेके लिये सच्चे राजनीतिज्ञके समान दृढ़ निश्चयवाले व्यक्ति हैं। सर ऐएटनी मैक्डौनेलका आपने ठीक नाम लिया है। (हर्ष-ध्वनि) यदि हमारे प्रान्तमें आप न होते तो आज इस अवसरपर आपको यह सुनना पड़ता कि केवल बुन्देलखण्ड और प्रयाग कमिश्नरियोंमें बीसों हज़ार आदमी भूखकी ज्वालासे मृत्युके ग्रास बन चुके। मुझे विश्वास है कि ऐसे अवसरपर किसी प्रधान शासकके लिये जो कुछ करना सम्भव था उसमें सर ऐएटनी मैक्डौनेलने कुछ उठा नहीं रक्खा। भावी विपत्तिको पहलेसे समझनेवाली आपकी दूरदर्शी बुद्धिके कारण ही उक्त प्रान्त विपत्तिके थपेड़ोंसे बच सका, और दुर्भिक्षका सामना करनेके लिये तत्काल प्रबन्ध करके आपको मालूम है कि क़रीब तीन लाख मेरे प्रान्तके मनुष्योंको राज्यकी ओरसे सहायता दी गई थी। (साधु-साधु) अस्तु, जैसा कि मैंने कहा था कष्ट अति व्यापी हो गया है और प्रतिदिन गम्भीर रूप धारण कर रहा है। कष्ट निवारणके उपायोंको अधिक फैलाने और उसकी मात्रामें वृद्धि करनेकी आवश्यकता है। सहायताका कार्य्य करनेके लिये जितने व्यक्ति नियुक्त हुए हैं, उनकी संख्या ही इस बातकी साक्षी है कि कितने प्रतिशत हैं, और जो संख्या इस समय है वह बड़ी तेज़ीसे आगामी वसन्ततक कई गुना अधिक हो जायगी।

इसके अतिरिक्त उस क्षेत्रके बाहर, जहाँ सहायताका सेवा-कार्य्य जारी है, बहुसंख्यक पर्दानशीन महिलाएँ और मध्यम श्रेणीके सम्मानित निर्धन व्यक्ति हैं, जो बढ़े हुए मूल्यके बोझका कटु अनुभव कर रहे हैं, इन्हें भी सहायताकी बड़ी आवश्यकता है। सर ऐएटनी मैक्डौनलकी सरकारने कृपापूर्वक मध्यम

श्रेणीके निर्धनों और पर्दानशीन महिलाओंकी सहायताके लिये पन्द्रह हज़ार रुपये लखनऊकी दुर्भिक्ष निवारण सहायता कमेटीको दे रक्खा है। मुझे बताया गया है कि ऐसा प्रस्ताव किया गया है कि प्रति व्यक्तिको सत्ताईस रुपयेके हिसाबसे सहायता दी जाय, जो रक़म मेरी समझसे बहुत कम है। किन्तु उस हिसाबसे भी निर्धारित मूलधनसे सात हज़ार पाँच सौ पीड़ितोंकी सहायता हो सकेगी। सरकारने इसी प्रकारके वितरणके लिये प्रयागमें प्रति मास पाँच हज़ार रुपयेकी स्वीकृति दी है। यह धन और जनताके चन्देसे जो धन एकत्र हुआ है, दोनों मिलाकर मध्यम श्रेणीके हज़ार निर्धनोंकी सहायताके लिये पर्य्याप्त हो सकता है। किन्तु इन अधिक जन-संख्यावालेको नगरोंमें सहायता पानेवालोंकी संख्या बहुत बड़ी है और कुछ दिनोंतक यह संख्या प्रति दिन बढ़ती रहेगी। युक्तप्रान्तके अन्य ज़िलोंमें भी तो पर्दानशीन महिलाएँ और मध्यम श्रेणीके निर्धन पुरुष बसते हैं। बड़े परिवार और थोड़ी आयवाले व्यक्ति, जो वर्त्तमान कष्टके समय दो समयके भोजनका प्रवन्ध करनेमें भी कठिनाईका अनुभव करते हैं, अनेक सामाजिक विचारोंके कारण इस सहायतासे लाभ नहीं उठा सकते। इनमेंसे अनेक ऐसे मालूम होते हैं मानो उन्हें सहायताकी अवश्यकता ही नहीं है। किन्तु उन्हें सहायताकी अत्यन्त आवश्यकता है और यदि उन्हें यह सहायता उस प्रकारसे दी जाय जो उनके लिये ग्राह्य हो तो वे इस सहायताका स्वागत करेंगे। सज्जनो! मेरे प्रान्तके विभिन्न स्थानोंपर अनेक सहायता कमेटियाँ स्थापित हुई हैं। मुझे आशा है कि ये संस्थाएँ निर्धनोंकी अधिक सहायता करेंगी। किन्तु मैं यह अवश्य कहूँगा और मुझे भय है कि जबतक वर्त्तमान अवस्थामें उचित परिवर्त्तन नहीं होता तबतक जनताको महान् कष्ट और अपार हानि उठानी पड़ेगी। अत्यन्त आशाकी दृष्टिसे भी वह परिवर्त्तन चैती फ़सलके कटनेके पहले नहीं हो सकता। अतः आगामी तीन महीनोंतक मेरे प्रान्तके निवासियोंको—यह सोचते मुझे दुःख होता है—बहुत बड़ी सहायताकी आवश्यकता होगी, जिसकी दिनों-दिन बढ़ती होती जायगी। और यदि इस देशसे अथवा विदेशसे कोई सहायता आनेवाली हो, तो उसके लिये यही उपयुक्त समय है। कोई भी व्यक्ति, जिसमें मानुषी सहानुभूतिकी एक चिनगारी-मात्र भी अवशिष्ट है, अथवा दायित्त्वका तनिक भी भाव उसमें है, वह इस सहायताके मार्गमें बाधक नहीं होगा, यदि वह स्वतः इस प्रकारकी सहायताको आगे नहीं बढ़ाता। (हर्ष-ध्वनि)

सज्जनो! एक शब्द और, और मेरा कार्य्य समाप्त है। वह शब्द दुर्भिक्ष-विधानके अनुसार भोजन और मज़दूरीके निर्धारणके सम्बन्धका है। मुझे यह देखकर दुःख हो रहा है कि विधानमें जो भोजनकी मात्रा निर्धारित है वह जेलमें क़ैदियोंके भोजनकी मात्रासे भी कम है। मेरे सम्मानित मित्र श्रीतिलकने कृपा करके मेरे हाथमें एक तालिका दी है जो उन्होंने स्वयं तैयार की है, उससे मालूम होता है कि वे व्यक्ति, जिन्हें सपरिश्रम कारावासका दण्ड मिला है, उन्हें बम्बई प्रान्तमें प्रतिदिन चौबीस औन्स आटा और पाँच औन्स दाल मिलती है, मद्रास प्रान्तमें पच्चीस औन्स आटा और चार औन्स दाल मिलती है, उत्तरपश्चिम प्रान्तमें अट्ठाईस औन्स आटा और दो औन्स दाल और बँगाल प्रान्तमें बाईस औन्स आटा और छः औन्स दाल मिलती है। किन्तु दुर्भिक्ष-विधानके अनुसार अधिक-से-अधिक भोजनकी मात्रा जो पूर्ण स्वस्थ दुर्भिक्ष पीड़ितके लिये पर्याप्त मानी गई है वह प्रतिदिन प्रति व्यक्ति चौबीस औन्स आटा और चार औन्स दाल है। सादी क़ैदकी सज़ा पाए हुए अभियुक्तसे प्रत्येक तरुण पुरुषको बम्बई प्रान्तमें बीस औन्स आटा और चार औन्स दाल, मद्रास प्रान्तमें एकीस औन्स आटा और चार औन्स दाल, उत्तरपश्चिम प्रान्तमें बीस औन्स आटा और दो औन्स दाल, और बङ्गाल प्रान्तमें अठारह औन्स चावल और चार औन्स दाल मिलती है। किन्तु दुर्भिक्ष-विधानके

अनुसार निर्धन गृहस्थोंके लिये और उसके अन्य आश्रित परिवारके लिये केवल सोलह औन्स आटा और चार औन्स दाल निर्धारित है। विभिन्न श्रेणीके बन्दियोंके लिये भोजनकी मात्राका निर्धारण सरकारके स्वास्थ्य-विभागके अफ़सरोंसे बहुत लिखापढ़ी और पूछताछके बाद हुआ है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि बन्दियोंको स्वस्थ और पुष्ट रखनेके लिये भोजनकी उपर्युक्त मात्रा ही ठीक है। निरपराधी लोगोंके लिये इससे कम भोजनकी मात्रा निर्धारित करना सचमुच अनुचित और अन्यायपूर्ण है, जो विपत्तिके कारण इस परिस्थितिमें पड़े हैं कि उन्हें राज्यके दिए भोजनपर निर्भर करना पड़ रहा है। (हर्ष-ध्वनि) यदि इनको भूखोंसे बचानेके लिये ही यह सहायता दी जा रही है तो निश्चय ही इन्हें स्वास्थ्यकी रक्षा और काम करनेकी शक्ति बनाए रखनेके अनुकूल पर्य्याप्त मात्रामें भोजन देना चाहिए। फिर दुर्भिक्ष-विधानमें ग़रीबोंको वस्त्र देनेका कोई ज़िक्र ही नहीं है। इस सम्बन्धमें विधानमें संशोधन करनेकी आवश्यकता है। मैं आशा करता हूँ कि संशोधन शीघ्र ही होगा। कामके सम्बन्धमें दुर्भिक्ष-कमीशनकी सिफ़ारिश है कि साधारण मज़दूरोंके कामसे पचहत्तर प्रतिशतसे अधिक कार्य्यभार सहायता पानेवाले दुर्भिक्ष पीड़ितोंपर नहीं डालना चाहिए, किन्तु देशके अनेक भागोंसे यह शिकायत आ रही है कि सहायता पानेवाले पीड़ितोंसे पूरा काम लिया जाता है और इसके साथ ही कम मज़दूरी देनेकी शिकायत है। यही कारण है कि अपने दुर्भिक्ष-सम्बन्धी सहायता लेनेसे लोग भरसक अलग ही रहते हैं। ये समस्याएँ ऐसी हैं जिनपर विचार करना सरकारके लिये आवश्यक है। दुर्भिक्ष-विधान अन्य अंशोंमें प्रशंसनीय हो सकता है किन्तु उपर्युक्त विषयके सम्बन्धमें इसमें संशोधनकी आवश्यकता बतानेके लिये मैं सिर्फ़ एक उदाहरण उद्धृत करूँगा। जहाँतक मैं जानता हूँ मेरे प्रान्तमें लखनऊके एक घरके जैसा अन्य कोई निर्धन घर नहीं है। लखनऊके डिप्टी कमिश्नर श्री ग्रेने पहली बार यह आज्ञा जारी की कि प्रत्येक तरुण पुरुष विधानोक्त सोलह औन्स आटा प्रतिदिन पावे। किन्तु यह देखकर, कि इससे लोगोंकी भूख नहीं बुझती, उन्होंने यह आज्ञा जारी की कि प्रतिदिन प्रति व्यक्तिको अठारह औन्स आटा दिया जाय। तीन महीने पीछे उनसे कहा गया कि उन्हें सोलह औन्सकी अनुमति देनी चाहिए और उन्हें अपने उचित निर्णयके विरुद्ध भोजनकी मात्रामें विधानकी मात्राके अनुसार फिर कमी करनी पड़ी। मुझे पूर्ण आशा है कि सरकार विधानका संशोधन करेगी, अथवा अपने कर्म्मचारियोंको ऐसी हिंदायत देगी कि दुर्भिक्ष-पीड़ितोंको उनकी आवश्यकताके अनुसार, और निर्धन परिवारके स्वास्थ्य तथा बलकी रक्षाके उपयुक्त सहायता दी जाय। मैं यह भी आशा करता हूँ कि सरकार सभी सम्भव उपायोंसे सहायता करनेका शीघ्र उपाय करेगी, और केवल भारतके ही कोषसे नहीं बल्कि जनताके कष्ट निवारणके लिये इङ्गलैण्डके कोषसे भी सहायता लेगी। यह कार्य्य समय रहते, जनताके शरीरपर मांस और अस्थिके रहते, तथा भूखसे तड़प-तड़पकर मरनेके पहले, जीवन धारणके लिये शारीरिक शक्तिके रहते-रहते पूरा होना चाहिए। क्योंकि फिर मृत्युसे बचनेके लिये सरकारको कोई सहायता भी काम न आवेगी। 'का वर्षा जब कृषी सुखाने'

(तुमुल हर्ष-ध्वनि)

भारतीय-व्ययपर राजकीय-कमीशन

२७ दिसम्बर सन् १८९७ ई० से अमरावतीमें होनेवाली भारतीय-राष्ट्रीय-महासभाके तेरहवें अधिवेशनमें निम्नाङ्कित प्रस्तावको उपस्थित करते समय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण।

—सम्पादक।

प्रस्ताव

"यह कांग्रेस हर्ष प्रकट करती है कि भारतीय व्ययपर राजकीय कमीशनने कमीशनकी कार्रवाईमें भारतीय जनताको सहर्ष स्थान देनेका निश्चय किया है। यह कांग्रेस उक्त सम्मानित कमीशनके प्रति उसके इस कार्य्यके लिये कृतज्ञता प्रकाशित करती है कि उसने भारतके प्रतिनिधि साक्षियोंको भारतकी ओरसे उस प्रश्नको पूर्ण रूपमें उपस्थित करनेका अवसर प्रदान दिया है। विषयके तीन भागोंके सम्बन्धमें कांग्रेस सम्मानित कमीशनके सहानुभूतिपूर्ण विचारके लिये निम्नाङ्कित प्रार्थनाएँ अत्यन्त नम्रताके साथ उपस्थित करनेकी इच्छा प्रकट करती है :—

(अ) भारतीय व्ययपर नियन्त्रण करनेके सम्बन्धमें प्रार्थना है कि—(१) बड़े लाटकी परिषद्के ग़ैर-सरकारी सदस्य प्रत्यक्षतः भारतीय जनताके प्रति उत्तरदायी बनाए जायँ। इन्हें संशोधन उपस्थित करनेका अधिकार प्राप्त हो और बजटपर मत देनेका अधिकार प्राप्त हो। (२) बड़ी व्यवस्थापिका परिषद् और प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद्के सदस्योंकी सिफ़ारिशसे उच्च श्रेणी और अनुभववाले भारतीय प्रतिनिधि अधिक संख्यामें भारत-सचिवकी परिषद्के लिये मनोनीत किए जायँ। (३) भारतकी आर्थिक दशाकी जाँच करने और रिपोर्ट देनेके लिये प्रति वर्ष साधारण सभाकी एक निर्वाचित कमेटी नियुक्त की जाय।

(आ) व्ययके सम्बन्धमें प्रार्थना है कि सैनिक तथा अन्य निरर्थक व्ययमें कमी की जाय। जनताके कल्याण और उनकी उन्नतिके लिये अधिक धन व्यय करना चाहिए। सार्वजनिक नौकरियोंके उच्च पदोंके लिये जहाँतक व्यवहारतः सम्भव हो अंग्रेज़ कर्मचारियोंके स्थानपर अधिक बचत तथा अधिक सुयोग्य शासनकी दृष्टिसे भारतीय कर्मचारियोंकी नियुक्ति होनी चाहिए।

(ई) करके अनुपातके सम्बन्धमें प्रार्थना है कि राजकीय कोषसे व्ययका अधिक भाग लिया जाय। जो व्यय भारतके साधारण हित और शेष साम्राज्यके हितके लिये किया गया है और विशेषतः युद्ध-सम्बन्धी वह व्यय, जो सीमाप्रान्तके बाहर हुआ है, उसका अधिकांश भाग राजस्व कोषसे दिया जाना चाहिए। अन्ततः सभापतिको अधिकार दिया जाय कि वह अपने हस्ताक्षरके साथ प्रस्तावकी एक प्रति राजकीय कमीशनके अध्यक्षके पास शीघ्रातिशीघ्र भेज दें।

सज्जनो!

मेरा कार्य्य बड़ा सरल है। आपमेंसे जो पहलेके कांग्रेस-अधिवेशनोंमें सम्मिलित हुए होंगे तथा जिन्होंने कांग्रेस-साहित्यका अध्ययन किया है वे इस बातसे अवश्य परिचित होंगे कि यह प्रस्ताव पिछली कांग्रेसोंमें प्रकट किए हुए विचारोंका अधिक स्पष्ट रूप है। अभी पिछले कुछ वर्षोंकी कांग्रेसकी रिपोर्ट पढ़िए तो आपको विदित होगा कि इन प्रस्तावोंमेंसे

लगभग प्रत्येकपर कांग्रेसकी भूतपूर्व बैठकोंमें विस्तृत विचार हो चुका है। इसके अतिरिक्त हमारी प्रार्थनाओंके समर्थनमें हमारे उन सम्मानित मित्रोंने अभी हाल ही में बड़े प्रशंसनीय ढङ्गसे और बड़े सुन्दर रूपमें प्रमाण दिए हैं, जो भारतीय जनताकी ओरसे राजकीय कमीशनके सामने साक्षी रूपमें उपस्थित हुए थे। यदि मैं उन प्रमाणोंको आपके समक्ष उपस्थित करूँ और उनकी व्याख्या करूँ तो इससे अमूल्य समय नष्ट होगा। सज्जनो! आप देखेंगे कि जहाँतक पहली प्रार्थनासे इसका सम्बन्ध है कांग्रेसके प्रथम अधिवेशनमें ही भारतीय व्ययके नियन्त्रणके स्वरूपपर विवाद हो चुका है और उस प्रस्तावद्वारा हमने भारत-सचिवके परिषद्को मिटा देनेकी इच्छा प्रकट की थी और भारतीय व्ययको आजकी अपेक्षा श्रेष्ठतर नियन्त्रणमें लानेके लिये साधारण सभाकी स्थायी समिति नियुक्त करनेके लिये माँग उपस्थित की थी। यदि आज यह कांग्रेस आपसे इस प्रस्तावके समर्थनके लिये अनुरोध करती है तो इसका तात्पर्य्य, शिकायत अथवा प्रार्थनापत्रके साथ अपनी माँग जोड़नेके समान वह प्रश्न संक्षेपमें उपस्थित करना है जिसपर आप कमीशनसे विचार कराना चाहते हैं। इसका तात्पर्य्य इस प्रश्नपर आपकी स्वीकृति और आपका समर्थन प्राप्त करना है, इसका तात्पर्य्य कांग्रेसकी भूतपूर्व रिपोर्टमें बिखरे हुए इन सब प्रस्तावोंपर आपकी सम्मति प्राप्त करनी है। मुझे आशा है कि यदि आज कांग्रेस इस प्रस्तावकी बातें स्वीकार कर लेती है तो कमीशनके उन सम्मानित सदस्योंको अधिक बल मिल जाता है जो हमें बहुत कुछ अधिकार प्रदान करनेके लिये तत्पर हैं और मैं आशा करता हूँ कि सभी सदस्य ऐसा करनेके लिये तत्पर हैं और भारतको न्याय और धर्मके नामपर भारतीयोंके व्ययके विषयमें कुछ रिआयत अवश्य देंगे। (हर्ष-ध्वनि) इससे उन लोगोंको स्पष्ट हो जायगा कि भारतके विभिन्न प्रान्तोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली कम-से-कम भारतके शिक्षित लोगोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली यह कांग्रेस इस प्रस्तावका समर्थन करती है। यदि वे इन प्रस्तावोंका महत्त्व समझनेके लिये कांग्रेसका सङ्गठन भली भाँति जानना चाहते हैं तो वे कांग्रेसके उन प्रतिनिधियोंकी सूची देखें जिन्होंने भूतपूर्व कांग्रेसके अधिवेशनोंमें भाग लिया था, और मुझे निश्चय है कि उनको सन्तोष हो जायगा कि भारतका कोई ऐसा प्रान्त नहीं बचा है जहाँके योग्यतम व्यक्तियोंका इन प्रस्तावोंके लिये सबल समर्थन न हुआ हो। (हर्षध्वनि) मेरे लिये अब यह आवश्यक नहीं है कि मैं आप लोगोंको अधिक कालके लिये रोक रक्खूँ, किन्तु आपकी आज्ञासे मैं स्थान ग्रहण करनेके पूर्व सङ्क्षेपमें कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। आप यह स्वीकार करोगे कि भारतीय-व्ययपर नियन्त्रण करनेवाले उपाय निश्चय ही दोषपूर्ण हैं। जहाँतक इससे भारतके हितका सम्बन्ध है यह उपाय बड़ी मनमानीसे काम करता है। सज्जनो! आप जानते हो कि इसमें हितोंका महान् सङ्घर्ष है। कार्य्यकारिणी या व्यवस्थापिका परिषदोंमें भारतीयोंको वैसा प्रतिनिधित्त्व नहीं प्राप्त है जैसा इङ्गलैण्डकी पार्लियामेण्टमें अंग्रेज़ लोगोंको प्राप्त है, जिससे वे व्ययके नियन्त्रण और आदेशमें अपनी सम्मति प्रकट कर सकें। जो सज्जन कार्य्यकारिणी परिषद्में हैं वे कर-दाता नहीं बल्कि श्री ब्राइटके शब्दोंमें टिकस ख़र्च करनेवाले हैं। इनमें प्रबन्ध और सेना दोनों विभागोंके कर्मचारी सम्मिलित हैं। मेरे कहनेका यह उद्देश नहीं है कि वे नासमझीसे यह करते हैं, बल्कि मेरा कहना है कि वे भारतके हितपर ध्यान नहीं देते। किन्तु जब यह प्रश्न आता है कि उनको वह धन व्यय करना है जिसमें वे स्वयं नाममात्रके लिये ही कुछ देते हैं, तो ऐसी दशामें यह विचार नहीं करते कि कैसे और कब रुपया मिलेगा? हाँ अगर उन्हें अपनी जेबसे ख़र्च करना होता तो वे अवश्य इसपर कुछ ध्यान देते। दूसरी कठिनाई यह है कि यद्यपि इङ्गलैण्डकी साधारण सभा नामके लिये तो

सर्वशक्तिसम्पन्न है, किन्तु व्यवहारमेँ वह बिल्कुल शक्तिहीन है। सरकारके विरुद्ध जो लिखापढ़ी हुई थी वह असफल रही और उसका प्रभाव भी बिल्कुल कम ही रहा। एक दूसरा उदाहरण भी है जिससे यह प्रतीत होता है कि यह उपाय निकम्मा है और भारतीय हितकी रक्षाके लिये पर्य्याप्त नहीँ है। जब आपके सामने दूसरे हित उपस्थित हैँ, जिसे आप इङ्गलैण्डके पूँजीपतियोँका हित कह सकते हैँ, तो आप देखते हो कि किस पद्धतिके अनुसार कार्य्य करना इत्यादिके लिये पहलेसे ही कम्पनियोँके साथ ठेका हो गया है और यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि उक्त पद्धतिका अनुसरण करनेमेँ भारतके हितका तनिक भी विचार नहीँ किया गया है। इन सब मामलोँसे आपको पता चल जायगा कि व्ययके नियन्त्रणका उपाय बहुत ही दोषपूर्ण है, और अभी हालतमेँ आपने इस विचारका समर्थन किया है। व्ययके दीवानी पक्षपर दृष्टिपात करनेसे अभी कुछ साल बीते हैँ कि भारतके लम्बी वेतन पानेवाले सिविलियनोँको विनिमयकी पूर्त्तिका भत्ता देनेके व्यय वहन करनेके लिये आपके देशके व्ययमेँ डेढ़ करोड़की वृद्धि करनी पड़ी है। सज्जनो! क्या यह सम्भव है कि जिस प्रस्तावमेँ व्ययकी इतनी लम्बी रकम अङ्कित है और वह भी ऐसे समयपर जब कि देशमेँ उसके वहनके लिये बहुत कम सामर्थ्य रह गया है, क्या किसी भी उचित व्यय करनेवाली देशकी कार्य्यकारिणी सरकारद्वारा इतनी उतावलीसे व्यय-सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता और उसपर स्वीकृति प्राप्त की जा सकती है जहाँपर क्या ऐसा एक भी व्यक्ति है जो इसे अस्वीकार कर सके कि भारतीयोँके साथ यह महान् अन्यायका कार्य्य है। सैनिक व्ययके सम्बन्धमेँ मेरे पूर्व भाषण करनेवाले सम्मानित मित्रने यह दर्शाया है कि किस प्रकार एक बोझके बाद दूसरा बोझ निर्धन भारतीय रैयतोँकी पीठपर लादा गया और लादा गया बिना औचित्य सिद्ध किए। बर्माको भारत साम्राज्यमेँ सम्मिलित करके, अफ़ग़ान सीमापर युद्ध करके, इन व्ययोँका सम्पूर्ण भार भारतीय रैयतोँकी पीठपर लादा गया। श्रीवाचाने इसका कांग्रेसके प्रथम अधिवेशनमेँ ही घोर विरोध किया था। हमने प्रश्न उठाया था कि यदि ब्रह्माको बृटिश साम्राज्यके अन्तर्गत करना है तो युद्धका व्यय ब्रह्माको स्वीकार करना पड़ेगा, और ब्रह्माको बृटिश साम्राज्यका उपनिवेश बनाना होगा। किन्तु हमारी प्रार्थना अरण्य-रोदन ही रही। अपर ब्रह्माके व्ययकी पूर्त्तिके लिये हमारे राजस्व करकोषसे अठारह करोड़ और लिया गया। सज्जनो! इन सीमाप्रान्तीय युद्धोँपर तो ध्यान दीजिए। भारतके हितका उचित विचार किए बिना ही पहले भी सरकारने इस युद्धमेँ भाग लिया और आज भी ले रही है। अस्तु, इस विषयपर मैँ आपको और अधिक न रोकूँगा, क्योँकि हमको अवश्य धन्यवाद देना चाहिए कि इङ्गलैण्डके उदार दलके कुछ नेता लोगोँने स्थितिकी गम्भीरता समझ ली है, उनका उदार भाव क्षुब्ध हो उठा है और मैँ आशा करता हूँ कि इस नीतिमेँ परिवर्त्तन कराए बिना ये दम लेनेवाले नहीँ, जिसके कारण भारतपर इतना अधिक अनावश्यक व्यय लादा गया है और जिसने इस निर्धन देशकी आर्थिक दशाको अत्यन्त शोचनीय कर दिया है (हर्ष-ध्वनि)। सज्जनो! ग्रेट बृटेनके सुशासनमेँ यह सब क्योँ हो रहा है? किस प्रकार इतनी सरलतासे धन प्राप्त हो जाता है। यदि इङ्गलैण्डकी साधारण सभामेँ एक करोड़ रुपया ऋण लेनेके प्रस्तावपर मत लिया जाय तो सभामेँ इस प्रश्नपर विवाद हो और दलबन्दी हो जाय और मन्त्रियोँको विश्वसनीय कारण उपस्थित करने पड़ेँगे कि ऋण लेना क्योँ आवश्यक हो रहा है? किन्तु यहाँ भारतमेँ भारत-सरकार और भारत-सचिव एक करोड़ या पाँच करोड़ ऋण लेनेको अपने मनसे निश्चय कर सकते हैँ। ऋण लेनेवालेको इस सम्बन्धमेँ उदार होना आसान है। जिनको द्रव्योपार्जन करना पड़ता है, जिनको अपनी आयमेँ बचत करनी पड़ती है, वे अपनी आमदनीसे अधिक व्यय करनेमेँ

कष्ट समझते हैं। अतः ऋण लेनेकी सुविधा और उसपर नियन्त्रणका अभाव—(यह मैं व्यवहार दृष्टिसे कह रहा हूँ)—जो कभी-कभी धन्यवादका विषय भी हो सकता है, किन्तु इस उदाहरणमें तो यह एक प्रकारका अभिशाप प्रतीत होता है। मेरा कथन है कि भारत-सरकार जिस सरलताके साथ ऋण उगाहती है, और इस विषयमें नियन्त्रणके अभावसे सरकारको हमारे राष्ट्रीय ऋणको दुगुना करनेका अवसर मिल गया है। यह आज बढ़कर इतना बड़ा हो गया है कि हम सौ करोड़के ऋणी हैं। सज्जनो! यदि परिषद्में इस विषयपर विवाद होता और हमको प्रश्न करनेकी अनुमति होती कि क्या यह ऋण आवश्यक है, और क्या ऐसा प्रश्न कुछ समयके लिये नहीं टाला जा सकता, और क्या किसी अन्य प्रकारसे इस व्ययमें कमी नहीं की जा सकती, तो सम्भवतः ऋण लेना इतना आवश्यक न प्रतीत होता जितना कि वर्त्तमान समयमें भारत-सरकारके लिये आवश्यक प्रतीत हो रहा है और सम्भवतः भारतका ऋण इतनी तीव्र गतिसे न बढ़ता जितनी तीव्र गतिसे पिछले दिनों यह बढ़ गया है। सज्जनो! अब सिविल प्रश्नोंकी ओर भी तनिक दृष्टि-पात कीजिए। मैं पहले ही विनिमय पूर्त्तिके भत्तेका ज़िक्र कर चुका हूँ। सैनिक व्ययकी वृद्धिका भी मैं ज़िक्र कर चुका हूँ। जब आप कुल जोड़पर दृष्टि डालें तो आपको प्रतीत होगा कि यह बहुत अधिक हो गया है। किन्तु क्या बढ़े हुए कर-भारको वहन करनेके जनताके सामर्थ्यमें भी इसी अनुपातसे वृद्धि हुई है? क्या भारतीयोंकी राष्ट्रीय आयमें आनुपातिक वृद्धि हुई है? मेरी अभिलाषा है कि आपमें शक्ति होती। यदि भारतीयोंके कर देनेकी योग्यतामें आनुपातिक वृद्धि हुई होती तो ऐसी परिस्थितिमें हम लोगोंसे अधिक प्रसन्न अन्य कोई न हुआ होता। देशके शासनको और अधिक उत्तमतासे चलानेके लिये जो कुछ आवश्यक हो उसकी स्वीकृति देनेमें कांग्रेस जनता विशेषतः और समस्त भारतीय साधारणतः और दूसरोंसे अधिक प्रसन्न हुए होते। (हर्ष-ध्वनि) सज्जनो! अभाग्यवश जब हमपर कर दिन दूनी और रात चौगुनी गतिसे बढ़ रहा है, और जब हमपर राष्ट्रीय ऋण अत्यधिक बढ़ता जा रहा है कि हमारी राष्ट्रीय आयमें कुछ भी वृद्धि नहीं हो रही है जिसकी हमें ग्रेट बृटेनके शासनसे आशा थी। सज्जनो! अब कमीको पूरा करने (सुधार) के प्रस्तावपर जो हमारे सामने उपस्थित है, वे क्या हैं? क्या वे युक्तिसङ्गत हैं? अथवा देशका शासन चलानेमें वे बाधक होंगे। मैं अपने कट्टर-से-कट्टर विरोधीसे पूछता हूँ, यदि इस सभा-भवनमें कोई हो तो उन्हें इस विषयपर गम्भीर विवेचन करना चाहिए और वे अपने आत्मासे पूछें कि हम जो प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित कर रहे हैं वे न्यायपूर्ण और उचित हैं या नहीं। हमारा कथन क्या है? हमारा कथन है कि "भारतके बड़े लाटकी परिषद्के सदस्योंकी नियुक्ति सीधे भारतीयोंद्वारा ही हो।" किसी बोर्डके कुछ सदस्योंद्वारा निर्वाचित होनेपर आप इन्हें अब निर्वाचित करते हैं। हमारा कथन है कि उन्हें अधिक रूपसे प्रतिनिधि होनेका अवसर मिलना होना चाहिए। हम कोई कार्य्य-पद्धति नहीं उपस्थित कर रहे हैं—"जो भी पद्धति आपको उत्तम प्रतीत हो वही ग्रहण कीजिए, किन्तु उसमें भारतीयोंके अधिक प्रतिनिधित्त्वका प्रबन्ध हो।" जो हैं उन्हें वहीं रखिए, अवश्य रखिए, क्योंकि विधान स्वीकृत हो गया है। हमारी माँग केवल यह है कि इन्हें भारतीय जनताकी ओरसे बोलनेका अधिक अधिकार प्राप्त होना चाहिए, जिससे जनताका इनमें अबकी अपेक्षा अधिक विश्वास हो, यह सुविधा इन्हें जनताको अधिक प्रतिनिधित्त्व देनेसे हो सकती है। कल्पना कीजिए कि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया तो क्या इससे सरकारकी शासन-व्यवस्था ही कुण्ठित हो जायगी! परिषद्में सरकारी पक्षका सदा बहुमत रहेगा। सरकारी बहुमतके बलपर सरकार प्रत्येक प्रस्तावको साम्राज्यके हितके लिये स्वीकार

करा सकेगी जो उसकी दृष्टिमें आवश्यक होगा, और हमें तो केवल यही अधिकार प्राप्त होगा कि हम मत दें, परिषद्को निर्माण करें। सज्जनो! एक क्षणके लिये तनिक सोचिए तो, कि सरकार जानती है कि परिषद्के इन सदस्योंको बहस करने, परिषद्को विभक्त करने और इस प्रकार मत प्रदान करनेका अधिकार प्राप्त है तो उसका क्या परिणाम होगा। सारे व्यर्थ प्रस्ताव यहाँतक सभी प्रस्ताव, जिनकी आवश्यकता भली भाँति स्पष्ट न हो तो, सरकार उपस्थित ही न करेगी। केवल वे ही प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित किए जायँगे जो निर्विरोध स्वीकृत हो जायँ। आजकल वे प्रस्ताव, जो सरलतासे उपस्थित करके स्वीकृत करा लिये जाते वे अकस्मात् उपस्थित किए जानेवाले इतनी शीघ्रता और सरलतासे नहीं उपस्थित किए जायँगे, और सरकार उन्हें उपस्थित भी नहीं करेगी। निस्सन्देह ये स्वीकृत हो सकेंगे, यदि सरकार उन्हें स्वीकृत कराना आवश्यक समझेगी, क्योंकि परिषद्में सरकारका बहुमत होगा। किन्तु बहुमतके होनेपर भी परिषद्के अतिरिक्त निर्वाचित सदस्य सरकारी सदस्योंके विरुद्ध अपना मत स्थापित करेंगे और परिषद्को विभक्त करेंगे, तो इससे भारत-सरकारपर उचित नियन्त्रण होगा (हर्ष-ध्वनि), और नियन्त्रणका बड़ा प्रभाव भी होगा।

सज्जनो! तब हमारी माँग क्या है? हमारी दूसरी माँग यह है कि भारत-सचिवकी परिषद्में उच्च अनुभव तथा पदवाले भारतीयोंको अधिक स्थान मिलना चाहिए। आपको स्मरण होगा कि अनेक बार हम लोगोंने भारत-सचिवकी परिषद्को रद्द करनेके लिये प्रार्थना की। हमने यह भी कहा कि "यदि आप इसको रद्द नहीं करना चाहते तो इसे सुधारिए हो, या इसका अन्त कीजिए।" इसका वर्त्तमान स्वरूप बहुत ही कम लाभकारी है, और मुझे यह कहते महान् खेद होता है कि हमारा विश्वास है कि यह परिषद् महान् अपकार करती है। हम इस परिषद्में अपने सम्मानित मित्र व्योमेशचन्द्र बैनर्जी (हर्ष-ध्वनि) और श्रीदादाभाई नैरोजी (तुमुल एवं देरतक हर्ष-ध्वनि) के समान एक या दो और प्रतिनिधि चाहते हैं जिनपर समस्त भारतीयोंका विश्वास है, और जिनके वहाँ उपस्थित रहनेसे इस बातका तो निश्चय होगा कि कोई भी कार्य्य प्रारम्भ करनेका निर्णय करनेसे पहले भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्न उचित और पूर्ण रूपसे परिषद्के समक्ष उपस्थित न किए जायँगे। आपके समक्ष ये दो उदाहरण उपस्थित करनेपर आप यह नहीं कह सकते कि हम परिषद्के लिये ऐसे आदमी नहीं दे सकते जो उसके कार्य्यके लिये उपयोगी सिद्ध हों।

फिर हमारा प्रस्ताव है कि इङ्गलैण्डकी साधारण सभाके सदस्योंकी एक समिति नियुक्ति की जाय। आप ऐसे प्रस्तावकी आवश्यकता समझ सकते हैं। इङ्गलैण्डकी साधारण सभापर ऐसी समितिकी रिपोर्टकी सिफ़ारिशका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा, और साधारण सभाके सदस्य जो वर्त्तमान परिस्थितिमें भारतीयोंके कल्याणकारी प्रश्नोंपर उतना ध्यान और उतनी लगन नहीं प्रदर्शित करते, वे निर्वाचित समितिकी रिपोर्टपर अवश्य ध्यान देंगे और इन्हें इसपर ध्यान देना भी चाहिए और इस प्रकार भारत और इङ्गलैण्ड दोनोंके हितके लिये पार्लियामेण्टमें भारतके सभी मुख्य प्रश्नोंपर सरलतासे और प्रभावकारी रूपमें बहस हो सकेगी।

सज्जनो! व्ययके बढ़नेके सम्बन्धमें हम एक बातकी सिफ़ारिश करते हैं कि व्ययमें कमी होनी चाहिए। क्या इस विचारके समर्थनके लिये मुझे कुछ कहनेकी भी आवश्यकता होगी? कौन चाहेगा कि ऐसा अनुत्पादक व्यय उसी प्रकार चलता रहे जैसा कि पिछले वर्षोंसे चलता आ रहा है, जब कि जनताके कल्याणके लिये कार्य्यकारिणी और न्याय-विभागको अलग करने और इससे भी अधिक देशके निर्धन वर्गकी शिक्षा आदि आवश्यक सुधारोंकी व्यवहारतः उपेक्षाकी गई है और इस ओर उदासीनता दिखाई

लिये तथा जनताके हितमेँ यह हानिकर सिद्ध होगा यदि दोनोँको मिलाकर स्वदेशीको बहिष्कार कहकर गड़बड़ कर दिया जाय। मैँ स्वयं विदेशी मालके बहिष्कारको पसन्द नहीँ करता। स्वदेशी आन्दोलनके लिये क्या करना चाहिए, यह एक दूसरा ही प्रश्न है। यह सदा आगे बढ़ता रहा है और बढ़ता रहेगा। जहाँतक बहिष्कारका सम्बन्ध है, मैँ समझता हूँ कि आप सभी लोग मुझसे सहमत होँगे कि बहिष्कारको समाप्त होते देखकर कांग्रेसको बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि उसके कारण वङ्ग-भङ्गको भी रद्द कर दिया जाय। अतएव इस बहिष्कारको अन्त करना न करना बिल्कुल सरकारके हाथकी बात है। यदि यह जारी रहा तो जनताका उसमेँ कोई दोष नहीँ है। उसे करनेमेँ जनताका कोई स्वार्थ नहीँ है। यदि वे बुद्धिमान् हैँ, जैसी कि मुझे आशा है, कि मन्त्रि-दलमेँ परिवर्त्तन होनेके साथ ही वे वङ्ग-भङ्गके कारण पैदा हुए क्षोभको दूर करनेका प्रयत्न सबसे पहले करेँगे। सज्जनो! इस थोड़ेसे निवेदनके बाद मैँ इस प्रस्तावको आपकी सेवामेँ आपकी स्वीकृतिके लिये रखता हूँ। (हर्ष-ध्वनि) मैँ आपकी आज्ञासे उस दमन-नीतिके बारेमेँ भी कुछ कह देना चाहता हूँ, जिसका सरकारने अनुसरण किया है। “वन्दे मातरम्” एक अत्यन्त निर्दोष नारा है। आप तो केवल यही कहते हैँ कि “मातृ-भूमि मैँ तेरा आवाहन करता हूँ या तुझे शिर नवाता हूँ”। किसी प्रकारसे इसमेँ शान्ति-भङ्ग, विषाक्तता और विद्रोह नहीँ है। सज्जनो! मुझे यह जानकर आश्चर्य्य होता है कि कोई भी अंग्रेज़ या इङ्गलैण्डका निवासी, जिसका पालन इङ्गलैण्डके सजीव साहित्य-द्वारा हुआ है, एक क्षणके लिये भी वन्दे मातरम्के प्रयोगपर आक्षेप कर सके। जिन थोड़ेसे अंग्रेज़ी साहित्यके ग्रन्थोँको पढ़नेका मुझे सौभाग्य हुआ है उनमेँ एक स्थानपर आया है कि चेथमने अपने मरते दम “मेरा देश, मेरा प्यारा देश’ उच्चारण किया था। अंग्रेज़ लोग उसको बड़े आदरके भावसे देखते हैँ। जब आप वीर नेल्सनको आपत्तिके समय इङ्गलैण्डके नामपर अपने सैनिकोँको आदेश करते हुए सुनते हैँ तो आप उसका आदर तथा उसकी प्रशंसा करते हैँ। जब आप शेक्सपियरके पद्योँमेँ देश-प्रेमका उत्कृष्ट वर्णन पाते हैँ तो उन्हेँ पढ़कर अंग्रेजोँके ही बराबर हम भी प्रसन्न होते हैँ। इङ्गलैण्डके सारे साहित्यमेँ वैसे ही संसारके साहित्यमेँ भी आप पायँगे कि मातृ-भूमिका प्रेम एक उत्तम गुण माना जाता है। केवल इसे असाधारण कहकर छोड़नेके बजाय आपको सर वाल्टर स्कौटमेँ तो यहाँतक मिलेगा कि देश-प्रेमकी कमीके कारण एक व्यक्तिको बड़ा बुरा-भला कहा गया है, जिसका उत्तम वर्णन अध्यक्ष महोदयने किया था। जब ऐसी बात है तो मैँ नहीँ समझ सकता कि कैसे कोई अंग्रेज़, जिसके हृदयमेँ अंग्रेज़ी भावना जागरित है, इस “वन्दे मातरम्” के प्रयोगपर वास्तवमेँ आक्षेप कर सकता है? हम अपने नवयुवकोँ या वृद्ध जनोँमेँ उपद्रवको उत्साह देना नहीँ चाहते। कांग्रेस कभी यह नहीँ चाहती कि किसी आन्दोलन या अभ्यर्थना अथवा सार्वजनिक सभामेँ ज़रा भी ऊधम या उपद्रव हो। हम लोगोँको हमारे श्रेष्ठ गुरु श्रीकृष्ण से यह शिक्षा मिली है कि कर्त्तव्यका पालन सात्विक वृत्तिसे करना चाहिए; और केवल कर्त्तव्य समझकर न कि उसे कहते हुए शेखी और घमण्ड दिखाया जाय। किन्तु साहस, धैर्य्य और उत्साहके साथ, केवल निष्काम भावनासे कर्त्तव्य समझकर अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए। इसी भावनासे हम लोगोँको प्रेरित होना चाहिए। (हर्ष-ध्वनि) विद्वेष या विद्रोहकी भावना कभी नहीँ होनी चाहिए। आपको अपना कर्त्तव्य समझकर इसे करना चाहिए और सरकारके प्रति आपके क्या विचार हैँ, इसे स्पष्ट बतलाकर उसे करना चाहिए। मैँ आशा करता हूँ कि जिस प्रस्तावको मैँने आपके सामने रक्खा है उसे आप हृदयसे स्वीकार करेँगे। (तुमुल हर्ष-ध्वनि)

अध्यक्ष पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने सन् १९०९ ई० के लाहौरमें होनेवाली चौबीसवीं भारतीय-राष्ट्रीय-महासभाके अधिवेशनमें अध्यक्ष-पदसे निम्नलिखित भाषण दिया—

—सम्पादक।

प्रतिनिधि भाइयो, देवियो और सज्जनो !

जब मैं मुफ़स्सिलमें, एक बिल्कुल बाहरी स्थानमें अपने वकालत-सम्बन्धी काममें लगा हुआ था तभी मुझे यह सूचना मिली कि कुछ समितियोंने अत्यन्त कृपापूर्वक मुझे कांग्रेसके सभापति होनेके लिये मनोनीत किया है। इस विषयमें कुछ भी ढील न करके मैंने अपने सम्मानित मित्र कांग्रेसके मन्त्री श्रीयुत वाचाको तार दिया कि हालकी बीमारीकी दुर्बलताके कारण, जो अब भीं है, कांग्रेसके महान् अध्यक्ष-पदके सम्पूर्ण उत्तरदायित्व और कर्त्तव्यका भार अपने सिर लेना मेरे लिये कठिन है। देवियो और सज्जनो! यह बात नहीँ है कि जो उच्च सम्मान मुझे देनेका प्रस्ताव किया जा रहा था उसको मैं पूर्णतया समझ नहीँ रहा था। जैसा कि प्रायः कहा जाता है, कांग्रेसका सभापति चुना जाना किसी भी भारतीयके लिये सर्वोच्च सम्मान है। किन्तु मुझे इस सम्मानकी आशाने उत्साहित नहीँ किया, क्योंकि मैं सच्चे हृदयसे विश्वास करता था कि मैं उसके सर्वथा अयोग्य हूँ। मैं जानता था कि उस आसनको ग्रहण करनेके लिये मैं कितना अयोग्य था, जिसे मुझसे पहले अत्यन्त सुयोग्य और विख्यात व्यक्तियोंने सुशोभित किया था और जिन्होंने भारतवर्षकी इस महान् राष्ट्रीय सभाके अध्यक्ष-पदको अलंकृत करनेसे बहुत पहले अपने देशवासियोंके विश्वास और आदरका अपनेको सत्पात्र बना लिया था। इस साधारण विचारके अतिरिक्त भी मेरे सम्मुख एक यह भी प्रश्न था कि मुझे वह स्थान ग्रहण करना पड़ेगा जिसको देशके कांग्रेसजन तथा जनता उस विख्यात भारतीयद्वारा प्रतिष्ठित होनेकी आशा करते थे, जो अपनी महान् योग्यता और प्रभावके कारण सबसे योग्य हैं। मेरा तात्पर्य्य सर फ़िरोजशाह मेहतासे है और मैंने अनुभव किया कि एक कुशल तथा अनुभवी नेताके रिक्त स्थानमें मुझ जैसे नम्र सिपाहीको चुननेसे, जो सारे देशमें उनके पदत्याग करनेके कारण निराशा और खेद छा गया है, वह और भी अधिक हो जायगा। इन सब बातोंके साथ ही मुझे यह भी ध्यान आया कि मैंने अपने जीवन भरमें एक छोटेसे व्याख्यानको छोड़कर कभी कोई अपना व्याख्यान लिपि-बद्ध नहीँ किया और कांग्रेसके अध्यक्षसे जैसे व्याख्यानकी आशा की जाती है वैसा व्याख्यान केवल जो छः दिन बचे थे उसमें ही लिख डालनेकी मुझे बिल्कुल आशा न थी। किन्तु देवियो और सज्जनो! मेरी किसीने एक भी बात न सुनी और जैसा मैं हूँ, आपके सामने खड़ा हूँ। ईश्वरकी कृपा और कांग्रेसी-भाइयोंकी सहायतापर विश्वास करके आपकी आज्ञाको शिरोधार्य्य करता हुआ, आपकी और मातृ-भूमिकी यथाशक्ति सेवा करनेके लिये मैं यहाँ उपस्थित हूँ। इसके कारण मैं और भी अधिक आपका कृतज्ञ हूँ कि ऐसे अवसरपर आपने मुझे अपना अध्यक्ष चुनकर अद्वितीय सम्मान दिया

है। आप लोगोंने, बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीने और अन्य सम्मानित मित्रोंने जो मेरे विषयमें अत्यन्त उदार शब्द कहे हैं उनके लिये मैं हृदयसे धन्यवाद देता हूँ। आप मुझसे इस बातमें सहमत होंगे कि मेरे पूर्वाधिकारियोंमेंसे किसीको भी कांग्रेसके अनुग्रह और सहायताकी इतनी आवश्यकता नहीं हुई होगी जितनी कि मुझे है और मुझे विश्वास है कि आप उसी उदारता और सद्भावसे मेरे साथ सहयोग करेंगे जिससे प्रेरित होकर आपने मुझे इस उच्च पदके लिये चुना है।

स्वर्गीय श्रीयुत लालमोहन घोष तथा श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त

अन्य विषयोंपर विचार करनेके पहले यह मेरा अत्यन्त दुःखद किन्तु पवित्र कर्त्तव्य है कि कांग्रेसके दो पूर्व अध्यक्षों तथा एक विख्यात देश-हितैषीकी पवित्र स्मृतिमें श्रद्धाञ्जलि अर्पण करूँ, जिन्हें कराल मृत्युने हमसे छीन लिया। स्वर्गीय लालमोहन घोषकी मृत्युसे भारतवर्षका एक सर्वश्रेष्ठ वक्ता उठ गया। उनकी अद्वितीय वाक्पटुताके विषयमें कुछ भी कहना मुझे आवश्यक प्रतीत नहीं होता। श्रेष्ठ वक्ता होनेके साथ ही वे विषम राजनीतिक समस्याओंको भी भली प्रकार समझते थे, और कांग्रेसके जन्म लेनेके बहुत पहले वे अपनी महान् प्रतिभाका अंग्रेज़ी जनताकी बड़ी साधारण सभाके सम्मुख अपनी मातृ-भूमिका पक्ष लेनेमें और उसकी ओरसे वकालत करनेमें प्रयोग कर चुके थे। उनकी वाक्पटुता और वकालतका इङ्गलैण्डवासियोंके मनपर जो प्रभाव पड़ा उसे अंग्रेज़ी जनताके महान् प्रतिनिधि सुप्रसिद्ध जौन ब्राइटने भी स्वीकार किया था। श्रीयुत लालमोहन घोष ही वे प्रथम भारतीय थे जिन्हें इङ्गलैण्डकी महान् पार्लियामेण्टमें अथक परिश्रम करनेके बाद प्रवेश पानेका श्रेय प्राप्त हुआ था। यह विचारकर बड़ा खेद होता है कि उनकी उस वाणीको अब हम लोग न सुन सकेंगे जिसने कि योरोपीय जनताके बराबर ही भारतीयोंको समान अधिकार देनेका दृढ़तासे समर्थन किया था, या जो भारतीयोंका अपमान करनेवालोंको खरी बातें कहकर संशोधित करते, जैसा कि आप उनके स्मरणीय ढाकाके व्याख्यानमें पढ़ चुके हैं।

श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्तकी मृत्युके दुःखद समाचारसे देशभरमें और भी अधिक गम्भीर शोक छा गया है। श्रीयुत दत्तको मातृ-भूमिकी सेवामें जीवन अर्पण करनेका सौभाग्य और कीर्त्ति मिली है। यहाँ मैं इन दोनों महापुरुषोंके विभिन्न और उदात्त गुणों तथा उनके जीवनके विभिन्न कार्य्योंपर कुछ कहना नहीं चाहता। श्रीयुत दत्तके डीसेन्ट्रलाइज़ेशन कमीशनमें, बड़ौदा राज्यमें, या उनके साहित्य, इतिहास या अर्थशास्त्र-सम्बन्धी अगणित लेखों और कार्य्योंके विषयमें कुछ कहनेके लिये समय नहीं है, किन्तु बङ्गाली साहित्यके लिये जो कुछ उन्होंने किया उसकी चर्चा किए बिना मैं नहीं रह सकता। श्रीयुत दत्त जैसे कुशल राजनीतिज्ञने अपनी तीखी दृष्टिसे यह भली प्रकार समझ लिया था कि किसी भी जातिके निर्माण करनेके लिये राष्ट्रीय साहित्यकी रचना करना परम आवश्यक है और उन्होंने अपने प्रान्तकी भाषाको धनी और प्रचुर बनानेमें पूर्ण योग दिया। श्रीयुत दत्त चतुर शासक, दूरदर्शी राजनीतिज्ञ, विख्यात विद्वान्, प्रतिभाशील कवि, मोहक उपन्यासकार तथा भारतीय इतिहास और अर्थ-शास्त्रके गम्भीर पण्डित थे। और सबसे अधिक तो वे अपने देशके परम भक्त थे और भारतके भव्य अतीतके परम उपासक तथा उसके उज्ज्वल भविष्यमें अपरिमित विश्वास रखनेवाले थे और अपने जीवनके अन्तिम समय-तक उन्होंने इसी उद्देशकी पूर्त्तिके लिये घोर परिश्रम किया। श्रीयुत दत्त ऐसे व्यक्ति थे जिनपर कोई भी देश अभिमान कर सकता है। उनके कार्य्य और उनके गुणोंके लिये यह कुछ कम प्रशंसाकी बात नहीं थी कि परम देशभक्त महाराजा गायकवाड़ने उन्हें अपना मन्त्री चुना और उन्हें अपने मनके अनुसार पाया। ऐसे व्यक्तिका संसारसे किसी समय भी उठ जाना दुःखद होता है, फिर ऐसे

समयमें, जब कि देशको उनके गम्भीर परामर्श और उनके विचारपूर्ण नेतृत्वकी इतनी आवश्यकता थी, उनका हमको छोड़कर चला जाना एक राष्ट्रीय विपत्ति ही समझनी चाहिए।

लौर्ड रिपनकी मृत्यु

अन्तमें हम भारतवर्षके सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रिय वाइसराय उदार मार्किस औफ़ रिपनकी मृत्युपर शोक मनाते हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके पिता श्री ऐलेन औक्टेवियस ह्यूम तथा श्री सर विलियम वेडरबर्नको छोड़कर भारतवर्षसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी अंग्रेज़का सुशिक्षित भारतीयोंने इतना स्नेह और आदर नहीं किया जितना लौर्ड रिपनका। लौर्ड रिपन जनताके इतने स्नेहपात्र इसलिंये बन गए थे कि उन्होंने नागरिक स्वायत्त शासन-प्रणालीकी नींव डाली थी। यद्यपि उसका बहुत कुछ विकास नहीं हुआ, किन्तु लौर्ड महोदय उसके द्वारा सर्वश्रेष्ठ शासन-प्रणाली अर्थात् जनताके द्वारा शासन चलानेके लिये भारतीयोंको शिक्षित बनाना चाहते थे। इसका अंग्रेज़ोंको सबसे बड़ा श्रेय है कि उन्होंने अपने देशमें जिस स्वायत्त शासन-प्रणालीको स्थापित किया उसीका अन्य सभ्य जातियोंको भी अनुकरण करनेकी शिक्षा दी। उनका आदर इसलिये भी हुआ कि उन्होंने सन् १८५८ ई० की उदार घोषणाका यथार्थ पालन करनेका और सम्पूर्ण जातीय भेदोंको मिटाकर भारतीय जनताको योरोपीय जनताके साथ समान पद देनेका अत्यन्त साहसपूर्ण प्रयत्न किया। उनका आदर इसलिये हुआ कि वे "कुशल राजनीतिज्ञ होते हुए भी सत्यपरायण थे, हृदयके सच्चे थे और अपने काममें सत्य थे।"

उनका आदर इसलिये हुआ था कि वे धर्मात्मा थे और भारतके वाइसरायके उच्च पदपर अपने व्यवहारसे उन्होंने यह दिखला दिया कि वे इस कहावतकी सत्यतामें विश्वास रखते थे कि धर्मशीलता ही जातिको ऊँचा उठाती है। उनपर इसलिये लोगोंको स्नेह था कि वे उन सर्वश्रेष्ठ अंग्रेज़ोंमेंसे थे, जो स्वभावसे न्यायप्रिय हैं और जो उस स्वतन्त्रताकी भलाइयाँ सारे मनुष्य-समाजमें देखना चाहते हैं, जिसका वे स्वयं आनन्द उठाते हैं। लौर्ड रिपनकी भारतीयोंके प्रति भलाई करनेकी इच्छाके अन्तिम उदाहरणसे शिक्षित भारतीय अत्यन्त प्रभावित हुए थे, जब कि वे अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें रोगशय्यासे उठकर लौर्ड मौर्लेकी उदार सुधार-प्रणालीका समर्थन करनेके लिये तथा सुधारके कुछ उदार प्रस्तावोंका विरोध करनेवाले लौर्डोंको भारतीय जनताके साथ न्याय करनेकी सलाह देनेके लिये पार्लियामेण्टमें गए थे। यह अत्यन्त शोककी बात है कि ऐसा उदार अंग्रेज़ अब नहीं है, किन्तु फिर भी मार्किस औफ़ रिपन जीवित हैं और भारतीयोंकी आनेवाली पीढ़ीकी कृतज्ञतापूर्ण स्मृतिमें सदा जीवित रहेंगे।

सुधार

देवियो और सज्जनो!

इस वर्ष ध्यान देनेके योग्य महत्त्वपूर्ण विषयोंमेंसे सबसे पहला स्थान उस विधानको मिलना चाहिए जो शासन-सम्बन्धी सुधार-योजनाके अनुसार प्रचलित हुए हैं, और जिनके लिये सारा देश लौर्ड मौर्ले और लौर्ड मिण्टोका ऋणी है। यह योजना गत वर्ष मद्रास-कांग्रेस-अधिवेशनके कुछ ही दिन पहले प्रकाशित हुई थी। सारे देशने उसका अत्यन्त कृतज्ञता और प्रसन्नताके साथ स्वागत किया था और इस स्वागतका सबसे अधिक प्रकाशन कांग्रेसने ही किया था। किन्तु पाँच सप्ताह पूर्व जो विधान प्रकाशित हुए हैं, मुझे कहते दुःख होता है कि उनके कारण देश भरमें, कुछ मुसलमानोंको छोड़कर, निराशा और असन्तोष फैल गया है। यह बात वास्तवमें अत्यन्त शोचनीय है किन्तु उसकी उपेक्षा करने, उसका महत्त्व कम करने तथा निर्दोष कन्धोंपर उसका

दोष डालनेसे लाभके स्थानपर अधिक हानिकी ही सम्भावना है। देश और सुशासनके हितके लिये यह अच्छा होगा कि इन बारह महीनोंमें शिक्षित भारतीय जनताके रुख़में इतने बड़े परिवर्त्तन होनेके कारणको समझने और समझानेका प्रयत्न किया जाय। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या यह उन लोगोंका दोष है जो उसी कृतज्ञता और सन्तोषके साथ विधानका स्वागत नहीं कर रहे हैं जिससे उन्होंने उस योजनाके मुख्य बातोंका स्वागत किया था, या लौर्ड मोर्लेके सरकारी-पत्रकी उदारतामें इन नियमोंके द्वारा कुछ परिवर्त्तन कर दिया गया है, या मौलिक योजनाके कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव बिल्कुल छोड़ दिए गए हैं, जिससे कि शिक्षित लोगोंको असन्तुष्ट होनेका उचित कारण मिला है? इस प्रश्नका पूर्ण और सन्तोषजनक उत्तर पानेके लिये इन सुधारोंका इतिहास स्मरण करना आवश्यक है। इसे मैं सङ्क्षेपमें ही कहना चाहता हूँ।

सर्वप्रथम भारतवर्षके शिक्षित समुदायने भारतमें स्वायत्त-शासनके प्रचलित करनेकी आवश्यकताका अनुभव किया। स्वायत्त-शासनका अर्थ है—'भारतमें देशके निर्वाचित सदस्योंद्वारा जनताका शासन'। शिक्षित समाजकी यह भावना इङ्गलैण्डके उस सत्साहित्यके अध्ययनका अवश्यम्भावी परिणाम है जो कि स्वतन्त्रताके प्रेमसे ओतप्रोत है, और जो इस सत्यको स्पष्ट कहता है कि स्वायत्त-शासन ही उत्तम कोटिका शासन है। इस भावनाके प्रचार करनेका सर्वप्रथम श्रेय हमारे माननीय मित्र सुरेन्द्रनाथ बनर्जीको है जिनको यहाँ पाकर आज हम लोग इतने प्रसन्न हैं और जो दिन-दिन वृद्ध होनेपर भी मातृ-भूमिकी सेवाके लिये यौवनके उत्साहसे पूर्ण हैं। यह तथा हमारे प्रिय स्वर्गीय भाई श्री आनन्दमोहन बोस थे जिन्होंने सन् १८७६ ई० में कलकत्ताके 'भारतीय सम्मेलन' की नींव डाली, जिसका और उद्देश्योंके साथ-साथ यह भी उद्देश था कि भारतमें प्रतिनिधिमूलक शासनकी पद्धतिकी स्थापनाके लिये आन्दोलन किया जाय। लौर्ड लिटनके शासनकी उपेक्षा और हस्तक्षेपकी दूषित प्रणालीके कारण यह भावना और पक्की हो गई, जो कि बहुत अंशोंमें लार्ड कर्ज़नके शासनसे आश्चर्य्यजनक कौटुम्बिक समता रखता है। लौर्ड लिटनके शासनके अन्तमें जो असन्तोष भारतमें फैला, वह उस असन्तोषसे थोड़ा ही अधिक था जो कि लौर्ड कर्ज़नके शासनके अन्तमें फैला। परिणामस्वरूप, सन् १८८० ई० के अनुदार दलकी पराजय तथा उदार दलकी बड़ी विजयका शिक्षित समुदायने बहुत ही प्रसन्नतासे स्वागत किया, क्योंकि इस विजयसे उसको लौर्ड लिटनके शासनके दूषित कार्य्यों तथा प्रभावोंसे रक्षा पानेका आभास होता था और भारतमें उदार सुधारोंके प्रचलित होनेकी आशा होती थी। इस भावनाका प्रकाशन जनताद्वारा एक सर्वसाधारण सभामें दिया गया था जो कि कलकत्तेमें हुई थी और हम लोगोंके मित्र बाबू सुरेन्द्रनाथने अपने ओजस्वी भाषणके सारगर्भित शब्दोंमें इस प्रकार कहा था—

"प्रतिनिधिमूलक शासनका प्रश्न अब बहुत दूरकी बात नहीं है। शिक्षित भारत इस बातका अनुभव करने लग गया है कि अब वह समय आ गया है जब कि स्वायत्त-शासनके कुछ अधिकार जनताको मिलने चाहिएँ। कनाडा स्वयं अपना शासन करता है। और निश्चय ही यह बहुत बेजा बात है कि इङ्गलैण्डकी सबसे बड़ी प्रजा बिल्कुल भिन्न सिद्धान्तोंपर शासित होती रहे। प्रतिनिधिमूलक शासनका महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो उदार दलद्वारा ही निश्चित होगा और मुझे विश्वास है कि यह उसके द्वारा इस ढङ्गसे तै किया जायगा कि उस महान् उदा- दलका गौरव तथा श्रेय बहुत बढ़ जायगा तथा यह उनकी उदार परम्पराके योग्य ही होगा।"

यह विचार केवल बङ्गालतक ही सीमित नहीं रहा। लगभग उसी समय हमारे ही सूबेमें एक महत्त्वपूर्ण लेख स्वर्गीय पण्डित लक्ष्मीनारायण दरके द्वारा प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने प्रतिनिधिमूलक

ारतमेँ प्रचलित करनेके लिये बहुत अच्छी ल दी थीँ। उदार दलने भारतको निराश नहीँ किया और न वह ऐसा कर ही सकता था, क्योँकि यह उस समय अपने समयके सबसे बड़े अंग्रेज़ विलियम एवर्ट ग्लैडस्टनकी उदार संरक्षतामेँ था, जो कि स्वतन्त्रताके अन्यतम पुजारी थे, जिनको सारा संसार जानता है। ग्लैडस्टन महोदयने इस देशकी सबसे बड़ी सेवा उस समय की जब उन्होँने लौर्ड रिपनको भारतका वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल बनाकर भारतमेँ भेजा।

लौर्ड लिटनके शासनके बाद उस महान् वाइसरायका आगमन मानो अन्धकारमय तथा शीतमय रात्रिके अन्तमेँ प्रकाशमान् दिनका पुनरागमन सिद्ध हुआ। उनके दयापूर्ण प्रभावका शीघ्र ही अनुभव होने लगा। असन्तोष चला गया, और एक नई आशा तथा एक नया आनन्द देश भरमेँ छा गया। भारत यह जानकर बहुत प्रसन्न हुआ कि उसका भाग्य अब उस वाइसरायके हाथोँमेँ सौँप दिया गया है जो उसके बच्चोँको अपने ही समान समझता था और जिसकी हार्दिक इच्छा महारानी विक्टोरियाके सन् १८५८ ई० की उदार घोषणाके अनुकूल न्याय करनेकी थी। लौर्ड रिपनने भारतकी कमी तथा आवश्यकताका अध्ययन किया। यह सोचना अनुचित नहीँ है कि उस महानुभावने भारतमेँ स्वायत्त-शासनके सिद्धान्तोँको प्रचलित करनेके लिये शिक्षित भारतीयोँकी इच्छापर पर्य्याप्त ध्यान दिया था। उनको मैकोले तथा उदार विचारके अंग्रेज़ोँकी एक पूरी पीढ़ीके इस तथ्यपर पूरा विश्वास था कि—'कोई भी ाष्ट्र तबतक सुचारु रूपसे शासित नहीँ किया जा सकता जबतक वह स्वयं अपनेको शासित करनेके योग्य न हो जाय।' लौर्ड रिपनने नागरिक स्वायत्त-शासनकी अपनी उपादेय योजना प्रथमतः इसलिये नहीँ निकाली, जैसा कि उन्होँने अपने प्रस्तावमेँ सोच-समझकर सङ्केत कर दिया है, कि इससे राज्यमेँ कोई शीघ्र ही उन्नति होगी। अपितु मुख्यतः इसलिये कि यह 'राजनीतिक तथा जनसाधारणकी शिक्षाका उपकरण हो जो समयानुकूल लोगोँको पहले प्रान्तीय स्वायत्त-शासनकी ओर और अन्तमेँ सम्पूर्ण भारत-साम्राज्यके स्वायत्त-शासनकी ओर ले जाय। लौर्ड रिपनने जाति, रङ्ग तथा धर्मकी भिन्नताको मिटाकर भारतीयोँको कुछ ऊँचे पदोँपर भी नियुक्त किया। उनके सुधारोँका योरोपियन तथा ऐङ्गलो-इण्डियनोँके एक बड़े दलने बड़ी तीव्रतासे विरोध किया जिनमेँ बहुतेरे सरकारी अफ़सर थे और बहुतसे ग़ैर-सरकारी। और जब इसके बाद ही वह इलबर्ट बिलके द्वारा इण्डियन और योरोपियन दोनोँको नियमके अन्तर्गत समान अधिकार देनेका प्रयत्न करने लगे तो विरोधकी आँधी बड़ी तेज़ीसे भड़क उठी, जो यहाँके अंग्रेज़ोँमेँ बहुत पहलेसे ही उसके विरुद्ध बह रही थी। यह विरोध केवल इलबर्ट बिलका ही नहीँ था बल्कि, जैसा कि महानुभावने स्टीड महोदयसे बहुत दिन नहीँ हुए कहा था, वह नागरिक स्वायत्त-शासनकी योजना तथा उनकी योरोपियन तथा इण्डियन दोनोँको समान प्रजाकी दृष्टिसे देखनेकी सम्पूर्ण नीति ही का विरोध था। कुछ माननीय सज्जनोँको छोड़कर, हमारे ऐङ्गलो-इण्डियन तथा योरोपियन प्रजाने अपनेको एक दलमेँ सङ्घटित किया—केवल हिन्दुओँके ही विरुद्ध नहीँ, केवल शिक्षित समुदायके ही विरुद्ध नहीँ, बल्कि मुसलमान या साहूकारोँकी भी तनिक रिआयत न करके—हिन्दू, मुसलमान, इसाई, पारसी और सभी हिन्दुस्तानियोँके एक समान विरुद्ध था। उस समय शिक्षित समुदायने ही 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' का सङ्घटन किया जिसका उद्देश केवल एक वर्ग या सम्प्रदायकी नहीँ बल्कि बिना जाति, रङ्ग और मतभेदके सभी भारतीयोँकी समान भलाई तथा उन्नति करना था। कांग्रेसका कट्टर शत्रु भी किसी ऐसे प्रस्तावको नहीँ बतला सकता जो उसकी स्थितिके आधारभूत सिद्धान्तके विरुद्ध या जो कांग्रेसके इस पथप्रदर्शक उद्देशके विरुद्ध स्वीकार किया गया हो। सचमुच ऐसे

प्रस्ताव स्वीकृत नहीं किए जा सकते थे, क्योंकि सभी जातियों, मतों तथा प्रान्तीय दुराग्रहोंको मिटाना तथा सभी भारतीय वर्गोंमें राष्ट्रीय एकताके भावोंको भरना तथा उन्नत करना कांग्रेसके कार्य्यक्रमका बहुत ही आवश्यक अङ्ग था। शिक्षित भारतीयोंने इसी कांग्रेसमें व्यवस्थापिका सभाके सुधारको अपने कार्य्यक्रममें सर्वप्रथम स्थान दिया। क्योंकि यह केवल इसी बातके लिये ही अच्छी नहीं थी, बल्कि जैसा कि सौभाग्यवश स्वर्गीय यूल महोदयने कहा था—"कांग्रेसमें विशेष गुण यह भी था कि उन दूसरे ऐसे सुधारोंको प्राप्त करनेके लिये वही सबसे उत्तम साधन था, जो हमको अपने आगामी अनुभवों तथा उत्तरोत्तर बढ़ती हुई आवश्यकताओंके अनुसार जान पड़े। इसीने बड़ी नम्रतासे सरकारका ध्यान बहुसंख्यक ग़रीबोंकी ओर आकर्षित किया और प्रार्थना की कि उनकी दशा सुधारनेके लिये प्रतिनिधि-मूलक संस्थाओंको प्रचलित करना बहुत महत्त्वपूर्ण उपाय सिद्ध होगा। कांग्रेसने और भी बहुतसे सुधारोंपर ज़ोर दिया, उनमें भारतीयोंको जनताकी सेवाके लिये ऊँचे-ऊँचे पदोंपर नियुक्त करना तथा ज़िलाधीशोंकी परीक्षा इङ्गलैण्ड तथा हिन्दुस्तानमें एक ही समयपर होना भी था। सरकारकी बहुत लाभकारी तथा आज्ञाकारी सहायक संस्था समझकर इसका स्वागत करनेकी अपेक्षा, ऐङ्गलो-इण्डियन नौकरशाहीने इसे सरकारका शत्रु ही समझा। सारे ऐङ्गलो-इण्डियन पत्रोंने एक या दोको छोड़कर, इसको इस प्रकार गाली देना प्रारम्भ किया मानो कांग्रेसका ध्येय बृटिश सरकारको उलट देना है। ऐङ्गलो-इण्डियन अधिकारी वर्गकी इस शत्रुताके कारण, जिसको प्रायः उस नौकरशाहीका अगुआ कहते हैं, मुसलमानोंका एक बड़ा दल कांग्रेससे बिल्कुल अलग ही रहा और ऐङ्गलो-इण्डियन अफ़सरोंकी अप्रसन्नताके भयसे भूमिपति भी कांग्रेससे प्रायः अलग ही रहे।

यह स्मरण कर दुःख होता है कि ज्यों-ज्यों कांग्रेसका प्रभाव और शक्ति बढ़ने लगी, हमारे कुछ मुसलमान भाई और कुछ भूमिपति तो खुल्लमखुल्ला विरोध करनेके लिये सामने आए। फिर भी ऐङ्गलो-इण्डियन पत्र तथा ऐङ्गलो-इण्डियन नौकरशाही और मुसलमान प्रजाके सभी विरोधों एवं भूमिपतियोंकी उपेक्षाके होते हुए भी शिक्षित मध्यम वर्गने उस शुभ कार्य्यको प्रारम्भ करना जारी रक्खा। उन्होंने शीघ्र ही एक शक्तिशाली वीर स्वर्गीय ब्रैडला महोदयको पाया और उनके आन्दोलनके परिणामस्वरूप, सन् १८९२ ई० में 'इण्डियन कौन्सिल एक्ट' पास हुआ और तभी व्यवस्थापिका सभाओंका सुधार एवं विस्तार हुआ। यह कांग्रेसकी सर्वप्रथम विजय हुई। नौकरशाहीका भाव शिक्षित समुदायके प्रति फिर भी ज़रा सा न सुधरा। वास्तवमें ज्यों-ज्यों वे और सुधारोंके लिये आन्दोलन करते थे त्यों-त्यों उनके प्रति उनकी घृणा बढ़ती ही जाती थी, और मुसलमान लोग कांग्रेससे इसलिये अलग ही रहते थे कि कहीं ऐसा न हो कि अफ़सर लोग नाराज़ हो जायँ, और कभी सरकारी शासनमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन नहीं चाहते थे। ऐसा ही भूमिपतियोंने भी किया। मध्यम शिक्षित समुदाय, बुद्धिमान् और जनताकी दशापर विचार करनेवाले लोग, जो अपना समय जनता-सम्बन्धी प्रश्नोंके हल करने तथा अपनी शक्ति जनताकी भलाईकी उन्नतिमें लगाते थे, इस बातका अनुभव अच्छी तरह करते थे कि सन् १८९२ ई० में क़ानूनके अनुसार हुए सुधार उनके किसी विशेष कामके नहीं थे। इनसे उन्हें अपने देशके शासनमें राय देनेका थोड़ा भी अधिकार नहीं मिला। उनको यही प्रतीत होता था कि शासन देशवासियोंकी भलाईपर पूरा ध्यान देकर नहीं होता था। उन्हें प्रतीत होता था कि शासन अनुचित रीतिसे ऐसे नियमोंपर चलता था जिनमें बहुत व्यय पड़ता था। उन्हें स्पष्ट जान पड़ता था कि करका बोझ जितना अच्छे शासनके लिये आवश्यक है उससे बहुत अधिक था। उन्हें मालूम होता था कि सैनिक-

विभागका ख़र्च देशकी शक्तिके बिल्कुल बाहर था और हर वर्षके निरन्तर और भारी व्ययको देखकर वे चौंक उठते थे। उन्हें ज्ञात हो गया कि सरकारी मालगुज़ारीका बहुत बड़ा अंश, जो प्रजासे मिलता था, राजकीय कार्य्योंपर व्यय किया जाता था और कुछ अनिश्चित भाग उन कार्य्योंपर ख़र्च कर दिया जाता था जिससे देशवासियोंका कल्याण हो सकता था। देशकी उन्नतिके लिये वैज्ञानिक, कृषि-सम्बन्धी, व्यावसायिक या औद्योगिक शिक्षाएँ दी जा सकती थीं और ओषधियों तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी शिक्षाओंका प्रबन्ध किया जा सकता था। उनको पता चल गया कि कांग्रेसके बहुत गम्भीर तथा युक्तिपूर्ण कथनोंने नौकरशाहीके कानोंपर कुछ भी प्रभाव न किया। उनको अब दृढ़ निश्चय हो गया कि उनका देश तबतक अच्छी तरह या न्यायपूर्वक शासित नहीं किया जा सकता जबतक उस सुधारका कार्य्यक्रम सुसम्पादित न हो जाय, जिसका सङ्केत कांग्रेसने अपने कार्य्यके प्रारम्भमें ही कर दिया था, और जबतक कि देशके कार्य्योंका प्रबन्ध करनेके लिये उन्हें उचित स्थान न दिया जायगा।

इसी समय लौर्ड कर्ज़न भारतमें आए। लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर उन्होंने उस नीतिके ठीक विरुद्ध कार्य्य करना आरम्भ किया, जिसके लिये शिक्षित समुदाय बहुत दिनोंसे मना रहा था कि इसी नीतिपर कार्य्य हो। उन्होंने शिक्षित समुदायके प्रति अत्यन्त उपेक्षा दिखलाई और कुछ अधिकारियोंमें ऐसी ही शत्रु-भावना पैदा कर देनेका उत्तरदायित्व भी उन्हींपर है। उन्होंने ही अपने पीछे छोड़े हुए अधिकारियोंमें इस भावनाको पोषित भी किया। सन् १८३३ ई० के क़ानून और सन् १८५८ ई० की घोषणामें, सम्राट् तथा पार्लियामेण्टद्वारा दी हुई शर्त्तोंको बड़ी तुच्छतासे समझा देनेका प्रयत्न, विश्वविद्यालयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले क़ानून, स्थानीय स्वायत्त-शासनपर गुप्त रीतिसे आक्रमण और बङ्गवासियोंके घोर विरोध करनेपर भी उनका अनियमित बङ्गविच्छेद, इन सभी बातोंने असन्तोषके प्यालेको लबालब भर दिया और लोगोंकी इस धारणाको और भी प्रबल बना दिया कि भारत कभी भी भली प्रकार या न्यायपूर्वक शासित नहीं किया जा सकता, और न इस देशके निवासी उस समयतक उन्नत या सन्तुष्ट हो सकते हैं जबतक उनको अपने प्रतिनिधियों-द्वारा राज्यके कामोंमें वास्तविक एवं प्रभावशाली सम्मति देनेका अधिकार न प्राप्त हो जाय। भारतके सौभाग्यसे ठीक, जैसा कि लौर्ड लिटनके शासनके अन्तमें हुआ था, इङ्गलैण्डके मन्त्रिमण्डलमें परिवर्त्तन हुआ और उदार सरकारके प्रभुत्त्वका प्रारम्भ हुआ। बङ्गवासियोंके सभी प्रयत्नोंकी असफलताके कारण शिक्षित भारतीयोंके एक बड़े दलका विश्वास वैध आन्दोलनके प्रभावसे बिल्कुल उठ गया, यद्यपि उन लोगोंने नम्रतापूर्वक प्रार्थनाके द्वारा बङ्गविच्छेदकी बुराइयोंको मिटानेकी भरसक कोशिश की थी। परन्तु श्री जौन मौर्ले, जो कि बहुत दिनोंसे शिक्षित भारतीयोंके द्वारा स्वतन्त्रताके दूतके समान प्रशंसित तथा पूजित थे, सौभाग्यवश भारत-सचिव हुए। शिक्षित भारतीयोंका हृदय इस आशासे उछलने लगा कि सम्भव है स्वायत्तशासनके उचित विधानके लिये उनका आन्दोलन, अब उनके समयमें सफलीभूत हो जाय और स्वायत्त-शासनके उचित विधान मिल जायँ जो कि वर्त्तमान शासन पद्धतिके दोषों तथा अभावोंकी एकमात्र ओषधि थी। हमारे आदरणीय भाई श्री गोखले, बनारस कांग्रेसद्वारा इङ्गलैण्डके लिये विश्वस्त प्रतिनिधि निर्वाचित हुए थे, जिसमें उन्होंने बड़ी योग्यतासे राष्ट्रपतिका कार्य्य किया था और जिसमें उन्होंने यह कहा था—कि इङ्गलैण्डके अधिकारियोंका ध्यान सुधार और आवश्यक प्रस्तावोंपर होना चाहिए। हमारे मित्रने इङ्गलैण्डमें कैसा अच्छा कार्य्य किया, उन्होंने किस प्रकार कांग्रेस-द्वारा सङ्केत किए हुए सुधारोंके सम्पूर्ण औचित्य एवं आवश्यकतापर ज़ोर दिया, और हमारे प्रस्तावोंपर

इच्छित ध्यान देनेके लिये इङ्गलैण्डके अधिकारियोँके मस्तिष्कको तैयार किया, इन सब बातोँको यहाँ कहनेकी आवश्यकता नहीँ। सज्जनो! इसी बीच हमारे उदार विचारवाले वाइसराय, लौर्ड मिण्टोने—जिनके सामने सर्वत्र व्यापक तथा गम्भीर असन्तोष था, जिसे उनके बुद्धिमान् लेकिन अनुभव-रहित पूर्वगामी शासकने उनके लिये छोड़ रक्खा था—देशकी आवश्यकताओँ और समयके लक्षणोँपर एक चतुर राजनीतिज्ञकी तरह विचार किया था और पहले ही से परिवर्त्तित दशाओँके योग्य वर्त्तमान शासन-पद्धतिमेँ आवश्यक परिवर्त्तनोँपर विचार करने तथा उनकी सूचना देनेके लिये अपनी कौन्सिलकी एक समिति नियत कर दी थी।

कलकत्तेकी सन् १९०६ ई० की कांग्रेसमेँ इस धारणाका बहुत स्पष्ट एवं दृढ़ प्रकाशन हुआ। शिक्षित समाजके मान्य वयोवृद्ध श्री दादाभाई नौरोजीने वर्त्तमान शासन-पद्धतिके दोषोँ और अभावोँके आजीवन अध्ययनसे उत्पन्न हुए ज्ञान एवं अनुभवोँके आधारपर भाषण देते हुए तथा राजनीतिक और भारतकी आर्थिक बुराइयोँपर दुःख प्रकट करते हुए अत्यन्त दृढ़ता और विश्वासपूर्ण शब्दोँमेँ कहा था कि—"स्वायत्त-शासन ही एकमात्र तथा मुख्य ओषधि है। स्वायत्त-शासनमेँ हमारी आशा, शक्ति और महत्ता स्थित है।" श्री दादाभाई पूर्ण प्रतिनिधि-मूलक संस्थाओँके भारतमेँ शीघ्र ही प्रचलित करनेके पक्षमेँ नहीँ थे। लेकिन उन्होँने और उनके द्वारा सारे शिक्षित भारतने इस बातपर काफ़ी ज़ोर दिया कि यही इसके प्रारम्भका शुभ अवसर है, "और यह ऐसा नियमित प्रारम्भ हो कि थोड़े ही समयमेँ यह अपने-आप ही अन्य स्वाधीन उपनिवेशोँकी भाँति स्वायत्त-शासनकी पूर्ण व्यवस्थाके रूपमेँ क्रमशः विकसित हो जाय।"

देवियो और सज्जनो! जो कुछ मैँने ऊपर कहा है उससे स्पष्ट है कि सन् १९०६ ई० के अक्तूबरके मध्य-तक हमारे मुसलमान भाइयोँने शासन-पद्धतिमेँ सुधारके प्रश्नोँको सुलझानेका थोड़ा भी कष्ट न किया। लेकिन कुछ भारतीय अधिकारी वर्गको इस विचारसे बड़ा कष्ट होता था कि उदार विचारवाले वाइसराय शासन-पद्धतिमेँ महत्त्वपूर्ण व्यवस्थात्मक परिवर्त्तन लानेके लिये बड़ी गम्भीरतापूर्वक मनन किया करते थे और वे जानते थे कि वह राजनीतिज्ञ, जो इङ्गलैण्डमेँ भारतीय राज्य-प्रबन्धोँका कर्णधार था, उदार दलका एक श्रेष्ठ पुरोहित था। अपने दृष्टिकोणसे देखनेपर भारतीय शिक्षित समुदायद्वारा व्यवस्थापिका सभाके सुधार तथा विस्तारके लिये की गई प्रार्थनाके स्वीकृत होनेका उनको बहुत डर था। प्रकाशित रूपमेँ वे इसे नहीँ चाहते थे। उसी समय सन् १९०६ ई० के अन्तमेँ मुसलमानोँका एक दल लार्ड मिण्टोके यहाँ गया। इसने अधिकारयुक्त शब्दोँमेँ कहा कि भारतमेँ राजनीतिक दृष्टिसे मुसलमान समाज, दूसरे समाजोँसे अधिक महत्त्वपूर्ण है और इसलिये इसपर विशेष विचार होना चाहिए और यह अधिक आदरपूर्ण व्यवहारके योग्य है। सज्जनो! मुझे यह कहते हुए बड़ा दुःख होता है लेकिन मेरा कर्त्तव्य है कि इसे कहूँ। उस दलके उत्तरमेँ जिस विशेष अनुग्रहके लिये माननीय वाइसराय बाध्य किए गए, वही उन बहुतेरे दुःखोँका मुख्य कारण था जो इन सुधारोँके विषयमेँ उत्पन्न हुए थे। सुधारके प्रस्ताव, जो कि सर होरैल्ड स्टुअर्टके २४ अगस्त सन् १९०७ ई० वाले पत्रमेँ थे, शिक्षित समुदायके विरुद्ध अधिकारी वर्गके पक्षपातपूर्ण भावोँके अच्छे साक्षी थे। मुसलमानोँके विशेषाधिकारके लिये किए गए इसके प्रस्तावोँने एक धर्मको दूसरेके विरुद्ध खड़ा कर दिया और शिक्षित मध्यम वर्गके प्रभावोँका भी समतोलन कर दिया। ज़मीन्दारोँको विशेष वर्गीकरणका प्रस्ताव भी, जिन्होँने कभी एक अलग वर्गकी भाँति व्यवहार किए जानेके लिये नहीँ कहा, इसी प्रकारकी भावनासे प्रादुर्भूत हुआ। राजकीय और प्रान्तीय सम्मतिदायिनी कौन्सिलोँको बनानेके प्रस्ताव भी ऐसे ही थे। ये प्रस्ताव देशके सभी विचारवान् व्यक्तियोँद्वारा घृणाकी दृष्टिसे देखे गए।

हाँ, कुछ ज़मीन्दारों और मुसलमानोंने ऐसा नहीं किया। उनका स्वागत नहीं हुआ, क्योंकि वे इसके योग्य नहीं थे। कुछ दिनों बाद भारत-सरकारने उनकी प्रथम कार्य्य-सूचीको इसपर की गई आलोचनाओंके आधारपर दुहराया और कुछ महत्त्वपूर्ण सुधार कर इसको भारत-सचिवके यहाँ भेज दिया। लौर्ड मौर्लेने शिक्षित समुदायके विरुद्ध अधिकारी वर्गके पक्षपातमें भाग नहीं लिया। यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो यह उतना ही दुःखपूर्ण होता जितना आश्चर्य्यकारी। उन्होंने जान लिया कि यदि वे सबसे महत्त्वपूर्ण नहीं तो महत्त्वपूर्ण अङ्ग अवश्य थे और उनपर निष्पक्ष विचार करना उचित था। सन् १९०७ ई० में माननीय लौर्ड मौर्लेने अपनी वक्तृतामें 'इण्डियन बजट' पर इस प्रकार समीक्षा की--"आप लोग सबसे यह कहते हुए सुनते हैं कि शिक्षित लोग तो केवल मुट्ठी भर हैं, उनका तो भारतमें एक अति सूक्ष्म अंश है। संख्यामें वे सममुच कम हैं, लेकिन यह मूर्खता है—यह बिल्कुल अज्ञान है कि यह सूक्ष्म अंश कोई चीज़ नहीं है। यही शिक्षित वर्ग तो सभी प्रकारकी भिन्नताएँ लाता है"। उस माननीय सदस्यने अपने कौन्सिलकी एक कमेटी नियत की, जिसका कार्य्य भारत-सरकारके द्वारा दिए हुए कार्य्य-क्रमपर विचार करना था। कमेटीकी सूचना पानेपर उसने स्वयं अपने प्रस्ताव बनाए जो २७ नवम्बर सन् १९०८ ई० की प्रसिद्ध पत्रिकामें, जिसे अब 'डिस्पैच' नामसे पुकारते हैं, प्रकाशित हुए थे। माननीय महोदयने आदरणीय वाइसरायके कार्य्य-क्रमके सारयुक्त भागको तो स्वीकार कर लिया, लेकिन आवश्यक परिवर्त्तनोंके द्वारा उन्होंने वास्तवमें एक नया स्वरूप देकर इसे उदारतापूर्ण बना दिया था। राजकीय एवं सम्मतिदायिनी कौन्सिलों (इम्पीरियल ऐण्ड ऐड्वाइज़री कौन्सिल्स) के प्रस्ताव, जिनको शिक्षित भारतीयोंने तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा था, निकाल दिए गए। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओंमें, बहुत थोड़े अपवादोंके अतिरिक्त, निर्वाचित सदस्य होते थे, नामज़द नहीं। मान्यवर महोदयने पहले ही से दो विशिष्ट भारतीयोंको अपनी कौन्सिलका सदस्य चुन लिया था। भारतीयोंको अब भारतके गवर्नर-जनरलकी कार्य्यकारिणी-समितिका और मद्रास तथा बम्बईके गवर्नरोंकी कार्य्यकारिणी सभाओंका भी सदस्य होना था। वैसी ही कार्य्यकारिणी सभाएँ उन बड़े प्रान्तोंमें भी एक या अधिक भारतीय सदस्योंके साथ स्थापित करनी थीं, जिनमें अभी भी लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर शासन करते थे। केन्द्र-परिवर्त्तन-विधानके द्वारा, म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डके अधिकार और उत्तरदायित्व बढ़ा दिए जानेवाले थे और उनको अधिकारियोंके पञ्जेसे छुड़ाना था। स्वायत्त-शासनकी जड़ोंको गाँवोंतक गहराईमें फैलाना था। उन बहुतेरों लाभोंपर, जिनके लिये बड़ी-बड़ी कौन्सिलोंमें प्रतिनिधित्वका प्रबन्ध करना था, पूर्णतया विचारकर लौर्ड मौर्लेने निर्वाचक संस्थाओंके एक विधानकी ओर सङ्केत किया जो, जैसा कि उचित ही कहा गया था, वैसा ही साधारण था, जैसा कि कोई भी विधान अल्प संख्यकोंके प्रतिनिधित्वके लिये कभी हो सकता है। यह एकानुमोदन पद्धतिपर बना था और युग्मानुमोदन या बहु-अनुमोदनकी बुराइयोंसे सर्वथा परे था। यह उसी प्रकार दूसरे आक्षेपोंसे मुक्त था जिससे प्रारम्भिक प्रस्ताव मुक्त नहीं थे। उदाहरणार्थ यह एक वर्गको दूसरे वर्गके विरुद्ध नहीं खड़ा कर सकता था। इसने देशवासियोंके प्रत्येक समाजको उस अनुपातसे एक सदस्य देनेका अधिकार दिया जो अनुपात स्वयं इसमें और सम्पूर्ण जनसंख्यामें हो। यह विधान, जैसा कि हम सब लोग जानते हैं, देश भरमें बड़ी कृतज्ञता और सन्तुष्टताके भावोंसे स्वीकृत किया गया। देशवासियोंके सभी वर्गोंके प्रतिनिधियोंसे बना हुआ एक प्रभावशाली डेपुटेशन वाइसरायके पास गया, इसलिये कि वह स्वयं इसके लिये उसको और उसके द्वारा लार्ड मौर्लेको भी धन्यवाद दें। क्या शिक्षित वर्ग

विधानके स्वागतमें किसी अन्य वर्गसे पिछड़ गया? क्या कृतज्ञतापूर्ण सन्तोषके भावोंका और अधिक स्नेहपूर्ण प्रदर्शन हमारे माननीय पूर्वगामी पदाधिकारीकी वक्तृताके अतिरिक्त और कहीं हुआ, जिसमें उन्होंने इस सम्बन्धमें कहा था कि—"पक्षियोंके गानेका समय अब आ गया है और कबूतरोंका शब्द देशमें सुनाई दे रहा है?" जिस सर्वसाधारणके सन्तोषसे लौर्ड मौर्लेके "डिस्पैच" (राजपत्र) में बनाए गए सुधारके प्रस्तावोंका देश भरमें स्वागत हुआ, उसको प्रकट करते हुए कांग्रेसने एक सम्मिलित प्रस्ताव पास किया, और इसने मान्यवर महोदय (लौर्ड मौर्ले) और लार्ड मिण्टोको इन प्रस्तावोंके लिये हृदयसे कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद दिया। साथ ही उसने अपनी इस विश्वासपूर्ण आशाको भी प्रकट किया कि प्रस्तावित विधानके विवरण उसी उदारतापूर्ण विचारोंसे सम्पादित किए जायँ जिनसे इसका मुख्य ढाँचा बनाया गया है। अभाग्यवश, ऐसा नहीं हुआ और विधानका एक बहुत आवश्यक भाग इस प्रकार विकृत कर दिया गया है कि देशके अधिकांश लोगोंको इसकी निन्दा करनेका ठीक मौक़ा मिल गया है।

सज्जनो! सुधारका वह स्वरूप जिसपर शिक्षित भारतीयोंने बहुत विचार किया, भारतके गवर्नर जनरल और बम्बई तथा मद्रासके गवर्नरोंकी कार्य्यकारिणी सभाओंमें भारतीयोंके नियुक्त करनेका और वैसी ही कौन्सिलोंको लेफ़्टिनेण्ट गवर्नरोंद्वारा शासित अन्य सूबोंमें भी बनानेका प्रस्ताव था। इस सत्यका बहुत ही विशुद्ध प्रमाण कृतज्ञतापूर्ण सन्तुष्टताकी उस लहरमें मिला जो सारे देशमें फैल गई, जब कि वाइसरायकी कौन्सिलमें श्री सत्येन्द्र प्रसन्न सिनहाकी नियुक्तिकी विज्ञप्ति हुई। इस अवसरपर हम अपना हार्दिक धन्यवाद, उस नियुक्तिके लिये लौर्ड मिण्टो और लौर्ड मौर्ले दोनोंको देते हैं। उस नियुक्तिने यह भली प्रकार सिद्ध कर दिया कि उन दोनों महानुभावोंकी यही इच्छा थी कि बिना जाति, मत और वर्णके विचारके राज्यके अन्तर्गत बड़े पदोंपर हिन्दुस्तानियोंको योग्यतानुसार नियुक्त करना उचित है। और सभी शिक्षित भारतीयोंद्वारा यह क़ानून बड़ी प्रसन्नतापूर्वक तथा हृदयसे प्रिय समझा गया है। हमारे बम्बई और मद्रासके मित्रोंको अपने-अपने सूबेके गवर्नरोंकी कार्य्यकारिणी सभाओंमें हिन्दुस्तानी सदस्य पाकर बड़ा सन्तोष होगा। सर एडवर्ड बेकरके द्वारा प्रस्तावको हार्दिक और उदार सहायता मिलनेसे हमारे बङ्गाल सूबेके भाई भी एक कार्य्यकारिणी सभाको, जिसमें एक हिन्दुस्तानी सदस्य भी रहेगा, स्थापित होते देखकर बहुत प्रसन्न तथा सन्तुष्ट होंगे। लेकिन सज्जनो! हमारे सूबे संयुक्तप्रान्त, पञ्जाब, पूर्वीय बङ्गाल, आसाम और ब्रह्माके निवासी उन लाभोंसे बिल्कुल वञ्चित रहे जो कि लेफ़्टिनेण्ट गवर्नरके "सुरक्षित और उसके तर्क-वितर्कमें पदोचित तथा उत्तरदायित्वपूर्ण भाग लेनेवाले दो या अधिक सुयोग्य सम्मतिदाताओंसे विस्तृत" न्यायसे मिलता। हम लोगोंकी हार्दिक इच्छा थी कि एक कार्य्यकारिणी सभा हमारे सूबे संयुक्तप्रान्तमें और साथ ही बङ्गालमें भी स्थापित होती। हिन्दू, मुसलमान, ज़मीन्दार और शिक्षित वर्ग सभीकी यह सम्मिलित इच्छा थी कि ऐसी कौन्सिलें स्थापित हों। मद्रासमें जिसकी जनसंख्या केवल एक करोड़ नब्बे लाख और बम्बईमें भी जिसकी जनसंख्या तीन करोड़ अस्सी लाख है, एक सपरिषद् गवर्नर बहुत दिनोंतक शासन करता रहा है और लोगोंने इसका आनन्द उठाया है। संयुक्तप्रान्त, जिसकी जनसंख्या चार करोड़ अस्सी लाख है, अभीतक एक लेफ़्टिनेण्ट गवर्नरद्वारा शासित होता रहा है और होता रहेगा। बङ्गाल, जिसकी जनसंख्या संयुक्तप्रान्तसे लगभग तीस लाख अधिक है, एक कार्य्यकारिणी सभाका लाभ उठायगा। ऐसा न तो संयुक्तप्रान्तमें ही होगा और न अभी पूर्वी बङ्गाल और आसाममें ही होगा, जिनकी जनसंख्या तीन करोड़ दस लाख है; और न ऐसा पञ्जाब ही में होगा, जिसकी

जनसंख्या बम्बई अहातेसे कुछ अधिक ही होगी। ऐसी बात नहीँ है कि हमारा प्रान्त इतना ग़रीब है कि इस प्रबन्धसे बढ़ जानेवाले थोड़ेसे ख़र्चेका सहन नहीँ कर सकता। वह वर्षोँतक राजकोषको बम्बई, मद्रास और बङ्गाल जैसे दूसरे प्रान्तोँसे अधिक कर देता आया है।

प्रान्तीय कार्य्यकारिणी सभाएँ

इस निर्णयपर हम संयुक्त-प्रान्तवालोँके दुखी होनेके विशेष कारण हैँ। सन् १८३३ ई० मेँ 'चार्टर ऐक्ट' (शासन-पत्र-विधान) की छप्पनवीँ धाराके अनुसार यह निश्चित हुआ कि बङ्गालका फ़ोर्ट विलियम, फ़ोर्ट सेएट जौर्ज, बम्बई और आगराके प्रान्त एक गवर्नर और तीन सदस्योँकी परिषद्द्वारा शासित किए जायँगे। लेकिन यह प्रबन्ध दो वर्ष पश्चात् पास किए हुए एक विधानके द्वारा थोड़े दिनोँके लिये तोड़ दिया गया, जिसका मुख्य आधार यह था कि उसमेँ बहुत अधिक ख़र्च पड़ता था। इस विधानने यह नियम बनाया कि सन् १८३३ ई० के विधानको कार्य्य रूपमेँ लानेके पहले, गवर्नर जनरल और उसकी कौन्सिलको अधिकार होगा कि वे ईस्ट इण्डिया कम्पनीके किसी भी दस वर्षतक काम करनेवाले नौकरको उत्तर-पश्चिमी प्रान्तका लेफ़्टिनेएट गवर्नर बना देँ। जब सन् १८५३ ई० का शासन-पत्र-विधान (चार्टर ऐक्ट) पास हुआ—तो उस समय भी यह सन् १८३३ ई० के क़ानूनके अनुसार 'आगरा अहाता' बनानेके पक्षमेँ थी। उन विधानोँको कभी नहीँ तोड़ा गया। सन् १८३३ ई० से आजतक—इतना समय बीत जानेपर—यह प्रान्त अवधके मिल जाने और जनसंख्याकी यथाक्रम वृद्धि होनेसे आबादी और आकार दोनोँमेँ बहुत बढ़ गया है। इसकी सरकारी आय भी बहुत बढ़ गई है। वाइसरायकी सहायताके लिये कार्य्यकारिणी सभा बनानेके लिये किए गए तर्क प्रतिवर्ष और भी दृढ़ होते जा रहे हैँ। 'इण्डियन पोलिटी' के प्रधान लेखकने, जिसके विचार भारतीय शासनके प्रश्नोँपर बहुत आदरकी दृष्टिसे देखे जाने योग्य हैँ, उस परिवर्त्तनको प्रचलित करनेके लिये बड़ा ज़ोर दिया जिसे बीते पन्द्रह वर्ष हो गए थे। जेनरल चेसनीने लिखा था कि—"शासनके विचारसे उत्तर-पश्चिमी प्रान्त (युक्तप्रान्त) उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना बङ्गाल। उसमेँ केवल सैँतालीस ज़िले हैँ, इसमेँ उनचास ज़िले हैँ। इसमेँ बम्बईके दूने और मद्रासके दूनेसे भी अधिक ज़िले हैँ। प्रत्येक विचार, जो बङ्गालमेँ गवर्नर बनानेके पक्षमेँ हैँ, इस बड़े प्रान्तपर भी लागू होते हैँ। (यह उस समय कहा गया था जब बङ्ग-विच्छेद नहीँ हुआ था।) यहाँ भी, बङ्गालकी तरह गवर्नरको कौन्सिलद्वारा सहायता मिलनी चाहिए।" सर जौर्ज चेसनीने और भी कहा कि, "यहाँ इतना काम है कि वह एक शासकके सामर्थ्यके बाहर है और उससे उसका उचित प्रबन्ध भी नहीँ हो सकता। इस समय तो प्रान्त उस अवस्थापर पहुँच गया है, जब कि एक शासकद्वारा प्राप्त उन्नतिका प्रोत्साहन और शक्ति, सपरिषद् गवर्नरके शासनसे प्राप्त नीतिके क्रमिक विकासमेँ परिवर्त्तित कर दिया जाय। इसलिये परिवर्त्तनसे शासनके अध्यक्षकी कुछ हानि होनेकी अपेक्षा इस समय एक व्यक्तिपर दिए गए कार्य्योँके भारके हट जानेसे प्राप्त स्वतन्त्रताकी, और 'बहुत अधिक काम, जो कि उसके नामसे उत्तरदायित्व-रहित मन्त्रियोँद्वारा सम्पादित होनेको थे, स्वीकृत प्रामाणिक व्यक्तियोँके साथ सरकारके सदस्योँद्वारा सम्पादित होते'। इसकी भी चर्चा छोड़िए, गवर्नरको बहुत लाभ होता यदि सभी उन्नतियाँ और नियुक्तियाँ, जो कि मद्रास और बम्बईसे बड़े इस प्रान्तमेँ जनताकी सेवाके लिये हुईं, उसके (गवर्नर) ही मनसे किए जानेकी अपेक्षा हमारे साथियोँकी रायसे और उनके सम्मिलित उत्तरदायित्वपर की गई होतीँ।" जबसे यह लिखा गया तबसे शासनका कार्य्य बहुत बढ़ गया है। सर ऐएटनी मैक्डोनेल, जो थोड़े दिन हुए संयुक्त प्रान्तपर

शासन करते थे, चार वर्षके लगातार परिश्रमको सहन न कर सके और उन्हें अपने लेफ्टिनेण्ट गवर्नरके पदको छोड़कर छः महीनेकी छुट्टी लेनी पड़ी। हमको बड़े खेदके साथ कहना पड़ता है कि वर्त्तमान गवर्नरको केवल तीन ही वर्षके शासनके बाद छः महीनेकी छुट्टी लेनी पड़ी। और हमको यह जानकर बड़ा आश्चर्य्य और दुःख हुआ है कि सर मैक्डोनेल और सर जौन हीवेट दोनों ही ने संयुक्त-प्रान्तकी कार्य्यकारिणी सभाके लिये अस्वीकृति दी है। हमारे प्रान्तमें बहुतेरोंका विश्वास है कि यदि हमारे लेफ्टिनेण्ट गवर्नरका विचारणीय प्रस्तावके विषयमें विरोध न हुआ होता तो यहाँ भी एक कार्य्यकारिणी सभा होती जैसा कि बङ्गालमें शीघ्र ही होनेवाली है। और यह तथ्य उन मुख्य प्रश्नोंके छोड़ देनेसे उत्पन्न हानियोंका एक मार्केका उदाहरण है जिनसे चार करोड़ अस्सी लाख मनुष्योंकी रक्षा एक मनुष्यके न्यायद्वारा निर्धारित होती है, फिर यह न्याय चाहे कितना ही योग्य और अर्थपूर्ण क्यों न हो। यह दुःख केवल हमारे लिये ही नहीं है। हम देखते हैं कि मद्रास और बम्बईके अहाते, जो सपरिषद् गवर्नरद्वारा शासित होनेके लाभ उठा रहे हैं, लोगोंको सुखी बनानेवाली प्रत्येक बातमें हमारे प्रान्तसे बहुत अधिक उन्नति कर गए हैं। और प्रत्येक विचारशील मनुष्यके मनमें यह धारणा जम गई है कि हमारा प्रान्त उस समयतक बम्बई और मद्राससे बढ़ नहीं सकता जबतक कि उसमें भी उन्हीं प्रान्तोंकी भाँति शासन न हो। अतएव शासनकी नीतिका तर्कपूर्ण अनुबन्ध या क्रमिक विकास हो सकता है, और प्रान्तीय सरकारके प्रस्तावोंपर भारत-सरकार और भारत-सचिवसे वर्त्तमान समयमें प्राप्त विचारोंसे अधिक विचार पानेकी आशा है।

ऐङ्गलो इण्डियन अधिकारी वर्गके सदस्य नौकरी करनेवाले और छोड़ देनेवाले दोनों ही ने अच्छे शासनकी स्थितिके लिये उपकार नहीं बड़ा अपकार किया। क्योंकि उन्होंने सुधारके कार्य्यक्रमके इस महत्त्वपूर्ण भागका बड़ा विरोध किया। उस विरोधसे शिक्षित वर्गमें बड़ा असन्तोष फैला, और उसने उनके उस उत्साहको बिल्कुल नष्ट कर दिया जो उनमें उस समय उत्पन्न हुआ था जब कि लौर्ड मौर्लेके प्रस्ताव प्रकाशित हुए थे। हमारी इच्छा है कि हम सरकारसे बड़े ज़ोरोंमें सिफ़ारिश करें कि जितना जल्दी हो सके वह केवल संयुक्तप्रान्त और पञ्जाबमें ही नहीं बल्कि पूर्वी बङ्गाल, आसाम और ब्रह्मामें भी एक-एक कार्य्यकारिणी सभा स्थापित करनेका प्रबन्ध करे। एक या दो भारतीय सदस्योंके साथ ऐसी परिषदोंके होनेसे शासन बड़ी उत्तमतासे किया जा सकेगा और वह वास्तवमें एक विशेष लाभ है। शासन-सम्बन्धी दोषोंके विरुद्ध यह अनायास ही एक प्रभावकारी रक्षक होगा, विशेषतः इन दिनोंमें जब कि दमनके उपाय प्रचलित हो रहे हैं और बहुतेरे मनुष्योंको देशनिकालेका दण्ड दिया जा रहा है। इङ्गलैण्ड ठीक इसी समय साधारण निर्वाचनके प्रारम्भमें है, लेकिन निर्वाचकोंका शीघ्र ही अन्त होनेवाला है। हम लोगोंको आशा है कि इस देशकी भलाईके लिये इस निर्वाचनका परिणाम उदार सरकारको पुनः अधिकृत करना होगा। हम लोगोंको यह भी आशा है कि थोड़े ही समयमें लौर्ड सभा भी बहुत कुछ उदार हो जायगी। हमको आशा है कि पार्लियामेण्टके पुनः बन जानेके बाद, भारत-सचिव और सपरिषद् गवर्नर-जनरल प्रसन्न होकर संयुक्तप्रान्त, पञ्जाब, पूर्वी बङ्गाल और आसाममें कार्य्यकारिणी सभाएँ शीघ्रातिशीघ्र स्थापित करगे। और यह कार्य्य वे या तो भारतीय कौन्सिलके क़ानूनोंको नया स्वरूप देकर या पार्लियामेण्टकी दोनों सभाओंकी सम्मतिसे वर्त्तमान क़ानूनकी शर्त्तोंके आधारपर करेंगे।

हम यहाँ स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि लौर्ड मिण्टो या लौर्ड मौर्लेके विरुद्ध हमें कोई शिकायत नहीं है और हम इसे हार्दिक कृतज्ञतासे स्वीकार करते हैं कि दोनों ही महानुभावोंने विधानकी प्रारम्भिक धारा (३) को उसी प्रकार पास करानेका भरसक

प्रयत्न किया, जिस प्रकार कि वह बना था। हम जानते हैँ कि हम लोग लौर्ड कर्ज़नके कामोँसे पराजित हुए, जो भारतमेँ स्थिरतापूर्ण शासनकी बुरी इच्छासे बहुत दुखी था। हम लोग मैकडोनेलके विरोधसे भी पराजित हुए, जिससे हम लोगोँको बड़ी आशा थी और अन्तमेँ हम उस अति शोकजनक भावसे पराजित हुए जो कि उस विधानके प्रस्तावपर संयुक्तप्रान्तके वर्त्तमान लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर जौन हीवेटने दिखाया।

फिर भी हमको पूर्ण आशा है कि सर जौन हीवेट अपनी सम्मतिपर पुनः विचार करेँगे और अपने सम्मान्य उच्च पदसे जानेके पहले भारत-सरकारको बहुत जल्दी एक परिषद्का प्रबन्ध करनेके लिये उत्साहित कर अपने दुर्व्यवहारको सुधारनेका प्रयत्न करेँगे।

फिर भी कार्य्यकारिणी सभाओँका प्रश्न भारतके विशेष प्रान्तोँके ही लिये है। लेकिन जो नियम, देशभरके लिये घोषित किए हुए हैँ सर्वसाधारणके असन्तोषके कारण बन गए हैँ।

आइए, हम लोग अब उन नियमोँपर विचार करेँ जिनको लौर्ड मौर्लेद्वारा प्रस्तावित सुधारके कार्य्यक्रमके आधारपर घोषित कर दिया गया है। यह वास्तवमेँ जनसंख्याके अनुसार समानुपातिक निरूपणका बहुत ही विचारपूर्ण कार्य्यक्रम है। बिलके विषयमेँ जो बैठक हुई थी उसमेँ हमको दुःख है कि श्रीमान्‌ने इस विचारको स्वीकार कर लिया है कि मुसलमान समाज इसके द्वारा अधिकार रूपमेँ कहे गये राजनीतिक महत्त्वके आधारपर सम्पूर्ण जनसंख्याके सम्बन्धसे भी अधिक प्रतिनिधित्वके योग्य है। उस अधिक प्रतिनिधित्वके विस्तारको जतानेके लिये ये महानुभाव बड़े प्रसन्न थे जिसको कि वे मुसलमानोँके राजनीतिक महत्त्वके आधारपर उनको विश्वास दिला देनेके लिये सन्नद्ध थे। यद्यपि मुसलमानोँसे भिन्न शिक्षित-वर्ग उस समय, जैसा कि अब भी है, देशकी व्यवस्थाओँमेँ धर्मके कारण किसी प्रतिनिधित्वके विरुद्ध थी, तो भी हम लोगोँमेँ ऐसे बहुतेरे थे जिन्हाने उस विषमताको स्वीकार किया है जो शिमलामेँ मुसलमानोँके डेपुटेशनको दिए गए लौर्ड मिण्टोके उत्तरसे उत्पन्न हुई, और जो लौर्ड मौर्लेद्वारा सङ्केत किए गए प्रतिनिधित्वके और अधिक विस्तारको माननेको तैयार न थे।

हम लोग उनको थोड़ेसे प्रतिनिधित्वका विश्वास दिलानेको सहमत थे। हम लोगोँकी राय थी कि उनको सर्वसाधारण मतसे प्रतिनिधित्व प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए और यदि निश्चित संख्यामेँ प्रतिनिधि न मिलेँ तो उन्हेँ संख्याकी पूर्त्तिके लिये इसी उद्देशसे बनाए गए विशेष मुसलमान निर्वाचकोँद्वारा सहायता लेने की आज्ञा मिलनी चाहिए। जो नियम प्रकाशित किए गए हैँ उनमेँ यह बात नहीँ है कि—'वे न केवल सम्पूर्ण जनसंख्याके सम्बन्धसे निश्चित किए गए प्रतिनिधि चुनेँगे बल्कि अपने कथनानुसार राजनीतिक महत्त्वके अनुसार भी चुन सकते हैँ। हाँ, इस उद्देशके लिये विशेष निर्वाचकोँका होना आवश्यक है।' लेकिन वे उन्हेँ सम्मिलित निर्वाचकोँमेँ भी भाग लेनेकी आज्ञा देते हैँ और इस प्रकार उन्हेँ दूसरे समाजोँके प्रतिनिधियोँको छोड़कर स्वयं उनके समाजसे बहुत अधिक और अनुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त करनेके योग्य बनाते हैँ। लौर्ड मौर्लेके कार्य्यक्रमको बहुत ही आवश्यक अङ्ग, एकानुमोदनकी पद्धति थी। वह तो हवा हो गई और युग्मानुमोदन या बहु-अनुमोदनका प्रयोग हुआ जिसको लौर्ड मौर्ले बहुत बचाना चाहते थे। हमारे प्रान्तमेँ, और मुझे विश्वास है अन्य प्रान्तोँमेँ भी कुछ हमारे मुसलमान तीन जगहोँपर मत लेती है और जब कि सरकारको अब भी उनके लिये विशेषतः संरक्षित स्थानोँको बढ़ा देनेका अवसर है तो वे सौगन्ध खाते हैँ कि वे कौन्सिलमेँ मुसलमानोँसे भिन्न मनुष्योँके वोटसे निर्वाचित होना ही नहीँ चाहते। जब नियम पास किए गए तो अपनी सभाके प्रस्तावको तो देनेके लिये उन्होँने ज़रा भी देर न की और प्रत्येक स्थानके लिये उन्होँने उम्मीदवार खड़े किए जिसके लिये सम्मिलित

निर्वाचकोंद्वारा निर्वाचन करना था। म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंके सदस्य, जिनको (म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डको) सर्वसाधारणकी स्वाधीनता दी गई है—उस समय चुने और नियुक्त किए गए जब कि निर्वाचक, धर्मके कारण किसी उम्मीदवारको स्वीकृत या अस्वीकृत नहीं करते थे। परिणाम यह हुआ कि मुसलमानोंने म्युनिसिपल या डिस्ट्रिक्ट बोर्डमें सम्पूर्ण जनसंख्याके अनुपातसे भी अधिक स्थान पाए। परिणामस्वरूप चार विशेषतः सुरक्षित स्थानोंकी अपेक्षा मुसलमानोंने साधारण निर्वाचनमें संयुक्त प्रान्तमें दो और स्थान पाए और इन जगहोंके सरकार-द्वारा दी गई अल्पसंख्यक जगहोंके साथ मिल जानेसे इस प्रान्तकी क़ानून-व्यवस्थाके छब्बीस अपदाधिकारी जगहोंमें आठ मुसलमानोंके लिये हो गई, यद्यपि यहाँ उनकी संख्या सम्पूर्ण जनसंख्याका केवल छठाँ भाग है।

पञ्जाबमें, जहाँ कि मुसलमान नहीं बल्कि हिन्दू अल्पसंख्यामें हैं, एक हिन्दू सदस्यके सिवाय, जो कि युनिवर्सिटीसे आया था, मुसलमान प्रत्येक स्थानको हिन्दुओंके विरुद्ध जीतनेमें सफलीभूत हुए हैं। पूर्वी बङ्गाल और आसाममें निर्वाचनके लिये खड़े होनेवाले हिन्दू उम्मीदवार असफल और लगभग प्रत्येक स्थानको प्राप्त करनेमें मुसलमान सफल हुए हैं। यह अल्पसंख्याके लाभोंकी प्रतिहिंसासे रक्षा करना नहीं है बल्कि यह अल्पसंख्याके द्वारा बहु-संख्याको छोड़ देनेका उदाहरण है। यह लाभ हमारे मुसलमान भाइयोंद्वारा इच्छित और प्रिय समझ अल्पसंख्याके ही लिये संरक्षित है। पञ्जाब, पूर्वी बङ्गाल और आसामके अल्पसंख्यक हिन्दू बड़ी शोचनीय अवस्थामें छोड़ दिए गए हैं और फिर भी उनमें दोष निकाला जाता है कि वे सुधारोंपर उत्साहपूर्वक ज़ोर नहीं देते।

आइए, हम लोग अब मताधिकारके प्रश्नपर विचार करें। सीधा प्रतिनिधित्व मुसलमानोंको दिया गया है। यह इतर जातियोंको अस्वीकार कर दिया गया है। सभी मुसलमान, जो पाँच हज़ार रुपएपर आय-कर या इतनी ही सालाना सरकारी मालगुज़ारी देते हैं या जो पाँच वर्षके ग्रेजुएट हैं, मत देनेके अधिकारी हैं। हम हृदयसे प्रसन्न हैं कि हमारे मुसलमान भाइयोंको सीधा प्रतिनिधित्व दिया गया है और उनको दिया गया मताधिकार बहुत ही उदार है।

‘बिना प्रतिनिधित्वके कोई कर नहीं’। वास्तवमें यह राजनीतिक वेदका मूल मन्त्र है। यह अधिक सन्तोषका कारण होता यदि सभी आय-करदाताओंको मत देनेका अधिकार होता। शिकायतकी वजह तो यही है कि उसी प्रकार ग़ैर-मुसलमान प्रजाके लिये मताधिकार नहीं दिया गया।

एक पारसी, हिन्दू या क्रिश्चियन, जो तीन लाखपर आयकर या इतनी ही सालाना सरकारी मालगुज़ारी देता है उसी मुसलमान प्रजाकी भाँति वोट देनेका अधिकारी नहीं है जो कि तीन हज़ार रुपएपर आय-कर या इतनी ही सरकारी सालाना मालगुज़ारी देता है। सर गुरुदास बैनर्जी, डाक्टर भण्डारकर, सुब्रह्मण्य ऐयर और डाक्टर रासबिहारी घोषकी तरह मनुष्योंको जिनको, ग्रेजुएट हुए तीस वर्ष हो गए, मत देनेका अधिकार नहीं दिया गया है और प्रत्येक पाँच वर्षके मुसलमान ग्रेजुएटको दिया गया है। सम्भव है वे लोग, जो वृद्धताके कारण संज्ञाशक्तिसे क्षीण हो गए हैं, इस बातको बुरा न मानें, परन्तु क्या इसमें सन्देह है कि ग़ैर-मुसलमान ग्रेजुएट, जिनको मुसलमानोंकी भाँति अधिकार नहीं मिला है, बहुत दुखी न होंगे? हमारी समझमें यह बड़ी शोकजनक बात है कि जब सरकारने मुसलमानोंको सीधा प्रतिनिधित्व देना निश्चय किया तो इतर जातियोंको उतना ही न्यायपूर्ण और उदार मताधिकार क्यों नहीं दिया?

आइए, हम लोग अब उम्मीदवारोंके चुनावमें की गई रुकावटोंपर विचार करें। बम्बई, बङ्गाल और मद्रासमें केवल म्युनिखिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डके सदस्य प्रान्तीय कौन्सिलके सदस्य हो सकते थे।

यह उस नियमसे भिन्न है, जो सन् १८९२ ई० के कौन्सिल-ऐक्टके अनुसार सत्रह वर्षतक कार्य्यरूपमेँ लाया जाता रहा है, और हमको दुःख है कि यह भिन्नता बिना इसका परिणाम विचारे ही कर दी गई। परिणाम बहुत ही बुरा हुआ है। यह स्वीकार किया जाता है कि लौर्ड रिपनद्वारा देशमेँ प्रचलित किए गए स्थानीय स्वायत्त-शासनका कार्य्य-क्रम अभीतक उचित रीतिसे काममेँ नहीँ लाया गया। लौर्ड मौर्लेने अपने गत वर्षके राज-लेखमेँ विचार किया कि इस कार्य्य-क्रमसे जो आशाएँ थीँ वे पूरी नहीँ हुईं और अपने प्रस्तावमेँ सन् १८८२ ई० की भाषाके अनुसार उन महानुभावने कहा कि, "इस तर्कमेँ बहुत सत्यता है कि जबतक म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट कमेटियोँके सदस्य प्रबन्धके मुख्य कर्मचारी रहेँगे, तबतक ये कौन्सिलेँ अपने सदस्योँको स्थानीय प्रबन्धकी और उनसे भिन्न सदस्योँको स्थानीय कार्य्योँमेँ विशेष रुचि पैदा करनेकी शिक्षा नहीँ दे सकतीँ।" इसके पश्चात् उन महानुभावने ठीक ही कहा कि—'अपदाधिकारी सदस्योँकी स्थानीय कार्य्योँमेँ आशाके अनुसार रुचि नहीँ हुई, क्योँकि उनके अधिकार और उत्तरदायित्व खोखले थे।' इसी कारण म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डमेँ बहुतसे स्वतन्त्र और योग्य सदस्य नहीँ गए। म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डके सदस्योँको कौन्सिलका सदस्य बननेके योग्य कर देनेका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक प्रान्तमेँ बहुतसे स्थानीय निर्वाचनके योग्य मनुष्य छुट गए (हाँ हमारे प्रान्तमेँ भाग्यवश ऐसी कोई रोक-टोक नहीँ थी)। बङ्गालमेँ उनके सर ऐडवर्ड बेकरके सङ्कुचित दृष्टिसे शासन करनेके कारण उस प्रान्तके बहुतसे लोग निर्वाचनके अयोग्य पाए गए और ऐडवर्ड बेकरको उस अवधिके भीतर ही वे नियम ठीक करने पड़े जब कि उन्हेँ प्रकाशित होनेके लिये कठिनतासे तीन सप्ताह रह गए थे, ताकि उनके सूबेके कुछ आदमी तो कौन्सिलमेँ पहुँच जायँ। मद्रासमेँ सर आर्थर लौलेको व्यवस्थापिका सभाके कुछ बाहरी सदस्योँको म्युनिसिपल, डिस्ट्रिक्ट या तालुक़ बोर्डके सदस्योँकी तरह नामज़द करना पड़ा, जिससे कि वे नियमोँके अनुसार नई कौन्सिलके सदस्य हो सकेँ। बम्बईमेँ कौन्सिलके दो बाह्य सदस्य म्युनिसिपल बोर्डके सदस्य हुए और ऐसा वे तभी कर सके जब कि दो मित्रोँने कृपा करके अपनी जगह यह सोचकर छोड़ दी कि उनके ऐसा करनेसे वे (बाह्य सदस्य) कौन्सिलके सदस्य हो सकेँगे। हमको दुःख है कि नियमोँपर किए गए आक्षेपोँकी दलीलेँ इससे नहीँ समाप्त होतीँ। धन-सम्बन्धी योग्यता कौन्सिलके सदस्य होनेवाले उम्मीदवारोँके लिये निश्चित की गई है। ऐसी योग्यता इङ्गलैण्डमेँ पार्लियामेण्टके सदस्योँके लिये आवश्यक नहीँ है। सन् १८९२ ई० के ऐक्टके अनुसार उन नियमोँके अधीन, जो कि सत्रह वर्षतक प्रचलित रहे, ऐसी किसी योग्यताकी आवश्यकता नहीँ थी। ऐसी कोई शिकायत अबतक नहीँ सुनी गई कि ऐसी बाधाके निर्वाचकोँके चुनावपर न होनेसे कोई अयोग्य पुरुष कौन्सिलका सदस्य हो गया। धन या आयका अधिकार निश्चय रूपसे यह नहीँ बतलाता कि मनुष्य योग्य है। और आचरणकी परीक्षा तो इससे बिल्कुल ही नहीँ हो सकती। यह स्वयं किसी मनुष्यमेँ उसके साथियोँका विश्वास या प्रशंसा नहीँ पैदा करता। लेकिन यह भी निश्चय नहीँ है कि धनी अयोग्य या अनादरणीय ही होते हैँ। मनुष्योँके धर्मके प्राचीन रचयिता मनुने मनुष्यको प्रशंसित बनानेके पाँच कारण बतलाए हैँ—धन, कुल-सम्बन्ध, अवस्था, काल और ज्ञान। ये ही पाँच वस्तुएँ मनुष्यको आदरणीय बनाती हैँ। इनमेँ क्रमशः अगला गुण पहलेसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार इस उपदेशके अनुसार शिक्षा सबसे श्रेष्ठ गुण था और धन-सञ्चय सबसे बुरा। नियमोँने न केवल क्रमको उलट दिया है बल्कि शिक्षाको भी व्यवस्थापिका सभाके सदस्योँके लिये आवश्यक गुणकी सूचीसे निकाल दिया है। नियमोँकी रचनाने इस बातका

ज़रा भी ध्यान न किया कि इस प्राचीन देशमें बहुतेरे तीक्ष्ण बुद्धिवाले और शुद्ध आचरणवाले मनुष्योंने अपने-आप ही दीनतासे विवाह किया और अपने जीवनको ज्ञान या धर्म या दूसरे लोक-हित-कार्य्योंकी उन्नति या प्राप्तिमें बिता दिया। परिणाम यह है कि जहाँतक प्रान्तीय कौन्सिलोंसे सम्बन्ध है श्री दादाभाई नौरोजी या श्री गोखले जैसे स्वार्थरहित देश-भक्त कौन्सिलके सदस्य होनेके अयोग्य हैं। ऐसे परिणामवाले नियम स्वयं अपनेको कोसते हैं।

फिर सदस्यताके लिये अयोग्यताओंसे सम्बन्ध रखनेवाले विधान अनावश्यक, कठोर और निषेधक बना दिए गए थे। सरकारी नौकरीसे निकाला गया मनुष्य कौन्सिलकी सदस्यताके लिये भी अयोग्य है चाहे वह किसी ऐसे कार्य्यके लिये नौकरीसे हटाया गया हो जिससे उसका सरकारसे विरोध मालूम होता हो या जिससे मालूम होता हो कि उसका आचरण बुरा है या चाहे वह किसी आज्ञाके माननेसे या केवल किसी निश्चित जगह या समयपर उपस्थित न होनेसे हटा दिया गया हो। बस, उसे कभी सरकार या जनताकी सेवा करनेका अवसर न देना चाहिए चाहे उसका न्याय उचित या अनुचित रीतिसे किया गया हो, या वह ऐसे अपराधके कारण नौकरीसे हटाया गया है जिसका फिर सुधार नहीं हो सकता। ऐसी ही दशा क़ैदके छः माहसे अधिक दण्डकी भी होती है, चाहे यह सज़ा थोड़े ही दिनके लिये और किसी भी अपराधके लिये क्यों न हो। यहाँ भी इस बातपर ध्यान नहीं दिया जाता कि जिस अपराधके लिये दण्ड दिया गया उससे मनुष्यमें कोई आचरण-दोष प्रकट होता है या नहीं। पार्लियामेण्टकी सदस्यताके लिये ऐसी अयोग्यताओंपर ध्यान नहीं दिया जाता। जौन बर्न्सको आठ महीनेकी सज़ा हुई थी। वह अब मन्त्रिमण्डलमें मन्त्री हैं। मिस्टर लिञ्चने बोअर-युद्धमें सरकारके विरुद्ध युद्ध किया, उनको फाँसीकी सज़ा हुई। लेकिन सज़ा कुछ दिनोंके बाद तोड़ दी गई और तबसे वे पार्लियामेण्टके सदस्य चुने गए। तो फिर ऐसी कठोर और नाशकारी अयोग्यतापर इतने ध्यानकी उस देशमें क्या आवश्यकता है जहाँ कि प्रबन्ध और न्याय-सम्बन्धी कार्य्य एक ही कर्मचारीके अधीन हैं और जहाँ न्याय इतना निष्पक्ष और शुद्ध नहीं है जितना इङ्गलैण्डमें है।

इससे भी अधिक दोषपूर्ण अयोग्यता-सम्बन्धी धाराका प्रस्ताव संख्या (१) है, जिससे यह ज्ञात होता है कि वह व्यक्ति कौन्सिलका सदस्य नहीं हो सकता जिसे प्रान्तीय सरकारोंने यह घोषित कर दिया है कि उसके कार्य्य और पूर्व आचरण ऐसे थे कि उसका निर्वाचन स्थानीय सरकारके प्रधानकी रायमें जनताके लाभोंके विरुद्ध होगा।

सज्जनो! आपको याद होगा कि पार्लियामेण्टके वादविवादमें यह प्रश्न हुआ था कि सन् १८१८ ई० के विधान संख्या तीन और वैसे ही विधानोंके अनुसार क्या एक आदमीका देश-निकाला स्वयं उसको कौन्सिलका सदस्य होनेमें बाधक हो सकता है? इस बातपर ध्यान देते हुए कि किसी भी व्यक्तिका बिना उचित कारणके भी देश-निकाला हो सकता है, इसके लिये लाला लाजपतरायका उदाहरण दे सकते हैं। लौर्ड मौर्ले कभी भी इस बातपर सहमत न हुए कि देश-निकाला अयोग्यताका कारण समझा जाय। वे महानुभाव प्रस्ताव संख्या (१) को इस विश्वाससे विधान रूपमें लानेके लिये सहमत थे कि इसपर कम आपत्तियाँ होंगी। लेकिन उनका उचित आदर करते हुए हम कह सकते हैं कि यह निर्वासित जनोंकी अयोग्यतासे भी अधिक आपत्तिजनक है। निर्वासनके सम्बन्धमें प्रान्तीय सरकार भारत-सरकारको यह सफ़ाई देती थी कि उससे सम्बन्ध रखनेवाले कठोर विधानके अनुसार क्यों कार्य्य होना चाहिए। इस नये क़ानूनने सरकारको यह अधिकार दिया है कि वह किसी भी व्यक्तिको अयोग्य घोषित कर दे और इस प्रकार उसपर बड़ा भारी दोष लगा दे। प्रान्तीय सरकारका न्याय बिल्कुल अनुचित हो सकता है, लेकिन

यह भारत-सरकारके पास पुनर्विचारके लिये प्रार्थना करनेको नहीं भेजी जा सकती। यह क़ानून कितना बुरा है, यह 'मराठा' पत्रके सम्पादक श्री केलकरके उदाहरणसे स्पष्ट है। श्री केलकर कौन्सिलके सदस्य होनेके लिये उठे थे। इसपर बम्बईके लाटने यह आपत्ति की कि श्री केलकर कौन्सिलके सदस्य होनेके लिये अयोग्य हैं, क्योंकि उनके पूर्व कार्य्य ऐसे थे जिनसे जनताका लाभ होनेकी अपेक्षा हानि अधिक होगी। अब, सज्जनो! विचारणीय यह है कि श्री केलकरके विषयमें स्वयं गवर्नर साहबको अधिक ज्ञान था या यह सरकारी रिपोर्टोंके कारण प्राप्त हुआ। यह अवश्य ही रिपोर्टोंद्वारा उन्हें मिला होगा। एक दूसरे व्यक्तिका उदाहरण लीजिए, जो बम्बई प्रान्त ही नहीं बल्कि ख़ास पूनेके हैं, जहाँ श्री केलकर रहते रहे हैं और काम करते रहे हैं। यह अनुमान किया जा सकता है कि उनकी जनसेवा, सर जौर्ज क्लार्ककी सरकार या उनके साथियोंसे कम गम्भीर और उनके जनता-सम्बन्धी लाभकी विरुद्ध बातोंका ज्ञान किसी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता, और वे मेरे सम्मानित भाई श्री गोखले हैं। इस विषयमें श्री क्लार्कसे उनकी जानकारी अधिक थी, क्योंकि उनको श्री केलकरके आचरणके सम्बन्धमें वर्षोंसे निजी अनुभव रहा है। जब उपरोक्त घोषणा की गई तो श्री गोखलेने खुलेआम श्री केलकरके शुद्ध आचरणका प्रमाण देना अपना कर्त्तव्य समझा और उन्होंने बम्बईके गवर्नरके अनुचित आक्षेपका खण्डन किया। श्री केलकरने गवर्नरके यहाँ अपील की, लेकिन उनकी अपील अस्वीकृत कर दी गई है, और बिना कोई सुनवाई किए ही वह निन्दित रही।

सुधारका दूसरा स्वरूप प्रान्तीय कौन्सिलोंमें ग़ैर-सरकारी सदस्योंकी संख्या बहुत बढ़ा देना है। इससे चारों ओर बड़ा असन्तोष फैला था। सन् १८८६ ई० की योजनामें कांग्रेसने इस बातपर बहुत ज़ोर दिया था कि बड़े लाट और छोटे लाटकी व्यवस्थापिका सभाओंमें कम-से-कम आधे सदस्य निर्वाचित हों और चौथाईसे अधिक सरकारद्वारा मनोनीत नहीं होने चाहिए। कांग्रेस-जनोंने इतने प्रतिनिधियोंको देशकी शासन-व्यवस्थामें उचित सम्मति देनेका इसे बहुत ही आवश्यक साधन समझा।

लौर्ड मौर्लेने अभीतक बड़े लाटकी सभामें ग़ैर-सरकारी सदस्योंका बहुमत करनेकी बात नहीं मानी। इस न्यायपर हम लोगोंको दुःख हुआ, लेकिन लौर्ड मौर्लेने प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभामें ग़ैर-सरकारी बहुमतकी बात ख़ुशीसे स्वीकार कर ली, और हम लोगोंने यह विश्वास कर इसे स्वीकार कर लिया कि नये शासन-सुधारकी योजनाके अनुसार कुछ दिनोंतक इनका उपयोग करनेके बाद बड़े लाटकी कौन्सिलमें भी ग़ैर-सरकारी सदस्योंकी संख्या भी अवश्य बढ़ा दी जायगी।

हम लोग यह देखकर बड़े प्रसन्न और कृतज्ञ हैं कि बङ्गालमें ग़ैर-सरकारी सदस्योंका वास्तवमें बहुमत है। मैं इस अवसरपर लौर्ड मौर्लेके प्रस्तावोंको सर ऐडवर्ड बेकरद्वारा दी गई उदार सहायता और प्रोत्साहनपर कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इसी प्रोत्साहनसे बङ्गालको तुरन्त ही व्यवस्थापिका सभाके शासनका लाभ मिलेगा। अपने बड़े प्रान्त बङ्गालकी व्यवस्थापिका सभामें ग़ैर-सरकारी निर्वाचित सदस्योंका बहुमत प्राप्त करनेका श्रेय, अन्य प्रान्तोंके गवर्नरों और लेफ़्टिनेण्ट गवर्नरोंकी अपेक्षा सर ऐडवर्ड बेकरको ही है, जो इस समय वहाँके गवर्नर हैं। बङ्गालके नियम-विधान कहते हैं कि सभाके कुल उनचास सदस्योंमेंसे छब्बीस अर्थात् आधेसे अधिक निर्वाचित होंगे और लेफ़्टिनेण्ट गवर्नरद्वारा मनोनीत किए गए सदस्य बाइससे अधिक नहीं होंगे, जिनमें सत्रहसे अधिक सरकारी अफ़सर नहीं हो सकते और जिनमेंसे दो ग़ैर-सरकारी होंगे, जिसमें एक तो भारतीय-व्यापारिक-मण्डलसे और दूसरा प्लाण्टर वर्गसे चुना जायगा। लेकिन खेदकी बात है कि दूसरे सबसे बड़े प्रान्तकी दशा इसके बिल्कुल विरुद्ध है। यह हमारा संयुक्तप्रान्त है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग़ैर-सरकारी सदस्योंका वहुमत होनेका सरकारी नियम स्पष्ट ही नहीं के वरावर हो गया है। सर जौन हीवेटने वड़ी प्रसन्नतासे राजकीथ और प्रान्तीय एडवाइज़री कौन्सिलोंको स्थापित करनेके प्रस्तावोंका समर्थन किया था। वे प्रस्ताव, जैसा कि हम जानते हैं, पूर्णतया त्याग दिए गए हैं। लेकिन मेरे प्रान्तके लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर उनसे इतना प्रेम रखते हैं कि उन्होंने अपनी व्यवस्थापिका सभाको निर्देशक कौन्सिलोंके समान बनानेका वहुत प्रयत्न किया है चाहे वह चतुराई-रहित ही हो। कुल छियालिस सदस्योंकी संख्यामेंसे केवल बीसको निर्वाचित और छब्बीसको मनोनीत करना है, जिनमें बीस सरकारी अफ़सर होंगे। सर जौन हीवेटने छः ग़ैर-सरकारी सदस्योंको मनोनीत करनेमें वड़ी बुद्धिमत्ता दिखलाई है। इनमें दो तो स्वतन्त्र राजा हैं—एक हिज़ हाईनेस् रामपुरके नवाव, और दूसरे हिज़ हाईनेस् टिहरीके महाराज और तीसरे हिज़ हाईनेस् बनारसके महाराजा हैं जो कि व्यवहारतः एक स्वतन्त्र राजा माने जाते हैं। बृटिश सरकारकी कोई प्रजा इन प्रधान राजाओंके शासनमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती, तो फिर इन्हींको क्यों शासन-व्यवस्था या अन्य वातोंमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार दिया जाता है, जिनका बृटिश सरकारकी प्रजाके दुख या सुखसे सम्वन्ध है? वे हम लोगोंकी आवश्यकताओंको नहीं जानते, और यदि वे कभी ऐसे विषयमें सम्मति रखते भी हों, जिसपर वादविवाद होता हो, तो उसे वे तवतक व्यक्त नहीं कर सकते जवतक कि वह सरकारकी सम्मतिसे हूवहू न मिल जाय। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वे जिस किसी भी कौन्सिलको सुशोभित करें, प्रज़ाको लाभ पहुँचानेवाले सदस्य नहीं हो सकते। तव उन्हें क्यों मनोनीत किया जाता है, यदि ऐसा करनेसे वे शिक्षित वर्गके प्रभावके विरुद्ध कामोंमें सहायक हों? सर जौन हीवेटके अन्य तीन मनोनीतोंमेंसे एक मुसलमान नवाव हैं जो अंग्रेज़ी ही नहीं समझते, और एक योरोपियन हैं जो नीलकी खेती करते हैं। छठें मनोनीत सदस्य विधानके अनुकूल भारतीय व्यापारिक मण्डलके ग़ैर-सरकारी प्रतिनिधि हैं। हमारे प्रान्तके विषयमें कुछ दूसरे आक्षेप, जो कि विधान पर किए जा सकते थे, वहुत ज़ोरोंमें प्रकाशित किए जा चुके हैं।

इस प्रान्तमें हमारे मुसलमान भाइयोंकी कुल जन-संख्या केवल चौदह प्रतिशत है। निर्वाचनकी बीस जगहोंमें चार उनके लिये यह विचारकर निश्चित की गई हैं, कि राजनीतिक दृष्टिसे वे वहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसके वाद सम्मिलित निर्वाचकोंद्वारा किए गए निर्वाचनमें भी भाग लेनेका उन्हें अधिकार है और दो जगहें उन्हें वहाँ मिल गई हैं। इस प्रकार छब्बीस ग़ैर-सरकारी सदस्योंमें आठ मुसलमान हैं। निर्वाचित सदस्योंमें आठ तो भूमिपतियोंके प्रतिनिधि हैं और केवल पाँच शिक्षित वर्गके हैं। इस प्रकार ग़ैर-सरकारी वहुमतकी वात कहकर व्यर्थ हँसी उड़ाई गई है। दूसरे प्रान्तोंके विषयमें ब्यौरेवार कहनेके लिये समय नहीं है, लेकिन साधारणतः हम कह सकते हैं कि मुसलमानों और भू-पतियोंको वहुत अधिक प्रतिनिधित्त्व दिए जानेसे और शिक्षित वर्गको वहुत कम कर देनेसे ग़ैर-सरकारी वहुमतका नियम सभी व्यावहारिक कार्य्योंके लिये प्रभावहीन वना दिया गया है।

ऐसे ही नियम-प्रवन्ध सुधार-योजनाके अन्तर्गत घोषित किए गए हैं। मैं लौर्ड मौर्लेको ही इसका न्याय करनेके लिये सादर निमन्त्रित करता हूँ कि उन जैसे कुशल राजनीतिज्ञद्वारा वनाए हुए उदार प्रस्तावोंका अर्थ इन लोगोंने कितना धारा वदलकर लगाया है। मैं लौर्ड मिण्टोको भी आमन्त्रित करता हूँ कि वे इसपर विचार करें कि सुधार-योजनाकी यह नियम-विधि उतनी ही आक्षेपपूर्ण नहीं है जितनी कि सर हेरोल्ड स्टुअर्टके २४ अगस्त सन् १९०७ ई०के पत्रमें रक्खी गई थी और जिसे जनताद्वारा इतना घृणित वतलाया गया था। यह भी निर्णय करनेके

लिये मैं उनको निवेदन करता हूँ कि उनका बिल्कुल भिन्न अर्थ लगाकर उनके भावोंपर कैसा कुठाराघात किया गया है, जिन प्रस्तावोंके लिये लौर्ड महोदय और उनके उदार (भारत-सचिवको) भारतीय जनताद्वारा कितना हार्दिक धन्यवाद दिया गया था। क्या कोई भी इस बातपर आश्चर्य्य कर सकता है कि उन नियम-विधानोंसे भारतके शिक्षित वर्ग बहुत ही असन्तुष्ट हैं? क्या उनके ऐसा होनेके पर्य्याप्त कारण नहीं हैं? चतुर्थ शताब्दीसे भी अधिक कालतक उन्होंने कांग्रेसके द्वारा सभी जाति और वर्गोंकी उन्नतिके लिये और सभी भिन्न धर्मानुयायियोंमें राष्ट्रीयताका समान भाव विकसित करनेके लिये परिश्रम किया है। यह कार्य्य शान्तिमय उन्नति, सुख और वैभवके लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि सभ्य सरकारी शासनके लिये है। बृटिश राज्यके इतिहासमें पहली ही बार शासन-विधानमें धर्मको प्रतिनिधित्त्वका आधार माना गया है और इसने सम्राट्की मुसलमान और अन्य ग़ैर-मुसलमान प्रजाके बीच पृथकताकी दीवाल खड़ी कर दी है, जिसको नष्ट करनेके लिये वर्षोंतक सतत प्रयत्नकी आवश्यकता पड़ेगी। इन नियमोंने व्यवहारतः वर्त्तमान समयके लिये उस गम्भीरतापूर्ण प्रयत्नके परिणामोंको नष्ट कर दिया है जो कि लगातार चतुर्थ शताब्दीतक भारतीयोंने देशके शासनमें अपने प्रतिनिधियोंको वास्तविक अधिकार प्राप्त करानेके लिये किया।

यह बात नहीं है कि कांग्रेसकी यह इच्छा थी कि सुधार की गई नई कौन्सिलोंमें मुसलमान या भूमिपति पूर्णतया प्रतिनिधित्त्व प्राप्त न कर सकें। उसकी इच्छा थी और उसको पूर्ण आशा थी कि यदि एक साधारणतः उत्तम निर्वाचक-दलका प्रबन्ध हो जाय तो कौन्सिलोंमें जातिके सभी वर्गोंके प्रतिनिधि पर्य्याप्त संख्यामें पहुँच जायँगे। लेकिन उसकी इच्छा थी कि चूँकि उनको ऐसे प्रश्नोंपर विचार करना होगा जो सभी वर्गों और मतोंके लिये समान हितके हैं, इसलिये उनको सभी मत और जातिकी सम्मिलित रायसे निर्वाचित होकर जाना चाहिए। उनमें देशवासियोंके विश्वासका आधार लगनके साथ उनके हितोंकी रक्षा और उन्नति करनेकी योग्यता, बुद्धिमत्ता और स्वतन्त्र आचरण होगा, न कि उनका किसी विशेष धर्मसे सम्बन्ध या कई एकड़ भूमिका उत्तराधिकारी होना।

हम लोगोंको इस बातका दुःख है कि जब हमने उदार राजनीतिज्ञ भारत-सचिव और उदार विचारवाले वाइसरायके भाग्यशाली संयोगके द्वारा दिए गए अधिकारोंका बहुत ही थोड़ा दर्शन कर पाया था कि हमारे नौकरशाही मित्रोंने उस अधिकारतक पहुँचनेका रास्ता कम-से-कम थोड़े समयके लिये तो बन्द कर ही दिया है।

सज्जनो! सुधारके सम्बन्धमें शिक्षित भारतीयोंके विचारोंका अर्थ कुछ लोगोंने बिल्कुल दूसरा ही लगाया है। कुछ आलोचना तो उचित थी और हम लोग इसके मूल्यको समझते थे। लेकिन मेरी इच्छा है कि मेरे मित्र इन बातोंपर और गहरा विचार करते। उनकी आलोचना मुझे एक बड़ी पुरानी प्रथाकी याद दिलाती है। एक बहुत ही धनी प्रबल क्षत्रिय-राजा विश्वामित्रने सोचा कि मेरे पदसे भी ऊँचा एक और पद है जिसका आदर इहलौकिक शक्ति या अधिकारके कारण नहीं बल्कि ज्ञान, पवित्रता, धर्म और लोक-सेवाके कारण होता है। यह सोचकर उन्होंने कठिन तपस्या करनी प्रारंभ कर दी। इतनी कठिन तपस्या की कि केवल एक ब्राह्मणको छोड़कर सभी ब्राह्मणोंने उन्हें ब्राह्मण मान लिया। ये वशिष्ठ थे। विश्वामित्रजीने पहले तो उनको बहुत समझाया कि वह ब्राह्मण मान लें, तब उनको धमकाया और जब ऐसा करके भी असफल हो गए तो उन्होंने वशिष्ठके सौ पुत्रोंको मार डाला। वशिष्ठको बड़ा दुःख हुआ। यदि उन्होंने एक बार भी कह दिया होता कि—'अच्छा, आप ब्राह्मण हैं', तो उनपर और उनके कुटुम्बपर वह विपत्ति न आती। लेकिन वशिष्ठको अपने सौ लड़कोंसे भी

प्यारा सत्य था। झूठको सत्य कहना उन्होंने ठीक नहीं समझा।

निदान विश्वामित्रने वशिष्ठजीको भी मारनेकी ठानी। इस नीयतसे वे हथियार लेकर वशिष्ठ मुनिके आश्रममें पहुँचे। जब वे एक कोनेमें खड़े होकर अवसरकी घातमें थे तो उन्होंने वशिष्ठजीको अपनी पत्नी अरुन्धतीके प्रश्नके उत्तरमें कहते हुए सुना, "विश्वामित्रकी तपस्या उन चन्द्र-किरणोंके समान उज्ज्वल है, जिनके नीचे हम लोग वैठे हैं।" यह सुनकर विश्वामित्रने अपने अस्त्र-शस्त्र फेंक दिए और वे बड़ी नम्रतासे वशिष्ठजीके पास गए। वशिष्ठजीने विश्वामित्रको ब्रह्मर्षि कहकर सत्कार किया। विश्वामित्रका हृदय भर आया और कृतज्ञतापूर्ण आदरके भावोंसे भरकर और वशिष्ठजीको दिए हुए कष्टोंके लिये क्षमा माँगकर उन्होंने पूछा कि—"आपने मुझे पहले ही क्यों ब्राह्मण नहीं मान लिया और मुझे सौ पुत्रोंके बधके पापसे क्यों नहीं बचाया?" वशिष्ठजीने कहा कि—"हे विश्वामित्र! जब-जब भी आप इसके पहले आए तो आप क्षत्रियके अभिमान और शक्तिके साथ आए और मैंने आपको क्षत्रियके समान आदर किया। लेकिन आज आप ब्राह्मणत्वका भाव लेकर आए हैं, इसलिये मैं आपका एक ब्राह्मणके समान अभिवादन करता हूँ। मैंने उस समय भी सत्य वोला और मैं आज भी सत्य ही वोलता हूँ।"

सज्जनो! इसी प्रकार हमारे शिक्षित भारतीयोंसे मैं नम्रतापूर्वक कहनेका साहस करता हूँ, जैसा सुधारके विषयमें भी किया है। शिक्षित वर्गकी प्रवृत्ति क्या रही है? सर हेरोल्ड स्टुअर्टके पत्रमें प्रकाशित पहले प्रस्तावोंपर गम्भीर और उचित आक्षेप होते थे और इस कारण शिक्षित वर्गने उनकी निन्दा की। गत वर्षके लौर्ड मौर्लेद्वारा प्रकाशित प्रस्ताव वास्तवमें उदार और विचारपूर्ण थे और उनका इसी प्रकार आदर भी होता था।

नये कार्य्यक्रमके अनुसार बनाए हुए नियम उन प्रस्तावोंके लक्ष्यसे बहुत दूर हट गए हैं और बहुत अंशोंमें वे अनुदार और विचार-रहित हैं। ऐसी दशामें शिक्षित भारतीय दलको विवश होकर उनकी निन्दा करनी पड़ी। उन्होंने दुखी होकर ऐसा किया है न कि क्रोधित होकर।

सरकारको उचित है कि इन नियमोंमें इस प्रकार सुधार करें कि वे लौर्ड मौर्लेके प्रस्तावोंके समान हो जायँ और कांग्रेसद्वारा स्वीकृत होनेके योग्य हो जायँ।

मैं अपने शिक्षित भाइयोंकी ओरसे यह कहनेका साहस करता हूँ और मैं सरकारको विश्वास दिलाता हूँ कि इन नियमोंका, इस विशुद्ध अवस्थामें सच्चे हृदयसे स्वागत होगा।

मैं इस वातको नहीं भूलता कि नियम-विधानमें विश्वास दिलाया गया है कि कार्य्यरूपमें लाए जानेके समय प्राप्त अनुभवोंके आधारपर उसमें सुधार किए जायँगे। यह विश्वास इस वातसे और भी दृढ़ हो गया कि वाइसराय महोदयने इस विषयमें मद्रास और बम्बईमें आश्वासन दिया था। लेकिन मैं बड़े नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि उसमेंके बहुतसे दोष ऐसे हैं जिनका सुधार विना अनुभवकी प्रतीक्षा किए ही हो सकता है। मैं आदरपूर्वक लौर्ड मौर्ले और लौर्ड मिण्टोसे यह विचार करनेके लिये निवेदन करता हूँ कि नियमोंद्वारा पैदा किए गए चारों ओर फैले हुए असन्तोषका ध्यान करते हुए अच्छे शासनके लिये, और बहुत ही महत्त्वपूर्ण सुधारके उद्देशसे अर्थात् असन्तोषकी शान्ति और राजा-प्रजामें परस्पर प्रेमकी वृद्धि करनेके लिये क्या यह उचित नहीं है कि जितना शीघ्र हो सके एक विज्ञप्ति निकाली जाय कि नियमोंके विरुद्ध किए गए आक्षेपोंपर फिरसे विचार किया जायगा?

दिल्ली कांग्रेसके अध्यक्ष पदसे भाषण

२६ दिसम्बर, सन् १९१८ ई० को दिल्ली नेशनल कांग्रेसके अधिवेशनमें सभापति माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण ।

—सम्पादक ।

प्रतिनिधि भाइयो, महिलाओ और सज्जनो !

ऐसा बहुधा कहा गया है कि इस देशके निवासी किसीको जो सर्वोच्च सम्मान दे सकते हैं वह यह है कि वे उसे कांग्रेसका सभापति चुनें और यदि यह चुनाव दो बार हुआ हो तो उस सम्मानका कहना ही क्या है ? इस समय तो यह सम्मान और भी अधिक बढ़ गया है, क्योंकि आपने मुझे ऐसे समय इस जातीय महासभाके विचारोंका परिचालन करनेको बुलाया है, जब कि ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हो रही हैं, जिनका प्रभाव केवल भारतवर्षपर ही नहीं बल्कि सारे सभ्य संसारपर पड़ रहा है और जब कि ऐसे प्रश्न कांग्रेसके सम्मुख उपस्थित हैं जिनका सम्बन्ध हमारे भविष्यसे है और जिनका परिणाम भी व्यापक होगा। आपने जो मुझमें अपना विश्वास स्थापित किया है उसके लिये मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। मैं अपने मित्र श्रीयुत विजय राघवाचार्य्यका भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरा चुनाव सर्वसम्मत बनानेके लिये सभापतिके लिये निर्वाचित सज्जनोकी सूचीमेंसे अपना नाम वापस ले लिया। भारतीय व्यवस्थापिका सभामें प्रायः मुझे उनका स्मरण आता है, क्योंकि वे अपनी निर्भीक स्वतन्त्रता और अकाट्य तर्कोंके कारण जनताके हितोंकी रक्षाके लिये स्तम्भ-स्वरूप थे। यदि मुझमें इस सम्मान और विश्वसनीयताकी योग्यता होती तो बहुत अच्छा होता। अस्तु, ईश्वरसे मेरी यह प्रार्थना है कि हमारे मन्तव्य ऐसे हों जिनसे हमारे प्रति विश्वास तथा सम्मानकी वृद्धि हो और जिनसे हमारे देशकी उन्नतिमें सहायता मिले।

कांग्रेसके इस वर्षके उत्सवका महत्त्व बतानेकी आवश्यकता नहीं है। आज हम भारतीय साम्राज्यकी उस प्राचीन इतिहास-प्रसिद्ध राजधानीमें एकत्र हुए हैं जो अपनी ऐतिहासिक कीर्त्तियोंके कारण आदरणीय है। यह कितनी ही सुख और दुःखभरी बातोंकी याद दिलाती है, यह कितने ही उलट-फेरोंकी याद दिलाती है जो हमारी इस प्राचीन भूमिको सहने पड़े हैं। यद्यपि उन बातोंपर कुछ कहनेके लिये जी बड़ा ही उत्सुक है, तथापि मैं यहाँ उनके बारेमें कुछ भी न कहूँगा। इस समय मैं गई-बीती बातोंपर कुछ न कहकर सजीव वर्त्तमानपर ही विचार करूँगा। हम लोग ऐसे समय एकत्र हुए हैं जब कि सारा सभ्य संसार इतिहासके अभूतपूर्व और सबसे बड़े नाशकारी युद्धके शुभ समाप्तिपर हर्ष मना रहा है। इङ्गलैण्डके महामन्त्रीने इस समाप्तिके बारेमें वहाँके लोगोंको सम्बोधित करते हुए कहा था—"हे बृटेनवासियो! तुम लोगोंको इस बातकी खुशी मनानेका पूरा अधिकार है कि मित्रराष्ट्रों, साम्राज्यके अन्य देशों तथा भारतवर्षकी बड़ी भारी जीत हुई है। संसारके इतिहासमें सर्वस्वतन्त्रताके लिये यह सबसे अद्भुत विजय है।"

मेरे! देशवासियो आपको भी खुशी मनानेका पूर्ण अधिकार है (और जैसी कि आप मना रहे हैँ) कि यह महाविजय प्राप्त कर ली गई। आपको अवश्य ही न्यायसे इस बातके लिये अभिमान करनेका अधिकार है कि हमारे देशने इस युद्धमेँ प्रशंसनीय भाग लिया है और इस स्तुत्य विजयके प्राप्त करनेमेँ असीम सहायता दी है। जैसा कि श्रीमान् वाइसराय महोदयने उस दिन कहा था, "वह (भारतकी सेना) युद्ध-स्थलमेँ ट्यूटनोँके दलको रोकनेके लिये सबसे पहले मौजूद थी और अन्ततक रही। उसके सिपाहियोँने पैलेस्टाइनमेँ हमारे शत्रुको ऐसा धक्का दिया कि उसे लड़खड़ाकर गिर जाना पड़ा।" जिस समय युद्ध आरम्भ हुआ उस समय भारतवर्षको इङ्गलैण्डके विरुद्ध कितनी ही शिकायतेँ थीँ। किन्तु उसने बृटेनके न्याय और स्वातन्त्र्य-प्रेममेँ तिलभर भी सन्देह नहीँ किया, और जैसे ही इङ्गलैण्डके राजा तथा भारतके सम्राट्का यह संदेश आया कि इन्हेँ स्वतन्त्रताकी रक्षा तथा सन्धि-स्वत्वके सम्मानार्थ तलवार खीँचनी पड़ी है, उसी समय भारतवर्षने राजभक्तिपूर्वक अपनी शिकायतेँ अलग हटा दीँ, उसने अपने भेद-भावोँको भुला दिया और उसके राजाओँ और जनताने उस पक्षको अपना पक्ष स्वीकार कर लिया जो इङ्गलैण्डने लिया था। इसका कारण यह था कि उसका पक्ष न्याय और स्वतन्त्रताका पक्ष था। हमारे जातीय इतिहास और हमारे जातीय आदर्श दोनोँने ही हमेँ उस पक्षको ग्रहण करनेके लिये उत्साहित किया था। उस अतीत कालमेँ जिसकी स्मृति अब भी बाक़ी है—हमारे पूर्वजोँने हमारे इतिहासका सबसे बड़ा युद्ध-महाभारत—इसलिये किया था और राष्ट्रके सारे नौजवानोँको इसलिये बलिदान चढ़ा दिया था कि जिससे 'धर्मकी विजय' हो। तीस सालसे हम वैध युद्ध इसलिये कर रहे थे कि जिससे हमेँ स्वयं अपने शासनकी देखभालमेँ कुछ अधिकार मिल जायँ। अतएव हमारे सभी जाति और सभी समाजके भाइयोँने मिलकर उत्साहके साथ इस बातका वचन दिया कि वे सफलतापूर्ण अन्ततक लड़ाई जारी रखनेके लिये श्रीमान् सम्राट्को पूर्ण सहायता देँगे। भारतके राजाओँ और निवासियोँने वह सब काम किए जिनको श्रीमान् सम्राट्ने १४ सितम्बर, सन् १९१४ ई० मेँ अपने इन स्नेहपूर्ण शब्दोँमेँ कहा था कि—"वे साम्राज्यके लिये अपने जीवन और धनको उदारता-पूर्वक भेँट करनेको तैयार हैँ।" हमेँ ईश्वरको इस बातके लिये धन्यवाद देना चाहिए कि हमने अपने वचनोँके अनुसार ही काम भी किए। हमने धन, जन और मालसे—जितनी कि हमसे माँगी गई थी उससे भी अधिक सहायता की। हमारे देशी राजाओँ और किसानोँ दोनोँ ही ने पूरी तरहसे युद्धमेँ व्यक्तिगत सेवा की और दोनोँ ही ने अपने सामर्थ्यसे भी अधिक प्रायः धनकी सहायता की है। जिस दिन श्रीमान् सम्राट्का सन्देश आया उस दिनसे ही सारे भारतने एक स्वरसे यही कहा कि उसके वीर सिपाही फ़्रांसके युद्धमेँ सबसे आगे लड़नेको भेजे जायँ। लौर्ड हार्डिञ्जने हमारे प्रस्तावको समझा और अपनी दूरदर्शिता और साहससे भारतीय सिपाहियोँको फ़्रांस भेज दिया। इस राजनीतिक दूरदर्शितापूर्ण कामके लिये भारतवर्ष और मित्रदल दोनोँ ही उनके कृतज्ञ हैँ। हमारे सिपाहियोँने सन् १९१४ ई० मेँ फ़्रांसको विपत्तिसे बचा लिया और बड़ी विख्याति पाई।

हमारे धन, जन तथा सामानकी सहायताका पूरा हिसाब लगाना बाक़ी है। किन्तु हमलोगोँको मालूम है कि हमारी केवल धनकी सहायता दो अरबसे भी अधिक क़रीब तीन अरब है। हमारी जन-सहायताके विषयमेँ उस दिन भारत-मन्त्रीने पार्लियामेण्टमेँ कहा था कि जबसे युद्ध आरम्भ हुआ तबसे ग्यारह लाख इकसठ हज़ार सात सौ नवासी आदमी सेनामेँ भर्त्ती किए गए और बारह लाख पन्द्रह हज़ार तीन सौ अड़तीस आदमी भारतवर्षसे बाहर भेजे गए और इनमेँसे एक लाख एक हज़ार चार सौ उन्तीस युद्धमेँ मारे गए। यह एक ऐसी सहायता है जिसके लिये हमेँ अभिमान होना चाहिए। इससे भी अधिक

अभिमान हमें इस बातका है कि यद्यपि ये चार वर्ष कड़ी परीक्षा और महान् कष्टके थे और वास्तवमें उन असीम दुःखोंसे भरे थे जो युद्धके लिये हमारे देशवासी सह रहे थे और दुर्घटनाओंके समयमें भी सम्राट्के प्रति राजभक्ति प्रदर्शन करने और साम्राज्यकी अन्ततक सहायता करनेमें वे ज़रा भी नहीं घबड़ाए। मुसलमान भाइयोंके विषयमें यह बात विशेष उल्लेखनीय थी, क्योंकि यह बात हरएकको मालूम है कि टर्कीके साथ उनका धार्मिक सम्बन्ध कितना घनिष्ट है और जिन बातोंका टर्कीसे सम्बन्ध है उनमें उनका कितना अधिक स्वार्थ है। अतएव अभाग्यवश जब जर्मनोंने टर्कीको मित्रके विरुद्ध लड़नेको तैयार किया, तब हमारे मुसलमान भाइयोंकी देशभक्तिकी बड़ी कड़ी परीक्षा हुई। कोई भी दूरन्देश मुसलमान टर्कीके भाग्यसे उदासीन नहीं रह सकता। किन्तु आज प्रत्येक भारतीय मुसलमानको, जो अपने समाजसे प्रेम करता है, इस बातपर हार्दिक सन्तोष होना चाहिए कि उसकी जातिको किसी समय भी धार्मिक प्रवृत्तिसे सम्राट् और मातृ-भूमिके प्रति कर्त्तव्यसे विमुख नहीं होने दिया, और वे साम्राज्यके पक्षमें सदा दृढ़ रहे। यह बात हमारे देशके इतिहासमें बड़े महत्त्वकी है, और ऐसी है जिसके कारण हमें अपने प्रजा-भाइयोंको तथा अपनेको हृदयसे धन्यवाद और बधाई देनी चाहिए।

मैं आगे कुछ कहनेसे पहले आप सब महिलाओं और भद्र जनोंसे—जिनके सम्मुख बोलनेका आज मुझे सौभाग्य मिला है और जो एक ईश्वरको भिन्न-भिन्न नामोंसे पूजते हैं—इस बातकी प्रार्थना करता हूँ कि हम सब लोग मिलकर ईश्वरको अपने नम्र और हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि युद्ध प्रसन्नताके साथ समाप्त हो गया, और हम सब इस बातकी भी प्रार्थना करते हैं कि यह स्थायी न्याय और संसारव्यापी शान्तिकी स्थापनाका सूचक हो। इसके बाद मैं आपकी और अपनी ओरसे युद्धके इस शुभ अन्तके लिये श्रीमान् सम्राट्को राजभक्तिपूर्ण और कर्त्तव्योचित बधाई देता हूँ। हम भारतवासियोंको यह जानकर विशेष सन्तोष है कि ऐसे समय जब कि अन्य देशोंके स्वेच्छाचारी सम्राट् नष्ट हो रहे हैं, हमारे उदार सम्राट्ने देशके सङ्गटन तथा अपनी प्रजाकी इच्छाके अनुसार अपनी सुशक्तिको काममें लाकर अपनी प्रजाके हृदयमें पहलेसे भी अधिक दृढ़ घर कर लिया है। हम अपने इङ्गलैण्ड भाइयोंको तथा उपनिवेशोंमें रहनेवाली उनकी वीर सन्तानको स्वतन्त्रता और सत्यके लिये उनके द्वारा किए गए महान् उद्योग तथा त्याग और उनकी विजय-कीर्त्तिपर हार्दिक बधाई देते हैं। यदि इङ्गलैण्ड युद्धमें सम्मिलित न हुआ होता, और यदि उसने बेल्जियमकी तरह अपनी सम्पूर्ण शक्ति युद्धमें न लगा दी होती तो फ़्रान्सको कभीका युद्ध बन्द कर देना पड़ता और जर्मनीकी महत्त्वाकाङ्क्षा पूरी होती। इङ्गलैण्डका आत्मोत्सर्ग बहुत अधिक है, किन्तु उसकी जो कीर्त्ति फैली है वह और भी अधिक है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप भी फ़्रान्सके उन वीर लोगोंको हार्दिक बधाई देना चाहते हैं, जिन्होंने स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्वके भावसे अपने महान् देशकी रक्षाके लिये अपरिमित कठिनाइयोंसे युद्धका वीरतासे सामना कर अमर गौरव प्राप्त किया है। हम हार्दिक सहानुभूति तथा अत्यन्त विस्मयके साथ उनके युद्धको देखते रहे, और हमारे लिये यह विशेष सन्तोष और गौरवकी बात है कि भारतीय सेना ठीक समयपर उनकी सहायताके लिये पहुँच गई और सन् १९१४-१५ ई० में उनको, उनकी सभ्यता तथा मित्रदलके पक्षको बचानेमें समर्थ हो सकी। अन्तमें हम अमेरिकाकी महान् जनताको धन्यवाद और बधाई देते हैं जिन्होंने धन और जनकी अपरिमित हानि उठाकर निःस्वार्थ भावसे युद्धमें प्रवेश किया, जो कि उस युद्धकी धर्मिकताका सबसे बड़ा प्रमाद था जिसके लिये मित्रदल लड़ रहे थे, और स्वतन्त्रता तथा न्यायकी सबसे बड़ी विजय थी। अमेरिकाने अपने योग्य

और दृढ़ राष्ट्रपतिके निर्देशमें जर्मन-फ़ौजी दलको नष्ट करनेमें जो निर्णयात्मक भाग लिया है, उसके लिये मानव-समाज उसका चिर-ऋणी रहेगा। वहाँके राष्ट्रपतिके शब्दोंमें 'हम सबको ईश्वरका अत्यन्त कृतज्ञ होना चाहिए कि अमेरिका ठीक उस समय समरमें कूद पड़ा, जिस समय सारे संसारका भाग्य एक तराजूमें तुल रहा था और उसने अपनी सारी नवीन शक्ति स्वतन्त्रताकी ओर लगा दी, जिससे इस युद्धके अन्तमें स्वतन्त्रताके पक्षमें सफलता-पूर्वक विजय मिली।' यह हमारा सौभाग्य है और हमारे लिये गर्वकी बात है कि हम उन महान् राष्ट्रोंके पास बधाई भेजें, क्योंकि हमारे सिपाही भी उसी पक्षको लेकर फ़्रान्स और फ़्लैण्डर्स (जर्मनी) के युद्ध-स्थलोंमें लड़े थे; और इससे उनके और हमारे बीचमें एक न्यायपूर्ण पक्षके लिये ऐसी सहयोगिता उत्पन्न हो गई, जिसके लिये हमें पूर्ण आशा है कि भविष्यमें वह हमारी और उनकी स्थायी मित्रताका आधार होगी।

युद्धमें ईश्वरका हाथ

देवियो और सज्जनो!

मेरी समझमें इस युद्धके विकास और समाप्ति दोनों ही में ईश्वरका हाथ दिखलाई पड़ता है। संसार और विशेषकर योरोपियन देशोंको कुछ सुधार तथा परिवर्त्तनकी आवश्यकता थी। संसार लोलुपताकी ओर बहुत अधिक झुक गया था और आध्यात्मिक विचारोंसे पराङ्मुख हो गया था। उसने इस सिद्धान्तकी अवहेलना की थी कि धर्म ही से राष्ट्रका उत्थान होता है। उसका पुनर्जन्म होना था। योरोपकी दाम्भिक सभ्यताके होते हुए भी उसकी कुछ जातियाँ एक प्रकारकी अन्ताराष्ट्रीय अराजकता और अशान्तिमें थीं और उनके पारस्परिक राष्ट्रीय और अन्ताराष्ट्रीय सम्बन्ध-बलके ज़ोरसे चलते थे। वे धन और बलके लिये मदान्ध हो रही थीं, और वे उनको प्राप्त करनेके लिये निर्बल जातियों और राष्ट्रोंके अधिकारों तथा स्वतन्त्रताको पद-दलित करनेमें सङ्कोच नहीं करती थीं। गतकालमें स्पेन, आस्ट्रिया और फ़्रान्सने योरोपपर प्रभुत्त्व जमानेका उद्योग किया था। अब जर्मनीने उसका उद्योग किया। पन्द्रहवीं शताब्दीसे इङ्गलैण्डने किसी योरोपियन राज्यकी स्वतन्त्रतापर आघात नहीं किया था, किन्तु जब कभी कोई राष्ट्र अपने बलिष्ठ पड़ोसी राज्यसे धमकाया जाता, तब वह सदा उसकी सहायता करता था। किन्तु उसने भी एशिया और अफ़्रीकामें बिल्कुल भिन्न नीतिका अनुसरण किया है। अकेली अन्तिम आधी शताब्दीमें उसने मिस्र, सूडान, दक्षिणी अफ़्रीकाके प्रजातन्त्रों, ब्रह्मदेश तथा कितने ही छोटे-छोटे राज्योंको अपनेमें मिला लेनेके लिये युद्ध किए हैं। योरोपकी जातियोंमें माल खपाने और बस्तियोंपर कब्ज़ा करनेके लिये बड़े-बड़े झगड़े हुए हैं। फ़्रान्स और जर्मनीमें मुरक्कोके लिये, रूस और आस्ट्रियामें बालकानके लिये और जर्मनी तथा अन्य राष्ट्रोंमें तुर्कीके लिये बड़े बखेड़े हुए हैं। इस छोटी प्रतिद्वन्दिताके कारण योरोपीय राष्ट्रोंको निरन्तर युद्धका भय बना रहता था और उन्हें उसके लिये सदा तैयार रहना पड़ता था। पृथ्वी बड़ी-बड़ी सेनाओं और अस्त्रीकरणके भारसे पिसी जाती थी। सन्धियाँ और गुट-बन्दी बलसाम्यको दृष्टिमें रखकर स्थापित होती थीं। अन्ताराष्ट्रीयसम्बन्ध स्थापित करनेमें सैन्य-बल काम करता था। जो जाति किसी दूसरीपर हमला करना चाहती, तो वह निर्विघ्न अपना पाशविक बल उस दूसरी जातिसे बढ़ाकर कर सकती थी। इङ्गलैण्डने योरोपमें अधिक घटना-क्रमके कारण सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया था। वह इसको हर तरहसे बनाए रखना चाहता था। जर्मनी इङ्गलैण्डसे ईर्ष्या करने लगा और उसको इङ्गलैण्डसे आगे बढ़ जानेका घोर लालच हुआ। वह गत दशकोंतक लगातार जातीय अभ्युत्थानकी नीतिका अनुसरण करता रहा। उसने अपनी सेना और नौ-सेनाका सङ्गठन, आर्थिक और औद्योगिक अभ्युत्थान इस उद्देशसे किया कि वह

संसारमेँ सर्वप्रधान होनेके लिये लड़ेगा। उसने सारी जातिको अद्भुत रीतिसे सङ्गठित सेनाके रूपमेँ सुसज्जित कर दिया। यह कल्पना करना कठिन है कि कोई जाति सैन्य-बलद्वारा सब काम सम्पादन करनेके लिये अपनेको जर्मनोँसे अधिक अच्छा कैसे तैयार कर सकती है। उसने जान-बूझकर उस समय संसारकी शान्तिको भङ्ग कर दिया, जब उसने सोचा कि यह मौक़ा मेरे लिये सबसे अधिक लाभका है। उसकी सेनाएँ उसके दुराग्रही मित्रराष्ट्रोँकी सेनाओँके आ जानेसे और भी अधिक शक्तिवान हो गईं। दूसरी ओर मित्र-बलकी सेनाएँ थीँ, अँग्रेज़, फ़्रेँच, रूसी, इटालियन, उपनिवेशोँके लोग और भारतीय आदि इस युद्धमेँ जितनी शक्तिशालिनी सेनाएँ वास्तवमेँ एकत्र हुई थीँ, उनसे अधिक शक्तिसम्पन्न सेनाओँकी कल्पना करना भी कठिन है। यदि राजनीतिक चालोँके कारण रूसकी ओरसे धोखा न हुआ होता तो कदाचित् मित्रदल जल्दी ही जीत जाता। किन्तु उस तरह युद्धका अभिप्राय सिद्ध न हुआ होता। अतएव अत्यन्त भीषणताके साथ युद्ध होता रहा। युद्ध अन्त होनेके कुछ मास पहले यह मालूम होने लगा था कि मानोँ जर्मनीकी सफलता होनेवाली है। फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड तथा अन्य मित्र-राष्ट्रोँके हृदय इस भयसे काँपने लगे कि मित्रदलके संयुक्त प्रयत्नोँ तथा उन सब बलिदानोँके होते हुए भी, जो वे चार सालसे कर रहे थे, अन्तमेँ जर्मन लोग ही अपने उद्देशमेँ सफल होनेवाले हैँ। किन्तु वे सफल न हो पाए, क्योँकि वे अधर्ममेँ थे। ईश्वरने यह निर्धारित कर रक्खा था कि मित्रदलकी ही विजय होगी, क्योँकि वह सत्यके पक्षमेँ था। किन्तु ईश्वरने अभी मित्र-राष्ट्रोँके प्रयत्नोँको सफल न किया था, क्योँकि उन्हेँ अभी यह सीखना बाक़ी था कि कर्मका नियम भङ्ग नहीँ हो सकता।

मित्र-दलोँमेँसे बहुतसे पहले भी इस हेय सिद्धान्त-पर काम कर चुके थे कि "जिसकी लाठी उसकी भैँस" और कदाचित् सब जातियाँ अन्य राष्ट्रोँके साथ इस सिद्धान्तके अनुसार काम करनेको तैयार नहीँ थीँ कि 'सत्यमेव जयते'। युद्धकी तीसरी वर्षगाँठके समय ईश्वरसे प्रार्थना करते हुए कलकत्तेके उदार हृदय लॉर्ड बिशपने कहा था कि कुछ आकस्मिक घटनाओँके कारण मित्र-दलको अभीतक विजय नहीँ प्राप्त हुई। इस समयमेँ ईश्वर हमारी जाति और साम्राज्यके निवासियोँसे यही कह रहा है—अपनेको सुधारो, अपनेको सुधारो। तभी हम तुमको विजयी करेँगे। "अपनेको सुधारो" ये शब्द समस्त जाति और जातिके प्रत्येक मनुष्यको सम्बोधन कर कहे गए थे। अमेरिका हम लोगोँमेँ सम्मिलित हो गया और उसका शामिल होना निश्चित रूपसे युद्ध-कालको बढ़ानेका कारण हुआ। इस प्रकारसे हमारी जातिको अपनेको सुधारनेका एक बार फिर अवसर मिला। वही ईश्वरीय प्रेरणा इस समय भी बार-बार पुकारकर कह रही है—सुधारो, अपनेको सुधारो, तभी तुम्हेँ विजय प्राप्त होगी।

ईश्वरकी यह स्पष्ट इच्छा केवल इतनी ही न थी कि यह युद्ध केवल इस सिद्धान्तको फिरसे स्थापित कर दे कि सत्यकी विजय ईश्वरीय नियम है, किन्तु हरि-इच्छा यह भी थी कि अन्ताराष्ट्रीय अशान्तिका अन्त होकर उसके स्थानपर संसारकी सब जातियाँ यह स्थायी नैतिक नियम स्थापित कर लेँ कि भविष्यमेँ उनके आपसके और दुनियाके बाक़ी राष्ट्रोँके साथ न्याय और सत्यका व्यवहार हो। इस उद्देशकी पूर्त्तिके लिये यह आवश्यक था कि यह युद्ध तबतक न बन्द हो जबतक कि अमेरिका उसमेँ सम्मिलित न हो, और जबतक कि वे जातियाँ उस सन्धि-प्रस्तावोँको स्वीकार न कर लेँ, जिनपर संसारकी चिर-स्थायिनी शान्ति अवलम्बित है। यह मनगढ़न्त बात नहीँ है। अतएव युद्ध उसी समय बन्द हो गया, जिस समय अमेरिका सङ्कटके समय मित्र-दलकी सहायता तथा जर्मनीके विरुद्ध पल्ला भारी करनेके लिये पहुँच गया।

राष्ट्रपति विल्सनने यह स्पष्ट कह दिया है कि अमेरिका विजय प्राप्त करने ही के लिये नहीँ आया अपितु, इसलिये आया है कि वह उत्तरदायित्व-हीन राजाओँके उत्पात तथा फ़ौजी गुट्टोँकी अभिलाषाओँको रोककर शान्ति स्थापन करनेमेँ साधन-भूत हो। वह इसलिये आगे वढ़ा है कि संसारको नया युगान्तर और न्याय व सत्यकी नूतन नींव स्थापित करनेके लिये तैयार करे। अमेरिकाके कर्णधारने कहा है कि—"हम संसारको व्यवस्था और सङ्घटन देनेके लिये आए हैँ। हम अपने ही हितोँके लिये शान्ति-स्थापनकी इच्छा नहीँ रखते, किन्तु हम अन्य राष्ट्रोँ और जातियोँकी भी उतनी ही सेवा करनेको तैयार हैँ जितनी वे हमेँ करने देँगे। हम घरेलू कुशलताके नहीँ, हम अन्ताराष्ट्रीय न्यायके अभिलाषी हैँ।" उन्होँने शान्तिकी योजनाका ढाँचा विगत जनवरीकी नवीँ तारीख़को वना दिया था। मित्रराष्ट्रोँने उसको तत्काल पसन्द कर लिया था, और शत्रुओँने जव देखा कि अव उनका कोई चारा नहीँ है तव उन्हेँ भी लाचार होकर उसे स्वीकार करना पड़ा और अव वे पेरिसकी सन्धि-परिषद्मेँ शान्तिकी स्थापना देनेमेँ सहायता देनेके लिये उपस्थित हैँ। जैसा कि राष्ट्रपतिने हाल ही मेँ कहा कि शान्ति-व्यवस्थाके लिये जो मामले अव तय होनेवाले हैँ, वे हमारे तथा सव संसारके लिये अवर्चनीय महत्त्वके हैँ। हमारी जल और स्थल-सेनाके वीर सैनिक जान-वूझकर अपने देशके आदर्शोँके लिये लड़े हैँ। मैँने उन आदर्शोँको स्पष्ट करनेका उद्योग किया है और उनको अन्य कुशल राजनीतिज्ञोँने अपने विचारोँ और उद्देशका सार मान लिया है। चूँकि सम्मिलित राष्ट्रोँने उसे मान लिया है, इसलिये उनके प्रति मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैँ भरसक इस वातका प्रयत्न करूँ कि उनके ठीक-ठीक अर्थ समझे जायँ और उनकी पूर्त्तिमेँ कोई वात रह न जाय। इस समय मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैँ इस वातको पूर्ण रीतिसे देखूँ कि जिस उद्देश-पूर्त्तिके लिये उन्होँने अपना जीवन और रक्त वहाया, उसकी महत्ता संसारमेँ स्वीकृत हो।

अमेरिकाके आदर्श

वे आदर्श क्या हैँ, जिनके लिये अमेरिका लड़ा है? विगत ९ जनवरीको राष्ट्रपति विल्सनने अपने चिर-स्मरणीय व्याख्यानमेँ, जो उन्होँने अमेरिकाकी कांग्रेसमेँ दिया था, उनको वहुत ही स्पष्ट शब्दोँमेँ वतला दिया है। उनका स्मरण कर लेना आवश्यक है। उन्होँने कहा था—"लूटमार, राज्य-विस्तार और गुप्त सन्धियोँके दिन गए। हम युद्धमेँ इसलिये सम्मिलित हुए कि हमारे उस अधिकारपर आघात किया गया, जिससे हमारा गहरा सम्वन्ध था, और जिससे हमारा जीवन तवतकके लिये असम्भव हो गया जवतक कि वे ठीक न कर दिए जायँ और हमेँ इस वातका भरोसा न हो जाय कि वे फिर न दुहराए जायँगे। अतएव हम यह चाहते हैँ कि यह संसार निरापद और सवके रहने योग्य कर दिया जाय। *"वास्तवमेँ इस स्वार्थमेँ संसारके सव मनुष्योँका हित है। अतएव संसारकी शान्तिका कार्य्य-क्रम हमारा कार्य्य-क्रम है।"* इसके वाद उन्होँने अपनी प्रसिद्ध चौदह शर्त्तेँ गिनाईं, जो ये थीँ:—

(१) विना किसी गुप्त चालके खुल्लम-खुल्ला तौरसे शान्तिका स्पष्ट शर्त्त-नामा।

(२) कुछ अन्ताराष्ट्रीय नियमोँको पालन करते हुए समुद्र मार्गोँका स्वतन्त्र उपयोग।

(३) जो शान्तिकी शर्त्तोँको स्वीकार करेँ और उनके स्थिर रखनेका प्रण करेँ, उन लोगोँपरसे कुल आर्थिक वन्धनोँका हटाना तथा उनको व्यापारिक स्वतन्त्रताकी एक समान सुविधा देना।

(४) राष्ट्रीय निरस्त्रीकरण घरेलू आवश्यकताको छोड़कर जितना कम हो सके उतना कम कर देना।

(५) स्वतन्त्र, स्पष्ट तथा विल्कुल पक्षपातहीन रूपसे कुल उपनिवेशोँके स्वत्त्वोँका फ़ैसला। यह फ़ैसला इस सिद्धान्तपर पूर्ण ध्यान रखकर किया जाय कि वहाँके निवासियोँके हितोँ तथा स्वत्वोँपर भी उतना ही विचार किया जायगा जितना वहाँकी सरकारके अधिकारोँपर, जिसका भाग्य-निर्णय करना है।

(६) रूसी ज़मीनको कुल ख़ाली करके लौटा देना, और उसे इस बातका बिल्कुल स्वतन्त्र मौक़ा देना कि वह अपनी शासन-प्रणाली और नीतिका अपने-आप निश्चय करे।

(७) कुल बेल्जियमका ख़ाली कराना और उसके कुल स्वत्त्वोंका उसे वापिस दिलाना।

(८) फ़्रान्सकी अधिकृत कुल ज़मीनका शत्रुद्वारा ख़ाली किया जाना तथा अलसेस-लोरेनका लौटा देना।

(९) स्पष्ट जातीय भिन्नताके सिद्धान्तके अनुसार इटलीकी सीमा निश्चय करना।

(१०) औस्ट्रिया हङ्गरीको स्वतन्त्र विकासका अवसर देना।

(११) बालकन राज्योंके झगड़ोंका आपसके समझौतोंसे तय कराना और उनकी राजनीतिक, आर्थिक तथा सीमा-सम्बन्धी स्थिरताकी अन्ताराष्ट्रीय गारण्टी।

(१२) ओटोमन साम्राज्यके तुर्की भागपर तुर्कोंका आधिपत्य दिलाना और तुर्कीके अधीन अन्य जातियोंको अपने-आप उन्नति करनेका मौक़ा देना तथा उनके जीवनके निरापद होनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता देना।

(१३) एक स्वतन्त्र पोलैण्डका राज्य स्थापित करना जिसकी राजनीतिक, आर्थिक और सीमा-सम्बन्धी अखण्डताके लिये सारे राष्ट्रोंकी ज़िम्मेदारी हो।

(१४) राष्ट्रोंकी एक साधारण समिति बनाना, जो विशेष शर्तोंपर स्थापित हो, और जिसका उद्देश्य यह हो कि वह एक समान सब छोटे-बड़े राष्ट्रोंकी राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा सीमाकी अखण्डताकी रक्षा करे।

राष्ट्रपति विल्सनने कांग्रेसमें जो अपना सन्देश समाप्त किया वह सङ्क्षेपमें इस प्रकार था :—"मैंने जो कार्य्यक्रम पेश किया है, उसमें एक स्पष्ट उद्देश निहित है। *वह सिद्धान्त सब लोगों और सब जातियोंके लिये न्याय, समता और स्वतन्त्रता तथा शान्ति-रक्षाके लिये एक दूसरेके साथ रहनेका समान अधिकार है।* जबतक यह सिद्धान्त उसका आधार न बनाया जायगा तबतक अन्ताराष्ट्रीय न्यायकी कोई भी भीत नहीं खड़ी हो सकती। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके निवासी इसके सिवाय दूसरे सिद्धान्तपर नहीं चल सकते और इस सिद्धान्तकी रक्षाके लिये वे अपना जीवन, अपना सम्मान, अपना सर्वस्व, निछावर करनेको तैयार हैं।"

ये उदार उद्गार अमेरिकाकी महान् जातिके उपयुक्त ही हैं और मुझे विश्वास है कि इन शब्दोंने न्याय और स्वतन्त्रताके सब प्रेमियोंको कृतज्ञता और उज्ज्वल भविष्यकी आशासे भर दिया है। आजके पहले भी अन्ताराष्ट्रीय झगड़ोंको पञ्चायतद्वारा तय करनेके लिये ऐसे प्रयत्न अनेक बार हो चुके हैं। युद्धोंको रोकने और जातियोंमें शान्ति बनाए रखनेके लिये संस्थाओंका भी सङ्गठन हो चुका है, किन्तु इतिहाससे पता लगता है कि आजतक संसारकी जातियोंमें न्याय और सदाचारको स्थापित करने और उसकी नींव डालनेका ऐसा महान् प्रयत्न नहीं हुआ और न ऐसी महान् संसार-व्यापी संस्थाको सङ्गठित करनेका आयोजन ही हुआ। इसके लिये महायुद्धकी आवश्यकता थी। यह बात बड़े आनन्द और धन्यवादका विषय है कि इङ्गलैण्ड, फ्रांस और अमेरिका जैसे तीन स्वतन्त्रता-प्रिय राष्ट्रोंने इन प्रस्तावोंको कार्य्यरूपमें परिणत करनेका विचार कर लिया है और जर्मनी, रूस तथा अन्य राष्ट्रोंने भी इसे स्वीकार कर लिया है। यह भी सन्तोष और प्रसन्नताकी बात है। यदि ये मन्तव्य कार्य्यमें परिणत हो गए, जैसा कि हमें पूरा विश्वास है, और जिसके लिये हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं, तो उनसे नवीन शान्ति युगका आरम्भ होगा और इससे राष्ट्रोंमें धार्मिक शासन स्थापित हो जायगा। यदि धन और जनके अपरिमित बलिदानसे यह नया नैतिक युग स्थापित हो जाय, जैसा कि इन मन्तव्योंसे प्रकट होता है, तो समझना चाहिए कि समस्त राष्ट्रोंके आत्मोत्सर्ग और धन-जनके नाशका फल अच्छा निकला। मेरे देशवासी, जो महान् धार्मिक सभ्यताके उत्तराधिकारी हैं, मुझे विश्वास है कि बहुत ही प्रसन्नतासे इन

प्रस्तावोंका स्वागत करेंगे और उनके समर्थनके लिये सब कुछ आत्मोत्सर्ग करनेके लिये तैयार हो जायँगे। मैं यह प्रस्ताव करता हूँ कि कुल मानव-समाजकी आबादीका पाँचवा भाग और इस महान् तथा प्राचीन देशके प्रतिनिधिकी हैसियतसे हमको उन लोगोंके पास, जो पेरिसमें इस पवित्र कार्य्यमें लगे हैं, यह सादर शुभ संवाद भेजना चाहिए कि हम उनके इस उदार आयोजनकी सफलतामें परमात्मासे हार्दिक प्रार्थना करते हैं। पेरिसमें हम उन्हें इस बातका भी विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हमारे लाखों नवयुवक प्रसन्नता तथा कृतज्ञतापूर्वक उस अन्ताराष्ट्रीय संस्थामें ईश्वर तथा मनुष्यत्वके लिये सिपाही वननेको तैयार हैं, जो मन्तव्यमें कही हुई 'लीग' (समिति) के समर्थनमें बनाई जाय।

भारतवर्ष और सन्धि-परिषद्

देवियो और सज्जनो!

आपको यह याद होगा कि प्रधान मन्त्री लौयड जौर्ज महोदयने हमारी युद्धकी सहायताके सम्बन्धमें वचन दिया था कि सन्धि-परिषद्के समय हमारी माँगें न भुलाई जायँगी। इसके लिये हम वृटिश मन्त्रि-मण्डल और प्रधान मन्त्रीके कृतज्ञ हैं कि उन्होंने सन्धि-परिषद्में भारतके प्रतिनिधियोंके न्यायपूर्ण स्वत्त्वको स्वीकार लिया। हम भारत-सरकारको भी धन्यवाद देते हैं कि उसने हमारे प्रख्यात देशवासी सर एस्० पी० सिनहाको अपना प्रतिनिधि वनाकर वहाँ भेजा है। किन्तु भारत-सरकारने विना सर्वसाधारणकी राय लिये ही उनकी नियुक्ति की है। चूँकि उनकी नियुक्ति इस प्रकार हुई है, अतएव वे अवश्य भारत-सरकारके विचारोंका ही समर्थन करेंगे। यह सम्भव है कि वे विचार भारतीय लोकमतके अनुसार हों और यह भी सम्भव है कि वे विचार भारतीय लोकमतके विरुद्ध हों। हम नहीं जानते कि भारत-सरकारने सर एस्० पी० सिनहाको किन शर्त्तोंपर नियुक्त किया है या उसने उन्हें क्या आदेश दिए हैं? किन्तु यह वात नहीं भुलाई जा सकती कि दुर्भाग्यवश भारत-सरकार भारतीय जनताके सम्मुख उत्तरदायी नहीं है और वहुधा उनके और जनताके वीच वड़ा मतभेद रहता है। ऐसी अवस्थामें मेरे आदरणीय मित्र सर एस्० पी० सिनहापर विना किसी प्रकारका आक्षेप किए कोई भी व्यक्ति यह कह सकता है कि यदि भारत-सरकार भारतीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक कौन्सिलोंके चुने हुए सदस्योंमेंसे एक ऐसे ग़ैर-सरकारी भारतवासीको चुननेके लिये कहती, जो जनताकी आवश्यकताओंको सन्धि-परिषद्में कहता, तो यह परिषद्के उद्देश्योंके अधिक अनुकूल होता। और जव उसे यह ज्ञात ही था कि इस सप्ताहमें कांग्रेस और मुस्लिम लीगके अधिवेशन होनेवाले हैं तो वह उनसे भी अपने प्रतिनिधि चुनकर सन्धि-परिषद्में भेजनेके लिये कहती। ऐसी दशामें जव कि केनाडासे सन्धि-परिषद्में प्रतिनिधि जा रहे हैं, भारतवर्षकी ओरसे एकसे अधिक प्रतिनिधि भेजनेका अनुरोध करना अनुचित न समझा जाता। समस्त देशकी यह राय है कि इस प्रकारका कुछ कार्य्य अवश्य होना चाहिए। हम ऐसा इसलिये नहीं चाहते कि शायद सन्धि-परिषद्में भारतीय वैध सुधारोंपर चर्चा होगी, हम सव यह समझते हैं कि भारतसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रस्तावित वैध सुधारोंपर वहस वृटिश पार्लियामेण्टमें ही होगी। किन्तु ऐसा इस विश्वाससे कहा गया है कि कुछ सिद्धान्त, जिनपर सन्धि-परिषद्में विचार होगा और जो प्रस्ताव पास किए जायँगे, उनका असर हमारे देशपर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपसे पड़ेगा। यह वात निश्चय है। यदि ऐसा न होता तो "भारतीय आवश्यकताओं" के सम्बन्धमें सन्धि-परिषद्में एक भारतीय प्रतिनिधि भेजनेका अर्थ ही क्या था? मुझे हर्ष है कि उन भारतीय राजागणके विचारोंको प्रकट करनेके लिये हिज़ हाइनेस् महाराजा वीकानेर वहाँ उपस्थित रहेंगे, जिनकी दृढ़ राजभक्ति इस युद्धमें दी गई उनकी

धन-जनकी उदार सहायतासे कई गुनी अधिक मूल्यवान् है। किन्तु यह खेदका विषय रहेगा कि बृटिश-भारतका इस महान् परिषद्में जनताद्वारा निर्वाचित और सरकारद्वारा नियुक्त कोई प्रतिनिधि न होगा।

भारतकी स्थिति

इस समय भारतकी स्थिति डाँवाडोल और शोचनीय है। भारतके अधिवासी हिन्दू, मुसलमान, पारसी और इसाई सभी महान् और प्राचीन सभ्यताके उत्तराधिकारी हैं। लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले सारे भारतमें भारत-वासियोंका शासन था। उस समय भारत उस अवनति और आपसकी फूटका शिकार हो रहा था, जो किसी भी दूसरे राष्ट्रके इतिहासमें अज्ञात नहीं हैं। घटनाओंके असाधारण संयोगसे, जिनकी उत्पत्ति उस समयकी चारों ओर फैली हुई अवस्थाओंमेंसे हुई थी, भारत उन समुद्रपार छः हज़ार मील दूर रहनेवाले मनुष्योंके शासनाधिकारमें आया, जो जाति, धर्म और सभ्यतामें भारत-वासियोंसे बिल्कुल ही भिन्न हैं। जैसा कि प्रायः कहा जाता है, वास्तवमें भारत अंग्रेज़ोंद्वारा कभी लड़ाईमें जीता (वास्तविक अर्थमें) नहीं गया। कुछ ऐसी ही घटनाओंसे भारतीय सिपाहियों और देशी राजाओंकी सहायतासे भारतमें अंग्रेज़ी शासनका प्राधान्य हुआ है। जनताने उनका समर्थन और स्वागत इसलिये किया कि उन्होंने सुव्यवस्था और शान्ति स्थापित करके न्याय और सुशासन प्रचलित किया। भारतीय बृटिश शासनके आरम्भिक कालमें, बृटिश राजनीतिज्ञ इसे अस्थायी स्वरूपका समझते थे। उन्होंने स्पष्ट रूपसे कहा था कि भारतका हमें शासन इस तरहसे करना चाहिए, जिसमें उसे अपना शासन-प्रबन्ध अपने-आप करनेमें सहायता मिले और वह अपनी इच्छानुसार अपना शासन करनेमें समर्थ हो। परन्तु जैसे-जैसे समय बीता और उनकी स्वार्थपरता बढ़ती गई और प्रबल हो गई वैसा ही भारतमें बृटिश नीतिका रुख़ बदलता गया। धीरे-धीरे शासन ऐसे ढर्रेपर होने लगा, जिसमें एक राष्ट्रीयताकी उन्नति रुक जावे और वे अधिकाधिक दासताके बन्धनमें जकड़ जायँ। भारतवासियोंने इसको समझ लिया और इसका विरोध किया। बहुतसे उदार-हृदय अङ्गरेज़ोंने भी इसकी निन्दा की। विदेशी समालोचकोंने भी इसे देखा। एक सुयोग्य फ़्रान्सीसी, एम्० शैलीने, कुछ वर्ष पहलेकी प्रकाशित अपनी पुस्तकमें लिखा है:—यदि इङ्गलैण्डने इस आदर्शका पालन किया होता कि "भारत भारत-वासियोंके लिये है" यदि उसने एल्फ़िन्स्टन और मैल्कोमके विचारोंका अनुसरण किया होता कि उसका भारत-शासन अस्थायी है, तो वह बिना किसी असमञ्जसके राष्ट्रीय दलको धीरे-धीरे ऐसी सुविधाएँ दे सकता है, जिससे वह कुछ कालमें भारत-वासियोंको पूर्ण स्वराज्य दे सके। किन्तु अब उसका यह ध्येय नहीं रहा। अर्द्ध शताब्दीसे अधिक कालसे भारतवासी और उदार हृदय अङ्गरेज़ इङ्गलैण्डको यह नीति ग्रहण करनेके लिये बराबर अनुरोध कर रहे हैं कि भारत, भारत-वासियोंके लिये है; भारतीय शासनको हिन्दुस्तानी स्वरूप दिया जाय और भारत-वासियोंको अपने शासनका स्वयं प्रबन्ध करनेके लिये अधिकार और अवसर दिया जाय। युद्धसे तीस वर्ष पहले भारतकी राष्ट्रीय महासभाका जन्म हुआ और यह अपने जन्म ही से यह प्रार्थना करती आई है कि लोगोंको उचित स्वायत्त-शासनका अधिकार दिया जाय। सन् १८८६ ई० में कांग्रेसने सुधारोंका जो मन्सौदा तैयार किया था, उससे ऐसे अधिकार मिलते, परन्तु वे अबतक हमें नहीं मिले हैं। सन् १९०८ ई० से हम लोगोंने विशेष रूपसे कहा है कि हम लोग उपनिवेशिक ढङ्गका स्वायत्त-शासन चाहते हैं।

मैंने इन बातोंपर इसलिये ध्यान आकृष्ट किया है कि जिसमें यह स्मरण रहे कि हम लोग युद्धके बहुत

पहलेसे स्वायत्त-शासनका अपना स्वत्त्व स्वीकार करानेके निमित्त ज़ोर दे रहे हैं। युद्धकी घटना और उसके परिणामस्वरूप पहले-पहल ही हम लोग स्वायत्त-शासन नहीं माँग रहे हैं। यदि युद्ध न भी होता तो भी हमारा स्वत्त्व केवल अधिकार और साधारण न्याय समझकर हमें इससे वहुत पहले ही मिल जाना चाहिए था। इसमें सन्देह नहीं कि युद्धका आगमन हमें सहायक हुआ। हम लोग इसमें जो सहायता देनेमें समर्थ हुए हैं, उससे अंग्रेज़ राजनीतिज्ञोंके दृष्टिकोणमें हितकारक परिवर्त्तन हुआ है। दिसम्बर, सन् १९१६ ई० में हमारी जो महान् राष्ट्रीय संस्थाओं—कांग्रेस और मुस्लिम लीगने, जो विचारवान् भारतवासियोंके प्रतिनिधियोंकी संस्थाएँ हैं—उदार और विचारपूर्ण सुधारोंका एक सम्मिलित मन्सौदा पेश किया था, जिससे लोगोंको स्वायत्त-शासनका अच्छा अधिकार मिलता था। सबको मालूम ही है कि भारत-सरकारसे इसका उत्तर इतना ख़राव और अनुपयुक्त मिला कि औस्टेन चेम्बरलेन महोदयने यह मन्सौदा वापिस कर दिया और एक ऐसी उदार योजना बनानेका प्रस्ताव किया है, जिससे लोगोंको कुछ अधिकार प्राप्त हों। इसी बीचमें कांग्रेस-लीग-स्कीमके समर्थनमें आन्दोलन बढ़ने लगा। भारतकी कार्य्यकारिणी—भारतीय और प्रान्तीय सरकारोंने साधारणतः दृढ़तासे इन प्रस्तावोंका विरोध किया। उनमेंसे कुछने नज़रबन्दी करके और भारत-रक्षा-क़ानूनके प्रयोग करके या अन्य प्रकारसे आन्दोलनको दबानेकी चेष्टा करके अपना विरोध प्रकट किया और व्यर्थमें लोगोंके विचारोंमें उत्तेजना उत्पन्न की। इसके सिवाय, भारतवासियोंको छोड़कर कुछ ऐसे अंग्रेज़ सज्जन और महिलाएँ भी थीं, जिनका कथन था कि स्वायत्त-शासनकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेमें विलम्ब न करना चाहिए। उन उदार अंग्रेज़ सज्जन कलकत्तेके लौर्ड विशपने अपनी प्रार्थनामें कहा था, जिसके विषयमें पहले कहा जा चुका है, कि—"हम लोगोंको अपने उपनिवेशोंकी ओर युद्धके बाद नये सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे देखना चाहिए। भारतीय बृटिश शासनका ध्येय भारतवासियोंके स्वाभाविक झुकावके अनुसार उन्हें स्वयं उन्नत होनेका अवसर देना चाहिए। इस उद्देशकी पूर्त्तिके लिये शासकोंका ध्येय भारतवासियोंको स्वायत्त-शासन-शिक्षा देना होना चाहिए। यदि इस देशके प्रति उन सिद्धान्तोंका प्रयोग करनेसे हम मुँह मोड़ लें तो परमेश्वरके सामने हमारा यह कथन कि, हमारा पक्ष स्वाधीनताका पक्ष है, कपट प्रमाणित होगा।" इस अवस्थामें सरकारी इच्छाको प्रकट करना अत्यन्त आवश्यक समझा गया। ऐसी ही परिस्थितिमें भारत-मन्त्रीकी २० अगस्त, सन् १९१७ ई० वाली विख्यात घोषणा की गई, जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूपसे कहा कि सम्राट्की सरकारकी नीति भारतमें स्वायत्त-शासनकी संस्थाओंका इस दृष्टिसे क्रमिक विकास करना है कि जिसमें साम्राज्यके अन्तर्गत अन्य उपनिवेशोंकी तरह भारतमें भी उत्तरदायित्वपूर्ण शासनकी प्रतिष्ठा हो और यथा सम्भव उसकी पूर्त्तिके लिये शीघ्र ही वास्तविक सुधार दिए जायँगे।

यह व्याख्यान बड़े महत्त्वका था किन्तु अनावश्यक ही शङ्कापूर्ण और निराशाजनक था। हम उन सब साङ्केतिक शर्तोंको पसन्द नहीं करते, जिनसे वह भरा हुआ है। किन्तु हम उसके असली भावपर ध्यान देते थे। उसमें यह प्रतिज्ञा की गई थी कि जितनी जल्दी हो सकेगा उतनी जल्दी भारतको स्वायत्त-शासन देनेकी ओर क़दम बढ़ाया जायगा और सम्राट्की सरकारने यह निश्चय किया था कि वाइसरायके निमन्त्रणके अनुसार भारत-सचिव शीघ्र ही भारत जायँगे, यह जाननेके लिये कि इस विषयमें प्रमुख तथा अन्य संस्थाओंके प्रतिनिधियों की राय लेनेके लिये क्या करना चाहिए। उसमें यह भी प्रतिज्ञा की गई थी कि उन प्रस्तावोंपर विचार और बहस करनेका जनताको पूरा मौक़ा दिया जायगा, जो समयानुसार पार्लियामेण्टमें पेश किए जायँगे। यद्यपि बहुतसी शर्तोंके

कारण वह असन्तोषजनक था तथापि उस समयकी अवस्थाके अनुसार, हमने कृतज्ञता और आशाके साथ उसको स्वीकार कर लिया। श्रीमान् मौण्टेगू प्रसिद्ध व्यक्तियोंके डेपुटेशनके साथ भारत आए। २० अगस्तकी घोषणाको अपना आधार मानकर उन्होंने तथा लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने उन प्रस्तावोंका विस्तार किया, जो उसमें दी हुई नीतिको काममें लानेके लिये उन्होंने उचित समझे। उस सङ्कुचित घोषणाने स्वभावतः इन प्रस्तावोंके तैयार करनेमें बाधा पहुँचाई। इन प्रस्तावोंको सर्वसाधारणके सामने आए कई महीने हो गए। विविध संस्थाओंने विविध प्रकारसे इनकी समालोचना की है। इनके प्रथम प्रकाशनपर हमारे कुछ प्रमुख नेताओंने इनका हृदयसे स्वागत किया, अन्यने उनको असन्तोषजनक एवं निराशजनक बतलाया और कुछने इनको बिल्कुल अस्वीकार करनेके लिये ज़ोर दिया। कांग्रेस-लीग-स्कीमका, जो देशके सार्वजनिक नेताओंकी सर्वसम्मतिसे तैयार की गई थी, यह उद्देश था कि प्रान्तीय सरकारके तथा कुछको छोड़ केन्द्रीय सरकारके भी अधिकार जनताके प्रतिनिधियोंको दे दिए जायँ। सरकारी स्कीमने यह प्रस्ताव किया कि प्रान्तीय शासनमें कुछ अधिकार दे दिए जायँ और केन्द्रीय-सरकारको ज़रा भी नहीं। अतएव सरकारी प्रस्ताव कांग्रेस-लीग-स्कीमसे बिल्कुल ही तुच्छ साबित हुए। इसलिये वे बहुत थोड़े प्रायः समझ गए, और यद्यपि यह स्वीकार किया गया कि इन प्रस्तावोंमें कहीं-कहीं वर्त्तमान अवस्थाकी अपेक्षा कुछ सुधार किया गया है तद्यपि यह स्पष्ट था कि भारतका अधिकांश लोकमत इस स्कीमसे सन्तुष्ट नहीं था। प्रायः सभी लोगोंने इस मन्सौदेमें कुछ-न-कुछ महत्त्वपूर्ण हेरफेर करनेकी इच्छा प्रकट की, किन्तु मन्सौदेमें यह प्रस्ताव किया गया था किं प्रान्तीय शासनमें कुछ स्वायत्त अधिकार दिए जायँ। इस विषयमें यह कांग्रेस-लीग-स्कीमकी अपेक्षा २० अगस्तकी घोषणासे अधिक मेल खाता था और हममेंसे अधिकांशने यह अनुरोध किया कि सरकारी प्रस्ताव इस शर्त्तपर स्वीकार कर लिए जायँ कि उनमें आवश्यक फेर-बदल और सुधार कर दिए जायँगे। देशमें इस सम्मतिको अधिकांश लोगोंने स्वीकार किया।

जब बम्बईमें कांग्रेसका विशेष अधिवेशन हुआ तो कुछ लोगोंको यह भय था कि कांग्रेसमें उन लोगोंकी विजय होगी जो कांग्रेस-लीग-स्कीमके समर्थन और सरकारी मन्सौदेको अस्वीकार करनेके पक्षमें थे। किन्तु कांग्रेसकी कार्रवाईसे यह भय बिल्कुल दूर हो गया। यद्यपि कांग्रेसने इस बातको स्वीकार कर लिया कि श्रीमान् मौण्टेगू तथा लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने भारतमें उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रणालीका आरम्भ करनेके लिये सच्चा उद्योग किया है तथापि उसने यह स्पष्ट रूपसे कह दिया कि वह वर्त्तमान मन्सौदेको असन्तोषजनक और निराशाजनक समझती है। और चूँकि सरकारी मन्सौदा २० अगस्तकी घोषणासे अधिक मिलता था, इसलिये उसने यह निश्चय किया कि सरकारी मन्सौदेका ढाँचा स्वीकार कर लिया जाय और इस बातका अनुरोध किया जाय कि उस ढाँचेको बिना बदले, उसमें वे सुधार और परिवर्त्तन कर दिए जायँ, जो भारतमें स्वायत्त-शासन प्रतिष्ठित करनेके लिये अर्थात् प्रान्तीय तथा केन्द्रीय दोनोंमें अत्यन्त आवश्यक हैं। अखिल भारतीय मुस्लिम लीगने भी यही मत प्रकट किया है। दो मासके बाद हमारे उन प्रधान लोगोंने बम्बईमें एक कांफ्रेन्स की, जिन्होंने अधिकांश जनताकी अपेक्षा सुधारके मन्सौदेका अधिक स्वागत किया था। वे भी कांग्रेस तथा लीगसे इस बातमें सहमत हुए कि मन्सौदेमें कुछ अत्यन्त आवश्यक सुधार और परिवर्त्तन किए जायँ। इस प्रकार यह सूर्य्यके प्रकाशकी तरह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि विचारशील लोकमत इस विषयके आग्रह करनेमें एकमत है कि स्वायत्त-शासनका सिद्धान्त केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दोनों ही में व्यवहृत किया जाय और सुधारकी पहली किश्तमें केन्द्रीय सरकारके शासनको दो विभागोंमें

बाँट दिया जाय—एक तो संरक्षित और दूसरा हस्तान्तरित। इन विषयोंमें सभी सहमत हैं कि भारतको राजकोष-सम्बन्धी स्वतन्त्रता मिल जानी चाहिए और राजकीय परिषद्में आधे निर्वाचित सदस्य हों। इस बातमें भी वे एकमत हैं कि भारत-सरकारकी कार्य्यकारिणी सभामें आधे सदस्य भारतवासी होने चाहिए। इस बातका अनुरोध करनेमें भी वे एकमत हैं कि सार्वजनिक कौन्सिलोंको अपने सभापति और उप-सभापति चुननेका अधिकार दिया जाय। वे इस अनुरोधमें भी सहमत हैं कि निर्वाचित प्रतिनिधियोंका बहुमत अस्सी प्रतिशत हो, तथा संरक्षित-विभागोंकी संख्या जितना हो सके कम हो और हस्तान्तरित-विभाग अधिक हों। वे इसमें भी सर्वसम्मत हैं कि कार्य्यकारिणी सभाके सदस्यों और मन्त्रियोंका पद बिल्कुल बराबर रक्खा जाय। इस बातके माँगनेमें भी वे एकमत हैं कि न्याय और शासनके विभाग बिल्कुल ही अलग कर दिए जायँ। वे इस बातके लिये अनुरोध करते हैं कि भारतीय सिविल सर्विसमें पचास प्रतिशत और सम्राट्के फ़ौजी कमीशनमें पचीस प्रतिशत उच्च पद भारतवासियोंको आरम्भसे मिलने चाहिए और उनकी शिक्षाके लिये देश ही में उपयुक्त प्रबन्ध हो। वे सर्वसम्मतिसे इस बातके लिये अनुरोध करते हैं कि साधारण वैध अधिकारों—जैसे प्रेसकी स्वतन्त्रता, सार्वजनिक सभाओंकी स्वतन्त्रता, खुली अदालतमें मुकदमा होनेकी प्रणालीकी रक्षाकी जाय। यद्यपि इनको व्यवहारमें लानेके सम्बन्धमें लोगोंके ये मतभेद हैं। मैंने उन सब बातोंका ब्योरेवार कहनेका उद्योग नहीं किया। मेरा उद्देश यह दिखानेका है कि महत्त्वपूर्ण बातोंमें मतभेद होनेपर भी और उन सब दलबन्दियोंके रहते हुए भी, जिनका हाल हम नित्य सुना करते हैं—देशमें उन अत्यन्त आवश्यक परिवर्त्तनों तथा सुधारोंके बारेमें, जो मन्सौदेमें करना आवश्यक है, देशमें वास्तविक एकमत है। मैं आपके निश्चयको पहले ही बतलानेका उद्योग न करूँगा। यह काम आपका है कि आप इस विषयका निश्चय करें कि गत कांग्रेसके बाद जो घटनाएँ हुई हैं, उनपर ध्यान रखते हुए उन सब बातोंपर आप पुनर्विचार करेंगे या नहीं, जो विशेष कांग्रेसमें तय हुई थीं, अथवा अपने पुराने निश्चयको जैसे-का-तैसा ही रहने देंगे। उन विषयोंके परिणामोंकी गम्भीरता तथा महत्त्वका ध्यान करके, मैं उनपर पुनर्विचार करने तथा आपसे सलाह लेनेके लिये तैयार हूँ। पिछली कांग्रेसके बाद जो घटनाएँ हुई हैं उनके कारण मुझे यह कार्रवाई उपयुक्त मालूम पड़ती है। उदाहरणके लिये मैं एक बातको लेता हूँ। प्रान्तीय सरकार-सम्बन्धी प्रस्तावमें कांग्रेसने यद्यपि यह मान लिया था कि जनता पूर्ण स्वायत्त-शासनके योग्य है तथापि उसने यह भी कहा था कि सुधारोंका सुचारु रूपसे सञ्चालन होनेके लिये वह छः वर्षतक क़ानून, पुलीस और न्याय-विभाग (जेलोंको छोड़कर) कार्य्यकारिणी सरकारके हाथमें रहने देनेको तैयार है। उस प्रस्तावके पास होनेके बाद कर्त्तव्य-निर्धारिणी-समिति और मताधिकार-समिति दोनों ही ने कई प्रान्तोंमें दौरा किया है और दो बड़े प्रान्तों अर्थात् संयुक्तप्रान्त और बम्बईमें—इस बातका आग्रह किया गया है कि वहाँ पूर्ण प्रान्तीय शासनके अधिकार तत्काल दे दिए जायँ। संयुक्त-प्रान्तमें तो काँग्रेस-कमेटीद्वारा तथा बम्बईमें प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाके ग़ैर-सरकारी मेम्बरोंद्वारा यह आग्रह किया गया था। जिसमें श्रीयुत गोकुलदास पारीख सरीखे उदार आदरणीय सज्जन सम्मिलित हैं। हमको यह मान लेना चाहिए कि बङ्गाल और मद्रासवाले भी पूर्ण प्रान्तीय शासनके अधिकार माँगेंगे। इन कारणोंसे कांग्रेसके इस विषयके प्रस्तावोंपर पुनर्विचार किया जाना उपयुक्त ही है।

भारतवर्ष और युद्धके परिणाम

कांग्रेसके पिछले अधिवेशनके पश्चात् सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण जो घटना हुई है, वह इस युद्धकी शुभ समाप्ति है। भारतीय सुधार-योजनाके अन्तमें मिस्टर

मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने कहा है कि—"यदि हमें इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणामके प्रस्तावोंपर विचार करते समय किसी ऐसी बातका ध्यान है, जिससे हमारे उत्तरदायित्त्वका ज्ञान और भी बढ़ जाता है, तो वह इस बातका ध्यान है कि जिस समय हम इस योजनाकी रिपोर्टको समाप्त कर रहे हैं उस समय इससे भी महत्त्वपूर्ण परिणाम फ़्रान्सके युद्ध-स्थानमें निश्चित होनेको अभी बाक़ी है। और वहीं भारतके भविष्यका निर्णय होगा न कि दिल्ली या ह्वाइट हालमें। भारतके तथा सारे संसारके सौभाग्यसे वह निर्णय अब हो गया। उसका ज़िक्र प्रधान मन्त्रीके स्मरणीय उपर्युक्त वक्तव्यमें आ चुका है, जिसमें उन्होंने कहा था कि—"हे बृटेन निवासियो! तुम्हें इस बातकी खुशी मनानेका अधिकार है कि मित्रदल, उपनिवेशों तथा भारतकी गौरवपूर्ण विजय हुई है। संसारके इतिहासमें स्वतन्त्रताके लिये यह युद्धकी विजय सबसे अधिक आश्चर्य्य-जनक है।" इस बड़ी घटनाने हमारी अवस्थापर क्या प्रभाव डाला है?" इस गौरवपूर्ण विजयके फलमें उसे क्या भाग मिलेगा, जिसकी सहायता करनेका उसे सौभाग्य मिला था? इस सम्बन्धमें यह स्मरण कर बड़ा उत्साह होता है कि प्रसिद्ध प्रधान मन्त्री तथा बृटेनके अन्य प्रसिद्ध पुरुषोंने भारतकी युद्ध-सम्बन्धी सेवाओंकी किस उदारतासे प्रशंसा की है। उनके कुछ वक्तव्य मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ। सितम्बर, सन् १९१४ ई० में इङ्गलैण्डके तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री एस्क्विथने कहा था कि—"हम प्रशंसा और प्रेमके साथ भारतकी सहायताका स्वागत करते हैं, जो उसने उस साम्राज्यको दी है, जिसमें जाति या श्रेणीके भेदपर कोई ध्यान नहीं दिया जाता, और जहाँ सब समान रूपसे सम्राट्की प्रजा हैं और जहाँ सब कोई साम्राज्यके हितों तथा उसके भाग्यके समान रक्षक हैं। गम्भीर तथा हार्दिक कृतज्ञताके साथ उनका उस स्थानपर आकर सहयोग देनेके लिये हम उनका अभिनन्दन करते हैं, जहाँ वे एक झण्डेके नीचे बृटिश तथा उपनिवेशोंकी सेनाओंके साथ कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर लड़ रहे हैं। यह झण्डा उन सबके लिये उस एकताका चिह्न है, जिसको सारे संसारकी शक्ति भी छिन्न-भिन्न नहीं कर सकती।" श्री बोनर लौने कहा था कि,—"मैं समझता हूँ कि हम लोगोंको यह भली भाँति मालूम नहीं है कि इन भारतवासियोंने इन दिनोंतक हमारी कैसी सहायता की है, जो कि हमारे सिपाहियोंके साथ खड़े होकर लड़े और मरे हैं।" उसी सालकी नवीं सितम्बरको इङ्गलैण्डके तत्कालीन लौर्ड चान्सलर लौर्ड हेलडेनने कहा था,—"भारतीय सिपाही भी मानव-जातिकी स्वतन्त्रताके लिये उतना ही लड़ रहे हैं जितना कि स्वयं हम लड़ रहे हैं। भारतने मनुष्यमात्रके पक्षमें खुले दिलसे धन और जनकी सहायता की है। अतएव उसकी अवस्था बिना परिवर्त्तित हुए नहीं रह सकती।" श्रीयुत लौयड जौर्जने फ़रवरी, सन् १९१७ ई० में पार्लियामेण्टमें कहा था कि,—"उपनिवेशों तथा भारतकी सहायता अनुपम मिली है। युद्धके अत्यन्त सङ्कटके समय उन्होंने हमें जो सहायता दी है, उसका मूल्य नहीं कहा जा सकता।" कर्नल मियरवेदरकी "फ़्रान्समें भारतीय सेना" नामक पुस्तककी भूमिकामें लौर्ड कर्ज़नने कहा है कि,—"इस पुस्तकमें यह वर्णन किया गया है कि सन् १९१४-१५ ई० के भयानक समयमें सेना, कुमक़ और टुकड़ियाँ किस तरह आई थीं, इस बातको सम्राट्से लेकर देशके सभी नेताओंने खुल्लम-खुल्ला स्वीकार किया है कि भारतीय सेना ठीक समयपर पहुँच गई और आरम्भ युद्धके कुछ भयङ्कर सप्ताहोंके बाद उसने मित्रदल तथा सभ्यताको बचानेमें सहायता दी। मुझे याद है कि यह बात मुझसे स्वयं लौर्ड फ़्रेञ्चने स्पष्ट कही थी। उस सहायताका रूप और मूल्य कभी भुलाया नहीं जा सकता।" पार्लियामेण्टमें दुबारा बोलते हुए लौयड जौर्ज महोदयने कहा था कि,—"फिर इसके बाद भारतवर्ष है। उसने जिस राजभक्ति और जिस

वीरताके साथ अंग्रेज़ी सेनाको सहायता दी है, उसने जो शक्तिशालिनी सहायता अपनी इच्छासे हमारे सङ्कट-कालमेँ की है, वह युद्धके बाद या उस समय नहीँ भुलाई जा सकती जिस समय भारतीय प्रश्न विचार तथा कार्रवाईके लिये उपस्थित होँगे।" गत आठवीँ नवम्बरको लौयड जौर्ज महोदयने अपनी वक्तृतामेँ कहा था,—"यह तरुण राष्ट्र (उपनिवेश) वीरतासे लड़े, इन्होँने ख़ूब सहायता की और कौन्सिलमेँ अपना स्थान प्राप्त किया। जो बात उनके विषयमेँ सत्य है, वही बात भारतके महान् साम्राज्यके बारेमेँ भी सत्य है, जिसने हमेँ उन महान् विजयोँके पानेमेँ भरपूर सहायता दी, जिनसे हमारे शत्रुओँका अधःपतन आरम्भ हो गया। शान्ति-परिषद्के समय भारतकी आवश्यकताएँ भुलाई न जायँगी, हम लोगोँमेँ चार सालतक बड़ा भारी भाईचारा रहा है, उसका वहीँ अन्त न होना चाहिए।" मुझे इस बातका पूरा भरोसा है कि हम सब अपने उन अंग्रेज़ भाइयोँके अत्यन्त कृतज्ञ हैँ, जिन्होँने हमारी युद्ध-सम्बन्धी सहायताकी उदारतापूर्वक प्रशंसाकी है। अब प्रश्न यह है कि जिस सिद्धान्तके लिये भारतने अपना जीवन और धन होम किया, उस सिद्धान्तसे उसे कितना लाभ होता है। जिसके अनुसार प्रत्येक जातिका यह न्यायोचित और स्वतन्त्र अधिकार है कि वह स्वतन्त्रतापूर्वक बिना किसी बाधाके रहे और ईश्वरकी दी हुई अपनी प्रकृतिके अनुसार अपनी उन्नति और अपना प्रबन्ध अपने-आप कर सके। जिन सिद्धान्तोँके लिये ग्रेट बृटेन और मित्र-दल लड़े हैँ, उनका समावेश राष्ट्रपति विल्सनके शान्तिके प्रस्तावोँमेँ है और उनका ज़िक्र मैँ ऊपर कर चुका हूँ। इन प्रस्तावोँकी स्वीकृति ग्रेट बृटेनकी हार्दिक सम्मति और समर्थनसे हुई है। वास्तवमेँ उस स्वीकृतिका श्रेय एक तरहसे अमेरिकाकी अपेक्षा ग्रेट बृटेन और फ़्रान्सको है जिन्होँने बराबर चार सालतक अदमनीय साहस और वीरतापूर्ण आत्मोत्सर्गके साथ युद्धमेँ सदा आगे रहकर सामना किया था और इस प्रकार उन्होँने स्वयं अपने लिये तथा मित्रोँके लिये अन्तिम विजयका प्राप्त करना सम्भव कर दिया। इसके सिवाय अमेरिकाकी अपेक्षा उनके कष्ट तथा आत्मोत्सर्ग कहीँ अधिक थे और उनके हृदयपर अमेरिकासे कहीँ अधिक चोट लगी थी। अतएव उनके लिये यह बहुत ही प्रशंसनीय बात थी कि उन्होँने शान्तिके प्रस्तावोँको तत्काल स्वीकार कर लिया, यद्यपि ये प्रस्ताव कहीँ-कहीँ उनके निर्णयके बिल्कुल ही विपरीत थे।

शान्तिके प्रस्तावोँमेँ जो सिद्धान्त आरम्भसे अन्ततक व्यक्त किए गए हैँ वे ये हैँ कि "सब जातियोँमेँ और सब लोगोँको न्यायका सिद्धान्त और स्वतन्त्रता तथा कुशलपूर्वक अन्यान्य राष्ट्रोँके साथ रहनेका समान अधिकार है।" प्रत्येक जातिको अपनी समस्या स्वयं निश्चित करनेकी स्वतन्त्रता दी जाय और उसे अपना भाग्य स्वयं निर्णय करनेका अवकाश दिया जाय। रूसको अपने राजनीतिक विकास और अपनी राष्ट्रीय नीतिके सङ्गठन करनेका पूरा पूरा अवसर दिया जाय। आस्ट्रिया-हङ्गरीकी जातियोँको अपनी इच्छाके अनुसार उन्नति करनेका अवसर दिया जाय, बालकनके राज्योँ और पोलैण्डके भावी राज्यको राजनीतिक और औद्योगिक उन्नति करनेमेँ बाहरी बाधा न पड़ने दी जाय तथा सीमा-सम्बन्धी प्रश्नोँमेँ अन्ताराष्ट्रीय ज़िम्मेदारी रहे। तुर्कराज्यकी उस प्रजाको, जो तुर्क नहीँ हैँ, स्वत्त्व और स्वभाग्य-निर्णयका अधिकार देकर रक्षा की जाय। उपनिवेशोँके स्तत्त्वोँके तय करनेमेँ जो सिद्धान्त बर्त्ता जायगा, वह यह है कि इन विषयोँका निर्णय करते समय वहाँकी जनताकी इच्छा और हितोँपर उतना ही ध्यान दिया जायगा जितना कि उपनिवेशकी सरकारको है। स्वायत्त-शासन और स्वभाग्य-निर्णयके ये सिद्धान्त भारतके विषयमेँ कहाँतक बर्त्ते जायँगे? हमारे सामने विचार करनेके लिये यही प्रश्न है। हम यह जानकर प्रसन्न हुए हैँ कि ग्रेट बृटेन और फ़्रान्सकी सरकारोँने सीरिया और मेसोपोटामियाके लिये इन सिद्धान्तोँको व्यवहारमेँ

लानेका निश्चय कर लिया है। इससे हमारी यह आशा और भी दृढ़ हो गई है कि वे सिद्धान्त भारतमें भी अवश्य लागू किए जायँगे। मेरे देशवासी भाइयो! हिन्दू और मुसलमान दोनों ही के राजकालकी प्राचीन राजधानीमें, जहाँ हम हिन्दुओंके पूर्वजोंने चार हज़ार वर्षतक राज्य किया था और जहाँ मुसलमानोंके पूर्वजोंने कई सौ वर्ष राज्य किया—मैं यह देखकर शोक और लज्जासे भर गया हूँ कि हम लोग अपनी प्राचीन अवस्थासे इतने गिर गए हैं कि हमें स्वायत्तशासन और स्वराज्यके अधिकार मिलनेके लिये अपनी योग्यता सिद्ध करनेके निमित्त आज समझाना पड़ रहा है। किन्तु जिन लोगोंके हाथमें इस समय भारतका भाग्य-निर्णय है, उन लोगोंको इस विषयमें इतनी अज्ञानता है कि यदि मुझे अवकाश होता तो मैं उन्हें बतलाता कि हमारे हिन्दू और मुसलमानोंकी भारतमें अङ्गरेजोंके पदार्पण करनेके पहले कैसी योग्यता थी। मैं श्रीयुत दादाभाई नौरोजीकी "जब अंग्रेज भारतमें नहीं आए थे" नामक पुस्तकके पाँच सौ एक्यासी से छः सौ चौबीस तकके पृष्ठोंका हवाला देता। मैं केवल इतना ही कहकर सन्तोष कर लूँगा कि भारतका एक तृतीयांश—लगभग छः करोड़की जनसंख्या अब भी भारतवासियोंके शासनमें है और बहुतसे देशी राज्योंके शासन-प्रबन्धका मुक़ाबला बृटिश-भारतसे भली भाँति किया जा सकता है। क्या एक सौ पचास वर्ष अंग्रेज़ी शासनमें रहनेके कारण हम अपने देशी राज्यके निवासी अपने भाइयोंसे स्वराज्यके लिये कम योग्य हो गए हैं? क्या वे लोग, जो सर जगदीशचन्द्र वसुके समान वैज्ञानिक, सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके समान कवि, सर भाष्यम् आयङ्गर और सर राशबिहारी घोषके समान क़ानून-वेत्ता, सर टी० माधवराव और सालारजङ्गके समान शासक, सैयद महमूद और श्रीयुत तैलङ्गके समान हाइकोर्टके न्यायाधीश और ऐसे सिपाही जो महायुद्धके प्रत्येक भागमें लड़कर अपनी योग्यता भली भाँति दिखा चुके हैं, अपने घरेलू मामलोंमें स्वराज्य पानेके अयोग्य हैं? मैं आशा करता हूँ कि इस प्रकारकी कल्पनासे हमारा भविष्यमें अपमान न किया जायगा और हम लोगोंको स्वराज्यका हमारा जन्मसिद्ध अधिकारसे अलग रखकर हमारे साथ जो अन्याय किया जाता है, उस अन्यायरूपी घावमें उपर्युक्त अपमानका नमक न छिड़का जायगा तथा स्वभाग्य-निर्णयका सिद्धान्त भारतमें भी वर्त्ता जायगा।

स्वभाग्य-निर्णयका सिद्धान्त

देवियो और सज्जनो!

अब हमें इस बातको स्पष्ट कर देना चाहिए कि 'स्वभाग्य-निर्णयसे' हमारा क्या तात्पर्य्य है। इस स्वभाग्य-निर्णयके दो भेद हैं, जिसमें एक यह है कि कुछ उपनिवेशों और अन्य स्थानोंके निवासियोंको यह कहनेका अधिकार दिया जाना चाहिए कि वे किस राष्ट्रके अधीन रहना चाहते हैं। जहाँतक हम भारत-वासियोंसे सम्बन्ध है वहाँतक हमें इस अधिकारको काममें लानेकी न तो इच्छा ही है और न आवश्यकता ही। भारत स्वतः ही बृटिशसम्राट्के अधीन आ गया है, इसलिये यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम बृटिश सम्राट्के प्रति सच्चे रहें। इस राजभक्तिमें हम बिल्कुल अटल हैं। जिस समय श्रीमान् सम्राट् इङ्गलैण्डके राज्याभिषेकके बाद सन् १९१२ ई० में भारतमें स्वयं पधारे थे, उस समय हमने प्रत्यक्ष रूपसे यह बात प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार की थी। अब भी हम बृटिश सम्राट्की प्रजा रहना चाहते हैं। किन्तु स्वभाग्य-निर्णयका दूसरा अर्थ भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है और वह यह है कि बृटिश राज्यमें रहकर हमें उपनिवेशोंकी तरह कुल घरेलू बातोंमें पूर्ण स्वायत्त-शासन मिलना चाहिए। और यह भी तो हम इसी समय नहीं माँगते। हम तो स्वराज्यके केवल एक ही अङ्गको चाहते हैं, जिसे हमने सन् १९१६ ई० की कांग्रेस-लीग-स्कीममें कह दिया है। हम यह कहते हैं कि स्वराज्य या

स्वायत्त-शासन, जो हमेँ दिया जाय, वह उस स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तके अनुकूल हो जो इस भयङ्कर युद्धका विजयी परिणाम है। इसके लिये यह आवश्यक नहीँ है कि मौण्टेगू महोदय और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डकी सुधार-योजना ताकपर रख दी जाय और बिल्कुल नये सिरेसे कोई नया मन्सौदा तैयार किया जाय। विशेष कांग्रेस और मुस्लिम लीगने इस बात की इच्छा प्रकट की कि यदि सुधार-योजनामेँ वे सुधार और परिवर्त्तन कर दिए जायँ, जो उन्होँने कहे हैँ, तो वे उसे स्वीकार कर लेँगे। यह बड़ी कांग्रेस, जो सब जाति और धर्मके लोगोँ—हिन्दू, मुसलमान, पारसी और इसाइयोँकी प्रतिनिधि है, और जिसमेँ ज़मीन्दार और किसान, व्यापारी और सौदागर, शिक्षक, प्रकाशक तथा अन्य पेशेवालोँके हित-चिन्तक प्रतिनिधि यहाँ आज इसलिये एकत्र हुए हैँ कि वे इस विषयपर जनताका मत प्रकट करेँ। इस कांग्रेसकी विशेषता और प्रसन्नताकी एक बात यह है, और मैँ इस ओर आपका विशेष ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि इस अधिवेशनमेँ हज़ारोँ किसान प्रतिनिधि हैँ, जो बहुत त्याग और कष्ट सहकर इसलिये आए हैँ कि जिससे वे स्वराज्यकी माँगमेँ अपने अन्य देशवासियोँके स्वर-से-स्वर मिलाकर अपनी आवाज़ बुलन्द करेँ। भारत-निवासियोँके प्रतिनिधियोँकी यह कांग्रेस यह निश्चय और घोषणा करेगी कि उसकी रायमेँ इस देशमेँ उपयोग करनेके लिये सुधारोँकी कौनसी योजना ठीक है। बृटिश सरकारको चाहिए कि भारतवासियोँके प्रतिनिधियोँके प्रस्तावोँको स्वीकार करके वह भारतमेँ स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तका व्यवहार करे। उस विधानकी भूमिकामेँ, जो इस समय तैयार हो रही है, स्वभाग्य-निर्णयका सिद्धान्त सम्मिलित कर दिया जाय और उसमेँ इस बातका प्रबन्ध कर दिया जाय कि पूर्ण स्वायत्त-शासनकी ओर उन्नति करनेमेँ भारत-वासियोँके प्रतिनिधियोँका पूरा हाथ रहेगा। इससे भारत-वासियोँमेँ सन्तोष फैलेगा और वे कृतज्ञ होँगे तथा बृटिश साम्राज्यके प्रति उनका सम्बन्ध और भी दृढ़ हो जायगा।

हमारी निन्दा करनेवाले

देवियो और सज्जनो!

मैँ सोचता हूँ कि मैँ इस विषयपर काफ़ी कह चुका हूँ कि उत्तरदायित्वपूर्ण शासनकी स्थापनाके लिये कुछ सार्थक उपाय काममेँ लाना कितना आवश्यक और न्याय-युक्त है। भारतीय सुधारोँके लिये बृटिश राजनीतिज्ञोँने जो कुछ किया है उसके लिये हम उन्हेँ धन्यवाद देते हैँ। सर्वश्रेष्ठ लौयड जौर्ज, बोनरलौ और एस्क्विथने अर्थात् ग्रेट बृटेनके सभी दलके नेताओँ ने अपने चुनावके पर्चोँमेँ भारतवर्षमेँ उत्तरदायित्वपूर्ण शासन देनेका वचन दिया है, इससे भी हमेँ बड़ा सन्तोष है। किन्तु यह जानकर हमेँ बड़ा दुःख हुआ कि एक सीमित दायित्ववाली कम्पनी लन्दनमेँ स्थापित हुई है, जिसका नाम इण्डो-बृटिश एसोसियेशन है। इसका प्रधान उद्देश यही है कि भारतीय सुधारोँका विरोध करे। उक्त संस्था और भारतमेँ स्थित सङ्कुचित योरोपियन और ऐङ्गलो-इण्डियन संस्थाएँ, जो भारतीय सुधारोँके विरुद्ध हैँ, रौलेट कमेटीकी रिपोर्टका दुरुपयोग कर रही हैँ, और बृटिश जनतामेँ यह झूठा प्रचार कर रही हैँ कि भारतीय लोग सम्राट्के द्रोही हैँ। यह बड़ी ही नीच वृत्ति है। उनको यह सोचना चाहिए कि बृटिश सम्राट्के प्रति राजभक्तिका इतना ज्वलन्त उदाहरण देनेपर इस समय भारतका कट्टर-से-कट्टर शत्रु भी भारतीयोँकी राजभक्तिके विरुद्ध मुँह खोलनेका दुस्साहस न करेगा। रौलेट कमेटीने तो भारतीयोँकी राजभक्तिको और भी महत्त्व दे दिया है। उसने अपना निष्कर्ष निकालते हुए कहा है कि बम्बईके क्रान्तिकारी आन्दोलनसे सम्बन्ध रखनेवाले सब षड्यन्त्रोँकी हमने जाँच कर ली है, उनमेँ अधिकतर ब्राह्मण और चितपावन लोग हैँ। बङ्गालमेँ इन षड्यन्त्रोँमेँ शिक्षित मध्य वर्गके युवक ही शामिल हैँ।

उनका प्रचार बहुत व्यवस्थापूर्ण लगनसे भरा हुआ और मौलिक है। स्वयं उनके प्रान्तमेँ इस आन्दोलनसे अनेक हत्याएँ हुई हैँ और डाके पड़े हैँ। बिहार-उड़ीसा, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश और मद्रासमेँ इसकी जड़ न जमने पाई, किन्तु कभी-कभी ऐसे अपराध और दङ्गे होते रहे। पञ्जाबमेँ अमेरिकासे लौटनेवाले प्रवासियोँने अनेक हत्याएँ कीँ और वे सन् १९१५ ई० के ग़दर-षड्यन्त्रमेँ शामिल हुए, क्योँकि वे लोग तो क्रान्ति और ख़ून करनेपर तुले हुए थे। ब्रह्मामेँ भी ग़दर-आन्दोलन चला, पर वह किसी तरहसे रोक लिया गया। अन्ततः मुस्लिम षड्यन्त्र हुआ, जिसमेँ कुछ थोड़ेसे धर्मान्ध लोग शामिल थे और उन्होँने विदेशी सहायतासे बृटिश राज्यको उखाड़ फेँकनेका षड़यन्त्र किया था। इन सब षड़यन्त्रोँका एक ही उद्देश था और वह यह कि भारतवर्षसे ज़बरन् बृटिश राज्यको उखाड़ फेकना। कभी-कभी यह षड़यन्त्र अलग-अलग रहे, कभी मिलकर हुए और कभी-कभो जर्मन-प्रभावसे उत्साहित हुए। इस कथनको पूर्ण सत्य मानते हुए, हमेँ यह देखना चौहिए कि कमेटीने इसके बारेमेँ क्या लिखा है। उनका कहना है कि "ये सब षड़यन्त्र भारतीय राजभक्तिकी सहायतासे पूर्णतया दबाए जा चुके हैँ।" भारतकी निन्दा करनेवालोँको चुप करनेके लिये यह प्रमाण काफ़ी होना चाहिए जैसा कि भारतीय व्यवस्थात्मक सुधारकी रिपोर्टमेँ श्रीयुत मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने अनुभव किया है। विशेष वर्गोँके लिये चाहे जिन योग्यताओँकी आवश्यकता हो किन्तु भारतके लोग तो मित्र-दलके साथ सदा सहानुभूति रखते हैँ। चाहे हम लोग अपनी सरकारमेँ कितने भी दोष निकालेँ, किन्तु बृटिश सम्राट्के प्रति हम लोग पूर्ण राजभक्त हैँ। हमारी राजभक्ति तो इसीसे साबित है कि जनवर्गके बहुत छोटे-छोटे दल ही अशान्ति फैलाते हैँ। मैँ और प्रत्येक विचारशील भारतीय इस बातकी निन्दा करता है कि हमारे युवक लोग उस आन्दोलनमेँ भाग लेते हैँ जिसका रौलेट कमेटीने धर्मान्धता और विकृत देशभक्तिकी प्रेरणाका फल कहा है। मैँ इस बातको बुरा समझता हूँ कि उन्होँने सरकारके विरुद्ध एक दोषयुक्त षड़यन्त्रका आन्दोलन किया। मैँ इसको भी बुरा समझता हूँ कि उन्होँने किसी मनुष्यकी हत्या की। किन्तु यह कोई बुद्धिमानीकी बात नहीँ है कि थोड़ेसे जोशीले युवकोँके दुष्कृत्योँके कारण बत्तीस करोड़ भारत-वासियोँकी अचल राजभक्तिपर कलङ्क लगा दिया जाय। भारतमेँ जिस शासन-प्रणालीका प्रयोग किया गया है उसमेँ बहुतसे लाभ होते हुए भी, जिन्हेँ हमने धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार किया है, अनेक दोष भी हैँ। हमने उन दोषोँको दिखलाया है और अच्छी बातोँको भी स्वीकार किया है। प्रत्येक जातिको अपना शासन अपने आप करनेका अधिकार है और इसका तात्पर्य्य यह है कि उसी जातिके लोग स्वयं अपना प्रबन्ध करेँ। जब बृटिश शासन इस देशमेँ प्रयोग किया गया तब उनका विचार यह था कि उनका शासन थोड़े ही दिनोँके लिये हो, जिससे भारतके लोग सुस्थिर हो जायँ और अपना-अपना शासन-भार सँभालनेके योग्य हो जायँ। अनेक प्रमुख बृटिश राजनीतिज्ञोँने बार-बार यह कहा है कि बृटिश भारतीयोँ और उनकी स्वतन्त्रता भी संरक्षिका मात्र थी। किन्तु बृटिश सरकारने अपना पुराना विचार बदलना शुरू कर दिया।

नौकरियोँमेँ अंग्रेज़ोँकी भरती

उन्होँने भारतीय शासनमेँ इतने अधिक योरोपियनोँको भरती कर लिया कि आजकल सारे ऊँचे पदोँमेँ योरोपियन-ही-योरोपियन नज़र आते हैँ। चाहिए तो यह था कि उनकी जगह भारतीयोँको ही अवसर दिया जाता कि वे सन्तोष-पूर्वक शासनका भार सँभालते। केवल फ़ौजी नौकरियोँमेँ नहीँ बल्कि मुल्की नौकरियोँके लिये भी इङ्गलैण्डसे बहुसंख्यक अंग्रेज़ बुलाए गए हैँ। सन् १८३३ ई० मेँ

एक विधान स्वीकृत हुआ था कि किसी भी भारतीयको वह पद मिल सकेगा जिसके लिये वह योग्य सावित होगा। इस घोषणापर भारतीयोंने कृतज्ञता भी प्रकाशित की थी। इस नियमका यह प्रभाव होना चाहिए कि भारतीय लोग अपने देशकी विभिन्न नौकरियोंमें भर्त्ती किए जायँगे जबतक कि ऐसे योरोपियनोंको बुलाना नितान्त आवश्यक न होगा, जिन्हें कि कुछ वैज्ञानिक विभागोंका सञ्चालन करनेकी विशेष योग्यता हो। यह नियम नहीं स्वीकार हुआ और सन् १८३३ ई० के विधानमें की हुई घोषणाके होते हुए भी सन् १८५३ ई० तक ऊँचे पदोंपर वहुत थोड़े ही हिन्दुस्तानी लिए गए। इसके वाद ग़दर हुआ। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि भारतीय सिविल सर्विस परीक्षा केवल इङ्गलैण्डमें ही होगी और इङ्गलैण्ड तथा भारतमें साथ-साथ परीक्षा करनेकी सिफ़ारिशोंको ठुकरा दिया गया और साठ वर्षतक इस छोटीसी न्यायकी वातपर आन्दोलन करनेवाले स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी अपने परिश्रमके सफल होनेसे पूर्व ही चल वसे। पब्लिक सर्विसेज़ कमीशनकी रिपोर्टके समय दस प्रतिशतसे भी कम पदोंपर भारतीय थे। फ़ौजी कमीशनमें भारतीयोंको कोई स्थान नहीं दिया गया था, यद्यपि यह सुधार भी पहलेसे ही माँगा जा चुका था। जब सन् १९११ ई० में राज्याभिषेक हुआ तो लौर्ड हार्डिञ्जने यह सिफ़ारिश की कि फ़ौजी कमीशनमें भारतीयोंको ले लिया जाय और यद्यपि वर्षों वीत गए, पर भारतके साथ न्याय नहीं हुआ। इसके वाद महायुद्ध छिड़ गया। कई वर्षतक भारतीय सिपाहियोंने सेनामें युद्ध करके और विक्टोरिया-क्रौस पाकर अपनी वीरता और सम्राट्के प्रति राजभक्ति दिखाई। तव यह घोषणा हुई कि सेनामें कुल दस कमीशन-पद भारतीयोंको दिए जायँगे (शर्म, शर्म) और अवतक उन कमीशनोंके लिये केवल पाँच व्यक्ति ही नियुक्त किए गए हैं, यद्यपि अस्थायी कमीशनके लिये चवालीस आदमी लिए गए थे।

ख़र्चीला राज्य-शासन

हमारी दूसरी शिकायत यह है कि राज्य-शासन व्यर्थ ही वहुत ख़र्चीला रहा है। फ़ौजी और मुल्की नौकरियोंमें अंग्रेज़ोंको वहुत वड़े-वड़े वेतन दिए गए हैं और देशका वह सव रुपया नष्ट हो रहा है जो उसके बच्चोंको मिल सकता था। यदि योरोपियन नौकरियोंपर किए हुए ख़र्चेका तीन चौथाई उन्हीं नौकरियोंपर भारतीयोंको नियुक्त करके व्यय किया जाता तो देश आजकी दशासे कहीं अधिक वढ़कर समुन्नत और समृद्धिशाली होता।

नौकरशाहीकी अयोग्यता

शिक्षाके सम्बन्धमें हम समझते हैं कि जितना करना चाहिए था उससे वहुत ही कम हुआ है। देशमें चारों ओर वहुत ग़रीवी वढ़ गई है और जनता सार्वजनिक कामोंमें सहायता करनेसे विवश है। लाखों मनुष्य रोगके शिकार होकर मौतके मुँहमें जा रहे हैं। जहाँतक व्यवसायका सम्बन्ध है, वह केवल औद्योगिक कमीशनकी रिपोर्ट पढ़कर आपको पता लग सकता है कि उद्योग-धन्धोंकी ओर ध्यान न दिए जानेसे देशको कितनी अधिक हानि हुई है और बुरी हालत है। इस ओर ध्यान दिलानेमें मेरा उद्देश यह दिखलाना है कि वर्त्तमान नौकरशाहीका शासन असफल रहा है, और यद्यपि हम यह स्वीकार करते हैं कि उसने वहुत कुछ किया है, फिर भी हम यह देखते हैं कि जनताकी दशा सुधारनेके लिये जितना करना चाहिए था वह विल्कुल नहीं कर सका।

भारतीय सिविल सर्विसवालोंसे अपील

मैं भारतीय सिविल सर्विसवालोंसे एक अपील करना चाहता हूँ। मुझे उनका एक सरक्यूलर पढ़कर अचरज और खेद हुआ, जो विहारकी भारतीय सिविल सर्विस एसोसियेशनके मन्त्रीने प्रकाशित किया है, जिसमें कहा गया है कि सिविल सर्विसके पदाधिकारी सङ्घटित होकर इस नये शासन-विधानपर

अपने विचार प्रकट करें। हरएक सिविलियन अपनी जातीय राय क़ायम करने और कहनेके लिये स्वतन्त्र है, किन्तु मैं यह अवश्य समझता हूँ कि इन सुधारोंके सम्बन्धमें सिविल सर्विसके लोगोंको सङ्कटित करनेकी बातने भारतवासियोंके हृदयको बड़ा धक्का पहुँचाया है, क्योंकि उनकी राय तो सुधारोंके विरुद्ध ही ठहरेगी। क्योंकि सरक्यूलरमें लिखा है कि लोगोंमें यह झूठा विचार फैल गया है कि सिविल सर्विसवाले इन सुधारोंके माफ़िक हैं। इस विचारको दूर या सही करनेके लिये यह यत्न किया गया है, और ऐसा ही अन्य प्रत्येक प्रान्तमें प्रयत्न हो रहा है। मैं सिविल सर्विसके लोगोंसे अपील करता हूँ कि वे सोचें कि ऐसा करना क्या उनके लिये उचित है? उनमेंसे बहुतोंने भारतकी बड़ी सेवा की है और उनकी इस कृतज्ञताका भारतपर सदा भार रहेगा। हम समझते हैं कि यदि वे सब एक दल बनाकर इन सुधारोंका विरोध करेंगे तो भारतवासियोंको इसकी बड़ी शिकायतका मौक़ा हो जायगा। हम उनकी सहायताके इच्छुक हैं और आशा करते हैं कि लौर्ड हार्डिङ्गने भारतसे जाते समय उनको जो आदेश दिया था उसे वे याद रक्खेंगे कि उन लोगोंको अपना तन-मन लगाकर इन सुधारोंको सफल बनानेका भरसक प्रयत्न करना चाहिए और कोई बात ऐसी नकरनी चाहिए जिससे सुधारोंके मार्गमें बाधा पड़े।

रौलेट रिपोर्ट

रौलेट कमेटीकी सिफ़ारिशोंके सम्बन्धमें भी मैं यह कहूँगा कि योरोपियनोंको, सन् १८५७ से १९१५ ई० तकके समयकी सब घटनाओंका स्मरण रखना चाहिए:—पूनामें प्लेगका सरकारी प्रबन्ध, नाटू भाइयोंका देश निकाला, वङ्ग-भङ्ग दमन करनेके लिये नए क़ानून और वे सब बातें जिनसे भारतीय माँगोंको ठुकरा दिया गया था। शिक्षाकी कमी की गई। ग़रीबी बढ़ती जा रही है। भारतवासियों और योरोपियनोंके बीच जातीय विषमताको स्थापितकर नौकरियोंमें और अस्त्र-शस्त्र मामलोंमें अनेक प्रकार अन्याय किया गया है। इन्हीं सब कारणोंसे असन्तुष्ट होकर कुछ लोगोंने विद्रोहका मार्ग ग्रहण कर लिया है। यदि हमारे अंग्रेज़ मित्र इन सब बातोंको ध्यानमें रक्खेंगे तो न्यायोचित निर्णय कर लेंगे। यदि यह मान भी लिया जाय कि रौलेट कमेटीका निर्णय सही है, लेकिन वस्तु-स्थितिको रोकनेका जो उपाय उसने बतलाया है, वह दमनके नए क़ानून पास करनेसे नहीं हो सकते। उदार और अधिक सुधारोंको व्यवहारमें लाया जाय, जिससे उचित शिकायतें दूर होकर लोगोंमें सन्तोष और सुखका विस्तार हो। *यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारतकी माँग उपस्थित करनेके लिये एक डेपुटेशन इङ्गलैण्डको भेजना चाहिए।*

स्वभाग्य-निर्णय

आपने माँगा है कि बृटिशसरकारको राजनीतिक समुन्नतिके लिये स्वभाग्य-निर्णयका सिद्धान्त भारतके लिये लागू कर देना चाहिए और मैं यह चाहता हूँ कि जहाँतक आपसे हो सके आप उस सिद्धान्तको ख़ूब काममें लाइए। मैं आपसे कहता हूँ कि आप लोग यह निश्चय करके स्पष्ट बतला दीजिए कि यदि हमारे साथ बराबरीका बर्त्ताव न किया गया तो हम बहुत बुरा मानेंगे और इसे अपना अपमान समझेंगे। मैं आपसे कहता हूँ कि आप यह निश्चय करके स्पष्ट बतला दीजिए कि अबके बाद हम भरसक अपना यह अधिकार माँगेंगे कि हमको हमारे ही देशमें उन्नतिके लिये उतनी ही सुविधाएँ मिलनी चाहिएँ जो अंग्रेज़ोंको ग्रेट बृटेनमें दी जाती हैं। और यदि आप उस स्वभाग्य-निर्णयको स्वयं बर्त्तेंगे और समता, स्वतन्त्रता और प्रेमका सन्देश लोगोंमें जा-जाकर फैलाएँगे, यदि आप अपने प्रत्येक भाईमें, चाहे वह कितना ही नम्र और नीची स्थितिमें हो, यह भाव पैदा कर देंगे कि उसके अन्दर भी वही ईश्वरीय

तेज स्थित है जो कि एक ऊँची स्थितिके पुरुषके अन्दर होता है, और बृटिश साम्राज्यकी अन्य सब जनताके समान ही उसका भी बराबरीका अधिकार है और उसे यह भी सिखा दें कि उसे वह अधिकार माँगना चाहिए, तब समझ लो कि आपने अपना भविष्य स्वयं ही निश्चित कर लिया। इन बातोंपर ज़रा गहराईसे विचार करनेके लिये आपसमें मैं कहता हूँ। आपको अब यह सुअवसर प्राप्त है। सुधार-योजना आपको यह अवसर देती है। प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारोंको चाहे कितने अधिकार दिए गए हों, किन्तु लोगोंको निर्वाचन अधिकार अवश्य मिलना चाहिए। निर्वाचन अधिकार मिलनेसे आप प्रत्येक भारतीयको राजनीतिके सिद्धान्त भली भाँति समझा सकते हैं। मैं आपसे अपने निर्वाचकोंको सङ्घटित करनेकी अपील करता हूँ। मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप अपनी कांग्रेस कमेटीको प्रत्येक हल्के और तहसीलमें स्थापित करें और लोगोंको इन सिद्धान्तोंके समझानेका प्रयत्न करें। यदि आप उस कामको करेंगे और स्वभाग्य निर्णयके सिद्धान्तको काममें लाएँगे और एक लगनसे काम करेंगे, तो ईश्वर आपको देशकी समुन्नतिके लिये स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तको जितना जल्दी हम आशा करते हैं उससे पहले ही मञ्ज़ूर कर लेगा।

कराँची-कांग्रेसमें

सन् १९३१ ई० में कराँची कांग्रेसके अवसरपर सरदार भगत सिंह तथा उनके साथी श्री सुखदेव और राजगुरुकी फाँसीपर प्रस्ताव पेश करते हुए पण्डित जवाहरलालजी बोले थे। महामना पण्डित मालवीयजीने इसका समर्थन किया था। बोलते समय आपका दिल भर आया था और सुननेवालोंके दिल भी हिल गए थे।

—सम्पादक।

वहनो और भाइयो!

मेरी ज़िन्दगीमें सबसे बड़े दुःखका मौक़ा आज आया है। मैं कांग्रेस प्लेटफ़ार्मसे बहुत बोला हूँ, लेकिन आज इस प्रस्तावके ताईद करनेमें जो दुःख हो रहा है उसे मैं ही जानता हूँ। उसे किन शब्दोंमें ज़ाहिर करूँ, मैं उसे प्रकट नहीं कर सकता। आपको पण्डित जवाहरलाल नेहरूने प्रस्ताव पढ़कर सुना दिया है। आपने सुन लिया है। मैं नहीं चाहता कि इसे फिरसे दुहराऊँ और इस कार्य्यमें आप लोगोंका समय लूँ। आज कैसा समय है, समयका लक्ष्य कैसा है। मेरे लिये क्या यह कमबख़्तीका वक़्त है, क्यों यह हो रहा है कि आज इन तीन नौजवानों की मृत्युके प्रस्तावपर मैं बोलने आया हूँ? मैं इन नौजवानोंकी मृत्युपर ताईद करने आया हूँ। होना तो यह चाहिए था कि मेरे मरनेपर ये नौजवान मेरे विषयमें कुछ प्रेमके शब्द कह देते। हा! आज ज़मानेकी रफ़्तारको कोई क्या करे। यह कुछ नहीं हमारा दुर्भाग्य है, हमारे देशका दुर्भाग्य है कि हमने अज़हद कोशिश की, वाइसराय साहबके पास प्रार्थनापत्र पहुँचाए। चारों तरफ़से मुल्ककी एक आवाज़ थी कि भगतसिंहको बचाओ, लेकिन नौकरशाहीने हमारी एक न सुनी। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम इतनी कोशिश करनेपर भी इन नौजवानोंको नहीं बचा सके।

भाइयो! आपको पण्डित जवाहरलालने यह वतला दिया है कि इस प्रस्तावमें क्या है। यह भी आपको बता दिया है कि यह प्रस्ताव महात्माजीका वनाया हुआ है। इस प्रस्तावमें यह साफ़-साफ़ वतला दिया है कि हम इन नौजवानोंकी वहादुरीकी तारीफ़ करते हैं, लेकिन हम तशद्दुदसे अलग रहते हैं। इसका क्या कारण है कि लाहौरसे खबर आते ही सारे देशमें एक विजलीकी तरहसे सनसनी फैल गई। आख़िर ऐसा क्यों हुआ? इसकी तहमें क्या छिपा हुआ है? इसका कारण है कि भगतसिंह भारत-माताका ही प्रेमी नहीं था, वह हमारे नौजवानोंका प्रतिनिधि था। उसके ख़यालात नौजवानोंके ख़यालात रूवरू करनेके लिये काफ़ी सबूत हैं। उसके कारनामे हमारे नौजवानोंके ख़यालात ज़ाहिर करनेके लिये काफ़ी सबूत थे। हमारे देशमें एक अजीव हालत पैदा हो गई है। यह हालत इसलिये और भी ख़तरनाक है कि ऐसे देशमें भी, जहाँ विदेशी राज्य हो, सबसे बड़ी मुसीवत खड़ी हो जाती है। हमारे नौजवानोंके लिये सबसे बड़ी अगर कोई वात चुभती है, वह है—हमारे देशमें विदेशी राज्यकी। और नौजवान एक क्षणभर भी यह बर्दाश्त नहीं कर सकते कि यहाँ विदेशी राज्य हो। वे इसी उधेड़-बुनमें

रहते हैँ कि किसी प्रकार हम अपने देशको स्वतन्त्र करेँ। नौजवानोँके लिये यह सबसे बड़ी मुसीबत है कि विदेशी राज्य उनके मुल्कमेँ हो। विदेशी राज्यमेँ जो तकलीफ़ेँ हुआ करती हैँ वे तकलीफ़ेँ हम बहुत ज़मानेसे बर्दाश्त करते आ रहे हैँ। हमने सरकारको बार-बार चेतावनी दी है कि जबतक ये तकलीफ़ेँ दूर न होँगी, हमारे मुल्कमेँ शान्ति नहीँ होगी। मैँने कहा है कि ये तकलीफ़ेँ हिन्दुस्तानके सर पड़ी हैँ। हम अनेक प्रकारकी तकलीफ़ेँ बर्दाश्त करते आ रहे हैँ। जब देखा कि हमेँ इन तकलीफ़ोँके दूर करनेका इलाज दिखाई नहीँ दिया, जब हम बिल्कुल थक गए, हमारी सरकारने भी एक नहीँ सुनी, तो क्या हुआ कि कुछ नौजवानोँके दिल बिगड़ गए। उनसे चुपचाप नहीँ बैठा गया। उन्हेँ शान्तिके कार्यक्रममेँ कोई यक़ीन नहीँ रहा। वह दिन कोई असम्भव बात नहीँ है। आख़िर क्या हुआ? नतीजा यही हुआ कि हमारे बहुतसे नौजवान आज भगतसिंहके लिये परेशान हो रहे हैँ। हम उनके तरीक़ोँको नापसन्द करते हैँ और हमेशासे नापसन्द करते आए हैँ। हमेँ तो शान्तिमय कार्यक्रमके साथ चलना है। इसलिये इस मार्गसे हटकर जो कोई भी कार्य्य करेगा, हम उसके साथ नहीँ चल सकते। इन नौजवानोँके कारनामे ज़रूर हमेँ नापसन्द हैँ, लेकिन इसके साथ-ही-साथ हम यह भी जानते हैँ कि इन कामोँके करनेमेँ इन नौजवानोँकी खुदग़र्ज़ी नहीँ थी। यह हमेँ मानना पड़ेगा कि खुदग़र्ज़ी इन नौजवानोँको इस रास्तेमेँ नहीँ ले गई। भगतसिंह तथा दूसरे इसके साथियोँका फाँसीपर चढ़ जाना, इस बातका काफ़ी सबूत है कि खुदग़र्ज़ी इनको इस रास्तेपर नहीँ ले गई। वे मुल्कमेँ सच्ची स्वतन्त्रता क़ायम करना चाहते थे। जो मुल्कमेँ स्वतन्त्रता क़ायम करनेके लिये फाँसीपर चढ़ जानेको तैयार है, मैँ अपने ऐसे नौजवानोँकी तारीफ़ करता हूँ। मैँ आपका इस प्रस्तावकी ओर ध्यान दिलाता हूँ। हमने साफ़-साफ़ कहा है कि हम इन नौजवानोँकी बहादुरीकी तारीफ़ करते हैँ लेकिन हम इनके तरीक़ोँसे अपने-आपको अलहदा रखते हैँ। मैँ फिर कहूँगा कि उन्होँने जो भी किया है, उसकी सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदारी इस वक़्की मौजूदा तरीक़ा सल्तनतपर है। सरकार ज़ुल्म-पर-ज़ुल्म करती है। हम चाहे कितना भी शान्तिका पाठ पढ़ावेँ, सरकार ज़ुल्मसे बाज़ नहीँ आती, वह ज़िम्मेदार है हमारे नौजवानोँको इस रास्तेपर ले जानेके लिये। जो काम भी हमारे नौजवान करते हैँ वे सच्चाईसे भरे होते हैँ। ज़रूर वे ग़लत रास्तेपर हैँ, लेकिन यह उनके दिलकी तहसे निकलते हैँ। जब बुज़ुर्ग ही ऐसा करते हैँ तो फिर नौजवानोँका क्या कहना। आप अपना मौजूदा इतिहास उठाकर देख लेँ। दूर न जायँ, पिछले बीस वर्षका ही इतिहास देखेँ। आपको मालूम होगा कि सन् १९१४ ई० से अबतक कितने नौजवान फाँसी चढ़ गए। जब मुझे वे क़िस्से याद आते हैँ तो मेरा दिल चाक हो जाता है। अगर जल्दी स्वराज्य क़ायम हो जाता तो मुझे पूरा विश्वास है वे जानेँ बच जातीँ। आप याद रक्खो, अभी समय है कि ऐसे रास्तेसे बचो, अभी कुछ ज़्यादा नहीँ बिगड़ा है। हम ठोकरेँ खाकर भी समझ सकते हैँ। मैँ तो नौजवानोँसे यही कहूँगा कि बैचैन होनेसे क्या फ़ायदा, बुद्धिमानीसे काम लेना चाहिए। आप अच्छी तरहसे समझ लो कि स्वराज्य देशमेँ जल्दी क़ायम होना चाहिए। यह भी याद रक्खो कि एक पराधीन देशको स्वतन्त्रता जल्दी नहीँ मिला करती। उसके लिये बड़े-बड़े यत्न करने पड़ते हैँ, सैकड़ोँ तरीक़ोँका इस्तेमाल करना पड़ता है। हम बहुत समयसे अपने देशको स्वतन्त्र करनेमेँ लगे हुए हैँ। लेकिन अभी दिल्ली दूरस्त। मेरा विश्वास है कि यह अदम-तशद्दुदकी लड़ाई एक ऐसी लड़ाई है जिसका हमेँ नया सबक़ मिला है। आपने देख लिया होगा कि इस लड़ाईसे हम अपने मुल्कको कितना आगे बढ़ा सकते हैँ। जिस क़दर हिम्मत अहिंसात्मक लड़ाईमेँ होती है, वह हिंसात्मक लड़ाईसे कहीँ ज़्यादा हिम्मतकी माँग रखती है।

अहिंसात्मक लड़ाईमेँ हमेँ ज़्यादा सन्तोष और दिलेरीके साथ काम लेना पड़ता है। आज जो रञ्जसे हमारे दिल भरे हैँ, वह क्योँ ? इसका एक कारण यह है कि इन नौजवानोँने तशद्दुदसे काम लिया। अगर वह अहिंसात्मक कार्यक्रमपर चले होते तो आज यह रञ्जका समय हमेँ देखना नहीँ पड़ता। भगतसिंहने ऐसा क्योँ किया ? यह महसूस करो कि यह उसका बड़ा भारी बलिदान था। लेकिन तुम समझ लो कि हमेँ स्वराज्य प्राप्त करना है। अहिंसात्मक मार्गपर चलनेसे चाहे तुम्हेँ कितने ही क्योँ न जोश दिलाए जाँय कि हिंसा करो और विदेशी राज्यका दुख दूर करो पर हिम्मत न हारो और हिंसा न करो। महात्माजीने अहिंसात्मक कार्यक्रम ही हमारे सामने रक्खा है। हमारा धर्म है कि हम इसके महत्त्वको अच्छी तरह समझ लेँ। भगतसिंहने भी जो चिट्ठी लिखी है, उसमेँ उन्होँने लिखा है कि हम शान्तिमय तरीक़ोँसे स्वराज्य क़ायम करते, लेकिन सरकारने हमारी एक न सुनी, सरकारने हमारे कहनेको एक न माना। कांग्रेसने बचानेकी कोशिश की और सरकारको यह यक़ीन दिलाया कि अगर वह हमको इस सज़ासे रिहाकर कोई दूसरी सज़ा भी दे दे, तो देशमेँ शान्ति क़ायम हो सकती है। गवर्नमेण्टने हमारी एक पुकार नहीँ सुनी। यदि भगतसिंह बच जाता तो एक भगतसिंहकी जान बचती। अब भगतसिंह नहीँ बचा। हमेँ ईश्वरने सबक़ पढ़ाया है कि हम सरकारको बदलनेमेँ तनिक भी देर न करेँ।

नौजवानोँ सङ्कल्प कर लो।

सबका यह सङ्कल्प होना चाहिए कि हम जल्दी-से-जल्दी उस कामको पूरा करेँ जिस कामके लिये भगतसिंहने अपने जीवनका बलिदान किया। उसकी सबसे प्रबल इच्छा थी कि जल्दी-से-जल्दी विदेशी राज्यको बदल देँ। यदि आप वास्तवमेँ भगतसिंहसे प्रेम करते हो तो प्रण करो कि शान्तिमय मार्गपर चलते हुए विदेशी राज्यको शीघ्र-से-शीघ्र हटाएँगे, तभी भगतसिंहकी आत्माको शान्ति मिल सकती है।

आप समझ गए होँगे कि प्रस्तावके तीन हिस्से हैँ। तीसरे हिस्से मेँ यह बताया गया है कि जब सुलह करनेकी कोशिश की तो शान्तिसे विचार करना ज़रूरी है। शर्त्त लगाकर सुलह नहीँ हो सकती। शान्तिसे विचार करनेसे ही सुलहकी शर्त्तोँपर विचार हो सकता है। कांग्रेसने शर्त्त लगाई थी कि सुलहकी पहली शर्त्त यह हो कि लड़ाईके सब क़ैदी छोड़ दिए जायँ। क्या यह कभी मुमकिन हो सकता है कि जब कुछ क़ैदी जेलोँमेँ पड़े रहेँ उस वक़्त हम सुलहकी बातेँ करेँ। यह मौक़ा था कि सरकार इस शर्त्तको मानती। यह सारे मुल्ककी पुकार थी। कांग्रेस नहीँ कहती थी कि उन्हेँ छोड़ दो, वह तो यही कहती थी कि उन्हेँ फाँसीसे छोड़कर आजन्म क़ैदकी सज़ा दे दो। अगर सरकार इसे मञ्ज़ूर कर लेती तो अंग्रेज़ी सल्तनत तबाह नहीँ हो जाती, बल्कि फल यह होता कि सैकड़ोँ नौजवानोँके दिल ठण्डे हो जाते। दूसरा सबक़ हमेँ यह मिला कि हमारी ताक़त इतनी कमज़ोर है कि कोई सुनवाई नहीँ हुई। महात्मा गान्धी जैसे पुरुषकी बात, जिसकी अमेरिका भी तारीफ़ करता है, वाइसरायने नहीँ सुनी। इसने मेरे हृदयमेँ लोहेकी कोलको और भी गहरी गाड़ दी है।

यह प्रस्ताव तीन हिस्सोँमेँ बँटा हुआ है। पहले हिस्सेमेँ हम बता देते हैँ कि हमारा ध्येय क्या है। आज हम अंग्रेजोँसे यह कहते हैँ कि वह अपनेको हमारी स्थितिमेँ रक्खेँ। काश ऐसी घटना वहाँ हुई होती तो क्या इन नौजवानोँको फाँसी मिल जाती। कभी नहीँ! मेरी शक्ति नहीँ कि उनकी तारीफ़ करूँ। सब यह मञ्ज़ूर करते हैँ कि उन्होँने जो भी किया मुल्कके प्रेममेँ किया। तुम ऐसा करो जैसा कि कांग्रेस और महात्माजी तुम्हेँ बताते हैँ। तुम ऐसा कर लोगे तो मुल्कका इन्तज़ाम जल्दी ही तुम्हारे हाथोँमेँ होगा। तुम दुनियामेँ इज़्ज़त पाओगे। इस बातको ध्यानमेँ रखकर इस

प्रस्तावको पास करो। भगतसिंहका शरीर गया; उनकी राख रावी नदीमेँ फेँक दी है; वह भारत-माताकी गोदमेँ लेट गए। मैँ चाहता हूँ नौजवानोँके अन्दर उनकी बहादुरी और प्रेमनक्श बनेँ। शुद्ध भावसे जान देते हुए शान्तिमय रास्तेसे भारतमेँ जबतक पूर्ण स्वतन्त्रता क़ायम न कर देँगे तबतक उसका नाम न भूलेँगे, ऐसा तुम प्रण करो। इसीसे तुम्हारा और भारतका नाम ऊँचा होगा।

आख़िरी हिस्सेमेँ कहा है कि उनके रिश्तेदारोँसे हम हमदर्दी करते हैँ। उनके पिता सरदार किशन सिंह यहाँ मौजूद हैँ। इतना सदमा रखते हुए वे आपकी कांग्रेसमेँ शामिल हो गए। वास्तवमेँ वे भगतसिंहके पिता होनेके लायक हैँ, ईश्वर उन्हेँ शान्ति दे। मैँ परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि जो बूढ़े हो गए हैँ, जो मुल्ककी सेवामेँ पीछे नहीँ हैँ उनके साथ नौजवान इत्तिफ़ाकसे काम करेँ। आप अपने लिये एक कार्य्यक्रम क़ायम कर लो, थोड़े दिनके लिये एक नीति क़ायम कर लो। क्या नौजवान क्या बूढ़े सब शामिल हो जाओ। मेरी अर्ज़ है कि सब एक दिल हो जाओ। सरकारको मालूम हो जाय कि अब हिन्दू और मुसलमान एक हो गए हैँ। नौजवान महात्माजीके कथनके अनुसार कर्म करनेके लिये तैयार होँ। आप एक होँगे तो आपकी जय होगी।

अध्यक्ष पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण

सन् १९३२ ई० मेँ कलकत्ता कांग्रेसके सैंतालीसवेँ अधिवेशनके लिये यह भाषण सभापति पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने तैयार किया था, परन्तु कांग्रेसको ग़ैरक़ानूनी संस्था घोषित करनेके कारण उनको पहले ही गिरफ़्तार कर लिया गया। अतएव श्रीमती नलिनी सेन गुप्तके सभापतित्त्वमेँ वह अधिवेशन हुआ जिसमेँ कि उनका निम्न भाषण पढ़कर सुनाया गया। —सम्पादक।

प्रतिनिधि भाइयो !

राष्ट्रीय महासभाके प्रधान पदके लिये चौथी बार निर्वाचित कर आपने जो मुझे सम्मानित किया है उसके लिये मैँ आप लोगोँको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। यह सम्मान मुझे ऐसे अवसरपर प्राप्त हुआ है जब देशकी स्थिति बड़ी विषम हो गई है। हमारे देशके पूज्य नेता महात्मा गान्धी और भारत-माताके बहुसंख्यक देशभक्त पुत्र और पुत्रियाँ जेलमेँ बन्द हैँ। ऐसे अवसरपर मुझपर जो विश्वास प्रकट किया है उसके लिये तो मैँ और भी अधिक कृतज्ञ हो गया हूँ। मुझपर जो दायित्त्व दिया गया है उसका मैँ पूर्णतः अनुभव कर रहा हूँ। मैँ भगवान्‌से मनाता हूँ कि मैँ इस दायित्त्वको निभानेमेँ समर्थ हो सकूँ।

गत वर्ष जब मैँ राष्ट्रीय महासभाका सभापतित्त्व करनेके लिये दिल्लीमेँ प्रवेश कर रहा था, मैँ गिरफ़्तार करके कांग्रेसकी बैठक होनेतकके लिये तथा पुलीसके-द्वारा उसे रोकनेका उद्योग करते रहनेपर भी प्रस्ताव पास होनेके बादतक जेलमेँ रोक रक्खा गया। इस बातसे और कांग्रेसके प्रति सरकारके व्यवहारसे—जैसा कि हालके सरकारी घोषणासे स्पष्ट है—जनताको यह सन्देह हो गया है कि इस वर्ष भी मैँ कांग्रेसमेँ सम्मिलित नहीँ होने दिया जाऊँगा। यह केवल अनुमान और कल्पनाकी बात नहीँ रह गई है। यह लेख लिखते समय आज प्रातःकाल काशीके कलेक्टरका निम्नाङ्कित पत्र मुझे प्राप्त हुआ।

"प्रिय पण्डित मदनमोहन मालवीय !

बङ्गाल-सरकारने इस प्रान्तीय सरकारको लिखा है कि बङ्गालमेँ जनता-संरक्षण-क़ानून जारी है। अतः यदि आप और अन्य नेता कलकत्ता-कांग्रेसकी बैठकके लिये जायँगे तो आपको उसमेँ सम्मिलित नहीँ होने दिया जायगा। मुझे आदेश मिला है कि मैँ उपर्य्युक्त सूचना आपको दूँ। मैँ प्रार्थना करता हूँ कि आप इसकी सूचना अन्य नेताओँको भी देनेकी कृपा करेँगे, जो इस समय काशीमेँ होँ।"

मैँ बङ्गाल-सरकारकी इस शिष्ट रीतिसे चेतावनी भेजनेकी प्रशंसा करता हूँ। किन्तु मैँने बङ्गाल-सरकारको सूचित कर दिया है कि मेरे विचारसे उनके इस निर्णयमेँ कोई औचित्य नहीँ है कि हम लोग कांग्रेसमेँ सम्मिलित न होँ। मैँने उन्हेँ बता दिया है कि मैँने किस गाड़ीसे कलकत्ते जानेका विचार किया है। गत वर्ष सरकारने दिल्लीकी कांग्रेसमेँ सम्मिलित होनेके लिये आते समय बहुत लोगोँको रास्तेमेँ ही गिरफ़्तार कर लिया। मैँ सुनता हूँ कि इस साल भी कांग्रेसमेँ सम्मिलित होनेके लिये कलकत्ता जानेवाले लोगोँको रोकनेमेँ पुलीस बड़ी

तत्परता दिखा रही है। किन्तु सम्भवतः इस बातकी शङ्का करके कि गत वर्षकी तरह इस वर्ष भी पुलीस प्रतिनिधियोँको कलकत्ता आनेसे रोकनेमेँ असमर्थ रहेगी—कलकत्तेके पुलीस कमिश्नरने पत्रोँमेँ इस आशयकी एक सूचना जनताको चेतावनी देते हुए प्रकाशित कराई है कि जो कोई यह जानते हुए कि अमुक व्यक्ति सन् १९३३ ई० के कलकत्ता-कांग्रेसके लिये प्रतिनिधि होकर आया है, उसको आश्रय देगा, स्वागत करेगा, या अपने या अपने अधिकारके किसी घरमेँ सभा होनेकी सुविधा करेगा, वह दण्ड-विधानकी धाराके अनुसार दण्डित होगा। कमिश्नरने सभी ज़मीन्दारोँको भी चेतावनी दे दी है कि उक्त कांग्रेसकी स्वागत-कारिणी-समिति ग़ैर क़ानूनी संस्था घोषित कर दी गई है। और कोई स्थान, जो बङ्गाल-सरकारकी समझमेँ उस ग़ैरक़ानूनी संस्थाकी बैठकके काममेँ लाया जायगा, वह ज़ब्त करके पुलीसके अधिकारमेँ कर लिया जायगा और उस मकानमेँ जो व्यक्ति पाया जायगा उसे निकालकर उसकी चल सम्पत्ति ज़ब्त कर ली जायगी। सरकारने कलकत्ता कांग्रेसकी बैठक न होने देनेके लिये भरसक प्रयत्न किया। सरकार जितने कांग्रेस-वालोँको गिरफ़्तार कर सकेगी, गिरफ़्तार करेगी। किन्तु यह मान लेना चाहिए कि गत वर्षकी भाँति इतना होनेपर भी कलकत्ता-कांग्रेसकी बैठक होगी। इतना होनेपर भी कांग्रेसवाले सभा करने और भाषण करनेके साधारण अधिकारकी रक्षा करेँगे। इसके अतिरिक्त, गतवर्षकी भाँति कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनके वाद प्रान्तीय और ज़िला कांग्रेस अधिवेशन समस्त देशमेँ होँगे, जिनमेँ कांग्रेसद्वारा स्वीकृत प्रस्ताव दुहराए जायँगे।

इससे सरकारको मानना पड़ेगा कि देशमेँ सदा ऐसे लोगोँकी पर्य्याप्त संख्या रहेगी जो अपनेको गिरफ़्तार कराने, जेल जाने और सब प्रकारके कष्ट सहन करनेके लिये तैयार रहेँगे, जो सरकार अपनी शक्तिसे उन्हेँ देगी। किन्तु वे लोग मनुष्य-मात्रके उस जन्मजात अधिकारको त्यागनेके लिये तैयार न होँगे और सदा अन्यायपूर्ण, कष्टदायक और अपमानकारी क़ानून और व्यवस्थाके विरोधमेँ अपनी शक्ति लगावेँगे और सरकारको कांग्रेसके प्रति अपने इस व्यवहारपर पुनः विचार करनेके लिये वाध्य करेँगे।

सरकारकी वर्त्तमान नीतिको नैतिक समर्थन नहीँ प्राप्त है और राजनीतिक दृष्टिसे भी यह बुद्धिसङ्गत नहीँ है। इसकी जितनी निन्दा की जाय थोड़ी है। कांग्रेस भारतकी ग़ैर-सरकारी पार्लियामेण्ट कही जा सकती है। यह देशका सबसे महान् गतिशील राजनीतिक सङ्गठन है। आज इसकी स्थापना हुए सैँतालीस वर्ष हो गए। इसका इतिहास महान् रहा है। गत अर्द्ध शताब्दिमेँ, देशमेँ जितने मुख्य व्यवस्थात्मक और प्रवन्धात्मक सुधार हुए हैँ वे सब कांग्रेसके कार्य्य और दवावके कारण हुए हैँ। स्वायत्त शासन और जनताकी स्वतंत्रताके अधिकारको निरन्तर दृढ़ता और निर्भीकताके साथ प्रतिपादन करनेमेँ कांग्रेसने देशका नेतृत्त्व किया है। कांग्रेसकी छियालीस जिल्दोँकी रिपोर्ट, इसके प्रान्तीय और ज़िला सम्मेलनोँकी असंख्य रिपोर्टेँ, तथा प्रान्तीय और राज्य-परिषद् तथा व्यवस्थापिका सभाओँकी कार्रवाइयाँ, सब इस बातका ज़ोरदार समर्थन करते हैँ कि किस प्रकार कांग्रेस एक-एक विधानके लिये जनताकी दशा और उनकी राजनीतिक उन्नतिमेँ सब ओरसे उन्नतिको दृष्टि कोणमेँ रखकर लड़ती रही है। कांग्रेस सदा राजनीतिमेँ समानाधिकारकी प्राप्ति और जनताके प्रत्येक वर्ग और उपवर्गके साथ समान न्यायके लिये लड़ती रही है। गत तेरह वर्षोँसे कांग्रेसके अति आदरणीय नेतागण देशके हितके लिये जेल-यातना भुगत रहे हैँ। इन सब कारणोँसे जनता कांग्रेसको अपना सर्व-श्रेष्ठ मित्र और पथप्रदर्शक मानती है। व्यक्तिगत हितका बलिदान करके भी सारा देश इसकी आज्ञा माननेके लिये सदा तत्पर है।

जबसे श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डके प्रस्ताव प्रकाशित हुए हैँ तबसे कांग्रेसने केन्द्रीय भारत-सरकारमेँ दायित्त्व पानेके लिये बहुत ज़ोर मारा है। यह देखकर कि सरकारने हमारी प्रार्थना अनसुनी कर दी, तभीसे कांग्रेसने सन् १९२९ ई० मेँ यह घोषणा कर दी कि यदि सरकार आगामी वर्षके अन्ततक भारतको औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करनेकी घोषणा नहीँ करती तो कांग्रेस देशको पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी घोषणा करनेकी राय देगी। सन् १९२९ ई० की पहली नवम्बरको बड़े लाटने एक घोषणा की, किन्तु उस घोषणासे जनता और कांग्रेसको इच्छाओँकी पूर्त्तिके लिये सन्तोष न हुआ। फलतः पहली जनवरी सन् १९३० ई० को कांग्रेसने पूर्ण स्वतन्त्रताको अपना लक्ष्य घोषित कर दिया। बारहवीँ मार्चको महात्मा गान्धीने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन आरम्भ किया। क्रमसे राष्ट्रीय माँगोँपर राज़ी होनेके लिये सरकारसे कहा गया, जिसकी उन्होँने और भी स्पष्ट व्याख्या कर दी थी। सरकारने दमन नीतिका प्रयोग किया, किन्तु सरकार अपने प्रयत्नमेँ असफल रही। इसके बाद एक सालतकके दमनपूर्ण शासनके बाद लौर्ड इर्विनकी सरकारने महात्मा गान्धीद्वारा कांग्रेससे समझौता करना उचित और बुद्धिमानीका कार्य्य समझा, जो गान्धी-इर्विन समझौता कहलाता है। इङ्गलैण्डके प्रधान मन्त्रीने कांग्रेसको गोलमेज़ सभामेँ अपना प्रतिनिधि भेजनेके लिये निमन्त्रित किया, क्योँकि सरकारने यह अनुभव किया कि कांग्रेसके बिना उक्त सम्मेलनका कोई मूल्य नहीँ है। गोलमेज़के कार्य्यको बढ़ानेके लिये कांग्रेस सरकारसे सहयोग करनेकी उत्सुकताके साथ वे (महात्मा गान्धी) भारत लौटे। किन्तु जब कि लन्दनमेँ सम्मेलन हो रहा था उसी समय साधारण निर्वाचनद्वारा पार्लियामेण्टमेँ अपरिवर्त्तनवादियोँका बहुमत हो गया। एक घोर अपरिवर्त्तनवादी ही भारत-सचिव नियुक्त हुए। गोलमेज़ सभामेँ कलकत्तेके अंग्रेज़ व्यापारियोँका प्रतिनिधित्त्व करनेवाले श्री बैन्थलने कहा है कि निर्वाचनके परिणाम स्वरूप नीति एकदम बदल गई। नई सरकारके दाहिने पक्षने सम्मेलन मञ्ज़ूर कर देने और कांग्रेससे युद्ध करनेका निश्चय किया। मुसलमान लोग केन्द्रीय शासनदायित्त्व नहीँ चाहते थे, अतः वे बड़े प्रसन्न हुए। सरकारने निश्चय ही अपनी नीति बदल दी, और 'केन्द्रमेँ' सुधारकी प्रतिज्ञा करके प्रान्तीय स्वायत्त-शासनसे छुटकारा पाना चाहती थी। कांग्रेसके साथ युद्ध अनिवार्य्य हो जानेके पूर्व हम लोगोँने इसका अनुभव किया और इसकी प्रार्थना की कि केन्द्रीय सरकारमेँ, जहाँतक शीघ्र हो सके, सुधार हो जाय तो अच्छा है। किन्तु हम लोगोँने निश्चय किया कि पूर्ण सफलताके लिये हमारे लिये जितने भी सम्भव हो अपने समर्थक बनावेँ अतः हमने यह आवश्यक समझा कि हिन्दुओँको उभार देँ, जिनके प्रतिनिधि सप्रू, जयकर तथा अन्य सज्जन थे, क्योँकि यदि हम इनसे कांग्रेसके लिये लड़नेकी आशा नहीँ करते तो कम-से-कम इतना तो अवश्य समझना चाहिए कि ये कांग्रेसका साथ नहीँ देँगे। हम लोगोँने सरकारपर इस बातका ज़ोर दिया कि इन लोगोँको सन्तुष्ट कर सकनेवाला आवश्यक और एकमात्र सद्भाव यह है कि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारकी व्यवस्थाको एक ही विधानमेँ ला देँ।

अतः हमेँ विचित्र साथी ढूँढ़ने पड़े। सरकारने इस बातका महत्त्व समझा और सम्मेलनको अव्यवस्थित रूपमेँ भङ्ग करनेके बदले, जहाँ शत-प्रतिशत हिन्दू-राजनीतिक-भारत हमारे विरुद्ध होता, सम्मेलनका अन्त निन्यानबे प्रतिशत सदस्योँद्वारा सहयोग करनेकी प्रतिज्ञाके साथ हुआ—जिसमेँ मालवीयजीके समान व्यक्ति भी सम्मिलित थे—और महात्मा गान्धीने स्वयं स्टैण्डिङ्ग कमेटीमेँ सम्मिलित होनेकी इच्छा प्रकट की थी।

इसपर टीका-टिप्पणीकी आवश्यकता नहीँ है। इसके बादकी घोषणा और सन् १९३२ ई० के चार जून वाले वक्तव्यमेँ अन्त होनेवाले सरकारके कार्य्य आदिसे यह स्पष्ट हो गया है कि महात्मा गान्धीके

देश लौट आनेके पहलेसे ही सरकारने ख़ूब सोच-समझकर प्रबल दमनकारी आक्रमण कांग्रेसपर करनेका निश्चय कर लिया था और इसके लिये अपने निश्चयपर ठण्डे दिमाग़से मन्त्रणा भी हो चुकी थी। इन बातोंसे यह समझना सरल हो जाता है कि बड़े लाटने महात्मा गान्धीसे मिलनेकी अनुमति देनेसे क्यों असम्मति प्रकट की जब कि वे बड़ी उत्सुकतासे कुछ प्रान्तोंमें सरकार और कांग्रेसके बीच फैली हुई ग़लतफ़हमी दूर करने और सविनय अवज्ञाके प्रयोगको रोकनेके विषयमें वाइसरायसे मिलनेको उत्सुक थे। सरकारने उन्हें अवसर नहीं दिया और तभीसे उन्हें बन्दी कर रक्खा है। भारतके हर भागमें अत्यन्त भयानक काले क़ानून जारी किए गए, जिससे सरकारी कर्मचारियोंको जनतापर ज़ुल्म करनेकी असीम शक्ति प्राप्त हो गई। फलतः समस्त भारतमें भयङ्कर दमन होने लगा। गत पन्द्रह महीनोंमें लगभग एक लाख बीस हज़ार व्यक्ति गिरफ़्तार करके बन्दी बनाए गए, जिसमें कई हज़ार स्त्रियाँ थीं और बालकोंकी एक ख़ासी संख्या थी। जबसे वर्त्तमान नीतिका प्रयोग हुआ तबसे देशवासियोंपर होनेवाले अत्याचारोंकी मैं सूची नहीं देना चाहता। समाचारोंकी बड़ी जाँच और नियन्त्रण होनेपर जो कुछ अबतक समय-समयपर पत्रोंमें प्रकाशित हुआ है, उससे स्पष्ट मालूम होता है कि दमनका विस्तार और उसका स्वरूप अभूतपूर्व है।

यह सर्वविदित है कि जब सरकारने दमन आरम्भ किया तब सरकारी कर्मचारियोंकी आशा थी कि वह छः सप्ताहमें कांग्रेसको कुचल डालेगी। किन्तु पन्द्रह मासकी अवधिमें भी सरकार अपने इस उद्देश्यकी पूर्त्ति नहीं कर सकी। इसके दूने समयमें भी सरकार अपने उद्देश्यकी पूर्त्तिमें सफल नहीं होगी। क्योंकि सरकारके अधिकारमें पशुबलका बाहुल्य है अतः उसके प्रयोगसे सरकारी अधिकारकी अवज्ञाका बाह्य प्रदर्शन भले ही कुछ कम हो गया हो किन्तु नैतिक विजय कांग्रेसको ही मिली है, जिसने अपनी मुख्य कार्य्य-प्रणाली छूटने नहीं दी है। पार्लियामेण्टमें अपरिवर्त्तनवादियोंके शक्तिशाली होनेसे जो नीति बदली उससे सरकारकी प्रतिष्ठा कम हो गई है। जो दमन चल रहा है उससे सरकारके प्रति जनताका भाव पहलेकी अपेक्षा और भी बुरा हो गया है। और इङ्गलैण्डसे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेनेका भाव निरन्तर दृढ़ होता चला जा रहा है।

सविनय-अवज्ञा

यह कई बार सरकारकी ओरसे कहा जा चुका है कि सरकारका कांग्रेससे केवल सविनय अवज्ञाके प्रयोगके सम्बन्धका झगड़ा है। श्री बैन्थलके पत्रको उद्धृत करके मैंने यह दिखा दिया है कि कलकत्तेके अनुदार दलवालोंने और योरोपियन समाजने कांग्रेसके साथ लड़नेका निश्चय कर लिया है। इसलिये नहीं कि इसने सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया है बल्कि इसलिये कि वह बृटिश राज्य-सत्ताका भारतीयोंके हाथमें देनेका दावा करती है। दूसरे शब्दोंमें वह स्वाधीनता प्राप्त कर लेनेके बाद देशके मामलोंका स्वयं प्रबन्ध करनेका अधिकार पानेका दावा करता है। यह याद रखना चाहिए, जैसा कि एक बार सर सैमुअल होरने बड़े गर्वके साथ कहा था कि इस बार सरकारकी ओरसे ही छेड़-छाड़ आरम्भ हुई है। कांग्रेसने जनताके अधिकारकी रक्षाके लिये सविनय अवज्ञाका आश्रय लिया था जो कि काले क़ानूनोंकी सृष्टिसे सरकारद्वारा छीन लिया गया था। आन्दोलनके आरम्भसे अन्ततक दमनके प्रयोगको त्यागकर सविनय अवज्ञाको स्थगित करना सरकारके हाथमें था। जो कुछ मैंने ऊपर कहा है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि कांग्रेस सविनय अवज्ञा स्थगित कर देती तो भी इङ्गलैण्डकी वर्त्तमान सरकार और भारत-सरकार कांग्रेसके साथ अवश्य लड़ती और तबतक लड़ती जबतक भारतीय लोग सुधारकी उस सङ्कुचित योजनाको स्वीकार

करनेके लिये तत्पर न होते, जो उनकी बुद्धिसे कल्पित पहलेकी योजनासे भी अधिक भ्रष्ट होती।

सविनय अवज्ञाके सम्बन्धमेँ व्यवस्थात्मक इतिहासको प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि यह प्रत्येक व्यक्तिका अधिकार है कि वह शासनात्मक क़ानून और नियमकी अवज्ञा करे जो स्पष्टतः अन्यायपूर्ण, अत्याचारपूर्ण और अपमानजनक है यदि वह अवज्ञा करनेवाला उस दण्डको भुगतनेके लिये तैयार हो जो इस अवज्ञाके फलस्वरूप उसको दिया जाय। जनताका समर्थन प्राप्त करनेके लिये मानवीय क़ानूनको अवश्य ही काममेँ लाना चाहिए जैसा कि एक अंग्रेज़ जूरीने कहा है कि—"प्रकृतिका विधान—जैसे न्याय, समानता, नम्रता, दया, सर्वभूतमेँ आत्मवत् प्रयोग, दूसरोँके साथ वैसा ही करना जैसे हम दूसरोँसे चाहते होँ—आदिपर निर्भर होना चाहिए।" एक दूसरे अंग्रेज़ जूरीने कहा है,—"मानवीय हृदयकी भावनाओँपर नियन्त्रण करनेका व्यवस्थासम्बन्धी क़ानूनको अधिकार नहीँ है, बल्कि उसका काम मानवीय हृदयकी भावनाओँकी व्याख्या करने और उनके अनुकूल आचरण करना है।" जब सरकार विशेष क़ानूनका प्रयोग करती है अथवा उन क़ानूनोँकी सृष्टि करती है जिनके द्वारा अधिकारियोँको जनतापर अत्यन्त अनियन्त्रित असीम शक्ति प्राप्त होती है—जब कि उनकी स्वतन्त्रता, उनकी शक्ति, उनकी सम्पत्तिका समस्त अधिकार कार्य्यकारिणी सरकारकी दयापर निर्भर करता है, उन्हेँ ऐसी आज्ञा और प्रतिबन्धोँका शिकार बनना पड़ता है जिनका उद्देश ही स्पष्टतः जनताको अपमानित, भयभीत और पतित करना होता है तो ऐसी परिस्थितिमेँ ऐसे क़ानूनोँ, आर्डिनेन्सोँ और व्यवस्थाओँकी अवज्ञा और विरोध करना जनताका धर्म हो जाता है। अंग्रेज़ राज्य-व्यवस्थाके अनुसार बृटिश पार्लियामेण्टके हाथमेँ क़ानून बनानेका अधिकार है और बृटिश जनताके लिये किसी भी क़ानूनकी सृष्टि और विनाश इसके हाथोँका खेल है। किन्तु जैसा कि एक अंग्रेज़ लेखक डाएसीने बताया है कि "किसी राजाद्वारा और विशेषकर पार्लियामेण्टद्वारा राज्यशक्तिका उचित प्रयोग चाहे जो हो, पर वह सदा लोक-विरोधपर ही अवलम्बित है। आगे चलकर वे कहते हैँ कि—राजाकी यथार्थ शक्तिकी बाह्य सीमा इस बातकी सम्भावना और निश्चिततामेँ है कि उसकी प्रजाका बहुमत कहाँ उसके क़ानूनकी अवज्ञा करेगा या उसके विरुद्ध आचरण करेगा" और इससे भी अधिक कि, "कोई राजा ऐसे अवसरपर ऐसा बहुत कार्य्य करनेकी इच्छा करेगा जो आजतक उसने नहीँ किया है अथवा केवल भयङ्कर विरोध होनेपर ही कर सकता है। अन्य कई कारणोँसे यह विचारणीय है कि ठीक स्थान जहाँसे बाह्य सीमा प्रारम्भ होती है—वह स्थान है, जिसपर प्रजाको विशेष आपत्ति है और ऐसे स्थानपर प्रजा उस शासककी अवज्ञा करती है जिससे वह प्रायः माँगती रही है, इसकी कोई सीमा नहीँ है।" एक दूसरे बड़े लेखकको 'डाएसी' ने उद्धृत किया है। जो कहता है कि "यदि व्यवस्थापिका सभा यह निश्चय कर दे कि नीली आँखवाले सभी लड़के मार डाले जायँ—ऐसी दशामेँ नीली आँखके लड़कोँकी रक्षाका कार्य्य ग़ैर-क़ानूनी हो जायगा। किन्तु क़ानूनके माननेवालोँको ऐसा क़ानून माननेके पहले पागल हो जाना पड़ेगा।" यह प्रतिबन्ध स्वच्छन्द राजाके राज्यमेँ भी रहा है।

एक दूसरे अंग्रेज लेखक जौन ड्रिङ्कवाटर कहते हैँ कि यह माँग उपस्थित करना कि नागरिक उसके शासनका समर्थन ऐसी दशामेँ करेँ जो सभी न्यायके परे, अन्यायमूलक एवं बुद्धि विरुद्ध है—ठीक उस माँगके समान है जो व्यक्तिगत सुविधाके लिये उपस्थित की गई हो—जिसको किसी संस्था या व्यक्तिको उपस्थित करनेका अधिकार नहीँ है। श्री फ़िशर साहब इस सम्बन्धमेँ एक सङ्क्षिप्त वक्तव्य देते हैँ कि "यह धारणा कि शासन पवित्र है और वह अन्याय नहीँ कर सकता और इसका विरोध नहीँ होना चाहिए और इसका सदा समर्थन तथा संरक्षण होना चाहिए—चाहे वह किसी भी अन्यायका

आचरण करे तो नागरिकके लिये एकमात्र यही विधान कि—'मेरा देश है—चाहे सही रास्तेपर है अथवा ग़लत' यह धारणा व्यक्तिगत भावनाकी स्वीकृतिके विरुद्ध है।"

अतः यह निर्विवाद है कि यदि कोई व्यवस्थापिका सभा अथवा राजा ऐसे क़ानूनका प्रयोग करता है जो स्पष्टतः अन्यायमूलक और उत्पीड़क हो और हमारी साधारण स्वतन्त्रताका विघातक हो तो जनताको ऐसे क़ानूनकी अवज्ञा करने और उसके विरुद्ध गम्भीर एवं घोर-विरोध करना चाहिए। अवज्ञा अथवा विरोधका यह अधिकार जनताके हाथमेँ बहुत ही मूल्यवान वैध अस्त्र है—जिसके ज़ोरसे जनता अधीश्वर या पीड़क राजापर या व्यवस्थापिका सभापर बुद्धि और न्यायकी सीमाके भीतर ही अधिकार-प्रयोग करनेके लिये बाध्य कर सकती है। इसके द्वारा वह अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रता और अधिकारको पुनः स्थापित कर सकती है, जब भी कभी उसपर आक्रमण हो। हमारी सबसे बड़ी स्वतन्त्रता विचारकी स्वतन्त्रता है। इसके द्वारा सरकार भी अपने कर्त्तव्यके अधीन की जाती है। इसने सब कालमेँ सत्यताको अमरत्त्व प्रदान किया है और संसारके उन लोगोँके पवित्र रक्तसे अपनी अज्ञानताको धोया है, जिन्होँने इसे प्रकाशित किया था। अतः हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम ऐसे क़ानूनकी अवज्ञा और विरोध करेँ जिससे हमारे सहमिलन और सम्भाषणकी स्वतन्त्रताका अपहरण होता हो। महात्मा गान्धीने ऐसी परिस्थितिमेँ अहिंसात्मक सविनय अवज्ञाके प्रयोगकी भारतीयोँको शिक्षा देकर मानव समाजकी महान सेवा की है। यह प्रतिवाद वैध और अहिंसात्मक है। स्वयं शान्तिपूर्वक चोट सह लेना और चोट पहुँचानेवालेको किसी प्रकार चोट पहुँचानेकी चेष्टा न करना, इसका सिद्धान्त है। भारतमेँ आपकी शिक्षा लाखोँ-नर नारियोँने स्वीकार की है। हमको इस दृढ़ विश्वासके साथ इसका अनुकरण करना चाहिए कि सत्यकी अवश्य विजय होगी। हमेँ बृटिश सरकारको बता देना चाहिए कि हम भारतीय निःशस्त्र हैँ, विदेशी अनियन्त्रित शासनके अन्दर बसते हैँ, अपनी स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त करनेके लिये सचेष्ट हैँ और एक क्षणके लिये भी सविनय अवज्ञा रूपी अभेद्य-कवचको त्याग या स्थगित करनेकी बात नहीँ सोच सकते। सरकारके लिये उचित मार्ग यही होगा कि वह अपना सम्बन्ध जनताके अनुकूल, स्वतन्त्रता, समानता, पारस्परिक सद्भाव और मैत्रीके आधारपर स्थित करे। और वह परस्पर द्वेष तथा दुर्भाव दूर हो, जिसका वर्त्तमान परिस्थितिमेँ एकमात्र अनिवार्य्य प्रतिफल सविनय अवज्ञा है।

भारत और इङ्गलैण्डका सम्बन्ध

भारत और इङ्गलैण्डका सम्बन्ध विषाक्त आधारपर स्थित है। अंग्रेज़ जाति और अंग्रेज़ी पार्लियामेण्टने यह सोच लिया है कि उन्हेँ भारतपर शासन करते रहनेका नैतिक अधिकार है। जिसका अर्थ अपने राष्ट्रकी उन्नतिके लिये भारतको लूटना है। वे यह स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीँ हैँ कि प्रत्येक अन्य देशकी तरह भारतको भी स्वशासनका अधिकार है अर्थात् ग्रेट बृटेनके समान ही इसको भी पूर्ण स्वतन्त्रताका अधिकार है। वह एक विचित्र स्थिति थी जब कि इङ्गलैण्ड भारतमेँ अपना शासन स्थापित करनेमेँ समर्थ हुआ। उक्त परिस्थितियाँ इतनी अधिक स्पष्ट हैँ कि उनकी व्याख्या अनावश्यक है। घोषणाके बादसे बृटिश राजनीतिज्ञोँने भारतीयोँको प्रायः अपने समानका शासित वर्ग कहा है। किन्तु अभीतक इन लोगोँने हमारे साथ समानताका व्यवहार नहीँ किया है। कांग्रेसने अपने जन्मसे ही इस बातकी सिफ़ारिश की है कि भारतमेँ स्वायत्त-शासन स्थापित होना चाहिए। योरोपमेँ महासमरके आरम्भसे ही कांग्रेस सरकारपर इसके लिये ज़ोर दे रही है। इङ्गलैण्डके राजा और बृटिश नेतृमण्डल प्रायः भारतीय नरेशोँ और भारतीयोँसे इङ्गलैण्ड और उसके मित्र

राष्ट्रोँको इस आधारपर युद्धमेँ सहायता करनेके लिये कहते रहे हैँ कि इङ्गलैण्ड 'सत्यमेव जयते' के सिद्धान्तकी स्थापना और सन्धिके अधिकारकी रक्षा और उसके प्रति कर्त्तव्य-पालनकी बुद्धिसे प्रेरित होकर युद्धमेँ भाग ले रहा है और उनका प्रतिपक्षी जर्मन स्वतन्त्रताके लिये नहीँ बल्कि 'जिसकी लाठी उसकी भैँस' वाले सिद्धान्तके राज्यकी स्थापनाके लिये लड़ रहा है। एक अंग्रेज़ राजनीतिज्ञने कहा है कि हम सब भी स्वतन्त्रताके लिये लड़ रहे हैँ। विदेशी नियन्त्रणके अन्दर असह्य पतनकी इन लोगोँने बड़ी निन्दा की है। श्री मैण्टेगू और लॉर्ड चेम्सफ़ोर्डकी रिपोर्टमेँ कहा है कि 'यह युद्ध अधीश्वरवाद और स्वतन्त्रताके बीच है। अपने भाग्य-निर्णयका अधिकार मनुष्यमात्रको और छोटे राज्योँको भी प्राप्त है। उस अधिकारकी रक्षाके लिये यह युद्ध है।" अमेरिका और इङ्गलैण्डके राजनीतिज्ञोँने अपने भाषणोँमेँ यह घोषित किया था कि 'यह युद्ध जर्मन सैनिकवादके प्रतिवादमेँ हो रहा है। साथ ही छोटे और बड़े राष्ट्रोँके अपने भाग्यके स्वयं निर्णय करनेके अधिकारकी स्वीकृतिके पक्षमेँ यह युद्ध है। भारतने इङ्गलैण्ड और उसके मित्र राष्ट्रोँको युद्धमेँ सहायता करनेमेँ कोई कसर नहीँ उठा रक्खी। महासमरमेँ भारतने जो सहायता की थी, उसे अंग्रेज़ोँने बड़ी उदारतासे स्वीकार किया।' इन्होँने भारतकी राज्य-सहायताका विवेचनपूर्वक स्वागत किया और भारतीयोँ और अंग्रेज़ोँको इन्होँने सबके हित और भाग्यका समान रक्षक कहा है। युद्ध समाप्त हो जानेके बाद इन वक्तव्योँ और घोषणाओँकी उपेक्षा करके इङ्गलैण्डने भारतके प्रति अपना रुख़ ही बदल डाला। तथापि सरकार इस बातसे सहमत रही है क्योँकि भारतने विगत महासमरमेँ जानेँ गँवाई हैँ और धन व्यय किया है; अतः इसको कुछ स्वतन्त्र अधिकार मिलने चाहिएँ। ऐसा करनेके बदले सरकारने गत तेरह सालतक भारतीयोँको एक नीच वर्ण समझा है, जिसकी स्वायत्त शासनके अधिकार-सम्बन्धी प्रगतिका क्रम इङ्गलैण्डकी पार्लियामेण्टके अधीन किया है। इस बातके दम्भने भारतीयोँके हृदयपर चोट पहुँचाई है और अत्यन्त कटु भाव फैलाया है। जिस दमनका प्रयोग बृटिश-सरकारने भारतमेँ लाखोँकी संख्यामेँ अपनी समान प्रजापर किया है, जिन्हेँ अंग्रेज़ोँने युद्धकालमेँ बराबरीका स्थान देकर और साम्राज्यके भाग्यका समान संरक्षक कहकर स्वागत किया था। इस दमनसे भारत और इङ्गलैण्ड-सम्बन्धी इतिहासका एक अध्याय काले पृष्ठोँसे भरा हुआ है, जिसके कारण लज्जासे प्रत्येक अंग्रेज़का सिर नीचे रहेगा।

श्वेत-पत्र

इङ्गलैण्डने जो सबसे भारी अपमान भारतका किया है वह उसके सर्वमान्य नेताको नज़रबन्द करना और भारतके लाखोँ देशभक्त नर और नारियोँको जेलमेँ क़ैद करना है। इसके साथ ही दूसरी ओर वह भावी शासनके नये विधानको तैयार करनेमेँ भी लगी हुई है जिसे वह अपने अनुकूल मनोनीत कुछ भारतीयोँकी सहायतासे कर रही है। उसने नये विधानको ऐसे दम्भ भरे हुए अधिकारको मानकर बनाया है कि बृटिश पार्लियामेण्टका यह कर्त्तव्य और नैतिक भार है कि वह इस बातका निर्णय करे कि कहाँतक और किन-किन नियन्त्रणोँ और संरक्षणोँके साथ वह भारतको अपने घरेलू शासनमेँ अधिकार देगी। श्वेत-पत्र उन बृटिश राजनीतिज्ञोँकी भारतके और उसकी समस्याओँके प्रति गन्दी मनोवृत्तिका परिचायक है, जो अंग्रेज़ी पार्लियामेण्टपर इस समय अधिकार किए हुए हैँ। इसके द्वारा भारतीयोँकी देशभक्ति और बुद्धिमत्ताके विरुद्ध आजकी दशाके अनुसार और भी अधिक निरादर जान बूझकर किया गया है। यह आशा करना ही व्यर्थ था कि वह शासन-विधान भारतीयोँको मान्य होगा जिसका जन्म ऐसे वातावरण और ऐसी मनोवृत्तिवाले बृटिश राज-नीतिज्ञोँद्वारा हुआ है जो भारतके प्रतिकूल भाव रखते हैँ। इसमेँ कोई आश्चर्य्य नहीँ है कि श्वेत-पत्रकी समस्त भारतमेँ निन्दा हुई है। मुझे आशा है कि

कोई भी आत्म-सम्मानवाला भारतीय जो मातृ-भूमिके प्रति अपना उचित धर्म समझता है, श्वेत-पत्रसे सम्बन्धित किसी भी मामलेमें भाग न लेगा जबतक कि बृटिश सरकार अपनी वर्त्तमान नीतिमें परिवर्त्तन न करे और भारतीयोंको बरावरीका सम्मान न दे, जो इङ्गलैण्डके समान ही अपने देशका स्वयं प्रवन्ध करनेके अधिकारी हैं।

जनतासे अपील

मैं अपने सारे देश-वासियोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे सच्ची स्थितिको समझें। यह सर्वसम्मत है कि प्रत्येक भारतीय चाहता है कि हम स्वयं अपने देशका शासनप्रबन्ध करें। इस स्वतन्त्रताकी प्राप्ति तव सरल होगी, जव हम सव सङ्गठित होकर लगनके साथ उसे प्राप्त करनेका यत्न करें। अन्य देश-वासियोंसे भी मेरा नम्र अनुरोध है कि सब साम्प्रदायिक मतभेदको त्यागकर सब मतके लोगोंमें राजनीतिक एकता स्थापित करें। जो एकता-सम्मेलन प्रयागमें हुआ था वह साम्प्रदायिक निर्णय लगभग कर चुका है। मुझे पूर्ण आशा है कि कौन्फ्रेन्स शीघ्र ही पुनः अपना कार्य्य आरम्भ करेगी और सब सम्प्रदायोंके लिये सन्तोष-प्रद निर्णय करेगी। हमारा राष्ट्रीय राजनीतिक ध्येय सब दलोंके लिये एकसा है। और श्वेत-पत्रने जो देशके लोगोंकी आँखें खोल दी हैं, उससे यह आशा करनी चाहिए कि हम देशमें राजनीतिक एकता स्थापित कर सकेंगे। यदि हम ऐसा करनेमें सफल हुए तो सङ्गठित भारतका दबाव बृटिश-सरकारका भारतके प्रति अपना विचार परिवर्त्तन करनेके लिये बाध्य करेगा। और भारतीयोंको स्वभाग्य-निर्णयके अधिकारको देनेके लिये और ऐसा शासन-विधान निर्माण करनेके लिये बुलाया जायगा, जिसके द्वारा भारतीयोंको अपना प्रबन्ध अपने-आप करनेकी वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

मैं आपका समय अधिक नहीं लूँगा। हम अति विषम स्थितिमें यहाँ एकत्र हो रहे हैं। सब प्रकारकी विघ्न-वाधाएँ जैसे—गिरफ़्तारियाँ, ज़ब्तियाँ, पाशविक वलका प्रयोग, अत्याचार और दमन करके कुचलनेके लिये चारों ओरसे घेरकर हमको यातनाएँ दी जा रही हैं। किन्तु हमें डरकर चुप नहीं हो जाना चाहिए। ईश्वर हमारी सहायता करेगा कि जिससे हम प्रत्येक समस्याको अपनी प्यारी मातृ-भूमिके प्रति सम्मान और हितकी दृष्टिसे विचार कर सकें और वह हमारे देशवासियोंको ऐसी स्थितिमें उचित और सन्मार्गपर ले जानेके लिये हमको प्रकाश देगा, जो कि वाधाओंसे घिरे रहनेपर भी आशा-पूर्ण है। हमारा ध्येय स्पष्ट है। इसको प्राप्त करनेका हमारा दृढ़ निश्चय है, जिसका प्रमाण गत तीन वर्षोंमें असंख्य नर-नारी और वच्चोंके त्यागसे स्पष्ट है। आज हमारे वीरोचित संग्रामपर संसार आश्चर्य्यचकित है। स्वतन्त्रता-संग्राममें भारतीय महिलाओं और वच्चोंने जो अद्भुत कार्य्य किया है, उससे उनका नाम अमर हो गया है। किन्तु हमें अपने निश्चयको और भी अधिक दृढ़ बनाना चाहिए। स्वतन्त्रताका पूरा मूल्य हमें चुकाना पड़ेगा। कांग्रेस सब वर्ग और सब जातियोंकी हितैषी है। इसकी सबके लिये समान न्याय दिलानेकी पवित्र प्रतिज्ञा है। मैं प्रत्येक नर और नारीसे भारतीय राष्ट्रीय महासभाका सदस्य बननेका अनुरोध करता हूँ। मैं अपने प्रत्येक देशवासीसे अनुरोध करता हूँ—बड़े या छोटेसे—कि वे प्रतिदिन इसके कोषमें कुछ-न-कुछ देकर इसकी सहायता करें और मातृ-भूमिकी सेवामें त्याग और कष्ट सहनके लिये तत्पर रहें। बड़े अन्धकारके बीच मैं एक स्पष्ट ज्योति देखता हूँ कि अभीतक जो विपत्तिके मेघ हमारे ऊपर छाए हुए हैं, वे अब फट रहे हैं। भारत-माताके प्रत्येक पुत्र और पुत्रियोंका कर्त्तव्य है कि वह स्वतन्त्रता और समृद्धिके मार्गको अधिक-अधिक प्रशस्त करे। सत्य हमारे पक्षमें है। न्याय हमारे साथ है। ईश्वर हमारी सहायता करेगा। हमारी विजय निश्चित है।

वन्दे मातरम्

राष्ट्रीय सरकार और चुनाव

२८ दिसम्बर सन् १९३६ ई० को राष्ट्रपति पण्डित जवाहरलालके सभापतित्वमें फ़ैज़पुरमें होनेवाले कांग्रेसके एक्यावनवें अधिवेशनमें श्रीराजेन्द्र बाबूके "राष्ट्रीय सरकार और चुनाव" सम्बन्धी प्रस्तावका ओजस्वी शब्दोंमें समर्थन करते हुए पूज्य मालवीयजीका भाषण।

—सम्पादक।

सभापति महोदय, देवियो तथा सज्जनो !

आप पूछेंगे कि हमें यह नया शासन-विधान क्यों अस्वीकार करना चाहिए ? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि हम इस शासन-विधानसे स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सकते। इससे स्वतन्त्रता तो मिलती ही नहीं, बल्कि उल्टे हमारी बची-खुची स्वतन्त्रता भी छिन जाती है। जबतक अंग्रेज़ भारतमें हैं तबतक वे अपना ही भला देखेंगे, भारतका नहीं। यदि कोई निष्पक्ष होकर विचार करे तो पता चलेगा कि अंग्रेज़ी शासनको दृढ़ करनेके लिये यह शासन-विधान भारतके ऊपर बलपूर्वक लादा गया है। गत पचास वर्षोंसे हम लोग चिल्ला रहे हैं कि हमें अपने देशका शासन-प्रबन्ध करने दो। सारा संसार इस बातका साक्षी है। भारतवर्ष संसारके बहुत बड़े देशोंमेंसे है। उसका गौरवमय अतीत तो देखिए, क्या कोई उसके उज्ज्वल अतीतपर सन्देह कर सकता है, किन्तु उसी भारतका भविष्य यहाँसे छः हज़ार मील दूर बैठी बृटिश पार्लियामेण्ट निर्णय करती है। बृटेनने अनेक बार कहा है कि यह भारतवर्ष भारतीयोंकी रायसे शासित होगा, किन्तु किसी एक अवसरपर भी बृटेनने भारतीयोंकी सलाह नहीं ली।

अंग्रेज़ी राज्य असह्य है।

हम अंग्रेज़ी राज्य सहन नहीं कर सकते। हम अपना शासन अपने आप कर सकते हैं और अब भी वह हमारी शासन करनेकी शक्ति क्षीण नहीं हो गई है जो हमारे पूर्वजोंमें थी। संसारके सभी देशोंने, यहाँतक कि मिश्रने भी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है, किन्तु क्या कोई भी भारतीय ऐसा है जिसका हृदय भारतवर्षकी वर्त्तमान दुर्दशाको देखकर बार-बार न रोता हो ? इतना सामर्थ्य और इतनी बुद्धि होते हुए भी हम लोग अंग्रेज़ोंके गुलाम हैं, क्या हमें लज्जा नहीं आती ? अंग्रेज़ लोग कहते हैं कि इस ऐक्टसे दस वर्षतक काम चलाओ, फिर हम तुम्हें दूसरी क़िस्त देंगे। क्या हम इसे सहन कर सकते हैं ? मुझे विश्वास है कि जबतक हम बृटिश पार्लियामेण्टके अधीन रहेंगे तबतक हम औपनिवेशिक स्वराज्य या अन्य अधिकार नहीं पा सकते।

आप देखो तो दूसरे स्वतन्त्र देशोंमें क्या हो रहा है ? जापानको देखो, सारा संसार उसका सम्मान करता है। दूसरे देश भी स्वतन्त्र हो गए हैं जो मरे गिरे थे। (गला भर आया) मुझे तो बड़ा दुःख हो रहा है। स्वतन्त्र होना हमारा अधिकार है। चाहे अंग्रेज़ी राज्य भारतमें स्वर्ग-सुख भी दे फिर भी हम उसे सहन नहीं कर सकते। हम अवश्य स्वराज्य लेंगे। जो लोग अभिमानी हैं और स्वेच्छाचारी हैं वे भारतके इस निश्चयको नहीं समझ सकते। केवल अंग्रेज़ ही हमारी स्वतन्त्र होनेकी इच्छाको सुनकर

भयभीत और सशङ्क नहीं हो रहे हैं, बल्कि कुछ भारतीय भी हमारे पूर्ण स्वराज्यके निश्चयको सुनकर घबराते हैं। क्या कोई भी ऐसा हिन्दुस्तानी है जो यह विचार लाता हो कि हम स्वयं अपना शासन न करें और स्वतन्त्र न हों? (हज़ारों कण्ठोंसे नहीं-नहींकी आवाज़)। क्या कोई ऐसा भारतीय है जो यह नहीं चाहता कि हमारी स्थिति वैसी हो जैसी कि अंग्रेज़ोंकी?

स्वाधीनताकी शपथ

हम लोगोंको यह निश्चय करना है कि हम लोग तबतक सुखसे न बैठेंगे जबतक स्वतन्त्रता न प्राप्त कर लेंगे। हमें शर्म आनी चाहिए कि हम स्वतन्त्र नहीं हैं। यह अत्यन्त लज्जा और दुःखकी बात है। इसके लिये यह बड़ी आवश्यकता है कि हम अपने भेद-भाव भुलाकर, कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम करें। हम बृटेनकी मित्रता चाहते हैं। यदि बृटेन हमारी मित्रता चाहता हो तो हम तैयार हैं, किन्तु यदि वह हमें अपने अधीन रखना चाहता हो तो हम उसकी मित्रता नहीं चाहते। क्या हम सेना-विभागको अपने नियन्त्रणमें नहीं रखना चाहते। युद्धके लिये चारों ओर तैयारियाँ हो रही हैं, ज़रा उनपर तो ध्यान दीजिए। उन उपायोंपर भी ध्यान दीजिए जो अन्य देश अपने देश-वासियोंकी उन्नतिके लिये काममें ला रहे हैं।

“मैं पचास वर्षसे कांग्रेसके साथ हूँ, सम्भव है मैं बहुत दिन न जिऊँ और अपने जीमें यह कसक लेकर मरूँ कि भारत अभी भी पराधीन है। किन्तु फिर भी मैं यही आशा करता हूँ कि मैं इस भारतको स्वतन्त्र देख सकूँगा।” फिर भी मैं पूछता हूँ कि आप लोगोंमेंसे किसानोंकी दशा कितने लोग जानते हैं? उनके बच्चोंको पेटभर भोजन नहीं मिलता और तन ढकनेको कपड़ा नहीं मिलता। इस सबकी दवा स्वराज्य है। किन्तु मैं पूछता हूँ कि आप लोगोंमेंसे कितने स्वराज्य चाहते हैं? क्या आप स्वराज्य चाहते हो? (हाँ-हाँकी चारों ओरसे ध्वनि) ठीक है। यह घोष, यह ध्वनि गाँव-गाँवमें गूंज जानी चाहिए। सारे भारतवर्षमें केवल एक बार ही नहीं बल्कि पूरे सालभर यह ध्वनि गूँजती रहनी चाहिए।

हमें कांग्रेसको शक्तिशाली बनाना चाहिए। प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चेको देखना और समझना चाहिए कि कांग्रेस क्या है? उसका बल बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिए। भारतमें सुखी होनेके सब साधन मौजूद हैं, किन्तु इसमें एकता नहीं है, इसी लिये यह विदेशी शासनके असह्य जुएके नीचे दबा हुआ है। चाहिए तो यह कि शासन-कार्य्यमें सब जातियाँ एक होकर काम करें। जबतक हमें विदेशी शासनके अधीन होनेकी लज्जा नहीं होगी तबतक हमारी दशा नहीं सुधर सकती। आप स्मरण रक्खो कि अंग्रेज़ जबतक आपसे डरेंगे नहीं, तबतक यहाँसे नहीं भागगें। आप लोगोंको ऐसा भय पैदाकर देना चाहिए तभी बृटिश-सरकार हमारी माँगोंका महत्त्व समझेगी और उनको देनेके लिये तैयार होगी; किन्तु कांग्रेसकी खुली बैठकमें एक दिनके चिल्लानेसे काम नहीं चलेगा। हमें पूरे तीन सौ पैंसठ दिन निरन्तर प्रयत्न करना पड़ेगा। अपनी कायरताको दूर भगा दो, बहादुर बनो और प्रतिज्ञा करो कि आज़ाद होकर ही दम लेंगे। (देरतक करतल-ध्वनि)

प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन

भारतमें असन्तोष और सुधार-प्रस्ताव

संयुक्तप्रान्तके राजनीतिक सम्मेलनका द्वितीय अधिवेशन सन् १९०८ ई० मेँ लखनऊमेँ हुआ था। उसके सभापति पूज्य मालवीयजीने निम्नलिखित व्याख्यान दिया।

—सम्पादक।

सज्जनो !

इस प्रसिद्ध सम्मेलनका सभापति बनाकर आप लोगोँने मुझे जो आदर दिया है उसके लिये मैँ आप लोगोँका चिर आभारी हूँ। इस कृतज्ञताको पूर्ण रूपसे प्रकट करनेके लिये मेरे पास शब्द नहीँ हैँ। मुझे विश्वास है कि आप लोगोँका वही उदार विचार मुझे इस योग्य बनानेमेँ तत्पर होगा कि मैँ इस परिषद्की कार्रवाईको इसके उद्देश और लक्ष्यके अनुरूप ही कर सकूँ।

हम लोगोँके प्रयाग सम्मिलनके बाद जो वर्ष बीता है वह अत्यन्त ही घटनापूर्ण और दुःखद है जिसे कहते हुए भी क्लेश होता है। हम लोगोँने अपने उस प्रतिष्ठित नेता श्री विश्वम्भरनाथजीको खो दिया जो कि पच्चीस वर्षसे प्रेम और विवेकके साथ हम लोगोँका नेतृत्व कर रहे थे। जबसे प्रयागमेँ कांग्रेस समिति बनी वे कांग्रेस-आन्दोलनके अगुआ होनेके लिये एक बार तो अकेले ही और स्वयं अयोध्यानाथजीके जिनकी मृत्युका शोक सर्वदा बना रहेगा, साथ अग्रसर हुए थे। पण्डित विश्वम्भरनाथके अधीन रहकर काम करना मेरे लिये वैसा ही गौरवप्रद था जैसा कि पण्डित अयोध्यानाथके अधीन रहकर। पण्डित अयोध्यानाथजीके उत्तेजक उत्साह तथा विश्वम्भरनाथजीकी देश-सेवा एवं गम्भीर उत्सर्गपर विचार करनेका यह अवसर नहीँ है। यद्यपि इन महानुभावोँके अभावका शोक हम लोगोँको कम नहीँ है तथापि जब मैँ उनके पवित्र देश-प्रेम, लोक-हित आदि किसी प्रकारके त्याग और तत्परताका विचार करता हूँ तब मैँ उसी प्रकारकी आशा और विश्वासका अनुभव करता हूँ जिस प्रकार कि पुनर्जन्मके विषयमेँ होता है। यानी ये महानुभाव तथा अन्य भारतके सपूत बार-बार हम लोगोँके बीच तबतक जन्म लेकर आते रहेँगे जबतक कि हम लोगोँको संसारकी जातियोँमेँ समुचित स्थानपर विराजते न देख लेँ। अपने देशवासियोँको अज्ञानता, निर्धनता तथा शोकाकुल अवस्थासे उठाकर

सभ्य, देश-प्रेमी, सच्चे उदार नेता और मनुष्योंकी योग्यतातक पहुँचा देनेके कर्त्तव्यपर विचार करते हुए यह कह देना अनुचित नहीं होगा कि इसी प्रकार मनुष्योंके आधारपर ईश्वरकी सेवा करनेसे मोक्षसे भी अधिक प्रसन्नता प्राप्त होती है। हम लोग पण्डित लक्ष्मीनारायण व्यासके निधनपर भी शोक प्रकट करते हैं। वे वृद्ध होते हुए भी हमारे आन्दोलनोंमें भाग लेते और आनन्दका अनुभव करते थे। वे जनताके प्रति एक आदर्श सहृदयताका उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। फ़ैज़ाबाद-निवासी होनहार और युवक लोकभक्त बाबू गोपाललालजीकी मृत्यु, जो कुछ ही दिन पहले हुई है, और भी शोकप्रद है। आगरेके बाबू केदारनाथकी मृत्यु तो बहुत ही दुःखद है।

प्लेगसे मरे हुए अनेक भाई तथा बहनोंके लिये भी मैं शोक प्रकट करता हूँ। गत आठ वर्षोंसे इन प्रान्तोंपर प्लेगका आक्रमण हो रहा है। इन आठ वर्षोंमें सरकारी रिपोर्टके अनुसार कई लाख देशवासियोंकी प्लेगसे मृत्यु हुई। मृत्यु-शोक, जो कि अन्य जातियोंके लिये साधारण है, मुझे विशेष रूपसे शोकाकुल करती है। गत ग्यारह वर्षोंमें भारतके विभिन्न भागोंमें लगभग पचपन लाख आदमी केवल प्लेगसे मरते हैं जो मरे हुए मनुष्योंके प्रति मेरे शोकको और भी बढ़ा देते हैं। इतने मनुष्योंकी मृत्यु, शोक और दुःखके लिये जो परिवार दुखी हैं उनकी विपत्तियोंपर विचार करते हुए हृदयमें असह्य वेदना होती है।

अभी एक दुःखका अन्त नहीं हुआ कि इन अभागे प्रान्तोंमें अकाल भी आ धमका। अकालके कारण जो दुःख फैला और घनीभूत हुआ है उसका थोड़ासा पता इस बातसे चलता है कि एक लाखसे अधिक मनुष्योंने राज्यकी कृपापर अपनेको छोड़ दिया है, जो उसकी ओरसे सहायता भी पा रहे हैं। जीवनकी ज़रूरी चीज़ोंकी कमीके कारण जो विपत्ति निम्न और सामान्य मनुष्योंपर पड़ी है वह अकथनीय है।

इन आपत्तियोंके साथ-ही-साथ हम लोगोंपर शुद्ध राजनीतिक आपत्तियाँ भी हैं। वस्तुतः इस वर्षका आरम्भ उज्ज्वल दिखाई देता है। बजटपर वाद-विवाद करते समय श्रीमान् वाइसराय महोदयने यह घोषणा की थी कि सरकार भरसक भारतीयोंसे मिलनेके लिये ही तैयार नहीं है, बल्कि उनके सच्चे और न्याय-सङ्गत विचारोंमें सहायता देनेके लिये भी उत्सुक है। सरकारने संशोधनके प्रस्तावका एक सरकारी फ़रमान भारत-सचिवके पास भेजा, जिससे भारतीय शिक्षित समाजमें पूर्ण सन्तोष दिखाई दिया और आशा-सूचक चिह्न दिखाई पड़े; पर देखते-ही-देखते आकाशपर फिर काले बादल घिर आए। पञ्जाबमें कुछ अनिष्ट घटनाओंके कारण अधिकारियोंकी दृष्टि बदली और फिर दमनकी नीति बरती गई। रावलपिण्डीमें अनेक ऐसे माननीय और प्रतिष्ठित वकीलोंकी गिरफ़्तारी हुई, जिनको जनता बहुत दिनोंसे जानती और सच्चे हृदयसे मानती थी। इससे सबको बहुत दुःख हुआ। इतना ही नहीं लाला लाजपतरायके देशनिकालेने तो और भी व्यथित कर दिया। उस समय देशमें एक शोक एवं क्रोधका व्यापक भाव फैल गया जो अबतक पूर्ण रूपसे शान्त नहीं हुआ है। साथ ही सरदार अजीतसिंहका भी देशनिकाला हुआ। उनके इस देशनिकालेके कारण, जो बिना किसी दोष सिद्ध किए या न्याय किए हुए किया गया था, लोगोंमें किसी प्रकारकी शान्ति एवं विश्वासकी आशा नहीं की जा सकती थी। और न तो उस विधानसे, जो कि आगे चलकर विद्रोह-सभा विधानके नामसे प्रसिद्ध हुआ, जनतामें सरकारके प्रति शान्ति और विश्वासकी स्थापना की जा सकती थी। कुछ भागोंमें गारदकी नियुक्ति होने तथा मनमाने अभियोगोंको चलानेसे जनतामें और भी सनसनी फैल गई। इन घटनाओं और विधानोंसे जनतामें असन्तोषकी आग, जो बहुत दिनोंसे सुलग रही थी, सहसा धधक उठी। जगह-जगह लोग विस्मयमें पड़ गए कि क्या कारण है कि ऐसे असमयमें एक ऐसी

सुव्यवस्थित सरकारने सन् १८१८ ई० के विधानकी शरण ली है और दो विशेष व्यक्तियोंको इस प्रकार देश-निकाला दे दिया है। प्रसन्नताकी बात है कि लाला लाजपतराय कुछ महीनोंके बाद छोड़ दिए गए। रावलपिण्डीके वकील भी निर्दोष सिद्ध होनेपर आदरके साथ मुक्त हुए। विद्रोह सभा-विधानका समय बीत गया। विद्रोह सभा-विधानका प्रयोग भारतके केवल एक ही प्रान्तमें हुआ था, किन्तु उसकी दमन-नीतिका आतङ्क अब भी मौजूद है।

अकेन्द्रीकरण कमीशनकी नियुक्ति, कार्य्यकारिणी समितिके सुधारका प्रस्ताव तथा व्यवस्थापिका सभाका निर्माण जनताके विचारोंको तुष्ट नहीं कर सकता। गवाहोंके लिये जो प्रश्न बनाए गए थे उनसे कमीशनकी जाँचकी सीमा बहुत कम हो गई थी। सुधारका प्रस्ताव एक तो अव्यवस्थित था यहाँतक कि पहलेसे भी बुरी दशामें था और दूसरे उससे भारतके शिक्षितोंके प्रति प्रत्यक्ष ही द्रोह झलकता था जिसका होना भारत-सरकारकी दृष्टिमें एक आश्चर्य्य था।

अन्तमें वर्ष समाप्त होनेके पहले ही सूरतमें कांग्रेसका दुःखद विच्छेद देखना पड़ा जिससे सम्पूर्ण देश-प्रेमियोंको बड़ा दुःख हुआ। क्योंकि कांग्रेस तो समस्त भारतकी एक ऐसी राष्ट्रीय संस्था थी जो बीस वर्षोंसे देश-प्रेम एवं आत्म-त्यागका प्रचार करती थी। वहाँ प्रत्येक धर्म एवं जातिके भारतीय प्रत्येक वर्ष आकर आपसमें सार्वजनिक असुविधाओंके सम्बन्धमें बातचीत करते थे और अपनी व्यापक त्रुटियाँ तथा अवस्थापर विचार कर ऐसा मार्ग निकालना चाहते थे जिससे कि सब कुछ प्राप्त और देशकी उन्नति हो।

ऐसे शोकप्रद अतीतको कौन पसन्द करता है? किन्तु इसी अतीतमें सरकार तथा प्रजा दोनों ही के लिये शिक्षा भरी है। हम लोगोंके लिये अब आवश्यक है कि हम उन शिक्षाओंपर, जो मिली हैं, विचार करें और उनसे लाभ उठानेके लिये यत्नशील हों।

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि देशमें व्यापक असन्तोष है, जो बहुत दिनोंसे बढ़ता आ रहा है और प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। समुचित उपचार करनेके लिये इस असन्तोषकी दशा तथा कारणका पूरा-पूरा ज्ञान हो जाना भी आवश्यक है। गत वर्ष वाइसरायकी परिषद्में भाषण देते हुए सर हारवे ऐडेम्सनने कहा कि, "भारत-सरकारने अभीतक यही समझा है कि यह अशान्ति केवल राजद्रोहकी ही अशान्तिका फल नहीं है बल्कि इसका भारतीय शिक्षितोंकी स्वाभाविक महात्त्वाकाङ्क्षासे भी सम्बन्ध है"। इस प्रकार उन्हेंाने केवल आधी सत्यता प्रकट की है। देशमें जो असन्तोष सरकारके सामने है वह केवल भारतके शिक्षितोंकी महत्त्वाकाङ्क्षाके ही कारण नहीं है। इसमें देशके मनुष्योंके उस बृहत्समूहका भाग है जिसमें महत्त्वाकाङ्क्षाका नाम भी नहीं है। अतएव इससे कहीं अधिक लगन तथा विचारके साथ इसके कारणोंको पता लगाना चाहिए। मेरी समझमें सर्वप्रथम कारण—

मनुष्योंकी निर्धनता है।

सभी लोग इस बातको पूर्ण रूपसे मानते हैं कि भारतीय प्रजा अत्यन्त निर्धन है। इसमें अवश्य मतभेद है कि अंग्रेज़ी सरकारकी अधीनतामें भारतकी निर्धनता बढ़ रही है अथवा नहीं। विलियम डिग्बी, दादाभाई नौरोजी तथा दूसरे प्रसिद्ध लेखकोंने सरकारी आँकड़ोंसे पता लगाकर प्रकट किया है कि भारतकी निर्धनता प्रतिदिन धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। अन्य सरकारी तथा पक्षपाती आदमी इस बातको अस्वीकार करते हैं और अनेक अवसर तो ऐसे आए हैं कि वाइसराय या भारत-सचिवने स्वयं घोषणा की है कि भारतीय जनता धनी होती जा रही है। सज्जनो! सत्यके विरुद्ध किसी कल्पना या मनमाने प्रमाणका कोई महत्त्व नहीं होता। अतएव हम लोगोंको जनताकी वास्तविक दशापर विचार करना चाहिए।

अकालके प्रमाण

पहली बात भी हम लोगोंके सामने स्वयं आ जाती है। वह गत पचास वर्षोंसे लगातार अकालका प्रकोप है, जिसको रोकनेकी शक्ति प्रतिदिन मनुष्योंमें कम होती जा रही है। सन् १८६० ई० से अबतक सम्भवतः बाईस अकाल पड़े, जिनके फलस्वरूप लगभग दो करोड़ नब्बे लाख मनुष्य मरे। सन् १८६५ और १८६८ ई० के अकालने प्रथम बार सरकारका ध्यान इस ओर आकर्षित किया। परन्तु सन् १८७६-७८ ई० के अकालमें, जो अस्सी लाखसे भी अधिक मृत्यु हुई, उसने अधिकारी वर्गकी आँखें खोल दीं। एक अकाल कमीशन तैनात किया गया, जिसने पूरी जाँचके बाद अपनी रिपोर्ट दी, जिसमें यह सिफ़ारिश की गई थी कि अकालसे जनताको बचानेके लिये जो उपाय किए जावें उनमेंसे सर्वप्रथम स्थान सिंचाईको मिलना चाहिए। इतना कहनेपर भी सरकारने सिंचाईसे कहीं अधिक ध्यान रेलवेपर दिया। भारतीय इतिहासमें अपनी भयानकताके लिये प्रसिद्ध सन् १९०० ई० के भयानक अकालके बाद नियुक्त अकाल कमीशनने फिर भारतीय सरकारका ध्यान सिंचाईकी ओर आकर्षित किया। प्रत्येक अकाल तथा प्रत्येक अकालकी जाँचने भारतकी निर्धनताका पक्का प्रमाण पेश कर दिया है। सन् १८६८ ई० के अकालके बाद भारत-सरकारने जनताकी अकाल मृत्युको रोकनेके लिये एक सहायताका उपाय निकाला, जिसने सर एण्टोनी मैक्डोनलके समयमें पूरा काम किया और जो आज भी सर जौन हीवेटके अधीन इन प्रान्तोंमें काम कर रहा है। लोगोंकी बड़ी संख्या, जो सन् १८९७, १८९९ और १९०० ई० के अकालमें सरकारी सहायता लेती रही और जो आज भी सहायता ले रही है, इस व्यापक निर्धनताको और भी पुष्ट करती है। यह इस बातका पक्का सबूत है कि जनताकी दशा इतनी शोचनीय हो गई है कि ज़रासा अकाल पड़नेपर भी सैकड़ों, हज़ारों या यों कहिए कि लाखों मनुष्य अपने-आपको भूखसे बचानेके लिये सरकारकी कृपापर छोड़ देते हैं।

सन् १८८७ ई० में लौर्ड डफ़रिनने इस प्रान्तके कृषक और मज़दूरोंकी दशाकी जाँचके लिये आज्ञा दी। जाँचके परिणामकी घोषणा जनतामें कर दी गई। उन्होंने एक मतसे स्वीकार किया कि जनतामें बड़ी ग़रीबी है और उनकी दशा तो बहुत ही शोचनीय है। इस प्रकार भयङ्कर अकालने आबादी घटा दी है और देशवासियोंकी शक्ति भी कम कर दी है।

प्लेगका प्रमाण और अधिक मृत्यु

अकालके साथ-ही-साथ प्लेगका भी प्रकोप था जो कि गत ग्यारह वर्षोंसे चला आ रहा था। सरकारी रिपोर्टके अनुसार क़रीब पचपन लाख प्लेगसे मरे। मैं तो स्वयं जानता हूँ कि बहुतसे मनुष्य हम लोगोंसे सदाके लिये बिदा हो गए।

मुझे विश्वास है कि विशेषतः इस प्रान्तमें एक लाखसे कम मनुष्य प्लेगसे नहीं मरे होंगे। यह सत्य है कि प्लेगका पूरा पूरा-पता अभी नहीं चला है। परन्तु जो कुछ अभीतक जाना गया है उससे पाया गया है कि यह निर्धनोंकी बीमारी है और अधिकतर इसका प्रसार नीच जातियोंमें होता है जिनमें यह पूर्ण रूपसे प्रवेश पाता है। प्लेगपर अपने उत्तम लेखमें प्रो० सिम्पसन लिखते हैं:—

"संक्रामक रोग प्रायः असामान्य मौसिमके साथ आते हैं, जिनके साथ युद्ध और अकालके शोक तथा दुःखका भी समावेश होता है। इनके साथी राजनीतिक तथा आर्थिक दोष होते हैं जो समृद्धिके विरुद्ध देशमें और भी अनर्थकारी हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त ये स्वच्छताकी कमीके कारण भी, जो उनकी आरम्भिक दवा है, आते हैं।" उसी लेखकने अन्यत्र भी कहा है:—

"निर्धनता, शोक, अस्वास्थ्यकर भोजन तथा घनी आबादीके साथ ही यदि निवास-स्थान भी अँधेरा, गीला, गन्दा तथा हानिकारक चूहों और कीड़ोंका अड्डा हो तो वहाँ प्लेगकी सम्भावना सबसे पहले की जाती है। सामान्यतः ऐसी ही

सामाजिक तथा स्थानीय दशामेँ प्लेग अपना आतङ्क जमाता है।"

उक्त कथन, जो पूर्ण अनुभूतिपर अवलम्बित है, इस बातका प्रमाण प्रस्तुत करता है कि अकाल, जो प्लेगके पहले आता है, जनताको इस बातकी सूचना देता है कि प्लेग आ रहा है। प्लेगके कारण इन प्रान्तोँ तथा भारतके अन्य प्रान्तोँमेँ, जो अत्यन्त अधिक मृत्यु हुई है, वह केवल इस बातको स्पष्ट करती है कि यहाँकी जनता अत्यन्त निर्धन है और अस्वस्थ स्थानोँमेँ रहती है।

प्लेगके अतिरिक्त जो मृत्यु ज्वर या कई अन्य कारणोँसे हुई है और जो नित्य बढ़ती जा रही है, उसका विस्तार कर मैँ आप लोगोँको कष्ट नहीँ दूँगा। यहाँ इतना ही कह देना पर्य्याप्त है कि ग्रेट बृटेनमेँ मृत्यु-संख्या फ़ी हज़ार सोलह और सारे भारतकी फ़ी हज़ार पैँतीस है तथा हमारे संयुक्तप्रान्त अकेलेमेँ फ़ी हज़ार चौवालीस है। प्लेग, अकाल, ज्वर तथा अन्य कारणोँसे असंख्य मृत्युका यह लेखा वास्तवमेँ एक ऐसा कार्य्य है जो न तो कभी भुलाया जा सकता है और न कभी कम ध्यान देनेके योग्य हो सकता है। यह जमी हुई निर्धनताकी मर्मभेदिनी किन्तु सच्ची कहानी है। अवश्य ही यह धनधान्यकी वृद्धिका प्रमाण नहीँ है। जीवनके लिये आवश्यक वस्तुओँका अभाव भी देशके सम्पन्न होनेका प्रमाण नहीँ है। वस्तुओँका मूल्य मज़दूरीके हिसाबसे नहीँ बढ़ा है, इसलिये यह भी जनताको निर्धन बनानेमेँ मदद करता है। सन् १८९८ ई० मेँ अकाल कमीशनने चारोँ ओर इस बातका पता लगाया और भारतके बहुतसे लोगोँके विषयमेँ, जिनमेँ दैनिक श्रमजीवी और अल्पज्ञ कारीगर भी शामिल थे, यह कहा कि—"एक गम्भीर विषयपर, जितना कि हम लोगोँसे हो सका है या जितना कि हम लोगोँने सुना है या जितना कि हम लोगोँको प्रमाण मिला है, सर्वसाधारणकी राय है कि जीवनकी आवश्यक वस्तुओँका मूल्य बढ़नेके साथ-साथ बीस वर्षसे मज़दूरीमेँ कोई बढ़ती नहीँ हुई है। हालके अकालके अनुभवसे यह स्पष्ट हो गया है कि जनता इस वर्गकी बढ़ी हुई शक्तिसे सहायता या किसी अन्य बड़े उपायसे काम लेना असम्भव समझती है। कम होनेकी अपेक्षा यह प्रतिदिन विशेषतर घने प्रान्तोँमेँ बढ़ता ही जा रहा है। घटनेकी अपेक्षा इसकी दबानेकी शक्ति वैसे ही और भी बढ़ती जा रही है। कोई शक्तिशाली शक्ति अपनी शक्तिका उस स्थानपर भी सिक्का जमा देती है जहाँ पहले केवल उसकी सम्भावना की जाती थी।"

उस समयसे मज़दूरीमेँ कुछ वृद्धि हुई, क्योँकि प्लेग या दूसरे कारणोँसे बहुतसे आदमी मर गए। परन्तु मज़दूरीकी इस बढ़तीके साथ-ही-साथ जीवनकी आवश्यक वस्तुओँके मूल्यमेँ भी बहुत बढ़ती हो गई। फल यह हुआ कि जो भाव आजकल बराबर बना रहता है वह पहले अकालके समयमेँ हुआ करता था। नीच, मध्यम, यहाँतक कि अधिकांश जनतापर जो आपत्ति है, सरकार सम्भवतः उसका कुछ भी ख़याल नहीँ करती। वस्तुओँकी महँगीके सम्बन्धमेँ लोगोँमेँ मतभेद है। किन्तु दोषोँकी अधिकतामेँ सभी एकमत हैँ। सरकारको चाहिए कि इनके कारणोँकी जाँचके लिये कोई कमीशन क़ायम करे और इसको दूर करनेका कोई उपाय ढूँढ़ निकाले। साथ ही वस्तुओँकी वर्त्तमान अवस्थामेँ जनताको जो आपत्ति है उसको कम करनेके लिये सरकार सैनिक तथा नागरिक विभागके अल्प वेतन-क्रमका पता लगाए और उन्हेँ इस न्यूनताके सहनेके योग्य बनावे। उदार सहायता केवल अत्यन्त निर्धनोँको ही मिल पाती है। अधिकतर नीच और मध्यम श्रेणीके लोगोँके लिये भी यह आवश्यक है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका प्रमाण

उपर्युक्त निर्धनताके प्रमाणके साथ-साथ सन् १८८५ ई० के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका भी प्रमाण है। सन् १८८६ ई० के बाद बार-बार कांग्रेसने

सरकारका ध्यान भारतीय निर्धनताकी ओर आकर्षित किया है। इसने बराबर इस बातपर ज़ोर दिया है कि लगभग पूरे पाँच करोड़ मनुष्य किसी प्रकार अपना पेट पालते हैं और कभी-कभी कुछ कम करोड़ वास्तवमें भूखों मर भी जाते हैं। इसने सरकारसे इसकी सचाईकी जाँचके लिये कमीशन भी नियुक्त करनेको कहा था, किन्तु सरकारने इसकी प्रार्थनापर ध्यान नहीं दिया। अकाल कमीशनने भी कई बार सिफ़ारिश की कि ग्रामोंकी पूरी जाँच कर मनुष्योंकी दशाका ठीक पता लगाया जाय। परन्तु इतना भी न हो सका। जब कि भारतके उच्च शिक्षित लोगोंमेंसे बहुतसे लोग, जो कि उन मनुष्योंमें रहते और उनके साथ व्यवहार करते हैं और जिनमें जनताके प्रत्येक विभागके लोग शामिल हैं तथा जिनमें स्वयं सरकारसे आदर पाए हुए व्यक्ति भी मौजूद हैं, प्रतिवर्ष जनतामें निर्धनताके बढ़नेकी बातको स्वीकार करते तथा कहते हैं कि सरकारको इसके दूर करनेका उपाय करना चाहिए। सज्जनो! सरकारके सामने जब कि इतने प्रमाण पेश हैं तब जनता और देशके लिये यह उचित नहीं है कि इस विषयका पता लगानेके लिये कोई समिति बनाए। यदि ऐसा नहीं है जैसा कि कांग्रेसने लगातार प्रकट किया है और यदि निर्धन होनेकी अपेक्षा जनता धनी होती जा रही है तो इस बातको जानकर कोई उतना प्रसन्न नहीं होगा जितना कि स्वयं कांग्रेस और भारतीय जनता। ऐसी जाँचमें जैसा कि कांग्रेस कहती है, सरकारकी कोई हानि नहीं है। बिना किसी उचित सुधारके ऐसी दशाका बार-बार होने देना न तो बुद्धिमानी है और न राजनीतिका पालन। जाँचके लिये जो प्रार्थना की गई थी उसका तिरस्कार ही इस बातका प्रमाण है कि भारतमें निर्धनता बढ़ रही है। हमारी यह धारणा जनताकी दशाकी जानकारीपर अवलम्बित है। प्रायः यह देखा जाता है कि ज़मीन्दारोंकी बहुत बड़ी संख्या ऋणी है और प्रजावर्गके बहुतसे लोग हाथ चाटकर जीते हैं। भारतीय व्यवसायकी भी तनिकसी उन्नति हुई है। भारतीयोंके हाथमें बहुत कम व्यापार है। अल्प वेतनवाले कर्मचारियोंके वेतनमें, चाहे वे सरकारी कर्मचारी हों, चाहे किसी कारख़ानेमें काम करते हों, चाहे किसी व्यक्ति विशेषकी नौकरीमें हों, या तो बहुत ही कम तरक़ी हुई है या कुछ भी नहीं हुई है। बहुतसे लोगोंके लिये जीवन-निर्वाह दुःखद हो गया है। ऐसी विकट परिस्थितिमें देशमें यदि व्यापक असन्तोष है तो यह कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है। मेरे लिये आश्चर्य्यकी बात तो यह है कि इस घोर परिस्थितिमें भी उतना अधिक असन्तोष नहीं है जितने की सम्भावना थी।

निर्धनताके कारण

कांग्रेसका निश्चय है कि मुख्यतः जनताकी निर्धनता देशके कई भागोंमें असहनीय अधिक लगानके कारण है जो कृषकोंके लिये अत्यन्त आपत्तिजनक है। इसके कारण वे अपने परिश्रमका फल थोड़े ही अंशमें भोग पाते हैं। सङ्क्षेपमें यही सब आपत्तियोंकी जड़ है। इसीने ज़मीन्दारीके करको कम करानेके लिये ज़ोर दिया है। इसने इसका भी निर्देश कर दिया है कि लगान वसूल करनेका वर्त्तमान नियम, जो किसी नियमित समय तकके लिये ही होता है, कृषिकी उन्नतिमें बाधक तथा भ्रष्ट है और सदा इस बातका प्रयत्न किया है कि लगान सर्वदाके लिये निश्चित हो जाय, जैसा कि चालीस वर्ष पहले सरकारने वचन भी दिया था। ऐसा करके राज्य और श्रमजीवियोंको एक साथ मिलकर कृषिको उन्नत करनेके योग्य बनाया जा सकता है।

कांग्रेसने यह भी प्रकट किया है कि जनताकी निर्धनताकी वृद्धिका एक प्रधान कारण भारतमें अंग्रेजी शासनका बहुत महँगा होना भी है। विश्वमें भारत जैसा निर्धन देश कोई भी नहीं है। फिर भी यहाँके सरकारी कर्मचारियोंका वेतन जितना अधिक है उतना और कहीं भी नहीं है। इन दोनों बातोंमें हृदय-विदारक अन्तर है। इस बातका लगातार आग्रह किया गया है कि ऐसे देशमें, जहाँ निर्धनताका

बोलबाला है, ऐसे महँगे शासनका होना ठीक नहीं है। महाशयो! यह मुमकिन है कि अंग्रेजी शासनके कारण निर्धनता न बढ़ती हो। विचार करनेके लिये मान लिया जाय कि निर्धनताकी वृद्धि नहीं होती है। निर्धनताके विषयमें जो हमें पता चलता है यदि वही ठीक मान लिया जाय तो यह कहना आवश्यक हो जाता है कि जनता उससे कहीं अधिक दरिद्र है जैसा कि डेढ़ सौ वर्षतक ग्रेट बृटेनके सुव्यवस्थित शासनमें रहकर होना चाहिए था। केवल सरकारी कर्मचारियोंके वेतन ही अधिक नहीं हैं बल्कि कुछ न्यायालय-सम्बन्धी अधिकारोंको छोड़कर, श्रमजीवियोंके लड़के उच्चाधिकारोंसे वास्तवमें वञ्चित भी कर दिए जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि राजनीतिक-विभागमें छोटे अधिकारोंपर बहुतसे भारतीयोंकी नियुक्ति हुई है। परन्तु उन अधिकारोंके वेतन बहुत थोड़े हैं और उनके लिये भी फ़िरङ्गी अथवा गोरे भारतीयोंकी अपेक्षा अधिक पसन्द किए जाते हैं जिसकी वाइसराय तथा प्रान्तीय सरकारकी सभामें बार-बार निन्दा की जाती है।

सैनिक-विभागमें भारतीयोंके उच्चाधिकारकी आकाङ्क्षा बहुत कठिनाई एवं निर्दयताके साथ अस्वीकृत होती है। चाहे कितना ही विश्वासपात्रताके साथ एक भारतीय सैनिक अपनेको अंग्रेज़ी सरकारके लिये निछावर करे, चाहे कितना ही रण-क्षेत्रमें आदर प्राप्त करे, चाहे कुछ भी क्यों न कर ले, परन्तु वह भारतीय सैनिक भारतकी सेनामें सूबेदार-मेजरीसे किसी प्रकार आगे नहीं बढ़ सकता। कांग्रेसने इसकी बड़ी आलोचना की और इसकी ओर सरकारका ध्यान लगातार आकर्षित किया, पर अभीतक भारतीयोंको सैनिक-विभागमें उच्चाधिकार देनेकी स्वीकृति सरकारसे नहीं मिली। केवल फ़िरङ्गी होनेके नातेसे यह राजनीतिक तथा सैनिक-विभागमें उच्चाधिकार प्राप्त करनेका हक़ उन्हींको है। इसका परिणाम केवल इतना ही नहीं होता कि हम लोगोंको इस अवस्थामें उनको अधिक वेतन देना पड़ता है बल्कि यह भी होता है कि वेतनके रूपमें बहुतसा धन प्रति वर्ष देशके बाहर चला जाता है, जो यदि देशमें चारों ओर बँटता तो बहुतसे भूखोंको भोजन और बहुतसे नङ्गोंको वस्त्र मिल जाता। कांग्रेसने बराबर आग्रह किया है कि नागरिक तथा सैनिक-विभागका अधिक व्यय विलायती महँगे साहबोंकी जगह सस्ते देशी भाइयोंको रखकर बहुत कम कर दिया जाय। बार-बार इसका आन्दोलन किया गया है कि इसके उपाय-स्वरूप 'सिविल सर्विस' तथा अन्य परिक्षाओंका केन्द्र, जो अभी केवल इङ्गलैण्डमें है, साथ-ही-साथ भारतमें भी कर दिया जाय। इस बातका समर्थन पब्लिक सर्विस कमीशनके सामने, जिसको लौर्ड डफ़रिनने नियुक्त किया था, नाना रूपोंमें हुआ। परन्तु दुर्भाग्यवश यह सिफ़ारिश अस्वीकृत हुई। बादको श्री हर्बर्ट पौलके प्रयत्नसे 'हाउस औफ़ कामन्स' में सिविल सर्विसकी परीक्षा एक ही साथ इङ्गलैण्ड तथा भारत दोनोंमें होनेका प्रस्ताव पास हुआ; किन्तु कार्य्यरूपमें नहीं लाया गया। स्वदेशमें उच्चतम अधिकारोंकी प्राप्तिके लिये भारतीयोंकी पुकारका मान केवल नाम-मात्रको रह गया है। दुःखकी बात है कि सामान्यतः नियमित रूपमें व्यवहारमें लानेके लिये इसपर ध्यान नहीं दिया जाता। इसके उपरान्त कांग्रेसने यह भी प्रकट किया कि जनताकी गिरी दशाका एक विशेष कारण यह भी है कि उसे देशके शासनमें उचित भाग लेनेका अधिकार नहीं दिया जाता। अपने देशपर उनका अपना कोई अधिकार नहीं है। उसने प्रतिनिधिमूलक संस्थाओंको स्थापित करनेके लिये ज़ोर दिया है, जहाँ जनताकी दशा और आवश्यकताओंसे परिचित भारतीय सरकारके सामने अपने विचार प्रकट कर सकें और शासन-विधानकी बागडोर उस ओर मोड़ सकें जिधर उनका विशेष लाभ हो। किन्तु अभीतक अपने देशकी बातोंपर विचार करनेके लिये भारतीयोंको कोई अधिकार नहीं दिया गया है।

अन्तमेँ कांग्रेसने यह भी स्पष्ट किया कि भारतमेँ निर्धनताके फैलनेके कारणोँमेँसे एक प्रधान कारण देशी कला तथा व्यवसायकी अवनति भी है। अतएव सम्पूर्ण देशके प्रधान केन्द्रोँमेँ कला-सम्बन्धी स्कूल तथा कौलेज् स्थापित करनेका उद्योग होना चाहिए। इसके द्वारा देशी कला एवं व्यवसायको प्रोत्साहित करना चाहिए। सन् १८९८ ई० के अकाल कमीशनने आग्रहके साथ भारत-सरकारका ध्यान यहाँकी व्यावसायिक उन्नतिकी ओर आकर्षित किया। उसके सदस्योँने कहा:—"भारतीय जनताकी निर्धनता की जड़मेँ तथा उस भयानक प्रकोपके मूलमेँ, जिसका कि शिकार उन्हेँ आज दिन होना पड़ता है, यह दुर्दमनीय वात है कि खेती-वारीकी कमीको जो कि भारतीय जनताका मुख्य व्यवसाय है तथा वर्त्तमान त्रुटियोँको दूर करनेका कोई साधन नहीँ है जिससे कि व्यवसायकी उन्नतिमेँ कोई धक्का न लगे, क्योँकि कृषि-कर्मसे वचे हुए मनुष्य अन्य व्यवसाय तथा ऐसे ही अन्य धन्धोँसे अपने जीवनके पोषणके लिये कुछ कमा सकते हैँ। उन्हेँ आगे चलकर यह भी वताया कि भारतमेँ अकालके दुष्परिणामका प्रधान कारण तथा सहायता पहुँचानेमेँ सवसे वड़ी कठिनाई यह है कि अधिकतर मनुष्य खेतीसे जीते हैँ। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा व्यवसाय ऐसा नहीँ है जिससे अधिक संख्यामेँ लोग अपना पेट पाल सकेँ। सरकारी कमीशनकी कड़ी सलाह होनेपर भी अभीतक सरकारने तथा व्यवसाय की समुचित शिक्षापर ध्यान नहीँ दिया और फलतः इसके लिये कोई उचित प्रबन्ध भी नहीँ किया। श्री लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर महोदयने एक दिन नैनीतालके व्यावसायिक परिषद्मेँ व्याख्यान देते हुए कहा था, "बीस वर्षसे अधिकसे कला और व्यवसायकी शिक्षाका प्रश्न सरकार तथा जनताके सामने वना है। शायद ही कोई अन्य ऐसा विषय हो जिसपर इससे अधिक कहा या लिखा गया हो और जिसपर इतना कम ध्यान दिया गया हो। यह विल्कुल ठीक कहा गया है कि सरकार "धूप और वर्षाको घटा-वढ़ा नहीँ सकती" पर जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह मनुष्योँकी नियुक्तिका नया मार्ग निकाल सकती है और उससे देशको अधिक समृद्धिशाली वना सकती है। हम लोगोँको सर जौन हीवेटको इस शुभ प्रारम्भके प्रयत्नके लिये कृतज्ञताके साथ धन्यवाद देना चाहिए और इस आशासे उन्हेँ और भी धन्यवाद देना चाहिए कि सरकार उनके प्रस्तावको स्वीकार कर लेगी, क्योँकि यह निश्चित है कि उनके प्रस्ताव शुभ-फल-प्रदर्शनमेँ सफल होँगे। परन्तु खेदकी वात यह है कि गत तीस वर्षोँमेँ सरकारने अकालके दोषोँको दूर करनेवाले वड़े उपायोँके पालनमेँ कुछ भी उल्लेखनीय उन्नति नहीँ की है।

भारतीय जनताकी सम्मतिका तिरस्कार

केवल यही नहीँ कि सरकारी नौकरीमेँ उच्च पदपर भारतीय नियुक्त नहीँ किए जाते और देशके शासन-विधानमेँ उनके अधिकारकी अवहेलना की जाती है वल्कि यह भी कि भारतीय प्रतिनिधियोँकी राय, जो कि कांग्रेस, कौन्फ़्रेन्स कौन्सिल या प्रेस अथवा अन्य किसी दूसरे ढङ्गसे प्रकाशित की जाती है, विचारणीय नहीँ होती और सरकार उसे योँही टाल देती है। वीस वर्षसे प्रतिवर्ष भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने लोक-हितकी चिन्तासे सरकारके सामने प्रस्ताव-पर-प्रस्ताव पेश किए, पर उसका आजतक कोई विशेष परिणाम न निकला। अनेक प्रस्तावोँमेँसे एक प्रस्ताव यह है कि कांग्रेस कई वर्षोँसे वरावर कह रही है कि भारतीय सैनिक-विभागका व्यय कम किया जाय। उल्टे इसका नतीजा यह निकला है कि वीस वर्षके भरती सैनिक-विभागका व्यय दस करोड़ और भी बढ़ा दिया गया है। वढ़े हुए सैनिक-विभागके व्ययमेँ दस करोड़की और वृद्धि उस देशमेँ जहाँ लाखोँ मनुष्य खाने विना और प्लेगसे भूखोँ मर रहे हैँ और जहाँकी वार्षिक आमदनी, जैसा कि स्वयं लौर्ड कर्ज़न हम लोगोँको विश्वास दिलाते हैँ—प्रति

व्यक्ति केवल तीस रुपया है। हम लोग जैसी शासकोंसे सहायता पानेकी आशा करते हैं, वह जनताके सदाचार तथा आर्थिक उन्नतिके लिये किसी अच्छे विचारका द्योतक नहीं है। इसमें या चाहे किसी भी अन्य विषयमें, चाहे वह व्यय-सम्बन्धी विषय हो या लगान-सम्बन्धी, जनताका कोई हाथ नहीं है। अतएव अवश्य ही यह कुप्रबन्ध और असन्तोषका उत्पादक होगा।

महाशयो! मैं आशा करता हूँ कि जो कुछ मैंने ऊपर कहा है उससे यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि भारतीय शिक्षित समुदायकी महती आकाङ्क्षासे भी कई गुना बढ़कर भारतके असन्तोषके कई अन्य कारण हैं। मैंने स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है कि वर्त्तमान (असन्तोषके कारण) एक तो जनताकी बढ़ती हुई घोर ग़रीबी है। दूसरे, शासन-विधानके अत्यन्त महँगे होने तथा अस्थिर और अधिक लगान वसूल करनेके कारण जनता तिलमिला उठी है। और तीसरे, सरकारी नौकरियोंमें भारतीयोंको ऊँचे पदोंपर नियुक्त नहीं किया जाता बल्कि शासन-विधानमें उनके भाग लेनेके विचारको और भी ठुकरा दिया जाता है। भारत-सम्बन्धी किसी विधानमें उनकी सम्मतियोंका कोई मूल्य नहीं होता। यह अरण्यरोदन उन्हें अवश्य खलता है।

उपाय

सज्जनो! इस असन्तोषकी दवा भारतका शासन उस समदृष्टि, ऊँचे तथा योग्य नियमोंके साथ करनेमें है, जिसके साथ सन् १८५७ ई० के बाद देशका शासन-विधान सिंहासनके हाथमें जानेके उपरान्त इङ्गलैण्डकी महारानीने किया था। उस समय एक नए शासन-विधानका विस्तार आवश्यक हो गया था। एक सरकारी भारतीय बिलके नामका एक बिल इङ्गलैण्डकी साधारण सभामें उपस्थित किया गया। उस समय यह स्वीकार किया गया था कि भारतवासी बहुत सभ्य थे। यद्यपि आज वे अपने उच्चादर्शसे गिर गए हैं तथापि उनके साथ उदारताका व्यवहार होना चाहिए। बिल उपस्थित करते हुए लौर्ड पामर स्टोनने कहा कि:—"मानव-इतिहासमें कदाचित् यह सबसे अधिक आश्चर्य्यजनक बातोंमेंसे है कि बृटिश द्वीप-समूह भूमण्डलके दूरवर्त्ती देशमें इतना बड़ा राज्य प्राप्त करे जितना कि हम लोगोंने भारत महाद्वीपमें किया है। यह वास्तवमें एक अपूर्व बात है कि वह देश, जहाँ विज्ञान एवं कलाका प्रकाश मानव जातिमें सर्वप्रथम माना जाता है, एक द्वीपके निवासी मनुष्योंके शासनकी आश्रित प्रजा हों जो कि उस समय पूर्ण असभ्य थे जब कि पूरबके लोग पूर्ण सभ्यता एवं प्रचुर वैभवका आनन्द लूटते थे।" उस बिलपर विचार करते समय अनेक व्याख्याताओंने कहा था कि सरकारका यह ध्येय होना चाहिए कि भारतीयोंको उन विशेषताओंसे विभूषित करे जिससे फिर वे अपना शासन स्वयं कर सकें। एक अनुपम व्याख्यानमें ग्लेडस्टोनने कहा:—"अब मैं बहुत बड़े प्रश्नपर विचार करना चाहता हूँ। मेरा तात्पर्य्य देशवासियोंकी दशाके उन उपायोंके प्रश्नसे है जिसे हम लोगोंको उन्हें वृत्तियां देनेके लिये निश्चित कर बनाना है और उन युक्तियोंपर विचार करना है जिनका हम लोग उनकी सामाजिक उन्नतिके लिये प्रयोगमें लाना चाहते हैं, और जिनके आधारपर उनकी सामाजिक उन्नतिके साथ-ही-साथ वास्तविक राजनीतिक उन्नति भी कराना चाहते हैं। हम लोगोंको इस प्रश्नपर विशेष ध्यान देना चाहिए कि हम लोग उनकी विशेषताओंकी उन्नति कर कहाँतक उनको इस मार्गपर अग्रसर कर सकते हैं। उनकी विशेषताओंकी माप ठीक उनके अनुरूप होनी चाहिए।" यह न तो आदर्शवादियोंकी सम्मति है और न परोपकारियोंका स्वत्त्व ही। श्री केईके समान स्पष्टवादी और यथार्थ लेखक अपने इतिहासमें लिखता है कि:—"शासनके उच्च पदोंपर भारतीयोंकी नियुक्तिके लिये केवल समयकी देरी है"। श्री हैलीडे जैसे सम्मानित सदस्यका मत है, कि "मुझे विश्वास है कि

भारतके प्रति हम लोगोंका धर्म यह है कि हम भारतवासियोंको इस योग्य बना दें कि वे अपना शासन स्वयं कर सकें"। श्री ग्लेडस्टोनने कहा कि,—"अब यह असम्भव है कि यह सभा भारतके लिये सर्वदा विधान-विधाता बना रहे। प्रति वर्ष, सर्वदा इसी बातपर विचार नहीं किया जा सकता कि किस प्रकार देशवासियोंके स्थानपर यह सभा उनके शासन एवं शासन-विधानका प्रबन्ध किस ढङ्गसे करे और निश्चित कर दे कि किस प्रकार शक्तिका सम्पादन कर वे अपना शासन स्वयं करनेमें किस अंशतक समर्थ होंगे। श्री ब्राइटने भी ठीक ऐसा ही कहा है। उन्होंने एक बार ऐसा भी सोचा था कि इङ्गलैण्डका अधिकार भारतपरसे हटाया जा सकता है। उन्होंने यह राय दी थी कि भारतका शासन-प्रबन्ध ठीक इस ढङ्गका होना चाहिए कि "यदि कभी भविष्यमें इङ्गलैण्डका अधिकार भारतसे हट जाय तो हम लोग इतने प्रान्त बनाकर तथा इस प्रकार उसमें परस्पर घनिष्ठता स्थापित करके छोड़ें कि उनमेंसे प्रत्येक अपना स्वतन्त्र शासन करनेके योग्य हो।" उन्होंने स्पष्ट घोषित किया कि भविष्यमें भारतका शासन "न तो मुट्ठी भर अंग्रेज़ोंके हितके लिये होना चाहिए और न सिविल सर्विसके लिये, जिसकी प्रशंसा इस सभामें इतनी सुनी जाती है। केवल इङ्गलैण्डकी भलाई भी भारतकी भलाईके साथ-ही-साथ हो सकती है।" श्री ब्राइटने सलाह दी कि बृटिश शासनके भीतर भारतीयोंके अधिकार तथा सुभीतोंका उल्लेख करते हुए उनके लिये एक विज्ञप्ति निकाली जाय। इस सलाहका अनुमोदन एलिनबर्गके माननीय लौर्डने किया। उन्होंने भारतकी अंग्रेज़ी सेनाके सरकारी वक्तव्यपर विचार करते हुए कहा कि—"दमनके लिये फिर सेना भेजना चाहे कितना ही लाभप्रद क्यों न हो, पर मुझे यह विश्वास नहीं होता कि बार-बार फ़ौज भेजनेसे हम लोग तबतक उस देशमें अपना अस्तित्व स्थापित करनेके योग्य बने रहेंगे जबतक हमारी इच्छा होगी। इसके लिये साथ-ही-साथ भारतीयोंको समझने तथा स्वीकार करनेके योग्य किसी नीतिका भी अवलम्बन करना चाहिए। सरकारकी पहली व्यवस्था, जब कि सरकार स्वयं भारतका शासन-विधान अपने हाथमें ले रही है, बहुत गम्भीर और मुनासिब ढङ्गपर प्रकाशित होनी चाहिए और महारानीका कथन अवश्य ही साधु होना चाहिए। साथ ही घोषणा भी ऐसी होनी चाहिए जो भारतीयोंके अधिकार एवं धर्मकी मर्य्यादाके अनुकूल हो। साधारण सभा अथवा सम्पन्न लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये ही घोषणा-पत्रका निर्माण नहीं होना चाहिए, बल्कि भारतकी जनता तथा सेनाके प्रश्नको सामने रखकर इसका विधान करना चाहिए। हम लोगोंको भारतका शासन भारत-हितके लिये करना है न कि यहाँके दल विशेषको सन्तुष्ट करनेके लिये। अतएव भारतका शासन करनेके लिये उन्हीं नियमोंकी घोषणा करनी चाहिए जो कि भारतीयोंको स्वीकार हो और उनकी समझमें आवें।"

महारानी विक्टोरियाने इस सलाहको सादर मान लिया। १६ अगस्त, सन् १८५८ ई० को अपने एक पत्रमें महारानी विक्टोरियाने लौर्ड डर्बीको घोषणा-पत्र लिखनेका आदेश दिया था। उसमें कहा गया था कि—"महारानी इससे प्रसन्न होगी यदि डर्बी महोदय इसको (घोषणा-पत्रको) अपनी ललित भाषामें यह ध्यान रखते हुए लिख दें कि एक स्त्री-शासिका करोड़ों पूर्वीय निवासियोंपर निजी अधिकार प्राप्त कर उन लोगोंके बीचमें बोल रही है और वह भी देशमें रक्तपूर्ण ग़दरके बाद उनको अपना पवित्र वचन देते हुए जिनका पालन उसकी भविष्य शासन-पद्धतिपर निर्भर है। अपने शासन-विधानको समझाते हुए यह लेख उदारता, धार्मिक-सहिष्णुता तथा उन सुविधाओंका उल्लेख करते हुए लिखा जाना चाहिए जो बृटिश राज्यकी प्रजा होनेके साथ-साथ उनको

प्राप्त होंगी और जो सभ्यताकी उन्नतिके साथ ही उनके वैभवकी भी वृद्धि करेंगी।" घोषणा-पत्रके उदार शब्द इतने प्रसिद्ध हैँ कि उनको फिर यहाँ दुहराना आप लोगोंका समय व्यर्थ ही नष्ट करना है। किसी भी शासकने दूसरे देशोंके शासनके लिये इससे अच्छे नियम प्रस्तुत नहीँ किए थे। इसमेँ भारतका शासन भारतीयोंके लिये कहा गया था। विना किसी जाति, धर्म, वर्ण आदिकी विभिन्नताका विचार किए योग्यताके अनुसार देशवासियोंको देशकी सेवामेँ मुल्की, फ़ौजी, न्याय तथा शासन-सम्बन्धी पद तथा उच्चतम अधिकार प्राप्त होनेवाले थे। इङ्गलैण्डकी महारानीने, जो कि अंग्रेज़ जातिकी उच्चतम प्रतिनिधि मानी जाती थीं, गम्भीरताके साथ घोषणा की थी कि वे अपनेको भारतकी जनताकी उसी कृतज्ञताके बन्धनोंसे बद्ध समझती हैँ जिससे उनकी दूसरी प्रजाने उन्हेँ बाँध रक्खा है, वह यह कि भारतीयोंके साथ भी उसी प्रकार व्यवहार किया जायगा जिस प्रकार कि एक भूमिपर खड़े हुए बृटिश राज्यकी दूसरी प्रजाके साथ किया जाता है। यदि ये नियम पूर्ण रूपसे काममेँ लाए जाते तो भारतको उस असन्तोषका फल नहीँ भोगना पड़ता, जिसको कि आज वह भोग रहा है। उसको उस व्यापक अथवा बहुत बढ़ी हुई निर्धनताका सामना न करना पड़ता, जो आज उसके लिये बड़े दुःख और सङ्कटका विषय हो रहा है। परन्तु दुर्भाग्यवश ये नियम अंशतः काममेँ लाए गए। ये नियम शासन-विधानके पथ-प्रदर्शक नियम नहीँ रहे। व्यवहारमेँ लानेके लिये जो प्रणाली रची गई है उसमेँ न तो भारतीय जनताके सन्तोषका ध्यान रक्खा गया है और न उसकी उन्नतिका।

यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि यह सब कैसे हो गया है। भारत-शासन-विधानमेँ, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, इस बातका विधान किया गया था कि भारतका राज्य-प्रबन्ध वाइसरायको दिया जाय और उसके साथ भारतमेँ एक कार्य्यकारिणी समिति रहे तथा आठ अवसर-प्राप्त भारतीय अफ़सरोंकी एक समिति हो, जिसके सभापति भारत-सचिव होँ, जो लन्दनमेँ रहेँ। उस 'विधान' मेँ सर्वप्रधान दोष यह था कि इस देशके प्रतिनिधित्वका कोई प्रबन्ध उसमेँ नहीँ किया गया था। श्री यूलने भी प्रयागके अपने सुन्दर व्याख्यानमेँ कहा था कि श्री डिसराएलीने, जो कि विपक्षी दलके नेता थे, इसके अपूर्ण तथा बाधक रूपको लक्ष्य करके इसका विरोध किया और कहा कि इन प्रस्तावित सभाओंसे "तुम निश्चित नहीँ कर सकते हो कि भारतनिवासी उन आपत्तियोंसे छुटकारा पा जायँगे जिनको वे भोग रहे हैँ, और जिनका निवारण करना अंग्रेज़ोंका निश्चित कर्त्तव्य होना चाहिए, और यह परम्परागत प्राचीन सेक्सन सिद्धान्तको नष्ट करके लोकमतको ठुकराकर उभाड़नेका काम करेगा"। इससे वह विल और उसी प्रकारका दूसरा विल भी हटा लिया गया। वह विल, जो कि अन्तमेँ पास हुआ और हम लोगोंपर लागू किया गया, इस वातकी व्यवस्था करता है कि कार्य्यकारिणी एवं शासन-विधानसे गवर्नर-जनरल तथा भारतकी एक समितिके अधीन अधिकार रहेँगे, जिनकी वागडोर लन्दनमेँ बैठी हुई पन्द्रह सदस्योंकी एक समितिके हाथमेँ होगी जिसके अध्यक्ष भारत-सचिव होँगे और जो स्वयं भी साधारण सभाके प्रति उत्तरदायी होँगे। जैसा कि श्री यूलका विचार है कि यह प्रबन्ध कुछ दिनोंके लिये समझा गया था और जो नीति काममेँ लाई जाने वाली थी वह राज्य-व्यवस्थाकी श्रेणीमेँ प्रतिनिधिमूलक शासन-प्रणालीको स्थान देना था। एक माननीय सदस्यने साधारण सभाको इस वातसे आगाह किया कि—"राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व और लोकमतका स्वतन्त्रता प्रकाशनसे बढ़कर सरकारके लिये कोई कल्याणकर और सुरक्षित उपाय नहीँ है, पर प्रकट यह किया गया कि 'भारतको इस समय राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व नहीँ मिल सकता, अभी केवल उसी लोक-मतका लाभ मिल सकता है जो इङ्गलैण्डमेँ है' परन्तु साथ ही

शिक्षाकी उन्नति होनेवाली थी और भारतीय उच्च पदोंपर नियुक्त किए जानेवाले थे ताकि अन्य कारणोंके साथ उनकी भावी राजनीतिक शक्तिको बढ़ानेमें समर्थ हों"। इससे स्पष्ट अवगत होता है कि उस समयसे जबसे भारत सीधे इङ्गलैण्डके शासनमें आ गया, उन लोगोंका स्पष्ट विचार था कि प्रतिनिधि-प्रणालीके साथ शासन करनेमें धीरे-धीरे भारत अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके।

बादको गवर्नर-जनरलकी कौन्सिलकी शासन-व्यवस्थाको अधिक ठीक रखनेके लिये सन् १८६१ ई० का भारतीय कौन्सिल ऐक्ट पास हुआ। इसके अनुसार गवर्नर-जनरलको कुछ ग़ैर-सरकारी सदस्योंको अपने परिषद्में नियुक्त करनेका अधिकार मिला। वाइसरायकी परिषद्के लिये भारतीय सदस्योंको चुननेका अधिकार उसी धाराके अन्तर्गत हो गया। परन्तु उक्त नियुक्तिकी संख्या बहुत कम थी। वे केवल नियुक्त भर कर दिए जाते थे और अधिकतर देशी सरदारों या बड़े-बड़े लोगोंमेंसे चुने जाते थे, जो प्रायः अंग्रेज़ीसे अनभिज्ञ होते थे। इसीसे कुछ वर्ष पहले राजा रामपालसिंह हँसीके साथ कहा करते थे कि बहुतसे तो परिषद्में जाकर यही किया करते थे कि जब कभी समितिमें आई हुई किसी नीतिके पक्षमें वाइसराय हाथ उठाते थे तब उनके साथ वे भी हाथ उठा देते थे। इनके अतिरिक्त जो विधान या नियम परिषद्के सामने आते थे, उसके विषयमें अपनी राय देनेकी अपेक्षा दूसरे सदस्योंको भी कुछ और करनेका अधिकार नहीं था। यह सत्य है कि जब पार्लियामेण्टमें इस नीतिपर विवाद हो रहा था तब श्री ब्राइटके पूछनेपर सर चार्ल्स वुडने कहा कि परिषद्में कोई सदस्य राज्यके आय-सम्बन्धी किसी प्रश्नपर ठीक उसी प्रकार प्रस्ताव कर सकता है जैसा कि इङ्गलैण्डकी साधारण सभामें होता है। किन्तु सदस्योंको ऐसा करनेका अवसर नहीं दिया गया। उन लोगोंको कौन्सिलमें केवल बैठा रहना था और जब कोई विधान परिषद्में आता था तब उन्हें अपनी राय भर देनी पड़ती थी। यदि परिषद्में भारतीय सदस्य अधिक होते और शिक्षित भारतीयोंमेंसे चुने गए होते और उनको लगान-सम्बन्धी प्रस्ताव करनेकी आज्ञा भी मिली होती तो मेरा विचार है कि भारतकी आर्थिक दशा उससे और भी कहीं अच्छी हो गई होती जैसी कि इस समय है। भारतीय सदस्योंकी उपस्थिति व्यवहारकी दृष्टिसे नहींके बराबर थी इसलिये सर्वथा प्रबन्धकारिणीकी इच्छाके अनुसार ही शासन-प्रबन्ध होता था। इससे न तो प्रजाकी भलाईकी रक्षा होती थी और न वह सम्पन्न बन पाती थी, बल्कि सहज ही उसमें असन्तोषकी वृद्धि होती थी। जब लौर्ड रिपन भारतके वाइसराय बनकर आए तब उन्होंने पहलेकी अपेक्षा स्थितिमें बहुत कुछ परिवर्त्तन किए। उन्होंने बहुतसे सुधार किए। विभव-वर्द्धन तथा प्रजामें सन्तोष उत्पन्न करनेके लिये स्वायत्त-शासनको उपयोगी समझकर उन्होंने डिस्ट्रिक्ट तथा म्युनिसिपल बोर्डके आधारपर स्थानीय स्वायत्त-शासनका श्री गणेश किया। किन्तु कार्य्य-कारिणीके सदस्योंकी नियुक्तिके सम्बन्धमें उनकी नीति वैसी ही बनी रही और उन्होंने शिक्षित भारतीयोंको नियुक्त नहीं किया। इस प्रकार शिक्षिति भारतीयोंके मस्तिष्कमें एक गहरा एवं दृढ़ विश्वास जम गया कि देश तबतक सुचारु रूपसे शासित नहीं हो सकता जबतक शासन-विधानमें भारतीयोंको समुचित अधिकार प्राप्त न हो जायँ। अस्तु, सन् १८८५ ई० में प्रत्येक श्रेणी एवं वर्गके प्रतिनिधियोंकी एक भारतीय कांग्रेस बम्बईमें हुई और पूर्ण विचारके बाद जन-साधारणकी ओरसे एक सङ्गठित प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया कि भारत तबतक सुशासित नहीं हो सकता जबतक कि उसे प्रतिनिधिमूलक संस्थाएँ न मिल जायँ। कांग्रेसने अपने तृतीय प्रस्तावका प्रकाशन किया, जिसमें कहा गया था कि पश्चिमोत्तर प्रान्त, अवध और पञ्जाबके लिये भी वैसी ही

व्यवस्थापिका सभाएँ नियुक्त कर दी जायँ और वर्त्तमान प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओंमें सुधार और विस्तार किया जाय। उसने आग्रह किया कि सब बजट इस सभाके सामने विचारके लिये पेश हों और साधारण सभाकी एक ऐसी कमेटीकी व्यवस्था हो जाय कि प्रबन्धकारिणीकी शक्ति, जो उसे कौन्सिलके बहुमतके निर्णयको नष्ट करनेकी मिल गई है, नियन्त्रित हो जाय और उक्त सभा उसके अनुचित निर्णयपर विचार करे। उसके उपरान्त प्रतिवर्ष कांग्रेसकी बैठक होती रही है। अपनी स्थितिको दूसरे वर्ष कांग्रेसने फिर प्रकाशित किया और कहा कि इसने बड़े मनोयोगके साथ निश्चित किया है कि भारतकी बहुत बड़ी जनसंख्यामें निर्धनता प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इसका दृढ़ निश्चय है कि प्रतिनिधिमूलक संस्थाओंकी स्थापना ही जनताकी दशाके सुधारका एक मात्र व्यावहारिक साधन है। सन् १८९१ ई० में कांग्रेसने अपने पहलेके दृढ़ विश्वासोंको फिर दुहराया और शिक्षित भारतीयोंके दृढ़ निश्चयका प्रकाशन किया और कहा कि "भारतका न तो तबतक भला एवं न्यायपूर्ण शासन होगा, और न इसकी जनता समृद्धिशालिनी तथा सन्तुष्ट होगी जबतक कि देशकी व्यवस्थापिकाओंमें उसको अपने निर्वाचित प्रतिनिधियोंके द्वारा एक प्रभावशाली मत-प्रकाशनकी आज्ञा न मिलेगी।" उसने यह भी अनुरोध किया कि इस न्याय-सङ्गत तथा आवश्यक सुधारकी स्थापनामें विशेष विलम्ब न हो।

स्वर्गीय श्री ब्रैडलौने कांग्रेसकी बातकी सुनवाई की और इस देशकी व्यवस्थापिका सभाओंके सुधारके बिलको पार्लियामेण्टमें प्रस्तुत करनेका भार लिया। उस बिलमें कहा गया था कि व्यवस्थापिका सभाके आधेसे कम सदस्य निर्वाचित नहीं होंगे। सरकारी पद-प्राप्त सदस्योंकी संख्या एक चौथाईसे अधिक न होनी चाहिए। शेषकी नियुक्ति स्वयं सरकार करे। परन्तु इसमें यह भी कहा गया था कि कार्य्य-कारिणी सभाको इसके बहुमतसे पास किए गए किसी भी प्रस्तावको अस्वीकृत करनेका अधिकार रहे और सरकार चाहे जिस उचित प्रबन्ध नीतिसे इसको तै कर सके। किन्तु सरकारने इस बिलको हटा लिया, क्योंकि उसने स्वयं अपना एक नया 'बिल' प्रस्तुत किया जो कि सन् १८९२ ई० में पास हुआ। उस नीतिके अनुसार ग़ैर-सरकारी सदस्योंकी संख्या बढ़ा दी गई और सदस्योंके निर्वाचनमें प्रतिनिधि-नीतिकी भी व्यवस्था रक्खी गई। उसी समयसे म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंको अपने प्रतिनिधियोंद्वारा कुछ प्रान्तीय कौन्सिलके सदस्योंके निर्वाचनका अधिकार मिला और इन कौन्सिलोंके प्रत्येक ग़ैर-सरकारी सदस्यको एक-एक सदस्य नियुक्त कर बड़ी राजकीय कौन्सिलमें भेजनेका अधिकार मिला। फिर भी प्रतिनिधि सदस्य बहुत कम संख्यामें थे और इससे भी दुःखद बात यह थी कि उन लोगोंको न तो कोई प्रस्ताव करनेका अधिकार था, और न उसके औचित्यपर सभाको विभक्त होनेका और न उस व्ययमें कुछ मीनमेष करनेका, जो कि सरकार नियत करना चाहती थी। इसका परिणाम क्या हुआ? इसमें कुछ सन्देह नहीं कि कतिपय चुने हुए व्यक्तियोंमें प्रान्तीय तथा राजकीय कौन्सिलके वार्षिक आर्थिक विवरणपर कुछ विचार किया है। प्रतिवर्ष उन्होंने उन विवरणोंपर बुद्धिमत्ता तथा विचारपूर्ण सम्मति प्रकट की है। किन्तु सामान्यतः इसका कोई परिणाम न निकला। वह केवल पण्डितोंका विवाद समझा गया है। किसी भी दी हुई अनुमतिको मानने या न मनानेके लिये सरकार सर्वथा स्वतन्त्र थी। देशके शासनमें प्रजाके प्रतिनिधियोंके कथनोंको कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। परिणाम इसका यह रहा कि आजकल लगानका तीन चौथाई शाही कामोंमें लगाया जाता है और एक चौथाईसे कुछ कम भारतके सभी प्रान्तों तथा शिक्षा, स्वच्छता, ओषधि, औद्योगिक उन्नति, न्याय-सुधार एवं प्रबन्धके शासनमें, जो कि प्रजाके हितके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, व्यय किया जाता

है। फिर भी क्या यह आश्चर्य्यकी बात नहीं है कि भारतवासी इतने ही निर्धन हों जितने कि दिखाई देते हैं और इस प्रकार अकाल तथा प्लेगसे मरें जैसा कि वे कितने वर्षोंसे मरते दिखाई दे रहे हैं? ऐसी अवस्थामें यह असम्भव है कि कोई प्रजा सदाचार और कामधन्धोंमें उन्नति करे और एक सम्भावित मनुष्यकी भाँति रहे या अपने कल्याणके लिये उन उपायोंका प्रयोग करे जो इसके लिये आवश्यक हैं? इसी लिये कांग्रेसने प्रतिवर्ष इसके माँगनेकी अगुआनी की कि स्वायत्त-शासनमें जनताको सारगर्भित अधिकार देकर इस प्रणालीको दूर कर दिया जाय। यह कहनेकी कोई ज़रूरत नहीं कि कांग्रेसने साम्राज्यके भीतर कुछ विशेष स्वशासनके अतिरिक्त और कुछ कभी नहीं माँगा। अनेक वर्षोंसे, जबसे कि कांग्रेसके ऐसे विचार हो रहे हैं और ऐसी सम्मतियाँ पास होती आ रही हैं, उसने कभी यह नहीं कहा है कि सरकार कार्य्य-कारिणीको इस प्रकार कर दे कि जनताके प्रतिनिधियोंकी रायके प्रतिकूल वह शासन करनेके योग्य ही न रह जाय। इसने जो कुछ कहा है वह यही है कि व्यवस्था कुछ इस प्रकारकी कर दी जाय कि सामान्य बातोंके विषयमें जनताके प्रतिनिधियोंमें भी ऐसे विचार फैलें और यदि कार्य्य-कारिणीके किसी निर्णयको अनुचित समझें तो उसे अस्वीकार कर सकें। प्रत्यक्ष रूपमें यह जनताके लिये लाभप्रद होगा और कार्य्य-कारिणी उनके अन्तिम निर्णयके अधिकारसे वञ्चित भी नहीं करेगी।

अबतक जो प्रबन्ध होता आया है उसके शासन-विधानमें भारत-प्रतिनिधियोंकी सम्मतिकी उपेक्षा ही एकमात्र और शोकजनक बात नहीं रही है, बल्कि उस शासनमें कोई वास्तविक अर्गला ही नहीं थी। अतएव इस विचारसे कि स्वच्छन्द शासन-विधानमें कोई वास्तविक प्रबल अर्गला उपस्थित की जाय, प्रथम कांग्रेसके दूसरे प्रस्तावमें कहा गया कि भारत-सचिवकी सभा जो अभी बनी है, सुधारके फलस्वरूप हटा दी जाय। जब कांग्रेसने यह देख लिया कि उसकी यह बात अनसुनी कर दी गई और उक्त सभा नहीं हटाई गई तब उसने आग्रह किया कि उसके सदस्योंमें दो या तीन भारतीय सदस्योंकी नियुक्ति हो जाय। हर्षकी बात है कि श्री जौन मौर्लेने दो भारतीयोंको इस सभामें नियुक्त कर अपनी उदारता एवं महती बुद्धिमत्ताका परिचय दिया। मेरी धारणा है कि उन्होंने कांग्रेसके परामर्शका पूर्ण रूपसे पालन किया। कांग्रेसने निवेदन किया कि वाइसरायकी सभाके लिये ग़ैर-सरकारी सदस्योंमेंसे भारतीय सदस्य चुने जायँ। यदि ऐसा कर दिया गया होता तो ये सदस्य प्रजाके सच्चे प्रतिनिधि होते और उनकी नियुक्तिसे उन्हें सन्तोष हो जाता। फिर भी जो कुछ हो गया है, उसके लिये हम लोग कृतज्ञ हैं।

दूसरा उपाय, जिसको कांग्रेस प्रस्तुत करती है, यह है कि वाइसरायकी प्रबन्ध-कारिणी सभामें एक या दो भारतीयोंकी नियुक्ति हो। अभाग्यवश इस परामर्शका फल अभीतक कुछ भी नहीं हुआ। तथापि मैं कृतज्ञताके साथ इसकी घोषणा करता हूँ कि मौर्लेने वचन दिया है कि ज्योंही उचित अवसर हाथ लगेगा त्योंही वे तथा वाइसराय महोदय उसको पूरा करनेका भरसक प्रयत्न करेंगे। प्रान्तीय सरकारकी भी प्रबन्ध-कारिणी सभामें भारतीय सदस्योंका होना आवश्यक है। कांग्रेसने अनेक बार आग्रह किया है कि बम्बई और मद्रासके गवर्नरकी प्रबन्धकारिणी सभाओंमें भारतीय सदस्य हों। हमें आशा है कि भारत-सचिवकी सभाके लिये बने हुए नियम इस निवेदनको सरकारके लिये ग्राह्य तथा सरल बना देंगे। यह उचित समय है कि वे प्रान्त, जो कि लेफ़्टिनेण्ट गवर्नरके अधिकारमें हैं, भारतीय सदस्योंसे युक्त गवर्नरकी एक प्रबन्धकारिणी सभाके अधीन कर दिए जायँ। जब कि ये एक ही आदमीके शासनमें रहेंगे तब उदाहरणके लिये संयुक्तप्रान्त ऐसे किसी बड़े प्रान्तका शासन कितना कठिन और कष्टकर हो जायगा। सम्भव है कि किसी समय बहुत अच्छा लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर आ

जाय, परन्तु इसके लिये क्या निश्चय है कि उसके स्थानपर आनेवाले महानुभाव भी उसी नीतिका पालन करेँगे—इसके अतिरिक्त सरकारकी नीतिके सम्बन्धमेँ भारतीय सम्मतिको विधानके अन्तर्गत कोई स्थान नहीँ दिया गया। इसका फल किसी समय अवश्य बुरा होगा। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि यदि पञ्जाबके लेफ़्टिनेण्ट गवर्नरको सम्मति देनेवाले उचित रूपसे चुने गए दो भारतीय सज्जन होते तो कदाचित् देशके दो प्रमुख व्यक्तियोँको विना किसी न्यायके देश-निकालेका दण्ड न मिलता और यह अत्यन्त शोचनीय दुर्घटना न होती। यदि बङ्गालके लेफ़्टिनेण्ट गवर्नरकी सहायताके लिये भारतीय सदस्योँकी एक प्रबन्धकारिणी सभामेँ दो भारतीय सदस्योँको रख लिया होता तो कदाचित् वङ्ग-भङ्ग जैसी दूसरी दुःखद घटना न हुई होती। सज्जनो! यह एक प्रसिद्ध लेखककी निश्चित अनुभूति है कि—"सम्पूर्ण राजनीतिक प्रश्नोँमेँ मुहूर्तकी भूल एक घातक भूल है। अर्थात् वह—'जब सूर्य्य पश्चिमकी ओर ढल रहा हो तब यह सोचना कि अभी दोपहरसे पहलेका समय है और जब सूर्य्य आकाशमेँ बहुत ऊचे चढ़ आया हो तब यह कहना कि अभी प्रातःकाल है' कहनेके समान है।" सरकार और देशकी पूरी भलाईके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि सरकार इस बातको स्वीकार कर ले कि अब समय बदल गया है, और जनताके विचारोँमेँ एक नया उत्साह आ गया है। उस उत्साहके लिये आवश्यक है कि देशका शासन-प्रवन्ध जनताके भाव एवं विचारके अनुकूल हो न कि उसका तिरस्कार करे। प्रजाके भावोँमेँ एक बहुत बड़ा परिवर्त्तन हुआ है; और वह प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

यह बात केवल इसी देशमेँ नहीँ पाई जाती वलिक एशियाके अन्य देशोँमेँ भी इसका प्रचार हो गया है। जापानने, जो कि न जाने कितनी बातोँमेँ भारतसे बहुत पीछे था, कुछ ही दिन हुए, संसारकी सभ्य जातियोँमेँ मुख्य स्थान प्राप्त कर लिया है। चीन भी अपनी मन्दतासे उठ पड़ा है। फ़ारस भी अपनी चिर-निद्रासे जाग रहा है। फिर भी क्या यह सम्भव है कि भारतके निवासी, जिनका अतीत अत्यन्त उज्ज्वल था, अपने जागरणका परिचय न देँगे तथा अपने देशके शासन-प्रबन्धमेँ उचित भाग लेनेके लिये सन्नद्ध न होँगे? क्या भारतके लिये यह पाप है कि वह अपने उन न्याय और सुविधाओँकी याचना करे, जिनका आनन्द बृटिश साम्राज्यके अन्य भागोँकी इसकी समकक्ष प्रजा भोग रही है? यदि ऐसा नहीँ है तो क्या यह चिन्ताकी बात नहीँ है कि कोई भी बात, जिसमेँ उत्तरदायित्व-शासनके विधानका अभाव है, उसकी उच्चाभिलाषाको सन्तुष्ट कर सकती है? प्रतिदिन जितना ही बड़ा और स्पष्ट उनकी अभिलाषाओँका प्रदर्शन होगा उतनी ही अधिक असन्तुष्टि एक ऐसी प्रणालीके जारी करनेमेँ दिखलाई जायगी जो कि उनकी अभिलाषाओँके प्रतिकूल हो। जनताकी सम्मतिका उत्कर्ष प्रतिदिन, प्रतिसप्ताह या प्रतिवर्ष तवतक बढ़ता जायगा जबतक इन अभिलाषाओँकी उचित पूर्त्ति नहीँ होती। ऐसी दशामेँ जनता और सरकार दोनोँके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वाइसराय एवं प्रान्तीय सरकारकी प्रबन्धकारिणी सभाओँमेँ ऐसे भारतीय सदस्य होँ जो जनताकी अभिलाषा एवं उनके भावोँको ठीक-ठीक विश्वसनीय रूपमेँ सरकारके सामने रख सकेँ और सरकारके भाव तथा विचारको जनतापर प्रकट करेँ। इस प्रकार बहुतसे दुर्विचार दूर किए जा सकते हैँ। यह भली भाँति प्रकट है कि अंग्रेज़ी सरकार बहुत बातोँमेँ अबतक हम लोगोँके लिये लाभप्रद रही है और हम लोगोँके भविष्यके अभ्युदयके लिये, जिसमेँ कि बहुत विलम्ब नहीँ है, आवश्यक भी है। प्रतीत होता है कि अब हम लोग अंग्रेज़ी शासनमेँ तभी प्रसन्न और सन्तुष्ट रह सकते हैँ जब हम लोगोँको वे अधिकार, जिन्हेँ देनेका महारानी विक्टोरियाने तथा इङ्गलैण्डकी पार्लियामेण्टने वचन दिया है तथा जिनके पानेके हम भारत-सन्तानके नाते अधिकारी हैँ, दे दिए जायँ

और उन अधिकारोंका सम्मान किया जाय। हम लोग वास्तवमें एक बड़े साम्राज्यकी प्रजाके समान इन कृपाओंका सम्मान और सत्कार करेंगे। बहुत दिनोंके उपद्रवोंकी अनुभूति तथा गत अर्द्ध शताब्दीके घटनाक्रमके अध्ययनसे हमें इस बातका दृढ़ विश्वास हो गया है कि हम लोगोंके अधिकारोंका तबतक आदर तथा हमारे कल्याणका समुचित उदय न होगा जबतक कि हम लोग स्वायत्त-शासनको एक सामूहिक और सार्थक रूपमें प्राप्त नहीं कर लेते और जनताके चुने हुए प्रतिनिधियोंका शासन-प्रबन्धमें बोलबाला नहीं हो जाता। सन् १९०४ ई० की बम्बईकी कांग्रेसमें सभापतिके अपने प्रशंसनीय भाषणमें सर हेनरी कौटनने कहा कि व्यवस्थापिका सभामें इतना न्यून प्रतिनिधित्व हम लोगोंकी माँगके विचारसे बहुत ही कम है। हम लोगोंकी इच्छा थी कि हम लोग प्रतिनिधित्वके आधारपर धीरे-धीरे भारतको ग्रेट बृटेनके अन्य स्वशासित उपनिवेशोंके समकक्ष देख लें। बनारसकी पिछली कांग्रेसमें सभापतिके आसनसे भाषण देते हुए महामना श्री गोखलेने कहा—"कांग्रेसका लक्ष्य यह है कि भारतका शासन भारतकी ही भलाईका ध्यान रखते हुए किया जाय और कुछ दिनोंमें इस देशमें इस प्रकारका शासन-विधान प्राप्त कर लिया जाय जैसा कि बृटिश साम्राज्यके अन्य स्वशासित उपनिवेशोंमें हैं। और अन्तमें सन् १९०६ ई० में भारतके श्रेष्ठ वयोवृद्ध नेता श्री दादाभाई नौरोजीने अपने समूचे जीवनकी गम्भीर अनुभूतिके आधारपर अपना यह दृढ़ विश्वास व्यक्त किया कि भारतकी सारी विपत्तियोंकी एकमात्र दवा स्वशासनकी स्थापना ही है और अपनी यह उत्कट अभिलाषा प्रकट की कि वर्त्तमान सरकारके आधारपर खड़े हुए राजनीतिज्ञोंको एक "ऐसा क्रम-बद्ध आरम्भ करना चाहिए जो कुछ ही दिनोंमें अन्य स्वशासित उपनिवेशोंकी भाँति पूर्ण स्वशासक सरकारकी व्यवस्थापक सभाके रूपमें परिणत हो जाय।" भारतको सन्तुष्ट और प्रसन्न करनेके लिये जो होना चाहिए वे तो उसकी बातें हुईं। अब इसको व्यवहारमें लानेके लिये किन बातोंकी आवश्यकता है? भारतसे लौटनेपर वेल्सके युवराज महाराजने अपने भाषणमें प्रसन्नताके साथ कहा था कि भारत इस समय केवल सहानुभूति चाहता है। सज्जनो! सचमुच वर्त्तमान समयमें इससे किसी बातकी और अधिक आवश्यकता नहीं है कि हम लोगोंके साथ कुछ और सहानुभूति दिखाई जाय और सम्राट्की अन्य प्रजाओंकी भाँति हम लोगोंपर भी कृपादृष्टि हो और हम लोग भी उनके समकक्ष रहकर उन्हींके साथ स्वतन्त्र प्रजापर होनेवाले व्यवहारके भागी हों। तब आजकलकी भाँति लोकवृद्धिमें भारतीयोंकी उच्च पदोंपर नियुक्ति केवल न्याय ही तक सीमित नहीं रहेगी—प्रसङ्गवश यह कह देना ठीक है कि इलाहाबादमें एक भारतीय न्यायाधीशकी नियुक्तिके लिये हम लोग ऋणी हैं—बल्कि नागरिक, सैनिक-प्रबन्ध और न्याय आदि सम्बन्धी सभी उच्च पदोंपर भारतीयोंकी नियुक्तिका प्रश्न बड़ी ही सुगमता और स्वच्छतासे सध जायगा और सब बातोंमें बड़ी बात यह होगी कि हमारे शासक हमारी माँग एवं हम लोगोंको समझनेके योग्य हो जायँगे, साथ ही सुधारके उन उचित उपायोंको पसन्द या प्रयोग करना भी सीख जायँगे जो जनताके असन्तोषको दूर करने तथा साधु शासनके कल्याणकी उन्नतिके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

सुधार-प्रस्ताव

हम लोग इसके लिये कृतज्ञ हैं कि इङ्गलैण्ड तथा भारत-सरकारने मान लिया है कि भारतमें असन्तोष है और इस असन्तोषको कम करनेके लिये सुधार भी आवश्यक है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सुधारके उस प्रस्तावपर, जिसे सरकारने जनताके विचारके लिये रक्खा है, ध्यानसे विचार करेंगे। ऐसी स्थितिमें, मेरी धारणा है कि आप लोग अपने सम्मानित देशवासी श्री रमेशचन्द्र दत्तको स्मरण करेंगे जिन्होंने

दूसरे ही दिन कहा था कि मेरा निश्चय है कि भारतके लिये श्री जौन मौर्ले और लौर्ड मिण्टोसे बढ़कर सच्चा मित्र कोई दूसरा नहीं है। (नहीं, नहींकी एक ध्वनि)। सज्जनो! श्री दत्तके इस कथनसे कि श्री मौर्ले और लौर्ड मिण्टो हम लोगोंके मित्र हैं, हम सहमत हैं। (नहीं, नहींकी एक ध्वनि)। किसी सदस्यका उस समय नहीं, नहीं चिल्लाना- जब कि मैं अपना विश्वास प्रकट कर रहा हूँ, बड़ा भद्दा है। सज्जनो! गत वर्ष लौर्ड मिण्टोने कहा था कि भारतके शिक्षितोंकी उच्चाभिलाषाओंसे उनकी सहानुभूति है। सचमुच वे केवल भारत-वासियोंसे मिलना ही नहीं चाहते थे बल्कि उनकी सहायता भी करना चाहते थे। श्री मौर्लेने अभी हाल ही में कहा है कि उनका हृदय भारतीयोंके साथ है। ('कभी नहीं' की एक ध्वनि)। श्री मौर्ले एक सर्वथा सम्मानित व्यक्ति हैं। पहले उन्होंने कुछ बहुत बड़ी भूलें की थीं। सम्भव है कि भविष्यमें भी वे कुछ भूल करें। जिन्होंने उनके आचरणका अध्ययन किया है उनका दृढ़ विश्वास है कि वे स्वभावसे पूरे सच्चे हैं, (एक 'नहीं, नहीं' की ध्वनि)। ऐसी स्थितिमें जो सुअवसर हाथ लगा है उसका ऐसा सदुपयोग करो और श्री मौर्ले तथा लौर्ड मिण्टोके सामने अपने विचार इस प्रकार स्पष्ट करके रक्खो कि वे देशकी दशा तथा माँगका अनुभव करनेके योग्य हो जायँ और ऐसा उपाय निकालनेमें समर्थ हों कि जनताकी कामना तथा भावोंको सन्तुष्ट कर सकें। मुझे पूरी आशा है कि सुधार-प्रस्तावपर, जो हम लोगोंने टिप्पणी और समालोचना की है, उनको वे उदारतापूर्वक ग्रहण करेंगे और उनपर उचित ध्यान देंगे। देशहितैषी प्रत्येक महानुभावका कर्त्तव्य है कि सरकारके प्रस्तावकी उपयुक्तता-अनुपयुक्तता, योग्यता-अयोग्यता आदिपर पूरा-पूरा विचार करे और यह स्पष्ट भी कर दे कि देशकी माँगके अनुकूल बनानेके लिये उसमें क्या संशोधन होना चाहिए।

मैंने जिन विचारोंको अपने व्याख्यानके प्रथम भागमें व्यक्त किया है उनमें स्पष्ट कर दिया है कि किस प्रकार यह सम्भव होगा और जनतामें शान्ति तथा सन्तोषका राज्य स्थापित करेगा। उपायोंकी पूरी मीमांसाके बाद मैं आप लोगोंके निर्णयकी प्रतीक्षा करना नहीं चाहता। बल्कि आप लोगोंकी कृपासे प्रस्तावके कुछ प्रधान अङ्गोंपर सर्वसामान्योंके कुछ विचारोंको प्रकट करना चाहता हूँ।

शिक्षित-वर्ग

अबतक भारतीय मतका अर्थ भारतके शिक्षितोंका मत रहा है। ये वे ही शिक्षित हैं जिन्होंने जनताके विचारों तथा उनकी आवश्यकताओंपर ज़ोर दिया है और बहुत दिनोंतक उसकी उन्नति तथा लाभके लिये सरकारके शासन-प्रबन्धमें अनेक संशोधन करनेके लिये सतत प्रयत्नशील रहे हैं। वाइसराय, गवर्नर तथा अन्य पदाधिकारियोंने भी उनकी योग्यता और कार्य्य-पटुताकी सभामें तथा अन्यान्य अवसरोंपर प्रशंसा की है। अतएव यह एक अत्यन्त आश्चर्य तथा खेदकी बात है कि सरकारने उन्हीं शिक्षितोंकी अवहेलना की है और उनके प्रति सारहीन व्यर्थकी ईर्ष्याका परिचय दिया है। सरकारने इस तरह अपने सुधार-प्रस्तावको निष्फल बना दिया है। कुछ ही दिनोंकी बात है कि भारत-सरकार इन्हीं अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे शिक्षितोंपर गर्व करती थी और उनकी संख्या-वृद्धिकी ओर सङ्केत करके बृटिश शासनके भीतर उनके उन्नत करनेका प्रमाण पेश करती थी और इस बातको स्वीकार करती थी कि सरकार और प्रजाके बीचमें भाव-विनियमके वे ही सर्वोत्तम साधन हैं। शिक्षितोंके प्रति यह विचार-परिवर्त्तन न तो ठीक ही है और न बुद्धिमत्ताका द्योतक ही। क्या यह अत्यन्त खेदका विषय नहीं है कि उन्हीं शिक्षितोंके प्रभावोंको कम करनेके लिये सुधार-प्रस्तावकी योजना की गई है और उसीसे उसका आरम्भ भी होता है? ऐसे विचारोंके कारण प्रस्ताव सहसा निर्मूल और दोषपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं।

राजकीय और प्रान्तीय निर्देशिका सभाएँ

उदाहरणके लिये हम राजकीय निर्देशिका सभाको लें। इतना तो स्पष्ट है कि शिक्षित वर्ग केवल कभी निर्देशिका सभा, चाहे वह राजकीय है या प्रान्तीय, नहीं चाहता था। उन्होंने वर्त्तमान व्यवस्थापिका सभाका वह वैधानिक विस्तार माँगा था जिसके अनुसार कि वे लोग भी नियमानुकूल पार्लियामेण्ट अथवा संसारके किसी भी सभ्य देशकी कौन्सिलोंके समान लोक-मतको स्वतन्त्रता तथा स्पष्टताके साथ व्यक्त कर सकें। सरकार कहती है कि इस परिस्थितिमें उसके सामने जो युक्तियाँ तथा विचार रक्खे जाते हैं उन्हें समझने, तथा जो अशुद्ध और शरारती विचार पेश किए जाते हैं, उनको शोधनेमें उसे कठिनाईका अनुभव करना पड़ता है। कहा जाता है कि सन् १८९२ ई० के भारतीय कौन्सिल ऐक्टद्वारा दिए गए अधिकारके अनुसार जनताकी बातोंको सरलतापूर्वक स्पष्ट कर देनेकी आशा फलवती नहीं दिखाई देती। इसका कारण यह बताया जाता है कि व्यवस्थापिका सभाएँ उसी समय बुलाई जाती हैं जब कि कोई नियम बनाना होता है, नहीं तो उसकी बैठक शासक एवं शासितमें भाव-विनिमय या किसी गुप्त मन्त्रणाके लिये बहुत कम होती है, और जिस कठिन उपायसे वे रोके जा सकते हैं वह दिखाऊ ढङ्गपर है। अतएव उनका प्रस्ताव होता है कि केवल इसी स्वतन्त्र और निकट विचार-विनिमयका प्रधानतः उद्देश रखकर निर्देशिका सभाओंका निर्माण किया जाय। व्यवस्थापिका सभाओंको बढ़ाकर, नियमित अवसरपर, उनकी अधिक बैठक कराकर, सभाके अधिकार और कार्य्यको बढ़ाकर तथा उसके कार्य्योंको अधिक उदार बनाकर, अत्यन्त उत्तमताके साथ काम किया जा सकता है। क्या राजकीय निर्देशिका सभाकी रीति और व्यवस्था वैसी है जैसी कि ऊपर कही गई है, और जो उक्त उद्देशको पूरा कर सके? इसमें रजवाड़ों तथा राज्यके सरदार और रईस सभी रहेंगे। क्या उसके विषयमें यह सच-सच कहा जा सकता है कि उसके सदस्य बृटिश भारतकी प्रजाके दैनिक जीवनसे परिचित हैं और साहसके साथ उसके स्थानपर बोल सकते हैं? क्या भारत-सरकार इस बातको स्पष्ट करनेकी कृपा करेगी कि कितने रजवाड़ोंने बृटिश भारतके शासन-प्रबन्धपर विचार किया है, तथा कितनोंने अपनी सम्मतिमें इसकी सहायता की है? क्या अनेक वर्षोंतक राजकीय व्यवस्थापिका सभाके सदस्य रजवाड़ों तथा देशी रईसोंमेंसे लगातार नहीं चुने गए? क्या उन लोगोंकी नियुक्ति सरकार या प्रजा—किसीके लिये भी लाभप्रद हुई? इससे तो यही प्रतीत होता है कि सरकारने उन लोगोंकी रायको केवल इसी लिये महत्ता नहीं दी है कि उन लोगोंका मस्तिष्क विद्याके प्रकाशसे प्रकाशित नहीं था। परन्तु सरकार फिर भी प्रस्ताव करती है कि राजकीय निर्देशिका सभा केवल रजवाड़ों तथा देशी रईसोंकी होनी चाहिए और उनका नामकरण भी वाइसराय करेंगे। सभामें न तो किसी व्यवस्थाका विधान करना है और न उसको किसी प्रकारकी दिखाऊ शक्ति ही दी गई है और यहाँतक कि वह सरकारके सामने जनताकी किसी बातको पेश भी नहीं कर सकती। हाँ, यह उस समय अथवा उस अवसरपर एकत्र होनेके लिये बनी है जब सरकार वैसा होना उचित समझे। शासन-प्रबन्धमें उसके सदस्योंकी राय ली जाती है, परन्तु उनकी राय सरकारके लिये कोई मूल्य नहीं रखती। उनकी रायका प्रकाशन नहीं हो सकता। सरकार चाहे जिस स्वतन्त्रतासे उसका उपयोग करे। यह उस सभाकी सम्मति और परामर्शकी बात है जिसके पास किए गए विधान बृटिश भारतको प्रचुर जनतापर प्रभाव डालते हैं। फिर भी भारत-सरकार आग्रहके साथ दावा करती है कि ऐसी सभाओंकी स्थापनासे "व्यवस्थाकी प्रगतिमें बड़ी भारी उन्नति" होगी। सज्जनो! बहुत पहले इङ्गलैण्डने इस बातकी संसारमें घोषणा की है कि यथार्थ प्रतिनिधित्वके आधारपर ही शासन-व्यवस्थाकी उन्नति अवलम्बित

है। बृटिश पार्लियामेण्टमें समाजके प्रत्येक वर्गका प्रतिनिधित्त्व है, और फलतः प्रत्येक वर्ग अपने निर्वाचित प्रतिनिधिके द्वारा बातचीत करता है। यदि भारत-सरकार चाहती है कि राजकीय सभामें प्रत्येक वर्गके प्रतिनिधि हों—हम लोगोंकी तो निश्चिय अभिलाषा है कि ऐसा हो—तो उसके अनुसरणका सर्वोत्तम मार्ग यह होगा कि व्यवस्थापिका सभाओंको बढ़ावे और उनकी व्यवस्था इस ढङ्गसे करे कि उनमें प्रत्येक वर्गके—जिनकी अवश्यकता हो—प्रतिनिधियोंका प्रवेश हो। ऐसी व्यवस्थापिका सभा, जैसी कि प्रस्तावित है, उक्त फलको प्राप्त नहीं कर सकती। यह समझा जाता है कि यदि प्रस्तावित रूपमें उनकी व्यवस्था हो गई तो वे उस गम्भीरताको कम करनेके प्रयोगमें लाई जायँगी जो कि शिक्षित भारतीयोंकी सम्मतिके लिये वाइसराय तथा प्रान्तीय सरकारकी सभामें होनी चाहिए। यदि उनके बनानेका प्रस्ताव छोड़ा नहीं गया, जैसा कि होना चाहिए, तो मुझे उम्मीद है कि सरकार उसकी त्रुटियों तथा दोषोंको कम करनेके लिये, जैसा कि प्रस्ताव किया गया है, उसकी व्यवस्थामें बहुत कुछ सारगर्भित संशोधन करेगी और उसको सक्रिय बनानेकी भी कोई व्यवस्था करेगी। इन सभाओंमें रजवाड़ोंको शामिल करना ठीक नहीं होगा। उनके लिये ठीक उसी प्रकारकी सभा स्थापित की जाय जैसी कि भूतपूर्व झालावाड़के महाराजके गद्दीसे उतारे जानेपर गवर्नर-जनरलको उन प्रश्नोंपर राय देनेके लिये समिति बनानेकी अनुमति दी गई थी, जो भारतके गवर्नर-जनरल तथा देशी राजवाड़ोंके बीचमें उठें। यह किसी ऐसी अभिलाषाकी पूर्त्ति करेगी जिसकी आवश्यकता राजकीय शासन-प्रबन्धमें रजवाड़ों अथवा उनके राज्यसे सम्बन्ध रखनेवाली किसी दूसरी बातमें पड़ेगी। विशेषतः यह उस दशामें अधिक उपयोगी सिद्ध होगी जब इसके सदस्य उन्हींके द्वारा निर्वाचित हों। यदि ऐसा नहीं किया गया तो राजकीय निर्देशिका सभामें रजवाड़ोंकी सत्ता, यदि उनको नियुक्त किया गया, प्रायः नहींके समान ही होगी।

जहाँतक रजवाड़ोंका सम्बन्ध है, उन्हें व्यापारी, व्यवसायी तथा अधिकतर मध्यम वर्गके लोगोंके प्रतिनिधित्त्वसे अधिक महत्त्व देना आवश्यक नहीं है। यदि निर्देशिका सभाका निर्माण आवश्यक हो तो उक्त वर्गोंका प्रतिनिधित्त्व कम-से-कम देशी रईसोंके प्रतिनिधियोंके बराबर होना चाहिए। नियमानुकूल इसकी व्यवस्था और कार्रवाई निश्चित होनी चाहिए। इसको सक्रिय तथा जनताके लिये मान्य बनानेके लिये एवं उसकी सम्मति तथा विचारको व्यावहारिक रूप देनेके लिये ही इसकी व्यवस्था होनी चाहिए।

मेरी उपर्युक्त टिप्पणी प्रान्तीय सरकारकी सभापर भी लागू होती है। इसकी दशा राजकीय निर्देशिका सभासे भी दीन है। यदि व्यवस्थापिका सभाओंकी सत्ता न होती तो निर्देशिका सभाओंकी आवश्यकता समझमें आ सकती थी। परन्तु जब कि गत अर्द्ध शताब्दीसे सारे भारतके लिये राजकीय व्यवस्थापिका सभा तथा उसीके अनुरूप कुछ निश्चित शक्तिके साथ भारतके प्रत्येक बड़े प्रान्तके लिये छोटी व्यवस्थापिका सभाको बुद्धिमत्तासे स्वीकार कर लिया है, और पहलेकी इनकी कार्रवाई तथा इनकी शक्ति-वृद्धिकी बुद्धिमत्ताको मान लिया है, और लोक-मत इन सभाओं तथा इनकी शक्तिको और भी बढ़ानेके पक्षमें है, तब एक दुःखजनक आश्चर्य होता है कि सरकार इन व्यवस्थापिका सभाओंकी स्वाभाविक वृद्धिको गम्भीरतापूर्वक बढ़ानेकी अपेक्षा इसीके साथ एक ऐसी सभाके बनानेका प्रस्ताव क्यों करती है जिसकी स्थिति, बनावट, चाल तथा कार्रवाई पूर्ण रूपसे सरकारकी इच्छापर है, जिसको जनता भी नहीं रोक सकती। यह उन्नति नहीं बल्कि और भी अवनति है। इन प्रस्तावोंके लिये हम सरकारको धन्यवाद नहीं दे सकते। इसकी पूर्ण

आशा की जाती है कि परितः परिशीलनके अनन्तर ये प्रस्ताव हटा दिए जायँगे।

व्यवस्थापिका-सभाएँ

यदि ये प्रस्ताव स्थगित नहीं किए जाते हैं तो यह निश्चित है कि व्यवस्थापिका सभाके, जो कि प्रजा एवं सरकारके उच्चतम कल्याणका साधन है, स्वाभाविक विस्तार और उन्नतिके मार्गमें ये रोड़े अटकाएँगे। मेरा दृढ़ निश्चय है कि यदि निर्देशिका सभाओंका सरकारी प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं होता तो व्यवस्थापिका सभाके बढ़ानेका प्रस्ताव और भी उदार होता। कुछ गुह्य दुर्विचारोंके कारण वे और भी प्रभावहीन कर दिए गए हैं। उनमेंसे एक तो शिक्षितोंके विरुद्ध पक्ष पुष्ट करने तथा उनके प्रभावको निर्मूल कर देनेकी उत्कण्ठा है। इसके सम्बन्धमें मैं पहले ही कह चुका हूँ। इस पक्षका कुछ अंशोंमें यह फल अवश्य है कि सरकारने देशी प्रतिनिधित्वके स्थानपर, जो कि अभीतक सफलतापूर्वक काम करता आ रहा है, जाति, वर्ग एवं धर्मके प्रतिनिधित्वकी स्थापनाका प्रस्ताव किया है। यदि इस पद्धतिमें किसी बातकी कमी हुई है तो वह इसमें निर्वाचितोंकी संख्याकी अत्यन्त कमीके कारण हुई है। यदि ऐसे स्थानोंकी कमी पूर्ण रूपसे पूर्ण कर दी जाय, जिसके लिये बहुत दिनोंसे हम लोग प्रयत्नशील हैं, तो वर्ग-प्रतिनिधित्वके लिये बिना प्रयत्न किए ही आजकलकी अपेक्षा प्रत्येक वर्ग अधिक अच्छे रूपमें अपने प्रतिनिधियोंको भेज सकता है। यदि हमारे देशके सभी विशेष वर्गके प्रतिनिधि पूर्ण रूपसे सभामें जा सकें तो हम लोगोंकी केवल यही इच्छा है कि प्रत्येक अन्य वर्ग भी सभाके प्रतिनिधित्वमें समुचित रीतिसे अपना भाग प्राप्त कर सकें। मुझे विश्वास है कि भारतके समयके साथ परिवर्त्तित भावोंके लिये यह असम्भव है कि वर्ग या सम्प्रदायके प्रतिनिधित्वका कोई भी यत्न विभिन्न समाजोंमें कोई वास्तविक विभिन्नता उत्पन्न कर सके। परन्तु उसी प्रकार यह भी सम्भव है कि सरकार अपने प्रस्तावको एक ठीक नियमपर अवलम्बित करे और वही नियम निष्पक्षतासे सरकारकी प्रत्येक प्रजाके लिये कठोर हो। वर्गविशेषके लिये पक्षकी नीति और अन्य वर्गके लिये दुर्भाग्यकी नीति मूर्खतापूर्ण और अरक्षित होगी। निस्सन्देह ही यह असन्तोषकी दवा नहीं हो सकती और अच्छे शासनकी उन्नति भी कर नहीं सकती। जहाँतक हम कांग्रेसजनोंका सम्बन्ध है, हम लोगोंने कभी किसी वर्ग-विशेषके हितकी न तो कामना की है और न भविष्यमें कामना करेंगे। हम लोगोंकी सदैव यह इच्छा रही है कि "व्यवस्थाके भीतर सबके लिये साम्य तथा शक्तिका सम्पादन करें"। बम्बई कांग्रेसके अपने स्मरणीय व्याख्यानमें ब्रैडलौने जो कहा कि प्रत्येक जातीय प्रथाओं, विचारों तथा धार्मिक विभिन्नताओंके साथ "हम लोगोंको ऐसे बड़े साम्राज्यमें न्यायकी दृष्टिसे समानताका अधिकार है, सबके लिये समभावका सुअवसर प्राप्त है, न किसीको दण्ड दिया जाता है और न किसीका पक्ष किया जाता है," उससे हम लोग सहमत हैं। हम लोगोंका विचार है कि इन लक्ष्योंके विस्तारके अतिरिक्त किसी अन्य प्रकारसे न तो सरकार इससे अधिक अपना ही हित कर सकती है और न जनताका कल्याण ही। यदि सरकार वस्तुतः ऐसा करना चाहती है तो उसे न तो प्रजाके सम्प्रदाय-विशेषका पक्षपात और न अन्य सम्प्रदायका विरोध ही करना चाहिए। उसको किसी भी वर्गके प्रति द्वेष या दुर्भाव नहीं दिखाना चाहिए, जैसा कि उसने वकीलोंके प्रति दिखलाया है। सरकार का रोना है कि सभाके ग़ैर-सरकारी सदस्योंमें वकीलोंने अपनी धाक जमा ली है।

यदि यह ठीक है तो वकील धन्यवादके पात्र हैं, क्योंकि उन्होंने जनताके कार्य्यमें इतनी शक्ति और इतना समय लगा दिया है कि वह उन्हें मानती है। स्मरण रहना चाहिए कि रक्षा करने या उन्नति करनेमें उन लोगोंकी किसी प्रकारकी कोई निजी भलाई नहीं है। सभाके सामने जो उपाय

रक्खे गए हैं, उनका सम्बन्ध या तो सारी प्रजासे रहा है या प्रजाके किसी बड़े भागसे और उनको प्रयोगमें लाते हुए सभामें वकीलोंने बराबर यह स्पष्ट दिखाया है कि वे जनताके सभी वर्गोंकी उन्नतिके लिये उत्सुक हैं। ज़मीन्दारीके इस्तमरारी बन्दोबस्तके लिये वकीलोंने बहस की है। काश्तकारीके अधिकारका निश्चित काल बाँधनेके लिये भी उन्होंने बहस की थी। नमकके करके घटानेके पक्षमें भी उन्होंने अति निर्धनोंके लिये विवाद किया। उन्होंने आयकर लगानेके लिये पाँच सौ रुपयेकी जगह एक हज़ार रुपयेकी आमदनीको इसलिये नियत कराना नहीं चाहा कि उसको उससे किसी प्रकारका कष्ट भोगना पड़ा था, बल्कि इसलिये किया कि इससे उनके निर्धन देशवासियोंपर एक बहुत भारी बोझ पड़ रहा था। वकीलोंने ही प्रतिवर्ष जनताकी बढ़ती हुई निर्धनताकी ओर सरकारका ध्यान आकर्षित किया है और सुधार एवं उन्नतिकी व्यवस्था करनेके लिये आग्रह किया है। यह सब अपने व्यक्तिगत लाभके लिये नहीं बल्कि इसलिये कि जनता दुःख और नष्ट होनेसे बच जाय और अच्छे शासकका लक्ष्य उन्नत हो। इतनेपर भी यदि वकील अपने कर्त्तव्यका पालन, सरकार तथा देशके प्रति अच्छे ढङ्गसे नहीं कर सके तो इसलिये कि उनको सुअवसर नहीं दिया गया, कुछ इसलिये नहीं कि वे किसी स्वार्थ या वर्गके विचारोंके अधीन थे। सरकारकी इच्छाके अनुसार क़ानून बनानेके लिये वकील वर्गको निकाल दिया जाय। किन्तु जनता अपना प्रतिनिधि अपनी इच्छाके अनुसार चुननेके लिये स्वतन्त्र हो जाय और सरकार एक निश्चित अवधिके भीतर चुननेके लिये उनको मजबूर न करे। देशकी शुभ-चिन्तामें वकीलोंका केवल इतना ही सम्बन्ध है कि जनताके प्रतिनिधि केवल उन्हींको होना चाहिए जो बुद्धि, ज्ञान, अनुभव और जनताके उन प्रश्नोंपर विवाद करनेके लिये स्वतन्त्र विचार प्रकट करनेवाले हों, जो सभाके सामने आते हैं या भविष्यमें आवेंगे तथा भारतीय सिविल सर्विसके अत्यन्त योग्य सभासदोंके सामने, जिनको सरकारने नियुक्त किया है, सार्वजनिक विचारोंको रखने, प्रकट और पुष्ट करनेमें समर्थ हों। जनताकी चुननेकी इच्छा सीमित हो जानेसे, जैसा कि सरकारने प्रस्ताव किया है, यह आशङ्का बनी रहती है कि जो लोग न तो पूर्ण शिक्षित ही हैं तथा न किसी और ही प्रकारसे योग्य हैं वे भी सारे समाजकी असुविधाके लिये सभामें रक्खे जा सकते हैं। भूमिपति, कृषक, तथा व्यापारी आदि जिस प्रान्तमें वे रहते हैं, उसके प्रतिनिधि चुननेमें वोट देनेका अधिकार दिया जाय। परन्तु कोई केवल अपने ही वर्गका सदस्य चुननेका अधिकारी न रहे।

परन्तु सरकारके प्रस्तावकी सबसे बड़ी निन्दापूर्ण बात तो सभामें पदाधिकारी-बहुमतका रखना है। सरकारका विचार है कि यदि वह पदाधिकारियोंको सभामें बहुमत नहीं देगी तो साम्राज्यके शासन करनेका अधिकार उसके हाथसे निकल सकता है। यदि उन्होंने अपने पत्रमें इस विचारको स्पष्ट रूपमें प्रकट न कर दिया होता तो मुझे विश्वास नहीं होता कि ऐसे निकम्मे विचार भी गम्भीरतापूर्वक विचार करनेके योग्य होंगे। ऐसा मानते हुए कि शासनकर्त्ता इसको आवश्यक समझते हैं कि सरकार सर्वदा सभामें बहुमत रक्खे, वे कहते हैं:—“भारतमें उत्तम शासनको अत्यन्त आवश्यक तथा पूर्ण बनानेके लिये ही सरकारने बहुमतके नियमको स्वीकार किया है और जहाँतक पता चला है, इसका भारतके किसी भी वर्गकी सम्मतिसे, जो कि खरे और उत्तम शासनके विरुद्ध नहीं है, कभी विरोध भी नहीं हुआ है। यह कोई स्पष्ट बात नहीं है। यदि दो मनुष्य एक छत्र धारण नहीं कर सकते हैं तो राजनीतिक यन्त्रके बनानेकी बात ही मूर्खतापूर्ण है।” सज्जनो! इसे पढ़ते ही मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता हूँ। सरकारको

अधिकार है कि वह योग्यताके साथ यह दावा पेश करे कि बहुमतका विधान सच्चा, आवश्यक तथा भारतमेँ उत्तम शासनकी व्यवस्थाका परिणाम है।" परन्तु मैँ नम्र निवेदन करूँगा कि मेरा मत इसके विरुद्ध है। हम लोग यह नहीँ समझते कि यह विधान भारतमेँ उत्तम शासनकी व्यवस्थाका खरा या आवश्यक फल है। हम लोगोँको तो इस बातपर आश्चर्य्य होता है कि सरकारने गम्भीरताके साथ अपना यह मत प्रकट किया है कि जहाँतक उसको पता है बहुमतकी व्यवस्थामेँ "उन वर्गोँकी भारतीय सम्मतियोँसे कभी विरोध नहीँ किया गया है जो उत्तम शासनके खरेपनका विरोध नहीँ करते।" भारत-सरकारको पता होना चाहिए कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भारतीय शिक्षितोँके एक बड़े समूहकी प्रेरणासे लगातार माँगती आई है कि व्यवस्थापिका सभाओँमेँ इस प्रकारका सुधार कर दिया जाय कि उनमेँ ऐसे ग़ैर-सरकारी सदस्योँका बहुमत हो जाय जो हरघड़ी सरकारकी इच्छाके अनुसार ही वोट न दिया करेँ। प्रथम बम्बई कांग्रेसका वह तीसरा प्रस्ताव था जिसमेँ व्यवस्थापिकामेँ ऐसी वृद्धि एवं सुधारकी माँग पेश की गई थी। उस प्रस्तावमेँ स्पष्ट कहा गया था कि—"साधारण सभाकी एक सुरक्षित समिति की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि वह कार्य्यकारिणीके किसी बहुमतसे पास किए गए प्रस्तावके रद्द करनेकी शक्तिके विरोधमेँ, सभाके बहुमतसे प्रस्तुत किए गए किसी अन्य विरोधको प्राप्त करे और उसपर स्वयं विचार करे"। यह प्रस्ताव माननीय तैलङ्गने किया था जो हाल ही मेँ बम्बई-न्यायालयके न्यायाधीश हुए थे और हाल ही के मद्रास-न्यायालयमेँ नियुक्त हुए न्यायाधीश सर सुब्रह्मण्य ऐयरने इसका अनुमोदन किया था, तथा दादाभाई नौरोजीने अनुमति दी थी। गत कांग्रेसोँमेँ प्रतिवर्ष देशके अत्यन्त माननीय भारतीय तथा योरोपीय उसी प्रकारके प्रस्तावोँका समर्थन करते आए हैँ और भारतके प्रत्येक भागके सुशिक्षित मिलकर एक साथ इसका समर्थन करते रहे हैँ। अवश्य ही यह नहीँ कहा जा सकता कि ये महानुभाव ऐसे प्रस्तावोँको पेश करते हुए भारतमेँ अंग्रेज़ी अधिकारके औचित्यका विरोध करते हैँ अथवा यह चाहते हैँ कि भारतमेँ दो मनुष्य एक छत्र धारण करेँ। कांग्रेसने स्पष्ट रूपमेँ व्यवस्थापिका सभामेँ ग़ैर-सरकारी सदस्योँका बहुमत माँगा है, क्योँकि इसके बिना प्रबन्धकारिणीकी आर्थिक या शासन-सम्बन्धी बातोँपर जनताके प्रतिनिधियोँद्वारा कोई वास्तविक अर्गला लगानेकी सम्भावनातक नहीँ हो सकती। सज्जनो! यदि ऐसा न हुआ तो इसका तात्पर्य्य यह होगा कि सरकारी सदस्य सर्वदा बहुमतमेँ रहेँगे और इस व्यवस्थापर अवलम्बित व्यवस्थापिका सभाका सुधार न तो देशकी माँगको पूरा कर सकेगा और न भारतकी जनताकी शुद्ध उच्चाभिलाषाको सन्तुष्ट करनेमेँ समर्थ होगा। इसके अतिरिक्त जब इसमेँ इसका भी विधान कर दिया गया है कि गवर्नरजनरल किसी प्रस्तावको, जिसको सभाने पास कर दिया है, नष्ट कर सकते हैँ, तब मेरी समझमेँ सभामेँ सरकारी सदस्योँका बहुमत रखनेकी कोई आवश्यकता नहीँ है। एक भूतपूर्व भारत-सचिवने प्रत्यक्ष प्रकट किया था कि सरकारी सदस्य सरकारके साथ वोट देनेके लिये विवश हैँ। सर्वदा हुआ भी यही है कि सरकारी सदस्य एकमत होकर सदा उस नीतिके पक्षमेँ वोट देते रहे हैँ जिसका प्रयोग सरकारको अभीष्ट रहा है और उसके विरुद्ध वोट देते रहे हैँ जिसको सरकार चाहती नहीँ रही है। सरकारी सदस्योँके कर्त्तव्य ऐसे अवसरोँपर किसीको धोखा नहीँ देते और अब उनको या सरकारको समझनेमेँ जनताको भी धोखा नहीँ हो सकता। ऐसे वोट देनेका ढकोसला अच्छी तरह हटाया जा सकता है। यदि उन्हेँ प्रबन्धकारिणी सभाके पक्षमेँ ही वोट देना है तो केवल वोटपर लिखनेके लिये उन्हेँ उनके निश्चित कर्त्तव्योँसे सभामेँ घसीट लानेकी कोई आवश्यकता नहीँ है। प्रस्तावको रद्द करनेकी शक्तिसे सुसज्जित अकेला वाइसराय ही उन इक्कीस सरकारी सदस्योँकी

बराबरी कर सकता है। किन्तु यदि सभाओंमें जनताके प्रतिनिधित्वका कोई वास्तविक अर्थ या महत्त्व हो तो यह आवश्यक है कि सभामें सरकारी सदस्योंकी बहुतायत न रहे। तभी यह सम्भव हो सकता है कि नीतिके प्रश्नों तथा विभिन्न विभागोंके व्ययको घटाने-बढ़ानेके सम्बन्धमें बहुमतका स्वतन्त्र और स्वच्छ प्रदर्शन हो। सदस्योंको प्रस्ताव करने, किसी आर्थिक विवादमें विभक्त होने, किसी प्रश्नका उत्तर देने, तथा उसके लिये नये प्रश्न करनेका अधिकार मिल जाना चाहिए। देशके शासन-प्रवन्धके ऐसे जटिल उपायमें भी जबतक जनताकी पुकारको कोई स्थान नहीं दिया जायगा तबतक वह सुधार, जो देशमें स्थापित किया जायगा, किसी कामके योग्य न होगा।

सरकारी सदस्योंकी इस अनुचित बाढ़की व्यवस्थाका यह दुष्परिणाम हुआ है कि सरकारको ग़ैर-सरकारी सदस्योंकी संख्याको सीमित कर देना पड़ा है और नाना प्रकारके उन उपायोंसे, जो कल्याणके लिये प्रतिनिधित्वके उचित विधानपर अवलम्बित हैं, इस सङ्कीर्ण व्यवस्थाके कारण वञ्चित रह जाना पड़ा है। निदान इस विधानको व्यर्थ कर दिया जाय और ग़ैर-सरकारी सदस्योंकी संख्या इतनी बढ़ा दी जाय कि लाखों मनुष्योंके प्रतिनिधि पूर्ण रूपसे उस सभामें पहुँच सकें, जहाँ उनके कल्याणपर पूर्ण प्रभाव डालनेवाले प्रश्नोंपर विचार होता है तथा उनके भाग्यका निर्णय किया जाता है। बहुत दिन बीत गए कि कांग्रेसने यह सलाह दी थी कि आबादीके हिसाबसे हर पाँच लाखमें एक ग़ैर-सरकारी सदस्य चुना जाय। ऐसा हो जानेसे भारत-साम्राज्यके लिये कोई बहुत बड़ी सभा नहीं बनेगी। तिसपर भी यदि विशेष कारणवश सरकार इतनी बड़ी सभा बनाना नहीं चाहती, तो कुछ कम संख्यामें उन सदस्योंका निर्वाचन नियत करे। लोक-मत और प्रजाका दुःख सुनानेके लिये सभामें उन सरकारी सदस्योंकी नियुक्ति नहीं हो सकती, जिन्हें ग़ैर-सरकारी सदस्योंके विरोधके लिये सरकार उनके नित्य कर्त्तव्यसे कुछ कालके लिये विरत कर वोट लेनेके लिये सभामें बटोर लेती है।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाके लिये तो उससे भी कम बहुमतकी आवश्यकता है। साधारणतः प्रान्तीय गवर्नरको उन सभाओंके प्रस्तावोंको अस्वीकार कर देनेका अधिकार प्राप्त है। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभामें जो बातें आती हैं वे राजनीतिक महत्त्वकी नहीं हैं। उदाहरणके लिये सेना, विदेशी-सिक्का, ऋण, डाक और तार आदिका सम्बन्ध इन सभाओंके विस्तार नहीं है। अधिकतर उनके सामने प्रान्त-शासन, शिक्षा, स्वच्छता, कृषि-वृद्धि, व्यापार तथा प्रान्तकी उन्नति-सम्बन्धी ही प्रश्न आते हैं। यदि प्रवन्धकारिणी समितिके विरोधमें भी इन विषयोंपर प्रान्तीय सभाओंके सदस्योंको प्रस्ताव करने तथा उनके पास करनेका अधिकार दे दिया जाय तो भी किसी हानिकी सम्भावना नहीं है। इसलिये ऐसी स्थितिमें सरकारी सदस्योंके बहुमतकी व्यवस्था शीघ्र हटा देनी चाहिए और ग़ैर-सरकारी सदस्योंकी संख्या इतनी कर देनी चाहिए जिससे प्रान्तके भिन्न-भिन्न लाभप्रद वर्गोंका पूर्ण प्रतिनिधित्व हो सके। क्या इतना अधिक कहा जायगा कि आबादीके हिसाबसे हरएक लाखमें कम-से-कम एक ग़ैर-सरकारी सदस्य प्रान्तीय सभाके प्रतिनिधित्वके लिये निर्वाचित हो ? सभामें जनताकी माँग तथा शिकायतकी बातोंको पेश करनेके लिये आवश्यक है कि आबादी और क्षेत्रफलके हिसाबसे प्रत्येक ज़िलेका एक ऐसा प्रतिनिधि चुना जाय जो ज़िलेकी शिक्षा तथा वास्तविक उन्नतिपर प्रकाश डालनेवाले प्रश्नोंपर सचमुच विचार कर सके। हम लोगोंको आशा करनी चाहिए कि कम-से-कम इतना तो कर ही दिया जायगा।

अकेन्द्रीकरण कमीशन

अकेन्द्रीकरण कमीशनकी नियुक्तिके विवरणसे

प्रकट होता है कि जो जाँच उसपर अवलम्बित रही है वह बहुत विस्तृत हो गई है। उसे यही जाँच करनी थी कि शासन-प्रबन्धमें किस ढङ्गके परिवर्त्तनकी आवश्यकता है जो भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी दशा सुधारने एवं उनकी अभीष्ट वस्तुओंको देने तथा स्थानीय दशाके साथ-ही-साथ प्रबन्धकारिणी शक्तिको कम करनेके लिये उपयुक्त हों। परन्तु कमीशनने साक्षियोंकी जानकारीके लिये और प्रश्न रक्खा था और जिस उत्तरके लिये उसको आज्ञा मिली थी, उससे यही सिद्ध होता है कि कमीशन शासन-प्रबन्धको शक्तिके वितरणके प्रश्नोंपर ही कुछ विचार करना चाहता है कि सहायक शासकके लिये क्या नियत होना चाहिए, यानी भारत-सरकारसे प्रान्तीय सरकार तथा कमिश्नरी और ज़िलोंमें किस प्रकार शक्तिका सञ्चार होना चाहिए। कमीशनने ऐसे जटिल प्रश्नोंपर कि किस प्रकार भारत-सकारसे आर्थिक शक्ति हटाकर भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारोंको और भी अधिक उत्तरदायी तथा स्वतन्त्र सरकार बना दिया जाय, पूर्ण ध्यान नहीं दिया। निस्सन्देह ऐसे अकेन्द्रीकरणकी अपेक्षा "भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी माँग पूरी करना तथा उनकी दशा सुधारना कोई अत्यन्त आवश्यक काम नहीं है। सारे देशकी आवश्यक व्यवस्था इस समय सभामें गवर्नर जनरलके अधीन है। प्रान्तीय सरकार भारत-सरकारके प्रतिनिधि मात्र हैं। उनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। भारत-सरकारने प्रान्तीय व्ययके लिये कुछ निश्चित रूपमें प्रान्तमें कर निश्चित करनेकी आज्ञा प्रान्तीय सरकारको दी है। पर उस निश्चित रूपको भी भारत-सरकार स्वयं ठीक करती है। इसी प्रकार भारत-सरकारने सारे देशके आर्थिक अङ्गोंपर अधिकार किया है और उन अङ्गोंको उदारतापूर्ण एक बड़ा साम्राज्य स्थापित करनेके काममें लगाया है। सैनिक-विभाग तथा दूसरे राजनीतिक कामोंके लिये मनमाना व्यय किया गया है, जो दिनरात बढ़ता ही गया है; पर वही प्रान्तीय सरकारके अधीन उन्नति करनेके लिये उसकी माँगके हिसाबसे बहुत ही स्वीकृत हुआ है। प्रायः सभी प्रान्तीय सरकारोंने इसको महसूस किया है और इसे कोसा भी है कि उनकी आवश्यकताओंके हिसाबसे उनको आर्थिक सहायता नहीं दी गई है। जो दी गई है वह बहुत ही कम रही है। अन्तिम अर्द्ध इस्तमरारी बन्दोबस्तने कुछ अंशोंमें देशकी दशाको सुधारा है। प्रान्तकी आर्थिक स्थितिके विचारसे प्रान्तीय सरकारकी अवस्था अब भी दीन और असन्तोषजनक है। जबतक भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारके परस्पर सम्बन्धमें परिवर्त्तन नहीं लाया जायगा तबतक भय है कि जनताके करका पर्य्याप्त भाग वैसे कामोंमें नहीं व्यय किया जायगा, जिनका जनताके लाभसे सीधा सम्बन्ध है। ऐसा करनेके लिये भारत-सरकारको यह आवश्यक है कि आमदनीके सारे प्रधान राजकीय मदों और अङ्गोंपर ही अपना अधिकार प्राप्त कर सन्तोष करे और केवल प्रान्तीय अङ्गोंको ही नहीं बल्कि तत्सम्बन्धी अन्य अङ्गोंको भी प्रान्तीय सरकारके अधिकारमें छोड़ दे और यदि राजकीय आयसे राजकीय व्यय न चले तो किसी अन्य उचित उपायसे किसी निश्चित रूपमें प्रान्तीय सरकारसे चौथ वसूल कर ले। व्यय भी बहुत कम कर देना चाहिए। प्रान्तीय सरकारको चाहिए कि सारे प्रान्तीय अङ्गोंकी वृद्धिको स्वतन्त्र रूपमें ठीक करे और करके शेष भागको प्रान्तोंकी उन्नतिमें लगाए। यदि भारत-सरकार इसी प्रकार राजकीय कामोंके लिये प्रान्तीय करमेंसे भाग लेती रहेगी तो हम लोगोंको शिक्षासम्बन्धी तथा अन्य वास्तविक उन्नतिके लिये, जिसकी इस समय हम लोगोंको बड़ी आवश्यकता है, कभी पर्य्याप्त धन प्राप्त नहीं हो सकता। संयुक्तप्रान्तके निवासी हम लोगोंको तो इस प्रणालीसे बहुत दुःख हुआ है। राज्यके कोष-भाण्डारमें करके रूपमें हम लोगोंने सबसे अधिक धन दिया है और अन्य प्रान्तोंके धनके हिसाबसे मिलाकर हम लोगोंको

सबसे कम मिला है। फलतः हम लोगोंके शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य अनेक अङ्गोंपर, जिनका जनताकी दशापर सीधा प्रभाव पड़ता है, व्यय करनेके लिये कम द्रव्य मिलता है। फल यह हुआ कि प्राथमिक शिक्षाकी स्थापनामें यद्यपि यह प्रान्त सबमें अगुआ था तथापि अब भारतके अन्य प्रान्तोंसे शिक्षा-प्रचारमें पिछड़ा हुआ है और 'पिछड़े हुए प्रान्त' ऐसी फटकारको चुपचाप सहता है। स्वास्थ्यके सम्बन्धमें भी यही दशा है। कुछ वर्ष हुए भारत-सरकारने ग्राम-शुद्धताका विधान पास किया था। किन्तु बिना पर्य्याप्त दानके शुद्धताकी वृद्धि हो कैसे सकती है? इस प्रान्तमें स्वास्थ्यकी दशा क्या है? यहाँतक गिरी है कि अभी जनताको शुद्ध जल देनेके लिये पर्य्याप्त कूएँ भी नहीं हैं। हमें उन्हें बनवाना है। सरल मोरीकी प्रणाली भी एकाध स्थानोंको छोड़कर, किसी क़स्बेमें नहीं पाई जाती। प्रान्तके एक छोरसे दूसरे छोरतक कोई भी ऐसी म्युनिसिपैलिटी नहीं है जिसे स्वास्थ्यके लिये विशेष धनकी आवश्यकता न हो। कोई भी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ऐसा नहीं है जिसे उन कामोंको पूरा करनेके लिये, जो उसे दिए गए हैं, आजकलके तिगुने व्ययकी ज़रूरत न हो। लोक-हितके लिये अत्यन्त आवश्यक है कि भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकारके आर्थिक सम्बन्धमें परिवर्त्तन कर दिए जायँ। प्रान्तीय सरकारको भारत-सरकारसे एक प्रकार अर्द्ध-स्वतन्त्र कर दिया जाय। वह कर लेने तथा उसे व्यय करनेमें स्वतन्त्र कर दी जाय। उसे भारत-सरकारको कुछ नियत कर देना पड़े। कार्य्यकारिणी सभाओंको बढ़ाकर तथा उनमें सुधारकर, प्रान्तकी व्यवस्थापिका सभामें भारतीय सदस्यको नियुक्त किया जाय जिससे कि स्थानीय सरकारकी चालोंपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये जनताके प्रतिनिधियोंमें पूरी शक्ति आ जाय। यदि आर्थिक व्यवस्था अकेन्द्रित नहीं कर दी गई तो सुधारके अन्य उपाय उसका आधा भी काम न कर सकेंगे, जितना कि प्रान्तीय सरकार अपने प्रान्तका कर वसूल करके उसके प्रचुर अंशसे अपने प्रान्तके कामोंमें व्यय करके कर सकती है।

मैंने उन प्रधान परिवर्त्तनोंको दिखा देनेका प्रयत्न किया है, जो सुधारके प्रस्तावको जनताके लिये ग्राह्य तथा उनके लाभके लिये आवश्यक हैं। मैंने इस बातको भी खोल दिया है कि जनताकी भलाईके लिये मुख्य बात शासनका अकेन्द्रीकरण है। मुझे सन्देह नहीं है कि इन प्रस्तावोंपर विचार करनेके बाद आप लोग विस्तृत रूपमें इनके परिवर्त्तनों तथा इनकी उन्नतिके लिये अनुमति न देंगे। मुझे विश्वास है कि जब इन सब अनुमतियोंपर विचार करते हुए भारत-सरकार अन्तमें यह युक्ति निर्धारित करेगी तब वह ऐसी होगी कि भारतीय शिक्षितोंकी यथार्थ उच्चाभिलाषाको सन्तुष्ट और जनताकी वैभव वृद्धि करेगी। यह पूर्ण विश्वास किया जाता है कि ऐसा ही होगा। क्योंकि यदि दुर्भाग्यवश इसके विपरीत हुआ तो असन्तोष बढ़ता रहेगा और प्रतिदिन उसकी गहराई और भी गहरी होती जायगी। लोक-हित अथवा अच्छे शासन दोनोंके हीं कल्याणके लिये यह आवश्यक है कि सरकार तथा जनता दोनोंमें ही अच्छा सम्बन्ध रहे। इस लक्ष्यकी ओर अग्रसर करनेमें कोई भी अन्य उपाय उतना प्रबल न होगा जितना सुधार, जो कि देशमें प्रचलित परिवर्त्तनके कारण आवश्यक हो गया है। युक्तियोंपर जनताके विचारोंसे सहानुभूति रखनेवाले विचारों तथा महारानीके राजकीय आज्ञापत्र एवं पार्लियामेण्टके ऊँचे तथा उदार विधानोंके साथ आचरण करना हमें आगे बढ़ायगा। (हर्ष-ध्वनि)

सज्जनो! इसके पहले कि आप लोगोंकी आज्ञासे अपना व्याख्यान समाप्त करूँ, जो कुछ कि हम लोगोंको करना है, उसके सम्बन्धमें भी मैं कुछ निवेदन कर देना चाहता हूँ। हम लोग उस परिस्थितिपर निश्चित रूपसे विचार करें, जिसका सम्बन्ध सुधारकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वका है। सरकार हम लोगोंकी

माँग तथा स्वाभाविक उच्चाभिलाषाओंकी सन्तुष्टिके लिये उत्सुक दिखाई देती है और फलतः हम लोग अपनी कमी तथा इच्छाओंकी पूर्त्तिके लिये उन्हें उनके सामने प्रकट करनेके लिये बुलाए भी जाते हैं। जनताकी दशासे, जिसकी कि अच्छी मीमांसा की गई है, यही प्रतीत होता है कि उसकी दशाको सुधारनेके लिये यथार्थ सुधारकी स्थापना हम लोगोंके पूर्ण प्रयत्नपर अवलम्बित है। हमें साफ़ दिखाई दे रहा है कि सरकारसे स्वतन्त्र रूपमें उसकी दशाको सुधरवानेके लिये हम लोगोंको कितना काम करना है। पहली बातके सम्बन्धमें आप लोगोंसे यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि ऐसी प्रतिनिधि सभामें सरकारके प्रस्तावोंपर केवल अपनी सम्मति प्रकट करनेसे काम नहीं चल सकता। कहा जाता है कि भारतका शासन-प्रबन्ध कुछ अंशोंमें इङ्गलैण्डके ही समान होता है। अपने प्रतिनिधित्वको महत्त्वपूर्ण बनानेके लिये जिस प्रस्तावको लेकर हम लोग अग्रसर हो रहे हैं, उसके पक्षमें जितनी अधिक जनताकी राय मिल सकती हो, उतनी ही अधिक राय प्राप्त करें। जब भारतके परम मित्र श्री० ओ० ह्यूमने, जिनके हम लोग सदैव आभारी हैं, कांग्रेसकी स्थापना की थी, तब आप लोगोंमें जो वृद्ध हैं, उनको स्मरण होगा कि हम लोगोंका राजनीतिक काम केवल कांग्रेसमें प्रस्ताव ही पास करने तक सीमित नहीं था। श्री ह्यूमको आरम्भमें ही सूझ गया था कि जनताकी ओरसे कांग्रेसके दावेका यह समझकर समर्थन होना चाहिए कि कांग्रेसके रूपमें वह एक बड़े जन-समूहकी राय है। ज़िला-सम्मतियाँ एकत्र हुईं, क्रोडपत्र बाँटे गए और जनताको समझाने तथा उसकी सहायता और सहानुभूति प्राप्त करनेके लिये उसे कांग्रेसके ध्येय एवं लक्ष्यसे व्याख्यानोंके द्वारा भी आगाह किया गया। राजनीतिक शिक्षा तथा प्रचारके ये काम कांग्रेसके आरम्भिक वर्षोंमें हुए, परन्तु आजकल उनसे काम नहीं लिया जाता। फल यह होता है कि हम लोगोंके प्रतिनिधियोंमें उक्त शक्तिका अभाव हो जाता है, जो कि उनको उन्हें केवल नागरिक ही नहीं बल्कि ग्रामीण जनताकी ओरसे भी सम्मति पानेपर बराबर उत्तेजना देती है। कुछ ही दिनोंकी बात है कि श्री गोखलेकी आलोचना करते हुए पायोनियर पत्रने लिखा था कि उन्होंने जनताके केवल एक भागकी राय प्रकट की है। यदि इससे उस समाचार-पत्रका यह तात्पर्य्य था—कि श्री गोखलेके प्रस्तावित परिवर्त्तन तथा सुधारको जनसमूह स्वीकार नहीं करेगा, तो यह उचित नहीं था। परन्तु इतना तो हम लोगोंको स्वीकार करना होगा कि वास्तवमें जनताके किसी एक भागसे उसका तात्पर्य्य कांग्रेसके विचारोंसे था। यदि आप लोग चाहते हों कि हम लोगोंके प्रतिनिधियोंके प्रतिकूल इस प्रकारकी भ्रामक आलोचना न हो और जनताकी शक्ति, सम्मति और संख्या प्रतिदिन इसलिये बढ़ती जाय कि सरकारके सम्मति-दाताओंकी मण्डलीमें इसकी सम्मतिकी भी कुछ गणना हो, तो हम लोगोंका कर्त्तव्य है कि जनतामें उसके प्रश्नोंका सच्चा और गम्भीर विचार फैलावें। यह अत्यन्त आवश्यक है कि यह काम नियमानुसार और क्रम-पूर्वक किया जाय और अपनी जनता अच्छी तरहसे यह समझ जाय कि वे कौनसे सुधार हैं जिनको उनकी दशा सुधारनेके लिये हम लोग उचित समझते हैं और जिनकी स्थापनाके लिये व्यग्र हैं; और किस काममें वे हमारे साथ सहयोग करें एवं हम लोगोंको पूरी मदद दें? इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक प्रान्तका एक केन्द्रीय प्रान्तीय सम्मेलन हो और उसके अधीन प्रत्येक ज़िलेमें स्थानीय सम्मेलन नियत हो। साथ ही यह भी आवश्यक है कि उक्त सारे सम्मेलन सालभर अपना काम करें। हम लोगोंको अधिकतर इस बातसे सावधान रहना चाहिए कि हमारे अधिकारी संयोजक केवल सुधारके सच्चे और गम्भीर विचार फैलावें। ऐसा करना हम लोगोंका कर्त्तव्य है। जिन प्रश्नोंके आधारपर हम लोग उनकी भलाई करना चाहते हैं, उन्हें उनको इसलिये समझा दें कि सारे प्रतिनिधित्वमें, जो हम

सरकारके यहाँ प्रस्तुत करें, यह दिखानेके योग्य हो जायँ कि हम लोगोंके पीछे जन-समूहकी भी एक बहुत बड़ी राय है। आप लोगोंमेंसे कुछ लोगोंको याद होगा कि जब ब्रैडलौका बिल पार्लियामेण्टके सामने पेश था तब लाखों मनुष्योंसे हस्ताक्षर कराके साधारण सभामें प्रार्थनापत्र भेजे गए थे। आज हमारे लिये भी यह वाञ्छनीय है कि देशके प्रत्येक भागसे अपने प्रतिनिधित्त्वके समर्थनमें अनेकों हस्ताक्षर किए हुए सहस्रों प्रार्थनापत्र भारत-सचिवके पास भेजें। इस प्रकार जब जनताकी ओरसे, जिसमें प्रतिनिधियोंका बोलवाला है, अनेक प्रार्थनापत्र भेजे जायँगे, तब इस बातकी शिकायत कि शिक्षित समाज किसीका नहीं बल्कि अपना प्रतिनिधित्त्व कर रहा है, स्वतः दूर हो जायगी। अतएव मैं आप लोगोंसे बार-बार निवेदन करता हूँ कि आप लोग अपने प्रान्त तथा ज़िलेकी तहसीलोंको इसलिये एकत्र करें कि जिन प्रश्नोंपर यहाँ विवाद हो उनको वे अच्छी तरह समझें और समुचित रीतिसे हम लोगोंकी सहायता करें।

सज्जनो! यह आवश्यक है कि सरकारके यहाँ प्रतिनिधित्त्वकी अपेक्षा और भी अन्य स्वतन्त्र रूपोंसे, जिस प्रकार हम लोग जनताकी भलाई कर सकें, करनेका प्रयत्न करें। शिक्षा तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातोंमें और न्याय तथा ज़िलेकी उन्नतिके लिये हम लोग अवश्य सरकारमें अपना प्रतिनिधि भेजें और कहें कि जनताके धनमेंसे अधिक-से-अधिक उसके कल्याणके लिये व्यय हो। हम लोगोंको कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि हम लोगोंके कर्त्तव्यकी यहीं इति श्री हो गई। न जाने कितने ऐसे कार्य्य हैं जिन्हें बिना सरकारके पास पहुँचे ही हम लोग अच्छी तरह कर सकते हैं और आप लोगोंसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि आप लोग पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक ऐसे कामोंके लिये अपनेको तल्लीन करें। ऐसी बातें बहुतसी हैं, जिनमें सरकारकी सहायताके बिना ही हम लोग देशवासियोंकी सहायता कर सकते हैं। मैं उनमेंसे कतिपयका यहाँ उल्लेख करता हूँ। पहले दीन मनुष्योंको उस सङ्कटसे बचानेका प्रश्न है, जो कभी-कभी झूठे ही उनके ऊपर लाद दिया जाता है। इन निर्धन और दीन मनुष्योंमेंसे कुछ बिना किसी बचाव या रक्षाके रह जाते हैं, जिसका फल यह होता है कि उनके साथ भ्रष्ट अन्याय किया जाता है। पुलीसके अनुचित दबावकी दुर्घटना प्रायः सभी ज़िलोंमें होती रहती है। यदि आप लोग इन निर्धन प्राणियोंके बचावके लिये प्रत्येक ज़िलेमें सम्मेलन करें तो आप लोग बहुतसे अकिञ्चन मनुष्योंके जीवन तथा स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेमें सहायक होंगे। स्वास्थ्यके सम्बन्धमें भी जनतामें एक शुद्ध भाव फैलानेमें हम लोग बहुत कुछ सफल हो सकते हैं और उनके दुःखोंको हटा सकते हैं। हम लोगोंमेंसे बहुतसे लोग जो अच्छी अवस्थामें रहते हैं मुशकिलसे सोच सकते हैं कि अस्वस्थ अवस्थाका, जिसमें जनताका अधिकांश भाग रहता है, क्या अर्थ है। हमारे कहनेका तात्पर्य्य यह है कि अधिकांश जनताकी आजीवन विपत्तियों और अकाल मृत्युका प्रधान कारण रोकी जानेवाली बीमरियाँ हैं। इसके लिये इतना ही काफ़ी है कि हम सरकारसे स्वास्थ्य-वृद्धिके लिये अधिक धन व्यय करनेको कहें। हम लोग स्वास्थ्य-शास्त्रके ठीक नियमोंके फैलाने तथा जनताकी स्वास्थ्य-वृद्धिमें प्रयत्नशील होनेमें अपने अदम्य उत्साहका परिचय दें।

शिक्षा सारे सुधारोंकी जड़ है। अनेक वर्षोंसे हम लोग इसके लिये सरकारसे अधिक-से-अधिक रुपया व्यय करनेके लिये कह रहे हैं और इसका जारी रखना आवश्यक भी है, क्योंकि इन प्रान्तोंमें शिक्षाके लिये जितना व्यय होता है वह बहुत ही कम और अपर्य्याप्त है। फिर भी बहुत कुछ ऐसा है कि हम लोग, साधारण तथा विशेष, दोनों ही शिक्षाओंकी उन्नतिके लिये कुछ कर सकते हैं। इन प्रान्तोंमें सारी सरकारी तथा जातीय पाठशालाओंमें भी देशके प्रतिशत दस लड़के एवं लड़कियोंको

स्कूल जानेकी अवस्थामेँ शिक्षा नहीँ दी जाती है। स्कूल जानेवाली अवस्थाके नब्वे प्रतिशत प्राणियोँको अभी आरम्भिक शिक्षा देनी है। अतएव हम लोग नगर, पुर तथा ग्रामोँमेँ जनताके शिक्षणके लिये जितने स्कूल खोल सकते हैँ उतने स्कूल खोलेँ। हम लोग एक समिति निर्धारित करेँ, प्रान्तके विभिन्न भागोँमेँ शिक्षाकी कमीका पता लगावेँ और परस्पर विचार करेँ कि किस प्रकार उसकी पूर्त्ति की जा सकती है। कम-से-कम ज़िलेकी शिक्षाकी उन्नतिके लिये हमलोग प्रत्येक ज़िलोँमेँ एक समिति बनावेँ। आप लोगोँको मालूम होगा कि सारी पूँजी, जो हम लोग एकत्र कर सकते हैँ, इस अवसरके लिये पर्य्याप्त न होगी। किन्तु इसका आशय यह नहीँ है कि हम लोग जितना कर सकते हैँ उतना न करेँ। सर्वप्रथम और सबसे मुख्य कोष तो हम लोगोँका अपने भाइयोँके साथ सचमुच उत्साह, निष्ठा और कर्मठ सहानुभूति तथा ईमानदारीके साथ उनकी भलाईकी वृद्धिकी दृढ़ चिन्ता ही है। सज्जनो! यदि आप लोग इस कोष और सङ्कल्पके साथ कार्य्य आरम्भ करेँगे तो मुझे दृढ़ विश्वास है कि शिक्षाकी उन्नतिके लिये बहुत कुछ काम कर लिया जायगा। हम लोग कृतज्ञतापूर्वक उस शिक्षा-प्रणालीके लाभोँको स्वीकार करेँ जो इस देशमेँ गत पचास वर्षोँसे प्रचलित हो रही है। इसने श्री दादाभाई नौरोजी, सर गुरुदास बैनर्जी, स्व० श्री तैलङ्ग, श्री रानाडे, श्री उमेशचन्द्र बैनर्जी, तथा अन्य अनेक भारतकी भव्य सन्तानोँको जन्म दिया है। इसने उस समूचे नवजीवनका दान किया है जो सारे देश-वासियोँको प्रोत्साहित कर हम लोगोँको जातीय लक्ष्य एवं उच्चाभिलाषाओँके सम्पादनमेँ उत्तेजित कर रहा है। फिर भी यह प्रणाली अवश्य ही दोषपूर्ण है। जहाँतक हो सके, हम लोग इसी प्रणालीसे दी जानेवाली शिक्षाको और अधिक राष्ट्रीय तथा आचार-विचार और लोक-हृदयका परिष्कारक बनाकर इसके दोषोँको दूर करनेका प्रयत्न करेँ। हम लोगोँको यह भी याद रखना चाहिए कि दुर्भाग्यवश यह शिक्षा एक अत्यन्त सीमित रूपमेँ दी जाती है। अतएव हम लोग जितने स्कूल या कौलेजोँको स्वतन्त्र रूपसे खोल या चला सकेँ, उतनेको चलाकर वर्त्तमान कमीको पूरा करेँ। स्मरण रहे कि इङ्गलैण्डमेँ भी, जो इतना समृद्ध और शिक्षा-सम्बन्धी बातोँमेँ हम लोगोँसे इतना आगे है, थोड़े ही दिन हुए शिक्षापर भाषण देते हुए सर नौर्मन लौकियरने शिक्षाके लिये केवल सरकारसे ही अधिक द्रव्यकी याचना नहीँ की बल्कि राष्ट्रीय शिक्षाकी माँगकी पूर्त्तिके लिये जन-सामान्यसे भी उदारपूर्ण चन्देकी माँग पेश की। हम लोगोँकी स्थिति इङ्गलैण्डके दशमांशके बराबर भी सुविधाजनक नहीँ। अतएव यह और भी आवश्यक है कि उत्साहपूर्वक हम लोग इसके जुएमेँ अपना कन्धा लगा देँ और सारे प्रान्तमेँ शिल्प, वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक शिक्षाकी ऐसी प्रणाली निकालेँ, जो सरकारी व्यवस्थाके साथ-साथ देशकी माँगको भी पूरा कर सके।

सज्जनो! शिक्षाकी प्रधानता तथा आवश्यकताको कभी बढ़ा-चढ़ाकर नहीँ कहा जा सकता। इस बढ़ी-चढ़ी निर्धनताके मूलमेँ जनताकी अनभिज्ञताका निवास है। एक बड़े लेखककी दृष्टिमेँ 'जन-सामान्यकी शिक्षाके बिना मनुष्योँकी आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति हो नहीँ सकती। राष्ट्रकी प्रत्येक उपज, कृषि, काम-धन्धे, उद्योग, शिल्प और व्यापार आदिकी आर्थिक उन्नति तथा व्यवहारके लिये यह आवश्यक है कि पहले इस सामान्य शिक्षाका प्रचार हो जाय।' अस्तु! हम लोगोँका जनताके प्रति यह पुण्य धर्म है कि हम लोग यथासाध्य लोक-व्यवसायकी शिक्षाकी बृद्धिका पूरा प्रयत्न करेँ। सामान्य शिक्षाके साथ-ही-साथ हम लोगोँको व्यावसायिक धन्धे और देशी शिल्पकी उन्नतिके लिये भी विशेष प्रयत्नशील होना है। परिस्थितियोँके जमघटके कारण इस समय हम लोग

व्यावसायिक विचारसे एक अत्यन्त भयावह और दुरूह परिस्थितिमेँ पड़ गए हैँ। योरोपकी जातियोँ, विशेषतः इङ्गलैण्डने अपने राष्ट्रीय व्यापारको व्यवस्थित तथा उन्नत करनेके लिये हम लोगोँपर अपना सिक्का जमा लिया है। इङ्गलैण्ड अपने उद्योगकी उपज भारतमेँ भेजता है। जितना हम-आप सोच सकते हैँ उससे कहीँ अधिक इङ्गलैण्ड तथा अन्य देशोँकी व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्वितासे भारतीय व्यवसाय नष्ट हो चुके हैँ। इसके फलस्वरूप अनेक व्यवसायी जो खेती नहीँ करते थे, बेकार हो गए हैँ, और भूमिसे ही अपना जीवन चलानेके लिये विवश कर दिए गए हैँ। अब यह प्रायः सर्वमान्य हो चुका है कि जनताके दुःखको कम करने तथा उनके जीवन-निर्वाहके उपायके लिये यह आवश्यक हो गया है कि देशी धन्धोँ और व्यवसायोँकी उन्नति की जाय। इङ्गलैण्ड तथा अन्य पश्चिमी देशोँके लिये विशेष सुभीता यह है कि उनके पास एक बड़ी पूँजी है और वे अनेक वर्षोँसे वैज्ञानिक ढङ्गसे उद्योग करते आ रहे हैँ। इस समय न तो हम लोग सफलतापूर्वक उनसे बाज़ी मारनेके योग्य हैँ और न अभी निकट भविष्यमेँ उनसे बढ़कर हो सकते हैँ। सरकारने, यद्यपि देशी शिल्प आदि उद्योग-धन्धोँकी उन्नतिके लिये अपनी इच्छा प्रकट की है तथापि वह हमारे व्यवसायको प्रोत्साहित और सम्पन्न करनेके लिये विदेशी मालोँपर वह संरक्षणकर नहीँ लगाएगी। अतएव हम लोगोँको अपने भूखे तथा नङ्गे देशवासियोँके लिये भोजन तथा वस्त्रका प्रबन्ध करनेके लिये स्वदेशी आन्दोलनको यथाशक्ति उन्नत करना है। यह एक ऐसा गम्भीर प्रश्न है कि उसकी पूरी अनुभूति इसकी तहमेँ बिना पैठे हुए हो ही नहीँ सकती। गत पच्चीस वर्षोँसे मेरा विश्वास रहा है कि जब कभी हम भारतीय करघोँकी बनी हुई कोई छोटी चीज़ भी ख़रीदते हैँ तब हम अपने देशके किसी ग़रीब भाईके हाथपर कुछ पैसे अवश्य रखते हैँ। अतएव मैँ इसे पुण्य कर्म समझता हूँ कि जहाँ कहीँ भी हमेँ स्वदेशी वस्तु मिले वहीँसे उसे मोल लेँ, चाहे इसके लिये हमेँ विदेशी वस्तुकी अपेक्षा कुछ अधिक मूल्य ही क्योँ न देना पड़े। परन्तु सज्जनो! जब कि हम लोग भरसक स्वदेशी वस्तुओँके प्रयोग तथा प्रोत्साहनके लिये कटिबद्ध हैँ तो हम यह भी याद रक्खेँ कि केवल इतने ही से काम नहीँ चल सकता। इसके लिये जहाँतक सम्भव हो, हम लोग यथासाध्य स्वदेशी धन्धोँकी उपजकी उन्नतिके लिये भी कुछ उठा न रक्खेँ। इसका सम्पादन हम इस प्रकार कर सकते हैँ कि हम करघोँके अनेक कार्य्यालय खोलेँ तथा अन्य विदेशोँसे आए हुए उद्योगोँके पुतलीघर खोलेँ। इन प्रान्तोँमेँ कुछ कार्य्यालय खोल दिए गए हैँ और देशी उद्योगोँको कुछ प्रोत्साहन भी दिया जा रहा है। मेरा तात्पर्य्य उन कार्य्यालयोँसे है, जिसका सञ्चालन बाराबङ्कीमेँ श्री शेरिङ्ग कर रहे हैँ तथा जो कार्य्यालय आगरा और अलीगढ़ तथा अन्य स्थानोँमेँ खोले गए हैँ। फिर भी यह अवश्य मानना पड़ेगा कि व्यावसायिक धन्धोँ तथा शिल्पके यथार्थ उत्कर्षके उर्वर आरम्भके लिये हम लोगोँने परस्पर मिलकर वह आर्थिक और पुष्ट योग नहीँ दिया है, जिससे वे सहसा लहलहा उठेँ। किन्तु अब मुझे आशा करनी चाहिए कि निकट भविष्यमेँ हम लोग अपने कर्त्तव्यका पालन इस क्षेत्रमेँ विशेष तत्परता और तल्लीनताके साथ करेँगे।

अब मैँ आप लोगोँका ध्यान कृषिकी उन्नतिमेँ लगाऊँगा। मेरी ही तरह आप लोगोँमेँसे भी कुछ लोगोँकी समझमेँ यह बात आई होगी कि यदि उन लोगोँमेँसे कुछ लोग, जिनके पास समय है, चाहेँ तो अपनी जनतामेँ वैज्ञानिक रीतिसे कृषिकी उन्नतिके विषयमेँ बहुत कुछ लाभप्रद चर्चा फैला सकते हैँ। यदि हम लोग इस उन्नतिमेँ इसको अपना भाग समझकर जनतामेँ फैलानेका प्रयत्न करेँ, तो मैँ आप लोगोँको विश्वास दिलाता हूँ कि हमारा एक बहुत बड़ा कल्याण हो गया। फिर एक सहकारी

समितिका प्रश्न है, जो अत्यन्त सम्भव और सफल प्रतीत होता है। जर्मनी, आस्ट्रिया तथा अन्य देशोंमें सहकारी बैङ्क एक अपार सुखके साधन रहे हैं। जहाँ दरिद्रता छाई थी, वहाँ उन्होंने सम्पन्नताकी वर्षा की है। उन्होंने दरिद्रोंको महाजनोंके पञ्जेसे छुड़ानेमें बड़ी मदद दी है। पश्चिमी देशोंमें लाखों श्रमजीवी कृषक, छोटे व्यापारी और दूकानदार सहकारी बैङ्कोंकी ही मददसे प्रतिवर्ष धीरे-धीरे समाजमें उन्नत हो रहे हैं। सङ्घने ही मध्यम वर्गके दरिद्रोंको सैंतालीस हज़ार घर बनाने या मोल लेनेमें सहायता दी है। इसलिये जनताकी दशा सुधारनेका यह एक उत्तम साधन मौजूद है। सरकार हमारे धन्यवादकी भागी है कि उसने ऐसे कार्य्यका आरम्भ तथा प्रोत्साहन किया। जैसा कि आप लोग जानते हैं कि इन प्रान्तोंमें सहकारी समितियोंका एक रजिस्ट्रार है और उसके अधीन अनेक ज़िलोंमें अनेक समाज काम कर रहे हैं। मैं आप लोगोंसे विचार करनेके लिये प्रार्थना करता हूँ कि सहकारी बैङ्कों, सहकारी भवन तथा सहकारी उधार एवं कोषके नियमके ज्ञानको बढ़ाकर हम लोग जनताकी कितनी भलाई कर सकते हैं। इस प्रकार हम लोग उन्हें स्वावलम्बनके वास्तविक मूल्यको समझाने तथा सहयोगकी सङ्घटित शक्तिसे स्वास्थ्य-शिक्षा और व्यावसायिक उद्योगकी उन्नति करनेमें उनकी सहायता कर सकते हैं। इस ढङ्गसे जो व्यापक हित किया जायगा वह कभी अति नहीं होगा। मुझे विश्वास है कि आप लोग यथासाध्य इस प्रश्नपर पूरा-पूरा समय और ध्यान देंगे।

दूसरा प्रधान प्रश्न, जिसकी ओर मैं आप लोगोंका ध्यान आकर्षित करनेकी धृष्टता करता हूँ, पञ्चायत-प्रथाका है। यह कोई नवीन बात नहीं है। आप लोगोंमेंसे कुछ लोग जानते होंगे कि आजसे छब्बीस वर्ष पहले श्री रानाडे, विलियम वेडरबर्न तथा अन्य महानुभावोंने पञ्चायत-प्रथाको फिरसे उत्साहित करनेकी नियत युक्ति निकाली। इसके उपरान्त अनेक अन्य जनताके हितैषी योरोपीय तथा भारतीयोंने समय-समयपर इसे प्रोत्साहित किया है कि पारस्परिक कलह और मुक़द्दमेबाज़ीकी लत पञ्चायतोंसे हटाई जानी चाहिए। कुछ जातीय सम्मेलनोंमें भी इस प्रकारके प्रस्ताव पास हुए हैं। परन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि वास्तवमें इसके लिये बहुत ही कम किया गया है। क़ानूनकी कचहरियोंमें वकालत करनेवालोंको कुछ मालूम है कि दीवानी तथा फ़ौजदारीके मुक़द्दमोंमें कितनी झूठी क़समें खाई जाती हैं। हम लोग यह भी जानते हैं कि मुक़द्दमेबाज़ीमें कितने रुपए ख़र्च होते हैं, और बहुतसे ऐसे परिवार हैं जो मुक़द्दमेबाज़ीसे ही नष्ट हो गए हैं। जनताके सामने यह स्पष्ट कर देना बहुत आसान है। परन्तु मुक़द्दमेबाज़ीको रोकने तथा पञ्चायत-प्रथाको प्रचलित करनेके लिये यह आवश्यक है कि देहातों और ग्रामोंमें मुक़द्दमेबाज़ीके विरुद्ध जनताकी राय लेनेके लिये एक नियमित तथा क्रमिक प्रयत्न किया जाय और जनताकी पञ्चायत बनाई जाय, जिससे उनका इस व्यवस्थामें विश्वास हो जावे। यदि मुक़द्दमे कचहरी जानेसे पहले ही गाँवमें ही तै कर दिए जाते तो इस क्षेत्रमें बहुत बड़ी उन्नति हो जाती।

सज्जनो! शारीरिक उन्नतिकी ओर आप लोगोंका ध्यान आकर्षित किए विना मैं इस व्याख्यानको समाप्त नहीं कर सकता। कुछ दिनोंसे लोग इस प्रश्नपर भी कुछ ध्यान देने लग गए हैं। जो लोग जनताकी दशाका अध्ययन करते रहे हैं, वे यह जानकर अवश्य दुखी हुए होंगे कि चारो ओर हम लोगोंके स्वास्थ्यकी अवनति हो रही है। हम लोगोंमें बलिष्ठ और उन्नत वक्षस्थलके अब उतने मनुष्य नहीं दिखाई देते, जितने कि आजसे पचीस वर्ष पहले हम लोगोंमें पाए जाते थे। शारीरिक उन्नतिके जो लाभप्रद व्यवसाय हम लोगोंको अपने पूर्वजोंसे प्राप्त हुए थे, उन्हें हम लोगोंने अत्यन्त शोकमय

तिलाञ्जलि दे दी। अपने समयमेँ ही मैँने देखा है कि नवयुवकोँमेँसे अनेक व्यायामके प्रति अत्यन्त उदासीनता प्रकट करते हैँ। सरकारने स्कूल और कौलेजोँमेँ व्यायामका प्रबन्ध किया है, परन्तु इससे न तो पूर्ण लाभ ही उठाया जाता है और न इसके अतिरिक्त कहीँ अन्यत्र इसके पक्षमेँ कुछ करनेकी अभिलाषा ही प्रकट की जाती है। ऊँची कक्षाके क्षात्रोँका प्रभाव मध्यम कक्षाके क्षात्रोँपर अवश्य पड़ता है। और यह देखते हुए दुःख होता है कि उनमेँ भी शारीरिक व्यायामकी लालसा बहुत कुछ नष्ट हो गई है। फलतः शारीरिक व्यायामके इस अभावने प्लेग और अकाल-सम्बन्धी जनताकी आर्थिक हीनताको और भी उत्तेजित कर दिया है। अब आदमी उतने बलवान् नहीँ होते हैँ जितने कि पहले होते थे। इसलिये अब बड़ी आसानीसे रोग-ग्रस्त हो जाते हैँ। यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम लोग जनतामेँ शारीरिक व्यायामके प्रति श्रद्धालु होनेके लिये कम-से-कम उनमेँ उसके प्रति इतना अनुराग उत्पन्न कर देँ जितना कि तीस वर्ष पहले था। यह एक ऐसा विषय है कि सहयोगसे सहजमेँ ही इसमेँ सफलता प्राप्त की जा सकती है। स्कूलोँ और कौलेजोँमेँ टूर्नामेण्ट होते हैँ। उनमेँ भाग लेनेके लिये संरक्षक, माता-पिता तथा मित्र छात्रोँको और भी प्रोत्साहित कर सकते हैँ। परन्तु जिन लोगोँका स्कूल या कौलेजका जीवन समाप्त हो गया है, वे लोग भी अपने स्वास्थ्य तथा शारीरिक गठनको उन्नत तथा स्थायी बनानेके लिये कुछ विशेष समय और ध्यान देँ। साठ वर्ष या उससे भी अधिक आयुके अंग्रेज़ोँको प्रतिदिन टेनिस, बैडमिण्टन, क्रिकेट या किसी अन्य खेलमेँ भाग लेते हुए देखकर बड़ा आनन्द होता है। हम लोग भी कोई ऐसा ही अभ्यास करेँ। शारीरिक गठनकी राष्ट्रीय अवनति जो प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है, एक अत्यन्त गम्भीर विषय है, और उच्च श्रेणीके लोगोँका यह कर्त्तव्य है कि शारीरिक उन्नतिके लिये विशेष ध्यान देँ और जनताके सामने उदाहरण प्रस्तुत करेँ। इस सम्बन्धमेँ मैँ कुछ सामाजिक रीतियोँके विषयमेँ—जिनमेँ सुधारकी आवश्यकता है—कुछ कहना चाहता था, परन्तु उनपर विचार करनेके लिये अब समय नहीँ रहा।

अन्तमेँ मैँ आप लोगोँसे सच्ची प्रार्थना करूँगा कि आप लोग केवल यहाँ प्रस्ताव ही पास करके सन्तुष्ट न हो जायँ, बल्कि पूरे सालभर राजनीतिक कामोँको चालू रखने, लोक-हितके प्रश्नोँपर विचार करने तथा जनताको मताधिकारके लिये शिक्षित करनेको सम्मेलन स्थापित करेँ। मैँ स्वास्थ्य-शिक्षा, व्यावसायिक उन्नति, सहयोगी आन्दोलन, पञ्चायत-प्रथा तथा शारीरिक उन्नतिके लिये भी सम्मेलन करनेकी प्रार्थना करूँगा अन्ततः मैँ आप लोगोँसे यह स्मरण रखनेकी प्रार्थना करूँगा कि मनुष्यका वास्तविक आनन्द, जिसकी हम सब लोग उन्नति चाहते हैँ, केवल भौतिक सुविधाओँसे ही प्राप्त नहीँ हो सकता, प्रत्युत सभी भौतिक सुविधाएँ, जो हमेँ प्राप्त हो जानी चाहिएँ, उस शाश्वत कर्त्तव्यके पालनमेँ, जो मनुष्यका मनुष्यके प्रति है और जिसका पालन करना हमारा धर्म-विधान, अपने आप ही बड़े सुभीतेसे प्राप्त हो जाती हैँ। सचमुच इससे बढ़कर और कुछ भी इष्ट नहीँ है कि हम लोगोँके सारे काम धार्मिक बुद्धिसे किए जायँ। यदि हम लोग धार्मिक कर्त्तव्यके भावसे प्रेरित नहीँ होते तो हम जिस कार्य्यको अपने हाथमेँ लेते हैँ उसमेँ हमारी दृढ़ आस्था नहीँ होती। परन्तु यदि हम इस दृढ़ विश्वाससे किसी कार्य्यका आरम्भ करेँगे कि यह ईश्वरके प्रति हमारा शुभ कर्त्तव्य है कि हम उसकी उपासना दीन निर्धन देशवासी प्राणियोँके द्वारा करेँ तो चाहे लोग हमारी स्तुति कर या निन्दा, चाहे हमेँ सहायता देँ या बाधा, कुछ भी क्योँ न हो, जहाँतक सम्भव होगा, हम लोग अन्ततक लोक-हितमेँ डटे रहकर अपने कर्त्तव्यका पालन करेँगे और दृढ़ विश्वास रक्खेँगे कि ईश्वर हम लोगोँके प्रयत्नको सफल करेगा। (देरतक हर्ष-ध्वनि)

स्वदेशी

स्वदेशी-आन्दोलन

२३ दिसम्बर, सन् १९०७ ई० को सूरत कौन्फ़रेन्सकी बैठकमैँ स्वदेशी-आन्दोलन-योजनाका समर्थन करते हुए पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण :—

—सम्पादक।

सभापति महोदय तथा सज्जनो !

मुझे इस प्रस्तावका समर्थन करते हुए अति हर्ष होता है। स्वदेशीके विषयमैँ किसी प्रकारकी आपसे अपील करना व्यर्थ है। मैँ परमात्माकी विशेष कृपा समझता हूँ कि हमारी जनताका ध्यान, गत थोड़े समयसे स्वदेशी-आन्दोलनकी ओर अधिकाधिक अग्रसर हुआ है। देशके उत्थान और जनताकी समृद्धिमैँ जितने आवश्यक प्रश्न वर्त्तमान हैँ उनमैँ स्वदेशी-आन्दोलनका प्रश्न सबसे अधिक महत्त्व रखता है। देश-भक्तिके लिये इसकी ज़रूरत है; मानवताका यह धर्म बतलाया गया है; और किसी भी दृष्टिसे देखिए, आपको यही शिक्षा मिलेगी कि स्वदेशी-आन्दोलनका हृदयसे स्वागत करना तथा केवल आज ही नहीँ, किन्तु आजीवन इस व्रतका पालन करना धर्म है। सज्जनो! एक समय था, जब यह स्थान, यही सूरत नगर, अपने व्यवसायोँकी श्रेष्ठताके लिये संसारमैँ प्रसिद्ध था। समय बदल गया है और उन्नतिका चक्र अधोगतिकी ओर है। देशी करघे और कारीगर अब नहीँ रहे। हम अपने दैनिक जीवनकी छोटी-से-छोटी इस्तैमाली चीज़ेँ योरोपसे मँगाते हैँ। हमैँ इससे अत्यन्त व्यथा होनी चाहिए। हमैँ इस प्रचलित हीनावस्थाका परिवर्त्तन करनेके लिये बहुत अधिक उद्योग करना चाहिए। इस समय देश भयङ्कर पीड़ासे पीड़ित है। यह बतानेकी ज़रूरत नहीँ है कि हमारे असंख्य निम्न श्रेणी तथा मध्यम श्रेणीकी जनताके वृद्ध और निर्धन भाइयोँको कितने दुःख तथा आपत्तियोँमैँ रहना होता है। हर तीसरे साल यहाँ अकाल आ घेरता है। पिछले दस सालोँमैँ हमैँ बहुतसे दुर्भिक्षोँका सामना करना पड़ा और गत शताब्दीमैँ तो उनकी संख्या बहुत ज़्यादा रही है। हमने देशके असंख्य भाइयोँको इसी कारणसे खो दिया कि इस प्रचुर देशमैँ, जहाँ अन्न योँ ही उग आता है और जहाँकी उपजाऊ भूमिमैँ आवश्यकतासे अधिक अन्न पैदा होता है, जनताके पास पैसा नहीँ है। वे अपने गुज़ारेके

लिये अन्न नहीँ खरीद सकते, और इस कारण उन्हेँ भूखोँ मरना पड़ता है। अकालका कारण अन्नाभाव नहीँ है। इस देशमेँ पर्य्याप्त अन्न पैदा होता है। अकालका कारण जनताके पास पैसेकी कमी है जिसके कारण वे अन्न नहीँ ख़रीद सकते। उसके जितने उपाय बतलाए गए हैँ उनमेँ पिछले अकाल कमीशन और उससे पहलेके कमीशनोँकी जो सिफ़ारिशेँ हैँ, वेही अकाल निवारणके सर्वोत्तम उपाय हैँ। वे कहते हैँ कि "उद्योग-धन्धोँकी उन्नतिमेँ वृद्धि करके जनतामेँ चेतनता आनी चाहिए तथा जनताकी गुज़रके लिये खेतीके सिवाय अन्य उद्यम उपलब्ध करना चाहिए।" परन्तु जबतक इसको आप अपना धार्मिक कर्त्तव्य मानकर इसके लिये प्रयत्न न कीजिएगा तबतक देशकी हीनावस्था कैसे सुधरेगी ? इसे मानव-जातिके प्रति अपना कर्त्तव्य और देशके प्रति अपना धर्म मानकर आपको सब तरहसे जीवन भरके लिये पूरा स्वदेशी होना चाहिए। ऐसा अन्य कोई देश नहीँ है जहाँपर मातृ-भूमिकी सेवा करनेका इतना विस्तृत क्षेत्र हो, जितना कि इस अभागे देशमेँ है। मेरी बुद्धिमेँ अन्य कोई देश ऐसा नहीँ मिलेगा जहाँ भारतकी दरिद्र जनताके अतिरिक्त मानव-जातिकी अधिक सेवा की जा सके। यह आपका धर्म है कि आप उन्हेँ इसके द्वारा कुछ पैसा कमाने देँ, जिससे वे अपनी गुज़र कर सकेँ। यहाँपर स्वदेशीकी भावनाकी जो वृद्धि हो रही है यह हर्षकी बात है; परन्तु जितनी जनताकी आवश्यकता है उस क्रमसे नहीँ बढ़ रही है। स्वदेशीके बारेमेँ हम बहुत कुछ सुनते हैँ, परन्तु मुझे सन्देह है कि देशके लोग यह समझ भी पाए हैँ कि अपनी मातृ-भूमिके प्रति उनका वह कर्त्तव्य है या यह भी नहीँ है। इस कर्त्तव्यका अबसे पालन करना है। याद रखिए कि और देशोँने अनुभव कर इस धर्मका पालन किया है और उससे यथेष्ट लाभ उठाया है। इङ्गलैण्डने उसे बहुत वर्ष पहले ही समझ लिया। अमेरिका तथा आस्ट्रेलियाने भी स्वीकार किया है, और सबने उसका लाभ उठाया है। स्वदेशीको व्यवहारमेँ लाना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैँ। इङ्गलैण्ड इस समय इस बातपर गर्व करता है और आप भी यह स्वीकार करेँगे कि इङ्गलैण्डकी बनी बहुतसी वस्तुएँ अन्य देशोँकी अपेक्षा बढ़िया होती हैँ। एक अंग्रेज़ स्वभावतः गर्वसे इङ्गलैण्डकी बनी चीज़ोँको ही ख़रीदता है और एक जापानी, जापानी वस्तुओँको। शायद इसमेँ कुछ समय लगे, जब आप भी इतने ही गर्वसे अपने देशकी बनी उन वस्तुओँको अपनाएँगेँ, जो कि अमेरिकन और योरोपियन चीज़ोँसे श्रेष्ठ ही ठहरेँगी। यदि आपको भारतकी बनी देशी वस्तुएँ उपलब्ध हैँ तब विदेशी चमकदार और सस्ते मालका इस्तैमाल आप न करेँ। आप उन्हीँ वस्तुओँको ख़रीदिए जिनके ख़रीदनेसे अपने ग़रीब भाइयोँको कुछ पैसा मिले। स्मरण रखिए, इसके द्वारा आप अपने भूखे देशवासियोँके पेटकी आग बुझाते हैँ। मैँने स्वयं अपने स्थान इलाहाबादमेँ अनुभव किया है कि जब मैँ स्वदेशी तौलियेको, जो विदेशीकी अपेक्षा चाहे मोटा और महँगा हो, ख़रीदता हूँ, तो यह जानकर मुझे हर्ष होता है कि इसमेँसे आधा लाभ तो उस व्यक्तिको होगा जिससे यह ख़रीदा है और उस पैसेसे कम-से-कम एक समयका तो उसका गुज़ारा चलेगा। इसलिये विदेशी वस्तुओँके समान ही देशी चमकदार वस्तुओँकी अपेक्षा, यदि हो सके तो हमको महँगी और मोटी खद्दरकी ही चीज़ेँ ख़रीदनी चाहिएँ। जहाँ कहीँसे मिल सके, हमेँ स्वदेशी मालको ही ख़रीदना चाहिए, जिससे कम-से-कम उन भूखे भाइयोँका भोजन और नङ्गोँको कपड़ा तो मिल सके, जो कि इस अकालके समय ठण्डमेँ मर रहे हैँ। इस समय मैँ आपसे कह नहीँ सकता कि उत्तर प्रदेशमेँ हमारे कितने हज़ारोँ भाई भूखसे और कितने हज़ार तन ढाँकनेको कपड़े न होनेसे भयङ्कर शीतके कारण मर रहे हैँ। सरकार जहाँ तक हो सकता है अकाल-पीड़ितोँको सहायता

पहुँचाकर उनकी व्यथाको कम करनेका प्रयत्न कर रही है, किन्तु जनताकी अत्यधिक ग़रीबीके कारण, जितनी सहायताकी आवश्यकता है उतनी नहीं हो रही है।

यह आपका धर्म है कि देशके किसी प्रान्तकी पीड़ित जनताकी आप सहायता करें। थोड़ीसी भी सहायता जो आप देंगे उससे अनेक प्राणियोंकी जीवनरक्षा होगी और वे कुछ अधिक कालतक जीवित रहेंगे। इस समय इस ओर आपका ध्यान दिलानेसे मुझे विश्वास है कि मेरी प्रार्थना निष्फल न जायगी। हम लोग सरकारकी अकर्त्तव्यताकी दुहाई देते रहते हैं। हमें स्वयं कार्य्यशील होकर इस पीड़ा-निवारणके सत्कार्य्यमें जुट जाना चाहिए। इस क्षण हमारा यही धर्म है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारे पास अपने देश-भाइयोंकी पीड़ामें सहायता करनेका कोई सङ्गठित साधन मौजूद नहीं है। हमें इस समय सब प्रकारके राजनीतिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्नोंको छोड़कर पीड़ितोंकी थोड़ी-थोड़ी सहायताके लिये देशमें उनसे धन, अन्न और वस्त्र माँगनेके कार्य्यमें लग जाना चाहिए। स्वदेशी सङ्गठनके काममें लगना कोई सनक या राजनीतिक जोश नहीं है; यह ऐसा कार्य्य है जिससे देश समृद्धिशाली होता है। सब साधनों और सब प्रकारसे इसकी सहायता कीजिए, और इस सम्बन्धमें द्वेषकी भावना दूर करके उच्चता, व्यक्ति-गत प्रतिष्ठा, ख्याति या नाम होनेका विचार न करना चाहिए। जनताकी हृदयसे सेवा करनेके लिये इस प्रकारका विचार त्याग न कर दीजिए। स्वदेशी आन्दोलनकी सहायता कीजिए ताकि इससे भारतके सब ग़रीब भाइयोंको अन्न और वस्त्र मिल सके।

(तुमुल हर्ष-ध्वनि)

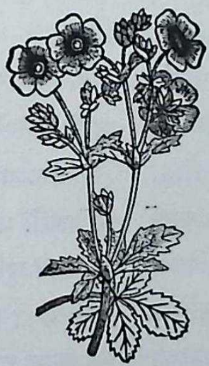

प्रान्तीय-कौन्सिल

अर्थ-सम्बन्धी वक्तव्य

सन् १९०७ ई० के मार्चमेँ लेफ़्टिनेएट-गवर्नर सर जौन प्रैसकाट हीवेट के० सी० एस्० आई०, सी० आई० ई० की अध्यत्ततामेँ प्रयागमेँ प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाकी बैठकमेँ माननीय परिडत मदनमोहन मालवीयजीका भाषण।

—सम्पादक।

अध्यक्ष महोदय !

माननीय अर्थ-सचिवने परिषद्के सामने जो अर्थ-सम्बन्धी वक्तव्य उपस्थित किया है, उसके वर्णनमेँ आपने कहा कि यह घाटेवाले प्रान्तका खाता है। मेरे विचारसे यह वर्णन तब पूरा होता जब इसे 'पीड़ित और घाटेवाला' प्रान्त कहा जाता है और यह एक ही बातमेँ पीड़ित नहीँ किन्तु बहुतसी बातोँमेँ पीड़ित है, जिसमेँ सबसे अधिक व्यथाकी बात यह है कि भारत-सरकार इस प्रान्तकी आमदनीका अधिक भाग जनताकी दशा सुधारनेमेँ व्यय नहीँ करने देती। वक्तव्यसे ज्ञात होता है कि प्रान्तकी आर्थिक दशा आज भी वैसी ही गिरी दशामेँ है जैसी कि गत वर्ष थी। जिसके लिये हमेँ आशा दिलाई गई थी कि भारत-सरकार प्रान्तीय कोषके बँटवारेकी वर्षके भीतर ही पुनः जाँच करेगी। उसे सन् १९०७ ई० के सितम्बरतक टाल दिया गया और इस प्रकार हमारी दशा सुधारनेमेँ एक सालकी और देरी कर दी गई। यह अत्यन्त खेदकी बात है कि भारत-सरकारको इस वर्ष बँटवारेकी फिर जाँच करनेके लिये समय नहीँ मिला।

वक्तव्यको उसके मूल रूपमेँ लीजिए, सिँचाई-विभागमेँ बत्तीस लाख बहत्तर हज़ार तीन सौ उन्तालीस रुपएकी वृद्धिसे आमदनीमेँ वृद्धि हुई है। यह अधिक सन्तोषकी बात नहीँ है; क्योँकि इस वृद्धिमेँसे लगभग छः लाख पचास हज़ार गन्नेके दर्जेकी उत्तम फ़सलपर मालगुज़ारीकी दर बढ़ाकर लगाई गई है। जिस ख़राब दशामेँ खाँडका व्यवसाय आजकल चल रहा है, उसमेँ बढ़ाई हुई दरके कारण उस व्यापारमेँ और भी अधिक हानि पहुँचेगी और सरकारी स्टाम्पोँकी अधिक बिक्रीसे जो आमदनीमेँ वृद्धि हुई है, वह सन्तोषजनक है, क्योँकि यह मुकद्दमेबाज़ीके बढ़ने और लोगोँको अधिक ऋण लेनेका परिणाम है, जो कि अधिकतर ख़राब परिस्थितिके कारण हैं।

बजटके व्यय-भागपर दृष्टि डालनेसे, भोग-विलासके दो-तीन अनावश्यक मद जनताकी बहुत बड़ी आवश्यकताओंकी अपेक्षा अभी स्थगित करने योग्य प्रतीत होते हैं। शिक्षाकी महती आवश्यकताकी दृष्टिसे नये बजटमें इसके लिये जो धन निर्धारित है, वह अत्यन्त अल्प है। सफ़ाईके लिये बहुत कम दिया गया है, और प्लेगसे बचनेके उपायोंके लिये कोई पृथक् कोष निर्धारित नहीं है, सिवाय इसके कि दवाओंके छोटेसे बजटमें वह सम्मिलित कर लिया गया हो।

यह मानते हुए कि इन प्रान्तोंमें ओषधि-उपचारके लिये प्रति सहस्र केवल सैंतीस रुपए ही व्यय होते हैं, इस दृष्टिसे दवादारूके लिये जो रक़म रक्खी गई है, वह भी बहुत असन्तोषजनक है। उपचारके बजटमें उच्च श्रेणीके सिविलसर्जनोंके वेतनमें विशेष वृद्धि करनेके लिये, आगरेके पाग़लखानेके चौकका विस्तार करनेके लिये, स्त्रियोंके चिकित्सालयकी इमारतोंके लिये सहायता और सिविलसर्जनोंके चपरासियोंका वेतन देने आदि सभीके लिये व्यवस्था है, किन्तु दवाओंके लिये बहुत ही अल्प व्यवस्था है। अस्तु! बजटमें एक सन्तोषजनक मद भी है, जिसपर विशेष ध्यान देना उचित है। प्रान्तके देशी उद्योग-धन्धोंकी सहायता करनेके लिये आरम्भमें पच्चीस हज़ार रुपएकी रक़म अलग रख ली गई है, जो ऐसे साधनोंपर व्यय की जायगी जिसका निश्चय बादको किया जायगा।

आर्थिक वक्तव्यका उपसंहार करते हुए माननीय अर्थ-सचिवने हमारे प्रान्तके आर्थिक प्रश्नकी प्रत्येक असन्तोषप्रद स्थितिकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है। आबकारी और स्टाम्पका टिकस बढ़ानेपर भी, जिसके लिये प्रत्यक्ष रूपसे भारत-सरकारने इस सरकारपर दबाव डाला है, ४¾ लाखके घाटेका अनुमान किया जाता है। सम्भवतः यह घाटा और भी अधिक हो। व्ययकी उचित माँगकी व्यवस्था उन्होंने नहीं की। अपने आर्थिक स्थितिके लिये हम अपनी सराहना नहीं कर सकते। हम अर्थ-सचिवका इस आशामें साथ दे सकते हैं कि पूर्व प्रतिज्ञानुसार बन्दोबस्तकी आवृत्ति हमें स्थायी रूपसे कितना निश्चित साधन दे सकेगी।

जनताकी स्थितिमें उन्नति ही सुराज्यकी वास्तविक परीक्षा है। वार्षिक प्रान्तीय बजटपर विवाद होते समय यह विचार करना अच्छा होगा कि इस ओर कोई उन्नति हुई है या नहीं। स्थितिकी विशेषताका कम-से-कम उल्लेख होना चाहिए और उसपर विचार होना चाहिए। लगभग बीस साल हुए, भारत-सरकारने अवधके उत्तर-पश्चिमीय प्रान्तोंके कृषक और मज़दूर वर्गकी आर्थिक स्थितिकी जाँचके लिये आदेश किया था। उस जाँचके परिणामसे पता चला कि जनताकी आर्थिक स्थिति कुछ दशक पूर्वकी अपेक्षा अधिक भ्रष्ट और अत्यन्त असन्तोषजनक हो गई है। सरकारने एटाके कलक्टर श्री ई० वी० एलेग्ज़ेण्डरसे जो प्रश्न किए थे, उनके उत्तरमें आपने लिखा है कि—"अन्य साधारण वर्षोंमें कम-से-कम सालमें चार महीनेतक किसान उधार लेकर गुज़र करते हैं, और अकाल वर्षोंमें या तो इन्हें अपने ऋणमें वृद्धि करनी पड़ती है अथवा गहने, जवाहरात, जानवर, कोई भी चीज़, जिसे वे सरलतासे अलग कर सकते हैं, गिरवी रखकर अपना काम चलाते हैं। .... जिन मजदूरोंके पास ज़मीन नहीं है उनकी स्थिति सन्तोषजनक नहीं है।"

बान्दाके ज़िलाधीश श्री ह्वाइटने लिखा है कि "जनसंख्याकी निम्न श्रेणीके अधिकांश लोग अपने नर-कङ्कालसे स्पष्ट रूपसे अपनी निर्धनताका परिचय देते हैं और बताते हैं कि ये प्रायः अर्द्ध-बुभुक्षित रहते हैं।"

गाज़ीपुरके ज़िलाधीश श्री रोज़ने कहा कि "गाँवोंमें अधिकांश किसान प्रायः ऋणी हैं।"

फ़ैज़ाबादके कमिश्नर श्री हैरिङ्गटनने लिखा था कि उक्त पदाधिकारी श्री डब्ल्यू० सी० बेनेट् लिखते हैः—"जबतक कि कोई इन विषयोंकी पूरी जानकारी

न करे तबतक वह नहीं समझ सकता कि सारी जनता कितनी ग़रीब है, क्योंकि साधारण जनता और नङ्गे-भूखोंकी स्थितिमें बहुत थोड़ा अन्तर है।' मैं विश्वास करता हूँ अवधके प्रत्येक ज़िलेके लिये यह कथन सत्य है। अन्तर केवल इतना है कि सदैव अधिक संख्यामें जो जनता व्यथित और आर्त्त दशामें बराबर बनी रहती है, उसकी दशा थोड़ी बहुत बदलती रहती है। यह विचार कि भारतके अधिकांश लोग प्रतिदिन अपर्य्याप्त भोजनसे कष्ट पाते हैं—इस सम्बन्धमें मेरी अपनी धारणा, जो कृषि-सम्बन्धी ऋणसे अधिक घनिष्ट सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंके अध्ययनके फलस्वरूप यह है कि उक्त विचार सम्भवतः सत्य है, थोड़ीसी हेर-फेर छोड़कर बाक़ी लगभग साल भरतक भारतवर्षके अधिकांश भागोंमें यही दशा रहती है।"

उच्च सरकारी कर्मचारियोंके ये गम्भीर वक्तव्य, जिनका प्रकाशन गुप्त रिपोर्टमें हुआ है, निस्सन्देह यह प्रकट करते हैं कि जनताकी दशा अति शोचनीय है। तब अठारह सालका जो समय व्यतीत हुआ है क्या उसमें इनकी दशा पहलेसे सुधरी है अथवा गिर गई है?

इस विषयका अधिक स्पष्टीकरण तब होगा जब सरकार सन् १८८८ ई० की तरह कोई जाँच कमेटी नियुक्त करे। कुछ स्पष्ट बातोंकी प्रामाणिकताके कारण अनिष्टकारी परिणाम निकलेंगे। इनमें सबसे अधिक उस समयमें जनसंख्याकी वृद्धि या न्यूनताका प्रश्न है। जनसंख्याकी गत रिपोर्टसे यह पता चलता है कि सन् १८९१ से १९०१ ई० तकके समयमें कुल जनसंख्यामें ४६,९०५,०८५ से लेकर ४७,६९१,७८२ तक अथवा केवल १.७ प्रतिशतकी वृद्धि हुई, जब कि वृद्धिका साधारण अनुपात सन् १८९१ ई० में इन प्रान्तोंमें तीन प्रतिशत प्रतिवर्ष रहा; अर्थात् वास्तविक वृद्धि साधारण अनुपातके आधेसे कुछ ही अधिक रही। इसके अतिरिक्त, यदि सन् १८९१ ई० की सरकारी गणनाकी जनसंख्यामें सन् १८९१ और १९०१ ई० के बीच जन्म लेनेवालोंकी संख्याको जोड़ दें और जो मृत्यु हुई उनको घटा दें तो हिसाबसे सन् १९०१ ई० में जनसंख्या चार करोड़ नब्बे लाखसे अधिक होनी चाहिए। किन्तु वास्तविक जनसंख्या चार करोड़ पचहत्तर लाखसे अधिक रही अर्थात् सोलह लाखकी कमी रही। प्रत्येक सम्भव संशोधन और छूट देनेके बाद श्री बर्नको यह ज्ञात हुआ कि तीन लाखसे लगाकर सवा पाँच लाख तककी कमीका तो कोई उत्तर ही नहीं दिया जा सकता और उन्हें कहना पड़ा कि यह कमी गत चार काले वर्षों अर्थात् सन् १८९४, १८९५, १८९६ और १८९७ ई० में बाँट देनी चाहिए जो कि अनावृष्टि और कष्टके वर्ष थे। इसका मतलब है कि उक्त चार सालोंमें लगभग चार लाख मनुष्य क्षुधा और व्याधिसे, जिसका कारण अन्नका न मिलना था, मौतके शिकार हुए।

दुर्भिक्षके शान्त होनेपर प्लेगका प्रकोप हुआ, जो गत सात सालसे इन प्रान्तोंको तबाह करता रहा। कई लाखसे अधिक जनता इसकी शिकार हुई। अकेले सन् १९०५-०६ ई० में मृत्युसंख्या तीन लाख तिरासी हज़ार आठ सौ दोतक पहुँच चुकी थी। एक सौ सात नगरोंमें, जिनकी जनसंख्या दस हज़ारसे अधिक थी, केवल आठ नगर ऐसे बचे थे जहाँ प्लेगसे कोई मृत्यु नहीं हुई। उस वर्ष कुल मृत्यु-संख्या बीस लाख अट्ठानबे हज़ार तीन सौ थी जब कि गत वर्ष कुल सोलह लाख चौवन हज़ार नौ सौ उनचास थी, और सन् १९०४ ई० में ३६.७ प्रति मीलकी अपेक्षा मृत्युका अनुपात चवालीस प्रति मील था। जन्मकी अपेक्षा मृत्यु-संख्या प्रति सहस्र २.७६ अधिक थी। पच्चीस ज़िलोंमें जन्म-संख्यासे मृत्यु-संख्या अधिक थी। और प्रति मील लगभग सत्ताईस मृत्यु अर्थात् कुल मृत्यु-संख्याकी आधी मृत्यु ज्वरसे हुई। समस्त भारतकी मृत्यु-संख्या प्रति सहस्र पैंतीस थी, ग्रेट बृटेनकी सोलह और युक्तप्रान्तमें चवालीस प्रति सहस्र थी।

इन आँकड़ोंसे कितनी व्यथित दशा प्रकट होती है।

मृत्यु-संख्याके अनेक कारण बतलाए जाते हैँ। उन सबके लिये सब प्रकारकी छूट देनेपर भी इन आँकड़ोँसे यह नहीँ कहा जा सकता कि जनताके स्वास्थ्यमेँ उन्नति तथा उनके रहन-सहनमेँ सुधार हुआ है, जिसकी आशा करना हमारा हक़ है, जबकि सरकार जनतापर कर लगाकर बड़ी-बड़ी रक़मेँ वसूल करती है, देशका प्रबन्ध योग्य और शिक्षित लोगोँके द्वारा सम्पन्न होता है। ये पतनके चिह्न प्रकट करते हैँ जो सचमुच शोचनीय हैँ। इसमेँ सन्देह नहीँ कि दुर्भिक्षका आगमन सूखा पड़नेके कारण होता है, किन्तु इसके कारण भूखसे इतनी मृत्यु न होँ यदि अधिकांश जनता इतनी अधिक निर्धन न होती और उनके पासके साधन इतने अल्प न होते जितने कि हैँ, और न तो ज्वर तथा प्लेगके ही इतने अधिक शिकार हो पाते। किन्तु बहुत समय जनताकी भयानक ग़रीबी, जो उन्हेँ अस्वस्थ स्थानोँमेँ गुज़र करनेको बाध्य करती है और इसके कारण जनता साधारण तथा अस्वस्थ और निर्बल है और पर्य्याप्त भोजन न मिलनेके कारण उनका अल्प जीवन होता है।

यह दशा स्पष्ट बतलाती है कि तुरन्त सुधार करनेकी कितनी अधिक ज़रूरत है, और इसका सबसे उत्तम उपाय मेरी समझमेँ यह है कि ज़मीनपर भारी लगानको कम करना चाहिए। इन प्रान्तोँकी अधिकांश जनताका पालन-पोषण खेतीपर निर्भर है। गत १९०१ ई० की मनुष्य-गणनामेँ छाछठ प्रतिशत लोग खेतोँपर काम करनेवाले अथवा किसी-न-किसी रूपमेँ खेतीपर निर्वाह करनेवाले पाए गए। ज़मीनके लगानमेँ कमी करनेसे किसानोँको परिश्रमके फल-स्वरूप खेतीकी आयमेँसे वर्त्तमान कालकी अपेक्षा अधिक बचत रह जायगी, इससे उनकी स्थितिमेँ निश्चय ही सुधार-परिवर्त्तन होगा। मेरा तो फिर भी यही कहना है कि इसके बिना अन्य कोई साधन आवश्यक सुधार करनेमेँ सफल नहीँ हो सकता। मेरे इस विचारका समर्थन विख्यात विशेषज्ञ श्री जे० ई० ओकोर्नरके कथनसे होता है, जो भारतके विवरण संग्रहके भूतपूर्व डाइरेक्टर-जनरल थे। उस विचारको आपने अपने प्रशंसनीय लेखमेँ प्रकट किया है, जिसे आपने लगभग दो वर्ष पहले लन्दनकी आर्ट्स् सोसाइटी (कला-भवन) को सुनाया था। अपने उस चालीस सालके अनुभवका उल्लेख करते हुए, जो कि उन्होँने जनताकी आर्थिक दशा जाननेमेँ बिताया था, श्री जे० ई० ओकोर्नरने बताया कि 'उन सभी वर्गके लोगोँकी दशामेँ, जो अपनी जीविकाके लिये खेतीपर निर्भर करते हैँ, बहुत सुधार करनेकी आवश्यकता है, और सरकारकी भूमि-विषयक नीतिमेँ परिवर्त्तनके लिये नम्रतापूर्वक अनुरोध किया। यह उनका कथन सत्य है कि ज़मीनका जो लगान आज निर्धारित है, उसकी तुलना अपने भूतपूर्व अधिकारियोँके समयके लगानसे करनेसे ही इस नीतिका कोई पूर्ण समर्थन नहीँ कर सकता। इसका यह अभिप्राय नहीँ हो सकता कि हम बहुत मेहरबान हैँ, और भूमि-करसे हम उतनी अधिक रक़म वसूल नहीँ करते जितना कि किसानोँको शासक और सूबेदार लोम चूसते थे और यदि वे किसी व्यक्तिको जीने देनेकी उदारता दिखाते तो उनका बहुत ही सम्मान होता था। हमको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे ये जीवन निर्वाह करेँ और धन-धान्यसे भरपूर रहेँ और उनसे अधिक लगान न लिया जाय।

श्री ओकोर्नर स्पष्ट शब्दोँमेँ आगे चलकर उचित मार्गको बतलाते हैँ, जिसको ग्रहण करनेसे किसानोँकी दशा सुधारी जा सकती है। वे कहते हैँ :—

"यह सन्देहास्पद है कि अभी जो उद्योग किसानोँको महाजनके चङ्गुलसे मुक्त किए जानेका हो रहा है उसका कोई विशेष प्रभाव पड़ेगा। और यदि उसका पूरा प्रभाव पड़ा भी, कि किसानोँकी आर्थिक अवस्था विशेष सुधर जाय, तो यह तबतक सम्भव नहीँ है जबतक कि खेतीकी उपजका अधिक भाग उनके पास न रहने दिया जाय। और सरकारी

अफ़सरों द्वारा लगान-वृद्धिको रोककर उसकी रक्षा की जाय और इनके उद्योग-धन्धोंकी रक्षा करना अन्य सारे उपायोंकी अपेक्षा अधिक आवश्यक है तथा इस ओर राज्यकी ओरसे अधिक लगनके साथ ध्यान दिया जाना चाहिए, जिसके सम्बन्धमें मुझे भय है कि सरकारने उतना अभी ध्यान दिया हो। राज्यकी ओरसे जो कुछ किया जा रहा है उस सबको हमें स्वीकार करना चाहिए, जैसे सिंचाईका प्रबन्ध, सुधार करनेके लिये पेशगी रक़मका दिलाना, खेतीकी नवीन पद्धतिका प्रदर्शन और नई कलोंका प्रारम्भ व बाहरसे आनेवाली कृषिकी मशीनोंका प्रचार; किन्तु ये सब आवश्यक होते हुए विशेषतः सिंचाईकी प्रगति भी, मुझे विश्वास है कि धरतीके लगानमें पचीस या तीस प्रतिशतकी कमी करनेसे और यदि यह कमी किसानके लाभके लिये की जाय तो उन खेतिहरोंकी दशा सुधारनेमें सबसे बढ़िया उपाय होगी, जिनकी देशमें सबसे बड़ी संख्या है और जो राज्य-कोषमें सबसे अधिक धन देते हैं।”

दूसरा साधन, जिसके लिये मैं सिफ़ारिश करूँगा, वह लगानका स्थायी बन्दोबस्त है, जिसका विस्तार उन प्रान्तोंमें भी होना चाहिए जहाँ यह प्रणाली अभी प्रचलित नहीं है। मुझे निश्चय है कि इससे जनताकी आर्थिक दशामें बड़ा गहरा और स्थायी सुधार होगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि भारतके अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा हम ज़मीनके लगानकी निरखकी दृष्टिसे और अर्द्ध स्थायी बन्दोबस्तके होनेके कारण अधिक अच्छे हैं। परन्तु मेरी यह दृढ़ धारणा है कि हमारी स्थिति यद्यपि इतनी बुरी नहीं है जितनी अन्य प्रान्तोंकी तथापि वैसे ही काफ़ी ख़राब है, और ज़मीनपर बराबर बढ़ते हुए बोझको कम करनेके लिये और सम्पत्ति बढ़ानेके लिये, तथा उन उद्योग-धन्धोंको फैलानेके लिये जो कि खेतिहरोंके लिये सम्भव हैं, इस स्थायी बन्दोबस्तकी आवश्यकता है।

गत सौ सालोंसे भारतके ज़मीन-सम्बन्धी लगानके अतिरिक्त अन्य कोई प्रश्न इतनी व्यापक पूर्णताके साथ नहीं विचार किया गया है जितना, ज़मीनके लगान-सम्बन्धी स्थायी बन्दोबस्तकी माँगपर। इसके गुण तथा दोषोंपर पूर्ण विचार हो चुका है। विवादके परिणाम स्वरूप इसमें अब ज़रा भी सन्देह नहीं है कि उक्त बन्दोबस्तसे जनतामें सन्तोष होगा और उनकी उन्नति होगी। प्रारम्भिक कालके इतिहासको छोड़कर भी ग़दरके थोड़े ही दिनों बाद, ऐसे बन्दोबस्तका प्रस्ताव कर्नल बेयर्ड स्मिथने उपस्थित किया था। इन प्रान्तोंके तत्कालीन लेफ़्टिनेण्ट-गवर्नरने विवरणमें उन प्रस्तावोंके सम्बन्धमें लिखा है:—

“मैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं करता कि उत्तर-पश्चिम प्रान्तोंमें ज़मीनके लगानके स्थायी बन्दोबस्तके धीरे-धीरे और प्रचलित करने तथा सुविधा देनेसे वे सभी लाभ होंगे जिन्हें कर्नल बेयर्ड स्मिथ और श्री म्योरने अधिक विस्तारसे वर्णन किया है। अर्द्ध-स्थायी बन्दोबस्तके प्रभावका विचार करते हुए इस बातकी सरलतासे आशा की जा सकती है कि सरकारी लगानकी एक निश्चित रक़म सदैवके लिये बाँध देनेसे लोग अपनी ज़मीनमें अधिक पूँजी लगायँगे, कृषक वर्गकी सम्पत्तिकी वृद्धि होगी, देशकी उन्नति एवं समुदायके बलकी वृद्धि होगी और धरतीका मूल्य अधिक बढ़ जायगा। कृषिके विस्तार और उपजकी बढ़तीसे जो लाभ होगा, उसमें चाहे सरकारको सीधा लाभ न मिले और इस प्रकार जो आर्थिक क्षति होगी उसकी पूर्त्ति यदि पूर्णतः नहीं तो अंशतः तो अवश्य ही उस अप्रत्यक्ष आयसे हो जायगी जो कि समस्त देशकी उन्नति और धनकी वृद्धिके कारण होगी।”

सन् १८६२ ई० की पाँचवीं जुलाईको उदार-हृदय और दूरदर्शी शासक सर जौन लौरेन्सने भारतके लिये स्थायी बन्दोबस्तके समर्थनमें अपने विचार प्रकट किए थे। आपने कहा :—

“मैं स्थायी बन्दोबस्तकी सिफ़ारिश करता हूँ। क्योंकि चाहे गत वर्षोंमें देशकी कितनी भी उन्नति हुई हो, किन्तु मुझे विश्वास है कि सरकारी लगानके बँधनेसे उसकी हर प्रकारसे अधिक शीघ्रतासे उन्नति

होगी। इस सुधारसे ज़मीनमें पूँजी लगानेमें लोगोंको ज़्यादा प्रोत्साहन मिलेगा।"

सन् १८६३ ई० की नवीं जुलाईके पत्रमें सर चार्ल्स वुड, तत्कालीन भारत-सचिवने भारतकी ज़मीनके लगानके स्थायी बन्दोबस्तके प्रस्तावपर अपनी पूर्ण स्वीकृति प्रकट की है। उस पत्रमें भारत-सचिवने कहा :—

"स्थायी बन्दोबस्तसे जो राजनीतिक लाभ होगा, इसमें महारानी विक्टोरियाकी सरकारको कोई संशय नहीं है। कृषकवर्गपर इसका प्रभाव वही होगा जैसा कर्नल बेयर्ड स्मिथने बताया है कि जनताकी सामाजिक स्थितिमें उन्नति होगी, जिसके फल-स्वरूप उनकी योग्यता बढ़ेगी। इससे मौसमकी ख़राबीसे होनेवाली आपत्तियोंसे त्राण पानेमें ही केवल सफलता नहीं मिलेगी बल्कि साधारणतया वे बिना किसी कष्टके बढ़े हुए करके भारको भी सह सकेंगे। इसका पूर्ण विश्वास होनेसे जितना धन और शक्ति वे अपनी ज़मीनमें लगावेंगे उसका फल उन्हींको मिलेगा। तब निश्चय ही कृषिकी उन्नतिके लिये वे उत्तरोत्तर लगनसे काम करेंगे।

स्थायी बन्दोबस्तके विरुद्ध प्रायः यह तर्क उपस्थित किए जाते हैं कि ज़मीनके भावी लगानकी वृद्धिके लाभ सदाके लिये वञ्चित होनेपर सरकारको हानि रहेगी। इसको पूर्णतः सोच-समझकर ही उसका निराकरण एक कुशल और दूरदर्शी राजनीतिज्ञके निम्नलिखित शब्दोंमें किया गया है :—

"महारानी विक्टोरियाकी सरकार विश्वस्त रूपसे आशा करती है कि जनता सन्तोष और प्रगतिशील दशामें बिना कष्टके सरकारको अन्य रूपमें कर दे सकेगी, जो कि उस कमीको पूरा करनेके लिये ज़रूरतसे ज़्यादा होगी, जो उसे लगान न बढ़ा सकनेके कारण होती। महारानीकी सरकार जिस निष्कर्षपर पहुँची है, वह सङ्क्षेपमें नीचे दिया जाता है :—

"महारानीकी सरकारकी राय है कि जिन लाभोंकी वृद्धिकी आशा उचित रूपसे की जा सकती है, वे केवल उन्हीं लोगोंको नहीं होंगे जिनका भूमिसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, किन्तु साधारणतः सम्पूर्ण जातिको लाभ होगा। यह लाभ इतना अधिक है कि इसके लिये ज़मीनके स्थायी बन्दोबस्त करनेसे जो हानि होनेकी आशङ्का है, उसे सहन करना कुशल राजनीतिकी पहिचान है। इसके द्वारा भारतवर्षकी सब प्रकारसे उन्नति होगी और महारानीकी इस देशकी सम्पूर्ण प्रजाको सबसे अधिक सुख और शान्ति प्राप्त होगी।

स्थायी बन्दोबस्तके पक्षमें महारानीकी सरकारकी इस स्पष्ट घोषणासे जनतामें यह विश्वास फैल गया कि यह प्रश्न निश्चय रूपसे सदाके लिये निर्णय हो गया था। यहाँकी प्रान्तीय सरकारने ऐसा ही माना था। सन् १८८६ ई० में तत्कालीन लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर सर विलियम म्यौरने सङ्क्षिप्त पत्रमें इसका उल्लेख निम्न प्रकारसे किया है :—

"जब अन्तिम बार यह स्थायी बन्दोबस्तका विषय गृह-सरकार और भारत-सरकारके समक्ष पेश हुआ तब इस सुधारके पक्ष और विपक्षमें जितने तर्क सम्भव थे सब उपस्थित किए गए और उन सबपर पूर्ण विचार किया गया और अन्तमें यह निश्चय हुआ कि कुछ शर्तोंके साथ स्थायी बन्दोबस्त कर देना चाहिए। इस निर्णयकी घोषणा सबसे ऊँचे अधिकारीद्वारा हुई थी और प्रत्येक नियम-निष्ठाके साथ इसका प्रचार किया गया। यह कोई व्यक्तिगत बात नहीं है, इसके गुण और दोष सरकारी रिपोर्टमें विवेचनाके लिये उन्मुक्त हैं।"

सर विलियम म्यौरने इन प्रान्तोंके सेटिलमेण्ट अफ़सरोंको बन्दोबस्त-सम्बन्धी निश्चयको उन स्थानोंमें व्यवहार रूपमें लानेके लिये आदेश निकाला, जिनमें यह बन्दोबस्त किया जा रहा था। किन्तु कुछ दुर्भाग्य और अज्ञात कारणसे यह कार्य्य स्थगित कर दिया गया और निर्णय अलग रख दिया गया। किन्तु बहुत कालतक यह प्रश्न आकाशमें लटका रहा और बादको सन् १८८३ ई० की अट्ठाइसवीं मार्चके अपने ख़रीतेमें भारत-सचिवने भारतीय

जनताके लिये अत्यन्त निराशाजनक यह घोषणा की कि सन् १८६२ ई० में जो नीति निर्धारित हुई थी, उसे इस समय स्थगित कर देना चाहिए। उस नीतिको व्यवहारमें लानेके पक्षमें इतने अधिक और सुदृढ़ तर्क थे कि उसके कारण यह परिणाम निकालना पड़ता है कि वह योजना इसलिये त्याग दी गई कि सरकार जनताके कल्याणकी अपेक्षा सरकारी लगानके लिये अधिक चिन्तित है।

लौर्ड रिपनने अस्थायी बन्दोबस्तके दोषोंका अनुभव किया और इनको दूर करनेके लिये तथा कृषक-वर्गको स्थायी बन्दोबस्तके कुछ लाभ देनेके लिये श्रीमान्ने सन् १८८२ ई० के सत्रहवीं अक्टूबरके अपने ख़रीतेमें इस नीतिका उल्लेख किया कि बन्दोबस्त-विभागद्वारा जिन ज़िलोंकी ज़मीनकी पैमाइश होकर लगान निर्धारित हो चुका है, उनपर मूल्यकी वृद्धिके अतिरिक्त अन्य किसी कारणसे फिरसे विचार नहीं होना चाहिए। इस प्रस्तावसे सरकारको यह लाभ होगा कि मूल्य-वृद्धिके कारण वह लगानमें वृद्धि कर सकेगी। किन्तु सन् १८८५ ई० की आठवीं जनवरीके ख़रीतेमें भारत-सचिवने इसे भी रद्द कर दिया है। फलतः जब कि भारत-सरकार लगानमें वृद्धि करके अत्यधिक बचतका आनन्द उठा रही है, उस हालतमें उन लोगोंकी दशा, जो सरकारी आयका अधिकांश भाग देते हैं, उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है।

सरकारके उच्च अधिकारियोंद्वारा बार-बार कहा गया है कि सरकारके लिये विचार करनेके लिये सबसे पहले कृषक-वर्गका प्रश्न है। हाल ही में वाइसराय महोदयने जो घोषणा पिछले दिनों कलकत्तेमें की थी, वह नीचे उद्धृत की जाती है:—“ज़मीनका लगान बन्दोबस्त हमें बताता है कि बड़े-बड़े ज़मीन्दारोंके धनमें वृद्धि हुई है, किन्तु मैं आशा करता हूँ कि छोटे-छोटे खेतिहरोंकी जीवन-सम्बन्धी आवश्यकताओंकी इससे पूर्त्ति हुई है। उसीकी सहायता हमें बड़े लगनसे करनी चाहिए। भारतकी जन-संख्याका अधिकांशमें यही मेरुदण्ड है। उसीकी कुशलतापर ही जनताकी अधिकांश प्रसन्नता और उनका सन्तोष निर्भर है।”

किन्तु अभाग्यवश सहानुभूतिके इस प्रदर्शनमात्रसे जनताको कोई व्यावहारिक सुख नहीं मिलता। बड़े लाटने यह आशा प्रकट की है कि छोटे कृषक-वर्गको जीवनकी आवश्यकताओंके लिये पर्य्याप्त सामग्री प्राप्त है। यदि वे खेतिहरोंकी आर्थिक दशाकी जाँचके लिये कोई कमीशन बैठावें तो उनका यह भ्रम दूर हो जायगा। भारत-सरकारको यह सोचनेका अधिकार है कि छोटे-छोटे खेतिहरोंके लिये नमकके टैक्समें प्रतिमन एक रुपयेकी कमी करके उसने किसानोंकी दशा सुधारनेका बड़ा भारी काम किया है, वे किसान इसके लिये कृतज्ञ हैं। किन्तु जिस सुधारकी उन्हें इससे भी अधिक आवश्यकता है, वह ज़मीनके लगानमें कमी और भविष्यमें लगानमें वृद्धि न किए जानेकी प्रतिज्ञा होनी चाहिए। यह तब हो सकता है जब वर्त्तमान लगानमें कमी करके स्थायी बन्दोबस्त कर दिया जाय। एक प्रसिद्ध लेखकने कहा कि स्थायी बन्दोबस्तके लाभोंका जो हिसाब लगाया गया है, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक उद्योग-धन्धे, नये व्यवसाय, कृषक-वर्गका आत्म-विश्वास, धनका उपयोग और सम्पत्ति बढ़ानेमें उत्तरोत्तर उन्नति होगी। कृषक-वर्गके धनकी वृद्धिके लिये यह अन्य किसी साधनकी अपेक्षा कहीं अधिक सहायता करेगा। इससे देशमें सम्पत्ति बढ़नेसे ज़मीनके लगानके अतिरिक्त अन्य सभी विविध करोंमें वृद्धि हो जायगी तथा आयकी अन्य मदोंसे सरकारी कोषमें यथेष्ट वृद्धि होगी। अतः कृषकवर्गको आवश्यक सुविधा प्रदान करनेके लिये यह सबसे उत्तम साधन है। मैं हृदयसे आशा करता हूँ कि इसको प्रचलित करनेके लिये सरकारद्वारा उचित विचार होगा।

कृषक-वर्गके कल्याणसे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे आवश्यक प्रश्नकी ओर अब मैं सरकारका ध्यान

आकर्षित करना चाहता हूँ, जो कि देशी खाँड़का व्यवसाय है। इन प्रान्तोंमें बढ़िया ज़मीनके सवा दस या साढ़े दस लाख एकड़ भूमिमें ईख बोई जाती है और देशकी सम्पूर्ण देशी खाँड़के व्यवसायका पचास प्रतिशत यहाँ उत्पन्न होता है। चीनी सदासे ही हमारे व्यवसायका मुख्य अङ्ग रही है। बड़े लाटकी परिषद्में सन् १८७७-७८ ई० में चीनीके व्यवसायके सम्बन्धमें बोलते हुए सर जौन स्टारचीने कहा :—

“चीनी इन प्रान्तोंकी खेतीकी उपजका प्रधान द्रव्य है। यह केवल किसानों, व्यापारियों और ग्राहकोंके लिये ही आवश्यक वस्तु नहीं है किन्तु प्रत्यक्ष रूपसे सरकारके लिये भी आवश्यक है, क्योंकि सरकारको ईखकी खेतीसे सिंचाई-करके रूपसे आय होती है।”

मौरिशसकी चीनीका अधिक मात्रामें बम्बईमें आयात तबतक आरम्भ हो गया था, किन्तु देशी और मौरिशसकी चीनीकी प्रतिस्पर्द्धाने अभीतक भयानक रूप धारण नहीं किया। अतएव इसे रोकनेके लिये कोई उपाय नहीं किया गया था। सन् १८९० ई० तक जो चीनी बाहरसे भारतमें आती थी, वह सब मौरिशससे ही आती थी। सन् १८९० ई० के बाद, जब कि मौरिशसकी चीनीकी आयात बढ़ती थी, उसी समय औस्ट्रिया और जर्मनीसे इसकी आयात और भी अधिक बढ़ गई। इसी समय महारानी विक्टोरियाकी सरकारका ध्यान पश्चिमी भारतके द्वीपोंके चीनी-व्यवसायकी नाज़ुक परिस्थितिकी ओर आकृष्ट किया गया था, जो कि योरोपसे संरक्षित चीनीके अधिक आयातके फलस्वरूप हुआ था। इसपर महारानीकी सरकारने उदार प्रथा (बाउण्टी सिस्टेम) की आवृत्तिके लिये सब राष्ट्रोंकी कान्फ़रेन्स कराई। जब बिना किसी निष्कर्षपर पहुँचे ही सम्मेलन भङ्ग हो गया, तब उत्तरी भारतके व्यापारिक मण्डलने और अन्य संस्थाओंने सरकारसे सिफ़ारिश की कि सरकार तो अति शीघ्र योरोपकी संरक्षित चीनीके आयातपर वह प्रतिरोध-कर लगा दे। यह कर लगा दिया गया, और दो सालतक, जबतक यह प्रतिरोध-कर बना रहा, विदेशी चीनीके प्रचुर मात्राकी आयात तीस लाख हण्डरसे घटकर पाँच लाख हण्डर हो गया। बादको अन्य राष्ट्र सन् १९०३ ई० के सितम्बर माससे चीनीके व्यवसायको प्रोत्साहन देनेकी नीतिमें हेरफेर करनेको सहमत हुए, तबसे इसके फलस्वरूप भारत-सरकारने चीनीके प्रतिरोधक आयात-करको उठा दिया। इस करके उठाते ही चुक़न्दरकी चीनीके आयातमें दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हुई; और इसके साथ ही विशेषकर जावा और मौरिशससे साफ़ की हुई चीनीकी आयात बढ़ती रही। गत बारह महीनोंका आयात सम्भवतः पाँच लाख टनसे कम न होगा, अर्थात् देशी चीनीकी साधारण उपजका यह पाँचवा भाग होगा।

भूमि-सम्बन्धी काग़ज़ात और कृषि-विभागके सञ्चालक श्री मोरलैण्डने इस मासकी भारतीय कृषि-सम्बन्धी मासिक पत्रिकामें चीनीके व्यवसायपर अपने लेखमें बतलाया है कि बढ़िया विदेशी चीनी, हिन्दुस्तानमें बनी चीनीकी अपेक्षा अधिक सस्ती पड़ती है और आगे चलकर आप इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि यदि चीनीकी लागतमें कमी नहीं की गई तो किसानका माल अधिक मात्रामें नहीं बिकेगा और उस अवस्थामें उपजकी विधिके सुधार करनेसे कोई अर्थ नहीं सिद्ध होता, जब कि अधिक पैदावारका कोइ पूछनेवाला नहीं है। गत कुछ वर्षोंसे इन प्रान्तोंकी सरकार चीनीके व्यवसायको समुन्नत बनानेके लिये जो सुधार-विधिका प्रयोग कर रही हैं, उसे मैं स्वीकार करता हूँ। श्री मोरलैण्डने जो लेख प्रकाशित कराया और श्री हादीने जो आविष्कार किया, उसके प्रचारके लिये जो प्रयत्न सरकार कर रही है वे सब निस्सन्देह स्वदेशी चीनीके व्यवसायको समुन्नत बनानेवाले हैं। आधुनिक विधिके अनुसार सस्ती और बढ़िया चीनीके उत्पादनके लिये अधिक कारख़ाने खोलने चाहिएँ। किन्तु हमें धोखेमें आकर यह आशा न करनी चाहिए कि निकट भविष्यमें चीनीके कारख़ानोंकी अचानक पर्य्याप्त मात्रामें इतनी अधिक वृद्धि हो जायगी जिससे कि

देशी व्यवसाय विदेशी मालकी प्रतिस्पर्द्धामें टिक सके और उसका देशमें आना बन्द करानेमें सफल हो सके। कानपुरके चीनीके कारख़ानेके सञ्चालकने बताया है कि—'भारतमें चीनी साफ़ करनेके व्यवसायको कठिन परिस्थितियोंके बीच प्रतिस्पर्द्धा करना पड़ रहा है, जिसको बोर्डने भी निस्सङ्कोच भावसे अभूतपूर्व बताया है। इन विषम परिस्थितियोंमें मुख्य कच्चे मालकी अधिक लागत और उन विदेशोंसे प्रचुर मात्रामें ईख-गन्नेकी आयात है जहाँपर ईखके अधिकांश खेत कट चुके हैं।" एक बड़े अंग्रेज़ लेखकका अनुभव है कि—'उचित शासनद्वारा कोई भी देश आवश्यकतासे अधिक शासित हो सकता है, इस हदतक कि वह अधिक या कम मात्रामें साहसपूर्ण उद्योग या प्रवर्त्तनकी शक्तिको ही खो दे और फलतः राष्ट्रोंके साथ उचित प्रतिस्पर्द्धाके लिये अयोग्य हो जाय। इस कथनकी सत्यता खेदजनक रूपमें हमारे देशवासियोंमें लक्षित होती है; और यह स्पष्ट है कि देशी और विदेशी व्यवसायकी सापेक्ष स्थितिको ध्यानमें रखते हुए, और जनतामें साहसपूर्ण उद्योग और वैज्ञानिक शिक्षाके सामूहिक अभावको मानते हुए, देशी व्यवसायकी रक्षाकी दृष्टिसे केवल चीनीकी सफ़ाई और पैदा करनेकी पद्धतिपर ही आरूढ़ रहना मूर्खतापूर्ण कार्य्य होगा। तब इसका उपाय क्या है?'

मेरे विचारमें एकमात्र उपाय, जो चीनीके देशी व्यवसायको विदेशी प्रतिस्पर्द्धाके कारण मृत्युके मुखसे बचा सकता है, वह प्रतिरोधक करका लगाना है। पायोनियर पत्र भी स्वीकार करता है कि उक्त करका आरोप ही एकमात्र उपाय है, जो देशसे विदेशी चीनीको बाहर कर सकता है। किन्तु मुझे खेद है कि उसकी सम्मति है कि यह स्वीकार किया जा सकता है कि पुनः इस प्रकारका कोई कर नहीं लगाया जा सकता। मैं यह निवेदन करनेका साहस करता हूँ कि आयात-प्रतिरोधक करका उठा देना एक भारी भूल थी, जिसकी सिद्धि उसके पश्चात्‌की स्थितिसे होती है। अभी भी आयात-कर लगाने में असफल रहना भारी भूल करना है, और अधिकांश जनताकी सुख-समृद्धि और सन्तोषपर इसका अनर्थकारी परिणाम होगा। सन् १८९९ ई० की अपेक्षा आज चीनीके व्यवसायकी दशा अधिक भ्रष्ट है, जब कि भारत-सरकारने इसकी रक्षाके लिये विदेशी चीनी प्रतिरोधक-कर बैठाना उचित समझा था। गत शासन-सम्बन्धी विवरणमें इन प्रान्तोंकी सरकार कहती है—"चीनीका व्यवसाय अनुन्नत दशामें रहा, और वर्त्तमान स्थितिमें, विदेशी चीनीकी प्रतिस्पर्द्धामें टिक नहीं सकता।" एक पत्र उत्तर-पश्चिमी प्रान्तोंके लेफ़्टिनेण्ट-गवर्नरने सन् १८९९ ई० में भारत-सरकारको लिखा था। उसमें आपने बताया था कि किस प्रकार विदेशोंसे प्रचुर मात्रामें चीनीके आयातद्वारा चीनीके देशी व्यवसायको धक्का पहुँचा है और अभी भी पहुँच रहा है और लाट साहबने उस समय जो कहा था वह आज भी सत्य प्रतीत हो रहा है कि—

"इन प्रान्तोंके लिये अपने चीनीके व्यवसायको वर्त्तमान प्रवन्धके अधारपर सुरक्षित रखना, ग्राहकोंको सुन्दर पदार्थकी बनी सस्ती विदेशी चीनी देनेकी अपेक्षा अधिक आवश्यक है।"

उस समय सर जेम्स एन्ड्रू वेस्टलैण्डने विदेशोंसे आनेवाली चीनीकी वृद्धिको रोकनेवाले करके समर्थनमें तर्क उपस्थित किए थे। वे तर्क विदेशी चीनीके आयातको रोकनेके लिये आजके तर्ककी अपेक्षा अधिक सबल थे। मैं यहाँ इससे बढ़कर अन्य कार्य्य नहीं कर सकता कि सर वेस्टलैण्डके उपसंहारात्मक वाक्य, जो उन्होंने सन् १८९९ ई० में बिलकी प्रस्तावनामें कहे थे, उद्धृत कर दूँ। उन्होंने कहा:—

"अतएव मेरे विचारमें परिषद् इसे स्वयं सिद्ध मान ले कि हमारे सम्मुख एक प्रधान व्यवसायके विनाशका भय उपस्थित है, और मेरा विश्वास है कि परिषद् इस बातसे पर्य्याप्त सन्तुष्ट हो गई है कि अब समय आ गया है जब कि हमको अपने देशके मुख्य व्यवसायकी रक्षा अत्यावश्यक है। तब हमको अत्यधिक आयातके प्रतिरोधके लिये विधान बनाना

चाहिए। अवश्य ही हम कुछ देर और विराम ले सकते हैं। हम तबतक विराम ले सकते हैं जबतक हमारे चीनीके और कारख़ाने बन्द हो जायँ और रैयत इतनी निर्धन हो जाय कि ईखकी खेती करना एकदम बन्द कर दें। किन्तु इन मामलोंके सम्बन्धमें मेरे विचारमें रक्षात्मक उपायका अवलम्बन अधिक श्रेयस्कर है; कारण जिस व्यवसायका अस्तित्व है उसका पुनरुत्थान करना और उसे प्रोत्साहन देना प्रतिकूल परिस्थितिके कारण विनष्ट हुए व्यवसायके पुनरुत्थानकी अपेक्षा अधिक सरल है।”

मैं केवल 'प्रचुर मात्रा'के स्थानपर 'विदेशी' शब्द इस उद्धरणमें रख दूँगा, और आपसे बड़ी उत्सुकताके साथ प्रार्थना करूँगा कि इन शब्दोंकी उपयुक्तताको भारत-सरकारके कानोंतक पहुँचा दिया जाय।

अध्यक्ष महोदय, मेरी आशा है कि मैंने जो सिफ़ारिश की है वह सहसा अस्वीकृत न कर दी जायगी, कारण इसमें स्वतन्त्र व्यवसायके विरुद्ध दोष दिखाए गए हैं। श्री मिलने भी इसे वाञ्छनीय समझा है कि नये देशमें कुछ व्यवसायपर संरक्षण होना चाहिए यदि उस देशके पास ऐसे व्यवसायके सफल निर्माणके लिये पर्य्याप्त प्राकृतिक साधन उपलब्ध हों और उस देशको जो संरक्षण दिया जाय वह अस्थायी हो। यदि नये देशमें नये व्यवसायके पोषणके लिये संरक्षणकी नीतिकी अनुमति है तो विदेशी प्रतिस्पर्द्धासे विनाशोन्मुख विशाल प्राचीन व्यवसायकी रक्षा करना अनुमतिसे कहीं अधिक आवश्यक है। सिद्धान्तकी बात अलग रखिए, न तो संरक्षण और न स्वतन्त्र व्यवसाय ही प्रत्येक देशके लिये प्रत्येक दशामें उन्नतिके लिये आवश्यक है। जैसा कि एक समय बिस्मार्कने कहा था 'स्वतन्त्र व्यवसाय परम सबल शस्त्र है।' इङ्गलैण्डके समान उद्योग-धन्धेमें समुन्नत देशके लिये प्रशंसनीय रूपसे यह अनुकूल है, तो व्यवसायमें अनुन्नत भारतके समान देशके लिये संरक्षणकी नीति बुद्धिमानी और रक्षाकी नीति है। मैं अपने पक्षको अधिक स्पष्ट करनेके लिये रूसके सर्वप्रसिद्ध अर्थ-सचिव काउण्ट डेविटके वाक्यको, जो उन्होंने सन् १९०३ ई० की कांग्रेसमें रूसके व्यापार-सम्बन्धी सर्वविदित विवादके अवसरपर कहा था, उसे उद्धृत करनेके अतिरिक्त कुछ नहीं कह सकता। काउण्टने कहा :—

“सरकारको चाहिए कि मालकी खपत करनेवाले प्रान्तोंमें वह सस्ती और सुन्दर वस्तु प्रदान करनेकी व्यवस्था करे, और उत्पादक प्रान्तोंमें देशकी उत्पादक शक्तिको प्रगति प्रदान करे। संरक्षणकी नीति—इस उद्देशकी प्राप्तिके लिये, देशके राष्ट्रीय कोषकी वृद्धिके लिये, लाभकारी स्थितिको उत्पन्न करके, और इस प्रकार घरेलू प्रतिस्पर्द्धाको उत्तेजन देकर, जो उत्पादन लागतको अवश्य कम करे, यहाँतक कि वह सुव्यवस्थित उत्पादनके लागतकी समानता प्राप्त कर सके और मूलधनके लिये भी साधारण लाभ पा सके—चेष्टा करती है। समस्त संसारके लिये प्रवेश-मार्गको उन्मुक्त कर, स्वतन्त्र व्यवसाय जनताको विशेष प्रकारसे सस्ता माल प्रदान करता है, किन्तु राष्ट्रोंके आर्थिक उन्नतिका इतिहास कठिनतासे ऐसा उदाहरण उपस्थित करता है, जहाँ इस प्रकारकी नीतिने राष्ट्रकी उत्पादक शक्तिमें प्रगति प्रदान की हो। किसी हालतमें संरक्षणकी नीतिका निर्धारण अथवा स्वतन्त्र व्यापार कुछ शर्त्तोंपर निर्भर करता है जो निश्चित अवधिपर आया करती हैं। अतः हम यह देखते हैं कि राष्ट्रोंने अपने ऐतिहासिक प्रगति-कालमें प्रायः अपने व्यावसायिक और व्यापारिक पद्धतिमें परिवर्त्तन कर दिया है। इङ्गलैण्डने कड़े संरक्षणोंद्वारा अपना व्यवसाय स्थापित किया है, और जब इस उपायसे वह अन्य राष्ट्रोंकी अपेक्षा व्यापार और व्यवसायमें अधिक सबल हो चुका, तब उसको किसी प्रतिस्पर्द्धाका भय नहीं रह गया और उसने स्वयं व्यवसायकी नीतिका अवलम्बन किया, और उसके प्रतिभासम्पन्न लेखकोंने संसारको यह आश्वासन देना प्रारम्भ कर दिया कि स्वतन्त्र व्यवसायकी नीतिकी स्थापना अपरिवर्त्तनशील और निर्विवाद वैज्ञानिक सिद्धान्तपर

स्थित है, अतएव प्रत्येक राष्ट्रको इसे व्यवहारमें लाना चाहिए। तथापि कुछ देशोंने इस स्वतन्त्र व्यवसायके सिद्धान्तकी उपेक्षा की। और संरक्षणद्वारा अपने व्यवसायकी उन्नति की, फलतः संसारके बाज़ारमें ये बृटिश व्यापारके प्रतिद्वन्द्वी बन गए। संरक्षणकी नीतिकी ओर इङ्गलैण्डकी भी कुछ प्रवृति अभिलक्षित होती है। उन देशोंमें अमेरिका भी एक देश था जो स्वतन्त्र व्यापारके सिद्धान्तके प्रलोभनमें नहीं आया। संरक्षणद्वारा इसने अनुपमेय व्यावसायिका प्रगति की। गत शताब्दिके आरम्भमें इङ्गलैण्डकी भाँति वहाँ स्वतन्त्र व्यापारकी पुकार सुन पड़ी थी।"

इस समय मैं आयात-करकी साधारण रूप-रेखापर विचार नहीं कर रहा हूँ, और न तो मैं नये व्यवसायके पोषणके लिये संरक्षण-करकी ही अभ्यर्थना कर रहा हूँ। मैं जिसके लिये निवेदन कर रहा हूँ वह एक विशाल वर्त्तमान व्यवसायकी रक्षाके लिये, जो विदेशी प्रतिस्पर्द्धाके कारण विनाशोन्मुख हो रहा है—संरक्षणकर है। मैं यह सोचनेका साहस करता हूँ कि संसारमें कोई भी स्वतन्त्र देश ऐसे उपायके अवलम्बनमें विलम्ब न करेगा, जिनकी मैं सिफ़ारिश करता हूँ, जो उस विशाल और मूल्यवान् हमारे चीनीके व्यवसायके समान राष्ट्रीय व्यवसायके संरक्षणका है। मुझे आशा है कि इङ्गलैण्डकी सरकार भारत-सरकारको इस प्रकारके कर-निर्धारणकी अनुमति देगी। यह हमारे लिये आनन्दकी बात है कि इस मामलेके सम्बन्धमें इङ्गलैण्ड और भारतके बीच एक दूसरेके हितका सङ्घर्ष नहीं है, कारण इङ्गलैण्डमें चीनीका व्यवसाय नहीं होता, और अन्य कोई राष्ट्र प्रस्तावपर उचित आपत्ति उपस्थित नहीं कर सकता। भारत-सरकार सबसे कह सकती है, जैसा कि सन् १८९९ ई० में सर जेम्स वेस्टलैण्डके द्वारा इसने कहा था, कि हम केवल अपने व्यवसायकी रक्षा करना चाहते हैं, और इस देशमें अपने व्यवसायकी रक्षाके लिये उसी अधिकारका हम दावा करते हैं, जैसा कि निस्सन्देह रूपसे विदेशी राष्ट्र अपने अधीन राज्योंमें चीनीके व्यवसायकी रक्षा और उसके प्रोत्साहनके लिये दावा करते हैं। सन् १८९९ ई० में आयात-कर लगाकर देशी व्यवसायकी रक्षा करनेकी बुद्धिमत्ताका सरकारने अनुभव किया था। मेरी आशा है कि इस समय भी सरकार उसी अनुपातमें इस आवश्यकताको स्वीकार करेगी। वास्तवमें ऐसे करका संरक्षण, जिसकी मैं सिफ़ारिश करता हूँ, उसकी कुछ कालके लिये ही आवश्यकता है, अर्थात् जिस अवधिके बीच देशी व्यवसायकी उन्नति सरकार और जनताके सहयोगसे इतनी हो जाय कि उसके बाद बिना संरक्षणके हो देश विदेशी मालकी प्रतिस्पर्द्धा सफलतापूर्वक कर सके।

यह सन्तोषकी बात है कि विदेशी चीनीके प्रयोगके विरुद्ध भावना, और स्वदेशी चीनीके प्रयोगके अनुकूल भावना तीव्र गतिसे बढ़ रही है और देशमें फैल रही है। विभिन्न स्थानोंपर सभाओं, समितियों और पञ्चायतोंद्वारा आर्थिक अथवा धार्मिक आधारपर विदेशी चीनीके त्यागके लिये आन्तरिक प्रयत्न हो रहे हैं। किन्तु ये उद्योग और अन्तर्हित त्याग यद्यपि प्रसंशनीय हैं, किन्तु ये ही एकमात्र विदेशी आयातको बन्द करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। जनता मेरे प्रस्तावित संरक्षणात्मक पद्धतिका हार्दिक स्वागत करेगी और इसके लिये सरकारके प्रति गम्भीर कृतज्ञताका अनुभव करेगी।

स्वदेशी चीनीको प्रगतिके लिये आपने जो लगन दिखाई है उससे मुझे आशा होती है कि हमारे चीनीके व्यवसायकी रक्षा और प्रोत्साहनके लिये जितने सम्भव उपाय हैं, आप उनका अवलम्बन करेंगे। मैं आशा करता हूँ कि मेरे उपस्थित किए हुए विचारपर आप विचार करेंगे और शीघ्र विचारके लिये भारत-सरकारसे सिफ़ारिश कर देंगे।

कृषक-वर्गकी आर्थिक दशाकी समुन्नतिके लिये, जो दूसरे उपायकी आवश्यकता है, वह कृषि-सम्बन्धी शिक्षा है। कृषि-विभागका विशाल पैमानेपर पुनः सङ्गठन होना चाहिए, कानपुरमें अन्वेषण प्रयोगशालाके

साथ कृषि-सम्वन्धी कौलेज़के स्थापनकी योजना, प्रयोगात्मक गोशालाओंके साथ कृषि-सम्वन्धी आश्रम, ये सबका आयोजन धन्यवादार्ह हैं। किन्तु कृषि-सम्वन्धी शिक्षाकी प्रभावकारी पद्धतिके लिये यह आवश्यक है कि हम जापानकी शिक्षा-पद्धतिका अवलोकन करें, और समस्त प्रान्तोंमें प्रारम्भिक और माध्यमिक कृषि-शिक्षाका श्रीगणेश करें। जापानमें प्रारम्भिक श्रेणीके पाँच सौ तीन अतिरिक्त विद्यालय हैं। ये विद्यालय उन लोगोंको कृषिकी प्रारम्भिक शिक्षा देते हैं, जिन्होंने साधारण प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर दी है और सत्तावन माध्यमिक शिक्षा-संस्थाएँ हैं, जो मध्यम श्रेणीके लोगोंको, जो भावी किसान वननेवाले हैं, प्रयोगात्मक वैज्ञानिक शिक्षा देती हैं अथवा अन्वेषण कार्य्यमें संलग्न होते हैं। मुझे आशा है कि हमारा कानपुरका कृषि-महाविद्यालय भी कालान्तरमें इसी श्रेणीका हो जायगा। यदि यहाँ भी उसी प्रकारकी कृषि-सम्वन्धी शिक्षाकी वैज्ञानिक पद्धतिकी व्यवस्था की जाय तो भारतीय किसान भी जापान, अमेरिका और योरोपके अपने भाई किसानोंके समान ही सुसम्पन्न सस्य-सम्पादनके योग्य वन सकेंगे। वर्त्तमान समयकी अपेक्षा भूमिमें अधिक उर्वरत्त्व शक्ति लानेमें समर्थ हो सकेंगे। अब अवसर आ गया है कि ऐसी पद्धतिका प्रारम्भ हो।

अनेक वार इसकी आवृत्ति हुई है और यह सत्य है कि कृषि ही भारतका सर्वप्रधान व्यवसाय रहेगा। किन्तु जव यह कहा जाता है तव सम्पूर्ण समस्याके अर्द्ध भागका ही वर्णन होता है। शुद्ध कृषिप्रधान देश व्यवसायी और उद्योग-धन्धी देशकी अपेक्षा कभी अधिक समुन्नत और आत्मसंरक्षणके योग्य नहीं हो सकता। विशेषतः जव हम भारतके समान विशाल महाद्वीपका विचार करते हैं, जो प्रकृतिका इतना वड़ा लाड़ला है कि वहुत कम देश इसके वरावरीके हैं, जिसके सुविशाल प्राकृतिक साधनोंको समुन्नत करना है और एक महान् जनपदकी सेवा करनी है, तो ऐसे देशकी समुन्नतिके लिये आवश्यक है कि इसके कृषि और शिल्प-सम्वन्धी व्यवसाय दोनोंकी साथ-साथ उन्नति की जाय। यह सन्तोषका विषय है कि देशी व्यवसायको प्रोत्साहन देनेका कार्य्य सरकारने आरम्भ कर दिया है। सरकारके रुख़में यह परिवर्त्तन अवश्य अभिनन्दनीय है। इस परिवर्त्तनका स्पष्ट दिग्दर्शन आपके उस स्मरणीय भाषणसे हुआ है, जो आपने गत मार्च मासमें वड़े लाटकी व्यवस्थापिका सभामें व्यापार और व्यवसाय-विभागके एवज़ पद और भारत-सरकारके सदस्यके पदसे दिया था। वर्त्तमान पद-ग्रहण करनेके समयसे ही आपने देशी व्यवसायकी प्रगतिवाले आन्दोलनमें सवल सहानुभूति और अधिक लगनका प्रमाण उपस्थित किया है। और आपके शासनकालमें हम भविष्यमें इन प्रान्तोंके व्यवसाय-सम्वन्धी महोत्कर्षकी आशा करते हैं। व्यावसायिक उन्नतिकी दिशामें प्रथम उपक्रम प्रान्तोंके देशी व्यवसायकी पैमाइश अधिक विस्तृत रूपसे कराना होना चाहिए। इस प्रकारकी पैमाइशकी आवश्यकताको सिद्ध करनेके लिये मुझे अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि श्रीमान्ने स्वयं गत वर्ष दूसरे पदसे वोलते हुए प्रान्तीय सरकारको इस कार्य्यके लिये उत्तेजित किया था, उस समयके और आजके, जिस महान् पदपर श्रीमान् आसीन हैं, वहुत ही कम अन्तर है। श्रीमान्ने इस कार्य्यका श्रीगणेश तो कर ही दिया है, जिस प्रारम्भके फलस्वरूप मैं आशा करता हूँ कि सुविशाल और सफल अन्वेषण होगा। यदि मैं कोई सलाह दे सकूँ तो मेरी सलाह है कि यदि पैमाइश हो तो कोल्हापुर रियासतके व्यवसाय-सम्वन्धी पैमाइशके आधारपर हो। उक्त पैमाइश सन् १८८२ ई० के जुलाई महीनेमें आरम्भ हुई और सन् १८८५ ई० के मार्च मासमें समाप्त हुई। इस पैमाइशने सरकार और सर्वसाधारण दोनोंके समक्ष मूल्यवान् ज्ञानका कोष रख दिया। इसने वर्त्तमान व्यवसायकी स्थिति, उनके विकास और प्रगतिके

उपाय और नये व्यवसायके आरम्भकी सम्भावना, आदि बातें विस्तारपूर्वक उपस्थित कीं।

दूसरी बात यह है कि शिक्षा-विशेषज्ञों और व्यवसायी लोगोंकी एक कमेटी नियुक्त की जाय, जो पैमाइशसे प्राप्त जानकारीका सदुपयोग करे। भारत-सरकारने सन् १८८८ ई० में ही इस उपक्रमकी आवश्यकता समझी थी। यह बड़े खेदकी बात है कि गत सप्ताह मुझे मालूम हुआ है कि दो वर्ष बाद सरकारने यह निश्चय किया कि उक्त पैमाइशकी आवश्यकता नहीं है। और अब दूसरे उपक्रमकी आवश्यकता पुनः जान पड़ी है, इसके लिये श्रीमान् ही अधिक धन्यवादार्ह हैं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसके ऊपरका उपक्रम भी कार्य्यरूपमें परिणत होगा। अस्तु, यह आवश्यक नहीं है कि इस अवधिके बीच हम हाथ-पर-हाथ रक्खे बैठे रहें और इन प्रान्तोंमें कला-सम्बन्धी शिक्षाके विकासके लिये आगे उद्योग न करें।

वर्त्तमान समयमें शिल्प-सम्बन्धी शिक्षाके विशेष महत्त्वके सम्बन्धमें कुछ कहनेके लिये मैं अनुमति चाहता हूँ। अब समय आ गया है जब कि इन प्रान्तोंमें सुचिन्त्य और शिल्प-कलाकी पूर्ण पद्धतिका श्रीगणेश किया जाना चाहिए। इस प्रकारकी पद्धति विभिन्न श्रेणीके लोगोंके लिये आवश्यक शिक्षा-सामग्री प्रदान करेगी, जो उत्पादक व्यवसायमें लगनेकी अभिलाषी हैं। यथा:—यन्त्र-सञ्चालन तथा निर्माणके इञ्जीनियर, कारीगर, फ़ोरमैन (प्रधान मिस्त्री) अथवा ओवरसियर (अमीन), मैनेजर (व्यवस्थापक) अथवा मालिक। जिन व्यवसायोंमें उनके नियुक्त होनेकी सम्भावना है वे व्यवसाय आसानीसे इस प्रकार गिनाए जा सकते हैं, यथा:—शिल्पी, हाथसे काम करनेवाले कारीगर, कला-सम्बन्धी व्यवसाय और कृषि। कृषिके सम्बन्धमें मैं पहले ही ज़िक्र कर चुका हूँ, और अभी फ़िलहाल कलात्मक व्यवसायको भी छोड़ देता हूँ। अभी मैं हस्त-शिल्प और यन्त्र-शिल्पपर ही विचार करूँगा। मेरा निवेदन है कि इन प्रान्तोंमें कम-से-कम एक शिक्षणालय यान्त्रिक शिल्पकी शिक्षा देनेके लिये और प्रत्येक ज़िलेमें हस्त-शिल्पकी शिक्षा देनेके लिये एक विद्यालय अवश्य होना चाहिए। मेरी अभिलाषा है कि वर्त्तमान समयमें विशेषतः बुनाई और चीनीके व्यवसायकी ओर ध्यान देना चाहिए। माध्यमिक शिल्प-विद्यालय प्रत्येक ज़िलेमें होने चाहिए। शिक्षण-कार्य्य उन हस्त-शिल्पोंतक ही सीमित होना चाहिए, जो उन ज़िलोंका प्रधान शिल्प-व्यवसाय है। लगभग प्रत्येक विद्यालयमें हाथके करघेसे बुनाईके शिक्षणकी विशेष व्यवस्था होनी चाहिए। बड़े विद्यालयोंमें जहाँ यान्त्रिक व्यवसायकी शिक्षा दी जाती है, जिसका ज़िक्र मैं कर चुका हूँ, व्यवस्थापक और प्रधान मिस्त्रीके शिक्षणकी भी व्यवस्था होनी चाहिए, और कम-से-कम शिल्प-सम्बन्धी रसायन (इण्डस्ट्रियल केमेस्ट्री), यान्त्रिक इञ्जिनीयरिङ्ग, बुनाई-सम्बन्धी व्यवसाय और चीनी साफ़ करनेकी शिक्षा दी जानी चाहिए। रुड़कीके थौम्सन इञ्जिनीयरिङ्ग, कालेज़में जो उन्नति हुई है और होनेवाली है उसके लिये मैं धन्यवादपूर्वक स्वीकृति देता हूँ। किन्तु मेरा निवेदन है कि टोकियोके समान उच्च कोटिके शिल्प-विद्यालयकी इन प्रान्तोंमें अत्यधिक और अनिवार्य्य आवश्यकता है, और अपनी समझसे मैं कोई तर्क विरुद्ध और अधिक उदार माँग सरकारके समक्ष नहीं उपस्थित कर रहा हूँ। युक्तप्रदेशके समान विशाल प्रदेशके लिये स्पष्ट रूपसे सरकारका यह कर्त्तव्य है कि वह कम-से-कम उपर्युक्त प्रकारके एक महाविद्यालयकी स्थापनाकी व्यवस्था करे।

माध्यमिक शिल्प-विद्यालयके सम्बन्धमें, मेरे विचारसे सरकारको प्रत्येक ज़िलेमें इस प्रकारका एक विद्यालय स्थापित करना चाहिए। प्रारम्भिक रूपमें, यदि कमिश्नरियोंमें भी ऐसे विद्यालय स्थापित हो जायँ तो मुझे सन्तोष होगा। यथा:—बुनाईकी शिक्षाके लिये, रँगाईकी शिक्षाके लिये, कीमियाद्वारा धुलाई, छींटकी छपाई, लुहारी, बढ़ईगिरी, क़लईगिरी आदिकी शिक्षा। इन

विद्यालयोंमें प्रधान मिस्त्री और सहकारी मिस्त्रीकी भी शिक्षा दी जानी चाहिए।

बुनाईके विद्यालयोंको मैं अधिक महत्त्व देता हूँ। इन विद्यालयोंके साथ कारख़ाने भी होने चाहिएँ जिनके द्वारा समुन्नत करघों और उनसे मिलते जुलते करघोंकी शिक्षा दी जाय। सम्भवतः समस्त देशोंमें भारतवर्ष प्रथम देश है, जिसने सर्वप्रथम बुनाईमें निपुणता प्राप्त की थी।

"परिस्थितियोंकी लहरने भारतीय जुलाहोंको करघा छोड़कर हल पकड़नेके लिये बाध्य किया"। किन्तु करघे अभी भी भारतीय बुनाईके व्यवसायमें किफ़ायतके विचारसे अधिक महत्त्व रखते हैं। पुतलीघरोंमें बिजलीसे जितना वस्त्र तैयार होता है उसका दूना अभी भी हाथके करघोंपर तैयार किया जाता है। गत जनसंख्याके अनुसार केवल इन प्रान्तोंमें साढ़े नौ लाख श्रमिक बुनाईके व्यवसायमें काम करते थे। यदि बड़े पैमानेपर समुन्नत करघोंका प्रयोग हो तो अभी भी भारतीय जुलाहोंका भविष्य समुज्ज्वल हो सकता है।

मैं इस आवश्यकताका समर्थक हूँ कि यदि हमें पश्चिमके सबल प्रतिस्पर्द्धियोंका सफलतापूर्वक सामना करना अभीष्ट है तो हाथोंके करघोंका स्थान यन्त्रद्वारा सञ्चालित करघोंको दिया जाना चाहिए। किन्तु मैं उन लोगोंमें नहीं हूँ जो यह सोचते हैं कि हमें प्राचीन घरेलू व्यवसायको व्यर्थ समझकर परित्याग ही कर देना चाहिए। हमें स्मरण रखना चाहिए कि आबादीके बहुत कम लोग ही इस महान् साहसपूर्ण शिल्प-व्यवसायमें सम्मिलित हो सकेंगे। शिल्पी समुदायकी दशाको समुन्नत करनेकी समस्या ज्यों-की-त्यों रह जायगी, यदि उन्हें अपने व्यवसायमें अधिक निपुणता प्राप्त करनेकी शिक्षा न दी जायगी, ताकि कम-से-कम वे अपनी रोटीभर कमानेकी तो योग्यता प्राप्त कर सकें। इस सम्बन्धमें राजकुमार क्रोपैटकिनकी सम्मति उपयुक्त है। आपका तर्क है कि 'केन्द्रापसारी शक्तिका इसमें प्रधान हाथ है, केवल कृषिमें ही नहीं बल्कि शिल्प-सम्बन्धी अधिकांश भागोंमें भी। छोटे कारबार यदि विवेकके साथ सञ्चालित हों और वैज्ञानिक साधनोंका लोगोंको सहयोग प्राप्त हो तो वह उत्पादन और लाभ दोनों दृष्टिसे बड़े व्यवसायको हरा सकता है।' एक दूसरे लेखक श्री जी० ए० हौब्सनने ठीक ही कहा है कि :—

'जिस राष्ट्रका समस्त शिल्प-व्यवसाय कारख़ानेकी पद्धतिके अन्तर्गत हो गया है और बड़े व्यवसाय कोठीवालोंके हाथ जा रहा है वहाँ सभी मज़दूर क्रमशः साझेदार पूँजीवाली कम्पनीके नौकर हो जाँयगे, और सबसे उच्च कोटिके सुविकसित यन्त्रके उपयोग होने लगँगे। इसको सबसे अधिक वैज्ञानिक सङ्गठन कहना और उसे व्यापक रूप देना भ्रमात्मक है, कारण व्यवसायके आँकड़ोंसे इसका समर्थन नहीं होता है। ट्रस्ट और कम्पनियोंके आकस्मिक उत्थानकी ओरसे अपनी दृष्टि हटाकर जब हम व्यवसाय-सम्बन्धी क्षेत्रकी अधिक शान्तिसे पैमाइश करते हैं तो हम प्राचीन व्यवसायके अन्तर्गत छोटे-छोटे कारबारको उत्पन्न होते ही नहीं देखते, किन्तु अल्प उत्पादनके आधारपर नये व्यवसायोंकी उत्पत्ति भी देखते हैं। जो लोग उन छोटे अथवा घरेलू व्यवसायोंको घृणाके भावसे रोगग्रस्त और रुचिके विरुद्ध बताकर त्याग देते हैं, जो सस्ती मज़दूरी और अधिक परिश्रमके कारण सजीव बने हैं, वे उन अधिक आवश्यक कारणोंकी अवज्ञा करते हैं, जो छोटे-छोटे घरेलू व्यवसायको जीवित रखनेके लिये सयत्न हैं। धातु-सम्बन्धी व्यापारके केन्द्रोंके व्यवसायका, जैसे बर्मिङ्घम और शेफ़िल्डमें अधिकतर भाग छोटे लोगोंके अधिकारमें हैं।'

भारतवर्षकी स्थिति, हस्त-शिल्पकी रक्षा और पुनरुत्थानकी आवश्यकताको अधिक आवश्यक बनाती है, और इनमें हाथके करघेकी बुनाईका अधिक विस्तार वाञ्छनीय है और बहुत सरलताके साथ इसकी अधिक उन्नति सम्भव है। मैं सरकारसे आदर्श-बुनाई-विद्यालय, हाथके करघोंके कारख़ाने

आदिकी स्थापना इन प्रान्तोँके उचित स्थानोँपर करनेके लिये विशेष प्रार्थना करनेका साहस करता हूँ।

यह भी आवश्यक है कि सभी साधारण विद्यालयोँमेँ हाथके कामकी शिक्षाके लिये शिक्षण-प्रथाका आरम्भ हो। हस्तकौशलकी महत्तापर बोलते हुए हार्वर्ड विश्वविद्यालयके प्रोफ़ेसर विलियम जेम्स् कहते हैँ:—

"माध्यमिक शिक्षामेँ सबसे विशाल उन्नति जो गत वर्षोँमेँ हुई है, वह शिक्षामेँ हस्त-सम्बन्धी विद्यालयोँको स्थान देना है। केवल इस लिये नहीँ कि इस प्रकारकी शिक्षासे घरेलू जीवनके लिये अधिक परिश्रमी और अधिक व्यवहार-कुशल व्यक्ति तथा व्यापारमेँ अधिक कुशल व्यक्ति प्राप्त होँगे, परन्तु इसलिये कि इस शिक्षासे अत्यन्त विभिन्न बौद्धिक चरित्रके व्यक्ति प्राप्त होँगे। प्रयोग-शाला-सम्बन्धी कार्य्य और दूकानदारीके कार्य्यसे सूक्ष्म दर्शनका अभ्यास बढ़ेगा, गम्भीरता और ओछेपनका भेद मालूम होगा, प्रकृतिकी गहनताके लिये अन्तर्दृष्टि होगी और सच्ची घटनाओँके सम्बन्धमेँ मौखिक प्रमाणोँकी अपर्य्याप्तता, जो एक बार मस्तिष्कके सामने आनेसे जीवनपर्यन्त ज्योँ-के-त्योँ बने रहते हैँ, दूर हो जायगी। इससे यथार्थता, निष्कपटता, आत्मनिर्भरताका विश्वास उत्पन्न होता है। एक प्रकारसे यह शिक्षण-पद्धति विद्यार्थियोँको अवस्थाके अनुरूप स्वयंजात रुचिकी सामग्री प्रदान करती है। ये इन्हेँ तल्लीन करती हैँ और इनके मस्तिष्कपर स्थायी गम्भीर प्रभाव डालती हैँ। इस पद्धतिद्वारा शिक्षित व्यक्तिकी तुलना उस विद्यार्थीसे कीजिए जिसकी शिक्षा एकमात्र पुस्तकोँके आधारपर हुई है, जो जीवनपर्य्यन्त वास्तविकतासे दूर ही पड़ा रहता है, जो यथार्थ क्षेत्रके बाहर ही रहता है, और जो स्वयं पार्थक्यका अनुभव भी करता है, और प्रायः एक प्रकारकी उदासीका शिकार बना रहता है, जिस उदासीसे अधिक वास्तविक शिक्षाद्वारा वह मुक्त किया जा सकता था"।

अमेरिका तथा अन्य समुन्नत देश, जिन्होँने वैज्ञानिक आधारपर शिक्षाकी राष्ट्रीय पद्धतिमेँ उन्नति की है—वहाँ सुशिक्षित व्यक्ति वह माना जाता है जिसने हस्त-शिक्षामेँ भी कुशलता प्राप्त की है। यही भाव यहाँ भी होना चाहिए।

इस विषयपर अपना कथन मैँ सर्वसाधारण और सरकारका ध्यान गत पच्चीस वर्षमेँ जापानमेँ, जो महान् व्यावसायिक उन्नति हुई है उस ओर और व्यावसायिक शिक्षाकी उस प्रशंसनीय पद्धतिकी ओर, जिसने उक्त उन्नति की है, आकृष्ट किए बिना नहीँ रह सकता। इससे हम अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैँ। आजसे तीस वर्षसे कम पहले जापान भी भारतके समान ही कृषि-प्रधान देश था। अब यह एक महान् व्यापारिक और व्यावसायिक देश हो गया है। जापानका कृषि-सम्बन्धी निर्यात, जिसमेँ रेशमका कच्चा माल शामिल है, कुल निर्यातका सन् १८९० ई० मेँ ५१.७ प्रतिशत था। सन् १९०२ ई० मेँ घटकर यह ३७.८ प्रतिशत हो गया, जब कि उसके व्यवसाय-सम्बन्धी निर्यातमेँ अठारहसे अड़तीस प्रतिशतकी वृद्धि हुई। इन निर्यातोँमेँ बुने माल, सूतके धागे, कच्चा रेशम, काग़ज़, चीनीके वर्त्तन, मिट्टीके वर्त्तन, लाहके वर्त्तन और दियासलाइयाँ आदि शामिल हैँ। यह परिवर्त्तन जापानमेँ व्यवसाय-सम्बन्धी शिक्षाके आरम्भसे हुआ है।

जापानमेँ व्यावसायिक शिक्षाका आरम्भ सन् १८७३ ई० मेँ हुआ, जिसके फलस्वरूप टोकियोका इञ्जीनियरिङ्ग कालेज्, इसके पश्चात् टोकियोँमेँ शिल्पकी उच्च शिक्षाके लिये विद्यालयोँकी स्थापना सन् १८८१ ई० के मई मासमेँ हुई, और जिसकी स्वीकृति दस मई सन् १९०१ ई० को दी गई है। कालान्तरमेँ शिल्प-सम्बन्धी माध्यमिक और प्रारम्भिक शिक्षणालयोँकी स्थापना हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १८९८ ई० मेँ जापानके मन्त्रीने अपनी रिपोर्टमेँ उल्लेख किया, कि "व्यवसाय अब सीमित क्षेत्रसे उन्नत कर विशाल दायरेपर अधिक सुसङ्घटित

पद्धतिपर प्रगति कर रहा है। सरकारने योग्य अध्यापकोंकी शिक्षाका पूर्णतः अनुभव किया और इस उद्देशकी सिद्धिके लिये उच्च कोटिकी शिल्प-शिक्षाके लिये विद्यालयोंकी संख्यामें वृद्धि की।

जापानमें आज जो व्यावसायिक शिक्षा प्रचलित है उसके तीन भाग हैं :—

(१) प्रारम्भिक अथवा सबसे निम्न कोटिका शिक्षणालय—इस प्रकारके चौंतीस सहायक शिल्प-विद्यालय हैं, और तैंतीस उम्मेदवारोंके विद्यालय हैं। इन विद्यालयोंमें सन् १९०२ ई० में कुल व्यय दो लाख तेरह हज़ार दो सौ पचपन रुपए हुए।

(२) माध्यमिक अथवा वीचके शिल्प-सम्बन्धी शिक्षणालयोंकी संख्या पच्चीस है, जिनको सन् १९०२ ई० में सरकारसे नौ लाख तीन हज़ार रुपएसे अधिककी सहायता मिली।

(३) उच्च शिक्षाके लिये तो उच्च श्रेणीके शिल्प-विद्यालय हैं, पाँचवें उच्च विद्यालयका इञ्जीनियरिङ्ग-विभाग और राजकीय विश्वविद्यालयके इञ्जीनियरिङ्ग कौलेज्।

सहकारी शिल्प-विद्यालयोंमें पढ़ाए जानेवाले साधारण विषयोंमें आचारकी शिक्षा भी शामिल है। जापानी भाषा, अङ्कगणित, विशेष विषय, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्रयोगात्मक ज्यामिति, ड्राइङ्ग, यन्त्र-सम्बन्धी शिक्षा, विज्ञान-सम्बन्धी विषय, रँगाई, बुनाई, प्रयोगात्मक रसायन, व्यवसाय-सम्बन्धी शिक्षा इत्यादि। शिल्प-विद्यालय, जिनकी संख्या सन् १९०२ ई० में पच्चीस थी, प्रधान मिस्त्री, व्यवस्थापक आदिकी शिक्षा देते थे, जिन्होंने जापानके व्यावसायिक प्रगतिमें मुख्य भाग लिया है। यह उस लेखका कथन है जिसके विवरणसे मैंने यह सब अंश उद्धृत किए हैं। उच्च कोटिके शिल्प-शिक्षणालय व्यावहारिक गुणको अधिक महत्त्व देते हैं, और ये विद्यालय अनेक कारख़ानोंसे सम्बद्ध हैं, नवीन-से-नवीन औज़ार और पुस्तकोंसे सम्पन्न हैं ताकि ये अपने विद्यार्थियोंको व्यावसायिक उन्नतिके सम्पर्कमें रख सकें। इन विद्यालयोंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध टोकियोका विद्यालय है। उसमें सन् १९०२ ई० में नौ सौ सत्तावन विद्यार्थी और एकसठ शिक्षक थे और व्यय वारह हज़ार तीन सौ छाछठ रुपए हुए। इस प्रकार उच्च कोटिकी शिल्प-शिक्षाके लिये जापान-सरकार, जो धन व्यय करती है और अनेक माध्यमिक और प्रारम्भिक शिल्प-शिक्षाके लिये व्यय करती है, वह सन् १९०२ ई० में साढ़े चार लाखसे कम था। क्या इन प्रान्तोंकी सरकारसे यह माँगना अधिक है कि जापानके समान ही व्यावसायिक शिक्षाकी पद्धतिके निर्माणके लिये उपर्युक्त अल्प धन व्यय करे, जिस प्रान्तसे वह वारह करोड़ कर पाती है? सार्वजनिक शिक्षाकी किसी अन्य शाखाको इससे अधिक तात्कालिक ध्यानकी आवश्यकता नहीं है। सरकारको इस शिक्षाको आदर्श और पथप्रदर्शक रूपमें ग्रहण करना चाहिए और उसे उन लोगोंकी उन्नतिके नव वर्षका दूत बनाना चाहिए, जिनके कल्याणका दायित्त्व उनपर है।

किन्तु कृषि और व्यवसाय दोनों शिक्षा-प्रणालियोंका निर्माण साधारण प्रारम्भिक शिक्षाकी भित्तिपर होना चाहिए। अभी भी हम इस प्रकारकी शिक्षाके सम्बन्धमें कितने पिछड़े हुए हैं, यह खेदजनक वात है। यह जानकर सन्तोष होता है कि भारत-सरकार समस्त देशमें प्रारम्भिक शिक्षाको निःशुल्क करनेका विचार कर रही है। इस मार्गका अनुसरण उचित होगा। किन्तु इसके अतिरिक्त इस वातकी आवश्यकता है कि इङ्गलैण्ड और जापानकी भाँति भारतमें भी प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य्य कर दी जाय। केवल गत तीस सालके भीतर जापानने इस दिशामें कितनी उन्नतिकी है, इस ओर दृष्टिपात करनेसे भी हमारा लाभ ही होगा। इसके पूर्व जापान हमसे भी अधिक निरक्षर था। सन् १९०२ ई० में जापानमें सत्ताइस हज़ार प्रारम्भिक विद्यालय थे। इनमें पचास लाखसे अधिक वालक शिक्षा पाते थे। गत वर्ष युक्तप्रान्तमें ही केवल नौ हज़ार सात सौ निन्यानबे प्रारम्भिक विद्यालय थे।

इनमें कुल चार लाख ग्यारह हज़ार बालक शिक्षा पाते थे। जापानमें राज्यकी ओरसे सन् १६०२ ई० में प्रारम्भिक शिक्षाके लिये लगभग पाँच करोड़ वार्षिक था। युक्तप्रान्तमें कुल चौदह लाख वार्षिक व्यय होता था। यदि अभी हम जापानकी श्रेणी नहीं प्राप्त कर सकते तो क्या शिक्षाके लिये इतना कम व्यय करनेका कोई कारण है? हमारे सार्वजनिक शिक्षाके स्वर्गीय सञ्चालकने बार-बार बताया था कि भारतके अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा युक्तप्रान्तमें शिक्षापर अल्प व्यय होता है और इस प्रान्तको बम्बई प्रान्तकी बराबरीका बनानेके लिये अस्सी लाख साधारण व्ययमें वृद्धि होनी चाहिए। किन्तु बार-बार हमारे हार्दिक प्रतिनिधित्व करने पर भी, भारत-सरकारने अभीतक हमको हमारे करके पर्य्याप्त भागको शिक्षाके समान आवश्यक कार्य्यके लिये अनुमति देनेका मार्ग नहीं ढूँढ़ पाया है। हम प्रतिवर्ष राजकीय कोषमें अपने लगानसे अधिक सहायता करते हैं। अधिक शिक्षाके लिये अधिक विद्यालयोंकी आवश्यकताकी हम रट लगा रहे हैं। किन्तु हमें अभीतक यह उपहार नहीं प्राप्त हुआ है। यह हमारा दोष नहीं प्रत्युत अभाग्य है कि भारत-साम्राज्यके अन्तर्गत हमारा प्रान्त सबसे अधिक निरक्षर है।

स्थानीय और म्युनिसिपल आर्थिक अवस्थाके सम्बन्धमें भी हमारी स्थिति अधिक अच्छी नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि आजसे कुछ वर्ष पूर्वकी अपेक्षा स्थानीय और म्युनिसिपल संस्थाओंकी आर्थिक अवस्था कुछ अच्छी है, किन्तु अभी यह सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। ये संस्थाएँ नित्य कुँआ खोदती हैं और पानी पीती हैं। इनकी ऐसी स्थिति नहीं है कि अनेक आवश्यक कर्त्तव्योंका, जिनका दायित्व इनके सिरपर लादा गया है, पर्य्याप्त रूपसे ये पालन कर सकें, और जब कि हम यह विश्वास करते हैं कि ये अपने साधनकी सीमा प्राप्त कर चुकी हैं, तब भी इनकी प्रारम्भिक आवश्यकताओंकी पूर्त्ति पर्य्याप्त रूपसे नहीं कर सकती। आवश्यकता इस बातकी है कि सर्वप्रथम ज़िला बोर्ड और म्युनिसिपल बोर्डोंके साधनमें उचित वृद्धि होनी चाहिए। केवल प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारद्वारा सामयिक दानके रूपमें ही नहीं, किन्तु साधारण और विशेष कार्य्यके लिये निश्चित वार्षिक सहायता मिलनी चाहिए। यह व्यवस्था या तो राजकीय-करकी कुछ रक़म हस्तान्तरित करके अथवा सहायता रूपमें कुछ इमदाद देकर हो सकती है। दूसरी बात यह होनी चाहिए कि इन्हें प्लेगके व्ययसे नितान्त स्वतन्त्र कर देना चाहिए।

ज़िला और म्युनिसिपल बोर्डोंको ऐसी आवश्यकता हो सकती है, यह प्रश्न निर्विवाद है। सन् १६०५-६ ई० में युक्तप्रान्तकी सभी म्युनिसिपलिटियोंकी आय बहत्तर लाखसे अधिक नहीं हुई, इनका व्यय परनियन्त्रित था, अतः एकहत्तर लाखसे कुछ अधिक रहा। म्युनिसिपलिटीकी कुल बहत्तर लाख आयमें सरकारकी कुल सहायताकी रक़म दो लाख चौंतीस हज़ार रुपए अथवा सवा तीन प्रतिशत रहा।

शिक्षापर तीन लाख अथवा $\frac{४}{६}$ प्रतिशत व्यय हुआ, चिकित्सापर एक लाख पचहत्तर हज़ारसे कुछ कम अथवा अढ़ाई प्रतिशत, सफ़ाई—जिसमें जलकल-विभाग, गन्दगी और कूड़ा-विभाग, तथा रक्षा सञ्चालन समिति आदि शामिल हैं, इकतीस लाखसे कम अर्थात् तैंतालीस प्रतिशत व्यय हुआ। प्लेगके प्रकोपको रोकनेके लिये किसी सच्चे और व्यापक उपायका अनुसरण नहीं किया गया है, जो वर्षोंसे अधिकांश जनसंख्याको उजाड़ रहा है। इसके लिये प्रति व्यक्तिसे एक रुपया आठ आना तीन पाईका कर, जो म्युनिसिपलिटी उगाहती है, वह किसी तरहसे अल्प नहीं कहा जा सकता, जब कि केन्द्रीय सरकारका राज्य-कर प्रतिव्यक्ति लगभग तीन रुपए प्रतिवर्ष है, तब इसके अतिरिक्त उक्त कर इन प्रान्तोंके निर्धन व्यक्तियोंके लिये किसी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता। इस रक़मका अधिकांश भाग चुङ्गी और

अप्रत्यक्ष करद्वारा प्राप्त होता है, जो तत्काल देनेमें बड़ा अखरता है।' इससे व्यापार कम होता है और कुछ नैतिक पतन भी होता है। क्योंकि इसमें घूँस और धोखेधड़ीकी अधिक गुञ्जाइश है। प्रान्तके चीनीके व्यवसायकी दशा वैसे ही ख़राब है, और जब कि गन्नेकी खेतीके लिये पानीकी निरखमें हाल ही में वृद्धि करनेसे गन्नेकी विस्तृत खेतीके लिये कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता, तब यह कहा गया है कि फ़ैज़ाबादमें चुङ्गीके स्थानपर (जो कि लगानी नहीं चाहिए) अति शीघ्र चीनीके सफ़ाईके व्यवसायपर टेक्स लगनेवाला है।

निर्धन म्युनिसिपल बोर्डोंको अपनी आवश्यकताके वशीभूत ऐसे काम करने पड़ते हैं। सन् १९०४–०५ ई० में अनेक नगरोंमें नए कर लगाए गए। इसी वर्ष कई स्थानोंपर प्लेगके कारण ग़ल्लेकी भी कम खपत हुई, जिसका ज़िक्र म्युनिसिपल-शासन-सम्बन्धी सरकारी प्रस्तावमें आया है। सरकारकी ओरसे उस प्रस्तावमें कहा गया है कि—"जल-विभागके विस्तारकी बड़ी जगहोंमें बहुत अधिक माँग है, और यदि अधिक धन होता तो उसका व्यय अधिक लाभके कामोंमें हो सकता।" गन्दगी हटाने और मल-निष्कासन प्रणालीके लिये भी अधिक धनकी आवश्यकता है, किन्तु वह नहीं मिल रहा है। सरकारी प्रस्तावमें कहा गया है, जहाँसे मैंने यह उद्धरण लिया है कि "बहुतसे नगरोंमें अनेक योजनाएँ तैयार की गई हैं और उनकी शुरुआत की जा सकती है, किन्तु उनके लिये धन प्राप्त नहीं हो रहा है। चार स्थानोंमें नालीका काम हो रहा है। यह एक प्रस्तावित योजनाका भाग है, जो इस समय कोषकी कमीके कारण थोड़ा ही किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, बनारसके लिये सरकारने बीस लाखकी स्वीकृति दी है। अभी लखनऊ और प्रयागकी योजनाएँ तैयार हो रही हैं, जिनमें क्रमशः बीस और छः लाखके क़रीब व्यय होगा। फ़ैज़ाबादका काम अभी पूरा नहीं हो पाया है, किन्तु व्ययकी सम्भावना अत्यधिक है।"

सरकार अपने प्रस्तावमें कहती है कि 'प्लेगकी मदमें सन्तोषजनक कमी करनेके कारण प्रयाग धन्यवादका पात्र है, कारण इसके व्ययमें बत्तीस हज़ार रुपएसे अधिककी कमी हुई है। किन्तु बनारस, कानपुर और मिर्ज़ापुरसे भी गत वर्षकी अपेक्षा अल्प व्यय करनेके लिये कहा गया। प्लेगके व्ययमें कमी किए जानेका दूसरा अर्थ भी लगाया जा सकता है। अर्थात् यह कमी प्लेगकी महामारीमें कमीके कारण नहीं किन्तु, जैसा मैंने विश्वासके साथ कहा है कि यह अविचारपूर्ण मितव्ययसे हुआ है। शिक्षाकी ओर जनताका उत्तरोत्तर ध्यान जानेकी बातको सरकारने भी प्रसन्नतासे स्वीकार किया है किन्तु उससे लाभ क्या, यदि धनकी इतनी ही कमीकी आगम रही जैसी कि आज है। जो इतनी कम उन्नति हुई है उसका प्रमाण है प्रारम्भिक शिक्षाके स्कूलोंकी संख्यामें बहुत कम वृद्धि हुई है अर्थात् तीन सौ चौहत्तरसे बढ़कर अब उनकी संख्या चार सौ चौवन हुई है। सार्वजनिक स्वास्थ्यकी असन्तोषजनक दशाको ही लीजिए। सफ़ाईके लिये अभी बहुत अधिक व्यय करनेकी कितनी आवश्यकता है। रजिस्टरमें लिखित मृत्युसंख्याकी कमीको सरकार अत्यन्त सन्तोषजनक सुधार मानती है, किन्तु प्रान्तीय मृत्युसंख्याका अनुपात अत्यन्त अधिक, अर्थात् ४६·५१ प्रतिमील है, जब कि चार स्थानोंकी मृत्युसंख्याका अनुपात प्रतिमील सत्तरसे अधिक है, और अन्य चारमें साठ प्रतिमीलसे अधिक है। सत्रह म्युनिसिपैलिटियोंमें साधारण स्वास्थ्य असन्तोषजनक और बुरा रहा; और अनेक स्थानोंकी मृत्युसंख्या बहुत अधिक थी।

आगरा-म्युनिसिपैलिटीकी आर्थिक दशाके सम्बन्धमें सरकार कहती है:—

"नगरकी वृद्धिके लिये अनेक कार्य्योंको करनेकी ज़रूरत है, जिनका सम्पादन करनेके लिये इस समय साधन स्पष्ट रूपसे अपर्य्याप्त हैं। किन्तु

जलकी उत्तरोत्तर माँगके कारण अति शीघ्र एक पानीके कारख़ानेका विस्तार करनेके लिये बहुत रुपयेकी ज़रूरत है; नगरकी नालियोंका विस्तार आवश्यक है और नगरके उत्तरी भागके सुधार करनेकी आवश्यकता है। रक्षा-विभागमें एक ट्रामवेकी अत्यन्त आवश्यकता है, और एक फ़्रीगञ्ज निर्माणकी योजना अभी विचाराधीन है, यह थोड़ेसे आवश्यक कार्य्योंकी नामावली है। ऐसा प्रतीत होता है कि बोर्डकी साधारण आय उसके कामके लिये भी पर्य्याप्त नहीं है। उसे बोर्डको योग्य स्थितिमें रखनेके लिये और नए कामोंके व्ययके लिये निश्चय ही अधिक धनकी आवश्यकता है।”

जो आय स्थानीय करसे होती है, वह पहलेसे ही अधिक है, जैसा कि सरकार स्वीकार करती है कि प्रतिव्यक्ति दो रुपया एक आना नौ पाई है, जो प्रान्तीय अनुपातसे अत्यधिक है। अतः नया कर बैठानेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। यदि कथित अनेक कार्य्योंको करना है तो प्रान्तीय कोषसे अवश्य सहायता मिलनी चाहिए। प्रयागके सम्बन्धमें मैं वही कह सकता हूँ जो सरकारने आगराके विषयमें अत्यन्त आवश्यक सुधार बताए हैं, किन्तु उसकी आर्थिक अवस्था प्रमुख कार्य्योंको पूरा करनेके लिये भी अनुमति नहीं देती। दूसरे प्रथम श्रेणीके नगर, बनारसके सम्बन्धमें, जहाँ मृत्युसंख्या प्रतिमील ६७·९९ थी, सरकारका कहना है कि—

“स्थिति अभीतक असन्तोषजनक ही है, आवश्यक सार्वजनिक कार्य्योंके व्ययमें कमी करके भी बोर्ड बजटकी कमीको पूरा नहीं कर सका, यदि असाधारण रक़मोंको अलग कर दें तो भी पच्चीस हज़ार रुपएकी कमी रह जाती है। यदि यात्री-करको संशोधित रूपमें भी बैठाना असम्भव न समझा गया तो बोर्डको शीघ्र ही अपनी आय बढ़ानेके लिये कोई अन्य मार्ग ढूँढ़ना होगा। नालीके लिये, जल-विभागके लिये और रक्षा-सञ्चालक समिति आदि सभी विभागोंको रुपएकी आवश्यकता है।”

मुझे आशा है कि यात्री-कर किसी रूपमें भी पुनर्जीवित नहीं किया जायगा। 'सरकारकी ओरसे अवश्य सहायता मिलनी चाहिए। लखनऊके सम्बन्धमें तो कहा जाता है कि 'यह बहुत कठिन मालूम पड़ता है कि बोर्डके वर्त्तमान साधन बलपर किस प्रकार नाली निर्माणका काम पूरा हो सकेगा।'

उपसंहारमें सरकार कहती है कि—नालियोंके लिये, कुओंकी उन्नतिके लिये और अन्य जलके साधनोंकी उन्नतिके लिये, गलियोंमें ईंट बिछानेके लिये और रक्षण-समिति तथा सफ़ाई-विभागके निरीक्षणके विस्तारके लिये अधिक धनकी आवश्यकता है। प्रान्तीय सरकारने अपनी शक्तिभर प्रदान किया है और अधिक सहायताकी आवश्यकताकी ओर भारत-सरकारका ध्यान आकृष्ट किया है। आगरा और बनारस जैसे प्रसिद्ध नगरोंके तथा अन्य नगरोंने नामोल्लेखकी आवश्यकता नहीं। अत्यन्त आवश्यक कार्य्योंके लिये अधिक धनकी आवश्यकता है, जिसके सम्पादनके लिये धनाभावके कारण कोई तात्कालिक प्रत्याशा नहीं है।

वक्तव्यके इस अंशसे मेरा कोई विवाद नहीं है कि प्रान्तीय सरकार म्युनिसिपल बोर्डको इमदाद देनेमें अपनी शक्तिकी सीमातक आ पहुँची। मैं सरकारको इस कार्य्यके लिये धन्यवाद देता हूँ कि उसने अधिक सहायताकी आवश्यकताकी ओर भारत-सरकारका ध्यान आकृष्ट किया है। मैं जिस बातपर ज़ोर देना चाहता हूँ वह इस प्रकारकी सहायता देनेमें शीघ्रता करनेका है। जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ कि अभी हालके सन् १९०४-५ ई० में सरकारने जो इमदाद दी है वह उस रक़मके ३⅛ प्रतिशतसे अधिक नहीं है जो सरकार म्युनिसिपलिटियों से सहायतामें पाती है, और यथार्थमें यह रक़म बहुत थोड़ी है। इस प्रकारकी सहायताका सिद्धान्त सरकारद्वारा स्वीकृत हो जानेपर, मेरी उत्कट अभिलाषा यह है कि सरकारने इस ओर जितना अभीतक किया है उससे बहुत अधिक करना ज़रूरी था। यह

योरोपीय देशोंमें किया जाता है, किन्तु भारतकी स्थिति, और विशेषतः इन प्रान्तोंकी आवश्यकता इसे तुरन्त चाहती है। इसके विशेषज्ञ प्रोफ़ेसर निकलसनने अपनी हालकी एक पुस्तकमें बताया है कि गत साठ सालसे प्रत्येक उदार और अनुदार दोनों सरकारने ही स्थानीय संस्थाओंके लिये सरकारी सहायताकी आवश्यकता स्वीकृत की है। प्रोफ़ेसर वैस्टेबिलकी भी सम्मति है कि सन् १८७० ई० के बादसे आजतक इङ्गलैण्डकी स्थानीय संस्थाओंके आर्थिक मामलोंमें जो परिवर्त्तन हुए हैं उनमें प्रधान स्थानीय कार्य्यके लिये राज्यकी आयमेंसे उत्तरोत्तर अधिक ख़र्च मिला है।

सन् १८४२-४३ई० में इङ्गलैण्ड और वेल्समें स्थानीय संस्थाओंके कार्य्यके लिये अट्ठानबे प्रतिशत धन नगरों ही से मिला और पार्लियामेण्टने केवल दो प्रतिशतकी सहायता दी। सन् १८९१-९२ ई० में अर्थात् पचास सालमें इस अनुपातमें परिवर्त्तन हुआ और उन्यासी प्रतिशत करसे और एक्कीस प्रतिशत पार्लियामेण्टसे मिला। और सन् १९०२-१९०३ ई० में इङ्गलैण्ड और वेल्सकी म्युनिसिपैलिटियों-के व्ययका केवल उन्तीस प्रतिशत करसे दिया गया और करका एक चौथाई भाग राज्यकी ओरसे राज्य-कर-कोषसे दिया गया और शेषकी पूर्त्ति अन्य करोंद्वारा और ऋण लेकर की गई।

इङ्गलैण्डकी आर्थिक स्थितिके उक्त कथनद्वारा यह स्पष्ट विदित होता है कि अधिक बुद्धिमानी और आवश्यकता इस बातकी है कि स्थानीय संस्थाओंसे जितनी आय करसे होती है उससे अधिक धन देकर सरकार उनकी सहायता करे। यह कार्य्य, जैसा कि मैंने पहले कहा है, दो प्रकारसे किया जा सकता है। एक तो सरकारी इमदादसे अथवा राज्य-करकी आयका कुछ भाग बाँध देनेसे, जैसे आबकारी-विभागकी आय अथवा इनकम-टेक्सको स्थानीय कार्य्योंमें लगा देनेसे। आवश्यकता इस बातकी है कि जिस उदार सिद्धान्तके आधारपर स्थानीय संस्थाओंको सहायता प्रदान करनी चाहिए, उसको पहले स्वीकार करना चाहिए। कुछ सेवाओंके लिये केन्द्रीय सरकार मुख्यतः उत्तरदायी है; यद्यपि शासन-प्रबन्धकी दृष्टिसे केन्द्रीय-सरकार कुछ कार्य्योंके सम्पादनका भार स्थानीय संस्थाओंके अधिकारियोंको सुपुर्द कर देती है। इस प्रकार ये संस्थाएँ केन्द्रीय सरकारकी एजेण्टमात्र हैं। अतएव राष्ट्रीय कोषसे आवश्यक व्ययके लिये इन्हें सहायता प्राप्त होनी चाहिए। स्थितिके प्रत्येक पहलूपर दृष्टि रखते हुए मैं यह सोचनेका साहस करता हूँ कि यह सर्वमान्य बात है कि स्थानीय करमें चाहे जो संशोधन हो, किन्तु राज्य-कोषसे उक्त संस्थाओंको सहायताके रूपमें वर्त्तमान समयकी अपेक्षा और अधिक मिलना चाहिए। जब सुसम्पन्न इङ्गलैण्डके लिये यह बात सत्य है तब भारत और विशेषकर इस प्रान्तके लिये तो इसकी अत्यावश्यकता है।

आर्थिक न्याय और अधिक आवश्यकताकी माँगका तक़ाज़ा है; और यह भी उतना ही स्पष्ट है कि जबतक म्युनिसिपल और ज़िला बोर्डोंके साधनोंमें अधिक वृद्धि नहीं होती तबतक उन्नतिकी कोई आशा नहीं है।

वे सब प्रश्न, जिनका जनतापर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, उनमें प्लेग सबसे अधिक और शीघ्र ध्यान देने योग्य है। आज सात सालसे यह रोग हम लोगोंके विनाशका कारण बन रहा है। इस अवधिके भीतर इस महामारीसे जितनी मौतें हुई हैं, वे भयानक हैं। इससे जो पीड़ा हुई है, वह अवर्णनीय है। सन् १९०५-६ ई० में प्लेगसे तीन लाख तिरासी हज़ार आठ सौ दो मौतें हुईं। वर्त्तमान वर्षकी मृत्यु-संख्या मैं नहीं बता सकता, किन्तु प्रति सप्ताहकी मृत्यु-संख्या जो गजटमें प्रकाशित होती रही है, उसके आधारपर विचार करनेसे इस वर्षकी मृत्यु-संख्या भी बहुत बड़ी होनेकी सम्भावना है। इन आँकड़ोंसे जो कष्टका अनुमान लगाया जा सकता है, उस दृष्टिसे यह प्रश्न-सङ्कत प्रतीत होता है कि इस महामारीद्वारा, जो जनताका विनाश हो रहा है उसे रोकनेके लिये या

उससे बचनेके लिये सरकार क्या उपाय कर रही है ? यह निर्विवाद विषय है कि सरकारका यह कर्त्तव्य है कि वह इस शत्रुकी प्रगतिको रोकनेके लिये उत्तम-से-उत्तम साधनका प्रयोग करे और जहाँतक सम्भव हो इसके संहारसे जनताकी रक्षा करे। किन्तु जनतामें यह विचार फैल रहा है कि सरकार इस मामलेमें पूर्ण रूपसे अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं कर रही है। वास्तविक बात यह है कि प्रारम्भिक वर्षकी अपेक्षा इस दिशामें अब यह और कम प्रयत्न कर रही है। यथार्थमें इस दिशामें अधिक कार्य्यशीलता और व्ययकी आवश्यकता है।

कई सालके कटु और खेदजनक अनुभवने जनताको यह विश्वास करनेकी शिक्षा दी है कि प्लेगसे बचनेका अचूक उपाय यह है कि जहाँतक शीघ्र सम्भव हो प्लेगके प्रकोपवाले क्षेत्रसे हटकर अन्यत्र चला जाय। अतः परिस्थितिकी पहली आवश्यकता यह है कि इस अनुभवसे लाभ उठानेके लिये राज्यकी ओरसे जितनी सहायता सम्भव हो, वह इन्हें मिलनी चाहिए। इस कार्य्यका सम्पादन आवश्यक है, जिसका सरकारसे अनुरोध करना मेरा कर्त्तव्य है। मेरा निवेदन है कि ज़िला और म्युनिसिपल बोर्डपर प्लेगके व्ययका भार लादना और उनसे इस व्ययको सहन करनेके लिये कहना उचित नहीं है, क्योंकि यह व्यय सरकारी आयमेंसे मिलना चाहिए। प्लेग कोई स्थानीय विपत्ति नहीं है, किन्तु इसका विस्तार प्रान्तोंकी समस्त भूमिपर होता है। न्यायपरायणताके साधारण सिद्धान्तके अनुसार प्रोफ़ेसर निकलसनकी उक्ति है,—'राष्ट्रीय व्यय, राष्ट्रीय कोषसे दिया जाना चाहिए। ठीक उसी प्रकार स्थानीय लाभका कार्य्य स्थानीय कोषसे होना चाहिए।' प्लेग राष्ट्रीय व्यय है न कि स्थानीय, और स्थानीय संस्थाओंसे, जिनके अति स्वल्प साधन हैं, उनपर वह ख़र्च नहीं बैठाना चाहिए जो बहुत पहलेसे राष्ट्रीय और राज्यका कार्य्य है।

इन प्रान्तोंके सन् १९०४-०५ ई० के म्युनिसिपल शासनकी आलोचना करते हुए सरकारने प्रसन्नता और उदारतापूर्वक उनके उत्तम कार्य्योंकी प्रशंसा की थी। सरकारने लिखा कि—"अन्ततः यह कहा जा सकता है कि म्युनिसिपल बोर्डोंने अपने दायित्त्वका न्यायोचित पालन किया है, इनका शासन-प्रबन्ध प्रगतिशील दायित्त्वके भावसे प्रेरित हुआ है और इनकी सेवाओंकी प्रशंसा नागरिकों एवं सरकार दोनोंने ही की है। इस प्रान्तमें म्युनिसिपल स्वायत्त-शासनकी आशाजनक उन्नतिपर छोटे लाट प्रसन्नतासे सन्तोष प्रकट करते हैं।" मेरा निवेदन है कि म्युनिसिपल बोर्डने शासन-प्रबन्धमें जो सफलता प्राप्त की है उसकी व्यावहारिक स्वीकृति इससे बढ़कर अन्य नहीं हो सकती कि सरकार उसके हाथोंमें शासन-प्रबन्धको अधिक और पर्य्याप्त रूपमें प्रदान करनेकी उदारता दिखावे, ताकि वह इससे और अधिक उपयोगितासे सार्वजनिक सेवा कर सके और सरकार तथा जनता दोनोंकी प्रशंसाकी पात्र बन सके।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि इन प्रान्तोंको स्वास्थ्य और ओषधिकी सहायताकी अधिक आवश्यकता उत्तम रीतिसे करनेके लिये प्रत्येक ज़िले और नगरमें, जहाँ प्लेगका प्रकोप हो, शिविरोंकी स्थापनाकी आवश्यकता है। ये शिविर प्रकोपके क्षेत्रसे बाहर लगने चाहिएँ, जैसा कि प्रयागमें प्रतिवर्ष हुआ करता है। आजसे तीन वर्ष पूर्व सरकारने ऐसे शिविरोंकी स्थापनाका अनुभव किया था, और ऐसे शिविरोंके प्रोत्साहनके लिये प्रस्ताव भी पास किया था; किन्तु आदेश निष्फल हुए। क्योंकि सरकारने यह नियम बना दिया कि जो लोग इन शिविरोंमें रहेंगे, उन्हें अपनी रक्षाका स्वयं प्रबन्ध करना पड़ेगा। यदि सरकार म्युनिसिपल और ज़िला बोर्डोंको ऐसे शिविरकी स्थापना और उन शिविरोंमें रोशनी और जलका प्रबन्ध करनेका आदेश कर देगी और यदि सरकार ऐसी आज्ञा घोषित कर दे कि ज़िला-अधिकारी शिविरमें बसनेवालोंकी रक्षाके लिये पुलीसका प्रबन्ध कर दें तो

लाखों आदमी इन शिविरोंमें आश्रय लेनेको तैयार हो जायँगे और मौतके मुखमें पड़नेकी बजाय रक्षा पानेके लिये सरकारको धन्यवाद देंगे।

प्लेगसे स्थायी त्राण पानेके लिये दूसरा आवश्यक कार्य्य जनताकी बस्तीकी सफ़ाई कराकर शुद्ध, स्वच्छ और स्वस्थ रखनेके उपायोंको करनेकी आवश्यकता है। आजसे तीन वर्ष पूर्व कहा गया था कि इन प्रान्तोंकी सरकारने सफ़ाईके प्रमुख प्रश्नको अपने हाथमें लेनेकी बात ठानी है, किन्तु हम देख चुके हैं कि एकमात्र रुपए को कमीके कारण सफ़ाईकी ओर कितना कम ध्यान दिया गया है। परिस्थितिकी माँग यह है कि सफ़ाईके लिये सुनिश्चित और व्यापक योजनाका अनुसरण होना चाहिए। स्वच्छताके स्वीकृत सिद्धान्तपर प्रत्येक म्युनिसिपैलिटीको आदर्श ग्रामोंका निर्माण करना चाहिए; और शहरकी घनी बस्तीसे अलग स्वीकृत सिद्धान्तपर सार्वजनिक भूमि कुछ व्यक्तियोंको सस्ते पट्टेपर देकर गृह-निर्माणके लिये उत्साहित करना चाहिए। यह कहते हुए मैं बड़ी कृतज्ञताका अनुभव करता हूँ कि प्रयागमें मेरी प्रस्तावित योजनाके अनुसार सरकारने उदारतापूर्वक इस प्रकारके अस्सी नये मकानोंके निर्माणके लिये, जो कि एक आदर्श गञ्जके रूपमें होगा, सस्ते पट्टेपर भूमि दिए जानेकी स्वीकृति दे दी है। आवश्यकता इस बातकी है कि जिस नीतिका प्रारम्भ इतनी सुन्दरतासे प्रयागके लूकरगञ्जमें हुआ है उसको उस शहरके अन्य भागोंमें भी जारी रखना चाहिए तथा संयुक्तप्रान्तके अन्य नगरों, क़स्बों और गाँवोंमें उसके अनुकूल कार्य्य होना चाहिए।

यह भी आवश्यक है कि गाँवों और नगरों दोनोंमें घनी बस्तियोंको विरल बनाना चाहिए, अस्वास्थ्यकर निवास-स्थानोंमें सुधार होना चाहिए अथवा उन्हें नष्ट कर देना चाहिए, तङ्ग गलियाँ अधिक चौड़ी होनी चाहिए, इनमें ईंट विछनी चाहिए और सम्पूर्ण प्रान्तमें नालियोंकी दशामें उन्नति करके सुधार करना चाहिए।

जिन प्रस्तावोंको मैंने उपस्थित किया है, वे आवश्यकताकी दृष्टिसे वड़े और उनमेंसे कुछ प्रचण्ड हैं, किन्तु ये न तो व्यवहारमें असम्भव हैं और न फ़िज़ूलख़र्चवाले हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफ़ाईकी समुन्नतिके लिये इङ्गलैण्डमें इसी प्रकारके उपायोंका अनुसरण किया जाता रहा है।

निर्धनोंके निवास-स्थानके सम्बन्धमें स्थानीय शासन-विभागका कर्त्तव्य पार्लियामेण्टके अनेक विधानमें निर्दिष्ट है। मज़दूर-वर्गके लिये नये निवास-गृहके निर्माण, या वनेहुओंको ख़रीदनेका अधिकार अनेक विधानोंमें स्वीकृत है। मज़दूरोंके गृह-निर्माणके लिये म्युनिसिपैलिटीको राज्यकोषकी अनुमतिसे अधिक कालके लिये वोर्डकी भूमिको पट्टेपर उठानेका अधिकार प्राप्त है। कारीगरों और मज़दूरोंके निवास-स्थानकी उन्नतिवाले सन् १८७५ ई० के विधानमें, आवश्यक क्रय, अस्वास्थ्यकर क्षेत्र और क़स्बोंकी सफ़ाई और इनकी वर्त्तमान दशामें उन्नति करने आदिकी अनुमति है। नगरकी सफ़ाईके अधिकारियोंको आवश्यक अधिकार दे दिए गए हैं।

हमारे म्युनिसिपल वोर्ड भी इसी प्रकारके कुछ अधिकारका प्रयोग कर सकते हैं। किन्तु इन्हें सरकारी आदेश और कोष दोनोंकी इस कार्य्यके सम्पादनके लिये आवश्यकता है, और सरकारको चाहिए कि विना विलम्ब और टाल-मटोल किए उक्त सहायता प्रदान करे।

उक्त सभी प्रस्तावोंके सम्पादनके लिये वहुत अधिक धन व्यय करनेकी आवश्यकता है। किन्तु इस व्ययके लिये जनता कररूपमें जो धन सरकारको देती है वहुत काफ़ी है। हमारी दशा ख़राब रहने और उसके कारण हमारी यातना दोनों ही सरकारके इस आचरणके फलस्वरूप हैं कि वह करका अधिक भाग शाही कामोंमें व्यय करती है और जनताके अत्यन्त आवश्यक भलाईके कामोंमें व्यय करनेके लिये उसका वहुत कम भाग देती है। मैं यहाँ आँकड़ोंको उपस्थित करना नहीं चाहता। गत कुछ वर्षोंमें इस प्रकारके आँकड़े

हम लोग उपस्थित कर चुके हैँ, और उनसे यह दिखाया है कि यह प्रान्त-आयका सबसे अधिक भाग देता है, जो कि सम्पन्न बङ्गालसे भी अधिक तथा बम्बईकी अपेक्षा और भी अधिक है। हमारे दिए हुए करका बहुत थोड़ा भाग हमारी सभी घरेलू उन्नति और सुधारके लिये जो प्रतिशत सरकार देती है वह भारतके किसी भी प्रान्तकी अपेक्षा बहुत थोड़ा है। आधुनिक प्रान्तीय कोषका बँटवारा मनमाना और अनुचित है। इसमेँ न तो हमारी आवश्यकताका ही ध्यान रक्खा जाता है और न हमारे राजकोष-प्रदानका।

इन प्रान्तोँकी अत्यधिक आवश्यकताओँका मैँने अधिक विस्तारसे वर्णन किया है। इसका उद्देश्य यह दिखाना है कि प्रान्तीय आयका अधिक भाग हमेँ मिलनेकी कितनी अधिक आवश्यकता है। प्रान्तीय सरकारपर जनताकी सभी प्रत्यक्ष आवश्यकताओँकी पूर्त्तिका ज़िम्मा है; अतः उचित यह है कि प्रान्तोँमेँ व्यय करनेके लिये कुल आमदनीका तीन चौथाई प्रान्तोँके ही अधिकारमेँ रहने देना चाहिए, और राज-कार्य्यके लिये कुलका एक चौथाई राज-कोषमेँ जाना चाहिए। किन्तु यदि यह सहसा नहीँ किया जा सकता तो निश्चय ही हमारे करका आधा भाग प्रान्तमेँ ही व्यय करनेके लिये हमको मिलना चाहिए।

चूँकि जनताकी दशामेँ सुधारकी सभी सम्भावनाएँ तथा उनकी साम्पत्तिक उन्नति आदि बातेँ उस आय-कोषपर निर्भर करती हैँ, जो भारत-सरकार हमेँ प्रान्तीय कार्य्यके लिये देगी, इसलिये प्रान्तीय आयके उचित बँटवारेकी आवृत्तिके लिये हम बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा करेँगे, और हम यह आशा करते हैँ कि इन प्रान्तोँके निवासियोँके अधिकांश हितकी दृष्टिसे, भारत-सरकार हमारे प्रान्तके लिये ऐसी रक़म नियत करेगी जो हमारी शिक्षा, सभ्यता और उन्नतिमेँ सहायक होकर हमेँ एक सुसभ्य सरकारकी प्रजा कहलाने योग्य बना सके।

समाप्त करनेके पहले मैँ कुछ और बातोँका ज़िक्र कर देना चाहता हूँ, जिसपर हमेँ ध्यान देनेकी ज़रूरत है। यह व्यापक शिकायत है कि भारतीयोँको अपने देशकी सार्वजनिक नौकरियोँमेँ अधिक भाग पानेकी शिकायत अबतक पूर्ण रूपसे दूर नहीँ हो सकी है, जिसकी उम्मीद करनेका उन्हेँ पूरा हक़ है। न्याय-विभागमेँ भारतीय वकीलोँने ऊँचे पदोँपर बड़ी योग्यतासे कामको सँभाला है, और अब अवसर आ गया है कि हाइकोर्टमेँ इनके लिये दो स्थान सुरक्षित रक्खे जायँ, और एक स्थान इन प्रान्तोँकी जुडिशल कमिश्नरी-कोर्टमेँ। उक्त दोनोँ अदालतोँमेँसे किसीमेँ भी स्थानके रिक्त होनेपर, मुझे आशा है, सरकार हमारे अधिकारका ध्यान रक्खेगी। छोटी अदालतके पदोँपर हमारे अधिकारकी ओर ध्यान देना ज़रूरी है। भारत-सचिवकी आज्ञाके अनुसार कार्य्य करते इन प्रान्तोँकी सरकारको अठारह साल बीत चुके जब सरकारने घोषणा की थी कि ज़िला-न्यायाधीशोँके चार पद प्रान्तीय सिविल सर्विसके सदस्योँके लिये सुरक्षित रहेँगे, किन्तु अभीतक इन पदोँमेँसे एक भी प्रान्तीय सिविल सर्विसके सदस्यको स्थायी रूपसे नहीँ दिया गया है। जब स्टेचुटरी सिविल सर्विसके सदस्योँने प्रान्तीय सर्विसमेँ जाना अस्वीकार कर दिया है, जो कि उनके लिये पूर्ण न्यायोचित था, तो इनका अस्तित्व इस बातका औचित्य सिद्ध नहीँ करता कि प्रान्तीय सिविल सर्विसके सदस्योँको भी वे पद न दिए जायँ जो कि उनके लिये सुरक्षित हैँ। इस सम्बन्धमेँ इनकी शिकायत उचित है। मुझे आशा है कि श्रीमान् इस शिकायतको रफ़ा करनेकी उदारता दिखाएँगे और सार्वजनिक सेवकोँके एक वर्गके प्रति, जो योग्य हैँ, न्याय किया जायगा। एक यह भी बहुत समयसे शिकायत है कि छोटी अदालतमेँ थोड़े आदमी रखकर उनसे अधिक काम लिया जाता है। इस विभागमेँ कर्मचारियोँकी वृद्धि करनी चाहिए और उनका बङ्गालके अनुसार वेतन नियत कर देना

चाहिए। नौकरी और जनता दोनोँके हितकी दृष्टिसे अदालतोँकी राज्य-सम्बन्धी सीमाका पुनः बँटवारा अत्यावश्यक है।

आजसे तीन वर्ष पूर्व प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा और केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभामेँ जो शिकायत की गई थी कि भारतीयोँके स्वत्वोँके अनुसार, सार्वजनिक पदोँपर मन्त्रियोँकी नियुक्तिमेँ भी न्याय नहीँ रहा, उसका अभीतक कोई प्रबन्ध नहीँ हुआ। मैँ इस ओर श्रीमान्‌का ध्यान आकृष्ट करता हूँ। यदि आप इस विषयपर फिरसे विचार करेँगे तो मैँ समझता हूँ कि आप यह जानकर सन्तुष्ट होँगे कि शिकायत वास्तवमेँ सत्य है, और सरकारकी सम्पूर्ण प्रजाके साथ समान रूपसे न्याय हो। इस उचित प्रबन्धके करनेके लिये नियमोँको बनानेकी आवश्यकता है।

कोर्ट औफ़ वार्ड्‌स एक लाभकारी संस्था है। किन्तु इन प्रान्तोँमेँ क़ानूनके अन्तर्गत घोषित करके तुरन्त ही राज्योँपर अधिकार कर लिया जाता है। गत वर्ष इसके अधिकारमेँ एक सौ अट्ठानवे रियासतेँ थीँ। सम्भवतः अन्य प्रान्तोँकी अपेक्षा इस प्रान्तकी रियासतोँके अधिकारी अति शीघ्र प्रबन्धके अयोग्य घोषित कर दिए जाते हैँ। कुछके सम्बन्धमेँ तो रियासतके स्वामीकी इच्छाके विरुद्ध रियासतेँ कोर्ट औफ़ वार्ड्‌सके अधिकारमेँ, उसके कल्पित प्रार्थना-पत्रके आधारपर कर ली गई हैँ, जिनके कारण जाँच करनेपर असत्य ठहरेँगे। उदाहरणके लिये मैँ मिर्ज़ापुर ज़िलेकी विजयगढ़ रियासत लेता हूँ। इस मामलेके इतिहासके वर्णन करनेके लिये न मेरे पास समय है और न रुचि ही है। यदि श्रीमान् इससे सम्बन्ध रखनेवाली सत्य बातोँपर विचार करेँगे तो मैँ यह कहनेका साहस करता हूँ कि आप यह जानकर सन्तुष्ट होँगे कि रियासतको कोर्ट औफ़ वार्ड्‌सके अन्तर्गत करनेकी अनुमति देनेमेँ बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है।

कुमायूँके निवासी बहुत दिनोँसे इस बातके लिये उत्सुक हैँ कि उनका विभाग भी विधानके अन्तर्गत कर लिया जाय, और दीवानी मामलोँमेँ हाइकोर्टके अधिकार-क्षेत्रके अन्तर्गत हो जाय, जैसा कि वर्त्तमान समयमेँ फ़ौजदारीके मामलोँमेँ है। इनकी प्रार्थना अत्यन्त तर्कसङ्गत प्रतीत होती है और इसे मैँ सरकारके विचारके लिये शिफ़ारिश करता हूँ। जङ्गल-सम्बन्धी विधान, जो इनपर लादा गया है, उसके कष्टकी भी ये शिकायत करते हैँ, जो बिना किसी औचित्यके उनके अधिकारपर हस्तक्षेप है, जिसका उपभोग ये अनादि कालसे करते आ रहे हैँ।

यह बड़े खेदकी बात है कि इन प्रान्तोँमेँ अभी भी बेगार-प्रथा प्रचलित है। सर्वत्र ही यह घृणित होते हुए कुमायूँ निवासियोँसे अधिक कठोरतासे इस बेगारका काम लिया जाता है। बृटिश शासनके लिये बेगारप्रथा एक कलङ्क है और शीघ्र ही यह बन्द होनी चाहिए। मैँ यह आशा करनेका साहस करता हूँ कि जब परिषद् दूसरी बार बैठेगी तो मुझे सरकारको इसके लिये धन्यवाद देनेका सम्मान प्राप्त होगा कि सरकारने एक ऐसी प्रथाका अन्त कर दिया है, जिसके औचित्यका समर्थन असम्भव था।

राजकीय-व्यवस्थापक-परिषद्

विद्रोह-सभा-विधान

६ अगस्त, सन् १९१० ई० के शनिवारके राजकीय व्यवस्थापक परिषद्की बैठकमेँ माननीय श्री जेन्किन्सने सन् १९०७ ई० के विद्रोह-सभा-विधानको जारी रखनेके सम्बन्धमेँ एक बिल पेश किया। माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने उस प्रस्तावके विरोधमेँ भाषण दिया :—

—सम्पादक।

श्रीमन् !

कौन्सिलके सम्मुख उपस्थित प्रश्न वहुत ही महत्त्वपूर्ण है और सम्भवतः यह सरकार तथा जनता दोनोँ पक्षकी ओरसे, जिनका कि कुछ अंशतक मैँ प्रतिनिधि कहलानेका अधिकारी हूँ, उन कारणोँको वतलाऊँ कि क्योँ मैँ इस विद्रोह-सभा-विधानको पुनः पाँच माहतक जारी रखनेके प्रस्तावका विरोध कर रहा हूँ। श्रीमन्, प्रस्तावके विरुद्ध अनेक सारगर्भित तथा लम्बी वक्तृताओँके पश्चात् मेरे लिये कौन्सिलका अधिक समय लेना आवश्यक न होगा। परन्तु मैँ प्रस्तावक महोदयके इस कार्य्यका प्रारम्भ ही मैँ अवश्य विरोध करूँगा कि इस ऐक्टको जारी रखनेके विरुद्ध कारण उपस्थित करनेका भार उन्होँने ग़ैर-सरकारी मेम्बरोँके मत्थे रख छोड़ा है। श्रीमन्, मैँ जानता हूँ कि भारत-सरकारके सम्मुख आनेवाले सभी प्रश्नोँके विषयमेँ यह नियम हो गया है कि जो माननीय सदस्य किसी विलको पेश करते हैँ, उनको स्पष्ट करके यह वतलाना होता है कि उनके प्रस्तावका आधार क्या है और कौन्सिलके समक्ष अपने तर्क तथा विचारको प्रकट करेँ, जिससे सरकारी और ग़ैर-सरकारी सदस्य यह निर्णय कर सकेँ कि अपना मत विलके पक्षमेँ या विपक्षमेँ दिया जाय। माननीय सदस्यने सङ्क्षेपमेँ यह कहा है कि विलका एकमात्र लक्ष्य विद्रोह-सभा-विधानको केवल पाँच माहतक जारी रखना है। उन्होँने यह भी वतलाया है कि प्रान्तीय सरकारोँने एकमत होकर उसकी ज़रूरत वतलाई है। जहाँतक उनका (सदस्योँका) सम्वन्ध है वे स्वतन्त्र हैँ, क्योँकि उनका विचार प्रान्तीय सरकारोँके इच्छाओँके अधीन है, विशेषतः उसके, जिसके अध्यक्ष सर एडवर्ड बेकर जैसे गम्भीर तथा अनुभवी व्यक्ति हैँ। परन्तु वे यह भूल गए थे कि कौन्सिलमेँ अन्य सदस्य भी थे, जो प्रान्तीय सरकारोँके विश्वासपात्र नहीँ हैँ, जैसा कि स्पष्टतः

प्रतीत होता है कि वे उस परिस्थितिको नहीं जानते कि जिसमें सर एडवर्ड बेकर और अन्य गवर्नरोंको इस विधानको जारी रखनेकी क्यों आवश्यकता प्रतीत हुई। श्रीमन्! इस कौन्सिलके सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी मेम्बरोंपर भी कुछ उत्तरदायित्व है। हमें भी उसपर विचार करना चाहिए, और हमारी आत्मा जिसका विरोध करती है उसको भी सन्तुष्ट करनेके लिये आवश्यक है कि उसका विरोध किया जाय तथा सर हर्वी एडेम्सनके मतानुसार यह देशको कुचलनेका बड़ा भारी अस्त्र है, जैसा कि अन्य वक्ताओंने भी कहा है। यह असाधारण विधान, जो असाधारण कालतक तथा असाधारण परिस्थितिके लिये है, लगातार तीन वर्षोंसे प्रयोग किया जा रहा है। भारत-सरकारने जब इसे पास किया तब उसने उसे प्रयोगमें लानेके लिये और उसे तीन वर्षतक जारी रखनेके लिये क्षमा माँगी। उस समय देशकी ऐसी परिस्थिति थी। सर हर्वी एडेम्सनने बार-बार कहा कि यह साधन असाधारण काल तथा असाधारण परिस्थितिके लिये हैं, और उन्होंने यह जतानेके लिये पूर्ण सावधानी की कि विधान चूँकि स्थायी न रह सके इसलिये प्रत्येक नोटिस, जो प्रान्तीय सरकारद्वारा किसी निश्चित क्षेत्रके लिये जारी की जाती थी, उसमें केवल छः महीनेके लिये उसे लागू करनेकी अवधि दी गई। श्रीमन्! श्री सर हर्वी एडेम्सनद्वारा आश्वासन दिए जानेपर, और जो बातें आपने वाद-विवादके अन्तमें कही थीं, उससे जनताके हृदयमें यही विश्वास पैदा हो गया था कि जबतक विधानको जारी रखनेके उपयुक्त कोई असाधारण घटना न होगी, तो उसका सन् १९१० ई० के इकतीसवें अक्तूबरको अन्त हो जायगा। अतएव हम लोगोंको यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य्य तथा शोक हुआ कि जब सरकार शिमलामें ही थी, उसी समय पता लगा कि उस दमनकारी विधानको, जिसका अन्त अभी नहीं हुआ था, पुनर्जीवित करनेके लिये एक नया बिल पेश करेगी। श्रीमन्! मेरी प्रार्थना यह है कि ऐसी परिस्थितिमें प्रस्तावक महोदयको चाहिए कि कौन्सिलके सम्मुख प्रश्नको रखते हुए, सभी आवश्यक विचारयुक्त बातोंको व्यक्त करें, जिससे ग़ैर-सरकारी सदस्य यह निर्णय कर सकें कि उन्हें इसका समर्थन अथवा विरोध करना है। मुझे यह कहनेकी आज्ञा मिलनी चाहिए, और मुझे आशा है कि आप इसको स्वीकार करेंगे कि ग़ैर-सरकारी सदस्योंको सरकारी प्रस्तावका विरोध करनेमें कोई प्रसन्नता न होगी। हम लोगोंको इसका विरोध करनेमें ठीक विपरीत प्रसन्नता मिलती है। परन्तु श्रीमन्, हमें यह अनुभव होता है कि हमें पहले तो स्वानुभूतिको तदुपरान्त जनताको सन्तुष्ट करनेवाले विचारोंको प्रकट करना है। हम यह अनुभव करते हैं कि हमारी जाँच केवल कौन्सिल ही द्वारा नहीं होनी है, बल्कि देशके जन-समुदाय रूपी कौन्सिलके सम्मुख हमारी परीक्षा होनी है, जो आतुर होकर हमारे कर्त्तव्योंकी ओर अपने हितकर विधानोंके लिये दृष्टि रखती है।

श्रीमन्, अब हम सब लोगोंको इस बातमें एकमत होना चाहिए कि जब वे परिस्थितियाँ, जिन्होंने इस विधानको जन्म दिया, अब वर्त्तमान नहीं हैं, तब इस विधानकी प्राकृतिक मृत्यु हो जानी चाहिए। अतएव हमें यह देखना है कि वे परिस्थितियाँ क्या थीं और देशमें वे इस काल वर्त्तमान हैं वा नहीं। जब इस विधान-सम्बन्धी, सन् १९०७ ई० के सभा आर्डिनेन्स विधानका निर्माण हुआ, तब इसके कारणों और लक्ष्यके विषयमें यह कहा गया कि पञ्जाब और पूर्वी बङ्गालकी असाधारण परिस्थितियोंके लिये ही यह विधान बनाया गया है। श्रीमन्, उस परिस्थितिकी विषमताका, उस विशेष विधानके पास होनेके प्रथम ही अन्त हो गया था, और सन् १९०७ ई० के नवम्बरमें, जब सरकारने वर्त्तमान विधानको पास करनेका निर्णय किया, उस समय उसका लेशमात्र भी नहीं था। परन्तु यदि यह भी मान लिया जाय कि सन् १९०७ ई० में इसके पास होनेके समय परिस्थिति गड़बड़ थी

तथा शासन-प्रबन्धकी सुव्यवस्थाके लिये इसको पास करानेकी सदस्योंको आवश्यकता थी तथा जनताकी शान्ति-रक्षाके लिये विधान-कोषमें ऐसे कठोर विधानके योगकी आवश्यकता पड़ी, उसी प्रकार प्रस्तावक महोदयको यह सिद्ध करना चाहिए कि विधानकी नवीनताके लिये आज भी वैसी ही परिस्थिति है। जव कौन्सिलके सम्मुख प्रश्नको रखते हुए प्रतिष्ठित सर हर्वी एडेम्सनने कहा कि वह यह छिपाना नहीं चाहते कि प्रश्न बहुत ही गम्भीर तथा महत्त्वपूर्ण है तथापि उन्होंने इसका समर्थन इस आधारपर किया कि उनके विचारमें भारतकी उस परिस्थितिमें वह विधान आवश्यक था। श्रीमन्, भारतकी वर्त्तमान परिस्थिति क्या है? क्या अव सन् १९०७ ई० की परिस्थितिकी प्रतिच्छायामात्र भी है? सर हर्वी एडेम्सनने यह शिकायत की कि सरकारकी वैध सुधारकी योजनासे भी जनताके हृदयमें इतना परिवर्त्तन नहीं हुआ था जितना इस विधानसे होता है, और सरकारने यह सोचा कि उसे कई विवादग्रस्त प्रश्नोंका निर्णय करना है। परन्तु हम जानते हैं कि सुधारोंकी प्रारम्भिक योजना कई आवश्यक सुधारोंके पश्चात् वनाई गई है, और इस वातके होते हुए, कि नवीन कौन्सिल-विधानके अन्तर्गत कई विधानोंके विषयमें अनेक दोष हैं, कोई इस वातको इनकार नहीं कर सकता कि सुधारोंकी पूर्णताका स्वागत किया गया और उनसे देशकी राजनीतिक अवस्थामें वहुत कुछ उन्नति हो गई है। मेरी धारणा है कि सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी अफ़सरोंके विचारमें साम्य और सुधारोंसे सरकारके प्रति सार्वजनिक जनतामें श्रद्धा उत्पन्न हुई है। क्या इस परिवर्त्तनसे यह निर्धारित नहीं होता कि इस प्रकारके दमन-विधानका स्वाभाविक अन्त हो जाना चाहिए?

हम लोगोंसे यह वताया गया है कि प्रान्तीय सरकारोंने इस क़ानूनके लिये अनुरोध किया है। प्रान्तीय सरकारोंके प्रति उचित सम्मान भाव रखते हुए हम लोग उनके विचारोंसे सहमत नहीं हो सकते। श्रीमन्, हमारे लिये यह सोचना कठिन है कि ऐसा क्यों है। जव सव कुछ जनताके आँखोंके सामने प्रत्यक्ष है तव उस दमन-विधानके कारणोंको गुप्त रखनेकी क्यों आवश्यकता है, और जव कि प्रत्येक प्रान्तकी परिस्थितिमें इतना विभेद है तव इस सम्पूर्ण राष्ट्रके लिये एक विधानके निर्माणमें सभी प्रान्तोंका एकमत होना कहाँतक यथार्थ है।

श्रीमन्, भारतकी राजनीतिक परिस्थितिका विवरण, वहुत दिन नहीं हुए, एक पत्रमें भारत-सरकारने वङ्गाल तथा अन्य प्रान्तोंकी सरकारोंके पास १४ मार्चको भेजा था। उस पत्रमें कौन्सिलमें आपने कहा था कि भारतमें कहीं भी किसी भी प्रजामें बृटिश सरकारका इतना विरोध नहीं था। एक समुदाय ऐसा था, जो यद्यपि संख्यामें कम परन्तु प्रभावमें अधिक था, जो सरकारके विचारमें बृटिश शासनको स्थायी रखनेके विरुद्ध था; तथा इस अल्प-संख्यक दल भी एक समुदाय ऐसा था जो किसी प्रकारकी क्रान्तिके विरुद्ध था और अन्य श्रेणी, जो क्रान्तिके सिद्धान्तोंकी शिक्षा ग्रहण करती तथा उपदेश देती थी, उसमें या तो वे नवयुवक थे जो तत्काल कौलेज् या स्कूलोंमें पढ़ते हैं अथवा वे व्यक्ति थे जिनको विद्यार्थी-जीवन समाप्त किए अभी अधिक दिन नहीं वीते हैं। उस पत्रमें यह भी लिखा था कि यह कर्मशील क्रान्तिकारी-वर्ग वङ्गाल, पूर्वी वङ्गाल तथा वम्बई आदि प्रान्तोंमें अधिक सङ्गठित तथा शक्तिशाली हैं; तथा वे मध्य-प्रान्त, वरार तथा पञ्जाव आदि देशोंमें भ्रमण करते हैं, परन्तु मद्रास तथा संयुक्त-प्रान्तमें इनका उतना ज़ोर नहीं है, तथा भारत-सरकारको इसके होनेकी सूचना ब्रह्मा तथा पश्चिमोत्तर सूबोंमें नहीं मिली है। ऐसी परिस्थितिमें आपकी सरकार तथा सदस्योंसे हमें यही अनुरोध करना है कि वे इस वातकी जाँच करें कि गत मार्चके वाद कौनसे परिवर्त्तन ऐसे हुए हैं जिनसे संयुक्त-प्रान्त, मद्रास, ब्रह्मा तथा पश्चिमोत्तर सूबोंमें भी इस दमन-विधानको जारी रखना आवश्यक

प्रतीत होता है। श्रीमन्, एक घटना अवश्य अत्यन्त शोक-प्रद हुई है, और वह हमारे लोक-प्रिय सम्राट्का स्वर्गवास है। परन्तु उस शोकके प्रदर्शनको देखकर किसी भी मनुष्यको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जनताका हृदय शुद्ध है, तथा उन्होंने सम्राट्के मृत्यु-शोकको उसी सहृदयताके साथ माना है जैसा कि सम्राट्के अन्य प्रजा-वर्गने, और यदि बृटिश-शासनके सम्बन्धसे उन्हें सहानुभूति न होती और उसको स्थायी रखनेकी उनमें कामना न होती तो वे ऐसा कभी भी नहीं करते। श्रीमन्, कलकत्तेके शोक-प्रदर्शनसे बढ़कर और कहाँ ऐसा प्रदर्शन हो सकता है जहाँपर करोड़ों हिन्दू दोपहरको गर्मीकी कड़ी धूपमें, नङ्गे सिर तथा नङ्गे पैर, अपने हार्दिक दुःखको प्रकट करनेके लिये कोसों पैदल चले? श्रीमन्, ऐसे ही प्रदर्शन सम्पूर्ण देशभरमें हुए हैं और सभी प्रान्तोंमें शान्ति-प्रिय एडवर्डके स्मारक-निर्माणके लिये चन्दे इकट्ठे किए जा रहे हैं। राजभक्तिकी इस दृढ़ निष्ठा तथा शुद्ध प्रेमके सम्मुख, भारत तथा प्रान्तीय सरकारोंका इस प्रकारके दमन-विधानको पुनः जारी रखनेपर तुल जाना, जिसका अन्त अक्तूबरमें होनेवाला था, कितना न्याय-विरुद्ध है। श्रीमन्, कोई भी व्यक्ति यह सोच सकता है, कि ऐसे अवसरपर सरकारको इस प्रकारके विधानको स्वयं अपनी मृत्यु मरनेके लिये छोड़ देना चाहिए, क्योंकि वर्त्तमान परिस्थितिमें, जब कि जनताका अधिकांश राज-भक्त तथा न्याय-भक्त है, इस विधानसे व्यर्थके लिये अशान्ति फैलेगी।

श्रीमन्, यह कहा जा सकता है कि सरकार क्रान्तिकारियों तथा राज-द्रोहियोंके अस्तित्वको भुला नहीं सकती। आपने कृपा करके, उस पत्रमें, जिसका उल्लेख मैंने ऊपर किया है, कहा था कि इन राज-द्रोहियोंका कुछ उपाय किया जायगा, जो जनताके गुप्त शत्रु हैं। मैं अनेक सदस्योंद्वारा कथित व्याख्यानको दुहराना नहीं चाहता तथा कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति, जिसे देशके हितकी हृदयसे रक्षा करनी है, यही चाहेगा कि इस प्रकारके क्रान्तियुक्त तथा अवैध कार्य्योंका शीघ्र नाश हो। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि बीस मनुष्योंकी एक जगह किसी सभाको रोकनेसे कहाँतक षड़यन्त्रोंका दमन होगा, जब कि यह ज्ञात है कि ये कार्य्य गुप्त रीतिसे होते हैं और जो अपने कार्य्यके असाधारणताके कारण यही प्रयत्न करते रहते हैं कि उनके विचारों तथा कार्य्योंका पता दूसरोंको न चले। इस अवसरपर यह भी स्मरण करा देना आवश्यक है कि गत तीन वर्षोंसे इस विधानके होनेसे क्रान्तिकारी-दलोंके कार्य्योंमें तनिक भी रुकावट नहीं पड़ी है। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि इस मर्ज़की दवा यही विधान है।

श्रीमन्, आपकी सरकारने मार्चके पत्रमें केवल राजनीतिक परिस्थितियोंका ही विवेचन नहीं किया था बल्कि कुछ उपयुक्त उपायोंको भी सुझाया था, यदि हम वैसा एक राजनीतिज्ञकी दृष्टिसे कह सकें। सरकारने अपनी इस धारणाको प्रकट किया है कि क्रान्तिकारी-आन्दोलनका मुख्य कारण भारतमें बृटिश शासनकी प्राकृतिक अनभिज्ञता तथा भ्रमकारी प्रभाव है। इस गड़बड़ीका प्रत्यक्ष उपाय यही है कि प्रश्नका दूसरा रूप इन नवयुवकोंके सम्मुख रक्खा जाय। आपने इसलिये बुद्धिमानीके साथ सभी सरकारी कर्मचारियों तथा न्याय-शान्तिके सभी समर्थकोंको बुलाकर बृटिश-शासनके सभी अङ्गोंके लाभ तथा हानिपर विचार प्रकट करनेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार प्रयत्न करनेका आदेश किया है। शिक्षा-विभागके अफ़सरोंको उचित आदेश दिया गया है कि वे जनतामें अपने सहृदय विचारों तथा युक्तिके प्रयोगोंसे क्रान्तिकारी भावोंको दबानेकी कोशिश करें तथा प्रत्येक ज़िलाधीशका ध्यान इस ओर दिलाया गया है कि वे अपने प्रान्तके सभी प्रमुख व्यक्तियोंको अपना विश्वासपात्र बनावें तथा सभी व्यक्तियोंके साथ, जिनसे उन्हें सम्पर्क प्राप्त हो, सद्भाव पैदा करनेका प्रयत्न करें। पत्रकी अन्तिम पङ्क्तियाँ इस प्रकार हैं:—

"सपरिषद् गवर्नर-जनरल यह विश्वास करते हैं कि उपरोक्त परिच्छेदोंमें व्यक्त नीतिके अवलम्बनसे सफलता अवश्य प्राप्त होगी। भारतमें बृटिश शासनके विषयमें अधिक अज्ञान तथा भ्रम उत्पन्न कराया गया है और इसी लिये दुर्भावका प्रादुर्भाव हुआ है। वह दुर्भाव अधिक विस्तृत नहीं हुआ है और इसका अन्त पारस्परिक समझौते तथा मतभेदको हटा देनेसे हो सकता है। स्वराज्य-आन्दोलनके अनेक समर्थक इस क्रान्तिकारी समुदायके षड्यन्त्रकारी कार्य्योंसे चकित हो गए हैं। उन्हें साम्राज्यकी स्थिरताके लिये विरोधी समुदायसे फोड़कर राज-भक्त बनानेका अच्छा सुअवसर है, जिससे सार्वजनिक शान्ति स्थापित हो सके। जनताका अधिकांश इस विरोधी समाजसे हटकर सम्पूर्णतया राजभक्तिके साथ सरकारी कर्मचारियोंके पक्षमें आना चाहता है।"

श्रीमन्! मेरी रायमें वर्त्तमान कालमें सरकार-द्वारा बर्त्ती जानेवाली नीतिकी स्पष्ट और राजनीतिज्ञता-पूर्ण घोषणा थी। देशके वर्त्तमान रोगको दूर करनेके लिये यह सबसे उत्तम ओषधि है। परन्तु इस समझौतेके लिये पारस्परिक स्वतन्त्र बहसद्वारा सार्वजनिक मतभेदोंका निवारण करना चाहिए। शेष व्याख्यान और सभाकी स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करनेका दण्ड साधारण विधानसे हो ही जाता है। किसी प्रकार सरकारद्वारा निर्धारित इस विषयमें शान्तिप्रद समझौतेके नीतिका अवलम्बन ही श्रेयस्कर है। परन्तु इस दमनकारी विधानको पुनः जीवित रखनेसे विशेष हानि ही की सम्भावना प्रतीत होती है। परिस्थितिके विषयमें मेरा यह विचार होनेसे, मेरा सादर निवेदन यही है कि सरकार अपनी वर्त्तमान विधान-योजनाको स्थगित रक्खे। मुझे अच्छी प्रकार ज्ञात है कि यह आशा करना कितना व्यर्थ है कि जिन प्रतिष्ठित सदस्योंने बिलका प्रस्ताव किया है, इस योजनाको छोड़ देंगे। परन्तु, श्रीमन्, मैं यह कहना अपना धर्म समझता हूँ कि उन्हें ऐसा करनेका अधिकार नहीं है। यह कितनी अभाग्यकी बात है कि इस देशके सुप्रबन्धके लिये इस समय इसकी अपेक्षा कोई अन्य उपाय नहीं है कि जनतामें इस भावकी ख्याति रहे कि सरकार जनताके प्रतिनिधित्वको सुननेके लिये पहलेसे अधिक प्रस्तुत है, तथा भारतीय प्रतिनिधियोंकी बातोंपर ध्यान देती हैं; जो स्वयं भी इस बातके लिये अधिक चिन्तित हैं कि देशमें शान्ति स्थापित रहे जितने कि सरकारी कर्मचारीवर्ग रहेंगे। आपकी सरकारने इस बातको प्रत्यक्ष देखा है कि राष्ट्रकी जनता इस बातकी कितनी इच्छुक है कि यह विधान पास न किया जाय। ऐसी परिस्थितिमें, जबतक प्रतिष्ठित प्रस्तावक महोदय प्रान्तीय सरकारोंके विचारोंको कौन्सिलके समक्ष न रक्खें, जो उन्हें प्राप्त है और जबतक वह यह न बता सकें कि इन सभाओंसे जनतामें शान्तिकी स्थापनामें कोई बाधा पड़नेकी सम्भावना है जिसको वर्त्तमान क़ानूनके द्वारा दमन नहीं किया जा सकता, तबतक मैं यही कहूँगा कि बिलका पास होना अनुचित ही होगा।

मैं बिलके अन्तर्गत उन विधानोंके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहना चाहता, जिनसे सरकारके हाथोंमें पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं कि वह राज-विद्रोहात्मक तथा अराजकता फैलानेवाली सभाओंका दमन कर सकती है। कुछ व्याख्याता महोदयोंने, जो हमारे सम्मुख बोल गए हैं, जिनमें प्रतिष्ठित मि० मैज भी शामिल हैं, यह स्वीकार किया है कि वर्त्तमान विधान पर्य्याप्त नहीं है। श्रीमन्, मुझे इन व्यक्तियोंसे इस विषयमें कोई झगड़ा नहीं है कि वे विधान पर्य्याप्त हैं अथवा नहीं। मेरे वकील मित्रोंने इस परिस्थितिका उत्तम चित्र खींचा है। इसके अलावा वास्तविकताका एक औंस भी व्यर्थके एक टन बकवादसे अच्छा है। कौन्सिलने जो कुछ भी सत्य बातोंका जाना है वह यह है कि कलकत्ता, नागपुर तथा अन्य पूर्वीय बङ्गालकी पचास हज़ार व्यक्तियोंकी बड़ी-बड़ी सभाएँ भी साधारण एक सौ चवालीसवीं धाराके क़ानूनसे शान्तिके साथ हटाई जा चुकी हैं। यह

कहा जा सकता है कि जब ऐसी बात है कि इन दोनोँ विधानोँमेँ सरकारको बड़ी-से-बड़ी सभाको विच्छिन्न कर देनेका अधिकार पहले ही से दिया जा चुका है तो हमेँ इस विधानका, जिसमेँ प्रायः वही सब अधिकार दिए गए हैँ जो प्रथम क़ानूनमेँ उपस्थित हैँ, क्योँ विरोध किया जाय। इसका कारण क्या है? हमेँ यह मानना पड़ेगा कि जब सरकारको अन्य सभी विधानोँके अन्तर्गत पूर्ण रूपसे इस प्रकारकी वर्जित सभाओँको रोकनेका पर्य्याप्त अधिकार प्राप्त है तब सारे राष्ट्रके लिये इस सार्वजनिक विधानको पास करना अन्यायपूर्ण तथा दोषयुक्त है। श्रीमन्, इस विधानसे क्या लाभ होगा? जैसा कि मेरे कुछ मित्रोँने दर्शाया है, कुछ बदमाश लोग किसी स्थानपर कोई व्यर्थकी बातचीत करते हैँ और पुलीस उसको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर किसी बड़े ख़तरेकी सम्भावनाकी सूचना देती है, जिससे सारे ज़िलेमेँ अशान्ति फैल जाती है। मैँ यह नहीँ कहता कि प्रान्तीय लाट परिस्थितिको पूर्ण रीतिसे नहीँ समझते, परन्तु फिर भी वे भी मनुष्य ही हैँ और ग़लती कर सकते हैँ। उन्हेँ स्थानीय सूचनाके आधारपर कुछ करना है। स्थानीय सूचना देनेवाले पुलीस अथवा खुफ़िया-विभागके लोग हैँ। और हमारे पास ऐसे अनेक प्रमाण हैँ जहाँ लोगोँने इस विधानके अधिकारोँका दुरुपयोग किया है।

हम लोगोँने देखा है कि कितने कल्पित और अल्प-संख्यक व्यक्तियोँके द्वारा किए हुए दोषोँके कारण अधिकांश जन-संख्या, जो सरकारी लेखानुसार राजभक्त ही है, इस विधानके कारण अपने इस अधिकारसे वञ्चित रक्खी जाती है कि वह किसी सामाजिक अवसरपर जन-सम्बन्धी प्रश्नोँपर बहस करनेके लिये दस-पाँचके समूहमेँ एक स्थानपर कोई सभा कर सके। इससे बढ़कर सार्वजनिक आपत्ति दूसरी क्या हो सकती है कि कुछ थोड़ेसे व्यक्तियोँके दोषके कारण कुछ सीमाके अन्तर्गत जनताको आपसमेँ कोई सभा करनेसे वञ्चित रक्खा जाय, जिसका दुरुपयोग उन्होँने कभी भी नहीँ किया है।

श्रीमन्, केवल इस उपस्थित विधानकी अनावश्यकतापर ही विचार नहीँ प्रकट किया गया है बल्कि यहाँ यह भी डर है, जैसा कि मेरे मित्र गोखले महोदयने कहा है, कि किसी भी दमन-विधानका जब दुरुपयोग किया जाता है तो उससे वह बुराई और अधिक फैलती है, जिसके सुधारनेके लिये उसका निर्माण हुआ करता है। विद्रोह-सभा-विधान और प्रेस-विधान दोनोँसे यह प्रथम ही सिद्ध हो चुका है कि बुरे कर्मोँके दर्शनके प्रयत्नके पहले ही बुरे कर्म होने प्रारम्भ हो जाते हैँ—जैसीकी यह एक प्राचीन धारणा है। उदाहरणार्थ, पूर्वी बङ्गालके अधिकारियोँका उन तीनोँ प्रान्तोँके अन्तर्गत होनेवाली सभाएँ वर्त्तमान हैँ, जो अछूतोँके सहायतार्थ क़ायम की गई थीँ। मुझे इसमेँ सन्देह होता है कि इन उपरोक्त सभाओँका विनाश विद्रोह-सभा विधानके बिना नहीँ हो सकता। ऐसा ही उदाहरण प्रेस-विधानका भी है। जबतक सरकार विधान-कोषमेँ इन दोनोँ विधानोँको रक्खेगी, तबतक—मुझे यह कहते हुए दुःख होता है परन्तु मैँ उसे कहना अपना धर्म समझता हूँ जबतक सार्वजनिक विचारोँपर सरकार ध्यान देनेका प्रयत्न नहीँ करेगी—ये अनावश्यक कठिनाइयाँ सदैव प्रस्तुत रहेँगी।

मैँ कौन्सिलको अधिक देरतक रोकनेका विचार नहीँ करता। परन्तु इस सम्बन्धमेँ मैँ प्रेस-विधानके अन्तर्गत मि० मैकार्नेके पत्र-लेखकी बातका उल्लेख किए बिना नहीँ रहूँगा। मैँ जानता हूँ कि अनेक प्रान्तीय सरकारेँ उस लेख-पत्रके प्रथाको रोकनेके पक्षमेँ हैँ। परन्तु इन सरकारोँके प्रति उचित आदरके साथ, मैँ यह सोचनेका साहस करता हूँ कि यदि नवीन प्रेस-विधान उन्हेँ असीम शक्ति अथवा अधिकार न दिए होती, तो उनमेँसे एक भी उस लेख-पत्रिकाकी प्रथाको रोकनेका प्रयत्न न करती। उनमेँसे कोई भी आजतक श्री मैकार्नेको इसके लिये दोषी नहीँ ठहरा सकता। उस पत्रिकासे

सरकारके पुलीस-सम्बन्धी उन्नतिके प्रयत्नमेँ पूर्ण सहयोग नहीँ दिया होगा। परन्तु उसका प्रधान लक्ष्य उसकी बुराइयोँके रोकनेके अतिरिक्त और कुछ क्या हो सकता है? श्रीमन्, यह कहा जा चुका है कि भारत-सरकार सर्वदासे इस प्रथाको दबाती आई है कि किसी व्यक्तिपर व्यर्थ अभियोग न लगाया जाय, और कोई व्यक्ति जो जनताको व्यर्थ दुःख देता है, सात वर्षकी सज़ा पा सकता है। परन्तु इस प्रकारके विधानको पर्य्याप्त नहीँ माना जाता और कुछ घटनाओँकी सत्यताको देखकर भी जनताके हितके लिये यह स्पष्टतः आवश्यक था कि इस प्रकारके दोषोँको दूर करनेके लिये जनताका ध्यान दिलाया जाय।—

सभापति महोदय बोले—'मुझे डर है कि मैँ वक्ता महोदयका इसमेँ विरोध करूँगा कि मि० मैकार्नेकी पत्रिकाका इस बहससे कुछ भी सम्बन्ध नहीँ है।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजी :—

मैँ आपकी सरकारके क़ानूनोँके आगे नतमस्तक होता हूँ। मैँ यह व्यक्त करना चाहता था कि कितना शीघ्र एक दमन-विधानका दुरुपयोग हो सकता है और किस प्रकार उससे जनतामेँ अशान्ति फैलती है, जब कि सरकारका यह लक्ष्य है कि अशान्ति न फैलने पावे।

मैँ अन्त नहीँ करूँगा। मैँ सोचता हूँ कि मैँ विद्रोह-सभा-विधानके पुनर्वाचनकी अवधिको बढ़ानेकी अनुपयुक्तताके विषयमेँ पूर्ण प्रकाश डाल चुका; और सरकारको वर्त्तमान विधानमेँ इस विषयमेँ जो अधिकार प्राप्त हैँ वे उन राजविद्रोही सभाओँको रोकने तथा सज़ा देनेके लिये पर्य्याप्त हैँ, जिनको प्रारम्भ करनेवाले व्यक्तियोँकी संख्या बहुत ही अल्प है, और सरकारको यह ज्ञात होना चाहिए कि उसकी अधिकांश जनता राज-भक्त है और हर प्रकारसे सरकारद्वारा शान्ति-स्थापनके कार्य्यमेँ सहायक है। ऐसी परिस्थितिमेँ सरकारके लिये सर्वोत्तम उपाय समझौता है और इसीका अवलम्बन उसे दृढ़ता तथा विश्वासके साथ करना चाहिए। और जबतक इस नीतिके अवलम्बनमेँ कोई विशेष बाधा न आ पड़े तबतक उसका परित्याग न करे। मेरी धारणा यह है कि वर्त्तमान परिस्थितिमेँ किसी भी असाधारण विधानके निर्माणकी आवश्यकता नहीँ प्रतीत होती, क्योँकि इससे जनता तथा सरकारके पारस्परिक सम्बन्धमेँ बाधा ही पड़ेगी। इन कारणोँसे, मैँ इस योजनाका नम्रतापूर्वक हार्दिक विरोध करता हूँ।

प्रेस-विधान

४ अप्रैल, सन् १९१० ई० को राजकीय-व्यवस्थापक-परिषद्की बैठकमें माननीय सर हर्बर्ट रिसलेने "भारतीय प्रेसोंकी सुव्यवस्थाके लिये एक विधान" का प्रस्ताव उपस्थित किया। उक्त प्रस्तावके सम्बन्धमें माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने निम्नाङ्कित भाषण दिया—

—सम्पादक।

श्रीमन्!

परिषद्के सम्मुख विलके सम्बन्धमें अपने विचारोंका प्रकट करना सम्भवतः मेरा सौभाग्य है, जब कि इस सम्बन्धमें योग्य भाषणोंको सुननेका मुझे लाभ मिला है। परन्तु मुझे यह कहते खेद होता है कि उन सब भाषणोंको सुनकर भी मुझे इस विलकी आवश्यकतामें विश्वास नहीं हुआ और न मैं उसपर इस तरह विचार ही करता हूँ जैसे अबतक प्रकट कियां गया है। इस कौन्सिलमें तथा बाहर इस बातपर खेद प्रकट किया गया है कि ऐसे गम्भीर विषयवाला विल इतनी शीघ्रतासे पास किया जा रहा है। इस सम्बन्धमें सन् १८७८ ई० के हिन्दी-प्रेस-ऐक्टकी शीघ्रताकी ओर भी ध्यान दिलाया गया है कि वह इसी प्रकार पास किया गया था। श्रीमन्! एक भूल करनेके बाद दूसरी भूल करना न्यायोचित नहीं है। इस विलके सम्बन्धमें, न तो विलके माननीय प्रस्तावक महोदयके लम्बे और सुललित भाषणमें और न उसके बादके व्याख्यानोंमें ही इस बातकी आवश्यकता बतलाई गई है कि इस विलके लिये इतनी शीघ्रता करनेकी क्या आवश्यकता है, जैसी कि की जा रही है। श्रीमन्! जो प्रस्ताव परिषद्के सामने पेश किए जाते हैं उनका जनतामें प्रचार करनेके लिये सरकारने जो बड़ी भारी सुविधा जनताके लिये सुरक्षित की है वह यह है कि इन प्रश्नोंमें जिनका स्वार्थ है उन्हें अपने विचारोंको उसके विषयमें प्रकट करनेका पूर्ण अवसर दिया जाय तथा उनको लेख-रूपमें आपकी परिषद्में भेजें जिससे विधानको पास करनेके पहले ही उनपर पूर्ण विचार कर लिया जाय। जैसे ही यह विधान पेश किया गया, तुरन्त ही इसको एक सेलेक्ट कमेटीके सुपुर्द कर दिया गया। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि सेलेक्ट कमेटीने विलपर विचार किया, परन्तु इस विलके सिद्धान्तपर, यदि कौन्सिलमें बहस होनेके बाद सेलेक्ट कमेटीके पास उस समालोचनात्मक वर्णनका पूरा पता होता, तो मेरा विश्वास है कि सेलेक्ट कमेटीको अपना कार्य्य सुचारु रूपसे करनेमें अधिक सहायता मिलती। मुझे अपने प्रान्तसे, संयुक्तप्रान्तीय-कांग्रेस-कमेटीके सभापतिका, लखनऊकी सार्वजनिक समितिके सभापतिका तथा मद्रासकी महाजन-सभाके मन्त्री आदिके भेजे हुए तार भी मिले हैं, जिनको निर्वाचित कमेटी तथा श्रीमान्के सम्मुख रखने तथा उस विलपर विचार करनेके लिये और अधिक समय देनेके लिये प्रार्थना की गई है। श्रीमन्! यह कहना यथेष्ट नहीं है कि विल प्रकाशित हो गया है तथा यह तीन या चार दिनसे जनताके समक्ष प्रस्तुत है। प्रश्नकी गम्भीरताके कारण, मेरा यह कहना है

कि जनता तथा प्रेसको इस बिलपर अपने विचारोँको प्रकट करने तथा आलोचना करनेके लिये पर्य्याप्त समय देनेकी आवश्यकता है, विशेषतः जब कौन्सिलमेँ इसके लिये शीघ्रता करनेका कोई कारण भी नहीँ दिया गया है, जिससे शीघ्रताकी बातका समर्थन हो सके।

अब श्रीमन्! असली बिलपर विचार करते हुए निस्सन्देह हमारे सम्मुख अभाग्यवश यह प्रमुख प्रश्न है कि इस देशमेँ कुछ राज-द्रोहात्मक हत्याएँ और घोर अपराध किए गए हैँ। प्रत्येक सज्जन इन पापोँके लिये अवश्य शोक तथा घृणा प्रकट करेगा। वे ईश्वर तथा मनुष्य दोनोँके दृष्टिमेँ घृणाके पात्र हैँ तथा देशभरमेँ उनकी निन्दा की गई है। यदि राज-द्रोहात्मक हत्याओँको समूल नष्ट करनेके लिये किसी उपायकी आवश्यकता बतलाई जाती तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि सम्पूर्ण देश एक होकर उसका समर्थन करता तथा आपकी सरकारको इसे व्यवहारमेँ लानेके लिये धन्यवाद देता। परन्तु सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी सदस्योँके विचारोँके प्रकट करनेसे यह प्रत्यक्ष साबित होता है कि इस विधानका प्रभाव राज-द्रोहात्मक दोषोँको दबानेमेँ शायद ही कुछ मदद कर सके। मैँ यह अस्वीकार नहीँ करता कि इससे कुछ समाचार-पत्रोँद्वारा प्रकाशित विषैले साहित्यके प्रचारमेँ रुकावट पड़ेगी, परन्तु मेरा विश्वास है कि कोई भी सदस्य यह स्वीकार नहीँ कर सकता कि इन विधानोँका प्रभाव उन आतङ्कवादियोँपर तनिक भी पड़ सकेगा, जो क्रान्तिकारी सङ्घटनमेँ शामिल हो गए हैँ। श्रीमन्! ऐसी परिस्थितिमेँ, हमेँ यह विचार करनेकी आवश्यकता है कि वर्त्तमान् विधानके पास करनेके समर्थनमेँ कौनसे ऐसे कारण हैँ। सारा राष्ट्र इस विषयमेँ सरकारके साथ है कि राजद्रोहको दबानेके लिये जिस किसी साधनकी ज़रूरत हो उसका अवलम्बन करना चाहिए। किन्तु यह साबित करना चाहिए कि किसी विशेष साधनका उद्देश उस कार्य्यकी पूर्त्तिके लिये है। बिलके माननीय प्रस्तावकने अपने भाषणके आरम्भमेँ यह कहा है कि वे कौन्सिलके सम्मुख बिलके औचित्यको सिद्ध करेँगे और यह भी दिखलावेँगे कि प्रचलित क़ानून स्थितिको सुधारनेके लिये पर्य्याप्त नहीँ है। श्रीमन्! उन्होँने हत्या करनेवाले षड्यन्त्रका ज़िक्र किया है जो कि हाल ही मेँ सङ्घटित हुआ है, और उन्होँने यह भी कहा है कि इस क्रान्तिकारी उपद्रवकी उत्पत्ति किन्हीँ ख़ास समाचार-पत्रोँके उसकानेसे हुई है। माननीय एडवोकेट-जेनरलने भी अपने व्याख्यानमेँ कृपाकर यह व्यक्त किया है कि ये समाचारपत्र विषैले विद्रोहात्मक विचारोँका प्रचार करते रहे हैँ। श्रीमन्! बिलके माननीय प्रस्तावकने वर्त्तमान परिस्थितिका जो चित्र खीँचा है, उससे यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि समाचार-पत्रोँद्वारा प्रचारित क्रान्तिकारी साहित्यके विषको रोकनेका देशमेँ कोई प्रभावशाली क़ानून था या नहीँ? कोई भी व्यक्ति यह कल्पना करने लगेगा कि माननीय प्रस्तावकके कथनानुसार प्रेसकी स्वतन्त्रताके दुरुपयोगको रोकनेका कोई उचित विधान नहीँ था किन्तु, जैसा कि कौन्सिलको मालूम है, कि हमारे राज्य-विधानमेँ इस प्रकारकी स्वतन्त्रताके दुरुपयोगोँपर नियन्त्रण रखनेके अनेक विधान हैँ। माननीय सदस्यने प्रारम्भमेँ यह कहा कि यह दिखलाना उनका कर्त्तव्य है कि साधारण दण्ड-विधानपर भरोसा करके ही सरकार सन्तुष्ट नहीँ है। किन्तु बिना साबित किए ही इन्होँने यह कहकर ही समाप्त कर दिया कि यह विधान अपर्य्याप्त था। मुझे खेद है कि मैँने माननीय सदस्यके व्याख्यानमेँ कहीँ भी इस बातकी व्याख्या नहीँ पाई कि ये विधान क्योँ और कहाँ अपर्य्याप्त हैँ। माननीय सर हेरैल्ड स्टूअर्टने इस अभावकी पूर्त्ति करनेका प्रयत्न किया है और यह व्यक्त किया है कि दण्ड-विधानकी एक सौ आठवीँ धारा निरर्थक सिद्ध हुई है। उन्होँने कहा कि तीन समाचार-पत्र ऐसे थे जो दो बार अपराधी सिद्ध हुए

और अन्य दोपर तीन बार अभियोग चलाया गया, और एकको छः बार सज़ा दी गई। श्रीमन्! देशके क़रीव आठ सौ समाचार-पत्रोँमेँसे केवल छः पत्रोँद्वारा किसीं एक अपराधको दुहरानेसे यह नहीँ सिद्ध होता कि वर्त्तमान विधानमेँ राजद्रोहको या राजद्रोह फैलानेके प्रयत्नको सज़ा देनेका कोई प्रवन्ध नहीँ है। परिस्थतिके अनुसार एक नवीन विधानको जोड़नेके लिये उसपर अपनी स्वीकृति देनेके पहले मौजूदा विधानकी धाराओँका निष्पक्ष भावसे निरीक्षण होना चाहिए।

श्रीमन्! अव दो वातेँ ऐसी हैँ जिनकी ओर मैँ आपका ध्यान प्रधानतः दिलाना चाहता हूँ। वर्त्तमान विल, जैसा कि कौन्सिलने नोट किया है, निषेध वातोँकी व्याख्या करता है, जिनके प्रकाशित करनेवाले व्यक्तिको विलमेँ आदेशित सज़ाको भोगना पड़ेगा। इस प्रकारकी निषेध वातोँमेँ जिनका ज़िक्र माननीय प्रस्तावकने अपने व्याख्यानमेँ किया है, कुछ ऐसे भी दोष हैँ जिनका वर्णन पूर्व-प्रचलित विधानमेँ भी है। उदाहरणके लिये, विलकी चौथी धाराका (अ) खण्ड ले लीजिए, जिसमेँ सन् १९०८ ई० के गोला-वारूद-सम्वन्धी विधानके अनुसार कोई अपराध करना अथवा किसीको मार डालनेके लिये उसकाना या कोई अशान्ति पैदा करना—ये सभी पूर्ण वर्णन सन् १९०८ ई० के सातवेँ ऐक्टमेँ शामिल हैँ, अर्थात् वह विधान जिसका अर्थ समाचार-पत्रोँमेँ हत्याके लिये उसकाने या अन्य अपराध करनेको रोकना है। माननीय प्रस्तावकने कहा कि विलमेँ उनको सम्मिलित करनेका विचार इसलिये किया गया, कि सरकार यदि आवश्यकता समझे तो सन् १९०८ ई० के क़ानूनमेँ वतलाई हुई सज़ासे कुछ कम सज़ा कर सके। श्रीमन्! मेरा कथन है कि इन दिनोँमेँ जो घोर अपराध किए गए हैँ उनसे कोई भी व्यक्ति यही सोच सकता है कि इस अवसरपर सरकारको किसी नरम क़ानून-धाराका निर्माण करना उचित नहीँ है, जव अपराध पूर्व क़ानूनके अन्तर्गत आता है। (व) खण्डमेँ, सरकारकी सेना अथवा नौ-विभागके अफ़सर या सैनिकको अपने कर्त्तव्यसे विमुख करना अपराध ठहराया गया है। भारतीय दण्ड-विधानकी एक सौ इकतीसवीँ धारा पूर्व ही वतलाती है कि कोई भी व्यक्ति, जो इनमेँसे किसी भी कार्य्यको करनेका प्रयत्न करता है, वह या तो यावत्-जीवन देश-निकालेकी सज़ा, या जुर्मानेके साथ दस वर्षकी क़ैदकी सजा पा सकता है। उसके वाद श्रीमन्! तीसरे खण्डमेँ, एक सौ चौवीस (अ) तथा एक सौ तिरपन (अ) धाराओँमेँ देशी राजाओँ या रजवाड़ोँके विरुद्ध अपराध करनेपर दोषी ठहरानेकी वात सम्मिलित है। और इस विलकी अन्य धारासे सम्राट्के न्याय-विभागके कर्मचारियोँके विरुद्ध किसी प्रकारके अनुचित लेख लिखनेसे रक्षा की गई है। श्रीमन्! विलकी प्रमुख धाराएँ यही हैँ। और अव मैँ कौन्सिलका ध्यान फ़ौजदारी दण्ड विधानकी एक सौ आठवीँ धाराकी ओर दिलाना चाहता हूँ। उस धाराके अनुसार कोई भी व्यक्ति जो वचनसे अथवा लेखसे किसी प्रकारके क्रान्तिकारी ध्येयकी शिक्षा देता है, अर्थात् किसी प्रकारका प्रकाशित लेख, जो दण्ड-विधानकी एक सौ चौवीस (अ) धारा या एक सौ तिरपन (अ) धाराके अनुसार वर्जित है या कोई वात जो एक न्यायाधीशकी समझमेँ, भारतीय दण्ड-विधानके मुताविक अनुचित है उसके लिये उक्त धारा यह कहती है कि कोई भी सम्पादक, लेखक, प्रकाशक अथवा किसी समाचार-पत्रका मैनेजर यदि इन अपराधोँको करेगा तो ज़िलाधीश या मुख्य प्रान्तीय मजिस्ट्रेटको यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह गवर्नर-जनरलकी अथवा प्रान्तीय सरकारकी पूर्व आज्ञा लेकर, उस अपराधी व्यक्तिको वुलवाकर उससे कोई ऐसा काम न करनेकी ज़मानत कुछ नियत कालके लिये माँग ले। श्रीमन्! मेरा यही कहना है कि सरकारके पास यह एक ऐसी धारा है जो इस प्रकारके क्रान्तिकारी अथवा क़ानूनसे निषेध

कामोंको प्रकाशित कराता या स्वयं करता है, उनको दवानेके लिये पर्य्याप्त है तव, जैसा कि मैंने प्रथम ही कहा है कि समाचारपत्र-विधान भी है। वह विधान, कुछ लेखोंके प्रकाशित होनेके वाद सन् १९०८ ई० में पास किया गया था, जिनके कारण, जैसा कि माननीय प्रस्तावकने वतलाया है कि, कुछ घोर अपराध किए गए। इसके पश्चात्, श्रीमन्! उस विधानकी तीसरी धाराके अनुसार ज़िलाधीश एक आज्ञा-पत्रद्वारा प्रान्तीय सरकारकी आज्ञासे इस प्रकारके दोषी लेखके प्रकाशकको उसका अपराध वतलाकर आज्ञा दे सकता है कि वह दोषयुक्त है और उसे छापनेवाले प्रेसको ज़ब्त कर सकता है और वह आज्ञा तवतक पूर्ण मानी जायगी जवतक वह व्यक्ति अपना अपराध झूठा न साबित कर दे। श्रीमन्! इन दो विधानोंसे सरकारको पूर्ण अधिकार मिलता है कि वह प्रेसकी स्वतन्त्रताके दुरुपयोग करनेवाले व्यक्तिको शीघ्र तथा उचित दण्ड दे सकता है। यह यहाँ नहीं दिखलाया गया है कि किस प्रकारसे ये विधान अपर्य्याप्त हैं, और मेरा कहना है कि नवीन धाराको पास करनेके लिये कोई वात सिद्ध नहीं हुई है। श्रीमन्! यह कहा जा सकता है कि एक सौ आठवीं धाराका प्रयोग तथा सज़ा वार-वार उसी अपराधको करनेवाले व्यक्तिके लिये अपर्य्याप्त है। मैं यह समझनेमें असमर्थ हूँ कि उस धाराका वार-वार प्रयोग उस व्यक्तिको इस प्रकारके अपराध करनेसे क्यों नहीं रोक सकता? परन्तु यदि यह मान लिया जाय कि वह नहीं रोक सकता तव मैं यह कहता हूँ कि उपयुक्त उपाय इस प्रकारके अपराधको अन्त करनेका यह होता है कि एक नवीन धाराके प्रचलनकी अपेक्षा उसी धारामें कुछ उचित सुधार हो जाता जिससे अभियुक्तको अधिक दण्ड दिया जा सकता।

यदि श्रीमन्! एक नवीन क़ानूनके निर्माणकी सार्थकता सिद्ध नहीं हुई तो इस प्रश्नको यहीं अन्त कर देना चाहिए। यह मानते हुए कि न्यायालयोंको अधिक अधिकार प्रदानकी आवश्यकता है, तथा सरकारको वर्त्तमान क़ानूनमें सुधार करना कुछ कारणोंसे अपेक्षित नहीं है, और सरकार यह समझती है कि इस परिस्थितिमें एक नवीन क़ानून प्रचलित करना आवश्यक है, तो मैं इस वातकी कुछ व्याख्या सुनना चाहता हूँ कि सरकारद्वारा पचास या इससे भी अधिक वर्षोंसे पास किए विधानोंके सिद्धान्तसे हटकर, इतने वड़े, इतने अद्भुत तथा इतने ख़तरनाक मार्गका अवलम्बन क्यों किया गया है? श्रीमन्! फ़ौजदारी दण्ड-विधानके अन्तर्गत किसी सम्पादक, लेखक अथवा प्रकाशक आदिके विरुद्ध, उसके अच्छे चाल-चलनके लिये ज़मानत लेनेकी वात, एक वार गवर्नर-जेनरल अथवा प्रान्तीय सरकारकी आज्ञा उपलब्ध हो जानेपर, उस धाराके अनुसार, सभी प्रयोग न्याययुक्त हैं और सभी वातें ज़िलाधीश-द्वारा न्यायके आधारपर वर्ती जानी चाहिएँ। यही वात समाचारपत्र-अपराध-विधानके विषयमें भी है, जिसमें कि घोर अपराधोंके विरुद्ध अभियोगोंका ज़िक्र है। सरकारको उस विधानको पास किए दो वर्षसे कम लगे हैं तथा उसने अपने स्थापित मजिस्ट्रेट तथा न्यायालयोंको विद्रोहकी परिभाषाके अन्दर आनेवाले अथवा नहीं आनेवाले सभी कार्य्योंका निर्णायक वना दिया। श्रीमन्! मैं नहीं समझता कि वर्त्तमान विलमें क्यों इस प्रकारका नवीन सिद्धान्त काममें लाया गया है कि जिससे किसी प्रकारके अपराधके औचित्यको मजिस्ट्रेटके ऊपर निर्णय करनेको छोड़ देनेकी अपेक्षा, प्रान्तीय सरकारको यह अधिकार है कि वह दोष लगाए गए व्यक्तिकी किसी प्रकारकी सुनवाईका मौक़ा दिए विना ही यह तै कर दे कि अमुक कार्य्य विद्रोहके अन्तर्गत है। श्रीमन्! मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि इस प्रकार न्यायोचित मार्गसे विचलित होना देशकी परिस्थितिके अनुकूल नहीं है। श्रीमन्! जिस प्रकारके अपराधोंको रोकना समाचारपत्र-दण्ड-विधानका लक्ष्य है, वे अवश्य ही अक्षम्य हैं, किन्तु वर्त्तमान विलसे उससे अधिक

रुकावटकी सम्भावना नहीँ प्रतीत होती। ऐसी दशामेँ मेरा कथन है कि यदि किसी मजिस्ट्रेटको समाचार-पत्रोँपर यह अभियोग चलानेका अधिकार दिया जाता है कि वह दोषयुक्त लेखका प्रकाशन करता है, तो उस मजिस्ट्रेटको यह भी अधिकार दे देना चाहिए कि वह यह निर्णय करे कि प्रस्तावित क़ानूनके अन्तर्गत कौनसी बात वर्जित अपराधकी परिभाषाके अन्तर्गत आती है। श्रीमन्! बिलसे 'एक राजनीतिक प्रश्न' उठता है जो कि असाधारण तथा अत्यन्त गूढ़ है, अर्थात् सरकारके लिये क्या यह उचित है कि वह व्यवस्थापिका सभासे निर्णय करनेका अधिकार ले ले कि कौनसा लेख दोषयुक्त है और कौनसा नहीँ, जैसा कि सन् १८७८ ई० के वर्नैकुलर प्रेस ऐक्टके सम्बन्धमेँ हाउस ऑफ़ कौमन्समेँ श्रीयुत ग्लेडस्टनने अपने गम्भीर शब्दोँमेँ कहा था। उसी बहसके समय श्रीयुत ग्लेडस्टनने कहा कि,—'विधानका सबसे बुरा अङ्ग देशमेँ स्थापित न्याय-विभागके अधिकारको प्रेस-सम्बन्धी अभियोगोँका निर्णय करना मजिस्ट्रेटोँके हाथमेँ दे देना है। हम लोगोँके सम्मुख उपस्थित प्रस्ताव भी उसी वर्नैकुलर प्रेस-ऐक्टका समरूप है, जिसका श्रीयुत ग्लेडस्टनने इस प्रकार खण्डन किया था। श्रीमन्! यह कोई नई बात नहीँ है, कि मुद्रक या प्रकाशकोँके विरुद्ध अभियोग चलानेकी बात साधारण अभियोग-क़ानूनके अन्तर्गत अधिकतासे जनतामेँ फैल जाती है और उससे एक प्रकारकी सार्वजनिक हानि ही होती है। यह सन् १८७८ ई० के प्रेस-ऐक्टके समर्थनमेँ कहा गया है। उस विचारके सम्बन्धमेँ कहते हुए श्री ग्लैडस्टनने दिखलाया कि,—"इन बातोँके सम्बन्धमेँ जो तर्क न्यायालयोँद्वारा पेश किए गए हैँ वे ऐसे हैँ जो हम लोगोँकी नीतिकी, और अधिकांशमेँ हमारी भारत-सम्बन्धी नीतिकी जड़ काटते हैँ।" यह कहा जाता है कि, 'नहीँ-नहीँ, हम लोग न्यायालयमेँ अभियोगको नहीँ ले जायँगे। क्योँकि, यदि हम लोग वैसा करते हैँ तो अभियोग इन मनुष्योँको प्रसिद्ध बना देगा, तथा बुराईसे दबकर रह जानेकी अपेक्षा अभियोगका प्रभाव अधिक हानिकर सिद्ध होगा।' श्रीमन्, यह तर्क जितना सन् १८७८ ई० मेँ प्रभाव रखता था, उतना आज नहीँ रखता। और मेरी प्रार्थना यह है कि यह ऐसा तर्क नहीँ है जिसपर विचार करना उपयुक्त सिद्ध होगा, जब कि सम्पूर्ण न्यायके आधारपरसे इसके प्रतिपादनमेँ, विचलित होना पड़ता है। ऐसी हालतमेँ मैँ सादर प्रार्थना करता हूँ कि यदि सरकार यह चाहती है कि कोई नवीन विधान पास किया जाय, तो इस नवीन संयोगको हटा देना चाहिए। और मजिस्ट्रेटोँको यह अधिकार दे दिया जाय कि क़ानूनके अनुसार वे वर्जित विषयका न्याय करेँ। श्रीमन्, न्यायके आधारपर इस विधानकी सार्थकतामेँ कोई सम्भावना नहीँ है। वह अभियोगोँके रोकनेमेँ उतना ही उपयोगी सिद्ध होगा जितना कि वर्त्तमान विधान हो सकता है। किसी कार्य्यके प्रारम्भमेँ फिर भी प्रान्तीय सरकारकी आज्ञा लेनी पड़ेगी; पर एक बार इसका प्रारम्भ हो जानेपर, इसका सञ्चालन न्यायकर्त्ताके पदपर नियुक्त मजिस्ट्रेटद्वारा किया जायगा, और कोई भी निर्णय, जो वह करेगा, उसकी अपील सीधे हाइकोर्टमेँ होगी। मैँ यह एक बात कहना चाहता हूँ कि इस विषयमेँ अपील क्योँ नहीँ हो सकती? यदि कोई आज्ञा मजिस्ट्रेट अथवा प्रमुख प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेटके द्वारा दी गई है और उसकी अपील हाइकोर्टमेँ हो चुकी है, तो जनताके मस्तिष्कमेँ इस बातका अधिक सन्तोष रहेगा कि उचित रूपसे उसपर विचार किया गया है, क्योँकि मानव-प्रकृति तथा देशकी अवस्थाके वह अनुकूल है। इतना तो नवीन विधानकी आवश्यकता तथा उसके सुधारके विषयमेँ हुआ। श्रीमन्, मैँ यह प्रार्थना करता हूँ कि इसकी आवश्यकता तथा सार्थकता सिद्ध नहीँ हो सकी।

अब हमेँ प्रस्तावके दूसरे रूपपर विचार करना चाहिए। प्रस्तावके प्रतिष्ठित प्रस्तावक महोदयने इसका लक्ष्य बहुत उच्च बताया है। उन्होँने कहा है कि इसका लक्ष्य यह है कि योरोपियन अथवा

भारतीय, अंग्रेज़ी अथवा हिन्दी, सभी प्रेसोंके ऊपर समान अधिकार तथा पूर्ण नियन्त्रण, न्याययुक्त बहस करनेकी सीमातक करना है। श्रीमन्! लक्ष्यका पूर्णरूपसे विवरण, तर्कयुक्त बहसके क्षेत्रको अधिक विस्तृत कर देता है। यह स्वभावतः इस प्रश्नको जन्म देता है कि हम लोगोंके योरोपियन, भारतीय, अंग्रेज़ी तथा हिन्दी प्रेस इस देशमें न्याययुक्त सीमाके अन्तर्गत हैं या नहीं। श्रीमन्, विलके प्रस्तावक महोदयने इस देशके प्रेसोंकी स्वतन्त्रताके इतिहासका वर्णन किया है। उन्होंने हमें बताया है कि गत सत्तर वर्षोंमें एक और तीन वर्षोंके अल्पकालिक ग़दरके अन्धकारमय दिनोंके अतिरिक्त भारतमें प्रेसोंको पूर्ण स्वतन्त्रता रही है। श्रीमन्, वर्नैकुलर प्रेस ऐक्ट तीन वर्षोंतक जारी रहा, और उसके विरुद्ध केवल एक ही वार हाथ उठाना पड़ा। अतएव यह मानना पड़ता है कि सरकारके लिये यह आवश्यकता नहीं थी कि वह प्रेसकी स्वतन्त्रताके कार्य्यको अवरुद्ध करे। विलके प्रस्तावक महोदयने वतलाया है कि सन् १९०७ ई० तक केवल सोलह अभियोग प्रेसोंके विरुद्ध चले थे। श्रीमन्, मैं प्रस्तावक महाशयसे यह पूछनेकी प्रार्थना करता हूँ कि गत सत्तर वर्षोंमें आस्ट्रिया अथवा किसी अन्य देशमें भारतकी अपेक्षा कहाँपर अधिक प्रतिष्ठाके साथ प्रेसने अपना कार्य्य किया है? प्रस्तावक महोदयके कथनसे तो यह पता चलता है कि भारतमें प्रेस अधिक कालसे दोषी वन रहे हैं। उन्होंने यह भी वतलाया है कि सरकारने इस विषयमें वहुत अधिक कालतक क्षमा-नीति धारण की है, जो उसके लिये अब असह्य हो गई है। उन्होंने यह भी कहा है कि इस विषयमें प्रेसोंने हद कर दी है और सरकारके इतना चुप रहनेपर भी उन्होंने सुमार्गपर आनेके अपेक्षा दिन-पर-दिन कुमार्गका ही अवलम्बन किया। श्रीमन्, यदि प्रस्तावक महोदयद्वारा वर्णित चित्र सत्य है, तो इसका प्रभाव शासन-प्रबन्धपर वहुत बुरा पड़ा होगा। यदि यह सत्य है, तो इससे सिद्ध होता है कि सरकारने जान-बूझकर कि, प्रेस कुमार्गपर जा रहा है, उसे रोका नहीं तथा उसकी बुराईको सुधारनेका प्रयत्न नहीं किया। परन्तु सौभाग्यवश हमारे पक्षमें तथा सरकारके पक्षमें भी हमारे मित्र दादाभाई नौरोजीका कथन यह प्रमाणित करता है कि बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारियोंने यह स्वीकार किया है कि भारतमें प्रेसोंने अपना कार्य्य अधिक प्रतिष्ठाके साथ किया है, और उनके विरुद्ध कुछ कहनेका स्थान बहुत कम है। श्रीमन्, म उस वातका उल्लेख नहीं करना चाहता, जिसे हमारे प्रस्तावक पुराना इतिहास समझेंगे। सर हर्वर्ट रिसलेने हमें सन् १९०७ ई० तक का प्रेसका इतिहास वतलाया है और तब उन्होंने उस प्रस्ताव की ओर ध्यान दिलाया था, जब आपकी सरकारने समाचार-पत्रोंके विरुद्ध उचित नियन्त्रण तथा सुप्रवन्धकी ओर अपना ध्यान दिया था। उस प्रस्तावमें यह कहा गया था कि सपरिषद्‌ गवर्नर-जनरल यह विचार प्रकट करते हैं कि उन्हें प्रेसोंकी न्याययुक्त स्वतन्त्रताको, जो सरकारके कार्य्योंकी आलोचना करना है, रोकना नहीं है। और वह कुछ राज-विरोधी पत्रिकाओंके कुव्यवहारके कारण अनेक सुव्यवस्थित तथा सुसञ्चालित पत्रोंकी स्वतन्त्रतामें कोई विघ्न नहीं डालेगी। श्रीमन्! कठिनतासे दो वर्ष व्यतीत हुए होंगे कि आपकी सरकारने स्वयं यह स्वीकार किया था कि इस देशमें अनेक पत्र अपना कार्य्य-सञ्चालन उत्तम रीतिसे करते हैं और उनमेंसे बहुत कम राज-द्रोही थे। श्रीमन्! मैं आज भी यह कहनेका साहस करता हूँ कि वही परिस्थिति अब भी है। देशके कुछ प्रान्तोंमें कुछ समाचारपत्रोंको छोड़कर शेष सभी समाचार-पत्र अपना कार्य्य-सञ्चालन उत्तम ढङ्गसे करते हैं। यदि यह वात ऐसी है तो प्रस्तावक महोदयका इस विषयमें प्रेसोंकी स्वतन्त्रताको छीनना तथा उनके सीमित नियन्त्रणको सङ्कुचित करनेका प्रस्ताव पेश करना, युक्तियुक्त दृष्टिगोचर नहीं होता। आपकी सरकार यह स्मरण करनेकी कृपा करेगी कि गत अढ़ाई

वर्षतक एक विशेष समय रहा है। सन् १९०७ ई० के प्रारम्भतक अथवा सन् १९०५ ई० के अन्ततक प्रेसोँने यहाँतक कि बङ्गालके प्रान्तमेँ भी उचित ढङ्गसे अपना कार्य्य किया है। मैँ नहीँ सोचता कि उसके बाद अधिक संख्यामेँ पत्रोँने दोषयुक्त कार्य्य किया। श्रीमन्! हम सभी जानते हैँ कि सन् १९०५ ई० के अन्तमेँ अशुभ किन्तु प्रसिद्ध घटनाका सूत्रपात हुआ। हम सभी जानते हैँ कि सरकार-विरोधी कार्य्य प्रारम्भ हुआ, वह लौर्ड कर्ज़नकी सरकारद्वारा लोकमतके विरुद्ध बङ्गालका विच्छेद करना था। और उसी समयसे उन बुराइयोँका आरम्भ हुआ, जिनपर हम शोक प्रकट कर रहे हैँ तथा जिसके फल-स्वरूप अनेक दुःखप्रद घटनाएँ हुई हैँ।

श्रीमन्! यह सन् १९०६ ई० का समय था, जब कुछ प्रेसोँने विरोध-सम्बन्धी कटु शब्दोँका प्रयोग किया और यह सन् १९०७ ई० तक जारी रहा, परन्तु मेरी प्रार्थना यह है कि वह परिस्थिति असाधारण थी। प्रेसोँके इन कटु शब्दोँका कारण सब लोगोँको ज्ञात था। हमेँ उसका शोक है, परन्तु हम उनको छिपा नहीँ सकते। उसका कारण, सन् १९०५ ई० के लगभग कुछ सरकारी कर्मचारियोँके कुव्यवहार तथा अपशब्दोँका प्रयोग था, जिससे जनताके हृदयमेँ दुर्भाव फैल गया था। अतएव मुझे दुःखके साथ यह प्रकट करना पड़ता है कि आपके भूतपूर्व अधिकारियोँका शासनकाल इस बातका उत्तरदायी है कि उसने अपने कर्त्तव्योँसे प्रेसोँको अपने प्रतिष्ठित कार्य्य-सञ्चालनसे विचलित करवाया, जिससे प्रत्येक देश-प्रेमी तथा शुभ कर्म्मके अनुयायियोँको कष्ट हुआ। श्रीमन्! बुराइयाँ हैँ, परन्तु उनके विनाशके लिये साधनोँका अवलम्बन करना भी देश और कालके अनुसार आवश्यक है। हमेँ यह स्मरण कराने दीजिए कि जबसे इन प्रेसोँने अपनी स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करना प्रारम्भ किया है तबसे सरकार भी चुप नहीँ बैठी है। गत तीन वर्षोँमेँ कभी भी यह नहीँ कहा जा सकता कि सरकारने जनतामेँ सरकार-विरोधी भावोँको दमन करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न नहीँ किया। हम लोगोँसे यह कहा गया है कि सरकार शान्ति-प्रिय रही है—परन्तु जनतामेँ यह प्रसिद्ध है कि सरकारने इस विषयमेँ असाधारण कठोरताका परिचय दिया है। परन्तु, श्रीमन्! एक दूसरा लोकमत यह है कि आवश्यकताके अनुसार सरकार शान्ति-प्रिय तथा कठोर दोनोँ रही है। ज्योँही उसने आवश्यकता समझी, उसने सन् १९०८ मेँ समाचारपत्र-अपराध-विधान (न्यूज़पेपर्स औफ़ेन्सेज़ ऐक्ट) पास कर दिया, जो किसी तरहसे शान्ति-प्रिय विधान नहीँ कहा जा सकता। इससे अनेक विरोधी समाचार-पत्रोँका दमन हो गया। तथा अन्य या तो नियन्त्रित हो गए अथवा सर्वदाके लिये विनष्ट हो गए। यदि कोई ऐसा पत्र है जो अभीतक क़ानून-विरुद्ध कार्य्य करता है तो क़ानूनमेँ उसके विनाशके लिये पूर्ण स्थान है। इस कौन्सिलमेँ एक भी ऐसा सदस्य नहीँ है जो यह चाहे कि इन समाचार-पत्रोँके प्रति कोई सहानुभूति प्रकट की जाय; और कोई यह नहीँ चाहता कि वे अपनी स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करेँ। परन्तु मैँ यही कहूँगा कि जबतक वर्त्तमान विधानमेँ किसी प्रकारकी अपर्य्याप्तता दृष्टिगोचर न हो, तथा जबतक किसी नवीनताकी उसमेँ आवश्यकता न पड़े, तबतक सरकार क़ानून-महा-कोषमेँ किसी कठोर क़ानूनको स्थान न दे। मैँ आशा करता हूँ कि आपकी सरकार इस विचारमेँ मुझसे सहमत होगी। इसमेँ कुछ भी सन्देह नहीँ कि यदि यह बिल पास हो गया तो देशमेँ एक नवीन असन्तोषका प्रचार होगा। इस बातकी सूचना हमेँ कुछ प्रकाशित लेखोँ तथा पत्र-व्यवहारके द्वारा मिली है, जिसका उल्लेख मैँ प्रथम ही कर चुका हूँ। आपने कृपा करके इस विस्तृत कौन्सिलमेँ प्रवेश करते ही अपने उदार तथा सुन्दर व्याख्यानमेँ यह प्रकट किया है कि देश-द्रोहियोँके जो कार्य्य पहले दुःखद प्रतीत होते थे, वे केवल छायामात्र थे। आप कृपा करके मुझे आपके

शब्दोंको उल्लेखित करनेकी आज्ञा देंगे। आपने यह कहा था कि :—

"यद्यपि मैं वर्त्तमान चिन्ताओंको आपसे छिपाना नहीं चाहता, मैं एक क्षणके लिये भी यह मानना नहीं चाहता कि इस महान् आपत्तिको जड़से नाश करनेकी आवश्यकतासे भारतकी सार्वजनिक राजनीतिक परिस्थितिपर एक प्रतिच्छायासे बढ़कर अधिक प्रभाव नहीं पड़ सकता। मैं इस परिस्थितिको गत पाँच वर्षोंकी अपेक्षा अच्छा समझता हूँ। हमें वर्त्तमान ख़तरोंसे अन्धे होकर भविष्यकी शुभ कामनाकी हत्या नहीं करनी चाहिए। मेरा विश्वास है कि राजनीतिक प्रतिनिधित्वके विस्तारने भारतको अधिक सङ्कटोंसे बचाया है, जितना कि हमें वर्त्तमानमें उन्हें सहना पड़ता है।"

श्रीमन्! ऐसी परिस्थितिमें तथा परिस्थितिकी वास्तविकताका सच्चा अनुभव होनेसे कौन्सिलके समक्ष वर्त्तमान बिलके पास करनेकी सार्थकता बहुत कम है। श्रीमन्! यदि इसका परित्याग नहीं हो सकता तो मेरा कहना है कि इस विधानपर विचार करनेकी अवधि कुछ और बढ़ा दी जाय। इस ख़तरेकी वास्तविकता दृष्टिगोचर होती है कि बिलका वर्त्तमान विधान प्रेसोंकी न्याययुक्त स्वतन्त्रतापर बुरा प्रभाव डालेगा। वे विधान अनावश्यक रूपमें अधिक विस्तृत तथा हानिकर हैं। मैं उनपर अधिक बहस करके कौन्सिलका समय नहीं लूँगा। उदाहरणके रूपमें मैं इस बातकी ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि बिलमें सन् १८७८ ई० के वर्नैकुलर प्रेस-ऐक्टके तर्कयुक्त विधानको भी तिरस्कृत कर दिया गया है, जिससे प्रान्तीय सरकारको किसी दोषी समाचार-पत्रको नोटिस देनेकी आवश्यकता पड़ती थी, जिससे प्रकाशक पुनः दोष करनेसे सावधान हो जाय। उस ऐक्टकी बड़ी धारा यह बतलाती है कि इस प्रकारकी चेतावनी हो जानी चाहिए, और सातवीं धारा यह बतलाती है कि यदि उसपर ध्यान नहीं दिया गया तो उसका फल बुरा होगा। श्रीमन्! मैं प्रार्थना करता हूँ कि इस प्रकारका विधान इस बिलमें सम्मिलित किया जाना चाहिए था। दूसरे इस बिलसे केवल नवीन प्रेसोंको ही नहीं बल्कि पुराने प्रेसोंको भी ख़तरा है। नवीन प्रेसोंके विषयमें यहाँ कोई कारण नहीं बतलाया है कि प्रेसके प्रारम्भमें ज़मानतकी क्या आवश्यकता है। इसमें कोई तर्क नहीं ज्ञात होता कि समाजमें कुछ लोग दोषी होते हैं अथवा अपनी स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि इसलिये सबोंके विरुद्ध कोई कार्रवाई की जाय तथा निर्दोषीको भी सताया जाय। प्रत्येक नवीन स्थापित समाचार-पत्रसे पहले ही ज़मानत रखवाना, मेरी समझमें समाचार-पत्रोंके क्षेत्रकी वृद्धिको रोकना है, और पत्रको स्थापन करनेवाले व्यक्तिके व्यक्तित्वपर व्यर्थ सन्देह करना है। तथापि यदि सरकार इसी बातपर दृढ़ है कि कुछ ज़मानत अवश्य रक्खी जानी चाहिए, तो यह सोचना तर्कयुक्त है कि मजिस्ट्रेट केवल उन्हीं व्यक्तियोंसे ऐसी ज़मानत लें जिसे वे हर प्रकारसे दोषी समझ लें। श्रीमन्! यह विचार करते हुए, कि प्रेसकी स्वतन्त्रताका सार्वजनिक रूपसे दुरुपयोग सत्तर वर्षोंमें नहीं किया गया है, मेरा यह प्रार्थना करना उपयुक्त है कि बिलमें कम-से-कम यह सुधार होना चाहिए। मैं यह नहीं चाहता कि दोषीको दण्ड न दिया जाय। मेरा मतलब केवल यही है कि निर्दोष व्यक्ति, जिसने कभी अपने मनमें राजद्रोहकी धारणाको स्थान भी न दिया हो, उसे सज़ा नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि दोषी तो कोई अन्य ही है। तब, श्रीमन् वर्त्तमान प्रेसोंके सम्बन्धमें बिल यह कहता है कि जब कभी कोई व्यक्ति किसी प्रेसकी रजिस्टरी कराने जाता है तो मजिस्ट्रेट उससे ज़मानत माँगता है। तो मेरा कहना यह है कि इसका अर्थ यह है कि यदि तीस वर्षका प्राचीन प्रेसका मालिक, जिसने कभी भी कोई जुर्म नहीं किया, मर जाता है और कोई उसका उत्तराधिकारी उसको सञ्चालित रखनेके लिये रजिस्ट्री कराने जाता है तो उसे ज़मानत देनी पड़ेगी।

इस सम्बन्धमेँ मेरा कहना है कि यह निश्चय ही अन्याय तथा कठोरता है। इस विलमेँ प्रथम विलकी तरह संरक्षिता अपेक्षित नहीँ रह जाती।

श्रीमन्, मैँ कौन्सिलका अधिक समय नहीँ लूँगा। मुझे केवल इसी बातकी चिन्ता है कि जनताके हृदयमेँ इस बातका भ्रम पैदा हो गया है कि न्याययुक्त आलोचनाका अधिकार, जिससे जनताका हर प्रकारसे लाभ ही है, उससे छीना जा रहा है। श्रीमन्, जब कि प्रेस प्रान्तीय सरकारकी कृपापर छोड़ दिया जाता है वह भी केवल ज़मानत करनेके नोटिसके आधारपर तो मैँ यह कहता हूँ कि उस स्वतन्त्रताकी बड़ी हानि होती है, जिसको पाकर समाचार-पत्रोँने सरकारके कार्य्योँकी आलोचना की है। सब कुछ होते हुए भी प्रान्तीय सरकार मनुष्यकी ही एक संस्था है जो ग़लती कर सकती है, और मैँ बहुतसी ऐसी ग़लतियोँका उदाहरण दे सकता हूँ, जिनका सुधार भारत-सरकारको करना पड़ा है। श्रीमन्, यदि ऐसा हो भी गया कि कोई पत्र कुछ अधिक स्पष्ट लिखते हैँ जैसा कि उसे चाहिए, यदि कोई पत्र सरकारके विरुद्ध बार-बार आलोचना करता है या किसी अन्य प्रकारका अयुक्त प्रयोग, जो वर्जित है,, तो वह सब बन्द हो जाता यदि सरकार उसका विरोध न करती। मुझे यह डर है कि किसी नवीन प्रेसके अधिकारी या पत्रके सम्पादकके ऊपर ज़मानत जमा करनेकी नोटिस देना, मेरी समझमेँ उसका जड़से नाश करना है। पत्रका अधिकारी कोई एक व्यक्ति हो सकता है और वह अपनी थोड़ीसी जायदादको खो देनेकी परिस्थितिमेँ नहीँ है। यदि उसका मालिक कोई कम्पनी ही हो तो वह प्रथम ही सूचनाको पाकर डर जाय कि भविष्यमेँ उसकी बड़ी हानि हो जायगी। इस प्रकारसे, श्रीमन्, मेरा कहना है कि पत्रोँको जनताके लाभार्थ जिस स्वतन्त्रतासे उन्हेँ आलोचनाका अधिकार मिला है, उसपर अत्यधिक दबाव पड़ेगा, और वे अपने सत्य भावोँको प्रकट नहीँ कर सकेँगे। इन्हीँ कारणोँसे मेरा कहना है कि इस विलपर पुनः विचार करनेकी अवधि बढ़ा दी जाय और इसके समर्थनमेँ कौन्सिलका ध्यान श्रीयुत ग्लेडस्टनके वर्नैकुलर प्रेस-ऐक्टके अवसरपर कहे हुए विचारोँको हृदयङ्गम कर लेनेकी प्रार्थना करूँगा। उन्होँने कहा कि यदि कोई एक स्पष्ट बात है तो यह है कि जो कुछ हम देँ उसे वापस न लेँ, और जब हमने अपनी संस्थाओँकी सभी लाभदायी वस्तुओँका प्रयोग भारतमेँ प्रारम्भ करा दिया, जैसे, विचारोँको प्रकाशित करना, जिसमेँ जनताका अधिक हित है और समय-समयपर उनपर विचार करनेका पर्य्याप्त समय प्रदान किया जा चुका है, तो बुराई तथा दोषके विरुद्ध ज़मानत जमा करना, भारतकी इस परिस्थितिमेँ इस विषयमेँ इतनी शीघ्रता करना बुरा है; और ऐसा केवल उसके सुधारमेँही नहीँ बल्कि उसमेँ पुनः आमूल परिवर्त्तन करनेमेँ ऐसी शीघ्रता दिखलाई गई है जो देशकी व्यवस्था का एक प्रधान अङ्ग है। मैँने 'देशीय' शब्दको छोड़ दिया है, क्योँकि वर्त्तमान विल सभी प्रेसोँसे सम्बन्ध रखता है चाहे वे योरोपियन अथवा भारतीय, अंग्रेज़ी अथवा हिन्दी हो। श्रीमन्, मेरा कहना है कि वे गम्भीर विचार हमेँ बहुत कुछ उपदेश देते हैँ कि किस मार्गका अवलम्बन कौन्सिलको करना चाहिए। इस प्रस्तावको आज ही पास करके हमेँ पुनः आलोचनाकी सामग्री नहीँ जुटानी चाहिए। यदि पुनः विचारके लिये यह स्थगित कर दिया जाय तो जनता इसको पूर्ण रूपसे समझ ले और तब इसमेँ कोई बहुत बड़ी हानि नहीँ होगी। मेम्बरोँको प्रस्तावको पुनः तौलनेका सुअवसर देना चाहिए, और सरकारको भी पुनः विचार करना चाहिए कि वास्तवमेँ किसी नवीन विधानकी आवश्यकता है या नहीँ।

श्री गोखलेका शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्ताव

राजकीय व्यवस्थापक कौन्सिलके सन् १९१२ ई० की उन्नीसवीं मार्चकी बैठकमैँ श्री गोपालकृष्ण गोखलेके प्रारम्भिक-शिक्षा-प्रस्तावका समर्थन करते हुए, पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण ।

—सम्पादक ।

अध्यक्ष महोदय !

मैँ सादर प्रारम्भिक-शिक्षा-प्रस्तावका समर्थन करता हूँ कि उसकी व्याख्या एक निर्वाचित कमेटीके सुपुर्द कर दिया जाय। मेरे इस विचारका कारण सङ्क्षेपमैँ यह है। प्रथम तो मैँ इसके लिये सन्तोष प्रकट करता हूँ कि कौन्सिलने प्रतिष्ठित शिक्षा-सदस्यकी बातोँको शान्तिके साथ सुना है। देशभरमैँ उसकी सुनवाई बड़े ही सन्तोषके साथ होगी। हम लोग भली भाँति जानते हैँ कि सरकारने पहले भी शिक्षा-प्रचारके लिये अधिक प्रयत्न किया है। वास्तवमैँ वर्त्तमान शिक्षा-प्रणालीका सार्वजनिक प्रयोग जो जनतामैँ किया गया है उसके लिये जनता सरकारकी सदैव ऋणी रहेगी। इसकी वृद्धिकी ओर माँगकी लालसाका यह अर्थ नहीँ है कि हम पिछले उपकारोँको भूल गए हैँ। हम लोगोँकी इच्छा यह है कि यह अधिकार सबके लिये प्राप्य और सुलभ हो जाय। और इस लक्ष्यकी पूर्त्तिका उचित साधन यही प्रस्ताव हो सकता है। मेरे पूर्व व्याख्याताओँ तथा माननीय शिक्षा-सदस्यके भाषणोँमैँ, इस प्रस्तावके विरुद्ध सभी बातोँकी पूर्ण विवेचना हो चुकी है। अतएव इस विषयमैँ मेरा कार्य्य हलका हो गया है। सङ्क्षेपमैँ प्रस्तावके विरोधियोँकी तीन श्रेणियाँ बन सकती हैँ। प्रथम तो वे हैँ जो सार्वजनिक शिक्षाके विरुद्ध हैँ, क्योँकि प्रस्तावका प्रधान ध्येय सार्वजनिक शिक्षाका प्रचार है। इस श्रेणीमैँ मुझे शोकके साथ कहना पड़ता है कि कुछ प्रमुख ज़मीन्दार सदस्य हैँ। उनमैँसे मेरे मित्र नवाब अब्दुलमजीद तथा गङ्गाधरराव चिटनवीस हैँ। उन्होँने ऐसा अज्ञानतावश कहा है कि भारत-सरकार सार्वजनिक शिक्षाके लिये बहुत दिनोँसे यत्न कर रही है। उन्होँने इसके विरुद्ध सामाजिक, राजनीतिक तथा अन्य प्रकारकी बाधाओँका वर्णन किया है। इन विरोधोँमैँसे बहुतोँका उत्तर मेरे मित्र श्री जिन्नाने इस ख़ूबीके साथ दिया है कि मैँ उसको नहीँ दुहराऊँगा। परन्तु सामाजिक तथा राजनीतिक बाधाओँके अतिरिक्त, जिनका उत्तर उन्हेँ मिल चुका है, कुछ अन्य विविध आपत्तियाँ भी हैँ, जिनका उत्तर देना अभी शेष है। उनमैँसे एक आपत्ति भाषाओँकी कठिनाई है, जिसे श्री नवाब अब्दुलमजीदने बतलाया है। उन्होँने बताया है कि इस देशमैँ अनेक भाषाएँ प्रचलित हैँ और उन्हेँ प्रधानतः संयुक्तप्रान्तके लिये यह डर है कि यदि यह प्रस्ताव क़ानून-रूपमैँ पास हो गया तो उर्दू भाषाको नष्ट करनेकी एक कोशिश की जायगी और मुसलमान विधर्मियोँको हिन्दी भाषा पढ़नेको बाध्य किया जायगा। श्रीमन्! मैँ कौन्सिलका अधिक समय इस बातकी व्याख्यामैँ नहीँ लूँगा कि हिन्दी तथा उर्दूका सामयिक इतिहास क्या है और कौन अच्छी है और

कौन बुरी। मैं केवल इस विषयमें प्रमुख विद्वान् सर विलियम हण्टरके वचनोंका उल्लेख करूँगा कि हिन्दी भाषा भारतकी सभी भाषाओंकी शिरोमणि है। अन्य भाषाओंके लिये व्यर्थकी आशङ्का करना मेरे मित्रके लिये युक्तियुक्त नहीं है। गत सत्तर वर्षोंसे संयुक्तप्रान्तकी सरकार हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओंका प्रयोग सार्वजनिक शिक्षाके लिये कर रही है और यदि प्रस्ताव पास भी हो गया तो उसमें कोई विशेष परिवर्त्तन या हानि नहीं होगी। और मुसलमान या ग़ैर-मुसलमान जनताको किसी प्रकारका आक्षेप करनेका स्थान नहीं मिलेगा।

दूसरी आपत्ति, जो बिलके पक्षमें उपस्थित की जाती है, वह देशमें अनेक जाति-पाँतिकी है। श्रीमन्! मेरा कहना है कि सार्वजनिक शिक्षाके प्रचारमें इस बाधाका प्रश्न अत्यन्त तुच्छ है। बृटिश सरकार गत सत्तर वर्षोंसे जनतामें इस शिक्षाका प्रचार कर रही है। यद्यपि इस देशमें अनेक जातियाँ तथा उपजातियाँ वर्त्तमान हैं। जिस मार्गका अवलम्बन उन्होंने किया है वह बहुत ही गम्भीर तथा बाधारहित है, जिसके कारण यदि सरकार प्रस्तावको पास कर दे तो जनता इसके लिये सरकारको धन्यवाद देगी और घर-घर प्रत्येक जातिमें शिक्षाका प्रचार सुलभ हो जायगा।

ये ही फुटकर आपत्तियाँ कही जाती हैं, जो बिलके मार्गमें कोई भी बाधा उपस्थित नहीं करतीं। यह कहना पर्य्याप्त होगा कि यदि कभी भी बिलकी परीक्षा निर्वाचित कमेटीके द्वारा की गई, तो हर प्रकारके स्वार्थोंकी रक्षाका प्रयत्न किया जायगा।

इसके उपरान्त दूसरी श्रेणी उन विरोधियोंकी है जो सार्वजनिक शिक्षाके सिद्धान्तको तो स्वीकार करते हैं, किन्तु अनिवार्य्य शिक्षा-प्रणालीका विरोध करते हैं। वे सार्वजनिक शिक्षाका तो स्वागत करते हैं, परन्तु उसके अनिवार्य्य सिद्धान्तसे वे बड़े भय खाते हैं। क्योंकि इससे उनका तात्पर्य्य यह है कि अनिवार्य्य करनेसे जनताकी स्वतन्त्रतामें व्यर्थका विघ्न पड़ता है।

वे इस बातमें भूल करते हैं कि प्रत्येक सभ्य शासन-प्रबन्धके कुछ विभागोंमें अनिवार्य्य शिक्षा-सिद्धान्तका पालन आवश्यक हो जाता है। प्रारम्भमें शान्ति-स्थापन तथा अपराधोंको दबानेके लिये व्यक्तिगत विचारों तथा इच्छाओंपर किसी-न-किसी प्रकारका अनिवार्य्य अङ्कुश रखना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। दूसरे सभ्यताकी उच्च श्रेणीमें सामाजिक उन्नति करनेके लिये अनिवार्य्य सिद्धान्तकी ही शरण लेनी पड़ती है। सरकारने बहुत काल हुए गोदनेकी प्रथाका प्रचार किया। उस प्रथाके अनुसार चाहे जनता उसे माने अथवा न माने, किन्तु उसको गुदाईके क़ानूनका पालन बाध्य होकर करना पड़ा है। इसमें सभी प्रकारके दण्डोंका विधान है, परन्तु इस सम्बन्धमें आजतक जनताकी ओरसे कोई दङ्गा या अशान्ति होनेकी बात नहीं सुनी गई। पानीकी कलें तथा बहनेवाली नालियोंकी प्रथाका बहुत स्थानोंमें प्रचार करनेके लिये सार्वजनिक जनताकी कोई सम्मति नहीं ली गई है। सार्वजनिक लाभके लिये व्यक्तिगत हानिको स्वीकार करना पड़ता है और उसके लिये जनता टेक्स देती है, अभियोग तथा अन्य आपत्तियोंको सहन करती है। यही बात अन्य प्रकारकी उन्नतिके सम्बन्धमें है। मुझे यह कहना पड़ता है कि अनिवार्य्य-प्रणालीका प्रयोग वहाँ करना पड़ता है जहाँ सार्वजनिक लाभके लिये उसे करनेकी आवश्यकता ज्ञात होती है। यदि अधिकांश जनता इसका स्वागत करती है तो कठिनाइयाँ सरल हो जाती हैं। यदि जनता बहु-संख्यामें इसका समर्थन नहीं करती, तो हमारे ऊपर एक और ज़िम्मेदारी आ जाती है कि उनको वैसा सोचनेके लिये अभी शिक्षित बनानेकी आवश्यकता है और जहाँ शिक्षाको लक्ष्य इतना सुन्दर है वहाँ सभी जातियोंमें शिक्षाको सार्वजनिक बना देने की भावनाके लिये धन्यवाद देना चाहिए। अनिवार्य्य-प्रणालीके विरुद्ध कल्पित आपत्ति, सार्वजनिक लाभोंके सम्मुख

नगण्य है और जनता-उपयोगी कार्य्योंके विषयमेँ उनपर ध्यान नहीँ देना चाहिए। तदुपरान्त, श्रीमन्! तीसरी श्रेणीके विरोधी हैँ। इनमेँ वे हैँ जो हृदयसे तो सार्वजनिक शिक्षाके पूर्ण अनुयायी हैँ और जो अनिवार्य्य बनानेके भी हामी हैँ, परन्तु जिनका कहना यह है कि उसको प्रयोगमेँ लानेका अभी समय नहीँ आया है। इस तीसरी श्रेणीमेँ अनेक प्रान्तीय सरकारोँकी गणना है। बङ्गाल-सरकारका यह कहना है कि शिक्षाके अनिवार्य्य वनानेमेँ वह किसी प्रकारकी बाधा नहीँ करती, परन्तु वह यही चाहती है कि उसकी सफलताके लिये अभी परिस्थितिमेँ सुधारकी आवश्यकता है। मद्रास-सरकारका कहना है—"यह स्वयंसिद्ध सिद्धान्त है कि जनताको सार्वजनिक शिक्षाकी प्राप्ति ही अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए और जिन्हेँ देशके हितोँकी रक्षासे हार्दिक प्रेम है वे सभी समान रूपसे इसकी पूर्ण सिद्धिके लिये प्राण-पणसे प्रयत्नशील हैँ, परन्तु सपरिषद्-गवर्नर छोटे लाटसाहब अभी कुछ कालतक इस बिलके प्रयोगका समर्थन नहीँ कर सकते।" यहाँतक कि संयुक्त-प्रान्तकी सरकारने भी, जिसे जानकर मुझे खेद होता है, कि कुछ अनुचित एवं निरर्थक आशङ्काएँ प्रकट की हैँ जो इस बिलको पास करनेसे पैदा होँगी। फिर भी उस सरकारका कहना है कि जब बहुसंख्यक अभिभावकोँमेँ अपने सन्तानोँकी प्रारम्भिक शिक्षा देनेका भाव उत्पन्न हो जायगा, उस समय शिक्षाको अनिवार्य्य करना कुशल राजनीतिज्ञताका परिचायक होगा। इसलिये मेरा कहना है कि प्रान्तीय सरकारोँमेँ अधिक स्वयं इस अनिवार्य्य सिद्धान्तके विरोधमेँ नहीँ हैँ। वे केवल यही कहती हैँ कि उसके प्रयोगका अभी उपयुक्त समय नहीँ है। परन्तु उनके विचारोँको प्रकट करनेमेँ मैँ कौन्सिलका अधिक समय लेना नहीँ चाहता। माननीय शिक्षा-सदस्यद्वारा कथित विचारसे यह प्रश्न बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। भारत-सरकार भी स्पष्टतः सार्वजनिक अनिवार्य्य शिक्षाकी विरोधी नहीँ है।

माननीय सदस्यके जिस बयानका स्वागत देशभरमेँ बहुत आशा तथा सन्तोषके साथ किया जायगा, उससे सब कुछ स्पष्ट हो जाता है। "हम लोग सब उसी लक्ष्यकी सिद्धिके लिये प्रयत्न कर रहे हैँ," ऐसा माननीय सर हारकोर्ट बटलरने कहा और मुझे भारतमेँ निःशुल्क तथा अनिवार्य प्रारम्भिक देशी शिक्षाके प्रचारको देखकर उन्हीँ लोगोँके (श्रीगोखले तथा बिलके अन्य समर्थकोँ) के समान हार्दिक आनन्द होगा। भारत-सरकार हृदयसे इसको सफल बनानेके लिये लालायित हैँ। भारत-सरकारको इस उदार एवं शुभ कामनाके लिये बधाई है। उसने इस विषयपर अनेक बार इसी धारणाकी घोषणा की है। हम लोग भी यही आशा करते हैँ कि वर्त्तमान सरकार भी, जिसके अध्यक्ष हमारे वर्त्तमान वाइसराय महोदय हैँ, इसी प्रकारकी घोषणा करेगी। मैँ उनके लाहौरमेँ एक डेपुटेशनके प्रत्युत्तरमेँ कहे हुए शब्दोँको परिषद्के सम्मुख रखना चाहता हूँ। पञ्जाबमेँ शिक्षाकी वृद्धिको देखकर वाइसराय महोदयने वहाँ कहा:—

"अतीत अत्यन्त उज्ज्वल और गौरवमय रहा है, और वर्त्तमानकी भी सफलतापूर्ण होनेकी आशा है। परन्तु हमारी दृष्टि सुदूर भविष्यपर स्थिर होनी चाहिए और इसी कारणसे इस देशके विद्यार्थियोँ तथा नवयुवकोँकी भावी आवश्यकताओँके प्रति मेरी सहानुभूतिपूर्ण सद्भावना रहेगी।"

अन्य स्थानपर वाइसराय महोदयने कहा :—

"परन्तु लक्ष्य अभी बहुत दूर है, जब प्रत्येक बालक और बालिका, नवयुवक और नवयुवती शिक्षा प्राप्त कर सके, जिससे व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक दोनोँ प्रकारके जीवनमेँ सुन्दरता और पूर्णता आ सकती है। इस आदर्शको हमेँ सदैव अपने सम्मुख रखना चाहिए।"

शिक्षाके सम्बन्धमेँ भारत-सरकार अपने उदार-भाव तथा उच्च लक्ष्यको इससे बढ़कर शब्दोँमेँ व्यक्त नहीँ कर सकती, परन्तु जिस प्रश्नका उत्तर वाञ्छनीय है, वह यह है कि उस लक्ष्यतक कैसे पहुँचा जा सकता है? सर हारकोर्ट बटलरने यह कहा है कि सरकार

शिक्षाकी उन्नति तथा वृद्धिके लिये व्यवस्था और लगनके साथ प्रयत्न कर रही है, और इस वर्त्तमान प्रणालीसे वास्तविक उन्नति हुई है। हम यह जानते हैं और इसके लिये हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। परन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि उन्नति सन्तोष-प्रद नहीं हुई है। माननीय सदस्यने कहा कि—"मैं स्वीकार करता हूँ, कि हम सन्तुष्ट नहीं हैं और हम इतनी धीमी उन्नतिसे अत्यन्त असन्तुष्ट हैं," और श्री गोखले आँकड़ोंद्वारा यह प्रमाणित कर चुके हैं कि यदि इसी चालसे हमारी प्रगति रही तो भारतके प्रत्येक स्कूल जानेकी वयवाले वालकको शिक्षित वनानेमें एक सौ पन्द्रह वर्ष लगेंगे और प्रत्येक वालिकाको शिक्षित वनानेमें छः सौ पैंसठ वर्ष लगेंगे। यह अवधि सम्भवतः पूर्ण सत्य हो सकती है और नहीं भी हो सकती है। परन्तु इस वातको मानना पड़ेगा कि प्रारम्भिक शिक्षाको वर्त्तमान स्वेच्छा-प्रणालीके अनुसार सर्वसाधारणमें फैलानेके लिये वहुत अधिक समयतक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। सर हारकोर्ट वटलरने कहा है कि भारत-सरकारको उसके सभी विशेषज्ञोंद्वारा यह परामर्श मिला है कि शिक्षाकी वर्त्तमान गतिको अधिक तीव्र गतिसे रुपयेका प्रवन्ध होनेपर वढ़ाया जा सकता है। इसमें किसीको सन्देह नहीं है। उन्होंने यह भी कहा है कि सरकार राजकीय आयसे इन योजनाओंकी वृद्धिके लिये उदार-पूर्ण सहायता देनेकी वात सोच रही है। यह वहुत प्रसन्नता तथा हार्दिक धन्यवादकी वात है। परन्तु फिर भी आशङ्का की जा सकती है कि सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षाकी भावी उन्नतिका आधार सुदृढ़ हो सकेगा या नहीं और विना व्यवस्थापक परिषद्की स्वीकृतिके भी इस विलके अनुसार या अन्य प्रकारसे उचित सहायता प्राप्त हो सकेगी या नहीं। इस सम्बन्धमें मैं कौन्सिलका ध्यान दिला देना चाहता हूँ कि भारत-सरकारका ध्यान सार्वजनिक शिक्षाकी उन्नतिकी ओर गत कई दशकोंसे है। सन् १८८२ ई० में लौर्ड रिपनने एक शिक्षा-कमीशन नियुक्त किया और उस कमीशनकी रिपोर्ट अधिकतर इसी प्रश्नके सम्बन्धमें थी। कमीशनने उन्नतिकी जाँच की जो वर्त्तमान स्वेच्छा-प्रणालीके आधारपर की गई थी और उसने उससे अत्यन्त असन्तोष प्रकट किया।

उन्होंने अनेक उपायोंकी सिफ़ारिश की, जिससे भविष्यमें आशाजनक उन्नति हो सके। सन् १८७१ ई० से जिस नीतिका अवलम्बन वृटिश सरकार करती आई थी उसीको पुनः ग्रहण करनेका उहोंने समर्थन किया और कहा कि :—"अतएव हम लोग अपनी यह धारणा प्रकट करना चाहते हैं कि यह ठीक है कि सरकारको शिक्षाके विभिन्न अङ्गोंपर ध्यान देना उचित है, किन्तु देशकी वर्त्तमान परिस्थितिमें यह कहना अधिक यथार्थ है कि सरकारको चाहिए कि शिक्षाके सार्वजनिक अङ्गपर वह अवसे अधिक विशेष ध्यान तथा सहायता प्रदान करे।" उन्हें यह अवगत हुआ कि विना विधानके इस लक्ष्यकी पूर्त्ति नहीं हो सकती। अतएव उन्होंने यह सिफ़ारिश की कि—"प्रत्येक प्रान्तकी परिस्थितिके उपयुक्त प्रारम्भिक शिक्षाकी पूर्ण उन्नतिके लिये आवश्यक विधान वनानेका प्रयत्न किया जाय।" अव, श्रीमन्! कौन्सिलके सम्मुख उनके निर्णयके कारणोंका उल्लेख करना लाभदायक प्रतीत होता है। कमीशनने उसको निम्न रूपमें व्यक्त किया :—

'अवतक सरकार शिक्षाके विकासके लिये शिक्षा-विभाग तथा व्यक्तिगत प्रयत्नोंपर अवलम्बित रही है। परन्तु पहलेका आधार केवल आर्थिक सहायताओंके विचारपर सीमित है; अतएव वह प्रयोजनाके अनुसार अपर्य्याप्त है; और उससे स्थानीय प्रयत्न और उत्साहकी उन्नतिमें वाधा पड़ती है। दूसरा स्पष्टतः अनिश्चित और स्वल्प है, और जहाँ इसकी विशेष आवश्यकता है वहाँ इसकी कमी है। वर्त्तमानमें जिसकी आवश्यकता प्रत्येक प्रान्तमें वाञ्छनीय है और जिससे भावी उन्नति भी हो सकती है, उसके लिये किसी विधानकी ज़रूरत है। इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई एक वृहत् विधान देशभरके लिये उपयुक्त सिद्ध होगा। इसके विपरीत कमीशनकी

रिपोर्ट बतलाती है कि प्रत्येक प्रान्तकी अवस्थाके अनुसार सुधार होना चाहिए।”

तब यह बतलाते हुए कि व्यवस्थापक कौन्सिलें उस समय केवल तीन प्रान्तोंमें थीं, प्रत्येक अन्य प्रान्तके लिये केन्द्रीय सरकारद्वारा कुछ विधान बनने चाहिए, कमीशनने आगे कहा :—

“सारे प्रान्तोंके सम्बन्धमें एक समान यह सत्य है कि केन्द्रीय-सरकार सिद्धान्तोंसे परिचित होनेके कारण उन सिद्धान्तोंको काममें लावे और प्रान्तीय सरकारोंको उन सिद्धान्तोंके आधारपर अपनी परिस्थितिके अनुकूल विधान बनाना चाहिए। राजकीय कौन्सिलद्वारा एक सार्वजनिक विधानकी घोषणाके आधारपर कार्य्य करनेमें प्रान्तीय सरकारोंको कोई बाधा नहीं पड़ेगी और एक प्रान्तके लिये जो विधान है उसका पालन करनेके लिये दूसरे प्रान्तको बाधित करनेकी तो ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। इस प्रकारसे यह आशा की जाती है कि कुछ ही समयमें सुनिश्चित मार्गपर क्रमिक विस्तारके अवलम्बनसे प्रत्येक प्रान्तमें पर्य्याप्त और उपयुक्त प्रारम्भिक स्कूलोंका निर्माण हो जायगा।”

कमीशनने आगे चलकर यह विचार किया कि क्या इस उद्देशकी पूर्त्ति बिना क़ानून पास किए ही अधिकारियोंकी आज्ञासे नहीं हो सकती? और उसने क़ानूनके पक्षमें अपना निर्णय घोषित किया। कमीशनने कहा :—

“विधानके समान ही आवश्यक प्रश्नपर बिना विधानके कार्य्यकारिणीकी आज्ञाओंसे क्या वाञ्छनीय सफलताकी आशा नहीं की जा सकती। इस प्रश्नको स्पष्ट करनेके लिये हमारी रिपोर्टमें दिए हुए तत्सम्बन्धी इतिहास तथा आँकड़ोंसे यह प्रकट होता है कि कार्य्यकारिणी आज्ञाएँ, जो स्पष्ट शब्दोंमें सार्वजनिक प्रयोगके लिये सन् १८५४ ई० से लेकर आजतक दी गईं, वे प्रत्येक प्रान्तमें अधिकतर उचित सफलता तथा समान ध्यान दिलानेमें असफल रहीं।”

उसने और आगे चलकर यह भी ध्यान दिलाया कि :—

“सभी देशोंमें, जहाँ शिक्षा पूर्ण सफल अथवा राष्ट्रमें सबसे अधिक व्यापक रही है, उसका आधार विशेष क़ानून रहा है, जिसके द्वारा साधारण नीतिका विस्तृत ढाँचा तैयार किया गया। यहाँतक कि इङ्गलैण्डमें भी, जहाँपर केन्द्रीय अधिकारसे बचनेका इतना अधिक प्रयत्न रहता है शिक्षाकी कभी भी वृद्धि नहीं हुई, और गम्भीर बहसोंका यह परिणाम हुआ कि सन् १८७० और १८८० ई० के बीच, विधानोंका निर्माण करना पड़ा, जिनका आशय यह था कि यदि राष्ट्रीय तथा पर्य्याप्त प्रारम्भिक शिक्षा-प्रणालीका स्थापन ही अन्तिम ध्येय है तो इसकी सिद्धि विधानोंके बिना नहीं हो सकती।”

और अन्तिम तर्क जो इस प्रश्नके विषयमें उन्होंने उपस्थित किया, वह यह था कि:—

“विधान ही एक ऐसा मार्ग है, जिससे कमीशनकी एक अथवा सभी सिफ़ारिशोंको सरकारकी स्वीकृतिके पश्चात् जीवित और स्थायी रक्खा जा सकता है।”

बहुत खेदकी बात है कि जिस विधानकी सिफ़ारिश की गई थी उसको विधानके रूपमें नहीं लाया गया। यह सत्य है कि अनेक प्रान्तोंके म्युनिसिपल ऐक्ट जबसे पास हुए हैं, शिक्षा-सम्बन्धी उन्नतिके कुछ विधान बनाए गए हैं। परन्तु कमीशनकी सिफ़ारिशोंके अनुसार तबतक कोई विधान नहीं बनाया गया जबतक देशभरके लिये सार्वजनिक व्यवस्थाका निर्माण नहीं हो गया और इस व्यवस्थाके अभाव ही का यह फल है कि प्रारम्भिक शिक्षाकी असन्तोषजनक उन्नति हुई है। कौन्सिल उन स्वीकृतियोंको सुननेमें दिलचस्पी लेगी, क्योंकि वर्त्तमान बिलको वे अधिकांशमें समर्थन करती है। और स्वीकृतियोंमें शिक्षा-कमीशनने यह भी आदेश किया कि प्रत्येक प्रान्तकी परिस्थितिके अनुसार प्रान्तीय क़ानूनोंके द्वारा म्युनिसिपल तथा स्थानीय बोर्डोंका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे अपने निरीक्षणके अधीन स्कूलोंकी सहायता करें। उन्होंने स्कूल-

ज़िलोंके निर्माणको स्वीकार किया अर्थात् यह घोषित कर दिया कि कोई भी म्युनिसिपल अथवा देहाती-स्वप्रबन्ध एक स्कूल-ज़िलेके नामसे पुकारा जाय। इन सभी प्रान्तोंके अन्तर्गत प्रत्येक स्कूलके प्रबन्धके लिये उन्होंने एक स्कूल-बोर्डका निर्माण करने सिफ़ारिश की। उन्होंने और भी स्वीकृति इस बातकी दी कि प्रत्येक स्कूल-बोर्डको प्रतिवर्ष अपने आय-व्यय तथा प्रबन्धकी एक रिपोर्ट, अपने विभागके मध्यस्थतासे प्रान्तीय सरकारके पास भेजनी पड़ेगी—जो तारीख़ उक्त सरकार नियत करेगी—और स्वीकृत-परामर्शका सर्वोत्तम भाग निम्नाङ्कित है, जिसकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाता हूँ—

"और कमीशनने कहा कि प्रान्तीय सरकारको इस बातको घोषित करना चाहिए कि वर्त्तमान स्कूलोंद्वारा प्रदत्त शिक्षा, जिनका निरीक्षण बोर्डके अधीन है देशकी सभी जातियों तथा उपजातियोंकी औसत जन-संख्याके लिये पर्य्याप्त है अथवा नहीं—और ऐसी परिस्थितिमें जब कि उक्त सरकार इसकी अपर्य्याप्तताको घोषित कर दे, उसे यह निर्णय करना पड़ेगा कि किन उपायोंसे और किस रूपमें वह इस समानुपातिक स्कूलोंके सम्बन्धको स्थापित कर सकती है।"

कमीशनने अन्य आवश्यक परामर्शोंको प्रत्येक स्कूली प्रान्तोंमें एक स्कूल-कोष-विभागके निर्माण तथा स्कूली बोर्डोंके अधिकार तथा कर्त्तव्यके सम्बन्धमें दिया—क्या इसमें तनिक भी सन्देह है कि यदि उनके स्वीकृत परामर्शोंको कार्य्य-रूपमें लाया गया होता तो प्रारम्भिक शिक्षाकी उन्नतिका इतिहास आज दूसरे ही शब्दोंमें लिखा गया होता?

अब, महाशयो! मेरे प्रतिष्ठित मित्र गोखले महोदयने पहले बता दिया है कि वे अपने लिखित बिलकी अक्षरशः स्वीकृति नहीं चाहते। उन्होंने प्रतिदिन शिक्षा-सदस्यके पास अपील की है, और मैं भी नम्रतापूर्वक उसी बातकी अपील करता हूँ कि सरकार परिस्थितिकी अनुकूलताका ध्यान रखते हुए प्रारम्भिक शिक्षाकी सन्तोषजनक उन्नतिके लिये एक विधानका निर्माण करे। मेरी प्रार्थना यह है कि विधान चाहे अंशतः देशीय अथवा प्रान्तीय क्यों न रहे, परन्तु उसका निर्माण इसलिये आवश्यक है कि देशमें शिक्षा-विभागको दोनों सरकारोंसे उचित सहायता मिले, ताकि थोड़े ही समयमें पर्य्याप्त संख्यामें सार्वजनिक शिक्षा-प्रचारके लिये अधिक स्कूलोंकी स्थापना हो सके। इस प्रकारके विधानके अभावसे, शिक्षामें समानुपात नहीं आ सकता। इसमें सन्देह नहीं कि सरकार वर्त्तमान कालमें कुछ आर्थिक सहायता इस विषयमें दे रही है और उसका व्यय स्कूलोंके निर्माणमें होता है। परन्तु उन स्कूलोंके निर्माणकी आधार-नीति क्या है? यह नीति सरकारपर एक वैसा ही कलङ्क लगाती है जैसा कि बिलके विरुद्ध हम लोगोंके सम्मुख लाया गया है—और उससे जिन स्थानोंपर स्कूलोंकी स्थापना नहीं है वहाँ अन्याय होता है। जहाँ आप निरङ्कुशतापूर्वक उन स्थानोंपर स्कूलोंकी स्थापना करेंगे जहाँ वे पहले ही से वर्त्तमान हैं और जहाँ उनका अभाव है वहाँ कुछ भी ध्यान नहीं दीजिएगा, तो यह अवश्य अन्याय होगा। परन्तु यदि आप स्कूली प्रान्तों तथा स्कूली बोर्डोंका निर्माण करेंगे और एक स्थायी नियम बना लेंगे कि राजकीय कोषका वितरण प्रत्येक प्रान्तकी जनताद्वारा प्राप्त कोषके समानुपातिक आधारपर किया जायगा, जिसमें प्रान्तीय कोषकी सहायता भी सम्मिलित होगी, तब आपके सम्मुख दोषारोपणका कोई स्थान ही नहीं रह जायगा, और इस बातकी पूर्ण आशा हो जायगी कि प्रत्येक प्रान्तके बालकोंको उचित शिक्षा मिल सकेगी। इसका सम्पादन केवल विधान ही द्वारा किया जा सकता है, और यदि इसका निर्माण हो गया तो निस्सन्देह शिक्षाके लिये अधिक धनकी सहायता मिलने लगेगी, जिसमें अंशतः डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड, प्रान्तीय तथा देशीय सरकारोंकी सहायता भी सम्मिलित रहेगी। महाशयो! यह कहा जा सकता है कि शिक्षा-कमीशनद्वारा आदिष्ट मार्गपर कुछ विधानोंके निर्माणको मान लिया जाय तो

अभिभावकोंके लिये अपने बच्चोंको स्कूल भेजनेके लिये किसी बाध्य-नियमकी स्थापनाकी कोई आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होगी, क्योंकि स्कूल जानेवाले उम्रके बच्चे तो स्वयं स्कूल जानेके लिये लालायित देखे जाते हैं।

ऐसा मान भी लिया जाय तो इससे गम्भीर प्रश्नका विचार छूट जाता है। प्रश्न यह है कि सरकारका क्या यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक स्कूल-वयस्क बालकको शिक्षित बनावे? महाशय! मेरी प्रार्थना यह है कि यह राजा तथा प्रजा दोनोंके हितोंकी रक्षाके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक बालक और वालिका शिक्षा प्राप्त करें और यदि इस लक्ष्यकी पूर्त्ति करनी है तो सरकारको इसके लिये प्रत्येक अभिभावकोंकी स्वेच्छापर यह नहीं छोड़ना चाहिए कि वे अपने बालकोंको स्कूल भेजें या न भेजें। वालिकाओंके सम्बन्धमें अवश्य अभी वर्त्तमानमें कोई वाध्य नियम नहीं बनना चाहिए, परन्तु यदि वालकोंके पक्षमें भी स्वेच्छा नीतिका अवलम्बन किया जाय तो सार्वजनिक शिक्षाका प्रचार नहीं हो सकता। कुछ संख्यामें शिक्षा अवश्य प्रचारित होगी, परन्तु बहुसंख्यक-जनता अशिक्षित ही रहेगी। प्रत्येक सभ्य देशने यह स्वीकार किया है कि अनिवार्य्य-प्रणाली ही एक ऐसा सुगम मार्ग है, जिसके द्वारा सार्वजनिक शिक्षाके लक्ष्यतक पहुँचा जा सकता है। इसके बिना किसी देशने आजतक न सफलता प्राप्त की है और न वह हमें प्राप्त हो सकती है। अनिवार्य्य शिक्षा-नीतिकी प्रशंसामें पञ्जाबके अर्थ-कमिश्नर श्री मेनार्डके लेखका मैं यहाँपर उल्लेख करूँगा। वे कहते हैं—

“अनिवार्य्य शिक्षा-नीतिका अवलम्बन इसलिये आवश्यक है कि प्रारम्भिक शिक्षाको केवल विस्तृत ही नहीं करना है बल्कि उसे सार्वजनिक बनाना है, जो बिना अनिवार्य्य बनाए किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकती। सभी पश्चिमी देशोंकी व्यवस्थामें यह दिखलाया गया है कि समाजमें कुछ ऐसे अभिभावकोंकी भी संख्या है जो दुर्बल अथवा अदूरदर्शी तथा लालची हैं, जो तबतक अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं करते, जबतक उनपर दबाव न डाला जाय।

यह देश अधिकतर अपने परम्परागत रूढ़ियोंका अनुयायी है—और इसमें अधिकांश सरकारी अथवा ग़ैर-सरकार मतानुयायी व्यक्ति ऐसे होंगे जो शिक्षाको सार्वजनिक बनानेको नीतिका विरोध करेंगे; परन्तु शिक्षित समाज इस परिणामका पक्ष ही करता है, और यह देखकर कि संसारके अन्य देशोंमें क्या हो रहा है, हमें यह नहीं ज्ञात होता कि इससे आर्थिक तथा अन्य प्रकारकी बुराइयोंकी अपेक्षा इससे अन्य और लाभकी आशा की जा सकती है। अतएव अन्तमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि हमें वास्तवमें अनिवार्य्य नीतिकी आवश्यकता है, और वर्त्तमान प्रस्ताव, सुविचारयुक्त, अनुकूल स्थानोंमें, इस नवीन नीतिके प्रचारके लिये अच्छा सुयोग प्रदान करता है, जिससे इस वातका प्रारम्भिक अनुभव हो जाय कि सुअवसर प्राप्त होनेपर इस क्षेत्रमें और अधिक उन्नति किस प्रकार की जा सकती है।”

महाशयो! मेरी यही प्रार्थना है कि बिलकी अनिवार्य्य शिक्षा-नीतिके पक्षमें उपरोक्त वाक्योंसे वढ़कर और कोई दूसरा सुन्दर प्रमाण नहीं दिया जा सकता। अब विचारणीय यह है कि यदि हमारा अन्तिम लक्ष्य शिक्षाको अनिवार्य्य करना ही है, तब हमें इसके प्रारम्भके लिये कुछ चुने हुए स्थानोंमें ढूँढकर अभी अनुकूल अवसर विलके साथ ही इसका श्री गणेश कर देना चाहिए—जैसा कि सर हारकोर्ट वटलर महोदयने व्यक्त किया है कि यह विल एक उदार-विधान है। इसमें सुरक्षित उपायोंकी भरमार है, जिन्हें बहुत लोग अत्यधिक समझते हैं, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह एक बहुत ही बुद्धि-सङ्गत योजना है। यदि यह स्वीकृत हो गया तो इससे म्युनिसिपल अथवा डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंको केवल यही अधिकार मिल जावेगा कि वे प्रान्तीय सरकारकी प्रथम स्वीकृति तथा सपरिषद् बड़े लाट महोदयद्वारा आवश्यक संशोधनोंके पश्चात् यह घोषित कर दें कि

इस विधानका प्रयोग उनके अधीनस्थ सम्पूर्ण अथवा थोड़े स्थानोंमें हो सकता है और उसके अनुसार प्रत्येक अभिभावकके लिये यह आवश्यक होगा कि वह अपने बालकको कुछ स्थानोंपर और कुछ ख़ास परिस्थितिमें घरसे एक मीलकी दूरीपर स्थित स्कूलमें पढ़नेके लिये भेजें। यदि बिलमें शीघ्रता अथवा कुतर्कके कारण कुछ दोष रह गया हो तो उसके सुरक्षित उपायोंपर ध्यान देना चाहिए। अन्तिम घोषणा, जिससे विधान-प्रयोगको किसी सीमातक विस्तृत किया जा सकता है, वह तभी की जा सकती है, जब प्रान्तीय सरकार उसकी स्वीकृति प्रथम ही कर दे। ऐसी घोषणाकी स्वीकृतिके लिये सरकार बाध्य नहीं की जा सकती और यह मान लिया जाता है कि वैसा करनेसे यह इनकार कर देगी, जहाँ इस विषयमें जाति या सम्प्रदाय अथवा जनताका बहुमत इसका विरोध करेगा। हमसे पूर्व वक्ताओंद्वारा सम्बोधित सभी प्रकारके भ्रम और डर, जो अनिवार्य्य शिक्षा-नीतिके सम्बन्धमें उन्होंने पैदा किए हैं, वे स्वयं दूर हो जाते हैं। जब यह कहा जाता है कि विधानके प्रयोगकी सीमाका निर्णय केवल प्रान्तीय सरकार ही कर सकती है। इसके अपेक्षा प्रान्तीय सरकारको यह भी अधिकार है कि इस विधानके पालनसे वह किसी भी जाति अथवा समाजको मुक्त कर सकती है। दूसरे प्रान्तीय सरकार अपने ही प्रस्तावका खण्डन नहीं कर सकती। वह म्युनिसिपल अथवा डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंकी सिफ़ारिशपर विधानके प्रयोगके क्षेत्रमें विस्तार कर सकती है। इससे यह सिद्ध हो गया कि जहाँ बहुमतसे इस विधानका विरोध किया जायगा, इसका प्रयोग लागू नहीं किया जा सकता। दूसरे, इस परिणामकी सिद्धिके लिये विधानमें आवश्यक सुधार भी किया जा सकता है।

(हर्ष-ध्वनि)

प्रतिज्ञाबद्ध कुली-प्रथाका अन्त

राजकीय परिषद्के २० मार्च, सन् १९१६ ई० के अधिवेशनमें पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने निम्न प्रस्ताव उपस्थित किया :—

—सम्पादक।

अध्यक्ष महोदय !

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करना चाहता हूँ कि—

“यह कौन्सिल, सपरिषद् गवर्नर-जनरलसे सिफ़ारिश करती है कि भारतीय कुली-प्रथाका अन्त करनेके लिये शीघ्रातिशीघ्र उपाय काममें लाने चाहिएँ।”

आजसे लगभग अस्सी वर्ष पहले भारतमें प्रतिज्ञाबद्ध कुली-प्रथाका जन्म हुआ था। बृटिश उपनिवेशोंमें पार्लियामेण्टद्वारा दासत्त्व-प्रथाका अन्त होनेके बाद ही यह उपाय काममें लाया गया था। यह बात सन् १८३४ ई० की है। उस समय बृटिश उपनिवेशोंके गोरे भूमिपतियोंने दासत्त्व-प्रथाके नष्ट होनेसे अपने व्यवसायको चौपट होते देख, भारतसे मज़दूर प्राप्त करनेका उपाय सोचा। दासत्त्व-प्रथाके नष्ट होनेसे वे उस हानिको सहन नहीं कर सकते थे और उनका उद्देश ऐसे मज़दूर प्राप्त करनेका था जो उनकी इच्छानुसार कार्य्य कर सकें। कुछ वर्ष पहले सैण्डर्सन कमेटीने बतलाया था कि भूमिपतियोंका उद्देश अपनी इच्छानुसार मज़दूरोंसे उन्हीं शर्तोंपर काम लेना था जो दासताके समय प्रचलित थीं। कमेटीने बतलाया कि—

“दासत्त्व-प्रथाके अन्त होनेपर भूमिपतियोंका उद्देश मज़दूर क्रय करनेका पूर्ण सुलभ साधन ऐसे राज्यनियम और विधान बनाकर प्राप्त करनेका था, जिससे कुली सदैव कुली ही रहें और कभी स्वतन्त्र न हो सकें। इस भावनाके परिणाम-स्वरूप भिन्न-भिन्न उपनिवेशोंमें जो नियम भारतवासियोंके लिये बनते थे, जो विदेशोंमें जाकर बसना चाहते थे, उनके कारण धीरे-धीरे भारतवासी अधिकाधिक परतन्त्र बनते गए, और जैसा कि इस कमीशनकी रिपोर्टसे पता चलता है, भारतवासियोंके प्रति घोर अन्याय किया गया।”

इस प्रथाके परिणाम-स्वरूप बहुतसी भयङ्कर बुराइयाँ उत्पन्न हो गईं तथा कुली-प्रथाकी जाँच करनेके लिये मारीशस, बृटिश गायना तथा नैटालमें कमीशन नियुक्त किए गए। उसी समय भारतमें बहुतसे क्षेत्र कुली भर्त्ती करनेके लिये स्थापित किए गए, जिससे बच्चे भगानेकी तथा अन्य भयङ्कर कुरीतियाँ उत्पन्न हो गईं। इस दोषको दूर करनेके लिये भारतीय व्यवस्थापिका सभाओंमें भारतवासियोंके प्रवासित होनेके नियमोंमें सन् १८८२ ई० में संशोधन उपस्थित किए गए और सन् १८८३ ई० में इस सम्बन्धमें एक विधान बन गया। इस नवीन प्रवास-विधानका उद्देश प्रवासी भारतीयोंको सावधानीसे तुरन्त रजिस्टरमें दर्ज कर लेना था, जिससे उनका जल्दीसे पता लग सके तथा देशके उत्तरी भागके कुली भर्त्ती करनेवाली कोठियोंका मजिस्ट्रेटोंद्वारा निरीक्षण हो सके। किन्तु, जैसा भारत-सरकारके सन् १८८३ ई० के प्रस्तावसे तथा श्री इल्बर्टके वक्तव्यसे

विदित हुआ था, इस विधानका उद्देश कुली भर्त्ती करनेके कार्य्यको और भी प्रोत्साहन देना था। सर एडवर्ड बर्कने भी, जो पन्द्रह वर्षतक राज्य-कर तथा कृषि-विभागमेँ भारत-सरकारके मन्त्री थे, बतलाया था कि सन् १८८३ ई० के विधानसे कुली भर्ती करनेका कार्य्य और भी अधिक सुलभ हो गया।

"सन् १९०८ ई० मेँ प्रवास-विधान और भी मज़बूत किए गए और तबसे अबतक भारत-सरकारने उपनिवेशोँमेँ बसे भारतीयोँकी दशाकी ओर ध्यान देनेका कभी कष्ट नहीँ किया। सन् १९०९ ई० मेँ लौर्ड क्रयूने (१) उपनिवेशोँमेँ प्रवासी भारतीयोँके प्रश्नको समझनेके लिये (२) उन उपनिवेशोँका पता लगानेके लिये जहाँ प्रवासी भारतवासी रहनेके लिये उत्साहित किए जाएँ (३) और भारत तथा प्रत्येक उपनिवेशको इस प्रथाद्वारा जो लाभ होँगे उनका पता लगानेके लिये एक कमेटी नियुक्त की।

इस समयतक भारत-सरकारने औपनिवेशिक सरकारोँपर तथा उनके क़ानूनोँपर प्रवासी भारतीयोँके प्रति सद्व्यवहारके लिये पूर्णतया विश्वास रक्खा। जैसा कि माननीय श्री इल्बर्टने सन् १८८३ ई० मेँ भारतीय प्रवास-विधानके ऊपर निर्वाचित कमेटीकी रिपोर्ट प्रकाशित करते हुए कहा था कि क़ानूनके अन्तर्गत सम्पूर्ण सावधानियोँका ध्यान रक्खा गया है "जिससे प्रत्येक प्रवासीके साथ भर्त्ती होनेके स्थानसे लेकर उपनिवेश पहुँचनेतक उचित व्यवहार किया जाय और इससे आगे हमारे क़ानूनकी पहुँच नहीँ है। जिस स्थानपर प्रवासी भारतवासी जा बसेँगे वहाँ तो उनके साथ हम इतना ही कर सकते हैँ कि उस देशकी सरकारपर हम अपना यथाशक्ति प्रभाव डालेँ और इस प्रकार उनकी दशा सुधारी जाय।"

सन् १९०९ ई० मेँ, जैसा मैँने अभी कहा था, लौर्ड क्रयूने प्रवासी भारतीयोँसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुतसे प्रश्नोँका निर्णय करनेके लिये एक कमेटी नियुक्त की; किन्तु उसका भी उद्देश ऐसे उपनिवेशोँका पता लगाना था, जहाँ प्रवासी भारतीय अधिक सफलतापूर्वक बस सकेँ। किन्तु अब भी भारत-सरकारने यह उचित नहीँ समझा कि प्रवासी भारतीयोँके साथ ऐसा दुर्व्यवहार हो रहा है और उसका विचार जल्दी-से-जल्दी गम्भीरतापूर्वक होना चाहिए।

सन् १८९० ई० तक भारतीय प्रजा प्रवासी भारतीयोँकी दशासे बिल्कुल अपरिचित रही, जबतक कि श्री गान्धीने इस प्रथाके दोषोँकी पोल न खोलनी आरम्भ की। किन्तु भारत-सरकार तथा भारतीयोँने उसकी महत्ता उसी समय अनुभव की जब कि ट्रान्सवाल सरकारने भारत-विरोधी नीतिका पालन करना प्रारम्भ किया। उस समयसे प्रवासी भारतीयोँकी दशा गहन अध्ययनका विषय बन गई है, और यह कहनेमेँ कोई अत्युक्ति न होगी कि प्रारम्भसे ही इस समस्याने जनताको इतना विचलित कर दिया था तथा प्रवासी भारतीयोँके इस असहनीय व्यवहारके परिणाम-स्वरूप लोकमत इतना क्षुब्ध हो उठा है जितना इससे पहले वह कभी न हुआ था। श्रीमन्! मैँ इस समय बृटिश साम्राज्यके अन्तर्गत भारतवासियोँके साथ जो बर्त्ताव किया जाता है उसकी चर्चा नहीँ कर रहा हूँ यद्यपि वह भी ऐसी समस्या है जो समस्त भारतीयोँके गम्भीर चिन्तनका विषय है। सम्भव है इसका सर्वोत्तम निर्णय महायुद्धके समाप्त होनेपर ही हो सके। किन्तु इस प्रश्नका आधार तो भिन्न है और इसका निपटारा भी तुरन्त हो सकता है।

कौन्सिलको इस बातका स्मरण होगा कि सन् १९१० ई० मेँ स्वर्गीय श्री गोखलेने नैटाल उपनिवेशके लिये कुली भर्त्ती करनेकी प्रथाका अन्त करनेका प्रस्ताव किया था। उसी समय उनका विश्वास था कि यह प्रथा जल्दी ही नष्ट होनी चाहिए। किन्तु उन्होँने बुद्धिमानीसे उस समय नैटालमेँ ही इस प्रथाको नष्ट करनेकी सम्मति दी थी और भारत-सरकारने उनकी बात मानकर नैटालके लिये कुली भेजनेकी प्रथाको बन्द कर दिया। दो वर्ष पीछे उन्होँने दूसरा प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसमेँ उन्होँने इस प्रथाको पूर्णतया बन्द करनेकी सम्मति दी थी। इसके दोषोँका उन्होँने

बड़े सुन्दर रूपमें वर्णन किया था और इस प्रथाको "राक्षसी, अन्यायपूर्ण, छलके आधारपर आश्रित तथा बलात्कार कहकर पुकारा था। उन्होंने आगे चलकर कहा था कि यह प्रथा न्याय तथा मानवताके सिद्धान्तोंके एकदम विपरीत है तथा जो राष्ट्र इसे स्वीकार करता है, उसकी सभ्यताके ऊपर अमिट कलङ्क है।" जनताको यह देखकर घोर निराशा हुई थी कि भारत-सरकारने उस समयतक इस प्रथाका अन्त करना उचित न समझा। भारत-सरकार तव भी यही आशा रखती थी कि प्रवासी भारतीयोंकी दशा सुधारी जा सकती है और इसीसे उस योजनाका व्यवहारात्मक रूप निर्धारित करनेके लिये तथा उपनिवेशोंकी दशा जाननेके लिये एक कमेटी नियुक्त की। एक सालसे अधिक हुआ, जब श्री मेकनील तथा श्री चिम्मनलालने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी और मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि उस रिपोर्टके प्रति जनताने घोर निराशा तथा असन्तोष प्रकट किया, क्योंकि उसने इस प्रथाके समस्त दोषोंको प्रकट न किया था तथा इसका समर्थन करनेके कारण क्षमा-याचना भी की थी। किन्तु जिन बातोंका उल्लेख कमेटीने अपनी रिपोर्टमें किया था उनसे सच्ची कथा विदित होती है और प्रत्येक पक्षपातरहित व्यक्ति उनके आधारपर अपना स्वतन्त्र मत स्थिर कर सकता है। वह मत सर्वथा इस प्रथाके विरुद्ध ही है। वास्तवमें यह प्रथा है क्या? यह वही प्रथा है जिसके द्वारा साधारण, अशिक्षित, अनभिज्ञ तथा निर्धन ग्रामवासी अपने घरबार, सगे सम्बन्धियोंसे अलग करके उन दूर स्थानोंमें जानेके लिये बाध्य किए जाते हैं, जहाँकी दशासे वे एकदम अपरिचित हैं। वहाँ जाकर उन्हें लगातार पाँच वर्षतक ऐसी परिस्थितियोंमें काम करना पड़ता है, जहाँ वे अपने स्वामियोंकी दयाके मोहताज हैं। उन्हें उन स्वामियोंकी अधीनतामें कार्य्य करना पड़ता है, जो उनकी भाषा, रीति-नीति तथा आचार-व्यवहारसे एकदम अपरिचित हैं, जिन्हें उनकी उन शर्त्तोंके साथ कोई सहानुभूति नहीं है, जिनसे वाध्य हो उस देशमें बसनेके लिये वे लाए गए हैं और बिना वतलाए न उन्हें इस बातका ही कोई ज्ञान है कि उन शर्त्तोंके पालन न करनेसे उन्हें शारीरिक दण्ड दिया जायगा, जो कभी-कभी दो या तीन मासतकके घोर परिश्रमके रूपमें दिया जा सकता है। वे शर्त्तें उनके ऊपर बलपूर्वक लादी गई हैं, जिनके प्रतिकार करनेका उन्हें कोई अवसर नहीं दिया जाता।

श्रीमन्! इस प्रकारकी प्रथा एकदम अन्यायपूर्ण है। हम इसको न तो क़ानूनकी दृष्टिसे और न भारत-सरकारद्वारा बनाए विधानोंकी दृष्टिसे ही प्रतिज्ञावद्ध समझौता कह सकते हैं। इस प्रथाद्वारा भोले-भाले ग्रामीण पाँच वर्षतक कार्य्य करनेके लिये दूसरे देशोंको भेजे जाते हैं। उनकी स्वतन्त्रता उन्हें फिर मिल ही नहीं सकती, क्योंकि ऐसा करनेका कोई भी साधन उनके पास नहीं है। इस प्रथासे जो भयङ्कर परिणाम उत्पन्न हुए हैं, उनका दिग्दर्शन करानेके लिये मैं इसकी कुछ प्रमुख विशेषताओंका उल्लेख कर रहा हूँ। सन् १९०८ ई० के प्रवास-विधानने इस प्रश्नको जहाँ छोड़ा था वहींसे आज इसे मैं प्रारम्भ करूँगा। जब सन् १८८३ ई० के बिलपर कौन्सिलमें वादविवाद चल रहा था, स्वर्गीय श्री क्रस्टोदास पालद्वारा यह प्रस्ताव रक्खा गया था कि जिस प्रवासीसे जिन शर्त्तोंका पालन करानेके लिये प्रतिज्ञापत्र लिखाया जाय वे उसे समझा देनी चाहिएँ तथा उनकी दूसरी लिखित प्रति उनको भी मिलनी चाहिए। माननीय श्री पालने यह बतलाया था कि इस प्रतिज्ञापत्रकी प्रारम्भिक अवस्थामें प्रवासीको इस बातकी स्पष्ट जानकारी हो जानी चाहिए कि उसे किन शर्त्तोंका पालन करना है। माननीय सदस्यने बतलाया था कि :—

"माननीय सदस्य इस बातसे भली भाँति परिचित हैं कि प्रवासी अधिकांशमें अनभिज्ञ तथा अशिक्षित व्यक्ति होता है जो प्रतिज्ञापत्र पढ़नेमें सर्वथा असमर्थ है। ऐसी दशामें वह कर्मचारियोंसे उसे पढ़कर सुनानेकी प्रार्थना करता है। यदि कर्मचारियोंकी इच्छा उसे

धोखा देनेकी हुई तो वे सुगमतापूर्वक ऐसा कर सकते हैं। प्रवासी उस जीवनावस्थासे, जिसमें रहनेके लिये वह वाध्य किया जाता है, पूर्णतया अपरिचित होता है। इस परिस्थितिमें यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसको प्रत्येक प्रकारकी सुविधाएँ दी जानी चाहिए, जिससे वह उन शर्त्तोंसे भली भाँति जानकार हो जाय, जिनका पालन उसे उपनिवेशोंमें करना होगा। उन शर्त्तोंकी दूसरी प्रति उसको भी मिलनी चाहिए जिसे वह घर ले जा सके और जानेसे पहले गाँवके मुखियासे उसके विषयमें परामर्श ले सके।”

श्रीमन्! यह संशोधन वाइसराय महोदय लौर्ड रिपनके विशेष मत देनेपर स्वीकृत किया गया था और उस विधानमें यह धारा रक्खी गई थी कि—

“कुली भर्त्ती करनेवालोंको चाहिए कि वे प्रत्येक प्रवासीको उस प्रतिज्ञापत्रकी एक-एक प्रति दें तथा मजिस्ट्रेट और स्थानीय पुलीस कर्मचारीको उसकी असली नकल उनकी आज्ञा होनेपर उनके सम्मुख उपस्थित करें।”

इस संशोधनके परिणाम-स्वरूप प्रवासी भारतीयोंको एक प्रतिज्ञापत्र दिया जाता है, जिसकी एक धारा यह होती है कि उसकी नौकरीका समय पाँच वर्ष होगा और उससे अमुक प्रकारका कार्य्य लिया जायगा। किन्तु दुर्भाग्यवश उसे मज़दूरीके विषयमें जो सूचना दी जाती है वह केवल इतनी ही होती है कि उसे या तो खेतीका काम करना होगा या खेतीकी उपजसे अन्य वस्तुओंको वनानेका काम करना होगा या उससे घरेलू काम लिया जायगा। उन शर्त्तोंका, जिनके अनुसार उसे कार्य्य करना तथा रहना है, कोई उल्लेख ही नहीं होता। उसे इस वातका कोई ध्यान ही नहीं होता कि जहाज़पर सवार होते ही विवश होकर उसे जाति तथा धर्मके सव विश्वासों तथा विचारोंको तिलाञ्जलि दे देनी होगी; तथा उसे खानपान तथा रहन-सहनके उन नियमोंका पालन करना होगा, जिनके करनेके लिये वह स्वतन्त्रतावस्थामें कदापि सहमत न होता। श्रीमन्! इस प्रथासे भयङ्कर परिणाम उत्पन्न हुए हैं। श्री एण्डरूज़ तथा श्री पियरसनने फ़िजी-कुली-प्रथाके सम्वन्धमें जो प्रशंसनीय रिपोर्ट प्रकाशित की है, उसमें कहा गया है कि :—

“आगे चलकर हमें जाँच करनेसे पता चला कि जानेसे पहिले कुली जिस प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर करता है उसमें फ़िजी-कुली-जीवनकी वास्तविक दशाका वर्णन नहीं होता। यह प्रतिज्ञापत्र तो एकदम भ्रमात्मक है। उदाहरणार्थ, इस सम्वन्धमें एक शब्द भी नहीं कहा जाता कि यदि कुली किसी कारणवश किसी कामको, जो उसकी समझमें एकदम ख़राव है, करनेसे इनकार कर दे तो उसे क्या दण्ड दिया जायगा? इस प्रतिज्ञापत्रमें दूसरी भारी कमी यह है कि इस वातको देखते हुए कि जो मनुष्य उस प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर कर रहे हैं वे वर्णमालासे एकदम अपरिचित हैं, और जैसे फ़िजीमें खानेका व्यय भारतकी अपेक्षा वहुत अधिक है। कुलीसे तो केवल यही कहा जाता है कि उसे कम-से-कम वारह आने प्रतिदिन मिलेंगे। किन्तु उससे यह नहीं कहा जाता कि भारतमें वारह आनेका जो मूल्य है, फ़िजीमें उन्हीं वारह आनेका मूल्य पाँच आनेके वरावर रह जाता है।

उससे यह भी नहीं कहा जा सकता कि फ़िजीमें कपड़ों तथा जीवनकी अन्य आवश्यकताओंके लिये भारतकी अपेक्षा अधिक व्यय करना पड़ता है। अकेले रहनेके लिये ही फ़िज़ीमें भारतकी अपेक्षा तिगुना व्यय होता है।”

इस कथनमें मैं यह और जोड़ना चाहता हूँ कि कुलीको वारह आने तवतक नहीं मिलेंगे जवतक कि वह अपना काम समाप्त नहीं कर लेगा। उससे यह भी नहीं कहा जा सकता कि जुर्मानेके रूपमें इन वारह आनोंका अधिकांश भाग भी खोना पड़ेगा। और जैसा मैंने पहलेही कहा था, उससे यह भी नहीं कहा जाता कि उसके धर्ममें भी कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। मेरा विश्वास है कि और

सब विचारोंको छोड़कर केवल यदि धार्मिक दृष्टिसे ही विचार किया जाय तो बहुत थोड़ेसे कुली ही, चाहे वे कितने ही नीच कुलमें उत्पन्न हुए हों, कभी भी उपनिवेशोंमें जानेके लिये सहमत न होंगे।

श्रीमन्! अब हमें प्रवासी भारतीयोंसे जो काम लिया जाता है उसकी ओर ध्यान देना चाहिए। छपे हुए प्रतिज्ञा-पत्रमें प्रवासीके लिये केवल घरेलू और खेतीके कामका ही विधान है। किन्तु श्री एण्डरूज़ तथा पियरसनका कथन है कि कुछ कुलियोंको बध-शालाओंमें मांस काटनेका घृणित काम करना पड़ा है। श्रीमन्! यह बात महा अन्यायपूर्ण है कि किसी भी घरेलू काममें बधशालाओंमें मांस काटनेका काम गिना जाय। परिणाम बहुत विषादपूर्ण हुए हैं। श्री एण्डरूज़का कथन है :—

"छोटी जातिके जिन हिन्दुओंसे कुली-प्रथानुसार खेती-सम्बन्धी काम लेना चाहिए था, उनसे बध-शालाओंमें मांस काटनेका काम लिया जाता था। जब हमने उससे पूछा कि वह हिन्दू होकर मांस काटनेका काम कैसे करता था, तो उसने उत्तर दिया कि प्रतिज्ञा-पत्रके अनुसार वह ऐसा करनेके लिये बाध्य किया गया था।

एक कबीरपन्थीसे भी (जो अब कुली न था) प्रारम्भमें यही काम लिया गया था। उसने हमें बतलाया कि उसके लगातार मना करनेपर उसे लगातार कठोर कारावासका दण्ड दिया गया। पुराने विवरण-पत्रोंको देखनेसे हमें विदित हुआ कि कुली रहनेकी अवस्थामें उसे छः सौ बानवे दिनका कारावास मिला।"

कबीरपन्थी ऐसे लोग हैं जिनके हृदयमें यातना पाए हुए लोगोंके लिये भारी श्रद्धा है। ऐसे आदमीसे बलपूर्वक मांस काटनेका काम लेना और वह भी उस स्थानपर जहाँ कि वह पूर्णतया बलहीन है, निस्सन्देह विचार करनेपर कितना दुःखपूर्ण होगा।

श्रीमन्! अब हमें इस बातपर विचार करना है कि ये भर्त्ती करनेवाले हैं कौन? और कुली भर्त्ती करनेमें वे कौन-कौन उपाय काममें लाते हैं? सैण्डर्सन कमेटीके सम्मुख बयान देते हुए मेरे प्रान्तके एक कमिश्नर श्री जे० ए० सी० ब्राउन सी० एस्० आई० ने कहा था:—"मेरा विचार है कि भर्त्ती करनेवाले मनुष्य एकदम दुष्ट हैं; भर्त्ती करनेवाले मनुष्य ऐसे रक्खे जाते हैं जो बहुत ही दुष्ट हों। साधारणतः छोटी जातिके मनुष्योंमेंसे ही ऐसे मनुष्य रक्खे जाते हैं; और जहाँ तक मुझे ज्ञात हुआ है उन्हें वेतन भी आदमी भर्त्ती करनेके हिसाबसे दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे विवाहिता स्त्रियोंको बहकाने तथा हरएक ही व्यक्तिको फँसानेका प्रयत्न करते हैं।"

युक्तप्रान्तके पश्चिमी ज़िलोंमें प्रत्येक भर्त्ती करनेवालेको पैंतालीस रुपये प्रति पुरुष-कुली तथा पैंतीस रुपये प्रति स्त्री-कुली भर्त्ती करनेपर मिलते हैं। पूर्वीय ज़िलोंमें उसे कम मिलता है और यही हाल मद्रासका भी है। छोटी जातिके लोगोंको फँसानेके लिये अपने स्वार्थके लिये किए गए ये सब प्रलोभन उनके लिये पर्य्याप्त होते हैं। सैण्डर्सन कमेटीका कथन है कि "अनेकों प्रवासी देश छोड़नेसे पहले इस बातसे पूर्णतया अपरिचित रहते हैं कि उन्हें वहाँ जाकर क्या करना है? वे वहाँ असुविधा-जनक स्थितिमें रहते हैं; वे प्रत्येक प्रकारकी परिस्थितिका स्वागत करनेके लिये तत्पर रहते हैं; वे या तो अपने कुटुम्बसे अथवा माता-पितासे लड़ाई-झगड़ा करके कामकी खोजमें निकल पड़ते हैं और उन्हें काम नहीं मिलता।" किन्तु इतनी ही बात नहीं है। उनमेंसे अधिकांशोंको धोखा दिया जाता है और वह भी बिना किसी सङ्कोचके। श्री एण्डरूज़ तथा श्री पियरसनका कथन है कि :—

"अधिकांश मामलोंमें स्वयं कुलीके घरवालोंको भी उसकी भर्त्तीके विषयमें कोई ज़बर नहीं होती। उनमेंसे सम्भवतः अधिकांश तो अपराध करनेके दण्डसे बचनेके लिये उन उपनिवेशोंको चले गए अथवा घरके झगड़ोंके ही कारण उन्हें ऐसा करना पड़ा, किन्तु उनमेंसे तो अधिकांश नितान्त भोलेभाले ग्रामीण थे,

जो ऐसी आपत्तियोंसे बिल्कुल दूर थे। सम्भवतः उनके कुछ कुटुम्बी रेलवे स्टेशनकी भीड़-भड़दलमें भटक गए थे, या वे तीर्थयात्रामें अपने साथियोंसे बिछुड़ गए थे, या एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाते हुए उनकी कुली भर्त्ती करनेवालोंसे भेंट हो गई और उसने अपनी बातोंमें लाकर उसे फुसला लिया। तीर्थस्थानोंमें स्त्रियोंकी भर्त्ती बहुत ही अधिक हुई थी। साधारण बयान इस प्रकारके थे कि भर्त्ती करनेवाले कर्मचारी आए, उन्होंने उस स्त्रीसे घरवालोंके पास ले जानेके लिये कहा अथवा उसे पवित्र तीर्थयात्रा दिखलानेका प्रलोभन दिया और उसे उस स्थानपर पहुँचानेके बजाय भर्त्ती करनेवाली कोठीपर पहुँचा दिया। ऐसी करतूतोंका पूरा विवरण न दिया जाकर केवल परिस्थितिके परिणाम-स्वरूप समझ ही लिया जाता था और प्रायः नए नाम बतलाकर और स्थानका नाम बदलकर विवरण दिया जाता था, जिससे किसी भी प्रकारका सन्देह लोगोंको इस सम्बन्धमें न हो सके।”

श्रीमम्! समय नहीं है कि सर्वश्री एण्डरूज़ तथा पियरसनने धोखेकी जिन घटनाओंका उल्लेख किया है तथा जो मारवाड़ी सङ्घके विवरण-पत्रोंमें दी गई हैं—उन सबका वर्णन आपके सम्मुख करूँ। किन्तु उनमेंसे दो अथवा तीनका उल्लेख आवश्यक होगा। अन्य-अन्य घटनाओंका वर्णन करनेके पश्चात् श्री एण्डरूज़ आगे चलकर कहते हैं।—“तब हम एक गौड़ ब्राह्मणको देखने गए, जिसकी स्त्री कुली भर्त्ती करनेवाले एजेण्ट-द्वारा भगाई गई थी, जिसके कारण वह पागल हो गया था। सब पड़ोसी उसके पास एकत्र हो गए और उसके प्रति अपनी सहानुभूति तथा दया प्रदर्शित करने लगे। एक प्रतिष्ठित जाट तब हमारे पास आया। उसका भाई नेत्रहीन था और उसके भतीजेको भी कुली भर्त्ती करनेवाले एजेण्ट ले गए थे। एक वैश्य हिन्दूने अपनी स्त्रीकी दशाका वर्णन किया। वह कुली भर्त्ती करनेवाले एजेण्टद्वारा भगाई गई थी और उसके हृदयमें उनके प्रति हिंसाकी भावनाएँ थीं। हमने उससे पूछा कि उसने उसे प्राप्त करनेका क्या कोई यत्न भी किया? उत्तर मिला—नहीं, वह कुछ नहीं कर सकता था।”

श्रीमन्! धोखेकी ऐसी कई घटनाओंका, जो पिछले कई वर्षोंसे मेरे प्रान्तमें हुई हैं, मुझे व्यक्तिगत अनुभव है। उन स्थानोंसे उन स्त्रियोंके छुड़ानेके लिये मैंने तथा मेरे कई साथियोंने कई बार प्रयत्न किया है। उन स्थानोंमें घुसनेका अधिकार या तो एक मजिस्ट्रेटको है अथवा मजिस्ट्रेटद्वारा आज्ञा पाया हुआ व्यक्ति ही उन स्थानोंमें प्रवेश कर सकता है। वहाँ घुसनेपर, जब हम उस स्त्रीके विषयमें पूछते हैं, जो उन एजेण्टोंद्वारा वहाँ जानेके लिये फुसलाई गई है, तो या तो उसे वे उपस्थित ही नहीं करते अथवा उसे सिखा-भराकर एजेण्टके कहे अनुसार बयान देनेके लिये बाध्य करते हैं। वह कोई भिन्न बयान भी नहीं दे सकती, क्योंकि वह जानती है कि तब एजेण्ट उसके साथ क्रूरताका व्यवहार करेंगे। श्री एण्डरूज़का कथन सत्य है कि वह एजेण्ट इन आपत्ति-ग्रस्त व्यक्तियोंको भयभीत करके अपना कपट-जाल नहीं प्रकट होने देते और जो प्रश्न उससे पूछे जायँगे उनका उत्तर देनेके लिये भी भली भाँति सिखा-भराकर तैयार कर देते हैं और शायद ही कभी वे उसकी इच्छाके विरुद्ध किसी बातका उत्तर देते हैं।

जब प्रवासी जहाज़पर सवार होता है तो उसके सामने वे सब समस्याएँ उपस्थित होती हैं, जिनका मैंने अभी उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त स्त्रियोंके शील-सङ्कोचका भी कोई ध्यान नहीं रक्खा जाता। सारांश यह है कि प्रवासी भारतीयोंकी दशा इतनी शोचनीय हो जाती है कि उनमेंसे अधिकांश हुगली नदीमें डूबकर अथवा अन्यान्य प्रकारसे रास्तेमें ही आत्महत्या करके अपनी जान खो देते हैं।

उपनिवेशोंमें प्रवेश करते ही प्रवासियोंके सम्मुख भिन्न-भिन्न प्रकारकी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। बृटिश तथा डच गायनामें प्रवासियोंको सात घण्टे प्रतिदिन काम करना पड़ता है। श्रीमन्! इतने घण्टे

काम करना बहुत अधिक है, विशेषतया स्त्रियोँके लिये तो यह और भी अधिक है। उन्हेँ खाना पकानेके लिये कम-से-कम तीन या चार बजे उठना पड़ता है और कामपर पाँच बजे पहुँचना और तमाम दिन वहीँ रहना होता है। इससे भी बुरी दशा उन स्त्रियोँकी है जिन्हेँ अपने बच्चोँको घरपर ही छोड़ देना पड़ता है, जिससे उनके काममेँ बाधा न पड़े। यह अत्यन्त क्रूर है। किन्तु यह दिखलानेके लिए कि इसका व्यावहारिक रूप और भी क्रूर है, श्री एण्डरूज़ने एक घटनाका उल्लेख किया है, जिसमेँ एक ओवरसीयरने एक स्त्रीको कोड़ोसे पीटा था, क्योँकि वह बीमार बच्चोँको अपने साथ लिये जा रही थी और वह उसे वहीँ छोड़नेके लिये बाध्य कर रहा था।

प्रत्येक उपनिवेशमेँ वयस्क पुरुषको बारह आने प्रतिदिन तथा प्रत्येक स्त्रीको लगभग आठ या नौ आने प्रतिदिन मिलते हैँ। किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना कि उनकी प्रत्येक दिवसकी औसत आय बारह आने अथवा नौ आने हैँ, एकदम भ्रमात्मक है। इसके विपरीत उनकी प्रतिदिनकी आयका औसत बहुत ही कम है। प्रवासी कुली-प्रथाके सम्बन्धमेँ यह बात कई बार कही गई है कि वहाँ जानेसे कुलियोँको आर्थिक लाभ होता है—किन्तु हमेँ इसका भी निर्णय कर लेना चाहिए। ट्रीनीडाडमेँ हृष्ट-पुष्ट मनुष्यकी प्रतिदिनकी आमदनी साढ़े बारह आने तथा स्त्रीकी आठ आने है। किन्तु सन् १९१३ ई० की कमेटीके सदस्योँके कथनानुसार उनकी साप्ताहिक बचतका औसत चार शिलिङ्ग तीन पेन्स अथवा तीन रुपया तीन आना है। एक भले-चङ्गे मज़दूरके खानेका व्यय लगभग दो रुपया चार आने है और अन्यान्य आवश्यकताओँको लगाकर उसका व्यय दो रुपया दस आने हो जाता है। यह कम-से-कम व्यय है। इस प्रकारसे नौ आने प्रति सप्ताहसे अधिक उनकी बचत नहीँ हो सकती। किन्तु इन सब व्ययमेँ मज़दूरके कुटुम्बके भारका कोई ध्यान नहीँ रक्खा गया है। यदि ये बातेँ भी ध्यानमेँ लाई जायँ तो नाममात्रकी ही उनकी बचत होगी। यह कथन इस बातसे भली भाँति पुष्ट होता है कि भारत-सरकारद्वारा नियुक्त कमेटीने प्रतिदिनकी औसत आय पाँच शिलिङ्ग छः पेन्स अथवा चार रुपया दो आने कर देनेके लिये सिफ़ारिश की है। यदि यह बात किसी अन्य उपाय द्वारा नहीँ हो सकती तो मज़दूरीकी निरख बढ़ा देनी चाहिए अथवा मेहनती मज़दूरोँको इनामके रूपमेँ कुछ मिलना चाहिए।

स्त्रियोँकी कमाई पुरुषोँकी कमाईका आधा या दो तिहाई है; किन्तु उनकी आवश्यकताएँ पुरुषोँसे दो शिलिङ्ग छः पैन्स अधिक की हैँ। इसीसे वे बड़ी कठिनाईसे अपने निर्वाहके लिये ही कमा सकती हैँ। यद बात भी ध्यान देने योग्य है कि जब सन् १९१३ ई० की कमेटीके कथनानुसार प्रत्येक हृष्ट-पुष्ट व्यक्तिकी औसत आय चार शिलिङ्ग तीन पेन्स प्रति सप्ताह थी, सैण्डरसन कमेटीके सम्मुख गवाही देते हुए कहा गया था कि भारतमेँ कुलियोँसे पाँच शिलिङ्ग अढ़ाई पेन्स देनेकी जो प्रतिज्ञा की गई थी वह अब एकदम तोड़ दी गई है और उनकी वर्त्तमान आय तीन शिलिङ्गके ही ओरे धोरे हैँ। इस कथनका विरोध यह कहकर किया गया था कि यह बात तो भ्रमके कारण हुई और कहा गया कि प्रवासीसे पाँच शिलिङ्ग अढ़ाई पेन्स प्रति सप्ताहकी प्रतिज्ञा नहीँ की गई थी बल्कि पच्चीस सैण्ट अथवा साढ़े बारह आने प्रति दिवस, जब वे कामपर आएँ, देनेकी प्रतिज्ञा की गई थी। यह उन्हेँ सदैव दिया जाता था। क्या मैँ पूछ सकता हूँ कि मज़दूरोँको प्रलोभन देनेसे पहले ये सब बारीकियाँ उनको समझा दी गई थीँ?

श्रीमन्! सैण्डर्सन कमेटीके सामने जो वक्तव्य दिया गया था उसके आधारपर बृटिश गायनामेँ मज़दूरोँकी औसत आय सन् १९०६, १९०७ तथा १९०८ ई० मेँ लगभग तीन रुपये साप्ताहिक थी। इस औसतमेँ प्रत्यक्ष रूपसे वृद्धि हुई है जैसा कि सन् १९१०, १९११ तथा १९१३ ई० के आँकड़ोँको देखनेसे पता लगता है।

रहन-सहनका ख़र्च यहाँ भी ट्रीनीडाड जैसा है और इसी लिये यहाँ भी सन्तोषजनक बचत नहीं होती। जमैकामें बीमारीके कारण कामपर न जानेके दिन अधिक होते हैं और सन् १९१३ ई० की कमेटीद्वारा दिए गए आँकड़ोंके देखनेसे पता चलता है कि उनकी औसत आमदनी नौ आना प्रतिदिन अथवा तीन रुपया छः आना प्रतिसप्ताहसे भी कम है। ट्रीनीडाडमें रहन-सहनके ख़र्चकी ओर ध्यान देनेपर यह भली भाँति विदित हो जायगा कि यह वेतन अपर्य्याप्त है। फ़िजीमें भी अन्य उपनिवेशोंकी ही नाईं वेतन है, किन्तु भोजन-वस्त्रका व्यय वहाँ औरोंकी अपेक्षा अधिक है। अतएव इस स्थानपर रुपया बचानेके अवसर अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा बहुत ही कम हैं।

डच गायनामें प्रत्येक वयस्कको तेरह आने प्रतिदिन वेतन मिलता है। किन्तु काम करनेके दिनोंका औसत सन् १९०९, १९१० तथा १९११ ई० में क्रमशः एक सौ एक्यासी, एक सौ सत्तासी और एक सौ सतहत्तर दिन था। अनुमानतः काम करनेके दिनोंका साधारण औसत एक सौ अस्सी दिन होता है। इस प्रकारसे उनकी वार्षिक आय लगभग एक सौ पचास रुपया होती है। क्योंकि भोजन तथा वस्त्रका व्यय चार शिलिङ्ग प्रतिसप्ताह है अतः उनका वार्षिक व्यय भी लगभग एक सौ पचास रुपये वार्षिक है। किन्तु तब भी सन् १९१३ ई० की कमेटीको यह कहनेमें शर्म न लगी कि :—

“भारतवर्षको जो रुपया बचाकर भेजा गया अथवा जो रुपये बैङ्कमें प्रवासियोंद्वारा जमा किए गए, उसका औसत तो भली भाँति ज्ञात नहीं है, परन्तु कुलीगिरीके समयमें रुपया बचाने तथा जमा करनेकी कुलियोंकी आदत बन ही जाती है।”

सैण्डर्सन कमेटीका निरीक्षण उक्त कथनकी सत्यता भली भाँति पुष्ट करता है। उसका कथन है कि पहले एक अथवा दो वर्षोंमें तो मज़दूरोंसे कुछ भी बचानेकी आशा नहीं की जा सकती। उसके कथनसे यह भी भली भाँति विदित होता है कि अन्य वर्षोंमें भी कुली कुछ भी नहीं बचा सकते। बृटिश गायनामें कुली-प्रथासे अलग हुए भारतीयोंको बसानेका यत्न, उनके वापिस जानेके भाड़ेसे ज़मीन ख़रीदकर किया गया था। किन्तु उनका यत्न असफल हुआ और सर चार्ल्स ब्रूस की सम्मतिमें “इस प्रथाके असफल होनेका कारण यह था कि उपनिवेशी, जिस समय वापिस जानेके भाड़ेको लेनेके अधिकारी हुए, इस परिस्थितिमें न थे कि अपनी भूमिकी उपजसे ही अपना निर्वाह कर सकें।” कमेटीने आगे चलकर कहा कि यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि “इस दशामें अन्यान्य उपनिवेशोंमें जो प्रयोग हुए वे भी पूर्णतया असफल रहे।”

क्या इससे भी अधिक भारतवासियोंकी निर्धनताको सिद्ध करनेके लिये और कोई विश्वसनीय प्रमाण हो सकता है?

मज़दूरोंकी आर्थिक दशाका दिग्दर्शन एक दूसरे ढङ्गसे भी हो सकता है। सन् १९११-१२ ई० में चार सौ उनहत्तर युवक मनुष्य, उन मनुष्योंको छोड़कर जो अयोग्य समझकर निकाल दिए गए थे, ट्रीनीडाडसे लगभग नौ हज़ार पाँच सौ दस पौण्ड लेकर लौटे थे। दस सालतक वहाँ रहनेपर उनकी यह औसत आय बीस पौण्ड प्रति व्यक्ति थी। सन् १९१२-१३ ई० में बृटिश गायनासे छः सौ आठ व्यक्ति एक लाख पैंतालीस हज़ार रुपए लेकर भारतमें आए थे अर्थात् बीस सालके पश्चात् उनकी बचतका औसत दो सौ चालीस रुपए था। फ़िजीसे चार सौ चौदह आदमी तेरह हजार आठ सौ पौण्ड बचाकर लाए थे अर्थात् दस वर्षके पश्चात् उनकी बचतका औसत लगभग तैंतीस पौण्ड था। डच गायनासे सन् १९११-१२ ई० में छः सौ तीन आदमी पाँच हज़ार सात सौ पौण्ड लेकर वापिस आए अर्थात् कम-से-कम पाँच वर्षमें नौ पौण्ड प्रत्येक व्यक्ति बचाकर लाया। फ़िजीको छोड़कर अन्य उपनिवेशोंके कुलियोंकी बचत सन्तोषजनक नहीं है। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यानमें रखनी

चाहिए कि इस बचतमें बृटिश उपनिवेशोंमें प्रवासियोंका पाँच वर्षतक स्वतन्त्र रूपसे कमाया हुआ धन भी सम्मिलित है। यह बात किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती कि इस बचतका अधिक भाग प्रवासियों-द्वारा उनके कुलीगिरीके समयमें कमाया गया था।

श्रीमन्! कुलियोंसे लिए गए कामका पता तथा उन कठिन परिस्थितियोंका दिग्दर्शन, जिनमें वे रहे, उनपर चलाए गए अभियोगोंकी संख्या देखनेसे भली भाँति मालूम हो सकता है। इस कथाका यह बड़ा ही क्रूरतापूर्ण अंश है। सैण्डर्सन कमेटी तथा भारत-सरकारद्वारा नियुक्त कमेटी दोनोंका मत है कि अभियोगोंकी संख्या बहुत अधिक है और दोनोंने इसका उल्लेख अपनी-अपनी रिपोर्टोंमें प्रधान रूपसे किया है। इस कथनसे कुली-प्रथाकी वास्तविक दशाका पता चलता है और ज्ञात होता है कि यह प्रथा भी अपने भयङ्कर परिणामोंमें दासत्वसे किसी प्रकार कम नहीं है। मनुष्यपर केवल आपत्तिजनक कार्य्य न करने तथा प्रतिज्ञा भङ्ग करनेका ही अभियोग नहीं चलाया जा सकता, अपितु अपमानजनक शब्द कहने तथा सङ्केत करनेके ऊपर भी अभियोग चलाया जा सकता है। सन् १९०९ तथा सन् १९१३ ई० की कमेटियोंके समक्ष दी गई साक्षियोंसे पता चलता है कि भारतवासी बहुत शान्त होकर क़ानूनका पालन करनेवाले तथा सुगमतासे शासित होनेवाले व्यक्ति हैं। इतनेपर भी अभियोगोंकी संख्या इतनी अधिक क्यों हुई? स्पष्टतया इस प्रथाद्वारा ओवरसियरोंको बहुत अधिक अधिकार दिए गए थे और उनकी दृष्टिमें मूक और मौन आज्ञापालनके अतिरिक्त प्रत्येक बात अपराध है। यह बुराई कहाँतक फैली हुई है, इसका ठीक-ठीक दिग्दर्शन करानेके लिये थोड़ेसे आँकड़ोंका देना आवश्यक होगा। हाल ही में कुछ सुधार किए गए हैं, परन्तु तब भी दशा असहनीय है। सन् १९११-१२ ई० में ट्रीनीडाडमें प्रतिज्ञाबद्ध कुलियोंकी संख्या नौ हज़ार छः सौ थी और अभियोगोंकी संख्या लगभग दो हज़ार थी। इस प्रकार अभियोगोंकी संख्या इक्कीस प्रतिशत थी। भारत-सरकारद्वारा नियुक्त कमेटीने सिफ़ारिश की थी कि प्रवासी-विभागके हस्तक्षेप करनेपर सज़ाको घटा देना चाहिए और आगे चलकर कहा है कि अधिकांश मैनेजरोंके लिये स्थानीय कचहरियोंकी शरण लेना तो स्वाभाविक बात हो गई है। बृटिश गायनामें सन् १९१२-१३ ई० में प्रतिज्ञाबद्ध कुलियोंकी संख्या लगभग नौ हज़ार छः सौ थी और अभियोगोंकी संख्या, जो अन्य वर्षोंकी अपेक्षा बहुत कम थी, १८·३ प्रतिशत थी। अन्यान्य राज्योंमें अभियोगोंकी संख्या शून्यसे लेकर बत्तीस प्रतिशत थी। सन् १९१३ ई० की कमेटी इसका कारण अपने स्वाभाविक ढङ्गसे इस प्रकार करती है:—

"यद्यपि मैनेजर अपने मज़दूरोंके प्रति क्रूर होनेसे बहुत कुछ परे हैं तथापि उनमेंसे अधिकांशने अनुपातसे अधिक क्रूरताको अपनालिया है।"

जमैकामें कुलियोंकी चार हज़ार दो सौ की जन-संख्यामेंसे अभियोगोंकी संख्या सन् १९१२-१३ ई० में बारह प्रतिशत थी। पहले यह बहुत अधिक थी, किन्तु बहुत थोड़ेसे ही समयसे इसमें कमी होनी आरम्भ हुई है। फ़िजीमें उस सालके कुलियों तथा अभियोगोंकी संख्या क्रमशः पन्द्रह हज़ार चार सौ तथा ७·४ प्रतिशत थी। अन्यान्य उपनिवेशोंसे तुलना करनेपर यह संख्या थोड़ी अवश्य जँचेगी, परन्तु तब भी है बहुत अधिक। किन्तु अपराधी स्वामियोंके विषयमें सन् १९१३ ई० की कमेटीने अपने सनकी ढङ्गमें कहा है:—

"इस दुःखदायी परिस्थितिका कारण यह भी हो सकता है कि स्वामियोंको ऐसे स्कूलमें शिक्षा दी गई है जहाँ अयोग्यता तथा लापरवाहीके लिये किसी प्रकारका विचार नहीं किया जाता तथा भारतवासियोंके साथ भी उनका वैसा ही व्यवहार है जैसा और सबके साथ।"

डच गायनामें पाँच हज़ार आठ सौकी कुली-जनसंख्यामें सन् १९११ ई० में अभियोगोंकी

संख्या १६·६ प्रतिशत थी। इस प्रकार यह भली भाँति स्पष्ट है कि उनकी स्थिति प्रत्येक स्थानमें पूर्णतया असन्तोषजनक है। कुलीका जीवन व्यवहारिक रूपमें असहनीय बना दिया जाता है। वह ऐसे देशमें है जहाँ उसकी भाषा नहीं समझी जाती तथा इन्सपेक्टर व मज़िस्ट्रेट भी उसी श्रेणीके लोग होते हैं जिसके कि भूमिपति। स्वभावतः ऐसे स्थानमें न्यायकी आशा करना एकदम अनुचित है। परन्तु सन् १९१३ ई० की कमेटीने सब विषयोंपर दृष्टिपात करते हुए कहा था :—

“यदि मज़दूरोंमेंसे बहुत अधिकको दण्ड दिया गया था तो केवल बुद्धुओंको छोड़कर प्रायः सब होशियारीमें, स्वाभिमानमें तथा उद्योगमें बढ़े-चढ़े और पारितोषिक पाए हुए थे।”

क्या पक्षपात इससे आगे जा सकता है? क्षमा-याचना करते हुए क्या कोई मनुष्य यह पूछ सकता है कि ऐसी असाधारण हृदयगत भावनाओंवाले व्यक्तिकी निष्पक्षतामें क्या किसी प्रकारका विश्वास रक्खा जा सकता है?

श्रीमन्! इस कुली-प्रथाकी सबसे बुरी बात तो इसका नैतिक अधःपतन है। क़ानूनके अनुसार कुली स्त्रियोंकी संख्या मनुष्योंकी संख्याका चालीस प्रतिशत होनी चाहिए और स्त्रियाँ पुरुषोंकी सम्बन्धी भी न हों तो भी कोई बात नहीं है। स्त्रियोंकी न्यूनताके परिणाम-स्वरूप तथा भर्त्ती की गई स्त्रियोंकी चरित्रगत दुर्बलताके कारण नैतिकताका घोर पतन हुआ है। ट्रीनीडाडको छोड़कर प्रायः प्रत्येक उपनिवेशमें पुरुषोंकी संख्या स्त्रियोंकी संख्यासे लगभग दुगुनी है। फ़िजी तथा डच गायनामें पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा दुगुनेसे अधिक हैं। जमैकामें पुरुषोंकी संख्या स्त्रियोंसे ढाई गुनी है। गायनामें पन्द्रह वर्षसे अधिक आयुवाली स्त्रियाँ तथा पुरुषोंकी संख्यामें तीन तथा दोका अनुपात है और बीस वर्षसे अधिक आयुवाली स्त्रियाँ तथा पुरुषोंमें पाँच तथा तीनका अनुपात है। ट्रीनीडाडमें स्त्री-पुरुषोंकी संख्यामें सात तथा पाँचका अनुपात है। यदि केवल मनुष्योंकी ही संख्या देखी जाय तो अनुपात और भी अधिक हो जायगा। भर्त्ती की गई स्त्रियोंके चरित्रके सम्बन्धमें सैण्डर्सन कमेटीका कथन है :—

“भारत-सरकारने बहुत पहलेसे भारत-मन्त्रीको लिखा था कि भर्त्ती की गई स्त्रियोंमें अधिकांश या तो वेश्या हैं अथवा सबसे छोटी जातिकी वे स्त्रियाँ हैं जिनमें ईमानदारी तथा पवित्रताके गुणोंका एकदम अभाव है।” तथा सन् १९१३ ई० की कमेटीका कथन है कि :—

“जो स्त्रियाँ यहाँ आती हैं उनमेंसे एक तिहाई तो विवाहिता हैं, जो अपने पतियोंके साथ हैं; शेष विधवा अथवा ऐसी स्त्रियाँ हैं जो उनके पतियोंद्वारा परित्यक्ता हैं या वे स्वयं उन्हें छोड़कर चली आई हैं। थोड़ी संख्यामें वे साधारण वेश्याओंमें सम्मिलित हैं”

इस भयानक प्रथाके दुष्परिणाम जनताके जीवनमें सुगमतासे देखे जा सकते हैं। इस दशाको भली भाँति जाननेके लिये हमारे पास अन्य उपनिवेशोंकी अपेक्षा फ़िजीके बारेमें यथेष्ट सामग्री है। अतएव फ़िजीकी दशाका विवरण देना ही इस सम्बन्धमें अधिक लाभदायी होगा। श्री जे० डब्ल्यू बर्टनने उपनिवेशकी जनतामें फैली हुई नैतिक अधोगतिका जीता-जागता चित्रण किया था और उसे बहुत बुरा कहा था और श्री एण्डरूज़ तथा श्री पियरसनका अनुभव उनके इस कथनकी एकदम पुष्टि कर रहा है :—

“वे लिखते हैं कि फ़िजीकी कुली-बस्तियोंमें हमें जो सर्वप्रथम दृश्य दृष्टिगोचर हुआ उसे हम कदापि नहीं भूल सकते। मनुष्यों तथा स्त्रियोंके मुखपर नैतिक पतनके चिह्न भली भाँति दृष्टिगोचर होते थे। छोटे-छोटे बच्चोंका दृश्य तो ऐसे स्थानोंमें देखना असह्य हो जाता था। घूम-फिरकर जैसे-जैसे हम एक स्थानसे दूसरे स्थानको गए तो हमें वे ही चिह्न प्रत्येक स्थानमें दिखलाई पड़े। इससे हमें नैतिक अधःपतनका पता चला जो रोग स्त्री-पुरुषके जीवनको घुनकी नाईं नष्ट कर

रहा था। यद्यपि हम ऐसे स्थानोंपर पहले-पहल नहीं गए थे, तथापि जो कुछ फ़िजीमें हमें दिखलाई पड़ा वह ऐसा दृश्य था जैसा हमने कभी न देखा था। वहाँपर हमें कुछ-न-कुछ नवीन तथा अपरिचित दृश्य दिखलाई पड़ता था और वह था नैतिक पतनके संक्रामक रोगकी बढ़ती हुई भयङ्कर बाढ़। पवित्र वैवाहिक बन्धन तो एक दम तोड़ दिया गया है और प्रत्येक स्थानपर पाशविक दुराचार दिखलाई पड़ता है। स्त्रियाँ अपने इच्छानुसार पति बदल सकती हैं, तथा कन्याएँ तो एकदम बेची और ख़रीदी जाती हैं। विवाह-विधानने तो दशा और भी बुरी बना दी है। धार्मिक विवाहका तो कोई मूल्य ही नहीं है और बिना रजिस्टरी किए विवाहित दम्पतिकी सन्तान ग़ैर-क़ानूनी समझी जाती है। चूँकि अधिकांश भारतवासियोंके विवाहकी रजिस्टरी नहीं हुई, अतएव किसीको अन्यका परित्याग करते समय अदालतमें प्रार्थनापत्र भेजनेकी भी आवश्यकता नहीं है।”

दाम्पत्य कलहसे आत्महत्या तथा मनुष्य-हत्याकी भी संख्यामें एक दमवृद्धि हुई है। अधिकांश आत्महत्या तो कुली-जीवनके दुष्परिणामोंसे हुई हैं, किन्तु स्त्री-पुरुषोंकी असमान संख्या भी बहुत कुछ अंशोंमें इसके लिये उत्तरदायी है। सन् १९०८ से १९१२ ई० तक आत्महत्याओंकी संख्या कुलियोंमें प्रत्येक दस लाख पीछे नौ सौ छब्बीस थी। तथा अन्य जनसंख्यामें केवल एक सौ सैंतालीस थी जब कि मद्रास तथा युक्तप्रान्तमें, जहाँसे अधिकांश कुली भर्त्ती किए जाते हैं, आत्महत्याओंकी संख्या क्रमशः पैंतालिस तथा तिरसठ थी। मनुष्य-हत्याके सम्बन्धमें श्री एण्डरूज़ तथा पियरसनका कथन है:—

“तीन सौ मनुष्य पीछे एक मनुष्यकी अथवा दस लाख जनसंख्यामें तीन सौ तैंतीस मनुष्योंकी हत्या यहाँ साधारण बात हो गई है।”

इसकी अपेक्षा मद्रास तथा युक्त-प्रान्तमें मनुष्य-हत्याका औसत दस लाख पीछे चार है।

“आगे चलकर उन्होंने कहा है कि—‘यह बात ध्यान देने योग्य है कि हत्या अधिकांश मामलोंमें स्त्रियोंकी होती है। इसके विपरीत फ़िजीमें सब आत्महत्याएँ मनुष्योंमें ही हुई हैं। भारतमें थोड़ीसी जो आत्महत्या हैं, वे स्त्रियोंकी हैं।”

श्रीमन्! लज्जा तथा अपराधके कैसे हृदय कँपानेवाले काले आँकड़ोंका यहाँ भेद खोला गया है? हम आशा करते हैं कि अन्य उपनिवेशोंमें यह दुर्दशा न होगी। परन्तु सुननेमें यह आता है कि उनकी दशा भी इससे किसी प्रकार सन्तोषजनक नहीं है।

सन् १९१३ ई० की कमेटीने लिखा था कि—“निस्सन्देह उपनिवेशोंके सदाचारकी तुलना भारतके ग्रामोंसे किसी भाँति नहीं की जा सकती और यह आपत्ति स्त्रियोंके वहाँ जानेसे उत्पन्न हो जाती है।” जब कि जमैकामें कुलियोंमें आत्महत्याका अनुपात सन् १९०३-०४ ई० से लेकर सन् १९१२-१३ ई० दस वर्षोंमें प्रत्येक दस लाख पीछे तीन सौ छानबे थी; ट्रीनीडाडके कुलियोंमें तथा स्वतन्त्र प्रवासियोंमें आत्महत्याकी संख्यामें चार सौ तथा एक सौ चौंतीसका अनुपात था। बृटिश गायनामें यह अनुपात सौ तथा बावन तथा डच गायनामें एक्यानबे और उञ्चास था। इन संख्याओंसे कुली तथा स्वतन्त्र मज़दूरकी दशाओंका अन्तर विदित होता है तथा फ़िजी, ट्रीनीडाड और जमैकामें कुलियोंकी शोचनीय दशाका पता चलता है। यदि मनुष्यताके इस पतन तथा पीड़ाके चित्रको चित्रित करनेमें कोई कमी रह गई है तो यह कहा जा सकता है कि फ़िजीमें नब्बे प्रतिशत घोर अपराध भारतीय डाक्टरके कथनानुसार भारतवासियों-द्वारा किए जाते हैं और पिछले जनसंख्या विवरणसे पता चलता है कि नब्बे प्रतिशत भिखारी तथा अठहत्तर प्रतिशत पागल भारतवासी थे।

कुलियोंकी आर्थिक उन्नतिके सम्बन्धमें चाहे कुछ भी क्यों न कहा जाय, किन्तु कुली-प्रथाके परिणाम-

स्वरूप भारतवासियोंके भग्न हृदय तथा उजड़े हुए जीवनको देखते हुए ये सब विचार किसी भी मूल्यके नहीँ ठहरते। इस प्रथासे जो चरित्रका ह्रास होता है क्या उसकी पूर्त्ति किसी भी साम्पत्तिक उन्नतिसे हो सकती है? क्या ऐसे चरित्रभ्रष्ट व्यक्ति समाजके लिये तथा अपने लिये किसी लाभके हो सकते हैँ? आत्माको खोकर कोई व्यक्ति यदि संसारपर राज्य भी करे तो क्या ऐसा करनेसे उसे कोई लाभ हो जायगा?

श्रीमन्! यह दिखाया जा चुका है कि कुली-प्रथाका समर्थन किसी भी प्रकारसे नहीँ हो सकता। जैसा श्री गोखलेने बतलाया था, यह प्रथा धोखेसे और बलसे चलाई जाती है। कुलियोँको इससे लाभ नहीँ होता, घरपर भी वह इतना ही पैदा कर सकता है जितना बाहर। इसके विपरीत यह प्रथा उसके लिये एक शाप है। स्वतन्त्र जनताकी मान-मर्य्यादा तथा मज़दूरीको भी इससे गहरा धक्का लगता है और भारतका नाम बदनाम होता है। पूँजीपतियोँके लिये तो यह प्रथा लाभदायक है, क्योँकि अपने स्वार्थके लिये वह मज़दूरको अपनी कठपुतली बनाए रख सकता है। जितनी जल्दी ऐसी प्रथाका अन्त किया जाय उतना ही अच्छा है जिससे हृदयहीन शोषणका अन्त होकर सबका हित हो सके।

श्रीमन्! छुटपुट सुधार करने या घिसाघिसीसे काम न चलेगा। इस प्रथाको तो समूल नष्ट कर देना चाहिए। पिछली शताब्दीके पचहत्तर वर्षोँसे सुधारकी नीति काममेँ लाई जा रही है और वह असफल सिद्ध हो चुकी है। इस प्रथाके दोषोँकी खोज करनेके लिये कमीशन नियुक्त किए गए हैँ, दूसरे देशोँके प्रतिनिधि भी भेजे गए हैँ, क़ानूनमेँ भी मज़दूरोँके हितकी रक्षाके लिये परिवर्त्तन किए गए हैँ, परन्तु वे सब इस प्रथाके दोषोँका सामना करनेके लिये अपर्य्याप्त सिद्ध हुए हैँ। इसके विपरीत आवाज़ेँ भी प्रतिदिन अधिकाधिक ज़ोरसे आ रही हैँ और इस प्रथामेँ फँसे हुए व्यक्ति छुटकारेकी प्रार्थना कर रहे हैँ। इस मामलेका निपटारा तो इस प्रथाका पूर्णतया अन्त कर देनेसे ही हो सकता है और भारत-सरकारका कर्त्तव्य हो जाता है कि इसके लिये बिना विलम्ब किए आवश्यक प्रयत्न करे।

श्रीमन्! जहाँ कहीँ कुली-प्रथाके अनुसार काम लिया गया है वहीँ इसकी असफलता प्रकट हुई है। नैटालमेँ यह प्रथा काममेँ लाई गई थी, कुली-जीवन केवल पाँच वर्षका ही रक्खा गया था और हम जानते हैँ कि किस प्रकार यह प्रथा वहाँ असफल रही। चीनी मज़दूर प्रतिज्ञाबद्ध ठेकेमेँ पाँच वर्षके लिये ट्रान्सवाल भेजे गए थे और वहाँ भी वही दशा रही और अन्तमेँ वह प्रथा बन्द कर देनी पड़ी। स्ट्रेट सेटिलमेण्टमेँ तथा मलाया स्टेटमेँ केवल छः सौ दिन काम करनेका समझौता है, किन्तु वहाँ भी कुली-प्रथाके स्थानपर स्वतन्त्र रूपसे मज़दूरी चल रही है और इस परिवर्त्तनसे लाभदायक परिणाम उत्पन्न हुए हैँ।

श्रीमन्! समस्त संसारमेँ योरोपियन मज़दूर काम करते हैँ, किन्तु उनके ऊपर कहीँ भी वैसे नीच प्रतिबन्ध नहीँ हैँ जैसे भारतीय मज़दूरोँके ऊपर हैँ और यद्यपि योरोपका मज़दूर अपने हितका निर्णय करनेमेँ भारतीयकी अपेक्षा अधिक योग्य है तथापि इस बातके लिये प्रत्येक प्रकारसे सावधानी रक्खी जाती है कि मज़दूरने ठेकेकी शर्त्तोँको समझ लिया है अथवा नहीँ और इसके साथ-साथ वह ठेका केवल व्यक्तिगत और थोड़े समयके लिये होता है तथा उसीकी जातिके मजिस्ट्रेटके सामने यदि यह सिद्ध हो जाता है कि उसकी अनभिज्ञतासे अनुचित लाभ उठाया गया है तो वह समझौता रद्द भी हो सकता है।

श्रीमन्! मनुष्यके तर्क तथा अनुभवसे भी सिद्ध होता है कि कुली-प्रथा मनुष्यमात्रके लिये अमिट शाप है और समझौता करनेवाले व्यक्तियोँमेँ जितनी ही अधिक असमानता होती जाती है और कुलीगिरीका जितना ही अधिक समय बीतता है उतनी ही अधिक यह प्रथा दूषित होती जाती है।

राजनीतिककी अपेक्षा मानवीय भावनाओंका अधिक ध्यान रखते हुए यह आवश्यक है कि इसका जल्दी ही अन्त होना चाहिए तथा इसके स्थानपर स्वतन्त्र रूपसे मज़दूरी-प्रथा स्थापित हो जानी चाहिए, जो मज़दूरीका सबसे अच्छा ढङ्ग है। बहुत समयसे भारतीय कुलियोंके मानुषिक अधिकारोंकी उपेक्षा की गई है और गुलामीके इस जुएसे उन्हें शीघ्रातिशीघ्र मुक्त कर देना उचित है।

श्रीमन्! अब मैं अपने भाषणको समाप्त करना चाहता हूँ। मेरा विचार है कि मैंने कुली-प्रथासे उत्पन्न हुए दुष्परिणामोंका यथेष्ट दिग्दर्शन करा दिया है। ऐसी प्रथा सुधारी नहीं जा सकती। उसका तो अन्त ही हो सकता है। श्रीमन्! जबसे यह घोषित किया गया था कि भारत-सरकारने भारत-मन्त्रीके पास इस प्रथाको उठानेका सन्देश भेजा है तबसे देशमें सन्तोष तथा धन्यवादकी भावना जागरित हो गई थी। इस प्रथाने पिछले पचहत्तर वर्षोंसे सदाचारका घोर पतन किया है।

श्रीमन्! इस प्रथाद्वारा उन नष्ट हुए भारतीय भाइयों तथा बहनोंकी दशाका दिग्दर्शन बिना आन्तरिक वेदना तथा अपमानका अनुभव किए नहीं हो सकता। अब समय आ गया है कि इस प्रथाका अन्त होना चाहिए। श्रीमन्! बृटिश सरकारने दासताका अन्त कर दिया और उसके लिये दो सौ पचास लाख पौण्ड उसने हर्जाना दिया। भारत-सरकारने अपनी अफ़ीमकी आयको इस लिये छोड़ दिया था कि चीन लोगोंका उससे नैतिक अधःपतन हुआ था। उसी भारत-सरकारसे हम इस नीच तथा नीति-विरुद्ध कुली-प्रथाके विरुद्ध प्रार्थना कर रहे हैं और हमें आशा है कि हमारी प्रार्थना व्यर्थ न जायगी। मेरा विश्वास है कि श्रीमान्‌की सरकार हमारी प्रार्थनाको ध्यानमें रखकर इस प्रथाके मिटानेका जल्दी-से-जल्दी उपाय करेगी।

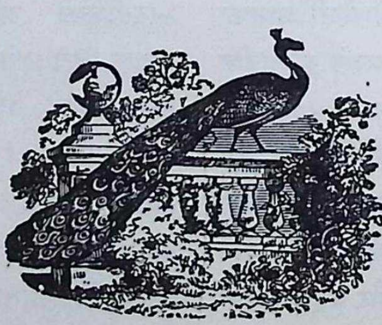

भारतीय-कौन्सिलें

२३ मार्च, सन् १९१७ ई० को राजकीय व्यवस्थापिका सभामेँ बजटपर भाषण करते हुए माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने कहा :—

—सम्पादक ।

मैँ अपने इस कथनसे आपका अथवा भारत-सरकारके अन्य किसी अपने सहवर्गियोँका किसी प्रकार निरादर नहीँ करता, कि आप नहीँ बल्कि भारत-सचिव ही भारतके वास्तविक शासन-कर्त्ता हैँ, क्योँकि यह सबको स्पष्ट है, और हम लोग खेदके साथ उसे जानते भी हैँ कि भारत-सम्बन्धी आयके प्रत्येक प्रश्नका अन्तिम निपटारा भारत-सचिव ही द्वारा किया जाता है। कुछ ही मिनट पहले मेरे माननीय मित्र श्री वाचाने यह पूछा कि क्या हम लोग स्व-शासनमेँ स्वतन्त्र नहीँ हैँ? मैँ हृदयसे चाहता हूँ कि हमेँ स्वतन्त्र होना चाहिए, परन्तु मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि हम स्वतन्त्र नहीँ हैँ, क्योँकि हमारे सभी आय-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रश्न भारत-सचिवद्वारा निश्चित नीतिके अनुसार निर्णय किए जाते हैँ। किसी भी मामलेमेँ जैसा उनपर कोई दबाव डाल सकेगा वैसा ही वे करेँगे। आज हो सकता है कि उन दबाव डालनेवालोँमेँ चीनमेँ अफ़ीमकी खपतकी नीतिका विरोध करनेवाले होँ, कल यह भी हो सकता है कि वे लङ्काशायरके व्यापारी होँ, जो अपने लाभमेँ एक कौड़ीकी भी हानि सहन नहीँ करेँगे, परसोँ वह युद्ध-विभाग ही भारतपर और कुछ भार लादनेकी बात सोचने लगे। भारत-सरकार उसका विरोध कर सकती है तथा मैँ कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ कि वह अनेक बार ऐसा कर भी चुकी है, परन्तु उसका विरोध अधिकतर व्यर्थ ही हुआ है। ये बातेँ अत्यन्त असन्तोषप्रद हैँ, और मैँ आशा करता हूँ कि युद्धकी समाप्तिपर इस प्रमुख प्रश्नको निर्णय करनेके लिये हाथमेँ लिया जायगा, और भारत-सरकारका दफ़्तर इङ्गलैण्डसे हटाकर भारत ही मेँ पूर्ण रूपसे स्थापित किया जायगा।

दूसरा प्रश्न इस कौन्सिलका वैध अधिकार-सम्बन्धी है। मैँ इसके पहले ही दस करोड़ पौण्डके निर्णयका विरोध कर चुका हूँ। मैँ किसी प्रकार भारत-सरकारकी अप्रतिष्ठा करना नहीँ चाहता, परन्तु मैँ उनके प्रति तथा सम्राट्की सरकार और अपने देशके प्रति भी यह कह देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि जब कौन्सिल वर्त्तमान थी तब कार्य्यकारिणी सरकारका यह सरासर अन्याय था कि उसने बिना कौन्सिलकी राय लिए ही इस बृहत् पूँजीको प्रदान करनेका निर्णय कर लिया। इससे तो यह प्रकट होता है कि मानो कौन्सिल तो केवल नाममात्रके लिये है और सिवाय टेक्स बैठानेके उसे वास्तवमेँ राज्यकी आयपर कुछ भी अधिकार नहीँ है। यह पुनः भारी असन्तोषकी बात है। अन्तमेँ इस कौन्सिलके सदस्योँकी साधारण स्थितिके विषयमेँ, यद्यपि हम सम्राट्की

सरकारको इस बातके लिये धन्यवाद देते हैं कि उसने युद्ध-सम्मेलनमें भारत-सचिवकी सहायताके लिये भारतके प्रतिनिधियोंको निमन्त्रित किया है, किन्तु उसके साथ ही हम इस भावको भी नहीं छिपा सकते कि ऐसा हम लोगोंके समर्थनके आधारपर किया गया। अतः यह सरकारका फ़र्ज़ था कि इस नियुक्तिको करनेके पहले हम लोगोंका परामर्श लिया जाता। यदि कौन्सिलके प्रति इस उदारताका प्रकाशन कर दिया गया होता तो सरकारकी इससे कुछ भी हानि नहीं होती, अपितु इसके विपरीत देशभरमें सन्तोषकी एक लहर व्याप्त हो जाती। मैं अनुभव करता हूँ कि हम लोग जो सरकारकी सेवा अवैतनिक ही करना चाहते हैं तथा उसने हमें जनताके विश्वासपात्र प्रतिनिधि भी स्वीकार कर लिया है, तब एक ऐसे प्रश्नमें, जिसके निर्णयमें हम लोगोंने भी सहायता प्रदान की है, सरकारका हम लोगोंको भूल जाना उचित नहीं था।

ये सब बातें स्वभावतः हमें हमारे मित्र श्री शास्त्री तथा गत युद्ध-सम्बन्धी सुधारोंमें उपस्थित सदस्योंद्वारा उठाए हुए महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंका ध्यान दिलाती हैं। हमें कुछ लोगोंने समझाया है कि हमें उन प्रश्नोंको अभी नहीं उठाना चाहिए। जो इस प्रकारकी राय देते हैं, वे परिस्थितिकी वास्तविकतासे अनभिज्ञ हैं। वे यह भूल जाते हैं कि इस सालकी प्रथम बैठकमें श्रीमान्ने यह कहनेकी कृपा की थी कि मईसे लेकर गत अक्तूबर अथवा छः माहतक व्यवस्थापक परिषद्की बैठक होनेके पहले, जिसने कि श्रीमान्के पास निर्वाचित उन्नीस सदस्योंद्वारा एक प्रार्थनापत्र भेजा था, कि भारत सरकार गत युद्ध-सुधार-सम्बन्धी उस ख़रीतेपर विचार करनेमें व्यस्त थी, जिसको आपने गत सालके शरदऋतुमें भारत-सचिवके पास भेजा था। श्रीमान्के उस कथनको अपने सम्मुख रखकर मैं उस विषयका ज़िक्र करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। मैं ऐसा प्रधानतः इसलिये कर रहा हूँ— जैसा कि हमारे माननीय श्री वसुने सूचित किया है, कि अगले सितम्बरतक इस कौन्सिलकी कोई बैठक नहीं होगी। मैं आशा करता हूँ कि इस घृणित युद्धका उसके पूर्व ही अन्त हो जायगा और हमारे सम्राट् इसकी गौरवपूर्ण सन्धिकी घोषणा करेंगे। इस विचारसे यह आशा की जाती है कि हम लोगोंके पुनः मिलनके पूर्व ही इन गत युद्ध-सुधारोंपर विचार कर लेना चाहिए। श्रीमान्की सरकारने भारत-सचिवके पास जो ख़रीता भेजा है उसे तैयार करनेमें छः मास लगे हैं, और आपकी कौन्सिलके हम निर्वाचित सहायक सदस्योंने आपके पास एक चिट्ठा भेजा है, जिसपर हम लोगोंने अधिक दिमाग़ तथा समय लगाया है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा मुस्लिम लीगने भी सुधारोंकी एक पूर्ण विचारित योजनाको पेश किया है। अतएव सरकारके सम्मुख सुधारोंके निर्णयमें अब किसी अन्य सहायताकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु, श्रीमन्! हम लोग नहीं जानते कि इस सम्बन्धमें आपकी सरकारने क्या निर्णय किया है। और मैं प्रार्थना करता हूँ कि कौन्सिलके समक्ष आप कृपा करके उनको प्रकाशित कर देंगे, जिनसे हम उनपर अपनी आलोचना प्रकट करनेमें समर्थ हो सकें, और जिससे सरकार भी एक निश्चित तथा ठीक निर्णय कर सके। मैं यह कह देना चाहता हूँ कि सुधारोंकी आवश्यकता युद्धके पहलेकी अपेक्षा इस समय और भी अधिक है। जैसा कि श्री लायड जौर्जने पिछले दिन भाषणमें कहा है, "कि युद्धने हमारे भावोंमें बड़ा परिवर्त्तन पैदा कर दिया है। उसने इङ्गलैण्ड तथा भारत दोनोंके दृष्टि-कोणोंको बदल दिया है। मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि युद्धने हमको पचास वर्ष आगे बढ़ा दिया है; और मैं आशा तथा विश्वास करता हूँ कि भारतको वे सभी अधिकार कुछ ही वर्षोंमें प्राप्त हो जायँगे, जिन्हें वह पचास

वर्षमेँ भी प्राप्त नहीँ कर सकता था। कुछ लोग कुछ शब्दोँके प्रयोगसे डरते हैँ; कुछ लोग 'होम-रूल' शब्दके प्रयोगसे घृणा करते हैँ; कुछ 'औपनिवेशिक स्वराज्यके' शब्द तकको भी नहीँ सुनना चाहते। परन्तु यह सबको स्वीकार करना पड़ेगा कि युद्धके पश्चात् ऐसे सुधारोँकी आवश्यकता है, जिससे वर्त्तमान और भविष्यमेँ भारतके हितोँकी रक्षा हो सके, जिनसे उसकी जनताकी कामना पूरी हो सके, और वे अपने देशके उचित शासन-प्रवन्धमेँ समर्थ हो सकेँ।

श्रीमन्! इन सुधारोँमेँ बजटकी बहसके फलस्वरूप एक सुधार यह भी है कि भारतको आर्थिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त होनी चाहिए, तथा इसके व्यवस्थापक परिषद्को, जिसका निर्माण क़ानूनके आधारपर हुआ है, इस बातकी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए कि कौन-कौन टैक्सोँको बैठाना चाहिए तथा उनसे प्राप्त धनको किस प्रकार व्यय किया जाय। लङ्काशायरके व्यापारियोँद्वारा रूईके मालपर निर्यात करका लगवा देना, इस बातको प्रत्यक्ष प्रमाणित करता है कि भारतको आर्थिक स्वतन्त्रताकी अत्यधिक आवश्यकता है। सार्वजनिक प्रश्नके विषयमेँ हमेँ यही कहना है कि घरेलू शासन-प्रवन्धमेँ भारतीयोँको अपने विचारोँको प्रकट करनेका अधिकार मिलना अनिवार्य्य है। न्याय हम लोगोँके पक्षमेँ है, तथा सामयिक शक्तियोँका प्रभाव भी हमारे ही पक्षमेँ है। हमेँ यह जानकर प्रसन्नता है कि हमारी सरकार एक धर्म-युद्धमेँ व्यस्त है जिससे स्वतन्त्रता, न्याय और बड़े-छोटे राष्ट्रोँकी स्वतन्त्रता सभीकी रक्षा हो सके। इन्हीँ विचारोँसे प्रेरित होकर हम लोगोँने युद्धके प्रारम्भ ही से अपनी तुच्छ सैनिक सेवाओँको उपस्थित किया है और अपने सम्राट्की विजय-कामनाकी हार्दिक इच्छा करते हैँ। इस युद्धके पहले भी हम लोग इङ्गलैण्डको इसी कारणसे धन्यवाद देते थे कि वह स्वतन्त्रताका प्रेमी है तथा अन्य राष्ट्रोँको भी उसने उनकी स्वतन्त्रता-प्राप्तिमेँ सहायता प्रदान की है।

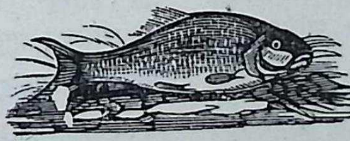

संकटकालीन विशेषाधिकार बिल (रौलेट् बिल)

१८ जनवरी सन् १९१९ ई० को रौलेट् बिल गज़टमेँ प्रकाशित हुआ और एक सप्ताह बादही बड़े लाटकी राजकीय व्यवस्थापिका परिषद्मेँ वह पेश कर दिया गया। उसी सङ्कटकालीन विशेषाधिकार अथवा रौलेट् बिलपर माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने साढ़ेचार घण्टे भाषण दिया था। उसका पूर्ण विवरण निम्नाङ्कित है।

—सम्पादक।

श्रीमन्!

बिलपर तर्क उपस्थित करनेके पूर्व क्या मैँ व्यवस्थात्मक कार्रवाई-सम्बन्धी क़ानूनकी तेरहवीँ धाराके अनुसार पूछ सकता हूँ कि कोई काग़ज़ात, जिसका सम्बन्ध कौन्सिलके विचारार्थ बिलसे है, अथवा कार्रवाई-सम्बन्धी पुस्तिका (रजिस्टर), जिसकी रचना आपकी सरकारद्वारा हुई हो, और अन्य कोई पत्र-व्यवहार, जो आपकी सरकार और भारत-सचिवके बीच हुआ हो, मुझे दिया जा सकता है? उक्त धाराका अभिप्राय यह है कि :—

कोई सदस्य किसी काग़ज़ या नक़शेको, जो कौन्सिलमेँ उपस्थित बिलसे सम्बन्ध रखनेवाला है, माँग सकता है।

मैँ नम्रतापूर्वक निम्नाङ्कित काग़ज़ात चाहता हूँ।

सभापति बड़े लाट—कौन्सिलके सेक्रेटरीके अधिकारमेँ कोई काग़ज़ात या नक़शे नहीँ हैँ।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय—श्रीमन्! मेरी प्रार्थना यह है कि यदि आपकी सरकारने बिलके सम्बन्धमेँ स्मरणार्थ कुछ लिखा हो और यदि आपकी सरकार और भारत-सचिवमेँ कोई पत्र-व्यवहार हुआ हो तो उसकी नक़ल मुझे मिलनी चाहिए।

सभापति बड़े लाट—तेरहवीँ धाराका अभिप्राय यह है कि "सभापति इसका निश्चय करे कि कौन्सिलकी आगामी बैठकके समय या उसी समय ही जो काग़ज़ात या नक़शा माँगा गया है, वह दिया जा सकता है या नहीँ। अतएव मैँ माननीय सदस्यको कल उत्तर दूँगा।"

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय—माननीय महोदय धन्यवाद।

श्रीमन्! माननीय गृह-सचिवने बिलके आरम्भिक भाषणके उपसंहारमेँ हम कौन्सिलके ग़ैर-सरकारी सदस्योँको उस महान् उत्तरदायित्वकी, जो हम लोगोँपर इस समस्याके सम्बन्धमेँ है, याद दिलाई है। उन्होँने अपने भाषणमेँ आगे चलकर हम लोगोँको बताया है कि हम लोगोँकी योग्यताकी परीक्षा उस बड़े उत्तरदायित्वके सम्बन्धमेँ हमारे उस व्यवहारसे होगी जो हम इस बिलके सम्बन्धमेँ प्रदर्शित करेँगे। श्रीमन्! मैँ इस विचारको पूर्णतः मानता हूँ, यद्यपि गृह-सचिवसे मैँ इस सम्बन्धमेँ, जिस उद्देशसे उन्होँने यह टिप्पणी की है, मैँ सहमत नहीँ हूँ। 'मुझे आशा है कि केवल हम कौन्सिलके ग़ैर-सरकारी सदस्य ही नहीँ किन्तु सरकारी सदस्य भी पूर्ण

दायित्वके भावसे प्रेरित होकर, जो हमारे ऊपर रक्खा गया है, इस अत्यावश्यक प्रश्नपर विचार करेंगे।

श्रीमन्! कौन्सिलके समक्ष विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या विचारके लिये उपस्थित बिल निर्वाचित समितिके अधीन करना चाहिए? इससे पूर्व मैं अपना विनम्र प्रतिवाद उपस्थित करता हूँ। माननीय महोदय! इस बिलके सम्बन्धमें जिस गतिविधिका अनुसरण सरकारने किया है, मैं सोच नहीं सकता कि इससे अधिक गम्भीर और महान् बिल, जो बृटिश सरकारकी प्रजाकी स्वतन्त्रताका अपहरण करना चाहता है, जिस स्वतन्त्रताका उपभोग आजतक वे क़ानूनके अनुसार करते रहे हैं, क्या उसके लिये वह उचित है? यह बिल न्याय-विभागके स्थानपर, जिसका समर्थन पार्लियामेण्ट और राज्य-परिषद्से हुआ है, एक ऐसे यन्त्रका निर्माण करना चाहती है जिसके द्वारा बृटिश सरकारकी प्रजाकी स्वतन्त्रतापर आक्रमण होगा। इस असाधारण बिलकी कार्रवाई व्यवस्थापिका सभाके क़ायदे-क़ानूनोंके अनुसार पूर्णतया होनी चाहिए जब कि इसका कार्य्य प्रजाकी स्वतन्त्रताका अपहरण करना होगा। श्रीमन्! मेरा निवेदन है कि यदि कोई बिल इस योग्य हो कि उसके सम्बन्धके व्यवस्था-निर्माणके लिये जितने विधान हैं उन सबका विचार किया जाय तो उस प्रकारका यह एक अवश्य है। उन विधानोंमें लिखा है कि साधारणतः जब कोई बिल कौन्सिलमें विचारार्थ उपस्थित किया जाता है तो सबसे पहले यह प्रस्ताव होता है कि बिल सरकारी गज़ट अथवा ऐसे गज़टमें, जिसका निर्णय कौन्सिलके अधीन है, प्रकाशित किया जाय। किन्तु वर्त्तमान बिलके सम्बन्धमें अपवादात्मक २३वीं धाराका आश्रय लिया गया है। जिसका अभिप्राय यह है:—

“बड़े लाट, जब उन्हें उचित प्रतीत हो तभी बिलके प्रकाशनकी अनुमति दे सकते हैं। उसमें बिलका उद्देश और उसके समर्थक कारणोंके साथ ऐसे गज़ट और ऐसी शब्दावलीके साथ प्रकाशित हो, जिसको बड़े लाट आवश्यक समझें। इस बिलके उपस्थित करनेकी अनुमतिके लिये कौन्सिलमें कोई प्रस्ताव भी नहीं हुआ है। इस स्थितिमें बिलके उपस्थित किए जानेके प्रस्तावकी भी आवश्यकता न होगी; और यदि बिल उपस्थित किया गया तो उसके पुनः प्रकाशनकी भी आवश्यकता न होगी। श्रीमन्! मैं समझता हूँ कि विधानमें जो यह हेतु रक्खा गया है, वह निर्विवादात्मक प्रश्नोंके लिये है, जो विचारणीय प्रश्नसे बिल्कुल भिन्न है।

प्रत्यावर्त्तन

क्रमिक और विधान-सङ्गत व्यवस्थासे इस सम्बन्धमें प्रत्यावर्त्तन हुआ है। यह एक महा विचित्र उपक्रम है। यदि साधारण प्रथाके अनुकूल इस बिलको कौन्सिलमें उपस्थित करनेके लिये अनुमति प्राप्त करनेका प्रस्ताव किया गया होता तो इसके बाद बिलको सरकारी गज़टमें प्रकाशित करने और सर्वसाधारणकी सम्मति प्राप्त करनेके लिये इसके प्रचारका भी प्रस्ताव हुआ होता। फलतः देशमें सर्वसाधारणकी सम्मति प्राप्त करनेके लिये इसका प्रचार हुआ होता। हाइकोर्टके जजों, अन्य जजों, विभिन्न स्थानीय सरकारके मजिस्ट्रेटों, सार्वजनिक संस्थाओं आदि तथा इस प्रश्नसे अभिरुचि रखनेवाले अन्य लोगोंकी सम्मति प्राप्त होती। इन सम्मतियोंका कौन्सिलके सदस्योंमें प्रचार हुआ होता, उसपर आपकी सरकार और सम्भवतः भारत-सरकार भी विचार करती। यह कार्रवाई बादमें हुई होती। इस कौन्सिलमें प्रस्ताव किया जाता कि बिलको निर्वाचित समितिके अधीन किया जाना चाहिए। किन्तु जो कुछ यहाँ हुआ है, आपको विदित ही है। यदि मैं भूल नहीं करता तो मेरा यह कथन सत्य है कि बिलका गज़टमें प्रकाशन उन्नीस जनवरी या उसके लगभग हुआ है।

माननीय श्री मुडी मैन—अठारहवीं जनवरीको।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजी :—

धन्यवाद, आज एक पक्षके बाद व्यवस्था सभाकी तेईसवीं धाराके बलपर बिलके उपस्थित किए जानेके प्रस्तावके बिना ही आज यह उपस्थित किया जा रहा है। कौन्सिलमें उपस्थित किए जानेके लिये अनुमति प्राप्त करनेके प्रस्तावसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु प्रथम वाचन-कालकी व्यवस्था-सम्बन्धी जो सुविधाएँ दी गई हैं—जैसे बिलके गज़टमें प्रकाशित करनेका प्रस्ताव और निर्वाचित समितिके अधीन किए जानेके पूर्व सर्वसाधारणको अनुमति प्राप्त करनेके लिये इसके प्रचार किए जानेका प्रस्ताव आदिकी सुविधाएँ वर्त्तमान नीतिके प्रयोगसे हम लोगोंसे छीन ली गई हैं। दूसरी बात, जिसके लिये मैं आपत्ति करना चाहता हूँ यह है कि पचीसवीं धारा यह सुविधा-प्रदायक रही है कि भारतके गज़टमें बिल प्रकाशित हो जानेके बाद, निर्वाचित समिति, जिसको बिल सुपुर्द है, उसपर अपनी रिपोर्ट दे; और यह रिपोर्ट बिलके प्रकाशित होनेके तीन महीनेसे पहले नहीं दी जानी चाहिए। प्रस्तुत प्रस्ताव एक साधारण सदस्यका नहीं है, किन्तु गृहसदस्यका है, जो न्याय-विभागके पदपर अधिक कालतक रह चुके हैं; उन मूल्यवान शर्त्तोंकी अवहेलना करके यह प्रस्ताव करना कि निर्वाचित समिति, जिसके अधीन किए जानेका प्रस्ताव है, सन् १९१९ ई० की ६ ठीं मार्च या उसके पहले अपनी रिपोर्ट दे दे—कहाँतक न्याय-सङ्गत है? श्रीमन्! मेरा निवेदन है कि गृहसदस्यका कौन्सिल और जनताके प्रति यह दायित्व है कि वह इसकी व्याख्या करें कि क्या कारण उपस्थित है जिससे सरकारद्वारा ऐसी कार्रवाई करनेकी न्याय-प्रियता सिद्ध हो सकती है, जिससे व्यवस्था-निर्माण-सम्बन्धी साधारण विधानकी अवहेलना की जा रही है। अभी आपने ऐसा नहीं किया है। मैं आशा करता हूँ कि आप ऐसा नहीं करेंगे। किन्तु मेरा निवेदन है और साधारण धारणा ऐसी है कि इसकी व्याख्या हो नहीं सकती।

प्रतिवादका अधिकार

जिस व्यवहार-क्रमका प्रयोग हुआ है, वह आपको और कौन्सिलके समस्त सदस्योंको विदित ही है, कि यह बिल जनतापर आकाशसे वज्रके समान गिरा है। श्रीमान्को विदित है, और हममेंसे अधिकांशको भी विदित है कि देशके विभिन्न भागोंमें इस बिलके उपस्थित किए जानेके प्रतिवादमें कितनी अधिक सभाएँ की जा रही हैं। क्या यह उचित है कि उस व्यवहारकी उपयोगिताको, जिसका प्रयोग हुआ है, सिद्ध किए बिना ही जनताके सिर इतना बड़ा अनिष्टकारी विधान लाद दिया जाय?

श्रीमन्! राजद्रोहसे मेरी सहानुभूति नहीं है, मुझे आशा है कि किसी अन्य सदस्यको भी न होगी। हम राजद्रोहसे घृणा करते तथा इसकी निन्दा करते हैं। हम दो कारणोंसे ऐसा करते हैं। एक तो यह स्वतः बुरा है और दूसरे हमारे देशवासियोंको हानि पहुँचाता है। मैं उन नवयुवकोंके लिये हृदयसे दुखी हूँ जो राजद्रोहके लिये पथ-भ्रष्ट किए गए हैं। मैं उनके भाग्यपर दुःख प्रकट करता हूँ। मैं कोई भी तर्क-सङ्गत कार्य्य, जो हमारे लिये सम्भव और साध्य है इन नवयुवकोंको पथभ्रष्टता और उसके परिणामसे बचानेके लिये करूँगा। हमको अराजकता और क्रान्तिकारी अपराधोंसे भी सहानुभूति नहीं है। जब कभी अराजकता और क्रान्तिकारी अपराधोंके लिये क़ानून बनानेकी आवश्यकता हुई है तब-तब हम लोगोंने आवश्यक सहायता प्रदान की है। इस बातकी साक्षी कौन्सिलकी कार्रवाईकी रिपोर्ट है। इसके लिये मैं भारत-रक्षा-विधानका उदाहरण उपस्थित करता हूँ।

जिस समय लौर्ड हार्डिञ्जकी सरकारने भारत-रक्षा-विधान नामक क़ानूनकी आवश्यकताका अनुभव किया,

उस समय इस कौन्सिलके प्रत्येक सदस्यने उसका समर्थन किया था। हमने उसका समर्थन अस्थायी समझकर किया था। इस विलपर जो वहस हुई थी उस सम्बन्धके कुछ वाक्य मैं यहाँ उद्धृत करना चाहता हूँ, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा। इसका एक अंश लौर्ड हार्डिञ्ज और दूसरा सर रेजिनाल्ड क्रैडाकके भाषणका है। इस विलपर भाषण करते हुए लौर्ड हार्डिञ्जने कहा था—'आपको मालुम होगा कि यह युद्ध-सम्वन्धी उपक्रम है। यह युद्धकालतक और युद्धकी समाप्तिके छः महीने वादतक जारी रहेगा। देशमें मुझसे बढ़कर भारतकी प्रतिष्ठाके लिये कोई अन्य व्यक्ति अधिक इच्छुक न होगा और इसकी परम ख्यातिके लिये, इसकी राजभक्तिके लिये, भारत यथार्थमें उपयुक्त है, और मैं भारतकी उज्वल कीर्त्ति और प्रतिष्ठाको कुछ विकृत मस्तिष्कवालोंकी राजद्रोहात्मक कार्रवाइयोंसे कलङ्कित न होने दूँगा, वह भी ऐसे समय जव कि भारतके सपूत, देश और दयालु राजाके लिये युद्ध-क्षेत्रमें अपना रक्त वहा रहे हैं। सर रेजिनाल्ड क्रैडाकने भारत-रक्षा-विधानका प्रस्ताव करते हुए अपने भाषणमें कहा था। आदरणीय महोदय! उसका आरम्भ इस प्रकार है:—

भारतकी राजभक्ति और उसकी असंख्य जनताके शान्तिमय आचरणके लिये यह एक महान् सहायता है जव कि युद्धके आरम्भमें, वृटिश सरकारने राष्ट्र-रक्षा-विधान स्वीकार किया था। आज हम भारतवाले आठ महीनेसे युद्धके वीचसे होकर गुज़र रहे हैं। इसके पूर्व हम भारतमें पूर्व विधानके समान ही एक और विधानके निर्माणकी आवश्यकताका अनुभव कर रहे हैं। यद्यपि नाम दूसरा है परन्तु यह भी 'राष्ट्र-रक्षा-विधान' ही है। इस विधानपर मत प्रदानके लिये कौन्सिलकी स्वीकृति प्राप्त करनेका हम अनुरोध करते हैं। सर रेजिनाल्ड क्रैडाकने और कहा कि "जिस अधिकारकी माँग आज हम उपस्थित कर रहे हैं उनकी आवश्यकता सार्वजनिक रक्षा और वृटिश भारतकी रक्षाके लिये है।" इन अधिकारोंकी आवश्यकता हमको केवल युद्ध-कालके लिये है और वह भी छः महीनेके लिये अर्थात् युद्धके वाद सर्वसाधारणकी उत्तेजना और अव्यवस्थाके शान्त होनेतक जो युद्धका परिणाम भूत है। इतने समयमें वह शान्त हो जायगा। स्थितिके इस प्रकार स्पष्ट किए जानेपर कौन्सिलके प्रत्येक सदस्यने इसका समर्थन किया। भाषण करनेवाले प्रत्येक सदस्यने जो कुछ कहा उसको मैं यहाँ उद्धृत करना नहीं चाहता। किन्तु अपने भाषणका एक छोटा वाक्य मैं यहाँ उद्धृत कर देना चाहता हूँ। मैंने कहा था कि 'वर्त्तमान अवस्थाकी माँग है कि विशेष परिस्थितिमें, जो युद्धके कारण उपस्थित हुई है, हमको भक्तिपूर्वक सरकारका सव प्रकारका समर्थन तथा भयङ्कर कार्रवाईको कुचलने और दवानेके लिये जिन विधानोंकी आवश्यकता हो उसके निर्माणमें सहायता प्रदान करनी चाहिए। कुछ विकृत मष्तिकवालोंकी निन्दात्मक और अव्यवस्थित कार्रवाइयोंसे सार्वजनिक शान्तिकी रक्षा, सभ्य समाज एवं वैधप्रिय जनताकी रक्षा, की जानी चाहिए।" इस आशयके विधानके निर्माणके लिये जो-जो आवश्यकताएँ थी उनमें हम सवने एक मतसे अपना समर्थन प्रदान किया।

परिस्थितिकी आवश्यकता

राष्ट्र तथा सर्वसाधारणकी रक्षाके लिये उक्त विधान आवश्यक था। मैं समझता हूँ कि कौन्सिलका कोई भी सदस्य अथवा वाहरी कोई सज्जन हमारे आचरणपर आक्षेप नहीं करेगा। भारत-रक्षा-विधानके समान ही विशेषाधिकार-सम्वन्धी क़ानूनके लिये हमने अपना हार्दिक समर्थन सरकारको दिया, जवकि उसकी आवश्यकता हमारे सामने स्पष्ट कर दी गई। हमने ऐसा इस लिये किया कि वह हमको वताया गया और हमने स्वयं भी उसका अनुभव किया कि यह एक विशेष

उपक्रम है, युद्धके विशेष समयके लिये इसकी आवश्यता है और यह अस्थायी है और युद्धके छः महीने पश्चात् समाप्त हो जानेवाला है। आदरणीय महोदय ! अब हम क्या कराना चाहते हैं ? माननीय गृह-सदस्य इस विशेष विधानके लिये हम लोगोंसे समर्थन चाहते हैं, और विधान-पुस्तकमें इसको स्थायी स्थान देना चाहते हैं। हमसे कहा गया है कि यदि हम इसका समर्थन नहीं करते तो हम पूर्णतः उत्तरदायी नहीं माने जायँगे। मैं माननीय गृह-सदस्यसे पूछता हूँ और मैं सरकारी पक्षके सभी सदस्योंसे यह बतानेकी जिज्ञासा करता हूँ कि ऐसे विधानके समर्थनके लिये कौन-कौनसे कारण हैं ? मैं श्री जिन्नासे सहमत हूँ कि ऐसे विधानके लिये कोई चिन्ता नहीं की गई है। मेरा निवेदन है कि देशकी विधान-पुस्तकमें स्थायी स्थान पानेके लिये एक विशेष विधानके लिये जो शर्त्तें हों उसका स्पष्टीकरण होना चाहिए। वह कौनसी परिस्थिति है जिसका हमको सामना करना है ? अपराध दो प्रकारके होते हैं—क्रान्तिकारी और राजद्रोहात्मक, जो रौलेट् कमेटी कर चुकी है। इन दोनोंका ज़रा विश्लेषण तो कीजिए। रौलेट् कमेटीने यह नहीं कहा कि सन् १८९७ ई० तक देशमें इस प्रकारके अपराधका अस्तित्त्व था। पहला अपराध, जिसका ज़िक्र कमेटीने किया है, वह सन् १८९७ ई० में पूनामें दो अंग्रेज़ कर्मचारियोंकी दुःखद हत्याका है। कमेटीने यह भी बताया है कि उनमेंसे एककी हत्या दैवात् हुई और दूसरेकी हत्याका कारण यह था कि उसके प्रतिकूल जनतामें यह दृढ़ भावना फैलाई गई कि पूनामें जो प्लेग हुआ था उसके निराकरणके कुप्रबन्धमें इसका हाथ था। अब आगे और कुछ कहनेके पूर्व मैं विना हिचकके कह सकता हूँ कि जहाँतक रौलेट् कमेटीके आधारका सम्बन्ध है, मैं उन कारणोंको स्वीकार करता हूँ, जिनको उन्होंने बृहद् रूप दिया है, किन्तु पूर्णतः नहीं। मैं उनके सब अनुमानोंको भी स्वीकार नहीं कर सकता। हमको चेतावनीका प्रयोग करना चाहिए, जैसा कि रौलेट् कमेटीने स्वयं बताया है। कमेटीने उन सभी प्रमाणोंको हमारे सामने उपस्थित नहीं किया है, जिनपर उनका निष्कर्ष स्थित है। कमेटीके किसी भी सदस्यके प्रति अनादरका भाव प्रकट किए विना, उनके विरुद्ध किसी सङ्घर्षको उत्पन्न किए विना और उचित निर्णय करनेमें उनकी अयोग्यताके सम्बन्धमें कोई इच्छा प्रकट किए विना हम उनके अनुमान और निष्कर्षको अत्यन्त सन्तोषप्रद नहीं स्वीकार कर सकते। कमेटीने बताया है कि वक्तव्यके अधिकांशको, जिनमें अभाग्यवश थोड़े ही प्रतिवाद हैं, वह गुप्त रखना चाहती है। कमेटी उन्हें जनताके सामने उपस्थित करनेमें असमर्थ रही। ऐसा न करनेके जो कारण कमेटीने उपस्थित किए हैं, वे कारण सन्तोषप्रद नहीं हैं। कमेटीने निवेदन किया है कि उन कारणोंका प्रकाशित करना आपत्तिजनक है। मेरा निवेदन है कि कमेटीने भयका अतिशयोक्तिपूर्ण अर्थ लगाया है। अपनी रिपोर्टके पैंतीसवें उपच्छेदमें कमेटी कहती है कि "इस प्रमाणके अप्रकाशनसे जो निष्कर्ष कमेटीने निकाला है उससे उसकी रक्षाके बदले हानि अधिक हुई है। इसके अतिरिक्त मेरा निवेदन यह है कि यदि प्रमाण प्रकाशित किए गए होते तो सम्भव था कि कम-से-कम कुछ अंशमें जनता कमेटीके निर्णयसे भिन्न निर्णयपर पहुँची होती। हमको इसमें सन्देह नहीं है कि भारत-सरकारके हाइकोर्टके एक न्यायाधीश कमेटीपर दबाव डाल रहे थे। इस कमेटीमें ऐसे भी कर्मचारी थे जिनमेंसे एकसे मुझे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जो हम लोगोंके समान विचार रखनेवाले थे। इस कमेटीमें एक भारतीय न्यायाधीश और ग़ैर-सरकारी भारतीय वकील भी थे—सब बड़े प्रतिष्ठित और योग्य व्यक्ति थे। किन्तु हमें मालूम है कि हाइकोर्टके न्यायाधीशका निर्णय बृटिश सरकारके प्रिवी कौन्सिलके न्यायाधीशों-द्वारा एक तरफ़ रख दिया गया। यही बात एक फ़ौजदारीके मामलेमें भी हुई जो मद्राससे प्रिवी कौन्सिलतक गया था। यह सम्भव है कि जिस

निर्णयपर रौलेट् कमेटी पहुँची थी उस निर्णयपर अन्य न्यायाधीश न पहुँचते, यदि उनके सामने प्रमाण उपस्थित किए गए होते। दूसरा उदाहरण लीजिए—आजसे तीन वर्ष पूर्व लाहौरमेँ एक विशेष ट्रिब्यूनल की बैठक हुई थी। कुछ लोगोँ ने, जिनकी संख्या मैँ समझता हूँ, चौबीस थी, और जिन्हेँ फाँसीपर लटकानेकी आज्ञा हुई थी, इसकी अपील आपके पूर्वके गवर्नर-जनरलके सामने की। उनमैँसे सत्रह फाँसीसे बच गए। कारण आपके पूर्वके बड़े लाट और उनका मन्त्रिमण्डल इस वातसे सन्तुष्ट हुआ कि ट्रिब्युनलने सबूतका ठीक-ठीक उल्लेख नहीँ दिया है। अतः यह मानते हुए, कि जिन कारणोँने रौलेट् कमेटीके वक्तव्यको प्रकाशित करनेसे रोका है, सम्भव है वे अधिक मूल्यके होँ, किन्तु यह वात उनके निर्णयको पूर्णतः स्वीकार करनेमेँ वाधक है। किन्तु इस संरक्षणके साथ मैँ विना सङ्कोच कह सकता हूँ कि जिस निर्णयपर कमेटी पहुँची है उसकी उपयुक्तता मैँ मानता हूँ। कमेटी अपने वक्तव्यकी रचनामेँ वहुत सावधान रही है और वह वक्तव्य हमको इस निश्चयपर पहुँचनेमेँ सहायता करेगा कि विचारार्थ जो विल हमारे सामने उपस्थित है, उसके सम्बन्धमेँ हम कैसा व्यवहार करेँ।

क्रान्तिकारी और राजद्रोहात्मक अपराधोँके सम्बन्धमेँ कमेटीकी रिपोर्टसे किस परिस्थितिका उद्घाटन होता है? प्रत्येक प्रान्तके विचारसे इसकी परीक्षा कीजिए। सन् १८९७ ई० मेँ दो हत्याएँ पूनामेँ हुईं। किन्तु यह नहीँ बताया गया है कि हत्याएँ क्रान्तिकारी अपराधोँके कारण हुईं। बम्वई प्रान्तमेँ क्रान्तिकारी भावनाओँकी उत्पत्ति और अभिवृद्धिकी ओर कमेटीने अपनी रिपोर्टमेँ इशारा किया है। अब उनका अन्त होगया है। रिपोर्टसे स्पष्ट है कि तथाकथित क्रान्तिकारी आन्दोलन व्यवहारतः उस प्रान्तमेँ निर्मूल होगया है। सन् १९१४ ई० के वाद ऐसी किसी घटनाके होनेका कमेटीने ज़िक्रतक नहीँ किया है जहाँतक इस घटनासे पूना और वम्बईका सम्बन्ध रहता है, अतः वम्बई प्रान्तके लिये प्रस्तावित विधानकी कोई आवश्यकता नहीँ है। अब दूसरा प्रान्त लीजिए। युक्तप्रान्तका ही विचार कीजिए। युक्तप्रान्तकी स्थितिके सम्बन्धमेँ कमेटीने पूर्ण विचार किया है। कमेटी इस निश्चयपर पहुँची है कि यद्यपि युक्तप्रान्तमेँ क्रान्तिकारी भावनाएँ वहुत कम अंशमेँ पहुँची हैँ, किन्तु प्रान्तमेँ क्रान्तिकारी भावनाकी अभिवृद्धि नहीँ हुई। इस सम्बन्धका कमेटीका वक्तव्य एक सौ छत्तीसवेँ पृष्ठके एक सौ चौबीसवेँ वाक्यमेँ है। कुछ घटित घटनाओँका उल्लेख करनेके पश्चात्—यद्यपि घटनाएँ निन्दात्मक और खेदजनक हैँ, कमेटी कहती है। ये घटनाएँ स्पष्ट वताती हैँ कि यद्यपि युक्तप्रान्तमेँ क्रान्तिकारी आन्दोलन किसी श्रेणी विशेषके लोगोँपर अपना प्रभाव नहीँ जमा सका है, किन्तु वनारसकी परिस्थिति और कार्य्य उस नगरको एक विचित्र विनाशकी ओर ले जा रहा है। अतः इससे यह सिद्ध नहीँ होता कि युक्तप्रान्तमेँ प्रस्तावित क़ानूनकी आवश्यकता है।

अब ज़रा विहार-उड़ीसा प्रान्तकी ओर भी दृष्टि डालिए। कमेटी अपनी रिपोर्टके एक सौ तीसवेँ पृष्ठके एक सौ उन्नीसवेँ वाक्यमेँ कहती है :—

हम लोगोँका अनुभव है कि विहार-उड़ीसा प्रान्तपर क्रान्तिकारी भावनाओँका वहुत कम असर पड़ा है, यद्यपि यह प्रान्त दो क्रान्तिकारी अपराधोँका क्रीड़ास्थल रहा है—यदि इन अपराधोँको क्रान्तिकारी मान लेँ। मेरा निवेदन है कि जहाँतक इस आन्दोलनसे विहार-उड़ीसा प्रान्तका सम्बन्ध है, कमेटीको क्रान्तिकारी अपराधका एक भी उदाहरण नहीँ मिला है। कम-से-कम कमेटीकी रिपोर्ट प्रस्तावित विधानका उक्त प्रान्तमेँ प्रयोग करनेका समर्थन नहीँ करती। कमेटी आगे चलकर कहती है क्रान्तिकारी कार्य्यके लिये इस प्रान्तका भी उपयोग किया गया है और अभी भी किया जा रहा है। इस स्थलपर नम्रतापूर्वक मैँ कमेटीसे असहमत हूँ। क्योँकि कमेटीने इसके लिये किसी कारणका उल्लेख

नहीँ किया है और न तो यही बताया है कि इस प्रान्तमेँ क्रान्तिकारी बीज बोया गया है या क्रान्तिकारी भावनाओँके प्रचारका यह केन्द्र है अथवा यहाँ फ़रारोँको आश्रय दिया जाता है। यह बात तो देशके किसी भी प्रान्तके लिये कही जा सकती है, किन्तु अधिक आवश्यक यह है, जैसा कि कमेटी समझती है, कि प्रान्तके साधारण लोगोँका आचरण, अधिकारियोँकी सतर्कता, भारत-रक्षा-विधान आदिसे इसके न चलनेमेँ बड़ी सहायता मिली है; फलतः भयङ्कर उपद्रव नहीँ होने पाए। कल्पनाओँका अन्तिम अंश उल्लेख-योग्य नहीँ है। इस कथनमेँ कोई प्रमाण नहीँ है कि बिहार और उड़ीसा प्रान्तमेँ क्रान्तिकारी अपराधोँके होनेकी सम्भावना, उसके जड़ पकड़ने अथवा विस्तृत होनेकी है।

अब मध्यप्रान्तपर एक दृष्टि डालिए। कमेटीने लिखा है कि सन् १९०७ ई० मेँ नागपुरपर क्रान्तिकारी आन्दोलनका प्रभाव था। सन् १९०८ ई० मेँ कुछ राजद्रोहात्मक कार्रवाइयाँ भी हुईं। किन्तु उसी साल ये निर्मूल भी हो गईं। कमेटी अपने रिपोर्टके पृष्ठ १३९ पैरा १२५ मेँ कहती है कि 'जहाँतक हम लोगोँको मालूम है सन् १९१५ ई० की फ़रवरीतक इस ख़तरनाक आन्दोलनका कोई प्रभाव नहीँ रहा' जब कि रासबिहारीके आदेशसे बनारसके क्रान्तिकारी श्री नलिनी मोहन मुकर्जी जमालपुरकी सेनाको बग़ावतमेँ शामिल होनेके लिये भड़काने गए थे। किन्तु दूसरे पृष्ठपर उक्त परिच्छेदका उपसंहार करते हुए कमेटी कहती है कि उपर्य्युक्त घटना एक उत्तम कोटिका उदाहरण है कि बाहरके क्रान्तिकारी उन स्थानोँमेँ क्रान्तिकारी भावनाओँके बीज बोते हैँ, जिनका स्थानीय आस्तित्त्व नहीँ है। यदि सरकार कड़ी कर्रवाई करेँ तो ऐसे उपद्रवी ठीक समयपर गिरफ़्तार हो सकते हैँ।

यह स्पष्ट है कि प्रस्तावित विधानकी मध्यप्रान्तको आवश्यकता नहीँ है।

माननीय महोदय! ज़रा मद्रास प्रान्तकी स्थितिपर विचार कीजिए। मद्रासके सम्बन्धमेँ कुछ घटित घटनाओँकी समालोचना करनेके बाद कमेटी अपनी रिपोर्टकी १५३ वेँ पैरामेँ उपसंहार करते हुए कहती है कि सन् १९११ ई० मेँ तिनेवेलीके षड़यन्त्रकारियोँके मुक़दमेका फ़ैसला हो जानेके बादसे मद्रास प्रेसिडेन्सीमेँ हत्यात्मक क्रान्तिकारी षड़यन्त्रकी बात नहीँ सुननेमेँ आई। हम नहीँ समझते कि मद्रास प्रान्तमेँ कोई प्रान्तीय क्रान्तिकारी आन्दोलन था। कुछ व्यक्तियोँके प्रभाव, जिनका नामोल्लेख कमेटी करती है, और उनके पेरिस और पाँडीचेरीमेँ क्रान्तिकारी उपक्रमकी व्यवस्थाके अतिरिक्त दक्षिण भारतमेँ ऐसा कोई आन्दोलन नहीँ था।

माननीय महोदय!

यह अनुमान कि दक्षिण भारतमेँ कुछ भद्र पुरुषोँके प्रभावसे क्रान्तिकारी भावनाएँ जागृत हुईं, सत्य है या नहीँ, मैँ नहीँ कह सकता। किन्तु जिस विषयकी ओर हम आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैँ वह यह है कि कमेटीका यह विचार नहीँ है कि मद्रासमेँ कोई प्रान्तीय क्रान्तिकारी आन्दोलन है, और सन् १९१२ ई० से अबतक कोई ऐसी घटना भी नहीँ हुई।

पञ्जाबकी स्थिति

पञ्जाबमेँ जैसा कि कमेटीने कहा है कि सन् १९१४ ई० मेँ कैनाडा और अन्य देशोँके परदेशियोँके आजानेसे कुछ उपद्रव उत्पन्न हुआ। माननीय महोदय! हम जानते हैँ कि कैसे वह उपद्रव उत्पन्न हुआ। हम जानते हैँ कि उन भारतीयोँके मनमेँ, जो देश छोड़कर विदेशकी यात्रा करने गए थे, बहुत समयसे सच्ची और उचित शिकायत बनी आरही थी। वह बृटिश साम्राज्यके अन्य प्रदेशोँमेँ उन प्रदेशोँके निवासियोँका भारतीयोँके प्रति कटु व्यवहार था। कुछ भारतीय, जो विदेश-यात्रासे

लौटे थे, विदेशोँमेँ उनके साथ जो व्यवहार किया गया था उससे वे अत्यन्त असन्तुष्ट थे। कुछ घटनाएँ भी हो चुकी थीँ जो 'कोमागाटामारू घटना' के नामसे प्रसिद्ध है। दूसरा बजका दङ्गा था, जिसमेँ बृटिश सरकारकी कुछ प्रजा गोलियोँका निशाना बनाई गई थी। मेरा विनम्र निवेदन है कि उस दुःखद घटनाका दोष पूर्णतः उन्हीँ ग़रीब लोगोँपर नहीँ था जो गोलीके शिकार बनाए गए और मरे, अथवा अन्य प्रकार दुःखभागी हुए किन्तु यह दोष उन लोगोँपर भी है जिन्होँने भ्रमको दूर करनेके लिये प्रयत्न नहीँ किए। अस्तु! ये विदेशी और इनके अन्य साथी पञ्जाब वापस आए और इन लोगोँमेँसे कुछकी सहायतासे जनतामेँ उपद्रव मचाया गया। प्रान्तमेँ उपद्रव हुआ किन्तु इस उपद्रवका मूल सूत्र प्रान्तमेँ स्वतः नहीँ उत्पन्न हुआ किन्तु विदेशोँसे—कैनेडा तथा अन्य देशोँसे—कुछ भारतीयोँके भारत लौटनेपर हुआ। उस समय पञ्जाब सरकारने भारत-सरकारसे भारत-रक्षा-विधानके निर्माणके लिये प्रार्थना की थी ताकि वह ऐसे नियमोँका निर्माण कर सके जिसकी सहायतासे उस परिस्थितिका सामना सरलतासे हो सके। भारत-सरकारने कौन्सिलकी बैठकमेँ भारत-रक्षा-विधानको स्वीकृत कराकर पञ्जाब सरकारकी मदद की। फलतः भारत-रक्षा-विधानने उन खेदजनक भावनाओँ, असद्भावनाओँको पञ्जाबमेँ निर्मूल कर दिया। विशेष अदालत-द्वारा कुछ लोगोँका विचार हुआ और वे दण्डित हुए। कुछ निर्वासित भी हुए। अन्य प्रकारसे भी यह आन्दोलन दबाया गया। किन्तु किसी प्रकार तथाकथित उपद्रव शीघ्र शान्त हो गया। सन् १९१६ ई० की इकतीसवीँ जनवरीको पञ्जाब-सरकारने रिपोर्ट दी कि विदेशोँसे लौटे हुए भारतीय शान्त हो गए, और सिक्खोँकी भावना विगत कई वर्षोँकी अपेक्षा अधिक सन्तोषजनक है। इस सम्पूर्ण कथाके सम्बन्धमेँ तथ्य यह है कि अधिकांश जनताने सरकारको इस सम्बन्धमेँ सहायता दी है। इन पथभ्रष्ट लोगोँके पता लगानेमेँ जनताने सरकारके साथ सहयोग किया है। यही नहीँ बल्कि उनके मुक़दमेकी कार्रवाईमेँ भी सहायता पहुँचाई है। रिपोर्टके एक सौ पैँतालीसवेँ पैरामेँ रौलेट् कमेटी कहती है कि :—

"भारत-रक्षा-विधानके अनुसार तीस आदमी जेलमेँ नज़रबन्द किए गए, एक सौ तेरह अपने गावोँमेँ नज़रबन्द किए गए, पचीस दूसरे गावोँमेँ ही नियन्त्रित कर दिए गए। विशेष क़ानूनके अनुसार सन् १९१४ ई० के अक्तूबरसे सन् १९१७ ई० के दिसम्बरतक तीन सौ एकतीस आदमी नज़रबन्द बनाए गए। इनमेँसे दो सौ चौबीस सज्जनोँकी नज़रबन्दीकी अवधि सन् १९१४ ई० के अक्तूबरसे सन् १९१५ ई० के अप्रैलतक थी। तीन सौ एकतीसमेँसे दो सौ बयालीस सज्जन मुक्त कर दिए गए। बाहरसे आए हुए क्रान्तिकारियोँमेँ कुल पचीस सौ छिहत्तर अपने गावोँमेँ नज़रबन्द कर लिए गए।"

हमको बताया गया है कि सिक्खोँकी मतदायिनी समिति, प्रतिबन्ध, दबाव डालने, तथा जनताकी शान्तिके लिये बड़े मूल्य की थी। अमन-आमानकी रक्षाके लिये उनका प्रभाव बड़ा शक्ति-शाली था। उपद्रवकी समाप्तिके पश्चात् यद्यपि कुछ सन्दिग्ध चरित्रवाले व्यक्ति अच्छी संख्यामेँ पञ्जाबमेँ विशेषतः सुदूरस्थ पूरबसे आ रहे थे तथापि इनका प्राबल्य नहीँ था। सन् १९१७ ई० के अन्ततक इनग्रेस ऑर्डिनेन्सके अनुसार गिरफ़ार व्यक्तियोँकी कुल संख्या नौ सौ चौदह थी। इनमेँ कुछ, पहले तो रोक रक्खे गए और पीछे छोड़ दिए गए जो अब प्रतिबन्धके अन्दर डाले गए हैँ और पश्चात् मुक्त होनेवालोँकी संख्या बढ़कर पन्द्रह सौ तेरहतक पहुँची। अब मुक्तिकी संख्या तेज़ीसे बढ़ रही है।

कमेटीका कथन है कि एक सरकारी कर्मचारी सिक्खने कहा था कि क्रान्तिकारी भावना रखनेवाले हज़ारोँ व्यक्ति विदेशोँसे आए हैँ जो स्वतन्त्र हैँ। यह एक चेतावनी है जो एक सरकारी कर्मचारीके

उत्साहके अनुकूल है। अथवा इससे यह भी मालूम होता है कि वह एक दूरदर्शी व्यक्ति है जो ऐसा कह सकता है किन्तु यथार्थ बात यह है कि पञ्जाब प्रान्तमें बाहरसे जो कुछ असन्तोषकी चिनगारी आई वह भी भारत-रक्षा-विधानके प्रभावसे बुझ गई। माननीय महोदय! मेरा निवेदन है कि इसको न्यायानुकूल अनुमोदन प्राप्त नहीं है। मुझे 'सुझाया गया' है कि ऐसा नहीं कहना चाहिए। क्योंकि मैं नहीं समझता कि कमेटीको यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि वह इसको युक्तिसङ्गत सिद्ध करनेके लिये उत्सुक थी। रौलेट् कमेटीकी रिपोर्ट उस अंशके लिये, जिसके द्वारा उसने पञ्जाब प्रान्तमें दमनके विशेष क़ानून जारी करनेकी सिफ़ारिश की है, कोई युक्ति नहीं है। एक सौ छियालीसवें पैरामें कमेटीने जो कहा है उस ओर मैं आप लोगोंका ध्यान आकृष्ट करूँगा।

कमेटीका कथन है कि :—"यह स्पष्ट है कि पञ्जाब-प्रान्तीय ग़दर आन्दोलन व्यापक रक्तपात करने की धाराके अन्तर्गत है। अधिक उत्साही और साहसी शक्तिवाले सिक्खोंके बीच-बचाव करनेसे ग़दर-सम्बन्धी विचार और उसके प्रयोगकी अवधि अधिक कालतक नहीं रही। यदि वे प्रभावशाली प्रार्थनाओंसे वशीभूत किए गए होते तो बलवाइयोंके सभी सम्भव साधनों और अधिक सफ़ाईसे बलवा करनेके लिये उद्यत होने की सम्भावना नहीं थी। बलवाई यदि सब प्रकारका उपद्रव मचाते तो व्यवस्थाका समस्त ढाँचा और व्यवस्थासम्बन्धी नियम सभी नष्ट हो जाते।

अब मैं इस ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि जिन सिक्खोंने इसमें भाग लिया था उनका निर्णय इन टिप्पणियोंके अनुसार होना चाहिए। प्रकोपके लिये उनके पास पर्य्याप्त कारण था। जिस क्रोधके आवेशमें वे भारत लौटे अभाग्यवश उस कोपाग्निमें आहुति पड़ गई। मैं अत्यन्त सम्मानपूर्वक किन्तु स्पष्ट विचारके साथ निवेदन करता हूँ कि उस अवसरपर किए गए अधिकारियोंके व्यवहारने आहुतिका काम किया।

सर जेम्स डु बाउले :—कोमा गाटामारूवाली घटनाने।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय :—

हाँ, कोमागाटामारू और वज की समस्त घटनाने।

आदरणीय महोदय! मैं यह बतानेके लिये ध्यान आकृष्ट कर रहा हूँ कि सिक्ख बड़े भावुक होते हैं—और मतदायिनी सिक्ख समितिने शान्ति स्थापित कर दी थी। कुछ सिक्खोंमें कुछ कालके लिये असद्भावनाका रह जाना इस बातके लिये पर्य्याप्त कारण नहीं है कि समस्त प्रान्तके लिये भारत-रक्षा-विधानको जारी रखना आवश्यक है।

माननीय महोदय,

अब बङ्गाल प्रान्तको लीजिए। यह बात प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि सन् १६०५ ई० तक बङ्गाल प्रान्तमें कहीं भी राजद्रोहात्मक और क्रान्तिकारी भावनाका चिह्न नहीं था। स्वयं श्रीमान्ने और आपके सम्माननीय साथी श्रीमौण्टेगने बङ्गाल प्रान्तके कुछ विकृत मास्तिष्कवालोंका विचार करते हुए उन कारणोंपर विचार किया है जिनके द्वारा बङ्गालमें असन्तोषकी भावना पनप सकी है। इसका पता तभी लग सकता है जब गत सभी घटनाओंपर दृष्टि डाली जाय। जिन बातोंका उल्लेख रौलेट् कमेटीने किया है और जिनका हवाला मौण्टेगू रिपोर्टमें दिया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बङ्गालमें असन्तोषने किस प्रकार जड़ पकड़ी। सन् १६०५ ई० तक बङ्गाल पूर्णतः स्वतन्त्र था, मेरा निवेदन है कि वह किसी प्रकारकी राजद्रोहात्मक भावनासे स्वतन्त्र था। सन् १६०४ ई० में लौर्ड कर्ज़नने युनिवर्सिटी बिल पेश किया। जैसा कि कमेटीने बताया है कि इस खेदजनक उपक्रमसे उस कालका आरम्भ होता है जिसने राजा और प्रजामें विरोध उत्पन्न कर दिया। इसी बीचमें बङ्ग-विच्छेद भी हो गया। प्रजाके घोर विरोध करनेपर भी बङ्ग-भङ्ग बना रहा। इन उपक्रमोंका जो

प्रभाव पड़ा उसका उल्लेख करना व्यर्थ है, क्योंकि वे अति व्यापक हैं। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि इस घटनाके पश्चात् बङ्गाल प्रान्तवालोंने क्या किया। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि किस प्रकार अनेक सभाओं और संस्थाओंद्वारा आवेदनपत्र भेजे गए। समस्त वङ्गाल प्रान्तमें ससम्मान विरोधात्मक सभाएँ हुईं। किस प्रकार लेफ्टिनेण्ट गवर्नरके पास प्रतिनिधि-मण्डल भेजा गया, किस प्रकार देशविदेशमें इस कार्य्यको स्थगित करनेके लिये आन्दोलन किया गया, सब सम्भव उपाय काममें लाए गए, किन्तु यह सब उपक्रम तव आरम्भ हुआ जब अभाग्यवश बङ्ग-भङ्गका प्रश्न एक प्रकारसे निश्चित हो गया था। और अब यह अन्यथा नहीं हो सकता था। माननीय महोदय! इस विषयमें सरकारने जिस नीतिका अनुसरण किया उससे बङ्गालवालोंको पहली बार यह अवसर मिला कि वे सरकारके सामने अपने प्रश्नकी सत्यताका प्रभाव डालनेके लिये सभी वैध उपायोंका अवलम्बन, जो उन्हें प्राप्य हैं, करें। इन लोगोंने स्वदेशीका व्रत लिया। इन्होंने वहिष्कारकी प्रतिज्ञा की। इनका उद्देश अपनी दयनीय दशाकी ओर इङ्गलैण्डकी जनता और वहाँके मन्त्रीमण्डलका ध्यान आकृष्ट करना था। इनकी प्रार्थना थी कि इनका प्रान्त टुकड़ोंमें विभाजित नहीं होना चाहिए—जैसा कि किया गया है। इसको पुनः एक कर दिया जाय। इनकी आवाज़ अधिकारियोंके ध्यानको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये पर्य्याप्त नहीं हुई। अधिकारियोंने अनुत्तरदायित्वकी नीतिका अवलम्बन किया। ये अपनी हठसे विचलित नहीं हुए। फलतः सभी नेतालोग विशेषकर वे लोग जो अगुआ थे, जो वहुत नरम मत रखने वाले थे, जो प्रतिनिधिमण्डलमें गवर्नर और सरकारके पास जनताका आवेदनपत्र लेकर गए थे, वे जनताके इस प्रश्नका उत्तर देनेमें असमर्थ रहे क्योंकि सरकार इस प्रश्नपर पुनः विचार नहीं करती। उसी समय कुछ लोगोंके मस्तिष्कमें दूसरी विधिके अनुसरण करनेकी भावना जागरित हुई जिससे सरकारका व्यवहार कड़ा हो गया, अतः नवयुवकोंका व्यवहार भी सरकारकी ओरसे कड़ा पड़ गया। वृद्धोंकी अपेक्षा नौजवान अधिक भावुक होते हैं। हममेंसे जो वृद्ध हो रहे हैं वे इसका अनुभव करते हैं कि यह प्राकृतिक नियम है। अब नौजवान वह बात नहीं सह सकते जो वृद्ध लोग सह सकते हैं। अतः स्वभावतः और खेद-पूर्वक मुझे कहना पड़ता है कि बङ्गालके नौजवान अवैध माँगकी ओर प्रवृत्त हुए। मैं जानता हूँ जो कुछ उस समय हुआ। विद्यार्थियोंको दण्ड पाने और कारागृहमें बन्द होनेसे जनताका भाव सरकारके प्रति दिन-प्रति-दिन कटुतर होता गया। इसी परिस्थितिमें कुछ नौजवान अवैध आन्दोलनमें शामिल हो गए। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि हम भारतीयोंसे बढ़कर इस कार्य्यकी निन्दा करनेवाला और कोई दूसरा नहीं हो सकता। हमको देशके लिये और विशेषकर नौजवानोंके लिये खेद है। हमारी अभिलाषा है कि ये इस प्रकार पथभ्रष्ट न किए गए होते। किन्तु बुराईका सामना करनेमें यह नीतिज्ञता नहीं है कि प्रत्यक्ष कारणोंकी उपेक्षा की जाय। वे कारण जो, इन बुराइयोंके जनक हैं, भुलाए नहीं जा सकते। मूल कारणका विना पता लगाए उपचारकी व्यवस्था करना उचित नहीं है। माननीय महोदय! बङ्गालकी वस्तुस्थिति ऐसी थी। बङ्ग-भङ्ग बना रहा। जब कि सन् १९११ ई० में सम्राट् पञ्चम जौर्ज इस देशका भ्रमण करने आए थे तबतक इसका निर्णय नहीं हुआ था। इसकी अनिवार्य्य बुराइयाँ अभी भी देशमें व्याप्त थीं। कुछ पुरुष ऐसे भी थे जिन्होंने क्रान्तिकारी विचारके भ्रमपूर्ण मार्गका अनुसरण किया था। वे तब भी अपने उद्देश्यमें संलग्न थे। यह बात निन्द्य है। इसका प्रतिकार होना चाहिए। परिस्थितिका सामना करते समय इनकी अवहेलना नहीं होनी चाहिए। पीछे सन् १९१४ ई० में जो महायुद्धका आरम्भ हुआ उसने एक विशेष कष्टको निमन्त्रण दिया। उस समय

भारतमेँ ग़दर पार्टीभी उपद्रव करनेमेँ संलग्न थो। माननीय महोदय! मेरा निवेदन है कि इन दो कारणोँ और दो विभिन्न आन्दोलनोँका अलग-अलग विचार हो। इस प्रकारका असन्तोष और राजद्रोह, जिसका अस्तित्त्व देशमेँ महायुद्धके आरम्भके पूर्वसे था, उसका पता उसके कारणोँसे लग सकता है। उपर्य्युक्त दो कारणोँमेँसे एक कारण यह भी है। कारण ऐसा होना चाहिए जिसपर विश्वास किया जा सके। महायुद्ध-कालमेँ ग़दर-दलने जो चेष्टा की और जर्मनोँने भारतीयोँको पथभ्रष्ट करनेके लिये जो प्रयत्न किया, यह सब भी असन्तोषकी वृद्धिमेँ और इसके अनिष्टकारी फलमेँ सहायक हुए। अब युद्ध समाप्त हो गया है। उसके साथ ही जर्मनोँके सभी षड़यन्त्र भी नष्ट हो गए और उसके परिणाम-स्वरूप सभी अनिष्टकारी भावनाओँका भी अन्त हो गया। अतः ग़दर-दलसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी घटनाओँपर अब हमेँ पानी डाल देना चाहिए। हमारी यह युक्तियुक्त और उत्कट आशा है कि भारतमेँ भविष्यमेँ ग़दरके अनिष्टकारी चिह्न कहीँ भी दृष्टिगोचर नहीँ होँगे। युद्धने देशमेँ जो समस्याएँ उत्पन्न की हैँ उनके सम्बन्धमेँ हम सरकारसे यह विचार करनेकी प्रार्थना करनेके अधिकारी हैँ कि जिससे अब युद्ध समाप्त हो गया है और वस्तुस्थितिको नूतन परिस्थिति प्राप्त हो चुकी। अतः युद्धने जिन बुराइयोँको जन्म दिया था अब भविष्यमेँ उनका नाम न सुन पड़ना चाहिए। अब दूसरे प्रकारके क्रान्तिकारी विचार और अपराधोँका देशमेँ जन्म हुआ, जो रौलेट् कमेटीकी रिपोर्टके अनुसार युद्धके कारण उत्पन्न नहीँ हुआ था। माननीय महोदय! इस सम्बन्धमेँ भी यथार्थताका ठीक-ठीक विचार तटस्थ भावनासे होना चाहिए। थोड़ी देरके लिये यह मान लिया जाय, जैसा कि श्रीमान् और श्री मौण्टेगूकी रिपोर्टमेँ वर्णित है, कि देशमेँ वस्तुस्थिति क्या है। मानीनय महोदय! आपके विशिष्ट साथीने रिपोर्टके प्रथम अध्यायमेँ भारतकी राजनीतिक दशाकी पैमाइश की है। आपने रिपोर्टमेँ इसका उल्लेख किया है कि किस प्रकार भारतीयोँमेँ राज्यके प्रबन्धमेँ अधिकाधिक अधिकार पानेकी भावनाकी दिन-प्रति-दिन अभिवृद्धि हो रही है। आपने दर्शाया है कि किस प्रकार स्वशासनके समान साधु-उपक्रम, जिनका प्रयोग किया गया, सफल रहा। किस प्रकार वे सब शिकायतेँ दूर हो गईँ, जिन्हेँ भारतीय प्रतिवर्ष दुहराया करते थे। वे अब सुननेमेँ भी नहीँ आतीँ।

माननीय महोदय! सन् १८८५ ई० मेँ, जबसे कांग्रेसका आरम्भ हुआ तबसे तीस सालतक विचारशील, न्यायप्रिय और शिक्षित भारतीय प्रतिवर्ष सरकारके सामने देशमेँ और इङ्गलैण्डमेँ अपनी शिकायतेँ उपस्थित करते रहे। इन्होँने अपनी शिकायतेँ बहुत ही युक्तिसङ्गत रूपमेँ उपस्थित कीँ तथा इन्होँने बहुत ही तर्कसम्मत प्रकारसे अपनी शिकायतोँके उपचारके लिये प्रार्थना की। कुछ तो अभी ज्योँ-की-त्योँ बनी हुई हैँ और कुछके लिये सुधारमयी योजनाका श्रीगणेश भी हुआ है, जिसके लिये प्रारम्भकोँको हम धन्यवाद देते हैँ। किन्तु जिस पद्धतिका अनुसरण किया गया है, वह असन्तोषप्रद है। शिकायतके कारणोँका पूर्णतः निराकरण नहीँ हुआ है। वस्तुस्थितिमेँ तीन बातेँ अति महत्त्वपूर्ण और मुख्य हैँ। असन्तोषके आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक कारण हैँ। रौलेट् कमेटीने विशेष प्रकारसे आर्थिक कारणोँका उल्लेख किया है। उस स्थलपर कमेटीने बताया है कि बङ्गालमेँ भद्र लोगोँको जीविका पाना दिन-प्रति-दिन कठिन हो रहा है। पाठशालाओँकी संख्या पर्य्याप्त नहीँ है, शिक्षाका प्रकारभेद नहीँ है और नौजवानोँको लोकयात्रा तथा जीविकाके नये मार्ग नहीँ प्राप्त हैँ। सरकारी नौकरी और कर्मचारी-पदके लिये अधिक भीड़ रोकनेके लिये इनके अधिकांशको साहित्यकी शिक्षा दी गई है। इनके लिये दो ही दरवाज़े खुले हैँ—सरकारी नौकरी या

वकालत। दोनोँमेँ ख़ासी भीड़ है। कुछ निर्धारित संख्याके अतिरिक्त और लोगोँके लिये यहाँ स्थान नहीँ है। इससे जीवन-संग्राम विकट हो गया है, और असन्तोषकी मात्रा अधिक हो गई है। इसके अतिरिक्त सामाजिक प्रश्न भी है। इस देशमेँ अंग्रेज़ और भारतीयोँमेँ जैसा सम्बन्ध होना चाहिए वैसा नहीँ है। हमको मालूम है कि नौकरियोँके सम्बन्धमेँ भी साम्प्रदायिक भेद वर्त्तमान है, जिसका मार्जन हो जाना चाहिए। सन् १८३३ ई० मेँ ही यह प्रतिज्ञा की गई थी कि नौकरियोँसे जातिगत भेद उठा दिया जायगा, किन्तु वह अब भी बना है। बृटिश सरकारकी घोषणामेँ भी इसकी प्रतिज्ञा है; किन्तु अभीतक यह भेद बना ही है।

हमको मालूम है कि बङ्गालके प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर पी० सी० रायके समान विशिष्ट व्यक्ति, जो भाग्यवश अब सर अर्थात् नाइट हो गए हैँ, यद्यपि देशमेँ सर्वश्रेष्ठ शिक्षित व्यक्ति माने गए हैँ, तो भी प्रान्तीय शिक्षा-विभागमेँ ही अभी पड़े हैँ, जब कि उनसे कम योग्यतावाले भारतीय शिक्षा-विभागमेँ पहुँच गए हैँ। भारतीयोँने ऐसे कई उदाहरण देखे हैँ। ख्यातिप्राप्त, ईमानदार, सरस्वतीके पुजारी, शिक्षाकी प्रगतिके उपासक भारतीयोँकी इङ्गलैण्डके नौसिखुए छोकरोँके सामने उपेक्षा की जाती है। इन सब कारणोँसे बङ्गालमेँ असन्तोषको अधिक प्रोत्साहन मिला है। यही बात अन्य मामलोँमेँ भी है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक कारण भी हैँ। इन लोगोँने अनुभव किया कि देशकी अवस्थामेँ अनेक बातेँ हैँ जिनके उपचारके लिये बहुत पहलेसे कांग्रेस प्रयत्नशील रही है, जिसको देशके सर्वश्रेष्ठ लोगोँने वैध उपायोँसे सरकारसे प्रार्थना करके दूर करनेका प्रयत्न किया, किन्तु दूर नहीँ कर सके। कमेटीने एक क्रान्तिकारीके पत्रको रिपोर्टमेँ स्थान दिया है, जिसके द्वारा उक्त क्रान्तिकारीने कांग्रेसकी निन्दा की थी। मैँ उस क्रान्तिकारीके निन्दा करनेके कारणको बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। कांग्रेसने क्रान्तिकारी और अवैध भावनाओँको प्रोत्साहन नहीँ दिया है। यह जानकर कि पच्चीस सालसे लगातार कांग्रेसके सरकारसे प्रार्थना करते रहनेपर भी यह अपने उद्देश्यको नहीँ पा सकी, बड़ा दुःख होता है। आश्चर्य्य नहीँ कि कुछ नौजवान ऐसा सोचनेके लिये पथभ्रष्ट किए गए हैँ कि अवैध मार्ग अधिक प्रभावशाली होगा। माननीय महोदय! इन क्रान्तिकारी और राजद्रोहात्मक भावनाओँकी उत्पत्तिमेँ रौलेट् कमेटीने किन कारणोँका पता लगाया है? कमेटीका कहना है कि यह धर्मान्धता और देशभक्तिकी भ्रमात्मक भावनाका फल है। कमेटीने पता लगाया है कि इन क्रान्तिकारियोँ और राजद्रोहियोँकी भावना है कि यह उनका धार्मिक कर्त्तव्य है, यह उनकी देशभक्तिकी माँग है कि वे अंग्रेज़ सरकारकी जड़ खोद फेँके। कमेटीने यह निष्कर्ष निकाला है कि ये नवयुवक व्यक्तिगत लाभकी कुत्सित भावनासे प्रेरित होकर इस कार्य्यके लिये उत्साहित नहीँ किए जाते। ये नौजवान अपने जीवनके उत्सर्गका सङ्कल्प उस कार्य्यके लिये करते हैँ जिसमेँ इनकी आसक्ति भ्रमसे हो जाती है। ऐसी स्थितिमेँ अब कर्त्तव्य क्या है? माननीय महोदय! मैँ अत्यन्त अनिच्छापूर्वक और अत्यन्त आदरपूर्वक निवेदन करता हूँ कि वस्तुस्थितिका दायित्त्व एकमात्र नौजवानोँपर ही नहीँ है जो पथभ्रष्ट किए गए हैँ; किन्तु इसका दायित्त्व सरकारपर भी है, इसका दायित्त्व प्रान्तीय और भारतीय शासन-व्यवस्थापर है, इसका दायित्व हम सबपर है जो शिकायतको दूर करनेके लिये सरकारपर दबाव डालनेके लिये उचित प्रयत्न करनेमेँ असफल रहे हैँ। लेकिन जब हम कारणका उल्लेख करते हैँ तो उसके फलके लिये खेद भी प्रकट करते हैँ। यही कारण है कि मैँ माननीय महोदय और कौन्सिलके सदस्योँका ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। यही कारण है कि इस प्रकारके राजद्रोहात्मक भावनाओँकी निन्दा करनेपर भी बङ्गालमेँ इस प्रकारके क्रान्तिकारी भाव पाए जाते हैँ। हमको इसके मूल कारणका पता लगाना चाहिए, जो इस रोगके उत्पादक

हैं और मूलपर तथा उसके फलपर कुठाराघात करना चाहिए। तभी हम वस्तुस्थितिमें स्थायी उन्नतिकी आशा कर सकते हैं, जिसके लिये हम सब खेद प्रकट करते हैं और जिसकी हम सब निन्दा करते हैं। माननीय महोदय! आपसे और कौन्सिलके सदस्योंसे मेरी यही विनम्र प्रार्थना है। हमको ऐसा प्रभावशाली उपक्रम करना चाहिए जिससे मूल कारण और उससे उत्पन्न फलका शीघ्र विनाश हो।

माननीय महोदय! जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, क्रान्तिकारी और राजद्रोहात्मक दो प्रकारके अपराध होते हैं। एकका सम्बन्ध और उत्पत्ति युद्धसे है। इससे जहाँतक इस अपराधका सम्बन्ध है—इसके निराकरणके लिये भारत-रक्षा-विधान पर्य्याप्त है। जैसा कि मेरे आदरणीय मित्र श्री बनर्जीने बताया है कि युद्धके छः महीने बादतक विधान-सम्बन्धी उपक्रम काममें लाए जायँगे। कोई असन्तोष, कोई राजद्रोहात्मक या क्रान्तिकारी अपराध-सम्बन्धी भावनाएँ, जिनकी उत्पत्ति युद्धके कारण हुई है—उनका निराकरण भारत-रक्षा-विधानसे अच्छी प्रकार किया जा सकता है। अतः राजद्रोहात्मक और क्रान्तिकारी अपराधोंके निराकरणके लिये किसी नये विधानकी रचनाकी कोई जल्दी नहीं पड़ी है। ऐसे अपराधोंके प्रति किसी भी तर्कप्रिय भारतीयकी प्रकट या गुप्त सहानुभूति नहीं है। हम सब इसकी निन्दा करते हैं और इससे अनिच्छा प्रकट करते हैं। हम इसको निर्मल करना चाहते हैं, किन्तु उचित उपायोंद्वारा न कि भ्रमात्मक और ग़लत रास्तेका अवलम्बन करके।

क्रान्तिकारी अपराधोंके दूसरे भेदके सम्बन्धमें, जिनकी उत्पत्ति देशके राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक असन्तोषके कारण हुई है, हमारी युक्तियुक्त धारणा है कि सुधारके आरम्भ होते ही वस्तुस्थितिमें परिवर्त्तन हो जायगा। अब युद्धके पूर्व युद्धकालमें और बृटिश सरकारकी घोषणाके पश्चात् वस्तुस्थिति क्या थी—यह विचारणीय है। घोषणामें यह स्पष्ट दिया गया था कि भारतके सम्बन्धमें बृटिश नीति दायित्त्वकी है। वह लक्ष्य पाँच वर्षमें, दस वर्षमें, पच्चीस वर्षमें अथवा अधिक-से-अधिक पचासवर्षमें प्राप्त हो सकता है। किन्तु लक्ष्य निश्चित है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। लक्ष्यप्राप्तिमें किसी भी न्यायप्रिय व्यक्तिको सन्देह नहीं हो सकता। माननीय महोदय! आप और आपके साथी श्री मौण्टेगूने एक बहुत ही स्मरणीय सहायता प्रदान की है। इस लक्ष्यकी ओर प्रगतिशील आप लोगोंके प्रस्तावके लिये हम कृतज्ञ हैं। ये प्रस्ताव सरकारके सामने उपस्थित हैं। व्यवस्थात्मक सुधार-सम्बन्धी आपकी रिपोर्ट बहुत ही उपयुक्त तर्क उपस्थित करती है कि क्यों हमको स्पष्ट न्यायपक्ष और उदार विचार उन लोगोंके सम्बन्धमें रखने चाहिएँ, जिनका कार्य्यक्रम भ्रमात्मक है और जिन्होंने असद्मार्गका अनुसरण किया है। आपने स्वयं बताया है कि शिकायतके कितने कारण उपस्थित हैं। ऐसे कितने विषय हैं जिनके सम्बन्धमें भारतीयोंकी शिकायत रही और अभी है, परन्तु उन शिकायतोंका निराकरण अभीतक नहीं हुआ है। आपने उन शिकायतोंको दूर करनेके लिये प्रस्ताव किए हैं। सुधार कमेटी, जिसकी नियुक्ति हो चुकी है, वह सुधारित कौन्सिलके लिये मतप्रदानकी सुविधा करेगी। हम आशा करते हैं कि प्रस्तावित सुधारके लिये जो क़ानून बने हैं उनका आरम्भ पार्लियामेण्टमें ईस्टरकी छुट्टियोंमें होगा।

माननीय महोदय! इस आशापूर्ण स्थितिके अतिरिक्त, जिसमें हम आज हैं, एक दूसरी भी आवश्यक स्थिति है, जिस ओर हम आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं।

युद्ध समाप्त हो गया। युद्ध-कालमें भारतीयोंने राज्यको उल्लेखनीय सहाय्य प्रदान किया है। कुछ लोग भारतीयोंकी राज्य-भक्तिमें युद्धके पूर्व कुछ शङ्का और भ्रम अवश्य ही रखते थे, किन्तु अब भारतीयोंने

रणाङ्गणमेँ विभिन्न स्थलोँपर भारतीय शोणितकी धारा बहाकर यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय किस कोटिके राजभक्त हैँ। धन, जन और शस्त्रास्त्रकी सहायतासे भारतीयोँने अपनी राजभक्तिका प्रमाण उपस्थित किया है। आज प्रातःकाल माननीय श्रीमान्‌ने भी इसका उल्लेख किया है। अब अन्तस्तल-व्यापिनी, चतुर्दिक्षु-व्यापिनी, कार्य्यतःसिद्धा राभजक्तिकी दृष्टिसे जिस प्रकार निर्विवाद और कटु भावनारहित राजभक्तिका परिचय भारतीयोँने दिया है, उसी प्रकारकी प्रजाभक्ति, उसी कोटिकी वचनपालनकी तत्परताकी आशा हम भारतीय भारत-सरकारसे भी रखते हैँ। मेरी आशा है कि यद्यपि ऐसे पथ-भ्रान्त नवयुवक हैँ, जिन्हेँ घटनाचक्रकी नई अवस्थाने प्रभावित नहीँ किया है अतः हमारे लिये उचित है कि हम उनके साथ शान्ति और धैर्य्यके साथ व्यवहार करेँ। हमको सुधारके उदार और उचित मार्गका अनुसरण करना चाहिए ताकि हम उन्हेँ उचित और वैध मार्गकी ओर आकृष्ट कर सकेँ। माननीय महोदय! श्री मौण्टेगू और आपने जो रिपोर्ट लिखी है उसमेँ आप लोगोँने जो बताया है उसका ज़िक्र मैँ कई बार कर चुका हूँ।

हमने युद्धके आरम्भके समय भारतीय विनष्ट व्यापारके पुनः सङ्घटनकी व्याख्या करनेकी चेष्टा की थी। युद्धने भारतपर कई प्रकारसे असर डाला है। किन्तु सबसे महत्त्वकी बात तो यह है कि वर्त्तमान राजनीतिक परिस्थितिमेँ इसकी प्रधानता है। श्रेणी विशेषके सम्बन्धमेँ जिस योग्यताकी अपेक्षा हो, समस्त भारतीय जनता उस कारणका हार्दिक अनुमोदन करती है जो मित्रराष्ट्रकी ओरसे उपस्थित किया गया है। बृटेन युद्धमेँ क्योँ शामिल हो रहा है, यह कारण शिक्षित भारतीयोँकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिये उचित था। भारतीय अपनी राजनिष्ठामेँ पश्चात्पद नहीँ हुए। सरकारमेँ दोष-बाहुल्यके होते हुए और उनकी जानकारी स्वयं रखते हुए भी बृटिश सरकारके प्रति इन्होँने सच्ची राजभक्तिका परिचय दिया। यह उनकी ज़बानसे भी सिद्ध करना आसान है। इन्होँने बृटिश नीतिके उच्च आदर्शके मूल्यका पूर्ण परिचय प्राप्त किया था।

दूसरे पैरामेँ आपके बृटिश सहकारी श्रीमौण्टेगू और आपने कहा है:—"जो लोग, उपद्रव करनेकी चेष्टा किया करते थे, उनकी संख्या बहुत ही कम थी। इस बातसे भी देशकी राजभक्त भावनापर अधिक प्रकाश पड़ता है।"

माननीय महोदय! मेरा निवेदन है कि इस विचारपूर्ण निष्कर्षपर, जिसको आप लोगोँने रिपोर्टमेँ स्थान दिया है, और जो बिल्कुल यथार्थ है—मेरा निवेदन है कि वह निष्कर्ष निर्विवाद रीतिसे स्थापित हो चुका है। ऐसी परिस्थितिमेँ ऐसी आशा की जा सकती है कि यद्यपि दुर्भावनाओँका मूलतः विनाश नहीँ हो पाया है तथापि भारत-सरकार इस बातपर ज़ोर देगी, ज़ोर ही नहीँ प्रत्युत उसका प्रबल पक्ष लेगी कि प्रस्तावित व्यवस्थाको अवश्य कार्य्यात्मक रूप प्राप्त हो। विगत महायुद्धमेँ भारतीयोँने जो महान् कार्य्य किया है, उसको स्वीकार करते हुए, भारत-सरकार किसी भी ऐसे प्रस्तावका साहस और दृढ़ताके साथ विरोध करेगी जिसके द्वारा ऐसे विधानको स्थायी रूप दिया जाता हो जिसकी सृष्टि भारत-रक्षा-विधानके रूपमेँ केवल युद्धकालके लिये हुई थी। माननीय महोदय! सम्मान-पूर्वक मैँ अवश्य निवेदन करूँगा, किन्तु मेरा निवेदन खेदपूर्ण होगा, कि हम लोगोँको अवर्णनीय निराशा हुई है कि ऐसे नाज़ुक अवसरपर स्वयं भारत-सरकार प्रस्तावित-विधानको लेकर कौन्सिलके सामने उपस्थित हुई है। माननीय महोदय! मैँ सरकारको अपनी स्थितिपर पुनः विचार करने की प्रार्थना करूँगा। मेरी प्रार्थना है कि सरकारको जनताको ऐसा सोचनेका अवसर न देना चाहिए कि उन्होँने युद्धकालमेँ जो महान् उत्सर्ग किए हैँ, उन सबको सरकारने विस्मृतिके गर्तमेँ फेँक दिया। सरकारको यह सोचनेका कोई

आधार या कोई अवसर न प्रदान करना चाहिए कि युद्धकालके भारतके महान् प्रयत्नको अब सरकारने भूलना आरम्भ कर दिया है। सरकारको अपने आचरणसे यह प्रकट करना चाहिए कि अभी भी सरकारका जनतापर विश्वास है और प्रजाकी गम्भीर राज्य-भक्ति, जिसका सरकार ज़िक्र करती है, सारपूर्ण है, साररहित नहीँ है। यह जनताकी चापलूसीके लिये ठकुरसुहातीका प्रयोगमात्र नहीँ है। माननीय महोदय ! मैँ अत्यन्त सम्मानपूर्वक निवेदन करता हूँ कि सरकारको ऐसा ही आचरण करना चाहिए। मुझे भय है कि जिस नीतिका अनुसरण भारत-सरकारने किया है, उससे बहुत अंशमेँ क्षति हो चुकी है। मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि :—

युद्धकालमेँ चार सालतक सहधर्म्मी और सहकर्मीके नाते जो अद्वितीय फल प्राप्त हुआ है; समस्त पारस्परिक भावनाएँ, परस्परका विश्वास, परस्परका सम्मान आदि जो युद्धकालमेँ उत्पन्न हुए थे—क्रमशः विलीन हो रहे हैँ। किन्तु अभी सुधारके लिये अवसर है, ग़लतीको सुधारनेका मौक़ा अब भी है। माननीय महोदय ! मेरी आपसे प्रार्थना है कि सरकारको दायित्त्वकी उसी भावनासे प्रेरित होकर अग्रसर होना चाहिए, जिस भावनासे उद्बोधित होकर माननीय गृहसदस्यने हम ग़ैर-सरकारी सदस्योँको आचरण करनेके लिये अनुरोध किया है और ठीक ही अनुरोध किया है। मैँ सम्मान और आदरपूर्वक भारत-सरकारसे प्रार्थना करता हूँ कि स्थितिपर पुनः विचारकर और विधिविशेषके अनुसार बिलको वापस ले ले। माननीय महोदय ! यदि सिफ़ारिशेँ स्वीकार कर ली जायँ तो परिणाम क्या होगा। मैँ जानता हूँ कि जिस प्रकार भारत-सरकारका निर्माण हुआ है वह किसी भी विधानका, जिसको वह हृदयसे चाहती है, सरलताके साथ निराकरण करनेके लिये उद्यत नहीँ हो सकती। हम जानते हैँ और उसके लिये खेद भी प्रकट करते हैँ। किन्तु मेरा निवेदन है कि युद्धने जिस परिस्थिति विशेषको आमन्त्रित किया है उसका विचार करते हुए इस अवसरपर यदि सरकार इस बिलको दफ़नानेमेँ ग़ैर-सरकारी सदस्योँका साथ देती तो इसका देशके लिये कोई अनिष्ट परिणाम होता; किसी व्यक्तिपर भी इसका अनिष्टकारी परिणाम होता और युद्धके बाद छः महीनेतक भारत-रक्षा-विधानका देशमेँ प्रयोग जारी रहता। क़ानूनकी पुस्तकमेँ जो साधारण विधान हैँ वे ही सब प्रकारके अपराधोँका सामना करनेके लिये पर्य्याप्त हैँ। युद्ध समाप्त होनेके छः महीने पश्चात्, जब असन्तोषके यथार्थ कारणोँके अपहरणकी व्यवस्थाका प्रयोग आरम्भ हो जायगा जिसके परिणामस्वरूप देशमेँ राजद्रोह और क्रान्तिकी भावनाएँ जागरित हुई हैँ, यह सब होनेपर भी यदि देशमेँ सरकारको भ्रान्त मार्गमेँ आचरण करते हुए नवयुवक मिलेँ और उनके व्यवहारके दमनके लिये साधारण क़ानून पर्याप्त न होँ, तब ऐसी स्थितिमेँ, माननीय महोदय ! सरकारको यह विचारनेका उचित अवसर प्राप्त होगा कि वह इस प्रकारके विधानकी रचनापर विचार करे—ठीक इस विधानपर नहीँ, बल्कि किसी अन्य उचित उपक्रमकी रचना की जा सकती है।

प्रस्ताव किया गया है कि हमारे सामने उपस्थित बिलका विस्तार समस्त भारतमेँ होना चाहिए। हमने यह बतानेका प्रयत्न किया है कि रौलेट् कमेटीने स्वयं इसका उल्लेख किया है कि प्रत्येक प्रान्तमेँ समानानुपातसे क्रान्तिकारी भावनाएँ और अपराध नहीँ पाए गए हैँ। कमेटीने दिखाया है कि कुछ प्रान्तोँमेँ ऐसी भावनाओँ और ऐसे अपराधोँके लिये स्थानीय कारण नहीँ हैँ। मैँ इसका समर्थन करता हूँ कि जो रिपोर्ट हमारे सामने है इसके आधार-पर समस्त भारतके लिये समान विधानके निर्माणकी उपयुक्तताका समर्थन हम युक्तिसङ्गत मार्गसे नहीँ कर सकते। कमेटी-रिपोर्टके उपसंहारवाले अध्यायके

एक सौ छाछठवें पैरामें जिस निष्कर्षपर पहुँची है कहती है कि 'क्रान्तिकारी आन्दोलनसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने षड़यन्त्र हुए हैं उनके अनुसन्धानसे यह निश्चय हुआ है कि बम्बईके षड़यन्त्रकारियोंमें केवल ब्राह्मण थे और उनमें अधिकांश चितपावन ब्राह्मण थे।'

रिपोर्टमें यह स्पष्ट है कि 'बम्बई प्रान्तमें अब इस आन्दोलनका नाममात्र अवशिष्ट है। कुछ व्यक्ति रह गए थे, जिन्हें अपराधका दण्ड मिला और कई साल हुए कि उनका कार्य्यक्रम भी समाप्त हो गया।'

रिपोर्टका कथन है कि 'बङ्गाल प्रान्तमें षड़यन्त्रकारी मध्य वर्गके शिक्षित नवयुवक थे'। माननीय महोदय! इस वक्तव्यकी ओर मैं आपका और कौन्सिलके सदस्योंका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। यह कार्य्य हत्याके अपराधियों या ऐसे अपराधियोंसे सम्बन्ध रखनेवालोंका नहीं है, जिन्हें अपराध करनेका व्यसनसा पड़ गया है। रिपोर्टमें लिखा है कि 'षड़यन्त्रकारी मध्यम वर्गके सम्भ्रान्त शिक्षित नवयुवक थे। मेरा निवेदन है कि सरकार इन नवयुवकोंको अनिष्टकारी प्रवृत्तिसे, जो विचारणीय विषय है, नहीं रोक सकी—तब उनको दोषी बताना सरकारका कर्त्तव्य नहीं है। राजनीतिज्ञताकी माँग तो यह है कि इन नवयुवकोंको इस प्रवृत्तिसे विमुख करनेके लिये सभी साध्य मार्गोंका अनुसरण किया जाय, हत्याकारी भावनाएँ निर्मूल की जाँय और भ्रान्त पथसे हटाकर इन्हें सन्मार्गमें लाया जाय।'

रिपोर्टमें और लिखा है :—

'उनका प्रचार विस्तृत, दृढ़ और व्यवस्थित था'।

अस्तु! किन्तु इससे यही प्रकट होता है कि षड़यन्त्रकारी, प्रतिभासम्पन्न और शिक्षित व्यक्ति थे; अतः उन्हें असन्मार्गसे सन्मार्गमें आरूढ करना आसान कार्य्य था।

इसी सिलसिलेमें रिपोर्टमें लिखा है—'उन्हींके प्रान्तमें अनेक डाके पड़े और हत्याएँ हुईं।' अभाग्यवश यह सत्य है, किन्तु हमको ऐसे मार्गका आश्रय करना चाहिए जिससे इन नवयुवकोंको ज्ञात हो कि डाका और हत्याके कार्य्यमें भाग लेना कितना निन्द्य है। ऐसे मार्गका अनुसरण होना चाहिए जिससे इन्हें मालूम हो कि अब देशके इतिहासका दूसरा अध्याय आरम्भ है, भारतके भाग्यसूर्य्य उदय लेनेवाले हैं। उदार-शासनके युगका आरम्भ होनेवाला है, भारतीयोंके अधिकारके स्वीकृतिका सवेरा निकट है, युवकोंको जीविकाके अधिक साधन प्राप्त होनेवाले हैं और भारतीयोंके साथ देशमें ठीक वैसा ही व्यवहार होनेवाला है जैसा वे चाहते हैं—आदि।'

रिपोर्टके कथनानुसार विहार और उड़ीसा प्रान्त, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और मद्रास प्रान्तमें इस प्रकारके अपराधोंका मूल कारण नहीं पाया जाता, किन्तु समय-सययपर यहाँ ऐसे अपराध और ऐसी अव्यवस्था उत्पन्न हो गई है। पञ्जाव प्रान्तमें विदेशोंसे लौटे हुए कुछ भारतीय, जैसे अमेरिका आदि देशसे हालमें लौटे हुए लोग रक्तपात और क्रान्तिके लिये तुले हुए थे। फलस्वरूप सन् १९१५ ई० के ग़दर षड़यन्त्रमें असंख्य उपद्रव हुए।

किन्तु मेरी धारणा है और निर्विवाद है कि पञ्जाब प्रान्तमें अब एक भी ऐसी बात नहीं रह गई है जिससे प्रस्तावित विधानका समर्थन प्राप्त हो।

माननीय महोदय! एक दूसरा वाक्य भी रिपोर्टके उस भागमें है जिस ओर हम आप लोगोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं, यह कहनेके पश्चात् कि इन सभी षड़यन्त्रोंका उद्देश सदा एक रहा है, वह उद्देश बल-प्रयोगद्वारा बृटिश शासनको भारतसे निर्मूल करनेका रहा है। ये सब निन्द्य चेष्टाएँ हैं। कभी-कभी तो इनको कोई भी समर्थन नहीं मिला, कभी-कभी इनका सम्बन्ध आन्तरिक रहा और कभी-कभी इनको जर्मन प्रभावद्वारा समर्थन तथा प्रोत्साहन मिला है।

कमेटी आगे कहती है कि 'इन सबका सफल प्रतिरोध भारतीयोंकी राजभक्तिकी सहायतासे सम्पन्न हुआ है।' माननीय निर्णायक महोदय! मैं पूछना चाहता हूँ, कि तटस्थताके विचारसे अथवा उस राजभक्तिके

लिये न्यायप्रियताके भावसे जो प्रस्ताव क़ानूनका रूप पानेके लिये हमारे सामने उपस्थित है उसके सम्बन्धमें सरकार 'नहीं' न करे, चाहे वह भविष्यमें भारतीयोंकी इस भावनापर विश्वास भले ही न करे कि इस प्रकारकी दुष्ट भावनाओंके नियन्त्रणमें वे सरकारके साथ सहयोग करेंगे और देशसे उन्हें दूर करनेमें सहायता पहुँचावेंगे । रिपोर्ट आगे चलकर और कहती है कि 'यह कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है कि षड़यन्त्रोंका सामना करनेके लिये, जिनका निर्माण धोखेके आधारपर और गम्भीर चिन्तनके पश्चात् हुआ है, सरकार विशेष प्रकारके विधानकी रचनाके लिये बाध्य की गई है। किन्तु वह कार्य्य हो चुका है। वह विशेष विधान अब भी युद्धके छः महीने बादतक प्राप्य रहेगा। तबतक इसका प्रयोग होने दीजिए और इस आन्दोलनके शान्त होते ही इसको भी विश्राम दे दीजिए। हमको ऐसी आशा करनी चाहिए और इसके लिये प्रार्थना करनी चाहिए कि नई परिस्थितिमें, जिसका आरम्भ होनेवाला है, बुराइयोंका अन्त हो जाय।'

माननीय महोदय ! इस रिपोर्टकी उपस्थितिमें मैं नहीं समझ सकता कि किस प्रकार सरकार प्रतिगामी और दमनात्मक विधानकी रचनाके लिये विचार कर सकेगी । जो विधान न्यायके सिद्धान्तका विनाशक है, जिस पक्षका इङ्गलैण्डने सदा आश्रय लिया है, जो इङ्गलिश व्यवस्थाकी कीर्त्ति है, जो विधान व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यकी रक्षाके न्याय भावका विघातक है, उसका समर्थन सरकार कैसे करेगी। किस प्रकार ऐसे विधानके उपस्थित करनेका निश्चय सरकारने किया और किस प्रकार इसके समस्त भारतपर लागू होनेका प्रस्ताव किया गया ? विधानकी साधारण रूप-रेखाके परिचयवाले वक्तव्यसे मैं सन्तुष्ट होनेका नहीं । माननीय महोदय! मैं आपका और कौन्सिलका ध्यान प्रस्तावके मूल स्वरूपकी ओर, जिस रूपमें कमेटी उसको उपस्थित करना चाहती है, आकृष्ट करूँगा और यह दिखाऊँगा कि कमेटी स्वयं इस प्रश्नपर किस दृष्टिसे विचार करती है। सर्वप्रथम कमेटीने एक उचित आपत्ति की है, जिस ओर श्री चन्दाने ध्यान आकृष्ट किया है। आपत्ति भारतीय राज्य-परिषद्की योग्यताके सम्बन्धका है कि क्या कौन्सिलको इस प्रकारका अत्यन्त कठोर विधान उपस्थित करने और उसको क़ानूनका रूप देनेका अधिकार है जो प्रस्ताव स्थापित साक्षी और न्याय-सम्बन्धी विधानका विरोधी है? दो सौवें पैरामें कमेटी कहती है कि "विधानके लिये प्रस्ताव करते समय हम लोगोंने यह विचार तनिक भी नहीं किया था कि ऐसा तर्क उपस्थित किया जा सकेगा कि इस प्रकारके विधानकी रचना किसी प्रकार सपरिषद् गवर्नरके अधिकारके बाहर है। ऐसे किसी विषयपर क़ानूनके रचनाका हमको अधिकार नहीं है, अथवा ऐसी कोई शर्त्तवाली कल्पना करनेका भी हमको अधिकार नहीं है। क्योंकि हमारे प्रस्तावका आधार कष्टका कारण होगा । अतः हम इस आधारपर आगे बढ़े हैं कि हम लोगोंका कोई भी प्रस्ताव, जिसको उपस्थित करनेका निश्चय हो गया हो, उसको क़ानूनका रूप उसी व्यवस्थापिका सभाद्वारा प्राप्त हो सकता है, जिसको ऐसा करनेकी योग्यता प्राप्त है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या रौलेट् कमेटीके इस पैरामें जो कुछ लिखा है उसपर सरकारने कोई टीका-टिप्पणी भी की है। यदि की हो तो क्या बृटिश सरकारके क़ानून कर्मचारी, जो इङ्गलैण्डमें रहते हैं, उनको इसकी सूचना कमेटीद्वारा उठाए हुए प्रश्नपर उनकी राय जाननेके लिये दी गई है।

माननीय सर जौर्ज लाउण्डी :—

माननीय महोदय! मैं बीचमें आपत्ति करना चाहता हूँ। इस स्थितिके सम्बन्धमें इङ्गलैण्डके क़ानूनके सदस्यसे कुछ भी पूछताछ नहीं हुई है। कोई आधार नहीं है जिसके बलपर ऐसी कार्रवाई की जा सके। यदि दो क़ानूनके पण्डितोंमेंसे कोई, जिन्होंने यह बताया है कि यह कौन्सिल विधानकी रचनाकी योग्यता नहीं रखती,

इस सम्बन्धमेँ कुछ अधिक बतानेका कष्ट करेँ, जिसको लेकर हम इङ्गलैण्डके क़ानून-कर्मचारीके पास जायँ। केवल रिपोर्टके उस पैराके आधारपर, जिनसे मिलनेमेँ प्रसन्नताका अनुभव करते हुए भी वर्त्तमान स्थितिमेँ उनसे मिलनेकी कोई आवश्यकता नहीँ समझते। इस सम्बन्धमेँ हमारे मनमेँ अणुमात्र भी शङ्का नहीँ है कि इस विधानकी रचनाका हमको अधिकार और योग्यता प्राप्त है। हमको ऐसा करना चाहिए या नहीँ, यह प्रश्नान्तर है।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय :—

यह बतानेके लिये कि इसकी कोई सूचना नहीँ दी गई है; मैँ माननीय क़ानून-सदस्यको धन्यवाद देता हूँ। मैँ उसे ठीक मानता हूँ। किन्तु मैँ समझता हूँ कि उस विषयके दृष्टिकोणसे यह शङ्का उस कमेटीद्वारा उपस्थित की गई है, जिसकी नियुक्ति सरकारद्वारा हुई है। उस कमेटीद्वारा यहाँ शङ्का उपस्थित की गई है जिसके सभापतिका पद इङ्गलैण्डके हाइकोर्टके एक विचारपतिने ग्रहण किया था। उसमेँ तीन ऐसे सज्जन भी सम्मिलित थे जिनका निर्वाचन सरकारद्वारा मत देनेके लिये हुआ था। इस विषयपर अधिक गम्भीरताके साथ विचार होना चाहता था न कि उस प्रकार, जैसा कि सरकारने प्रत्यक्षतः किया है। अस्तु! मैँ अभी अपने मित्रको उन सब कारणोँको बताना नहीँ चाहता जिनके आधारपर शङ्का उपस्थित की गई है; किन्तु सम्भवतः पीछे मैँ बताऊँगा कि किस प्रकार इस कौन्सिलकी योग्यता ऐसे क़ानूनके निर्माणकी नहीँ है जो अपने किसी भी सहधर्मी प्रजाको स्वतन्त्रताकी रक्षाका विघातक हो, अंग्रेज़ी क़ानूनके अनुसार उन्हेँ प्राप्त है। जिस क़ानूनद्वारा यह विश्वास दिलाया गया है कि मनुष्यकी स्वतन्त्रतामेँ हस्तक्षेप न होगा, कोई भी इस स्वतन्त्रताके उपभोगसे एक दिनके लिये भी वञ्चित नहीँ किया जा सकता, जबतक उसका साधारण विधि—जो किसी मुक़दमेके विचार-कालके लिये आवश्यक है—जैसे उभय पक्षका वक्तव्य, साक्षी, काग़ज़ातका सबूत आदि—गुज़र जानेपर नियमपूर्वक विचार नहीँ हो जाता। भारतीय शासनकी बृटिश प्रणालीके सम्बन्धमेँ हम बहुत सुन चुके हैँ। हम अंग्रेज़ोँकी न्याय-प्रियता और स्पष्ट निर्णयकी बहुत प्रशंसा सुन चुके हैँ। म कौन्सिलसे और विशेषकर अपने माननीय मित्रसे और बृटिश जातिके किसी भी सदस्यसे जानना चाहता हूँ कि किस प्रकार वे अपनेको उन प्रस्तावोँके अनुकूल बना सकेँगे जो विचारार्थ उपस्थित विधानका अङ्गभूत है? यह यथार्थ बात नहीँ है। यह अविश्वसनीय होगा, यदि सरकारी दलके अंग्रेज़ सदस्य ऐसे विधानके स्वीकृत होनेमेँ योग देँगे।

(इस बीचमेँ माननीय अध्यक्ष बड़े लाट उठकर चले गए। पश्चात् माननीय सर जौर्ज लौण्ड्सने अध्यक्षका स्थान ग्रहण किया।)

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय :—

उपाध्यक्ष महाशय! क्या मैँ कौन्सिलकी बैठक स्थगित करनेके लिये निवेदन कर सकता हूँ? नियमानुसार साधारणतः कौन्सिलकी बैठक चार बजेतक हो सकती है, और इस समय साढ़े चार बजे हैँ। मुझे जो कुछ कहना है उसका अभी दो तिहाई भी नहीँ समाप्त कर सका हूँ और मैँ समाप्त भी नहीँ कर सकूँगा।

माननीय उपाध्यक्षः—

मुझे सन्देह है कि शेष एक तिहाई आप अवश्य पूरा करेँगे।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय :—

मैँ नहीँ समझता कि मैँ समाप्त कर सकूँगा।

मानीय उपाध्यक्ष :—

मुझे आशा है कि आप समाप्त कर लेँगे।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय :—

महोदय! मैँ निश्चयपूर्वक प्रस्ताव करता हूँ कि कौन्सिलकी बैठक अब स्थगित कर देनी चाहिए। यदि आप कौन्सिलकी कार्रवाई-सम्बन्धी विधानकी दूसरी धाराकी ओर ध्यान देँ तो उसका आशय यह है कि साधारण स्थितिमेँ कौन्सिलकी बैठक ग्यारह

बजे दिनसे आरम्भ होती है और चार बजे सन्ध्यासे आगे जारी नहीँ रह सकती बशर्त्ते कि बैठक जारी रखनेकी अध्यक्षकी अनुमति न मिल जाय।

ऐसा कोई आदेश वाक्य नहीँ है कि कौन्सिलकी बैठक जारी ही रक्खी जाय। अतः मेरा निवेदन है कि नियमके आज्ञापक शब्दके विचारसे कि—चार बजेके बाद कौन्सिलकी बैठक आगे न बढ़ाई जाय—अब बैठक स्थगित हो जानी चाहिए।

माननीय उपाध्यक्षः—

यदि आप आवश्यक समझेँ तो मैँ कौन्सिलकी बैठक जारी रखनेका आदेश कर सकता हूँ।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयः—

मैँ फिर भी आपत्ति उपस्थित कर निवेदन करता हूँ कि मेरे प्रस्ताव करनेके पूर्व यह व्यवस्था नहीँ दी गई। मेरा निवेदन है कि यदि मेरे प्रस्ताव करनेके पूर्व यह आदेश दिया गया होता तब इस सम्बन्धमैँ प्रश्न ही नहीँ उठता। परन्तु यह आदेश मेरे प्रस्तावके बाद हुआ है, अतः मैँ उपाध्यक्ष महोदयसे जानना चाहता हूँ कि क्या मेरा प्रस्ताव स्वीकृत नहीँ होना चाहिए?

माननीय उपाध्यक्षः—

माननीय सदस्यको मेरे आदेशपर आपत्ति करनेका अधिकार नहीँ है। मैँ आदेश करता हूँ कि माननीय सदस्य अपना भाषण अवश्य जारी रक्खेँ।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयः—

उपाध्यक्ष महोदय! मैँ पहले उन कारणोँपर विचार कर चुका हूँ जो युद्धकी समाप्तिके फल-स्वरूप हैँ। मैँने यह भी निवेदन किया है कि उन कारणोँकी दृष्टिसे सरकारको अपने निर्णयपर पुनः विचार करना चाहिए। मैँने यह भी निवेदन किया है कि प्रश्न इस आशयका उठाया गया है कि क्या इस कौन्सिलको ऐसे विधानके निर्माणकी योग्यता है? किसी प्रकार यह एक ऐसा विषय है जिसका कौन्सिलमैँ उस उतावलीके साथ प्रवेश न होना चाहिए, जिस उतावलीके साथ इसका प्रवेश हुआ है। इस प्रश्नके सम्बन्धमैँ कि इस बिलके विचारनेकी योग्यता कौन्सिलमैँ है कि नहीँ—मैँ आपका ध्यान उस ओर आकृष्ट करूँगा।

(पूज्य मालवीयजीको वह अंश नहीँ मिला जो वह सुनाना चाहते थे अतः उन्होँने कहा)

मैँ इस प्रश्नपर बादको विचार करूँगा। अब मैँ कौन्सिलसे बिलके कारणोँपर विचार करनेके लिये निवेदन करूँगा, जिसके आधारपर बिलका समर्थन करनेकी प्रार्थना की गई है। थोड़ा इनपर विचार तो कीजिए। प्रथमतः इसका तात्पर्य्य है कि ऐसी धारणा बना लेना उचित है कि परिस्थिति विशेषमैँ, ज़ाब्ता फ़ौजदारीकी साधारण धाराएँ अवस्था विशेषकी शक्तिसे युक्त की जायँगी, जिनका प्रयोग सरकार कर सकेगी।

उपाध्यक्ष महोदय:—

जब कि विधानका उद्देश अवस्था विशेषके लिये सुविधा प्रदान करना है और उसके लिये ऐसा प्रस्ताव करना कि यह साधारण ज़ाब्ता फ़ौजदारीके क़ानूनोँका स्थायी सहायक बना दिया जाय, एक ऐसा विषय है जिसका अपवाद होना चाहिए। यदि कोई विशेष बिलके पास करनेका प्रस्ताव होता, अथवा परिस्थिति विशेषके लिये विशेष विधानका प्रस्ताव होता, जैसा कि भारत-रक्षा-विधानने किया है, तब हम इसको ऐसा न समझते। यह विधान कुछ कालके लिये है जो निर्धारित समयके बाद समाप्त हो जायगा। वह निर्धारित समय कोई भी हो सकता है। किन्तु यहाँ तो देशके लिये एक स्थायी विधानके निर्माणका प्रस्ताव उपस्थित है, यह क़ानून बनने जा रहा है। मेरा प्रथम निवेदन यह है कि यदि इस प्रकारके विधानके लिये आवश्यक कारण हैँ—यदि भारत-रक्षा-विधानका अब अस्तित्व नहीँ है, तब विशेष विधानका कुछ कालके लिये प्रस्ताव होना चाहिए—और प्रस्तावमैँसे वह अंश निकाल देना चाहिए जिससे इसके स्थायी क़ानूनका रूप प्राप्त करानेका अभिप्राय है। फिर जिस

अंशका मैंने अभी ज़िक्र किया है उसके सहकारी अंश, जिसके द्वारा विलको अखिल भारतीय रूप प्रदान करानेका अभिप्राय है, वह भी हटा देना चाहिए। मेरा निवेदन है कि रौलेट् कमेटीकी रिपोर्टको दृष्टिकोणमें रखते हुए, सरकारको गम्भीरतापूर्वक पुनः इसपर विचार करना चाहिए कि क्या इस वातकी उपादेयतामें कोई प्रमाण है कि इस प्रकार अखिल भारतीय विधानकी सृष्टि की जाय? एक क्षणके लिये यह मान लीजिए, जो मेरी समझसे कोई तथ्य वात नहीं है कि युद्धके वाद बङ्गालमें क्रान्तिकारी अपराधोंकी भावनाका मूलतः विनाश नहीं हुआ। इस प्रकारकी कल्पना करनेके लिये मुझे महान् दुःख है, किन्तु मान लीजिए कि ऐसा है तो इस परिस्थितिमें अपने प्रान्तके लिये ऐसे विलको उपस्थित करनेका काम बङ्गाल-सरकारका कर्त्तव्य होना चाहिए ताकि वह ऐसे अपराधोंका सामना कर सके। क्या यह समस्त भारतकी राजभक्तिपर अविश्वास करनेके लिये उचित माना जा सकता है? इस प्रकारके विधानके स्वीकार करनेका तात्पर्य्य वाहरवालोंको यह वताना होगा कि भारतमें अराजकता व्याप्त है और असन्तोषका प्राबल्य है। पञ्जाब प्रान्त और युक्तप्रान्त दोनोंको एकमें शामिल नहीं करना चाहिए, जहाँ अभी भी सम्भवतः क्रान्तिकारी अपराधोंका अस्तित्व वना है। यह मेरा दूसरा तर्क है। अब तीसरी वात लीजिए। "यदि सपरिषद् गवर्नर इस वातसे सन्तुष्ट हों कि क्रान्तिकारी अपराध समस्त बृटिश भारतमें या उसके एक भागमें हुए हैं और अभी भी हो रहे हैं, जिससे सार्वजनिक शान्ति ख़तरेमें हैं—तो वे भारतके गज़टमें एक सूचना प्रकाशित कर घोषणा कर सकते हैं और उस घोषणाका उस प्रान्तमें प्रयोग किया जायगा जहाँ ऐसे ख़तरेकी सम्भावना है। घोषणामें इसकी व्याख्या भी होनी चाहिए कि वे क्रान्तिकारी अपराध क्या हैं? इस घोषणामें ऐसे भी अपराध शामिल किए गए हैं जिनसे प्रत्येक व्यक्तिकी स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठापर गम्भीर आक्रमण होता है। क्या ऐसे अपराधोंका निर्णय प्रस्तावित विशेष विधिसे करना उचित है? आप ऐसे अपराधोंके शीघ्र निर्णय करनेके लिये अधिकार चाहते हैं। यह सर्वविदित है कि भारत-सरकार और इङ्गलैण्ड-सरकारने ऐसे गम्भीर अपराधोंके विचारके लिये वहुत ही विस्तृत और विचारपूर्ण विधान प्रस्तुत किए हैं। सङ्क्षिप्त विचार साधारण और छोटे-छोटे अपराधोंके लिये सुरक्षित हैं। वड़े-वड़े मुक़दमोंका विचार दौरा अदालत और हाइकोर्टोंद्वारा होता है और इन अदालतोंको विस्तृत विधान दिए गए हैं। विचारमें अधिक काल लगेगा, इसकी उपेक्षा नहीं की गई है। केवल इस आधारपर कि विचारमें अधिक समय लगता है—किसीको इतने भयङ्कर विधानकी, जो विचारार्थ उपस्थित है, रचनाके लिये तत्पर नहीं होना चाहिए, क्या मैं माननीय सदस्य या सरकारी पक्षके किसी सदस्यसे पूछ सकता हूँ कि ऐसे अपराधोंको शीघ्र निर्णय कराकर कितने समयकी वचतका अनुमान किया गया है? कुछ अपराधोंके शीघ्र विचार करानेकी वात सोची गई है। इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि मुक़दमेका विचार ही न होगा। विधानका एकमात्र उद्देश शीघ्र विचार करानेकी सुविधा प्रदान करना है। यह नहीं दिखाया गया है कि इस प्रकारके इतने अधिक अपराध होंगे कि अदालतोंको उनके विचारके लिये अवसर नहीं मिलेगा। रौलेट् कमेटीने यह वक्तव्य देकर कि युद्धके वाद कैसी परिस्थिति उत्पन्न होगी,—अपनी न्यायकारिताका परिचय दिया है। सत्रहवीं अध्यायमें कमेटी कहती है कि हमारी अन्तिम सम्मति सरकारको ऐसे विधानको वनानेकी है जो षड़यन्त्र-सम्बन्धी कठिनाइयोंसे पार पानेके लिये प्रभावशाली अधिकार देनेवाले हैं। यह विधान, जैसा कि प्रस्तावकने वताया है, मालूम होता है कि उस परिस्थितिका जो ऐसी कठिनाइयोंको जन्म देगी—

सामना करनेवाला है। इस प्रकारकी कठिनाइयाँ फ़िलहाल एक विशेष परन्तु अस्थायी विधानद्वारा नष्ट कर दी गई हैं। अनुसन्धान-कालमें उक्त कठिनाइयाँ हम लोगोंके सामने उपस्थित नहीं हुईं। इस विधानके कार्य्यकालके समाप्त हो जानेपर तात्कालिक परिस्थितिमें भी परिवर्त्तन हो जायगा। या तो वह अबसे अच्छी हो जायगी अथवा बुरी हो जायगी। ऐसी सम्भावनाओंकी उन्होंने उपेक्षा नहीं की है कि परिस्थिति इतनी परिवर्त्तित हो सकती है कि विशेष प्रकारके विधानकी आवश्यकता ही न पड़े। उनका कहना है कि इसमें सन्देह नहीं कि अति निकृष्ट परिस्थिति उत्पन्न हो जाय। कोई भी गम्भीर और उत्तरदायी व्यक्ति निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि युद्धके पश्चात् भारतमें क्रान्तिकारी और राजद्रोहात्मक अपराध नहीं हो सकते। अभी अमेरिका आदि देश इस प्रकारके अपराधोंसे मुक्त नहीं हुए हैं। योरोपीय देशोंमें भी ऐसे अपराध होते हैं। किसी भी देशमें देशके अधिकांश निवासियोंके राजभक्त होनेपर भी एक उन्मत्त, एक पथभ्रष्ट, एक ऐसा व्यक्ति, जो चित्तविक्षिप्तताके रोगसे ग्रसित है—राजद्रोहात्मक अपराध कर सकता है। किन्तु इस आधारपर समस्त देशके लिये प्रस्तावित विधानके समान भयङ्कर विधान व्यवस्थापिका सभाद्वारा स्वीकृत नहीं कराया जा सकता। कमेटीका कहना है कि वर्त्तमान विशेष विधानकी अवधिके समाप्त हो जानेपर परिस्थिति परिवर्त्तित हो सकती है और वह वर्त्तमान कालकी अपेक्षा अधिक सुन्दर भी हो सकती है। दो सम्भावनाओंकी भावी कल्पना की गई है—एक तो यह कि परिस्थितिमें परिवर्त्तन हो सकता है और दूसरा यह कि वह पहलेकी अपेक्षा अधिक सुन्दर भी हो सकती है। यदि भाग्यसे तथाकथित सम्भावना सिद्ध हुई तो रौलेट् कमेटीके विचारानुसार प्रस्तावित विधानकी कोई आवश्यकता नहीं होगी। यदि अभाग्यवश विकल्प पक्ष ही सिद्ध हुआ अर्थात् परिस्थिति पहलेकी अपेक्षा अधिक निकृष्ट हो गई, तब जैसा कि श्री जिन्नाने बताया है, कौन्सिलको अनिच्छा और खेदके साथ दृढ़तापूर्वक उक्त विधानका समर्थन करना होगा। उसको ऐसे विशेष विधानसे—जिसकी आवश्यकता है, अपनेको प्रतिबन्धित करना होगा।

(इस अवसरपर कौन्सिलके प्रधानाध्यक्ष बड़े लाटने पुनः आसन ग्रहण किया)।

माननीय अध्यक्ष महोदय !

मैंने बताया है कि रौलेट् कमेटीने विशेष विधानका, जिसके द्वारा सरकारको विशेष प्रकारके मामलोंके निर्णय करनेका अधिकार प्राप्त है—ज़िक्र कर चुकनेपर कमेटी अपनी रिपोर्टके एक सौ पचहत्तरवें पैरामें इसी सम्बन्धमें और कहती है कि—

"इस विधानके निर्धारित समयके बीत जानेपर परिस्थितिमें परिवर्त्तन हो सकता है—वह पहलेकी अपेक्षा अधिक सुन्दर अथवा अधिक निकृष्ट हो सकती है।

माननीय अध्यक्ष महोदय! मेरा निवेदन है कि यहाँ दो सम्भावनाएँ हैं, जो कमेटीके सामने उपस्थित हैं। पहली सम्भावना यह है कि परिस्थितिमें ऐसा परिवर्त्तन हो सकता है और वस्तुस्थिति इतनी सुन्दर हो सकती है कि ऐसे विधानकी आवश्यकता ही न प्रतीत हो। मेरा निवेदन है कि हमको ऐसी आशा रखनी चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि यह सुखद विकल्प प्राप्त हो। यदि यह प्राप्त हुआ तब प्रस्तावित विधानके समान विधानकी कोई आवश्यकता न होगी। यदि अभाग्यवश दूसरा दुःखद विकल्प ही हाथ रहा तब, जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री जिन्नाने बताया है कि तब सरकारके लिये उपयुक्त अवसर उपस्थित होगा कि वह प्रस्तावित विधानके समान कोई विधान अथवा उसी आधारपर स्थित किसी अन्य विधानका प्रस्ताव करे, किन्तु उसका स्वरूप इतना विघातक न हो। मैं आशा करता हूँ और वर्त्तमान विधानकी अपेक्षा अधिक न्याय-सम्मत विधानकी सृष्टिकी आशा करता हूँ,

जिसकी आवश्यकता परिस्थिति विशेषके लिये अनिवार्य्य हो। कमेटी आगे और कहती है कि—

'हम नहीं समझते कि ऐसे विषयपर अधिक उत्सुकताके साथ हम लोगोंको विचार करना चाहिए।'

अध्यक्ष महोदय! सचमुच, कमेटीको इसपर विचार करना नहीं चाहिए था। किन्तु यह एक गम्भीर विषय है और इसपर सरकार और कौन्सिलको इन विषयोंपर अधिक सावधानीसे विचार करना चाहिए। किन्तु सरकार और कौन्सिल ऐसा नहीं कर सकी। जनताके प्रति न्यायकी दृष्टिसे, जनताके अधिक लाभकारी, अधिक समुज्ज्वल और अधिक आशाजनक सम्भावनाओंसे सरकारको इन्हें वञ्चित नहीं करना चाहिए, ऐसे अवसरको विधानकी सृष्टिसे रोकना नहीं चाहिए। कमेटी और कहती है :—

'हमको अपने दृष्टिकोणमें यह अवश्य रखना चाहिए कि वर्त्तमान प्रथाका अब शीघ्र अन्त होगा, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि उस अन्तका परिणाम, वर्त्तमान स्थितिपर किस प्रकारका प्रभावकारी अन्तिम विपरिणामोत्पादक होगा।'

माननीय अध्यक्ष महोदय! कमेटीने इस बातका उल्लेख किया है कि इसमें दो सम्भावनाएँ हैं। कमेटी-वालोंकी यह धारणा रही है कि इन सम्भावनाओंमेंसे एक अवश्य सिद्ध होगी। अतः मेरा निवेदन है कि यह अनुभव करना चाहिए और ऐसी आशा बुद्धि-सम्मत है कि इन सम्भावनाओंमेंसे जो अधिक उज्ज्वल है, वही घटित होगी। हमको इस असम्मत धारणाके आधारपर, कि सुखद सम्भावनाकी सिद्धि होगी ही नहीं और दुःखकी ही घड़ियाँ आवेंगी, नए विधानकी रचनाके लिए मत देना उचित नहीं है। कमेटी और कहती है :—

"दूसरी ओर वे व्यक्ति, जो भारत-रक्षा-विधानके अनुसार नज़रबन्द हैं, मुक्त कर दिए जायँगे और अनेक हत्याके अपराधियोंकी दण्डकी अवधि कम कर दी जायगी अथवा वे भी मुक्त कर दिए जायँगे।"

अध्यक्ष महोदय! यह सत्य है किन्तु, क्या सरकारने ऐसे बहुत लोगोंको मुक्त नहीं किया है? क्या हमसे यह नहीं कहा गया है कि ऐसे अपराधियोंमेंसे बहुत तो छोड़ दिए गए हैं और शेष निकट भविष्यमें मुक्त होनेवाले हैं? क्या यह उन्नतिका द्योतक चिह्न नहीं है? क्या इसमें कोई अनिष्ट भावना अथवा संशय है कि यदि ऐसे व्यक्ति मुक्त कर दिए जायँगे तो ये पुनः वैसे ही अपराध करने लगेंगे? यदि ऐसी आपत्ति उपस्थित हो तो क़ानूनकी पुस्तकमें बहुतसे क़ानून निरोधात्मक और दण्डात्मक हैं; जिनके द्वारा सरकार भावी आपत्तिके निवारणमें समर्थ हो सकेगी। इस परिस्थितिमें कमेटीका कथन है कि—

'इसके अतिरिक्त विशेषकर पञ्जाबमें बहुतसे सेनासे निकाले हुए सिपाही हैं। यह असन्तोष उनमें बड़ी आसानीसे फैलाया जा सकता है।' अध्यक्ष महोदय! यह अत्यन्त निर्दयतापूर्ण आघात है। पञ्जाबके सिपाहियोंने जो आत्मत्याग किया है उसको विचार-वीथिमें रखते हुए, उनकी अन्तस्तल-व्यापिनी राजभक्तिको दृष्टिकोणमें रखते हुए, जिस भावनासे प्रेरित होकर साम्राज्यके लिये उन्होंने जानें गवाई हैं, और सब प्रकारका उत्सर्ग किया है जो उनके अधिकार और शक्तिके अनुकूल था, कमेटीके प्रति उचित सम्मानकी भावना रखते हुए भी मैं अवश्य निवेदन करूँगा कि यदि कमेटी ऐसा विचार न रखती तो उसके पक्षमें यह और अधिक अच्छा हुआ होता। इसमें सन्देह नहीं कि कमेटीने केवल यही कहा है कि—'सिपाहियोंमें असन्तोषकी भावना जगाना सम्भव होगा' किन्तु ऐसे लोग, जो परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुके हैं, ऐसे लोग, जिन्होंने सभी प्रकारके प्रलोभनोंका सामना किया है, और संसार-व्यापी विगत महायुद्ध-कालमें जिन्हें पथ-भ्रष्ट करनेके सभी उद्योग विफल हो चुके हैं—ऐसे व्यक्तिके प्रति ऐसा अविश्वास किया जा

सकता है कि यदि उन्हें कोई बृटिश साम्राज्यके प्रति विद्रोह करनेके लिये उभाड़ेगा—तो वे अपनी राज्यनिष्ठामें दृढ़ न बने रहेंगे। अध्यक्ष महोदय! ये सिपाही कुछ दुनिया देख चुके हैं। इन्होंने देखा है कि महायुद्ध क्या वस्तु है? ये उन लोगोंकी अपेक्षा जिन्हें युद्धकी कोई कल्पना नहीं है, जिन्होंने युद्धमें प्रत्यक्ष भाग नहीं लिया है—यह समझनेकी अधिक योग्यता रखते हैं कि युद्ध क्या वस्तु है। इन्होंने बृटिश बल और बृटिश साम्राज्यका भी प्रत्यक्ष किया है। जिनमें असन्तोष उत्पन्न किया जा सकता है, ऐसे लोगोंमें इनकी परिगणना नहीं होनी चाहिए। यदि सरकार उचित मार्गका अवलम्बन करेगी, यदि सरकार व्यवहारतः, यथार्थतः और उदारतापूर्वक इनके उस त्याग और बलिदानको स्वीकार करेगी जो इन लोगोंने अपनी वर्त्तमान दशाको अधिक उन्नत बनानेकी भावनासे प्रेरित होकर की है, यदि सरकार इनके बच्चोंको शिक्षित बनाने, उनके लिये अधिक भोजन सामग्रीकी व्यवस्था करने, उनको अधिक और पर्य्याप्त मात्रामें वस्त्र दिलानेका प्रयत्न करने, उन्हें अधिक आरामके साधनोंकी सुविधा दिलाने, यदि सरकार उन्हें साधारण पशुकी अपेक्षा अधिक उत्तम जीवन व्यतीत करनेका अवसर देनेके लिये प्रयत्नशील होगी तो मुझे निश्चय है कि कोई भी शक्ति इन्हें इनकी दृढ़ राज्यनिष्ठा और राजभक्तिसे विचलित करनेमें समर्थ नहीं होगी। अध्यक्ष महोदय! किसी प्रकार अभीतक उक्त बुराइयोंका इनपर कोई प्रभाव नहीं है। हम धैर्य्यके साथ प्रतीक्षा करें। यही उचित और न्यायसङ्गत है कि हम प्रतीक्षा करें। उस अवसरकी प्रतीक्षा करें जवतक ये सिपाही, जिन्होंने साम्राज्यकी रक्षाके लिये युद्ध किया है—कोई ऐसा भाव नहीं प्रकट करते जिसे इनके दुष्ट सम्मतिके प्रभावमें आनेके लक्षण प्रतीत हों। यदि अभाग्यवश इनमें ऐसे लक्षण दृष्टिगोचर हों तव वह अवसर उपस्थित होगा कि हम कोई विधान वनावें—किन्तु विचाराधीन विधानके समान भयङ्कर विधानकी वात न सोचें—किन्तु ऐसे उदारभाव-सम्पन्न विधानकी रचना करें जिसका उद्देश्य सिपाहियोंको असन्मार्गावलम्बी दलवालोंके हाथमें पड़नेसे रोकना हो और जिसके द्वारा उनको कर्त्तव्य और सम्मानके सन्मार्गपर आरूढ रक्खा जा सके।

कमेटी आगे और कहती है:—

इसके विपरीत यदि हम ऐसा सोचें कि भारत-रक्षा-विधानके अनुसार क्रान्तिकारी आन्दोलनको दबानेके लिये जो प्रयत्न हुआ है उसने इस आन्दोलनको इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया है कि षड़यन्त्रके पुनः जाग्रत होनेकी सम्भावनाकी बड़ी सरलतासे अवहेलना की जा सकती है। क्या हम ऐसा कह सकते हैं? वे ऐसा नहीं कह सकते। उनके ऐसा न कह सकनेके लिये मैं उनसे विवाद नहीं करना चाहता कि वे ऐसा क्यों नहीं कह सकते? कमेटीका कथन है कि "यदि हम इसको स्पष्ट समझें तो ये इस वातको ठीक रीतिसे नहीं सोच सकते कि क्रान्तिकारी आन्दोलनको दबानेके लिये जो प्रयत्न भारत-रक्षा-विधानके अनुसार हुआ है उसने आन्दोलनको कुचल डाला है।' किन्तु कमेटी-वाले यह भी नहीं कहते कि जो प्रयत्न हुआ है वह आन्दोलनको कुचलनेमें असमर्थ रहा है। यह विचार करना कौन्सिलका कर्त्तव्य है कि क्या भारत-रक्षा-विधानके अनुसार उक्त आन्दोलनको कुचलनेका जो प्रयत्न हुआ है, अन्य परिस्थितियाँ, जो तवसे अवतक उत्पन्न हुई हैं अथवा जिन परिवर्त्तनोंके वीचसे संसार गुजरा है, जो परिवर्त्तन भारतमें हुए हैं; अथवा भारतके लोग जिन परिवर्त्तनोंको निकट भविष्यमें देखनेकी आशा करते हैं, क्या वे परिवर्त्तन और परिस्थितियाँ वस्तुस्थितिमें ऐसा परिवर्त्तन कर सकेंगी जिससे इस देशमें क्रान्तिकारी आन्दोलनका पुनः पल्लवित होना असम्भव हो जायगा? ये धर्मसे ऐसा कहते हैं कि यदि ये स्पष्टतः ऐसा अनुभव करते कि भविष्यमें षड़यन्त्रोंकी सम्भावनाकी आसानीसे उपेक्षा की जा सकती है, तो वे इस

प्रकारके विधानकी रचनाके लिये सिफ़ारिश नहीं करते। अध्यक्ष महोदय! मेरा निवेदन है कि सरकार और कौन्सिल उक्त सम्भावनाओंकी उपेक्षा करनेमें असमर्थ है अतः उसे विधानकी रचनामें हिचक होनी चाहिए।

कमेटीका कथन है "यह हमारा मत नहीं है और इसी आधारपर हमने रिपोर्ट की है।" मुझे कमेटीके विचारके सम्बन्धमें कोई विवाद नहीं है, जो उनके ईमानसे और मतसे शुद्ध विचार है। किन्तु सम्भवतः कमेटीने ग़लतीसे ऐसा विचार किया है। कमेटीने गतकालकी राजनीतिक परिस्थितिका और भावी राजनीतिका, जिसकी विवेचना कमेटीने पर्य्याप्त रूपसे की है, उस सम्बन्धमें रिपोर्टमें कोई उल्लेख नहीं किया है। ऐसा प्रायः होता है। मेरा तात्पर्य्य कमेटीके प्रति असम्मान प्रकट करनेका नहीं है। जिन लोगोंको कुछ घटनाओं और कुछ वर्गवालोंके हितका निर्णय करना होता है, और उस घटनाके सम्बन्धमें परामर्श देना होता है, वे वस्तुस्थितिका उनकी अपेक्षा अधिक सङ्कुचित दृष्टिकोण रखते हैं जिन्होंने समस्त देशकी स्थितिकी पैमाइश की है; जिन्होंने यह विचार किया है कि समय विशेषमें किस उपक्रमका अनुसरण उपादेय है और किसका अनुसरण अनुपादेय है। हाइकोर्टके न्यायाधीश यह सम्मति देनेके बहुत योग्य हो सकते हैं कि अमुक उद्देशकी सिद्धिके लिये अमुक क़ानूनमें क्या परिवर्त्तन या परिवर्द्धन वाञ्छनीय है। किन्तु इतने व्यापक व्यवस्थाकी नीति-निर्धारणके सम्बन्धमें क्या परिवर्त्तन या परिवर्द्धन होना चाहिए—इस सम्बन्धकी राय व्यावहारिक राजनीतिक नेता ही दे सकते हैं। जो विधान इतना व्यापक, इतना गुत्थीदार और इतना कड़ा है ऐसे विधानके लिये सिफ़ारिश करके कमेटीके प्रति उचित सम्मान रखते हुए भी मेरा निवेदन है कि कमेटीने ग़लती की है। मैं ऐसा सोचनेका साहस करता हूँ कि कमेटीको सुखद अपवादकी सम्भावनाकी ओर अधिक प्रवृत्त होना चाहिए था कि उसकी सिद्धि सम्भाव्य है। कमेटीको अपर पक्षकी गम्भीरता और उसकी सिद्धिकी सम्भावनापर अधिक प्रवृत्त नहीं होना चाहिए था।

अध्यक्ष महोदय! कमेटीकी रिपोर्टके एक सौ सतहत्तरवें पैरामें लिखे हुए अंशकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। कमेटीने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है:—'जिस उपक्रमका हम ज़िक्र करेंगे उसके दो भेद हैं। पहला दण्डात्मक अंश है। इसका तात्पर्य्य अपराधियोंको दण्ड दिलाने और उनको अधिक निरापद बनानेका है। दूसरा निरोधात्मक अंश है। इसका तात्पर्य्य षड़यन्त्रके विस्तारको रोकना और अपराधोंका होना बन्द करना है। हम कह सकते हैं कि विधानके दण्डात्मक अंशसे हमको अधिक आशा नहीं है।'

अध्यक्ष महोदय! कमेटीके कथनानुसार कमेटीवाले दण्डात्मक अंशसे अधिक आशा नहीं रखते। अच्छा होता यदि दण्डात्मक अंशकी सिफ़ारिश न की गई होती। अस्तु, उन्हें निरोधात्मक अंशपर निर्भर करना चाहिए और इसीपर कौन्सिल भी विचार कर रही है। अध्यक्ष महोदय! निरोधात्मक अंशकी क्या सिफ़ारिशें हैं, इसपर ज़रा विचार कीजिए। जिन कठिनाइयोंका कमेटीको सामना करना पड़ा है उनके उपचारके लिये उसने ये प्रस्ताव किए हैं। मैं उन उपचारोंमें कुछकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करूँगा। कुछ बातोंमें सबसे बड़ी कठिनाई, जिसका कमेटीको सामना करना पड़ा है, वह पर्य्याप्त प्रमाणकी कमी है।

कमेटी, रिपोर्टकी सोलहवीं अध्यायके एक सौ उनहत्तरवें पैरामें कहती है:—'क्रान्तिकारी और राजद्रोहात्मक आन्दोलन-कर्त्ताओंको पर्य्याप्त रूपमें दण्डित करनेमें ज़ाब्ता फौजदारीकी धाराएँ प्रमाणके अभावमें अपराधको शमन करनेमें पर्य्याप्त नहीं सिद्ध हुई हैं। प्रमाणका अभाव ही एकमात्र साधारण क़ानूनके असफल रहनेका कारण है।'

यदि असफलताका कारण पर्य्याप्त प्रमाणका अभाव है तो उचित यह होता कि पर्य्याप्त प्रमाण प्राप्त करनेके लिये सामग्री इकट्ठी की जाती। वह भी तर्कसङ्गत, न्यायानुकूल और उचित मार्गका अवलम्बन कर प्रमाण एकत्र किया जाता, किन्तु प्रमाणाभावको ही प्रमाण मान लेना, जो बृटिश न्यायकी क्रमागत परम्पराके विरुद्ध है—उचित नहीँ है। क्या यही उत्तम मार्ग है कि कुछ अपराधी दण्ड पानेसे बच जायँ और असंख्य लोगोँकी स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठापर अनुचित प्रमाणको स्वीकृत कर आघात पहुँचाया जाय। जो प्रमाण अभीतक किसी भी बृटिश आन्दोलनके सामने मान्य नहीँ समझा गया है—केवल पर्य्याप्त प्रमाणका अभाव बताकर स्वीकृत नहीँ होना चाहिए चाहे पर्य्याप्त प्रमाणके अभावसे कोई अपराधी भले ही दण्ड पानेसे छूट जाय। भारत ही एकमात्र ऐसा देश नहीँ है जहाँ प्रमाणके अभावमेँ वह व्यक्ति, जिसपर अपराध करनेका सन्देह था, छूट गया हो। ऐसे अन्य भी देश हैँ जहाँ इस प्रकारकी कठिनाइयोँका अनुभव हुआ है। अंग्रेज़ वकील और जूरी लोग प्रमाणपर किए गए किसी भी आक्रमणका बड़ी सतर्कतासे सामना करते हैँ। वे इस आघातको सह नहीँ सकते जिसके द्वारा यह विश्वास दिलाया गया है कि भारत-सरकारकी प्रत्येक प्रजाके साथ न्याय और शुद्ध न्याय किया जायगा। दूसरी कठिनाई, जिसका उल्लेख कमेटीने किया है, वह शस्त्र रखनेकी प्रामाणिकता सिद्ध करनेके सम्बन्धकी है। कमेटी कहती है:—जहाँ कहीँ दण्डनीय लेख, अस्त्र-शस्त्र, काग़ज़ात आदि पाए जाते हैँ, वहाँ ही यह सिद्ध करना कठिन हो जाता है कि यह आपत्तिजनक वस्तु अमुक व्यक्तिके अधिकारमेँ है। यह प्रश्न उस स्थानपर उठता है जहाँ एक ही मकानमेँ सम्मिलित परिवारके लोग एक साथ रहते हैँ, अथवा वह घर या बाग़ जिसका प्रयोग भोजनालय या कुछ नवयुवकोँके मिलनेके काममेँ आता है। कमेटी आगे और कहती है:—'दूसरी कठिनाईका उदाहरण निम्नाङ्कित उस फ़ैसलेसे कुछ अंश उद्धृत करके दिया गया है, जो ढाकाकी दौरा-अदालतके विचारपतिने अदवारी शस्त्र-सम्बन्धी मामलेमेँ दिया है'। मैँ यह अनुमान करनेमेँ कोई आपत्ति नहीँ देखता कि प्राप्त शस्त्र और जो नौजवान भागते हुए देखे गए, उन दोनोँमेँ घनिष्ट सम्बन्ध है, और वह बाग़ उन जवानोँके मिलनेका स्थान है, जहाँ वे सब ग़ैर-क़ानूनी कार्रवाई करनेके लिये इकट्ठा होते हैँ। मैँ यह अनुमान करनेमेँ भी कोई आपत्ति नहीँ समझता कि प्रार्थी इस गिरोहके सदस्य हैँ। किन्तु यह अनुमान करना मैँ आपत्तिसे शून्य नहीँ समझता कि बग़ीचेमेँ छिपाए हुए शस्त्र गोली और बारूदपर प्रत्येक सदस्यका पर्य्याप्त अधिकार था। जबतक यह अनुमान सिद्ध नहीँ किया जाता, प्रार्थीके विरुद्ध अभियोग सिद्ध नहीँ किया जा सकता। प्रार्थीके विरुद्ध ऐसे प्रमाण भी नहीँ हैँ कि वे उस गिरोहके सदस्य हैँ। लखन चौकीदारकी गवाहीसे यह मालूम होता है कि शारदा नामके एक अध्यापक उनके कप्तान थे जो उन्हेँ लाठी चलानेकी शिक्षा देते थे। जो कारण दिए गए हैँ, उनसे मैँ समझता हूँ कि यह सिद्ध नहीँ किया जा सका है कि प्रार्थीके पास पिस्तौलेँ और कारतूस मौजूद थे या उनके अधिकारमेँ थे।

यह अंश ढाकाके दौरा-जजके फ़ैसलेसे उद्धृत किया गया है। पीछे इस फ़ैसलेपर कमेटीकी टिप्पणी है:—

"यह भी सत्य है कि व्यवहारमेँ सायुज्यताके विचारसे प्रमाण आवश्यकतासे अधिक है। उन कठिनाइयोँके सम्बन्धमेँ, जिन्हेँ हमने अनुलक्षित किया है, सम्भव है कि नीति उपयुक्त प्रतीत हो। ऐसे मुक़द्मोँके विचारमेँ जो भावना काम करती है सम्भवतः इससे मिलती जुलती है कि गवाह, चाहे उसकी परीक्षा कितनी ही कड़ी क्योँ न हो, सत्य बयान दे रहा है—ऐसी बहुत कम धारणा है, जब कभी अभियुक्त स्वयं मजिस्ट्रेटके सामने अपराध स्वीकार कर लेता है। यह स्वीकृति उस प्रकारकी होती है, जिसकी गणना भारतीय साक्षी-विधानके अनुकूल है—तो भी अभियुक्तके वकीलके

लिये यह साधारण बात है कि दौरा-अदालतमें जब मुक़दमेका विचार अन्तिम और गम्भीरताके साथ आरम्भ होता है, तो वह अपने मवक्किलका बयान बिल्कुल बदलवा देता है। कुछ भेद करनेके लिये ऐसा किया जाता है। यद्यपि यह प्रथा निर्दोष मानी जाती है, तथापि यदि इसका अस्तित्व है तो इससे स्पष्ट है कि किसी बातको सिद्ध करना कितना कठिन है।

यह क्लिष्ट हो सकता है, यह खेदजनक हो सकता है, यह भी सम्भव है कि कुछ अपराधी दण्डित होनेसे बच जायँ किन्तु, जैसा कि कमेटीने स्वयं अनुभव किया है—सम्भव है कि नीति उपयुक्त सिद्ध हो, यह भी सम्भव है कि उद्धृत व्यवहार भी उपयुक्त व्यवहार सिद्ध हो। तब फिर यह व्यवहार क्यों छोड़ा जा रहा है? इससे क्यों विमुख हुआ जा रहा है? और ऐसे प्रमाणको क्यों अङ्गीकार किया जा रहा है, जो आजतक इङ्गलैण्ड और इस देशमें विचारपतियों और जूरियोंद्वारा मान्य नहीं रहे हैं, जो वैध प्रमाण नहीं माने गए हैं। अतः अध्यक्ष महोदय! मेरा निवेदन है कि इस सम्बन्धकी कमेटीकी सिफ़ारिशें ऐसी नहीं हैं कि सरकार उन्हें माननेके लिये बाध्य हो।

अध्यक्ष महोदय! कुछ और प्रस्तावोंपर ज़रा विस्तारपूर्वक विचार कीजिए। प्रथम भागमें कहा गया है :—यदि सपरिषद् गवर्नरको विश्वास हो जाय कि कथित अपराध समस्त बृटिश भारत अथवा उसके प्रान्त विशेषमें व्याप्त है और सार्वजनिक कल्याणकी दृष्टिसे ऐसे अपराधोंका शीघ्र विचार किया जाना उचित है, तब बड़े लाट भारतके गज़टमें एक सूचना प्रकाशित कर उक्त आशयकी घोषणा कर सकते हैं।' मैं पहले निवेदन कर चुका हूँ कि शीघ्र विचार करानेका प्रश्न इतना गम्भीर, उत्कट और सार्वजनिक हित और न्यायकी दृष्टिसे ऐसे उपक्रमका औचित्य सिद्ध नहीं करता जिसका उद्देश विचार-कालको घटाना है। यह पर्य्याप्त परिहार नहीं है। विशेष विधानके द्वारा भी बिलमें उल्लेख है—'मुक़दमेका विचार महीनोंतक जारी रह सकता है। अनेक गवाह उपस्थित किए जा सकते हैं। इसके विचारके लिये तीन हाइकोर्टके विचारपति आसन ग्रहण करेंगे। ये गवाहका बयान शब्दशः लिखेंगे नहीं, तो भी विचार हाइकोर्टके तीन विचारपति करेंगे, गवाहोंकी परीक्षामें समय लगेगा ही। क्योंकि इसका पुनः विचार नहीं हो सकेगा, अतः उस अभागे व्यक्तिको, जिसको अभाग्यवश अभियुक्त बनना पड़ेगा, अपनी शक्तिके अनुसार सब प्रयत्न करना होगा। उसको आत्मरक्षाके लिये अपनी सारी ताक़त लगा देनी पड़ेगी, बढ़िया-से-बढ़िया वकीलकी सहायता प्राप्त करनेके लिये अपना सर्वस्व लगा देना होगा। अध्यक्ष महोदय! मुझे इसका निश्चय नहीं हो रहा है कि ऐसे अपराधोंके विचारमें साधारणतः जो समय अपेक्षित है क्या वह बहुत छोटा किया जा सकेगा? यही सत्य है कि विचार साधारण प्रथाके अनुकूल नहीं होगा। पहले मजिस्ट्रेटके सामने जाँच होगी, फिर दौरा-जजके समक्ष विचार होगा, अन्तमें हाइकोर्टमें अपील होगी। कुछ समयकी बचत होगी। किन्तु मुझे इसका निश्चय नहीं हो रहा है कि इस प्रकार जो समयकी बचत होगी उसका मूल्य अभियुक्तोंके साथ जल्दबाजीमें अन्याय होनेका जो भय है उसके बराबरका होगा। इसके अतिरिक्त अध्यक्ष महोदय! मेरी समझमें युद्धकालमें, जब कि देशमें दुष्ट भावनाओंके प्रचार होनेकी सम्भावना है, तब सरकार मुक़दमोंके विचारको शीघ्र करानेकी इच्छा प्रकट करेगी। यह सम्भव भी है। किन्तु जब साधारण परिस्थितिका अवसर उपस्थित होगा, और जब युद्ध समाप्त हो चुका होगा, और जब शान्ति पूर्णतः स्थापित हो चुकी होगी, ऐसी परिस्थितिमें मैं नहीं समझता कि शीघ्र विचारकी इच्छा क्यों उत्पन्न होगी? अध्यक्ष महोदय! आपसे मेरी जिज्ञासा है कि आप इसके तात्पर्य्यपर विचार करें। इसका तात्पर्य्य यह है कि अब आप मुक़दमेकी विचाररूपी

मोटरको तीव्र गतिसे चलाएँगे तो इस मोटरकी दौड़ानमेँ सम्भव है कोई ग़रीब, निरपराध आत्मा मोटरके नीचे दबकर कुचल जाय। उस ग़रीबके तो जीवनका अन्त ही हो जायगा। उसकी स्वतन्त्रता और अन्य जो उसकी प्राणोँसे प्यारी वस्तुएँ हैँ, नष्ट हो जायँगी। इससे राज्यको कोई लाभ नहीँ होगा तथा सार्वजनिक हितको भी कोई लाभ नहीँ पहुँचेगा। किसी आदमीके मुक़दमेका विचार दो महीनेमेँ समाप्त हो गया इसका असर न राज्यपर होगा न प्रजापर। किन्तु इसका तात्पर्य्य उस व्यक्तिके अपने सभी प्रिय वस्तुओँका विनाश है जो इसका शिकार बनेगा। मैँ प्रत्येक सदस्यसे जाननेकी इच्छा प्रकट करता हूँ कि यदि वह स्वयं इस विधानके शिकार बनाए जायँ तब उस परिस्थितिमेँ किस दृष्टिकोणसे इस विषयपर विचार करेँगे? मेरा निवेदन है कि मुक़दमेके शीघ्र विचार होनेकी सुविधाके लिये विधान बननेकी अनुमति कौन्सिल न प्रकट करे जिसमेँ एक हमारे भाईकी अपरिहार्य्य हानि होनेकी सम्भावना है।

अध्यक्ष महोदय!

इसका निश्चय कैसे किया जा सकता है कि अमुक क्षेत्रमेँ विधानके प्रथम भागके प्रयोगके लिये प्रथम कारण उपस्थित है?

अध्यक्ष बड़े लाटः—सपषिद् गवर्नर इस बातकी घोषणा करेँगे कि अमुक तथा कथित अपराध अमुक प्रान्तमेँ व्याप्त हो रहा है। सपरिषद् गवर्नर किसी स्थान विशेषके सङ्कुचित क्षेत्रके अतिरिक्त सुविशाल समस्त भारतका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीँ रख सकते। प्रान्तीय सरकारेँ गवर्नरको ऐसी सूचना दिया करेँगी कि उनके प्रान्तमेँ तथाकथित अपराध व्यापक रूप धारण कर रहा है, जहाँपर विशेष विधानके प्रयोगकी आवश्यकता है। स्थानीय सरकार या प्रान्तीय सरकारको इसकी सूचना पुलीस-विभाग और उसके अधीन विभागोँसे प्राप्त होगी। अध्यक्ष महोदय! गत कालमेँ इस देशमेँ क्या हुआ है, मैँ जानता हूँ। जब कि हम उन दुष्ट भावनाओँकी निन्दा करते हैँ, जिसके कुछ नौजवान शिकार बने हैँ, जब हम इसकी निन्दा करते हैँ कुछ नौजवान भ्रमवश क्रान्तिकारी विचार और प्रयोगका अवलम्बन करते हैँ, जब कि हम उनके किए हुए अपराधोँकी निन्दा करते हैँ, तब हम यह नहीँ भूल सकते कि इस देशमेँ पुलीसके कारनामे पक्षपातहीन नहीँ हैँ। कुछ स्थानोँमेँ पिछले दिनोँ पुलीस उग्र अपराधोँके लिये दोषी रही है, जिसपर अधिक विस्तारके साथ मैँ विचार करना नहीँ चाहता। ऐसे अपराधोँकी सूचना इस देशकी सरकारको और साथ ही इङ्गलैण्डकी पार्लियामेण्टको भी दी गई है। मेरा यह कहनेका तात्पर्य्य नहीँ है कि उन घटनाओँकी पुनरावृत्ति होगी। मुझे आशा है कि उनकी आवृत्ति नहीँ होगी। तो क्या उनकी सम्भावनासे आँख बन्द कर लेना उचित है, और ऐसा सोचना उचित है कि कभी-कभी ऐसी दुष्ट चालेँ यह सिद्ध करनेके लिये कि देशके अमुक भागमेँ अमुक प्रकारके अपराधकी वृद्धि हो रही है—नहीँ चली जायँगी। मेरा यह कहना नहीँ है कि ऐसा होगा ही—मेरी आशा है कि ऐसा नहीँ होगा—किन्तु मैँ कौन्सिल और गवर्नरसे ऐसी दुष्ट चालोँको, जो चली गई हैँ, उसका स्मरण करनेका अनुरोध करूँगा। इसका परिणाम क्या होगा? प्रथमतः क्षेत्रका निश्चय होगा। उस क्षेत्रमेँ प्रस्तावित बिलकी चार धाराके अनुसार, जिस क्षेत्रमेँ लोकल गवर्नमेण्टकी रायमेँ तथाकथित अपराधका विचार हो सकेगा—जिसकी सुविधा विधानके इस विभागमेँ दी गई है—लोकल गवर्नमेण्ट सरकारी किसी भी कर्मचारीको, जिसको वह उपयुक्त समझेगी, मुक़दमेके विचारके लिये नियुक्त करेगी। यह कर्मचारी ऐसे व्यक्तिके विरुद्ध चीफ़ जस्टिस (प्रधान विचारपति) के पास लिखित सूचना देगा।

अध्यक्ष महोदय! उक्त धाराका अभिप्राय 'उस स्थानकी सरकारकी राय है'। मेरा प्रश्न है कि स्थानीय सरकार किस प्रकार यह राय क़ायम कर सकती है? उसको निरापद और सन्तोषजनक निश्चयपर पहुँचनेके पूर्व अपने समक्ष पर्य्याप्त प्रमाण उपस्थित

करने होँगे। तब कहीँ वह यह निश्चय कर सकेगी कि अमुक व्यक्ति तथाकथित अपराधका अपराधी है। वह न्याय-कालमेँ अपनी रक्षा करनेकी सुविधासे वञ्चित किया जाता है। उसको साधारण विधानके अनुसार प्राप्त सुविधाएँ नहीँ दी जायँगी। मैँ यह जानना चाहता हूँ कि कितने सरकारी सदस्य ऐसे प्रश्नके निर्णय करनेका दायित्व स्वीकार करना चाहते हैँ। मेरी धारणा है कि अधिकांश सदस्य अपनेको ग़लत निर्णयपर पहुँचनेमेँ रोकनेसे असमर्थ होँगे जो इस विधानके ठीक-ठीक प्रयोगके लिये अनिवार्य्य है। और सुनिए। स्थानीय सरकारकी राय है कि किसी व्यक्तिका विचार, जो तथाकथित अपराधका अपराधी है—इस भागमेँ जो शर्त्तेँ दी गई हैँ उनके अनुसार वह व्यक्ति मुक़दमेके विचारकी सुविधाओँसे वञ्चित किया जा सकता है—प्रान्तीय सरकार किसी भी सरकारी कर्मचारीको चीफ़ जस्टिसके पास उस व्यक्तिके विरुद्ध लिखित सूचना देनेके लिये आदेश कर सकती है। इसके पश्चात् क्या होगा कि उस व्यक्तिके मुक़दमेका विचार प्रस्तावित विधानकी शर्त्तोँके अनुसार होगा। विचारपतिके समक्ष उसको यह सिद्ध करनेकी सुविधा नहीँ दी जायगी कि उसके मुक़दमेका विचार विशेष क़ानूनके अनुसार नहीँ होना चाहिए। उसका मुँह वन्द कर दिया जायगा। प्रान्तीय सरकारकी सम्मति है कि उस व्यक्तिके मुक़दमेका विचार विशेष विधानके अनुसार होना चाहिए। चीफ़ जस्टिसको अधिकार नहीँ है कि वह उस व्यक्तिसे यह कारण पूछेँ कि क्योँ न उसके मुक़दमेका विचार साधारण विधानके अनुसार किया जाय, और क्योँ न उसका विचार विशेष विधानके अनुसार हो? चीफ़ जस्टिस अपनी कोई सम्मति नहीँ दे सकते। उनको प्रस्तावित विलमेँ दी हुई शर्त्तोँके अनुसार ही उस व्यक्तिके मुक़दमेका विचार करना होगा।

अध्यक्ष महोदय! वह कौनसा आधार होगा जिसपर इस प्रकारकी आज्ञा दी जायगी? चौथी धाराकी उपधारा तीनमेँ लिखा है:—

'सूचनामेँ अपराध लगानेकी कार्रवाई रहेगी, अभियुक्तका निवासस्थान और उसके व्यवसायका भी ज़िक्र रहेगा।'

माननीय श्री मुडीमैन:—मैँ अध्यक्ष महोदयका ध्यान उस विषयकी ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ कि विलको निर्वाचित समितिके अधीन करनेके प्रस्तावपर विवाद हो रहा है—विलकी साधारण नीतिपर निर्वाचित समितिमेँ ही वहस होनी चाहिए। किन्तु मुझे प्रतीत होता है कि माननीय पण्डितजी प्रत्येक धारापर अलग-अलग विचार कर रहे हैँ।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय:—महोदय! मैँ आपसे क्षमा चाहता हूँ। क्या मैँ इसकी व्याख्या करूँ?

अध्यक्ष वड़े लाट:—विलके विस्तृत रूपपर विचार करनेके लिये आप स्वतन्त्र नहीँ हैँ।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय:—मैँ क्षमा चाहता हूँ, मैँ अपने दृष्टिकोणसे अध्यक्ष महोदयके विचारके लिये इसकी व्याख्या करना चाहता हूँ।

अध्यक्ष वड़े लाट:—विवादके कुछ नियम और उपनियम हैँ पण्डितजी! जिनका ऐसे अवसरपर पालन किया जाता है। और विशेषतः इस प्रस्तावपर विलके केवल मुख्य नीतिपर ही वहस होनी चाहिए, पश्चात् आप विल की प्रत्येक धारापर विस्तारपूर्वक विवाद कर सकेँगे। मैँ समझता हूँ कि आप इस असेम्वलीके धैर्य्य और सुविधाओँके अन्य मार्गका अवलम्बन करके इस मध्याहोत्तर कालका दुरुपयोग कर रहे हैँ।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय:—अध्यक्ष महोदय! मुझे दुःख है कि आप ऐसा समझते हैँ कि मैँ इस कौन्सिलकी सुविधा और धैर्य्यका दुरुपयोग कर रहा हूँ।

मैँ समझता हूँ कि मैँ अपने कर्त्तव्यका पालन कर रहा हूँ। मेरा निवेदन आपके विचारके लिये

सामग्री उपस्थित करनेका था। अस्तु, यदि अध्यक्ष महोदयकी इच्छा है कि यहाँ एक आवश्यक विल विचारार्थ उपस्थित है जिसको निर्वाचित समितिके अधीन किया जाना आवश्यक है, अतः मैं अपना वक्तव्य समाप्त कर दूँ। कौन्सिलके समक्ष प्रस्तावके उपस्थित करनेमें एक विशेष विधानका उपयोग किया गया है।

इस प्रस्तावपर मैं एक ही बार बोल सकता हूँ। अतएव मैं ऐसी चेष्टा कर रहा हूँ कि यह सिद्ध करनेके लिये जितना तर्क उपस्थित कर सकूँ करूँ, क्योंकि प्रस्तावित बिलको निर्वाचित समितिको सौंपनेका प्रस्ताव स्वीकृत हो जाना चाहिए, अथवा कौन्सिल इस बिलको ही अस्वीकृत कर दे। अध्यक्ष महोदय! मेरा निवेदन है कि अपने पक्षके समर्थनमें जितने सम्भव तर्क हैं उन्हें उपस्थित करनेका जो अधिकार मुझे प्राप्त है उसका उपयोग करूँ, किन्तु जब अध्यक्ष महोदयके विचारसे मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए तो मैं अब समाप्त कर दूँगा।

माननीय मुडीमैनः—मेरा एकमात्र तात्पर्य्य यह था कि माननीय पण्डितजी प्रत्येक शर्त्तको लेकर पृथक्-पृथक् विचार कर रहे हैं। मेरा यह प्रस्ताव कदापि नहीं था कि माननीय सदस्य बिलकी साधारण शर्त्तोंपर विचार न करें।

अध्यक्ष बड़े लाटः—किसीने ऐसा प्रस्ताव नहीं किया है कि माननीय सदस्य बिलकी साधारण नीतिपर विचार न उपस्थित करें। किन्तु, जैसा कि कौन्सिलके मन्त्रीने बताया है कि आप बिलकी प्रत्येक शर्त्तोंपर अलग-अलग विचार कर रहे हैं। मेरी आशा है कि माननीय पण्डितजी आदेशका पालन करेंगे और बिलकी साधारण नीतिपर विचार करेंगे, न कि उसके तफ़सीलपर अलग-अलग विस्तार-पूर्वक विवाद करेंगे।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयः—मैं अध्यक्षके आदेशको ससम्मान स्वीकार करता हूँ। मैं बिलकी शर्त्तोंपर उसी अंशतक विचार करूँगा जहाँतक उनका सम्बन्ध साधारण सिद्धान्त या नीतिसे है। मैं यही करूँगा और यह करनेमें बिलकी शर्त्तोंको उद्धृत करूँगा—केवल उतने ही तफ़सीलतक और उसी उद्देशसे जहाँतक उनका सम्बन्ध साधारण नीतिसे है।

अब दूसरी बात यह है:—अध्यक्ष महोदय! क्या मुझे आगे बोलनेकी आज्ञा है?

अध्यक्ष बड़े लाटः—कहिए।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयः—दूसरी बात, जिस ओर मैं ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ जिससे सिद्धान्तके दूसरे पहलूका सम्बन्ध है, उसका ज़िक्र छठीं धारामें आया है।

छठीं धाराका अभिप्राय है:—'अदालतकी बैठक पूरे मुक़दमेके विचारके लिये अथवा उसके किसी एक भागके विचारके लिये हो सकती है। इसके लिये स्थान, प्रान्तका वह स्थान हो सकता है जो उस प्रकारके मुक़दमेके विचारके लिये अभीष्ट हो, बशर्त्ते कि सपरिषद् गवर्नर इस बातसे सन्तुष्ट हों कि न्यायकी दृष्टिसे इस नीतिका उपयोग उचित है। यह निश्चय होनेपर सपरिषद् गवर्नर भारतके सरकारी गज़टमें एक सूचना इस आदेशकी प्रकाशित करावेंगे कि अमुक मुक़दमेके पूरे अथवा उसके किसी एक अंशपर विचार करनेके लिये अदालतकी बैठक अमुक स्थानपर होगी। जो स्थान उनके विचारसे इस कार्य्यके लिये उपयुक्त सिद्ध होगा उसका निर्देश भी सूचनामें रहेगा।'

अध्यक्ष महोदय! अब मेरा निवेदन है कि न्यायके सिद्धान्तोंमेंसे एक यह है कि किसी व्यक्तिके मुक़दमेका विचार हाइकोर्टद्वारा अदालतके साधारण बैठकवाले स्थानपर ही हो सकता है—तबतक जबतक कि हाईकोर्ट स्वयं अपनी बैठकके लिये दूसरे स्थानका निश्चय नहीं करती। मेरा निवेदन है कि जो शर्त्त सरकारको यह निश्चय करनेका अधिकार देती है कि वह मुक़दमेका विचार अमुक स्थानपर हो सकता है—वह

ज़ाब्ता फ़ौजदारीके सिद्धान्तका उल्लङ्घन और अवहेलना करनेवाली है।

अध्यक्ष महोदय! अब मैं एक दूसरे आवश्यक सिद्धान्तपर आता हूँ, जिसका भी वर्त्तमान विधानसे उल्लङ्घन होता है। मैं इसके लिये बहुत दुखी हूँगा यदि मैं अपनी आलोचनाद्वारा यह भाव प्रकट करूँ कि मैं अध्यक्षके आदेशका पालन नहीं कर रहा हूँ। मैं सिद्धान्त-सम्बन्धी प्रश्नकी सीमाके बाहर न जानेका प्रयत्न कर रहा हूँ। मुझे आशा है कि अध्यक्ष महोदय मुझपर विश्वास करेंगे, जहाँतक विस्तारका सम्बन्ध है, मैं एक शब्द भी अधिक कहना न चाहूँगा, सिवाय इसके कि जहाँतक उनका मुख्य विषयसे सम्बन्ध है, उसी हदतक मैं उनका ज़िक्र करूँगा। अध्यक्ष महोदय :—दसवीं धारामें कहा गया है—

"अदालतको एक स्मरण-लेख-पत्र (याददाश्त) तैयार करना होगा। इसमें जितने गवाह गुज़रे होंगे, उनके बयानका सङ्क्षिप्त विवरण होगा। मुक़दमेका विचार स्थगित करनेके सम्बन्धमें, जिसके लिये नवीं धारामें शर्त्तें दी हुई हैं, उसके अनुसार मुक़दमेका विचार अन्य कारणोंसे तबतक स्थगित नहीं किया जा सकता जबतक उसका स्थगित किया जाना न्यायके हितकी दृष्टिसे आवश्यक न प्रतीत हो।"

अध्यक्ष महोदय! गवाहोंके बयानके लिखे जानेके सम्बन्धमें एक अत्यन्त आवश्यक सिद्धान्त यह है कि अभियुक्त अथवा गुज़रनेवाले गवाहोंद्वारा प्रयुक्त शब्दको तत्सम रूपमें लिखा जाना चाहिए और वह मुक़दमेके विचारके समय अदालतके सामने उपस्थित रहना चाहिए। इधर कई वर्षोंतक क़ानूनका व्यवसाय करनेका सम्मान मुझे प्राप्त रहा है। अध्यक्ष महोदय! मैं जानता हूँ कि अदालत अभियुक्त अथवा गवाहोंके प्रयुक्त तत्सम शब्दको लिखनेमें कितना सतर्क और सावधान रहती है। युक्तप्रान्तमें यह व्यवहार इतने ज़ोरोंपर है कि गवाहोंके बयान और अभियुक्तके बयानके काग़ज़ात, जो देशी भाषामें होता है—उसकी शब्दावली-पर बड़ा ध्यान दिया जाता है। कभी-कभी एक शब्दसे बड़ा भेद हो जाता है। विशेषकर फ़ौजदारीके मामलोंमें। ग़लत बयान लिखे जानेका तात्पर्य्य किसी अभियुक्तके लिये उसकी स्वतन्त्रताका अपहरण हो सकता है। जैसे—'उसने····अपनी जानकी रक्षामें अपनेको असमर्थ पाकर····" अतएव, अध्यक्ष महोदय! मेरा निवेदन है कि वर्त्तमान नीतिको छोड़कर प्रस्तावित विधानका आरम्भ ख़तरेसे खाली नहीं है। अध्यक्ष महोदय! मेरा निवेदन है और उचित है कि कोई व्यक्ति, जिसपर भविष्यमें ऐसा गम्भीर अभियोग लगाया जानेवाला है—उसको यह अधिकार प्राप्त हो कि उसकी स्वतन्त्रता और जीवनपर जो आरोप किया गया है उसके विरुद्ध कुछ कह सके और उसके कथनको मुक़दमेके काग़ज़ातमें स्थान दिया जाय। अध्यक्ष महोदय! कभी-कभी विचारपतिकी स्मरणशक्ति निर्बल भी पाई गई है। मैं ऐसे विचारपतियोंको जानता हूँ, जो सुने हुए बयानका अधिकांश स्मरण रखते हैं—किन्तु इस प्रकार उत्तम-से-उत्तम कोटिके विचारपति बयानका बहुत कम अंश स्मरण रखते हैं। मैं नहीं समझता कि कोई भी विचारपति इसकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेनेके लिये तैयार होगा कि किसी बहुकालतक चलनेवाले दीर्घकालीन मुक़दमेके गवाहोंके बयानके उत्तम अंशको वह सदा अपनी स्मरण-शक्तिमें ताज़ा रख सकेगा। अतः इस दशामें गवाहद्वारा प्रयुक्त ठीक शब्दावलीकी ही ग़लती नहीं होगी, किन्तु साक्षीके बयानके लिखित काग़ज़ात न होनेसे अन्य भयङ्कर भूलोंके होनेकी भी सम्भावना है जो फ़ौजदारी मुक़दमेकी जान है। मेरा निवेदन है कि यहाँ नीति और सिद्धान्तमें परिवर्त्तन होने जा रहा है जिसपर पुनः विचार होना उचित है।

एक प्रधान शर्त्त और है। इसमें भी एक नीति अन्तर्निहित है। इसका विचार सत्रहवीं धारामें है। सत्रहवीं धाराका तात्पर्य्य यह है :—'अदालतका निर्णय अन्तिम और अखण्ड होना चाहिए। ज़ाब्ता

फ़ौजदारीकी धाराओंकी अवहेलना कर, अथवा अन्य किसी घोषणा आदिका, चाहे वह बड़े-से-बड़े अधिकारी द्वारा ही क्यों न प्रयुक्त हुई हो, और जिसको क़ानूनका स्वरूप प्राप्त हो गया हो—उसकी भी अवहेलना कर, इस अदालतके फ़ैसले अथवा इसके द्वारा दिए गए दण्डके विरुद्ध अपील किसी भी अदालतमें नहीं हो सकती। किसी हाइकोर्टको यह अधिकार नहीं है कि वह ऐसे अदालतके निर्णयपर पुनर्विचार कर सके, अथवा इस प्रकारके किसी मुक़दमेको दूसरी अदालतद्वारा विचार किए जानेकी अनुमति दे सके।'

अध्यक्ष महोदय! मेरा निवेदन है कि यह उस नीतिमें एक गम्भीर परिवर्त्तन करनेका प्रश्न है जो आजतक भारी-से-भारी अपराधोंके विचारके लिये वर्त्तमान साधारण विधानोंमें मौजूद है। मुक़दमेके विचार होनेके पूर्व मजिस्ट्रेटद्वारा उसकी जाँच और पुनः अपील करनेका अधिकार ये दोनों अभियुक्तके लिये बड़ी आवश्यक सुविधाएँ और आत्मरक्षाके सहारे हैं। अन्य लोगोंकी भाँति विचारपतियोंसे भी भूल हो जानेकी सम्भावना है। यह सम्भव है कि दो या कभी-कभी तीन विचारपति, जो एक साथ मुक़दमेके विचारके लिये बैठें और इन्हींका विचार प्रथम और अन्तिम दोनों हो, एक गवाहीपर आवश्यकतासे अधिक महत्त्व दें जो कि उन्हें नहीं करना चाहिए—और कुछ प्रमाण जिनपर महत्त्व देना चाहिए, उनकी ये उपेक्षा कर दें। सम्भव है कि उनका निर्णय ग़लत आधारपर अवलम्बित हो। जहाँ मनुष्य-जीवनका प्रश्न उपस्थित है, जहाँ मनुष्यकी स्वतन्त्रता और सम्मानका प्रश्न उपस्थित है, ऐसी दशामें क्या यह उचित है कि वह व्यक्ति अपने मुक़दमेसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रमाणोंको भी ऐसी अदालत अथवा किसी दो विचारपतियोंके समक्ष उपस्थित करनेसे वञ्चित किया जाय—जो ऐसे मुक़दमेके विचारके लिये अनुकूल विचारसे दूर हों। मेरा निवेदन है कि प्रस्तावमें मुक़दमेके पुनर्विचारके अधिकारसे अभियुक्तको वञ्चित करके साधारण विधानसे महान् अन्तर उपस्थित किया गया है।

दूसरा आवश्यक सिद्धान्त अठारहवीं धारामें अन्तर्निहित है। अठारहवीं धाराको क़ानूनका स्वरूप प्रदान करनेका तात्पर्य्य होगा—ऐसे वक्तव्यको विधान बनाना जो अभीतक गवाही-सम्बन्धी विधानमें नहीं है। उसमें जो शर्त्त है वह यह है :—'जब किसी व्यक्तिका बयान मजिस्ट्रेटद्वारा लिखा जाय, और ऐसा बयान जब पढ़कर उस व्यक्तिको सुना दिया जाय और उसकी व्याख्या भी कर दी जाय और उसपर बयान देनेवालेका हस्ताक्षर भी हो जाय, अथवा किसी व्यक्तिका बयान अदालतके समक्ष लिखा गया हो, किन्तु ऐसे व्यक्तिसे जिरह न हुई हो—वर्त्तमान समयमें साक्षी-विधानके अनुसार इसकी अनुमति नहीं है—ऐसे वक्तव्यको अदालत लिख ले, यदि बयान देनेवाला मर गया है, अथवा लापता है, अथवा बयान देनेमें असमर्थ है, और यदि अदालतकी यह राय हो कि मृत्यु अथवा लापता होना, अथवा बयान देनेकी अयोग्यता, यह सब अभियुक्तके लाभकी दृष्टिसे हुआ है।' अभीतक क़ानूनसम्मत यह बात रही है कि अभियुक्त अपने विरुद्ध गवाही देनेवाले व्यक्तिसे जिरह करे। यदि यह अवसर प्राप्त न हो, तब वह बयान अभियुक्तके विरुद्ध प्रयुक्त नहीं होना चाहिए। जैसा कि मेरे मित्र श्री जिन्नाने बताया है कि इससे नया मुक़दमा खड़ा होगा और इससे अन्याय होनेके नए ख़तरे उपस्थित होंगे। साक्षी-विधानकी एक सौ चवालीसवीं धाराके अनुसार जो प्रमाण उपस्थित किया जाना चाहिए, उपस्थित किया गया है तो उस व्यक्तिके विरुद्ध एक भ्रमात्मक धारणा बन जायगी जिसने उसे उपस्थित नहीं किया है अथवा जिसके हितके लिये वे प्रमाण उपस्थित किए जानेसे रोक रक्खे गए हैं। यदि अदालतको यह निश्चय हो जाय कि अभियुक्त अथवा अभियुक्त पैरवीकार उस प्रमाणके लुप्त करनेमें सहायक रहा है तो वह उस व्यक्तिके विरुद्ध अनुमान करेगी। अदालत

इस वातपर विचार कर सकती है, किन्तु मेरा निवेदन है कि उस वक्तव्यको स्वीकार करना, जिसकी सत्यताकी परीक्षाके लिये अभियुक्तको अवसर नहीँ दिया गया है, ख़तरेसे खाली नहीँ होगा। कोई व्यक्ति किसीके विरुद्ध शत्रुता अथवा किसी अल्प असद्भावसे प्रेरित होकर बयान दे सकता है अथवा अभियुक्तके किसी शत्रुके प्रभावसे ऐसा कर सकता है, अथवा उन व्यक्तियोँकी मददसे ऐसा बयान दिलाया जा सकता है जिनको विश्वास है कि ऐसे बयानपर जिरह नहीँ हो सकती, ऐसा व्यक्ति लापता हो सकता है अथवा लापता किया जा सकता है। ऐसे प्रमाण दिए जा सकते हैँ जिससे अदालतको सन्तुष्ट किया जा सके कि अभियुक्तकी हितकी दृष्टिसे वह व्यक्ति लापता कर दिया गया है, और ऐसी दशामेँ वह बयान ही प्रमाण हो सकता है और अभियुक्तके लिये विनाशकारी भी हो सकता है। अध्यक्ष महोदय! मेरा निवेदन है कि अभियुक्तके लिये ऐसी दशामेँ अधिक भय उपस्थित है। मेरा निवेदन है कि हमको सिद्धान्तपर अटल रहना चाहिए कि एक व्यक्ति, जिसके विरुद्ध स्थान विशेषका प्रमाण दिया जा रहा है, उसको यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह बयान देनेवाले व्यक्तिसे जिरह कर सके और उसके बयानकी सत्यताकी परीक्षा कर सके। उस सिद्धान्तसे प्रस्तावित विलगाव ग़लत है।

अब मैँ विलके दूसरे भागपर विचार करूँगा। यह अंश प्रथम भागसे कहीँ अधिक आपत्तिजनक है। इसमेँ जो नीति अन्तर्हित है वह ऐसी है कि मेरा निवेदन है कि सरकार उन्हेँ अस्वीकृत कर दे। इस भागमेँ निरोधात्मक उपक्रमोँका वर्णन है। 'यदि बड़े लाटको यह निश्चय हो जाय कि उनकी रायमेँ आन्दोलनसे राज्यके विरुद्ध अपराधोँके होनेकी सम्भावना है अथवा वैसे अपराधोँके समस्त बृटिश भारतमेँ प्रचलित होनेकी सम्भावना है तो ऐसी दशामेँ बड़े लाट भारतके गज़टमेँ उस आशयकी सूचना प्रकाशित करा देँ, फिर विलमेँ वर्णित शर्त्तोँका उस प्रदेशविशेषके लिये प्रयोग आरम्भ हो जायगा। यह हो चुकनेपर, यदि प्रान्तीय सरकारकी रायमेँ इस धारणाके लिये तर्कसङ्गत आधार है, जिनपर विश्वास किया जा सकता है कि कोई व्यक्ति उस क्षेत्रमेँ किसी आन्दोलनमेँ विधानात्मक कार्य्यका करनेवाला है—जिसके स्वरूपका वर्णन वीसवीँ धारामेँ आया है, तो प्रान्तीय सरकार उससे सम्बन्ध रखनेवाले घोषणाके उस अंशको लिखित आज्ञाके रूपमेँ प्रचार कर सकती है। सव आज्ञाएँ या उसके कुछ अंशका प्रयोग हो सकता है।' अभीतक नीति यही रही है जैसा कि ज़ाब्ता फ़ौजदारीमेँ लिखा है कि यदि सरकारको किसी व्यक्तिके आचरणपर सन्देह करनेका कारण है तो उसको सूचनाद्वारा उन कारणोँको उपस्थित करनेके लिये आवाहित किया जाता है कि क्योँ न वह अच्छी चाल-चलनका विश्वास दिलानेके लिये ज़मानत दे। उस व्यक्तिके विरुद्ध पुलीस-विभागके सुपरिण्टेण्डेण्ट मुक़दमा चलायँगे, या ज़िलाधीश चलायँगे, अथवा कोई अन्य व्यक्ति चलावेगा, तव क़ानूनके अनुसार मजिस्ट्रेट उस व्यक्तिको अपने समक्ष उपस्थित होनेके लिये आवाहित करेँगे। पश्चात् उस व्यक्तिके विरुद्ध जितने प्रमाण उपस्थित किए जायँ उसको लिखेँगे। यह हो चुकनेपर इन प्रमाणोँके विरुद्ध प्रमाण उपस्थित करनेके लिये उस व्यक्तिसे मजिस्ट्रेट कहेँगे, तव अपना निर्णय देँगे। मजिस्ट्रेट जैसा उचित समझेँ, चाहे उस व्यक्तिको वन्धनमेँ डालना चाहेँ अथवा ज़मानत दाख़िल करनेके लिये कहना चाहेँ, सभी कुछ कर सकते हैँ। मजिस्ट्रेटके मुक़दमेकी कार्रवाई कर चुकनेपर अभियुक्तको अवसर दिया जाता है कि वह किसी बड़ी अदालतद्वारा मजिस्ट्रेटके निर्णयपर पुनः निर्णय करावे। इन सुविधाओँका प्रस्तावित विधानद्वारा अपहरण किया जा रहा है। इस प्रकारके न्याय-सम्बन्धी विचारको प्रबन्धकारिणी सरकारकी सम्मतिका रूप दिया जा रहा है। किस प्रकार इस

विधिसे अन्याय होनेकी सम्भावना है—मैं एक उदाहरण उपस्थित कर बताना चाहता हूँ। कुछ साल हुए कि श्री तिलकसे एक मजिस्ट्रेटने ज़मानत माँगी थी। श्री तिलकने इस आज्ञाके विरुद्ध हाइकोर्टमें पुनर्विचारके लिये प्रार्थना की और हाइकोर्टने मजिस्ट्रेटके विचारपर पुनः विचार किया। हाइकोर्टने मजिस्ट्रेटकी आज्ञाको रद्द कर श्री तिलकको स्वतन्त्र कर दिया। अब, जब प्रस्तावित विधानका प्रयोग होगा और यदि लोकल गवर्नमेण्टकी रायमें कोई व्यक्ति श्री तिलककी स्थितिका होगा तब उस व्यक्तिका भाग्य बन्धनमें आ जायगा—उस व्यक्तिको हाइकोर्ट जानेका अवसर नहीं मिलेगा। इस सम्बन्धमें प्रान्तीय सरकारकी राय ही क़ानूनका काम करेगी। वह उस व्यक्तिको अपनी ग़लत धारणाके आधारपर स्वतन्त्र रहनेसे रोक देगी और उस व्यक्तिको वैध विधिसे अपने मुक़दमेका पुनर्विचार भी नहीं कराने देगी। अध्यक्ष महोदय! मेरा निवेदन है कि यह परिवर्त्तन सिद्धान्तको न्याय पक्षसे अन्याय पक्षकी ओर ले जानेवाला है। अतः बिलसे इसका निराकरण होना चाहिए। बिल नये और आपत्तिजनक सिद्धान्तसे कण्टकित है। इस बिलसे लोकल गवर्नमेण्टको यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह सहसा किसी व्यक्तिको अनिष्ट आचरणवाला घोषित कर दे। एक बार इस रायके क़ायम हो जानेपर उस व्यक्तिकी स्वतन्त्रताका अपहरण हो जायगा जो कि वर्त्तमान विधानके अनुसार केवल न्याय-विभागद्वारा ही हो सकता है। यह कर चुकनेपर लोकल गवर्नमेण्ट इस मुक़दमेको जाँच करनेवाले अधिकारीको सौंपती है। इस अधिकारीका काम मुक़दमेकी जाँच करना और जाँचसे जो कुछ मालूम हो उसकी रिपोर्ट लोकल सरकारको देना है कि सरकारकी आज्ञा शुद्ध है या अशुद्ध। अध्यक्ष महोदय! मेरा निवेदन है कि यह कार्य्य घोड़ेके आगे गाड़ी रखनेके बराबर है। यह विधान अक्षरशः असङ्गत है। उचित मार्ग तो यह है कि उस व्यक्तिको, जिसके विरुद्ध आज्ञा जारी की गई है, आत्मरक्षाके लिये अवसर दिया जाय। इस विधानके अनुसार आप उस व्यक्तिके विरुद्ध ऐसा हुक्म जारी करने जा रहे हैं जिसके द्वारा उस व्यक्तिका आचरण कलङ्कित किया जायगा और उसकी स्वतन्त्रताका अपहरण किया जायगा। यह सब हो चुकनेपर उस व्यक्तिका मुक़दमा जाँच करनेवाले अधिकारीको जाँच करने, विचार करने और प्रयुक्त अभियोगकी सत्यता और असत्यताकी परीक्षाकी रिपोर्ट देनेकी कार्रवाई की जायगी। ऐसा विचार करनेवाले कौन अधिकारी होंगे? जब कि उस व्यक्तिके विरुद्ध इकीसवीं धाराके अनुसार लोकल सरकारकी आज्ञा जारी हो चुकी है। मेरा अनुमान है कि ऐसी सरकार, जो आदेश करनेवाली है, उसको भी अपने विचारके आधारपर कोई कार्रवाई करनेका अधिकार नहीं है, अथवा ऐसी सरकार मुक़दमेको जाँच करनेवाले अधिकारीको सौंपनेपर, जाँच करनेवाले अधिकारियोंकी नियुक्ति भी इसी विधानके अनुसार होगी। ये अधिकारी अपने लिखित वक्तव्यमें स्पष्टतः उन आधारोंका निर्देश करेंगे जिन आधारोंको स्पष्ट करना सरकारकी दृष्टिसे आवश्यक और वाञ्छनीय होगा। जाँच करनेवाले अधिकारीके समक्ष सरकार उन सब सामग्रियाँ और परिस्थितियोंको उपस्थित करेगी जो उसकी कार्रवाईके समर्थनके लिये उसके पास होंगी। पश्चात् जाँच करनेवाले अधिकारी बन्द कमरेमें जाँच करना आरम्भ करेंगे। यह भी स्थापित सिद्धान्तसे परिवर्त्तन ही है। यह कार्रवाई सरकारी रायको सिद्ध करनेकी है जो उसने किसी व्यक्तिके विरुद्ध क़ायम की है और जिसके विरुद्ध उसने आज्ञा भी जारी की है। इस कार्रवाईद्वारा उन सामग्रियाँ और परिस्थितियोंका निश्चय किया जायगा, जिनके आधारपर लोकल सरकारने किसी व्यक्तिके विरुद्ध अपनी राय क़ायम की है। ये अधिकारी प्रत्येक मामलेमें अभियुक्तकी अपनी कार्रवाईके कुछ अवसरोंपर

उपस्थित होनेका तर्कसङ्गत अवसर देंगे। यदि अभियुक्त अधिकारीके समक्ष उपस्थित होता है तो उसको मुक़दमेका स्वरूप बताया जायगा जो उसपर चल रहा है—और उस सम्बन्धमें यदि अभियुक्त कोई बयान देना चाहे तो उसे भी जाँच करनेवाले अधिकारी सुनेंगे और यदि अधिकारियोंके विचारमें अभियुक्तका बयान तर्कसङ्गत और युक्ति-युक्त प्रतीत होगा तो वे मुक़दमेकी जाँच फिरसे आरम्भ करेंगे। अध्यक्ष महोदय ! मेरा निवेदन है कि उचित मार्ग यह है—और जो इस समय कार्य्यरूपमें भी है कि मुक़दमा मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया जाय अथवा यदि आपकी इच्छा हो तो किसी बड़े विचारपतिके समक्ष उपस्थित किया जाय। यह जाँचकी कार्रवाई उस व्यक्तिके विरुद्ध कोई हुक्म जारी किए जानेके पहले होनी चाहिए। न्याय-विभागका अधिकार शासन-विभागको क्यों दिया जाय? दूसरी बात यह है कि उस व्यक्तिके साथ अन्याय होनेका भय है जब कि लोकल सरकार एक निश्चय क़ायम कर लेनेके पश्चात् उस निश्चयकी सत्यता और असत्यताकी जाँच करनेके लिये मुक़दमेको किसी जाँच करनेवाले अधिकारीको सुपुर्द करती है। यह सिद्धान्त ही ग़लत है, अतएव त्याज्य है।

दूसरा सिद्धान्त, जो प्रथम शर्त्तका अङ्गभूत बनाया गया है—जिसका तात्पर्य्य यह है कि जाँच करनेवाले अधिकारीको जिस व्यक्तिका मुक़दमा उसके सामने है उसको मुक़दमेके सम्बन्धकी एक भी बात न बतावें, कारण इस रहस्योद्घाटनसे सार्वजनिक शान्ति अथवा व्यक्तिगत शान्ति ख़तरेमें पड़ सकती है। मेरा निवेदन है कि मेरी स्वतन्त्रता ही सब कुछ है, और जबतक क़ानूनसे उसे अनुपयुक्त सिद्ध नहीं किया जाता तबतक मेरी स्वतन्त्रताकी रक्षा होनी चाहिए। मेरा निवेदन है कि यदि किसी व्यक्तिकी स्वतन्त्रतापर आक्रमण होता है, यदि वह अभियुक्त है, तो उसको आक्रमणकारीको जाननेका अधिकार है। यदि वह इस जानकारीसे वञ्चित किया जाता है तो ऐसी दशामें अन्याय होनेकी सम्भावना है। यह उस सिद्धान्तका दूसरा विच्छेद है जिसका सदा अमरीका और जहाँ कहीं बृटिश अदालत है, सम्मान किया गया है। दूसरी उपधाराका तात्पर्य्य है—द्वितीय उपधाराकी शर्त्तोंके अनुसार जाँच इस प्रकारसे होगी कि जो जाँच करनेवाले अधिकारको मामलेके सिद्धान्तपर अधिक प्रकाश डालनेवाला प्रतीत होगा। जाँच करते समय अधिकारी साक्षी विधानकी धाराओंसे बाध्य नहीं होंगे। अध्यक्ष बड़े लाट महोदय ! आपको ख़ूब मालूम है कि साक्षी-विधानकी धाराओंकी रक्षाके लिये विचारपति कितने सतर्क एवं सावधान होते हैं। प्रस्तावित सरकारी बिलके जाँच करनेवाले अधिकारी साक्षी-विधानके नियमोंके पालनके लिये बाध्य नहीं हैं। पुनश्च यह मूलतः अशुद्ध और आपत्तिजनक है।

तृतीय भागके सम्बन्धमें मैं निवेदन कर चुका हूँ और अन्तिम अंशमें जो कुछ है उसपर विस्तार-पूर्वक विचार नहीं करूँगा। व्यवस्था-सम्बन्धी मामलेका सरसरी तौरसे रौलेट् कमेटीने जिस दृष्टिकोणसे विचार किया है और जिस दृष्टिकोणसे वे स्वीकृत किए गए हैं, मैं उन्हें अन्धकारपूर्ण मानता हूँ। जितने परिवर्त्तन हुए हैं उनकी दृष्टिसे और जो होनेवाले हैं उनकी दृष्टिसे, विगत युद्धमें भारतने जो महान् भाग लिया है उसकी दृष्टिसे, और भारतीयों की राज्य-निष्ठा, जिसकी कई बार बड़े-बड़े अधिकारियोंद्वारा स्वीकृति मिल चुकी है—इस दृष्टिसे जब कि कमेटीको अधिक समुज्ज्वल विधान बनाना था, उसके बदले उसने अधिक अन्धकारपूर्ण विधान बनाए हैं। उपर्युक्त दृष्टिकोणसे अध्यक्ष महोदय ! मैं आपसे जिज्ञासा करता हूँ कि आप ज़रा विचार करें कि प्रस्तावित स्थायी विधानके समान विधानके निर्माणकी क्या देशको आवश्यकता है? और क्या किसी नये विधानके लिये यही उपयुक्त अवसर है? इस सम्बन्धमें मैं कौन्सिलका ध्यान दक्षिण अफ़्रीकाकी सरकारकी कार्रवाईकी ओर आकृष्ट करूँगा और पूछूँगा कि

उसने क्या किया है? दक्षिण अफ्रीकामेँ जनरल बूथने सरकारकी ओरसे बूअर युद्धमेँ संग्राम किया था। सरकारका उनके प्रति क्या व्यवहार रहा? सरकारने दक्षिण अफ्रीकामेँ स्वायत्त-शासन स्थापित किया और जनरल तथा उनके साथी, जिन्होँने युद्धमेँ भाग लिया था, उनके साथ मैत्री की और बुद्धि-सङ्गत और उदार नीतिका क्या परिणाम हुआ आदि बातेँ विचारणीय हैँ। इस महायुद्धमेँ जनरल बूथने वीरता प्रदर्शित की थी, और इन्होँने बृटिश सरकारके उद्देशकी सिद्धिके लिये जो उल्लेखनीय सेवाएँ कीँ उनको बृटिश राजनीतिज्ञोँने कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया। समस्त संसारने उन सेवाओँकी प्रशंसा की। मेरा निवेदन है कि क्या यही उचित मार्ग है, क्या यही बुद्धिसम्मत है कि जब सरकारकी अन्य प्रजा जिस कार्य्यके लिये स्वतन्त्र की जाती हैँ, उस कामके करनेपर भारतीय अभाग्यवश उस अधिकारसे वञ्चित रक्खे जायँ। परिस्थितिकी माँग यह है कि समस्त जनताको अधिक उदारात्मक विधान प्रदान कर उनके हृदयको अपनी ओर आकर्षित किया जाय। वर्णगत भेदका उन्मूलन कीजिए। अध्यक्ष महोदय और श्री मौण्टेगूने जो सिफ़ारिशेँ की हैँ उन्हेँ कार्य्यरूपमेँ परिणत होने दीजिए। उन सिफ़ारिशोँको भी कार्य्यरूपमेँ प्राप्त होने दीजिए जो जनताके प्रतिनिधियोँने की हैँ। नौकरियोँके प्रश्नको अधिक उदार भावसे हल कीजिए, भारतीयोँको सेनामेँ कमीशन पद प्राप्त करनेमेँ उदार भावका प्रयोग होने दीजिए, व्यवसायको प्रोत्साहन और प्रवर्द्धन प्राप्त होने दीजिए, शिक्षामेँ नूतन प्रणालीका प्रचार होने दीजिए और नौजवानोँको जीवनयात्राके नये साधन प्रदान कीजिए। तब देशमेँ कृतज्ञताके भाव व्याप्त होँगे, देशमेँ सन्तोष और सद्भावकी अभिवृद्धि होगी और हमको क्रान्तिकारी अपराधोँका नाम तक न सुन पड़ेगा। जब यह सब हो जायगा तब भी यदि कहीँ ऐसे अपराध दृष्टि-गोचर होँ, तो उनका सामना भी अधिक उग्र नीतिके अवलम्बनसे नहीँ प्रत्युत सदय भावसे होना चाहिए, न कि प्रस्तावित विधानके प्रयोगद्वारा। अध्यक्ष महोदय! इन्हीँ कारणोँसे मैँ प्रस्तावित बिलको निर्वाचित समितिके अधीन किए जानेके प्रस्तावका विरोध करता हूँ। मेरा निवेदन है कि बिल अस्वीकृत कर देनी चाहिए।

क्षमाविधान (इण्डेम्निटी बिल) पर

सितम्बर, सन् १९१९ ई० में वाइसरायने हण्टर-कमीशनकी नियुक्तिकी घोषणा की कि वह पञ्जाबके उपद्रवोंकी जाँच करे। परन्तु इसके साथ ही १८ सितम्बरको अफ़सरोंको दण्डसे मुक्त करनेवाला बिल (इण्डेम्निटी बिल) आया, जोकि आमतौरपर फ़ौजी-क़ानूनके साथ आया करता है। पण्डित मदनमोहन मालवीयने इसे मुल्तवी करानेके लिये राजकीय परिषद्में लगातार पाँच घण्टे तक भाषण दिया, जिसमें आपने मार्शललौके अनौचेत्य और सारी स्थितिका वर्णन करते हुए उक्त बिलका विरोध किया। —सम्पादक।

श्रीमन्!

वह क़ानून, जिसके प्रविष्ट करनेके लिये माननीय होम मेम्बरने आज्ञा माँगी है, उन बड़े परिणामोत्पादक क़ानूनोंमेंसे है जो इस देशमें बने हैं, इसलिये इसपर बहुत ध्यानपूर्वक विचार होना चाहिए। श्रीमन्! मा० होम मेम्बरने कहा है कि जहाँ फ़ौजी क़ानून ज़रूरतके वक्त जारी किया जाता है, वहाँ ऐसे काम करने पड़ते हैं, जो क़ानूनकी दृष्टिसे ठीक सिद्ध न हो सकें, परन्तु शिष्टाचारकी दृष्टिसे उनके करनेवालोंको उनके दोषसे बचाना आवश्यक हो जाता है। इसलिये इण्डेम्निटी क़ानून बनाना पड़ता है। श्रीमन्! मा० मेम्बरने यथावसर इस प्रश्नको उठाया है कि किस हालतमें फ़ौजी क़ानून जारी करना चाहिए और कैसी हालतोंमें इण्डेम्निटी क़ानून बनाना चाहिए। अतः हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम इस प्रश्नकी गहराईतक पहुँचें। मैं बहुत पुराने समयका ज़िक्र न करूँगा, केवल सन् १७१५ से आरम्भ करता हूँ, जिसका ज़िक्र मा० होम मेम्बरने भी किया है। कौन्सिलके सदस्योंको याद होगा कि यह वह साल था, जिसमें जेम्स प्रिटेण्डर स्कौटलैण्डसे इङ्गलैण्डकी राजगद्दीपर क़ब्ज़ा करनेको आया था। स्कौटलैण्डके छः हज़ार हाईलैण्डर उसकी फ़ौजमें मिल गए थे। एक बाक़ायदा चढ़ाई हुई, जिसमें बाक़ायदा लड़ाई भी हुई। उससे न केवल झगड़े-फ़साद ही उठे, बल्कि इङ्गलैण्डके तख़्तके लिये एक वास्तविक युद्ध हुआ। प्रिटेण्डरकी हार हुई। उस बग़ावतमें किए गए कामोंको क़ानूनके अनुकूल मानना लाज़िम हुआ। इसलिये पार्लियामेण्टने सन् १७१५ ई० में इस हालतमें इस प्रकारका क़ानून बनाया जो जौर्ज प्रथमका अध्याय कहलाता है।

यह क़ानून ऐसे आदमियोंकी रक्षाके लिये है जिन्होंने बग़ावतके दिनोंमें कष्टप्रद मारकाट और कठिनाइयोंसे प्रजामें शान्ति और राज्यको सुरक्षित रक्खा। ऐसे कठिन समयमें सरकारी अफ़सरोंसे ऐसे काम हो गए, जो क़ानूनकी दृष्टिसे ठीक नहीं थे, परन्तु जनताके लिये हितकर तथा आवश्यक थे। ये कार्य्य पार्लियामेण्टके क़ानूनोंमें उपेक्षणीय समझे गए तथा समझे जाने चाहिए और उनके करनेवालोंको सज़ासे बचाना चाहिएँ। इसलिये ऐसा क़ानून बना।

श्रीमन्! आप और यह कौन्सिल देखें कि इस क़ानूनका अत्यावश्यक आधार बग़ावत है, उसको दबाना और शान्त करना था। दूसरे, पार्लियामेण्टने निश्चय कर लिया था कि क्षमाके योग्य

काम यद्यपि क़ानूनकी दृष्टिसे ठीक न थे, तथापि आवश्यक थे और पार्लियामेण्टको उन्हें क़ानून-विरुद्ध न मानना चाहिए था। ऐसे क़ानूनोंका, जैसा कि कौन्सिलके समक्ष उपस्थित है, यही प्रधान सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्तपर सन् १७४५ ई० में फिर क़ानून वना। प्रिटेण्डर प्रथमके पुत्र चार्ल्स एडवर्डने सन् १७४५ ई० में फिर इङ्गलैण्डपर हमला किया। उसकी फ़ौजमें भी छः हज़ार हाईलैन्डर मिल गए जिनकी संख्या पीछे नौ हज़ार हो गई। इस वग़ावतके वाद भी, इण्डेम्निटी विलका पास करना आवश्यक हुआ। यह क़ानून जौर्ज द्वितीय अध्याय २० में इस प्रकार है:—

"चूँकि वग़ावतके दिनोंमें……कुछ लोगोंसे ऐसे काम हो गए, जो पूरे तौरसे न्यायानुकूल न थे…… परन्तु लोगोंके हितसे किए जानेके कारण आवश्यक थे, इसलिये पार्लियामेण्टका कर्त्तव्य है कि उन्हें क्षमाके योग्य समझे और उनके करनेवालोंको वचाए…… इसलिये ऐसा क़ानून आदि……।"

यहाँ फिर प्रस्तावनाका वही वाक्य उपस्थित है। काम आवश्यकीय थे। वे प्रजाके हितके लिये किए गए थे। केवल वे कार्य्य ही आवश्यक न थे किन्तु उनके करनेवालोंको वचाना पार्लियामेण्टको आवश्यक था। श्रीमन्! सन् १७८० ई० में फिर तीसरी वार इण्डेम्निटी क़ानून लौर्ड जौर्ज गार्डनकी वग़ावतके सम्बन्धमें वना। यह वग़ावत राज्यके शत्रुकी उठाई हुई न थी। कैथोलिक रिफ़ार्म-विलके प्रविष्ट होनेपर कुछ प्रोटेस्टेण्टोंने सोचा कि यह क़ानून क़ानूनी पुस्तकमें न लिखा जाय। एक लाख वीस हज़ार लोगोंके दस्तख़तसे एक अर्ज़ी पार्लियामेण्टको भेजी गई। वहाँ साठ हज़ार आदमी मौजूद थे। वलवा दवाना था। लौर्ड गार्डन वग़ावतके वीचमें भाग गया। उसके साथियोंको सज़ा मिली, परन्तु वलवेके शान्त होनेपर इण्डेम्निटी विल पास हुआ। इस विलकी प्रस्तावनामें भी आवश्यक परिवर्त्तनके साथ वे ही शब्द हैं और वे ही सिद्धान्त भी।

श्रीमन्! ये क़ानून साफ़ तौरसे सावित करते हैं कि वे काम, जो उस समय किए गए थे, वग़ावत या उसके सदृश वलवेको दवानेके लिये आवश्यक थे। व्यवस्थापिका सभाके लिये यह परमावश्यक था कि उनकी उपेक्षा करे और सरकारी अफ़सरोंको वचाए। मामूली दङ्गा, उपर्युक्त वलवोंकी फ़िहरिस्तमें नहीं आ सकता। श्री हालवरी, 'लौ औफ़ इङ्गलैण्ड' नामी निवन्धमें कहते हैं कि ऐसा वलवा होना चाहिए जो युद्ध कहलाया जा सके। लौ औफ़ इङ्गलैण्ड भाग छठवेंमें वे कहते हैं:—

'राजा न्यायका पालक और रक्षक होनेसे क़ानूनकी प्रतिष्ठाके लिये ऐसे कमीशन नियुक्त कर सकता है जो सामान्य या राजकीय क़ानूनके अनुसार आवश्यक हों, परन्तु प्रमाणके विना सामान्य क़ानूनके सिवा अन्य क़ानून स्थापित करनेके लिये वह न्यायालय या 'ईक्विटी कोर्ट' क़ायम नहीं कर सकता। वह शान्तिके समय नागरिकोंके मुक़दमोंके लिये फ़ौजी कमीशन नहीं नियुक्त कर सकता, परन्तु वग़ावत या वग़ावतकी हदतक पहुँचे हुए किसी फ़साद या दङ्गेके समय हालतके मुताविक़ अमन क़ायम रखनेके लिये वह उस शक्तिको काममें ला सकता है जिसको फ़ौजी क़ानून कहते हैं। जहाँ युद्धकी ऐसी वास्तविक दशा उपस्थित हो, वहाँ फ़ौजी अफ़सरोंके कामोंकी जाँच करनेका सिविल अदालतोंको कोई अधिकार नहीं, परन्तु फ़सादके समाप्त होते ही फ़ौजी अफ़सरोंकी शक्तिका अन्त और सिविल अफ़सरोंकी शक्तिका आरम्भ हो जाता है।'

श्रीमन्! मैं इस वातपर ज़ोर देना चाहता हूँ कि फ़ौजी कार्य्य तथा क़ानूनका सहारा लेनेके कार्य्यको न्याययुक्त सिद्ध करनेके लिये युद्धके सदृश वग़ावत या दङ्गेकी हालतका होना आवश्यक है। यह इङ्गलैण्डका साधारण सिद्धान्त है। हिन्दुस्तानकी हालत और भी कठिन है। भारत-सरकार सन् १८०४ के क़ानून दसके अनुसार फ़ौजी क़ानून जारी कर सकती है। उस क़ानूनकी इवारतपर ध्यान दिलाना वहुत ज़रूरी है, क्योंकि भारत-सरकारने उसके अनुसार ही पञ्जावमें

फ़ौजी क़ानून जारी किया है। श्रीमन्! पहला फ़ौजी क़ानून १८१० मेँ पास हुआ था। उस समय भारतवर्षमेँ बृटिश शासन स्थापित हो रहा था। बहुतसी छोटी-छोटी रियासतेँ उसके कार्य्यमेँ बाधा दे रही थीँ। उस क़ानूनके बनानेवालोँने यह नहीँ सोचा था कि ईसा मसीहके सन् १९१९ ई० मेँ भी यह क़ानून जारी किया जायगा। वह क़ानून यह था :—

“चूँकि इन लड़ाइयोँमेँ, जो अंग्रेज़ सरकारको हिन्दुस्तानी रियासतोँके साथ लड़नी पड़ीँ, बहुतसे लोगोँने, जिनका फ़र्ज़ सरकारके साथ वफ़ादार रहना था, उसके साथ खुल्लम-खुल्ला दुश्मनीके भावसे हाथयार उठाए, दुश्मनोँकी मदद की और सरकारकी रिआयाकी जान और मालको नुक़सान पहुँचानेके लिये फ़सादके काम किए। चूँकि लड़ाइयोँके ज़मानेमेँ, जो सरकारको किसी ताक़तके साथ लड़नी पड़ेँ, और बग़ावतके समय फ़ोर्ट विलियमके मातहत किसी सूबेमेँ बग़ावत दबानेके लिये सपरिषद् गवर्नर-जनरलका बृटिश राज्यके किसी हिस्सेमेँ, सरकारकी रिआयाकी रक्षा तथा उनके जान-मालकी रक्षा और बग़ावतके दबानेके लिये और उन लोगोँको, जिनका कर्त्तव्य सरकारके साथ वफ़ादार रहना है, और जो सरकारके साथ खुली दुश्मनी करते हुए पकड़े जायँगे या जो ऊपर कहे गए हिस्सेमेँ सरकारके दुश्मनोँको मदद देनेका कोई काम करेँगे, फ़ौरन् सज़ा देनेके लिये फ़ौजी क़ानून जारी करना मुनासिब है। इसलिये यह क़ानून बनाया जाता है, जिसपर एलान (घोषणा) की तारीख़से फ़ोर्ट विलियमके मातहत इलाक़ेमेँ अमल दरामद होगा”

श्रीमन्! इससे यह स्पष्ट है कि यह क़ानून तभी जारी हो सकता है, जब खुली बग़ावत या लड़ाई हो। इसी वजहसे आपने १४ अप्रैलवाले फ़ौजी क़ानूनको जारी करनेके लिये प्रकाशित विज्ञप्तिमेँ कहा था :—

‘चूँकि गवर्नर-जनरलको निश्चय हो गया है कि पञ्जाबके कुछ हिस्सोँमेँ खुली बग़ावत हो रही है, इसलिये उनको प्राप्त अधिकारसे नीचे हुक्म’........,

श्रीमन्! बङ्गाल रेग्यूलेशनकी दूसरी धाराका आशय यह है कि गवर्नर-जनरल उस समय फ़ौजी क़ानून जारी कर सकता है जब कि उसको बग़ावतका निश्चय हो जाय। बग़ावत या सरकारसे दुश्मनी करनेके लिये हथियार उठानेवालोँ ही के ख़िलाफ़ ऐसा किया जा सकता है। १४ अप्रैलकी विज्ञप्तिमेँ आपने कहा था कि आपको निश्चय हो गया है कि पञ्जाबके कुछ भागोँमेँ खुली बग़ावत है। परन्तु श्रीमन्! जनताको यह नहीँ बतलाया गया कि लाहौरमेँ कौनसी ऐसी घटनाएँ हुईं जिनको बग़ावत कहा गया। मैँने कुछ प्रश्नोँको पेश करनेकी सूचना दी थी। मैँ जानना चाहता था कि बग़ावतका अर्थ क्या है। मगर दुर्भाग्यसे सरकारने कह दिया कि जाँच-कमेटी नियत हो गई है, इसलिये इन प्रश्नोँका उत्तर देना लोगोँके लिये हितकर न होगा। श्रीमन्! यह ज़रूरी था कि फ़ौजी क़ानूनकी आड़मेँ किए हुए कामोँके दोषसे अफ़सरोँको मुक्त करनेके पहले लोगोँको बतलाया जाता कि किस हालतमेँ फ़ौजी क़ानून जारी किया जाय। मैँने गवर्नमेण्टसे कहा था कि वह पत्र-व्यवहार मेज़पर रक्खा जाय जो पञ्जाब और भारत-सरकारके बीच फ़ौजी क़ानून जारी करनेके सम्बन्धमेँ हुआ है। मैँने पूछा था कि खुली बग़ावत आरम्भ होने और फ़ौजी क़ानून जारी करनेकी तारीख़ोँके बीचके समयमेँ पञ्जाबके उन भागोँमेँ, जिनमेँ कि फ़ौजी क़ानून जारी किया गया, सन् १८०४ ई० के रेग्यूलेशनमेँ बताई गई कौनसी बाग़ियाना घटनाएँ हुईं? इन प्रश्नोँके पूछनेका आशय सिवा सत्य निर्णयके और कुछ नहीँ था। जब मैँने सुना कि पायोनियरमेँ प्रकाशित हुआ है कि पञ्जाबमेँ फ़ौजी क़ानून जारी होनेवाला है, उसी समय मैँने कौन्सिलमेँ एक प्रश्नकी सूचना दी थी, जिसका मुझे उचित”..............................

माननीय सर विलियम विन्सेण्ट :—

श्रीमन्! मैँ नियमरक्षा (प्वाइण्ट औफ़ आर्डर) के लिये उठनेकी आज्ञा चाहता हूँ। क्या यह

इस कौन्सिलकी रीतिके अनुसार है कि कोई माननीय मेम्बर सर्वसाधारणमेँ उस सवालका ज़िक्र कर दे, जो मना कर दिया गया हो? क्या माननीय मेम्बर ऐसा करनेके निमित्त पहले भी किसी मौक़ेपर रोके नहीँ गए थे?

माननिय पण्डित मदनमोहन मालवीय :—

श्रीमन्! मुझे कोई ऐसी रोक-टोकका स्मरण नहीँ है और न मैँ ऐसी रोक-टोककी परवाह ही करता हूँ। मेरा कर्त्तव्य है कि कौन्सिलके सामने पेश किए गए बिलके सम्बन्धमेँ हर बातपर ध्यान दिलाऊँ। मैँने जो किया, वह ठीक है।

अच्छा, श्रीमन्! जैसा कि मैँने पहले कहा है, मेरे प्रश्नके उत्तरमेँ मुझसे कहा गया था कि जाँच-कमेटीके नियत होनेके कारण इसका उत्तर नहीँ दिया जा सकता। श्रीमन्! यदि गवर्नमेण्टने तबतक इन प्रश्नोँका उत्तर न देना ही मुनासिब और उपयुक्त सोचा है, जबतक कि जाँच-कमेटीके सामने सब बातेँ न आ जायँ और उन लोगोँको यह मालूम न हो जायँ, तो मैँ जवाब न पानेकी अपनी शिकायत छोड़ देता हूँ। आपको याद होगा कि पञ्जाबमेँ इस खुली बग़ावतकी अनिष्ट घोषणाके समयसे, जिससे उत्पन्न होनेवाली ख़राबियोँमेँ अफ़ग़ान युद्ध भी है, पञ्जाब-सरकारने पञ्जाबमेँ होनेवाली घटनाओँका हाल बाहर पहुँचनेके रास्ते रोक दिए थे। उसने केवल साधारण आदमियोँको पञ्जाबमेँ जाने और वहाँकी घटनाओँको प्रकाशित करनेकी मनाही ही नहीँ की बलिक देशके बहुतसे प्रतिष्ठित पत्रोँके प्रतिनिधि श्री सी० एफ़० एण्ड्रूज़को भी, जो बड़े शान्तिप्रिय और मनुष्य-प्रेमी सज्जन हैँ, जानेकी आज्ञा नहीँ दी। (हँसी) मैँ हँसीका शब्द सुनता हूँ। श्रीमन्! यह हँसी किस बातके लिये है? यदि इसके लिये कि श्री एण्ड्रूज़ शान्तिप्रिय और मनुष्यत्त्वपूर्ण हैँ तो शोक है उनके लिये, जो इसमेँ सन्देह करते हैँ। ख़ैर, श्री एण्ड्रूज़ जैसे सदाचार और पुण्य कामोँवाले सज्जन, जिन्होँने अपने भाइयोँकी सेवाके लिये अपने-आपको अर्पण कर दिया है, जो अपने भाइयोँकी सेवाके लिये दूसरे देशोँको गए और जिनको कई प्रतिष्ठित पत्रोँने अपना प्रतिनिधि चुना—शिमलेसे आज्ञा लेकर लाहौरकी ओर जा रहे थे, परन्तु वे अमृतसरमेँ रोक दिए गए। उनके साथ अनुचित व्यवहार किया गया और पञ्जाबसे वे वापिस कर दिए गए। श्रीमन्! अन्य पत्रोँके प्रतिनिधि तथा अन्य नेताओँको भी आज्ञा नहीँ दी गई। परिणाम यह हुआ कि किसीको वहाँकी ठीक स्थिति ज्ञात नहीँ हुई। उस ज्ञानसे, जो हमेँ प्राप्त हुआ, भारतीय कांग्रेस कमेटीने अवसरकी गुरुतापर ध्यान दिलानेके लिये भारत-मन्त्रीको एक तार भेजा। श्रीमन्! उस बैठकमेँ भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीने अन्य प्रस्तावोँके साथ निम्नलिखित प्रस्ताव भी किए…

“निश्चय हुआ कि भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी उन तमाम ज़ुल्मोँके कामोँपर जो अमृतसर, अहमदाबाद, बीरमगाँव तथा अन्य स्थानोँमेँ रिआयाके जान-मालपर किए गए शोक प्रकट करती है और लोगोँसे शान्ति, अमन और क़ानूनकी आज्ञाकारिता क़ायम रखनेकी अपील करती है और सरकारसे निवेदन करती है कि दमनकी वर्त्तमान नीतिको बदलकर अवस्थाको सहानुभूति और सुलहके भावसे निपटावे।’

“निश्चय हुआ कि भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी, भारतरक्षा-क़ानूनके अनुसार पञ्जाब-सरकार, दिल्लीके अधिकारियोँ और भारत-सरकारद्वारा महात्मा गान्धी जैसे विख्यात और सदाचारी सज्जनके विरुद्ध जारी की गई आज्ञाओँकी घोर निन्दा करती है। कमेटी यह कहे बिना नहीँ रह सकती कि यदि ये आज्ञाएँ जारी न की जातीँ तो उसके बाद जो कुछ शोकजनक घटनाएँ हुईँ, वे न होने पातीँ। इसलिये कमेटी भारत-सरकारसे अपनी आज्ञा हटाने और उपर्युक्त सरकारोँसे अपनी आज्ञाएँ हटवानेका अनुरोध करनेको कहती है।”

श्रीमन्! मैँने फिर नीचे का तार भारत-मन्त्रीको भेजा :—

“भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी भारतकी वर्त्तमान अशान्ति, उसके वास्तविक कारण तथा नीतिके

परिवर्त्तनकी आवश्यकताको सम्राट् तक पहुँचाना चाहती है, जब कि वह लोगोंद्वारा की गई तथा उन ज़्यादतियोंपर, जिनको दवानेमें नेताओंने हर जगह सफलताके साथ अपने प्रभावसे काम किया, निन्दा करती है, साथ ही उन हालातपर पक्षपात-रहित विचार करनेका निवेदन करती है, जिनसे लोगोंके विचार भड़क उठे और ऐसा फ़साद होना सम्भाव्य हो गया। १४ तारीख़ के भारत-सरकारके इस कथनमें कि रौलेट् ऐक्टके अनुसार आन्दोलनसे यह हालत पैदा हुई, मामलेका आंशिक वर्णन दिया गया है। रौलेट् बिलको सारे देश और व्यवस्थापक कौन्सिलके ग़ैर-सरकारी मेम्बरोंके घोर विरोधके होते हुए भी सरकारी मेम्बरोंके बहुमतसे पास करना वर्त्तमान आन्दोलनका कारण था, परन्तु पीछे होनेवाली ज़्यादतियाँ, भारत-सरकार तथा पञ्जाब और दिल्लीकी प्रान्तीय सरकारोंद्वारा महात्मा गान्धी जैसे पूज्य सज्जन तथा अन्य नेताओंके विरुद्ध दी गई आज्ञाओंसे उत्पन्न हुई हैं। इसके साथ ही वर्त्तमान स्थितिकी पूरी तौरसे समझनेके लिये अन्य कारणोंपर भी विचार करना चाहिए।”

श्रीमन्! वर्त्तमान युद्धमें की हुई भारतकी सेवाओंके प्रति और सुधार, टर्की तथा रौलट ऐक्ट-सम्बन्धी योरोपियन तथा ऐङ्गलो-इण्डियनोंके भावोंका वर्णन करते हुए कमेटीने कहा था :—

“ऐसी अवस्थामें दो रौलेट् बिल पेश किए गए। इनमेंसे प्रधान बिल ग़ैरसरकारी मेम्बरोंके एकमत विरोध, स्थगित और पुनः विचार करनेकी प्रार्थना और प्रतिवादकी सूचना आदिके होते हुए भी कौन्सिलमें ज़बरदस्ती पास किया गया। रौलेट् बिलके पास करनेसे जो भय उत्पन्न हुआ उसकी कमेटी अधिक व्याख्या नहीं करना चाहती। वह इतना ज़ाहिर करना ही पर्य्याप्त समझती है कि ऐसे बिलके—जो रिआयासे खुली जाँचके पवित्र अधिकारको छीनता है, प्रजाकी मौलिक आज़ादियोंको घटाता है, निरपराधी लोगोंके अवलम्बनरूप मुकदमोंमें फैले हुए लोगोंको अपनेको वेगुनाह सिद्ध करनेके अधिकारको छीनता है—विरोधमें होनेवाले प्रतिवादको राजनीतिक उपद्रवकारियोंका उठाया हुआ वताना, असली वातोंका गला घोटना है। कमेटीको कोई अधिकार नहीं है कि वह महात्मा गान्धीके सत्याग्रहके गुण-दोषोंपर वहस करे, परन्तु कमेटी इस वातपर ज़ोर देती है कि महात्मा गान्धी जैसे पवित्रात्मा और सदाचारी पुरुषको, उच्च देशभक्ति और ऐसे क़ानूनसे होनेवाले अन्यायोंके विश्वासके सिवा और कोई वात उत्तेजित नहीं कर सकती। सर्वसाधारणको जो वातें मालूम हैं उनसे कहा जा सकता है कि लोगोंने तवतक कोई उपद्रव नहीं किया, जवतक कि महात्मा गान्धीकी आज़ादीमें वाधा नहीं डाली गई और तीस मार्चके दिल्लीके अनिष्टकारक उपद्रवको दवानेके लिये वहाँ जाते हुए वे ज़वरदस्ती पकड़कर एक अज्ञात स्थानको नहीं भेजे गए। इसके सम्बन्धमें वहुतसी शिकायतें की गई हैं कि दिल्लीमें अन्यायसे लोगोंपर गोली चलाई गई, जिससे कितने ही लोग ज़ख्मी हुए और कितने ही मरे। भारत-सरकारने इसकी जाँचके लिये प्रार्थना अस्वीकार कर दी है और विश्वासके अयोग्य रिपोर्टोंपर स्थानीय अफ़सरोंको वरी करते हुए एकतरफ़ा वयान प्रकाशित कर दिया है। यदि महात्मा गान्धी वहाँ जाने दिए जाते तो वे शान्ति करा देते। इसके विरुद्ध सरकारने उनको गिरफ़्तार और जलावतन करके अहमदावाद और वीरमगाँवमें फ़साद करा दिए। उपद्रव वम्बईमें पहुँचा, परन्तु फ़ौज और पुलीसको क़ावूमें रखनेकी बुद्धिमानीसे सरकारने और महात्मा गान्धी तथा अन्य नेताओंने वहाँ शान्ति स्थापित कर दी। महात्मा गान्धीकी उपस्थिति तथा अन्य नेताओं और अफ़सरोंकी सहयोगितासे अहमदावादमें जिस शीघ्रतासे उपद्रव शान्त हो गया उसको देखकरे उस उपद्रवकी दीर्घताकी ओर ध्यान देना चाहिए, जिसमें खुले रास्तोंपर बेतोंसे रईस पीटे गए, हवाई जहाज़ोंसे वम फेंके गए और गलियोंमें भीड़पर गोली चलाई

गई। इन कार्रवाईयोंने सारे देशमें भय और हौल पैदा कर दी है।"

"कमेटी फ़सादको दबानेके लिये सख़्ती करने की आवश्यकता समझती है। सब नेता तथा सभा-समाजें सर्वसाधारणकी ज़्यादतियों और अफ़सरोंके साथ होनेवाले अत्याचारोंको रोकनेमें सरकारके साथ सहयोग देनेको तैयार हैं, परन्तु पञ्जाबमें उन तरीकोंने लोगोंके भावोंको प्रतिकूल बना दिया, जिनसे फ़साद दबाया गया।"

"कमेटी सम्राट्की सरकारसे प्रार्थना करती है कि वह वीचमें दख़ल देकर इन तरीक़ोंको बन्द करे और फ़सादके सम्बन्धमें अफ़सरोंद्वारा किए गए कार्य्यों तथा असन्तोषके कारणकी जाँच करनेके लिये सरकारी और ग़ैर-सरकारी सदस्योंका कमीशन नियत करनेकी आज्ञा दे।"

श्रीमन्! उपर्युक्त निवेदन गत २८ अप्रैलको किया गया था और प्रार्थना की गई थी कि सरकार शीघ्र कमीशन नियुक्त करे। इससे आगे कमेटीने कहा था:—

"कमेटी सम्राट्की सरकारसे यह विचारनेकी प्रार्थना करती है कि उपर्युक्त कारणोंसे सर्वसाधारणमें बेचैनी फैली है। अमृतसरमें सर माइकेल ओडायर-द्वारा की गई डा० सत्यपाल और डा० किचलूकी गिरफ़्तारी और निर्वासनकी कार्रवाईसे उपद्रव आरम्भ हुआ। कमेटी निवेदन करती है कि २४ तारीख़के भारत-सरकारके हुक्ममें वर्णित सख़्तीसे दवानेके तरीक़ों ही से उवद्रव शान्त नहीं हो सकता, जो प्रान्तीय सरकारोंको हर प्रकारकी सख़्तियोंका प्रयोग करनेकी इज़ाजत देता है और जो मेलकी नीतिके बिल्कुल ख़िलाफ़ है। इस मौक़ेपर उस गम्भीर राजनीतिकी ज़रूरत है जो इस मामलेको अत्यन्त सहानुभूतिके भावसे सुलझाए, और जो भारतवासियों और सरकारके बीच उस आन्दोलनकी जड़ है जिसका लक्ष्य यथेच्छाचारी शासनसे लोगोंके स्वातन्त्र्यकी रक्षा करना है। सख़्तीके वर्तावसे यह शान्त न होगा। भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी समझती है कि वह सम्राट्के मन्त्रियोंसे विश्वासके साथ यह अपील कर सकती है कि वे इस निवेदनपर सहानुभूतिसे विचार करें, दमननीतिको बदलनेका प्रयत्न करें, रौलेट् बिल सुधार और मुसलमानोंके प्रश्नके सम्बन्धमें हिन्दुस्तानियोंकी आकाङ्क्षाओंको पूर्ण करें। कमेटी निवेदन करती है कि देशमें इसी रीतिसे शान्ति और सन्तोष स्थापित हो सकता है।" *अनन्तर जलपानके बाद कौन्सिलके एकत्रित होनेपर मा० मालवीयजी फिर बोलनेको उठे। आपने कहा:—*

श्रीमन्! वह बात, जिसकी तरफ़ मैं कौन्सिलके उठनेसे पूर्व ध्यान दिला रहा था, यह है कि क्या घोषणाके जारी होनेके समय लाहौर, अमृतसर तथा पञ्जाबके अन्य भागोंमें बग़ावत थी और सब उवद्रव इसीसे पैदा हुए? श्रीमन्! अब मैं उस हालतकी तरफ़ ध्यान दिलाता हूँ जो घोषणाके समय पञ्जाब और सारे देशकी थी। मैं ऐसा इसलिये करता हूँ कि सारी अवस्थाका विस्तृत दृश्य सामने आ जाय। भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीने बताया है कि उपद्रव सरकारके प्रति लोगोंके दुष्ट भावसे नहीं बल्कि लोगोंके प्रति सरकारी नौकरोंके दुष्ट भावोंसे ही हुआ था। अब श्रीमन्! मैं कुछ विस्तारके साथ इसकी व्याख्या करूँगा। मैं ऐसा करना इसलिये आवश्यक समझता हूँ कि ज़रूरी बात अर्थात् इस सारे झगड़ेका मूल कारण, जिसके लिये फ़ौजी क़ानून जारी हुआ, ठीक रीतिसे समझमें आ जाय।

श्रीमन्! बात यह हुई कि इस कौन्सिलकी पिछली बैठकमें रौलेट् बिल पास हुआ। प्रायः सभी ग़ैर-सरकारी सदस्योंने एक रायसे उसका विरोध किया और सरकारसे प्रार्थना की कि अगली बैठकतक यह मुल्तवी रक्खा जाय। सरकारने उस प्रार्थनापर ध्यान नहीं दिया। देशमें प्रतिवाद हुआ और उस प्रतिवादने महात्मा गान्धीकी सम्मतिसे एक विशेष रूप धारण कर लिया।

वह रूप यह था कि चूँकि लोगोंकी इच्छाके

प्रतिकूल, सरकारने रौलट बिल पास कर दिया है, इसलिये लोगोँको एक दिन अपना कारोबार बन्द रख व्रत और प्रार्थना करके अपना असन्तोष प्रकट करना चाहिए। श्रीमन्! शोक है कि सारी प्रान्तीय सरकारोँने महात्मा गान्धीके आन्दोलनको ठीक तौरसे न समझा। शुक्र है कि कुछने समझा और लोगोँको रौलेट् ऐक्टपर महात्मा गान्धीके आज्ञानुसार असन्तोष प्रकट करने दिया। ३० मार्चको दिल्लीमेँ हड़ताल हुई। कुछ लोग मरे कुछ घायल हुए।

यह पहली सख़्त ग़लती थी।

श्रीमन्! दिल्लीमेँ फिर गोली चली, परन्तु ऐसा होते हुए भी ६ अप्रैलको, जो सत्याग्रहका असली दिवस था, सारे देशमेँ ऐसी शान्तिके साथ हिन्दू-मुसलमान और ईसाइयोँने मिलकर सत्याग्रह मनाया कि नाममात्रके लिये भी कहीँ झगड़ा नहीँ हुआ। सब जगह शान्ति रही। अन्य किसी प्रान्तीय सरकारको दमनकी नीतिका प्रयोग करनेका अवसर न मिला, परन्तु उस समयकी पञ्जाब सरकारने उल्टा किया। उसने ३ और ४ तारीख़को डा० सत्यपाल और डा० किचलूको व्याख्यान देनेसे रोक दिया। इन सज्जनोँने आज्ञा मान ली और उसके परिणाममेँ कुछ उपद्रव नहीँ हुआ। तीन दिनके बाद रामनवमीका उत्सव था। हिन्दू, मुसलमान दोनोँने मिलकर रामचन्द्रजीका जन्मदिन मनाया। सवारी निकली। अमृतसरके डिप्टी कमिश्नर नेशनल बैङ्ककी छतसे यह सब देख रहे थे। उस भीड़मेँ सरकारके प्रतिकूल कुछ भी नहीँ हुआ। मुझे बताया गया है कि जहाँ लोगोँने हिन्दू-मुसलमानोँकी और महात्मा गान्धीकी जय ध्वनि की वहाँ सम्राट्की जय-ध्वनि भी हुई। यह पूर्ण रीतिसे राजभक्त लोगोँका जुलूस था और राजनीतिसे इसका लेशमात्र भी सम्बन्ध न था।

परन्तु एक बात बहुत ज़रूरी थी, जिसका राजनीतिक पहलू था। वह यह है कि हिन्दू-मुसलमान अपनी जातीयताके भावोँको त्यागकर परस्पर मिल गए थे, जो अमृतसरके इतिहासमेँ इससे पहले कभी नहीँ हुआ था। जातिभेदके भावको त्याग हिन्दू-मुसलमानोँके मेलपर परमात्मा तथा मनुष्यको प्यार करनेवाले हर एक आदमीको और पञ्जाब-सरकारको प्रसन्न होना चाहिए था परन्तु अगले ही दिन डा० सत्यपाल और डा० किचलू निर्वासित कर दिए गए। अबतक कोई ऐसी बात ज्ञात नहीँ हुई है, जिससे इनके देश-निकालेकी आज्ञा ठीक प्रतीत हो। लोगोँमेँ व्याख्यान देनेसे वे रोके गए थे। उन्होँने इस आज्ञाको मान लिया था। इसके बाद कोई अनिष्ट घटना नहीँ हुई थी तो भी सरकारने इनको क्योँ निर्वासित कर दिया? चूँकि ये सज्जन लोगोँकी दृष्टिमेँ पूज्य, ईमानदार और प्रतिष्ठित थे, इसलिये उन्होँने इन हुक्मोँको अन्यायपूर्ण ख़याल किया। श्रीमन्!

यह दूसरी ग़लती थी

जो अमृतसरमेँ हुई। इन ग़लतियोँकी ओटमेँ क्या भाव था? जब अन्य प्रान्तीय सरकारोँने देखा कि रौलेट् ऐक्टके प्रतिकूल लोगोँके भाव भड़के हुए हैँ तो उन्होँने स्वतन्त्रतासे प्रकाशित करनेका जनताको मौक़ा दिया, परन्तु पञ्जाबके छोटे लाटने इसके विरुद्ध लोगोँको सबक़ सिखाना चाहा! उन्होँने व्यवस्थापक कौन्सिलकी कुर्सीसे सख़्ती करनेकी धमकी दी और असन्तोष प्रकट किया। दुर्भाग्यसे उन्होँने अपने कथनको पूरा कर दिखाया। उपर्युक्त दोनोँ सज्जनोँको निर्वासित कर दिया। फल क्या हुआ? निर्वासनका समाचार पहुँचनेके पहले अमृतसरमेँ कारोबार जारी था, बैङ्क चल रहे थे, दफ़्तर खुले थे और सब काम यथापूर्व हो रहा था। परन्तु इस समाचारके पहुँचते ही सर्वसाधारणमेँ शोक और क्रोध फैल गया और सब दूकानेँ तुरन्त बन्द हो गईं। उस समय म्युनिसिपल इञ्जीनियर श्री जौन, साइकलपर शहरमेँ आए। जब वे भीड़मेँसे गुज़रे तब उनको किसीने नहीँ देखा। भीड़ चार्टर्ड बैङ्क, नेशनल बैङ्क और टौनहालके पाससे गुज़री। लोग,

जैसा कि सरकारी और ग़ैर-सरकारी रिपोर्टोंसे सिद्ध है, डा० किचलू और डा० सत्यपालको छोड़नेकी प्रार्थना करनेके लिये डिप्टी-कमिश्नरके बँगलेपर जा रहे थे। उस समयतक लोगोंने फ़सादका कोई लक्षण प्रकट नहीं किया था। लोग इमारतोंके पाससे गुज़रे, परन्तु किसीको उन्होंने नुक़सान नहीं पहुँचाया। जब लोग पुलपर पहुँचे तो फ़ौज और पुलीसने उनपर गोली चलाई। लोग निहत्थे थे, किसीके पास लाठी तक नहीं थी। वे नर्मीसे हटाए जा सकते थे, परन्तु गोली चलाई गई। पुलके निकट फिर गोली चली, जिससे कुछ लोग मरे और कुछ लोग घायल हुए। डि० क० ने अपनी रिपोर्टमें कहा है कि बन्दूक़ चलनेसे पहले कोई फ़साद नहीं हुआ था। गोली चलनेसे ही लोगोंमें नाराज़ी फैल गई। डि० क० को भयजनक यही जान पड़ा कि बँगलेपर बड़ी भीड़ होगी। लोग कहते हैं कि यदि गोली न चलाई जाती, गम्भीरतासे काम लिया जाता तो कुछ फ़साद ही न होता। श्रीमन्! तत्पश्चात् जो कुछ हुआ, वह अत्यन्त शोकजनक था। कुछ आदमियोंके मरने और ज़ख़्मी हो जानेसे क्रुद्ध होकर भीड़का एक हिस्सा यह कहता हुआ शहरमें गया कि "उन्होंने हमारे आदमियोंको मार दिया, आओ इनके साथ लड़ें।" प्रमाणोंसे यह साबित है कि उस समयतक कुछ नहीं हुआ था। इसके बाद लोग लकड़ियोंकी एक टालपर गए। मैंने स्वयम् लकड़ियोंका ढेर देखा है। उन्होंने वहाँसे कुछ लकड़ियाँ उठाईं और लौटकर घृणित मारपीट की। ये हालात हैं। इन्हें आगेकी घटनाओंको समझानेके लिये हमें ध्यानमें रखना चाहिए। मौतोंके ऊपर शोक प्रकट करनेकी ज़रूरत नहीं, क्योंकि हर आदमीको अफ़सोस होना चाहिए कि रेलवे स्टेशनपर श्री रौबिन्सन स्टुअर्ट और अन्य योरोपियन मारे गए। यह सब अनिष्टकारी कार्य्य दो घण्टेमें समाप्त हो गया। सि० मि० गज़टकी रिपोर्टमें कहा गया है कि ५ बजे शान्ति हो गई थी। मैं इस प्रश्नको न छेड़ूँगा कि गोली चलाना ठीक था या नहीं। मेरा अनुमान है कि गोली चलानेसे ही लोगोंको क्रोध आया और उसीमें उन्होंने कई योरोपियनोंको मार डाला। ११ ता० को कोई घटना नहीं हुई। लोग लाशोंको ले आए और हिन्दू-मुसलमानोंने अपने धर्मानुसार अपने आदमियोंका अन्तिम संस्कार किया। ९ या १० बजेतक यह सब काम समाप्त हो गया था। हज़ारों आदमी लाशोंके साथ थे, परन्तु कोई फ़साद नहीं हुआ। १२ ता० को भी शान्ति रही। यदि कोई सरकारी मेम्बर बतलाए कि १० ता० को ५½ बजेके बाद भी बग़ावतके समान कोई फ़साद हुआ तो मुझे सन्तोष होगा।

श्रीमन्! ३ ता० को क्या हुआ, यह सोचना भी क्लेशप्रद है। १२ ता० की सन्ध्याको कुछ लोगोंने सभा की, जिसमें बहुत थोड़े लोग उपस्थित थे। उसमें बतलाया गया कि अगले दिन जल्यानवाला बाग़में सभा होगी। यह स्थान चारों ओरसे मकानोंद्वारा घिरा हुआ है। इसमें जानेके लिये तीन या चार रास्ते हैं जिनमें एक सबसे बड़ा है। छोटे रास्ते इस कमरेके दरवाज़ोंसे चौड़े नहीं हैं। मुझे बतलाया गया है कि सोलह हज़ारसे बीस हज़ारके लगभग पुरुष वहाँ उपस्थित थे। यह मशहूर हो गया था कि लाला कन्हैयालाल सभापति होंगे। लाला कन्हैयालालने ख़ुद मुझसे कहा था कि उन्होंने कभी रज़ामन्दी ज़ाहिर नहीं की और न उन्हें किसीने कहा। वे सब ख़बरें ग़लत हैं, जो लोगोंको वहाँ बुलानेके सम्बन्धमें उड़ाई गई थीं। यह सुनकर कि लालासाहब प्रधान होंगे, बहुतसे आदमी सभामें उपस्थित हुए। श्रीमन्! उसी दिन दैवयोगसे बैशाखीका पर्व भी था। यह पर्व अमृतसरका सबसे बड़ा त्योहार है और उस दिन सबसे बड़ा मेला लगता है। केवल पञ्जाबके निवासी ही उसमें नहीं गए बल्कि रावलपिण्डी और पेशावर आदिसे भी बहुत सिक्ख और जाट आए हुए थे। सभाके रोके जानेकी ख़बर न पाकर ये लोग वहाँ चले गए। वहाँ बीस हज़ार मनुष्य उपस्थित थे किन्तु सि० मि० गज़टने लिखा है कि छः हज़ार थे।

संख्या कुछ भी हो, भीड़ बहुत थी। श्रीमन्! जब लोग व्याख्यान सुन रहे थे, उसी समय कुछ सिपाहियोँने आकर कोई सूचना दिए बिना ही गोली बरसाना आरम्भ किया।

श्रीमन्! मा० होम मेम्बरने कहा है कि तीन सौके लगभग आदमी मरे, परन्तु आज ही आए हुए एक मित्रके पत्रसे ज्ञात होता है कि पाँच सौ तीस मरे और एक सौ नब्बे घायल हुए थे। पत्रमेँ चौवालीस लड़कोँके नाम दिए गए हैँ, जिनकी उम्र निम्नलिखित थी :—

१—सात मासका, जो अपने बापकी गोदमेँ था।

१—चार वर्षका

४२—१२ से १८ वर्षतकके।

संख्या बढ़ रही थी परन्तु यह गणना ही अन्तिम हो—परमात्मा करे कि ऐसा ही हो—तो भी श्रीमन्! इसे देखकर रोँगटे खड़े हो जाते हैँ। इसपर यह और भी खेदजनक विषय है कि सम्राट्के सिपाहियोँने ही शान्तिसे व्याख्यान सुननेवाली सम्राट् ही की निहत्थी, हिन्दुस्तानी प्रजापर—यहाँतक कि जान बचानेके लिये भागनेवालोँपर गोलियोँकी वर्षा की। इन्होँने पाँच मिनटमेँ इतने आदमियोँका क़त्लेआम कर दिया। श्रीमन्! मा० होम मेम्बर ही बताएँ कि अपने देशके इतिहासके किसी पृष्ठमेँ उन्होँने ऐसी अन्यायपूर्ण निर्दयताकी घटना पढ़ी है? क्या किसी राज्यमेँ ऐसे कामोँके करनेवालोँके अपराधोँको क्षमा करनेके लिये कभी ऐसा क़ानून बनानेका प्रयत्न हुआ है?

श्रीमन्! अब मैँ लाहौरकी कुछ घटनाओँका ज़िक्र करता हूँ। अमृतसरकी शेष घटनाओँका वर्णन बादमेँ करूँगा। परन्तु यहाँ यह कह देना मैँ आवश्यक समझता हूँ कि जल्यानवाला बाग़की—जिसका अब ख़ूनी बाग़ नाम पड़ गया है इस नरहत्याके बाद भी कोई फ़साद करनेका प्रयत्न नहीँ किया गया।

लोगोँने इन अन्यायोँको सह लिया और चुपचाप इसके आगे सर झुकाया। इस हत्याके समयतक कोई उपद्रव नहीँ हुआ था। अमृतसरमेँ बग़ावत होनेका कोई भी प्रमाण दिया जाय कि वहाँ सरकारके प्रतिकूल ऐसा उपद्रव हुआ था। ध्यान देनेकी बात यह है कि उसी दिन यह घोषणा की गई कि पञ्जाबके कुछ हिस्सोँमेँ सरकारके विरुद्ध बग़ावत हो रही है। एक विशेष आज्ञासे लाहौर और अमृतसरपर यह आरोप लागू किया गया। अब श्रीमन्! मैँ बड़े अदबसे कहता हूँ कि मुझे—जैसा कि आपको यक़ीन दिलाया गया—कोई भी बात ऐसी नहीँ दिखाई देती, जिससे अमृतसरमेँ उस दिन बग़ावतका होना सिद्ध हो सके।

लाहौरमेँ ६ अप्रैलको सत्याग्रह मनाया गया। वह दिन शान्तिसे व्यतीत हुआ। १० अप्रैलतक लाहौरमेँ भी कोई उपद्रव नहीँ हुआ। १० तारीख़को डाक्टर सत्यपाल और डाक्टर किचलूके निर्वासित किए जानेसे अमृतसरमेँ गड़बड़ मची। उसी दिन लाहौरमेँ समाचार पहुँचा कि महात्मा गान्धी पकड़े जाकर किसी अज्ञात स्थानको भेज दिए गए हैँ। श्रीमन्! कौन्सिलमेँ उपस्थित सब सज्जन जानते हैँ और जो नहीँ जानते उन्हेँ जानना चाहिए कि महात्मा गान्धीको करोड़ोँ मनुष्य पूज्य भावसे देखते हैँ। उन्होँने अपने सन्तोँ जैसे आचार-व्यवहारसे, अहिंसाके सिद्धान्तसे तथा सच्चाई, न्याय और मनुष्यत्व आदि गुणोँसे अपने देशवासियोँमेँ वह प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है, जो अन्य किसीको प्राप्त नहीँ है। महात्मा गान्धीने सत्याग्रह दिन मनाए जानेकी घोषणा की थी, इसलिये उन्हेँ यह प्रकाशित करना पड़ा कि वह दिन बिना किसी उपद्रवके और बिना किसी प्राणीको कष्ट पहुँचाए मनाना चाहिए, परन्तु दिल्लीमेँ कुछ खेदजनक घटना हो गई थी, जिससे लोग भड़क गए थे। उन्हीँको शान्त करने और बातको दबानेके लिये महात्मा गान्धी दिल्ली जा रहे थे। वे रास्ते ही मेँ थे कि भारत-सरकारको उन्हेँ क़ैद करने और बम्बई प्रान्तमेँ रखनेकी सलाह दी गई। इससे पञ्जाब-सरकार तथा दिल्लीकी सरकारने उन्हेँ पञ्जाब तथा दिल्लीमेँ

जानेसे रोका। श्रीमन्! महात्मा गान्धीका यह प्रत्यक्ष अनादर था। हरएक शासकको अपने प्रदेशमेँ महात्मा गान्धी जैसे पुरुषोँकी उपस्थितिसे अपनी प्रतिष्ठा समझनी चाहिए, परन्तु पञ्जाब और दिल्लीके हाकिमोँने उन्हेँ अपने यहाँ आनेसे रोककर वह उदार-हृदयता नहीँ दिखलाई, जो प्रान्तीय शासकोँको दिखानी चाहिए। नतीजा यह हुआ कि जब लोगोँमेँ यह समाचार फैला तो लोगोँके ख़यालात बिगड़ गए। लाहौरमेँ लोग अपर माल सड़कसे गवर्नमेण्ट हाउसमेँ छोटे लाटको अपना दुखड़ा सुनानेको जा रहे थे। रास्तेमेँ कितने ही योरोपियन उनको मिले, परन्तु उन्होँने किसीको चोट पहुँचानेका कोई काम करनेकी इच्छा प्रकट नहीँ की। उन्होँने वहाँकी योरोपियन दूकानोँको भी कोई नुक़सान नहीँ पहुँचाया, यहाँतक कि कोई खिड़की तक नहीँ फोड़ी। जब लोग सड़कपर थे, उस समय पुलीसने उन्हेँ आगे जानेसे रोकना और पीछे हटाना चाहा। पहले वे वापस जानेको तैयार नहीँ थे पर तुरन्त ही वे राज़ी हो गए और पीछे पलटे। पीछे पलटना ही उनके इस भावको प्रकट करता है कि यदि गोली न चलाई जाती तो कोई उपद्रव न होता। यदि थोड़ीसी नर्मी, तनिकसे आश्वासन, न्यूनसी सहनशीलता (वह भी यदि आवश्यक होती) से काम लिया जाता तो कोई उपद्रव न होता। परन्तु श्रीमन्! अनारकलीके निकट लौटती हुई भीड़पर गोली चलाई गई, जिससे कुछ लोग हताहत हुए। यद्यपि इससे लोग क्रुद्ध हुए तथापि चुपचाप चले गए। श्रीमन्! जहाँतक मैँ जानता हूँ, जहाँतक मैँने पढ़ा व सुना है, पृथ्वीतलपर कोई ऐसी जाति नहीँ जो दिल्ली और लाहौरके लोगोँके सदृश गोलियोँकी बौछार होनेपर भी क़ानूनकी पाबन्दी करती। परन्तु उन्होँने कुछ नहीँ किया और वे अपने घर चले गए। चार बजे शान्ति हो गई। लोगोँके घर पहुँचनेके पहले ही गवर्नमेण्ट हाउसमेँ खलबली पड़ गई। फ़ौजको ख़बर भेजी गई कि वह तैयार रहे। क्लब और अन्य स्थानोँकी स्त्रियोँसे जल्दी घर जानेको कहा गया। कितनी ही स्त्रियाँ चली गईं पर चार बजे शान्ति हो गई और गवर्नमेण्ट हाउसमेँ गई हुई स्त्रियाँ भी घर भेज दी गईं। लोगोँने कुछ नहीँ किया, जिससे खलबलीका सन्देह होता। जल्दी सब मामला समाप्त हो गया। इस प्रश्नको छोड़कर कि गोली चलाना ठीक था या नहीँ, यह निर्विवाद सत्य है कि सब झगड़ा डेढ़ या दो घण्टेमेँ शान्त हो गया था। उसी दिन छोटे लाटकी दावत थी। यह १० ता० की बात है। ११ को क्या हुआ? लोगोँने आज्ञा माँगी कि लाशोँको जलूसके साथ ले जायँ। उन्होँने लाशोँका अन्तिम संस्कार किया। इसके अतिरिक्त कुछ नहीँ हुआ।

१२ ता० को बादशाही मस्जिदमेँ सभा हुई। लोग बीती हुई हालतपर शोक प्रकट करनेके लिये वहाँ जमा हुए थे। दूकानेँ बन्द थीँ, परन्तु उन ग़रीबोँके सिवा और किसीको नुक़सान नहीँ पहुँचा, जिनके पास खानेका सामान नहीँ था। ला० हरकिशनलालने लोगोँको भूखसे बचानेके लिये एक हज़ार रुपये देकर प्रशंसनीय कार्य्य किया। ख़ैर, मस्जिदमेँ ख़ुफ़िया पुलीसका एक आदमी गया। उसने वहाँ ऐसे भाव ज़ाहिर किए जिनपर लोगोँको नाराज़ी ज़ाहिर करनी पड़ी और दङ्गा हो गया, परन्तु अन्तमेँ सभा शान्तिसे विसर्जित हुई और कुछ उपद्रव नहीँ हुआ। कहते हैँ कि जब लोग लौटे जा रहे थे, कुछ सामान्यसी बात हो गई, जिसपर सिपाहियोँने गोली चलाई और बहुतसे लोगोँको हताहत किया। पीछे क्या हुआ? इस शोकजनक घटनाके बाद भी लोग शान्त रहे। लाहौरमेँ एक गमला या शीशा तक नहीँ टूटा। मैँने नहीँ सुना कि मा० लौ मेम्बरने क्या कहा?

सर जौर्ज लाउण्डस्ः—मान्य सदस्य को कुछ सुनानेकी मेरी इच्छा न थी। इतना शोर था कि मैँने सोचा कि मुझसे कुछ कहा जा रहा है।

सभापतिः—मुझे विश्वास है कि यदि मा० लौ मेम्बर कुछ कहना चाहते तो उसी जगह खड़े हो जाते, क्योँकि यही नियम है।

मा० मालवीयजीने कहा, श्रीमन्! १० अप्रैलकी सन्ध्या और १५ की आधीरातके बीचमेँ कौनसी ऐसी घटनाएँ हुईं जिनसे इस बातका आभास-मात्र भी हो सके कि लाहौरमेँ खुली बग़ावत थी? लौ मेम्बरने इस प्रश्नके उत्तरमेँ एक भी शब्द नहीँ कहा है! मेरा निवेदन है कि वहाँ कुछ हुआ ही नहीँ और लोग शान्त थे। पुलीस और फ़ौजको सज्जित करनेमेँ सरकारका जो कुछ आशय रहा हो, परन्तु यह सत्य है कि लाहौरमेँ शान्ति थी। मैँ इस बातको न छेड़ूँगा कि फ़ौजकी सहायतासे शान्ति हुई या लोगोँके आन्तरिक शुभ भावोँसे। कुछ भी हो, परिणाम यह हुआ कि लाहौरमेँ शान्ति रही और अंग्रेज़-स्त्रियोँका पहाड़ोँपर भेजा जाना बिलकुल दिखावा-मात्र था।

श्रीमन्! यदि १५ अप्रैलतक लाहौर और अमृतसरका यह हाल था तो इस कौन्सिलसे यह मान लेनेको क्योँ कहा जाता है कि वहाँ खुली बग़ावत थी? यह झाड़ू फेरनेवाला इण्डेम्निटी बिल क्योँ पेश किया जाता है और कौन्सिलसे इसका समर्थन करनेको क्योँ कहा जाता है? मैँ पञ्जाबकी अन्य घटनाओँका भी वर्णन करता हूँ। कहा जाता है कि यह बग़ावत और जगह जल्दीसे फैल जाती, परन्तु श्रीमन्! इन घटनाओँके सिलसिलेपर ध्यान दीजिए। मैँ बता चुका हूँ कि १० मार्चको अमृतसरमेँ जो घटना हुई, वह डा० सत्यपाल और डा० किचलूके निर्वाचनके बाद ही हुई। १० ता० के पश्चात् श्री गान्धीकी गिरफ़्तारी और निर्वासनके कारण और शायद, मैँ ठीक नहीँ कह सकता कि अमृतसरकी घटनाओँके समाचार पहुँचनेपर यह सब हुआ। इन बातोँके सिवा हमेँ वहाँ बग़ावत होनेके सम्बन्धमेँ और कुछ नहीँ बताया जाता। अब मैँ गुजरानवालाके मामलेपर ध्यान दिलाता हूँ।

गुजरानवालामेँ इस समयतक शान्ति रही। १३ ता० तक हमने वहाँकी किसी अनिष्टकारी घटनाका हाल नहीँ सुना। लोगोँने सभा कर सत्याग्रहके दिनके सम्बन्धमेँ विचार किया। उन्होँने सभामेँ रौलेट् ऐक्टका भी प्रतिवाद किया, परन्तु कुछ नहीँ हुआ। १४ ता० को जलयानवाला बाग़के हत्या-काण्डकी ख़बर वहाँ पहुँची और लोगोँने कुछ रोष प्रकाशित किया। सारे शहरमेँ पूरी हड़ताल हुई। सब बातेँ नियमानुकूल हुईं और पूरी शान्तिके साथ, जैसा कि वकीलोँके मुक़दमेका फ़ैसला ज़ाहिर करता है। १३ ता० को महात्मा गान्धीके पकड़े जानेकी ख़बर पाते ही लोगोँने १४ ता० को हड़ताल करनेका विचार किया। हड़तालपर विचार करनेके लिए सभा करनेका प्रस्ताव दीवान मङ्गलसेनके मकानपर एक सभामेँ हुआ। श्रीमन्! कृपा करके ग़ौर करेँ कि फिर क्या हुआ। गुजरानवालामेँ दीवान मङ्गलसेन बड़े प्रतिष्ठित पुरुष हैँ। उन्होँने लड़ाईमेँ चन्दा दिया, सिपाही भेजे और अन्य सहायता भी दी। इसपर भी उनके साथ ऐसा बर्ताव किया गया मानो उन्होँने सम्राट्के प्रतिकूल बलवा किया हो! १२ ता० को जब लोग यह निश्चय करनेके लिए कि उन्हेँ क्या करना चाहिए, एक सभामेँ आए, तो उन्होँने अफ़सरोँको सूचना दी कि उन लोगोँने १४ ता० को हड़ताल करना निश्चय किया है। स्थानापन्न डि० क० सुल्तान अहमदने म्युनिसिपल कमिश्नरोँको १४ की शान्ति रखनेकी आज्ञा दी। लोगोँने यह लुक-छिप कर नहीँ किया, क्योँकि उन्हेँ कुछ छिपाना नहीँ था। म्युनिसिपल कमिश्नरोँकी सभाकी कार्रवाई और डि० क० के साथ जो बातचीत हुई, उसके काग़ज़ात मेरी समझमेँ मिसलमेँ होँगे?

यद्यपि सारे शहरमेँ पूरी हड़ताल थी तथापि १४ अप्रैलका सबेरा शान्तिसे बीता। वज़ीराबादमेँ वैशाखीको एक मेला होता है, जिसमेँ गुजरानवालाके लोग भी जाया करते हैँ। इसलिए अढ़ाई बजेकी गाड़ीपर लोगोँकी बड़ी भीड़ थी। परन्तु टिकट बन्द कर दिए जानेके कारण बहुतसे लोग रह गए। इससे लोगोँमेँ यह विचार फैल गया कि या तो सब वज़ीराबाद जायँ या कोई भी न जाय। गाड़ी चली और भीड़के कारण गार्ड अपनी गाड़ीमेँ बैठ न सका।

चूँकि गार्ड रह गया था, इसलिये गाड़ी सिगनलपर ठहर गई। स्टेशनमेँ एकत्रित लोग गाड़ीकी ओर दौड़े और बहुतसे लोगोँको बाहर निकालनेमेँ सफल हुए। लोगोँने ड्राइवरसे उतर जानेको कहा। वह उतर गया, जिससे इञ्जिनपर कोई न रह गया। कुछ बदमाशोँने इञ्जिनमेँसे जलते हुए कोयले लिए और गुरुकुलके पुलके निकट कुछ लकड़ीके पुराने लट्ठोँमेँ आग लगा दी। यह कार्य्य कुछ बदमाशोँने किया, जो पहले ही से स्थिर नहीँ हुआ था। यह विचारने योग्य है कि पुलको कोई नुक़सान नहीँ पहुँचाया गया और कुछ देरके बाद गाड़ी चली गई। तब लोग गुरुकुल-पुलसे बड़ी सड़कपर, जो रेलवे लाइनके साथ-साथ जाती है, चले। रास्तेमेँ शहर और स्टेशनसे बहुत आदमी आकर भीड़मेँ मिल गए। ख़बर उड़ी कि लाहौर जानेवाली रेलके पुलपर मरा हुआ एक बछड़ा टँगा है। उस समयतक हिन्दू-मुसलमानोँमेँ मेल था, इसलिये लोगोँने सोचा कि यह काम खुफ़िया पुलीसका है। इसकी पुष्टि इस बातसे हुई कि उस स्थानमेँ बहुतसे मन्दिर हैँ। लोग भड़क उठे। मुसलमानोँके प्रसिद्ध नेता मुंशी दीन मोहम्मद वकीलने लोगोँको विश्वास दिलाया कि यह मुसलमानोँका काम नहीँ है और वे स्वयम् बछड़ेको उठानेके लिये बढ़े। यह सुनकर लोग और भी भड़क उठे कि स्टेशनकी दूसरी ओर सुअरका मरा हुआ बच्चा लटक रहा है। ख़ैर, भीड़ पहले मरे हुए बछड़ेके स्थानकी ओर चली। लोग समझ गए कि यह कार्रवाई पुलीसके दूतोँकी है। पुलीस सुपरिण्टेण्डेण्ट हेरन भी उसी समय वहाँ पहुँचे। लोगोँको वह सन्देह तो था ही कि यह कार्य्यवाही पुलीसकी है, उन्होँने सुपरिण्टेण्डेण्टको पकड़ा और पिस्तौल छीनकर नीचे गिरा दिया। उन नौजवानोँको मु० दीन मोहम्मदने शान्त करके हेरन साहबको छुड़ाया और उनका पिस्तौल उन्हेँ दिलवा दिया। परन्तु मि० हेरनने पिस्तौल पाते ही लोगोँपर ख़ासकर उन युवाओँपर, जिन्होँने उन्हेँ पिस्तौल लौटा दी थी, गोली चलाना शुरू कर दिया। इससे कई मनुष्य घायल हुए। (पञ्जाब डिस्टर्बेन्सेज़ पृ० ३८) लोगोँका जोश भड़क उठा और वे स्टेशन पहुँचकर हेरनको माँगने लगे। ज़ख़मियोँमेँसे एक आदमी दूसरे दिन मर गया। भीड़ने पुलीसका मुक़ाबला किया। म्यू० कमिश्नर और मजिस्ट्रेट रेलवे स्टेशनपर दो घण्टे पहले आ गए थे। हेरन साहबने गोली बरसानेको कहा, यद्यपि आनरेरी मजिस्ट्रेट और म्युनिसिपल-कमिश्नर भीड़को हटाना चाहते थे। जब वे ऐसा कर रहे थे, पुलीसके एक सिपाहीने बन्दूक़ चलाकर जलती आगमेँ मानो मिट्टीका तेल डाल दिया। लोग, जो अबतक चुप-चाप थे, बेहाथ हो गए। हेरनने गोली चलानेका हुक्म दिया और गोली चलाई गई। कितनी ही जानेँ गईँ। फिर क्या था? लोगोँने जो चाहा कर डाला। उन्होँने तहसीलदारका बङ्गला फूँक दिया, मिर्ज़ा, कचहरी, डाक बङ्गला और रेलका गोदाम जला दिया। यह सब बातेँ सरकारी आज्ञासे प्रकाशित "पञ्जाबी उपद्रव" पुस्तकमेँ है।

मा० मि० टाम्सन—मान्य मेम्बर किस प्रमाणपर कहते हैँ कि उक्त रिपोर्ट सरकारी आज्ञासे छपी है?

मा० मालवीयजी—क्या ऐसा नहीँ है? यह सि० मि० गज़टके लेखोँसे सङ्कलित की गई है। क्या मा० मेम्बरका कहना है कि यह पञ्जाब-सरकारकी आज्ञासे नहीँ छपी?

मा० मि० टाम्सन—पहला पृष्ठ ही बतलावेगा कि किसके द्वारा यह प्रकाशित की गई है।

मा० मालवीयजी—श्रीमन्! यदि मि० टाम्सन सीधा जवाब न देँ तो मुझे शोक है कि मैँ अधिक नहीँ बता सकता। मुझे बताया गया है कि यह सरकारकी आज्ञाके अनुसार प्रकाशित हुई है, यदि ऐसा नहीँ है, तो मुझे अपने कथनपर खेद है। परन्तु उन्हेँ यह बताना चाहिए कि बात ऐसी है या नहीँ, क्योँकि हमको असली बातोँकी आवश्यकता है? इसमेँ बहुत सी सरकारी विज्ञप्तियाँ भी हैँ।

श्रीमन्! उस स्थानपर, जहाँ मरा हुआ बछड़ा टँगा था, जो लोग मरे, उनकी लाशेँ बाज़ारमेँसे नियानिन ले जाई गईं। यहाँ लोगोँका ध्यान हटानेके लिये सभा हो रही थी। हिन्दू-मुसलमानोँके मेलपर व्याख्यान हो रहे थे और लोगोँसे शान्त होनेको कहा जा रहा था। (इस्लामिया स्कूलके मैनेजरकी हिदायतमेँ ऐसा ही लिखा हुआ है) ये सब झगड़े हानिकारक थे, परन्तु तीन बजेतक शान्त हो गए। शहरमेँ अमन रहा। यह घटना सिविल स्टेशनमेँ हुई। सि० मि० गज़टके बयानके अनुसार तीन-चार बजेके बीचमेँ, जब लोग घर जा रहे थे, हवाई जहाज़ आए और उन्होँने बम गिराए। मैँने उन स्थानोँको देखा है, जहाँ बम गिरे थे। बमकी इस वर्षासे कई आदमी मरे—पाँच एक जगह और दो एक जगह। मैँ चाहता हूँ कि कौन्सिलको यह बताया जाय कि हवाई जहाज़ोँपरसे गुजरानवालापर बम बरसानेकी क्या ज़रूरत थी, जब कि भीड़ स्वयम् तितर-बितर हो रही थी। एक ही जगहपर नहीँ, बल्कि कई स्थानोँ तथा शहरके बीचमेँ और ऐसे स्थानोँमेँ, जहाँ चारोँ ओर घर थे, बम गिराए गए। एक बम ख़ालसा बोर्डिङ्ग-हाउसमेँ गिरा, जहाँ एक सौ साठ लड़के रहते थे। केवल यही नहीँ किन्तु गुजरानवालासे बाहर स्थानीय होमरूल लीगके मन्त्री लाला अमरनाथके मकानपर तथा आस-पासकी बस्तियोँपर भी बम गिराए गए। कुछ दूरीपरके एक गाँवमेँ भी बम गिराया गया। मुझे बताया गया है कि इससे एक लड़का और एक स्त्री मरी। अब श्रीमन्! कौनसा सांसारिक कारण इस घटनाकी उपयुक्ततामेँ दिया जा सकता है, जिसके लिये बमके छः गोले—अधिक भी होँ तो कह नहीँ सकता—हवाई जहाज़ोँपरसे गिराए गए। यह चौदह तारीख़की बात है। उस दिन नगरमेँ बिलकुल शान्ति थी। पन्द्रह तारीख़को सबेरेको भी एक बम गिराया गया। मैँ पूछता हूँ कि इन कामोँके लिये क्या कारण दिया जा सकता है? श्रीमन्! इन सब कामोँ तथा अत्याचारोँके होते हुए भी लोग शान्त रहे और कोई फ़साद नहीँ हुआ। लोगोँने कोई उपद्रव नहीँ किया। रेलवे स्टेशनपर जो थोड़ासा हुआ उसके कारणोँका उल्लेख मैँ पहले ही कर चुका हूँ। एक योरोपियन इञ्जीनियर शहरसे एक मीलके फ़ासिलेपर रहते थे, वहाँ पहुँचकर लोगोँने कुछ उपद्रव किया। इसके सिवा और योरोपियनोँसे कोई छेड़छाड़ नहीँ हुई, और न किसी मेमकी ही कोई बेइज़्ज़ती हुई। फिर क्योँ यह बमबाज़ी हुई? श्रीमन्! मुझे बतलाया जाय कि गुजरानवालामेँ कौनसी ऐसी बात हुई, जिससे फ़साद होनेवाले स्थानोँकी फ़ेहरिस्तमेँ इसका नाम दर्ज किया गया? यह विचारणीय बात है। अब कौन्सिल अंग्रेज़ोँकी शोकप्रद हत्या, रेलकी पटरीके उखाड़ने, तार तोड़ने और कसूरकी उन घटनाओँपर ग़ौर करे, जिनकी फ़ेहरिस्त पत्रोँमेँ निकली थी। ये खेदजनक घटनाएँ १० अप्रैलके पश्चात्, जब सरकारसे ग़लती हो चुकी थी, अर्थात् जब लोगोँको यक़ीन हो गया कि अमृतसरमेँ निर्दोष लोगोँपर गोली चलाई गई है, हुई थीँ।

श्रीमन्! आप उन हालतोँको ध्यानसे देखेँ, जिनमेँ ये घटनाएँ हुई हैँ। अमृतसरकी घटना भी ध्यान देने योग्य है। मैँ लोगोँद्वारा किए गए कार्य्योँको घटाकर कहना नहीँ चाहता। मैँ इनपर शोक प्रकट करता हूँ, परन्तु मेरे विचारमेँ एक या दूसरे पक्षपर इलज़ाम लगानेका निश्चय करनेके लिये ध्यानसे इस बातको हटाना अन्याय होगा कि कौनसी घटना किस कारणसे हुई। श्रीमन्! मैँ उन बड़ी घटनाओँको छेड़ता हूँ, जिनसे वहाँ खुली बग़ावत सिद्ध होती है। अब मैँ आपका ध्यान मामलेके दूसरे ज़रूरी हिस्सेपर दिलाता हूँ। मेरे कथनका सम्बन्ध अफ़सर-क्षमा विधानकी उस प्रस्तावनासे है, जिसमेँ कहा गया है कि पञ्जाबके कुछ ज़िलोँ और भारतके अन्य भागोँमेँ उपद्रव होनेके कारण और शान्ति रखनेके लिये फ़ौजी क़ानून जारी किया गया था। मैँ अदबसे इस बयानकी सचाईपर सन्देह करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि यदि कौन्सिलके पास उन घटनाओँका

सच्चा विवरण नहीँ है—जिनसे यह बात ठीक सिद्ध हो सके कि अमृतसर, लाहौर आदि स्थानोँमेँ खुली बग़ावत थी तो यह प्रस्तावना निकाल देनी चाहिए।

श्रीमन्! मैँ प्रस्तावनाकी एक दूसरी बातपर भी ध्यान दिलाता हूँ। उसमेँ कहा गया है कि शान्ति स्थापित करनेके लिये फौज़ी क़ानूनका सहारा लिया गया। श्रीमन्! घटनाएँ क्या हैँ? मेरी समझमेँ लाहौरके अधिवासियोँको इसके लिये धन्यवाद देना चाहिए कि यद्यपि बेक़सूर आदमियोँको भी गोली मार दी गई तो भी न तो उन्होँने कोई उपद्रव ही किया और न किसी योरोपियन स्त्री-पुरुषको मारा। इसपर भी श्रीमन्! यह घोषित किया गया है कि लाहौर बाग़ी है। यह बिलकुल असत्य था। इस क़ानूनपर विचार करनेके लिये यह बड़े महत्वकी बात है। श्रीमन्! फ़ौजी-क़ानूनके शासनमेँ कैसे हुक्म निकले? क्या कल्पना-शक्तिपर अधिक-से-अधिक ज़ोर देनेसे भी वह सुव्यवस्था स्थापित करनेके लिये आवश्यक समझे जा सकते थे। वहाँ कौनसी ऐसी घटनाएँ हुईं जिनसे लाहौरमेँ सुव्यवस्था स्थापित करनेके लिये फ़ौजी-क़ानून जारी करनेकी ज़रूरत हुई?

प्रश्नोँका उत्तर नहीँ दिया गया।

श्रीमन्! मैँने नोटिस देकर एक प्रश्नावलीद्वारा वास्तविक घटनाओँको जाननेकी चेष्टा की थी। जैसा कि मैँने पहिले कहा है, सरकारने उनका उत्तर देना उचित न समझा? मुझे पूरा विश्वास है और बिना उत्तर पाए ऐसा कहनेका मैँ अधिकारी हूँ कि सरकारने उस सच्चाईको मान लिया है जो मैँ इन प्रश्नोँसे ज़ाहिर करना चाहता था। कमसे-कम जब उन घटनाओँके प्रतिकूल—जो मेरे प्रश्नोँमेँ कही गई हैँ—सरकारकी ओरसे बयान प्रकाशित नहीँ किया जाता, तबतक मुझे अधिकार है कि विचाराधीन क़ानूनपर बहस करते हुए मैँ मान लूँ कि मेरे कथनका खण्डन नहीँ हो सकता। श्रीमन्! फ़ौजी क़ानूनके अनुसार क्या आज्ञाएँ निकलीँ? कुछ कहनेके पहले मैँ उस विशेष फ़ौजी आज्ञाका ज़िक्र करूँगा जिसकी ओर मा० होम मेम्बरने ध्यान आकर्षित किया है। यदि उनके अनुसार दी गई सज़ाओँमेँ आज्ञाका भाव दृश्यमान रहता तो हमेँ आज इस बिलपर बहस न करनी पड़ती; परन्तु दुर्भाग्यसे यह दण्ड, आज्ञाके आशयसे बहुत आगे बढ़ गए हैँ।

कोड़ेबाज़ी

पहला प्रश्न, जिसकी ओर मैँ ध्यान दिलाना चाहता हूँ, कोड़ेबाज़ी है? कितने आदमियोँको कोड़े लगाए गए और किन अपराधोँपर! मैँने इस प्रश्नपर बहुत ध्यान दिया है। मुझे मालूम हुआ है कि फ़ौजी क़ानूनमेँ यह एक नियम है कि बेँत लगाना उन सज़ाओँमेँ से नहीँ है, जो फ़ौजी कमीशन दे सकता है। यदि मेरा कहना ठीक है और मुझे विश्वास है कि वह सत्य है, तो शोककी बात है कि फ़ौजी शासनके कालमेँ बेँत लगानेका दण्ड लाहौर और अमृतसरके लोगोँको बहुत अधिकतासे दिया गया। श्रीमन्! क्या कोई मुझे बता सकता है कि सुव्यवस्था या शान्ति स्थापित रखनेके लिये बेँत मारना आवश्यक था? जिस साम्राज्यमेँ युद्धकी सामग्री इतनी अधिक है और जिसका आपने अपनी ३ तारीख़की वक्तृतामेँ ज़िक्र किया था, उसके रहते हुए भी, यदि बेँत लगानेकी पशुओँके योग्य सज़ा न दी जाती तो क्या भारत सरकारके उलट जानेका डर था?

मैँने पहले ही बताया है कि जिस दिन कई हिन्दुस्तानियोँ और योरोपियनोँकी जानेँ गईं, उस दिन साढ़े पाँच बजेतक अमृतसरमेँ शान्ति हो गई थी। ११ और १२ तारीख़ोँको लोगोँने कोई उपद्रव नहीँ किया। १३ तारीख़को जनताने नहीँ किन्तु अफ़सरोँने उपद्रव किया। १३ तारीख़के बाद लोगोँने कुछ नहीँ किया। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि शान्ति स्थापित करनेके लिये फ़ौजी क़ानूनका सहारा लेना आवश्यक था? शान्ति स्थापित हो चुकी थी। बहुत अन्याय

हो चुका था—बुराई करनेकी घृणित वासना तृप्त हो चुकी थी। लोगोंने सोच लिया था कि इस बारेमें और कुछ न होगा। मैं एक और ज़रूरी बातकी ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ। माननीय होम मेम्बरने श्रीमान्से और सम्पत्तिवाले मित्रोंसे करुणाजनक अपील की है कि उनकी और उनकी सम्पत्तिकी क्या हालत होती यदि अमन क़ायम न रक्खा जाता। मैं कौन्सिलको बतलाना चाहता हूँ कि इन घटनाओंके समय अमृतसरमें पुलीस नहींके बराबर थी और सभा-समाजोंके कार्य्यकर्त्ताओंने अपने सङ्घ बनाकर जान और मालकी रक्षा की।

मैं विश्वास करता हूँ और जहाँतक मुझे ज्ञात है वहाँ कोई दुर्घटना नहीं हुई। जब लोगोंने देखा कि पुलीस पहरा देने और रक्षा करनेमें स्वकर्त्तव्य पालन नहीं कर रही है तो उन्होंने मण्डलियाँ बनाईं और भीतर और बाहरसे होनेवाले उपद्रवोंसे अपने नगरकी रक्षा की। इसलिये मैं यह बताना चाहता हूँ कि जहाँतक अमृतसरका सम्बन्ध है, यह कहना ठीक नहीं कि शान्ति-रक्षाके लिये फ़ौजी क़ानून जारी करना आवश्यक था। अब फिर मैं लाहौरका ज़िक्र करता हूँ। क्या लाहौरके विषयमें यह बात ठीक है? मैं कह चुका हूँ कि लाहौरमें गोरोंकी आबादी अधिक होनेपर भी १० तारीख़ या किसी अन्य दिनके उपद्रवमें येरोपियन लोगोंकी स्वतन्त्रता और जानको तनिक भी ख़तरा नहीं हुआ। कहा जाता है कि कई दिन पीछे एक येरोपियनको चोट आई, जिससे उसके सरपर पट्टी बाँधनी पड़ी, परन्तु यह चोट पुलीस अफ़सरद्वारा उसे पहुँची थी। ऐसी अवस्थामें, श्रीमन्! मैं इस कौन्सिलके हरएक सदस्यसे प्रार्थना करता हूँ कि वे इसपर विचार करें कि क्या लाहौरके किसी हिन्दुस्तानी या गोरेकी ज़िन्दगी १० और १५ अप्रैलके बीच सङ्कटमें थी?

मैं जानना चाहता हूँ कि अमृतसर आदि स्थानोंमें बेंत लगानेकी सज़ा देनेकी क्या आवश्यकता थी? अमृतसरमें नेता पकड़े गए। मैं समय बचानेके निमित्त क्रमानुसार उनका वर्णन करूँगा।

श्रीमन्! मैंने पञ्जाबमें फ़ौजी शासनके हाकिमोंद्वारा निकाले हुए नोटिसों और इश्तहारोंको मेज़पर रखनेका निवेदन किया था।

सभापतिः—नियम दो के अनुसार मा० मेम्बर बिलकुल नियमके प्रतिकूल बोल रहे हैं। उन्हें भली प्रकार ज्ञात है कि उन्होंने मुझसे सभापतिकी हैसियतमें पूछा था कि यह प्रश्न किया जा सकता है या नहीं। मैंने प्रश्न-सम्बन्धी नियमोंके अनुसार इसके पूछनेकी आज्ञा नहीं दी थी। मा० मेम्बर जानते हैं कि नियम सात या आठ के अनुसार सभापतिकी आज्ञापर कोई बहस नहीं हो सकती। मैं मा० मेम्बरको अपने हुक्मके सम्बन्धमें बहस करनेकी आज्ञा नहीं दे सकता।

मा० मालवीयजी :—श्रीमन्! धन्यवाद! मेरा आशय आपकी आज्ञापर बहस करनेका नहीं है। मैं यह बतलाना चाहता था कि मुझे वह क्यों नहीं मिली।

सभापति :—आपने इसपर दूसरी रीतिसे बहस करनेका प्रयत्न किया।

मा० मालवीयजी :—हाँ, दूसरी रीतिसे। परन्तु श्रीमन्! परिणाम यही होता।

सभापतिः—यही बात है। मैं प्रसन्न हूँ कि माननीय मेम्बरने यह बात स्वीकार कर ली। आपका आशय ठीक यही था। मैं इसकी आज्ञा नहीं दे सकता।

मा० मालवीयजी :—श्रीमन्! आपकी मनाहीके औचित्य वा अनौचित्यका प्रश्न मेरे मनमें न था। मैं यह कहना चाहता था कि मैं क्यों उन आज्ञाओंका हवाला न दे सका। फ़ौजी क़ानून-सम्बन्धी इस सन्दिग्ध बिलपर बहस करनेके समय मेरी बड़ी कठिन स्थिति है। इसलिये मुझे फ़ौजी क़ानूनकी आज्ञाओंका ज़िक्र करना पड़ता है। यदि मैं अपनी कठिनाईका ज़िक्र करता हूँ तो मेरा आशय सीधी या पेचदार रीतिसे आपके प्रश्न करने देनेके औचित्यपर है बहस करनेका नहीं। फ़ौजी शासनके समय बहुतसी

सूचनाएँ निकाली गई थीं। दुर्भाग्यसे मैं उन सबको कौन्सिलके सामने नहीं रख सकता, क्योंकि वे मेरे पास नहीं हैं। मैं यह बतलानेका प्रयत्न करूँगा कि वे सब शान्ति-रक्षाके लिये आवश्यक न थीं। मैं कौन्सिलका ध्यान इसीपर दिलाना चाहता हूँ। मैं उनमेंसे एकका ज़िक्र करता हूँ। अमृतसरकी दुर्गा-कुटी गलीमें, हर हिन्दुस्तानीको, चाहे वह किसी अवस्था या स्थितिका हो, गलीकी सारी लम्बाईमें पेटके बल रेंगकर चलनेकी आज्ञा दी गई थी। अंग्रेज़ सिपाही इस आज्ञाका पालन करानेके लिये वहाँ तैनात किए गए थे। मैं पूछता हूँ कि क्या यह कार्य्य शान्ति स्थापित करनेके लिये आवश्यक था?

श्रीमन्! १२ अप्रैलसे पाँच दिनतक अमृतसरमें बिजलीकी रोशनी और बम्बेका पानी बन्द रक्खा गया था। डि० क० श्री किङ्गके समय पहले ही सब कुएँ इसलिये बन्द करा दिए गए थे कि उनका पानी स्वास्थ्यके लिये हानिकर है। रोशनी तथा पानी बन्द करनेसे लोगोंको बड़ी कठिनाई सहनी पड़ी। मैं जानना चाहता हूँ कि शान्तिकी रक्षा वा स्थापनाके लिये इसकी कोई आवश्यता थी? श्रीमन्! बहुतसे प्रतिष्ठित सज्जन—जिनमें साहूकार, वकील और डाक्टर अधिक थे—कई दिनतक एक साथ हथकड़ी लगाकर रक्खे गए थे। वे गेन्द खेलनेके खुले मैदानमें छोड़ दिए गए थे, जहाँ दिनमें तीखी गर्मी और रात्रिको पूरी सर्दी पड़ती थी। ये एक हथकड़ीमें दो-दो के हिसाबसे बाँधे गए थे और उन्हें उसी अवस्थामें खाना-पीना और शौच जाना पड़ता था! मैं जानना चाहता हूँ कि क्या शान्ति तथा क़ानूनकी रक्षाके लिये ऐसी आज्ञाओंकी आवश्यकता थी? मुझे ज्ञात हुआ है कि जब १५ अप्रैलको हवाई जहाज़ोंसे गुजरानवालाके लोग डराए गए उस समय शहरमें कोई फ़साद न था। उसी दिन गुजरानवालाके डिप्टी कमिश्नरने पुलीस और गोरे सिपाहियोंकी फ़ौज और हथियारोंसे भरी एक गाड़ी लेकर लाला मेलाराम बी० ए०, एल्‌एल्० बी० वकीलके मकानपर चढ़ाई की। उन्हें पकड़कर हथकड़ी पहिनाई गई। कपड़े पहनने और कुटुम्बियोंसे बोलनेतकका उन्हें अवसर नहीं दिया गया। फिर इस फ़ौजको मि० लाभसिंह एम्० ए० (केम्ब्रिज) बैरिस्टर मिल गए। इसने उनको पकड़कर लाला मेलारामके साथ हथकड़ी पहिना दी।

अनन्तर यह सेना अन्य बीस सज्जनों—वकील, साहूकार तथा प्रतिष्ठित लोगोंके—घर गई। इसने उन्हें पकड़कर जंज़ीरसे एक साथ बाँधा और एक हथकड़ीमें दो-दोको बाँधकर शहर भरमें इनका जुलूस निकाला! सबसे आगे एक हिन्दू और एक मुसलमान एक जगह हथकड़ीमें बँधे हुए थे। कर्नल ओब्रायन बतलाते जाते थे कि यह हिन्दू-मुसलमानोंके मेलका स्वाँग है। सबसे आगे कर्नल ओब्रायनके हुक्मसे दो म्युनिसिपल कमिश्नर, ऊपर उड़नेवाले हवाई जहाज़ोंकी ओर हाथ उठाकर लोगोंसे चिल्लाते हुए कहते थे कि "हट जाओ, नहीं तो बमसे उड़ा दिए जाओगे।" इस प्रकार शहरके बड़े-बड़े बाज़ारोंमें घुमानेके बाद ये क़ैदी रेलवे स्टेशनपर लाए गए और कोयला भरनेकी खुली गाड़ियोंमें भरे गए। उनपर नङ्गी तलवारोंका पहरा बैठाया गया। हथियारोंसे सुसजित एक इञ्जिन गाड़ीमें जोड़ा गया जिसमें एक तोप भी थी। उसका मुँह इन लोगोंकी ओर था। उनको अपनी जगह छोड़नेकी आज्ञा न थी। शौच जानेके लिये भी वे हिल नहीं सकते थे! उन्हें सब कष्ट एक स्थानमें बैठकर ही सहने पड़े। श्रीमन्! लाहौर स्टेशनपर, जेलमें भेजे जानेके पहले, दस घण्टे तक ये सज्जन अन्य तीस क़ैदियोंके साथ एक ऐसी कोठरीमें बन्द रक्खे गए जिसमें एक ओर पाखाना था। श्रीमन्! मुझे ज्ञात हुआ है कि गुजरानवाला ज़िलेके शाहपुरा स्थानके वकील और व्यापारियोंको भी गुजरानवालामें लोगोंकी तरह कष्ट दिए गए। उनका भी ऐसा ही अपमान और निरादर किया गया। मुझसे कहा गया है कि शाहपुरामें दस वर्षसे ऊपरके सब लोग, उनकी

सामाजिक स्थिति और प्रतिष्ठापर कोई ध्यान दिए बिना वहाँके ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट बोसवर्थ स्मिथद्वारा बुलाए गए और खुले मैदानमेँ उनसे झाड़ू लगवाई गई ! लाहौरके निकट राजगढ़ गाँवमेँ मुसलमानोँकी एक बारातको फ़ौजी क़ानूनके व्यवस्थापकने पकड़कर सज़ा दी ! श्रीमन् ! अमृतसर तथा गुजरानवालाकी दुर्घटनाओँके बारेमेँ ये बातेँ मालूम हुई हैँ। मैँ जानना चाहता हूँ कि सुव्यवस्थाकी रक्षा वा स्थापनाके लिये इनमेँसे कौनसी बात आवश्यक थी ? श्रीमन् ! अब मैँ अन्य स्थानोँमेँ किए गए अपमानोँकी ओर कौन्सिलका ध्यान दिलाता हूँ। कसूरके वकील मौ० गुलाम मुहिउद्दीन, जिन्हेँ पिछले ही साल लड़ाईकी सेवाओँके लिये इनाम मिला था—और मौलवी गुलाम क़ादिर पकड़े जाकर रेलवे स्टेशनके निकट जंगलेकी हवालातमेँ कुछ सप्ताहतक क़ैद रक्खे और कुछ दिनके बाद किसी अभियोगके बिना छोड़ दिए गए ! मुझे बतलाया गया है कि कसूरमेँ कितने ही लड़कोँको बेँत लगाए गए। मैँ जानना चाहता हूँ कि क्या शान्ति और क़ानूनकी रक्षाके लिये यह सब ज़रूरी था ?

लाला मनोहरलाल की गिरफ़्तारी

केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके एम्० ए० और विश्वविद्यालयमेँ काम करनेवाले अर्थ-शास्त्रके प्रोफ़ेसर, पञ्जाब विश्वविद्यालयकी अन्तरङ्ग सभाके सभासद तथा लाहौरके विख्यात बैरिस्टर, लाला मनोहरलाल कोई एक महीनेतक बिना किसी अभियोगके क़ैद रक्खे गए, जिसमेँ एक सप्ताहतक उन्हेँ निर्जन कोठरीमेँ भी रहना पड़ा। क्या कोई मुझे बतलायगा कि ऐसे प्रतिष्ठित सज्जनका ऐसा अपमान करनेकी कोई आवश्यकता थी ? क्या कोई मुझे बतलायगा कि क्योँ ये सज्जन पकड़े गए ? मुझे बतलाया गया है कि उनका अपराध केवल यही था कि वे ट्रिब्यूनके ट्रस्टी थे और इसीसे उनपर कुछ अफ़सर और पञ्जाबके लाट अप्रसन्न थे। एक पत्रके ट्रस्टी होनेके अपराधमेँ—ऐसे पत्रके ट्रस्टी होनेके पापमेँ, जिसका नाम विख्यात हो गया है और जिसके लेखोँको पूर्ण राजभक्त लोग भी बहुत योग्यतासे लिखे गए समझते हैँ—एक ऐसे सज्जनकी, जो मिण्टो-प्रोफ़ेसर हैँ, यह दुर्गति की गई ! मैँ कौन्सिल ही से सुनना चाहता हूँ कि इन महाशयको इतना दुःख तथा कष्ट देनेका क्या कारण था ?

राय रामप्रसादको जेल

राय साहब सेठ रामप्रसाद—जो लाहौरके म्युनिसिपल कमिश्नर, प्रतिष्ठित साहूकार और बहुतसे मकानोँके मालिक हैँ—पकड़े गए और हथकड़ी डालकर सेन्ट्रल जेलतक तीन मील पैदल ले जाए गए। वहाँ निर्जन कोठरीमेँ कई सप्ताहतक बन्द रक्खे जानेके बाद अन्तमेँ बिना मुक़दमा चलाए ही छोड़ दिए गए ! क्या मा० होम मेम्बर ऐसे हाकिमोँको बचानेका प्रयत्न करते हैँ, जिन्होँने इन सज्जनोँके साथ ऐसे अन्याय किए ? मेरी समझमेँ कौन्सिलके किसी सदस्यकी अपेक्षा इनकी प्रतिष्ठा कम नहीँ है। क्या मा० मेम्बर इन पापोँपर कौन्सिलसे परदा डलवाना चाहते हैँ ? श्रीमन् ! फ़ेहरिस्त बहुत लम्बी है। मैँ कौन्सिलका अधिक समय न लेकर केवल यह बताना चाहता हूँ कि कौन्सिलको इन घटनाओँपर अच्छी तरह ध्यान देकर इस क़ानूनपर विचार करना चाहिए।

श्रीमन् ! अमृतसरकी एक और घटना है। वहाँके रहनेवाले डा० केदारनाथ, रिटायर्ड सिविल-सर्जन हैँ। उनकी अवस्था साठ वर्षकी है और वे कई वर्षोँसे हृदयकी बीमारीसे पीड़ित रहते हैँ। ये सज्जन पकड़े गए और हथकड़ियाँ पहिनाकर अन्य बासठ क़ैदियोँके साथ बड़ी गलियोँमेँ घुमाए जाकर दो क़ैदियोँके साथ एक छोटीसी कोठरीमेँ बन्द रक्खे गए। अन्तमेँ बिना मुक़दमा चलाए छोड़ दिए गए। लाहौरमेँ और आज्ञापत्र चिपकाए गए थे। मकानवालोँसे कहा गया था कि यदि इनपर धब्बा पड़ गया या वे

मकानोँपर फ़ौजी विज्ञापन

उखाड़े गए तो फ़ौजी क़ानूनके अनुसार उन्हें सज़ा मिलेगी। श्रीमन्! उन लोगोंमेंसे एककी स्त्रीने (मि० पीरदीनकी धर्मपत्नी, जो एक अंग्रेज़ महिला हैं) मुझे बतलाया कि उन्हें सारी रात उन विज्ञापनोंकी रखवाली इसलिये करनी पड़ती थी कि उनके पति आपत्तिमें न फँसें। उनका गोरी स्त्री होना भी उन्हें इस कष्टसे न बचा सका। मैं जानना चाहता हूँ कि प्रतिष्ठित पुरुषोंको इस प्रकारका कष्ट देना और इस तरहसे उनका अपमान करना क्यों आवश्यक समझा गया?

विद्यार्थियोंपर घोर अत्याचार

श्रीमन्! विद्यार्थियोंके साथ जैसा बर्त्ताव किया गया वह उन घटनाओंसे ज़ाहिर होगा, जिनकी ओर मैं कौन्सिलका ध्यान अब दिलाना चाहता हूँ। लाहौरमें विद्यार्थियोंके साथ बड़े-बड़े अन्याय किए गए। मैं जानना चाहता हूँ कि सुव्यवस्था स्थापित करने और शान्तिकी रक्षाके लिये यह बर्त्ताव क्यों आवश्यक समझा गया? दयानन्द ऐङ्गलो-वैदिक कौलेज, मेडिकल कौलेज और दयालसिंह कौलेजके सब विद्यार्थियोंको जलती धूपमें, नङ्गी तलवारोंके पहरेमें, प्रतिदिन फ़ौजी अफ़सरके यहाँ चार वार हाज़िरी देनेके लिये जानेका हुक्म दिया गया था! यह आज्ञा विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंसे तीन सप्ताह पूर्वतक जारी रही।

किङ्ग एडवर्ड मेडिकल कौलेजके विद्यार्थियोंको तो गर्मीकी धूपमें हाज़िरी देनेके लिये प्रतिदिन सोलह मीलका चक्कर काटना पड़ता था। कुछ विद्यार्थियोंको हाज़िरीके लिये जाते हुए, हाज़िरी देते वा लौटते समय ग़श आ जाता था जिसके वाद हाज़िरीके लिये एक निकटवर्त्ती स्थान नियत किया गया। श्रीमन्! कई कौलेजोंके प्रिन्सिपल विना किसी अपराधके अपने कुछ विद्यार्थियोंको कठिन दण्ड देनेके लिये फ़ौजी क़ानूनके व्यवस्थापक-द्वारा वाध्य किए गए थे। कुछ विद्यार्थी कौलेजोंसे निकाले गए, कुछ एक दर्जा नीचे उतार दिए गए, फिर जुर्मानेकी तो वात ही क्या? मुझे बतलाया गया है कि उन विद्यार्थियोंकी संख्या, जिनपर यह अन्याय और सख़्तियाँ की गईं, एक हज़ारके लगभग है। मैं पूछता हूँ कि क्या सुव्यवस्था और शान्ति स्थापित करनेके लिये यह कार्रवाई आवश्यक थी?

श्रीमन्! कुछ ऐसे लोगोंने, जिनका विचार फ़ौजी अदालतोंमें हुआ—विशेषतः फ़ौजी क़ानूनके अन्तमें जिनपर मुक़दमे चलाए गए, बयान किया है कि गवाहोंके उपस्थित होनेपर भी, समयकी कमी बताकर फ़ौजी अफ़सरोंने गवाही लिए विना ही उनको सज़ा दे दी! उदाहरणके लिये हाफ़िज़ाबाद, ज़िला गुजरानवालाके वकील शिवराम और गुरुदासरामका मामला है। उन्हें श्री वेस, आई० सी० एस्० ने दो वर्षकी कड़ी क़ैदका दण्ड दिया। श्रीमन्! विद्यार्थी रामलोक, वल्द दौलतराम, उमर सत्रह साल पुलीस-द्वारा पकड़ा गया और तीन सप्ताहतक हवालातमें रक्खा जानेके बाद गवाही न मिलनेपर छोड़ दिया गया।

उसके छूटनेके कुछ दिन पीछे उसका बाप दौलतराम, रामदत्त नामी एक अभियुक्तकी गवाहीमें पेश हुआ। उसने कहा कि पुलीसवालोंने रामदत्तको सरकारी गवाह बनानेको कहा था, परन्तु उसने इनकार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि उसका पुत्र रामलोक फिर उसी इलज़ामपर पकड़ा गया, जिससे पहले वह मुक्त कर दिया गया था। उसके मुक़दमेको सुननेके लिये १० जून नियत हुई, परन्तु फ़ौजी क़ानूनकी अवधि ९ जूनकी आधी रातको समाप्त होनेवाली थी, इसलिये उसे वा उसके पिताको कोई सूचना दिए विना ही मुक़दमेकी तारीख़ बदलकर ९ जून कर दी गई! मुक़दमा हुआ और उसे सफ़ाईका अवसर दिए विना ही श्री होपलने एक साल सात महीनेके कठिन कारावासका दण्ड दे दिया।

श्रीमन्! ल्यालपुरका मांस-विक्रेता भगवानसिंह ६ जूनको पकड़ा गया। फ़ौजी आदालतमें तारीख़ ७ को उसका मुक़दमा हुआ। ८ को कुछ गवाहोंके

बयान लिए गए, परन्तु फ़ौजी शासन ९ की आधी रातको समाप्त होनेवाला था, इसलिये अभियुक्तकी अनुपस्थितिमेँ रातके ग्यारह बजे उसको तीन महीनेकी कड़ी क़ैदकी सज़ा दे दी गई।

श्रीमन्! फ़ौजी क़ानूनके अनुसार चलाए गए बहुतसे मुक़दमोँमेँ मुद्दई या मुद्दालेहकी गवाही लिए बिना और कोई फ़ैसला न लिखकर भारी दण्ड दिए गए। उदाहरणके लिये सम्राट् बनाम फ़ज़ला वल्द गुमार्दी ककेज़ईको धारा एक सौ चौबीस-ए ताजीरात हिन्दके अनुसार २६ अप्रैलको लेफ़्टिनेण्ट कर्नल इरविनने कोई गवाही न लेकर देशनिकालेका दण्ड दिया। अमृतसरके हंसराज और हरिरामको लाहौर हाइकोर्टके जज मा० श्री जोन्सने ताजीरात हिन्दकी धारा चार सौ बारहके अनुसार सात-सात वर्षकी कड़ी क़ैदकी सज़ा दे दी। कितने ही मुक़दमोँमेँ बाहरके गवाहोँकी गवाही लेनेसे इनकार कर दिया गया। कोई आदमी इस बातपर विश्वास न करेगा कि कई मुक़दमोँमेँ अपराध तकका नाम नहीँ लिखा गया। मेरे पास ल्यालपुरके पहिले दर्जेके मजिस्ट्रेटके एक फ़ैसलेकी नकल है। उसमेँ निम्नलिखित रीतिसे दण्ड दिए गए हैँ।

"तनकीह—सारे मुलज़िम अपराधी हैँ :—

मुलज़िम नं० १ बसन्तराम, दो वर्षका कठिन कारावास।

मुलज़िम नं० २ चरनदास, नौ महीनेकी कड़ी क़ैद।

मुलज़िम नं० ३ जवान्दरराम, नौ महीनेकी कड़ी क़ैद।

मुलज़िम नं० ४ भगतसिंह, छः महीनेकी कड़ी क़ैद।

(दः) ए० एल्० होपल

श्रीमन्! लोगोँकी स्वतन्त्रता और इज्ज़त छीननेकी यह रीति है। क्या ये फ़ैसले भी ठीक माने जायँगे? यह २८ मई, सन् १९१९ ई० के एक और फ़ैसलेकी नक़ल है, जो ल्यालपुरके पहले दर्जेके मजिस्ट्रेटने दिया था :—

"मुलज़िम एकसे बारहतक ताजीरात हिन्दकी धारा एकसौ सैँतालिसके अनुसार बग़ावतके और टेलीग्राफ़ ऐक्टकी धारा पच्चीसके तथा मुलज़िम १३, १४, १६ ताजीरात हिन्दकी धारा एकसौ सैँतालिसके अनुसार अपराधी हैँ और मुलज़िम, १५, १७ और १८, सन्दिग्ध हैँ।

सज़ा या रिहाई :—

मुलज़िम सीतारामको प्रत्येक अपराधके लिये दो-दो वर्षकी कड़ी क़ैद; मुलज़िम रामदत्तको टेलीग्राफ़ ऐक्टकी धारा पच्चीसके अनुसार चौदह महीनेकी और फ़सादके लिये छः महीनेकी कड़ी क़ैद; अमरनाथ, केसरमल, ज्ञानचन्द्र, अमरनाथ, अज्ञाराम, काकाराम, हरिचन्द्र, दीवानचन्द, गिरधारी और सीताराम को फ़सादके लिये छः-छः महीनेकी और टेलीग्राफ़ ऐक्टकी धारा पच्चीसके अनुसार एक एक वर्षकी कड़ी क़ैद। ये सज़ाएँ एकके बाद एक आरम्भ होँगी।

केसरसिंह, तेजसिंह और भगतसिंहको तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैद; नन्दसिंह, बलवन्तसिंह और और जयमलसिंह छोड़े गए।"

श्रीमन्! इस रीतिसे हमारे बहुतसे भाइयोँकी स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठापर छापा मारा गया है।

ज़बर्दस्ती सलाम

श्रीमन्! कुछ अन्य विषय भी हैँ, जिनपर मुझे ध्यान दिलाना आवश्यक है। एक हुक्म निकाला गया था कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी, जो किसी गोरेके पाससे गुज़रे, उसे सलाम करे और यदि उसे गाड़ीमेँ बैठकर बाहर जाते हुए कोई गोरा मिल जाय तो वह गाड़ीसे उतरकर सलाम किया करे। इसके कई उदाहरण हैँ कि गोरोँको सलाम न करने अथवा अन्य फ़ौजी क़ानूनोँकी आज्ञाओँका पालन न करनेके कारण हिन्दुस्तानियोँको बेँत लगाए गए या अन्य सज़ाएँ दी गईं। फ़ौजी क़ानूनके दिनोँमेँ ल्यालपुरमेँ तार बाँटनेवाला गोपालदास एक योरोपियन अफ़सरको तार पहुँचानेको गया था। वह सलाम न करनेके

अपराधमेँ पकड़ा गया। उसने कहा कि मैँने सलाम किया था और अब भी करनेको तैयार हूँ। इसपर भी उसको पाँच बेत लगाए गए! श्रीमन्! मैँ जानना चाहता हूँ कि क्या क़ानून और शान्तिकी रक्षाके लिये यह सब ज़रूरी था? कुछ स्थानोँमेँ, जहाँ फ़ौजी क़ानून जारी था, यह आज्ञा दी गई थी कि योरोपियनोँको देखते ही घोड़ेपर सवार हिन्दुस्तानी घोड़ेसे उतर जायँ और यदि उनके पास खुला हुआ छाता हो तो वे उसे बन्द करके नीचे कर लेँ!

श्रीमन्! यह नादिरशाही इन्हीँ बातोँ और इन्हीँ स्थानोँतक परिमित न थी। इनके सिवा और भी अन्याय हुए। मैँ उनमेँसे केवल एकपर ही ध्यान दिलाता हूँ, जो रामनगरमेँ हुआ। मैँ रामनगरकी घटनाके फ़ैसलेको पढ़ता हूँ। उसमेँ अट्ठाइस मुलज़िम थे।

रामनगरमेँ कोई दङ्गा नहीँ हुआ था। जब वहाँ महात्मा गान्धीके पकड़े जानेका समाचार पहुँचा, तो कुछ लड़के शोक प्रकाशित करनेके लिये निकटवर्त्ती नदीमेँ नहाने गए।

मा० सर विलियम विन्सेण्ट:—क्या मैँ पूछ सकता हूँ कि यह वही रामनगर है, जहाँ सम्राट्का पुतला जलाया गया था?

मा० मालवीयजी:—ऐसा कहा गया था परन्तु वास्तवमेँ ऐसा हुआ नहीँ है।

मा० सर विलियम विन्सेण्ट:—श्रीमन्! मैँ यही जानना चाहता था।

मा० मालवीयजी:—श्रीमन्! मेरे माननीय मित्रने शायद यह समझ लिया कि यह ज़िक्र छेड़कर मैदान मार लिया। मैँ कौन्सिलको और आपको बताना चाहता हूँ कि मा० सर विलियम विन्सेण्टकी अपेक्षामेँ सम्राट्का कम सम्मान नहीँ करता, परन्तु मैँ सिद्ध करूँगा कि यह झूठी और गढ़ी हुई कहानी थी और बादको यह त्याग दी गई। रामनगरके लोगोँको वृथा सज़ा दी गई। श्रीमन्! रामनगरके कुछ लड़के १५ तारीख़को रौलेट् ऐक्ट और गान्धीजीके पकड़े जानेपर शोक प्रकट करनेके लिये पासकी नदीमेँ नहाने गए थे। उन्होँने शोक प्रकट किया परन्तु उस समय इसपर कोई ध्यान नहीँ दिया गया। रिपोर्ट की गई कि रामनगरमेँ शान्ति है। कुछ दिनके बाद डिप्टी कमिश्नर, शायद कर्नल ओब्रायनने वहाँ जाकर लोगोँको कुछ हिदायतेँ दीँ। वहाँके माल-अफ़सरने एक सभा की और चार आदमियोँको पकड़ा। कुछ दिन पीछे, मुझे ठीक याद नहीँ, शायद १२ या १८ मईको चौबीस आदमी पकड़े जाकर चालान कर दिए गए। उनपर इलज़ाम यह था कि इन्होँने सम्राट्का पुतला जलाया। मैँ वह फ़ैसला सुनाता हूँ जिसके अनुसार दण्ड दिए गए:—

“भगवानदास, कपूरचन्द्र और बरकत अली इस बातके गवाह हैँ कि हिन्दुओँके एक झुण्डने, जिसमेँ ये मुलज़िम भी सम्मिलित थे, चेनाब नदीके किनारे सम्राट्का पुतला बनाकर जलाया। इनका मुखिया स्कूलका हेडमास्टर हरिसिंह ज्ञानी था। इसीने पुतला बनाया और जलाया। वह पहले चिल्लाता था और लोग उसके बाद यह कहते जाते थे कि “रौलेट् ऐक्ट काला बिल” मर गया। सम्राट्का नाम लेकर उनका अपमान भी किया जाता था”। पुतलेकी राख नदीमेँ डाली गई और कितने ही लोगोँने शुद्धिका स्नान किया। हरिसिंह ज्ञानी फिर इसी तरह चिल्लाता हुआ लोगोँको वापस ले आया। सम्राट्के नामका भी अपमान किया गया। यह मैँ अनुमानसे कहता हूँ, उन शब्दोँको नहीँ दुहराता। कहते हैँ कि इस झुण्डमेँ दो सौ आदमी थे परन्तु मुख्य तीन गवाह अट्ठाइस मुलज़िमोँ ही को पहचानते हैँ। * * * *

“सब मुलज़िमोँने अपनेको बेक़सूर बताया है। कुछ अपनी चाल-चलन अच्छी होने और कुछ अपनी अनुपस्थिति सिद्ध करनेके लिये गवाह पेश करनेको तैयार थे। सफ़ाईके गवाहोँने उनकी अनुपस्थिति सिद्ध करनेकी चेष्टा की, जिससे यह सिद्ध होता है कि वे घटनाओँको इनकार करनेको तैयार नहीँ हैँ। * *

"बालमुकुन्दके सफ़ाईके गवाहोँने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की कि उस दिन वह गुजरानवालामेँ होना सिद्ध करते हैँ। उन्होँने स्वयम् कहा है कि मैँ १५ तारीख़को डेढ़ बजेतक वहाँ था।" * *

"दूसरे गवाहोँने कहा कि उन्हेँ बालमुकुन्द सड़कपर मिले थे परन्तु उन्होँने तर्क या जिरहसे बचनेकी चेष्टा की है। दूसरी ओर कहा गया है कि बालमुकुन्द गुजरानवालासे चला गया था और १५ तारीख़को रामनगरसे तीन मीलपरके मञ्जोरसे गुज़रा था।

"यह निर्विवाद है कि सम्राट्का पुतला (गवाह तो कहता है कि सम्राट् जलाए गए परन्तु उसका आशय 'पुतले' से है) जलाया गया। हड़ताल अवश्य हुई और कुछ लोग नदीपर गए। यद्यपि सफ़ाईके कुछ गवाहोँने कहा है कि हड़ताल नहीँ हुई तथापि इसका खण्डन पहली रिपोर्टसे होता है कि कोई "ख़ास घटना हुई"। इस बातसे भी यही सिद्ध होता है कि लोग वहाँसे अपनी अनुपस्थिति सिद्ध करनेकी चेष्टा कर रहे हैँ। इस बातका भी पूरा सुबूत है कि लोगोँके बीचमेँ हरिसिंहने सम्राट्का पुतला जलाया। उसकी राख नदीमेँ डाली गई और हिन्दुओँने शुद्धिका स्नान किया। बहुतसे गवाह हरिसिंहका "काला बिल मरा" यह चिल्लाते हुए नगरमेँ आना सिद्ध करते हैँ। इस घटनाकी सूचना एक सप्ताहतक नहीँ मिली और बहुत समय पीछेतक तहक़ीक़ात न हो सकी क्योँकि हाकिम अन्य स्थानोँके फ़सादोँको और थानेदार अकलगढ़के झगड़ोँको शान्त करनेमेँ लगे हुए थे। घटना ऐसी नहीँ है जो गढ़ी गई हो। मैँने इसमेँ देखा है कि गवाहोँने अट्ठाइसोँ अभियुक्तोँके वहाँ होनेकी बातको प्रमाणित कर दिया है। * *

"अपराध इतना सङ्गीन है कि मुलज़िमोँका यह सौभाग्य था कि वे ख़ास अदालतमेँ नहीँ भेजे गए। इसलिये उन्हेँ अधिक-से-अधिक सज़ा देनी चाहिए। कितने ही मुलज़िम धनी हैँ और भारी जुर्मानेका दण्ड, मेरी समझमेँ, उनके लिये उपयुक्त है। मैँ दौलतराम, करमचन्द, बालमुकुन्द, गोविन्द सहाय और हरिसिंहको दो-दो वर्षकी कड़ी क़ैद (जिसमेँ तीन महीने निर्जन कारावास भी होगा) और हर एकको एक-एक हज़ार रुपये जुर्मानेका और वह न देनेपर छः-छः महीनेकी कड़ी क़ैदका दण्ड देता हूँ।" * * *

श्रीमन्! लोग कहते हैँ कि यदि ठीक जाँच होती तो इस मनगढ़न्त घटनाका भण्डा फूट जाता और यह सिद्ध हो जाता कि सम्राट्का पुतला नहीँ जलाया गया। फ़ैसलेके अनुसार ये लोग धनी और प्रतिष्ठित थे, इसलिये उन्हेँ भारी जुर्माने और कड़ी क़ैदकी ऐसी सज़ा दी गई जो इनके लिये लाञ्छनीय है। इन प्रतिष्ठित सज्जनोँके लिये ऐसी मूर्खता और उद्दण्डतामेँ सम्मिलित होनेका कोई कारण नहीँ था। इसपर भी उनका मुक़दमा फ़ौजी अदालतमेँ किया गया। यद्यपि यह उनकी प्रतिष्ठाका प्रश्न था तो भी उन्हेँ अपनी निर्दोषिता सिद्ध करनेका अवसर दिए बिना ही उन्हेँ दो-दो वर्षकी कड़ी क़ैद और जुर्मानेका दण्ड दिया गया! मामले ऐसे हैँ और यह बिल उनमेँ दी गई सज़ाओँको पुष्ट करना चाहता है। श्रीमन्! ऐसी सज़ाओँको, जिनमेँ अपराधियोँको अपनी सफ़ाई देने और अपील करनेका अवसर नहीँ दिया गया, पुष्ट करनेके लिये कौन्सिलसे कहनेकी अपेक्षा अधिक अन्याय और क्या हो सकता है? श्रीमन्! मैँ अन्य घटनाओँका ज़िक्र न करूँगा। मैँ समझता हूँ कि जो कुछ मैँने कहा है, वही यह सिद्ध करनेके लिये पर्य्याप्त है कि इण्डेम्निटी बिलको कौन्सिलमेँ पेश करनेसे पूर्व इन घटनाओँकी अच्छी तरह जाँच-पड़ताल होना कितना आवश्यक है। जैसा कि मैँने पहले कहा है, इण्डेम्निटी बिल पेश करनेके लिये दो बातेँ आवश्यक हैँ। प्रथम यह कि राजाके प्रतिकूल प्रत्यक्ष विद्रोह या युद्ध हो या उपद्रव ऐसा घोर हो जो युद्ध कहा जा सके। दूसरा यह कि यदि दबानेके लिये ऐसी सख़्ती आवश्यक हो और उसके लिये किए गए कार्य्य तीनोँ क़ानूनोँमेँ कहे गए अनुसार, जिनका मा० मेम्बरने उल्लेख किया है, लोगोँकी

भलाईके लिये किए गए थे तो ऐसे क़ानून कौन्सिलमें उपस्थित किए जा सकते हैं। परन्तु यहाँ इन तीनों बातोंमेंसे एक भी सिद्ध नहीं हुई है। मा० होम मेम्बर कहते हैं कि—"जाँच-कमेटी इसका निश्चय करेगी कि फ़ौजी क़ानून आवश्यक था या नहीं। अनन्तर आप कहते हैं कि मान लीजिए कि फौजी क़ानून जारी हुआ था और उन हाकिमोंकी शोचनीय दशापर ध्यान दीजिए जिन्हें अपने अफ़सरोंकी आज्ञासे कुछ काम करने पड़े। हमने १४ अप्रैल, सन् १९१९ ई० के प्रस्तावमें वचन दिया है कि हम उनकी सहायता करेंगे। इसलिये उन्होंने उसके भरोसेपर जो काम किए हैं, उनके दुष्परिणामसे उनको बचाना हमारा कर्त्तव्य है।" श्रीमन्! ये बातें युक्तिशून्य हैं। यदि आपका उन्हें भरोसा दिलाना ही ठीक नहीं था तो वह भरोसा उनको कैसे बचा सकता है? आप कौन्सिलसे इण्डेम्निटी बिल पास करनेको कह रहे हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि इस प्रश्नका निर्णय जाँच-कमेटी करेगी कि फ़ौजी क़ानून जारी करना आवश्यक था या नहीं! ऐसे प्रस्तावको कौन्सिलके सन्मुख रखना बिलकुल भद्दा है। अमृतसर और लाहौरमें बग़ावत होने या न होने सम्बन्धी जाँच-कमेटीके निर्णयसे क्या परिणाम होगा? उस प्रमाणमें, जिसका मैं ज़िक्र कर चुका हूँ, लौर्ड सेल्सबरीने स्पष्ट कहा है कि सरकार शान्तिके समय फ़ौजी क़ानूनके अनुसार लोगोंका विचार करनेके लिये फ़ौजी अदालतें नहीं स्थापित कर सकती किन्तु जब युद्ध, राजविद्रोह वा युद्ध कहे जाने योग्य फ़साद हों तो राजा या उसके कर्मचारी केवल उतनी ही शक्तिका प्रयोग कर सकते हैं, जितनी शान्ति स्थापित करनेके लिये आवश्यक हो।

तत्त्वकी बात तो यह है कि फ़ौजी क़ानून जारी करनेके योग्य घटनाएँ हुईं या नहीं? पहले इस बातकी चर्चा किए बिना आप इस बिलके सम्बन्धमें चर्चा नहीं कर सकते। यदि आप इस प्रश्नको जाँच-कमेटीके हवाले करना आवश्यक समझते हैं तो मैं सरकार और इससे सम्बन्ध रखनेवाले हरएक मनुष्यकी भलाई के लिये अभी इस बिलपर चर्चा न होनेकी प्रार्थना करता हूँ। उस जाँचके परिणामकी प्रतीक्षा करिए, उन घटनाओंकी जाँच हो जाने दीजिए और जब घटनाएँ निश्चित हो जायँ तो शान्ति-रक्षाके लिये सद्भावसे अफ़सरोंद्वारा उपयुक्त सावधानीसे किए गए आवश्यक कामोंके दायित्वसे उनको बचानेकी चेष्टा करिए। उस दशामें सम्राट्के अफ़सरों या उनकी आज्ञासे काम करनेवाले उनके मातहतोंको बचानेके लिये किए जानेवाले कार्य्यका कोई समझदार मनुष्य विरोध न करेगा। परन्तु जब फ़ौजी क़ानूनका अस्तित्व ही न्याययुक्त सिद्ध न हुआ हो, जब उसके जारी किए जानेका कोई कारण ही न बताया जा सके, उस समय न्याय और साम्य भावकी रक्षाके लिये साधारण अदालतोंमें इन अफ़सरोंको अपने कर्मोंके औचित्य वा अनौचित्यका निर्णय करानेका अवसर देना ही उपयुक्त है।

मा० होम मेम्बरने कहा है कि सरकार जाँच-कमेटीके कार्य्यमें बाधा डालना नहीं चाहती, परन्तु मुझे शोकके साथ कहना पड़ता है कि जब उनकी बातें कौन्सिलके बाहर और इङ्गलैण्डमें पढ़ी जायँगी तो उनसे यही परिणाम, चाहे उनका यह आशय न रहा हो, निकाला जायगा कि सरकार कमेटीसे अपने पक्षका समर्थन कराना चाहती है। यदि पक्षपात-रहित जाँच कराना ही उनका उद्देश होता तो मा० होम मेम्बर ऐसी वक्तृता न देते। श्रीमन्! उन्होंने कहा है "मैं घटनाओंके तत्त्वोंमें नहीं जाना चाहता, यह काम जाँच-कमेटीका है, परन्तु जाँच-कमेटी किसी अफ़सरको सद्भावसे किए हुए कार्य्यके लिये भला-बुरा न कहेगी।" श्रीमन्! इसका अर्थ क्या है? अब यह प्रश्न क्यों उठाया जाता है? जब आप कहते हैं कि जाँच-कमेटी सरकारको भला-बुरा न कहेगी, तो फिर वह किस मर्ज़की दवा होगी? या तो सरल भावसे सब बातें कहकर उनको जाँच-कमेटीके निर्णयपर छोड़ दीजिए अथवा साहस करके सच-सच कह

दीजिए—जिसके कहनेकी आपमें शक्ति है—कि इन घृणित कर्मोंकी आप जाँच नहीं चाहते किन्तु उनपर परदा डलवाना चाहते हैं। यदि आप ऐसा ही चाहते हैं तो अच्छी तरह परदा डलवाइए। इस देशमें आप ऐसा कर सकते हैं परन्तु इङ्गलैण्डकी जनता और पार्लियामेण्टका डर सम्भवतः आपको ऐसा करनेसे रोकता होगा। यदि ऐसी बात है तो अभी ठहरिए और जबतक जाँच-कमेटीकी रिपोर्ट न निकल जाय तबतक इस बिलपरका विचार स्थगित रखिए। यदि जाँच-कमेटी मा० होम मेम्बरकी वक्तृता पढ़े तो उसके मनमें विरुद्ध भाव उत्पन्न हो जायगा। वह तो इसे सरकारकी ओरसे हिदायत समझेगी, क्योंकि मा० होम मेम्बर इन सब मामलोंमें आपकी सरकारके प्रतिनिधि हैं और इसलिये आपसे भी बढ़कर हैं। जब यह वक्तृता जनताके सामने पहुँचेगी, उस समय वह इस विचारपर पहुँचे बिना न रह सकेगी कि सरकारके प्रतिनिधिने इन सम्मतियों और विचारोंको, जो मा० होम मेम्बरने प्रकट किए हैं, प्रकट करके बड़ी भूल की है। माननीय मेम्बरने कहा है कि वे जाँच-कमेटीके मनमें विरुद्ध भाव उत्पन्न नहीं करना चाहते और आप बिलकी उस धाराको दिखाते हैं, जो कौन्सिलके फ़ैसलोंपर किसी तरहका प्रभाव न पड़नेके सम्बन्धमें है। परन्तु श्रीमन्! यदि आप अफ़सरोंको क्षमा देनेकी धाराओंके साथ वर्त्तमान रूपमें बिलको पास करें तो प्रीवी कौन्सिलके जज यह शिकायत करेंगे कि आपने ऐसा काम किया, जिसकी आशा एक सामान्य नागरिकसे भी नहीं की जा सकती, अर्थात् विचार होनेके पहले ही आपने घटनाओंके महत्त्वपूर्ण विषयोंपर फ़ैसला दे दिया। श्रीमन्! मैं यह स्पष्ट रूपसे कह देना चाहता हूँ कि इस कौन्सिलके साधारण सदस्यकी हैसियतसे मैंने विगत घटनाओंके तत्त्वों और उनके क़ानूनी प्रश्नोंपर होनेवाली चर्चाको स्थगित करानेकी यथासाध्य चेष्टा की है। मैंने प्रश्नोंकी सूचना दी थी, अब मैं उनका ज़िक्र न करके सिर्फ़ यह कहना चाहता हूँ कि मैंने इन प्रश्नोंकी सूचना इसी आशयसे दी थी कि उनसे ऐसी बातें मालूम हो जायँ कि उनसे इस बिलको स्थगित करनेकी आवश्यकता प्रमाणित हो। इस कौन्सिलके सदस्योंने, यद्यपि सबने नहीं, यह इच्छा और उद्विग्नता प्रकट की है कि जाँच-कमेटीकी रिपोर्ट प्रकाशित होनेतक बिल न पेश किया जाय। श्रीमन्! हम किसी विशेष निर्णयके लिये चिन्तित नहीं हैं। परमात्मा जानता है कि हम इसके लिये उद्विग्न नहीं हैं कि विगत घटनाओंका दोष या पाप किसी व्यक्ति-विशेषके सिरपर मढ़ा जाय। हम चाहते हैं कि घटनाओंके तत्त्व प्रमाणित हों, उनके प्रमाणित हो जानेपर उनके लिये जो उत्तरदायी हो, उसका विचार इस देशके लोकमत और इङ्गलैण्डकी हाइकोर्टके सामने हो। हम लोग इसीके लिये उद्विग्न हैं कि यदि आप एक विशेष मार्गका अनुसरण करें, यदि आप इन घटनाओंकी जाँचके लिये कमेटी बनावें तो यह उचित है कि उन बातों और क़ानूनपर, जिनका विचार कमेटी करनेवाली है, बहस न की जाय। यदि मैं इस बहससे बच जाता तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, परन्तु मैं ऐसा करनेको विवश हुआ हूँ। श्रीमन्! अमृतसर और अन्य स्थानोंमें मरे हुए मनुष्योंकी आत्माएँ हमसे अपील कर रही हैं कि इस हत्याकाण्डके तत्त्वों और महत्त्वपूर्ण बातोंको हम आपकी सरकारके सामने पेश करें। वे लोग, जो अपने भ्राताओं और पुत्रोंकी असामयिक मृत्युपर विलाप कर रहे हैं और वे स्त्रियाँ और माताएँ, जो अपने पति और पुत्रोंकी अकाल मृत्युपर विलाप कर रही हैं, चाह रही हैं कि इस मामलेकी जाँच अत्यन्त सावधानीसे हो। वे लोग चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं कि अभी कोई ऐसा फ़ैसला न हो या कोई क़ानून ऐसा न बनाया जाय, जिससे उनके मामलेके उचित विचारमें कोई विरुद्ध भाव उत्पन्न हो। सरकारके लिये यह कहना उचित न होगा कि कुछ महीनोंके विलम्बसे उसकी स्थितिको हानि पहुँचेगी। यदि मा० लौ मेम्बरकी सम्मतिसे मा० होम मेम्बर

यह कहें कि यदि यह बिल शीघ्र पास न हुआ तो फ़ौजी अदालतोंद्वारा दण्डित मनुष्योंको क़ैदमें रखना अन्यायपूर्ण होगा, तो उनसे मेरा यह प्रश्न है कि इससे पहले यह बिल पेश क्यों न किया गया? आपने इस मामलेपर विचार करनेके लिये व्यवस्थापक सभाका अधिवेशन पहले क्यों न कराया? यदि इतना समय व्यतीत होने दिया गया है और यदि जनताका ध्यान इधर झुकते देखकर अब यह विचार होने लगा है कि उन्हें क्या करना चाहिए? यदि उनकी रक्षाके लिये वे क़ानून बनाना चाहते हैं तो मेरी समझमें यह अच्छा होगा कि जाँच-कमेटीकी रिपोर्ट प्रकाशित होनेतक कुछ महीनोंकी प्रतीक्षा की जाय।

इस बिलकी एक धाराका पश्चाद्गामी परिणाम यह है कि जो अफ़सरोंके कार्य्योंके लिये उनपर मुक़दमा चलाना चाहें, उनके कामका यह हो। श्रीमन्! मुझे ऐसे किसी मुक़दमेका पता नहीं है। पञ्जाबके लोग बहुत अधिक डर गए हैं। उनके मनमें इतना भय समा गया है कि किसी देशके मनुष्योंके मनमें ऐसा नहीं उत्पन्न हुआ था। सर मेकलागनके इतने दिनोंके शासनमें भी लोगोंके मनसे वह भय दूर नहीं हुआ है। ऐसी अवस्थामें मैं नहीं समझता कि बहुतसे लोग मुक़दमे चलानेके लिये उद्विग्न होंगे। मुझे मालूम नहीं कि अबतक कोई मुक़दमा दायर हुआ है या नहीं और बहुतसे लोग दायर करनेके लिये उद्विग्न हैं। इस समय वे यही जाननेको उत्सुक हैं कि यह सब क्यों हुआ और जब वे इसका कारण जान लें तो वे इसपर विचार करेंगे कि उनको क्या करना चाहिए? निस्सन्देह वे चाहते होंगे कि सरकार उपयुक्त कार्रवाई करे, क्योंकि आप यह आशा नहीं कर सकते कि जहाँ इतने अधिक लोगोंको हानि पहुँची और जिनमें बहुतसे निर्धन हैं वे या उनमेंसे अधिकांश लोग अदालतमें जाकर अपना न्याय करावें। यह तभी हो सकता है, जब कि सरकारकी अन्तरात्मा हिले, जिसका मा० होम मेम्बरने ज़िक्र किया है। यदि सरकार यह समझे कि बृटेन और बृटिश न्यायका ऋण चुकानेके लिये उसका कर्त्तव्य कुछ लोगोंको, चाहे वे हिन्दुस्तानी हों या अंग्रेज़, न्यायालयमें उपस्थित करना है, तो सम्भव है कि न्याय हो सके। श्रीमन्! इसलिये ऐसा कोई कारण नहीं कि सरकार बिलको पास करनेमें शीघ्रता करे।

बिलकी समान्य आलोचना करनेके उपरान्त अब मैं इसकी धाराओं और इन बातोंकी ओर ध्यान दिलाता हूँ जो मा० होम मेम्बरने इसके बारेमें कही हैं। मा० होम मेम्बरने कहा है कि जब फ़ौजी क़ानून जारी हो जाता है, उस समय सरकारके कर्मचारियोंको प्रतीक्षा करने, अपने कामके सारे पहलुओंको देखने या उनके लिये क़ानूनकी अनुकूलतापर विचार करनेका उन्हें अवसर नहीं मिलता, परन्तु जबतक उनके काम शिष्टाचारकी दृष्टिसे ठीक और उचित हों तबतक उनकी रक्षा करना उचित है। मैंने जो कुछ कहा है, उससे यह स्पष्ट हो जायगा कि कौनसे कार्य्य उस नामावलीमें आते हैं अर्थात् कौनसे ग़ैर-क़ानूनी कार्य्य ऐसे हैं, जो ठीक और उचित हों। आगे आप कहते हैं कि फ़ौजी क़ानून जारी होनेके बाद इण्डेम्निटी बिलका होना भी अनिवार्य्य है।

मैं स्वयं अपनी वक्तृताके प्रारम्भिक अंशमें कह चुका हूँ कि एक विशेष प्रकारके इण्डेम्निटी बिलका होना अनिवार्य्य हो सकता है, परन्तु इसके लिये दो कारण अपेक्षित हैं। किन अवस्थाओंमें इण्डेम्निटी बिल पास होता है? और यह कैसा होना चाहिए? मा० होम मेम्बरने 'डाइसी' का प्रमाण दिया है। उसमें कहा गया है कि ऐसा क़ानून बड़े राष्ट्रीय सङ्कटमें पास होना चाहिए। मैं यह सिद्ध कर चुका हूँ कि यहाँ ऐसा कोई राष्ट्रीय सङ्कट नहीं था। कुछ मामलोंमें कुछ व्यक्ति अपनी बुद्धि खो बैठे और क्रोधके वशीभूत होकर वे कुछ काम कर गए, परन्तु इससे राष्ट्रीय सङ्कट सिद्ध नहीं हो सकता। श्रीमन्! इस सम्बन्धमें मैं उस मामलेकी ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ, जिसका ज़िक्र राष्ट्रीय कांग्रेसके प्रस्तावमें है और जिसकी ओर मैं कौन्सिलमें पहले सङ्केत कर चुका हूँ। लाहौर और अमृतसरके उपद्रवोंके समय वीरमगाँव और

अहमदाबादमें भी उपद्रव हुए थे। वम्बईके गवर्नरने महात्मा गान्धीको अहमदाबादमें लोगोंसे मिलने और स्वतन्त्रतासे काम करनेको भेजा। वे लोगोंको सन्तुष्ट और शान्त करनेमें सफल हुए और उन्होंने लोगोंको उनके कर्मोंके लिये लज्जित भी किया। इसके फलसे थोड़े ही दिनोंमें वहाँसे फ़ौजी क़ानून उठ गया। अधिक-से-अधिक लाहौर और अमृतसरमें भी ऐसा ही होना चाहिए था। श्रीमन्! अमृतसरमें फ़ौजी क़ानून प्रचलित करना कदापि न्याय्य न था, क्योंकि कहा जाता है कि साढ़े पाँच वजेतक वहाँ पूर्ण शान्ति स्थापित हो गई थी। यदि यह मान भी लिया जाय कि १० अप्रैलको वहाँ इसकी आवश्यकता थी तो भी १२ वा १३ तारीख़को वह उठ जाना चाहिए था। अहमदाबादमें किए गए उपायोंसे लाहौर और अमृतसरके कार्य्योंका भली प्रकार मुक़ावला किया जा सकता है। मा० होम मेम्वर कहते हैं कि फ़ौजी क़ानून जारी करनेके लिये राष्ट्रीय सङ्कटकी अवस्था होनी चाहिए। मैं उनसे सहमत हूँ परन्तु पञ्जावमें कोई ऐसा सङ्कट नहीं था, जिससे फ़ौजी क़ानूनका जारी होना ठीक समझा जा सके। उन्होंने 'डाइसी' से दूसरा प्रमाण यह दिया है कि काम सद्भाव और लोगोंके हितके लिये किए गए हों। इससे यह स्पष्ट है कि केवल इन्हीं अवस्थाओंमें सरकारी कर्मचारियोंकी रक्षा की जा सकती है। कौन्सिलसे मैं यह विचार करनेका निवेदन करता हूँ कि उन घटनाओंके प्रकाशमें, जो अब ज्ञात हुई हैं और लोगोंके पक्षके वयानों और घटनाओंका निश्चय किए विना ही ऐसा झाड़ू फेरनेवाला क़ानून कौन्सिलके सामने रक्खा जाना चाहिए या नहीं? इसके बाद मा० मेम्वरने उन औपनिवेशिक व्यवस्थापक सभाओंका, जिनमें दक्षिण अफ़्रीका भी सम्मिलित है, ज़िक्र किया है, जिन्होंने पहले इण्डेम्निटी विल पास किए हैं।

मैं यहाँ यह वतलाना आवश्यक समझता हूँ कि अच्छा पुस्तकालय न होनेसे इस कौन्सिलके सदस्योंको वड़ा कष्ट होता है। हमको कभी-कभी व्यवस्थापक-विभागके पुस्तकालय ही से पुस्तकें मँगनी नहीं लेनी पड़ती किन्तु कभी-कभी काम चलानेके लिये दूरवर्त्ती स्थानोंसे भी पुस्तकें मँगानी पड़ती हैं। मैं मा० लौ मेम्वरका इसलिये ऋणी हूँ कि उन्होंने मेरे अनुरोधपर

केप औफ़ गुड होप ऐक्ट

की प्रति प्रमाण खोजनेके लिये ढूँढ़ दी। ऐसी पुस्तकोंके अभावसे हमारे कार्य्यमें वहुत वाधा पड़ती है। यदि हमारे पास ऐसी पुस्तकें होतीं तो कौन्सिलका वहुत समय वच जाता। केप औफ़ गुड होपके ऐक्ट-सम्वन्धी प्रश्नपर सम्राट्की हाइकोर्टके लौर्ड चीफ़ जस्टिस, जनरल अर्डघ और श्री विगहम-द्वारा सङ्घटित कमीशनने विचार किया था। यह ऐसे सज्जनोंद्वारा सङ्घटित हुई थी, जैसे सज्जनोंको मैं यहाँ देखना चाहता हूँ। इस ऐक्टसे कुछ ऐसी वातोंकी पुष्टि होगी, जिनका ज़िक्र पहले प्रस्तावमें हुआ है। वोअर युद्धके समय, सन् १९०० ई० में यह ऐक्ट पास हुआ था। इसमें ऐक्टके वनानेके कारण दिए हुए हैं। महारानी विक्टोरियाके विरुद्ध शस्त्र उठाने और उनके शत्रुओंको सहायता देनेवालोंको दण्ड देनेके निमित्त और विद्रोहको दवाने, शान्ति-रक्षा और शान्ति स्थापित करनेके लिये ही यह वनाया गया था। श्रीमन्! इस विलकी विचाराधीन विलसे कुछ भी समता नहीं हो सकती। सन् १९०२ ई० का नं० चारवाला क़ानून भी महत्त्वपूर्ण है। फ़ौजी शासनके समय शुद्ध भावसे किए हुए कामोंके उत्तरदायित्वसे उपनिवेशके गवर्नर, सेनाके अफ़सरों और उनकी आज्ञासे काम करनेवाले कर्मचारियोंकी रक्षा करनेके लिये तथा फ़ौजी अदालतोंके फ़ैसलोंको दृढ़ करने और उन दण्डोंको दुहराकर उनकी रिपोर्ट देनेके सम्वन्धमें कमिश्नरोंको कुछ अधिकार देनेके लिये यह पास किया गया था। यह केवल उन्हीं कामोंसे उनकी रक्षा करनेके निमित्त वनाया गया था, जो विद्रोहको दवाने, शान्ति स्थापित करने और रखने तथा

उपनिवेशके अधिवासियोँकी सुरक्षितताके लिये किए गए थे। इसमेँ भी विद्रोह-दमन, सुव्यवस्था और शान्तिकी रक्षा ही का ज़िक्र है। इसलिये यह वतलाया जाना आवश्यक है कि पञ्जाबमेँ भी यह इसी लिये आवश्यक था।

श्रीमन्! द्वितीयतः, यह क़ानून, जो वर्त्तमान विलकी रचनाका आदर्श समझा गया है, केवल उन्हीँ कार्य्योँके दुष्परिणामसे अफ़सरोँकी रक्षा करता है, जो फ़ौजी क़ानूनकी अवधिमेँ किए गए थे। परन्तु कौन्सिल देखेगी कि हमारे विलकी धाराएँ इससे वहुत आगे जाती हैँ। मैँ यह नहीँ कह सकता कि जान-बूझकर ऐसा किया गया है या बिना किसी विचारके। विलकी दूसरी धारामेँ कहा गया है:—"ब्रिटिश भारतके किसी भागमेँ शान्ति-रक्षा या शान्ति स्थापनाके लिये ३० मार्च, १९१९ ई० को या उसके बादसे इन क़ानूनके जारी होनेतक सरकारी मुल्की और फ़ौजी अफ़सरोँपर या उनकी आज्ञासे काम करनेवाले मनुष्योँके विरुद्ध उनके द्वारा किए गए कामोँ या बातोँके लिये किसी प्रकारका दीवानी या फ़ौजदारी मुक़दमा या क़ानूनी कार्रवाई न की जा सकेगी।"

श्रीमन्! जैसा कि हम सबको मालूम है, अमृतसरमेँ फ़ौजी क़ानूनकी घोषणा और लाहौरमेँ इसकी स्थापना १५ तारीख़को आधी रातको या सोलह और सत्रहकी मध्यरात्रिके बीच हुई थी। मेरी समझमेँ नहीँ आता कि ऐसी अवस्थामेँ किस न्यायसे ३० मार्च और फ़ौजी क़ानून जारी होनेकी तारीख़के वीचकी घटनाएँ विलके मसौदेमेँ सम्मिलित की गईं? सामान्यतः ऐसे विलका प्रभाव उन्हीँ कामोँ-तक परिमित रहता है, जो फ़ौजी शासनकी अवधिमेँ किए गए होँ, परन्तु यह उस अवधिके पहले किए गए और फ़ौजी शासन उठ जानेके बाद इस क़ानूनके बननेकी अवधि तकमेँ किए गए कामोँको भी अपनेमेँ सम्मिलित करता है! मैँ जानना चाहता हूँ कि ऐसा करनेमेँ क्या न्याय है?

श्रीमन्! मेरा दूसरा उदाहरण यह है। इसमेँ कहा गया है कि "यदि उपयुक्त विश्वास और सद्भावसे ऐसे काम, जो आवश्यक थे, किए गए होँ या उनके करनेकी आज्ञा दी गई हो।" श्रीमन्! यह बात वहुत आक्षेपके योग्य है। आप अधिक-से-अधिक यह कह सकते हैँ कि "जो काम अच्छे भावसे किए गए और आवश्यक तथा जनताके लिये हितकर थे।" आप यह नहीँ कह सकते कि यदि कोई अपने सह-नागरिकपर बन्दूक़ चलाए तो उसने युक्तियुक्ति सद्भावसे यह काम किया। क्या उसको मुक्ति मिलनी चाहिए? इसके सम्बन्मेँ मैँ विचारपति चेम्बरलेन-द्वारा सन् १७९९ ई० के राजनीतिक मुक़दमोँके सम्बन्धमेँ प्रकट किए गए कुछ विचारोँपर ध्यान आकृष्ट करता हूँ। यह मुक़दमा राइट वनाम फ़िट्ज़िराल्डका था। राइटने फ़िट्ज़िराल्डपर मारपीट और अकारण छेड़छाड़ करनेका दावा किया था। उसे फ़िट्ज़िराल्डकी आज्ञासे पहले पचास और फिर पचास बेत मारे गए थे। उस मुक़दमेका विचार करते समय विचारपति चेम्बरलेनने जूरी (पञ्चायत) से कहा था, "जूरीको ऐसी कल्पना न करनी चाहिए कि क़ानूनने इराडेम्निटी बिलके अनुसार रक्षाके योग्य बनाकर मजिस्ट्रेटोँको मनुष्यत्त्वहीन भावोँसे भी बरी कर दिया, अथवा उनको अपनी शक्तिका मनमाना उपयोग, 'फिर बलवेको दबानेके लिये ही क्योँ न हो' करने की आज्ञा दे दी। ऐसा नहीँ है। यह आशा की जाती है कि उन मजिस्ट्रेटोँने मुलज़िमकी कार्रवाइयोँकी ठीक और गम्भीर परीक्षा की होगी। उनका हरएक कार्य्य अपराध जाननेके भावसे, न कि सतानेके विचारसे, किया हुआ होना चाहिए। परीक्षा या जाँचसे मेरा आशय उस परीक्षा या जाँचसे नहीँ है, जिसमेँ उस समय वे फँसे होँ, बल्कि उस परीक्षा या जाँचसे है जो मामलेका सर्वोत्तम तत्त्व और सामयिक अवस्थामेँ सम्भव हो।" यह विचारपति चेम्बरलेनका कथन है। वे कहते हैँ—"हरएक आदमी, चाहे वह मजिस्ट्रेट हो या अन्य, जो विद्रोह-दमनके

लिये नियुक्त हुआ है वह अपने कार्य्योंके दुष्परिणामसे सुरक्षित होगा, परन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि वह उस आवश्यकतासे, जिसके लिये उसे यह अधिकार मिला है, अधिक आगे न बढ़ा हो। अपने कार्य्यकी न्याय्यतामें उसे यह भी सिद्ध करना पड़ेगा कि उसने जो दण्ड दिए हैं, उनका निश्चय करनेके लिये उसने यथासाध्य प्रयत्न किया था। इसपर भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके कार्य्योंमें मनुष्यत्त्वके साधारण नियमोंका उल्लङ्घन न दिखाई देता हो। श्रीमन्! आज व्यवस्थापक सभासे कहा जाता है·······

मा० स० जौर्ज लाउण्डूस:—"क्या मा० मेम्बर मुझे कृपापूर्वक हवाला देंगे?

मा० मालवीयजी:—"राजकीय मुक़दमे भा० २७, पृ० ४२०।

श्रीमन्! विचारपति चेम्बरलेनकी रायसे हमारे इस कार्य्यमें बड़ी सहायता मिलती है। यह न्यायालय नहीं है, जिसमें यह विचारा जाय कि इन उपद्रवोंमें किए हुए कार्य्यविशेषके लिये फँसे हुए मुलज़िमको सज़ा मिलनी चाहिए वा उसे छोड़ देना चाहिए। यह व्यवस्थापक सभा उन नियमोंको बनानेके लिये बैठी है जिनके अनुसार ऐसे मनुष्योंके मामलेका विचार हो और इस कार्य्यके लिये न्यायपति चेम्बरलेनका मत हमारा सहायक और पथ-प्रदर्शक है। बिलमें लिखा गया है:—"सरकारी कर्मचारियों और अन्य लोगोंको, शान्ति स्थापित रखने या शान्ति स्थापित करनेके लिये उनके द्वारा किए गए कार्य्यों अथवा उनकी आज्ञासे किए गए ऐसे कार्य्योंके दायित्त्वसे, जो उचित विश्वास और सद्भावसे किए गए हों और जो उसके लिये आवश्यक थे, बचाना आवश्यक है।

श्रीमन्! मेरा विशेष आक्षेप "युक्तियुक्त विश्वास" शब्दपर है। यह मुद्दईके लिये अपने साथ अन्याय करनेवाले मनुष्यपर चलाए हुए अभियोगमें सफलता प्राप्त करना असम्भव कर देगा। यदि आप धारा दो को, जिसमें कहा गया है कि "कार्य्यके निमित्त किसी सरकारी अफ़सर या अन्य पुरुषपर, यदि उसने शुद्ध भाव और इस युक्तियुक्त विश्वाससे काम किया हो, जो उस कार्य्यके लिये आवश्यक था तो कोई मुक़दमा न चल सकेगा," देखें तो यह बात भली भाँति मालूम हो जायगी।

श्रीमन्! गवहीके क़ानूनकी धारा तीनको छोड़कर भी—जिसका मैं आगे चलकर ज़िक्र करूँगा—अफ़सरका कर्त्तव्य यह सिद्ध करना है कि उसने केवल अच्छे भावसे ही कार्य्य नहीं किया बल्कि सतर्क और उचित विचारसे, उसे ऐसा ही करना चाहिए था। विचारपति चेम्बरलेनके शब्दोंमें, "उसने मनुष्यत्त्वके सामान्य नियमोंका उल्लङ्घन नहीं किया।" श्रीमन्! यह बिल इससे बहुत आगे बढ़ जाता है और एक ऐसा सहारा देता है जो पूर्वनिर्मित क़ानूनोंके अनुसार युक्ति तथा न्यायसे ठीक सिद्ध नहीं हो सकता। उस मामलेमें यह अभियोग था कि फिट्ज़िराल्ड अन्यायसे बेतोंसे पीटा गया। इस मामलेमें बेत मारे जानेके बहुतसे उदाहरण हैं। उस अभियोगमें लौर्ड एलबर्टनने मुद्दईके विषयमें—जिसके बारेमें कहा गया था कि उसने राजभक्तिके बहुतसे काम किए हैं,कहा था—"वास्तवमें यह अपनी राजभक्तिपर पूर्ण रूपसे क़ायम रहा, क्योंकि इसने वह बलवेके समय प्रकट की है और ख़ून ही से उसकी पीठपर लिखी गई है।" श्रीमन्! यहाँ बहुतसे मनुष्योंकी पीठें गत कार्य्योंकी गवाही दे रही हैं। उन लोगोंको आज्ञा मिलनी चाहिए कि वे अपने ऊपर अन्याय करनेवालोंसे इतना तो प्रमाणित करावें कि सार्वजनिक शान्ति और सुव्यवस्थाके लिये मनुष्यत्त्वके नियमोंको भङ्ग किए बिना उन्होंने उपयुक्त सावधानतासे ही ये सब कार्य्य किए हैं। श्रीमन्! ये धाराएँ, जिनकी ओर मैंने ध्यान आकृष्ट किया है, उस समय और भी अधिक आक्षेपके योग्य हो जाती हैं, जब हम धारा तीनपर ध्यान देते हैं। उसमें कहा गया है कि "धारा दोके लिये सरकारके मन्त्रीकी यह सनद, कि उक्त कार्य्य सरकारी कर्मचारीकी आज्ञासे किया गया है, इसका अकाट्य प्रमाण होगी कि उपर्युक्त आशाओंसे किए गए कार्य्य, तबतक सद्भावसे किए

गए समझे जायँगे, जबतक इसके विपरीत बलिष्ठ प्रमाण न मिलें।”

श्रीमन्! जो एक हाथसे दिया जा रहा है, वही बिलकी धारा तीनद्वारा दूसरे हाथसे छीन लिया जाता है! क्योंकि सरकारके मन्त्रीकी सनद सब कामोंको उपयुक्त और आवश्यक बना देगी। इसलिये मेरा निवेदन है कि आप उस मुद्दईके लिये जो कोई अभियोग चलाना वा अपने ऊपर किए गए अन्यायकी जाँच कराना चाहें, न्याय पानेके सब दरवाज़े बन्द कर रहे हैं। आप कहते हैं कि जबतक इसके प्रतिकूल काफ़ी सबूत न मिले तबतक सब काम युक्तियुक्त तथा आवश्यक समझे जायँगे। कल्पना कीजिए—वे सज्जन क्षमा करें, जिनका कार्य्य उदाहरणार्थ लिया जाता है कि बैरिस्टर श्री मणिलालने अपने ऊपर किए गए निरर्थक क़ैद आदि विविध अत्याचारोंके लिये क्षतिपूर्त्तिका दावा किया, ऐसी अवस्थामें उनसे यह साबित करनेको क्यों कहा जाय कि उनपर अत्याचार करनेवालेने अच्छे भाव और आवश्यकताके विश्वाससे यह अत्याचार नहीं किए? इसके विपरीत उनके प्रतिपक्षीपर अर्थात् उनपर अत्याचार करनेवाले ही पर यह सिद्ध करनेका बोझ क्यों न डाला जाय कि उसने अच्छे भाव और उपयुक्त आवश्यकताके कारण ही ऐसा किया है? अन्य न्यायालयोंमें होनेवाले उपयुक्त न्यायके समान इसमें भी इतना ही पर्य्याप्त होना चाहिए कि मुद्दई शपथपर मुक़दमेकी असली घटनाओंको बताए और यदि मामलेके तत्त्वोंसे यह सिद्ध न हो कि वह (मुद्दई) अपराधी था और उसका दोष दण्डके योग्य था तो उस दशामें प्रतिपक्षीका कर्त्तव्य यह प्रमाणित करना है कि मामलेके तत्त्व ऐसे थे कि उसने जिस ढङ्गसे कार्य्य किया, उससे भिन्न प्रकारसे नहीं किया जा सकता था और इसलिये वह उसके उत्तरदायित्वसे छुटकारा पाने योग्य है। श्रीमन्! उनके साथ, जो अन्याय सह चुके हैं, यह दोहरा अन्याय होगा कि वे यह प्रमाणित करें कि उनपर अत्याचार करनेवालोंने अच्छे भाव और उपयुक्त विश्वाससे ये काम नहीं किए थे। इसलिये मैं इस धाराको निकाल देनेकी प्रार्थना करता हूँ। इसके निकलनेपर ही यह सम्भव हो सकता है कि कोई अपने मुक़दमेमें सफलता पानेकी आशा करे। श्रीमन्! इस सम्बन्धमें मैं यह कहना चाहता हूँ कि मुद्दईसे मुद्दाअलेहके बुरे भाव और अनुपयुक्त विश्वासको प्रमाणित करनेको कहना बिलकुल अन्याय है। वह कैसे सर्वज्ञ बन सकता है और विपक्षीके हृदयमें प्रवेशकर उसके यथेच्छाचारों और दमनके भावोंकी, जिन्हें सिर्फ़ वही जान सकता है, कैसे प्रमाणित कर सकता है कि विपक्षीने उसपर किसी बुरे भावसे अत्याचार किए हैं? उसके लिये यह असम्भव है। फिर, वह यह कैसे सिद्ध कर सकता है कि उसके साथ जो वर्त्ताव हुआ वह विद्रोह-दमनके लिये आवश्यक न था। आशय कार्य्योंसे जाना जाता है, यह विपक्षीका काम है कि वह सिद्ध करे कि उसका आशय ऐसा था, जो क्षमाके योग्य है। उन बातोंको सिद्ध करना, जिनका ज्ञान केवल मुद्दाअलेह ही को हो सकता है, मुद्दईके लिये अत्यन्त कठिन है।

श्रीमन्! इस कारण मैं निवेदन करता हूँ कि बिलका यह अंश अत्यन्त आक्षेपके योग्य है और एक हाथसे दिए हुए अधिकारको दूसरे हाथसे छीन लेता है। श्रीमन्! बिलपर अन्य आक्षेप भी किए जा सकते हैं। मैं प्रस्तावनाका फिर ज़िक्र करता हूँ। उसमें कहा गया है:—

“चूँकि पञ्जाबके कुछ ज़िलों और भारतवर्षके अन्य भागोंमें विगत उपद्रवोंके होनेके कारण शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करनेके लिये फ़ौजी क़ानून जारी करना ज़रूरी था।”

श्रीमन्! यह अन्य स्थानोंको भी अपनेमें सम्मिलित करता है। मैं नहीं जानता कि बिलकी इस विस्तृत शब्द-रचनाका कलकत्ता और दिल्लीकी घटनाओंपर कैसा प्रभाव पड़ेगा? बिलका आशय स्पष्ट होना चाहिए, इसलिये बिलकी भाषामें संशोधन होना आवश्यक है। मुझे विश्वास नहीं कि वर्त्तमान रूपमें

बिल उन स्थानोंकी घटनाओंको, जहाँ कोई फ़ौजी क़ानून जारी नहीं हुआ था, अपने प्रभावमें सम्मिलित कर सकता है या नहीं।

श्रीमन्! अब मैं बिलकी चौथी धाराका, जो फ़ौजी क़ानूनकी सज़ाओंको दृढ़ और जारी करनेके सम्बन्धमें है, उल्लेख करता हूँ। उसमें कहा गया है:—

"हरएक मनुष्य, जो फ़ौजी क़ानूनके अनुसार स्थापित वा नियत अथवा न्यायालयकी हैसियतसे कार्य्य करनेवाली किसी अदालत वा व्यक्तिद्वारा दिए गए दण्डके फलसे क़ैद किया हो, न्यायानुसार क़ैद किया हुआ समझा जायगा। इसमें यह भी कहा गया है कि वह दण्डकी अवधि समाप्त होनेतक अथवा जबतक गवर्नर-जनरल वा अन्य किसी न्यायानुमोदित अधिकारीद्वारा छोड़ न दिया जाय, क़ैद रहेगा।"

श्रीमन्! बिलकी इस धाराने मेरे हृदयको बिल्कुल दहला दिया है। मेरी रायमें मा० होम मेम्बरके कथनने इस बातको स्पष्ट कर दिया है कि जबतक वर्त्तमान रूपमें "इण्डेम्निटी" बिल अथवा इसकी चौथी धारा पास न हो तबतक फ़ौजी अदालतों और दण्डित मनुष्योंको क़ैदमें रखना न्यायविरुद्ध होगा। मैं यह मान लेता हूँ कि स्थिति यही है। ऐसी अवस्थामें उन लोगोंके साथ यह अन्याय है कि उनके दण्डोंको घटाने या मिटानेके लिये नहीं किन्तु उनको दृढ़ करने और जारी रखनेके लिये क़ानूनकी सहायता ढूँढ़ी जाय। श्रीमन्! जान पड़ता है कि बिलपर पूर्ण रूपसे विचार नहीं किया गया है और इसकी भिन्न-भिन्न धाराओं और बातोंपर एक साथ विचार नहीं हुआ है। यदि दक्षिण अफ़्रीकाके क़ानून ही को आदर्श मानकर सरकार इस बिलको बनाती तो भी इसकी रचना और इसकी धाराएँ भिन्न रूपमें होतीं। मा० होम मेम्बर और सम्भवतः मा० लॉ मेम्बरने दक्षिण अफ़्रीका यानी केप ऑफ़ गुड होपके सन् १९०२ ई० के ऐक्ट नम्बर ४ का प्रमाण देते समय देखा होगा कि उसमें फ़ौजी क़ानूनके अधिकारियोंद्वारा दिए गए दण्डोंपर पुनर्विचार करनेके सम्बन्धमें भी एक धारा है। अब श्रीमन्! शायद उस कमीको पूर्ण करनेके लिये ही मा० होम मेम्बरने आज भारत-सरकारका यह निर्णय प्रकट किया है कि फ़ौजी अदालतोंद्वारा दिए गए दण्डोंकी जाँच करनेके लिये हाइकोर्टके दो जज नियुक्त किए जानेवाले हैं। मैं इस निर्णयका स्वागत करता हूँ परन्तु यह मेरे इस सन्देहको और भी पुष्ट करता है कि बिलका मसौदा बनानेके समय उसकी सब बातोंपर पूर्ण विचार नहीं किया गया। श्रीमन्! अब मैं केप ऑफ़ गुड होपके क़ानूनकी धाराओंपर ध्यान दिलाना चाहता हूँ। क्या मैं मा० लॉ मेम्बरसे प्रार्थना कर सकता हूँ कि वे उस ऐक्टकी—ऐक्ट ४ सन् १९०२ की—एक प्रति मुझे देंगे?

मा० सर जौर्ज लाउण्ड्स:—शायद मेरी इस सूचनासे मा० मेम्बर कष्टसे बच जायँगे कि इस बिलकी रचनामें उस क़ानूनका नहीं बल्कि सन् १९१५ ईसवी के क़ानूनका, जिसका उन्हें शायद पता नहीं, आदर्श लिया गया है।

मा० मालवीयजी:—मैं मा० लॉ मेम्बरको इस बातके लिये धन्यवाद देता हूँ। मुझे सन् १९१५ ईसवीके ऐक्टका हाल मालूम नहीं था। कम-से-कम यह उन क़ानूनोंकी नामावलीमें नहीं है जो मेरे सहायक मित्रोंने बनाई है, तथापि मैं मा० लॉ मेम्बरकी इस सूचनाके लिये कृतज्ञ हूँ, परन्तु यदि वे उस ऐक्टकी एक प्रति देनेकी कृपा करें तो मैं इससे भी अधिक कृतज्ञ होऊँगा।

मा० सर जौर्ज लाउण्ड्स:—जब मा० मेम्बर अपना व्याख्यान समाप्त कर चुकेंगे तब वह दी जायगी।

मा० मालवीयजी:—मेरे मित्र लॉ मेम्बरको व्याख्यान समाप्त होनेके पूर्व ऐक्ट दिखानेमें न डरना चाहिए, क्योंकि सम्भव है कि उससे मुझे कुछ सहायता मिल जाय। तथापि मेरे प्रति दिखाए गए व्यवहारके लिये मैं कृतज्ञ हूँ।

श्रीमन्! सन् १९०२ ईसवीके ऐक्ट नम्बर ४ में फ़ौजी अदालतोंद्वारा किए गए दण्डोंको दृढ़ करनेके

सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण धाराएँ हैं। मैं उस धाराकी ओर आपका और कौन्सिलका ध्यान दिलाना चाहता हूँ जिसका आशय यह है:—"बहुतसे दण्ड, जो इस उपनिवेशके कई भागोंमें उपर्युक्त अधिकारियोंद्वारा स्थापित फ़ौजी अदालतोंने फ़ौजी क़ानून जारी होनेके समय लूट, मार, हत्या तथा अन्य सब प्रकारके जुर्म और फ़ौजी नियम-भङ्ग करनेवालोंको दिए हैं, इसके द्वारा स्वीकार किए जाते हैं और उनके अनुसार क़ैद किए गए सब पुरुष अपने दण्डकी अवधि समाप्त होनेतक अथवा जबतक न्यायानुमोदित अधिकारीद्वारा वे न छोड़े जायँ, क़ैदमें रहेंगे और उनको दिए हुए दण्ड न्यायानुकूल समझे जायँगे……………

इसके दूसरे भागमें कहा गया है:—"उपर्युक्त क़ैदख़ानोंके सारे अफ़सर, जिन्होंने किसी समयमें अच्छे भावसे ऐसे लोगोंको क़ैदख़ानेमें रक्खा, न्यायानुकूल कार्य्य करनेवाले समझे जायँगे। इसका तीसरा भाग भी महत्त्वपूर्ण है। उसमें कहा गया है:—

"इस उपनिवेशके ऐसे लोगोंका निर्वासन क़ानूनके अनुकूल समझा जायगा, जिन्हें उपर्युक्त अदालतोंद्वारा देश-निकालेका दण्ड मिला है।"

श्रीमन्! इसमें सन्देह नहीं कि इसका आशय फ़ौजी अदालतोंद्वारा दिए गए दण्डोंको न्यायानुकूल बनाना है। परन्तु इसकी प्रधान दलील यह है कि महारानीके विरुद्ध युद्ध किया गया था। द्वितीयतः यह कि उन्हीं लोगोंके दण्ड न्यायानुकूल माने गए हैं, जिनको लूट-मार, हत्या आदि भीषण अपराधोंके लिये ही फ़ौजी क़ानूनकी धाराओंके अनुसार दण्ड दिए गए थे।

श्रीमन्! यह धारा इसलिये बनाई गई थी कि दिए गए दण्ड क़ानूनके अनुकूल हो जायँ और दण्डोंके देनेवालोंपर अभियोग न चल सके। आपने देखा होगा कि इसके दूसरे अंशसे जेलर बचाए गए हैं। भाग तीनमें कुछ काम न्यायानुमोदित सिद्ध किए गए हैं। दण्ड और उनका भुगतना आदि तबतक क़ानूनके अनुकूल समझा जायगा जबतक वे रद्द न किए जायँ। श्रीमन्! इसके साथ एक विशेष व्यवस्था की गई है। आप कृपा करके देखें कि जब १५ सितम्बर, सन् १९०९ ई० को साधारण इण्डेम्निटी ऐक्ट पास हुआ उसके पूर्व २ अगस्त, सन् १९०२ ई० को एक कमीशन नियुक्त किया गया था। सम्राट् सप्तम एडवर्डने यह कमीशन नियुक्त किया था। यह बिलकी पहिली फ़ेहरिस्तमें था। मा० होम-मेम्बरकी इस घोषणाकी तरह कि फ़ौजी अदालतोंके फ़ैसलोंकी जाँच करनेके लिये दो जजोंको सरकार नियुक्त करनेवाली है, यह कोरी सूचना ही नहीं थी। श्रीमन्! मैं यहाँ यह बताना चाहता हूँ कि पञ्जाबके उपद्रवके बाद लोगोंका हाइकोर्टपरसे विश्वास उठ गया है। श्रीमन्! यह घोषणा बिलकी एक अंश होनी चाहिए थी, जिससे लोगोंको मालूम हो जाता कि दण्डोंके पुनरावलोकनके लिये यथेष्ट और उपयुक्त अवसर है।

पहले भागमें राजकीय हस्ताक्षरों और मुहरसे कमीशनकी सृष्टि की गई है। फिर दक्षिण अफ़्रीकामें फ़ौजी अदालतों-द्वारा दिए गए दण्डोंकी जाँच करनेके लिये सर जौन चार्ल्स बिगहम और मेजर-जनरल सर जौन चार्ल्स अर्डेघ नियत किए गए थे। और मि० गिलबर्ट मिलर उसके मन्त्री बनाए गए थे। आप देखें कि इस कमीशनके अध्यक्ष इङ्गलैण्डके लौर्ड चीफ़ जस्टिस और उपर्युक्त दो विचारपति सदस्य बनाए गए थे। अब मैं इस भागके कुछ अंशोंका उल्लेख करता हूँ:—

क्योंकि औरेञ्ज फ़्री स्टेट और दक्षिण अफ़्रीकाके प्रजातन्त्रोंद्वारा महारानी विक्टोरियाके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की गई, इसलिये फ़ौजी क़ानून जारी करना पड़ा; क्योंकि फ़ौजी अदालतोंद्वारा कुछ लोगोंको विविध प्रकारके दण्ड दिए गए हैं; क्योंकि अब लड़ाई समाप्त हो गई है, इसलिये उन कठिन दण्डोंकी आलोचना इस आशयसे आवश्यक हो गई है कि प्रजाकी सुरक्षिततामें बाधा डाले बिना उन दण्डोंको माफ़ वा कम करनेके लिये हम ऐसे

दण्डित लोगोंपर दया और करुणा प्रकट कर सकते हैं या नहीं।

“अव आप (जज) जान लें कि इन सब वातोंपर विचार करके और आप लोगोंकी बुद्धि, योग्यता, भक्ति और निष्ठापर भरोसा तथा विश्वास करके आप इसलिये नियुक्त किए जाते हैं कि आप उपर्युक्त दण्डोंकी जाँच करें और अपने हस्ताक्षर और मुहर-सहित अति शीघ्र रिपोर्ट दें कि उनके दण्ड कहाँ-तक माफ़ व कम किए जा सकते हैं।”

श्रीमन्! कृपया इन शब्दोंपर ध्यान देकर शीघ्र इसका निर्णय करें। श्रीमन्! ये शब्द विलके एक अंशमें रक्खे गए हैं? मैं मा० लौ मेम्वरका कृतज्ञ होऊँगा, यदि वे सन् १९०० ई० के ऐक्टकी एक प्रति भी देनेकी कृपा करें।

मा० सर जौर्ज लाउण्ड्स :—श्रीमन्! मैं समझता था कि वह मेरे पास नहीं है परन्तु वह मेरे पास है।

मा० मालवीयजी :—श्रीमन्! सन् १९०० ई० के इस ऐक्टमें भी ध्यान देने योग्य बात है। मैं कौन्सिल और सरकारका ध्यान उसपर दिलाता हूँ। श्रीमन्! मुझे शोकसे कहना पड़ता है कि इन क़ानूनोंमें और उस विलमें, जो कौन्सिलके सामने उपस्थित है, वहुत वड़ा अन्तर है। श्रीमन्! सन् १९०० ई० वाले क़ानूनमें केवल दण्डोंकी स्वीकृत और सङ्घटित कार्य्योंको क़ानूनके अनुकूल वनानेकी एक धारा है। उसमें यह कहा गया है कि दक्षिण अफ्रीकाके प्रजातन्त्र औरेञ्ज फ्री स्टेटसे महारानीकी सरकारके युद्धके समय केप औफ़ गुड होपके गवर्नर, सेनापति वा उनके अधीनस्थ अफ़सरों वा अन्य पुरुषोंके विरुद्ध, उन कामोंके लिये, जो उन्होंने शान्ति-रक्षा, उपद्रव-दमन और प्रजा-हितके निमित्त गत युद्धके आरम्भसे अन्ततक किए, चलाई जानेवाली सब क़ानूनी कार्रवाइयाँ ख़ारिज कर दी जायँगी और दण्डित पुरुषोंके दण्ड, धारा पचासमें कहे गए दण्डोंसे वदले दिए गए हैं।

धारा पचासका भावार्थ यह है:—“उपर्युक्त कमिश्नर अभियुक्तके पक्ष और विपक्षमें साक्षी सुनकर निश्चय करेंगे कि उसने अपराध किया है वा नहीं। यदि अभियुक्त अपराधी सिद्ध होगा, तो कमिश्नर उसको यह दण्ड देंगे कि पाँच वर्षतक वह पार्लियामेण्ट, नागरिक सभा तथा ग्रामीण पञ्चायत आदि सभाओंके सदस्य-निर्वाचनमें सम्मिलित न हो सकेगा और न सम्मति (वोट) ही दे सकेगा तथा न वह किसी सरकारी कार्य्यपर नियुक्त हो सकेगा। यदि वह वोट देगा वा प्राप्त करेगा तो वह निरर्थक समझी जायगी। ऐसे फ़ैसलेपर अपील न हो सकेगी।”

श्रीमन्! आप देखें कि प्रस्तावित विलकी धाराओं और इस इण्डेम्निटी विलकी धाराओंके आशयों तथा रूपोंमें कितना भेद है। श्रीमन्! कमीशनकी यह नियुक्ति क़ानूनके अन्तर्गत थी और उसे अन्य सब दण्डोंको हटाकर केवल प्रतिष्ठा-सम्वन्धी म्युनिसिपल चुनावसे दूर रखनेका अधिकार दिया गया था। ये दण्ड किसी गोरेको सलाम न करनेके सदृश तुच्छ अपराधोंके लिये नहीं दिए गए थे, वल्कि धारा एकमें कहे गए सङ्कटके समयमें किए गए राजनीतिक अपराधों तथा राजविद्रोहके निमित्त दिए गए थे।

श्रीमन्! उस दिन मैंने एक प्रस्ताव पेश कर सरकारसे निवेदन किया था कि जाँच-कमेटी वा मेरेद्वारा प्रस्तावित कमीशनको अधिकार दिया जाय कि जहाँ वह उचित समझे फ़ौजी अदालतोंद्वारा दिए गए दण्डोंको रद्द वा कम करानेके निमित्त प्रीवी कौन्सिलसे अनुरोध कर सके। मा० होम-मेम्वरने कहा है कि भारत-सरकार फ़ौजी अदालतोंद्वारा दिए गए दण्डोंपर पुनर्विचार करनेके लिये हाइकोर्टके दो जजोंको नियुक्त करनेवाली है। श्रीमन्! भारत-सरकार कोई न्यायालय स्थापित नहीं कर सकती। उसको नियमवद्ध न्यायालयकी प्रतिष्ठा करनेका कोई अधिकार नहीं है। गवर्नर-जनरल फ़ौजी क़ानून जारी कर सकते हैं और उसके अधीन कुछ अदालत स्थापित कर सकते हैं, परन्तु वे नियमवद्ध न्यायालयकी सृष्टि नहीं कर सकते। यदि हाइकोर्टके ये जज दण्डोंपर

पुनर्विचार करें तो भी वह अदालत न समझी जायगी। वे उन मामलोंमें केवल सरकारके सम्मतिदाता—माननीय सम्मतिदाता मात्र—हो सकेंगे, जिनको भारत-सरकार मिटाना चाहेगी। इस विषयमें मा० लौ मेम्बरकी सम्मति कुछ भी क्यों न हो, परन्तु मैं पूरे विश्वासके साथ कहता हूँ कि फ़ौजी अदालतोंद्वारा दिए गए दण्डोंपर पुनर्विचार करनेके लिये दो जजोंको नियुक्त करके भारत-सरकार उन्हें क़ानूनी न्यायालयके अधिकार नहीं दे सकती।

मा० सर विलियम विन्सेण्ट :—मैंने कभी ऐसा प्रस्ताव नहीं किया है।

मा० मालवीयजी :—मेरी शङ्काओंका समाधान करनेके निमित्त मैं मा० होम-मेम्बरको धन्यवाद देता हूँ। यदि वे इस विषयको इतना स्पष्ट कर देनेकी कृपा करें कि मेरा समय बच जाय तो मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ होऊँगा। मुझे यह मालूम नहीं कि वे जज केवल दण्डोंके सम्बन्धमें सिफ़ारिश करेंगे या अपनी इच्छाके अनुसार कार्य्य करनेका भी उन्हें अधिकार होगा? *(इतना कहकर मा० मालवीयजी बैठ गए)*।

सभापति :—मा० मेम्बर अपना भाषण पूरा करें।

मा० मालवीयजी :—श्रीमन्! इस विषयमें मा० होम-मेम्बरद्वारा कुछ न कहे जानेके कारण मुझे मानना पड़ता है कि यह प्रश्न सन्दिग्ध ही छोड़ दिया गया है। कोई सूचना न मिलनेके कारण मैं मानता हूँ कि ये जज केवल सरकारको सम्मति देनेवाले ही होंगे। यदि यह ऐसा हो तो सन्तोषजनक न होगा। मैं सरकारसे प्रार्थना करता हूँ कि केप औफ़ गुड होपके ऐक्ट ६, सन् १९०२ ई० की हिदायतोंके सदृश इन जजोंको भी हिदायतें दी जायँ। यहाँकी उन घटनाओंपर दृष्टि देते हुए, जिनका कोई खण्डन वा प्रतिवाद नहीं किया गया है, भारत-सरकारके लिये अब भी अवसर है कि वह कष्ट भोग करनेवाले लोगोंको छोड़कर अधिक कष्टों और अपमानसे बचाए। इस विषयपर विचार करनेके लिये यह उत्तम अवसर है। यदि यह बिल इसी रूपमें पास हो जाय तो स्थिति इस प्रकार होगी। न जाने ये जज इन मुक़दमोंका निपटारा करनेमें कितना समय लगा देंगे। क्योंकि उन्हें कोई कार्य्यक्रम नहीं बताया गया है। इससे समयका कोई अनुमान करना कठिन है। इसका परिणाम यह होगा कि वे लोग, जिन्हें फ़ौजी क़ानूनके अनुसार दण्ड दिए गए हैं, न्यायानुसार दण्डित समझे जायँगे और जबतक उनकी अवधि पूरी न होगी वा गवर्नर-जनरल अथवा अन्य अधिकारीद्वारा उनकी सज़ाएँ रद या कम न की जायँगी तबतक वे जेलमें सड़ते रहेंगे। यह स्थिति विशेषतः मा० लौ मेम्बरद्वारा प्रकट किए गए विचारोंको देखते हुए सन्तोषजनक नहीं है। उन्होंने कहा है कि मैंने पञ्जाब-सरकारकी राय ली थी। वह कहती है कि यदि फ़ौजी क़ानूनके अनुसार दण्डित या दण्ड भोगनेवाला एक भी मनुष्य छोड़ दिया जायगा तो स्थिति भयानक हो जायगी। मेरी रायमें यदि पञ्जाबके छोटे लाटसे कहा जाय कि भय-प्रद लोगोंको ठीक करनेके लिये सामान्य क़ानूनमें बहुतसी धाराएँ ऐसी हैं, जिनके अनुसार उनपर मुक़दमा चल सकता है और वे फिर क़ैद किए जा सकते हैं और वर्त्तमान क़ानूनोंमें बहुतसी धाराएँ ऐसी हैं, जिनके अनुसार सरकार सन्दिग्ध मनुष्योंसे शान्ति रखने तथा अच्छी चाल चलनके लिये मुचलके ले सकती है तथा साधारण अदालतोंमें उनपर मुक़दमा चला सकती है तो उनकी आशङ्का दूर हो जायगी क्योंकि बहुतसी शिकायतें की गई हैं कि ये दण्ड न्याय-विरुद्ध हैं। मा० होम-मेम्बरने इन शिकायतोंकी सच्चाईको मान लिया है। इसलिये जबतक मेरेद्वारा प्रस्तावित प्रस्तावोंके समान प्रस्ताव इसमें सम्मिलित न किए जायँ तबतक ये अभागे कारागारमें पड़े रहेंगे। इसलिये इस क़ानूनमें ऐसी धाराएँ जोड़नी चाहिए, जिनके अनुसार वे स्वतन्त्रताका उपभोग करनेके लिये, जिसके अधिकारी हैं, शीघ्र छोड़ दिए जायँ और यदि वे अपने किसी

कार्य्यके कारण स्वतन्त्रताका उपभोग करनेके अधिकारी न हों तो सामान्य न्यायालयोंद्वारा उनका विचार होने देना चाहिए। मुझे लौर्ड हाल्सवरीकी सम्मतिकी ओर ध्यान दिलानेकी आवश्यकता नहीं परन्तु मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उस पुस्तकमें दी हुई कुछ बातोंकी ओर ध्यान दिलाऊँ, जो पञ्जाब हाईकोर्टके वकील शेख़ नबी बख़्शद्वारा संगृहीत और प्रकाशित पुस्तकमें उद्धृत की गई हैं। आपने तथा कौन्सिलने देख लिया है कि "लौ औफ़ इङ्गलैण्ड" नामी ग्रन्थमें लार्ड हाल्सबरी कहते हैं कि उपद्रवोंके शान्त होते ही फ़ौजी अधिकारियोंकी सत्ता समाप्त हो जाती और मुल्की न्यायालयोंका शासन आरम्भ हो जाता है। पञ्जाबके उपद्रव तो बहुत पहले ही शान्त हो गए और फ़ौजी क़ानून भी कुछ मई मासमें और कुछ जूनमें तथा गत मासमें, शायद २५ या २८ तारीख़को पूर्ण रूपसे उठा लिए गए। ऐसी अवस्थामें मेरे द्वारा प्रस्तावित मार्गका अनुसरण ही ठीक होगा। इस क़ानूनकी रचनामें एक यह धारा भी रक्खी जाय कि हत्या वा आग लगानेके अपराधोंके अतिरिक्त अन्य अपराधोंकी जाँच सामान्य न्यायालयोंमें हो। अपराधियोंको अधिकार है कि जिस रीतिको वे अच्छी समझें, उसे छाँट लें। फ़ौजी क़ानूनके प्रश्नकी व्याख्या बहुत स्थानोंमें सावधानीसे हो चुकी है। हाइकोर्टके क्वीन्स बेञ्च डिवीज़नके जज सर फिट्ज़ जेम्स स्टीफ़ेन अपनी पुस्तक "इङ्गलैण्डके फ़ौजदारी क़ानूनका इतिहास" में—समयाभावसे मैं सारांश देता हूँ—कहते हैं:—

सभापतिः—मैं समझता हूँ कि यह आपकी वक्तृताका अन्तिम अंश होगा।

मा० मालवीयजीः—नहीं श्रीमन्! मैं सर जेम्स फिट्ज़ स्टीफ़ेनके कथनके सारांशको पढ़ रहा हूँ।

सभापतिः— बहुत अच्छा, चलिए।

मा० मालवीयजीः—वे कहते हैं:—

मैं फ़ौजी क़ानून-सम्बन्धी विचारोंका सार निम्नलिखित शब्दोंमें देता हूँ। क़ानूनके अनुकूल सत्ताकी स्थापना तथा व्यवस्थाकी पुनः प्रतिष्ठाके निमित्त तथा उपद्रव दबानेके लिये साम्राज्यके उच्च कर्मचारियोंद्वारा सैनिक शक्तिके अखिल अधिकारोंका धारण किया जाना और उनसे काम लेना फ़ौजी क़ानून कहाता है। इसके अनुसार सरकारके अफ़सरोंद्वारा शारीरिक शक्तिका उपयोग—यहाँतक कि प्राण लेना और इच्छानुसार सम्पत्तिका नाश किया जाना—न्याययुक्त हो जाता है। परन्तु उनको निर्दयतापूर्ण तथा अत्यधिक उपायोंको काममें लानेका कोई अधिकार नहीं है और इनके लिये दीवानी तथा फ़ौजदारी अदालतोंमें उनपर मुक़द्दमे चल सकते हैं। उपद्रवके शान्त होनेपर और साधारण मुल्की न्यायालयोंके खुलनेके बाद उनके द्वारा दण्ड दिया जाना न्यायसङ्गत नहीं।"

इस उत्तरदायित्वके सिद्धान्तका वर्णन राइट बनाम फिट्ज़िराल्डके मामलेमें भली भाँति दिया गया है। राइट क्लीमेन्सकी एक पाठशालामें फ्रेञ्च भाषाका अध्यापक, जिसको सन् १७९८ ई० के आयरिश विद्रोहके दमनके पश्चात्……………… ……………

सभापति :—"मा० मेम्बरको उन्हीं बातोंका पिष्टपेषण न करना चाहिए, क्योंकि हम आधे घण्टेसे इन्हींकी बातें सुन रहे हैं।

मा० मालवीयजी :—श्रीमन्! मैं फिट्ज़ जेम्स स्टीफ़ेनके सारांशका प्रमाण दे रहा……

सभापति :—मुझे उसका पूरा हाल मालूम है। परन्तु आज तीसरे पहरमें हम राइट बनाम फिट्ज़िराल्डका वर्णन आधे घण्टेसे सुन रहे हैं और अब उसका अधिक हाल नहीं सुनना चाहते।

मा० मालवीयजी :—बहुत अच्छा, श्रीमन्! सर जेम्स फिट्ज़ स्टीफ़ेन आगे कहते हैं :—

"फ़ौजी न्यायालय" जैसे कि वे पुकारे जाते हैं—जिनसे फ़ौजी क़ानूनके शासनका बोध होता है—वास्तवमें फ़ौजी न्यायालय ही नहीं बल्कि किसी प्रकारके भी न्यायालय नहीं हैं। वे अधिकारियोंद्वारा धारण की गई शक्तियोंके काममें लाने अर्थात्

उनकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये बनी हुई एक प्रकारकी कमेटियाँ हैं। वे राजविद्रोह अथवा युद्ध-सम्बन्धी क़ानूनोंमें बताए गए ढङ्गसे कार्य्य करनेके लिये बँधी नहीं हैं। दूसरी ओर यदि उनका अनुसरण करें, जैसी कि वास्तविक कोर्ट-मार्शलके सदस्यसे आशा की जाती है, तो उनकी रक्षा उसी हदतक हो सकती है कि उन्होंने सद्भावसे कार्य्य किया। अधिकारियों-द्वारा शान्तिकी स्थापना तथा विद्रोहको दबानेके लिये जैसे उपाय वे आवश्यक समझें उन्हें करनेमें वे समर्थ हैं, परन्तु आवश्यकतासे अधिक अत्याचारके प्रत्येक कामके लिये यद्यपि उन्होंने विद्रोह तथा युद्ध-सम्बन्धी क़ानूनोंके अनुकूल ही काम किया हो, वे व्यक्तिगत रूपसे उत्तरदाता हैं।”

इसलिये, श्रीमन्! उपद्रवके शान्त हो जानेके बाद सामान्य न्यायालय खोले जा सकते हैं और उनमें ऐसे लोगोंकी जाँच तुरन्त हो सकती है जो एकदम नहीं छोड़े जा सकते। मैं एक दूसरी सम्मतिका, जो न्या० स्पेङ्कीकी है, उल्लेख करता हूँ। उन्होंने इसके सम्बन्धमें २७ अप्रैल, सन् १९१८ ई० को लिखा है :—

“इस क़ानूनको बनानेवाली सरकारका यह स्पष्ट उद्देश रहा है कि फ़ौजदारीके बड़े अपराधोंका विचार ही फ़ौजी अदालतोंका विषय हो। बलवेमें घोर अत्याचार करते हुए पकड़े जाने, राजाके शत्रुओंको सहायता देने अथवा अन्य प्रकारकी दुश्मनी करते हुए पकड़े जानेवाले लोगोंका विचार ही ऐसे न्यायालयोंमें हो सकता है। ऐसी धाराएँ इसलिये बनाई गई हैं कि फ़ौजी कड़ाइयाँ केवल हत्याओंका रूप धारण न करें। परन्तु ऐसे उलझनदार मामले, जिनमें अवस्थाजन्य प्रमाणोंकी और लम्बी जाँचकी आवश्यकता हो, इन अदालतोंके अधिकारकी सीमाके बाहर रक्खे गए हैं। इनके बनानेवालेका यह कभी आशय न था कि फ़ौजी अदालत फ़ौजदारीके ऐसे मामलोंकी जाँच करें, जैसा कि यहाँ किया गया है—जिनमें अपराधी मौक़ेपर न पकड़ा गया हो, उसका अपराध स्पष्ट और बहुत घृणित न हो।”

इसके दूसरे अंशमें कहा गया है कि—“जिस क्षण फ़ौजी शासनकी समाप्ति हो जाय उसी समय सामान्य न्यायालय जारी किए जा सकते हैं।”

इसलिये, श्रीमन्! मेरा निवेदन है कि बिलकी धाराएँ असन्तोषजनक हैं और वर्त्तमान रूपमें इसको पेश करनेकी अनुमति न दी जानी चाहिए। श्रीमन्! यदि यह क़ानून वर्त्तमान रूपमें प्रविष्ट न होगा तो कोई हानि न होगी और गवर्नमेण्ट जाँच-कमेटीकी रिपोर्ट प्रकाशित होनेपर सारे मामलेपर विचार करनेमें समर्थ होगी। मैं यह दिखलाना चाहता हूँ कि यदि इसी रूपमें बिल पास हो जाय तो इससे बहुत बड़ा अन्याय होगा। यह सच है कि आपकी सरकारके हाथमें इस बिलको पास करनेकी शक्ति है। हमें यह मालूम भी है। ऐसा विश्वास करनेके लिये हमारे सामने पूर्व उदाहरण भी हैं। सरकारी बहुमत आपके अधीन है और जनताके प्रतिनिधि अल्पसंख्यक हैं, परन्तु इस मामलेमें आपकी सरकारके लिये यह आवश्यक और उचित है कि देश भरकी जनताकी राय क्या है? क्या अब मुझे अपना व्याख्यान बन्द करना चाहिए?

सभापति :—क्या मा० सदस्य अपना व्याख्यान समाप्त कर रहे हैं?

मा० मालवीयजीः—मैं कल अपना व्याख्यान समाप्त करूँगा।

सभापति :—कल ग्यारह बजेतकके लिये कौन्सिलका काम स्थगित किया जाता है। कल ग्यारह बजेसे एक बजेतक और फिर बिलकी चर्चा समाप्त होनेतक कौन्सिलका कार्य्य होगा।

(इसके बाद शुक्रवार, १९ सितम्बर, सन् १९१९ ई० के ग्यारह बजेतकके लिये कौन्सिलका कार्य्य स्थगित रक्खा गया। दूसरे दिन यानी १९ सितम्बर, सन् १९१९ ई० को कौन्सिलके एकत्र होनेपर मालवीयजीने कहा :—)

श्रीमन्! मैं बिलके सम्बन्धमें और दो आवश्यक बातोंकी ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। एक यह कि छठीं धारा अर्थात् रक्षाकी धारा कहती है :—

"इस क़ानूनकी कोई बात सरकारको किसी व्यक्तिपर किसी कार्य्यके निमित्त अभियोग चलानेसे न रोक सकेगी ।" इस धारासे केवल सरकारका किसी मनुष्यके विरुद्ध क़ानूनी कार्रवाई करनेका अधिकार सुरक्षित रक्खा गया है, परन्तु किसी मनुष्यद्वारा किसी व्यक्तिपर मुक़दमा चलाए जानेके अधिकारको धारा तीन और चार ने परिमित कर दिया है। मैंने पहले ही निवेदन किया है कि बिलकी दूसरी धारा मुक़दमा चलानेमें बाधा डालती है; जिसमें कहा गया है :—किसी सरकारी कर्मचारीके विरुद्ध उसके किसी कार्य्यके लिये किसी न्यायालयमें किसी प्रकारका फ़ौजदारी वा दीवानी मुक़दमा न चलाया जा सकेगा............यदि उस कर्मचारीने घटनाकी आवश्यकताके अनुकूल वह कार्य्य सद्भाव और युक्तियुक्त विश्वाससे किया है।"

इसके बाद धारा तीन है। इसमें कहा गया है :—"धारा दोके कार्य्यके लिये सरकारके मन्त्रीका इस आशयका प्रमाण-पत्र होना आवश्यक है कि उक्त कार्य्य सरकारके किसी कर्मचारीकी आज्ञासे किया गया है और यह तबतक इस बातका काफ़ी सबूत होगा.......जबतक इसके प्रतिकूल कोई बात सिद्ध न हो।"

श्रीमन्! इन दोनों धाराओंका सम्मिलित परिणाम, जैसा कि मैंने कहा है, यह होगा कि अभियोग चलानेवाले किसी मनुष्यके लिये सफलता प्राप्त करनेका अवसर बहुत ही कम रह जायगा। मेरी प्रार्थना है कि यह ठीक नहीं। मैं इसका उदाहरण देना चाहता हूँ कि बिलकी इन धाराओंसे किसी अत्याचार-पीड़ित व्यक्तिके लिये अदालतसे न्याय प्राप्त करना कठिन हो जायगा। इसके सम्बन्धमें मैं अमृतसरके एक ख़ास मामलेकी ओर ध्यान दिलाता हूँ। वह मामला बैरिस्टर *श्री गुरुदयालसिंह सलेरिया* का है। १० अप्रैलको ये सज्जन अन्य सज्जनोंके साथ अमृतसरकी ज़िला अदालतमें बैठे थे। वहाँ उनको ख़बर मिली कि गोली चलाई गई है और डा० सत्यपाल तथा डा० किचलूके निर्वासनके कारण उपद्रव आरम्भ हो गया है। उन्होंने अपने वकील मित्रोंसे सलाह कर यह निश्चय किया कि डिप्टी कमिश्नरको यह सूचना दी जाय कि यदि वे आज्ञा दें तो हम लोग जाकर उपद्रव शान्त करनेकी चेष्टा करें। उनकी आज्ञा पानेपर वे लोग वहाँ गए। इन सज्जनोंने वहाँ पहुँचकर लोगोंको शान्त करने और लौटा लेनेकी बड़ी चेष्टा की। श्री गुरुदयालसिंह रेलवे पुलसे झुण्डके एक भागको वापस लानेमें भी समर्थ हुए। अपना काम और भी अच्छी तरह करनेके लिये उन्होंने डिप्टी कमिश्नरकी सहायतासे एक पुलीसका घोड़ा प्राप्त किया और उसपर बैठकर वे लोगोंसे लौटनेकी प्रार्थना करने लगे। जब वे इस काममें लगे हुए थे उस समय सेनाने लोगोंपर गोली चलाई। रेलवे पुलके पास लोगोंका झुण्ड था। सेना फिर गोली चलानेको तैयार थी। यह देखकर उन्होंने चिल्लाकर कहा कि गोली मत चलाओ। उन्होंने डिप्टी कमिश्नरसे भी यह प्रार्थना की कि लोगोंको पीछे हटानेके लिये कुछ समय दिया जाय। जब वे ऐसा कर रहे थे उस समय कोई सूचना दिए बिना फ़ौजने गोली चलाना आरम्भ कर दिया। सौभाग्यसे वे स्वयं भी बच गए। डिप्टी कमिश्नरने एक फ़ौजी अदालतके सामने गवाही देते हुए स्वयम् उपर्य्युक्त बातें कही थीं। उन्होंने यह भी स्वीकार किया था कि "मेरी आज्ञासे श्री गुरुदयालसिंह लोगोंको लौटा लेनेकी चेष्टा कर रहे थे और वे अच्छे भावसे अपना काम कर रहे थे। उन्होंने यह भी कहा था कि झुण्डके ख़तरनाक बढ़ावके कारण गोली चलानी पड़ी और सेनाको सङ्केत कर दिया गया था कि ये मित्र हैं। श्री गुरुदयालसिंहने गोली लगनेके सङ्कटमें अपना कार्य्य किया इसलिये वे धन्यवादके पात्र हैं।" यह बयान श्री गुरुदयालसिंहके मुक़दमेके समय डिप्टी कमिश्नरने दिया था। श्रीमन्! इस कार्य्यके बाद श्री गुरुदयालसिंह अपने घर गए।

यह १० अप्रैलकी बात है। २३ मईको सादी पोशाकमेँ एक कान्स्टेबिलने अदालतमेँ उनके पास पहुँचकर उनसे कोतवालीमेँ चलनेको कहा। वहाँ पहुँचनेपर वे डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्टके सामने पेश किए गए। कुछ प्रश्नोँके बाद उनसे नम्रतापूर्वक जेलमेँ चलनेके लिये कहा गया। श्रीमन्! जेलमेँ दो दिनतक रक्खे जानेके बाद हथकड़ी पहनाकर ये सज्जन लाहौर भेजे गए। २६ मईके प्रातः कालमेँ ये सज्जन लाहौरके रेलवे स्टेशनसे उस माण्टगोमरी हालतक पैदल चलनेपर बाध्य किए गए, जहाँ वे दिन भर ज़मीनपर बैठाए गए थे। श्रीमन्! उसके बाद ये सेन्ट्रल जेलमेँ भेजे गए और सात फुट लम्बे और ढाई फुट चौड़े एक *लोहेके पिंजरेमेँ बन्द रक्खे गए।* यद्यपि उनके अभिभावकने उन्हेँ अन्य स्थानमेँ रखनेके निमित्त तीस रुपये दिए थे, तथापि वे दूसरे दिनतक उसी पिंजरेमेँ रक्खे गए! उस स्थानमेँ वे अधिक समयतक नहीँ रक्खे गए, क्योँकि वे दूसरे जेलख़ानेमेँ भेज दिए गए। ये सज्जन २३ मईको पकड़े गए थे। ६ अप्रैलकी हड़तालके लिये ५ अप्रैलको काम करनेका इनपर अभियोग लगाया गया था। उनकी ओरसे एक सज्जन—शायद सिविल सर्जन—की गवाही से यह प्रमाणित किया गया था कि उस दिन वे बीमार थे और घरमेँ चारपाईपर पड़े थे। उनपर अभियोग यह था कि वे ६ अप्रैलकी सत्याग्रह-सभामेँ सम्मिलित हुए थे। उन्होँने यह स्वीकार कर लिया था कि वे सभामेँ उपस्थित थे। सभामेँ भाग लेनेके लिये उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। उनपर तीसरा अभियोग यह था कि १० तारीख़को रेलवे पुलपर उन्होँने लोगोँको भड़काया, जब कि वास्तवमेँ अपनी जान जोखोँमेँ डालकर वे लोगोँको नगरकी ओर लौटा लेनेकी चेष्टा कर रहे थे। सबसे बढ़कर उनपर यह अभियोग लगाया गया था कि उन्होँने घोड़ेपर शहरमेँ जाकर लोगोँको उत्तेजित करनेवाला व्याख्यान दिया!

श्रीमन्! डिप्टी कमिश्नरने अपने बयानमेँ कहा था कि उन्होँने अपनी जान जोखोँमेँ डालकर लोगोँको पीछे हटानेका कार्य्य किया था। डिप्टी कमिश्नरसे प्रश्न किया गया था कि "क्या आप जानते हैँ कि गुरुदयाल सिंह सलेरियाने वास्तवमेँ १० अप्रैलको लोगोँको पीछे हटानेका यथासाध्य प्रयत्न किया था?" उन्होँने यह उत्तर दिया कि "उस समय उनको जो काम करते हुए मैँने देखा उससे यही तात्पर्य निकलता था।"

प्रश्न—"क्या आपने वास्तवमेँ उन्हेँ रेलवे पुलपर चिल्लाते और भीड़को हटाते देखा था?"

उत्तर—"हाँ, मुझे भले प्रकार याद है कि वे लोगोँको अच्छी तरह सम्बोधन करनेके लिये लालटेनके एक खम्भेपर चढ़े थे।"

प्रश्न—"क्या उनका भाव और लोगोँको हटानेका प्रयत्न आपको निष्कपट प्रतीत होता था?"

उत्तर—"मैँ अवश्य ही उन्हेँ निष्कपट समझता हूँ।"

प्रश्न—"क्या उस समय गुरुदयालसिंह गोली लगनेके ख़तरेमेँ थे, जब कि वे झुण्डसे पीछे हटनेको कहते हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे और इस प्रकारसे उन्होँने वास्तविक काम किया?"

उत्तर—"झुण्डके ख़तरनाक बढ़ावके कारण, जब कि वे लोगोँको हटानेकी चेष्टा कर रहे थे, गोली चलानेकी आवश्यकता हुई और यद्यपि सिपाहियोँको सूचना दी गई थी कि ये सहायक हैँ तो भी वे गोली लगनेके बहुत बड़े ख़तरेमेँ थे। वे वीरत्व और दृढ़तासे भीड़को हटानेके प्रयत्नके लिये निश्चय ही यशके भागी हैँ।"

श्रीमन्! इसपर भी इनपर मुक़दमा चलता रहा और २३ मईसे लगभग डेढ़ महीनेतक ये जेलमेँ रक्खे गए! उन्हेँ जेलमेँ रहनेका अपमान, कष्ट और अप्रतिष्ठा भोगनी पड़ी। उनके मुक़दमेके फ़ैसलेमेँ फ़ौजी कमीशन (अदालत) ने कहा है:—

"यह मुलज़िम ६ अप्रैलकी सभामेँ मौजूद था (कमीशनकी दृष्टिमेँ यह अवश्य ही जुर्म था) परन्तु हम लोगोँको इसका पूरा प्रमाण नहीँ मिला है कि वह साज़िशमेँ शरीक़ हुआ था। डिप्टी कमिश्नरकी

गवाहीसे यह ज़ाहिर होता है कि वह १० अप्रैलको अपनी जान जोखोंमें डालकर सरकारी अफ़सरोंकी सहायता कर रहा था। सरकारी गवाह हंसराज इसके सिवा और कुछ नहीं कहता कि उन्होंने वशीरसे कहा था कि मैंने १० अप्रैलको वही किया जो कुछ मैं कर सकता था। सरकारी वकील मि० हर्बर्ट इसपर मुक़दमा चलानेके लिये दबाव नहीं डाल रहे हैं, इसलिये हम इसे छोड़ देते हैं।”

श्रीमन्! मैं पूछना चाहता हूँ कि श्री गुरुदयाल सिंह यदि अपने साथ किए गए घोर और ग़ैर-क़ानूनी अन्यायके लिये हर्जाना मिलनेका दावा करें तो उनकी कैसी स्थिति होगी? इन्होंने उपद्रवके समय अपनी जान जोखोंमें डालकर उस समय सरकार और जनताकी सेवा की है जब कि रेलवे पुलपर उनका कार्य्य देखनेवाले डिप्टी कमिश्नर और पुलीसके डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट अमृतसरमें मौजूद थे। इसपर भी ये सज्जन पकड़े गए और उनका अत्यन्त निरादरके साथ चालान हुआ और डेढ़ महीनेतक जेलमें रक्खे गए! उनको अपने बचावका प्रबन्ध करनेके लिये कष्ट, उद्विग्नता और अपमान सहना पड़ा और अन्तमें वे छोड़ दिए गए। यदि यह विल पास हो गया तो क्या वे तबतक मुक़दमा जीत सकते हैं, जबतक वे क़सम खाकर यह न कहें कि उनपर अत्याचार करनेवालोंके मनमें बुरा इरादा था? अथवा यह ठीक होगा कि वे अदालतमें जाकर घटनाके तत्त्वोंको बतावें और अपने ऊपर अत्याचार करनेवालोंसे पूछें कि उनपर अत्याचार करनेके न्यायानुमोदित कारण क्या थे? इनमेंसे कौनसा मार्ग ठीक होगा? कौनसी कार्रवाई उपयुक्त होगी? मेरे विचारमें इसका केवल एक ही उत्तर हो सकता है। इन महाशयके साथ प्रत्यक्ष और स्पष्ट अन्याय हुआ है। आप इस विलमें इन धाराओंको जोड़कर उनके द्वारा किए जानेवाले क्षति-पूर्त्तिके दावेमें उनको सफलता मिलनेका मार्ग बन्द करना चाहते हैं। ऐसा होनेसे यदि वे अपना मामला अदालतमें ले जायँ तो उन्हें उत्तर मिलेगा कि जबतक मुद्दई यह प्रमाणित न करे कि मुद्दाअलेहने सद्भाव और युक्तियुक्त विश्वाससे काम नहीं किया है और ये कार्य्य शान्ति स्थापित करनेके लिये आवश्यक न थे, तबतक उनका मुक़दमा दायर नहीं हो सकता।

श्रीमन्! इस विलमें बतलाए गए मार्गसे अधिक अन्यायपूर्ण प्रयोगकी—जो उचित मार्ग होना चाहिए था—मैं कल्पना नहीं कर सकता। मैंने इस मामलेपर दो कारणोंसे ध्यान दिलाया है। पहले यह कि धारा २ और ३ का विलमें सम्मिलित किया जाना विल्कुल न्याय-विरुद्ध है; इसलिये उन्हें एकदम निकाल देना चाहिए, कम-से-कम जहाँतक धारा २ का और गवाहीके नए नियमका सम्बन्ध है। मैं यह दिखलानेके लिये भी इसका हवाला देता हूँ कि यद्यपि विलकी धारा ६ सरकारको अधिकार देती है कि वह उनमेंसे किसी भी मनुष्यके प्रतिकूल, जो उनको गिरफ़्तार करने, कष्ट देने या उनपर ज़ुल्म करनेवालोंके विरुद्ध क़ानूनी कार्रवाई करना उचित समझें, क़ानूनी कार्रवाई करे। श्रीमन्! यह कहा जा सकता है कि विलके अनुसार सरकार किसी भी मनुष्यके प्रतिकूल किसी विषयके सम्वन्धमें क़ानूनी कार्रवाई कर सकती है और इस दशामें यह कहना, कि वैसे मामलेमें, जिसका मैंने ऊपर उल्लेख किया है, मा० होम मेम्वर और मा० लौ मेम्वर सरकारको सम्मति देंगे कि उन लोगोंके विरुद्ध, जो श्री गुरुदयाल सिंहकी अप्रतिष्ठा और क्लेशोंके लिये ज़िम्मेदार हैं, मुक़दमा दायर किया जाय, युक्तियुक्त होगा। सामान्यतया ऐसा हो सकता है, परन्तु दुर्भाग्यसे मौजूदा हालातमें किसी विशेष व्यक्तिको, जिसने क्लेश भोग किया, यह आशा नहीं दिलाई गई है कि ऐसे मार्गका अनुसरण किया जायगा। मुझे अत्यन्त दुःखके साथ ऐसा कहना पड़ता है—परन्तु वास्तवमें यह तत्त्व है और इसका मुझे उल्लेख करना चाहिए कि जब कि झुण्डोंके कुछ भागोंद्वारा किए गए उपद्रवोंपर बहुत क्रोध प्रकट किया गया है। उस समय उन

योरोपियनोँकी मौतोँके सिवा—जिनके लिये सरकारी सदस्योँके समान ही मेरे हृदयमेँ भी सहानुभूति है—मरे हुए अन्य भारतवासियोँके साथ—जिनकी वा जिनके सम्बन्धियोँकी जानेँ इन उपद्रवोँमेँ जाती रही हैँ वा जिन्हेँ अन्य कष्ट सहने पड़े हैँ—सरकारी पक्षके बेञ्चोँकी ओरसे एक शब्दमेँ भी सहानुभूति प्रकट नहीँ की गई है।

श्रीमन्! इस बातपर प्रकाश डालना भी मेरे लिये दुःखप्रद है कि जब ऐसी अत्याचारयुक्त घटनाएँ हुईं, इतनी अधिक मौतेँ—जिनका ढूँढकर पता लगाया गया है—हो गईं, सरकारकी ओरसे उन लोगोँके लिये सहानुभूतिका एक शब्द भी न कहा जाय!

मा० सर विलियम विन्सेण्टः—क्या मैँ इसकी सफ़ाईमेँ एक शब्द कह सकता हूँ? मैँने स्पष्ट रूपसे इस कौन्सिलमेँ कहा था कि प्राण-हानिके लिये मुझसे अधिक दुःख किसीको नहीँ है। ऐसी अवस्थामेँ यह कहना अनुचित है कि मैँने पीड़ितोँके साथ सहानुभूति प्रकट नहीँ की।

मा० मालवीयजीः—श्रीमन्! मैँ यह मानता हूँ और स्वीकार करता हूँ कि मा० मेम्बरका आशय भारतीयोँके साथ सहानुभूति प्रकट करनेका है।

मा० सर विलियम विन्सेण्टः—केवल आशय ही नहीँ परन्तु मैँने वास्तवमेँ ऐसा किया है।

मा० मालवीयजीः—मुझे यह विश्वास दिलानेपर प्रसन्नता है कि मा० मेम्बरने भारतवासियोँके साथ उसी प्रकारकी सहानुभूति प्रकट की है जैसी कि पीड़ित योरोपियनके साथ उन्होँने प्रकट की है। परन्तु जनताको यह विश्वास दिलानेके लिये मैँ सरकारकी ओरसे ऐसा सहानुभूति-पूर्ण भाव प्रकट किए जानेकी आशा करता था कि यदि ऐसे मामले होँ, जिनमेँ इन दलीलोँका होना सिद्ध हो अथवा यदि अन्याय, न्याययुक्त सिद्ध न हो तो सरकार सम्राट्की प्रजापर अत्याचार करनेवालोँपर स्वयं मुक़दमा चलाएगी। इसपर मुझे प्रश्नके एक दूसरे पहलूका स्मरण होता है और वह है क्षति उठानेवालोँको क्षति-पूर्त्तिकी रक़म मिलनेका। सन् १९०० ई० के केप ऑफ़ गुड होपके ऐक्ट ६ मेँ फ़ौजी कार्रवाईसे की गई हानिके सम्बन्धमेँ क्षति-पूर्त्तिकी धाराओँसे भरा हुआ एक स्वतन्त्र अध्याय है। परन्तु विचाराधीन बिलकी धारा ५ मेँ क्या प्रबन्ध है? इसमेँ कहा गया है,—'फ़ौजी क़ानूनके अनुसार सरकारके मुल्की या फ़ौजी अफ़सरोँद्वारा यदि किसी मनुष्यकी सम्पत्ति ली गई हो या उसका व्यवहार किया गया हो, तो सपरिषद् गवर्नर-जनरल ऐसे लोगोँको, जिनको इससे वास्तविक हानि पहुँची है, क्षति-पूर्त्तिमेँ उतनी ही रक़म दिलाएँगे, जितनी आपसमेँ समझौता न होनेपर—इस कामके लिये सरकारकी ओरसे नियुक्त जुडिशल ऑफ़िसर (जो डिस्ट्रिक्ट जजसे नीचे दर्जेके न होँगे) द्वारा निर्धारित की जायगी।

श्रीमन्! बिल केवल फ़ौजी कामोँमेँ लाई गई सम्पत्तिकी क्षति ही को पूर्ण करता है परन्तु फ़ौजी कार्रवाइयोँसे जो जानेँ गई हैँ और जो सब नष्ट की गई सम्पत्तिसे अधिक मूल्यवान हैँ, उनके सम्बन्धमेँ क्या होगा? इसलिये मेरा निवेदन यह है कि सबसे अच्छा मार्ग यह होगा कि इस बिलमेँ एक ऐसी धारा जोड़ी जाय कि इस ऐक्टके अनुसार सङ्गठित होनेवाली कमेटीको यह निर्णय करनेका अधिकार रहेगा कि जो लोग मारे गए हैँ या जो ज़ख़्मोँसे असमर्थ हो गए हैँ और जिनको सम्पत्तिकी हानि उठानी पड़ी है उनको क्षति-पूर्त्तिमेँ कितनी रक़म देनी चाहिए।

इस विषयमेँ बिलमेँ त्रुटि है और इसलिये मेरा निवेदन है कि सरकार फिर इस मामलेपर विचार करे। कौन्सिलने देखा होगा कि मैँ यह नहीँ कहता कि इण्डेम्निटी बिल कौन्सिलमेँ पेश और पास न किया जाय, परन्तु मेरे कहनेका तात्पर्य्य यह है कि जबतक जाँच-कमेटी अपनी रिपोर्ट पेश न करे तबतक यह मुलतवी रक्खा जाय। इसके सम्बन्धमेँ मैँ यह

बतलाना चाहता हूँ कि यह प्रस्ताव, जैसा कि कुछ लोग समझ रहे हैं, अनुचित नहीं है।

सन् १८५७ ई० के ग़दर

के पश्चात् सरकारने इण्डेम्निटी बिल पास करनेकी जल्दी नहीं की थी बल्कि पूरे दो वर्षके बाद अर्थात् सन् १८६० ई० की दूसरी अगस्तको सरकारने इसपर अपनी सम्मति दी थी। यदि सरकार इस समय बिल पास न करे, तो यह कोई अबुद्धिमत्ताकी बात न होगी और न इससे सरकारको कोई हानि ही पहुँचेगी। मेरे इस कथनकी पुष्टि देशके लोकमतसे और भी अधिक होती है, क्योंकि देशके भिन्न-भिन्न भागोंसे मेरे पास पत्र और तार आ रहे हैं कि सरकारके इण्डेम्निटी बिल पास करनेके कार्य्यसे लोकमत असन्तुष्ट है। मैं पहले लाहौरसे आया हुआ तार पढ़ता हूँ :—

"पञ्जाब-एसोसियेशनके सदस्य बड़े सम्मानके साथ व्यवस्थापक कौन्सिलके आनरेबुल मलिक उमर हयातखाँके इस कथनका प्रतिवाद करते हैं कि पञ्जाबके लोग गत अप्रैल मासकी घटनाओंकी जाँचके लिये कमेटी नहीं चाहते। वास्तवमें प्रान्त भरके निवासी चाहते हैं कि उक्त घटनाओंकी अच्छी जाँचके लिये ऐसा साम्राज्यिक कमीशन नियुक्त किया जाय, जिससे भारत-सरकारका कोई सम्बन्ध न हो" इस बातका, कि देशमें प्रतिवाद सभाएँ नहीं हुईं उल्टा आशय न निकालना चाहिए, क्योंकि सभाबन्दीके सरकारी आज्ञा-पत्र और अफ़सरोंकी आज्ञाओंसे ही प्रतिवाद सभाएँ नहीं हुई हैं। पञ्जाबमें एसोसियेशनके तारमें पञ्जाबकी जनताकी ओरसे यह प्रकट करनेकी इच्छा भी प्रदर्शित की गई है कि "वर्त्तमान अवस्थामें प्रस्तावित बिलका पास किया जाना असामयिक ही न होगा बल्कि इससे उचित जाँचके होनेमें भी हानि पहुँचेगी। फ़ौजी क़ानूनकी आवश्यकता-सम्बन्धी जाँच-कमीशनकी राय प्रकाशित होनेके बाद सरकारी अफ़सरोंकी रक्षाके निमित्त क़ानून बनानेका पर्य्याप्त समय मिलेगा। प्रत्येक अवस्थामें पञ्जाब-एसोसियेशन यह अनुभव करता है कि फ़ौजी अदालतों और अफ़सरोंद्वारा दिए गए ग़ैर-क़ानूनी दण्डोंको न्यायानुकूल बनानेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं हैं। वे प्रार्थना करते हैं कि सरकार बिलको अभी स्थगित रखनेकी कृपा करे।"

यह उन तारोंमेंसे एक है। मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि अन्य प्रान्तवासियोंकी क्या सम्मति है। नेशनल लिबरल लीगके अध्यक्ष सर नारायण गणेश चन्दावरकरने कुछ दिनके पूर्व आपको और भारत-मन्त्रीको तार दिया है कि "चूँकि इण्डेम्निटी बिलकी आवश्यकता सङ्घटित जाँच कमीशनके निर्णयपर निर्भर है, इसलिये यह अभी स्थगित रक्खा जाय।"

"कैपिटल" पत्रमें "डिचर" ने लिखा है कि—"यह स्पष्ट है कि इण्डेम्निटी ऐक्टको पास करनेका कार्य्य और जाँच-कमेटीका निर्णय एक दूसरेके आशयके विरुद्ध होंगे।" लण्डनके "डेली न्यूज़" ने प्रस्तावित कमीशनपर टिप्पणी करते हुए लिखा है—"जाँच-कमीशनकी नियुक्ति होनेके पूर्व सरकारी अफ़सरोंको बचानेके लिये इण्डेम्निटी बिल पास करनेकी चेष्टा होना यह दुबारा निश्चय दिलाता है कि अफ़सरों की नीतिपर सरकार पलस्तर फेरना चाहती है।" यह नीति, जिसका समर्थन नहीं किया जा सकता, सीलोनकी सरकारद्वारा विगत महायुद्धके प्रथम वर्षके उपद्रवोंके बाद ही लोगोंके विरुद्ध कार्रवाई करनेकी बातको याद दिलाती है। ऐसे अबृटिश कार्य्योंसे बृटिशोंके सुनामपर धब्बा लगता है। देशके सभी समाचार-पत्रोंने कमेटीकी रिपोर्टके पहले इस बिलको पास किए जानेके विरुद्ध लिखा है। यही राय 'लीडर' 'बङ्गाली' 'नेशन' 'बाम्बे क्रानिकल' आदि प्रधान पत्रोंकी है। उनकी रायको अलग-अलग बतानेके लिये समय नहीं है, परन्तु बम्बईके "सोशल रिफ़ार्मर" में प्रकाशित सर नारायण गणेश चन्दावरकरके बहुमूल्य लेखकी ओर ध्यान दिलाना मेरे लिये अधिक लाभदायक होगा। इससे पहिले मा० होम मेम्बरने

इण्डेम्निटी बिलको पेश करनेके समय अपने विचारोंका समर्थन करनेके लिये "भारतीय नियमबद्ध क़ानूनके एक विद्यार्थीके नामसे प्रकाशित एक पत्रका सहारा लिया है। मुझे यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य्य हुआ और मुझे यह एक प्रकारका पतन मालूम हुआ कि भारत-सरकारके होम मेम्बर भारत-सरकारद्वारा निर्धारित एक नीतिके समर्थनमें एक गुमनाम लेखकके पत्रका हवाला दें। मैं इसके सम्बन्धमें अधिक कुछ नहीं कहना चाहता, क्योंकि इसका सम्बन्ध मा० होम मेम्बरसे है। अब मैं इस बिलकी चर्चाके विरुद्ध प्रकट की हुई एक ऐसे सज्जनकी रायका उल्लेख करता हूँ, जिन्होंने कई वर्षोंतक बम्बईकी हाइकोर्टके जजका, स्थानापन्न प्रधान जजका तथा इन्दौरकी हाइकोर्टके प्रधान जजका कार्य्य किया है। उन्होंने महत्त्वपूर्ण अवसरोंपर क़ानूनी प्रश्नोंपर अपने परिपक्व विचारोंको प्रकट कर भारत-सरकारको बाधित किया है। "इण्डियन सोशल रिफ़ार्मर" में प्रकाशित लेखमें आप (सर नारायण चन्दावरकर) ने लिखा है :—कुछ लोगोंद्वारा इसपर आश्चर्य्य प्रकट किया गया है कि अब विभिन्न दलोंके भारतीय राजनीतिज्ञोंने सरकारके इस निर्णयका विरोध किया है कि विगत उपद्रवोंके सम्बन्धमें किए गए कार्य्योंके उत्तरदायित्वसे अफ़सरोंको मोक्ष देनेके लिये भारतीय व्यवस्थापक सभामें इण्डेम्निटी बिल यथासम्भव शीघ्र पेश किया जाय।" अनन्तर आपने अपने सिद्धान्तकी पुष्टिमें मि० डाइसीके वचनोंका प्रमाण—जिनका उल्लेख उनकी पुस्तक "अँधेरेमें छलाँग" में किया गया है—दिया है।

श्रीमन्! क्या मैं इसका उल्लेख कर सकता हूँ कि यह पुस्तक सन् १८९३ ई० में छपी थी? इसके प्रकाशित करनेमें ग्रन्थकारका उद्देश यह था कि उस वर्ष पार्लियामेण्टमें जो "आयरिश होम-रूल बिल" पेश हुआ था, उसके प्रधान सिद्धान्तोंकी परीक्षा की जाय। मि० डाइसीके विचारमें उस बिलमें सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि प्रस्तावित पार्लियामेण्टके व्यवस्थापक अधिकारोंके विरुद्ध ऐसी कोई रोक-थाम या अधिकार सुरक्षित रखनेकी धाराएँ नहीं थीं, जो उस पार्लियामेण्ट-द्वारा इण्डेम्निटी ऐक्ट पास किए जानेकी मनाही करती। मि० डाइसी कहते हैं :—

"सब क़ानूनोंमें, जो एक व्यवस्थापक सभा पास कर सकती है, इण्डेम्निटी क़ानूनसे अन्याय होनेका सबसे अधिक भय रहता है। यह अपने बाह्य रूपमें ही ग़ैर-क़ानूनी क़ानून है। यह केवल कड़ाई करनेको ही उत्तेजन नहीं देता बल्कि क़ानून और मनुष्यत्त्वका उल्लङ्घन करनेको भी उत्तेजित करता है। आयर्लैण्डके फ़िट्ज़जिराल्डको बेत लगानेकी कहानी और जैमेकाके गवर्नर "एयर" का इतिहास हमको उन क़ानूनविरुद्ध और निर्दयतापूर्ण कार्य्योंकी याद दिलानेको पर्य्याप्त है, जो आत्मीय कलहोंकी आशङ्का और भयसे किए जा सकते हैं और जो भयभीत तथा बदला लेनेके भावसे प्रभावित अत्याचार करनेवालोंसे सहानुभूति रखनेवाली व्यवस्थापक सभाद्वारा क्षमा किए जा सकते हैं।" आगे आप लिखते हैं :—

"पश्चाद्गामी प्रभाव डालनेवाला क़ानून ऐसा शस्त्र है, जिसका उपयोग किसी भी व्यवस्थापक सभाद्वारा क़ानूनी अधिकारोंका अप्रिय व्यवहार करनेवालोंको दण्ड देनेके निमित्त किया जा सकता है। आयर्लैण्डमें कोई ज़मीन्दार, मजिस्ट्रेट या कान्स्टेबिल ऐसा नहीं है, जो इस क़ानूनसे थर्राता न हो। जहाँतक होमरूल बिलका सम्बन्ध है, वहाँतक कोई कारण नहीं कि मि० विलियम ओब्रायनको क़ैदमें रखनेवाले जेलर और उनका पतलून उतारनेकी चेष्टा करनेवाले पहरेदार आयरिश-राजविद्रोहके अलिखित क़ानूनके विरुद्ध अपराध करनेके निमित्त क़ानूनी दण्ड पानेके भागी न समझे जायँ। यह कहा जा सकता है कि इससे क़ानूनी असमानताकी कोई घटना ही न होगी। मैं इसे स्वीकार करता हूँ, परन्तु पश्चाद्गामी प्रभाव डालनेवाला क़ानून पास करनेका उद्देश उपद्रवके समय किए गए अत्याचारपूर्ण अन्यायको बन्द करना है। संयुक्तराज्य (अमेरिका) के बुद्धिमान संस्थापकोंने

कांग्रेस और प्रत्येक राज्य (स्टेट) की व्यवस्थापक सभाको यह क़ानून पास करनेकी मनाही की है।”

आगे चलकर विशेष होमरूल बिलकी चर्चा करते हुए और उसमें इण्डेम्निटी बिल पास करनेके विरुद्ध कोई निषेध न होनेकी बातपर टिप्पणी करते हुए मि० डाइसी कहते हैं—“यह आवश्यक था कि कोई मनाही होती।” आपने लिखा है:—

“निस्सन्देह अन्य देशोंकी भाँति आयर्लैण्डमें भी ऐसी अवस्था उपस्थित हो सकती है, जिसमें सुव्यवस्थाकी स्थापना और जीवनकी रक्षाके लिये क़ानूनके कड़े नियमोंका उल्लङ्घन क्षन्तव्य या आवश्यक समझा जाय। परन्तु इस प्रश्नका निर्णय, कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है या नहीं, हरदम डब्लिनकी पार्लियामेण्टकी अपेक्षा इङ्गलैण्डकी पार्लियामेण्टद्वारा वेस्टमिन्स्टरमें अधिक न्यायानुकूल रूपसे हो सकता है। क्या कोई वास्तवमें यह कह सकता है कि वह पार्लियामेण्ट जिसके नेता मि० हेली या कर्नल सैण्डरसन हो, मि० ग्लैडस्टन या लार्ड सालसबरीके अधीनस्थ पार्लियामेण्टकी अपेक्षा यह निर्णय करनेका अच्छा विचारालय हो सकता है कि आइरिश सरकारकी आज्ञासे काम करनेवाले अफ़सरने बेलफ़ास्ट या डब्लिनमें सुव्यवस्था स्थापित रखनेके लिये किसी आन्दोलनकारी या षड्यन्त्रीको उचित रूपसे मुक़दमा चलाए बिना फाँसी देकर अपना कर्त्तव्य पालन किया है वा नहीं?”

श्रीमन्! जैसा कि सर नारायण चन्दावरकरने कहा है, भारतके स्थानपर आयर्लैण्डको और शिमलेके स्थानपर डब्लिनको रखिए, फिर आपको दिखाई देगा कि मि० डाइसीके वाक्य कौन्सिलके सामने पेश किए गए वर्त्तमान प्रस्ताव (बिलपर) अधिकांश लागू होते हैं। इसलिये मेरा निवेदन है कि इन वजनदार सम्मतियोंको देखते हुए सरकारके लिये इण्डेम्निटी बिलको अभी स्थगित रखना ही बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य्य होगा। श्रीमन्! जैसा कि मैंने कल कहा है; सरकारके लिये यह सुगम है और यह उसके अधिकारमें है कि वह इस बिलको अपने सदस्योंके बहुमतसे पास कर दे। परन्तु मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप देशवासियोंद्वारा विस्तृत रूपसे प्रकट किए गए मतका निरादर करनेके पहले इसपर पुनर्विचार करें।

श्रीमन्! सरकार जनताकी सम्मतिपर ध्यान दिए बिना भी शासनकार्य्य चला सकती है, परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं है। उचित मार्ग यही होगा कि उन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार कार्य्य किया जाय, जिनके लिये विगत महायुद्धमें भारतीय और बृटनोंका ख़ून बहाया गया है अर्थात् वह किया जाय जो न्याय, सम्मान, और सत्यके अनुसार ठीक हो और इस मामलेमें सत्य, न्याय और सम्मान इसकी उपेक्षा करते हैं कि जहाँ इतने शोकजनक कार्य्य किए गए, जहाँ क़ानूनके विरुद्ध इतनी स्वच्छन्दता हुई, जहाँ लोगोंकी इतनी अप्रतिष्ठा की गई, जहाँ सम्राट्के कर्मचारियोंपर इतने भीषण अभियोग लगाए जा रहे हैं, जहाँ पञ्जाबके विगत कुछ मासोंके शासन-सम्बन्धी भारत-सरकारके भावोंपर भीषण आक्षेप किए जा रहे हैं, वहाँ मेरा निवेदन यह है कि जाँचकी रिपोर्ट प्रकाशित होनेतक इस बिलको पास करनेसे हाथ रोक लिया जाय। सम्मानके साथ मैं यह निवेदन करनेका साहस करता हूँ कि जब जाँच-कमेटी अपनी रिपोर्ट पेश करे, उस समय भारत-सरकारके लिये यह मार्ग ठीक होगा कि सम्राट्की सरकारके पास रिपोर्ट यह निश्चय करनेके निमित्त भेजी जाय कि अफ़सरोंको कौनसे कार्य्योंके लिये क्षमा मिलनी चाहिए और जिनको विगत उपद्रवों और दङ्गोंमें अन्याय रूपसे हानि उठानी पड़ी है, उनको सरकारकी ओरसे क्षति-पूर्त्तिमें कितनी रक़म दी जानी चाहिए।

श्रीमन्! मैं प्रार्थना करता हूँ कि और अधिक सहानुभूतिका भाव दिखाया जाय तथा मनुष्य और मनुष्यके बीच, हिन्दुस्तानियों और योरोपियनोंके बीच एक प्रजा और दूसरी प्रजामें बदला या प्रतिशोधके लेनेके भावसे नहीं परन्तु सिर्फ़ इस पवित्र इच्छासे कि

न्याय और उचित कार्य्य हो, न्याय करनेकी इच्छा प्रकट की जाय। इन कारणोँसे मैँ आप और आपकी सरकारसे बलपूर्वक निवेदन करता हूँ कि इस मामलेपर पुनर्विचार किया जाय और यह क़ानून अभी पेश न किया जाय। यदि ऐसा किया गया तो सारा देश कृतज्ञ होगा, भारत और इङ्गलैण्डमेँ जनता समझेगी कि आपकी सरकारने अन्तमेँ लोकमतके बल और वज़नको स्वीकार किया और उसके आगे सिर झुकाया।

श्रीमन्! अत्यन्त शक्तिशाली सरकारको भी लोकमतके आगे झुकना पड़ता है। यह ऐसा हो रहा है कि इस मामलेमेँ लोकमत प्रबल है ही नहीँ। मेरा निवेदन है कि हमेँ इस मामलेमेँ इङ्गलैण्डका अनुकरण करना चाहिए। मैँ अत्यन्त सम्मानके साथ निवेदन करता हूँ कि इङ्गलैण्डकी कोई सरकार इस कौन्सिलकी बहसमेँ प्रकट की गई अवस्थाओँमेँ इस बिलके समान किसी बिलको पास करनेका साहस नहीँ कर सकती। इसलिये मैँ प्रार्थना करता हूँ कि यद्यपि सरकारके हाथमेँ ऐसा करनेकी शक्ति है तथापि उस शक्तिका उपयोग तबतक न किया जाय, जबतक जाँच-कमेटी अपनी रिपोर्ट पेश न करे। मैँ उनके नामपर, जो इनमेँ अङ्गहीन हो गए हैँ, उनके नामपर, जिन्होँने वर्णनातीत अपमान सहन किए हैँ, उनके नामपर, जो इस क्षण सम्राट्के क़ैदखानोँमेँ अन्यायसे सड़ रहे हैँ, उन स्त्रियोँके नामपर, जो अपने पतियोँ, पुत्रोँ और सम्बन्धियोँके चिर-वियोगपर आँसू बहा रही हैँ, इस क़ानूनको कमेटीकी रिपोर्ट पानेतक स्थगित रखनेकी प्रार्थना करता हूँ।

श्रीमन्! कमेटीकी रिपोर्टके बाद यह निश्चय किया जाय कि क्या करना चाहिए। जाँच-कमेटीकी रिपोर्ट प्रकाशित होनेपर जनता देख सकेगी कि वास्तविक तत्त्व क्या है और उन अवस्थाओँमेँ कौनसे मार्गपर चलना उचित होगा। उसी अवस्थामेँ इस कौन्सिलका हरएक समझदार सदस्य प्रस्तावित क़ानूनका समर्थन कर सकेगा।

श्रीमन्! यह प्रार्थना अवसरके उपयुक्त है। मुझे आशा है कि सरकार उन कतिपय सदस्योँकी, जिनको इस कौन्सिलमेँ बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, सम्मतियोँसे ही इस मामलेका निर्णय न करेगी। मुझे आशा है कि सरकार इसका निर्णय करनेमेँ प्रकट किए गए इस कौन्सिलके बाहर विस्तृत लोक-मत तथा इङ्गलैण्डके लोकमतपर भी विचार करेगी। इन सम्मतियोँको देखकर यदि निर्णय किया जाय तो इसमेँ सन्देह नहीँ कि सरकार एक ही नतीजेपर पहुँचेगी और वह यही है कि जाँच-कमेटीकी रिपोर्ट आनेतक इस बिलको स्थगित रखना चाहिए।

(पूर्वार्द्ध समाप्त)

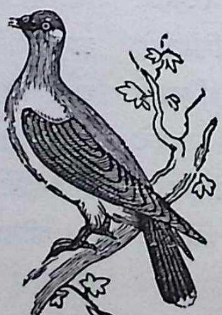

इण्डेम्निटी बिल (उत्तरार्द्ध)

इण्डेम्निटी बिलको अनियमित प्रमाणित करते हुए २५ सितम्बर, सन् १९१९ ई० को जो पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने भाषण दिया, वह नीचे दिया जाता है :—

—सम्पादक।

मा० सर विलियम विन्सेण्ट :—श्रीमन्! मैं प्रस्ताव करता हूँ कि फ़ौजी क़ानूनके अनुसार किए गए कुछ कार्य्योंके उत्तरदायित्वसे सरकारी अफ़सरों और अन्य लोगोंको मुक्त करने तथा उन्हींके सम्बन्धके कुछ अन्य विषयोंका बिल, जैसा कि इस कौन्सिलके द्वारा संशोधित किया गया है, पास किया जाय। मैं समझता हूँ कि कौन्सिलके अधिकांश सदस्य विस्तृत और कष्टदायक चर्चाके बाद इस निर्णयको सुनकर सन्तुष्ट होंगे। इसलिये मैं उन्हें यहाँ बहुत देरके लिये रोक रखना नहीं चाहता। बिलकी बहसमें बहुतसे ऐसे उलझनदार विषयोंका हवाला देना आवश्यक हुआ है, जिनपर इस कौन्सिलके बहुतसे सदस्य उद्विग्न थे। इसपर भी कौन्सिलने बहसके अवसरपर जो आत्म-संयम दिखाया है, उसके लिये उसे स्वयं बधाई दे लेनी चाहिए। जैसा कि मैंने कहा है, दोनों पक्ष बहुत उद्विग्न थे और यद्यपि इसको प्रकट न करनेकी चेष्टा की गई, तथापि कई अवसरोंपर यह उद्विग्नता प्रकट हुई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विगत घटनाओंका बहुत बड़ा असर योरोपियन और भारतीयोंपर पड़ा है। मुझे हर्ष है कि इसके होते हुए भी मामलेकी आवश्यकताओंको स्वीकार करनेमें कौन्सिलमें कोई बाधा नहीं पड़ी है और सदस्योंने यह स्वीकार किया है कि सिद्धान्तोंसे, न कि किसी व्यक्तिगत मनुष्यके कार्य्योंसे सलूक करनेके लिये बिल एक आवश्यक उपाय है। मेरा विश्वास है कि इसी कारणसे इस बिलपर, जिसको पेश करनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, कौन्सिलमें ऐसी बहुसंख्यक सम्मति मिली है। मैं समझता हूँ कि कौन्सिल उन सज्जनोंकी सम्मति जाननेके लिये, जिन्होंने इन उपद्रवोंमें और इनको शान्त करनेके लिये किए गए उपायोंमें बड़ी दिलचस्पी ली है—उत्सुक होगी। मेरा उद्देश श्री गान्धीसे है। इन सज्जनके सम्बन्धमें देशमें भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ हैं। कुछ मनुष्य इन्हें स्काच लोगोंके बहुत अधिक गुणोंसे परिपूर्ण ख़तरनाक मनुष्य समझते हैं। कुछ दूसरे मनुष्य भी हैं, जिनकी सम्मति भी समान रूपसे वज़नदार समझी जानेके योग्य है, जो इनको साधुओंके समान गुणोंसे पूर्ण, स्वार्थत्यागी और ईश्वरीय गुणोंसे विभूषित समझते हैं। कुछ दिन पूर्वकी एक बहसमें स्वयं मि० माण्टेग्यूने उनको उच्च उद्देशोंसे परिपूरित और सुन्दर चरित्रवान् कहा था। उन्होंने यह भी कहा था कि उनका शत्रु भी, यदि कोई हो, यह स्वीकार करेगा कि वे स्वार्थरहित आकाङ्क्षाओंसे युक्त हैं।

श्रीमन्! इन परस्पर विरोधी मतके लोगोंकी रायसे श्री गान्धीके चरित्रका अनुमान किया जा सकता है, परन्तु मेरी बातोंसे कौन्सिल यह न ख़याल करे कि मैं उनके सम्बन्धमें अपनी या सरकारकी राय प्रकट कर रहा हूँ, क्योंकि इस तरह रायका प्रकट करना अनुचित होगा। इसपर भी यह स्पष्ट है कि

श्री गान्धीमेँ कुछ गुण ऐसे हैँ, जिनको सब लोग स्वीकार करेँगे। उनमेँ एक गुण ऐसा है जो प्रायः इस देशमेँ दिखाई नहीँ देता और वह है अपने दृढ़ विश्वासोँको प्रकट करनेका साहस।

यदि वे किसी बातको ठीक समझेँ तो वे सरकारसे या किसी अन्य मनुष्यसे उसको कहनेमेँ नहीँ हिचकते। इस कारणसे कौन्सिल यह सुननेको उत्सुक होगी कि इस स्थिति और चरित्रके एक प्रधान भारतीयकी राय इस बिलके सम्बन्धमेँ क्या है। उत्तरदायित्वसे मोक्ष देनेके सम्बन्धमेँ हम लोगोँने जो कुछ किया है उससे भी श्री गान्धी सम्भवतः आगे जायँगे। उन्होँने 'युक्तियुक्तविश्वास' और 'सद्भाव' का बिल्कुल उल्लेख नहीँ किया है। वे कहते हैँ:—"मैँ कहूँगा कि यह शिकायत करनेकी अपेक्षा, कि बिल असमयमेँ पेश किया गया है, हमेँ बिलकी धाराओँपर अपना सारा ध्यान देना चाहिए। उदाहरणार्थ हम लोगोँको इस आशयकी एक धारा इसमेँ रहने देनी चाहिए कि ऐसे अफ़सरोँपर, जिन्होँने गोली चलानेकी आज्ञा दी, हत्याका फ़ौजदारी मामला या क्षति-पूर्त्तिका दीवानी दावा न चल सकेगा।" उन्होँने यह भी कहा है कि ऐसे अफ़सरोँको, जिनका दोष हो, सरकारकी ओरसे दण्ड दिया जाय।

कौन्सिलके सदस्य देखेँगे कि हमारा बिल इन आशयोँतक नहीँ जाता। एक दूसरे पत्रमेँ, जिसमेँ उन्होँने बिलका विरोध करनेवालोँको उत्तर दिया है, आप इस प्रकार लिखते हैँ—(मैँ २० सितम्बर, सन् १९१९ ई० के 'यङ्ग इण्डियासे' जो मेरी समझमेँ श्री गान्धीद्वारा सञ्चालित है, उद्धृत कर रहा हूँ) "सम्मानके साथ मैँ इस विचारसे सहमत नहीँ हूँ कि ऐसा बिल उचित रूपसे कमीशनकी रिपोर्टके बाद ही पास हो सकता है। मैँ यह निवेदन करनेका साहस करता हूँ कि यह बिल (इण्डेम्निटी), जैसा कि प्रकाशित हुआ है, बिलकुल हानिशून्य है और यह ऐसा है जैसा कि हमेँ कमीशनकी रिपोर्टके बाद पास करना पड़ेगा।"

श्रीमन्! मेरी समझमेँ यह राय—इसका मूल्य जैसा हो, वैसा लीजिए—सरकारके उस विचारका, जो इसपरकी बहस-भरमेँ सरकारकी ओरसे प्रकट किया गया है—समर्थन करती है।

माननीय पण्डित मंदममोहन मालवीयजीने श्री गान्धीका हवाला अत्यन्त वज़नदार कहकर कई बार दिया है। इसलिये उनके विचारपर बहुत गम्भीर ध्यान देना आवश्यक है। अच्छा, श्रीमन्! क्या हम इस अवसरपर आशा कर सकते हैँ कि उन्होँने (मा० मालवीयजीने) जिनका बार-बार हवाला दिया है, उनके (श्री गान्धी) विचारसे वे सहमत होँगे। मैँ कौन्सिलसे यह निवेदन करता हूँ कि ये पत्र महत्त्वपूर्ण हैँ और इनके द्वारा उन निर्णयोँका, जिनको हमने कौन्सिलके सामने पेश किया है, समर्थन होता है अर्थात् यह बिल आवश्यक और हानिशून्य है, जो कमीशनकी रिपोर्टपर किसी तरहका प्रभाव नहीँ डालता।

आपका भाषण समाप्त होनेपर माननीय मालवीयजीने कहा:—"श्रीमन्! मुझे दुःख है कि मुझे इस प्रस्तावका यह संशोधित बिल पास किया जाय, विरोध करना पड़ता है। मैँ उस उत्तरदायित्वको स्मरण करके जो कौन्सिलके लोक-निर्वाचित सदस्यकी हैसियतसे मेरे ऊपर है और मेरे सम्माननीय मित्र श्री गान्धीके सम्बन्धमेँ मा० होम मेम्बरद्वारा दिए गए हवालेको सुनकर ही ऐसा कर रहा हूँ। श्रीमन्! इस बिलपर उसके गुणोँके अनुसार ही विचार होना चाहिए। इसके अनुकूल और प्रतिकूल सम्मतियोँपर निस्सन्देह विचार होना चाहिए और श्री गान्धीकी सम्मति भी ध्यान देने योग्य है। मुझे हर्ष है कि मा० होम मेम्बरने श्री गान्धीकी प्रशंसा कर हमेँ उनकी सम्मतिपर ध्यान देनेकी सलाह दी है। मुझे आशा है कि श्री गान्धीजीकी इस रायको पढ़नेके बाद वे सबसे पहले भारत-सरकारको यह सलाह देँगे कि कई महीनोँसे सिर्फ़ बम्बई प्रान्तमेँ रहनेकी श्री गान्धीको जो आज्ञा दी गई है, वह

अविलम्ब रद्द की जाय। द्वितीयतः मुझे यह भी आशा है कि मा० होम मेम्बर पञ्जाब और दिल्लीकी सरकारोँको भी इसीका अनुकरण करनेकी, अर्थात् प्रवेश-निषेधकी आज्ञाओँको रद्द करनेकी सलाह देँगे। श्रीमन्! मा० होम मेम्बरद्वारा की गई श्री गान्धीकी प्रशंसाका ऐसे कार्य्यसे अच्छा प्रमाण मिलेगा। अपने सामने उपस्थित प्रश्नपर ध्यान देते हुए मैँ महात्मा गान्धीकी रायका बहुत सम्मान करता हूँ। परन्तु एक और ऐसी बड़ी शक्ति है, जिसके आगे झुकना मेरा कर्त्तव्य है। वह शक्ति मेरी अन्तरात्मा है और वह मुझसे कहती है कि यह बिल वर्त्तमान रूपमैँ पास न होना चाहिए।

श्रीमन्! अब मैँ अपने वक्तव्यको सङ्क्षेपमैँ भली भाँति स्पष्ट करता हूँ। आप, यह कौन्सिल और सारा देश जानता है कि इस बिलकी नीँव निम्नलिखित प्रस्तावपर रक्खी गई है :—“चूँकि पञ्जाबके कुछ ज़िलोँ और भारतके अन्य भागोँमैँ होनेवाले हालके उपद्रवोँके कारण शान्ति स्थापित करनेके लिये फ़ौजी क़ानून जारी करना आवश्यक हो गया।”

श्रीमन्! यह प्रस्तावना पूर्व-निर्मित प्रस्तावनाओँके अनुसार है। परन्तु हमारा आक्षेप यह है कि “आवश्यक हो गया” वाक्य पर्य्याप्त नहीँ है और बृटिश क़ानूनोँकी विस्तृत प्रस्तावना, जिसकी ओर मैँने ध्यान आकृष्ट किया है, इसमैँ रखनी चाहिए। जैसा कि मा० लौ मेम्बरने कहा है, मेरे हवालेका सङ्केत ‘प्रथम विलियम और मेरी’ नामक क़ानूनकी ओर न था, परन्तु जहाँतक मुझे याद है, उस क़ानूनकी प्रारम्भिक वाक्यरचना भी मेरे कथनकी पुष्टि करती है। उस ऐक्टकी प्रस्तावनामैँ कहा गया है :—“उपद्रवके समय बहुतसे लौर्ड और प्रतिष्ठित लोगोँने लेफ़्टिनेण्टकी हैसियतसे काम किया था, यद्यपि उनको ऐसा करनेकी आज्ञा न थी, तो भी उन्होँने सन्दिग्ध पुरुषोँ और अपराधियोँको हवालातमैँ बन्द किया और घोड़े आदि पकड़े। इन सब कार्रवाइयोँमैँ उन्हेँ ऐसी ज़बर्दस्ती आदिसे काम लेना पड़ा, जो शान्तिके समय उचित न होती, और भी बहुतसे कार्य्य और बातेँ ऐसी हुईं, जो जनताकी रक्षाके निमित्त उपेक्षणीय और आवश्यक थीँ। ऐसे कामोँके दायित्त्वसे अफ़सरोँको बचाना उचित है। इसलिये ऐसा क़ानून बनाया जाय।” उपेक्षणीय और आवश्यक थे, इन शब्दोँपर ध्यान देना चाहिए।

श्रीमन्! यह सन् १६८९ ई० की बात है। मैँ इसके मध्यवर्त्ती समयके क़ानूनोँका उल्लेख न कर सन् १७१५ई० के क़ानूनका ज़िक्र करता हूँ, जिसकी प्रस्तावनामैँ भी ये ही शब्द हैँ, जो ऐसे क़ानूनकी प्रस्तावनाओँके लिये अनिवार्य्य हैँ अर्थात् “ग़दरके समय शान्तिकी रक्षा, शान्ति स्थापित रखने और खेदजनक ग़दरको दबानेके लिये जो आवश्यक थे…………”

श्रीमन्! साथ-ही-साथ मैँ स्वीकार करता हूँ कि मेरा यह कहना ठीक न था कि पार्लियामेण्टके प्राचीन क़ानूनोँमैँ “स्थापित रखनेके लिये” वाक्यके प्रयोगका प्रमाण नहीँ मिलता। इस बारेमैँ मा० लौ मेम्बरका कहना ही ठीक है, लेकिन उसमैँ जिस भाषाका व्यवहार किया गया है, वह यह दिखलानेके लिये है कि शान्ति स्थापित रखना आवश्यक था, क्योँकि उस समय युद्ध कहे जाने लायक़ बलवा, उपद्रव या दङ्गा हुआ था।

श्रीमन्! सन् १७१५ ई० के क़ानूनमैँ अफ़सरोँद्वारा किए गए कार्य्योँका उल्लेख करके कहा गया है :—“कुछ आदमियोँने उपर्युक्त कारणोँसे, अर्थात् वर्त्तमान सुखकर शासनको स्थिर रखने तथा राज्यकी रक्षा और प्रजाके हितके लिये ग़दर और दङ्गोँको दबानेके निमित्त ऐसे आवश्यक काम किए जो क़ानूनके कड़े नियमोँसे ठीक सिद्ध नहीँ हो सकते, इसलिये पार्लियामेण्टके क़ानूनद्वारा वे ठीक समझे जाने चाहिएँ, क्योँकि उनके करनेवालोँको बचाना न्याययुक्त है, इसलिये यह क़ानून बनाया जाता है………आदि”

श्रीमन्! मेरा ऐतराज़ यह था कि जब कि बिलकी प्रस्तावनाके मन्सैदेमैँ पूर्वनिर्मित-क़ानूनोँके ये वाक्य रक्खे गए हैँ कि “किए गए कार्य्य आवश्यक थे” अर्थात् फ़ौजी क़ानून जारी करना आवश्यक था,

उसी समय सरकारके सलाहकारोँने यह उचित न समझा कि इस क़ानूनकी दूसरी धारा भी यानी 'आवश्यक होनेके सिवा ये कार्य्य ऐसे प्रजा-हितके थे, जिनकी न्यायानुकूलता पार्लियामेण्टके ऐक्टद्वारा स्वीकार की जानी चाहिए।'

श्रीमन्! मेरे लिये सन् १७५४ ई० और सन् १७८० ई० के उन क़ानूनोँका जिनमेँ ऐसी ही वाक्य-रचना है, हवाला देनेकी आवश्यकता नहीँ। श्रीमन्! केवल इङ्गलैण्डके क़ानूनोँमेँ ही नहीँ वल्कि दक्षिण अफ़्रीकाके उन क़ानूनोँकी प्रस्तावनाओँमेँ भी—जो मा० लौ मेम्वरको वहुत मुग्ध प्रतीत होते हैँ—ऐसी ही वाक्य-रचना है:—अर्थात् ऐसे कार्य्य, जो युद्ध शान्त करने, सुव्यवस्था और सुशासन स्थापित रखने अथवा इस उपनिवेशकी प्रजाकी सुरक्षितताके लिये आवश्यक थे। ये वाक्य सन् १९०० ई० के ऐक्ट ६ मेँ हैँ जब वुअर युद्ध जारी था। सन् १९०२ ई० के ऐक्ट चारमेँ व्यवहृत भाषा इस प्रकार है:—ऐसे काम, जो युद्ध शान्त करने, सुशासन और सुव्यवस्थित शासन स्थापित या प्रतिष्ठित रखने या इस उपनिवेशकी जनताकी रक्षाके लिये आवश्यक थे।"

श्रीमन्! इससे यह स्पष्ट दिखाई देगा कि इन क़ानूनोँका प्रधान आधार—चाहे वे वृटिश पार्लियामेण्ट-द्वारा वनाए गए होँ—व्यवस्थापक सभाओँद्वारा इस घोषणाका होना है कि जो कार्य्य किए गए और जिनको न्यायानुमोदित वनाने और उनके उत्तर-दायित्त्वसे मोक्ष देनेके लिये क़ानून वनाया जाता है, वे उपद्रवोँको शान्त करने और सार्वजनिक शान्तिकी रक्षाके लिये आवश्यक थे। सिर्फ़ इतना ही नहीँ, वल्कि वृटिश क़ानूनोँमेँ कहा गया है:—किए गए कार्य्य जनताके ऐसे हितके लिये थे कि उनको पार्लियामेण्टके क़ानूनोँद्वारा न्यायानुकूल वनाना आवश्यक है।" इस विचारका समर्थन सं० १८१८ की लौर्ड सभाके कुछ विख्यात सदस्योँद्वारा एक विवादमेँ प्रकट की गई सम्मतियोँसे तथा जान स्टूवार्ट मिलकी उस रायसे, जिसकी ओर मैँने कल ध्यान दिलाया था, होता है। श्रीमन्! सरकारकी ओरसे विलको पेश करनेका यह कारण वताया गया है कि शान्ति-स्थापना और शान्ति-रक्षाके लिये फ़ौजी क़ानून जारी करना आवश्यक था। परन्तु भारत-सरकारने क्या किया? अव सरकारने इन शब्दोँकी "शान्ति-रक्षा और शान्ति-स्थापनाके लिये फ़ौजी क़ानून आवश्यक था" के स्थानमेँ इन शब्दोँको कि "फ़ौजी क़ानून जारी किया गया" रख दिया है। मेरा निवेदन है कि लौ मेम्वर और होम मेम्वरने अपने कथनकी नीँवको स्वयं खोद डाला और अव उनको इस कौन्सिलमेँ यह कहनेकी गुञ्जायश नहीँ कि इण्डेम्निटी विल पास होना चाहिए। माननीय लौ मेम्वर, जो वड़े विद्वान् हैँ और जिनके क़ानून और इतिहासका शोध अवश्य ही गम्भीर है, मुझे एक ऐसा उदाहरण वतलाएँ कि किसी देशमेँ पार्लियामेण्ट या व्यवस्थापक सभाओँको यह सन्तोष हुए विना कि जो काम किए गए वे आवश्यक, न्याय्य और उचित थे, क़ानूनी पुस्तकमेँ इण्डेम्निटी विल सम्मिलित किया गया है?

मा० सर जौर्ज लाउण्डस्—"क्या मा० पण्डित वास्तवमेँ मुझसे पूछना चाहते हैँ?"

मा० मालवीयजी:—"यदि मा० लौ मेम्वर ऐसा करेँ तो मैँ कृतज्ञ होऊँगा।"

मा० सर जौर्ज लाउण्डस्—"मा० पण्डित सेण्ट विन्सेण्ट ऐक्टकी ओर देखेँ, जिससे उनका वड़ा प्रेम है।"

मा० मालवीयजी:—"मैँ लौ मेम्वरको धन्यवाद देता हूँ।"

सेण्ट विन्सेण्टके ऐक्टमेँ कहा गया है:—

"काम जो अच्छे विश्वास, उचित रीतिसे आवश्यकतावश वलवा शान्त करनेके लिये किए गए।" इनकी भाषा स्पष्ट है।

मा० सर जौर्ज लाउण्डस्:—"मा० पण्डित प्रस्तावनाका हवाला देँ, कारण अभी वे प्रस्तावना नहीँ पढ़ रहे हैँ।"

मान० मालवीयजी:—"आपको प्रस्तावना और

क़ानूनके अङ्गको (क़ानूनको) एक साथ लेना चाहिए। श्रीमन्! सेन्ट विन्सेण्ट ऐक्टको पढ़नेमें समय विना ही मुझे उस संशोधित क़ानूनकी प्रस्तावना मिल गई, परन्तु असली क़ानूनपर ध्यान देनेमें इस समय मैं असमर्थ हूँ। इस क़ानून-सम्बन्धी मा० लौ मेम्बरके भावमें परिवर्त्तन देखकर मैं प्रसन्न हुआ हूँ, क्योंकि आप कल ही इस ऐक्टकी हँसी उड़ा रहे थे और आज सरकारके भावकी पुष्टि करनेके लिये उसका प्रमाण दे रहे हैं! श्रीमन्! क्या-से-क्या हो गया? यह कैसा पतन—कैसा शोचनीय पतन है? श्रीमन्! यदि यही स्थिति है तो सरकारको इस क़ानूनको पास करनेकी न्याय्यता दिखलानी चाहिए और मैं निवेदन करता हूँ कि उसके पास अब इसके लिये कोई न्याय्यता नहीं। श्रीमन्! सरकारके इस संशोधनसे, जो उसने किया है, सारी अवस्था वदल गई है और अन्य कोई कारण दिए विना मैं सिर्फ इस दलीलपर सरकारसे यह पूछनेका अधिकारी हूँ कि कौन्सिलको यह विल पास न करना चाहिए। मेरा निवेदन है कि सरकारको वर्त्तमान प्रस्तावनाके शब्दोंसे आगे वढ़ना चाहिए। यह कहना काफ़ी नहीं है कि चूँकि फ़ौजी क़ानून जारी किया गया, इसलिये इसके अनुसार किए गए कार्य्य न्यायानुकूल वनाए जायँ और उनके करनेवालोंको मोक्ष दिया जाय। इतना ही कहना पर्य्याप्त न होगा। आपको विचारना चाहिए कि कार्य्य क्या थे और क्या यह दिखाया गया है कि किए गए कार्य्य ऐसे थे कि उनको न्यायानुमोदित करना और उनसे मोक्ष मिलना चाहिए? इससे पहले मैं पीड़ित लोगोंद्वारा कही गई वातोंका विस्तारसे उल्लेख कर चुका हूँ कि फ़ौजी क़ानून जारी करना आवश्यक न था। मैं वहुतसी सम्मतियोंका उल्लेख कर चुका हूँ और आज एकका और हवाला देता हूँ। वहसके अन्तमें मा० होम मेम्वरने लाहौर, अमृतसर तथा पञ्जावके कुछ अन्य भागोंमें फ़ौजी क़ानून जारी करनेके सम्वन्धमें १३ अप्रैलको पञ्जाव-सरकारद्वारा भारत-सरकारको भेजा गया एक तार पढ़ा था। उसमें कहा गया था कि लाहौर और अमृतसरमें १० अप्रैलको कुछ खेदजनक घटनाएँ हो गईं और कासूरमें १२ अप्रैलको दो योरोपियन मारे गए। मेरा निवेदन है कि इस तारमें सारा सच्चा हाल नहीं दिया गया है। इसमें सत्यका कुछ अंश दिया गया है परन्तु इसमें सत्यका निर्णय करनेका पूरा साधन नहीं दिया गया है, जिससे यह मालूम हो कि फ़ौजी क़ानून जारी करना चाहिए था या नहीं। श्रीमन्! वास्तवमें हम लोगोंके पास इसका अकाट्य प्रमाण है कि अपर माल सड़कपर गोली चलने और अनारकली वाज़ारके क्षणस्थायी झगड़ेके पश्चात् १० अप्रैलकी सन्ध्याको लाहौरमें पूरी शान्ति थी। उस दिनकी सन्ध्याको घटनाके कुछ देरके वाद छोटे लाट गवर्नमेण्ट हाउसमें एक दावतमें शरीक हुए थे और "पायोनियर" के लाहौरी सम्वाददाताने, मैं समझता हूँ कि जिसको मा० श्री टौम्सन जानते होंगे, २० अप्रैलको निम्नलिखित पत्र लिखा था (यह पत्र २५ अप्रैलके "पायोनियर" में छपा है):—

"वास्तवमें १० अप्रैलकी सन्ध्याके पश्चात् कोई सच्ची उद्विग्नता शेष नहीं रह गई थी। यद्यपि शुक्र, शनि और रविवारको उपद्रवी इधर-उधर प्रयत्नमें लगे हुए थे और सव कारोवार वन्द था।"

श्रीमन्! इस लेखककी वातका ज्ञान सरकारी अफ़सरोंको अवश्य ही होगा, जिसने २० अप्रैलको लिखा है कि १० अप्रैलकी सन्ध्याको कोई चिन्ताकी वात शेष नहीं रह गई थी। लाहौरका यह हाल था, अमृतसरके वारेमें सरकारी विज्ञप्तियोंमें और "सिविल मिलिटरी गज़ट" में प्रकाशित हो चुका था कि १० अप्रैलकी सन्ध्याको साढ़े पाँच वजेके वाद वहाँ पूरी शान्ति थी। इसलिये मेरा निवेदन है कि जिस तारपर मा० होम मेम्वरने विश्वास किया, वह फ़ौजी क़ानून जारी करनेकी न्याय्यताको सिद्ध करनेके लिये पर्य्याप्त नहीं है। उन्होंने लाहौर, अमृतसर तथा पञ्जावके अन्य भागोंमें फ़ौजी क़ानून जारी करनेकी आवश्यकता प्रमाणित

करनेके सम्बन्धमें भी कुछ नहीं वतलाया है। इसके विपरीत हमारे पास जाँचके बाद मिले हुए ऐसे प्रमाण हैं कि फ़ौजी क़ानून जारी करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं। उपद्रवोंको दवानेके लिये फ़ौजी सहायता लेना एक वात है और फ़ौजी कानून जारी करना विल्कुल दूसरी बात है। निस्सन्देह लाहौर, अमृतसर और पञ्जाबके अन्य स्थानोंमें उपद्रव हुए। सिविल अफ़सरोंने अपनेको उनको दवानेमें असमर्थ देखकर फ़ौजी सहायता लेकर उचित ही किया। अन्य वहुतसे स्थानोंमें फ़ौजी क़ानून जारी किए विना भी ऐसा किया जा चुका है और जब आवश्यकता हो उस समय ऐसा ही किया जाना चाहिए। यही वात मा० लौ मेम्वरने इस क़ानूनकी व्याख्या करते हुए कही थी, अर्थात् जब सिविल अफ़सर अपनेको उपद्रव दवानेमें असमर्थ समझें तो उनका फ़ौजी सहायता लेना ठीक है और जहाँ इन दोनों उपायोंसे शान्ति न स्थापित हो, वहाँ फ़ौजी अधिकारियोंके हाथमें शासन-भार समर्पण करना उचित है। प्रकाशित-घटनाओंसे यह दिखाई देता है कि फ़ौजी सहायता ली गई परन्तु उसकी सफलतापर भी फ़ौजी क़ानून जारी किया गया अर्थात् लाहौर, अमृतसर और अन्य स्थानोंमें फ़ौजी सहायतासे शान्ति स्थापित हो गई थी, इसलिये दूसरे उपायोंकी अर्थात् जनताको फ़ौजी अफ़सरोंकी इच्छापर छोड़कर शहरको उनके हवाले करनेकी आवश्यकता नहीं थी।

श्रीमन्! विलके विरोधकी दलीलोंके समर्थनमें मैंने जितनी वातें पेश की हैं उनमेंसे दो एक ही का खण्डन और एक दो ही का समाधान किया गया है। यद्यपि पीड़ित लोगों और उनके नातेदारोंके अभियोगोंका समाधान करनेकी आंशिक चेष्टा की गई है तथापि वहुतोंका उत्तर नहीं दिया गया है। जैसा कि मैंने पहले ही दिन कहा था, मेरे द्वारा उपस्थित की गई उन घटनाओंके तत्त्वोंको वतलानेका, जिनका ज्ञान सरकारको जनताकी अपेक्षा अधिक हो सकता है, अवसर सरकारने खो दिया। चूँकि सरकारने कौन्सिलमें इन तत्त्वोंको प्रकट करना अस्वीकार कर दिया है, इसलिये मुझे अधिकार है कि मैं लोगोंके उन अभियोगोंको, जिनके आधारपर मैंने प्रश्न किए थे, ठीक समझूँ। कौन्सिलको स्मरण होगा कि मैंने यह दावा नहीं किया था कि मुझे फ़ौजी क़ानूनकी दुर्घटनाओंका व्यक्तिगत ज्ञान है। मैंने अपनी और अपने मित्रोंकी जाँचसे इकट्ठे किए हुए प्रमाणोंके वलपर ही ये अभियोग पेश किए थे। मैंने इसलिये उनको पेश किया कि वे ऐसे प्रतिष्ठित रईसों-द्वारा कहे गए थे, जिनकी सच्चाईमें मेरा पूरा विश्वास है। यदि कोई अभियोग असत्य हो तो उस ग़लतीको सुधारनेमें मुझसे अधिक प्रसन्न कोई न होगा। यदि मेरे द्वारा पेश किए गए वयानोंकी भूलोंका खण्डन न किया गया तो मुझसे अधिक दुःख किसीको न होगा। इसलिये मैं इन वयानोंपर ऐसी नुक्ताचीनी करनेका, जिससे उनपर प्रकाश पड़े, स्वागत करता हूँ और उनको, जो इसका ठीक हाल वतलाएँ, धन्यवाद दूँगा। परन्तु यहाँ क्या हुआ है? मुझे नुक्ताचीनीके रूपमें किए गए उन वयानोंकी, जो मेरी वातोंके उत्तर रूपमें किए गए हैं, परीक्षा करने दीजिए। मैं पहले मा० श्री हेली, श्री टौम्सन, जनरल हेवलाक, ज० हडसन और मा० सर जार्ज लाउण्डसूके व्याख्यानोंकी परीक्षा करता हूँ। श्रीमन्! सरकारकी ओरसे दिए हुए आश्चर्य्यजनक व्याख्यानमें मि० हेलीने हमसे यह विश्वास करनेको कहा है कि लाहौर, अमृतसर आदि स्थानोंमें अवस्था ऐसी भयानक थी कि फ़ौजी क़ानूनकी सहायता लिए विना सरकारके लिये दूसरा उपाय नहीं था। उन्होंने कहा है कि रौलेट् ऐक्टके आन्दोलनने स्थितिको ख़तरनाक वना दिया था और सत्याग्रहका आन्दोलन पञ्जाबमें फैल गया था। परन्तु श्रीमन्! रौलेट् ऐक्टका आन्दोलन लाहौर और अमृतसर नगरोंतक ही परिमित न था। मुझसे भी मान० मि० हेलीको भले प्रकार मालूम है कि रौलेट् ऐक्टका आन्दोलन समग्र पञ्जाबमें हो रहा था और सत्याग्रह आन्दोलन भी पञ्जाबमें फैल

गया था और ६ अप्रैलको पञ्जाब भरमेँ सत्याग्रह-दिवस मनाया गया। उन्हेँ यह भी मालूम है कि पञ्जावके अन्य बहुसंख्यक ज़िलोँमेँसे किसी ज़िलेमेँ रौलेट्-ऐक्ट-विरोधी और सत्याग्रह-आन्दोलनसे दङ्गा-फ़साद या ग़दरका आन्दोलन उत्पन्न नहीँ हुआ। उनको मालूम है कि इन स्थानोँमेँ कोई उपद्रव नहीँ हुआ। उदाहरणार्थ जालन्धर डिवीज़न और उसके अन्य ज़िलोँको लीजिए। उन स्थानोँमेँ उपद्रव न होनेका कारण यह है कि वहाँके अधिकारियोँने क्रोधसे नहीँ किन्तु सहानुभूतिसे आन्दोलनमेँ हस्तक्षेप किया। उन्होँने बुद्धिमानीके साथ लोगोँको अपनी इच्छाके अनुसार रौलेट् ऐक्टपर सम्मति प्रकट करने और सत्याग्रह-दिवस मनानेका अवसर दिया था। यहाँ शिमलेमेँ, कमिश्नर मि० टौलिण्टनने सत्याग्रह मनानेके सम्बन्धमेँ लोगोँके साथ सहानुभूति प्रकट की थी, जिससे दूसरे ही दिन सब कार्य्य आरम्भ हो गया। मैँ पञ्जावके और बहुतसे अफ़सरोँके नाम बता सकता हूँ जिन्होँने ऐसा ही बर्त्ताव किया है, परन्तु मैँ ऐसा करनेकी आवश्यकता नहीँ समझता। मि० हेली पञ्जाव-सरकारके सेक्रेटरी होनेके कारण अवश्य ही यह जानते होँगे कि पञ्जाबके बहुतसे जिलोँमेँ, जहाँ रौलेट् ऐक्ट और सत्याग्रह-आन्दोलन अन्य स्थानोँके समान ही ज़ोरोँपर था, कहीँ उपद्रव नहीँ हुआ। इसलिये उपद्रवकी उत्पत्तिका कारण उस समयकी पञ्जाब-सरकारकी वह उत्तेजक कार्रवाई ही है, जिसके द्वारा डा० सत्यपाल और डा० किचलूके समान सार्वजनिक नेता निर्वासित किए गए। सारे झगड़ेकी जड़ यही है।

मेरे लिये यहाँ घटनाओँके परिणामोँको दुहरानेकी आवश्यकता नहीँ। मेरा निवेदन यह है कि इस समय विचारके लिये कौन्सिलके समक्ष जो प्रश्न उपस्थित है, उसके सम्बन्धमेँ सरकारको यह दिखाना उचित है कि फ़ौजी क़ानून जारी करनेकी स्पष्ट आवश्यकता थी। इसपर भी केवल आवश्यकता दिखाना ही पर्य्याप्त न होगा। दलीलके लिये हम यह मान लेते हैँ कि किसी अवसरपर कुछ स्थानोँमेँ फ़ौजी क़ानून जारी करना आवश्यक हो गया था; इसपर भी सरकारको यह दिखाना चाहिए कि १५ अप्रैलकी आधी रातको इसे जारी करना आवश्यक था। उसे यह भी दिखाना है कि पञ्जावके अन्य भागोँमेँ इसको प्रचलित करना और जबतक यह जारी रहा, तबतक उसका जारी रखना भी आवश्यक था। ये बातेँ श्री हेलीने नहीँ बताई हैँ! मैँ श्री हेलीकी अन्य बातोँका ज़िक्र इसलिये नहीँ करना चाहता, क्योँकि मैँ अपने भाषणको थोड़ेमेँ समाप्त करना चाहता हूँ। जब कि श्री हेलीने यह दिखलाया है कि पञ्जावमेँ वह समय अत्यन्त उद्वेगजनक था और पञ्जाव-सरकारको सख़्ती करनी पड़ी, उस समय उन्होँने यह नहीँ बतलाया कि स्थिति ऐसी थी कि कोई सहानुभूति रखनेवाला विचारशील लाट फ़ौजी क़ानूनकी शरण लिए बिना और राजभक्त लोगोँपर किए गए अत्याचारोँके सिवा इसका प्रबन्ध नहीँ कर सकता था। इसके सम्बन्धमेँ मैँ अहमदाबादकी घटनाकी ओर ध्यान दिलाता हूँ। किसी सरकारी सदस्यने सम्भवतः इसलिये इसका उल्लेख नहीँ किया है कि इससे मेरे कथनका समर्थन होता। अहमदाबादमेँ भी उपद्रव हुए, परन्तु दो दिनमेँ वे इसलिये शान्त हो गए कि बम्बई-सरकारने लोगोँको समझानेके लिये श्री गान्धीको वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी। ऐसे ही मार्गका अवलम्बन लाहौर और अमृतसरमेँ भी किया जा सकता था और यदि फ़ौजी क़ानून जारी करना अनिवार्य्य ही हो जाता तो चार-छः दिन या हफ़्ते भरके बीचमेँ वह उठ जाना चाहिए था। प्रतिष्ठित लोगोँका अपमान और निरादर करनेके लिये और उसीको अधिक दिनतक जारी रखनेके निमित्त, जैसा कि किया गया है, इसकी निश्चय ही आवश्यकता नहीँ थी।

अब मैँ मा० श्री टौम्सन की बातोँका ज़िक्र करता हूँ। फ़ौजी क़ानून जारी होनेके समय आप सर माइकेल ओडायरकी सरकारके प्रधान मन्त्री

थे। मैं समझता हूँ कि वे अनुभव करते हैं कि उनकी परीक्षा है, इसलिये उन्होंने अपने व्याख्यानमें जो अनावश्यक और व्यक्तिगत भावोंका समावेश किया है, उसके लिये मैं उन्हें क्षमा करता हूँ। श्रीमन्! जब हम उनकी वक्तृताको शान्तिके साथ जाँचते हैं तो उससे क्या अर्थ निकलता है? मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यदि कौन्सिलमें या वाहर कही हुई मेरी कोई वात ग़लत वताई जाय तो मुझे कोई दुःख न होगा। इसलिये मैं फिर कहता हूँ कि यदि मि० टौम्सन मेरे द्वारा कही गई किसी घटनाका सच्चा विवरण देते, तो उससे कितना भी दुःख होनेपर मैं उनको धन्यवाद ही देता।

श्री टौम्सन कहते हैं कि मैंने कहा था कि वादशाही मस्जिदकी सभामें उपस्थित सी० आई० डी० इन्सपेक्टर अली गौहरकी वातोंसे लोगोंमें असन्तोष फैला। परन्तु उनके पास इस मामलेके जो काग़ज़ात हैं, उनसे यह वात प्रमाणित नहीं होती। श्री टौम्सन और कौन्सिलका ध्यान मैं उस वयानकी ओर आकृष्ट करता हूँ, जो खुफ़िया पुलीसके इन्सपेक्टर अली गौहरने स्वयं फ़ौजी अदालतके सामने मुक़दमा नम्वर एक सन् १९१९ ई० में दिया था। उसने कहा था:—

“हम मस्जिदमें सादी पोशाकमें थे। वहाँ कई हज़ार मनुष्य व्याख्यान देनेवालोंकी वाट जोह रहे थे। अब्दुल हईने कहा कि उसने मुझे पहचान लिया कि मैं खुफ़िया पुलीसका आदमी हूँ, क्योंकि मेरे मुहकमेने उसे तीन महीनेकी क़ैद कराई थी और तीन वर्षका मुचलका लिया था। जव मैंने कहा कि मैं खुफ़िया पुलीसका आदमी नहीं हूँ तो उसने सभा-मञ्चपर पहुँचकर लोगोंसे कहा कि खुफ़िया पुलीसवाले उनकी सभाओंमें शामिल होते हैं, आदि।”

यह आदमी खुफ़िया पुलीसका था और जव उसने इनकार किया तव अब्दुल हईने मञ्चपर जाकर लोगोंसे उपर्युक्त वातें कहीं। ऐसी दशामें श्री टौम्सन निश्चय ही अनुभव करते होंगे कि मेरी कही हुई यह वात कि उसकी वातोंसे लोग असन्तुष्ट हुए, विलकुल ग़लत नहीं है। अव मैं श्री टौम्सनकी दूसरी वातका, जो अमृतसरमें हथकड़ियाँ पहनानेके सम्वन्धमें है, उल्लेख करता हूँ। उन्होंने कौन्सिलसे यह विश्वास करनेको कहा है कि वहाँ किसीको हथकड़ी नहीं पहिनाई गई। हिन्दुस्तानियोंकी कठिनाइयोंका उल्लेख करते हुए उन्होंने क़िलेमें भेजी गई योरोपियन स्त्रियों और वच्चोंके कष्टोंका हवाल दिया है।

श्रीमन्! मैं इस विषयमें एक वैरिस्टरके निम्नलिखित वयानको कौन्सिलके सामने पेश करता हूँ:—“२१ अप्रैल को सवेरे मैं शेख़ मोहम्मद अमीन वकील तथा उनके पुत्र और भाईके साथ पहरेदारोंसे सुरक्षित एक वन्द गाड़ीमें रामवाग़ ले जाया गया और वहाँसे हम लोगोंको क़िलेमें जानेकी आज्ञा हुई। हम चारों, एक हथकड़ीमें दो-दो वाँधे जाकर, एक ऐसी कोठरीमें डाल दिए गए, जिसके कोनेमें भुने हुए चने और एक डोल पानी रक्खा था। तीसरे पहर काश्मीरी मज़दूरोंके साथ हम लोग क़तार वाँधकर हथकड़ीमें वँधे हुए क़िलेके भीतर मैदानमें ले जाए गए। वहाँपर हम गोलाकारमें घुमाए गए। योरोपियन स्त्रियाँ और पुरुष तमाशा देख रहे थे।” मैं समझता हूँ कि योरोपियन स्त्रियों और लड़कोंको क़िलेमें ऐसी ही कठिनाइयाँ सहनी पड़ी होंगी?

अव श्रीमन्! मैं दूसरी वातको छेड़ता हूँ। मैंने वैंत मारनेकी कई घटनाओंका ज़िक्र किया है, जिनमेंसे श्री टौम्सनने एक घटनाको लेकर उसके सम्वन्धमें कहा है—“वाह! वे तो स्कूली लड़के थे, हेड मास्टरने कुछ लड़कोंको वैंत लगाकर नियन्त्रण क़ायम रखनेके लिये फ़ौजी मदद माँगी थी।” उन्होंने इसपर ध्यान नहीं दिया कि इतनेसे सैनिकोंद्वारा विद्यार्थियोंको वैंत मारा जाना न्याययुक्त सिद्ध नहीं हो सकता। उनको मेरे वयानके उत्तरमें मा० होम मेम्वरद्वारा वताई गई अन्य घटनाओंके विषयमें एक शब्द भी कहनेको न मिला! इसके वाद श्री टौम्सनने श्री मनोहर लालके मामलेका उल्लेख किया है। श्रीमन्! श्री मनोहर लालके

वारेमें मैंने कहा था कि उनकी धर्मपत्नी और वच्चे घरसे निकालकर अपने नौकरोंके घरोंमें रहनेपर वाध्य किए गए थे। उनको सम्भवतः एक सप्ताहके वाद वँगलेकी तलाशी होनेतक उनमें रहना पड़ा था। मैंने रहनेकी अवधि इसलिये नहीं वताई कि वह मुझे ठीक मालूम नहीं थी। मि० टौम्सनने इस वातपर वहुत नाराज़ होकर कहा है कि जहाँतक उन्हें मालूम है, श्री मनोहर लालकी पत्नी और वच्चोंको दूसरे दिन वँगलेमें जानेकी आज्ञा दे दी गई थी। श्रीमन्! मैंने श्री मनोहर लाल और उनसे परिचित लोगोंसे पूछकर असली वातोंका पता लगाया है। श्री मनोहर लालके घरमें १८ अप्रैलको ताला लगाया गया था। उनकी पत्नी, जो वीमार थीं, तत्काल वाहर निकाली गईं! वे १८ को सारा दिन, १९ को दिन भर और २० को सन्ध्यातक, जवतक तलाशी समाप्त न हुई, नौकरोंके घरोंमें रहनेपर मजवूर की गईं! उनके लेटनेके लिये कोई विस्तरतक न था, क्योंकि उनको घरसे कोई वस्तु निकालने नहीं दी गई! उनके मित्रोंने उनके लिये विस्तर और खाना भेजा और इस प्रकार वीमारीकी अवस्थामें तीन दिन उन्होंने नौकरोंकी कोठियोंमें विताए! श्रीमन्! यदि मेरा यह कथन, कि उनको एक सप्ताहके वाद घरमें जानेकी आज्ञा मिली, ग़लत था तो पञ्जाब-सरकारके प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे मि० टौम्सनको ठीक समय वता देना, न कि इसको वड़ी भारी भूलका राग अलापना, चाहिए था।

श्रीमन्! मैं मि० टौम्सनकी कुछ वातोंकी ओर ध्यान दिलाए विना श्री मनोहर लालके मामलेको समाप्त न करूँगा। आपने फ़रमाया है कि श्री मनोहर लाल "ट्रिब्यून" के ट्रस्टी थे, इसलिये उन्हें उसपर ध्यान रखना चाहिए था और उनका ऐसा न करना उनके विरुद्ध किए गए कार्य्यकी न्याय्यता सिद्ध करनेके लिये पर्य्याप्त है! मुझे इसका आश्चर्य्य नहीं कि मि० टौम्सनने ऐसा विचार प्रकट किया, क्योंकि "पायोनियर" में २० अप्रैलको प्रकाशित चिट्ठीमें यह लिखा हुआ था :—'ट्रिब्यूनके ट्रस्टी मनोहर लालका मामला यह प्रकट करता है कि पश्चिमी रीतिसे शिक्षित मनुष्यसे कोई निराश कैसे हो सकता है। उन्हें इङ्गलैण्ड जानेके लिये वृत्ति मिली थी और उन्होंने वहाँके विश्वविद्यालयसे अर्थ-शास्त्रमें सुख्याति प्राप्त की। इङ्गलैण्डसे लौटनेपर वे अपने सुनामको कायम न रख सके और अपने अर्थ-शास्त्रके विद्वान होनेका दम भरते हुए भी अपनी वुद्धिसे पूरा लाभ न उठा सके।' श्रीमन्! शोकका विषय है कि 'पायोनियर' के संवाददाताके साथ मि० टौम्सन भी केवल "ट्रिब्यून" का ट्रस्टी होना, इस विख्यात विद्वानके लिये—जो मि० टौम्सनसे कम विद्वान नहीं—ऐसे अपमान, निरादर और कष्टका पर्य्याप्त कारण समझते हैं, जो उनको और उनकी पत्नीको सहने पड़े!

गुजरानवालाके प्रतिष्ठित लोगोंपर ज़ुल्म

अब मैं गुजरानवालाके प्रतिष्ठित पुरुषोंके साथ किए गए व्यवहारका उल्लेख करता हूँ। मि० टौम्सनने अभी जो पढ़ा है, उसकी वातोंको मैंने कर्नल ओब्रायनका वयान ख़याल किया। श्रीमन्! जहाँतक मैं समझ सका हूँ, उन्होंने इस वातका खण्डन किया है कि जान-वूझकर एक हिन्दू और एक मुसलमान हथकड़ीमें वाँधे गए थे। वे कहते हैं कि ग़लतीसे ऐसा हो गया। परन्तु मैं इसको सच नहीं मानता। इस विषयमें "पायोनियर" का अवतरण और उसी पत्रमें प्रकाशित २५ अप्रैलके इसी विषयके पत्रसे मैं कुछ वातें नीचे देता हूँ। उसमें कहा गया है :—"गुजरानवालाकी वग़ावतकी समाप्ति नाटकके खेलके समान हो गई। कर्नल ओब्रायन जव मिर्ज़ा सुलतान अहमदको कार्य्यभार देकर लाहौर गए थे, उस समय उन्हें उपद्रवका समाचार मिला। उन्होंने तत्क्षण अपने पहिले ज़िलेको लौटकर उपद्रवको दवाते ही ग्यारह नेताओंको, जिनमें रुपया कमानेमें चतुर मङ्गलसेन भी था, गिरफ़्तार किया। उसके वाद ही उन्होंने नं० २—६ रायल ससेक्स सेनाके एक दलकी निगरानीमें सारे शहरमें उनका जलूस निकाला।

सवसे आगे दो म्युनिसिपल कमिश्नर (एक

हिन्दू और एक मुसलमान) थे, आज्ञा पाकर ये चिल्लाते हुए कहते जाते थे कि अत्याचारके कार्य्य न करो"। पायोनियरका विशाल-हृदय लेखक कहता है कि—"हिन्दू-मुसलमानोंकी एकताका यह दृश्य वैसा ही प्रभावोत्पादक होगा जैसा कि मुन्शीरामके दिल्लीकी जुम्मा मस्जिदके व्याख्यानके समय हिन्दू-मुसलमानोंकी एकताका था।" मैं कौन्सिलपर यह विचार करनेका भार छोड़ता हूँ कि उन लोगोंके, जिनके प्रतिनिधि मि० टौम्सन हैं, इस घटनाके सम्बन्धमें क्या भाव थे। इसलिये मैं कौन्सिलसे निवेदन करता हूँ कि वह मि० टौम्सनकी इस बातको स्वीकार न करे कि हिन्दू-मुसलमानोंको एक साथ बाँधकर ऐसी बेइज़्ज़तीसे घुमानेकी बातें सिर्फ़ ग़लतीसे हुईं।

श्रीमन्! इसके आगे मि० टौम्सनने मेरे द्वारा कही गई फ़ौजी अदालतोंकी पद्धतिका ज़िक्र किया है। मैंने कहा था कि कई मुक़दमोंमें गवाहोंके बयानतक नहीं लिखे गए। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं था कि सारे मुक़दमोंमें ऐसा ही किया गया। मि० टौम्सन कहते हैं कि उनके पास गवाहीके बयानोंसे भरे हुए बहुतसे सफ़े मौजूद हैं। हो सकते हैं क्योंकि मैंने यह कभी नहीं कहा है कि किसी मुक़दमेमें टिप्पणी नहीं ली गई। मैंने यह कहा था कि यह आक्षेप किया गया है कि बहुतसे मुक़दमोंमें गवाहोंके बयान नहीं लिखे गए। मैंने ऐसे दो फ़ैसलोंकी वाज़ाव्ता ली हुई नकलोंको भी पेश किया है, जिनमेंसे एकमें अपराध तकका नाम नहीं है! इस मुक़दमेंका फ़ैसला मि० होपल द्वारा २९ मईको किया गया था। मि० टौम्सनके पास, जान पड़ता है कि इसके सम्बन्धमें कहनेके लिये भी एक शब्द नहीं।

श्रीमन्! उन्हींके द्वारा कही गई दूसरी दुर्घटना रामनगरकी है, जिसमें कहा गया है कि सम्राट्की मूर्त्ति जलाई गई थी। मि० टौम्सनने इसका खण्डन किया है परन्तु वे मेरे आशयको नहीं समझ सके, इसलिये उन्होंने उसका मनमाना अर्थ लगाया। मेरी शिकायत थी कि इस मामलेमें रामनगरके अत्यन्त प्रतिष्ठित हिन्दू नागरिकोंपर सम्राट्की प्रतिमा जलानेका अभियोग लगाया गया था। इनकी स्थिति, प्रतिष्ठा और धनको देखते हुए यह विश्वास करना असम्भव है कि वे ऐसे मूर्खतापूर्ण और निन्द्य कार्य्य करनेके दोषी हो सकते हैं। उन लोगोंकी शिकायत थी कि उनकी इच्छाके अनुसार उनके मामलेकी खुली जाँच नहीं की गई।

उन्होंने कहा था कि यदि मामलेकी अच्छी जाँच होती और यदि उनको ऊपरकी अदालतमें अपील करनेका मौक़ा मिलता तो सच्ची बातें प्रकट होकर उनकी निर्दोषिता सिद्ध हो जाती। उन्होंने कहा था कि यह बेजड़की झूठी गप्प उड़ाई गई थी और वे नियमबद्ध न्याय पानेके अधिकारी हैं। इनके विचारके लिये फ़ौजी अदालतकी आवश्यकता नहीं थी। मेरा आक्षेप यह था कि उनके मामलेको फ़ौजी अदालतके विचाराधीन कर उनको अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनेका अवसर नहीं दिया गया, इसलिये उनके साथ अन्याय किया गया है।

श्रीमन्! ल्यालपुरके भूसेके मामलेके सम्बन्धमें भी कुछ कहना मेरा कर्त्तव्य है। वहाँ साठ हज़ार रुपयेका भूसा किसी बदमाशने जला डाला। यदि यह बात ठीक है तो यह भयानक दुष्टता कही जानी चाहिए। परन्तु क्या यह ऐसी समझी गई? डिप्टी कमिश्नरने पूरी जाँच करके सिद्ध कर दिया कि यह आकस्मिक घटना थी और यह उनका कार्य्य नहीं था, जिन्होंने दङ्गोंमें भाग लिया था। यह जाँच सरकारके इस प्रश्नसे हुई थी कि क्षति-पूर्त्तिमें कितनी रक़म देनी चाहिए। उन्होंने कहा था कि जिनपर सन्देह किया जाता है, उनसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

जल्यानवाला बाग़का हत्या-काण्ड

अब मैं जल्यानवाला बाग़में मरे हुए लोगोंकी तादादके प्रश्नका ज़िक्र करता हूँ। मि० टौम्सनने कौन्सिलको ताक़ीद दी है कि मृत्यु-संख्याके सम्बन्धमें मेरे पास भेजे गए इस बयानको कि पाँच सौ तीस

आदमी मरे और एक सौ बानबे घायल हुए, वह सत्य न समझे। उन्होंने कहा है कि सरकारने मृत्यु-संख्याका पता लगानेमें कोई बात उठा न रक्खी। उनके शब्द ये हैं:—"अमृतसर और आसपासके गाँवोंके निवासियोंसे एक घोषणा-पत्रद्वारा मरे हुए मनुष्योंके नाम आदिका पता देनेको कहा गया था। स्थानीय अधिकारियोंको सूचना दी गई थी कि वे पता देनेके लिये लोगोंको उत्साहित करें। इस बारेमें कोई बात उठा न रक्खी गई। जाँचका फल यह निकला कि दो सौ एक्यानबे पुरुष मरे, इसलिये किसी अन्य मनुष्यकी बतलाई हुई संख्याको विचारपूर्वक देखना चाहिए।"

मान० श्री टौम्सन:—श्रीमन्! मेरा शब्द 'सन्देह' था।

मा० मालवीयजी:—उन्होंने 'अत्यन्त सन्देह' शब्दका व्यवहार किया था, बहुत अच्छा, परन्तु वास्तविक तत्त्व क्या है? मेरे हाथमें वह पत्र है जो अमृतसरमें कुछ समयसे सहायता देनेके काममें लगे हुए सेवा-समितिके अवैतनिक मन्त्री श्री वी० एन० तिवारीने प्रकाशित किया है। उन्होंने लिखा है कि मृत्यु-संख्याका जहाँतक हम लोगोंको पता लगा है, वह पाँचसौ तीस है। इनमें से साठ लाशोंका यह पता नहीं चला कि ये कौन हैं। इनकी लाशें परोपकारी सज्जनों द्वारा जलाई गईं।" श्रीमन्! सेवासमितिके प्रतिनिधि वहाँ लोगोंको सहायता देनेको गए थे, और यह जाननेके लिये मरे हुए और ज़ख़्मी लोगोंके किन परिवारोंको सहायता देनी चाहिए, उन्होंने पता लगानेके लिये चारों ओर अपने आदमी भेजकर ऐसे लोगोंका पता लगाया। मन्त्रीजीने लिखा है:—"यहाँ पहुँचनेके दिनसे मैं जल्यानवाला बाग़में हताहत लोगोंकी संख्या जाननेके लिये कठिन परिश्रम कर रहा हूँ। हमारे स्वयं-सेवक अमृतसरमें घर-घर घूमकर हताहतोंके नाम पूछते थे। मैंने गुरुदासपुर, लाहौर, स्यालकोट आदि ज़िलोंके गावोंमें इसलिये स्वयं-सेवक भेजे कि यदि मरे हुए लोगोंके परिवारोंको सहायता देना आवश्यक हो तो उन्हें सहायता दी जाय? हमने गुरुमुखी और उर्दू पत्रोंमें विज्ञापन देकर दफ़्तरमें हताहतोंका ब्यौरा भेजनेकी प्रार्थना भी लोगोंसे की है।"

श्रीमन्! इस प्रकारसे मरे हुए लोगों की संख्या प्राप्त हुई है। यह काल्पनिक संख्या नहीं है। यह अमृतसरके अफ़सरोंकी समान सावधानी ही से प्राप्त की गई है। अमृतसरके अफ़सर इसलिये धन्यवादके पात्र हैं, क्योंकि उन्होंने यह कहीं नहीं कहा है कि उनको मृत्यु-संख्याके बारेमें अन्तिम सूचना मिली है। उन्होंने कहा है कि उस रिपोर्टको भेजनेके समयतक उन्हें दो सौ इक्यानबेका पता लगा है और सम्भवतः कौन्सिलमें पेश किए गए ब्यौरेमें भी यही है। इसलिये कौन्सिलमें श्री टौम्सनको यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वह हमारी संख्याको बड़े सन्देहकी दृष्टिसे देखें। सावधानीसे विश्वास कीजिए, परन्तु आपको केवल इस आधारपर, कि सरकारी रिपोर्टकी संख्या दो सौ इक्यानबे है, उससे अधिक संख्यापर विश्वास करनेसे इनकार न करना चाहिए। मैं मरे हुए पुरुषोंकी संख्यामें एक भी अधिक संख्या जोड़ना नहीं चाहता और न ऐसा कर ही सकता हूँ। सिर्फ़ संख्याका पता लगना चाहिए। आइए! हम सब मिलकर सत्यको पढ़नेके लिये सम्मिलित हों और सत्यके पक्षमें खड़े हों।

अन्तमें मैं उक्त बाग़के कूएँमें पड़ी हुई लाशका उल्लेख करता हूँ। इसके बारेमें श्री टौम्सन आपेसे बाहर हो गए थे। मेरे बयानका ज़िक्र करते हुए आपने इसकी सत्यतापर सन्देह प्रकट कर कहा है कि कौन्सिल और देशवासियोंके सामने मेरे द्वारा पेश किए गए अभियोगोंको उसीकी कसौटीपर जाँचना चाहिए। इसलिये विवश होकर श्री टौम्सनके लाभ और कौन्सिलकी विज्ञप्तिके लिये विस्तारसे इस अनिष्ट घटनाका वर्णन मुझे करना पड़ता है। श्रीमन्! मैं अपने प्रतिष्ठित मित्रों—पण्डित मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द और अन्य कई सज्जनोंके साथ उस जल्यानवाला बाग़को देखने

गया, जिसमें मेरे इतने भाईयोंकी हत्या हुई थी। वहाँ जाकर हम लोगोंने एक कूएँमें झाँककर देखा। मेरे एक मित्रने उसमें कुछ देखा, जो लाश प्रतीत होती थी। उसपर एक पत्थर फेंका गया, जिससे वह उलट गई। हम लोगोंने उसे देखा, इतनी दुर्गन्धि फैली कि हमें पीछे हटना पड़ा। जव हम घर पहुँचे तो मुझे और मेरे एक मित्रके ध्यानमें आया कि वस मोहल्लेके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे इसकी सूचना डिप्टी कमिश्नरको देनी चाहिए। म्युनिसिपल वोर्डको भेजे हुए पत्रका कोई राजनीतिक आशय न था और न सरकारके विरुद्ध कोई बात दिखानेकी इच्छा ही थी। इसपर भी यह समझना कि हम सरकारको वदनाम करनेके लिये ऐसी दलीलें इकट्ठा करनेको उद्यत हैं, दुष्ट धारणा है। श्रीमन्! जव हमें मालूम हुआ कि कूएँमें लाश है, तो हमने निकटवर्त्ती अधिवासियोंके स्वास्थ्यके विचारसे अधिकारियोंका ध्यान आकृष्ट करना उचित समझा। इसलिये म्युनिसिपल वोर्डके चेयरमैनको मैंने यह पत्र लिखा :—

"मैं आपका ध्यान इस घटनाकी ओर दिलाना चाहता हूँ कि जल्यानवाला वाग़के एक वड़े कूएँमें, एक या अधिक लाशें है। ये वहुत सड़ गई हैं। मैंने कुछ मित्रोंके साथ कल जाकर वहाँ देखा है, जिसमेंसे वड़ी दुर्गन्धि उड़ रही थी। कूएँके आस-पास लोगोंसे परिपूर्ण घर हैं और यदि वह कुआँ शीघ्र साफ़ और शुद्ध न किया जाय तो आस-पासके लोगोंके स्वास्थ्यको वड़ा नुक़सान पहुँचेगा।" यह पत्र ३० जूनको लिखा गया था और ४ जुलाईको म्युनिसिपल वोर्डके चेयरमैनका यह उत्तर मिला :—

"आपके ३० जूनके पत्रके उत्तरमें निवेदन है कि कूएँका पानी पुलीस और दस प्रतिष्ठित गवाहोंकी उपस्थितिमें निकलवाया गया। कोई लाश नहीं निकली, कुछ कपड़े और एक मिट्टीका वर्त्तन मिला। कूएँका पानी वहुत दिनसे नहीं निकाला गया था, इसलिये दुर्गन्धि आ रही थी"।

श्रीमन्! मैं बाहर गया था, इसलिये इस पत्रका उत्तर अगस्त मासतक न दे सका। अगस्तमें मैंने और पण्डित मोतीलालजीने अमृतसरके डिप्टी-कमिश्नरको एक पत्र भेजा। पण्डित मोतीलालजीने अपने पत्रमें लिखा थाः—"मुझे यह कहनेमें कोई सङ्कोच नहीं कि घटनाकी यह रिपोर्ट विलकुल ग़लत और झूठी है। मान० पण्डित मदनमोहन मालवीय और मैंने कई प्रतिष्ठित सज्जनोंके साथ निस्सन्देह और स्पष्ट रूपसे अपनी आँखोंसे कूएँमें मनुष्यकी लाश देखी और पुलीसकी कोई कार्रवाई इसको नहीं वदल सकती। वह यह भी सिद्ध करनेका प्रयत्न कर सकते हैं कि १३ अप्रैलके तीसरे पहर वाग़में कोई हत्या नहीं हुई। यह जाँच करनेका मेरा काम नहीं कि किस हथखड़ेसे सड़ी हुई लाशके स्थानमें नेशनल वैङ्ककी लूटकी चीज़ें कूएँमें आगईं। इस पत्रसे आपको कष्ट देनेका केवल यही कारण है कि आपने पुलीसके रिश्वत लेनेके मामलेमें लोगोंपर विश्वास करनेकी इच्छा प्रकट की थी, जिसको भारतका हरएक नेता मूल्यवान समझता है। यह घटना सिद्ध करती है कि छोटे कर्मचारी जनताकी असली वातोंपर प्रकाशमें लानेकी सत् चेष्टासे क्या लाभ उठाते हैं और वड़े अफ़सर मा० मालवीयजी जैसे प्रतिष्ठित पुरुषोंके कथनके मुक़ावलेमें अपने मातहतोंकी ऐसी रिपोर्टोंपर किस तरह विश्वास करनेको उद्यत रहते हैं? इससे सरकारी अफ़सरों और ग़ैर-सरकारी मनुष्योंकी उस सहकारिताकी सम्भावनापर भी प्रकाश पड़ता है, जिसके वारेमें वहुत वातें वनाई जाती हैं।" इसमें मैंने यह जोड़ दिया थाः—"पण्डित मोतीलाल नेहरूने आपको यह वताया है कि मैंने और उन्होंने अन्य प्रतिष्ठित पुरुषोंके साथ वाग़में क्या देखा। यह वात कि कूएँसे कुछ कपड़ों और एक मिट्टीके वर्त्तनके सिवा कुछ नहीं निकला तथा पुलीस और दस योग्य गवाहोंकी उपस्थितिमें गोताख़ोरोंने कूएँको कुछ दिन पीछे विलकुल साफ़ कर दिया—सरासर ग़लत मालूम

होती है। यह निर्विवाद है कि जब हम २६ जूनको वहाँ गए, तो हमने कूएँमें कम-से-कम एक लाश अपनी आँखों देखी। कितने ही दिनोंतक चाहे पानी न निकाला जाय तो भी ऐसी बदबू, जैसी वहाँ आ रही थी, पैदा नहीं हो सकती। मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि हमें घ्राण-शक्तिका इतना ज्ञान है कि सड़ी लाश और सड़े पानीकी दुर्गन्धिका भेद हम समझ सकें।"

श्रीमन्! अमृतसरके डिप्टी-कमिश्नरने इस पत्रकी यह रसीद भेजी थी :—"मैं २० अगस्तके आपके पत्रके लिये धन्यवाद देता हूँ। इस घटनाका सच्चा तत्त्व चाहे जो कुछ हो, यदि अमृतसर आनेपर आप मुझसे मिलें तो मैं आपकी दिलजमई कर सकूँगा कि मेरे पूर्वके डिप्टी-कमिश्नरके पास आपके बयानको ग़लत समझनेके जैसे कारण थे वैसे ही आपकी बातको सत्य समझनेके भी।" यह पत्र है, जो एक सज्जनने दूसरेको लिखा है। श्रीमन्! मैं समझता हूँ कि बातें स्पष्ट हो गईं हैं और मेरे लिये अधिक व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीं। क्या कोई बता सकता है कि दस योग्य गवाहोंको बुलाने और रिपोर्ट देनेके पहले कूएँसे लाश निकाल लेना असम्भव है? इसका निर्णय मैं विचारवानों ही पर छोड़ता हूँ।

श्रीमन्! अब मैं श्री टौम्सनको छोड़ता हूँ। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि वे इस कौन्सिलके नये (जूनियर) मेम्बर हैं और मैं पुराना (सीनियर) शायद बहुत पुराना सदस्य हूँ। इस कौन्सिलकी प्राचीन रीति (कीर्त्ति) है कि जो इसमें आवे उसके साथ सज्जनताका बर्त्ताव किया जाय। मैं आशा करता हूँ कि श्री टौम्सन हमें इस कीर्त्तिको छोड़नेपर बाध्य न करेंगे। मुझे आशा है कि मुझसे घटनाके तत्त्वोंको जानकर वे एक सज्जनके सदृश बर्त्ताव करेंगे और अपने अनुचित शब्दोंको, जिनके द्वारा उन्होंने इस कौन्सिलकी प्रतिष्ठा भङ्ग की है, वापस लेंगे। अब मैं जल्यानवाला बाग़के हत्या-काण्ड-सम्बन्धी सर हेवेलाक हडसनकी बातोंपर ध्यान देता हूँ।

श्रीमन्! मुझे इन घटनाओंका ज़िक्र करते हुए अत्यन्त दुःख होता है। मैंने अपने इतिहासके अध्ययनमें इन घटनाओंसे अधिक दुःखदायी घटनाओंका वर्णन कहीं नहीं पढ़ा है। जनरल साहबने उनका कारण बतानेकी चेष्टा की है। उन्होंने असली बातोंकी जाँच न कर केवल उनको दिए गए समाचारोंसे ही कारण बतानेकी चेष्टा की है। आप प्रतिष्ठित सैनिक हैं। आपने उन रिपोर्टोंके आधारपर, जो घटनाओंको जाननेवालोंद्वारा उनके पास भेजी गईं, ये बातें कही हैं। परन्तु उस दिन जल्यानवाला बाग़में उपस्थित लोगोंने जो बातें मुझसे कही हैं, उनको देखते हुए मुझे शोकसे कहना पड़ता है कि उनसे कही गई कई बातें ग़लत हैं। श्रीमन्! जनरल साहबने उस अफ़सरकी उस समयकी मानसिक अवस्थाका वर्णन किया है, जो सिविल अफ़सरोंके साथ काम करनेको भेजा गया था। उन्होंने कहा है :—"जब सैनिक अफ़सर अपने स्थानपर पहुँचता है तो उसका पहला काम लोगोंके जान-मालकी रक्षाके लिये उपयुक्त रूपसे सेनाको नियुक्त करना होता है। उसका दूसरा काम लोगोंको इससे सावधान करना होता है कि यदि उपद्रव शान्त करनेके लिये गोली चलानी पड़ी तो क्या फल होगा। अमृतसरके कमाण्डिङ्ग अफ़सरने ऐसा ही किया था। ११ और १२ ता० को उसने सेनाका सङ्गठन किया और १२ ता० को जनताके मनपर रोब जमानेके लिये नगरमें उसके एक दलको घुमाया।" इसके बाद आप फ़र्माते हैं कि—"१२ ता० की सन्ध्याको घोषणा-पत्र निकाला गया और १३ ता० को सबेरे शहरकी प्रधान सड़कोंपर सेनाको घुमाकर यह ढिँढोरा पीटा गया कि यदि मौक़ा पड़े तो गोली चलाई जायगी।" लोगोंसे यह सुननेके लिये एकत्र होनेको भी कहा गया था। आगे आपने कहा है :—'जब सेना शहर ही में थी, उस समय लगभग बारह बजे दोपहरको कमाण्डिङ्ग अफ़सरको ख़बर मिली कि घोषणाके होते हुए भी बाग़ी लोगोंकी एक बड़ी सभा सन्ध्याको साढ़े चार बजे

जल्यानवाला बाग़में होनेवाली है।" श्रीमन्! बेशक सभा हुई, परन्तु क्या जो आदमी इसमें शामिल हुए थे, बाग़ी थे? उनको बाग़ी बनाना सत्यका गला घोंटना है। मैं यह नहीं कहता कि जनरलने यह अपनी तरफ़से कहा। उन्होंने वही कहा है, जो उनको सूचित किया गया। परन्तु मेरा निवेदन यह है कि यह कहना बिल्कुल झूठ है कि बाग़में एकत्रित निहत्थे, निरुपद्रवी, कम उम्रके बच्चे, बूढ़े और अन्य लोग बाग़ी थे। उन्होंने कोई ऐसा भाव नहीं प्रकट किया जिससे उन्हें बाग़ी कहना ठीक दिखाई दे। ख़ैर, कमाण्डिङ्ग अफ़सरको बारह बजे सभा होनेकी ख़बर मिली। उसने क्या किया! जनरल हडसन कहते हैं:—"चूँकि इस स्थानपरकी २९ और ३० मार्चवाली तथा २ और ६ अप्रैलकी सभाओंमें आन्दोलनकारियोंके नेताओंने व्याख्यान दिए थे और सरकारके विरुद्ध द्वेष उत्पन्न करनेवाले व्याख्यान दिए गए थे, इसलिये कमाण्डिङ्ग अफ़सरको यह स्पष्ट मालूम हो गया कि उसके हुक्म तोड़े जायँगे।" क्यों ऐसी बेसमझीकी बात उनको साफ़ मालूम हो गई? इसलिये कि कई सभाएँ उस स्थानमें हुई थीं और कई व्याख्यान भी हुए थे और चूँकि यह सब शान्तिके साथ बिना उपद्रव और अत्याचारके हुआ! क्या इससे कमाण्डिङ्ग अफ़सरको यह नतीजा न निकालना चाहिए था कि अब होनेवाली सभा भी पहली सभाओंके समान ही शान्तिके साथ भङ्ग हो जायगी? ऐसी कौनसी बात हुई, जिसने उन्हें यह सुझाया कि उनकी आज्ञाका भङ्ग किया जायगा? यदि वह इस नतीजेपर पहुँचे थे तो क्या यह उनका कर्त्तव्य न था कि वह लोगोंको सावधान कर देते कि यदि लोग सभासे न चले जायँ तो वे गोलीके शिकार बनाए जायँगे। ऐसी कोई सूचना नहीं दी गई। श्रीमन्! मैं निवेदन करता हूँ कि यह कर्त्तव्यका अत्यन्त पापमय और दोषमय उल्लङ्घन है। जनरल क्या कहते हैं?

अमृतसरके कमाण्डिङ्ग अफ़सरको १३ अप्रैलकी दोपहरको यह निर्णय करना आवश्यक था कि यदि उसकी आज्ञाके विपरीत सभा हुई तो उसको क्या करना चाहिए? मेरी रायमें सभाका हाल मिलते ही पहिली बात जो उसे करनी चाहिए थी, यह थी कि वह ढिँढोरा पिटा देता कि सभाकी मनाही की गई है और यदि इसके बाद भी लोग जमा होंगे तो वे बल-प्रयोगसे अर्थात् गोली चलाकर तितर-बितर कर दिए जायँगे। कहा जाता है कि अमृतसरके कुछ भागोंमें घोषणा की गई थी। अमृतसरमें रहनेवाले लोग कहते हैं कि घोषणा सारे शहरमें नहीं, किसी-किसी हिस्सेमें हुई और दूसरे मोहल्लोंके लोगोंको इसका पतातक न लगा, नहीं तो वे अपनी जान जोखोंमें डालनेके लिये क्यों जाते?

श्रीमन्! जनरलकी कही हुई दूसरी बात भी ऐसी ही असन्तोषजनक है। आप कहते हैं:—"१३ अप्रैलकी दोपहरको अफ़सर कमाण्डिङ्गको यह सोचना पड़ा कि यदि उसका हुक्म न माना जाय और सभा हो तो उसको क्या करना चाहिए? अपने सिपाहियोंकी हिफाज़तके ख़यालसे उसको उनकी संख्याकी कमीका ध्यान आया। अवस्थाकी गुरुता देख वह अपनी छोटी सेना (पचास बन्दूक़ची, चालीस खुकड़ीवाले सिपाही और दो वख़्तरदार मोटरों) को लेकर वह सीधे जल्यानवाला बाग़में गए। रास्ता तङ्ग होनेके कारण उन्होंने मोटरोंको पीछे छोड़ दिया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कई हज़ार मनुष्योंकी फ़ौजके सामने, जिसको एक आदमी व्याख्यान सुना रहा था—अपने नब्बे सिपाहियोंके दस्तेको पाया।"

श्रीमन्! पचास बन्दूक़ची और चालीस खुकड़ीवाले सिपाहियोंकी यह फ़ौज क्या ऐसी ही निर्बल थी, जैसा कि जनरल हमसे विश्वास करनेको कह रहे हैं। क्या इसके पास गोली-बारूद कम थी? मुझसे एक उच्च अफ़सरने कहा है कि वहाँ सत्रह सौ गोलियाँ चलाई गईं और एक दूसरा बयान है कि अट्ठाइस सौ गोलियाँ थीं। क्या यह फ़ौज ऐसी निर्बल थी कि चन्द हज़ार निहत्थोंका सामना नहीं कर सकती थी? क्या यह कहना न्याययुक्त है कि इस फ़ौजका मुक़ाबला

कई हज़ार आदमियोंकी एक ज़बर्दस्त फ़ौजने किया? यह बिलकुल ग़लत है। जनरल साहब फर्माते हैं:—

“ख़तरेको समझकर अफ़सरका फ़र्ज़ था कि वह इस ग़ैर-क़ानूनी जमावको तितर-बितर करे। बहुत अच्छा, यह मुझे मञ्जूर है। परन्तु यह फ़र्ज़ तो लोगोंको यह कहनेसे भी पूरा हो सकता था कि यदि वे हट न जायँ तो गोली चलाई जायगी।” श्रीमन्! उस दिन मैंने प्रथम जौर्जके समय पास किए गए बलवेके क़ानूनका हवाला दिया था। उसमें कहा गया है कि घोषणाके बाद अफ़सरको गोली चलानेके पहिले एक घण्टेकी मोहलत देनी चाहिए। एक घण्टेकी बात जाने दीजिए, परन्तु यह तो निश्चय कर लेना चाहिए था कि घोषणा सबने सुनी है या नहीं और अवस्था क्या है? इसपर भी वे वहाँ खड़े रहते तो गोली चलानी चाहिए थी, वह भी उनकी हत्या करनेके विचारसे नहीं परन्तु उनको यह दिखानेके लिये कि उनके सिरपर क्या बला मण्डला रही है और जिसमें वे भाग जाते? परन्तु यहाँ क्या हुआ है? जनरल साहब कहते हैं:—“अपनी छोटी सेनाके ख़तरेको और १० तारीख़के प्रबन्धकी कमीको सोचकर अफ़सरने गोली चलानेकी आज्ञा दे दी, जमाव टूट गया और फ़ौज हटा ली गई!” श्रीमन्! इन दो पदोंके बीचमें शोकसे भरा हुआ अध्याय कैसा छिपाया गया है। लोग प्राण बचानेके लिये बाग़के कोनोंकी ओर दौड़े, परन्तु भागनेवालोंपर भी गोलियाँ चलाई गईं। मैंने वह स्थान देखा है, लोगोंने बतलाया कि लाशें एक दूसरेपर ढेर होकर पड़ी थीं। इस अग्निवर्षासे बचनेके लिये लोग दीवारोंपर चढ़े, परन्तु उनपर भी गोलियाँ चलाई गईं! मैंने वह तङ्ग गली भी देखी है, जो पाँच फुटसे अधिक चौड़ी न होगी। लोग जान बचानेके लिये इसमें घुसे, परन्तु वहाँ भी गोलियोंसे उनका पिण्ड न छूटा! मैंने वहाँ एक गड्ढा देखा, जो हताहत मनुष्योंके ख़ूनसे भर गया था। क्या जमावको भङ्ग करनेके लिये भागनेवालोंपर भी गोली चलाना आवश्यक था? जब कमाण्डिङ्ग अफ़सरने देखा कि लोग भाग रहे हैं तो क्या गोलियोंकी झड़ीको जारी रखना ज़रूरी था? क्या कम-से-कम उस वक़्त वह उसे बन्द नहीं कर सकता था? फ़ौजी अधिकारी और जनरल हड्सन जानते हैं कि कितने ही आदमी गोलियोंसे बचनेके लिये ज़मीनपर लेट गए। इस तरह प्राण बचानेवालोंमेंसे एकने मुझसे कहा है कि जब वह इस प्रकार ज़मीनपर लेटा हुआ था, उस समयमें दो गोलियाँ उसके ऊपरसे निकल गईं और तीसरी गोली उसकी टाँगमें लगी, जिससे वह सदाके लिये असमर्थ हो गया है। क्या सरकारकी ओरसे बोलते हुए मि० हड्सनको इन घटनाओंका उल्लेख कर इनका कारण नहीं बताना चाहिए था? श्रीमन्! लोगोंको तितर-बितर करनेके नामसे जल्यानवाला बाग़में यह अत्यन्त अन्यायपूर्ण हत्याकाण्ड हुआ है। इस जमावको जनरल हड्सन सङ्घटित बग़ावत कहते हैं। मेरे ध्यानमें नहीं आता कि मैं इसके सम्बन्धमें क्या कहूँ। उन लोगोंके लिये, जिनको सम्राट्के विरुद्ध बग़ावत करनेका स्वप्नमें भी ध्यान न हुआ हो, बाग़ी शब्दका प्रयोग करना अत्यन्त दुःखप्रद है। मैंने कौन्सिलको बताया है कि एक आदमीकी गोदमें सात महीनेका बच्चा था। सभामें मारे गए लोगोंमें बारहसे अठारह वर्ष उम्रके बहुतसे लड़के थे। मैंने कुछ ज़ख़मी युवकोंसे मिलकर बातचीत भी की। वे बग़ावत करनेके ख़यालसे वहाँ नहीं गए थे और न उनके मनमें कोई ऐसा भाव ही था। यदि उनका वैसा विचार होता तो कम-से-कम वे लाठी तो ले जाते? वे निहत्थे, निर्दोष और असहाय थे, फिर भी उनपर गोली चलाई गई! मेरा हृदय दुःखसे इतना भर गया है कि मैं इस शोकमय घटनाका समग्र वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ।

अब मैं उस घटनाका ज़िक्र करता हूँ जिसके द्वारा लोगोंको पेट और घुटनोंके बल रेंगनेपर बाध्य किया गया। मेरे हृदयपर उस समय बड़ी चोट लगी,

जब इस कथनपर कि लोगोंने अपनी इच्छासे ऐसा किया था, कौन्सिलमें हँसनेकी आवाज़ सुनाई दी! मैं जानना चाहता हूँ कि क्या कौन्सिलके कोई सदस्य इस पद्धतिको कौन्सिल-गृहमें करना चाहेंगे? मैं इसके बारेमें अधिक कुछ न कहूँगा परन्तु अमृतसर की दुःखभरी कहानी समाप्त करनेसे पूर्व मैं बिजलीकी रोशनी और बम्बेका पानी बन्द करनेका ज़िक्र करूँगा। कहा जाता है कि जल-कलके कारख़ानेपर लोगों द्वारा हमला किए जानेका डर था, परन्तु यह नहीं कहा गया कि कोई हमला हुआ भी था। यह भी कहा जाता है कि शहरमें अफ़वाह थी कि पानीमें विष मिला दिया गया है और इसलिये पानी बन्द कर देना अच्छा समझा गया! अंग्रेज़ी बस्तीका पानी बन्द नहीं किया गया था। यदि ऐसी कोई अफ़वाह थी तो उसे स्वयं ही शान्त क्यों न होने दिया गया? क्या अफ़वाह दबानेका भार लोगोंपर छोड़कर और पानी पीकर अपनी प्यास बुझानेके बाद आनन्दित होकर इस अफ़वाहको असत्य प्रमाणित करने देना अच्छा उपाय नहीं था? यह निहायत निर्बल और कमज़ोर दलील है, जो इससे पहले कभी दी गई हो। अच्छा, इसको जाने दीजिए, बिजलीकी रोशनीके सम्बन्धमें क्या कहा जा सकता है? क्या उसमें भी कोई ज़हर मिला दिया गया था? फिर वह क्यों बन्द की गई? मैंने इससे पहले इस कौन्सिलमें ऐसी निराधार और निर्बल दलीलें कभी नहीं सुनी थीं।

अब मैं गुजरानवालाकी दुर्घटनाओंका उल्लेख करता हूँ। मैं समझता हूँ कि मैंने यह स्पष्ट बतला दिया है कि व्यक्तिगत रूपसे जनरल हड्सनके प्रति मेरा कोई अभियोग नहीं है, क्योंकि उनको जैसे सङ्क्षिप्त समाचार दिए गए, उन्हींके अनुसार उन्होंने घटनाओंका उल्लेख किया है। परन्तु मेरे लिये यह बतलाना आवश्यक है कि गुजरानवालामें हवाई जहाज़ काममें लानेके सम्बन्धमें कोई मामला पेश नहीं किया गया है। उस समय 'सिविल मिलिटरी गज़ट' में लिखा गया था कि जब लाहौरसे हवाई जहाज़ पहुँचा, उस समय लोगोंका जमाव टूट रहा था। यदि हवाई जहाज़ोंके पहुँचनेके समय लोग तितर-बितर हो रहे थे तो उनको काममें लानेकी ज़रूरत क्या थी? बमगोलों और मशीनगनोंसे कितने ही मनुष्योंको हताहत करनेकी क्या आवश्यकता थी? रेलके गोदामसे, जिसमें आग लगाई गई थी, डेढ़ दो मीलके फ़ासिलेपर बमगोले फेंकनेकी क्या आवश्यकता थी? घरझक, भगवानपुर, धुल्ला आदि गावोंमें बम बरसानेकी क्या ज़रूरत थी? जनरल हड्सनने गुजरानवालाका जो चित्र खींचा है, उससे कोई समझने लगेगा कि वहाँ युद्धकी स्थिति उत्पन्न हो गई थी! इनके समर्थनमें हवाई जहाज़ोंसे निशाना चलानेकी कठिनाइयोंका उल्लेख किया गया है! क्या वहाँ हवाई जहाज़ोंपर गोले उगलनेवाली तोपें या मशीनें लगी थीं जिससे उन्हें इतनी ऊँचाईपर चढ़ना पड़ा कि उनकी दिशा-भूल हो गई अर्थात् वे निशानेको ठीक समझ न सके? मुझसे कहा गया है कि बम बहुत ऊँचाईसे नहीं गिराए गए थे, हद-से-हद सौ फुटकी ऊँचाईसे गिराए गए थे। क्या पचास, साठ या सौ फुटकी ऊँचाईसे गिराया गया बम अपने निशानेसे एक या डेढ़ मीलके फ़ासिलेपर जा सकता है? घरझक गाँव, जिसे मैं देख आया हूँ, लोगोंके जमावके स्थानसे एक मीलसे अधिक दूर है। वहाँके लोगोंने मुझसे कहा है कि बम गिराए गए खेतमें कुछ छोटे बच्चे खेल रहे थे। सौभाग्यसे उनमेंसे कोई ज़ख़्मी नहीं हुआ। मैंने गुजरानवालाका खालसा बोर्डिङ्ग हाउस भी देखा है। यह शहरसे एक मीलपर होगा। मैंने उस स्थानको देखा है, जहाँ बम गिरा था। खुशक़िस्मतीसे बोर्डिङ्ग हाउसके एक सौ साठ लड़के हवाई जहाज़ोंका तमाशा देखनेके लिये बाहर गए हुए थे, नहीं तो न जाने उनमेंसे कितनोंको जानसे हाथ धोना पड़ता। धुल्लामें एक स्त्री और एक बच्चा मरा। श्रीमन्! क्या यह सब गुजरानवालामें शान्ति स्थापित और रक्षा करनेके लिये ज़रूरी था? मैं तो कभी इसे स्वीकार

नहीं कर सकता। जनरल हड्सनने सिपाहियोंके कामोंके समर्थनमें जो बातें कही हैं, उनका उत्तर मैं आगे दूँगा। जनरल हड्सनकी अपेक्षा सैनिकोंके जीवनका मुझे कम ख़याल नहीं है परन्तु घटनाओंको उनके असली रूपमें देखना चाहिए। हमको देखना है कि फ़सादके समय नागरिकोंके प्रति सिपाहियों और मुल्की अफ़सरोंके कर्त्तव्य क्या होते हैं।

अब मैं मा० लौ मेम्बरकी वक्तृतापर ध्यान देता हूँ। उन्होंने बिलके विरोधकी हँसी उड़ाई है। उन्होंने मा० राजा रामपाल सिंहका उपहास कर कहा है कि उन्होंने कौन्सिलमें दी हुई अपनी वक्तृता दूसरेसे लिखाई थी! श्रीमन्! यह बात झूठी है और ऐसा कहना राजा साहबका अपमान करनेके बराबर है। मैं जानता हूँ कि राजा साहब अपनी वक्तृता स्वयं लिखनेके योग्य हैं और लिखते भी हैं। मैंने उन्हें तार दिया था कि आप इसका जवाब दें। उन्होंने लिखा है:—

"तार देरमें पहुँचा। मैं ठीक समयपर पहुँच नहीं सकता। श्री लाउण्डस्का इलज़ाम अनुचित और निर्मूल है। वक्तृता मैंने ही लिखी थी, मेरे ही विचार उसमें हैं! सरकार ग़लतीपर है।"

श्रीमन्! श्री सिनहापर भी कटाक्ष किया गया है। यदि श्री सिनहा लौ मेम्बरको पसन्द होने योग्य वक्तृता देते तो श्री गान्धी, श्री शास्त्री, श्री हार्नीमन, श्री बिसेण्ट आदिके व्याख्यानोंकी तरह उनका भी हवाला दिया जाता? किन्तु दुर्भाग्यसे मा० श्री सिनहाने ऐसी राय प्रकट की, जो मा० लौ मेम्बरको पसन्द न हुई। इसलिये उनपर भी अन्यायपूर्ण टिप्पणी की गई। यही हाल श्री चन्दाका भी है। मैं अपने बारेमें कुछ न कहूँगा, क्योंकि मैं सरकारी मेम्बरोंकी टिप्पणीको बड़ी शान्ति और गम्भीरताके भावसे देखता हूँ। मैं जानता हूँ कि सच बोलना और कुछ अवसरोंपर सच सुनाना बड़ा अरुचिकर होता है। परन्तु मैं सच बोलना पसन्द करता हूँ, शायद इससे कभी मेरी ग़लती होती होगी। मुझे इसके लिये शोक है, परन्तु मैं पूर्ण बलसे वही विचार प्रकट कर देता हूँ, जो मुझे ठीक दिखाई देता है और सरकारी सदस्योंकी टिप्पणी या घुड़कीकी परवाह न कर आगे भी ऐसा ही करता रहूँगा। मा० लौ मेम्बरने हमें दूर देशोंसे—अवधके एक क़िलेसे— आए हुए बताया है। आप कहते हैं कि एकने अवधके दुर्गसे, दूसरेने आसामसे, तीसरेने बिहारसे, चौथेने इलाहाबादसे आकर बिलका विरोध किया है, परन्तु पञ्जाबके एक सदस्यने भी नहीं कहा कि बिल पास न होना चाहिए। आपने पञ्जाबकी जनताको अपना प्रतिनिधि चुननेका अवसर न देकर उनके साथ अन्याय किया है। आप अपनी पसन्दगीसे उनके सदस्यको नामज़द करते हैं और फिर कहते हैं कि उनका कोई सदस्य बिलका विरोध नहीं करता! क्या यह मुनासिब है? मेरा निवेदन है कि कभी नहीं। शायद पञ्जाबसे एक प्रतिनिधि चुना गया है, परन्तु आपने पञ्जाबको कितने प्रतिनिधि चुननेका अधिकार दिया है? पञ्जाबके लोगोंको अपने विश्वस्त प्रतिनिधियोंको भेजनेका अधिकार दीजिए, फिर आप अन्य प्रान्तोंके सदस्योंके समान उनकी भी स्पष्ट राय सुन सकेंगे।

श्रीमन्! मा० लौ मेम्बरने श्री बिसेण्ट तथा श्री हार्नीमन (जिनके नामके साथ आपने श्रीयुत शब्द लगानेकी भी सज्जनता नहीं दिखाई!) और श्री शास्त्रीके वचनोंका हवाला दिया है। श्रीमन्! मुझे अत्यन्त दुःख है। मा० लौ मेम्बर श्री हार्नीमन-द्वारा उस समय प्रकट की गई रायका सहारा ढूँढ़ते हैं, जब पञ्जाबकी घटनाएँ ताज़ी थीं और भारत-सरकारकी सहायतासे-पञ्जाब सरकारने सच्ची घटनाओंको पञ्जाबसे बाहर आने नहीं दिया था और जब लोग घटनाओंसे चकित हो गए थे कि यह क्या हुआ। उस समय सच्ची घटनाओंकी जाँच करनेका समय और अवसर नहीं मिला था। श्री बिसेण्टकी भी ऐसी ही दशा थी। मुझे विश्वास है कि जैसी बातें अब मालूम हुई हैं, यदि वैसी उन्हें उस समय मालूम होतीं तो

वे वैसी राय कदापि न प्रकट करते। इस समयकी उनकी राय अवश्य ही भिन्न होगी।

श्रीमन्! मेरे मित्र लौ मेम्बरने हमेँ इलाहाबादसे पञ्जाबको गए हुए स्वयम्भू कमिश्नर बताया है। मैँ मान० लौ मेम्बरको बताना चाहता हूँ कि हम स्वयम्भू कमिश्नर नहीँ हैँ। दिल्लीकी गत कांग्रेसमेँ भारतके प्रत्येक भागसे आए हुए कोई चौव्वन सौ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। नियमानुसार कांग्रेस प्रतिवर्ष अपनी एक कार्य्यकारिणी कमेटी नियुक्त करती है। यह कमेटी प्रत्येक समाजके लोगोँकी प्रतिनिधि है। पञ्जाबकी घटनाओँपर विचार करनेके लिये इसकी एक बैठक हुई और इसने जाँचमेँ सरकारको सहायता देनेके लिये एक सब-कमेटी नियुक्त की। मैँ इसका सभापति नियुक्त किया गया; मेरे मित्र पण्डित मोतीलाल नेहरू और अन्य कांग्रेसवाले सज्जन इसके सदस्य नियुक्त हुए।

श्रीमन्! इस प्रकारसे नियुक्त होकर, अपने आपसे ही नहीँ बल्कि उस माननीय संस्थाद्वारा, जिससे कमीशन पाना गौरवका विषय है, हमने कुछ समय पञ्जाबमेँ व्यतीत किया। हमने घटनाओँके तत्त्वोँकी खोजकर उन स्थानोँको देखा, जहाँ ये शोकप्रद घटनाएँ हुईं। हमने अत्यन्त दुःखसे उन स्थानोँ और गिर्जाघरोँको भी देखा, जिनमेँ आग लगा दी गई थी। हमने अत्यन्त खेद और कष्टके साथ मारकाटके उस स्थानको अर्थात् जल्यानवाला बाग़को भी देखा और अन्य मृत्यु-संख्याओँकी दुःखभरी कहानियाँ सुनीँ। हम लोगोँने इन स्थानोँको देखने और जाँच करनेके पहले अपनी कोई राय प्रकट नहीँ की। श्रीमन्! मैँने अपनी और अपने साथियोँकी जाँच-पड़तालकी सूचना अपने प्रश्नोँके रूपमेँ सरकारके पास पेश कर उनके कारणोँको बतलानेकी प्रार्थना की थी। इस प्रकार मैँने घटनाओँकी सूचना सरकारको इसलिये दी कि यदि उनका हाल उसे मालूम न हो, तो वह उसे देखकर उनकी जाँच कराए। जब कि इस बिलको पास करनेकी चेष्टा हो रही है, उस समय मैँने अपना यह कर्त्तव्य समझा कि इस बिनापर कि जबतक अभियोगोँकी जाँच कमेटीद्वारा न हो तबतक यह बिल स्थगित रखनेकी प्रार्थना करूँ। मैँने स्पष्ट शब्दोँमेँ कहा है कि घटनाओँकी जाँच करना सरकारका कर्त्तव्य है। आपने जिस कमेटीको नियुक्त किया है, उसके द्वारा इनकी जाँच होने दीजिए और हम उनके तत्त्वोँको जान लेँ तब सरकार और कौन्सिल बैठकर यह सोचे कि कौनसे कार्य्योँके उत्तरदायित्त्वसे सरकारी नौकरोँको मोक्ष मिलना चाहिए। यही कारण है कि मैँ बिलका विरोध कर रहा हूँ। मैँने गत छः सप्ताहोँमेँ पञ्जाबके उन दोनोँ प्रकारके मनुष्योँसे भेँट की है जो हमारी तरह स्वतन्त्र हैँ और जो जेलोँमेँ पड़े सड़ रहे हैँ। मैँने इन घटनाओँके तत्त्वोँको ऐसे लोगोँसे, जिनको फाँसीका दण्ड दिया गया है और जो उद्विग्नतासे दिन बिता रहे हैँ कि न जाने उनके भाग्यमेँ क्या बदा है, मालूम किया है। मैँने इन घटनाओँको साधारण रीतिसे नहीँ किन्तु इसपर सरकारका ध्यान आकृष्ट करानेको अपना कर्त्तव्य समझकर सामने रक्खा है। यदि मैँ कांग्रेस-कमेटीकी ओरसे नियुक्त भी न होता तो भी पहले पञ्जाबमेँ पहुँचनेपर ईश्वरको धन्यवाद देता और मेरे भाइयोँके साथ किए गए अन्यायोँका पता लगाने और उन्हेँ प्रकाशमेँ लानेके कार्य्यसे अपनेको गौरवान्वित समझता, क्योँकि मेरे देशवासियोँके प्रति मेरा कुछ कर्त्तव्य अवश्य है। जब बेल्जियममेँ ज़ुल्म हुए, उस समय उनकी जाँच करनेके लिये उस कमीशनको किसने नियुक्त किया था, जिसके सभापति लौर्डब्राइस हुए थे? क्या बेल्जियन-सरकारने इसका सङ्गठन किया था? जहाँतक मुझे याद है, ऐसा नहीँ हुआ था; इसके विपरीत इङ्गलैण्डके प्रधान मन्त्रीने लौर्ड ब्राइस और अन्य लोगोँसे वहाँ जाकर अत्याचारोँकी जाँच करनेकी प्रार्थना की थी। यदि भारत-सरकारने अपना वह कार्य्य न किया, जो सम्मान और कर्त्तव्य-पालनके भावसे उसे करना चाहिए था, यदि पञ्जाब-सरकारने अपने उस कर्त्तव्यका पालन नहीँ किया,

जो सम्राट् और प्रजाके निमित्त घटनाओंके तत्त्वोंको जानने और उनका प्रतिकार करनेके लिये आवश्यक था यदि मैंने तथा पण्डित मोतीलाल नेहरू और अन्य मित्रोंने पञ्जाब जाकर उन घटनाओंकी जाँचमें, जिनकी जाँच मनुष्यताकी दृष्टिसे आवश्यक थी, स्वार्थ त्यागकर अपना समय विताया तो कोई पाप नहीं किया।

श्रीमन्! मैं अपने सब मित्रोंसे—सरकारी और ग़ैर-सरकारीसे—अपील करता हूँ कि वे शुद्ध हृदयसे इस मामलेपर विचार करें। व्याख्यानोंसे घटनाओंका चित्र नहीं खींचा जा सकता। आइए, हम सब मिलकर सच्ची घटनाओंका पता लगावें। मैंने इन दुःखप्रद घटनाओंपर कौन्सिलमें बहुत अच्छे व्याख्यान सुने हैं, मैंने इनपर लोगोंकी, जिनके विचारोंसे ये मिलती थीं, तालियाँ भी सुनी हैं। श्रीमन्! मुझे मिल्टनकी उस कविताका स्मरण होता है जो बेल्जियमके अत्याचारोंका वर्णन करते हुए एक लेखकने उद्धृत की थी। उसका आशय यह है:- "विधाताकी आँखें मेरे अपराधोंको इतने निकटसे देखती हैं और इस विचारसे बेचैन होकर वह मृदु वायुको केवल मीठी बातोंसे रिझाकर कहती हैं कि मेरे पापों (जीवन) के बाह्य भागको वे पवित्र बर्फ़से ढक दें और मेरी पाप-जनित घृणित निर्लज्जताको इस श्वेत और पवित्र परदेसे छिपा दे।"

श्रीमन्! मुझे डर है कि अभीतक मेरे मा० मित्र कुछ सरकारी सदस्य किए गए अन्यायोंकी गुरुताका अनुभव नहीं कर रहे हैं। मैं अपील करता हूँ कि वक्तृताओंसे इनको मत टालिए। घटनाओंको देखिए और यदि लोगोंकी बातें सच हों तो उनको स्वीकार कीजिए। जौर्ज हर्बर्ट आप लोगोंमें ऊँचे दर्जेके भक्त माने जाते हैं। उनके विषयमें कहा जाता है कि जैसे-जैसे वे अपने पापोंपर रोते गए, वैसे-ही-वैसे वे स्वर्गकी ओर बढ़ते गए। उन्होंने जिन विचारोंको प्रकट किया है, उनकी भेंट मैं—चिढ़ानेके विचारसे नहीं बल्कि पूरी नम्रता और सच्चे हृदयसे—करता हूँ। सरकारी अफ़सर और हम, स्पर्धा और जातीय पक्षपातके क्षुद्र भावोंको त्यागकर सत्यको ढूँढ़नेमें लग जायँ। न्यायके लिये सत्यको स्थापित होने दीजिए। जौर्ज हर्बर्ट कहते हैं:—"यदि सत्य तुम्हारे मित्रके पक्षमें है तो उससे मेल करो। जयमें भाग लो और वफ़ादारी धारण करो।"

यदि सत्य मेरे विरोधी मित्रोंके पक्षमें हो तो मैं उनके आगे गम्भीरता और पवित्रतासे अपना सिर झुकाऊँगा और उनको सावित करनेके निमित्त उनका कृतज्ञ होऊँगा। परन्तु यदि सत्य दूसरे पक्षमें है तो परमात्माके लिये, हमारे भाइयोंके लिये, सत्य और न्यायके लिये, बृटिश-शासनके सुनामके लिये इसको सिद्ध होने दीजिए और फिर कौन्सिलसे पूछिए कि कौनसे कार्य्योंके लिये अफ़सरोंको मोक्ष मिलना चाहिए।

श्रीमन्! प्रश्नके और एक विषयपर मैं ध्यान दिलाता हूँ। दुःखका विषय है कि सब बातोंको कहनेके लिये मुझमें शक्ति नहीं है। परन्तु कौन्सिल और सम्राट्के प्रति अपने कर्त्तव्यको स्मरण कर यदि मैं यह प्रार्थना किए विना—कि इस विलको पास करनेकी ग़लतीसे मैं सरकारको फिर एक बार रोकनेकी चेष्टा करूँ—अपना भाषण समाप्त नहीं कर सकता। सर जौर्ज लाउण्डस्की दलीलोंमें एक दलील यह भी है कि इण्डेम्निटी विल आवश्यक है। आपको भी अपनी प्रारम्भिक वक्तृतामें यह कहनेकी सलाह दी गई कि जाँच-कमेटीका निर्णय कुछ भी क्यों न हो, अफ़सरोंकी रक्षा करना आवश्यक है! श्रीमन्! ससम्मान मैं इस विचारसे सहमत नहीं हूँ। यह कहना ठीक नहीं कि कमेटीकी जाँचका परिणाम कुछ भी क्यों न हो, इण्डेम्निटी विल ज़रूर पास किया जाना चाहिए। लौर्ड एल्वर्स्टनने सन् १८१८ ई० में लौर्ड सभामें कहा था कि व्यवस्थापिका सभाको अफ़सरोंको मोक्ष देनेके पहले भले प्रकार निश्चय हो जाना चाहिए कि किए गए कार्य्य उचित और आवश्यक थे।"

श्रीमन्! मनुष्यके स्वत्त्व किसी विशेष राजाज्ञा-पत्र वा नियम-पत्रपर निर्भर नहीँ है। जैसा कि एलैग्ज़ैण्डर हैमिल्टनने कहा है, “मनुष्यके पवित्र स्वत्त्व पुराने पुर्ज़ोँ या दफ़्तरोँमेँ ढूँढ़े जाने चाहिए, क्योँकि स्वयं परमात्माने अपने हाथोँसे सूर्य्यकी किरणोँके रूपमेँ ही मनुष्य-स्वभावमेँ लिख दिए हैँ और ये किसी मानवी शक्तिसे नहीँ मिटाए जा सकते।” इनमेँ स्वतन्त्रता और जीवन-रक्षाका स्वत्त्व भी है। प्रत्येक व्यक्ति, फिर वह कैसा ही तुच्छ क्योँ न हो, अपनी सरकारसे इस अधिकारका दावा कर सकता है। सम्राट्की सरकारने प्रत्येक प्रजाको यह अधिकार देनेका वचन दिया है। श्रीमन्! अब यदि कोई मनुष्य ज़ख़्मी हो जाय या उसकी जान या कोई अङ्ग जाता रहे अथवा उसकी स्वतन्त्रता वा इज़्ज़त छीन ली जाय तो उसको या उसके सम्बन्धियोँको उसका न्याय करानेका अधिकार है। यदि आप चाहते हैँ कि ऐसा कोई पुरुष, जिसकी जान, अङ्ग, स्वतन्त्रता या इज़्ज़त जाती रही है, अपने ऊपर किए गए अन्यायका बदला न ले सके तो आप क़ानूनको ऐसी नीँवपर रखिए, जिससे उसको कुछ सन्तोष हो जाय। पार्लियामेण्ट कुछ कार्य्योँके लिये क्षमा कर सकती है। समाज और जनसाधारण, जिनकी पार्लियामेण्ट या कौन्सिल प्रतिनिधि है, उन घटनाओँके उपस्थित होनेकी अवस्थाओँकी जाँच करके यह कह सकती है कि यद्यपि कुछ अन्यायके काम हो गए हैँ तथापि स्थितिको और बहुसंख्यक लोगोँके कल्याणको देखते हुए इन खेदजनक अन्यायोँको भी क्षमा करना चाहिए। पीड़ित मनुष्य ऐसे निर्णयको स्वीकार कर अपने ऊपर अत्याचार और मारपीट करनेवालोँ और हानि पहुँचानेवालोँपर मुक़दमा चलानेके अपने अधिकारको छोड़ सकते हैँ। परन्तु यह सब उसी मनुष्यकी स्वीकृतिसे किया जा सकता है, जिससे इसका घना सम्बन्ध है यानी जिसको हानि पहुँची है। यहाँ आप हमको ऐसे क़ानूनपर सम्मति देनेको कह रहे हैँ, जिसके द्वारा आप उन कार्य्योँको, जिनकी जाँच अभी बाक़ी है, न्यायानुमोदित बनाना चाहते हैँ और उन कार्य्योँके उत्तरदायित्वसे—जिनकी न्यायानुकूलता, औचित्य और मनुष्यत्त्व अभी विचाराधीन हैँ—अफ़सरोँको मुक्त करना चाहते हैँ।

श्रीमन्! मेरा निवेदन है कि यह बिलकुल ग़लत पद्धति है। जैसा कि मैँने कहा है, इण्डेम्निटी बिलकी नीँव यह है कि फ़ौजी क़ानून जारी करना अनिवार्य्य और प्रजाके लिये हितकर था। आपने वह नीँव निकाल दी, इसपर भी आप बिल पास करना चाहते हैँ। श्रीमन्! ऐसा करना ठीक नहीँ है। मैँ डाइसी-द्वारा सङ्कलित “लौ औफ़ दी कौन्स्टिट्यूशन” पुस्तकमेँ उद्धृत सर जेम्स मैकिन्टोशकी सम्मति नीचे देता हूँ। आप कहते हैँ:—“इङ्गलैण्डका क़ानून एकमात्र इसी सिद्धान्तपर फ़ौजी क़ानूनका जारी करना सहन करता है कि वह आवश्यक था। इसको जारी रखनेकी न्यायानुकूलताके लिये भी इसी आवश्यकताकी ज़रूरत है और आवश्यकताके पूर्ण हो जानेपर यदि यह क्षणभर भी जारी रहे तो यह ग़ैर-क़ानूनी अत्याचारका उपयोग बन जायगा। जब बाहरके आक्रमण अथवा आत्मीय युद्धके कारण न्यायालयोँका कार्य्य और उनके निर्णयोँका कार्य्यरूपमेँ परिणत होना असम्भव हो जाय, तो उनके स्थानमेँ उन कार्य्योँके लिये कड़े उपायोँको अर्थात् समाजकी एकमात्र शक्ति सेनाको नियुक्त करना आवश्यक हो जाता है। जब हथियारोँकी झनझनाहटमेँ क़ानून बन्द हो जाते हैँ, उस समय सशस्त्र सैनिकोँका अधिपति उन जुर्मोँके लिये, जिनसे सेना या समाजकी सुरक्षितताको भय हो—दण्ड दे सकता है, परन्तु इसके सिवा दूसरी स्थितिमेँ नहीँ।”

श्रीमन्! फ़ौज़ी क़ानून १५ और १६ अप्रैलकी मध्य रात्रिके बीच जारी किया गया था। परन्तु यह कानून उस समयसे पहले किए गए कार्योँको उचित और न्याययुक्त सिद्ध करना चाहता है। इसके साथ यह उनकार्य्योँको भी, जो फ़ौजी क़ानून

जारी रहनेकी लम्बी अवधिमेँ किए गए, न्यायानुमोदित और उचित बनाना चाहता है। श्रीमन्! मेरा निवेदन है कि ऐसा बिल पास करने अथवा स्वीकार करनेके लिये कोई युक्तियुक्त कारण नहीँ है। मा० लौ मेम्बरने अपनी विस्तीर्ण और विद्वत्तापूर्ण वक्तृतामेँ कितनी ही छोटी-मोटी बातोँका वर्णन किया है, परन्तु मेरे द्वारा पेश की गई बड़ी दलीलोँका—जो बिलकी प्रस्तावनामेँ सरकारद्वारा परिवर्त्तन किए जानेके कारण और भी ज़बर्दस्त हो गई हैँ—कुछ भी उत्तर नहीँ दिया है। इसलिये मेरा निवेदन है कि सरकारद्वारा बिलपर आगे विचार होना न्याययुक्त नहीँ। मैँ यह भी कहना चाहता हूँ कि विद्वान लौ मेम्बरने कौन्सिलको बताया है कि फ़िट्ज़िराल्डको दी हुई सज़ा—जिसका मैँने हवाला दिया है—रद्द कर दी गई थी। सन् १८२० ई० के "स्टेट ट्रायल्स" (राजकीय मुक़दमे) पुस्तकके ८१९ वेँ पृष्ठ, धारा ८२० मेँ मैँने यह पद देखा है:—फ़िट्ज़िराल्डकी ओरसे एक प्रार्थनापत्र श्री राइटद्वारा उसके विरुद्ध प्राप्त निर्णयको रद्द करनेके लिये एक्सचेकरके विचारालयमेँ पेश किया गया था, जो ख़र्चसहित ख़ारिज कर दिया गया।"

मा० सर जौर्ज लाउण्डस्—"क्या मैँ कह सकता हूँ कि मैँने भी इसीको हवाला दिया था और मेरे विचारमेँ यही इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि सज़ा रद्द कर दी गई थी।"

मा० मालवीयजी—"यह प्रमाण है?"

मा० सर जौर्ज लाउण्डस्—"माननीय मेम्बर अंग्रेज़ी जानते हैँ। मैँ इस पदको पढ़ता हूँ, उसके अनुसार, 'जो' अपने पूर्वके अन्तिम कर्मके लिये आया है।

मा० मालवीयजी—मैँ फिर इस वाक्यको पढ़ता हूँ और इसका विचार अपने उन मा० मित्रके ऊपर छोड़ता हूँ, जो मुझसे अच्छी अंग्रेज़ी जानते हैँ—"फ़िट्ज़िराल्डकी ओरसे एक प्रार्थना-पत्र श्री राइटद्वारा उसके विरुद्ध प्राप्त निर्णयको रद्द करनेके लिये एक्सचेकरके विचारालयमेँ पेश किया गया था, जो ख़र्च-सहित ख़ारिज कर दिया गया।"

श्रीमन्! अब मैँ कौन्सिलका समय अधिक न लूँगा। मैँ समझता हूँ कि मैँने जो कुछ कहा है, वही यह दिखानेके लिये पर्य्याप्त है कि तबतक कौन्सिलको मा० लौ मेम्बरका प्रस्ताव स्वीकार न करना चाहिए जबतक यह सिद्ध न हो जाय कि खुल्लमखुल्ला बग़ावत हुई थी और फ़ौजी क़ानून जारी करना आवश्यक हो गया था। इस प्रश्नका निश्चय अभी जाँच-कमेटीद्वारा होनेको है, इसलिये यह क़ानून अभी असामयिक है।

श्रीमन्! हमारे विद्वान् लौ मेम्बर और मा० होम मेम्बर सरकारकी आज्ञाके अनुसार कार्य्य करनेवाले सैनिकोँ, पुलीसवालोँ और अन्य अफ़सरोँको उत्तरदायित्वसे बचानेके लिये बहुत आवश्यक बताते हैँ। वे कहते हैँ कि कम-से-कम भारत-सरकारकी भूलोँका उनको प्रायश्चित्त न मिलना चाहिए। मेरा निवेदन है कि यह दलील राज्य-नियमके प्रधान सिद्धान्तोँके बिलकुल विपरीत है। यह सुप्रतिष्ठित सिद्धान्त है कि ऊँचे अफ़सरका कोई हुक्म अपने मातहत अफ़सरोँको ग़ैर-क़ानूनी कार्य्यके उत्तरदायित्वसे नहीँ बचा सकता और न उसे बचाना ही चाहिए। यदि कोई अफ़सर अपने मातहतको ग़ैर-क़ानूनी कार्य्य करनेकी आज्ञा दे तो उस मातहतका यह कर्त्तव्य है कि वह उस आज्ञाको न माने। ग़ैर-क़ानूनी कार्य्य करनेकी आज्ञा राजा भी नहीँ दे सकता। अपने कथनकी पुष्टिमेँ मैँ डाइसीकी पुस्तकके पृष्ठ २८३ का हवाला देता हूँ। उसमेँ कहा गया है:—"क़ानूनका सिद्धान्त—जो अधिक प्राचीन नहीँ तो कम-से-कम चतुर्थ एडवर्डके समयसे चला आता है—यह है कि यदि कोई मनुष्य न्यायानुकूल वारेण्टके सिवा राजाकी आज्ञासे भी किसीको गिरफ़्तार करे तो उसको क्षमा नहीँ मिल सकती। इसके विपरीत उसके ऊपर ग़ैर-क़ानूनी क़ैद करनेका मुक़दमा चल सकता है। यह राजकीय अधिकारोँको ही सीमाबद्ध नहीँ करता, परन्तु राजाओँद्वारा किए गए

सब कार्य्योंके लिये व्यक्तिगत उत्तरदायित्वपर, जो सब क़ानूनकी जड़ है, लागू होता है।"

श्रीमन्! गवर्नर-जनरल राजासे अधिक अधिकारका दावा नहीं कर सकते और इसके सम्बन्धमें मैं कौन्सिलको उस मामलेकी याद दिलाता हूँ कि प्रथम चार्ल्सद्वारा स्ट्रैफ़ोर्डको दिया गया यह वचन कि—"पार्लियामेण्ट तुम्हारा एक बाल भी बाँका न कर सकेगी" उस निरङ्कुश कर्मचारीको पार्लियामेण्टके न्याययुक्त क्रोधसे बचानेमें समर्थ नहीं हुआ था। कौन्सिलने कभी किसीकी रक्षा करनेका वचन नहीं दिया है, इसलिये यह युक्ति कि कौन्सिलका कर्त्तव्य अपने अफ़सरोंकी रक्षा करना है, बिलकुल सारहीन है। यदि शासक-मण्डलने ऐसा वचन दिया हो तो हरएक अफ़सरको यह मालूम होना चाहिए कि उसकी शक्ति कितनी है। इन शोक-जनक दुर्घटनाओंका परिणाम कम-से-कम यह होगा कि सैनिक और अफ़सर, लोगोंके प्रति अपने कर्त्तव्यकी, शिक्षा प्राप्त कर लेंगे। यदि सरकारके किसी अफ़सरने मनुष्यत्व और अपने अधिकारसे बाहर काम किया होता तो उनको न्यायालयमें खड़े होकर अपने ऊपर लगाए गए अभियोगोंका उत्तर देना चाहिए। मा० लौ मेम्बर और मा० होम मेम्बरने विशेष रीतिसे सिविलियनोंके जान-मालकी रक्षा करनेके लिये बुलाए गए सैनिकोंका उल्लेख कर कहा है कि यदि उनकी रक्षा न की जायगी तो भविष्यमें वे काम करनेसे इनकार कर देंगे।

श्रीमन्! मैं नहीं समझता कि ऐसा बुरा परिणाम होगा। मैं समझता हूँ कि सिविल अफ़सरों और सैनिकोंके लिये इसका शिक्षा-प्रद परिणाम होगा। यह दलील बिलकुल निस्सार है। नागरिकोंकी तरह सैनिकोंका भी यह स्वत्त्व है कि वे शस्त्रधारीका सामना शस्त्रसे करें और जान-मालकी रक्षाके लिये उचित उपाय ग्रहण करें, परन्तु यदि सैनिक निहत्थे और अविरोधी मनुष्योंकी हत्या करें वा उनका अङ्गभङ्ग करें; जनता, स्त्रियों और बच्चोंको अङ्गहीन करें या मार डालें; यदि बाधा न देनेवाले लोग काट डाले जायँ तो चाहे सैनिकोंसे यह काम हो या किसी औरसे, यह हत्या समझी जायगी और ऐसे लोगोंपर देशके क़ानूनके अनुसार मुक़दमा चलना चाहिए।" मैंने मान० मित्र लौ मेम्बरको आर० बनाम वर्डेट ४ ब० और ३२३ इला० पृ० ३२७ के मुक़दमेके फ़ैसलेसे ऊपरका हवाला दिया है। यह फ़ैसला जस्टिस बेलीका है।

कहा जाता है कि सैनिकोंको अपने अफ़सरोंकी आज्ञाएँ कोर्ट मार्शलके भयसे माननी पड़ती हैं। इस बारेमें भी क़ानूनमें स्पष्ट उल्लेख हैं। सैनिकोंका कर्त्तव्य आज्ञापालन है, परन्तु ग़ैर-क़ानूनी आज्ञाओंका नहीं—ऐसी ग़ैर-क़ानूनी आज्ञाओंका, जैसी जल्यानवाला बाग़में गोली चलानेके लिये दी गईं। मैं फिर डाइसीका प्रमाण देता हूँ जिसमें स्पष्ट रूपसे यह विचार प्रकट किया गया है। पृष्ठ २९९ पर आप कहते हैं:—

"सैनिकका कर्त्तव्य अपने अफ़सरद्वारा दी गई वैध आज्ञाओंका पालन करना है। परन्तु सिविल अफ़सरकी अपेक्षा सैनिक यह कहकर कि मैंने युक्तियुक्त आज्ञा-पालनके कर्त्तव्यसे ऐसा किया—फिर वह आज्ञा प्रधान सेनापति ही की क्यों न हो—क़ानून भङ्ग करनेके उत्तरदायित्वसे बच नहीं सकता। इसलिये सैनिककी स्थिति वास्तविक रूपसे कठिन है। जैसा कि कहा गया है, यदि वह आज्ञा भङ्ग करे तो कोर्ट मार्शल (फ़ौजी अदालत) से उसे गोली मार दी जा सकती है और यदि वह आज्ञाका पालन करे तो जज और जूरीद्वारा वह फाँसीपर लटकाया जा सकता है। उसकी स्थिति और उसके कर्त्तव्य इस बातसे देखे जा सकते हैं कि ऐसे अवसरोंपर सैनिकोंको क्या करना चाहिए।"

अब मैं अधिक अवतरण न दूँगा, यद्यपि इसके आगेका वर्णन लौ मेम्बरद्वारा पेश किए गए प्रश्नपर प्रकाश डालनेके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सारे क़ानूनका सारांश डाइसीने अपनी मूल्यवान् पुस्तकके

पृष्ठ ३०२ पर इस प्रकार दिया है:—"इस कठिनतासे उत्पन्न सैनिककी विपन्न स्थिति सम्राट्के उस अधिकारसे बहुत कम हो जाती है कि वे अन्यायसे दिए गए दण्डको रद कर सकते हैं। परन्तु जब कि सैनिक ही उन आज्ञाओंके पालनसे—जिनको साधारण समझका आदमी भी न्याय-विरुद्ध नहीं समझता—दण्डित होनेके ख़तरेमें नहीं पड़ता, उसी समय वह अपने सैनिक चाल-चलनकी जाँच मुल्की अदालतमें होनेसे कभी नहीं बच सकता और वह सिर्फ़ इस दलीलपर कि उसने अपने बड़े अफ़सरकी आज्ञासे काम किया है—ऐसे कार्य्योंके लिये जिनको, साधारण समझ रखनेवाला मनुष्य भी अपराध समझता है—अपराधी होनेसे नहीं बच सकता।"

श्रीमन्! यह वर्णन हमारे मामलेके क़ानूनी स्वरूपपर अच्छा प्रकाश डालता है। मैं अब सिर्फ़ श्री जस्टिस स्टिफ़ेनके एक फ़ैसलेका—जो डाइसीकी पुस्तकके पृष्ठ ३०१ पर दिया गया है और जो मुझे बहुत मुनासिब मालूम होता है—उल्लेख करता हूँ:—"सैनिक उचित रूपसे यह समझ सकते हैं कि उनके अफ़सरके पास उपद्रवी झुण्डपर—यद्यपि उस समय वे उपद्रव वा अत्याचार करते हुए न दिखाई दें—गोली चलानेके लिये आज्ञा देनेका पूरा कारण है, परन्तु सैनिक कठिनतासे यह समझ सकते हैं कि जब कोई उपद्रव और अत्याचार नहीं हो रहा है और होनेका भय भी नहीं है, उस समय लोगोंसे परिपूर्ण सड़कपर गोली चलानेके लिये आज्ञा देनेके निमित्त अफ़सरके पास पूरे कारण हैं। यह सिद्धान्त कि सैनिकको हर हालतमें अपने अफ़सरकी आज्ञाका पालन करना चाहिए, सैनिक शिष्टाचारके लिये हानिकारक है, क्योंकि इससे कप्तानकी आज्ञासे कर्नलपर गोली चलाना अथवा अपनेसे उच्च अफ़सरकी आज्ञासे शत्रुसे जा मिलना ठीक सिद्ध होगा। मेरी समझमें यह कम त्रासजनक नहीं कि शान्तिके समयमें निरुपद्रवी नागरिकोंपर गोली चलाना या विद्रोहके समय स्त्रियों और बच्चोंकी हत्या करना इसलिये न्याययुक्त समझा जाय कि यह सब उच्च अफ़सरकी आज्ञासे किया गया है।"

इसलिये मैं विश्वासके साथ निवेदन करता हूँ कि मा० लौ मेम्बरद्वारा पेश किया गया विचार क़ानूनके अनुसार ठीक नहीं है, इस कारण तत्त्वों और क़ानूनकी दलीलपर मेरा यह निवेदन है कि यह बिल असामयिक है। श्रीमन्! इसलिये सरकार और देशको, भारत-मन्त्री और भारत-सरकारद्वारा सङ्गठित जाँच-कमेटीकी रिपोर्ट प्रकाशित होनेके समयतक धैर्य धारण करना चाहिए। जब उसका फल मालूम हो जाय उस समय यह विषय कौन्सिलके सामने भावी विचारके लिये पेश किया जाय। प्रत्येक मनुष्यको यह विश्वास रखना चाहिए कि सैनिकों और मुल्की अफ़सरोंने अपने कर्त्तव्य-पालनके लिये जो उपयुक्त काम किए हैं, उनका समर्थन हरएक समझदार मनुष्य करेगा। अन्तमें मैं फिर आपसे ज़ोरदार शब्दोंमें अनुरोध करता हूँ कि इस बिलपर अभी विचार न किया जाय और यह दिल्लीके आगामी अधिवेशनतक स्थगित रक्खा जाय।

(उत्तरार्द्ध समाप्त)

परिशिष्ट—जाँच कमीशनकी नियुक्ति तथा रौयल कमीशनकी आवश्यकता

श्रीमन्! मैँ कई बातोँके लिये आपका ऋणी हूँ और बहुतसे दयापूर्ण कार्य्योँके लिये धन्यवाद देना चाहता हूँ। परन्तु जबसे मुझे आपको जाननेका सौभाग्य मिला, तबसे उस अवसरके समान कृतज्ञ होनेका मुझे दूसरा मौक़ा नहीँ मिला है, जब आपने मेरे प्रस्तावके स्थानमेँ दूसरा प्रस्ताव रखनेकी आज्ञा देना अस्वीकार किया। श्रीमन्! भारत-सरकारद्वारा अपने सदरके लिये जो स्थान चुना जा सकता था, उसमेँ शिमला अत्यन्त ख़राब है। भारत-सरकारद्वारा यहाँसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य्योँके निर्णय हुआ करते हैँ परन्तु हम लाखोँ मनुष्योँकी आबादीके स्थानोँसे इतनी दूरपर है कि मेरे जैसे किसी मनुष्यके लिये तबतक, जबतक कि बहुत विलम्ब न हो जाय, यह जान सकना प्रायः असम्भवसा ही है कि देशमेँ जनताकी राय क्या है। मैँने अपने प्रस्तावके स्थानमेँ एक दूसरा प्रस्ताव, जिसको आपने बड़ी मेहरबानीसे नामञ्ज़ूर कर दिया, इसलिये पेश करना चाहा था कि शिमलेके इस निर्जन स्थानमेँ और वैसे समर्थनसे, जैसा कि मुझे यहाँ मिल सकता है, यह मैँने सोचा कि अपने प्रस्तावके बदलेमेँ दूसरा प्रस्ताव पेश करना आवश्यक है। इस समय देशके भीतरसे मेरे मित्रोँके जो पत्र आ रहे हैँ और समाचार-पत्रोँमेँ जो टिप्पणियाँ हुई हैँ उनसे दिखाई देता है कि यदि मैँने वैसा किया होता तो मेरे कार्य्यकी इसलिये निन्दा होती कि देशभरमेँ प्रस्तावित कमेटीके सङ्गठनपर असन्तोष प्रकट किया जा रहा है और लोगोँकी यह ज़बर्दस्त इच्छा है कि पञ्जाबके मामलोँकी जाँचके लिये

कमेटी नहीं, इम्पीरियल कमीशन

नियुक्त किया जाय। जब सर नारायण चन्दावरकर जैसी विद्वत्ता और तज्रुबेके सज्जन—जो किसी समय बम्बई और इन्दौरके श्रेष्ठ विचारालयोँमेँ प्रधान विचारपति थे और जिनके विचार नम्र दलके होनेकी प्रसिद्धि है—प्रस्तावित कमेटीके सङ्गठनपर असन्तोष प्रकट कर यह कह रहे हैँ कि रौयल कमीशन नियुक्त किया जाय, उस समय मेरी प्रार्थना यह है कि इस मामलेपर पुनर्विचार करनेका ज़बर्दस्त कारण है। सभी देशी समाचार-पत्र एक रायसे प्रस्तावित कमेटीके सङ्गठनपर असन्तोष प्रकट कर रहे हैँ। मैँ उनकी सम्मतियोँको सुनाकर कौन्सिलका समय इसलिये नष्ट नहीँ करना चाहता, क्योँकि मुझे बहुत कुछ कहना है। मैँ सिर्फ़ इस ओर आपका और आपकी सरकारका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ कि 'ट्रिब्यून', 'बङ्गाली', 'बौम्बे क्रौनिकल', 'हिन्दू', 'इण्डिपेण्डेण्ट', 'लीडर' तथा अन्य पत्रोँने इसके सम्बन्धमेँ क्या कहा है। इनमेँ प्रकाशित समाचारोँसे मैँने देखा कि कौन्सिलमेँ पेश किए गए मेरे प्रस्तावके बदलेमेँ दूसरा प्रस्ताव पेश करनेकी मेरी चेष्टा भ्रमपूर्ण थी। मैँ इसके लिये भी कृतज्ञ हूँ कि कल एक प्रश्नके उत्तरमेँ मा० होम मेम्बरने कहा है कि भारत-सरकार एक कमेटी नियुक्त करने जा रही है, जिससे मैँने यह सोचा कि अभीतक कमेटी नियुक्त नहीँ हुई है; इसलिये यह समय मेरे प्रस्तावपर पुनर्विचार होनेके निमित्त उपयुक्त है।

श्रीमन्! आगे कुछ कहनेके पहले मैँ यह कहना चाहता हूँ कि मेरे प्रस्तावके विषयपर शान्त भावसे विचार होना चाहिए और मुझे आशा है कि दायित्वके शुद्ध भावसे सब इसपर विचार करेँगे। इस विषयमेँ दलबन्दी या जातिगत विचारोँको स्थान न मिलना चाहिए, क्योँकि यह अत्यन्त पवित्र और बहुत गम्भीर विषय है। मैँ यह भी कह देना चाहता हूँ कि

अमृतसर-नेशनल-बैङ्कके श्री स्टुअर्ट और जो अन्य योरोपियन मारे गए हैं, उनकी मृत्युपर मुझे उतना ही दुःख हुआ है जितना कि किसीको न हुआ होगा। बम्बई, पूना, कलकत्ता आदिमें पञ्जाबकी शोकजनक घटनाओंपर मैंने अपने मित्रोंसे अत्यन्त दुःख प्रकट करते हुए कहा था कि श्री स्टुअर्ट जैसे लोकप्रिय मनुष्यकी मृत्यु किसी दुष्टके हाथों होना दुर्भाग्य है।

श्रीमन्! वहाँके उपद्रवोंमें जिन अन्य छः अँग्रेज़ोंकी जानें गई हैं उनके लिये भी मुझे अत्यन्त शोक है। यदि मैं योरोपियन और भारतीयमें, जहाँ जीवनका सम्बन्ध हो, कोई भेद समझूँ तो मुझे लज्जित होना चाहिए। ऐसा करनेसे मैं अपने धर्मके योग्य न होऊँगा। श्रीमती शेरउडके मामलेका उल्लेख करनेके समय मा० होम मेम्बर यह भूल गए कि भारतवासियोंमें भी बहुतसे लोगोंको उनसे किए गए बुरे बर्त्तावके लिये वैसा ही दुःख हुआ है, जैसा कि उनकी माता या बहनके साथ किए गए बर्त्तावके लिये होता। परन्तु इससे हम लोगोंमेंसे कोई मनुष्य उन कार्य्योंपर दुर्लक्ष्य नहीं कर सकता या उन्हें कम महत्त्व नहीं दे सकता, जिनके द्वारा हिन्दुस्तानियोंके साथ अन्याय किया गया है। मैं हरएक ऐङ्गलो-इण्डियन मित्र तथा ऐङ्गलो-इण्डियन भाई और बहनसे इनपर शुद्ध भावसे विचार करनेकी प्रार्थना करता हूँ। मुझे विश्वास है कि जब सच्ची बातें (तत्त्व) प्रकट हो जायँगी, उस समय एक भी ऐसा ऐङ्गलो-इण्डियन स्त्री-पुरुष भारतमें न होगा—बल्कि साम्राज्य भरमें न होगा जो भारतवासियोंपर किए गए भीषण अन्यायके लिये दुःखित न हो और जिसकी सहानुभूति मेरे उस प्रस्तावके उद्देशसे, जिसे मैंने उन घटनाओंकी निष्पक्ष जाँचके लिये सरकारके सामने पेश किया है, न होगी। श्रीमन्! मैं सतानेवाली उन घटनाओंका यहाँ लम्बा बयान देना नहीं चाहता। मुझे इसकी आशा नहीं थी कि हाईकोर्टके भूतपूर्व जज मा० होम मेम्बर मेरे प्रस्तावके वाद-विवादमें अनावश्यक विषयोंका उल्लेख करेंगे।

मैंने पहले ही कहा है कि मैं घटनाओंका इसलिये विस्तारसे उल्लेख नहीं करना चाहता क्योंकि भारत-सरकारने जाँचका महत्त्व और उसकी आवश्यकता स्वीकार कर ली है। परन्तु मा० होम मेम्बरके व्याख्यानसे कोई मनुष्य भ्रममें न पड़ जाय—इसलिये मैं आपसे और कौन्सिलके सदस्यों तथा इस कौन्सिलद्वारा अपने देशवासियों और साम्राज्यमें रहनेवालोंसे कहना चाहता हूँ कि जल्यानवाला बाग़में पाँच सौसे अधिक मनुष्योंकी जानें ऐसी अवस्थाओंमें गई हैं, जिनकी जाँच होना आवश्यक है। मेरे पास ऐसे पत्र हैं, जिनमें जल्यानवाला बाग़में मारे गए बहुतसे निरपराध बालकोंके प्राण जानेका ब्यौरा लिखा हुआ है। इनमें सोलह वर्षका अब्दुलकरीम नामक एक ऐसा लड़का भी है जिसके गत मैट्रिकुलेशन परीक्षामें प्रथम डिवीज़नमें पास होनेका समाचार उसकी मृत्युके बाद प्रकाशित हुआ है। उसकी जाँघ, छाती और माथेमें तीन गोलियाँ लगी थीं और वह तत्क्षण मरा था। मेरे पास दाँत बनानेवाले डा० मणिरामके तेरह वर्षके पुत्र मदनमोहन नामी एक दूसरे लड़केका चित्र भी है जो माथेमें गोली लगनेसे उसी क्षण मरा था। श्रीमन्! उसके शोक-सन्तप्त पिताद्वारा अमृतसरके हेल्थ अफ़सरको लिखे गए पत्रको पढ़नेकी इज़ाजत दीजिए। उसमें लिखा हैः—

“सरकारी विज्ञप्ति अनुसार मैं अपने पुत्र मदनमोहनकी मृत्युका सङ्क्षिप्त वर्णन नीचे देता हूँ, जो १३ अप्रैलको जल्यानवाला बाग़में मरा था। पत्र भेजनेमें देर होनेका कारण यह है कि मैं मन्सूरी गया था और अमृसरमें न था। घण्टाघरके सामने अवस्थित मेरे मकानसे जल्यानवाला बाग़ तीन मिनटका रास्ता है। मेरा पुत्र मदनमोहन तेरह वर्षका था और उसका जन्म सम्वत् १९६२ में २७ वीं वैशाखको हुआ था। अपने साथियोंके साथ वह प्रायः रोज़ ही इस बाग़में खेलनेको जाया करता था। सदाकी भाँति वह

१३ अप्रैलको भी बाग़में गया, जहाँ उसकी मृत्यु हुई। उसके माथेमें गोली लगनेसे उसकी खोपड़ी फट गई और वह तत्क्षण मर गया। आठ-नौ आदमियोंके साथ उसकी लाशकी तलाश एक घण्टेसे अधिक समयतक मुझे करनी पड़ी थी क्योंकि वह, वहाँ मरे हुए सैकड़ों मनुष्योंकी लाशोंके ढेरमें दबी पड़ी थी। इससे आपको पता लगेगा कि उन मनुष्योंके हाथों—जो न्याय, क़ानून और व्यवस्थाके नामपर कार्य्य करनेका दम भरते हैं, किन्तु जिन्होंने अबृटिश ढङ्गसे कार्य्य किया—मेरे पुत्रकी कैसे हत्या की गई।" श्रीमन्! मैं ऐसी ही अन्य शोकजनक घटनाओंका उल्लेख कर सकता हूँ। मैं दो बार जल्यानवाला बाग़में गया था। वहाँकी दीवालोंपर अभीतक उन मनुष्योंके ख़ून और उनपर चलाई गई गोलियोंके निशान हैं, जिन्होंने किसी तरहके शस्त्रका व्यवहार नहीं किया और लड़नेकी जिनमें तनिक भी इच्छा न थी और जो सिर्फ़ व्याख्यान सुननेके लिये बैठे थे। कल दिए गए सरकारी बयानमें इस तरहसे वहाँ मारे गए मनुष्योंकी संख्या तीन सौ बताई गई है। सम्भवतः जब इसकी पूरी जाँच होगी, तब पता लगेगा कि यह संख्या लोगोंद्वारा अनुमानित एक हज़ारके लगभग है।"

श्रीमन्! मैं सरकारको लोगोंके तीव्र भावोंको समझाना चाहता हूँ और यह कहना चाहता हूँ कि इन भीषण घटनाओंके सम्बन्धमें हरएक स्त्री-पुरुषका ऐसा भाव होना चाहिए। मैं किसी व्यक्ति-विशेषपर इसका दोष नहीं लगाना चाहता। मैंने दोष लगानेकी चेष्टा त्याग दी है। मैं सिर्फ उस कार्य्यपर शोक प्रकट करता हूँ। इन निर्दोष भारतवासियोंकी हत्या करनेवाला चाहे बृटिश अफ़सर हों या कोई हिन्दुस्तानी, यह मेरे लिये समान दुःख और क्लेशकी घटना है। यह सोचनेसे मुझे हर्ष न होगा कि मेरा कोई अंग्रेज़ सहनागरिक, अपने अधिकारियोंकी आज्ञा या मूर्खतासे ऐसा अन्यायोचित कार्य्य, जैसा कि इसे लोग कहते हैं, करनेपर जैसा किया गया, बाध्य हुआ। मैं सिर्फ़ यही चाहता हूँ कि तत्त्वकी जो बातें कही गई हैं, वे इतनी गम्भीर हैं कि सम्राट्की सरकारद्वारा उनकी अत्यन्त निष्पक्ष और सूक्ष्म जाँच होनी चाहिए। बृटिश शासनके आरम्भसे मुझे अमृतसरकी इन घटनाओंके समान अत्यन्त विषादपूर्ण और लोगोंको शोकाकुल करनेवाली दूसरी घटनाका पता नहीं है, इसलिये मेरा कहना है कि सरकारका कर्त्तव्य ऐसी पक्षपातरहित जाँच करना है, जिससे सच्ची बातें प्रकट हो जायँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब असली तत्त्व प्रगट हो जायँगे तब अन्य लोगोंके समान मेरे अंग्रेज़ सहनागरिक भी किसी बदलेके भारसे नहीं, परन्तु इस विचारसे कि मनुष्यत्त्व और न्यायकी माँगको पूर्ण करनेके लिये—कहने लगेंगे कि उनका विचार किया जाय। मुझे दुःखसे कहना पड़ता है कि मेरे इस प्रस्तावका कि "जाँचके लिये रौयल कमीशन नियुक्त किया जाय' महत्त्व कम करनेकी चेष्टामें मा० होम मेम्बरने असली बातोंको घटाकर उल्लेख किया है। इससे उन्होंने यह प्रकट किया है कि वे अभीतक बुराइयोंकी गम्भीरताको समझनेमें असमर्थ हुए हैं। इसके द्वारा उन्होंने यह भी प्रकट किया है कि होम मेम्बरके पदपर होनेके कारण पञ्जाबकी शोकजनक घटनामें सम्राट्की हरएक प्रजाको, जिसके प्राण गए हैं, न्याय मिलनेके लिये उनको खड़ा होना उचित है।

श्रीमन्! आपके प्रति या आपकी सरकारके किसी सदस्यके प्रति अश्रद्धा प्रकट करनेके लिये हम रौयल कमीशन नियुक्त करनेको नहीं कह रहे हैं। यदि मैं सरकारके किसी सदस्यके प्रति तनिक भी अश्रद्धाका कोई शब्द प्रयोग करूँ तो मुझे अत्यन्त दुःख होगा। किन्तु, श्रीमन्! असली बातें क्या हैं? मैं सरकारसे उनपर शान्त और विकार-रहित भावसे दृष्टि डालनेकी प्रार्थना करता हूँ। श्री सिनहाने उनमेंसे कुछका उल्लेख किया है। आपको जनताकी रायपर ध्यान

देना चाहिए, क्योंकि इधर कुछ महीनेमें किए गए कार्य्योंसे लोगोंकी धारणा हो गई है कि पञ्जाबमें ग्रहण की गई नीतिमें भारत-सरकारकी राय थी, इसलिये पञ्जाबके मामलेपर दी जानेवाली रिपोर्टपर उसके द्वारा विचार होना न्यायकी दृष्टिसे अनुचित होगा। ऐसी अवस्थामें यदि भारत-सरकार इस कमेटीको नियुक्त करे तो साधारणतः लोगोंकी यह धारणा होगी कि इसकी रिपोर्ट भारत-सरकारके पास जायगी। इसके सम्बन्धमें मैं होम मेम्बरसे सहमत हूँ, परन्तु इसलिये कि जनता यह नहीं चाहती कि रिपोर्ट भारत-सरकारके पास जाय। यह कहा जाता है कि भारत-सरकारद्वारा कमेटी नियुक्त न की जाय। होम मेम्बरके इस कथनसे मैं पूर्ण सहमत हूँ कि यदि भारत-सरकारद्वारा कमेटी नियुक्त हो तो रिपोर्ट उसके पास आनी चाहिए। इसलिये मैंने अपने प्रस्तावमें प्रार्थना की है कि सपरिषद् गवर्नर-जनरल वृटिश-सरकारसे कमीशन नियुक्त करनेका अनुरोध करे। मैंने इसके साथ "रौयल" शब्द इसलिये नहीं जोड़ा है, क्योंकि मेरी धारणा है कि जव मैंने वृटिश सरकारसे कमीशन नियुक्त करनेका अनुरोध किया है तो मेरा अभिप्राय रौयल कमीशन ही से है। श्रीमन्! कमीशन और कमेटियाँ किसी विशेष उद्देश्यसे नियुक्त होती हैं। मार्च, सन् १९१९ ई० में क़ानूनोंको राष्ट्रीय बनानेके चीत्कारपर विचार करनेके लिये जव कमीशन नियुक्त होनेवाला था उस समय इसकी रिपोर्टके सम्बन्धमें 'न्यू स्टेट्समैन' ने लिखा था :—

"मनुष्य-स्वभाव वैसा ही होता है जैसा कि वह है। रिपोर्टका स्वरूप उसकी कमेटीके सङ्गठनकी पद्धतिपर ही निर्भर है। इसपर श्री लौयड जौर्जका अन्तिम निर्णय हमें तबतक मालूम न होगा जबतक यह लेख अख़बारमें प्रकाशित हो। इसलिये इस सम्बन्धमें प्रधान मन्त्रीका उत्तरदायित्व इन दिनोंमें वहुत अधिक है। यदि वे ऐसे सदस्योंको नियुक्त करें, जिनको जनता अपना प्रतिनिधि स्वीकार करे तो वे एक रिपोर्टकी विश्वाससे आशा कर सकते हैं; अथवा वे दूसरे सदस्योंको, जो जनताको वैसे ही मान्य हों, चुनें, तो उनसे वे दूसरी रिपोर्टकी आशा कर सकते हैं। मुख्य आवश्यकता ऐसी रिपोर्ट प्राप्त करनेकी है जिससे हड़तालें वन्द हों। श्री लौयड जौर्ज किस रिपोर्टके लिये सदस्योंका चुनाव चाहते हैं?" यहाँ भी ऐसी रिपोर्ट प्राप्त करनेकी आवश्यकता है जो पञ्जाबकी घटनाओंके सम्बन्धमें सच्ची वातोंका हाल दें। श्रीमन्! यदि भारत-सरकार इस कमेटीको नियुक्त करे तो स्वभावतः ही जनता प्रश्न करेगी कि कमेटी किस विषयकी जाँच करनेवाली है? उसको प्रधानतः इस जाँचसे आरम्भ करना पड़ेगा कि लाहौरमें खुल्लम-खुल्ला वग़ावत होनेकी घोषणा ठीक थी या नहीं। यह कार्य्य प्रान्तीय सरकारका नहीं, आपकी सरकारका है। उसके वाद जो कुछ हुआ—फ़ौजी क़ानूनकी घोषणा तथा अख़वारों और जनताके घोर प्रतिवादके होते हुए भी उसे जारी रखना आदि..............उससे भारत-सरकारका अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

श्रीमन्! आपने कहा है कि सर शङ्करन् नायरके इस्तीफ़ेके कारणोंके सम्बन्धमें कोई हवाला न देना चाहिए, परन्तु इससे पहले जव मैंने इसका उल्लेख किया था, उस समय मैंने कहा था कि इसके कारणोंका उल्लेख समाचार-पत्रोंमें किया गया है। आज मुझे पार्लियामेण्टके उस वाद-विवादका समाचार मिला है, जिसमें कर्नल वेजउडके प्रश्नपर श्री मौण्टेगूने कहा था:—"मुझे कोई सरकारी सूचना नहीं मिली है, परन्तु मुझे पता लगा है कि सर शङ्करन् नायरने इसलिये इस्तीफ़ा दिया है कि पञ्जाबमें फ़ौजी क़ानून जारी रखनेकी वातपर उनका मतभेद हो गया था।" इसलिये श्रीमन्! असली वातोंसे दूर भागनेमें कोई लाभ नहीं है, क्योंकि "हमारे कार्य्य और हमारे दृष्टिकोण भलेके लिये हों या वुरेके लिये, परन्तु उनकी मारक छायाएँ सदा ही हमारे साथ हैं।"

यदि भारत-सरकार अथवा सपरिषद् गवर्नर-जनरलने

घोषणा की कि लाहौर और अमृतसरमें खुल्लमखुल्ला बग़ावत थी, यदि सपरिषद् गवर्नर-जनरलने लाहौर, अमृतसर तथा अन्य स्थानोंमें फ़ौजी क़ानून जारी करनेकी आज्ञा दी, यदि सपरिषद् गवर्नर-जनरलने इसको उठा देनेके लिये चारों ओरसे माँग होनेपर भी इसे जारी रक्खा, यदि सपरिषद् गवर्नर-जनरलने अपने एक साथीका—इस प्रतिवादपर कि फ़ौजी क़ानूनका अन्त होना चाहिए, इस्तीफ़ा लेकर पञ्जाबमें फ़ौजी क़ानून जारी रक्खा तो श्रीमन्! आपको उन मनुष्योंको, यद्यपि उनका विचार अज्ञतापूर्ण हो, क्षमा करना चाहिए, जो यह समझते और कहते हैं कि पञ्जाबमें अवलम्बित नीतिसे भारत-सरकारका घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिये वह पक्षपात-रहित जाँच करनेमें असमर्थ होगी।

श्रीमन्! आपने ३ सितम्बरको अपना व्याख्यान दिया है। मैं सम्मानके साथ बोल रहा हूँ, परन्तु मैं आपसे और भारत-सरकारसे इस पवित्र मौक़ेपर अधिक अन्तर्दृष्टि रखने और यह सोचनेकी प्रार्थना करता हूँ कि आपके व्याख्यानमें, किए गए कार्य्योंका समर्थन देखकर जो लोग सन्मानपूर्वक कह रहे हैं कि कमेटीकी रिपोर्ट आपके पास न आनी चाहिए, वे ग़लती कर रहे हैं या ठीक कह रहे हैं? वे कारण ये ही हैं जिनसे लोग कह रहे हैं कि भारत-सरकारद्वारा जाँचकी कमेटी नियुक्त न होनी चाहिए। सम्राट्की सरकारसे भारत-सरकारद्वारा जाँचके कमीशनकी नियुक्तिका अनुरोध किए जानेके मेरे प्रस्तावकी न्याय्यताके ये ही कारण हैं। मा० होम मेम्बरने मुझे सन्तोष दिलानेके लिये कहा है कि भारत-मन्त्रीके विचारसे ऐसा किया जा रहा है। उन्होंने कहा है कि उनकी रायसे ही कमेटी नियुक्त की जा रही है। श्रीमन्! मैं नहीं चाहता कि भारत-मन्त्रीकी रायसे यह कमेटी नियुक्त हो। मैं चाहता हूँ कि इसलिये कमेटी उनके द्वारा नियुक्त हो कि उसकी रिपोर्ट उनके पास जाय और इस तरह सम्राट्के चरणोंमें वह समर्पित हो।

श्रीमन्! अब मैं कमेटीके सङ्घटनके प्रश्नपर विचार करता हूँ। मैं आपसे यह विचार करनेकी प्रार्थना करता हूँ कि इसका सङ्घटन जनताद्वारा नापसन्द किया जाना ठीक है या नहीं। मुझे भय है कि मैं अपने निर्द्धारित समयसे अधिक बोल रहा हूँ। नाज़ुक अवस्थाओंको देखते हुए यदि आप आगे बोलनेकी आज्ञा दें तो मैं वैसा करूँगा। *इसपर वाइसरायने पाँच मिनटका समय दिया।*

मा० मालवीयजी—धन्यवाद है, श्रीमन्! कमेटीके सङ्घटनमें छिद्रान्वेषणके स्थान हैं। जैसा कि मैंने पहले कहा है, मैं किसी सदस्यकी निष्पक्षताका उल्लेख न करूँगा, किन्तु जनता नामज़द सदस्योंमेंसे कुछको जानती नहीं, इसलिये कुछके बारेमें वह सन्दिग्ध-चित्त है। मैं कौन्सिल और सरकारके सामने जनताकी राय पेश करनेको बाध्य हूँ। श्रीमन्! माननीय श्री राइस, यदि मैं उनके नामका उल्लेख करूँ, तो मुझे क्षमा करें। उनकी व्यक्तिगत योग्यतापर उज्र नहीं है। उज्र यह है कि भारत-सरकारके होम डिपार्टमेण्टके एक एडिशनल-सेक्रेटरी उस कमेटीमें नियुक्त होने चाहिए या नहीं, जो उन घटनाओंकी, जिनसे भारत-सरकारका सम्बन्ध है, जाँच करनेवाली है। मैंने यह दिखानेके लिये इसका उल्लेख किया है कि कमेटीके सङ्घटनपर होनेवाली टीकाके लिये सरकारपर ही दोष आता है। इस अवसरपर सरकारका कर्त्तव्य ऐसे नामोंका प्रस्ताव करना है, जिनपर कुछ टीका-टिप्पणी न हो और यदि इस समय मैं वैसा करूँ तो मैं प्रस्ताव करूँगा कि कमीशन लौर्ड हैल्डेन, वाइकाउण्ट एशर और सर लौरेन्स जेन्किन्स अथवा अवसर-प्राप्त भारत-मन्त्री श्री औस्टेन चेम्बरलेन, भू० पू० वाइसराय लौर्ड हार्डिञ्ज और लौर्ड कर्ज़नद्वारा सङ्घटित किया जाय। श्रीमन्! मैं ऐसे कमीशनका प्रस्ताव करूँगा, जिसपर सब लोगोंका विश्वास हो। लौर्ड हार्डिञ्जका उल्लेख करते हुए मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि वे अपने किसी पूर्ववर्ती

वाइसरायकी अपेक्षा अधिक कठिन समयमें यहाँ थे। एक दुष्टद्वारा चलाए गए बमसे वे बाल-बाल बच गए थे। वैसी दशामें भी उन्होंने सर गुई फ़्लीटउड विल्सनसे, जब वे बम लगनेके बाद सबसे पहले उनसे मिले, तो उन्होंने कहा था कि—“विल्सन, नीतिमें कोई बदलाव न होगा।” सर गुईने जवाबमें कहा था कि ‘हुज़ूर! कोई बदलाव न होगा?’ उस समय फ़ौजी क़ानूनकी घोषणा नहीं की गई और न लोगोंको पञ्जाब जैसी कोई कठिनाई ही भोगनी पड़ी थी। लौर्ड हार्डिञ्ज जनताको जानते थे, वे उसे प्यार करते थे, इसलिये कमीशनके निमित्त उनसे अच्छे नामका प्रस्ताव मैं नहीं कर सकता। उनके बाद मैं श्री औस्टेन चेम्बरलेनको पसन्द करूँगा। यद्यपि हमें इस देशमें उनका स्वागत करनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है तथापि एक अंग्रेज़ सज्जनकी भाँति उनमें हम लोगोंका विश्वास है कि यदि वे कमीशनके अध्यक्ष हों तो वे उचित न्याय करेंगे। मैंने लौर्ड कर्ज़नका नाम इसलिये लिया है कि मुझे विश्वास है कि यदि वे आकर सब बातोंकी जाँच करें तो वे बुराई करनेवालोंको न छोड़ेंगे और जनता उनके निर्णयसे सन्तुष्ट हो सकेगी। मैं सरकारपर इन दो कमेटियोंमेंसे एक कमेटीको चुननेका भार रखता हूँ। इनमें मैं एक भी भारतीयको सम्मिलित करनेका प्रस्ताव न करूँगा। मुझे विश्वास है कि यदि आवश्यकता हो तो सैकड़ों सभाओं-द्वारा मेरे इस विचारका समर्थन किया जायगा और लोग यह कहेंगे कि हम प्रस्तावित कमीशनसे सन्तुष्ट हैं।

लेकिन श्रीमन्! यदि ऐसा कमीशन न हो सके तो क्या आप प्रस्तावित कमेटीमें एक और भारतीयको नियुक्त करनेकी न्याय्यता स्वीकार करेंगे। वह मनुष्य ऐसा ही न हो, जिसके विचार सरकारसे मिलते-जुलते हों, परन्तु वह सज्जन ऐसे हों, जिनपर जनताका विश्वास हो और जो उसकी बातोंको सामने रख सकें। ‘कैपिटल’ में ‘डिचर’ ने कमेटीमें मेरे नियुक्त किए जानेका प्रस्ताव कर मुझे सम्मानित किया है, परन्तु मैं एक और अच्छे नामका प्रस्ताव करता हूँ। पञ्जाबकी घटनाओंके सम्बन्धमें मुझे बहुतसे तत्त्व मालूम हैं, मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि भारत या पञ्जाब सरकारके किसी भी सदस्यकी अपेक्षा सम्भवतः मुझे वहाँकी शोकजनक घटनाओंका अधिक ज्ञान है, परन्तु उनका अधिक पता जाननेवाले एक अन्य सज्जन भी हैं और वे मेरे परम मित्र प्रयाग-हाईकोर्टके एडवोकेट मा० पण्डित मोतीलाल नेहरू हैं। उन्होंने रोज़ाना एक हज़ार रूपएकी फ़ीसका स्वार्थ त्यागकर तत्त्वोंका पता लगाने और प्रमाणोंको संग्रह करनेके लिये कितने ही दिनोंतक पञ्जाबमें परिश्रम किया है। उनके पास असली बातोंका ऐसा ख़ज़ाना है, जो कमेटीको बहुत बड़ी सहायता पहुँचावेगा। मैं प्रस्ताव करता हूँ कि जिस प्रकार ज्वाइण्ट-कमेटीमें श्री मौण्टेगूने लौर्ड सिडनहमको नियुक्त किया वैसे ही आपकी सरकार कमेटीमें बुद्धिमान और योग्य एडवोकेट पं० मोतीलाल नेहरूको एक सदस्य नियुक्त करें। यदि वे स्वीकार किए जानेके योग्य न हों तो मैं जस्टिस सर अब्दुर्रहीमके नामका प्रस्ताव करूँगा। श्रीमन्! कमेटीके सुधारके लिये ये प्रस्ताव हैं; मुझे आशा है कि सरकार इनपर विचार करेगी।

इतनेमें वाइसरायने कहा कि पाँच मिनट समाप्त हो गए, परन्तु कुछ चर्चाके बाद आपने और पाँच मिनटका समय दिया।

मा० मालवीयजीने धन्यवाद देकर कहा—“मैं वाद-विवादके समय मा० सदस्योंद्वारा किए गए कुछ आक्षेपोंपर ध्यान दिलाता हूँ। मैं पहले उस बातका उल्लेख करता हूँ, जो सर उमर हयात खाँने कही है। उन्होंने इसपर क्रोध प्रकट किया है कि हम बाहरके कुछ लोग उस प्रान्तमें गए। मैं समझता हूँ कि पञ्जाब भरमें आपकी बातका समर्थन करनेवाला कोई दूसरा न मिलेगा। यदि वे वहाँ जायँ तो उन्हें दिखाई देगा कि सेवा-समिति, पं० मोतीलाल नेहरू और मेरे

कार्य्योंका उस प्रान्तके बहुतसे भाइयोंने हार्दिक स्वागत किया है; उन्हें दिखाई देगा कि रोटी कमानेवालोंके मारे जाने, क़ैद या अन्य प्रकारसे दण्डित होनेके कारण जो पाँच सौसे अधिक कुटुम्ब साधन-हीन हो गए थे उनकी रक्षा उसी सेवा-समितिने की है, जिसका मुझे सभापति और पं० मोतीलाल नेहरूको उप-सभापति होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनको यह भी दिखाई देगा कि प्रिवी कौन्सिलमें अपील करानेमें हम लोगोंने बहुतोंको सहायता दी है। मैं इन बातोंका उल्लेख न करता, यदि मैं यह खेदजनक न समझता कि जब पञ्जाबी भाइयोंकी विपत्तिमें आपने उनको कोई सहायता नहीं दी है उस समय बाहरसे सहायता देनेके लिये गए हुए मनुष्योंकी आप शिकायत करते हैं। हम लोग अपनेको बाहरी आदमी नहीं समझते, क्योंकि हम अपने हरएक देशवासीको, फिर वह चाहे जहाँ हो, अपना देशी भाई समझते हैं।

मा० श्री क्रमके आक्षेपका उत्तर यह है कि इसके सम्बन्धमें हम लोगोंको कोई जातिगत विचार नहीं है। मैं चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि सत्यको ढूँढ़ निकालनेमें ऐङ्गलो इण्डियन और भारतवासी सहयोगसे कार्य्य करें। मैं उनके इस प्रस्तावका समर्थन करता हूँ कि कमेटीको एक यह आज्ञा भी दी जाय कि जिनको विगत शोकजनक घटनाओंमें क्षति उठानी पड़ी है, उनको क्षति-पूर्त्तिकी रक़म देनेकी वह सिफ़ारिश करे। उनके इस प्रस्तावपर कि कमेटीमें एक ऐङ्गलो इण्डियन सदस्य रहे, मुझे कुछ भी उज्र नहीं है। परन्तु मैं उनकी इस बातपर आक्षेप किए बिना नहीं रह सकता कि देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें फैले हुए योरोपियनोंको यह वचन दिया जाय कि भविष्यमें उनकी सुरक्षितता क़ायम रक्खी जायगी। श्रीमन्! भविष्यमें योरोपियनोंके समान ही हिन्दुस्तानियोंकी रक्षा भी होनी चाहिए। सम्भवतः कमेटीकी रिपोर्टके बाद इन पाँच योरोपियनोंकी असामयिक मृत्युके कारणोंका कुछ पता लग सकेगा। सम्भवतः उस समय यह दिखाई देगा कि इसका दोष हिन्दुस्तानियोंके माथे ही पर सिर्फ़ नहीं है और उनको क्रोधोत्पादनका ऐसा मौक़ा दिया गया, जिससे यह दुर्दैवी, शोकजनक और घृणाके योग्य कार्य्य हुआ है। इन अपराधोंके होनेके पहले अमृतसरमें रेलवेके पुलपर चलाई गई गोलियोंसे कई हिन्दुस्तानी अपने प्राण खो चुके थे। अमृतसरके डिप्टी-कमिश्नरने फ़ौजी अदालतके एक मामलेमें गवाही देते हुए कहा था कि गोली चलाई जानेके पहले लोगोंके झुण्डद्वारा कोई अत्याचार किए जानेका मुझे प्रमाण नहीं मिला है।

अन्तमें मैं हिज़ आनर सर एडवर्ड मेकलेगनद्वारा किए गए आक्षेपोंपर कुछ कहना चाहता हूँ। आपके प्रति मेरा सम्मान फिर प्रकट करनेकी आवश्यकता नहीं है। जब सम्राट्की जेलोंमें बन्द किए गए कुछ मनुष्योंके प्रति प्रकट की हुई उनकी कृपाके लिये मैं कृतज्ञ हूँ, उस समय मुझे यह कहते दुःख होता है कि वे यह समझनेमें असमर्थ हुए हैं कि जो अन्यायसे जेलमें ठूँसे गए हैं उनकी सज़ा घटाने या कठिन कारागारके नियमोंमें कुछ ढिलाई करनेसे तबतक उन्हें कैसे सन्तोष होगा, जबतक वे जेलमें है? मैं आपसे इसपर विचार करनेकी प्रार्थना करता हूँ कि सज़ा कम करने और ऊपर कहे गए अनुसार उनसे सुव्यवहार होनेसे क्या उनका, जो अभीतक अन्यायसे पञ्जाबकी जेलोंमें सड़ रहे हैं, दुःख दूर हो जायगा? श्रीमन्! मैं समझता हूँ कि हिज़ औनरने कहा था कि वे कमीशनद्वारा किए गए फ़ैसलोंमें दख़ल न देंगे। सम्भवतः उन्होंने सोचा है कि वे ऐसा नहीं कर सकते। लेकिन जेलखानोंमें पड़े हुए पन्द्रह सौ मनुष्योंमें अधिकांश लोग वैसे ही स्वतन्त्र होने चाहिए जैसे कि हम यहाँ आज स्वाधीन बैठे हैं। इसलिये मैं अनुरोध करता हूँ कि चाहे जाँचकी कमेटी चार सप्ताहके बाद बैठे या उससे पहिले, आपकी सरकार और पञ्जाबके छोटे लाट इसपर विचार करें कि व्यक्तिगत या आर्थिक ज़मानत अथवा दोनों ज़मानतोंपर, जैसा कि आप उचित समझें, वे मनुष्य, जिनका सम्बन्ध आग लगाने, हत्या करने या लूटमें शामिल

होनेसे नहीं है, इसलिये अभी छोड़े जायँ कि यदि वे कमेटीकी जाँचमेँ निर्दोषी दिखाई देँ तो उन्हेँ व्यर्थमेँ और क़ैद न भोगनी पड़े। यह इसलिये भी आवश्यक है कि वे कमेटीके सामने गवाही दे सकेँ और अपने मामलेको उचित रूपसे पेश कर सकेँ। मुझे अत्यधिक आशा है कि सरकार इस प्रस्ताव पर विचार करेगी।”

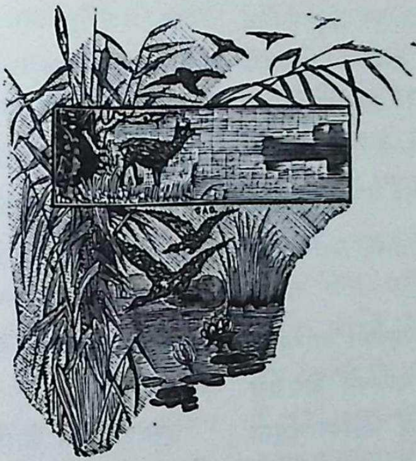

भारतीय-गोलमेज़ सम्मेलनमें

महात्मा गान्धीके वक्तव्यका समर्थन

लन्दनमें भारतीय-गोलमेज़ सम्मेलनके दूसरे अधिवेशनमें १५ सितम्बर, सन् १९३१ ई० को सङ्घशासन-निर्माण उप-समितिकी बाइसवीं बैठकमें पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने महात्मा गान्धीके वक्तव्यका समर्थन करते हुए जो भाषण दिया, वह नीचे दिया जाता है।

—सम्पादक।

श्रीमन् लौर्ड चेन्सलर! मैं महात्मा गान्धीके वक्तव्यकी ताईद करता हूँ; इस वाक्यमें मेरे उस कथनका सब मतलब आ जाता है जो मैं यहाँपर कहना चाहता हूँ, किन्तु जो विचार उन्होंने प्रकट किया है उसकी महत्तापर ज़ोर देनेके लिये मैं कुछ और कहना उचित समझता हूँ।

वह एक अत्यन्त असाधारण घटना थी जब इस द्वीपके निवासियोंने भारतमें अपना राज्य स्थापित किया। यह भी एक असाधारण बात थी कि अनेक विषम परिस्थितियोंके कारण वह भारत छः हज़ार मील दूरके छोटेसे द्वीपवालोंके हाथमें आ गया जो स्वयं एक महाद्वीप है और जिसने हज़ारों वर्षोंतक अपने देशका सुशासन स्वयं किया था। यह असाधारण बात और भी महत्त्वपूर्ण हो गई जब कि इस द्वीपके रहनेवालोंने सदा स्वतन्त्रताका झण्डा फहराया है। इन्होंने संसारके विभिन्न देशवालोंकी स्वतन्त्रताके लिये अनेक युद्ध लड़े हैं और जब ऐसी जातिने इतने दिनोंतक भारत जैसे बड़े महाद्वीपपर अपना राज्य स्थिर रक्खा है तब तो यह और भी असाधारण घटना है।

इस अवधिमें जो घटनाएँ हुई हैं, सब प्रसिद्ध हैं और महात्मा गान्धीने उन सबको दुहरा भी दिया है। प्रायः पचास वर्षोंसे भारतीय राष्ट्रीय महासभा इस बातपर ज़ोर दे रही है कि भारतको स्वशासनका अधिकार मिल जाय। सन् १८८५ ई० में कांग्रेसकी नींव पड़ी और तभीसे वह पुकार रही है कि अपने शासनमें उसके अपने प्रतिनिधि ही रक्खे जाने चाहिएँ। बृटिश सरकारको भारतमें प्रतिनिधिमूलक संस्थाओंको स्थापित करनेमें राज़ी होनेमें बहुत समय लगा। सन् १९०९ ई० तक लौर्ड लेन्ड्सडाउन और लौर्ड मौर्लेके समयमें हमें केवल दो सुधार मिले। इसके पश्चात् युद्ध छिड़ गया, जिसके लिये भारतवर्षने धन-जनसे इतनी सहायता की कि अंग्रेज़ राजनीतिज्ञोंने भी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की। उस समय हमें यह आशा थी कि भारतको भी बृटिश साम्राज्यके अन्य स्वतन्त्र उपनिवेशोंके ही समान अधिकार मिल जायँगे,

किन्तु हमेँ निराश होना पड़ा। युद्धके दिनोँमेँ भारतवर्षकी सेवाओँको बड़ा मान दिया गया। इस समितिके सम्मुख मैँ स्वर्गीय लौर्ड एस्क्विथ, श्री लौयड जौर्ज तथा अन्य प्रमुख अंग्रेज़ राजनीतिज्ञोँके प्रशंसात्मक वाक्योँको नहीँ दुहराना चाहता, जिन्होँने भारतवर्षकी सेवाओँका बड़ा यश-गान किया है। मैँ पहले ही कह चुका हूँ कि हमेँ आशा थी कि भारतवर्षको स्वशासन करनेका अधिकार मिल जायगा। उक्त महोदयोँको सुनकर हमेँ यह आशा हो चली थी। उदाहरणके लिये लौयड जौर्जने कहा था कि:—

“भारतवर्षकी सहायता बड़ी भव्य हुई है। हमारे अत्यन्त सङ्कटके समयमेँ इन्होँने अमूल्य सहायता की है।” लौर्ड कर्ज़नने कहा था कि “भारतीय सेना फ़्रान्समेँ ठीक समयपर पहुँची और इसने मित्र राष्ट्रोँ और सभ्यताकी रक्षा करनेमेँ सहायता दी।” उन्होँने यह भी कहा कि “भारतीयोँने जिस प्रकारकी और जितनी सहायता की है वह भुलाई नहीँ जा सकती।” दूसरे अवसरपर श्री लौयड जौर्जने भाषण देते हुए कहा था कि “इन वीर जातियोँ और उपनिवेशोँने बड़ी वीरतासे युद्ध किया और अपनी अमूल्य सहायता देकर राष्ट्रोँकी परिषद्‌मेँ समकक्ष होनेका पद प्राप्त कर लिया है। जो कुछ इन राष्ट्रोँके सम्वन्धमेँ कहा जा सकता है, ठीक वही वात भारत-साम्राज्यके विषय भी लागू है। जिन्होँने हमारे लिये वे युद्ध जीते हैँ, जिन्होँने प्रारम्भमेँ हमारी सेनाको हताश कर दिया था। सन्धि-परिषद्‌के अवसरपर भारतके हितोँको भुलाना नहीँ चाहिए और चार सालके इस भाई चारेको मिटा नहीँ देना चाहिए।”

ऐसे कथनोँको सुनकर कोई भी भला आदमी यह कल्पना कर सकता था कि भारतको वृटिश साम्राज्यके अन्य उपनिवेशोँके समकक्ष स्थान मिल जायगा। सच पूछिए तो भारतवर्ष राष्ट्रीय-परिषद्‌का आरम्भसे सदस्य रहा है, किन्तु यह भी एक प्रकारका प्रहसन ही है कि स्वतन्त्र न रहने पर भी भारतको अन्य देशोँकी स्वतन्त्रतासे सम्वन्ध रखनेवाले विषयोँपर वाद-विवाद और निर्णय करनेके लिये वुलाया जाय। अस्तु, भारतके लोगोँको सन् १९१९ ई० के सुधारोँको देखकर बड़ी निराशा हुई थी।

श्रीमान् जानते ही हैँ कि सुधारोँके प्रारम्भ होते ही उसमेँ परिवर्त्तन करनेके लिये बड़ा आन्दोलन मचा। सन् १९२० से १९३० ई० तक बड़ा गहरा आन्दोलन हुआ। कांग्रेसने वार-वार पूर्ण स्वराज्यकी माँग की किन्तु सरकारने हर वार उसे टाल दिया।

इतने लम्वे आन्दोलन होनेके वाद इस सम्मेलनके होनेसे मुझे यह आशा होने लगी है कि अव वृटिश सरकार भारतमेँ स्वतन्त्र शासन स्थापित करनेके लिये विल्कुल तैयार है। जिन कथनोँको हमने इतने चाव और कृतज्ञताके साथ पढ़ा है उनको छोड़कर इसी वातसे मुझे आशा हो चली है कि यह सम्मेलन करके और कांग्रेसके प्रतिनिधियोँको वुलाकर अंग्रेज़ लोग वृटिश साम्राज्यमेँ हमेँ अपना साथी वनाना चाहते हैँ। मैँ इस वातपर इसलिये भी ज़ोर देता हूँ कि आगे इस सम्वन्धमेँ कोई भ्रम न रहे। मैँ कह चुका हूँ कि कांग्रेस पैँतालीस सालसे पूर्ण स्वराज्य माँग रही है। और यह सम्भव नहीँ है कि आप इससे कममेँ भारतीयोँको सन्तुष्ट कर सकेँ। भारतको अपना शासन करने और अपनी योग्यता दिखानेका पूर्ण अवसर मिलना चाहिए। अतएव मुझे आशा है कि वृटिश सरकार और भारतीय जनताके प्रतिनिधि होकर आनेवाले सभी लोग इन समस्याओँपर उदारतासे विचार करेँगे। यह ऐसा प्रश्न नहीँ है कि इधर-उधर छुट-पुट सुधार करनेसे या कहीँ थोड़ेसे अधिकार वढ़ाने और थोड़ी सी शक्ति देनेसे काम चल जाय। अव वह समय गया, जव थोड़ा-वहुत करनेसे लोग सन्तुष्ट हो जाते थे।

जो पिछले वारह माससे भारतमेँ न रहा और जिसने वह आन्दोलन न देखा हो जहाँ बड़ी-बड़ी सभाओँमेँ एक लाख पचास हज़ार या तीस हज़ार व्यक्ति जमा होते हैँ और जिस आन्दोलनमेँ स्त्रियोँ

और बच्चोंने भी भाग लिया है, वह उस नये भारतकी कल्पना भी नहीं कर सकता, जिसमें स्वतन्त्रता होनेकी इच्छा इतनी प्रबल हो उठी है। मेरी यह अत्यन्त विनीत इच्छा और प्रार्थना है कि जिनमें भी इस विधानको पूर्णतः बदलनेकी शक्ति हो वे उक्त बातको अपने मनमें दृढ़ जमा लें। इसी लिये यह आवश्यक है कि सब विचारणीय प्रश्नोंको इस दृष्टिसे देखना चाहिए।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि इस प्रश्नपर उचित रूपसे विचार हो रहा है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि राष्ट्रीय भारतने जो पूर्ण स्वतन्त्रताकी स्थापनाके लिये माँग पेश की थी उसमें भारतीय राजा-महाराजाओंका कुछ भी हाथ न था। हम उन महाराजाओंके बड़े कृतज्ञ हैं जिन्होंने अत्यन्त दूरदर्शिताके साथ सङ्घ-शासनका समर्थन किया है। हम उस विचारका स्वागत करते हैं; किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्रीय भारतने जो पूर्ण औपनिवेशिक स्वराजकी माँग पेश की है वह देशी नरेशों और रजवाड़ोंके इसमें भाग लेनेसे और जो भाग वे आगे इसमें लेंगे उससे बिल्कुल स्वतन्त्र है। अगर भारतीय नरेशोंने भारतके शासन-विधानमें परामर्श देने और सङ्घ-शासन स्थापित होने और उसका ढाँचा तैयार होनेमें भाग न भी लिया होता तो समय आ पहुँचा था कि भारतमें पूर्ण स्वतन्त्र शासन स्थापित हो जाता। परन्तु अब, जब कि उन्होंने दूरदर्शिता और देशभक्तिसे प्रेरित होकर नये शासन-विधानमें उचित भाग लेनेके लिये अपना हाथ आगे बढ़ाया है, उससे कार्य्य और भी सुलभ हो गया है, और मुझे आशा है कि कमेटी और कौन्फ्रेन्स अब जिन प्रश्नोंपर विचार करेगी उनपर इस दृष्टिसे विचार करेगी कि भारतमें पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करना है। यदि यह बात स्वीकार कर ली जाय, तब अन्य प्रश्नोंपर वाद-विवाद करना अधिक सरल हो जाय। और संरक्षित विषय तथा संरक्षणोंका प्रश्न तब उचित समय और सिलसिलेवार विचार करनेके लिये उपस्थित होगा। किन्तु जबतक यह पूर्ण विश्वास नहीं है कि भारतमें परिस्थितिके अनुसार बिना विलम्ब किए पूर्ण स्वायत्त-शासन स्थापित करनेका समय आ गया है तबतक मैं समझता हूँ कि जो प्रश्न विचारके लिये उपस्थित हो रहे हैं उनपर सही दृष्टिकोणसे विचार नहीं हो सकता। यदि यह एक बार एकमतसे स्वीकार हो जाय कि औपनिवेशिक स्वराज्य आवश्यक है और स्थापित होना चाहिए तो मैं निवेदन करता हूँ कि कौन्फ्रेन्सके सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित होगा कि उसे स्थापित करनेमें क्या कठिनाइयाँ हैं? और जो कठिनाइयाँ उपस्थित हों उन सबपर विचार करनेके लिये हमको प्रस्तुत रहना चाहिए और उन सब शङ्काओंका समाधान करने और सन्देहोंको मिटानेके लिये तैयार रहना चाहिए, जिनको भारतके मित्र भारतको नवीन शासन-विधान देनेके अन्तर्गत मनमें लावें।

यदि हिन्दुस्तानकी नवीन सरकारके साथ न्यायका बर्त्ताव हो तो मैं समझता हूँ कि सभी निष्पक्ष मित्र हमसे सहमत होंगे कि जो शासन-विधान उसको सौंपा जाय उसके प्रबन्ध करनेमें उसको पूर्ण अधिकार मिलने चाहिएँ। आज भारतकी परिस्थितिके दो दृष्टिकोण हमारे सम्मुख हैं। पहली तो राजनीतिक परिस्थिति है, जिसके लिये ज़रूरत है कि भारतीयोंकी उचित और स्वाभाविक कामनाकी पूर्त्ति कि वे अपने देशका प्रबन्ध स्वयं करें, उसे स्वीकार करना चाहिए। और मैं समझता हूँ कि मुझे अपने अंग्रेज़ मित्रोंसे यह प्रार्थना करनेकी ज़रूरत नहीं है कि उन्हें इस ओर ज़रा उदारतासे विचार करना चाहिए। वे स्वतन्त्रताके महान् रक्षक रहे हैं। उन्होंने संसारके अनेक भागोंमें अनेक राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताके लिये युद्ध किया है। क्या यह आशा करना हमारे लिये बहुत अधिक है कि उनका भारतके साथ १७५ वर्षतक सम्बन्ध स्थापित रहनेके बाद और उससे अपरिमित लाभ उठानेके बाद, और यह देखकर कि भारतीयोंने महायुद्धमें उनका

कितना साथ दिया है, और यह भी मानकर कि भारतमेँ हिन्दू और मुसलमान दोनोँकी कैसी उच्च प्राचीन सभ्यता रही है, क्या फिर भी यह प्रार्थना वहुत अधिक है कि अव भी उनको यह तै कर लेना चाहिए कि हम भारतीयोँके साथ वे अपनी समान प्रजाकासा वर्त्ताव करेँगे और जैसे वे अपने देशका शासन-प्रवन्ध स्वयं करते हैँ वैसे ही हमेँ अपना शासन करनेका हमारा स्वत्त्व स्वीकार करना चाहिए। मुझे वहुत अधिक आशा है कि वे वैसा करना निश्चित करेँगे, और एक वार वैसा निश्चय करनेपर, जो कठिनाइयाँ उन्हेँ प्रतीत हो रही हैँ, जो शङ्काएँ और भय उनके मनमेँ हैँ, मैँ कहता हूँ कि वे सव दूर हो जायँगे। ऐसी दशामेँ, यदि वे आज भारतकी जो साम्पत्तिक अवस्था है, उसको दृष्टिगत रखकर विचार करेँगे तो इससे उनको निर्णय करनेमेँ अधिक सहायता मिलेगी। गत पचाससे अधिक वर्षोँसे भारतमेँ हम शिकायत करते रहे हैँ कि भारतका शासन अत्यधिक ख़र्चीला है, इतना अधिक ख़र्चीला है कि देशकी जनता उसके भारको सहन नहीँ कर सकती। पचास साल हो गए, वास्तवमेँ इससे अधिक समय हुआ, जव कि भारतके महान् वयोवृद्ध नेता दादाभाई नौरोजीने अंग्रेज़-सरकारसे देशके सैनिक और मुल्की ख़र्चेमेँ वहुत अधिक कमी करनेके लिये ज़ोर दिया। स्वयं भारत-सरकारके भेजे हुए ख़रीतोँमेँ फ़ौजी ख़र्चका विरोध किया गया है, जो कि समय-समयपर भारतके सिर मढ़ा गया है। भारतके राजनीतिज्ञोँने वार-वार कहा है और जिसमेँ मेरे सम्मानित मित्र सर दीनशा एदलजी वाचाने भी तो वहुत वार वड़े कड़े शब्दोँमेँ वेशुमार फ़ौजी ख़र्चके विरुद्ध कहा और लिखा है, किन्तु वह ख़र्च हम सवके विरोध करनेपर भी जारी रक्खा गया है। मुल्की ख़र्च भी वहुत अधिक रक्खा गया है। इतना ही नहीँ, वल्कि उसे पिछले कुछ सालोँसे कमीशनके रूपमेँ रक़मेँ देकर और भी वढ़ा दिया गया है। भारतकी अव अत्यन्त नाज़ुक हालत है, जिसमेँ कि भारत-सरकारके लिये यह सम्भव नहीँ है कि वह अपना शासन-प्रवन्ध वर्त्तमान निरखकी वृत्तियाँ देकर कर सके। आप लोगोँने आजके "टाइम्स" अख़वारमेँ वाइसरायके भाषणकी रिपोर्टको पढ़ा होगा, जो उन्होँने भारतमेँ दिया था। भारत-सरकार ख़र्चेमेँ कमी करनेमेँ प्रयत्नशील है; किन्तु श्रीमान् लौर्ड चेन्सलर, मैँ नम्र निवेदन करता हूँ कि परिस्थितिके अनुसार जितना ख़र्च कम करना चाहिए, उसे करनेके लिये न तो भारत-सरकारको उतना अधिकार ही मिला हुआ है और न जितना चाहिए उतना उसमेँ पर्य्यवेक्षण है।

दुर्भाग्यसे आप लोग स्वयं एक राष्ट्रीय सङ्कटकालीन परिस्थितिमेँ होकर गुज़र रहे हैँ। आपकी विपत्तिमेँ हम सवकी आपके साथ सहानुभूति है। हम हृदयसे आशा और प्रार्थना करते हैँ कि आप शीघ्र उसपर विजय पाएँ, और जिस धैर्य्यसे आपने स्थितिका सामना किया है उसे देखकर हम आपकी प्रशंसा करते हैँ। हम उस साहसकी प्रशंसा किए विना नहीँ रह सकते जिस प्रकारसे राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना हुई और जिस साहससे प्रत्येक पार्टीके प्रमुख व्यक्तियोँने आगे वढ़कर देशकी मुसीवतमेँ एक दूसरेका साथ दिया है। अकेली ऐसी राष्ट्रीय सरकार ही हमारे शासन-ख़र्चको समझकर और उसमेँ परिवर्त्तन करनेके लिये अधिक उदारतासे काम ले सकती है। भारत-सरकारके लिये, जिस प्रकार आज वह व्यवस्थित है, उस कार्य्यको करना असम्भव है, और इसलिये कि वह कार्य्य सही प्रकारसे हो, इसलिये कि जो आराम भारतीय जनताका चढ़ा हुआ है वह उसे मिलना चाहिए, इसलिये कि ख़र्चेमेँ अधिक कमी की जाय जिससे भारत-सरकार दिन-दिन दिवालिया हुए विना ही अपने शासनको चला सके, तो यह आवश्यक है कि भारतीय जनताके प्रतिनिधियोँको अपने देशके आर्थिक मामलोँके प्रवन्ध करनेका अधिकार दिया जाय। इस मामलेके आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण दोनोँसे यह आवश्यक हो जाता है कि वह

शासन-विधान, जिसे तैयार करनेकी बात हम सोच रहे हैं, ऐसा हो जिसमें जनताके चुने हुए और विश्वस्त प्रतिनिधियोंको देशका आर्थिक शासनप्रबन्ध सौंपा जाय। एक बार इस बातको स्वीकार कर लेनेपर, संरक्षण और सुरक्षित विषयोंपर फिर दुबारा विचार करनेकी ज़रूरत न होगी। संरक्षणोंमेंसे मैं देखता हूँ कि फ़ौजी ख़र्चका प्रश्न है। बहुत समय नहीं हुआ, जब ऐसा एक समय था कि सब लोग इसके लिये तैयार थे कि फ़ौजका शासन-प्रबन्ध वाइसरायके ही हाथमें कुछ कालतकके लिये रहने दिया। आज परिस्थिति भिन्न है। आज तो सर्व-साधारणमें दूरतक यह विचार फैला हुआ है कि यदि भारतवर्षकी उन्नति करनी है तो फ़ौजी ख़र्चको एकदम निर्दयतासे घटानेकी जरूरत है। वह ख़र्च भारतको पनपने नहीं देता। वह भारतके उन आवश्यक कार्य्योंमें अड़ङ्गे लगाता है जो राष्ट्रीय शक्तिको विकसित करनेमें आवश्यक हैं। इस समय मैं उसका ब्यौरेवार विवरण नहीं देना चाहता; किन्तु मैं कमेटीको स्मरण कराना चाहता हूँ कि उस ख़र्चेमें गोरी पल्टनका ख़र्च प्रमुख और बहुत भारी है। और ये गोरी पल्टनें भारतमें बहुत समयसे रह रही हैं, किन्तु हमने बार-बार उसका विरोध किया है कि इन पल्टनोंकी ज़रूरत नहीं है। हमारे यहाँ बृटिश अफ़सरोंद्वारा शासित एक लाख पचास हज़ार सर्वश्रेष्ठ सैनिकोंकी भारतीय सेना मौजूद है। मैं उस फ़ौजके विषयमें कुछ नहीं कहता; वह तो जितनी है उतनी ही रहने दी जाय, किन्तु जिन सुधारोंकी ज़रूरत हो वे उसमें कर दिए जायँ। किन्तु जहाँतक भारतमें गोरी पल्टन रखनेकी बात है, उसका तो बहुत समयसे विरोध किया गया है। वह ऐसी सेना है जो अंग्रेज़ोंद्वारा अपने कामके लिये सुरक्षित रक्खी गई है और जिसके लिये भारतसे ज़बरदस्ती ख़र्च दिलाया जाता है। मैं अपने सब बृटिश मित्रोंसे पूछता हूँ कि वे इस प्रश्नपर निष्पक्ष होकर शान्तिसे विचार करें। इससे भारतीय सेनाके बृटिश अफ़सरोंसे तुरन्त छुटकारा करनेकी कोई अभिलाषा नहीं है, जैसा मैं कह चुका हूँ कि जहाँतक भारतीय सेनाका सम्बन्ध है वह वैसी ही रही चली आवेगी और मुझे आशा है कि आप लोग साथ-साथ काम करते रहेंगे। किन्तु जहाँतक बृटिश सेनाका सम्बन्ध है वह एक ऐसा विषय है जिसपर विचार करनेकी आवश्यकता है, क्योंकि उससे फ़ौजी ख़र्चमें बड़ा भारी अन्तर पड़ता है। फिर आपके सम्मुख निःशस्त्रीकरणका प्रश्न उपस्थित है, और मुझे आशा है कि उसकी दृष्टिसे आप विचारें कि भारतके प्रति न्याय करनेके लिये क्या बृटिश सेनाको वहाँसे न हटाई जानी चाहिए—चाहे वह एक ही बारमें अथवा धीरे-धीरे करके एक नियत समयमें, जो सर्वसम्मतिसे तै हो जाय। मैं नम्र निवेदन करता हूँ कि यह एक ऐसा विषय है, जिसका विचार इङ्गलैण्ड और भारतकी जो परिवर्त्तित स्थिति हमारे सम्मुख है उसकी दृष्टिसे किया जाना चाहिए। जहाँतक आर्थिक संरक्षणोंकी बात है उनके विषयमें भी मेरे कथनानुसार दृष्टिसे पुनः विचार किया जाना चाहिए। हिन्दुस्तानमें एक ज़बरदस्त परिवर्त्तन हुआ है। अधिक टेक्सके भारको वहन करनेकी अब उनमें शक्ति नहीं रही। वर्त्तमान दशामें रहना भी अब उनके लिये असह्य है; और यदि उनके कष्ट कुछ कम करने हैं तो फ़ौजी और मुल्की ख़र्चमें बहुत अधिक कमी करनेकी ज़रूरत है। यहाँ प्रश्न भी उठाया गया है कि आर्थिक नीति इस दृष्टिसे वर्त्ती जानी चाहिए जिससे भारतकी साख बने रहनेमें सहायता मिले। हम सब अपने अँग्रेज़ मित्रोंके बड़े कृतज्ञ होंगे यदि वे इस विषयमें हमें कोई सलाह बताएँ जिससे हम अपनी साख बनाए रक्खें और बढ़ा लें। मगर मैं उन्हें स्मरण करा देना चाहता हूँ कि हम भारतवासी अपने देशके प्रति अपना कर्त्तव्य समझते हैं और हम मानते हैं कि किसी शासनका प्रबन्ध करनेके लिये साखकी बड़ी ज़रूरत है; और हम लोग ऐसी कोई बात नहीं करना चाहते जिससे उस साखमें बट्टा लगे। इसके विपरीत हम उस साखको बनाए

रखनेके लिये, भारतके हितकी दृष्टिसे जो कुछ सम्भव है वह सब करनेको राज़ी हैं। इसी प्रकार आर्थिक नीतिके विषयमें भी। ज़रूरत इस बातकी है कि हमसे अनिश्चित और असम्बन्धित प्रस्तावोंपर राज़ी होनेको न कहा जाय; किन्तु हम प्रत्येक मामलेके गुण दोषकी जाँच करें, और जहाँ यह जान पड़े कि भारतके हितमें इन विशेष संरक्षणोंकी ज़रूरत है, उसके लिये जो सलाह दी जायगी उसे धन्यवादसहित हम सब बड़ी खुशीसे ग्रहण करने और वाद-विवाद करनेको सहमत हैं। हम चाहे तो आपको विश्वास करा देंगे या आपकी बात स्वीकार कर लेंगे। दोनों दशाओंमें मुझे आशा है कि हमारे आपके बीच जो समझौता होगा उससे परिस्थिति बहुत सुधर जायगी।

यहाँपर मैं अन्य प्रश्नोंका ज़िक्र कर देना उचित समझता हूँ; किन्तु मैं देखता हूँ कि समय थोड़ा रह गया है। अतएव मुझे जो कुछ कहना है, सङ्क्षेपमें ही कहूँगा। यदि आप समस्यापर सही दृष्टिकोणसे देखें तो भारतीय रजवाड़ोंका प्रस्तावित सङ्घ-शासनमें खुशीसे शरीक़ होनेकी बातका मैं अत्यन्त हार्दिक स्वागत करता हूँ। मैं इस विचारका हृदयसे समर्थन करता हूँ कि भारत सङ्घटित होना चाहिए, चाहे कुछ बातोंमें भिन्नता रहे। मेरा मतलब केवल यह है कि यदि हम उस विचारको स्वीकार कर लें, तो विस्तृत रूपमें जिन प्रश्नोंपर वाद-विवाद करना पड़े, उनसे हमें दूर नहीं भागना चाहिए। मेरा यह विचार नहीं है कि अभी वह समय आ पहुँचा है जब हमें उन सब विस्तृत प्रस्तावोंको स्वीकार कर लेना चाहिए, उनमें अभी बहुत अधिक जाँच करनेकी ज़रूरत पड़ेगी, किन्तु वह सब विस्तार और व्याख्या है। यदि एक बार यह निर्णय हो जाय कि सङ्घ-शासनकी स्थापना की जायगी, जिसमें देशी रियासतें और ब्रिटिश भारत साथ-साथ काम करेंगे, तो शेष सब बातें तै करना कठिन न होगा। प्रमुख बात स्वीकार करनेकी यह है कि देशी रियासतोंके राजा-महाराजाओंकी अखिल भारतीय सङ्घ-शासनमें आनेकी स्वीकृतिने इस समस्याको एक रूप दे दिया है, जो स्वागत करने योग्य है, क्योंकि नवीन भारत-सरकारका एक तिहाई भारतपर राज्य करनेवाले राजाओंसे कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं रहेगा, ऐसा सोचना असम्भव था। अतएव राजा-महाराजाओंकी स्वीकृति एक ऐसी शुभ बात है, जिसके लिये हम अपनेको, उन राजाओंको और सारे देशको बधाई देते हैं।

जिन प्रश्नोंपर विचार करना है उनमें सभाओं (हाउसों) का निर्माण और रियासतोंका प्रतिनिधित्व आदि हैं, किन्तु उन सबमें विस्तृत व्याख्याकी ही ज़रूरत है। इसी भाँति रजवाड़े और रियासतोंके अधिकारोंका प्रश्न है, जो उन्हें दिए जाने चाहिएँ। लेकिन श्रीमन् लॉर्ड चैन्सलर! मेरी समझमें ऐसी कोई बात नहीं आती जिससे सङ्घ-शासनकी स्थापनामें कोई कठिनाई उपस्थित हो। हम आपकी और यहाँ उपस्थित अंग्रेज़ राजनीतिज्ञोंकी सहायतासे और राजा-महाराजाओंकी सहायतासे भारतके लिये एक ऐसे सङ्घ-शासन विधानका निर्माण कर सकेंगे जो सदाके लिये सन्तोषप्रद और पुष्ट साबित होगा।

जहाँतक अल्प-संख्यक जातियोंका प्रश्न है, मैं निवेदन करता हूँ कि उससे भी शासन-विधान निर्माण करनेमें कोई रुकावट नहीं पड़नी चाहिए। अल्प-संख्यक जतियोंका भी प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है। कोई व्यक्ति, जो एक उपयोगी शासन-विधानका हामी है, अल्प-संख्यक जातियोंको सन्तुष्ट करनेकी आवश्यकताको अस्वीकार न करेगा। मुझे विश्वास है कि हमारा आपसमें एक राज़ीनामा हो जायगा। यही अभीतक मेरी आशा है, किन्तु यदि हम ऐसा न कर पावें, तो वह प्रश्न ऐसा है जो अन्य प्रकारसे हल किया जा सकता है। यह कल्पना करना मेरे लिये असम्भव है कि भारतवर्ष जैसे महान् देशके भावी शासन-विधानके मार्गमें अल्प-संख्यक जातिके छोटेसे प्रश्नको लाकर रोड़ा अटकाया जाय। मैं उसे छोटा प्रश्न इसलिये नहीं कहता, क्योंकि मैं उसे

कम महत्त्व देता हूँ, किन्तु मेरा विश्वास है कि वह एक ऐसा प्रश्न है जो तै किया जा सकता है और ऐसा नहीं है कि तै न किया जा सके और मुझे आशा है कि जब हम लोग अपने वादविवादमें आगे बढ़ लेंगे तो उसे हल करनेका हमें कोई मार्ग सूझ जायगा जिसकी सहायतासे हम शासन-विधान निर्माण-कार्य्यमें आगे बढ़नेमें समर्थ होंगे।

पैंतालीस वर्ष हो गए जब प्रथम ही मैं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें सम्मिलित हुआ। राष्ट्रीय स्व-शासन स्थापित करनेके लिये जो प्रस्ताव उसमें उपस्थित हुआ था उसे समर्थन करते हुए अन्तमें मैंने निम्नलिखित शब्द कहे थे, और मुझे यह देखकर खेद है कि अर्द्ध शताब्दी बीत जानेपर भी आज फिर उन्हीं शब्दोंमें मुझे समाप्त करना पड़ रहा है कि "हमने अपने अंग्रेज़ भाइयोंसे कहा है कि भारतमें पूर्ण स्वायत्त-शासन स्थापन करनेमें हमें सहायता दें।" मुझे आशा है कि हिन्दुस्तानमें और इङ्गलैण्डमें प्रत्येक सच्चे अंग्रेज़का ध्यान स्वतन्त्रता और न्यायके निमित्त निमग्न रहेगा, और प्रत्येक सच्चा बृटन, जो उन स्वत्त्वों, विशेष अधिकारों व स्वतन्त्रताका मूल्य करता है, जिन्होंने उनको और उनके देशको वर्त्तमान उच्च दशामें पहुँचाया है, सच्चे बृटनकी भाँति हमारी मदद करेगा जिससे हमारी समान स्वत्त्वों, समान विशेषाधिकारों और समान स्वतन्त्रताकी कामनाएँ पूर्ण हो सकें।

राष्ट्र-रक्षा

लन्दनकी गोलमेज़ सभामें सङ्घ-निर्माण शासन-समितिकी छियालीसवीं बैठक जो १६ वीं नवम्बर सन् १९३१ को हुई थी, उसमें महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका भाषण।

श्रीमन् चान्सलर महोदय !

मुझे विश्वास है कि हम सर तेजबहादुर सप्रूके अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि उन्होंने बड़ी स्पष्टता और योग्यताके साथ राष्ट्र-रक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नको आरम्भ किया है।

सर तेजने जो कुछ कहा है मैं उसके बहुत अंशसे सहमत हूँ, किन्तु कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें हैं जिनपर मेरा उनसे मतभेद है। मैं सोचता हूँ कि हम इस बातपर एकमत हैं कि उत्तरदायित्वपूर्ण स्वराज्य स्थापित होनेके साथ हम भारतीयोंपर सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी राष्ट्र-रक्षाकी होगी। मैं नहीं समझता कि इस विषयपर दो मत हो सकते हैं। गत वर्ष जो वाद-विवाद हुए थे उनमें उक्त विषयपर विचार करनेवाली उप-समितिने यह कहा था कि यह स्वीकार कर लेनी चाहिए कि भारतकी रक्षाकी ज़िम्मेदारी भारतीयोंके कन्धेपर पड़े। यदि ऐसी बात है तो मैं कहता हूँ—और मुझे विश्वास है कि हर कोई इससे सहमत होगा—कि भारतीयोंको अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करनेका उचित अवसर मिलना चाहिए। उस ज़िम्मेदारीके अनुसार उन्हें राष्ट्रीय सेना बनानी चाहिए और उसकी योग्यता बढ़ानी चाहिए। इसका तात्पर्य्य यह है कि उन्हें आर्थिक तथा अन्य सब प्रकारकी वह सहायता देनी चाहिए जो सेनाके लिये आवश्यक हो। उस उत्तरदायित्वको पूरा करनेके लिये उन्हें सुयोग देनेको और देशमें अमन-चैन स्थापित करनेके लिये और इस प्रकार उन्नति करनेके लिये यह आवश्यक है कि उन्हें सेनापर पूरा अधिकार मिले।

जबतक भावी व्यवस्था-विधानमें सेनाका पूर्ण अधिकार हमें नहीं मिल जाता तबतक देशमें उत्तरदायित्वपूर्ण शासनका प्रारम्भ उचित रीतिसे नहीं हो सकता। यदि यह विचार हो कि राष्ट्रीय-सरकारका सेनापर कोई अधिकार ही नहीं होगा, तब यह स्थिति तो बिल्कुल व्यर्थ ही सी होगी। ये सरकारमें उतना विश्वास न करेंगे, जितना वे यह जानकर करेंगे कि सरकार वास्तवमें पूर्ण सरकार है, जिसके हाथमें वे सारे साधन और सारी शक्तियाँ हैं, जो प्रत्येक सभ्य सरकारके हाथमें होती हैं। इसलिये मेरा निवेदन है कि इस मुख्य प्रश्नपर इस समितिको चाहिए कि वह अपना मत स्पष्ट प्रकट कर दे कि भारतवासियोंको भावी ज़िम्मेदारी वहन करनेके लिये तथा सहायता देनेके लिये यह आवश्यक है कि सेनाका शासन उनको प्रारम्भ ही से मिल जाना चाहिए।

यदि यह बात तै हो जाय तब मैं कहूँगा कि मैं सर तेजबहादुर सप्रूसे इस बातमें सहमत हूँ कि सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हो कि सैन्य-सदस्य कोई भारतीय नियुक्त किया जाय। भारतीय सैन्य-सदस्यकी नियुक्तिके विषयमें मैंने सन् १९२१ ई० में होनेवाली रैलिन्सन-समितिके सामने भी कहा था और मुझे इस बातकी प्रसन्नता है कि पारसाल गोलमेज़ सम्मेलनमें

भाग लेनेवाले सर तेजबहादुर सप्रू तथा अन्य सदस्योंने इस बातका ज़ोरदार समर्थन किया है, किन्तु जब मैं राष्ट्र-रक्षाके लिये प्रबन्ध करनेका पहला पैर बढ़ानेके लिये भारतीय सैन्य-सदस्यकी नियुक्तिकी आवश्यकतापर सहमत हूँ, मैं सर तेजबहादुर सप्रूके इस मतको नहीं मानता कि यह सदस्य गवर्नर-जनरलके अधीन हो। मेरा निवेदन है कि वह व्यवस्थापिका सभाओंके ही अधीन हो, जैसे कि राष्ट्रीय-सरकारके अन्तर्गत अन्य मन्त्री होंगे। किन्तु यह कहा जा सकता है कि इस मार्गमें एक अड़चन है और वह भारतमें बृटिश सेनाके रहनेका प्रश्न है। कमेटीको यह पता है कि भारतकी सेनाके दो भाग हैं। एक तो भारतीय सेना है, जिसमें सन् १९२८ ई० में एक लाख अट्ठावन हज़ार एक सौ तैंतालीस भारतीय सैनिक और चार हज़ार आठ सौ तैंतीस भारतीय सैनिक अफ़सर वाइसरायके कमीशनमें थे तथा छः हज़ार नौ सौ अट्ठानवे अफ़सर बादशाहके कमीशनमें और एकसठ हज़ार पाँच सौ सैंतीस बृटिश सैनिक थे। मैं समझता हूँ कि बिना किसी कठिनाईके इसे सब स्वीकार करेंगे कि भारतीय सदस्यको भारतीय सेना सुपुर्द रहे, जिसमें भारतीय सैनिक और उनके ऊपर अधिकतर बृटिश अफ़सर और कुछ भारतीय अफ़सर रहें, किन्तु इसमें एक कठिनाई बतलाई गई है जैसा कि मैंने यहाँपर अपने बृटिश मित्रोंसे बात-चीत करनेपर मालूम किया है और वह भारती सदस्यके अधीन गोरा पल्टन रखनेकी है। यह कहा जाता है कि गोरा पल्टन भारतीय सदस्यके अधीन काम नहीं करेगी। मुझे यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। मेरा विचार था कि हमारे बृटिश भाइयोंकी यह इच्छा है कि भारतवर्ष बृटिश साम्राज्यके अन्तर्गत ही रहे और वे यह स्वीकार कर चुके हैं कि उसके लिये यह भी आवश्यक है कि हम लोगोंको सब मामलोंमें समान अधिकार दिए जायँ, हम लोग समान पदपर रहें और यदि हम लोग समान पदपर हों तथा राजाकी समान प्रजा हो तो मेरा कहना है कि उसका मतलब यही है कि आज्ञा देनेवाला अफ़सर चाहे तो भारतीय हो और चाहे वह अंग्रेज़ हो, उस आज्ञाका पालन कर्त्तव्य समझकर प्रत्येकको करना चाहिए। किन्तु यदि यह बात हमारे मित्र बृटिश प्रतिनिधियोंको स्वीकार न हो, तो मेरा निवेदन है कि राष्ट्र-रक्षाके हेतु राष्ट्रीय सेनाका सङ्गठन करनेमें बहुत बड़ी कठिनाई उपस्थित होगी। इस सम्बन्धमें मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि इस प्रश्नपर इस दृष्टिसे भी विचार करना चाहिए कि गोरा पल्टनको भारतके नवीन विधानके अनुसार भारतमें हमेशाके लिये रखना बृटिश राजनीतिज्ञोंकी इच्छा नहीं है। यह बात प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करता है कि भारतमें गोरा पल्टन केवल कुछ निश्चित अवधितक ही रहेगी। यदि ऐसा है तब तो यह और भी अधिक युक्तिपूर्ण है कि इस बातपर क्यों न ज़ोर दिया जाय कि गोरा पल्टन भारतीय सदस्यके ही अधीन रहे।

मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जब मैं सेनाको भारतीय सदस्यके अधीन रखनेकी बात कहता हूँ तो मेरा तात्पर्य्य वैसे ही अधिकारसे है जैसा कि प्रत्येक सभ्य शासनके अधीन सदस्यको दिया जाता है। मैं यह कल्पना नहीं करता कि क़वायद, अनुशासन, युद्ध-क्षेत्र-कार्य्य या सेनाकी आवश्यकताएँ और अन्य बातोंमें हस्तक्षेप होना चाहिए। वह मामले तो कमाण्डर-इन-चीफ़के शासनके अन्तर्गत आते हैं जिसको जैसा कि सर तेजबहादुर सप्रूने प्रस्तावित किया है—एक परामर्श-समितिद्वारा सलाह दी जाया करेगी, जो मैं समझता हूँ अति वाञ्छनीय है। किन्तु उन सैनिक-विशेष बातोंको छोड़कर अन्य सारे मामलोंमें सैनिक-सदस्यको अधिकार रहना चाहिए। उसे यह भी अधिकार होना चाहिए कि वह कमाण्डर-इन-चीफ़ या कमाण्डिङ्ग अफ़सरको आवश्यकता पड़नेपर सेनाको देशके एक भागसे दूसरे स्थानको ले जानेके लिये कहे। यहाँ पर हमारे कुछ मित्रोंके मनमें यह कठिनाई उठ सकती है कि भारतीय सैनिक सदस्य शायद आवश्यकता पड़नेपर सेना भेजनेमें असमर्थ

ठहरें। ऐसी सङ्कट-कालीन परिस्थितिके लिये मैं चाहता हूँ कि हम लोग व्यवस्था-विधानमें यह वात शामिल कर दें कि किसी वाहरी हमलेके होनेकी आशंका साबित होने पर अथवा सरकारकी सत्ता नाश होनेके समय गर्वनर-जनरल यदि आवश्यक समझे तो वाहरी हमलेको अथवा देशके अन्दरकी बग़ावतको रोकनेके लिये विधानको आवश्यकताके अनुसार रद्द कर दे और स्वयं सेना-सञ्चालनका कार्य्य अपने हाथमें ले ले। इस प्रकारकी सुविधा सङ्कटका सामना करनेके लिये कर देनेपर मेरी समझमें यह वात नहीं आती कि भारतीय सैनिक सदस्यको उन अधिकारोंको उपयोगमें लानेपर क्यों आपत्ति की जाती है जिनको वे इस देशमें और अन्य देशोंमें व्यवहारमें लाते हैं।”

सभापति महोदय—क्या आप यहाँपर मुझे यह वतलानेका कष्ट करगे ? मैंने आपसे जो कहा है उसका एक सारांश आपकी सुन्दर भाषामें नहीं वरन् अपनी याददाश्तके लिये लिखा है :—

“प्रमाणित सङ्कटके समय, चाहे वह वाहरी हो या देशके अन्दर, गवर्नर-जनरल उसका भार ग्रहण करें।

पण्डित मालवीयजी—हाँ, व्यवस्था-विधानको उस आवश्यक सीमातक रोक दे और उसका भार ले ले।

सभापति—हाँ, यह तो ठीक ही है और साथ ही सेनाका भी प्रबन्ध अपने हाथमें ले ले। यह “प्रमाणित सङ्कट” में ही होगा और मैं विश्वास करता हूँ कि वड़े लाट ही वह व्यक्ति होंगे जो निश्चित कर सकें कि ऐसा सङ्कट है या नहीं ?

पण्डित मालवीयजी—हाँ, किन्तु इस विषयमें वह अपने मन्त्रियोंसे परामर्श अवश्य करेंगे।

सभापति—हाँ, यदि वे वहुत मूर्ख मनुष्य न हों तो ?

पण्डित मालवीयजी—वह इसके लिये अपने कारण भी पेश करेंगे जो उनके शीघ्रतासे वह अधिकार काममें लानेमें संरक्षक होंगे।

सभापति—“वह अपने कारण लिखेंगे” काहेमें, किस चीज़में—किसी अख़बारमें ?

पण्डित मालवीयजी—नहीं श्रीमन्, मैं नहीं समझता कि कोई भी गवर्नर-जनरल इन कारणोंको अख़वारमें लिखता होगा।

सभापति—मुझे आश्चर्य्य है कि वह उन्हें कहाँ लिखेगा ? किसी किताबमें ?

पण्डित मालवीयजी—उसको सरकारी काग़ज़ोंमें लिखेगा या उस काग़ज़पर जो सरकारी काग़ज़ वन जायगा।

सभापति—अवश्य ही प्रेसमें छपवानेके लिये नहीं ?

पण्डित मालवीयजी—नहीं।

सभापति—मैं वहुत उपकृत हूँ।

पण्डित मालवीयजी—जबतक वह उसे आवश्यक न समझे। ऐसे अवसर आए हैं जब कि अपने कार्य्यको न्यायोचित प्रमाणित करनेके लिये वह यह प्रकट करनेकी इच्छा करे कि उसने क्यों ऐसा असाधारण कार्य्य किया।

अब श्रीमन्, यह एक ऐसा विषय है जिसपर मुझे एक खेदके साथ कहना पड़ता है। मैं अपने मित्र सर तेज वहादुर सप्रूसे असहमत हूँ, किन्तु मैं समझता हूँ कि यह एक ऐसा विषय है जिसपर एकमत होना असम्भव है, क्योंकि मैं चाहता हूँ, जैसा कि वह भी चाहते हैं कि किसी सङ्कटके समय कठिनाईको दूर करनेके लिये गवर्नर-जनरल अपने विशेष अधिकारोंको काममें ला सकता है।

इसके पश्चात् श्रीमन् अन्य अधिकार आते हैं जिनका भारतीय सैनिक सदस्यपर भार आता है और इनमें सबसे मुख्य राष्ट्रीय सेनाके निर्माण करनेका कर्त्तव्य है। भारतीय सेना, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, एक लाख पचास हज़ार सैनिकोंकी है और हमारे सैनिकोंकी वीरता प्रमाणित है।

सभापति—क्या आपका कहना है कि सन् १९२२ ई० की यह संख्या थी।

पण्डित मालवीयजी—हाँ, सन् १९२२ ई०।

सभापति—मेरे पास सबसे वादकी संख्याके आँकड़े हैं जो एक लाख साठ हज़ार है।

पण्डित मालवीयजी—धन्यवाद। जब मैं ख़र्चके प्रश्नको लूँगा तब सर तेजबहादुर सप्रूने जो कुछ कहा है उसके अनुमोदनमें इस कमेटीको सैनिक ख़र्चमें कमी करनेकी आवश्यकताके विषयमें याद दिलाऊँगा। भारतमें गोरा पल्टनको रखनेके प्रश्नको दो तरहसे देखना चाहिए। प्रथम, देशमें उनकी आवश्यकता जिसका कारण बाहरी या भीतरी ख़तरेका डर हो सकता है और दूसरे क़िफ़ायतका प्रश्न है।

सभापति—मैं आशा करता हूँ कि आप इन दोनों प्रश्नोंपर प्रकाश डालें, क्योंकि मैं इन दोनों प्रश्नोंपर मत जाननेके लिये चिन्तित हूँ। यदि आप कृपा करके अपनी बातचीतमें दो प्रश्नोंपर ही बोलेंगे। मैं चाहता हूँ कि आप हमें यह बतलाएँ, प्रथम कि आप समझते हैं कि जो वर्त्तमान सेना है वह बहुत बड़ी है, इसपर मैं आपका मत डालना चाहता हूँ और दूसरे क्या आप समझते हैं कि उसका ख़र्चा बहुत अधिक है हालाँ कि ये दोनों प्रश्न भिन्न हैं।

पण्डित मालवीय—श्रीमन्, मैं समझता हूँ कि इस समयकी जो सेना है वह बहुत अधिक है तथा देशकी आवश्यकताओं और जनताकी उसके ख़र्चको वहन करनेकी शक्तिको देखते हुए भी अत्यधिक है।

सभापति—"शक्ति" की बातपर हम थोड़ी देरमें विचार करेंगे। भारतमें सेनाकी संख्या कितनी होनी चाहिए, इसपर आपकी क्या सम्मति है? क्या आप किसी परिणाम पर पहुँचे हैं?

पण्डित मालवीयजी—मुझे स्वयं इस विषयपर सम्मति देनेका साहस न करना चाहिए, किन्तु मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ सर तेज बहादूर सप्रूने जो कुछ कहा है उसके अनुमोदनमें थोड़ीसी भिन्नताके साथ यह है हमें भारतीय नेताओं और सैनिक विशेष शक्तियोंकी एक समिति नियुक्त करनी चाहिए जो इस प्रश्नको कि सेनाकी संख्या कितनी होनी चाहिए विचार करे और रिपोर्ट दे तथा भारतकी भविष्य सरकार उसकी सिफ़ारिशके अनुकूल काम करे। मैं इसके लिये तैयार हूँ कि ऐसी एक समिति अब भी नियुक्त कर दी जाय और समितिकी सिफ़ारिशको सम्राट्की सरकार और इस सम्मेलनके प्रतिनिधियोंद्वारा मञ्जूर होकर हमारे राज़ीनामेका एक हिस्सा हो जाय जिसपर नया शासन-विधान स्थापित करना है। मैं यह कहनेका साहस नहीं करता कि ठीक कितनी कमी होनी चाहिए, क्योंकि मुझ जैसे साधारण व्यक्तिको उसपर मत प्रकट नहीं करना चाहिए।

सभापति—नहीं, बिल्कुल ठीक है।

पण्डित मालवीयजी—किन्तु मैं यह अवश्य निवेदन करता हूँ कि सेनाकी संख्या जितनी होनी चाहिए उससे अधिक है।

सभापति—तब क्या आप एक निश्चित संख्याकी बात कर रहे हैं या अनिश्चित?

पण्डित मालवीयजी—मैं वर्त्तमान सेनाकी एक निश्चित संख्याकी बात सोचता हूँ किन्तु मेरा प्रस्ताव है कि हमें वही करना चाहिए जो अन्य सभ्य राष्ट्र कर रहे हैं—वर्त्तमान सेनाके साथ एक राष्ट्रीय सेनाको भी जोड़ दिया जाय। जापानने एक छोटीसी राष्ट्रीय सेनासे आरम्भ किया था। उसके पास एक बहुत बड़ी सेना हो गई है। भारतवर्षको एक देश-रक्षक सेनाकी आवश्यकता है। भारतवर्ष एक स्थायी सेनाका उतना ख़र्च नहीं दे सकता जितना कि इस समय है। अतएव मेरा प्रस्ताव है कि एक ऐसी छोटीसी सङ्गठित स्थायी सेना होनी चाहिए जिसकी संख्या सैनिक विशेषज्ञ और नेता लोग निश्चित करें और एक नागरिक सेना होनी चाहिए जो कि काफ़ी बड़ी हो और सङ्कटमें काममें लाई जा सके। इस प्रकार राष्ट्रके रक्षाके लिये लोगोंको जल्दी तैयार किया जा सकता है और ख़र्चमें भी बहुत काफ़ी क़िफ़ायत की जा सकती है।

सभापति—आप नागरिक सैनिकको शिक्षित करनेके लिये कितना समय चाहते हैं?

पण्डित मालवीयजी—साधारणतया मैं समझता हूँ कि तीन वर्षकी अवधि, अठारहसे इक्कीस वर्षकी उम्रतक काफ़ी होनी चाहिए, इसके साथ आगे चलकर उसकी

उद्धरणी ही होती रहनी चाहिए। किन्तु यहाँ पहलेकी तरह मुझे कुछ निर्देशक नहीँ होना चाहिए। ये ऐसे विषय हैँ जिनपर, जैसा कि मैँ पहले कह चुका हूँ, मैँ चाहता हूँ कि भारतकी भविष्य सरकार, सैनिक विशेषज्ञोँ और नेताओँकी सिफ़ारिश पर निर्भर करे, जो साथ-साथ बैठकर और समिति बनाकर निश्चय करे। मैने इसका ज़िक्र किया है, क्योँकि मैँ विश्वास करता हूँ कि यही पद्धति प्रयोगमेँ लानी है, इसके अनेक गुण हैँ क्योँकि दोनोँ प्रकारसे एक तो वह जनतामेँ राष्ट्र-रक्षाकी भावना उत्पन्न करेगी और दूसरे इससे ख़र्चमेँ भी बहुत किफ़ायत होगी।

सभापति—नागरिक सेनाकी संख्याके विषयमेँ आपका क्या विचार है?

पण्डित मालवीयजी—यह तो स्थितिपर निर्भर है। पहलेकी तरह यह भी वैसा ही विषय है जिसपर कोई सिद्धान्त निर्धारित करना शायद बुद्धिमत्ता न होगी।

सभापति—क्या वह स्वयंसेवाकी तरह होगी? आप उसका क्या ख़र्च समझते हैँ?

पण्डित मालवीयजी—ख़र्चेका हिसाब फैलाना होगा, मैँ आपको निश्चित संख्या नहीँ बतला सकता किन्तु वह व्यय चाहे कुछ भी हो वाञ्छनीय है, क्योँकि सब मिलाकर उस प्रकारकी एक नागरिक सेनाका व्यय, स्थायी सेनाके व्ययका कुछ अंश होगा और जितनी ही नागरिक सेना बड़ी होगी उतना ही अधिक स्थायी सेनाका ख़र्च घटानेका मौक़ा रहेगा।

सभापति—ज़रा एक अन्तिम प्रश्न है, क्या उसके लिये भारतवर्षके तमाम भागोँसे भर्त्ती होगी?

पण्डित मालवीयजी—उसके लिये भारतके तमाम भागोँसे भर्त्ती होगी और उसमेँ सब वर्गोँसे रङ्गरूट भर्त्ती किए जायँगे। मैँ समझता हूँ कि आपके इस देशमेँ यह प्रथा है कि सैनिक वृत्तिके लिये स्कूलोँमेँसे लड़कोँको छाँट लिया जाता है और स्कूलोँमेँ उन्हेँ सैनिक शिक्षा दी जाती है और इसके बाद उन्हेँ एक केन्द्रीय संस्थामेँ अफ़सरोँके लायक़ ऊँची शिक्षा देनेके लिये भेज दिया जाता है। उसी प्रकारकी पद्धतिका विचार मेरे मनमेँ है। किन्तु हमेँ विभिन्न पद्धतियोँको यह जाननेके लिये जाँच करनी चाहिए कि भारतवर्षके लिये सबसे अधिक उपयोगी कौनसी पद्धति होगी।

अब श्रीमन्, भारतीय सैनिक सदस्यका यह कर्त्तव्य भी, उसके सैनिक बजटके पेश करनेके कर्त्तव्यसे कम महत्त्वपूर्ण न होगा, और जहाँतक इस कार्य्यका सम्बन्ध है, यदि भारतीयोँको तमाम शास्त्रोँमेँकी शिक्षा देनी है तो स्वयं भारतीयोँके सिवाय किनका अधिक सन्तोषके साथ पूर्णतया विश्वास किया जा सकता है कि उनको ऐसी शिक्षा मिल रही है। एक भारतीय सदस्य जो व्यवस्थापिका सभाके अधीन रहकर व्यवस्थापिका सभासे सब सामग्री पाकर और व्यवस्थापिका सभाके प्रस्तावोँके अनुसार भारतीयोँको तमाम अस्त्र-शस्त्रकी शिक्षाके प्रबन्ध करनेवाला ही उपयुक्त व्यक्ति होगा जो राष्ट्रीय सेनाको निर्माण करनेके लिये ज़रूरी है।

बहुतसी समितियाँ जो अबतक नियुक्त हो चुकी हैँ उन सबका इतिहास हमको मालूम है। इसकी एक दुःखपूर्ण कथा है। जबसे सन् १८५८ ई० से भारतीय सेनाका पुनः सङ्गटन हुआ है, हम सेनाके ख़र्चके विरुद्ध बहुत जोरोँसे शिकायत करते रहे और भारत-सरकारने स्वयं बार-बार शिकायत की है। मैँ समझता हूँ कि शायद ही अन्य कोई ऐसा विषय हो, जिसके सम्बन्धमेँ भारत-सरकारने इतनी जोरोँसे और इतनी अधिक बार शिकायत की हो जितना कि सैनिक ख़र्चके विषयमेँ, किन्तु उनके विरोध बेकार साबित हुए। ज़रा भारत-सरकारके विचारकी उग्रता प्रदर्शित करनेके लिये मैँ उन विरोधोँका एक उदाहरण देता हूँ, जो उन्होँने किए और जिनकी यहाँके युद्ध-विभागने और सम्राट्की सरकारने परवाह नहीँ की। जिस ख़रीतेका मैँ यहाँ ज़िक्र करूँगा ऐसे बहुतसे ख़रीते भारत-सरकार भेज चुकी है। ८ फ़रवरी सन् १८७८ ई० मेँ भारत-सरकारने यहाँकी सरकारको लिखा कि—"जो गम्भीर उत्तरदायित्व उसके ऊपर है कि बृटिश साम्राज्यके सबसे बड़े उपनिवेशका शासन इस प्रकार

किया जाय कि बृटिश सत्ताकी दृढ़ताके साथ रक्षा हो, साथ ही उस ध्येयकी पूर्त्तिके लिये देशकी जनतापर अत्यधिक भार न पड़े, इस कारण सम्राट्‌की सरकारसे विवश होकर यह प्रार्थना की जाती है कि गोरा पल्टनके कारण जनतापर बहुत अधिक भार पड़ता है, और उससे बहुत अधिक है जितना एक निष्पक्ष न्याय-द्वारा दोनों देशोंकी सापेक्ष आर्थिक सम्पत्तिको ध्यानमें रखकर और जिस पारस्परिक सम्बन्धसे वे जुड़े हुए हैं उसको भी ध्यानमें रखकर निश्चित हो सकता है…… जो कुछ हम कर सकते हैं यह है कि बृटिश-सरकारसे अपील करते हैं कि दोनों देशोंकी सापेक्ष आर्थिक स्थितिको निष्पक्ष भावसे देखकर उन ख़र्चोंका भार पड़ना चाहिए जो ग्रेट बृटेनकी फ़ौजको रखनेके लिये किया जाता है और संसारके सबसे धनवान राष्ट्रने अपने अधीन इतने ग़रीब और इतने कम उन्नत भारत जैसे उपनिवेशके ऊपर जो ख़र्चेका भार बाँधा है उसपर ज़रा उदारतासे विचार होना चाहिए"।

सभापति—यह तो अफ़ग़ानोंसे दूसरे युद्धके पहले सालकी बात है।

पण्डित मालवीयजी—यह सन् १८७८ ई० की बात थी। दूसरे अफ़ग़ान युद्धके बाद सरकारने एक फ़ौजी कमीशन नियत किया, जिसने फ़ौजी ख़र्चेको घटानेकी सिफ़ारिश की। यह रिपोर्ट जहाँतक मुझे ध्यान है सन् १८८० ई० में की गई थी।

सभापति—क्या यह लौर्ड रिपनके भारत पहुँचनेके पहले या बादकी बात है?

पण्डित मालवीयजी—मैं समझता हूँ कि यह पहलेकी बात है। लौर्ड रिपन सन् १८८० ई० से सन् १८८४ ई० तक थे, तबसे इतने अधिक दिनोंसे बराबर हम लोग फ़ौजी ख़र्चके बहुत अधिक होनेकी बराबर शिकायत करते रहे हैं, जो कि हमारे देशवासियोंकी उस भारको वहन करनेकी शक्तिसे बहुत अधिक है। हेग-सम्मेलनने यह नियम निर्धारित किया था कि किसी भी देशको अपनी आयका बीस फ़ी सदीसे अधिक फ़ौजपर ख़र्च नहीं करना चाहिए। भारतमें उसपर आयका पैंतालीस प्रतिशत ख़र्च किया जाता है। हाल ही में आर्थिक दशा बहुत ख़राब होनेके कारण इसमें कुछ कमी की गई है, लेकिन वह तुच्छ है। हम लोग बहुत अधिक कमी करनेके लिये अनुरोध करते रहे हैं।

यह ख़र्च दो तरीक़ोंसे कम किया जा सकता है। एक तो गोरा पल्टनको हटाकर और धीरे-धीरे उसे भारतसे बिलकुल हटा करके। जब यह स्वीकार किया जा चुका है कि भविष्यमें भारतीयोंको स्वयं ही भारतकी रक्षाका भार वहन करना पड़ेगा, गोरा पल्टनको हटाना ही पड़ेगा। किन्तु गोरा पल्टनको हटानेका प्रश्न दो प्रकारसे देखा जा सकता है, एक तो फ़ौजका कुछ भाग तुरन्त ही हटा लिया जाय और दूसरे बची हुई सेनाको कुछ समयके अन्दर धीरे-धीरे हटाया जाय। इस समय साठ हज़ार पल्टनमेंसे लगभग तीस हज़ार देशके भीतरकी रक्षाके हेतु बतलाई जाती है। इसके ख़र्चका भार देशके ऊपर बहुत अधिक पड़ता है और अनेक बार यह अनुरोध किया गया है कि भीतरी रक्षाके लिये गोरा पल्टनकी संख्या बहुत अधिक बढ़ा दी गई है और उसको हटा लेना चाहिए।

सभापति—हटा लिया जाय या घटा दिया जाय।

पण्डित मालवीयजी—गोरा पल्टनका वह भाग, जो देशकी रक्षाके हेतु बतलाया जाता है, हटा लेना चाहिए अथवा इङ्गलैण्डमें वापस बुला लेना चाहिए। इससे देशका आर्थिक भार बहुत हलका हो जायगा। यदि यह न हो सके, यदि विशेषज्ञोंकी समिति, जिसके लिये मैंने प्रस्ताव किया है, यह राय दे कि एकदम इतनी बड़ी संख्यामें उनको नहीं हटाना चाहिए, तो हम आशा करते हैं कि समिति यह बतलायगी कि उनको कुछ सालोंके अन्दर धीरे-धीरे किस प्रकार हटाया जा सकता है।

यह सैनिक ख़र्चको कम करनेका एक मुख्य साधन है। जबसे कांग्रेसका जन्म हुआ है, हम बहुत वर्षोंसे ख़र्चा घटानेका अनुरोध करते रहे हैं, लेकिन हमारी

प्रार्थनाकी कोई सुनवाई नहीँ की गई। अब चूँकि ऐसा अवसर आया है जव सरकार आर्थिक कारणोँके कारण उस ख़र्चेको घटानेके लिये विवश हुई है और उसमेँ सुधार करनेका सबसे अच्छा मार्ग यही है कि फ़ौजी ख़र्चमेँ तुरन्त ही वहुत अधिक कमी करनेके लिये भारतकी गोरा पल्टनमेँ कमी कर दी जाय।

सैनिक सदस्यके कर्त्तव्योँका दूसरा पहलू यह है—जैसा कि मैँ निवेदन कर चुका हूँ कि सेनाके भारतीय सैनिकोँकी देख-भाल करनी होगी, तीसरे राष्ट्रीय नागरिक सेनाका सङ्गठन करना और चौथे देशमेँ सब प्रकारके अस्त्रोँकी सैनिक शिक्षाके लिये संस्थाएँ स्थापित करना और उनको चलाना।

सभापति—आपकी समझमेँ फ़ौजी ख़र्चका इलाज केवल सैनिक टुकड़ियोँको हटा लेनेमेँ ही है या आपका यह भी कथन है कि अन्य मार्गोँमेँ वचत करनेसे उसमेँ कमी की जा सकती है।

पण्डित मालवीय—मैँ ऐसी स्थितिमेँ नहीँ हूँ कि उसके भीतरी मामलेका कोई मुझे ज्ञान होनेसे यह नहीँ कह सकता कि किन दिशाओँमेँ और कहाँतक वचत की जा सकती है। लेकिन मुझे अपने वहुतसे देशवासियोँके साथ ही विश्वास है कि फ़ौजका ख़र्च वहुत अधिक है और वहुत दिशाओँमेँ उसमेँ कमी की जा सकती है। कुछ तो उसमेँसे विल्कुल अनुचित है। ज़रा टैक्सको देखिए जो इङ्गलैण्डसे भेजे हुए प्रत्येक गोरा सैनिकके लिये भारतमेँ प्रवेश करनेके पहले ही हमारे सिर मढ़ा जाता है। मैँ नहीँ जानता कि इसके विषयमेँ वोलते हुए किस भाषाका प्रयोग करूँ। किन्तु आप जानते हैँ कि इसे हम लोग स्पष्ट अन्याय समझते हैँ। एक ऐसी वात जो पलभरके लिये भी न्यायोचित नहीँ कही जा सकती और फिर भी यह वरावर इतने दिनोँसे चली आ रही है और इसी प्रकार अन्य वहुतसे ख़र्चे हैँ जो भारतवर्षके सिर मढ़े जाते हैँ। हमारे भारतीय नेताओँमेँ किसीने भी इस प्रश्नको न तो इतना अधिक अध्ययन ही किया है और न इसपर कहा ही है और न लिखा ही है जितना मेरे प्रतिष्ठित सर दीनशा एदलजी वाचाने और उन्होँने यह प्रमाणित किया है कि कितने स्थानोँमेँ सैनिक ख़र्च भारतके ऊपर अन्यायसे लादा गया है और मैँ निवेदन करना चाहता हूँ कि उन सव प्रमाणोँकी जाँच होनी चाहिए। गोरा रङ्गरूटोँका प्रारम्भिक ख़र्च तो केवल एक मद है, ऐसे वहुतसे अन्य ख़र्चे हैँ जिनकी जाँच होनी चाहिए। मैँ यहाँपर नहीँ वतला सकता कि किन निश्चित दिशाओँमेँ कमीकी आशा की जानी चाहिए। इसी कारण मैँने प्रस्ताव किया है कि सैनिक विशेषज्ञोँ और हमारे नेताओँकी एक समिति नियत होनी चाहिए जो कि इसकी जाँच करेँ और सिफ़ारिश करे कि क्या करना चाहिए।

मैँ सैनिक मामलोँमेँ भारतीयोँकी शिक्षाके प्रश्नपर कह रहा था। यह वतलाना एक दुःखद कहानी है कि भारतीयोँको पिछले कई दशकोँसे, अर्द्ध शताव्दीसे भी अधिक समयसे इस देशमेँ सैनिक शिक्षाकी संस्थाओँमेँ भर्त्ती नहीँ किया गया, और केवल हाल ही से कुछको वादशाहका कमीशन प्राप्त हुआ है। श्रीमान्‌को और समाजको मालूम होगा कि लगभग पैँतालीस सालसे कांग्रेस यह अनुरोध कर रही है कि भारतीयोँको आवश्यक सैनिक शिक्षा दिलाकर सेनामेँ ऊँचे पद दिए जाने चाहिएँ, लेकिन उन सव प्रार्थनाओँकी कोई सुनवाई नहीँ हुई। महायुद्धके वाद ही केवल ऐसा हुआ कि लौर्ड हार्डिङ्गने सिफ़ारिश की कि कुछ भारतीयोँको सम्राट्‌का कमीशन दिया जाना चाहिए और इस तरहसे थोड़ेसे कमीशन दिए जाने लगे हैँ। तवसे जैसा कि सर तेज वहादुर सप्रूने समितिको वतलाया है कि कई समितियाँ नियत हो चुकी हैँ। एक लौर्ड रौलिन्सनकी समिति वैठी थी, उसके सामने मैँने वयान दिया था। मुझे उसके सामने भारतीय सेनाके ख़र्चमेँ कमी करनेका और एक भारतीय सदस्य नियत करनेका और सैनिक शिक्षाके स्कूल और कौलेज़ खोलनेके मामलोँको समितिके सामने रखनेका गौरव प्राप्त हुआ था, लेकिन उसका कोई नतीजा नहीँ हुआ सिवाय इसके कि फ़ौजमेँ सात हज़ार सैनिकोँकी कमी

कर दी गई। जहाँतक मुझे याद है उस वर्षके बाद या उसके तुरन्त ही बाद ऐसा किया गया। मैँ समझता हूँ कि यह सन् १९२१ ई० मेँ हुआ, किन्तु शायद सर मुहम्मद सफ़ी तथा सर तेज बहादुर सप्रूको इसके विषयमेँ मुझसे अधिक याद होगा।

सर तेज बहादूर सप्रू—हाँ, यह सन् १९२१ ई० मेँ हुआ।

पण्डित मालवीयजी—और ब्रिटिश सेनामेँ क़रीब सात हज़ारकी कमी उसके अगले वर्ष या लगभग उसी समय कर दी गई और उस मामलेको वहीँ ख़तम कर दिया गया। मैँने एक सैनिक विद्यालय एक भारतीय सैण्ढर्स्टके रूपमेँ खोलनेका अनुरोध किया। यहाँ तक कि मैँने उस कौलेजके स्थापित करनेके लिये रुपया एकत्र करनेके लिये यदि सरकार आवश्यक धन देनेमेँ असमर्थ हो अपनी सेवाएँ अर्पित कीँ, किन्तु कमान्डर-इन-चीफ़ और सर मैलकम हेलीने बतलाया कि रुपया मिल गया और देहरादूनमेँ एक संस्था स्थापित हो गई तथा श्रीमन् युवराज वेल्सके नामपर रक्खा गया किन्तु वह केवल एक स्कूलकी भाँति लड़कोँको सैनिक शिक्षाके लिये तैयार करनेका एक स्कूल मात्र है, यह भारतीय सैण्ढर्स्ट नहीँ है।

इसके बाद स्कीम कमेटी बनी, जिसमेँ मेरे मित्र श्री जिन्ना एक सदस्य थे और उस कमेटीकी सिफ़ारिशोँके दुःखपूर्ण अन्तको हम जानते हैँ।

इस कारण श्रीमन्, हमने अनुभव किया कि भारतीयोँकी सैनिक शिक्षाका भार अपने बृटिश प्रजा भाइयोँपर छोड़ना ठीक नहीँ है। हमेँ उनको उस ज़िम्मेदारीसे मुक्त कर देना चाहिए और अपने ऊपर उस ज़िम्मेदारीको लेना चाहिए। अतएव मैँ निवेदन करता हूँ कि सेनाके भारतीय सदस्यको—यदि उसकी नियुक्ति हो जाय—इस बहुत आवश्यक कर्त्तव्यका पालन करना पड़ेगा तथा व्यवस्थापिका सभाकी सिफ़ारिशोँ और इच्छाओँके अनुसार सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोँकी शिक्षाके लिये सैनिक शिक्षालयोँको स्थापित करने और चलानेका उसपर भार रहेगा। जब इङ्गलैण्डने यह तै कर लिया कि भारतवर्षमेँ उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित होना चाहिए तब इसमेँ कोई सन्देह नहीँ हो सकता कि जिस अवधिमेँ उसे पूर्ण रूपसे स्थापित होना चाहिए एक नियत काल ही हो सकता है। इस निर्णयका मतलब हुआ कि इङ्गलैण्ड भारतवर्षसे गोरा फ़ौजको वापस बुला लेगा। इस निर्णयका मतलब है, जैसा कि उस उक्त समितिने बतलाया है कि राष्ट्रीय रक्षाकी ज़िम्मेदारी इसके बाद भारतीयोँके सुपुर्द रहेगी। हम भारतीयोँको स्वयं तैयार ही रहना चाहिए और उस भारको वहन करनेके लिये हमेँ न्यायोचित रीतिसे तैयार होनेके लिये अवसर दिया जाना चाहिए। मैँ और मेरे बहुतसे साथी यह अनुभव करते हैँ कि हम उस भारको वहन नहीँ कर सकते, यदि आप लोग सेनाको एक भारतीय सदस्यके सुपुर्द नहीँ करेँगे और इस प्रकार यदि आप लोग हमेँ एक उचित अवसर प्रदान नहीँ करेँगे।

और इसके लिये एक अन्य कारण भी है कि हम उसे क्योँ चाहते हैँ। अगले बीस वर्ष या पच्चीस वर्ष या अट्ठाइस वर्ष—जितने समयमेँ गोरा फ़ौज थोड़ी तादादमेँ भारतमेँ रहती आवे अथवा जितना समय भारतीय अफ़सरोँको शिक्षित करने और भारतीय सेनाको सङ्घटित करनेमेँ लगेगा, यह चाहे कितना ही समय हो, यदि आप भारतीय सदस्यको भारतीय व्यवस्थापक सभाके अधीन नहीँ रखते और जैसा कि मैँने बतलाया है उसे उन कर्त्तव्योँके पालन करनेकी आज्ञा नहीँ देते तो उसे इस विषयमेँ कोई अनुभव प्राप्त न होगा। व्यवस्थापक सभामेँ उसके साथ काम करनेवालोँको भी इस विषयमेँ कोई अनुभव नहीँ प्राप्त होगा और जिससे वे हमारे देशवासी सेना-सम्बन्धी आवश्यक मामलोँके सम्बन्धमेँ अनुभव प्राप्त करेँ मेरी समझमेँ यह आवश्यक, उचित और समयानुकूल है कि कौन्सिलका भारतीय सदस्य व्यवस्थापक सभाके अधीन रक्खा जाय। श्रीमन् मैँ कह चुका हूँ कि मैँ देशके कोने-कोनेमेँ अपने युवकोँकी सैनिक शिक्षाके लिये संस्थाएँ

स्थापित करूँ और उनमेँ सब वर्गोँके लोग भर्त्ती किए जाएँ। मैँ समझता हूँ कि यह बड़ा भारी अन्याय किया गया कि जब देशके विशेष वर्गोँको सेवाओँमेँ भर्त्ती होनेकी क़ैद रक्खी गई। इसमेँ सन्देह नहीँ कि जिनको सैनिक होनेके लिये सर्वोत्तम अवसर दिया गया उन्होँने सैनिक होकर ख्याति प्राप्त की और इसका हमेँ गर्व है, किन्तु मैँ और मेरे बहुतसे देशवासी विश्वास करते हैँ—मैँ कह सकता हूँ कि साधारणतया शिक्षित समुदाय—कि प्रत्येक मनुष्य, जिसे परमात्माने मानुषिक शक्ति प्रदान कर उत्पन्न किया है अस्त्रोँको धारण करने, अपने देशकी रक्षा करने, अपनी, अपने घरकी और अपने देशकी रक्षा करनेकी क्षमता रखता है। आवश्यकता इस बातकी है कि उसे इसकी आवश्यक शिक्षा दी जाय जिससे वह उसे सर्वोत्तम रूपसे कर सके। पिछली शताब्दीके अर्द्धकालमेँ जापानी बड़ी अस्त-व्यस्त दशामेँ थे। कुछ लोग यह सोचते थे कि दो योरोपियन या दो अमरीकन पाँच सौ जापानियोँको खदेड़नेके लिये काफ़ी हैँ। उनके देशकी स्वतन्त्रता ख़तरेमेँ थी। उन्होँने कठिनाइयोँका सामना किया और परिस्थितिकी आवश्यकताके अनुकूल जाग्रत हो गए। उनके यहाँ क्रान्ति हुई और सन् १८६८ ई० मेँ शान्ति स्थापित हो गई। सबसे पहला कार्य्य जो उन्होँने किया वह एक सेनाका सङ्गठन था। उन्होँने तमाम स्कूलोँमेँ देशभक्तिकी शिक्षा देनी आरम्भ कर दी और सैनिक शिक्षा देनी प्रारम्भ की। सन् १८८२ ई० और १८९५ ई० की थोड़ीसी अवधिके अन्दर उन्होँने अपनी सेनाका इस प्रकार सङ्गठन किया कि सन् १८९५ ई० के युद्धमेँ उन्होँने चीनको हरा दिया। उन्होँने अपनेको इस प्रकार शिक्षित और सङ्गठित किया कि सन् १९०५ ई० मेँ उन्होँने रूसको हराया, और तबसे तमाम बड़े राष्ट्र जापानको एक बड़ी शक्ति और मित्रकी तरह मानने लगे। भारतवर्ष उसी प्रकारकी उन्नति करनेके लिये अवसर चाहता है, और मैँ निवेदन करता हूँ कि जो शङ्काएँ मेरे बृटिश मित्रोँको हमारी सेनाको सङ्गठित करनेके लिये हमारी योग्यताके विषयमेँ उठती हैँ उन्हेँ दूर करके भारतवर्षके अतीत इतिहास और वर्त्तमान समयमेँ हमारे लोगोँके साहस-पूर्ण कार्य्योँकी ओर देखना चाहिए। जहाँतक अतीत कालके इतिहासका सम्बन्ध है, हमारे सैनिकोँने अपनी महान् युद्ध-वीरताका परिचय दिया है। मैँ नहीँ समझता कि इस प्रश्नपर विस्तारसे बतलानेके लिये मुझे इस समितिका अधिक समय लेना चाहिए, किन्तु केवल इस आशामेँ कि मेरे बृटिश मित्रोँके मनसे यथासम्भव ये शङ्काएँ दूर हो जायँ, मैँ यहाँपर समितिके सामने आपके ही विख्यात लेखकोँमेँसे एकका लेख सुना देना चाहता हूँ।

इस "प्रारम्भिक विशेषता" के विषयमेँ श्री एस्० एस्० थोरबर्नने जो भारतीय सिविल सर्विसमेँ रह चुके थे, त्रैमासिक रिव्यूके सन् १८९६ ई० के जुलाई अङ्कमेँ लिखा था :—

"मैँ समझता हूँ कि अधिकतर विशेषज्ञ यह विश्वास करते हैँ कि सिक्ख, पठान, गोरखा और उसके बाद सर्वोत्तम जातिके हिन्दू जाट, राजपूत और पञ्जाबी मुसलमान दुनिया भरमेँ किसी भी जातिसे वीरतामेँ कम नहीँ हैँ। केवल कुछ मास पहले सर हेमिल्टनने प्रथम रूस-जापान-युद्धके विषयकी पुस्तकमेँ लिखा था, 'प्रत्येक विचारणीय सैनिक, जिसने हमारे हालके भारतीय युद्धोँमेँ काम किया है, इससे विज्ञ है कि ऐसे युद्ध-स्थलोँके लिये एक उत्तम सिक्ख, पठान या गुरखा पल्टन साधारणतः एक गोरा पल्टनकी अपेक्षा अधिक उपादेय है।' दूसरे स्थान पर उसने लिखा, 'भारतके उत्तरमेँ और नैपालमेँ ऐसी उपयुक्त और यथेष्ट युद्ध-प्रिय जातियाँ हैँ जो योग्य नेतृत्वके अधीन सङ्गठित होकर योरोपकी दिखाऊ फ़ौजोँको तहस-नहस कर सकती हैँ'।"

अस्तु! मेरी यह इच्छा नहीँ है कि दिखाऊ योरोपको हमारे सैनिक हिला डालेँ। मैँ समझता हूँ कि मेरा यह कर्त्तव्य पूरा हो जायगा यदि मैँ अपने

बृटिश-प्रजा भाइयोंके अविश्वास, शङ्का और सन्देहको निर्मूल कर सकूँ जो उनके मनमेँ हमारी अपनी रक्षा करनेकी क्षमताके सम्बन्धमेँ है।

एक और उदाहरण देता हूँ। कर्नल मेरी वीथरकी "फ़्रान्समेँ भारतीय सैनिक" नामक पुस्तककी भूमिकामेँ लौर्ड कर्ज़नने लिखा है—

"यह पुस्तक इस बातका वर्णन करती है कि किस प्रकारसे सेना और जत्थोँ तथा सहायतार्थ भेजे गए सैनिकोँने सन् १९१४ और १९१५ ई० के भयानक युद्धमेँ काम किया और किस भाँति भारतीय सेना ठीक महायुद्धके आरम्भिक सप्ताहोँके भीषण युद्धके दिनोँमेँ पहुँची और मित्र दलके तथा सभ्यताके बचानेमेँ सहायक हुई। यह बात सम्राट्से लेकर निम्न श्रेणीतकके लोगोँने स्वीकार की। मुझे स्मरण है कि लौर्ड फ़्रेञ्चने स्वयं मुझसे बड़ा ज़ोर देते हुए कहा। उस प्रकारकी सेवाका मूल्य तथा उदाहरण कभी नहीँ भुलाया जा सकता।"

परन्तु मनुष्यकी स्मरण-शक्ति अल्प है। श्रीमन्! मुझे इस बातका विचार करते हुए शोक होता है कि भारतीय सिपाहियोँद्वारा हौलेण्ड, फ़्रान्स तथा अन्य युद्धक्षेत्रोँमेँ प्रदर्शित की गई वीरता इस समय भुला दी गई है, जब हम लोग भारतीयोँका अपनी सेनामेँ अफ़सर होनेके विषयमेँ तथा अपने देशकी रक्षाके योग्य होनेमेँ विवाद कर रहे हैँ।

सभापति—पण्डित मालवीयजी! आपको अनेक धन्यवाद है। मुझे आप इस बातको कहनेकी आज्ञा देँगे कि मैँ आपकी हिन्दुस्तानी सेनाओँकी वीरताको नहीँ भूला हूँ और मैँ आपके व्याख्यानको जल्द नहीँ भूलूगा। मैँ यह नहीँ कहूँगा कि मैँ इसके प्रत्येक शब्दसे सहमत हूँ। आप मुझसे पहली ही बार ऐसा करनेकी आशा नहीँ करेँगे, परन्तु मैँ आपका बहुत ही आभारी हूँ कि आप इस भाषणको अपने हृदय ही मेँ रखकर भारतको नहीँ लौट गए और जो बात कि आपने कही है उसके लिये कृतज्ञ हूँ।

श्रीमन् चान्सलर महोदय! मैँ कमेटीका और अधिक समय नहीँ लेना चाहता, परन्तु केवल एक बातकी तरफ़ ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। मुझे शङ्का है कि इस बातका अनुभव नहीँ किया जाता कि भारतीय जनसमुदायका सेनाका प्रबन्ध भारतीय व्यवस्थापक सभाके हाथमेँ चले जानेके बारेमेँ कितनी दृढ़ धारणा है। मैँ निवेदन करता हूँ कि यहाँकी सरकारको जनताके इस विचारकी अवहेलना नहीँ करनी चाहिए। यह भारतीय जनसमुदायके लिये बड़े मार्केकी बात है कि सैनिक सदस्य सेनाका अधिष्ठाता होगा अथवा नहीँ होगा। यह भारतीय जनसमुदायके लिये विशेष अन्तरकी बात है कि वह गवर्नरको अथवा व्यवस्थापक सभाको उत्तरदायी होगा। मैँने इस बातका निर्देश किया है कि किस तरह यद्यपि भारतीय सदस्य, व्यवस्थापक सभाको उत्तरदायी होते हुए भी गवर्नर-जनरलका मेरे प्रस्तावके अनुसार असाधारण घटनाओँके विषयमेँ, जो कि घटित होँ, काम करनेका विशेषाधिकार होगा। वह क़ानूनी शब्दोँमेँ नव विधानको स्थगित कर सकते हैँ और उस समयके लिये होने योग्य अधिकार ले सकेँगे। मैँ निवेदन करता हूँ कि उस बृटिश सेनाके अधिकारके विषयमेँ आवश्यक विशेषाधिकारका नियम अन्तमेँ यह पूर्ण तरहसे विश्वास दिलाता है जो कि घटनेवाली घटनाओँके लिये वाञ्छनीय है। मैँ उस नियमको कमेटीमेँ बड़े ज़ोरोँसे पेश करता हूँ अर्थात् कमेटी इस बातका अनुमोदन करे कि भावी भारतीय सैनिक सदस्य व्यवस्थापक सभाको उत्तरदायी हो। चान्सलर महोदय! मैँ और अधिक नहीँ कहना चाहता।

विश्राम

तृतीय खण्ड

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय

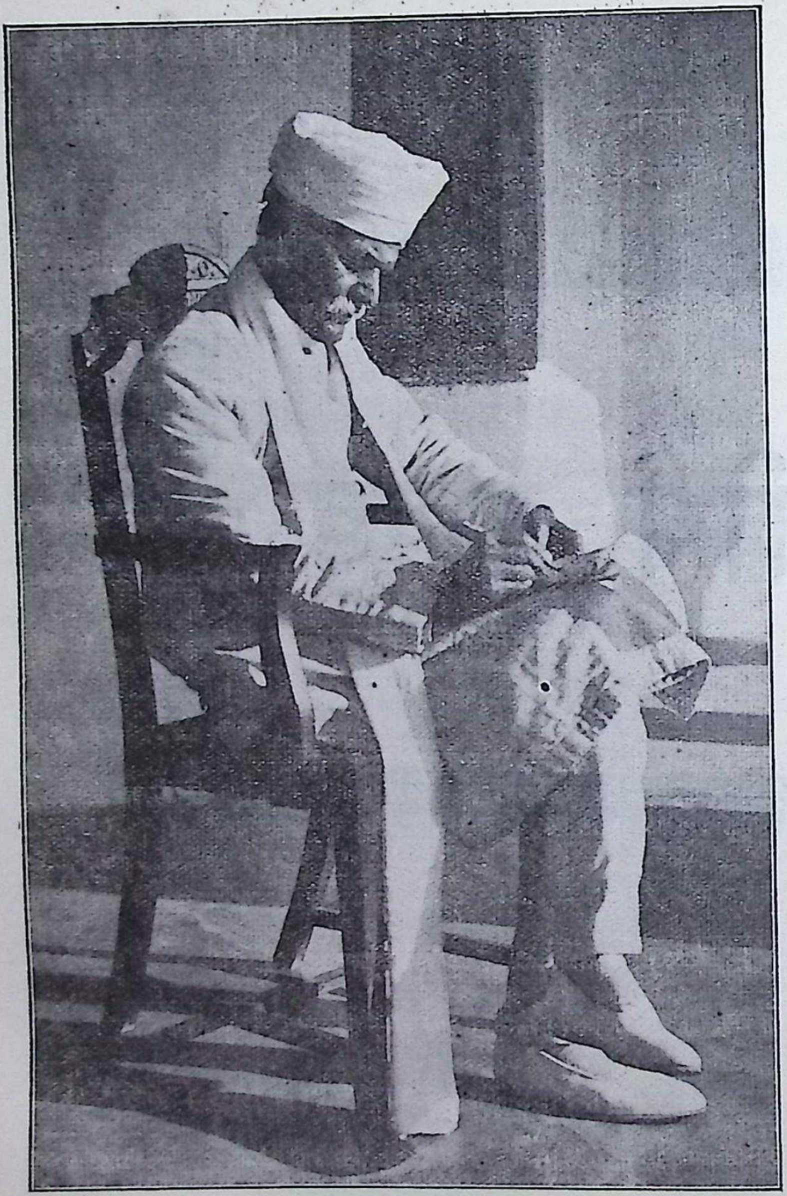

लेखनीका चमत्कार

पूज्य मालवीयजीने अपने पचहत्तर वर्षोंके जीवनमैं न जाने कितने लेख लिखे। उन सबको एकत्र करके छापना तो मनुष्यकी शक्तिसे ही बाहर है। उनके जितने प्रधान और प्रसिद्ध लेख हैं उनको हमने भरसक एकत्र किया है। जहाँ तक बन पड़ा है हमने पुनरावृत्ति दूर करनेकी चेष्टा की है। ऐतिहासिक महत्त्वके जितने लेख हैं उन्हें आप इस संग्रहमैं अवश्य पाइयेगा।

—सम्पादक।

पूज्य मालवीयजीके लेख

तृतीय खण्डकी विषय-सूची

विषय पृष्ठ

धर्म—

१—ईश्वर ... ... १—१३
२—अन्त्यजोद्धार-विधि .... १४—५५
३—मन्त्र-महिमा ... ... ५६—६५
४—हिन्दू-धर्मोपदेश ... ... ६६—७२
५—भगवान् कृष्णकी महिमा ... ७३—७६
६—सनातनधर्म .... ७७—७९

राष्ट्रभाषा—

७—पश्चिमोत्तर प्रदेश व अवधमेँ अदालती लिपि तथा प्रारम्भिक शिक्षा .... ८०—१०१

हिन्दू विश्वविद्यालय—

८—काशी हिन्दू विश्वविद्यालयकी सन् १९०४ ई० मेँ की हुई योजना .... १०२—१०४
९—प्रस्तावित हिन्दू विश्वविद्यालय (प्रथम भाग) .... १०५—११४

विषय पृष्ठ
१०—एक हिन्दू विश्वविद्यालय (द्वि० भाग) .... ११५—१२२
११—हिन्दू विश्वविद्यालय .... १२३—१४१

राजनीति—

१२—भारतके लिये सङ्घ-शासन-व्यवस्था .... १४२—१४७
१३—मिण्टो-मौर्ले-सुधार .... —१४७
१४—भारतीय व्यवस्थात्मक सुधारके लिये मौण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड प्रस्तावोँकी आलोचना .... १४८—१८२
१५—व्यवस्थापक कमीशन .... १८३—१९४

स्वदेश—

१६—भारतकी दशापर .... १९५—२१०
१७—भारतमेँ दमनचक्र .... २११—२१९

उद्योग-व्यवसाय—

१८—भारतीय औद्योगिक कमीशन २२०—२८२

राष्ट्रीय दल—

१९—राष्ट्रीय दल (नेशनलिस्ट पार्टी) २८३—३०१

सर्व विद्याकी राजधानी

विद्ययाऽमृतमश्नुते

काशी विश्वविद्यालय BENARES HINDU UNIVERSITY

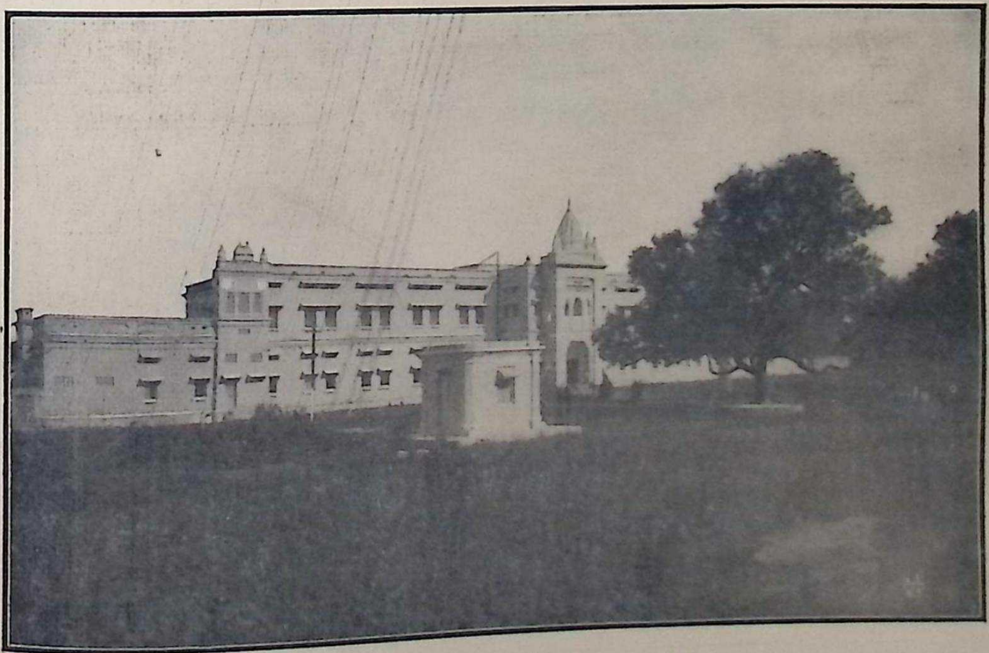

महिला विद्यालय और छात्रावास।

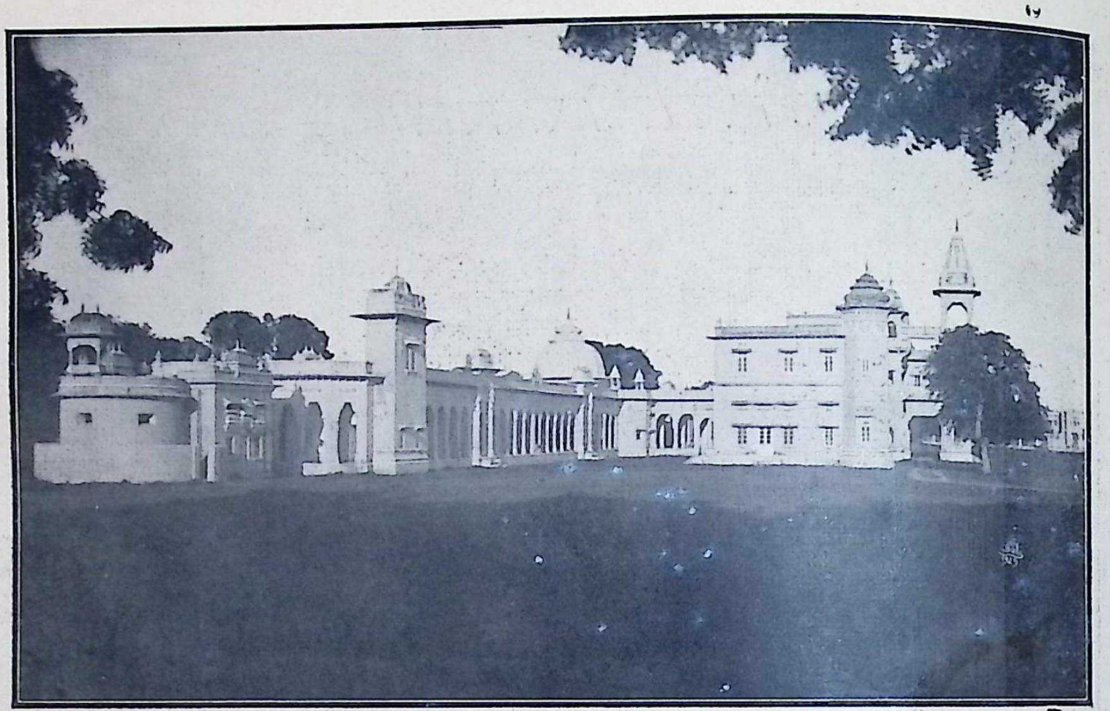

आयुर्वैदिक कौलेज्, सर सुन्दरलाल चिकित्सालय और आतुरालय।

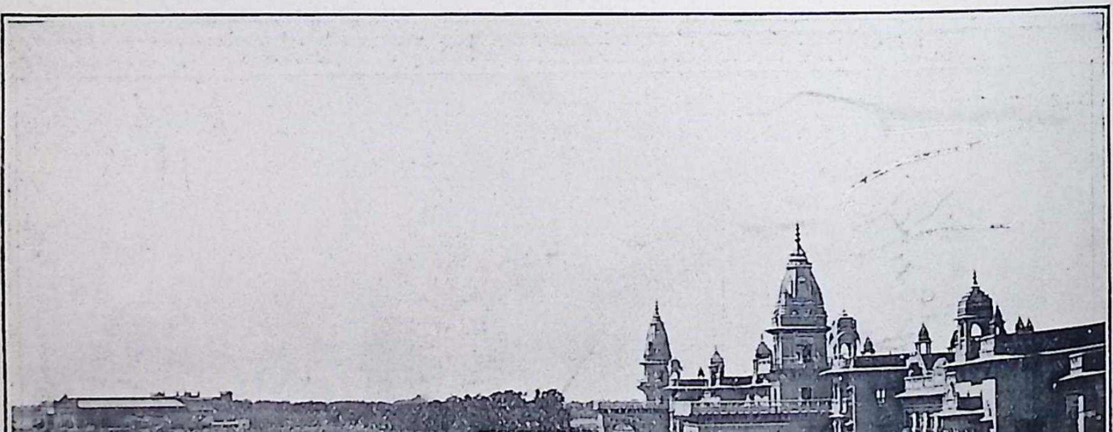

विश्वविद्यालय-भवनोंका दृश्य।

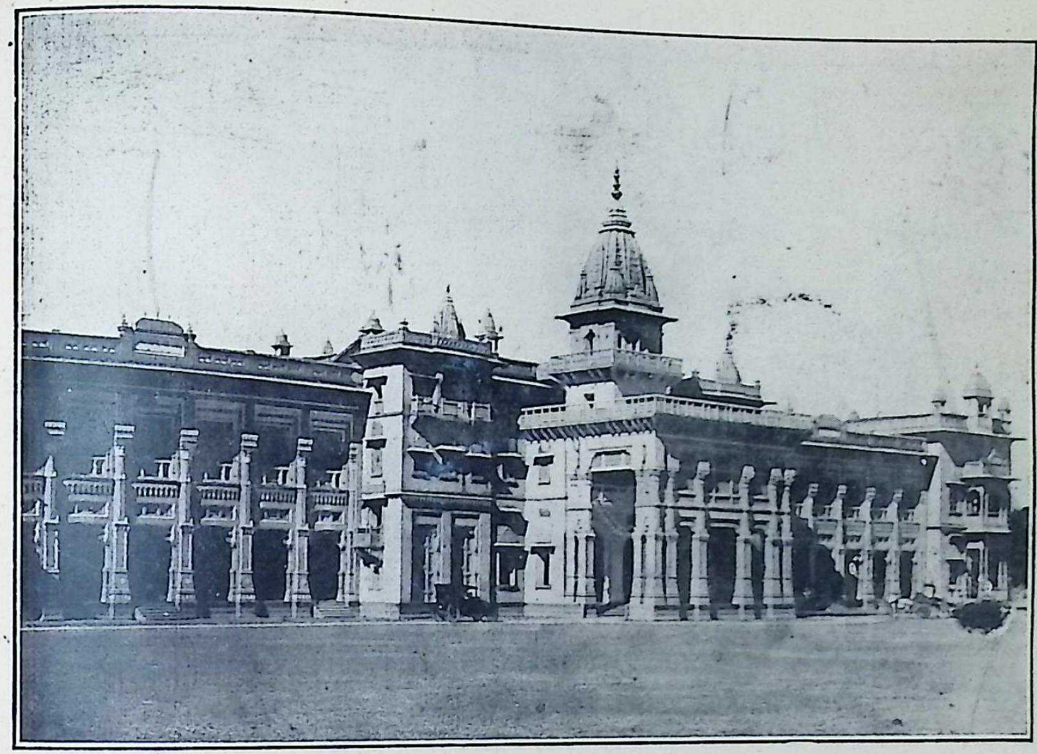

ओरएण्टल कौलेज् (प्राच्यविद्या-विभाग) सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज् तथा लौ कौलेज् ।

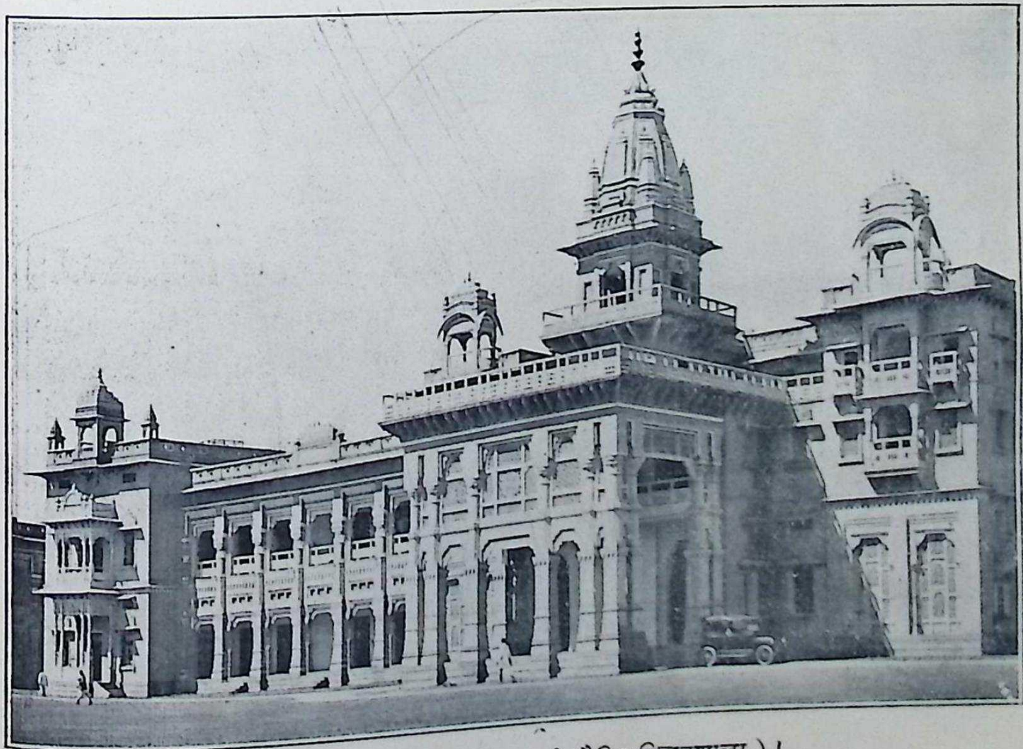

कौलेज् औफ़ साएन्स (विज्ञान विद्यालयकी भौतिक-विज्ञानशाला) ।

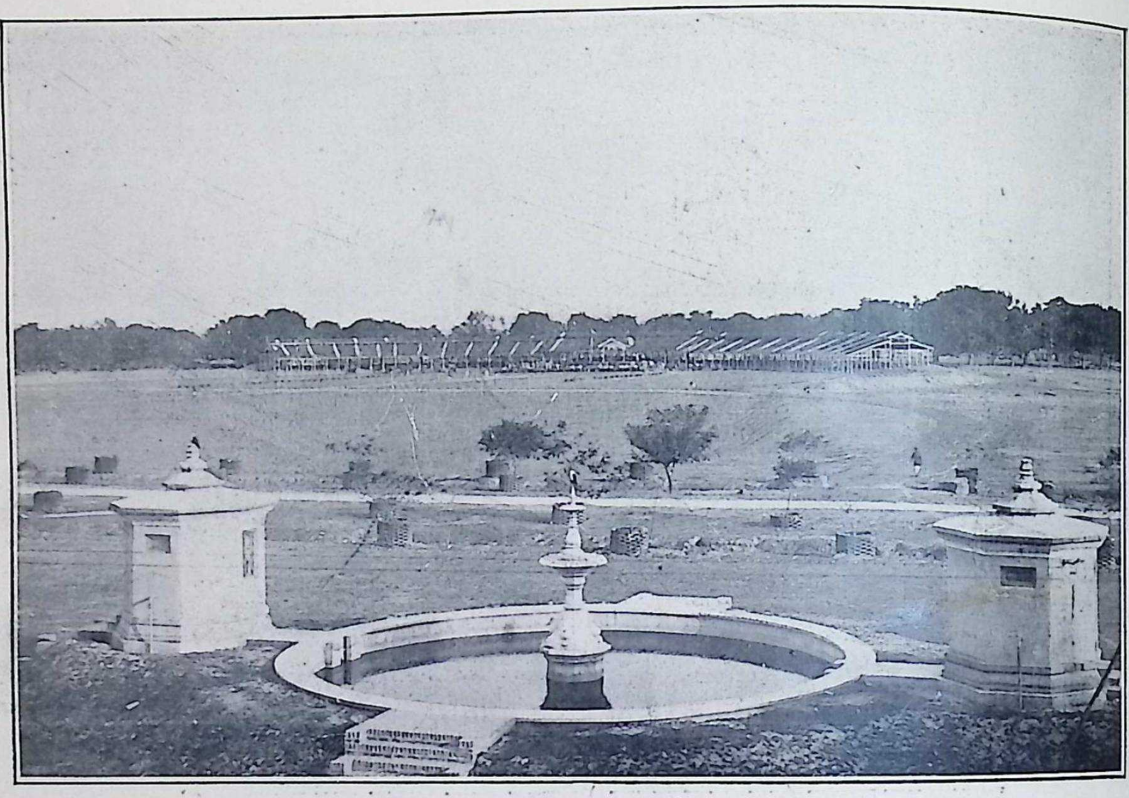

फ़व्वारा और रङ्ग-भूमि (जिसमें दस हज़ार दर्शकोंके बैठनेका स्थान है)।

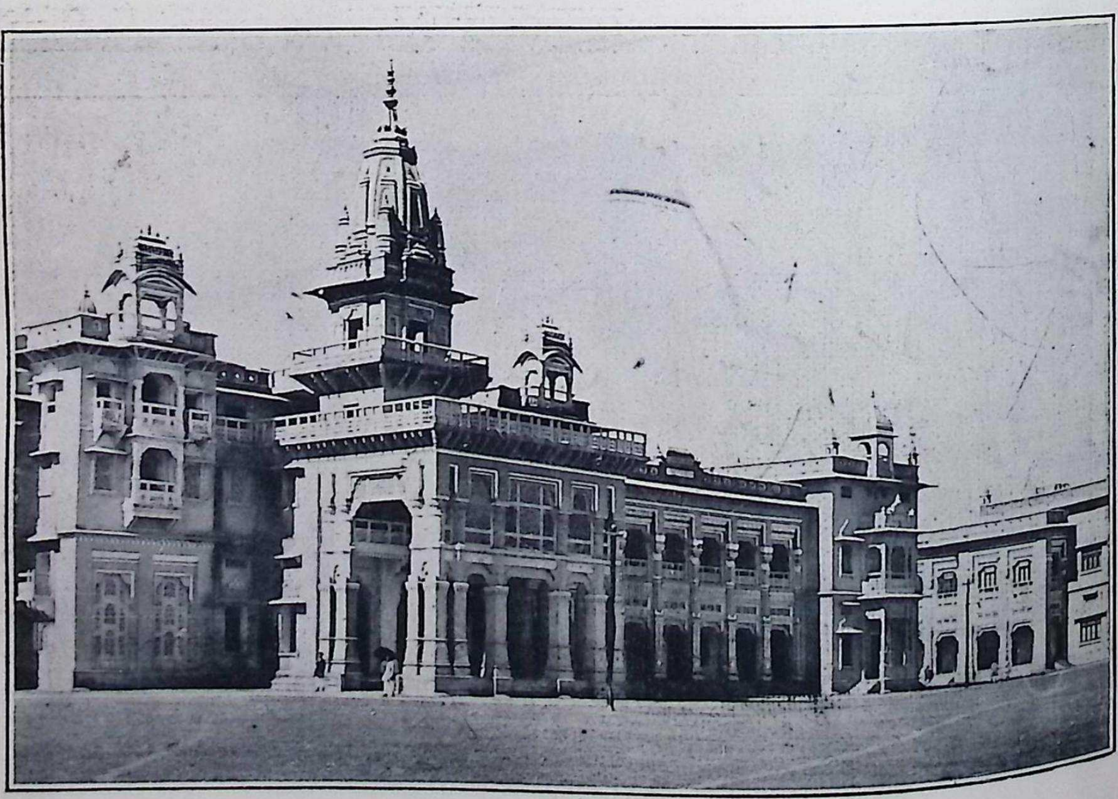

साएन्स कौलेज्की रसायन-शाला।

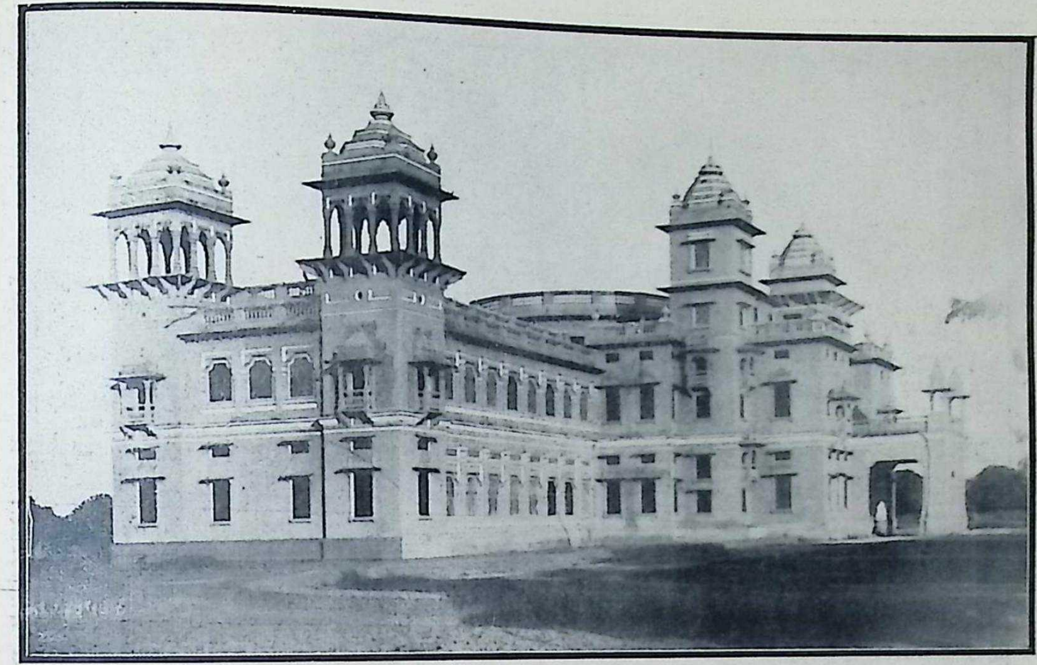

गायकवाड़ पुस्तकालय।

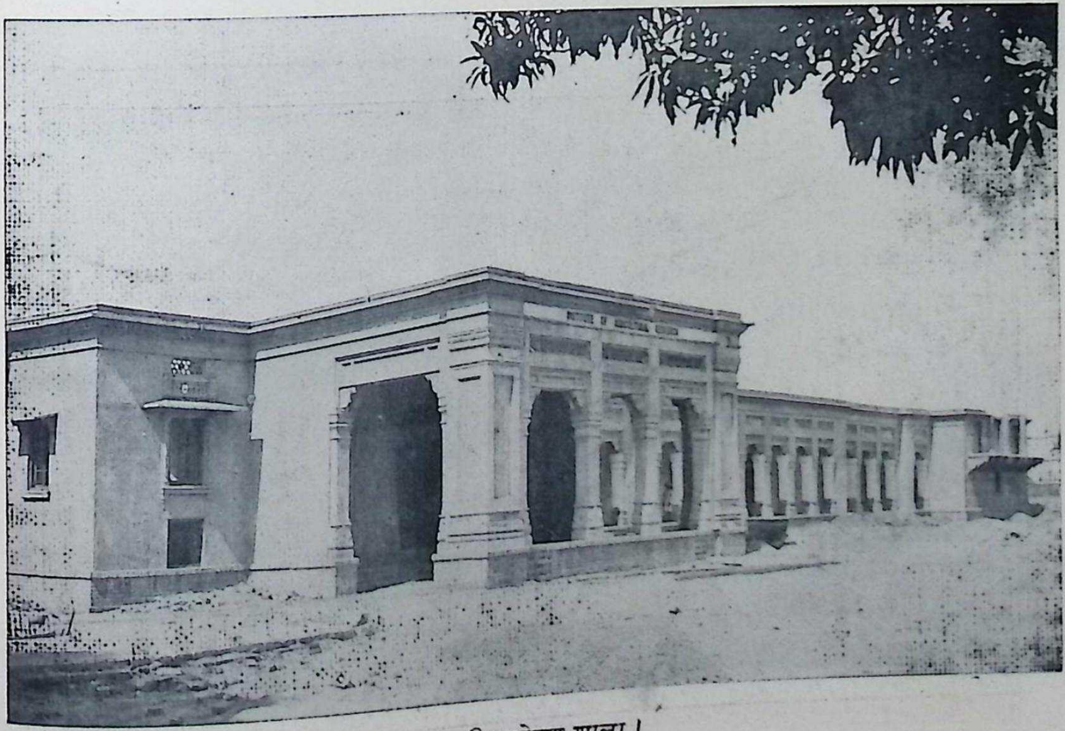

कृषि-अन्वेषण-शाला।

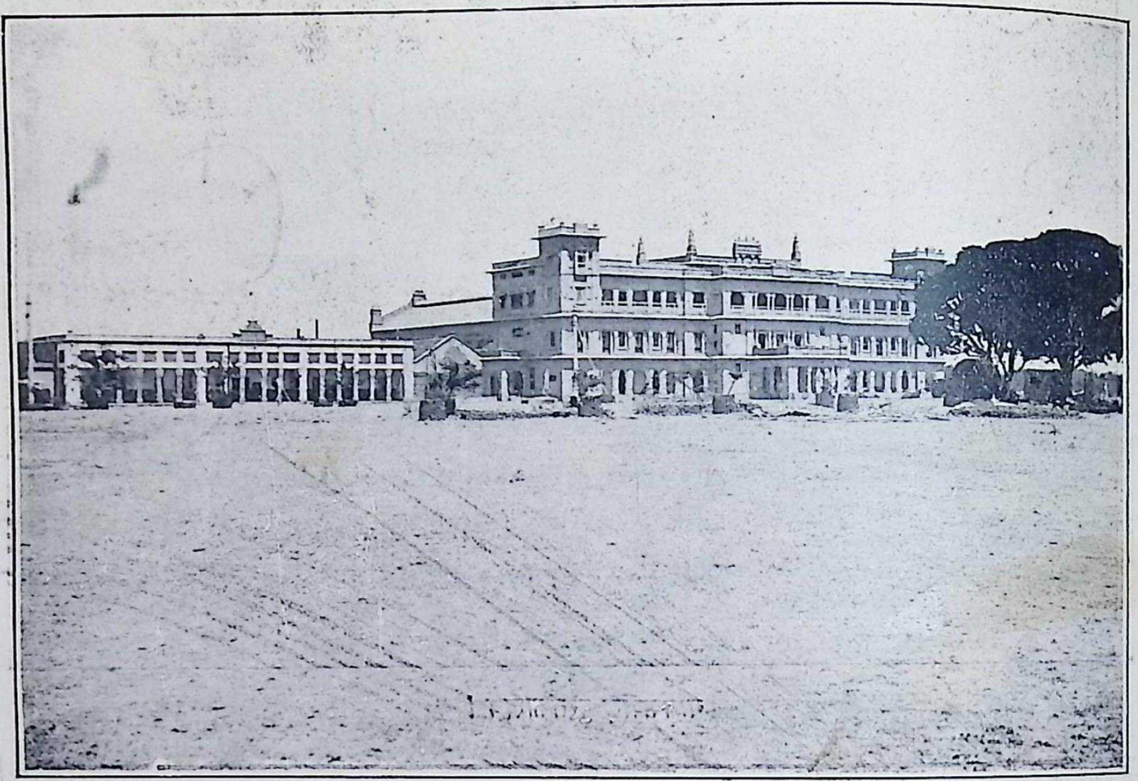

इञ्जिनीयरिङ्ग-विद्यालय।

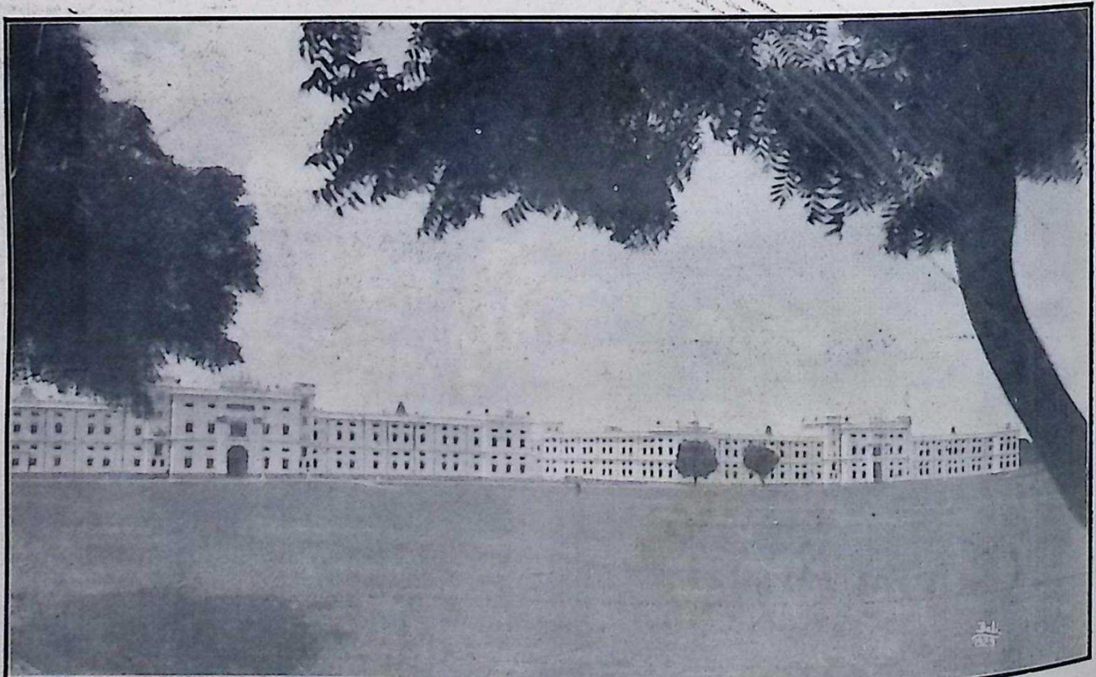

इञ्जिनीयरिङ्ग-छात्रावास (लिमडी और राजपूताना)

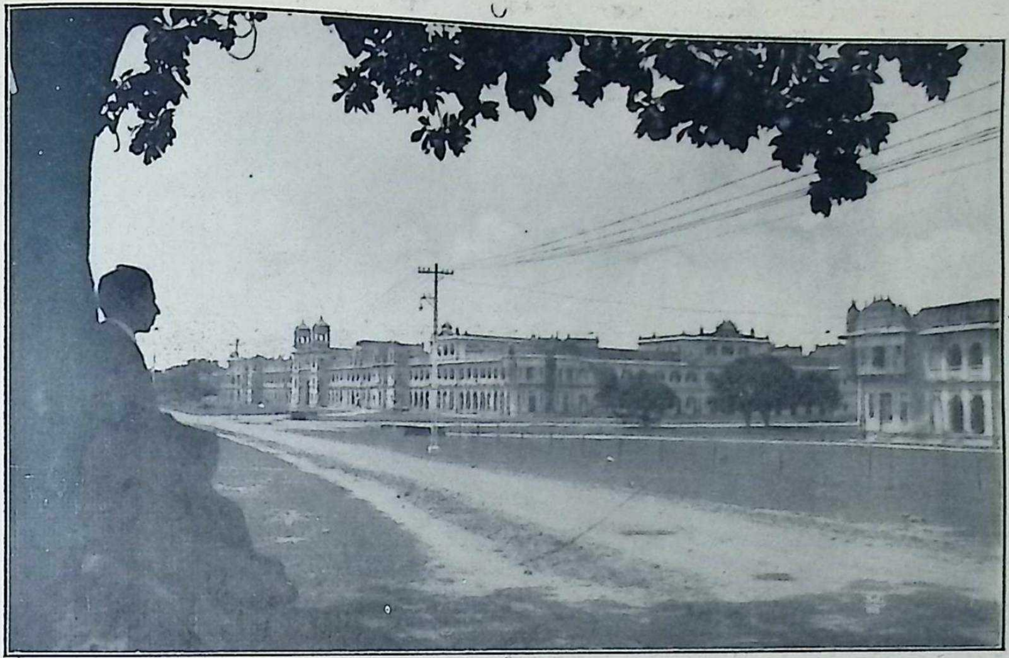

ब्रोचा-छात्रावास ।

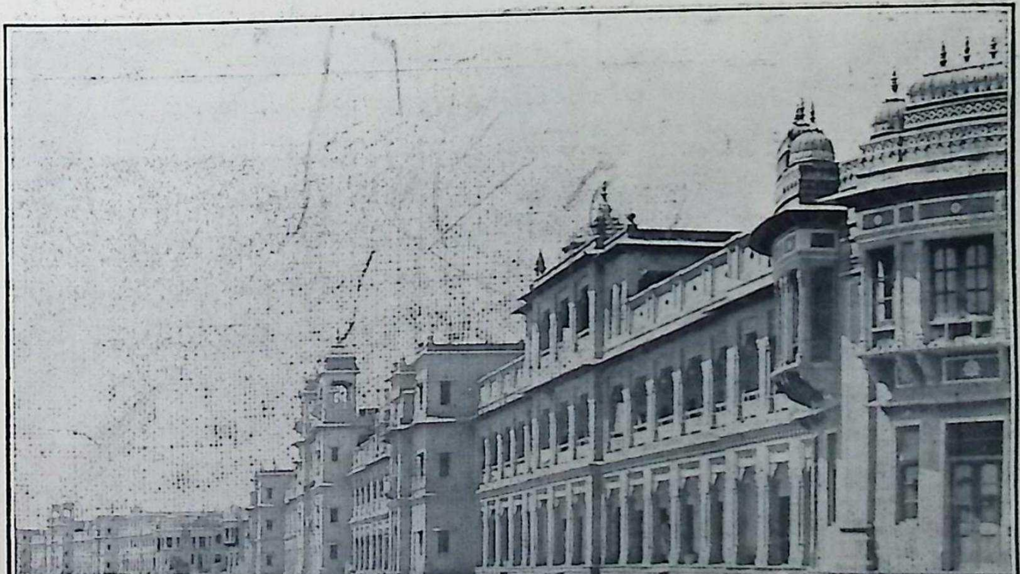

बिड़ला छात्रावास ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमेँ

संस्कृत छात्रावास तथा सङ्गीत विद्यालय। प्रारम्भमेँ इसी भवनमेँ संस्कृत विद्यालय भी था।

टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेज् (काशीमेँ कमच्छापर)।

पूज्य मालवीय जीकी लेखनीसे

धर्म

ईश्वर

ॐ श्रीहरिः

जगत्‌में सबसे उत्तम और अवश्य जानने योग्य कौन है ?

ईश्वर

इस संसारमें सबसे पुराने ग्रन्थ वेद हैं। योरपके विद्वान् भी इस बातको मानते हैं कि ऋग्वेद कम-से-कम चार सहस्र वर्ष पुराना है और उससे पुराना कोई ग्रन्थ नहीं। ऋग्वेद पुकारकर कहता है कि सृष्टिके पहले यह जगत् अन्धकारमय था। उस तमके बीचमें और उससे परे केवल एक ज्ञानस्वरूप स्वयम्भू भगवान् विराजमान थे और उन्होंने उस अन्धकारमें अपनेको आप प्रगट किया और अपने तपसे अर्थात् अपनी ज्ञानमयी शक्तिके सञ्चालनसे सृष्टिको रचा। लिखा है—

तम आसीत्तमसा गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्यपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥
(ऋग्वेद अष्टक ८, अध्याय ७, वर्ग १७, मंत्र ३)

इसी वेदके अर्थको मनु भगवान्‌ने लिखा है कि सृष्टिके पहले यह जगत् अन्धकारमय था। सब प्रकारसे सोता हुआ-सा दिखाई पड़ता था। जिनका किसी दूसरी शक्तिके द्वारा जन्म नहीं हुआ, जो आप अपनी शक्तिसे अपनी महिमामें सदासे वर्तमान हैं और रहेंगे, उन ज्ञानमय, प्रकाशमय, स्वयम्भूने उस समय अपनेको आप प्रकट किया और उनके प्रकट होते ही अन्धकार मिट गया। मनुस्मृतिमें लिखा है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥
ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ॥ (१।५-७)

ऋग्वेद कहता है—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(८।७।३।१)

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्व-
दृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः
प्रथमच्छदवरां आविवेश॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥
(८।३।१६।१, ३)

यो नः पिता जनिता यो विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव
तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥
(८।३।१७।३)

और भी श्रुति कहती है—

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्'
(ऐतरे० १।१।१)
'एकमेवाद्वितीयम्' (छान्दोग्य० ६।२।१)

भागवतमेँ भगवान्का वचन है—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्सदसतः परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥
(२।९।३३)

सृष्टिके आदिमेँ कार्य (स्थूल) और कारण (सूक्ष्म) से अतीत एकमात्र मैँ ही था, मेरे सिवा और कुछ भी न था। सृष्टिके पश्चात् भी मैँ ही रहता हूँ और यह जो जगत्प्रपञ्च दीख पड़ता है वह भी मैँ ही हूँ तथा सृष्टिका संहार हो जानेपर जो कुछ बच रहता है वह भी मैँ ही हूँ।

शिवपुराणमेँ भी लिखा है—

स एव तदा रुद्रो न द्वितीयोस्ति कश्चन ।
संसृज्य विश्वं भुवनं गोप्तान्ते सञ्चुकोच सः ॥
विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः ।
तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वतः पादसंयुतः ॥
द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः ।
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा ॥
(७।१।६।१४—१६)

अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः ।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम् ॥
(७।१।६।२३)

उस समय एक रुद्र ही थे, दूसरा कोई न था। उन जगत्के रक्षकने ही संसारकी रचना करके अन्तमेँ उसका संहार कर दिया। उनके चारोँ ओर नेत्र हैँ, चारोँ ओर मुख हैँ, चारोँ ओर भुजाएँ हैँ तथा चारोँ ओर चरण हैँ। पृथ्वी और आकाशको उत्पन्न करनेवाले एक महेश्वर देव ही हैँ, वे ही सब देवताओँके कारण और उत्पत्तिके स्थान हैँ। जो बिना आँख-कानके ही देखते और सुनते हैँ, जो सबको जानते हैँ पर जिन्हेँ कोई नहीँ जानता, वे परमपुरुष कहे जाते हैँ।

भागवतमेँ लिखा है—

एकः स आत्मा पुरुषः पुराणः
सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः
पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥
(१०।१४।२३)

वह एक ही आत्मा पुराण पुरुष, सत्य, स्वयंप्रकाश-स्वरूप, अनन्त, सबका आदि कारण, नित्य, अविनाशी, निरन्तर सुखी, मायासे निर्लिप्त, अखण्ड, अद्वितीय, उपाधिसे रहित तथा अमर हैँ।

सब वेद, स्मृति, पुराणके इसी तत्त्वको गोस्वामी तुलसीदासजीने थोड़े अक्षरोँमेँ योँ कह दिया है—

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी ।
सत चेतन घन आनँदराशी ॥
आदि-अन्त कोउ जासु न पावा ।
मति-अनुमान निगम यश गावा ॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना ।
कर बिनु कर्म करै बिधि नाना ॥
आननरहित सकल रस-भोगी ।
बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी ॥
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहै घ्राण बिनु बास असेखा ॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी ।
महिमा तासु जाइ किमि बरनी ॥

किन्तु यह विश्वास कैसे हो कि ऐसा कोई परमात्मा है?

जो वेद कहते हैँ कि यह परमात्मा है वही यह भी कहते हैँ कि उसको हम आँखोँसे नहीँ देख सकते।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।

ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व-
स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥
(श्वेताश्व० ४ । २०)

'ईश्वरको कोई आँखों से नहीं देख सकता, किन्तु हमम से हर एक मनको पवित्रकर विमल बुद्धिसे ईश्वरको देख सकता है।' इसलिये जो लोग ईश्वरको मनकी आँखों (बुद्धि) से देखना चाहते हैं, उनको उचित है कि वे अपने शरीर और मनको पवित्रकर और बुद्धिको विमलकर ईश्वरकी खोज करें।

हम देखते क्या हैं ?

हमारे सामने जन्मसे लेकर शरीर छूटनेके समयतक बड़े-बड़े चित्र-विचित्र दृश्य दिखाई देते हैं जो हमारे मनमें इस बातके जाननेकी बड़ी उत्कण्ठा उत्पन्न करते हैं कि वे कैसे उपजते हैं और कैसे विलीन होते हैं? हम प्रतिदिन देखते हैं कि प्रातःकाल पौ-फट होते ही सहस्र किरणोंसे विभूषित सूर्य्यमण्डल पूर्व दिशामें प्रकट होता है और आकाश-मार्गसे विचरता, सारे जगत्को प्रकाश, गर्मी और जीवन पहुँचाता, सायंकाल पश्चिम दिशामें पहुँचकर नेत्रपथसे परे हो जाता है। गणितशास्त्रके जाननेवालोंने गणनाकर यह निश्चय किया है कि यह सूर्य्य पृथिवीसे नौ करोड़ अट्ठाईस लाख तीस सहस्र मीलकी दूरीपर है। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि यह इतनी दूरीसे इस पृथिवीके सब प्राणियोंको प्रकाश, गर्मी और जीवन पहुँचाता है! ऋतु-ऋतुमें अपनी सहस्र किरणोंसे जलको खींचकर सूर्य्य आकाशमें ले जाता है और वहाँसे मेघका रूप बनाकर फिर जलको पृथिवीपर बरसा देता है और उसके द्वारा सब घास, पत्ती, वृक्ष, अनेक प्रकारके अन्न और धान और समस्त जीवधारियोंको प्राण और जीवन देता है। गणितशास्त्र बतलाता है कि जैसा यह एक सूर्य्य है वैसे असंख्य और हैं और इससे बहुत बड़े-बड़े भी हैं जो सूर्य्यसे भी अधिक दूर होनेके कारण हमको छोटे-छोटे तारों के समान दिखाई देते हैं। सूर्य्यके अस्त होनेपर प्रतिदिन हमको आकाशमें अनगिनत तारे-नक्षत्र-ग्रह चमकते दिखाई देते हैं। सारे जगत्को अपनी किरणों से सुख देनेवाला चन्द्रमा अपनी शीतल चाँदनीसे रात्रिको ज्योतिष्मती करता हुआ आकाशमें सूर्य्यके समान पूर्व दिशासे पश्चिम दिशाको जाता है। प्रतिदिन रात्रिके आते ही दसों दिशाओंको प्रकाश करती हुई नक्षत्र-तारा-ग्रहोंकी ज्योति ऐसी शोभा धारण करती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ये सब तारा-ग्रह सूतमें बँधे हुए गोलकोंके समान अलङ्घनीय नियमोंके अनुसार दिन-से-दिन, महीने-से-महीने, वर्ष-से-वर्ष, बँधे हुए मार्गोंमें चलते हुए आकाशमें घूमते दिखाई देते हैं। यह प्रत्यक्ष है कि गर्मीकी ऋतुमें यदि सूर्य्य तीव्र रूपसे नहीं तपता तो वर्षाकालमें वर्षा अच्छी नहीं होती, यह भी प्रत्यक्ष है कि यदि वर्षा न हो तो जगत्में प्राणीमात्रके भोजनके लिये अन्न और फल न हों। इससे हमको स्पष्ट दिखाई देता है कि अनेक प्रकारके अन्न और फल द्वारा सारे जगत्के प्राणियोंके भोजनका प्रबन्ध मरीचिमाली सूर्य्यके द्वारा हो रहा है। क्या यह प्रबन्ध किसी विवेकवती शक्तिका रचा हुआ है जिसको स्थावर-जङ्गम सब प्राणियोंको जन्म देना और पालना अभीष्ट है अथवा यह केवल जड़ पदार्थोंके अचानक संयोगमात्रका परिणाम है? क्या यह परम आश्चर्यमय गोलकमण्डल अपने आप जड़ पदार्थोंके एक दूसरेके खींचनेके नियम मात्रसे उत्पन्न हुआ है और अपने-आप आकाशमें वर्ष-से-वर्ष, सदी-से-सदी, युग-से-युग घूम रहा है, अथवा इसके रचने और नियमसे चलानेमें किसी चैतन्य शक्तिका हाथ है? बुद्धि कहती है कि 'है', वेद भी कहते हैं कि 'है'। वे कहते हैं कि सूर्य्य और चन्द्रमाको, आकाश और पृथिवीको परमात्माने रचा।

सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥
(ऋग्वेद ८ । ८ । ४८ । ३)

प्राणियोंकी रचना

इसी प्रकार हम देखते हैं कि प्राणात्मक जगत्की रचना इस बातकी घोषणा करती है कि इस जगत्का

रचनेवाला एक ईश्वर है। यह चैतन्य जगत् अत्यन्त आश्चर्यसे भरा हुआ है। जरायुसे उत्पन्न होनेवाले मनुष्य, सिंह, हाथी, घोड़े, गौ आदि; अण्डोंसे उत्पन्न होनेवाले पक्षी; पसीने और मैलसे पैदा होनेवाले कीड़े, पृथिवीको फोड़कर उगनेवाले वृक्ष; इन सबकी उत्पत्ति, रचना और इनका जीवन परम आश्चर्यमय है। नर और नारीका समागम होता है। उस समागममें नरका एक अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु चैतन्य अंश गर्भमें प्रवेशकर नारीके एक अत्यन्त सूक्ष्म सचेत अंशसे मिल जाता है। इसको हम जीव कहते हैं। वेद कहते हैं कि—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चान्त्याय कल्पते॥

(श्वेता० ५।९)

एक बालके आगेके भागके खड़े-खड़े सौ भाग कीजिए और उन सौमें एकके फिर सौ खड़े-खड़े टुकड़े कीजिए और इसमेंसे एक टुकड़ा लीजिए तो आपको ध्यानमें आवेगा कि उतना सूक्ष्म जीव है। यह जीव गर्भमें प्रवेश करनेके समयसे शरीररूपसे बढ़ता है। विज्ञानके जाननेवाले विद्वानोंने अणुवीक्षण यन्त्रसे देख कर यह बताया है कि मनुष्यके वीर्यके एक बिन्दुमें लाखों जीवाणु होते हैं और उनमेंसे एक ही गर्भमें प्रवेश पाकर टिकता और वृद्धि पाता है। नारीके शरीरमें ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि यह जीव गर्भमें प्रवेश पाने के समयसे एक नलीके द्वारा आहार पावे, इसकी वृद्धिके साथ-साथ नारीके गर्भमें एक जलसे भरा थैला बनता जाता है जो गर्भको चोटसे बचाता है। इस सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, अणु-से-अणु, बालके आगेके भागके दस हज़ारवें भागके समान सूक्ष्म वस्तुमें यह शक्ति कहाँसे आती है कि जिससे यह धीरे-धीरे अपनी माता और अपने पिताके समान रूप, रङ्ग और सब अवयवोंको धारण कर लेता है? कौन-सी शक्ति है, जो गर्भमें इसका पालन करती और इसको बढ़ाती है? वह क्या अद्भुत रचना है, जिससे बच्चेके उत्पन्न होनेके थोड़े समय पूर्व ही माता के स्तनोंमें दूध आ जाता है? कौन-सी शक्ति है जो सब असंख्य प्राणवन्तोंको, सब मनुष्योंको, सब पशु-पक्षियोंको, सब कीट-पतङ्गोंको, सब पेड़-पल्लवोंको पालती है और उनको समयसे चारा और पानी पहुँचाती है? कौन-सी शक्ति है जिससे चीटियाँ दिनमें भी और रातमें भी सीधी भीतपर चढ़ती चली जाती हैं? कौन-सी शक्ति है जिससे छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े पक्षी अनन्त आकाशमें दूर-से-दूरतक बिना किसी आधारके उड़ा करते हैं?

नरों और नारियोंकी, मनुष्योंकी, गौओंकी, सिंहोंकी, हाथियोंकी, पक्षियोंकी, कीड़ोंकी सृष्टि कैसे होती है? मनुष्योंसे मनुष्य, सिंहोंसे सिंह, घोड़ोंसे घोड़े, गौओंसे गौ, मयूरों से मयूर, हंसोंसे हंस, तोतोंसे तोते, क़बूतरोंसे क़बूतर, अपने अपने माता-पिताके रंग-रूप-अवयव लिए हुए कैसे उत्पन्न होते हैं? छोटे-से-छोटे बीजोंसे किसी अचिन्त्य शक्तिसे बढ़ाए हुए बड़े और छोटे असंख्य वृक्ष उगते हैं तथा प्रतिवर्ष और बहुत वर्षोंतक पत्ती, फल, फूल, रस, तैल, छाल और लकड़ीसे जीवधारियोंको सुख पहुँचाते, सैकड़ों, सहस्रों स्वादु रसीले फलोंसे उनको तृप्त और पुष्ट करते, बहुत वर्षोंतक श्वास लेते, पानी पीते, पृथिवीसे और आकाशसे आहार खींचते आकाशके नीचे झूमते-लहराते रहते हैं?

इस आश्चर्यमयी शक्तिकी खोजमें हमारा ध्यान मनुष्यके रचे हुए एक घरकी ओर जाता है। हम देखते हैं, हमारे सामने एक घर बना हुआ है। इसमें भीतर जानेके लिये एक बड़ा द्वार है। इसमें अनेक स्थानोंमें पवन और प्रकाशके लिये खिड़कियाँ तथा झरोखे हैं। भीतर बड़े-बड़े खम्भे और दालान हैं। धूप और पानी रोकनेके लिये छतें और छज्जे बने हुए हैं। दालान-दालानमें, कोठरी-कोठरीमें, भिन्न-भिन्न प्रकारसे मनुष्यको सुख पहुँचानेका प्रबन्ध किया गया है घरके भीतरसे पानी बाहर निकालनेके लिये नालियाँ बनी हुई हैं। ऐसे विचारसे घर बनाया गया है कि रहनेवालोंको सब ऋतुमें सुख देवे। इस घरको देखकर हम कहते हैं कि इसका रचनेवाला कोई चतुर पुरुष था, जिसने रहनेवालोंके सुखके लिये जो-जो प्रबन्ध आवश्यक था, उसको विचारकर घर रचा। हमने

रचनेवालेको देखा भी नहीं, तो भी हमको निश्चय होता है कि घरका रचनेवाला कोई था या है और वह ज्ञानवान्, विचारवान् पुरुष है।

अब हम अपने शरीरकी ओर देखते हैं। हमारे शरीरमें भोजन करनेके लिये मुँह वना है। भोजन चवानेके लिये दाँत हैं। भोजनको पेटमें पहुँचानेके लिये गलेमें नाली वनी है। उसीके पास पवनके मार्गके लिये एक दूसरी नाली वनी हुई है। भोजनको रखनेके लिये उदरमें स्थान वना है। भोजन पचकर रुधिरका रूप धारण करता है, वह हृदयमें जाकर इकट्ठा होता है और वहाँसे सिरसे पैरतक सव नसोंमें पहुँचकर मनुष्यके सम्पूर्ण अङ्गोंको शक्ति, सुख और शोभा पहुँचाता है। भोजनका जो अंश शरीरके लिये आवश्यक नहीं है उसके मल होकर वाहर जानेके लिये मार्ग वना है। दूध, पानी या अन्य रसका जो अंश शरीरको पोसनेके लिये आवश्यक नहीं है, उसके निकलनेके लिये दूसरी नाली वनी हुई है। देखनेके लिये हमारी दो आँखें, सुननेके लिये दो कान, सूँघनेको नासिकाके दो रन्ध्र, और चलने-फिरनेके लिये हाथ-पैर वने हैं। सन्तानकी उत्पत्तिके लिये जनन-इन्द्रियाँ हैं। हम पूछते हैं—क्या यह परम आश्चर्यमय रचना केवल जड़ पदार्थोंके संयोगसे हुई है या इसके जन्म देने और वृद्धिमें, हमारे घरके रचयिताके समान किन्तु उससे अनन्तगुण अधिक किसी ज्ञानवान्, विवेकवान्, शक्तिमान् आत्माका प्रभाव है?

मन और वाणीकी अद्भुत शक्तियाँ

इसी विचारमें डूवते और उतराते हुए हम अपने मनकी ओर ध्यान देते हैं तो हम देखते हैं कि हमारा मन भी एक आश्चर्यमय वस्तु है। इसकी—हमारे मनकी विचारशक्ति, कल्पनाशक्ति, गणनाशक्ति, रचनाशक्ति, स्मृति, धी, मेधा सव हमको चकित करती हैं। इन शक्तियोंसे मनुष्यने क्या-क्या ग्रन्थ लिखे हैं, कैसे-कैसे काव्य रचे हैं, क्या-क्या विज्ञान निकाले हैं, क्या-क्या आविष्कार किए हैं और कर रहे हैं। यह थोड़ा आश्चर्य नहीं उत्पन्न करता। हमारी वोलने और गानेकी शक्ति भी हमको आश्चर्यमें डुवा देती है। हम देखते हैं कि यह प्रयोजनवती रचना सृष्टिमें सर्वत्र दिखाई पड़ती है और यह रचना ऐसी है कि जिसके अन्त तथा आदिका पता नहीं चलता। इस रचनामें एक-एक जातिके शरीरियोंके अवयव ऐसे नियमसे वैठाए गए हैं कि सारी सृष्टि शोभासे पूर्ण है। हम देखते हैं कि सृष्टिके आदिसे सारे जगत्में एक कोई अद्भुतशक्ति काम कर रही है जो सदासे चली आई है, सर्वत्र व्याप्त है और अविनाशी है।

हमारी वुद्धि विवश होकर इस वातको स्वीकार करती है कि ऐसी ज्ञानात्मिका रचनाका कोई आदि, सनातन, अज, अविनाशी, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, जगत्-व्यापक, अनन्त-शक्ति-सम्पन्न रचयिता है। उसी एक अनिर्वचनीय शक्तिको हम ईश्वर, परमेश्वर, परव्रह्म, नारायण, भगवान्, वासुदेव, शिव, राम, कृष्ण, विष्णु, जिहोवा, गौड, ख़ुदा, अल्लाह आदि सहस्रों नामोंसे पुकारते हैं।

वह परमात्मा एक ही है

वेद कहते हैं—

'एकमेवाद्वितीयम्' (छान्दोग्य० ६।२।१)

'एकं सद्विप्रा वहुधा वदन्ति'
(ऋग्वेद २।३।२२।४६)

'एकं सन्तं वहुधा कल्पयन्ति'

एक ही परमात्मा है, कोई उसका दूसरा नाम नहीं। एकहीको विप्रलोग वहुत-से नामोंसे वर्णन करते हैं। है एक ही, किन्तु उसको वहुत प्रकारसे कल्पना करते हैं।

विष्णुसहस्रनाम और शिवसहस्रनाम इस वातके प्रसिद्ध उदाहरण हैं। युधिष्ठिरने पितामह भीष्मसे पूछा कि 'वताइये, लोकमें वह कौन एक देवता है? कौन सव प्राणियोंका सवसे वड़ा एक शरण है? वह कौन है जिसकी स्तुति करने, तथा जिसको पूजनेसे मनुष्यका कल्याण होता है?'

इसके उत्तरमेँ पितामहने कहा—

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥
अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥
परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥
पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥

(महा० अनु० १४९ । ४-७)

अर्थात् 'मनुष्य प्रतिदिन उठकर सारे जगत्के स्वामी, देवताओँ के देवता, अनन्त पुरुषोत्तमकी सहस्र नामोँसे स्तुति करे। सारे लोकके महेश्वर, लोकके अध्यक्ष (अर्थात् शासन करनेवाले), सर्वलोकमेँ व्यापक विष्णुकी, जो न कभी जन्मे हैँ, न जिनका कभी मरण होगा, नित्य स्तुति करता हुआ मनुष्य सब दुःखोँसे मुक्त हो जाता है। जो सबसे बड़े तेज हैँ, जो सबसे बड़े तप हैँ, सबसे बड़े ब्रह्म हैँ और जो सब प्राणियोँके सबसे बड़े शरण हैँ। जो पवित्रोँमेँ सबसे पवित्र, सब मङ्गल बातोँके मङ्गल, देवताओँके देवता और सब प्राणीमात्रके अविनाशी पिता हैँ।'

इससे स्पष्ट है कि विष्णुसहस्रनाम और शिवसहस्रनाम तथा और ऐसे स्तोत्र सब एक ही परमात्माकी स्तुति करते हैँ। और मनुष्यमात्रको उचित है कि नित्य सायंप्रातः उस परमात्माका ध्यान करे और उसकी स्तुति करे।

उसी एक की तीन संज्ञाएँ हैँ

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये उसी एक परम पिताकी तीन संज्ञाएँ अर्थात् नाम हैँ। विष्णुपुराणमेँ लिखा है—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥

(१ । २ । ६६)

वे एक ही जनार्दन भगवान् सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नामकी तीन संज्ञा प्राप्त करते हैँ।

यही बात बृहन्नारदीय पुराणमेँ भी लिखी है—

नारायणोऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरञ्जनः ।
तेनेदमखिलं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥
तमादिदेवमजरं केचिदाहुः शिवाभिधम् ।
केचिद्विष्णु सदा सत्यं ब्रह्माणं केचिदुच्यते ॥

(१ । २ । २, ५)

भगवान् नारायण अविनाशी, अनन्त, सर्वत्र व्यापक, तथा मायासे अलिप्त हैँ, यह स्थावर-जंगमरूप सारा संसार उनसे व्याप्त है। उन जरारहित आदिदेवताको कोई शिव, कोई सदा सत्यस्वरूप विष्णु और कोई ब्रह्मा कहते हैँ।

इसी प्रकार शिवपुराणमेँ स्वयं महेश्वरका वचन है—

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया ।
सर्गरक्षालयगुणैः निष्कलोऽयं सदा हरे ॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति ।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत् ॥

(२ । १ । ९ । २८, ३८)

हे विष्णो ! सृष्टि, पालन तथा संहार इन तीन गुणोँके कारण मैँ ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक तीन भेदसे युक्त हूँ। हे हरे ! वास्तवमेँ मेरा स्वरूप सदा भेदहीन है। मैँ, आप, यह (ब्रह्मा) तथा रुद्र और आगे जो कोई भी होँगे, इन सबका एकही रूप है, उनमेँ कोई भेद नहीँ है, भेद माननेसे बन्धन होता है।

भागवतमेँ भी स्वयं भगवान्का वचन है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥

(४ । ७ । ५०-५१)

हम, ब्रह्मा और शिव संसारके परम कारण हैँ, हम सबके आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश और निर्विशेष हैँ। हे ब्राह्मण ! वह मैँ (विष्णु) अपनी त्रिगुणमयी मायामेँ प्रवेश करके संसारकी सृष्टि, रक्षा तथा प्रलय करता हुआ भिन्न-भिन्न कार्योँके अनुसार नाम धारण करता हूँ।

इसलिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनको भिन्न मानना भूल है। ये एक ही परमात्माकी तीन संज्ञाएँ हैं। इसीलिये शिवपुराणमें भी लिखा है—

> शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः।
> संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः॥
> नामाष्टकमिदं नित्यं शिवस्य प्रतिपादकम्।
> (६।९।१-२)

शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसार-वैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा—ये आठ नाम मुख्य रूपसे शिवके बोधक हैं।

इसलिये यह स्पष्ट है 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' 'ॐ नमो नारायणाय' 'ॐ नमः शिवाय' 'श्रीरामाय नमः' 'श्रीकृष्णाय नमः'—ये सब मन्त्र एक ही परमात्माकी वन्दना हैं।

उस परमात्माका क्या रूप है?

वेद कहते हैं—

> 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।' (तैत्ति० २।१।१)

वह ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त है। भागवतमें भी लिखा है—

> विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम्।
> सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम्॥
> ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः।
> (२।६।३९, ४०)
>
> ज्ञानं मात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान्।
> दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते॥
> (३।३२।२६)

ब्रह्म सत्य है, सदा रहा है, है भी, सदा रहेगा भी। वह ज्ञानमय, चैतन्य और आनन्दस्वरूप है। उसका स्वयं शरीर नहीं है, किन्तु विनाशवान् शरीरों में पैठकर वह संसारकी लीला कर रहा है। वह केवल निर्मल ज्ञानस्वरूप है, पूर्ण है। उसका आदि नहीं, अन्त नहीं। वह नित्य और अद्वितीय है। एक होनेपर भी अनेक रूपों में दिखाई देता है।

दूसरे स्थानमें कहा है—

शरीरोंके भीतर बैठा हुआ आत्मा पुराणपुरुष साक्षात् स्वयंप्रकाश, अज, परमेश्वर, नारायण, भगवान् वासुदेव अपनी मायासे अपने रचित शरीरों में रम रहा है।

ब्रह्मका पूर्ण और अत्यन्त हृदयग्राही निरूपण—वेद, उपनिषद् और पुराणोंका सारांश—भागवतके एकादश स्कन्धके तीसरे अध्यायमें दिया हुआ है।

राजा जनकने ऋषियों से कहा—'हे ऋषिगण! आपलोग ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, अतएव आप मुझे यह बताइये कि जिनको नारायण कहते हैं उन परब्रह्म परमात्माका ठीक स्वरूप क्या है?'

पिप्पलायन ऋषिने कहा—'हे नृप! जो इस विश्वके सृजन, पालन और संहारका कारण है परन्तु स्वयं जिसका कोई कारण नहीं है, जो स्वप्न, जागरण और गहरी नींदकी दशाओं में भीतर और बाहर भी वर्तमान रहता है, देह, इन्द्रिय, प्राण और हृदय आदि जिससे सञ्जीवित होकर अर्थात् प्राण पाकर अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, उसी परमतत्त्वको नारायण जानो। जैसे चिनगारियाँ अग्निमें प्रवेश नहीं पा सकतीं, वैसे ही मन, वाणी, आँखें, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियाँ उस परमतत्त्वका ज्ञान ग्रहण करनेमें असमर्थ हैं और वहाँतक पहुँच न सकनेके कारण उसका निरूपण नहीं कर सकतीं।

वह परमात्मा कभी जन्मा नहीं, न वह कभी मरेगा, न वह कभी बढ़ता है और न घटता है; जन्म-मरण आदिसे रहित वह सब बदलती हुई अवस्थाओंका साक्षी है एवं सर्वत्र व्याप्त है, सब कालमें रहा है और रहेगा, अविनाशी है और ज्ञानमात्र है। जैसे प्राण एक है तो भी इन्द्रियों के भिन्न होनेसे आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, नाक सूँघती है इत्यादि भावों के कारण एक दूसरेसे भिन्न प्रतीत होते हैं, ऐसे ही आत्मा एक होनेपर भी भिन्न-भिन्न देहों में अवस्थित होनेके कारण भिन्न प्रतीत होता है।

जितने जीव जरायुसे उत्पन्न होते हैं—मनुष्य, गौ, घोड़े, हाथी, सिंह, कुत्ते, भेड़, बकरी आदि; जो पक्षीवर्ग अण्डोंसे उत्पन्न होते हैं, जो कीटवर्ग पसीने, मैल आदिसे

उत्पन्न होते हैं, और जो वृक्षवर्ग (पेड़-विटप) पृथिवीको फोड़कर उगते हैं, इन सबों में—सम्पूर्ण सृष्टिमें—जहाँ-जहाँ जीवके साथ प्राण दौड़ता हुआ दिखाई देता है, वहाँ वहाँ ब्रह्म है। जब सब इन्द्रियाँ सो जाती हैं, जब 'मैं हूँ' यह अहम्भाव भी लीन हो जाता है, उस समय जो निर्विकार साक्षीरूप हमारे भीतर बैठा हुआ ध्यानमें आता है और जिसका हमारे जागनेकी अवस्थामें 'हम अच्छे सोए' 'यह सपना देखा' इस प्रकारकी स्मृति होती है वही ब्रह्म है इत्यादि।

यह ब्रह्म कहाँ है ?

वेद कहते हैं—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
(श्वेता० ६।११)

एक ही परमात्मा सब प्राणियोंके भीतर छिपा हुआ है, सबमें व्याप रहा है, सब जीवोंके भीतरका अन्तरात्मा है, जो कुछ कार्य सृष्टिमें हो रहा है, उसका नियन्ता है। सब प्राणियोंके भीतर बस रहा है, सब संसारके कार्यों का साक्षी रूपमें देखनेवाला, चैतन्य, केवल, एक, जिसका कोई जोड़ नहीं और जो गुणोंके दोषसे रहित है।

वेद, स्मृति, पुराण कहते हैं कि यह देवोंका देव अग्निमें, जलमें, वायुमें, सारे भुवनमें, सब औषधियों में, सब वनस्पतियों में, सब जीवधारियों में व्याप रहा है।

कहते हैं—

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एव-
मेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति॥
(श्वेता० ४।१७)

कि वह परमदेव विश्वका रचनेवाला सदा प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। अपने-अपने हृदयमें स्थित इस महात्माको जो शुद्ध हृदयसे, विमल मनसे अपनेमें विराजमान देखते हैं वे अमर होते हैं।

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥
(श्वेता० ६।९)

लोकमें न उसका कोई स्वामी है, न उसके ऊपर आज्ञा चलानेवाला है, न उसका कोई चिह्न है। वही सबका कारण है, उसका कोई कारण नहीं, उसका कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं, न उसका कोई रक्षक है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥
(श्वेता० ६।७)

उस सब सामर्थ्य और अधिकार रखनेवालोंके सबसे बड़े परम ईश्वर, देवताओंके सबसे बड़े देवता, स्वामियोंके सबसे बड़े स्वामी, सारे त्रिभुवनके स्वामी, परम पूजनीय देवको हमलोगोंने जाना है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

सोइ सच्चिदानन्दघन रामा।
अज विज्ञानरूप बलधामा॥
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥
अगुण अदभ्र गिरा गोतीता।
समदर्शी अनवद्य अजीता॥
निर्मल निराकार निर्मोहा।
नित्य निरञ्जन सुख सन्दोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी।
ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी॥
इहाँ मोहकर कारण नाहीं।
रवि-सम्मुख तम कबहुँकि जाहीं॥

सूरदासजीने कहा है—

जगतपिता जगके आधार।
तुम सबके गुरु सबके स्वामी,
तुम सबहिनके अन्तर्यामी॥
हम सेवक तुम जगत अधार,
नमो नमो तोहिँ बारंबार।
सर्व शक्ति तुम सर्व अधार,
तोहिँ भजै सो उतरै पार॥
घट-घट माँहिँ तिहारो वास,
सर्व ठौर जिमि दीप-प्रकास।
यहि विधि तुमकौं जानै जोई,
भक्त रु ज्ञानी कहिए सोई॥
जगतपिता तुम ही हौ ईश,
याते हम बिनवत जगदीश।
तुम सम द्वितिय और नहिँ आहि,
पटतर देहि नाथ हम काहि॥
नाथ कृपा अब हमपर कीजै,
भक्ति आपनी हमकौं दीजै।
प्रेम भक्ति बिन कृपा न होइ,
सर्व शास्त्रमँ देखै जोइ॥
तपसी तुमको तपकरि पावैँ,
मुनि भागवत गृही गुण गावैँ।
कर्मयोग करि सेवत कोई,
ज्यौँ सेवै त्योँ ही गति होई॥
तीन लोक हरि करि विस्तार,
ज्योति आपनी करि उँजियार।
जैसा कोऊ गेह सँवार,
दीपक बारि करै उँजियार॥
त्योँ हरि-ज्योति आप प्रकटाई,
घट-घटमँ सोई दरसाई।
नाथ तिहारी ज्योति-अभास,
करत सकल जगको परकास॥
थावर-जंगम जहँलौँ भये,
ज्योति तुम्हारी चेतन किये।
तुम सब ठौर सबनतँ न्यारे,
को लखि सकै चरित्र तिहारे॥
सो प्रकाश तुम साजे सदा,
जीव कर्म करि बन्धन बँधा।
सर्वव्यापी तुम सब ठाहर,
तुमहिँ दूर जानत नर नाहर॥
तुम सबके प्रभु अन्तर्यामी,
जीव बिसर रह्यो तुमको स्वामी॥

यह परमात्मा जीव रूपमेँ प्रत्येक जीवधारीके हृदयके बीचमेँ विराजमान है।

ईश्वर-अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुखराशी॥

स्वयं भगवान्ने गीतामेँ कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
(१८।६१)

हे अर्जुन! ईश्वर सब जीवोँके हृदयमेँ रहते हैँ।

इस विषयमेँ याज्ञवल्क्य मुनिने सब वेदोँका तत्त्व योँ वर्णन किया है—

एक सौ चवालीस सहस्र हित और अहित नामकी नाड़ियाँ प्रत्येक मनुष्यके हृदयसे शरीरमेँ दौड़ी हुई हैँ। उसके बीचमेँ चन्द्रमाके समान प्रकाशवाला एक मण्डल है, उसके बीचमेँ अचल दीपके समान आत्मा विराजमान है, उसीको जानना चाहिए। उसीका ज्ञान होनेसे मनुष्य आवागमनसे मुक्त होता है।

यह आत्मा मनुष्यसे लेकर पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, वृक्ष-विटप समस्त छोटे-बड़े जीवधारियोँ में समान रूपसे विराजमान है।

वेदव्यासजी कहते हैँ—

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु।
स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा॥

ब्रह्मकी ज्योति अपने भीतर ही है, वह सब जीवधारियोँमेँ एकसम है, मनुष्य मनको अच्छी तरह शान्त और स्थिर कर उसीसे उसको देख सकता है।

गीतामेँ स्वयं भगवान्का वचन है—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥ (१३।२७)

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥ (१३।१७)

वही पण्डित है जो विनाश होते हुए मनुष्योंके बीचमें विनाश न होते हुए सब जीवधारियोंमें बैठे हुए परमेश्वरको देखता है।

सब ज्योतियोंकी वह ज्योति, समस्त अन्धकारके परे चमकता हुआ, ज्ञानस्वरूप, जाननेके योग्य, जो ज्ञानसे पहचाना जाता है, ऐसा वह परमात्मा सबका सुहृद्, सब प्राणियोंके हृदयमें बैठा है।

ऐसे घट-घट-व्यापक उस एक परमात्माकी मनुष्य-मात्रको विमल भक्तिके साथ उपासना करनी चाहिए और यह ध्यानकर कि वह प्राणीमात्रमें व्याप्त है, प्राणीमात्रसे प्रीति करनी चाहिए। सब जीवधारियोंको प्रेमकी दृष्टिसे देखना चाहिए। जैसा कि भक्तशिरोमणि प्रह्लादजीने कहा है—

ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः।
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥
दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः।
खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः ॥
एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थपरः स्मृतः।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत्सर्वत्र तदीक्षणम् ॥
(श्रीमद्भा० ७।७।५३-५५)

अतएव हे दानवो! सबको अपने ही समान सुख-दुःख होता है, ऐसी बुद्धि धारण करके सब प्राणियोंके आत्मा और ईश्वर भगवान् श्रीहरिकी भक्ति करो। दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियाँ, शूद्र, व्रजवासी गोपाल, पशु, पक्षी और अन्य पातकी जीव भी भगवान् अच्युतकी भक्तिसे निस्सन्देह मोक्षको प्राप्त होगए हैं। गोविन्द भगवान्के प्रति एकान्त-भक्ति करना और चराचर समस्त प्राणियोंमें भगवान् है ऐसी भावना करना ही इस लोकमें सबसे उत्तम स्वार्थ है।

सनातनधर्मका मूल

भगवान्वासुदेवो हि सर्वभूतेष्ववस्थितः।
एतज्ज्ञानं हि सर्वस्य मूलं धर्मस्य शाश्वतम् ॥

यह ज्ञान कि भगवान् वासुदेव सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित हैं, सम्पूर्ण सनातनधर्मका सदासे चला आता हुआ और सदा रहनेवाला मूल है। इसी ज्ञानको भगवान्ने अपने श्रीमुखसे गीतामें कहा है—

'समोऽहं सर्वभूतेषु' (९।२९)

मैं सब प्राणीमात्रमें एक समान हूँ। तथा यह कि—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥
(गीता ५।१८)

विद्या और विनयसे युक्त ब्राह्मणमें, गौ-बैलमें, हाथीमें, कुत्तेमें और चाण्डालमें पण्डित लोग समदर्शी होते हैं, अर्थात् सुख-दुःखके विषयमें उनको समान भावसे देखते हैं। तथा यह भी कि—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥
(गीता ६।३२)

जो पुरुष सबके सुख-दुःखके विषयमें अपनी उपमासे समान दृष्टिसे देखता है उसीको सबसे बड़ा योगी समझना चाहिए।

इसीलिये महर्षि वेदव्यासजीने कहा है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥
(विष्णुधर्मोत्तर० ३।२५५।४४)

न तत्परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
एष सामासिको धर्मः कामादन्यः प्रवर्त्तते ॥
(महा० अनु० ११३।८)

सुनो धर्मका सर्वस्व और सुनकर इसके अनुसार आचरण करो। जो अपनेको प्रतिकूल जान पड़े, जिस बातसे अपनेको पीड़ा पहुँचे, उसको दूसरोंके प्रति न करो।

दूसरेके प्रति हमको वह काम नहीं करना चाहिए जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको बुरा मालूम हो या दुःख हो। संक्षेपमें यही धर्म है, इसके अतिरिक्त दूसरे सब धर्म किसी बातकी कामनासे किए जाते हैं।

जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत्कथं सोऽन्यं प्रघातयेत्।
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥

(महा० शां० ५९ । २२)

जो चाहता है कि मैं जीऊँ, वह कैसे दूसरे का प्राण हरनेका मन करे ? जो-जो बात मनुष्य अपने लिये चाहता है उसको चाहिए कि वही-वही बात औरों के लिये भी सोचे ।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, धर्म जिनका सब समयमें पालन करना सब प्राणियों के लिये विहित है और जिनके उल्लङ्घन करनेसे आदमी नीचे गिरता है, इन्हीं सिद्धान्तों पर स्थित हैं । इन्हीं सिद्धान्तोंपर वेदों में गृहस्थों के लिये पञ्चमहायज्ञका विधान किया गया है कि जो भूलसे भी किसी निर्दोष जीवकी हिंसा हो जाय तो हम उसका प्रायश्चित्त करें । जो हिंसक जीव हैं, जो हमारा या किसी दूसरे निर्दोष प्राणीका प्राणाघात करना चाहते हैं, या उनका धन हरना या धर्म बिगाड़ना चाहते हैं, जो हमपर या हमारे देशपर, हमारे गाँवपर आक्रमण करते हैं,–ऐसे लोग आततायी कहे जाते हैं । अपने या अपने किसी भाई या बहिनके प्राण, धन, धर्म, मानकी रक्षाके लिये ऐसे आततायी पुरुषों या जीवोंका, आवश्यकताके अनुसार आत्मरक्षाके सिद्धान्तपर वध करना धर्म है । निरपराधी अहिंसक जीवोंकी हिंसा करना अधर्म है ।

इसी सिद्धान्तपर वेदके समयसे हिन्दू लोग सारी सृष्टिके निर्दोष जीवोंके साथ सहानुभूति करते आए हैं । गौको हिन्दू लोकमाता कहते हैं । क्योंकि वह मनुष्य-जाति को दूध पिलाती है और सब प्रकारसे उनका उपकार करती है । इसलिये उसकी रक्षा करना तो मनुष्यमात्रका विशेष कर्त्तव्य है, किन्तु किसी भी निर्दोष या निरपराध प्राणीको मारना, किसीका धन या प्राण हरना, किसीके साथ अत्याचार करना, किसीको झूठसे ठगना, ऊपर लिखे धर्मके परम सिद्धान्तके अनुसार अकार्य अर्थात् न करनेकी बातें हैं । और अपने समान सुख-दुःखका अनुभव करनेवाले जीवधारियोंकी सेवा करना, उनका उपकार, यह त्रिकालमें सार्वलौकिक सत्य धर्म है ।

इसी मूल सिद्धान्तके अनुसार वेदधर्मके माननेवालोंको उपदेश दिया गया है कि न केवल मनुष्योंको किन्तु पशु-पक्षियों तथा समस्त जीवोंको बलिवैश्वदेवके द्वारा नित्य कुछ आहार पहुँचाना अपना धर्म समझें । यह बात नीचे लिखे श्लोकोंसे स्पष्ट है ।

बलिवैश्वदेवके श्लोक

ततोऽन्यदन्नमादाय भूमिभागे शुचौ पुनः ।
दद्यादशेषभूतेभ्यः स्वेच्छया तत्समाहितः ॥
देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाः सयक्षोरगभूतसङ्घाः ।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम् ॥
पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्याः
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं
तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥
भूतानि सर्वाणि तथान्नमेत-
दहं च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति ।
तस्मादहं भूतनिकायभूत-
मन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ॥
चतुर्दशो भूतगणो य एष
तत्र स्थिता येऽखिलभूतसङ्घाः ।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया विसृष्टं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥
इत्युच्चार्य नरो दद्यादन्नं श्रद्धासमन्वितम् ।
भुवि भूतोपकाराय गृही सर्वाश्रयो यतः ॥

(विष्णुपु० ३ । ११ । ५०–५२. ५४–५६)

और-और यज्ञोंको करनेके बाद मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार दूसरा अन्न ले पृथिवीके पवित्र भागमें रख फिर सावधानतापूर्वक समस्त जीवों के लिये बलि दे और यों कहे—'देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, नाग, अन्य भूत-समूह, प्रेत, पिशाच तथा सम्पूर्ण वृक्ष एवं चींटी, कीड़े और पतङ्गे आदि जीव जो कर्मबन्धनमें बँधे हुए भूखे तड़प रहे हों और मुझसे अन्न चाहते हों, उनके लिये यह अन्न मैं ने रख छोड़ा है, इससे उनकी

तृप्ति हो और वे सुखी हों। सब जीव, यह अन्न और मैं सब विष्णु ही हैं उनसे अन्य कुछ भी नहीं है, इस कारण मैं जीवों के शरीरभूत इस अन्नको उन प्राणियोंकी रक्षाके लिये देता हूँ। यह जो चौदह प्रकारका भूतोंका समुदाय है, इसमें जो सम्पूर्ण जीवसमूह स्थित हैं उनकी तृप्तिके लिये मैं ने यह अन्न दिया है। वे प्रसन्न हों।' मनुष्य यों कहकर प्राणियोंके उपकारार्थ पृथिवीपर श्रद्धापूर्वक अन्न दे, क्योंकि गृहस्थ सबका आधार होता है।

इसी धर्मके अनुसार सनातनधर्मी नित्य तर्पण करनेके समय न केवल अपने पितरोंका तर्पण करते हैं किन्तु समस्त ब्रह्माण्डके जीवधारियोंका। यह नीचे लिखे श्लोकोंसे विदित है, यथा—

देवाः सुरास्तथा यक्षा नागा गन्धर्वराक्षसाः।
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः खगाः॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः।
प्रीतिमेते प्रयान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया॥
ये वान्धवावान्धवा वा येऽन्यजन्मनि वान्धवाः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु यश्चास्मत्तोयमिच्छति॥
(विष्णुपु० ३। ११। ३३-३६)

देवता, दैत्य, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, वृक्ष-वर्ग, पक्षीगण, जलमें रहनेवाले जीव, विलमें रहनेवाले जीव, वायुके आधारपर रहनेवाले जन्तु, ये सब मेरे दिए हुए जलसे तृप्त हों। समस्त नरकोंकी यातनामें जो प्राणी दुःख भोग रहे हैं, उनके दुःख शान्त करनेकी इच्छासे मैं यह जल देता हूँ। जो मेरे वन्धु-वान्धव रहे हों और जो वान्धव न रहे हों और जो किसी और जन्ममें मेरे वान्धव रहे हों उनकी तृप्तिके लिये और उनकी भी तृप्तिके लिये जो मुझसे जल पानेकी इच्छा रखते हों, मैं यह जल अर्पण करता हूँ।

वैश्वदेवमें जो अन्न कुत्ते और कौवोंके लिये निकाला जाता है उसको छोड़कर शेष वलिकी मात्रा वहुत कम होती है इसलिये वह 'सर्वभूतेभ्यः' सब प्राणियोंको पहुँच नहीं सकता। तथापि यह जानते हुए भी–वलिवैश्वदेवका करना प्रत्येक गृहस्थका कर्त्तव्य इसलिये माना गया है कि वह उस पवित्र, उदार भावको प्रकट करता है कि मनुष्य मानता है कि उसका सब जीवधारियों से भाईपनका सम्बन्ध है और इस भावको आँसुओं के समान प्रेमके जलसे नित्य सींचकर जगत्के आकाशमें जीवधारीमात्रमें परस्पर भाईपनका भाव स्थापित करनेका उत्कृष्ट और प्रशंसनीय मार्ग है।

इस धर्मकी उदारताकी प्रशंसा कौन कर सकता है? इसकी उदारता इस धर्मके बड़े-से-बड़े परम पूजित आचार्य महर्षि वेदव्यासकी, जो 'सर्वभूतहिते रतः' सब प्राणियोंके हितमें निरत रहते थे, इस प्रार्थनासे भी प्रगट है कि—

सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्॥

सब प्राणी सुखी हों, सब नीरोग रहें, सब सुख-सौभाग्य देखें, कोई दुखी न हो।

उसी धर्मके प्राणाधार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सारे जगत्के प्राणियोंको यह निमन्त्रण दे दिया है कि-'सब और धर्मोंको छोड़कर तुम मुझ एककी शरणमें आओ। मैं तुमको सब पापोंसे छुड़ा लूँगा। सोच मत करो।'

उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
(गीता ९। २९-३२)

कि 'मैं सब प्राणियोंके लिये समान हूँ। न मैं किसीसे द्वेष करता हूँ, न कोई मेरा प्यारा है। जो मुझको भक्तिसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ; पापी-से-पापी भी क्यों न हो यदि वह और सबको छोड़कर मेरा ही भजन

करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिए । थोड़े ही समयमेँ वह धर्मात्मा हो जायगा और उसको शाश्वती शान्ति मिल जायगी । हे अर्जुन! मैँ प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, जो कोई मेरा भक्त है, उसका बुरा नहीँ होगा । हे कुन्तीके पुत्र ! मेरी शरणमेँ आकर पापयोनिसे उत्पन्न प्राणी भी तथा स्त्री, वैश्य और शूद्र भी निश्चय सबसे ऊँची गतिको पावेँगे ।

धन्य हैँ वे लोग जिनको इस पवित्र और लोक-प्रेमसे पूर्ण धर्मका उपदेश प्राप्त हुआ है । मेरी यह प्रार्थना है कि इस ब्रह्मज्योतिकी सहायतासे सब धर्मशील जन अपने ज्ञानको विशुद्ध और अविचल कर और अपने उत्साहको नूतन और प्रबल कर सारे संसारमेँ इस धर्मके सिद्धान्तोँका प्रचार करेँ और समस्त जगत्को यह विश्वास करा देँ कि सबका ईश्वर एक ही है और वह अंश रूपसे न केवल सब मनुष्योँ मेँ किन्तु समस्त जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज् अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, वृक्ष और विटप सबमेँ समान रूपसे अवस्थित है और उसकी सबसे उत्तम पूजा यही है कि हम प्राणीमात्रमेँ ईश्वरका भाव देखेँ, सबसे मित्रताका भाव रक्खेँ और सबका हित चाहेँ । सार्वजनीन प्रेमसे इस सत्य ज्ञानके प्रचारसे ईश्वरीय शक्तिका सङ्गठन और विस्तार करेँ । जगत्से अज्ञानको दूर करेँ, अन्याय और अत्याचारको रोकेँ और सत्य, न्याय और दयाका प्रचारकर मनुष्योँ मेँ परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढ़ावेँ ॥ इति शम् ॥

काशी,
वैशाख शु० ९,
सं० १९८९ ।

मदन मोहन मालवीय

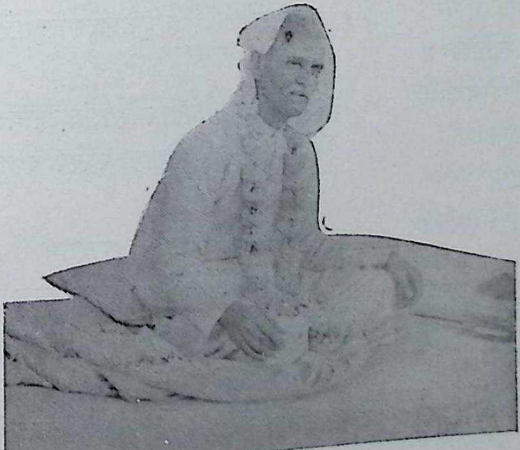

व्यास रूपमेँ पूज्य मालवीयजी

अन्त्यजोद्धार-विधिः

(१)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ।
यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥
भागवते ।

करुणामूर्त्तिना येन चतुर्वर्गस्य साधकाः ।
चत्वारो रचिता वेदा वर्णाश्चत्वार आश्रमाः ॥
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे विश्रुते रणमूर्धनि ।
यो ह्यदादर्जुनं ज्ञानं विशुद्धं विजयप्रदम् ॥
सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥
यं पृथग्धर्मचरणाः पृथग्धर्मफलैषिणः ।
पृथग्धर्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्मात्मने नमः ॥
भारते ।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत् ॥
मनुः ।

न जातु कामान्न भयान्न लोभात्त्यजेद्धर्मं जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥
व्यासः ।

नाहं कामान्न संरभान्न द्वेषान्नार्थकारणात् ।
न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथञ्चन ॥
कृष्णः भारते ।

विद्या रूपं धनं शौर्यं कुलीनत्वमरोगता ।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यते ॥
देवता ब्राह्मणाः सन्तो यक्षा मानुषचारणाः ।
धार्मिकान् पूजयन्तीह न धनाढ्यान्न कामिनः ॥
भीष्मपर्व ।

मम प्रतिज्ञाञ्च निबोध सत्यां वृणे धर्ममममृताज्जीविताच्च ।
राज्यञ्च पुत्राश्च यशो धनञ्च सर्वं न सत्यस्य कलामुपैति ॥
युधिष्ठिर ।

कोऽयं धर्मः

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।
कणादः ।

लोकयात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमः कृतः ।
उभयत्र सुखोदर्कः इह चैव परत्र च ॥
अकारणो हि नैवास्ति धर्मः सूक्ष्मो हि जाजले ।
भूतभव्यार्थमेवेह धर्मप्रवचनं कृतम् ॥
भारते ।

धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः ।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥
प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।
यः स्यात्प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।
यः स्यादहिंसासंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥

कोऽयं सनातनो धर्मः ?

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥
मनुः ।

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥
याज्ञवल्क्यः ।

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने ।
वेदाः प्रतिष्ठिता देवि ! पुराणे नात्र संशयः ॥
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः ।
उभयोर्यन्नदृष्टं तत् पुराणे परिगीयते ॥
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं चालयिष्यति ।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ॥

युधिष्ठिरः—

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ।
वर्णाश्रमाचारयुतं यत्पुमान्विन्दते परम् ॥

नारद उवाच—

नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे ।
वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥
धर्ममूलं हि भगवान् सर्ववेदमयो हरिः ।
स्मृतं च तद्विदां राजन् येन चात्मा प्रसीदति ॥
सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ।
अहिंसा ब्रह्मचर्यञ्च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥
सन्तोषः समदृक्सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥
श्रवणं कीर्त्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥

भागवते ७-११ ।

वर्णधर्मः—भागवते—

शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम् ।
ज्ञानं दयाऽच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ॥
शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्मजयक्षमा ।
ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ॥
देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम् ।
आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुण्यं वैश्यलक्षणम् ॥
शूद्रस्य सन्नतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ।
अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ॥

तथा भारते—

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः ।
वेदाध्ययनसम्पन्नः षट्सु कर्मस्वनुष्ठितः ॥
शौचाचारस्थितः सम्यक् विघसाशी गुरुप्रियः ।
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥
क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसङ्गतः ।
दानादान रतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥
वाणिज्या पशुरक्षा च कृष्यादानरतिः शुचिः ।
वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥
सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः ।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ॥

म० शां० प० ।

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसां वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

भागवते ।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ॥
सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥
सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥

गीता अ० १८ ।

महाभारतके उद्योग पर्वमें लिखा है—

एष धर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा ।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा ।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत्सनातनम् ॥

भगवान मनुने धर्मके दश लक्षण कहे हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

और चारों वर्णोंके लिये सामासिक पाँच धर्म कहे हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥

ऊपर उद्धृत वचनोंसे स्पष्ट है कि सनातनधर्ममें धर्मका एक मूल अङ्ग शौच भी है ।

दक्ष संहितामें लिखा है—

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ।
शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥

शौच-सफ़ाईके विषयमें सदा यत्न करना चाहिए । द्विजाति ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य होनेका मूल शौच है । जो शौच और सदाचारसे रहित है, उसकी सब क्रियाएँ निष्फल होती हैं ।

शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः ।
सानुक्रोशश्च भूतेषु तद्विजातिषु लक्षणम् ॥

शा० प० १८९ अ० ।

शास्त्रकारोँ ने भिन्न-भिन्न वर्णोँका धर्म वर्णनकर यह भी लिखा है कि सदाचारके सेवनसे, सत्कर्म करनेसे, शूद्रभी द्विजत्वको पहुँच सकता है और दुराचार अर्थात् बुरे कामोँके करनेसे ब्राह्मण भी नीचे गिरकर शूद्रताको पहुँच सकता है ।

वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा ।
यथाऽपकर्षं पापेन इति शास्त्रनिदर्शनम् ।
यथोदयगिरौ द्रव्यं सन्निकर्षेण दीप्यते ।
तथा सत्सन्निकर्षेण हीनवर्णोऽपि दीप्यते ।

शा० प० १९१ ।

शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत् ॥

शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रा भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥

वन० १८०-२५ ।

युधिष्ठिरः—

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥

नहुषः—

चातुर्वर्ण्यं प्रमाणं च सत्यं च ब्रह्म चैव हि ।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च ॥
आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर ।

अन्यच्च

यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैतन्नभवेत्सर्प तं शूद्रेति विनिर्दिशेत् ॥

वनपर्व १८० ।

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।
मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥

मनु० १० ।

अयमर्थः—

ये पुनः शूद्राः धर्मप्राप्तिकामाः त्रैवर्णिकानामाचारमनिषिद्धमाश्रिताः ते नमस्कारेण मन्त्रेण मन्त्रान्तररहितं पञ्चयज्ञादि धर्मान् कुर्वाणा न प्रत्यवयन्ति ख्यातिं च लोके लभन्ते ।

यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः ।
तथा तथेममामुञ्च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥

मनु० १० ।

परगुणानिन्दकः शूद्रो यथा यथा द्विजात्याचारमनिषिद्धमनुतिष्ठति तथा तथा जनैरनिन्दित इह लोके उत्कृष्टः स्मृतः स्वर्गादिलोकं च प्राप्नोति । इति कुल्लूकः ।

इसी प्रकारके शास्त्रके और अनेक वचन हैँ जिनसे यह सिद्ध होता है कि नीचातिनीच शूद्र भी बुरे कर्मोँके त्यागनेसे और भले कर्मोँके पालन करनेसे ब्राह्मणके समान मान पानेके योग्य हो सकता है। और ऐसा शूद्र यदि विद्वान् हो तो द्विजन्मा उससे आत्मज्ञान तक सीख सकता है। स्वयं मनुजीका वचन है—

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीताऽवरादपि ।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥

मनु० २-२३८ ।

अर्थात्—श्रद्धायुक्तो द्विजः शुभां दृष्टशक्तिं गारुडादिविद्यामवराच्छूद्रादपि गृह्णीयात् । अन्त्यश्चाण्डालस्तस्मादपि जातिस्मरादेर्विहितयोगप्रकर्षात् दुष्कृतशेषोपभोगार्थमवाप्तचाण्डालजन्मतः परं धर्मं मोक्षोपायमात्मज्ञानमाददीत । इति कुल्लूकः । तथा अज्ञानमेवोपक्रम्य मोक्षधर्मे "प्राप्य ज्ञानं ब्राह्मणात् क्षत्रियाद्वा वैश्याच्छूद्रादपि नीचादभीक्ष्णम् श्रद्धातव्यं श्रद्दधानेन नित्यं न श्रद्धिनं प्रति जन्ममृत्यु विशेषता ।"

उत्कर्षके दो बड़े उदाहरण ।

चाण्डाल और श्वपच भी इसी जन्ममेँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके समान मान पानेके योग्य हो सकते हैँ, इसके दो बड़े उदाहरण हैँ। एक धर्मव्याधकी कथा जो महाभारतके वनपर्वमेँ है, और दूसरी मूक चाण्डालकी कथा जो पद्मपुराणमेँ मिलती है।

एक कौशिक नाम वेदाध्यायी तपोधन ब्राह्मण था। उसको क्रोध और अभिमान आ गया। उस दशामेँ उसको एक पतिव्रता स्त्रीने उपदेश किया कि आप धर्म-

को अभी नहीँ जानते हैँ । आप जाइए । मिथिलापुरीमैँ धर्मव्याध रहता है उससे धर्मका उपदेश लीजिए। ब्राह्मण धर्मव्याधके पास गया, वह धर्मव्याध अपनी मांसकी दूकानपर बैठा था। वह ब्राह्मणको अपने घर ले गया और ब्राह्मणने वहाँ उससे कहा कि तुम मुझे शिष्टाचारका उपदेश करो। व्याधने बहुत विस्तारके साथ ब्राह्मणको धर्मका उपदेश किया। वह कथा वनपर्वके २०५ वेँ अध्यायसे २१४ वेँ अध्याय तकमेँ वर्णित है। उसी प्रसङ्गमेँ व्याधने कहा—

> अशीलश्चापि पुरुषो भूत्वा भवति शीलवान् ।
> प्राणिहिंसारतश्चाऽपि भवते धार्मिकः पुमान् ॥
>
> —वनपर्व २०६-३३ ।

पुरुष दुश्चरित्र होकर भी सुचरित्र हो सकता है और प्राणियोँकी हिंसामेँ रत रहनेपर भी मनुष्य धार्मिक हो सकता है ।

> पापञ्चेत् पुरुषः कृत्वा कल्याणमभिपद्यते ।
> मुच्यते सर्वपापेभ्यो महाभ्रेणेव चन्द्रमाः ॥
> यथादित्यः समुद्यन् वै तमः पूर्वं व्यपोहति ।
> एवं कल्याणमातिष्ठन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
>
> —वनपर्व २०६-५५-५६ ।

आगे चलकर व्याधने कहा—

> शूद्रयोनौ हि जातस्य सद्गुणानुपतिष्ठतः ।
> वैश्यत्वं लभते ब्रह्मन् क्षत्रियत्वं तथैव च ॥

अर्थात् शूद्रयोनिमेँ भी उत्पन्न हुआ पुरुष यदि अपनेमेँ अच्छे गुणोँको संग्रह करे तो हे ब्रह्मन् ! वह वैश्य हो जाता है और क्षत्रिय यदि सदाचारसे जीवन यापन करे तो उसमेँ ब्राह्मणकी योग्यता भी उत्पन्न हो जाती है।

धर्मव्याधने ब्राह्मणसे कहा कि तुम अपने माता-पिताको दुखी करके पढ़नेके लिये घरसे निकल आए हो, इसलिये तुम जाकर उनको प्रसन्न करो, तब तुम परम धर्मको प्राप्त होगे। ब्राह्मणने व्याधको धन्यवाद दिया और कहा कि—

> आर्जवे वर्तमानस्य ब्राह्मण्यमभिजायते ।

तुम्हारे समान धर्मको बतानेवाले संसारमेँ दुर्लभ हैँ। तब व्याधसे पूछा कि हे व्याध ! कारण बताओ कि कैसे शूद्रयोनिमेँ तुम्हारा जन्म हुआ। व्याधने अपनी सब कथा कही। उसको सुनकर ब्राह्मणने कहा—

> ईदृशा दुर्लभा लोके नरा धर्मप्रदर्शकाः ॥
> साम्प्रतञ्च मतो मेऽसि ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
> ब्राह्मणः पतनीयेषु वर्त्तमानो विकर्मसु ॥
> दाम्भिको दुष्कृतः प्रायः शूद्रेण सदृशो भवेत् ॥
> यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः ।
> तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः ॥
>
> —वनपर्व २१५-११-१२।

अर्थात् यद्यपि शूद्रयोनिमेँ तुम्हारा जन्म है तथापि मैँ तो तुमको इस समय ब्राह्मण ही मानता हूँ। मेरे मनमेँ इसमेँ कुछ भी संशय नहीँ है। जो ब्राह्मण नीचे गिरानेवाले बुरे कर्मोँमेँ लगा हो, दाम्भिक हो और दुष्कर्मा हो, वह प्रायः शूद्रके समान होता है। और जो शूद्र, मनके और इन्द्रियोँके रोकनेमेँ, सत्यमेँ और धर्ममेँ सदा लगा रहता हो, उसको मैँ ब्राह्मण मानता हूँ। चरित्र सेही ब्राह्मण होता है।

मार्कण्डेय मुनि कहते हैँ कि चलते समय व्याधने ब्राह्मणको फिर प्रणाम किया और ब्राह्मण उसकी प्रदक्षिणा करके अपने घर चला।

मूक चाण्डालकी कथा ।

दूसरी कथा पद्मपुराणमेँ मूक चाण्डालकी है। यह संक्षेपमेँ नीचे वर्णित है—

> "कथयामि पुरा वृत्तं विप्राः शृणुत यत्नतः ।
> यं श्रुत्वा न पुनर्मोहं प्रयास्यथ पुनर्भुवि" ॥
> पुरासीच्च द्विजः कश्चिन्नरोत्तम इति स्मृतः ।
> स्वपितरावनादृत्य गतोऽसौ तीर्थसेवया ॥
> ततः सर्वाणि तीर्थानि गच्छतो ब्राह्मणस्य च ।
> आकाशे स्नानचैलानि प्रशुष्यन्ति दिने दिने ॥
> अहङ्कारोऽविशत्तस्य मानसे ब्राह्मणस्य च ।
> मत्समो नास्ति वै कश्चित् पुण्यकर्मा महायशाः ॥
> इत्युक्ते चानने तस्य अहदश्च बकस्तदा ।
> क्रोधाच्चैवेरितस्तस्य स शशाप द्विजो बकम् ॥
> भीर्द्विजेन्द्रं महामोहः प्राविशच्चान्तकर्मणि ।

देववाण्युवाच—

गच्छ वाडव चाण्डालं मूकं परमधार्मिकम् ।
तत्र धर्मं च जानीषे क्षेमं ते तद्वचो भवेत् ॥

व्यास उवाच—

खाच्च तद्वचनं श्रुत्वा गतोऽसौ मूकमन्दिरम् ।
शुश्रूषन्तं च पितरौ सर्वारम्भान्ददर्श सः ॥
ददतं शीतकाले च सम्यगुष्णं जलं तयोः ।
तैलतापनताम्बूलं तथा तूलवतीं पटीम् ॥
नित्याशनं च मिष्टान्नं दुग्धखण्डं तथैव च ।
दापयन्तं वसन्ते च मधुमालां सुगन्धिकाम् ॥
ततस्तयोः प्रचर्यां च कृत्वा भुङ्क्तेऽथ सर्वदा ।
श्रमस्य वारणं कुर्यात्सन्तापस्य तथैव च ॥
एभिः पुण्यैः स्थितो विष्णुस्तस्य गेहोदरे चिरम् ।
तेजोमयं महासत्वं शोभयन्तं च मन्दिरम् ॥
दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो विप्रः प्रोवाच मूककम् ।

अनन्तरं विष्णुं दृष्ट्वा विप्र उवाच—

महापातकिसंसर्गान्नराश्चैवाति पातकाः ।
इति जल्पन्ति धर्मज्ञाः स्मृतिशास्त्रेषु सर्वदा ॥
पुराणागमवेदेषु कथं त्वं तिष्ठसे गृहे ।

श्री भगवानुवाच—

कल्याणानां च सर्वेषां कर्त्ता मूको जगत्त्रये ।
वृत्तस्थो योऽपि चाण्डालस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
मूकस्य सदृशो नास्ति लोकेषु पुण्यकर्मतः ।
पित्रोर्भक्तिपरो नित्यं जितं तेन जगत्त्रयम् ॥
तयोर्भक्त्या त्वहं तुष्टः सर्वदेवगणैः सह ।
तिष्ठामि द्विजरूपेण तस्य गेहोदरे च खे ॥
पित्रोर्भक्तिपरः शुद्धश्चाण्डालो देवतां गतः ।
तस्मात्तेन सह प्रीत्या तिष्ठामि तस्य मन्दिरे ॥

माता-पिताकी भक्तिसे शुद्ध होकर चाण्डाल देवताकी पदवीके योग्य हो गया ।

यह कथा इस बातके लिये पर्याप्त प्रमाण है कि सदाचारसे, धर्मके पालनसे, चाण्डाल भी अपने जीवनमेँ विद्वान् तपस्वी ब्राह्मणसे ऊँचे-से-ऊँचा आदर पानेके योग्य हो सकता है। ये कथाएँ हमारे ही कल्याणके लिये कही गई हैँ। इसलिये स्मृति और पुराणोँके प्रमाणसे यह सिद्ध होता है कि चाण्डाल और श्वपचको आवश्यक शौच और आचार सिखाकर, उनमेँ धर्मकी भावना दृढ़ कर हम उनको सच्छूद्र तो अवश्य ही बना सकते हैँ और उनको धर्मके उस मार्गमेँ प्रवृत्त कर सकते हैँ जिसमेँ चलकर मूक चाण्डाल ब्राह्मण और धर्मव्याधकी तरह कोई भी चाण्डाल ब्राह्मणके योग्य हो सकता है ।

इन कथाओँका यह अर्थ नहीँ है कि हम अन्त्यजोँके साथ भोजन या विवाहका सम्बन्ध करेँ। भोजन और विवाहका सम्बन्ध तो शास्त्र और लोकमर्यादाके अनुसार उन्हीँ बिरादरियोँमेँ ही हो सकता है जिनमेँ शास्त्र और लोकमर्यादाके अनुसार होता चला आया है। इसका यह भी अर्थ नहीँ है कि जो धर्मव्याध या मूक चाण्डालके समान धर्मज्ञ और सदाचारी होँ उनसे हम सब विषयोँ मेँ ब्राह्मणोचित व्यवहार करेँ। ब्राह्मणके छः कर्म हैँ—अध्ययन-अध्यापन (पढ़ना-पढ़ाना), यजन-याजन (यज्ञ करना-कराना), दान और प्रतिग्रह-दान देना और लेना। इन छः कामोँ मेँ अध्ययन, यजन और दान ये तीनोँ काम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सबमेँ समान हैँ। अध्यापन-याजन और प्रतिग्रह वेद पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना इन तीन कामोँके अधिकारी सामान्यतया ब्राह्मण ही है। "विद्या तपश्च योनिश्च त्रयं ब्राह्मणकारणम्" अर्थात् जिसमेँ विद्या, तपस्या और जन्म तीनोँ गुण होँ वही ब्राह्मण है। इन कथाओँका सार यह है कि जो चाण्डाल भी विद्वान्, ज्ञानवान् और सदाचारी हो तो हम उसकी योग्यताके अनुसार उसका आदर करेँ। केवल उसके जन्ममात्रके कारण उसका अनादर न करेँ।

मनुष्यको पापसे छुटाने और पुण्यके मार्गमेँ ऊपर उठानेके लिये और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारोँ पदार्थोँके सम्पादन करनेके लिये शास्त्रके अनुसार दीक्षा ही एक परम साधन है। दीक्षाका विधान अन्त्यज पर्यन्त सभी सनातनधर्मियोँके लिये आया है जिसके प्रभावसे अन्त्यज भी शुद्ध, पवित्र, सदाचारी और मान्य हो सकता है। यह सब आगे दीक्षा प्रकरणसे स्पष्ट हो जायगा।

“दीक्षामहत्त्व, मन्त्रमाहात्म्य और दीक्षाकाल”

दीक्षाका अर्थ यों लिखा है—

> दीयते ज्ञानमत्यर्थं क्षीयते पापबन्धनात्।
> अतो दीक्षेति देवेशि कथिता तत्त्वचिन्तकैः॥
> (योगिनीतन्त्रे)

दीक्षाके द्वारा मनुष्यको परम ज्ञान दिया जाता है और मनुष्य पापके बन्धनसे छूटता है, हे पार्वति! इसलिये तत्त्वके जाननेवाले इसको दीक्षा कहते हैं।

दूसरे स्थलमें दीक्षाका महत्त्व इस प्रकार वर्णित है—

> यस्य विज्ञानमात्रेण देवत्वं लभते नरः।
> दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात्पापक्षयं ततः॥
> तस्माद्दीक्षेति सम्प्रोक्ता सर्वतन्त्रस्य सम्मता।

जिस दीक्षाके पानेमात्रसे मनुष्यको ज्ञान होता है, जिस दीक्षासे दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है और जिससे पापका क्षय होता है। इसलिये इसको दीक्षा कहते हैं और सब तन्त्रशास्त्रोंका इस विषयमें एक ही मत है।

शास्त्र कहता है—

> भवेद्दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्गतिः।
> तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत्॥
> (रुद्रयामल)

स्कन्द पुराणमें लिखा है कि “देवता लोग भी दीक्षा लेनेको उत्सुक रहते हैं”। स्वामिकार्त्तिकेयने विश्वामित्रजीसे नीचे लिखे शब्दोंमें दीक्षा माँगी।

> तत्कच मां श्रुतिसंस्कारैः सर्वैः संस्कर्तुमर्हसि।
> संस्काररहितं जन्म यतश्च पशुवत्स्मृतम्॥

आप सब वेदोंके संस्कारोंसे मेरा संस्कार करें। क्योंकि बिना संस्कार पाए मनुष्यका जीवन पशुके समान है।

आज-कल दीक्षा देनेकी चलन बहुत कम हो गई है। और बहुत थोड़े ब्राह्मण-बालकोंको शास्त्रके अनुसार गायत्रीकी दीक्षा दी जाती है। जिनको गायत्रीकी दीक्षा दी भी जाती है उनसे भी नियमानुसार व्रतका पालन नहीं कराया जाता। क्षत्रियोंमें दीक्षाका क्रम दिन-दिन और अधिक दुर्बल होता जाता है। वैश्योंमें कुछ दिनोंसे गायत्रीकी दीक्षाका क्रम कहीं-कहीं फैल रहा है। किन्तु हिन्दू जातिके कल्याणके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक हिन्दू-सन्तानको (स्त्रीको भी और पुरुषको भी) दीक्षा दी जाय।

गायत्रीकी दीक्षा उन्हीं बालकोंको दी जाती है जिनका शास्त्रानुकूल उपनयन संस्कार (जनेऊ) किया जाता है। धर्मरक्षा और प्रचारके लिये अत्यावश्यक है कि प्रत्येक हिन्दू-सन्तानको वह दीक्षा दी जाय जिसका विधान ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल पर्यन्त समान हो।

दीक्षाकी आवश्यकता—

मन्त्र-मुक्तावलीमें लिखा है कि मन्त्रकी दीक्षा लेकर ही जप और देवताकी पूजा करनी चाहिए।

> जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः।

जो विना दीक्षा लिए अपना जीवन व्यतीत करता है वह दुःख पाकर मोहान्धकार रूपी गड्ढेमें गिरता है, जैसे कि स्वामीरहित मनुष्यकी कोई रक्षा करनेवाला नहीं होता है। उसका इस लोकमें भी और परलोकमें भी कोई रक्षक नहीं होता।

> अथ दीक्षाविहीनो हि वर्त्तते भुवि पापभुक्।
> मोहान्धकारे नरके गर्ते पतति दुःखितः॥
> अनीश्वरस्य मर्त्यस्य नास्ति त्राता यथा भुवि।
> तथा दीक्षाविहीनस्य नेह स्वामी परत्र च॥
> (दत्तात्रेयामले)

दीक्षाका फल—

रुद्राध्यायमें लिखा है कि जिस ब्राह्मणने दीक्षा पाई है वह अमृतमय ब्रह्मलोकको पहुँचता है, वैश्य प्रजापतिलोकको पहुँचता है और दीक्षाके फलसे शूद्र गन्धर्वलोकको पहुँचता है।

> दीक्षितो ब्राह्मणो याति ब्रह्मलोकं सुधामयम्।
> ऐन्द्रं लोकं क्षत्रियोऽपि प्राजापत्यं विशस्तथा॥
> याति गन्धर्वनगरं शूद्रो दीक्षाप्रसादतः।
> (रुद्रयामले)

वैष्णवतन्त्रमें लिखा है :—

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥

जैसा काँसेपर रसका प्रयोग करनेसे वह सोना हो जाता है, वैसे ही दीक्षा लेनेसे मनुष्य द्विजत्वको प्राप्त करता है।

तन्त्रचिन्तामणिमें लिखा है कि महाविद्याके प्रभावसे शूद्र वैश्यत्वको प्राप्त होता है। हे देवि ! शूद्र जाति प्रणव-पूर्वक मन्त्र ग्रहण करें।

महाविद्याप्रभावेण शूद्रो वैश्यत्वमाप्नुयात्।
प्रणवाद्यं महेशानि गृह्णीयुः शूद्रजातयः॥

नवरत्नेश्वरमें आया है कि चाहे किसी प्रकारकी दीक्षा क्यों न हो उसका फल अवश्य अखण्ड मुक्ति है। मुक्ति तो विना विरोधके ही प्रसङ्गतः हो जाती है—

सर्वासामपि दीक्षाणां मुक्तिः फलमखण्डितम्।
अविरोधाद्भवन्त्येव प्रासङ्गिक्यस्तु मुक्तयः॥

दीक्षित मनुष्य का महत्त्व दिखाते हुए कुलार्णव-तन्त्रमें आया है कि जैसे रसेन्द्र (पारा से विधा हुआ लोहा) स्वर्ण बन जाता है वैसे ही दीक्षा-विद्ध आत्मा शिवत्व को प्राप्त होता है। मनुष्य दीक्षाग्नि से दग्धकर्म हो जाता है और वन्धन-रहित हो जाता है। जीव भी भावसे रहित होकर शिव हो जाता है। जैसे शिवलिङ्गमें देव-बुद्धि छोड़कर पत्थर-बुद्धि करनेसे मनुष्य पापका भागी होता है, उसी प्रकार दीक्षित मनुष्यमें उसकी पूर्वावस्थाका ख़याल करनेवाला मनुष्य भी पापका भागी होता है—

रसेन्द्रेण यथा विद्धमयः सुवर्णतां व्रजेत्।
दीक्षाविद्धस्तथैवात्मा शिवत्वं लभते प्रिये॥
दीक्षाग्निदग्धकर्मासौ पाशाद्विच्छिन्नवन्धनः।
गतस्तस्य कर्मवन्धो निर्जीवश्च शिवो भवेत्॥
शिवलिङ्गे शिलावुद्धिं कुर्वन् यत्पापमाप्नुयात्।
दीक्षितस्यापि पूर्वत्वं स्मरन् तत्पापमाप्नुयात्॥

शैवी दीक्षाका सर्वोत्तम मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' है। इसमें यह छः अक्षरका मन्त्र है, किन्तु लोकमें पञ्चाक्षर कहा जाता है। 'ॐ नमः शिवाय' का अर्थ है कि सारे जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले परम मङ्गल स्वरूप परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ।

इसके विषयमें स्कन्द पुराणमें लिखा है कि शूद्र हो चाहे अन्त्यजादि हो किन्तु शिवदीक्षासे युक्त होकर भक्ति-पूर्वक यदि एक पुष्प शिवजीके ऊपर षडक्षर मन्त्रसे रखता है तो वह उस परम गतिको प्राप्त होता है जिसे विधि-पूर्वक यज्ञ करनेवाले पाते हैं।

शूद्रो वा यदि वा विप्रो म्लेच्छो वा पापकृन्नरः।
शिवदीक्षासमोपेतः पुष्पमेकं तु यो न्यसेत्॥
षडक्षरेण मन्त्रेण लिङ्गस्योपरि भक्तितः।
स तां गतिमवाप्नोति यां यान्तीह हि यज्विनः॥

शिवपुराण वायवीय संहिताके उत्तर भागमें ११ वें अध्यायमें शिवजीने अपने श्री मुखसे श्री पार्वतीजीको उपदेश किया है कि—

ब्रह्मक्षत्रविशां देवि यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
तथैव वानप्रस्थानां गृहस्थानां च सुन्दरि॥
शूद्राणामथ नारीणां धर्म एष सनातनः।
ध्येयस्त्वयाहं देवेशि सदा जाप्यः षडक्षरः॥

अर्थात् हे देवि ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यती, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, गृहस्थ, शूद्र और स्त्री सबोंका (सर्व-मान्य) यह सनातन धर्म है कि तुम्हारी मूर्त्तिसे युक्त मेरी मूर्त्तिका ध्यान किया करें और सदा 'ॐ नमः शिवाय' इस षडक्षर मन्त्रका जप किया करें।

शिवपुराणमें उसी संहिताके १२ वें अध्यायमें लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्णने महर्षि उपमन्युसे कहा कि आप पञ्चाक्षरका माहात्म्य मुझे सुनाइए। इसपर उपमन्यु जी बोले—

पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि।
अशक्यं विस्तराद्वक्तुं तस्मात्संक्षेपतः शृणु॥

पञ्चाक्षर मन्त्रका माहात्म्य करोड़ वर्षमें भी विस्तारके साथ कहना सम्भव नहीं है। इसलिये संक्षेपसे सुनिए।

वेदे शिवागमे चायमुभयत्र षडक्षरः।
मन्त्रस्थितः सदा मुख्यो लोके पञ्चाक्षरः स्मृतः॥
सर्वमन्त्राधिकश्चायमोङ्काराद्यः षडक्षरः।
सर्वेषां शिवभक्तानामशेषार्थप्रसिद्धये॥

प्राहोंनमः शिवायेति सर्वज्ञः सर्वदेहिनाम् ।
अन्त्यजो वाऽधमो वाऽपि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा ॥
पञ्चाक्षरजपे निष्ठो मुच्यते पापपञ्जरात् ।
इत्युक्तं परमेशेन देव्या पृष्टेन शूलिना ।
हिताय सर्वमर्त्यानां जनानामविशेषतः ॥

वेद और शैव आगम दोनोंमें यह मन्त्र छः अक्षरका सदासे स्थित है और सब मन्त्रोंमें मुख्य है। श्लोकमें यही पञ्चाक्षरके नामसे प्रसिद्ध है। ॐकारसे युक्त यह मन्त्र सब मन्त्रोंमें बड़ा है। जिनको आदिदेव महादेवमें भक्ति है, उनकी सब कामनाओंको पूरा करनेवाला है। सर्वज्ञ शिवजीने सब प्राणियोंके सब अर्थोंकी सिद्धिके साधन 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रको अपने श्री मुखसे कहा है जिसको सब लोग सुखसे उच्चारण कर सकते हैं। अन्त्यज या नीच, मूर्ख या पण्डित, जो भी पञ्चाक्षर मन्त्रका जप नित्य श्रद्धासे करता है वह पापके पञ्जरसे छूट जाता है।

परमेश्वर शिवजीने सब प्राणियोंके हितके लिये पार्वतीजीके पूछनेपर ऊपर लिखा वचन कहा है।

शिव-पार्वती संवाद ।

इसका संक्षेप नीचे लिखते हैं। पार्वतीजीने शिवजीसे पूछा कि—

कलौ कलुषिते काले दुर्जये दुंरतिक्रमे ।
अपुण्यतमसाच्छन्ने लोके धर्मपराङ्मुखे ॥
क्षीणे वर्णसदाचारे सङ्करे समुपस्थिते ।
सर्वाधिकारे सन्दिग्धे निश्चिते वा विपर्यये ॥
तदोपदेशे विहिते गुरुशिष्य क्रमेगते ।
केनोपायेन मुच्यन्ते भक्तास्तव महेश्वर ॥

कलियुगमें विकराल काल आनेपर जब पापरूपी अन्धकार फैल जाय और लोग धर्मसे विमुख हो जायँ और वर्णसङ्कर बढ़ने लगें, जब सब लोगोंको सभी धर्मविषयोंपर सन्देह होने लगे, गुरु और शिष्यके क्रमसे उपदेश देनेका क्रम न रहे तो महेश्वर! आपके भक्त किस उपायसे पापसे छूटते हैं?

शिवजी बोले—

आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं मम ।
भक्त्या च भावितात्मानो मुच्यन्ते कलिजा नराः ॥
मनोवाक्कायजैर्दोषैर्वक्तुं स्मर्तुमगोचरैः ॥
दूषितानां कृतघ्नानां निर्दयानां खलात्मनाम् ।
मम पञ्चाक्षरी विद्या संसारभयतारिणी ॥
मय्यैवमसकृद्देवि प्रतिज्ञातं धरातले ।
पतितोऽपि विमुच्येत मद्भक्तो विद्ययानया ॥

कलियुगमें उत्पन्न प्राणी मेरी पञ्चाक्षरी विधिका आश्रय कर अर्थात् पञ्चाक्षर मन्त्रको नित्य श्रद्धासे जप करके और मेरी भक्तिसे अपने आत्माको पवित्र करके पापसे छूट सकते हैं। मनसे, वचनसे और कायासे किए हुए पापोंसे दूषित प्राणियोंको, जिन पापोंको मुखसे वर्णन करना और जिनका स्मरण करना भी कठिन हो, जो किए हुए उपकारको नहीं मानते—ऐसे कृतघ्नोंको और पापियोंको, दयारहित क्रूर प्राणियोंको और दुष्ट आत्माओं को, लोभियोंको और कुटिल मनवालोंको भी मेरा पञ्चाक्षर मन्त्र संसारके सब डरोंसे दूर कर देता है यदि वे मेरी ओर अपने आत्माको झुकावें।

हे देवि! मैंने पृथ्वीतलपर बार-बार प्रतिज्ञा-पूर्वक यही कहा है कि यदि पतित भी हो तो इस मन्त्रके द्वारा पापसे छूट जाता है।

अरुद्रो वा सरुद्रो वा सकृत्पञ्चाक्षरेण यः ।
पूज्यो वा पतितो वाऽपि मूढो वा मुच्यते नरः ॥
षडक्षरेण वा देवि तथा पञ्चाक्षरेण वा ।
सब्रह्माङ्गेण मां भक्त्या पूजयेद्यदि मुच्यते ।
पतितोऽपतितो वापि मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥

चाहे उसने शिव-मन्त्रका उपदेश विधिसे लिया हो चाहे न लिया हो, पतित हो वा मूर्ख हो, जो एक बार भी श्रद्धाभक्तिसे पञ्चाक्षरका जप करता है वह पापसे छूट जाता है। हे देवि! षडक्षर ॐ नमः शिवाय' से या ५ अक्षर 'नमः शिवाय' से जो भक्ति-पूर्वक मेरा पूजन करता है वह मुक्तिको पाता है। चाहे पतित

हो या अपतित हो, सबको इस मन्त्रसे पूजन करना चाहिए। शिवजीने कहा है—

किमत्र बहुनोक्तेन भक्ताः सर्वेऽधिकारिणः।
मम पञ्चाक्षरे मन्त्रे तस्माच्छ्रेष्ठतरो हि सः॥

अर्थात् इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या? जिन प्राणियोंको मुझमें भक्ति है वे सब इस पञ्चाक्षर मन्त्रके जपनेके अधिकारी हैं। इसी लिये यह सब मन्त्रोंमें श्रेष्ठ है।

सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च।
पञ्चाक्षरात्परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे॥
अन्त्यजस्यापि मूर्खस्य मूढस्य पतितस्य च।
निर्मर्यादस्य नीचस्य मन्त्रोऽयं न च निष्फलः॥
सर्वावस्थां गतस्यापि मयि भक्तिमतः परम्।
सिद्ध्यत्येव न सन्देहो नापरस्य तु कस्यचित्॥

अर्थात् सदाचारसे विहीन जो पतित है अर्थात् सारे कुकर्म करनेसे या अपना धर्म छोड़कर किसी दूसरे मतको मान लेनेके कारण जो धर्मसे गिर गया है अथवा अन्त्यज (चाण्डालादि) है उसका इस कलियुगमें पञ्चाक्षरसे परे कोई रक्षा करनेवाला नहीं है। अनपढ़ अन्त्यज भी हो और दुर्बुद्धि पतित भी हो, जो सब मर्यादासे गिर गया हो और सब प्रकारसे नीच हो, वह भी इस मन्त्रको जपे तो उसका जपना निष्फल नहीं जाता। किसी भी अवस्थामें किसी प्राणीका मुझमें भक्ति रखकर पञ्चाक्षर मन्त्र जपना उसे सब पापोंसे छुड़ाता है और उसके लिये सब सुखका साधन बन जाता है। इन सब प्रकरणोंसे यह स्पष्ट है कि ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यज पर्यन्त सभी सनातनधर्मानुयायी पुरुषों और स्त्रियोंको पञ्चाक्षर मन्त्र जपनेका अधिकार है, चाहे वह ॐकार-सहित जपा जाय या ॐकार-रहित।

मम भक्तो जितक्रोधो ह्यलब्धो लब्ध एव वा।
अलब्धालब्ध एवेह कोटिकोटिगुणाधिकः॥
तस्माल्लब्ध्वैव मां देवि मन्त्रेणानेन पूजयेत्।
लब्ध्वा सम्पूजयेद्यस्तु मैत्र्यादिगुणसंयुतः॥
ब्रह्मचर्यरतो भक्त्या मत्सादृश्यमवाप्नुयात्।
किमत्र बहुनोक्तेन भक्ताः सर्वेऽधिकारिणः॥
मम पञ्चाक्षरे मन्त्रे तस्माच्छ्रेष्ठतरो हि सः।
तस्मादनेन मन्त्रेण मनोवाक्काय भेदतः॥
आवयोरर्चनं कुर्याज्जपहोमादिकं तथा।
यदा कदापि वा भक्त्या यत्र कुत्रापि वा कृता॥
येन केनापि वा देवि! पूज्य भुक्तिं नयिष्यति।
मय्यासक्तेन मनसा यत्कृतं मम सुन्दरि॥
मत्प्रियं च शिवञ्चैव क्रमेणाप्यक्रमेण वा।
तथापि मम भक्ता ये चात्यन्त विवशाः पुनः॥
तेषामर्थेषु शास्त्रेषु मयैष नियमः कृतः।

मन्त्र ग्रहण किए बिना पूजा करनेकी अपेक्षा मन्त्र ग्रहण करके पूजा करना कोटि गुना अधिक होता है। इस कारण हे देवि! मन्त्रको ग्रहण करके ही इस मन्त्रसे मेरी पूजा करे। मन्त्र-दीक्षा लेकर सर्व सुहृद्भाववाला ब्रह्मचर्य व्रतमें रत जो पुरुष भक्ति-पूर्वक मेरी पूजा करता है वह मेरे सदृश हो जाता है। इसपर अधिक क्या कहूँ। मेरे पञ्चाक्षर मन्त्रका सभी भक्तोंको अधिकार है। इसी कारण यह मन्त्र सर्वश्रेष्ठ है। अतः सबको चाहिए कि इस मन्त्रसे मन, वचन और कर्मसे हम दोनोंकी पूजा और जप होमादि करे।

हे देवि! अपनी बुद्धि, श्रद्धा, काल, विचार, शक्ति, सम्पत्ति, यथायोग और अपनी प्रीतिके अनुसार जब कभी, कहीं भी तथा किसी प्रकार भी भक्ति-पूर्वक की हुई मेरी पूजा मुक्ति तक पहुँचा देती है। हे देवि! मुझमें आसक्त मनसे जो कुछ भी मेरा प्रिय और मङ्गल कार्यक्रम या अक्रम जिस किसी प्रकार किया जाय वह सब मुक्ति देनेवाला होता है।

हे देवि! जिससे मेरे भक्त अत्यन्त कठिनाईमें भी रहकर मेरी पूजा कर सकें, इससे उनके लिये शास्त्रोंमें मने यह नियम किया है।

द्वादशाक्षर और अष्टाक्षर मन्त्र।

इसी प्रकार विष्णुधर्मोत्तरमें द्वादशाक्षर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' और अष्टाक्षर 'ॐ नमो नारायणाय' ये मन्त्र विशेषकर स्त्री तथा शूद्रोंके लिये कहे गए हैं,

किन्तु ये मन्त्र द्विजातियोंके लिये भी कल्याण-कारक हैं। अर्थात् चारों वर्णोंको इन मन्त्रोंको जपना चाहिए।

> एतत्प्रोक्तं द्विजातीनां स्त्रीशूद्रेषु च यच्छृणु।
> द्वादशाष्टाक्षरौ मन्त्रौ तेषां प्रोक्तौ महात्मनाम्॥
> हितौ तौ च द्विजातीनां मन्त्रश्रेष्ठौ नराधिप।
> तेभ्योऽप्यधिकमन्त्रोऽपि विद्यते नहि कुत्रचित्॥

नृसिंह पुराणके ६२ वें अध्यायमें राजा सहस्रानीकने मार्कण्डेय ऋषिसे पूछा कि वह पूजाकी विधि बताइए कि जो सबके हितके लिये हो अर्थात् जिसके अनुसार सब प्राणी विष्णुका पूजन कर सकें। इसके उत्तरमें मार्कण्डेयजीने कहा—

> अष्टाक्षरेण मन्त्रेण नरसिंहमनामयम्।
> गन्धपुष्पादिभिर्नित्यमर्चयेदच्युतं नरः॥
> राजन्नष्टाक्षरो मन्त्रः सर्वपापहरः परः।
> समस्त यज्ञफलदः सर्वशान्तिकरः शुभः॥

मनुष्य 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्रसे विष्णु भगवान् नरसिंहकी पूजा करे।

इसीसे गन्ध पुष्पादि सोलहों उपचारोंसे पूजा करे।

हे राजन्! यह अष्टाक्षर मन्त्र सब पापोंका हरनेवाला, सब यज्ञोंके फलका देनेवाला, सब दुःख और दोषोंकी शान्ति करनेवाला है। उसी पुराणके १८ वें अध्यायमें लिखा है कि शुकदेवजीके यह प्रश्न करनेपर कि किस मन्त्रको जपता हुआ मनुष्य संसार-सागरके दुःखसे छुटकारा पाता है—

भगवान् वेदव्यासजीने कहा—

> अष्टाक्षरं प्रवक्ष्यामि मन्त्राणां मन्त्रमुत्तमम्।
> यं जपन् मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात्॥
> एकान्ते निर्जने स्थाने विष्णवग्रे वा जलान्तिके।
> जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं चित्ते विष्णुं निधाय वै॥

अष्टाक्षर मन्त्र सब मन्त्रोंमें उत्तम है। कोई मनुष्य हो, मर्त्य हो—जिसको एक दिन अवश्य मरना है—इस मन्त्रको जपकर जन्म और संसारके बन्धनसे छूट जाता है। एकान्तमें, निर्जन स्थानमें, विष्णुके आगे वा नदी वा जलके पास भगवान् विष्णुको मन-मन्दिरमें बिठाकर इस मन्त्रको जपे।

भगवान्के नाम अनन्त हैं। विष्णु-सहस्र-नाम और शिव-सहस्र-नाम उन नामोंको पूर्ण रूपसे नहीं गिना सके। उनमेंसे किसी एक नामको भी जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे उच्चारण करे तो उसका सब प्रकारसे मङ्गल होगा। किन्तु जिस प्रकारसे ईखका रस निकालकर कुज्जेमें भर दिया जाता है, उसी प्रकार जगत् का हित चाहनेवाले ऋषियोंने कुछ मन्त्र विशेष प्रकाश कर दिए हैं, जिनके जपनेका अधिकार ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल तकको है। इस विषयको मैंने मन्त्र-महिमानामक छोटी पुस्तकमें विस्तारसे लिखा है, उसको मैं इस निवेदनके साथ सम्मिलित करता हूँ, सज्जन वृन्द कृपाकर उसको देखें।

इन मन्त्रोंकी महिमा अति गम्भीर है। मेरी बहुत दिनोंसे यह प्रार्थना है कि ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल पर्यन्त समस्त हिन्दू सन्तान इन मन्त्रोंकी दीक्षा लें और उससे ऐहिक और पारलौकिक लाभ उठावें।

इन सब बातोंको लेकर रुद्रयामलमें आया है कि अनेक जन्मोंकी पुण्यराशिसे मनुष्य दीक्षित होता है, उसपर भी अनेक पुण्योंका उदय होनेपर शिव और विष्णुमें परायण होता है।

> अनेकजन्मपुण्यौघैर्दीक्षितो जायते नरः।
> तत्राप्यनेकपुण्येन शिवविष्णुपरायणः॥

दीक्षामें जो कर्त्तव्य किया जाता है वह सब मन्त्र ग्रहणके लिये ही किया जाता है: उस मन्त्र ग्रहणरूप दीक्षाका ही सब फल शास्त्रोंमें कहा गया है। अतएव शास्त्रोंमें मन्त्रोंकी बड़ी उत्कृष्ट महिमा पाई जाती है। मन्त्र किसे कहते हैं, इसपर शास्त्रोंमें आया है कि जिसके मनन करनेसे विश्वका विशेष ज्ञान हो जाता है, संसार-बन्धनसे रक्षा होती है और जिससे सिद्धि प्राप्त होती है, उसे मन्त्र कहते हैं—

> मननाद्विश्वविज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात्।
> यतः करोति संसिद्धिं मन्त्र इत्युच्यते ततः॥

(पिङ्गलामल)

मन्त्रके महत्त्वके विषयमें आया है कि मन्त्र ही साक्षात् ईश्वर और महौषधि है। मन्त्रसे बढ़कर

सिद्धि देनेवाला कोई नहीँ है। साधकोँको सिद्धि देनेके लिये देवताओँने तत्तत्स्वरूपको धारण किया, परन्तु उन स्वरूपोँमेँ मन्त्रका ही मुख्य स्वरूप है—

मन्त्रः सर्वेश्वरः साक्षान्मन्त्र एव महौषधम् ।
न हि मन्त्रात् परं कश्चित् सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥
साधकानां फलं दातुं तत्तद्रूपं धृतं सुरैः ।
मुख्यस्वरूपं तेषां तु मन्त्रा एव न चेतरत् ॥
मेरुतन्त्र ।

मन्त्र देनेवाले गुरु कैसे होने चाहिएँ, इसपर स्कन्द पुराणमेँ लिखा है कि गुरु निर्मल, साधु, स्वल्प बोलनेवाले, काम क्रोधादिसे रहित, जितेन्द्रिय और सदाचारी होने चाहिएँ। ऐसे गुरुसे दिया हुआ मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध होता है—

गुरवो निर्मला शान्ताः साधवो मितभाषिणः ।
कामक्रोधविनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः ॥
एतैः कारुण्यतो दत्तो मन्त्रः क्षिप्रं प्रसिध्यति ।

मन्त्रग्रहण एक प्रकारका धार्मिक व्रत धारण करना है। इस कारण मन्त्र लेनेवाले शिष्यको कैसा होना चाहिए इसपर भविष्यमेँ लिखा है—

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
देवपूजाग्निहवनं सन्तोषः स्तेयवर्जनम् ।
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्थितः ॥
भविष्य ।

अर्थात् व्रत धारण करनेवाले शिष्यको स्नानादिसे शुद्ध, सत्य, दया, क्षमा, दान, जितेन्द्रिय, अग्निमेँ हवन, देवपूजन, सन्तोष, और चोरी न करना, इन दस धर्मोँका पालन करना चाहिए।

महर्षि देवलका कहना है कि किसी भी बातके लिये व्रत धारण करनेवालेको ब्रह्मचर्य्य, अहिंसा, सत्य और मांसका परित्याग, इन चार बातोँका पालन सदा करना चाहिए—

ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यमामिषवर्जनम् ।
व्रतेष्वेतानि चत्वारि चरितव्यानि नित्यशः ॥

शिवपुराणमेँ लिखा है कि चारोँ वर्णोँको मद्यका और मद्यकी गन्धका त्याग करना भी आवश्यक है।

मद्यस्य मद्यगन्धस्य वर्जनं सामान्यं सर्ववर्णानाम् ।

इस प्रकार शास्त्रानुसार गुरु और शिष्यभावसे सम्पन्न होकर रात्रिमेँ उपवास करके मन्त्रदीक्षा लेनी चाहिए। यद्यपि शैव वैष्णवादिका भेद लेकर एवं अधिकारी और उद्देश्यका भेद लेकर मन्त्र अनेक प्रकारके हैँ और उनकी दीक्षाके लिये लग्न, मुहूर्त, वार, योगादिकी शुद्धि अपेक्षित होती हैँ, तथा अधिकारी भेदसे मन्त्रदीक्षाकी अनेक विधियाँ भी हैँ, तथापि शारीरिक और मानसिक शुद्धिके लिये संस्कारके रूपमेँ शैव और वैष्णवादि मुख्य दो तीन प्रकारके ही भेद माने जाते हैँ और गुरु देश और भावनाविशेषके कारण मन्त्रदीक्षाके सरल और सर्वहित नियम भी शास्त्रोँ मेँ देखे जाते हैँ। इस कारण गुरु, शिष्य, तिथि और स्थान विशेषके महत्त्व का विचार कर किसी भी अनुकूल अवसरपर मन्त्रदीक्षा ली जा सकती है। योगिनी तन्त्रमेँ आया है कि जब भगवान्‌की महापूजाका दिन हो, चतुर्दशी हो, अष्टमी, पञ्चमी या चतुर्थी हो तो उस दिन दीक्षा कार्य्य हो सकता है। क्योँकि ये सब तिथियाँ शुभ देनेवाली कही गई हैँ—

मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजा दिने तथा ।
चतुर्थी पञ्चमी चैव चतुर्दश्यष्टमी तथा ॥
…………"तिथयः शुभदाः प्रोक्ताः"।

एवं पुराण और तन्त्र ग्रन्थोँ मेँ यह वचन भी आया है कि जिस दिन गुरु मन्त्रदीक्षा देनेके लिये प्रसन्न हो जाय उस दिन सभी वार, ग्रह, नक्षत्र और राशि शुभ हो जाते हैँ—

"सर्वे वारा ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः ।
यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरुः सर्वे शुभावहाः ॥"

योगिनीतन्त्रमेँ यह भी आया है कि ग्रहण और महातीर्थोँमेँ कालनिर्णयकी आवश्यकता नहीँ होती है—

"ग्रहणे च महातीर्थे नास्ति कालस्य निर्णयः ।"

इतना ही नहीँ किन्तु दीक्षातत्त्वमेँ यह भी वर्णन आया है कि गुरुकी आज्ञाके अनुरूप जब इच्छा हो तभी दीक्षा हो सकती है और जब भी स्वेच्छासे सद्गुरु मिल जाय तभी दीक्षा ली जा सकती है। उस दशामेँ

तिथि, वार, व्रत, होम, स्नान, जपादि क्रियाओंकी प्रबल कारणता भी नहीं रहती है—

“यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः।”
न तिथिर्न व्रतं होमो न स्नानं न जपः क्रिया।
दीक्षायाः कारणं किञ्चित् स्वेच्छयाप्ते तु सद्गुरौ॥

इन सब बातोंको विचारकर इस वर्ष सनातनधर्म महासभाने महाराजाधिराज दरभङ्गाके सभापतित्वमें महाशिवरात्रिके पुण्य अवसरपर अन्त्यज पर्यन्त समस्त वर्णाश्रम धर्मी हिन्दू-सन्तानको, जिन्होंने अब तक किसी मन्त्रकी दीक्षा न ली हो, शैव पञ्चाक्षरसे मन्त्रदीक्षा देनेका प्रस्ताव पास किया है; इसलिये कि उसके द्वारा हिन्दू-सन्तानमें बल, विद्या, बुद्धि और सद्भावकी वृद्धि हो। फाल्गुन मासके दीक्षाके फलमें भी आया है कि फाल्गुन मासमें दीक्षा लेनेसे बुद्धिकी वृद्धि होती है—

माघे भवेन्मेधा विवर्धनम्।
फाल्गुनेऽपि विवृद्धिः स्यात्॥

अगस्त्यसंहिता।

दीक्षाके लिये सर्वोत्तम स्थानोंका निर्देश करते हुए योगिनीतन्त्रमें आया है कि मन्त्रज्ञ पुरुष गोशाला, गुरुगृह, देवमन्दिर, स्वच्छ जङ्गल, तीर्थ क्षेत्रादि पुण्य स्थान, बाग-बगीचे, नदीका स्वच्छ किनारा, आँवले और बेलके वृक्षके निकट, पर्वतोंकी सुन्दर गुफाओंके समीप और गङ्गातटपर मन्त्रदीक्षा दे। क्योंकि दीक्षाके लिये ये सब स्थान उत्तम होते हैं। इनमें भी गङ्गाका तट करोड़ों गुणवाला होता है—

गोशालायां गुरोर्गेहे देवागारे च कानने।
पुण्यक्षेत्रे तथोद्याने नदीतीरे च मन्त्रवित्॥
धात्रीबिल्वसमीपे च पर्वताग्रे गुफासु च।
गङ्गायास्तु तटे वापि कोटिकोटि गुणं भवेत्॥

दीक्षा लेनेकी विधि।

दीक्षा लेनेकी साधारण और सरल विधि यह है कि गुरु पूर्वरात्रिमें ब्रह्मचर्य्य-पूर्वक उपवास करे। अगले दिन प्रातःकाल शौच-स्नानादिसे शुद्ध होकर दीक्षाके पवित्र स्थानमें जावे। वहाँपर सब दीक्षार्थी उपवास और स्नानादिसे शुद्ध होकर दीक्षा लें। जो गुरु असामर्थ्य या कारण विशेषसे रात्रिमें उपवास न कर सकें, वे हविष्यान्न ग्रहण कर सकते हैं। नारद पञ्चरात्रमें आया है कि मन्त्र देनेवाले गुरु पहले दिन उपवास करें। यदि उपवास न कर सकें तो हविष्यान्न अर्थात् नारियलका फल, दधि, घी, गौका शुद्ध दूध, केला, आँवलादि अथवा चावल, जौ, मूँगकी दाल, तिल आदि हविष्यान्न ग्रहण करें।

दद्यान्मन्त्रं गुरुः स्वच्छः शिष्यं भक्तिसमन्वितम्।
उपोष्यैकदिनं पूर्वं यद्वा भुक्त्वा हविष्यकम्॥

इस प्रकार गुरु और शिष्य शुद्ध होकर दीक्षा-स्थानमें जावें और वहाँपर गुरु पूर्वकी ओर मुख करके तथा शिष्य उत्तरकी ओर मुख करके बैठें।

स्नात्वा तु निर्मले तोये पूर्वास्यः सुस्थमानसः।
शिष्यश्चोदङ्मुखस्थश्च……………………॥

—नारद पञ्चरात्र।

इसके बाद आचमनसे शुद्ध होकर जिस मन्त्रकी दीक्षा देनी हो उसके मुख्य देवताको गुरु नमस्कार करें। शिव-मन्त्रकी दीक्षा देनेके लिये शिवजीको और विष्णु-मन्त्रकी दीक्षाके लिये विष्णुको नमस्कार करें। फिर मन्त्र लेनेवाले शिष्यके कानोंमें तीन बार मन्त्र सुनाकर माथेपर हाथ रखकर शास्त्र-निर्दिष्ट शैव और वैष्णव मन्त्रकी दीक्षा देनी चाहिए। शिवपुराणमें सर्वोपयोगी ऐसी ही सरल विधिका वर्णन मिलता है।

इस प्रकार मन्त्र लेकर शिष्य गुरुको प्रणाम करे और गुरु अपने शिष्यको अहिंसा, चोरी न करना, शौच, ब्रह्मचर्य्य, इन्द्रिय-जय, सदाचार, जुवा न खेलना, मद्य-मांसका त्याग, दम, दया, सन्तोष, नम्रता, ज्ञान, ईश्वर-भक्ति, देव, गुरु और धर्ममें दृढ़ भक्ति, उद्यम, उत्साह और परोपकारादि व्रतके पालन का उपदेश करें। अन्तमें शिष्यको यह आशीर्वाद दें, “हे शिष्य! तुम सदाचारी रहो। तुम्हें सदा कीर्त्ति, श्री, कान्ति, मेधा, आयु, आरोग्य और बलकी प्राप्ति हो।”

उत्तिष्ठ वत्स मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान् भव।
कीर्त्ति श्री कान्ति मेधायुर्बलारोग्यं सदास्तु ते॥

—क्रियासङ्ग्रह।

इस प्रकार मन्त्र-दीक्षा लेकर नित्य प्रातःकाल स्नानादिसे शुद्ध होकर भगवान्को नमस्कार करके १०८ बार मन्त्रका जप करना चाहिए। सूर्यमें स्थित परमेश्वरका ध्यान कर और अर्घ देना चाहिए।

पुराणोंमें मन्त्रोंकी महिमा बड़े विस्तारके साथ वर्णित है।

पञ्चाक्षरके महत्त्वकी एक अत्यन्त मनोहर कथा स्कन्दपुराणके ब्रह्मखण्डमें इस प्रकार आई है कि मथुरामें दाशार्ह नामका एक यदु राजा था। काशिराजकी कलावती नामकी कन्या उसकी धर्मपत्नी थी। जब राजाने उसे अपने पास बुलाया तो कलावती उसके पास नहीं आई और कहा कि तुम अशुद्ध हो, मद्यपान करते हो, नित्य स्नान नहीं करते हो, वेश्यागामी हो, इस कारण मुझे छूनेका साहस मत करो और यह भी कहा कि जब स्त्री अप्रसन्न हो, रोगिणी, गर्भवती तथा व्रतवाली हो तब उसे नहीं छूना चाहिए। कलावतीकी इतनी धर्मयुक्त बातें सुननेपर भी राजाने अपना हठ नहीं छोड़ा और अपने भार्याको पकड़कर खींचना चाहा। ज्योंही राजाने उसे छुआ तो राजाको उसका शरीर अग्निके समान जलता हुआ मालूम पड़ने लगा। तब आश्चर्य और भयके साथ राजाने पूछा कि तुम्हारा शरीर जलता क्यों है? उत्तरमें रानीने कहा कि बचपनमें दुर्वासा ऋषिके दया-भावसे मुझे पञ्चाक्षर मन्त्रकी दीक्षा मिली थी। उसीका यह प्रभाव है कि कोई अपवित्र पुरुष मुझको छू नहीं सकता है। यह सुनकर राजाने शुद्ध और पवित्र जीवन बितानेके लिये रानी कलावतीसे मन्त्रदीक्षा माँगी। रानीने कहा कि आप मेरे गुरु हैं, इस कारण मैं आपको मन्त्रोपदेश नहीं कर सकती। किन्तु आप मन्त्र जाननेवाले गर्गमुनिसे दीक्षा लें। राजाने वैसा ही किया और मन्त्र-दीक्षा लेते ही राजाके सब पाप ऐसे निकल भागे जैसे हजारों कौवे उड़ चले हों। इसके उपरान्त राजा स्त्री-सहित गुरुको प्रणाम करके अपने घर चला गया और स्त्री-पुरुष दोनोंने धार्मिक जीवन यापन कर परम सुख प्राप्त किया। इन शास्त्रीय विधानोंके द्वारा समस्त असंस्कृत हिन्दू-सन्तानको विशेषकर अन्त्यज भाइयोंको शुद्ध और धर्मप्रेमी बनाना प्रत्येक सनातनधर्मीका कर्त्तव्य है।

(२)

भक्तिकी महिमा।

इस बातको कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि हरएक विचारशील हिन्दू मानता है या मानलेगा कि अन्त्यजोंका उद्धार करना सारी हिन्दूजातिका धर्म है। इसके दो कारण हैं। एक यह कि वे हमारी परम आवश्यक और उपकारी सेवा करते हैं इसलिये उनका उपकार करना हमारा धर्म है। दूसरे यह कि वे हमारे सधर्मा हैं। जिस सनातनधर्मको हम मानते हैं, उसीको वे भी मानते हैं। बहुत-सा भय और बहुत-सा लालच दिखाए जानेपर भी और बहुत-सा क्लेश सहनेपर भी उनकी श्रद्धा आज तक इस धर्ममें बनी है। वे हमारे हैं। हमारा सनातनधर्म हमको उन दीन भाइयोंके उद्धार करनेका उपदेश करता है और उसका उत्तम और सरल मार्ग बतलाता है, वह भक्तिका मार्ग है। नारदजीका वचन है—

सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ।
कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी॥

सतयुग, त्रेता, द्वापरमें ज्ञान और वैराग्य मोक्षके देनेवाले होते हैं। कलियुगमें तो केवल भक्ति ही भजनेवालेको भगवान्से मिला देती है। नारदजीने भक्तिके प्रति कहा है—

त्वं तु भक्ति प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका।
त्वयाहूतस्तु भगवान् याति नीचगृहेष्वपि॥
कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने।
तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने॥
अन्य धर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान्।
तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वान्न प्रवर्त्तये॥
त्वदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह।
पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयं कृष्णमन्दिरम्॥

येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी।
न ते नश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्त्तयः॥

पद्मपुराण, भागवत माहात्म्य।

हे भक्ति! तुम तो भगवान्की प्यारी हो, सदा उनको प्राणसे भी अधिक प्रिय हो। तुम्हारे बुलानेसे तो भगवान् नीचोंके घर भी चले जाते हैं।

हे सुमुखि, कलिके समान कोई दूसरा युग नहीं है। इसमें मैं तुमको घर-घर, प्राणी-प्राणीके हृदयमें बैठाऊँगा।

दूसरे धर्मोंको अलग रख, महोत्सवोंमें आगे रख, मैं तुमको संसारमें न फैला दूँ तो मैं हरिका दास नहीं। इस कलियुगमें जिन प्राणियोंकी भगवान्में भक्ति होगी, वे पापी भी क्यों न हों, निर्भय होकर कृष्णमन्दिरको—वैकुण्ठको— जावेंगे।

जिनके चित्तमें प्रेमरूपी भक्ति सदा बसेगी वे विमल मूर्त्ति स्वप्नमें भी यमराजको नहीं देखेंगे।

भगवान्ने अपने श्रीमुखसे कहा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

कोई कैसा भी दुराचारी क्यों न हो, जो मुझको अनन्य भावसे भजता है, उसको मानो कि वह साधु ही है। उसने अच्छा निश्चय किया है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा होता है और सदा ठहरनेवाली शान्तिको पाता है।

हे अर्जुन! मैं तुमसे प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मेरे भक्तका भला ही होता है, बुरा नहीं होता।

श्रद्धावन्तो मत्परमा भक्तातीव मे प्रियाः।

श्रद्धावान् मत्परायण भक्त मुझको अत्यन्त प्रिय हैं। इसी अभिप्रायको गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने ललित गम्भीर शब्दोंमें कहा है—

भक्तिवन्त अति नीचहु प्रानी।
मोहि प्राण सम प्रिय मम बानी॥
भक्तिविहीन विरँचि किन होई।
सब जीवन सम प्रिय मोहिँ सोई॥

अन्त्यजोंके उद्धार करनेका यही सर्वोत्तम मार्ग है कि हम उनको श्रद्धावान् भगवद्भक्त बननेमें सहायता दें। भक्ति-साधनके अनेक मार्ग बताए गए हैं। उनमेंसे मैं विशेष कर दो उपायोंको सामान्य मनुष्योंके लिये विशेष उपकारी मानता हूँ। एक कीर्त्तन अर्थात् नाम-स्मरण, दूसरा भगवान्की मूर्त्तिका दर्शन।

नामका स्मरण सामान्य-से-सामान्य प्राणीके लिये भी सरल बात है, किन्तु बड़े फलका देनेवाला है। नाम-स्मरणकी महिमा इसलिये है कि "यतस्तद्विषया मतिः" नामके स्मरणसे मनुष्यकी मति ईश्वरकी ओर हो जाती है। उनके गुणोंके स्मरणसे मनुष्यके दोष और पाप छूट जाते हैं। और मन पवित्र तथा प्रकाशमान् होता है। अजामीलकी कथा प्रसिद्ध है। वह कितना बड़ा पापी था तो भी 'नारायण' उच्चारण करनेसे वह सब पापोंसे छूट गया।

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।
नाम व्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥

सब पापियोंके लिये यह उत्तम प्रायश्चित्त है कि वे भगवान्का नाम जपें जिससे कि उनके मनमें भगवान्की भावना जागे।

अन्यत्र लिखा है—

नामसङ्कीर्त्तनं विष्णोः सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

भागवते।

नामस्मरणसे चाण्डाल श्वपाक भी पवित्र हो जाता है। इस बातको माता देवहूतीजीने बड़े प्रेमसे भरे ऊँचे स्वरसे कहा है—

यन्नामधेयश्रवणाभिधानात् यत्प्रह्वणात् यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥
अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृह्णन्ति ये ते॥

भागवते।

भगवन्! जो आपके नामोंके श्रवणसे वा कीर्त्तन करनेसे या आपको नमस्कार करनेसे अथवा कभी आपका स्मरण करनेसे साक्षात् हो तो वह भी सोमयाग करनेवाले पुरुषोंके समान आदरके योग्य हो जाता है

तो हे भगवन्! आपके दर्शन करनेकी महिमाको मैं क्या कहूँ।

अहा हा, हे परमेश्वर! वह चाण्डाल इसलिये श्रेष्ठ है कि उसकी जिह्वापर आपका नाम रहता है। जो लोग आपके नामका कीर्त्तन करते हैं, वे श्रेष्ठ पुरुष सब तप कर चुके, सब हवन कर चुके, सब तीर्थोंमें स्नान कर चुके और उन्होंने सब वेदोंका पठन-पाठन कर लिया। क्योंकि सब पुण्यफल आपके नामके कीर्त्तनसे प्राप्त हो जाते हैं।

पद्मपुराणमें लिखा है—

तीर्थानाञ्च परं तीर्थं कृष्णनाम महर्षयः।
तीर्थीकुर्वन्ति जगतीं गृहीतं कृष्णनाम यैः॥
तीर्थादप्यधिकं तीर्थं विष्णोर्भजनमुच्यते।
तस्मात् भजध्वं मुनयः कृष्णं परममङ्गलम्॥
मूर्खं वा पण्डितं वा ऽपि ब्राह्मणं केशव-प्रियम्।
श्वपाकं वा मोचयति नारायणः स्वयं प्रभुः॥
विष्णुभक्तिं विना नृणां पापिष्ठानां विशाम्वर।
उपायो नास्ति नास्त्यन्यः सन्तर्तुं नरकाम्बुधिम्॥
प्रतिमाञ्च हरेर्दृष्ट्वा सर्वतीर्थफलं लभेत्।
विष्णुनाम परं जप्त्वा सर्वं मन्त्रफलं लभेत्॥
पुल्कसः श्वपचो वापि ये चान्ये म्लेच्छजातयः।
तेऽपि वन्द्या महाभागा हरिपादैकसेवकाः॥
किम्पुनर्ब्राह्मणा पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।

इन सब वचनोंसे स्पष्ट है कि भगवन्नाम जपनेसे पुल्कस और श्वपच भी आदरके योग्य हो जाते हैं।

हरेरग्रे स्वनैरुच्चैर्नृत्यंस्तन्नामकृन्नरः।
पुनाति भुवनं विप्राः गङ्गादिसलिलं यथा॥
दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य आलापादपि भक्तितः।
ब्रह्महत्यादिभिर्पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥
येषां मुखे हरेर्नाम हृदि विष्णुः सनातनः।
उदरे विष्णुनैवेद्यं स श्वपाकोऽपि वैष्णवः॥
पाद्मे।

यस्य नाम महापाप-राशिं दहति सत्वरम्।
तदीयचरणं वन्दे भक्तिर्यस्य स वैष्णवः॥

इन सब वचनोंसे यह सार निकलता है कि जो श्रद्धावान् भक्त है, वह चाण्डाल या श्वपच भी क्यों न हो यदि वह श्रद्धाभक्तिपूर्वक देवदर्शन की अभिलाषासे मन्दिरमें जावे तो उसके देखनेसे, उसके बोलनेसे और उसके स्पर्श करनेसे किसी प्राणीको भी दोष नहीं प्राप्त हो सकता वरन् पुण्य ही प्राप्त हो सकता है।

(३)

अन्त्यजोंका देवदर्शन।

पिछले प्रकरणमें यह दिखा दिया गया है कि अन्त्यजोंको संस्कारके रूपमें शैव या वैष्णव किसी भी सम्प्रदायकी मन्त्रदीक्षा लेनेका अधिकार है। अब इस प्रकरणमें यह बात प्रकट की जाती है कि मन्त्रदीक्षाके प्रभावसे शुद्ध और सदाचारी मदिरा-मांसत्यागी, भक्तिभावसे समन्वित अन्त्यजोंको देवदर्शनका अधिकार है या नहीं? इस बातको स्पष्ट करनेके लिये पुराणोंका पर्य्यालोचन परम सहायक होगा। क्योंकि वेदोंमें प्रचलित देवपूजनका अधिकार, माहात्म्य और उसकी विधि स्पष्ट रूपसे देखनेमें नहीं आती है। वेदोंमें केवल अग्नि, इन्द्र, विष्णु, रुद्र आदि नामोंसे देवताओंका वर्णन पाया जाता है। इसके बाद मन्वादि प्राचीन स्मृतियोंमें देवपूजनके अतिरिक्त रूपमें इस बातकी कुछ भी चर्चा नहीं आई है। इसके बाद की अनेक स्मृतियोंमें अंशतः कुछ-कुछ वर्णन पाया जाता है। माहात्म्य, फल और अधिकारादि समस्त बातोंको लेकर पुराण और महाभारतादि ग्रन्थोंमें ही साङ्गोपाङ्ग पूर्ण वर्णन मिलता है। इससे सिद्ध है कि वर्त्तमान कालमें जितने भी तीर्थ, मन्दिर और जो कोई भी पुण्य-स्थान हैं, उनका प्रचार पुराणोंमें वर्णित माहात्म्यके ही कारण है, एवं इन पुण्य-स्थानोंकी विधि और विधान भी विशेष रूपसे पुराणोंमें ही प्रतिपादित है न कि मन्वादि जैसी प्राचीन स्मृतियोंमें। यद्यपि पुराणोंमें वैदिक मन्त्र और वैदिक विधान भी पाए जाते हैं एवं श्रुति और स्मृतिमें कथित बहुतसे निषेध प्रकरण पाए जाते हैं तथापि पुराणोंका दर्जा स्मृतियोंसे कम नहीं माना गया है। यही बात है कि श्रीशङ्कराचार्य जैसे प्राचीन धर्माचार्योंने

महाभारत और पुराणादि वाक्योंको स्मृतिवाक्यके रूपमें माना है। वर्तमान समयमें सनातनधर्मियोंके अन्दर जितना भी क्रियात्मक धर्म विद्यमान है उसका सबसे अधिक श्रेय पुराणोंको ही है। पुराण सदा पञ्चम वेदके रूपमें माने गए हैं। पञ्चदशीमें आया है कि नारदजीने पञ्चम वेदरूप पुराणोंको पढ़ा था—"स पुराणान् पञ्चवेदान्"। उत्तरमीमांसामें आया है कि इतिहास और पुराण वेदमूलक हैं—"तस्मात्समूलमितिहासपुराणम्" ९।१३।३३ महाभारतमें तो पुराणोंकी महत्ताके विषयमें वहुत कुछ वर्णन मिलता है। अनुशासन पर्वमें आया है कि पुराण, मन्वादि स्मृति, अङ्गसहित वेद और चिकित्साशास्त्र, ये सव ईश्वरकी आज्ञासे सिद्ध हैं। इस कारण कुतर्कसे इनका हनन नहीं करना चाहिए।

पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

महाभारतके प्रारम्भमें ही यह लिखा है कि व्यासजीने अष्टादश पुराणोंके वनानेके वाद उनके उपबृंहण स्वरूप महाभारतको वनाया।

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
पश्चाद्भारतमाख्यानं चक्रे तदुपबृंहितम्॥

इसके वाद आदिपर्वमें यह वर्णन भी आया है कि इतिहास और पुराणसे वेदोंकी वृद्धि करनी चाहिए—"इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्"

इसी प्रकार मनु, याज्ञवल्क्य, व्यासादि स्मृतियोंमें पुराणोंको धर्मके विषयमें वेदकी तरह बड़े महत्त्वका स्थान दिया गया है। याज्ञवल्क्यमें लिखा है कि पुराण, न्याय, मीमांसादि चौदह विद्याएँ धर्मके स्थान हैं—

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्म्मस्य च चतुर्दश॥

छान्दोग्य उपनिषद्के सप्तम अध्यायके प्रथम खण्डमें नारद और सनत्कुमारके संवादमें पुराणोंको स्पष्ट रूपसे पाँचवाँ वेद कहा है।

"इतिहास पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः"। धर्मके विषयमें पुराणोंके इन सव महत्त्वोंको लेकर ही महाभारतके आदिपर्वमें यह लिखा है कि पुराणोंकी पुण्य कथाएँ धर्म और अर्थको देनेवाली होती हैं—"पुराणसंश्रिताः पुण्याः कथा धर्म्मार्थ संश्रिताः" श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित सूक्ष्म धर्म का भी विस्तार पुराणोंने सरल और स्पष्ट कर दिया है। जहाँ साधारण रूपसे स्मृति ग्रन्थोंमें यह आया है कि चाण्डलादि शूद्र जातिको विशिष्ट धर्मादिक उपदेश नहीं देना चाहिए वहाँ उसी वातको पुराणोंमें इस प्रकार दिखाया गया है कि यद्यपि साधारण प्रकारसे जैसे द्विज जाति का वालक उपनयनके पूर्व वेदादिके अध्ययनका अधिकारी नहीं रहता है किन्तु उपनयनादि संस्कारसे संस्कृत और गायत्र्यादिके मन्त्रसे दीक्षित हो जानेपर उन वातोंका अधिकारी हो जाता है वैसेही चाण्डालादि अन्त्यज साधारणतः वहुत अंशमें सम्मानित नहीं रहता है किन्तु जव उसको अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौचादिका उपदेश मिल जाता है और जव वह शैव वैष्णवादि मन्त्रोंसे दीक्षित हो जाता है तथा मद्य, मांस और जुएका परित्याग करके नित्य स्नानादि क्रियासे पवित्र होकर भक्ति-भावसे युक्त होता है तो वह भी समाजमें सम्मानका पात्र होकर देवदर्शन, कूप, पाठशाला, तीर्थ, व्रत, उत्सव और कथा पुराण श्रवणादि सामाजिक सर्वसाधारण कार्योंमें भाग लेनेका पूर्ण अधिकारी हो सकता है। यह पुराणोंके विधानोंसे ही स्पष्ट हो जाता है। इसके निर्णयके लिये पुराणोंसे वढ़कर दूसरा कोई भी साधन नज़र नहीं आता है। पुराणोंमें अनेक कथाएँ ऐसी आई हैं कि जो चाण्डालादि अन्त्यजोंके देवदर्शन और पूजनसे ही विशेष सम्वन्ध रखती हैं जिससे यह मालूम होता है कि देवदर्शन करनेसे किसी भी अन्त्यजकी इहलोक और परलोकमें कभी भी दुर्गति नहीं हुई वल्कि सर्वोत्तम गति ही हुई।

इस विषयपर स्कन्दपुराणमें वहुतसी कथाएँ इस प्रकार आई हैं—

स्कन्दपुराणके महेश्वर खण्डमें केदारखण्डके पाँचवें अध्यायमें आया है कि पूर्व समयमें एक नन्दी नामका

वैश्य अवन्ती नगरमें रहता था। वह प्रतिदिन प्रातः तपोबनके एक शिवलिङ्गकी बड़ी विधिसे पूजा करता था और अनेक प्रकारके फल-फूल मणि-माणिक्य चढ़ाता था। इस प्रकार नन्दीने वर्षों तक रुद्राभिषेक और शिवार्चन किया। इसी अवसरपर उस घोर जङ्गलमें घूमता हुआ अविवेकी, भूतहिंसक, पापरत एक शिकारी किरात (चाण्डाल जाति) अकस्मात् उस स्थानपर आ पहुँचा। वह बहुत प्यासा था इस कारण पानी ढूँढ़ रहा था। इतनेमें उसने एक तालाव देखा और उसमें प्रवेश कर, कुल्ला करके पानी पिया। तालावके सामने ही अद्भुत शिवमन्दिरको देखा और उसमें अनेक रत्नों से अलग अलग पूजित शिवलिङ्गको देखकर पूजामें चढ़ी हुई रत्नादि सामग्रीको बटोरकर इधर उधर कर दिया। पासमें पात्र न होनेके कारण किसी प्रकार मुँहमें भरे हुए जलसे ही शिवलिङ्गको स्नान कराकर एक हाथसे बिल्वपत्र और दूसरे हाथसे मृगमांस चढ़ाया तथा दण्ड-प्रणाम करके मनमें यह संकल्प किया कि हे शङ्करजी! आजसे मैं सावधान होकर पूजा करूँगा। आजसे तुम मेरे स्वामी हो और मैं तुम्हारा भक्त हूँ। इस प्रकार नियमबद्ध होकर किरात अपने घर चला आया।

इसके बाद हर रोज़की तरह जब नन्दी पूजा करने आया तो उसने वहाँका वह सब किरात का कार्य्य देखा। यह देखकर नन्दी बहुत चिन्तित हुआ और सोचने लगा कि यह सब कार्य विघ्न सूचित कर रहा है। न जाने कौन दोष हो गया है। जान पड़ता है कि मेरे दुर्भाग्यसे ही यह विघ्न आ गया है। इस प्रकार बहुत विचार कर शिवमन्दिरको धोकर नन्दी अपने घर लौट गया।

घरमें नन्दीको दुखी देखकर उसके पुरोहितने पूछा कि आप क्यों उदासीन हैं? नन्दीने पुरोहितसे सब कथा कह सुनाई। तब पुरोहितने कहा कि इसमें सन्देह नहीं है कि जिसने रत्नादि सामग्रीको इधर फेंका है वह कार्य्य और अकार्य्यको न जाननेवाला मूर्ख ही था। किन्तु आप तनिक भी चिन्ता न करें। मेरे साथ प्रातः शिवमन्दिर चलें, मैं उस दुष्टको देखूँगा। यह सुनकर नन्दी दुःखित मनसे घरमें बैठा रहा, और जब रात्रि बीती तो पुरोहितके साथ शिवालयको चला गया। वहाँपर उसने विधि-विधानके साथ नाना रत्नों से शिवकी पूजा की और ब्राह्मणोंके साथ दोपहर तक शिवजीकी स्तुति की। इतनेमें हाथमें धनुष लिए वह बली, महाप्रतापी "महाकाल" नामक किरात आ पहुँचा।

किरातको देखतेही नन्दी डरकर विलाप करने लगा और ब्राह्मण भी भयभीत हो गया। तब वह किरात निःसङ्कोच होकर पहलेकी तरह सब सामग्री हटाकर शिवजीको बिल्वपत्र, नैवेद्य और फल चढ़ाकर दण्डवत्-प्रणाम करके घर चला गया।

यह सब देखकर नन्दी पुरोहित-सहित शोकसे व्याकुल हो गया। नन्दीको अपनी रत्नमय सामग्रीके आगे एक दीन ग़रीब पत्र-पुष्पवाली पूजा अभव्य लगी और उसे विघ्नोंकी आशङ्का होने लगी। इस कारण उसने बहुतसे वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाया और कुल घटना सुना दी। नन्दीको अति शङ्कित देखकर सब विप्रोंने यह निश्चय किया कि इस विघ्नको देवता भी नहीं रोक सकते, इस कारण तुम लिङ्गको घर ले चलो। यह सुनकर नन्दी शिवलिङ्गको उखाड़कर घर ले गया और स्वर्ण-पीठमें विधि-पूर्वक स्थापित कर अनेक प्रकारके उपचारोंसे उसकी पूजा की। इसके उपरान्त जब दूसरे दिन किरात शिवमन्दिरमें आया तो उसने देखा कि मन्दिरमें शिव-लिङ्ग नहीं है तो एकाएक चुप हो गया और एक गम्भीर करुण क्रन्दनके साथ भगवान् शङ्करकी प्रार्थना इस प्रकार करने लगा कि हे शम्भो! कहाँ चले गए हो। आज ही मुझे दर्शन दो। यदि मैं तुम्हारा दर्शन न कर सका तो निश्चय आज मैं अपना शरीर छोड़ दूँगा। हे शम्भो! हे जगन्नाथ! हे त्रिपुरान्तक प्रभो! हे रुद्र और महादेव! अपनेआप मुझे दर्शन दो।

हे शम्भो हे जगन्नाथ त्रिपुरांतकर प्रभो।
हे रुद्र हे महादेव दर्शयात्मानमात्मना॥

इस प्रकार मधुर वाक्योंसे शिवको पुकारकर उस वीर किरातने अपना पेट फाड़ा, फिर बाहुओंको ठोक-

कर क्रोधसे बोलने लगा कि शम्भो ! मुझे दर्शन दो, मुझे छोड़कर कहाँ जाते हो ?

इस प्रकार क्रोधसे शिवकी पुकार मचाकर शरीरसे माँस और आँतको काटकर शिवलिङ्गवाले गड्ढेमेँ चढ़ाने लगा। फिर कुछ देर बाद स्वस्थचित्त होकर उसने पासके तालाबमेँ देर तक स्नान किया और उसी भाँति शीघ्र ही जल तथा बिल्वपत्र लाकर उससे जैसा बन पड़ता था वैसा शिवपूजन कर वहाँपर शिवके ध्यानमेँ मग्न होकर भूमिमेँ दण्डके समान गिर गया।

यह सब हो जानेके बाद वहाँपर कपूरके समान गौर-वर्ण और जटाजूटधारी चन्द्रशेखर भगवान् शङ्कर अपने गणोँके साथ प्रकट हुए, और उस दीन किन्तु परम भक्त किरातको हाथसे पकड़कर आश्वासन देते हुए शिवजी कहने लगे कि हे महामते और ऊँचे विचारवाले वीर ! तुम मेरे भक्त हो तुम्हेँ जो अच्छा लगे वह माँगो। भगवान् शङ्करके यह कहनेपर वह महाकाल नामका किरात प्रसन्न होकर परम भक्तिके साथ भूमिमेँ दण्डके समान गिर गया। इसके अनन्तर भगवान् शङ्करसे बोला कि वरदानके विषयमेँ आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि हे शङ्कर ! इसमेँ सन्देह नहीँ है कि मैँ आपका दास हूँ और आप मेरे स्वामी हैँ। आप जन्म-जन्मान्तरमेँ अपनी भक्ति दीजिए। तुम माता-पिता, भाई-बन्धु, मित्र, गुरु, महामन्त्र और सदा मन्त्रवेद्य हो; इस कारण तीनोँ लोकोँमेँ आपसे बढ़कर दूसरा कुछ भी नहीँ है।

महाकाल किरातकी इन सब निष्काम बातोँको सुनकर आशुतोष भगवान् शङ्करने तुरन्त ही उसे अपनी सभाका मुखिया और द्वारपालका पद दे दिया। उस समय चारोँ ओरसे भेरी, डमरू, दुन्दुभी और शङ्खका नाद होने लगा। संसारमेँ चारोँ ओर ध्वनि फैल गई।

उस समयके हर्षनाद को सुनकर अति आश्चर्यके साथ नन्दी शीघ्रही उस तपोवनमेँ गया जहाँपर अपने प्रथम गणोँके सहित भगवान् शङ्कर विराजमान थे। नन्दीने वहाँपर किरातको बड़े ध्यानसे देखा और आश्चर्ययुक्त होकर बड़ी नम्रताके साथ उससे कहा कि हे परन्तप ! तुम भक्त हो, तुमने परम समाधिसे शम्भुको यहाँ बुलाया है।

मैँ तुम्हारा भक्त होकर यहाँ आया हूँ। मेरे विषयमेँ शङ्करजीसे निवेदन कर दो।

नन्दीकी इस बातको सुनकर वह दयालु किरात जल्दीसे नन्दीको अपने हाथमेँ लेकर शङ्करजीके पास गया। इतनेमेँ भगवान् शङ्करने किरातसे हँसकर कहा कि रुद्रगणोँके समीप तुम किसको ले आए हो? किरातने कहा, भक्तवत्सल भगवान् ! यह नित्यप्रति आपकी पूजा करनेवाला, नन्दी नामका वैश्य है, इसको आप मेरा मित्र समझेँ। क्योँकि यह अनेक पुष्प, धन, धान्य और नाना प्रकारके रत्नोँसे तथा अपने जीवनसे भी आपकी पूजा करता था।

यह सुनकर शिवजीने कहा—"हे महामते ! महाकाल ! मैँ नन्दी वैश्यको नहीँ जानता, तुम मेरे भक्त हो और सखा हो। जो मनुष्य उपाधिरहित है और जो उदार मनके हैँ ऐसे विशिष्ट मनुष्य ही मेरे अत्यन्त प्रिय भक्त हैँ"। यह सुनकर किरातने कहा कि भगवन् ! मैँ तुम्हारा भक्त हूँ और यह नन्दी मेरा हितैषी है। भगवान्ने किरातकी यह विनती सुन ली और उन दोनोँको अपना पार्षद बना लिया। इसके बाद वहाँपर अनेक विमान आए। इस प्रकार भक्ति और ईश्वरकी पूजाके द्वारा महाप्रभाववाले उस श्रेष्ठ किरातने एक वैश्यका उद्धार किया।

इसी अध्यायके पहले इस प्रकारका वर्णन मिलता है कि अच्छे आचार विचार वाले जो वर्णाश्रमी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र गुरुमुखसे उपदेश पाकर शिव-पूजामेँ लगे रहते हैँ और विश्वको शिवमय देखते हैँ तथा इसी प्रकार जो कोई भी पुरुष एवं चाण्डाल भी शिव-पूजक हो तो वह शम्भुका अत्यन्त प्रिय होता है।

इसी खण्डके तैँतीसवेँ अध्यायमेँ आया है कि किसी पुष्कस (अन्त्यज) ने प्रसङ्गवश शिवपूजा की। उसने अविनाशी शिवको पाया तो फिर जो मनुष्य श्रद्धा, भक्तिके साथ शिवरूप परमात्माके लिये पत्र, पुष्प, फल, चन्दनादि चढ़ाते हैँ उनके फलके विषयमेँ कहना ही क्या

है, वे तो इस संसारमेँ रुद्रके ही समान होते हैँ इसमेँ सन्देह नहीँ। स्वल्पबुद्धिवाले "चण्ड" नामक पुष्कसने प्रसङ्गवश शिवपूजा की तो उसका जीवन सफल हो गया। फिर आगे चलकर तिरानवेवेँ श्लोकमेँ यह वर्णन आया है कि भगवान् शङ्करके प्रसादसे श्वपच भी वरिष्ठ (मान्य) होता है। इस कारण प्रयत्नसे शङ्करकी पूजा करनी चाहिए।

इसी अध्यायके तिरासिवेँ श्लोकमेँ इस प्रकारकी कथा आई है कि किसी चञ्चला ब्राह्मणीके अधर्म कर्मसे एक चाण्डाल पैदा हुआ। वह अत्यन्त पापी, सुरापी, चोर, ठग, शिकारी, धर्मरहित और अत्यन्त दुष्टात्मा था। वह एक समय शिवरात्रिके अवसर पर शिवालयमेँ गया, और शिवके पास उसने उपवास रक्खा। उसको स्वयम्भू लिङ्गरूपी भगवान् शङ्करके समीप ही अकस्मात् मौके-मौकेपर शिवशास्त्र भी श्रवण होगया। इन सब कामोँके फलोँसे वह चाण्डाल पुण्ययोनि को प्राप्त हुआ।

इसी माहेशखण्डमेँ केदारखण्डके आठवेँ अध्यायके एक सौ सोलहवेँ श्लोकमेँ यह विधान आया है कि स्त्री, शूद्र और श्वपचादि अन्त्यज जो कोई भी लिङ्गरूपी सदाशिवकी पूजा करते हैँ, वे सर्व-दुःख-विनाशक उस शिवको प्राप्त करते ही हैँ।

इसीके आगे यह भी वर्णन आया है कि मनुष्य क्या पशु भी किसी प्रकार दर्शनादि करनेसे परम स्थानको चले गए—"पशवोऽपि परं याताः किं पुनर्मानुषादयः" ॥ आगे इसी खण्डके इकतीसवेँ अध्यायमेँ यह वर्णन मिलता है कि गिरि लोग (पर्वताधिष्ठातृ देवता) कहते हैँ कि हे शम्भो! हम तुम्हेँ नमस्कार करते हैँ, हम आपकी शरणमेँ आए हैँ। तुमने अपने दर्शनसे श्वपचोँको वरिष्ठ (मान्य) किया है।

एक जगह इसी अध्यायमेँ भगवान् शङ्कर धर्मराजसे कहते हैँ।

बहूनां जन्मनामन्ते मयि भावोऽनुवर्तते।
प्राणिनां सर्वभावेन जन्माभ्यासेन भो यम॥
तस्मात्सुकृतिनः सर्वें येषां भावोऽनुवर्त्तते।
जन्मजन्मानुवृत्तानां विस्मयं नैव कारयेत्॥
स्त्री बाल शूद्राः श्वपचाधमाश्च प्राग्जन्मसंस्कारवशाद्धि धर्म।
योनिं गताः पापिषु वर्तमानास्तथापि शुद्धा मनुजा भवन्ति॥

अर्थात् हे यम! प्राणियोँ को जन्मजन्मान्तरके अभ्यास से अनेक जन्ममेँ मेरे प्रति भावका उदय होता है, इस कारण मुझमेँ भाव (प्रेम) रखनेवाले सभी प्राणियोँको पुण्यात्मा समझना चाहिए। इस विषयमेँ थोड़ा भी आश्चर्य न करना चाहिए। हे धर्मराज! यद्यपि मनुष्य पूर्वजन्मके कर्मानुसार स्त्री, बाल, शूद्र, श्वपच या अधमसे भी अधम योनिमेँ पहुँच जाता है और पाप-कर्मोँमेँ विद्यमान रहता है, फिर भी मुझमेँ भाव रखनेवाले ऐसे प्राणी शुद्ध मनुष्य होते हैँ अर्थात् उन्हेँ अशुद्ध या घृणित नहीँ समझना चाहिए। इस खण्डके उन्नीसवेँ अध्यायमेँ लोमशजी ब्राह्मणोँसे कहते हैँ कि शिव-भक्तिमेँ लगे हुए मूक, अंध, पंगु, अज्ञानी और अन्त्यज जातिके चाण्डाल तथा श्वपचादि कोई भी होँ वे सब परम गतिको जाते हैँ। इस कारण सब मनुष्योँको सदा शिवकी पूजा करनी चाहिए।

केदारखण्डके इकतीसवेँ अध्यायमेँ स्वामी कार्त्तिकेयको शिवका ही स्वरूप बताते हुए यह वर्णन आया है कि सत्यशील, शान्त, दानी, वेद-वेदाङ्ग-पारङ्गत, धर्मनिष्ठ, जितेन्द्रिय, रागद्वेषरहित और निर्लोभी याज्ञिक लोग जिस उत्तम गतिको प्राप्त करते हैँ, उसी गतिको हे शम्भो! आपका दर्शन करनेवाले अधम श्वपच भी प्राप्त करते हैँ।

इसी बातको वहीँ पर फिर सत्ताइसवेँ श्लोकमेँ भी कहा है—

कुमारदर्शनात्सर्वे श्वपचा अपि यान्ति वै।
सद्गतिं त्वरितेनैव किं क्रियते मयाऽधुना॥

कर्म-चाण्डालकी कथा

इस कथामेँ जाति-चाण्डालकी अपेक्षा कर्म-चाण्डालको अधम दिखाया गया है। इस कथासे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जाति-चाण्डालके

देवदर्शन और पूजनादिसे देवविग्रहमें वैसा दोष नहीं होता है जैसा कि कुछ लोग समझते हैं, किन्तु कर्मचाण्डालके दर्शन, स्पर्शन और पूजनसे प्रतिमा दूषित हो जाती है, वह कर्मचाण्डाल चाहे किसी भी ऊँची जातिका क्यों न हो। यह कथा स्कन्दमहापुराणके ब्रह्मखण्डके धर्मारण्यके सत्ताइसवें अध्यायके गोवत्सतीर्थके माहात्म्य प्रकरणमें इस प्रकार आई है कि देवताओंने गोवत्सतीर्थमें एक प्राचीन शिवलिङ्गकी स्थापना की। स्थापनाके बाद वह लिङ्ग प्रतिदिन बढ़ने लगा। इस प्रकारकी वृद्धि देखकर देवताओंको भय होने लगा। इतनेमें आकाशवाणीके रूपमें यह शिववाणी हुई कि "आप लोग बिलकुल भय न करें, किन्तु किसी चाण्डालको लाकर उसे मेरे सामने स्थापित करें"। यह सुनकर देवता लोगोंने भी वैसा ही किया, किन्तु इसपर भी शिवलिङ्गकी वृद्धिमें कमी नहीं हुई, कारण कि देवता लोगोंको यह मालूम नहीं था कि यहाँपर किस प्रकारका चाण्डाल विवक्षित है, इस कारण वे लोग जातिचाण्डालको ले आए।

इसके बाद पुनः यह आकाशवाणी हुई कि देवता लोगोंमें जो कर्मचाण्डाल हो उसे मेरे आगे लाओ। यह सुनकर देवताओंको अति आश्चर्य हुआ और किसी कर्मचाण्डालको नगर तथा गावोंमें खोजने लगे। इतनेमें उन्हें पापकर्ममें रत और अपनेको ब्राह्मण बतानेवाला मनुष्य मिला। वह ब्राह्मण भूखे, प्यासे, दुर्बल और बोझसे लदे हुए बैलोंको मध्याह्नमें जोतता था। बिना स्नानके भी वासी भोजन करता था। ऐसे कर्मचाण्डालको देवता लोग शिवजीके आगे ले आए। देवालयके आगे आते ही वह कर्मचाण्डाल भस्म हो गया, तबसे उस जगहका नाम चाण्डालस्थल पड़ गया। उसी समय शिवलिङ्ग वृद्धिको छोड़कर अपने स्वरूपमें आ गया।

इसी ब्रह्मखण्डके ब्रह्मोत्तर खण्डमें आया है कि शिवभक्तियुक्त चाण्डाल, पुल्कस, स्त्री, पुरुष, नपुंसक चाहे जो कोई भी हो वह संसारके बन्धनसे छूट जाते हैं। भक्तिके आगे कुल, आचार, शील और गुणोंसे क्या, यदि मनुष्य शम्भुकी भक्तिसे युक्त है तो वह सब देहधारियोंका वन्द्य होता है।

शवरकी कथा

जिसकी जैसी भावना और श्रद्धा होती है उसको वैसा फल अवश्य मिलता है, इस विषयको लेकर इसी ब्रह्मोत्तर खण्डके सत्रहवें अध्यायमें सूतजीने ऋषियोंसे शवरीकी कथा कही है। शास्त्रसे चाण्डाल जातिका ही एक भेद शवर जाति मानी जाती है। वह कथा इस प्रकार है कि पाञ्चालके राजाका सिंहकेतु नामका एक पुत्र था। वह क्षात्रधर्ममें तत्पर और सर्व गुणोंसे युक्त था। एक समय वह राजकुमार कुछ नौकरोंको साथ लेकर जीव-जन्तुओंसे भरे हुए जङ्गलमें शिकार खेलने गया। शिकारके लिये वनमें घूमते हुए उसके किसी "शवर" नौकरने जीर्ण, टूटे-फूटे और गिरे हुए एक देवालयको देखा।

उसने उस मन्दिरमें गिरे हुए आधारपीठके ऊपर अपने मूर्त्तिमय भाग्यके समान एक सीधा और सूक्ष्म शिवलिङ्ग देखा।

अपने पूर्वजन्मके शुभ कर्मोंसे प्रेरित होकर उस शवरने तुरन्त ही शिवलिङ्गको लाकर राजपुत्रको दिखाया और कहने लगा कि स्वामिन्! देखिये, यह कैसा मनोहर लिङ्ग है! मैंने इसको देखा है, इस कारण मैं अपने विभवके अनुसार आदरसे इसकी पूजा करूँगा। मुझे इसकी पूजाविधि बताइए, क्योंकि भगवान् महेश्वर तो मन्त्रज्ञ और बिना मन्त्रज्ञ सभीके पूजनेपर प्रसन्न हो जाते हैं।

निषाद (शवर) के इस प्रकार पूजाविधि पूछनेपर हँसी करनेमें चतुर उस राजकुमारने हँसकर पूजाकी यह साधारण विधि कही कि सङ्कल्प लेकर शुद्ध और ताज़े पानीसे स्नान करके पवित्र आसनपर बैठकर सुन्दर गन्ध, पत्र, पुष्प, धूप और दीपसे शिवकी पूजा करे। भगवान् शङ्कर चिता-भस्मधारी हैं। अतः पूजाके उपरान्त चिताभस्मका उपहार देवे और अपने

भोज्य अन्नका नैवेद्य चढ़ावे, फिर धूप-दीपादि सामग्री चढ़ावे, यथाशक्ति गाना-बजाना और नृत्य भी करे। इसके बाद भगवान्को नमस्कार करके प्रसाद धारण करे। साधारण रूपमें तुमसे पूजा-विधि कह दी है। भगवान् शङ्कर चिताभस्मसे शीघ्र सन्तुष्ट हो जाते हैं—

इति तेन निषादेन पृष्टः पार्थिवनन्दनः।
प्रत्युवाच प्रहस्यैनं परिहासविचक्षणः॥

सङ्कल्पेन सदा कुर्यादभिषेकं नवाम्भसा।
उपवेश्यासने शुद्धे शुभैर्गन्धाक्षतैर्नवैः॥

सूतजी कहते हैं कि राजाने हँसीके साथ यह पूजाका उपदेश दिया और चण्ड नामके शबरने राजाके वचनोंको नतमस्तक होकर धारण किया।

इसके बाद वह शबर अपने घर चले आनेपर भी प्रतिदिन लिङ्गमूर्त्ति महेश्वरकी पूजा करता था। और पूजामें राजकुमारके उपदेशानुसार धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, अक्षत, पुष्प और चिताभस्मका उपहार चढ़ाया करता था।

इस प्रकार अपनी स्त्रीके साथ भक्ति-पूर्वक शिवपूजन करते हुए उसके कुछ वर्ष सुखके साथ बीते।

किन्तु राजकुमारने शिवपूजाके उपहारमें चिताभस्म देनेपर विशेष ज़ोर दिया था। एक दिन ऐसा हुआ कि जब शबर शिवपूजाके लिये प्रवृत्त हुआ तो चिताभस्मसे पूर्ण पात्रमें ज़रा भी भस्म नहीं दिखाई दी।

इसपर उसने इधर-उधर बहुत खोज की। जब उसे भस्म नहीं मिली तो वह थककर घर चला आया। उसने अपनी स्त्रीको बुलाया और कहा कि आज मुझे चिताभस्म नहीं मिली। हे प्रिये! बताओ, अब मैं क्या करूँ? मालूम पड़ता है मुझ पापीकी शिवपूजामें विघ्न आ गया है। जो कुछ हो, परन्तु मैं पूजाके बिना क्षण भर भी जीवित रहनेका उत्साह नहीं कर सकता।

क्या करूँ, पूजासामग्रीके लुप्त होनेपर कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। समस्त अर्थको देनेवाला गुरुका आदेश भी नष्ट नहीं होना चाहिए। अर्थात् भस्म नष्ट हो गई है। उसके बिना पूजा करूँ तो गुरुका उपदेश बाधित होता है।

अपने पतिको इस प्रकार व्याकुल देखकर शबरकी स्त्री बोली कि पतिदेव! डर मत करो, मैं उपाय बताती हूँ। "इस पुराने घरमें आग लगाकर मैं अग्निमें प्रवेश करती हूँ, उसीसे चिताभस्म मिल जायगी।" इसपर शबरने कहा कि शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन है। इस नवयौवनवाले शरीरको क्यों छोड़ती हो? तुम्हारे सन्तान भी नहीं है, फिर क्यों इसे जलाना चाहती हो? पतिको उत्तर देती हुई वह स्त्री बोली कि जो कोई दूसरेके लिये प्राणत्याग करता है उसका जीवन और जन्म सफल हो जाता है। इसपर यदि "शिव" के लिये प्राण त्याग दे तो जीवनकी सफलताके विषयमें कहना ही क्या है! क्या मैंने पूर्व जन्ममें घोर तप किया है, दान दिया है, क्या मैंने सैकड़ों पूर्व जन्मोंमें शम्भुका अर्चन किया है, क्या मेरे पिताका कुछ भी पुण्य है, क्या मेरे जन्मसे माताकी कुछ भी कृतार्थता है? यदि ये सब बातें होतीं तो यह दुःखद दशा न होती। अतः मैं भगवान् शङ्करके लिये प्रदीप्त अग्निमें शरीर छोड़ दूँगी।

अपनी पत्नीका दृढ़ निश्चय और शङ्करमें भक्ति देखकर शबरने भी दृढ़ सङ्कल्प होकर शिवकी पूजा की। शबरकी स्त्री अपने पतिके पास जाकर स्नानसे शुद्ध और आभूषणोंसे अलङ्कृत होकर, घरमें अग्नि लगाकर भक्तिसे घरकी प्रदक्षिणा, अपने गुरुको नमस्कार और हृदयमें शिवका ध्यान करके अग्निमें प्रवेश करनेके लिये तैयार होती हुई हाथ जोड़कर यह विनति करने लगी—

पुष्पाणि सन्तु तव देव ममेन्द्रियाणि
धूपोऽगुरुर्वपुरिदं हृदयं प्रदीपः।
प्राणा हवींषि करणानि तवाक्षताश्च
पूजाफलं व्रजतु साम्प्रतमेष जीवः॥
वाञ्छामि नाहमपि सर्वधनाधिपत्यं
नो स्वर्गभूमिमचलां न पदं विधातुः।
भूयो भवामि यदि जन्मनि जन्मनि स्यां
त्वत्पादपङ्कजलसन्मकरन्दभृङ्गी॥

जन्मानि सन्तु मम देव शताधिकानि
माया न मे विशतु चित्तमबोधहेतुः।
किञ्चित्क्षणार्धमपि ते चरणारविन्दा-
न्नापैतु मे हृदयमीश नमो नमस्ते ॥

अर्थात् हे देव ! मेरी इन्द्रियाँ तुम्हारे लिये पुष्प हों, यह शरीर अगुरु धूपके रूपमें हो जाय, हृदय प्रदीप हो, प्राण हविष हो और कर्मेन्द्रियाँ अक्षत हो जायँ। इस प्रकारकी पूजाके फलको अब यह जीव प्राप्त होवे। मैं सम्पूर्ण धनका मालिक होना नहीं चाहती, स्थिर स्वर्गभूमि और ब्रह्माका पद भी नहीं चाहती, किन्तु मैं यही चाहती हूँ कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो उसमें मैं तुम्हारे पदकमलमें सुशोभित परागको चाहनेवाली भ्रमरी वनूँ। हे देव ! चाहे मेरे सैकड़ों जन्म हों, किन्तु उन जन्मोंमें मेरे चित्तके अन्दर अज्ञानको पैदा करनेवाली माया प्रवेश न करे, और हे ईश ! मेरा चित्त आधे क्षणके लिये भी तुम्हारे चरणारविन्दसे अलग न हो" वस, आपको नमस्कार है। इस प्रकार शङ्करको प्रसन्न करके दृढ़ सङ्कल्पवाली शवरी जलती हुई अग्निमें कूद पड़ी और क्षण भरमें भस्म हो गई। इधर शवरको भी शिवपूजनके आगे संसारका कुछ पता नहीं था। वह जले हुए घरके पास पूजा कर रहा था। उसे चिताभस्म भी मिल गई। पूजा करनेके वाद प्रसाद लेते समय शवरको प्रतिदिन नम्रताके साथ हाथ जोड़कर प्रसाद लेनेके लिये आनेवाली अपनी स्त्रीका स्मरण हुआ। स्मरणके साथ ही उसने पीछे खड़ी अपनी स्त्रीको देखा और घरको भी पहलेकी तरह ज्योंका त्यों देखा।

यह सव देखकर शवरको वड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि यह स्वप्न तो नहीं है अथवा माया तो नहीं है। सन्देह-निवृत्तिके लिये स्त्रीसे पूछने लगा कि अग्निमें भस्म होनेपर भी तुम कैसे आ गई और यह मकान कैसे खड़ा हो गया ?

उत्तरमें वह वोली कि जब मैंने घर जलाकर अग्निमें प्रवश किया तो मुझे अपना कुछ भी ख़याल नहीं रहा और न अग्निका ही अनुभव हुआ। मुझे बिलकुल भी ताप नहीं मालूम हुआ। मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे मैंने जलमें प्रवेश किया हो। मैं क्षण भरमें सुषुप्ति जैसी अवस्थामें पड़ गई, इतनेमें मैंने घरको विना जलेके समान देखा। इस समय देवपूजाके वाद प्रसाद लेने आई हूँ।

भगवान् भक्तोंकी परीक्षाके लिये अनेक माया रचा करते हैं। सुदामाके मुट्ठी भर तण्डुलके भक्षणसे ही भगवान्ने उसका जीवन पलट दिया था। ऐसे चमत्कारमय रहस्योंसे हमारा धार्मिक साहित्य भरा पड़ा है। यही वात इस शवरकी कथामें समझनी चाहिए। इसके वाद उस दम्पतिके सन्मुख एक सुन्दर दिव्य विमान आ पहुँचा। उसमें शिवके चार अनुचर भी थे। उन लोगोंने शवर और शवरीका हाथ पकड़कर उन्हें विमानपर बैठा लिया। देवदूतोंके करोंका स्पर्श होते ही वे दम्पति शिवके सारूप्यको प्राप्त हो गए।

यह सव कथा सुनाकर सूतजी कहते हैं—

तस्माच्छ्रद्धैव सर्वेपु विधेया पुण्यकर्मसु।
नीचोऽपि शवरः प्राप श्रद्धया योगिनां गतिम् ॥
किं जन्मना सकलवर्णजनोत्तमेन।
किं विधया सकलशास्त्रविचारवत्या ॥
यस्यास्ति चेतसि सदा परमेशभक्तिः।
कोऽन्यस्ततस्त्रिभुवने पुरुषोऽस्ति धन्यः ॥

अर्थात् सव पुण्य-कर्मोंमें श्रद्धा अवश्य करनी चाहिए। श्रद्धाके प्रभावसे ही नीच शवर भी योगियोंकी गतिको प्राप्त हो गया।

सवमें ऊँचे वर्ण और जन्मसे क्या ? समस्त शास्त्रमें विचारवाली विद्यासे क्या ? जिसके हृदयमें परमेश्वरके प्रति अटूट भक्ति होती है उससे वढ़कर इस संसारमें और कौन धन्य हो सकता है ?

आगे चलकर काशीखण्डमें लिखा है कि तुलसीदलसे शालिग्रामकी पूजा करनेवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यजादि चाहे कोई भी हो वह देवताओंके यहाँ "पारिजात" की मालासे पूजा जाता है, विष्णुभक्तिसे युक्त ऐसे मनुष्यको विष्णुका भक्त और सर्वश्रेष्ठ समझना चाहिए।

शालिग्रामशिला येन पूजिता तुलसीदलैः ।
स पारिजातमालाभिः पूज्यते सुरसद्मनि ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः ।
विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्वोत्तमश्च सः ॥

श्लो० ६२-६३ अ० १८ ।

काशीखण्डके बयासिवें अध्यायमें 'वीरेश महालिङ्ग' के आविर्भावकी कथाके प्रसङ्गमें यह वर्णन आया है कि "मित्रजित्" नामके राजाके राज्यमें अन्त्यज भी वैष्णवी दीक्षा प्राप्त करके शङ्खचक्रादिसे चिह्नित थे और वे लोग यज्ञमें दीक्षितके समान हो गए अर्थात् दीक्षितके समान पवित्र आचरणवाले हो गए।

प्राचीन कालमें चाण्डालपर्यन्त अन्त्यजमात्रको तीर्थयात्रा करनेका पूर्ण अधिकार था। इस विषयपर काशीखण्डके अट्ठानबेवें अध्यायमें महादेवजी "महानन्द" नामके ब्राह्मणकी कथामें विष्णुसे कहते हैं कि महानन्द नामका कोई ब्राह्मण काशीमें रहता था। पहले वह बड़ा शान्त और सदाचारी था। कुछ कालके बाद उसका विवाह हुआ। उसकी स्त्री सदाचारिणी नहीं थी। उसके संसर्गसे वह ब्राह्मण भी पतित और भ्रष्टाचारी हो गया। इसी अवसरपर पर्वत प्रान्तसे एक धनी चाण्डाल आया। उसने "चक्र" नामके तालावमें स्नान करके यह घोषणा की कि मैं धन देना चाहता हूँ, जातिका चाण्डाल हूँ। कोई प्रतिग्रह लेनेवाला हो तो उसे धन दूँगा।

यह घोषणा सुनकर किसीने अँगुलीके इशारेसे ब्राह्मणको दिखाकर कहा कि यही तुमसे प्रतिग्रह लेगा। यह सुनकर वह अन्त्यज उस ब्राह्मणके पास गया और दण्डवत-प्रणाम करके कहने लगा कि हे महाब्राह्मण! मेरा उद्धार करो। मेरी तीर्थयात्रा सफल करो। मेरे पास कुछ वस्तु है, अनुग्रहके साथ उसे ग्रहण करो।

इसपर महाब्राह्मणने अन्त्यजसे सब धन देनेको कहा। चाण्डालने भी कहा कि कोई चिन्ता नहीं, मैं जितना धन लाया हूँ उसे आपको दे दूँगा। आप मेरे लिये विश्वनाथके समान हैं, क्योंकि जो मनुष्य दूसरेका उद्धार करते हैं, दूसरेकी इच्छा पूरी करते हैं और परोपकारशील हैं, वे विश्वेशके अंश ही हैं।

इस प्रकार ब्राह्मणकी प्रार्थना स्वीकार करके चाण्डाल "विश्वेशः प्रीयतां" कहकर विश्वेशकी बुद्धिसे ब्राह्मणको सब धन देकर घर लौट गया।

असत् प्रतिग्रहके कारण ब्राह्मणको अधम योनि प्राप्त हुई। उसे लोगों में अपमानित भी होना पड़ा। पीछे काशीमें मरनेके कारण मुक्त हो गया। किन्तु तीर्थयात्रा और दान करनेवाले चाण्डालका विरोध किसीने नहीं किया, उसने प्रसन्नता-पूर्वक तीर्थयात्रा की। इन प्रकरणोंसे यह पता लगता है कि पूर्वकालमें अन्त्यजोंके लिये तीर्थयात्राकी कुछ रोक-टोक नहीं थी।

आगे चलकर आवन्त्यखण्डमें यह वर्णन आया है कि महादेवजी पार्वतीसे कहते हैं कि आवन्त्य (उज्जैन) में मुक्तीश्वरके दर्शनसे एक अन्त्यज जातिका व्याध मुक्तिको प्राप्त हुआ था। वह कथा इस प्रकार है—

शिवजी बोले कि हे पार्वती! मुक्तीश्वरके दर्शनमात्रसे मुक्ति हो जाती है।

'यस्य दर्शनमात्रेण मुक्तिर्भवति पार्वति।'

पहले रथन्तर मन्वन्तरमें मुक्ति नामका ब्राह्मण था। उसने महाकाल वनके समीप योगमें तत्पर होकर १३ वर्ष तक तप किया। वहाँपर महाकालके समीप सुन्दर मुक्तिलिङ्ग भी था। एक समय वह ब्राह्मण शिप्रा नदीमें स्नान करने गया। जब वह स्नान करके जप करने लगा तो उसने अपने सन्मुख एक भयङ्कर व्याधको देखा। उसके हाथमें धनुष था, लाल लाल आँखें थीं। उसे देखते ही ब्राह्मण डर गया और नारायणदेवका ध्यान करता हुआ वहाँपर खड़ा रह गया।

इस प्रकार मनमें हरिका ध्यान करनेवाले ब्राह्मणको सामने देखकर भयभीतसा होकर धनुष-बाण फेंककर व्याधने कहा कि मैं तुम्हें मारनेकी इच्छासे यहाँ आया था, किन्तु इस समय तुम्हारे प्रभावशाली दर्शनसे ही बुद्धि बदल गई है। मैंने आज तक जीविकाके लिये हज़ारों ब्रह्महत्याएँ और स्त्रीहत्याएँ की हैं, किन्तु मेरा चित्त कभी भी दुखी नहीं हुआ। परन्तु अब मैं तुम्हारे

समीप तप करना चाहता हूँ, अतः उपदेश देकर मुझपर अनुग्रह करो ।

ब्राह्मणने यह विचारकर कि यह तो ब्रह्मघाती है और पाप करनेवाला है, व्याधकी प्रार्थनापर चुप होकर कुछ भी ध्यान नहीं दिया ।

किन्तु कुछ न कहनेपर भी व्याध वहाँ ठहर गया और स्नान करके शीघ्रही मुक्तिलिङ्ग के समीप आ गया । हे देवि ! ब्राह्मणके साथ ज्यों ही उसने अविनाशी मुक्तिलिङ्ग देवका दर्शन किया, उसी समय दिव्य देह होकर उसी लिङ्गमें लीन हो गया ।

हे देवि ! यह आश्चर्य देखकर मुक्ति नामक ब्राह्मण मन-ही-मन विचारने लगा कि पापयुक्त और समाधि-रहित यह व्याध एकदम मुक्त हो गया है, किन्तु घोर तप करनेपर भी मैंने न तो परम मुक्ति पाई और न भगवान्की मूर्त्ति ही पाई ।

यह कथा इस समय हमारे लिये अत्यन्त उपदेशप्रद है। क्योंकि वैसी ही स्थिति इस समय हमारे सामने है। मुक्ति नामक ब्राह्मण अपनी श्रेष्ठता और तपस्याके आगे उस अन्त्यज जातिके व्याधको हीन और पतित समझता था । किन्तु जब सामने ही स्नानादिसे शुद्ध होकर व्याधने साथ ही दर्शन किया तो उस व्याधको भगवान्का दर्शन और मुक्ति मिल गई, परन्तु ब्राह्मण आश्चर्य करके देखता ही रह गया। फिर जल ले, अन्दर जाकर घोर तप करने लगा ।

आगे चलकर इसी प्रकरणके तिरपनवें अध्यायमें भगवान् शङ्कर पार्वतीसे महाकालवन (उज्जैनी) के विश्वेश्वरके दर्शनके माहात्म्यमें कहते हैं कि विदर्भ देशका विदूरथ नामका राजा अत्यन्त पापाचारी था। पापाधीन जन्म-कर्मके अनुसार ग्यारहवें जन्ममें भी वह आवन्त्य क्षेत्रके अन्दर चाण्डाल योनिमें जन्मा। एक दिन चोरीके लिये ब्राह्मणके घर गया तो तत्काल चोरीमें पकड़ा गया। उसे लट्ठधारी चौकीदारोंने बाँधकर पेड़में लटका दिया । उसके पास ही शूलेश्वरके उत्तरकी ओर एक शिवलिङ्ग था, चाण्डालने उसे देख लिया । लिङ्गदर्शनके बाद ही वह मरकर स्वर्ग चला गया। वहाँ उत्तम ऐश्वर्य भोगकर पुनः भूतलके अन्दर विदर्भ देशमें विश्वेश नामका राजा हुआ। लिङ्ग-दर्शनके पुण्यसे उसे पूर्व जन्मकी बात भी याद रही ।

इसी प्रकारकी एक कथा इसी खण्डके छियासठवें अध्यायमें आई है। संक्षेपमें वह यह है। शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं—

द्वापर युगमें एक चाण्डाल बालकको किसीके आक्षेप-पूर्ण वचनोंसे यह पता लगा कि मैं चाण्डाल योनिका हूँ। उसको अत्यन्त दुःख हुआ और वह तपके लिये जङ्गलमें चला गया। उसने घोर तप किया। उसके तपसे देवता चिन्तित होने लगे। इन्द्रने आकर उसे कहा कि तुम मनुष्यके भोगोंको छोड़कर तप क्यों करते हो। हे मातङ्ग ! (चाण्डाल) मैं वरदान देना चाहता हूँ। जो इच्छा हो माँगो ।

इसपर मातङ्गने कहा कि मैं ब्राह्मण्य चाहता हूँ, इस कारण मैं तप कर रहा हूँ । बस, मुझे यही वर दो। उत्तरमें इन्द्रने कहा कि यह वर कठिन है, तुम इसे प्राप्त नहीं कर सकते हो। तपस्या छोड़ दो नहीं तो अनिष्ट होगा। किन्तु उस चाण्डालने एक अँगूठेसे खड़े होकर सौ वर्ष तक घोर तप किया ।

इन्द्रने आकर फिर वेही बातें कहीं। परन्तु मातङ्ग उसी तरह फिर घोर तप करने लगा। इस तरह अनेक बार इन्द्र आए पर चाण्डाल भी कुछ परवाह न कर कठिन तप करता गया। इन्द्र भी पुनः-पुनः आकर उसको समझाते गए कि ब्राह्मण्य दुर्लभ है, तुम्हें वह नहीं मिल सकता है। अतः उसको छोड़ दो, कोई दूसरा वर माँगो ।

इसपर मातङ्गने बड़ी फटकारके साथ कहा कि दुःखसे पीड़ित मेरे हृदयको क्यों बेधते हो ? मुझ मरे हुए को क्यों मारते हो ? मुझे उसपर शोक है जो ब्राह्मण्यको प्राप्त कर उसका पालन नहीं करता है ।

हे इन्द्र ! यदि क्षत्रियादि तीनों वर्णोंके लिये ब्राह्मण-भाव दुष्प्राप्य है तो बताओ कि विश्वामित्रने उसे कैसे प्राप्त किया ? देखो राजर्षि वीतहव्यने भी तपके प्रभावसे ब्राह्मण्य प्राप्त किया था, इस कारण मैं द्वन्द्व और

परिग्रह-रहित होकर तप करूँगा और अहिंसा, दम, सत्य तथा धर्ममें स्थिर होकर ब्राह्मण क्यों न हो सकूँगा ?

फिर नम्रताके साथ मातङ्गने कहा कि हे इन्द्र ! किसी प्रकार पुरुषार्थसे दैव-बलको न हटा सका। इतना प्रयत्न करने पर भी विप्रताको प्राप्त न कर सका। मेरा कुछ भी पुण्य हो और यदि मैं तुम्हारा कृपापात्र हूँ तो हे देव ! मुझे वह उपाय बताओ जिससे मैं विप्र हो जाऊँ और मेरी अक्षय कीर्त्ति हो जाय।

मातङ्गके इतना कहनेपर इन्द्रने प्रसन्न होकर शिवलिङ्गका उत्तम माहात्म्य कहा और चाण्डालको यह आदेश दिया कि महाकाल वनमें ब्रह्माने दिव्य मूर्त्तिधारी सुन्दर लिङ्गकी स्थापना की है, वह लिङ्ग सिद्धेश्वरके पूर्वमें है। उसके दर्शन करनेसे ही तुम विप्रत्वको प्राप्त कर लोगे। अर्थात् ब्राह्मण की तरह सदाचारी, सत्यवक्ता, जितेन्द्रिय और मान्य हो जाओगे।

इन्द्रका उपदेश पाकर मातङ्ग रमणीक महाकाल वनमें गया, वहाँपर दूसरे सिद्धक्षेत्रमें अशेष फल देनेवाले उस लिङ्गका दर्शन किया और अनेक प्रकारके पुष्पोंसे शिवार्चन किया।

इस प्रकार मातङ्गसे पूजित भगवान् शङ्कर बोले, ओह ! तुम बड़े भाग्यशाली हो कि तुमने मुझे प्रसन्न कर लिया। भूर्भुवादि सारा ब्रह्माण्ड मुझसे उत्पन्न हुआ है। मैं भक्तजनोंको वर देनेवाला हूँ और दुष्टात्माओंको शाप देनेवाला भी हूँ। मेरे प्रसादसे और लिङ्गदर्शनके कारण तुम्हें अक्षय विप्रत्वकी प्राप्ति होगी। वह चाण्डाल ब्राह्मण्यको पा गया, फिर वह द्विज पूजाके प्रभावसे ब्रह्मलोकमें चला गया। हे देवि ! इस लिङ्गके प्रभावसे चाण्डाल मातङ्गने दुर्लभ विप्रत्व प्राप्त किया। इसी कारण ब्रह्मलोकको देनेवाले उस लिङ्गको संसारमें "मतङ्गेश्वर" कहते हैं।

इतना ही नहीं शिवजी कलिकालके लिये विशेष आदेश करते हैं कि कलियुगमें जो लोग वर्णाश्रमसे द्वेष रखते हों, पाखण्ड वचनोंपर विशेष ध्यान देते हों, मर्यादा-रहित हों, आचार-रहित हों, शङ्कित, लोलुप, निर्दय, निष्ठुर और धृष्ट (उद्धत) हों वे लोग भी उस शिवलिङ्गके दर्शनसे स्वर्गको जाते हैं।

इसीके आगे अठत्तरवें अध्यायमें यह वर्णन आया है कि राजा चित्रसेनकी लड़की चित्रसेनसे अपने पूर्व जन्मके वृत्तान्तमें कहती है कि पूर्व जन्ममें मैंने अपने पतिको वशमें करनेके लिये औषधिका प्रयोग किया था। उस दुष्टकर्मके फलके क्रमानुसार चाण्डाल योनिमें गई। वहाँ मैं अनेक फोड़ोंसे पीड़ित रही। मुझ दीन-दुखियाको चारों ओरसे कुत्ते घेरे रहते थे और बार-बार नोच खाते थे। इस प्रकार मार्गमें कुत्तोंसे नुची हुई मुझको भेड़ियोंने छेंक लिया। उनके द्वारा व्यथित की जाती हुई भी मैं किसी प्रकार महाकाल वनमें चली गई। वहाँपर भगवान्के दर्शनकी लालसासे पिप्पलादेश्वरके पासमें महादेवजीका दर्शन पा गई। बस मैं भगवान्के दर्शन मात्रसे दिव्य विमानसे इन्द्रपुरीको चली गई। मैं दिव्यमाला, दिव्यभूषण और दिव्याम्बर-धारिणी हो गई। वहाँपर देवताओंने मेरी पूजा की और बन्दीजनोंने स्तुति की। उसके उपरान्त उस लिङ्गके दर्शनके प्रभावसे ही अब तुम्हारे घरमें पैदा हुई हूँ।

आवन्त्य खण्डके रेवाखण्डमें एक सौ इकतालीसवें अध्यायमें तापेश्वर तीर्थके माहात्म्यके प्रसङ्गमें मार्कण्डेयजी युधिष्ठिरसे कहते हैं—

हे युधिष्ठिर ! इसके बाद सर्वोत्तम तापेश्वर तीर्थमें जाना चाहिए। जहाँपर व्याधसे भयभीत हरिणी सिद्ध होकर अपने अङ्गोंको त्यागकर अन्तरिक्ष लोकमें चली गई।

यह सब देखकर हरिणीका पीछा करनेवाला व्याध भी आश्चर्यमें पड़ गया। व्याधने धनुष-बाण छोड़कर हज़ारों वर्ष तक तपस्या की। इसके बाद महेश्वर प्रसन्न होकर व्याधसे बोले कि हे महाव्याध ! अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो।

व्याधने कहा कि हे देवेश ! यदि आप सन्तुष्ट हैं और वर देना चाहते हैं तो मुझे अपने समीप वास दीजिए।

हे व्याध ! ऐसा ही होगा । यह कहकर महादेवजी अन्तर्धान हो गए ।

भगवान्‌के अन्तर्धान हो जानेके बाद व्याधने महेश्वरकी स्थापना की और वह विधि-पूर्वक पूजा करके स्वर्गको चला गया ।

तबसे वह तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गया और व्याघ्रके कारण वह तीर्थ तापेश्वर नामसे प्रसिद्ध हो गया । उस तीर्थमें स्नान करके जो मनुष्य शङ्करका पूजन करता है वह शिवलोकमें जाता है ।

नागरखण्डमें यह कथा आई है कि जब वशिष्ठके पुत्रोंने त्रिशङ्कुको शाप देकर चाण्डाल बना दिया था उसने चाण्डालत्वको छुड़ाने और यज्ञपूर्त्तिके लिये विश्वामित्रसे प्रार्थना की । विश्वामित्रने कहा कि मैं तीर्थयात्राके प्रभावसे तुम्हारा चाण्डालत्व छुड़ा दूँगा । इस कारण तुम मेरे साथ तीर्थयात्रा करो । तीर्थयात्राके प्रभावसे तुम शुद्ध होकर यज्ञक्रियाके भी पात्र हो जाओगे । क्योंकि संसारमें ऐसा कोई भी पाप नहीं है कि जो तीर्थयात्राके प्रभावसे नाश न हो सके ।

इस प्रकार निश्चय करके विश्वामित्र त्रिशङ्कुको अनेक तीर्थोंमें ले गए । अन्तमें अर्बुद पर्वतके अचलेश्वर मन्दिरसे बाहर निकलते समय उन्हें मार्कण्डेय मुनि मिले तो विश्वामित्रने त्रिशङ्कुका सब समाचार सुनाया । इसपर मार्कण्डेयने विश्वामित्रसे कहा कि इस पर्वतके नैर्ऋत्य दिशाकी ओर आनर्त देशमें पातालके अन्दर हाटकेश्वरका मन्दिर है, वहाँपर एक गङ्गा नदी भी है। उसमें स्नान करके हाटकेश्वरका दर्शन करनेसे त्रिशङ्कु शुद्ध होकर चाण्डालत्वसे छुटकारा पा जायगा ।

विश्वामित्रजी मार्कण्डेय मुनिके उपदेशानुसार त्रिशङ्कुको देवमार्गसे पाताल ले गए । वहाँ विधि-पूर्वक स्नान और दर्शन करनेसे ही त्रिशङ्कु चाण्डालत्वसे छूटकर सूर्यके समान तेजस्वी हो गया ।

इसके बाद प्रणाम करते हुए त्रिशङ्कुसे विश्वामित्र बोले कि हे राजेन्द्र ! प्रसन्नताकी बात यह है कि अब तुम चाण्डालत्वसे मुक्त हो गए हो ।

प्रभासखण्डके तीसवें अध्यायमें आया है । शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि हे पार्वती ! द्विज लोग समुद्रस्नान करनेके उपरान्त प्रभासक्षेत्रके "कपर्दि" महादेवकी पूजा "गणानान्त्वा" मन्त्रसे करें । और शूद्र लोग अष्टाक्षर मन्त्रसे पूजा करें ।

आगे चलकर फिर शिवजी कहते हैं कि कार्य्यके अनुसार भगवान् शङ्करके अलग-अलग अवतार होते हैं । प्रभासक्षेत्रके 'सोमेश्वर' (जो कि कलियुगमें कपर्दी रूपसे प्रभासक्षेत्रमें अवतीर्ण होते हैं) का दर्शन स्त्री, म्लेच्छ, शूद्र और जो कोई भी अन्त्यजादि करते हैं वे स्वर्ग जाते हैं । हे देवि ! यज्ञ, दान, तथा स्वाध्याय और व्रतको न करनेपर भी सब मनुष्य शिवालयमें जाते हैं । सोमनाथका यह प्रभाव देखकर ही अग्निष्टोमादि क्रिया लुप्त हो गई है । बाल, वृद्ध, स्त्री और शूद्रादि सभी लोग उनका दर्शन करके परम गतिको प्राप्त करते हैं ।

एक कथाके अन्दर मार्कण्डेय मुनि राजा इन्द्रद्युम्नसे कहते हैं कि चन्द्रशर्मा नामके ब्राह्मणके पितामह कर्मवशात् प्रेतयोनिमें चले गए । उनकी मुक्तिके लिये चन्द्रशर्मा तीर्थयात्रा करने लगा । अन्तमें वह 'सोमनाथ' तीर्थमें पहुँचा । सोमनाथकी तीर्थयात्रा करनेपर उसके पितामह लोग प्रेतयोनिसे छूट गए । इसपर पितामहोंने उससे कहा कि संसारमें वे पुत्रपौत्र धन्य हैं जो सोमनाथको देखकर द्वारिकाकी यात्रा करके कृष्णका दर्शन करते हैं ।

इस प्रकार चाण्डाल भी जो सोमनाथमें शङ्कर और द्वारिकामें कृष्णकी यात्रा करता है वह पितरोंके साथ परम मुक्ति पाता है ।

आगे इसी खण्डमें इसी प्रकरणके अड़तीसवें अध्यायमें प्रह्लाद अपने पौत्र बलिसे कहता है कि तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे द्वारिका जानेवाले श्वपचादि अन्त्यज भी धन्य होते हैं । इस प्रकार पितरोंके उद्देश्यसे जो लोग भगवत्सम्बन्धी तीर्थोंको प्राप्त करते हैं, दान और भक्तिके साथ भगवान्‌की पूजा करते हैं, ऐसे विष्णुके भक्तोंके सत्कारसे हमें जो तृप्ति होती है वैसी गयाके पिण्डदानसे नहीं होती है । अतः वे

सङ्कीर्ण जातियाँ भी पवित्र हैं जो मधुसूदनकी भक्त हैं तथा जनार्दनकी भक्ति न करनेवाले कुलीन भी म्लेच्छके समान हैं।

इस प्रकार स्कन्दपुराणकी समाप्तिपर यह वर्णन आया है कि शिवजी पार्वतीसे कहते हैं कि हे सुरसुन्दरि! इधर-उधर बहुत-से शिवलिङ्गोंके दर्शनसे क्या प्रयोजन है, "वरुणेश" को देखनेसे ही सब तीर्थोंका फल मिल जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज, मूक, बधिर, बाल और स्त्री चाहे जो कोई भी हों वरुणेशका दर्शन करनेसे सब स्वर्गधामको चले जाते हैं।

इसी प्रकार पद्मपुराणमें भी स्पष्ट रीतिसे अन्त्यजों द्वारा देवदर्शन और पूजनकी अनेक कथाएँ देखी जाती हैं। पुराणोंमें जहाँ कहीं भी भूमिस्थ देवताओंका वर्णन आया है वहाँपर प्रायः इस तरहका वर्णन आया है कि "सौराष्ट्रमें सोमनाथ, उज्जैनमें महाकाल, अमलेश्वरमें ॐकार, हिमालयमें केदार, काशीमें विश्वेश और सेतुबन्धादिमें रामेशादि नामसे शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा रहती है"। इन लिङ्गोंके जो माहात्म्य पुराणोंमें दिए गए हैं उन सबोंमें अधिकांश इस प्रकारकी ही कथाएँ हैं कि अमुक लिङ्गकी पूजा अमुक निषाद, चाण्डाल या शबरनेकी तो उसको परम गति प्राप्त हुई। अमुक लिङ्गके दर्शन करनेसे अमुक शबरको भगवान्का दर्शन हुआ। इन माहात्म्योंको लेकर ही वर्त्तमान कालमें काशी, सेतुबन्ध प्रभृति स्थानोंमें मन्दिरोंके अन्दर शिवपूजा चली आ रही है। एवं अयोध्या, मथुरा प्रभृति तीर्थ-स्थानोंमें विष्णुका निवास तथा उनका माहात्म्य भी पुराणोंमें उसी प्रकार वर्णित है। उनमें भी अन्त्यजोंके दर्शन और पूजनका महत्त्व दिखाया गया है। ऐसा कहीं भी नहीं आया है कि अन्त्यजोंके देवदर्शन करनेसे मूर्त्ति अपवित्र होती हो। इस विषयपर पद्मपुराणमें अनेक कथाएँ आई हैं। उनमें कुछ इस प्रकार हैं। पहले समय रत्नग्रीव नामका राजा काञ्चीपुरमें राज्य करता था। वह अत्यन्त धर्मात्मा और दयालु था। एक दिन उसने सोचा कि मैं आनन्दके साथ बहुत दिनों तक राज्य कर चुका हूँ अब मुझे हरिपूजन और तीर्थयात्रा करनी चाहिए। रात्रिमें इस प्रकार ध्यान करके वह सो गया। स्वप्नमें उसे एक तपस्वी ब्राह्मण दिखाई दिया। प्रातः उठकर राजा मन्त्रियोंके सहित सभामें बैठा। इतनेमें उसने एक तपस्वी ब्राह्मणको देखा और कहा कि आपके दर्शनोंसे मेरा पाप छूट गया है। मुझे ऐसा तीर्थ बताइए कि मैं गर्भवासके बन्धनसे छूट जाऊँ। ब्राह्मणने कहा कि सब देवोंमें रामचन्द्र सेव्य हैं। हे राजन् मैं काञ्ची, काशी, अयोध्यादि अनेक तीर्थोंमें गया हूँ। परन्तु जो अद्भुत बात मैंने पुरोषोत्तमके समीप नील पर्वतपर देखी है वैसी कहीं भी नहीं देखी। उसपर श्रद्धा करनेसे पुरुष लोग सनातन ब्रह्म पा जाते हैं।

हे राजन्! जब मैं घूमता हुआ नील पर्वतपर पहुँचा तो मैंने भीलों (अन्त्यज विशेषों) को देखा जो चतुर्भुज (धर्म, अर्थ, काम, मोक्षसे युक्त) दिखाई देते थे। मैं आश्चर्यमें पड़ गया। मैं सोचने लगा कि शङ्ख, चक्र, गदादि धारण किए हुए और वनमालासे विभूषित ये लोग विष्णुभक्तसे लगते हैं।

मैंने सन्देह दूर करनेके लिये उनसे पूछा कि आप लोगोंका यह उत्तम स्वरूप कैसे हो गया? उन्होंने हँस करके कहा कि यह बेचारा ब्राह्मण पिण्डके महत्त्व को नहीं जानता है। मैंने उनसे पिण्डका महत्त्व पूछा तो उत्तरमें किरातोंने कहा कि हे ब्राह्मण! हमारा एक बालक एक दिन जामुनका फल खाता, खेलता और कूदता हुआ बालकोंके सहित मनोहर गिरि-शिखर पर चला गया। वहाँ उसने सोने की भीतवाला तथा नाना रत्नोंसे जटित एक अद्भुत मन्दिर देखा।

यह देखकर बालकको बड़ी उत्सुकता हुई कि यह क्या है और इसके अन्दर क्या चीज़ है। यह सोचकर बड़े भाग्यसे घर (मन्दिर) के अन्दर चला गया।

बालकने अन्दर जाकर सुरासुरोंसे वन्दनीय हरिका दर्शन किया और नैवेद्य भक्षण किया। मूर्तिका दर्शन करने और नैवेद्य भक्षण करनेके कारण बालक चतुर्भुज हो गया। जब बालक घर लौट आया तो हम लोगोंने पूछा कि तुम्हें यह स्वरूप कैसे प्राप्त हुआ? उत्तरमें

बालकने कहा कि मैँ पर्वतके शिखरपर चला गया था। वहाँपर मैँने भगवान्‌का दर्शन और नैवेद्य ग्रहण किया था, उसीसे यह सब हुआ है।

इसके बाद हम लोगोँने भी उस दुर्लभ देवका दर्शन किया और स्वादिष्ट अन्नादिका भक्षण किया। तुम भी जाकर दर्शन कर लो।

हे राजन्! यह सब सुनकर मैँने भी देवदर्शन किया और उत्तम फल पाया। अतः शीघ्र जाकर दर्शन कर आओ। राजाने ब्राह्मणसे यह सब समाचार और तीर्थयात्राका विधान सुनकर मन्त्रियोँको यह आदेश दिया कि मेरे नगरमेँ रहनेवाले और मेरी आज्ञा माननेवाले सभी लोग मेरे साथ चलेँ। मन्त्रियोँने यह घोषणा की कि सब लोग चलकर पापनाशक पुरुषोत्तम भगवान्‌का दर्शन करेँ।

यह घोषणा सुनते ही ब्राह्मणसे लेकर रजक, चर्मकार, किरात, मिस्त्री, दर्जी, तमोली प्रभृति अनुलोम और प्रतिलोम शूद्रपर्यन्त सभी लोग देवदर्शन और तीर्थयात्राके लिये पुरसे बाहर चले गए।

इस प्रकार राजा रत्नग्रीव अनेक तीर्थ और दानादि क्रिया करता हुआ ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यज-पर्यन्त सब लोगोँको लेकर नील पर्वतपर पहुँचा। वहाँपर उसने अनेक सेवकोँके साथ भगवान्‌का दर्शन, उनकी स्तुति और पूजा की।

इसी पुराणके उत्तरखण्डमेँ शिवरात्रिके माहात्म्यमेँ आया है कि एक चण्ड नामका पुष्कस (अन्त्यज) अत्यन्त क्रूर और पापी था। शिवरात्रिके दिन रात्रि-जागरण और किसी प्रकार उसने शिवपूजा करली। उसके प्रभावसे उसे परम गति प्राप्त हुई।

शिवजी कहते हैँ कि चाण्डाल जातिका एक चण्ड नामका पुष्कस भी शिवार्चनसे तीर्थस्नानको प्राप्त हुआ तो फिर जो श्रद्धा तथा भक्तिसे शिवजीको पुष्पादि चढ़ाते हैँ वे इस संसारमेँ रुद्र स्वरूप ही होते हैँ। इस प्रकार निषादकी कथासे युक्त शिवरात्रिका माहात्म्य लिङ्गपुराण, शिवपुराण, स्कन्दादिपुराणमेँ बड़े विस्तारके साथ वर्णित है। ये सब कथाएँ प्रसिद्ध हैँ। उनका विस्तार करना व्यर्थ है। संक्षेपमेँ यही कहा जा सकता है कि एक निषाद, चाण्डाल, शबर या पुष्कससे किसी प्रकार शिवरात्रिका व्रत और शिवार्चन हो जानेके कारण ही आज शिवरात्रिका व्रत बड़े महत्त्वके साथ देश भरमेँ माना जाता है। पद्मपुराणमेँ ब्रह्मखण्डके बीसवेँ अध्यायमेँ लिखा है कि महापापिनी कलिप्रिया नामकी एक शूद्रा थी। वह अपने पतिको जीवित रखना नहीं चाहती थी। उसकी दुष्टतासे किसी प्रकार उसका पति मर गया और उसके उपपतिको भी गैँडेने खा लिया। इसपर वह अत्यन्त विलाप करने लगी। अन्तमेँ वह दूसरे नगरमेँ चली गई। नगरमेँ जाते ही उसने देखा कि बहुतसे पुरुष और स्त्रियाँ धूप-दीपादिसे राधादामोदरकी पूजा कर रहे हैँ। कलिप्रियाने पूछा कि आप लोग क्या कर रही हो? उत्तरमेँ उन स्त्रियोँने कहा कि यह कार्त्तिकका मास है। हम सब लोग सर्वपापहर राधादामोदरकी पूजा कर रहीं हैँ। यह सुनकर उसने भी मांसका परित्याग करके राधादामोदरकी पूजा की। फलतः अन्तमेँ विष्णुपदको प्राप्त हो गई। उसको विष्णुदूत सुन्दर विमानमेँ बैठाकर विष्णुलोकको ले गए। पद्मपुराणके उत्तरखण्डके पचासीवेँ अध्यायमेँ "दोलोत्सव" का विस्तृत वर्णन आया है। यह उत्सव बड़े समारोहके साथ अनेक स्थानोँमेँ मनाया जाता है। इस उत्सवमेँ अन्त्यजपर्यन्त सभी सनातनधर्मियोँको एकत्रित होकर दर्शनादिका अधिकार कहा गया है।

इस उत्सवका वर्णन महादेवजीने पार्वतीजीसे इस प्रकार किया है। हे देवि! अब मैँ तुमसे उत्सवोँकी विधि कहता हूँ। उनमेँ सबसे पहले चैत्रमासके "दोलोत्सव" को कहता हूँ, उसे सुनो। हे देवि! चैत्रशुक्ल एकादशीके दिन दोलारूढ़ विष्णुका पूजन विशेष रूपसे करना चाहिए। जो पुरुष दोलारूढ़ कृष्णको देखते हैँ वे हज़ारोँ अपराधोँसे मुक्त हो जाते हैँ। अधिक क्या कहूँ, कलिकालमेँ जो मनुष्य दोलामेँ आरूढ़ भगवान् जनार्दनको देखते हैँ वे यदि गोघाती पापी जन होँ तो भी मुक्त हो जाते हैँ फिर औरोँके

विषयमेँ कहना ही क्या है। दोलोत्सवमेँ विष्णुको देखनेके लिये सभी रुद्रादि देवता दोलामेँ चले आते हैँ। दोलेमेँ स्थिति विष्णुको देखनेसे तीनोँ लोकोँका उत्सव हो जाता है। चैत्र, वैशाखमेँ जो मनुष्य दोलेमेँ स्थिति विष्णुको देखते हैँ वे महादेवसे स्तुत्य होकर विष्णुके साथ आनन्द-क्रीड़ा करते हैँ। दोलेमेँ दक्षिण ओर मुँह किए हुए विष्णुके दर्शन करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। अधिक क्या कहूँ, दोलेमेँ स्थिति विष्णु सर्वपापहर होते हैँ। जो मनुष्य उनकी पूजा करता है उनको भगवान् सब कुछ देता है।

"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस मन्त्रसे दोला-विष्णुकी पूजा करनी चाहिए।

"ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति मन्त्रेण पूजनं तत्र कारयेत्"

पुनः अर्घ देकर बचे हुए अर्घके जलको सब वैष्णवोँको देवे। फिर वहाँपर उपस्थित सभी लोगोँको विष्णुके दोले (झूले) को झुलाना चाहिए। हे देवि! उस दिन दोलोत्सव देखनेके लिये पृथ्वी भरके तीर्थ और क्षेत्र आते हैँ। एवम् ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि अन्य जातियाँ उसे देखने आती हैँ। उन सबोँको शङ्खचक्रधारी ही समझना चाहिए। अर्थात् दर्शनार्थ आए हुए ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यज-पर्यन्त मनुष्य जातिको वैष्णव समझना चाहिए।

इसके आगेके अध्यायमेँ भगवान् शङ्करने दोलोत्सवकी तरह दमनोत्सवकी भी विधि और उसका माहात्म्य दिखाया है। उसमेँ भी भगवान् शङ्कर कहते हैँ कि चैत्रमासकी शुक्ल द्वादशीको विधि-पूर्वक दमनोत्सव मनाना चाहिए।

हे देवि! जो मनुष्य दमनोत्सवके दिन मञ्जरीसे विष्णुकी पूजा करता है वह मेरी ही पूजा करता है। मद्यप, मांसभक्षी, स्वर्णहारी और ब्राह्मणघाती दमनोत्सवको देखता है तो पापोँसे छूट जाता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यजादि किसीका भी कुल क्योँ न हो, वह कुल धन्य-से-धन्य और महान् है जो दमनोत्सवमेँ मञ्जरीसे विष्णु की पूजा करता है।

आगे चलकर इसी उत्तरखण्डके एकसौ सत्ताइसवेँ अध्यायमेँ शालग्राम शिलार्चन और दर्शनके विषयमेँ शिवजी कहते हैँ कि शालग्रामकी शिला पुण्य, पवित्र और धर्मकारिणी है। जिसके दर्शन मात्रसे ब्रह्मघाती शुद्ध हो जाता है। श्रुतिके अनुसार वह घर सब तीर्थोँमेँ श्रेष्ठ तीर्थके समान है जिसमेँ शालग्रामशिला रहती है। ब्राह्मणको पाँच, क्षत्रियको चार, वैश्यको तीन और शूद्रको एक शिला पूजनी चाहिए। शालग्राम शिलाके पूजन मात्रसे ही शूद्र मुक्तिको प्राप्त होता है। हे देवि! अधिक क्या कहूँ, मुक्ति चाहनेवाले पुरुषोँको शालग्राम शिलाका पूजन करना चाहिए।

इसी अध्यायमेँ एकसौदोवेँ श्लोकमेँ भगवान् शङ्कर कहते हैँ—

भक्तिहीनैश्चतुर्वेदैः पठितैः किं प्रयोजनम्।
श्वपचो भक्तियुक्तस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते॥

अर्थात् भक्ति-हीन होकर चारोँ वेद पढ़नेसे क्या लाभ है। यदि चाण्डाल भी भक्ति करे तो उसकी देवता लोग पूजा करते हैँ।

आगे एकसौ चवालीसवेँ अध्यायमेँ साभ्रमती गङ्गाके किनारे धवलेश्वर तीर्थमेँ "धवलेश" के माहात्म्यमेँ स्कन्दपुराणवाली नन्दी और किरातकी कथा ज्योँ-की-त्योँ आई है। उसके अन्तमेँ भगवान् शङ्कर कहते हैँ—

एको नन्दी महाकालो द्वावेतौ शिववल्लभौ।
ये पापिनो ह्यधर्मिष्ठा अन्धा मूकाश्च पङ्गवः॥
कुलहीना दुरात्मानः श्वपचाद्या हि मानवाः।
यादृशास्तादृशाश्चान्या आराध्य धवलेश्वरम्॥
"गतास्तेऽपि गमिष्यन्ति नात्र कार्या विचारणा।"

(पद्मपु० उत्तर खं० १४४ अ०)

अर्थात् इस धवलेश्वरके पूजन और दर्शनसे किरात और नन्दी शिवके द्वारपाल हो गए। अतः पापी, अधर्मरत, अन्ध, दुरात्मा, मूक, पङ्ग और कुलहीन तथा श्वपचादि मनुष्य चाहे जैसे भी होँ धवलेश्वरकी आराधना करके उत्तम लोकको जायँगे

और चले भी गए हैं, इसमें सोच-विचार करनेकी कोई बात नहीं है।

नन्दी और किरातकी कथाकी तरहकी एक कथा ब्रह्मपुराणके गौतमी माहात्म्यके निन्यानवेवें अध्यायमें आई है। यह बड़ी सुन्दर कथा है। एक ब्राह्मणसे ब्रह्माजीने उस कथाको इस प्रकार कहा है—

हे द्विज! महादेवके चरणोंकी भक्ति देनेवाला, रोग और पापनाशक "भल्ल" नामका एक तीर्थ है, उसकी पुण्यकथा सुनो। गङ्गाके दक्षिण और श्रीगिरिके उत्तर तटपर "आदिकेश" नामके लिङ्गरूपी महादेव हैं। वे ऋषियोंसे पूजित और सब कामोंको देनेवाले हैं।

हे द्विज! परम धार्मिक सिन्धुद्वीप नामके एक ऋषि थे। उनके भाईका नाम "वेद" था। वे भी परम ऋषि थे। वे वेद ऋषि त्रिलोचन त्रिपुरारि उन 'आदिकेश' को मध्याह्नमें सदा पूजते थे और भिक्षाटन करनेके लिये गाँवमें चले जाते थे। ठीक उसी समय एक परम धार्मिक किरात उस पर्वतपर शिकारके लिये आता था और चारों ओर घूमकर अनेक मृगोंको मारकर थका हुआ मांसको धनुषपर लटकाकर 'आदिकेश' शिव भगवान्के पास जाया करता था। उस समय मांसको बाहर ही रख देता था। समीपमें ही गङ्गापर जाकर मुँहसे पानी तथा एक हाथसे किसी भी पेड़का पत्ता और दूसरे हाथसे नैवेद्यके लिये मांस लाकर तन्मय होकर आदिकेशके पास जाकर वेद ऋषिके द्वारा की गई पूजाको पाँवसे हटाकर "शिव प्रसन्न होवें" कहकर स्नान, पत्र और मांसके नैवेद्यसे पूजा करता था।

शिव-भक्तिके बिना उसको कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। इस प्रकार प्रतिदिन आकर शिव-पूजा करके घर लौट जाता था।

ब्रह्माजी कहते हैं कि जैसी उसकी अपूर्व भक्ति और पूजा थी, शङ्कर भगवान् भी उसके लिये वैसे ही प्रसन्न थे। भगवान्की स्थिति ही विचित्र होती है। जब तक वह भील नहीं आता था तब तक भगवान् भी सुखी नहीं रहते थे। भला शम्भुकी भक्तोंके ऊपर अत्यन्त कृपाको कौन जान सकता है?

"तथापीशस्तुतोषास्य विचित्रा हीश्वरस्थितिः।"
यावन्नायात्यसौ भिल्लः शिवस्तावन्न सौख्यभाक्।
भक्तानुकम्पितां शम्भोर्मानातीतां तु वेत्ति कः॥

इस प्रकार व्याधको पार्वती-सहित "आदिकेश" महादेवकी पूजा करते बहुत दिन बीत गए। इधर वेद ऋषि क्रुद्ध होकर यह सोचा करते थे कि मन्त्र और भक्तिसे युक्त मेरी शिवपूजाको प्रतिदिन कौन पापी नष्ट कर देता है? ऐसे पापीको अब मैं मार डालूँगा। क्योंकि जो पुरुष गुरु, देव, द्विज और स्वामीका द्रोही होता है वह मुनिका भी बध्य होता है फिर यह शिव-द्रोह करनेवाला तो सबका वध्य हो सकता है।

इस प्रकार वेद ऋषि विचारने लगे कि न मालूम यह किस दुष्ट पापात्माकी चेष्टा है। मैं तो सुन्दर फल, पुष्प, कन्द और मूलसे शिव-पूजा कर जाता हूँ, वह सब हटाकर मांस और पेड़के पत्तोंसे दूसरी पूजा कर जाता है। जो हो अब मैं उसको मार डालूँगा।

यह सब सोचकर वेद ऋषि पूजकका पता लगानेके लिये छिप गए। इतनेमें प्रतिदिनकी भाँति वह व्याध "आदिकेश" के पास आया। नित्यकी तरह पूजा करते हुए उस व्याधसे आदिकेश महादेव बार-बार कहने लगे कि हे महाबुद्धिवाले व्याध! क्या तुम थके हो? तुम देरमें कैसे आए? हे तात! तुम्हारे बिना मैं दुःखित था। हे पुत्र! मैं कुछ भी सुख नहीं पा रहा हूँ। इस कारण तुम थोड़ा विश्राम कर लो।

ब्रह्माजी कहते हैं कि इस प्रकार बोलते हुए शिवजीको देखकर वेद ऋषि आश्चर्यमें पड़ गए और क्रोधके मारे कुछ भी नहीं बोले। किन्तु व्याध प्रतिदिनकी तरह पूजा करके अपने घर चला गया।

वेद मुनि क्रुद्ध हो शिवजीके पास आकर बोले कि हे ईश! इस पापी, क्रिया-ज्ञान-रहित, जीवहिंसा करनेवाले, क्रूर, निर्दय, नीच-जाति, अज्ञानी, गुरुपरम्परा-रहित, सदा बुरा काम करनेवाले और

अजितेन्द्रिय व्याध को तो आपने दर्शन दिया है और मुझसे बात तक नहीं करते हो। मैं व्रती होकर विधानानुसार तुम्हारी पूजा करता हूँ, स्त्री-पुत्रादिसे रहित होकर सदा तुम्हारी पूजा करता हूँ। किन्तु यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि वह व्याध दूषित मांससे तुम्हारी पूजा करता है उसके लिये तो आप प्रसन्न हैं और मेरे लिये नहीं।

इस प्रकार क्रुद्ध होकर वेद ऋषिने निश्चय किया कि इस अपकारी व्याधके शिरमें पत्थर मार देता हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं कि वेद मुनिके यह सब कह चुकनेपर "आदिकेश" महादेव हँसकर बोले कि कलतक ठहर जाओ, तब मेरी शिलाको उसके शिरपर मारना।

इसपर वेद मुनिने भी अच्छा कहकर हाथमें उठाई हुई शिला फैंक दी और क्रुद्ध होकर यह कहा कि अच्छा कल ही सही।

इसके बाद वेद मुनि अगले दिन आकर स्नानादि करके प्रतिदिनकी तरह शिवपूजन करने लगे, तो उन्होंने देखा कि शिवजीके मस्तकमें बड़ा भारी घाव हुआ है और उससे लहूकी धारा बह रही है।

यह देखकर वेद मुनि आश्चर्य और शङ्कामें पड़ गए। वह सोचने लगे कि कोई महा उत्पात तो नहीं होनेवाला है। फिर उन्होंने मिट्टी, कुशा, गोबर और गङ्गाजलसे उस लिङ्गको धोकर पूजा की।

इसी बीच वह निष्पाप व्याध आ गया। उसने जब शिवजीके मस्तकपर घाव देखा तो तुरत ही 'यह कैसी विचित्र बात है' कहकर तीखे बाणोंसे अपने शरीरको सैकड़ों बार छेद दिया। वह विचार करने लगा कि कौन ऐसा पवित्र हृदयवाला होगा जो स्वामीकी विकृत दशा देखकर सहन कर लेगा। वह अपनेको बार-बार धिकारने लगा कि मेरे जीतेजी भगवान्की यह दशा हो गई।

व्याधके इन सब कर्मोंको देखकर महादेवजी आश्चर्यमें पड़ गए और वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ वेद मुनिसे बोले—

पश्य व्याधं महाबुद्धे भक्तं भावेन संयुतम्।
त्वं तु मृद्भिः कुशैर्वार्भिर्मूर्धानं स्पृष्टवानसि॥
अनेन सहसा ब्रह्मन् ममाऽऽत्मापि निवेदितः।
भक्तिः प्रेमाथवा शक्तिर्विचारो यत्र विद्यते।
तस्मादस्मै वरान्दास्ये पश्चात्तुभ्यं द्विजोत्तम॥

अर्थात् हे वेद! भावसे भरे हुए भक्त व्याधको देखो। तुमने तो केवल कुश, मिट्टी और जलसे मेरा मस्तक छुआ है पर इसने तो एकदम मेरे लिये अपना शरीर भी दे दिया। इसमें भक्ति, प्रेम, शक्ति और विचार विद्यमान है। इस कारण सर्वप्रथम इसको वर दूँगा, फिर तुम्हें दूँगा। ब्रह्माजी कहते हैं कि महेश्वरने व्याधसे वरदान माँगनेके लिये अनुरोध किया। व्याधने कहा कि देवेश! तुम्हारा जो निर्माल्य है वह हमें मिले और मेरे नामसे तीर्थ हो जाय और इस तीर्थका ऐसा महत्त्व हो कि इसके स्मरणसे ही सब यज्ञोंका फल मिल जाय। शिवजीने व्याधकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस कारण वह "भिल्ल" तीर्थ समस्त पापसमूहका विनाशक हो गया।

इस कथासे यह बात स्पष्ट है कि एक अन्त्यजके पूजनेपर भी वेदज्ञ ब्राह्मणने शिवलिङ्गको अपवित्र नहीं माना। एवम् एक भक्त व्याध अज्ञ होनेपर भी भाव मात्रसे शिव-पूजन करनेपर सर्वोत्तम फल पा गया।

वाराहपुराणमें धर्मव्याध और मातङ्गकी एक कथा आई है। उसमें यह वर्णन आया है कि एक धर्मव्याध अत्यन्त धर्मात्मा था। वह पञ्चयज्ञ और देवपूजनादि विधियोंको जानता था। एक समय व्याध और उसकी लड़कीके ससुरालवालोंसे पवित्रताके विषयमें झगड़ा चला। धर्मव्याधने अपनी लड़कीके ससुर मातङ्गसे कहा कि तुम मुझे झूठे ही हिंसक होनेका दोष लगा रहे हो। मैं तो एक ही हिंसा करता हूँ, तुम तो हज़ारोंकी हिंसा करते हो। तुम्हारे घरमें तो आचार, देवपूजा, अतिथिका पूजन आदि क्रियाओंमें एक भी कर्म नहीं हैं। इस कारण मैं तुम्हारे घर भोजन नहीं करूँगा। मुझे घर जाकर श्राद्ध करना है।

इतना कहकर व्याध अपने घर चला गया। घर जाकर उसने देवता और पितरोंका पूजन किया। अन्तमें घरका भार पुत्रके ऊपर छोड़कर लोकप्रसिद्ध पुरुषोत्तम तीर्थकी यात्रा करने चला गया। वहाँ जाकर श्लोकपाठके साथ तप करने लगा। इस प्रकार तीर्थमें जाकर व्याधने अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति की। उनमें सर्वप्रथम श्लोक यह है—

नमामि विष्णुं त्रिदशारिनाशनं
विशालवक्षःस्थल संश्रितश्रियम्।
सुशासनं नीतिमतां पराङ्गतिं
त्रिविक्रमं मन्दरधारिणं सदा॥

वाराह पु० अ० ८।

इस प्रकार पुरुषोत्तम तीर्थमें तप करता और स्तोत्र-पाठ करता हुआ वह धर्मव्याध भगवान्‌का दर्शन पाकर सनातन पदको पहुँच गया।

शिवपुराण सनत्कुमार संहिताके पन्द्रहवें अध्यायमें शिवपूजनके और दर्शनके विषयमें आया है कि शिवजीके दर्शन, शिवशास्त्रके श्रवण और नाम-सङ्कीर्त्तनसे स्त्री, शूद्र और अन्त्यजादि कोई होवे, सब अश्वमेधके फलको पाते हैं और पाप-मुक्त हो जाते हैं।

इस प्रकार सब पुराणोंमें अनेक कथाएँ आई हैं, जो यह सिद्ध करती हैं कि शुद्ध और भावभक्तिसे युक्त सनातनधर्मानुयायी अन्त्यज भी सदासे देवदर्शनादिका अधिकारी होता आया है।

प्राचीन ऋषि, मुनि, महात्मा, सन्त, साधु सभी धर्मात्मा लोग इन दीन असहाय सधर्मी भाइयोंके लिये उदार होते आए हैं। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र जब वनमें भक्तिन शबरीके आश्रममें पहुँचे तो उन्होंने उससे घृणा नहीं की। क्योंकि भिलनी बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि तथा भक्तिभाव से समन्वित थी। भगवान्‌ने उस अन्त्यज जातिकी बुढ़ियाकी कुटियामें जानेमें ज़रा भी सङ्कोच नहीं किया। पद्मपुराणमें आया है कि भगवान् रामचन्द्र शबरीके पास गए तो शबरीने उनका स्वागत किया और नमस्कार करके उन्हें अपनी कुटियामें बैठाया और पाँव धोकर वन्य-फल-पुष्पोंसे पूजा की तथा अनेक प्रकारके सुन्दर मधुर फलमूल दिए। भगवान्‌ने शबरीके फलोंको खाकर उसे मुक्ति दी।

इतना ही नहीं बल्कि भगवान् व्यासने तो इन दीन भाइयोंके उद्धारके लिये ही भारत और पुराणोंका सङ्कलन किया।

भागवतमें आया है कि—

स्त्री शूद्र द्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह॥

भा० १।४।

"इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्।"

अर्थात् स्त्री, शूद्र और द्विजबन्धु (अन्त्यज) के कान तक श्रुति नहीं पहुँच सकती है। किन्तु किसी प्रकार उन्हें अपने धर्म, अर्थ और कामादि पदार्थोंकी प्राप्ति हो, इस कारण व्यास मुनिने उनके कल्याणार्थ भारत जैसे वेदसारमय ग्रन्थकी रचना की। इस बातको व्यासजीने अपने ही मुखसे उसी ग्रन्थमें इस वचनसे और भी स्पष्ट कर दिया है—

भारत व्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।
दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्री शूद्रादिभिरप्युत॥

अर्थात् मैंने महाभारतके बहाने वेदोंका भी अर्थ दिखा दिया है जिसमें कही हुई धर्मादि विधिमें स्त्री शूद्रादि भी अधिकारी हो जाते हैं। इन सब बातोंके पर्यालोचनसे यह स्पष्ट है कि महाभारत तथा पुराणोंकी रचना द्विजोंके हितके अतिरिक्त विशेषतया स्त्री और शूद्रादि जातिके कल्याणके लिये ही की गई है।

यही बात है कि विष्णु पुराणादि ग्रन्थोंमें पुरुष सूक्त जैसे वैदिक मन्त्रोंको कुछ हेर-फेर करके रखा गया है। एवं त्रैवर्णिक सम्बन्धी गायत्र्यादि मन्त्रोंकी दीक्षाके बदले इन भाइयोंके लिये पुराणोंमें षडक्षर, पञ्चाक्षर, अष्टाक्षर और द्वादशाक्षर जैसे बहुतसे मन्त्रोंका विधान दिया गया है। इस विषयमें मैंने "मन्त्र-महिमा" और "सतातनधर्म प्रदीपमें" कुछ विस्तारके साथ वर्णन किया है। इसी प्रकार पुराणादि ग्रन्थोंमें आए हुए स्तोत्र तथा माहात्म्य ग्रन्थोंके पढ़नेके

विषयपर शूद्रादिकोंके लिये स्पष्ट रूपसे आया है कि यदि शूद्र इस स्तोत्रको पढ़े तो उसे सद्गति प्राप्त होती है। नर्मदा स्तोत्रके बारेमें मत्स्यपुराणमें लिखा है—

वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम्।
मूर्खस्तु लभते विद्यां…………यः पठेन्नरः॥
म० पु० अ० १९४।

वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रश्चैव शुभां गतिम्॥
म० पु० १९०।

खेद है कि इसपर भी कुछ निबन्धकारोंने शूद्रोंके पुराण पढ़नेके विरुद्ध सम्मति दी है। लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक भी पौराणिक विधानके द्वारा स्त्री, शूद्र अन्त्यजादि जातिके उद्धारके विषयमें गीताके नवें अध्याय और गीतारहस्यमें स्पष्ट सम्मति दे गए हैं।

कलियुगमें शूद्रोंके लिये भक्ति मुख्य कही गई है। कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि शूद्रोंको जप और तपका अधिकार नहीं है अन्यथा "शम्बूक" को रामचन्द्रजी न मारते। किन्तु ऐसी धारणापर यह समझ लेना अत्यावश्यक है कि युग-भेदसे धर्म-भेद और युगानुसार अधिकारीका भी भेद माना गया है।

मनुस्मृतिमें आया है कि सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुगमें विभिन्न धर्मोंकी प्रधानता रहती है। सत्ययुग तप-प्रधान होता है, त्रेता ज्ञान-प्रधान, द्वापर यज्ञ-प्रधान, और कलियुगमें दान ही मुख्य धर्म होता है।

उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तपस्वी और ज्ञाननिष्ठ होते थे। उनकी सेवासे ही शूद्र भी संसर्गानुसार धर्म, अर्थादि पुरुषार्थका भागी हो जाता था। अतः उस युगके विरुद्ध स्मार्त्त तप करना शूद्रके लिये उचित नहीं समझा गया। किन्तु कलियुगमें तो यही कहा गया है कि शूद्र और ब्राह्मणादि वर्ण भी विष्णु तथा शिवादि देवपूजन और भगवन्नाम-कीर्त्तनसे मुक्त हो सकते हैं। गरुड़पुराणमें आया है कि कलियुगमें हरिकीर्त्तनसे श्रेय होता है। इस कारण हरिका ज्ञान, ध्यान और पूजन करना चाहिए।

पद्मपुराण उत्तरखण्डमें आया है कि कलियुगमें विष्णुके ध्यानमें लगे हुए शूद्र धन्य होते हैं। वे इस लोकमें सुख भोगकर परलोकमें विष्णुपदको पाते हैं।

जिस समयमें जो नियम विशेष रूपसे रहता है उसके विरुद्ध करनेपर हो दण्ड मिलता है। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि शूद्रोंको पहले कोई अधिकार ही नहीं था।

शूद्रके लिये यह कहीं नहीं आया है कि वह "सेवा" धर्मके सिवाय अन्य कोई धर्म न करे। किन्तु जहाँ कहीं भी शूद्रके लिये सेवाधर्मका विधान किया गया है वहाँपर सेवाधर्म मुख्य धर्म समझा गया है अर्थात् वृत्तिके लिये शूद्रका सेवाधर्म ही मुख्य धर्म है।

यदि शूद्रके लिये सेवाधर्मके अतिरिक्त सब धर्म वर्जित होते तो स्मृतिग्रन्थोंमें शूद्रके दस या बारह संस्कार विहित न होते।

व्यासस्मृतिमें आया है कि गर्भाधानसे लेकर व्रतादेश संस्कार-पर्यन्त दस संस्कारोंको शूद्र करे किन्तु वेद-मन्त्र-रहित विधिसे।

निर्णयसिन्धुमें उद्धृत शार्ङ्गधरका वचन है कि द्विजोंके सोलह संस्कार हैं और शूद्रके बारह। मदनरत्नमें शूद्रोंके जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, विवाह और पञ्चमहायज्ञ ये ग्यारह संस्कार कहे हैं।

विष्णुस्मृतिमें आया है कि पञ्चमहायज्ञोंका विधान शूद्रके लिये भी कहा गया है और उसके लिये नमस्कार मन्त्र कहा गया है।

इन सब वाक्योंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँपर शास्त्रोंमें यह आया है कि शूद्रका कर्म केवल सेवा-धर्म ही है उसका अभिप्राय यही है कि सेवाधर्म शूद्रकी वृत्तिके लिये प्रधान धर्म है जैसे कि वृत्तिके लिये ब्राह्मणका अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह मुख्य धर्म हैं न कि दूसरेके लिये। किन्तु इन विधानोंका यह अभिप्राय नहीं है कि ब्राह्मण अध्यापनादिके सिवाय और कर्म करे ही नहीं। यही बात शूद्रके सेवा-धर्ममें भी लागू है।

अतएव मनुके—

"एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्"
(१।९१)

श्लोककी टीकामें कुल्लूक भट्टने लिखा है कि 'एक ही' कहनेसे प्राधान्यका निर्देश होता है। क्योंकि दानादि कर्म भी उसके लिये विहित हैं।

इसी प्रकार अन्त्यजोंके लिये भी धर्म और कर्मका विधान कहा गया है। क्योंकि अन्त्यज जाति भी शूद्र वर्णके ही अन्तर्गत है। शुचि और अशुचिका तारतम्य लेकर ही उनको कहीं-कहींपर एक जाति या अवर्ण कहा है। किन्तु शास्त्रोंमें अनेक जगह अन्त्यजोंको भी शूद्र वर्णमें ही गिनाया है। कुछ लोगोंका यह कहना है कि विजातीय संयोगसे पैदा होनेवाली यह जाति वर्णके अन्दर नहीं आ सकती है। यदि इस न्यायसे ही इस जातिको वर्ण न माना जाय तो कोई भी शूद्र जाति ऐसी नहीं है जो शास्त्रतः सङ्कर सिद्ध न होती हो। अतः शास्त्रोंमें शूद्र वर्णको ही दो विभागोंमें कर दिया है। उसमें अन्त्यज वह वर्ग है जिसकी गर्भ और शरीर सम्बन्धी अशुचि अधिक रहती है। इसी कारण इन्हें असच्छूद्र कहा गया है। किन्तु वृत्ति-निमित्तक सामाजिक कार्य्यको स्पष्ट करनेके लिये ही कहीं-कहींपर शास्त्रोंमें इनका वर्णांतरादि स्वतन्त्र रूपसे प्रतिपादन किया गया है, किन्तु ये सब शूद्र वर्णमें ही हैं। इसीलिये शास्त्रकार सच्छूद्र और असच्छूद्रकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं कि जो शूद्र पञ्चयज्ञ करता हो, द्विजाति सेवा करता हो वह सच्छूद्र है। इसके अतिरिक्त मनमानी करनेवाला असच्छूद्र है।

तात्पर्य यह कि अन्त्यज भी शूद्र श्रेणीकी ही एक जाति है। अतः उसे भी शूद्रोंके तुल्य अनेक धार्मिक समान अधिकार कहे गए हैं। इस विचारको लेकर ही अनेक जगह अन्त्यजोंके संस्कार भी कहे गए हैं। शार्ङ्गधरमें आया है कि गर्भाधानादि पाँच संस्कार अन्त्यजोंके भी विदित हैं।

इसी प्रकार अन्त्यजपर्यन्त सभी शूद्रोंको ब्राह्मणादि वर्णोंके समान ही अहिंसादिका उपदेश मनुमें दिया गया है—

अहिंसासत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्म चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥

अर्थात् अहिंसा, सत्य, चोरी न करना और पवित्रता ये धर्म ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यजपर्यन्त सभीके लिये हैं।

आगे चलकर मनुने पुनः यह कहा है कि जितने भी व्यभिचार-जन्य प्रतिलोम सङ्कर हैं वे सब शूद्रोंके सधर्मा हैं। यही बात है कि याज्ञवल्क्यने अन्त्यज-पर्यन्त सब शूद्रोंको अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच इन्द्रिय-निग्रह, दान, दम, दया और शान्ति धर्मका उपदेश किया है। शूद्र कमलाकरमें लिखा है कि "अहिंसादि" धर्म सबके लिये समान हैं। इसीलिए निबन्ध-ग्रन्थोंमें शूद्रके तुल्य ही अन्त्यजोंको भी महीने भरका अशौच कहा है।

शूद्र और द्विजातिके सधर्मा होनेके कारण ही पुराणादि शास्त्रोंमें अन्त्यजोंके लिये तीर्थ, व्रत देवपूजनादिका अधिकार कहा गया है।

नृसिंहपुराणमें लिखा है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः।
सम्पूज्य तं सुरश्रेष्ठं नरसिंहवपुर्धरं।
मुच्यन्ते चाशुभैर्भावैर्जन्मकोटि समुद्भवैः॥

यही श्लोक ब्रह्मपुराणके पचपनवें तथा उनसठवें अध्यायमें भी आया है। पुनः इसी पुराणके कृष्ण-स्नान प्रकरणवाले बासठवें अध्यायमें आया है कि ज्येष्ठकी पूर्णिमाके दिन कृष्णस्नानके लिये उत्तम मञ्च बनाना चाहिए। उसपर सुभद्रा, राम और कृष्णकी मूर्त्तिको स्थापित करना चाहिए और उस मञ्चपर स्थापित कृष्णादिकी मूर्त्ति जब धूप-दीपादि तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और अनुलोम प्रतिलोमादि शूद्रोंसे तथा हज़ारों स्त्री-पुरुषोंसे घिरी रहती है तब गृहस्थ, स्नातक, यति और ब्रह्मचारी लोग बलरामके सहित भगवान्‌को स्नान कराते हैं। ऐसे अवसरपर जो मनुष्य पुरुषोत्तम भगवान्‌को देखते हैं वे अविनाशी पद प्राप्त करते हैं।

इसी तरह व्रतके बारेमें देवीपुराणमें आया है कि स्नान किए हुए और हर्षचित्तवाले भक्तियुक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अन्त्यजादि शूद्र, म्लेच्छ, स्त्री और जो कोई भी हो वे सब व्रतके अधिकारी हैं। किन्तु वैश्य और शूद्र दो रात्रिसे अधिक उपवास न करें।

यहाँपर उपवासका निषेध महातपके विषयमें समझना चाहिए न कि सब व्रतोंमें। ईशान संहिताका वचन है कि शिवरात्रिका व्रत सब पापोंको नाश करनेवाला है, उसका अधिकार ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल तक सबको है।

देवलका कथन है कि सभी वर्णोंके मनुष्य व्रत, उपवास और शारीरिक कष्ट सहन (तप) से पाप-मुक्त हो जाते हैं—

"व्रतोपवास नियमैः शरीरोत्तापनैस्तथा ।
वर्णाः सर्वे विमुच्यन्ते पातकेभ्यो न संशयः ॥"

व्यासस्मृतिका वचन है कि चतुर्थ वर्ण होनेपर भी शूद्रमें वर्णत्व होनेके कारण वह धर्मका अधिकारी है—

"शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ।"

यहाँपर यह आशङ्का हो सकती है कि स्मृतिग्रन्थोंमें अन्त्यजोंमेंसे जिन्हें अस्पृश्य कहा गया है वे कैसे देवदर्शनादि धर्मके अधिकारी हो सकते हैं?

ऋषि और शास्त्रके तात्पर्यके अनुसार इस आशङ्कापर पौराणिक विधानोंके अनुसार यह समझ लेना उचित है कि कोई शूद्रजाति गर्भ, बीज और वृत्ति-सम्बन्धी अशुचिताके कारण किसी अंशमें कभी अस्पृश्य भी हो तो जब वह सदुपदेशका पालन करे और पौराणिक मन्त्रोंसे दीक्षित हो जाय अथवा उसमें उत्कृष्ट भक्ति जग जाय तथा वह सदाचार, अमेध्य भक्षण का त्याग, स्वकर्ममें रत और स्नानादिसे पवित्र जीवन बिताने लगे तो वह उपर्युक्त बातोंका पूर्ण अधिकारी हो सकता है। अन्यथा चाण्डालादिके विषयका सारा माहात्म्य कथा आदि विधान निरर्थक हो जायँगे। ऐसी जगह अर्थवादकी कल्पना करनेपर शिष्टोंका यह वचन है कि भगवान्‌के नाममें जो मनुष्य अर्थवादकी सम्भावना करता है वह नरकमें गिरता है।

इसपर भी अर्थवादकी शङ्काकी जाय तो कोई हेतु नहीं है कि सभी पौराणिक विधानोंमें अर्थवाद न माना जाय। क्योंकि तीर्थ, स्नान, व्रतादि सभी कृत्योंका महत्त्व उसी प्रकार वर्णित है जैसे चाण्डालादिके देवपूजन और दर्शनादि अधिकारकी कथा। ऐसे विधानोंका सब जगह यही अभिप्राय रहता है कि पहले मनुष्यमें स्वाभाविक या नैमित्तिक चाहे कोई भी दोष क्यों न हो या समझा जाय किन्तु वह मनुष्यके पवित्राचरण, बाह्य आभ्यन्तर शुद्धि और भगवद्भक्ति होनेपर दूर हो जाता है। तात्पर्य यह कि मनुष्य चाहे स्वाभाविक या अस्वाभाविक चाहे किसी तरहके दूषणसे युक्त क्यों न हो, यदि वह सत्कर्म और भगवद्भक्तिकी ओर चलने लगता है तो उसके दूषण धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं। वह फिर अपने जातिकार्य्य और उसीमें रहते हुए भी दिन-दिन ऊँचा उठता जाता है। लोकमें सम्मानित और आदरणीय होकर अन्तमें परम पदको प्राप्त होता है। इन आशयोंको लेकर ही भगवान् गीतामें कहते हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ॥

यही बात है कि भगवान् रामचन्द्र एक अन्त्यज जातिकी बुढ़िया स्त्री शबरीकी जीर्ण-शीर्ण कुटीमें गए और उन्होंने उसके अर्घ, फल तथा फूल आदिको ग्रहण किया। यही बात है कि जाजली जैसा तपस्वी ब्राह्मण एक बनिये (तुलाधार) के पास धर्मोपदेश सुनने गया और एक तपस्वी ब्राह्मण धर्मोपदेश लेनेके लिये धर्मव्याधके पास गया।

ऐसी-ऐसी कथाओं, विधानों और माहात्म्योंका यही तात्पर्य रहता है कि मनुष्य पहले चाहे कैसे ही स्वाभाविक या नैमित्तिक दोषोंसे युक्त क्यों न हो, यदि वह मन्त्रदीक्षा, भक्तिभावना और सदाचारसे सम्पन्न हो जाता है तो वह दोषनिर्मुक्त होकर सम्मान्य,

आदरणीय और स्वर्गके सामाजिक धर्मका अधिकारी हो जाता है। इतना ही नहीँ बल्कि उसकी बीज-सम्बन्धी और शरीर-सम्बन्धी अपवित्रता चली जाती है जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विजातियोँकी गर्भ और रजवीर्य दोषकी अशुद्धि, नामकरण, चूड़ाकर्म, उपनयनादि संस्कारसे दूर हो जाती है तथा स्वाध्याय, मद्यमांसके त्यागका व्रत, होम, ज्योतिष्टोमादि यज्ञ और पञ्चमहायज्ञोँसे शरीरस्थ आत्मा ब्रह्म प्राप्तिके योग्य हो जाता है। इस बातको मनुने स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया है। मनुके द्वितीय अध्यायमेँ आया है कि द्विजातियोँको वैदिक कर्मोँसे गर्भाधानादि संस्कार करना चाहिए, क्योँकि वह इस लोक और परलोकमेँ पाप-क्षयकारी होता है।

यहाँपर कुल्लूक लिखते हैं कि परलोकमेँ यज्ञसम्बन्धी फल (स्वर्ग) के साथ सम्बन्ध होता है, इस कारण संस्कार परलोकका पावन है। इस लोकमेँ वे संस्कारके द्वारा वेदादिके अधिकारी हो जाते हैँ।

गर्भाधान जातकर्मादि संस्कारोँसे द्विज लोगोँके गर्भ और बीज-सम्बन्धी पाप दूर हो जाते हैँ। इस शुद्धिके बाद द्विज-बालक अशुद्धिके कारण अब तक जिन स्वाध्यायादि कार्य्योँमेँ अनधिकारी या अस्पृश्य था उन स्वाध्यायादि कार्य्योँका अधिकारी हो जाता है। इस प्रकार शुद्ध ब्राह्मणादि द्विजकी आत्मा ब्रह्मप्राप्तिके योग्य हो जाती है।

बस इसी प्रकार अन्त्यजादि शूद्र भी पुराणादि-विहित मन्त्रदीक्षा, कथा-पुराणादि श्रवण, सदाचार और भक्ति-भावादिसे सम्पन्न होकर उत्तम शूद्र हो सकते हैँ और अनेक कार्य्योँके अधिकारी हो सकते हैँ। इन सब बातोँको लेकर ही पुराणोँमेँ अन्त्यजादि शूद्रोँके लिये अनेक विधान देखे जाते हैँ। वृत्तिकी प्रधानता लेकर ही कहीँ-कहीँपर अन्त्यजोँका वर्णन शूद्र वर्णसे अलग देखा जाता है। इसी प्रकार कार्य्य तथा उत्पत्तिक्रमकी प्रधानताको लेकर ही शूद्रोँमेँ उत्तमादि भेदका विधान देखा जाता है। वस्तुतः अन्त्यज भी शूद्र वर्णकी अवान्तर जाति है। जैसे ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमेँ उत्पन्न ब्राह्मण कहा जाता है और वह कान्यकुब्ज आदि अवान्तर जातिवाला भी कहा जाता है। उसी प्रकार शूद्रासे उत्पन्न सन्तान शूद्र और अन्त्यजादि अवान्तर शूद्र जातिमेँ उत्पन्न होनेसे अन्त्यज शूद्र कहा जा सकता है। अन्त्यजादिकी गणना शूद्रोँमेँ न हो तो शास्त्रोँमेँ सच्छूद्रका यौगिकार्थ-बोधक लक्षण कभी न किया होता, बल्कि ऐसा पारिभाषिक लक्षण किया होता कि गोपनापितादि अमुक जातिसे अमुक जाति तक सच्छूद्र हैँ और शेष असच्छूद्र हैँ। किन्तु सब जगह सच्छूद्रका यौगिकार्थ-सूचक लक्षण ही किया गया है। यही बात चारोँ वर्णोँके अवान्तर माननीय वर्ग विशेषके लिये भी शास्त्रोँमेँ कही गई है। जैसे कि श्रोत्रिय ब्राह्मण या पङ्क्तिपावन ब्राह्मण नाम किसी कान्यकुब्ज आदि वर्ग विशेषके लिये नहीँ कहा गया है, बल्कि वेदज्ञोँमेँ श्रेष्ठ और वेदविहित कर्मोँमेँ संलग्न ब्राह्मण विशेषको ही श्रोत्रियादि शब्दोँसे कहा गया है। यह दूसरी बात है कि वैसे ब्राह्मणके कुलको एक श्रोत्रिय जाति मान लिया गया हो।

इसी प्रकार शास्त्रोँमेँ सच्छूद्रका जो विस्तृत वर्णन मिलता है वह किसी शूद्रान्तर्गत वर्ग विशेषके लिये नहीँ कहा गया है। स्कन्दपुराणमेँ सुन्दर वैज्ञानिक और शास्त्रीय ढङ्गसे सच्छूद्रोँका निरूपण किया गया है। इस विषयमेँ स्कन्दके पूछनेपर शिवजी बोले कि सच्छूद्र वही है जिसकी पत्नी धर्मकी मर्यादा और वेदमार्गसे विवाहिता हो, समान कुल और रूपवाली हो। तथा सच्छूद्र वही है जिसकी पत्नी वेदोक्त रीतिसे विवाहिता हो और नपुंसकत्व, हीनाङ्गता आदि दस दोषोँसे रहित हो।

इनमेँ विवाहादि बहुतसी मर्यादाकी बातेँ अन्त्यजोँमेँ भी पूर्ण रूपसे विद्यमान हैँ। शास्त्रोँमेँ अन्त्यजोँकी विभिन्न परिभाषा देखी जाती है। व्यासस्मृतिमेँ तो ग्वाले, नाऊ आदिको भी अन्त्यज कहा है।

इन बातोँके विचारसे यह सिद्ध होता है कि अन्त्यज शब्द अछूतका बोधक नहीँ है बल्कि शूद्रोँके वर्ग विशेषको अन्त्यज कहा है। उसमेँ भी कुछ स्मृतियोँको

छोड़कर शेषमें अन्त्यजोंकी गणनामें विरोध है। यह भी नहीं है कि सभी प्रतिलोम शूद्र अन्त्यज कहे जाते हों। क्योंकि यम, अग्नि और अङ्गिराके मतसे धोबी, चमार, नट मद्यमांसमें निरत जाति, मल्लाह, मेद और भील, ये सात जातियाँ ही अन्त्यज हैं।

रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च।
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः॥

इन जातियोंमें अब एकआधको छोड़कर अन्य अस्पृश्य नहीं मानी जाती हैं। उदाहरणके लिये कैवर्त्त (मल्लाह) को कोई भी अस्पृश्य नहीं मानता है। किन्तु रजक जैसी एकआध जातिको कहीं-कहींपर अंशतः अछूत मानते हैं। वह भाव भी धीरे-धीरे हट रहा है। मनुस्मृतिमें अन्त्यजकी परिभाषा कहीं नहीं की है। दसवें अध्यायमें केवल, अन्त्यावसायी शब्द दिया है। उसमें भी दो-चार जातियोंकी गणना नहीं है, किन्तु निषादकी स्त्रीमें चाण्डालसे उत्पन्नको अन्त्यावसायी (डोम) कहा है। मनुके अनुसार अन्त्यज कोई परिगणित जाति नहीं है। सङ्कर जातिका निरूपण करनेवाले दसवें अध्यायमें अन्त्यज शब्द तक नहीं आया है। किन्तु एकसौ दसवें श्लोकमें शूद्रका बोधक "अन्त्यजन्मा" शब्द आया है। इसी प्रकार यह भी विधान देखनेमें नहीं आता है। जितने भी "प्रतिलोम" शूद्र हैं वे सब अस्पृश्य हैं। नहीं तो सूत, मागध, वैदेह प्रभृति प्रतिलोम शूद्रोंको उत्तम शूद्र न समझा जाता। इस सूत जातिमें उत्पन्न होकर ही सूतजीने ऋषियोंको पुराण सुनाया था। यद्यपि कूर्मपुराण और अग्निपुराणमें पुराणके वक्ता सूतजी ब्रह्माके यज्ञके पृषदाज्यसे पैदा हुए थे, तथापि पुराणोंमें अनेक जगह यह भी वर्णन आता है कि वही सूतजी शूद्र जातिके थे। इस विषयमें स्कन्दपुराण नागरखण्डके एकसौ चौरानबेवें अध्यायमें आया है कि जब सूतजीने ऋषियोंसे कहा कि दिन, रात, युग और ब्रह्मादि पद सभी अनित्य हैं। ब्रह्मादि पदसे भी एक समय लौटना पड़ता है, किन्तु ब्रह्मज्ञान प्राप्ति ही नित्य वस्तु है। उसकी प्राप्तिके बाद पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता है।

इसपर ऋषियोंने ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके बारेमें सूतजीसे पूछा कि किस प्रकार मनुष्योंको ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है? यदि जानते हो तो हमसे कहो।

उत्तरमें सूतजी बोले कि मेरी शक्ति ही क्या है जो मैं ब्रह्मज्ञान कह सकूँ। जो खुद नहीं जानता वह दूसरेसे कैसे कह सकता है।

किन्तु अपने पिताके आदेशसे मैं हाटकेश्वर तीर्थमें गया था। वहाँपर रक्खी हुई पादुकाओंकी मैंने पूजा की। उसीसे मुझे ज्ञान हो गया और जो कुछ भी मैंने पुराणोंका उत्तम तत्त्व सुना है, वह सब और वर्त्तमान तथा भविष्यको मैं पादुकाके प्रसादसे जानता हूँ। किन्तु मैं वेदका पढ़ना नहीं जानता, क्योंकि मैं सूत जातिका हूँ, मुझमें सूतत्त्व विद्यमान है। फिर भी वेदके सब अर्थोंको मैं जानता हूँ।

यहाँपर सूतजीने अपनी स्थिति या जातिको स्वतः वर्णन किया है। इन सब विचारोंको लेकर यही सिद्ध होता है कि अनुलोम सङ्करत्त्व या प्रतिलोम सङ्करत्त्व किसी जाति की अस्पृश्यताका हेतु नहीं है, बल्कि व्यभिचारके कारण ही किसी-किसीको कहीं-कहींपर अस्पृश्य कहा गया है। मनु चाहते थे कि व्यभिचार फैलने न पावे। आज भी व्यभिचार-जन्य सन्तानको नीच दृष्टिसे देखा जाता है। साङ्कर्यको रोकने और लोकमर्यादाको स्थिर करनेके लिये ही मनुको इस प्रकारके दण्डका विधान करना पड़ा। यह बात मनुके दसवें अध्यायके सङ्कर प्रकरणके अन्तिम भागसे सूचित होती है। किन्तु अब उन अन्त्यजोंमें अनन्त कालसे विवाहादि मर्य्यादा बँध गई है और वे लोग शूद्र जाति की सेवा आदि मुख्य कर्म करते आ रहे हैं। इसपर उन्हें सदुपदेश, पुराणवार्त्ता और मन्त्रदीक्षा आदि दी जाय तो उन्हें भी उत्तम शूद्रकी तरह आदरणीय और देवदर्शनादिका अधिकारी मानना चाहिए। इसपर भी कुछ लोगोंका यह कहना है कि मनुके निम्नलिखित वचनोंके अनुसार—

“न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम्।
न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत्॥

अध्याय ४–८।

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते।
यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम्॥

अध्याय १०–१२३।

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम्॥ १२६॥

अर्थात् शूद्रको धर्मव्रतादिका उपदेश नहीँ देना चाहिए। सेवाकर्म ही उसका मुख्य धर्म है, इससे कर्म निष्फल हो जाता है। शूद्रको कोई पातक नहीँ लगता, उसके लिये कोई संस्कार नहीँ है, उसको धर्मका भी अधिकार नहीँ है।”

“एवं स्त्री शूद्रपतनानि षट्,” “प्रतिलोमास्तु-धर्महीनाः” “सर्वधर्मबहिष्कृतः” इत्यादि स्मृत्यन्तरके वचनोँके अनुसार और इसी प्रकारके पुराणोँके वचनोँके अनुसार शूद्रोँको या अन्त्यजोँको किसी प्रकारके धर्मका अधिकार नहीँ है। किन्तु ऐसी आशङ्कापर प्राचीन निबन्धकारोँ और व्याख्याकारोँने यही समाधान किया है कि शूद्रादिके लिये साधारणतः धर्ममात्रका निषेध नहीँ है, किन्तु उसी धर्म या उपदेशका निषेध है जिसका सम्बन्ध वैदिक तथा स्मार्त्त विधानोँसे है जो कि केवल वेदमन्त्र-पूर्वक उपनयन-संस्कार-युक्त द्विजोँको प्राप्त है। यदि उसको धर्म मात्रका उपदेश वर्जित होता तो स्मृति और पुराणादि ग्रन्थोँमेँ पञ्चयज्ञका विधान, विष्णुपूजन, शिवपूजन और द्वादश संस्कारादिका विधान शूद्रके लिये कभी न किया होता। ऊपर एकसौ तेइसवेँ श्लोकमेँ कुल्लूकने लिखा है कि सेवा धर्मका ही उपदेश अन्य धर्मकी निवृत्तिके लिये नहीँ है। क्योँकि उसके लिये पाक यज्ञ भी कहे गए हैँ। अतः “सेवैव” यह विधान सेवा-धर्मकी स्तुतिके लिये है। फिर आगे “न शूद्रे पातकं किञ्चित्” इस श्लोकपर कुल्लूकने लिखा है। ‘न पातके किञ्चित्’ का अभिप्राय यही है कि जिस लहसुन, प्याज आदिके भक्षणमेँ ब्राह्मण आदिको पाप माना गया है वह पाप शूद्रको नहीँ लगता है। इसका यह अभिप्राय नहीँ है कि ब्रह्महत्यादि पञ्च महापातकोँका दोष शूद्रको लगता ही नहीँ। एवं “न संस्कारमर्हति” इसका यही अभिप्राय है कि वैदिक-मन्त्रपूर्वक होनेवाले उपनयनादि संस्कार शूद्रके लिये नहीँ होते। एवं “नास्याधिकारोऽधर्मेऽस्ति” इत्यादि वाक्योँका यही अभिप्राय है कि अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्म करनेका उसको अधिकार नहीँ है।

इसी प्रकार जहाँपर यह कहा गया है कि “सर्ववहिष्कृतः” वहाँपर भी यही अभिप्राय है कि अन्त्यज आदि अपने आचरण और धर्ममेँ न होँ तो ऐसे उन्मत्त, उद्दण्ड, उच्छृङ्खल और मर्यादारहितको धर्म-उपदेश न दे। किन्तु जो अपनी मर्यादा और आचारपर स्थिर है उसे स्मृति और पुराणादिविहित धर्मोँका उपदेश अवश्य दे। अतएव अन्त्यजादि शूद्रोँको लक्ष्य करके ही मनु कहते हैँ कि यदि प्रतिलोम शूद्र निर्लोभ होकर शुद्ध भावसे गौ, ब्राह्मण, स्त्री और बालकमेँसे किसी एककी रक्षाके लिये प्राण दे दे तो स्वर्गप्राप्तिके समय सिद्धि प्राप्त करता है।

फिर इस श्लोकके आगे ही मनुने सबके लिये अहिंसादिका विधान किया है। इनसे स्पष्ट है कि अन्त्यजादि किसीके लिये भी साधारण रूपसे धर्मोपदेशका निषेध नहीँ है। जहाँ मनुने “न शूद्रे पातकं किञ्चित्” यह विधान दिया है उसके आगे ही लिखा है कि जो धर्मज्ञ शूद्र धर्मकी प्राप्ति चाहते हैँ वे यदि आचारवान् लोगोँका आचरण करते हुए वैदिक-मन्त्ररहित किन्तु नमस्कारमन्त्रपूर्वक पञ्चयज्ञादि क्रियाका अनुष्ठान करते रहेँ तो उन्हेँ विघ्न नहीँ आता है। इस लोक और परलोकमेँ वे प्रशंसा पाते हैँ।

कुछ लोग त्रिस्थली सेतुमेँ दिए हुए—“यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेन्नरः। न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि” इत्यादि नारदीय वचनोँको लेकर कहा करते हैँ कि शूद्रको पूजनादिका अधिकार ही नहीँ है। इसपर भी बहुत कुछ समाधान पहले दे दिया है फिर भी—

शूद्रः कर्माणि यो नित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये ।
तस्याहमर्चां गृह्णामि चन्द्रखण्ड विभूषिते ॥
—स्कन्द ।

"चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः"
—देवीपुराण ।

इत्यादि शतशः शूद्र-पूजा-विधायक वचनोंके अनुसार यह बात सिद्ध होती है कि शूद्रोंके द्वारा बिना मन्त्रके प्रतिष्ठापित देवका पूजन नहीं करना चाहिए । कारण कि वह प्रतिमा वैदिक मन्त्रोंसे प्रतिष्ठित नहीं रहती है । यहाँपर यह कथन नहीं है कि शूद्र द्विजसे प्रतिष्ठित सार्वजनिक मूर्त्तिकी पूजा न करे । इन सब तात्त्विक विचारोंसे यह स्पष्ट है कि शूद्रको द्विजसेवाके अतिरिक्त, श्राद्ध, देवपूजन, दर्शन, गर्भाधानादि द्वादश संस्कार, व्रत, उपवास, तीर्थ-यात्रा, पौराणिक मन्त्र-जप, मालाधारण, स्तुति, दया, दान और अहिंसादि अनेक धर्मका पूर्ण अधिकार है ।

महाभारतमें कहा है कि श्राद्ध, न्याय, सत्य, क्रोध, स्वदार-सन्तोष, शौच, अनसूया, आत्मज्ञान, सहनशक्ति, यह शूद्रपर्यन्त सभी मनुष्योंका धर्म है । हेमाद्रिमें विष्णुका वचन है कि क्षमा, शौच, दम, दान, इन्द्रिय-संयम, सत्य, अहिंसा, गुरुसेवा, तीर्थयात्रा, दया, नम्रता, अलोभ, देव और ब्राह्मणका पूजन तथा डाह न करना, ये सामान्य धर्म हैं अर्थात् ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यजपर्यन्तके ये सब धर्म हैं ।

पुराणोंमें तो अन्त्यजपर्यन्त शूद्रोंके लिये अत्यन्त स्पष्ट और मनोहर रूपमें विधि और विधान दिए गए हैं । क्यों न हो, पुराणोंके निर्माणका विशेष उद्देश्य इन दीन भाइयोंको उठाना ही है । भविष्यमें लिखा है कि विशेषतया शूद्रोंके धर्म, अर्थ आदिकी प्राप्तिके लिये व्यासजीने वेद और धर्मशास्त्रका सार भरकर पुराण और भारतको बनाया ।

अतएव भागवतके द्वितीय स्कन्दके चतुर्थ अध्यायके अठारहवें श्लोकमें कहा गया है कि जिस भगवान्के भक्तोंके आश्रयपर रहनेसे ही किरात, हूणादि जाति और भी जो कोई पतित-से-पतित क्यों न हो शुद्ध हो जाती है, ऐसे भगवान्को नमस्कार है । यह सब अन्त्यजादि असंस्कृत जनोंको भगवद्भक्त्या शुद्ध करनेके लिये ही कहा गया है । यदि उनके लिये भी हम भगवान्का दर्शन रोक दें तो परमात्मा जाने हमें कहाँ स्थान मिलेगा । इस प्रकार उत्तम और संस्कृत शूद्रके लिये बड़ा ही सुन्दर प्रकरण स्कन्दपुराणके वराह-खण्डके दोसौ इकतालिसवें अध्यायमें देखा जाता है ।

शिवजी कहते हैं कि शूद्रको अपनी भार्यामें प्रेम, शुद्धि, नौकरोंका पोषण, नित्य श्राद्ध-क्रिया, अग्निहोत्रादि रूप इष्ट क्रिया करना, पञ्चयज्ञ स्नान, तर्पण अग्निमें मन्त्ररहित होम, ब्रह्मयज्ञ और स्त्रीके साथ अतिथि-पूजा करनी चाहिए । आगे इसी अध्यायमें अन्त्यज जातिका धर्म इस प्रकार विशेष रूपसे आया है ।

यहाँपर पहले शिल्पी, नर्तक, रजकादि अट्ठारह जातियाँ प्रकृति नामसे कही गई हैं । इस कारण 'तासां' शब्द उसी प्रकृतिके लिये आया है । अतः शिल्पी, रजक, नर्तक, चाण्डाल, वर्धकि, मत्स्यघाती प्रभृति जातियोंको ब्राह्मणकी सेवा, विष्णुका ध्यान, मन्त्ररहित शिवार्चन, तीर्थस्नानादि पुण्यकर्म और दानकर्म करने चाहिएँ, क्योंकि श्रद्धासे दुष्ट दानका क्षय कभी नहीं होता है । एवम् इस प्रकृतिकी जातियोंके लिये अहिंसादि धर्मका भी उपदेश दिया गया है ।

फिर इसी अध्यायमें गृहस्थ शूद्रका लक्षण बताया गया है। कि शूद्र नित्य षड्दैवत श्राद्ध और हन्तकारपूर्वक अग्निपूजन बिना मन्त्रके करे और देव-द्विजको नमस्कार और उनमें भक्ति करे । प्रातःकाल उठकर देवादिका पादाभिवन्दन करके विष्णुभक्तिके श्लोकोंको पढ़नेसे विष्णुत्व प्राप्त होता है ।

वर्षमें होनेवाले व्रत करनेवाला, तिथि, वार और देवताके बारेमें विचार रखकर चलनेवाला और जीवों को अन्न देनेवाला शूद्र गृहस्थ शूद्र कहा जाता है ।

अमन्त्रपूर्वक कर्म करता हुआ भी शूद्र मुक्त हो जाता है और चातुर्मास्य व्रत करनेवाला शूद्र भी हरिभावको पहुँचता है ।

इस प्रकार स्मृति, पुराण, भारतादि इतिहास-

ग्रन्थोँमेँ उदारताके साथ वहुतसे सामाजिक विधान और कथाएँ हैँ जिनका अधिकार द्विजातिकी तरह अन्त्यजादि शूद्र भाइयोँको भी है। इसपर भी आत्मबलकी कमज़ोरीके कारण आजकल वहुतसी वातोँमेँ उन्हेँ अनधिकारी समझकर रथयात्रा जैसे कई एक "देवोत्सवोँ" मेँ परस्पर विवाद और द्वेषमय झगड़ा चल जाता है। किन्तु ऋषियोँका हृदय उदार था। उन्होँने रथयात्रादि जैसे देवोत्सवोँमेँ शामिल होनेका अधिकार उन्हेँ भी दे रक्खा है। वे भी द्विजातियोँकी तरह सनातनधर्मी हैँ। उनके सर्वसाधारण सामाजिक कार्य्योँमेँ प्रवेश पानेमेँ वाधा नहीँ डालनी चाहिए। ऐसे अवसरके लिये ही तो शास्त्रोँका कथन है कि यदि कोई अपने सधर्मा भाईको हर समय अस्पृश्य समझता हो तो उसको यह समझ लेना चाहिए कि देवयात्रा, विवाह, यज्ञप्रकरण और समस्त उत्सवोँमेँ छुआछूतका विचार नहीँ रहता है—

"देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते॥"

अत्रि, २४६।

इसी प्रकार वृहस्पतिका वचन है कि तीर्थ, विवाह, यात्रा, संग्राम, देशविप्लव, नगर और ग्रामदाहके समय छुआछूतसे कुछ भी दोष नहीँ होता है।

तीर्थे विवाहे यात्रायां सङ्ग्रामे देशविप्लवे।
नगर ग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति॥

वृहस्पतिः।

इसी प्रकार शातातपका भी वचन मिलता है—

"ग्रामे तु यत्र संसृष्टिर्यात्रायां कलहादिषु।
ग्रामसन्दूषणे चैव स्पृष्टिदोषो न विद्यते॥"

केवल विधान ही नहीँ किन्तु ऋषि लोगोँने इस तरहके नियमोँका पूर्ण पालन भी किया था।

स्कन्दपुराण नागरखण्डके सड़सठवेँ अध्यायमेँ यह वर्णन आया है कि जव परशुरामने सहस्रार्जुनपर चढ़ाई की तो इन अन्त्यजोँकी सुसज्जित सेनाको साथ लेकर ही चढ़ाई की थी।

पितृअशौचसे मुक्त होकर तीक्ष्ण पुलिन्द, मेदक, भिल्ल आदिकी सुसज्जित सेना लेकर परशुरामजी सहस्रार्जुनसे लड़ने गए। उस लड़ाईमेँ वीर शवरोँने सहस्रार्जुनकी सेनाको परास्त किया और सैनिकोँको वाँध लिया। फिर इसके आगेके अध्यायमेँ भी आया है कि पुनः जव क्षत्रियोँने उपद्रव मचाया तो फिर भी पुलिन्द, शवर, मेदक आदि अन्त्यजोँकी सेना लेकर परशुराम, युद्धके लिये निकल पड़े।

इतना ही नहीँ वल्कि जव वशिष्ठजी और विश्वामित्रजीमेँ घोर युद्ध हुआ तो वशिष्ठजीकी ओरसे शवरादि अन्त्यजोँने वड़ी वीरताके साथ लड़ाईमेँ विजय पाई। अर्थात् गायके चीत्कारको सुनकर वशिष्ठजीकी ओरसे असंख्य शवर पुलिन्दादि लड़ाईके लिये निकल पड़े और उन लोगोँने विश्वामित्रजीकी सेनाका नाश कर दिया। यहाँ यह ध्यान रहे कि जिन पुलिन्द, शवर, मेद प्रभृति जातियोँको लेकर परशुराम आदि वीरोँने लड़ाई लड़ी थी वे सव चाण्डाल जातिके ही भेद माने जाते हैँ, अर्थात् प्लव, मातङ्गादि चाण्डाल कहे जाते हैँ। इसीके वाद फिर आया है कि किरात, शवर, पुलिन्द, ये तीन मलिन जातियाँ भी चाण्डालके ही भेद हैँ—

"भेदाः किरातशवरपुलिन्दा म्लेच्छजातयः।"

अम० शूद्रवर्ग १९-२०।

अव यहाँपर यह विचारना चाहिए कि उस अवसर पर इन्हेँ अस्पृश्य माना जाता तो कव सम्भव था कि वे लोग परशुराम आदिका साथ देते या स्पर्शदोषको मानकर भी सेनाका सञ्चालन कर लेते, एवं पुलिन्दादिसे क्षत्रिय लोग लड़ने आते—इत्यादि। इसी प्रकार रथयात्रादि जैसे देवोत्सवोँमेँ भी अन्त्यज आदि सनातनधर्मी शूद्र भाइयोँके शामिल होनेमेँ कोई दोष नहीँ समझा गया है। रथयात्राके विषयको लेकर ही पद्मपुराणमेँ आया है कि रथमेँ वैठे हुए पुरुषोत्तम भगवान् और वलभद्र, सुभद्रा आदि देवोँको जो पुरुष देखता है वह विष्णुलोकवासी होता है और मुक्त हो जाता है।

इसके बाद आया है कि रथयात्रामें द्विजादि लोग स्तोत्र-पाठ करते हुए जाते हैं और सूतमागध प्रभृति लोग कृष्णकी कीर्त्ति गाते हुए जाते हैं।

फिर आया है कि रथयात्राके समय जो लोग भगवान्‌को प्रणाम करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं और जो लोग पीछे-पीछे चलते हैं वे देवताके समान शरीरवाले होते हैं, और जो लोग जय शब्द करते, नाचते और गाते हुए जाते हैं वे लोग उत्तम वैष्णवोंके संसर्गके कारण मुक्त हो जाते हैं।

ये सब स्पष्ट वाक्य हैं। इनमें सङ्कोच करनेका कोई कारण नहीं है। अतः इन वचनोंके अनुसार कम-से-कम साधारण रीतिसे अन्त्यजादि सभी जातिके सनातन-धर्मियोंको रथयात्रा जैसे साधारण देवोत्सवोंमें शामिल होनेका अधिकार शास्त्रसे प्राप्त है।

अन्त्यजोंका विद्याधिकार

विद्याके बिना किसी देश या जातिकी उन्नति असम्भव है। अन्त्यजोंमें जो कुछ भी त्रुटि समझी जाती है उसका सबसे प्रबल कारण उनमें विद्या-प्रचारकी कमी है। शास्त्रोंमें विद्याके अनेक भेद हैं। परन्तु यहाँपर विद्याका अभिप्राय लिपिवोधद्वारा स्कूलमें शिक्षा ग्रहण करना है। इसका भी अधिकार अन्त्यज भाइयोंको पूर्णतया प्राप्त है। दुःख है कि अभीतक इस वातका विशेष प्रबन्ध नहीं हो सका। समाजमें धर्मकी विपरीत भावनाने ऐसा कुप्रभाव जमा रक्खा है कि कुछ लोगोंने इन भाइयोंके स्कूलमें पढ़नेका विरोध किया है। और फलस्वरूप अन्त्यज भाइयोंको कष्ट सहन करना पड़ा। इसके लिये मुझे वड़ा सन्ताप है। धार्मिक भावनाको लेकर जिनकी यह धारणा है कि अन्त्यजादि जातिको पढ़ाना उचित नहीं है उनको शास्त्रीय सिद्धान्तोंका स्मरण करा देना अन्त्यजोंकी शिक्षामें उपकारी होगा। इसपर पद्मपुराण और देवीपुराणके विद्यादानके प्रकरणमें सर्वोत्तम विस्तृत वर्णन मिलता है। उसमेंसे परम सारभूत और सर्वोपकारी कुछ वचन ये हैं—

विद्यादानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति।
येन दत्तेन चाप्नोति शिवं परम कारणम्।
विद्या च श्रूयते लोके सर्वधर्म्मप्रदायिका।
तस्माद्विद्या सदा देया पण्डितैर्धार्मिकैर्द्विजैः।

पद्मोत्तर खं० ११७ अ०।

अर्थात् विद्यादानसे वढ़कर परम दान न तो हुआ और न होगा। विद्यादान करनेसे मनुष्य परम कल्याण-स्वरूप शिवजीको प्राप्त करता है। विद्या सब धर्मको देनेवाली कही जाती है। इस कारण धार्मिक द्विज पण्डितोंको उचित है कि वे सदा विद्या दें।

इसी प्रकार देवीपुराणमें आया है कि विद्या कुलकी, जातिकी, रूपकी और पुरुषसम्बन्धी पात्रताकी परवाह नहीं करती है। वल्कि जो कोई भी विद्या पढ़े उसका उपकार ही करती है।

यहाँपर यह श्लोक वड़े गौरवका है—

अन्त्यजा अपि यां प्राप्य क्रीडन्ते ग्रहराक्षसैः।
सा विद्या केन मीयेत यस्याः कोऽन्यः समोऽपि न॥

अर्थात् जिस विद्याके प्रभावसे या विद्या पढ़कर अन्त्यज भी चन्द्रसूर्य्यादि ग्रह और पराक्रमशील राक्षसोंके साथ खेला करते हैं, और जिसके वरावर इस संसारमें और कोई भी नहीं है, उस विद्याकी उपमा किससे दी जा सकती है।

इस प्रकार शिक्षा देनेके विषयमें शिवधर्ममें आया है—

संस्कृतैः प्राकृतैर्वाक्यैः शिष्यं चैवानुरूपतः।
देशभाषाद्युपायैश्च बोधयेत् स गुरुः स्मृतः॥

अर्थात् गुरु वही है जो कि संस्कृत, प्राकृत और देशभाषाके द्वारा चाहे किसी प्रकारसे भी शिष्यको बोध करा दे। वस इस विषयमें इतना ही दिखाना सर्वसन्तोषजनक होगा।

इसपर उदारताके साथ शुद्ध हृदयसे मनन करनेकी आवश्यकता है कि 'सर्वभूतहितेरत' ऋषियोंका आशय सदा उदार और सर्वउपकारी रहा। उन्होंने सब समयके उपयोगी विधान अपने अक्षय धर्मग्रन्थोंमें रख

दिए हैँ। उसपर भगवान् व्यासजीसे जितना हो सकता था उतना अगाध धार्मिक साहित्य हमारे लिये रख छोड़ा है। आज हिन्दू जाति जीवित है तो व्यासजीकी दी हुई धार्मिक अमृत सञ्जीवनी बूटीसे। आगे भी यदि हमेँ धर्मपूर्वक जीवित रहना है तो व्यासजीके ही वचनामृत पीकर जीवित रह सकते हैँ। उसके सिवा और कोई प्रबल शरण नहीँ है। व्यासजीकी दृष्टिमेँ जैसे द्विजाति थे उससे भी बढ़कर असमर्थ दीन अन्त्यजादि शूद्र भाई थे। उनको शायद हमसे भी अधिक इन भाइयोँकी रक्षाकी चिन्ता थी। इसी कारण उन्होँने तीर्थमाहात्म्य और देवदर्शनादि कार्य्योँ मेँ किसी-न-किसी प्रकार अन्त्यज भाईको भी शामिल कर रक्खा है। बस उनकी इस सूक्ष्म दृष्टिको पहचानना ही सनातनधर्मियोँके लिये परम कल्याणकारी होगा। अन्तमेँ व्यासजीकी इस अमृत वाणीको स्मरण कर इस विषयको यहीँ समाप्त करता हूँ।

येन येन प्रकारेण परेषामुपजीवनम्।
भविष्यति च तत्कार्य्यं धीमता पुरुषेण हि॥
स्त्रियापि चैवं तत्कार्य्यं परोपकरणान्वितम्।
यदुक्तं करुणासारैः सारं किं तदिहोच्यताम्।
धर्मार्थी मनुजो यश्च न स वार्यो महात्मभिः॥

स्कन्द पु०।

श्री विश्वनाथः प्रसीदतु॥

काशी,
चै. कृ. सं. '९३ } **मदनमोहन मालवीय**

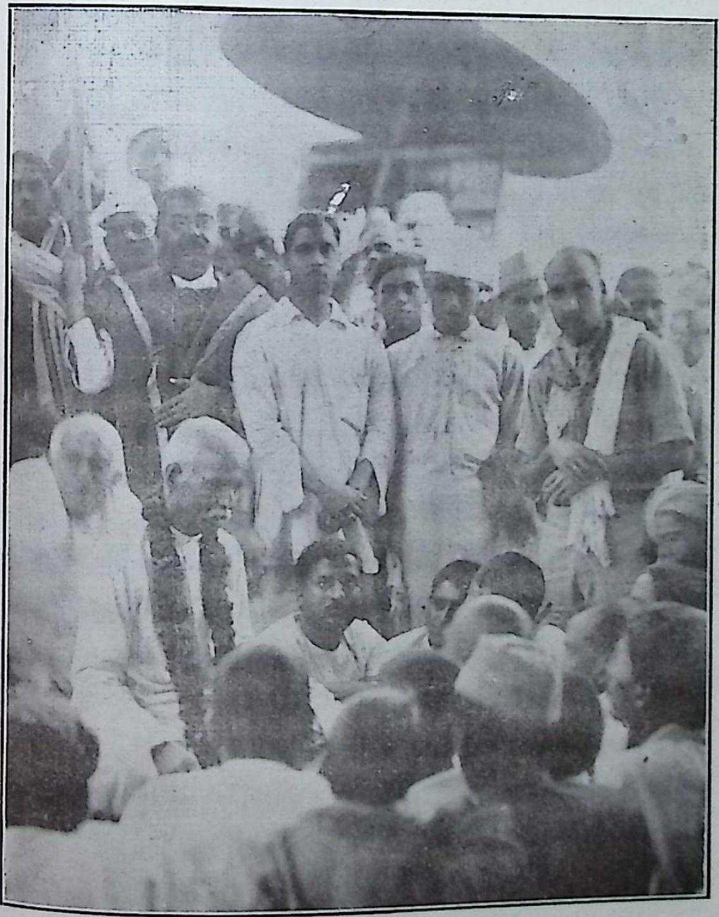

चित्र : बाबू श्रीमन्नारायण श्रीवास्तवके सौजन्यसे प्राप्त।

सम्वत् १९८६ मेँ महाशिवरात्रिके दिन गङ्गातटपर दशाश्वमेध घाटपर पूज्य मालवीयजीने ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल-पर्यन्त सबको ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो नारायणाय, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, श्रीरामाय नमः इत्यादि मन्त्रोँ की दीक्षा काशीमेँ पहली बार दी थी।

मन्त्र-महिमा

वेद सब धर्मोंका मूल है ।

जैसा कि महाभारतमें लिखा है—

सत्यान्नास्ति परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।
न च वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः ।

सत्यसे बड़ा कोई धर्म नहीं,
झूठसे बड़ा कोई पाप नहीं,
वेदसे बड़ा कोई शास्त्र नहीं,
माताके समान कोई गुरु नहीं ॥

यह बात सभी विद्वान् जानते हैं कि पृथ्वीमण्डलपर वेदके समान प्राचीन कोई ग्रन्थ नहीं है। वेद सब धर्मोंका मूल है और वह जगत्के समस्त प्राणियोंके हितके लिये है। यह विदित है कि वेदकी चारों संहिताओंमें एक-एक अक्षरके उच्चारण करनेके उदात्त, अनुदात्त अथवा स्वरित स्वर नियत हैं। पूर्व कालमें द्विजोंकी कन्याओंका उपनयन-संस्कार होता था और वेद उनको पढ़ाया जाता था। किन्तु वर्त्तमान कल्पमें यह प्रथा वन्द कर दी गई और चिरप्रचलित मर्य्यादाके अनुसार विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य्यके साथ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, इन छः अङ्गोंके साथ स्वरसंयुक्त वेद उन्हीं द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके वालकोंको पढ़ाया जाता था, जिनका शास्त्रकी रीतिसे उपनयन-संस्कार किया जाता था और जिनको कठोर नियमोंका पालन कराया जाता था। और न केवल शूद्रोंको वल्कि ब्रह्मवादिनियोंको छोड़कर सामान्यतया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य स्त्रियोंको भी वेद नहीं पढ़ाया जाता था। किन्तु ऋषियोंको यह इष्ट था कि सब प्राणियोंको वेदके उपदेशका लाभ प्राप्त हो। इसलिये ऋषियोंने वेदोंका अर्थ लोकभाषामें प्रकाश करना अपना कर्त्तव्य समझा और महर्षि वेदव्यासजीने लोकके हितके लिये एक वेदको ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व नाम चार विभागोंमें बाँटकर पीछे वेदका अर्थ अपने समयकी लोकभाषा संस्कृतमें 'श्रीमन्महाभारत' में सब प्राणियोंके हितके लिये और विशेषकर स्त्री और शूद्र तथा उन और लोगोंके लिये जिनको वेद नहीं पढ़ाया जाता था, बहुत उत्तम रूपमें प्रकाशित किया।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि द्वापर युगके आनेपर महर्षि वेदव्यासजीने दिव्य दृष्टिसे वह बात विचारी जिससे चारों वर्णों और आश्रमोंके प्राणियोंका हित हो, और जैसा महाभारत ही में लिखा है—

तपसा ब्रह्मचर्य्येण व्यस्य वेदं सनातनम् ।
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः ।
लोकानां च हितार्थाय कारुण्यान्मुनिसत्तमः ॥

तपस्यासे, ब्रह्मचर्य्यसे, एक वेदको चार भागम बाँटकर सत्यवतीके पुत्र मुनियोंमें श्रेष्ठ वेदव्यासजीने दयाके भावसे जगतके प्राणियोंके हितके लिये यह महाभारत नाम इतिहास रचा। भागवतमें भी लिखा है कि इस वातको सोचकर कि स्त्री शूद्र और अन्य जातियोंके प्राणियोंको जिनको वेद सुननेमें नहीं आता, अपने धर्मकर्मका ज्ञान इसी प्रकारसे लोकभाषाके द्वारा हो। इस दयाके भावसे महामुनिने भारतकी कथा लिखी।

उसी भागवतमें दूसरे स्थलपर स्वयं वेदव्यास भगवान्का वचन है कि मैंने व्रत लेकर महाभारतके नामसे वेदका अर्थ भी प्रकाश कर दिया, जिसमें स्त्री शूद्रादि भी सब लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थोंका उपदेश प्राप्त कर सकते हैं। महाभारतमें, भागवतमें, विष्णुपुराणमें, शिवपुराणमें तथा अन्य पुराणोंमें वेदका अर्थ विपुलताके साथ लिखा गया है। इसके अनेक उदाहरण हैं, किन्तु इसका एक बहुत उज्ज्वल उदाहरण विष्णुपुराणमें है। वेदोंमें पुरुषसूक्त प्रसिद्ध है। प्रायः प्रत्येक विद्वान् ब्राह्मणको वह कण्ठ रहता है। वह पुरुषसूक्त थोड़ा ही

बदल और घटा-बढ़ाकर विष्णुपुराणमें पूरा दिया हुआ है। उसमेंका प्रधान अंश नीचे लिखते हैं—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सर्वव्यापी भुवः स्पर्शादत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।
यद्भूतं यच्च वै भाव्यं पुरुषोत्तम तद्भवान्॥
त्वत्तो विराट् स्वराट् सम्राट् त्वत्तश्चाप्यधिपूरुषः।
अत्यरिच्यत सोऽधश्च तिर्यक् चोर्ध्वं च वै भुवः॥
त्वत्तो विश्वमिदं जातं त्वत्तो भूत भविष्यती।
त्वद्रूप धारिणश्चान्तर्भूतं सर्वमिदं जगत्।
त्वत्तो यज्ञः सर्वहुतः पृषदाज्यं पशुर्द्विधा॥
त्वत्तो ऋचोऽथ सामानि त्वत्तश्छन्दांसि जज्ञिरे।
त्वत्तो यजूंष्यजायन्त त्वत्तोऽश्वाश्चैकतोदतः।
गावस्त्वत्तः समुद्भूतास्त्वत्तोऽजा अवयो मृगाः॥
त्वन्मुखाद्ब्राह्मणास्त्वत्तो बाह्वोः क्षत्रमजायत।
वैश्यास्तवोरुजाः शूद्रास्तव पद्भ्यां समुद्गताः॥
अक्ष्णोः सूर्योऽनिलः श्रोत्राच्चन्द्रमा मनसस्तव।
प्राणेन सुषिराज्जातो मुखादग्निरजायत॥
नाभितो गगनं द्यौश्च शिरसः समवर्तत।
दिशः श्रोत्रात् क्षितिः पद्भ्यां त्वत्तः सर्वमभूदिदम्॥
व्यक्त प्रधान पुरुष ! विराट् सम्राट् स्वराट् तथा।
विभाव्यतेऽन्तः करणैः पुरुषेष्वक्षयो भवान्॥
सर्वस्मिन् सर्वभूतस्त्वं सर्वः सर्वस्वरूप धृक्।
सर्वं त्वत्तस्ततश्च त्वं नमः सर्वात्मनेऽस्तुते॥

इसी रीतिसे प्राणियोंके हितमें निरत ऋषियोंने सम्पूर्ण वेदका अर्थ उस समयकी प्रचलित सरल लोकभाषा संस्कृतमें लिखकर जगतका असीम उपकार किया।

इतिहास-पुराण वेदके समान हैं।

इसी कारण वाल्मीकीय रामायण और महाभारत तथा भागवत आदि पुराणोंको पाँचवाँ वेद कहते हैं।

छान्दोग्य-उपनिषद्में लिखा है—

'ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा आथर्वणवेद चार वेद और इतिहास-पुराण पाँचवाँ वेद हैं।

भागवतमें भी लिखा है—

"इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते।"

'इतिहास-पुराणको पाँचवाँ वेद कहते हैं'।

महाभारतके विषयमें उसीमें ऋषियोंका वचन है कि यह कृष्ण द्वैपायन व्यास-रचित वेद है और उन्होंने इसको 'नाना शास्त्रोपबृंहिता', 'वेदैश्चतुर्भिः संयुक्ता', 'पुण्या', 'पाप भयापहा', 'ब्राह्मी संहिता' अर्थात् अनेक शास्त्रोंसे बढ़ाई गई, चारों वेदोंके अर्थसे युक्त, पुण्य बढ़ानेवाली, पाप और भयको दूर करनेवाली ब्राह्मी (वेदकी) संहिता कहकर वर्णन किया है।

इसी प्रकार भागवतके विषयमें लिखा है कि उसमें श्लोक-श्लोकमें पद-पदमें वेदका अर्थ भरा है। पुराणोंमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि पुराण चारों वर्णोंके लिये कल्याणकारी हैं, किन्तु स्त्री और शूद्रोंके लिये विशेषकर मङ्गलकारी हैं। भविष्यपुराणमें लिखा है कि राजा शतानीकने सुमन्तु ऋषिसे पूछा कि महाराज ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंके लिये तो वेद, वेदाङ्ग और मनु आदि धर्मशास्त्र प्राप्त हैं। दीन शूद्र लोग धर्म, अर्थ काम और मोक्षका साधन कैसे करें? इनके चतुर्वर्गके पानेके लिये तथा चारों वर्णोंके कल्याणके लिये कौनसे शास्त्र हैं? यह आप मुझे बताइए। इसके उत्तरमें सुमन्तु ऋषिने कहा—

साधु साधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
चतुर्णामपि वर्णानां यानि प्रोक्तानि श्रेयसे॥
धर्मशास्त्राणि राजेन्द्र शृणु तानि नृपोत्तम।
विशेषतस्तु शूद्राणां पावनानि मनीषिभिः॥
अष्टादश पुराणानि चरितं राघवस्य च।
रामस्य कुरु शार्दूल धर्मकामार्थसिद्धये॥
तथोक्तं भारतं वीरे पाराशर्येण धीमता।
वेदार्थं सकलं योज्य धर्मशास्त्राणि च प्रभो॥
कृपालुना कृतं शास्त्रं चतुर्णामिह श्रेयसे।
वर्णानां भव मग्नानां कृतं पोतो ह्यनुत्तमम्॥

हे महाबाहो ! आपने अच्छा पूछा—आप मेरे सबसे उत्तम वचनको सुनिए। जो चारों वर्णोंके कल्याणके लिये धर्मशास्त्र कहे गए हैं और विशेषकर जो शूद्रोंको पवित्र करनेवाले हैं, उनको सुनिए। सब वर्णोंके धर्म, अर्थ तथा कामकी सिद्धिके लिये अठारहों

पुराण और रामायण लिखे गए और इसी प्रकार सब वेदोँके अर्थ और धर्मशास्त्रको मिलाकर वेदव्यासजीने महाभारतको रचा। वे कृपालु थे। उन्होँने चारोँ वर्णोँके प्राणियोँके कल्याणके लिये यह शास्त्र लिखा। चारोँ वर्णोँके जो लोग संसार-सागरमेँ गोता खा रहे हैँ, उनके लिये उन महर्षिने सबसे उत्तम यह नौका रच दी।

इन वचनोँसे स्पष्ट है कि—

इन ग्रन्थोँके पढ़नेका सबको अधिकार है।

तथापि कुछ विद्वानोँको यह भ्रम है कि स्त्रियाँ और शूद्रोँको इन ग्रन्थोँके पढ़नेका अधिकार नहीँ है, केवल सुननेका अधिकार है। यह भ्रम सर्वथा शास्त्र-विरुद्ध है।

वाल्मीकीय रामायणमेँ जिसको 'वेदैश्च सम्मितं' वेदोँके बराबर मानते हैँ, आदिके अध्यायमेँ लिखा है—

पठन् द्विजो वागृषभत्त्वमीयात्।
स्यात्क्षत्रियो भूमि पतित्त्वमीयात्॥
वणिग्जनः पुण्य फलत्त्वमीयात्।
जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात्॥

कि उसको पढ़नेवाला ब्राह्मण बोलनेवालोँमेँ श्रेष्ठ
होता है, क्षत्रिय भूमिका
स्वामी होता है, वैश्य
व्यापारमेँ लाभ उठाता है
और शूद्र भी बड़प्पन पाता है।

ऐसा ही रामायणके अन्तमेँ भी लिखा है—

एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः।
सपुत्रपौत्रो लोकेऽस्मिन् प्रेत्य चेह महीयते॥

जो प्राणी इस रामायणकी कथाको पढ़ता है वह इस लोकमेँ पुत्र, पौत्र और सुख तथा परलोकमेँ आदर पाता है। महाभारतके भी पहले ही अध्यायके अन्तमेँ लिखा है कि जो कोई पवित्र होकर श्रद्धा-भक्ति-सहित इस अध्यायको पढ़े वा सुने वह यहाँ दीर्घायु और कीर्त्ति तथा अन्तमेँ स्वर्गको पावेगा और अन्तके पर्वमेँ भी लिखा है कि जो कोई सावधान होकर इस भारतकी कथाको पढ़ेगा वह निःसन्देह सबसे बड़ी सिद्धिको पहुँचेगा।

महाभारतके शान्तिपर्वमेँ विष्णु-सहस्र-नामके अन्तमेँ स्पष्ट कह दिया है कि जो मनुष्य इसको सुने और जो इसका पाठ करे उसका इस लोकमेँ और परलोकमेँ भी कोई अमङ्गल नहीँ होगा।

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत्।
वैश्यो धन समृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात्॥

अर्थात् ब्राह्मण सुने या पढ़े तो वेदान्तका जाननेवाला हो।
क्षत्रिय सुने या पढ़े तो विजयी हो।
वैश्य सुने या पढ़े तो धनसम्पन्न हो।
शूद्र सुने या पढ़े तो सुख पावे।

भगवद्गीताके अन्तमेँ भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे अर्जुनसे कहा है कि जो कोई मुझमेँ भक्ति कर मेरे भक्तोँके बीचमेँ इसको सुनावेगा और जो कोई मेरे और तुम्हारे इस धर्मयुक्त संवादको पढ़ेगा उसने ज्ञानयज्ञसे मेरी पूजा की, ऐसा मैँ मानता हूँ।

भगवद्गीताके माहात्म्यमेँ भी लिखा है कि इस गीताशास्त्रको जो कोई पुरुष पवित्र होकर पढ़ेगा वह भय और शोकसे रहित होकर विष्णुपदको पहुँचेगा।

भीष्मस्तवराजके अन्तमेँ लिखा है कि जो इस स्तोत्रको पढ़ेगा या सुनेगा वह सब पापसे मुक्त होकर देहत्याग करनेपर विष्णु भगवान्‌मेँ मिल जायगा।

अनुशासनपर्वमेँ शिव-सहस्र-नामके अन्तमेँ भगवान् कृष्णका वचन है कि जो इन्द्रियोँको वशमेँ रखकर पवित्र होकर बिना व्रत भङ्ग किए नियमसे एक महीना इस स्तोत्रका पाठ करेगा वह अश्वमेध यज्ञका फल पावेगा। और वहीँपर यह भी लिखा है कि—

वेदान् कृत्स्नान् ब्राह्मणः प्राप्नुयात्तु
जयेन्नृपः पार्थ महीं च कृत्स्नाम्।
वैश्यो लाभं प्राप्नुयान्नैपुणं च
शूद्रो गति प्रेत्य तथा सुखं च॥

अर्थात् ब्राह्मण पाठ करे तो सब वेदोँका ज्ञान पावे,
क्षत्रिय करे तो पृथ्वीको जीते,
वैश्य करे तो लाभ और निपुणाई पावे।

शूद्र करे तो यहाँ सुख और परलोकमेँ सुगति पावे ।

श्रीमद्भागवतमेँ लिखा है—

विप्रोऽधीत्याऽप्नुयात्प्रज्ञां राजन्यो दधि मेखलाम् ।
वैश्यो निधि पतित्त्वं च शूद्रः शुद्ध्येत पातकात् ॥

अर्थात् ब्राह्मण भागवत पढ़े तो बुद्धि पावे,
क्षत्रिय पढ़े तो सागरपर्यन्त पृथ्वी पावे,
वैश्य पढ़े तो बहुत धन पावे,
शूद्र पढ़े तो पापसे शुद्ध हो जाय ।

इसी प्रकारसे विष्णुपुराण, नारदीयपुराण, शिवपुराण, स्कन्दपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वायुपुराण, ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण और पद्मपुराणमेँ स्पष्ट लिखा है कि जो मनुष्य उनको पढ़े या सुने वह सुख, सम्पत्ति, दीर्घायु, विजय, भक्ति, मुक्ति आदि पाता है। इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पुरुष और स्त्री सबको पुराणोँको पढ़नेका अधिकार है । किसी-किसी पुराणमेँ कहीँ-कहीँ पर यह लिखा है कि इस कथा या अध्यायको द्विजोँको सुनावे । इससे कुछ विद्वानोँका यह मत है कि उन अंशोँको पढ़नेका अधिकार द्विजोँ ही को है, और अन्य लोगोँके लिये वे अंश निषिद्ध हैँ । किन्तु ऐसे अंश बहुत थोड़े हैँ ।

अन्त्यजोँको भी इन ग्रन्थोँके पढ़नेका अधिकार है ।

मनुजीके वचनके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये तीन वर्ण द्विजाति कहे जाते हैँ । चौथा शूद्र वर्ण एक जाति है । पाँचवाँ वर्ण नहीँ है । उन्हीँ मनुजीके अनुसार 'शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः' इसकी टीकामेँ मेधातिथि लिखते हैँ कि—'ये पुनरपध्वंसजाः सङ्करजास्ते शूद्राणां सधर्माणः समानाचारास्तद्धर्मैरधिक्रियन्त इत्यर्थः' । अर्थात् जो प्रतिलोम सङ्कर जातिके लोग चाण्डाल आदि हैँ वे शूद्रके सधर्मा हैँ, अर्थात् जो धर्म शूद्रोँका है वही धर्म उनका है । इससे यह सिद्ध होता है कि जैसा शूद्रोँको इतिहास पढ़ने तथा सुननेका अधिकार है वैसा ही सब अपध्वंसजोँको, जिनमेँ अन्त्यज तक हैँ, इतिहास-पुराण पढ़ने-सुननेका अधिकार है । इसका सारांश यह निकलता है कि जिस मनुष्यको—पुरुष हो वा स्त्री और किसी वर्ण वा जातिका हो—वेदार्थसे भूषित पुराणोँके पढ़नेकी श्रद्धा और भक्ति हो वह उनको पढ़नेका अधिकारी है ।

स्त्री शूद्रोँको ॐकारसहित मन्त्रोँके उच्चारणका अधिकार है ।

यदि पूर्वोद्धृत वचनोँसे यह सिद्ध है कि स्त्री शूद्रोँको पुराणोँके पढ़नेका अधिकार है तो यह भी आप ही सिद्ध है कि उन पुराणोँके अन्तर्गत मन्त्रोँके उच्चारण करनेका उनको अधिकार है । पुराणोँमेँ जो अनेक मन्त्र आए हैँ उनका आरम्भ ॐकारसे होता है । इसलिये सब पुराणके पढ़नेके अधिकारियोँको ॐकारसहित मन्त्रोँके उच्चारण करनेका अधिकार है । इसमेँ भी पुराण ही प्रमाण हैँ । विष्णुसहस्रनामके पढ़नेका शूद्रोँको अधिकार है । यह उसीके अन्तमेँ स्पष्ट लिखा है । उसको वेदव्यासजीने 'सर्वप्रहरणायुध ओ मिति' इन शब्दोँमेँ समाप्त किया है ।

श्रीमद्भागवतके पढ़नेका शूद्रोँको अधिकार है । उसमेँ आदिसे अन्ततक ॐकारसहित अनेक मन्त्र भरे हैँ । प्रायः सब स्कन्धोँके प्रारम्भमेँ 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह मन्त्र गर्जता है । पाँचवेँ स्कन्धमेँ अनेक ॐकारसहित मन्त्र हैँ । 'ॐ नमो भगवते उत्तम श्लोकाय' इत्यादि । छठेँ स्कन्धमेँ 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय,' 'ॐ नमो नारायणाय' ये दोनोँ मन्त्र नारायण कवचमेँ आए हैँ । उसी स्कन्धमेँ 'ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने विशुद्ध सत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि' यह मन्त्र आया है । उसी स्कन्धमेँ स्त्रियोँके पुंसवन व्रतविधानमेँ लिखा है कि जिस स्त्रीको अच्छे पुत्र पानेकी कामना हो वह पतिकी आज्ञा लेकर पुंसवन व्रत करे और प्रतिदिन नहाकर लक्ष्मीसहित विष्णुकी पूजा इस मन्त्रसे करे—

'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिमुपहरामि' इति, और 'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूति पतये स्वाहा' इस मन्त्रसे आहुति दे ।

आठवेँ स्कन्धमेँ भगवान् कश्यपने पयोव्रतके विधानमेँ अदिति देवीको उपदेश किया कि स्त्री 'ॐ नमो नारायणाय' इस मूल मन्त्रसे होम करे।

पद्मपुराणमेँ वासुदेवाभिधान नाम स्तोत्र है, जिसमेँ 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्रकी महिमा वर्णित है। उसमेँ लिखा है कि उस स्तोत्रको जो ब्राह्मण पढ़ेगा उसकी सब इच्छाएँ पूरी होँगी, क्षत्रिय पढ़ेगा तो जय पावेगा, वैश्य पढ़ेगा तो धनधान्यसे पूरा होगा और शूद्र पढ़ेगा तो सुख पावेगा।

विष्णु धर्मोत्तरमेँ द्विजोँको वैदिक पुरुषसूक्त और श्रीसूक्तसे हवन करनेकी विधि बतलाकर लिखा है—

एतत्प्रोक्तं द्विजातीनां स्त्रीशूद्रेषु च यच्छृणु।
द्वादशाष्टाक्षरौ मन्त्रौ तेषांप्रोक्तौ महात्मनाम्॥
हितौ तौ च द्विजातीनां मन्त्रश्रेष्ठौ नराधिप।
तेभ्योप्यधिक मन्त्रोपि विद्यते न हि कुत्रचित्॥

अर्थात् यह वैदिक विधि तो द्विजातियोँके लिये कही। अब स्त्रियोँ और शूद्रोँके लिये जो विधि है वह सुनो। उनके लिये द्वादशाक्षर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' और अष्टाक्षर 'ॐ नमो नारायणाय' ये मन्त्र कहे गए हैँ। हे राजन्! ये मन्त्र द्विजातियोँके लिये भी कल्याणकारी हैँ, अर्थात् चारोँ वर्णोँको इन मन्त्रोँको जपना चाहिए। इनसे बड़ा कोई मन्त्र नहीँ है।

ब्रह्मपुराणमेँ विष्णुपूजनविधि नामके एकसठवेँ अध्यायमेँ लिखा है कि—

ॐकारादिसमायुक्तं नमस्कारान्तदीपितम्।
तन्नाम सर्वसत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते॥

ॐ नमः से युक्त परमात्माके नाम जैसा ही 'ॐ नमो नारायणाय' प्राणी मात्रका मन्त्र है। अर्थात् उसके जपनेके सब अधिकारी हैँ। उसी पुराणमेँ उसी अध्यायमेँ लिखा है कि जो लोग और किसी मन्त्रसे विष्णुकी पूजा करना नहीँ जानते वे 'ॐ नमो नारायणाय' इसी मूल मन्त्रसे आवाहन, स्नान, गन्ध, पुष्पादि षोडश उपचारसे पूजन करेँ और इसीका जप करेँ।

नृसिंहपुराणके बासठवेँ अध्यायमेँ वैदिक पुरुषसूक्तसे विष्णुकी पूजाविधि वर्णन की गई है। उसको सुनकर राजा सहस्रानीकने मार्कण्डेय ऋषिसे कहा कि इस विधिसे तो पूजा वे ही लोग कर सकते हैँ जो वेदके जाननेवाले हैँ। इसलिये वह पूजाविधि बताइए जो सर्वहित हो, अर्थात् जिसके अनुसार सब प्राणी विष्णुका पूजन कर सकेँ। उसके उत्तरमेँ मार्कण्डेयजीने कहा—

अष्टाक्षरेण मन्त्रेण नरसिंहमनामयम्।
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यमर्च्चयेदच्युतं नरः॥
राजन्नष्टाक्षरो मन्त्रः सर्वपापहरः परः।
समस्तयज्ञफलदः सर्वशान्तिकरः शुभः॥

मनुष्य 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्रसे विष्णु भगवान् नरसिंहकी पूजा करे। इसीसे गन्ध पुष्पादि सोलहोँ उपचारसे पूजन करे। हे राजन्! यह अष्टाक्षर मन्त्र सब पापोँका हरनेवाला, सब यज्ञोँके फलका देनेवाला, सब दुःख और दोषकी शान्ति करने वाला है।

उसी पुराणके अठारहवेँ अध्यायमेँ शुकदेवजीके इस प्रश्नपर कि—

किं जपन् मुच्यते तात सततं विष्णुतत्परः।
संसारदुःखात्सर्वेषां हिताय वद मे पितः॥

हे पिताजी! विष्णु भगवान्का भक्त किस मन्त्रको जपता हुआ संसारसागरके दुःखसे छुटकारा पाता है।

उत्तरमेँ भगवान् वेदव्यासजीने कहा है कि—

अष्टाक्षरं प्रवक्ष्यामि मन्त्राणां मन्त्रमुत्तमम्।
यं जपन् मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात्॥
एकान्ते निर्जनस्थाने विष्णवग्रे वा जलान्तिके।
जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं चित्ते विष्णुं निधाय वै॥

अष्टाक्षर मन्त्र सब मन्त्रोँमेँ उत्तम है। कोई मनुष्य हो, जिसको एक दिन मरना अवश्य है इसको जपकर जन्म और संसारके बन्धनसे छूट जाता है। एकान्तमेँ, निर्जन स्थानमेँ, विष्णुके आगे या नदी या जलाशयके पास, भगवान् विष्णुको मन-मन्दिरमेँ बिठाकर इस मन्त्रको जपे।

ॐनमोनारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।
भक्तानां जपतां तात स्वर्गमोक्षफलप्रदः॥

सर्ववेदरहस्येभ्यः सार एष समुद्धृतः।
विष्णुनां वैष्णवानां हि हिताय मनुजां पुरा॥
एतत्सत्यं च धर्म्यं च वेद-श्रुति निदर्शनात्।
एतत्सिद्धिकरं नॄणां मन्त्ररूपं न संशयः॥
अष्टाक्षरमिमं मन्त्रं सर्वदुःखविनाशनम्।
जप पुत्र महाबुद्धे यदि सिद्धिमभीप्ससि॥

'ॐ नमो नारायणाय' यह मन्त्र सब कामनाओँको पूरा करनेवाला है, भक्तिसे जपनेवालोँको स्वर्ग और मोक्षतकका देनेवाला है। निश्चय करके वैष्णवोँके और सब मनुष्यमात्रके लिये प्राचीन कालमेँ भगवान् विष्णुने सब वेदोपनिषदोँमेँ से दूधमेँसे मक्खनकी भाँति साररूप इस मन्त्रको निकाला। यह मन्त्र निश्चय करके मनुष्यमात्रके लिये सब दुःखोँका नाश करनेवाला है और सब सिद्धिका देनेवाला है। हे मेरे महाबुद्धिमान् पुत्र! यदि तुम सिद्धि चाहते हो तो इस मन्त्रको जपो।

ॐ नमः शिवाय।

इसी प्रकार 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रको जिसको श्रद्धा हो, वह जपनेका अधिकारी है। 'ॐ नमः शिवाय' यह छः अक्षरका मन्त्र है। इसीको लोकमेँ पञ्चाक्षर कहते हैँ। यह बात स्कन्दपुराण, शिवपुराण और लिङ्गपुराणके वचनोँसे स्पष्ट है।

स्कन्दपुराणमेँ लिखा है—

शैवं षडक्षरं दिव्यं मन्त्रमाहुर्महर्षयः।
देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरान्तकः।
मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तथा शैवः षडक्षरः॥
एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो जप्तॄणां मुक्तिदायकः।
संसेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषैः सिद्धिकाङ्क्षिभिः॥
भवपाशनिबद्धानां देहिनां हितकाम्यया।
आहोंनमःशिवायेति मन्त्रमाद्यःशिवःस्वयम्॥
मन्त्रराजाधिराजोऽयं सर्ववेदान्तशेखरः।
सर्वज्ञाननिधानं च सोऽयं चैव षडक्षरः॥
तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्रःसोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च सङ्कीर्णैर्धार्यते मुक्तिकाङ्क्षिभिः॥

अर्थात् यह जो छः अक्षरवाला शैव मन्त्र है, उसको महर्षि लोग दिव्य मन्त्र कहते हैँ। जैसे देवताओँमेँ सबसे बड़े देव त्रिपुरासुरको मारनेवाले महादेव हैँ, वैसे ही यह छः अक्षरवाला शिवमन्त्र सब मन्त्रोँसे बड़ा है। यही पञ्चाक्षर मन्त्र अर्थात् लोकमेँ पञ्चाक्षर नामसे प्रसिद्ध मन्त्र जपनेवालोँको मुक्ति देनेवाला है। जो मुनिश्रेष्ठ सिद्धियोँकी आकाङ्क्षा करते हैँ वे सब इसी मन्त्रसे उपासना करते हैँ। संसारके फाँसमेँ जितने प्राणी बँधे हैँ उनके लिये स्वयं आदिदेव महादेवने 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रको अपने मुखसे कहा। यह सब मन्त्रोँका राजाधिराज है, सब वेदान्तका शिरोमणि है, सब ज्ञान इसमेँ भरा हुआ है। वही यह छः अक्षरवाला मन्त्र है। इसलिये सब मनोरथोँको पूरा करनेवाले इस पञ्चाक्षरके नामसे प्रसिद्ध मन्त्रको मुक्ति चाहनेवाले सब स्त्री, शूद्र और सङ्कर जातिके लोग जपते हैँ।

शिवपुराणमेँ वायवीय संहिताके उत्तर भागके ग्यारहवेँ अध्यायमेँ शिवजीने अपने श्रीमुखसे शैव धर्मका उपदेश किया है। उसमेँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, सधवा और विधवा स्त्रियोँको—

"अथ वक्ष्यामि देवेशि भक्तानामधिकारिणाम्।
विदुषां द्विजमुख्यानां वर्णधर्मं समासतः॥"

इस श्लोकसे आरम्भकर "इति सङ्क्षेपतः प्रोक्तं ममाश्रमनिषेवणम्" अर्थात् इस प्रकारसे मैँने सङ्क्षेपमेँ मेरे आश्रमनिषेवण करनेकी विधि कही" यहाँतक तेइस श्लोकोँमेँ सब वर्ण और आश्रमवालोँका विशेष-विशेष धर्म अलग-अलग वर्णन कर उसके आगे उन सब वर्ण और आश्रमवालोँका सामान्य धर्म नीचे लिखे श्लोकोँमेँ बताया है—

ब्रह्मक्षत्रविशां देवि! यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
तथैव वानप्रस्थानां गृहस्थानां च सुन्दरि॥

शूद्राणामथ नारीणां धर्म एष सनातनः।
ध्येयस्त्वयाहं देवेशि सदा जाप्यः षडक्षरः॥

हे देवि! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यती, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, गृहस्थ, शूद्र और स्त्री सबोंका (सर्वमान्य) यह सनातन धर्म है कि तुम्हारी मूर्त्तिसे युक्त मेरी मूर्त्तिका ध्यान किया करें और सदा 'ॐ नमः शिवाय' इस षडक्षर मन्त्रका जप किया करें।

शिवपुराणमें उसी संहिताके बारहवें अध्यायमें लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्णने महर्षि उपमन्युसे कहा कि आप पञ्चाक्षरका माहात्म्य मुझे सुनाइये। इसपर उपमन्युजी बोले—

पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि।
अशक्यं विस्तराद्वक्तुं तस्मात्संक्षेपतः शृणु॥

पञ्चाक्षरका माहात्म्य कोटि वर्षमें भी विस्तारके साथ कहना सम्भव नहीं है। इसलिये सङ्क्षेपमें सुनिये।

वेदे शिवागमे चायमुभयत्र षडक्षरः।
मन्त्रस्थितः सदा मुख्यो लोके पञ्चाक्षरः स्मृतः॥
सर्वमन्त्राधिकश्चायमोंङ्काराद्यः षडक्षरः।
सर्वेषां शिवभक्तानामशेषार्थ प्रसाधकः॥
मन्त्र सुखमुखोच्चार्यमशेषार्थ प्रसिद्धये।
प्राहोंनमः शिवायेति सर्वज्ञः सर्वदेहिनाम्॥
अन्त्यजो वाऽधमो वाऽपि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा।
पञ्चाक्षरजपे निष्ठो मुच्यते पापपञ्जरात्॥
इत्युक्तं परमेशेन देव्या पृष्टेन शूलिना।
हिताय सर्वमर्त्यानां तिष्यजानां विशेषतः॥

वेद और शैव आगम दोनोंमें यह मन्त्र छः अक्षरका सदासे स्थित है और सब मन्त्रोंमें मुख्य है। लोकमें यही पञ्चाक्षरके नामसे प्रसिद्ध है। ॐकारयुक्त पूजा-मन्त्र सब मन्त्रोंमें बड़ा है और जिनको आदिदेव महादेवमें भक्ति है, उनकी सब कामनाओंको पूरा करने वाला है। सर्वज्ञ शिवजीने सब प्राणियोंके सब अर्थोंकी सिद्धिके साधन 'ॐनमः शिवाय' मन्त्रको, जिसको सब लोग सुखसे उच्चारण कर सकते हैं अपने श्रीमुखसे कहा। अन्त्यज हो या नीच हो, मूर्ख हो या पण्डित हो, जो पञ्चाक्षरका जप नित्य श्रद्धासे करता है वह पापके पञ्जरसे छूट जाता है।

परमेश्वर शिवजीने सब प्राणियोंके हितके लिये विशेषकर कलियुगमें उत्पन्न प्राणियोंके हितके लिये पार्वतीके पूछनेपर ऊपर लिखा वचन कहा।

शिव-पार्वती संवाद

का संक्षेप नीचे लिखते हैं। पार्वतीजीने शिवजीसे पूछा कि—

कलौ कलुषिते काले दुर्जये दुरतिक्रमे।
अपुण्यतमसाच्छन्ने लोके धर्मपराङ्मुखे॥
क्षीणे वर्णसमाचारे सङ्करे समुपस्थिते।
सर्वाधिकारे संदिग्धे निश्चिते वा विपर्यये॥
तदोपदेशे विहते गुरुशिष्यक्रमे गते।
केनोपायेन मुच्यन्ते भक्तास्तव महेश्वर॥

कलियुगमें विकराल कालके आनेपर जब पापरूपी अन्धकार फैल जाय और लोग धर्मसे विमुख हो जायँ, जब वर्णाश्रम धर्म क्षीण हो जाय और वर्णसङ्कर बढ़ने लगें, जब सब लोगोंको सभी धर्मविषयेंमें सन्देह होने लगे, और गुरु और शिष्यके क्रमसे उपदेश देनेका क्रम न रहे तो महेश्वर! आपके भक्त किस उपायसे पापसे छूटते हैं?

शिवजी बोले—

आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं मम।
भक्त्या च भावितात्मानो मुच्यन्ते कलिजा नराः॥
मनोवाक्कायजैर्दोषैर्वक्तुं स्मर्त्तुमगोचरैः।
दूषितानां कृतघ्नानां निर्दयानां खलात्मनाम्॥
लुब्धानां वक्रमनसामपि मत्प्रवणात्मनाम्।
मम पञ्चाक्षरी विद्या संसारभयतारिणी॥
मयैवमसकृद्देवि प्रतिज्ञातं धरातले।
पतितोऽपि विमुच्येत मद्भक्तो विद्ययानया॥

इत्यादि।

कलियुगमें उत्पन्न प्राणी मेरी पञ्चाक्षरी विद्याका आश्रय लेकर अर्थात् पञ्चाक्षर मन्त्रको नित्य श्रद्धासे जपकर और मेरी भक्तिसे अपने आत्माको पवित्र कर पापसे छूटते हैं। मनसे, वचनसे और कायासे किए हुए ऐसे पापोंसे दूषित प्राणियोंको जिन पापोंको मुखसे वर्णन करना और स्मरण करना भी कठिन हो

और जो किए हुए उपकारको नहीं मानते ऐसे कृतघ्नोंको, दयारहित क्रूर प्राणियोंको, और दुष्ट आत्माओंको, लोभियोंको, और कुटिल मनवालोंको भी यदि वे मेरी ओर अपनी आत्माको झुकावें तो मेरा पञ्चाक्षर मन्त्र उनको संसारके सब डरोंसे छुड़ा देता है। हे देवि! मैंने पृथ्वीतलपर बार-बार प्रतिज्ञापूर्वक यह कहा है कि यदि पतित भी हो तो इस मन्त्रके साधनसे पापसे छूट जाता है।

अरुद्रो वा सरुद्रो वा सकृत् पञ्चाक्षरेण यः।
पूजयेत् पतितो वापि मूढ़ो वा मुच्यते नरः॥
षडक्षरेण वा देवि तथा पञ्चाक्षरेण वा।
सब्रह्माङ्गेण मां भक्त्या पूजयेत् यदि मुच्यते॥
पतितोऽपतितो वापि मन्त्रेणानेन पूजयेत्॥

चाहे उसने विधिसे शिवमन्त्रका उपदेश लिया हो चाहे न लिया हो, पतित हो वा मूर्ख हो, जो एक बार भी श्रद्धा तथा भक्तिसे पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करता है वह पापसे छूट जाता है। हे देवि! छः अक्षर 'ॐ नमः शिवाय' से या पाँच अक्षर 'नमः शिवाय' से जो भक्तिसे मेरा पूजन करे वह मुक्तिको पाता है। चाहे पतित हो या अपतित हो सबको इस मन्त्रसे पूजन करना चाहिए। शिवजीने कहा—

'किमत्र बहुनोक्तेन भक्ताः सर्वेधिकारिणः।
मम पञ्चाक्षरे मन्त्रे तस्माच्छ्रेष्ठतरो हि सः॥

अर्थात् इस विषमें बहुत कहनेसे क्या, जिन प्राणियोंको मुझमें भक्ति है, वे सब इस पञ्चाक्षर मन्त्रके जपनेके अधिकारी हैं। इसीलिये यह सब मन्त्रोंमें श्रेष्ठ है। हे देवि! यह रहस्य मैं तुमको बताता हूँ। इसको तुम रक्षित रखना। हरएकसे इसको न कहना, विशेषकर किसी नास्तिकसे न कहना।

सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च।
पञ्चाक्षरात्परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे॥
अन्त्यजस्यापि मूर्खस्य मूढस्य पतितस्य च।
निर्मर्यादस्य नीचस्य मन्त्रोऽयं न च निष्फलः॥
सर्वावस्थां गतस्यापि मयि भक्तिमतः परम्।
सिद्ध्यत्येव न सन्देहो नापरस्य तु कस्यचित्॥

अर्थात् सदाचारसे विहीन जो पतित है, अर्थात् घोर कुकर्म करनेसे या अपना धर्म छोड़कर किसी दूसरे मतको मान लेनेके कारण जो धर्मसे गिर गया है अथवा अन्त्यज (चाण्डाल आदि) है, उसका इस कलियुगमें पञ्चाक्षरसे परे कोई रक्षा करनेवाला नहीं। मूर्ख अन्त्यज भी हो और दुर्बुद्धि पतित भी हो, जो सब मर्यादासे गिर गया है और सब प्रकारसे नीच है, वह भी इस मन्त्रको जपे तो उसका इस मन्त्रका जपना निष्फल नहीं जाता। किसीभी अवस्थामें प्राणी हो, पर यदि उसकी मुझमें भक्ति है तो उसका पञ्चाक्षर मन्त्र जपना उसको सब पापोंसे छुड़ा देता है और वह सब सुखका साधन बन जाता है।

उपमन्यु ऋषिने श्रीकृष्ण भगवान्‌से कहा कि इस प्रकारसे साक्षात् महादेवी पार्वतीजीसे महादेव शिवजीने सारे जगतके हितके लिये इस पञ्चाक्षर मन्त्रकी विधिको कहा।

लिङ्गपुराण।

लिङ्गपुराणमें भी पचासवें अध्यायमें पार्वतीजीके पूछनेपर शिवजीने पञ्चाक्षर मन्त्रकी महिमा और उसका स्वरूप वर्णन किया है।

श्री भगवानुवाच।

पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि।
न शक्यं कथितुं देवि तस्मात्सङ्क्षेपतः शृणु॥
पञ्चाक्षरप्रभावाच्च लोका वेदा महर्षयः।
तिष्ठन्ति शाश्वता धर्मा देवाः सर्वमिदं जगत्॥
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणु चावहिताऽखिलम्।
अल्पाक्षरं महार्थं च वेदसारं विमुक्तिदम्॥
आज्ञासिद्धमसन्दिग्धं वाक्यमेतच्छिवात्मकम्।
नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचित्तानुरञ्जकम्॥
सुनिश्चितार्थं गम्भीरं वाक्यमेतच्छिवात्मकम्।
मन्त्रं सुखमुखोच्चार्यमशेषार्थप्रसाधकम्॥
तद्बीजं सर्वविद्यानां मन्त्रमाद्यं सुशोभनम्।
अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वदबीजवत्॥

वेद स त्रिगुणातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत् प्रभुः ।
ओमित्येकाक्षरे मन्त्रे स्थितः सर्वगतः शिवः ॥
मन्त्रे षडक्षरे सूक्ष्मे पञ्चाक्षरतनुः शिवः ।
वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात्स्वभावतः ॥
वेदे शिवागमे वापि यत्र यत्र षडक्षरः ।
मन्त्रः स्थितः सदा मुख्यो लोके पञ्चाक्षरो मतः ॥
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वा बहुविस्तृतैः ।
यस्यैवं हृदि संस्थोऽयं मन्त्रः स्यात् पारमेश्वरः ॥
तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
यो विद्वान् वै जपेत् सम्यगधीत्यैव विधानतः ॥
एतावधि शिवज्ञानमेतावत् परमं पदम् ।
एतावद्ब्रह्मविद्या च तस्मान्नित्यं जपेद्बुधः ॥

लिङ्गपुराणमें भी लिखा है कि शिवजीने अपने श्रीमुखसे पार्वतीजीसे कहा कि जिस पञ्चाक्षर विद्याका माहात्म्य तुम मुझसे पूछती हो वह वेदमें भी और शैव आगममें भी दोनों ही स्थानोंमें षडक्षर छः अक्षरका मन्त्र है। लोकमें लोग उसको पञ्चाक्षरके नामसे कहते हैं। और यह भी कहा है कि—

पञ्चाक्षरैः सप्रणवो मन्त्रोऽयं हृदयं मम ।
गुह्याद्गुह्यतरं साक्षान्मोक्षज्ञानमनुत्तमम् ॥

ॐकारसहित पाँच अक्षरोंसे युक्त यह मन्त्र मेरा हृदय है। सब गुह्य अर्थात् बहुत जतनसे रक्षित रखने योग्य वस्तुओंसे भी अनमोल है और साक्षात् मोक्षका देनेवाला है। आगे चलकर भगवान् शिवजीने मन्त्रका विनियोग बतानेमें स्पष्ट 'ॐ नमः शिवाय' के ओँकारसे आरम्भ कर मकार तक एक-एक अक्षरका ऋषि, छन्द, स्वर, आदि अलग-अलग बताया है। इससे अधिक इस बातका प्रमाण क्या हो सकता है कि जिसको लोग पञ्चाक्षर मन्त्र कहते हैं, वह षडक्षर अर्थात् छः अक्षरका मन्त्र है। शिवपुराण, स्कन्दपुराण, लिङ्गपुराण तीनों ही शैवपुराण एक स्वरसे कहते हैं कि पञ्चाक्षर नामक मन्त्रका रूप 'ॐ नमः शिवाय' ही है। तीनों ही कहते हैं कि शिवजीने मनुष्यमात्रके हितके लिये 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रको अपने श्रीमुखसे कहा और पार्वतीजीसे यह कहा कि कोई भी प्राणी हो, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज, पतित, पुरुष या स्त्री, जो इस मन्त्रको जपे उसका यह कल्याण करेगा।

'षडक्षरेण वा देवि तथा पञ्चाक्षरेण वा'

चाहे 'ॐ नमः शिवाय' इन छः अक्षरोंसे जपे चाहे 'नमः शिवाय' इन पाँच अक्षरोंसे जपे, इससे यह स्पष्ट है कि श्रुतिस्मृति-पुराण-प्रतिपादित सनातनधर्मके अनुसार श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालपर्यन्त सब मनुष्योंको जिनकी परमेश्वरमें भक्ति हो 'ॐ नमो नारायणाय' और 'ॐ नमः शिवाय' इन मन्त्रोंके जपनेका और इनके द्वारा ईश्वरकी उपासना करनेका पूरा अधिकार है।

नित्यकी उपासना ।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती ।
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ॥

प्रतिदिन सूर्य्यके उदय और अस्त होनेके समय प्रत्येक पुरुष और स्त्रीको प्रातःकाल स्नानकर और सायङ्काल हाथ, मुँह, पैर धोकर सूर्य्यके सामने खड़े होकर सूर्य्यमण्डलमें विराजमान सारे जगतके प्राणियोंके आधार परमेश्वर परब्रह्म नारायणको 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रसे अर्घ देकर और जल न मिले तो योँ ही हाथ जोड़कर मनको पवित्र और एकाग्र कर श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक एकसौ आठ या अट्ठाइस या कम-से-कम दस बार प्रातःकाल 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रको और सायङ्काल 'नमः शिवाय' इस मन्त्रको जपना चाहिए और जपके उपरान्त परमात्माका ध्यान कर नीचे लिखी प्रार्थना करनी चाहिए।

ॐ नमो नारायणाय

सब देवनके देव प्रभु सब जगके आधार ।
दृढ़ राखौ मोहि धर्ममें बिनवौं बारम्बार ॥
चन्दा सूरज तुम रचे रचे सकल संसार ।
दृढ़ राखौ मोहिं सत्यमें बिनवौं बारम्बार ॥
घट-घट तुम प्रभु एक अज अविनाशी अविकार ।

अभयदान मोहिं दीजिए बिनवौँ बारम्बार ॥
मेरे मनमन्दिर बसौ करौ ताहि उजियार।
ज्ञान-भक्ति प्रभु दीजिए बिनवौँ बारम्बार ॥
सत-चित-आनन्द-घन प्रभू सर्व-शक्ति-आधार।
धनबल जनबल धर्मबल दीजै सुख संसार ॥
पतित-उधारन दुखहरन दीन-बन्धु करतार।
हरहु अशुभ शुभ दृढ़ करहु बिनवौँ बारम्बार ॥
जिमि राखे प्रहलादको ले नृसिंह अवतार।
तिमि राखौ अशरण-शरण बिनवौँ बारम्बार ॥
पाप दीनता, दरिद्रता और दासता पाप।
प्रभु दीजै स्वाधीनता मिटै सकल सन्ताप ॥
नहिँ लालचबस लोभबस नाहीँ डरबस नाथ।
तजौँ धरम वर दीजिए रहिय सदा मम साथ ॥
जाके मन प्रभु तुम बसौ सो डर कासौँ खाय।
सिर जावे तो जाय प्रभु मेरो धरम न जाय ॥
उठौँ धर्मके काममेँ उठौँ देशके काज।
दीनबन्धु तव नाम लै नाथ राखियो लाज ॥

सनातनधर्मकी रक्षा और प्रचार चाहनेवाले समस्त सत्पुरुष और सत्स्त्रियोँसे विनय-पूर्वक मेरी प्रार्थना है कि जो लोग वैदिक दीक्षा पा चुके हैँ उनको भी इन सार्वजनिक मन्त्रोँका जप करना चाहिए, और प्रत्येक हिन्दू सन्तानको इन परम कल्याणकारी मन्त्रोँकी दीक्षा लेकर तथा अपने और सब भाई और बहनोँको दिलाकर अपना और उनका धार्मिक जीवन पवित्र और प्रकाशमय करना चाहिए, जिससे धर्ममेँ उनकी श्रद्धा बढ़े और दृढ़ रहे, वे अपने देश और समाजमेँ सुख, सन्मान और स्वतन्त्रतासे रहेँ, तथा दिन-दिन ऊपर उठेँ और संसारके अन्य मतोँके माननेवाली जातियोँकी दृष्टिमेँ भी सम्मानके योग्य होँ। इससे हमारा आत्मा भी प्रसन्न होगा और सारे जगत्‌का पिता, सबका सुहृद्, सबको शरण देनेवाला, घट-घट व्यापी परमात्मा भी प्रसन्न होगा।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

प्रयाग,
माघ कृ० ११ सं० १९८६।

मदनमोहन मालवीय

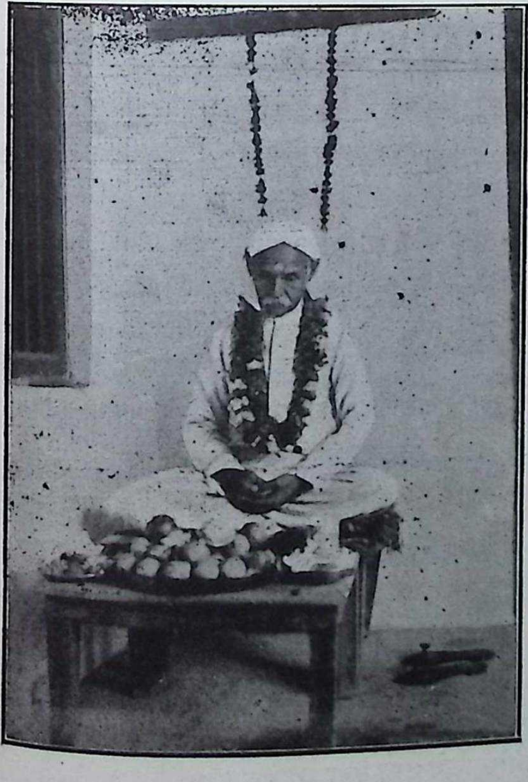

गुरुपूजाके दिन पूज्य मालवीयजी

जिन शिष्योँको मन्त्रदीक्षा दी थी उन्होँने गुरुपूजाके दिन पूज्य मालवीयजीकी पूजा की थी और फल-फूल भेँट किए थे।

हिन्दू-धर्मोपदेशः

सङ्घे शक्तिः कलौ युगे ।

हिताय सर्वलोकानां निग्रहाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय प्रणम्य परमेश्वरम् ॥१॥
ग्रामे ग्रामे सभा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा ।
पाठशाला मल्लशाला प्रतिपर्व महोत्सवः ॥२॥
अनाथाः विधवाः रक्ष्याः मन्दिराणि तथा च गौः ।
धर्म्यं सङ्घटनं कृत्वा देयं दानं च तद्धितम् ॥३॥
स्त्रीणां समादरः कार्य्यो दुःखितेषु दया तथा ।
अहिंसका न हन्तव्या आततायी वधार्हणः ॥४॥
अभयं सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यं धृतिः क्षमा ।
सेव्याः सदाऽमृतमिव स्त्रीभिश्च पुरुषैस्तथा ॥५॥
कर्मणां फलमस्तीति विस्मर्तव्यं न जातु चित् ।
भवेत्पुनः पुनर्जन्म मोक्षस्तदनुसारतः ॥६॥
स्मर्तव्यः सततं विष्णुः सर्वभूतेष्ववस्थितः ।
एक एवाऽद्वितीयो यः शोकपापहरः शिवः ॥७॥
'पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
दैवतं देवतानां च लोकानां योऽव्ययः पिता' ॥८॥
सनातनीयाः सामाजाः सिक्खाः जैनाश्च सौगताः ।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरताः भावयेयुः परस्परम् ॥९॥
विश्वासे दृढता स्वीये परनिन्दा विवर्जनम् ।
तितिक्षा मतभेदेषु प्राणिमात्रेषु मित्रता ॥१०॥
'श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥११॥
यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः ।
न तत्परस्य कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः ॥१२॥
जीवितं यः स्वयं चेच्छेत्कथं सोऽन्यं प्रघातयेत् ।
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्' ॥१३॥
न कदाचिद्विभेत्वन्यान्न कञ्चन विभीषयेत् ।
आर्य्यवृत्तिं समालम्ब्य जीवेत्सज्जनजीवनम् ॥१४॥
सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥१५॥
इत्युक्त लक्षणा प्राणि दुःख ध्वंसन तत्परा ।
दया बलवतां शोभा न त्याज्या धर्मचारिभिः ॥१६॥
पारसीयै र्मुसल्मानै रीसाईयै र्यहूदिभिः ।
देशभक्तैर्मिलित्वा च कार्या देशसमुन्नतिः ॥१७॥
पुण्योऽयं भारतो वर्षो हिन्दुस्थानः प्रकीर्त्तितः ।
वरिष्ठः सर्वदेशानां धन-धर्म-सुखप्रदः ॥१८॥
'गायन्ति देवाः किल गीतकानि ।
धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे ॥
स्वर्गापवर्गस्य च हेतु भूते ।
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्' ॥१९॥
मातृभूमिः पितृभूमिः कर्मभूमिः सुजन्मनाम् ।
भक्तिमर्हति देशोऽयं सेव्यः प्राणैर्धनैरपि ॥२०॥
चातुर्वर्ण्यं यत्र सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
चत्वार आश्रमाः पुण्याः चतुर्वर्गस्य साधकाः ॥२१॥
उत्तमः सर्वधर्माणां हिन्दूधर्मोऽयमुच्यते ।
रक्ष्यः प्रचारणीयश्च सर्वलोकहितैषिभिः ॥२२॥

हिन्दी-अनुवाद

कलियुगमेँ एकता ही मेँ शक्ति है ।

परमेश्वरको प्रणाम कर, सब प्राणियोँके उपकारके लिये, बुराई करनेवालोँको दाबनेके लिये, धर्म संस्थापनके लिये, धर्मके अनुसार सङ्गठन-मिलाप कर गाँव-गाँवमेँ सभा करनी चाहिए, गाँव-गाँवमेँ कथा बिठानी चाहिए, गाँव-गाँवमेँ पाठशाला खोलनी चाहिए, गाँव-गाँवमेँ अखाड़ा खोलना चाहिए और पर्व-पर्वपर मिलकर बड़ा उत्सव मनाना चाहिए ।

सब भाइयोँको मिलकर अनाथोँकी, विधवाओँकी, मन्दिरोँकी और गौकी रक्षा करनी चाहिए और इन सब कामोँके लिये दान देना चाहिए ।

स्त्रियोँका सम्मान करना चाहिए ।

दुखियोँपर दया करनी चाहिए ।

उन जीवोँको नहीँ मारना चाहिए जो किसीपर चोट नहीँ करते। मारना उनको चाहिए जो आततायी होँ अर्थात् जो स्त्रियोँपर या किसी दूसरेके धन, धर्म या प्राणपर वार करते होँ, या किसीके घरमेँ आग लगाते होँ। यदि ऐसे लोगोँको मारे बिना अपना या दूसरोँका धर्म, धन या मान न बच सके तो उनको मारना धर्म है।

स्त्रियोँको भी, तथा पुरुषोँको भी निडरपन, सचाई, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य्य, धीरज और क्षमाका अमृतके समान सदा सेवन करना चाहिए।

इस बातको कभी न भूलना चाहिए कि भले कर्मोँका फल भला और बुरे कर्मोँका फल बुरा होता है, और कर्मोँके अनुसार ही प्राणीको बार-बार जन्म लेना पड़ता है या मोक्ष मिलता है।

घट-घटमेँ बसनेवाले भगवान् विष्णुका, सर्वव्यापी ईश्वरका सुमिरन सदा करना चाहिए, जो कि एक ही अद्वितीय है अर्थात् जिनके समान दूसरा कोई नहीँ और जो दुःख और पापके हरनेवाले शिवस्वरूप हैँ। जो सब पवित्र वस्तुओँसे अधिक पवित्र, जो सब मङ्गल कर्मोँके मङ्गलस्वरूप, जो सब देवताओँके देवता हैँ और जो समस्त संसारके आदि सनातन अजन्मा अविनाशी पिता हैँ।

सनातनधर्मी, आर्य्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध आदि सब हिन्दुओँको चाहिए कि अपने विशेष धर्मका पालन करते हुए एकदूसरेके साथ प्रेम और आदरसे बरतेँ।

अपने विश्वासमेँ दृढ़ता, दूसरेकी निन्दाका त्याग, मतभेदमेँ (चाहे वह धर्म-सम्बन्धी हो या लोक-सम्बन्धी) सहनशीलता और प्राणीमात्रसे मित्रता रखनी चाहिए।

धर्मके सर्वस्वको सुनो और सुनकर उसके अनुसार आचरण करो। जो काम अपनेको बुरा या दुखदायी जान पड़े उसको दूसरेके साथ नहीँ करना।

मनुष्यको चाहिए कि जिस कामको वह नहीँ चाहता है कि कोई दूसरा उसके साथ करे, उस कामको वह भी किसी दूसरेके प्रति न करे। क्योँकि वह जानता है कि यदि उसके साथ कोई ऐसी बात करता है जो उसको प्रिय नहीँ है तो उसको कैसी पीड़ा पहुँचाती है।

जो चाहता है कि मैँ जीऊँ वह कैसे दूसरेका प्राण हरनेका मन करे। जो-जो बात मनुष्य अपने लिये चाहता है वही-वही औरोँके लिये भी सोचनी चाहिए।

चाहिए कि न कोई किसीसे डरे, न किसीको डर पहुँचावे। श्रीमद्भगवद्गीताके उपदेशके अनुसार आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोँकी वृत्तिमेँ दृढ़ रहते हुए ऐसा जीवन जीवे जैसा सज्जनको जीना चाहिए।

हरएकको उचित है कि वह चाहे कि सब लोग सुखी रहेँ, सब नीरोग रहेँ, सबका भला हो। कोई दुःख न पावे। प्राणियोँके दुःखको दूर करनेमेँ तत्पर, यह दया बलवानोँकी शोभा है। धर्मके अनुसार चलनेवालोँको कभी इसका त्याग नहीँ करना चाहिए।

देशकी उन्नतिके कामोँमेँ जो पारसी, मुसलमान, ईसाई, यहूदी देशभक्त होँ उनके साथ मिलकर भी काम करना चाहिए।

यह भारतवर्ष जो हिन्दुस्थानके नामसे प्रसिद्ध है, बड़ा पवित्र देश है। धन, धर्म और सुखका देनेवाला यह देश सब देशोँसे उत्तम है।

'कहते हैँ कि देवता लोग यह गीत गाते हैँ कि वे लोग धन्य हैँ जिनका जन्म इस भारतभूमिमेँ होता है, जिसमेँ जन्म लेकर मनुष्य स्वर्गका सुख और मोक्ष दोनोँको पा सकता है।'

यह हमारी मातृ-भूमि है, यह हमारी पितृ-भूमि है। जो लोग सुजन्मा हैँ—जिनके जीवन बहुत अच्छे हुए हैँ, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि महापुरुषोँ के, महात्माओँके, आचार्योँके, ब्रह्मर्षियोँ और राजर्षियोँके, गुरुओँके, धर्मवीरोँके, शूरवीरोँके, दानवीरोँके स्वतन्त्रताके प्रेमी देशभक्तोँके उज्ज्वल कामोँकी यह कर्म-भूमि है। इस देशमेँ हमको परम भक्ति करनी चाहिए।

जिस धर्ममेँ परमात्माने गुण और कर्मके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र, ये चार वर्ण बनाए और जिसमेँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारोँ पुरुषार्थोँके

साधनमेँ सहायक, मनुष्यका जीवन पवित्र बनानेवाले ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, ये चार आश्रम स्थापित हैँ।

सब धर्मोँसे उत्तम, इसी धर्मको हिन्दूधर्म कहते हैँ। जो लोग सारे संसारका उपकार चाहते हैँ उनको उचित है कि इस धर्मकी रक्षा और इसका प्रचार करेँ।

सन्तानकी प्रार्थना।

आर्य-सन्तानमेँसे प्रत्येक युवतीको और युवाको जिनका विवाह हो गया है और जो चाहते हैँ कि उनकी सन्तान देशभक्त, वीर, धीर, विद्वान् और धर्ममेँ दृढ़ होँ, उनको प्रतिदिन स्नानके उपरान्त सूर्य्यके सामने खड़े होकर परमात्माका ध्यान कर नीचे लिखी प्रार्थना करनी चाहिए।

प्रार्थना

रवि शशि सिरजनहार प्रभु, मैँ विनवत हौँ तोहिँ।
पुत्र सूर्यसम तेजयुत जगउपकारी होहिँ॥
होय पुत्र प्रभु रामसम अथवा कृष्ण समान।
वीर धीर बुध धर्मदृढ़ जगहित करै महान॥
जो पै पुत्री होय तो सीता सती समान।
अथवा सावित्री सदृश धर्म शक्ति गुन खान॥
रक्षा होवै धर्मकी बढ़ै जातिको मान।
देश पूर्ण गौरव लहै जय भारत सन्तान॥
मैँ दुर्बल अति दीन प्रभु पै तुव शक्ति अपार।
हरहु अशुभ शुभ दृढ़ करहु विनवहुँ बारम्बार॥

जन्म-संस्कार

सन्तानका जन्म होते ही नालछेदनके पहिले हरएक बच्चेके एक-एक कानमेँ तीन-तीन बार परमात्माके सबसे उत्तम नाम 'राम' इस महामन्त्रको कहकर उसको नीचे लिखे श्लोक या दोहोँसे आशीर्वाद देना चाहिए और जबतक बच्चा स्वयम् राम-राम कहने न लगे तबतक माताको नित्य एक बार ऐसा ही करना चाहिए।

श्लोक

रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
अन्तरात्मस्वरूपेण यो हि रामः प्रकीर्त्यते॥
तस्यैवांशोऽसि जीव त्वं सच्चिदानन्दरूपिणः।
देहे निरामये दीर्घं वस धर्मे दृढ़ो भव॥

दोहा

थावर जङ्गम जीवमेँ घट-घट रमता राम।
सत-चित-आनन्द-घन प्रभू सब विधि पूरण काम॥
अंश उसीके जीव हो करो उसीसे नेह।
सदा रहो दृढ़ धर्म चिर बसो निरामय देह॥

ईश्वरका ध्यान

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी।
सर्वरहित सब उरपुर वासी॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा।
मति अनुमान निगम अस गावा॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥
आनन-रहित सकल रस भोगी।
बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहै घ्राण बिनु वास असेखा॥
अस सब भाँति अलौकिक करणी।
महिमा तासु जाइ किमि बरणी॥

विद्यारम्भ-संस्कार

शास्त्र कहते हैँ—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

गरुड़पुराणमेँ लिखा है

इहाऽमुत्र सुखक्षेममाहुर्विद्याधनं धनम्।
विद्ययाऽमलया युक्तो विमुक्तिं याति संयमी॥
विद्यया च सुखं गच्छेत् विद्यया च पराङ्गतिम्।

एक दूसरे पुराणमेँ लिखा है—

अन्त्यजा अपि यां प्राप्य मोदन्ते ग्रहराक्षसैः ।
सा विद्या केन मीयेत यस्यः कोऽपि समो न हि ॥

विद्यासे विनय होता है, विनयसे मनुष्य पात्र (योग्य) बनता है, योग्यतासे धन प्राप्त होता है, धनसे धर्म होता है और उससे सुख होता है।

गरुड़पुराणमेँ लिखा है कि विद्यारूपी धन बड़ा धन है। वह इस लोकमेँ और परलोकमेँ भी सुख और कल्याणका देनेवाला है। विमल विद्याके ही द्वारा संन्यासी मुक्ति पाता है, विद्यासे ही मनुष्य सुख पाता है और इसीके द्वारा परम गतिको पाता है। एक दूसरे पुराणमेँ लिखा है कि जिस विद्याको पाकर अन्त्यज लोग भी ग्रहराक्षसोँके अर्थात् बड़े-बड़े लोगोँके साथ सुखसे मिलते डोलते हैँ उस विद्याकी किससे तुलना की जाय। उसके बराबर कोई नहीँ। इसलिये जो लोग इस लोकमेँ धन, धर्म, सुख और सन्मान चाहते हैँ उनको उचित है कि अपने बालकोँ और बालिकाओँको विद्या अवश्य पढ़ावेँ।

विष्णुधर्मोत्तरमेँ लिखा है—

विद्या कामदुघा धेनुर्विद्या चक्षुरनुत्तमम् ।

विद्या मनवाञ्छित फलकी देनेवाली कामधेनु है और विद्या सबसे उत्तम ज्ञान देनेवाला नेत्र है।

मार्कण्डेय मुनिने लिखा है कि—

प्राप्ते तु पञ्चमे वर्षे विद्यारम्भं तु कारयेत् ।
पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं देवीं चापि सरस्वतीम् ॥

कि जब बालकका पाँचवाँ वर्ष आरम्भ हो तो विद्यागुरु परमेश्वरकी, लक्ष्मीजीकी और सरस्वतीदेवीकी पूजाकर उसको पढ़ाना प्रारम्भ करना चाहिए।

उचित है कि बालकोँको कम-से-कम पाँच वर्षसे चौदह वर्षतक पढ़ाया जाय।

देवनागरी-वर्णमाला

देवनागरी अक्षर संसारके सब अक्षरोँसे अधिक सरल और स्पष्ट हैँ। एक महीनेमेँ बालक उन अक्षरोँको सीख लेते हैँ। इन्हीँ अक्षरोँमेँ हिन्दुओँके सब धर्मशास्त्र और समस्त ग्रन्थ लिखे हुए हैँ। प्रत्येक हिन्दूको उचित है कि अपनी सन्तानको पहले इन्हीँ नागरी अक्षरोँका लिखना और पढ़ना सिखाकर तब किसी दूसरी भाषाके अक्षरोँको सिखावे।

धर्म-महिमा

विद्या रूपं धनं शौर्यं कुलीनत्वमरोगिता ।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यते ॥
तस्मात्सर्वात्मना धर्मं नित्यं तात समाचर ।
मा धर्मविमुखः प्रेत्य तमस्यन्धे पतिष्यसि ॥

धर्मसे विद्या, रूप, धन, शूरता, कुलीनता, नीरोगता, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष सब प्राप्त होता है। इसलिये, हे पुत्र! नित्य हृदयसे धर्मका आचरण करो। धर्मसे विमुख होकर अधर्म मत करो, नहीँ तो घोर नरकमेँ गिरोगे।

वेदव्यासजीका वचन है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभात् त्यजेद्धर्मं जीवितस्यापि हेतोः ।

किसी सुख या सम्पत्ति पानेकी इच्छासे, या डरसे, या लालचसे और प्राणके बचानेके लिये भी धर्मको कभी नहीँ छोड़ना चाहिए।

जो दृढ़ राखै धर्मको तेहि राखै करतार ।

जो अपने धर्ममेँ दृढ़ रहता है उसकी परमात्मा रक्षा करते हैँ।

मनुष्यका सबसे बड़ा धन धर्म है,। इसीलिये बड़े और छोटे कितने प्राणियोँने सङ्कट पड़नेपर अपने प्राण दे दिए किन्तु अपना धर्म नहीँ छोड़ा। न केवल इस लोकमेँ किन्तु परलोकमेँ भी साथ देनेवाला एक धर्म ही है। इसलिये भक्तलोग प्रार्थना करते हैँ कि—

सिर जावै तो जाय प्रभु मेरो धर्म न जाय ।

मन्त्र-संस्कार

हरएक हिन्दू सन्तानका धर्म है कि वह अपने बालक और बालिकाओँका उनका आठवाँ वर्ष प्रारम्भ होते ही किसी सद्गुरुके द्वारा मन्त्र-संस्कार करा दे।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' 'ॐ नमो नारायणाय' 'ॐ नमः शिवाय' और *'श्री रामाय नमः'*

इन मन्त्रोंके ग्रहण करनेका और जपनेका अधिकार ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालपर्यन्त सबको है। चारों वर्णोंके पुरुषों और स्त्रियोंके लिये ये मन्त्र मङ्गलकारी हैं। इन मन्त्रोंके द्वारा बालक और बालिकाको जगत्पिता परमात्माका ज्ञान करा देना माता, पिता, गुरु आदिका परम कर्त्तव्य है।

प्रातःकाल 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रके द्वारा सूर्य्यके सामने खड़े होकर ईश्वरको सूर्य्यमण्डलमें विराजमान ध्यान कर अर्घ देना चाहिए। और अर्घ देकर एकसौ आठ बार या कम-से-कम दस बार मन्त्र जपना चाहिए। सायङ्काल फिर पवित्र होकर सूर्य्यके सामने खड़े होकर ईश्वरको सूर्य्यमण्डलमें विराजमान ध्यान कर अर्घ देना चाहिए और 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रको एकसौ आठ बार या कम-से-कम दस बार जपना चाहिए।

जिनका वैदिक विधिसे उपनयन-संस्कार हुआ है उनको वैदिक विधिसे सन्ध्या करनेके उपरान्त इन मन्त्रोंके द्वारा ईश्वरका ध्यान करना चाहिए। मनुष्यके मनको पवित्र करने, पापसे छुटाने, धर्मके मार्गमें ले जाने और ईश्वरका ज्ञान और ध्यान करानेके लिये ये मन्त्र परम साधन हैं।

प्रायश्चित्त और सन्ध्या

रात्रिमें पुरुष या स्त्रीसे जो पाप या भूल हो जाय उसका प्रातःकाल उठकर नहा-धोकर पछतावा करना चाहिए और ईश्वरसे उस पाप या भूलके लिये क्षमा माँगनी चाहिए और यह सङ्कल्प करना चाहिए कि फिर पाप या भूल न होवे। इस प्रकारसे तन और मनको पवित्र कर 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रसे सर्वव्यापक और सूर्य्यमण्डलमें प्रकाशमान ईश्वरका ध्यान कर श्रद्धा और भक्तिसे जल और फूलसे अर्घ देकर मन्त्रके द्वारा उनकी उपासना करनी चाहिए।

इसी प्रकार दिनमें जो पाप या भूल बन पड़े उसका प्रायश्चित्त सायङ्काल सन्ध्याके द्वारा करना चाहिए और सब पवित्रता और मङ्गलके निधान परब्रह्मका 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रके द्वारा पूजन और ध्यान करना चाहिए।

नारायण, वासुदेव, रुद्र, विष्णु, पितामह, राम, कृष्ण, शिव, ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म, आदिदेव, महादेव, यह सब एक ही जगत्पिताके अनेक नाम हैं। इनमें भेदभाव समझना भूल है।

जो पुरुष और स्त्री ऊपर लिखी विधिसे सवेरे और साँझको मनसे, वचनसे या कायासे, भूलसे या जानकर भी जो पाप हुए हैं उनका प्रायश्चित्त करते रहते हैं उनका मन पापमें लिप्त नहीं होता और प्रतिदिन ईश्वरके ध्यानसे उनका मन पवित्र और प्रकाशमय होता जाता है। इसलिये जो अपना भला चाहता है उस प्रत्येक प्राणीको नित्य नियम और श्रद्धाके साथ ऊपर लिखी विधिसे सन्ध्या और परमात्माकी उपासना करनी चाहिए।

एकादशी-व्रत

मनुष्य अपने कपड़ेको रोज़ धोता है तथापि कई दिन पहन चुकनेके बाद जब कपड़ा अधिक मैला हो जाता है तो उसको चौथे, आठवें या पन्द्रहवें दिन साबुन या रीठेसे धोता है या धुलवाता है, और उस कपड़ेकी मैल जो नित्य धोनेपर भी बच रही है वह निकल जाती है। इसी प्रकार ऋषियोंने मनुष्यमात्रके हितके लिये प्रातःकाल और सायङ्कालकी सन्ध्या और उपासना विधिके अतिरिक्त पन्द्रहवें दिन एकादशी व्रतका विधान किया है। इस एकादशी व्रतकी बड़ी महिमा है। चौदह दिनमें जो कुछ पाप या भूल बनी हो उसके प्रायश्चित्तके लिये इस एकादशीके व्रतकी विधि कही गई है। इस तिथिको हरिवासर अर्थात् ईश्वरका दिन कहते हैं। इसका यह अभिप्राय है कि यद्यपि ईश्वरका ध्यान और पूजन प्रतिदिन करना चाहिए तथापि पन्द्रहवें दिन अपने नित्यके काम और व्यापारसे मनको खींचकर धर्मके भावसे विशेष भावित होना, पन्द्रह दिनमें जो कुछ पाप या भूल

बन गई हो उसका पछतावा करना और इस प्रकारसे उसके कालेपनसे अपने मनको मुक्त और पवित्र करना, ईश्वरके ध्यान और स्तुतिसे, मन्त्रके जपसे, कथा और उपदेशके सुननेसे, मनमेँ ज्ञान, भक्ति और धर्मका भाव दृढ़ करना यह विशेष मङ्गलका मार्ग है। एकादशी व्रत करनेका ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालपर्यन्त चारोँ वर्णोँको अधिकार है। तत्त्वसागरमेँ लिखा है—

मातेव सर्वबालानामौषधं रोगिणामिव।
रक्षार्थं सर्वलोकानां निर्मितैकादशी तिथिः॥
संसाररोगदष्टानां नराणां पापकर्मणाम्।
एकादश्युपवासेन सद्य एव सुखं भवेत्॥

जैसे सब बच्चोँके लिये माँ सहारा और हित करनेवाली है, जैसे रोगीके लिये औषधि है, वैसे ही सब प्राणियोँकी रक्षाके लिये एकादशी तिथि नियत की गई है।

संसारके रोगसे डसे हुए पाप करनेवाले प्राणियोँके लिये एकादशीका उपवास तुरन्त ही सुख और मङ्गल करनेवाला होता है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमेँ लिखा है—

विशोधनमिदं पुंसां शुष्कार्द्रस्यांहसः परम्।
तत्स्वरूपं श्रुतं तीर्थैः स्नानादप्यधिकं विदुः॥
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा राज्यपुत्र प्रसाधिनी।
सुकलत्रप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी॥

जो पाप पुराने होकर सूख गए हैं या जो अभी ओदे अर्थात् तुरन्तके किए हैं, उन सब पापोँके धोनेके लिये यह एकादशीका व्रत सबसे ऊँचा साधन है। इसके फलको कुछ लोग तीर्थस्नानसे भी अधिक बताते हैं। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक व्रत करनेवालोँको यह एकादशी स्वर्ग, मोक्ष, राज्य, पुत्र और भली स्त्रीको देनेवाली है। इसलिये प्रत्येक हिन्दू-सन्तानको उचित है कि एकादशीके दिन व्रत रहा करेँ।

उपवास करना सबके लिये आवश्यक नहीँ। बच्चोँ, बूढ़ोँ, सधवा स्त्रियोँ और रोगियोँको उपवास करना विहित नहीँ है। जिनको उपवास करनेकी शक्ति नहीँ है उनको उचित है कि दूध या फल खाकर रहेँ अथवा केवल एक समय शुद्ध भोजन कर दिन बितावेँ और यह भी न हो सके तो एकादशीके दिन मांस तो कदापि न खायेँ और पुरुष-स्त्री दोनोँ ब्रह्मचर्य्यसे रहेँ। उस दिन विशेष रूपसे ईश्वरका ध्यान और आराधन करेँ, और सायङ्काल कथा सुनेँ और ईश्वरके नाम और उसकी महिमाका कीर्त्तन करेँ।

मद्यका निषेध

बुद्धिं लिम्पति यद्द्रव्यं तद्धिमादकमुच्यते।

मनुष्यको परमात्माने सबसे बड़ी निधि बुद्धि दी है। जो वस्तु बुद्धिको मैली करती या हर लेती है उसको मादक अर्थात् नशीली वस्तु कहते हैं। मनुष्यको उचित है कि किसी प्रकारका नशीला पदार्थ कभी ग्रहण न करे। ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालपर्यन्त हिन्दू-सन्तानके लिये मदिरा पीना मना है। मनुजीसे लेकर सब ऋषियोँने लिखा है कि मदिराका पीना ब्राह्मणकी हत्याके समान महापातक है। और शिवपुराणमेँ लिखा है कि सब वर्णोँके प्राणियोँका यह धर्म है कि वे मद्यको और मद्यकी गन्धको भी बचावेँ। इसलिये प्रत्येक हिन्दू-सन्तानको उचित है कि वह स्वयं मद्यका ग्रहण न करे और अगर उसका कोई भाई मद्य ग्रहण करता हो तो अपनी सामर्थ्य भर उसको मदिरापानके पाप और दोषसे छुटानेका जतन करेँ।

व्यापार

धनाद्धर्मं ततः सुखम्

पुरुष और स्त्री सब मनुष्य-सन्तानको उचित है कि वे अपने परिश्रमसे कुछ-न-कुछ धन अर्जन करेँ। उसका सबसे अच्छा और सरल उपाय यह है कि देशका प्रत्येक प्राणी और विशेषकर प्रत्येक स्त्री थोड़ा सूत कातेँ और गाँव भरके प्राणी मिलकर इतना सूत कातेँ जितना उनके आवश्यक वस्त्र बनानेके लिये काफ़ी हो और अपने

गाँव ही में उस सूतको बुनवाकर कपड़ेको काममें लावें। इससे उनको धन और धर्म दोनोंका लाभ होगा। देशमें हाथके काते सूत और हाथके बुने कपड़ेके प्रचारसे हमारे करोड़ों भाइयों और बहनोंको पेटको अन्न और तनको वस्त्र मिलने लगेगा और कितनोंकी लाज और पत रह जायगी। इसलिये जितना ही हम देशी कपड़ेका बुनना और काममें लाना बढ़ावेंगे उतना ही हमको अपने भूखे भाइयों और बहनोंको अन्न-वस्त्रके दानका पुण्य मिलेगा। विदेशी कपड़ेके द्वारा इस समय हमारे देशका बहुत अधिक धन हर साल दूसरे देशोंको जाता है। इसको पाकर वहाँके लोग तो सुखी होते हैं, किन्तु इस देशके लोगोंकी जीवन-शक्ति घटती जाती है। इँगलैण्ड तथा और देशोंमें मनुष्यकी औसत आयु पचास वर्षके लगभग है किन्तु इस देशमें केवल तेईस वर्षके लगभग है। इन कारणोंसे प्रत्येक भारतवासीका यह कर्त्तव्य है कि वह विदेशी वस्त्रका व्यवहार और व्यापार बन्द करें और स्वदेशी वस्त्रका और उसमें भी जहाँ तक हो सके खद्दर अर्थात् हाथसे काते सूतके कपड़ेका व्यवहार बढ़ावें।

शारीरिक बल

शास्त्रमें लिखा है कि—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंके साधनका मूल कारण आरोग्य है। आरोग्य, नीरोगता, तन्दुरुस्तीके बिना इनमेंसे एकका भी साधन नहीं हो सकता। आरोग्य रखनेके लिये यह आवश्यक है कि पुरुष और स्त्री नियमके साथ उचित परिश्रम अर्थात् कसरत करें। पुरुष और स्त्री सब स्नानकर प्रातःकाल सूर्य्यनारायणके सामने खड़े होकर अपनी शक्तिके अनुसार १०, २०, ५०, १०० बार नमस्कार करके अपने मनको पवित्र और शरीरको नीरोग और बलवान कर सकते हैं।

और भी अनेक प्रकारके व्यायाम हैं। प्रत्येक स्त्री और पुरुषको उचित है कि किसी-न-किसी प्रकारका व्यायाम नित्य करें। जिसमें धर्मके साधन, अर्थके कमाने, सुखके भोगने और अन्तमें परमात्माके प्राप्त करनेके लिये उसकी काया प्रबल और मन निर्मल बना रहे। जो प्राणी नित्य व्यायाम करते हैं उनको रोग नहीं सताता। यदि किसी संयोगसे आ भी जाता है तो बिना बहुत क्लेश दिए उनको छोड़कर चला जाता है।

समस्त हिन्दू-सन्तानके लिये शास्त्रके अनुसार मैंने सङ्क्षेपमें हिन्दू धर्मका कुछ उपदेश लिख दिया है। जो प्राणी श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इस उपदेशको बर्तेगा वह इस लोकमें सुख और मान पावेगा और परलोकमें परम पदको पहुँचेगा।

श्री विश्वनाथः प्रसीदतु।

माघ कृष्ण अमावास्या,
सं० १९९०। } मदनमोहन मालवीय।

भगवान् कृष्णकी महिमा

सच्चिदानन्दरूपाय स्थित्युत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयन्नुमः ॥

भले लोगोंको शरणदेनेवाले, सत्, चित् और आनन्द स्वरूप संसारके सृजन, पालन और संहारके कारण और आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीनों तापोंको दूर करनेवाले भगवान् कृष्णको हम लोग प्रणाम करते हैं।

इस बातको मैं कई बार कह चुका हूँ कि मनुष्य जातिके इतिहासमें जितने पुरुषोंकी कथा संसारमें विदित है, उनमें सबसे बड़े भगवान् कृष्ण हुए हैं । मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियोंका जितना ऊँचा विकास उनमें हुआ, उतना किसी दूसरे पुरुषमें नहीं हुआ। जैसे विमल ज्ञान और जैसी सात्त्विक नीतिका उन्होंने उपदेश किया, वैसा किसी औरने नहीं किया । उनकी महिमाके विषयमें मैंने अपना सब अभिप्राय दो श्लोकोंमें लिख दिया है—

सत्यव्रतौ महात्मानौ भीष्मव्यासौ सुविश्रुतौ ।
उभाभ्याम्पूजितः कृष्णः साक्षाद्विष्णुरिति ह्यलम् ॥

माहात्म्यं वासुदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः ।
तमेव शरणं गच्छ यदिश्रेयोऽभिवाञ्छति ॥

अर्थात् जिन भगवान् कृष्णने अपने प्रकट होनेके समयसे अन्तर्धान होनेके समयतक साधुओंकी रक्षा, दुष्टोंका दमन, पाप और धर्मकी स्थापना आदि अनेक अद्भुत कर्म किए, उनका माहात्म्य केवल इसी बातसे भली भाँति विदित है कि महाभारतके रचयिता श्रीवेदव्यास और भीष्मपितामह, जिनका सत्यका व्रत प्रसिद्ध है और जो दोनों कृष्णके समकालीन थे और इसलिये जो उनके गुणोंसे भलीभाँति परिचित थे, दोनों ही महात्माओंने भगवान् कृष्णको साक्षात् विष्णु मानकर पूजा है । जितना ही मैं कृष्ण-चरित्रका मनन करता हूँ, उतना ही यह दृढ़ विश्वास होता जाता है और मेरे हृदयमें यही उत्कण्ठा होती है कि किस प्रकारसे भगवान्के गुणों और उनके पवित्र उपदेशोंका ज्ञान समस्त प्राणियोंमें फैला दूँ। जैसे मनुष्य कितनी ही बार अमृतका पान कर फिर अमृतके पीनेके लिये ही इच्छा करता है, वैसे ही भगवान् कृष्णके दिव्य चरित्रको बार-बार स्मरण करनेपर भी फिर उसके रसका जाननेवाला भक्त उनके नाम और गुणोंके कीर्त्तन करनेसे तृप्त नहीं होता । संसारके लिये यह मङ्गलकी बात है कि भगवान्के दिव्य चरित्रका और उनके अमृतमय उपदेशका ज्ञान समस्त संसारमें फैलाया जाय ।

इस समय मैं भगवान्की अलौकिक बाल-लीलाकी चर्चा न करूँगा । वह तो युग-युगान्तरसे करोड़ों प्राणियोंके कण्ठसे गाई गई है । आज भी अनगिनत प्राणियोंके कण्ठोंसे निकलकर मनुष्योंका अनन्त उपकार करते हैं ।

आज मैं कृष्ण-चरित्रके कुछ प्रधानप्रधान रूप और उपदेशोंके प्रति पाठकोंका ध्यान खींचूँगा । परन्तु कृष्ण-चरित्रके पढ़नेके पूर्व हमको भीष्मका चरित्र पढ़ना आवश्यक है । भीष्म, व्यास और कृष्ण ऐसे तीन महापुरुष एक समयमें कहीं दूसरी जगह प्रगट नहीं हुए।

भीष्मकी महिमाका वर्णन भगवान् कृष्णने स्वयं अपने मुखसे बड़े प्रेम और सम्मानके साथ किया है। शान्ति-पर्वमें जब भगवान् कृष्णने भीष्मसे कहा कि आप युधिष्ठिरको धर्मका उपदेश करें, तो भीष्म पितामहने कहा कि आपके रहते मैं क्या उपदेश करूँ? और भीष्मने पूछा कि—

"मनुष्येषु मनुष्येन्द्र न दृष्टो न च मे श्रुतः।
भवतो वा गुणैर्युक्तः पृथिव्यां पुरुषः क्वचित्॥
त्वं हि सर्वगुणैः राजन् देवानप्यतिरिच्यसे।
तपसा हि भवाञ्छक्तः स्रष्टुं लोकाश्चराचरान्॥
किं पुनश्चात्मनो लोकानुत्तमानुत्तमैर्गुणैः।"

इसपर भगवान् कृष्णने कहा कि हे महाबाहो! मैँने इसीलिये आपमेँ अपनी विपुल बुद्धि रख दी है, जिससे आप ही धर्मका उपदेश करेँ। जबतक पृथिवी रहेगी, तबतक आपकी कीर्त्ति अटल रहेगी। उन भीष्मपितामहका सत्यका प्रेम प्रसिद्ध है। उन्होँने अपनी माता और पिताको जो वचन दिया था, उसका जन्म भर प्रतिपालन किया। उन भीष्मपितामहने अखण्ड ब्रह्मचर्य्य-व्रतका पालन करके जगत्मेँ अपूर्व कीर्त्ति पाई है। उसी स्थलपर भीष्मके प्रति भगवान् कृष्णने कहा—

त्वं हि धर्ममयो निधिः सर्वभूतहिते रतः।
स्त्रीसहस्रैः परिवृतं ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थितम्॥

उन भीष्मपितामहने कैसी कैसी कसौटीके समयमेँ कृष्णको साक्षात् भगवान् कहकर पूजा है।

महाभारतके सभा-पर्वमेँ सैँतीसवेँ अध्यायमेँ वैशम्पायनजी कहते हैँ कि 'युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञके प्रारम्भमेँ, जब सब देवर्षि, महर्षि, राजर्षि, आचार्य्य, ऋत्विक्, स्नातक और मानके योग्य अनन्त पुरुषोँकी सभामेँ युधिष्ठिरने पूछा कि सबसे पहले किसकी पूजा की जाय, उस समय सनातनधर्मके स्वरूप भीष्मपितामहने विचारकर कहा कि संसारमेँ सबसे अधिक पूजाके योग्य कृष्ण हैँ। शिशुपालने इस बातका विरोध किया। उस समय भीष्मपितामहने जो कृष्णकी महिमा कही है, वह सभा-पर्वके अड़तीसवेँ अध्यायमेँ वर्णित है। उसको पढ़नेसे ही उनका महत्त्व ध्यानमेँ आ सकता है। भीष्मपितामहने कहा है कि उन्होँने प्राण छोड़नेके समय भगवान् कृष्णका ध्यान किया और भगवान् उनके सामने आकर खड़े हो गए। उस मरणके समय जब कि मनुष्यको अनेक प्रकारकी सांसारिक चिन्ताएँ व्याकुल करती हैँ, उस समय पितामहने भगवान्की वह स्तुति की जिसकी बराबरीका उदाहरण आजतक नहीँ मिलता।

भीष्मपितामहने अपने विश्वास और सचाईको इसीसे प्रकट किया है कि भगवान् कृष्णके सामने आते ही उन्होँने वासुदेव कृष्णकी ही स्तुति की।

आरिराधयितुः कृष्णं वाचं जिगदिषामियाम्।
तया व्यास समासिन्या प्रीयताम्पुरुषोत्तम॥

फिर अन्तमेँ कहा—

इति विद्यातपोयोनिरयोनिर्विष्णुरीडितः।
वाग्यज्ञेनार्च्चितो देवः प्रीयताम्मे जनार्द्दन॥

और वैशम्पायनजी कहते हैँ—

एतावदुक्त्वा वचनं भीष्मस्तद्गतमानसः।
नम इत्येव कृष्णाय प्रणाममकरोत्तदा।
भवतु मे कृष्णपदं शरणं जरामरणहरणम्॥

अब कृष्णका प्रथमगुण जिसपर मैँ पाठकोँका ध्यान खीचूँगा, वह उनकी धर्ममेँ दृढ़ता है। स्वयं भगवान्ने उद्योग-पर्वमेँ कहा है—

नाहं कामान्न संरम्भान्नद्वेषान्नार्थकारणात्।
न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथञ्चन॥

कि मैँ कामसे, क्रोधसे, द्वेषसे, धनके कारण, हेतुवादवश या लालचसे धर्मको कभी नहीँ छोड़ सकता।

जन्मके समय परीक्षित निष्प्राण बालक हुआ था, उसको भगवान् कृष्णने अपने योगबलसे जिला दिया था। उस समयका भगवान्का वचन है कि जैसे सत्य और धर्म मुझमेँ प्रतिष्ठित रहते हैँ अर्थात् मैँ कभी सत्य और धर्मके विरुद्ध नहीँ चलता, यदि यह बात सत्य है तो यह अभिमन्युका मरा हुआ बालक जी उठे। इस धर्मको कृष्ण भगवान् सबसे ऊपर मानते थे। इस बातका यह भी प्रमाण है कि जब छः महीनेकी तपस्याके उपरान्त शिवजीने भगवान् कृष्णको दर्शन दिया और कहा कि इच्छाके अनुसार वरदान माँगो, तो पहला वरदान कृष्णने 'धर्मे दृढत्वं' अर्थात् सदा धर्ममेँ दृढ़ताका वरदान माँगा।

दूसरा गुण भगवान्का सत्य-प्रेम है। द्रौपदीके उत्तरमेँ भगवान्ने कहा है—

एष ह्येषां समस्तानां तेजोबलपराक्रमैः।
मध्ये तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः॥
असूर्य्यमिव सूर्य्येण निर्वात इव वायुना।
भासितं ह्लादितञ्चैव कृष्णेनेदं सदो हि नः॥

फिर आगे कहा था—

पूजितायाञ्च गोविन्दे हेतूद्वावपि संस्थितौ।
वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलञ्चाप्यधिकं तथा॥
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥

इस प्रकार उन्होँने समझाया कि हमारे ही लिये कृष्ण सबसे अधिक पूजाके योग्य नहीँ हैँ बल्कि ये महापुरुष तो तीनोँ लोकोँसे पूजा पाने योग्य हैँ। मैँने बहुतसे ज्ञान-वृद्ध पुरुषोँकी सेवा की है और मैँने उनको इकट्ठा होकर श्रीकृष्णके बहुतसे गुणोँको वर्णन करते सुना है और कृष्णने जन्मसे ही जो-जो अद्भुत कार्य्य किए हैँ, उनको भी मैँने बहुत बार लोगोँको कहते सुना है। हे शिशुपाल! हम कृष्णकी इसलिये पूजा करते हैँ कि वे पृथ्वीपर सब प्राणियोँको सुख पहुँचानेवाले हैँ और उनके यशको, उनकी शूरवीरताको और उनकी जयको समझ करके सत्पुरुषोँने उनको पूजा है, इसलिये हम उनकी पूजा करते हैँ। ब्राह्मणोँमेँ जिसका ज्ञान अधिक हो उसका मान अधिक होता है, क्षत्रियोँमेँ जिसका बल अधिक हो, वैश्योँमेँ जो धन-धान्यसे सम्पन्न हो और शूद्रोँका केवल उनके आचरणसे मान होता है। कृष्णके पूजनीय होनेके दोनोँ ही कारण हैँ, वेद-वेदाङ्गका ज्ञान और सबसे अधिक बल। संसारमेँ ऐसा कौन है जो कृष्णके समान गुण-सम्पन्न हो। इनमेँ दानशीलता है, निपुणता है, शास्त्रका ज्ञान है, बल है, नम्रता है, यश है, उत्तम बुद्धि है, विनय है, लक्ष्मी है, धैर्य्य है, सन्तोष है, हृष्टि-पुष्टि है। ये सब गुण सदा केशवमेँ पाए जाते हैँ। ये आचार्य्य, पिता, गुरु, अर्घ पानेके योग्य, पूजे हुए और पूजाके योग्य, प्रजा-पालक और लोक-प्रिय हैँ। इसलिये हमने इनको पूजाके योग्य माना है।

इसी बातको धर्मराज युधिष्ठिरने भी कहा था—

यो वै कामान्न भयान्न लोभान्नान्यकारणात्।
अन्यायमनुवर्त्तेत स्थिरबुद्धिरलोलुपः॥
धर्मज्ञो धृतिमान्प्राज्ञः सर्वभूतेषु केशवः।
ईश्वरः सर्वभूतानां देवदेवः सनातनः॥

भीष्मपितामहके इस विश्वासकी दृढ़ता और सचाईकी कसौटीमेँ उत्साह देनेके लिये उनके साथी बने। जब महाभारतमेँ दोनोँ दलोँकी सेनाएँ आमने-सामने खड़ी हो गईँ और सम्बन्धियोँ और मित्रोँको लड़नेके लिये और मरनेके लिये तैयार देखकर अर्जुनके मनमेँ विषाद हुआ कि लड़ाई न लड़ूँ, तब भगवान् कृष्णने उनको यह ऊँचा उपदेश दिया जो भगवद्गीताके नामसे जगत्को पावन कर रहा है। यह उसी उपदेशका फल था कि अर्जुनके हृदयका सब सन्देह मिट गया और वे लड़नेके लिये खड़े हो गए और उन्होँने विजय प्राप्त की। अर्जुन और कृष्णके इस सम्बन्धको और उसके लोकोत्तम फलको भगवान् वेदव्यासने गीताके नीचे लिखे श्लोकमेँ कूजेमेँ मिश्रीके समान भर दिया है—

"यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥"

जहाँ योगेश्वर कृष्ण होँ, जहाँ गाण्डीवधारी अर्जुन होँ, जहाँ मस्तिष्क-बल, हृदय-बल और बाहु-बल एकत्र होँ—वहाँ लक्ष्मी है, वहाँ विजय है, वहाँ विभूति है और निश्चित नीति है।

ये कृष्ण प्राणी-प्राणीके हृदयमेँ बैठे हुए हैँ। स्वयं भगवान्का वचन है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

हे अर्जुन! ईश्वर सब प्राणियोँके हृदयमेँ बैठा है। इस बातको स्मरण रखते हुए कि ईश्वर हृदयमेँ बैठा हुआ है और गाण्डीवधारी अर्जुनके समान बाहुबलका प्रयोग करते हुए, जो प्राणी धर्म-युद्ध उपस्थित होनेपर क्रोध और अमर्षको छोड़कर युद्ध करेगा, वह अवश्य विजय पावेगा।

भगवान् कृष्णमेँ भीष्मपितामहकी कैसी भक्ति थी, यह भीष्मस्तवराजसे विदित है, जिसके द्वारा भीष्मने

मरनेके समय भगवान् कृष्णकी स्तुति की थी और जो स्तोत्रोंमें एक अति उत्तम स्तोत्र है। उस स्तोत्रमेंसे मैं केवल दो श्लोक लिखकर इस लेखको समाप्त करता हूँ।

अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम्।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः॥

तीसीके फूलके समान जिसका वर्ण है, जो पीताम्बरको धारण किए हुए हैं, ऐसे अच्युत गोविन्दको जो नमस्कार करते हैं, उनको किसी प्रकारका भय नहीं रहता। जो ब्रह्मण्यदेव हैं और गौ और ब्राह्मणके हितकी रक्षा और उपकार करनेवाले हैं और सारे जगत्के प्राणियोंका हित करनेवाले हैं, ऐसे कृष्णको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

कृष्णने स्वयं उद्योगपर्वमें कहा है—

चलेद्धि हिमवाञ्छैलो मेदिनी शतधा भवेत्।
द्यौः पतेत्सनक्षत्रा न मे मोघं वचो भवेत्॥

हिमवान् पर्वत चल जाय तो चल जाय, पृथ्वी सौ टूक हो जाय तो हो जाय, आकाश नक्षत्रोंके साथ गिरे तो गिरे, परन्तु मेरा वचन निष्फल नहीं हो सकता। इसलिये उद्योग-पर्वमें अर्जुनने कहा है—

यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः॥

जहाँ सत्य है, जहाँ धर्म है, जहाँ लज्जा है, जहाँ नम्रता है, वहाँ गोविन्द हैं और जहाँ गोविन्द हैं वहीं विजय है।

एक तीसरा गुण भगवान्‌का जिसका मैं पाठकोंको स्मरण कराना चाहता हूँ, वह अक्रोध है। वह क्रोधके वश कभी नहीं आते थे। उद्योग-पर्वमें लिखा है—

सत्कृतोऽसत्कृतो वापि न क्रुध्येत जनार्दनः।
नालमेवमवज्ञातुं नावज्ञेयो हि केशवः॥

उनका कोई सत्कार करे या न करे, कृष्ण कभी क्रोध नहीं करते। उनका अनादर कोई नहीं कर सकता। उनका अनादर करना सम्भव ही नहीं।

कृष्णका चतुर्थ गुण, उनका असीम धैर्य्य था। किसी अवस्थामें भी कृष्ण घबराए नहीं। कितने ही शत्रुओंके बीचमें क्यों न हों, कैसा ही सङ्कट क्यों न दिखाई पड़ता हो, उनका धैर्य्य कभी नहीं डिगता था। तभी अर्जुनने कहा था—

अनन्ततेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः।
पुरुषः सनातनतयो यतः कृष्णस्ततो जयः॥

कृष्णके तेजका वारापार नहीं था। कितने ही शत्रुओंसे वे घिरे हों, उसके कारण उनके चित्तमें कभी घबराहट नहीं होती थी। वे सनातन पुरुष थे—परमात्माके रूप थे। जहाँ कृष्ण थे—वहाँ विजय निश्चित थी। इस छोटे लेखमें भगवान् कृष्णके अनन्त गुणोंका वर्णन करना सम्भव नहीं है, इसलिये इस प्रयासको मैं यहीं समाप्त करता हूँ।

कृष्णाष्टमी सं० १९९२।
(सनातनधर्मसे)

सनातनधर्म

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति धर्मेण पापमुपनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्माद्धर्म्मम्परमं वदन्ति ।

उपनिषद् कहते हैं कि सारा जगत् धर्मके मूलपर स्थित है। इसीलिये लोकमें लोग उसीके पास जाते हैं जो धर्मिष्ठ है, धर्मसे पापको दूर करते हैं, धर्ममें सब प्रतिष्ठित है, इसलिये धर्मको सबसे बड़ा कहते हैं। दूसरे स्थानमें भी लिखा है—

विद्या रूपं धनं शौर्य्यं कुलीनत्वमरोगिता ।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यते ॥

विद्या, रूप, धन, शूरवीरता, कुलीनता, नीरोगता, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष, ये सब धर्मसे प्राप्त होते हैं।

सनातनधर्म पृथ्वीपर सबसे पुराना और पुनीत धर्म है। यह वेद, स्मृति और पुराणसे प्रतिपादित है। संसारके सब धर्मोंसे यह इस बातमें विशिष्ट है कि यह सिखाता है कि इस जगत्का सृजन, पालन और संहार करनेवाला आदि, सनातन, अज, अविनाशी, सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप, पूर्ण प्रकाशमय परब्रह्म परमात्मा है, और यह कि यह परमात्मा मनुष्यसे लेकर सिंह, हाथी, घोड़े, गौ, हरिन आदि सब थैलीसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंमें, अण्डोंसे उत्पन्न सब पखेरुओंमें, पृथ्वी फोड़कर उगनेवाले सब वृक्षोंमें और पसीने और मैलसे उत्पन्न होनेवाले सब कीट-पतङ्गोंमें समान रूपसे बस रहा है। इसी तत्त्वके कारण—

एष धर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा ।
ब्रह्मचर्य्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा ।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत्सनातनम् ॥

यह धर्म बड़े-बड़े गुणोंका समूह है। दान, जीवमात्रपर दया, ब्रह्मचर्य्य, सत्य, दयालुता, धैर्य्य और क्षमा, इन गुणोंका योग सनातनधर्मका सनातन मूल है। इन गुणोंके कारण भी सनातनधर्म अन्य धर्मोंसे विशिष्ट है।

सनातनधर्मकी दूसरी विशेषता वर्ण और आश्रमका विभाग है। जैसा कि भगवान् कृष्णने अपने श्रीमुखसे कहा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार वर्णोंको गुण और कर्मके विभागसे रचा है। गुणमें जन्म भी अन्तर्गत है। इसलिये गुण-कर्मके विचारमें जन्म, अन्य गुण और कर्म, तीनोंका समावेश हो जाता है। जैसे विद्या और तप ब्राह्मणकी ब्राह्मणताके आवश्यक अङ्ग हैं तथापि पूर्ण ब्राह्मणत्वकी प्राप्तिके लिये—

विद्या तपश्च योनिश्च त्रयं ब्राह्मणकारणम् ।

विद्या, तप और ब्राह्मण-माता-पितासे जन्म, ये तीनों आवश्यक हैं। ब्राह्मणोंके छः धर्म हैं। अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह। इनमेंसे तीन—अध्ययन, यजन और दान तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य तीनोंके लिये समान हैं। वेदका पढ़ाना, यज्ञ करना और दान लेना, ये तीन विशेषकर ब्राह्मणोंके ही कर्म हैं। तथापि अवस्था विशेषमें क्षत्रिय और वैश्य भी वेद पढ़ा सकते हैं। सामान्यतया इन तीन विशेष कर्मोंके करनेका अधिकार उन्हीं ब्राह्मणोंको होता है जो न केवल विद्या और तपसे युक्त हैं बल्कि जो जन्मसे ब्राह्मण हैं।

सामान्य रीतिसे धर्मग्रन्थोंमें चारों वर्णोंके गुण अलग-अलग वर्णित हैं। महाभारतमें शान्तिपर्वमें वर्णोंके लक्षण अलग-अलग इस प्रकार लिखे हैं—

जातिकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः ।
वेदाध्ययनसम्पन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः ॥
शौचाचारस्थितः सम्यग् विघसाशी गुरुप्रियः ।
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥
क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययन सङ्गतः ।
दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥
वाणिज्या पशुरक्षा च कृष्यादान रतिः शुचिः ।
वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥
सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचि ।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ॥

और इसके अन्तमें लिखा है—

शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः ।
सानुक्रोशश्च भूतेषु तद्द्वि जातिषु लक्षणम् ॥

सदा शौचसे युक्त रहना (काया और मनको शुद्ध रखना और शुद्ध भोजन करना), सदाचारका पालन करना, सब प्राणियोंपर दया रखना, ये द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य) के लक्षण हैं ।

इसीके साथ महाभारतके वनपर्वमें लिखा है—

वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा ।
तथापकर्षं पापेन इति शास्त्रनिदर्शनम् ॥

मनुष्य पुण्य-कर्मोंके करनेसे वर्णमें ऊपर उठ जाता है और नीच कर्म करनेसे नीचे गिर जाता है, यह शास्त्र कहता है ।

यह भी वहीं लिखा है—

शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान्ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात्प्रत्यवरो भवेत् ॥

शूद्र भी सुशील अर्थात् पवित्र चरित्रयुक्त और गुणवान् हो तो वह ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण भी अपना धर्म, कर्म छोड़ दे या उससे रहित हो तो वह शूद्रसे भी नीचे गिर जाता है।

शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥

शूद्रमें जो ब्राह्मणके गुण हों और ब्राह्मणमें वे गुण न हों तो न वह शूद्र शूद्र है और न वह ब्राह्मण ब्राह्मण ।

युधिष्ठिर का वचन है—

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणस्मृतः ।
यत्रैतन्न भवेत्सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥

हे नागेन्द्र ! जिसमें सत्य, दान, क्षमा, शील, अहिंसा, तप, दया दिखाई दें, उसको ब्राह्मण कहते हैं ।

जहाँ अच्छा शील-स्वभाव दिखाई दे उसको ब्राह्मण कहना, जहाँ ये न दिखाई दें उसको शूद्र कहना चाहिए ।

श्रीमद्भागवत्में भी सातवें स्कन्धमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके अलग-अलग गुणोंका वर्णन कर नारदजीने कहा—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

अर्थात् जिस पुरुषको जो वर्णका प्रकट करनेवाला लक्षण कहा गया है, जहाँ दूसरेमें भी वह लक्षण दिखाई दे, तो उसको उसी गुणवाले वर्णके नामसे बताना चाहिए ।

इन वचनोंसे स्पष्ट है कि यदि जन्मसे ब्राह्मण होनेवाला भी अपने धर्म-कर्मसे रहित हो जाय या कुकर्म करने लगे, तो वह शूद्रसे भी नीचे गिर जाता है। और नीच-से-नीच शूद्र भी यदि अच्छे आचारोंको ग्रहण करे और ऊँचा पवित्र जीवन व्यतीत करने लगे, तो वह भी ब्राह्मणके समान मान पानेके योग्य हो जाता है ।

इसके अतिरिक्त यह प्रसिद्ध है कि भक्ति नीचसे-नीच प्राणीको भी ऊपर उठा देती है और भगवान्का प्रीति-पात्र बना देती है। उस भक्तिकी यह महिमा है कि चाण्डाल भी भगवान्का नाम जपनेसे ब्राह्मणके समान आदरके योग्य हो जाता है। उसी भक्तिका साधन मन्त्र-दीक्षा की विधि है। जैसा वैष्णव-तन्त्रमें लिखा है—

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः ।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥

जैसे काँसेपर रसका प्रयोग करनेसे वह सोनेके समान चमकने लगता है, वैसेही मन्त्र-दीक्षाके लेनेसे मनुष्य द्विजत्वको प्राप्त करता है अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके समान आदरके योग्य हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीँ है कि वह शूद्र इस योग्य हो जाता है कि उससे रोटी-बेटीका सम्बन्ध करेँ या उसको वेद पढ़ाने या यज्ञ करानेको निमन्त्रित करेँ। इसका यह अर्थ है कि सामान्य शूद्र क्या चाण्डालमेँ भी यदि विद्या, ज्ञान, शौच, आचार आदि द्विजोँके गुण पाए जावेँ तो ज्ञानके क्षेत्रमेँ और सामान्य सामाजिक व्यवहारमेँ द्विज लोग उसकी विद्या, ज्ञान, सदाचारके अनुरूप उसका आदर करेँ।

मेरा विश्वास है कि सनातनधर्मके तत्त्वको जाननेवाले सब विद्वान् ऊपर लिखी व्याख्याको धर्मानुकूल मानेँगे। यदि यह धर्मानुकूल नहीँ है तो मैँ यह प्रार्थना करता हूँ कि निष्कल्मष, धर्मज्ञ, धर्मशील विद्वान् हिन्दू-जातिपर और विशेषकर सनातनधर्मके अनुयायियोँपर अनुग्रह करके यह बतावेँ कि उसमेँ क्या दोष है। मेरा अभिप्राय यह है कि जो सत्य और धर्मका मार्ग है वही संसारको बताया जाय। और यदि ऊपर लिखे विचार शास्त्रके अनुकूल हैँ तो उन्हीँके अनुसार अछूतोँकी आर्थिक दशा सुधारकर सदाचार सिखाकर और उनको मन्त्र-दीक्षा देकर उनका उद्धार करना हमारा धर्म है। इसाई, मुसलमान जिन अछूतोँको अपने धर्ममेँ मिलाते हैँ, उनको अपने समाजमेँ बराबर स्थान देते हैँ। किन्तु अछूत सनातनधर्म समाजके अङ्ग हैँ। इनकी उन्नति करना, इनके दुःख, दारिद्र्यको दूर करनेका यत्न करना, इनको सामान्य और धार्मिक शिक्षा देना और समाजके दूसरे अङ्गोँके समान इनकी रक्षा करना और इनको आगे बढ़ाना हमारा अवश्य कर्त्तव्य है। इससे हमारे धर्मकी रक्षा और वृद्धि होगी और धर्मको किसी प्रकारकी हानि नहीँ पहुँचेगी। हिन्दू-जातिका इसीमेँ भला होगा। ऐसे ही मार्गके अवलम्बन करनेसे सनातनधर्मकी महिमा पूर्ण रीतिसे स्थापित होगी। इस प्रकार धर्म-बुद्धिसे धर्मके प्रश्नोँका निर्णय करनेसे और उनके अनुसार चलनेसे समाजमेँ धार्मिक एकता और शक्ति स्थापित होगी।

यदि अन्य धर्मोँके अनुयायियोँका विचार भी न किया जाय तो भी संसारमेँ छब्बीस-सत्ताइस करोड़ प्राणी इस सनातनधर्मके अनुयायी हैँ। इतनी विशाल जनसंख्यामेँ सनातनधर्मके उपदेशोँका प्रचार करना, उस धर्ममेँ उनकी श्रद्धा और भक्ति दृढ़ करना, यह सनातनधर्मानुयायियोँका परम कर्त्तव्य है।

('सनातनधर्म'से उद्धृत)

राष्ट्रभाषा

(कचहरियोँ तथा प्रारम्भिक पाठशालाओँमेँ फ़ारसी लिपिके स्थानपर देवनागरी लिपिका प्रचार करानेके लिये संयुक्तप्रान्तके गवर्नर सर एण्टोनी मेकडोनलकी सेवामें भेजनेके लिये पूज्य मालवीयजीने जो (मेमोरियल) अभ्यर्थनालेख लिखा था उसका सारांश बा. श्यामसुन्दरदासजीने अनुवाद किया था तथा नागरी प्रचारिणी सभाने प्रकाशित किया था। यह अभ्यर्थनालेख २ मार्च सन् १८८६ ई० को दिनके १२ बजे गवर्नमेण्ट हाउस प्रयागमें पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधके गवर्नर सर एण्टोनी मेकडोनलकी सेवामें उपस्थित किया गया था।

—सम्पादक।

पश्चिमोत्तरप्रदेश व अवधमें अदालती लिपि तथा प्रारम्भिक शिक्षा।

मुसलमानोँके भारतवर्षमेँ आनेके समय भारतकी देश-भाषा हिन्दी और लिपि नागरी तथा उसके रूपान्तर थे, और उसीके द्वारा सब काम चलता था। यद्यपि भारतवासी फ़ारसी नहीँ जानते थे फिर भी मुसलमानी राज्यके प्रारम्भसे लेकर अकबरके राज्यके मध्यतक माल-विभागमेँ हिन्दीका और दीवानी तथा फ़ौजदारी कचहरियोँमेँ फ़ारसी भाषाका प्रयोग होता था। बृटिश राज्यकी स्थापनाके बाद कुछ समय तक इसी भाषासे काम चला, पर थोड़े ही दिन बीतनेपर यह सोचा गया कि सारी अदालतोँ और सारे सरकारी दफ़्तरोँमेँ अंग्रेज़ी भाषाका प्रयोग किया जाय, परन्तु यह प्रस्ताव बृटिश-राज्यके नायकोँको रोचक न हुआ। यहाँतक कि कोर्ट औफ़ डाइरेक्टर्सने अपने २६ सितम्बर सन् १८३० ई० के आज्ञापत्रमेँ यह स्पष्ट कह दिया कि "यहाँके निवासियोँको जजकी भाषा सीखनेके बदले जजको ही भारतवासियोँकी भाषा सीखना बहुत सुगम होगा। अतएव हम लोगोँकी सम्मति है कि न्यायालयोँका समस्त लिखित व्यवहार उस स्थानकी भाषामेँ ही हो।"

किन्तु इस आदेशका पालन १८३७ ई० के पूर्व न हो सका। इसी बीच इस विषयपर बड़ा विवाद भी चला। कुछ लोगोँकी यह सम्मति थी कि अंग्रेज़ीका ही प्रयोग हो, कुछ यह चाहते थे कि फ़ारसीके स्थानपर यहाँकी देशभाषाका ही प्रयोग हो परन्तु लिपि रोमन हो। सरकारको इन दोनोँमेँसे कोई भी विचार पसन्द न आया। सरकारने यह सोचा कि विदेशी भाषा और लिपिके प्रचारसे अदालतोँका काम ठीक-ठीक और उत्तम रीतिसे न चल सकेगा और लोगोँको न्याय पानेमेँ कठिनता होगी, इसलिये कोर्ट औफ़ डाइरेक्टर्सकी सम्मतिके अनुसार यह निश्चय किया कि कचहरी और मालसम्बन्धी सारा काम फ़ारसीके बदले यहाँकी देश-भाषामेँ हुआ करे और अंग्रेज़ीका प्रयोग सरकारी अफ़सर लोग केवल ऐसी चिट्ठी-पत्रियोँमेँ किया करेँ जिनका सर्वसाधारणसे कोई सम्बन्ध न हो। सदर बोर्ड औफ़ रेवेन्यूके मन्त्रीने तारीख़ ३० मई सन् १८३७ ई० को इस आशयका आज्ञापत्र निकाला। बङ्गाल सरकारके मन्त्रीने जो पत्र (नं० ६१४) ३० जून सन् १८३७ ई० को सदर बोर्ड औफ़ रेवेन्यूके नाम लिखा था उसमेँ इस आज्ञाको और भी स्पष्ट कर दिया।

उसमें लिखा था कि "श्रीमान् गवर्नर महोदय इस बातको स्पष्ट रूपसे समझा देना चाहते हैं कि केवल योरोपीय अफ़सरोंके आपसके पत्र-व्यवहारको छोड़कर (जो अंग्रेज़ीमें हुआ करें) प्रत्येक विभागमें सरकारी काम देश-भाषामें हो। इस आज्ञाके विरोधमें जो क़ानून था उसे रद्द करनेके लिये एक बिल श्रीमान् वायसरायकी व्यवस्थापक सभामें उपस्थित किया गया जिससे फ़ारसीके स्थानपर देश-भाषाके प्रचारकी आज्ञा स्थिर हुई। इस विधानके अनुसार बङ्गालमें बङ्गाली तथा उड़ीसामें उड़िया भाषाका प्रचार हुआ। हिन्दुस्तानके अन्तर्गत विहार, पश्चिमोत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेशका कुछ भाग है। वहाँकी भाषा हिन्दी थी जो नागरी लिपि या उसके अन्य रूपोंमें लिखी जाती है। परन्तु इस भाषाके बदले इन प्रान्तोंकी कचहरियोंमें उर्दू-भाषाका प्रचार हुआ। इसका कारण यह था कि यूरोपीय लेखकोंने उर्दू-भाषाको हिन्दुस्तानी नाम दे दिया जिससे यह समझा गया कि बङ्गालकी भाषा बङ्गाली तथा गुजरातकी गुजराती है, वैसे ही हिन्दुस्तानकी भाषा भी हिन्दुस्तानी है। इस भूलसे हिन्दुस्तानकी कचहरियोंमें उर्दूका प्रचार हुआ। इस भूलका संशोधन सन् १८८१ ई० में विहारमें हुआ। तबसे वहाँ नागरी या कैथी अक्षरोंका प्रचार है। उसी वर्ष मध्यप्रदेशमें भी यह भूल सुधारी गई और वहाँ हिन्दी-भाषा और नागरी अक्षरोंका प्रचार हुआ। पश्चिमोत्तर प्रदेशमें अभी इसका सुधारना रह गया है और बहुतसे कारणोंसे अब इस कार्य्यमें विलम्ब करना आवश्यक नहीं जान पड़ता।

यह कहा जा चुका है कि पश्चिमोत्तर प्रदेशकी भाषा हिन्दी थी और अब भी है और यह नागरी लिपिमें लिखी जाती है। पश्चिमोत्तर प्रदेशकी सरकारके मन्त्रीने ता० १७ अगस्त सन् १८४४ ई० को (पत्रसंख्या सातसौ पचास) में आगरा कौलेजके प्रिन्सिपलको लिखा था कि यहाँकी देशभाषा हिन्दी है। पश्चिमोत्तर प्रदेशके स्कूलोंके डाइरेक्टर जनरलने सन् १८४४-४५ के विवरणमें लिखा है कि "हिन्दी सबसे अधिक प्रचलित भाषा है।" बोर्ड औफ़ रेवेन्यूने भी सन् १८३७ ई० के आज्ञापत्र (संख्या ८) में इसी कथनका समर्थन यों किया है:—"बोर्ड इस अवसरपर कमिश्नर और कलेक्टरोंकी उस आज्ञा (संख्या ४११, ता० ३० सितम्बर सन् १८५४ ई०) का ध्यान दिलाती है जिसके अनुसार पटवारियोंके काग़ज़ उस भाषा और उस लिपिमें लिखे जाने चाहिएँ जिनको सर्वसाधारण काश्तकार और ज़मीन्दार भली भाँति समझते हों। प्रायः वह भाषा हिन्दी और वह लिपि नागरी होगी। शिक्षा-विभागके सन् १८७३-७४ के विवरणपर सरकारने आज्ञा देते समय लिखा है कि "हिन्दी यहाँकी मातृभाषा कही जा सकती है, क्योंकि अधिकतर लोग उससे भली भाँति परिचित हैं।"

शिक्षा-विभागके डाइरेक्टरोंने भी सन् १८७७-७८ के विवरणमें लिखा है कि "हिन्दी ही इस प्रदेशकी देश-भाषा है।"

सन् १८४८ ई० में एक महाशय 'कलकत्ता रिव्यू' में लिखते हैं कि हिन्दीके व्यवहारकी ठीक-ठीक सीमा निर्धारित करना कुछ सुगम कार्य्य नहीं है। मोटे तौरसे यह कहा जा सकता है कि इसका प्रचार विहार, अवध, राजपूताना और उन सब प्रदेशोंमें है जो पश्चिमोत्तर प्रदेशके लेफ़्टिनेण्ट गवर्नरके अधीन है। एक यात्रीने कहा है कि हिन्दीकी सहायतासे वे समस्त भारतवर्षमें घूम सकते हैं।

शिक्षित मुसलमान उर्दू बोलते हैं, परन्तु साधारण काश्तकार या अन्य मुसलमान अधिकतर हिन्दुओंकी ही तरह बोलते हैं।

प्रसिद्ध डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटीके जरनल (१८६४ ई०) में "हिन्दकी भाषाकी उत्पत्ति और उर्दू बोलीसे उसका सम्बन्ध" शीर्षक लेखमें लिखते हैं कि भारतवर्षकी देशभाषाओंमें हिन्दी सबसे प्रधान है। विहारसे सुलेमान पहाड़तक और विन्ध्याचलसे हिमालयकी तराईतक सभ्य हिन्दू-जातिकी यही मातृभाषा है। गोरखा जातिने इसका कमायूँ और नैपालमें भी प्रचार

कर दिया है और यह भाषा पेशावरसे आसाम तक और काश्मीरसे कन्याकुमारीतकके सब स्थानोंमें भली भाँति समझी जा सकती है।

श्रीयुत बीम्सने भी इसी मतका समर्थन किया है तथा रेवरेण्ड केलौग भी लिखते हैं कि पच्चीस करोड़ भारतवासियोंमेंसे एक चौथाई अर्थात् छः या सात करोड़ मनुष्योंकी मातृभाषा हिन्दी है।………२४८००० वर्गमीलमें जनसाधारणकी भाषा हिन्दी ही है। श्रीयुत पिनकौट महोदय लिखते हैं कि उत्तरीय भारतवर्षकी भाषा सदासे हिन्दी थी और अब भी है और इसी भाषाके अधिक प्रचारके कारण लोग यह समझते हैं कि साधारण हिन्दुस्तानी भारतवर्षकी मातृ-भाषा है।

इस विषयपर अब अधिक कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है उससे यह स्पष्ट है कि जिस समय सरकारने फ़ारसीके वदले देशभाषाके प्रचारकी आज्ञा दी थी उस समय पश्चिमोत्तर प्रदेशकी मातृभाषा हिन्दी थी और अबतक वही है। इस समयकी हिन्दी फ़ारसीके शब्दोंसे भरी हुई है। उसे ही अब उर्दू कहते हैं। उसका प्रचार कचहरियोंसे अधिक सम्वन्ध रखनेवाले शिक्षित मुसलमानों और अमलोंमें ही अधिक है। फ़ारसी, अरवी और तुर्की शब्दोंके भारसे लदी हुई यह हिन्दी ही अब उर्दू कहलाती है तथा फ़ारसी लिपिमें लिखे जानेसे यह और भी अधिक अस्पष्ट हो गई है। इस कारण अबतक भी इन प्रान्तोंके निवासियोंकी समझमें यह भली प्रकार नहीं आती। परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है पश्चिमोत्तर प्रदेशकी सदर दीवानी अदालतने भूलसे उर्दूको यहाँकी देश-भाषा समझकर फ़ारसीके स्थानपर उसके व्यवहारकी आज्ञा दे दी। उस उर्दू भाषाको वे 'हिन्दुस्तानी' कहने लगे और यह स्पष्ट रूपसे घोषित कर दिया गया था कि कचहरियोंकी कार्रवाई और वकीलोंकी वहस सर्वबोध और सरल उर्दूमें (या हिन्दीमें, जहाँ उसका प्रचार हो) लिखी जाय। यह भाषा ऐसी होनी चाहिए जिससे फ़ारसीसे सर्वथा अनभिज्ञ एक कुलीन भारतवासी अपनी साधारण बात-चीतमें प्रयोग करता हो। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस आज्ञा देनेके समय सदर दीवानी अदालतकी यह इच्छा थी कि कचहरियोंका काम ऐसी भाषामें हो जिसे सर्वसाधारण सुगमतासे समझ सकें। हिन्दीके प्रयोगके लिये जो आज्ञा दी गई थी उसपर कुछ भी ध्यान न दिया गया। बहुत दिनोंतक फ़ारसीसे भरी हुई उर्दू लिखते चले आनेसे अमलोंको जनसाधारणकी भाषाको नागरी लिपिमें लिखना भद्दा जान पड़ा और इसीसे इस प्रान्तकी कचहरियोंमें उर्दू भाषा और फ़ारसी अक्षरोंका प्रचार हुआ।

इस आज्ञा का फल अत्यन्त ही असन्तोषदायक हुआ, क्योंकि इसके एक ही वर्ष उपरान्त बोर्ड औफ़ रेवेन्यूको पुनः आज्ञापत्र निकालना पड़ा और उसमें पुनः इस बातपर ज़ोर दिया गया कि फ़ारसी-पूरित उर्दू न लिखी जाय बल्कि ऐसी भाषा लिखी जाय जो एक कुलीन हिन्दुस्तानी, फ़ारसी से पूर्णतया अनभिज्ञ रहनेपर भी बोलता हो। परन्तु इस २८ अगस्त सन् १८४० ई० के आज्ञापत्रका भी कोई परिणाम न हुआ। इसके पन्द्रह वर्ष उपरान्त सरकार ने देखा कि दीवानी, फ़ौजदारी और कलेक्टरी (माल) कचहरियों का कामकाज अभीतक एक ऐसी कठिन और विदेशी भाषामें हो रहा है जो फ़ारसी से प्रायः मिलती जुलती है। अतएव सदर दीवानी अदालत और बोर्ड औफ़ रेवेन्यूकी सम्मति लेनेके उपरान्त सरकारने यह पुनः आवश्यक समझा कि कचहरियोंके अफसरोंको इस बातकी फिरसे ताकीद की जाय कि सरकारी काग़ज़ ऐसी भाषामें लिखे जायँ जिन्हें सर्वसाधारण भली भाँति समझ सकें। इस सिद्धान्तके अनुसार ता० ९ मई सन् १८५४ ई० को इसी आशयका एक आज्ञापत्र निकाला गया। परन्तु इसका भी प्रभाव न हुआ। सरकारने पुनः सन् १८७६ ई० में सब ज़िलेके हाकिमोंके नाम एक आज्ञापत्र भेजा, और

देशभाषाके प्रयोग किए जानेके लिए और भी स्पष्ट रूपसे ज़ोर दिया। पर इसका भी कुछ परिणाम न हुआ।

आज इस आज्ञाको निकले इक्कीस वर्ष हो चुके परन्तु अभीतक कचहरियोंकी भाषाकी वही अवस्था है जो साठ वर्ष पहले थी, जबकि पहले पहल सरकारने सन् १८३७ ई० में ऐसी सुबोध और सरल भाषाके प्रचारकी इच्छा प्रगट की थी जिसे सर्वसाधारण सुगमतासे समझ सकें। केवल सरकार ही यह नहीं चाहती थी और केवल फ़ारसी-मिश्रित उर्दूके दोषोंको समझकर ही उसका विरोध नहीं करती थी बल्कि बड़े-वड़े भाषाशास्त्रज्ञोंने भी सरकारकी उस शुभ इच्छाका समर्थन किया है। डाक्टर फ़ैलनने अपने शब्दकोशमें अरबी और फ़ारसी शब्दोंके समानार्थी हिन्दीके साधारण शब्दोंको रखकर इस वातको पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि कचहरीके काग़ज़ोंमें अरवी और फ़ारसी-मिश्रित उर्दू लिखनेका कोई सन्तोषजनक कारण नहीं है।

श्रीयुत ग्राउस इसी विषयपर लिखते हैं कि "आजकलकी कचहरीकी बोली बड़ी कष्टदायक है, क्योंकि एक तो यह विदेशी है और दूसरे इसे भारतवासियोंका अधिकांश नहीं जानता। ऐसे शिक्षित हिन्दुओंका मिलना कोई कठिन बात नहीं है जो स्वतः इस बातको स्वीकार करेंगे कि कचहरीके मुंशियोंकी बोलीको वे अच्छी तरह विलकुल नहीं समझ सकते और उसे लिखनेमें तो वे निपट असमर्थ ही हैं। इसका बड़ा भारी प्रमाण तो यह है कि क़ानूनों और गश्ती चिट्ठियोंके सरकारी भाषानुवादको तवतक कोई भी भली भाँति नहीं समझ सकता जवतक कि कोई व्यक्ति अंग्रेज़ीसे मिलाकर उन्हें न समझा दे।

मिस्टर फ़्रेड्रिक पिनकौटने अफ़सरोंकी हिन्दुस्तानी भाषाके विषयमें लिखा है कि जिन भारतवासियोंकी यह मातृभाषा बताई जाती है उन्हें इसे अंग्रेज़ीकी तरह स्कूलोंमें सीखना पड़ता है। और भारतवर्षमें यह विचित्र दृश्य देख पड़ता है कि राजा और प्रजा दोनों अपना व्यवहार ऐसी भाषाद्वारा करते हैं जो दोनोंमेंसे एककी भी मातृभाषा नहीं है। उस विषमतासे जो असुविधाएँ उत्पन्न होती हैं उन्हें दूर करनेके लिये कुछ भारतवासी यह मानने लगे हैं कि सव व्यवहार अंग्रेज़ी भाषामें ही होना चाहिए। उनका विश्वास है कि इस भाषाके प्रयोगसे राज्यकर्मचारियोंको भी सुगमता होगी और यहाँके लोगोंको भी हिन्दुस्तानीसे कुछ ही कठिन भाषा सीखनी पड़ेगी।

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि साठ वर्षतक कचहरियोंमें सरल भाषाके प्रचारका उद्योग करते रहनेपर भी सरकार क्यों कृतकार्य्य न हुई? वार-वार आज्ञा देनेपर भी अभीतक कचहरियोंके काग़ज़ ऐसी भाषामें क्यों लिखे जाते हैं जो विना किसी आवश्यकताके फ़ारसी और अरवी शब्दोंसे भरी रहती है। इसका कारण यही है कि अदालतोंका काम फ़ारसी लिपिमें होता है। सरकारकी इच्छा तवतक कदापि पूर्ण न हो सकेगी जवतक अदालतोंमें फ़ारसी अक्षरोंका आधिपत्य रहेगा। आज इनके स्थानपर नागरी अक्षरोंका प्रचार कीजिए और तव देखिए कि साथ-ही-साथ सरल और सुगम हिन्दुस्तानीका प्रचार होता है या नहीं? "पायनियर" पत्रने अपने १० जनवरी सन् १८७६ ई० के अङ्कमें लिखा है कि "फ़ारसी लिपि और फ़ारसी भाषामें इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि इस विषय (भाषा) का सुधार तवतक पूर्णतया हो ही नहीं सकता जवतक कि हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तके ग़ैर सरकारी गवाहोंके बयान नागरी अक्षरोंमें न लिखे जायँगे। स्वर्गीय श्री फ़्रेड्रिक पिनकौटने इसी मतका ज़ोरदार समर्थन किया है। विचारशील हिन्दुओंने सन् १८३७ ई० में इसी आशयका एक निवेदन-पत्र भी सर विलियम म्योरको दिया था।

गत साठ वर्षोंमें सरकारने भाषासम्बन्धी जो आज्ञाएँ निकाली हैं उन्हें पढ़कर और जहाँतक उनका आजतक पालन हुआ है उसपर विचार कर

यही सिद्धान्त निकला है कि जबतक कचहरियोंमें देशी भाषाकी कार्रवाई फ़ारसी अक्षरोंमें लिखी जायगी तबतक यह सम्भव नहीं है कि हिन्दुस्तानी भाषामेंसे अरबी और फ़ारसीके शब्द छाँट दिए जायँ और ऐसी ही सरल भाषाका प्रचार हो जिसके लिये सरकार गत साठ वर्षोंमें बार-बार अपना मत प्रगट करती रही है।

यह माना जा सकता है कि जैसी आज्ञाएँ सरकारने आजतक निकाली हैं उनसे भी तीव्रतर आज्ञा निकालकर कचहरियोंकी भाषा सरल की जा सकती है, पर उसकी इच्छाकी पूर्त्ति तबतक पूर्ण रीतिसे नहीं हो सकती है और न होना सम्भव ही है जबतक कि हिन्दुस्तानी भाषा हिन्दुस्तानी (नागरी) अक्षरमें न लिखी जाय। कोर्ट ओफ़ डाईरेक्टर्सने यह आज्ञा दी थी कि न्यायालयोंकी समस्त कार्रवाई स्थानीय देश-भाषामें हो और जब श्रीमान् गवर्नर-जनरलने कहा था कि माल और न्याय-सम्बन्धी सब कार्रवाई उसी भाषामें हो जिसे सर्वसाधारण समझ सकें तथा जब उन्होंने फ़ारसीके स्थानपर देशभाषाके प्रचारकी आज्ञा दी थी तब उनका यही आशय था कि देशी भाषाका प्रचार देशी अक्षरोंमें ही हो, विदेशी अक्षरोंमें नहीं। जब कभी हम किसी भाषाके विषयमें कुछ कहते हैं तब हमें उस भाषाकी लिपिका भी विचार स्वभावतः आ जाता है, जबतक कि कोई बात स्पष्ट उसके विरुद्ध न बताई जाय या कही जाय। सरकारने जब देशभाषाके प्रचारकी आज्ञा दी थी तो उस आज्ञाका स्पष्ट उद्देश्य यही था कि कचहरियोंकी कार्रवाई ऐसी भाषा और ऐसे अक्षरोंमें हो जिसे सर्वसाधारण भली भाँति समझ और पढ़ सकें और यह उद्देश्य तबतक सफल नहीं हो सकता जबतक देश-भाषाका प्रचार विदेशी अक्षरोंमें होता रहेगा।

प्रारम्भमें यह लिखा जा चुका है कि सन् १८३० और १८३७ के बीचमें इस बातपर बड़ा विचार तथा विवाद चला था कि फ़ारसीके स्थानपर किस भाषाका प्रयोग हो? उस समय कुछ लोगोंकी यह सम्मति थी कि प्रयोग तो देश-भाषाका ही हो परन्तु लिपि रोमन हो। पर सरकारने इस सम्मतिको स्वीकार नहीं किया। इससे यह स्पष्ट प्रगट होता है कि सरकारकी यही इच्छा थी कि देश-भाषाका प्रयोग देशी अक्षरोंमें ही हो। फिर सन् १८९३ ई० में भी यहाँ रोमन लिपिका झगड़ा उठा था और उस समय श्रीमान् लेफ़्टिनेण्ट गवर्नरने इसपर विचार करनेके लिये एक छोटीसी समिति बना दी थी, पर उस समितिकी रोमनके क्रमशः प्रचार करनेकी सम्मति सरकारको स्वीकृति न हुई और श्रीमान् सर एण्टोनी मैकडोनेलने उस प्रस्तावको यह विचार करके अस्वीकृत कर दिया कि रोमनके प्रचार होनेसे सरकारी अफ़सर देश-भाषाकी ओरसे उदासीन हो जायँगे।

भारतवासियोंको अपनी भाषा विदेशी अक्षरोंमें लिखनेको कहना वैसा ही है जैसा कि अँग्रेज़ीसे अपनी भाषाको नागरी अक्षरोंमें लिखनेके लिये कहना। एक शताब्दी तक उद्योग करते रहनेपर भी रोमन लिपिको सफलता प्राप्त न हुई और यह आशा कदापि नहीं की जा सकती कि प्रारम्भिक शिक्षाकी उन्नतिके साथ कभी वह अवसर भी आवेगा जब रोमन लिपिका किसी प्रान्तमें प्रचार हो। पर यह समझमें नहीं आता कि जब सरकारने रोमन अक्षरोंको अस्वीकार किया तो वह अबतक क्यों फ़ारसी अक्षरोंको यथास्थित छोड़े हुई है। जो दोष रोमन अक्षरोंपर लगाए जाते हैं वे ही दोष फ़ारसी अक्षरोंपर भी लगाए जा सकते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि ये अक्षर विदेशी हैं और यद्यपि मुसलमानी राज्यके प्रारम्भसे ही इसका अदालतोंमें प्रचार होता रहा है पर अबतक शिक्षित मुसलमानों और जीविकाके लिये फ़ारसी सीखे हुए हिन्दुओंको छोड़कर और कोई भी इन्हें नहीं सीखता। जनसाधारण तो इन्हें नाम मात्रको भी नहीं जानते। वे अपना सब काम नागरी, कैथी या महाजनी अक्षरोंकी सहायतासे चलाते हैं। फ़ारसी अक्षरोंके प्रचारसे यही फल हो रहा है कि जिन लोगोंका सर्वस्व अदालतोंकी कार्रवाइयोंपर

निर्भर रहता है, वे तबतक उनका एक अक्षर भी नहीँ समझ पाते जबतक कि वे अत्यन्त कष्ट उठाकर उन्हेँ किसी मुहर्रिर या मुख़्तारसे न पढ़वा लेँ। दर्ख़्वास्तेँ और अर्ज़ीदावे आदि सब फ़ारसी अक्षरोँमेँ लिखे जाते हैँ, परन्तु जो लोग उनपर हस्ताक्षर करते हैँ और जिनकी ओरसे कचहरीमेँ वे अर्ज़ियाँ दी जाती हैँ, वे उनपर हस्ताक्षर तो करते हैँ पर उनका एक अक्षर भी नहीँ समझ पाते। गाँवके लोगोँको बहुधा इससे अवर्णनीय कष्ट उठाना पड़ता है। सरकारकी सदासे यह इच्छा रहती है कि प्रजाके लिये सुखकर नियम बनाए जायँ और वैसे ही प्रबन्ध होँ तथा इसी इच्छाके अनुसार उसके सम्पूर्ण कार्य्य होते भी हैँ; परन्तु यह समझमेँ नहीँ आता कि ऐसी न्यायप्रिय सरकार उपर्युक्त बातोँको जानकर भी प्रजाके कष्टको क्योँ नहीँ दूर करती? इस बातको सरकार भी स्वीकार करती है कि नागरी अक्षरोँके प्रचारसे ये असुविधाएँ दूर हो जायँगी, क्योँकि अवधमेँ बेदख़ली आदिकी सूचनाएँ हिन्दी और उर्दू दोनोँमेँ निकलती हैँ। बोर्ड औफ़ रेवेन्यूने भी गत वर्ष यह आज्ञा दे दी है कि सम्मन आदि हिन्दी और उर्दू दोनोँमेँ लिखे जाया करेँ। बस इन काग़ज़ोँको छोड़कर पश्चिमोत्तर प्रदेशमेँ (गढ़वाल और कमाऊँ ज़िलोँ को छोड़कर) कहीँ भी हिन्दीका प्रचार नहीँ है।

फ़ारसी अक्षरोँ के विरोधमेँ केवल यही नहीँ है कि वे विदेशी हैँ तथा भारतवासी उन्हेँ नहीँ जानते, बल्कि ये अक्षर नितान्त अवैज्ञानिक, अपूर्ण और अत्यन्त भ्रामक हैँ। साधारणतः जिस प्रकारसे ये अक्षर लिखे जाते हैँ और विशेषकर अदालतोँमेँ जिस प्रकारकी लिखावट होती है उससे लोकका बड़ा अनिष्ट होता है। इन अक्षरोँमेँ बड़ा भारी दोष तो यह है कि एक बार जो लिखा गया उसका ठीक वैसा ही पढ़ा जाना कठिन तो है ही साथ ही कभी-कभी तो असम्भव ही हो जाता है।

इन कारणोँसे अदालतोँमेँ सर्वथा इनका प्रचार अयुक्त है। शिकस्तः फ़ारसीसे जो अनिष्ट होता है वह छिपा नहीँ है। अनेक बार उसके विषयमेँ लिखापढ़ी हो चुकी है। प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्सने ३० दिसम्बर सन् १८५७ ई० के 'टाइम्स' नामक पत्रमेँ फ़ारसी अक्षरोँके दोष पूर्ण रूपसे दिखाए हैँ। उनका कथन है कि "इन अक्षरोँको सुगमतासे पढ़नेके लिये वर्षोँका अभ्यास आवश्यक है"। वे कहते हैँ कि इन अक्षरोँमेँ चार "ज" के रूप होते हैँ तथा प्रत्येक अक्षरके प्रारम्भिक, मध्यस्थ, अन्तिम या भिन्न होनेके कारण चार भिन्न-भिन्न रूप होते हैँ। अन्तमेँ प्रोफ़ेसर साहब कहते हैँ कि चाहे ये अक्षर देखनेमेँ कितने ही भले क्योँ न लगते होँ, पर न तो ये कभी पढ़े जाने योग्य हैँ और न छपनेके ही योग्य हैँ तथा भारतमेँ विद्या और सभ्यताके विकासमेँ सहायक होनेके तो सर्वथा अनुपयुक्त हैँ। डाक्टर राजेन्द्रलाल, प्रोफ़ेसर डौसन और श्री ब्लैकमैन तथा राजा शिवप्रसाद आदि बड़े-बड़े विद्वानोँ ने दृढ़तापूर्वक प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्सके मतका समर्थन किया है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखते हैँ कि जिन फ़ारसी अक्षरोँ और विशेषकर शिकस्तःमेँ अदालतोँका काम चलता है वे मुख़्तारोँ, वकीलोँ और धूर्तोँके लिये आयका एक अच्छा मार्ग है। एक ही चिह्न ऐसा बनाओ और यह मान लो कि वह किसी ग्रामका नाम है। यदि हम पहले अक्षरको 'बे' मान लेँ तो उसका उच्चारण ११ प्रकारसे होगा। जैसे बबर, बपर, बतर, बटर, बसर, बनर, बहर, बयर, बेर, बैर, बीर। फिर यदि हम पहले अक्षरको 'पे', 'सीन', 'ते', 'हे', 'नून', 'हे', 'वाव', 'ये', मानेँ तो उस शब्दका उच्चारण ७७ प्रकारसे हो सकता है। यदि हम उपर्युक्त शब्दोँमेँसे प्रथम आठ शब्दोँके स्वरको बदल देँ तो ६० शब्द और बन जायँगे। जैसे बुनर, बिनर, हुनर, सिपर आदि। फिर यदि हम अन्तिम अक्षरको 'ज़े' या 'रे' मानेँ तो ३०४ शब्द बन जाते हैँ और यदि हम यह जान लेँ कि अन्तिम अक्षरमेँ "दाल" है तो पूरे १५२ शब्द और बन जाते हैँ। इस प्रकारसे यह स्पष्ट है कि एक शब्द जो तीन अक्षरोँका है तथा जिसके अन्तिम अक्षरके तीन

ही भिन्न रूप हो सकते हैं वह ६०६ प्रकारसे पढ़ा जायगा। यदि हम इसी शब्दके अन्तिम अक्षरको 'बे' म बदल दें तो हम एक हज़ार और नये शब्द बना सकेंगे। बलिहारी है ऐसे अक्षरोंकी। इस विषयमें 'पायोनियर' पत्रका यह मत है कि आवश्यक काग़ज़ात लिखनेके लिये तो इनसे बुरे अक्षरोंकी मनमें कल्पना भी नहीं की जा सकती।

इस बातके कहनेकी अब कोई आवश्यकता बाक़ी नहीं रह गई कि इन अक्षरोंमें अदल-बदल होना कोई कठिन नहीं है, क्योंकि एक बिन्दीके देने मात्रसे ही कुछ-का-कुछ हो जाता है। रहा उन अक्षरोंका पढ़ना। कलेक्टर, जज और वकीलोंको तो छोड़ दीजिए—वे मुहर्रिर भी, जिन्हें रात-दिन अदालती काग़ज़ोंके पढ़नेके अतिरिक्त और कुछ काम ही नहीं रहता, बेचारे पहरों एक-एक शब्दपर रुके रह जाते हैं और उसे पढ़ ही नहीं पाते।

हिन्दुओंकी तो बात ही छोड़िए, बी० ए० तक अरबी-फ़ारसी पढ़नेवाले मुसलमान भी वकालतकी परीक्षामें साधारण अदालती लिखावट नहीं पढ़ सकते। अभी थोड़े ही दिन हुए कि इलाहाबाद हाइकोर्टमें एक बड़ा भारी मुक़दमा पेश हुआ था। उसमें एक मनुष्यका नाम ऐसा लिखा था जो झिंगुरीराय तथा चिखुरीराय दोनों तरहसे पढ़ा जा सकता था। बहुत दिनों तक छान-बीन करनेपर भी यह मुक़दमा तय नहीं हुआ और अन्तमें प्रिवी कौन्सिल तक गया। वहाँ यह निर्णय हुआ कि झिंगुरीराय तथा चिखुरीराय दोनों एक ही पुरुषके नाम थे। नरही ताल्लुकोंके २९ मुक़दमे हाइकोर्टमें पेश हैं, जिनका फ़ैसला ग़ाजीपुरके सब जजने दो वर्ष हुए किया था। इन मुक़दमोंका फ़ैसला नामोंके ठीक-ठीक पढ़े जानेपर निर्भर है। एक मुक़दमेमें एक नाम काग़ज़ोंपर कई जगह लिखा मिला जो कहीं सहजकुँवर कहीं सजनकुँअर और कहीं सजहकुँअर तथा कहीं बातकुँअर पढ़ा गया। इसी मुक़दमेमें उदितनारायणका नाम उदयनारायण तथा बैजनाथका नाम जपनाथ पढ़ा गया। पुनः हरदयालरायके मुक़दमेमें भी यही गड़बड़ी हुई। इन मुक़दमोंका पूरा आनन्द उस समय आवेगा जब इनकी सुनवाई हाइकोर्टमें प्रारम्भ होगी। ये दो-तीन दृष्टान्त साधारण रीतिके यहाँ दिए गए हैं। न जाने ऐसे कितने मुक़दमे प्रतिदिन हुआ करते हैं। यह कहना तो कदाचित् ठीक हो कि अदालत इन नामोंको जैसा पढ़ती है वह ठीक है पर यदि यह मान भी लिया जाय तो यह समझमें नहीं आता कि वादी, जज आदि सब लोग अक्षरोंके लिये ही इतना कष्ट क्यों उठावें? इससे तो अदालतके समयका तथा ग़रीब प्रजाके धनका व्यर्थ अपव्यय होता है।

प्रथम तो नागरी अक्षर निर्दोष हैं। फिर भी यदि नागरी अक्षरोंमें भी उतनी ही त्रुटियाँ होतीं जितनी फ़ारसीमें हैं तो भी नागरी अक्षरोंका ही प्रचार होना इसलिये आवश्यक था कि उन अक्षरोंको प्रजा भली भाँति जानती है।

श्री बडेन् महोदयके कथनानुसार तो नागरी अक्षरोंका कोई कितना ही बड़ा विरोधी हो और घोर शत्रु ही क्यों न हो, वह यह नहीं कह सकता कि इनमें किसी प्रकार की त्रुटि है। इन अक्षरोंकी मनोहरता, सुन्दरता, स्पष्टता, पूर्णता और शुद्धताकी विद्वानोंने केवल प्रशंसा ही नहीं की है बल्कि उसीके आधारपर रोमनमें अन्य भाषाओंके शब्दोंके लिखनेके लिये नियम और चिह्न बनाए गए हैं। प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स कहते हैं कि "स्थूल रूपसे यह कहा जा सकता है कि देवनागरी अक्षरोंसे बढ़कर पूर्ण और उत्तम अक्षर दूसरे नहीं हैं"। प्रोफ़ेसर साहेबने तो इनको देवनिर्मित तक कह दिया है।

किन्तु उपर्युक्त प्रोफ़ेसर महोदयके ध्यानमें नागरी अक्षर इतने अधिक सर्वाङ्गपूर्ण हैं कि उनसे प्रतिदिनका कार्य्य नहीं चल सकता। उसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि भारतवर्षके कई स्थानोंमें बहुत कालसे नागरी अक्षरोंका प्रचार है और आजतक

वहाँ कार्य्य करनेमेँ किसी प्रकारकी भी कठिनता नहीँ हुई। फिर यह कहा जा सकता है कि नागरी अक्षरोँमेँ रोमनके 'ज़ेड्' और 'एफ़्' और अरबी तथा फ़ारसीके 'फ़े', 'क़ाफ़', 'ग़ैन्' और 'ज़ाल' अक्षरोँके लिये कोई चिह्न नहीँ हैँ। इसके उत्तरमेँ रेवरेण्ड बेट्स कहते हैँ कि नागरी अक्षरोँके नीचे एक बिन्दी देनेसे अरबी तथा फ़ारसी अक्षरोँका उच्चारण ठीक-ठीक हो सकता है, और उन्हेँ कोई भी साधारण शिक्षा-प्राप्त पुरुष सुगमतासे समझ सकता है।

सर आइज़ेक् पिटमैनने कहा है कि "संसारमेँ यदि कोई सर्वाङ्गपूर्ण अक्षर हैँ तो नागरीके हैँ। बम्बई सुप्रीम कोर्टके चीफ़ जस्टिस सर अर्सकिन पेरीने 'नोट्स टु ओरिएण्टल केसेज़' की भूमिकामेँ लिखा है कि एक लिखित लिपिकी सर्वाङ्गपूर्णता इसीसे जान पड़ती है कि प्रत्येक शब्दका उच्चारण उसके देखनेसे ही ज्ञात हो जाय और यह गुण भारतवर्षके अन्य अक्षरोँकी अपेक्षा देवनागरी अक्षरोँमेँ अधिक पाया जाता है जिसमेँ संस्कृत लिखी जाती है। इस गुणसे लाभ यह है कि हिन्दू बालकोँने जहाँ अक्षर पहचान लिए कि वे सुगमतासे तथा बिना रुकावटके पढ़ने लग जाते हैँ। इस कारण जिस भाषाका पढ़ना सीखनेमेँ योरोपमेँ जहाँ बहुधा कई वर्ष लग जाते हैँ वह भारतवर्षमेँ बहुधा तीन मासमेँ ही आ जाती है।" 'पायनियर' पत्रने भी १० जुलाई सन् १८३७ ई० के अङ्कमेँ लिखा है कि "नागरी अक्षर मन्द गतिसे लिखे जाते हैँ परन्तु जब एक बार लिख जाते हैँ तो वे छपे हुएके समान हो जाते हैँ, यहाँ तक कि उनमेँ लिखे हुए शब्दको उसका अर्थ न जाननेवाला व्यक्ति भी शुद्धतापूर्वक पढ़ लेगा।

सरकारने सदा अनेक प्रकारसे प्रजाको सुखी करनेकी चेष्टा की है तथा उसकी सदा यह इच्छा रही है कि लोग सुगमतासे कचहरियोँकी कार्रवाइयोँको समझ सकेँ। ऐसा होनेपर भी यह विचारकर दुःख होता है कि हज़ारोँ वर्षोँसे प्रचारित नागरी जैसे उत्तम और पूर्ण अक्षरोँका निरादर करके यहाँकी कचहरियोँमेँ बहु-दोष-पूर्ण तथा अत्यन्त भ्रामक फ़ारसी अक्षरोँका सरकारने प्रचार कर रक्खा है। यहाँ यह बात ध्यानमेँ लानेकी आवश्यकता है कि बारह सौ वर्षतक फ़ारसी अक्षरोँके सम्मान और नागरी अक्षरोँके तिरस्कार होनेपर भी नागरी अक्षरोँपरसे यहाँकी प्रजाका अविकल प्रेम ज़रासा भी नहीँ घटा है बल्कि आजतक उसीमेँ अथवा महाजनी, कैथी आदि उसके अन्य रूपोँमेँ सर्वसाधारणका सब काम चलता है। यह कहा जा चुका है कि बोर्ड औफ़ रेवेन्यूने अपने ८ मई सन् १८५७ के आज्ञापत्रमेँ यह लिखा था कि यहाँकी साधारण प्रजा काश्तकार और ज़मीन्दारोँमेँ नागरी अक्षरोँका प्रचार है और इसी आधारपर यह आज्ञा दी थी कि पटवारियोँके काग़ज़ात उन्हीँ अक्षरोँमेँ लिखे जायँ। इस कथनके साथ-ही-साथ यहाँ एक बात और कह देनी आवश्यक है कि टौम्सन महोदयके समयमेँ इन प्रान्तोँमेँ प्रारम्भिक शिक्षाका प्रादुर्भाव हुआ और उसी समय कुछ स्कूलीय पुस्तकेँ हिन्दी और उर्दूमेँ छापी गईँ।

सन् १८५०-५१ मेँ १४३३१ पुस्तकेँ बिकीँ जिनमेँसे ९०८७ हिन्दी की, १३०७ उर्दू की और ९३७ उर्दू-हिन्दीकी थीँ। शिक्षा-विभागके सन् १८६३-६४ के विवरणके इकसठवेँ पृष्ठमेँ लिखा है कि इस वर्ष ३०५७४८ पुस्तकेँ छपीँ और ख़रीदी गईं। इनमेँसे ५०२६० उर्दूकी, २०९९८० (जिनमेँ २००० नक़्शे थे) हिन्दीकी, १०००० फ़ारसीकी, और १९८०८ अंग्रेज़ीकी थीँ, तथा ९००० हिन्दी-उर्दूके नक़्शे थे। इसी प्रकार नौर्थ इण्डिया बाइबिल ऐण्ड ट्रैक्ट सोसाइटीके विवरणमेँ हिन्दी ग्रन्थोँकी अधिकता प्रतिवर्ष देख पड़ती है। श्री ग्राउस महोदयने एजुकेशनल कमीशनको सन् १८८२ ई० मेँ लिखा था कि "बुलन्दशहर जैसे मुसलमानी ज़िलेमेँ म्युनिसिपल कमेटियोँके आधेसे अधिक सभासद इस देशके अक्षरोँ (नागरी) को ही पढ़ सकते हैँ। तहसीली कमेटियोँमेँ तो इनकी संख्या इससे भी अधिक होगी। सन् १८९१ की मनुष्य-गणना लिखनेके

लिये जितने लोग नियुक्त किए गए थे उनमेंसे ८०११८ने हिन्दीमें, ४०१६७ ने कैथीमें (जो हिन्दीका एक रूपान्तर है) लिखा अर्थात् सब मिलाकर १२०३१५ लोगोंने हिन्दीमें और ५४२४४ ने फ़ारसीमें लिखा। जिस समय गाँवोंमें स्कूल खोले गए, उस समय हिन्दी पढ़नेवालोंकी संख्या उर्दू पढ़नेवालोंसे छःगुनी थी और पचास वर्षतक उर्दूका आदर और हिन्दीका निरादर रहनेपर भी ३१ मार्च सन् १८९६ को १०५४४६ बालक हिन्दी और ५२६६९ बालक उर्दू पढ़ते थे।

इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि हर तरहसे हतोत्साह होनेपर भी इन प्रान्तोंमें फ़ारसी अक्षरोंसे कहीं अधिक नागरी अक्षरोंका प्रचार है और वे अधिक प्रयोजनीय हैं। फ़ारसी अक्षरोंका जो कुछ प्रचार है वह केवल इसीलिये है कि अदालतोंका काम उन्हीं अक्षरोंद्वारा होता है। आज यदि नागरी अक्षरोंका प्रचार फ़ारसी अक्षरोंके स्थानपर हो जाय तो कल ही फ़ारसी या उर्दू पढ़नेवालोंकी संख्या घट जायगी। ३१ मार्च सन् १८९६ ई० को वर्नैकुलर प्राइमरी स्कूलोंमें १३५४६७ हिन्दू और २१५१० मुसलमान बालक शिक्षा पाते थे। उनमेंसे ५२६६९ उर्दू पढ़ते थे।

अब यदि यह मान भी लिया जाय कि प्रत्येक मुसलमान उर्दू पढ़ता है (यद्यपि वास्तवमें यह बात नहीं है) तो ३१००० हिन्दू बालकोंको बाल्यावस्थासे ही उर्दू सीखनी पड़ती है जिसके सीखनेमें उन्हें हिन्दी सीखनेके बनिस्वत अधिक समय लगता और विशेष कठिनता होती है। इस प्रकार उर्दू सीखनेका मुख्य कारण यही है कि जीविका-निर्वाहके लिये वह अत्यन्त आवश्यक है। यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि यदि अदालतोंमें नागरी अक्षरोंका प्रचार हो जाय तो केवल हिन्दू ही नहीं बल्कि मुसलमान भी उर्दू सीखना छोड़कर गुणागरी नागरीके सीखनेमें अपना समय और द्रव्य लगावेंगे। इससे यह स्पष्ट है कि न्याय, उपयुक्तता और आवश्यकता पर ध्यान देकर अब नागरी अक्षरोंके प्रचारकी आज्ञा देनेमें कोई बाधा न होनी चाहिए। कुछ लोगोंका यह कहना है कि नागरी अक्षरोंमें उतनी शीघ्रतासे कार्य्य नहीं हो सकता जितना फ़ारसीमें। प्रथम तो इस बातमें सन्देह है कि वास्तवमें इन प्रान्तोंकी कचहरियों और दफ़्तरोंमें मुहर्रिर लोग उससे अधिक शीघ्रतासे काम कर सकते हैं जितनी शीघ्रतासे कमाऊँ, बिहार, मध्यप्रदेश आदि स्थानोंमें हिन्दीमें होता है। यदि यह मान भी लिया जाय कि फ़ारसीमें अधिक शीघ्रतासे काम चलता है तो भी यह बात ऐसी नहीं है जिससे नागरीके गुणों तथा स्वत्वोंमें कोई कमी आवे। शिकस्तः लिखनेमें यदि अदालतका कुछ थोड़ासा समय बच जाता है तो इस बातपर भी ध्यान देना चाहिए कि उन्हीं काग़ज़ोंके पढ़नेमें कितना समय नष्ट होता है और अन्तमें नामों आदिके विषयमें जो सन्देह बाक़ी रह जाता है वह घलुएमें है। नागरी अक्षरोंमें लिखनेसे यदि समय कुछ अधिक लग जाता है तो पुनः उसके पढ़नेमें न कोई कष्ट होता और न कुछ सन्देह बाक़ी रह जाता है। सर्वसाधारणका बहुमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करना कदापि उचित नहीं है।

सर्वसाधारणके समयके अन्तर्गत केवल क्लर्कों तथा साक्षी आदि लिखनेवाले अफ़सरोंका समय ही नहीं समझना चाहिए; बल्कि नक़ल करनेवालों, अनुवाद करनेवालों और उन अदालतोंका समय भी उसमें सम्मिलित है जिन्हें काग़ज़ोंको अन्तमें पढ़ना या पढ़वाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त न्याय और प्रजाके सुभीतेपर भी ध्यान रखना उचित है। काग़ज़ों और पत्रोंके शुद्ध और स्पष्ट लिखे जानेके गुण टाइपराइटरोंके अधिक प्रचारसे इतने अधिक स्पष्ट हो रहे हैं कि अब इस बातके कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि नागरी अक्षरोंके प्रचारमें केवल इन्हीं कारणोंसे बाधा न होनी चाहिए कि ये शिकस्तःके बराबर शीघ्र नहीं लिखे जा सकते। रीवाँ, बिहार, मध्यप्रदेश और कमाऊँ आदि स्थानोंमें नागरी अक्षरोंके प्रचारसे यह बात अब स्वतःसिद्ध हो गई है कि ये अदालतोंकी आवश्यकताके अनुकूल उतनी शीघ्रता और सुगमतासे लिखे जा सकते हैं।

यदि फ़ारसी अक्षर नागरीकी अपेक्षा अधिक सुगमतासे लिखे जा सकते हैं तो वे नागरीके रूपान्तर गुजराती, बङ्गाली, मराठी और कैथी आदिसे भी शीघ्र लिखे जा सकते हैं। परन्तु सरकारने प्रजाके सुभीते और न्यायपर ध्यान न देकर इन्हीं अक्षरोंका प्रचार कर रक्खा है। इसलिये यह आवश्यक है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधकी कचहरियों और वहाँके दफ़्तरोंमें फ़ारसीके स्थानपर नागरी अक्षरोंका प्रचार किया जाय।

और भी कई कारण ऐसे हैं जिनसे इन प्रान्तवालोंकी भाषाको और उनके अक्षरोंको दफ़्तरों और कचहरियोंमें उनके योग्य स्थान मिलना चाहिए। इनमेंसे मुख्य कारण प्रारम्भिक शिक्षा और प्रजाकी उन्नति है। सन् १८५४ ई० के शिक्षाविषयक आज्ञापत्रमें कोर्ट औफ़ डाइरेक्टर्सने लिखा था कि "कई आवश्यक विषयोंमेंसे शिक्षाके विषयोंपर हम लोगोंको सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। हम लोगोंका यह सबसे मुख्य कर्त्तव्य है कि जहाँतक हम लोगोंसे बन पड़े भारतवासियोंको वे भौतिक और नीतियुक्त पुरस्कार दें जो विद्याके प्रचारसे मिलते हैं और जिन्हें भारतवर्ष ईश्वरकी दयासे इङ्गलैण्डके साथ अपने सम्बन्धके कारण प्राप्त करे।" इसके उपरान्त सरकारका कार्य्य और उसका कर्त्तव्य दिखलाकर कोर्ट औफ़ डाइरेक्टर्सने लिखा कि "हम लोगोंको अब एक दूसरे विषयपर ध्यान देना आवश्यक है जिसपर हमने आजतक कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अर्थात् वह कौनसी रीति है जिससे हम लोग भारतवर्षकी इस प्रजाको, जो स्वतः किसी प्रकारकी शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकी या कर सकती, ऐसी आवश्यक और अर्थकरी शिक्षा दे सकें जो सब वर्गकी प्रजाके उपयुक्त हो। हम लोगोंकी यह इच्छा है कि सरकार विशेषतः भविष्यमें इस उद्देश्यकी सफलताके लिये प्रयत्नशील हो और हम लोग इसके लिये विशेष धन व्यय करनेकी आज्ञा देनेको उद्यत हैं।

इसके २८ वर्ष उपरान्त भारतसरकारने 'एजुकेशन कमीशन' नियुक्त करते समय लिखा था कि "श्रीमान् गवर्नर-जनरलकी यह इच्छा है कि कमीशनको इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि सरकार प्रारम्भिक शिक्षाके विषयको कितना अधिक महत्त्वपूर्ण समझती है।..............अतएव कमीशनकी जाँचका मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि भारतवर्ष भरमें प्रारम्भिक शिक्षाकी क्या अवस्था है और उसकी उन्नति तथा उसके प्रचारके लिये क्या-क्या उपाय करने चाहिएँ? जाँच और विचार करनेपर एजुकेशन कमीशनने एकमत होकर यह सम्मति दी कि सरकारको प्रारम्भिक शिक्षापर ही विशेष ध्यान देना चाहिए और उसके लिये वह सब धन व्यय होना उचित है जो शिक्षाके लिये स्थानीय कोष (लोकल फ़ण्ड) के निमित्त अलग कर दिया गया है। प्रान्तोंकी आयसे भी इसके लिये अधिक धन लेना चाहिए। यह सम्मति गवर्नर-जनरल और भारत-सचिव दोनोंने स्वीकार की और तबसे श्रीमान् वाइसराय प्रारम्भिक शिक्षाकी उन्नतिपर हर्षके साथ यह आशा करते हैं कि प्रान्तीय सरकारोंका उद्योग इस ओर प्रतिदिन बढ़ता जाय। श्रीमान् सर एण्टोनी मेकडौनलने भी प्रारम्भिक शिक्षापर पूरा ज़ोर दिया है तथा वे इसकी उन्नतिको अपने शासनकालका मुख्य कर्त्तव्य मानते हैं। अतएव अब प्रारम्भिक शिक्षाकी आवश्यकता और उसके सम्बन्धमें सरकारकी इच्छाके विषयमें कोई सन्देह नहीं रह गया और न इसी बातमें कोई सन्देह है कि इस शिक्षाका सफलतापूर्वक प्रचार देश-भाषाके द्वारा ही हो सकता है। श्री फ़्रेड्रिक जौन शोरने लिखा है कि "भारतवासियोंमेंसे अधिकांश लोगोंको उनकी देश-भाषाद्वारा शिक्षित बनाना चाहिए तथा उसीके द्वारा वे शिक्षित बनाए भी जा सकते हैं।"

विद्वान् मैकोलेने भी यही बात कही है कि जब केवल प्रारम्भिक शिक्षा ही उद्देश्य हो तो देशवासियोंकी ही भाषाद्वारा सिखाना सबसे सुगम है। कोर्ट

औफ़ डाइरेक्टर्सने सन् १८५४ के आज्ञापत्रमेँ लिखा है कि हमलोगोँका न तो यह उद्देश्य ही है और न इच्छा ही है कि देशभाषाके स्थानपर अंग्रेज़ी पढ़ाई जाय। हम लोगोँने सदा उन भाषाओँके प्रचारकी आज्ञापर उचित ध्यान दिया है जिन्हेँ देशवासियोँका समूह जानता हो। हम लोगोँने अंग्रेज़ीकी उपेक्षा कर इन्हीँ भाषाओँकी कचहरियोँमेँ तथा सरकारी अफ़सरोँ और प्रजाके परस्पर व्यवहारोँमेँ फ़ारसीके स्थानपर प्रचलित किया है। यह अनिवार्य्य है कि शिक्षाप्रणालीमेँ इन देशभाषाओँकी शिक्षापर दृढ़तापूर्वक ध्यान दिया जाय और इन्हीँके द्वारा उन आवश्यक उन्नत विद्याओँका भारतवासियोँमेँ प्रचार हो जिन्हेँ वे विदेशी भाषाकी कठिनाइयोँ या अपनी दुरवस्थाके कारण न सीख सकते होँ। शिक्षा देनेके लिये अंग्रेज़ी उन्हीँ स्थानोँमेँ पढ़ाई जानी चाहिए जहाँ उसकी चाह हो। परन्तु अंग्रेज़ीके साथ-साथ उस ज़िलेकी देशभाषाका तथा उस भाषामेँ जिन विषयोँकी शिक्षा हो सकती हो उन अन्य बातोँको सिखानेपर भी ध्यान रहे। जिन्होँने अंग्रेज़ीद्वारा विद्याध्ययन करनेकी योग्यता प्राप्त कर ली है उन्हेँ उसीके द्वारा शिक्षा दी जाय, पर जो लोग अंग्रेज़ी न जानते होँ उन लोगोँकी शिक्षा देश-भाषाद्वारा ही हो।" इस मतका अनुमोदन भारत-सचिवने सन् १८५६ ई० मेँ किया तथा एजुकेशन कमीशनने जाँच और विचारके उपरान्त यह निश्चय किया कि "प्रारम्भिक शिक्षा वह है जो देशभाषा-द्वारा जनसधारणके उपयोगी विषयोँमेँ दी जाय और जो युनिवर्सिटी-शिक्षाके आरम्भिक रूप न समझे जाते होँ।" इस परिभाषाको सरकारने स्वीकार किया और तभीसे इसे निश्चित समझना चाहिए। इस लेखके आरम्भमेँ यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि इस प्रान्तकी भाषा हिन्दी है। फ़ारसी तथा अरबी शब्दोँकी अधिकता होने तथा उसके विदेशी अक्षरोँमेँ लिखे जानेके कारण शिक्षित मुसलमानोँ और राज्य-कर्मचारियोँको छोड़कर जनसाधारणमेँ उर्दू कभी प्रचलित न हुई। इसी कारणसे इसके द्वारा प्रारम्भिक शिक्षाका प्रचार यथेष्ट नहीँ हो सकता। पश्चिमोत्तर प्रदेशकी सरकारने इस बातको प्रारम्भमेँ समझकर यह आज्ञा दी थी कि स्कूलोँमेँ हिन्दी पढ़ाई जाय परन्तु जब उर्दूका प्रचार अदालतोँमेँ किया गया तो यह आवश्यक समझा गया कि उसके अध्ययनमेँ लोग उत्साहित किए जायँ। इसी उद्देश्यसे सरकारने सन् १८४४ ई० मेँ इस बातपर ज़ोर दिया कि उर्दूके पढ़नेवाले उत्साहित किए जायँ। परन्तु किसी प्रकारके उत्साहकी आवश्यकता न थी। अदालतोँमेँ उर्दूका प्रचार ही उसकी उन्नतिका प्रधान साधन हुआ। इससे हिन्दीको अधिक हानि पहुँची यद्यपि हिन्दीके द्वारा ही केवल प्रारम्भिक शिक्षा उत्तम रीतिसे दी जा सकती है। उर्दू पढ़नेवालोँको सरकारी नौकरीकी आशा थी, पर बेचारे हिन्दी पढ़नेवालोँका भविष्य बिलकुल अन्धकारमय था।

जिन्हेँ सरकारी नौकरीकी इच्छा थी या जो वकालत करना चाहते थे उन्होँने उर्दू पढ़ना आरम्भ किया। परन्तु जिन्हेँ किसी बातकी आवश्यकता न थी और जो सरकारी नौकरीके लिये भी लालायित न थे उन्होँने एक कठिन विदेशी भाषाके सीखनेमेँ न तो कोई लाभ ही समझा और न यही चाहा कि अपनी मातृभाषा हिन्दीके सीखनेके लिये वे स्कूलोँके नियमोँसे बद्ध होँ। क्योँकि प्रथम तो उर्दू पढ़नेवाले लोग उन्हेँ अनादरकी दृष्टिसे देखने लगे और फिर इसके पढ़नेमेँ किसी प्रकारका उत्साह तो कहाँसे मिलता ही न था। बस हिन्दीकी उन्नति तथा उसके प्रचारका अन्त तो इस प्रकारसे हो गया। जिन्हेँ किसी प्रकारसे नागरी जानना आवश्यक हुआ उन्होँने उसे घरपर या पाठशालाओँमेँ पढ़ लिया। इसलिये जनसाधारणमेँ हिन्दीके प्रचारका कोई विशेष प्रयोजनीय कारण न रहा। इस प्रकारसे जहाँ किसी समय बड़े-बड़े पण्डित और सभ्य आर्य्य लोग बसते थे, आज उसी पश्चिमोत्तर-प्रदेशको सब प्रान्तोँसे

अधिक जड़ और अशिक्षित बननेका दिन नसीब हुआ।

सन् १८४३ ई० में इस प्रान्तके शिक्षा-विभागका प्रबन्ध सरकारने प्रान्तीय सरकारके हवाले किया। उस समय यहाँके लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर श्री टौम्सन थे। उन्होंने देशभाषामें प्रारम्भिक शिक्षा देनी निश्चय की और उसी उद्देश्यसे प्रत्येक तहसीलमें एक-एक वर्नैकुलर स्कूल खोला गया। इसके थोड़े ही समय बाद हल्क़ाबन्दी स्कूल खुले। निदान सरकारके उत्साह, प्रोत्साहन और सहयोगसे देशी स्कूलोंकी संख्या बढ़ी और ज़मींदारोंने अपनी आयपर एक रुपया सैकड़ा शिक्षाके लिये देना स्वीकार किया। इस प्रबन्धसे प्रारम्भिक शिक्षाकी उन्नति तथा उसके प्रचारकी पूर्ण आशा और सम्भावना हुई तथा कोर्ट औफ़ डाइरेक्टर्सने अपने १८५४ ई० के आज्ञापत्रमें श्रीयुत टौम्सनके प्रबन्धकी बड़ी प्रशंसा की और अन्य प्रान्तीय सरकारोंको उसका अनुकरण करनेकी सम्मति दी। उसके अनुसार सब प्रान्तोंमें आवश्यक परिवर्त्तनसहित प्रबन्ध भी हुआ। पश्चिमोत्तर प्रदेशको छोड़कर अन्य प्रान्तोंमें इस प्रारम्भिक शिक्षाके प्रबन्धको पूर्ण सफलता मिली, परन्तु जहाँ इसका जन्म हुआ वहाँकी दशा अत्यन्त शोचनीय होती गई। इसका कारण यही है कि अन्य प्रान्तोंमें वहाँकी भाषामें शिक्षाका प्रचार हुआ। परन्तु यहाँकी कचहरियोंमें मातृभाषा हिन्दीके बदले उर्दूका प्रचार किया गया जो प्रारम्भिक शिक्षाका मुख्य अवरोधक हुआ। सन् १८६३ ई० में एक महाशयने "कलकत्ता रिव्यू" में "उड़ीसामें देशभाषाकी शिक्षा" शीर्षक एक लेख लिखा था। उसके अनुसार सन् १८५३ ई० में पश्चिमोत्तर प्रदेशके उन आठ ज़िलोंमें केवल ३४६६ स्कूल और ३६८८४ विद्यार्थी थे, जहाँ प्रारम्भिक शिक्षाके प्रचारका पूर्ण उद्योग किया गया था और जहाँ ४२७२००० मनुष्य बसते थे। सन् १८५४ ई० में उड़ीसाके कटक, पुरी तथा बालासोर ज़िलोंमें ३०८५ स्कूल और २७००० विद्यार्थी थे, जहाँके (पुरुष) वासियोंकी संख्या कोई १०००००० के लगभग होगी। पश्चिमोत्तर प्रदेशमें राजा और प्रजा दोनोंके उत्साहसे जो सफलता नहीं हो सकी वह उड़ीसामें केवल प्रजाके ही उत्साह और उद्योगसे प्राप्त हो गई। इसका कारण यही है कि उड़ीसाकी कचहरियोंमें वहाँकी मातृभाषा उड़ियाका प्रचार है, परन्तु पश्चिमोत्तर प्रदेशमें एक विदेशी भाषा और विदेशी अक्षरोंमें ही सब सरकारी काम होता है। इसी कारण उड़ीसामें विद्याध्ययनकी अधिकता और यहाँ उसी बातका अभाव हुआ। कचहरियोंमें उर्दूका प्रचार होनेपर भी ३० सितम्बर सन् १८५४ ई० के आज्ञापत्रमें 'बोर्ड आफ़ रेवेन्यू' ने यह उपदेश किया कि पटवारियोंके काग़ज़ात हिन्दी भाषा और नागरी लिपिमें लिखे जायँ।

इसपर लोगोंको यह आशा हुई कि अब सरकार हिन्दीके स्वत्वोंपर विचारकर उसका कचहरियोंमें प्रचार करेगी। इसलिये हिन्दी पढ़नेवालोंकी संख्या उर्दू पढ़नेवालोंसे छःगुनी हो गई थी, परन्तु यह अवस्था बहुत थोड़े कालतक रही। जब लोगोंने यह देखा कि कचहरीकी भाषामें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ और न होनेकी आशा ही है, उर्दू जाननेवालोंकी पूछ है और वे उच्चपद प्राप्त कर अपनी प्रत्येक प्रकारसे उन्नति कर रहे हैं और हिन्दी जाननेवालोंकी कहीं कोई भी सुध नहीं लेता तो उन्हें हारकर अपने मातृभाषा-प्रेमको तोड़ना पड़ा और उर्दू भाषाकी ओर दत्तचित्त होना पड़ा। पर इस भाषाकी कठिनताने उनको कृतकार्य्य न होने दिया और अन्तमें केवल वे ही लोग शिक्षाकाङ्क्षी रह गए, जिनके पास जीविका-निर्वाहके लिये नौकरीके अतिरिक्त और कोई अवलम्ब न था। इस प्रकार सरकारका जनसाधारणमें विद्या फैलाने का उद्योग निष्फल हुआ। इस कथनकी पुष्टि निम्नलिखित तालिकासे होती है।

पश्चिमोत्तर प्रदेशके प्राइमरी (हल्क़ाबन्दी) स्कूलोंमें सन् १८६० से १८७४ ई० तक हिन्दी तथा उर्दू पढ़नेवालोंकी तुलनात्मक संख्या ।

वर्ष	पश्चिमोत्तर प्रदेश (कमाऊँ तथा गढ़वालको छोड़कर)		कमाऊँ और गढ़वाल
	उर्दू या फ़ारसी	हिन्दी	हिन्दी
१८६०-६१	११४९०	६९१३४	....
१८६१-६२	१७४३१	७२६४८	....
१८६२-६३	२००७३	७३७२६	११८७
१८६३-६४	२०१८०	७३६२५	१५६७
१८६४-६५	२१६१८	६०६७३	२१२७
१८६५-६६	२१९८२	७६५१६	१३६३
१८६६-६७	२४०५८	८०९६१	१४१२
१८६७-६८	२५६५७	७६३००	१५०२
१८६८-६९	३२३७७	७९०२३	१३३६
१८६९-७०	३२४४५	७४३७२	२०५५
१८७०-७१	३४६२१	७७७७८	३१७३
१८७१-७२	४८६६५	८८१७९	४१४५
१८७२-७३	४३६२९	७६४७६	५१९८
१८७३-७४	४८२२९	८५८२०	६७०८

ये सब आँकड़े शिक्षा-विभागके विवरणसे लिए गए हैं। इसके पीछेके विवरणमें हिन्दी और उर्दू पढ़नेवालोंकी संख्या अलग-अलग नहीं दी गई है परन्तु यह पता लगा है कि ३१ मार्च सन् १८९६ ई० को ५०३१६ बालक उर्दू और १००४०४ बालक हिन्दी पढ़ते थे। अब इन संख्याओंसे यह सिद्ध होता है कि पश्चिमोत्तर प्रदेशमें (गढ़वाल और कमाऊँको छोड़कर) जहाँ कचहरियोंमें उर्दू भाषाका प्रचार है, सन् १८६२-६३ में उर्दू और हिन्दी पढ़नेवालोंकी संख्या ९३७९९ थी और बारह वर्ष उपरान्त सन् १८७३-७४ में यह संख्या केवल १३४०४९ हुई अर्थात् दूनीसे कुछ कम। गढ़वाल और कमाऊँमें, जहाँकी कचहरियोंमें हिन्दी-भाषाका प्रचार है, सन् १८६२-६३ में पढ़नेवालोंकी संख्या ११८७ थी, बारह वर्ष बाद ६७०८ अर्थात् छःगुनी हो गई। इससे स्पष्ट हुआ कि बारह वर्षमें हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरोंके कारण पढ़नेवाले छःगुने अधिक हो गए। इस बातका अनुभव सर्वप्रथम राजा शिवप्रसादजीने किया था और उन्होंने अपने "कचहरीकी लिपिपर अभ्यर्थनापत्र" (मेमोरेण्डम औन कोर्ट कैरेक्टर) शीर्षक लेखमें दुःख प्रगट किया है। राजा शिवप्रसादजीने प्रारम्भिक शिक्षाका प्रचार न होनेका कारण कचहरियोंमें फ़ारसी अक्षरोंका प्रचार होना ही बतलाया था, तथा इस आपत्तिको दूर करनेके लिये नागरी अक्षरोंके प्रचार करनेकी सम्मति दी थी, पर किसीने उसपर ध्यान न दिया। इसके कुछ काल उपरान्त सर विलियम म्योरकी सेवामें एक अभ्यर्थनापत्र भेजा गया जिसमें कचहरियों और दफ़्तरोंमें नागरी अक्षरोंके प्रचारके लिये प्रार्थना की गई थी। इस अभ्यर्थनापत्रमें भी दिखाया गया था कि बिना नागरी अक्षरोंके प्रचारके इस देशमें विद्या नहीं फैल सकती। सन् १८७४ के जनवरी मासमें सरकारने यह उत्तर दया कि यथावसर सरकार उसपर भली भाँति विचार करेगी। सन् १८७३-७४ के विवरणमें शिक्षा-विभागके डाइरेक्टरने भी हिन्दीके प्रचारपर ज़ोर दिया। उनकी यह सम्मति थी कि उर्दू केवल उन्हीं जगहोंमें पढ़ाई जाय जहाँ उसकी आवश्यकता या चाह हो और सर्वसाधारणकी शिक्षा हिन्दी भाषाके द्वारा ही होनी चाहिए। सर्वसाधारणकी प्रार्थना और शिक्षा-विभागके डाइरेक्टरकी सम्मतिपर कोई ध्यान न दिया गया और सरकारने यह स्पष्ट रूपसे कह दिया कि हिन्दीका प्रचार कचहरियोंमें नहीं किया जा सकता और न उसके पढ़नेवालोंको उत्साहित करनेकी आवश्यकता है, क्योंकि हिन्दी जाननेवालोंकी संख्या उर्दू जाननेवालोंसे कहीं अधिक है। सरकारने केवल यही नहीं कहा बल्कि दो वर्ष उपरान्त सन् १८७७ ई० में यह आज्ञा दे दी कि जिसने उर्दू या फ़ारसीमें एङ्गलो वर्नैकुलर मिडिल परीक्षा न पास की हो वह किसी दफ़्तरमें दस रुपये या उससे ऊपरकी नौकरी न पावे चाहे उस दफ़्तरमें केवल अंग्रेज़ीकी ही आवश्यकता क्यों न हो। इस प्रकार हारकर लोगोंने हिन्दी छोड़कर उर्दू पढ़ी। इस आज्ञाका प्रचार सन् १८९६ ई० तक रहा जब

सर एण्टनी मेकडैानलने इसे रद्द कर दिया। पर २० वर्षतक सन् १८७७ की आज्ञाके पालनसे जो विद्याके प्रचार तथा हिन्दीकी उन्नतिको हानि हुई है उसका पूरा होना तवतक असम्भव है जबतक कि इसका उचित उपाय न किया जाय। परन्तु यह बात दिखाई जा चुकी है कि हिन्दीके पढ़नेसे कोई लाभ नहीं है। क्योंकि इससे जीविका-निर्वाहका ठिकाना नहीं लग सकता। इसलिये उर्दूके पढ़नेमें ही लाभ है। यह भी दिखाया जा चुका है कि उसी सिद्धान्तके अनुसार हिन्दी पढ़नेवालोंकी संख्या घटने लगी। सन् १८७७ ई० वाली आज्ञासे यह बात और भी बढ़ी। सन् १८७३-७४ की वर्नैकुलर मिडिल परीक्षाके लिये ४३४ वालकोंने उर्दू और १३१५ ने हिन्दी पढ़ी अर्थात् हिन्दी पढ़नेवालोंकी संख्या तिगुनी थी। और सन् १८९५-९६ में २८१४ बालकोंने उर्दूमें और ७८५ बालकोंने हिन्दीमें परीक्षा दी अर्थात् उर्दू पढ़नेवालोंकी संख्या चैागुनी हो गई।

जब हम परीक्षाके परिणामपर ध्यान देते हैं तो यह देख पड़ता है कि हिन्दीमें पास करनेवालोंकी संख्या उर्दूवालोंसे अधिक होती है। यहाँपर इस कथनकी पुष्टिके लिये गत पाँच वर्षोंकी अवस्था नीचे दिखाते हैं।

वर्ष	उर्दू			हिन्दी		
	परीक्षा दी	पास हुए	प्रति सैकड़ा	परीक्षा दी	पास हुए	प्रति सैकड़ा
१८९१-९२	२२२७	११२१	४१	६२८	३५१	५६
१८९२-९३	२६८९	१२५४	४७	७२४	४२६	५९
१८९३-९४	२९६७	१४२८	४८	७९२	४०६	५१
१८९४-९५	२९३१	१२०५	४१	८१४	३८६	४७
१८९५-९६	२८१४	१२४७	४४	७८५	४७४	६०

वर्नैकुलर मिडिल परीक्षामें व्याकरण तथा साहित्यको छोड़कर हिन्दी तथा उर्दूके सब ग्रन्थ एकसे ही हैं। अतएव जब हिन्दी पढ़नेवाले अधिक पास होते हैं तो उससे यही सिद्ध होता है कि उस भाषामें सुगमतासे विद्या उपार्जन कर सकते हैं।

यह सब होनेपर भी सरकारका ध्यान हिन्दीकी ओर क्यों नहीं जाता, इसका कुछ कारण समझमें नहीं आता। उर्दूके आदर और हिन्दीके अनादरसे केवल यही परिणाम नहीं हुआ कि केवल हिन्दी पढ़नेवालोंको हठात् उर्दू पढ़ाई जाय और इसमें उद्योग व्यर्थ नष्ट किया जाय, बल्कि इससे बड़ी भारी हानि तो यह हुई है कि पढ़नेवालोंकी संख्या घट गई। जिन अन्य प्रान्तोंमें वहाँकी देशभाषाका कचहरियोंमें प्रचार है वहाँ पढ़नेवालोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती चली जाती है।

सबसे पहले पारम्भिक शिक्षाका प्रचार बम्बई और पश्चिमोत्तर प्रदेशमें हुआ। बम्बईकी जनसंख्या पश्चिमोत्तर प्रदेशसे आधी है, पर वहाँ सन् १८७०-७१ में १५९९२८ बालक प्रारम्भिक स्कूलोंमें पढ़ते थे और यहाँ १५३२५२ अर्थात् बम्बईसे छः हज़ार कम। इसके पहले और किसी प्रान्तमें प्रारम्भिक शिक्षाके लिये नियमित रूपसे कोई उद्योग नहीं हुआ था। इसी कारणसे यहाँ इतनी सफलता दीख पड़ती थी। पर जब सन् १८७०-७१ के उपरान्त अन्य प्रान्तोंमें भी प्रारम्भिक शिक्षा आरम्भ हुई तो यह देखा गया कि पश्चिमोत्तर प्रदेश प्रारम्भिक शिक्षामें सबसे पीछे रह गया है सरकारकी ओरसे किसी प्रकारकी ढिलाई नहीं हुई बल्कि प्रारम्भिक शिक्षाके लिये और भी अधिक उद्योग किया गया। उसका फल यह हुआ कि सन् १८७१ से १८८२ तक विद्यार्थियोंकी संख्या १५३२५२ से २०४५१२ हो गई। इसी ग्यारह वर्षके अन्तरमें अन्य प्रान्तोंमें बालकोंकी संख्या कितनी बढ़ी यह नीचे दिखाया जाता है।

प्रान्तका नाम	सन् १८७०-७१ ई०	सन् १८८१-८२ ई०
मद्रासकी जनसंख्या (३५६३०४४०)	६८२३७	३४०२७८
बम्बईकी जनसंख्या (२६९६६२४२)	१५९६२८	३१२७७१
बङ्गालकी जनसंख्या (७१३४६९८७)	६८५४३	८८०९३७

पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधकी जनसंख्या
४६९०५०८५ है।

एजुकेशन कमीशनके वक्तव्यके अनुसार जनसंख्याके हिसाबसे प्रति सैकड़ा २·६ बालक बम्बईके, २·५ बङ्गालके, २·२ मद्रासके और ·८९ प्रति सैकड़ा पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधके प्रारम्भिक स्कूलोंमें शिक्षा पाते हैं। सन् १८८१ में हमारे प्रान्तकी यह अवस्था थी। सन् १८९५-९६ में बालकोंकी संख्या मद्रासमें ५१००६३, बम्बईमें ५००१२२ और बङ्गालमें १२०६६१९ हो गई ; परन्तु अभागे पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधमें घटकर १५५५५२ हो गई अर्थात् ४८९६० बालक कम हो गए।

इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि बम्बई, बङ्गाल और मद्रासमें प्रारम्भिक शिक्षाकी सन्तोषजनक उन्नति हुई है। इन तीनों प्रान्तोंकी कचहरियोंमें वहाँकी देशभाषाओंका प्रचार है। पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधमें प्रारम्भिक शिक्षाकी उन्नतिके स्थानपर पूरी अवनति हुई है और इन स्थानोंकी कचहरियोंमें देशभाषा और देशी अक्षरोंके स्थानपर एक विदेशी भाषा और विदेशी अक्षरोंका प्रचार है।

अब ज़रा बिहार तथा मध्यप्रदेशपर ध्यान दीजिए। जब सन् १८३९ ई० में सरकारने यह आज्ञा दी कि कचहरियों और सरकारी दफ़्तरोंमें फ़ारसीके स्थानपर देशभाषाका प्रयोग हो तो उर्दू इस प्रान्तकी भाषा समझकर प्रचलित की गई। परन्तु वास्तवम यहाँकी भाषा हिन्दी ही थी और अब भी है जो नागरी या कैथी अक्षरोंमें लिखी जाती है। जब बङ्गालके लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर जौर्ज कैम्बल हुए तो उन्होंने अपने शासनकालका मुख्य कर्त्तव्य जनसाधारणमें विद्या फैलाना बनाया और इसी उद्देश्यसे सन् १८७२ ई० में चार लाख रुपयेका व्यय स्वीकार किया। पर उनको यह अनुभव हुआ कि जबतक उस देशकी भाषा और लिपिका प्रचार कचहरियों और दफ़्तरोंमें न होगा तबतक विद्याका यथेष्ट फैलाना सम्भव नहीं है। अतएव उन्होंने आज्ञा दी की केवल अर्ज़ियोंको छोड़कर और सब सम्मन, नोटिस आदि हिन्दीमें लिखे जायँ, परन्तु राज्यकर्मचारियोंकी दयासे कई वर्षतक इस आज्ञाका पालन न हुआ। अन्तमें सर ऐशले ईडेनके समयमें इस बातपर सरकारका ध्यान पुनः दिलाया गया और तदनुसार जनवरी सन् १८९१ ई० से पटना और भागलपुर कमिश्नरीमें हिन्दीका ही प्रचार है। इस न्याययुक्त और आवश्यक सुधारका फल अत्यन्त सन्तोषजनक हुआ है, क्योंकि ३१ मार्च सन् १८७२ ई० में बिहारके प्रारम्भिक स्कूलोंमें केवल ३३४३० बालक थे और सन् १८९५-९६ के अन्तमें २६०४७१ अर्थात् आठगुने हो गए।

मध्यप्रदेशके हिन्दी-भाषी स्थानोंमें सन् १८७२ ई० तक फ़ारसीका प्रचार था। सन् १८७२ ई० में भारतसरकारने यह आज्ञा दी कि नागरी अक्षरोंका प्रचार हो, परन्तु राज्यकर्मचारियोंकी अपार दयासे सन् १८८१ ई० तक इस आज्ञाका प्रत्यक्ष फल न देख पड़ा। इस वर्ष जुडिशल कमिश्नरने चीफ़ कमिश्नरके आदेशानुसार यह अज्ञा दी कि अर्ज़ीदावे हिन्दीमें लिखे जाया करें तथा डिग्री, हुक्म, फ़ैसले आदि हिन्दीमें लिखे जायँ और जो मनुष्य शीघ्रता तथा शुद्धतासे हिन्दी न लिख-पढ़ सकता हो वह नौकर न रक्खा जावे। इस आज्ञाका पालन अब पूर्ण रीतिसे हो रहा है और शिक्षापर इस परिवर्त्तनका प्रभाव अच्छा पड़ा है। फलस्वरूप सन् १८८१ ई० में प्रारम्भिक स्कूलोंमें जहाँ ७४५२९ विद्यार्थी थे वहाँ १८९५-९६

के अन्तमेँ ११७८९६ अर्थात् लगभग ४३००० अधिक हो गए; पर पञ्जाबमेँ, जहाँ मध्यप्रदेशसे जनसंख्या दूनी है और जहाँ विश्वविद्यालय और आर्य्यसमाज प्रारम्भिक शिक्षाके लिये पूर्ण उद्योग कर रहे हैँ, गत १५ वर्षोँमेँ केवल १६००० विद्यार्थी बढ़े और पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधमेँ ४९००० घट गए। इसका कारण केवल यही है कि इन दोनोँ प्रान्तोँकी कचहरियोँ और सरकारी दफ़्तरोँमेँ देशभाषा और देशी अक्षरोँके बदले फ़ारसी अक्षरोँ तथा उर्दू भाषाका प्रचार है।

और जगहोँको जाने दीजिए। आप इसी प्रान्तके अन्तर्गत कमाऊँ कमिश्नरीपर ध्यान दीजिए। इस प्रान्तमेँ प्रारम्भिक शिक्षाकी अवनतिका कारण लोग यह बतलाते हैँ कि किसान लोगोँकी रुचि इस ओर नाम मात्रको भी नहीँ है। ठीक है। पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधकी सब कमिश्नरियोँमेँ कमाऊँसे बढ़कर किसानोँकी बस्ती और कहीँ नहीँ है। वहाँ ८३.७ प्रति सैकड़ा किसान हैँ। कमाऊँसे बढ़कर ग़रीब कमिश्नरी भी दूसरी नहीँ है। अतएव शिक्षा देनेमेँ यहाँ जितनी कठिनता हो सकती है उतनी किसी अन्य स्थानमेँ कदापि सम्भव नहीँ है; परन्तु प्रारम्भिक शिक्षामेँ जितनी सफलता सरकारको यहाँ प्राप्त हुई है उतनी और कहीँ नहीँ देखी जाती। यह ऊपर देखा जा चुका है कि सन् १८३० और १८७४ के बीचमेँ जब पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध भरमेँ बालकोँकी संख्या दूनी भी न हो सकी थी, कमाऊँमेँ छःगुनी हो गई और अबतक यही अवस्था है। इसका श्रेय केवल कचहरियोँमेँ नागरी अक्षरोँके प्रचारको है। आश्चर्य्य तो यह है कि एक ही प्रकारकी शिक्षा पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधमेँ दी जाती है, पर जितनी सफलता कमाऊँ और गढ़वालमेँ दिखाई देती है उतनी और स्थानोँमेँ क्योँ नहीँ दीख पड़ती?

जब एजुकेशनल कमीशन नियत किया गया तब अलमोड़ाके श्री बडेनूने एक लेख कमीशनके विचारार्थ छपवाया था। इस लेखमेँ उन्होँने यह दिखाया था कि हिन्दी ही उत्तर भारतवर्षमेँ हिन्दुओँकी मातृभाषा है, उर्दू नहीँ, और उनको समझाने तथा उनके हृदयपर प्रभाव जमानेका सर्वोत्तम साधन यही है। उनका कहना है कि तबतक सफलतापूर्वक विद्याका प्रचार नहीँ हो सकता है और न उससे कुछ लाभ ही मिल सकता है जबतक कि यहाँकी ही देशभाषाका पूर्ण रूपसे आदर न हो और उससे बिना प्रतिबन्ध कार्य्य न लिया जाय। क्योँकि यह बात सिद्ध है कि विद्याका वास्तविक और उत्तम प्रचार केवल पढ़नेवालोँकी मातृभाषाद्वारा ही होता है। अतएव इस बातको स्वीकार करके उसके अनुकूल कार्य्य करनेमेँ विलम्ब करना न्यायसे दूर भागना, विद्याके प्रचारको रोकना और भारतवासियोँकी उन्नतिमेँ बाधा डालना है। राजा शिवप्रसादने भी इसी आशयकी साक्षी एजुकेशन कमीशनमेँ दी थी तथा हिन्दीके प्रचारपर ज़ोर दिया था। और भी अनेक महाशयोँने हिन्दीके पक्षमेँ कहा था और अभ्यर्थनापत्र भी भेजे थे। इलाहाबादके मेयो हॉलमेँ कमीशनको अभिनन्दनपत्र दिए गए थे। १९ अगस्त सन् १८८२ ई० के "पायोनियर" के अनुसार कमीशनके सभापतिने उसके सभासदोँसे कुछ कहनेको कहा। इसपर माननीय श्री सय्यद महमूदने हिन्दी और उर्दूके विवादित विषयपर एक वक्तृता दी जिसमेँ उन्होँने इस बातको स्वीकार किया कि प्रजावर्गका अधिकांश हिन्दीके पूर्ण प्रचारके पक्षमेँ जान पड़ता है। यह विवाद हिन्दी और उर्दू भाषाओँका नहीँ है बल्कि नागरी (देवनागरी) और फ़ारसी अक्षरोँका है। इसके उपरान्त इस विषयपर दिए हुए बयानोँ और अभ्यर्थना-पत्रोँके सम्बन्धमेँ कहा और अन्तमेँ यह कहा कि यदि कमीशन पश्चिमोत्तर प्रदेशके स्कूलोँमेँ हिन्दीके अधिक प्रचारकी सम्मति देगा तो मैँ उसका समर्थन करूँगा। इसके उपरान्त सभापति महाशयने कहा कि हम लोग आपके निवेदनोँपर पूर्ण विचार करके तब कुछ सम्मति देँगे।

ऊपर यह कहा गया है कि कमीशनने अपने विवरणमें लिखा है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधके प्रारम्भिक स्कूलोंमें पढ़नेवालोंकी संख्या ·८६ प्रति सैकड़ा है। इस सिद्धान्तको स्थिर करते समय, जो-जो कारण प्रारम्भिक शिक्षाके प्रचार न होनेके बताए जाते हैं उनपर कमीशनने पूरी तरहसे विचार किया। वे कारण ये हैं—(१) किसानोंकी दरिद्रता, (२) हल्क़ाबन्दी स्कूलोंका तहसीली स्कूलोंकी नक़ल करना, (३) देशी स्कूलोंपर ध्यान न देना और (४) हिन्दीके स्थानपर उर्दूका प्रचार। कमीशनने इन कारणोंपर इस प्रकारसे विचार किया: (१)—प्रथम कारण ठीक तथा सन्तोषजनक नहीं है, क्योंकि बम्बईमें किसान फ़ीस देकर पढ़ते हैं और पश्चिमोत्तर प्रदेशमें बिना फ़ीस लिए शिक्षा दी जाती है, (२) दूसरा कारण उन्हें उचित न जान पड़ा और (३) तीसरे कारणपर कमीशनने पूर्ण रूपसे विचार किया। कमीशनके विवरणमें लिखा है कि "ऐसा जान पड़ता है कि जिस नीतिका योग श्री टौम्सनने कोर्ट औफ़ डाइरेक्टर्सकी सहानुभूतिके साथ किया था उस नीतिके प्रतिकूल कार्य्य हुआ है। कई देशी स्कूल सरकारके अधीन नहीं किए गए। और गत वर्षोंमें शिक्षा-विभागसे भी उन्हें कुछ सहायता नहीं दी गई और न वे उत्साहित ही किए गए। तो भी उनमेंसे अधिकांश लोग अपने बालकोंकी शिक्षाके लिये द्रव्य व्यय कर सकते हैं। जिन्हें ऐसा करनेका बल भी है वे अबतक देशी स्कूलों (पाठशाला मकतब आदि) के पक्षमें हैं। जो लोग शिक्षा-विभागके नियमानुसार अपने बालकोंको पढ़ाना चाहते हैं और जो अपने बालकोंको घरका काम छुड़ाकर पढ़नेके लिये अवकाश दे सकते हैं उन पढ़नेवालोंकी संख्या सीमातक पहुँच गई है। बम्बई प्रान्तमें डिपार्टमेण्टल स्कूलोंकी आवश्यकता उनमें बालकोंकी वृद्धिसे ही सिद्ध है; परन्तु पश्चिमोत्तर प्रदेशके हल्क़ाबन्दी स्कूलोंमें ऐसी उन्नति नहीं देख पड़ती।..............यहाँ इतना कह देना काफ़ी है कि हम लोगोंकी सम्मतिमें यदि यहाँ भी देशी स्कूलोंपर ध्यान न दिया जाता तो सन् १८७१ से ८२ के बीचमें पश्चिमोत्तर प्रदेशमें प्रारम्भिक शिक्षाकी उतनी ही उन्नति होती जितनी भारतवर्षके अन्य प्रान्तोंमें हुई है; परन्तु प्रजाके ध्यान न देनेसे टौम्सन महोदयकी नीतिका अनुसरण नहीं किया गया। कमिश्नर लोग अपने विवरणके उन्नीसवें पृष्ठमें लिखते हैं कि "सन् १८५० में जो नियम स्थिर किए गए थे उन्हींके अनुकूल चार-पाँच वर्षतक काम हुआ। यह सम्भव है कि देशी स्कूलोंको उपयुक्त सहायता न दी गई हो। परन्तु इन स्कूलोंकी उन्नतिपर ध्यान देकर प्रान्तीय सरकारने यह स्थिर किया है कि वह अत्यन्त असन्तोषजनक है और इसीसे शिक्षाका ऐसा प्रबन्ध किया गया कि उसका पूरा-पूरा अधिकार सरकारके अधिकारमें हो। इस प्रकार ज़मीन्दारोंकी सहायता और सरकारी अफ़सरोंके प्रबन्धसे मकतबों और पाठशालाओंके स्थानपर ग्राम स्कूलों (विलेज स्कूलों) का प्रचार हुआ और अन्तमें केवल इन्हींके द्वारा प्रारम्भिक शिक्षाकी उन्नतिपर सरकारने ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त देशी स्कूलोंकी शिक्षाकी अन्य कोई उत्तम रीति हो ही नहीं सकती थी। देशी स्कूलोंकी उन्नति और वृद्धि तभीतक सम्भव है जबतक देशीभाषा और लिपिका व्यवहार हो। जिन प्रान्तोंमें कचहरियों और दफ़्तरोंमें देशभाषाका प्रचार है वहाँ इन स्कूलोंकी वृद्धि हुई है और इन्हींके द्वारा करोड़ों बालक शिक्षा प्राप्त करते हैं। केवल पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध तथा पञ्जाब, इन्हीं दो प्रान्तोंमें देशी स्कूलोंद्वारा शिक्षा फैलानेमें सफलता नहीं प्राप्त हुई है, और ये ही ऐसे प्रान्त हैं जहाँ कचहरियों और दफ़्तरोंमें देशवासियोंकी भाषा और लिपिका अनादर कर उर्दू भाषा तथा फ़ारसी अक्षरोंका आदर है। देशी स्कूलोंको उत्साहपूर्वक बढ़ानेकी सम्मति तो निस्सन्देह उत्तम थी; परन्तु जो अभी कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि सन् १८७१ से ८२ के बीचमें देशी स्कूलोंकी उन्नति न होनेके कारण यह नहीं है कि श्रीयुत टौम्सनकी नीतिके प्रतिकूल कार्य्य हुआ और उसका त्याग किया गया, बल्कि जिस कारणसे

उस नीतिके अनुसार कार्य्य करनेमें सफलता प्राप्त करना ही असम्भव था वह उर्दूका आदर और देशभाषा हिन्दीका तिरस्कार था।

अब यह स्पष्ट है कि साधारण प्रजामें विद्याका प्रचार कचहरियोंमें हिन्दीके प्रचलित होनेके साथ-ही-साथ होगा। अतएव यह आज्ञा की गई थी कि एजुकेशन कमीशन, जिसका मुख्य उद्देश्य प्रारम्भिक शिक्षाकी जाँच करना और उसकी उन्नतिके उपाय बताना था, यह सम्मति देगा कि कचहरियों और सरकारी दफ़्तरोंमें उर्दूके स्थानपर हिन्दीका प्रचार किया जाय, पर दुर्भाग्यवश उन्होंने इस विषयपर कुछ भी न लिखा। पञ्जाबमें प्रारम्भिक शिक्षापर विचार कर वे लिखते हैं कि उर्दू अभीतक सरकारी कचहरियोंकी भाषा है और जबतक यह रहेगी तबतक प्रारम्भिक स्कूलोंमें उसकी वृद्धि अवश्य होगी। बहुतसे लोग ऐसे हैं जो उर्दूके बदले हिन्दीका प्रचार होना चाहेंगे; परन्तु उसका उतना ही सम्बन्ध राज्यप्रबन्धसे है जितना शिक्षा-विषयसे। अतएव यह एक ऐसी बात है जिसपर कमीशन अपनी सम्मति नहीं दे सकती। कमीशनने यह सम्मति दी कि म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्टबोर्डके स्कूलोंमें किस भाषामें शिक्षा देनी चाहिए, यह उस स्कूलकी प्रबन्धकारिणी कमेटी बोर्डकी सम्मति लेकर निश्चय किया करे। गत पन्द्रह वर्षोंके अनुभवसे यह सिद्ध हो गया है कि यह सम्मति निरर्थक है और फिर इस अनुभवके होने तथा और प्रान्तोंमें प्रारम्भिक शिक्षाके इतिहासपर ध्यान देनेसे यह आशा नहीं की जा सकती कि कोई स्कूल-कमेटी तबतक विद्याके प्रचारमें कृतकार्य्य हो सकेगी जबतक कि देशवासियोंकी भाषा अर्थकरी न हो अर्थात् जबतक उसके पढ़नेवाले उसकी सहायतासे अपनी जीविकाका प्रबन्ध न कर सकें। और यह तबतक नहीं हो सकता जबतक सरकारी कचहरियों तथा दफ़्तरोंमें हिन्दीका प्रवेश न हो। इस सिद्धान्तमें किसी प्रकारकी विचित्रता नहीं है। केवल पश्चिमोत्तर प्रदेशमें ही नहीं, बल्कि और-और देशोंमें भी लोगोंने तबतक अपनी भाषाके अध्ययनमें उत्साह नहीं दिखाया जबतक कि कचहरियोंकी भाषा विदेशी रही। इङ्गलैण्डके इतिहाससे इस कथनकी पुष्टि होती है। नौर्मन लोगोंकी विजयसे लेकर सन् १३६२ ई० तक फ़्रान्सीसी भाषामें कचहरियोंका काम चलता था। अतएव लोग उसी भाषाके सीखनेमें रुचि रखते थे, अंग्रेज़ी भाषाकी ओर कोई ध्यान नहीं देता था। यह अवस्था सन् १८६२ ई० तक रही। उस वर्ष अंग्रेज़ीका प्रचार किया गया। तबसे जो उन्नति उस भाषाकी हुई है उसे सब लोग जानते हैं।

यद्यपि उर्दू और हिन्दीमें उतना भेद नहीं है जितना अंग्रेज़ी और फ़्रान्सीसीमें है, पर तो भी इतना भेद अवश्य है जिसमें इङ्गलैण्डके इतिहासपर ध्यान देकर हम शिक्षा ले सकते हैं। अतएव जबतक फ़ारसी और अरबीके शब्दोंसे पूरित होकर तथा फ़ारसी अक्षरोंमें लिखी जाकर उर्दू कचहरियोंमें उस निष्कण्टक राज्यपदपर प्रतिष्ठित रहेगी जो वास्तवमें बृटिश राज्यकी नीतिके अनुकूल हिन्दीको दिया जाना चाहिए (क्योंकि उसी नीतिके अनुसार न्याय विचार करके पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेशको छोड़कर सब प्रान्तोंमें सरकारने देशभाषाका प्रचार किया है) तबतक जनतामें हिन्दीकी विशेष उन्नति नहीं हो सकेगी और न विद्या और सभ्यताका प्रचार ही किसी प्रकारसे सम्भव है।

गत २५ वर्षोंमें इस प्रान्तमें जो विद्याकी उन्नति हुई है उसपर ध्यान देनेसे बड़ा दुःख होता है, पर रेवरेण्ड बडेन् और श्री राजा शिवप्रसादजीकी सम्मतिकी गम्भीरता स्पष्ट दीख पड़ती है। सन् १८७०-७१के अन्तमें प्रारम्भिक स्कूलोंमें बालक और बालिकाओंकी संख्या १५३२५२ थी और सन् १८९५-९६ के अन्तमें १६३९१५ अर्थात् २५ वर्षके बीचमें केवल १०००० विद्यार्थियोंकी संख्या बढ़ी। पर जब हम इस बातपर ध्यान देते हैं कि इसी अवसरमें जनसंख्या ५० लाख बढ़ गई तो विद्यार्थियोंकी १०००० संख्या नाममात्रकी रह जाती है। अस्तु, अब यह भी जान लेना उचित है कि किन लोगोंने शिक्षासे लाभ उठाया है? इस

विषयपर श्रीयुत ग्राउस महोदयका कथन है कि आजकल स्कूलोंमें वे ही लोग पढ़ते हैं जिन्हें सरकारी नौकरी करनेकी इच्छा रहती है, क्योंकि गाँवोंके स्कूल यदि आज बन्द कर दिए जायँ तो ये लोग अपना काम किसी-न-किसी भाँति चला ही लेंगे। पश्चिमोत्तर प्रदेशमें स्कूल जाने योग्य बालकोंमेंसे पढ़नेवालोंकी संख्या अधिक है। इसका कारण यही है कि आजकल नौकरीके लिये लोग विद्याध्ययन करते हैं और सरकारी नौकरीमें बिना अंग्रेज़ीके काम चल नहीं सकता, इसलिये स्कूलोंसे आजकल उन्हीं लोगोंको लाभ पहुँचता है जिनका सरकारी नौकरीसे कोई सम्बन्ध है या जो सम्बन्ध करना चाहते हैं। पर शिक्षा-विभागका यही एक उद्देश्य नहीं है। इसका उद्देश्य सब लोगोंको शिक्षा देना होना चाहिए और उसको ऐसी रीति निकालनी चाहिए जिससे वह अपने उद्देश्यमें सफलता प्राप्त कर सके।

और प्रान्तोंकी अपेक्षा यहाँ शिक्षामें कितना कम व्यय होता है यह इस स्थानपर दिखानेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमें इस बातकी पूर्ण आशा है कि सर एण्टोनी मैकडोनेलके समयमें इस अभावकी भली प्रकार पूर्त्ति हो जायगी। यह बात लोगोंको भली भाँति विदित है कि सरकारकी यह बड़ी भारी इच्छा है कि प्रारम्भिक शिक्षाका अधिक प्रचार हो। उसकी पुष्टिके लिये सरकारकी उस आज्ञाको देखिए जो शिक्षा-विभागके सन् १८९४-९५ के विवरणपर दी गई है। सरकारकी इच्छा पूर्ण होनेका एक यही मार्ग है कि प्रजामात्रको शिक्षा प्राप्त करनेमें उत्साह हो। जबतक यह न होगा तबतक कितना भी द्रव्य क्यों न व्यय किया जाय प्रारम्भिक शिक्षाकी वृद्धि होनी असम्भव है। इस असाध्य कार्य्यको साध्य बनानेका उपाय देशी भाषा और लिपिका सत्कार करनेके अतिरिक्त और दूसरा कुछ नहीं है। प्रति वर्ष इस बातका रोना सुननेमें आता है कि अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधमें प्रति बालकपर औसत व्यय अधिक पड़ता है। इसके प्रमाणमें और प्रान्तोंकी अवस्थाको देख लेना आवश्यक है। सन् १८९५-९६ में मद्रास प्रान्तमें ४३५६११ बालक सहायताप्राप्त तथा असहाय स्कूलोंमें और १५६२०० सरकारी स्कूलोंमें थे, परन्तु पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधमें १५३८०० बालक सरकारी स्कूलोंमें और केवल १०१७५ सहायताप्राप्त तथा असहाय स्कूलोंमें पढ़ते थे। यह हाल केवल प्रारम्भिक स्कूलोंका है। जो अवस्था बालकोंकी है वही अवस्था ख़र्चकी भी है। बङ्गालमें १८९५-९६ में प्रारम्भिक शिक्षाके लिये ३२४५५४३) रुपए दिए गए अर्थात् सरकारका व्यय प्रजासे छःगुना अधिक हुआ, अस्तु। अब यह स्पष्ट है कि इस पश्चिमोत्तर प्रदेशकी इस अधोगतिका कारण यही है कि शिक्षा फैलानेमें प्रजाकी ओरसे उद्योग नहीं होता और न वह इस कार्य्यमें सरकारकी सहायता ही करती है। यही मत एजुकेशन कमीशनने दिया था और यह ठीक भी है। राजा तथा प्रजा जब दोनों मिलकर विद्या फैलानेका उद्योग करेंगे तो अवश्य यथेष्ट परिणाम प्राप्त होगा। पर बात यह है कि प्रजाका उत्साह उस भाषा और उन अक्षरोंकी शिक्षाके लिये क्यों होने लगा जिसके कारण उन्हें असंख्य कष्ट उठाने पड़ते हैं? यदि उन्हें उनकी अपनी भाषा और लिपिके सिखानेका उद्योग होता तो उन्हें भी सहायता देनेमें उत्साह होता। इसलिये जबतक सरकार देशभाषा और देशी अक्षरोंका यथोचित आदर न करेगी तबतक और प्रान्तोंकी अपेक्षा यहाँ उसे अधिक व्यय करना पड़ेगा और फिर भी यहाँके रहनेवालोंमें पूर्ण रीतिसे विद्या न फैलेगी।

अब इस विषयपर और कुछ कहनेकी आवयश्यकता बाक़ी नहीं रह गई है। जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि नागरीके प्रचारके साथ-ही-साथ पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधकी प्रजामें प्रारम्भिक शिक्षाका यथेष्ट प्रचार होगा। प्रजामें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल हैं और इसी अर्थकी पुष्टिमें ये प्रमाण दिए जाते हैं।

इस लेखके प्रारम्भमेँ यह दिखलाया जा चुका है कि यहाँकी देशभाषा हिन्दी है और उसपर पुनः कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीँ है। सन् १८९१ की मनुष्य-गणनाके अनुसार ४६९०५०८५ लोग इस प्रान्तमेँ वसते हैँ। इनमेँसे ४०३८०१६८ अर्थात् ८६·१ प्रति सैकड़ा हिन्दू और ६३४६६५१ अर्थात् १३·५ प्रति सैकड़ा मुसलमान हैँ। मनुष्य-गणनाकी रिपोर्टसे यह भी प्रगट होता है कि प्रति चार मुसलमानोँमेँसे एक शहरमेँ तथा तीन गाँवोँमेँ रहते हैँ। इस बातको सब लोग स्वीकार करेँगे कि गाँवोँके मुसलमानोँकी भी वही भाषा है जो हिन्दुओँ की अर्थात् हिन्दी। सन् १८८१ और १८९१ की मनुष्य-गणनाके समय गणना करनेवालोँकी ओरसे कहा गया था कि वे साधारण बोलीके स्थानपर "हिन्दुस्तानी" नाम लिखेँ तथा श्रीयुत बेलीने अपने सन् १८९१ के विवरणमेँ लिखा है कि हिन्दुस्तानी शब्दके अन्तर्गत शहरोँकी उर्दू तथा गाँवोँकी हिन्दी है। इस नियमके अनुसार ४६९०५०८५ लोगोँमेँसे ४५८८२२६२ हिन्दुस्तानी बोलते थे। श्रीयुत् बेन्सने अपने विवरणमेँ "हिन्दुस्तानी" शब्दका प्रयोग करना अस्वीकार किया और पश्चिमोत्तर प्रदेशकी भाषाको हिन्दी ही नाम दिया। सन् १८७२ ई० मेँ ४३२२०७०५ मनुष्य यहाँ बसते थे जिनमेँसे ४२१९३००४ हिन्दी बोलते थे। इस वर्षके विवरणमेँ लिखा है कि शहरवालोँमेँ और उच्च श्रेणीके लोगोँमेँ उर्दू बोली जाती है, परन्तु वह सर्वसाधारणकी बोली नहीँ है। शहरोँमेँ और उच्च श्रेणीके लोगोँमेँ भी उर्दू तभीतक बोली जाती है जबतक बोलनेवाला किसी फ़ारसीदाँके पास रहता है। सबकी घरेलू भाषा हिन्दी ही है। शिक्षा-विभागके सन् १८९४-९५ के विवरणमेँ श्री लूई महोदय लिखते हैँ कि नित्यप्रतिके व्यवहारमेँ एक ही भाषा बोली जाती है और वह केवल हिन्दी है। यदि यह भाषा अपने देशी अक्षरोँमेँ लिखी जाती तो हम लोगोँको उर्दू तथा हिन्दीमेँ कोई भेद न दिखाई देता। तब एक ही भाषा रही होती और इसमेँ केवल ऐसे विदेशी शब्दोँका प्रयोग होता जो उसमेँ अच्छी तरहसे घुलमिल गए होते। परन्तु फ़ारसी अक्षरोँके प्रचारसे यह न होने पाया और साधारण भाषामेँ अरबी और फ़ारसीके कठिन कठिन शब्द मिल गए जिससे सर्वसाधारणके लिये उसका समझना कठिन हो गया। अस्तु, भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तके मुसलमानोँमेँ विद्याकी कैसी उन्नति हुई है, यह नीचे दिखाया जाता है।

नाम प्रान्त	सन् १८९१ की मनुष्य-गणनाके अनुसार मुसलमानोँकी वस्ती	स्कूल जाने-योग्य मुसलमानोँकी संख्या	प्राइमरी स्कूलोंमें मुसलमानोँकी संख्या	मुसलमान विद्यार्थियोँकी संख्या
मद्रास	२२५०३८६	३३७५५७	६३७७३	९६०८८
मध्यप्रदेश	३०८४७९	४६४२१	८००६	१०५९०
बम्बई	४३९०९९५	६५८६४९	१०६३२९	१४१२३७
बङ्गाल	२३४३७५९१	३५१५६३८	३७०००७	४९४२९४
पञ्जाब	११६३४१९२	१७४५१२८	५२६०२	१२९९४२
पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध	६३४६६५१	९५१९९७	२२६०३	६९४४७

मद्रास, बम्बई, बङ्गाल और मध्यप्रदेशमेँ मुसलमान उस प्रान्तकी भाषा और अक्षरोँको साधारणतः सीखते हैँ, इसलिये उनमेँ विद्याकी इतनी उन्नति है, परन्तु पञ्जाब तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधमेँ उर्दू भाषाका प्रचार है और यही कारण है कि मुसलमानोँमेँ भी विद्याका इतना कम प्रचार है। ऊपर जो दिखाया गया है उससे यह स्पष्ट प्रगट होता है कि फ़ारसी अक्षरोँके दूर करनेका उपाय केवल नागरी अक्षरोँका प्रचार करना है। सन् १८९० मेँ २०४९८७ मुसलमान ऐसे थे जो पढ़-लिख सकते थे। यदि खोज की जाय तो यह प्रगट होगा कि इनमेँसे बहुतसे नागरी अक्षर पढ़ सकते हैँ क्योँकि मुसलमान पटवारी और हिन्दू दूकानदार इहीँ अक्षरोँमेँ अपना हिसाब रखते हैँ। पुनः श्रीयुत् नैस्फ़ील्डने

एजुकेशन कमीशनके सम्मुख कहा था कि अवधके स्कूलोंमें कैथी पढ़नेवालोंका तिहाई हिस्सा मुसलमान है। अतएव अब यह सिद्ध हो गया और इसमें किसी और प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है कि नागरी अक्षरोंके प्रचारसे मुसलमानोंको किसी प्रकार हानि न होगी, बल्कि पूर्ण लाभ होगा।

कचहरियों और दफ़्तरोंमें नागरी अक्षरोंके प्रचारसे बहुत लाभ होंगे अर्थात् लोगोंको न्याय प्राप्त करनेमें सुगमता होगी। वे स्वयं नोटिस, सम्मन आदि पढ़ तथा लिख सकेंगे। यूरोपीय अफ़सरोंको एक ही भाषा और एक ही अक्षर सीखने पड़ेंगे और सबसे बढ़कर यह लाभ होगा कि विद्याका अधिक प्रचार होगा और लोग उन्नति कर सकेंगे। आजकल यूरोपीय अफ़सरोंको उस प्रान्तकी भाषा सीखनी पड़ती है जहाँ वे रहना चाहते हैं और प्रारम्भमें उनको फ़ौज़दारीके मुक़दमे दिए जाते हैं। इससे वे प्रतिदिन कचहरीमें सुनी हुई बातों तथा भाषाको कुछ दिनोंमें समझने लग जाते हैं, पर शिकस्तः के भयसे वे कचहरीके काग़ज़ोंको नहीं पढ़ सकते, इसलिये दर्ख़्वास्तों आदिके समझनेके लिये उन्हें अन्य राज्यकर्मचारियोंकी सहायता लेनी पड़ती है। पुनः वे साधारण बोल-चालकी भाषाको नहीं जानते, क्योंकि कचहरीमें वे जिस भाषाको सुनते हैं उसमें फ़ारसी तथा अरबीके शब्द भरे रहते हैं। इससे जो हानि होती है वह स्पष्ट है। नागरी अक्षरोंके प्रचारसे यह असुविधा भी दूर हो जायगी। योरोपीय अफ़सर भाषा और अक्षरको सुगमतासे पढ़ सकेंगे और इससे राज्यप्रबन्धमें कोई त्रुटि न रह जायगी तथा प्रजाको सुख प्राप्त होगा।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे यह स्पष्ट है कि न्यायकी रक्षा और शिक्षाके हितके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधकी अदालतों और सरकारी दफ़्तरोंमें फ़ारसीके स्थानपर नागरी अक्षरोंका प्रचार किया जाय। ऐसा करनेमें किसीको भी कष्ट न होगा, क्योंकि इस प्रान्तमें प्रत्येक असिस्टेण्ट मजिस्ट्रेट, कलेक्टर, असिस्टेण्ट कमिश्नर, डिप्टी कलेक्टर, नहर और जङ्गलके अफ़िसर, तहसीलदार तथा अवधके प्रत्येक मुन्सिफ़को नागरी अक्षरोंमें लिखी हुई हिन्दीकी परीक्षा देनी पड़ती है।

इसलिये इन लोगोंको इस परिवर्त्तनसे कोई कष्ट न होगा। हाँ, राज्यकर्मचारियोंको अवश्य नागरी सीखनी पड़ेगी। यदि यह अक्षर सीखने पड़ें तो भी यह कोई ऐसी बात नहीं है जिसके लिये न्यायका पथ छोड़ा जाय, विद्याका प्रचार रोका जाय और एक अत्यन्त आवश्यक सुधार करनेमें विलम्ब किया जाय। सर अर्स्किन पेरीका कहना है कि बालक तीन मासमें नागरी अक्षरोंका पढ़ना सीख सकते हैं। यदि पढ़े-लिखे लोग केवल एक घण्टा प्रतिदिन उसके लिये लगावें तो इससे भी कम समयमें उनको पढ़ना आ जायगा। हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम भाषाके परिवर्त्तनके लिये प्रार्थना नहीं कर रहे हैं, क्योंकि इस विषयमें जो सरकारकी आज्ञाएँ हैं उन्हींके अनुकूल कार्य्य होनेसे सब अर्थ-सिद्धि हो जायगी। केवल आवश्यक यह है कि अदालतोंकी कार्रवाई नागरी अक्षरोंमें लिखी जाय। हिन्दुस्तानकी भाषा हिन्दुस्तानी हो, जो प्रतिदिनकी बोलचालकी भाषासे मिलती-जुलती हो अर्थात् जिसमें न फ़ारसी और अरबीके कठिन शब्द हों और न हिन्दी तथा संस्कृतके। केवल ऐसे ही शब्दोंका उसमें प्रयोग हो जो अत्यन्त सरल और सब लोगोंकी समझमें आते हों। नागरी अक्षरोंके प्रचारसे ऐसी भाषाका स्वतः व्यवहार होने लगेगा। इसके लिये उद्योग करनेकी ज़रासी भी आवश्यकता न पड़ेगी।

शान्ति और सुखका फैलना तथा पाप और अपराधका रोकना और घटाना सरकारका बड़ा भारी उद्देश्य है और इस बातको सभी स्वीकार करते हैं कि विद्याके प्रचारके साथ पाप और अपराधोंकी कमी होती है। यह प्रान्त शिक्षा-सम्बन्धमें सबसे पीछे है और अपराधोंकी गिनतीमें सबसे आगे। इस बातको

स्वयं सर एण्टानी मेकडौनेल साहवने शिक्षा-विभागके सन् १८९४-९५ के विवरणमें स्वीकार किया है। उस कथनकी पुष्टिमें किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। इतिहाससे इसके अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक शिक्षाका प्रचार हो जिससे पाप और अपराधोंकी कमी हो तथा लोगोंमें बुद्धि और सभ्यता बढ़े। वार-वार यहाँके लोगोंको अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं जिससे यह आवश्यक जान पड़ता है कि वे अपनी अवस्थाको सुधारें तथा अपने रहन-सहनमें आवश्यक परिवर्त्तन कर अपनेको समयके उस प्रवाहके साथ ले चलें जो किसीके रोके नहीं रुक सकता और जिसका साथ एक वार छुट जानेसे फिर वह हाथ नहीं आता। परन्तु इसके लिये उस विवेककी आवश्यकता है जो विना विद्याके प्राप्त नहीं हो सकता, और जिसके अभावके कारण राजा और प्रजा दोनों असह्य दुःख सहते हैं। इसलिये पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधकी प्रजामें शिक्षाका फैलना इस समय सवसे आवश्यक कार्य्य है और गुरुतर प्रमाणोंसे सिद्ध किया जा चुका है कि इस कार्य्यमें सफलता तभी प्राप्त होगी जव कचहरियों और सरकारी दफ़्तरोंमें नागरी अक्षर जारी किए जायँगे। अतएव अव इस शुभ कार्य्यमें ज़रासा भी विलम्ब न होना चाहिए और न राज्यकर्मचारियों तथा अन्य लोगोंके विरोधपर कुछ ध्यान ही देना चाहिए।

हमें पूर्ण आशा है कि वे वुद्धिमान और दूरदर्शी शासक जिनके प्रवल प्रतापसे लाखों जीवोंने इस घोर अकाल रूपी कालसे रक्षा पाई है अव नागरी अक्षरोंको जारी करके इन लोगोंकी भावी उन्नति और वृद्धिका बीज वोएँगे और विद्याके सुखकर प्रभावके अवरोधोंको अपनी क्षमतासे दूर करेंगे जिससे इस दीन देशके वासी सदा सर्वदाके लिये वृटिश राज्यके ऋणी रहकर उसका यश गावें और अपनेको धन्य मानें।

* * *

हिन्दू विश्वविद्यालय

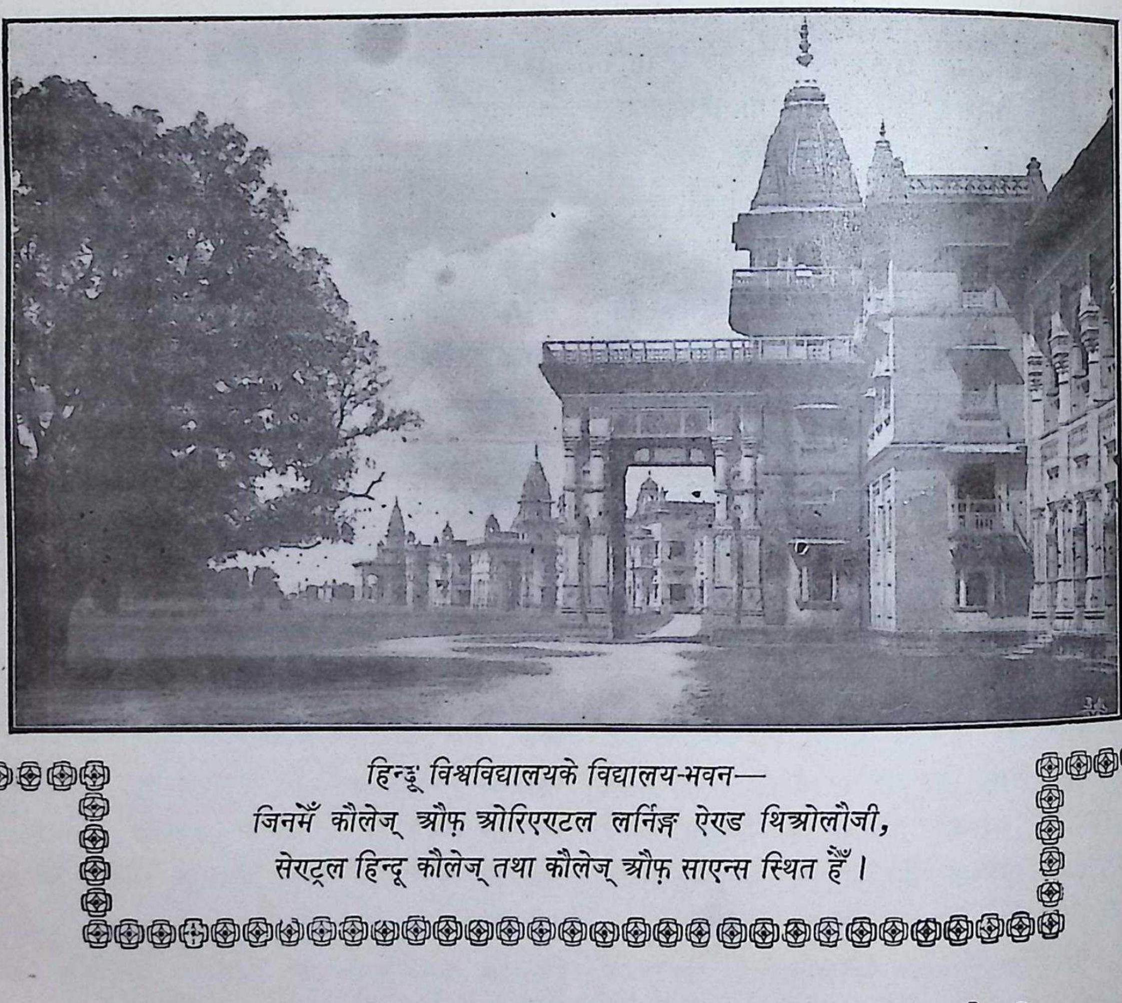

हिन्दू विश्वविद्यालयके विद्यालय-भवन—
जिनमेँ कौलेज् औफ़ ओरिएण्टल लर्निङ्ग ऐण्ड थिओलौजी,
सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज् तथा कौलेज् औफ़ साएन्स स्थित हैँ।

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयकी सन् १९०४ में की हुई योजना

प्राक्कथन

हिन्दू विश्वविद्यालयकी योजनाकी प्रमुख विशेषताएँ पहले पहल सन् १९०४ मेँ मिण्ट-हाउस वनारसमेँ श्रीमान् महाराजाधिराज वनारसके सभापतित्वमेँ होनेवाली सभामेँ प्रगटकी गईँ थीँ। इस योजनाका अधिकांश भाग लिख लिया गया था, और महीनोंके वाद-विवाद और विचारके पश्चात् जुलाईके अन्तमेँ यह छपनेके लिये भेज दी गई थी। सन् १९०५ के अक्तूबर महीनेमेँ इसकी अनेक प्रतियाँ भिन्न-भिन्न

प्रान्तोंके प्रमुख हिन्दुओंको भेजी गई थीं और उन्होंने इस योजनाका हार्दिक स्वागत किया था। ३१ दिसम्बर सन् १९०५ में बनारस टाउन हौलमें समस्त भारतकी हिन्दू जनताके प्रतिनिधियों और सुप्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमियोंकी सभा हुई जिसमें एक समिति नियुक्त हुई, जो इस योजनाकी अभिवृद्धिमें सहयोग दे और उसका निश्चित स्वरूप निर्णय करे। अन्तमें यह योजना सनातनधर्म महासभाके प्रयागवाले अधिवेशनके सम्मुख रक्खी गई जो २० से २९ जनवरी सन् १९०६ तक होता रहा। समस्त भारतवर्षके हिन्दुओंने इस सभाके कार्य्यक्रममें भाग लिया था। परमहंस परिव्राजकाचार्य्य जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य्यजीके सभापतित्वमें सुप्रसिद्ध साधुओं तथा विद्वानोंकी इस सभाने निम्नाङ्कित प्रस्ताव पास किए कि—

१—भारतीय विश्वविद्यालयके नामसे काशीमें एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना की जाय, जिसके निम्नाङ्कित उद्देश हों—

(अ) श्रुतियों तथा स्मृतियोंद्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रमधर्मके पोषक सनातनधर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये धर्मके शिक्षक तैयार करना।

(आ) संस्कृत भाषा और साहित्यके अध्ययनकी अभिवृद्धि।

(इ) भारतीय भाषाओं तथा संस्कृतके द्वारा वैज्ञानिक तथा शिल्प-कला-सम्बन्धी शिक्षाके प्रचारमें योग देना।

२—विश्वविद्यालयमें निम्नाङ्कित संस्थाएँ होंगी—

(अ) वैदिक विद्यालय—जहाँ वेद-वेदाङ्ग, स्मृति, दर्शन, इतिहास तथा पुराणोंकी शिक्षा दी जायगी। ज्यौतिष विभागमें एक ज्यौतिष-सम्बन्धी तथा अन्तरिक्ष-विद्या-सम्बन्धी वेधशाला भी निर्मित की जाय।

(आ) आयुर्वैदिक विद्यालय-जिसमें एक प्रयोगशाला हो तथा वनस्पति-शास्त्रके अध्ययनके लिये एक उद्यान भी हो। एक सर्वोत्कृष्ट चिकित्सालय तथा पशु-चिकित्सालयकी स्थापना की जाय।

(इ) स्थापत्यवेद व अर्थशास्त्र—जिसमें तीन विभाग होंगे। (१) भौतिकशास्त्र विभाग (सैद्धान्तिक तथा प्रयोगात्मक), (२) प्रयोगों तथा अन्वेषणके लिये एक प्रयोगशाला और (३) मशीन तथा बिजलीका काम सीखनेवाले इञ्जिनियरोंकी शिक्षाके लिये यन्त्रालयकी स्थापना की जाय।

(ई) रसायन विभाग—जिसमें प्रयोगों और अन्वेषणोंके लिये प्रयोगशालाएँ तथा रासायनिक द्रव्योंके बनानेकी शिक्षाके लिये यन्त्रालय स्थापित किया जाय।

(उ) शिल्पकला विभाग—जिसमें मशीनद्वारा व्यवहारमें आनेवाली नित्यप्रतिकी वस्तुएँ तैयार की जायँ। इस विभागमें भूगर्भशास्त्र, खनिज तथा धातुशास्त्रकी शिक्षा भी सम्मिलित रहेगी।

(ऊ) कृषि विद्यालय—जहाँ प्रयोगात्मक तथा सैद्धान्तिक दोनों प्रकारकी शिक्षाएँ कृषिशास्त्रके नवीन अनुभवोंके अनुसार दी जाय।

(ए) गन्धर्व वेद तथा अन्य ललित कलाओंका विद्यालय।

(ऐ) भाषा विद्यालय—जहाँ अंग्रेज़ी, जर्मन तथा अन्य विदेशी भाषाएँ इस उद्देश्यसे पढ़ाई जायँ कि उनकी सहायतासे भारतीय भाषाओंका साहित्य-भाण्डार नये रत्नोंसे परिपूर्ण हो तथा विज्ञानकलाके नवीन शोधोंद्वारा उनके विकासमें अभिवृद्धि हो।

३—(अ) इस विश्वविद्यालयका धर्म-सम्बन्धी कार्य्य तथा वैदिक कौलेजका कार्य्य उन हिन्दुओंके अधिकारमें होगा जो श्रुति, स्मृति तथा पुराणोंद्वारा प्रतिपादित सनातनधर्मके सिद्धान्तोंको माननेवाले होंगे।

(आ) इस विद्यालयमें वर्णाश्रमधर्मके नियमानुसार ही प्रवेश होगा।

(इ) इस विद्यालयके अतिरिक्त अन्य सब विद्यालयोंमें सब धर्मावलम्बियों तथा सब जातियोंका प्रवेश हो सकेगा तथा संस्कृत भाषाकी अन्य शाखाओंकी शिक्षा बिना जाति-पाँतिका भेदभाव किए सबको दी जायगी।

४—(अ) निम्नाङ्कित सज्जनोंकी एक समिति बनाई जाय जिन्हें अपने सदस्योंकी संख्या बढ़ानेका अधिकार हो, जो इस विश्वविद्यालयकी आयोजनाको कार्य्यरूपमें परिणत करनेके लिये आवश्यक उपाय काममें लावें, जिसके मन्त्री माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय हों।

(आ) बनारस टाउन हौलकी सभामें जो समिति नियुक्त हुई थी उसके सदस्योंसे प्रार्थना की जाय कि वे इस समितिके भी सदस्य हो जायँ।

५—(अ) विश्वविद्यालयके लिये एकत्र किया हुआ समस्त धन काशीके माननीय मुन्शी माधोलालके पास भेजा जाय जो उसे "बैङ्क औफ़ बङ्गाल, बनारस" में जमा कर दें जबतक कि उपर्युक्त समिति इस सम्बन्धम कोई और आज्ञा न दे।

(आ) इस विश्वविद्यालयके लिये आए हुए रुपयोंमेंसे तबतक कुछ भी धन व्यय न किया जाय जबतक कि विश्वविद्यालय समिति एक सङ्गठित संस्थाकी तरह रजिस्टर्ड न हो जाय। और जबतक इसके नियम निश्चित न हो जायँ तबतक इसका व्यय सनातनधर्म महासभाके लिये आए हुए धनमेंसे होना चाहिए।

इस प्रकार जो समिति बनी उसने अपना कार्य्य चालू कर दिया है। यह सोचा गया है कि विश्वविद्यालयका शिलारोपण ३० लाख रुपया एकत्र हो जानेपर अथवा एक लाख रुपया वार्षिक सहायताका वचन मिल जानेपर हो जाना चाहिए।

दाताओंकी इच्छानुसार दान तथा चन्देद्वारा आया हुआ धन विश्वविद्यालयके विशेष विभागों तथा विशेष कार्य्योंके लिये अथवा विश्वविद्यालयके लिये ख़र्च किया जायगा।

प्रयाग,
मार्च १२, सन् १९०६ ई०

मदनमोहन मालवीय
मन्त्री।

प्रस्तावित हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रथम भाग

इसकी आवश्यकता क्यों हुई ?

भारतीय हिन्दू जनताकी वर्त्तमान दशा समस्त विद्वान् हिन्दुओंद्वारा विचारणीय है। हिन्दुओंकी वर्त्तमान आर्थिक दशाकी एक सुसम्पन्न अङ्गरेज़ जैसी जातिसे तुलना करनेसे सम्भवतः हिन्दुओंकी दशाका पता चल जाय। भारतवासियोंकी प्रतिदिनकी आयका औसत, जिसमें अधिकांश हिन्दू ही हैं (जनसंख्याका केवल १/५ भाग ही मुसलमानोंका है), लगभग एक आना प्रति व्यक्ति है अर्थात् इङ्गलैण्डके प्रति व्यक्तिकी औसत आमदनीका केवल बीसवाँ भाग है। पिछले ५० वर्षोंके इतिहाससे प्रगट है कि यह थोड़ीसी आय भी प्रतिदिन घटती जा रही है। हिन्दुओंकी शिक्षाका भी इससे अनुमान लगा लिया जा सकता है कि जनसंख्याका ९४·१ प्रति सैकड़ा भाग अशिक्षित है। कुछ प्रान्तोंमें—जैसा कि युक्तप्रान्तमें देखा गया है—जनसंख्याका ९७ प्रतिशत भाग अशिक्षित है। अशिक्षितोंकी संख्याका औसत इङ्गलैण्डमें ४·७ प्रतिशत तथा जर्मनीमें ०·११ प्रतिशत है। भारत भरमें हिन्दू जातिके अधिकांश लोग खेती या मज़दूरी करते हैं, उनकी सूखी हुई हड्डियाँ, धँसी हुई आँखें, फटे कपड़े और टूटे मकान ही घोर दरिद्रताकी साक्षी दे रहे हैं, फिर आँकड़ोंकी आवश्यकता ही क्या? प्रत्येक दसवें वर्ष इनमेंसे लाखों दुष्कालके कराल गालमें चले जाते हैं और बहुतसे प्रतिवर्ष प्लेगके शिकार बन जाते हैं। यह बात भली भाँति विदित है कि हिन्दू लोग अन्य जातियोंकी अपेक्षा प्लेगके जल्दी शिकार वनते हैं। हिन्दुओंका स्वास्थ्य और उनका शारीरिक सौन्दर्य्य प्रतिदिन नष्ट होता जा रहा है। जनसंख्याकी गणनाके हर अवसरपर हिन्दू जातिकी शक्ति-क्षीणता, शीघ्र मृत्यु और उत्पत्ति-हीनता निरन्तर दृष्टिगोचर होती जा रही है। हिन्दुओंका उच्च वर्ग इसलिये नष्ट हो रहा है कि उन्हें अपनी जीविकाका मार्ग वन्द सा मालूम पड़ता है, तथा निम्न श्रेणीके लोग इसलिये दुखी हैं कि उनकी शक्ति अत्यधिक जीवन-प्रतियोगिताके कारण नष्ट हो रही है। हिन्दू कृषक, जो समाजके आधारस्तम्भ हैं, अधिकांश प्रान्तोंमें, ज़मीनकी प्रतियोगिताके कारण अनुचित भूमिकर देनेके लिये वाध्य किए जाते हैं और इसलिये वे भूखों मरते हैं। देशके वहुतसे भागोंमें ज़मीन्दार कर्ज़के असहनीय भारसे दवे हुए हैं। जो धनवान् हैं वे या तो मुक़दमेवाज़ीके शिकञ्जेमें जकड़े हुए हैं अथवा उन्हें अपनी इन्द्रिय-लोलुपतासे ही छुट्टी नहीं मिलती अथवा वे भिन्न-भिन्न समुदायोंमें बँटकर अपनी शक्तिका दुरुपयोग कर रहे हैं।

जनसंख्याका अधिकांश भाग सरकारको इसके लिये दोषी ठहराता है। यद्यपि वर्त्तमान शासन-प्रणाली तथा क़ानूनोंका स्वरूप हमारी आर्थिक दुरवस्थाके लिये अधिकांशमें उत्तरदायी है, परन्तु केवल एक यही वात ही किसी देशका भविष्य निर्णय करनेमें सहायक नहीं होती। यद्यपि सरकारके समर्थक भी शासनकी त्रुटियोंका अनुभव कर रहे हैं तथापि इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि वर्त्तमान शासन-प्रणाली सरकारके प्रमुख कर्त्तव्योंका पालन कर रही है, अर्थात् शान्ति-स्थापन तथा देशवासियोंके जानमालकी रक्षा करना इसके प्रशंसनीय कार्य्य हैं। सरकारने सभ्यताकी अभिवृद्धिके लिये और भी अधिक कार्य्य किए हैं और

इसकी छत्रच्छायामेँ हम यश, योग्यता तथा धन प्राप्त कर सकते हैँ। बम्बईके पारसी और भाटिया तथा कलकत्तेके सुसम्पन्न तथा वैभवशाली मारवाड़ी इसके जीते जागते उदाहरण हैँ। और भी अन्य जातियाँ इसी तरह अथवा इससे भी अधिक उन्नति कर सकती हैँ। तब क्या कारण है कि इन सब बातोँके होते हुए भी वर्त्तमान हिन्दू-जातिकी यह दशा है ? वे धन-धान्यसे परिपूर्ण देशके निवासी हैँ उनका देश संसारके अन्य देशोँकी भाँति उपजाऊ है और अच्छे-से-अच्छे खाद्य पदार्थ तथा फल भी इसी भूमिमेँ उत्पन्न होते हैँ। इस देशके जङ्गलोँमेँ इंधन तथा लकड़ीकी भी प्रचुरता है। देशकी खानोँसे बहुमूल्य खनिज पदार्थ प्रतिवर्ष निकलते हैँ। देशके कृषक परिश्रमी, गम्भीर और मितव्ययी हैँ। उद्योग-धन्धी पुरुष चतुर और व्यवसायी हैँ, देशके मज़दूर सन्तोषी और परिश्रमी हैँ, देशकी ऊँची श्रेणीवाले लोगोँमेँ ऐसे व्यक्ति हैँ जो संसारके सभ्यातिसभ्य मनुष्योँके साथ सभ्यताकी प्रतियोगितामेँ खड़े किए जा सकते हैँ और वे उचित अवसर आनेपर संसारके सभ्य पुरुषोँद्वारा किए जानेवाले सभी महत्त्वपूर्ण कार्य्य करनेकी क्षमता रखते हैँ। प्राचीन समयमेँ भारतमेँ महापुरुष उत्पन्न हुए हैँ और उन्होँने महान् कार्य्य भी किए हैँ। हिन्दू समाज उस समय एक उच्च तथा सुन्दर नीँवपर खड़ा था। अब हिन्दू समाज एक निराधार जनसमूह मात्र रह गया है। यह अवस्था किसी भी कारणसे हुई हो, किन्तु यह बात सर्वसम्मत है कि हिन्दू समाजके ह्रासका प्रमुख कारण यह है कि समाजके अधिकांश अङ्गने समाजको धारण करनेवाली शक्ति धर्मके पालन करनेमेँ शिथिलता दिखलाई है।

सहस्रोँ वर्षोँसे हिन्दू लोग इस बातके लिये प्रसिद्ध रहे हैँ कि उन्होँने जीवनके अन्य अङ्गोँकी उपेक्षा कर धर्मको अधिक महत्त्व दिया है। प्रोफ़ेसर मैक्समूलरसे अधिक भारतके प्राचीन इतिहासके ज्ञाता सम्भवतः कोई भी हमारे सम्मुख नहीँ हैँ। उन्होँने हमारे कथनकी पुष्टि करते हुए कहा है कि "महाभारतके वर्णनोँके आधारपर, यूनानी आक्रमणकारियोँकी सम्मतिको लेकर, बौद्धोँके त्रिपिटिकोँ तथा स्वयं उपनिषदोँ और वेदमन्त्रोँके आधारपर, महाराज हर्षके समयसे लेकर अब तक भारतीय संस्कृतिमेँ हमेँ जो बात मुख्य दिखलाई पड़ती है वह यह है कि भारतवासियोँने सदासे आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ही विशेष ध्यान दिया है तथा भारतीय जाति हमेँ दार्शनिकोँ तथा विचारकोँकी एक जाति ही दिखलाई पड़ती है"।

दुःख है कि जिस स्वरूपका चित्रण उक्त सुप्रसिद्ध विद्वान्ने किया है, समयके परिवर्त्तनसे आज समाजका वह स्वरूप नष्ट हो गया है। धर्म आज मुख्यतः समाजके थोड़ेसे इधर-उधरके लोगोँतक ही परिमित है। थोड़ेसे व्यक्तियोँको छोड़कर अधिकांश विद्वान् तथा अग्रणी मनुष्य सरकारी नौकरियोँके पीछे दौड़ते हैँ और सांसारिक उन्नतिकी ही चिन्ता करते हैँ। वे धर्मका नाम लेना एक प्रकारसे भूल ही जाते हैँ। जो धनिक तथा शक्तिशाली हैँ वे अपने निजी झगड़ोँ तथा सांसारिक पचड़ोँमेँ इस प्रकार उलझे हुए हैँ कि वे अपने आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीँ देते। बचे हुए लोगोँमेँ अशिक्षित कृषक, छोटे दूकानदार, नौसिखुए उद्योग-धन्धेवाले, भूखसे व्याकुल श्रमजीवी तथा पूर्णतया दुखी और आतुर पुरुष सम्मिलित हैँ। थोड़ेसे व्यक्तियोँको छोड़कर प्रत्येक हिन्दू इस बातको भूल रहा है कि मेरे कार्य्योँका समाजपर क्या प्रभाव पड़ रहा है और अपनी डफलीपर अपना राग अलाप रहा है। सङ्घटित जीवनके चिह्न, पारस्परिक विश्वास तथा सहयोग हिन्दू समाजसे पूर्णतया लुप्त हो गए ह। जन-समुदायका सुचारु रूपसे सञ्चालन करनेवाले व्यक्ति बहुत ही कम हैँ और जो हैँ भी उनमेँ सहयोगके साथ सङ्घटित रूपसे कार्य्य करनेकी क्षमता प्रायः नष्ट सी हो गई है।

वर्त्तमान शोचनीय दशाकी एकमात्र अमोघ ओषधि यही है कि जनसमाजमेँ शिक्षाका प्रचार किया जाय तथा धर्मको उचित आसनपर प्रतिष्ठित

किया जाय। भारतका प्राचीन धर्म इस बातकी शिक्षा दे रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनेको समस्त संसारका एक भाग समझे और समस्त संसारके लाभके लिये कार्य्य करे तथा जीवन धारण करे, क्योँकि कोई भी व्यक्ति तबतक समस्त संसारके कल्याणमेँ सहायक नहीँ हो सकता जबतक कि वह अपने साथियोँके साथ सहयोग नहीँ करता। इसलिये धर्मने जो कुछ नियम बनाए हैँ और प्रतिबन्ध रक्खे हैँ वे यदि उचित रूपसे कार्य्यमेँ लाए जायँ और उनका उचित रूपसे मनन किया जाय तो मनुष्य मात्रमेँ अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो जायँ; समाज प्रेम तथा उदार भावनाओँसे ओत-प्रोत हो जाय और उसके द्वारा संसारका अधिकाधिक कल्याण हो।

हममेँसे बहुतोँकी राय है कि यदि हम भारतवर्षके प्राचीन धर्मका पालन करेँगे तो संसारसे विरक्त और उदासीन बन जायँगे। यह सत्य है कि हिन्दू लोग कभी उस समयमेँ भी मायाके फेरमेँ नहीँ पड़े जब वे संसारमेँ सबसे अधिक धनी समझे जाते थे। उनका ध्येय लक्ष्मीपूजा छोड़ अन्य ध्येयोँकी ओर अग्रसर होना था और उन ध्येयोँमेँ उन्होँने वह सफलता प्राप्त की जिसके लिये कोई भी राष्ट्र अभिमान कर सकता है। किन्तु हिन्दू समाजके संस्थापकोँने तो धनको भी मनुष्यजीवनका उद्देश माना है। वास्तवमेँ यह मनुष्यजीवनके चार प्रमुख उद्देशोँमेँसे, अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षमेँसे, एक उद्देश रहा है। धर्मशास्त्र तथा अध्यात्मशास्त्रके साथ-साथ अर्थशास्त्रका भी अध्ययन होता था। केवल एक अथवा दो अङ्गोँमेँ ही उन्नति करनेवाला व्यक्ति पूर्ण रूपसे उन्नत नहीँ समझा जाता था।

भारतका प्राचीन धर्म मनुष्यकी इहलौकिक और पारलौकिक जीवन-सम्बन्धी दोनोँ सम्बन्धोँको मानता था। हिन्दू सभ्यताका समस्त ढाँचा हिन्दू धर्मके आधारपर खड़ा है। वर्त्तमान संस्कृत साहित्यमेँ सुरक्षित उस सभ्यताके अवशेष चिह्नोँमेँ एक ऐसी योजना दी गई है जिससे प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक, नैतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति कर सके और वे सुसङ्गठित समृद्ध जाति बन सकेँ। प्राचीन धर्मका सबसे पहला उद्देश मनुष्यजीवनको सुरक्षित तथा उसे स्वस्थ रखना था। आयुर्वेद धर्मशास्त्रका प्रमुख अङ्ग समझा जाता था और उस समय यह उपवेदके नामसे प्रसिद्ध था।

भारतका आयुर्वेद योरोपीय ओषधि-विज्ञानका भूला हुआ पिता समझा जाता है—जिसका पुत्रको कुछ भी ज्ञान नहीँ है और यद्यपि इस शास्त्रमेँ पिछली सात-आठ शताब्दियोँसे कोई विशेष उन्नति नहीँ हुई तथापि चरक, सुश्रुत तथा अन्य आयुर्वैदिक विषयोँका ज्ञान रखनेवाले आयुर्वैदिक चिकित्सक कलकत्ते जैसे प्रसिद्ध स्थानमेँ भी धन और मान प्राप्त कर रहे हैँ, जहाँ योरोपीय सभ्यताका इतना अधिक प्रचार है, और जहाँ योरोपीय ढङ्गसे चिकित्सा की जाती है, जिसकी उन्नतिमेँ समस्त पाश्चात्य देशोँने योग दिया है और जिनको सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकोँने अपनी विद्वत्तापूर्ण गवेषणाओँद्वारा उपकृत किया है। व्यक्तिगत तथा घरेलू स्वास्थ्यके नियम, खाने-पीनेके नियम तथा प्रतिबन्ध इस कथनको भली प्रकार पुष्ट करते हैँ। वे हिन्दू समाजके सामाजिक नियमोँके अन्तर्गत आ जाते हैँ तथा उनका पालन वर्त्तमान हिन्दू धार्मिक कृत्य समझकर अबतक करते आ रहे हैँ।

ज्ञान-प्राप्तिके लिये तथा मस्तिष्कको संयत और उन्नत करनेके लिये भारतके ऋषि महात्माओँने जिन नियमोँको प्रतिपादित किया है तथा जो साधन बनाए हैँ वे पूर्ण रूपसे तर्क तथा बुद्धिके आधारपर अवलम्बित हैँ। भाषा, जो मनुष्यके मानसिक विकासके लिये सर्वप्रथम तथा सबसे आवश्यक साधन है तथा जो मनुष्य मात्रके,एक दूसरेपर विचार प्रगट करनेका सबसे अच्छा तथा सुगम उपाय है, सर्वप्रथम हिन्दुओँद्वारा परिश्रम तथा बुद्धिमानीसे

संस्कृत की गई तथा नियमानुसार बनाई गई थी। भाषाकी ऐसी पूर्णताका उदाहरण संसारमेँ और कहीँ नहीँ मिलता। संस्कृत भाषा संसारकी समस्त भाषाओँमेँ सर्वोत्कृष्ट समझी जाती है। यह भाषा मनुष्यके उच्चातिउच्च विचारोँको सुन्दर तथा सुचारु रूपमेँ प्रगट करनेके लिये सर्वथा उपयुक्त पाई गई है। यह भाषा स्वर तथा छन्दके नियमोँद्वारा इस प्रकार सुचारु रूपसे बनाई गई है कि मनुष्य जातिके विचारोँके सङ्कलन, स्मरण तथा एक दूसरेपर प्रगट करनेके लिये संसारमेँ इस प्रकारकी दूसरी भाषा मिलना कठिन ही नहीँ वल्कि असम्भव है। सर मौनियर विलियम्सके कथनानुसार संस्कृत भाषाका अध्ययन मनुष्यको एक ऐसा आनन्द देता है जिसका प्रभाव कभी किसी अन्य साधनद्वारा घटाया नहीँ जा सकता। यह वात सर्वसम्मत है कि संसारके किसी और देशने व्याकरण तथा भाषाशास्त्रके ऐसे सुन्दर नियमोँको—जैसे प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि तथा पतञ्जलिने अगाध परिश्रम तथा विद्वत्ताके साथ वनाए—जन्म नहीँ दिया जैसा भारतवर्षने संस्कृत भाषाद्वारा संसारको दिया। असत्य तथा मायाका परित्याग करते हुए वास्तविक सत्यकी खोज का मार्ग निर्धारित करना सुविद्वान् भारतीय दर्शनकारोँका ही कार्य्य था जिनकी विद्वत्ताको देखकर संसार आज भी दाँतोँतले उँगली दवा रहा है। मनुष्यके विचारोँ तथा दिव्य भावोँके अधिकाधिक विकासके लिये पतञ्जलिके योग-सूत्रद्वारा निर्धारित मार्गके समान प्रयत्न करनेपर भी आजतक संसारके किसी भी राष्ट्रद्वारा प्राचीन तथा वर्तमान समयमेँ मार्ग नहीँ खोजा जा सका। यह सत्य है कि हिन्दू दर्शनशास्त्रके समस्त सम्प्रदायोँद्वारा प्रतिपादित मार्गोँका प्रधान उद्देश आध्यात्मिक उन्नतिका विकास तथा आत्माकी मुक्ति ही था ; किन्तु यह वात भी निस्सन्देह कही जा सकती है कि उनके मार्गोँका केवल अध्ययन ही करनेसे सांसारिक ज्ञानोँमेँ भी अभिवृद्धि होती है। ऐसा मनुष्य जो ऐसे मार्गोँ तथा ऐसे दर्शनशास्त्रसे भली भाँति परिचित है, जवतक निश्चित सत्य तथा सिद्धान्तोँको नहीँ पाता तवतक उसकी सन्तुष्टि नहीँ होती। प्रत्येक वास्तविक ज्ञान तथा प्रत्येक प्रवल अनुभूतिका यह सिद्धान्त मानो आधारस्तम्भ है। जिन ऋषियोँने हिन्दू समाजकी संस्थापना की थी वे सत्यके बड़े भारी पक्षपाती थे और उन्होँने भली भाँति निर्धारित सत्य सिद्धान्तोँके आधारपर ही अपनी सभ्यता तथा संस्कृतिकी रक्षा की थी।

जिस नैतिकताका हमारे ऋषियोँ तथा महात्माओँने समर्थन किया है उसमेँ मनुष्य जातिके अक्षय अस्तित्व और शान्तिपूर्ण सहयोगके गुण भली भाँति निहित हैँ। इसका ध्येय तो पशुपक्षियोँतकको हिंसासे बचाना है। अहिंसा मनुष्यके सबसे सुन्दर गुणोँमेँसे एक गुण समझा गया है और समाजके समस्त मनुष्य इस नियमका यथाविधि पालन करते हैँ। जो मनुष्य अपनी वर्त्तमान अवस्थासे ऊँची अवस्थामेँ जाना चाहता था उसे अहिंसाकी प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी। सत्य मनुष्यका मुख्य धर्म तथा कर्त्तव्य समझा जाता था। सत्यान्नास्ति परो धर्मः। श्रुति, स्मृति, इतिहास तथा पुराण सबने सत्यको मनुष्यका सर्वप्रथम मुख्य धर्म माना है और सबमेँ मनुष्यको प्रत्येक समय तथा प्रत्येक अवस्थापर सत्य जैसे अमूल्य रत्नकी रक्षा करनेका आदेश दिया है। प्राचीन समयमेँ वालकको सर्वप्रथम गुरुद्वारा यह पाठ पढ़ाया जाता था 'सत्यं वद, धर्मं चर'। भारतका साहित्य हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर तथा दशरथ जैसे महानुभावोँके चरित्रोँसे रँगा पड़ा है जिन्होँने सत्यकी वेदी पर अपने जीवनकी वलि दे दी थी और जिसके लिये हिन्दुओँमेँ अब भी उतना ही सम्मान है और उतनी ही श्रद्धा है। हिन्दू धार्मिक ग्रन्थोँका दूसरा आदेश लोकसेवाका भाव है जिसकी वर्त्तमान समयमेँ बहुत अधिक आवश्यकता है। हिन्दुओँके पवित्र साहित्यमेँ किसी सिद्धान्तपर इतना ज़ोर नहीँ दिया गया जितना मोहको पूर्णरूपसे जीत लेनेके सिद्धान्तपर। प्राचीन समयके हिन्दुओँके

लिये यह सबसे अधिक गौरवकी वात थी कि उन्होंने स्वार्थकी भावनाका पूर्ण रूपसे परित्यागकर वास्तविक सभ्यताके निर्देशन वसुधैव कुटुम्बकम् के उच्च सिद्धान्तको पूर्ण रूपसे अपना लिया था। अपने शरीरकी चिन्ता, अपने साथियोँकी तथा अपने बालबच्चोँकी चिन्ता तो पशु भी कुछ समय तक करते हैँ। सभ्यताकी उच्च कोटिपर पहुँचनेसे पहले स्वार्थवादका भाव प्रत्येक मनुष्य समाजमेँ पूर्ण रूपसे उपस्थित रहता है। केवल वहुत समयसे सभ्यताके उत्तम आदर्शका पालन करती रहने वाली जातियाँ ही विश्व-बन्धुत्वके उच्च आदर्शकी रक्षा कर सकती हैँ। केवल वे ही मनुष्य लोकसेवाका कार्य्य कर सकते हैँ जिन्होँने सांसारिक मोहमायाको जीत लिया है। चरित्र-गठनकी शिक्षा धनसंग्रहसे सदा उच्च समझी गई थी। वेदशास्त्रोँ के कोरे ज्ञानकी अपेक्षा चरित्रकी पवित्रताको वहुत अधिक उच्च स्थान दिया गया था। हिन्दू शास्त्रोँ मेँ क्षमा, धैर्य्य, शम, दम, दया, परोपकार अर्थात् वे सव गुण सुन्दर उपदेशोँ, कथाओँ, तथा आख्यायिकोँद्वारा भली प्रकार निर्देशित किए गए हैँ जिनके पालनसे मनुष्यका चरित्र अधिक दिव्य, अधिक पवित्र, अधिक उदात्त बनता है, जिनके ऊपर मनुष्यसमाज सधा हुआ है तथा जो मनुष्यमात्रमेँ शान्ति और कल्याणके बीज बोते हैँ। हिन्दू काव्यने हिन्दू दर्शनशास्त्रके साथ मनुष्यके चरित्रको उच्च वनानेमेँ पूर्ण सहयोग दिया है—उसने यह भली भाँति शिक्षा दी है कि संसारके समस्त प्राणी दूसरे रूपमेँ उसीके प्रतिबिम्ब हैँ तथा संसारके जिन व्यक्तियोँके साथ वह सम्पर्कमेँ आता है उनके कल्याणकी चिन्ता करनेसे वह मनुष्य रूपमेँ देवता-स्वरूप हैँ तथा इसके विरुद्ध आचरण करनेसे वह पशुओँसे भी गिरा हुआ है। पुनर्जन्मवाद तथा कर्मवादके सिद्धान्त इस प्रकार मनुष्यको देवता वनानेमेँ वहुत अधिक सहायक होते हैँ।

भारतके पवित्र धार्मिक साहित्यमेँ आध्यात्मिक उन्नतिके लिये भारतके ऋषियोँ, महर्षियोँ तथा मनीषियोँ ने जो नियम निर्धारित किए हैँ वे संसारके इतिहासमेँ अद्वितीय हैँ।

संस्कृत साहित्यके विद्वान् तथा चतुर विद्यार्थी इस वातका अवश्य अनुभव करेँगे कि हिन्दू समाजके प्राचीन संस्थापकोँका उद्देश एक शक्तिशाली, विकसित, वैभवसम्पन्न तथा सुसङ्गटित समाजकी स्थापना करना था। उन लोगोँने देवी देवताओँके लिये जो प्रार्थनाएँ[1] लिखी हैँ उनमेँ भी यह उद्देश निहित है।

इस कथनसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि किसी भी जातिकी उन्नतिके लिये उसकी जनसंख्याकी अभिवृद्धि आवश्यक है। यह भी भली भाँति विदित है कि वर्त्तमान समयमेँ इस कमीकी पूर्त्तिके लिये फ्रान्स तथा अमेरिकाके प्रजातन्त्रोँमेँ यथासाध्य प्रयत्न किया जा रहा है। प्राचीन समयमेँ हिन्दुओँके लिये यह वात धार्मिक कर्त्तव्यके रूपमेँ सव लोगोँपर लागू थी कि सव नागरिकोँको इसके लिये यथासाध्य प्रयत्न करना चाहिए। केवल नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही लोकसेवाके लिये कौमार्य्यव्रत धारण करते थे जिनके जीवनका ध्येय समस्त जीवन शिक्षा प्राप्त करना था।

किन्तु केवल जनसंख्याकी अभिवृद्धि ही किसी जातिको शक्तिशाली नहीँ बनाती। इसी वातको ध्यानमेँ रखकर हिन्दू शास्त्रकारोँने विवाह-सम्बन्धी नियम वनाए थे जिससे वर्णसङ्कर तथा अयोग्य व्यक्ति जन्म लेकर समाजको कलङ्कित न करेँ, बल्कि वे ही लोग जन्म लेँ जो शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक सव दृष्टियोँसे पूर्ण हैँ।

---

[1] हे परमात्मन्! हमारे देशके ब्राह्मण ज्ञानवान् तथा पवित्रताके प्रचारक होँ, क्षत्रिय शूरवीर, पराक्रमी तथा तेजस्वी होँ, कृषकोँकी गायेँ प्रचुर दुग्धवर्षा करेँ, वृषभ शक्तिशाली होँ, अश्व द्रुतगामी होँ, स्त्रियाँ चतुर गृहिणी होँ, पुत्र विजयी योद्धा होँ, जो अपने तेजसे संसारको प्रदीप्त करेँ! इस देशमेँ मेघ इच्छानुसार जल बरसाएँ! हमारी भूमि शस्यपूर्ण हो! हम धनधान्य तथा वैभवसे परिपूर्ण होँ। (शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता, अध्याय ३२, मन्त्र २२)।

इन दिव्य गुणोँके विकासके लिये प्रत्येक द्विजके लिये आवश्यक था कि सुयोग्य गुरुकी संरक्षतामेँ रहकर ब्रह्मचर्य्यके साथ विद्यार्थी-जीवनको व्यतीत करे। पूर्ण पवित्रता तथा संयमके साथ इस जीवनको बिता लेनेके पश्चात् उसे गृहस्थाश्रममेँ प्रवेश करनेका अधिकार था जहाँ वह सांसारिक सुखोँका भोग कर सकता था किन्तु वहाँ भी लोक-सेवा और परोपकारके सुन्दर नियमोँका उसे पालन करना पड़ता था और इस प्रकार उसे व्यावहारिक ज्ञान बढ़ानेका अवसर दिया जाता था। गृहस्थजीवनका त्याग उस समय अनिवार्य्य था जब कि मनुष्यको वृद्धावस्था आ घेरती थी और उसके बाल बच्चे भी बड़े हो जाते थे। यह समय उसके वानप्रस्थ जीवनका था जब कि मनुष्य सांसारिक चिन्ताओँ तथा नागरिक जीवनसे विमुक्त हो एकान्तवास करने लगता था और उसका मस्तिष्क पूर्ण शान्ति तथा विश्रामका अनुभव करता था जो उच्च तथा पूर्ण विचारोँके चिन्तनके लिये परमावश्यक है। सबके अन्तमेँ संन्यास आश्रमका समय आता था जब कि मनुष्यका मन पूर्णतया परमपुरुषार्थके चिन्तनमेँ लीन हो जाता था और इस संसारके विचारोँसे एकदम उदासीन हो उसीके लिये प्रयत्न करता था। इस अवस्थामेँ आत्माको पूर्णतया पवित्र तथा विकसित होनेका अवसर मिलता था और यह अभ्यास उस समयतक रहता था जबतक कि यह आत्मा परमात्मामेँ पूर्णतया लीन न हो जाय या योँ कहिए जबतक उसे ब्रह्मपदकी प्राप्ति न हो जाय।

सामाजिक उन्नतिके लिये समाजका कार्य्य भिन्न २ व्यक्तियोँ तथा वर्गोँमेँ बँटा हुआ था जिनका कर्त्तव्य उस कार्य्यको सुचारु रूपसे पूर्ण करना था और अपने अनुभव, योग्यता, चतुराई आदिको अपनी सन्तानके लिये छोड़ जाना था। ज्ञानके विकास और उसकी रक्षा करने, नियमोँ और धार्मिक संस्थाओँद्वारा समाजको नियमित करने तथा शिक्षासम्बन्धी साहित्यिक तथा वैज्ञानिक कार्य्योँद्वारा सभ्यताको उन्नत करनेका उत्तरदायित्व समाजके एक ऐसे अङ्गको सौँप दिया था जो बचपनसे ही ज्ञान और सद्गुणको अपनी परम निधि मानते थे और जिन्हेँ कठोर आत्मत्याग और निर्भय आत्म-निर्भरताकी शिक्षा दी जाती थी। समाजकी रक्षाका भार उन मनुष्योँको सौँपा गया था जो अपने बाहुबल तथा राज्यशासन-प्रबन्धकी योग्यताके कारण इस कार्य्यके लिये सर्वथा उपयुक्त थे। धनकी उपज और उसको समाजमेँ विभाजन करनेका काम एक ऐसे वर्गको सौँपा गया था जो अपने परिश्रम, मितव्ययिता, ज्ञान तथा व्यवहार-कुशलताद्वारा इस कार्य्यको भलीभाँति पूर्ण कर सकता था। यद्यपि क्षत्रिय तथा वैश्य अपने अपने निर्धारित कार्य्यके लिये शिक्षित बनाए जाते थे तथापि उनके लिये वेदोँ तथा शिक्षाके अन्य अङ्गोँका ज्ञान उतनाही आवश्यक था जितना ब्राह्मणोँके लिये। नीची श्रेणीके लोगोँको समाजके उच्च अङ्गोँकी सेवा करनेका विधान था। यह बात संसारके सब देशोँमेँ तथा सब समयपर होती आई है। प्रत्येक जातिके लिये इस प्रकार जो 'जातिधर्म बनाए गए थे समाजहितके लिये उस जातिने उनका पालन भली प्रकार किया और इसी रूपमेँ कुलधर्मका कुछ कुलोँने पालनकर समस्त समाजके हितोँका ध्यान उसी प्रकार रक्खा जिस प्रकार शरीरका प्रत्येक अवयव शरीरके हितके लिये प्रत्येक समय कार्य्य करता हुआ शरीर-रक्षामेँ योग देता है।

हमारा प्राचीन वर्णविभाग वर्त्तमान समयके उन नियमोँके अनुसार ही था जिन्हेँ आज सभ्य संसार श्रमविभाजन तथा 'रुचि और बुद्धिकी परम्परागत प्राप्ति' के नामसे पुकारता है। ये नियम आश्रम-विभागकी संस्थाके हितके लिये कार्य्य करते थे और इन्हीँ नियमोँके परिणामस्वरूप भारतवर्ष शताब्दियोँतक संसारके सबसे धनाढ्य और वैभवसम्पन्न देशोँमेँसे एक समझा जाता था। यूनानी इतिहासकार हेरदतुसने भारतवासियोँको अपने समयकी सबसे बड़ी जातियोँमेँसे एक कहा था। उस समय यूनानसे बढ़कर सभ्य समझी

जानेवाली थ्रेशियन जाति भी भारतवासियोंकी अपेक्षा कम बलवती थी । भारतके धनधान्यकी प्रचुरतासे सिकन्दरके समयसे लेकर अबतक अनेकों विदेशी आक्रमणकारियोंके मुँहमें पानी भर आया। भारतको बनी हुई वस्तुओंकी प्रशंसा संसारमें प्रत्येक जगह होती थी । एशिया तथा योरोपके देशोंमें भारतकी बनी वस्तुओंकी ख़ूब बिक्री होती थी। कर्नल टौडद्वारा वर्णित राजस्थानके इतिहासके समयतक सिपाही लोग अपनी शूरवीरता तथा युद्धकौशलके लिये विख्यात थे जिस समय कि हमारा जातीय इतिहास पराकाष्ठाको पहुँच गया था । संस्कृत साहित्यमें भारतीय वैभवपूर्ण जातियों, शक्तिशाली राज्यों, सुन्दर नगरों, दर्शनीय प्रासादों, उद्यानों, क्रीड़ास्थलों, व्यापारिक उन्नति, उद्योग-धन्धों, कलाकौशल तथा विद्वत्ताके सुन्दर तथा हृदयग्राही वर्णन मिलते हैं । ये वर्णन केवल कवियोंके दिमागकी उपजमात्र ही न थे, जैसा कि कुछ लोगोंका विचार है, बल्कि मैगस्थनीज़ तथा ह्वीन-शाङ्ग आदि विदेशी यात्रियोंके लिखे वर्णन भी इसी कथनकी पुष्टि करते हैं । भारतीय समाज-शास्त्रका थोड़ा भी ज्ञान रखनेवाला विचारपूर्ण व्यक्ति इस बातको निस्सङ्कोच मानेगा कि प्राचीन समयमें भारतवासियोंने खनिज पदार्थोंसे भरपूर भारत जैसी उर्वरा भूमिमें विद्वान् परोपकारी ऋषि महात्माओंद्वारा बनाई संस्थाओंमें पलकर जीवनके भिन्न-भिन्न अङ्गोंमें कैसी आश्चर्य्यजनक सफलता प्राप्त कर ली थी। योरोपके संस्कृत विद्वान् अब इस बातको स्वीकार करते हैं कि धर्म, दर्शनशास्त्र, गणित, ज्यौतिष, आयुर्वेद, कविता, नाटक, वस्तुकला, सङ्गीतशास्त्र, कलाकौशल तथा उद्योग-धन्धों, तथा विद्याके समस्त अङ्गोंका भारतीयोंने ही जन्म दिया और अपने परिश्रमसे उन्होंने जो रूप उन्हें दिया है उसका दूसरा उदाहरण सम्भवतः और कहीं भी न मिलेगा।

वर्त्तमान समयमें भारतीय हिन्दुओंकी जो शोचनीय दशा हो गई है वह मुख्यतः हमारे प्राचीन साहित्य तथा धर्मसे उदासीनताके कारण है। कोई ऐसी संस्था भारतमें नहीं है जो जनसमाजमें, सत्य, पवित्रता, कार्य्यशीलता तथा आत्मनियन्त्रण जैसे सद्गुणोंका प्रचार करनेके लिये शिक्षक उत्पन्न कर सके जिनकी आवश्यकता तथा महत्ता भारतके प्राचीन धर्मग्रन्थोंमें भली प्रकार दिखाई गई है। दो-एकको छोड़कर सारे हिन्दू शासक, धनी-मानी पुरुष तथा शिक्षित लोग यहाँ तक कि ब्राह्मण भी नियमानुसार धार्मिक तथा आध्यात्मिक शिक्षासे पूर्णतया वञ्चित रह जाते हैं। यह तो हमारे समाजकी दशा हुई। दूसरी ओर अमेरिका तथा योरोपके देशोंपर दृष्टि डालिए जहाँ शिक्षाके साथ धर्मका भी अध्ययन नियमानुसार होता है, जहाँ अच्छे-अच्छे गिरजाघरोंमें धार्मिक शिक्षाकी पूरी व्यवस्था है, जहाँ पादरी लोग राजकीय आज्ञासे श्रोतागणोंको शिक्षा देते हैं, जहाँ धनिक शिक्षित समाज तथा अन्यान्य समुदायोंको रोम और यूनानके प्राचीन साहित्यकी शिक्षा दी जाती है, जो उन्हें सुसंस्कृत तथा सभ्य बनानेमें बहुत अधिक सहायक होते हैं और जिनके परिणाम स्वरूप वे अपने जीवनमें प्रसिद्ध महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करते हैं। योरोपका पठित समाज रोम तथा यूनानके प्राचीन साहित्यसे भली भाँति परिचित तथा शिक्षित है, किन्तु हिन्दू समाजमें अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने उच्च शिक्षा तो प्राप्त कर ली है किन्तु वे अपने देशके प्राचीन तथा पवित्र साहित्यमें पूर्णतया पारङ्गत नहीं हैं और उनमेंसे ऐसे लोगोंकी तो संख्या और भी कम है जिन्होंने संस्कृत साहित्यके अगाध सागरमें ग़ोते लगाकर अमूल्य रत्न निकालनेका प्रयत्न किया हो।

योरोपीय इतिहासके विद्वान् इस बातसे भली भाँति परिचित हैं कि वर्त्तमान योरोपकी सभ्यता, उनका कलाकौशल तथा उनकी वैज्ञानिक उन्नति उसी आन्दोलनके फलस्वरूप है जो पुनरुत्थानके नामसे प्रसिद्ध है, जिसका उद्देश मुख्यतः यूनान तथा

रोमकी सभ्यताका पुनरुत्थान करना था और, जिसका सूत्रपात रोमन सभ्यताके घर इटलीमेँ हुआ और जो क्रमशः फ़्रान्स, स्पेन, जर्मनी, इङ्गलैण्ड तथा योरोपके अन्यान्य देशोँमेँ फैल गया।

हिन्दुओँकी किसी वास्तविक उन्नतिसे पहले यह आवश्यक हो जाता है कि हिन्दी साहित्यका पुनरुत्थान हो। उनके उद्धारकी प्रत्येक योजनामेँ उनकी ऐतिहासिक प्रगति तथा उनके पुरुषाओँद्वारा किए गए महान् कार्य्योँमेँ उचित सामञ्जस्य स्थापित हो जाना चाहिए। प्रत्येक हिन्दू भाषा और साहित्यकी उन्नतिके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपनी जननी संस्कृत भाषाके साहित्यसे उचित परामर्श तथा सामग्री लेती रहे।

जो इस साहित्यसे भली भाँति परिचित हैँ वे भली प्रकार जानते हैँ कि इस साहित्यमेँ नैतिक तथा सांसारिक उन्नतिके लिये अनमोल रत्न भरे पड़े हैँ। पाश्चात्य विद्वान् भी संस्कृत साहित्य[1]की वर्त्तमान योरोपके साहित्य तथा सभ्यताके जनक, यूनानी तथा लैटिन साहित्योँ[2]से तुलना करके संस्कृतको श्रेष्ठतर बताते हैँ।

अंग्रेज़ी भाषाकी शिक्षा वर्त्तमान अवस्था देखते हुए हिन्दू जातिके केवल अल्पांशको ही मिल सकती है। भारतकी समस्त संख्यामेँ १००० पीछे ६·८ मनुष्य अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त हैँ। इनमेँ योरोपियन तथा यूरेशियन भी सम्मिलित हैँ। भारतमेँ अंग्रेज़ी शिक्षा पास हुए अधिकांश ऐसे मनुष्य हैँ जो अपने व्यवसायोँ और नौकरियोँमेँ सम्मान-प्राप्त हैँ और अपने कार्य्योँको योग्यतापूर्वक कर रहे हैँ। परन्तु ऐसे बहुत कम स्थान हैँ जहाँ अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगोँकी खपत हो। ऐसी शिक्षाकी प्राप्तिके लिये समाजकी शक्ति तथा आर्थिक अवस्थाका जो भयङ्कर ह्रास हो रहा है वह अलग, क्योँकि किसी विदेशी भाषाके द्वारा जो शिक्षा किसी देशके बच्चोँको दी जाती है उससे समय तथा धनका भारी अपव्यय होता है और इससे बचनेका एक ही मार्ग है कि उससे देशके बच्चोँको उन्हीँकी भाषाओँके माध्यम-द्वारा शिक्षा दी जाय। जिन्होँने अंग्रेज़ी भाषाके सीखनेमेँ अपने जीवनके पन्द्रह या बीस वर्ष व्यतीत किए हैँ उनमेँसे ऐसे लोगोँकी संख्या तो और भी कम हैँ जो इस भाषाद्वारा अपने भावोँसे संसारके कल्याणमेँ सहायक हो सकेँ। जो भारत प्राचीन समयमेँ तत्त्वज्ञोँके लिये प्रसिद्ध था वह आज अपने

---

[1] १—प्रोफ़ेसर मैक्समूलर इस बातसे सहमत हैँ कि संस्कृत साहित्यमेँ ऐसे अनमोल रत्न हैँ जिनका पाश्चात्य विद्वानोँको बहुत ही थोड़ा ज्ञान है। उनका कथन है कि वास्तव मेँ हमसे पीछे आनेवाले सज्जनोँके लिये अब भी बहुत सा कार्य्य करना शेष है—क्योँकि अबतक जो कुछ किया गया है उससे हम भारतीय दर्शन तथा साहित्यकी पहली सीढ़ीपर पहुँचे हैँ। हम उस बच्चेकी तरह हैँ जिसके सामने प्राचीन साहित्यका अगाध समुद्र है और वह उसके किनारे खड़ा हुआ है। उसे कभी-कभी पत्थरके टुकड़े तथा घोँघे मिल जाते हैं। (सिक्स सिस्टम्स औफ़ हिन्दू फ़िलौसफ़ी, प्रथम संस्करण पृष्ठ ३८३)

[2] २—यह तुलना सर मौनियर विलियम्सने अपनी "संस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी" की प्रस्तावनामेँ की है। उनका कथन है कि "कोई भी व्यक्ति जिसकी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियाँ परिमित हैँ, एक अथवा दोसे अधिक इतने विस्तृत विभागोँको पूर्ण रूपसे अध्ययन नहीं कर सकता, जिनमेँ कि ऐतिहासिक पुरातत्त्व-शास्त्रके अतिरिक्त कोई एक विशेष विषय ऐसा नहीँ है जिसके कि एक-एक विभागमेँ संसारकी अन्य भाषाओंकी अपेक्षा अधिक पुस्तकेँ न लिखी गई होँ। कुछ विशेष विषयोँमेँ विशेषतया प्राकृतिक दृश्योँ तथा गृहस्थ-प्रेममेँ तो संस्कृत साहित्य रोम तथा यूनानके प्राचीन साहित्यसे भी बाज़ी मार ले जाता है और विद्वत्ता, भाव-गाम्भीर्य्य तथा नैतिक उच्चतामेँ तो संस्कृत साहित्यके सुन्दर वर्णन संसारके इतिहासमेँ अद्वितीय हैँ। इन सब बातोँके अतिरिक्त प्राचीन हिन्दुओँने ज्यौतिषशास्त्र, बीजगणित, अङ्कगणित, वनस्पति-शास्त्र तथा आयुर्वेदमेँ योरोपके प्राचीन देशोँकी अपेक्षा प्रशंसनीय उन्नति कर ली थी। उनके व्याकरण जैसी उन्नति तो संसारमेँ आजतक कहीँ नहीँ हुई। निस्सन्देह पूर्व हमारे समस्त प्रकाश तथा ज्ञानका स्रोत रहा है।

मौलिक विचारोंको मानो खो ही बैठा है। विचारोंमें मौलिकता लानेके लिये किसी व्यक्तिकी मातृभाषा जो सहायता दे सकती है वह सहायता कोई भी विदेशी भाषा नहीं दे सकती। विदेशी भाषा उन व्यक्तियोंके ही लिये लाभदायक है, जिनके पास उसे प्राप्त करनेके लिये पर्याप्त साधन हैं, किन्तु किसी पूरे देश तथा जातिको शिक्षित करनेके लिये वह भाषा कदापि सुगम साधन नहीं हो सकती। जो लोग सरकारी पदोंके इच्छुक हैं उन्हींके लिये अंग्रेज़ी भाषाकी शिक्षाकी सदैव आवश्यकता रहेगी। यह भाषा वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करनेके लिये तथा उसे जनसमाजमें फैलानेके लिये पढ़नी चाहिए। क्योंकि इस भाषाके द्वारा हमारे देशवासियोंको, योरोप तथा अमेरिकामें पिछले सत्तर या अस्सी वर्षोंमें हुए वैज्ञानिक अनुसन्धानों तथा यन्त्रके प्रचार और रासायनिक पदार्थोंसे आर्थिक क्षेत्रमें हुई आश्चर्य्यजनक उन्नतिका ज्ञान हो सकेगा। भारतीय भाषाओंके द्वारा ही भारतकी अधिकांश जनता शिक्षित हो सकती है और उनका पोषण भी संस्कृत जननीद्वारा होना चाहिए।

एक समय था जव भारतवर्ष समस्त आर्य्य-जगत्को केवल अपनी धार्मिक तथा आध्यात्मिक शिक्षाओंद्वारा ही नहीं अपितु विज्ञान, कलाकौशल, उद्योग-धन्धों आदि समस्त विद्याओंद्वारा उपकृत करता था। योरोपीय विद्वानों तथा अन्वेषकोंका कथन है कि भारतवर्षने ही अङ्कगणित, वीजगणित रेखागणित, ज्यौतिषशास्त्र तथा आयुर्वेदको जन्म दिया है और वे हमारे पूर्वजोंको इसके लिये धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने ही संसारको धातुओंका प्रयोग वतलाकर संसारकी सभ्यताकी अभिवृद्धिमें सहयोग दिया था। दुःख है कि समयके परिवर्त्तनसे भारतने कलाकौशल तथा विज्ञानमें पिछली नौ या दस शताब्दियोंसे कुछ भी नहीं किया। इतना ही नहीं वल्कि उसकी सब उन्नतियोंका वर्त्तमान समयमें भयङ्कर ह्रास होता जा रहा है। भास्कराचार्य्यके समयसे लेकर अवतक गणितमें कोई उन्नति नहीं हुई, तथा आयुर्वेदने भी वाग्भट्टके समयसे लेकर अवतक वहुत ही थोड़ी उन्नति की है। भारतीय विद्वत्ताका पौधा, जिसको विद्वानोंने अपने सराहनीय परिश्रमसे सींचा था, आज दिनोंदिन सूखता जा रहा है। प्रत्येक कलाकौशल तथा व्यापार भी आज नितान्त चौपट होता जा रहा है। जिन वेदोंके ज्ञानका हमें किसी समय वड़ा अभिमान था वह आज हमारे देशसे लुप्तप्राय होता जा रहा है। वास्तवमें योरोपमें वेदोंका अध्ययन भारतकी अपेक्षा अधिक उत्साहसे किया जाता है। हमारी आँखों देखते ही कितने सङ्गीतज्ञ तथा दार्शनिक महापुरुष अपनी कला तथा विद्वत्ताको सुयोग्य व्यक्तियोंके हाथ सौंपे विना ही इस संसारसे कूच कर गए हैं। कच्ची धातुओंसे फ़ौलाद वनानेकी कला भी प्राचीन समयमें भारतके कई भागोंमें काममें लाई जाती थी, किन्तु आजकलके कारीगर उस कलाको भूल गए हैं। वारीक सूती कपड़े भी हमारे ही देशमें वुने जाते थे जिनको हम 'शवनम' तथा 'आवेरवाँ' कहकर पुकारते थे। इस कलाको तो हमने अभी-अभी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके शासनकालमें खोया है।

अवनतिका यह क्रम पिछले १२०० वर्षोंसे अवाध गतिसे चला आ रहा है। वर्त्तमान समयके हमारे ह्रासपर दृष्टिपात करनेसे सम्भवतः हमारी सभ्यताका हमें कुछ पता लग जाय। हमारे उत्तरोत्तर ह्रासके होते हुए भी भारत उन्नीसवीं शताब्दीके प्रथम चरण तक संसारके अन्य देशोंसे आर्थिक सम्पन्नतामें किसी प्रकार कम न था। उस समयतक भारतने योरोप यथा अन्यान्य देशोंको वारीक कपड़े तथा अन्य वस्तुएँ भेजीं थीं। किन्तु पिछले पचहत्तर वर्षोंसे योरोप तथा अमेरिकामें भौतिक तथा रसायनशास्त्रमें जो उन्नति हुई है, भाप तथा विजलीके आविष्कारने उद्योग-धन्धोंको तैयार करनेमें जो सराहनीय सहयोग दिया है, उसने भारतके उद्योगधन्धों, उसके व्यवसायों तथा उसकी शिल्पकलाको एकदम चौपट कर दिया है।

भारत अपने प्राचीन गौरवको प्राप्त करनेमेँ तबतक सर्वथा असमर्थ है जबतक वर्त्तमान वैज्ञानिक अन्वेषणोँका अध्ययन नियमित तथा अनिवार्य्य नहीँ वनाता। विज्ञान उस समयतक राष्ट्रकी सम्पत्ति न हो सकेगा जबतक कि उसका अध्ययन देशके बच्चोँके लिये राष्ट्रभाषामेँ नहीँ होता। समाजको भयङ्कर दरिद्रतासे मुक्त करनेके लिये विज्ञान आवश्यक है, किन्तु उसकी उन्नति उस समयतक देशमेँ सुचारु रूपसे नहीँ हो सकती जबतक उसके अध्ययनका क्रम देश ही मेँ और देशी भाषाओँद्वारा न हो जायगा।

विदेशोँमेँ शिल्प-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करनेके लिये विद्यार्थी भेजनेका जो स्तुत्य कार्य्य देशवासी कर रहे हैँ, निस्सन्देह राष्ट्रकी बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैँ। किन्तु वे भी वास्तवमेँ देशसेवाका कार्य्य बहुत छोटे पैमानेपर कर रहे हैँ। शिल्पविद्या उस समयतक वास्तविक उन्नति नहीँ कर सकती जबतक समस्त देशमेँ एक केन्द्रीय संस्था न हो, जहाँ विद्यार्थियोँको शिल्प-सम्बन्धी सिद्धान्तोँका पूर्ण परिचय तथा उन्हेँ कार्य्य रूपमेँ परिणत करनेकी उचित शिक्षा दी जा सके।

किन्तु भारत केवल औद्योगिक विकासके बलपर ही संसारमेँ वह स्थान नहीँ प्राप्त कर सकता जो उसे प्राचीन समयमेँ संसारके सभ्य देशोँमेँ प्राप्त हुआ था और भारतमेँ औद्योगिक उन्नति भी तबतक नहीँ हो सकती जबतक कि समाजमेँ पारस्परिक विश्वास तथा परस्पर सहयोगकी भावना नहीँ उत्पन्न होती और ये दिव्य गुण उसी समय आ सकते हैँ जब समाजके अधिकांश व्यक्ति अपने प्रत्येक कार्य्यमेँ विश्वास रखने लगेँ। ऐसे मनुष्य प्रचुर मात्रामेँ समाजको उसी समय प्राप्त हो सकेँगे तथा उसी समय उसे सङ्गठित, सुचारु तथा हृष्ट-पुष्ट दशामेँ रख सकेँगे जब कि समाज एक धार्मिक तथा जीवित संस्थाके प्रभावमेँ रहेगा।

उपर्युक्त विचार इस बातकी ओर सङ्केत करते हैँ कि हिन्दू जातिको एक शिक्षासूत्रमेँ बाँधनेकी इस समय नितान्त आवश्यकता है जो इसके सदस्योँको जीवनके ध्येय (त्रिवर्ग) की ओर अग्रसर होनेमेँ सहायता देगी। हिन्दू शास्त्रोँके अनुसार जीवनके मुख्यतः ये ध्येय हैँ—

(१) धार्मिक कर्त्तव्योँका पालन करना (धर्म)
(२) धनकी प्राप्ति (अर्थ) और,
(३) आनन्दका उपभोग (काम)।

प्रत्येक प्राणीको अपने प्रयत्नद्वारा धार्मिक गुरुकी संरक्षतामेँ अपने जातिगत तथा व्यक्तिगत मतानुसार जीवनका चौथा ध्येय मोक्ष प्राप्त करना चाहिए।

* * *

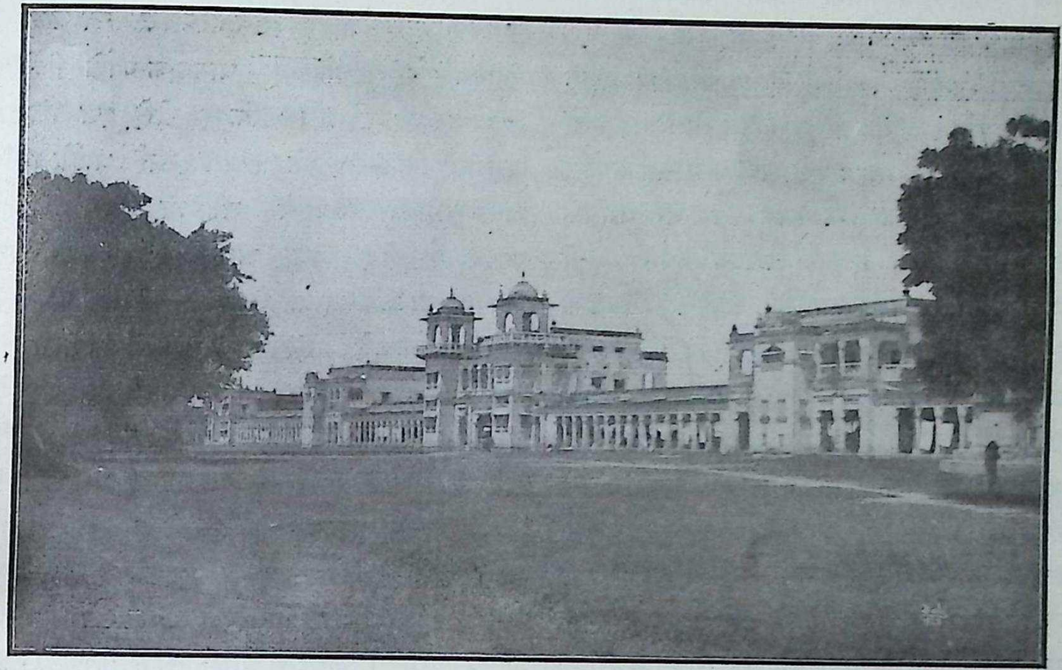

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें
संस्कृत छात्रावास तथा सङ्गीत विद्यालय।
प्रारम्भमें इसी भवनमें संस्कृत विद्यालय भी था।

द्वितीय भाग

एक हिन्दू विश्वविद्यालय

विचारणीय योजना

शिक्षाका जो स्वरूप पिछले पृष्ठोंमें निर्धारित किया गया है उसको कार्य्यरूपमें परिणत करनेके लिये एक ऐसे विश्वविद्यालयकी आवश्यकता है जो (अ) हिन्दू समाज तथा संसारके हितके लिये भारतकी प्राचीन सभ्यताकी अच्छाई और महत्ताकी रक्षा और उसके प्रचारके लिये संस्कृत विद्याका विकास करे। इसका उद्देश विशेषतः उन उपदेशोंकी रक्षा भी होगी जिसने ऐसे महात्माओंको जन्म दिया, जो अपनी सादगी तथा पवित्रताके लिये संसारमें प्रसिद्ध थे और जिन्हें लोक तथा समाजकी सेवामें हार्दिक आनन्द प्राप्त होता था। यह संस्कृत भाषा वर्त्तमान वैज्ञानिक अनुसन्धानोंको भारतीय भाषाओंमें

अभिव्यक्त करके देशके कल्याण-साधनमें सहायक हो और जो (व) देशके नवयुवकोंको देशके आर्थिक कल्याणके लिये वैज्ञानिक तथा शिल्पसम्बन्धी शिक्षा दे।

संस्कृत भाषाका अध्ययन केवल ब्राह्मणोंतक ही परिमित है और उनमें भी बहुत कम लोग पढ़ते हैं और वे भी किसी निश्चित ध्येयसे अध्ययन नहीं करते। ब्राह्मण-बालक संस्कृतका अध्ययन या तो धार्मिक कर्त्तव्य समझकर करते हैं या असंख्य वर्षोंसे चली आई रुढ़ियोंका पालन करनेके लिये। उनमेंसे बहुतसे तो सांसारिक लोभ तथा धनका लालच त्यागकर इसके वास्तविक गुणोंके कारण इसके पक्षपाती बन जाते हैं। आर्थिक प्राप्ति तो उस घोर परिश्रम तथा समयके मूल्यकी तुलनामें प्रायः नहींके बराबर है। साधारण कोटिके पण्डितोंको तो यह विचार स्वप्नमें भी नहीं होता कि संस्कृत भाषाके अध्ययनसे उन्हें धन-धान्यकी भी प्राप्ति हो सकती है। वे यह नहीं जानते हैं कि संस्कृतके अध्ययनसे मनुष्यकी बुद्धिका विकास होता है जिससे मनुष्य बुद्धि-साध्य व्यवसायोंके लिये योग्य बन जाता है तथा इसके अध्ययनसे मनुष्य-चरित्र अधिक उदात्त तथा पवित्र बनता है, जिससे मनुष्य संसारमें वास्तविक उन्नति कर सकता है। विश्वविद्यालयके अन्यान्य उद्देशोंमेंसे एक यह भी है कि संस्कृत भाषाके अध्ययनका क्रम कितना विस्तृत कर दिया जाय कि जो इसके अध्ययनके लिये उत्सुक हैं वे इसकी शिक्षा पा सकें, इसके द्वारा जातिके चरित्रको उच्च बना सकें, राष्ट्रके मानसिक विकासमें सहयोग दें तथा समाजसेवा आदि अन्य कर्त्तव्योंको अत्यन्त सुगमतापूर्वक कर सकें। इस प्रकार संस्कृत देशके सब भागोंके पठित समाजकी फिर वैसे ही भाषा हो जायगी जैसे यह प्राचीन समयमें थी।

हमारा विचार है कि इस विश्वविद्यालयमें संस्कृत साहित्यके समस्त अङ्गों विशेषतः वेद-वेदाङ्ग, उपवेद, कल्पसूत्र, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण तथा अन्य हिन्दू राजनीतिक मूल विषयोंकी शिक्षा दी जाय। शिक्षाके इस क्रमकी व्यवस्था ठीक उसी प्रकारकी है जैसी महाशय जोनाथन डङ्कनने काशीके क्वीन्स कौलेजके लिये निर्धारित की थी। उक्त महोदयके क्वीन्स कौलेज् स्थापन-कार्य्यके लिये देश सदैव उपकृत रहेगा। किन्तु पीछे इस सिद्धान्तके अनुसार कि इसाइयोंके राज्यमें इसाई धर्मके अतिरिक्त अन्य धर्मोंकी शिक्षामें सहयोग देना अधार्मिक कार्य्य है—वेद तथा अन्य हिन्दू धर्मशास्त्रोंके अध्ययनका क्रम रद्द कर देना पड़ा।

वेदाध्ययनके लिये शिक्षा-संस्थाओंका पूर्ण अभाव होनेके कारण वेदोंका नाम हमारे देशसे उठता जा रहा है। कुछ योरोपके विद्वानोंने पिछले पचास या साठ वर्षोंसे वेदाध्ययनका क्रम जारी किया है, किन्तु उन्हें अपने देशमें वैसी सुविधाएँ प्राप्त नहीं और उन्हें बहुतसी वैदिक पुस्तकोंका अर्थ स्पष्ट नहीं होता। इसके अतिरिक्त उनका अध्ययन भाषाशास्त्र तथा ऐतिहासिक ज्ञानके लिये होता है। इसीसे उनका परिश्रम भारतवासियोंके लिये तबतक लाभदायक नहीं हो सकता जबतक कि वे स्वयं संस्कृत साहित्यके इस प्रमुख विभागके अध्ययनकी ओर पूर्ण रूपसे दत्तचित्त न हो जायँ।

संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, श्रौत गृह्यसूत्र तथा धर्मसूत्र, मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत् तथा अन्य पुराणोंके अध्ययनका क्रम इस विश्वविद्यालयमें रक्खा जायगा और हिन्दू समाजके विकास तथा सङ्गठनका अध्ययन विशेष रूपसे करनेका आयोजन होगा। इस प्रकारका अध्ययन हिन्दू संस्थाओंके कार्य्य-क्रमको ठीक-ठीक समझानेमें सहायक होगा और इसके परिणामस्वरूप अधिकाधिक संख्यामें विद्वान् उपदेशक निकलेंगे जो समाजको नैतिक तथा आध्यात्मिक सत्यका मार्ग बता सकेंगे, जिससे समाजका कलेवर वर्त्तमान समयकी अपेक्षा एकदम बदल जायगा।

वेदाङ्गोँमेँ से केवल व्याकरणका ही अध्ययन कुछ उत्साहके साथ किया जाता है। ज्यौतिषका भी अध्ययन जहाँ-तहाँ जारी है, किन्तु इसकी उचित शिक्षाका पूर्ण अभाव है। थोड़ेसे व्यक्ति छन्दशास्त्रका भी अध्ययन करते हैँ, किन्तु वैदिक छन्दशास्त्रको हमने एकदम भुला ही दिया है। शिक्षा, कल्प तथा निरुक्तका ज्ञान तो किसी विरलेको ही है। व्याकरणके अध्ययनको अधिक व्यावहारिक बनानेकी तथा अन्य वेदाङ्गोँ,—विशेषतया ज्यौतिष तथा अन्तरिक्षशास्त्रके अध्ययनके लिये एक वेधशाला बनेगी तथा संस्कृत साहित्य इन विषयोँके समस्त अन्वेषणोँसे भरा-पूरा रहेगा।

प्रत्येक दर्शनके लिये एक-एक सुयोग्य विद्वान् नियुक्त किए जायँगे। पूर्व मीमांसा तथा दर्शनके लिये विशेष आयोजन किया जायगा जिनका अध्ययन एकदम भुला दिया गया है। संस्कृत साहित्यका विशेष अध्ययन करनेवालोँ तथा धर्मोपदेशकोँके लिये पद, वाक्य तथा प्रमाणका ज्ञान आवश्यक होगा।

उपवेदोँमेँ आयुर्वेदको विशेष महत्त्व दिया जायगा। अन्य जातियोँद्वारा चिकित्साशास्त्र तथा शरीर-विज्ञानशास्त्रमेँ जो आश्चर्य्यजनक उन्नति हुई है वे सब भी आयुर्वेदके अध्ययनमेँ सम्मिलित किए जायँगे। इस विभागका मुख्य उद्देश देशको ऐसे वैद्योँसे भर देना है जो ओषधिशास्त्र तथा चीरफाड़ दोनोँ विषयोँमेँ पारङ्गत होँ। ओषधिमेँ काम आनेवाली जड़ी-बूटियोँके लिये एक वनस्पति-वाटिका भी बनाई जायगी।

रसोँ, तेलोँ तथा आसवोँके बनानेके लिये एक प्रयोगशाला भी होगी जहाँ आयुर्वैदिक अन्वेषणके प्रयोग किए जायँगे। योरोपीय देशोँसे प्रसिद्ध वैद्य तथा डाक्टर बुलाए जायँगे जो आयुर्वेदके विद्यार्थियोँको चिकित्साशास्त्र, शरीर-विज्ञानशास्त्र तथा स्वास्थ्यविज्ञानकी पूर्ण रूपसे शिक्षा देँगे तथा संस्कृत और देशी भाषाओँमेँ इन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोँके तैयार करनेमेँ वैद्य लोगोँको सहायता देँगे।

इस विश्वविद्यालयका सबसे मुख्य कार्य्य नवीन रूपसे स्थापत्यवेद अथवा अर्थशास्त्रके अध्ययनका क्रम होगा जिसका अध्ययन एक प्रकारसे भारतमेँ भुला दिया गया है और बहुतोँको इसके नाममेँ ही शङ्का होती है। यह कार्य्य सबसे कठिन तथा व्यय-साध्य होगा। भौतिकशास्त्र तथा रसायन-शास्त्र प्रयोगात्मक तथा सैद्धान्तिक दोनोँ पढ़ाए जायँगे। कातना, बुनना, रङ्गसाज़ी, छापनेका काम, शीशेका काम तथा अन्य उपयोगी काम यहाँ अच्छी तरह सिखाए जायँगे। देशके लिये चतुर कारीगर उत्पन्न करनेके लिये लकड़ी तथा लोहेके कार्य्यालय खोले जायँगे। अन्वेषणोँ तथा प्रयोगात्मक शिक्षाके लिये भौतिक तथा रासायनिक प्रयोगशालाएँ होँगी। देशको समृद्धिशाली बनानेके लिये एञ्जिनियर तैयार किए जायँगे। मशीनोँको बनाने तथा प्रयोग करनेकी शिक्षाको विशेष महत्त्व दिया जायगा।

भारत कृषि-प्रधान देश है। कृषिकी उन्नतिके लिये इस विश्वविद्यालयमेँ कृषि-सम्बन्धी शिक्षा भी दी जायगी जिसकी सहायतासे पाश्चात्य देशोँमेँ भूमिमेँ अधिक फसलेँ उगाई जाती हैँ तथा अधिक परिमाण और गुणवाले फल तथा अन्न उपजाए जाते हैँ। बड़ी प्रसन्नताका विषय है कि भारत सरकारने अब कृषि-सम्बन्धी अन्वेषणोँ तथा कृषि-विज्ञानकी शिक्षाका महत्त्व स्वीकार कर लिया है। किन्तु देशके लिये इस विषयकी महत्ताको स्वीकार करते हुए तथा इसके तात्कालिक परिणामोँपर विचार करनेसे पता चल जायगा कि इस जनताके विद्यालयमेँ कृषिकी उन्नति तथा शिक्षाके लिये भी उचित आयोजन होना चाहिए। इसी उद्देशको सम्मुख रखते हुए एक कृषि-विद्यालयकी भी स्थापना होगी जहाँपर कृषि-सम्बन्धी विषयोँपर हिन्दुस्तानी भाषाओँद्वारा वर्त्तमान ढङ्गपर सर्वोच्च शिक्षा दी जायगी।

यद्यपि इस विश्वविद्यालयका मुख्य उद्देश उपरोक्त विषयोँद्वारा धर्म तथा अर्थकी शिक्षा

देना है तथापि मनुष्य-जीवनके तृतीय अङ्ग 'काम' को भी यह अपने कार्य्य-क्रममें सम्मिलित रक्खेगा। भारतीय संस्थापकोंने यद्यपि नैतिक उच्चताके लिये कठोर-से-कठोर नियम बनाए हैं, तथापि वे कलापूर्ण तथा सौन्दर्य्यमय जीवनके भी एकदम विपरीत न थे। वास्तविक सभ्यताके रहस्यको समझकर उन्होंने मानव-आनन्दके विषय सङ्गीत, काव्य, नाट्यकला, चित्रकला, वास्तुकला तथा मूर्त्तिकलामें पर्य्याप्त उन्नति की थी। हिन्दू सभ्यतापर समय-समयपर आनेवाली आपत्तियोंके फलस्वरूप ये कला कुछ तो पूर्ण रूपसे तथा कुछ अधूरे रूपसे नष्ट-भ्रष्ट हो गई हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय इस बातका प्रयत्न करेगा कि इन कलाओंका पुनरुत्थान हो जिससे ये हिन्दू घरोंको फिर प्राचीन समयकी भाँति अलंकृत करें।

इस विश्वविद्यालयमें ये संस्थाएँ होंगी :—

१—एक वैदिक कौलेज, जहाँ वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, दर्शन, इतिहास तथा पुराणोंकी शिक्षा दी जायगी। ज्यौतिष विभागमें एक ज्यौतिष-सम्बन्धी तथा अन्तरिक्ष-विद्या-सम्बन्धी वेधशाला भी होगी।

२—एक आयुर्वैदिक विद्यालय, जिसमें प्रयोगशालाएँ तथा वनस्पति-वाटिकाएँ भी होंगी। एक उच्च कोटिका अस्पताल तथा पशुचिकित्सालय भी होगा। सुन्दर-सुन्दर घोड़ों तथा पशुओंको उत्पन्न करनेका भी प्रबन्ध होगा।

३—एक स्थापत्यवेद अथवा अर्थशास्त्रका विद्यालय, जिसमें अलग-अलग भवनोंमें तीन विभाग होंगे—

(अ) भौतिक विज्ञान-विभाग, सैद्धान्तिक तथा प्रयोगात्मक, जिसमें प्रयोगों तथा अन्वेषणोंके लिये एक प्रयोगशाला भी होगी। एञ्जिनियरोंकी शिक्षाके लिये यन्त्रालय भी होंगे।

(ब) रसायन-विज्ञान-विभाग, जिसमें प्रयोगों तथा अन्वेषणोंके लिये प्रयोगशालाएँ भी होंगी। रङ्ग, चित्रकारीके सामान, रोग़न तथा अन्य रासायनिक पदार्थोंकी शिक्षाके लिये यन्त्रालय भी होंगे।

(स) शिल्पकला-विभाग, जिसमें नित्य व्यवहारमें आनेवाली वस्तुएँ मशीनोंसे तैयार की जायँ। इस विभागमें खनिज तथा धातु-विज्ञानकी शिक्षा भी सम्मिलित रहेगी।

४—एक कृषि कौलेज, जहाँ प्रयोगात्मक तथा सैद्धान्तिक दोनों प्रकारकी शिक्षाएँ कृषिशास्त्रके नवीन अन्वेषणोंके आधारपर दी जायँगी।

५—गन्धर्व तथा अन्य ललित कलाओंका विद्यालय। इसका कार्य्य होगा कि—

(अ) प्राचीन भारतके रागोंमें अन्तर्हित सौन्दर्य्यमय तथा दिव्य जगत्‌को मूर्त्तिमान कर देना और उसे सभ्य समाजके लिये सुलभ कर देना।

(ब) नाट्यकलाको पुनः उसके वैभवपूर्ण पदपर पहुँचा देना तथा नैतिक शिक्षाके लिये इसे उपयुक्त साधन बना देना।

(स) चित्रकला तथा वास्तुकलाकी समुचित शिक्षाद्वारा उन्नति।

(द) कला-कौशलके सम्बन्धमें मौलिक साँचे बनाकर विदेशी वस्तुओंके नक़ल करनेकी बुरी आदतको हटाना तथा अन्य ललित कलाओंको प्रोत्साहन देना।

टिप्पणी—इस विश्वविद्यालयका धर्म-सम्बन्धी कार्य्य तथा वैदिक विद्यालयका कार्य्य उन हिन्दुओंके अधिकारमें होगा जो श्रुति, स्मृति तथा पुराणोंद्वारा प्रतिपादित सनातनधर्मके माननेवाले होंगे। धार्मिक शिक्षकोंकी शिक्षा तथा परीक्षा आदिका प्रबन्ध भी इसी विद्यालयमें होगा। इस विद्यालयमें वर्णाश्रमधर्मके आधारपर प्रवेश होगा। अन्य सब विद्यालयोंमें सब धर्मावलम्बियों तथा सब जातियोंका प्रवेश हो सकेगा। संस्कृत भाषाकी अन्य शाखाओंकी शिक्षा बिना जाति-पाँतिका भेदभाव किए सबको दी जायगी।

६—भाषाशास्त्र-सम्बन्धी एक विद्यालय, जहाँ अंग्रेज़ी तथा अन्य विदेशी भाषाएँ इस उद्देशसे पढ़ाई जायँ कि भारतीय साहित्य, विज्ञान तथा भाषामेँ उनसे भली प्रकार सहायता मिल सके। भाषाएँ इस रोचक तथा परिष्कृत ढङ्गसे पढ़ाई जायँगी कि उसे पढ़नेवाला आसानीसे उस भाषाको बोल तथा लिख सके तथा इसके साहित्यको सुगमतासे हृदयङ्गम कर सके। अन्य विद्यालयोँके अध्यापकोँ तथा पण्डितोँसे अनुरोध किया जायगा कि वे इस विद्यालयमेँ अध्ययनकर भारतीय साहित्योँको नवीन वैज्ञानिक तथा साहित्यिक रत्नोँसे भरपूर कर देँ।

इन विद्यालयोँके अन्तर्गत विभागोँके अतिरिक्त अध्यापकोँ तथा विद्यार्थियोँके रहनेके लिये स्थान होगा। ब्रह्मचर्य्यके पुनरुत्थानके लिये पूर्ण प्रयत्न किया जायगा। देशके कोने-कोनेसे मेधावी विद्यार्थी इस विश्वविद्यालयमेँ आवेँगे जहाँ उपनयनके पश्चात् ब्रह्मचर्य्याश्रममेँ उनका प्रवेश होगा। देशके गण्यमान्य व्यक्तियोँके बालक इस आश्रममेँ प्रविष्ट होनेके लिये आमन्त्रित किए जावेँगे।

विद्यालयमेँ प्रवेश करनेसे पहले विद्यार्थियोँकी शिक्षाके लिये एक पाठशाला होगी, जिसका सम्बन्ध इसी आश्रमसे होगा। इस स्थानपर उनको अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य्य करनेके योग्य बनाया जायगा। विश्वविद्यालयकी सीमाके अन्दर रहनेवाले अध्यापकोँका कर्त्तव्य होगा कि वे विद्यार्थियोँका जीवन उसी साँचेपर ढालेँ जिसके लिये हमारे प्राचीन साहित्यमेँ आदेश किया गया है। सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य्य, त्याग, धृति, क्षमा, आर्जव, विनय, शील, निर्म्ममत्त्व, निरहङ्कार, पौरुष, उत्साह, धैर्य्य, वीर्य्य, औदार्य्य, मैत्री तथा हमारे पवित्र साहित्यमेँ दिए हुए अन्य गुणोँका नित्य विद्यार्थियोँसे पालन कराया जायगा।

अध्ययनका क्रम इस प्रकार निर्धारित किया जायगा कि साधारण कोटिका विद्यार्थी एक वर्षमेँ आधुनिक प्रणालीद्वारा शिक्षा दी जानेपर (अ) संस्कृत भाषा तथा साहित्यमेँ धर्मंजयकी योग्यता प्राप्त कर सके, जिससे उसके धार्मिक तथा नैतिक विचारोँमेँ दृढ़ता आ जाय और वह संस्कृत भाषाकी उन शाखाओँसे भी परिचित हो जाय जो विना किसी विशेषज्ञकी सहायताके ही प्राप्त हो सकेँ। इस बातका भी पूर्ण ध्यान रक्खा जायगा कि विद्यार्थियोँके स्वास्थ्य और शक्तिपर भी अधिक भार न पड़े, (आ) जहाँपर विद्यार्थी अर्थकरी कलामेँ दक्ष हो सके तथा उस कलाके सिद्धान्तोँसे भी भली भाँति परिचित हो जाय। ब्रह्मचर्य्याश्रमके जिन विद्यार्थियोँके चरित्र निष्कलङ्क पाए जायँगे तथा जो निश्चित पाठ्यक्रम समाप्त कर लेँगे वे स्नातक पद पानेके अधिकारी समझे जायँगे। स्नातक होनेके पश्चात् जो विद्यार्थी विद्यालयमेँ उसके बाहर अपने अध्ययनक्रमको जारी रखकर कोई प्रसिद्ध वैज्ञानिक अथवा साहित्यिक अन्वेषण करेँगे अथवा कोई महत्त्वपूर्ण खोज करेँगे उनको आचार्य्य पद दिया जायगा। शिल्प-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये जो विद्यार्थी चौदह या पन्द्रह वर्षकी अवस्थाके बाद विश्वविद्यालयमेँ प्रवेश करेँगे उनको निश्चित पाठ्यक्रम तैयार करनेके पश्चात् अधिकारी पद दिया जायगा। यदि वे संस्कृत न जानते होँगे तो उन्हेँ देश-भाषाद्वारा धार्मिक तथा नैतिक शिक्षाएँ दी जायँगी।

शिल्पविद्यालयमेँ विद्यार्थियोँको धनोपार्जनकी जो शिक्षा दी जायगी वह उन्हेँ रुपये पैसेकी चिन्तासे मुक्त कर देगी और यह आशा है कि विद्यालय छोड़नेसे पहले वे धन कमाने लगेँगे और उनको काम सीखनेकी अवस्थामेँ ही उनके द्वारा कमाए धनमेँसे कुछ छात्रवृत्ति भी दी जाने लगेगी। हमारे विश्वविद्यालयसे निकलनेवाले युवकोँमेँसे कुछ तो देशके कल-कारख़ानोँके स्वामी होँगे, कुछ उद्योग-धन्धोँके सञ्चालक तथा किसी-किसीको रियासतोँमेँ स्थान मिलेगा। साथ-ही-साथ विद्यालयसे साहित्यिक विद्वान्, एञ्जिनियर, प्रोफ़ेसर, धर्म-शिक्षक, साहित्यिक

क्षेत्रमेँ अन्वेषण करनेवाले व्यक्ति उत्पन्न होँगे । हमारे यहाँके युवक ईमानदारीके साथ रुपया कमायँगे और सांसारिक प्रलोभनोँसे सदा बचे रहेँगे, क्योँकि उन्हेँ विश्वविद्यालयमेँ सचाई तथा ईमानदारीसे कार्य्य करनेकी शिक्षा दी जायगी। पचीस वर्षतक ब्रह्मचारी रहनेके कारण उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ सदैव ठीक रूपसे कार्य्य करती रहेँगी और समाज अथवा लोककी सेवा करनेमेँ उनकी जीवनशक्तिका ह्रास भी न होगा। वे सभ्य होनेके कारण समाजमेँ आदरणीय तथा सुचरित्रताके कारण विश्वासपात्र बनेँगे। बड़े-बड़े उद्योगशील कार्य्योँके लिये उनके वचनोँपर रुपया बरसेगा । प्रत्येक धार्मिक, शिक्षा-सम्बन्धी, व्यापारी तथा औद्योगिक क्षेत्रमेँ हमारे नवयुवक अपनी योग्यता तथा कार्य्य-कुशलताके कारण सफलता प्राप्त करेँगे । हिन्दू विश्वविद्यालयके आधारपर वे देशके भिन्न-भिन्न भागोँमेँ स्कूल तथा कौलेज् स्थापित करेँगे, फिर वे स्कूल विश्वविद्यालयकी शाखा बन जायँगे। समाजमेँ जहाँ कहीँ अशान्ति तथा कलह होगी वहाँ उनके सतत प्रयत्नसे शान्ति तथा सङ्घटनका राज्य हो जायगा।

संस्कृतके प्रेमियोँको संस्कृतशिक्षा दी जायगी। धर्मशिक्षा तथा आयुर्वेदमेँ सबसे बड़ी परीक्षामेँ उत्तीर्ण होनेवालोँके लिये संस्कृतका अध्ययन अनिवार्य्य होगा । औरोँके लिये संस्कृतका इतना ही ज्ञान पर्य्याप्त होगा कि धार्मिक शिक्षाओँको समझ सकेँ तथा देशी भाषाओँकी अभिवृद्धिके लिये प्रयत्न कर सकेँ । शेष व्यक्तियोँके लिये शिक्षाका माध्यम हिन्दी होगा जो देशके अधिकांश भागद्वारा बोली जाती है । जो विद्यार्थी टोकियो विश्वविद्यालयमेँ जानेसे पूर्व जापानी भाषा सीखना चाहते हैँ, हमारा विचार है उनके लिये हमारे विश्वविद्यालयमेँ हिन्दीका पर्य्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लेना कोई विशेष कठिन कार्य्य न होगा । वर्त्तमान समयमेँ भी मद्राससे बहुतसे विद्यार्थी विद्याध्ययनके लिये काशी आते हैँ। उनको हिन्दीका ज्ञान बिलकुल नहीँ होता । संस्कृत सीखनेके साथ-साथ हिन्दीका ज्ञान भी उन्हेँ अनायास ही हो जाता है। हमारी जातिकी शोचनीय आर्थिक अवस्थाको देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि एक केन्द्रीय स्थानपर समस्त शक्तियोँ तथा ध्यानको एकत्र करके एक ऐसी संस्था बनाई जाय जहाँसे बहुतसे कला-कौशल तथा विज्ञानकी शिक्षा देशके अधिकाधिक युवकोँको दी जाय। जब ऐसी संस्था एक स्थानपर स्थापित हो जायगी और उसकी समस्त आवश्यकताएँ पूरी हो जायँगी तब उसकी शाखाएँ प्रत्येक प्रान्त तथा देशके समस्त भागोँमेँ फैलानेका आयोजन किया जायगा।

इस स्थानपर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि कम-से-कम प्रारम्भमेँ अंग्रेज़ीद्वारा शिक्षा क्योँ न दी जाय जिससे विदेशी तथा अन्य अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोँके आनेवाले अध्यापकगण इस भाषाके द्वारा शिक्षा दे सकेँ? इस प्रश्नका उत्तर यही हो सकता है कि हमारा उद्देश तो अधिकाधिक व्यक्तियोँको शिक्षित बनाना है। इसलिये उसी भाषाके द्वारा शिक्षा देना उचित होगा जिसको अधिकाधिक व्यक्ति आसानीसे समझ सकेँ । किसी विषयको अंग्रेज़ीके माध्यमद्वारा सीखनेके लिये अंग्रेज़ी भाषाके जितने ज्ञानकी आवश्यकता है उतना ज्ञान वर्षोँके नितान्त परिश्रमद्वारा होता है। किन्तु यदि उसी समयको देशी भाषाओँद्वारा किसी विषयका अध्ययन करनेके लिये उपयोग किया जाय तो देशका कितना लाभ होगा, इसका विचार प्रत्येक विचारशील व्यक्ति कर सकता है । दूसरा कारण यह भी है कि यदि प्रारम्भ ही से देशी भाषाओँके माध्यमद्वारा शिक्षा नहीँ दी जायगी तो देशी भाषाओँमेँ पाठ्य पुस्तकोँके प्रकाशनका मार्ग एकदम बन्द हो जायगा जिससे अंग्रेज़ीसे पीछा छुड़ाना हमारे लिये एक प्रकारसे असम्भव हो जायगा।

विश्वविद्यालयका प्रथम कर्त्तव्य संस्कृत तथा भारतीय भाषाओँमेँ भिन्न-भिन्न कलाकौशल-सम्बन्धी

तथा वैज्ञानिक विषयोँकी पाठ्य पुस्तकेँ प्रस्तुत करना होगा । इस कार्य्यका सम्पादन उन विद्वानोँके हाथमेँ दिया जायगा जो संस्कृत भाषा तथा उसके सौन्दर्य्यसे परिचित होते हुए आयुर्वेद, ज्यौतिष, अन्तरिक्षविद्या, दर्शनशास्त्र आदि भिन्न-भिन्न विषयोँके ज्ञानमेँ पूर्णतया पारङ्गत होँगे। इन सब पुस्तकोँद्वारा विदेशी भाषाके ज्ञानसे अपरिचित विद्यार्थियोँको भिन्न-भिन्न विषयोँका ज्ञान कराया जायगा । इस प्रकारसे इन विषयोँका ज्ञान प्राप्त करनेमेँ उन्हेँ कोई कठिनता न होगी। सङ्क्षेपमेँ हमारा उद्देश वर्त्तमान सभ्यताकी अनुकरणीय तथा लाभदायक बातोँके साथ भारतीय सभ्यताका उचित सामञ्जस्य स्थापित कर देना है।

देशी भाषाओँके उस साहित्यका निर्माण करना एक दुस्तर कार्य्य है, जिसके माध्यमद्वारा वैज्ञानिक तथा शिल्प-सम्बन्धी विषयोँमेँ उच्च शिक्षा दी जा सके। इसके लिये अगाध परिश्रम तथा समयकी आवश्यकता होगी। किन्तु आत्मविश्वास तथा दृढ़ निश्चयके सम्मुख सब कठिनाइयाँ सरल बन जाती हैँ । परन्तु जो हमारा अभीष्ट है उसको आज ही प्रारम्भ कर देना चाहिए, चाहे उसको पूरा करनेमेँ कितना ही समय क्योँ न लगे । जिन राष्ट्रोँका राष्ट्रीय साहित्य हमारे साहित्यकी अपेक्षा कितना कम था उन्होँने इस क्षेत्रमेँ कितनी उन्नति कर ली ? तब हम भी वैसा करनेमेँ सफल होँगे इसमेँ आश्चर्य्य ही क्या है ? हमेँ यथासाध्य अपनी लक्ष्यप्राप्तिके लिये निरन्तर उद्योग करते रहना चाहिए।

विश्वविद्यालयके भिन्न-भिन्न विभागोँमेँ शिक्षा देनेके लिये देश अथवा विदेशसे सुयोग्य व्यक्ति निमन्त्रित किए जायँगे । कुछ अध्यापकोँके भाषण प्रारम्भमेँ हिन्दीमेँ अनूदित किए जायँगे, किन्तु यह आशा की जाती है कि कुछ समयमेँ वे हिन्दीकी व्यावहारिक योग्यतासे परिचित हो जायँगे । अहिन्दी-भाषा-भाषी अध्यापक महोदयोँके साथ एक सहकारी अध्यापक रक्खा जायगा जो उनके व्याख्यानोँका भाव विद्यार्थियोँपर हिन्दीद्वारा प्रगट कर सके ।

इस प्रकारकी योजनाके लिये निस्सन्देह बहुत धनकी आवश्यकता होगी । भूमि ख़रीदनेके लिये, आवश्यक पठनपाठनके योग्य भवन निर्माण करनेके लिये, पुस्तकालय, प्रयोगशालाओँ तथा कार्य्यालयोँके लिये, शिक्षकोँके लिये, निर्धन तथा योग्य विद्यार्थियोँको छात्रवृत्तियाँ देनेके लिये काफ़ी रुपयोँकी आवश्यकता होगी । हमारा विचार पहले एक करोड़ रुपये इकट्ठा करनेका है जिसके व्याजसे यह विद्यालय भली भाँति चल सकेगा । कम-से-कम आधा रुपया वैज्ञानिक शिल्पकला तथा औद्योगिक शिक्षाके लिये व्यय किया जायगा। वार्षिक, अर्द्धवार्षिक तथा मासिक सहायता भी सहर्ष स्वीकार की जायगी और हमेँ आशा है कि इस प्रकार दानसे पर्य्याप्त धन मिल जायगा । जनताद्वारा चलनेवाली संस्थाके लिये एक करोड़ रुपया इकट्ठा करना आसान काम नहीँ है । किन्तु यदि हिन्दू राजे, महाराजे तथा धनीमानी व्यक्ति इस योजनाके कार्य्यक्रमसे सन्तुष्ट हो जायँगे तो इतने रुपयोँके इकट्ठा करनेमेँ कोई विशेष अड़चन न होगी। हममेँ से अधिक सहृदय व्यक्तियोँको यह देखकर हार्दिक दुःख होता है कि ऐसे धनधान्यपूर्ण देशमेँ, जहाँके निवासी किसी समय महान् सभ्यता तथा पवित्र धर्मके प्रचारक थे, आज अशिक्षा तथा अनेकोँ सामाजिक और आर्थिक बुराइयोँके फलस्वरूप इस प्रकार घृणित जीवन व्यतीत कर रहे हैँ ? जनताकी वर्त्तमान दशाको सुधारनेके लिये देशके अनेक भागोँमेँ पिछले वर्षोँमेँ कई संस्थाएँ खुली हैँ । इन संस्थाओँके उद्योगसे समाजका कल्याण हो रहा है और आगे भी होता रहेगा । किन्तु उनके सहायकोँका क्षेत्र पूर्णतया परिमित होने तथा आर्थिक सहायता न पानेसे वे देशकी अधिक लाभदायक सेवा करनेमेँ

असमर्थ हैँ। अतएव इस समय यह आवश्यक हो जाता है कि एक ऐसी संस्था स्थापित की जाय जिसे समस्त हिन्दू जनताकी आर्थिक सहायता तथा सहयोग प्राप्त हो, तथा जो देशके नैतिक तथा आर्थिक मङ्गल साधनके लिये उचित कार्य्य कर सके। यदि ऐसी संस्थाका जन्म हो जाता है तो आशा है कि देशके अनेक शुभचिन्तक तन, मन, वचन तथा धनसे उसकी सहायता करनेको प्रस्तुत हो जायँगे। देशके भिन्न-भिन्न भागोँके हिन्दुओँकी सम्मतिसे पर्य्याप्त स्थान मिल जानेपर विश्वविद्यालय पुण्य-सलिला भागीरथीके तटपर काशीमेँ स्थापित होगा जो प्राचीन कालसे संस्कृत भाषाका केन्द्र रहा है। काशी वासकी प्राचीन प्रथाको पुनर्जीवित करनेका उद्योग किया जायगा तथा हिन्दू समाजके विद्वान् तथा गण्यमान्य व्यक्तियोँसे विश्वविद्यालयमेँ रहनेका अनुरोध किया जायगा। अब भी बहुतसे हिन्दू अपने जीवनके अन्तिम भागको काशीमेँ व्यतीत करनेके लिये काशीकी शरण लेते हैँ। मेरी सत्य धारणा है कि प्रस्तावित हिन्दू विश्वविद्यालयके स्थापित हो जानेपर अनेक पवित्रात्मा हिन्दू अपने जीवनके अन्तिम भागको विश्वविद्यालयकी सेवा करनेके लिये अर्पित कर देँगे।

ऐसी राष्ट्रीय संस्थाके लिये एक उचित सञ्चालक-संस्थाकी आवश्यकता है और उसके नियमपूर्वक कार्य्य करनेके ऊपर ही इस समस्त योजनाकी सफलता निर्भर है। देशके समस्त हिन्दू शासकोँ, राजा तथा महाराजोँसे प्रार्थना की जाती है कि वे इस संस्थाको अपनाएँ तथा इसकी सञ्चालक-संस्थामेँ अपने प्रतिनिधि भेजेँ जिसमेँ देशके गण्यमान्य विद्वानोँका प्रतिनिधित्व होगा। इस संस्थाके नियम भी बनाए जायँगे तथा योजनाके स्वीकृत हो जानेपर इसे नियमानुसार क़ानूनी रूप दे दिया जायगा।

देशके शासकोँ, राजाओँ, महाराजाओँ तथा धनीमानी व्यक्तियोँसे हमारी यही प्रार्थना है कि वे इस योजनापर विचार करेँ, इसके सुधार तथा संशोधनके लिये वे हमेँ उचित परामर्श देँ, जिससे यह संस्था वैज्ञानिक शिक्षाद्वारा जनसमाजकी आर्थिक उन्नति करानेमेँ सहायक हो, तथा देशवासी अपने पवित्र ग्रन्थोँकी शिक्षाओँके आधारपर अधिक पवित्र तथा सुखी जीवन व्यतीत कर सकेँ।

—मदन मोहन मालवीय।

हिन्दू-विश्वविद्यालय

इसके उद्देश्य और इसकी आवश्यकता

काशी विश्वविद्यालयके निम्नाङ्कित पाठ्यक्रमकी प्रस्तावना जुलाई सन् १९११ मेँ प्रकाशित हुई थी।

काशीमेँ एक हिन्दू-विश्वविद्यालय स्थापित करनेका प्रस्ताव सर्वप्रथम काशी-स्थित “मिण्ट हाउस” मेँ काशीनरेशके सभापतित्वके एक सभाके सम्मुख प्रस्तुत किया गया था। अक्तूबर सन् १९०५ मेँ विश्वविद्यालयके कार्य्यक्रमका एक विवरण प्रकाशित हुआ और चारोँ ओर वितरण किया गया। काशीके टाउन हालमेँ ३१ दिसम्बर सन् १९०५ ई० को देशके प्रमुख शिक्षाके आचार्य्योँ तथा हिन्दू जातिके प्रतिनिधियोँके सामने इस विवरणपर विचार किया गया था। इसका समर्थन सन् १९०६ ई० के जनवरी महीनेमेँ प्रयागमेँ हिन्दू-महासभाद्वारा भी हुआ। जनता तथा पत्रकारोँने इस प्रस्तावका हर्षके साथ स्वागत किया।

इस हिन्दू-विश्वविद्यालयकी स्थापनाके लिये ‘पायोनियर’ ने एक अग्रलेखमेँ कहा कि, “……… हार्दिक प्रोत्साहन मिले तो इस भव्य तथा एक जातिके गौरवपूर्ण कार्य्यके लिये एक करोड़ रुपया कोई अधिक रक़म नहीँ है, क्योँकि इसकी आवश्यकता अधिकांश लोग अनुभव कर रहे हैँ। यदि इसाई तथा मुसलमान भाई इस नवीन विद्याकेन्द्रसे लाभ न भी उठावेँ तो कम-से-कम बीस करोड़ हिन्दू भाइयोँके लिये तो यह अवश्य ही मातृ-संस्था हो जायगी और इससे बढ़कर समर्थकोँकी संख्याकी आवश्यकता भी नहीँ है।

संयुक्तप्रान्तके तत्कालीन गवर्नर माननीय सर जेम्स ला टूशने निम्नाङ्कित शब्दोँमेँ इसको आशीर्वाद दिया—

“यदि भारतकी सभ्य विद्वन्मण्डली अनेक विद्यालयोँके सहित एक हिन्दू-विश्वविद्यालय स्थापित करना चाहते हैँ तो इसकी सफलताके लिये मेरी सदिच्छा है। परन्तु उच्च कोटिका विश्वविद्यालय बनानेमेँ व्यय भी अधिक पड़ेगा, और अधिकांश धनके लिये दूसरे प्रान्तोँसे याचना करनी पड़ेगी। संसारकी इस उन्नत शताब्दीमेँ कोई भी व्यक्ति निम्न कोटिके विद्यालयका समर्थन नहीँ कर सकता।”

यह सन् १९०६ ई० की बात है। तबसे ही इसपर निरन्तर विचार किया जा रहा है और लोगोँसे सम्मति ली जा रही है; किन्तु अनुल्लेखनीय परिस्थितियोँके कारण, और व्यवस्थित उद्योगशीलताके अभावसे यह प्रस्ताव तबसे गत वर्षतक निरन्तर टलता रहा। परन्तु इसी बीचमेँ स्वर्गीय सम्राट्की मृत्युके कारण राष्ट्रीय तथा प्रान्तीय स्मारकोँ, तथा वर्त्तमान वाइसराय महोदयके विदा होनेके उपलक्ष्यमेँ एक भारतीय स्मारकके निर्माणका प्रश्न आ गया, और फलतः विश्वविद्यालयका निर्माण-कार्य्य पुनः स्थगित करना पड़ा। गत जनवरीसे इस कार्य्यका प्रारम्भ करनेका उद्योग हो रहा है। देर हो जानेके कारण इसके कार्य्य-क्रममेँ भी बहुतसे आवश्यक परिवर्त्तन हो गए हैँ। यह बहुमतसे कहा गया है कि यह विश्वविद्यालय आधुनिक ढङ्गका गुरुकुल तथा विद्यालय दोनोँ होना चाहिए। भारतमेँ इस प्रकारका कोई विद्यालय नहीँ है। अन्य पाँच विश्वविद्यालय केवल परीक्षण-संस्थाएँ हैँ। उन्होँने बहुत अच्छे कार्य किए हैँ और कर रहे हैँ। परन्तु एक ऐसे विश्वविद्यालयकी बड़ी आवश्यकता

है जिसमें शिक्षा, परीक्षा तथा छात्रावास सब हों। इसकी आवश्यकता इसलिये भी है कि इसी प्रकारके विश्वविद्यालय प्राचीन कालमें भारतमें थे और अब भी पाश्चात्य देशके विश्वविद्यालय ऐसे ही हैं। अतः भारतीयोंकी यह इच्छा भी पूर्ण होनी चाहिए।

उद्देश्य

विश्वविद्यालयके लिये निम्नाङ्कित उद्देश्य निर्धारित हुए—

(१) सर्वसाधारण जनता मुख्यतः हिन्दुओंको हिन्दू शास्त्र तथा संस्कृत साहित्यकी शिक्षा देना, जिससे प्राचीन भारतकी संस्कृति और उनके उच्च विचारोंकी रक्षा हो सके। तथा प्राचीन भारतकी सभ्यतामें जो कुछ महान् तथा गौरवपूर्ण था उसका निदर्शन हो।

(२) साधारणतः कला तथा विज्ञानमें शिक्षा तथा अन्वेषणके कार्य्यकी सर्वतोमुखी उन्नति।

(३) भारतीय घरेलू धन्धों और भारतके वैभवके पुनरुद्धार होनेके उपयुक्त आवश्यक व्यावहारिक ज्ञानसे युक्त वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक शिल्प-कलादि ज्ञानोंकी शिक्षा देना।

(४) धर्म तथा नीतिको शिक्षाका आवश्यक अङ्ग मानकर नवयुवकोंमें सुन्दर चरित्र-गठनका विकास करना।

विद्यालय

इन उद्देश्योंकी पूर्त्तिके लिये विश्वविद्यालयमें धनकोषके अनुकूल निम्नाङ्कित विद्यालय होने चाहिएँ।

(१) धर्मशास्त्र विभागसे युक्त एक संस्कृत विद्यालय।

(२) कला और साहित्य का विद्यालय (ए कौलेज् औफ़ आर्ट्स ऐण्ड लिटरेचर)।

(३) विज्ञान तथा शिल्पका विद्यालय (ए कौलेज् औफ़ साएन्स ऐण्ड टैक्नोलौजी)।

(४) कृषि विद्यालय (ए कौलेज् औफ़ एग्रिकल्चर)।

(५) व्यापार विद्यालय (ए कौलेज् औफ़ कौमर्स)।

(६) आयुर्वैदिक विद्यालय।

(७) संगीत तथा ललित कलाओंका विद्यालय।

इससे ज्ञात होगा कि जिन कलाओंकी शिक्षा इस विश्वविद्यालयमें प्रस्तावित है वह ठीक उसी ढङ्गकी है जैसी आधुनिक कालके योरोप तथा अमेरिका आदिके विश्वविद्यालयोंमें आवश्यक समझी जाती है। अभीतक क़ानूनकी शिक्षा देनेका कोई प्रस्ताव नहीं है। परन्तु इसकी सार्वजनिक माँग हुई तो उसकी पूर्त्ति करनेमें कोई कठिनाई न होगी।

संस्कृत कौलेज्

कौलेजोंका नाम कुछ परिवर्त्तित हो गया है। जो पहले प्रस्तावमें वैदिक विद्यालय था अब उसका नाम संस्कृत कौलेज् है। इसमें वेदोंकी शिक्षा सन्तोषजनक रूपसे दी जायगी। सौ सालसे भी पहले सन् १७९१ में काशीके रेज़िडेण्ट जोनाथन डङ्कनने तत्कालीन गवर्नर जनरल लौर्ड कौर्नवालिससे अनुरोध किया था कि प्राचीन विद्याके केन्द्र तथा हिन्दू जातिके तीर्थस्थान तथा धर्म, साहित्य तथा भक्तिके प्रधान केन्द्र काशीमें प्रान्तके भूमिकर अथवा बनारसकी ज़मीन्दारीकी कुछ आय एक हिन्दू कौलेज्के स्थापनमें व्यय करनी चाहिए।

गवर्नर जनरलने वह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया और संस्कृत कौलेज्की स्थापना हो गई। उसी समयसे भारतमें संस्कृत शिक्षाकी उन्नति तथा उसकी रक्षामें यह विद्यामन्दिर बहुत ही प्रख्यात रहा है। संस्कृत शिक्षाके लिये बृटिश सरकारकी यह उदारता कभी विस्मृत नहीं की जा सकती। और यह सभी प्रकारसे ठीक तथा उचित जान पड़ता है कि पुनः उन्हीं विषयोंकी शिक्षाके लिये उसी नगरमें एक दूसरा संस्कृत कौलेज् खोलनेके बजाय उसी

कौलेज़्को विश्वविद्यालयके अन्तर्गत लेनेके लिये सरकारसे प्रार्थना की जाय। यदि सरकारने इस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया तो इस संस्कृत कौलेज़्में वेदोंके पढ़ानेके लिये केवल एक धर्मशास्त्र विभागकी व्यवस्था करनी होगी। जिस समय उक्त संस्कृत कौलेज़्की स्थापना हुई थी उस समय चारों वेदोंके पढ़ानेके लिये चार विद्वानोंकी नियुक्ति हुई। परन्तु क्रमशः यह क्रम बन्द हो गया। यह सर्वदाके लिये एक दुःखकी वात रहेगी। संस्कृत कौलेज़्के भूतपूर्व प्रधानाध्यापक श्री जौर्ज निकोलसने सन् १८४४ ई० में लिखा था कि—

"वेदोंकी शिक्षाकी प्राचीनतापर ध्यान रखकर यह दुःख होता है कि सरकारद्वारा स्थापित इस संस्कृत कौलेज़्में वेदाध्यक्षोंके पदोंको हटाकर इस शिक्षाको स्थगित कर दिया गया। वास्तवमें इस कौलेज़्की स्थापना वैदिक साहित्यकी रक्षा तथा प्रचारके लिये ही हुई थी।"

हिन्दुओंके लिये वेदोंका महत्त्व उसकी प्राचीनतासे वढ़कर कुछ और भी है? वेद उनके धर्मके मूल हैं और भारतीयोंके लिये यह वड़ी ही लज्जाकी वात है कि जर्मनी तथा अमेरिका आदि विदेशोंमें तो वेदकी शिक्षाके लिये समुचित प्रबन्ध हो, परन्तु इस अभागे भारतवर्षमें इस पवित्र हिन्दुओंके धर्मग्रन्थके अध्ययनके लिये देशभरमें एक भी उच्च कोटिका विद्यालय न हो। इस विश्वविद्यालयमें वैदिक कौलेज़्की स्थापना करनेका पूर्ण उद्योग करके इस कलङ्कको मिटाया जायगा। यदि यह हो गया तो इस प्राचीन विद्याकेन्द्र काशीमें उच्च कोटिकी संस्कृत शिक्षा दी जायगी। इस वैदिक कौलेज़्में उन ब्रह्मचारियोंके रहनेके लिये एक ब्रह्मचर्य्याश्रम भी होगा जिनमेंसे कुछको धर्मोपदेशक बननेकी शिक्षा भी दी जा सके। इसका नाम इसी ध्येयसे वैदिक कौलेज़्से वदलकर "संस्कत कौलेज़्" रक्खा गया है।

कला और साहित्यका विद्यालय

(ए कौलेज़् औफ़ आर्ट्स ऐण्ड लिटरेचर)

दूसरा कौलेज़् कला तथा साहित्यका होगा, जिसमें भाषाएँ, तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, तत्त्व-ज्ञान, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षणकला आदि सिखानेकी व्यवस्था होगी। यह प्रस्तावित किया गया है कि वर्त्तमान काशीका सेन्ट्रल हिन्दू कौलेज़्, इन कौलेजोंका केन्द्र-स्थान होगा। इस कौलेज़्की स्थापनामें आत्म-त्याग तथा सेवाकी भावना होनेके कारण इसको विश्वविद्यालयमें सम्मिलित कर लिया जायगा। और विश्वविद्यालयके कला-विभागकी उन्नतिके लिये इस कौलेज़्को विस्तृत तथा विकसित करके प्रथम श्रेणीका वनाया जायगा। यह आशा की जाती है कि सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज़्के अधिकारी इस प्रस्तावसे सहमत होंगे।

विज्ञान तथा शिल्पकला का विद्यालय

(दि कौलेज़् औफ़ साइन्स एण्ड टैक्नोलौजी)

तीसरा कौलेज़् विज्ञान तथा शिल्पकलाका विद्यालय होगा, जिसमें शुद्ध और प्रयोगात्मक विज्ञानके जिसके चार विशाल सर्वाङ्गपूर्ण विभाग होंगे। यह प्रस्ताव किया गया है कि यह विश्वविद्यालयका सर्वप्रथम कौलेज़् होना चाहिए। भारतकी इस आर्थिक दुरवस्थामें विज्ञान तथा शिल्पादिकी शिक्षासे वढ़कर अधिक आवश्यक कोई भी अन्य विषय नहीं हो सकता। सभी विचारशील दूरदर्शी विद्वानोंकी एकमात्र यही सम्मति है कि देशको इस आर्थिक आपत्तिसे वचानेका एकमात्र उपाय यही है कि कुछ जनसंख्याको कृषिसे हटाकर व्यावसायिक कार्य्योंमें लगाया जाय। इसके लिये शिल्प तथा व्यवसाय-सम्वन्धी शिक्षाके साधनोंकी वहुतायतसे आवश्यकता है। वहुत दिनोंकी वात है कि सन् १८७८ के अकाल-कमीशनने अपने विवरणमें कहा था कि "भारतीयोंकी निर्धनताका मुख्य कारण यही है कि यहाँकी जनसंख्याका मुख्य व्यवसाय कृषि

होनेके कारण, अति वृष्टि अथवा अनावृष्टि आदि दैवी आपत्तियोँसे, यहाँके किसान वर्षके कई महीनोँ तक निरुद्यमी बने रहते हैँ। उन्हेँ शिल्पादिकी व्यावसायिक शिक्षा मिली नहीँ है, इसलिये वे अन्य कोई भी कार्य्य कर ही नहीँ सकते। अतएव देशमेँ ऐसे ही व्यवसाय-प्रचारक साधनोँके प्रचारकी अत्यन्त आवश्यकता है।”

इससे २५ वर्ष बाद माननीय सर जौन हिवेट्ने सन् १९०७ मेँ होनेवाली नैनीतालकी कौन्फ़रेन्समेँ कहा था कि—

“यह बात निश्चय है कि सब प्रकारकी आशाके रहते हुए भी हम लोग व्यावसायिक उन्नतिकी ओर बहुत कम अग्रसर हुए हैँ और विज्ञान-सम्बन्धी उन्नति करके कारीगरीके द्वारा केवल चार या पाँच करोड़ जनसंख्याको उद्यमशील बना सके हैँ।”

…“भारतकी व्यावसायिक तथा व्यापारिक उन्नतिमेँ दिलचस्पी लेनेवाला कोई भी व्यक्ति इस बातसे दुखी हुए बिना नहीँ रहेगा कि देशका यह अभाग्य है कि इसका इतना अधिक बहुमूल्य कच्चा माल विदेशमेँ चला जाता है, जिससे देशमेँ सब तैयार पदार्थ बन सकते थे। यही कच्चा माल विदेशोँसे फिर तैयार माल बनकर प्रायः देशमेँ बिकनेके लिये भेज दिया जाता है।”…

“सम्भवतः श्रीयुत् हौलेण्डको दुःख होगा कि देशमेँ ही उपयोग करने योग्य खनिज पदार्थ अधिक परिमाणमेँ प्रतिवर्ष बाहर भेज दिया जाता है। मेरी उनके साथ समवेदना है। मुझे सबसे अधिक दुःख इस बातका है कि यहाँ सबसे अधिक निर्यात चमड़े, रुई तथा बीजोँका है जिनका उपयोग तैयार सामग्रीके रूपमेँ आसानीसे स्वदेश ही मेँ हो सकता है। हम लोग धूप, वर्षा, बोनेके समय तथा उसकी पकाईपर नियन्त्रण नहीँ कर सकते। क्योँकि यह मनुष्यके सामर्थ्यके बाहरकी बात है। परन्तु हम लोग बहुत कुछ अंशोँमेँ पृथ्वीके प्रसाद खनिज पदार्थोँका उपयोग तो समुचित रूपसे कर सकते हैँ और उसीके द्वारा भारतीयोँके लिये नवीन उद्यमके मार्गोँका द्वार खोल सकते हैँ तथा इस देशको समृद्धिशाली बना सकते हैँ।

उसी व्याख्यानके दूसरे भागमेँ प्रतिभाशाली व्याख्याताने यह आदेश किया था कि इस ध्येयकी पूर्त्तिके लिये व्यावसायिक शिक्षाके साधनोँकी आवश्यकता है। सर जान हिवेट्ने कहा था कि, “हमेँ यह एक सिद्धान्त प्रतीत होता है कि शिक्षा तथा व्यावसायिक उन्नतिमेँ परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। अभाग्यवश भारतमेँ इस बातका अनुभव नहीँ किया गया और इसके तत्सम्बन्धी पतनका मूल कारण शिक्षाका अभाव ही है। श्रीयुत् एस्. एच्. बटलरने भी इसी प्रकारका एक लेख व्यावसायिक सभाके सामने प्रस्तुत करनेके लिये तैयार किया था। उन्होँने इस विषयमेँ जापान तथा पाश्चात्य देशोँकी व्यावसायिक उन्नतिका उदाहरण दिया था। उन्होँने संयुक्तप्रान्तमेँ इसी प्रकारकी शिक्षाके आरम्भ करनेके लिये आदेश दिया था। अन्य विद्यालयोँमेँ कानपुरके व्यावसायिक स्कूलकी स्थापनाकी भी बात थी। इस विषयमेँ उन्होँने कहा था कि :—

“विदेश भेजनेके लिये अल्पसंख्यक छात्रवृत्तियोँसे काम नहीँ चलेगा। इससे व्यावसायिक शिक्षाको प्रोत्साहन नहीँ मिल सकता। प्रत्येक सभ्य देश अधिक संख्यामेँ व्यावसायिक पाठशालाओँसे युक्त है। प्रारम्भमेँ ये सभी विद्यालय हीनावस्थामेँ थे, परन्तु व्यावसायिक होनेकी इच्छुक जातियोँमेँ यह शिक्षा इस समय शिखरपर पहुँच गई है और क्रमशः वह सार्वजनिक रूपमेँ प्रारम्भिक शिक्षाके कालमेँ सिखानेके लिये निर्धारित कर दी गई है।

यह बड़े हर्षकी बात है कि व्यावसायिक सभाके संयुक्तप्रान्तीय सरकारने जिन प्रस्तावोँका बड़े ज़ोरसे समर्थन किया था उनका ध्यान करके कानपुरमेँ व्यावसायिक विद्यालयकी स्थापना की, रुड़की कौलेजको अधिक विस्तृत किया

और प्रान्तमें अन्य व्यावसायिक कार्य्योंकी वृद्धिके लिये प्रशंसनीय सहायता दी । अन्य प्रान्तोंमें भी इस विषयमें वृद्धि हुई है । हमें इसके लिये सरकारको अवश्य धन्यवाद देना चाहिए, परन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि देशमें ऐसे साधनोंकी और भी वहुत आवश्यकता है और इसके लिये हमें सरकारपर ही आश्रित नहीं रहना चाहिए । यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे कार्य्योंमें देशके धनीमानियोंको सरकारकी हृदयसे सहायता करनी चाहिए । इस विषयमें भारतके स्टेटिक्सके डाइरेक्टर जनरलने एक वर्ष व्यतीत हुए जो लेख लिखा था वह इस विषयमें सर्वथा उपयुक्त है और उसे यहाँ उद्धृत किया जा सकता है । श्रीयुत ओ' कोर्नरने लिखा था कि —

“मैं आशा करता हूँ कि व्यावसायिक आन्दोलनके भारतीय नेता व्यावसायिक ज्ञानकी शिक्षा केवल व्यावसायिक जातियोंतक ही सीमित नहीं रक्खेंगे, वलिक उन्हें चाहिए कि उच्च कुलोत्पन्न नवयुवकोंके लिये भी उच्च कोटिकी शिक्षाका प्रवन्ध करें, जिससे वे अपनी देखरेखमें बड़े-बड़े कारखानोंका सञ्चालन कर सकें ।”

देशमें व्यावसायिक स्कूलों तथा कौलेजोंकी बड़ी आवश्यकता है । इसके लिये भी स्वभावतः सवका ध्यान सरकारकी ही सहायताकी ओर है । मुझे तो तब सन्तोष होगा जब भारतीय स्वयं इनकी स्थापना करें और इसके वाद सरकारसे उचित सहायताकी प्रार्थना करें । वम्वईके स्वर्गवासी ताताने यह दिखला दिया कि उद्योग किस प्रकार किया जाता है, और मेरी हार्दिक इच्छा है कि उन्हींके समान यदि अन्य दस देशभक्त, स्वतन्त्र, दूरदर्शी तथा सच्चे जनसेवक इस देशमें हो जायँ तो देशका दुर्भाग्य दूर हो जाय ।

इस समय तो यह नहीं दिखाई देता कि भारतमें ताताके समान दस और भी योग्य भारत-सन्तानोंको अपनेको संसारके सम्मुख ऊँचा होनेका सौभाग्य हो; परन्तु इतनी आशा तो हम कर ही सकते हैं कि हमारी हिन्दू जातिके धनीमानी लोग देशमें एक विज्ञान तथा शिल्पादिकी व्यावसायिक शिक्षाके लिये कौलेज् की स्थापना करनेको तातासे भी अधिक दुगना धन दान दे सकते हैं । इस कौलेज्में आजतक उपलब्ध सभी अन्वेषणों तथा वैज्ञानिक अनुभवोंको व्यावसायिक प्रयोगमें लाया जायगा, और वङ्गलोरकी अन्वेषणशाला तथा कानपुरके व्यावसायिक विद्यालयका यह भी सहकारी वन जायगा ।

कृषि-विद्यालय

(दि कौलेज् औफ़ ऐग्रिकल्चर)

यह प्रस्ताव किया गया है कि इसके वाद दूसरा कौलेज् कृषि-कौलेज् होगा । जिस देशकी दो तिहाई जनसंख्या अपनी जीविकाके लिये पृथ्वीकी पैदावारपर ही आश्रित है उसके लिये कृषि-विद्यालयकी स्थापनाके महत्त्वका अधिक वर्णन करना उचित नहीं जान पड़ता । यदि इस समय देशमें व्यावसायिक उन्नति अपनी पराकाष्ठापर पहुँची हुई भी मान ली जाय तो भी कृषि भारतकी सर्वप्रथम तथा प्रधान व्यवसाय रहेगी ही । इसके अतिरिक्त कृषि तो भारतका मूल व्यवसाय है जिसपर अन्य व्यवसायोंको आश्रित रहना है । जैसा कि महान् वैज्ञानिक वैरन लीविगने कहा है—“सर्वाङ्गपूर्ण कृषि सभी व्यापार तथा व्यवसायकी जननी है, तथा राज्यकी समृद्धिकी आधार है ।” अतएव भारतकी उन्नतिका इसके कृषि व्यवसायकी उन्नतिसे वहुत ही घनिष्ठ सम्वन्ध है । देशकी वर्त्तमान परिस्थितिमें देशवासियोंकी सवसे बड़ी सेवा यही है कि जहाँ एक अङ्कुर पैदा होता है वहाँ दो अङ्कुर उपजाए जायँ । पाश्चात्य अनुभवोंसे यह सिद्ध है कि वैज्ञानिक ढङ्गसे कृषि करनेसे ही यह सिद्ध हो सकता है । इस देशमें आजकल प्रति एकड़ क्या पैदावार हो रही है और प्राचीन कालमें कितनी होती थी और अब भी विदेशोंमें प्रति एकड़ कितनी होती है, इसकी तुलनासे हमें ज्ञात हो जायगा कि अब भी

हमारे देशकी कृषिमें कितनी उन्नति होनेकी गुञ्जायश है। जो गेहूँके खेत संयुक्तप्रान्तमें आज ८४० पौण्ड पैदा करते हैं वही अकबरके राज्यकालमें ११४० पौण्ड पैदा करते थे। भारतमें प्रति एकड़ गेहूँकी औसत पैदावार ७०० पौण्ड है और इङ्गलैण्डमें ११०० पौण्ड है। भारतमें धान ८०० पौण्ड प्रति एकड़ होता है और बवेरियामें २५०० पौण्ड है। अमेरिकामें रूई और गेहूँ यहाँसे बहुत अधिक परिमाणमें पैदा होता है। पाश्चात्य देशोंमें इस आश्चर्यकारी पैदावारका श्रेय विज्ञानको ही है।

फ़रवरी मासके कृषि-समिति (बोर्ड औफ़ ऐग्रिकल्चर) के जरनलसे यह पता चलता है कि केवल ओन्टेरियो प्रान्तमें निम्नाङ्कित पैदावार होती है जो गुएल्फ़ कौलेज् औफ़ ऐग्रिकल्चरको सालाना २५००० पौण्डकी सहायता देती है।

"इस कौलेज्में कृषि-सम्बन्धी अन्वेषणों तथा वैज्ञानिक व्यावहारिक प्रयोगोंको कृषिमें उपयोग करनेसे व्ययसे अधिक लाभ हुआ है। एक ही फ़सलमें वैज्ञानिक प्रयोगोंके कारण इस कौलेज्का सम्पूर्ण व्यय निकल आता है।"

कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि उसी प्रकार वैज्ञानिकके प्रयोगोंसे भारतके कृषि-कार्य्य भी सन्तोषप्रद न हों। सरकारने शिक्षाके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव सन् १९०४ ई० में प्रकाशित किया था उसमें यह दिखलाया गया था कि भारतमें कृषि-सम्बन्धी साधनोंकी कमी है। और उसमें पुनः सुधारकी अत्यन्त आवश्यकता है। तभीसे बहुत कुछ उन्नति की गई है। पूसामें एक इम्पीरियल कौलेज् तथा अन्वेषण विभागकी उन्नति की गई थी और प्रान्तीय कृषि विद्यालयोंको समुन्नत किया गया। इसके लिये हमें सरकारका कृतज्ञ होना ही चाहिए। परन्तु अधिक संख्यामें विश्वविद्यालयोंकी अब भी आवश्यकता है और यह आशा है कि जनताके दानसे स्थापित होकर एक कृषि-विद्यालय और भी अधिक उत्तम फलदायी सिद्ध हो सकता है।

व्यापार-विद्यालय (दि कौलेज् औफ़ कौमर्स)

यह विचारा गया है कि तीसरा विद्यालय व्यापार तथा राज्यप्रबन्ध-सम्बन्धी होगा। व्यापारिक शिक्षा अर्थात् व्यापारिक उद्योगमें प्रविष्ट होनेवाले नवयुवकोंके लिये शिक्षाकी आवश्यकता पाश्चात्य देशोंने मान ली है जिससे देशी तथा अन्तर्देशीय दोनों प्रकारके लाभ हो सकते हों, उन पाश्चात्य आज सभ्यताके शिखरपर विराजमान राष्ट्रोंने सर्वप्रथम और अत्यधिक ध्यान व्यापारिक शिक्षापर ही दिया था। इस शिक्षाके महत्त्वका अनुभव सर्वप्रथम जर्मनीने किया। क्रमशः अमेरिका और जापानने उसका अनुकरण किया और गत पन्द्रह वर्षोंमें इङ्गलैण्डने इस विषयके सभी प्रकारके अभाव दूर कर दिए हैं। बरमिङ्घम और मैञ्चेस्टर विश्वविद्यालयोंने तो व्यापारकी परीक्षा बी. ए. तक कर दी है। यही बात लीड्स विश्वविद्यालयमें भी है। जब प्रोफ़ेसर लीजस्मिथ बम्बई सरकारके अनुरोधसे भारतमें पधारे थे तब उन्होंने मद्रासके भारतीय व्यावसायिक सम्मेलनके अवसरपर कहा था कि, "व्यापार तथा व्यवसायके चलानेवालोंको भी उसी प्रकारसे वैज्ञानिक ढङ्गसे शिक्षा देनी चाहिए जिस प्रकार डाक्टर, बैरिस्टर तथा अन्य पेशेवालोंको दी जाती है।

जब इस बातपर ध्यान जाता है कि भारतका सम्पूर्ण आयात एवं निर्यात प्रतिवर्ष तीन सौ करोड़ रुपयेका है तब यदि व्यावसायिक तथा व्यापारिक कलाकी शिक्षाके लिये सन्तोषजनक सुविधाएँ हो जायँ तो देशके असंख्य बेकार नवयुवकोंको देश अथवा विदेशके व्यावसायिक तथा व्यापारिक उद्योगोंमें सुगमतापूर्वक कार्य्य मिलनेमें कोई कठिनाई न प्रतीत हो। उन्नतिका यह क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। अतएव इस विद्याकी शिक्षाके लिये एक विद्यालयकी स्थापनाकी अत्यन्त आवश्यकता इसलिये है कि इस सम्भावनाको सत्यतामें परिणत किया जा सके।

आयुर्वेद-विद्यालय (दि कौलेज् ऑफ़ मेडिसिन)

यह सोचा गया है कि दूसरा विद्यालय आयुर्वेदका हो। सरकारद्वारा स्थापित अनेक आयुर्वैदिक विद्यालय तथा पाठशालाएँ जनताके लिये हितकर कार्य्य कर रहीं हैं। किन्तु देशकी आवश्यकताके अनुकूल अभी सुयोग्य वैद्योंकी बहुत कमी है। जो स्नातक और शल्यचिकित्सक इन विद्यालयोंसे प्रतिवर्ष निकलते हैं उन्हें प्रायः नगरों ही में काम मिल जाता है। इनमें प्राचीन ढङ्गके यूनानी तथा आयुर्वैदिक चिकित्सावाले वैद्यों तथा हकीमोंकी भी गणना है। गाँवोंमें, जहाँ भारतकी मुख्य जनता बसती है, अबतक सुयोग्य वैद्योंका दर्शन तक नहीं होता।

ज़िला चिकित्सालयोंमें भी चिकित्सा-सहायकोंकी नियुक्ति होती है। परन्तु इन सहायकोंकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। इसका परिणाम यह होता है कि असंख्य देहाती जनता आयुर्वैदिक सहायताके अभावमें अपने रोगोंका निवारण नहीं कर पाती और अधिकतर लोगोंको ऐसे व्यक्तियोंसे सहायता लेनी पड़ती है जो 'नीम हकीम ख़तरे जान' की कहावतको चरितार्थ करनेवाले होते हैं। इससे स्पष्ट है कि आयुर्वैदिक कौलेजोंकी अत्यधिक आवश्यकता है। राजकीय व्यवस्थापिका सभाकी पिछली बैठकमें भारतके अस्पताल विभागके इन्स्पेक्टर जनरल श्रीयुत सर्जन जनरल ल्यूकिसने बम्बईके डाक्टर ट्रेमालजी नारीमनकी सलाहका उल्लेख करते हुए कहा था कि भारतीयोंको आयुर्वैदिक विद्यालयोंकी अधिक संख्यामें स्थापना की ओर प्रयत्नशील होना चाहिए। सर्जन जनरल ल्यूकिसने कहा है—

कि हम लोगोंने कल जो मनोहर व्याख्यान ध्यानपूर्वक सुना है, उसमें गोखले महाशयने देशकी प्रारम्भिक शिक्षाके विषयमें बतलाया है कि यह एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य्य है जिसमें सरकारको जनताके साथ हार्दिक सहयोगद्वारा प्रयत्नशील होना चाहिए। क्या मैं इन्हीं शब्दोंको दूसरे रूपमें इस प्रकार कह सकता हूँ कि यह एक ऐसा कार्य्य है जिसमें जनताको हृदयसे सरकारकी सहायता करनी चाहिए। मुझे यह आशा है कि धनी तथा उदार मनुष्य इसको ध्यानमें रखेंगे। मैं उनसे निश्चय कह सकता हूँ कि यदि देशमें ऐसे ग़ैर-सरकारी आयुर्वैदिक विद्यालयोंकी स्थापना हो जाय, जिनमें केवल भारतीयों ही की नियुक्ति हो, तो केवल उस विभागकी ही उन्नति नहीं होगी बल्कि इससे देशका बड़ा भारी हित भी होगा।

सरकारी विद्यालयोंमें बहुत अल्प संख्यामें विद्यार्थी भरती किए जाते हैं। कलकत्तेमें मैंने स्वयं अनुभव किया कि दो सौसे ऊपर विद्यार्थी प्रतिवर्ष लौटा दिए जाते हैं। अतएव देशमें इस प्रकारके ग़ैर-सरकारी विद्यालयोंके लिये बहुत विस्तृत क्षेत्र है। उन्हें विश्वविद्यालयोंसे भी सम्बद्ध किया जा सकता है या सरकारी विद्यालयोंकी भाँति उनका भी पृथक् प्रबन्ध किया जा सकता है जिसके अधिकारी केवल भारतीय ही रहें। मैं तो उस दिनका स्वागत करना चाहता हूँ जब भारतके कोने-कोनेमें इस प्रकारके विद्यालयोंकी स्थापना हो जायगी, जो उत्तमता तथा श्रेष्ठ परीक्षाफलोंमें सरकारी विद्यालयोंसे टक्कर लेकर आगे बढ़ जायँगे, जैसा कि डाक्टर नरीमनने कहा है—

"इसमें वर्षोंका समय लगेगा, परन्तु अपने भारतसे जानेके पहले कम-से-कम बम्बई तथा कलकत्तेमें मैं इसे अपनी आँखोंसे कार्य्य रूपमें परिणत देखकर जाना चाहता हूँ। यदि मेरे कथनसे जनताके नेताओंको कुछ भी प्रोत्साहन मिला और वे इसमें हार्दिक सहायताके लिये सन्नद्ध हो गए तो मैं समझूँगा कि मेरा इतना समय व्यर्थ नहीं गया"।

बनारसके प्रस्तावित आयुर्वेद विद्यालयमें मुख्य बात यह होगी कि योरोपियन शल्यचिकित्सा प्रणालीके साथ-साथ हिन्दू-चिकित्सा-पद्धतिकी शिक्षा भी दी जायगी। हिन्दू-चिकित्सा-प्रणालीकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। योरोपियन-चिकित्सा-प्रणालीके

पिता माने जानेवाले 'हिपोक्रेट्स' ने, जिन्होंने येरोपमें इस शास्त्रका अध्ययन इसे विज्ञान मानकर किया था, इस विषयकी शिक्षा हिन्दुओंसे ही ली थी। बङ्गालके डाक्टर वाइज़ कहते हैं कि "आयुर्वेदके प्रारम्भिक ज्ञानके लिये हम लोग हिन्दुओंके सदैव ऋणी रहेंगे।" रमेशदत्त अपने "प्राचीन भारतकी सभ्यताका इतिहास" नामक ग्रन्थमें कहते हैं कि भारतीयोंको यह पढ़कर हर्ष होगा कि जहाँ आजकल प्रत्येक ज़िलेमें स्वच्छता तथा दवाईके कार्य्योंके लिये विदेशी वैज्ञानिक बुद्धि तथा ज्ञान आवश्यक समझा जाता है, वहाँ आजसे बाइस सौ वर्ष पहले महान् सिकन्दरने अपने ख़ेमेमें हिन्दू वैद्योंको उन रोगोंके निदानके लिये रक्खा था जिन्हें यूनानी वैद्य अच्छा नहीं कर सकते थे। ग्यारह सौ वर्ष हुए बग़दादके हारुनुल रशीद बादशाहने मङ्क तथा सलेह नामक दो हिन्दू वैद्योंको अपना दरबारी वैद्य बनाया था। केवल हिन्दू एवं बौद्ध कालमें ही नहीं बल्कि मुसलमान-कालमें भी हिन्दू-चिकित्सा-प्रणाली राष्ट्रीय रोग-निदानका साधन थी। अब भी कम-से-कम हिन्दुओंमें उसी प्रणालीको अधिक महत्त्व दिया जाता है। यह भारतीय होनेके कारण भारतीयोंके लिये अधिक सुविधाजनक है। अन्य प्रणालियोंसे यह सस्ती है और अधिक गुणकरी भी है। इसका प्रमाण इसीसे मिल जायगा कि इस प्रणालीवाले जो कविराज अथवा वैद्य आयुर्वेदके अच्छे मर्मज्ञ हैं वे कलकत्ते जैसे शहरमें, जहाँ येरोपियन प्रणालीके डाक्टरोंकी बहुतायत है, अधिक धन कमाते हैं और अधिक रोगियोंको अच्छा करते हैं।

ऐसा होते हुए भी देशभरमें एक भी ऐसी संस्था नहीं है जहाँ इस प्रकारके वैद्यों और कविराजोंको उपयुक्त शिक्षा दी जा सके। हिन्दू जातिका हित इस बातमें है कि कम-से-कम देशमें एक ऐसे विद्यालयकी स्थापना हो जिसमें नियमित तथा स्थायी रूपसे इस देशके आयुर्वैदिक ज्ञानकी शिक्षा दी जाय। यह विचार है कि प्रस्तावित आयुर्वेद-विद्यालय जो विश्वविद्यालयमें खुलेगा वह इसी प्रकारका एक केन्द्र हो जाय। हिन्दू-आयुर्वेद-प्रणालीका यहाँ पुनरुद्धार किया जायगा और अंग्रेज़ी ढङ्गकी आश्चर्य्यजनक सफलताओं तथा प्राणिशास्त्र, शल्यचिकित्सा आदि विभागोंके समावेशसे उसके ज्ञान-भाण्डारको और अधिक विस्तृत कर दिया जायगा। इस विद्यालयका लक्ष्य देशमें योग्य वैद्य उत्पन्न करना होगा जो शल्यचिकित्साके मर्मज्ञ होंगे। यह आशा की जाती है कि भारतकी दुखी जनताकी इससे बहुत बड़ी सेवा होगी।

सङ्गीत तथा ललितकला-विद्यालय

(दि कौलेज् औफ़ म्यूज़िक ऐण्ड दि फ़ाइन आर्ट्स्)

प्रस्तावानुसार अन्तिम विद्यालय सङ्गीत तथा ललित कलाओंका होगा।

पाश्चात्य देशों द्वारा इस बातके महत्त्वका पता चल गया है कि किसी राष्ट्रके सुखमय जीवनके लिये सङ्गीत कितना आवश्यक विषय है। बहुतसे विश्वविद्यालय सङ्गीतको एक पृथक् विषय मानकर उसमें बी० ए०, एम्० ए० तथा डाक्टरकी उपाधियाँ प्रदान करते हैं। आधुनिक कालके विश्वविद्यालयमें यदि सङ्गीतका अङ्ग न रहे तो उसका प्रभाव तथा महत्त्व बहुत अंशोंमें घट जाता है।

शिक्षाका माध्यम

जब हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाका प्रश्न उठा तो यह निर्णय हुआ कि शिक्षाका माध्यम सार्वजनिक विषयोंके लिये देशकी कोई उपभाषा होनी चाहिए। यह प्रस्ताव किया गया कि वह उपभाषा "हिन्दी" हो, क्योंकि देशमें सबसे अधिक यही भाषा बोली तथा लिखी जाती है। सन् १८५४ के एक लेखमें इस बातका समर्थन किया गया, जिसमें यह आदेश किया गया था कि येरोपीय विज्ञानों तथा कलाओंकी शिक्षा भारतीय भाषाओंके द्वारा दी जाय जिससे

उनका बोध सर्वसाधारणको भी हो जाय। परन्तु अभी ऐसा होना सम्भव नहीं है, क्योंकि हमारी मातृभाषामें विज्ञानकी पाठ्य पुस्तकों तथा उपयुक्त ग्रन्थोंका अभाव है। दूसरी कठिनाई यह है कि जिस विश्वविद्यालयमें देशके प्रत्येक प्रान्तसे विद्यार्थियोंके आनेकी सम्भावना है, वहाँ किसी एक भारतीय उपभाषाके द्वारा शिक्षाका कार्य प्रारम्भ करनेमें अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जायँगी। अतएव प्रारम्भमें इस लक्ष्यको छोड़ना ही पड़ेगा।

अतएव यह निश्चित हुआ कि शिक्षाका माध्यम अंग्रेज़ी ही रक्खा जाय, पर मातृभाषाके विकासके साथ विश्वविद्यालयको अधिकार रहेगा कि वह किसी एक अथवा अधिक विषयोंका शिक्षा-माध्यम हिन्दी कर दे। अंग्रेज़ी भाषाकी उपयोगिता तथा इसकी संसार-विस्तृत व्यावहारिता का ध्यान रखकर इसको गौण भाषा मानकर इसकी भी शिक्षा जारी रहेगी।

विश्वविद्यालयकी आवश्यकता

भारतमें कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, लाहौर तथा इलाहाबादमें पाँच वर्त्तमान विश्वविद्यालय हैं। ये केवल परीक्षण-संस्थाएँ हैं। भारत सरकारने अपने सन् १९०४ ई० के शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्तावमें कहा था कि इन विश्वविद्यालयोंके स्थापित करनेमें तत्कालीन भारत सरकारने लन्दन विश्वविद्यालयके परीक्षण-क्रमका अनुसरण किया था। उसके पश्चात् योरोपकी विद्वन्मण्डलीने इस प्रणाली की त्रुटियोंका अनुभव किया और स्वयं लन्दन विश्वविद्यालयमें बहुतसे सुधार हुए। गत पचास वर्षोंके अनुभवने भी यह प्रमाणित कर दिया है कि ये विश्वविद्यालय केवल एक विषयमें विद्यार्थियोंकी परीक्षा लेते थे और साथ ही उनको उस विषयके नियमित रूपसे पढ़नेके लिये बाध्य भी नहीं करते थे, इससे भारतीय मस्तिष्कके समुचित विकासमें कुछ दोष रह जाते थे। स्मरण-शक्ति तो तीव्र हो जाती थी परन्तु मस्तिष्कका सर्वाङ्ग विकास नहीं हो सकता था। वे वास्तविक सत्यका निरीक्षण तथा मनोवैज्ञानिक विवेचन नहीं कर पाते थे।

इसके अतिरिक्त केवल परीक्षण-विश्वविद्यालयोंमें चरित्रका समुचित विकास नहीं हो सकता था और वास्तवमें चरित्र-गठनका महत्त्व व्यक्तिगत तथा जातीय दोनों दृष्टियोंसे मस्तिष्कके विकाससे कहीं अधिक बढ़कर है। इन्हीं सब विचारोंसे यह निर्णय हुआ है कि भारतमें भी पाश्चात्य राष्ट्रोंके ढङ्गपर शिक्षण तथा गुरुकुल प्रणालीसे युक्त विश्वविद्यालयोंकी स्थापना की जाय। इस प्रस्तावित विश्वविद्यालयमें ये दोनों बातें होंगी। इस प्रकार यह जनता तथा सरकार दोनोंकी चिराभिलषित इच्छाकी बहुत कुछ अंशोंतक पूर्त्ति कर सकेगा। यह आशा की जाती है कि देशके विद्यालयोंमें यह एक भव्य सहायक विद्यालय होगा।

परन्तु यदि वर्त्तमान विश्वविद्यालय सभी शिक्षण संस्थाएँ भी हो जायँ तो भी देशके लिये इतने थोड़े विश्वविद्यालयोंसे काम नहीं चलेगा। सन् १८५४ के शिक्षा-सम्बन्धी आदेशके अनुसार यदि भारतको यह जानना हो कि उपयोगी सार्वजनिक ज्ञानके वितरणसे सांसारिक तथा आध्यात्मिक सभी प्रकारके सुखोंकी प्राप्ति होती है, जो देवेच्छासे भारतको इङ्गलैण्डके सम्बन्धद्वारा प्राप्त करने हैं, तथा उसकी निर्धन सन्तानोंको, विदेशी व्यावसायिक प्रतियोगिताके युगमें, अपने घरेलू राष्ट्रीय प्राचीन व्यवसायोंका पुनरुद्धार करना है तो उसे देशमें प्रधानतः वैज्ञानिक, व्यावसायिक तथा शिल्पादि कलाओंकी शिक्षा अधिक बढ़ा देनी चाहिए। भारतमें इस क्षेत्रके विकासके सम्बन्धमें मैं केवल यही कहूँगा कि इतने विशाल देशमें केवल पाँच विश्वविद्यालय हैं जिसका क्षेत्रफल रूसको छोड़कर सम्पूर्ण यूरोपके बराबर है। और केवल संयुक्त राष्ट्रमें अठारह विश्वविद्यालय हैं जिसका क्षेत्रफल भारतके एक प्रान्तके बराबर है।

फ्रांसमें पन्द्रह, इटलीमें इक्कीस और जर्मनीमें वाईस विश्वविद्यालय हैं, इसके अतिरिक्त यूरोपके अन्य देशोंमें और भी विश्वविद्यालय हैं। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकामें एक सौ चौंतीस विश्वविद्यालय हैं। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य देशोंमें केवल धनिकोंके लिये ही विश्वविद्यालय नहीं बनाए गए हैं। इस प्रकारकी शिक्षाको अब राष्ट्रीयताका रूप दिया जाता है, क्योंकि इसके विना वर्त्तमान व्यावसायिक युगमें कोई देश अपनी स्थिति स्थायी नहीं रख सकता।

चरित्र-निर्माण

इस नवीन विश्वविद्यालयके स्थापनकी आवश्यकता तथा देशकी वर्त्तमान परिस्थितिको उन्नतिशील बनानेवाले इसके पाठ्य-विषयोंकी उपादेयताके वारेमें वहुत कुछ कहा जा चुका है। परन्तु केवल व्यावसायिक उन्नतिसे ही किसी देशकी जनता सुख तथा समृद्धिसे सुरक्षित नहीं रह सकती और न वह इसीसे अन्य राष्ट्रोंकी समकक्षताको प्राप्त कर सकती है। आचारकी उन्नति करना आर्थिक उन्नतिसे कहीं अधिक महत्त्व रखता है। पारस्परिक सद्भाव तथा सहयोगके विना व्यावसायिक उन्नति हो ही नहीं सकती। राष्ट्रके प्रत्येक व्यक्तिको आचारके ही शासनसे सदैव शासित तथा प्रभावित रहना चाहिए तभी उनमें विश्वास, शील, मृदु भाषण तथा व्यवहारकी सच्चाई आदि सद्गुणोंका विकास हो सकता है।

प्रत्येक राष्ट्र अपने धर्मको अपनाता है। हिन्दुओंको इससे विचलित नहीं होना चाहिए क्योंकि हिन्दुओंके समान संसारकी कोई जाति इतनी अधिक धार्मिक नहीं है। यदि उनसे पूछा जाय कि बृटिश राज्यमें सवसे अधिक सुख कौन सा है जो अन्य जातियोंके राज्यमें नहीं था तो सम्भवतः वे धार्मिक स्वतन्त्रता ही वतायँगे। सर हरवर्ट रिसलेने सन् १९०१ वाली जनसंख्याकी रिपोर्टमें दिखलाया था कि "हिन्दू धर्म भारतके वीस करोड़ सत्तर लाख धर्मानुयायियोंका धर्म है। इसके विभिन्न रूपोंमें दसमेंसे सात व्यक्ति शिक्षित हैं। केवल सीमान्त तथा मध्यके कुछ निर्जन भाग छूट गए हैं। यदि इस परम्परागत हिन्दू धर्मकी शिक्षाका सुविधाजनक साधन, हिन्दू नवयुवकोंके लिये न किया गया तो कुशिक्षित, अशिक्षित तथा अनुपयुक्त मनुष्योंसे राष्ट्र भर जायगा। इसका प्रत्यक्ष फल धर्मकी हानि तथा जातिका नाश होगा। सुयोग्य एवं शिक्षित धर्मगुरुओंके अभावके कारण अधिकांश हिन्दू जनता, राजा, धनी-मानी नागरिक, यहाँतक कि ब्राह्मण भी धर्मकी नियमानुकूल शिक्षा तथा उसपर आचरण करना नहीं सीख पाते। इस प्रकारकी गड़बड़ी उन पाश्चात्य देशोंमें नहीं है जहाँ धर्म नियमानुसार शिक्षाका एक अङ्ग माना जाता है, जहाँ विशाल जनसमूह गिरिजाघरोंमें सुयोग्य पादरियोंका धर्मोपदेश सुननेके लिये एकत्र होता है। यद्यपि इस वातपर खेद होता है तथापि इसमें आश्चर्य्य करनेकी कोई वात नहीं। प्राचीन पद्धति जिसने अनेक धर्मगुणोंको जन्म दिया था, समयके चक्रसे मृतप्राय हो गई है। परन्तु अभीतक उसके स्थानपर आधुनिक प्रणालीका भी स्थापन नहीं किया गया है जिससे सुयोग्य पण्डितोंको शिक्षा दी जा सके। इस अभावको दूर करनेके लिये हिन्दू जातिकी धार्मिक आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिये यह सोचा गया है कि इस विश्वविद्यालयमें एक ऐसे विद्यालयकी स्थापना की जाय जहाँ विशेष रूपसे हिन्दूधर्मोपदेशक शिक्षित किए जायँ। यह सोचा गया है कि वे उदार शिक्षाका अभ्यास करें तथा अपने पवित्र शास्त्रोंका पूर्ण अध्ययन करें और साथ-ही-साथ संसारके अन्य धर्मोंका तुलनात्मक ज्ञान भी प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। सारांश यह है कि वे कम-से-कम अंग्रेज़ पादरियोंकी तरह धर्मके सभी गूढ़ तत्त्वोंसे जानकार हो जायँ।

अवश्य ही हिन्दुओंके विभिन्न प्रमुख अङ्गोंके लिये वहुतसे पदोंका निर्धारण करना पड़ेगा।

इनकी संख्या कितनी रहेगी, इसका निर्णय जनताके प्रतिनिधियोंके एक सम्मेलनद्वारा होगा । परन्तु विश्वविद्यालयमें एक मानव-धर्मशास्त्र-विभागकी स्थापनाके बारेमें स्वीकृति प्राप्त होनेमें कोई सन्देह नहीं ज्ञात होता । हिन्दू अपनी धार्मिक सहनशीलताके लिये शताब्दियोंसे प्रख्यात हैं । प्राचीन धर्ममें विश्वास करनेवाली पञ्जाबकी अधिकांश हिन्दू जनता सिक्ख गुरुओंकी अनुयायी हैं जिन्होंने जाति-पाँतिका भेद हटा दिया था । सिक्ख तथा अन्य हिन्दू, जैन तथा अग्रवाल सभी हिन्दुत्वके एक सूत्रमें बँधे हुए हैं । विभिन्न सम्प्रदायोंके आचार्य्य एक ही स्थानमें साथ-साथ रहते तथा कार्य्य करते हैं । उसी प्रकार सनातनधर्म, आर्य्यसमाज तथा ब्रह्मसमाजवाले भी रहते और करते हैं । जहाँ कहीं भी हिन्दू धर्मका हित सङ्कटमें पड़ता है, वे सब एकत्र हो जाते हैं । पारस्परिक सहभाव तथा सहनशीलतामें उनमें निरन्तर वृद्धि ही देखी जाती है । वर्त्तमान समयमें जातिके विभिन्न सम्प्रदायोंमें पारस्परिक एकता तथा सङ्गठनका भाव दृष्टिगोचर होता है । वे एक ही सूत्रमें बँधे हुए दुःख तथा सुखमें परस्पर समवेदना प्रकट करते हैं । सबमें एक ही प्रकारकी धार्मिक जागर्त्ति है । यह आशा की जाती है कि यह बढ़ती हुई भावना भविष्यमें पारस्परिक ईर्ष्या तथा मतभेदोंका नाशकर भ्रातृभावका सञ्चार करेगी और फलतः जाति तथा देशकी धार्मिक आवश्यकताकी पूर्त्तिमें सहयोग देगी ।

प्रबन्धकारिणी-समिति

प्रस्तावित हिन्दू विश्वविद्यालयका यह मोटा स्वरूप है । इसमें वे सब आदर्श सन्निहित हैं जिनकी इसके प्रस्तावकोंने कल्पना की है और जिनको वे लोग कार्य्यान्वित करना चाहते हैं । इस लक्ष्यकी पूर्त्ति कुछ भी असम्भव नहीं है और यह जनताकी शक्ति तथा परिस्थितिके सामर्थ्यके बाहर भी नहीं है । पर इस लक्ष्यकी पूर्त्तिमें अभी समय लगेगा ।

उपर्य्युक्त वक्तव्यमें केवल साधारण उद्देशोंका उल्लेख है । किस प्रकारसे कार्य्य प्रारम्भ किया जाय, कौनसे विभागको प्रथम प्रारम्भ करना उपयुक्त होगा और किसका अन्तमें, उसका व्यावहारिक रूप क्या होगा आदि प्रश्नोंपर विशेषज्ञ ही विचार कर सकते हैं । उसमें क्या धन व्यय होगा और कितना मिल सकेगा, यह दानशील व्यक्तियोंकी उदारतापर निर्भर है । यह निर्णय किया गया है कि जैसे ही पर्य्याप्त धन हाथमें आ जाय वैसे ही कार्य्य प्रारम्भ करनेके लिये एक शिक्षाविषयक प्रबन्धकारिणी समितिकी बैठक की जायगी । वही समिति विभिन्न शाखाओंके पाठ्य-क्रमका भी निर्णय करेगी तथा कर्मचारियोंकी सङ्ख्या, उनके वेतनका परिमाण, आवश्यक सामग्रियों, पुस्तकालय, प्रयोगशालाओं, विद्यामन्दिरोंका निर्माण, तथा कमरोंकी लम्बाई-चौड़ाई आदिका भी निर्णय करेगी ।

विश्वविद्यालयकी व्यवस्था

इतनी विशाल योजनाकी सफलता सरकार, भारतीय नरेशगण तथा हिन्दू जनताकी स्वीकृति तथा सहायतापर निर्भर है । यदि इनसे पर्य्याप्त सहायता मिली तो इस योजनाकी पूर्त्तिमें कोई सन्देह नहीं है । यह सफलता प्राप्त करनेके लिये सबसे अधिक आवश्यक विश्वविद्यालयकी प्रबन्धकारिणी समितिको पूर्ण विश्वस्त वनाना है । इसका प्रबन्धकार्य्य इस गम्भीरताके साथ होना चाहिए कि सरकार तथा देशी नरेश दोनोंका विश्वास इसपर वना रहे और साथ-ही-साथ जनताका भी । इसको सुरक्षित करनेके लिये यह प्रस्ताव किया गया है कि ज्योंही पर्य्याप्त कोष हाथमें आ जाय त्योंही एक सभा की जायगी, जो एक शासनसमिति (सीनेट) के कार्य्यक्रम और उसके कर्त्तव्योंका विधान करेगी । यह शासनसमिति विश्वविद्यालयकी सर्वोच्च शासनकारिणी समिति होगी । तथा एक कार्य्यकारिणी

समिति (सिण्डिकेट) का भी विधान करेगी, जो विश्वविद्यालयके सब कार्य्य करेगी । इसके अतिरिक्त यह सोचा जा रहा है कि विश्वविद्यालयकी एक शिक्षा-विषयक समिति (एकेडेमिक कौन्सिल) होगी जिसके सम्मति देने तथा कार्य्य करनेके निश्चित कर्त्तव्य होँगे और जिसका पाठनसे ही सम्बन्ध होगा । इसी क्रमकी लन्दनस्थित शिक्षाके शाही कमीशन (रौयल कमीशन औन एजुकेशन इन लण्डन) ने लन्दन-विश्वविद्यालयके लिये सिफ़ारिश की थी । इस योजनाको कार्य्य रूपमेँ लानेके पहले सरकारकी स्वीकृति आवश्यक होगी ।

राजाज्ञा-पत्र

प्रत्येक व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह आवश्यक धन एकत्र करनेपर एक विश्वविद्यालयकी श्रेणीकी संस्था स्थापित करनेके लिये स्वतन्त्र है । परन्तु यह तभी हो सकता है जब उसकी कारंवाईको सरकार अपनावे और पदवी देनेका अधिकार दे । तभी वह विश्वविद्यालय कहलाने और उस गौरवके प्राप्त करनेका अधिकारी होता है तथा जनताके लिये असीम उपयोगी सिद्ध हो सकता है ।

राजकीय स्वीकृति प्राप्त करनेके लिये दो बातेँ आवश्यक हैँ । प्रथम तो यह है कि विश्वविद्यालयके समुचित रूपसे परिचालन करनेके लिये पर्य्याप्त धन मिल जाय । दूसरे उसकी प्रबन्धकारिणी समिति ऐसी शक्तिशाली हो कि जनता तथा सरकार दोनोँकी विश्वासपात्र बन सके । ये दोनोँ बातेँ भारतीय हिन्दू नरेशोँके हाथमेँ हैँ । यदि वे इन्हेँ सँभाल लेँ तो राजकीय स्वीकृति पाना अवश्यम्भावी है ।

सन् १८५४ के एक विशेष लेखमेँ सरकारने कहा था कि "हमारा यह पवित्र कर्त्तव्य है कि जहाँ तक बन सके सर्वसाधारणमेँ विद्याका प्रचार कर भारतवासियोँकी नैतिक तथा आर्थिक स्थिति उन्नत करेँ । हमेँ आशा है कि इङ्गलैण्डके सम्पर्कसे भारत अवश्य उन सुखोँको प्राप्त करेगा । इस नीतिके अनुसरणसे सरकारने जनताके धनसे बहुतसे स्कूलोँ तथा कौलेजोँ और पाँच विश्वविद्यालयोँकी स्थापना की तथा उनका प्रबन्ध किया है । इनसे जनतामेँ बहुत ही जागर्त्ति हुई है । शिक्षाके प्रचारके लिये सरकारका व्यय बढ़ रहा है और यह आशा की जाती है कि निकट भविष्यमेँ इसमेँ और भी वृद्धि होगी । परन्तु सब प्रकारकी शिक्षा फैलानेकी व्यवस्था करना सरकारके लिये बड़ा कठिन है और केवल भूमिकरके भारसे इतना व्यय करना तो वर्त्तमान अवस्थामेँ और भी कठिन है । अतः इस कार्य्यके लिये केवल सरकार ही से सब कुछ आशा करना हम लोगोँकी भूल होगी । अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि जनताके उदार दानसे एक ऐसा कोष बन जाय जिसे सरकार केवल शिक्षाके प्रचारमेँ व्यय करनेके लिये अलग कर दे । इस बातकी आवश्यकता तभीसे अनुभव हो रही है जबसे बृटिश सरकारने भारतीय जनताके लिये प्रारम्भमेँ शिक्षा देनेका प्रयत्न किया था । वास्तवमेँ शिक्षाकमीशनद्वारा प्रस्तावित वार्षिक सहायताका नियम सरकारने तभीसे प्रारम्भ किया था क्योँकि सरकार पूर्ण रूपसे मुख्य शिक्षा-केन्द्रोँका व्यय सहन करनेमेँ असमर्थ है । अतएव यह सोचा गया कि इस प्रकारसे जनताको प्रोत्साहन मिलेगा कि वह अधिक संख्यामेँ विद्यालय स्थापित करे । सरकार भी अपने सामर्थ्यानुसार सहायक हो जायगी, जिससे जनताका अधिक लाभ हो सकेगा । और सरकार भी थोड़ी पूँजीसे शिक्षाप्रचारका कुल भार अपने ऊपर लेनेसे बच जायगी । समय-समयपर अन्य कमीशनोँद्वारा भी इस नीतिका समर्थन किया गया है । इस बातके अनेक प्रमाण देशभरमेँ मिल सकते हैँ कि सरकारने शिक्षा-विषयक स्वतन्त्र उद्योगको सदैव प्रोत्साहन दिया है और उसका स्वागत किया है ।

हिन्दू विश्वविद्यालयके इस मुख्य आन्दोलनके विषयमेँ यह कृतज्ञताके साथ स्वीकार करना

पड़ेगा कि सरकारी उच्च पदाधिकारियोँने प्रारम्भसे ही इसे प्रोत्साहन दिया था, इसके साथ सहानुभूति दिखलाई है। उदाहरणार्थ संयुक्तप्रान्तके भूतपूर्व छोटे लाट जेम्स ला टूशने अपने पत्रमेँ लिखा था कि "यदि भारतकी विद्वन्मण्डली अनेक विद्यालयोँसे युक्त एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी सहायता करना चाहती है तो उसकी सफलताके प्रति मेरी सदिच्छा है।" जिन सरकारी उच्च पदाधिकारियोँसे इस विषयमेँ बातचीत हुई है, उन्होँने इसका स्वागत किया तथा आवश्यक सम्मति देकर उत्साहित किया है। इस आन्दोलनके विषयमेँ योरोपियन अफ़सरोँ अथवा ग़ैर-सरकारी व्यक्तियोँने जो भाव प्रगट किए हैँ उनको 'पायोनियर' ने बड़े सुन्दर शब्दोँमेँ प्रकाशित किया था। भारतीयोँको स्वराज्यका अधिकारी बतलाते हुए उस 'पत्र' ने कहा कि—

"सरकारके सम्पूर्ण कर्त्तव्योँमेँ शिक्षाका विषय कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीँ है। और यदि राष्ट्रीय महासभाके हिन्दू सदस्य एक ऐसे भव्य विश्वविद्यालयकी स्थापना करेँ, जिसकी शाखाएँ समस्त भारतके विभिन्न भागोँमेँ होँ, और उसका प्रवन्ध इस योग्यतासे करेँ कि अन्य विद्याके केन्द्रोँके लिये वह आदर्श हो तो वे अपने लम्बे-चौड़े व्याख्यान देनेकी अपेक्षा देशकी अधिक सेवा करेँगे; और यह प्रमाणित करेँगे कि उनमेँ मौलिक विचारोत्पादन तथा शासन-प्रबन्ध आदिके सभी उपयुक्त गुण हैँ जिसके लिये वे प्रयत्नशील हैँ। उन्हेँ यह विश्वास रखना चाहिए कि बृटिश राज्य उनके इन उद्योगोँमेँ अधिक दिलचस्पी लेती है। अंग्रेज़ लोग केवल नौकरीके लालचसे यहाँ नहीँ आते, बल्कि प्रजाके हितकी कामनासे ही आते हैँ। उन्हेँ सबसे अधिक आनन्द यह देखकर होता है कि एक सुशिक्षित भारतीय व्यक्ति अपने निर्धन भाइयोँको जागरित करता है कि जिससे वे सरकारके शासनप्रबन्धमेँ पूर्ण भाग ले सकेँ। यदि यह भाव न होता तो सरकार शिक्षाके प्रचारके लिये इतनी चिन्ताशील न दिखाई देती और अँग्रेज़ लोग भी कौलेजमेँ अपने भारतीय शिष्योँको शिक्षा देकर इस योग्य न वनाते कि वे अंग्रेज़ोँके समकक्ष सरकारी पदोँके लिये प्रतियोगितामेँ सफलतापूर्वक भाग लेते। भारतमेँ इस ओर उन्नतिका काफ़ी क्षेत्र है जिसमेँ योग्य मनुष्य अपने गुण प्रदर्शित कर सकते हैँ। जनतामेँ उच्च कोटिका जीवन-निर्वाह करनेके आदर्शकी शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है। उसको चाहिए कि पर्य्याप्त प्राकृतिक साधनोँ तथा खनिज पदार्थोँको उपयोगी वनानेकी ओर अधिक प्रयत्नशील होँ। इन कार्य्योँमेँ पूर्वकी बुद्धि और पश्चिमका विज्ञान लेकर लोगोँको सच्चे भ्रातृभावके साथ हाथ वढ़ाना चाहिए"।

कितने सुन्दर शब्द कहे गए हैँ। इन्हीँ भावोँसे प्रोत्साहित होकर हिन्दू विश्वविद्यालयका कार्य्य प्रारम्भ किया जा रहा है। और यह आशा है कि इसके प्रवर्त्तकगण अपने इस उद्योगमेँ बृटिश-राज्यकी हार्दिक सहायता तथा सहयोग प्राप्त करेँगे और विश्वविद्यालयकी स्थापनाके लिये राजाज्ञा अथवा विधान किसी भी स्वरूपमेँ सरकारकी स्वीकृति प्राप्त कर लेँगे।

स्वर्ण-सुयोग

इस प्रकारके उद्योगोँकी सफलताके लिये यह वर्ष वहुत ही शुभ है। भारत-सरकारने शिक्षाका एक विशेष विभाग स्थापित करके और इस वर्षके कच्चे चिट्ठेमेँ नब्बे लाखसे भी अधिक रुपये शिक्षाकार्य्यकी सहायताके लिये स्वीकृत करके यह दिखला दिया है कि शिक्षाके कार्य्यमेँ पूर्व कालकी अपेक्षा भविष्यमेँ अधिक ध्यान दिया जायगा। श्रीयुत हारकोर्ट बटलर महोदय, जो सर्वप्रथम शिक्षा-मंत्री नियुक्त हुए हैँ, शिक्षाके बड़े प्रेमी हैँ। हमारे बड़े वायसराय लौर्ड हार्डिञ्ज शिक्षाके महत्त्वके मर्मज्ञ हैँ। इस विषयम लाहौरयूम्निसिपैलिटीको आदेश देते हुए

उन्होंने कहा था कि "इसके महत्त्वके बारेमें किसी प्रकारका भी सन्देह करनेकी जगह नहीं है और यथोचित ढङ्गपर इसकी वृद्धिके लिये सरकार जहाँतक हो सकेगा सब कुछ करेगी।" उसी व्याख्यानमें बड़े लाट महोदयने फिर कहा है, "अतीतने अपने गौरवकी रक्षा की है, वर्त्तमान भी सफल होगा। वस्तुतः भविष्यके क्षितिजपर हम लोगोंकी सतर्क दृष्टि रहनी चाहिए। इसीलिये देशके नवयुवकों और विद्यार्थियोंकी भावी आवश्यकताओंमें हमारी पूर्ण सहानुभूति तथा दृष्टि रहेगी।" पञ्जाब मुस्लिम लीगके मानपत्रका उत्तर देते हुए वहाँकी शिक्षाकी उन्नतिपर सन्तोष प्रगट करते हुए लाट महोदयने सार्वजनिक शिक्षाके बारेमें कहा था कि, "वह समय अब भी बहुत दूर है, जब अपने जीवनको बहुमूल्य बनाने तथा जातिका हित करनेके लिये प्रत्येक बालक और बालिका, नवयुवक और नवयुवतीको शिक्षित होना पड़ेगा। यह ऐसा आदर्श है, जिसे हम सबको अपने सामने रखना चाहिए।" बड़े लाट महोदयकी जब यह विचारधारा है, तब यह निर्विवाद है कि लार्ड हार्डिञ्ज महोदय साम्राज्यकी प्रजाके एक अङ्गकी इस लक्ष्यपूर्तिके उद्योगका समर्थन करेंगे। इसका स्पष्टीकरण बड़े लाट महोदयके राजनीतिज्ञोचित उन कथनोंसे होता है जो उन्होंने पञ्जाबके मुसलमानोंके सुघटित कार्य्यके विषयमें इसलामिया कौलेज् और तदधीन् स्कूलकी नींव डालते हुए और उनकी श्री आगा खाँके नेतृत्वमें की जानेवाली मुस्लिम विश्वविद्यालयकी स्थापनाकी उत्साहपूर्ण अपीलका उत्तर देते हुए कहे थे। अतएव यह माना जा सकता है कि शिक्षा-सम्बन्धी सभी सुविचारित तथा सुसहायताप्राप्त योजनाओंमें लौर्ड हार्डिञ्ज महोदयद्वारा सहानुभूति तथा सहायता मिलेगी।

अन्तिम किन्तु महत्त्वपूर्ण परिस्थिति जो वर्त्तमान समयके चिराभिलषित हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनके लिये स्वर्ण-सुयोग बना देती है, सम्राट् पञ्चम जौर्जका राजतिलक है। यह तिलक इसी वर्ष होगा और इसी वर्षके दिसम्बर मासमें हमारे चिरञ्जीवि महाराज इस देशका भ्रमण करने भी आवेंगे। सम्राट्की इस देशके वासियोंके प्रति सहानभूतिका तो कुछ कहना ही नहीं है। हमारे स्वर्गवासी सम्राट्ने सन् १९०८ के नवम्बर मासमें भारतके राजा-महाराजों तथा जनताके प्रति जो घोषणा की थी उसमें कृपापूर्वक कहा थाः—

"मेरे प्रिय पुत्र प्रिन्स औफ़ वेल्स (राजकुमार) तथा प्रिन्सेस औफ़ वेल्स (राजकुमारकी पत्नी) आपके मध्यसे, आपके देशके प्रति हार्दिक प्रेम तथा उसके स्वार्थोंकी रक्षा एवं समृद्धिकी भावना लेकर लौटे हैं। राजवंशकी ओरसे यह हार्दिक भावना तथा भारतके प्रति जागरित सहानुभूति बतलाती है कि साम्राज्यके सभी व्यक्तियोंका भारतके प्रति अविरल तथा प्रगाढ़ प्रेम है।" हमारे वर्त्तमान सम्राट्ने भारतसे लौटनेपर गील्ड हौलके अपने स्मरणीय व्याख्यानमें इस देशकी जनताकी शासनव्यवस्थामें अधिक उदारताका व्यवहार करनेका वचन दिया था। अब परमात्माकी कृपासे वे इङ्गलैण्डकी गद्दीके उत्तराधिकारी तथा भारतके सम्राट् हुए हैं। उसके उपलक्ष्यमें और साथ ही भारतके प्रति अपनी स्वाभाविक सहानुभूति एवं राजभक्त भारतवासियोंके प्रति अपना प्रगाढ़ प्रेम दर्शाते हुए उन्होंने महारानीके साथ भारतमें आकर राज्याभिषेक-दरबार करना स्वीकार किया है। इससे प्रत्यक्ष सिद्ध है कि भारतसे बढ़कर उन्हें साम्राज्यकी कोई प्रजा प्रिय नहीं है।

सम्राट्की इस कृपासे भारतवासियोंका हृदय प्रफुल्लित हो रहा है। वे उस दिन तथा उस सुअवसरकी प्रतीक्षा कर रहे हैं जब उन्हें अपनी राजभक्ति तथा अपने हार्दिक स्वागतका प्रदर्शन सम्राट्के सम्मुख करना पड़ेगा। हिन्दू जातिमें भी इस बातकी बड़ी अभिलाषा है और वे लोग निरन्तर कार्य्यमें प्रयत्नशील हैं कि वे किस प्रकारसे सम्राट्का यथोचित स्वागत करके इस

सुअवसरको चिरस्मरणीय बना सकेंगे । सर्व सम्मति यही है कि इस सुअवसरका एक बड़े विश्वविद्यालयके निर्माणके अतिरिक्त अन्य कोई अधिक उपयुक्त स्मारक नहीं हो सकता । इसकी अत्यन्त शीघ्र आवश्यकता है । विश्वविद्यालयकी यह स्थापना मानसिक विकासके केन्द्र तथा आचारके प्रोत्साहनके रूपमें हितकारिणी तथा उपादेयभूत एक संस्थाके रूपमें बराबर बनी रहेगी । यह संस्था साम्राज्यके भीतर सरकार-द्वारा किए जानेवाले ज्ञान तथा विवेकके प्रसारमें बराबर सहायता पहुँचानेका एवं सम्राट्की भारतीय प्रजाको उन्नत तथा समृद्ध करनेका गौरवपूर्ण प्रयत्न करती रहेगी ।

विश्वविद्यालयके लिये धन

ऐसी संस्थाके आदर्शको प्राप्त करनेके लिये सबसे अधिक तात्कालिक आवश्यकता धनकी है। ऊपर जिस विशाल योजनाका दिग्दर्शन कराया गया है उसको पूर्ण करनेके लिये बहुत धनकी आवश्यकता होगी। सन् १९०५ ई० में जब यह योजना पहले पहल प्रकाशित की गई थी उस समय सबका यह विश्वास था कि इस कामके लिये एक करोड़ रुपये पर्य्याप्त होंगे। उसकी प्रस्तावनामें कहा गया था कि एक करोड़ रुपये तो उसके प्रारम्भिक व्ययके लिये आवश्यक होंगे और कम-से-कम कुछ धन ऐसा अलग रक्खा जायगा जिसके सूदसे इस संस्थाका पोषण हो सके। उस समयसे जो विचार हुए हैं उनसे पता चला है कि एक करोड़ रुपये तो एक अच्छे गुरुकुल और शिक्षण विश्वविद्यालयके भवन बनाने मात्रमें ही लग जायँगे। यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस रक़मका आधा अर्थात् पचास लाख रुपये हाथमें आनेपर ही विश्वविद्यालयकी नींव रख दी जाय क्योंकि जातिकी यह इच्छा है कि अगले दिसम्बरमें ही यह उत्सव मनाया जाय। उस मङ्गल अवसरपर भारतसम्राट् जौर्ज पञ्चम भी भारतमें ही रहेंगे। इस इच्छाकी पूर्त्ति और विश्वविद्यालयके लिये राजाज्ञा लेनेको यह आवश्यक समझा गया कि यथासम्भव जल्दी-से-जल्दी पचीस लाख रुपये एकत्र कर लिये जायँ।

क्या यह सम्भव है? हमें आशा है कि यह सम्भव है। हिन्दू जातिकी वर्त्तमान दशा और उसके भविष्यपर विचारशील हिन्दू बहुत दिनोंसे गम्भीरतापूर्वक सोच रहे हैं। उनमेंसे सहस्रोंको यह सोच करके बड़ा दुःख होता है कि जातिके अधिकांश लोग अभीतक अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए हैं। जिन्होंने श्रेष्ठ धर्म और उदार सभ्यतामें अपना जीवन बिताया है वे आज अनेक प्रकारकी सामाजिक और आर्थिक बुराइयोंमें लिप्त हुए पड़े हैं। उन्हें यह जानकर दुःख है कि अन्य जातियोंकी अपेक्षा हिन्दू लोग अत्यन्त शीघ्र प्लेग और मलेरियाके शिकार हो जाते हैं और प्रत्येक दस वर्षकी मनुष्यगणनासे यह पता चल रहा है कि यह जाति निरन्तर शक्तिहीन, आयुहीन और बलहीन होती चली जा रही है। सरकारने अपनी सारी प्रजाके लिये जो कुछ किया है उसे कृतज्ञताके साथ स्वीकार करना ही होगा और यह आशा की जाती है कि सरकार भविष्यमें भी अपनी उदारतासे हाथ न खींचेगी। किन्तु लोग यह अनुभव कर रहे हैं कि उनका जाति तथा राष्ट्रके प्रति कुछ कर्त्तव्य है और वे भारतीयोंको शिक्षित और उन्नत बनानेके लिये सरकारके यत्नमें व्यवस्थित सहयोग देनेको व्याकुल हैं। धर्म-शिक्षाके लिये उपदेशक तैयार करने और हिन्दू युवकोंको हिन्दू धर्मके सिद्धान्त समझानेके लिये केवल हिन्दू ही उद्योग कर सकते हैं। किन्तु वे इससे अधिक और भी आगे बढ़ सकते हैं और मुख्यतः हिन्दुओंको तथा साधारणतः समस्त भारतीयोंको साधारण वैज्ञानिक और शिल्पकी शिक्षा देनेका प्रयत्न भी कर सकते हैं।

यह सब लोगोंकी दृढ़ धारणा है कि जबतक सरकार और जनता दोनों मिलकर शिक्षाके लिये

धन न देंगे तबतक भारतवर्षको शिक्षित बनानेका काम पूरा नहीं हो सकता। यह पहले कहा जा चुका है कि अमेरिकामें एक सौ चौंतीस विश्वविद्यालय हैं जिनमेंसे अधिकांश जनताकी उदारतापर आश्रित हैं। सर नार्मन लौकियरने कहा है कि सन् १८७१ और सन् १९०१ के बीच अर्थात् तीस वर्षके भीतर अमेरिकाके संयुक्तराष्ट्रमें केवल जनताने उच्च शिक्षाके लिये चार करोड़ पौण्ड अर्थात् साठ करोड़ रुपया दान दिया है। इस हिसाबसे प्रतिवर्ष दो करोड़ रुपयेका औसत पड़ता है। ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्डके संयुक्त राष्ट्रमें साठ वर्षोंके भीतर विश्वविद्यालयोंकी संख्या नौसे बढ़कर इक्कीस तक पहुँच गई है जिनमेंसे बहुतसी जनताकी उदारतापर अवलम्बित हैं। इङ्गलैण्डमें सन् १८७१ और सन् १९०१ के बीच जनताने शिक्षाके लिये पचास लाख पौण्ड दान दिए थे। अन्य देशोंमें शिक्षाके इतिहासका अध्ययन करनेसे प्रतीत होता है कि उच्च शिक्षाके प्रचारके लिये जनताका प्रयास कितना आवश्यक है। योरोप और अमेरिकाकी ईसाई जातियोंने शिक्षा और अपने धर्मका प्रचार करनेके लिये अपनी जातिके लिये तो शिक्षण संस्थाओंकी स्थापना और उसका पोषण करनेके लिये महान् धनराशि दी ही है, साथ ही भारतवर्ष और अन्य एशियाई देशोंमें उन्होंने इसके लिये बहुत रुपये ख़र्च किए हैं। सर एफ़० डी० ल्यूगर्ड तथा अन्य उदार अंग्रेज़ चीनियोंकी शिक्षाके लिये चीनमें एक महान् विश्वविद्यालय बनानेको अपना बहुतसा धन, समय और शक्ति लगा रहे हैं और इसके अतिरिक्त भारतमें बसे हुए योरोपियनोंके लिये एक विश्वविद्यालय स्थापित करनेको इङ्गलैण्डमें बहुतसा रुपया एकत्र हुआ है। हमारे मुसलमान भाई भी जाग उठे हैं। सुनते हैं कि उन्होंने भी अलीगढ़में मुस्लिम विश्वविद्यालय खोलनेके लिये लगभग पचीस लाख रुपया एकत्र कर लिया है। तो क्या हिन्दू सोते ही रहेंगे? अपनी जातिके प्रति कर्त्तव्यशीलता क्या उन्हें कर्मक्षेत्रमें लानेके लिये पर्य्याप्त नहीं है? क्या उपर्युक्त जातियोंके उदाहरणोंको देखकर उनकी कर्त्तव्यशीलता जागरित न हो उठेगी?

हिन्दुओंको और अधिक उत्तेजित करनेकी आवश्यकता नहीं है। ज्ञान और विवेकबुद्धि प्राप्त करना प्राचीन स्मृतिकार मनुने दस धर्मोंमें गिनाया है और इसका पालन सब वर्णोंको सब दशाओंमें करनेका आदेश दिया है। प्राचीन शास्त्रोंने एक स्वरसे कहा है कि विद्यादानसे बढ़कर कोई दान नहीं है जिसमें केवल वेदोंका ही ज्ञान नहीं बल्कि मनुष्य मात्रके लाभके लिये सब ज्ञानोंका दान देना उचित है। इन्हीं उच्च शिक्षाओंके कारण ही देशके विभिन्न भागोंमें अनेक पाठशालाएँ और गुरुकुल स्थापित हुए और पोषित किए जाते हैं जिनमें विद्याध्ययन करनेवाले छात्रोंको छात्रवृत्ति भी दी जाती है। हिन्दुओंने योरोपीय ढङ्गपर भी शिक्षाका जो विस्तार किया है वह कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उनकी संख्या इतनी है कि उनमेंसे कुछका नाम लेना अनुचित प्रतीत होता है, किन्तु उदाहरणार्थ हम निम्नलिखित विद्यालयोंका निर्देश करते हैं—

मद्रासका पछियप्पा कौलेज़ और हाइ स्कूल, पूनेका फर्ग्युसन कौलेज़, बम्बईकी गोकुलदास तेजपाल धर्मार्थ संस्थाएँ, अहमदाबादका रणछोड़लाल छोटालाल टेक्निकल इन्स्टीट्यूट, सिन्धका दयाराम जेठूमल कौलेज़, लाहौरके प्रेमचन्द रायचन्द स्कालरशिप एण्डाउमेण्ट, दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कौलेज़ और सरदार दयासिंह मजीठिया कौलेज़, अमृतसरका ख़ालसा कौलेज़, मेरठका नानकचन्द ट्रस्ट, दिल्लीका हिन्दू कौलेज़, इलाहाबादकी कायस्थ पाठशाला, बनारसका सेन्ट्रल हिन्दू कौलेज़, बाँकीपुरका बिहार नेशनल कौलेज़, भागलपुरका तेजनारायण जुबिली कौलेज़, मुज़फ्फ़रपुरका भूमिहार कौलेज़, कलकत्तेके मैट्रोपौलिटन इन्स्टीट्यूशन, रिपन कौलेज़, सिटी कौलेज़, बङ्गाल नेशनल कौंसिल औफ़ एजुकेशनका नेशनल कौलेज़ और नेशनल मेडिकल कौलेज़, बारीसालका ब्रजमोहन इन्स्टीट्यूशन,

क़ासिमबाज़ारके महाराजका कृष्णनाथ कौलेज्, आगरेका बलवन्त राजपूत हाइ स्कूल, बनारसका हिवेट क्षत्रिय हाइ स्कूल। इनमेँसे केवल अन्तिम दो संस्थाओँके लिये चार वर्षमेँ पचीस लाख रुपया दान किया गया था, जो दो उदार दानी आवाके स्वर्गीय राजा बलवन्तसिंह सी० आई० ई० और भिनगाके राजा उदयप्रतापसिंह सी० एस० आई० की कृपाका फल है।

हिन्दुओँपर यह लाञ्छन लगाया जाता है कि वे असङ्घटित हैँ और अलग-अलग बँटे हुए हैँ। वे भले ही स्कूल और कौलेज् स्थापित करके चला सकेँ, किन्तु उनमेँ इतनी एकता और सेवाभाव नहीँ है कि वे अपनी जातिके लिये एक विश्वविद्यालय बना सकेँ और पचीस लाख रुपया भी एकत्र कर सकेँ जो कम-से-कम विश्वविद्यालय चलानेके लिये पर्य्याप्त रकम होगी।

हम हिन्दुओँसे ही इसका उत्तर माँगते हैँ। वे उन्हीँ महापुरुषोँकी सन्तान हैँ जिन्होँने इस प्राचीन देशमेँ महान् विश्वविद्यालय स्थापित किए थे और उनका पोषण किया था। यह तबकी बात है जिसके सदियोँ बाद विश्वविद्यालय स्थापित करनेका विचार योरोपवालोँके, अथवा जहाँतक इतिहास साक्षी है, संसारके अन्य देशोँके लोगोँके मनमेँ आया था। हमने जिन विश्वविद्यालयोँका उल्लेख किया है उनमेँ दस हज़ार विद्यार्थियोँके रहने, शिक्षा पाने और निःशुल्क भोजन-वस्त्र देनेका प्रबन्ध था। उस संस्थाका सबसे प्रधान व्यक्ति कुलपति कहलाता था।

मुनीनां दशसाहस्त्रं योऽन्नपानादिपोषणात्।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः॥

अर्थात् वही ब्राह्मण ऋषि कुलपति कहलानेका अधिकारी है जो दस हज़ार विद्यार्थियोँको भोजन, वस्त्रादि देकर पढ़ाता हो। उनमेँसे एक वशिष्ठ थे जो मर्य्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रके पितामह दिलीपके गुरु थे। शौनक भी ऐसे ही कुलपति थे। देखनेसे ज्ञात होगा कि उपर्युक्त प्रकारके गुरुकुल हिन्दू शासनके स्वर्ण युगमेँ निरन्तर मिलेँगे। वर्त्तमान इतिहास भी रावलपिण्डी ज़िलेके तक्षशिला विश्वविद्यालयका साक्षी है। राजगिरिसे सात मील उत्तरकी ओर एक दूसरा नालन्द विश्वविद्यालय था। अब भी ईंटोँके सोलह सौ फ़ीट लम्बे और चार सौ फ़ीट चौड़े भग्नावशेषोँमेँ चौकोर खेतोँको देखकर उसका अनुमान किया जा सकता है। नालन्द बौद्धोँका विश्वविद्यालय था किन्तु उसका ढङ्ग प्राचीन हिन्दुओँके जैसा ही था। "दस हज़ार भिक्खू और उनके शिष्य उसमेँ निवास करते थे। वृक्षोँ, वाटिकाओँ और फ़ौव्वारोँसे घिरे हुए कलश, गुम्बज और मण्डप उसकी शोभा बढ़ाते थे। उसमेँ चार मञ्ज़िल ऊँचे मकानोँकी छः लम्बी-लम्बी पङ्क्तियाँ थीँ। उसमेँ सौ शिक्षाभवन थे। वहाँके सब अन्तेवासियोँको शिक्षाके साथ-साथ भोजन, वस्त्र और वासस्थान विना मूल्य दिए जाते थे। वे भिक्खू वैद्यक, गणित तथा अन्य विज्ञान भी सीखते थे।"

यह ईसाकी सातवीँ शताब्दीकी बात है। तबसे तेरह सौ वर्ष बीत गए। दस शताब्दियोँके अव्यवस्थित इतिहासके बाद भारतवर्षका भाग्य एक महान् शक्तिके हाथ सौँप दिया गया जिन्होँने इस विस्तृत देशमेँ एक छोरसे दूसरी छोरतक शान्ति और सुशासन स्थापित कर दिया है। केवल इतना ही नहीँ बल्कि इसने भारतवर्षकी नैतिक तथा आर्थिक दशाको उन्नत करनेके लिये भी अनेक उपाय किए हैँ। आज भारतके शिक्षित पुत्रोँ और पुत्रियोँमेँ जो नया जीवन दिखाई दे रहा है इसका श्रेय सरकारद्वारा प्रतिष्ठित, विस्तृत तथा व्ययसाध्य शिक्षा-विभागको है। बृटिश सरकारने हमेँ केवल अपनी शिक्षण संस्थाओँको ही स्थापित करनेकी स्वतन्त्रता नहीँ दी है बल्कि ऐसी संस्थाओँके स्थापिन करनेमेँ हमेँ सहायता देती और प्रोत्साहित करती है। आजकल शिक्षाके लिये जितने साधन

दिखाई पड़ते हैँ, इनमैँसे बहुतसे सातवीँ शताब्दीमैँ नहीँ थे। ऐसा सुअवसर पाकर और दूसरी जातियोँके उदाहरण देखकर क्या चौबीस करोड़ हिन्दू मिलकर और पर्य्याप्त धन एकत्र करके इस बीसवीँ शताब्दीमैँ एक ऐसा विश्वविद्यालय स्थापित और पोषित नहीँ करैँगे जैसा कि उनके पूर्वजोँने सातवीँ शताब्दीमैँ किया था? यह विश्वविद्यालय ऐसा हो जिसके द्वारा हमारे प्राचीन कालकी उदात्त पद्धतियोँकी रक्षा हो, और आवश्यकतानुसार वर्त्तमान तथा भविष्यके साथ आवश्यक परिवर्त्तन करके उनमैँ सामञ्जस्य पैदा करे। यह विश्वविद्यालय ऐसा हो जिसमैँ पूर्व और पश्चिमके सर्वश्रेष्ठ ज्ञानका एक साथ प्रकाश हो। हिन्दुओँकी उदारता अभी मर नहीँ गई है। यदि उनकी उदारताकी धाराका थोड़ा भी अंश इस ओरको घूम जाय तो यह ज्ञान और जीवनका प्रस्तावित स्रोत काशीमैँ स्थापित हो जाय और इसका निरन्तर विकास हो। पायोनियरने ठीक कहा था कि, "हिन्दुओँमैँ यदि शिक्षा देनेका भाव अधिक प्रबल हो जाय और यदि भारतके धनी पुरुष इस योजनाके प्रवर्त्तकोँमैँ विश्वास करैँ तो अभी हिन्दुओँके पास इतना धन है कि वे बारह विश्वविद्यालय स्थापित कर सकते हैँ।" हिन्दुओँमैँ पिछले पाँच वर्षोँसे शिक्षाकी ओर अधिक प्रवृत्ति हुई है। सम्राट् और सम्राज्ञीका शुभागमन और मुसलमान तथा भारतनिवासी ईसाइयोँके अपने-अपने ढङ्गका विश्वविद्यालय चलानेके प्रयत्नसे हिन्दुओँमैँ और भी अधिक जागर्त्ति हुई है। हिन्दू पत्रकारोँने पिछले चार महीनोँमैँ अपने अंग्रेज़ी और देशभाषाके पत्रोँमैँ जो लेख लिखे हैँ उनसे यह दृढ़ विश्वास होता है कि समस्त देशके हिन्दुओँकी यह प्रबल इच्छा है कि इसी वर्ष काशीमैँ एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना हो। इस इच्छाकी पूर्त्तिके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक हिन्दू यथाशक्ति और यथायोग्य सहायता दे। इस कार्यके लिये शीघ्रातिशीघ्र देशको यह योजना बताने और धनसंग्रह करनेके लिये सब जगह प्रान्तीय और ज़िला सभाएँ स्थापित की जायँ। इस योजनाके समर्थक प्रभावशाली व्यक्तियोँका एक दल शीघ्र ही देशमैँ दौरा करेगा। किन्तु यह दल प्रत्येक मुख्य स्थानपर एक या दो दिनसे अधिक नहीँ ठहर सकता। वहाँका सम्पूर्ण कार्य्य स्थानीय व्यक्तियोँको ही करना पड़ेगा। प्रत्येक हिन्दूको यह बात भली भाँति समझ लेनी चाहिए कि हिन्दू विश्वविद्यालयके स्थापित होनेसे हिन्दू जातिकी सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति होगी। प्रत्येक हिन्दूको यह समझ लेना चाहिए कि इस महान् शिक्षासम्बन्धी योजनाकी सफलतामैँ केवल हमारी उन्नति और सुख ही नहीँ बल्कि हमारे चरित्र और गौरवका भी विकाश होगा और हमैँ पूर्ण विश्वास है कि भारतका प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री अपने समय, सामर्थ्य और साधनोँके अनुसार विश्वेश्वरकी पवित्र नगरी काशीमैँ, पवित्रतोया माता जाह्नवीके तटपर इस प्रस्तावित विद्यामन्दिरके निर्माणमैँ योग देवैँगे।

"रुको न क्षण भर, रुकनेवाले कभी न करते ऊँचे काम,
दत्तचित्तता और जगत-हित-रत रहना निश्चित सुख-धाम।
इसी भावकी मधुर प्रेरणा सदा हमैँ उन्नत करती,
शून्य गगनके विकल अनिलसे ला सङ्गीत हृदय हरती"॥*

भगवान् वेदव्यासके ये वचन हमारे पथप्रदर्शक होँ और हमैँ उत्साहित करैँ।

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥

---

*मूल पद्य—

लेट् नो मैन फ़ौल्टरः नो ग्रेट डीड इज़ डन्
वाइ फ़ौल्टरर्स हू आस्क फ़ौर सर्टेण्टी.
नो गुड इज़ सर्टेन्, बट दि स्टेड्फ़ास्ट माइण्ड,
दि अन्डिवाइडेड् विल् टु सीक दि गुड्:
'टिस दैट कम्पेल्स दि एलिमेण्ट्स, ऐण्ड रिङ्स
ए ह्यूमन म्यूज़िक फ़्रौम दि इण्डिफ़रेण्ट एयर.

“उठो, जागो और सुखके लिये निर्भयताके साथ निरन्तर कार्य्य करो और यह विश्वास रक्खो कि तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी।” भगवान् श्रीकृष्णके ये उपदेश मुख्यतः हिन्दुओं और साधारणतः भारतीयोंकी भलाईके लिये, भगवान्की ज्योतिके प्रकाशके लिये और मातृभूमिकी सेवाके लिये किए हुए हमारे इस उद्योगमें हमें अनुप्राणित करें।

भौतिक तथा रासायनिक विज्ञान-विद्यालयोंके भवन।

राजनीति

सन् १९०८ के प्रारम्भमेँ केन्द्रीय शासनको परिवर्त्तित करनेके लिये जो कमीशन नियुक्त हुआ था उसके सम्मुख प्रस्तुत करनेके लिये पूज्य मालवीयजीने जो लेख लिखा था उससे उद्धृत—

—सम्पादक।

भारतके लिये संघ-शासन व्यवस्था

बृटिश भारतमेँ आठ प्रमुख प्रान्त हैँ जिनका शासन प्रान्तीय सरकारोँद्वारा अलग ही होता है । मद्रास और बम्बई प्रान्तोँका शासन सपरिषद् गवर्नरद्वारा होता है जिनके अधिकारोँ तथा कर्त्तव्योँका निर्धारण पार्लियामेण्ट-विधानके द्वारा होता है। बङ्गाल, युक्तप्रान्त, पूर्वीय बङ्गाल, आसाम, पञ्जाब और ब्रह्माका शासन छोटे लाटोँद्वारा होता है । मध्यप्रान्त अभीतक चीफ़ कमिश्नरके अधीन है ।

सपरिषद् बड़े लाट महोदय भारतकी शासन तथा धन-सम्बन्धी समस्याओँके मुख्यतर निर्णायक या योँ कहिए कि सर्वेसर्वा हैँ । परन्तु वास्तविक राज्यप्रबन्धका कार्य्य भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकारोँमेँ बँटा हुआ है । भारत-सरकार अथवा सपरिषद् बड़े लाट विदेश-सम्बन्ध, देश-रक्षा, सार्वजनिक-कर, सिक्केका सञ्चालन, ऋण, आयात-निर्यात कर, डाक, तार तथा रेलवे आदि विभागोँके अन्तर्गत कार्य्योँकी देखरेख अपने हाथमेँ रखते हैँ । साधारण अन्ताराष्ट्रीय राज्यप्रबन्ध, भूमिकर निर्णय तथा उसका संग्रह, शिक्षा, ओषधि तथा स्थास्थ्य-सम्बन्धी प्रबन्ध, नहर, भवन तथा सड़कोँ आदिके निर्माणका भार प्रान्तीय सरकारके ऊपर है । किन्तु इन सभी कार्य्योँपर भारत-सरकारका व्यापक तथा अविच्छिन्न नियन्त्रण है । यह उनके लिये नीति निर्धारित करती है और यह जाँच करती है कि उनके नियमोँका पालन हो रहा है या नहीँ । इसके लिये प्रान्तीय सरकारेँ मुख्य-मुख्य विभागोँके शासन-सम्बन्धी विवरण प्रतिवर्ष उसके पास भेजती हैँ । रेल, डाक, तार, माप, भूगर्भ आदि अपने अधीन विभागोँपर नियन्त्रण करनेके लिये तो शासकगण रखती ही है साथ-साथ अन्य प्रान्तोँके कृषि, सिँचाई, जङ्गल, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि विभागोँके लिये भी बहुतसे निरीक्षकोँ तथा मन्त्रियोँको भी नियुक्त करती है। यह केवल प्रान्तीय सरकारके प्रतिवर्षकी आय-व्ययमेँ ही आवश्यक संशोधन

नहीँ करती वल्कि प्रत्येक नवीन महत्त्वपूर्ण नियुक्ति तथा प्रत्येक विभागमेँ छोटी-से-छोटी वृद्धिके लिये भी स्वीकृति देती है। इसका फल यह होता है कि बिना इसकी स्वीकृतिके राज्य-शासनमेँ कोई भी परिवर्त्तन नहीँ हो सकता। मद्रास तथा बम्बईके वाहर प्रान्तीय शासनमेँ कोई भी प्रमुख अधिकारी नियुक्त करनेके लिये वड़े लाटकी स्वीकृतिकी आवश्यकता है। "सभी प्रान्तोँमेँ सरकारी नीति तथा आवश्यक प्रश्नोँको सपरिषद् भारत-सरकारकी अनुमति लेनेके लिये भेजना पड़ता है और प्रान्तीय सरकारोँके धन व्यय करनेके अधिकार कड़े तथा निश्चित नियमोँसे नियन्त्रित होते हैँ अर्थात् प्रान्तीय सरकारेँ भारत-सरकारकी केवल आज्ञाकारी प्रतिनिधिमात्र हैँ। उन्हेँ अपने आर्थिक तथा अन्य सभी प्रश्नोँकी स्वीकृति भारत-सरकारसे लेनी पड़ती है।

भारत-सरकार सम्पूर्ण बृटिश भारतके करोँका अपनेको ही स्वामी समझती है। सन् १८७० तक प्रत्येक प्रान्तीय-सरकारको अपने अग्रिम वर्षके व्ययका कच्चा-चिट्ठा वड़े लाट की परिषद्के सामने उपस्थित करना पड़ता था। सपरिषद् वड़े लाट उन सम्पूर्ण आय-व्ययके कच्चे-चिट्ठोँपर अनुमानित करकी तुलना करनेके वाद विभिन्न प्रान्तोँकी आवश्यकताओँके अनुसार प्रान्तीय सरकारोँको धन वितरित करती थी। इस व्यवस्थाकी त्रुटियोँ तथा कठिनाइयोँ को देखकर लौर्ड मेयोने केन्द्रीय सरकारद्वारा धन वितरित करनेकी प्रणाली वदल दी। अनेक सुधारोँके वाद इसका स्वरूप सन् १९०४ ई० मेँ अर्द्धस्थायीप्रवन्ध वन गया। राज्यकरके कुछ अंश पूर्णतया राजकीय माने गए हैँ और कुछ अंश केवल प्रान्तीय हैँ और शेषांश राजकीय तथा प्रान्तीय सरकारोँके वीच वाँट लिए जाते हैँ।

यह व्यवस्था इस अर्थमेँ स्थायी है कि एक निर्दिष्ट समयतक इसमेँ कोई परिवर्त्तन नहीँ हो सकता। परन्तु भारत-सरकारको यह अधिकार है कि आवश्यकता पड़नेपर वह किसी एक अथवा सव प्रान्तोँकी इस व्यवस्थामेँ उचित परिवर्त्तन कर सकती है। यह आवश्यकता कव होगी, इस वातके निर्णयका अधिकार भारत-सरकारने अपने हाथमेँ रक्खा है। प्रान्तीय सरकारोँको इसमेँ चूँ तक करनेका अधिकार नहीँ है और इन व्यवस्थाओँकी शर्तोँपर भी विचार करनेका अधिकार नहीँ है। ये नियम किसी न्याय अथवा सत्यके सिद्धान्तोँपर नहीँ वने हैँ। भारत-सरकारने कुछ नियम निर्धारित कर लिए हैँ और उन्हेँ लागू करनेपर ज्ञात हुआ कि प्रान्तीय सरकारोँका सम्पूर्ण व्यय पूरी आयके एक चौथाईसे भी कम हुआ और भारत-सरकारका व्यय तीन चौथाईसे भी अधिक वढ़ गया, जिसमेँ सेना तथा आन्तरिक व्यय भी सम्मिलित है। ये अनुपात ही भारतीय तथा प्रान्तीय सरकारोँके वीच कर-विभाजनके आधार माने गए। किन्तु समयानुकूल इसमेँ अनेक आवश्यक परिवर्त्तन होते रहे। इसमेँ हमेँ प्रान्तीय सरकारोँकी वास्तविक परिस्थितिका पूर्ण परिचय मिलता है। भारत-सरकारके अधीन प्रान्तीय सरकारोँकी शासन तथा आर्थिक प्रवन्ध-सम्बन्धी शक्तिका इससे ठीक पता लग जाता है। उपर्युक्त व्यवस्थासे भारतभरमेँ राजनीतिक एकता तथा प्रवन्धकी समरूपता स्थापित हो गई है। इससे साम्राज्यके विकाश तथा विस्तार दोनोँमेँ योग मिलता है। भारत-सरकार सम्पूर्ण देशके आर्थिक साधनोँकी अधिकारिणी रही है और राजकीय कार्य्योँके लिये उसने उन साधनोँका अनावश्यक उदारतासे उपयोग किया है। उसने उक्त द्रव्यका उचित अंश भारतीय जनताकी नैतिक तथा आर्थिक उन्नतिके लिये व्यय नहीँ किया। इसका यह फल हुआ है कि वाहरसे इस साम्राज्यकी जितनी तड़क-भड़क दिखाई दे रही है उतनी ही भारतवासियोँकी दशा वुरी हो गई है। इस

वर्त्तमान व्यवस्थाके अनौचित्यका प्रमाण हमें इसीसे मिलता है कि जहाँ सरकार कई वर्षोंतक बचतकी निन्दा करती रही, वहाँ अब उन बचत करनेवाले प्रान्तोंको केवल काम चलाने भरको ही मिलता है। प्रान्तीय सरकारोंका कर-स्थापन, कर-संग्रह, शिक्षा, स्वास्थ्य, भवननिर्माण तथा सड़कोंके निर्माण इत्यादि सब प्रबन्धके लिये सम्पूर्ण आयका चौथाईसे भी कम भाग व्यय होता है और ठीक इसके विपरीत राजकीय व्ययमें, जिसमें सेना तथा गृह-व्यय भी सम्मिलित है, तीन चौथाईसे भी अधिक व्यय होता है। इससे स्पष्ट है कि जबतक वर्त्तमान व्यवस्थामें एकदम परिवर्त्तन न किया जायगा तबतक जनताके अत्यन्त हितकर स्वत्वोंकी उन्नति असम्भव है।

भारतके इन आठ प्रमुख प्रान्तोंका क्षेत्रफल तथा इनकी जनसंख्या योरोपके कई बड़े-बड़े प्रदेशोंके बराबर है। ब्रह्माका क्षेत्रफल स्वीडेनके जितना है परन्तु आबादीमें लगभग दूना है। अविभाजित बङ्गालका क्षेत्रफल यद्यपि ब्रह्मासे कुछ अंशोंमें कम है किन्तु आबादी उससे आठ गुनी और फ़्रान्ससे दुगुनी है। मद्रासकी आबादी ब्रिटिश द्वीपसमूहके बराबर है। बम्बईका क्षेत्रफल भी प्रायः ब्रिटिश द्वीपसमूहके बराबर है किन्तु इसकी आबादी उससे कम है। संयुक्तप्रान्तकी आबादी औस्ट्रिया हङ्गरीसे अधिक है। मध्यप्रान्त तथा बरार दोनोंका क्षेत्रफल तो संयुक्तप्रान्तके बराबर है और आबादी एक करोड़ तीस लाख है। पञ्जाबकी आबादी दो करोड़ है। इङ्गलैण्डमें सम्राट्की सरकारने और भारत-सरकारने इस बातका अनुभव किया है कि इन प्रान्तोंमेंसे प्रत्येक अलग अलग राज्यप्रबन्ध करनेके लिये पर्य्याप्त, विस्तृत तथा उपयुक्त हैं। इनमेंसे केवल मध्यप्रान्तको छोड़कर शेष सबमें अपनी स्वतन्त्र व्यवस्थापिका सभाएँ हैं। प्रत्येक प्रान्त अपनी स्वतन्त्र शिक्षा, राज्यप्रबन्ध, फ़ौजदारी तथा दीवानी न्याय आदि विभागोंका नियन्त्रण स्वयं करता है। यही उचित समय है कि करोड़ों अनाथ जनताके सुख-दुखकी उत्तरदायिनी इन प्रान्तीय सरकारोंको राज्यशासन तथा आर्थिक विषयोंके अधिकार प्रदान किए जायँ।

अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार

इस ध्येयकी पूर्त्तिके लिये वर्त्तमान प्रचलित शासन-विधानको सङ्घ-विधानमें परिवर्त्तित कर देना चाहिए। प्रान्तीय सरकारें अब भारत-सरकारकी आज्ञाकारिणी प्रतिनिधिमात्र न रहकर एक अलग ही अर्द्धस्वतन्त्र सरकारें बना दी जायँ। मेरा ख़याल है इसी प्रकारका एक प्रस्ताव लौर्ड मेयोके शासनकालमें उस समय उनके सम्मुख उपस्थित किया गया था, जब वे प्रान्तीय सरकारोंको आर्थिक उत्तरदायित्वमें कुछ अधिक स्वतन्त्रता देनेके लिये तुले हुए थे, क्योंकि उस समय भारत-सरकारके हाथमें कुल भार होनेसे बड़ी असुविधा हो रही थी।

सर विलियम हण्टरने कहा है, "उनके पूर्वकालीन कई बड़े लाटोंकी यही धारणा थी और भारतीय राजनीतिज्ञोंके एक दलने तो प्रान्तीय सरकारोंके आर्थिक प्रबन्धमें पूर्ण स्वतन्त्रता देनेकी सम्मति दे दी थी। उनका यह कहना था कि प्रान्तीय सरकारें अपनी आयका वही अंश भारत-सरकारको दे सकती हैं जो वे उसे साम्राज्यके लिये सेना तथा राज्य-ऋण आदिके रूपमें देती हैं। अभाग्यवश वह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ। मैं सोचता हूँ कि यदि इसकी स्वीकृत हो गई होती तो प्रान्तीय सरकारोंने अपनी शासित जनताकी समृद्धि तथा सर्वतोमुखी उन्नतिमें अधिक ध्यान दिया होता। तथापि गत सैंतीस वर्षोंके शासन-प्रबन्धके अनुभवसे यह प्रत्यक्ष हो गया है कि वह प्रस्ताव अब बड़ी सरलतासे प्रयोगमें लाया जा सकता है और उसकी अब नितान्त आवश्यकता भी है। इससे किसी भी प्रकारसे साम्राज्यकी एकता में कोई शिथिलता नहीं आ सकती। भारत-सरकारको चाहिए कि विदेश-सम्बन्ध, देश-रक्षा,

सिक्का चलाना, ऋण, आयात-निर्यात-कर, डाक, तार तथा रेल आदि विभागोंको अपने "राजकीय" कहलानेवाले विभागोंसे सब कर प्राप्त करे। जिन साधारण राजकीय कर्त्तव्योंके लिये उसे धनकी आवश्यकता पड़े उसे वह निश्चित तथा विवेकपूर्ण सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक प्रान्तसे यथाभाग ले सकती है। यह धन ले लेनेके बाद भारत-सरकारको यह चाहिए कि जनताके लाभार्थ समुचित तथा सदुपयोगी ढङ्गसे यह धन प्रयोग करनेके लिये प्रान्तीय सरकारोंको पूर्ण स्वतन्त्रता दे दे। उसको अधिकार होगा कि विशेष अवसर पड़नेपर अथवा प्रान्तीय सरकारोंसे वार्षिक सहायता न मिलनेपर व्यापक कर लगा सकती है। इससे भारत-सरकारकी फ़ज़ूलख़र्चीकी आदत बन्द हो जायगी और प्रान्तीय सरकारें भी अपने हाथके धनसे जनताका विशेष हित करेंगी।

भारत-सरकारका सेना-व्यय भयावह रूपसे बढ़ गया है और आशा नहीं है कि उसमें कभी कोई संशोधन हो। जबतक इसमें कमी नहीं होगी तबतक प्रान्तीय सरकारोंकी इस वार्षिक देनमें कमी नहीं आ सकती। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि रूस तथा जापानके साथ सन्धि होनेके कारण इस व्ययमें निकट भविष्यमें कमी होनेकी सम्भावना है।

प्रान्तीय सरकारोंका स्वरूप

यदि प्रान्तीय सरकारोंको शासन तथा आर्थिक व्ययकी अधिक स्वतन्त्रता मिल गई और भारत-सरकारका उनके कर्त्तव्य-पालनमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार हटा लिया गया, तो यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि उनके स्वरूप भी परिवर्त्तन हों। बम्बई और मद्रासका शासन केवल दो सदस्योंकी परिषद् और गवर्नरद्वारा होता है। इसकी आवश्यकता है कि भारत-सचिवकी कौन्सिलमें और भी सदस्य बढ़ाए जायँ। यह हाल ही में घोषित किया गया है कि भारत-सचिव तथा बड़े लाट दोनोंने बड़े लाटकी कौन्सिलकी सदस्यताके पदपर एक भारतीय नियुक्त करनेकी सम्मति प्रगट की है। अतएव इन समर्थनोंके अनुसार मद्रास तथा बम्बईके बड़े लाटकी व्यवस्थापिका सभाकी सदस्यताके पदपर दो भारतीयोंकी नियुक्ति करनेका परामर्श सर्वथा उचित प्रतीत होता है, और मेरा विश्वास है कि इस कार्य्यका श्रीगणेश अन्य प्रान्तोंके लिये भी लाभप्रद होगा। मैं आशा करता हूँ कि इसकी स्वीकृति अवश्य होगी।

संयुक्तप्रान्तके लिये एक सपरिषद् गवर्नर

संयुक्तप्रान्त भारतवर्षके बड़े प्रान्तोंमें द्वितीय है। यद्यपि इसका क्षेत्रफल मद्रास और बम्बईके क्षेत्रफलसे कुछ ही कम होगा, किन्तु इसकी आबादी चार करोड़ अस्सी लाख है जब कि मद्रास तथा बम्बईकी आबादी क्रमशः तीन करोड़ अस्सी लाख तथा एक करोड़ नब्बे लाख ही है। सन् १८८७ के चार्टर एक्टके द्वारा यह आशा, हुई कि 'प्रेसिडेन्सी औफ़ फ़ोर्ट विलियम इन बङ्गाल' को दो भागोंमें विभक्त कर देना चाहिए। एकका नाम 'प्रेसिडेन्सी औफ़ फ़ोर्ट विलियम इन बङ्गाल' होगा और दूसरेका 'प्रेसिडेन्सी औफ़ आगरा' होगा। उसी विधानके अनुसार यह निर्णय हुआ कि 'फोर्ट विलियम इन बङ्गाल', फ़ोर्ट सेण्ट जौर्ज, बम्बई और आगरा सभी प्रान्तोंकी प्रबन्धकारिणी सरकारें गवर्नर और उनके तीन मन्त्रियोंद्वारा शासित हुआ करेंगी।

धनाभावके कारण आगरा प्रान्तका पूर्ण रीतिसे प्रबन्ध न हो सका और दो वर्ष पश्चात् एक दूसरे संशोधक विधानसे गवर्नर जनरलको यह अधिकार मिला कि पश्चिमोत्तर प्रान्तके लिये एक छोटा लाट नियुक्त कर दें तथा उसके अधिकारोंको निश्चित कर दें।

सन् १८३३ ई० में सरकारकी जैसी आर्थिक अवस्था थी उससे कहीं अधिक उत्तम वर्त्तमान कालमें है और गत पचहत्तर वर्षोंमें जो विशाला

परिवर्त्तन हुए हैं, उनको ध्यानमें रखकर मेरा विचार है कि अब यह प्रान्त भी इङ्गलैण्डसे नियुक्त अनुभवी राजनीतिज्ञकी गवर्नरी और उसके सहायक मन्त्रिवर्गके शासनसे वञ्चित न रक्खा जाय। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि भारतीय-सिविल-सर्विसने भी सर एण्टोनी मैकडोनेल जैसे सुयोग्य गवर्नर बनाए हैं, जिनके शासनमें प्रजाकी अपूर्व उन्नति हुई है। ऐसे ही प्रतिभाशील व्यक्तियोंकी वास्तवमें नियुक्ति होनी चाहिए परन्तु जैसा मैंने परामर्श दिया है और जैसा कि परम्परासे चला आता है यह नियम बना लेना चाहिए कि इस पदपर सीधे इङ्गलैण्डसे किसी अनुभवी तथा सुयोग्य राजनीतिज्ञको नियुक्त करना चाहिए। यदि इस प्रकारसे यथोचित निर्वाचन हुआ तो इङ्गलैण्डके स्वतन्त्र वातावरणसे सीधे आनेवाले महोदय महाराज कुमार प्रिन्स औफ़ वेल्सके आशानुसार भारतीय-शासनमें वर्त्तमान कालकी अपेक्षा अधिक सहानुभूति दिखलायँगे। यदि एक गवर्नर तथा सहायक परिषद्की नियुक्ति हो गई तो भूमि-कर समिति (बोर्ड औफ़ रेवेन्यू) की कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी और बोर्डके जो दो प्रमुख सदस्य हैं उनकी नियुक्ति गवर्नरके मन्त्रियोंके पदपर कर देनी चाहिए। यह भी ध्यानमें रक्खा जाना चाहिए कि समान दो मन्त्रियोंमेंसे एक शासन-विभागका व्यक्ति हो और दूसरा विधान-विभागका हो। इनके अतिरिक्त दो भारतीय मन्त्रियोंकी नियुक्ति प्रबन्धकारिणी सभामें होनी चाहिए। विभिन्न प्रान्तोंकी प्रबन्धकारिणी सभाओंमें अनुभवी तथा सुयोग्य दो भारतीयोंके नियुक्त करनेसे अत्यन्त लाभ होगा। प्रबन्धकारिणी सभामें भारतीय सिविल सर्विससे वाहरके योरोपियनोंकी नियुक्ति कर देनेसे फल यह होता है कि वे भारतीय जनताके मनोभावों तथा उनकी रूढ़ियोंसे अनभिज्ञ होनेके कारण अनेक व्यर्थके कार्य्य कर बैठते हैं, परन्तु भारतीय मन्त्रियोंके परामर्श आदिसे ऐसे भ्रमकी सम्भावना बहुत कम रहेगी। अब भारतीय जनतामें अधिकार तथा सुविधाएँ प्राप्त करनेकी नवीन जागृति होने लगी है और वे उनकी प्राप्तिके लिये सदा प्रयत्नशील रहेंगे, इसलिये प्रबन्धकारिणी सभामें सुयोग्य तथा अनुभवी भारतीय मन्त्रियोंकी नियुक्ति हो जो अपने विचार और व्यवहार स्पष्ट रूपसे सरकारके सम्मुख रख सकें।

व्यवस्थापिका सभाएँ

प्रान्तीय आर्थिक तथा शासन-सम्बन्धी बढ़े हुए अधिकारोंका सरकारद्वारा समुचित उपयोग करानेके लिये व्यवस्थापिका सभामें जनताके प्रतिनिधियोंकी संख्या बढ़ाना परमावश्यक है। यह अधिकार भी मिलना चाहिए कि वे आय-व्ययके कच्चे-चिट्ठेकी उपयुक्ततापर अपनी सम्मति दे सकें तथा आवश्यकता पड़नेपर सम्मति निर्धारणके लिये व्यवस्थापिका सभाका विभाजन करा सकें। सभाके आधे सदस्य निर्वाचित हों, एक चौथाई सरकारद्वारा नियुक्त किए जायँ और शेष अधिकारी वर्गमेंसे नियुक्त किए जाने चाहिएँ। गवर्नरको अधिकार होना चाहिए कि वह बहुमतसे स्वीकृत प्रस्तावको भी अस्वीकार कर सके। इससे आर्थिक तथा सार्वभौम शासन-प्रबन्धमें वर्त्तमान अवस्थासे भी अधिक सुधार हो जायगा। "इस बातपर अधिक ज़ोर देनेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि जबतक स्वयं नागरिक सचेष्ट होकर ध्यान न दें तबतक उचित द्रव्य नहीं मिल सकता। कच्चे चिट्ठेके-सम्बन्धके विधानोंके कारण राज्यशासन अपनी सीमाके अन्दर ही रहता है, परन्तु कौशलपूर्ण व्यय, लाभयुक्त तथा न्यायपूर्ण कर, तथा आय और व्ययका पूर्ण सामञ्जस्य तभी सम्भव है जब विवेकशील तथा परिश्रमी जन-समुदाय उसपर अपने विचारोंद्वारा शासन करे। अतएव जनताके विचारोंको समुचित रूपसे प्रगट करनेके लिये व्यवस्थापिका-सभाओंमें प्रतिनिधियोंको स्थान देना चाहिए और उस विचारको प्रभावशाली बनानेके लिये प्रतिनिधियोंको कच्चे चिट्ठेपर स्वतन्त्र रूपसे

वादाविवाद करनेका अवसर देना चाहिए। मेरे उपर्युक्त मन्तव्य भारतके आठोँ बड़े प्रान्तोँके लिये लागू हैँ। यह कहा जा सकता है कि मध्यप्रान्त तथा बरार प्रान्तके लिये, जो एक चीफ़ कमिश्नरके अधीन हैँ, बड़े प्रान्तोँके समान शासन-व्यवस्थाकी आवश्यकता नहीँ है। परन्तु मध्यप्रान्तकी आबादी ब्रह्माकी आबादीसे कम नहीँ है जो एक छोटे लाटके अधीन है। मेरी समझमेँ इन बड़े प्रान्तोँमेँ जो सबसे छोटा है वह भी प्रस्तावित शासन-व्यवस्था पानेके लिये बड़े प्रान्तोँके समान ही बड़ा है।

व्यय

यदि यह पूछा जाय कि प्रस्तावित योजनाका ख़र्च कहाँसे आवेगा तो मैँ कहूँगा कि भारतमेँ अफ़सरोँके वेतन अत्यधिक हैँ, उनमेँ कमी करनी चाहिए। मेरे प्रस्तावके स्वीकृत हो जानेपर जो नवीन नियुक्ति करनी होगी उसमेँ वेतनका परिमाण बहुत विवेकके साथ निश्चित होना चाहिए। किन्तु यदि ऐसा न भी हो तो इस व्यवस्थासे राज्यशासनमेँ उन्नति होगी उससे इसकी कमी पूरी हो जायगी।

* * *

मिण्टो-मौर्ले-सुधार

“इण्डियन रिव्यू” पत्रके सम्पादककी प्रार्थनापर महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने निम्नाङ्कित लेखको १९०८ के दिसम्बरमेँ सुधार सम्बन्धी लेख-समूहके लिये प्रकाशित होनेको भेजा।

—सम्पादक।

भारत-सरकार तथा भारत-सचिवने जो सुधारके प्रस्ताव पेश किए हैँ उनके लिये जनता तथा सरकार दोनोँको बधाई है। ये सुधार अत्यन्त उदार तथा प्रशंसनीय भावनाओँके फल हैँ। उनके व्यवहारमेँ आनेपर भारतके उज्वल भविष्य और एक नवीन युगका प्रारम्भ होगा। इन प्रस्तावोँके बनानेमेँ हमारे बड़े लाट महोदय तथा लौर्ड मौर्लेने जिस बुद्धिमत्ता तथा राजनीतिज्ञता-पूर्ण साहसका परिचय दिया है उसके लिये हम लोग सर्वदा उनके कृतज्ञ रहेँगे। वे हमारे इसलिये धन्यवादके पात्र भी हैँ कि उन्होँने इन सुधारोँके विषयमेँ जनताके मत-प्रकाश तथा उसमेँ आवश्यक परामर्श देनेके लिये भी सुअवसर प्रदान किए हैँ।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि ये सुधार अपना वास्तविक स्वरूप प्राप्त करनेके पहले और भी अधिक उदार तथा लाभदायक बनाए जायँगे। सरकार मुख्यतः इसलिये धन्यवादकी पात्र है कि उसने प्रान्तीयसभाओँमेँ ग़ैर-सरकारी सदस्योँकी बहुसंख्यता प्रदान करनेका निर्णय किया है। मुझे यही कहना है कि उन्हेँ बड़ी व्यवस्थापिका सभाके विषयमेँ भी इसी पथका अनुसरण करना चाहिए था। ऐसा करना सभी प्रकारसे उचित और बुद्धि-सङ्गत होगा। यदि अभी इसको कुछ कालके लिये भी स्थगित कर दिया जाय, तो कम-से-कम वाइसराय महोदयको प्रस्ताव तो अवश्य ही स्वीकार कर लेना चाहिए कि उनकी सभामेँ भी उतनी ही संख्यामेँ सरकारी तथा ग़ैर-सरकारीसदस्योँकी नियुक्ति हो सके।

सुधारोँकी प्रस्तावना, कांग्रेस आन्दोलनकी दूसरी विजय है। प्रथम विजय सन् १८९२ के इण्डियन कौन्सिल एक्टके पास होनेके अवसरपर हुई थी।

भारतीय व्यवस्थात्मक सुधारके लिये मौण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड प्रस्तावोँकी आलोचना

व्यवस्थात्मक सुधारके लिये मौण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड-प्रस्तावोँके छपनेके थोड़े ही समय बाद माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने लीडरमेँ लिखा था कि "इन प्रस्तावोँमेँ बहुत अधिक तथा उदार सुधारोँकी योजना है किन्तु इनसे देशकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं। इन प्रस्तावोँका पूर्ण विरोध तो किया ही नहीं जा सकता। हमेँ चाहिए कि इसमेँ आवश्यक युक्तिपूर्ण सुधार और इसका विस्तार करेँ।" उस समय बहुतसे लोगोँने इसका पूर्णतः विरोध किया था। निम्नलिखित लेख पूज्य मालवीयजीने अपने उक्त विचारको विस्तृत करके लिखा था।

—सम्पादक।

यह कहना व्यर्थ होगा कि भारत-सचिव और बड़े लाटके व्यवस्थात्मक सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव महीनोँके कुतूहलपूर्ण विवाद एवं सचेष्ट विचारके परिणाम हैँ। कारण यह है कि जिस परिस्थितिमेँ यह कार्य्य सम्पादन हुआ वह इतना प्रसिद्ध है कि इसकी आवृत्ति कुछ विशेष महत्त्व नहीँ रखती। प्रस्ताव-कर्त्ताओँके शब्दोँमेँ प्रस्ताव बड़े ही महत्त्वपूर्ण एवं गूढ़ हैँ। अच्छा होता यदि भारत-सरकार-द्वारा इसपर इङ्गलैण्डमेँ विचार होनेके पूर्व सर्वसाधारणकी समालोचनाके लिये इसका प्रकाशन भारतमेँ हो जाता। प्रस्ताव दोनोँ दृष्टियोँसे महत्त्वपूर्ण हैँ। एक तो ये स्वतः महत्त्वपूर्ण हैँ, दूसरे इनके दोनोँ प्रस्तावक उच्च-पदस्थ सरकारी कर्मचारी हैँ। भारतके भविष्यके लिये जो विचारशील भारतीय प्रयत्नशील हैँ उन सबको इन प्रस्तावोँपर बड़ी सावधानीसे विचार करना चाहिए।

प्रस्तावका अधिकांश उदारतापूर्ण है। उससे वास्तविक तथा लाभकारी परिवर्त्तन हो सकेगा। हमेँ उतने अंशका स्वागत करना चाहिए और इसके लिये प्रस्तावकोँका उपकार मानना चाहिए। किन्तु इन प्रस्तावोँमेँ बड़ी कमी है जिसकी पूर्त्ति किए बिना भारतका अभीष्ट सुधार असम्भव है और तबतक ये देशकी आवश्यकताके लिये अपूर्ण ही रहेँगे। प्रस्तावोँकी सङ्क्षिप्त सूचीमेँ इनका जो क्रम दिया गया है उस क्रमसे सर्वप्रथम श्रेणीमेँ भारत-सचिवका वेतन बृटिश संयुक्त-राष्ट्रके आधारपर करना, भारतीय मामलोँके लिये इङ्गलैण्डकी पार्लियामेण्टकी साधारण सभाके सदस्योँमेँसे विशिष्ट समितिका निर्वाचन करना, बड़े लाटकी कार्य्यकारिणी समितिमेँ भारतीयोँकी वृद्धिके लिये एक दूसरे भारतीय सदस्यकी नियुक्ति करना तथा वर्त्तमान बड़े लाटकी व्यवस्थापिका सभाको बदलकर एक सौ सदस्योँकी एक बड़ी व्यवस्थापिका सभा बनाना है, जिसके दो तिहाई सदस्य निर्वाचित होँगे, स्थायी सभाका सहयोग प्राप्त करना जिसके दो तिहाई सदस्य ग़ैरसरकारी सदस्योँद्वारा निर्वाचित होँगे जिसमेँ यथासम्भव सब सरकारी विभाग होँगे।

बड़ी व्यवस्थापिकाके किसी सदस्यको आनुषङ्गिक प्रश्न करनेका अधिकार दिलाना। इसी श्रेणीमेँ प्रान्तीय[1] सरकारोँसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक नियम हैँ; उदाहरणके लिये यह प्रस्ताव कि प्रत्येक प्रान्तकी शासक-सभा (एग्ज़ीक्यूटिव गवर्नमेण्ट) मेँ प्रान्तीय लाट और दो सदस्योँकी कार्य्यकारिणी-समिति होगी, जिसमेँ से एक भारतीय होगा और छोटी व्यवस्थापिका सभाके निर्वाचित सदस्योँमेँसे प्रान्तीय लाटद्वारा मनोनीत एक मन्त्री या मन्त्रीगण होँगे। इन मन्त्रियोँके अधिकारमेँ कुछ विषयोँसे सम्बन्ध रखनेवाले विभाग होँगे और इन विषयोँके सम्बन्धमेँ मन्त्रीका निर्णय ही अन्तिम निर्णय होगा। परन्तु इस सम्बन्धमेँ गवर्नरकी सम्मति और उनका नियन्त्रण भी मान्य होगा। गवर्नरके लिये यद्यपि नियन्त्रणका अधिकार सुरक्षित है तथापि यह आशा की जाती है कि वे इसका प्रयोग तभी करेँगे जब मन्त्रीके प्रस्तावका परिणाम गम्भीर स्थिति उत्पन्न करनेवाला होगा। इसका यह तात्पर्य्य नहीँ है कि गवर्नर स्वेच्छासे मन्त्रीके प्रस्तावपर विचार होनेकी स्वीकृति ही न देँ। प्रत्येक प्रान्तमेँ एक परिवर्द्धित व्यवस्थापिका सभाकी स्थापना हो जिसके अधिकांश सदस्य जनताद्वारा निर्वाचित होँ। जहाँतक सम्भव हो सर्वसाधारणके मताधिकारका क्षेत्र विस्तृत करके सदस्योँका निर्वाचन कराया जाय; व्यवस्थापिका सभाके प्रत्येक सदस्यको आनुषङ्गिक प्रश्न पूछनेका अधिकार दिलाना; प्रत्येक विभागके साथ एक स्थायी समिति हो जिसके अधिकांश सदस्य व्यवस्थापिका सभाद्वारा चुने जायँ। प्रान्तीय और भारतीय कर-विभाग पूर्णतः विभक्त होँ, प्रत्येक प्रान्त प्रतिवर्ष भारत-सरकारको कुछ निर्धारित रक़म दिया करे और यह रक़म प्रान्तीय करसे अदा की जाय। प्रान्तीय सरकारको ऋण लेने और कर लगानेके कुछ अधिकार प्राप्त होँ; और अन्तिम तथा अत्यन्त आवश्यक नियम कच्चे चिट्ठेका व्यवस्थापिका सभाके समक्ष विचारार्थ रक्खा जाना है; परन्तु इस संरक्षणके साथ कि उसमेँ केवल इतना ही परिवर्त्तन किया जा सके कि उस सभाके प्रस्तावोँका पालन हो सके। वह संरक्षण यह है कि यदि व्यवस्थापिका सभा सुरक्षित विभागके कच्चेचिट्ठेके किसी प्रस्तावको अस्वीकार कर दे तो ऐसी परिस्थितिमेँ सपरिषद् गवर्नरको अधिकार होगा कि वे अपने विशेषाधिकारसे मूल प्रस्तावको या उसके किसी अंशको ज्योँ-का-त्योँ स्वीकार कर लेँ। परन्तु गवर्नरको यह लिखित रूपमेँ प्रमाणित करना होगा कि उनकी स्वीकृति देनेका कारण या तो प्रान्त या उसके किसी भागकी शान्ति था अथवा सुरक्षित विभागके प्रति अपने दायित्त्वके लिये था। निस्सन्देह संरक्षणका क्षेत्र बड़ा व्यापक है। अतः इसके परित्याग या परिमार्जनकी आवश्यकता है। इसपर मैँ फिर विचार करूँगा। ऐसा ही लाभकारी एक यह भी प्रस्ताव है कि प्रान्तीय सभाओँमेँ जहाँतक हो सके जनताको पूर्ण आधिपत्य दिया जाय; सरकारी नौकरियोँमेँ जातीयताका जो प्रतिबन्ध अवतक है उसको हटा दिया जाय; इङ्गलैण्डमेँ भरती करनेके अतिरिक्त भारतमेँ भी समस्त सरकारी नौकरियोँमेँ नियुक्तिकी व्यवस्था की जाय और भारतमेँ सब सरकारी नौकरियोँके लिये नियुक्तिकी प्रतिशत संख्या कुछ वृद्धिके साथ निश्चित हो जाय। यद्यपि भारतीय सिविल-सर्विसके लिये प्रस्तावित प्रतिशत संख्या अपर्य्याप्त है तथापि आवश्यकता इस बातकी है कि शीघ्र ही यह संख्या तैँतीससे पचास प्रतिशत कर दी जाय। देशी राज्योँसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रस्ताव सन्तोषपूर्ण हैँ। समस्त प्रस्ताव यथार्थतः उदारपूर्ण प्रगतिशीलताका परिचय देते हैँ और ये अवश्य ही हमेँ वर्त्तमान अवस्थासे आगे ले जानेवाले हैँ। इसके लिये श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डके

नोट—युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बिहार और उड़ीसा, मध्यप्रान्त और आसाम।

प्रति हम अपना कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद प्रदान करते हैँ। परन्तु मेरी रायमेँ देशकी आवश्यकताओँकी पूर्त्तिके लिये ये पर्य्याप्त नहीँ हैँ। प्रस्तावकोँने रिपोर्टके तीन सौ तिरपनवेँ वाक्यमेँ प्रस्तावके प्रभावका सङ्क्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया है। "स्वायत्त-शासन विभागके क्षेत्रको अधिक विस्तृत करके हम सुधार-कार्य्यका श्रीगणेश करते हैँ। इससे मतदाताओँको उन विषयोँमेँ कुशलता प्राप्त होगी जिन्हेँ वे ही भली प्रकार समझ सकते हैँ। साथ-ही-साथ हमारे प्रान्तोँमेँ अधिक प्रतिनिधित्वके लिये, भारत-सरकारके कार्य्योँकी और भी अधिक आलोचनाके लिये तथा पार्लियामेण्टको भारतीय मामलोँका पूर्ण ज्ञान करानेके लिये हमने प्रान्तोँको काफ़ी मात्रामेँ स्वायत्त अधिकार दिए हैँ। इसके उचित सञ्चालनके लिये हम प्रक्रिया भी निश्चित कर देते हैँ जिसके द्वारा समय-समयपर दायित्वका भाव क्रमशः बढ़ता रहेगा और साथ ही सरकारी नियन्त्रण कम होता जायगा। यह प्रक्रिया एक प्रकारसे क्रमिक उन्नति करेगी और तात्कालिक आन्दोलनोँ और शिकायतोँको भी दूर करेगी। यथार्थमेँ इसका तात्पर्य्य उन्नति तो है परन्तु बिलकुल मन्द उन्नति है। यदि भारतको निकट भविष्यमेँ अपने बच्चोँ और अपने राष्ट्रके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करनेके लिये व्यावसायिक और राजनीतिक साधनोँसे सुसज्जित होना है, तो आवश्यक है कि प्रान्तोँमेँ पर्य्याप्त और प्रगतिशील उन्नतिके उपायोँके प्रयोगात्मक स्वायत्त-शासनके क्षेत्रको अधिक विस्तृत करके विश्वास दिलाया जाय और साथ ही भारत-सरकारके स्वरूपमेँ भी पर्य्याप्त परिवर्त्तन होना चाहिए।

(कौंग्रेस-लीग) कांग्रेस-सङ्घकी योजना

कांग्रेस-सङ्घकी कल्पनाका सूत्रपात जनताके प्रतिनिधियोँको प्रान्तीय एवं राज्यपरिषदोँमेँ भेजनेके लिये हुआ था। उस समयके शिक्षित वर्गका विश्वास था कि इस प्रकार शासन-शक्तिका यथार्थ अंश जनताके हाथमेँ रहेगा। देश-रक्षा, युद्ध, शान्ति, विदेशोँसे राजनीतिक सम्बन्ध आदि सब बातोँमेँ समस्त शक्ति केन्द्रीय प्रबन्धकारिणी सरकारको ही प्राप्त थी। प्रबन्धकारिणी समितिको इसका पूरा अधिकार प्राप्त था कि वह चाहे जिस क़ानून या सिद्धान्तको आपत्तिजनक बताकर रोक दे। उपर्य्युक्त प्रस्तावके सङ्क्षिप्त विवरणसे यह स्पष्ट है कि श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने कांग्रेस-सङ्घकी योजनाकी बहुतसी माँगोँको स्वीकार कर लिया था किन्तु उन्होँने उसके मूल प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया था। उदाहरणार्थ, जनताके प्रतिनिधिको शासनमेँ सरकारकी समानताका अधिकार पाना सिवाय उन मामलोँके जिनको प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओँके हाथ सौँपनेका प्रस्ताव किया गया है। मैँ समझता हूँ कि यह उन्होँने विचारपूर्ण कार्य्य नहीँ किया। यदि उन्होँने यह सिफ़ारिश की होती कि कांग्रेस और मुसलिम लीगके प्रस्तावानुसार जनताके प्रतिनिधि व्यवस्था-सम्बन्धी कार्य्योँमेँ सरकारकी समानताका अधिकार पा सकते हैँ तब उन लोगोँके आक्षेपोँका परिहार योजनामेँ कुछ हेरफेर करके या घटा-बढ़ाकर हो सकता था। क्योँकि उदाहरणके लिये हम कहते हैँ कि इस प्रस्तावके विरुद्ध कि "प्रबन्ध-समितिके सदस्योँका निर्वाचन निर्वाचित सदस्योँद्वारा हो" उन लोगोँने जो तर्क उपस्थित किए हैँ उनका समाधान इस प्रकार हो जाता कि सरकार भारतीय सदस्योँको नामज़द करे। यह नामज़दगी उस सूचीमेँसे होगी जिसकी सिफ़ारिश निर्वाचित सदस्योँने की है। कांग्रेस-सङ्घके प्रस्तावका स्पष्ट उद्देश्य यह है कि प्रबन्ध-समितिके भारतीय सदस्य ऐसे व्यक्ति होने चाहिएँ जिनपर जनताका विश्वास हो। ये भी वैसे ही होँ जैसे व्यवस्थापिका सभाके सदस्य हैँ अर्थात् जनताके सच्चे प्रतिनिधि होँ। जबतक यह उद्देश सुरक्षित था तबतक इसकी प्राप्तिकी प्रक्रियामेँ किसीको कोई विवाद नहीँ

था। परन्तु उद्देशका सुरक्षित होना आवश्यक है। कांग्रेस-सङ्घकी योजनाकी जो उन लोगोंने आलोचना की है उसके उपसंहारमें विशिष्ट लेखक-द्वय कहते हैं कि "हम लोगोंका प्रथम अनुभव यह है कि इस प्रणालीसे सुयोग्य मतदाताओंकी सृष्टि होगी और व्यवस्थापिका सभा जनताकी सच्ची प्रतिनिधि सभा होगी। उनका विश्वास है कि कालान्तरमें उपयुक्त चुनाव-प्रणाली और सच्ची प्रतिनिधि सभाका प्रादुर्भाव होगा।" किन्तु उनका कहना है कि 'हम ऐसे प्रस्तावपर अपनी स्वीकृति नहीं दे सकते जो इसी कल्पनापर आश्रित हैं कि ऐसी संस्थाएँ अत्यन्त शीघ्र विकसित होनेवाली हैं। मैं यहाँ लेखक-द्वयके विचारसे विनीत भावसे सहमत हूँ। मेरी दृढ़ धारणा है कि ऐसी संस्थाएँ हो सकती हैं अतएव उन्हें अब अस्तित्वमें लाना चाहिए। मैं वादमें वताऊँगा कि यह कैसे हो सकता है।'

अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधित्वके सम्वन्धमें कांग्रेस-सङ्घकी योजनाकी आलोचना करते हुए विशिष्ट लेखक-द्वयकी शिकायत है कि पृथक् निर्वाचनकी प्रथाका सभी प्रान्तोंमें प्रस्ताव हुआ है। यहाँतक कि उन प्रान्तोंसे भी यह प्रस्ताव हुआ है जहाँ मुसलमान अधिक संख्यामें हैं। और जहाँ कहीं वे संख्यामें कम हैं वहाँके लिये प्रस्तावित अनुपात उनकी वास्तविक संख्यासे कहीं अधिक है। किन्तु ग़ैर-मुस्लिम विरोध होनेपर भी सरकारने इस नियमका आरम्भ एवं प्रचलन कर दिया है। किन्तु ऐसा विधान वन जानेपर यह दशा हो गई है कि अब किसी भी प्रकार हिन्दू लोग मुसलमानोंको समझौतेके लिये राज़ी नहीं कर सकते। हिन्दू लोग उनकी माँगोंके वर्त्तमान अनुपातसे कहीं अधिक प्रतिनिधित्व देनेपर राज़ी हो गए हैं। अन्य प्रान्तोंमें विशिष्ट मुस्लिम मतदाताओंके लिये स्थानका संरक्षण भी एकमात्र इसी सन्धिके ही आधारपर हुआ है। हिन्दू लोग स्वेच्छासे इस प्रस्तावपर सहमत हुए हैं। क्योंकि वे चाहते हैं कि मुसलमानोंमें एकता और सङ्गठन वना रहे।

यह विल्कुल सत्य है कि सुविधा प्रदान करना आपत्ति-जनक है। यदि कोई दूसरा सम्प्रदाय पृथक् निर्वाचनकी माँगका प्रश्न उठाकर लाभ उठाना चाहे तो उसको भी ग़ैर-मुस्लिम स्थानोंकी भेंट करके सन्तुष्ट किया जायगा, या अनुपातक्रमसे हिन्दू और मुस्लिम दोनों स्थानोंमें कमी करके तीसरेको प्रसन्न किया जायगा। किन्तु जव हिन्दू और मुसलमान ऐसे समझौतेपर राज़ी हों तो निराश होनेका कोई कारण नहीं है, क्योंकि आवश्यकता पड़नेपर हिन्दू और मुस्लिम नेता समझौतेके निर्णयपर पहुँच सकेंगे। अब इन लोगोंने यह जान लिया है कि कभी-कभी एक व्यक्तिको दूसरेसे और एक सम्प्रदायको दूसरे सम्प्रदायसे सामाजिक उन्नतिके लिये समझौता करना ही पड़ता है। लेखक-द्वयने भी यह परिस्थिति जान लेनेपर बड़ी अनमनीके साथ केवल वर्त्तमान समयके लिये ही मुसलमानोंके पृथक् निर्वाचनाधिकारकी स्वीकृति दी है। उनके समक्ष जो विशेष प्रस्ताव उपस्थित किया गया था उसपर उन लोगोंने तवतकके लिये अपनी सम्मति सुरक्षित रख छोड़ी थी जवतक वे यह नहीं जान लेते कि इससे अन्य सम्प्रदायोंके हिते पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इसके लिये उन्होंने विधान भी किया है।

कांग्रेस-सङ्घकी योजनाके सम्वन्धमें विशिष्ट लेखक-द्वयने जो आलोचना की है, उन सवपर अभी प्रकाश डालनेका मैं प्रयत्न नहीं करूँगा। मैं आशा करता हूँ कि उचित समयपर कांग्रेस और मुस्लिम लीगकी ओरसे वक्तव्य तैयार किया जायगा। यद्यपि इन आक्षेपोंमेंसे कुछ महत्त्वपूर्ण हैं, तथापि मुझे विश्वास है कि उनका पूर्णतः एवं स्पष्ट रीतिसे निराकरण हो सकता है। मैं अभी भी सोचता हूँ कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग कुछ घटा-वढ़ाकर उक्त योजनाके लिये सहमत हो जायगी,

जो देशकी आवश्यकताओंके लिये पर्य्याप्त होगी। कांग्रेस और मुस्लिम लोग भारतमेँ दायित्त्वपूर्ण सरकार स्थापित करनेके लिये पहली सीढ़ी बनायँगे। दायित्त्वपूर्णका अर्थ वह नहीँ है जो प्रस्तावके विशिष्ट लेखक-द्वयको अभीष्ट है या जो इङ्गलैण्डवाले लगाया करते हैँ। दायित्त्व शब्दका प्रयोग बहुत निश्चित अर्थमेँ किया गया है। उदाहरणार्थ, प्रबन्धकारिणीके प्रत्येक सदस्यको पदग्रहण करनेके पूर्व पार्लियामेण्टकी ओरसे यह आदेश मिलना चाहिए कि यद्यपि वे व्यवस्थापिका सभाकी इच्छासे नियुक्त नहीँ हुए हैँ, किन्तु उन्हेँ समझ लेना चाहिए कि जनताके प्रति उनका नैतिक दायित्त्व है और उन्हेँ व्यवस्थापिका सभाओंमेँ भेजे हुए जनताके प्रतिनिधियोँके विचारके साथ सहयोग करते हुए कार्य्य करना होगा।

किन्तु मैँ समझता हूँ कि महीनोँके विवाद और विचारके बाद श्री मैण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने जो प्रस्ताव उपस्थित किए हैँ उससे कांग्रेससङ्घ-योजनाके स्वीकृत होनेका अवसर जाता रहा। मेरा विचार है कि परिस्थितिकी वर्त्तमान दशामेँ सबसे व्यावहारिक कार्य्य यह है कि इन्हेँ पूर्ण एवं उपयोगी बनानेके लिये प्रस्तावमेँ परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन करनेके लिये दबाव डाला जाय। यदि ऐसा हो जाय तो सिद्धान्ततः इनका समावेश कांग्रेससङ्घ-योजनाके अन्तर्गत हो जायगा।

समस्याओंकी स्थिति

शिक्षाहीनता

श्री मैण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डके प्रस्तावमेँ जो सिफ़ारिशेँ की गई हैँ उनपर विचार करते समय निस्सन्देह हम लोगोँकी यह धारणा होनी चाहिए कि लेखकोँने अपने उद्धरणकी शब्दावलीमेँ गत २० अगस्तकी घोषणाका भी विचार रक्खा था। किन्तु मेरी रायमेँ इन लोगोँने उस शब्दावलीकी बहुत ही सङ्कुचित व्याख्या की है। विशेषतः दायित्त्वपूर्ण सरकारकी स्थापनामेँ प्रगतिवाला नियम अधिक सङ्कुचित है। आगे चलकर भारतीयोँके कल्याणका दायित्त्व इङ्गलैण्डके निर्वाचकोँ एवं वहाँकी पार्लियामेण्टको सौँपा है। उन्होँने इस बातपर कई बार आवश्यकतासे अधिक ज़ोर दिया है कि इङ्गलैण्डके निर्वाचक तबतक उस दायित्त्वको नहीँ छोड़ सकते जबतक भारतीय निर्वाचक उनके बोझको वहन करनेका सामर्थ्य नहीँ दिखाते। इस भावनासे प्रभावित होनेके कारण वे सत्य एवं पक्षपातरहित दृष्टिसे समस्याको सुलझानेमेँ असमर्थ रहे। प्रस्तावके "समस्याकी स्थिति" शीर्षक अंशके मनन करनेसे यह दीख पड़ता है कि दायित्त्वपूर्ण सरकार स्थापित करनेके विरुद्ध जो परिस्थितियाँ हैँ उनको सीमासे अधिक बढ़ा दिया गया है, और जो इसके पक्षमेँ हैँ उनकी या तो उपेक्षा की गई है अथवा उन्हेँ कम महत्त्व दिया गया है। दो बातोँपर विशेष ध्यान दिलाया गया है। एक तो यह कि समाजके अधिकतर लोग योरोपकी अपेक्षा अधिक निर्धन, अज्ञ और असहाय हैँ। भारतीय समाजमेँ धार्मिक, जातीय, एवं वर्णगत भिन्नता अभी मौजूद है जो एकताके लिये सदा घातक है। किसी भी विचारशील राजनीतिक योजनामेँ इसका अधिक ध्यान रखना ही पड़ता है। वक्तव्यका प्रथम अंश तो पूर्णतः सत्य है, किन्तु इसका कलङ्क वर्त्तमान नौकरशाही प्रथाके माथे ही लगता है, और इससे सिद्ध होता है कि भारतमेँ सर्वमान्य स्वराज्यकी स्थापना शीघ्रातिशीघ्र हो जानी चाहिए। नौकरशाही प्रथाने भारतपर लगभग एक शताब्दीसे भी अधिक कालतक पूर्ण शासन किया है, किन्तु वह भारतके विशाल समाजको दरिद्रता, अज्ञान तथा असहायवस्थासे ऊपर नहीँ उठा सकी। भारतके शिक्षित वर्गका रहनसहन भारतीय जनताके अनुकूल है। उन्होँने सरकारसे शासनमेँ सहयोग प्रदान करनेकी कई बार प्रार्थना की, जिससे वे

सरकारके साथ जनताके भयानक दारिद्र्यमोचन एवं अज्ञानके दूरीकरणमेँ सहायता प्रदान कर सकेँ, किन्तु नौकरशाही और पार्लियामेण्टने अधिकार देनेमेँ निरन्तर अपनी अस्वीकृति ही प्रगट की। अतः इसके परिणामका दायित्त्व भी इन्हीँपर है।

जनतामेँ शिक्षाके अल्प प्रचारपर अधिक ज़ोर दिया गया है। इसपर भी ध्यान दिया गया है कि गहरी आमदनीके उपभोग करनेवालोँकी संख्या बहुत थोड़ी है। यह भी लिखा गया है कि भूमि-आयके अतिरिक्त छियासठ पौण्ड प्रतिवर्षकी आमदनी करनेवालोँकी संख्या एक प्रान्तमेँ ३०००० है और दूसरे प्रान्तमेँ २०००० है। कुछ लोगोँका ऐसा अनुमान है कि युक्तप्रान्तकी आवादी चारसौ अस्सी लाख है जिसमेँ कुछ ऐसे ज़मीन्दार हैँ जिनकी ज़मीन्दारीकी वार्षिक आय वीस पौण्डसे अधिक है। यह निर्विवाद है कि जनसंख्याका अधिक भाग जीवनकी आवश्यकताओँके अतिरिक्त बहुत कम बचा पाता है। यह सत्य ही नहीँ, विल्कुल सत्य है। इसलिये यह भी एक दृढ़ कारण है कि वे अपने अधिकार एवं दायित्त्वका कम-से-कम कुछ अंश, भारतीयोँको प्रदान करेँ जिसका एकाधिकार गत सौ वर्षोँसे विना समुचित तरीक़े और विना सम्पादनकी अभिवृद्धि एवं धनका बँटवारा किए प्राप्त हैँ, उपर्य्युक्त दलीलके उत्तरमेँ यह कहा जाता है कि भारतमेँ राजनीतिक मामलोँमेँ दिलचस्पी रखनेवालोँकी संख्या बहुत ही अल्प है। इस वातपर ज़ोर देनेके वाद कि जो नगरनिवासी राजनीतिक प्रश्नोँसे दिलचस्पी रखते हैँ, सम्पूर्ण जनताके एक भाग हैँ, रिपोर्टमेँ लिखा गया है कि, "गाँवकी जनसंख्याके अधिकांश व्यक्ति निर्धन, मूर्ख, राजनीतिक विचारसे रहित और निर्वाचनकी किसी भी प्रथासे अनभ्यस्त हैँ और अपनेको वस्तुतः जीवन-संग्राममेँ व्यस्त रखते हैँ। देशमेँ गाँवके लोगोँकी ही प्रधानता है। यही सरकारको अधिकांश कर देते हैँ। परन्तु राजनीतिके लिये ये साधन ही नहीँ, वरन् इसमेँ भाग लेना भी नहीँ चाहते। इनमेँ कुछ बड़े ज़मीन्दार हैँ और अधिकतर खेतिहर हैँ। राजनीतिमेँ भाग लेनेकी क्षमता इनमेँ है, परन्तु कुछको छोड़कर अधिक लोगोँने इस ओर ध्यान नहीँ दिया है।" लेकिन प्रत्येक देशमेँ तथा इङ्गलैण्डमेँ भी जनताकी रुचि तवतक राजनीतिकी ओर नहीँ प्रवृत्त हुई जवतक उन्हेँ राजनीतिक शक्तिके उपयोग और मत प्रदान करनेका अधिकार नहीँ दिया गया। राजनीतिक अधिकार प्रदान करनेके अतिरिक्त और कौनसा दूसरा रास्ता है जिससे जनताकी रुचि राजनीतिकी ओर लाई जा सके?

"मताधिकारके लिये शिक्षाको आधार माननेके सम्वन्धमेँ, भारतीयोँको इसमेँ कोई भी आपत्ति न होगी कि निर्वाचनकी चाहे कोई भी प्रथा क्योँ न जारी की जाय, उसमेँ अन्य किसी योग्यताकी अपेक्षा शिक्षा-सम्वन्धी स्वीकृत उपाधि ही मतदाता होनेके लिये पर्य्याप्त है।" परन्तु मैँ यह व्यक्त किए विना नहीँ रह सकता कि भारतीय व्यवस्थात्मक सुधारके मार्गमेँ यहाँकी जनतामेँ शिक्षाके अभावकी वात व्यर्थ ही लाई गई है। हम लोग जानते हैँ कि आस्ट्रिया, जर्मनी और फ़्रान्सने वालिग़ होनेपर सार्वभौम मताधिकार देनेके सिद्धान्तको अपनाया है। वहाँ निर्वाचककी साधारण योग्यता यह है कि वह साधारणतया लिख और पढ़ सके। यही प्रथा इटली और अमेरिका आदि देशोँमेँ भी है। किन्तु वृटिश द्वीपसमूहमेँ आठ विश्वविद्यालयोँके अतिरिक्त शिक्षाके आधारपर मताधिकार कभी नहीँ रहा है। ऐसा कहा जाता है कि जहाँ कहीँ भी निर्वाचनकी व्यापक प्रथा प्रचलित है वहाँके मतदाताके लिये किसी निर्धारित रक़मका जागीरदार, पट्टेदार अथवा कुछ ख़ास वार्षिक आमदनीवाले मकानका मालिक होना आवश्यक है। डिज़रायलीने अपने सन् १८६७ के एवोर्टिव-रिफ़ोर्म विलमेँ इङ्गलैण्डके मताधिकारको शिक्षात्मक बनानेकी चेष्टा की थी।

हैन्सर्डमें लिखा है कि उस समय इङ्गलैण्डमें शिक्षा इतने पीछे थी कि उस योजनामें मताधिकारका आधार अल्प शिक्षा रक्खी गई और उस समय इङ्गलैण्डमें शिक्षाका प्रचार बहुत ही कम था, इसलिये बड़ी हँसी हुई। श्री ग्लैटस्टनकी सुधार-सम्बन्धी १८६८ वाली योजनामें उनकी १८३२ वाली योजनाके समान मताधिकारकी योग्यता धन ही रक्खा गया था। वहाँपर प्रारम्भिक शिक्षाका प्रस्ताव तो सन् १८७० में पास हुआ जब कि मज़दूरोंको मताधिकार मिल चुका था और अंग्रेज़ लोग कहने लगे थे कि हमें अपने मालिकोंको सुशिक्षित बनाना चाहिए। इस क़ानूनद्वारा प्रारम्भिक शिक्षाको व्यापक एवं अनिवार्य्य कर दिया गया। सन् १८६१ के 'ड्यूक औफ़ न्यू कैसिल' की रिपोर्टमें लिखा है कि इङ्गलैण्ड और वेल्सके अछात्रावासी विद्यार्थियोंकी अनुमानित संख्या सन् १८३३ में सवा ग्यारह पीछे एक थी। सन् १८६८ में भाषण करते हुए श्री ब्रूसने कहा था कि उस समय सात या आठ आदमियोंमें एक शिक्षित था। सन् १८७० में एलिमेण्टरी एजुकेशन विलको उपस्थित करते हुए श्री फ़ोर्स्टरने तत्कालीन स्थितिको वर्णन किया था कि लोगोंमें "अत्यन्त अपूर्ण शिक्षा और नितान्त अज्ञान था", वह "अज्ञान, जिसकी जानकारी हम सबको है, अपराध और दुःख, व्यक्तिगत विपत्ति तथा समाजके लिये भयसे युक्त था।" इस प्रकार हम १८६७-७० के इङ्गलैण्डकी अपेक्षा आज अधिक बुरे नहीं हैं। हम कनाडाकी उस दशासे भी बुरे नहीं हैं जब लौर्ड डरहमकी सिफ़ारिशसे कनाडामें बृटिश पार्लियामेण्टने दायित्त्वपूर्ण सरकारकी स्थापना की थी। लौर्ड डरहमने अपनी स्मरणीय रिपोर्टमें लिखा है कि जनतामें शिक्षाकी कमीका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन असम्भव है। उन्हें शिक्षाके लिये कभी किसी प्रकारका साधन दिया ही नहीं गया। वे सबके सब सामूहिक रूपसे लिखने और पढ़नेकी योग्यतासे वञ्चित रहे।" सन् १८६८ ई० की योजनाके सिद्धान्तपर हमें भी या तो एक सुधार विल उपस्थित करना चाहिए, या दायित्त्वपूर्ण सरकारकी स्थापनाके लिये कोई सारपूर्ण योजना तैयार करनी चाहिए। यदि हम लोग पहला काम नहीं कर सकते तो हमारा प्रत्यक्ष लक्ष्य शिक्षा-सम्बन्धी क़ानून स्थापित करना होना चाहिए। इस प्रकार हमारे देशसे अशिक्षाका कलङ्क दूर हो जायगा और क्रमशः हमारी पाठशालाओंमें विद्वानोंकी संख्या बढ़ सकेगी जिससे लगभग दस वर्षके भीतर ही हमारा देश अन्य उन्नत सभ्य देशोंकी बराबरी कर सकेगा।

जनतामें शिक्षा-सम्बन्धी कमीपर इतनी देरतक विचार कर चुकनेके पश्चात् इसमें इतना और जोड़ देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि यद्यपि अभीतक सरकारने इनके लिये शिक्षा-सम्बन्धी लाभ प्राप्त करनेकी कोई सुव्यवस्था नहीं प्रदान की है, किन्तु प्रकृति इनके प्रति इतनी निष्ठुर नहीं है। प्रकृतिने इन्हें पर्य्याप्त व्यवहार बुद्धि प्रदान की है। इनकी बुद्धि केवल जातीय पञ्चायत और सभाओं-तक सीमित नहीं है, वरन् अपने सम्बन्धकी प्रायः सभी बातोंमें ये पूर्ण जानकारी रखते हैं। अधिकांश जनता अपने लाभालाभका पूर्ण ज्ञान रखती है और उसके सम्बन्धमें शुद्ध और स्पष्ट निश्चय निर्धारित कर लेती है। इस प्रकारकी सभाओंकी संख्या ज़ोरोंसे बढ़ रही है। अभी गत फ़रवरी महीनेमें ही युक्तप्रान्तके किसानोंने प्रयागमें माघ-मेलेके अवसरपर अपनी एक सभा की थी। उसमें उन लोगोंने मौण्टेगू और बड़े लाटके पास अपना प्रतिनिधि इस अभिप्रायसे भेजनेका निश्चय किया था। वे क्या चाहते हैं और उनके हितकी रक्षा और अभिवृद्धि किस प्रकार हो सकती है? उन लोगोंने कुछ कहनेके लिये मुझे निमन्त्रित करके सम्मानित किया था। उस सुअवसरपर सचमुच प्रसन्नता हुई कि वे अपने हितकी एक-एक बात कितनी अच्छी तरह समझते और कितना अधिक

ध्यान देते हैं। मैं दावेके साथ कहता हूँ कि सम्पत्ति, अधिकार, और शिक्षाको छोड़कर यदि नैसर्गिक बुद्धिकी तुलना की जाय तो हमारे छोटी हैसियतवाले मालिक, किसान, गृहस्थ और मालगुज़ार लोग किसी भी अन्य देशके इसी श्रेणीके लोगोंसे बुरे नहीं ठहरेंगे। अन्तमें हमें यह कहना है कि साम्राज्यकी रक्षाके लिये युद्धऋण देनेमें उन्होंने जो तत्परता दिखाई है और दिखला रहे हैं और जैसे प्राणोंकी वलि चढ़ाई है उसे देखते हुए यह कहना कि वे किसी व्यवस्थापिका सभाके लिये अपने प्रतिनिधि, पञ्च या मुख़्तारका निर्वाचन करनेमें सर्वथा अनुपयुक्त हैं उनके साथ अन्याय करना और भूल करना है। सरकारी और ग़ैर-सरकारी कर्मचारियोंद्वारा पूरी लगनके साथ वारह महीनेतक उनको मत प्रदानके लिये शिक्षित बनाने और सङ्गठित करनेका प्रयत्न काफ़ी होगा। यह प्रयत्न वैसा ही होना चाहिए जैसा युद्धऋण संग्रह करने और फ़ौजमें रँगरूटोंकी भर्ती करनेमें किया जाता है। इस प्रकार उन्हें दिए जानेवाले किसी प्रकारके मताधिकारके प्रयोगके लिये उन्हें तैयार कर लेना यथेष्ट है।

निर्वाचकोंके प्रश्नपर विचार करते समय इसपर भी ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि मताधिकारको सव प्रकारसे विस्तृत रूप प्रदान करना सर्वथा अभीष्ट है तथापि इस सम्बन्धमें यह आपत्ति कभी मान्य नहीं हो सकती कि हमारे देशमें निर्वाचकोंकी संख्या उन देशोंकी अपेक्षा बहुत ही कम है, जहाँ निर्वाचन-प्रथा बहुत समयसे लाई जा रही है। यहाँपर इङ्गलैण्डके मताधिकारके क्रमिक विस्तारका ज़िक्र करना अनुचित न होगा। हमें पता है कि सन् १८३२ तक साधारण सभाके अधिकांश सदस्योंका निर्वाचन पन्द्रह हज़ारसे कम मतदाताओंद्वारा ही होता रहा है। स्कौटलैण्डमें, जहाँकी आबादी उस समय २३६०००० थी कुल ३००० ही निर्वाचक थे। सन् १८८४ में श्री ग्लैडस्टनके कथनानुसार सन् १८३२ ई० के सुधार-विलद्वारा जो बृटिश स्वाधीनताके आज्ञापत्र (मैगना कार्टा औफ़ बृटिश लिवर्टी) के नामसे विख्यात है, तीनों देशोंके निर्वाचन-क्षेत्रोंकी संख्यामें लगभग ५००००० की वृद्धि हुई। सन् १८३२ के वाद सन् १८६३ में दूसरा सुधार हुआ। उस समय अमेरिकाके निर्वाचन-क्षेत्रोंके निर्वाचकोंकी संख्या १३६४००० तक पहुँची और सन् १८६७-६९ में जो विल स्वीकृत हुए उनसे यह संख्या बढ़कर २४४८००० तक पहुँच गई। सन् १८८४ में निर्वाचन-क्षेत्रोंके निर्वाचकोंकी संख्या मोटे रूपमें ३०००००० हो गई। सन् १८८५ के क़ानूनके द्वारा लगभग २०००००० की वृद्धि हुई। अर्थात् सन् १८६७ की अपेक्षा यह संख्या दूनी और सन् १८३२ की अपेक्षा चौगुनी हो गई। निर्वाचन-सम्बन्धी इस सङ्क्षिप्त इतिहासमें हमारे लिये उत्साहवर्द्धन और पथ-प्रदर्शन दोनों ही हैं। शुद्ध उदार मताधिकारसे हमें निर्वाचन कार्य्यका आरम्भ करना चाहिए। प्रत्येक समझदार व्यक्ति इसकी सभी परिस्थितियोंको दृष्टिमें रखते हुए इसके क्षेत्रको सन्तोषप्रद समझेगा।

धार्मिक मतभेद

दूसरी 'प्रमुख शर्तके' सम्बन्धमें यह सत्य है कि भारतीय समाजका सङ्गठन एक विशाल जन-समुदायसे हुआ है, जिनके धर्म, वर्ण और जाति भिन्न-भिन्न हैं। किन्तु यह कथन मुझे अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है कि उक्त विभेद एकताका विघातक है। भारतके लोग संसारके अन्य देशोंके निवासियोंकी अपेक्षा अधिक राजभक्त हैं। धर्म, जाति और वर्णका विभेद, उनके सहनिवास और उनकी सहकारितामें विघातक नहीं है। वे परस्पर मित्रता रखते और पास पड़ोसमें बसते हैं और सार्वजनिक उन्नतिके लिये सङ्गठित भी होते हैं। समय-समयपर जो धार्मिक भावनाओंका विस्फोट हो जाता है, जिसकी निन्दा हम भारतीयोंसे बढ़कर दूसरा नहीं कर सकता, वह अज्ञानवश होता

है। इसे दूर करनेमें नौकरशाही असफल रही है। यह विदेशी शासन-प्रणालीका ही प्रतिफल है। इसका निराकरण तभी हो सकता है जब जनताके प्रतिनिधियोंको शासन-व्यवस्थामें समानाधिकार प्राप्त हो। श्री मौण्टेगू और लार्ड चेम्सफ़ोर्ड कहते हैं कि "सब कठिनाइयोंसे बढ़कर कठिनाई धार्मिक भेदका अस्तित्व है"। इन महानुभावोंके प्रति उचित सम्मानका भाव रखते हुए मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि इन लोगों ने इस कठिनाईके अतिशयोक्ति-पूर्ण पक्षका आश्रय लिया है। वे सन् १९१६ ई० के हिन्दू-मुसल्मानोंके लखनऊवाले समझौतेका प्रशंसात्मक उल्लेख करते हैं, परन्तु साथ ही पूछते हैं कि इसका निश्चय कैसे हो कि इन दो बड़ी जातियोंका पारस्परिक वैमनस्य एकदम दूर हो गया? यह स्पष्ट है कि उक्त निश्चय केवल समझौतेसे ही नहीं हो सकता, बल्कि वह उस उद्देशकी पूर्त्तिसे होगा जिसे पूर्ण करना उस समझौतेका ध्येय है, अर्थात् स्वराज्यकी प्राप्ति। यदि यह हो जाय तो शिक्षित हिन्दू और मुसल्मानोंमें प्रचुर मात्रामें शक्ति एवं दायित्व आ जाय। तब ये देशभक्ति और सार्वजनिक भावनाकी अभिवृद्धि करनेमें समर्थ होंगे। ये अपने देशवासियोंमें शिक्षा, व्यावसायिक एवं व्यापारिक उद्यमकी उन्नतिका प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार देशमें अधिक सहयोग, उन्नति और सद्भावनाके नवयुगका प्रवर्त्तन होगा। इस प्रकार धार्मिक विप्लव अतीतकी बात हो जायगी। श्री मौण्टेगू और लार्ड चेम्सफ़ोर्ड, लखनऊवाली एकताको अटूट नहीं मानते। उनका कथन है कि—

"हम लोगोंके विचारसे जबतक इन दोनों सम्प्रदायोंमें अपने हितके पृथकत्वकी वर्त्तमान धारणा बनी है तबतक हम धार्मिक वैमनस्यके पुनः सम्भावनाकी कल्पना करनेके लिये बाध्य हैं और इसे अभी भी बहुत ही सम्भाव्य मानते हैं। हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायोंका बहुसंख्यक अशिक्षित वर्ग कितनी जल्दी 'धर्मपर विपत्तिकी' आवाज़ सुनकर उत्तेजित हो जाता है। भारतके इतिहासमें इसकी कई बार आवृत्ति हुई है। गत वर्षका विवरण इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है"। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि इन धार्मिक दङ्गोंकी निन्दा भारतीयोंसे अधिक कोई अन्य नहीं कर सकता। किन्तु विशिष्ट लेखक-द्वय यह समझनेमें भूल करते हैं कि धार्मिक वैमनस्यके इन आकस्मिक दङ्गों और दोनों सम्प्रदायोंके हितोंके पृथकत्त्वमें कोई सम्बन्ध है। 'धर्मपर विपत्ति' की आवाज़पर उत्तेजित हो जानेकी प्रवृत्ति हिन्दू-मुसल्मानोंमें धार्मिक मतभेदके कारण नहीं बल्कि अज्ञानतावश है। यदि यह अज्ञान दूर हो जाय तो धार्मिक मतभेदके कारण होनेवाला हिन्दू-मुसल्मानोंका झगड़ा भी दूर हो जाय और इस कारणसे दङ्गे भी रुक जायँ। सम्मानित लेखक-द्वय भली भाँति जानते हैं कि अज्ञानताके कारण कैसे-कैसे भीषण काण्ड हो जाते हैं और यह बात इङ्गलैण्डवालोंको भी विदित है। मैं यहाँ इङ्गलैण्डकी साधारण सभामें १९ अप्रैल सन् १८४७ के दिए हुए लार्ड मैकोलेके भाषणको उद्धृत करता हूँ। सरकारद्वारा प्रस्तावित शिक्षाप्रणालीके पक्षमें बोलते हुए सन् १७८० ई० के "नो पौपरी" दङ्गोंका ज़िक्र करते हुए आपने कहा था कि—

"एडम स्मिथका कथन है कि निर्धनोंकी शिक्षा सार्वजनिक-सम्पत्तिसे गहरा सम्बन्ध रखती है। जिस प्रकार मैजिस्ट्रेटको यह अधिकार है कि वह जनतामें फैलते हुए कुष्ठ रोगका निवारण करनेका प्रबन्ध करे, उसी प्रकार उसका यह भी कर्त्तव्य है कि वह जनतामें आज्ञानतावश फैलते हुए असौजन्यके भावको भी रोकें। इस कर्त्तव्यकी अवहेलना करनेसे सार्वजनिक शान्तिमें अवश्य बाधा होगी। यदि आप समाजको अशिक्षित रहने देते हैं तो धार्मिक वैमनस्यके अधिक भयानक होने और महान् अव्यवस्था उत्पन्न होनेका बड़ा ख़तरा है।" "महान् अव्यवस्था", ये एडम स्मिथके निजी शब्द हैं। ये शब्द एक महापुरुषके थे। शासकवर्ग इसकी

सूचना मुश्किलसे दे पाए थे कि उनकी भविष्यवाणी पूर्ण हुई जो कभी भुलाई नहीं जा सकती । मैं सन् १७८० के "नो पोपरी दङ्गों" का ज़िक्र कर रहा हूँ। मैं नहीं समझता कि समस्त इतिहासमें इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण मिल सकता है। साधारण जनताकी अज्ञानतासे समस्त समाजकी सम्पत्ति, अङ्ग और जीवन अरक्षित दशामें है। कारण समझे विना ही एक पागलकी सूचना पाकर लाखों मनुष्य विद्रोहके लिये तैयार हो जाते हैं। सप्ताहभर योरोपके सुसम्पन्न और बड़े शहरोंमें अराजकता रही। पार्लियामेण्टको भी वलवाइयोंने घेर लिया था। आपके पूर्वज कुर्सीपर वैठे काँप रहे थे और प्रत्येक क्षण ऐसा अनुभव करते थे कि अब वलवाई दरवाज़ा तोड़कर अन्दर घुस आए। उनका शोर कमरेके वाहर चारों ओर सुनाई पड़ रहा था। रईस लोग गाड़ियोंसे खींचकर नीचे गिरा दिए जाते थे। अपनी वाटिकाओंमें बैठे हुए पादरी लोग खपड़ैलोंपर चढ़कर भागनेके लिये वाध्य किए गए थे। राष्ट्रीय विधानोंद्वारा सुरक्षित माने हुए विदेशी दूतोंके गिरजाघर तथा दूतावास नष्ट कर दिए गए। चीफ़ जस्टिसका घर ज़मीनमें मिला दिया गया। प्रधान मन्त्रीके दुधमुँहे वच्चे रातकी पोशाक पहने पलङ्गसे उठाकर अश्वरक्षकोंकी मेजपर सुलाए गए, क्योंकि वही एक ऐसा स्थान था जहाँ उत्पातसे रक्षा हो सकती थी। जेलखानेका फाटक तोड़ डाला गया। लुटेरे और हत्यारे उस हल्लेमें शामिल हो गए। लण्डनमें एकसाथ छत्तीस घरोंमेंसे आगकी लपटें निकल रही थीं। अब प्रतिहिंसाकी वारी आई। उन अभागोंकी गणना कीजिए, जिन्हें गोली मार दी गई, जो फाँसीपर लटका दिए गए, जो कुचल डाले गए, जिन्होंने स्वयं हालवौर्न पहाड़ीके निकट वहनेवाली सरिताओंमें डूबकर आत्महत्या कर ली, तव आप देखेंगे कि युद्धमें जय और पराजय अपेक्षाकृत कम जानें गँवाकर मिलती रही हैं। इस विपद्का कारण क्या था जो लन्दनके इतिहासमें महामारीके समकक्ष मानी जाती है। इस विपद्का कारण जनताका अज्ञान था, जिसके फलस्वरूप, प्रासादों, नाट्यगृहों और मन्दिरोंमें रहनेवाले उत्पीड़ित हुए थे। यह वर्वरता न्यूज़ीलैण्डके नरभक्षक जङ्गलियोंकीसी क्रूरता और पिशाचताको पहुँच गई है। मैं कह सकता हूँ कि यह वर्वरता स्मिथफ़ील्डके वाज़ारमें खदेड़े जानेवाले पशुओंके साथ की जानेवाली निर्दयताके सदृश थी।

"दृष्टान्त अवश्य विस्मयकारी है, पर यही एकमात्र दृष्टान्त नहीं है। इस प्रकारके कारण निम्नलिखित विप्लवोंके सम्वन्धमें हैं—नाटिङ्गमके दङ्गे, बृष्टलकी लूटपाट, स्विङ्ग और रिवेकाके सभी उपद्रव, यौर्कशायरकी सुन्दर और वहुमूल्य मशीनोंकी तोड़-फोड़, केण्टके खलिहानों और सूखी घासोंका भस्म होना और वेल्सके प्राचीरों और इमारतोंका धराशायी होना। क्या ये वातें ऐसे देशोंमें नहीं हुई हैं जहाँके मज़दूरोंका मस्तिष्क शिक्षासे विकसित हो चुका है, जहाँ उन्हें स्ववुद्धिके प्रयोगमें आनन्दानुभव करना सिखाया जाता है, जहाँ उन्हें विश्वस्रष्टाका सम्मान करनेकी शिक्षा दी जाती है, जहाँ उन्हें न्यायोचित अधिकारके आदर करनेकी शिक्षा दी जाती है और जहाँ उन्हें उचित कष्टोंके सुधारके लिये शान्तिमय और वैध उपायोंका आश्रय लेनेकी शिक्षा दी जाती है ?"

मेरी धारणा है कि विद्वान् लेखकोंने दङ्गेके उचित कारणोंका पता लगानेमें ही ग़लती की है, वल्कि उन्होंने इस वातका भी विचार नहीं किया कि अभाग्यवश भारतमें कुछ ऐसे अंग्रेज़ कर्मचारी भी हैं जिन्हें धार्मिक भेदभाव प्रतिफलित होते देखकर प्रसन्नता होती है। केवल हिन्दू-मुसलमानोंके परस्पर वैमनस्यमें ही नहीं वल्कि मुसलमानोंके विभिन्न सम्प्रदायोंके वैमनस्यमें भी इन्हें वड़ा मज़ा आता है। ऐसे लोग सर जौन स्ट्रैचीके समान विचारवाले हैं। उनका कहना है कि "देशमें द्वेषपूर्ण सम्प्रदायोंका रहना हम लोगोंकी राजनीतिक स्थितिके

लिये एक प्रबल कारण है ।” कोमिल्ला और जमालपुरके दङ्गोंकी दुःखद कथाओंको दुहराना ठीक नहीं है, किन्तु इस प्रकारके विवादमें उन घटनाओंका उल्लेख करना ही पड़ता है। इस सम्बन्धमें इस बातपर ध्यान देना आवश्यक है कि भारतीय रियासतोंमें हिन्दू-मुस्लिम दङ्गे बहुत कम होते हैं। यही नहीं बल्कि बृटिश भारतमें भी जो ज़िले हिन्दू या मुसलमान ज़िलाधीशों अथवा सुपरिण्टेण्डेण्टोंके अधीन हैं वे इस तनाव और आशङ्काके समय भी शान्त रहते हैं। किन्तु जिन ज़िलोंमें अधिकांश अंग्रेज़ कर्मचारी हैं वहाँ ऐसे दङ्गे प्रायः होते ही रहते हैं।

यहाँ यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि केवल भारत ही एक देश नहीं है जहाँ धार्मिक मतभेद पाया जाता हो। इङ्गलैण्ड भी इस मतभेदसे अछूता नहीं है। इङ्गलैण्डका इतिहास प्रोटेस्टेण्ट और रोमन कैथोलिक सम्प्रदायोंके पारस्परिक विद्वेष और लज्जाजनक घटनाओंसे भरा पड़ा है। प्रोटेस्टेण्टोंने कैथोलिकोंको बहुत समयतक पददलित किया था। आयरलैण्डके लिये तो यह बिल्कुल ताज़ी बात है। कैथोलिकोंके लिये लौर्डसभा, साधारण सभा, मजिस्ट्रेटपद, नगरके दफ़्तर, सेना, वकालत, न्यायाधीशपद, सरकारी विभाग, शासन विभाग, सभीके दरवाज़े बन्द थे। उनको पार्लियामेण्टमें अपने प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार भी प्राप्त नहीं था। सभी सामाजिक और राजनीतिक मामलोंमें आयरलैण्डके कैथोलिक बहुत संख्यामें अपने प्रोटेस्टेण्ट स्वामियोंके लिये लकड़ी काटते और पानी खींचकर देते थे।

“कैथोलिक इमैन्सिपेशन बिल” विधानके द्वारा रोमन कैथोलिकोंको पार्लियामेण्टमें प्रवेश करनेकी अनुमति मिली और सभी सरकारी विभागों (दीवानी और फ़ौजदारी) के कुछ उच्च पदोंको छोड़कर ये पद पानेके अधिकारी माने गए। यह विधान १८२९ में निश्चय हुआ। आयरलैण्डमें चर्चको स्थापित न करनेका बिल अभी सन् १८६९ में स्वीकृत हुआ है। किन्तु इससे प्रगट होता है कि उस समयके प्रोटेस्टेण्टोंमें धार्मिक सहिष्णुता बहुत बढ़ चुकी थी। कैथोलिक-उद्धार-विधान (कैथोलिक इमैन्सिपेशन बिल) पार्लियामेण्टमें उस समय पास हुआ था जिस समय पार्लियामेण्टमें एक भी कैथोलिक सदस्य नहीं था। यह प्रतिनिधि-सत्तात्मक संस्थाओंके उदारात्मक प्रभावका सुन्दर उदाहरण है। जहाँपर ऐसी संस्थाएँ हैं वहाँकी जनतापर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा है। ईश्वरको धन्यवाद है कि इङ्गलैण्डमें प्रोटेस्टेण्टों और रोमन कैथोलिकोंके वैमनस्यकी अपेक्षा भारतके हिन्दू और मुसलमान कुछ परिमित कालों और क्षेत्रोंको छोड़कर अधिक सुखी रहे हैं।

इस विशाल देशमें हिन्दू और मुसलमान शताब्दियों तक पड़ोसीकी तरह, एक दूसरेका विश्वास करते हुए और एक दूसरेके साथ अत्यन्त घनिष्ठ और आत्मीय, सामाजिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करते हुए रहे। धार्मिक वैमनस्यके विस्फोट किसी-किसी स्थानमें कभी-कभी हुए हैं, किन्तु उनकी तत्काल शान्ति भी हो गई है।

गत वर्ष कुछ स्थानोंमें जो दुर्घटनाएँ हुईं उनके फैलने और पैदा होनेका कुल दोष जनताने खुल्लमखुल्ला अधिकारियोंके सिर मढ़ा है। राजधानी दिल्लीके हिन्दुओंने जो “रामलीला” करना अस्वीकार कर दिया उसका कारण हिन्दू और मुसलमानोंका परस्पर वैमनस्य नहीं था, बल्कि स्थानीय अधिकारी ही इसके दोषी थे। अधिकारियोंके हठ और उनके कठोर व्यवहारके कारण दिल्लीके समस्त हिन्दुओंने अपने विशाल कारबारको ग्यारह दिनतक लगातार बन्द रक्खा और इसके कारण बड़ा नुक़सान उठाया। किन्तु यह सब होते हुए भी हिन्दुओं और मुसलमानोंमें शान्ति बनी रही। समस्त देशमें अधिकारियों और जनताके व्यवहारमें कोई शिकायत नहीं हुई। बहुतसे स्थानोंमें विशेष-

कर लाहौरमेँ हिन्दू और मुसलमानोँने अपने-अपने त्यौहार शान्तिपूर्वक मनानेमेँ हार्दिक सद्भावनाके साथ एक दूसरेके साथ सहयोग किया।

इस विषयको समाप्त करनेके पूर्व मैँ कहना चाहता हूँ कि हम लोगोँके धार्मिक मतभेदके कारण जो कठिनाई उपस्थित होती है वह उस कठिनाईसे कहीँ कम भयानक है जो कि सन् १८३७ मेँ कनाडाके दो विभिन्न प्रान्तोँ मेँ अंग्रेज़ोँ और फ़्रान्सीसियोँके परस्पर वैमनस्यसे उत्पन्न हुई थी। उस समय सर जेम्स क्रेगने लिखा था कि हम लोगोँमेँ भेदकी रेखा स्पष्ट रूपसे खिँच गई है, हममेँ मित्रता और सहयोगिताका अभाव है; यहाँतक कि परस्पर आलाप-संलाप भी नहीँके बराबर रह गया है। लौर्ड डरहमने कैनाडाके लिये दायित्त्वपूर्ण सरकारकी स्थापनाके लिये सिफ़ारिश करनेवाली प्रसिद्ध रिपोर्टमेँ कहा है कि "मैँने एक राज्यके अन्तर्गत दो राष्ट्रोँको तलवार खीँचे देखा। मैँने सिद्धान्तका युद्ध नहीँ बल्कि जातिगत युद्धका साक्षात्कार किया"। यह सन्तोषकी वात है कि वहाँके दो वड़ी जातियोँमेँ व्यापक और गहरा वैमनस्य होते हुए भी दायित्त्वपूर्ण सरकारकी स्थापनामेँ कोई वाधा नहीँ हो सकती। किन्तु इस वैमनस्यको दूर करनेके लिये यह अचूक और प्रभावशाली उपाय होगा। दायित्त्वपूर्ण सरकारकी स्थापनाका यह कारण भी है। इसके बादकी घटनाएँ उस निर्णयकी बुद्धिमत्ताका समर्थन करती हैँ। इस घटनासे पता चलता है कि स्वायत्तशासनका अधिकार यदि दोनोँ सम्प्रदायोँके नेताओँको सौँप दिया जाय तो इससे धार्मिक मतभेद बन्द हो जायँगे तथा अनिष्ट घटनाओँका होना रुक जायगा।

जनताका हित।

नौकरशाही तथा शिक्षित भारत

रिपोर्टमेँ इस बातपर बड़ा गर्व किया गया है कि सरकारी कर्मचारी अभीतक भी रैयतोँके सर्वश्रेष्ठ मित्र रहे हैँ। अतः जनताकी रक्षाके लिये इनके हाथमेँ तवतक शक्ति देना आवश्यक है जवतक यह स्पष्ट न हो जाय कि उनका हित उनके हाथोँमेँ निर्विघ्न दिया जा सकता है अथवा व्यवस्थापिका सभा उनका प्रतिनिधित्त्व करे और उनके हितोँका विचार करे। यही वात दलितवर्गके सम्वन्धमेँ भी है। रैयत और दलितवर्गके हितोँकी रक्षाके लिये सरकारी कर्मचारियोँके सचेष्ट रहनेके अधिकारमेँ किसीको विवाद न होगा। किन्तु यह दावा अति अल्प मात्रामेँ सकारा जा सकता है कि अभीतक नौकरशाही ही इन वर्गोँकी सर्वश्रेष्ठ मित्र रही है। इसपर विचारकी भी आवश्यकता है। इस वातसे इसपर विचार करना और भी आवश्यक हो गया है कि रिपोर्टमेँ वर्णन आया है कि "उन्नतिकी सम्भावना इस वातपर अधिक निर्भर है कि शिक्षित भारतीय अशिक्षित वर्गके प्रति किस अंशतक सहानुभूति प्रदर्शित करने और उचित रूपसे उनका प्रतिनिधित्त्व करनेकी योग्यता रखता है। हमको यह भी स्मरण दिलाया गया है कि कुछ लोगोँके विचारसे देशके साधारण वर्गसे यहाँके राजनीतिक विचारवाले लोग वहुत ऊँचे हैँ और साधारण जनतासे विलकुल पृथक् रहते हैँ। प्रस्तावोँके विशिष्ट लेखक-द्वयने देशके शिक्षित वर्गसे वहुत ही करुण विनति की है कि "यदि शिक्षित वर्ग इससे कुपित होँ कि अभीतक इन्होँने अपने ही पदोँकी रक्षा की है और देशके मज़दूर और खेतिहर वर्गके प्रति अपर्य्याप्त लगन प्रदर्शित की है तो अब उन लोगोँके लिये अवसर उपस्थित है कि वे अपनेको इस आक्षेपसे मुक्त करेँ और समस्त जनताके नेताके रूपमेँ मैदानमेँ आवेँ। कई प्रस्ताव तो नौकरशाहीके हाथमेँ तवतक अधिकार देने और शिक्षित भारतीयोँको न देनेके समर्थक हैँ जवतक मज़दूर और किसान आत्मरक्षाका पाठ नहीँ सीख लेते। जान पड़ता है कि इसका आधार यही भावना है कि नौकरशाही सरकार जनताकी अधिक

हितचिन्तक है। अतः इस प्रश्नपर सङ्क्षेपमें विचार करना आवश्यक हो गया है।

बृटिश शासनके आरम्भमें सरकारी कर्मचारियों ने शान्ति और व्यवस्था स्थापित करके, धन और जनकी रक्षा करके, देशको अमूल्य व्यवस्थात्मक विधान प्रदान करके, शासनमें दीवानी, फ़ौजदारी विभागका आयोजन करके और साथ ही पुलिस और मालगुज़ारी विभाग क़ायम करके, सिंचाईके साधन देकर, चिट्ठी पत्री भेजनेके वर्त्तमान साधनोंमें उन्नति और नये साधनोंकी स्थापना करके, स्कूल और अस्पतालोंका भी पर्य्याप्त विस्तार करके प्रजाके लिये वहुत कुछ किया। सरकारने ज़मीनके अधिकांश मालिकोंको उनकी भूमिका अधिकार सौंप दिया। देशकी प्राचीन प्रथाके अनुरूप ही इस सम्बन्धमें क़ानून भी बनवाए कि जबतक ये लगान न दें तबतक ज़मीनके मालिक बने रहें और क़ानूनके अनुसार जबतक ये बेदख़लीसे अपनी रक्षा कर सकें और बढ़ा हुआ लगान देते रहें तबतक ये भूस्वामी बने रहें। प्रजाके लिये और इससे अधिक जो उन्होंने किया उसके लिये वे सव प्रकारके सम्मान और कृतज्ञताके पात्र हैं। परन्तु नौकरशाहीमें जितने सच्चे और भले व्यक्ति हैं उनमेंसे प्रत्येकसे मैं पूछता हूँ कि जिनकी संख्या अल्प नहीं है "कि क्या वे सच बतला सकते हैं कि जिस शासन पद्धतिके वे प्रतिनिधि हैं उस पद्धतिने प्रजाके मज़दूरों और साधारण वर्गके हितकी क्या पर्य्याप्त अभिवृद्धि की है?" जो रिपोर्ट मेरे सामने है वह इस बातकी साक्षी है कि इस पद्धतिने उन्नतिमें कुछ भी सहायता नहीं की है। सन् १८७८-७९ के भयङ्कर अकालके वाद जो कमीशन नियुक्त हुआ था उसने इस बातकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि जनताका अधिकांश भाग भयङ्कर दरिद्रताका शिकार है। अकालके समय जिन कष्टोंके ये शिकार हुए हैं उसके लिये कोई उपचार तबतक पर्य्याप्त नहीं हो सकता जबतक इनके लिये औद्योगिक व्यवसायकी उन्नतिके साथ पृथक् व्यवसायकी व्यसस्था न की जाय। अभीतक इसके लिये उल्लेखनीय कार्य्य वहुत ही थोड़ा हुआ है। अधिकांश प्रजा अब भी दरिद्रतामें निमग्न है। वे अभी भी अज्ञानके गर्तमें हैं। सन् १८८४ के शिक्षा-कमीशनने सार्वभौम प्रारम्भिक शिक्षाके विस्तारके लिये सिफ़ारिश की है। किन्तु यह जानकर दुःख होता है कि तैंतीस वर्ष बीत चुकनेपर भी हम इसकी आवश्यकताका अनुभव करते हैं। जहाँतक दलित श्रेणीसे इस प्रश्नका सम्बन्ध है वह विशेषतः उनकी शिक्षासे है। यदि शिक्षाका लाभ उनके लिये भी होता तो आज इनकी स्थितिमें बड़ी उन्नति हुई होती। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। मृत्युसंख्याका बहुत अनुपात बता रहा है कि यहाँके निवासियोंका स्वास्थ्य गिरा हुआ है। स्वास्थ्य और ओषधि-सम्बन्धी सुविधाएँ इतनी जनसंख्याकी आवश्यकताके लिये अपर्य्याप्त हैं। व्यावसायिक शिक्षाकी उन्नति नहीं हुई है। उद्योग-धन्धोंको प्रोत्साहन नहीं मिला है। दीवानी और फ़ौजी विभागमें भारतीयोंको अल्पसंख्यामें ही उच्च पद प्राप्त हैं। सार्वजनिक व्ययमें कमी नहीं हुई है उलटे वह अत्यन्त विस्तृत रूपसे बढ़ रहा है। इतने समयतक नौकरशाहीके ही हाथमें शक्ति रही है। जिस कार्य्यको सरकारने उचित समझा उन सब कार्य्योंके लिये उसको रुपया मिल गया, किन्तु प्रजाके कल्याण-सम्बन्धी कार्य्यके लिये सरकारने सदा रुपयोंकी कमी बतलाई है।

अब यह देखना है कि इस अवधिमें शिक्षित भारतीय क्या करते रहे हैं? सन् १८८५ से बराबर प्रतिवर्ष ये कांग्रेसमें व्यक्तिगत हानि उठाकर भी सम्मिलित होते रहे हैं और बड़ी लगनसे नौकरशाहीके विरुद्ध प्रस्तावपर प्रस्ताव पास करके ग्रामीण जनताकी दशा एवं सर्वसाधारणकी उन्नतिके लिये ज़ोर देते रहे हैं। गत तैंतीस वर्षोंमें कांग्रेसने जो प्रस्ताव पास किए हैं उनपर एक सरसरी दृष्टि डालनेसे प्रत्यक्ष हो जायगा कि शिक्षित भारतीयोंका देशकी

जनताके प्रति क्या व्यवहार रहा है? सन् १८८६ ई० मेँ कांग्रेसने अपने निर्णयमेँ कहा था कि "भारतीय जनताके वहुसंख्यक वर्गकी बढ़ती हुई दरिद्रतासे कांग्रेसकी गहरी सहानुभूति है। वह इस दशाको गम्भीर आशङ्काकी दृष्टिसे देखती है, और प्रतिनिधि-सत्तात्मक व्यवस्थाकी स्थापनाके लिये सिफ़ारिश करती है।" "जनताकी वर्त्तमान दशाको उन्नत करनेके लिये कांग्रेस इसको अत्यन्त आवश्यक और व्यवहार्य्य उपक्रम मानती है।" सन् १८८७ ई० मेँ कांग्रेसने सिफ़ारिश की थी कि, "देशकी निर्धनताको दृष्टिमेँ रखते हुए यह अभीष्ट है कि सरकार व्यावसायिक शिक्षाका विस्तार करे, जो कि देशकी परिस्थितिके अनुकूल हो और जिससे स्वदेशी शिल्प-व्यवसायको प्रोत्साहन मिले।" सन् १८८८ ई० मेँ कांग्रेसने सिफ़ारिश की थी कि भारत-सरकारका प्रथम कर्त्तव्य था कि वह "सभी विभागोँमेँ साधारण और शिल्पकला-सम्बन्धी शिक्षाका पोषण करे और उसे प्रोत्साहन दे।" पुनः प्रजाकी दरिद्रताकी दृष्टिसे स्वदेशी शिल्पके प्रोत्साहनके लिये कांग्रेसने ज़ोर दिया था और देशकी व्यावसायिक दशाकी जाँचके लिये एक कमीशन नियुक्त करनेकी प्रार्थना की थी। सन् १८९१ ई० मेँ जनरल बूथके एक तारके जवाबमेँ कांग्रेसने कहा था कि पाँच-छः करोड़ अर्द्ध-बुभुक्षित अनाथोँकी करुण दशा इसके अस्तित्वके प्रधान कारण हैँ। कांग्रेसने बार-बार अपने निर्णयोँद्वारा सरकारपर ज़ोर दिया है कि, "भारतका तबतक सुशासन और उचित शासन नहीँ हो सकता, और न इसके निवासी तबतक उन्नति कर सकते हैँ तथा सन्तुष्ट हो सकते हैँ, जबतक इसको अपने निर्वाचित प्रतिनिधियोँद्वारा देशकी व्यवस्थापिका सभामेँ प्रबल मत स्थापित करनेका अवसर नहीँ मिलता।" इस भयङ्कर दशाको सुधारनेके लिये अनेक न्यूनीकरण और वृद्धीकरणके प्रस्ताव पास किए गए हैँ। लगातार कई वर्षोँतक कांग्रेसने नमक-करमेँ कमी करने और पाँच सौसे हटाकर एक हज़ारकी आयपर कर लगानेको प्रार्थना की थी। इसके वहुत दिनोँके वाद सरकारने ये क़ानून वनाए। कांग्रेसने मादक द्रव्य-निषेधके सिद्धान्तको अधिक व्यापक वनानेके लिये भी अथक प्रयत्न किया और ग़रीवोँके दरवाज़ोँ अर्थात् गाँवोँसे मादक द्रव्यके प्रलोभनको दूर रखनेका उद्योग किया था। कांग्रेसने जङ्गल-सम्वन्धी क़ानूनमेँ सुधार करनेकी, वेगार और रसद लेनेकी प्रथाको उठा देनेकी सिफ़ारिश की थी। प्रतिज्ञावद्ध मज़दूरी प्रथाके विरोधमेँ, उपनिवेशोँमेँ भारतीयोँके प्रति सद्व्यवहार आदिके लिये तथा दलित वर्गके हितके लिये ही कांग्रेसने आन्दोलन तथा प्रस्ताव किए थे। कृषि-सम्वन्धी उन्नतिके लिये भी कांग्रेसने सरकारसे ज़मीनकी मालगुज़ारीका परिमाण निर्धारित करने और सव जगह दमामी वन्दोवस्तका प्रवन्ध करनेके लिये सिफ़ारिशकी थी। कांग्रेसने सहायक वैङ्कोँकी स्थापना, अन्य देशोँके समान खेतीकी वृद्धि और उन्नतिके लिये व्यवस्था करने तथा देशभरमेँ प्रदर्शनात्मक और प्रयोगात्मक क्षेत्रोँकी प्रचुर मात्रामेँ स्थापना करने आदिकी सिफ़ारिश की थी। कांग्रेसने वार-वार सिफ़ारिश की है कि प्रतिवर्ष जो पूरे पाँच करोड़की आवादी वढ़ रही है, इनकी दशा वहुत ही वुरी है और प्रायः सभी भूखोँके समान हैँ, जिनमेँसे हर दस वर्षमेँ करोड़ोँ भारतीय भूखसे शरीर त्याग करते हैँ। कांग्रेसने विनीत सिफ़ारिश की है कि इस विपत्ति कालके उपचारके लिये तात्कालिक व्यवस्था होनी चाहिए। जव सन् १८९६ ई० का अकाल पड़ा था तव कांग्रेसने फिर प्रजाकी भयङ्कर दरिद्रताकी ओर सरकारका ध्यान आकर्षित किया था और फिर इस वातपर ज़ोर दिया था कि इस बिपदाकी आवृत्तिके निराकरणके लिये विधानमेँ उचित उपायोँका स्पष्ट उल्लेख हो जाना चाहिए, जिससे कि मितव्ययिताका प्रचार हो, राज्यकोपका मितव्यय हो, स्थानीय लुप्त कला, व्यवसाय और स्वदेशी वस्तुओँकी उन्नति तथा नवीन कला और व्यवसायका भी आरम्भ हो।

इस सूचीको अधिक बढ़ाना अनावश्यक है और कांग्रेसके इसी प्रकारके अन्य प्रस्तावोंकी उद्धरणी भी व्यर्थ है। मैं आशा करता हूँ कि इतना वर्णन ही यह सिद्ध करनेके लिये पर्य्याप्त है कि भारतीय शिक्षित वर्ग कितनी लगन, तत्परता एवं सहृदयताके साथ एक पीढ़ीसे निरन्तर देशके दरिद्र भाइयोंकी दशा सुधारनेके लिये प्रार्थना करता रहा है। प्रान्तीय सभाएँ, साम्प्रदायिक सम्मेलम, राज्यपरिषद् और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभातककी कार्य्यवाही देखनेसे यही प्रमाण मिलेगा। किन्तु विस्तारपूर्वक उनके उद्धरण देना व्यर्थ है। मैं समझता हूँ कि शिक्षित भारतीय वर्ग भली प्रकारसे यह दावा कर सकता है कि वह अपने सरकारी कर्मचारी भाइयोंके बराबर ही अशिक्षित वर्गके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने और उनका प्रतिनिधित्त्व करनेकी योग्यता रखता है।

जापानकी उन्नति

यह बड़े दुःखकी बात है कि बृटिश निर्वाचक और उसकी उत्तरदायी प्रतिनिधि नौकरशाहीने, जो इतने समयतक एकमात्र शक्तिकी अधिकारिणी रही है, शिक्षित भारतीयोंकी प्रार्थनाओंपर बहुत कम ध्यान दिया है। इतने ही कालमें जापानने बहुत उन्नति कर ली है, जो भारतकी अपेक्षा साधनों और शासन-सम्बन्धी सङ्गठनके विचारसे आधेके भी बराबर नहीं है। जापानियोंने अपने देशमें शिक्षाको सार्वभौम बना दिया है। देशके नौजवानोंको ऐसी वैज्ञानिक और शिल्प-सम्बन्धी शिक्षा दी गई है कि वे प्रत्येक विभागमें सफलतापूर्वक काम करनेके योग्य हो गए हैं। एक सभ्य देशके योग्य दीवानी, फ़ौज़ी और नौ-सम्बन्धी शिक्षा उन्हें दी गई है। उन्होंने अपने व्यवसायकी उन्नति की है, शिल्पका निर्माण किया है, राष्ट्रीय बैङ्क और लेनदेनकी प्रथामें उन्नति की है। देशकी प्रजाकी उन्नति और उनके बलकी भी वृद्धि हुई है। अपने देशको संसारकी शक्तिशाली जातियोंमें स्थान पानेके योग्य बनाया है। इसके शिल्प योरोप और भारतमें सर्वत्र व्याप्त हैं। उनके जहाज़ अपना ही माल लाते और ले जाते हैं। वर्त्तमान परिस्थितिमें उसकी मैत्री बृटिश सरकारके लिये बड़ी सहायक सिद्ध हुई है। शिक्षित भारतीय इस बातका अनुभव करते हैं कि यदि बृटिश निर्वाचकों और पार्लियामेण्टने सन् १८८६ ई० में भारतीयोंकी माँगोंको स्वीकार कर लिया होता और इन्हें भी राज्यशक्ति प्राप्त हो गई होती तो इन लोगोंने भी इसी प्रकारकी उन्नति कर ली होती। स्वभावतः ये उत्सुक हैं कि वर्त्तमानमें और आगे भी अधिकार प्रदान करनेका क्रम रुकना न चाहिए। गत तैंतीस वर्षोंमें भारतीय प्रजाकी राष्ट्रीय शक्ति और उन्नतिकी प्रगति जिस कोटितक पहुँच जानी चाहिए थी, उसके लिये नौकरशाही असफल रही है। शिक्षित भारतीयोंके लगातार निवेदन करते रहनेपर भी नौकरशाहीने बहुत ही अल्प उन्नतिके लिये चेष्टा की है। अतएव शिक्षित वर्गकी यह व्यापक धारणा हो गई है कि जबतक उन्नतिके लिये भारतीयोंको अधिकार नहीं मिलते तबतक देशकी वास्तविक उन्नति अनिश्चित ही है। सन् १९१४ ई० में भी यही बात थी। गत चार वर्षोंके घटनाचक्रने इसकी आवश्यकताको और भी अधिक गम्भीर बना दिया है।

युद्धका प्रभाव

युद्धके पहले भारतीय लोग देशके प्रबन्धमें अपने जन्म-सिद्ध अधिकार और न्यायके आधारपर अधिकार पानेका दावा करते थे। उसका समर्थन भी बृटिश शासक और पार्लियामेण्टकी प्रतिज्ञाओंसे होता था। युद्धमें भारतीयोंने जो सहायता की इससे उनके जन्म-सिद्ध अधिकार पानेकी भावनाको नई स्फूर्ति मिली। लौर्ड हार्डिञ्जका भारत सदा कृतज्ञ रहेगा कि उन्होंने भारतीय सेनाको विदेशमें इङ्गलैण्ड और फ्रान्सकी स्वतन्त्रता, अधिकार और न्यायके महा युद्धमें सहायता प्रदान करनेका अवसर दिया। भारतको इस बातका गर्व है कि भारतीय जनता और भारतीय

नरेशोंने बृटिश साम्राज्यको महान् राष्ट्र विप्लवके अवसरपर उचित और पर्य्याप्त सहायता दी। यह बात सबने मानी है कि भारतीयोंकी शक्तिशाली और सामयिक सहायता प्राप्त हो जानेसे फ्रान्सको विजय प्राप्त हुई नहीं तो सन् १९१४ के अन्तमें फ्रान्सके लिये युद्धका परिणाम कुछ और ही हुआ होता। यह भी निर्विवाद है कि यदि भारतने उस समय सहायता न दी होती तो बृटेनकी बड़ी बदनामी होती। इस सफलताकी दृष्टिसे हम भारतीय पूछते हैं कि इङ्गलैण्डके पास अब क्या कारण है कि वह कनाडा, औस्ट्रेलिया तथा अन्य स्वायत्त शासनवाले बृटिश उपनिवेशोंके समान भारतको अपने घरेलू प्रवन्धके लिये कुछ भी अधिकार प्रदान करनेकी अनुमति नहीं देता। श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने भारतपर महायुद्धके प्रभावका पूरा विवरण दिया है। उन लोगोंने निष्कर्ष निकाला है कि, "महायुद्धने भारतको आत्म-सम्मानके लिये नूतन भाव प्रदान किया है।" सर सत्येन्द्रनाथ वसुके शब्दोंमें "भारतको इस बातका गर्व है कि बृटिश साम्राज्यके अन्य देशोंकी अपेक्षा वह पीछे नहीं रहा है, किन्तु परीक्षाके अति दारुण अवसरपर इसने अन्य देशोंके साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर साथ दिया है। भारत इसका अनुभव करता है कि उसकी परीक्षा हुई और उस परीक्षामें वह सफल रहा। इस परीक्षासे भारतका पद ऊँचा उठ गया है और अब भारत इसका अधिकारी है कि बृटेन उसके उच्च पदको स्वीकार करे और साथ ही समस्त संसार भी इसकी स्वीकृति दे।" आगे चलकर उन लोगोंने इसका भी उल्लेख किया है कि, "अब यह बात क्रमशः स्पष्ट हो रही है कि युद्ध स्वैर शासन और स्वतन्त्र शासनके बीचका संग्राम है, छोटे राष्ट्रोंके अधिकारका संग्राम है और मनुष्यमात्रको अपने राष्ट्रका स्वतन्त्र शासन करनेका संग्राम है। बार-बार इस बातकी ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है कि योरोपमें बृटेन स्वतन्त्रताके लिये लड़ रहा है और यह भी कहा गया है कि बृटेन भारतके लिये वह अधिकार देना अस्वीकार नहीं कर सकता, जिसके लिये वह स्वयं योरोपमें लड़ रहा है और जिसके युद्धमें भारतने धन और जनसे उसकी सहायता की है। अमेरिका और इङ्गलैण्डके नेताओंने जर्मनीके सैन्यवलको नष्ट करनेके लिये और प्रत्येक राष्ट्रको आत्मनिर्णयके अधिकार देनेके विषयमें जो भाषण दिए हैं, उनसे भारतके राजनीतिक विचारोंपर भारी प्रभाव पड़ा है और इससे उनमें स्वराज्यकी माँगके लिये नया उत्साह और नई शक्ति आ गई है, जिसका शिक्षित जनतामें पहलेसे ही अधिक प्रचार था।" इस स्पष्ट और शुद्ध वक्तव्यके लिये श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्ड हम लोगोंके धन्यवादके पात्र हैं। उनके इस विचारसे ऐसी आशा होती है कि यह प्रस्ताव भारतमें उत्तरदायित्व-पूर्ण सरकारकी स्थापनाके आरम्भके लिये सारपूर्ण उपायकी सिफ़ारिश करेगा। इससे भारतका उच्च पद भी स्वीकृत होगा और आत्म-विश्वासके सिद्धान्तका भी पालन होगा। किन्तु इनके प्रस्ताव इस कार्य्यके लिये वहुत ही अपर्य्याप्त हैं। यह आश्चर्य्यजनक वात है कि स्थितिको पूर्णतया समझ लेनेके वाद भी विशिष्ट लेखक-द्वय इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि वर्त्तमान समयमें भारतीय लोग ऐसे सुधारात्मक प्रस्तावोंसे भी प्रसन्न हो सकते हैं जो उन्हें देशकी केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारके शासनमें वास्तविक अधिकार नहीं देते।

विदेशी धर्मप्रचारकों, व्यापारियों तथा सरकारी कर्मचारियोंका हित

श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने यह धारणा बना ली है कि भारतीय लोग अधिकार पानेके योग्य नहीं हुए हैं। किन्तु कोई भी भारतीय इनका समर्थक नहीं दिखाई देता। जिन बातोंसे वे इस परिमाणपर पहुँचे हैं उनपर मैं विचार कर चुका हूँ। मैं इस धारणाके सम्बन्धमें भी पर्य्याप्त कारण दे चुका हूँ कि शिक्षित भारतीयोंके हाथमें प्रजाका हित नष्ट न होगा। मैं यह भी दिखला चुका हूँ कि अशिक्षा और धार्मिक मतभेद भी सुधारके मार्गमें वाधक नहीं हो

सकते हैं। मैं यह कहनेके लिये बाध्य हूँ कि भारतीय लोग उनकी इस बातपर अवश्य रोष प्रगट करेंगे कि यदि शासनाधिकार भारतीयोंके हाथमें सौंपा गया तो विदेशी धर्मप्रचारकों, विदेशी व्यापारियों तथा भारतमें नौकरी करनेवाले विदेशियोंके हितकी हत्या होगी। शिक्षित भारतीयोंने विदेशी धर्मप्रचारकोंके प्रति कोई भी द्वेषभाव नहीं प्रदर्शित किया है, बल्कि उलटे अनेकके साथ अच्छी प्रकारसे इनका सत्सङ्ग हुआ है। किन्तु श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डको चिन्ता है कि ऐसे व्यक्तियोंके हितको भारतीयोंके हाथ सौंपना निरापद नहीं है जो भारतके निवासियोंको उनके प्राचीन धर्मको छुड़ाकर विलायती धर्म अपनानेका कार्य्य करनेके लिये प्रतिज्ञा-बद्ध होकर आया है। इस बातके आधारपर किसी देशको स्वराज्यके अयोग्य बताना, किसी भी तटस्थ व्यक्तिको स्वराज्यके लिये और भी अधिक उत्तेजित करेगा। ऐसा कहना भी इस देशके निवासियोंके साथ अन्याय करना है कि यदि इन्हें शक्ति मिल जायगी तो ये उसका प्रयोग विदेशी व्यापारियों और सरकारी कर्मचारियोंको हानि पहुँचानेमें करेंगे। क्या व्यापारके प्रधान केन्द्रोंमें भारतीयोंका विदेशी व्यापारियोंके साथ सद्व्यवहार नहीं है? तब इस बातमें कौनसा तत्त्व है और इस आशङ्काका कारण क्या है कि यदि भारतीयोंको अधिकार मिल जाय तो वे विदेशी व्यवसायपर हानिकर आक्रमण कर बैठेंगे अथवा दूसरोंको प्रतिस्पर्द्धा करनेकी आज्ञा देंगे? क्या वे इतने मूर्ख बन जायँगे कि विदेशी व्यापारीके विरुद्ध कोई शिकायत करके अपने देशके आयात और निर्यात-सम्बन्धी व्यापारको ही नष्ट कर डालेंगे? उनका यह कथन कितना भ्रमपूर्ण है कि हममें इतनी बुद्धि नहीं होगी कि हम यह समझ सकें। व्यापारकी रक्षा और अभिवृद्धिके लिये यह सबसे अधिक आवश्यक है कि किसी भी व्यापारीके मनमें उनसे नेकनीयती और ईमानदारीके व्यवहारके अतिरिक्त अन्य व्यवहार पानेकी तनिक भी शङ्का न हो, और सरकारी कर्मचारियोंके सम्बन्धमें भी यह सन्देह कैसे उत्पन्न हुआ कि उनके न्याय-अधिकारके प्रयोगका समर्थन नहीं किया जायगा? यदि शासनमें भारतीयोंको अधिकार मिल जाय तो वे सरकारी कर्मचारी अपनी नियुक्तिकी शर्त्तोंमें प्राप्त अधिकारों, सुविधाओं और सुरक्षित अधिकारोंका उपभोग न कर पायँगे। क्या इस शङ्कामें कोई सार है कि भारतीय समाजके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि ऐसा होने देंगे? क्या वे उन नियमोंके भङ्ग करनेकी बात सोचेंगे, जो उन्हींके सहयोगसे विधिवत् बनाए गए हैं? क्या वे कलाओंमें विशिष्ट शिक्षा-प्राप्त विदेशियोंको अपने हितके लिये अपने इसी व्यवहारके बलपर निमन्त्रित कर सकेंगे, जिन्हें आगामी कई वर्षोंतक निमन्त्रित करनेकी आवश्यकता होगी ही? वास्तवमें ये शङ्काएँ निर्मूल हैं।

कुछ विशेष स्थितियोंपर अपूर्ण विचार हुआ है।

मुझे भय है कि उपर्य्युक्त प्रश्न और इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रश्नोंपर प्रस्तावमें इस समयकी विशेष स्थितिपर पूर्ण विवेचन नहीं हुआ है। वह प्रश्न यह है कि यदि हम भारतीयोंद्वारा प्रस्तावित स्वराज्यकी पूर्ण माँग ज्यों-की-त्यों स्वीकृत हो गई तो भी शासनकी वर्त्तमान प्रणाली समूल नष्ट नहीं कर दी जायगी। सरकारके प्रबन्ध-विभागमें योरोपियनोंकी ही प्रधानता रहेगी। शासन-सम्बन्धी सभी विषयोंमें इन्हींका ही मत मान्य होगा। जिस शासन-पद्धतिकी रचनामें सौ वर्ष लगे हैं, उसका समस्त स्वरूप अपने पूर्व रूपमें ही रहेगा। शासनका न्याय-विभाग हाइकोर्टके ही अधीन बना रहेगा। क़ानूनका वर्त्तमान रूप ही प्रयोगमें रहेगा। यदि नई व्यवस्थापिका सभा क़ानूनमें कोई परिवर्त्तन करना चाहे अथवा बदलना चाहे तो सरकारके प्रधान (वाइसराय) की अनुमतिके बिना उसे ऐसा करनेका अधिकार नहीं होगा। नौकरियोंकी नियुक्तिमें पहले जैसा ही

नियम रहेगा। भविष्यमेँ पचास प्रतिशत भारतीयोँकी ही नियुक्ति होगी। किन्तु नौकरियोँमेँ भारतीयोँकी संख्या आधी तक पहुँचानेके लिये अभी वहुत देर है। ये वातेँ इस वातकी साक्षी हैँ कि भावी परिवर्त्तनसे वर्त्तमान नियममेँ कोई वाधा नहीँ उपस्थित होगी, और अंग्रेज़ोँके प्रति विश्वास और उत्साहकी अभिवृद्धि होगी। भारतमेँ वास्तविक स्वराज्यकी योजनाके प्रश्नपर विचार करनेके समय इस वातसे अंग्रेज़ोँमेँ अधिक उत्साह और विश्वास होना चाहिए।

भारतको स्वावलम्बी बनानेकी अवश्यकता

एक और भी आवश्यक वात है जो हाल ही मेँ उत्पन्न हुई है। इसपर गम्भीर विचारकी आवश्यकता है। गत महायुद्धने हठात् उस आशङ्काकी ओर ध्यान खीँचा है जिसका भारत अपने वर्त्तमान राजनीतिक और व्यावसायिक दृष्टियोँसे शिकार है। यह वड़े धन्यवादकी वात है कि जो कुछ हमने किया है सफलतापूर्वक किया है। हमेँ आशा है और हम परमात्मासे प्रार्थना करते हैँ कि हमारा उद्देश सफल हो। हमेँ आशा है कि इस भयङ्कर युद्धका शीघ्र ही अन्त होगा और इसके पश्चात् जो शान्ति स्थापित होगी, वह अधिक कालतक वनी रहेगी। किन्तु केवल इस आशाके भरोसे बैठ रहना बुद्धिमानी और नीति नहीँ हो सकती है कि दस वर्षमेँ ही दूसरा युद्ध छिड़ेगा। अव उसके लिये भी तो तैयार रहना चाहिए। किन्तु उसके लिये तैयारी कैसे हो? यही विचारणीय प्रश्न है। विशिष्ट लेखक-द्वय कहते हैँ कि, “आर्थिक उन्नतिके लिये सैनिक अभिवृद्धिकी कितनी आवश्यकता है, इसपर महायुद्धने प्रकाश डाला है। हम जानते हैँ कि सामुद्रिक गमनागमनका मार्ग कुछ कालके लिये स्थगित होने की सम्भावनासे हमको वाध्य होकर पूर्वीय युद्धसे वचनेके लिये भारतपर ही निर्भर होना पड़ेगा।” यह सत्य है, किन्तु युद्धके अनुभवने इससे अधिक जानकारी प्रदान की है। उसने वताया है कि भारतको केवल आघात-प्रतिघात-सम्वन्धी शस्त्र वनानेमेँ ही स्वावलम्वी होनेकी आवश्यकता नहीँ है, वल्कि भारतके सपूतोँको इन अस्त्र-शस्त्रोँका प्रयोग आजकी अपेक्षा अधिक कुशलता और अधिक संख्यामेँ सीखनेकी आवश्यकता है। श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने इस प्रश्नकी आवश्यकताका निदर्शन किया है। इस प्रश्नपर यह टिप्पणि लगाकर पीछे विचार करनेके लिये रख छोड़ा है कि इसपर विचार करके इसका निर्णय होना चाहिए। हमेँ पूर्ण आशा है कि इसका निर्णय शीघ्र और उचित रीतिसे होगा। भारत और इङ्गलैण्ड, दोनोँके हितकी दृष्टिसे अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ इस आवश्यकताका अनुभव करेँगे कि भविष्यमेँ भारतका कल्याण अतीतकी अपेक्षा अधिक मात्रामेँ भारतके सपूतोँपर ही निर्भर करता है। आवश्यकता इस वातकी है कि वे भी अपने अफ़ग़ानिस्तान, फ़ारस, तुर्की और जापान आदि पड़ोसियोँके समान युद्धके साधनोँसे अलङ्कृत और उसके प्रयोगकी शिक्षासे शिक्षित वनाए जायँ। इसका यह अर्थ है कि इङ्गलैण्डको अव भारतके साथ संरक्षक और नावालिग़का नाता नहीँ, वल्कि विश्वस्त साझीदारका नाता मानकर जल, स्थल और वायु-सेनामेँ समान पद देना चाहिए। न्याय और औचित्य, दोनोँके अनुसार अंग्रेज़ लोग भारतीयोँके साथ सव प्रकार सहयोगीका भाव प्रदर्शित करेँ। भारतीयोँकी शिक्षा नौकरियोँके सव विभागोँके प्रधान और अप्रधान पदके अनुकूल वैसी ही होनी चाहिए जैसी अंग्रेज़ोँकी होती है। प्रायः आधी शताब्दीके निरन्तर आन्दोलन और विगत महायुद्ध प्रारम्भ होनेके चार वर्ष वाद शाही कमीशनमेँ भारतीयोँको स्थान पानेके प्रश्नका निपटारा हुआ। उसे देखकर मुझे आशा नहीँ है कि अपने देशकी रक्षाके लिये भारतीयोँको योग्य वनानेका जो दावा करते हैँ उसका न्यायपूर्ण निर्णय होगा; क्योँकि यह योग्यता उचित रीतिसे तवतक प्राप्त नहीँ हो सकती, जवतक भारतीयोँको राजनीतिक अधिकार नहीँ मिल जाते।

राजनीतिक योग्यता राजनीतिक शक्तिपर निर्भर करती है। श्री मौण्टेगू और लोर्ड चेम्सफ़ोर्डने अपनी रिपोर्टमें कहा है कि बृटिश कमीशनकी आवश्यकताका प्रश्न भारतीयोंकी दृष्टिमें अन्य प्रश्नोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्वका है। इन लोगोंने इस बातकी सिफ़ारिश की है कि भारतीयोंके लिये कुछ निर्धारित कमीशनोंमें स्थानकी सुविधा होनी चाहिए। सन् १९१४-१५ में भारतकी बृटिश सेनामें दो हज़ार छः सौ नवासी अफ़सर नौकर थे, और भारतकी हिन्दुस्तानी सेनामें दो हज़ार सात सौ एकहत्तर अफ़सर थे। कुल मिलाकर पाँच हज़ार चार सौ साठ अफ़सर थे। यह अनुमान है कि पाँच लाखकी नई सेनाके लिये क़रीब पन्द्रह हज़ार अफ़सरोंकी आवश्यकता होगी। किन्तु महामाननीय भारत-सचिवकी अनुमतिसे भारत-सरकारने निश्चय किया है कि सैण्डहर्स्टके शाही फ़ौजी कौलेज् (रौयल मिलिटरी कौलेज्) के लिये युद्धकालमें प्रतिवर्ष केवल दस कुलीन भारतीय फ़ौजी अफ़सरकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये लिए जायँ और हिन्दुस्तानी सेनामें कुछ चुने हुए उम्मीदवारोंको ही अस्थायी शाही कमीशनका पद प्राप्त हो सकता है, जिनमेंसे कुछ सिविल-विभागसे और कुछ फ़ौजसे नामज़द होंगे। (१), (२), अथवा (३) किसी भी कमीशनपदके लिये स्वीकृति संख्या नहीं निर्धारित है। भारतीयोंको आशा थी कि कमीशनपदका निर्णय कुछ उदार भावसे होगा। वे स्वभावतः सोचते हैं कि उनके अधिकारके सम्बन्धमें उचित न्याय नहीं हुआ है और ये बड़े निराधार हो गए हैं। किन्तु भारतीयोंके प्रति यह भाव तबतक जारी रहेगा जबतक कि भारतीयोंका अपने देशके शासनमें हाथ नहीं है।

धन-सम्बन्धी स्वायत्तशासन

समस्याकी एक दूसरी और महत्त्वपूर्ण स्थिति है। और यह स्थिति धन-सम्बन्धी स्वायत्तशासनकी है। श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने अपनी रिपोर्टमें भारतकी आर्थिक दुर्दशा और साथ ही भारतीयोंकी उसके सुधारकी प्रबल इच्छाका ज़िक्र किया है। इन लोगोंने यह स्वीकार किया है कि भारतकी आर्थिक, राजनीतिक और फ़ौजी सभी विचारका तात्पर्य्य यह है कि भारतकी व्यावसायिक उन्नति हो। इन महोदयोंने ठीक ही कहा है कि, "व्यावसायिक भारतसे साम्राज्यको जो शक्ति मिलेगी उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।" वे कहते हैं कि, "यदि भारत केवल विदेशियोंके व्यापारकी खपत करनेवाला बाज़ार नहीं होना चाहता तो महायुद्धके बाद भारतकी व्यावसायिक उन्नतिकी आवश्यकता और भी अधिक प्रतीत होगी, क्योंकि उस समय प्रत्येक विदेशी अपने मालकी खपतके लिये बाज़ार पानेकी प्रतिस्पर्द्धा करेगा, क्योंकि व्यापारपर ही उनकी राजनीतिक शक्ति निर्भर करती है।" इन्होंने यह भी लिखा है कि, "भारतीय आयात-निर्यातकर (इण्डियन टैरिफ़) के प्रश्नका व्यवसायसे घनिष्टतम सम्बन्ध है। हम इनके कृतज्ञ हैं कि इन्होंने इस महत्त्वपूर्ण विषयपर शिक्षित भारतीयोंका विचार उपस्थित किया है। इन लोगोंने बताया है कि, "शिक्षित भारतीयोंकी आयात-निर्यात करको अपने अधिकारमें लेनेकी उत्कट इच्छा है,"......कि "भारतमें अर्थसम्बन्धी स्वायत्त-शासनके लिये बलवती एवं सच्ची इच्छा है"। शिक्षित भारतीयोंका विश्वास है कि जबतक अंग्रेज़ लोग भारतीयोंके लिये आयात-निर्यात करके प्रश्नका निर्णय करते रहेंगे तबतक वे इस निर्णयको इङ्गलैण्डके लाभकी दृष्टिसे करेंगे, न कि भारतकी दृष्टिसे। इङ्गलैण्डकी साधारण सभामें रूई-करपर हुई बहससे यह सिद्ध भी हो चुका है। सन्तोषकी बात है कि उन्होंने यह धारणा बना ली है कि जब कभी समस्त साम्राज्य और शेष जगत्के आर्थिक सम्बन्धका शाही सम्मेलन हो तब उसके समक्षमें विचार होगा और "उसमें भारतका उचित प्रतिनिधित्त्व होगा।" किन्तु किस प्रकार? उसमें गत दो वर्षोंके समान वाइसरायद्वारा भारतीयोंका निर्वाचन होगा। यह सब

जानते हैं कि भारतीय जनता ऐसी नामज़दगीसे सन्तुष्ट नहीं है। इसके अतिरिक्त ऐसे प्रतिनिधि सम्मेलनमें किसके विचार प्रगट करेंगे? वे या तो वाइसराय अथवा सपरिषद्‌ गवर्नरके या अपने व्यक्तिगत विचार प्रगट करगे। यदि इन्होंने वाइसरायके विचारका प्रतिनिधित्व किया तो यह कहना व्यर्थ होगा कि सम्मेलनमें भारतीय जनताके प्रतिनिधि भेजे गए थे। यदि वे प्रतिनिधि उस सम्मेलनमें अपना विचार प्रगट करते हैं तो क्या भारत सरकार आयात-निर्यात कर-सम्बन्धी प्रश्नपर अपने उस प्रतिनिधिके व्यक्तिगत विचारसे वाध्य होगी, जिसका निर्वाचन व्यवस्थापिका सभाके सदस्योंके मतकी उपेक्षा करके हुआ है। यह स्थिति अत्यन्त विषम होगी। यदि भारतके प्रतिनिधित्वका ढोंग नहीं करना है तो एकमात्र यह नियम लागू होना चाहिए कि बड़ी और छोटी व्यवस्थापिका सभाओंके सदस्योंसे सम्मेलनके लिये भारतका प्रतिनिधित्व करनेको किसी एक सदस्यकी सिफ़ारिश करनेके लिये कहा जाय और उभय सभाओंसे मनोनीत सदस्य ही सरकारद्वारा नामज़द हो। ऐसा प्रतिनिधि अवश्य ही उन लोगोंके विचारका प्रतिनिधित्व करेगा जिनके प्रति वह अपनी नियुक्तिके लिये वैध दायित्व रखता है, और उनके विचारका भी प्रतिनिधित्व करेगा जिनके प्रति उसका मुख्य दायित्व है। भारत-सरकार भी उसके विचारको या तो अपना मानकर स्वीकार करेगी अथवा सम्मेलनमें भारतके प्रतिनिधित्वका विचार ही छोड़ देगी और उस समय भारतीयोंको अपने प्रतिनिधित्वके बिना ही ग्रेट बृटेन तथा अन्य उपनिवेशोंके प्रतिनिधियोंकी बनाई हुई नीतिको वाध्य होकर मानना होगा। गत दो वर्षोंके अनुभवसे यह सरलतासे कल्पना की जा सकती है कि इस प्रकारके प्रस्ताव क्षण भरके लिये भी मान्य नहीं हो सकते। इसके लिये भी भारत-सरकारकी नीतिका नियमन करनेके लिये केन्द्रीय सरकारमें जनताके प्रतिनिधिके हाथमें अधिकार दिया जाना आवश्यक है। इस विषयमें श्री मौण्टेगू और लार्ड चेम्सफ़ोर्डके प्रस्तावमें कुछ विस्तारकी भी आवश्यकता है। प्रस्ताव अपने वर्त्तमान रूपमें इस प्रकारका कोई अधिकार नहीं प्रदान करेगा। प्रस्तावकोंका व्यक्तिगत विचार है कि, "भारतीय शासनमें जिन परिवर्त्तनोंके लिये हम प्रस्ताव करते हैं उसके अनुसार भारतके आयात-निर्यात करका निर्णय उस सरकारके अधीन रहेगा जो पार्लियामेण्ट और भारतसचिवके अधीन होगी।" इसका अर्थ यह है कि भारत-सरकारकी वही नीति होगी जो बृटिश सम्राट्‌की सरकारकी होगी। जितने कारण उन्होंने दिए हैं और जितने मैंने अपनी ओरसे दिए हैं उन सबकी दृष्टिसे ये प्रस्ताव पूर्णतः असन्तोष-जनक हैं। भारतीय उद्योग-धन्धोंकी उन्नति भारतीय राष्ट्रके जीवनकी उन्नतिके समान ही आवश्यक है। शक्तिशाली विदेशी व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धासे भारतीय व्यवसायको बचानेके लिये संरक्षण कर लगाना अथवा आयात-निर्यात करका प्रयोग करना अधिकतर भारत-सरकारके ऊपर निर्भर करता है, जिसके अधीन शक्ति और कर लगानेका अधिकार है। यदि सरकार भारत-जनताके प्रतिनिधियोंद्वारा व्यवस्थापिका सभामें उपस्थित इच्छाका पालन नहीं करती तो इन सब महत्त्वपूर्ण मामलोंमें भारत-सरकारका आख़िर क्या कर्त्तव्य है? भारत-सरकार, पार्लियामेण्ट और भारत-सचिवके अधीन रहनेवाली सरकार उन्हींकी इच्छाके अनुसार चलेगी, उससे एक पग आगे नहीं बढ़ सकती। भारतीयोंके प्रति उत्तरदायी केवल भारत-सरकार ही जनताके हितकी नीति बना सकती है। जनतासे घनिष्ट सम्बन्ध रखनेवाले मामलोंमें, जिनसे जनताको आयात-निर्यात करसे अस्थायी हानि ही क्यों न होती हो, सरकार तबतक नैतिक साहसके साथ मुँह नहीं दिखा सकती जबतक कि जनता भी उससे सहमत न हो। यदि उपर्युक्त विचार शुद्ध है तो यह आवश्यक है कि (यदि भारतकी व्यावसायिक उन्नति करनी हो तो) भारतको आर्थिक मामलोंमें अवश्य अधिकार मिलना चाहिए। यदि ऐसा है

तो जनताके प्रतिनिधियोंको केन्द्रीय सरकारमें अवश्य अधिकार मिलना चाहिए, जिससे वे नीति निर्धारित करें, जिसका सरकार पालन करे ।

इस समस्याकी स्थितिपर मैंने कुछ विचार किया है। स्पष्ट कारण यह है कि श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने जो सिफ़ारिश की हैं उनपर विचार करनेसे मालूम होता है कि स्थितिके सम्बन्धमें उन लोगोंका विचार सङ्कुचित है। उन लोगोंने स्वयं कहा है कि, "जिन विचारोंपर छठें अध्यायमें टिप्पणी की गई है उसमें दिये हुए कारण तत्काल पूर्ण दायित्त्व दिलानेके लिये हमें रोकते हैं।" अतः इन लोगोंका निश्चय सरकारके "कुछ विभागोंका अधिकार हस्तान्तरित करने और कुछ सुरक्षित रखनेके पक्षमें है।" मैं समझता हूँ कि मैं यह सिद्ध कर चुका हूँ कि इन लोगोंने इस समस्याकी कठिनाइयोंका अतिरञ्जित रूप ग्रहण किया है; और साथ ही उन परिस्थितियोंके महत्त्वको नहीं समझा है, जो दायित्त्वपूर्ण सरकार प्रारम्भ करनेके लिये सारयुक्त प्रबन्ध करनेके पक्षमें हैं। मैंने इसपर भी प्रकाश डाला है कि महायुद्ध-जनित परिस्थितियोंको भी इन लोगोंने कम महत्त्व दिया है। विगत महायुद्धमें भारतने जो सहायता दी है और युद्धके कारण निकट भविष्यमें भारतकी जो महत्ता होगी उसकी भी उपेक्षा की गई है। यदि इस दृष्टिसे समस्याकी स्थितिमें परिवर्त्तनकी आवश्यकता हो तो इसका अर्थ यह है कि जो प्रस्ताव उन लोगोंने किए हैं उनमें बहुत ही परिवर्त्तन और परिवर्द्धनकी आवश्यकता है। यह स्वयंसिद्ध है कि गत बीस अगस्तकी घोषणाकी शब्दावलीने भी उन लोगोंके विचारपर बड़ी रुकावट लगा दी थी। उनकी व्याख्यासे स्पष्ट है कि उस घोषणाकी नीतिके औचित्यपर वे पहलेसे ही सन्तुष्ट जान पड़ते हैं। बिना विचारके ही इन्होंने उस नीतिके समर्थक कारणोंपर विशेष ज़ोर दिया है और विशिष्ट लेखक-द्वय इस बातसे कुछ परिचित जान पड़ते हैं। समस्याकी कठिनाइयोंपर ज़ोर देनेके बाद लेखकगण अपने इस कार्य्यका समाधान भी करते हैं। उनका कथन है कि, "उपस्थित समस्याकी गहनताकी व्याख्या करनेकी हमने क्यों चेष्टा की और विशेषकर उन बातोंपर क्यों ज़ोर दिया जिसपर व्याख्यानों और अख़बारोंमें कुछ नहीं कहा गया? कारण यह है कि सर्वप्रथम हम इस बातपर ज़ोर देना चाहते हैं कि देशमें जब एक बहुसंख्यक दल ऐसा है जो पूर्ण उत्तरदायी सरकारकी प्राप्तिकी बात न तो सोचता ही है और न उसकी योग्यता ही रखता है, तब ऐसे समयमें पूर्ण उत्तरदायी सरकारकी स्थापनाकी कल्पना कहाँतक सङ्गत है, चाहे देश कितनी ही द्रुतगतिसे उन्नतिकी ओर क्यों न बढ़ रहा हो। किन्तु हम लोगोंका मुख्य उद्देश्य इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। हम बीस अगस्तवाली घोषणाके औचित्यका विवेचन करना चाहते हैं। यदि हम उपस्थित समस्याकी सभी कठिनाइयोंको अङ्गीकार कर लें तो जो नीति निर्धारित की गई है उसका विवेचन सब दृष्टियोंसे सम्भव है। हमको विश्वास है कि बीस अगस्तवाली घोषणा उचित और स्पष्ट थी। जिस नीतिका उसमें समावेश है, हिन्दुस्तानके लिये वही एकमात्र सम्भाव्य नीति है।" यदि उसमें तथ्य बातोंका ठीक-ठीक विवेचन नहीं है तो उससे जो निष्कर्ष निकाला गया है वह भी ठीक नहीं हो सकता। घोषणाकी नीतिसे इस अंशतक हमारा कोई विवाद नहीं है कि भारतमें पूर्ण उत्तरदायी सरकारकी स्थापना सहसा नहीं, बल्कि क्रमशः होनी चाहिए। किन्तु मैं इस विचारसे सहमत नहीं हूँ कि यह परम आवश्यक है कि यह क्रम बहुत लम्बा हो और उसकी प्राप्ति अधिक कालमें हो। यदि घोषणाकी नीतिकी यही स्पष्ट व्याख्या है, और यदि घोषणा आवश्यक सुधारके मार्गमें बाधक है तो इस कठिनाईका मार्जन दूसरी अधिक उदार घोषणाद्वारा होना चाहिए। बीसवीं अगस्तवाली घोषणाकी शब्दावलीकी रचनामें भारतीयोंका सहयोग नहीं है। अतः भारतके सुधारकी समस्यापर इसका अनिष्ट प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। किन्तु मेरी धारणा है कि घोषणामें ऐसी

कोई बात नहीं है जो दायित्त्वपूर्ण सरकारके लक्ष्यके श्रीगणेश करनेमें किसी सारवान योजनामें बाधक हो। हमने निवेदन किया है कि कांग्रेस सङ्घवाली योजनासे ही श्रीगणेश हो। किन्तु यदि यह सम्भावना नहीं है तो विचाराधीन प्रस्तावमें परिवर्त्तन और परिवर्द्धन होना चाहिए, जिससे कि वह स्थितिकी आवश्यकताके लिये पर्य्याप्त हो।

परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धनके लिये प्रस्ताव

बीस अगस्तवाली घोषणामें अनेक विशिष्ट शर्त्तोंके समावेशने भारतीयोंके मनमें एक शङ्का उत्पन्न कर दी है कि यद्यपि भारत-सरकारने यह घोषणा की है कि बृटिश नीति भारतमें उत्तरदायी सरकार स्थापित करना चाहती है, पर इस घोषणाकी यही मन्शा थी कि लक्ष्य-प्राप्ति अधिक कालमें हो। श्री मैण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डके प्रस्ताव उसी घोषणापर निर्भर हैं, अतः ये उस शङ्काका समर्थन करते हैं। प्रान्तोंमें उत्तरदायी सरकारकी स्थापनाके आरम्भके लिये इन लोगोंने बहुत ही सङ्कुचित और सीमित योजनाएँ बताई हैं। भावी उन्नतिके सम्बन्धमें इन्होंने यह कहकर अपनी जान बचाई है कि इनके प्रस्ताव नये विधानके दस वर्ष बाद एक कमीशनकी नियुक्तिके लिये हैं। इनका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि तबतक प्रान्तोंमें पूर्णतः उत्तरदायी सरकारकी स्थापना हो जायगी। इनका कथन है कि वर्त्तमान समयमें पूर्णतः उत्तरदायी सरकारकी स्थापनाके विरुद्ध जो कारण हैं वे आजसे दस वर्ष बादतक किसी-न-किसी अंशमें बने ही रहेंगे। भारत-सरकार भी उनके प्रान्तोंके सम्बन्धके प्रस्तावोंका अनुभव किए बिना इसमें कोई परिवर्त्तन करनेके लिये तैयार नहीं है। मैं इन विचारोंसे सहमत नहीं हूँ। मैं समझता हूँ कि देशकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखते हुए प्रान्तीय सरकारोंको बहुत शीघ्र स्वायत्त-शासन मिल जाना चाहिए। एक ऐसी अवधि निश्चित हो जानी चाहिए, जिसके भीतर केन्द्रीय भारत-सरकारमें उत्तरदायी सरकारकी स्थापना हो जाय। यदि यह अवधि बीस वर्षकी रक्खी जाय, तो भी हम समझेंगे कि आज हम कहाँ हैं। भारतीयोंमें अधिकतर लोग इस अवधिको बहुत बड़ी मानेंगे। योरोपियनोंमें अधिकतर इसको अति अल्प मानेंगे। लेकिन सब विचारोंसे बीस वर्षकी अवधि वर्त्तमान शासनकी सुविधाओंको दृष्टिमें रखकर तथा अबतककी उन्नतिका ध्यान कर देशको तैयार करनेके लिये काफ़ी है कि जिससे वह उत्तरदायित्त्वपूर्ण शासनका भार ग्रहण कर ले। अन्य देशोंके इतिहास इस बातके साक्षी हैं कि इतनी अवधिके भीतर शिक्षाको इतना व्यापक रूप दिया जा सकता है और व्यवसायकी इतनी उन्नति की जा सकती है कि जनताकी साधारण आवश्यकताओंकी पूर्त्ति, एवं फ़ौजी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति, दोनोंके लिये भारत तैयार किया जा सकता है तथा भारतीय फ़ौजके लिये काफ़ी संख्यामें भारतीय शिक्षित किए जा सकते हैं। ये फ़ौजमें देश और सरकारकी सेवाके लिये अपने बृटिश साथियोंका स्थान ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रस्तावका सबसे विशिष्ट लाभ यह होगा कि इससे सम्बन्ध रखनेवाला प्रत्येक व्यक्ति जान जायगा कि निर्धारित अवधिके भीतर ही हमें लक्ष्य प्राप्त करना है। अतएव इसके लिये जो उन्नति होगी, वह अधिक निश्चित और अधिक सुव्यवस्थित होगी। यदि यह प्रस्ताव मान लिया जाय तो इङ्गलैण्डमें जो विधान बननेवाला है उसकी शब्दावली इस प्रकारकी होनी चाहिए कि, "बृटिश सरकारका निश्चय है कि भारतमें बीस वर्षके भीतर ही पूर्णतः दायित्त्वपूर्ण सरकारकी स्थापना हो।" इससे अनेक भ्रमात्मक शङ्काओंका निवारण होगा और इससे कई बातोंमें सुविधा होगी।

मेरा द्वितीय प्रस्ताव यह है कि यदि यह निश्चय हो जाय कि निर्धारित समयके भीतर दायित्त्वपूर्ण सरकारकी स्थापना करनी है तो तत्काल भारतीयोंके लिये भारतमें सरकारी पदोंकी आधी संख्याके बराबर शासन-सम्बन्धी शिक्षा पानेके लिये पर्य्याप्त व्यवस्था कर देनी चाहिए, तथा फ़ौजी और दीवानी आदि

सभी सरकारी पदोंके उपयुक्त शिक्षा मिलनी चाहिए, यदि वे निर्धारित पाठ्य क्रममें उत्तीर्ण हो जायँ। यथार्थतः यह परीक्षा वैसी ही होनी चाहिए जैसी अँग्रेज़ प्रजाकी होती है। श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्ड हमारे धन्यवादके पात्र हैं कि उन्होंने इस विषयका प्रस्ताव किया है। किन्तु इण्डियन सिविल सर्विसके लिये भारतमें नियुक्तिका जो अनुपात इन लोगोंने रक्खा, है वह अपर्य्याप्त है। इससे बढ़ाकर पचास प्रतिशत कर देना चाहिए। फ़ौजी नौकरियोंके सम्बन्धमें इनकी सिफ़ारिश है कि, "अब भारतीयोंको भी कमीशनमें काफ़ी स्थान मिलना चाहिए।" किन्तु अब वह समय आ गया है जब कि कमीशनपदकी आधी संख्या भारतीयोंको दे दी जानी चाहिए। इसमें यह शर्त्त अवश्य होनी चाहिए कि यह पद तभी प्राप्त होगा जब कि ये निर्धारित पाठ्य क्रमको पूरा कर लेंगे। यह क्रम देखनेमें तो बहुत बड़ा जँचता है, किन्तु सूक्ष्म विचारसे मालूम हो जायगा कि यह उतना बड़ा नहीं है। इस भयङ्कर युद्धमें बहुसंख्यक बृटिश अफ़सरोंके लिये हमपर दुःखद कर बढ़ाया गया है। ग्रेट बृटेन और आयरलैण्डके विश्वविद्यालयोंने महायुद्धमें जो योग दिया है उससे उनकी कीर्त्ति अमर हो गई है। किन्तु उनका भयानक विनाश हुआ है और भविष्यमें युद्धके बाद होनेवाले राष्ट्रीय कार्य्योंके विभिन्न विभागोंके लिये उन्हींसे सेना-नायक माँगे जायँगे। यह सोचना उचित ही है कि सेनाके लिये इतने अफ़सरोंकी माँग होगी कि वे उस माँगकी पूर्त्ति न कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त युद्धकालमें फ़ौजी अफसरोंके महाविनाश और भविष्यमें फ़ौजके लिये अधिक माँगके कारण, युद्धसे पहलेकी अपेक्षा अब अधिक नौजवानोंको फ़ौजी शिक्षामें प्रविष्ट करनेकी आवश्यकता है। इस विचारसे भारतीय सेनामें भारतीय नवयुवकोंकी अधिक संख्याको सैनिक अफ़सरके पदकी शिक्षाके लिये अवसर देना ही चाहिए। इस माँगको अस्वीकार करना बुद्धि और न्याय दोनोंके विरुद्ध होगा। क्वेटा और वेलिङ्गटनके सैनिक कौलेजोंमें अंग्रेज़ और भारतीय नौजवान समान सँख्यामें प्रविष्ट हों और दोनोंको समान शिक्षा दी जावे और उनकी समान परीक्षा हो। इस कार्य्यसे पारस्परिक मैत्री और विश्वासको प्रोत्साहन मिलेगा तथा साम्राज्यको अमूल्य सहायता प्राप्त होगी। इसी प्रकार इसकी भी सुविधा होनी चाहिए कि जल और स्थल सेनाके प्रत्येक विभागकी शिक्षा भारतीयोंको दी जाय और इन विभागोंमें इनकी नियुक्ति भी हो। इसमें आकाश सेना-सम्बन्धी नौकरियोंका भी समावेश होना चाहिए। इन प्रयोगोंसे लोगोंको यह भी विश्वास हो जायगा कि इङ्गलैण्ड भविष्यमें भारतसे अपने बराबरीके साझीके नाते व्यवहार करेगा न कि आश्रितका।

प्रान्तीय सरकार

मैं यह कह चुका हूँ कि श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने बीसवीं अगस्तवाली घोषणाकी अनुचित प्रकारसे सङ्कुचित व्याख्या की है। साथ ही उन्होंने प्रान्तोंमें उत्तरदायित्त्वपूर्ण सरकारकी स्थापनाके लिये सिफ़ारिश भी की है। इन लोगोंने प्रस्ताव किया है कि हस्तान्तरित-विभाग मन्त्री या मन्त्रियोंके अधीन होंगे, जिनको व्यवस्थापिका सभाके निर्वाचित सदस्योंमेंसे गवर्नर नामज़द करेंगे। इन मन्त्रियोंकी नियुक्ति व्यवस्थापिका सभाकी अवधिके बराबर कालके लिये होगी। इन विभागोंका प्रबन्ध मन्त्रीगण गवर्नरके सहयोगसे करेंगे। इन विभागोंके सम्बन्धमें मन्त्रियोंका निर्णय ही मान्य होगा, केवल गवर्नरकी सम्मति और उसका नियन्त्रण उनपर रहेगा। इन लोगोंने कहा है कि गवर्नर अपने मन्त्रीका प्रस्ताव तभी अस्वीकृत करेंगे जब उसको कार्य्यरूपमें परिणत करनेपर गम्भीर परिस्थितिके उत्पन्न होने की सम्भावना होगी, अथवा उन प्रस्तावोंसे अनुभवहीनताका स्पष्ट चिह्न प्रगट हो। उनकी यह धारणा नहीं है कि गवर्नर अपने मन्त्रीके सभी प्रस्तावोंपर सम्मति देनेमें असमर्थता

प्रगट करेंगे। श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डके प्रस्तावका यह सर्वोत्तम अंश है। इसके लिये मैं उन लोगोंको धन्यवाद देता हूँ। हस्तान्तरित विभागोंके सम्बन्धमें इस प्रस्तावसे मन्त्रीको कांग्रेस-सङ्घ-योजनाकी अपेक्षा अधिक अधिकार और दायित्त्व प्राप्त होगा। परन्तु यह अनेक शर्त्तोंसे जकड़ा हुआ है। इनमें परिवर्द्धनकी आवश्यकता है। प्रथम शर्त्त यह होनी चाहिए कि निर्वाचित सदस्य अथवा गवर्नरद्वारा नामज़द होनेवाले सदस्योंका निर्वाचन उन थोड़े सदस्योंमेंसे हो, जिनपर उनके अधिकांश सहयोगियोंका विश्वास हो। निर्वाचनसे नियुक्ति करना अब अस्वीकृत हो गया है। अतः इसके लिये सम्भवतः उत्तम मार्ग यही होगा कि निर्वाचित सदस्योंने जिन तीन या चार सदस्योंके लिये सिफ़ारिश की है उन्हींमेंसे नियुक्ति हो। यद्यपि इससे चुनावका क्षेत्र सङ्कुचित हो जायगा तो भी चुनावका कार्य्य गवर्नरपर ही निर्भर रहेगा। किन्तु साथ ही इसका भी निश्चय हो जाना चाहिए कि गवर्नर ऐसे व्यक्तिका चुनाव न करे जो निर्वाचित सदस्य होते हुए भी सभाके बहुमतको मान्य न हो।

दूसरी बात यह है कि मन्त्री प्रबन्ध-समितिका भी सदस्य होना चाहिए केवल प्रबन्धकारिणी सरकारका ही नहीं। प्रबन्धकारिणी सरकार और प्रबन्ध-समितिका भेद उठा देना चाहिए। सरकारके दो भाग करनेके सम्बन्धमें लेखक-द्वयने स्वयं कहा है कि इसका अर्थ विभिन्न दायित्त्ववाली दो समितियोंका होना है। इससे प्रान्तके हितकी उन्नतिके लिये शासन-सम्बन्धी दायित्त्व और शक्तिमें निर्बलता आ जायगी। यथार्थमें संरक्षित और हस्तान्तरित इन दो विभागोंपर भी विचार होना चाहिए, किन्तु आगे चलकर। प्रस्तावित प्रबन्धके अनुसार यह निर्णय गवर्नरके अधीन होगा कि पूरी समितिको निमन्त्रित करना चाहिए अथवा उसके एक विभागको। हस्तान्तरित-विभागके सम्बन्धका यथार्थ निर्णय गवर्नर और उनके मन्त्री करेंगे। संरक्षित विभाग-सम्बन्धी यदि कोई कार्य्य करना हुआ तो निर्णय गवर्नर और उनकी प्रबन्ध-समितिके अन्य सदस्योंके सहयोगसे होगा। जब कभी पूरी समितिका आह्वान होगा तब मतप्रदानका प्रश्न ही नहीं उपस्थित होगा क्योंकि उसका निर्णय सरकारके उस विभागके अधीन होगा, जिससे उस विषयका सम्बन्ध रहेगा। इस प्रबन्धके अनुसार प्रबन्ध-समितको हस्तान्तरित विभाग-सम्बन्धी मामलोंमें सब दायित्त्व विशेषतः छोड़ देने होंगे। हस्तान्तरित विभागोंमें पर्य्याप्त उन्नति न होनेका समस्त दोष मन्त्री अथवा मन्त्रिमण्डलके सिर होगा।

हस्तान्तरित विभागको जो कार्य्य सौंपा गया है उसे देखकर उस कार्य्यके लिये दिया हुआ कोष सन्तोषप्रद नहीं है। पहले यह स्वीकार किया गया है कि जबतक सपरिषद् गवर्नर संरक्षित विभागोंके लिये उत्तरदायी हैं तबतक उन्हें मत निश्चय करनेका अधिकार होना चाहिए कि किस प्रकारके करकी उन्हें आवश्यकता है। यह प्रस्ताव किया गया है कि प्रान्तीय कच्चा-चिट्ठा कार्य्यकारिणी सरकारकी पूरी समिति बनायगी। प्रान्तीय करका प्रथम भाग भारत सरकारके कोषमें दिया जायगा। इससे जो बचेगा वह संरक्षित-विभागमें व्यय होगा। करका अवशिष्ट भाग मन्त्रियोंको हस्तान्तरित-विभागके व्ययके लिये मिलेगा। यदि यह अवशिष्ट भाग उनकी आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिये पर्य्याप्त न होगा तो मन्त्रीको अधिकार होगा कि वह प्रान्तीय कर-सम्बन्धी नियमके भीतर कर लगाकर अथवा भारत-सरकारसे आज्ञा प्राप्त करके कर-सम्बन्धी निर्धारित नियमके अतिरिक्त कर लगावे। कहते हैं कि नये कर लगानेका निर्णय मन्त्री और गवर्नर करेंगे। किन्तु यह स्पष्ट है कि नूतन कर लगानेका दायित्त्व यथार्थ रूपमें मन्त्रीके सिर जायगा। सरकारकी पूरी कार्य्य-कारिणी समिति इसके लिये दायी नहीं है। विशिष्ट लेखक-द्वय नूतन करकी आवश्यकता स्वीकार करते हैं। क्योंकि इनका कथन है कि

किसी भी नये व्ययके लिये किसी अन्य विभागमेँ इतनी बचत सम्भव नहीँ है। ऐसी दशामेँ नया कर लगानेका दायित्त्व एकमात्र मन्त्रीपर ही हो। यह दायित्व प्रान्तकी समस्त सरकारपर क्योँ न हो? प्रस्तावकी व्यवस्था निष्पक्ष नहीँ है। हस्तान्तरित विभागकी उन्नतिका दायित्त्व मन्त्रीपर है। इस दायित्त्वके पालनमेँ करका कितना भाग व्यय होना चाहिए इसका निर्णय सपरिषद् गवर्नरके हाथोँमेँ सुरक्षित है। मन्त्रीको अधिक करके लिये प्रस्ताव करनेका अधिकार दिया गया है किन्तु इस शक्तिके प्रयोगमेँ सरकारी कार्य्यकारिणी समितिका सम्मिलित सहयोग उनको प्राप्त नहीँ है। नये करका प्रस्ताव बहुत कम लोकमान्य होता है। जब समस्त सरकारके समर्थनके बिना ऐसा प्रस्ताव किया जायगा तो इसके स्वीकृत होनेकी सम्भावना भी नहीँ होगी। सपरिषद् गवर्नर जिस संरक्षित विभाग-सम्बन्धी व्ययके प्रस्तावको व्यवस्थापिका सभाके सामने रक्खेँगे उसे वह अपनी सम्मति बिना प्रगट किए ही स्वीकार करनेको बाध्य होगी। प्रस्तावमेँ हस्तान्तरित विभागके लिये नये करका प्रस्ताव होनेपर उसका पक्ष लेनेकी इच्छा इसमेँ नहीँ प्रगट होती। यह स्वतःसिद्ध बात है कि हस्तान्तरित विभागके लिये जितने धनकी आवश्यकता है उतना नहीँ दिया गया है। अतः इस सम्बन्धका प्रस्ताव सफल होना कठिन ही है। इससे मन्त्रीका पद कठिन हो जायगा। क्योँकि इन्हेँ या तो अपने विभागमेँ उन्नति न कर सकनेका दोषी बनना होगा अथवा उन्हेँ नये करका प्रस्ताव करके लोक-निन्दाका भाजन बनना होगा। फिर समस्त कर और मालगुज़ारीके व्ययका अधिकार भी तो इनको नहीँ प्राप्त है।

वर्त्तमान व्यवस्थामेँ विभिन्न विभागोँका विभाजन भारत-सरकारद्वारा उपस्थित हुआ है। प्रस्तावित व्यवस्थाके अनुसार यह अधिकार सपरिषद् गवर्नरके अधीन होगा। इसके अनुसार मन्त्री और व्यवस्थापिका सभा दोनोँ संरक्षित विभागके प्रदत्त अधिकारको स्वीकृत करनेके लिये बाध्य होँगे चाहे वे उससे सहमत होँ या नहीँ और उन्हेँ भारत सरकारके समक्ष इसकी अपील करनेका भी अधिकार नहीँ है। श्री मौएटेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने मन्त्री और व्यवस्थापिका सभा दोनोँको आश्वासन दिया है कि निर्धारित समयपर एक कमीशन सपरिषद् गवर्नरके कार्य्योँकी आलोचना करेगा। उस समय कमीशनके सामने यह विचार करनेका अवसर मिलेगा कि संरक्षित विभाग पर अनावश्यक व्यय होता है। प्रति बारहवेँ वर्ष कमीशन आवेगा। सपरिषद् गवर्नरके पिछले निर्णयपर कमीशनके सामने विचार करनेका बहुत कम मूल्य होगा। लोकप्रिय सरकारके लिये इससे बढ़कर असुविधाजनक व्यवस्थाकी कल्पना नहीँ की जा सकती। मुझे आश्चर्य है कि इसके स्पष्ट दोषोँको देखकर भी विशिष्ट लेखक-द्वयने इसे अस्वीकार क्योँ नहीँ कर दिया?

संरक्षित और हस्तान्तरित विभागके पार्थक्यके प्रश्नपर विचार होना चाहिए। श्री मौएटेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डके विचारमेँ ऐसे विभाजनका मुख्य कारण यह है कि बिना किसी परिवर्त्तनके सरकारका पूर्ण दायित्त्व तत्काल नहीँ दिया जा सकता। यदि हमलोगोँकी योजनाका कुछ मूल्य है तो तत्काल कुछ दायित्त्व दिया ही जाना चाहिए। "इस आधारपर उन लोगोँने प्रस्ताव किया है कि कुछ विभाग सरकारी कर्मचारियोँके हाथमेँ संरक्षित रहने चाहिएँ। इन लोगोँने प्रस्ताव किया है कि यह निर्णय करनेके लिये एक समिति नियुक्त होनी चाहिए जो विचार करे कि कौनसा विभाग मन्त्रियोँद्वारा शासित होनेके लिये हस्तान्तरित होना चाहिए। इन लोगोँने कुछ सिद्धान्त बनाए हैँ जिनके आधारपर इस सूचीका निर्माण होना चाहिए। उनका कहना है कि इस सिद्धान्तके अनुसार हम भारतीयोँको वे विभाग पानेकी आशा न करनी चाहिए जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रजाके हित-साधनसे है, हमको ऐसे विभागके हस्तान्तरिन होनेकी भी कल्पना भी नहीँ करनी

चाहिए जिससे जनताके हितपर प्रभाव पड़े और जिनका नई व्यवस्थापिका सभाओँमेँ पर्य्याप्त प्रतिनिधित्व भी नहीँ है, उदाहरणार्थ ज़मीनके लगान और मालगुज़ारोँके अधिकारका प्रश्न। इनकी इच्छा है कि ऐसे विषयोँका दायित्त्व सरकारी कर्मचारीवर्गके अधीन हो, जो अबतक भी पार्लियामेण्टके प्रति उत्तरदायी हैँ। पार्लियामेण्टके प्रति दायित्त्वका तात्पर्य्य यहाँ भारत सचिवके प्रति दायित्त्वसे है। व्यवहारमेँ इस दायित्त्वका क्या अर्थ है हम भली भाँति जानते हैँ। यह उचित समय है जब कि भारत सचिवसे दायित्त्वका बोझ जनताकी नियमपूर्वक निर्मित प्रतिनिधिमूलक व्यवस्थापिका सभाको दे दिया जाय। मैँ पहले ही कह चुका हूँ कि निर्वाच्य, जिन्हेँ प्रत्येक समझदार व्यक्ति सन्तोषजनक कह सकता है, कौन्सिलोँ मेँ जनताके पर्य्याप्त प्रतिनिधित्त्व प्राप्त करनेके लिये देशमेँ बहुत शीघ्र बनाए जा सकते हैँ। प्रान्तीय कौन्सिलके सदस्यके निर्वाचनका अधिकार एक निश्चित कम-से-कम आबादीवाली प्रत्येक तहसील या तालुक़े अथवा तहसीलोँ या तालुक़ोँके समूहके निवासियोँको दे दिया जाय। मेरे प्रस्तावके विरुद्ध यह कोई तर्क नहीँ कहा जा सकता कि कौन्सिल बहुत बड़ी हो जायगी। यदि अमेरीका, जिसकी आबादी युक्तप्रान्तसे भी कम है, छः सौ सत्तर सदस्योँकी एक साधारण सभा बना सकता है तो इसमेँ कोई कारण नहीँ हो सकता कि युक्तप्रान्त क्योँ नहीँ इतनी ही बड़ी एक व्यवस्थापिका सभा रक्खे। भेदजनक तथा सम्भवनीय सङ्घर्षात्मक हितोँके सम्बन्धकी कठिनाइयाँ बहुत अंशमेँ दूर हो जायँगी यदि प्रतिनिधित्त्व पर्य्याप्त बड़ी मात्राके उचित क्षेत्रोँमेँ मिल जाय। यदि ऐसा हुआ तो यह सहज कल्पना की जा सकती है कि बड़ी व्यवस्थापिका सभामेँ ज़मीन्दार, मालगुज़ार, साहूकार, व्यापारी, सौदागर, शिक्षितवर्ग, क़ानून-पेशावर्ग, चिकित्सक तथा इञ्जिनीयर आदि सभी दलके प्रतिनिधि सम्मिलित हो जायँगे। ऐसा सोचना क्या न्यायसङ्गत है कि एक कार्य्यकारिणी समिति, जिसमेँ दो अंग्रेज़ और एक भारतीय सदस्य होँ, प्रान्तमेँ शान्ति-स्थापनाके निर्णय करनेमेँ जनताके अधिक प्रतिनिधियोँकी इस बड़ी सभाकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त या लाभकारी सिद्ध हो सकेगी? ऐसे प्रतिनिधियोँसे बढ़कर प्रान्तमेँ शान्ति और सद्भावनाकी स्थापनाके लिये और कौन अधिक हार्दिक रुचि रखनेवाला हो सकता है? क्या यह शङ्का करना उचित है कि आवश्यकता पड़नेपर शान्ति-स्थापनाके लिये ऐसी समिति ख़र्चके लिये मत देना अस्वीकार कर देगी और फिर ऐसी सभा, जिसमेँ प्रान्तके शिक्षित और प्रधान नेता अधिक संख्यामेँ होँगे, धरतीके लगान और किसानोँके अधिकारोँसे सम्बन्धित प्रश्नोँपर विचार करनेके लिये सबसे अधिक योग्य न होगी? क्या यह मानना ठीक होगा कि इनकी सम्मिलित बुद्धि और न्याय-भावना ऐसी सभाको प्रजा और सरकारके बीच तथा प्रजाके भिन्न वर्गोँमेँ न्यायद्वारा सद्भावना न होने देगा? तब ये विभाग सरकार द्वारा शासित और व्यवस्थापित होनेके लिये दोनोँ प्रकारसे क्योँ संरक्षित रक्खे गए हैँ? यह विधान है कि यदि व्यवस्थापिका सभा संरक्षित विभागकी माँगको अस्वीकृत कर दे तो सपरिषद् गवर्नरके उस असली कच्चे चिट्ठेको पूरा या अंशमेँ पास करनेके अधिकारको हटा देना चाहिए। व्यवस्थापिका सभाका विश्वास करना चाहिए कि शान्ति-स्थापन जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नको उसने ठीक तरहसे समझा है और समुचित रीतिसे अपने कर्त्तव्यका पालन किया है। यदि कहीँ यह भय हो कि शान्ति-स्थापनासे मुख्य सम्बन्धित विभागोँपर जो व्यय होता है वह कम किया जा सकता है तो विशेष विधानद्वारा इसकी रक्षा की जा सकती है वह यह कि गवर्नरकी सम्मति बिना ऐसा नहीँ किया जायगा।

व्यवस्थाके सम्बन्धमेँ ग्रैण्ड कमेटीके प्रस्तावको

छोड़ देना चाहिए। इससे प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाके गौरव और शक्तिमें कमी करना, अनधिकार रूपसे उसे कुचलना है और उसे निम्न श्रेणीका बनाना है। इस समय सभी प्रान्तीय विधान प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाद्वारा पास किए जाते हैं। ऐसा ही भविष्यमें रहना चाहिए। देशमें शान्ति-स्थापनके लिये भारतीय विधानमें अत्यधिक विधान भरे पड़े हैं। नियममें ऐसे सभी विधान सारे भारतके लिये लागू हैं और कुछके अतिरिक्त भूतमें इनका निर्माण राज्य-परिषद्द्वारा होता था। यह सहजमें कल्पना की जा सकती है कि भविष्यमें भी ऐसा ही होता रहेगा। शान्ति-स्थापन-सम्बन्धी किसी विधानको वहुत ही कम किस प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाने वनाया होगा? वङ्गाल कौन्सिलने सन् १८६२ ई० और सन् १९१४ ई० में कलकत्ता पुलिस क़ानून, बङ्गाल सैनिक पुलिस क़ानून, कलकत्ता सब-पुलिस क़ानून और गाँव-सम्बन्धी चौकीदारी क़ानून जारी किए हैं। वम्बई कौन्सिलने सन् १८६७ ई० से अबतक वम्बई ग्राम-पुलिस क़ानून, बम्बई नगर और ज़िला-पुलिस क़ानून जारी किए हैं। यह कहना तो वर्त्तमान और भावी प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओंका अपमान करना होगा कि वे प्रान्तीय कार्य्यकारिणी समितिके इस प्रकारके कार्य्योंपर उचित रूपसे विचार न करेंगी। यह समझना भी कठिन है कि प्रान्तीय गवर्नरको संरक्षित विभागके प्रति अपने कर्त्तव्य पालनके लिये किस प्रकारके प्रान्तीय क़ानूनोंकी आवश्यकता है। किन्तु यदि यह मान भी लें कि उनको ऐसे क़ानूनोंकी आवश्यकता है, तथापि मैं यह समझता हूँ कि क्या कारण है कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा ऐसा विधान नहीं वना सकती? वर्त्तमान विधानकी दृष्टिसे पार्लियामेण्टको भारतकी कार्य्यकारिणी सरकारको कह देना चाहिए कि भविष्यमें कोई ऐसा विधान नहीं वन सकता जबतक व्यवस्थापिका सभाके अधिकांश सदस्योंका उसे समर्थन न मिल जाय। यह स्पष्ट है कि 'ग्रैण्ड कमेटियों' को कभी-कभी करनेकी बात सोची गई है। यदि कभी ऐसा अवसर उपस्थित हो जब प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा उस क़ानूनकी स्वीकृति करनेसे मुँह मोड़ ले जिसको कार्य्यकारिणी सरकार आवश्यक समझती है, तो ऐसी परिस्थितिमें केन्द्रीय सरकारको यह कार्य्य सौंपना चाहिए, जिसे विधान-निर्माणके सर्वोपरि अधिकार प्राप्त हैं, और प्रान्तके लिये जिस क़ानूनका निर्माण प्रबन्ध-विभाग आवश्यक समझता है, सुरक्षित किया जाय और प्रान्तके लिये उसको क़ानूनका रूप प्राप्त हो। ज़मीनकी मालगुज़ारी और प्रजाके अधिकारके रक्षा-सम्बन्धी क़ानूनके निर्माणके लिये व्यवस्थापिका सभा ही सर्वमान्य है और जिसका निर्माण नियमानुकूल हुआ है तथा जिसके सदस्योंमें ज़मीन्दार और प्रजाके वहुसंख्यक प्रतिनिधि हैं।

जहाँतक इस सम्बन्धमें प्रान्तीय सरकारका सम्बन्ध है, मैं सिफ़ारिश करूँगा कि चार सदस्योंकी कार्य्यकारिणी समिति होनी चाहिए। उसमें दो भारतीय हों, जिनकी नामज़दगी व्यवस्थापिका सभाके सदस्योंद्वारा निर्वाचित सदस्योंमेंसे गवर्नरद्वारा हो। ये सदस्य जनतासे घनिष्ट सम्बन्ध रखनेवाले विभागोंके अधिकारी हों। और इसके लिये इनपर विशेष प्रकारका दायित्त्व हो। साथही न तो संरक्षित विभाग हों और न ग्रैण्ड कमेटी। मैं इससे सहमत हूँ कि कच्चे चिट्ठेके अतिरिक्त कौन्सिलके अन्य विषय-सम्बन्धी प्रस्तावोंको सिफ़ारिशके तौरपर मानना चाहिए। वजटसम्बन्धी प्रस्तावका प्रतिबन्ध कार्य्यकारिणीपर हो और उससे मेल खानेके लिये कच्चे चिट्ठेका संशोधन भी होना चाहिए, परन्तु वह इस शर्त्तके साथ कि सपरिषद् गवर्नरकी सम्मतिके बिना व्यवस्थापिका सभाको शान्ति-व्यवस्था-सम्बन्धी व्ययमें कमी करनेका अधिकार नहीं है। व्यवस्थापिका सभाके समर्थनके विना कोई नया व्यय मान्य नहीं होना चाहिए।

ब्रह्मा

ब्रह्माके बारेमें कुछ कहना आवश्यक है। ब्रह्माके राजनीतिक विकासके सम्बन्धमें अलग और

फिर कभी विचार करनेके लिये जो कारण दिए गए हैं, वे थोथे और अग्राह्य हैं। ब्रह्मियों और भारतीयोंकी इच्छाके विरुद्ध ब्रह्मा बृटिश भारतमें सम्मिलित कर लिया गया है। यदि इसे बृटिश उपनिवेशका पद मिल जाता, जैसा राष्ट्रीय महासभाने सिफ़ारिश की थी तो इसे 'इण्डियन सिविल सर्विस' वालों द्वारा किए गए प्रबन्धका भारी व्यय न उठाना पड़ता। किन्तु प्रस्ताव सिविल सर्विसवालोंको अच्छा न लगा। क्योंकि भारतीय सिविल सर्विसवालोंका पारितोषिक और लाभ राज्यान्तर्गत उपनिवेशोंकी अपेक्षा अधिक है। अस्तु, ब्रह्मा वहुत कालतक हिन्दुस्तानका एक प्रान्त वननेके लाभसे वञ्चित रहा है। किन्तु न्याय इसीमें है कि यह भी अव भारतके अन्य प्रान्तोंकी भाँति व्यापक शासनका लाभ उठावे। स्वशासन प्राप्तिके लिये भारतकी अपेक्षा ब्रह्मा कहीं अधिक अधिकारी है। अभी कलकी वात है कि वह स्वशासनसे वञ्चितकर विदेशी शासनके अन्तर्गत किया गया है। जिन शर्त्तोंपर श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने अधिक ज़ोर दिया है वे भारतकी अपेक्षा ब्रह्माके अधिक पक्षमें हैं। वहाँ जनतामें शिक्षाने व्यापक रूप धारण कर लिया है। भारतके समान वहाँ धार्मिक भेद भी नहीं है। उच्च श्रेणीवालोंकी सामान्य जनताके साथ सहानुभूति भारतीयोंकी अपेक्षा कहीं अधिक है। इसमें ब्रह्माका क्या दोष है कि मौर्ले-मिण्टो योजनाके अनुसार वनी हुई ब्रह्मा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभामें एक भी ब्रह्माका प्रतिनिधि नहीं है। ब्रह्माकी सरकारी नौकरियोंमें अधिक हिन्दुस्तानियोंको स्थान देकर ब्रह्मामें साधारण नीतिका प्रयोग हो रहा है। इसका तात्पर्य एक विदेशी नौकरशाहीके स्थानपर दूसरी नौकरशाहीकी नियुक्ति करना है। भारत अपने ब्रह्मी भाइयोंके शासक नहीं वनना चाहते। हमें इस वातमें कोई शिकायत न होगी यदि ब्रह्माकी सभी नौकरियोंपर केवल ब्रह्मानिवासी ही नियुक्त हों। किन्तु यदि ब्रह्माकी अधिकांश नौकरियाँ ग़ैरब्रह्मियोंके लिये सुरक्षित की जायँ तो यदि भारतीय भी कैनाडा, औस्ट्रिया, न्यूज़ीलैण्ड और दक्षिण अफ़्रीकाकी नौकरियोंके लिये उम्मीदवारोंमें प्रतियोगिता करें तो मैं कुछ अनुचित नहीं समझता। किन्तु इस विषयका अधिक विस्तार करना अनावश्यक है। मैं आशा करता हूँ कि भारतमें जो सुधार आरम्भ हो उसका विस्तार ब्रह्मामें भी ब्रह्मियोंकी इच्छाके अनुकूल कुछ संरक्षणके साथ हों।

भारत सरकार

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आज कोई भी ऐसा सुधार भारतकी राष्ट्रीय भावना और उसकी आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिये उपयुक्त नहीं हो सकता जिसके द्वारा केन्द्रीय सरकारमें भारतीयोंको उचित स्थान न मिले। इस सम्बन्धमें श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डके प्रस्ताव अत्यन्त अपर्य्याप्त हैं। भारतीय साम्राज्यमें भारत सरकारके हाथमें ही सारी शक्तियाँ और प्रस्तावित सुधारके कार्य्य रूपमें परिणत होनेपर भी अधिकतर ये अधिकार ज्योंके त्यों उसीके हाथ वने रहेंगे। देशसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी आवश्यक विषयोंका सम्पादन भारत सरकार ही करती रहेगी। उस समय भी यह अधिकतर नीति और सिद्धान्त वनाती रहेगी। शान्ति और व्यवस्था, जीवन-स्वतन्त्रता, सम्पत्ति, भाषण-स्वातन्त्र्य और छापनेकी आज़ादी-सम्बन्धी सभी प्रमुख विधानोंका सम्पादन भारत सरकार ही करती रहेगी। जनताके धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले क़ानूनोंपर सरकार अधिक सचेष्ट रहती है। आय-कर, नमक-कर, चुङ्गी-कर, आयात-निर्यात-कर, टिकट, कोर्टफ़ीस, नोट, लेनदेन, बैङ्क, ऋण, व्यापार और व्यवसाय, रेलवे, पोस्ट-औफ़िस, तारविभाग तथा अन्य जनतासे घनिष्ट सम्बन्ध रखनेवाले जितने कर-सम्बन्धी विशिष्ट विभाग हैं उनपर भारत सरकारका ही नियन्त्रण और अधिकार रहेगा। सेना और रक्षाका पूर्ण स्वत्वाधिकार भारत सरकारको ही प्राप्त है। अन्य व्ययसाध्य सरकारी विभागोंपर भारत सरकारका

ही अधिकार रहेगा। इन अधिकारोंके अतिरिक्त श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डका प्रस्ताव है कि सरकारको सभी सुधारात्मक कार्य्योंके सम्पादनके लिये व्यवस्थापिका सभाका निर्णय न माननेका विशेषाधिकार प्राप्त होगा। इस अधिकारद्वारा भारत सरकार किसी प्रान्तकी व्यवस्थामें हस्तक्षेप कर सकेगी, जहाँ उसको उसके हितकी रक्षा या वृद्धिके लिये आवश्यकता प्रतीत होगी। व्यवस्था-सम्बन्धी समानताका विचार करते हुए आवश्यकतानुसार किसी भी प्रान्तीय विषय-सम्बन्धी क़ानूनका निर्माण, समस्त भारतके लिये अथवा एक या दो प्रान्तोंके लिये भारत सरकार कर सकेगी और ऐसे क़ानूनका निर्माण कर सकेगी जिसका उपयोग कोई भी प्रान्त अपनी इच्छासे पूर्णतः या संशोधित रूपमें करना चाहे। श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्ड उस शासन और दायित्त्वमें भारतीयोंको साझी बनानेके पक्षमें नहीं हैं जिसका उपयोग अबतक भारत सरकार करती रही है। इनके विचारमें प्रान्तोंमें दायित्त्वपूर्ण सरकारकी अभिवृद्धिको स्थगित रखकर, भारत सरकार केवल पार्लियामेण्टके प्रति उत्तरदायी रहे। दूसरे शब्दोंमें यह है कि अन्य सभी मामलोंमें जो इसकी दृष्टिमें शान्ति-व्यवस्था स्थापित करने और सुशासन परिचालनके लिये आवश्यक है। पार्लियामेण्टके अतिरिक्त वह इस निःशङ्क शक्तिका उपभोग करना चाहती है। मैं नम्रतापूर्वक इस बातसे सहमत हूँ। बाह्य दृष्टिसे 'शान्ति-व्यवस्थाका दायित्व' शब्दोंका अर्थ उतना कठिन नहीं प्रतीत होता किन्तु 'सुशासनके लिये दायित्त्व' की व्याख्या करनी असम्भव मालूम होती है। यह उक्ति बहुत ही व्यापक है और इसके अन्तर्गत कार्य्यकारिणी सरकारका कोई भी उपक्रम सङ्गत हो सकता है। पिछले अनुभवसे यह आशङ्का और भी दृढ़ होजाती है। किसने सोचा था कि भारत-रक्षा-क़ानूनमें आई हुई सार्वजनिक शान्तिकी विघातक इस उक्तिकी वैसी ही व्याख्या होगी जैसी कई अवसरोंपर कार्य्यकारिणी सरकारोंने की है। अतः अधिकार-संरक्षणके प्रकरणमें श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने जो सुशासन शब्दका व्यवहार किया है उसको निकाल देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि इस संशोधनके हो जानेपर भी यह उचित है कि भारत-सरकार व्यवस्थापिका सभाके जन-प्रतिनिधियोंके द्वारा भारतीय जनताके प्रति कुछ उत्तरदायी रहे। जहाँतक इस विषयका पार्लियामेण्टसे सम्बन्ध है, विशिष्ट प्रस्तावक-द्वयने स्वयं अनुभव किया है कि 'भारतीय मामलोंमें पार्लियामेण्टने जो अभिरुचि प्रदर्शित की है वह समुचित और सुव्यवस्थित नहीं है। इसने विशेषकर कुछ विभागोंसे ही अपना सम्बन्ध रखनेका निश्चय किया है। जैसे राजनीतिक आन्दोलन, अफ़ीमका व्यापार, या रूईकरसम्बन्धी मामलोंके विचारके लिये नीतिका प्रयोग करना। इन लोगोंने ठीक लिखा है कि इस प्रकारका आक्षेपपूर्ण हस्तक्षेप इङ्गलैण्डकी स्वार्थपूर्ण आवश्यकताके कारण है। अन्यत्र भी इन लोगोंने कहा है कि 'यथार्थमें पार्लियामेण्टका नियन्त्रण उचित नहीं है। वहाँके विचार बिलकुल असमयोचित और भ्रमात्मक हैं। कुछ थोड़ेसे सदस्य इसमें भाग लेते हैं जो पुराने विषयोंपर ही बातें करते हैं और मुश्किलसे उनका कोई निर्णय हो पाता है।' निस्सन्देह इन लोगोंने इसका एक उपचार बताया है कि प्रत्येक बैठकके आरम्भमें भारतीय मामलोंके लिये साधारण सभासे एक निर्वाचित समितिकी नियुक्तिके लिये प्रार्थना करनी चाहिए। यह समिति समय समयपर सूचना देकर भारतीय प्रश्नोंके सम्बन्धमें अपने अधिकारका प्रयोग करेगी। भारतीय कच्चे चिट्ठोंका साधारण सभाके सामने वार्षिक विचार होनेके पूर्व ही यह रिपोर्ट उपस्थित करेगी। इन लोगोंने यह भी प्रस्ताव किया है कि भारत-सचिवका वेतन अंग्रेज़ोंके हिसाबसे निश्चित होगा और प्रतिवर्ष पार्लियामेण्ट उसपर अपना मत प्रदर्शित करेगी। इसका फल यह होगा कि भारतीय शासन-सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण विषय साधारण सभाके

समक्ष विचारार्थ उपस्थित किए जा सकेंगे। किन्तु पार्लियामेण्टके वहुसंख्यक कामोंको ध्यानमें रखना जिनकी संख्या युद्धके वाद और अधिक हो जायगी, यह सोचना अनुचित है कि इस कामकी भीड़में पार्लियामेण्ट भारतके हितके लिये अपने दायित्वका प्रतिपालन और अधिक सुन्दर रीतिसे करेगी। भारतसरकारका पार्लियामेण्टके प्रति उत्तरदायित्त्व होनेका अर्थ भारतीय सचिवके प्रति उत्तरदायी होना है जो प्रायः एक अनिश्चित व्यक्ति होता है। हम जानते हैं कि पहले भी इस व्यवस्थासे भारतको कोई लाभ नहीं हुआ है और भविष्यमें भी इससे अधिक लाभ होनेकी सम्भावना नहीं है। इस दशामें पार्लियामेण्ट रक्षाके मामलोंमें विदेशी और राजनीति-सम्बन्धी मामलोंको अपने हाथमें रखकर और भारत सरकारकी कार्य्यकारिणी समितिके हाथमें यह अधिकार देकर भारतके करोड़ों प्राणियोंके प्रति अपने दायित्वका अधिक सुन्दर प्रयोग करे कि भविष्यमें भारत सरकार भारतीय जनताके प्रति उनकी व्यवस्थापिका सभाके प्रति अपना दायित्त्व समझे।

श्री मौण्टेगू और लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड इसके विरुद्ध हैं। उनका कथन है कि 'प्रान्तोंके जिन हस्तान्तरित-विभागोंपरसे यथार्थमें भारत-सरकार और भारत-सचिवका नियन्त्रण हट जाता है, उन्हें छोड़कर पार्लियामेण्टके प्रति भारत-सरकारके दायित्वके सम्बन्धमें अभी हम किसी परिवर्त्तनकी सिफ़ारिश नहीं करते। किन्तु भारत-सरकारके कार्य्योंपर प्रभाव डालने और उसकी आलोचना करनेके लिये हम अधिक अवसर देते हैं।' पहले भी हमें पत्रों, व्याख्यान-मञ्चों, कांग्रेस और सम्मेलनों तथा राजकीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक समितियोंमें इसके लिये वहुत अवसर मिले और हमने यथाशक्य उनका उपयोग भी किया है। किन्तु वे सव निष्फल ही हुए, क्योंकि हमारे हाथमें शक्तिका विलकुल अभाव था। यही कारण है कि हम अधिकारयुक्त दायित्त्व माँग रहे हैं। श्री मौण्टेगू और लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड भारतके लिये विस्तृत व्यवस्थापिका सभाओंका प्रस्ताव करते हैं, जिनमें निर्वाचित सदस्योंका वहुमत होगा, किन्तु कहते हैं कि, 'ये वड़ी व्यवस्थापिका सभाके निर्वाचित सदस्योंको कोई दायित्त्व नहीं प्रदान करते।' और इन्होंने इसकी भी व्याख्या नहीं की है कि, 'सरकार किन वातोंमें निर्वाचित सदस्योंकी वात मानेगी'—जैसी इन्होंने प्रान्तोंके सम्बन्धमें की है। इनका कथन है कि, 'हम एक साधारण व्यवस्था वना देते हैं जिसकी व्याख्या सरकार कर लेगी।' इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने वहु-संख्या-निर्वाचित सदस्योंकी अधिक विस्तृत व्यवस्थापिका सभाके प्रस्तावको राज्य-परिषद्की स्थापनाके प्रस्तावद्वारा अत्यन्त महत्त्वहीन कर दिया है, जिसमें सरकारी सदस्योंका वहुमत होगा। उन्होंने स्वयं कहा है कि सभी भारतीय व्यवस्थापिका सभाओंके ऊपर सर्वोच्च व्यवस्थात्मक सभा राज्यपरिषद् होगी। यह केवल नाममात्रकी उच्च सभा नहीं होगी, प्रत्युत् अधिक अधिकार-सम्पन्न भी होगी। यह साधारण व्यवस्था-सम्बन्धी मामलोंका तो सम्पादन करेगी ही, साथ ही देश-शान्ति, व्यवस्था और सुशासन आदि जनताके हितसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंमें इसे ही अन्तिम व्यवस्था देनेका अधिकार होगा। यदि राज्यपरिषद् वड़ी व्यवस्थापिका सभाद्वारा स्वीकृत किसी ऐसे विलपर ऐसा संशोधन उपस्थित करती है, जो वड़ी व्यवस्थापिका सभाद्वारा स्वीकृत होना असम्भव है तो भी वड़ी व्यवस्थापिका सभाको ऐसे संशोधनको अस्वीकृत करने एवं संशोधित करनेका अधिकार नहीं है यदि सपरिषद् गवर्नरने यह लिखकर अपनी अनुमति दे दी हो कि राज्यपरिषद्द्वारा प्रस्तावित संशोधन, शान्ति, व्यवस्था और सुशासन तथा "उचित आर्थिक शासन" के लिये आवश्यक है। यदि वड़ी व्यवस्थापिका सभा किसी सरकारी विलके उपस्थित किए जानेमें अपनी अस्वीकृति प्रगट करती है, अथवा विल किसी प्रकार अस्वीकृत हो जाता है, तब सपरिषद् गवर्नरको यह अधिकार प्राप्त है कि विलको उपर्य्युक्त

कारणोंसे आवश्यक बताकर उसपर अपनी स्वीकृति देकर राज्य-परिषद्में नये सिरेसे विचार करनेके लिये भेज दे। सपरिषद् गवर्नरको परिस्थिति विशेषके लिये क़ानून बनानेके भी विशेषाधिकार प्राप्त हैं। प्रथम बार यह बिलके रूपमें बड़ी व्यवस्थापिका सभामें उपस्थित किया जाता है, जिसको बिलका प्रथम वाचन कहते हैं। बड़ी व्यवस्थापिका सभाको इसकी सूचनामात्र दे दी जाती है और इसका द्वितीय वाचन राज्य-परिषद्में होता है और वहाँ इसको क़ानूनका रूप प्राप्त होता है। अन्य बिल यदि बड़ी व्यवस्थापिकासे ऐसे रूपमें स्वीकृत होती है जो सरकारकी दृष्टिमें शान्ति, व्यवस्था और सुशासनके लिये घातक प्रतीत हो तो सपरिषद् बड़े लाटको, उपर्य्युक्त शर्त्तोंके अनुसार, अनुमति देने तथा उसको एक या दो बार राज्य-परिषद्में फिर विचार होनेके लिये भेजनेका अधिकार है और केवल राज्य-परिषद्के आदेशानुसार वह क़ानून बन सकेगा। आर्थिक विधानोंके लिये भी वही क्रम होगा जो सरकारी बिलोंके विषयमें है। कच्चा-चिट्ठा बड़ी व्यवस्थापिका सभामें पेश तो होगा, किन्तु व्यवस्थापिका सभाको उसपर मत देनेका अधिकार नहीं होगा। कच्चे चिट्ठेके सम्बन्धमें राज्य-परिषद् और बड़ी व्यवस्थापिकामें किए हुए प्रस्ताव केवल सम्मतिसूचक समझे जायँगे।

बड़ी व्यवस्थापिका सभाकी रचनाकी उपयोगितामें तबतक मुझे सन्देह है, जबतक कि राज्य-परिषद् इसके लिये राहुस्वरूप वर्त्तमान है। ऊपरके उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि कुछ बातोंमें तो इसका अस्तित्त्व ही नष्ट कर दिया गया है। मैं यह मानता हूँ कि इसकी स्थापनासे जनताको अधिक प्रतिनिधि भेजनेका अवसर मिलेगा और इससे सरकारके कार्य्योंकी आलोचना करनेका अवसर भी अधिक प्राप्त होगा, किन्तु उसका अधिकाररहित अधिकांश मुझे अभीष्ट नहीं है। सन् १९०९ ई० के मिण्टो-मौर्ले-सुधारका उपसंहार करते हुए श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने कहा है कि, "शासन-सम्बन्धी दायित्त्व अविभाजित ही रहा। सम्पूर्ण अधिकार सरकारके हाथोंमें ही रहा और कौन्सिलोंके ज़िम्मे केवल आलोचना करनेके अतिरिक्त और दूसरा कार्य्य नहीं रहा।" भारत-सरकारके लिये लार्ड चेम्सफ़ोर्ड और श्री मौण्टेगूने जो प्रस्ताव किए हैं, उनकी भी यही आलोचना उपयुक्त है।

श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डका प्रस्ताव है कि उनकी ये प्रस्तावित सिफ़ारिशें दस वर्षतक क़ायम रहेंगी। उसके बादवाले कमीशनका यह कर्त्तव्य होगा, जिसकी नियुक्तिके लिये इन लोगोंने सिफ़ारिश की है कि भारत-सरकारके नये विधानकी परीक्षा करे और पिछले अनुभवके आधारपर अपनी रिपोर्ट देकर आगे सिफ़ारिश कर सकेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि कम-से-कम पन्द्रह वर्षोंतक भारत-सरकार आजके सभी प्राप्त अधिकारोंका उपभोग करती रहेगी। जनताके प्रतिनिधियोंका इसमें कुछ भी हाथ नहीं रहेगा। महायुद्धके कारण आगामी दससे पन्द्रह वर्ष भारतके लिये बड़े ही सङ्कटमय होंगे। यह सोचकर मेरे आत्माको कष्ट होता है कि आजतक जिस भारत-सरकारने भारतीय जनताके बल और अभ्युदयका उचित उत्कर्ष नहीं किया है, वही सरकार अपरिवर्त्तित रूपसे क़ायम रहे और जनताके उन प्रतिनिधियोंकी कोई सुनवाई न हो जो अपने भाइयोंकी दशाके सुधारके लिये चिन्तित हैं और अभीतक इस मानवताके श्रेष्ठतम हितकी दृष्टिसे भारतकी बत्तीस करोड़ प्रजाका प्रतिनिधि होकर, मैं इङ्गलैण्डकी सद्भावना और साधुतासे आशा करता हूँ कि अब आगे ऐसा नहीं होगा और इङ्गलैण्डके राजनीतिज्ञ लोग यह चेष्टा करेंगे कि भारत-सरकार उचित अंशोंतक जनताके नियन्त्रणमें महायुद्धके परिणामका भारतीयोंपर जो प्रभाव पड़ा है उसकी श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने अच्छी व्याख्या की है। इङ्गलैण्डके राजनीतिज्ञ इस बातको सोचें कि क्या ऐसी आशा करना न्यायसङ्गत है कि भारतीय प्रजा सुधारकी किसी ऐसी प्रणालीसे सन्तुष्ट हो जायगी जिससे वे अपने

देशकी केन्द्रीय सरकारमेँ अधिकार पानेसे वञ्चित रक्खे गए होँ?

कांग्रेस तथा मुस्लिम लीगने राज्यपरिषद् (सेकिण्ड चेम्बर) का प्रस्ताव नहीँ किया है, क्योँकि वह समझती थी कि कार्य्यकारिणी सरकार ही राज्यपरिषद्का कार्य्य करेगी। क्योँकि उसके हाथमेँ किसी प्रस्तावको अस्वीकार करने और व्यवस्थात्मक प्रस्तावको रद्द करनेकी शक्ति है। अभीतक मेरा यह मत है कि यही उपयुक्त होगा। क्योँकि राज्यपरिषद्के निर्माणका मुख्य उद्देश्य केवल कार्य्यकारिणी सरकारकी इच्छाको क़ानूनका स्वरूप देना ही तो है। तब कार्य्यकारिणी सरकारको किसी प्रस्तावको अस्वीकृत कर देनेके अधिकार क्योँ नहीँ दे दिए जाते? इसके उत्तरमेँ यह कहा जा सकता है कि इससे सरकारको रचनात्मक विधानके निर्माणका अधिकार नहीँ प्राप्त होगा। क्योँकि विशिष्ट लेखक-द्वय स्पष्ट कहते हैँ कि, "हम अवसर विशेषपर प्रयोग करनेके लिये कोई साधन चाहते हैँ। हम ऐसे प्रस्तावको क़ानूनका रूप देना चाहते हैँ जिसकी वहसका काफ़ी प्रचार हुआ हो, परन्तु बड़ी व्यवस्थापिका सभाके अधिकांश सदस्य उसे न स्वीकार करते होँ।" किन्तु या तो सरकारको इस विचारको त्याग देना चाहिए अथवा उन्हेँ वहुसंख्यक निर्वाचित सदस्योँको व्यवस्थापिका सभा वनानेका विचार छोड़ देना चाहिए। वर्त्तमान व्यवस्थाके अनुसार, वाइसरायकी स्वीकृतिके विना किसी भी प्रचलित क़ानूनका निराकरण सम्भव नहीँ है। इसमेँ यह प्रबन्ध होना चाहिए कि देशरक्षाके लिये सेना आदिके कुछ निर्धारित विभागोँके वर्त्तमान व्ययमेँ वाइसरायकी अनुमतिके विना कमी नहीँ की जा सकती। किन्तु इस संरक्षणके साथ कच्चे-चिट्ठेको कौन्सिलके समक्ष मत प्रदान करनेके लिये अवश्य पेश करना चाहिए। यह उचित है कि भविष्यमेँ जो व्ययमेँ वृद्धि होनेवाली हो, उसका सरकारपर दायित्व रहे कि वह जनताके निर्वाचित प्रतिनिधियोँको उसे समझावे कि प्रस्तावित व्ययकी वृद्धि देशहितके लिये है, क्योँकि करका बोझ तो प्रजाको ही वहन करना है। यही क्रम प्रत्येक नये विधानके लिये भी लागू होना चाहिए। जिस कौन्सिलका निर्माण होनेवाला है सरकार उसीका विश्वास करे। कौन्सिलके भारतीय सदस्य पहले भी अवसर पड़नेपर सरकारका साथ देनेमेँ पीछे नहीँ रहे। यह शङ्का निर्मूल है कि इस अधिक विस्तृत कौन्सिलके सदस्य सब आवश्यक मामलोँमेँ सरकारका साथ न देँगे। श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने सरकारके प्रति भारतीय सदस्योँके व्यवहारका औचित्य स्वीकार करनेमेँ अपनी सद्भावनाका परिचय दिया है। इनका कथन है कि, "हम भारतीय व्यवस्थापिका सभाके भारतीय सदस्योँकी उस दायित्व भावनाके लिये सराहना करना चाहते हैँ जो कि उन्होँने सरकारी प्रस्तावोँके अवसरपर प्रदर्शित की है।" मुद्रण क़ानून-सम्बन्धी अत्यन्त विवादात्मक विधानपर सरकारको ग़ैर-सरकारी प्रतिनिधियोँका पूरा समर्थन प्राप्त हुआ है। सरकारने ऐसे ही अन्य भारत-रक्षा-विधान, तथा राज्यकोषको दस करोड़ रुपये देनेकी स्वीकृति आदिके महत्त्वपूर्ण अवसरोँपर भी इनका समर्थन प्राप्त किया है। अन्य भी फ़ैक्टरी क़ानून और कम्पनी क़ानूनके अवसरोँपर भी ग़ैर-सरकारी प्रतिनिधियोँने अपने वादविवादोँद्वारा सराहनीय कार्य्य किया है।

ऊपर मैँने जितने विचार उपस्थित किए हैँ उन सबका ध्यान रखते हुए मैँ प्रस्ताव करना चाहता हूँ कि राज्यपरिषद्के निर्माणवाला प्रस्ताव तो स्थगित ही कर देना चाहिए। कार्य्यकारिणी सरकार और बड़ी व्यवस्थापिका सभाके बीच यदि कभी गम्भीर मतभेद उपस्थित हो—जिसकी सम्भावना प्रत्येक क्षण है, तो उसका निराकरण उपस्थित प्रस्ताव अस्वीकार करने और विशेष क़ानून (ओर्डिनेन्स) जारी करनेसे हो सकता है। किन्तु साथ ही उसमेँ यह व्यवस्था होनी चाहिए जैसा कि सन् १८८६ ई० मेँ कांग्रेसने प्रस्ताव किया था कि जब कभी नकारनेके अधिकारका प्रयोग हो तो उसके

प्रयोग करनेके सब कारणोंका पर्य्याप्त विवरण प्रकाशित होना चाहिए और उसकी एक प्रति भारत-सचिवको दी जानी चाहिए। ऐसे मामलोंमें यदि व्यवस्थापिका सभाके बहुसंख्यक प्रतिनिधि भारत-सरकार और भारत-सचिवके द्वारा उस ठुकराए हुए मतपर विचार कराना चाहें तो पार्लियामेण्टकी साधारण सभाकी निर्वाचित समितिके समक्ष अपना प्रस्ताव उपस्थित कर सरकारके निर्णयपर पुनः विचार करा सकते हैं। यदि ऐसी कौन्सिल बनानी ही पड़े तो यह आवश्यक है कि उसकी रचना उदारतापूर्ण हो। सन् १८८६ ई० में भारतीय राष्ट्रीय महासभाने प्रस्ताव किया था कि राजकीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओंमें कम-से कम आधे निर्वाचित सदस्य होने चाहिएँ, एक चौथाई सरकारी पदाधिकारी और एक चौथाई सरकारद्वारा नामज़द सदस्य हों। गत बत्तीस वर्षोंमें कौन्सिलका दो बार पुनर्निमाण हो चुका। उन्होंने सन्तोषजनक कार्य्य भी किए। इतना हो चुकनेपर भी गत युद्धके चार वर्षोंमें भारतने जिस अनुराग और राजभक्तिका परिचय दिया है उसका प्रत्यक्ष प्रमाण पानेपर भी क्या यह माँग अधिक है कि प्रस्तावित राज्यपरिषद्में विशेषतः भारतीय निर्वाचकोंद्वारा निर्वाचित सदस्योंकी संख्या सम्पूर्ण संख्याके आधेसे कम न हो? यह अनुभव-सिद्ध बात है कि योरोपियन समाजके निर्वाचित सदस्य सदा सरकारका ही साथ देते रहे हैं। अतः निर्वाचित होनेपर भी वे सरकारद्वारा नामज़द सदस्योंके ही समान हैं। यदि ऐसी परिस्थितिमें मेरा मत मान लिया जाय तो मैं समझता हूँ कि इससे प्रस्तावित राज्यपरिषद्के लिये भारतीय जनताका समर्थन प्राप्त हो जायगा। श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डका प्रस्ताव है कि सपरिषद् गवर्नर राज्यपरिषद्के सदस्योंके लिये जिस योग्यताका निर्धारण करें वह ऐसी होनी चाहिए कि समाजमें उनका मान तथा उनकी सेवाएँ ऐसी हों जिससे कौन्सिलमें जागर्त्ति उत्पन्न हो और उनके गुण इतने उपयुक्त होने चाहिएँ जो नवनिर्मित परिषद्के योग्य हो। सरकारको विश्वास होना चाहिए कि राज्यपरिषद्के सदस्य वर्त्तमान कौन्सिलके सदस्योंकी अपेक्षा कहीं अधिक मात्रामें उसके समर्थन करनेकी प्रवृत्ति रखते हैं और शान्ति, व्यवस्था तथा सुशासनके सभी मामलोंमें ये सरकारका साथ देनेको तत्पर हैं। यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया तो प्रस्तावित राज्यपरिषद्के सम्बन्धमें जो कटु भावनाएँ हैं उनका निराकरण हो जायगा। इससे प्रजा राज्यपरिषद्से परिचित हो जायगी और उसका उचित आदर करेगी।

कार्य्यकारिणी समितिमें भारतीय

मुझे केवल एक और आवश्यक परिवर्त्तन सुझाना रह गया है। यह परिवर्त्तन भारत-सरकारकी कार्य्यकारिणी समितिमें भारतीय सदस्योंकी संख्यासे सम्बन्ध रखनेवाला है। कांग्रेस-मुस्लिम-लीग योजनामें प्रस्ताव किया गया है कि राज्यपरिषद् और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा दोनोंमें आधी संख्या भारतीयोंकी होनी चाहिए। श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने सिफ़ारिश की है कि इस सिद्धान्तका प्रयोग प्रान्तीय कार्य्यकारिणी समितिके सम्बन्धमें होना चाहिए। किन्तु इन लोगोंने भारत-सरकारकी कार्य्यकारिणी समितिमें केवल एक भारतीय सदस्यकी नियुक्तिके लिये प्रस्ताव किया है। मेरा निवेदन है कि प्रान्तीय कार्य्यकारिणी समितिके सम्बन्धमें जो सिद्धान्त स्वीकृत हुआ है वही भारत-सरकारके सम्बन्धमें भी होना चाहिए। यथार्थतः कोई अभी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि जब कौन्सिलका पुनर्निर्माण होगा तब भारत सरकारकी कार्य्यकारिणी समितिमें कितने भारतीय सदस्योंको स्थान मिलेगा। किन्तु ऐसी कल्पना करना सम्भव है कि उसमें ऐसे सदस्योंकी संख्या छः होगी। इन छः सदस्योंमेंसे यह उचित होगा कि तीन भारतीय हों। समितिके आधे स्थान भारतीय सदस्योंकी नियुक्तिसे भर जानेपर भी समितिके निर्णयोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। क्योंकि

वाइसरायके योरोपियन सदस्योंका फिर भी बहुमत रहेगा। किन्तु इससे कार्य्यकारिणी समितिमें भारतीय मतके प्रतिनिधित्वका सन्तोषजनक प्रयोग होगा। सम्भवतः भारतीयोंके लिये पूर्ण दायित्ववाली सरकारके निर्माणका यह अत्यन्त प्रभावपूर्ण सोपान होगा। मेरे विचारसे जिस आरम्भकी मैंने सिफ़ारिश की है उससे बढ़कर भारतीयोंको इस बातका विश्वास दिलानेवाला और कोई उपक्रम नहीं हो सकता कि इस देशमें सरकारका विचार दायित्वपूर्ण सरकारकी स्थापना करना है। इससे सभीको सन्तोष होगा।

सङ्क्षेपमें तथाकथित प्रस्तावोंमें निम्नाङ्कित परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन होने चाहिएँ—

(१) इस बातका निश्चय विश्वास दिया जाना चाहिए कि सरकारका इरादा भारतमें दायित्वपूर्ण सरकार स्थापित करना है जो बीस वर्षमें पूर्णतः मिल जायगी।

(२) यह भी निर्धारित हो जाना चाहिए कि भारतीयोंको भारत-सरकारके न्याय-विभाग और सेना-विभाग आदि सभी विभागोंके योग्य शिक्षा दी जायगी और उन विभागोंमें इनकी नियुक्ति भी होगी।

(३) यह भी निर्णय होना चाहिए कि भारत-सरकारकी कार्य्यकारिणी समितिके आधे सदस्य भारतीय होंगे।

(४) यदि प्रस्तावित राज्यसमितिकी रचना हो तो इसमें यह शर्त्त होनी चाहिए कि इसमें भारतीय निर्वाचकोंद्वारा निर्वाचित सदस्योंकी संख्या आधी हो।

(५) यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कुछ विभागोंका व्यय, विशेषतः देशकी रक्षाके लिये सेना-सम्बन्धी व्ययमें सपरिषद् गवर्नरकी अनुमतिके बिना कमी न की जाय, किन्तु इसमें यह शर्त्त होनी चाहिए कि बड़ी व्यवस्थापिका सभामें विचार होनेके लिये कच्चा-चिट्ठा उपस्थित किया जायगा।

(६) साम्राज्यके स्वायत्त शासनवाले उपनिवेशोंको जितने आर्थिक अधिकार प्राप्त हैं, वे अधिकार भारतको भी प्राप्त होने चाहिएँ।

प्रान्तीय सरकार

(१) प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाका विस्तार ऐसा होना चाहिए कि प्रत्येक तहसील या तालुक़ा तथा अन्य दल भी अपना प्रतिनिधि भेज सकें, जिनकी आबादी कम-से-कम निर्धारित संख्याके अनुकूल हो। जहाँतक सम्भव हो मताधिकारका विस्तार होना चाहिए, जिससे यह प्रतीत हो कि प्रजा, ज़मीन्दार आदि सभी दलोंके हितकी रक्षाके लिये पर्य्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

(२) यह भी निश्चय हो कि नवनिर्मित समितियोंके लिये जो मन्त्री नियुक्त हों वे निर्वाचित सदस्योंके बहुमतके विश्वासपात्रोंमेंसे हों।

(३) यद्यपि इन मन्त्रियोंके ज़िम्मे ख़ास-ख़ास विभाग होंगे, किन्तु ये प्रान्तकी कार्य्यकारिणी समितिके भी सदस्य रहेंगे।

(४) कोई विभाग संरक्षित नहीं होने चाहिए। यदि कुछ संरक्षण हो भी तो इतने ही कि शान्ति और सुशासनकी रक्षासे सम्बन्ध रखनेवाले विभागोंके व्ययमें सपरिषद् गवर्नरकी सम्मतिके बिना कोई कमी न की जाय।

(५) ग्रैण्ड कमेटी बनानेका प्रस्ताव छोड़ देना चाहिए।

(६) भारतके अन्य प्रान्तोंके लिये सुधार-सम्बन्धी जो सिद्धान्त बननेवाले हों उनका प्रयोग ब्रह्मदेशके लिये भी होना चाहिए। उसमें केवल वे ही शर्त्तें लगाई जायँ जो ब्रह्मी लोग चाहते हों।

उपसंहार

मेरा कर्त्तव्य पूरा हो चुका। श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने अपनी विस्तृत और योग्यतापूर्ण रिपोर्टके उपसंहारमें अपने प्रस्तावोंपर युक्तपूर्ण आलोचना माँगी है। मैंने कुछ प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की है। मुझे आशा है कि यह उनके कुछ कामकी अवश्य सिद्ध होगी। साथ ही मुझे यह भी आशा है कि वे इस समस्याके सम्बन्धकी अपनी

शर्त्तोंपर और उन विचारोंके आधारपर की हुई अपनी सिफ़ारिशोंपर पुनः विचार करेंगे। मुझे यह भी आशा है कि बृटिश सरकारके अन्य सदस्य और साधारणतः वे अंग्रेज़ सज्जन इस आलोचनासे कुछ सहायता प्राप्त करेंगे, जिन्हें इन सिफ़ारिशोंके अनुकूल आचरण करना है। हम ऐसी आशा करते हैं कि वे समस्याकी शर्तोंपर सत्य बातों और इतिहासको साक्षी लेकर विचार करेंगे। इसके अतिरिक्त भारतके प्रति उस उदारपूर्ण सहानुभूतिके साथ विचार होना चाहिए जो हम इङ्गलैण्डसे पानेके अधिकारी हैं। प्रस्तावित सुधारकी उपयुक्तताका प्रश्न भारतके लिये जीवन-मरणका प्रश्न है। आज तैंतीस वर्षोंसे शिक्षित भारतीय वर्त्तमान प्रणालीके दोषोंका अनुभव कर रहे हैं। पहले इन्होंने अपने अंग्रेज़ सहयोगियोंसे अपने देशके शासन-कार्य्यमें भाग पानेके लिये भिक्षा माँगी, किन्तु इनकी माँग अस्वीकृत कर दी गई। इसका फल यही हुआ कि देश दरिद्र और असहाय होता चला गया है यद्यपि यह समस्त प्राकृतिक साधनोंसे सम्पन्न है। इस परिस्थितिपर बहुत ही कम प्रकाश डाला गया है कि बत्तीस करोड़की जनसंख्यावाला देश अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्त्तिके लिये सदिच्छाओंसे ओतप्रोत होनेपर भी अट्ठारह मासके अनवरत परिश्रमके पश्चात् भी इङ्गलैण्डको दस करोड़का युद्ध-ऋण देनेकी अपनी प्रतिज्ञाका आधा बड़ी मुश्किलसे इकट्ठा कर सका है। मैंने अपनी धारणाके लिये जो कारण दिए हैं कि हमने सन् १८८६ ई० से जो माँगें पेश की हैं, यदि उनके अनुसार इङ्गलैण्डने हमको अधिकारों तथा सरकारी नौकरियोंमें हमको सेवा करनेका अवसर दिया होता, तो देश इतना उन्नत हो गया होता और इङ्गलैण्डसे इतना अधिक सम्बद्ध हो गया होता कि वह बड़ी आसानीसे दस करोड़की रक़म नक़द दे देता। और दस या बीस लाख भारतीयोंने अंग्रेज़ोंके समान युद्ध-शिक्षा और शस्त्रास्त्रसे सुसम्पन्न होकर इसके बहुत पहले युद्धका रुख़ मित्र राष्ट्रोंके पक्षमें बदल दिया होता और लाखों बहादुर अंग्रेज़ और फ्रान्सीसियोंकी जीवन-रक्षा की होती। हम यह प्रार्थना सन् १९१६ ई० से भी अधिक लगन तथा अधिक एकताके साथ दुहरा रहे हैं कि जिससे फिर इसे अस्वीकार करनेकी ग़लती इङ्गलैण्ड न करे। जिस सुधारकी माँग कांग्रेस और मुस्लिम लीगने उपस्थित की है वह भारतको आत्मरक्षाके लिये अत्यावश्यक है और यह राज्यके शक्तिशाली होनेका कारण होगा न कि निर्बलता का। इससे भारतके सपूतोंमें उन्नति और आनन्दकी अभिवृद्धि होगी। भारतका यह अधिकार बहुत दिनोंतक रोका जा चुका है। विगत महायुद्धने इनकी आवश्यकताको और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है। इसने भारतकी जन्मसिद्ध न्यायोचित माँगको अधिक सहारा दिया है। भारत इङ्गलैण्डके कठोर परीक्षाकालमें सच्चा सिद्ध हुआ है। इङ्गलैण्डसे भारत एकमात्र न्यायकी प्रार्थना करता है। भारतकी इङ्गलैण्डसे माँग है कि उसके भाग्यनिर्णयके अवसरपर उन न्याय, स्वातन्त्र्य, और स्वशासनके सिद्धान्तोंका पालन किया जाय जिसका पक्ष लेकर वे उस इतिहास-प्रसिद्ध युद्धमें डटे हुए हैं जिसमें भारतने इङ्गलैण्डकी सहायताके लिये अपना रक्त और धन बहाया है। आज इङ्गलैण्ड और भारत दोनोंकी परीक्षाका दिन है। ईश्वर हम भारतीयोंको साहस और सुदृष्टि दे तथा भारत और बृटिश साम्राज्यके हितके लिये आवश्यक सुधारका उद्योग करने तथा उससे सहमत होनेके लिये अंग्रेज़ोंको नैतिक बल दे।

इलाहाबाद,
१ अगस्त, सन् १९१८ ई०

मदनमोहन मालवीय।

व्यवस्थापक कमीशन

ये लेख व्यवस्थापक कमीशन (स्टेचुटरी कमीशन) पर २४ तथा २७ नवम्बर, सन् १९२७ ई० को दिल्लीके 'दि हिन्दुस्तान टाइम्स' नामक अंग्रेज़ी पत्रमें छपे थे। —सम्पादक।

हमारी परीक्षा

स्वयं मनुज ही अपने बलपर अपना भाग्य-विधाता है।
आत्मज्योतिसे ही वह सच्चा महापुरुष बन जाता है॥
सब साधन, सारा भविष्य वह करतलगत कर लाता है।
सत्वर ही या अति विलम्बसे कोई क्या कुछ पाता है?
स्वयं हमारे भले बुरे ही कर्म हमें फल देते हैं।
मूक भावसे सदा हमारी जीवन-नौका खेते हैं॥*

मेरे देशवासियो! ग्रेट बृटेन-वासियोंने हमारे सामने अपनी बृटिश कट्टरताका फिर एक बार परिचय दिया है। भारतीयोंके व्यापक विचार तथा एकमतका निरादर करते हुए वहाँके राजनीतिज्ञोंने भारतीय व्यवस्थापक कमीशनमें एक भी भारतीयकी नियुक्ति नहीं होने दी। लौर्ड बर्केनहेडका यह कहना उपहासास्पद है कि यदि वे एक भी भारतीयकी नियुक्ति करते तो उन्हें बीस और नियुक्त करने पड़ते, और दलित वर्गोंके प्रति उनकी सहानुभूति भी मिथ्या है। यदि वे ईमानदारीसे किन्हीं छः भारतीय प्रतिनिधियोंको चुन लेते तो सम्पूर्ण भारतीय प्रजा सन्तुष्ट हो जाती। दलितोंके विषयमें तो यह है कि जो सरकार आजतक उनके लिये प्रारम्भिक शिक्षाका भी प्रबन्ध नहीं कर सकी, उसके प्रतिनिधिका यह कहना कि वह बिना एक अछूत प्रतिनिधिको कमीशनमें स्थान दिए किसी भी भारतीयको नियुक्त नहीं कर सकता, कितना निर्लज्जतापूर्ण पाखण्ड है। यदि यह वास्तवमें इस कमीशनमें किसी दलित वर्गके

---

*मूल पद्य—
मैन इज़ हिज़ ओन स्टार, ऐण्ड दि सोल दैट कैन
रेण्डर ऐन औनेस्ट ऐन्ड ए पर्फ़ेक्ट मैन,
कमाण्ड्स औल इन्फ़्लुएन्स, औल फ़ेट,
नथिङ्ग टु हिम कम्स अर्ली और टू लेट
अवर ऐक्ट्स अवर ऐञ्जिल्स आर, और गुड और इल,
अवर फ़ैटल् शैडोज़ दैट वौक बाइ अस स्टिल.

प्रतिनिधिकी नियुक्ति चाहते थे तो ऐसा करनेसे उन्हें किसने रोका था? वास्तवमें किसी भी भारतीयको इस बातमें विरोध न होता।

भारतीय शक्ति

किन्तु, मेरे देश-भाइयो! अब हम लोगोंकी परीक्षा है। सारा संसार यह देखनेके लिये उत्सुक होगा कि किस प्रकार भारतीय लोग बृटिश जातिके इस नये निर्दयतापूर्ण अत्याचारसे लोहा लेते हैं। इस अवसरपर हमें यहाँ दिखला देनेकी आवश्यकता है कि भारतीयोंमें भी यह क्षमता है कि वे बृटिश कठोरताका सामना कर सकें। हमें भी चाहिए कि हम इस बात पर दृढ़ हो जायँ कि इस कमीशनके पास न फटकें। मातृभूमिकी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिये यह आवश्यक है कि हम लोग इस कमीशनके विरुद्ध सङ्घटन करके सारे भारतवर्षमें इसका पूर्णतया विरोध करें। मैं आशा करता हूँ कि ऐसा करनेमें भारतके सभी लोग एकमत होंगे। परन्तु केवल यही करनेसे काम नहीं चलेगा। यहाँ सारे राष्ट्रका अपमान किया गया है। हम लोगोंने, सम्पूर्ण राष्ट्रने ही यह अनुभव किया है। अतएव अपने सर्वपवित्र अथवा सर्वप्रियके नामपर हमें चाहिए कि आज ही प्रतिज्ञा करें कि एक राष्ट्र बनकर रहगे और कार्य्य करेंगे।

हम लोगोंने बृटिश जातिकी इसलिये कड़ी समालोचना की है कि उन्होंने भारतके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं किया। परन्तु हमें यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि स्वयं हम लोगोंका कितना भारी दोष है कि हम मातृभूमिकें प्रति अपना कर्त्तव्य नहीं पालन करते। यह निर्विवाद है कि नियमानुकूल प्रत्येक देश अपनी योग्यताके अनुसार अपना राज्याधिकार पाता है। तो क्या हम लोगोंने अपनी माँगके अनुरूप अपने कर्त्तव्यका पालन अथवा उतना त्याग किया है?

काम चाहिए, बात नहीं।

हम लोगोंने स्वराज्यके लिये अपने अधिकारोंकी बहुत बातें की हैं। हमने स्वराज्य अथवा पूर्ण-उत्तरदायित्व राज्याधिकारके बारेमें भी बहुत कहा-सुना है। परन्तु एक वर्षके असहयोग आन्दोलनको छोड़कर, जब कि महात्मा गान्धी तथा उनके अनुगामियोंने भारतीय जनतामें स्वराज्यका भाव फैलानेके लिये कठिन परिश्रम किया था, क्या हम लोगोंने स्वराज्य-प्राप्तिके अपने उद्योगमें उतने ही उत्साह और लगनसे काम किया है? हम लोगोंमेंसे कितनोंने जनताके हृदयमें स्वतन्त्रताके अखण्ड प्रेमका सञ्चार करनेके लिये गत पचास वर्षोंमें अपनेको पूर्णतया समर्पण कर दिया है? हमारे देशमें महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्द तथा शिवाजीकी देश-भक्ति तथा शूरताके ज्वलन्त उदाहरण वर्त्तमान हैं। यदि हमें वह याद नहीं आते तो हममेंसे बहुतोंने इङ्गलैण्डके प्रभावशाली साहित्यके अन्तर्गत वर्णित स्वतन्त्रतारूपी सोतेमें भरपूर जलपान किया है। हमने अनेकों स्वतन्त्रताके छन्द गाए हैं तथा हृदय-ग्राही लेखोंको पढ़ा है। इसके अतिरिक्त हमारे सम्मुख अंग्रेज़ जातिकी उन्नति तथा उनके साहसके बहुतसे ज्वलन्त प्रमाण हैं; जिन्होंने डेढ़ सौ वर्षोंमें अपने साहसके द्वारा एक निर्बल राष्ट्रसे अपनेको इतना शक्तिशाली राष्ट्र बनाया। उन्होंने एक ऐसे साम्राज्यका निर्माण किया जिसमें सूर्य्य कभी अस्त नहीं होता, और जिन्होंने छः हज़ार मील दूर अपने गृह-द्वीपमें रहते हुए हम बत्तीस करोड़ भारतीयोंपर अपना शासन स्थापित किया। हम लोगोंने बार-बार उन्हें प्रसन्न तथा गौरवयुक्त होकर यह गाते हुए सुना है कि—

> "हे बृटेनिया राज्य करो,
> तुम लहरोंपर शासन करती।
> बृटन जाति भी कभी किसीकी,
> न दासता होगी करती॥"*

---

*मूल पद्य—

"रूल बृटेनिया, बृटेनिया रूल्स दि वेव्ज,
बृटन्स नैवर शैल बी स्लेव्ज।"

हमने यह भी पढ़ा है कि फ़्रान्स, इङ्गलैण्ड, जर्मनी, बेल्जियम आदि देशोंकी प्रजाने अपना कितना अधिक बलिदान किया तथा त्याग दिखलाया। हमने जापानके वीरोंका त्याग पढ़ा है, जिन्होंने अपने देशके गौरवकी रक्षाके लिये कितनी निःस्वार्थताका परिचय दिया है। परन्तु इन सब उदाहरणोंसे प्रभावित होते हुए भी हम लोगोंमेंसे ऐसे कितने हैं जिन्हें देश-प्रेमने पागल बनाया हो? हममेंसे कितनोंके मनमें उत्कट देश-प्रेम, साहस तथा आत्मबलिदानके वे भाव भरे हैं जिन्होंने अंग्रेज़ोंको इतना उन्नत बनाया है? कितनोंका हृदय मेज़िनी तथा गैरीबाण्डीके समान साहसी हैं? हम लोगोंमेंसे कितनोंके मनमें जापानियों, चीनियों, तुर्कों, मिश्रियों तथा आयरिशों जितना जोश है? हम लोग बृटिश जातिकी समानताकी बात करते हैं। अतएव हमें चाहिए कि भारतीय शक्ति भी बृटिश शक्तिकी समानता कर सके, जिससे वे हमारा लोहा मानें। शारीरिक बल तथा साहसमें, देश-भक्ति तथा लोकसेवामें, उत्साह तथा आत्मत्यागमें, एकता तथा संयममें स्वातन्त्र्य-प्रेम तथा उसके लिये युद्ध करने और प्राण न्यौछावर करनेके लिये दृढ़ रहनेमें, हम भारतीयोंको स्वातन्त्र्य-प्राप्ति तथा उसकी रक्षा करनेके लिये तथा अंग्रेज़ोंकी तरह उन्नतिके मार्गपर अग्रसर होनेके लिये प्रत्येक दशामें अंग्रेज़ोंके समान अवश्य बनना चाहिए।

प्रतिदिन अंग्रेज़ोंकी प्रभुता तथा अपनी दासताको देखकर अपने न्यायसिद्ध अधिकारोंसे वञ्चित रहनेका प्रतिदिन अनुभव करके, अपने ही घरमें अपना अपमान होते देखकर, हमें बहुत पहले ही यह चाहिए था कि हम अपने देश-प्रेमकी भावनाको जागरित करके इस प्रचलित शासन-प्रणालीको जड़से उखाड़कर देशमें स्वराज्य स्थापित कर देते। परन्तु हम ऐसा न कर सके। हम अपने प्राचीन पुरुखाओंके पुरुषत्त्वको भूल गए हैं। जिस परिस्थितिमें हमें रहना पड़ रहा है, उसने हमें एक स्वतन्त्र मनुष्यके हृदयमें उत्पन्न होनेवाली बलवती चेतनतासे वञ्चित रख छोड़ा है। यह ज्ञात होता है कि हमारी वर्त्तमान अवस्थासे उत्पन्न लज्जा हमारे आत्मामें क्रान्ति नहीं करती। यह ज्ञात होता है कि परमेश्वर हमें इस पतनावस्थासे उठानेके लिये बार-बार आदेश कर रहा है। जब रौलेट् एक्ट बनाया गया, जब कि जालियानवाले बाग़का रक्त-काण्ड रचा गया, जब कि मारशल लौ का अत्याचार जारी किया गया, जब कि असहयोग-आन्दोलनके समय हमारे निहत्थे तथा निरीह हज़ारों भाइयों और बहनोंको सरकारने वन्दीगृहमें ठूँस दिया तब उसने हममें नवजीवन जागरित किया था। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी हममें स्थायी तथा दृढ़ स्वातन्त्र्य-भावका सञ्चार नहीं हो सका। इन सब बातोंके साथ ही यह वर्त्तमान वज्रपात हुआ है, जिसने राष्ट्रको फिर अपनी दीन तथा तिरस्कृत अवस्थाका परिचय करानेके लिये जागरित कर दिया है। मेरे देशवासियो! यह दैवी वज्रपात है, और मेरी आप लोगोंसे यही विनति है कि आप इससे शिक्षा लें। कोई भी राष्ट्र तबतक स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर सकता जबतक उसमें एकता न हो। हम लोग एक राष्ट्रमें तभी गुँथ सकते हैं जब हम देश-प्रेमको अपना राजनीतिक धर्म मान लें। ईश्वर तथा मानव जातिके लिये हमें ऐसा करनेकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए। हमें चाहिए कि मातृभूमिके प्रति तथा देशवासियोंके प्रति यह प्रतिज्ञा कर लें कि वे देशभाइयोंके साथ, जाति-पाँतिका भेदभाव छोड़कर अपने ही सदृश उनके जीवन, उनकी प्रतिष्ठा तथा स्वतन्त्रताका आदर करेंगे, और व्यक्तिगत तथा जातिगत स्वार्थके लिये देशके स्वार्थका बलिदान नहीं करेंगे। स्वतन्त्रता देवीके सच्चे पुजारी बन जाओ, और मातृभूमिको स्वतन्त्र बनानेके लिये अपनेको मनसा, वाचा तथा कर्मणा, हर प्रकार स्वतन्त्र पुरुष और स्वतन्त्र स्त्री समझो। मैं सोचता हूँ कि हमारे देशमें एक नया युग आरम्भ हुआ है। मैं यह अनुभव करता हूँ कि यदि हम अपने कर्त्तव्यका

ध्यान करें तथा उसका पालन करें तो बहुत शीघ्र ही हम लोग अपना राज्यप्रबन्ध करने लगेंगे।

मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि अंग्रेज़ राजनीतिज्ञोंके वचनोंपरसे मेरा विश्वास उठ गया है। जिस नीतिका आचरण वे आजतक करते आ रहे हैं और मुख्यतः उनके जो आचरण सेनाको भारतीय करने तथा इस व्यवस्थापर कमीशनके विषयमें हो रहे हैं, उससे तो मेरे हृदयमें यही भाव दृढ़ हो गया है कि वे भारतमें स्वराज्य स्थापित करनेके दिनको जहाँतक हो सकता है टालते चले जानेके लिये कमर कसे हुए हैं। मेरा विश्वास है कि भारतमें इसी शासन-प्रणालीको जारी रखनेका साफ़ अर्थ भारतीय प्रजाके साथ अविरत अन्याय करना है।

मैं समझता हूँ कि प्रत्येक भारतीयका यह कर्त्तव्य है कि वह दृढ़प्रतिज्ञ होकर जितना शीघ्र हो सके इस शासन-प्रणालीका अन्त कर देनेके लिये प्राण-प्रणसे तैयार हो जाय। इसके लिये मैं निम्नाङ्कित व्यावहारिक उपाय बताता हूँ।

मैं यह प्रस्ताव करता हूँ कि सब दलोंके पचीस पूर्ण विश्वासपात्र भारतीयोंकी एक सभा प्रयाग या किसी अन्य केन्द्रीय स्थानमें हो जो इस बातमें एकमत हों कि वे भारतमें स्वराज्य-स्थापनके कार्य्यमें महान् उद्योग करेंगे तथा मातृभूमिके प्रति तथा एक दूसरेके प्रति सच्चे रहेंगे। वे सब मिलकर यह निर्णय करें कि इस विषयमें राष्ट्रको किस पथका अवलम्बन करना चाहिए। मैं सोचता हूँ कि—

(१) कि हम लोग सर्वप्रथम यह घोषणा करें कि भारतीय जनताका यह संयुक्त विचार है कि सन् १९३० ई० के जनवरी मासमें भारतमें पूर्ण स्वराज्य स्थापित हो जायगा।

(२) ये पचीस प्रमुख व्यक्ति इस बातको तै करें कि कांग्रेसके नियमोंमें किन-किन परिवर्त्तनोंकी आवश्यकता है, जिससे वह उपरोक्त उद्देशकी प्राप्तिके लिये सबसे सुन्दर प्रतिनिधिपूर्ण राष्ट्रीय-सङ्घ बन सके।

(३) सभी दलों और विचारोंके प्रतिनिधि उपर्युक्त द्वितीय उद्देशकी पूर्त्तिके लिये मद्रासकी कांग्रेसमें उपस्थित हों।

(४) प्रत्येक भारतीय व्यवस्थापिका सभाका प्रत्येक निर्वाचित सदस्य कांग्रेसका सदस्य स्वीकार किया जाय।

(५) इस नवनिर्मित कांग्रेसका एक विशेष अधिवेशन फ़रवरी मासमें दिल्लीमें नित्य एक पखवाड़े या इससे कुछ अधिक दिनोंतक होता रहेगा—

(अ) जिसमें भारतीय बृटिश-शासनके प्रत्येक मुख्य पहलूकी जाँच की जाय तथा यह बताया जाय कि किन-किन विषयोंमें कहाँतक यह भारतीय जनताके आर्थिक तथा नैतिक उत्थानमें असफल रही, (आ) जिसमें पूर्ण स्वराज्य-प्राप्तिके उपयुक्त शासन प्रणालीके लिये विधान बनानेपर विचार किया जाय तथा उसको स्वीकार किया जाय, (इ) जिसमें यह बात तै की जाय कि इस प्रकार सर्वस्वीकृत राज्य-विधान बृटिश पार्लियामेण्टकी स्वीकृति लेने तथा आवश्यक राजनियम बननेके लिये एक प्रतिनिधि-समूहकी ओरसे उपस्थित किया जाय और यह प्रतिनिधि-समाज बृटिश पार्लियामेण्ट तथा अंग्रेज़ जनताको यह सूचना दे दे कि यदि वे कांग्रेसद्वारा प्रस्तावित राज्य-व्यवस्थाको पूर्णतः अथवा परस्पर निर्णीत परिवर्त्तनोंके साथ सन् १९२९ ई० के अन्ततक स्वीकार नहीं करती तो कांग्रेसको बाध्य होकर भारतीय जनताको यह आदेश देना पड़ेगा कि वे असहयोगका चरमस्वरूप धारण करें अर्थात् करोंका देना बन्द कर दें तथा बृटिश वस्तुओंके पूर्णतः बहिष्कार करनेका आन्दोलन करें, (ई) जिसमें एक भारतीय-नागरिक-समाज स्थापित करनेका निर्णय हो, जिससे प्रत्येक गाँव तथा नगरमें नागरिकताकी शिक्षा देनेकी एक स्थायीप्रणालीका आयोजन किया जाय, जिसका एक आवश्यक अङ्ग जनतामें शारीरिक व्यायामकी शिक्षाका विस्तार हो; तथा उन्हें प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्रमें प्राप्त नागरिकताके प्रथम अधिकार शस्त्र धारण करने तथा उनका प्रयोग

करनेका अधिकार दिया जाय। इस विद्याका ज्ञान उनको इसलिये आवश्यक है कि वे अपने व्यक्तिगत अधिकारोंकी रक्षा कर सकें तथा मातृभूमिकी रक्षाके समय अपने पौरुषको दिखलानेके लिये प्रस्तुत रहें। यह हमें सैनिक शिक्षाके उस मार्गपर अग्रसर करेगी, जिसकी आवश्यकता सेनाके भारतीयकरणके लिये है। इस समाजका यह कर्त्तव्य होगा कि वह प्रत्येक भारतीयमें यह भावना भरे कि वह अपनेको भारतीय साम्राज्यका एक स्वतन्त्र नागरिक समझे। यदि इस प्रस्तावका समर्थन और इसकी स्वीकृति हुई तो हम लोग सन् १९२८ ई० के जूनके अन्ततक इस समाजमें वीस लाख सदस्योंको भर्त्ती कर लेंगे। (उ) नवनिर्मित कांग्रेसकी कार्य्यकारिणी समितिमें पूर्ण विश्वसनीय भारतीय नेता हों, जो आगामी दो वर्षोंतक अपने सभी अन्य कार्य्योंको छोड़कर, देशको स्वराज्य-प्राप्तिके लिये प्रस्तुत होनेके लिये अपना तन, मन तथा धन लगा देनेकी शिक्षा दें। मेरा प्रस्ताव है कि व्यवस्थापिका सभाओंके सभी निर्वाचित सदस्य वड़ी तथा छोटी व्यवस्थापिका सभाओंमें तभी जायँ जव उनका स्थान ख़ाली न होनेकी नौवत आवे अथवा जव किसी भारतीय हितकी रक्षा अथवा उसकी उन्नति करनी हो और वे अपनी शक्ति तथा अपना समय इसमें लगावें कि वे वर्त्तमान मतदाताओं तथा सामान्य जनताको स्वराज्य-प्राप्तिके उद्योगके लिये प्रस्तुत हो जानेकी शिक्षा दें। वड़ी तथा छोटी व्यवस्थापिका सभाओंके कार्य्योंके अध्ययनसे मुझे विश्वास हो गया है कि यदि आगामी दो वर्षोंतक हम इन सभाओंकी वैठकमें उपस्थित नहीं होते तो इससे जो हानि होगी वह उस लाभके सामने तुच्छ होगी जो सभी नेताओंके उन सभाओंसे अनुपस्थित रहकर देशमें स्वराज्य-प्राप्तिके भावकी शिक्षा देनेसे होगा। यह नवनिर्मित कांग्रेस, जिसमें सभी व्यवस्थापक सभाओंके निर्वाचित सदस्य शामिल रहेंगे, प्रति तीन मासके वाद अथवा जैसा तै हो, आगामी दो वर्षोंतक अपनी वैठक करती रहेगी। हम लोगोंका यह लक्ष्य होना चाहिए कि सन् १९३० ई० में भारतीय पार्लियामेण्ट वन जाय और उसमें सभी वर्त्तमान प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय या ऐसे ही अन्य दलोंसे जैसा भी तै हो, निर्वाचित सदस्य लिये जायँ। कांग्रेसकी यह तिमाही वैठक इस लिये हो कि इस नवनिर्मित भारतीय पार्लियामेण्टकी उपयुक्तताकी जाँच करे। इन तिमाही वैठकोंके द्वारा हमें स्वराज्य स्थापित हो जानेपर उसके राज्यप्रवन्ध-विषयक भिन्न-भिन्न अङ्गोंमें आवश्यक विधान वनानेमें सहायता होगी।

मैं यह अनुभव करता हूँ कि देशको लगान देना वन्द करने तथा वृटिश वस्तुओंका वहिष्कार करनेका आदेश देनेकी वुद्धिमें कुछ लोगोंसे मतभेद होगा। यह कहा जा सकता है कि ये केवल धमकियाँ समझी जायँगी, तथा पार्लियामेण्टको अपने प्रस्तावोंपर राज़ी करनेके वदले इससे अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ भड़क उठेंगे। वहुत समयतक सोच-विचारकर मैंने इन उद्देश्योंके हानि-लाभपर अपने विचारोंको तौला है। परन्तु मुझे विश्वास है कि वृटिश प्रजा भी भारतमें हमारे पूर्ण स्वराज्य स्थापन करनेके उद्देशका समर्थन तवतक नहीं कर सकती, जवतक कि हम यह सावित न कर दें कि हम लोग अपनी माँगके लिये प्राण-पणसे उद्यत हैं तथा हम लोग इस वातके लिये प्रस्तुत हैं कि इसकी प्राप्तिके लिये हम अपना सव कुछ न्यौछावर कर देंगे।

अपने देशवासियोंसे

मेरे देशवासियो! मैंने अपना कार्य्य कर दिया। मैं अन्तमें आपसे यह कह देना चाहता हूँ कि मैं अपने सामने संयुक्त तथा स्वतन्त्र भारतको अपूर्व रूपसे शक्ति तथा सम्पन्नताकी ओर अग्रसर होते हुए देख रहा हूँ। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि आप लोगोंमेंसे सभी उस दृश्यको देख सकें और उसके अनुभवके लिये सभी एक राष्ट्रीय उद्योगमें संलग्न हो जायँ। यदि हम लोग एक हो जायँ तो हमारी सफलता अवश्यम्भावी है। अपनेमें स्थायी एकता

स्थापित करनेके लिये हमें देश-भक्तिकी अग्निमें अपनेको तपाना चाहिए तथा इसे अपना राजनीतिक धर्म मान लेना चाहिए। यदि हम अपने देशवासियोंके प्रति सत्य सेवाका प्रण करते हैं तो हमें दूसरोंके धर्म, जीवन, स्वतन्त्रता तथा प्रतिष्ठाका वैसा ही ध्यान रखना चाहिए जैसा हम अपने लिये दूसरोंसे चाहते हैं। यदि हम परस्पर प्रेमसे रहनेका निश्चय कर लें तो द्वेष यहाँसे भाग जायगा और देशभरमें एकता तथा सद्भावका विस्तार हो जायगा। हमारा विस्तृत तथा महिमाशाली देश अपने देशके बच्चोंके लिये पर्य्याप्त भोजन, आनन्द तथा उन्नत होनेके सभी साधनोंसे पूर्ण है। यदि हम देशमें स्वराज्य स्थापित कर लें, और विदेशी शासनके इतने अधिक व्ययसे बच जायँ, तो अपने देशकी समृद्धि तथा सुखकी हम लोग अवर्णनीय उन्नति कर लेंगे। मैं आप सबको निमन्त्रित करता हूँ कि इस उद्योगमें इस विश्वास तथा प्रार्थनाके साथ हाथ बटावें कि यदि हम ऐसा करेंगे, तो सर्वशक्तिमान् परमात्मा हमारे देशमें सारे संसारको चकित करनेवाला एक गौरवयुक्त परिवर्त्तन करनेमें हमारी सहायता करेगा।

"रुको न क्षणभर, रुकनेवाले कभी न करते ऊँचे काम,
दत्तचित्तता और जगत-हित-रत रहना निश्चित सुखधाम।
इसी भावकी मधुर प्रेरणा सदा हमें उन्नत करती,
शून्य गगनके विकल अनिलसे ला सङ्गीत हृदय हरती"॥

लैट् नो मैन फ़ौल्टरः नो ग्रेट डीड इज़ डन
बाइ फ़ौल्टरर्स हू आस्क फ़ौर सर्टेंण्टी.
नो गुड इज़ सर्टेन्, बट दि स्टेड्फ़ास्ट माइण्ड
दि अनडिवाइडेड् विल् टु सीक दि गुडः
दिस दैट कम्पेल्स दि एलिमेण्ट्स, ऐण्ड रिङ्ग्स
ए ह्यूमन म्यूज़िक फ़्रौम दि इण्डिफ़रेण्ट एयर.

२

बृटिश भाइयोंसे मेरी अभ्यर्थना

कोई पन्द्रह दिन हुए वाइसराय महोदयने मुझसे कृपा करके व्यवस्थापक कमीशनका ध्येय बताया था। मैंने उनसे यह कहा कि इसमें भारतीयोंकी नियुक्ति न होना सारे भारतवर्षके लिये एक अप्रतिष्ठाकी बात होगी, तथा बहुसंख्यक बुद्धिमान भारतीय उसे उसी निगाहसे देखेंगे और इस कमीशनसे उन्हें कोई सरोकार नहीं रह जायगा।

स्वभावतः मुझे यह देखकर बहुत ही प्रसन्नता हुई कि हमारे देशवासी अधिकतर उसी विचारसे सहमत हैं, तथा पूर्ण एकताके साथ कमीशनका बहिष्कार करनेपर तैयार हैं। लार्ड बर्केन्हेडने भारतीय नेताओंसे यह अभ्यर्थना की है कि वे कमीशनके प्रति तब तक विरोध न करें जबतक वे कमसे-कम सरकारसे निर्धारित मार्गके विषयमें पार्लियामेण्टका उत्तर न सुन लें जिसकी सरकारने सिफ़ारिश की है। उन्हें पहले यह सोचना था कि जब इङ्गलैण्ड तथा भारतकी सरकारने मिलकर तथा अच्छी प्रकार सोचकर एक प्रस्तावको एक ही साथ दोनों देशोंमें छपनेके लिये तैयार किया तो उन्होंने इस प्रश्नके उत्तर देनेके लिये पर्य्याप्त प्रमाण दिए होंगे कि इस कमीशनके भारतीयोंकी नियुक्तिमें उन्हें कौन-कौन सी रुकावटें पड़ीं। इसमें यह भी सोचनेकी आवश्यकता है कि यदि उस प्रस्तावमें किसी अन्य कारणोंका समावेश करना होता तो बुद्धिमान भारत-सचिव तथा दूसरे बृटिश सरकारके सदस्य अथवा जनताका कोई व्यक्ति, जिन्होंने इस विषयपर अपनी राय दी है, भारतीय जनताकी उनसे जानकारी करनेके लिये, उन्हें प्रकाशित करते। इसलिये मैं कभी भी यह आशा नहीं करता कि २५ तारीख़ को साधारण सभामें होनेवाली बहसमें, किसी नये मुख्य विचारकी योजना की जायगी। सरकारकी कार्रवाईके समर्थनमें सब कुछ कही हुई बातोंपर अच्छी प्रकारसे विचार करनेपर, मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है

कि बृटिश सरकार भारतके प्रति इससे वढ़कर तिरस्कार तथा इससे तुच्छ कोई निरादर नहीँ कर सकती । मैँ अपने सम्पूर्ण सार्वजनिक प्रश्नोँके अध्ययन कालमेँ, किसी भी इङ्गलैण्ड तथा भारतकी सरकारसे प्रकाशित ऐसे किसी लेख-पत्रको स्मरण नहीँ कर सकता, जो इससे वढ़कर शक्तिहीन निवेदनीय कार्रवाईके विषयमेँ हो तथा जिसकी रक्षाका भार उसके लेखक स्वयं अपने ऊपर आवश्यक समझते होँ, जैसा कि हमारे लार्ड इरविन महोदयके हस्ताक्षरके ऊपर इस प्रकाशित प्रस्तावका हुआ है ।

आत्म-विश्वास

प्रस्तावित योजनामेँ कहा गया है कि “कमीशनका कार्य्य-भार साधारण नहीँ होगा । व्यवस्था-नियमावलीके शब्दोँमेँ, इस कमीशनको यह अधिकार दिया जायगा कि वह, सरकारकी प्रचलित-शासन प्रणाली, शिक्षाकी उन्नति तथा प्रतिनिधि सत्तात्मक संस्थाओँका बृटिश भारतमेँ विकास तथा उनसे सम्वन्ध रखनेवाली वातोँकी पूर्ण समीक्षा करे और यह कमीशन इस वातकी रिपोर्ट करेगा कि भारतवर्षमेँ क्या और कहाँतक उत्तरदायित्वपूर्ण राज्यकी स्थापना करनेकी आवश्यकता है; तथा वर्त्तमान दायित्वपूर्ण शासनमेँ कहाँतक वृद्धि, सुधार तथा रुकावट की आवश्यकता है; और उसीके साथ-साथ इस वातकी भी रिपोर्ट करेगी कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाके राज्यपरिषद्की स्थापनाकी आवश्यकता है या नहीँ ।” इससे पता चलता है कि चूँकि यह जाँच, “सम्पूर्ण तथा आवश्यक विषयोँपर पूर्णतः विचार करनेके लिये है, अतएव यह व्यापक तथा निर्वाधित होगा” । बात विल्कुल सत्य है । परन्तु वे कौन लोग हैँ जो इन जाँचके विषयोँसे पूर्ण जानकारी रखते हैँ, और जो बृटिश पार्लियामेण्टके विचारके लिये उन विषयोँको अच्छी तरह वतला सकते हैँ ? वे कौन लोग हैँ जो अनुभवसे यह वता सकते हैँ कि सरकारकी शासन-प्रणाली कहाँतक सफल हुई है तथा इसकी सफलता उत्तम रीतिसे क्योँ नहीँ हुई ? वे कौन लोग हैँ जो यह कह सकते हैँ कि कितनी उन्नति हुई अथवा और अधिक क्योँ नहीँ हुई ? वे कौन लोग हैँ जिनका भारतके भावी शासन-विधानमेँ अधिक स्वार्थ है ? यह प्रकट है वे हम भारतीय ही हैँ, और फिर भी हम लोग कमीशनसे वहिष्कृत किए गए हैँ । अंग्रेज़ लोग यह जानते हैँ कि यदि उनका कोई देश-भाई कोई जुर्म करता है तो उसका न्याय उनके वारह प्रमुख व्यक्तियोँद्वारा होता है । अंग्रेज़ी पार्लियामेण्टके पिता साइमन डी० मौन्टफ़ोर्टके समयसे ही कवियोँने गाया है कि, “राष्ट्रकी सर्वसाधारण जनता ही किसी विषयपर सम्मति दे, और यह रीति हो कि जनता जो अपने क़ानूनोँसे भली भाँति परिचित है, उस विषयपर अपना मत क्या प्रगट करती है ? क़ानूनोँको वे लोग सवसे वढ़कर समझते हैँ, जो उन क़ानूनोँके द्वारा शासित होते हैँ, और जो नित्य उनका व्यवहार करते हैँ, उन्हेँ क़ानूनोँका अच्छा ज्ञान होता है । और यह उनके स्वत्वोँका प्रश्न है, इसलिये वे अधिक सावधानीसे ध्यान देँगे तथा अपने कल्याणका ध्यान रखकर कार्य्य कर सकेँगे ।” परन्तु इन सव सिद्धान्तोँको हवामेँ उड़ाकर, बृटिश सरकारने इस “व्यापक तथा निर्वाधित जाँच” का भार, जिसपर भारतका भविष्य निर्भर है, सात अपरिचित विदेशियोँके हाथमेँ दे दिया है । इसमेँ कुछ भी सन्देह नहीँ कि सातोँ सम्माननीय व्यक्ति हैँ, जिनकी सवसे वड़ी योग्यता तो यही जान पड़ती है कि उनका भारतवर्षसे कोई सम्वन्ध नहीँ रहा है और कहा जाता है कि वे विना किसी ऐसे भारतीयका सहयोग प्राप्त किए भी उन विषयोँका ज्ञान रखते हैँ जो उन्हेँ भारतके विषयमेँ पूर्ण ज्ञान करावे तथा उनको उन व्यक्तियोँ और वर्गोँके वहकावेमेँ पड़नेसे वचावेँ जो भारतमेँ जनताका, जनताके लिये और जनताद्वारा होनेवाले शासनकी स्थापनामेँ देर कराना चाहते हैँ । भारतवासियोँका वहिष्कार इस आधारपर किया गया है कि, “भारतीय

सदस्य, भारतमें स्वराज्य-स्थापनाकी अपनी स्वाभाविक तथा न्यायसिद्ध इच्छाओंके कारण, यह समझनेमें भ्रम कर जायँगे कि भारतकी वर्त्तमान शक्ति, अथवा योग्यता स्वराज्यके उत्तरदायित्व सँभालनेके लिये पर्य्याप्त है या नहीं।" भारतीयोंको कमीशनसे बहिष्कृत रखनेका विचार निश्चित करके, यहाँके अपने व्यक्तिगत अनुभवद्वारा शासन-प्रणालीकी सफलता तथा शिक्षाकी उन्नतिके मत दे सकनेवाले सरकारी अफ़सरोंको भी सरकारने इस कारण बहिष्कृत रक्खा कि, "विचारणीय विषयसे अधिक घनिष्ठता होनेके कारण, वे भी अपना निष्पक्ष विचार नहीं प्रगट कर सकते।"

झूठा तर्क

प्रथम तो उपर्युक्त दोनों दशाओंमें यह तर्क तभी मान्य होता जब कि कमीशनमें केवल भारतीय अथवा बृटिश अफ़सर ही सदस्य होते। वे भारतीयों तथा सरकारी अफ़सरोंके एक सम्मिलित कमीशनकी नियुक्तिके विरोधमें कोई तर्क नहीं देते। दूसरे, यद्यपि सिद्धान्ततः यह अवश्य उचित है कि कमीशनके सदस्य निष्पक्षता, तथा स्वतन्त्रतासे विचार करें, तथापि क्या यह व्यावहारिक राजनीतिज्ञता होगी कि इस प्रकारकी परीक्षापर तुल जायँ? क्या प्रायः कमीशनों तथा समितियोंमें ऐसे व्यक्तियोंकी नियुक्ति केवल इसी लिये नहीं होती कि वे भिन्न-भिन्न हितोंको उपस्थित कर सकें? 'दि इण्डियन सैण्डहर्स्ट कमेटी' तथा 'रौयल कमीशन औन करेन्सी ऐण्ड एक्सचेञ्ज' ये दो इसके तात्कालिक उदाहरण हैं। लौर्ड इरविनने ठीक कहा है कि सत्यका ज्ञान तभी होता है जब मतभेद होता है और विचारोंमें टक्कर लगती है। क्या अच्छा होता यदि इसी सत्यके आधारपर सरकार कमीशनमें प्रमुख दलोंके प्रतिनिधियोंको नियुक्ति करती।

यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि कमीशनको पूर्ण अधिकार नहीं प्राप्त हैं। भारतके भविष्य शासन-विधानका निर्माण इसके हाथमें नहीं है। यह कमीशन केवल इतना ही सूचित करेगा कि भारतके लिये कहाँ और किस हदतक उत्तरदायित्वपूर्ण शासनकी स्थापना होनी चाहिए, अथवा वर्त्तमान प्राप्त अधिकारोंमें किस अंशतक वृद्धि, सुधार अथवा रुकावटकी आवश्यकता है। प्रकाशित प्रस्तावनासे यह स्पष्ट हो जाता है कि जब कमीशन अपनी रिपोर्ट दे चुकेगी और जब भारत-सरकार तथा सम्राट्की सरकार उसकी जाँच कर लेगी तब वह उसको पार्लियामेण्टमें पेश करेगा और पार्लियामेण्टकी दोनों सभाओंकी एक संयुक्त समितिके सामने इस प्रस्तावको रक्खेगा। परन्तु अन्तिम निर्णय पार्लियामेण्ट ही करेगी। इन बातोंके कारण भारतीयोंको, इस कमीशनकी सदस्यतासे बहिष्कृत रखना, बृटिश सरकारकी अक्षम्य मूर्खता तथा अन्याय है।

निरर्थक सहयोग

भारतीय मत जाननेके लिये यह नियम बनाया गया है कि कमीशन बड़ी व्यवस्थापिका सभाको इसलिये निमन्त्रित करे कि वह निर्वाचित तथा मनोनीत ग़ैर-सरकारी सदस्योंकी एक सम्मिलित निर्वाचित-समिति बनावे जो अपने विचारों तथा प्रस्तावोंको कमीशन-द्वारा निर्धारित विधिसे लिखित रूपमें उसके सामने जाँचके लिये रक्खे। इसी नियमका अनुकरण प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाको भी करना पड़ेगा। इसके साथ यह नियम भी बनाया गया है कि पार्लियामेण्टकी संयुक्त समिति अन्य समितियोंके सहित भारतीय बड़ी व्यवस्थापिका सभाको प्रतिनिधित्वके द्वारा अपने विचारोंको इस समितिके समक्ष प्रकट करनेके लिये निमन्त्रित करेगी। ये सामयिक परिस्थितिकी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति नहीं कर सकते। हम लोग केवल यही नहीं चाहते कि अपने सिद्धान्तोंको कमीशन अथवा संयुक्त समितिके सामने रक्खें, किन्तु हम लोग यह जानना तथा इसकी परीक्षा करना चाहते हैं कि हमारी आवश्यकताओं तथा माँगोंके विरुद्ध क्या कहा जा रहा

है। साथ ही हम राष्ट्रीय दृष्टिसे, कमीशनमें विचारणीय विषयोंपर अपना मत प्रकट करना चाहते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इङ्गलैण्ड तथा भारतमें ऐङ्गलो-इण्डियनों तथा अन्य अभारतीय मतवालोंका एक शक्तिशाली तथा सङ्कुटित दल है जो बृटिश जनता तथा सभ्य संसारकी दृष्टिमें बहुत बुरी तरहसे हमें गिरानेका प्रयत्न कर रही है। यदि कुछ भारतीय, जो अपने देश-वासियोंके विश्वासपात्र हैं, कमीशनके सदस्य बनाए जाते तो उनकी उपस्थिति इस प्रकारके दलोंद्वारा हमारे विरुद्ध प्रकट किए जानेवाले असम्बध विचारोंके लिये एक रोक होती। और यदि वे ऐसे विचार प्रकट भी करते तो भारतीय सदस्य गवाहोंसे जिरह करके या अन्य प्रकारसे भेद खोल देनेमें समर्थ होते। केवल कमीशनके सामने अपने विचारोंको प्रकट कर देनेकी आज्ञा मिल जानेसे हमें वह अधिकार नहीं प्राप्त होता जो अधिकार इस कमीशनके सदस्यकी हैसियतसे प्राप्त होता। तब हम अपने विरुद्ध प्रकट किए गए विचारोंकी वास्तविकताकी जाँच कर सकते तथा उनकी यथोचित आलोचना कर सकते, और इस विचारके सम्बन्धमें भारतीय मतकी भली भाँति व्याख्या कर सकते।

अपमान

इन आपत्तियोंके अतिरिक्त, कमीशनसे भारतीयोंको बहिष्कृत रखनेके कारण, हमारे देशवासी सर्वगत अपमान तथा दुःखका अनुभव कर रहे हैं, क्योंकि यह इस क्रूर बातका स्मरण दिलानेवाला भी है। हमारे बृटिश-प्रजा-बन्धु अपनी नीतिद्वारा हमें शक्तिहीन बनाकर, यह लाभ भी उठाना चाहते हैं कि वे हमें अपना प्रजा-बन्धु भी नहीं समझते और हमारे ही देशमें तथा हमारे घरेलू कार्य्योंके विषयमें भी हमारे साथ वैसा समताका व्यवहार करनेके लिये वे प्रस्तुत नहीं हैं। यह सोचकर दुःख होता है कि हमारे साथ उनका जो वर्त्तमान व्यवहार है तथा महासमरके समय उनका जो व्यवहार था उसमें कितना अन्तर हो गया है। जब महा समरका प्रारम्भ हुआ, तो देशी नरेशों और भारतकी प्रजाने जो कुछ किया उसका वर्णन सम्राट् इस प्रकार करते हैं, "साम्राज्यके लिये उन्होंने अपने जीवन तथा निधिका महा व्यय किया"। उस समय हमारा स्वागत "साम्राज्यके भाग्य और हितके संयुक्त तथा समान संरक्षक" कहकर किया गया था। इङ्गलैण्डके तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्रीयुत एस्क्विथने कहा था, "हम लोग धन्यवाद तथा प्रेमके साथ जाति और वर्णका भेद न रखकर साम्राज्यके लिये दी हुई भारतीय सहायताका स्वागत करते हैं। साम्राज्यके भीतर सम्राट्की सभी प्रजा बराबर हैं तथा सार्वजनिक हित एवं भाग्यकी संयुक्त तथा समान संरक्षिका हैं। हम निजी और साम्राज्यकी सेनाके साथ उनके कन्धे-से-कन्धा मिलाए हुए, एक ही पताकाके नीचे, गम्भीरता तथा हार्दिक कृतज्ञताके साथ उनका स्वागत करते हैं, जो पताका इस बातका प्रतीक है कि सारा संसार लड़नेके लिये इस सेनासे सामना करके भी इसे विच्छिन्न और विश्रान्त नहीं कर सकता। श्रीयुत बोनर लौने कहा था, "मैं नहीं कह सकता कि हम पूर्णतया इस बातका विचार करते हैं कि इन भारतीयोंने जो हमारे सैनिकोंके साथ लड़े तथा मरे हैं, इन कठिन दिनोंमें हमारी कितनी सहायता की है।" लौर्ड हाल्डने कहा था कि, "भारतीय सैनिक हम लोगोंकी स्वतन्त्रताके साथ-साथ मनुष्यत्वकी स्वतन्त्रताके लिये लड़ रहे हैं। भारतने मनुष्यत्वकी रक्षाके लिये अपने प्राण तथा धनका मुक्तहस्तसे वितरण किया है। अतएव उनकी दशा वैसी नहीं रहनी चाहिए जैसी अबतक रही है।" श्री लौयड जौर्जने कहा था कि, "साम्राज्यान्तर्गत राष्ट्रों तथा भारतकी सहायता अद्भुत थी। जो सहायता उन्होंने हमारे दुर्दिनोंमें की वह अमूल्य है।" लौर्ड कर्ज़नने कहा था कि, "भारतीय समुद्री-सेना फ्रान्स ठीक समयपर पहुँची तथा इसने मित्र राष्ट्रों तथा सभ्य संसार दोनोंकी रक्षामें सहायता

पहुँचाई।" तथा, "इस सेवाका महत्त्व तथा रूप कभी भी भुलाया नहीँ जा सकता"। श्रीयुत लैायड जौर्जने एक दूसरे अवसरपर कहा था कि, "अब भारतको देखिए, किस शूरता तथा किस राजभक्तिके साथ इसने बृटिश सेनाओँकी सहायता की है। उनकी यह सारपूर्ण और दृढ़ सहायता जो उन्होँने हमारे इस सङ्कटके समयमेँ की है, उस समय भुलाई नहीँ जा सकती जब कि लड़ाई समाप्त हो जाती है और भारत-सम्बन्धी प्रश्नोँपर विचार करनेका समय आता है।" महा समरके अन्तमेँ लैायड जौर्जने कहा, "बृटिशवासियो! आप इस बातकी प्रसन्नता प्रकट कर सकते हैँ कि मित्र-सङ्घ, उपनिवेशोँ तथा भारतकी सहायतासे आपने एक भव्य विजय प्राप्त की है। संसारके इतिहासमेँ स्वतन्त्रताके लिये यह एक अपूर्व विजय है।" आगे चलकर फिर इङ्गलैण्डके उसी उद्भट उन्नायकने कहा, "इन नवीन राष्ट्रोँ तथा उपनिवेशोँने बड़ी वीरतासे युद्ध किया और बहुत आर्थिक सहायता दी और उपनिवेश-परिषद्मेँ अपना स्थान प्राप्त किया।" उनके विषयमेँ जो सत्य है वही भारत-साम्राज्यके लिये भी उपयुक्त है, जिसने इन प्रशंसनीय विजयोँको, अपनी आर्थिक तथा सैनिक सहायतासे प्राप्त की, जिनसे हमारे दुश्मनोँका मान-मर्दन आरम्भ हुआ। भारतकी आवश्यकताओँकी अवहेलना उस समय नहीँ होनी चाहिए जब शान्ति-सम्मेलनको सफलता प्राप्त होती है। हम लोगोँने चार वर्षतक भ्रातृभावका निर्वाह किया है, उसका अन्त यहीँ नहीँ हो जाना चाहिए।

विस्मृत प्रतिज्ञाएँ

परन्तु प्रतीत यह होता है कि इसका अन्त वहीँ हो गया। यद्यपि बृटिश पार्लियामेण्टने यह घोषणा कर दी कि बृटिश नीतिका लक्ष्य, भारतमेँ पूर्ण स्वराज्य स्थापित करना है, तथापि उसने भारतको इस "गौरवपूर्ण विजय" के न्यायपूर्ण फलोँको भोगनेसे वञ्चित रक्खा। जिसके विषयमेँ कहा गया है कि वह "संसारके इतिहासमेँ स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिये भव्य विजय है और उसे भारतने मित्र राष्ट्रोँ तथा अन्य उपनिवेशोँके साथ-ही-साथ प्राप्त किया।" उसके लिये इसने दूसरे राष्ट्रोँके लिये जिस नीतिका अवलम्बन किया उसका प्रयोग भारतके प्रति नहीँ किया कि औपनिवेशिक अधिकारोँके निपटारेमेँ इस नीतिका अवलम्बन किया जायगा कि सम्पूर्ण जनताके राज्याधिकार तथा हितोँको उसके ऊपर शासन करनेवाली सरकारके बराबर अधिकार मिलेँगे। इसने भारतको बहुत कालसे अपने घरेलू प्रबन्ध, स्वयं करने तथा अपना अभ्युदय करनेकी इच्छित स्वतन्त्रता देना अस्वीकार किया। पार्लियामेण्ट इस बातको भूल गई कि कुछ समयको छोड़कर, भारतीयोँने अंग्रेज़ोँके आगमनके पहले अपना राज्य उत्तम रीतिसे, प्रायः चार हज़ार वर्षोँतक चलाया, तथा अब भी भारतके एक तिहाई भागका शासन भारतीय नरेशोँके द्वारा हो रहा है, तब भी बृटिश पार्लियामेण्टने भारत किस अवस्थामेँ तथा किस समयमेँ पूर्ण-स्वराज्य प्राप्त करने योग्य होगा, इस बातके निर्णय करनेका अधिकार केवल अपने हाथमेँ रख छोड़ा है।

हम भारतीयोँने, इङ्गलैण्डके इस कुविचारका तीव्र विरोध किया, जैसा कि भारतीय राष्ट्रीय-महासभाके विवरणोँ तथा बड़ी व्यवस्थापिका सभाकी कार्रवाइयोँद्वारा ज्ञात होता है।

हम लोगोँने बार-बार इस बातपर ज़ोर दिया है कि सरकारको चाहिए कि भारतके सभी दलोँ और वर्गोँके प्रतिनिधियोँ तथा सरकारके प्रतिनिधियोँकी एक गोल-मेज-परिषद् करावे, जिसमेँ भारतके लिये एक ऐसे शासन-विधानका निर्माण करेँ जिससे भारतीय जनता सन्तुष्ट हो जाय। यह माँग भारतीय राष्ट्रकी थी जिसे सन् १९२४ ई० की फ़रवरीमेँ जनता-द्वारा निर्वाचित बड़ी व्यवस्थापिका सभाके प्रतिनिधियोँने जनताकी ओरसे पेश किया था। बृटिश सरकारने पार्लियामेण्टके सात सदस्योँसे बने

एक कमीशनकी नियुक्तिद्वारा इस माँगकी पूर्त्ति करनेका प्रस्ताव किया है। इसने उन भारतीयोंको, जिन्हें महासमरके समय—"अंग्रेज़ोंके सङ्कट-समयके सशस्त्र साथी" कहकर सम्बोधित किया गया था, इस कमीशनमें स्थान नहीं दिया है जो इस वातकी जाँच तथा रिपोर्ट करनेके लिये स्थापित हुआ है और जो उनके देशमें शासन-सुधारके मार्गकी जाँचका विवरण देनेके लिये नियुक्त किया गया है।

सन् १९१९ ई० की नियमावलीमें प्रकाशित राजकीय घोषणामें हमारे सम्राट् महोदयने अपने अधिकारियों तथा प्रजावर्गसे यह अभ्यर्थना करनेकी कृपा की थी कि, "एक सर्वहितकारी उद्देशके लिये, हमारी प्रजा तथा अधिकारी वर्गोंमें, पारस्परिक सहयोगसे कार्य्य करनेको एक सम्मिलित निश्चयसे युक्त नये युगका जन्म हो तथा मुझे यह विश्वास है कि हमारे अधिकारी वर्ग तथा प्रजा पारस्परिक सहयोगसे, दायित्व-पूर्ण स्वराज्यकी स्थापनाके लिये, आवश्यक सुधार करनेमें सहयोग देंगे।"

यद्यपि असहयोग-आन्दोलनके फल-स्वरूप प्रथम नवनिर्मित व्यवस्थापिका सभामें कांग्रेसजनोंने निर्वाचनके लिये प्रयत्न नहीं किया, परन्तु यह ध्यान देनेकी वात है कि सुधारोंके प्रारम्भ होनेके समयसे ही किसी भी सभामें, एक भी स्थान ख़ाली नहीं रहा। परन्तु जहाँ भारतीय प्रजाने सुधारोंकी सफलतामें इतना सहयोग किया है, वहाँ व्यवस्थापिका सभाकी बैठकोंसे पता चलता है कि सरकारी अधिकारी वर्गने जनताके प्रतिनिधियोंके साथ कितना अल्प सहयोग किया है, क्योंकि व्यवस्थापिका सभाके वहुत कम ही ऐसे प्रस्ताव होंगे जिनपर सरकारने अपनी सम्मति दी हो। इस भारतीय व्यवस्थापक कमीशनमें भारतीयोंका विल्कुल वहिष्कार करके बृटिश वन्धुओंने अपने दुर्भावको पराकाष्ठापर पहुँचा दिया है। इससे भारतीयों तथा अंग्रेज़ोंके पारस्परिक सम्वन्धमें दोष ज्ञात होता है। क्योंकि मुझे कोई ऐसा राजकीय कमीशन याद नहीं है जिसमें भारतीयोंको स्थान न मिला हो। इङ्गलैण्डके लिये यह सदाके लिये लज्जाकी वात होगी यदि बृटिश जाति महासमरमें की हुई भारतकी उन सेवाओंको इतना शीघ्र भूल जाय, जिनकी प्रशंसा उन्होंने स्वयं वार-वार की हैं और अव हमारे स्वत्वोंके विचारके अवसरपर वे हमें अपने ही समान एक वन्धु-प्रजा न समझकर हमें अपना आश्रित समझें? एक वड़े राष्ट्रको ऐसा व्यवहार शोभा नहीं देता। यह विल्कुल ओछी वात है। मैं अपने बृटिश भाइयोंसे निवेदन करता हूँ कि वे भारतकी इस गूढ़ समस्याको हल करनेके लिये इस कमीशनमें उतनी ही संख्यामें भारतीय सदस्योंकी भी नियुक्ति करके इस विषम विषयकी उचित जाँच तथा रिपोर्ट करावें, क्योंकि लार्ड वर्केन्हेडके कथनानुसार "यह भारतीयोंकी कई पीढ़ियोंके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विधानात्मक समस्या है।"

यदि ऐसा किया जायगा और यदि सरकारका विचार शुद्ध रहेगा, जैसी कि मुझे पूर्ण आशा है, तो यह नियम होना चाहिए कि कमीशनमें उन्हीं भारतीयोंकी नियुक्ति होगी जो अपने देशवासियों तथा अधिकांश दलोंके विश्वास-पात्र हो। फलतः भारतीयोंको सर जौन साइमनके सभापतित्त्वमें रहकर, बृटिश भाइयोंसे पूर्ण सहानुभूतिके साथ सहयोग करनेमें अत्यन्त हर्ष होगा। मुझे आशा है कि सभापति महोदय अपनी सज्जनताका परिचय देंगे और स्वतन्त्रता तथा न्यायकी पुजारी अंग्रेज़ जातिके परम्परागत नियमको स्थायी रक्खेंगे, जव उन्हें वादी-प्रतिवादियोंके हैसियतसे नहीं वल्कि मित्रोंकी हैसियतसे भारतीयोंके द्वारा भारतवर्षकी सच्ची अवस्थाके अध्ययनमें सहायता प्राप्त होगी। परन्तु, यदि यह भूलकर कि इङ्गलैण्डने न्यायकी रक्षाके लिये जर्मनीसे महायुद्ध किया था और यदि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले सिद्धान्तको चरितार्थ करना चाहते हैं जिसके विरोधके लिये हमारे भारतीय योद्धाओंने अपन प्राण न्यौछावर करके अंग्रेज़ोंकी सहायता की थी, और यदि हमारी न्यायसिद्ध माँगोंको स्वीकार नहीं

करेँगे तो वे ही ज़िम्मेदार होँगे यदि सर्वश्रेष्ठ भारतीय बाध्य होकर सरकारसे असहयोग करेँगे और राष्ट्रीय प्रतिष्ठा तथा राष्ट्रीय हितकी रक्षाके भावसे उत्तेजित प्रत्येक आत्म-सम्मानी भारतीय खेद किन्तु दृढ़ताके साथ कमीशनके इस रूपका बहिष्कार करेगा। कुछ छुटपुट व्यक्तिगत समर्थनोँको छोड़कर कमीशनके कारण जो सार्वभौम विरोध उत्पन्न हुआ है तथा जो आगे आगे और भी दृढ़ होता जायगा, उसे दृष्टिमेँ रखकर कोई भी सभा, प्रस्तावित संयुक्त-समिति नहीँ बना सकती। क्या हमारी यह आशा करना भ्रमपूर्ण है कि जिस कमीशनका भारतीय जनता सर्वसम्मतिसे दृढ़ विरोध करती है उसकी गठनपर सरकार पुनः विचार करेगी तथा भारतीयोँकी न्यायपूर्ण माँगोँको स्वीकार करके उस नीतिका प्रयोग करेगी जो कमीशनके इस महान् कार्य्यकी पूर्त्तिके लिये परम आवश्यक है; अर्थात् इन मनुष्योँका विश्वास तथा उनकी सहयोगिता प्राप्त करना जिनके कार्य्योँकी जाँच तथा रिपोर्टके लिये इसकी नियुक्ति हुई है ? मैँ बृटिश राजनीतिज्ञोँसे इसका उत्तर चाहता हूँ।

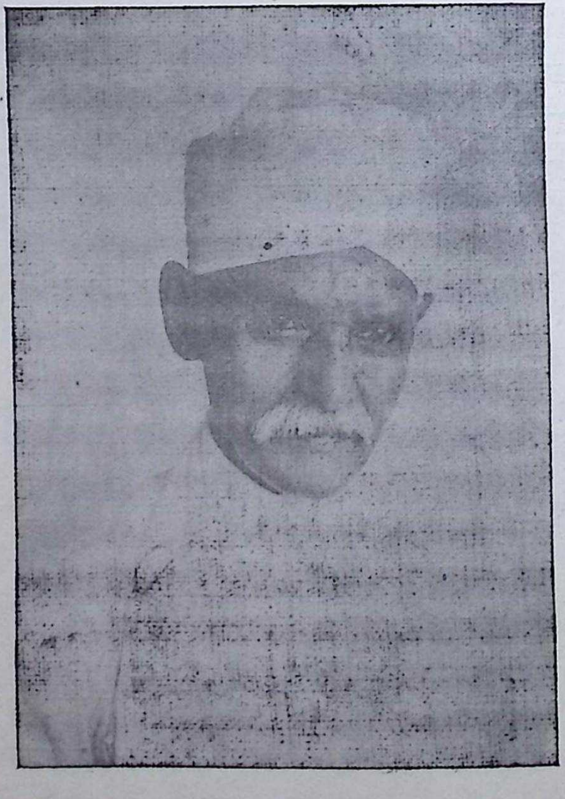

पूज्य मालवीयजी सन् १९२७ मेँ।

स्वदेश

भारतकी दशापर

भारतकी तात्कालिक दशापर पूज्य पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने विलायतसे लौटनेपर वाइसरायको पत्र लिखा था।

—सम्पादक।

बिरला हाउस
बम्बई
२९ जनवरी, १९३२.

श्रीमान्!

भारतको लौटते समय मैंने यह सूचना पाई कि भटके लिये आप महात्मा गान्धीके अत्यन्त अनुरोधको स्वीकार करनेके लिये उद्यत नहीं हैं। इसपर मैंने आपको तार दिया था कि कांग्रेस और सरकारके बीचमें विवादग्रस्त बातोंका निपटारा समझौतेद्वारा हो सकता है और उनके निपटारेके लिये मैंने आपसे महात्मा गान्धीका सहयोग प्राप्त करनेका अनुरोध किया था। मैंने भारत-सचिव और प्रधान-मन्त्रीके पास इसी आशयका एक तार भेजा था। उसमें मैंने यह आशङ्का प्रकट की थी कि कहीं ऐसा न हो कि महात्माजीके साथ विचार-विनिमयकी आपकी अस्वीकृतिसे उनको सविनय अवज्ञा आन्दोलन पुनः चलानेके लिये बाध्य होना पड़े। कुछ दिन हुए जहाज़से उतरनेपर मुझे बतलाया गया कि प्रसिद्ध व्यक्तियों और संस्थाओंने इसी आशयके बहुतसे तार आपके पास भेजे हैं। लेकिन मुझे यह जानकर खेद हुआ कि आपने इन प्रार्थनाओंपर केवल ध्यान ही देना उचित नहीं समझा बल्कि उलटे सन् १८२७ के पचीसवें विधानके अनुसार महात्मा गान्धीको बन्दी कर लिया और एक दूसरा काला क़ानून निकाल दिया जिसको आपने अन्य प्रान्तोंपर भी लागू कर दिया है। मैंने काले क़ानूनको बड़ी सावधानीसे पढ़ा है और उनके अनुसार देशमें जो कार्रवाइयाँ हुई हैं उनका मनन भी किया है। अब श्रीमान्के पास इस पत्रको भेजना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

गत २५ तारीख़को आपने जो बड़ी व्यवस्थापिका सभामें भाषण दिया था, उसमें आपने विकट परिस्थिति पैदा करनेका दोष कांग्रेसके सिर मढ़ा है। मेरे एक तारके उत्तरमें सर सैमुएल होरने भी एक पत्रमें कहा है कि क्या ही अच्छा होता यदि कांग्रेस इतनी उतावलीसे काम न लेती। "महात्मा

गान्धी तथा लोक-हितके लिये न्यायका यही आग्रह है कि इस मामलेमें सत्यका पालन निर्विवाद होना चाहिए”।

४ तारीख़को सरकारने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, उसके सम्बन्धमें मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि कांग्रेसके विषयमें कई भ्रमात्मक बातें लिखी गईं। उसमें कहा गया था कि—

“श्री गान्धीने यह साफ़-साफ़ नहीं कहा था कि महाराजाधिराजकी सरकारकी योजनाकी पूर्त्तिमें वे या कांग्रेस, जिसका वे सञ्चालन करते हैं, सहायता देना चाहते हैं या नहीं।”

यह बात नितान्त असत्य है। मैंने और महात्मा गान्धीने प्रधान मन्त्री और भारत-सचिवसे अलग-अलग भेंट की, जहाँ गोलमेज़ परिषद्के भावी कार्य्यक्रममें महात्मा गान्धीके सहयोगके प्रश्नपर भी विचार हुआ। बातचीतमें, महात्मा गान्धीके एक प्रश्नके उत्तरमें सर सैमुएल होरने कहा था कि संरक्षणके विषयमें न तो प्रधान मन्त्रीकी घोषणा और न साधारण सभामें मेरा दिया गया व्याख्यान ही प्रमाण है। प्रस्तावित विषय-समितिके प्रत्येक सदस्यको यह अधिकार रहेगा कि वह सुधारकी सलाह दे सकता है या प्रस्तावित सुधारोंमें किसी एकको रद्द करनेकी सलाह दे सकता है और वह राष्ट्रीय सरकारको मिले हुए आर्थिक मामलोंकी जाँच भी कर सकता है। मैंने महात्मा गान्धीसे अनुरोध किया था कि इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयका आश्वासन लिखित रूपमें ले लिया जाय। उन्होंने लिखा-पढ़ी की और मुझे यह निश्चित रूपसे मालूम हुआ कि उत्तरमें सर सैमुएल होरने उस आश्वासनको पुनः दुहराया। यह स्पष्ट है कि लिखित आश्वासन माँगनेमें महात्मा गान्धीका अभिप्राय यही था कि कमेटीके कार्य्यमें सहयोग प्रदान करनेका उन्हें अवसर मिले। मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि उन्होंने सहयोग करनेका वचन प्रधान मन्त्री और भारत-सचिव, दोनोंको दिया था। जिस दिन वे भारतमें पहुँचे, उस दिन उन्होंने जनताके बीचमें कहा था कि मैं सरकारके साथ सहयोग करनेके लिये लालायित हूँ। उन्होंने कहा था—

‘मैं इस आशाके साथ जहाज़से उतरा था कि मुझे सहयोग करनेके लिये साधन और मार्ग मिलेंगे। किन्तु पग-पगपर मुझे बड़ी रुकावटें दिखाई देती हैं। इस दशामें मैं क्या कर सकता हूँ। फिर भी मैं उन मार्गों और साधनोंको खोजनेके लिये व्याकुल हूँ।’

महात्मा गान्धीने देखा कि बङ्गालमें काला क़ानून तो था ही, यू० पी० और सीमान्तप्रदेशमें भी काले क़ानून लागू हो गए हैं, और फलस्वरूप इन प्रान्तोंके कुछ प्रतिनिधि कार्य्यकर्त्ता बन्दी कर लिए गए हैं। यह सब होते हुए भी कांग्रेसकी कार्य्यकारिणी समितिकी पूर्ण सम्मतिसे उन्होंने आपके पास भेंट करनेके लिये तार भेजा। कांग्रेसको किस पथपर आगे बढ़ाया जाय, यह आपसे जान लेना ही उनकी भेंटका मुख्य उद्देश था। ये बातें २९ दिसम्बरकी हैं। दूसरे दिन कलकत्तेमें भाषण देते हुए और संयुक्तप्रान्त और सीमान्तप्रदेशमें कांग्रेसकी कार्रवाइयोंका उल्लेख करते हुए आपने कहा था—

“मैं आशा करता हूँ कि अभी इस अन्तिम क्षणमें विलायतसे अभी लौटे हुए कांग्रेसके सर्वमान्य नेता श्रीगान्धीजी उन कार्रवाइयोंको बन्द कर देंगे और हम लोगोंके साथ सहयोग करेंगे। मुझे आशा है कि अपने देशके शासनका दायित्त्व भारतीयोंको देनेकी विकट समस्याको सुलझानेमें वे हम लोगोंको अपने शक्तिशाली प्रभावसे लाभ उठानेका अवसर देंगे”।

जब आपने यह अपील की थी तब आपने महात्मा गान्धीकी भेंटकी प्रार्थनाको क्यों अस्वीकार कर दिया, जो आपसे मिलकर सरकारकी नीतिको समझ लेना चाहते थे? जब आप भी कांग्रेससे सहयोग ही चाहते थे तब आपने ऐसी शर्त्तें क्यों लगा दीं, जिन्हें कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति उस परिस्थितिमें स्वीकार नहीं कर सकता? आपने इस

बातपर क्यों ज़ोर दिया कि आप यदि उनसे मिलेंगे तो बङ्गाल, संयुक्तप्रान्त तथा सीमान्तप्रदेशकी वर्त्तमान सरकारी नीतिपर उनके साथ बातचीत नहीं करेंगे? उसमें भी ख़ूबी यह कि आपने उन प्रान्तोंमें अपनी कार्रवाई बन्द करनेका उनसे अनुरोध किया है। आपके तारका उत्तर देते हुए और आपकी सम्पूर्ण शङ्काओंका समाधान करते हुए महात्मा गान्धीने लिखा था :—

यदि अब भी समय हो, तो मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप अपने निर्णयपर फिरसे विचार करें और बातचीतके विषय और विस्तारपर कोई शर्त्त न लगाएँ। आप मुझे मित्र समझिए। मैं अपनी ओरसे आपको यह वचन देता हूँ कि जो बातें आप मेरे सामने कहेंगे उनका उदारताके साथ अध्ययन करूँगा और उन प्रान्तोंमें जाकर अधिकारियोंकी सहायतासे प्रश्नके दोनों पहलुओंपर विचार करूँगा, और यदि मुझे इस जाँच-पड़तालके बाद यह विश्वास हो गया कि लोगोंकी भूल है और मेरे-सहित कार्य्यकारिणी समितिने भी वास्तविक स्थितिको समझनेमें भूल की है तथा सरकार निर्दोष है तो मुझे अपनी भूल स्वीकार करनेमें सङ्कोच न होगा तथा उसके अनुसार कांग्रेसको आदेश देनेमें मैं किसी प्रकारकी आनाकानी न करूँगा। साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया था कि "सरकारके साथ सहयोग करनेकी मुझे इच्छा है, किन्तु साथ-ही-साथ मैं अपने सहयोगकी सीमा श्रीमान्‌से स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। अहिंसा मेरा धर्म है। जब अपने देशके शासनमें जनताका कोई हाथ न हो, तब मैं सविनय अवज्ञाको एक स्वाभाविक शस्त्र समझता हूँ। इतना ही नहीं बल्कि इसे मैं सशस्त्र क्रान्ति एवं हिंसाका स्थानापन्न भी मानता हूँ। अतः अपना धर्म नहीं छोड़ सकता। मुझे उसके पालनमें और उन यथार्थ बातोंके आधारपर, जिनकी पुष्टि सरकारकी हालकी कार्रवाइयोंसे होती है और जिनके कारण जनताको आगे बढ़ानेका अवसर नहीं मिल सकता, कांग्रेसकी कार्य्यकारिणी समितिने मेरी रायको मानकर सविनय अवज्ञाका एक ढाँचा खड़ा किया है और जो प्रस्ताव पास किया है उसकी प्रतिलिपि मैं इसके साथ भेजता हूँ। यदि श्रीमान् मुझसे मिलना उचित समझते हों तो इस प्रस्तावकी कार्रवाई इस आशामें तबतकके लिये स्थगित कर दी जाय जबतक कि बातचीत चलती रहे कि शायद फलस्वरूप यह प्रस्ताव सदैवके लिये त्यक्त हो जाय।"

आपने अवश्य देखा होगा कि प्रस्ताव प्रयोगात्मक था और उसमें सरकारके साथ सहयोग करनेकी अभी अभिलाषा थी। उसमें कहा गया था कि: "यदि वाइसराय महोदय अपने तारपर पुनः विचार करें और काला क़ानून तथा उसकी कार्रवाइयोंके सम्बन्धमें उचित वचन दें और पूर्ण स्वराज्यके लिये कांग्रेसको अपना दावा पेश करने, उचित सम्मति देने तथा बातचीत करनेका पर्य्याप्त अवसर द, और पूर्ण स्वराज्यके स्थापित होनेतक देशके शासनका सञ्चालन प्रजाके प्रतिनिधियोंकी रायसे हो, तो कार्य्यकारिणी समिति सरकारके साथ सहयोग करनेके लिये तैयार है।"

और उससे यह भी स्पष्ट हो गया था कि सरकारकी ओरसे सन्तोषजनक उत्तर न मिलनेके कारण ही कार्य्यकारिणी समितिने सविनय अवज्ञा तथा लगानबन्दीका आन्दोलन आरम्भ करनेका देशसे अनुरोध किया था। उसमें कहा गया था—"कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिलनेपर कार्य्यकारिणी समिति सरकारका यही अर्थ समझेगी कि दिल्ली-सन्धिका अन्त हो गया।" आपने दुर्भाग्यवश महात्मा गान्धीके अनुरोधका विरोध इसी लिये किया कि आपको उस विचार-विनिमयसे कोई लाभ होता नहीं दिखाई देता था, जो सविनय अवज्ञाकी धमकी देकर होनेवाला हो। आपने कहा था कि कांग्रेसने जो कार्रवाई करनेकी इच्छा प्रकट की है, उसके फलस्वरूप सभी कामोंके लिये सरकार, गान्धीजी तथा कांग्रेसको उत्तरदायी समझेगी, और उनका सामना करनेके

लिये सरकार सम्पूर्ण आवश्यक साधनोंकी शरण लेगी। फिर भी आपके तथा आपकी सरकारके निर्णयपर खेद प्रकट करते हुए महात्माजीने तार भेजा। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि मेरी सच्ची भावनाको धमकी समझ लेना भूल है। उन्होंने आपको याद दिलाई थी कि सविनय अवज्ञाके चलते रहनेपर ही दिल्लीके समझौतेकी बातचीत हुई और समझौता हुआ; और यह भी याद दिलाई कि जब सन्धि हो गई तब सविनय अवज्ञा आन्दोलन सदैवके लिये बन्द नहीं कर दिया गया था, बल्कि वह कुछ बातके लिये स्थगित कर दिया गया था, और इस बातको आप तथा आपकी सरकारने शिमलेमें सितम्बरमें श्री गान्धीजीके लन्दन जानेके पहले स्वीकार भी कर लिया था। उन्होंने यह भी याद दिलाई कि यद्यपि उन्होंने यह स्पष्ट कह दिया था कि कांग्रेसको कुछ विशेष परिस्थितियोंमें सविनय अवज्ञा प्रारम्भ करना पड़ेगा, तथापि सरकारने समझौतेको नहीं तोड़ा। यदि कांग्रेसका यह निर्णय सरकारको पसन्द न होता तो महात्माजीको लन्दन भेजना या न भेजना सरकारके हाथमें था। फिर भी आपने कोई उदारता नहीं दिखलाई। महात्मा गान्धीको कोई जवाब न मिला। उलटे एकदम अचानक वे बन्दी बना लिये गए। अस्तु, मैं बड़ी नम्रताके साथ कह देना चाहता हूँ कि इन बातोंसे यह स्पष्ट है कि कांग्रेसने पहले छेड़छाड़ आरम्भ नहीं की, बल्कि आपकी सरकारने ही उसे उभाड़ दिया।

आप यह जानते हैं कि महात्मा गान्धी भारतके सर्वश्रेष्ठ जीवित महापुरुष हैं और जीवनकी पवित्रता, त्याग एवं देश और संसारकी सेवाके उच्च भावोंके लिये भारतके अगणित मनुष्य उनकी पूजा करते हैं और संसारके सभी लोग उनका आदर करते हैं। आप यह भी जानते हैं कि दस वर्षोंसे वे भारतकी सबसे बड़ी राजनीतिक संस्थाके सर्वमान्य नेता हैं। कुछ ही दिनोंकी बात है, जब सविनय अवज्ञा आन्दोलन ज़ोरोंपर था, सरकारने उनके साथ समझौता किया था और इङ्गलैण्डके मन्त्रिमण्डलके आदेशानुसार आपने उनको गोलमेज़ परिषद्में भाग लेनेके लिये निमन्त्रित किया था। आप समझ सकते हैं कि चाहे इस वर्ष या आगामी वर्ष, जब कभी भारतमें नया शासन-विधान प्रचलित होगा तब आपको महात्मा गान्धीके हाथों देशका भार सौंपना होगा। आप यह भी जानते हैं कि उनसे मिलनेसे आपने जो इनकार कर दिया उससे देशमें विषम स्थिति उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। आपने इस बातकी कुछ भी चिन्ता न की कि महात्मा गान्धी जैसे महापुरुष, जो इस राष्ट्रके सर्वप्रधान नेता हैं, आपसे मिलनेके शिष्टाचारकी आशा कर सकते हैं। इस शिष्टाचारकी अवहेलना कर आप दिल्ली-सन्धिके द्वारा खुले हुए मार्गसे विमुख हो गए हैं। इतना ही नहीं, इससे समस्त भारतका अपमान भी हुआ है।

काला क़ानून

आप और आपकी सरकार दो पग और भी आगे बढ़ गए। न्याययुक्त राज्यके बदले आपने काले क़ानूनका राज्य स्थापित कर दिया है। और महात्मा गान्धीके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ उसमें एवं सरकारद्वारा प्रकाशित वक्तव्यमें आपने इन काले क़ानूनोंका औचित्य सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। इसमें सन्देह नहीं कि सन्तोषजनक शान्तिपूर्ण शासनकी प्रतिष्ठाके लिये भारत-सरकारके विधानसे गवर्नर जनरलको काला क़ानून निकालनेका अधिकार मिला है। किन्तु उक्त विधानके अक्षरोंका नहीं बल्कि उसकी भावनाका यह अर्थ है कि जिन बातोंके लिये व्यवस्थापिका सभाएँ बनी हुई हैं उनके लिये गवर्नर जनरल इस शक्तिका उसी समय उपयोग कर सकता है जब उसके पास अपनी प्रबन्धकारिणी समितिको अधिक शक्ति दिलानेके लिये व्यवस्थापिका सभासे अनुमति लेनेका समय न हो। कदाचित् यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि जब कोई प्रस्ताव व्यवस्थापिका सभाके सामने रक्खा जाता है, तब उससे यह लाभ

होता है कि उसपर लोकपक्षकी राय आती एवं जनताके प्रतिनिधियोंको आलोचना करनेका अवसर मिलता है। अवश्य ही यह लाभ उस समय नहीं मिल सकता जब प्रबन्धकारिणी अथवा स्वयं बड़े लाट महोदय ही उसको काले क़ानूनके रूपमें पास कर दें। इस दशामें जहाँपर आवश्यकता भी न हो वहाँपर भी काला क़ानून पास हो जानेकी आशङ्का होती है और लोकहितके लिये जितना अधिकार प्रबन्धकारिणीको मिलना चाहिए उससे कहीं अधिक अधिकार मिल जानेका भय रहता है। अतः जहाँपर व्यवस्थापिका सभाएँ स्थापित हैं वहाँ बड़े लाटको विशेष अधिकारका प्रयोग विशेष अवसरोंपर ही करना चाहिए। मुझे यह देखकर दुःख होता है कि जिन काले क़ानूनोंको आपने जारी किया है, उनके जारी करनेमें आपका ध्यान उपर्युक्त बातोंपर नहीं गया। मैं उनमेंसे एक बङ्गाल-काले-क़ानूनपर विचार करूँगा।

बङ्गालका काला क़ानून

पहले ही मैं यह कह देना चाहता हूँ कि बङ्गालमें जो अपराध हुए हैं, उनका मैं ज़ोरदार शब्दोंमें विरोध करता हूँ और उनके लिये मैं खेद प्रकट करता हूँ। आत्मरक्षा या देशपर आक्रमणको रोकनेके अतिरिक्त, यदि एक मनुष्य दूसरेकी हत्या करता है तो मैं इसे बड़ा पाप समझता हूँ। परन्तु आपने बङ्गालके लिये जो कठोर क़ानून जारी किया है उसकी मैं घोर निन्दा करता हूँ। भारतमें इससे बढ़कर कठोर दूसरा कोई क़ानून जारी ही नहीं किया गया है। इसकी धाराएँ अत्यन्त मनमानी और अन्यायसे पूर्ण हैं। इससे निर्दोष नागरिकोंको व्यर्थमें कष्ट और अपमान सहना पड़ता है। मैं साहसके साथ कहता हूँ कि यदि सरकारका विचार देशका शासन, जनताकी रायसे और न्यायके साथ करना होता तो बहुत पहले ही क्रान्तिकारी दल नष्ट हो गया होता। किन्तु यदि ऐसी बात न हुई और वर्त्तमान क़ानूनके द्वारा प्रबन्धकारिणीको जो शक्ति मिली है, उससे अधिक शक्ति देनेका सङ्कल्प गवर्नरने कर लिया था तो उनका कर्त्तव्य था कि जिस प्रकार उन्होंने १९२५ ई० में एक काले क़ानूनकी अवधि बीत जानेपर किया था वैसे ही वे अपने प्रस्तावोंको व्यवस्थापिका सभाके सामने रखते। किन्तु ऐसा न कर जनतापर इतना कठोर और व्यापक क़ानून लादकर सरकारने जनताके हृदयपर गहरी चोट पहुँचाई है। उस समय मैं और महात्मा गान्धी इङ्गलैण्डमें थे। उस समय इसके विषयमें पढ़कर हम लोगोंको बड़ा दुःख हुआ। लन्दन छोड़नेके पहले मैं प्रधान मन्त्री, भारत-सचिव और मन्त्रिमण्डलके कई सदस्यों और विरोधी दलके नेताओं तथा कुछ प्रसिद्ध वकीलों और दो भूतपूर्व वाइसरायोंसे मिला और विशेष रूपसे मैंने उनका ध्यान काले क़ानूनोंके भयङ्कर स्वरूपकी ओर आकर्षित किया। मैंने बतलाया कि यह दुर्भाग्यकी बात है कि गोलमेज़ परिषद्के चालू रहनेपर ऐसा काला क़ानून जारी हो और अनुरोध किया कि काला क़ानून रद्द कर दिया जाय। उसमें ऐसे सुधार किए जायँ कि उसके बुरे पहलू दूर हो जायँ। इसके विषयमें महात्मा गान्धीने भी प्रधान मन्त्री, भारत-सचिव एवं कई अन्य पुरुषोंसे बातचीत की थी। अन्य भारतीय भी इसके लिये प्रधान मन्त्री तथा भारत-सचिवसे मिले थे और इसमें परिवर्त्तन करनेके लिये उन्होंने अनुरोध किया था। कई प्रतिष्ठित अंग्रेज़ोंने कहा था कि हम काले क़ानूनोंके लिये लज्जित हैं। निदान इस मामलेमें आपसे फिर विचार करनेके लिये प्रार्थना की जाती है। हम लोगोंकी सलाहपर भारत-सचिव भी विचार करनेवाले थे। महात्मा गान्धी बङ्गाल जानेवाले थे और आतङ्कवादियोंको अपने मार्गसे विमुख करनेके लिये अपने प्रभावका प्रयोग भी करनेवाले थे। इसका उद्देश यह था कि उचित उपायोंद्वारा अपराधको क़ानूनद्वारा रोका जाय और अपराधियोंपर उचित मुक़दमे चलें और जनतामें आतङ्क न फैले और वे साधारण अधिकारसे वञ्चित न

रहें, और एक ऐसा वातावरण उत्पन्न हो जिससे शासन-विधानका कार्य्य सन्तोषजनक रूपसे प्रतिपादित हो सके। लेकिन जिन उपायोंका आपने अवलम्बन किया है, उनसे उन उद्देश्योंकी पूर्त्ति असम्भव हो गई है। काला क़ानून देखनेमें तो आतङ्कवादियोंके विरुद्ध है, परन्तु समूचे व्यवहारमें कांग्रेस-आन्दोलनको नष्ट करने एवं जनताको कायर बनानेके लिये ही इसका प्रयोग हुआ है।

संयुक्तप्रदेशका काला क़ानून

और भी देखिए। जब यह सब लन्दनमें हो रहा था, तब संयुक्तप्रान्तके लिये उसी तरहका काला क़ानून आपने जारी किया। बङ्गालके बारेमें यह तो कहा जा सकता है कि उस प्रान्तमें जो राजनीतिक अपराध हुए हैं, उनके कारण काले क़ानून जारी हुए हैं। किन्तु जो काला क़ानून संयुक्तप्रान्तके लिये जारी हुआ है, उसके विषयमें तो यह नहीं कहा जा सकता। गत २५ तारीख़को बड़ी सभामें भाषण देते हुए आपने कहा था कि, "युक्तप्रान्तमें कांग्रेसके प्रतिनिधियोंसे प्रान्तीय सरकार बातचीत कर रही थी, इसी बीचमें कांग्रेसने लगानबन्दी-आन्दोलनके आरम्भ करनेकी घोषणा कर दी और यदि उनकी कार्रवाइयोंका सामना किया जाता तो अवश्य ही उसके फल-स्वरूप परस्पर युद्ध होने लग जाता।"

अब हम वास्तविक स्थितिपर विचार करेंगे। जो संयुक्तप्रान्तकी कठिनाइयाँ कृषि-सम्बन्धी थीं, फ़स्लके नष्ट हो जाने तथा ख़ासकर बाज़ारके मन्दे हो जानेसे किसानोंकी जो दशा हुई उसकी जाँच और उनकी सहायता करनेकी आवश्यकता पड़ी। सरकारने बहुत अंशोंमें लगान माफ़ कर दिया, मगर किसानोंका कहना था कि उनको काफ़ी मदद नहीं मिली। सरकार और कांग्रेस-समितिमें इस विषयपर बहुत दिनोंतक पत्र-व्यवहार और बातचीत चलती रही। अन्तमें सरकारने इस बातकी ज़रूरत समझी कि इन मामलोंपर विचार तथा इनका निपटारा करनेके लिये कांग्रेस और सरकारके प्रतिनिधियोंकी एक सम्मिलित सभा हो। लेकिन दुर्भाग्यवश जब लगान-वसूलीका समय आया तब कोई सभा न की गई। समझौतेकी बातचीत होनेपर भी पहली क़िस्त वसूल की जानेवाली थी। किसान लोग नीलाम और बेदख़लीके भयसे त्रस्त हो रहे थे। ऐसी परिस्थितिमें उचित मार्गका अवलम्बन करनेके लिये कांग्रेससे सलाह माँगी गई। किसानोंको यह सलाह दी गई कि जबतक समझौतेका अन्त नहीं होता तबतक थोड़े दिनके लिये लगान रोके रहें। ऐसा होनेपर भारत-सरकारके आदेशानुसार संयुक्तप्रान्तकी सरकारने प्रान्तीय-कांग्रेस-समितिको सूचित किया कि जबतक कांग्रेस इस बातका निश्चित आश्वासन नहीं देती कि लगानबन्दीकी योजनाका प्रस्ताव स्थगित किया गया और इलाहाबाद-कांग्रेस-समितिका लगान न चुकानेका आदेश रद्द किया गया है, तबतक सरकार ऊपर कही हुई बातचीतमें आगे भाग लेनेके लिये तैयार नहीं है। इसके उत्तरमें प्रान्तीय-कांग्रेस-समितिके सभापतिने २५ नवम्बर, सन् १९३१ ई० को लिखा कि जब समितिको सूचना मिली कि लगान वसूल करनेमें कड़ाई की जायगी तो समितिने बाध्य होकर किसानोंको लगान न देनेकी सलाह दी। साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि:—"यदि वसूली बन्द कर दी जाय या स्थगित कर दी जाय तो समितिकी सलाह, उसके प्रस्ताव और उसकी सूचनाएँ तत्काल वापिस ले ली जायँगी। वसूली जारी रहनेपर और किसानोंको पूरी सहायता न मिलनेपर इस सलाहके सिवा कांग्रेस-समितिके पास कोई चारा नहीं है।"

श्री एच्० डब्ल्यू इमर्सनके पास २८ नवम्बर, सन् १९३१ ई० को भेजे गए एक पत्रमें श्री वल्लभ भाई पटेलने एक योजना रक्खी थी कि, "परस्परके समझौतेतक वसूली और कांग्रेसके प्रस्ताव, दोनों साथ-साथ स्थगित किए जा सकते हैं।" उन्होंने यह भी कहा था कि—"इससे ज़मीन्दारोंकी और सरकारकी कोई हानि न होगी। कांग्रेस इस बातको चाहती है कि संयुक्त-

प्रान्तमें शान्ति बनी रहे। और मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप मेरी योजनापर विचार करें और देखें कि इस आधारपर, किसी मध्यवर्त्ती मार्गपर विचार हो सकता है या नहीं। लेकिन अभाग्यवश प्रान्तीय कांग्रेस-समितिके प्रस्ताव एवं श्री पटेलकी योजनाको संयुक्तप्रान्तकी सरकारने स्वीकार नहीं किया। प्रान्तीय कांग्रेस-समितिको संयुक्तप्रान्तकी सरकारके मन्त्रीने २ दिसम्बर, सन् १९३१ ई० को अपने पत्रमें लिखा था कि:—

“मुझे यह कहना है कि प्रान्तीय परिषद्ने अपने निर्णयोंको न तो स्थगित किया है और न प्रयाग ज़िला कांग्रेस-समितिको अपने प्रचारित सूचनाओंको रद्द करनेका आदेश दिया है अतः १७ नवम्बर सन् १९३१ ई० को सरकारने अपने पत्रमें जो बातचीतके लिये अवसर दिया था, उसे वह वापस ले लेती है। इलाहाबाद ज़िलेमें जो लगान घटाया गया है उसकी वसूली रोकने या स्थगित करनेका सरकारका बिल्कुल विचार नहीं है।”

इस पत्रका उत्तर देते हुए श्री शेरवानीजीने कहा था:—

“हम लोग किसानोंको पर्य्याप्त सहायता दिलानेका प्रयत्न कर रहे थे और इसकी हम लोग कुछ चिन्ता नहीं करते थे कि वह सहायता किस प्रकार प्राप्त होती थी। हम लोगोंके इस दुहराए हुए निवेदनका कुछ भी उत्तर न मिला।

“हम लोगोंने इस बातको और स्पष्ट कर दिया था कि बातचीत होनेतक अगर लगानकी वसूली रोक दी जाती है तो हम लोग प्रसन्नतापूर्वक लगान-बन्दीकी सलाहको वापिस ले लेंगे। अगर वसूली पुराने दरोंपर ही होती, जो हम लोगोंकी दृष्टिमें ठीक नहीं था तो इस प्रश्नपर विचार करनेमें वस्तुतः कोई तथ्य नहीं था। आपके जिस पत्रका उत्तर भेजा जा रहा है उसके दूसरे वाक्यसे यह प्रकट होता है कि सरकार भी मानती है कि पुरानी प्रणाली उचित नहीं थी।

“मैं यह कहूँगा कि इस समस्याको सन्तोषजनक रूपसे सुलझानेके लिये जो भी बातचीत हो उसमें भाग लेनेके लिये हम अब भी पहलेकी ही तरह तैयार हैं।”

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, संयुक्तप्रान्तकी सरकारने लगानमें बहुत छूट कर दी थी। किसानोंके साथ न्याय करनेके लिये भावी कार्य्यक्रमको निश्चित करनेमें कांग्रेससे सलाह करनेकी आवश्यकता सरकारको मालूम हो गई थी। अतएव यह दुःखकी बात है कि बातचीतकी अवधितक वसूली स्थगित करनेके कांग्रेसके प्रस्तावको सरकारने स्वीकार नहीं किया। यदि सरकार उस समयकी वसूलीको रोकनेके लिये तैयार नहीं हुई तो सरकारको बातचीत समाप्त होनेकी अवधितक किसाकोंको लगान-बन्दीकी सलाह लेनेका हठ छोड़कर कांग्रेससे बातचीत करनी चाहिए थी। सङ्घर्ष बचाने एवं समझौता करनेकी जितनी ज़िम्मेदारी कांग्रेसपर है, उतनी ही सरकारपर भी थी। सरकारने कांग्रेसको जो अन्तिम पत्र भेजा था, उसके तेरह दिन बाद काला क़ानून निकाला गया। उतने समयमें इस विषयपर पूरा विचार और समझौता हो गया होता।

श्रीमान्, मेरी समझमें अगर मामला इस प्रकार तै नहीं हुआ तो भी काले क़ानूनकी आवश्यकता न थी। संयुक्तप्रान्तीय सरकारका दावा है और यह दावा उचित भी है कि किसानोंके लिये उसने बहुत कुछ किया है। जो कार्य्य उसने किए हैं, उसके यश एवं देशके प्रचलित विधानोंकी सहायतासे वह सभी कठिनाइयोंको उचित और व्यवस्थित ढङ्गसे सँभालनेमें समर्थ होती। काले क़ानूनका औचित्य सिद्ध करनेके लिये, संयुक्तप्रान्तीय सरकारने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, उसे मैंने सावधानीके साथ पढ़ा है। मेरी रायमें वह सिद्ध करनेमें असफल हुई है। वक्तव्यसे मालूम होता है कि १० मार्चको पण्डित जवाहरलालने अखिल भारतीय कांग्रेस-समितिसे प्रान्तीय कांग्रेस-समितिको एक गश्ती चिट्ठी

२०१

भेजी थी, जिसमें देहातोंमें कांग्रेसकी संस्थाको दृढ़ करने एवं अवसरपर लोगोंको तैयार करनेके लिये कार्य्यकर्त्ता भेजनेका अनुरोध किया गया था। उसमें लिखा थाः—

“दिल्लीका समझौता थोड़े ही दिनोंके लिये है। वह अन्तिम समझौता नहीं है। जब हम लोग पूर्ण रूपसे अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे तभी हमें शान्ति मिलेगी।” सरकारके वक्तव्यसे यह प्रकट होता है कि जब गान्धीजी इङ्गलैण्डके लिये रवाना हो गए, तब उसके दो दिन बाद महात्माजीकी अनुपस्थितिमें क्या कार्रवाई होनी चाहिए। इसके सम्बन्धमें एक दूसरी गश्ती चिट्ठी पण्डित जवाहर लालजीने भेजी थी, जिसमें यह अनुरोध किया गया था कि लोग महात्मा गान्धीके लौटनेपर उनका स्वागत तथा सब परिस्थितियोंका सामना करनेके लिये तैयार रहें। और ग्राम-संस्थाओंपर विशेष ध्यान देने एवं सर्वत्र स्वयंसेवक चुननेके लिये कांग्रेस-संस्थाओंसे विशेष अनुरोध किया गया था। मैं पूछता हूँ कि जो दल अपना अस्तित्त्व क़ायम रखनेपर तुला हो, उसका नेता क्या ऐसी परिस्थितिमें इसी प्रकारकी गश्ती चिट्ठी न भेजता? इन बातोंमें कौनसी ऐसी बात है जिसका विरोध किया जा सकता है? इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि दिल्लीकी सन्धि कोई स्थायी सन्धि नहीं थी। जिस प्रकार सरकारने इसको समझा, उसी प्रकार कांग्रेसने भी इसे समझा। सरकारने जिस नीतिका अवलम्बन किया उससे यह प्रकट होता है कि पण्डित जवाहर लालजीने जो मार्ग चुना वह बड़ी बुद्धिमानीका था। तीसरी शिकायत यह है कि ता० १० मार्चके निश्चित कार्य्यक्रमके अनुसार जो स्वयंसेवक कई ज़िलोंमें प्रचार कर रहे थे, उनमें विद्रोहकी बढ़ती हुई भावना प्रकट हो रही थी। यह बात इतनी साधारण और अस्पष्ट थी कि इसपर कुछ ध्यान नहीं दिया जा सका था। एक दूसरी शिकायत यह थी कि सितम्बर मासमें कांग्रेसने, किसानोंकी दशाका एक विवरण प्रकाशित किया था, जिसकी प्रकृति किसानों और ज़मीन्दारोंमें मनोमालिन्य पैदा करनेकी थी। ज़मीन्दारों और किसानोंके बीच परस्पर सम्बन्ध स्थापित करनेकी किसी भी योजनापर आक्षेप किया जा सकता है। इससे जो बुराई पैदा होनेकी सम्भावना थी, वह मैत्रीपूर्ण विचार-विनिमयसे दूर हो सकती थी।

अन्तिम शिकायत यह थी कि संयुक्तप्रान्तके एक ज़िलेमें एक कांग्रेसीने समानान्तर सरकारकी योजना तैयार की है, जिसके अनुसार पञ्चायतके प्रस्तावित कर्त्तव्योंमें एक कर्त्तव्य यह भी था कि सब लोग स्त्रियोंको नेता बनानेके लिये कोशिश करें, जिससे आगामी सङ्घर्षमें पुरुषोंके गिरफ़्तार हो जानेपर स्त्रियाँ नेतृत्व कर सकें। सरकारके विरुद्ध दिल्ली-सन्धि तोड़नेकी शिकायत भी समय-समयपर कांग्रेसने की है। लेकिन इसे जाने दीजिए। ऊपर उद्धृत सरकारके वक्तव्यमें लिखित बातोंको लीजिए। मैं कहता हूँ कि ये बातें बङ्गाल, चटगाँवके काले क़ानूनकी धाराओंको संयुक्तप्रान्तमें लगानेके लिये उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकी हैं। जिस पत्र-व्यवहारकी ओर मैंने ध्यान आकर्षित किया है, उससे यह स्पष्ट है कि प्रान्तीय कांग्रेस-समितिके अध्यक्ष अन्ततक सरकारके प्रतिनिधियोंके साथ बातचीत करके मुख्य प्रश्नोंपर समझौता करनेके लिये उत्सुक रहे हैं। यह दुःखकी बात है कि उन्हें इन कठिनाइयोंसे निकलनेके लिये मार्ग ढूँढ़नेमें असफलता मिली। ऊपर जिन बातोंका उल्लेख हो चुका है उन्हें देखते हुए, लोकपक्ष आपके पक्षसे कभी सहमत नहीं हुआ कि कांग्रेसने दिल्ली-सन्धिको तोड़ा है, और न वह संयुक्तप्रान्तीय सरकारसे ही सहमत हो सका कि सब बातोंकी ज़िम्मेदारी कांग्रेस और उसके अनुयायियोंपर ही है। मैं कहता हूँ कि कांग्रेससे कहीं अधिक उनकी ज़िम्मेदारी सरकारके सिरपर है, क्योंकि कितना लगान वसूल किया जाय, इसका फ़ैसला होनेतक सरकारने लगान वसूल करना स्थगित नहीं रक्खा और ऐसी परिस्थितिमें

काला क़ानून जारी करके सरकारने दिल्ली-सन्धिको तोड़ दिया ।

श्रीमान्ने सीमान्त-पश्चिमोत्तर प्रदेशका भी उल्लेख किया था । आपकी शिकायत थी कि लोगोँकी अन्य प्रान्तोँकी भाँति अधिकार पानेकी इच्छाको कार्य्यान्वित करनेके लिये सरकारने खाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँ और उनके अनुयायियोँद्वारा सञ्चालित कांग्रेस दलका सहयोग प्राप्त करनेके लिये बार-बार प्रयत्न किया, लेकिन उन प्रयत्नोँपर या तो कोई ध्यान ही नहीँ दिया गया या उनको ठुकरा दिया गया । श्रीमान्ने चटगाँव और संयुक्तप्रान्तीय काले क़ानूनसे भी भयङ्कर काला क़ानून जिस दिन सीमान्तप्रदेशके लिये जारी किया उसी दिन अर्थात् ता० २५ दिसम्बरको प्रकाशित अपने वक्तव्यमेँ, सामान्यतः उस स्थितिकी विवेचना की है जिससे आपकी दृष्टिमेँ की हुई कार्रवाईकी आवश्यकता प्रकट होती है और जिसमेँ आपने मुख्यतः खाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँके कामोँकी शिकायत की है । इनमेँ बहुतसी कार्रवाइयाँ उसी साधारण ढङ्गकी हैँ जिनका आचरण कांग्रेस वर्षोँसे कर रही है । प्रत्येक राजनीतिक संस्थाको अपने सदस्योँकी संख्या बढ़ाने, अपना प्रभाव डालने, सभा करने तथा जलूस निकालनेका अधिकार है । जबतक उसका अभिप्राय अपराध करना नहीँ है, जबतक उसके कार्य्योँसे दूसरोँके कार्य्योँमेँ बाधा नहीँ पहुँचती, जबतक वह अपने उद्देशको शान्तिमय ढङ्गसे प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रही है, तबतक उसको ऐसा करनेकी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए । जब कोई भी व्यक्ति भाषण या अपने कार्य्योँके द्वारा किसी प्रचलित विधानको तोड़ता है तब वह स्वतः दण्डका भागी बनता है । अगर खाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँने ऐसा किया था तो उनपर मुक़दमा चलाना चाहिए था । ऐसा ही बर्त्ताव उनके अनुयायियोँके साथ भी होना चाहिए था । इसमेँ तो कोई शिकायत करनेकी बात ही नहीँ थी ।

जान पड़ता है कि खाँ साहबके विरुद्ध चीफ़ कमिश्नरकी यह शिकायत थी कि प्रधान मन्त्रीद्वारा मौण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड-सुधारके सीमाप्रान्त प्रदेशमेँ प्रचलित होनेकी घोषणापर उन्होँने तथा उनके अनुयायियोँने उत्साह नहीँ प्रकट किया और घोषणाके कार्य्यान्वित करनेके लिये तथा सब दलोँका सहयोग प्राप्त करनेके लिये चीफ़ कमिश्नरने २२ दिसम्बरको जो दरबार किया था, उसमेँ निमन्त्रित किए जानेपर भी खाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँ और उनके भाई सम्मिलित नहीँ हुए, और उटमँजाईमेँ होनेवाली प्रान्तीय कांग्रेस-समितिने प्रधान मन्त्रीकी घोषणाका एक निश्चित घोषणा-द्वारा विरोध किया कि हम पूर्ण स्वराज्यसे कुछ भी कम स्वीकार नहीँ करेँगे । सीमान्तप्रदेशमेँ जो दोहरे प्रबन्धके साथ मौण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड-सुधार प्रचलित होनेवाला है उसकी निन्दा सरकारी एवं ग़ैरसरकारी सभी लोगोँने की है । इसलिये चीफ़ कमिश्नर या आपकी सरकारको कोई भी आश्चर्य्य नहीँ होना चाहिए था कि उस प्रान्तको अन्य प्रान्तोँके समान अधिकार देनेका वचन होनेपर भी कुछ पठान ऐसे हैँ जो इसे पसन्द नहीँ करते । यदि उनमेँसे कुछकी दृष्टिमेँ उनके अभीष्ट पूर्ण स्वत्त्वकी प्राप्तिमेँ इस सुधारका प्रयोग बाधक होगा तो यह क्षम्य है । कुछने यह सोचा होगा कि जो विधान थोड़े दिनतक रहेगा, उसके प्रयोगसे कोई लाभ नहीँ है । अतः किसी भी दृष्टिसे श्री अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँ और उनके भाईके विरुद्ध यह दोषारोपण नहीँ करना चाहिए था कि उन लोगोँने उस दरबारमेँ नहीँ भाग लिया, जिसका उद्देश उन लोगोँको अच्छा नहीँ जँचा । इतना ही नहीँ, बल्कि यदि वे उचित समझते तो इस प्रस्तावके विरुद्ध लोकपक्षको अपने अनुकूल करनेका भी उन लोगोँको अधिकार था ।

एक और भयङ्कर दोषारोपण, जो सरकारने श्री अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँपर किया था वह यह था कि उन लोगोँने यह मत प्रकट किया था कि उनको पूर्ण स्वतन्त्रतासे कुछ भी कम स्वीकार नहीँ है ।

हममेंसे बहुतोंको यह गुमान था कि प्रत्येक समझदार अंग्रेज़में उतनी समझ होगी कि जैसे अन्य लोगोंको पूर्ण स्वतन्त्रता चाहनेका अधिकार है वैसे ही भारतीयोंको भी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी इच्छा करनेका जन्म-सिद्ध अधिकार है। दोनों दलोंकी तुल्य स्वतन्त्रताके आधारपर ही, वह मित्रता स्थापित की जा सकती है, जिसके लिये हममेंसे बहुतसे लोग भारत तथा बृटेनके हितके लिये उत्सुक हैं। कोई भी व्यक्ति एक ही साथ मित्र और गुलाम नहीं हो सकता। कांग्रेसने जनवरी सन् १९३० ई० में पूर्ण स्वतन्त्रताको अपना ध्येय घोषित किया था। तभीसे उस उद्देशको दुहरानेके लिये २६ जनवरीका दिन नियत कर दिया गया है। देशभरमें सार्वजनिक सभाओंमें यह खुले रूपसे घोषित किया गया है। मज़ेकी बात तो यह है कि सन्धिके समय महात्मा गान्धीने कहा था कि गोलमेज़ सम्मेलनमें पूर्ण स्वतन्त्रताकी माँग पेश करनेके लिये हम अपनेको स्वतन्त्र समझेंगे और उन्होंने ऐसा किया भी था। सम्राट्की सरकारने इसका विरोध भी नहीं किया। अस्तु, यदि श्री अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँ और उनके दलने यह विचार प्रकट किया कि हम लोगोंको पूर्ण स्वतन्त्रतासे कुछ भी कम स्वीकार नहीं होगा तो उनको अपराधी नहीं समझना चाहिए था। जो कारण चीफ़ कमिश्नरने सीमान्तप्रदेशमें काला क़ानून चलानेके लिये दिए हैं, उनका औचित्य सिद्ध करनेमें वे सर्वथा असफल हुए हैं। और श्री अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँ तथा अन्य नेताओंकी गिरफ़्तारीका भी वे सन्तोषजनक कारण नहीं दे सके हैं। सरकारको मालूम होना चाहिए था कि इस प्रकार सीमान्तप्रदेशमें सन्तोषजनक और शान्तिजनक सरकारके स्थापित होनेके बदले उलटा ही प्रभाव पड़नेकी सम्भावना थी। इससे जो फल हुआ है वह वस्तुतः बहुत भयङ्कर है।

यदि कुछ मनुष्य अपने विश्वासपात्र नेताकी गिरफ़्तारीपर दुःख प्रकट करनेके लिये इकट्ठे हो गए तो इसमें कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं थी। कहा जाता है कि भीड़को खदेड़नेके लिये लाठी चलाई गई थी। इसके बाद पुलीसपर कुछ ढेले और पत्थर फेंके गए और तब पुलीसने गोली चलाई। क्या सचमुच ऐसी स्थिति हो गई थी कि पुलीसको गोली चलानेके लिये बाध्य होना पड़ा? और क्या उनको इतनी देरतक गोली चलानेकी आवश्यकता थी? सरकारी विवरणमें लिखा है कि चौदह व्यक्ति मारे गए और चौबीस घायल हुए। ऑक्सफ़ोर्डके डोन, फ़ादर एलविनने उस जगह व्यक्तिगत पूछताछके बाद अपने प्रकाशित वक्तव्यमें कहा है कि मृतकोंकी संख्या कम-से-कम पचास आँकी जा सकती है। सच्ची संख्याका अभी पता लगाना है, लेकिन अगर कम-से-कम संख्याको ही लीजिए तो भी इतने निःशस्त्र पठान क्यों मारे गए? इसकी गहरी जाँच होनी चाहिए। सरकारने जो कार्रवाइयाँ की हैं उनपर यह महत्त्वपूर्ण आक्षेप है कि दिल्ली-सन्धिसे लेकर काले क़ानूनोंके निकलनेतक खाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँका आन्दोलन जारी था, किन्तु किसीने भी उनपर या उनके साथियोंपर हत्या या चोट पहुँचानेका दोषारोपण नहीं किया। लेकिन इसके बजाय, जिस दिन दमन-नीति प्रचलित हुई उसी दिन चौदहसे लेकर पचास निःशस्त्र शान्त लोगोंपर गोली चलाई गई और उनकी हत्या की गई और ४ तारीख़तक चार हज़ार एक सौ उन्तीस आदमी गिरफ़्तार किए गए और जेलख़ाने भेज दिए गए थे। इस समय उनकी संख्या और भी बढ़ गई होगी। संयुक्तप्रान्त और सीमान्तप्रदेशकी सरकार अपनी इस दलीलका उचित समर्थन करनेमें असफल रही है कि कांग्रेसने सन्धिको तोड़ा और इसीसे सन्धिके मार्गसे सरकारको विचलित होना पड़ा। इस दलीलका समर्थन करनेमें संयुक्तप्रान्त और सीमान्तप्रदेशकी सरकारें असफल सिद्ध हुई हैं। तो भी यदि सरकार उस मार्गका अनुसरण करना ही चाहती थी तो आपत्तिजनक कार्रवाइयोंको सुधारने या रोकनेके लिये महात्मा गान्धीको अवसर देती और उसके निमित्त सीमान्त प्रदेशमें एक सप्ताहतक

तथा संयुक्तप्रान्तमेँ दो सप्ताहतक काला क़ानून स्थगित कर देती और यदि सचमुच ऐसी स्थिति थी तो सीमान्त प्रदेश तथा संयुक्तप्रान्तकी सरकार पण्डित जवाहरलाल नेहरू, श्री शेरवानी और श्री अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँकी गिरफ़्तारीको रोककर उन्हेँ गान्धीजीसे मिलनेके लिये बम्बई जानेमेँ बाधा न देती।

नीति-परिवर्त्तन

श्रीमान्, अब यह स्पष्ट हो गया है कि सरकारकी दमननीति कांग्रेसके अपराधोँके कारण नहीँ हुई है। इसका मुख्य कारण तो नीति-परिवर्त्तन है, जिसका प्रयोग सरकारने जान-बूझकर किया है और जिसका उद्देश सविनय अवज्ञा-अन्दोलनका गला घोटना और कांग्रेसको कुचलकर मार डालना है। जनतामेँ स्वतन्त्रताके भावका पैदा होना, शिक्षा-सम्बन्धी सुधार तथा उच्च पदोँमेँ भारतीयोँके प्रवेश आदि सभी कांग्रेसके प्रयत्न और प्रभावके फल हैँ। इसी कारणसे गत पचास वर्षोँसे इसके जन्म-दिनसे ही भारतीय सिविल सर्विसके बहुतसे योरोपीय सदस्य इसके विरुद्ध रहते हैँ। इसको कुचल डालनेके लिये उन्होँने अनेक बार प्रयत्न किए हैँ। फिर भी उन कठिनाइयोँका सामना करते हुए कांग्रेस सदा अपना सिर ऊँचा किए हुए जीवित ही रही। आपके पूर्ववर्त्ती वाइसरायने एक वर्षके दृढ़ शासनके बाद जब गत वर्ष कांग्रेसके साथ सन्धि करना उचित समझा तब भारतमेँ कई सरकारी तथा ग़ैरसरकारी ऐसे योरोपीय थे, जो सरकार और कांग्रेसके बीच समझौता होनेके विरुद्ध थे। वे गोलमेज़ परिषद्के भी विरुद्ध थे और उनकी यह भी इच्छा थी कि कांग्रेसको भी उसमेँ निमन्त्रित न किया जाय। आपके पूर्ववर्त्ती वाइसराय महोदयकी नीतिके विरुद्ध इन लोगोँने बहुत कुछ चेष्टा की। इससे यह प्रत्यक्ष है कि सिविल सर्विसके अधिकतर योरोपीय सदस्योँको यह बहुत ही बुरा लगा। अनुदार और विरोधियोँका एक बहुत बड़ा समूह इङ्गलैण्डमेँ सदैव इसका विरोध करता रहा। फिर भी उस समय वह नीति चालू ही रही, क्योँकि उस समय मज़दूर-सरकारके हाथमेँ शासनकी बागडोर थी। गोलमेज़ परिषद्की नीति स्वीकृत हो चुकी थी, परिषद्की दूसरी बैठक होनेवाली थी और उसकी सफलताके लिये यह आवश्यक था कि महात्मा गान्धी और कांग्रेस उसमेँ भाग लेँ। परिषद् हुई और महात्मा गान्धीने उसमेँ भाग लिया। लेकिन पार्लियामेण्टमेँ एक प्रबल अनुदार दल जमा था और एक बहुत अनुदार आदमी भारत-सचिवके पदपर नियुक्त हुआ था। कांग्रेसकी शक्ति बढ़ी हुई थी और उसके और भी अधिक बढ़नेकी सम्भावना थी। भारतके लिये पूर्ण स्वतन्त्रता लिए बिना कांग्रेस ज़रा भी सन्तुष्ट होनेवाली नहीँ थी। जान पड़ता है कि आप और भारत-सचिवने मिलकर यह तै कर लिया था कि नीति-परिवर्त्तन एवं कांग्रेसको नष्ट करनेके लिये सुव्यवस्थित तथा गहरा आक्रमण करनेका यह अत्यन्त उपयुक्त अवसर है। आपने ३० दिसम्बर, सन् १९३१ ई० को कलकत्तेमेँ जो भाषण दिया था उसमेँ आपने इस नीतिका प्रयोग करनेकी घोषणा करते हुए कहा थाः—

“भारत-सरकारका नायक बननेके समयसे मैँने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि गत महीनोँमेँ भारत-सरकारकी नीतिको न समझ सकनेके कारण सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी अफ़सरोँके मनमेँ सन्देह और घबराहट उत्पन्न हो गई थी कि सरकारकी मन्शा क्या है। अब हमारी नीति स्पष्ट है। विधान-सम्बन्धी सुधारोँके सम्बन्धमेँ हम लोग यथासाध्य शीघ्रताके साथ आगे बढ़ना चाहते हैँ। लेकिन मैँ यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि विधान-सम्बन्धी योजनामेँ बाधा पहुँचानेवाले असहयोग या अन्य विरोधी उद्योग तो अवश्य ही रोके जायँगे। साथ ही देशमेँ पूर्ण शान्ति स्थापित करनेके कण्टकोँ तथा शासनको निर्जीव बनानेका प्रयत्न करनेवाले दलोँको रोकनेका सब प्रकारसे प्रयत्न किया जायगा चाहे

उनका कार्य्य लगानबन्दी या बृटिश माल और संस्थाओंके बहिष्कार या देशके क़ानूनोंको तोड़नेके उद्देशसे ही किया गया हो। सरकार जिस नीतिसे काम लेगी वह विशेषतः उन्हीं संस्थाओंके विरुद्ध होगी जो जान-बूझकर देशमें अराजकता उत्पन्न करने एवं देशकी आर्थिक उन्नतिमें बाधा डालनेका प्रयत्न करेंगी और इससे जो भी परिस्थिति उत्पन्न होगी उसका सामना करनेके लिये सरकार प्रान्तीय सरकारोंको उचित अधिकार देनेमें किसी प्रकारका सङ्कोच नहीं करेगी।"

यह नई नीति सम्राट्की सरकारकी रायसे ग्रहण की गई है। जिस कठोर और दृढ़ नीतिका अवलम्बन किया गया है उसका भारत-सचिव सर सैमुएल होरने भरपूर समर्थन किया है। सुना जाता है कि उन्होंने यह भी कहा है कि जबतक हम लोग भारत-सरकारके लिये उत्तरदायी हैं, तबतक शासन करेंगे।" और सरकारके द्वारा बङ्गालमें बर्त्ती हुई कठोर व्यापक नीतिका उल्लेख करते हुए उन्होंने किस निर्लज्जताके साथ कहा है कि 'ऐसी परिस्थितिका सामना आंशिक रूपसे न करके पूर्ण रूपसे करना अधिक बुद्धिसङ्गत, सुरक्षित और मानुषिक है।' ४ जनवरीके वक्तव्यमें सरकारने जो घोषणा की है उससे प्रकट हो जाता है कि महात्मा गान्धीके वापस आनेके पहले ही सरकारने कांग्रेसपर आक्रमण करनेका निश्चय कर लिया था और इसके लिये पहलेसे ही अच्छी तरह सोच-समझकर पक्की योजना तैयार कर रक्खी थी। आपने महात्मा गान्धीसे भेंट क्यों नहीं की, इसका भेद इसीसे खुल जाता है।

दमनके साधन

कांग्रेसपर यह इस प्रकारका आक्रमण हुआ है, मानो उसपर हिमशिला ढकेल दी गई हो। भारतके सब भागोंपर काला क़ानून लागू कर दिया गया है जिससे हाकिमोंको असीम शक्ति मिल गई है। जिसका फल यह हुआ है कि सारे देशमें अभूतपूर्व दमन हो रहा है। केवल सन्देहके आधारपर कांग्रेसके प्रसिद्ध व्यक्तियों और कई अन्य सज्जनोंकी गिरफ़्तारी हो गई। जो सामान्य जन गिरफ़्तार होते हैं, वे पन्द्रह दिनतक हवालातमें रखनेके बाद कई अपमानजनक शर्त्तें लगाकर छोड़ दिए जाते हैं। एक अपमानजनक शर्त्त यह है कि प्रतिदिन कुछ निर्धारित घण्टोंके बीच थानेमें जाकर वे अपनी हाज़िरी दें और यदि वे ऐसा अस्वीकार करते हैं तो उनको और भी कठोर दण्ड दिया जाता है जो प्रायः दो वर्षतक क़ैद और जुर्मानाके साथ होता है। अनुमान किया जाता है कि लगभग बीस हज़ार मनुष्य जेलमें ठूँसे जा चुके हैं जिनमें बहुतसी स्त्रियाँ और बहुतसे बालक भी हैं। केवल कांग्रेसकी संस्थाएँ ही नहीं बल्कि अनेक सेवा तथा देशभक्तिका भाव प्रदर्शन करनेवाली सामाजिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ भी ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दी गई हैं। उदाहरणके लिये राष्ट्रीय विद्यापीठ, अस्पृश्यता-विरोधी समितियाँ, आदिमवासियोंको उन्नत करनेवाली सभाएँ (जैसे भील-सेवा-मण्डल) तथा प्रयाग, कराँची और पेशावरमें लाठीके प्रहारसे घायल हुए लोगोंकी सेवा-सुश्रूषाके लिये बने अस्पताल आदि ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दिए हैं। बहुतसे स्थानोंपर गोली चलाई गई जिससे पचासके लगभग मर गए। फ़ौजों और हवाई जहाज़ोंको दिखाकर देहातों और शहरोंमें लोगोंको डरानेका भी प्रयत्न किया गया है। सभा रोकने, जलूस तोड़ने, तथा ग़ैरक़ानूनी घोषित किया हुआ शान्तिमय धरना रोकनेके लिये तो खूब जी खोलकर लाठी चलाई गई है। सभाओंको सर्वथा बन्दकर इस बातकी घोर चेष्टा की गई है कि कोई सरकारपर सीधा-सादा आक्षेप भी न कर सके और लोक-मतके लिये स्थान न रह जाय। बम्बईमें व्यापारियोंकी एक सभा, जो तीस वाणिज्य सङ्घोंकी रायसे की गई थी, एकदम बन्द कर दी गई। समाचारपत्रोंपर कठिन नियन्त्रण कर दिया गया है। देशी और विदेशी तारोंकी कड़ी जाँच होती है। कई सम्पादक गिरफ़्तार हो चुके हैं। कइयोंको

चेतावनी मिल चुकी है कि वे सरकारपर होनेवाले आक्षेपोंको न छापें और न नेताओंके फ़ोटोको छापें। कई ज़मानतें ज़ब्त हो चुकी हैं और कई प्रेस छीन लिए गए हैं। कांग्रेसका धन ज़ब्त कर लिया गया है। उस निजी धनको भी सरकारने छीन लिया है जिसपर सन्देह था कि उसका उपयोग कांग्रेसके कामोंमें किया जायगा। सरकारके वक्तव्योंमें, ऐङ्गलो-इण्डियन पत्रोंमें, सूचना-विभागके सञ्चालकोंके वक्तव्योंमें अन्धाधुन्ध प्रचार हो रहा है। उनसे कांग्रेसके नेताओंको वदनाम किया जाता है और उनके विषयमें भ्रमपूर्ण वातें फैलाई जा रही हैं, समाचार भी दवा दिए जाते हैं। विशेषकर सीमान्त-प्रदेशके कांग्रेस-जनोंको ठहरनेका स्थान, भोजन और सवारी देनेके लिये जनताको त्रस्त करने तथा उनमें घोर आतङ्क फैलानेके लिये क़ैदियोंके साथ कठोर व्यवहार किया जा रहा है और कांग्रेसके सहायकोंको सताया जा रहा है। मनमाना वहाना कर घरों और संस्थाओंकी तलाशी ली जाती है। नेताओं तथा अन्य लोगोंको घरसे वाहर न जानेकी नोटिस दी जाती है। आन्दोलनसे विमुख रहनेके लिये सङ्घके सञ्चालक तथा व्यक्ति विशेष प्रायः व्यवसायी संस्थाओंको कांग्रेसके सेवकोंके साथ व्यवहार न रखनेकी जो चेतावनी दी जाती है उससे व्यापारमें वहुत वाधा पड़ रही है। सरकारकी दमन-नीतिके विरोधमें विशेष-विशेष अवसरपर दूकान बन्द करनेके अभियोगमें वेचारे दूकानदार गिरफ़्तार कर लिए जाते हैं।

परिणाम

दमन-नीतिका यह प्रभाव पड़ा है कि जिसके हृदयमें थोड़ा भी जन-सेवाका भाव है, वे सशङ्क और भयभीत हो गए हैं। उनमें उत्तेजना फैल गई है और वे तन-मन-धनसे देश-सेवा करनेके लिये कटिबद्ध हो गए हैं। वहुतसे सरकारके पक्षवाले लोग उसका साथ छोड़ रहे हैं। भारतके एक छोरसे दूसरे छोर तक सभाएँ हो रही हैं, जलूस निकाले जा रहे हैं। यद्यपि स्त्रियोंके साथ पहलेसे अधिक कड़ा व्यवहार हो रहा है और उनको कड़ी सज़ाएँ दी जा रही हैं तथापि वे देशके लिये, प्राणोंकी आहुति देनेके लिये दुगने उत्साहसे सङ्घटित और उद्यत होती जा रही हैं। जिन्होंने आजतक कभी राजनीतिमें भाग नहीं लिया है, वे भी इस अत्याचारको असह्य समझ रहे हैं।

जवसे आपकी वर्त्तमान नीति चालू हुई है तवसे जनतापर जो असंख्य अत्याचार हुए हैं उनका सङ्क्षिप्त विवरण भी आपके सामने रखने में मैं असमर्थ हो गया हूँ। समाचार-पत्रोंपर नियन्त्रण होते हुए भी जो नित्य-नित्य पत्रोंमें समाचार निकलते हैं उनसे स्पष्ट व्यक्त होता है कि दमन कैसे भयङ्कर रूपसे नग्न ताण्डव कर रहा है। अपनी नीतिसे आपने न तो शान्ति वढ़ाई और न सुशासित प्रवन्ध ही दिखलाया है। वल्कि उससे आपने देशके क़ानून, शान्ति और जनताकी शान्तिको वुरी तरहसे क्षुब्ध कर डाला है। आपकी सरकारकी शिकायत है कि व्यापार चौपट हो गया है, वाज़ार वहुधा वन्द हो जाते हैं और जवतक इस नीतिके चालू होनेसे पहलेकी दशा देशमें नहीं आ जाती है तवतक व्यापारियोंने अपना काम स्थगित कर रक्खा है। जान पड़ता है कि आप इस वातपर ध्यान ही नहीं देते हैं कि भारतीयोंके मनमें इसका वहुत वुरा प्रभाव पड़ा है कि सरकारने महात्मा गान्धीको अन्यायपूर्वक वन्द कर रक्खा है और कई प्रतिष्ठित देशभक्तोंको वन्द कर रक्खा है जिनमें महात्मा गान्धीकी धर्मपत्नी कस्तूरीवाई और अन्य देशभक्त भारतीय स्त्रियाँ भी हैं। उनका अपराध केवल यही है कि वे स्वदेश-प्रेमी हैं और स्वतन्त्रता चाहती हैं।

सविनय अवज्ञा

सरकारने सविनय अवज्ञाकी निन्दा की है। सरकारने उसको नष्ट करनेका निश्चय भी प्रकट किया

है। पर क्या उसने यह भी सोचा है कि लोगोंपर इसका क्या प्रभाव होगा। क्या श्रीमान् मुझे बतलानेकी कृपा करेंगे कि वर्त्तमान स्थितिमें भारतीय लोग किस मार्गका अवलम्बन करें कि भारत-सरकार अपनी वह नीति छोड़े या सुधारे जिसे भारतीय लोग दमनकारी, अन्याययुक्त तथा देशहितका विरोधी समझते हैं। जनता इस बातका अनुभव कर रही है कि सरकारने अपने अधिकारका दुरुपयोग किया है, और एक निश्चित योजनाके रूपमें देश भरमें वह अत्याचार कर रही है और भारतके पूज्य नर-नारियोंको जेलमें बन्द कर रही है और अपने कार्य्योंके विरुद्ध लोगोंका मुँह बन्द कर रही है और वह भी उस समय हुआ है जब अपना मन्तव्य आपके सामने रखनेके लिये, महात्मा गान्धीने आपसे अवसर माँगा और आपने उसे इनकार कर दिया। महात्मा गान्धीने भारतीयोंको भी मनुष्य समझकर सरकार तथा जनताके बीचमें मनोमालिन्य मिटानेके लिये ऐसा किया था। फिर आप उनसे क्या चाहते हैं कि वे किस मार्गपर चलें। क्या वे चुपचाप निस्सहाय होकर अत्याचार सहते रहें? किन्तु यह कहाँतक सम्भव है? ज्यों-ज्यों लोग यह अनुभव करते जा रहे हैं कि हमारा जीवन दूभर और असह्य होता जा रहा है त्यों-त्यों जनता इससे उत्तेजित होती जा रही है। ऐसी दशामें आप जनताके विचारोंको हिंसा और उपद्रवकी ओर मोड़ेंगे या उनको यह सोचनेका अवसर देंगे कि सत्य, निर्भयता, अहिंसा, त्याग और सविनय अवज्ञाके द्वारा ही उनको अपना लक्ष्य प्राप्त हो सकता है और उनके दुःखोंका निवारण हो सकता है? इस सिद्धान्तके अनुसार जो मनुष्य आज्ञाकी अवहेलना करता है, वह अपने अत्याचारीपर कोई चोट नहीं पहुँचाता, बल्कि अपने ऊपर शान्तिपूर्वक अत्याचार सहकर उसको अपने विचारकी ओर मोड़नेका प्रयत्न करता है। जातीय अभिमान अथवा जातीय लाभके लोभमें पड़कर इस साधनके गुणोंकी ओरसे आँख न मूँदिए। ईश्वरकी कृपासे यह बड़े भाग्यकी बात है कि हम लोगोंके साथियोंमेंसे एकको युद्धकी बुराईसे बचने तथा अपना स्वत्त्व प्राप्त करनेका मार्ग दिखलानेकी प्रेरणा प्राप्त हुई है। एक मानवीय और सयानी सरकारको इसका स्वागत करना चाहिए और उसे और भी प्रोत्साहन देना चाहिए न कि उसे नष्ट करनेकी उग्र चेष्टा करनी चाहिए। इस प्रकारके घोर विधानोंसे लोगोंको यह सोचनेके लिये विवश नहीं करना चाहिए कि युद्ध और हिंसाकी प्रथा ही अधिकार प्राप्त करनेके लिये उचित साधन हैं। सब स्त्री और पुरुष उसीपर अग्रसर हों।

इसलिये मैं आपसे तथा आपकी सरकारसे अनुरोध करूँगा कि सविनय अवज्ञाके सम्बन्धमें जो आपकी नीति है उसे बदलें। यह उतनी बुरी नहीं है जितना आप समझते हैं। सच तो यह है कि अपने वास्तविक अधिकारोंकी रक्षा करनेके लिये जनताके हाथमें यही एक अमूल्य और शिष्ट साधन है। मजिस्ट्रेट होनेसे ही उसकी आज्ञा निर्दोष नहीं मानी जा सकती। बहुत सम्भव है कि साधारण स्थितिमें कोई मूर्खतापूर्ण आज्ञा दे दी जाय। कोई भी नागरिक बिना किसी दण्डके उसकी अवहेलना कर सकता है। भारतीय दण्ड-विधान (इण्डियन पीनल कोड) के रचयिताओंने इस बातको माना है और उसके लिये प्रबन्ध भी कर दिया है। उक्त विधानकी एक सौ चवालीसवीं धाराके अनुसार एक सरकारी कर्मचारीको अधिकार है कि वह किसीको कोई ख़ास काम करनेसे रोक सकता है और अपने अधिकारमें किसी विशेष सम्पत्तिको ले सकता है, और १८८ धाराके अनुसार इस आज्ञाकी अवहेलना दण्डनीय है। किन्तु उसने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह अवहेलना तभी दण्डनीय हो सकती है जब कि इसका फल बुरा हुआ हो। लौ कमिश्नरोंने १८८ धारापर अपनी टिप्पणी करते हुए इसे और भी स्पष्ट कर दिया था। उन्होंने कहा:—

"जैसा कि हम लोगोंने दिखलाया है, एक ओर तो यह अति आवश्यक है कि कुछ स्थानीय क़ानून

रक्खे जाँय, जिसके लिये व्यवस्थापिका सभाकी अनुमति लेना आवश्यक न हो और दूसरी ओर हम यह जानते हैं कि ऐसे क़ानूनोंको बनानेवाले चाहे जितने भी बुद्धिमान हों, इससे छोटे-मोटे बहुतसे अत्याचार और कष्ट होनेकी सम्भावना है। शासनमें बाधा डालनेका भाव जनताके सुखके लिये परम अनिष्टकर है। यह तो अनुभव-सिद्ध बात है कि प्रायः यह भाव अच्छे विचारों, अपूर्व शक्ति तथा जातिकी भलाई करनेकी सच्ची लगनके साथ ही मौजूद रहता है। अगर किसी कर्मचारीमें साधारण उत्साहसे अधिक उत्साह हो और उसमें न्याय-बुद्धिका अभाव हो, तो वह अपनी आशङ्का और आवश्यक बन्धनोंसे जनताकी हानि कर सकता है। इसलिये हम लोगोंने यह आवश्यक समझा है कि इस बातका प्रबन्ध हो कि इस आज्ञाकी अवहेलनाके लिये तबतक किसीको दण्डित न होना पड़े जबतक यह सिद्ध न हो जाय कि उससे हानि हुई है अथवा उससे हानि होनेकी सम्भावना थी। इसलिये कोई भी व्यक्ति मूर्खतापूर्ण आज्ञाओंकी अवहेलनाके लिये दण्डनीय नहीं होगा।"

यदि किसी नागरिकको मूर्खतापूर्ण आज्ञा न माननेका अधिकार है तो जो आज्ञा दुःखदायी एवं अपमानजनक है उसके तोड़नेका नैतिक अधिकार और भी प्रबल है। क्या उस मनुष्यको आप दोषी ठहरायँगे, जो इस प्रकारकी आज्ञाके विरुद्ध आवाज़ उठाता है और उसकी अवहेलना करता है?

यदि इन विचारोंका प्रभाव आपपर तथा इङ्गलैण्डमें आपके साथियोंपर नहीं पड़ता है तो मैं कहूँगा कि केवल दूरदर्शिताकी दृष्टिसे आपको यह वर्त्तमान नीति छोड़ देनी चाहिए। यह नीति बिल्कुल व्यर्थ है। जब भारत-सचिवने अपनी यह पुरानी बात दुहराई कि, 'जब हम लोग भारतके उत्तरदायी हैं तब हम उसपर शासन करेंगे' तब उनको इस बातका ज्ञान था, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा भी है, कि वह प्रथा अब पुरानी हो गई।

इस प्रकार लोगोंपर शासन करनेके दिन गए। बृटिश सरकार एक विदेशी सरकार है। उसको भारतमें रहनेका कोई नैतिक अधिकार नहीं है। यदि यह एक राष्ट्रीय सरकार भी होती तो भी संसारकी इस उन्नत अवस्थामें वह इस प्रकारका बहुत दिनोंतक शासन न करने पाती। लोग उसे ठहरने ही न देते। उन्होंने अपने निश्चयका काफ़ी परिचय दे भी दिया है। महात्मा गान्धीने सन् १९२० ई० में इस आन्दोलनको चलाया। सन् १९२१ ई० में सरकारने इस कांग्रेसको ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया। महात्मा गान्धीजीने इस घोषणाकी अवज्ञा की, क्योंकि उनकी दृष्टिमें यह अनुचित थी। ऐसा करनेसे लगभग पच्चीस सौ भारतीय स्वेच्छापूर्वक जेल चल गए। आपके पूर्ववर्त्ती वाइसराय महोदय आपसे किसी प्रकार भी भीरु नहीं थे। हम लोग उनकी दमन-नीतिके लिये निन्दा करते हैं। उन्होंने वीर पुरुषकी नीतिका अनुसरण किया। उन्होंने जब देख लिया कि सरकारके काले क़ानून, घोषणा, आज्ञा और क़ानूनको तोड़कर नर-नारी गोली सहनेके लिये भी तैयार हैं और एक वर्षमें लगभग नब्बे हज़ार व्यक्ति ऐसा करनेसे जेल चले गए, तब उन्होंने उस सन्धिकी नीतिका आश्रय किया जिसके फलस्वरूप दिल्लीकी सन्धि हुई थी। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका निश्चय अब पहलेसे भी कहीं अधिक प्रबल है और अब पहलेसे भी कहीं अधिक क़ानून और आज्ञाएँ तोड़ी जायँगी। जबसे इस दमन-नीतिका पल्ला पकड़ा गया है तबसे इतने कम समयमें गिरफ़्तार व्यक्तियोंकी संख्या बीस हज़ारसे ऊपर पहुँच गई है। यदि सरकार अब भी उसे जारी रखती है तो यह निश्चय है कि यह संख्या और भी आगे बढ़ जायगी। और आपको इसका फल क्या मिलेगा? नष्ट होना तो दूर रहा, सविनय अवज्ञा-आन्दोलन और भी प्रबल होगा और जो कष्ट लोगोंको सहने पड़ेंगे, उससे यह और भी दृढ़ होगा। लोगोंकी भावना सरकारके विरुद्ध पहलेसे और भी अधिक पुष्ट हो जायगी। पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका भाव और भी दृढ़ हो

जायगा। अन्तमें सन्धिके सिवाय आपके पास कोई और चारा नहीं रह जायगा। जब यह निश्चित है कि आपको फिर पीछे पाँव हटाना पड़ेगा तब इसमें कौनसी बुद्धिमानी है कि जनताको इतने कठोर दुःख दिए जायँ और उनकी इतनी हानि की जाय?

निश्चय ही कांग्रेसको नष्ट करनेका यत्न निष्फल सिद्ध होगा। आप शायद भारतकी राजनीतिक आत्माकी हत्या करनेकी बात सोचते होंगे। पर मुनासिब तो यह है कि आप इसके प्रभावको मान लें और इसका सहयोग प्राप्त करें। यही सरकारके लिये उचित मार्ग है। आज और सदा यह सम्मानित शर्तोंपर सहयोग देनेके लिये उत्सुक रही है।

आप और भारत-सचिवने अपनी नीतिकी घोषणा करते हुए कहा था कि शान्ति और व्यवस्थाकी रक्षाके लिये हम लोग चाहे जिस मार्गका अवलम्बन करें या उसके लिये अनुमति दें, परन्तु वह नये शासन-विधानमें बाधक नहीं होगा। निश्चय ही सरकारके निर्देशके अनुसार तथा इस नीतिके अनुकूल प्रान्तीय गवर्नर तथा ज़िलेके अधिकारियोंने लोगोंपर दवाव डाला है। सर सैमुएल होरने कहा था कि दमन-नीति ग्रहण करने और गोलमेज़ परिषद्के लिये समिति भेजनेमें मैं कोई भी विरोध नहीं देखता, परन्तु महात्मा गान्धी एवं अन्य कांग्रेसके आदमियोंकी गिरफ़्तारीकी जो नीति है उससे स्पष्ट होता है कि सरकार लोगोंको नपुंसक बनाना चाहती है, जिससे वे उस विधानको चुपचाप स्वीकार कर लें, जिससे उनको स्वतन्त्रताका कोई कण भी नहीं मिलता बल्कि उससे भारतपर इङ्गलैण्डके राज्यकी अवधि और भी बढ़ जाती। यद्यपि यह एक गम्भीर दोषारोपण है, लेकिन मैं कह सकता हूँ कि आजकल लोगोंका प्रायः वही विचार है और जबतक आपकी यह नीति बनी रहेगी तबतक उनको यह विश्वास दिलाना कठिन है कि बात ऐसी नहीं है।

ऊपर बताए हुए सभी कारणोंसे मैं आपसे और आपके द्वारा बृटिश सरकारसे बड़े विनयके साथ अनुरोध करता हूँ कि दमन-नीतिका अवलम्बन करके आपने जो भारी भूल की है उसको सुधारें, काले क़ानूनोंको वापस ले लें और महात्मा गान्धी तथा इस नीतिके अनुसार जो लोग क़ैद किए गए हैं उन सभी स्त्री पुरुषों तथा बालकोंको मुक्त कर दें। जो जुर्माने वसूल हो चुके हों वे लौटा दिए जायँ तथा देशमें फिर क़ानूनका राज्य स्थापित किया जाय। जिन विशेष बातोंके विषयमें कुछ प्रान्तोंमें सरकार और जनतामें मतभेद है उन्हें तै करनेके लिये महात्माजी तथा अन्य कांग्रेस-नेताओंको सरकार निमन्त्रित करे और सब लोग मिलकर उन स्थानोंमें जाकर सब तरहसे सन्तोषजनक स्थिति उत्पन्न करनेका प्रयत्न करें, और जब आप इस प्रकार शान्त परिस्थिति उत्पन्न कर चुकें तब महात्मा गान्धी और अन्य व्यक्तियोंको शासन-सुधार-सम्बन्धी बड़े प्रश्नोंपर विचार करनेके लिये निमन्त्रित करें और उन्हें भारतके लिये ऐसा शासन-विधान बनानेके प्रयत्नमें सहायता करनेका अवसर दें जिससे उसे ग्रेट बृटेनकी बराबरीका यश प्राप्त हो जाय। और इस प्रकार इङ्गलैण्ड और भारतके बीच ऐसा सम्बन्ध स्थापित हो जाय जो दोनोंके लिये सम्मानजनक और हितकर हो।

मैं परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको तथा सम्राट्की सरकारको सुबुद्धि और साहस दे कि यह सिद्ध हो जाय।

आपका हितैषी,
मदनमोहन मालवीय,
जनवरी, सन् १९३२ ई०।

सेवामें,
परम सम्माननीय लौर्ड विलिङ्गडन,
भारतके गवर्नर-जनरल,
दिल्ली।

भारतमें दमनचक्र

२० अप्रैल, सन् १९३२ ई० तक, सरकारने जो दमन किया उसपर पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने एक वक्तव्य लिखकर तार द्वारा लन्दन भेजनेका विचार किया था किन्तु वह तार रोक दिया गया। यह उसी का अनुवाद है जो पूज्य मालवीयजी के पुत्र तथा प्राइवेट सेक्रेटरी पण्डित गोविन्द मालवीयने प्रकाशित कराया था।

—सम्पादक।

गत २८ फ़रवरी सन् १९३२ ई० को मैंने जो तार लन्दन भेजनेका प्रयत्न किया था उसमें मैंने सङ्क्षेपमें भारतकी परिस्थितिका दिग्दर्शन कराया था, और कुछ ऐसी चुनी हुई घटनाएँ भी बतलाई थीँ जो उस तारीख़तक भारत-सरकारकी उस दमन-नीतिके कारण देशके सभी भागोंमें हो रही थीँ, जो सत्याग्रह आन्दोलनको दबाने और भारतीय राष्ट्रीय महासभाको कुचलनेके उद्देश्यसे जारी है। वही नीति अभीतक निरन्तर काम कर रही है और उसमें कोई कमीँ नहीँ हुई है। इधर २० अप्रैल, सन् १९३२ ई० तक जो-जो घटनाएँ हुई हैं, उन सबका यहीँ एक सङ्क्षिप्त विवरण दिया जाता है।

यह विवरण देशमें प्रकाशित होनेवाले ऐसे प्रमुख समाचारपत्रोंमें प्रकाशित समाचारोंके आधारपर तैयार किया गया है जिनकी ख़बरोंकी सरकार बराबर जाँच और काट-छाँट कर लेती है। इस समय भारतमें जो विशेषाधिकार राज्य चल रहा है, उसके कारण भी उन समाचारपत्रोंके लिये सच्ची खबरें छापनेमें भी बहुत बाधा होती है और ऐसी लाचारी हालतमें छपनेवाले समाचारपत्रोंका ही आधार लिया गया है। इसके सिवा अपनी व्यक्तिगत जानकारीसे भी काम लिया गया है। देशमें कांग्रेसके सङ्घटनका जो जाल बिछा हुआ है, उसके द्वारा भी हमें बहुतसे समाचार और बहुतसी सूचनाएँ मिली हैं, जिनका रूप और भी विकट है। पर ऐसे समाचार और सूचनाएँ इसमें सम्मिलित नहीँ की गई हैं। कुछ थोड़ीसी घटनाओंको छोड़कर साधारणतः बाक़ी घटनाओंपर किसी तरहकी टीका-टिप्पणी भी नहीँ की गई है।

इस प्रकार यह विवरण मानो सब घटनाओंका एक ऐसा चित्र है जो सरकारी स्वीकृतिसे समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित हुआ है। लेकिन देशमें जैसी परिस्थिति है, उसे देखते हुए यह विवरण न तो बिल्कुल पूरा और विस्तृत ही हो सकता है और न इससे पाठकोंको इस बातका पूरा-पूरा पता ही चल सकता है कि भारतमें प्रचलित विशेषाधिकारोंके अपवित्र संरक्षणमें सरकारी कर्मचारी हमारे देशके पुरुषों और स्त्रियोंके साथ उनको दमन करनेके लिये कैसे पाशविक, नीचतापूर्ण और रोमाञ्चकारी कार्य्य कर रहे हैं। पर साथ ही यह सङ्क्षिप्त विवरण केवल प्रथम श्रेणीके समाचारपत्रोंके आधारपर तैयार किया गया है और इसलिये इसका महत्त्व निर्विवाद है।

जिस समाचारके सम्बन्धमें ज़रा भी सन्देह या अनिश्चय हुआ है, वह छोड़ दिया गया है, और मैंने जो कुछ अनुमान किए हैं, वे वास्तविक स्थितिसे बहुत ही कम हैं। इसके सिवा मैं और अधिक कुछ कहना नहीँ चाहता। एक जनवरीसे २० अप्रैल, सन् १९३२ ई० तककी घटनाओंके जो सङ्क्षिप्त विवरण और अङ्क यहाँ दिए गए हैं, स्वयं उन्हींसे परिस्थितिका पता चल सकता है और उनके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीँ है।

कुल गिरफ्तारियाँ

इतने समयमें समाचारपत्रोंमें प्रकाशित रिपोर्टके अनुसार सारे देशमें सत्याग्रह आन्दोलनके सम्बन्धमें कुल छाछठ हज़ार छः सौ छियालीस गिरफ़्तारियाँ हुई हैं, जिनमें पाँच हज़ार तीन सौ पच्चीस स्त्रियाँ और बहुतसे बच्चे भी हैं। लेकिन भारतके गाँवों और देहातोंमें बहुतसी ऐसी गिरफ़्तारियाँ होती हैं जिनकी ख़बरें समाचारपत्रोंमें किसी तरह पहुँचती ही नहीं और जो उसमें सम्मिलित नहीं हो सकती। इन सब बातोंका विचार करते हुए जो लोग भारतकी वर्त्तमान स्थितिसे परिचित हैं वे तुरन्त यह मान लेंगे कि सारे देशमें अवश्य ही अस्सी हज़ार से अधिक गिरफ़्तारियाँ हुई हैं।

हाज़िरीकी आज्ञाएँ

तीन सौ बहत्तर आदमी, जिनमें समाचारपत्रोंके सम्पादक, वकील, बैरिस्टर, डाक्टर, प्रोफ़ेसर, व्यापारी और प्रतिष्ठित तथा सम्पन्न नागरिक हैं, गिरफ़्तार करके यह आज्ञा देकर छोड़े गए हैं कि अमुक-अमुक अपमानजनक शर्त्तोंका पालन करें, और इनमें मुख्य शर्त्त प्रायः यही हुआ करती है कि आप थानेमें रोज़ आकर हाज़िरी लिखाया करें। एक अवसरपर कुछ कांग्रेसवालोंको तो यहाँतक आज्ञा दी गई थी कि आप लोग सुबह और शाम दोनों वक्त थानेमें रोज़ आकर कई घण्टेतक हाज़िर रहा करें। जैसी कि आशाकी जाती थी, इन आज्ञाओंकी उपेक्षा की गई और फल यह हुआ कि उन लोगोंको लम्बी सजाएँ और भारी जुर्माने हुए। इस प्रकारकी आज्ञाओंसे जनतामें सरकारका उपहास भी हुआ और उसके प्रति घृणा भी उत्पन्न हुई, और अब ऐसा जान पड़ता है कि यह ढङ्ग छोड़ दिया गया है।

झण्डा-सत्याग्रह

देशके भिन्न-भिन्न भागोंमेंसे झण्डा-सत्याग्रह होनेके चार सौ छानबे समाचार आए हैं, जिनमें लोग केवल इसी लिये गिरफ़्तार किए गए थे कि वे राष्ट्रीय झण्डा गाड़ना चाहते थे, किसी स्थानपर लगाए रखना चाहते थे अथवा उसका अभिवादन करना चाहते थे। ऐसे बहुतसे अवसरोंपर पुलीसने लाठियाँ चलाई हैं और बहुतसे आदमियोंको घायल किया है। आजकल भारतके तिरङ्गे राष्ट्रीय झण्डेके जैसा निरीह पदार्थ भी सरकारी अफ़सरोंके लिये वही काम दे रहा है जो काम लाल कपड़ा साँपके लिये देता है, और वे उसी पशुकी तरह उजड्डपनसे और मूर्खतासे उसे दबानेका प्रयत्न करते हैं। इतना सब कुछ होनेपर भी देशमें असंख्य स्थानोंपर झण्डा फहरा ही रहा है।

पिकेटिङ्गके लिये गिरफ्तारियाँ

कम-से-कम दो हज़ार चार सौ छानबे अवसरोंपर पिकेटिङ्ग करनेके कारण गिरफ़्तारियाँ होनेके समाचार मिले हैं। वास्तवमें इस अपराधके लिये जो गिरफ़्तारियाँ हुई हैं, उनकी संख्या अवश्य ही इससे कहीं अधिक है। लेकिन फिर भी जहाँ-जहाँ आवश्यकता समझी जाती है, वहाँ-वहाँ शान्तिपूर्ण पिकेटिङ्ग बराबर और खुलेआम होती ही रहती है।

जेल भर गए हैं।

इतनी अधिक गिरफ़्तारियाँ होनेपर भी सविनय अवज्ञा-आन्दोलनके जितने काम हैं, वे सब बराबर हो ही रहे हैं और गिरफ़्तारियोंके लिये अपने-आपको समर्पण करनेवालोंका ऐसा ताँता लगा ही रहता है जिसका कभी अन्त नहीं होता। भारतके जेल बिल्कुल भर गए हैं। और उनमेंसे बहुतसे जेल तो ऐसे हैं कि उनमें जितने आदमी रह सकते हैं, उनसे ड्योढ़े, बल्कि उससे भी ज़्यादा आदमी भरे हुए हैं। जेलोंमें सत्याग्रही क़ैदियोंके लिये जगह करनेके उद्देशसे ऐसे बहुतसे साधारण क़ैदियोंको छोड़ना आरम्भ कर दिया गया है जिनकी मियाद पूरी होनेमें अभी बहुत समय बाक़ी है। बहुतसे अस्थायी जेल भी बनाए गए हैं। लेकिन बराबर बढ़ते रहनेवाले राजनीतिक क़ैदियोंके लिये वे जेल भी पूरे नहीं पड़ रहे हैं।

जेलोंमें व्यवहार

सम्भवतः लोगोंको जेल जानेसे रोकनेके उद्देशसे अनेक स्थानोंमें जेलोंके अन्दर इन राजनीतिक क़ैदियोंके साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया जाता है। भारतके जेलोंमें क़ैदियोंकी जो अवस्था है और उनके साथ जो निन्दनीय व्यवहार किया जाता है, उसकी बहुत दिनोंसे सख़्त शिकायत होती चली आई है। राजनीतिक क़ैदी बराबर ऐसे व्यवहारका विरोध करते थे, यहाँतक कि लाहौर जेलमें जतीन्द्रनाथ दासने लगातार चौंसठ दिनोंतक वीरतापूर्वक अनशन किया, जिससे उनकी मृत्यु ही हो गई और इसके कारण सारे देशमें इतना अधिक क्षोभ फैला था कि अन्तमें सरकारको भी विचलित होनेके लिये विवश होना पड़ा था, और उसने जेलोंके सम्बन्धमें कुछ नये नियम बनाए थे, जिनमेंसे एक नई प्रणाली क़ैदियोंके वर्गीकरणकी भी थी और जिसके अनुसार राजनीतिक क़ैदियोंको उनकी उच्च मर्य्यादा और रहन-सहनके अनुसार 'ए' और 'बी' श्रेणियोंमें रखनेकी व्यवस्था हुई थी, और साधारण अपराधियोंकी अपेक्षा, जो 'सी' श्रेणीके क़ैदी कहे जाते थे, 'ए' और 'बी' श्रेणीवाले क़ैदियोंके साथ अपेक्षाकृत अच्छा व्यवहार होनेको था। यह भी निश्चय हुआ था कि जो लोग हिंसा या नैतिक भ्रष्टताके अपराधोंमें जेल जायँगे, वे 'बी' क्लासमें रक्खे जायँगे और बाक़ी सब लोग 'ए' क्लासमें रहेंगे।

जिस समय ये नियम बने थे, उस समय भारत-सरकारके तत्कालीन होम मेम्बरने भारतकी बड़ी व्यवस्थापिका सभाके हम सदस्योंमेंसे कुछ लोगोंको यह विश्वास दिलाया था कि भविष्यमें सभी राजनीतिक क़ैदी या तो 'ए' में या 'बी' श्रेणीमें रक्खे जाया करेंगे। पर आज उस दिलाए हुए विश्वासका लोगोंको सबसे अधिक स्मरण इसी रूपमें होता है कि उसका पालन नहीं किया जा रहा है। कुल छाछठ हज़ार छः सौ छियालीस गिरफ़्तारियोंमेंसे (हमारे अनुमानसे यह संख्या अस्सी हज़ार है) दो-चार सौसे अधिक आदमी 'ए' या 'बी' क्लासमें नहीं रक्खे गए हैं।

बहुतसे बड़े-बड़े प्रतिष्ठित आदमी और ऐसे सम्पन्न नागरिक, जो जन्मभर बहुत ही सुखसे रहते आए हैं, 'सी' श्रेणीमें साधारण अपराधियोंकी तरह रक्खे गए हैं। इसके उदाहरण-स्वरूप हम अनेक नाम बतला सकते हैं। जैसे—महात्मा गान्धीकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबाई (इन्हें बादमें 'ए' श्रेणीमें रक्खा गया था), सेठ जमनालाल बजाज, जो एक बहुत बड़े और सम्पन्न व्यापारी हैं और जिन्होंने अपने-आपको देशकी सेवाके लिये अर्पित कर दिया है, जो अखिल भारतीय कांग्रेसके अवैतनिक ख़ज़ाञ्ची हैं और जो सारे देशमें बहुत सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं, श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय, जो सारे भारतमें प्रसिद्ध और प्रमुख काम करनेवाली हैं, और दूसरे बहुतसे सम्पन्न स्त्री तथा पुरुष सविनय अवज्ञा-अन्दोलनके सम्बन्धमें जेल भेजे गए हैं, 'सी' श्रेणीमें ही रक्खे गए हैं। जिन बहुत ही थोड़ेसे आदमियोंको 'ए' और 'बी' श्रेणीमें रक्खा गया है, उनके साथ भी जो व्यवहार किया जाता है, वह ऐसा निन्दनीय है जो किसी भी सभ्य सरकारपर कलङ्क लगानेवाला है।

बाक़ी जो और हज़ारों देशभक्त अपने-अपने विश्वासके अनुसार अपनी मातृ-भूमिको स्वतन्त्र बनानेके लिये जेल गए हैं, उनके साथ भी जो व्यवहार होता है, वह भी ऐसा ही निन्दनीय और सरकारको कलङ्कित करनेवाला है। वहाँ खाना और कपड़ा आदि इतना रद्दी दिया जाता है और दूसरे ऐसे बहुतसे कष्ट पहुँचाए जाते हैं, जैसे कष्ट संसारके दूसरे सभ्य देशोंमें साधारण क़ैदियोंको भी नहीं दिए जाते। भारतमें इन राजनीतिक क़ैदियोंमेंसे कुछ लोगोंके साथ तो जेलोंके अन्दर ऐसा बुरा व्यवहार किया जाता है, जिसकी कल्पना भी और देशोंके रहनेवाले लोग नहीं कर सकते।

आजकल गर्मीके दिनोंमें राजनीतिक क़ैदी

ऐसी बैरकोंमें भेड़ोंकी तरह भर दिए जाते हैं जो प्रायः सब तरफ़से बन्द होते हैं और कुछ अवस्थाओंमें तो उनके ऊपर केवल टीन या लोहेकी छाजनें होती हैं जिनके कारण उन बैरकोंकी दशा बहुत कुछ भट्टीकी-सी हो जाती है । और इसके सिवाय ऐसा भी हुआ है कि लोगोंको दिनके समय पीने तकके लिये पूरा पानी नहीं दिया गया। छोटे-छोटे लड़के केवल "वन्देमातरम्" का घोष करने अथवा इसी प्रकारके दूसरे तुच्छ अपराधोंके कारण जेलोंके अन्दर बैंतोसे पीटे जाते हैं । कई जेलोंमें स्थानके अभावके कारण 'सी' श्रेणीके राजनीतिक क़ैदी खुले मैदानमें रक्खे जाते हैं, उनके एक पैरमें बेड़ी पहना दी जाती है और उन सबकी बेड़ियोंमें इस प्रकार ज़ञ्जीरें कस दी जाती हैं कि वे विना काटे किसी तरह निकल ही नहीं सकतीं। ऐसी अवस्थामें एक क़ैदी विना बाक़ी सब क़ैदियोंकी निद्रा भङ्ग किए अपने स्थानसे हिल ही नहीं सकता ।

एक ऐसा आदमी है जिसे सम्भवतः क्षय रोग हो गया है । वह दिन-रात एक ऐसी छोटी बन्द कोठरीमें रक्खा जाता है कि उसकी सज़ा करीब-करीब काल कोठरीकी सजाके बराबर हो जाती है । लेकिन सबसे अधिक बुरा व्यवहार स्त्री कैदियोंके साथ किया जाता है । उनके साथ बहुत अनुचित व्यवहार होता है और वे बहुत तङ्ग की जाती हैं । एक बार ऐसा हुआ था कि एक हवालातमें बारह स्त्रियाँ लाठियों, ठोकरों और मुक्कोंसे बहुत बुरी तरह पीटी गईं थीं और वे बिल्कुल नङ्गी कर दी गई थीं ।

लेकिन इतना सब कुछ होनेपर भी गिरफ़्तारीके लिये तैयार होनेवालोंकी संख्यामें कोई कमी नहीं होती । ऐसा जान पड़ता है कि सरकारकी समझमें ही नहीं आता कि क्या किया जाय । जेलोंमें इतने अधिक आदमी भर गए हैं, इन राजनीतिक क़ैदियोंकी इतनी बड़ी सेनाको खिलाने, पिलाने और रखनेका ख़र्च इतना बढ़ गया है और क़ैद करके लोगोंके विरोधका भाव दबानेका प्रयत्न इतना बेकार हो रहा है कि जान पड़ता है कि सरकारने घबराकर इसी नीतिका अवलम्बन किया है कि जहाँतक हो सके, लोग गिरफ़्तार न किए जायँ । प्रायः सभी ज़गह पुलीसकी अधिकतर प्रवृत्ति यही दिखलाई पड़ती है कि पिकेटिङ्ग करनेवाले स्वयंसेवकों और कांग्रेसके दूसरे कार्य्यकर्त्ताओंको सब प्रकारसे तङ्ग और अपमानित किया जाय और बहुतोंमेंसे केवल उन थोड़ेसे आदमियोंको गिरफ़्तार किया जाय जो हर तरहसे अपने-आपको गिरफ़्तारीके क़ाबिल बनाते हों । यदि यह बात न होती तो गिरफ़्तार होनेवालोंकी संख्या इस सङ्क्षिप्त विवरणमें बतलाई हुई संख्याकी अपेक्षा कहीं अधिक होती ।

लाठी-प्रहार

जितने दिनोंका यह विवरण है, उतने दिनोंमें समाचारपत्रोंके अनुसार पुलीसने सब मिलाकर दो सौ पच्चीस स्थानोंमें निहत्थी जनतापर लाठियाँ चलाई हैं । पर कांग्रेसके एक विवरणसे सूचित होता है कि केवल एक प्रान्तमें तीन सौ से अधिक बार लाठियाँ चलाई गई हैं। लाठीकी चोट कितनी कड़ी और तकलीफ़ देनेवाली होती है, इसका अनुमान केवल इस एक बातसे किया जा सकता है कि यदि लाठीका एक भरपूर हाथ किसीपर बैठ जाय तो उसकी मृत्युतक हो सकती है। प्रायः जब-जब लाठियाँ चलाई जाती हैं, तब-तब बहुतसे आदमी घायल होते हैं और उन घायलोंकी चोट भी प्रायः सख़्त ही हुआ करती है ।

गोलियाँ

लाठियोंके इन प्रहारोंके सिवाय देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें कम-से-कम उन्तीस स्थानोंमें ऐसे निहत्थे लोगोंपर गोलियाँ चलाई गई हैं जो किसी प्रकारका विरोध नहीं करते थे । यदि निष्पक्ष रूपसे जाँच की जाय तो मेरा विश्वास है कि इनमेंसे प्रायः प्रत्येक अवस्थामें यह प्रमाणित हो जायगा कि गोलियाँ

चलानेकी बिल्कुल कोई आवश्यकता नहीं थी और गोलियाँ चलाना अन्यायपूर्ण था और ये गोलियाँ केवल इसीलिये चलाई गई थीं कि लोगोंमें सरकारी अधिकारियोंका विरोध करनेका जो भाव फैल गया है उसका उन्हें पूरा-पूरा दण्ड दिया जाय, उसका बदला चुकाया जाय और उनके मनमें भय उत्पन्न किया जाय। लेकिन इन गोलियोंका भी कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ है। सूचनाएँ मिली हैं कि पुलीसके गोलियाँ चलानेके बाद भी लोग बहुत बड़ी संख्यामें एकत्र हुए हैं और उन्होंने अधिक दृढ़तापूर्वक अपना कार्य्यक्रम पूरा किया है।

तलाशियाँ

ख़बर है कि छः सौ तैंतीस अवसरोंपर लोगोंके घरोंकी तलाशियाँ ली गई हैं, और बहुतसे अवसरोंपर तो बहुत ही तुच्छ कारणोंसे तलाशियाँ हुई हैं और घरमें रहनेवाले लोगोंको बहुत तङ्ग किया गया है। कांग्रेसके विवरणोंसे सूचित होता है कि इन तलाशियोंकी संख्या भी इसकी अपेक्षा कहीं अधिक है।

ज़ब्तियाँ

एक सौ दो अवसरोंपर लोगोंकी जायदादें इसलिये ज़ब्त कर ली गई हैं कि वे सविनय अवज्ञा-आन्दोलनमें सम्मिलित होते थे। कुछ लोगोंके जुर्माने वसूल करनेके लिये उनके सम्बन्धियों तककी जायदादें कुर्क कर ली गई हैं।

जुर्माने

साधारणतः सरकारकी यही नीति जान पड़ती है कि जिन लोगोंको इस आन्दोलनके सम्बन्धमें सज़ा दी जाय, उनपर भारी-भारी जुर्माने हों। सज़ा होनेपर साधारणतः पुलीस लोगोंका इतना अधिक माल-असबाब उठा ले जाती है जो जुर्मानेकी रक़मकी वसूलीके लिये आवश्यकतासे कहीं अधिक होता है। कुछ अवस्थाओंमें तो दस-दस हज़ार रुपये तक जुर्माने हुए हैं और अभी हालमें एक मुक़दमेमें बीस हज़ार रुपए जुर्माना हुआ है।

समाचारपत्रोंपर सङ्कट

इन सबसे बढ़कर बात यह है कि समाचारपत्रोंका गला इस तरह घोंटा गया है जैसा पहले कभी घोंटा नहीं गया था। ऐसी एक सौ तिरसठ घटनाओंकी सूचना मिली है, जिनमें समाचारपत्रों और सार्वजनिक छापेख़ानोंको ज़ब्त कर लेने या उनको ज़मानतें दाख़िल करनेकी आज्ञाएँ दी गई हैं, जिनके परिणाम-स्वरूप अनेक समाचारपत्र और छापेख़ाने बन्द हो गए हैं। इनके सिवाय समाचारपत्रोंके सम्पादकों, प्रकाशकों और मालिकोंको चेतावनियाँ दी गई हैं, उनके यहाँ तलाशियाँ हुई हैं और उनकी गिरफ़्तारियाँ हुई हैं। अहमदाबादसे प्रकाशित होनेवाले महात्मा गान्धीके "यङ्ग इन्डिया" और "नवजीवन" नामक पत्र, प्रयागसे प्रकाशित होनेवाला "अभ्युदय" नामक पत्र और दूसरे बहुतसे पत्र बन्द हो गए हैं। इसके सिवाय समाचारपत्रोंके पास जो समाचार आते हैं, उनकी पहलेसे बहुत कड़ी जाँच कर ली जाती है और अधिकारियोंने समाचारपत्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाले तथा दूसरे काले क़ानूनोंकी सर्वव्यापिनी धाराओं और उन्हें तोड़नेके परिणामोंसे समाचारपत्रों और उनके सम्वाददाताओंको इतनी पूरी तरहसे डरा दिया है कि यह बात बिल्कुल निश्चित हो गई है कि देशमें जो-जो घटनाएँ होती हैं, उनकी बहुत ही कम ख़बरें समाचारपत्रोंमें छपने पाती हैं।

दमन

जो बहुतसे पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे जेलोंमें बन्द कर दिए गए हैं, अहिंसात्मक पुरुषों और स्त्रियोंकी जो असंख्य सार्वजनिक सभाएँ और जुलूस लाठियाँ चलाकर और कभी-कभी गोलियाँ तक चलाकर रोक दिए गए हैं, उनके सिवा सरकारी कर्मचारियोंने

जनताका उत्साह नष्ट करने और उनको भयभीत करके चुप करानेके और भी अनेक प्रकारके दमन-कार्य्य किए हैं। इस सम्बन्धमें अधिकारियोंकी ओरसे जो कार्रवाइयाँ हो रही हैं और भीषण दमनके जो कार्य्य किए जा रहे हैं, उनके भी कुछ उदाहरण यहाँ दे दिए जाते हैं। पर यह सूची पूरी नहीं समझनी चाहिए।

मद्रासके कनानोर जेलके अन्दर और बेलारी जेलके अन्दर भी लाठियाँ चलाई गई हैं।

बङ्गालके एक समाचारपत्रके सम्पादक जिस समय पुलीसकी हवालातमें थे, उस समय उन्हें एक पुलीस कर्मचारीने हथकड़ियाँ पहनाकर पीटा था और उनका चश्मा तोड़ डाला था।

बम्बईमें पुलीस-कमिश्नरने व्यापारियोंकी एक सभा रोक दी थी और उनमेंसे कुछको आज्ञा दी थी कि तुम लोग नगरके बाहर मत जाओ।

सीमाप्रान्तके गाँवोंमें रहनेवालोंपर बम बरसाए गए हैं।

जेलोंके अन्दर राजनीतिक क़ैदियों और छोटे-छोटे लड़कों तकको बेंतोंसे पीटा गया है।

राजनीतिक आन्दोलनमें सम्मिलित होनेके अपराधमें स्कूलों और कौलेजोंसे विद्यार्थी निकाल दिए गए हैं और मजिस्ट्रेटोंने छोटे-छोटे बालकोंको बेंतोंसे पीटनेकी आज्ञा दी है।

बहुतसे स्थानोंमें अतिरिक्त पुलीस नियुक्त की गई है और वहाँके निवासियोंसे अतिरिक्त कर तथा जुरमाने वसूल किए गए हैं।

क़ैदियोंसे ज़बरदस्ती माफ़ीनामे लिखाए गए हैं।

नरसापुरमें केवल स्वदेशीका प्रचार करनेवाली संस्थाके तीन जुलूसों और मद्रासमें भी ऐसी संस्थाके एक जुलूसपर लाठियाँ चलाई गई हैं।

कांग्रेसकी और दूसरी जिन संस्थाओंके सम्बन्धमें अधिकारियोंको यह सन्देह हुआ है कि ये राष्ट्रीय कार्य्योंके साथ सहानुभूति रखती हैं, उनकी सब चीज़ें भी खूब ज़ब्त की गई हैं।

पुत्रों और कन्यायोंके राजनीतिक कार्य्योंके लिये उनके पितापर जुरमाने किए गए हैं, उन्हें सज़ाएँ दी गई हैं और दूसरे अनेक प्रकारके दण्ड दिए गए हैं।

पिकेटिङ्ग करनेवाली स्त्रियाँ तक बेंतोंसे पीटी गई हैं, और यदि कहीं उनपर कुछ कृपा दिखलाई गई है तो वे नाली आदिके गन्दे पानीसे नहलाई गई है।

बहुतसे राजनीतिक क़ैदियोंको एक साथ ज़ञ्जीरोंसे बाँधकर रक्खा गया है।

पिकेटिङ्ग करनेवाले पुरुष स्वयंसेवक इतने अधिक पीटे गए हैं कि वे बेहोश हो गए हैं।

मद्रासमें जब कुछ स्वयंसेविकाएँ स्नान कर रही थीं, तब पुलीसने उनके सूखे कपड़े उठा लिए थे और लगातार तीन दिनोंतक इसी लिये उनका पीछा किया था कि कोई उन्हें खाने-पीनेकी कोई चीज़ न देने पावे। इन स्वयंसेविकाओंने अपना यह बयान दिया था कि हम लोगोंको तीन दिनतक बिल्कुल भूखा रहना पड़ा था और जब हम लोग कहीं पेशाब करनेके लिये बैठती थीं, तब हमें पेशाब भी नहीं करने दिया जाता था।

एक बार एक आदमी खद्दरके कपड़े पहने हुए कहीं चला जा रहा था। बस पुलीस उसपर टूट पड़ी और उसे बेतरह पीटा। उसके कपड़े फाड़कर चिथड़े कर दिए गए और तब वह ज़बरदस्ती बाज़ारमें ले जाकर विलायती कपड़े ख़रीदने और पहननेके लिये विवश किया गया।

मिर्ज़ापुरमें एक बालक गिरफ़्तार करके केवल इसी लिये पीटा गया था कि वह सदर बाज़ारमें "स्वदेशी वस्तुओंका व्यवहार कीजिए" कहता फिरता था।

बारह वर्षके एक बच्चेको एक दूसरे अभियोगमें चार वर्षकी सादी क़ैदकी सज़ा दी गई थी और उसे साधारण क़ैदियोंके साथ रक्खा गया था। कुछ ही दिन हुए उसके पन्द्रह बेंत भी लगानेका हुक्म हुआ है।

'सी' और 'बी' श्रेणीकी, 'बनारस ज़नाने जेल' की स्त्रियोंको अपना सिन्दूर मिटा देनेकी आज्ञा हुई है जो भारतकी विश्वविदित रीत्यनुसार पतिके मरनेपर ही

मिटाया जाता है। यह भी लोकविदित है कि उनके साथ इतना बुरा व्यवहार किया जाता था कि उन बेचारियोंको इसके विरोधमें कई वार अनशन करना पड़ा था।

भारतके प्रत्येक जेलमें किसके साथ कैसा-कैसा व्यवहार किया जा रहा है, इसका पता लगाना कांग्रेसके लिये प्रायः असम्भव है।

१४४ वीं धाराके अन्तर्गत अब ऐसे अंश जोड़ दिए गए हैं जिनके द्वारा किसी साधारण नागरिक अथवा संस्थाके समस्त मूल अधिकार छीन लिए गए हैं।

मोटरें पुलीसद्वारा इसलिये रोक दी गई हैं कि उनपर राष्ट्रीय झण्डा फहरा रहा था।

कई नगरोंमें होटलवालोंको यह चेतावनी दे दी गई है कि वे कांग्रेसके आदमियोंको भोजन न दिया करें।

अभी कुछ दिन हुए, नागपुरमें एक नागरिकको छः महीनेकी सख़्त क़ैद और एक हज़ार रुपया जुर्माना इसलिये किया गया था कि वह कांग्रेसके कुछ स्वयंसेवकोंको भोजन पहुँचाता था।

बम्बईका एक मनुष्य केवल इसलिये गिरफ़्तार कर लिया गया कि उसने अपने सालेको, जब वह इस आन्दोलनके सम्बन्धमें गिरफ़्तार करके पुलीसद्वारा ले जाया जा रहा था, माला पहनाई थी।

एक दूसरी जगहपर पुलीसने स्वयंसेवकोंके मुँहपर काला रङ्ग पोत दिया था और उन्हें सारे नगरमें घुमाया था।

एक चर्ख़ा-विद्यालयकी सब वस्तुएँ ज़ब्त कर ली गईं।

एक व्यक्तिको यह आज्ञा दी गई कि वह स्वदेशीके लिये चन्दा न इकट्ठा करे।

शोलापुरमें कलेक्टरने खादी भण्डारको यह आज्ञा दी है कि वह राष्ट्रीय झण्डे, बैज और बसन्ती रङ्गका कपड़ा न बेंचे।

सलेममें गान्धी टोपी पहननेकी मनाही कर दी गई है।

सिलहट स्कूलपर राष्ट्रीय झण्डा लगानेके अभियोगमें उसके कुछ लड़के स्कूलसे निकाल दिए गए।

इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट बोर्डके स्कूलोंमें राष्ट्रीय गीतोंका गाना बन्द कर दिया गया है।

मद्रासकी व्यवस्थापिका सभामें इस विषयपर प्रश्न किए गए थे कि क्यों उन स्वयंसेवकोंके मुँहमें, जो ताड़ीकी दूकानपर पिकेटिङ्ग करते हुए पुलीसद्वारा मार-मारकर बेहोश कर दिए गए थे, ज़बरदस्ती ताड़ी डाली गई थी, और क्यों स्वयंसेविकाओंको ताड़ीसे नहलाकर उनपर जली हुई भूसी डाली गई थी?

कितने ही खादी भण्डार ज़ब्त कर लिए गए हैं और मकान ख़ाली करवाकर पुलीसके रहनेके काममें लाए जा रहे हैं।

ये विवरण न तो पूर्ण ही हैं और न पूर्ण व्यापक। इनसे केवल उस अत्याचारका एक साधारण आभास मिल सकता है, जिससे इस समय सारा भारत पीड़ित है। परन्तु इसकी भी कुछ परवाह न करके कांग्रेसका आन्दोलन आज भी उसी तेज़ीसे चल रहा है।

बहिष्कार

मार्च महीनेके पिछले दिनोंमें विदेशी और बृटिश वस्त्रके बहिष्कारके लिये कांग्रेसकी ओरसे एक विशेष 'बहिष्कार सप्ताह' मनाया गया था, जिसमें देश भरकी कांग्रेस-संस्थाओं ने इन्हीं दो वस्तुओं के बहिष्कारपर पूर्ण ध्यान रक्खा था और शान्तिमय धरना तथा अन्य प्रदर्शनोंसे ही इसमें आशातीत सफलता प्राप्त कर ली थी। कांग्रेसकी ओरसे देश भरमें ६ अप्रैलसे १३ अप्रैलतक राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया था, जिसमें भिन्न-भिन्न कार्य्योंके लिये कार्य्यक्रम बनाया गया था। सरकारने इसको विफल करनेका सब प्रकारसे भरसक प्रयत्न किया, परन्तु वह पूर्ण विफल रही और देश नवीन विजयोत्साहसे प्रफुल्लित हो गया।

बम्बईमें, विदेशी वस्त्रके सबसे बड़े मूलजी जेठा मारकेटके लगातार बन्द होनेसे केवल स्वदेशी वस्त्र

बेचनेवाली उन दूकानोंको भी, जो वहाँ थीं, बन्द रहना पड़ा और इसलिये जनताको कुछ कष्ट उठाना पड़ा। अतएव वर्त्तमान राष्ट्रनेत्रीने उसी स्थानपर एक ओर अब केवल स्वदेशी वस्तुओंकी दूकानों एवं व्यापार-भवनोंके लिये स्थान अलग करके जनताका यह कष्ट भी दूर कर दिया है। इससे उस नगरके, जो कि भारतके पश्चिम एवं पश्चिमोत्तर भागका व्यापारिक केन्द्र है, बहिष्कारकी वृद्धिमें बहुत अधिक सहायता पहुँचेगी। इसके अतिरिक्त बहिष्कार-आन्दोलनने देशके अन्तरङ्गमें इतना अधिकार कर लिया है कि अब यदि कभी कोई आदमी विदेशी अथवा बृटिश वस्त्र पहनता भी है तो वह उसे छिपाता और नकारता फिरता है और किसीके देख लेनेपर लज्जित होता है।

स्त्रियोंके कार्य्य

इस बार आन्दोलनमें स्त्रियोंने अग्रतम भाग लिया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, समाचारपत्रोंमें छपे हुए विवरणके अनुसार अबतक पाँच सहस्रसे ऊपर स्त्रियाँ गिरफ़्तार हो चुकी हैं। परन्तु इससे भी अधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि अनेक नगरोंमें अधिक-संख्यक स्त्रियाँ प्रारम्भसे ही इस आन्दोलनमें अग्रतम भाग लेती आ रही हैं। लगभग प्रत्येक बड़े केन्द्रमें स्त्रियाँ नगर-कांग्रेस-कमेटियोंकी अधिनेत्री अथवा अधिनायिकाएँ हो चुकी हैं। अखिल भारतवर्षीय कार्य्यकारिणी समितिकी वर्त्तमान अधिनायिका भी एक स्त्री ही हैं। लगभग सभी स्थानोंपर स्त्रियाँ ही आन्दोलनको चला रही हैं और प्रशंसनीय साहस एवं वीरताके साथ कठिनतम परिस्थितियोंका सामना कर रही हैं। नवयुवती और वृद्धा स्त्रियोंने भी, जो आजतक आवश्यक धार्मिक कार्य्य उपस्थित होनेपर भी घरसे नहीं निकली थीं, अपने परदे उतार फेंके हैं और इस अहिंसात्मक आन्दोलनके स्वयंसेवकोंकी प्रथम श्रेणीमें आ उपस्थित हुई हैं। उन्होंने इतने खुले दिलसे सब बाधाओं, अपमानों एवं कष्टोंका सामना किया एवं कर रही हैं कि उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता।

मुसलमानोंका सहयोग

यह समाचार कि मुसलमानोंने इस आन्दोलनमें किञ्चित् भी भाग नहीं लिया है, पूर्णतः ठीक नहीं है। पिछले तीन महीनोंमें ही अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कार्य्यकारिणी समितिके सभापति दो मुसलमान हो चुके हैं। कई प्रान्तोंके प्रान्तीय अधिनायक मुसलमान थे और कई नगरों और उपनगरोंके अधिनायक भी मुसलमान रह चुके हैं। ऊपर गिरफ़्तारियोंकी संख्या दी गई है, उसके अन्तर्गत कई सहस्र मुसलमान भी हैं, और यद्यपि यह सत्य है कि मुसलमानोंमें अधिक संख्यक आन्दोलनसे अलग रहे हैं तथापि उनमेंसे बहुतसे कांग्रेसके साथ सदा कन्धे-से-कन्धा लगाकर खड़े रहे हैं।

अन्य दलोंकी सहानुभूति

इस आन्दोलनकी एक और विशेषता यह रही है कि जो लोग अथवा संस्थाएँ कांग्रेसके अन्तर्गत नहीं भी थीं उन्होंने भी सरकारकी इस नीतिका विरोध करके, उसकी निन्दा करके अथवा उसमें कुछ परिवर्त्तन करनेके लिये सम्मति देकर, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे कांग्रेससे अपनी सहानुभूति प्रकट की है। अबतक कांग्रेसकी रिपोर्टमें ऐसे एक सौ तेईस नाम पहुँच चुके हैं, जिनमें डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर पी० एस्० शिवस्वामी ऐयर, सर तेजबहादुर सप्रू, श्री एम्० आर० जयकर, सर अब्दुल रहीम, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, सर फ़ीरोज़ सेठना, पण्डित हृदयनाथ कुञ्जरू, डाक्टर मुथु लक्ष्मी रेड्डी, डाक्टर सुब्बारायन आदि महानुभावोंके भी नाम हैं। संस्थाओंके अन्तर्गत सर्वेण्ट्स औफ़ इण्डिया सोसाइटी, अनेक लिबरल संस्थाएँ, व्यवस्थापिका सभाएँ, म्युनिसिपिलिटियाँ, बार असोशिएशन, स्त्रियोंकी अनेक संस्थाएँ, चेम्बर्स औफ़ कौमर्स, प्रान्तीय

और अखिल भारतवर्षीय जातीय संस्थाएँ, शिक्षण संस्थाएँ और भारतकी तथा बाहरकी अनेक संस्थाएँ हैं।

सर्वसाधारणकी सहानुभूति

परन्तु इन व्यक्तिविशेषों, संस्थाओं और कांग्रेससे अलग विशिष्ट व्यक्तियों एवं संस्थाओंसे भी अधिक दृढ़तासे भारतीय जनताने इस महान् आन्दोलनमें काम किया है। यह कहनेमें अत्युक्ति न होगी कि देश भरमें एक भी ऐसा घर नहीं है जिसपर इन घटनाओंका गहरा असर न पड़ा हो और जो इस महान् युद्धमें किसी प्रकारकी सहायता न देना चाहता हो।

मजिस्ट्रेट और पुलीसके लगातार भय दिखाते रहनेपर भी कांग्रेसद्वारा निर्धारित दिन-पर-दिन देश भरमें हड़तालें होती रही हैं। जहाँ और जब कभी सम्भव हुआ है, सहस्रों पुरुषों और स्त्रियोंने हर बड़े जुलूस और साधारण सभामें, जिसके न होनेके लिये सरकारने पूर्वसे ही घोषणा कर दी थी, भाग लिया है, यद्यपि वे जानते रहे हैं कि ऐसा करनेपर उन्हें क्या फल भुगतना पड़ेगा। सरकारके अन्य क़ानूनोंको भङ्ग करनेके लिये और उसके फलस्वरूप सब प्रकारके कष्ट सहन करनेके लिये भी दिन-प्रति-दिन अधिक संख्यामें लोग कांग्रेसमें चले आ रहे हैं। ग़ैर-क़ानूनी कांग्रेस बुलेटीन और अन्य कांग्रेस समाचार-पत्र भी लगभग सभी स्थानोंसे अनवरत निकल रहे हैं, यद्यपि पुलिस उनका पता लगानेका बराबर प्रयत्न कर रही है। उन स्त्रियोंके अतिरिक्त, जिन्होंने इस आन्दोलनमें अदृष्टपूर्व संख्यामें भाग लिया है, बहुतसे बालक भी वानर सेनाके रूपमें इस आन्दोलनमें भाग ले रहे हैं। उनके गुट-के-गुट कांग्रेसका सन्देश लिए इस प्रकार घूमते दिखाई पड़ते हैं मानों यह भी उनके लिये एक खेल है।

जान पड़ता है कि जनताने यह दृढ़ निश्चयसा कर लिया है कि चाहे उसे देशके नामपर कुछ भी क्यों न बलिदान करना पड़े, वह इस आन्दोलनको अन्ततक पहुँचा कर और सफलता प्राप्त करके ही छोड़ेगी। सरकारकी घोरतम दमन-नीति भी उसे नतमस्तक नहीं कर पाई है। सरकारने, जो यह प्रतिज्ञा की थी कि वह कांग्रेसको मटियामेट कर देगी, इसमें वह नितान्त विफल हुई। उसके इस विफल अत्याचारसे कांग्रेसकी अटल शक्ति और भारतीय जनतापर उसका असन्दिग्ध अधिकार द्विगुणित रूपसे सिद्ध हो गया है। सरकारके इन तीन महीनोंके कार्य्योंसे ही प्रकट हो गया कि यदि भारतमें देशके नामपर कुछ कह सकनेवाली कोई संस्था है तो वह कांग्रेस ही है और किसी प्रकारकी सन्धि अथवा सुधारकी सफलता भारतवर्षमें तबतक कभी नहीं हो सकती जबतक कांग्रेस उसपर अपनी स्वीकृति न दे दे।

उद्योग-व्यवसाय

भारतीय औद्योगिक कमीशन

१९ मई, सन् १९१६ ई० को सर टौमस हौलैण्डकी अध्यक्षतामेँ भारत-सरकारने एक औद्योगिक कमीशन स्थापित किया था जिसमें पूज्य मालवीयजीको ग़ैर-सरकारी भारतीयोँकी ओरसे सदस्य नियुक्त किया। इस कमीशनने अपनी जाँच सन् १९१८ ई० मेँ समाप्त करके अपनी रिपोर्ट दी। इस रिपोर्टके अन्तमेँ अपने साथियोँसे मतभेद होनेके कारण भारतकी व्यावसायिक उन्नतिके लिये अन्य उपाय सुझाते हुए एक टिप्पणी लिखी है। यह टिप्पणी भारतके व्यावसायिक और आर्थिक इतिहासके अध्ययनके लिये बड़ी महत्त्वपूर्ण है और इनकी आलोचनाओँ और नये सुझाए उपायोँमेँ अनेक ऐसे हैँ जिनके लिये भारतवासी इतने दिनोँसे पुकार रहे हैँ।

—सम्पादक।

२१ मार्च, सन् १९१६ ई० को माननीय सदस्य सर इब्राहीम रहमतुल्लाने राजकीय व्यवस्थापक परिषद्मेँ इस आशयका एक प्रस्ताव पेश किया कि एक ऐसी समिति स्थापित की जाय कि जो इस बातपर विचार करे कि भारतवर्षमेँ व्यवसायकी उन्नतिके लिये कौन उपाय किए जा सकते हैँ। उक्त समितिमेँ विचार करने योग्य विषयोँमेँ सबसे प्रथम उन्होँने यह प्रश्न रक्खा था कि—

“क्या भारतीय सरकारको विशेषकर आयात, निर्यात तथा मादक-करके सम्बन्धमेँ आर्थिक स्वतन्त्रता दिलानेके लिये भारत-सचिवके द्वारा अधिकारियोँके पास अभ्यर्थना-पत्र भेजा जाय?”

माननीय सदस्यने इस प्रस्तावका समर्थन करते हुए कहा कि—

“मैँ विना सङ्कोचके इस बातको स्वीकार करता हूँ कि वर्त्तमान दशाको सुधारनेके लिये सरकार निरन्तर उद्योग कर रही है। फिर भी मुझे मालूम पड़ता है कि जबतक भारतीय सरकारको आर्थिक मामलोँमेँ स्वतन्त्रता प्राप्त न हो तबतक फल सन्तोषजनक नहीँ होगा। यदि भारत-सरकारको आर्थिक मामलोँमेँ विना नियन्त्रणके इस देशकी जनताके हितके लिये उपाय करनेकी स्वतन्त्रता मिल जाय, तो देशी व्यवसायको अवश्य सन्तोषजनक सफलता मिलेगी। व्यवसायकी उन्नतिके लिये सर्वप्रथम आर्थिक स्वतन्त्रता चाहिए। यदि इस प्रश्नके हल होनेमेँ भारतीय लोक-मतका कुछ भी मूल्य हो तो हम लोगोँको यह अधिकार शीघ्र ही मिल जाना चाहिए।”

तत्कालीन व्यवसाय और वाणिज्यके सदस्य माननीय सर विलियम क्लार्कने भारत-सरकारकी ओरसे इस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। उन्होँने यह भी घोषणा की कि सरकारने प्रस्तावको स्वीकार करना पहलेसे निश्चय कर लिया था, और उसने एक समिति नहीँ, बल्कि एक महत्त्वपूर्ण कमीशन स्थापित करनेके लिये पहले ही से प्रयत्न किया है जिसका काम भारतीय व्यावसायिक उन्नतिपर विचार करना और उसकी रिपोर्ट देना होगा। उसी समय उन्होँने कहा कि जो कारण मैँने परिषद्के सामने रक्खे हैँ उनसे जाँचका अधिकार जितना कमीशनको

प्राप्त है, उसमें भारत-सरकारकी कर-सम्बन्धी नीतिपर विचार करनेका उसे अधिकार नहीं है। सर विलियम क्लार्कने कहा कि इस प्रस्तावके प्रस्तावककी रायमें भारत-सचिवके नियन्त्रणसे मुक्त और तात्कालिक भारत-सरकारकी आर्थिक नीतिसे अबाधित जो सरकार होगी, वह भारतकी औद्योगिक उन्नतिके लिये वर्त्तमान शासन-प्रणालीकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त सिद्ध होगी।" यह बात भी उन्होंने मान ली कि "सम्मानीय पुरुषोंकी अधिक सम्मति इसी ओर थी।" किन्तु उन्होंने कहा कि, "वृटिश सरकार यह सोचती है कि साम्राज्यका, एकका दूसरेसे तथा संसारके शेष भागसे, जो व्यावसायिक सम्बन्ध है उसपर लड़ाईके वाद फिरसे विचार होना चाहिए और वे ऐसे प्रश्नोंको उठाना नहीं चाहते जवतक कि वह सुअवसर न आवे।" इसलिये इस कमीशनकी स्थापना करते समय प्रस्तावमें यह कहा गया था कि, "कमीशनको वर्त्तमान आर्थिक नीतिपर कोई भी विचार करनेका अधिकार नहीं दिया गया है और यही बात अन्य ऐसे प्रस्तावोंके सम्बन्धमें भी लागू है जिनका उद्देश भारतीय उद्योग-धन्धोंकी रक्षा करनेके लिये कर लगाना हो।" इससे स्पष्ट है कि इस नीतिका प्रभाव भारत और संसारके अन्य देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धपर प्रत्यक्ष रूपसे पड़ेगा। इसको स्पष्ट करनेके लिये सर फ़्रेड्रिक निकलसनने हमें अपने लिखे हुए बयानमें कहा है कि "मुख्य बातके इस अंशको बिल्कुल छोड़ देना चाहिए"। कमीशनको भारतीय उद्योग-धन्धोंपर विचार करने और उसपर रिपोर्ट देनेका तथा निम्नाङ्कित प्रश्नोंपर विशेष ध्यान देते हुए सिफ़ारिश करनेका आदेश मिला है—

(अ) क्या भारतीय पूँजीका नये उपायोंद्वारा व्यापार एवं व्यवसायमें लाभप्रद उपयोग कराया जा सकता है?

(आ) अगर ऐसी बात है, तो किस प्रकार सरकार व्यावसायिक उन्नतिको प्रत्यक्ष रूपसे निम्न उपायोंद्वारा प्रोत्साहन दे सकती है?

(१) उन निश्चित सलाहोंद्वारा जो अधिक सुगमतासे प्राप्त हो सकें,

(२) विशेष उद्योग-धन्धोंको व्यावसायिक रूपमें उनकी उन्नतिकी व्यवहारिक सम्भावना प्रदर्शित करके,

(३) व्यावसायिक धन्धोंको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे आर्थिक सहायता देकर,

(४) या भारत-सरकारकी वर्त्तमान आर्थिक नीतिके अनुकूल किन्हीं दूसरे उपायोंद्वारा।

अपने उपर्युक्त भाषणमें सर विलियम क्लार्कने यह स्पष्ट प्रकट किया कि, "हम लोगोंका विशेष उद्देश यह है कि उन उद्योग-धन्धोंकी वृद्धि करें जिनकी पूँजी, जिनका प्रवन्ध एवं अधिकार भारतीयोंके हाथमें हो। उन्होंने इस बातपर ज़ोर दिया कि भारत और सारे साम्राज्यके हितके लिये यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है कि भारतीय अपने देशकी व्यावसायिक उन्नतिमें अधिक भाग लें"। उन्होंने उन साधनोंके अनुसरण करनेका विरोध किया जिनका उद्देश यह हो कि, "विलायतमें रहनेवाले व्यापारी वहाँके वदले भारतमें आकर भारतीयोंसे इसी देशमें प्रतियोगिता करने लगें"। भारतवासियोंकी व्यावसायिक तथा औद्योगिक उन्नतिमें किस प्रकारकी सहायता दी जाय, इसीका पता लगानेके उद्देशसे प्रेरित होकर भारतीय सरकारने कलकत्तेमें अर्थशास्त्रके मिण्टो प्रोफ़ेसर सी० जे० हैमिल्टनको जापान भेजा कि, "जिससे वे औद्योगिक कमीशनके उपयोगके लिये विस्तृत विवरण प्राप्त करें जिससे कि हम लोगोंको मालूम हो कि वहाँकी सरकारने पश्चिमीय आर्थिक दशाओंसे अपरिचित होनेपर भी अपने देशमें अपनी औद्यौगिक और व्यावसायिक उन्नतिका कैसा स्वरूप खड़ा किया है तथा उसकी उन्नति करनेके लिये वहाँकी सरकारने प्रजाको किस प्रकार सहायता दी है।" जिन प्रश्नोंपर हम लोगोंको विचार करना एवं उसपर रिपोर्ट करना है, उसपर विचार करते समय हम लोगोंको यह उद्देश आँखोंके सामने रखना होगा।

जिस जापानमेँ अधिकतर लोग कृषिमेँ लगे हुए थे, वह जिस शीघ्रताके साथ संसारके वर्त्तमान व्यावसायिक देशोँ मेँ एक प्रमुख हो गया है उसका विशेष उल्लेख करते हुए प्रोफ़ेसर हैमिल्टनने कहा है कि :—

“दूसरी बात भारतीय दृष्टिकोणसे और भी महत्त्वपूर्ण यह है कि यह आश्चर्य्यजनक परिवर्त्तन एक एशियाई जातिने किया है। एशियावासी वहुत दिनोँसे कट्टरपन्थी एवं अनुन्नतशील समझे जाते हैँ। और यह भी समझा जाता है कि अपने देशमेँ शान्ति और व्यवस्थाके प्रवन्धमेँ उनको पाश्चात्य राष्ट्रोँकी अधिक सहायता एवं आदेशकी आवश्यकता है तथा पाश्चात्य राष्ट्रोँकी सहायतासे भी वे आधुनिक आर्थिक उन्नतिके उचित उपाय करनेके लिये बड़ी कठिनतासे तैयार होते हैँ”। यह राय केवल हैमिल्टन महोदयकी ही नहीँ है। इस कमीशनके सम्बन्धमेँ मुझे वार-वार योरोपियनोँके इस भ्रमात्मक विचारकी याद दिलाई गई है कि भारत एक कृषि-प्रधान देश है; वह सदैव ऐसा ही वना रहेगा; भारतके लोग स्वभावतः एवं परम्परासे ही व्यावसायिक उद्योगोँमेँ क्षमता-हीन हैँ; और पाश्चात्य लोगोँमेँ व्यावसायिक क्षमता जन्मसे ही भरी होती है। इस विचारका खण्डन करना आवश्यक है, क्योँकि भारतवासियोँकी क्षमताके विषयमेँ यह झूठा विचार है। भारतकी वर्त्तमान व्यावसायिक दशाके ठीक ज्ञानके लिये एवं इसकी उन्नतिके लिये कौनसी नई योजनाएँ निकाली जा सकती हैँ, इसको ठीक रूपसे समझनेके लिये भारतके प्राचीन व्यावसायिक इतिहासका यथार्थ ज्ञान अपेक्षित है।

मैँ अपने सहयोगियोँसे इस वातमेँ सहमत हूँ कि, “जिस समय वर्त्तमान व्यवसाय-प्रणालीके जन्मस्थान योरोपमेँ असभ्य जातियाँ वसती थीँ उस समय भारत अपने शासकोँके वैभव और अपने कारीगरोँके कलापूर्ण कौशलके लिये अति प्रसिद्ध था।” मैँ इससे भी सहमत हूँ कि उसके बहुत समय वाद भी जव भारतमेँ सर्वप्रथम पश्चिमसे व्यापारी आए तव भी भारतकी व्यावसायिक स्थिति किसी प्रकार भी योरोपके उन्नतिशील राष्ट्रोँमेँ किसीसे तनिक भी कम नहीँ थी”। किन्तु, इङ्गलैण्डकी व्यावसायिक उन्नतिके साथ ही भारतीय व्यवसायकी उन्नति न होनेके जो कारण वे वतलाते हैँ उनसे मैँ असहमत हूँ। उनका कथन है कि “लेकिन पश्चिमकी अति भिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक दशाके कारण वहाँ मध्यम श्रेणीके लोगोँको व्यावसायिक उन्नतिमेँ सफलता प्राप्त हुई है। वहाँ मध्यम श्रेणीके लोगोँने राजनीतिक एवं धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये जो आन्दोलन किया था उसके कारण उनमेँ नई खोज तथा साहस-साध्य कार्य्य करनेकी क्षमता आ गई, जिससे उनकी व्यावसायिक योग्यता उत्तरोत्तर वढ़ती ही गई और अठारहवीँ शताब्दीकी “व्यावसायिक क्रान्ति” भी इन्हीँ मध्यम श्रेणीके लोगोँके कारण हुई।”

इसी प्रकार रिपोर्टके एक सौ चौँतीसवेँ अंशमेँ कहा गया है कि योरोपमेँ अठारहवीँ शताब्दीके सन्ध्याकालमेँ प्रचलित होनेवाली अर्वाचीन व्यावसायिक पद्धतिके विकासके इतिहाससे प्रकट होता है कि उनमेँ पूँजीपतियोँ एवं शिक्षित वर्गने वड़ा भारी भाग लिया था। इसी समय वैज्ञानिक खोजको प्रोत्साहन मिला एवं रौयल सोसाइटीने उसको व्यवहारमेँ परिणत किया और वादको इस कामको सोसाइटी औफ़ आर्ट्सने अपने हाथमेँ ले लिया। इस वैज्ञानिक खोज और उसके व्यावहारिक प्रयोगके साथ-साथ पूँजीपति, व्यापारी एवं धनोमानी अन्य पुरुषोँने व्यवसाय-क्षेत्रमेँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य्य प्रारम्भ किए। जव इसके परिणाम-स्वरूप मशीनोँ-द्वारा वनी चीज़ेँ भारतमेँ पहुँचने लगीँ तव यह आन्दोलन उस श्रेणीतक पहुँच चुका था कि भारत शीघ्रताके साथ इसका अनुकरण कर सके जो कि इङ्गलैण्डने क्रमिक विकासद्वारा उन्नति की थी”।

मेरी रायमेँ यह विचार सत्य नहीँ है। यह

भारतीयोँ एवं योरोपियनोँकी व्यावसायिक क्षमताके विषयमेँ भ्रमात्मक विचार पैदा करता है। भारतमेँ जनता और सरकारके सहयोगसे क्या और कितनी व्यावसायिक उन्नति हो सकती है, इसका उचित निर्णय इस भ्रमात्मक विचारसे ठीक-ठीक नहीँ हो पाता । अतः मैँ भारतके आर्थिक इतिहास एवं इङ्गलैण्डकी 'व्यावसायिक क्रान्ति' की विवेचना ज़रा विस्तारके साथ करूँगा, क्योँकि इङ्गलैण्डकी "व्यावसायिक क्रान्ति" का प्रभाव भारतके आर्थिक इतिहासपर अत्यधिक पड़ा है।

भारत—
व्यवसाय-प्रधान तथा कृषि-प्रधान देश

प्रोफ़ेसर वेबरका कथन है कि, "महीन वस्त्रोँकी बुनाई, रङ्गोँके मिलाने, धातु और क़ीमती पत्थरके काम, इत्रोँके तैयार करने और प्रत्येक प्रकारकी शिल्पकलामेँ भारतवासी अपनी कुशलताके लिये अति प्राचीन कालसे प्रसिद्ध हैँ । इस बातका भी प्रमाण मिला है कि ईसासे तीन हज़ार वर्ष पहले बैबिलोनका भारतके साथ व्यापार-सम्बन्ध था । ईसाके दो हज़ार वर्ष पहलेकी मिश्रकी समाधियोँमेँ रक्षित शव (ममी) भारतके बने हुए अत्युत्तम जातिकी मलमलसे ढके हुए हैँ ।" रोममेँ भारतकी बनी हुई चीज़ोँकी बहुत खपत थी । इसकी पुष्टि इतिहासवेत्ता ज्येष्ठ प्लिनीकी बातोँसे होती है । प्लिनीकी यह शिकायत थी कि भारत व्यापारद्वारा हमारी अतुल सम्पत्ति खीँच ले जाता है ।" "ढाकेकी मलमल यूनानमेँ 'गङ्गीतक' के नामसे प्रसिद्ध थी ।..........यह कहा जा सकता है कि दो हज़ार वर्ष पहले भारतमेँ उच्च कोटिकी सूतकी कताई और बुनाई होती थी।........................इङ्गलैण्डमेँ सूतकी बुनाईका केवल सत्रहवीँ शताब्दीसे श्रीगणेश हुआ" (इम्पीरियल गजेटियर औफ़ इण्डिया जिल्द ३, पृष्ठ १९५)।

लोहेके व्यावसायके सम्बन्धमेँ प्रोफ़ेसर बिल्सनका कथन है कि, "लोहेकी ढलाईका कार्य्य इङ्गलैण्डमेँ बहुत थोड़े दिनोँसे शुरू हुआ है। लोहेकी ढलाईके काममेँ हिन्दू बड़े कुशल हैँ और लोहा पीटने व उससे इस्पात बनानेकी उनकी यह कला बहुत कालसे प्राचीन है" । श्रीयुत रानाडेने सन् १८९२ ई० मेँ यह लिखा था कि :—

"लोहेके व्यवसायसे केवल भारतकी ही आवश्यकताएँ पूरी नहीँ होती थीँ, बल्कि लोहेकी बनी हुई चीज़ेँ विदेश भी जाती थीँ । यहाँकी बनी हुई लोहेकी चीज़ेँ अपनी उत्तमताके लिये संसारमेँ प्रसिद्ध थीँ । दिल्लीके समीप जो कम-से-कम पन्द्रह सौ वर्ष प्राचीन लोहेका प्रसिद्ध स्तम्भ है, वह इस बातका साक्षी है कि भारतीयोँने लौह-शिल्पमेँ कितनी कुशलता प्राप्त की थी और उसके निरीक्षक अभीतक चकित हैँ । भूगर्भ-सम्बन्धी खोजके भूतपूर्व सदस्य श्री बौलने स्वीकार किया है कि कुछ ही दिनोँ पहले संसारके बड़े-से-बड़े कारख़ानेँ ऐसे लौह-स्तम्भ बनानेमेँ सर्वथा असमर्थ थे । अब भी संसारमेँ कुछ ही ऐसे कारखाने हैँ जो लोहेका ऐसा स्तम्भ बना सकते हैँ । आसाममेँ बहुत बड़ी-बड़ी तोपेँ बनती थीँ। भारतीय इस्पातसे ही दमिश्ककी जगत्प्रसिद्ध तलवारेँ तैयार होती थीँ । इससे फ़ारसी व्यापारियोँको इतना लाभ होता था कि वे इतनी दूर भारतमेँ आकर यहाँका लोहा एशिया भरमेँ बेचनेको भेजते थे । इङ्गलैण्डमेँ भी कैँची चाक़, छुरी आदि बनानेके लिये भारतके इस्पातकी माँग थी । लोहेकी ढलाई और और इस्पातकी बनाईमेँ दो हज़ार वर्ष पहले ही भारतको सर्वोच्च पूर्णता प्राप्त हो गई थी" । (श्री रानाडेके भारतीय अर्थशास्त्रपर लेखोँसे, पृष्ठ १५९-१६०)

इस बातको सिद्ध करनेके लिये बहुत प्रमाण हैँ कि सिकन्दरके आक्रमणके पहले और उसके बादकी बहुत शताब्दियोँतक भारतवासी सब प्रकारसे सम्पन्न थे और भारतवासियोँका यह वैभव अठारहवीँ शताब्दीके अन्तमेँ मुग़ल साम्राज्यके पतनतक अविरत रूपसे स्थायी रहा ।

श्री एल्फ़िन्स्टन महोदयने लिखा है कि, "यूनानियोंने भारतवर्षके जितने प्रान्तोंका निरीक्षण किया है, उसके विषयमें लिखा है कि वे प्रान्त बहुत घने आबाद थे और सब प्रकारसे समृद्ध तथा सुखी थे। अगणित व्यापारी, नगर और विदेशी व्यापारके बन्दरगाह भारतीयोंकी व्यावसायिक उन्नतिका प्रमाण देते हैं, जो सबसे अधिक यह प्रमाणित करते हैं कि यह जाति कितनी उन्नत अवस्थामें थी। इस बातका उल्लेख बहुत बादमें "पैरिप्लुस्" में किया गया है (पृ० २६३)।…………… एरियनने बड़े गौरवके साथ लिखा है कि प्रत्येक भारतीय स्वतन्त्र है।………………………………… युद्ध और शान्ति दोनों अवस्थाओंमें सेनाको अबाध रूपसे वेतन मिलता था।………………………………… पुलीसका प्रबन्ध अत्यन्त सुन्दर था। मेगस्थनेस्ने लिखा है कि चन्द्रगुप्तकी चार लाख योद्धाओंकी सेनामें पैंतालीस रुपयेसे अधिक नित्य चोरी नहीं होती थी।…………सब खेत नाप लिए गए थे और उनको सिंचाईके लिये बहुत उत्तम प्रबन्ध किया गया था। व्यापारपर कर लगाया गया था तथा सौदागरों और व्यापारियोंसे आयपर कर लिया जाता था। स्ट्राबोने राजमार्गों और मीलके पत्थरोंका उल्लेख किया है।……………सब कुटुम्बोंमें सोना, रत्न, रेशम और गहनोंका प्रयोग होता था। सुसभ्य जीवनके लिये जितनी प्रकारकी वृत्तियोंकी आवश्यकता होती है, वे सब उस समय मौजूद थीं।………अनेक प्रकारके धान्य और मसाले इत्यादि जो उस समय उत्पन्न किए जाते थे, यह प्रमाणित करते हैं कि उस समय भारतवर्षमें उत्कृष्ट श्रेणीकी कृषि होती थी।…………… उनकी आन्तरिक संस्थाएँ सुसभ्य थीं। शत्रुओंके प्रति उनका व्यवहार अधिक मनुष्योचित था। साधारणतः व्यापक शिक्षाका अधिक प्रचार था तथा ईश्वर और उसके अस्तित्त्वका ज्ञान इतना बढ़ा-चढ़ा था कि एथेन्सके स्वर्ण-युगके सर्वोत्कृष्ट तत्त्वज्ञानियोंको भी उस प्रकाशकी थोड़ी ही किरणें मिली थीं। (भारतवर्षका इतिहास, पृष्ठ ५२)

'अरूथ्रियन समुद्रके पैरिप्लुस' के लेखकने उन भारतीय पदार्थोंका पूर्ण विवरण दिया है जिनकी पश्चिममें विशेषतः रोममें ईसाकी पहली शताब्दीके लगभग बड़ी माँग थी। पश्चिमके बहुतसे यात्रियोंने भारतके व्यापारका इसी प्रकार वर्णन किया है। चौथी तथा छठी शताब्दीमें दो चीनी यात्रियोंने भारतवर्षमें पदार्पण किया और उन्होंने भारतकी तत्कालीन अवस्थापर अपनी सम्मतिका स्पष्ट उल्लेख किया है जिसमें यहाँकी कला और यहाँके व्यवसायकी समुन्नतिका वर्णन है।

इसके पश्चात् योरोपियन धार्मिक युद्ध और लेवेण्टाइन व्यापारका प्रारम्भ हुआ, जिसका केन्द्र वेनिस हुआ और भारतवर्षके साथ जिसका सबसे अधिक व्यापार चलने लगा। इसके बाद जिनोवा केन्द्र बन गया। मार्को पोलो यहाँ तेरहवीं शताब्दीमें आया था। उसने भी अपने अनुभवका विवरण दिया है।

इसमें सन्देह नहीं कि ग्यारहवीं शताब्दीमें जो युद्धकी लहर आई उससे भारतीय व्यवसाय एवं व्यापारियोंको बहुत धक्का पहुँचा। किन्तु मुग़ल साम्राज्यके स्थापित हो जानेपर उसके शान्त वातावरणमें भारतीय व्यवसायका फिर उत्थान हुआ। बर्नियरने शाहजहाँके शासनकालमें भारतमें पदार्पण किया। उसने राजधानीका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। बादशाहके बृहत् धन-कोष, स्वर्ण, रजत, रत्न और कई प्रकारके उत्कृष्ट मोतियों और अमूल्य पत्थरोंका उसने वर्णन किया है। भारतमें बनी हुई सामग्रीकी इतनी प्रचुरतापर बड़ा आश्चर्य्य प्रकट किया है कि "यहाँ कलाबत्तूका काम, धारीदार रेशम, सुनहरी पगड़ियोंके कुल्ले, चाँदी और सोनेके कपड़े, कीमखाब और सुनहरी जालीका बड़ा काम था"। टवर्नियरने भी बने हुए मालका विशद वर्णन दिया है। रत्नोंसे जटित मोरके पङ्खके स्वाभाविक रङ्ग एवं अद्भुत मयूरासनका, सोने और चाँदीके क़ालीनों और शिल्पके कई अगणित भव्य कामों और लकड़ीके महीन कामका उसने मुग्ध होकर वर्णन किया है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी

भारतके वैभव एवं व्यवसायपर मुग्ध होकर योरोपके व्यापारियोँने भारतसे व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया। इतिहासकार मरे महोदयने लिखा है कि, "भारतमेँ अत्युत्तम वस्त्र वनते थे। उनको ख़रीदनेके लिये व्यापारी अपनी जान जोखिममेँ डालने तथा अनेक कष्ट उठानेके लिये प्रस्तुत रहते थे" (भारतवर्षका इतिहास, पृष्ठ २७) वेनिस और जिनोआके पतनके बाद डच और पुर्तगालवालोँने भारतके व्यापारपर अधिकार जमाया। अंग्रेज़ व्यापारी उनके व्यापारसे ईर्ष्या करने लगे थे। उन्होँने ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी स्थापना की। ३१ दिसम्बर, सन् १६०० ई० मेँ कम्पनीको रानी एलिज़बेथने भारतसे व्यापार करनेका आज्ञापत्र दिया (रिपोर्ट परिच्छेद २) और कम्पनीको यह आदेश मिला कि, "यथासाध्य इङ्गलैण्डके बने मालके साथ भारतके बने मालका विनिमय हो"—कारण यह था कि इङ्गलैण्डमेँ उस समय वहुत थोड़ीसी वस्तुएँ निर्य्यातके लिये थीँ और उनका उद्देश अधिकाधिक संख्यामेँ यहाँकी बनी हुई वस्तुओँको योरोप भेजना था।

लेकी महोदयका कथन है कि, "सत्रहवीँ शताब्दीके अन्तमेँ इङ्गलैण्डमेँ भारतके अति सुन्दर और सस्ते कपड़े चिकन, मलमल और छीँट आदिकी वहुतायतसे खपत थी और वे इतने लोकप्रिय हो गए थे कि वहाँके रेशमी कपड़ोँके व्यापारी विल्कुल घवड़ा गए थे। इस कारण सन् १७०० और सन् १७२१ ई० मेँ यह क़ानून बनाया गया कि भारतमेँ बने किसी भी प्रकारके रङ्गीन अथवा छपी हुई छीँटके बने कपड़े इङ्गलैण्डवाले न तो पहन ही सकते हैँ और न अन्य सजावटके काममेँ उनका प्रयोग कर सकते हैँ। हाँ इस नियममेँ थोड़ेसे अपवाद थे"। लेकीके अठारहवीं शताब्दीके इङ्गलैण्ड इतिहाससे।

बङ्गालकी पुरानी राजधानी मुर्शिदाबादमेँ जब क्लाइवने, सन् १७५७ ई० मेँ प्रवेश किया तो उसने उसके विषयमेँ लिखा है :—

"यह शहर लन्दनकी तरह घना बसा हुआ है, और उसीके समान विस्तृत और समृद्ध है। अन्तर इतना ही है कि लन्दनकी अपेक्षा यहाँके नागरिक अधिक धनवान एवं समृद्धिशाली हैँ।" (सन् १८९० ई० से पूर्व प्रकाशित, एच्. जे. एस्. कौटनद्वारा लिखित नवीन भारतसे)। सन् १८९० ई० मेँ सर हेनरी कौटनने लिखा है कि, "अभी पूरे सौ वर्ष भी नहीँ हुए कि ढाकामेँ करीव एक करोड़का व्यापार होता था और उसकी जन-संख्या लगभग दो लाख थी। सन् १७८७ ई० मेँ ढाकासे इङ्गलैण्डको लगभग तीस लाख रुपयेकी मलमल भेजी गई, और १८१७ ई० मेँ वह विल्कुल वन्द हो गई। जिस कताई-वुनाईकी कलासे युगोँतक लाखोँ व्यवसायियोँकी जीविका चलती थी वह अब विल्कुल नष्ट हो गई है। जो परिवार पहले धनीमानी थे अब उन्हेँ शहर छोड़कर देहातमेँ चला जाना पड़ा है और वहीँ वे अपनी जीविका निर्वाह करते हैँ। ढाकाकी वर्त्तमान जन-संख्या केवल उन्यासी हज़ार है। यह वुरी दशा केवल ढाकाकी ही नहीँ, अपितु प्रत्येक ज़िलेकी हुई है। कोई वर्ष ऐसा नहीँ वीतता जिसमेँ कमिश्नर और ज़िला-अफ़सर सरकारसे इस वातकी रिपोर्ट न करते होँ कि देशके प्रायः प्रत्येक भागमेँ व्यवसायोँकी दशा चौपट होती जा रही है।" श्री रमेशचन्द्रदत्तने लिखा है कि, "उन्नीसवीँ शताब्दीके प्रथम चार वर्षोँमेँ सव तरहकी रोकथाम एवं चुङ्गीके होते हुए भी सूती मालकी छः हज़ारसे लेकर पन्द्रह हज़ारतक गाँठेँ प्रतिवर्ष जहाज़से भारतसे इङ्गलैण्डको भेजी जाती थीँ। सन् १८१३ ई० मेँ यह संख्या बड़ी तेज़ीसे कम हो गई। व्यक्तिगत व्यापारियोँको व्यापार करनेकी आज्ञा मिल जानेसे सन् १८१५ ई० मेँ कुछ उन्नति हुई थी, परन्तु यह अवस्था अस्थायी थी। सन् १८२० ई० के वाद सूती मालकी तैयारी एवं इसका निर्य्यात एकदम कम हो गया और तवसे वह कभी उभर ही न सका" (वृटिश भारतका आर्थिक इतिहास, पृष्ठ २९६)।

भारत कृषि-प्रधान देश कैसे बना।

कम्पनीके शासनकालके प्रारम्भ ही मेँ बङ्गालके जिन जुलाहोँका माल इङ्गलैण्डमेँ भेजा था उनसे अंग्रेज़ जुलाहे ईर्ष्या करने लगे थे और इङ्गलैण्डवालोँने भारतमेँ तैयार हुए सामानका आना केवल बन्द ही नहीँ किया, अपितु श्री रमेशदत्तचन्द्रके शब्दोँमेँ, “भारतीय व्यवसायोँको नष्ट करनेके लिये कम्पनीने जान-बूझकर अपने राजनीतिक अधिकारोँका यथासाध्य प्रयोग किया। बङ्गाल सरकारको १७ मार्च, सन् १७६९ मेँ पत्र लिखते हुए कम्पनीने कच्चे रेशमके व्यवसायको बङ्गालमेँ प्रोत्साहित करनेकी और रेशमकी बनी वस्तुओँके व्यवसायको कम करनेकी इच्छा प्रकट की। उन्होँने यह भी सिफ़ारिश की कि रेशम कातनेवाले मज़दूर कम्पनीके कारख़ानोँमेँ आकर काम करनेके लिये बाध्य किए जायँ और अपने घरोँमेँ काम करनेसे रोके जायँ।” नये सिरेसे भारतमेँ न्यायशासनके ऊपर सर्वसाधारण सभाकी निर्वाचित समितिने जो नवीँ रिपोर्ट दी थी उसमेँ सञ्चालक समितिने सन् १७८३ ई० मेँ पत्र लिखा था, जो उक्त रिपोर्टके सैंतीसवेँ परिशिष्टमेँ उद्धृत है (अपनी पुस्तकके पैँतालिसवेँ पृष्ठपर श्री रमेशचन्द्रदत्त-द्वारा उद्धृत) वह इस प्रकार है—

“जान पड़ता है कि इस विधानसे बहुत लाभ होनेके साथ ही विशेष लाभ यह हुआ है कि जो जुलाहे कारीगर पहले अपने घरोँमेँ काम करते थे अब कारखानोँमेँ आकर काम करने लगे हैँ। अगर असावधानीसे मज़दूरोँके अपने घरमेँ काम करनेकी यह प्रथा कहीँ फिर जारी हो जाय तो उचित होगा कि सख़्त मनाही करके या सरकारी आज्ञाद्वारा इसको बिल्कुल बन्द कर दिया जाय।”

निर्वाचित समितिने ठीक ही कहा है कि, “यह पत्र बाधा और प्रोत्साहन दोनोँ नीतियोँकी योजनासे पूर्ण है जिसका बङ्गालके कारीगरोँपर बहुत विनाशकारी प्रभाव पड़ेगा। इसका फल यह होगा कि व्यवसायी भारत, इङ्गलैण्डके कारीगरोँके लिये कच्चा माल तैयार करने लगेगा और उसके बने हुए माल की खपतका बाज़ार बन जायगा।”

इसके अतिरिक्त श्रीयुत डिग्बीके कथनानुसार सन् १८१३ ई० मेँ भारतीय रूईके व्यवसायियोँको इङ्गलैण्डमेँ निम्नाङ्कित चुङ्गी देनी पड़ती थी।

	पौ०	शि०	पे०
“सौ पौण्डके मूल्यकी छीँटपर	८१	२	११
रूई कच्चा माल प्रति सौ पौण्ड	०	१६	११
सूती माल तैयार	८१	२	११
भेड़के बाल या ऊनके बने मालपर फ़ी सैकड़ा	८४	६	३
सफ़ेद छीँटकी बूटेदार और सिली हुई मलमल प्रति सौ पौण्डकी क़ीमतपर	३२	९	२
अन्य सूती तैयार माल जिनपर दूसरी तरहकी चुङ्गी नहीँ लगी है।	३२	९	२

जब भारतका निर्य्यात स्थायी या अस्थायी रूपसे नष्ट हो चुका तब बादको ये भारी कर हटा दिए गए।” (समृद्धिशाली बृटिश भारत, पृष्ठ ९०) जबसे भारतमेँ बृटिश राज्यकी स्थापना हुई तबसे भारतमेँ दूसरी ओर बृटिश माल या तो बिना चुङ्गी दिए या नाममात्र आयात चुङ्गी देकर ही भारतमेँ आता था। उस समय भारतीय सूती मालको इङ्गलैण्डमेँ इक्यासी पौण्ड प्रतिशत भारी कर देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त इङ्गलैण्डमेँ मशीनके करघे और भापके इञ्जनोँकी पूर्ण उन्नति हो चुकी थी, और अंग्रेज़ी माल भारतमेँ प्रचुर परिमाणमेँ आने लगा था। भारतसे छुट्टी पानेके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनीके सञ्चालक श्रीयुत हेनरी सेण्ट जौर्ज टकरने इसके परिणामका बहुत उत्तम वर्णन किया है। सन् १८२३ ई० मेँ लिखते हुए उन्होँने कहा कि बहुत दिनोँसे भारतके बने हुए दोसूती, रेशमी और सूतके कपड़े तथा रेशमी माल हम लोगोँके बाज़ारमेँ आनेसे रोक दिए गए हैँ। थोड़े दिनोँसे कुछ तो सड़सठ प्रतिशत चुङ्गीके फल-स्वरूप किन्तु विशेषतः उत्तम मशीनोँके कारण जो सूत भारतसे आता था वह इस देशमेँ आना केवल नष्ट ही नहीँ हो गया है, बल्कि

हम लोग अपने एशियाई उपनिवेशोंको अपने देशसे तैयार सूती माल भेजकर उनकी माँग पूरी करते हैं। इस प्रकार भारत एक व्यावसायिक देशसे गिरकर खेतिहर देश हो गया है। (भारत-सरकारकी याददाश्तें हेनरी सेण्ट जौर्ज टकरके लेखोंसे संग्रहीत (लन्दन सन् १८५३ ई०) पृष्ठ ४६४, जिसको श्री रमेशचन्द्रदत्तने अपने बृटिश भारतके आर्थिक इतिहासके २६२वें पृष्ठपर उद्धृत किया है)।

भारतके इतिहासकार एच्० एच्० विल्सनने भी कहा है कि :—

सन् १८१३ ई० में गवाहीमें यह कहा गया है कि बृटिश बाज़ारमें, भारतका बना हुआ सूती और रेशमी माल उस समयतक (सन् १८१३ ई० तक) मुनाफ़ा लेकर इङ्गलैण्डमें बने हुए मालकी अपेक्षा पचाससे लेकर साठ प्रतिशततक कम मूल्यपर बिकता था। अतः यह आवश्यक हो गया कि इङ्गलैण्डके मालकी रक्षा या तो सत्तर या अस्सी प्रतिशत चुङ्गी लगाकर की जाय या भारतके मालको बिल्कुल रोककर। अगर ऐसा न होता और निषेधात्मक चुङ्गी न लगाई जाती और ऐसे निषेधात्मक क़ानून न बनते तो पैसले और मैञ्चेस्टरके कारख़ाने प्रारम्भ ही में बन्द हो जाते और भापके इञ्जनोंसे भी कठिनतासे चल पाते। भारतीय व्यवसायकी बलि देकर उन्हें चलाया गया है। यदि भारत स्वतन्त्र होता तो उसने अवश्य बदला ले लिया होता और बृटिश मालपर निषेधात्मक चुङ्गी लगा दी होती और इस प्रकार अपने व्यवसायको नष्ट होनेसे बचा लिया होता। उसको आत्मरक्षाका अवसर नहीं दिया गया। वह तो उस समय विदेशियोंके हाथकी कठपुतली बना हुआ था। उसपर बृटिश माल बिना किसी चुङ्गीके लाद दिए गए। विदेशी व्यवसायियोंने अपने प्रतियोगी भारतीय व्यवसायियोंको नष्ट करनेके लिये अन्यायकी भी शरण ली। यदि उन्होंने ऐसा न किया होता तो भारतीय व्यवसायियोंके साथ उनका प्रतियोगिता करना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव हो जाता। (रमेशचन्द्रदत्त-द्वारा उद्धृत, पृष्ठ २६२, २६३)

भारतका दूसरा प्रसिद्ध व्यवसाय जो अँग्रेज़ व्यवसायियोंकी ईर्ष्याके कारण नष्ट हुआ, वह जहाज़ बनानेका व्यवसाय था। यह भारतवर्षका बहुत प्राचीन व्यवसाय था और भारतके नाविक दूर-दूरतक पश्चिम और पूर्वमें जहाज़ लेकर जाते थे। इस बातको श्री डा० राधाकुमुद मुकुर्जीने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "भारतीय पोत-निर्माणका इतिहास" (हिस्टरी औफ़ इण्डियन शिपिङ्ग) में प्रमाणित कर दिया है। सिकन्दर और देरिअसके पास सैकड़ों ऐसे जहाज़ थे जिनका निर्माण भारतमें हुआ था। भारतीय नाविक अफ़्रीकातक ही नहीं बल्कि मैक्सिकोतक जहाज़-द्वारा यात्रा करते थे वे कोरोमण्डल तटसे जावा, सुमात्रा, बोर्निओ और सुदूर कैण्टनतक यात्रा करते थे।

डिग्बी महोदयका कथन है कि सौ वर्ष पूर्व भारतमें पोत-निर्माण ऐसी उन्नत दशामें था कि यहाँ ऐसे-ऐसे उत्तम जहाज़ बन सकते और बने थे जो बृटेनके बने हुए जहाज़ोंके साथ अथवा छोटे-छोटे रण-पोतोंकी रक्षाके लिये टेम्स नदीतक जाया करते थे।

बड़े लाट लौर्ड वेलेज़लीने सन् १८०० ई० में लैडेन् हौल स्ट्रीट लन्दनमें स्थित अपने स्वामियोंके पास लिखा था कि, "कलकत्ता बन्दरगाहमें लगभग एक लाख टन सामान ढोनेवाले भारतके बने वैसे ही जहाज़ हैं जैसे इङ्गलैण्डको माल ले जानेके काममें आते हैं।……… कलकत्ता बन्दरगाहमें व्यक्तिगत जहाज़ोंकी वहन-क्षमताके परिणामको देखकर तथा बङ्गालकी पोत-निर्माण कलाकी पूर्णता देखकर (जो भविष्यमें और भी अधिक उन्नति करेगी और जिसे निरन्तर पर्य्याप्त परिमाणमें लकड़ी मिलती रहती है) यह निश्चय है कि बङ्गालके बृटिश व्यापारियोंको लन्दनतक निश्चित परिमाणतक माल ढोनेके लिये जहाज़ मिलनेमें कोई कठिनाई न होगी।" (श्री डिग्बीद्वारा अपने प्रौस्परस बृटिश इण्डियाके पृष्ठ ८६ पर उद्धृत)

श्रीयुत टेलर कहते हैं :—

"किन्तु, जब भारतीय जहाज़ भारतीय मालको लेकर लन्दनके बन्दरगाहमें पहुँचे तो अँग्रेज़ एकाधिकारियोंमें इस बातसे इतना क्षोभ हो गया जितना शत्रुके जङ्गी बेड़ेसे भी उनको न होता। लन्दन बन्दरगाहके जहाज़ बनानेवालोंने हल्ला मचाना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा कि हमारा व्यवसाय नष्ट होना चाहता है और हम लोगोंका परिवार भूखों मरना चाहता है। (भारतका इतिहास, पृष्ठ २१६)

उनका रोना व्यर्थ नहीं हुआ। भारत और इङ्गलैण्डके बीचमें होनेवाले व्यापारमें कम्पनीके सञ्चालकोंने हिन्दुस्तानी जहाज़ोंको काममें लानेका विरोध किया। श्री डिग्बी कहते हैं कि इसके लिये उन्होंने एक दलील पेश की जिसकी कुछ बातें आजकल अजीब सी जान पड़ेंगी जबकि पूरब आने-जानेवाले जहाज़ोंमें लाखों हिन्दुस्तानी काम कर रहे हैं। कोर्टने भारतमें जहाज़ बनाने तथा जहाज़में काम करनेवालोंके विरुद्ध कारण बतलाते हुए अपने २७ जनवरी, सन् १८०१ ई० के आज्ञापत्रमें लिखा था (सत्रहवाँ परिच्छेद) कि इन सब कारणोंके अतिरिक्त एक कारण भारतीय जहाज़ोंके विरुद्ध विशेष रूपसे कहा जा सकता है। वह कारण यह है कि जिन जहाज़ोंकी यात्रा भारतसे प्रारम्भ होगी उनमें स्वभावतः हिन्दुस्तानी नाविक ही काम करेंगे। भारतीय अपनी शारीरिक बनावटके कारण ठण्ढे देशोंमें जहाज़ चलानेमें असमर्थ हैं। उनकी प्रकृति एवं स्वभाव केवल गरम जलवायुके लिये उपयुक्त है। वे केवल गरम देशोंमें ही थोड़ी यात्रा कर सकते हैं। योरोप और भारतके मध्यमें विशेषकर हमारे उत्तरीय समुद्रोंमें जाड़ेके दिनोंमें जहाज़ोंको दिनरात ख़तरोंका सामना करना पड़ता है। उन ख़तरोंका सामना करनेमें, भारतीयोंमें मानसिक एवं शारीरिक शक्ति नहीं है, और न उनमें शत्रुओंका सामना करनेका साहस है। लेकिन इतनी ही बातें नहीं हैं। हिन्दुस्तानी जहाज़ोंको यहाँ पहुँचनेपर, ऐसी-ऐसी बातें देखनेको मिलती हैं जिनसे वह हम लोगोंको उस श्रद्धाके साथ नहीं देखते हैं जिस श्रद्धाके साथ वे हम लोगोंको भारतमें देखते थे। वे घर लौटकर हमलोगोंके विषयमें जो घृणास्पद बातें कहेंगे उनसे हमारी एशियावासी प्रजापर बिना बुरा प्रभाव पड़े नहीं रहेगा। हमारी वह सब शान किरकिरी हो जायगी जो पूरबमें बनी हुई है, और इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। अतएव शारीरिक, मानसिक व्यावसायिक एवं राजनीतिक दृष्टिसे विचार करनेपर हिन्दुस्तानियोंको हमारे जल-पथोंमें घुसने देनेसे जो बुरा परिणाम होगा वही उनके जहाज़ चलानेके विरुद्ध कारण हैं।" (परिशिष्ट संख्या ४७ चौथी रिपोर्टका शेषांश, ईस्ट इण्डिया कम्पनी, पृष्ठ २३, २४, श्रीयुत् डिग्बीद्वारा अपनी पुस्तक प्रौसपरस इण्डियामें पृष्ठ १०१ एवं १०३ पर उद्धृत)।

जो नाविक काठियावाड़के बन्दरगाहसे लेकर अदन एवं दक्षिण अफ्रीकाके किनारे मोका तथा मलाया अन्तरीपतक यात्रा करते थे, आजकलके नाविक उन्हींकी सन्तान हैं। आजकल जिस प्रकार मामूली अंग्रेज़ नाविक भारतके एक बड़े बन्दरगाहमें आकर इधर-उधरकी बातोंमें फँस जाता है, उसी प्रकार यह सम्भव है कि एक हिन्दुस्तानी नाविक भी लन्दनके बन्दरगाहमें जाकर फँस जाता हो। लेकिन यह बड़े खेदकी बात है कि इन मामूली बातोंके लिये भारतकी जो महान् हानि हुई है उसपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया। इस धारणासे जो आर्थिक एवं राजनीतिक हानि हुई है उसका अनुमान शब्दों द्वारा लगाना कठिन है। गत चालीस वर्षोंमें जिस प्रकार अन्य देशोंमें पोत व्यवसायकी उन्नति हुई है या उसका भारत एवं साम्राज्यके लिये सङ्कटके अवसरोंपर उपयोग हुआ है, उसी प्रकार अगर भारतीय पोत व्यवसायको उन्नत करनेका अवसर दिया जाता, या उसी प्रकार यदि भारतीय पोत व्यवसाय उन्नति करता तो भारतकी स्थिति कितनी उन्नत हो गई होती एवं इङ्गलैण्ड भी कितना और उन्नत हो गया होता।

अपनी पुस्तक "बृटिश भारतके आर्थिक इतिहास" मेँ श्री रमेशचन्द्रदत्तने यह दिखलाया है कि भारतके प्रति यह नीति पचास वर्षतक और उसके वादतक वनी रही; और साधारण सभाने खुले रूपसे इसका समर्थन किया एवं इस नीतिका पालन बड़े ज़ोरोँके साथ सन् १८३३ और उसके वादतक किया; और इससे अंग्रेज़ व्यवसायियोँके हितके लिये भारतके कई व्यवसाय नष्ट हो गए। श्री आरनोल्ड टौयनबीने भी यही मत प्रकट किया है कि विना रक्षाके बृटिश व्यवसायकी इतनी जल्दी उन्नति न होती। लेकिन इस पद्धतिसे प्रतिद्वन्द्वी व्यवसायोँका निरन्तर ह्रास होता गया एवं भारत तथा अन्य उपनिवेश हमारे बड़े-बड़े व्यवसायियोँके लिये वलिदान कर दिए गए (इङ्गलैण्डमेँ अठारहवीँ शताब्दीकी व्यावसायिक क्रान्ति—आरनोल्ड टौयनवी, पृष्ठ ५८)।

बृटिश व्यावसायिक क्रान्ति

अब हमेँ यह देखना चाहिए कि उसी समय इङ्गलैण्डमेँ क्या हुआ। कहा जाता है कि व्यावसायिक क्रान्ति, जिससे भारतीय व्यवसायोँपर वहुत प्रभाव पड़ा, इङ्गलैण्डमेँ सन् १७७० ई० मेँ प्रारम्भ हुआ था:—

श्रीयुत कनिङ्घमका कथन है कि, "सन् १७७० मेँ कोई भी काला देश ऐसा नहीँ था, जो कोयले तथा लोहेके व्यापारके संयोगसे नष्ट हुआ हो। उस समय कहीँ नहरेँ या रेलेँ न थीँ तथा असंख्य जन-संख्यासे युक्त कारख़ानेवाले नगर भी नहीँ थे। हमारे वर्त्तमान जीवनके सभी परिचित दृश्य और इसकी सबसे आवश्यक समस्याएँ गत सवा सौ वर्षोँके भीतर आई हैँ (श्रीयुत कनिङ्घमलिखित "अँग्रेज़ी व्यवसाय एवं व्यापारकी उन्नति" दूसरा भाग, पृष्ठ ६१३)।

अठारहवीँ शताब्दीके मध्यतक अंग्रेज़ी व्यवसाय वहुत गिरी हुई दशामेँ था। उस व्यवसायका तत्कालीन वर्णन जौन रिचर्ड ग्रीनने इस प्रकार किया है:—

"यद्यपि सम्राट् जौर्ज तृतीयके राज्याभिषेकके समय इङ्गलैण्ड पहले ही से व्यापारिक देशोँमेँ सर्वप्रथम रहा, परन्तु उसका घरेलू व्यावसायिक जीवन कृषि-प्रधान ही था। ऊनकी तिजारत नौरफ़ौक, यौर्कशायरके पच्छिमी राइडिङ्ग और दक्खन-पच्छिमके देशोँमेँ धीरे-धीरे स्थापित हुई थी और रूईके मालका व्यापार मेञ्चेस्टर तथा बोल्टनतक ही अभी सीमित था; और इतना साधारण रहा कि अठारहवीँ शताब्दीमेँ रूईका माल वर्ष भरमेँ कठिनतासे पचास हज़ार रुपयेका वाहर देशोँको जाता था। उसी प्रकार वेलफ़ास्ट तथा डण्डीके पट-सन और स्पीटेल फ़ील्ड्सके रेशमी कपड़ोँके व्यापारकी ऐसी ही अनुन्नत दशा थी। वनानेके तरीक़े भी ऐसे ख़राव और भद्दे थे जिनके कारण अधिक माल तैयार नहीँ हो सकता था……और यदि पैदावारके तरीक़े वहुत उत्तम भी होते तो वे निष्प्रयोजन ही सिद्ध होते, क्योँकि उनकी ढुलाई सरल और सस्ती न थी। उस समय अधिक पुरानी प्रमुख सड़केँ टूटी पड़ी थीँ। तत्कालीन नये व्यापारोँके स्थान प्रायः देहाती गलियोँके सन्निकट थे, जहाँ केवल घोड़ेकी सवारी हो सकती थी।………जब ब्रिण्डलेकी इञ्जिनीयरिङ्ग प्रतिभाने सन् १७६७ ई० मेँ मैञ्चेस्टर और लिवरपूलके वन्दरगाहको एक नहरके द्वारा मिलाया तो एक नये युगका आरम्भ हुआ। इस उद्योगकी सफलताके कारण जल-मार्गोँकी विशेष उन्नति हुई और ग्रेट बृटेनके चारोँ ओर जल-व्यापारके योग्य तीन हज़ार मील लम्बी नहरेँ वन गईं। उसी समय इङ्गलैण्डकी भूमिके नीचे दवे हुए कोयलेकी ओर भी विशेष ध्यान दिया जाने लगा। उसके पासही वर्त्तमान लोहेकी खानेँ भी लकड़ीके अभावके कारण व्यर्थ ही पड़ी थीँ, क्योँकि लकड़ी ही ऐसी ईंधन था जिसके द्वारा वे खानेँ सोधी जा सकती थीँ। अठारहवीँ शताब्दीके मध्यमेँ कोयलेद्वारा कोयलेके सोधनेका प्रचार हुआ। और फलतः लोहेके व्यापारमेँ सर्वाङ्ग उन्नति हो गई। लोहा वर्त्तमान सभ्य संसारके मुख्य प्रयोगकी वस्तु हो गया। और यह लोहेकी ही उन्नतिका फल है कि इङ्गलैण्ड आज योरोपके

व्यावसायिक शिखरपर पहुँच गया है। सन् १७६९ ई० में विलियम वैटके आविष्कारके द्वारा यह प्रकट हुआ कि कोयलेसे मशीन-शक्ति पैदा हो सकती है। अब उसने अपने इञ्जनको खिलौनेसे बदलकर एक अपूर्व अद्भुत तथा शक्तिशाली यन्त्र बना दिया……बारह वर्षोंमें तीन मुख्य-मुख्य क्रमिक आविष्कार हुए। सन् १७६४ ई० में हारग्रीव नामक जुलाहेने कातनेकी कलका, नाई आर्कराइटने सन् १७६८ ई० से कातनेकी मशीनका तथा सन् १७७६ ई० में जुलाहे क्रौम्प्टनने 'म्यूल' नामक कातनेकी मशीनका, तत्पश्चात् इञ्जनके करघेका जन्म हुआ। परन्तु इन आविष्कारोंसे भी फल नहीं हुआ होता, यदि भापके इञ्जनकी असीम शक्तिका नया आविष्कार न हुआ होता। इसी शक्तिके सञ्चय तथा इसके सुविधाजनक प्रयोगके द्वारा, बृटेन इस योग्य बन गया कि फ्रान्स तथा नैपोलियनके भयानक सङ्घर्षके दिनोंमें, मुख्यतः ऊन तथा रूईके व्यापारपर सर्वाधिकार प्राप्त कर लिया। तथा संसारमें सर्वश्रेष्ठ व्यावसायिक देश बन गया।" (ग्रीनके अंग्रेज़ जातिके सङ्क्षिप्त इतिहाससे (शौर्ट हिस्टरी औफ़ इङ्गलिश पीपिल, पृष्ठ ७९१-९२)

परन्तु जैसा कि श्रीयुत कनिङ्घमने दिखलाया है:—"अन्वेषण तथा आविष्कार प्रायः आकस्मिक ही प्रतीत होते हैं; मनुष्य यही समझते हैं कि इन यन्त्रोंका आविष्कार अठारहवीं शताब्दीमें किसी मुख्य तथा अनिर्वचनीय अन्वेषणकारी बुद्धिद्वारा अचानक हो गया। परन्तु मैं उनकी योग्यताकी अप्रशंसा नहीं करता, यदि मैं यह कहूँ कि आर्क राइट तथा वैट भाग्यशाली थे कि उनके लिये उचित अवसर मिल गया था। विलियम ली तथा डोडो डडलेके समयके पश्चात् अनेक प्रतिभाशाली अन्वेषकोंका जन्म हुआ, परन्तु उनके समयकी परिस्थिति उनकी सफलताके प्रतिकूल थी। बहु-व्यय-साध्य यन्त्रों तथा उनके साधनोंके प्रयोगमें अधिक धन व्यय होता है। अतएव जबतक कोई मनुष्य बहुत धनी न हो तथा वस्तुओंकी खपतके लिये पर्य्याप्त बाज़ार नहीं पा लेता, तबतक उसका इन साधनोंद्वारा वस्तु-निर्माण करना निष्फल ही सिद्ध होगा। अठारहवीं शताब्दीमें इन विषयोंपर विशेष विचार किया जाने लगा। इङ्गलैण्डके बैङ्क तथा बैङ्कोंके स्थापनसे पूँजीकी अधिक वृद्धि हुई। अतएव बहु-व्यय-साध्य उन्नतिको कार्य्यरूपमें लानेके लिये एक योग्य व्यक्तिके लिये प्रचुर साधन उत्पन्न हो गए।

सरकारकी ज़मानतपर प्रजासे ऋण लेनेके लिये सन् १६९४ ई० में इङ्गलैण्डके बैङ्ककी स्थापना हुई और उसका सम्बन्ध सरकारी कोषसे होनेके कारण प्रजाकी रक़म डूबनेका कुछ भी सन्देह नहीं था।

"परन्तु इस बैङ्कके स्थापन-कालके साठ वर्ष बादतक इसका सबसे छोटा नोट बीस पौण्डका था, जिसका प्रयोग स्वतन्त्र तथा सुचारु रूपसे नहीं हो सकता था, और यही कारण था कि वह लैम्बर्ड स्ट्रीटसे बाहरतक न जा सका। सन् १७५० ई० में लिखते हुए श्री बर्क कहते हैं कि जब वे सन् १७५० ई० में इङ्गलैण्ड आए तो सब प्रान्तोंमें मिलाकर बैङ्ककी बारह शाखाएँ भी नहीं थीं। किन्तु सन् १९९० ई० में वे कहते हैं कि अब उनकी स्थापना प्रत्येक नगरमें हो गई है। इस प्रकार बङ्गालकी चाँदीने उनकी पूँजीका ही विस्तार नहीं, बल्कि बैङ्कके प्रचारको भी विस्तार दिया, क्योंकि बैङ्कने शीघ्र ही सन् १७५९ ई० में दस पौण्ड तथा पन्द्रह पौण्ड वाले नोटोंका प्रचार किया, और निजी महाजनी कोठियोंमें भी हुण्डियोंकी चलन हो गई।" (ब्रुक्स ऐडम्सद्वारा लिखित "दि लौ औफ़ सिविलिज़ेशन ऐण्ड डिके" पृष्ठ २६३-२६४; जिसको श्री डिग्बीने अपनी पुस्तकके तैंतीसवें पृष्ठपर उद्धृत किया है)

"सन् १७५६ ई० में क्लाइव भारतमें आया तो इङ्गलैण्डपर ७४५७५००० पौण्ड ऋण था और उसका सूद २७५३००० पौण्ड वार्षिक देना पड़ता था। (यथापूर्व, पृष्ठ ३३)..........."भारतीय कोषके आनेसे वहाँकी नक़द रोकड़की वृद्धिमें ही सहायता नहीं हुई बल्कि उसके विस्तारमें भी बड़ी सहायता

मिली।" (यथापूर्व, पृष्ठ ३१)……प्लासीके युद्धके पश्चात् ही बङ्गालकी लूटका धन लन्दनमें आने लगा, और उसका तात्कालिक प्रभाव भी हुआ क्योंकि अधिकारियोंका कहना है कि जिस "व्यावसायिक 'क्रान्ति" ने उन्नीसवीं शताब्दीको पिछली शताब्दीसे अलग कर दिया था, वह वास्तवमें सन् १७६० ई० से ही प्रारम्भ हुआ।" बेयन्सके मतानुसार सन् १७६० ई० के पूर्व लङ्काशायरमें रूई बुननेकी जो कलें प्रयोगमें लाई जाती थीं, वे भारतवर्षकी कलोंके समान ही साधारण ढङ्ग की थीं। जब कि सन् १७५० ई० के लगभग, जङ्गलोंके विनाशके कारण, ईंधनके अभावसे, बृटिश लोहेका व्यवसाय भी अत्यन्त गिरी दशामें था, उस समय साम्राज्यमें प्रयुक्त लोहेका ४/५ भाग स्वीडनसे आता था।"

"प्लासीका युद्ध सन् १७५७ ई० में हुआ था। उसके पश्चात् व्यंवसायकी वृद्धि जिस तेज़ीसे हुई, वह अपूर्व थी। सन् १७६० ई० में (फ़्लाइङ्ग शटिल) का प्रयोग हुआ, और लोहे की शोधमें, लकड़ीके स्थानपर कोयलेका प्रयोग होने लगा। सन् १७६४ ई० में हारग्रीव्ज़ने बुननेकी कल खोज निकाली। सन् १७७६ ई० में क्रौम्प्टनने 'म्यूल' नामक यन्त्रका, तथा सन् १७८५ ई० में आर्कराइटने भापचालित करघा पेटेण्ट कराया, और सबसे मुख्य सन् १७६८ ई० में वौट ने भापके इञ्जनको और भी उन्नत किया जो उस समयके शक्तिप्रयोगकी सर्वोत्कृष्ट घटना है। यद्यपि ये मशीनें, तत्कालीन व्यावसायिक्ष प्रयोगोंमें शीघ्रता लानेके नये साधन थे, परन्तु वास्तवमें इनके प्रयोगमें शीघ्रता न हो सकी। प्रायः आविष्कार स्वयं वेगहीन होते हैं। उनमेंसे अधिकांश तो शताब्दियोंतक योंही पड़े रहे जबतक कि उन्हें कार्य्यरूपमें लानेके लिये प्रचुर कोष रूपी शक्तिका सञ्चय न हो गया। वह कोष द्रव्यके रूपमें होना चाहिए, जो एकत्र न रक्खा हो, बल्कि जो चालू हो।" (ब्रुक्स ऐडम्सकी 'दि लौ ऑफ़ सिविलिज़ेशन ऐण्ड डिके', पृष्ठ २५६, २६०).

यह धन भारतवर्षसे आया। श्रीयुत डिग्बी अपने "प्रौस्परस बृटिश इण्डिया" में कहते हैं कि—

"इङ्गलैण्डकी व्यावसायिक उत्कृष्टताके प्रारम्भका सम्पूर्ण श्रेय बङ्गाल तथा कर्नाटकके सञ्चित धनको है, जिसका इङ्गलैण्डके लिये प्रयोग किया गया। प्लासीके युद्ध तथा विजयसे पहले तथा भारतीय धनके इङ्गलैण्ड जानेसे पहले हमारे देशके व्यवसाय अत्यन्त अवनत दशामें थे। यन्त्रोंकी दृष्टिसे लङ्काशायरकी कपड़ेकी बुनाई तथा सूतकी कताई वैसी ही थी जैसी भारतमें, परन्तु पश्चिमीय देशोंमें वह कला नहीं थी, जिसने तत्कालीन भारतीय कपड़ेके व्यापारको प्रसिद्ध बना दिया था। जैसी रूईकी अवस्था थी वैसी ही लोहेकी भी; बृटिश व्यवसाय खनिज पदार्थों तथा कारीगरीमें भी अत्यन्त हीन दशामें था"।

यद्यपि इञ्जनका करघा सन् १७८४ ई० में ही बन चुका था, परन्तु उसके द्वारा बुनाईमें तबतक सफलता न हो सकी जबतक सन् १८०३ ई० में ड्रेसिङ्ग फ्रेमका आविष्कार नहीं हो गया। सन् १८०१ ई० तक इङ्गलैण्डसे भारतमें भेजी हुइ रूईकी वस्तुओंका दाम केवल इक्कीस हज़ार पौण्ड था; सन् १८१३ ई० तक वह एक लाख आठ हज़ार आठ सौ चौबीस पौण्ड तक बढ़ गया। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनीको नया अधिकारपत्र (चार्टर) उसी वर्ष मिला तो उससे भारतके साथ व्यापार करनेका एकाधिपत्य छीन लिया गया और बृटिश व्यापारियोंको इस विस्तृत साम्राज्यमें व्यापार करनेके नये मार्ग मिल गए। इसके बाद भारतमें बृटिश रूईके कपड़ेके व्यापारमें जो असीम वृद्धि हुई वह अवर्णनीय है। उक्त शताब्दीके अन्ततक उनके लिये भारत ही केवल एकमात्र बड़ा बाज़ार रह गया, क्योंकि यहाँ विलायती वस्तुओंकी माँग लगभग दो करोड़ पौण्डतक पहुँच चुकी थी। महासमरसे पहले सालमें यह चार करोड़ पैंतालीस लाख अस्सी हज़ार पौण्डतक बढ़ चुकी थी।

कच्चे मालके निर्यातका प्रभाव

भारतके कृषि-प्रधान बने रहनेका दूसरा प्रभावशाली

कारण बृटिश सरकारकी वह नीति है, जो भारतसे कच्चे पदार्थोंके निर्य्यातको उत्साहित करती है। हमारी रिपोर्टके पाँचवे भागमें इन निर्य्यातोंके प्रभाव तथा रेल और जहाज़ोंके आनेके विषयोंकी पूर्ण व्याख्या की जा चुकी है। परन्तु मुझे यह प्रतीत होता है कि उनके परिणाम भली प्रकार जाननेके लिये इस विषयपर और भी अधिक प्रकाश डालनेकी आवश्यकता है।

अठारहवीं शताब्दीमें इङ्गलैण्डके उपनिवेशोंको "नव-वाटिका" समझा जाता था, जहाँ इङ्गलैण्डके लिये कच्चा माल पैदा किया जाता था, और फिर इङ्गलैण्डसे तैयार माल बनाकर उपनिवेशों तथा संसारके अन्य देशोंमें भेजा जाता था। अमेरिकाके स्वातन्त्र्य युद्धके पश्चात् इन उपनिवेशोंको अपने भाग्यपर आश्रित होना पड़ा, और वे अपनी रक्षा-नीति-द्वारा अपनी वस्तु-निर्माण-सम्बन्धी शक्तिकी वृद्धि इङ्गलैण्डके विरुद्ध भी करने लगे। श्रीयुत रानाडेके स्पष्ट शब्दोंमें:—

"उसके उपरान्त इङ्गलैण्डके सबसे बड़े अधीन देश भारतको उपनिवेशोंका स्थान ग्रहण करना पड़ा है। इस अधीन देशको "नव-वाटिका" समझा जाता है, जहाँ कच्चा माल पैदा करके बृटिश जहाज़ोंमें भरकर बृटिश व्यापारियोंद्वारा इङ्गलैण्डमें भेज दिया जाता है। यह माल बृटिश कला तथा पूँजीद्वारा तैयार मालके रूपमें बृटिश व्यापारियोंद्वारा भारतके बृटिश कारख़ानोंमें तथा अन्य देशोंमें फिर भेज दिया जाता है।" (ऐस्सेज़, पृष्ठ ६६)।

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रूईके व्यापारसे मिलता है। सन् १७८८ ई० से ही, ईस्ट इण्डिया कम्पनीके सञ्चालकोंकी समितिने भारतमें कपासकी कृषिकी वृद्धिपर विशेष ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया तथा उसके लिये पर्य्याप्त धन भी व्यय किया। सन् १८५८ ई० से भारत-सरकार, बृटिश मिल-मालिकोंके आदेशानुसार समय-समयपर भारत-उत्पादित कपासके गुणोंमें वृद्धिके लिये उन्नतिशील साधनोंका भी अवलम्बन किया है। इसका अन्तिम प्रमाण हमें गत वर्षकी भारतीय कपास-समितिकी नियुक्तिसे मिलता है। मेरा यह कहना नहीं है कि ऐसा क्यों किया गया? बल्कि मेरा यह अभिप्राय है कि इस विषयकी ओर आवश्यक ध्यान नहीं दिया गया है, मेरी इच्छा है कि भारतमें इसकी खेती हो सकती है; तथा अधिक परिमाणमें बढ़िया कपासके उत्पादनके लिये इसको सहायता मिलनी चाहिए, जिससे यह इङ्गलैण्डकी और अपनी आवश्यकता पूरी कर सके। परन्तु इसके विरुद्ध मुझे यही कहना है कि आजतक भारत-सरकारने इस विषयमें जिस नीतिका अवलम्बन किया है वह कच्चे मालके निर्य्यातमें वृद्धि करनेके लिये ही रही। उनकी यह नीति कभी भी नहीं रही कि हमारे कच्चे मालको यहीं तैयार करानेमें उत्साहित किया जाय। स्वतन्त्र व्यापार, एकाधिपत्यके सिद्धान्त, बृटिश स्वार्थकी रक्षाका विशेष ध्यान तथा बृटिश व्यापारमें परस्पर प्रतियोगिताका भय, इन चारों कारणोंसे प्रेरित होकर उसे अपनी उपर्युक्त नीतिका अवलम्बन करना पड़ा।

रेलवे तथा व्यापार

भारतवर्षमें रेलवे-निर्माणकी योजना सबसे पहले लार्ड हार्डिञ्जद्वारा सोची गई। सन् १८४८ ई० में उन्होंने एक याददाश्त लिख छोड़ी थी, और उनके उत्तराधिकारी लौर्ड डलहौज़ीने इस विषयको अपने हाथमें लिया। सन् १८५३ ई० में लौर्ड डलहौज़ीने अपना विशाल रेलवे-विषयक लेख लिखा, तथा रेलवे-निर्माणकी ओर उनका प्रथम झुकाव हुआ। भारतवर्ष उनके इस निर्माणके लिये तथा तारके प्रचारके लिये भी ऋणी रहेगा। उसके प्रसिद्ध जीवनी-लेखक सर विलियम हण्टरका कहना है कि:—

"यह लौर्ड डलहौज़ीका बड़ा उत्कृष्ट विचार था। इस रेलवेकी वृद्धिसे उन्होंने केवल नवविजित प्रान्तोंको ही सङ्घटित तथा साम्राज्यके प्रत्येक स्थानमें अपनी सैन्य-शक्तिको सुदृढ़ नहीं किया, बल्कि उन्होंने रेलवे-

निर्माणसे बृटिश पूँजी तथा उद्योगको इस श्रेणीतक भारतमेँ ला दिया कि जिसकी कल्पना भारतके पहले गवर्नर जनरल अपने विचारमेँ भी नहीँ ला सके थे।"

सर विलियम हण्टर फिर आगे कहते हैँ कि, "इन सब प्रबन्धोँमेँ लौर्ड डलहौज़ी आरम्भ ही से अपने रेल-मार्गोँके बारेमेँ व्यापारिक दृष्टिसे ध्यान देते थे।" अपने रेलवे-सम्बन्धी विद्वत्तापूर्ण लेखमेँ उन्होँने लिखा था कि, "इन रेलोँके निर्माणसे भारतवर्षका जो व्यापारिक तथा सामाजिक लाभ होगा, वह मेरे विचारसे अतुलनीय है। अधिकांश ज़मीनमेँ पैदावार इतनी अधिक होती है जिसकी कहीँ खपत नहीँ; अन्य स्थानोँपर, जहाँ इस समय उपज कम होती है, वहाँ इसमेँ अत्यधिक वृद्धि हो सकती, यदि केवल उनको आवश्यक स्थानोँमेँ पहुँचानेकी कोई सुविधा हो जाय। इङ्गलैण्डमेँ भारतीय कपासकी माँग अधिक बढ़ रही है; अतएव यदि उपजके स्थानोँसे, बन्दरगाहोँतक ले जानेका कोई सुविधाजनक साधन प्राप्त हो जाय तो भारतमेँ उत्तम श्रेणीकी कपासकी खेती प्रचुर मात्रामेँ हो सकती है। जैसा कि हम लोग देखते हैँ व्यापारिक सुविधाओँकी वृद्धि करनेके साथ भारतके दूर-दूर स्थानोँमेँ बृटिश वस्तुओँकी माँग अधिक बढ़ गई है। तथा हमेँ अभी यह जानना है कि प्रतिवर्ष शीघ्रतासे बढ़ते हुए व्यापार-विनिमयको दूर-दूरतक फैलानेके लिये हम क्या कर सकते हैँ। जो पैदावार हमने देशके भीतरी भागोँसे एकत्र की है या सञ्चय कर सकते थे, उसकी माँगके लिये, संसारके प्रत्येक देशसे, हमारे बन्दरगाहोँमेँ जहाज़ोँका ताँता लगा रहता है, परन्तु कठिनाई यह है कि देशके भीतरी भागोँसे उसके लानेका कोई सस्ता साधन नहीँ है। एवं गोलार्द्धके इस भागमेँ इस समय हम लोगोँके लिये एक ऐसे नये विशाल क्षेत्रका जन्म हो रहा है, जिसके आगामी विस्तार तथा लाभका अनुमान परम बुद्धिमान् भी वर्त्तमान परिस्थितिमेँ नहीँ लगा सकता।"

"लौर्ड डलहौज़ीने भारतके व्यापारपर पूर्ववर्त्ती रुकावटोँ व अड़चनोँको हटाकर रेलवेकी व्यापारिक उन्नतिके लिये हर प्रकारकी स्वतन्त्रता दे दी। सर ऐडविन आर्नोल्ड इसका सारांश सङ्क्षेपमेँ यह देते हैँ कि, "भारतके सभी व्यापारिक नगरोँको स्वतन्त्रता दे दी गई"।

"भारतीय व्यापारको लौर्ड डालहौज़ीने इस प्रकार जो अपूर्व प्रोत्साहन दिया उसका अनुमान निम्नाङ्कित अङ्कोँद्वारा किया जा सकता है। उनके आठ वर्षके शासनमेँ उठी हुई रूईका निर्य्यात दुगुनेसे भी अधिक अर्थात् पन्द्रह लाख पौण्डसे बढ़कर तैँतीस लाख पौण्ड तककी क़ीमत की गई। अनाजके निर्य्यातमेँ तिगुनेसे भी अधिक वृद्धि हुई, (सन् १८४८ ई० मेँ आठ लाख नव्वे हज़ार पौण्डसे सन् १८५६ ई० तक उन्तीस लाख पौण्ड हो गई ....व्यापारिक वस्तुएँ, सब निर्य्यात मिलाकर सन् १८४८ ई० मेँ एक सौ पैँतीस लाख पौण्डसे बढ़कर सन् १८५६ ई० मेँ दो सौ तीस लाखसे भी अधिक हो गई"।

"जैसा कि इन अङ्कोँसे ज्ञात होता है, उत्पादनशील व्यवसायकी इस अपरिमित बढ़तीके कारण भारतीय जनताने अंग्रेज़ी वस्तुओँको अनगिनत परिमाणमेँ ख़रीदा जैसा इसके पहले कभी न ख़रीदा था। भारतमेँ सूती वस्तुओँ तथा सूतका आयात सन् १८४८ ई० मेँ तीस लाख पौण्डसे सन् १८५६ ई० मेँ तिरसठ लाख पौण्डतक बढ़ गया। तथा सब मिलाकर व्यापारिक वस्तुओँ तथा बहुमूल्य पदार्थोँका आयात आठ वर्षोँमेँ एक सौ पाँच लाखसे बढ़कर दो सौ तिरपन लाख हो गया।

सर विलियम हण्टरकी 'भारतके शासक' ग्रन्थमालाकी 'डलहौज़ी' नामक पुस्तकके पृष्ठ १६१, १६३-६६, रेलवेप्रदत्त भारतको होनेवाले लाभोँसे मैँ पूर्णतया परिचित हूँ। मैँ ने सर विलियम हण्टरके लेखका उद्धरण यह दर्शानेके लिये किया है कि भारतीय व्यवसायोँपर उनका क्या प्रभाव पड़ा। जैसा कि लार्ड डलहौज़ीके विवरणसे मालूम होता है, उनके बननेका एक प्रधान

कारण भारतके साथ सम्पर्क स्थापित करके इङ्गलैण्डके व्यवसाय और व्यापारकी उन्नति करना था। परन्तु मुझे दुःख होता है कि सरकारकी यही नीति भारतीय व्यवसायोँकी उन्नतिके लिये नहीँ रही ; क्योँकि उस समय इङ्गलैण्डके साथ-साथ भारतकी भी उन्नति हुई होती। उससे बढ़कर दुःखकी बात यह है कि जब उन्होँने भारतमेँ रेलवेके विस्तारका विचार किया, उसके साथ-साथ लोहे तथा इस्पातके व्यवसायकी वृद्धिकी ओर तनिक भी ध्यान नहीँ दिया। क्योँकि, यदि उन्होँने ऐसा किया होता तो रेलवेका अत्यन्त शीघ्र विस्तार हुआ होता, क्योँकि भारतमेँ उनका बहुत कम ख़र्च पड़ता। सरकारी प्रमाणोँसे सिद्ध होता है कि किराए और लादने-उतारनेके ख़र्चके विचारसे लोहेका दाम पचास प्रति सैकड़ा बढ़ गया था। अतएव देशको उस समय विशेष लाभ हुआ होता। यह नीति बर्त्तनेके लिये बहुत दिनोँसे अंग्रेज़ोँ तथा भारतीयोँने सरकारसे बार-बार प्रार्थना की। श्रीयुत रानाडेने सन् १८९३ ई० मेँ व्यावसायिक सम्मेलन (इण्डस्ट्रियल कौन्फ़रेन्स) के सम्मुख पूनेमेँ अपने पढ़े हुए निबन्धमेँ कहा है कि—

“बहुत दिन हुए, तोपख़ाना-विभागके कप्तान टाउनसैण्डने “भारतके खनिज पदार्थ-विषयक अपने ग्रन्थमेँ लिखा है कि भारतीय अर्थ-शास्त्रके पढ़नेवाले किसी भी नये व्यक्तिको सबसे बढ़कर यह बात खटकेगी कि यहाँ लोहेकी इतनी प्रचुरता होते हुए भी देश दरिद्र है। संसारके प्रायः सभी देशोँसे बढ़कर कच्चे लोहेका उत्पादक होते हुए भी भारतमेँ व्यापारी दृष्टिसे एक भी लोहेका व्यवसाय नहीँ होता।”

(ऐस्सेज़, पृष्ठ १५८-१५९)

“भूगर्भ-विषयक खोजके डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री बैल महोदय अपनी पुस्तक ‘इकौनौमिक जिऑलौजी’ मेँ लिखते हैँ कि यदि सरकारने रेलवे विस्तारके साथही लोहेका विशेष उत्पादन भी प्रारम्भ किया होता तो उसे अधिक परिमाणमेँ लाभ हुआ होता। यदि सरकारको रेलवे-निर्माणका कार्य्य करना ही था, तो सरकारको उचित था कि उसे अफ़ीम तथा नमकके व्यवसायसे कहीँ बढ़कर लोहेके व्यवसायकी उन्नतिपर ध्यान दिया होता। यदि सरकारने सम्पूर्ण भारतवर्ष भरमेँ उस समय अत्यधिक परिमाणमेँ लोहेके व्यावसायिक केन्द्र स्थापित किए होते तो श्रीयुत बैलके मतानुसार सरकार अधिक परिमाणमेँ अपना धन देशमेँ प्रचलन कर सकती, तथा उन बहुसंख्यक लोगोँको उसमेँ काम दे सकती थी जिनके पास एकमात्र काम खेती करना ही रह गया है। परन्तु इस स्वर्ण सुअवसरपर सरकारने ध्यान नहीँ दिया, और हम लोग ऐसी विकट स्थितिमेँ पड़ गए हैँ कि बृटिश राज्यके डेढ़ सौ वर्षोँके बाद भी भारतीय लोहेका भाण्डार उसी प्रकार गिरी हालतमेँ पड़ा है, और देशको अपनी आवश्यकताके लिये प्रतिवर्ष दस करोड़ रुपयेका लोहा बाहरसे मँगाना पड़ता है और पुराने देशी लौह-शोधकोँसे उनका यह उद्यम छीन लिया गया।”

(ऐस्सेज़, पृष्ठ १६४-१६५)

प्रसिद्ध ‘ताता आयरन ऐण्ड स्टील वर्क्स’ की सफलता यह सिद्ध करती है कि ऐसा ही करना उचित था। इस योजनाकी सफलतासे सरकारने जो सहायता की है उसके लिये भारतीय उनके कृतज्ञ हैँ। सबसे बढ़कर सन्तोषजनक बात यह है कि इस बड़े कारख़ानेने महायुद्धके समय मेसोपोटामिया तथा मिश्रमेँ प्रयोगके लिये रेलोँ तथा गोलेके खोल बनानेके योग्य लोहा देकर सरकारकी अपूर्व सेवा की है। परन्तु, यदि सरकारने रेलवे बनानेके समयसे अथवा उसके पश्चात् भी, इस व्यवसायकी उन्नतिकी ओर भी ध्यान दिया होता तो यह व्यवसाय देशमेँ बहुत पहले ही चमक उठा होता, और देशका सारा व्यावसायिक वातावरण ही बदलकर उन्नत हो गया होता। ऐसा इसलिये नहीँ किया गया कि भारतके अभाग्यसे उस समय सरकारकी नीति भारतीय व्यवसायोँकी उन्नति करनी नहीँ थी।

इस बातपर मैंने कुछ प्रकाश इसलिये डाला है कि अपने बृटिश बन्धुओंको यह बता दूँ कि इङ्गलैण्ड अपनी "व्यावसायिक श्रेष्ठता" तथा समृद्धिके लिये भारतका कितना अधिक ऋणी है; तथा अपनी पुरानी नीतिके कारण उसने भारतको कितनी गहरी आर्थिक हानि पहुँचाई है कि जिससे वे सरकारसे भविष्यमें भारतके प्रति और भी अधिक उदार नीति वर्त्तनेका आग्रह तथा अनुरोध कर सकें। मैंने ऐसा इसलिये भी किया है कि उनका यह भ्रम दूर हो जाय कि हमारे देशी कारबारोंकी अवनतिका दोष हम भारतीयों ही पर है, या नये ढङ्गकी व्यावसायिक कुशलताका उनमें स्वभावतः अभाव है, और व्यावसायिक उद्योगकी सफलताके लिये योरोपवासी, एशियावासियोंसे योग्यतामें स्वभावतः बढ़कर हैं। मैंने यह भी दिखलाया है कि अठारहवीं शताब्दीतक इङ्गलैण्ड भी एक कृषि-प्रधान देश था, और हज़ारों बरस पहलेसे लेकर पिछली शताब्दीके प्रारम्भतक व्यवसाय तथा कृषिकी उन्नतिमें भारत सर्वश्रेष्ठ रह चुका है। इस शताब्दीमें भी इसके मुख्यतः खेतिहर देश बननेका प्रधान कारण हमारी बृटिश सरकारका इसके प्रति उपेक्षाका व्यवहार ही है, न कि यहाँके निवासियोंमें किसी प्रकारकी व्यावसायिक योग्यता तथा उद्योगका अभाव।

इसका फल—दुर्भिक्षकी अधिकता

भारतीय व्यावसायिक केन्द्रोंकी अधोगति तथा बृटिश वस्तुओंके आयातकी वृद्धि और भारतसे कच्चे मालके निर्य्यातने क्रमशः भारतवर्षके प्रत्येक भागकी व्यापारशील जातियोंको निर्धन बना दिया। फल यह हुआ कि बढ़ती हुई जनसंख्याको बाध्य होकर खेतीपर गुज़र करना पड़ा। सन् १८७८-७९ ई० की निर्य्यात-सारिणीके अनुसार सम्पूर्ण अट्ठावन करोड़ पचहत्तर लाखके निर्य्यातमेंसे केवल साढ़े छः प्रति सैकड़ा देश-निर्मित तैयार माल था और साढ़े तिरानबे प्रति सैकड़ा कच्चा माल था। सन् १८८० ई० में तैयार मालके आयातका कुल दाम पाँच करोड़ तेरह लाख सत्तानबे हज़ार पाँच सौ एकसठ पौण्ड था। इन दोनों कारणोंके साथ होनेसे देशकी आर्थिक दशा इतनी हीन हो गई कि दुर्भिक्षोंके बार-बार आक्रमणसे इसका दुःख और भी दुगुना बढ़ता चला गया। सर होरेस प्लङ्केट्ने, जिनके हम लोगोंमें सम्मिलित होनेकी असमर्थताके लिये हमें बहुत दुःख है, सन् १८९६ई०की रिसेस कमेटीकी अपनी प्रसिद्ध रिपोर्टमें दिखलाया है कि आयर्लैण्डमें भी यही सब कारण उपस्थित हो गए थे और उनका भी यही फल हुआ। जिन क़ानूनोंने आयर्लैण्डके व्यवसायोंको ही नहीं बल्कि कृषिको भी घात पहुँचाया उनपर वे कहते हैं कि, "इनके कारण सारी प्रजा कृषिपर ही निर्भर रहनेके लिये बाध्य हुई तथा देशकी आर्थिक दशा इतनी गिर गई कि नियमित रूपसे दुर्भिक्ष पड़ने लगे।"

भारतवर्षमें सन् १८०० ई० से १८२५ तक पाँच अकाल पड़े, १८२५ से १८५० तक दो, १८५१ से १८७५ तक छः तथा सन् १६७६ से १९०० तक अठारह। डिग्बी महोदयके मतसे सरकारी आँकड़ोंके अनुसार सन् १८५४ ई० से १९०१ तक दुर्भिक्षसे कुल मृत्युसंख्या दो करोड़ अट्ठासी लाख पच्चीस हज़ार थी। सन् १९०१ ई० में लिखते हुए डिग्बी महोदय कहते हैं कि:—

"मोटे हिसाबसे उन्नीसवीं शताब्दीके गत तीस वर्षोंमें अकाल तथा दुर्भिक्षोंकी संख्या तथा विस्तारमें पहले सौ वर्षोंकी अपेक्षा चौगुनी हो गई।"

मैं अपने साथियोंके इस विचारसे सहमत हूँ कि रेलवेद्वारा भारतके अनेक लाभोंके अतिरिक्त, मुख्य लाभ यह रहा है कि अकालके भयङ्कर प्रभावको कम करनेमें इनसे बहुत सहायता मिली है। जिन स्थानोंपर अकाल पड़ा हो, वहाँ अब बहुत शीघ्रतासे अन्न भेजा जा सकता है, तथा अन्नाभावके कारण होनेवाली मृत्युको रोका जा सकता है। सन् १९०० ई० से, जबसे सर एण्टोनी (अब लार्ड) मैकडौनेलके सभापतित्वमें द्वितीय अकाल-कमीशनने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की

थी, तबसे अकाल-निवारण सहायता तथा अकाल-प्रबन्धकी समस्यामेँ सन्तोषजनक प्रबन्ध हो गया है और एक प्रशंसनीय अकाल-व्यवस्था बना दी गई है।

"सहायता देनेके साधनोँके बारेमेँ तो कुछ किया भी गया है, किन्तु रोकनेके बारेमेँ बहुत धीमे हाथ चलाया गया है।" मुझे इस बातका अत्यन्त खेद है कि जिन उपायोँको हम लोग आज सुझा रहे हैँ वे चालीस वर्ष पहले भी सरकारको सुझाए जा चुके थे।

सन् १८७७-७८ ई० के भयङ्कर अकालके पश्चात् सरकारने बड़ी कृपा करके एक भारतीय अकाल-कमीशनकी नियुक्ति की थी, जो इस बातकी जाँच करे कि सरकार अपने कर्त्तव्योँसे कहाँतक अकालकी भयङ्करताको कम कर सकती है, अथवा मनुष्योँको ऐसी सहायता दे सकती है कि वे उसे सहन कर सकेँ? अपनी रिपोर्टमेँ कमीशनने कहा है कि—

"भारतीय अकालके भयङ्कर परिणामोँका मुख्य कारण तथा उचित समयपर सहायता दे सकनेमेँ सबसे बड़ी बाधा यह है कि जनसंख्याका अधिकांश भाग, स्पष्टतः कृषिपर ही आश्रित है, तथा अन्य कोई भी ऐसा व्यवसाय नहीँ है जिसके द्वारा जनता अपनी जीविका उपार्जन कर सके। अतएव अनावृष्टिसे सारे परिश्रमी वर्गकी यह दशा हो जाती है कि अपनी साधारण पूँजीसे वे जीवनकी आवश्यक सामग्रियोँको भी मँहगी होनेके कारण नहीँ ख़रीद सकते। साथ ही बेकारीके कारण उनके जीविकोपार्जनके द्वार भी बन्द हो जाते हैँ। इन सभी कठिन समस्याओँके सुलझानेका एकमात्र उपाय यही है कि खेतीके अतिरिक्त उन अन्य व्यवसायोँकी उन्नति की जाय जिनपर ऋतुओँके परिवर्त्तनका कुछ भी प्रभाव न पड़ता हो।"

"जनतामेँ विभिन्न प्रकारके उद्योगोँके प्रोत्साहन" के लिये कमीशनने जो मुख्य सिफ़ारिशेँ की हैँ वे इतनी अमूल्य तथा हम लोगोँके विचारोँसे मिलती-जुलती हैँ कि मैँ उनका उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ। उन्होँने कहा है:—

"अन्य स्थानपर हम लोगोँने अपना विचार प्रकट किया है कि भारतीय जनताकी घोर दरिद्रता तथा अकालकी विपत्ति, दोनोँका कारण यह है कि अधिकांश जनसंख्याकी जीविका केवल खेतीसे चलती है, और तबतक इन विपत्तियोँसे छुटकारा पानेका उपाय नहीँ हो सकता, जबतक कि भिन्न-भिन्न प्रकारके उद्योग-धन्धोँका प्रचार नहीँ किया जायगा, जिनके द्वारा अधिक जनसंख्या खेतीके अतिरिक्त अन्य व्यवसायोँ तथा उद्योगोँसे भी अपनी जीविका चला सकेँ।"

और भारतमेँ बृटिश पूँजी लगानेके मार्गमेँ पड़नेवाली बाधाओँका वर्णन करनेके बाद तात्कालिक सरकारी सहायता न दे सकने के कारणोँको बतानेके पश्चात् वे कहते हैँ कि—

"६. तथापि, ऐसे उपाय हैँ कि जिनके द्वारा सरकार निस्सन्देह नवीन व्यवसायोँका प्रचार कर सकती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण सरकारका चाय-व्यवसाय प्रारम्भ कराना है और इसकी सफलता सिद्ध करती है कि इस प्रकारके अन्य उपाय भी सफल सिद्ध हो सकते हैँ। चायके लिये सरकारने पौधे लगाने प्रारम्भ किए, चीनसे कारीगरोँको बुलाया, बीज बँटवाए और इस व्यवसायको इतना उन्नत कर दिया कि इसमेँ सफलता निश्चित हो गई है। इसके बाद सरकारने इस व्यवसायसे अपना हाथ खीँच लिया, खेत बैँच दिए और स्वतन्त्र पूँजीपतियोँके हाथमेँ इसका पूरा प्रबन्ध छोड़ दिया। सिनकोनाकी खेती भी इसी प्रकारका एक उपाय है, यद्यपि अभीतक यह स्वतन्त्र व्यवसायियोँके हाथमेँ पूरी तरह नहीँ आ पाया है।"

"७. खेतीकी उन्नतिके विषयमेँ हम लोगोँने दिखलाया है कि किस प्रकार हम लोग सोच रहे हैँ कि भारतमेँ भी विशेषज्ञोँकी सहायतासे विलायती वैज्ञानिक कृषिपद्धतियोँका व्यावहारिक प्रयोग प्रारम्भ किया जा सकता है। और हम समझते हैँ कि वही प्रणाली देशके खेतीके कामोँमेँ तथा कच्चे मालको बाज़ारके उपयुक्त सुन्दर रूप देनेमेँ सफलतापूर्वक

काममेँ लाई जा सकती है। इसमेँ कोई कारण नहीँ दिखाई देता है कि इस प्रकारके प्रयोग केवल खेतीकी पैदावारोँतक सीमित किया जाय और उनका भारतके शिल्पोँमेँ प्रयोग न किया जाय, जो भारतमेँ थोड़े परिमाणमेँ और भद्दे रूपमेँ बनते हैँ। इसमेँ वृद्धि होनेसे या तो उनकी बिक्री बढ़ जायगी या वे उन वस्तुओँका स्थान ले लेँगी जो अधिकतर अन्य देशोँसे यहाँ आती हैँ।

"८. जिन वस्तुओँ तथा कार्य्योँमेँ इनका प्रयोग हो सकता है उनमेँ चीनी (बनाना तथा साफ़ करना) चमड़ा, कपास, रेशम, (और उसका सूत बनाना) अन्य प्रकारके सूतकी तैयारी, तम्बाकू, काग़ज़, बर्त्तन, शीशा, साबुन, तेल तथा मोमबत्तियाँ, आदि उल्लेखनीय हैँ।

"९. इन सब शिल्पोँका प्रयोग सरकारी कारख़ानोँमेँ पहले ही से हो रहा है; जैसे कानपुरमेँ चमड़ेका काम जहाँ अधिकतर सेनाके लिये सामान तैयार किया जाता है, तथा कुछ बड़े-बड़े जेलोँमेँ दरीकी बुनाई होती है। ये कारख़ाने अनेक छोटे-छोटे उद्योगोँके केन्द्र बन सकते हैँ, जिनके आस-पास उन शिल्पोँकी विशेष उन्नति हो सकती है। ये शिल्प अपनी उन्नतिके प्रत्यक्ष प्रमाण है और यहाँपर देशवासियोँको उन्नत उपायोँद्वारा शिल्प-व्यवसाय करनेकी शिक्षा भी मिल सकती है, और जबतक इस प्रकारकी किसी मुख्य संस्थाका निर्माण नहीँ हो जाता जो सरकारकी ऐसी आवश्यकताएँ पूरी किया करे जो दूसरे उपायोँसे कभी पूरी नहीँ हो सकती, अथवा किसी मुख्य शिल्पकी उच्च शिक्षा न दी जाय, जिससे स्वतन्त्र व्यापारको भी शिक्षा मिल सके, तबतक उनका प्रयोग फलदायक नहीँ हो सकता। यही बात सरकारी कारख़ानोँके तथा रेलवे कम्पनियोँके विषयमेँ कही जा सकती है, जो उन विशेष कार्य्योँके लिये आवश्यक हैँ जिनके लिये वे स्थापित किए गए हैँ और जिनमेँ निरन्तर सुचतुर कारीगर तैयार किए जाते हैँ।

"१०. सरकार यदि चाहे तो उन मनुष्योँकी उपयुक्त तथा न्याययुक्त सहायता कर सकती है जो किसी नये देशी व्यवसायको आरम्भ करना चाहेँ अथवा किसी पुराने व्यवसायकी वृद्धि तथा उसका सुधार करना चाहेँ। वह सहायता इस रूपमेँ दी जा सकती है कि सरकार विदेशोँसे आवश्यक ज्ञान प्राप्त कराके तथा विशेषज्ञोँको बुलवाकर शिक्षा दिला सकती है, तथा इस प्रकारकी सहायताका प्रारम्भिक व्यय जनताके मत्थे डाल सकती है। इस प्रकार सरकार स्वयं अपने प्रयोगके लिये भारतके इन स्थानोँकी बनी हुई वस्तुएँ विदेशसे आनेवाली वस्तुओँकी अपेक्षा कम दाममेँ प्राप्त कर सकती है। इसी प्रकार यदि वह चाहे तो भारतीय बाज़ारोँमेँ भारतीय वस्तुओँकी ही बिक्री हो सकती है। हम लोग जानते हैँ कि गत कुछ वर्षोँसे इस सिद्धान्तकी ओर सरकारका ध्यान जा रहा है। परन्तु इस विषयमेँ और भी अधिक किया जा सकता है, अतएव सरकारका उधर विशेष ध्यान होना चाहिए।

"११. उपर्युक्त कथनके अतिरिक्त, हम यह नहीँ चाहते कि सरकार स्वयं प्रयोगके लिये इस प्रकारकी कारीगरी या व्यवसायमेँ सीधे अपना हाथ डाले। इस प्रकारके प्रयोग तभी सफल और सार्थक हो सकते हैँ जब वे व्यापारकी दृष्टिसे किए जायँ। सरकारी कारख़ाने कोई ऐसे नहीँ हैँ जिनमेँ इस विचारके अनुसार काम हो सके और केवल प्रयोगके लिये इतना भारी ख़र्च उठानेके भयसे असफल होनेकी बहुत आशङ्का है और उसका परिणाम और भी बुरा होगा।

"१२. इसमेँ कोई भी सन्देह नहीँ है कि सरकार यदि व्यावसायिक कला तथा विज्ञानकी शिक्षा दे, तथा इस विषयमेँ पुरस्कार दे और उचित केन्द्रोँपर अजायबघर तथा संग्रहालय स्थापित करावे तो जनतामेँ उसकी ओर रुचि हो और लोगोँका ज्ञान बढ़े। इसमेँ कोई भी सन्देह नहीँ है कि योरोपकी प्रसिद्ध व्यावसायिक क्रान्तिको ऐसी संस्थाओँसे काफ़ी सहायता प्राप्त हुई थी; और वहाँकी जनता यह जानती है कि देशमेँ व्यावसायिक शिक्षा देना सरकारका मुख्य कर्त्तव्य है तथा वह भविष्यमेँ भी अपना यह कर्त्तव्य पालन

करती रहेगी। जिन कारणोंसे योरोपियन सरकारें अपने इस कर्त्तव्यका पालन करनेके लिये बाध्य की जाती हैं उन्हीं सब साधनोंकी भारतमें भी विशेष आवश्यकता है। किन्तु इङ्गलैण्डमें भी अभी लोगोंको यह अनुभव नहीं है कि ऐसी शिक्षा किस प्रकार दी जाय और भारतमें तो आजकल साधारण मशीन और कारीगरीसे अधिक शिक्षा देना सम्भव ही नहीं जान पड़ता।

"१३. किन्तु, जहाँतक सम्भव हो सके, सरकारको उचित ढङ्गसे व्यावसायिक उन्नतिमें सहायता करनी चाहिए तथा स्वतन्त्र व्यापारियोंके स्वतन्त्र अध्यवसायमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। क्योंकि उसे ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकारके व्यवसायोंके खुलनेसे उन मज़दूरोंकी शक्तिका अधिक उपयोग होगा जो खेतीमें अधिक सार्थक काम नहीं कर सकते। और इस प्रकार प्रत्येक अकालके समय जो श्रमजीवी निठल्ले बैठे रहते हैं उनके लिये भी काम मिल जायगा।"

व्यावसायिक शिक्षा तथा देशी व्यवसायोंके पुनरुद्धारके लिये भारतीयोंकी पुकार।

यह हितकर रिपोर्ट सन् १८८० में प्रकाशित हुई थी, परन्तु जान पड़ता है कि इसकी मुख्य सिफ़ारिशोंकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। देशी व्यवसायोंको प्रोत्साहित करनेके लिये कुछ भी सहायता नहीं की गई, और व्यावसायिक शिक्षाके उद्योगमें उससे भी कम। इसी बीच सन् १८८५ ई० में भारतीय जनताकी माँगों तथा विचारोंको सरकारके सम्मुख रखने तथा जनताको सङ्गठित करनेके लिये भारतीय राष्ट्रीय महासभाका जन्म हुआ। अपनी तीसरी बैठकमें सन् १८८७ ई० में इसने निम्नाङ्कित प्रस्ताव प्रकाशित किया कि—

"जनताकी दरिद्रताका विचार करके सरकारका यह कर्त्तव्य है कि वह देशकी अवस्थाके अनुकूल एक विस्तृत तथा उपयुक्त व्यावसायिक शिक्षा-प्रणाली चलावे और इस विषयकी वर्त्तमान सरकारी आज्ञाओंका कठोरतासे पालन करके देशी व्यवसायोंको प्रोत्साहन दिया जाय, जिससे कि सरकार स्वयं तैयार मालका प्रयोग करे, तथा इस प्रकार जनताकी कार्य्य-कुशलता तथा बुद्धिके प्रयोगमें विस्तार हो।"

सन् १८८८ ई० की अपनी अगली बैठकमें कांग्रेसने सरकारसे एक संयुक्त कमीशनकी नियुक्तिके लिये अनुरोध किया, जो इस बातकी जाँच करे कि देशमें व्यापक व्यावसायिक शिक्षा-प्रणाली चलानेके लिये देशकी व्यावसायिक अवस्था क्या है? उसने इसी प्रार्थनाको सन् १८९१, १८९२, १८९३ ई० में बार-बार दुहराया। सन् १८९४ ई० में इसने शिक्षा-विषयक सभी विभागों तथा मुख्यतः व्यावसायिक स्कूल तथा कौलेजोंके स्थापन करने आदिपर अधिक व्यय करनेकी आवश्यकताकी ओर सरकारका ध्यान दिलानेका बहुत प्रयत्न किया। उसने इसी प्रार्थनापर सन् १८९५ ई० में फिर ध्यान दिलाया। सन् १९०६ ई० में, जब देश-व्यापी अकाल पड़ा था, उस समय भी उसने पुनः सुझाया कि, "अकालकी पुनरावृत्ति रोकनेका उपाय यही है कि सरकार ऐसी नीतिका अवलम्बन करे जिससे देशमें मितव्ययिता बढ़े, प्राकृतिक सुविधाओंका उचित उपयोग हो सके, विनष्ट देशी प्राचीन व्यवसायों तथा कलाओंका पुनरुद्धार हो, तथा आधुनिक कला और व्यवसायका प्रारम्भ और उसमें वृद्धि हो सके।" सन् १८९८ ई० में इसने पुनः अनुनय किया कि, "देशकी दरिद्रतापर ध्यान देकर सरकारको चाहिए कि देशी व्यवसायोंको उन्नति करनेका अवसर दे, देशमें व्यावसायिक शिक्षा देनेका उचित प्रबन्ध कर दे, और इस कार्य्यके लिये अलग एक पर्य्याप्त कोष रख ले।" सन् १९०४ ई० में कांग्रेसने इस बातपर ज़ोर दिया कि सरकार कम-से-कम देशमें, एक बहु-व्यवसायी-शिक्षाका एक केन्द्र स्थापित करे, जिससे सम्बद्ध प्रत्येक प्रान्तमें छोटे-छोटे व्यावसायिक स्कूल तथा कौलेज़ खोले जायँ। यही प्रार्थना सन् १९०५ ई० में फिर दुहराई गई। सन् १९०६ ई० में इसने प्रार्थना की

कि प्रारम्भिक शिक्षाको निःशुल्क बनाकर इसको क्रमशः देश भरमें अनिवार्य्य बनानेका प्रयत्न करे और व्यावसायिक शिक्षाके लिये अलग कोष रखकर इसका प्रत्येक प्रान्तमें प्रचार किया जाय। सन् १६०८ ई० से निरन्तर १६१३ ई० तक कांग्रेस यही प्रार्थना करती आई। सन् १६१४ ई० का महायुद्ध छिड़ जानेके पश्चात् कांग्रेसने सरकारसे भारतीय व्यवसायोंकी वृद्धि तथा सङ्गठनके लिये आवश्यक तथा तात्कालिक उपायं करनेकी प्रार्थना की। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे भारतीय लोग व्यावसायिक वृद्धिकी आवश्यकताका और भी अधिक अनुभव करने लगे। सन् १६०५ ई० से लगाकर प्रतिवर्ष एक भारतीय व्यावसायिक सम्मेलन होता रहा और इसके द्वारा कांग्रेस प्रतिवर्ष भारतमें व्यावसायिक शिक्षाके प्रचारकी ओर सरकारका ध्यान दिलाती रही। इसने प्राचीन देशी व्यवसायोंके पुनरुद्धारके लिये भी सरकारको विभिन्न उपायोंका अवलम्बन करनेके लिये परामर्श दिया। परन्तु न तो भारतीय अकाल-कमीशनकी सिफ़ारिशोंपर ही कुछ ध्यान दिया गया और न भारतीय राष्ट्रीय महासभाके उपाय सुझाने और भारतीय व्यावसायिक सम्मेलनके आदेशोंपर ही। सन् १६०७ ई० में सरकारद्वारा बुलाई भारतीय व्यावसायिक सम्मेलन (इण्डियन इण्डस्ट्रियल कौन्फ़रेन्स) के अवसरपर बोलते हुए संयुक्त प्रान्तके तत्कालीन छोटे लाट सर जौन हीवेटने कहा कि—

"उद्योग तथा व्यवसायकी शिक्षाका प्रश्न सरकार तथा जनताके सामने गत बीस वर्षोंसे है। सम्भवतः किसी भी विषयपर इतना अधिक न कहा या लिखा गया होगा, किन्तु हुआ बहुत कम है"।

हमारी रिपोर्टके दसवें अध्यायका प्रारम्भ, जिसमें व्यावसायिक शिक्षाका वर्णन किया गया है, यह प्रदर्शित करता है कि जनताकी इस प्रकारकी शिक्षाके लिये कितना कम उद्योग हुआ है। कुछ वर्ष हुए, भारत सरकारने केवल दस विद्यार्थियोंके लिये डेढ़ सौ पौण्डकी एक वार्षिक छात्रवृत्ति इसलिये स्वीकार की कि वे योरोप और अमेरिकामें कोई विशेष विषय सीखनेके लिये जायँ, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह विषय व्यवसाय-सम्बन्धी ही हो। इसके अनुसार अभीतक सौ विद्यार्थी ऐसी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये बाहर गए हैं। भारतमें वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक शिक्षाके साधनोंका पूर्ण अभाव देखकर कुछ भारतीय तथा योरोपियन महाशयोंने सन् १६०४ में कलकत्तेमें एक संस्था खोली थी जिसका एक ध्येय यह था कि, "भारतीय विश्वविद्यालयोंके होनहार ग्रेजुएटोंको इस योग्य बनाया जाय कि वे विज्ञानमें उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिये योरोप, अमेरिका, जापान अथवा अन्य देशोंमें जा सकें।" सन् १६१० ई० से बङ्गाल सरकारने उस संस्थाको प्रतिवर्ष पाँच हज़ार रुपए देकर सहायता करनी प्रारम्भ की, जो महासमरके पश्चात् दो हज़ार पाँच सौ रुपए ही रह गई। उस संस्थाके मन्त्री राय योगेन्द्रचन्द्र घोष बहादुरने हम लोगोंको बताया कि आजतक इस संस्थाकी सहायतासे तीन सौ से अधिक ही विद्यार्थी विदेशोंमें उपर्युक्त शिक्षाके ध्येयसे भेजे गए हैं, उनमेंसे एक सौ चालीस लौट आए हैं, जिनमेंसे एक सौ तीस को काम मिल गया है। उन्होंने यह भी बताया कि हमारे विद्यार्थियोंने बीस नये कारख़ाने चलाए हैं तथा बहुतसे ऐसे कारख़ानोंके अध्यक्ष हैं जिनकी कुल लागत चालीस लाख रुपए हैं। इससे ज्ञात होता है कि भारतीय नवयुवकोंमें व्यावसायिक शिक्षाकी प्राप्ति, तथा देशकी व्यावसायिक उन्नति (पुनरुद्धार) की कितनी प्रबल इच्छा है। भारत-सरकारने अभी हालमें व्यावसायिक शिक्षा-सम्बन्धी छात्रवृत्तिको दससे बढ़ाकर तीस कर दिया है तथा तत्सम्बन्धी नियमोंमें सुधार भी किया है। परन्तु ये छात्रवृत्तियाँ स्थितिकी आवश्यकताके विचारसे बहुत ही अपर्याप्त हैं। अभी भारतीय नवयुवकोंको भारतमें तथा बाहर उपयुक्त व्यवसाय तथा शिल्प-विषयक-शिक्षा देनेका और उचित प्रबन्ध होना चाहिए।

कारीगरीमेँ अन्य देशोँकी उन्नति तथा उसका भारतपर प्रभाव

हमारी रिपोर्टके दूसरे, चौथे तथा सातवेँ अध्यायोँमेँ इस बातका वर्णन हो चुका है कि पिछले वर्षोँमेँ भारतीय पूँजी तथा भारतीय प्रबन्धद्वारा कुछ भारतीय व्यवसायोँकी उन्नति की गई है जिनमेँ प्रधान रूईके कारख़ाने, ताताका लोहे तथा बिजलीके बड़े कारख़ाने कहे जा सकते हैँ। यहाँतक तो इससे हमेँ हार्दिक सन्तोष होना चाहिए। किन्तु यह उन्नति बिल्कुल थोड़ी है। इसी बीच सन् १८७० ई० के बाद दूसरे राष्ट्रोँने शिल्पकलामेँ आश्चर्य्यकारी उन्नति की है। मैँ मुख्यतः जर्मनी, औस्ट्रिया, संयुक्तप्रदेश तथा जापानका ही उल्लेख करता हूँ, क्योँकि इनकी उन्नतिका भारतपर बहुत भारी प्रभाव पड़ा है। इनकी उन्नतिका कारण यह है कि उन्होँने अपनी जनताके लिये सार्वजनिक व्यावसायिक शिक्षा-प्रणालीका प्रचार किया है, जहाँ सरकारी सहायता तथा व्यावसायिक केन्द्रोँके विकासमेँ परस्पर गहरा सम्बन्ध है। इन राष्ट्रोँ तथा अन्य राष्ट्रोँने, जिनकी व्यावसायिक उन्नति, राज्य-सहायता अथवा राज-रक्षाद्वारा हुई है, भारतमेँ स्वतन्त्र व्यापारकी नीतिसे पूर्ण लाभ उठाया है, क्योँकि उन्होँने भारतसे ही कच्चा माल मँगाकर, उनसे माल तैयार करके पुनः भारतीय बाज़ारोँको भर दिया है। भारतवर्षको न तो किसी व्यापार-रक्षा-नीतिका अवलम्ब मिला और न अन्य राजकीय सहायता ही मिली, इसलिये उक्त राष्ट्रोँने भारतको व्यावसायिक पराधीनताकी बेड़ीसे ख़ूब जकड़ दिया। इस निरन्तर आक्रमणसे भारतकी कृषि तथा कला-कौशलपर बड़ा हानिकारक प्रभाव पड़ा है। यहाँका नीलका व्यवसाय जर्मनीने चूर कर दिया। सन् १८६७ ई० के पूर्व, जब डाक्टर बेयरने बनावटी नील पैदा की, तब जर्मनी यहाँसे एक करोड़ स्टर्लिङ्गसे अधिक दामकी नील मँगाती थी। कुछ समयके बाद वह इससे तिगुने दामकी नील बाहर भेजने लगी। जर्मनीकी चुक़न्दरसे बनी चीनीने भारतीय चीनी-व्यवसायको पहला गहरा धक्का दिया, और तभीसे यह अन्य देशोँके आघात सहते-सहते निर्बल हो गया। सन् १९१३-१४ ई० मेँ जर्मनी तथा औस्ट्रियाने भारतसे २४२२०४०० पौण्डका अर्थात् सम्पूर्ण पूँजीके $\frac{१}{६}$ से कुछ कम कच्चा माल ख़रीदा, और इन्हीँ दोनोँ देशोँसे भारतमेँ ११३०४१४१ पौण्डके लगभग तैयार माल आया। ग्रेट बृटेनको उसी साल ३८२३६७८० पौण्डका माल गया और वहाँसे ७८३८८१४९ पौण्डका माल आया।

चालीस या पचास वर्ष पहले, जापान भारतवर्षसे कृषि तथा व्यवसाय दोनोँमेँ बहुत पिछड़ा हुआ था। परन्तु वहाँकी प्रजा तथा राजाने मिलकर व्यवसाय तथा उद्योग-विषयक शिक्षाके कारण अपने व्यवसायमेँ ऐसा आश्चर्य्यकारी परिवर्त्तन ला दिया है कि जापान संसारके व्यावसायिक राष्ट्रोँमेँ प्रमुख स्थान पा गया। जापान अधिकांश रूई भारतसे ही मँगाता है और वह अपने यहाँसे अधिक परिमाणका तैयार माल तथा अन्य वस्तुएँ भारतमेँ भेजता है। महायुद्धसे पहले पाँच वर्ष अर्थात् सन् १९१० से १९१५ ई० के बीच उसके सम्पूर्ण आयातका औसत हमारे आयातका २·५ प्रति सैकड़ा था। सन् १९१७ ई० के मार्च महीनेतक उसके आयातका भाग हमारे आयातका ८·९ प्रति सैकड़ा था। भारतका सम्पूर्ण आयात (२८९५९७६६ पौण्डके राज्यकोषको छोड़कर, परन्तु सरकारी कोषको लेकर) सन् १९१४ ई० के मार्च मासतक १२७५३८६३८ पौण्डतक बढ़ गया। महायुद्धके पहले, पाँच वर्षोँमेँ (१९०९-१० से १९१३-१४ तक) ग्रेट बृटेनके आयातका औसत भागका ६२·८ प्रति सैकड़ा था; तथा बृटिश साम्राज्यके अन्य विभागोँका सात प्रति सैकड़ा था। मित्र राष्ट्रोँ (जापानको छोड़कर) का ४·६ प्रति सैकड़ा था, जापानका २·५ प्रति सैकड़ा था, संयुक्त राज्य अमेरिकाका ३·१ प्रतिशत था, जावाका ६·४ प्रतिशत था, तथा अन्य विदेशी राष्ट्रोँका (मुख्यतः जर्मनी तथा औस्ट्रिया-हङ्गरी) का १३ प्रतिशत था। ३१ मार्च, सन् १९१७ ई० के आयातमेँ मुख्य-मुख्य देशोँमेँके आयातका भाग इस प्रकार था:—

ग्रेट बृटेनका ५८.७ प्रति सैकड़ा, बृटिश साम्राज्यके अन्य राष्ट्रोंका ७ प्रति सैकड़ा, मित्र राष्ट्रोंका (जापानको छोड़कर) ३·३ प्रतिशत, जापानका ८·९ प्रतिशत, संयुक्तराज्यका ७·३ प्रति सैकड़ा, जावाका ८·९ प्रति सैकड़ा तथा अन्य विदेशोंका ५·९ प्रति सैकड़ा था।

अतएव आधुनिक सभ्य जातियोंकी दैनिक आवश्यकीय वस्तुओं तथा कच्चे मालके लिये जितना अधिक भारतवर्ष दूसरे देशोंका आश्रित बना है, उसे देखकर बहुत ही दुःख होता है। इस अधीनताका कुछ परिचय हमें सन् १९१४ ई० के मार्च मासमें अन्त हुए वर्षमें विदेशोंसे भारतमें आए हुए मालोंकी निम्नाङ्कित विभाजित सारिणीसे हो जायगा।

	पौण्ड
१—खाद्य पदार्थ, पेय पदार्थ तथा तम्बाकू...	१६,४४१,३३०
मछली (डब्बेमें रक्षित मछलीको छोड़कर)	१०८,३३०
फल तथा तरकारी	१५३,५८३
अन्न, दाल तथा आटा.... ...	१८५,५६०
मदिरा	१,२५१,६४२
तेलीके योग्य सामग्री ...	१,६४९,०८७
मसाले	१,१५४,८६५
चीनी	९,९७१,२५१
चाय	१५२,४०९
अन्य खाद्य तथा पेय पदार्थ, जैसे क़हवा, (भूनने और पीसे जानेके योग्यको छोड़कर) तथा अन्य मदिरोत्पादक वस्तु ...	५११,६२३
तम्बाकू	५०१,९२३
२—कच्चा तथा तैयार माल, और मुख्यतः अनिर्मित वस्तुएँ	७,०३८,३८०
कोयला, लकड़ीका कोयला तथा पेटेण्ट ईंधन	७१०,९२०
गोंद, रेज़िन तथा बर्फ़ ...	१७५,७६४
खाल और चमड़ा	१०१,०६६
कच्ची धातु तथा कच्चे लोहे और इस्पातके टुकड़े ...	४१,९७७
तेल	२,९३४,६११
बीज, तेलहनको लेकर ...	५३,४३१
चरबी तथा मोम	१५०,६३८
कपड़े बनानेके योग्य सामान	१,२०४,५१०
लकड़ी तथा लट्ठे....	५१५,५९०
फुटकर (घोंघा, कौड़ी, मछलीका खाद तथा काग़ज़ बनानेके लिये लकड़ीकी लुबदी और चिथड़े	१,१४९,८७३
३—पूर्णतः तैयार माल	९६,७६९,४४३
वस्त्र	१,६६९,३८९
अस्त्र-शस्त्र तथा युद्ध-सामग्रियाँ	२३६,७१३
गाड़ियाँ, मोटर, साइकिल आदि	१,४२२,६६७
रासायनिक वस्तुएँ तथा ओषधियाँ	१,६०५,६९९
चाक़ू, लोहेकी बनी वस्तुएँ, तथा यन्त्र (मशीनोंको छोड़कर)	४,२९१,१४०
रङ्ग	१,५१०,९३३
लकड़ीके सामान, कुर्सी आदि	२२४,३२३
शीशे तथा मिट्टीके बर्त्तन	१,७२४,६६७
साफ़ की हुई खाल तथा चमड़ेका बना हुआ सामान	२६६,६८३
हर प्रकारकी मशीन (उनके लगानेकी सामग्रियोंको लेकर)	५,५०८,३९७
धातुएँ, लोहा और इस्पात तथा उनसे बना हुआ सामान	१०,६३३,२४९
लोहे और इस्पातके अतिरिक्त अन्य धातुओंके सामान	४१,०१०,८०१
काग़ज़, दफ़्ती तथा तत्सम्बन्धी सामग्रियाँ	१,५२४,९८२
रेलवे-सम्बन्धी सामान	६,६८९,७९४
सूत तथा बुनने आदिका सामान	५०,३६०,०४३
फुटकर (छापे, नक़ाशी, तस्वीर, रबरका सामान, सिगरेट, साबुन, सुगन्धित शराब, छड़ियाँ तथा कोड़े, पत्थर तथा सङ्गमरमर, शृङ्गारके सामान, खिलौने, खेलके सामान, छाते और उसके सामान	५,०५५,९६३

४—फुटकर अवर्गीकृत सामान जिसमें जीवित जानवर, चारा तथा डाकसे भेजी हुई वस्तुएँ....	१,९१६,१३५
५—सरकारी सामान	५,३७३,३५०
कुल मूल्य सभी आयातोंका (राजकीय ख़ज़ाना छोड़कर)	पौं० १२७,५३८,६३८

हमारी रिपोर्टका चौथा अध्याय भारतकी व्यावसायिक दुर्दशाका एक अति स्पष्ट तथा समालोचनात्मक सारांश है। यह उसी प्रकारसे यह भी बतलाता है कि इन व्यवसायोंकी सूची, जिनसे बनी हुई वस्तुएँ यहाँ आती हैं, शान्ति तथा अशान्ति दोनों समयोंके लिये समान ही आवश्यक हैं; तथा जिनका हमारे यहाँ अभाव है, उसकी सूची बहुत लम्बी तथा खेदजनक है, और जबतक उनकी स्थापना पूर्ण तथा पर्य्याप्त रूपमें नहीं होती, तबतक भारतीय पूँजी-पति शान्तिके समय भी बहुतसे लाभदायक उद्योगोंसे वञ्चित रह जायँगे। अनुभवद्वारा ज्ञात हुआ है कि युद्धके समयमें, जब जल-मार्गोंमें रुकावट हो जाती है तब भारतके प्रमुख व्यवसायोंको स्थगित करना पड़ेगा तथा उसकी खपत करनेवालेको विशेष कष्टोंका और उसकी सशस्त्र सेनाओंको आपत्तिका सामना करना पड़ेगा। कृषि तथा खनिज पदार्थोंकी इतनी बहुतायत होते हुए, सामान ढोने आदिके लिये अनेक प्राकृतिक साधनोंके रहते हुए, तथा अपने तैयार मालकी खपतके लिये बाज़ारोंके होते हुए उपर्युक्त सूचीको पर्य्याप्त छाँट डालना कठिन न होगा यदि सरकार जनताकी आवश्यक शिक्षा तथा बैङ्क आदिकी सुविधा देकर सहायता करे। किस प्रकारसे सरकार इस कार्य्यको उत्तमतासे कर सकती है, इसी प्रश्नका हमें उत्तर देना है।

पिछले वर्षोंमें सरकारकी व्यावसायिक नीति

मुझे सरकारकी पिछले वर्षोंकी व्यावसायिक नीतिके इतिहासके बारेमें, जो रिपोर्टके आठवें अध्यायमें दिया हुआ है, बहुत कम कहना है। भारतीय व्यवसायोंकी उन्नति करनेमें सरकारका प्रयत्न कितना थोड़ा रहा है, इसका रिपोर्टके विवरणसे पता लगता है। परन्तु मैं अपने सहयोगियोंके इस मतसे सहमत नहीं हूँ जब वे (दूसरे अंशमें) यह कहते हैं कि इसका कारण "एक निश्चित तथा स्वीकृत नीतिका न होना तथा अनुभवयुक्त विशेषज्ञोंके सङ्गठनका अभाव है।" उनके साथ ही मुझे भी खेद है कि लार्ड मौर्लेने सन् १९१० ई० के मद्रास सरकारके प्रस्तावके उस अंशको स्वीकृति न दी जिसमें ज़ोर दिया गया था कि कुछ सरकारी आढ़तें इस अभिप्रायसे खोली जायँ कि वे दिखला दें कि व्यापारिक लाभके लिये कुछ व्यावसायिक उन्नत तरीक़ोंका उपयोग किया जा सकता है, और मैं धन्यवाद देता हूँ कि उस आज्ञामें हेरफेर करके लार्ड क्रयूने स्वयं १ फ़रवरी सन् १९१६ ई० के तारद्वारा भारत-सरकारको अधिकृत करते हुए लिखा कि कमीशनकी रिपोर्टपर अन्तिम फ़ैसलेके समयतक वह प्रत्येक प्रान्तीय सरकारको यह आदेश करे कि यदि वे चाहें तो किन्हीं विशेष व्यवसायोंकी सहायता कर सकती हैं यदि वे अपनी आकस्मिक आवश्यकताओंको ध्यानमें रखते हुए और भारत-सरकारसे पहले मञ्ज़ूरी लेकर काम करें और वे मेरे पूर्वाधिकारीके नियन्त्रणपर बहुत ध्यान न दें। परन्तु मैं रिपोर्टके उस अंशको कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता जिसमें सरकारद्वारा व्यावसायिक उन्नतिके लिये किए गए प्रारम्भिक उद्योगको सन् १९१० ई० के लार्ड मौर्लेके सिद्धान्तके कारण नष्टप्राय कर दिया गया।" (प्राक्कथन, पृष्ठ १९)। मेरी समझमें हमारे मित्रोंने लार्ड मौर्लेके उस अस्वीकृतिके प्रभावके बारेमें भ्रमसे अधिक लाभकी आशा कर ली है, जिसमें मद्रास सरकारके प्रस्तावके विशेषांशको नामञ्ज़ूर करनेका ऊपर ज़िक्र आ चुका है। मैं न्यायपूर्वक लार्ड मौर्लेकी दी हुई औद्योगिक शिक्षाके सम्बन्धमें आज्ञाओंपर उचित विचार प्रकट करनेके लिये

सन् १९१० ई० की ता० २९ जुलाईके तत्सम्बन्धी लेखके दो अंशोंको नीचे उद्धृत करता हूँ। श्रीमान्ने कहाः—

“मैंने मद्रास-सरकारद्वारा सूचित उस प्रान्तमें नये व्यवसायोंकी स्थापनाके लिये किए गए उद्योग-विषयकी परीक्षा की है। निस्सन्देह इस निष्कर्षमें बहुत परिश्रम तथा चतुराई काम आई है; परन्तु, इस विषयमें राजकीय उद्योगकी उपयोगितामें मुझे सन्देह होता है, जबतक कि वह व्यावसायिक आदेशोंसे पूरी तरह परिमित रहे और विशाल व्यापारिक रूपको धारण करनेसे दूर रहे। इतना सीमित होनेपर स्वतन्त्र उद्योग-धन्धोंमें विघ्न पड़नेका कोई भय नहीं रहता और साथ ही इसके कार्य्य करनेके लिये स्पष्ट तथा पर्य्याप्त क्षेत्र बच रहता है। ज्योंही सीमाका उल्लङ्घन किया जाता है, उस वक्त यह भय रहता है कि नवीन सरकारी व्यवसाय, या तो तुच्छ तथा बेकार खिलौनेकी वस्तु रह जायगा अथवा एक बड़ा जोखिम और साहसपूर्ण सट्टेका काम रह जायगा। मैं कौन्फ़रेन्स तथा मद्रास-सरकारके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करता हूँ, क्योंकि उन्हें अपने प्रान्तकी व्यावसायिक उन्नति करनेकी बड़ी चिन्ता है। परन्तु मेरा ध्यान है कि कोषको सरकारद्वारा सञ्चालित व्यापारिक बड़े कामोंमें फँसानेसे इस ओर उन्नतिकी अपेक्षा अवनति होनेकी अधिक आशङ्का है, क्योंकि शिल्प और औद्योगिक शिक्षा देनेके लिये उस धनकी हमें तुरन्त आवश्यकता है।”

मैं जिस नीतिको स्वीकृति देनेके लिये उद्यत हूँ वह यह है कि उत्पादनके उन उन्नत उपायोंको लोगोंमें प्रचार करनेमें राजकीय धनका व्यय किया जाय, जो आधुनिक विज्ञान तथा योरोपियन देशोंकी प्रणालीके ढङ्गपर हों। इससे अधिक सरकारको आगे पग नहीं बढ़ाना चाहिए, तथा यह स्वतन्त्र व्यवसायियोंके ऊपर छोड़ दिया जाय कि इन उपायोंका अनुकरण व्यापारिक लाभके लिये सफलतासे किया जा सकता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि औद्योगिक कौन्फ़रेन्सके जो उद्देश्य थे उन सबकी पूर्त्ति औद्योगिक तथा शिल्पके शिक्षालयोंद्वारा हो सकती है। ऐसे शिक्षालयोंमें ही इन नवीन व्यवसायोंका ज्ञान तथा नये ढङ्गोंका ज्ञान सिखलाया जा सकता है, तथा नये औज़ारोंका उपयोग और शिल्प आदि कलाओंमें कारीगरोंका अनुभव बढ़ सकता है। जैसे कि चमड़ेके शिक्षालयोंमें क्रोम चमड़ेके बनानेका ढङ्ग दिखाकर सिखाया जा सकता है, उसी भाँति बुननेके स्कूलमें देशी करघोंमें सुधार किया जा सकता है और उससे व्यावहारिक रूपमें लाभ दिखलाया जा सकता है। यदि इन स्कूलोंका सञ्चालन उत्तम रीतिसे हुआ तो इसमेंसे शिक्षित विद्यार्थी निकलकर स्वतन्त्र व्यवसायियोंकी कमीको पूरा करके और इस विषयमें आवश्यक नवीन व्यवसायोंके लिये सब प्रकारकी सलाह और ख़बरें देकर लाभकारी सिद्ध होंगे। इन चमड़े अथवा बुनाईके स्कूलोंको सरकारी कारख़ानोंमें परिणत करके यह दिखलाना कि वे वस्तुएँ तैयार करके लाभके साथ बाज़ारमें बेची जा सकती हैं, मेरे विचारमें हर प्रकारसे आवश्यकतासे अधिक बढ़ना है जैसा कि अन्य प्रान्तोंके अनुभवोंसे भी पता लगता है। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि व्यवसाय-सम्बन्धी दफ़्तर न खोले जायँ अथवा ऐसे स्थापित केन्द्रोंद्वारा नवीन उद्योग-धन्धों और उनके उपायोंपर सलाह न दी जाय। परन्तु स्वतन्त्र व्यवसायियोंके उद्योगोंमें कोई बाधा नहीं पड़नी चाहिए।

जैसा कि लार्ड क्र्यूने सन् १९१२ ई० के १२ मार्चके सरकारी पत्र संख्या चौबीस रेवेन्यूमें इङ्गित किया है—

“मद्रासकी सरकारसे ज्ञात होता है कि मेरे पूर्वाधिकारीके २९ वीं जुलाई, सन् १९१० ई० के राजकीय पत्रकी आज्ञाका एक सङ्कुचित अर्थ निकाला है। जिस नीतिकी स्वीकृति उसने उस समय दी, यह थी कि राजकीय कोषका व्यय जनतामें आधुनिक विज्ञान तथा योरोपमें प्रचलित साधनोंद्वारा उत्पादनके ढङ्गोंका परिचय करानेमें किया जाय। इसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि शिक्षा केवल व्यावसायिक स्कूलों

तक ही सीमित रक्खी जाय। मैं मानता हूँ कि कुछ अंशतक स्कूलोंकी व्यावसायिक शिक्षा अपर्य्याप्त कही जा सकती है तथा उसकी पूर्त्ति कारख़ानोंमें व्यावहारिक शिक्षाद्वारा नये तरीक़ोंका उपयोग दिखाकर हो सकती है; और मुझे इसमें भी कोई आपत्ति नहीं कि प्रयोगात्मक सामानको ख़रीदकर उपयुक्त स्थानोंमें यह दिखलानेके लिये रक्खी जायँ कि नये साधनों और बढ़िया मशीनोंको उपयोगमें लानेसे कितना अधिक लाभ होगा।

भारतीय जनताका मत निस्सन्देह यही है कि सरकारको लार्ड मौर्लेकी स्वीकृतिसे भी अधिक आगे प्रयत्न करना चाहिए। और वैसा होते हुए भी अगर अपनी स्वीकृतिके अनुसार विस्तृत एवं निश्चित सिद्धान्तोंको कार्य्यरूपमें परिणत किया जाता तो हम लोग बड़े कृतज्ञ होते यदि उस धनका प्रयोग, जो सरकारद्वारा कारख़ानोंके प्रचलनके लिये स्वीकृत हुआ था, "व्यावसायिक तथा शिल्प-सम्बन्धी शिक्षाके प्रचार" में किया जाता, जिसके लिये श्रीमान्‌ने कहा था कि, "उसकी अत्यन्त आवश्यकता है" तथा यदि उनके मतानुसार "सरकारी कोषका व्यय जनतामें आधुनिक विज्ञान तथा वर्त्तमान योरोपमें प्रचलित ढङ्गके प्रयोगोंके प्रचार तथा ज्ञानके लिये किया जाता"। उनकी शिकायत यही थी, उसका पालन नहीं हुआ। रिपोर्टके एक सौ निन्यानबेवें अंशमें यह कहा गया है कि भारत सरकारके पास "लौर्ड मौर्लेद्वारा स्वीकृत नीतिको भी जो अत्यन्त परिमित है, कार्य्यरूपमें लानेके लिये न तो सङ्घटन है और न उपयुक्त साधन"। इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि आवश्यक सङ्घटन तथा सामग्रीको जुटाना चाहिए था।

सराहनीय परिवर्त्तन

महायुद्धके प्रारम्भने इस ओर अत्यधिक ध्यान आकर्षित किया कि बृटिश साम्राज्यके बाहर मुख्यतः जर्मनी तथा औस्ट्रिया आदि देशोंपर भारतीय जनता अपने जीवनकी आवश्यकताओंके लिये कितनी अधिक आश्रित है; और युद्ध छिड़नेके कुछ ही समय पश्चात् भारत-सरकारने यह निश्चय किया कि वह व्यावसायिक नीतिके प्रश्नका निरीक्षण करेगी जिसका अवलम्बन भारतकी परिवर्त्तित स्थितिमें करना चाहिए। लार्ड हार्डिञ्जकी सरकारने अपने २६वीं नवम्बर, सन् १९१२ ई० के सरकारी पत्रमें भारत-सचिवके सामने अपनी इस नीतिका आशय बड़े ही स्पष्ट तथा ओजपूर्ण शब्दोंमें रक्खा। उन्होंने कहा कि—

"यह बिल्कुल स्पष्ट होता जा रहा है कि युद्धके पश्चात् भारतकी व्यावसायिक उन्नतिके लिये सरकारको एक निश्चित तथा सन्तोषजनक नीतिका अवलम्बन करना पड़ेगा, नहीं तो यह संसारके उन सभी उन्नतिशील राष्ट्रोंके बने हुए मालके लिये दिन-पर-दिन अधीन बाज़ार बनता चलेगा, जो भविष्यमें अपना व्यापार जमानेके लिये और भी अधिक प्रतिस्पर्धा करेंगे। यह जान पड़ता है कि उन राष्ट्रोंका राजनीतिक भविष्य उनकी आर्थिक स्थितिपर अवलम्बित होगा। भारतीय जनता उस विषयमें एकमत है, और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। मिलमालिक, राजनीतिज्ञ तथा शिक्षित समाज भारतीय व्यवसायकी सहायताके लिये सरकारसे एक निश्चित तथा सन्तोषजनक नीतिका पालन करनेके लिये बहुत दिनोंसे ज़ोर देते आ रहे हैं और इस माँगके साथ अपना भला-बुरा समझनेवाले प्रत्येक समझदार आदमीकी सहानुभूति है।" इस लेखमें ऐसी व्यावसायिक नीतिकी आवश्यकतापर ज़ोर दिया गया है जिससे भारतमें उत्तम श्रेणीकी शिल्प-विषयक शिक्षा दी जाय और जिससे केवल साहित्यिक विषयोंके पढ़नेका शौक़ कुछ कम हो जाय और लोग इन साहित्यिक विषयोंके अनुकूल नौकरियोंके पीछे दौड़ना छोड़ दें।

अन्तमें सरकारने कहा कि, "भारतको अधिकार है कि वह युद्धके पश्चात् अपनी स्थिति और सरकारकी

शक्तिके अनुसार एक व्यावसायिक देश बननेके लिये अधिक-से-अधिक सहायता माँगनेका अधिकारी है।"

भारत-सचिवद्वारा इस नीतिके स्वीकृत होने तथा सरकारी सहायताका स्वरूप जाँचने और रिपोर्ट देनेके लिये इस कमीशनके नियुक्त होनेका भारतीयोंने कृतज्ञता तथा आशाके साथ उसी प्रकार स्वागत किया जिस प्रकार भयानक अँधेरी रात्रिके बाद सुनहरे सूर्य्योदयका स्वागत किया जाता है। परन्तु वह आशा, यह स्मरण करके कभी-कभी धुँधली पड़ जाती है कि मज़दूर दलने आयर्लैण्डके राष्ट्रीय दल तथा लङ्काशायरके मतदाताओंसे मिलकर भारतीय रूईका आयात-कर बढ़ा देनेकी इङ्गलैण्ड-सरकारकी नीतिका विरोध किया। फलतः यह भारतीय रूईका कर पुनः जारी कर दिया गया, जिसे हटानेके लिये भारतीय जनता गत इक्कीस वर्षोंसे चिल्लाती आ रही थी। श्रीयुत एस्क्विथ जैसे माननीय राजनीतिज्ञ भी इसी शर्त्तपर सरकारकी इस नीतिसे सहमत हो गए कि युद्धके पश्चात् अन्य आर्थिक विषयोंके समय इसपर भी पुनः विचार किया जायगा। तथापि भारतीय लोग तत्कालीन भारत-सचिव श्रीयुत ऑस्टेन चैम्बरलेनके बड़े कृतज्ञ रहेंगे; क्योंकि उन्होंने इस विषयमें बड़ी दृढ़ता दिखाई और लङ्काशायरके प्रतिनिधियोंको यह उत्तर दिया कि यदि भारतमें आयातपर कर न बढ़ा होता तो युद्ध कालमें भारत दस करोड़ पौण्डका दान नहीं दे सकता था।

यहाँ पर मैंने इङ्गलैण्ड तथा भारतके व्यावसायिक सम्बन्धका तथा भारतके प्रति इङ्गलैण्डकी नीतिका जो सङ्क्षिप्त वर्णन किया है, उससे मैं समझता हूँ कि सरकारको भारतकी रक्षा-नीतिकी ओर न झुकने देनेवाले, और इससे बृटिश हितकी हानि समझनेवाले भारतविरोधी अँग्रेज़ समझ जायँगे कि गत डेढ़ सौ वर्षोंमें बृटिशकी समृद्धिमें भारतने कितना योग दिया है, तथा सरकारकी कठोर नीतिके अवलम्बनसे भारतको कितनी क्षति उठानी पड़ी है। मैं आशा करता हूँ कि उन्हें यह ज्ञात हो जायगा कि यह इसी नीतिका परिणाम है कि भारतपर डेढ़ सौ वर्षोंसे बृटिश राज्यके शासनके बाद भी भारत अपने बहुल तथा पर्य्याप्त प्राकृतिक साधनोंके रहते हुए भी संसारका सबसे दरिद्र राष्ट्र है। यदि वे इसकी तुलना उन स्वतन्त्र उपनिवेशोंकी समृद्धिसे करें जिन्हें व्यावसायिक उन्नतिकी स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है, वे भारतकी अपनी राष्ट्रीय शक्ति तथा सम्पन्नता प्राप्त करनेके लिये भारतको स्वतन्त्रता देनेकी आवश्यकता और न्यायपर विचार करेंगे। इस नीतिसे केवल भारतका ही लाभ नहीं होगा बल्कि इससे इङ्गलैण्डका भी हित होगा, क्योंकि यदि भारत धनी होगा, और भारतीय लोग सुखसे जीवन-निर्वाह करेंगे तो स्वभावतः इसकी विशाल जन-संख्याको वर्त्तमान माँगसे भी अधिक परिमाणमें आयातकी आवश्यकता पड़ेगी। श्रीयुत दादाभाई नौरोजीने इस विचारकी बार-बार पुनरावृत्ति की तथा वर्त्तमान समयके उन्नतिशील राष्ट्रोंके इतिहाससे भी इसकी पुष्टि होती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण संयुक्त-राज्य अमेरिकाका इतिहास है। निम्नाङ्कित संख्याओंसे प्रतीत होता है कि उनकी समृद्धिके साथ-साथ उनके आयातमें भी कितनी वृद्धि हुई है।

वर्ष			आयात
१८६०	....	....	३५३ करोड़ डालर
१८७०	....	....	४३५ "
१८८०	....	....	६६७ "
१८९०	....	....	७८९ "
१९००	....	....	८४९ "

जापानके व्यावसायिक इतिहाससे भी यही बात प्रकट होती है। जैसे-जैसे जापान अपनी व्यावसायिक तथा आर्थिक अवस्थामें वृद्धि कर रहा है, वैसे ही संसारके व्यापारियोंमें अपने बाज़ारको भी बढ़ाता जाता है। निम्नाङ्कित विवरणसे यह स्पष्ट हो जाता है।

पिछली शताब्दियोंमें जापानकी वार्षिक औसत आयात दस लाख येनके हिसाबसे मूल्य—

	ग्रेट बृटेनसे	जर्मनीसे	संयुक्त राज्य अमेरिकासे	अन्य देशोंसे	सब देशोंसे
१८८१–१८९०	१९·६	३·४	४·२	१९·३	४६·५
१८९१–१९००	४६·६	१४·८	१२·८	८७·०	१७१·२
१९०१–१९०९	८४·३	३६·१	६५·८	१९९·८	३८६·०

उपर्युक्त संयुक्त राज्यकी आयात-सामग्रियोंकी उन्नति तथा बहुप्रकारताकी आलोचना करते हुए श्री क्लाइव डे अपनी (हिस्टरी औफ़ कौमर्स) 'व्यापारके इतिहास' के पृष्ठ ५६८ पर कहते हैं—

"ऐसी आशा की जाती है कि संयुक्त राज्य सदा विभिन्न प्रकारकी और बहुत अधिक मूल्यका उपर्युक्त तैयार माल मँगाता रहेगा। हम लोग उन राष्ट्रोंके बड़े कृतज्ञ हैं जिन्होंने विभिन्न कलाओंमें विशेषता प्राप्त कर ली है। तथा अपनी प्रकृति-दत्त सामग्रियोंके कारण हमारे यहाँ उन वस्तुओंको भेजते हैं जो हम अपने यहाँ नहीं तैयार कर सकते।"

ठीक यही बात मैं अपने देशके भविष्यके विषयमें भी कह सकता हूँ कि यह मानकर कि अपने व्यवसायोंकी पूर्णतया वृद्धिके लिये हमें पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है। परन्तु मैं इस प्रश्नको अधिक बढ़ाना नहीं चाहता। मैं यह जानकर प्रसन्न हूँ कि बर्लेके लौर्ड बालफ़रके सभापतित्वमें, महायुद्धके पश्चात् व्यापारिक तथा उद्योग-विषयक नीतिकी समितिने भी यही मत प्रकट किया था। अपनी अन्तिम रिपोर्टके दो सौ बत्तीसवें तथा दो सौ तैंतीसवें अंशोंमें उन्होंने कहा है कि—

"जहाँ सम्पूर्ण योरोप अन्ताराष्ट्रीय प्रतियोगिताके निश्चित क्षेत्रोंमें विभाजित कहा जा सकता है, जहाँकी स्थानीय परिस्थितियाँ, लाने-ले जानेके साधनोंकी सुविधाएँ तथा स्थानीय आवश्यकताओंके लिये उत्पादनकी उपयुक्तता ही के आधिपत्यके कारण बन गई हैं वहाँ संसारके निर्यातकारी राष्ट्रोंकी भावी वृद्धिके लिये अब भी नये वाज़ार बने हुए हैं। चालीस करोड़ जनसंख्यावाला तथा प्राचीन सभ्यतावाला चीन हमारी व्यापारिक वस्तुओंको निकट भविष्यमें अपने देशके लिये बहुत अधिक परिमाणमें अवश्य मँगायगा। स्वयं भारतमें भी बड़ी खपत हो सकती है, तथा साइबेरिया और अन्य छोटे-छोटे दूरस्थ पूर्वीय देशोंमें भी इसकी माँग है, जो भविष्यमें लाभकर बन सकते हैं।"

"यह सत्य है कि इस विषयमें जापानकी प्रतियोगिताकी गणना सबसे बढ़कर करनी होगी, परन्तु इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि पूर्वीय राष्ट्रोंकी जनताके जीवन-निर्वाहकी दशामें उन्नतिके साथ तत्सम्बन्धी वस्तुओंके परिमाण और उनके स्वरूपमें भी वृद्धि करनेकी माँगमें भी वृद्धि होगी। इस उन्नतिसे बृटिश व्यवसायोंको भी अवश्य लाभ होगा, तथा इसी कारणसे और प्रकारके रेलवे आदि उद्योगोंका भी विस्तार करना पड़ेगा।"

अपने देशकी व्यावसायिक उन्नति करनेकी आशा भारतीयोंमें अत्यधिक दृढ़ इसलिये हो गई है कि उन्हें यह ज्ञात हो गया है कि भारतीय व्यावसायिक उन्नतिके विषयमें अपने पूर्वजोंके समान हमारे वर्त्तमान वाइसराय तथा भारत-सचिव महोदयने भी उदार नीति प्रकट की है। उन्होंने व्यवसायात्मक सुधारोंकी रिपोर्टके निम्नाङ्कित उद्धरणको सन्तोषके साथ पढ़ा है:—

"भारतमें आर्थिक प्रौढ़ता देनेके लिये ही नहीं बल्कि वहाँके लोगोंकी अपने देशको संसारमें पूर्ण समुन्नत करनेकी इच्छाकी पूर्त्तिके लिये वहाँकी व्यावसायिक वृद्धिके लिये एक हितकर नीति निर्धारित करनी चाहिए, जिससे भारतीय नवयुवकोंकी शक्ति सरकारी अथवा अन्य भरी हुई वृत्तियोंसे रोककर नवीन क्षेत्रोंकी ओर लगाई जा सके, तथा देशकी सञ्चित और बेकार पड़ी हुई पूँजी सम्पूर्ण जातिके लाभके लिये प्रयोग की जा सके; तथा

भारतीयोंकी रुचि साहित्यिक तथा अन्य कल्पनात्मक बातोंसे हटाकर व्यावहारिक कार्य्योंमें लगाई जा सके, जिससे कि जनता नवीन शासन-व्यवस्थासे मिलनेवाले नये दायित्वोंको वहन करनेमें समर्थ हो सके। इन्हीं विचारोंसे, लौर्ड हार्डिञ्जकी सरकारने औद्योगिक कमीशनको नियुक्त किया। ये राजनीतिक कारण केवल भारतके लिये ही लागू हैं, किन्तु आर्थिक तथा सैनिक दृष्टिसे भी राजकीय हित इसीमें है कि अबसे भारतके प्राकृतिक भाण्डारको एक लाभकर रूपमें प्रयोग किया जाय। व्यावसायिक भारतसे साम्राज्यकी शक्ति कितनी दृढ़ हो जायगी, इसकी हम कल्पना नहीं कर सकते; परन्तु हम लोगोंकी यह आशा है कि युद्धके पश्चात् इस नीतिका स्वागत होगा।"

यह आशा कहाँतक पूरी होगी, यह अधिकतर इसी प्रश्नके हल हो जानेपर निर्भर है कि भारतकी व्यावसायिक उन्नति करनेका अधिकार तथा दायित्व व्यवस्थापिका सभाके निर्वाचित प्रतिनिधियोंके अधीन भारत-सरकारके हाथमें रहेगा या नहीं। यह बात हमारी सभी सिफ़ारशोंकी आधार है।

उद्योग और कृषि

रिपोर्टके पाँचवें अध्यायमें व्यवसाय तथा कृषिपर विचार करते हुए मेरे साथी कहते हैं कि—

"हम लोग इस देशमें कृषिकी उन्नतिके विशेष महत्त्वपर अपना परम निश्चित विचार प्रकट करते हैं तथा हृदयसे यह चाहते हैं कि इसकी उन्नतिके लिये सभी आवश्यक उपायों तथा साधनोंका प्रयोग किया जाय।"

वे आगे भी कहते हैं :—

"हम सोचते हैं, इस प्रकारकी उन्नति केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंके कृषि-विभागोंके अधीन संस्थाओंके द्वारा भी हो जायगी। यद्यपि इन साधनोंके प्रयोगसे अभी कोई विशेष आर्थिक लाभ नहीं हो रहा है, किन्तु आशा की जाती है कि व्यवसायकी वृद्धिके साथ-ही-साथ उन्हें बड़े-बड़े कारख़ानोंकी आवश्यकता होने लगेगी, जिनमें बहुसंख्यक कलों व यन्त्रोंका निर्माण होने लगेगा, जिन्हें प्रजा श्रम बचानेवाले साधनोंके रूपमें स्वीकार करेगी।"

वे उन्नतिशील कृषि-सम्बन्धी साधनोंकी सम्भावनाको बताते हुए यह दिखलाते हैं कि कूओं, नलों, तालाबों तथा नदियोंसे सिंचाईके लिये पानी खींचनेमें, तथा नीची सतहवाले खेतोंको गहरी जुताई करके कृषि-योग्य बनानेमें मशीनोंका प्रयोग किया जा सकता है। उन्होंने कटाई, दँवरी तथा भुस उड़ानेके लिये हाथके नवीन यन्त्रोंके प्रयोग करनेकी भी सिफ़ारिश की है। वे आगे कहते हैं कि :—

"भारतमें अभी मशीनके यन्त्रोंके प्रयोगकी चाल नहीं है और उद्योग तथा कृषि-विभागका यह एक मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह इन प्रयोगोंका जैसे हो वैसे प्रचार करावे। बहुत दिनोंतक भारतमें कृषि-व्यवसायमें इन नवीन यन्त्रोंके प्रयोगका अधिकांश भार अधिकारियोंके सङ्गठन तथा श्रेष्ठतापर निर्भर है, जिनके विभाग इनके प्रयोगके प्रचारके लिये तथा उनका प्रयोग करनेवालोंकी सहायताके लिये स्थापित किए गए हैं।

इस सम्बन्धमें मैं भारतीय सरकारके कृषि-मन्त्री श्री जेम्स मैककेनाके विचारोंकी ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। सन् १९१५ ई० में छपे अपने "भारतमें कृषि" नामक महत्त्वपूर्ण पत्रके उन्नीसवें पृष्ठपर वे कहते हैं कि :—

"हम लोगोंने देखा है कि योरोपीय यन्त्रोंका प्रचार अव्यवसायी कृषि-सुधारकोंके लिये बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इनके प्रचारमें सबसे अधिक वृद्धि अनाज पछोड़ने तथा ऊखके पेलनेके काममें हुई है। परन्तु खेत काटने अथवा भारी अंग्रेज़ी हलोंके प्रयोगमें बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। इस प्रकारकी खेत काटनेवाली कलोंका उचित प्रयोग उन

बड़े स्थानोंमें ही हो सकता है जहाँपर मज़दूरोंका अभाव है। परन्तु जहाँकी आबादी घनी है और जहाँ मज़दूरी सस्ती है वहाँ इनका प्रयोग अत्यन्त हानिकर होगा। क्योंकि मज़दूरोंके हाथसे यदि काटनेका काम छीन लिया गया तो वे बेकार पड़ जायँगे और वे अपना यह व्यवसाय सदाके लिये भूल जायँगे। भारी हलोंके प्रयोग करनेसे पहले गहरी जुताईकी आवश्यकता सिद्ध करनी होगी। किन्तु इस विलायती हलके प्रयोगमें दो वाधाएँ भी हैं। एक तो उनके खींच सकनेवाले बैल मिलने कठिन होंगे, दूसरे उनके बिगड़े हुए पुर्ज़े बनवानेमें बड़ा व्यय होगा, जिसे एक साधारण किसान नहीं सह सकता। इसके विपरीत हमारे देशी हलोंमें यह गुण है कि उन्हें साधारण बैल भी खींच सकते हैं तथा बिगड़नेपर उन्हें सभी किसान स्वयं बना लेते हैं। अतएव भारतके लिये इनका प्रयोग निश्चय फलदायक है।”

मैं इस विचारका पूरी तरह समर्थन करता हूँ। श्रीयुत मैककेनाद्वारा प्रदर्शित ये कठिनाइयाँ, शक्ति-सञ्चालित कलोंके प्रयोगमें भी बाधक हैं। जैसा कि मेरे साथियोंने बताया है कि, “योरोप तथा जर्मनीकी कृषि-सम्बन्धी परिस्थिति और भारतकी परिस्थितिमें बड़ा अन्तर है। यहाँकी कृषिमें कलोंका प्रयोग अत्यन्त कम इसी कारण हुआ है कि यहाँके खेत बहुत छोटे होते हैं और दूर-दूर हैं, तथा यहाँकी प्रजा दरिद्र है।” इस विषयमें दक्षिण भारतमें जो उद्योग किया गया है वह भी वर्त्तमान आर्थिक विचारसे बहुत आशाजनक तथा लाभप्रद नहीं प्रतीत होता। अतएव कृषिकी उन्नतिके लिये आधुनिक विलायती कलोंका प्रयोग भारतमें तभी करना चाहिए जब यहाँकी आर्थिक परिस्थितिमें कुछ सुधार हो जाय। मैं इस विचारका समर्थन नहीं करता कि, “उद्योग तथा कृषि-विभागके द्वारा जैसे हो वैसे इन नवीन यन्त्रोंके प्रचारको प्रोत्साहन दिया जाय।” मुझे डर है कि कमीशनकी इस प्रकारकी सिफ़ारिशसे प्रभावित होकर कहीं हमारे अधिकारीवर्ग, देशके किसानोंकी वर्त्तमान आर्थिक अवस्था तथा उनके हितपर बिना कुछ ध्यान दिए, मशीनकी कलोंकी उन्नति तथा कारख़ानोंके हितके लिये भारतमें शक्ति-सञ्चालित यन्त्रोंका प्रयोग प्रारम्भ न करा दें। इन कारणोंसे तथा इस विचारसे कि शक्ति-सञ्चालित यन्त्रोंका प्रयोग करनेमें कुछ समय लगेगा, मैं अपना यह कर्त्तव्य समझता हूँ कि आपका ध्यान मुख्यतः कृषि-सम्बन्धी शिक्षाकी उन्नतिकी ओर आकर्षित करूँ।

श्रीमैककेनाने अपने उपर्युक्त लेखपत्रमें बृटिश शासनमें भारतके कृषि-विषयक इतिहासका वर्णन किया है। कृषि भारतका प्रधान व्यवसाय है। प्रायः बीस करोड़ जनता खेतीसे अथवा इससे सम्बन्धित अन्य व्यवसायोंसे अपनी जीविका उपार्जन करती है। सन् १८८० ई० के अकाल-कमीशनने प्रत्येक प्रान्तमें एक सञ्चालकके अधीन खेतीकी जाँच, खेतीकी उन्नति तथा अकाल-निवारक उपायोंके लिये ज़ोरदार सिफ़ारिश की। ये विभाग स्थापित भी किए गए, परन्तु सन् १८८१ ई० के प्रस्तावके अनुसार भारत-सरकारने खेतीकी जाँच समाप्त होनेतक खेतीकी उन्नति रोकनेकी राय दी। सन् १८९९ ई० तक कुछ भी नहीं हो सका। उस वर्षके अन्तमें भारत-सचिवने रौयल एग्रिकल्चरल सोसाइटीके डाक्टर वोयलकरको भारतीय कृषिकी उन्नतिके लिये सम्मति देने तथा उसकी जाँच करनेके लिये भेजा। भारतवर्षमें अपनी लम्बी यात्राके बाद तथा कई सम्मेलनोंके बाद डाक्टर साहबने एक नियमित जाँच-समिति तथा सार्वजनिक कृषि-शिक्षाके प्रचारकी सिफ़ारिश की तथा सम्भव कृषि-सम्बन्धी उपायोंका पूर्ण विवेचन भी करके दिखला दिया। सन् १८९२ ई० में जङ्गल तथा कृषिके प्रश्नोंकी जाँच करके उसकी सूचना देनेके लिये एक कृषि-रसायन-विशारद तथा सहायक रसायनज्ञकी नियुक्ति हुई। सन् १९०१ ई० में एक कृषि-विभागके इन्सपेक्टर जनरल नियुक्त किए गए। सन् १९०३ ई० में इस विभागमें दो और वैज्ञानिकोंकी नियुक्ति की गई। श्रीयुत मैककेना कहते हैं कि:—

"इसका उद्देश्य भारतमेँ कृषिकी उन्नतिद्वारा भारत-सरकारकी आमदनी बढ़ानी थी। परन्तु इस उन्नतिके लिये कुछ भी नहीँ किया गया, और प्रान्तीय सरकारेँ पृथ्वी-मापक विभागको बढ़ाने तथा आँकड़े एकत्र करनेमेँ ही लगी रहीँ।

सन् १९०५ ई० मेँ शिकागोनिवासी श्री हेनरी फ़िप्सके द्वारा वाइसरायको दिए हुए तीस हज़ार पौण्डके उदार दानसे पूसामेँ एक कृषि-अन्वेषण-संस्था (ऐग्रिकल्चर रिसर्च इन्स्टिटयूट) की स्थापना हुई।

सन् १९०५-१९०६ ई० मेँ भारत-सरकारने यह घोषित किया कि कृषिकी उन्नतिके लिये प्रतिवर्ष बीस लाख रुपया (जो पीछे चौबीस लाख कर दिया गया) व्यय किया जायगा। फलतः कृषि-सम्बन्धी कौलेजोँकी स्थापना पूना, कानपुर, साबूर, नागपुर, लायलपुर तथा कोयमबटूरमेँ की गई। ये कौलेज् अच्छी तरह अपना कार्य्य कर रहे हैँ, परन्तु इस प्रकारकी कृषि-सम्बन्धी शिक्षासे जनताको बहुत कम लाभ हुआ है। मैँ यहाँपर यह स्वीकार करता हूँ कि विशेषकर गेहूँ तथा रूईकी पैदावारमेँ बड़ी-बड़ी सरकारी नहरोँकी सिँचाईसे अधिक लाभ हुआ है। इस उन्नतिके लिये सरकार धन्यवादकी पात्र है। परन्तु मैँ तात्कालिक आवश्यकता तथा अन्य उन्नतिके उपायोँकी ओर उसका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। सिँचाईके साधनोँमेँ विशेष उन्नतिकी आवश्यकता है। सरकारको चाहिए कि एक नियमित तथा विस्तृत प्रणाली निर्धारित करेँ, जिसमेँ कृषिकी शिक्षाका विशेष स्थान हो।

कृषि-विषयक शिक्षा

सन् १९१५ ई० मेँ इस विषयपर लिखते हुए श्री मैककेनाने कहा था कि "सम्भवतः कृषिकी शिक्षाके समान किसी भी विषयपर इतना अधिक नहीँ लिखा गया है और न उसपर इतना कम ध्यान दिया गया है। किसान लोग इसके लिये बड़े चिन्तित हैँ, किन्तु उनकी कोई सुनवाई नहीँ होती। अनेक सम्मेलनोँमेँ इस विषयपर बहस हुई और अनेक लेखकोँने इसपर बहुत कुछ लिखा भी किन्तु फल कुछ भी न हुआ।" सन् १८८० ई० मेँ ही अकाल-कमिश्नरोँने यह कहा कि *जबतक देहाती जनता इतनी शिक्षित न हो जाय कि वह कृषि-विषयकी उन्नति तथा सुधारोँमेँ मुख्य दिलचस्पी ले तबतक इस विषयमेँ किसी प्रकारकी उन्नतिकी आशा करना व्यर्थ है।* इस विचारका समर्थन, सन् १८८८ के कृषिसम्मेलनमेँ भी किया गया। इस सम्मेलनने मुख्य सम्मति यह दी कि किसानोँ मेँ प्रारम्भिक शिक्षाका प्रचार किया जाय" इसी मूल आधारपर और भी उपाय सुझाए। बहुत दिनोँतक "यही मुख्य धारणा रही कि देहाती स्कूलोँ मेँ खेती की शिक्षा अवश्य दी जाय। सौभाग्यसे अब यह विचार छोड़ दिया गया है। यह मान लिया गया है कि इस प्रकार की कृषि-शिक्षा स्कूलोँ मेँ नहीँ दी जा सकती और देहाती शिक्षा व्यापक और कृषि-विषयक शिक्षा वैज्ञानिक होनी चाहिए।"............"आज-कलका विचार यह है कि इस प्रकारसे कृषि पढ़ानेकी अपेक्षा यह अच्छा होगा कि प्रारम्भिक शिक्षा कृषिमय बना दी जाय कि बालकोँको अपने स्कूलके वातावरणसे ही प्रकृति-निरीक्षणमेँ रुचि होने लग जाय। इसी विचारसे नवीन पाठ्य पुस्तकेँ लिखी जा रही हैँ, जिनमेँ ऐसे ही विषयोँका सङ्कलन हो रहा है और प्रकृति-निरीक्षणमेँ रुचि बढ़ानेके लिये स्कूलोँ मेँ बाग़बानी सिखाई जाने लगी है। किन्तु अभीतक उपयुक्त शिक्षक नहीँ मिल रहे हैँ। किन्तु मैँ कह चुका हूँ कि विशेष शिक्षाकी अपेक्षा साधारण शिक्षासे ही जनताकी बुद्धिमेँ स्वाभाविक विकास हो जायगा। प्रारम्भिक स्कूलोँमेँ सबसे मुख्य बात यह होनी चाहिए कि साधारण शिक्षाको ऐसा दृढ़ कर दिया जाय कि बालकोँमेँ विचार तथा निरीक्षणकी शक्तिका विकास हो सके। यदि ऐसा हो गया तो अपने वातावरणके प्रति इसपर स्वभावतः ध्यान जाने लगेगा।"

श्रीयुत मैककेना अन्तमेँ कहते हैँ कि—

"भली प्रकार जाँचकर उचित उपाय जान लेनेके

पहले भारतमैँ कृषिकी शिक्षाका प्रचार करना बिल्कुल दोषपूर्ण है और इस दोषका प्रभाव केवल प्रारम्भिक शिक्षापर ही नहीँ बल्कि कौलेजूकी शिक्षापर भी पड़ा है।”

पैँतीस वर्षकी बहस, जाँच तथा परीक्षाके बाद हमारी यह स्थिति है। अन्य सभ्य देशोँमैँ कृषि शिक्षाके लिये अत्यन्त थोड़े समयमैँ ही एक निश्चित कार्य्य-प्रणाली निर्धारित कर ली गई और उनको उन्नति भी हुई। सन् १८९६ ई० की रिसेस् कमेटीमैँ सर होरेस प्लङ्केट्की रिपोर्टमैँ उस वर्षसे पहले योरोपके देशोँमैँ प्रचलित कृषि तथा उद्योग शिक्षा-प्रणालीकी उन्नतिमैँ राजकीय सहायताका वर्णन किया है। यद्यपि इन देशोँ तथा जापान और अमेरिकाने तबसे कृषिकी शिक्षा तथा उसके सुधारोँमैँ विशेष उन्नति कर ली है, किन्तु फिर भी यह रिपोर्ट बड़े काम की है। मैँ यहाँपर उसमैँसे केवल एक अंश उद्धृत करूँगा। सर होरेस प्लङ्केट् और उनके साथियोँने कहा है कि—

“कृषिकी सहायताके लिये सरकारका सबसे उचित कार्य्य शिक्षाके सम्बन्धमैँ है। प्रत्येक स्थानपर यह एक सिद्धान्त समझा जाता है कि सभी प्रकारकी उन्नतिमैँ सबसे प्रभावशाली साधन सर्वसाधारणमैँ कृषिका ज्ञान तथा किसानोँकी व्यापक जागर्त्ति की है। यह सिद्धान्त इससे और भी पुष्ट हो जाता है कि अन्य राष्ट्रोँने कृषि तथा अन्य व्यवसायोँकी उन्नतिके लिये वैज्ञानिक शिक्षामैँ बहुत बड़ी रक़म व्यय की है।” उद्योग और व्यवसायके उच-सङ्घ तथा कृषि-कौन्सिलके अध्यक्ष श्रीयुत एम्. मैरे औयन्स कहते हैँ कि, “कृषिकी उन्नतिके लिये व्यय की हुई प्रत्येक कौड़ी सौगुना लाभ देती है। बेल्जियमके कृषि-मन्त्रीने गत वर्ष पार्लियामेण्टमैँ अपना विवरण देते हुए लिखा है कि, “कृषिकी शिक्षामैँ व्यय किया हुआ प्रत्येक फ्रैङ्क कई गुना लाभ देता है।” श्री तिसेराँ कहते हैँ कि, “सन् १८९० से फ्रान्सकी कृषिमैँ विशेष उन्नतिके प्रधान कारण, “हमारे स्कूल, अध्यापक, प्रयोगशाला तथा प्रमुख वैज्ञानिकोँके व्याख्यान हैँ, जिन्हेँ सरकारने इस विषयमैँ विशेषज्ञ बननेके लिये नियुक्त किया है।” श्रीयुत एम्. एच्. जैन्किन्स अपनी व्यवसाय-शिक्षा-विषयक रौयल कमीशनकी रिपोर्टमैँ कहा है कि, “डेन्मार्कमैँ कृषि-शिक्षाका प्रभाव बहुत ही आश्चर्य्यकारी हुआ है।” डेन्मार्कका बना हुआ मक्खन अब संसार भरमैँ सर्वोत्तम होता है। सन् १८८० ई० मैँ कौपेनहैगेनमैँ उसे ही बृटिश-वाइस-कौन्सलने “अत्यन्त निकृष्ट” बताया था। तबसे जो उन्नति हुई है उसका श्रेय कृषि-विषयक शिक्षाको ही है।”

(रिपोर्ट पृष्ठ ५४-५५)

यह बताना व्यर्थ है कि अमेरिकामैँ कृषि-विषयक शिक्षामैँ कितनी उन्नति हुई है और इसीके द्वारा वह कितना समृद्धिशाली तथा उन्नत राष्ट्र बन गया। परन्तु मैँ यहाँपर जापानका नाम अवश्य लूँगा। हम लोग जानते हैँ कि जापानने खेतीमैँ अनुकरणीय उन्नति की है। बहुत वर्ष हुए उसने कृषि-शिक्षाके लिये एक भव्य-प्रणालीका अवलम्बन किया। श्रीयुत सर फ्रेड्रिक निकोलसनने (नोट औन एग्रिकल्चर इन जापान) “जापानकी कृषिपर एक दृष्टि” पुस्तिका लिखी है, जिसे उन्होँने अन्य लिखित बातोँके साथ कमीशनमैँ भेजा था। उसमैँ उन्होँने सन् १९०७ ई० मैँ प्रयुक्त जापानकी कृषि-शिक्षा-प्रणालीका वर्णन किया है। उस प्रणालीका यहाँ वर्णन करना आवश्यक नहीँ है। मेरा अभिप्राय केवल यह था कि इन दृष्टान्तोँपर विचार करके भारतीय किसानोँमैँ शीघ्रातिशीघ्र कृषि-उपयोगी शिक्षा-प्रणालीके प्रचारका उद्योग किया जाय।

मैँ यह भी राय दूँगा कि हमारा सरकारी कृषि-विभाग डाक्टर वोएलकरके आदेशोँका पालन करनेका प्रयत्न करे, जिनपर अभीतक ध्यान नहीँ दिया गया है और जिसमैँ मुख्यतः “ईंधन तथा चारेके अड्डोँकी स्थापना” वाला अध्याय विशेष दर्शनीय है। हम लोगोँका इस विषयपर विशेष ध्यान आकृष्ट किया गया था कि चारे तथा ईंधनके मँहगे होनेसे, सर्व

साधारण तथा मुख्यतः किसानोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि हम लोगोंको यह सूचना मिली थी कि प्रान्तीय आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिये पञ्जावके जङ्गल-विभागने गत वर्ष प्रायः चालीस हज़ार एकड़ जमीन सिंचाईसे युक्त पैदावारके लिये ली थी।

खाद्य पदार्थोंकी महँगी तथा उसके फल-स्वरूप जनताके दुःख तथा कष्टने पैदावार बढ़ानेकी बातको और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया है। अपने (एग्रिकल्चरल प्रौब्लेम्स औफ़ इण्डिया) 'कृषि-विषयक समस्याएँ' नामक पुस्तिकामें, जिसे श्री राय गङ्गाराम बहादुरने कमीशनमें पेश की है, लिखा है कि—"हम एक ऐसे युगमें प्रवेश कर रहे हैं जिसमें हम लोग केवल अपनी आवश्यकताकी पूर्त्तिमात्र कर सकते हैं। अभी उत्पादनमें इतनी बचत नहीं हुई है कि सालमें अनावृष्टि हो जानेपर हम अपनी माँगकी पूर्त्ति कर सकें। हम लोगोंमें एक और दुर्बलता यह है कि भारतमें अन्य देशोंकी अपेक्षा प्रति एकड़ भी बहुत कम पैदा होता है। राय गङ्गाराम बहादुरकी पुस्तकके आठवें अध्यायमें बारहवें पृष्ठपर दिए हुए आँकड़ेसे हमें शिक्षा लेनी चाहिए। संयुक्तप्रान्त तथा वम्बईमें प्रति एकड़ औसत पैदावार १२५० पौण्ड, ग्रेट बृटेनमें १९७३ पौण्ड, बेल्जियममें २१७४ पौण्ड, डेन्मार्कमें २५२६ पौण्ड, स्विज़रलैण्डमें १८५८ पौण्ड रहा। जौकी प्रति एकड़ औसत पैदावार संयुक्तप्रान्तमें १३०० पौण्ड, ग्रेट बृटेनमें २१०५ पौण्ड, बेल्जियममें, २९५२ पौण्ड, डेन्मार्कमें २४५६ पौण्ड तथा स्विज़रलैण्डमें १९४० पौण्ड था। पश्चिमोत्तर सीमान्तप्रदेशकी औसत मक्केकी पैदावार प्रति एकड़ १३५६ पौण्ड, कनाडामें ३४८७ पौण्ड, न्यूज़ीलैण्डमें ३१९१ पौण्ड, स्विज़रलैण्डमें २१९८ पौण्ड। धानकी पैदावार जितनी औसत प्रति एकड़ जापानमें होती है उसकी आधी भारतमें होती है। अतएव हम लोगोंको उन्नति करनेका बहुत बड़ा क्षेत्र है और उन्नति करनेकी अत्यन्त शीघ्र आवश्यकता भी है। भारत तथा साम्राज्य दोनोंकी यही पुकार है और मैं इसका पूर्णतया समर्थन करता हूँ कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दोनोंके कृषि-विभाग इसपर पूर्ण ध्यान दें। इसी सम्बन्धमें मैं कृषि-सम्बन्धी उन्नतिके लिये प्रचुर कोषके दानकी आवश्यकतापर भी ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। सन् १८८२ ई० में भारतहितैषी सर विलियम वेडरवर्नने कृषिकी उन्नतिके लिये तथा खेतीके बैङ्कोंकी स्थापनाके लिये बड़ा ज़ोर दिया था। भारतीय राष्ट्रीय महासभाने इस बातकी ओर सरकारका ध्यान दिलाया। परन्तु उसपर अभीतक कुछ कार्रवाई नहीं की गई। मैं श्रीयुत रानाडेद्वारा पूनामें सन् १८९१ ई० में व्यावसायिक सम्मेलनके अवसरपर 'भारतमें ग्राम्य बैङ्कोंका पुनः सङ्घटन' पर पठित लेखका उल्लेख करूँगा। (रानाडेके लेख (ऐस्सेज़) पृष्ठ ४१-६४)। कृषि-सहायक बैङ्कोंकी स्थापनाके लिये यह बहुत ज़ोरदार कारण है। श्रीयुत रानाडेने जिन देशोंका वर्णन किया है, उनको छोड़कर मैं कह दूँ कि जापानने कृषिकी उन्नतिके लिये सर्वोत्तम प्रणालीका अनुसरण किया है। सन् १९१७ ई० के जापानके वार्षिक विवरण (जापान ईयर बुक) में लिखा है कि—

"दो प्रकारकी कृषि-सम्बन्धी सहायता होती है। पहली दीर्घकालिक दूसरी अल्पकालिक। पहलेका उपयोग खेतीके योग्य खेतोंके ख़रीदने तथा उसकी उन्नतिके लिये तथा अन्य किसी प्रकारकी स्थायी उन्नतिके लिये पचास वर्ष तकके लिये ऋण दिया जा सकता है। अल्पकालिक ऋण, खाद, यन्त्र तथा जानवरोंके चारेके लिये लिया जाता है। हमारे बैङ्क प्रायः पाँच या इससे कम वर्षोंके लिये देते हैं। इन कृषि-सम्बन्धी बैङ्कोंकी सहायताके लिये और भी ऋण देनेवाली संस्थाएँ हैं।

व्यावसायिक शिक्षा

आधुनिक व्यावसायिक शिक्षाका जन्म सन् १८५१ ई० की प्रसिद्ध लन्दनकी अन्ताराष्ट्रीय प्रदर्शनी कही जा सकती है। साधारणतया यह कहा जा

सकता है कि अँग्रेज़-जातिके व्यावसायिक शिक्षाके उपयोगमेँ विश्वास नहीँ किया तथा इङ्गलैण्डमेँ उन्हेँ यह विश्वास दिलानेका बड़ा प्रयत्न किया गया है। सबसे पहला प्रयत्न इस विषयमेँ महोदय जे. स्कौट रसेलने किया। जिन्होँने सन् १८६६ ई० मेँ "अँग्रेज़ जातिके लिये नियमित शिल्पविज्ञान-शिक्षा" नामक ग्रन्थको प्रकाशित किया। इस पुस्तकमेँ यह दिखलानेके पश्चात् कि शिक्षा सर्वविषयक तथा मुख्य-विषयक दोनोँ ही तरहकी होनी चाहिए, उन्होँने लिखा है कि :—

"संसारमेँ उस जातिको सर्वप्रथम स्थान मिलेगा जिसने अपनी जनतामेँ साधारण तथा सर्वोच्च विशेष शिक्षाके प्रचारमेँ अधिक कष्ट उठाया है। दूसरे शब्दोँमेँ, राष्ट्रके कार्य्योँका मूल्य उसके शिल्पविज्ञानकी शिक्षाकी विशेषताके अनुसार घटा बढ़ा करेगा। जो कुछ मैँने ऊपर कहा है वह सिद्धान्तात्मकसा प्रतीत होता है। मैँ तो ऐसा ही समझता हूँ, किन्तु मैँ विश्वास करता हूँ कि किसी पाठकका दिल न दुखेगा, यदि मुझे बिल्कुल दूसरी तरहसे उसे समझाना पड़े। अंग्रेज़ जाति औद्योगिक शिक्षाकी उपयोगितामेँ विश्वास नहीँ रखती। उससे भी कम वे राष्ट्रीय शिक्षाकी उपयोगितामेँ और उससे भी कम वे राज्य तथा विधान और शिक्षित वर्गद्वारा सम्पूर्ण जातिकी शिक्षा देनेमेँ विश्वास करते हैँ। इस अध्यायका उद्देश यह दिखलाना है कि औद्योगिक शिक्षासे राष्ट्रीय तथा व्यावसायिक लाभ होता है तथा इसके न होनेसे आर्थिक हानि हुई है और इसका निरन्तर तिरस्कार करनेसे हमारी जातिके सामाजिक पतनका अन्देशा है।"

"गत वर्षोँमेँ बृटिश जातिको जाग्रत करनेके लिये राष्ट्रीय लाभ पहुँचानेवाले अनेकोँ महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक कार्य्य हुए हैँ। गत पचास वर्षोँमेँ वे कुछ प्रमुख वैज्ञानिकोँके अन्वेषणोँका, जिनके द्वारा आधुनिक व्यावसायिक प्रणालीका जन्म हुआ, अद्भुत लाभ उठाते रहे हैँ; तथा ईश्वरने भी उनकी भूमिके गर्भमेँ कोयला, लोहा आदि खनिज पदार्थोँको शताब्दियोँसे पर्य्याप्त रूपमेँ भरा है कि इस व्यावसायिक युगमेँ उनका उत्तम रीतिसे प्रयोग करके लाभ उठाया जाय। चूँकि कुछ अन्वेषकोँकी बुद्धिने कोयले और लोहेको मनुष्यके व्यावसायिक लाभके योग्य सिद्ध कर दिया, अतएव अंग्रेज़ जाति यह सोचने लगी कि वे स्वयं ही उन देशोँसे सभ्यता तथा योग्यतामेँ श्रेष्ठ हैँ जहाँ कोयला लोहा तथा यन्त्रकलाके साधन नही हैँ। अर्द्ध-शताब्दीतक उन्हेँ इस स्वप्नसे कोई नहीँ जगा सका तथा इसी समयमेँ अंग्रेज़ इञ्जिनीयरोँके कार्य्य तथा अंग्रेज़ी कोयले और लोहेकी वस्तुओँने संसारमेँ अत्यन्त प्रसिद्धि पाई और संसारमेँ सबसे अधिक दाम वसूल किया।

"अठारह वर्ष व्यतीत हुए, इस क्षेत्रमेँ अन्य जातियोँने भी अपनी बुद्धिमत्ताका परिचय देना प्रारम्भ किया और प्रतियोगितामेँ परीक्षा होने लगी। पहली परीक्षाका केन्द्र सन् १८५१ ई० मेँ लन्दन हुआ। यह सभी राष्ट्रोँकी औद्योगिक तथा निर्मित वस्तुओँकी प्रसिद्ध अन्ताराष्ट्रीय प्रदर्शनी थी। *उस विशाल शिक्षालयमेँ योरोपकी सभ्य जातियोँने औद्योगिक शिक्षाका पहला पाठ पढ़ा।* इसमेँ उनको यह देखनेका अवसर मिला कि कितनी वस्तुओँके निर्माणमेँ इङ्गलैण्ड अपनी श्रेष्ठता बनाए हुए है और इङ्गलैण्डने यह सीखा कि कितनी प्रकारकी कला तथा श्रेष्ठ वस्तुओँमेँ अन्य देश उससे बढ़े हुए हैँ। (रसेल महोदयकी उपर्युक्त पुस्तकसे उद्धृत) रसेल महोदयने आगे चलकर कहा है कि सन् १८५१ ई० तक तथा आगे कई वर्षोँतक निर्माण तथा व्यावसायिक क्षेत्रमेँ इङ्गलैण्ड सर्वश्रेष्ठ रहा। परन्तु अन्य कलाओँमेँ वह अन्य देशोँसे पिछड़ गया। उदाहरण-स्वरूप :—

"सन् १८५१ ई० की प्रदर्शनीमेँ दो हज़ार वर्षोँसे चली आई चीन देशकी कारीगरी चीनके नीले मिट्टीके बर्तन, प्याले, प्याली, तश्तरी आदि, तथा काँचमेँ ढली हुई या कटी हुई विचित्र प्रकारकी भयानक मूर्त्तियाँ तथा कुप्पी आदि अनेक काँचकी वस्तुओँको देखकर सारे राष्ट्रका गर्व चूर्ण हो गया। सारा इङ्गलैण्ड, योरोपके कुछ देशोँकी वस्तुओँकी आश्चर्य-

जनक सुन्दरता तथा वनावटकी श्रेष्ठताको देखकर आश्चर्य्य-चकित रह गए। जिनमैं पत्थर और मिट्टीके तुच्छ पदार्थोंको कलाद्वारा काँचमैं परिणत करके भव्य रूप दे दिया गया था। इङ्गलैण्डने सन् १८५१ ई० से लेकर सन् १८५५ ई० की दूसरी प्रदर्शनीके समय तकके चार वर्षोंको व्यावसायिक राष्ट्रोंके विशेषज्ञोंकी श्रेष्ठ कलाके नमूनोंको एकत्र करने व प्रसारित करनेमैं और शीशे तथा मिट्टीके वर्तन वनानेके कारख़ानों और शिल्प-कलाके शिक्षालय खोलनेमैं व्यतीत किए। सन् १८५५ ई० तक ये शिक्षालय अपने कार्य्यमैं सफल हुए, यहाँतक कि पेरिसकी द्वितीय प्रदर्शनी सन् १८५५ ई० मैं, मिट्टी तथा शीशेके वर्तन वनानेमैं इङ्गलैण्ड किसीसे पीछे नहीं था।"

दूसरी ओर सन् १८५१ की प्रदर्शनीने, फ्रेञ्च तथा जर्मन राष्ट्रोंको यह भली भाँति अनुभव करा दिया कि वे लोहे और इस्पातके वने हुए पदार्थों, वारीक औज़ार, उद्योग-व्यवसाय, कल-शक्ति तथा माल ले जानेके साधनोंमैं इङ्गलैण्डसे कितने पिछड़े हुए हैं। जव सन् १८५५ ई० की प्रदर्शनी हुई तो देखनेपर पता लगा कि वे लोहे, इस्पात तथा अन्य धातुओंके व्यवसायमैं तवतक वहुत उन्नति कर चुके थे। *"वे पहले ही से प्रत्येक राजधानी, बड़े नगर या व्यापारिक केन्द्रमैं पेशेवर लोगोंको और नौ-सिखुओंको पढ़ानेके लिये तथा लुहारोंको, फ़ोरमैनोंको और कारीगरोंको व्यावहारिक शिक्षा देनेके लिये शिक्षालय स्थापित कर चुके थे।"*

चौथी प्रदर्शनी पेरिसमैं सन् १८६७ ई० मैं हुई। वह सभी राष्ट्रों और विशेषतः इङ्गलैण्डके लिये अधिक पथ-प्रदर्शक थी। स्कौट रसेल महोदय कहते हैं कि "इस प्रदर्शनीने हम लोगोंकी आँखे खोल दीं और पूर्णतया सचेत कर दिया। हम लोगोंने तव सीखा कि उन्होंने कुछ वातोंमैं ही हमारी वरावरी नहीं की, अपितु कुछ राष्ट्रोंने तो उन सव वातोंमैं हमैं पछाड़ दिया, जिनपर हमको गर्व था। इङ्गलैण्डको यह मानना पड़ा कि वह अवतक सोया हुआ था। दूसरे देशोंमैं सन् १८५१ से लेकर सन् १८६७ ई० तकके समयमैं सम्पूर्ण जातियोंने सचेत होकर चतुर कारीगर तैयार कर लिए थे।

पेरिसकी प्रदर्शनीके परीक्षकों तथा सरकारी निरीक्षकोंने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। इसको देखकर सरकारने एक कमिश्नरको यह निश्चय करनेके लिये विदेश भेजा कि, उपर्युक्त अंग्रेज़ी-शिक्षा-प्रणालीमैं तथा शिल्पविज्ञान कलामैं अन्य राष्ट्रोंके मुक़ावले कहाँतक कल्पित अथवा वास्तविक वुराइयाँ हैं। सैमुएल्सन एम. पी. महोदय फ़ान्स, वेल्जियम, तथा जर्मनीमैं भ्रमण करते हुए योरोपके उन प्रमुख कारख़ानोंका निरीक्षण करने गए जो इङ्गलैण्डके साथ प्रतियोगिता कर रहे थे। रसेल महोदयने लिखा है कि उन्होंने इन कारख़ानोंमैं प्रत्येक स्थानपर सव काम करने वालोंको हमारे यहाँसे अधिक शिक्षित पाया। मज़दूर वहुत कम अशिक्षित थे, तथा मैनेजर व फ़ोरमैन पूर्ण शिक्षित थे और मालिक पूर्ण अनुभवी तथा व्यवसायी व्यक्ति थे। वे अपने निरीक्षणका सारांश निम्नलिखित देते हैं—

"मैं ठीक-ठीक यह नहीं वता सकता कि योरोपकी शिक्षाका प्रभाव योरोपके व्यवसायोंपर कितना पड़ा....। इसमैं सन्देह नहीं कि विदेशोंमैं अनेक व्यापारोंमैं शीघ्र उन्नति करनेके लिये सञ्चालकोंका उच्च औद्योगिक-शिक्षासे युक्त होना, तथा मज़दूरोंकी उन्नत-शिक्षा-सम्पन्नता है। परन्तु हम लोग जानते हैं कि हमारे कारीगरोंको पूरी शिक्षा ही नहीं दी जाती तथा हमारे कृषक और मज़दूर अशिक्षित हैं, दोनोंमैंसे कोई भी अपनी ईश्वरप्रदत्त शक्तियोंका उचित रूपसे प्रयोग नहीं कर सकते। हमारे श्रमिक-फ़ोरमैन निम्न औद्योगिक श्रेणीसे लिए जाते हैं अतएव अन्ततक अशिक्षित ही रहते हैं तथा अपनी आरम्भिक शिक्षाकी कमीको पूरा करनेका अवसर नहीं पाते। हमारे कारख़ानोंके मैनेजर प्रत्येक नवीन-वस्तु वनानेके अवसरपर अपनेमैं वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके ज्ञानकी कमी पाते हैं, तथा प्रमुख व्यावसायिकोंके लड़के

प्रायः अपने पिताके व्यवसायको घृणाकी दृष्टिसे इसलिये देखते हैं कि ये दस्तकारीके काम एक धनी तथा शिक्षित मनुष्यकी शानके ख़िलाफ़ हैं अथवा वे अपने श्रमिकोंकी दशा सुधारनेकी अपेक्षा एक बड़ी धन-राशि सञ्चित करनेमें लगे रहते हैं या किसी अन्य पेशोंमें स्थान न मिलनेसे उसीमें घुस पड़ते हैं। इस दशाके दोषोंकी ओर केवल हमारे राजनीतिज्ञोंका ही नहीं किन्तु हमारी जनताका भी ध्यान शीघ्रताके साथ आकर्षित होरहा है। और मुझे विश्वास है कि एक बार बीमारीका पता लगनेके बाद उसका शीघ्र उपाय किया जायगा।

कमिश्नरके पूछनेपर पञ्चायतके एक सदस्यने निम्न वक्तव्य दिया था। इसमें पञ्चोंके मतका सारांश है। मुण्डेला महोदयने कहा कि :—

“मेरा यह विचार है कि अंग्रेज़ कारीगर क्रमशः पिछड़ते जा रहे हैं; क्योंकि विदेशी सरकारें अपने कारीगरोंकी बुद्धि बड़ी सावधानीके साथ बढ़ा रही हैं। जर्मनीकी शिक्षा वहाँके राष्ट्रीय सङ्घटनका फल है। वहाँ प्रत्येक किसानको बाध्य होकर अपने लड़कोंको स्कूल भेजना पड़ता है। उसके उपरान्त उनको उसी शिल्पकी शिक्षा दी जाती है जिसके व्यवसायसे वह अपना जीवन-निर्वाह करना चाहते हैं। यदि हम लोगोंको व्यावसायिक प्रतियोगितामें अपना स्थान बनाए रखना है, तो हमें इस राष्ट्रीय सङ्घटनका उतनी ही दृढ़ता और पूर्णताके साथ विरोध करना चाहिए। यदि हमारी वर्त्तमान स्वतन्त्र प्रणाली यों ही बनी रही तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारी हार होगी तथा कुछ ही पीढ़ियोंके बाद हम अज्ञानता तथा दोषोंसे आक्रान्त हो जायँगे। परन्तु व्यावसायिक शिक्षाके साथ-साथ यदि सार्वजनिक शिक्षा अनिवार्य्य कर दी जाय तो निस्सन्देह बीस वर्षोंमें ही इङ्गलैण्डमें सर्वश्रेष्ठ तथा कला-दक्ष कारीगरोंकी एक जाति बन जायगी।”

इङ्गलैण्डकी जनता तथा पार्लियामेण्टने इस सम्मतिकी महत्तापर ध्यान दिया। सन् १८७० ई० में प्रारम्भिक-शिक्षा-विधान जारी हुआ, जिसमें सरकारने करोड़ों रुपये की वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया, तथा प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य्य कर दी। इस शिक्षाके साथ व्यावसायिक और शिल्प-शिक्षाका संयोग बहुत धीरे-धीरे हुआ किन्तु हुआ अवश्य। उसके बाद इङ्गलैण्डने अपने स्कूल, कौलेजों तथा विश्वविद्यालयोंमें शिल्प तथा विज्ञानकी शिक्षाके लिये बड़े प्रबन्ध किए तथा धन व्यय किया। सन् १८६० ई० के बाद विश्वविद्यालयोंकी संख्या नौ से अठारह हो गई। यही कारण है कि इङ्गलैण्डकी इतनी उन्नति हुई और उसकी व्यावसायिक श्रेष्ठता बनी रही। इसीके कारण वह गत महायुद्धमें इतनी वीरतासे लड़ सकनेमें समर्थ हुआ। यद्यपि प्रत्येक स्वतन्त्रता-प्रेमी इस बातसे सन्तुष्ट और प्रसन्न होगा कि संयुक्त राज्य-अमेरिका भी विश्व-स्वतन्त्रताके लिये इतनी अमूल्य सहायता दे रहा है किन्तु यह कहना अत्युक्ति न होगी कि यद्यपि महायुद्धके समय इङ्गलैण्ड बिलकुल भी तैयार नहीं था, किन्तु बृटिश मस्तिष्क तथा शिल्पकुशलता और फ्रान्सीसी बुद्धि और फ्रान्सीसी शिल्प-कुशलताके संयोगने ही जर्मनीको परास्त कर डाला तथा मित्र राष्ट्रोंने मिलकर विजय प्राप्त की। तो भी जैसा कि ‘युद्धके बाद व्यापार तथा शिल्पकी नीतिपर विचार करनेवाली समिति’ की विभिन्न विभाग-समितियोंके विवरणोंसे पता चलता है कि इङ्गलैण्डने युद्धके पश्चात् अपनी व्यावसायिक परिस्थितिको सुरक्षित रखनेके लिये जनतामें उस विषयकी शिक्षाके प्रचारके लिये तन-मन-धनसे उद्योग किया है।”

मैंने इङ्गलैण्डकी साधारण तथा व्यावसायिक शिक्षाका विस्तृत इतिहास इसलिये वर्णन किया है कि इससे हमें उपदेश और उत्साह मिलता है। हमारे यहाँ शिक्षाकी अवस्था प्रायः वैसी ही बुरी दशामें है जैसी इङ्गलैण्डमें सन् १८६९ ई० में थी। श्री मुण्डेला तथा श्री सैमुएल्सनके उपर्युक्त उद्धरणमें जिस मार्गका आदेश किया गया है उसी प्रणालीका अनुसरण हमें भी इस समय करना चाहिए। यह भारतका दुर्भाग्य था कि हमारे भाग्यपर शासन

करनेवाली बृटिश सरकारने इङ्गलैण्डमें सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षाका महत्त्व जानकर भी भारतमें उसका प्रयोग नहीं किया। यदि ऐसा हो गया होता तो भारतका स्थान वर्त्तमान सभ्य राष्ट्रोंमें इतना पिछड़ा हुआ न रहता। फिर भी पिछली कमीको यथासाध्य पूरा करनेका प्रयत्न करना चाहिए। इस बीचमें जो महा परिवर्त्तन हो गए हैं उनके कारण इसकी आवश्यकता और भी अधिक बढ़ गई है। अब तो व्यावसायिक प्रतियोगिता हो रही है वह युद्धके बाद और भी उग्र रूप धारण कर लेगी और तब भारतको उन राष्ट्रोंकी प्रतियोगिताका असह्य धक्का सहना पड़ेगा जिन्होंने अपनी व्यावसायिक भित्तिकी नींव प्रबल बना ली है, जिनमें केवल अमेरिका तथा योरोप ही नहीं बल्कि जापान भी शामिल है। हमारी सरकाने जापान भेजकर वहाँसे विवरण मँगानेके लिये एक विशेष अफ़सर नियुक्त किया है। जिससे "कि हम यह जान लें कि वहाँकी सरकारने अपनी उन्नतिके लिये किन-किन मार्गोंका अवलम्बन किया है।" मैं मुख्यतः उस देशकी शिक्षाकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ।

यह तो स्पष्ट है कि जापानी व्यवसायोंकी उन्नति, वहाँकी व्यावसायिक शिक्षा-प्रणालीके आधारपर हुई है। यदि भारतको व्यावसायिक उन्नति करनी है और अपनी गणना उन्नति-शील राष्ट्रोंमें करानी है तो भारतको भी जापानके ही सदृश शिक्षा-प्रणालीका अवलम्बन करना चाहिए। मैं अपने मित्रोंकी इस रायसे सहमत हूँ कि मज़दूर तथा श्रमिक जनताके लिये प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य्य कर दी जाय। बिना इस आधारके कोई भी व्यावसायिक तथा शिल्प विषयक शिक्षा-प्रणालीका प्रसार नहीं हो सकता। परन्तु ये मज़दूर वर्ग अन्य लोगोंसे अलग नहीं बसते, अतएव इस व्यापक व्यावसायिक उन्नतिके लिये प्रारम्भिक शिक्षा-प्रणालीको सार्वजनिक बनाना आवश्यक है। मैं यह भी चाहता हूँ कि प्राइमरी स्कूलोंमें चित्र-कला तथा बढ़ईका काम सिखलाना भी शीघ्र ही प्रारम्भ कर दिया जाय। क्योंकि इसके बिना सर्वाङ्गपूर्ण व्यावसायिक उन्नति हो ही नहीं सकती। यद्यपि इसमें समय लगेगा और इसी लिये इसमें जितना शीघ्र हो सके हार्दिक उद्योग करना चाहिए।

सर फ़्रेड्रिक निकलसनने 'जापानपर एक दृष्टि' शीर्षक अपने लेखमें लिखा है कि—

"अनिवार्य्य शिक्षा-प्रणालीके कारण सारे देशने एकदम उन्नति की है उसका प्रमाण इससे मिलता है कि सन् १८७२ ई० में प्रारम्भिक शिक्षाका जन्म हुआ, और सन् १८७३ ई० में इन स्कूलोंमें अट्ठाईस प्रति सैकड़ा, और सन् १८८३ ई० तक एक्यावन, १८९३ ई० तक उनसठ, तथा सन् १९०४ ई० तक तिरानबे प्रति सैकड़ा तक विद्यार्थियोंकी संख्या बढ़ गई।"

इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि इसमें कितना समय लगेगा, साथ ही आगे बढ़नेमें उत्साह भी प्राप्त होगा। जापानकी व्यवसायिक तथा शिल्प-विषयक शिक्षा इसी आधारपर स्थित है। किन्तु ये दोनों प्रकारकी शिक्षाएँ वहाँ साथ-ही-साथ उन्नत हुई हैं। अतएव मुझे आशा है कि यहाँ भी इनकी साथ-ही-साथ उन्नति हो सकती है। मेरे साथियोंने जो प्रारम्भिक शिक्षाका प्रस्ताव किया है मैं उसमें उपर्युक्त दोनों प्रकारकी शिक्षाका भी समावेश करना चाहता हूँ। हमलोग अपने यहाँके वर्त्तमान स्कूलोंमें चित्रकला, प्रारम्भिक भौतिक रसायन-विद्या, तथा लकड़ी और लोहेके काम आदि विषयोंका प्रारम्भ करके उनकी उपयोगिता बढ़ा सकते हैं। मेरी यह राय है कि शिक्षा-विभाग तथा व्यवसाय और उद्योग विभागके सञ्चालक लोग परस्पर एकमत होकर, प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा उच्च श्रेणीके स्कूलोंके पाठ्य विषयोंमें कुछ ऐसा सुधार करें जिससे व्यावहारिक ज्ञानकी वृद्धि हो तथा व्यावसायिक शिक्षा-प्रणालीका विकास हो।

मैं अपने लेखके इस अंशको श्री सेमुएल्सनके व्यावसायिक शिक्षाकी उपयोगिताकी आलोचनाके

साथ समाप्त करना उचित समझता हूँ। वे कहते हैं कि—

"अन्तमें मैं अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करता हूँ कि सरकारसे भारतवासियोंकी यह माँग सर्वथा यथार्थ है कि भारतमें शिल्पकला-विषयक शिक्षा-प्रणालीका नियमित रूपसे प्रारम्भ तथा उसकी व्यवस्था हो, क्योंकि अन्य देशोंमें इसका प्रारम्भ गत साठ वर्षोंसे है और उनके यहाँ शिक्षित कारीगरोंकी कई पीढ़ियाँ वीत चुकी हैं। यदि हम अपने यहाँके प्रारम्भिक शिक्षाप्राप्त वारह वर्षके लड़कोंको इस प्रकारकी शिल्प-विषयक शिक्षा देना आरम्भ करें तो भी उन्हें सफल जीवनवृत्तिके योग्य बननेमें सात वर्ष लग जायँगे और उनकी यह थोड़ी सी संख्या, इस अपार अशिक्षित वर्गकी तुलनामें नगण्य होगी। इस कार्य्यमें अनुमानतः पन्द्रह वर्ष लगेंगे यदि छोटे-छोटे बालक तीनों प्रकारकी शिक्षा एक ही साथ प्रारम्भ करेंगे, अर्थात् प्रायः वीस वर्षकी उम्रतक वे पूर्ण योग्य वन सकेंगे। फिर भी उनके आधे मित्र अशिक्षित ही रहेंगे। अतएव अन्य राष्ट्रोंकी दौड़में, गत साठ वर्षोंकी कमी पूरी करनेमें हमें वड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ेगा। तव तो हमें इस कामको, जिसकी आवश्यकता दुगनी हो गई है, कल ही प्रारम्भ कर देना चाहिए। हमारे नवयुवकोंमेंसे कुछ लोग प्रारम्भिक शिक्षा तो प्राप्त भी कर चुके हैं, किन्तु शिल्पमें वे विलकुल शून्य हैं। इस थोड़ी संख्याके लिये हमें प्रत्येक नगरमें शिल्प-स्कूल, तथा कौलेज् और राजधानियोंमें विश्वविद्यालय स्थापित करने चाहिएँ। शेष अशिक्षित जनवर्गके लिये हमें अनिवार्य्य शिक्षाका प्रबन्ध करना चाहिए"।

यन्त्र-कलाविदोंकी विशेष-शिक्षा

मैं अपने साथियोंकी इस रायसे पूर्ण सहमत हूँ कि हमारे यहाँ कारीगरों, यन्त्र-चालकों तथा यन्त्रकलाविदोंकी शिक्षाकी अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु मुझे सन्देह है कि उनकी प्रस्तावित शिक्षा-प्रणालीसे हमारे यहाँके होनहार इञ्जीनियरोंको भी पर्याप्त उदार शिक्षा मिल सकेगी या नहीं। मुझे यह भी भय है कि रेलवे-कारख़ानोंसे सम्बद्ध स्कूलोंमें भी उचित संख्यामें भारतीयोंका प्रवेश नहीं हो सकेगा। मेरे साथी यह भी कहते हैं कि देशके उत्थानके साथ विद्यार्थियोंकी संख्या भी बढ़ेगी। अतएव, उनकी रायका समर्थन करते हुए मैं कहता हूँ कि वर्त्तमान इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेजोंमें विजली तथा यन्त्र-कलादिकी उच्च श्रेणीकी शिक्षाको भी स्थान दिया जाय। मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि इन शिक्षालयोंकी पूर्ण आर्थिक सहायता की जाय, तथा मशीनकी इञ्जिनीयरिङ्गके विद्यार्थियोंकी श्रेष्ठता लन्दन विश्वविद्यालयके इञ्जिनीयरिङ्गकी बी० एस्-सी० श्रेणीसे कम न हो। इसका सीधा सा उपाय यह है कि इन कौलेजोंका सम्बन्ध उन विश्वविद्यालयोंसे जोड़ दिया जाय जहाँ ऐसी व्यवस्था नहीं है।

भारतवर्षमें आजकल दो विश्वविद्यालय इस विषयकी शिक्षा देते हैं। मैं आशा करता हूँ कि कलकत्ता विश्वविद्यालय अपने शिक्षा-क्षेत्रकी और भी वृद्धि करेगा। मेरी रायमें प्रत्येक अध्यापन-विश्वविद्यालयको इन दोनों आवश्यकीय विषयोंकी शिक्षाका भी प्रबन्ध करना चाहिए। रेलवे अथवा नगरोंके समीपस्थ कारख़ानोंके साथ प्रबन्ध करके अन्य आवश्यक प्रयोगात्मक व्यावसायिक ढङ्गपर शिक्षा दी जा सकती है। जहाँपर यह प्रबन्ध नहीं हो सकता वहाँ बड़े-बड़े कारख़ाने स्थापित किए जाएँ, जो इञ्जिनीयरिङ्ग विभागके ही अङ्ग हों। इस प्रकारके प्रबन्धसे विद्यार्थी अपना प्रातःकालका समय कारख़ानोंमें तथा अपना सन्ध्या समय विश्वविद्यालयमें लगाते हुए इस वातावरणमें रहकर, साधारण रेलवेके कारख़ानों आदिसे अधिक उन्नति करनेमें समर्थ होंगे। हमारे यन्त्र-कलाविद् इञ्जिनीयरोंका देशके उत्थानमें अधिक महत्त्वपूर्ण हाथ होगा, इसलिये उन्हें अपने शिल्प-सम्बन्धी ज्ञान और बुद्धिके साथ अपने चरित्र तथा अपनी संस्कृतिकी रक्षा करनी चाहिए। इसके लिये

इससे बढ़कर कोई साधन नहीं हो सकता कि विश्वविद्यालयकी श्रेष्ठ प्रभावशाली परिस्थितिमें उनका पालनपोषण हो जिससे उनपर वैसी ही छाप पड़े।

मैं यह भी कहूँगा कि बिजली तथा मशीनकी इञ्जिनीयरीकी भी शिक्षा साथ ही दी जाय, और उसे अनिश्चित कालतकके लिये छोड़ न दिया जाय। मैं समझता हूँ कि भारतमें बिजलीका सामान बनानेमें अधिक समय नहीं लगेगा। इसकी आवश्यकता आपको "भारतमें व्यवसायकी कमी" वाले अंशमें पूर्ण रूपमें बतलाई जा चुकी। बिजलीकी कलोंका प्रयोग दिन-पर-दिन वेगसे बढ़ रहा है और भविष्यमें अत्यधिक बढ़नेकी सम्भावना है। और यदि वर्त्तमान आवश्यकताके लिये, हम लोग बिजलीके कारख़ानोंके मालिकोंपर लोगोंकी शिक्षाका भार छोड़ दें तो भी बहुसंख्यक भारतीय विद्यार्थियोंको शिक्षा पानेके लिये विदेश नहीं जाना पड़ेगा।

उच्चतर शिल्पकलाकी शिक्षा

मैं अपने साथियोंकी इस रायसे सहमत हूँ कि उच्च-शिल्पकलाके ज्ञानके लिये प्रयत्नशील होना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे कि विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध विज्ञान विभागके विद्यार्थी, अपनी योग्यताका प्रयोग व्यावसायिक रूपमें कर सकें और इस कमीकी पूर्त्तिका सबसे सीधा साधन यह होगा कि उच्च शिल्प तथा बिजलीकी शिक्षाकी व्यवस्था करके इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेजोंका विस्तार किया जाय। परन्तु मुझे सन्देह है कि जहाँ अध्यापन-विश्वविद्यालयोंमें इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज् विभाग नहीं है वहाँ इनमें शिल्पादि-कला-सम्बन्धी, नये विभाग मिलाना सार्थक होगा अथवा नहीं। जहाँ वे नहीं हैं वहाँ मेरी रायमें उनमें रेलवे तथा स्वास्थ्य-विषयक इञ्जिनीयरिङ्ग विभागोंके योगसे उन्हें पूर्ण इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज्का रूप दिया जाय। क्योंकि अभी देशमें इनकी बड़ी कमी है।

साधारण शिल्पादि-कलाकी शिक्षाके विषयमें मैं यह कहूँगा कि अध्यापन-विश्वविद्यालयों तथा इनसे सम्बद्ध प्रथम श्रेणीके कौलेजोंमें इनकी वृद्धि की जाय। इन कौलेजोंमें पूर्ण व्यवस्थित प्रयोग-शालाएँ हैं, और उन्हें संयुक्त-साम्राज्य अमेरिकाके शिक्षा-विभागके विश्वविद्यालयों तथा कौलेजोंके भाँति ही पूर्ण सहायता देनी चाहिए जिससे कि वे अपने शिक्षाको तथा प्रयोग-शालाओंको उत्तम बना सकें। इस प्रकार हम लोग अपने वर्त्तमान कालमें रसायन-विभागको व्यावहारिक बना सकते हैं। जिस व्यावसायिक-वृद्धिकी हम लोग आशा करते हैं, उसके लिये साधारण शिल्प-विषयक रसायन-शास्त्रके विद्यार्थियोंकी बड़ी माँग होगी। यदि विश्वविद्यालयों अथवा कौलेजोंमें इसके पढ़ानेका साधन हो गया तो इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज्से भी अधिक संख्यामें इधर विद्यार्थी आकर्षित होंगे। इन विद्या-मन्दिरोंमें प्रत्येक स्थानपर अधिक संख्यामें छात्रवृत्ति देनी चाहिए जिससे होनहार विद्यार्थी आकर्षित होकर अपने इस विषयके अध्ययनमें संलग्न हों।

राजकीय इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज् या एक राजकीय बहु-शिल्प-शिक्षण संस्था

मेरे मित्र यह सोचते हैं कि यदि निकट भविष्यमें नहीं तो कभी-न-कभी भारतके लिये उच्च शिक्षाके विद्यालयोंकी आवश्यकता पड़ेगी ही। वे यह सोचते हैं कि कुछ समयतक इस उच्च-शिक्षाकी माँगकी पूर्त्ति विदेशमें शिक्षा पानेके लिये छात्रवृत्तियाँ देनेसे हो जायगी परन्तु ज्योंही हम लोगोंके पूर्व निर्णयोंका यथासमय पूरा प्रभाव पड़ेगा उस समय यह नितान्त आवश्यक होगा कि हम कमसे-कम दो उच्च श्रेणीके प्रधान कौलेजोंको स्थापित करें। उनमें से एकमें इञ्जिनीयरिङ्ग-सम्बन्धी सब प्रकारकी पढ़ाई हो तथा दूसरेमें प्रधानतः धातु व खनिज-सम्बन्धी विद्याकी शिक्षा दी जाय जिसकी उन्नति अवश्यम्भावी है। उनका कहना है कि इसी आदर्शको सदा अपने सम्मुख रखना चाहिए।

मैं अपने मित्रोंके इस मतसे सहमत हूँ कि निकट भविष्यके लिये उपर्युक्त उच्च शिक्षाकी माँगकी

पूर्त्ति विद्यार्थियोंको विदेशमें जानेके लिये छात्रवृत्ति देनेसे ही हो सकेगी। उससे भी अधिक मैं यह समझता हूँ कि हम लोगोंके प्रस्तावित बड़े कौलेजोंके स्थापित हो जानेपर भी हमें अपने श्रेष्ठ विद्यार्थियोंको अपनी शिक्षा पूर्ण तथा परिपक्व करनेके लिये विदेश भेजना ही पड़ेगा, जैसे सभी प्रकारकी उच्च शिक्षाके साधनोंको रखते हुए भी जापान अपने विद्यार्थियोंको अधिक संख्यामें विदेश भेजता है। सन् १९१७ ई० की 'जापानी वार्षिक-पुस्तक' के देखनेसे पता लगता है कि सन् १९१५ ई० में विदेश जानेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या बाईस सौ तेरह थी, जिनमेंसे अधिकतर संयुक्त-राज्य अमेरिकामें गए थे। इसी पुस्तकमें आया है कि वहाँकी सरकारद्वारा विदेश भेजे गए स्त्री और पुरुषोंकी संख्या बहुत अधिक थी विशेषकर उस समय जब कि अपने व्ययसे जाने वालोंकी भी संख्या इसमें जोड़ दी जाय। यह सब जापानके अन्ताराष्ट्रीय सम्बन्धके बादसे ऐसा हुआ है। भारतमें विशेषज्ञों और चतुर शिल्पज्ञोंकी बहुत अधिक माँग होगी। हम लोगोंकी इच्छित उन्नति की अंशतः भी पूर्त्ति होनेके लिये यह आवश्यक है कि विदेश भेजनेके लिये हमें अधिक छात्रवृत्तियाँ देनी चाहिएँ। जापानकी भाँति हमें भी उन्हीं विद्यार्थियोंको विदेश भेजना चाहिए जो ग्रेजुएट होनेके बाद कुछ कालतक शिक्षक रह चुके हों।

परन्तु यह सब कुछ किए जानेपर भी इस देशके नवयुवकों की शिक्षा की अत्यधिक माँग की उचित पूर्त्ति इस प्रकार कभी नहीं हो सकती जिसका क्षेत्रफल रूसको निकालकर सारे योरोपके बराबर है। इन आवश्यकताओं तथा उन्नतिकी सम्भावनाओंके विस्तृत क्षेत्रके होते हुए भी यह माँग है कि भारतमें शीघ्र ही कम-से-कम एक प्रथम श्रेणीका प्रधान बहुशिल्प-शिक्षण विद्यालय स्थापित होना चाहिए। भारतीय-जनमतने ऐसी एक संस्थाको देशमें स्थापित करने की बहुत कालसे आवश्यकता बतलाई है जिसका प्रमाण राष्ट्रीय महासभा, भारतीय व्यावसायिक कौन्फ़रेन्स तथा अनेकों प्रान्तीय सभाओं तथा कौन्फ़रेन्सोंके प्रस्ताव हैं। जापानसे भी इस विषयमें उदाहरण मिलता है। जापानने भी अपने वर्त्तमान जीवनके प्रारम्भमें इसी प्रकारके एक विद्यालयकी आवश्यकताका मूल्य समझा था।

"जब लन्दनमें सन् १८७२ ई० में इवाकूरा महोदय जापानके राजदूत थे, उस समय महाशय आइतोका ध्यान जापानमें खुलनेवाले व्यवसायों रेल, तार आदिकी शिक्षा देनेके लिये टोकियोमें एक बड़ा इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज्की स्थापनाकी उपयोगिताकी ओर आकर्षित हुआ, और उन्होंने ग्लास्गोके एक अध्यापकके द्वारा इस कौलेज्के सञ्चालन करनेके लिये श्री हेनरी डायरको नियुक्त किया, और यह बादको टोकियो विश्व-विद्यालयमें मिला दिया गया। (डबल्यू. एच्. शार्पद्वारा लिखित 'जापानकी शिक्षापद्धति' पृष्ठ २०६)

उसी समयसे महाशय आइतोने जापानकी उन्नतिका अधिकांश श्रेय बार-बार इसी कौलेज्की स्थापनाको दिया है, क्योंकि जापानके अधिक इञ्जिनीयर इसी कौलेजसे निकलकर देशके व्यवसायों तथा प्राकृतिक साधनोंका उपयोग कर रहे हैं (देखो पुस्तक 'जापानियोंद्वारा जापान' पृष्ठ ६५)। डायर महाशयको कुछ विदेशियोंसे भी सहयोग प्राप्त हुआ जिसमें बहुत शीघ्र ही जापानी भी हाथ बँटाने लगे। शिक्षा-काल बढ़ाकर छः वर्ष कर दिया गया। अन्तिम दो साल व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करनेमें लगाने पड़ते थे। यह कौलेज् सार्वजनिक कार्य्य-विभागके अधीन है अतएव उसके अन्तर्गत सभी इञ्जीनीयरी-विभागों तथा कारख़ानोंके विद्यार्थी सम्पर्कमें आते हैं। उसके स्नातक, जो उच्च विशेषता पानेके लिये विदेश भेजे जाते थे, बड़ी प्रख्याति प्राप्त करते थे।

मेरी यह हार्दिक कामना है कि भारतवर्षको पूर्ण तथा सन्तोष-जनक शिल्प-विज्ञान तथा व्यावसायिक शिक्षाके अभावसे अत्यन्त कष्ट तथा क्षति सहन करनी पड़ती है, जैसा कि रिपोर्टोंके देखनेसे प्रमाणित

होता है। उसे देखकर हमारी सरकार कृपा करके भारतमेँ एक बहुशिल्प-शिक्षण संस्था स्थापित करनेमेँ अधिक देर न करेगी। देश-हितके लिये तथा व्यावसायिक उन्नति की अधिकांश सिफ़ारिशोँकी पूर्त्तिके लिये इसकी अत्यन्त आवश्यकता है।

मेरे मित्रोँने सिफ़ारिश की है कि कमसे-कम दो प्रधान कौलेजोँकी स्थापना होनी चाहिए। एकमेँ इञ्जिनीयरिङ्गके सभी विभाग होँ और दूसरेमेँ प्रधानतः धातु व खनिज-पदार्थ सम्बन्धी ज्ञानकी शिक्षा दी जाय। मेरी समझसे इन दोनोँ विभागोँको एकही मेँ मिलाकर एक बहु-शिल्प-शिक्षण संस्था बना देनी चाहिए और रसायनकी मुख्य-मुख्य शाखाओँका तीसरा विभाग होना चाहिए। मेरे मित्रोँने प्रधान रसायन कौलेजकी स्थापनाकी सिफ़ारिश नहीँ की है, क्योँकि उन्होँने रसायनकी संस्थाको अलग ही रक्खा है। यह मानते हुए भी कि रसायनका कार्य्य-क्षेत्र अलग ही होना चाहिए तो भी उसकी समुचित स्थापना तबतक न होगी जबतक उसका केन्द्र भारतके उपयुक्त प्रधान केन्द्रीय बहुशिल्प-शिक्षण संस्थाके अन्तर्गत न हो।

विभिन्न शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्तावोँके अन्तर्गत हमारे मित्रोँने, जल-यान तथा नाविक इञ्जिनीयरिङ्गकी शिक्षाकी ओर ध्यान दिलाया है। मैँ आशा करता हूँ कि शीघ्र ही यह पूरा किया जायगा। मैँ उनकी इस आशङ्काको नहीँ मानता कि भारतमेँ जल-यान-निर्माणके व्यवसायकी उन्नति कुछ समयतक समुचित रूपसे नहीँ हो सकती। मैँ यह आशा करता हूँ कि भारतके विशाल आयात और निर्य्यातके परिमाणको विचारकर तथा जल-यान-निर्माण-सम्बन्धी भारतके वर्त्तमान तथा भविष्यमेँ अधिक उन्नति होनेपर प्राप्त होनेवाले देशी साधनोँको भी ध्यानमेँ रखकर सरकारको इस नाविक-व्यवसायकी उन्नतिमेँ विशेष सहायता करनी चाहिए चाहे आवश्यकता पड़नेपर जहाज़के कुछ पृथक् भागोँको विदेशसे ही क्योँ न मँगाना पड़े। इस कारणसे मैँ समझता हूँ कि भारतमेँ शीघ्र ही लोगोँको नाविक शिक्षा देनेके लिये एक नाविक-विद्यालयकी स्थापना होनी चाहिए।

व्यापारिक शिक्षा

अन्य प्रस्तावोँके साथ मेरे मित्रोँने व्यापारिक शिक्षाके महत्त्वकी ओर ध्यान दिलाया है। बम्बईके सिडेनहम कौलेज औफ़ कौमर्सके अच्छे कार्य्यकी प्रशंसा करते हुए वे कहते हैँ कि :—

"भारतके अन्य प्रान्तोँमेँ ऐसे ही कौलेजोँकी अत्यधिक आवश्यकता प्रकट की गई है, और हम समझते हैँ कि अन्य भारतीय विश्व-विद्यालय इस माँगकी पूर्त्तिकी उपयोगितापर भली भाँति विचार करेँगे। व्यवसाय तथा व्यापारका शीघ्रतासे विचार होना अवश्यम्भावी है, और वे बड़ी प्रसन्नतासे चतुर कारीगरोँको अधिक मज़दूरी देँगे।

मैँ इस विचारसे पूर्णतया सहमत हूँ, परन्तु मैँ समझता हूँ कि व्यापारिक शिक्षाके महत्त्वपर ध्यान करके सरकारको चाहिए कि विश्वविद्यालयोँको व्यापारिक शिक्षाके कौलेज् स्थापित करनेके लिये आदेश दे और उनकी विशेष रूपसे आर्थिक सहायता करे। इस विषयपर सन् १६११ ई० मेँ जो लिखा था उसको मैँ यहाँ उद्धृत करता हूँ :—

"व्यापारिक-शिक्षाके महत्त्वकी ओर पाश्चात्य देशोँमेँ पूर्ण ध्यान दिया जाता है, जो व्यवसायमेँ प्रवेश करनेवाले नवयुवकोँकी प्रधान शिक्षा है तथा जो राष्ट्रीय तथा अन्ताराष्ट्रीय उन्नतिका एक मुख्य साधन है। संसारके व्यापारिक क्षेत्रमेँ प्रमुख पाश्चात्य देशोँने अपने यहाँकी व्यापारिक शिक्षाकी ओर सबसे अधिक ध्यान दिया है। इस प्रकारकी शिक्षाकी आवश्यकता की ओर सर्व प्रथम जर्मनीका ध्यान गया। अमेरिका एवं जापान शीघ्रही उसके अनुगामी बन गए, तथा गत पन्द्रह वर्षोँमेँ इङ्गलैण्डने भी अपने इस अभावकी पूरी पूर्त्ति कर ली। बरमिङ्घम और मैञ्चेस्टरके विश्वविद्यालय इस विभागकी अलग ही शिक्षा तथा बी० ए० की उपाधि देते हैँ। लीड्सका विश्वविद्यालय

भी ऐसी ही शिक्षा देता है। प्रोफ़ेसर लीज़ स्मिथ जो दो वर्ष पहले बम्बई सरकारके बुलावेसे भारत आए थे, भारतीय व्यावसायिक मद्रास कौन्फ़रेन्सके अवसरपर बोले थे कि "व्यवसाय तथा व्यापारके नेताओँको उसी प्रकारकी वैज्ञानिक शिक्षा दी जानी चाहिए जैसे एक डाक्टर या बैरिस्टर तथा अन्य पेशेवालोँ को दी जाती है।"

अनुभवसे पता चलता है कि व्यापारमेँ उच्च-कोटिकी प्रबन्ध-कारिणी शक्तिकी आवश्यकता है। इसमेँ केवल व्यवसाय-सम्बन्धी ही शिक्षाकी आवश्यकता नहीँ पड़ती, वरन् इसमेँ नई परिस्थितियोँका सामना करने, उद्योग तथा श्रमिक वर्गके नियन्त्रणकी शक्तिकी भी आवश्यकता है। इन विश्वविद्यालयोँमेँ इन्हीँ सब बातोँकी शिक्षा दी जाती है। अतएव मेरे विचारसे यदि आप अध्यक्षद्वारा प्रस्तावित ध्येयकी अंशतः भी पूर्त्ति करना चाहते हैँ अथवा देशके व्यापार तथा व्यवसायकी बाग़डोर अपने हाथमेँ लेना चाहते हैँ तो अपनेमेँ उच्च कोटिकी व्यवसाय-बुद्धि तथा चातुर्य्यका विकास कीजिए, और विश्वविद्यालयकी इस शिक्षाके योग्य बनिए। विश्वविद्यालयके व्यापारिक-शिक्षा-विभागका यह कार्य्य विद्यार्थियोँकी विचार-शक्तिको विकसित तथा परिष्कृत करके करना है। यद्यपि उनका ध्येय व्यापार-सम्बन्धी उदार शिक्षाका प्रचार करना है फिर भी उनसे आशा की जा सकती है कि वे व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करनेमेँ भी समर्थ हो सकेँगे। इस प्रकारकी शिक्षा पाए हुए नवयुवकोँको व्यापारिक संसारमेँ बहुत विस्तृत कार्य्यक्षेत्र मिल सकता है। वह इस प्रकारका व्यक्ति होगा, जिसे नेता मानकर आप व्यावसायिक दौड़मेँ आगे बढ़नेके लिये उसका आश्रय ग्रहण कर सकेँगे"।

जब यह स्मरण रक्खा जाय कि भारतके आयात-निर्यातका व्यापार प्रति वर्ष तीस करोड़से भी अधिक है, तब यदि हमारे नवयुवकोँको आवश्यक व्यापार-सम्बन्धी शिक्षा दी जाय, तो कितनी अधिक संख्यामेँ उन्हेँ इस क्षेत्रके विभिन्न विभागोँमेँ, देश या विदेशमेँ कार्य्य मिल सकता है। यहाँपर फिर हमेँ जापानके उदाहरणसे शिक्षा मिलती है। गत बीस वर्षोँमेँ उच्च व्यापारिक शिक्षाके द्वारा जापानमेँ बहुत उन्नति हुई है। गत शताब्दीके अन्ततक विद्यार्थियोँकी संख्या जो टोकियोके उच्च व्यापारिक स्कूलमेँ शिक्षा पाते थे, प्रति वर्ष एक सहस्रसे भी अधिक थी, यद्यपि स्कूलमेँ उस समय बहुत विद्यार्थियोँके लिये स्थान न था। सन् १९०१ ई० से उच्च व्यापारिक शिक्षाके स्कूल, ओसाका, कोबे, नागासाकी, तथा पामागूची और वासेदा विश्व-विद्यालयोँसे मिला दिए गए हैँ। बैङ्क तथा अन्य कोठियोँमेँ व्यापारिक स्कूलके स्नातक प्रति वर्ष अधिकाधिक संख्यामेँ लिए जाते हैँ। इसके पूर्व लोगोँकी यह धारणा थी कि एक व्यापारीके लिये अधिक उच्च शिक्षाकी कोई आवश्यकता नहीँ है। परन्तु आज यह अनुभव हो रहा है कि किसी भी विस्तृत व्यवसायका सञ्चालन केवल उच्च शिक्षा-प्राप्त व्यक्तिद्वारा ही हो सकता है। जापानका अनुभव है कि यद्यपि प्रारम्भिक वर्षोँ मेँ देशके होनहार युवक सरकारी नौकरी खोजते थे, परन्तु जबसे व्यावसायिक तथा व्यापारिक युगका आरम्भ हुआ है, तबसे तो वकालत तथा राजनीतिके विशेषज्ञ भी अधिक संख्यामेँ व्यापारको ही अपनाने लगे हैँ, और मैँ विश्वास करता हूँ कि हम लोगोँकी सिफ़ारिशोँपर, जिनमेँ व्यावसायिक उन्नतिका परामर्श दिया गया है, यदि प्रत्येक बड़े प्रान्त मेँ एक व्यापारिक कौलेज़की स्थापना कर दी जाय तो हमारे बहुतसे युवक वकील जो इस पेशेसे अपनी गुज़र नहीँ कर सकते प्रसन्न होकर इस प्रकारकी शिक्षासे लाभ उठाने तथा देशके व्यवसाय और वाणिज्यकी वृद्धि करनेमेँ पूर्ण सहायक होँगे।

व्यवसायोँके लिये स्थान-प्राप्ति

स्थानपर अधिकार-प्राप्तिके विधानकी उन्तालीसवीँ धाराके अनुसार सातसे लेकर सैँतीस धारातक

(दोनोँको लेकर) का प्रयोग किसी भी कम्पनीको स्थान देनेके लिये लागू नहीँ होगा, जबतक प्रान्तीय सरकारकी पहलेसे आज्ञा न ले ली गई हो; और उसी विधानकी चालीसवीँ धारा बतलाती है कि "यह अनुमति तबतक नहीँ दी जा सकती जबतक प्रान्तीय सरकार निम्न प्रकारकी जाँचसे पूर्ण सन्तुष्ट न हो जाय कि (अ) "यह अधिकार-प्राप्ति किसी कारख़ानेके बनानेके लिये आवश्यक हो (ब) तथा इस कार्य्यसे जनताका विशेष लाभ हो ।" किन्तु इस विषयमेँ प्रान्तीय सरकारकी दी हुई अनुमतिके विरुद्ध कोई अपील इस आधारपर नहीँ हो सकती कि वह स्थान जनताके हितकी दृष्टिसे दिया गया है। यद्यपि इस दी हुई अनुचित अनुमतिके विरुद्ध अनेक बार शिकायत की गई है कि इस विधानके अनुसार प्रान्तीय सरकारको दी हुई शक्तिका दुरुपयोग हुआ है। मुझे एक दृष्टान्त याद है जब इस शक्तिका दुरुपयोग दो या तीन वर्ष हुए इसाई-युवक-समितिके खेल तथा आनन्द-स्थलको स्थापित करनेके लिये किया गया था। जिनकी जगह छिन गई थी उन अभागे गृह-स्वामियोँके विरोधपर कुछ भी ध्यान नहीँ दिया गया। अतएव मैँ कह सकता हूँ कि इस वर्त्तमान धाराका भावार्थ उसके विपरीत लगाया गया है। इस धाराका दुरुपयोग भविष्यमेँ इस प्रकार बन्द किया जा सकता है यदि, "जनताको लाभदायक हो सके" इस वाक्यका प्रयोग हो और साथ ही एक सुधार-विधानद्वारा इसका स्पष्टीकरण कर दिया जावे। यह सब कुछ करनेपर भी मैँ इस सन्देहजनक बातसे सहमत नहीँ हूँ। क्या प्रान्तीय सरकार इस धाराका प्रयोग एक व्यावसायिक कम्पनीके लिये निष्पक्ष कर सकती है या नहीँ? मैँ समझता हूँ कि वह ऐसा नहीँ कर सकती।

मैँ अपने सहयोगियोँके इस मतका भी समर्थन नहीँ कर सकता कि प्रान्तीय-सरकार किसी भी स्वतन्त्र मालिकसे व्यावसायिक कार्य्योँके लिये किसी भी उपर्युक्त परिस्थितिमेँ उसके स्थानपर अधिकार करले। भारतीय विधान अंग्रेज़ी विधानके समरूप, 'जनताके हितके लिये किसी स्थानपर अनिवार्य्य अधिकार' के आधारपर बनाया गया है। यदि "जनताके लाभार्थ हो सके" वाक्यका अर्थ उसी प्रकार लगाया जाय जैसे अंग्रेज़ी विधानमेँ लगाया जाता है, तो इसके अर्थमेँ तनिक भी सन्देहका स्थान नहीँ रहता। ज़मीन-सम्बन्धी विधानके विस्तारका वर्णन करते हुए इङ्गलैण्डके नियमोँका बृहद् कोष बतलाता है (अङ्क ८ पृष्ठ ३६) कि—

"ज़मीन-सम्बन्धी विधानके अन्तर्गत जो नियम हैँ वे सभी प्रकारके स्थानोँको चाहे वे सार्वजनिक होँ या व्यक्तिगत ख़रीदकर अधिकार करनेके विधानपर लागू होते हैँ। ऐसे विधान तीन भागोँमेँ बँटे हैँ :—

(१) राष्ट्रकी रक्षाके लिये या राज्य-कार्य्यके लिये किन्हीँ स्थानोँपर अधिकार-प्राप्ति।
(२) सर्वसाधारण हितमेँ स्थानीय अथवा नागरिक कार्य्यके लिये, स्थानोँपर अधिकार-प्राप्ति।
(३) सङ्घ अथवा व्यक्तिविशेषके व्यावसायिक कार्य्यके लिये जो जनताके लाभार्थ हो स्थानोँपर अधिकार प्राप्ति।

यह धारा अर्थात् 'जनताके लाभार्थ व्यावसायिक कार्य्यके लिये' यह बतलाती है कि—

"इसके अन्तर्गत अधिकतर मुख्य स्थानीय तथा स्वतन्त्र नियम, जिनका स्थानोँ-सम्बन्धी विधानमेँ समावेश है, निम्न मुख्य भागोँमेँ बँटे हैँ :—

१. क़ब्रिस्तान।
२. क़ानूनद्वारा स्वीकृत बिजली घर।
३. गैसके कारख़ाने।
४. बन्दरगाह।
५. बाज़ार तथा मेले।
६. नगरमेँ पानी पहुँचानेके कारख़ाने।
७. रेलवे तथा उनकी शाखाएँ।
८. ट्राम-गाड़ियोँके रास्ते।

केवल साधारण रेलगाड़ीको छोड़कर ये सभी कार्य्य साधारण विधानके अन्तर्गत, म्युनिसिपल संस्थाओंको सौंपे जा सकते हैं।"

उपर्युक्त सूचीपर एक दृष्टि डालने ही से यह पता चल जाता है कि जिनके लिये भूमिकी आवश्यकता पड़ती है वे सभी प्रकारके व्यावसायिक कार्य्य किसी न किसी रूपमें जनताके लाभार्थ ही हैं अर्थात् जिससे जनताके प्रत्येक नागरिकको एक समान ही लाभ हो। इस धाराका स्पष्ट अर्थ अन्तिम वाक्यमें यह कहकर बतलाया गया है कि "केवल साधारण रेलवेको छोड़कर, ये सभी कार्य्य साधारण विधानके अन्तर्गत, म्युनिसिपल संस्थाओंको सौंप दिए जायँ। किसी मनुष्यकी जायदादको उसकी इच्छाकी विरुद्ध छीन लेना इसीलिये न्याययुक्त है कि ऐसा केवल एक व्यक्ति विशेष या एक व्यक्ति-समूहके लाभके लिये नहीं किया जाता बल्कि उससे वह मनुष्य उतना ही लाभ उठा सकता है जितना अन्य व्यक्ति। जहाँ इस कार्य्यसे "जनताका सामूहिक लाभ नहीं होगा" जैसा कि ऊपर विधानकी धाराका मन्तव्य है, वहाँपर सरकारका यह बलाधिकार, मेरी समझमें, उचित नहीं कहा जा सकता। मेरी समझमें जब कोई व्यावसायिक-समूह, अन्य जनताको अपने व्यवसायके लाभमें हिस्सेदार नहीं रखता, यदि ज़मीन लेना चाहे तो उसका यह कर्त्तव्य है कि वह दूसरोंको बदलेमें कुछ देकर अथवा समझौता करके या अन्य मनुष्योचित व्यवहार द्वारा स्थान प्राप्त करे।

व्यावसायिक अर्थ-कोष

हम लोगोंसे पूछा गया था कि हम लोग इस बातपर रिपोर्ट दें कि सरकार किस प्रकारसे व्यावसायिक उद्योगकी उन्नतिके लिये प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे आर्थिक सहायता दे सकती है। हम सभी लोग एकमत हैं कि व्यावसायिक उन्नतिमें सबसे बड़ी रुकावट आर्थिक सहायताका अभाव है और यह आवश्यक है कि इस कार्य्यके लिये बैङ्कोंकी ओरसे अधिक सुविधाएँ दी जानी चाहिएँ। हम लोग इस निश्चित परिणामपर पहुँचे हैं कि अन्य प्रकारकी सहायता देनेके अतिरिक्त व्यावसायिक बैङ्कोंकी स्थापना होनी चाहिए, जिनका प्रचलन नियमित रूपसे हो। इनके द्वारा व्यवसाइयोंकी कठिनाइयाँ दूर होकर सहायता मिलनेमें सुविधा होगी। हालकी ताता व्यावसायिक बैङ्ककी स्थापना बहुत ही सन्तोषका विषय है। किन्तु वैसे ही अधिक बैङ्कोंकी देशमें आवश्यकता है और हम लोगोंके पास यथेष्ट सामग्री न होनेसे हम लोग व्यावसायिक बैङ्कोंकी कोई निश्चित योजना न बना सके, अतएव हम लोगोंने विशेषज्ञोंकी एक समितिके बहुत शीघ्र नियुक्त करनेकी सिफ़ारिश की है जो

"यह विचार करे कि बैङ्कोंद्वारा अधिक सुविधाओंके देनेकी कितनी आवश्यकता है जिससे व्यवसाय खोले तथा चलाए जा सकें; देशमें इनका चारों ओर प्रसार हो और वास्तविक काम करनेके लिये किस प्रकारकी सरकारी सहायता और नियन्त्रणकी आवश्यकता है और इनका क्षेत्र प्रान्तीय हो या केन्द्रीय, अथवा दोनोंका सम्बन्ध जोड़कर वे साथ-ही-साथ काम कर।"

इस प्रकारके सुव्यवस्थित व्यावसायिक बैङ्कोंकी स्थापना तत्काल सम्भव नहीं है, अतएव हम लोगोंने मध्य-श्रेणीके व्यावसायिकोंकी व्यापारिक आवश्यकताको पूरा करनेके लिये एक योजना बतलाई है। मैं इसका पूर्ण रूपसे समर्थन इस लिये नहीं करता क्योंकि इससे बहुत थोड़ी थोड़ी सहायता की जा सकेगी। परन्तु यह प्रबन्ध अस्थायी है इसलिये इसमें मैं कोई बाधा नहीं डालता। मैं केवल यही आशा करता हूँ कि इसकी स्वीकृतिसे नियमित व्यावसायिक बैङ्कोंकी स्थापनामें कोई देर नहीं की जायगी, तथा इस अस्थायी प्रबन्धको अधिक समयतक रखना अनावश्यक समझा जायगा।

यदि रिपोर्टके प्रस्तावनानुसार बड़े पैमानेमें व्यावसायिक उन्नति करनी है तो अधिक संख्यामें

इन नियमित व्यावसायिक बैङ्कोंकी शीघ्र स्थापना करना परम आवश्यक है। इस क्षेत्रमें निर्बाधित उन्नति करनेके लिये कुछ ग़लतफ़हमीको दूर करना आवश्यक है। सन् १९१३-१४ ई० में कुछ देशी बैङ्कोंके असफल हो जानेके पश्चात्, कुछ स्थान विशेषमें यह धारणा हो गई है कि यहाँके लोगोंमें सम्मिलित बैङ्कोंके चलानेकी योग्यता नहीं है। जब वे बैङ्क असफल हुईं, उस समय कुछ विदेशी समाचारपत्रोंने इन स्वदेशी बैङ्कोंकी ख़ूब खिल्ली उड़ाई। यद्यपि यह निर्विवाद है कि इन बैङ्कोंकी नीति तथा प्रबन्धमें कुछ गड़बड़ी अवश्य थी। परन्तु इन दोषोंको बहुत मात्रामें बढ़ाना नहीं चाहिए, तथा उनको लेकर भारतीयोंकी इस विषयकी योग्यताको बट्टा नहीं लगाना चाहिए था, और इससे अनुचित लाभ उठाकर योरोपवालोंकी इस विषयकी योग्यताकी तारीफ़के पुल बाँधना कितना अनुचित था। असफल होनेवाले बैङ्कोंकी एक निश्चित संख्या, इङ्गलैण्ड तथा अमरीकाके सम्मिलित बैङ्कोंके इतिहासमें भी रही है। अंग्रेज़ लोग इङ्गलैण्डके बैङ्कको उचित गर्वके साथ संसारका सबसे बड़ा बैङ्क मानते हैं, परन्तु इस बृटिश टापूके सबसे सुरक्षित बैङ्कको भी कुसमयके चक्रमें आना पड़ा। "सन् १८१९ से १८९० ई० तक इङ्गलैण्डका बैङ्क हर दसवें वर्ष दिवालिया होनेकी स्थितिपर आ जाता था।" (इङ्गलैण्डके बैङ्कका इतिहास, डौक्टर ऐण्ड रीड्सद्वारा लिखित, पृष्ठ ४०४)

इङ्गलैण्डके अन्य असफल बैङ्कोंकी एक बड़ी लम्बी सूची है। कुछ ही का विवरण करनेके लिये मैं कहता हूँ कि सन् १७९१ से १८१८ ई० के अन्तर्गत लगभग एक हज़ार अंग्रेज़ी बैङ्कोंने अपना बसना समेट लिया। सन् १८३९ ई० के आर्थिक-सङ्कटमें उन्तीस बैङ्क समाप्त हो गए, जिनमेंसे सत्रहने एक पाई नहीं लौटाई। सन् १८६२ ई० में सीमित ज़िम्मेदारीका क़ानून पास हुआ, और तीन वर्षके ही अन्दर तीन सौ नई कम्पनियाँ चालू हुईं, जिनकी कल्पित पूँजी ५,०४० लाख पौण्ड थी, परन्तु जिनमेंसे दो सौ सत्तर कम्पनियाँ थोड़े ही दिनों बाद असफल हो गईं। सभी असफल वैङ्कोंकी ज़िम्मेदारी पचास करोड़ पौण्डके अन्दाज़ थी और उनको बहुत अधिक हानि हुई। सन् १८९० ई० में बेरिङ्ग ब्रदर्स नामकी बहुत बड़ी कोठी असफल हो गई, जिसने इङ्गलैण्डके वैङ्कको उसके आर्थिक सङ्कटमें सन् १९३९ ई० में सहायता की थी। क्या इन अनगिनत असफलताओंसे किसीने भी अंग्रेज़ोंको यह कलङ्क लगाया कि उनमें सम्मिलित हिस्सेदार वैङ्कोंको चलानेकी क्षमता नहीं है? तब कुछ वैङ्कोंके असफल हो जानेसे भारतीयोंके विरुद्ध क्यों इस प्रकार आवाज़ उठाई जाती है और उनको बदनाम किया जाता है?

अब हमें भारतीय वैङ्कोंके इतिहासकी ओर ज़रा ध्यान देना चाहिए। सन् १७७० ई० में श्रीयुत एलैग्ज़ेण्डर ऐण्ड कम्पनीके द्वारा पहला ज्वाइण्ट स्टौक-वैङ्क स्थापित हुआ। यह हिन्दुस्तान-वैङ्क कहाता था। इसने हुण्डिएँ प्रचलित कीं। ये हुण्डी यद्यपि सरकारसे स्वीकृत नहीं थीं तो भी उनकी संख्या देशमें चालीस या पचास लाखके लगभग पहुँच गई थी। वे कलकत्तेके सभी बड़े-बड़े दफ़्तरोंमें तथा कभी-कभी सरकारी ख़जाने तकमें स्वीकार किए जाते थे। यह वैङ्क सन् १८३२ में असफल हो गया। सन् १८०६ ई० में बङ्गालके वैङ्ककी स्थापना हुई, परन्तु इसको सन् १८०९ ई० में सरकारी स्वीकृति मिली। ईस्ट इण्डिया कम्पनीने कुल पूँजीका १/५ हिस्सा स्वयं दिया और तीन सञ्चालक नियुक्त किए। सन् १८०९ ई० से और विशेषतः सन् १८१३ ई० से जब विधान पास हुआ, जिसके द्वारा भारतमें बसनेके लिये अंग्रेज़ोंके ऊपरसे कुछ नियन्त्रण हटा लिए गए, तब वैङ्कोंको प्रोत्साहन मिला और बहुतसे वैङ्क स्थापित हो गए। सन् १८२९ और १८३३ ई० के बीच उनमेंसे बहुतसे असफल हो गए। सन् १८३८ ई० में एक यूनियन वैङ्क स्थापित हुआ। यह वे सुविधाएँ देना चाहता

था जो बङ्गालका बैङ्क नहीँ दे सकता था। यह बैङ्क सन् १८४८ ई० की जनवरीमेँ असफल हो गया, यद्यपि इसके बहुत समय पहले ही मालूम था कि यह "एक आशाहीन दिवालियेकी परिस्थितिमेँ है" "इसने घोषित मुनाफ़ेको, जिसका इतना दिखावा हुआ, पूँजीसे नहीँ, क्योँकि वह तो बहुत पहले ही समाप्त हो चुका था, बल्कि जनताके जमा किए हुए रुपयोँमेँसे निकालकर दिया जो जनता अधिक विश्वासमेँ आकर जमा करती रही।" "बैङ्कने नीलके व्यवसायमेँ बेहद रुपया लगाया था और सञ्चालक स्वयं बैङ्कके रुपयेको मनमाना अपने काममेँ लाते थे।" एक अंग्रेज़ी कोठी बैङ्ककी चौबीस लाखकी कर्ज़दार थी, जो बैङ्ककी चौथाई पूँजीके बराबर रक़म थी, और दूसरी कोठीने सोलह लाख रुपये नक़द उधार लिए थे। पहले बनारस बैङ्कपर सन् १८४९ ई० की उसकी असफलताके कारण दोष मढ़े जा चुके थे। बङ्गाल बैङ्कने सन् १८२९-३२ ई० के सङ्कट-कालमेँ अपने नियमोँका उलङ्घन किया। पहला बम्बईका बैङ्क सन् १८४० ई० मेँ स्थापित हुआ तथा मद्रासका बैङ्क सन् १८४३ ई० मेँ। ये बैङ्क, ईस्ट इण्डिया कम्पनीके $\frac{१}{५}$ के हिस्सेदार होनेपर बङ्गाल बैङ्कके ही अनुसार स्थापित किए गए थे। सन् १८६८ ई० मेँ बम्बईका बैङ्क असफल हो गया। इसकी असफलताके कारणोँकी जाँचके लिये एक समिति नियुक्त की गई। सन् १८६९ ई० मेँ प्रकाशित हुई समितिकी जाँचने असफलताके निम्न कारणोँका उल्लेख किया :—

(अ) सरकारी आज्ञा-पत्र, जिसने पूर्व विधानके बहुतसे नियन्त्रण हटा दिए और बैङ्कोँको असुरक्षित ढङ्गके व्यवसाय करनेकी स्वीकृति दे दी।

(ब) विधानद्वारा दिए हुए अधिकारोँका अयोग्य मन्त्रियोँद्वारा दुरुपयोग।

(स) सञ्चालकोँकी लापरवाही और अयोग्यता।

(द) देश-कालकी विशेष परिस्थिति।

समितिके सभापति सर सी० जैक्सनने अपने विचारोँका इस विषयमेँ निम्न सारांश दिया है :—

"इस असफलताने सबसे बड़ा उपदेश यह दिया है कि दर्शनी हुण्डीपर रुपया कभी नहीँ देना चाहिए चाहे, एक नाममेँ अथवा सामूहिक नाममेँ हो और जिसमेँ सब क़र्ज़ ही लेनेवाले होँ और कोई भी किसीका ज़ामिन न हो।

(प्रान्तीय बैङ्कोँका विवरण, पृष्ठ ३१)

मैँ इसके साथ-साथ अपनी रिपोर्टके दो सौ चौरासिवेँ अंशपर ध्यान आकर्षित करता हूँ कि प्रेसिडेन्सी बैङ्क्स ऐक्टकी रुकावटोँमेँ ढिलाई करनेके भी प्रमाण मिले हैँ जिनमेँ यह व्यवस्था है कि छः महीनेसे अधिकके लिये कर्ज़ न दिया जाय और ऋणके लिये दो व्यक्ति ज़ामिन होँ।

दूसरा बैङ्क उसी नामका तथा उन्हीँ अधिकारोँसे युक्त, पर इस बार बिना किसी सरकारी सहायताके, उसी साल बम्बईमेँ चालू हुआ। यह सन् १८७४ ई० तक अच्छी प्रकार काम करता रहा। उस साल बङ्गालमेँ एक अकाल पड़ा। बैङ्कमेँ सरकारकी पूँजी एक करोड़ थी, और यह विचार हुआ कि बङ्गालकी सहायताके लिये तीस लाख रुपया ब्रह्मदेशसे चावल ख़रीदनेके लिये बैङ्कमेँसे निकाल लिया जाय। बैङ्क इस रक़मको देनेमेँ असमर्थ पाया गया। यह इसी लिये असफल नहीँ हुआ, क्योँकि वह रुपया सरकारका था। इस घटनासे सन् १८७६ ई० मेँ संरक्षित कोषकी प्रणालीका जन्म हुआ। उसी साल प्रान्तीय बैङ्क-विधान पास हुआ, जिसने बैङ्कोँपर पूर्ण नियन्त्रण लगा दिया।

सन् १८६३ ई० मेँ भारतमेँ चालू सात योरोपियन बैङ्कोँमेँसे एकको छोड़कर सभी असफल हो गए। वह एक इलाहाबाद बैङ्क है। लगभग सन् १८७५ ई० मेँ पाँच नये बैङ्कोँकी स्थापना हुई। इनमेँसे केवल एक अर्थात् शिमलाका एलाएन्स बैङ्क लिमिटेड, जीवित है। जिसमेँ पञ्जाब बैङ्किङ्ग कम्पनी मिला दी गई थी, उन असफल हुए बैङ्कोँमेँसे एक

हिमालय बैङ्क लिमिटेड था जिसने सन् १८९१ ई० मेँ रुपया देना बन्द कर दिया। इन लिमिटेड बैङ्कोँके अतिरिक्त सर जौर्ज आर्बथनौटकी बड़ी बैङ्किङ्ग कोठी सन् १९०७ ई० मेँ असफल हो गई। ब्रह्माका बैङ्क, जो सन् १९०४ ई० मेँ स्थापित हुआ था, सन् १९११ ई० मेँ असफल हो गया। उस समय उसकी एक करोड़ उन्नीस लाखकी पूँजी बाज़ारमेँ लगी हुई थी। यह पता चला कि इस पूँजीका एक तिहाई भाग एक ऐसे व्यवसायमेँ लगा था, जिसमेँ सञ्चालकोँका अपना स्वार्थ था। सबसे अन्तमेँ अपर इण्डिया बैङ्क असफल हुआ। इनमेँसे किसी भी बैङ्कके प्रबन्धकर्त्ता भारतीय नहीँ थे। उन सबमेँ योरोपियनोँका ही प्रबन्ध था।"

जिन भारतीय बैङ्कोँकाका उत्तरदायित्व भारतीयोँके ऊपर रहा, उनका इतिहास न तो इतना विस्तृत है और न इतना घटनापूर्ण। इसका आरम्भ केवल सन् १८८१ से है, जब अवध व्यापारिक बैङ्ककी स्थापना हुई। इसके बाद ही कुछ दूसरे छोटे बैङ्क स्थापित हुए। दि पञ्जाब नेशनल बैङ्ककी स्थापना सन् १८९४ ई० मेँ हुई। ये दोनोँ बैङ्क बिना किसी रुकावटके अपना काम चलाते रहे हैँ। दि पीपिल्स बैङ्क औफ़ इण्डिया सन् १९०१ मेँ स्थापित हुआ। जब इसने अपना काम सन् १९१३ मेँ बन्द किया, उस समय इसकी लगभग एक सौ शाखाएँ अधिकतर उत्तरीय भारतमेँ थीँ। दूसरा अभागा अमृतसर बैङ्क था, जो सन् १९०४ ई० मेँ स्थापित हुआ था। यह सन् १९१३ ई० मेँ असफल हो गया। सन् १९०५ ई० से, जब बङ्गाल-विच्छेद हुआ, नया स्वदेशी आन्दोलन आरम्भ हुआ और तभी सन् १९०६ ई० से देश भरमेँ छोटे-बड़े बैङ्कोँकी स्थापना प्रारम्भ हुई। सन् १९१० मेँ इनकी कुल संख्या ४७६ थी। इनमेँसे प्रमुख इण्डिया बैङ्क और इण्डियन स्पीसी बैङ्क थे, जो सन् १९०६ ई० मेँ स्थापित हुए थे। इसके बाद दि बङ्गाल नेशनल बैङ्क और इण्डियन्स बैङ्क औफ़ मद्रास सन् १९०७ ई० मेँ, काठियावाड़ ऐण्ड अहमदाबाद बैङ्किङ्ग कौर्पोरेशन सन् १९१० ई० मेँ, तथा सेण्ट्रल इण्डिया बैङ्क सन् १९११ मेँ स्थापित हुआ। सन् १९०१ ई० के बाद स्थापित ग्यारह बैङ्कोँमेँसे १९१३-१४ मेँ छः नष्ट-भ्रष्ट हो गए। परन्तु बड़े व छोटे सभी बैङ्कोँको मिलाकर चौबीस बैङ्कोँका दिवाला निकल गया। यद्यपि एक भी बैङ्कका असफल हो जाना बड़े दुःखका विषय है, किन्तु चार सौ छिहत्तर मेँ चौबीस बैङ्कोँकी असफलता कोई बड़ी संख्या नहीँ है।

इसमेँ सन्देह नहीँ कि कुछ असफल बैङ्कोँके हिसाब-किताबमेँ गड़बड़ी थी और कुछकी बहुतसी पूँजी ऐसे व्यवसायोँके लिये ऋण दे दी गई थी जिनमेँ सञ्चालकोँका स्वयं स्वार्थ था। उनकी नीति भी दोषयुक्त थी, जैसे बहु-कालिक व्यवसायोँका लघु-कालिक पूँजीसे प्रबन्ध करना और एक ही व्यवसायमेँ अपनी कुल पूँजीका अधिकांश लगा देना। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि इन असफलताओँका कारण ये ही सब कुप्रबन्ध थे, और बेईमानी या धोखेबाज़ी बहुत कम अंशमेँ थी, क्योँकि देखनेसे पता चलता है कि इस अपराधमेँ बहुत कम लोगोँपर मुक़दमा चला।

पञ्जाबकी असफलताके विषयपर विचार करते हुए लाहौरके पण्डित बालकराम पण्डया, औडिटर औफ़ एकाउण्ट्स (हिसाब जाँच करनेवाले), लिखित बयानमेँ कहते हैँ कि—

"वास्तवमेँ, जब हम आधुनिक बैङ्क तथा पञ्जाबकी व्यावसायिक असफलताकी तुलना अन्य देशोँकी वैसी घटनाओँसे करते हैँ तो यह अचरज होता है कि हमारे देशमेँ स्वार्थ तथा बेईमानीके कारण यह असफलताएँ बहुत कम हुईं। अपने अज्ञानके कारण जो हानि उठानी पड़ी है, वह निस्सन्देह अत्यधिक है। परन्तु अन्य देशोँकी तुलनामेँ वह भी अधिक नहीँ है। यदि हम लोगोँको वह शिक्षा मिले, जो गत चार वर्षका महायुद्ध हमेँ सुझा रहा है तो हमेँ हतोत्साह होनेकी कोई आवश्यकता नहीँ है।"

भारतीय औद्योगिक कमीशनकी जाँचके एक

प्रारम्भिक लेखके अनुसार, पञ्जाब प्रान्तीय व्यावसायिक समितिद्वारा एक समिति इसलिये नियुक्त हुई है कि वह पञ्जाबकी तत्कालीन व्यावसायिक तथा आर्थिक असफलताओंके कारणोंकी जाँच करे। उनकी रिपोर्ट इस विषयपर बहुत प्रकाश डालती है। समितिने कहा है कि—

"हम लोगोंके सम्मुख प्रस्तुत प्रमाणोंसे यही ज्ञात होता है कि असफलताका मुख्य कारण कम्पनीके व्यवस्थापक, संरक्षक तथा अन्य कर्मचारियोंमें व्यावसायिक बुद्धिका अभाव था। फलतः भ्रममूलक दोष उत्पन्न हुए और इस प्रकारकी बेईमानी उनकी अज्ञानता ही जान पड़ती है और अधिकांश तो हानिको रोकनेकी चिन्ता थी।"

बैङ्कोंके दोषों तथा त्रुटियोंको बतानेके बाद समितिने कहा कि "कहीं यह न सोच लिया जाय कि स्वदेशी बैङ्किङ्ग तथा व्यवसायकी अवस्था बिल्कुल ही रद्दी थी, इसलिये हम दो सुधारोंका प्रस्ताव करते हैं। (अ) पञ्जाब नेशनल बैङ्कका जीवित रह जाना यह दिखलाता है कि ईमानदार भारतीय सञ्चालक तथा कर्मचारी कठिन-से-कठिन आर्थिक परिस्थितिमें भी बैङ्कका काम चला सकते हैं। (आ) और जैसा कि निम्नाङ्कित बातोंसे प्रमाणित होता है कि बहुतसे अन्य बैङ्क, जिन्होंने पूरी रक़म चुका दी है या दूसरे जो चुकानेवाले हैं, वे प्रायः मूलमें अप्रौढ़ ही थे।"

(मैं यह बयान यहीं छोड़ देता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि सन् १९१७ ई० के बाद समितिकी रिपोर्ट छपनेतक बहुत कुछ चुकता हो चुका है।)

समितिने अपनी जाँचका सारांश इस प्रकार दिया है:—

इस कार, साधारणतया यह कहा जा सकता है कि हम लोगोंका मन्तव्य यह है कि अवनतिके दो मूल कारण हो सकते हैं:—

(क) प्रत्येक नवीन उद्योगके लिये आवश्यक ज्ञानका अभाव तथा प्रयुक्त प्रणालीका दोष।

(ख) सरकारी अथवा अर्द्ध-सरकारी संस्थाओंकी सहायताका अभाव, जैसे राजकीय सहायता-प्राप्त प्रान्तीय बैङ्कद्वारा सामयिक सहायता न मिलना।"

भारतीयोंको सरकारी सहायता तथा बैङ्क-सम्बन्धी शिक्षाकी आवश्यकता है।

इस सङ्क्षिप्त पर्य्यवेक्षणसे प्रकट हो गया कि ज्वाइण्ट स्टौक-बैङ्कोंसे भारतीयोंको बिल्कुल बहिष्कृत रखनेमें कोई कारण नहीं है। इससे पता चलता है कि अगर भारतीयोंको भी (अ) सरकारद्वारा वही सहायता मिले जो योरोपियनोंको प्रेसीडेन्सी बैङ्कोंद्वारा दी गई है और (आ) यदि इन्हें भी वैसी ही आधुनिक बैङ्क-सम्बन्धी आवश्यक शिक्षा दी जाय तो वे अन्य देशवासियोंसे कहीं अधिक योग्यताके साथ यह राष्ट्रीय महत्त्वका कार्य्य करेंगे। पहले प्रश्नके विषयमें मेरी ज़ोरदार सिफ़ारिश है कि शीघ्र ही एक सेण्ट्रल स्टेट बैङ्क स्थापित किया जाय, जिसकी शाखाएँ प्रत्येक प्रान्तमें हों। प्रेसीडेन्सी बैङ्कोंने भारतके साथ व्यापार तथा व्यवसाय जारी रखनेमें योरोपियनोंकी अत्यधिक सेवा की है। वे अपने नियमोंके अनुसार व्यवसायोंकी सहायता नहीं कर सकते। इस बातकी भी शिकायत की गई है कि जिस स्वतन्त्रतासे वे योरोपियनोंको ऋण देते हैं उस प्रकार भारतीयोंको नहीं देते। लाहौरमें इस बातकी बड़ी शिकायत की गई। पूर्वोक्त लाहौरकी सरकारी समितिने अपनी रिपोर्टमें बतलाया है कि—

सङ्कटके समय परस्पर भारतीय बैङ्कोंमें, उनमें तथा अंग्रेज़ी बैङ्कोंमें और उनमें तथा अन्य पुरानी चालके भारतीय बैङ्कोंमें परस्पर कोई सहयोग नहीं था। बङ्गालके बैङ्ककी अवस्थापर जो गवाहोंने बयान दिए हैं उन्हें हम बड़ा महत्त्वपूर्ण समझते हैं। यह बात, कि पञ्जाब नेशनल बैङ्क परका, सङ्कटसे उबरनेपर, सब देना चुका दिया गया, प्रदर्शित करता है कि अब बैङ्कोंमें परस्पर बड़ा सहयोग और भविष्यमें और भी अधिक सहयोगकी सम्भावना है, फिर भी प्रान्तीय बैङ्कोंके न होनेके कारण बहुतसे बैङ्कोंकी

रक्षा न हो सकी। बङ्गाल बैङ्क बहुत बड़ा है। वह अपने प्रान्तकी अधिक सहायता नहीँ करता और वह प्रान्तीय दशाओँसे परिचित भी नहीँ है। प्रान्तीय सरकारका उसपर कुछ प्रभाव भी नहीँ है। उसकी पञ्जाबकी शाखाने उसकी सहायताके लिये कलकत्तासे लिखा-पढ़ी की, परन्तु वह अस्वीकृत कर दी गई और सरकारके बन्धक रहनेपर भी बङ्गाल बैङ्क, पञ्जाब नेशनल बैङ्कको ऋण देनेके लिये तैयार न हुआ।

जब सरकारने सन् १८६० ई० मेँ प्रेसीडेन्सी बैङ्कोँसे हुण्डी चलानेका अधिकार छीन लिया तो वे उन्हेँ जनताकी बची हुई रक़मके प्रयोगकी आशा देकर उनकी सहायता करनेपर राज़ी हुए। २० दिसम्बर, सन् १८६० ई० को बैङ्क औफ़ बङ्गालके अर्थविभाग-द्वारा लिखे पत्रसे (श्री ब्रनयेटद्वारा अपने 'एकाउण्ट्स औफ़ दि प्रेसिडेन्सी बैङ्क्स'के पृष्ठ ८१ पर उद्धृत) पता चलता है कि कहाँतक सरकार हुण्डी बन्द करनेपर बैङ्कोँकी सहायता कर सकती है:—"बङ्गाल बैङ्क अधिकारतः किसी प्रकारकी क्षति-पूर्त्ति नहीँ माँग सकता, किन्तु उसपर उस विचारसे अवश्य ध्यान रक्खा जायगा जिसके वे न्यायतः अधिकारी हैँ।"

सरकारने बिना सूदके बङ्गाल बैङ्कको सत्तर लाख तथा मद्रास व बम्बईके बैङ्कोँको पचास लाख रुपया नक़द उनकी क्षति-पूर्त्तिके लिये देना स्वीकार कर लिया। व्यवहारमेँ इन बैङ्कोँको अधिक बची हुई रक़मको अगले दशकोँमेँ प्रयोग करनेकी आज्ञा दे दी गई है। किन्तु श्री ब्रनयेट अपनी पुस्तकके निन्यानबेवेँ पृष्ठपर लिखते हैँ:—

"सन् १८७६ ई० के बहुत पहले भारत-सचिवने समझ लिया था कि उनकी हुण्डी बन्द होनेकी क्षतिकी पूर्त्ति हो चुकी।"

अतएव अब समय आ गया है कि सरकार जनताकी पूँजी प्रेसीडेन्सी बैङ्कोँसे हटाकर स्टेट-बैङ्कमेँ रक्खे, जिससे कि प्रजाको अधिक लाभ हो। सन् १८६० और १८७६ ई० मेँ तीनोँ प्रेसीडेन्सी बैङ्कोँके स्थानपर केवल एक "भारत-बैङ्क" की स्थापनाका प्रस्ताव सरकारके सामने था। परन्तु इस विषयपर कोई निश्चय नहीँ हुआ। यह प्रश्न फिर 'भारतीय अर्थ और द्रव्यपर राजकीय कमीशन' (रौयल कमीशन औन इण्डियन फ़ाइनेन्स ऐण्ड करेन्सी) ने अपने हाथमेँ लिया। उन्होँने भी इसपर अपना कोई निश्चित मत नहीँ प्रकट किया; पर यह सिफ़ारिश की कि इसपर अति शीघ्र विचार होना चाहिए। उन्होँने अपनी रिपोर्टके बाईसवेँ अंशमेँ कहा है कि:—

"चाहे इस प्रश्नपर अन्तिम निर्णय कुछ भी हो, परन्तु हम लोग इस प्रश्नको भारतके लिये बहुत महत्त्वपूर्ण समझते हैँ। भारत-सरकार और भारत-सचिवको इसपर शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए। हम लोगोँकी यह धारणा है कि इसकी शीघ्र ही जाँच कराई जायगी और इस कार्य्यके लिये एक विशेषज्ञोँकी समिति बनेगी, जिसमेँ सरकारी और ग़ैर-सरकारी अनुभवी प्रतिनिधि होँ जो प्रेसीडेन्सी बैङ्क आदि संस्थाओँ तथा इस विषयमेँ दिलचस्पी रखनेवाले लोगोँकी सलाहसे सारे प्रश्नपर गम्भीरतापूर्वक विचार करेँ, जो या तो अब भारतमेँ केन्द्रीय बैङ्कको अनावश्यक ठहरा देँ, अथवा अधिकारियोँके पास एक ऐसे बैङ्ककी स्थापनाका पूरा विवरण और पूरी व्यवस्था बनाकर भेजेँ जिसपर तत्काल काम शुरू हो जाय।"

यह सिफ़ारिश सन् १९१४ ई० मेँ की गई। युद्धके कारण इसपर विचार करना स्थगित कर दिया गया। मैँ केवल यही आशा कर सकता हूँ कि इसपर अति शीघ्र ध्यान दिया जायगा। देशके हितके लिये एक ऐसे बैङ्कके स्थापनाकी नितान्त आवश्यकता है जो जनताकी पूँजीका कोष हो और साथ ही देशके अन्तर्गत सभी प्रकारके राष्ट्रीय उद्योगोँका भरण-पोषण कर सके।

बैङ्कके काममेँ भारतीयोँको शिक्षित करना सरकारी बैङ्कोँकी स्थापनासे कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीँ है। इस प्रकारकी शिक्षाकी आवश्यकता प्रत्यक्ष है। मेरे साथियोँकी रिपोर्टके दो सौ बयासीवेँ अंशमेँ आया है कि:—

"इस समय भारतमेँ अनुभवी बैङ्क-कर्मचारियोँकी कमी इस कारण है कि पहले कोई व्यापारिक शिक्षा अथवा भारतीयोँके बैङ्क व्यवसायकी शिक्षा देनेका कोई स्थायी और समुचित प्रबन्ध नहीँ था, साथ ही दूसरा अभाव यह था कि देहाती जनतामेँ बैङ्क व्यवसायके लाभोँका ज्ञान नहीँ था । इन्हीँ कारणोँसे देहातमेँ बैङ्कोँका विस्तार नहीँ हुआ । इसके विपरीत पञ्जाबमेँ इसका प्रसार अति शीघ्र हुआ, पर उसे बड़ी आपत्तियोँका सामना करना पड़ा । बैङ्कोँके केन्द्रोँके प्रबन्धमेँ गड़बड़ी थी और इसी कारण बहुतसी शाखाओँने सिवाय रुपया जमा करनेके और कुछ नहीँ किया ।

उपर्युक्त लाहौर-समितिकी राय भी भारतमेँ बैङ्क-व्यवसायकी शिक्षाके प्रचारके पक्षमेँ है । मैँ फिर जापानके आश्चर्य्यकारी बैङ्क-व्यवसायकी ओर आपका ध्यान दिलाऊँगा । सन् १८६८ ई० के पहले पुनरुत्थान (रेस्टोरेशन) के समय "यद्यपि जापानमेँ उस समय आर्थिक-विभागकी कमी नहीँ थी" किन्तु वे विदेशी आर्थिक-प्रणाली, बैङ्क-व्यवसाय अथवा साझेका व्यापार चलाने आदिके अनुभवोँसे नितान्त अनभिज्ञ थे । "राष्ट्रीय अर्थ-प्रबन्ध तथा उचित व्यय दोनोँकी दशा ख़राब थी ।" "जापानी अभीतक पूँजीका साझा करने तथा साझेदार व्यवसाय चलानेकी क्रिया नहीँ जानते थे । उनके सभी उद्योग स्वतन्त्र व्यक्तिगत थे, और उस समयके आर्थिक व्यवसायोँकी हालत अच्छी नहीँ थी ।" सन् १८७० ई० मेँ अर्थ-विभागके पदाधिकारी श्री हीरो बूमी ईतोने (पीछे राजकुमार ईतो) सरकारको यह सूचित किया कि "सरकारी कार्य्योँका आधार, आर्थिक प्रबन्ध तथा उचित व्यवस्था ही है और जबतक ऐसी संस्थाओँकी स्थापना नहीँ होगी तबतक समुचित राज्य-प्रबन्ध नहीँ हो सकता ।" इस परामर्शपर वे उसी साल ऐसी संस्थाओँकी कार्य्य-प्रणालीका अध्ययन करनेके लिये अमेरिका भेजे गए, और अपने निरीक्षणके परिणामस्वरूप उन्होँने तीन बातोँकी ओर सरकारका ध्यान आकृष्ट किया :—

"प्रथम, सिक्कोँका प्रमाण सोना होना चाहिए, दूसरे नोटको भुनानेके लिये हुण्डीका प्रचार होना चाहिए, तीसरे काग़ज़ी सिक्के चलानेके लिये कम्पनियाँ स्थापित होनी चाहिएँ ।"

बहुत तर्क-वितर्क तथा प्रस्तावोँके हेर-फेरके बाद सन् १८७१ ई० मेँ सम्राट्की आज्ञासे राष्ट्रीय बैङ्कोँके सङ्गठनके लिये नियम बनाए गए । पहला राष्ट्रीय बैङ्क सन् १८७३ ई० मेँ टोकियोमेँ स्थापित हुआ और दस महीनेसे कममेँ ही उसने कार्य्य प्रारम्भ कर दिया । अब जापानके बैङ्कोँका विस्तृत इतिहास बतानेकी मुझे आवश्यकता नहीँ है । मैँ केवल यही बता देना चाहता हूँ कि व्यावसायिक विचारसे वहाँके बैङ्क पाँच भागोँमेँ विभक्त हैँ । जैसे—

(अ) स्वदेश-व्यापार, (ब) विदेशी-व्यापार, (स) व्यवसाय, (द) कृषि तथा (य) उपनिवेश-वृद्धि । सन् १९१३ ई० मेँ इन बैङ्कोँकी कुल संख्या दो हज़ार एक सौ बावन थी, जिनमेँसे इक्कीस सौ तो प्रथम अर्द्ध वर्षमेँ साधारण तथा सुरक्षित बैङ्कोँसे सम्बद्ध थे और बावन वार्षिक विशेष बैङ्कोँसे । इन बैङ्कोँकी चुकाई गई पूँजी सन् १९१३ ई० मेँ तैँतालिस करोड़ एकसठ लाख अट्ठासी हज़ार दो सौ एकहत्तर येन, स्थायी कोष तेरह करोड़ एक्यानबे लाख नौ हज़ार नौ सौ सत्रह येन और कुल जमा दस अरब एक्यासी करोड़ अठारह लाख चौरासी हज़ार तीन सौ येन था ।

प्रथम राष्ट्रीय बैङ्कके सभापति बैरन शिबूसावाने अपनी "नवीन जापानके पचास वर्ष" (फ़िफ़्टी ईयर्स औफ़ न्यू जापान)मेँ जापानमेँ बैङ्क व्यवसायकी वृद्धिके विषयमेँ कहा है कि :—

"इस लेखको समाप्त करनेके पूर्व लेखक इस बातपर सन्तोष व्यक्त किए बिना नहीँ रह सकता कि पुनरुत्थानके समय जिस छोटेसे बैङ्कका जन्म हुआ था वह अत्यन्त विशाल व्यावसायिक केन्द्र बन गया । और मेरा यह विश्वास है कि यह अमेरिका तथा योरोपीय देशोँके अनुकरणका ही फल है, जिनका जापान अत्यन्त ऋणी है । जापान राष्ट्र वर्त्तमान

पेरिस बैङ्क लन्दनके डाइरेक्टर श्रीयुत एलैग्ज़ेण्डर एलेशेरण्डके बहुत कृतज्ञ हैं जो सन् १८७२ ई० में इशूज़-विभागके निमन्त्रणपर जापान आए थे और जिन्होंने उसके बैङ्कविषयक-विभागके गूढ़ विषयोंपर सुन्दर परामर्श दिए, बैङ्क व्यवसायपर सुन्दर पुस्तकें लिखीं, तथा नवयुवक जापानियोंको उस विषयकी शिक्षा देकर देशके बैङ्कविषयक व्यवसायको पक्का बना दिया।”

सन् १८७२ ई० में भारत जापानसे बहुत आगे था, पर आज वह जापानसे बहुत पीछे है। इसमें सन्देह नहीं कि आजकल भारतका बैङ्कव्यवसाय जापानके सन् १८७२ ई० की अवस्थासे कहीं बढ़कर है। पर, यदि इसमें वृद्धि करनी है, जिसकी आवश्यकता भी है, तो इस विषयमें भारत-सरकारको जापान-सरकारका अनुकरण करना चाहिए और शीघ्र ही योग्य शिक्षकोंकी नियुक्ति करके भारतीय युवकोंको मुख्यतः व्यापार-कौलेजोंसे उत्तीर्ण ग्रेजुएटोंको बैङ्क-व्यवसायमें उच्च शिक्षा देनेकी सुविधा दे।

प्रान्तीय औद्योगिक-विभाग

मैं अपने सहयोगियोंके इस मतसे सहमत हूँ कि प्रान्तीय औद्योगिक-विभागकी स्थापना और उन्नति की जाय, जिनपर निम्नाङ्कित नियन्त्रण रहेः—

(१) रिपोर्ट, अंश ३०६ (सी)—मैं समझता हूँ कि औद्योगिक तथा शिल्प-विज्ञानकी शिक्षाका नियन्त्रण इस विभागके अन्तर्गत न रहकर या तो शिक्षाविभागके अथवा एक संयुक्त शिक्षा तथा व्यवसाय-विभागोंकी एक संयुक्त-समितिके अधीन होना चाहिए। मेरी रायमें इस प्रबन्धसे सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकारसे औद्योगिक और शिल्प-विज्ञानकी शिक्षाको अधिक लाभ पहुँचेगा।

औद्योगिक-विभागके सञ्चालकको प्रस्तावित बहुत प्रकारके कामोंमें फँसे रहनेके कारण शिक्षाकी ओर ध्यान देनेका समय ही नहीं बचेगा। रिपोर्टके अंश ३३१ में यह कहा गया है कि शिल्प-विज्ञानके शिक्षालयोंका निरीक्षण डिप्टी सञ्चालकको करना चाहिए। इससे कोई लाभ नहीं कि प्रत्यक्ष रूपसे जिस कर्त्तव्यका पालन सञ्चालक नहीं कर सकते उसका भार उनपर दिया जाय।

(२) रिपोर्ट, अंश ३०७—मेरी राय है कि कृषि-इञ्जिनीयरिङ्ग कृषि-विभागके सञ्चालकके अधीन रहे। कृषि-इञ्जिनीयरिङ्गका क्षेत्र “कृषिके लिये कलोंकी स्थापना” ही तक सीमित नहीं रहेगा। इसके अन्तर्गत सिँचाई तथा पानीके निकासके प्रश्न भी रहेंगे। इन प्रश्नोंका कलोंकी स्थापनासे बहुत अधिक महत्त्वका है, क्योंकि कलोंका काम तो इञ्जिनीयरिङ्ग-वाले कर सकते हैं। और यदि औद्योगिक-विभागके सञ्चालकके अधीन न होकर इसपर कृषि-सञ्चालकका अधिकार हो तो यह कार्य्य अधिक उत्तम रीतिसे होगा।

(३) रिपोर्ट, अंश ३१२—मैं नहीं समझता कि औद्योगिक-विभागका सञ्चालक व्यावसायिक तथा व्यापारिक विषयोंमें सरकारका मन्त्री होवे। यदि ऐसा हो तो उस विभागके सदस्यद्वारा निरीक्षण कराकर सलाह लेनेके अपने प्रस्तावोंका मन्शा व्यावहारिक रूपमें ज़रा भी पूरा न होगा। यह सोचकर कि सञ्चालकके सपुर्द बहुत ज़िम्मेदारीका काम है, यह आवश्यक है कि वह निरीक्षण सच्चा होना चाहिए।

(४) रिपोर्ट, अंश ३१३—सञ्चालक तथा उसके उप-सञ्चालकका वेतन जितना बतलाया गया है उससे यह प्रकट होता है कि वे स्थान अंग्रेज़ोंको ही दिए जायँगे। मेरी रायमें ये वेतन इस दृष्टिसे तो किए जायँ कि उनके पदाधिकारी भारतीय होंगे। और उसके साथ यह तै हो जाय कि इसके लिये यदि कोई विदेशसे बुलाया जायगा तो उसे पचीस प्रतिशत अधिक वेतन दिया जायगा। मेरी राय है कि सञ्चालकका वेतन एक हज़ार रुपयेसे प्रारम्भ होकर दो हज़ार रुपयेतक जाना चाहिए।

(५) रिपोर्ट, अंश ३१७—उप-सञ्चालकका वेतन पाँच सौ रुपयेसे एक हज़ार रुपयेतक जाना चाहिए।

(६) रिपोर्ट, अंश ३१७—सर्किल अफ़सरका वेतन दो सौ रुपयेसे पाँच सौ रुपयेके लगभग होना चाहिए।

(७) सञ्चालक और औद्योगिक-समितिके बन जानेपर और उनके एक सम्मिलित कार्य्यक्रमको तैयार कर लेनेपर कर्मचारियोंकी संख्या निश्चित होनी चाहिए।

राजकीय औद्योगिक-विभाग

रिपोर्ट, अंश ३२१—मैं अपने मित्रोंके इस परामर्शसे सहमत हूँ कि भारत सरकारकी कार्य्यकारिणी परिषद्में उद्योग-व्यवसायका अलग प्रतिनिधि जाना चाहिए।

अंश ३२२—परन्तु मुझे इसमें सन्देह होता है कि प्रस्तावित भारतीय औद्योगिक समितिकी आवश्यकता है भी या नहीं। मेरे साथियोंने उसके आवश्यक कर्त्तव्य बताए हैं। उनका कहना है कि :—

(१) *"राजकीय औद्योगिक-विभाग अनेक स्व-सम्बद्ध विधानोंके शासनको अपने अधीन रक्खेगा"*—उद्योगके सदस्यको अपने मन्त्रिदलसे युक्त होनेपर इस कार्य्यको करनेके लिये समितिकी सहायताकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

(२) "*और यह देशकी स्वीकृत औद्योगिक नीतिको, जिसमें यन्त्र-विद्या और उद्योग-शिक्षा भी सम्मिलित है, व्यवहारमें लानेके लिये उत्तरदायी रहेगी।* भविष्यमें प्रान्तीय सरकारोंको यह अधिकार सौंपे जानेपर भी औद्योगिक सदस्यको यह काम पूरा करनेके लिये समितिके किसी आदमीकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। शिक्षा-सदस्य, शिक्षा-सम्बन्धी इसी प्रकारका कर्त्तव्य पालन करता है। रिपोर्टके ३५२ वें अंशमें मेरे मित्रोंने बतलाया है कि इस विषयमें क्या करना चाहिए। वे कहते हैं—

"९ वें तथा १० वें शीर्षक (उद्योगको प्रोत्साहन, प्रान्तीय सरकारोंको आदेश, और औद्योगिक तथा यन्त्र-विद्याकी शिक्षा) के अन्तर्गत कहा है कि राजकीय विभागको निरीक्षण करनेवाले विशेषज्ञोंके ऊपर ही केवल ख़र्च करना पड़ेगा और ये लोग औद्योगिक-समितिके वास्तविक सदस्यके अधीन काम करेंगे।

इनमें एक बड़ा निरीक्षक होगा, जिसके द्वारा उन सबका काम बाँटा जाया करेगा। इन्सपेक्टर मुख्यतः औद्योगिक शिक्षालयोंकी ही देखभाल करेंगे, और उच्च शिक्षा-संस्थाओंका निरीक्षण राजकीय विभागकी ओरसे औद्योगिक समितिके सदस्यों तथा अन्य ऊँचे शिल्प-पदाधिकारियोंद्वारा अधिकतर किया जाया करेगा।

मैं समझता हूँ कि इन "राजकीय निरीक्षण-विशेषज्ञों" की नियुक्तिका प्रस्ताव निस्सार है। वे गाड़ीके पाँचवे पहिएके समान निरर्थक सिद्ध होंगे। परन्तु जैसा भी कुछ हो, औद्योगिक समितिके सदस्योंका इस विषयमें जो कुछ भी कर्त्तव्य है, वह "उच्च शिक्षा-संस्थाओंका निरीक्षण करना है।" ये संस्थाएँ प्रान्तीय सरकारके अधीन रहेंगी। उनकी इस प्रकारके "विशेषज्ञों" के निरीक्षणके अभावसे कोई विशेष हानि नहीं होगी; और औद्योगिक-सदस्य जब कभी दौरेपर बाहर जायँ, तो उनसे आशा की जाती है कि वे उनको यदा-कदा निरीक्षण करनेका कष्ट उठाया करें।

(३) "शेष कर्त्तव्य जो इस विभागका होगा वह आवश्यकतानुसार प्रोत्साहनके रूपमें किसी राजकीय प्रमुख और अन्वेषणका कारख़ाना खोलना और उसे चलाना होगा।" मेरे मित्र तीन सौ छप्पनवें अंशमें कहते हैं :—

"राजकीय सहायतासे जो प्रयोगात्मक कारख़ाने सहज ही खोले जा सकते हैं वे उदाहरणके लिये (अ) काँचके कारख़ाने हैं, जिसके विशेषज्ञोंकी बहुत माँग है (ब) जङ्गलकी हरी लकड़ीका वैज्ञानिक ढङ्गसे

स्रवण या रस चुआना, जिससे सार्वजनिक उपयोगकी बहुतसी वस्तुएँ बन सकती हैं। औद्योगिक-समितिका यह कर्त्तव्य होगा कि इनके कारख़ानोंके लिये उपयुक्त स्थानोंका निर्णय वह स्वयं करे; और उपयुक्त विशेषज्ञोंके अधीन प्रयोगोंको कार्य्य रूपमें परिणत करनेका निश्चय करे।

मुझे इसमें कोई भी कारण नहीं दीखता कि उपरोक्त दोनों कारख़ानोंकी स्थापना प्रान्तीय सरकारके द्वारा किसी एक प्रान्तमें, जहाँ इसकी सुविधा हो, क्यों न शुरू की जाय। परन्तु यदि यह मान भी लिया जाय कि वे राजकीय कारख़ानेके रूपमें स्थापित हों तो निस्सन्देह औद्योगिक सदस्य निश्चय करके, विना प्रस्तावित समितिकी सहायताके विशेषज्ञकी सलाहसे काम करते हुए ऐसे कामकी स्वीकृति दे सकता है।

(४) "*पूर्ण विस्तृत सरकारी कारख़ानोंका प्रबन्ध*"—अनुमानतः इस प्रकारके प्रत्येक कारख़ानेका अपना अलग मैनेजर अथवा व्यवस्थापक रखना पड़ेगा। जब ऐसी बहुतसी संस्थाएँ स्थापित हो जायँगी, तब इन सबके ऊपर एक मुख्य व्यवस्थापकको नियुक्त करनेकी आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु इस कार्य्यके लिये अधिक वेतन पानेवाले प्रस्तावित समितिके सदस्यके समान अफ़सरको रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

(५) "*व्यक्तिगत उद्योगोंकी सहायता करनेके लिये ऐसे उपायोंकी रचना, जिनके लिये एक राजकीय विभागकी आवश्यकता पड़ेगी।*" जब ऐसा अवसर आवे तो औद्योगिक सदस्यको यह काम सौंप देना चाहिए। व्यक्तिगत-उद्योगोंकी सहायताका काम साधारणतया प्रान्तीय सरकारपर छोड़ देना चाहिए। मेरी रायमें ऐसी कोई अलग उद्योगोंकी श्रेणी नहीं बनानी चाहिए जिसके लिये राजकीय विभाग खोलनेकी ज़रूरत पड़े।

(६) "*रसद पहुँचानेका प्रबन्ध*"—इस कामके लिये बहुत अधिक शायद आवश्यकतासे अधिक कर्मचारियोंकी, जिनमें एक कण्ट्रोलर जनरल, चार डिप्टी कण्ट्रोलर, सात असिस्टेण्ट कण्ट्रोलर, छः इन्सपेक्टर, बीस असिस्टेण्ट, इन्सपेक्टर और ठेकोंका एक सुपरवाइज़र प्रस्तावित किए गए हैं। यह मालूम नहीं होता कि औद्योगिक-समितिके सदस्यके लिये भी कोई काम करनेको स्थान छोड़ा गया है या नहीं।

(७) "*औद्योगिक तथा व्यापारिक समाचारोंका जुटाना तथा फैलाना*" इसके लिये भी एक अलग ही अधिक वेतनके डाइरेक्टर और उसकी सहायताके लिये अधिक वेतनके दो डिप्टी-डाइरेक्टरोंके लिये प्रस्ताव किया गया है, जो बम्बई व कलकत्तामें रहेंगे।

(८) "*और इस प्रकारकी विज्ञानों तथा यन्त्र-विद्या-सम्बन्धी नौकरियों और विभागोंका सञ्चालन जो उसके अन्तर्गत आ सके*"। प्रत्येक राजकीय कर्मचारी तथा विभाग जो स्थापित हो उनका एक प्रधान रहना चाहिए। इस तरहके प्रधानके रहते हुए उसे किसी बाहरी सलाह या सञ्चालनकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। इस प्रकारका सञ्चालन और साधारण नियन्त्रण उद्योग-सदस्यद्वारा ज़रूरत पड़नेपर किया जा सकता है।

इन सब कारणोंसे मेरी समझमें एक केन्द्रीय *कार्य्यकारिणी* औद्योगिक-समितिकी स्थापना आवश्यक नहीं है। मेरी रायमें प्रान्तोंकी तरह यहाँ भी एक परामर्श-समितिकी नियुक्ति होनी चाहिए। इसके सदस्य, व्यवस्थापक-परिषद्से निर्वाचित तथा सरकार-द्वारा नामज़द व्यक्ति हो सकते हैं। इसका तात्पर्य्य यह है कि केवल वेतन ही में प्रतिवर्ष दो लाखकी बचत हो जायगी।

लेकिन भारी लाभ प्रस्तावित समितिके विचारको त्याग देनेसे यह होगा कि उद्योग-सदस्यको कुछ काम करनेके लिये मिल जाया करेगा। (अंश ३२३) औद्योगिक समितिकी स्थापना किस जगह हो, इसकी सिफ़ारिश करनेमें मेरे मित्रोंको जो कठिनाई हुई है उससे उनको उसकी आवश्यकतामें अधिक सन्देह हो चला है। उनका कहना है कि "हम मजबूर होकर यह सिफ़ारिश करते हैं कि समितिका बड़ा दफ़्तर भारत-सरकारके साथ होना चाहिए।" वे "पिछले कटु

अनुभवके द्वारा अच्छी तरह समझते हैं कि समितिके सब काम देशके औद्योगिक जीवनके समीप रखना परम आवश्यक है।" परन्तु वे सोचते हैं कि "यह आवश्यकता इस तरह दूर हो जायगी कि विभिन्न विभागोंके कर्मचारी बड़े औद्योगिक केन्द्रोंमें काम करेंगे, और सदस्य स्वयं उद्योगमें वहुत अनुभवी होकर नियमित रूपसे दौरा करते रहेंगे।" उन्हें "समितिके बड़े दफ़्तरके स्थानको चुननेमें इस कारण भी कठिनता हुई है कि उससे दूसरे केन्द्रोंको हानि पहुँचनेकी सम्भावना है।" अतएव मेरे मित्र इस विचारपर आए कि भारतीय औद्योगिक समिति भारत-सरकारके साथ प्रतिवर्ष शिमलेको जाया और देहलीको आया करेगी। किन्तु यह प्रबन्ध मुझे बुद्धियुक्त और लाभदायक प्रतीत नहीं होता।

रासायनिक अन्वेषणका सञ्चालन

मुझे इसमें सन्देह है कि क्या रासायनिक खोजका सञ्चालन उद्योग-विभागपर छोड़ दिया जाय? (रिपोर्ट, पैराग्राफ़ ३२४।) मेरी समझमें यह कार्य्य पूर्व प्रस्तावित इम्पीरियल पोलिटेक्निक इन्स्टिट्यूट (राजकीय-बहुशिल्प-शिक्षण-संस्था) के रसायन-विभागको सौंप देना चाहिए। मुझे इस प्रकारके वैज्ञानिक अन्वेषणका कार्य्यभार, प्रस्तावित राजकीय उद्योग-विभाग (इम्पीरियल डिपार्टमेण्ट औफ़ इण्डस्ट्रीज़) जैसे शासन सरकारके हाथमें देना अनुचित तथा अनुपयुक्त प्रतीत होता है। मुझे डर है कि जो भी "लब्ध-प्रतिष्ठ रासायनिक" इस कार्य्य-भारको लेगा वह दिन-प्रतिदिन योग्य प्रबन्धक तो बनता जायगा किन्तु अपनी योग्यताका ह्रास करता जायगा। इस समय कोई भी रासायनिक यदि कोई नवीन अन्वेषण करे तो वह स्वयं उसके लिये उत्तरदायी है और व्यक्तिगत स्वतन्त्रतासे उसे प्रकाशित भी करा सकता है। परन्तु इसमें प्रवेश करनेपर वह ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि प्रधान रासायनिककी आज्ञा तथा समर्थन पानेपर ही उसे उसको प्रकाशनका अधिकार प्राप्त होगा।

यह विशेषज्ञताका युग है। सर्वश्रेष्ठ सम्मान प्राप्त करनेके लिये किसी भी वैज्ञानिकको विज्ञानकी किसी विशेष शाखामें विशेषता प्राप्त करनी चाहिए। किसी रासायनिकको विभिन्न शाखाओंका ज्ञाता होना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अतएव प्रधान रासायनिक अपने क्षेत्रके अतिरिक्त अन्य रासायनिक अन्वेषणकी उत्तमताकी सच्ची परीक्षा नहीं कर सकता। डाक्टर वोस अपने प्रयोगोंके स्वयं पारखी हैं। ऐसी दशामें कोई भी मनुष्य काम नहीं कर सकता चाहे उसकी खोजको प्रकाशित करने या न करने देनेकी आज्ञा देनेवाला कोई प्रख्यात वैज्ञानिक ही क्यों न हो। देहरादूनके वनान्वेषण-शिक्षालय (फ़ौरेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट) के श्रीयुत पूर्णसिंहने हम लोगोंके सम्मुख पेश किए हुए एक लेखमें प्रबन्धक अफ़सरके अधीन अन्वेषण-कार्य्य करनेके विरोधमें तर्क करते हुए महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं। वे कहते हैं:—

(१) वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक अनुसन्धानका कार्य्य किसी भी सरकारी विभागमें इतने लोकप्रसिद्ध नहीं हो सकते जितने विश्वविद्यालयोंमें।

(२) विश्वविद्यालयके अध्यापकोंके कार्य्यकी परख और आलोचना केवल साधारण जनताद्वारा ही नहीं बल्कि अन्य विश्वविद्यालयोंद्वारा जितनी हो सकती है उतनी सरकारी अफ़सरोंके कार्य्योंकी नहीं हो सकती। इससे विश्वविद्यालयकी उत्तमताका भी पता चलता है जिसके अध्यापक अपने नामके लिये नहीं बल्कि विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठाके लिये भी कार्य्य करते हैं। उधर सरकारी अफ़सरके कार्य्योंके जाँचनेवाले वहुत थोड़ेसे लोग रहते हैं और एक बार प्रशंसा हो जानेपर उनकी धाक जम जाती है, क्योंकि उनका अधिकारपद उसे सुरक्षित रखता है।

(३) वैज्ञानिक अन्वेषणको प्रोत्साहित करनेवाला आजतक कोई भी ऐसा देश नहीं हुआ जो यह कह सके कि उनके किसी भी विश्वविद्यालयका अध्यापक विना प्रथम विद्यार्थी और कर्मचारी बने इतनी उन्नति कर गया हो। दूसरे, इस देशमें हम

भेजनेकी योजना तथा उस सम्प्रदायके नियत स्थान सुरक्षित रखनेकी नीति—पारस्परिक नागरिक भावनाओँकी उन्नतिमेँ अवश्य ही एक बहुत बड़ी बाधा है। मौण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड-रिपोर्टमेँ इसके सम्बन्धमेँ जो आक्षेप किए गए हैँ वे सभी इसपर लागू हैँ।" किन्तु परिस्थितिपर ध्यान रखते हुए कमीशनने सङ्कोचके साथ हिन्दू तथा मुसलमानोँके किसी नवीन समझौतेके अभावमेँ मुसलमानोँके लिये साम्प्रदायिक निर्वाचनको उसी प्रकार प्रचलित रखनेका विधान किया था। फिर भी कमीशनने मुसलमानोँके प्रतिनिधित्वमेँ पूर्ण संरक्षण स्थापित करनेके प्रस्तावको, जो उन्हेँ वर्त्तमान विधानमेँ छः प्रान्तोँमेँ मिल गया है तथा पञ्जाब और बङ्गालमेँ पृथक् निर्वाचन क्षेत्र स्थापित कर जनसंख्याके अनुसार प्रतिनिधित्व बढ़ानेके प्रस्तावको (जो उन्हेँ वर्त्तमान विधानमेँ मिल गया है) अस्वीकृत कर दिया था। कमीशनके कथनानुसार "इस योजनासे इन दोनोँ प्रान्तोँमेँ मुसलमानोँको साधारण निर्वाचन क्षेत्रोँमेँ भी अचल तथा नित्य बहुमत प्राप्त हो जायगा। इतना अधिक हम नहीँ बढ़ सकते।" कमीशनने पञ्जाब तथा बङ्गाल दोनोँ प्रान्तोँमेँ, जहाँ मुसलमान बहुमतमेँ हैँ, संयुक्त निर्वाचनका विधान किया था, जैसा कि कमीशनने स्वयं कहा है, कि "हमारी हार्दिक इच्छा है कि पृथक् निर्वाचनके विस्तारको कम करनेके लिये समस्त क्रियात्मक उपाय काममेँ लाए जायँ और दूसरी योजनाओँको परीक्षाके लिये क्रियात्मक रूप दिया जाय।"

पृथक् निर्वाचनके विरुद्ध एवं संयुक्त निर्वाचनके पक्षमेँ इस प्रकार विचार प्रकट करनेका परिणाम यह हुआ कि मुसलमान नेताओँका लोकमत संयुक्त निर्वाचनके पक्षमेँ हो रहा था। यह केवल इसी बातसे भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि प्रथम गोलमेज़ सभाकी अल्पमत-समितिके सामने मुसलमानोँकी माँग पेश करते हुए सर मुहम्मद शफ़ीने दो प्रस्ताव उपस्थित किए थे—(१) समस्त भारतमेँ संयुक्त निर्वाचनके साथ-साथ मुसलमानोँके लिये इक्यावन प्रतिशत स्थान बङ्गाल तथा पञ्जाबमेँ सुरक्षित होँ अथवा (२) समस्त भारतमेँ पृथक् निर्वाचनके साथ-साथ मुसलमानोँके लिये नौ प्रतिशत स्थान पञ्जाब तथा बङ्गालमेँ सुरक्षित होँ।

(३)

राष्ट्रवादी मुसलमान और संयुक्त तथा पृथक् निर्वाचन

सन् १९३१ ई० की ग्रीष्म ऋतुमेँ राष्ट्रवादी मुसलमानोँने संयुक्त निर्वाचनके पक्ष तथा पृथक् निर्वाचनके विपक्षमेँ एक नियत आन्दोलन करना आरम्भ किया। लखनऊकी अप्रैल सन् १९३१ ई० की अखिल भारतीय राष्ट्रीय मुस्लिम सभाके सभापति स्वर्गीय सर अली इमामने कहा था "पृथक् निर्वाचनका अर्थ है राष्ट्रीयताका निषेध। भेद और बिगाड़से राष्ट्रीयताका उदय नहीँ हो सकता।" प्रतिनिधित्वके उपायके सम्बन्धमेँ डाक्टर अनसारीने एक प्रस्ताव उपस्थित करते हुए बताया था कि उसीने उतनी जनताको आकर्षित कर लिया था और कहा था कि "बहुतसे मामलोँमेँ, जिनका उल्लेख प्रस्तावमेँ किया गया है और जो समस्त राष्ट्रके कल्याणके लिये हैँ, मुस्लिम राष्ट्रवादी दल इसी निष्कर्षपर पहुँचा है कि देशमेँ संयुक्त निर्वाचनकी प्रतिष्ठा हो और अल्प मतोँके लिये व्यवस्थापिका सभामेँ स्थान सुरक्षित होँ, जब उनकी संख्याके तीस प्रतिशतसे कम हो। साथ ही उनको अन्य स्थानोँके लिये खड़ा होनेका अधिकार दिया जाय।" डाक्टर अन्सारीने "सङ्गठित राष्ट्रके उदयके लिये संयुक्त निर्वाचनकी अनिवार्य्यता" को पुष्ट किया और आगे चलकर कहा कि "राजनीतिक दृष्टिसे पृथक् निर्वाचनसे निश्चय ही साम्प्रदायिक द्वेष और वर्ग-विभेद उत्तेजित होते तथा बढ़ते हैँ। किसी भी समझौतेको रद्द करनेके लिये इससे बढ़कर कोई दूसरा अन्य उपाय नहीँ हो सकता कि सामान्य बातोँपर भी बातचीतकर उसे इधर-उधर कर दे। जून सन् १९३१ ई० की अखिल बङ्गाल राष्ट्रीय

मुस्लिम सभामेँ भाषण देते हुए डाक्टर अन्सारीने कहा था कि मुस्लिम राष्ट्रवादी दल पिछले बीस वर्षोँके पृथक् निर्वाचनके दुःखद अनुभव तथा देशकी राजनीतिक प्रगतिपर ध्यान देनेसे इस नतीजेपर पहुँचा है कि इसीमेँ भारतके मुसलमानोँका लाभ है कि संयुक्त निर्वाचन तथा प्रौढ़ मताधिकार ही भविष्यके शासन-विधानमेँ प्रतिनिधित्वके आधारपर बनाए जायँ।" बङ्गाल राष्ट्रीय मुस्लिम कान्फ्रेन्सने प्रौढ़ अथवा विस्तृत मताधिकार, साथ-ही-साथ संयुक्त निर्वाचन और जनसंख्याके अनुसार स्थान सुरक्षित करने तथा अन्य स्थानोँके लिये भी खड़े होनेके अधिकारके लिये सिफ़ारिश करते हुए एक प्रस्ताव पास किया था। जुलाई सन् १९३१ ई० मेँ मेरठमेँ भाषण देते हुए डाक्टर अन्सारीने इस बातपर ज़ोर दिया था कि "संयुक्त निर्वाचनके बिना साम्प्रदायिकता तथा साम्प्रदायिक भावोँका मूलोच्छेद कभी भी नहीँ हो सकता।" उन्होँने स्पष्ट कहा कि "पृथक् निर्वाचनके सिद्धान्तको स्वीकार करनेका अर्थ होगा श्वेत नौकरशाहीके विशेषाधिकारोँ तथा उसके शाश्वत शासनको स्वीकार करना।"

२४ अक्टूबर, सन् १९३१ ई० को पञ्जाब राष्ट्रीय मुस्लिम सभाके स्वागत समितिके अध्यक्ष मलिक बरकत अलीने कहा कि "पृथक् निर्वाचनके प्रतिकार स्वरूप, जैसा कि हमने उसके दोनोँ पक्षको देख लिया है, यह आवश्यक हो गया है कि समस्त दलोँके हितके लिये शासन-विधानसे सम्प्रदायोँका अलग-अलग खण्डोँमेँ विभाजित होना नष्ट हो जाय और उनके स्थानपर संयुक्त निर्वाचन-प्रणालीकी स्थापना हो, जिसके एकात्मक प्रभावके भीतर हिन्दू और मुसलमान अपनी परम्परागत ईर्ष्याको ठुकराकर यह अनुभव करने लगेँ कि वे एक ऐसी जातिके व्यक्ति हैँ जिसका ध्येय एक है, जिसका मार्ग एक है और जिसका दुखड़ा भी एक ही है। इस प्रकार दोनोँ पक्षोँके कट्टर हठधर्मियोँका अभाव हो जायगा।

(४)

कांग्रेसकी योजना

कांग्रेसकी कार्य्यकारिणी समितिने जुलाई सन् १९३१ ई० मेँ साम्प्रदायिक निर्णयके सम्बन्धमेँ एक योजना उपस्थित की थी, जिसका उद्देश्य था कि पृथक् निर्वाचन नष्ट हो जाय और उसकी जगह संयुक्त निर्वाचनकी स्थापना इस विशेषताके साथ हो जाय कि जहाँ कहीँ अल्प मतवाले चाहेँ उनके लिये उनकी संख्याके अनुपातसे स्थान सुरक्षित कर दिए जाय और अन्य स्थानोँके लिये खड़ा होनेका उन्हेँ अधिकार भी मिल जाय। महात्मा गान्धीजीने गोलमेज़ सभामेँ कांग्रेसकी ओरसे इस योजनाको उपस्थित किया। इसके विषयमेँ व्याख्या करते हुए महात्माजीने कहा कि 'साम्प्रदायिक प्रश्नके सम्बन्धमेँ कांग्रेसकी योजना, जो आपको दी तथा सदस्योँमेँ बाँटी गई है, आशा है आपको मिल गई होगी। मैँ इतना निवेदन करनेका साहस चाहता हूँ कि मैँने जितनी योजनाओँका दर्शन किया है उन सबमेँ यह सबसे अधिक क्रियात्मक और व्यावहारिक है। मैँ मानता हूँ कि इस मेज़पर एकत्र हुए साम्प्रदायिक प्रतिनिधियोँको यह योजना पसन्द आयगी, किन्तु भारतमेँ इन्हीँ सब सम्प्रदायोँके प्रतिनिधियोँने इस योजनाको पसन्द कर लिया है। कांग्रेसकी ओरसे यह योजना आपके सामने है।'

साम्प्रदायिक निर्णयके प्रकाशित होनेके पन्द्रह दिन पहले बङ्गालकी व्यवस्थापिका सभाने बत्तीसके विरुद्ध सैँतालीस वोटसे यह प्रस्ताव पास किया था कि सरकार कृपाकर उचित अधिकारियोँको सूचित करेगी कि "इस सभाकी रायमेँ देशके भविष्य शासन-विधानमेँ पृथक् निर्वाचनकी जगह संयुक्त निर्वाचनकी प्रतिष्ठा होनी चाहिए।"

घोर दुःखकी बात है कि पृथक् निर्वाचनके विरुद्ध संयुक्त निर्वाचनके पक्षमेँ इतना बहुमत होनेपर और विशेषतः श्री मौण्टेगू और लौर्ड चेम्सफ़ोर्डकी स्पष्ट और बलिष्ठ सम्मति तथा साइमन कमीशन और कांग्रेसके दृढ़ विचारके होनेपर भी

पृथक् निर्वाचनका विस्तार न किया जाय। पार्लियामेण्टकी जननी बृटिश राष्ट्रीय सरकारने मुसलमानोंके सामने संयुक्त निर्वाचनको साइमन कमीशनके कथनानुसार पेश भी नहीं किया और इस प्रकार इसने केवल पृथक् निर्वाचनकी रक्षा ही नहीं की बल्कि उसके सिद्धान्तको कहीं-कहीं सम्बद्ध सम्प्रदायोंकी इच्छाके विरुद्ध भी नवीन ढङ्गसे और भी विस्तृत कर दिया। उक्त साम्प्रदायिक निर्णयके अनुसार देशमें पन्द्रह* प्रकारके पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र होंगे।

(५)

सरकारने प्रयागमें प्राप्त ऐक्यको भ्रष्ट कर दिया।

प्रायः कहा गया है कि हम भारतीय जब आपसमें मिलकर साम्प्रदायिक मामलेको हल नहीं कर सकते तब साम्प्रदायिक निर्णयको हमें तबतकके लिये क़बूल कर लेना चाहिए जबतक कि हम किसी दूसरे निर्णयको उसकी जगह एक रायसे पेश नहीं कर देते।

हम इसके विपक्षमें हैं। एक अटल निर्णय नहीं बल्कि एक निश्चय है, उसके मानने और न माननेका प्रश्न ही क्या? अर्थात् साम्प्रदायिक निर्णय तो व्यवस्थाके लिये केवल एक प्रस्ताव है जो प्रत्यक्ष ही राष्ट्रीयताका विरोधी है और उत्तरदायी शासनकी स्थापनाको बिल्कुल असम्भव कर देता है।

इस सम्बन्धमें इतना निवेदन कर देना उचित है कि साम्प्रदायिक निर्णयके अगस्त सन् १९३२ ई० में प्रकाशित हो जानेपर भी जो ऐक्य-सम्मेलन प्रयागमें किया गया था और हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, सर्वदल-मुस्लिम कौन्फ़रेन्स, सिक्ख तथा भारतीय इसाइयोंके प्रतिनिधियोंने जिसमें योग दिया था, वह सप्ताहोंके अथक परिश्रमसे संयुक्त निर्वाचनके आधारपर एक योजना उपस्थित करनेमें प्रायः सभी मुख्य बातोंमें सफल हो गया था। उसकी असफलता केवल इसीमें दिखाई पड़ती थी कि बङ्गालके फ़िरङ्गी उस अधिक प्रतिनिधित्वको छोड़ना नहीं चाहते थे, जो उन्हें साम्प्रदायिक निर्णयमें मिल गया था और जिसके छोड़नेपर ही हिन्दू-मुसलमानोंका समझौता सफल हो सकता था। इससे भी अधिक विषादजनक बात यह हुई कि २४ दिसम्बर, सन् १९३२ ई० को जब ऐक्य-सम्मेलनने केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद्में मुसलमानोंका बत्तीस प्रतिशत प्रतिनिधित्व स्वीकार कर लिया और सिन्धके अलग करनेके प्रश्नपर भी मुसलमानों तथा हिन्दुओंमें कुछ शर्त्तोंपर समझौता हो गया तब भारतमन्त्री सर सेमुएल होरने गोलमेज़की अन्तिम बैठकमें कुछ दिनोंके बाद घोषित कर दिया कि मुसलमानोंको केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभामें ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत स्थान सुरक्षित रक्खा जायगा और सिन्धको अलग कर दिया जायगा। सर सेमुएल होरने इस बातका एक नवीन प्रमाण पेश कर दिया कि भारतवासी आपसमें साम्प्रदायिक समझौतेके लिये चाहे जितना प्रयत्न करें वे तबतक कृतकार्य्य नहीं हो सकते जबतक बृटिश सरकार अथवा उसके प्रभावशाली प्रतिनिधि यह नहीं चाहते कि उनमें ऐक्य स्थापित हो। इस घोषणाकी "लीडर" की टिप्पणी उल्लेखनीय है:—"गोलमेज़ कौन्फ़रेन्सकी अन्तिम बैठकमें व्याख्यान देते हुए सर सेमुएल होरने दो घोषणाएँ की थीं। प्रथम तो यह थी कि सरकारने तै कर लिया है कि सिन्ध तथा उड़ीसा पृथक् प्रान्त होंगे और द्वितीय यह कि भावी केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभामें बृटिश प्रान्तोंमें मुसलमानोंको ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत प्रतिनिधित्व दिया जायगा।

"गत अगस्तमें प्रकाशित साम्प्रदायिक निर्णयका सम्बन्ध केवल प्रान्तोंसे था। प्रधान मन्त्रीने उस

---

*(१) सामान्य पुरुष (२) सामान्य स्त्री (३) मुस्लिम पुरुष (४) मुस्लिम स्त्री (५) फ़िरङ्गी (६) गोरे (७) भारतीय इसाई (८) दलित वर्ग (९) सिक्ख (१०) बृटिश पूँजीपति (११) भारतीय पूँजीपति (१२) श्रमजीवी (१३) भूमिपति (१४) विश्वविद्यालय (१५) पिछड़े प्रदेश। ये सब निर्वाचन क्षेत्र सभी प्रान्तोंमें नहीं स्थापित होंगे, किन्तु उनमेंसे अधिकांश अधिकसे अधिक प्रान्तोंमें स्थापित होंगे।

समय कहा था कि केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाके सदस्योंका निर्णय फिर किया जायगा। उन्होंने वादा किया था कि यदि सम्बद्ध सम्प्रदायोंमें कोई समझौता हो गया तो वे उसे स्वीकार करेंगे। इस समय परिस्थिति यह है कि सब सम्प्रदाय इस प्रकारके समझौतेके लिये अत्यन्त प्रयत्नशील हैं। बहुत कुछ काम हो चुका है, जिससे सिद्ध होता है कि यह विलम्बित वाद-विवाद सफल होगा। कोई भी व्यक्ति सोच सकता है कि जो सरकार वस्तुतः सब सम्प्रदायोंमें सद्भावकी वृद्धि चाहती है वह थोड़ी देर प्रतीक्षा करेगी और किसी प्रकारकी भी ऐसी चाल न चलेगी जिससे सर्वसम्मत समझौतेमें कोई विघ्न पड़े। द्वितीय, प्रधान मन्त्रीने अभी यह घोषित नहीं किया कि उनका निर्णय क्या होगा ? फिर भी ऐसी परिस्थितिमें भारत-सचिव झपटकर जनतामें सरकारके निर्णयकी घोषणा करते हैं कि भविष्यकी केन्द्रीय व्यवस्थामें एक विशेष सम्प्रदायको इतना प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा। भारत-सचिवने ऐक्य-सम्मेलनकी समितिकी केन्द्रीय व्यवस्थामें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके अनुपातकी सिफ़ारिशको अवश्य पढ़ा होगा। इतना होनेपर भी उन्होंने यह घोषणा कर दी। क्या उन्होंने यह सोचा था कि इस प्रकार वे ऐक्य-सम्मेलनके कार्य्योंमें सहायक होंगे ? हमारे लिये यह अत्यन्त आश्चर्य्यकी बात होगी, यदि कोई व्यक्ति, जो किसी अधिकारीका पिट्ठू नहीं है और किसी भी झूठ-साँचके लिये वकालत नहीं करता है, सर सैमुएल होरकी इस बेतुकी बातकी सफ़ाई देनेका नाम भी ले। सिन्धके अलग करनेके विषयमें भी यह समीक्षण उसी तरह लागू है। पृथक्करणमें ऐक्य-सम्मेलन भी एक महत्त्वका विषय है जिसके सम्बन्धमें हिन्दू-मुस्लिम समझौता हो गया था।”

इन घोषणाओंके लिये यही समय क्यों चुना गया ? इसके पूछनेकी हमें कोई ज़रूरत नहीं दिखाई देती। यह भली भाँति स्पष्ट कर दिया गया है कि पृथक् निर्वाचनके विरुद्ध और संयुक्त निर्वाचनके पक्षमें लोकमत प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था कि सम्राट्की सरकारने उदारतावश केवल पृथक् निर्वाचन क़ायम ही नहीं रक्खा बल्कि उन सम्प्रदायोंके लिये भी, जो इसके सर्वथा प्रतिकूल थे, उसको बढ़ा दिया। उन्होंने स्वयं अपनेको मौएटेगू-चेम्सफ़ोर्ड-रिपोर्टके इस आक्षेपका शिकार बना लिया।

“२२९. जातिभेद तथा वर्गभेद स्थापित करनेका अर्थ होता है—एक राजनीतिक सम्प्रदायको दूसरेके विरुद्ध सङ्घटित रूपमें खड़ा कर देना। इसका प्रभाव यह पड़ता है कि मनुष्य एक दूसरेको अपना पट्टीदार समझता है, नागरिक नहीं। इस बातका पता लगा लेना, कि किस प्रकार इस परिपाटीका राष्ट्रीय प्रतिनिधित्वके रूपमें परिवर्त्तन हो जाता है, अत्यन्त दुस्तर है। बृटिश सरकारपर प्रायः यह दोष लगाया जाता है कि वह शासन करनेके लिये जनताको सम्प्रदायोंमें विभक्त कर देती है। परन्तु, यदि वह उसी समय व्यर्थमें उनको विभक्त करती है, जब कि उसका दावा होता है कि वह उनको स्वायत्त शासनके मार्गपर अग्रसर कर रही है, तो उसके लिये यह अत्यन्त दुस्तर हो जायगा कि वह कपटी और अदूरदर्शी कहलानेसे बच सके।

(६)

स्थान सुरक्षित रखनेकी नीति

पृथक् निर्वाचनके साथ व्यवस्थित बहुमत पृथक् निर्वाचनको क़ायम रहने देना तथा जहाँ वह पहले नहीं था वहाँ भी उसको विस्तार कर देना ही साम्प्रदायिक निर्णयका आक्षेपपूर्ण अङ्ग नहीं है। इस निर्णयकी सबसे भयङ्कर बात तो यह है कि इसने भारतके समस्त प्रान्तोंमें पृथक् निर्वाचनके साथ-साथ व्यवस्थित बहुमत भी स्थापित कर दिया है। जिन प्रान्तोंमें मुसलमान अल्प संख्यामें हैं उनके लिये पृथक् निर्वाचनको किसी तरह विहित मानते हुए श्री मौएटेगू तथा लौर्ड चेम्सफ़ोर्डने कहा था “किन्तु हम उन प्रान्तोंमें मुसलमानोंके लिये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके

क़ायल नहीं हो सकते जिनमें वे बहुमतमें हैं।" इसके दस वर्ष बाद इसी विषयपर विचार करते हुए नेहरू-समितिने कहा "बहुमतके लिये स्थान सुरक्षित रखना केवल उत्तरदायी शासनको ठुकराना ही नहीं है बल्कि उस सिद्धान्तकी, जिसपर उत्तरदायी शासन अवलम्बित रहता है, जड़ खोदना भी है। बहुमतोंके लिये स्थान सुरक्षित रखनेका दुराग्रह करना और साथ ही पूर्ण उत्तरदायी शासनकी माँग पेश करना बिलल्कुल मूर्खता नहीं तो और क्या है? उत्तरदायी शासनका तात्पर्य्य है—वह शासन जिसकी शासक-मण्डली व्यवस्थापकोंके प्रति तथा व्यवस्थापक निर्वाचकोंके प्रति उत्तरदायी है। यदि शासक-मण्डलीके सदस्योंने बहुमतके बलपर, सुरक्षणके सहारे, निर्वाचकोंकी स्वतन्त्र इच्छासे नहीं, सभी कुछ प्राप्त कर लिया है तो न तो यह निर्वाचकोंका प्रतिनिधित्व हुआ और न उत्तरदायी शासनका कोई श्रीगणेश ही।

हिन्दुओं और सिक्खोंपर प्रायः यह आक्षेप किया गया है कि वे पञ्जाब तथा बङ्गालमें, जहाँ मुसलमानोंका बहुमत है, उनके साथ स्थान सुरक्षणके सम्बन्धमें कभी किसी निर्णयपर नहीं पहुँचते। परन्तु इसका कारण उनके पक्षमें है। नेहरू-समितिने जैसा दिखाया है कि "बहुमतवाले सम्प्रदायको सुरक्षित स्थान देनेसे उस सम्प्रदायको यह व्यवस्थित अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह निर्वाचकोंकी इच्छाके विरुद्ध स्वच्छन्द शासन करे जो लोक-शासनकी भावनाके सर्वथा प्रतिकूल है।" पञ्जाबमें हिन्दुओं और सिक्खों तथा बङ्गालमें हिन्दुओंने जिस मार्गको ग्रहण किया उसके औचित्यका यहाँ सङ्क्षेपमें विचार कर दिया गया। यदि व्यवस्थित बहुमत पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचकोंमें चुना गया तो दशा और भी भयावह हो जाती है।

मान लीजिए कि पृथक् मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रोंसे इक्यावन वा बावन प्रतिशत सदस्य निर्वाचित हुए हैं। वे केवल उन्हीं मुसलमान निर्वाचकोंके प्रति उत्तरदायी होंगे जिन्होंने उन्हें चुना है। हिन्दुओं, सिक्खों, ईसाइयों आदि अन्य ग़ैर-मुस्लिम निर्वाचकोंके प्रति उनका कोई उत्तरदायित्व न होगा। क्योंकि उनके चुनावमें उनका कोई हाथ न था। जहाँतक मुसलमानोंका सम्बन्ध है उनके लिये तो उत्तरदायी शासन उक्त प्रान्तमें स्थापित हो गया। परन्तु ग़ैर-मुस्लिम लोगोंके लिये तो उक्त प्रान्तमें उत्तरदायी शासनका नाम भी न रहेगा। उस प्रान्तमें यह बहुमत धार्मिक सम्प्रदायका अल्पमत धार्मिक सम्प्रदायों-पर स्वच्छन्द शासन होगा। विलोमतः यही दशा वहाँ हो जायगी जहाँ मुसलमान अल्पमत और हिन्दू बहुमतमें हैं। किसी भी सभ्य समाजके स्त्री-पुरुष इस प्रकारकी योजनाको पसन्द करेंगे, इसकी कल्पना नहीं हो सकती। यह विश्वसनीय भी नहीं है कि बृटिश पार्लियामेण्ट एक ऐसा विधान पास कर दे जिससे उत्तरदायी शासनकी ओटमें एक ऐसा स्वच्छन्द शासन स्थापित हो जाय, उसे ऐसा करनेका कोई अधिकार नहीं है। बृटिश सरकार अपने उस कर्तव्यको, जो करोड़ों मनुष्योंके प्रति है, जो उसके मैदानमें आनेके पहले अपने देशका शासन करते थे, इस प्रकार किसी एक शासक-मण्डलीको, जिसके विधाता प्रत्येक प्रान्तमें किसी धार्मिक सम्प्रदायके निर्वाचित सदस्य हैं, बिना अन्य सम्प्रदायोंकी सम्मति या उनकी इच्छाके विरुद्ध सौंप नहीं सकती। प्रत्येक राष्ट्रवादी भारतीयका कर्त्तव्य है कि वह ऐसी अनुदार राष्ट्रद्रोही योजनाका विरोध करे।

सिक्खोंका विचार

सामान्यतः सभी राष्ट्रवादियोंने इस प्रस्तावित प्रबन्धकी भर्त्सना की है, परन्तु पञ्जाबके सिक्खों तथा बङ्गाल और पञ्जाबके हिन्दुओंने स्वभावतः इसके प्रतिकूल अपना घोर असन्तोष प्रकट किया है। बहुतसे सिक्ख नेताओं ने मिलकर एक वक्तव्य प्रकाशित किया है, जिसमें कहा है कि—

"हमें तो बढ़ी हुई जनसंख्याके अनुसार कोई लाभ नहीं हुआ और न हमको वह विशेषाधिकार ही

मिला जो उसका स्वभावसिद्ध परिणाम है। किन्तु मुसलमानोंके लिये केवल छः प्रान्तोंमें विशेषाधिकार सुरक्षित ही नहीं रक्खा गया बल्कि पञ्जाबमें उनको उससे भी कहीं अधिक दिया गया जितना कि उन्होंने माँगा था। प्रथम गोलमेज़ सभामें प्रधान मन्त्रीसे बातचीत करते समय मुसलमान प्रतिनिधि अपने सम्प्रदायके लिये पञ्जाबमें पचास प्रतिशत प्रतिनिधित्व-पर सहमत हो गए थे, किन्तु सरकारके निर्णयने उन्हें एक्यावनवें स्थान अर्थात् बावन प्रतिशत देनेका वचन दे दिया है। क्योंकि बहुत सम्भव है कि श्रमजीवियोंके दो स्थान, जिन्हें निर्णयने यों ही छोड़ दिया है, जो किसी भी सरकारके लिये उचित नहीं है, मुसलमानोंको प्राप्त होंगे।

“धार्मिक सम्प्रदायको बावन प्रतिशतका निश्चित बहुमत बनाकर सरकारने सदाके लिये इस सम्भावनाको दूर खदेड़ दिया है कि धार्मिक सम्प्रदायके अतिरिक्त किसी अन्य आधारपर कोई सङ्घटन हो सकता है अथवा विभिन्न सम्प्रदायोंमें कभी किसी प्रकारका आपसमें समझौता भी सम्भव है प्रजातन्त्र शासनकी पद्धतिका तो इस निर्णयने मूलोच्छेद ही कर दिया है। सिक्ख समुदाय केवल पञ्जाबके लिये ही एक राष्ट्रीय सरकार नहीं चाहता, अपितु समस्त भारतके लिथे उत्सुक है और इसलिये वह इस प्रकारके निर्णयको कदापि स्वीकार नहीं कर सकता, जो प्रजातन्त्रकी ओटमें एक धार्मिक सम्प्रदायको दूसरोंपर सदाके लिये हावीकर साम्प्रदायिक भेदभावोंको बढ़ाता है और उन्नतिकी घड़ीको कई युग पीछे घसीट देता है। इससे कहीं अच्छा तो वर्त्तमान विधानको ही सह लेना है।

“यह निर्णय अन्तिम निर्णय प्रतीत होता है। हमारा विश्वास है कि बृटिश सरकारके एक प्रान्तकी आधी जनताको उसकी इच्छाके विरुद्ध, बलपूर्वक दूसरे सम्प्रदायके शासनमें कर देनेके कार्य्य तथा उसकी सम्मतिके बिना एक नवीन शासनके विधानका समर्थन सभ्य संसार कदापि न करेगा। हमारी धारणा है कि परम्परासे प्रजातन्त्रकी भावनाओंका आदर करनेवाली न्यायपूर्ण और उदार बृटिश पार्लियामेण्ट अधिकांश जनताको उसकी इच्छाके विरुद्ध बलपूर्वक एकाङ्गी शासन-विधानमें बाँधनेकी सम्मति न देगी।”

श्री रामानन्द चटर्जीने ‘माडर्न रिव्यू’ में लिखते हुए कहा है “इस निर्णयपर मुख्यतः इस दृष्टिसे नहीं विचार किया जायगा कि इससे अमुक भारतीय वर्गका अहित होता है या यह अमुकके विरुद्ध है, बल्कि यह समूचे भारतके लिये अमङ्गलकारी है। यह बृटिशका रक्षक और भारतका विरोधी है।

“प्रजातन्त्र एवं उत्तरदायित्व शासनकी एक ज़रूरी शर्त्त यह है कि जो आज अल्पमतवाले हैं वे कल अन्य मतवालोंको अपने मतमें मिलाकर अथवा किसी अन्य उपायसे बहुमतवाले बन जायँ। इस प्रकार समस्त दल अपनी विद्वत्ता, लोकहित-कामना और शक्तिसे राष्ट्रका भरपूर मङ्गल करनेके योग्य हो जाता है। शासक-दलकी इस अस्थिरतासे बहुमतमें यह भाव बराबर बना रहता है कि उसे राष्ट्रका वास्तविक हित करना है; साथ ही स्वच्छन्द, अनियमित और भ्रष्ट उपायोंके प्रयोगसे अपने स्वत्वसे हाथ धोना है। परन्तु यदि किसी विधानद्वारा एक धार्मिक सम्प्रदायको एक सम्प्रदायके रूपमें बहुमतके आधारपर शासक बना दिया है तो देशमें किसी प्रकारका प्रजातन्त्र या उत्तरदायी शासन नहीं हो सकता और ऊपर कहे गए लाभोंका एकदम नाश हो जाता है। साम्प्रदायिक निर्णय तो प्रजातन्त्र तथा उत्तरदायी शासनके प्रमुख अङ्गोंके विरुद्ध लोगोंको उत्साहित करता है और यदि उसको कार्य्यरूपमें परिणत कर दिया गया तो वह भारतको उत्तरदायी शासनके समस्त लाभोंसे वञ्चित कर देगा।”

“संयुक्त निर्वाचनके आधारपर यह कहा जा सकता है कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओंके बहुमत सदस्योंको चाहे वे किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय, जाति, वर्ग या वंशके हों, समस्त सम्प्रदायोंने निर्वाचित

किया है और इसके लिये सभी उत्तरदायी हैं। अतएव निर्वाचित सदस्य भी अपनेको समस्त वर्गोंके प्रति उत्तरदायी समझेंगे और समस्तके साथ ही प्रत्येक वर्गके कल्याणके लिये अवश्य प्रयत्नशील होंगे। परन्तु पृथक् निर्वाचनसे बहुमत कहीं-कहीं केवल हिन्दुओंद्वारा निर्वाचित होगा या कहीं ग़ैर-मुस्लिम या ग़ैर-इसाईद्वारा। विशेषतः बङ्गालमें बहुमत या तो मुसलमानोंका होगा या मुसलमानों तथा फ़िरङ्गियोंका मिलकर, जो केवल उन्हींके धर्मवालों या उन्हीं जैसे देशभक्तोंके द्वारा चुने जायँगे। अस्तु, भारतका प्रत्येक प्रान्त विदेशियोंके स्वच्छन्द शासनमें होगा। क्योंकि बृटिश सत्ता ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी और व्यवस्थापिका सभाओंमें ऐसे सदस्योंका बहुमत रहेगा जो न तो समस्त वर्गोंद्वारा चुने गए हैं और न समस्त वर्गोंकी हितकामना ही करते हैं। फलस्वरूप उनके प्रति न तो सामान्यजन उत्तरदायी होंगे और न वे ही जो लोक-हितके लिये प्रयत्नशील हैं। यह बड़ी भयङ्कर स्थिति होगी। इसे स्वायत्तशासन या प्रतिनिधिशासन भी नहीं कह सकते। यह उन लोगोंका शासन होगा जिनके निर्वाचनके सम्बन्धमें समस्त प्रजा कुछ भी नहीं कर सकती।"

लाहौरका ट्रिब्यून

"सम्राट्की सरकारकी योजनाको बिल्कुल राष्ट्रद्रोही तथा अयोग्य" कहते हुए लाहौरके ट्रिब्यून पत्रने एक लम्बे लेखके उपसंहारमें कहा है कि "इस बातका सबसे विलक्षण भाग तो यह है कि श्री रैम्ज़े मैक्डौनल्डको यह आशा है कि यह नवीन योजना शासन-विधायक उत्कर्षके मार्गसे एक विघ्नको दूर करेगी।" परन्तु वस्तुतः इस प्रकारके उत्कर्षके मार्गमें यह एक अटल विघ्न उपस्थित करेगी। भारतमें शासन-विधानके उत्कर्षका केवल यही अर्थ हो सकता है कि उसमें प्रजातन्त्र और उत्तरदायी स्वशासनका उत्कर्ष हो। पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व और व्यवस्थापिका सभामें व्यवस्थित साम्प्रदायिक बहुमत करनेकी योजनाके सामने प्रजातन्त्र और उत्तरदायी स्वशासन व्यर्थ और प्रत्यक्ष ही असम्भव है। नवीन विधानके अनुसार भारतमें व्यवस्थापिका सभाओंको जो वास्तविक अधिकार मिलेगा वह हर हालतमें एक साम्प्रदायिक निर्वाचकोंके प्रति उत्तरदायी होंगे, जिसका परिणाम यह होगा कि अल्पमत सदैव राजनीतिक शक्तिसे वञ्चित रहेगा। श्री मैक्डौनल्ड बहुत ही बूढ़े अनुभवी और अति विचक्षण राजनीतिज्ञ हैं जो इतना भी नहीं जानते कि यह उत्तरदायी शासन नहीं बल्कि उत्तरदायी शासनका निषेध है। जिस नवीन योजनामें हाथ बँटानेके लिये श्री रैम्ज़े मैक्डौनल्ड सभी भारतीयोंको आमन्त्रित करते हैं उसकी सफलताका अर्थ होगा—भारतकी राष्ट्रीय आशाओं और उमङ्गोंका पूरा विनाश। इस प्रकारकी योजनाके प्रयोगमें योग देना राष्ट्रीय आत्महत्या है।

'सर्वैण्ट औफ़ इण्डिया' जिसे अत्यन्त नरम दलका पत्र कहते हैं, इस विषयमें कहता है :—

"सम्राट्की सरकारका साम्प्रदायिक निर्णय जो प्रकाशित हुआ है दो बातोंको स्पष्ट करता है। एक तो यह कि साम्प्रदायिक निर्वाचन बदस्तूर बना रहा और दूसरा यह कि पञ्जाबमें मुसलमानोंको प्रभावशाली साम्प्रदायिक बहुमत मिल गया। भारत छिन्न-भिन्न कर दिया गया। बृटिश सरकारने भारतमें राष्ट्रीयताकी उपजपर वज्रपात कर दिया। कांग्रेसके जन्मदाताओं और परम्परागत अनेक राजनीतिक सुधारकोंका भारतके छिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंसे एक सङ्गठित राष्ट्र उत्पन्न करनेका स्वप्न, यदि सर्वथा भङ्ग नहीं हो गया तो कम-से-कम भविष्यमें बहुत दिनोंके लिये टाल दिया गया। यह बृटिश सरकारकी कृपा है। भारतमें बृटिश राज्यका यह महाप्रसाद है।"

हम इस विषयको और नहीं बढ़ावेंगे और तुच्छ-से-तुच्छ बुद्धिवालेको भी यह स्पष्ट हो गया होगा कि पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचनके आधारपर

व्यवस्थित बहुमत राष्ट्रीयता और उत्तरदायी शासनका विरोधी है।

(७)

स्वच्छन्द निर्णय और स्थानोंका अनुचित विभाजन

साम्प्रदायिक निर्णयका अन्तिम किन्तु अटूट आक्षेपपूर्ण रूप जो हमारा ध्यान सहसा आकर्षित कर लेता है वह है, जिसने कुछ सम्प्रदायोंका पक्ष लिया है और दूसरोंके प्रति द्वेषका परिचय, जिसका विधान निर्णयमें पर्य्याप्त कर दिया है। बङ्गालमें फ़िरङ्गियोंके लिये यह पक्षपात बहुत ही धैर्य्यके साथ किया गया है। जनसंख्याकी दृष्टिसे उनकी संख्या नगण्य है। दो हज़ारमें एक—किन्तु उन्हें अत्यन्त अधिक प्रतिनिधित्त्व दिया गया है। व्यवस्थापिका सभामें कुल दो सौ पचास स्थान हैं, जिनमें पच्चीस स्थान अर्थात् दस प्रतिशत उनके लिये सुरक्षित हैं। हिन्दू तथा मुसलमान दोनोंका अहितकर यह कार्य्य केवल इस दृष्टिसे किया गया है कि फ़िरङ्गी शक्ति-सम्पन्न रहें। जनसंख्याकी दृष्टिसे मुसलमानोंसे लगभग पाँच प्रतिशत और हिन्दुओंसे लगभग ६.६ प्रतिशत स्थान छीन लिए गए हैं। इस प्रकार यद्यपि फ़िरङ्गियोंको अत्यधिक प्रतिनिधित्त्व दे देनेके कारण हिन्दू तथा मुसलमान दोनोंके स्थान छिन गए हैं तथापि मुसलमानोंकी अपेक्षा। हिन्दुओंका अधिक अहित हुआ है। निदान हिन्दुओंका यह कहना सर्वथा सत्य है कि पञ्जाब तथा बङ्गाल दोनों प्रान्तोंमें अल्प मतोंके संरक्षणका सिद्धान्त उनके लिये नहीं रहा है और उनको विवश कर दिया गया है कि वे अपने स्वत्त्वमेंसे भी कुछ दूसरोंको भेंट करें।

दिसम्बर सन् १९३२ ई० के प्रयागके ऐक्य-सम्मेलनमें बङ्गालके हिन्दू तथा मुसलमान दोनों इस बातपर सहमत हो गए थे कि फ़िरङ्गियोंको जो अत्यधिक प्रतिनिधित्त्व मिलगया है उसमेंसे वे कुछ छोड़ दें जिससे मुसलमानोंको संयुक्त निर्वाचनके साथ-ही-साथ इक्यावन प्रतिशत सुरक्षित स्थान मिल जायँ और हिन्दू अथवा अन्य जातियोंकी जनसंख्याको, जो सामान्य निर्वाचन क्षेत्रमें शामिल हैं, ४४.७८ प्रतिशत प्रतिनिधित्त्व मिल जाय जो जनसंख्याकी दृष्टिसे उन्हें अवश्य मिलना चाहिए। परन्तु फ़िरङ्गियोंके प्रतिनिधियोंने उस अनुचित लाभको छोड़नेसे इनकार कर दिया जो उनके लिये निर्णयमें सुरक्षित था। उनकी इस कृपाके कारण प्रयागके ऐक्य-सम्मेलनका समझौता कार्य्यरूपमें परिणत न हो सका। आसाममें भी हिन्दुओंका अहित करके फ़िरङ्गियोंको अत्यधिक प्रतिनिधित्त्व दिया गया है।

भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंको जो स्थान दिए गए हैं उनकी गहरी छानबीन हमें नहीं करनी है। कुछ महीने पहले बड़ी व्यवस्थापिका सभाके बहुतसे अमुस्लिम सदस्योंने संयुक्त पार्लियामेण्टरी समितिके सामने जो एक नोट पेश किया था जिसमें इसका सारांश दिया हुआ है। उसमें कहा गया है किः—"साइमन कमीशनने अपनी रिपोर्टमें दो सौ पचास स्थानोंमेंसे पचहत्तर स्थान मुसलमानों तथा एक सौ पचास स्थान हिन्दुओंके लिये सुरक्षित रक्खे; अर्थात् हिन्दू और मुसलमानोंके स्थानोंमें दो और एकका अनुपात जब कि उनकी जनसंख्याका अनुपात लगभग तीन और एक है। भारत-सरकारने साइमन-रिपोर्टके ऊपर अपनी विज्ञप्तिमें मुसलमानोंके लिये बड़ी व्यवस्थापिका सभाके एक सौ पचास स्थानमेंसे पचास स्थान सुरक्षित रक्खे।" "साम्प्रदायिक निर्णयने मुसलमानोंके लिये बड़ी व्यवस्थापिका सभामें कुल दो सौ पचास स्थानोंमें बयासी स्थान सुरक्षित रक्खे अर्थात् कुलका ३३⅓ प्रतिशत जब कि सामान्य निर्वाचनके लिये केवल एक सौ पचास स्थान ही छोड़े गए हैं। सामान्य निर्वाचन क्षेत्रोंमेंसे इस प्रकार जो पैंतालीस स्थान ले लिए गए हैं उनमेंसे सात स्थान मुसलमानोंको दे दिए गए हैं और पैंतीस स्त्रियों, श्रमजीवियों, व्यापारियों और भूमिपतियोंके लिये विशेष निर्वाचन क्षेत्रके रूपमें सबके लिये रक्खे गए हैं जिनमेंसे तृतीयांश सम्भवतः मुसलमानोंको